पंडित पीतांबर पुरुषोत्तमजी॥

पंचदशी सटीका सभाषा ॥

प्रसंगावतरणान्वयटीकांकितनवीनरीतियुक्त

पंडितरामकृष्णकृत संस्कृतटीका

औ

पंडित श्रीपीतांबरजीकृत तत्त्वप्रकाशिका भाषाव्याख्या

अरु टिप्पण

औ

तीनप्रकारकी अनुक्रमणिका

तथा

श्रीमद्भागवतगत गजेंद्रमोक्ष सभाषा इत्यादिसहित

द्वितीयावृत्ति

सर्व मुमुक्षुनके हितार्थं

शरीफ सालेमहंमदने

छपाईके प्रकट कीन्ही ॥

श्रीमुंबइमैं निर्णयसागर छापखानैमैं छापी ॥

विक्रमसंवत् १९५३—इस्वीसन् १८९७

॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

संपूर्णं जगदेव नंदनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा
गांगं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परे ब्रह्मणि ॥ १ ॥

॥ श्रीब्रह्मवित्सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ द्वितीयावृत्तिकी प्रस्तावना ॥

॥ उपोद्धात ॥

जैसैं कोई नवीननगरविषै प्रवेश करनैवाले पुरुषकूं । प्रवेश करनेकी सुगमताअर्थ । तिस नगरके मार्गस्थरचनाआदिकका प्रथमसैं ज्ञान संपादन करना आवश्यक है । अथवा जैसैं दीर्घसमय व्यतीत भये पीछे कोई ज्ञात-नगरविषै प्रवेश करनैवाले पुरुषकूं । तिस नगरके मार्गस्थलविषै जो न्यूनाधिकतासुधारा-आदिक हुवेहोवैं । तिसका ज्ञान संपादन करना आवश्यक है । तैसैं कोई नवीनग्रंथ-विषै वा ज्ञातग्रंथकी नवीनआवृत्तिविषै प्रवेश करनैवाले पुरुषकूं । तिस ग्रंथकी शैलि-आदिक यथास्थित ग्रहण करनैकूं समर्थ होनै-अर्थ प्रथम तिस ग्रंथकी प्रस्तावना पठन करनी आवश्यक है ॥

श्रीपंचदशीग्रंथ ऐसा तौ विश्वविख्यात है कि तिसके उत्तमविषयविषै यत्किंचित् वी विवेचन करनैकी अगत्य नहीं है ॥

प्राचीनकालमैं जब मुद्रणकला नहीं थी । तब ग्रंथमात्र हस्ताक्षरसैं लिखेजातेथे औ लिखनैमैं जिस रूढिसैं श्रमकी न्यूनता होवै तिस रूढिकाहीं उपयोग कियाजाताथा । परंतु मुद्रणकलाकी शोध भये पीछे स्पष्टतासंपादक-रूढिसैं छापना सुगम भयाहै ॥

संस्कृतटीकाविषै जो चमत्कार है औ जो चमत्कार अन्यभाषाटीकाकारोंकी टीकाविषै वी दृश्यमान होता नहीं । सो चमत्कार । प्राचीनरूढिअनुसार ग्रंथ छापनैसैं आच्छादित रहताहै ॥

संस्कृतव्याख्याकार क्वचित् एकश्लोककी संपूर्णटीका एकहीं ठिकानै करैहै । अथवा क्वचित् एकश्लोकके थोडेकविभाग करीके प्रत्येकविभागकी टीका पृथक्पृथक् करैहैं । औ तैसैं करनैमैं मूलश्लोकके आरंभपदरूप प्रतीक-कूं धरैहैं ॥ अब । व्याख्यानकार एकश्लोक-की संपूर्णटीका करनैकूं इच्छताहै किंवा श्लोकके विभागमात्रकी । सो प्रतीकरूप शब्द-सैं सम्यक् ज्ञात होता नहीं ॥ तदुपरि । संस्कृत-टीकाकार एकसंपूर्णश्लोककी वा श्लोकके एकभागमात्रकी टीका करनैके ठिकाने बहुत-करिके प्रथम उपोद्घातरूप उत्थानिका धरैहै। औ तिस पीछे टीकाका आरंभ करैहै । तिसमैं जब एकश्लोकके अनेकविभाग किये होवैं । तब उत्थानिका कहांसैं आरंभित होयके कहां समाप्त हुई । औ टीकाका किस स्थलसैं आरंभ होयके किस स्थलविषै अंत आया । इस वार्त्ताका ज्ञान अल्पसंस्कृतज्ञोंकूं दुःसाध्य होवैहै । इतनाहीं नहीं परंतु । अबी श्लोकके किस विभागका व्याख्यान होताहै । यह जाननैवास्तै प्रतीकके शब्दकूं मूलश्लोकविषै शोचना पडताहै । औ तैसैं करनैमैं दृष्टिका

पुनः पुनः श्लोकमैंसैं टीकामैं तथा टीकामैंसैं श्लोकमैं गमनागमन होवैहै ॥

यह श्रमप्रदापकता दूर करनैके हेतुसैं केवल-नवीनमुद्रणशैलि इस आवृत्तिविषै प्रविष्ट करीहै। सो वाचकसमुदायकूं सुखकर औ सहायक होवैगी ऐसी आशा है ॥ उक्तमुद्रण-शैलिके नमूने अनेकविख्यातविद्वज्जनोंकूं भेजिके तिनोंके अभिप्राय मंगवायेथे। सो इस ग्रंथके पश्चात्भागविषै रखेहुये गजेंद्रमोक्षनामक-लघुग्रंथमैं छापेहैं। वहां देखनैसैं इस नवीन-शैलिका उपयोगित्व जान्याजावैगा ॥

प्रथमावृत्तिविषै **श्रीरामगुरुका चरित्र। श्रीविद्यारण्यस्वामीका चरित्र** । औ गुरुस्तुति धरेथे । वे इस आवृत्तिविषै वी ग्रंथारंभमैं धरेहैं ॥

इस द्वितीयावृत्तिविषै जे **अधिकता** औ **सुधारे** कियेहैं। वे नीचे दिखावैहैंः—

॥ **मूलश्लोक** ॥

पृष्ठके शिरोदेशमैं फिरती किनारीके मध्यमैं वडेअक्षरोंसैं मूलश्लोक धरेहैं औ तिनोंकी जितनै विभागमैं टीका हुईहै। तितनै प्रत्येक-विभागके आरंभकशब्दके उपरि सूक्ष्माक्षरसैं अंक धरेहैं ॥ श्लोकांतविषै जे अंकहैं । वे तिसतिस प्रकरणके श्लोकानुक्रमांककूं दर्शावै-हैं ॥ श्लोकके प्रत्येकटुकडेकी व्याख्याके । उत्थानिका होवै तौ उत्थानिका। अन्वय औ टीका। ऐसैं तीनविभाग कियेहैं ॥

॥ **उत्थानिका** ॥

संस्कृत तथा भाषाविभागमैं सर्वत्र उत्था-निकाके आरंभांकनकूं चिन्हरहित रखेहैं ॥

॥ **अन्वय** ॥

संस्कृत तथा भाषाविभागमैं सर्वत्र अन्व-यांकनकूं] ऐसै चिन्होंमैं धरेहैं ॥

संस्कृतअन्वय अन्यअक्षरोंसैं विशेप-स्थूलअक्षरोमैं धरेहैं औ श्लोकके जो विभागकी टीका होनैकी है । सो विभाग । अन्वय-आकारसैं पदच्छेदयुक्त यहां धराहै ॥ मूल-श्लोकके शब्दोपरि जे सूक्ष्मांक हैं। वे अन्वयके अंक हैं औ सो सूक्ष्मांकयुक्त मूलश्लोक-का शब्द। प्रतीक कहियेहैं ॥ जहां जहां अन्वयका आरंभ प्रतीकके शब्दसैंहीं होवैहै। वहां वहां प्रतीकका शब्द पृथक् दिया नहीं है। परंतु जहां अन्वय। प्रतीकसैं आरंभ होता नहीं। वहां संस्कृतउत्थानिकाके अंतमैं द्वि-कपाल ( ) चिन्हके मध्यविषै स्थूलाक्षरसैं प्रतीक दियाहै ॥

भाषाअन्वय संपूर्ण वडेअक्षरोमैं छापा नहीं है। परंतु स्थूल औ सूक्ष्म ऐसैं मिश्र-अक्षरोमैं छापाहै ॥ तिसमैं स्थूलाक्षर मूल-शब्दार्थकूं सूचन करैहैं औ सूक्ष्माक्षर वाक्य-पूर्तिके लिये दियेहैं ॥

॥ **टीका** ॥

संस्कृत तथा भाषाविभागविषै सर्वत्र टीकांकनकूं ऐसै) चिन्हविषै धरेहैं॥संस्कृत-टीकाविषै जे मूलश्लोकके शब्द आवतेहैं। वे सर्व स्थूलाक्षरोमैं कियेहैं ॥

॥ **चिन्ह** ॥

इसप्रकार चिन्हभेदसैं उत्थानिका अन्वय औ टीकाका भेद दृष्टिपातमात्रसैं दृश्यमान होवैगा ॥

॥ **संस्कृतविभाग** ॥

प्रथमावृत्तिविषै मूलश्लोकसिवाय अन्य कछु वी संस्कृत दिया नहीं था। परंतु इस आवृत्तिमैं अन्वयसहित संपूर्णसंस्कृतटीका धरीहै। ताका मूलश्लोकके नीचेसैं आरंभ होवैहै ॥ ऐसैं संस्कृतविभाग अलग धर्या-होनैतैं। जिनोंकूं मात्र संस्कृतकेहीं पठन करनै-

की इच्छा होवैंगी । तिनोंकूं यह आवृत्ति भाषाविभागके अरोधद्वारा संस्कृतपंचदशीकी न्यांई वी उपयोगी होवैगी ॥

॥ भाषाविभाग ॥

संस्कृतविभागके नीचे भाषाविभाग छाप्या-है ॥ इसरीतिसैं भाषाविभाग वी अलग होनैतें । मात्रभाषाज्ञजिज्ञासुनकूं भाषापठनविषै संस्कृतभाग रोधन करैगा नाहिं । औ तैसैं हुये यह द्वितीयावृत्ति सर्वप्रकारतें भाषा-पंचदशीकी न्यांई उपयोगी होवैगी ॥

प्रथमावृत्तिविषै जहां तहां वाक्यनके मध्यमैं अनेकद्विकंपालचिन्ह दियेथे । परंतु वे चित्तकी संलग्नतापूर्वक पठनमैं विघ्नकारी तथा सम्यक्-अर्थग्रहणमैं श्रमकारक हैं । ऐसैं अनुभव-सिद्ध हुयेतैं । वे द्विकपालचिन्ह इस आवृत्तिविषै रखे नहीं हैं । किंतु तिस तिस स्थलमैं "कहिये" "रूप" "नाम" "जो" "सो" आदिकशब्दोंमैं व्यवहार कियाहै ॥

॥ टिप्पण ॥

सर्वत्र भाषाविभागके नीचे सूक्ष्माक्षरसैं टिप्पण दियेहैं औ तिसमैं मुख्यशब्दोंके अक्षरों-कूं स्थूल कियेहैं । तदुपरि भिन्नभिन्नचिन्ह-वाले अंकयुक्तखंड (पेरेग्राफ)की रीति वी प्रविष्ट करिहै । तिसतैं विषयोंका समानासमान-पना । उत्तरोत्तरक्रम । शंकासमाधान । दृष्टांत-सिद्धांत । अन्वयव्यतिरेकआदिक श्रमविना बुद्धिग्राह्य होवैंगे ॥

॥ अंक ॥

संस्कृत तथा भाषाविभागनके सर्वत्र समान-अंक दियेहैं । तातैं उत्तमोत्तम ऐसी संस्कृत-विद्याके अभ्यासीजनोंकूं संस्कृत औ भाषाकी तुलना करनैमैं सुगमता होवैगी औ तिसद्वारा संस्कृतविद्याभ्यासविषै अत्यंतसुलभता होवैगी।

यद्यपि ये सर्वअंक तथा टिप्पणोंके अंक परंपराअनुक्रमके (चढते अनुक्रमके) दियेहैं । तथापि प्रत्येकशत(१००)के अंकके पीछे पुनः एकसैं आरंभ कियाहै ॥ ऐसैं करनैसैं महत्-संख्यावलोकनका श्रम दूरि होवैगा औ अद्वैतमतका एक श्रेष्ठसिद्धांत साधित होवैगा॥

साधुश्री सुंदरदासजी सुंदरविलासगत "अद्वैतज्ञान"के अंगविषै कहतेहैं किः—

॥ हंसालछंद ॥

सकल संसार विस्तारकरि वरणियो ।
स्वर्ग पाताल मृत ब्रह्महीं है ॥
एकतैं गिनतही गिनिय जो सौ लगि ।
फेरि करि एकको एकही है ॥
ये नहीं ये नहीं रहै अवशेष सो ।
अंतही वेदनैं यूं कही है ॥
कहत सुंदरसही अपनपो जानु जव ।
आपनै आपमैं आपहीं है ॥ १२ ॥

इसरीतिसैं यद्यपि अंकनका चढताअनुक्रम तोड्याहै । तथापि प्रत्येकपृष्ठकी टीका औ टिप्पणका परंपरानुक्रमांक प्रत्येकपृष्ठउपरि दिये श्लोकनकी समीपमैं यथास्थित सूचित कियाहै ॥

टीकांकः । इसशब्दके नीचे जे अंक दि-येहैं । वे व्याख्याभागके परंपराअनुक्रमके अंक हैं ॥

टिप्पणांकः । इसशब्दके नीचे जे अंक दियेहैं । वे टिप्पणके चढते अनुक्रमांक हैं। औ

श्लोकांकः । इसशब्दके नीचे जे अंक दियेहैं । वे ग्रंथारंभसैं श्लोकनके चढते अनुक्रमांककूं सूचन करैहैं ॥

जहां टिप्पणका अभाव है । तहां टिप्पणांकके नीचे ॐ धर्याहै ॥ ऐसैं अंकका अभाव सूचन करनै वासते ॐ धरना कोईकूं असमीचीन भासैगा । परंतु तामैं कछु वी अ-समीचीन नहीं है । काहेतैं जहां वस्तुमात्रका

अभाव होवै तहां ॐ (ब्रह्म)का तो सद्भावहीं रहैहै ॥

॥ प्रसंग ॥

मुख्य मध्य औ लघु । ऐसैं प्रसंगविषै तीनिविभाग कियेहैं ॥ एकमुख्यप्रसंगके अनेक मध्यप्रसंगरूप भाग कियेहैं । फेर वे प्रत्येकमध्यप्रसंगके अनेक लघुप्रसंगरूप भाग कियेहैं ॥ प्रथमावृत्तिमैं मुख्य औ मध्यप्रसंगहीं मात्र दियेथे औ इस द्वितीयावृत्तिविषै तौ तीनिप्रकारके प्रसंग भाषाविभागविषै धरेहैं ॥ अक्षरभेदसैं स्पष्टता करनैअर्थ मुख्यप्रसंगके अक्षरोंसैं मध्यप्रसंगके अक्षर कछुकसूक्ष्म रखेहैं औ लघुप्रसंगके अक्षर तिसतैं वी अधिकसूक्ष्म कियेहैं ॥

मुख्यप्रसंगके आरंभमैं जो अंक दियाहै। सो तिस तिस प्रकरणके मुख्यप्रसंगका अनुक्रमअंक है औ अंतविषै जे दोअंक धरेहैं। वे उक्तमुख्यप्रसंग किस अंकसैं किस अंकपर्यंत चलताहै । सो दिखावै है ॥ तैसैं

मध्यप्रसंगके आरंभमैं दियाहुया अंक । सो मध्यप्रसंग । मुख्यप्रसंगगत कितनावां मध्यप्रसंग है । सो दर्शावैहै औ अंतविषै दिये दोअंक वे मध्यप्रसंगके विस्तारकूं सूचन करैहैं ॥

यह सर्वअंक परंपराअनुक्रमवाले दियेहैं ॥

लघुप्रसंगके आरंभमैंहीं मात्र अंक दियाहै। औ सो अंक । सो लघुप्रसंग । मध्यप्रसंगगत कितनावां प्रसंग है । सो दर्शावनैके लियेहै॥

इसरीतिसैं ग्रंथभागमैं प्रसंगनकूं अनुस्यूत कियेहोनैतैं प्रस्तुतविषयमैं क्या प्रसंग चलताहै । सो अनायाससैं जान्याजावैगा ॥

अमुकलघुप्रसंग किस मध्यप्रसंगमैंसैं निकस्याहै औ पुनः सो मध्यप्रसंग किस मुख्यप्रसंगमैंसैं उद्भव हुवाहै । सो वार्ता । पृष्ठ फिरानै (पुनरावलोकन)के श्रमविनाहीं ज्ञात होवै । तिसलिये प्रत्येकवामपृष्ठके सर्वोपरिस्थलमैं मुख्यप्रसंग औ प्रत्येकदक्षिणपृष्ठके सर्वोपरिस्थलमैं मध्यप्रसंग । तिनोंके यथास्थितअंकसहित छापेहैं ॥

॥ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ॥

प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ग्रंथारंभमैं धरीहै । तिससैं वांछितप्रसंगका अंक निमेषमात्रमैं प्राप्त होवैगा ॥

इस अनुक्रमणिकाविषै मात्र मुख्य औ मध्य । ऐसैं दोप्रकारके प्रसंग औ तिनोंके अनुक्रमांक तथा विस्तारदर्शकअंक प्रविष्ट कियेहैं ॥

॥ अकारादिअनुक्रमणिका ॥

प्रसंगदर्शकानुक्रमणिकाके पीछे बडेविस्तारवाली सामान्यविषयदर्शकअनुक्रमणिका रखीहै । सो अत्यंतउपयोगी होवैगी । काहेतैं तिसविषै ग्रंथविभागके औ टिप्पण्यविभागके सर्वज्ञातव्यविषयोंकूं समाविष्ट कियेहैं । इतनाहीं नहीं । परंतु कितनेक अवश्यउपयोगी मुख्य औ मध्यप्रसंग वी अनुस्यूत कियेहैं ॥ यह सर्व । अकारादिअनुक्रममैं गुंथित कियेहोनैतैं ग्रंथगत कोइ वी वांछितविषयका अंक झटिति प्राप्त होवैगा ॥

ये सर्वअंक चढते अनुक्रमके दियेहैं । तिसमैं जे चिन्हरहितअंक हैं । वे ग्रंथविभागके अंकनकूं सूचन करैहैं । जे अंक द्विकपालचिन्हके मध्यमैं धरेहैं । वे टिप्पणके अंक हैं । जिन अंकनके आरंभमैं ** ऐसा चिन्ह है । वे मुख्यप्रसंगके ग्रंथगत आरंभांकनकूं दर्शावैहैं औ जिन अंकनके आरंभमैं * ऐसा चिन्ह है । वे मध्यप्रसंगके ग्रंथगत आरंभांकनकूं दिखावैहैं ॥ जो कदाचित् यह संकेत विस्मरण होवै तौ वी पुनःपुनः

प्रस्तावनाविषै देखना न पडे। इसलिये यह संकेत अनुक्रमणिकाके आरंभविषै बी स्पष्टतासैं छाप्याहै ॥

तदुपरि सुगमताकी अधिकता औ श्रमकी न्यूनता करनैनिमित्त इस अनुक्रमणिकाके शब्द। जहां जहां बन्या तहां तहां। भिन्नभिन्नअक्षरके नीचे एकसैं अधिकवार दियेहैं॥ जैसैं कि:—"आनंदमयकोश"का विषय पंचदशीगत किस किस अंकनविषै प्राप्त होवैगा? यह देखना होवै तौ "आ"के अनुक्रममैं "आनंदमयकोश" यह शब्द देखनैसैं तत्संबंधी सर्वअंक जानेजावैंगे। इतनाहीं नहीं। परंतु "को"के अनुक्रममैं "कोश" शब्द देखनैसैं आनंदमय। विज्ञानमय। मनोमय। आदिकसर्वकोशनके सर्वअंक एकहीं स्थलविषै प्राप्त होवैंगे ॥ इसरीतिसैं "आनंदमयकोश"के विषयका अंक "आनंदमयकोश" औ "कोश आनंदमय"। ऐसैं दोस्थलमैं दृश्यमान होवैगा॥ तैसैंहीं "आत्माका औ पंचकोशनका परस्परअध्यास" ये विषयका अंक। इस अनुक्रमणिका गत "आत्माका औ पंचकोशनका परस्परअध्यास"। "पंचकोश औ आत्माका परस्परअध्यास" औ "अध्यास परस्पर आत्मा औ पंचकोशनका" ऐसैं तीनिस्थलविषै ज्ञात होवैगा ॥

॥ श्लोकदर्शकानुक्रमणिका ॥

अकारादिअनुक्रमणिकाके पीछे श्लोकदर्शकअनुक्रमणिका धरीहै॥ इसमैं प्रत्येकश्लोक पूर्ण दिये नहीं हैं। परंतु मात्र श्लोकनके पूर्वार्धके प्रथमअर्धचरणहीं दियेहैं औ तिनके सन्मुख परंपराअनुक्रमवाले श्लोकांक दियेहैं॥ यह अनुक्रमणिका बी अकारादिअनुक्रमसैं ग्रंथित करिहोनैतैं। जिस वांछितश्लोकका मात्र अर्धपूर्वार्ध अथवा आरंभके मात्र थोडे शब्दहीं स्मृतिमैं होवैंगे। तिस श्लोकका अंक श्रमविना शीघ्र प्राप्त होवैगा ॥

॥ ब्रह्मनिष्ठपंडित श्रीपीतांबरजी पुरुषोत्तमजी महाराजकी यथास्थित चित्रित मूर्त्ति ॥

ये परब्रह्मनिष्ठ औ पूज्य महात्मा हैं। जिनोंनै "श्रीविचारचंद्रोदय"। "श्रीबालबोध"। पंडितगम्य वृत्तिप्रभाकरका सारभूत वेदांतोपयोगी "श्रीवृत्तिरत्नावली"। पद्यात्मक "सर्वात्मभावप्रदीप" औ "श्रुतिषड्लिंगसंग्रह" आदिकअनेकस्वतंत्रग्रंथ रचेहैं। औ "श्रीविचारसागर" ग्रंथऊपर गूढार्थप्रकाशकविस्तीर्णटिप्पण दियेहैं। "श्रीसुंदरविलास" गत विपर्ययअंग जो प्रथमदृष्टिसैं विपरीतअर्थवाला भासताहै। तिसकी महाचातुर्ययुक्त वेदांतानुसारी टीका करीहै औ "श्रीअष्टावक्रगीता"नामक निष्ठाउद्गारवान्ग्रंथका संक्षिप्तभाषांतर कियाहै॥ ईश। केन। कठवल्लि। मुंडक। मांडूक्य आदिकदशोपनिषदोंका श्रीशंकरभाष्य औ आनंदगिरिटीकानुसार अत्यंतश्रमपूर्वक भाषांतर कियाहै। इतनाहिं नहीं। परंतु वेदांतग्रंथसमूहमैं रत्नरूप इस श्रीपंचदशीकी तत्त्वप्रकाशिका व्याख्याकरिके तिसउपर विस्तारयुक्त टिप्पण कियेहैं। इसरीतिसैं सकलमुमुक्षुसमुदायके उपरि महान् अनुग्रह औ दया करीहै। तिनोंकी दर्शनमात्रसैं कृतार्थ करनैहारी यथास्थितचित्रितमूर्ति बहुतद्रव्यखर्चसैं विलायतसैं मंगवायके ग्रंथारंभमैं स्थापित करीहै ॥

यह चित्रितमूर्तिके नीचे जे अक्षर हैं। वे पूज्यमहाराजश्रीके हस्ताक्षर हैं ॥

॥ गजेंद्रमोक्ष ॥

इस ग्रंथकी जिल्दकेऊपर गजेंद्रमोक्षका चित्र छाप्या होनैतै। ताकी मूलकथा बी

वाचकसमुदायकूं अवलोकनीय होवैगी ऐसैं विचारिके श्रीमद्भागवताष्टमस्कंधगत गजेंद्र-मोक्षनामक कथा संपूर्णमूल औ अन्वयांक-अनुसार भाषांतरसहित ग्रंथके पश्चात्भागविषै रखीहै ॥

पाठ करनैकी सुगमताअर्थ मूलश्लोकनकूं पृथक् रखेहैं औ तद्गत अक्षरनकूं स्थूल किये-हैं औ संस्कृतभाषाके अभ्यासीनकी सुगमता-अर्थ मूलश्लोकके शब्दोपरि तथा भाषाविषै अन्वयांक दियेहैं ॥ इतनाहीं नहीं । परंतु भाषाविषै मूलशब्दार्थसूचकशब्दोंकूं स्थूलता-भेदसैं विस्पष्ट कियेहैं ॥

इस गजेंद्रमोक्षग्रंथका पठन अत्यंतपुण्य-कारी गिन्याजाताहै । तिसमैं ग्राहतैं मुक्त होनैअर्थ गजेंद्रनै श्रीहरिभगवान्की जो स्तुति करीहै । सो तौ प्रत्येकवेदांतीकूं लक्षपूर्वक अवलोकनीय औ स्मरणीय है ॥

॥ षट्दर्शनसारदर्शकपत्रक ॥

गजेंद्रमोक्षके आरंभमैं "पूर्वमीमांसा" । "उत्तरमीमांसा" कहिये वेदांत । "न्याय" । "वैशेषिक" । "सांख्य" औ "योग" । इन षट्दर्शनका ब्रह्मनिष्ठपंडितश्रीपीतांबरजी-महाराजकृत अत्यंतउपयोगी सारदर्शकपत्रक धर्याहै । तिसतैं जीव । जगत् । बंध । मोक्ष । आदिक १७ मुख्यविषयोंके प्रत्येकमतानुयायी-ओंनै कैसै भिन्नभिन्नलक्षण कियेहैं । वे संक्षेप औ स्फुटतासैं सम्यक् ज्ञात होवैहै ॥

॥ ग्रंथकी जिल्द ॥

जैसी यह ग्रंथकी जिल्द भईहै तैसी अद्य-पर्यंत भरतखंडविषै कोई बी ग्रंथकी नहीं भईहै । यह कहनैमैं किंचित् बी अतिशयोक्ति नहीं है । ऐसैं ग्रंथकी जिल्द देखनैसैं निश्चय होवैगा ॥ यह जिल्द बहुतखर्चकरिके विला-यतसैं मंगवाईहै औ तिसविषै जे चित्र दियेहैं । वे मात्र सुंदरतासंपादन करनैअर्थ दिये नहीं हैं । परंतु सुंदरताके साथि महागंभीर औ उत्तमअर्थके स्मारक होनैअर्थ दियेहैं ॥ इन चित्रोंविषै जो अर्थकी कल्पना करीहै । सो नीचे दर्शावैहैं:—

गजेंद्रमोक्षका चित्र देखनैसैं जान्या-जावैगा कि सरोवरविषै गजराजकूं एक ग्राहनै बहुतबलपूर्वक ग्रहण कियाहै औ सो ग्रसनसैं मुक्त होनैअर्थ सो गजराज अत्यंतबल करताहै । इतनाहीं नहीं । परंतु गजराजका कुटुंबपरिवार आपआपकी शुंडसैं तिस गज-राजकूं बाहिर खींच लेनैमैं अत्यंतपरिश्रम करताभया ॥ ऐसैं दीर्घप्रयत्नके प्रतापसैं बी मुक्त होना अशक्य देखिके सो गजराज । सरोवर-विषै उत्पन्न हुये अंबुजोमैंसैं एककूं तोडिके । शुंडसैं मस्तकउपरि धरिके । जब भक्तिभावपूर्वक श्रीविष्णुकी प्रार्थना करताभया है ॥ तब स्तुतिसैं प्रसन्न हुवाहै अंतःकरण जिसका औ परम-दयालु है स्वभाव जिसका । ऐसै श्रीविष्णु-भगवान् आपके चक्रसैं तत्काल गजेंद्रका ग्राहतैं उद्धार करतेभये ॥

इस कथाभूतरूपकविषै जो उत्तमसारार्थ गूढ रह्याहै । सो यह है:—

गजराजकूं तौ अज्ञानी जीव । ग्राहकूं तौ महामोहरूप माया औ सरोवरकूं तौ अपार-दुस्तरसंसार समजना ॥ जैसैं सरोवरविषै रमण करताहुया गजेंद्र । ग्राहसैं ग्रस्त भयाहै । तैसैं संसारविषै रमण करताहुया यह अज्ञानीजीव प्रबलप्रधानमहामोहरूप मायासैं ग्रस्त होवैहै ॥ जैसैं गजराज आपके औ अन्यहस्तिनके बलसैं बी छूटनैकूं असमर्थ भयाहै । तैसैं यह अज्ञानी-जीव बी केवल अपनी बुद्धिके बलसैं वा मंत्र-कर्महठयोगादिकबाह्योपचारसैं मुक्त होनैकूं असमर्थ होवैहै । परंतु जैसैं गजराज हरिस्तुति-

सैं हरिकूं प्रसन्नकरिके तिनोंके भेजेहुये चक्रकी सहायतासैं मुक्त हुवा। तैसैं यह अज्ञानी-जीव बी परब्रह्मनिष्ठगुरु जो गोविंद(हरि)सैं केवल अभिन्न है। तिसकूं श्रद्धापूर्वक तनमन-धनअर्पणसेवारूप स्तुतिसैं प्रसन्न करै। तौ तिसके दिये हुये ज्ञानोपदेशरूप चक्रकी सहायतासैं तत्काल मुक्त होवै। यह निःसंशय है ॥

इसरीतिसैं यह उत्तमचित्र दर्शनमात्रसैंहीं उक्तश्रेष्ठसिद्धांतकूं स्मरण करावनैद्वारा मुमुक्षुनकूं महाकल्याणका साधन होवैगा। इतनाहीं नहीं। परंतु इस पंचदशीके प्रथम-श्लोकरूप मंगलाचरणका बी स्मारक होवैगा। काहेतें तिस मंगलाचरणमैं बी विलाससहित महामोहरूप ग्राहकूं ग्रास करनैकाहीं कर्म है जिसका। ऐसे श्रीगुरुके दोचरणरूप कमल-कूं नमस्कार कियाहै ॥

श्रीपंचदशीरूप पुष्पवाला वृक्षः— गजेंद्रमोक्षके चित्रउपरि एककुंडेविषै वृक्ष रोप्याहै। तिसकूं च्यारीपर्ण औ १५ पंखुरी-युक्त एकपुष्प है ॥ यह चित्रका अर्थ अब दिखावैहैंः— वृक्षके मूलमैं सुवर्णाक्षरका ॐ विद्यमान है। सो ऐसैं सूचन करैहै कि १५ प्रकरणरूप १५ पंखुरीवाला श्रीपंचदशी-रूप पुष्प। सर्वाधारभूत ॐरूप भूमिविषै उत्पन्न हुयाहोनैतैं महाश्रेष्ठ है ॥ पुनः सो ॐ रूप भूमि कैसी है कि "नाना नहीं"। तैसैं अन्य कोई बी पदार्थके साथि तुलनाकूं अ-योग्य होनैतैं "ऐसी नहीं। ऐसी नहीं"। यह दर्शावनैनिमित्त "नेह नानास्ति" औ "नेति नेति"। ये दोवाक्यनकूं कुंडेपर छापेहैं ॥

वनस्पतिविद्यानुसार वृक्षका पोषण पर्ण-द्वारा बी होवैहै। तैसैं इस पंचदशीरूप पुष्पका पोषण बी चारमहावाक्यरूप पर्णोंद्वाराहीं होवैहै ॥

ऐसैं यह चित्र उत्तमअर्थके साथि श्रीपंच-दशीके माहात्म्यकूं दर्शावताहै ॥

हस्त औ चक्रः— ग्रंथके पीठभागविषै हस्तांगुलीउपर एकसुवर्णचक्र फिरता दिखाया-है औ तिस चक्रके उपरि "ॐ पंचदशी सटीका सभाषा" ऐसैं ग्रंथका नाम लिख्या-है ॥ यह चित्र वेदांतके एक प्रधानसिद्धांतकूं सूचन करैहैः—जैसैं श्रीविष्णुभगवान्‌का तीक्ष्ण-सुदर्शनचक्र नियमपूर्वक फिराइके फेंक्याहुया ग्राहके अत्यंतविनाश करनैकूं समर्थ भयाहै। तैसैं यह केवलज्ञानपुंजमयपंचदशीरूप तीक्ष्ण-चक्र नियमपूर्वक फिराइके कहिये सम्यक्-अभ्यासकरिके। फेंकनैमैं आवै अर्थात् तिसके अर्थविषै दृढनिष्ठा राखनैमैं आवै। तौ सर्व-दुःखोंके कारणभूत अज्ञान औ तत्कार्यका बाधरूप अत्यंतविनाश करै। यह निर्विवाद है ॥ जैसैं अंधकार। अन्य कोइ बी उपचार-सैं निवर्त्त होता नहीं। परंतु मात्र तिसके विरोधी प्रकाशसैंहीं निवृत्त होवैहै। तैसैं यह अज्ञान बी कर्मउपासनायोगादिकउपचारसैं निवर्त्त होता नहीं। परंतु तिसके विरोधी मात्र ज्ञानसैंहीं निवर्त्त होवैहै ॥

॥ भ्रांतिचित्र ॥

ग्रंथकी पीठगत एकचित्र औ जिल्दके पृष्ठभागगत सातचित्र। ऐसैं सर्वमिलके आठचित्र। ये सारमय भासनैहारे जगत्‌की असारमयताके दृष्टांतनिमित्त दियेहैं ॥ तिसका विस्तृतविवेचन अब करैहैंः—

१ प्रथमचित्रः— ग्रंथकी पीठऊपरि 'शरीफ' नामके उभयबाजुविषै नीचेकी प्रथम

औ द्वितीयआकृति समान दोचित्र रखेहैं ॥

प्रथमआकृति. द्वितीयआकृति.

उभयचित्रोंकी दोनुं सीधी मध्यरेषा यद्यपि समानमापकी हैं। तथापि तिसके अग्रभागविषै दीहुई तिर्यक्रेषारूप उपाधिके वलसैं भ्रांतिद्वारा वामचित्रकी मध्यरेषा दक्षिणचित्रकी मध्यरेषासैं वडी प्रतीत होवैहै ॥

(जिल्दके पृष्ठभागगत सातचित्रः-)

२ द्वितीयचित्रः-ऊपरके भागमैं दो स्थूल गुलाववर्णरेषाओंके मध्यमैं जो चित्र है। तिसकी दो दीर्घ रेषा नीचेकी तृतीयआकृति-

तृतीयआकृति.
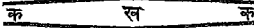
सादृश प्रतीयमान होवैहै। कहिये आदिअंतमैं दोनूं दीर्घ रेपाका 'क' 'क' भाग संकोचित तथा मध्यका 'ख' भाग विकासित दृष्ट आवताहै। यातैं वे रेषा वाह्यचक्राकार प्रतीत होवैहैं। परंतु तैसी है नहीं। किंतु सीधीहीं हैं। इस वार्त्ताकी चक्षुरूप प्रत्यक्षप्रमाणसैं सिद्धि करैहैं:-

जैसैं कोई वाणकूं छोडनैके समयपर वाणकूं लक्ष्यके साथि साधताहै। तैसैं उक्त उपरनीचेकी दोरेषाओंके आदिके साथि अंतकूं लक्ष्यकरिके देखनैसैं वे दोनूंरेषा नीचेकी चतुर्थआकृतिसमान सीधीहीं दृष्ट आवैंगी ॥

चतुर्थआकृति.

यातैं 'क' 'क' भाग संकोचित औ 'ख' भाग विकासित दृष्ट आवताहै। सो मात्रभ्रांतिकरिकेहीं दृष्ट आवताहै ॥ प्रत्येकदीर्घरेपाके उपरि तथा नीचे जे अनुमानसैं २८ छोटी टेढीरेषा हैं। वे उपाधिहीं इस भ्रांतिका कारण है ॥

३ तृतीयचित्रः-'क' औ 'ख' अक्षरयुक्त नीचेकी पंचमआकृतिसमान दोचित्र

पंचमआकृति.

एकदूसरेके उपरि धरेहैं ॥ ये उभयचित्र यद्यपि सर्वप्रकारसैं परिमाणमैं समान हैं। तथापि 'ख' चित्र 'क' चित्रसैं वडा भासताहै॥

इस असत्यप्रतीतिका इतनाहीं कारण है कि 'ख' चित्रकूं यत्किंचित् वहिर निकसता दिखायाहै ॥

४ चतुर्थचित्रः- उक्तचित्रकी दक्षिणदिशाविषै 'ख' अक्षरयुक्त स्थूलरेपाके उपरि 'क' अक्षरयुक्त सूक्ष्मरेषा खडी करीहै। तिसमैं सूक्ष्मरेषा 'क'। स्थूलरेपा 'ख' सैं किंचित् लघु है। तौ वी दीर्घ भासतीहै ॥

यह भ्रांति स्थूलसूक्ष्मताके संयोगसैं औ सूक्ष्मरेपाकूं खडी करी होनैतैं उत्पन्न होवैहै ॥

५ पंचमचित्रः-बरावरमध्यमैं पट्चक्रयुक्त एकआकृति है तिसका उपयोग ऐसा है कि:- ग्रंथकूं सन्मुख दक्षिणहस्तविषै धरीके वामसैं दक्षिणकी तरफ त्वरासैं लघुचक्राकार फेरनैकरी वे पट्चक्र दक्षिणकी तरफ फिरते दृष्ट पडैंगे औ तिसी आकृतिके मध्यमैं १२ दंतयुक्त जो हरितचक्र है। सो पट्चक्रनसैं विपरीत कहिये वामकी तरफ फिरता देखनैमैं आवैगा ॥

प्रज्वलितअग्रवाले काष्ठकूं भ्रमण करनैतैं अलातका चक्र भतीत होवैहै। तिसमैं दृष्टिका तीव्रवेग कारणभूत है। तैसैं यामैं वी दृष्टिका वेगहीं प्रधानकारण है ॥

६ **षष्ठचित्रः**—'क' 'ख' औ 'ग' रेषावाली नीचेकी षष्ठआकृतिसमान चित्रमैं प्रथम-

षष्ठमआकृति.
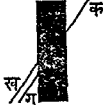
दृष्टिसैं 'क' रेपा 'ख' रेपाके साथि नीचेकी सप्तमआकृतिकी न्यांई संधिके योग्य दिखती-

सप्तमआकृति.
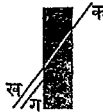
है। परंतु वास्तविक तौ नीचेकी अष्टमआकृति-

अष्टमआकृति.
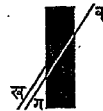
की न्यांई 'ग' रेषाके साथिहीं संधिकूं प्राप्त है ॥

इस भ्रांतिके उत्पन्न होनैमैं मध्यका श्याम-विभाग दृष्टिकूं रोकनैद्वारा कारणभूत है ॥

७ **सप्तमचित्रः**—उक्तचित्रके दक्षिणविषै नीचेकी नवमआकृतिसदृश सप्तरेपावाला

नवमआकृति.

एकचतुष्कोणचित्र है ॥ ये सातहीं रेपा औ तिनोंके अंतरालमैं प्रतीत हरितवस्त्ररूप सर्व-हरितरेपा यद्यपि नीचेकी दशमआकृतिसमान

दशमआकृति.

सीधीहीं हैं। तथापि वे सर्वरेपा नीचेकी एकादशमआकृतिकी न्यांई क्रमानुसार उपर

एकादशमआकृति.

नीचे संकोचितविकसित हुई भासतीहै ॥

यह विपरीतदर्शन छोटीटेढीरेषारूपउपाधि-के अनुसंधानसैं होवैहै ॥

८ **अष्टमचित्रः**—सर्वसैं नीचे दो स्थूल गुलाबवर्णरेपाके मध्यमैं द्वितीयचित्रके सदृश आकृति रखीहै। तिसकी दोनूं दीर्घरेषा यद्यपि सीधीहीं हैं। तथापि नीचेकी द्वादशम-

क ख क
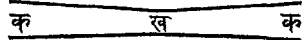
द्वादशमआकृति.

आकृतिसदृश द्वितीयचित्रसैं विपरीतवक्रा-कार कहीये आंतरवक्राकार प्रतीत होवैहैं ॥

या भ्रांतिका कारण द्वितीयचित्रकी भ्रांतिके कारण समानहीं होनैतैं इहां लिख्या नहीं ॥

उक्तसर्वभ्रांतिनविषै मुख्यकारण तौ यह है कि उपाधिके प्रतापसैं प्रकाशके किरणोंका चक्षुकरि यथास्थित ग्रहण नहीं

होवैहै ॥ प्रकाश औ दृष्टिकी आधुनिकविद्या (Optics) के अनेकग्रंथ इंग्रेजीभाषामैं हैं । तिसतैं तौ ऐसा सिद्ध होवैहै कि चक्षु बाह्यपदार्थोंकूं बाह्यस्थित देखती नहीं है परंतु पदार्थके मात्र प्रतिबिंबकूं ग्रहण करतीहै । अर्थात पदार्थोंका बहिरस्थितपना मात्र भ्रांतिकरिहीं भासताहै ॥ इसवार्त्ताकूं स्पष्ट करनैनिमित्त एक पाश्चात्यविद्वानकी उक्तिमैंसैं कछुक नीचे धरैहैं:—

"पुष्पका रंग । पक्षीका शब्द औ अन्नका स्वाद । ऐसैं जे गुण पदार्थमैं नहीं हैं वे गुण पदार्थमैं मानिके जनसमूह कथन करैहैं । परंतु वे गुण मनोमात्र हैं ॥ * * * * अवकाशविषै पदार्थोंकी स्थिति जैसैं प्रतीत होतीहै । तैसैं अपन देखतै नहीं हैं । यह वार्त्ताकूं मानना यद्यपि दुष्कर है तथापि इतना तौ निर्विवाद सिद्ध हुवाहै कि परिमाण । अवकाश औ अंतर (दूरपना) । इन तीनोंकी कल्पना । बाल्यावस्थामैं कियेहुवे मानसिकप्रयत्न औ शारीरकप्रयोगका परिणाम है ॥ जब कोई जन्मांधपुरुषकूं शस्त्रक्रियासैं दृष्टि प्राप्त होतीहै । तब तिसकूं सो दृष्टिमात्रसैं पदार्थोंका परस्परअंतर ज्ञात होता नाहीं । किंतु समीप औ दूरस्थित सर्वपदार्थ तिसकी चक्षुकूं समानसमीपतावाले भासतैहैं ॥"

(Lancet 21st December 1895 page 1558.)

इन सर्वभ्रांतिचित्रोंका सारार्थः— सर्वमतशिरोमणि वेदांतसिद्धांतमैं सत्यकी न्यांई भासनैवाले इस जगत्कूं स्वप्नके नगरकी । रज्जुके सर्पकी औ ऊपरभूमिविषै दृश्यमान मिथ्याजलकी उपमा देवैहैं ॥

स्वप्नविषै देखे नगरका औ रज्जुविषै माने सर्पका तौ अनेकमुमुक्षुनकूं अनुभव होवैगा । परंतु मिथ्याजलका अनुभव बहुतजनोंकूं नहिं है । काहेतैं सो भ्रांतिके कारणरूप ऊषरभूमिआदिक सर्वदेशविषै प्राप्त नहीं हैं ॥

वेदांतशास्त्रविषै यह मिथ्याजलका दृष्टांत अत्यंतप्रबल असरकारक औ समानअंशवाला है । कारण कि जैसैं ऊपरभूमिविषै वास्तविकजलका लेश नहीं है । तौ बी जल प्रतीत होवैहै । औ "सो मिथ्याजल है" ऐसा निश्चयज्ञान हुवे पीछे बी सो जलप्रतीति दूर होती नहीं । तैसैं ब्रह्मरूप अधिष्ठानविषै वास्तविकजगत्का लेश नहीं है । तौ बी जगत् प्रतीत होवैहै । औ "यह मिथ्याजगत् है" ऐसा दृढनिश्चय हुवे पीछे बी सो जगत्प्रतीति दूर होती नहीं । परंतु जैसैं ऊपरभूमिके जलका मिथ्यात्वनिश्चय हुवे पीछे । सो जल पान करनैकी इच्छा उत्पन्न होती नहिं । तैसैं यह ब्रह्मरूप अधिष्ठानमैं जो प्रतीत होताहै जगत् । सो "मिथ्या है" ऐसा शास्त्र औ गुरुकृपासैं दृढनिश्चयरूप बाध होयजावै । तौ इस मिथ्याजगत्विषै अहंताममतादिक दुःखकीकारणभूत दृढआसक्तियां कचित् बी उत्पन्न होवैं नहिं ॥

ये भ्रांतिचित्र बी लघुरेषाकूं दीर्घ । सीधीरेषाकूं वक्र औ स्थिरतावाले चक्रोंकूं गतिमान् । ऐसैं विपरीत दिखावैहैं । इतनाहीं नहीं परंतु यथार्थवार्त्ताके ज्ञान हुवे पीछे बी सो पूर्वकी न्यांईहीं विपरीतदर्शन देवैहैं । यातैं मरुस्थलके जलके यथोचितचित्रितदृष्टांतमय हैं । औ तिसद्वारा इस जगदाडंबरकी असारताके स्मारक हैं ॥

उपरिदर्शित सुधारे औ अधिकताके अवलोकनसैं वाचकवृंदकूं निश्चय होवैगा कि जैसैं वेदांतग्रंथोंविषै श्रीपंचदशी उत्तमोत्तम है । तैसैं अद्यपर्यंत प्रसिद्ध हुई श्रीपंचदशीकी अनेकआवृत्तिनमैं यह द्वितीयावृत्ति उत्तमोत्तम भईहै औ सो उत्तमता संपादन करनैवास्ते केवल मुमुक्षुजनोंका हितहीं लक्षमैं राखिके द्रव्य औ श्रमकी किंचित्बी गणना नहिं करीहै ॥

शरीफ सालेमहंमद ॥

॥ गुरुस्तुति ॥

॥ कवित्त ॥

ब्रह्मधाममैं विराम । पूर्णकाम गुरु राम ।
अष्ट जाम तुष्ट–राम । रमै रामरूपमैं ॥
ब्रह्मविद्या अनद्या अद्यापि करी हरी सारी ।
अविद्या आनंदसरी निकरी अनूपमैं ॥
बंदे भवबंधे अंधे देहोपाधि व्याधि संधे ।
निकाशे प्रकाशे रूप । रुंधे दुःखकूपमैं ॥
सनकादि जैसे ऐसै देसिकेस दुर्लभ हैं ।
ज्ञानकुंज तेजपुंज । पूज्य मुनिभूपमैं ॥ ॥ १ ॥

भ्रमन्यासी ब्रह्माभ्यासी । उदासी सु सिद्धि दासी ।
विमुक्ति निरासी स्वप्रकाशी ब्रह्मभूतही ॥
ज्ञानके उजासी शशी भ्रमरासि फासी नासी ।
जिज्ञासीके प्यासी जासैं त्रासी यमदूतही ॥
स्वयं सुखमैं हुलासी । तापके हटासी टासी ।
ब्रह्मभूत भासी जाके हासी जीवभूतही ॥
भोगरासि आसी न्यासी न्यासी वनवासी वासी ।
आनंदविलासी सब विश्व अनुस्यूतही ॥ ॥२॥

विप्रवंस अवतंस कंसध्वंसनके अंस ।
पर हंस सेव्य भवदंससैं निःशंकही ॥
गज आदि भूति ऊति । सपूती असूति करी ।
संकरी प्रसूति गुण विभूति निर्वंकही ॥
जटामौलिजुत मुनि मोहन मूरति धारी ।
सारी सृष्टि तारी करी काल निरातंकही ॥

विज्ञान गह्यायो स्रीयसक्तिहींते भक्तियुत ।
जन जोई कर्मभंग भीत ज्यूं उदंकही ॥ ॥ ३ ॥

बुद्ध बापु महाराज । विश्वनाथजी उदार ।
जयकृष्ण व्यास वक्तामैं विख्यात जानिये ॥
विरक्त अद्वैतानंद । दंडी श्रीमाधवानंद ।
ब्रह्मानंद योगानंद । आत्मानंद मानिये ॥
कानजी देवजी कानराम लाधारामरूप ।
गिरि उपरत सुख लालगिरी गानिये ॥
हरिसंग हरिदास । वेलजी अर्जुन श्रेष्ठ ।
गंगाराम निर्भैराम । भजनी प्रमानिये ॥ ॥ ४ ॥

गोकलजी लक्ष्मीदास । भक्त श्रीतुलसीदास ।
दामजी मनजी संतसेवक सुहावनै ॥
सुंदरजी व्यास व्यास महादेव वल्लभजी ।
सदाचारी मुरारजी मनही रिजावनै ॥
पंडितोपरत राजाराम अरु पुराणिक ।
रामाचार्य आवाशास्त्री । अजित अलावनै ॥
इत्यादि प्रसिद्ध अरु पूज्य रामगुरु शिष्य ।
निर्मल विज्ञान सोहि मोहि मन भावनै ॥ ॥ ५ ॥

इन सवनितैं सेव्य । श्रीगुरुभक्ति विरक्ति ॥
उपरति सज्जनता युक्त भक्त रक्तही ॥
अमानी अदंभी सत्यवक्ता सु गंभीरमति ।
मतिमान मान्य मोहहीन दिन नक्तही ॥
आचार्य अग्रणि महा घृणी ज्ञान दान देन ।
गुरुसेवा सक्त सदाचार अनुरक्तही ॥
ऐसै गुरुदेव वापूदेवकी दयातैं रची ।
पंचदशी प्राकृत ज्ञु पीतांवर भक्तही ॥ ॥ ६ ॥

आनंदस्वरूपभूत भूत अनुस्यूत पूत ।
दूत दूरि दारि अवधूत वेशधारि हैं ॥
अविद्याकूं कीन्ही बाथ । विद्या असि लीन्ही हाथ ।
करिसाथ सिंह जैसै माथधारी मारि हैं ॥
ब्रह्मचारी व्रतधारी भ्रमजाल सारी जारी ।
पारावार पारकारी स्वरूप संभारि हैं ॥
सरणग सुखदात मात तात भ्रात धात ।
ऐसै गुरु बापूहीकूं वंदना हमारि हैं ॥ ॥ ७ ॥

सद्गुरुस्वरूप राम काम धाम भक्तनिके ।
नीके नैन वैन सैन दैन दान ज्ञानको ॥
तपपुंज पवित्र प्रताप ताप पाप तजै ।
जन तन मन दरसन दयावानको ॥
अमल आचार ठान मान मतिमांहि नांहि ।
जाहि जिय आहि ज्ञान ध्यान भगवानको ॥
ब्रह्मरूप भये भ्रमकूप भय भानत हैं ।
नामत हैं माथ मतिमान मतिमानको ॥ ॥ ८ ॥

॥ सवैया (मालिनी छंद) ॥

जास प्रसाद रचौं अब यास प्रयास नही नहि त्रास घनेरो ॥
ध्यास गयो परकास भयो भवपास मयो हमता अरु मेरो ॥
भास नस्यो भ्रम भास लस्यो सम वास बस्यो सरवातम नेरो ॥
आस कट्यो जननास जट्यो परदास मट्यो नम तास हमेरो ॥ ९ ॥
ता हम दास सदा सुखवास समै सब पास सुसंगत जांके ॥
दास डरे यम मासनरे भ्रमभास परे परमातम वांके ॥
लच्छन संत सुलच्छन लच्छित दच्छ झुके जिमि वृच्छ फलांके ॥
आतम ब्रह्म अभेद ज्ञु जानत । नामत हैं हम मस्तक तांके ॥ १० ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीब्रह्मवित्सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ प्रथमावृत्तिकी प्रस्तावना ॥

सच्चिदानंदस्वरूप मायाविशिष्ट औ सर्वज्ञतादिकल्याणगुणनका आश्रय जो परमेश्वर है। सो जीवनके कर्मनके अनुसार जीवनके धर्म अर्थ काम औ मोक्षरूप चतुर्विध-पुरुषार्थकी सिद्धिअर्थ स्वप्नकी न्याईं कल्पित-स्थूलसूक्ष्मप्रपंचकी रचना करताभया ॥ तिनमैं प्रथम सूक्ष्मप्रपंचरूप सूक्ष्मपंचभूतनकूं रचिके तिनकूं अस्पष्ट होनैतैं भोगादिकका असाधनरूप जानिके पंचीकरणद्वारा तिनतैं ब्रह्मांड औ तामैं चतुर्दशभुवन नाम लोक औ तिस तिस लोकके उचित अन्नरसादि-भोग्यसहित अंडज जरायुज उद्भिज्ज औ स्वेदजभेदकरि च्यारिप्रकारके शरीररूप स्थूलप्रपंचकूं रचताभया। तिनमैं

१ गौअश्वादिरूप एकसैं न्यून चौरासी-लक्षशरीरनकी सृष्टि जो उत्पत्ति तासैं आप अप्रसन्न भया ॥

२ पीछे स्वच्छइंद्रियअंतःकरणादिसर्व-सामग्रीसहित अपनै कहिये प्रत्यक्अभिन्न-परमात्माके आविर्भावके नाम साक्षात्कारके योग्य ज्ञानभक्तिआदिकशुभगुणनके निधान मनुष्यदेहकूं उपजायके आप परमात्मादेव बहुत प्रसन्न भया ॥

तिन मनुष्यनमैं गुणसैं वर्णाश्रमादिकका भेदकरि तिसतिसकूं भिन्नभिन्न नित्य-नैमित्तिकादिकर्मनका अधिकार कियाहै ॥

वैराग्यादिशुभगुणनकी जननी भक्तिका औ ब्रह्मअभिन्नआत्माके ज्ञानका उत्तम मध्यम औ अधमजातियुक्त शरीरधारी सर्व-अधिकारी स्त्रीपुरुषरूप मनुष्यप्राणिनकूं याज्ञवल्क्य शुकदेव जनक प्रल्हाद रैक गोपिका मैत्रेयी औ गार्गीआदिकनकी न्याईं अधिकार कियाहै। यह शास्त्र औ महात्मा-का निर्धार है ॥

कर्मउपासनादिसर्वशुभसाधनोका अद्वैत-विद्या जो ज्ञान तिसद्वारा अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिमैं उपयोग है।

- १–४ (१) ऋग्वेद (२) यजुर्वेद (३) सामवेद (४) अथर्वणवेद। ये चारि वेद हैं ॥
- ५–८ (१) आयुर्वेद (२) धनुर्वेद (३) गान्धर्ववेद (४) अर्थवेद। ये चारि उपवेद हैं ॥
- ९–१४ (१) शिक्षा (२) कल्प (३) व्याकरण (४) निरुक्त (५) छंद (६) ज्योतिष। ये षट् वेदके अंग नाम साधन हैं ॥

१५–१८ (१) पुराण (२) न्याय (३) मीमांसा (४) धर्मशास्त्र। ये चारिशास्त्र वेदार्थनिर्णायक हैं ॥

अग्निपुराणके प्रथमअध्यायमैं ये अष्टादश संस्कृतविद्याके प्रस्थान नाम अंग कहेहैं। तिनका कर्मउपासनादिसाधनकरि अद्वैतविद्याद्वारा निर्विशेषब्रह्मकी कहिये भेदरहित ब्रह्मकी प्राप्तिविषैहीं तात्पर्य कहाहै ॥

कलियुगविषै नास्तिकबौद्धादिपाखंडमतनकी अभिवृद्धिसैं उक्तविद्याके उपयोगके अभावकूं जानिके परमकारुणिक पर औ अपर विद्याकेआचार्य्य श्री शिवजीनै श्रीमत्शंकराचार्य्यका अवतार धारिके बौद्धादिमतनका उन्मूलन करी । उपनिषद्भाष्य ब्रह्मसूत्रभाष्य औ गीताभाष्यरूप तीनप्रस्थानआदिप्रमेयग्रंथद्वारा वेदके कर्म उपासना औ ज्ञानके प्रतिपादक तीनकांडनकी व्यवस्थापूर्वक सनातन सर्वशिरोमणिअद्वैतमतकूं मंडन कियाहै ॥

तिन प्रमेयग्रंथनके विस्तारअर्थ पादपद्माचार्य्य सुरेश्वराचार्य्य औ आनंदगिरिआदिकशिष्यप्रशिष्यनके किये व्याख्यानरूप औ स्वतंत्र ग्रंथ हैं ॥ तिन व्याख्यानरूप औ स्वतंत्रग्रंथनकी रक्षाअर्थ श्रीहर्षमिश्राचार्य्य औ चित्सुखाचार्य्यआदिआचार्य्योंनै खंडन। चित्सुखी। भेदधिकार । अद्वैतसिद्धि औ गौडब्रह्मानंदीआदिकआकरग्रंथ कियेहैं ॥

उक्तग्रंथनके विचारनैविषै असमर्थ जो किंचित्संस्कृतके जाननैहारे जिज्ञासु हैं। तिनकूं ब्रह्मआत्माकी एकताके निश्चयरूप यथार्थअपरोक्षज्ञान होवै।इस प्रयोजनके लिये परमदयालु सर्ववेदशास्त्रनके वेत्ता औ सर्वज्ञश्रीमत्विद्यारण्यस्वामीनै अंत्यअवस्थाविषै पंचदशप्रकरणरूप श्रीपंचदशीनाम प्रकरणग्रंथ कियाहै ॥

इस ग्रंथके भीतर

- १–५ (१) प्रत्यक्तत्त्वविवेक (२) पंचभूतविवेक (३) पंचकोशविवेक (४) द्वैतविवेक (५) महावाक्यविवेक ।
- ६–१० (६) चित्रदीप (७) तृप्तिदीप (८) कूटस्थदीप (९) ध्यानदीप (१०) नाटकदीप ।
- ११–१५ (११) योगानंद (१२) आत्मानंद (१३) अद्वैतानंद (१४) विद्यानंद (१५) विषयानंद ।

इन नामवाले पंचदशप्रकरण हैं ॥ तिनके सर्वमिलके १५७१ श्लोक हैं ॥ यह एकएक प्रकरण बी भिन्नभिन्नरीतिसैं फल औ प्रकारसहित ब्रह्मआत्माकी एकताबोधनके उपाय जो अध्यारोपापवाद पदार्थशोधनादिकके प्रतिपादक होनैतैं स्वतंत्रग्रंथरूप हैं ॥ ऐसैं एकपंचदशीके भीतर पंचदशग्रंथ हैं ॥

इनमैं श्रीरामकृष्णके मतसैं

१ पहिले षट्प्रकरण श्रीविद्यारण्यस्वामीके कियेहैं औ

२ अवशिष्ट ९ प्रकरण श्रीभारतीतीर्थगुरुके कियेहैं ॥

वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशकी उक्तिकरि

१ पहिले दशप्रकरण श्रीविद्यारण्यस्वामीकृत हैं। औ

२ पीछले ५ श्री भारतीतीर्थकृत हैं ॥

परंतु यह ग्रंथ दोनूंका कियाहै यह वार्त्ता निश्चित है ॥ ग्रंथका आरंभ श्रीविद्यारण्यस्वामीनै कियाहै । पीछे कोइ विघ्नसैं ग्रंथकी असमाप्ति जानिके श्रीभारतीतीर्थस्वामीनै यह ग्रंथ संपूर्ण कियाहै । यातैं विद्यारण्यस्वामीकृतहीं कहियेहै ॥

यह ग्रंथ सर्वसिद्धांतके शिरोमणि वेदांतमतके अन्यसर्वग्रंथनतैं अतिउत्कृष्ट है ॥ उत्तमादिसर्वमुमुक्षुनकूं ब्रह्मसाक्षात्कारका हेतु

जैसा यह पंचदशीग्रंथ अतिउत्तम है । तैसा औरसंस्कृतग्रंथ बी कोइ नहीं तौ और प्राकृतग्रंथ कहांसै होवैंगे ! काहेतैं

१ अन्यआकरसंस्कृतग्रंथनविषै अन्य-मतनके खंडन औ स्वमतके मंडनरूप विवादका विषय धऱ्याहै । सो मतकी रक्षानिमित्त नाम दृढतानिमित्त तौ उपयोगी हैं । परंतु मुमुक्षुनके बोधनमैं उपयोगी नहीं ॥ औ

२ भाष्यादिकप्रमेयग्रंथनविषै यद्यपि मुमुक्षुनके बोधनका प्रकार धऱ्याहै । परंतु सो कठिन होनैतैं सर्वमुमुक्षुनकूं उपयोगी नहीं हैं। किंतु तीव्रबुद्धिमान-मुमुक्षुकूं उपयोगी हैं ॥ औ

३ तत्त्वानुसंधान औ सिद्धांतमुक्तावली-आदिकअन्यसंस्कृतप्रकरणग्रंथ बी मुमुक्षुनके बोधनअर्थ हैं । परंतु सो बी कठिन हैं औ तिनमैं इतनी संपूर्ण औ अद्भुतप्रक्रिया नहीं है ॥ औ

पंचदशीमैं तीनप्रस्थान औ वेदशास्त्रसैं अविरुद्ध अनेकअद्भुतप्रक्रिया धरीहैं औ इस ग्रंथमैं सर्वप्रक्रिया श्रुतिअनुसारी हैं औ पूर्व-उक्त अष्टादशप्रस्थानका साररूप अर्थ इसमैं धऱ्याहै ॥ संक्षेपतैं सर्वशास्त्रनका विषय इसमैं दिखायाहै ॥

१ संसारसागरके तरनैकी यह श्रेष्ठ **नौका** है ॥

२ वेदांतकी प्रक्रियाके प्राप्तिकी यह **चिंतामणि** है ॥

३ परमहंसनकूं विश्रांतिका हेतु यह **मानससरोवर** है ॥

४ आनंदअनुभवके संकल्पका पूरक यह **कल्पतरु** है । औ

५ मोक्षकी कामनावाले मुमुक्षुनकूं यह **कामधेनु** है । औ

६ अनेकअध्यासरूप परिवारसहित अज्ञान-रूप गजके नाम हस्तीके मर्दन नाम बाध करनैहारा यह ग्रंथ **केसरी** है ॥

इसग्रंथके कर्त्ता श्रीविद्यारण्यस्वामीनै बहुतग्रंथ कियेहैं । तिन सर्वविषै यह ग्रंथ श्रेष्ठतर है ॥ बहुत क्या कहैं! इस ग्रंथ जैसा मुमुक्षुनका हितकारी वेदांतमतमैं औरग्रंथ नहीं है । किंतु सर्वग्रंथनतैं यह ग्रंथ वरिष्ठ है । यह कहैं तौ कछु अनुचित नहीं ॥

इसग्रंथविषै प्रमाण औ युक्तिकरि आभास-वादकाहीं निरूपण कियाहै । सो मुमुक्षुनकूं सर्वव्यवस्थाके समजावनैविषै सुगम है ॥ यद्यपि श्रुति स्मृति पुराण औ भाष्यकार-श्रीशंकराचार्य्यके वाक्यवृत्ति उपदेशसहस्री-आदिकवचनविषै बी आभासवाद कह्याहै । तथापि विद्यारण्यस्वामीनैं जैसा आभास-वादका उपपादन कियाहै । तैसा काहूनै बी नहीं कियाहै ॥

इसग्रंथका अध्ययन वा श्रवण जिन पुरुषों-नै सम्यक् कियाहै । सो शारीरकभाष्य-आदिकमहद्ग्रंथनके समजनैयोग्य होवैहैं । यातैं वेदांतसिद्धांतके समजनैका यह ग्रंथ सरणि नाम मार्ग है ॥

अन्यमतवाले वेदांतसिद्धांतके जाननैकूं बहुतकरि प्रथम इस ग्रंथकूंहीं पढतैहैं । परंतु तिनकूं स्वमतके आकरग्रंथ जैसा यह ग्रंथ अतिशयकठिन प्रतीत होवैहै । काहेतैं वे श्रद्धाविहीन हैं । यातैं सिद्धांतके रहस्यकूं जानि शकतै नहीं ॥ औ

ब्रह्मनिष्ठगुरु अरु वेदांतशास्त्रविषै श्रद्धा-संपन्नअधिकारी जे मुमुक्षु तिनोकूं यह समजना सुगम है । दुर्गम नहीं ॥

यद्यपि मूलमात्र तौ गहन बी भासता-है । तथापि "वेदांतपरिभाषा" नाम

ग्रंथके कर्त्ता जो धर्मराज अध्वर्युनामपंडित भयेहैं । तिनके पुत्र । वेदांतपरिभाषाकी टीकाके कर्त्ता श्रीरामकृष्णनामपंडितनै मुमुक्षुनपर अतिशयकरुणाकरिके कोमलपदसंयुक्त-सरलसंस्कृतव्याख्यान कियाहै । तिस व्याख्यानकरि किंचित् संस्कृतकाव्यकोश औ लघुवेदांतप्रकरणके वेत्ता जिज्ञासुपुरुषनकूं ब्रह्मनिष्ठगुरुके मुखद्वारा रहस्यसहित यह ग्रंथ समजना सुगम होवैहै ॥

यद्यपि पंचदशीके उपरि जनस्थानके कहिये नासिकनगरके निवासी शीघ्रकवि श्रीअच्युतराव (अच्युतस्वामी)कृत विस्तृत व्याख्या है औ दूसरी सदानंदकृत व्याख्या है । परंतु सो दोनूंव्याख्या श्रीरामकृष्ण-पंडितकृतव्याख्यातैं नवीन हैं औ सर्वअधिकारी-के योग्य नहीं हैं । यातैं वहुत प्रवृत्त नहीं भइहैं। किंतु अप्रवृत्त हैं ॥ औ यह व्याख्या तिन दोनूं व्याख्याकी अपेक्षातैं पुरातन है औ सर्वअधिकारीके योग्य है । यातैं सर्वत्र प्रवृत्त भइहै । तौ वी केवलभाषाके जाननै-वाले पुरुषनकूं

१ यह सटीकसंस्कृतग्रंथ वी एकखंडवासीकूं द्वितीयखंडवासीकी भाषाकी न्यांई समजना वहुत कठिन होवैहै। औ
२ इस ग्रंथकूं सर्वोत्तम जानिके पढनैकी इच्छा वी जिज्ञासुनकूं मिटती नहीं। औ
३ काव्यव्याकरणादिकके अभ्यासकूं श्रमसाध्य जानिके तिनमैं वी प्रवृत्ति होवै नहीं। औ
४ इसग्रंथके विचारसैं विना केईक जिज्ञासु आत्मज्ञानमैं अतिउपयोगी-पदपदार्थ औ प्रक्रियाकूं न जानिके संदेहयुक्त नाम अदृढबोधवान्हीं रहैहैं ॥

तिसतैं भाषावाले जिज्ञासुनकूं वडाक्लेश होवैहै। यह जानिके संस्कृतविषै अल्पमति-वाले औ भाषाग्रंथके पढनैविषै कुशलबुद्धि-वाले अधिकारिनकूं यथार्थदृढअपरोक्षतत्त्व जो ब्रह्मआत्माकी एकता ताका ज्ञान होवै। इस निमित्त हमनै श्रीरामकृष्णपंडितकी टीकाके अनुसार वहुतदेशवर्त्ति जो हिंदुस्थानी-भाषा है। तिसकरि श्रीपंचदशीका "तत्त्व-प्रकाशिका" इस नामयुक्त भाषांतर कीयाहै॥

१ तत्त्व जो ब्रह्म औ आत्माकी एकता। तिसकी प्रकाशनैहारी नाम साक्षात् करावनैहारी है।
२ वा तत्त्व जो पदपदार्थ तिनकूं पर्याय औ टिप्पणद्वारा प्रकाशनैहारी कहिये स्पष्ट करनैहारी है।

यातैं इस टीकाका नाम तत्त्व-प्रकाशिका है ॥

यद्यपि औरभाषाटीका श्रीपंचदशीकी विद्यमान हैं। यातैं इस तत्त्वप्रकाशिकाटीका-का प्रयोजन नहीं है । तथापि तिन टीकाविषै

१ कोइ तौ अल्पअर्थसंयुक्त औ पद्यरूप होनैतैं अतिदुर्गम है। औ
२ कोइ श्लोकके अंकसैं रहित मूलटीका-मिश्रित संस्कृतसैं अमिलित भाषारूढीके शब्दकरि युक्त होनैतैं अस्पष्ट है। औ
३ कोइ वहुतकठिनसंस्कृतपदयुक्त औ भाषाकी रूढीकूं छोडिके केवलसंस्कृत-रूढिके अनुसारी औ भाषाग्रंथनमैं अप्रसिद्ध औ कठिन त्रिपाठी नाम गंगायमुनाकी रीतिकरि श्रमसैं देखनै योग्य औ मूलश्लोकके अन्वयपूर्वक अर्थसैं रहित होनैतैं सर्वोपयोगी नहीं है। औ

४ कोइ लिखताके दोषतैं एकदेशवर्त्ति भाषाके अपभ्रंशित औ स्वतंत्रदेशके शब्दकरि युक्त होनैतैं सर्वदेशनविषै सुगम नहीं है । औ

५ कोइ मूलटीकाके मिश्रभावकरि औ परंपरासैं लिखताके औ बुद्धिके दोषतैं अशुद्ध औ अस्पष्ट है ।

यातैं वे टीका भाषावालेकूं सुगम शुद्ध औ स्पष्टअर्थकी बोधक नहीं हैं ॥ औ

यह तत्त्वप्रकाशिकाटीका

१ शुद्ध है । औ

२ अतिस्पष्ट है । औ

३ सुगम है । औ

४ आगेपीछेके अनुसंधानयुक्त है । औ

५ भीतर अरु बाहिरसैं बी प्रसंगदर्शक अतिउत्तमअनुक्रमणिका सहित है । औ

६ पदच्छेद अरु भीतरहीं पर्यायशब्द अरु टिप्पण औ यथायोग्यविराम-चिन्हसहित है । औ

७ विभक्त्यंतपदच्छेदसहित शुद्धमूलश्लोक-सहित है ॥

८ मूल अरु मूलका अर्थ अरु टीकाका अर्थ अरु शंकासमाधानके विभागकरि सहित है । औ

९ प्रतिश्लोकके चढते अंकसहित है । औ

१० सारे मुमुक्षुनकूं समजनैमैं अतिउपयोगी औ सर्वथा निर्दोष है ।

यातैं यह तत्त्वप्रकाशिकाग्रंथ निष्प्रयोजन नहीं है । किंतु सारेमुमुक्षुनकूं सुगम औ अधिकअर्थका बोधक होनैतैं सफल है ॥

यामैं मूलश्लोकका अर्थ औ ताकी टीका संस्कृतके अनुसारहीं है औ कहुंकहुं मूल-श्लोकके अर्थ औ टीकाविषै अधिक भाषाका पद अध्याहारकरि कहिये बाहिरसैं लिख्याहै औ मूलअर्थविषै वा टीकाविषै उपयोगी संस्कृतपद रहनैं दियेहैं ॥........इस ग्रंथकी टीकाविषै काहूस्थलमैं व्याकरणके भेद-आदि जनायेहैं । सो वांचनैविषै भाषा-वालेकूं अतिशय अटकाव करैहैं । तातैं सो बी टिप्पणविषै धरेहैं । और बहुतसा टिप्पण तो हमनै स्वतंत्रहीं धर्‍याहै ॥ इस टिप्पण-विषै आगेपीछेका अनुसंधान बहुतस्थलमैं दिखायाहै औ यह टिप्पण कहुं बी विरुद्ध नहीं है । किंतु शास्त्र औ अनुभवके अनुसार है ॥

इसग्रंथविषै जो जो संकेत धरेहैं सो सूचना-सैं स्पष्ट जानैं जावैंगे ॥

इसग्रंथकूं ब्रह्मनिष्ठगुरुके मुखसैं शास्त्रोक्त अधिकारीकी रीतिसैं । शास्त्र औ गुरुविषै श्रद्धा औ भक्तियुक्त होयके जो मुमुक्षु पढैंगे । सो यथार्थपदपदार्थ औ प्रक्रियाके ज्ञानपूर्वक ब्रह्मआत्माका अभेद औ समष्टिव्यष्टिरूप जगत्-के मिथ्यात्वका निर्णय करी "मैं निष्प्रपंच-ब्रह्म हूं" इस निश्चयरूप तत्त्वज्ञानकूं पायके जीवन्मुक्त होवैंगे औ संस्कृतपंचदशीके समजनै-की इच्छायुक्त कुशलबुद्धिवालापुरुष इस तत्त्वप्रकाशिकाकूं देखिके संस्कृतपंचदशीकूं बी जानि सकैगा । ऐसी उत्तमरीति इहां धरीहै ॥

यामैं काहुस्थलविषै दृष्टिदोष वा बुद्धि-दोषतैं कोइ अक्षर वा पद अशुद्ध होवै । तौ महात्मापुरुषोंनै सुधारिके वांचना चाहिये । यह मेरी प्रार्थना है ॥ इति श्रीमत्सद्गुरवो जयंतितराम् ॥

भाषाकर्त्ता ॥

॥ श्रीमत् सद्धर्म ब्रह्मविद्याप्रवर्त्तकाचार्येभ्यो नमः ॥

॥ श्रीविद्यारण्यस्वामीका चरित्र ॥

॥ पूर्वाश्रमका वृत्तांत ॥

दक्षिणदिशामैं कर्नाटकदेशविषै तुंगभद्रानदीके तीरपर पंपानाम क्षेत्र है। तिसविषै विजयनाम नगर था। जिसकूं पूर्व किष्किंधापुरी कहतेथे औ अब गोलकोंडा कहतेहैं। जहां विरूपाक्षनामक महादेवका मंदिर है। तहां श्रीविद्यारण्यस्वामीका जन्म औ पूर्वाश्रमकी स्थिति भईहै ॥

१ माधव। २ माधवार्य। ३ माधवाचार्य। ४ माधवाऽमात्य। ये नाम श्रीविद्यारण्यस्वामीके पूर्वाश्रमविषै थे। पीछे उत्तराश्रमविषै ५ श्रीविद्यारण्य नाम भयाहै ॥

१ इनका जन्मकरि माधव नाम भयाहै औ।

२-३ महत्‌विद्वत्तासैं औ ये राजाके कुलगुरु थे तिसकरि माधवार्य औ माधवाचार्य नाम भयाहै ॥ औ

४ श्रीवसिष्ठमुनिकी न्यांई राजाके प्रधान मंत्री थे। तिसकरि माधवाऽमात्य नामसैं तिसकालके किये ग्रंथनविषै आपकी प्रसिद्धि करीहै ॥ औ

५ विद्याके वन जैसै होनैकरि तिनका अर्थसहित विद्यारण्य नाम भयाहै ॥

श्रीविद्यारण्यस्वामी महायोगभ्रष्ट उत्तमसंस्कारवान् थे औ विद्या ऐश्वर्य लक्ष्मी तेजयुक्तपनैआदिकविभूतिकरि जगत्‌के उद्धारअर्थ मानो ईश्वरकी कलारूप प्रगट भयेहैं। यातैं राजसभामैं सर्व साष्टांग करतेथे ॥

श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता।
सायणः सोमनाथश्च मनोबुद्धी सहोदरौ ॥ १ ॥
यस्य बौद्धायनं सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाजं यस्य गोत्रं सर्वज्ञः स हि माधवः ॥ २ ॥

श्रीविद्यारण्यस्वामीनै पराशरस्मृतिके व्याख्यानके उपोद्धातमैं ये दोश्लोक लिखैहैं। तिनमैं

१ श्रीमतीनामक जिसकी माता है। औ

२ सुंदरकीर्तिवाला मायण नामक जिसका पिता है। औ

३ सायण अरु सोमनाथ ये दोनूं जिसके भ्राता हैं ॥ १ ॥ औ

४ जिसका बौद्धायन सूत्र है। औ

५ जिसकी कृष्णयजुर्वेदके अंतर्गत बौद्धायनी शाखा है। औ

६ भारद्वाज गोत्र है।

सोई सर्वज्ञमाधव है ॥ २ ॥ इसरीतिसैं अपनै कुलगोत्रआदिक जनायेहैं ॥

१ विद्यारण्यस्वामीका जन्म शालीवाहन शकके १३०० वैं वर्षमैं भया । ऐसैं कविचरित्र-ग्रंथमैं लिख्याहै औ कोइ ताम्रपटके लेखमैं शक १३१३ के वर्षमैं (वा लेखमैं १३८१ वर्षमैं) प्रजापतिनाम संवत्सरविषै वैशाखमासके कृष्णपक्षमैं सूर्यग्रहणके समय महामंत्रीश्वर उपनिषद्मार्गप्रवर्त्तक श्रीमन्माधवराजनै माधवपुर नाम डारिके कचरनामसैं प्रसिद्धग्रामकूं चौवीसब्राह्मणनके तांई दान दिया । ऐसैं लिख्याहै । तिससैं शक १२०० वा १३०० विषै विद्यारण्यस्वामीका जन्मकाल चाहिये । औ

२ वक्ष्यमाणगुरुपद्धतिकी रीतिसैं श्रीशंकराचार्यसैं ४०० वर्ष पीछे श्रीविद्यारण्यस्वामी भयेहैं ॥ या रीतिसैं अर्थात् श्रीविद्यारण्यस्वामीकूं ७०० वर्ष भये यह जानियेहै । औ

३ सिद्धांतकौमुदी नाम व्याकरणग्रंथका कर्त्ता भट्टोजीदीक्षितकूं ५०० वा कच्छुक न्यून वर्ष भयेहैं । तिसनै विद्यारण्यस्वामीकृत माधववृत्तिनामक व्याकरणग्रंथका अपनै ग्रंथविषै प्रमाण दियाहै । तातैं वी जानियेहै कि विद्यारण्यस्वामी पांचसोवर्षसैं पूर्व भयेहैं ॥

विद्यारण्यस्वामी महान्धुरंधरपंडित थे । इनोनै स्वल्पकालसैं सर्वविद्याका अध्ययन कियाथा ॥ वहुत क्या कहैं । अनेकउत्कृष्ट-पंडितनकरि अंगीकृत सर्वशिरोमणि श्रीशंकरमतमैं आचार्यनसैं विना श्रीविद्यारण्यस्वामी जैसैं अन्यविद्वान् नहीं भयेहैं । किंतु ये अपूर्वविद्वान् थे । यह वार्त्ता विद्वानोंके मुखसैं औ तिनके ग्रंथनसैं जानी जावैहै ॥

श्रीविद्यारण्यस्वामीनै वैद्यकशास्त्र । धर्मशास्त्र । ज्योतिषशास्त्र । व्याकरणशास्त्र औ वेदांतशास्त्रके ऊपर अनेकग्रंथ कियेहैं । तिनविषै कितनैक प्रसिद्धग्रंथनके नाम लिखियेहैं:—

१ विद्यारण्यस्वामीनै च्यारीवेदनके ऊपर महान्गंभीरभाष्य कियेहैं । तिनमैंसैं ऋग्वेदभाष्य । ऐतरेयब्राह्मणभाष्य । तैत्तिरीयसंहिताभाष्य । इत्यादि यह छपेहैं । तिन सर्वका माधववेदार्थप्रकाश नाम धर्याहै ॥

२ ब्रह्ममीमांसाके १९२ अधिकरणनामक सूत्र हैं । तिनके ऊपर अधिकरणरत्नमालानामक ग्रंथ कियाहै । तिसकी टीका वी आपहीं करीहै ॥ औ

३ सर्वदर्शनसारसंग्रह कियाहै । तिसविषै वेदांतसैं भिन्न कितनैक प्राचीनमत दिखायेहैं ॥ औ

४ अनुभूतिप्रकाशनामक श्लोकसंख्या ३००० वाला ग्रंथ कियाहै । तिसविषै वेदांतकी सर्वउपनिषदनका संक्षेपतैं सर्व-आख्यायिकासहित सारार्थ दिखायाहै ॥ औ

५ ब्रह्मगीता नाम ग्रंथ कियाहै । तिसमैं माध्व रामानुज औ शंकरमतका प्रतिपादन करिके । श्रुतिसंमत अद्वैतसिद्धांतका स्थापन कियाहै । इसके ऊपर प्रकाशिका नामक टीका है ॥ औ

६ पंचदशीनामक ग्रंथ कियाहै । तिसका वर्णन इस ग्रंथकी प्रस्तावनाविषै प्रसिद्ध है ॥ औ

७ जीवन्मुक्तिविवेक कियाहै । इसविषै संन्यासके विभागपूर्वक जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखका प्रकार दिखायाहै ॥ औ

८ दृग्दृश्यविवेक । अरु

९ आचार्यकृत अपरोक्षानुभूतिकी टीका करीहै ॥ औ

कितनैक आचार्यनकी कृतिरूपसैं प्रसिद्ध मुमुक्षुनको अतिउपयोगी गोप्यग्रंथ श्रीविद्यारण्यस्वामीनै कियेहैं। तिनविषै अद्वैतसिद्धांतका सम्यक् प्रकाश कियाहै ॥ ये वेदांतके अनुसारी ग्रंथ कहे ॥ औ

१० **माधववृत्तिनामक** व्याकरणका ग्रंथ कियाहै। इसमैं क्रियापदनके मूलधातु जो २२०० हैं। तिनके साथि भिन्नभिन्न प्रत्यय मिलिके कैसा शब्द सिद्ध होवैहै सो प्रकार पाणिनीयसूत्रभाष्य औ वार्तिकके वचन लेके अनुक्रमसैं उदाहरण दिखायेहैं। तिसविषै बहुतकरिके सर्वशब्दनका संग्रह भयाहै ॥ इस ग्रंथके श्लोकनकी संख्या २५००० है ॥ औ

११ **निदानमाधव** मूलश्लोक १५०० का है। यह ग्रंथ वैद्यकका है ॥ औ

१२ **कालमाधवनामक** सर्वकालका निर्णायक ग्रंथ कियाहै ॥ औ

१३ **शतप्रश्नकल्पलतिकानामक** ग्रंथ कियाहै। इसविषै प्रत्येक प्रश्नके उत्तररूप दशदशश्लोक कियेहैं औ तिनके प्रकरणनका नाम दशक धऱ्याहै। ऐसैं सौप्रश्नके ऊपर सौ दशक हैं। तिसविषै पंचद्रविड औ पंचगौडके अंतर्गत ब्राह्मणनके भेद दिखायेहैं ॥ औ

१४ पराशरस्मृतिके ऊपर व्याख्यान कियाहै। तिसका **पराशरमाधव** नाम है ॥ औ

१५ कालनिर्णयके वास्ते स्वतंत्रग्रंथ कियाहै। तिसका नाम **कालमाधव** है। इसविषै पंचांगका वर्णन है ॥ औ

१६ जैमिनिके सूत्रऊपर **जैमिनीयन्यायमालाविस्तरनाम** ग्रंथ कियाहै ॥ औ

१७ **आचारमाधव** ग्रंथ कियाहै। इसविषै ब्राह्मणनकी रीतिका वर्णन है ॥ औ

१८ **व्यवहारमाधव** ग्रंथ कियाहै। यह व्यवहारके न्यायका ग्रंथ है ॥ औ

१९ **विद्यारण्यकालज्ञाननामक** ग्रंथ है। इसविषै तैलंगदेशके राजनकी मर्यादा औ राज्यअधिरूढपुरुषनके कृत्य। यह भविष्यवार्त्ता कहीहै ॥ औ

२० **शंकरदिग्विजयनाम** ग्रंथ कियाहै। इसविषै श्रीशंकराचार्यका चरित्र वर्णन कियाहै। इस ग्रंथकी कविता बहुतमनोहर प्रौढ औ गंभीर है औ श्रीविद्यारण्यस्वामीनै शंकरविजयके प्रथमसर्गविषै आपका **नवीनकालिदास** नाम धऱ्याहै। सो अनुचित नहीं है। किंतु उचितहीं है ॥

श्रीविद्यारण्यस्वामीका लेख बहुत सरल। मनोहर। गंभीर। गूढार्थयुक्त है ॥

श्रीविद्यारण्यस्वामी पूर्वाश्रमविषै विजयनगरके यदुवंशी बुक्कदेवराजाके कुलगुरु औ प्रधानमंत्री थे। यह वार्त्ता अधिकरणरत्नमालाआदिकग्रंथविषै स्पष्ट लिखीहै ॥ औ

१ इनके प्रतापसैं तिस राजाके राज्यकी औ तिस राज्यविषै धर्मकी अभिवृद्धि भईहै ॥ औ
२ गोवानगरमैं तुर्कलोक थे तिनकूं निकासिके तहां इस राजेका अमल किया है ॥ औ
३ सप्तनाथमहादेवकी मूर्तिका स्थापन कियाहै ॥ औ
४ इनोनै कचरनामक ग्रामका माधवपुर नाम धरिके ब्राह्मणनकूं दान दियाहै ॥ औ
५ अपनी माताके नामसैं भूमिका दान दियाहै। तहां ब्राह्मणनकूं जमीनका

विभागकरिके अपनी माताके नामके अनुसार ग्रामकी रचना करीहै ॥ औ
६ प्रथमसैं चलती नदीका इनोंके परिचयसैं माधवतीर्थ नाम भयाहै ॥ औ
७ विद्याशाला अरु अन्नके क्षेत्र अरु देवालय अगणित कियेहैं ॥

इसरीतिसैं श्रौतस्मार्तधर्मके प्रवर्त्तक थे ॥

स्वरचितग्रंथनकूं बहुतशुद्धकरिके ताडपत्रआदिकपर अनेकपुस्तक लिखवायके
१ कितनेक ग्रंथ मठ विद्याशाला औ क्षेत्रनविषै बांटेहैं ॥ औ
२ कितनैक पर्वतनकी कंदराविषै गेरेहैं ॥ औ
३ कितनैक ठिकानै भूमिकाविषै गाड दीयेहैं ॥

इनके कितनैक पुस्तक कोई आंगलभूमिके निवासीनै जमीन खोदायके निकासेहैं। इस वार्ताकूं ६० वर्ष भये ॥

ये गृहाश्रमविषै वी अद्वैततत्त्वविषै निष्ठासंपन्न औ विवेकवैराग्यादिसकलसद्गुणसैं ग्रथित थे ॥ ऐसैं सत्पुरुष भूतभविष्यत्वर्तमानकालविषै दुर्लभ हैं ॥ इसरीतिसैं श्रीविद्यारण्यस्वामीनै गृहाश्रमविषै कालक्षेप कियाहै ॥

पीछे एकसमयमैं गायत्रीदेवीके अपरोक्ष करनैकी इच्छा भई। तिसके लिये सारेदेशके ब्राह्मण बुलायके गायत्रीका पुरश्चरण किया ॥ अत्यंतअनुष्ठानके हुये वी गायत्री अपरोक्ष भई नहीं। तब गायत्रीजपके महिमासैं किंवा देवीके अनागमसैं। किंवा पूर्व पुण्यपुंजके परिपाकसैं आपकूं अतिशय तीव्रवैराग्य उदय भयाहै ॥ "जिस दिनविषै वैराग्य होवै तिस दिनविषैहीं संन्यासकूं लेवै" इत्यादिश्रुतिवचनके अनुसार तबहीं विद्वत्संन्यास धारण किया ॥

पीछे गायत्री आयके वर देनै लगी। तब आप वरका ग्रहण किया नहीं। तौ वी अमोघदर्शनवाली देवी बलसैं वर देनै लगी औ बहुत पीछे लगी। तब "मेरी इच्छाके अनुसार सारे इस कर्नाटकदेशपर सुवर्णमुद्राकी वर्षा होवै। जिसकरि सर्वलोकनकी दरिद्रता भंग होवै" यह वर माग्या। तब तथाऽस्तु कहिके देवी अंतर्धान भई ॥

पीछे आप तिस देशके राजाकूं लोकनके मुद्राप्राप्तिविषयक पूछ्या तब राजानै कह्या जो लोकनके ग्रहके ऊपर औ सपादहस्तपर्यंत ग्रहके च्यारीऔरतैं जो मुद्रा गिरेगी सो तिस तिस लोककी होवैगी औ अवशेष मार्गआदिकभूमिकाविषै जो मुद्रा गिरेगी सो मेरी हैं ॥ तब आपकी आज्ञासैं सपादप्रहरपर्यंत मुद्राकी वृष्टि भईहै तिन मुद्राकूं सो लोक होन कहैहैं ॥ पीछे तिस देशके राजानै तिसके समान और वी मुद्रा बनायके तिस देशविषै व्यवहार चलाया। यह वार्ता लोकविषै बहुत प्रसिद्ध है ॥

॥ उत्तराश्रमका वृत्तांत ॥

उत्तराश्रमविषै श्रीविद्यारण्यस्मामी याज्ञवल्क्यकी न्याईं बहुतउपराम होयके ब्रह्मविचारविषैहीं तत्पर रहेहैं औ एकवार श्रीविद्यारण्यस्वामी बहिर्भूमिमैं गयेथे। तब कोई बादशाहकी सुवर्णकी ईंट जंगलमैं गिरीथी। तहां तिस ईंटके पास दूसरापाषाण धरिके तिस पर बैठके मलोत्सर्गकरिके चले गये। तब बादशाह शोधकरिके बहुतप्रसन्न होयके इनकूं ग्रामादिक देनै लगा। तिसका वी अंगीकार किया नहीं। ऐसी इनकी विरक्तता थी। यह वार्त्ता वी लोकविषै सुनी जावैहैं ॥

काशीविषै कोई प्रयत्नसैं श्रीवेदव्यासकूं मिलिके अपनै किये वेदभाष्य शुद्ध करनैकूं

दिखायेहैं। तब काहूस्थलमैं बी दोषकूं न देखिके व्यासजीनै इनका श्रीविद्यारण्य नाम धऱ्याहै। यह बी सुनियेहै ॥

उत्तरअवस्थाविषै यात्राका असामर्थ्य भया। तब अपनै गुरुकी आज्ञासैं दक्षिण-देशगत श्रीशंकराचार्यकरि स्थापित शृंगेरी-मठविषै आधिपत्यकूं प्राप्त होयके। शंकराचार्य-पदवीसैं प्रसिद्ध होयके। अनेकमतनके खंडनपूर्वक अपनै श्रुतिसंमतअद्वैतमतकूं आरूढ करतेभये ॥

१ स्वरचितसर्वदर्शनसंग्रहकी आदिविषै "आप्तके उचित अर्थयुक्त आचरितकरि अर्थवान् कियेहैं सर्वलोक जिसनै औ श्रीशारंगपाणिके तनय औ निखिलआगमकें जाननैहारे सर्वज्ञविष्णुगुरुकूं मैं निरंतर आश्रय करूंहूं" ऐसैं मंगल कियाहै। तिसकरि **सर्वज्ञविष्णुनामक** पंडित श्रीविद्यारण्य-स्वामीके गुरु थे। ऐसा जान्याजावैहै। परंतु सो विद्यागुरु होवैंगे ऐसैं अनुमान करीयेहै ॥ औ

२ पंचदशीके आरंभविषै "श्रीशंकरानंद-गुरुके पादरूप अंबुजन्मकूं नाम कमलकूं मेरा नमस्कार होहु" ऐसैं मंगल कियाहै। तिसकरि **श्रीशंकरानंदस्वामी** बी श्रीविद्यारण्य-स्वामीके गुरु थे। ऐसा जान्याजावैहै। परंतु सो ब्रह्मतत्त्वोपदेशक गुरु होवैंगे। ऐसैं प्रतीत होवैहै ॥ औ

३ शंकरविजय अरु जीवन्मुक्तिविवेक-आदिकग्रंथनविषै श्रीविद्यातीर्थगुरुका मंगल कियाहै। तिसकरि श्रीविद्यातीर्थ बी श्री-विद्यारण्यस्वामीके गुरु थे। ऐसा जान्याजावैहै। परंतु ये बाल्यावस्थामैं मंत्रदीक्षाके औ उत्तरावस्थामैं संन्यासदीक्षाके गुरु होवैंगे। यह तर्कसैं जानियेहै ॥ औ

४ महाराष्ट्रभाषाविषै गुरुचरित्र नाम ग्रंथ प्रख्यात है। तिसमैं "विद्यारण्यके गुरु भारतीतीर्थ। तिसके गुरु शिवतीर्थ। तिसके गुरु विद्यातीर्थ। तिसके नरसिंहतीर्थ। तिसके ईश्वरतीर्थ। तिसके गुरु सिंहालयगिरि। तिसके बोधज्ञानगिरि। तिसके विश्वरूपाचार्य औ तिसके गुरु श्रीशंकराचार्य। इसरीतिसैं गुरुपरंपरा लिखीहै। तासैं श्रीशंकराचार्यसैं दशमी पदवीविषै श्रीविद्यारण्यस्वामी भयेहैं। यह स्पष्ट जानियेहैं ॥

अथवा शृंगेरीमठमैं गुरुपद्धति लिखी हुईहै। सो कोईनै आधुनिकसमयमैं प्रसिद्ध करीहै। तामैं यह लिख्याहैः—

	वर्षपर्यंत ॥	स्थितिवर्ष ॥
	(विक्रमसंवत्)	
१ शंकराचार्य	१०७	३२
	(शालिवाहनशक)	
२ पृथ्वीधराचार्य	३७	६९
३ विश्वरूप भारतीस्वामी	११२	७९
४ चिद्रूप भारतीस्वामी	१६४	९२
५ गंगाधर भारतीस्वामी	२३४	७०
६ चिद्घन भारतीस्वामी	२८९	५५
७ बोधज्ञ भारतीस्वामी	३३५	४६
८ जनानोत्तम भारतीस्वामी	३८०	४५
९ शिवानंद भारतीस्वामी	४२०	४०
१० ज्ञानोत्तम भारतीस्वामी	४५७	३७
११ नृसिंह भारतीस्वामी	४९८	४१
१२ ईश्वर भारतीस्वामी	५२८	३०
१३ नृसिंह भारतीस्वामी	५५०	२२
१४ विद्याशंकर भारतीस्वामी	५७८	२८
१५ कृष्ण भारतीस्वामी	५९८	२०
१६ शंकर भारतीस्वामी	६२०	२२
१७ चंद्रशेखर भारतीस्वामी	६४४	२४
१८ चिदानंद भारतीस्वामी	६६७	२३
१९ ब्रह्मानंद भारतीस्वामी	६९५	२८

२० चिद्रूप भारतीस्वामी	७२०	२५
२१ पुरुषोत्तम भारतीस्वामी	७५५	३५
२२ मधुसूदन भारतीस्वामी	७९३	३८
२३ जगन्नाथ भारतीस्वामी	८२१	२८
२४ विश्वानंद भारतीस्वामी	८५३	३२
२५ विमलानंद भारतीस्वामी	८८८	३५
२६ विद्यारण्य भारतीस्वामी	९२८	४०
२७ विश्वरूप भारतीस्वामी	९४८	२०
२८ बोधघ्न भारतीस्वामी	९७४	२६
२९ जनानोत्तम भारतीस्वामी	१००४	३०
३० ईश्वर भारतीस्वामी	१०५४	५०
३१ भारतीतीर्थस्वामी	१०८९	३५
३२ विद्यातीर्थस्वामी	११२७	३८
३३ विद्यारण्य भारतीस्वामी	११६९	४२
३४ नृसिंह भारतीस्वामी	११९७	२८
३५ चंद्रशेखर भारतीस्वामी	१२२५	२८
३६ मधुसूदन भारतीस्वामी	१२५५	३०
३७ विष्णु भारतीस्वामी	१२९०	३५
३८ गंगाधर भारतीस्वामी	१३२४	३४
३९ नृसिंह भारतीस्वामी	१३५५	३१
४० शंकर भारतीस्वामी	१३८८	३३
४१ पुरुषोत्तम भारतीस्वामी	१४३२	४४
४२ रामचंद्र भारतीस्वामी	१४६६	३४
४३ नृसिंह भारतीस्वामी	१५०९	४३
४४ विद्यारणी भारती	१५४२	३३
४५ नृसिंह भारती	१५६१	१९
४६ शंकर भारती	१५८५	२४
४७ नृसिंह भारती	१६०१	१६
४८ शंकर भारती	१६२९	२८
४९ नृसिंह भारती	१६५३	२४
५० शंकर भारती	१६८५	३२
५१ नृसिंह भारती	१६९१	६
५२ शंकर भारती	१७२९	३८
५३ नृसिंह भारती	१७४२	१३
५४ शंकर भारती	१७७६	३४
५५ नृसिंह भारती	१७८२	६
५६ श्रीशंकर भारतीस्वामी		

इसरीतिसैं श्री शंकराचार्य्यसैं तैंतीसवीं-पदवीमैं श्रीविद्यारण्यस्वामी भयेहैं । यातैं आचार्य्यनकूं वर्ष १८५७ भये । तिनके पीछे वर्ष ११८६ सैं श्रीविद्यारण्यस्वामी भयेहैं। यारीतिसैं अब श्रीविद्यारण्यस्वामीकूं वर्ष ६७१ भये । यह निर्णय होवैहै ॥

इसरीतिसैं श्रीभारतीतीर्थ श्रीविद्यारण्य-स्वामीके परगुरु हैं औ साक्षात्गुरु श्रीविद्या-तीर्थस्वामी हैं औ शंकरविजय अरु जीवन्मुक्ति-विवेकके आरंभमैं बी श्रीविद्यातीर्थ नामसैं अपनै गुरुका मंगल कियाहै । यातैं परगुरुसैं संनिधिरूप संबंधके असंभवकरि श्रीभारती-तीर्थस्वामीनै ब्रह्मानंदनाम पंचअध्यायरूप ग्रंथ पूर्व रच्याथा । तिसकूं मिलायके श्री-विद्यारण्यस्वामीनै पंचदशीग्रंथ कियाहोवैगा । किंवा श्रीविद्यारण्यस्वामीनै आरंभकरिके अपूर्णग्रंथ किया ताकूं श्रीभारतीतीर्थस्वामीनै पूर्ण कियाहोवैगा । यह नहीं जानियेहै ॥

इसरीतीसैं उभयपक्षनकी प्राप्तिसैं संदिग्ध-निर्णय होवैहै । परंतु मेरेकूं तौ पीछला निर्णयहीं यथार्थ प्रतीत होवैहै औ प्रथमपक्ष-विषै तीर्थपदकी भ्रांतिसैं तीर्थनामकी परंपरामैं अंतर्भाव कह्याहै ॥ शृंगेरीमैं अद्यापि भारती नाम वर्त्तमान है औ श्रीविद्यारण्य-स्वामीके गुरु औ परगुरुकी संज्ञामैं तीर्थपदका निवेश उपमाके लियेहै ॥

ऐसैं शृंगेरीविषै कछुककाल स्थितिकरिके पीछलेवयविषै श्रीपंचदशीग्रंथकी रचनाका प्रारंभ किया । तिसके षट् वा दशप्रकरण रचिके आप परब्रह्मसमरसभावकूं प्राप्त भये । तब प्रथमरीतिसैं अपनै गुरु सर्ववेदशास्त्रार्थ-

वेत्ताश्रीभारतीतीर्थनै तिनके अभिप्रायके अनुसार अवशिष्टप्रकरण रचिके यह ग्रंथ संपूर्ण किया औ पीछलेपक्षकी रीति तौ पूर्व कहीहै ॥

इस ग्रंथविषै सर्ववेदनका निष्कर्षरूप अर्थ धर्याहै औ ऐसा सुन्या जावैहै कि गायत्रीनै अपनै साक्षात्कारके समयमैं वर दियाहै। जो "उत्तरअवस्थाविषै तुम ग्रंथ रचोगे तिसकूं जो सम्यक् पढैगा। ताका सर्वग्रंथनके अध्ययन वा श्रवणविषै सामर्थ्य होवैगा" यातैं यह पंचदशी वरदायिग्रंथ है ॥ औ

श्रीविद्यारण्यस्वामी अरु श्री भारतीतीर्थस्वामीनै मिलिके परिपकअवस्थाविषै मुमुक्षुनपर परमअनुग्रहकरिके यह ग्रंथ कियाहै। यातैं यह पंचदशीग्रंथ सर्वग्रंथनसैं अत्युत्तम है॥

इसकूं पढिके मुमुक्षु वेदांतप्रक्रियाविषै कुशल होयके ब्रह्मात्माकी एकताकूं अपरोक्षकरिके जीवन्मुक्ति औ विदेहमुक्तिके भागी होहू ॥

इति श्रीमद्विद्यारण्यस्वामिनां सच्चरित्रवर्णनं संपूर्णम् ॥

भाषाकर्त्ता ॥

॥ श्रीमद्ब्रह्मविद्याप्रवर्त्तकाचार्य्येभ्यो नमः ॥

॥ श्रीरामगुरुका चरित्र ॥

जिज्ञासुनकूं जो तत्त्वबोध होवैहै । सो सत्‌शास्त्र औ सद्गुरुकी कृपासैं होवैहै ॥ श्रीपंचदशी सदृश प्रबलसच्छास्त्रनके विद्यमान होते बी उज्जागरबोधवान्‌सद्गुरुसैं विना जिज्ञासुनकूं बोध होवै नहीं ॥ जातैं प्रवीण-शस्त्रीविना शस्त्रकी न्यांई औ कुशल वैद्यविना उत्तमऔषधिकी न्यांई सद्गुरुसैं विना उत्तम-शास्त्रका बी उपयोग होवै नहीं । यातैं देश-विशेषविषै औ कालविशेषविषै परमेश्वरनैं अनेकसत्पुरुषरूप अपनी कला प्रगट करीहैं ॥

कच्छ । वरडा । हलार । सोरठ औ गुजरात । इनआदिकदेशनविषै जिज्ञासुनके बोधनअर्थ परमेश्वरनैं रामगुरुकी मूर्त्ति धारण करीहै । तातैं साक्षात्‌ वा शिष्यप्रशिष्यद्वारा इन देशनके निवासी बहुतजिज्ञासुजन कृतकृत्य भयेहैं । याहीतैं इन महात्माका सच्चरित्र सर्वजिज्ञासुनकूं ज्ञातव्य है । सो संक्षेपतैं इहां लिखियेहैं ॥

दक्षिणदिशाके मध्यगत श्रीहरिद्राबाद-नाम नगरके मध्य राजेका महामंत्री यजुर्वेदी-महाराष्ट्रब्राह्मण था । तिसके गृहविषै शुभ-दिनमैं विक्रमसंवत्‌ १८४० के समयमैं श्रीरामगुरु प्रगट भयेहैं ॥

ये महात्मा पूर्वके प्रबलसंस्कारसैं बाल्या-वस्थाकरिहीं दैवीसंपत्तिरूप शुभगुणनकूं धारण करतेभये ॥ यज्ञोपवीतसंस्कारसैं अनंतर स्नान संध्या दान व्रत औ नियमआदिक-शुभआचरणविषैहीं प्रवर्त्त होतेभये औ जहां तहां पुराणइतिहासआदिकशास्त्रनकी कथाकूं श्रवण करतेथे ॥

षोडशवर्षके वयविषै कोइ निष्ठावान् उत्तमपंडितके मुखसैं श्रीमद्भागवतशास्त्रका श्रवणकरिके तीव्रतरपरमनिर्मलवैराग्य उत्पन्न भया । तब स्त्री द्रव्य हस्ती अश्व रथ औ शिविकाआदिकसर्वऐश्वर्य्यकूं तृण विष औ अंगके मलकी न्यांई त्यागकरिके विरक्तवेष धारिके काशीआदिकतीर्थरूप उत्तमभूमिका-विषै विचरनै लगे ॥

किसी स्वल्पकालपर्यंत संगवान्‌महात्माके मुखसैं वेदांतवाक्यका श्रवणकरिके उत्तम-अधिकारी होनैतैं किसीके शब्दरूप निमित्तसैं सुषुप्तिसैं उत्थित पुरुषकी न्यांई तत्त्वबोधके आविर्भावकूं पायके बहुतकालपर्यंत निर्विकल्प-समाधिविषैहीं निमग्न रहतेथे ॥

ये महात्मा वैराग्य बोध औ उपरति । इन तीनगुणनके अवधिकूं प्राप्त भयेथे ॥

१ शुकदेव जैसै विरक्त थे । औ
२ दत्तात्रेय जैसै प्रबुद्ध थे । औ
३ हस्तामलक जैसै **योगधारणावाले** थे । औ
४ सनकादिक जैसै **उपरत** थे । औ
५ दध्यङ्ङाथर्वा जैसै **क्षमावान्** थे । औ
६ शंकर जैसै **बोधनशक्तिवान्** थे । औ

कौपीन अंचला कमंडलु अरु जटामात्रकूं धारण करतेथे औ वितस्तिपरिमाण ललाट अरु शरीरकी गौरकांतिसैं जिनके आगे

राजेका तेज बी तिरस्कारकूं पावताथा। ऐसी मनोहरमूर्त्ति थी औ एकवार स्वल्पआहार अरु दोवार जलपान अरु एकवार शौच अरु च्यारिवार लंघ्वी अरु एकमहर शयन। इस-रीतिसैं नियमितआचार रखतेथे ॥ औ

कांता अरु धातुमात्रका अस्पर्श अरु दैवगतिसैं स्पर्श भये स्नान करतेथे औ शीतकालमैं कदाचित् शरीरकूं जटासैंहीं आच्छादन करतेथे ॥

प्रियशिष्यनके पास बी कदाचित् अपनी कुल जाति वा पूर्वाश्रमका कछु बी वृत्तांत नहीं कहतेथे औ कदाचित् बी किसीसैं व्यवहारसंबंधी वार्ता करते नहीं थे औ सुनते बी नहीं थे औ शुद्ध यथास्थित वेदके वाक्यके उच्चारणसैं ब्राह्मण मालुम होतेथे औ श्रुतिमैं मूर्द्धनीपकारके उच्चारणसैं यजुर्वेदी मालुम होतेथे ॥ ये सहज हिंदुस्थानीभाषाका उच्चारण करतेथे औ गुर्जरदेशविषै कछुक गुर्जरभाषा बी करतेथे। तथापि महाराष्ट्र-देशीय शिष्यनके साथि नियमसैं शुद्धमहाराष्ट्र-भाषा करतेथे। तिससैं महाराष्ट्रब्राह्मण मालुम होतेथे। परंतु हरिद्रावादका कोई ब्राह्मण तिन्हके विद्यमान होते आयाथा। तिसके कहनैसैं सर्ववृत्तांत ऊपरके अनुसार निःसंदेह भयाहै ॥

ये महात्मा अपना नाम बी कहूं कहते नहीं थे। परंतु वक्ष्यमाण रीतिसैं रामनामकी ध्वनि करतेथे। तिसकरि लोकविषै "रामबाबा" इस नामसैं मख्याति भईहै औ कच्छादिक-देशनके साधु औ सत्संगीजनविषै "रामगुरु" इस नामसैं मख्याति भईहै ॥

इसरीतिसैं पूर्वका वय व्यतीत कियाहै ॥

उत्तरवयविषै लोकनके परमभाग्यसैं परम-दयालु परमशांत परमसुहृद इन महात्माकूं लोकनके उद्धार करनैकी इच्छा प्रगट भई। तातैं जहां कहां भूमिमंडलमैं विचरतेहुये लोकनकूं अद्वैतब्रह्मका उपदेश करतेभये ॥

आस्तिकलोकनकूं ईश्वरनामके उच्चारण-विषै अधिक रुचि होवैहै। यातैं श्रीरामगुरु जिस ग्राम वा नगरविषै जावैं तहां रामनामकी ध्वनि करैं। तिसकरि बहुतलोक इकट्ठे होवैं। तब कहैं "बैठो कछु कथा करिये"। ऐसैं कहिके पीछे वेदांतके ग्रंथनकी कथाकरिके दृष्टांतसिद्धांत सरलप्रक्रियाकी रीतिसैं शीघ्रहीं पुरुषनके चित्तविषै "मैं ब्रह्म हूं औ जगत् मिथ्या है" यह बोध दृढतर होवै तैसैं समुजावतेथे ॥

बोधनकी शक्ति जैसी रामगुरुविषै थी तैसी धुरंधरपंडितनविषै बी होनी दुर्लभ है ॥ बहुत क्या कहैं। मंदमतिवाले अनधिकारी वा वनमैं लुटनैहारे जन बी जिनके दर्शन औ संगतिसैं तीव्रजिज्ञासावान्अधिकारी होयके स्वल्पकालविषैहीं अद्वैतनिष्ठावान् भयेहैं। तब तीव्रबुद्धिमान् अधिकारी जननकी क्या वार्त्ता है?

जो पुरुष समीप आवै उसकूं शीघ्रहीं

१ "तूं कौन है?" ऐसा प्रश्नकरिके "मैं ब्राह्मण हूं वा क्षत्रिय हूं। वा साधु हूं। वा अमुक नामवाला हूं" इसरीतिके उत्तरके अनुसारी तिसकूं देहादिकतैं भिन्नकरिके "त्वं"पदके अर्थरूप चिदात्माके स्वरूपकूं बोधनकरिके पीछे

२ "तेरा इष्टदेव कौन है?" इस प्रश्नके उत्तरके अनुसार "तत्"पदार्थका बोधनकरिके पीछे

३ दृष्टांत औ प्रमाणके बलसैं तिन दोनूं-पदार्थनकी एकताकूं समुजायके तिस पुरुषकूं "अहं ब्रह्मास्मि" यह दृढ-निश्चय करावतेथे ॥

यह श्रीरामगुरुकी स्वाभाविकरीति थी ॥

कोई अन्यमतका पंडित वी विवाद करनैके निमित्त आया होवै। सो वी श्रीरामगुरुके गुणनकूं देखिके निर्विवाद होयके अपनैविषै शिष्यभावकूं धारणकरि लेवै । ऐसैं इस महात्माके गुण थे ॥

इसरीतिसैं जगत्के उद्धारणअर्थ पृथ्वीपर एकाकी विचरतेहुये श्रीरामगुरु गोदावरीके निकट नासिकक्षेत्रविषै पधारे। तहां पंडितस्वामी (गौडस्वामी) वी रहतेथे। तिन्हके समक्ष कछुककाल निवास करतेभये। तहां राजारामशास्त्री औ रामाचार्य्यपौराणिकआदिअधिकारिनकूं प्रवोध करतेभये। तिनमैंसैं राजारामशास्त्री तौ व्यवहारसैं उपरामकूं पायके निर्विकल्पसमाधिके अभ्यासपरायण होयके विदेहमुक्त भये औ एकाह करनैहारे रामाचार्य्य विद्यमान हैं ॥

एकदिनमैं कोई नीचजातिवाले पुरुषकूं तिलकमालाआदिक साधुके चिन्हकूं धारनैहारा देखिके तिसकूं परमात्मदृष्टिसैं नमस्कार करनै ऊठे। परंतु सो तेजकूं न सहनकरिके आपहीं नम्र भया। सो देखिके औरसंन्यासी श्रीपंडितस्वामीके पास कहनै लगे कि रामकूं प्रायश्चित्त कियाचाहिये। तब श्रीपंडितस्वामीजीनै कह्या कि राम जातैं निर्विकार हैं औ इनकी वर्णाश्रमभावरहित विशुद्धदृष्टि है। यातैं इनकूं कछु वी प्रायश्चित्त कर्त्तव्य नहीं है। किंतु इनविषै दोषदृष्टि करनैतैं तुमकूंहीं प्रायश्चित्त कर्त्तव्य है । ऐसैं सर्वत्र अद्वैतपरमात्मदर्शी थे ॥

श्रीरामगुरु अटन करतेहुये मुंवैनगरविषै पधारे। तहां अधिकारिनके प्रेमसैं एकवर्षपर्य्यंत निवासकरि ब्रह्मविद्याका वीज गेर्या ॥

फेर श्रीद्वारकामैं पधारे । तहां राजदूत होयके अटकावनैहारे हरिसंगरजपूतआदिककूं वोध किया।

फेर कच्छदेशगत मांडवी (मंडी) नगरमैं पधारे। तहां रेवागिरिजीके मठमैं निवासकरिके। श्रीसुखलालगिरिजी। विश्वनाथजी। निर्भैराम । उमयाशंकर (माधवानंद) । व्यासमहादेव तथा देवकृष्णजी औ साधु श्रीहरिदासजी औ सोनी दामजी तथा मनजीआदिक अनेकअधिकारीपुरुषनकूं वोध करतेभये ॥

भुजनगरमैं स्थित श्रीवापुमहाराजकूं परमविरक्त उत्तमअधिकारी सुनिके परमप्रसन्न होयके मांडवीसैं पत्रिका पठाई। तब अष्टादशवर्षके वयमैं जिनोंनै गृहका त्यागकरिके कोई संन्यासीमहात्माके प्रसादसैं प्राप्त कापायांवरकूं धारण किया था औ जहां तहां भगवत्मंदिरनविषै हरिकीर्त्तन औ नृत्य करतेहुये वैराग्य औ भक्तिकरि पूर्ण थे औ महात्माके समागमकूं ढूंढते फिरतेथे औ जिनका हरिकीर्त्तन सुनिके विषयासक्तपुरुषनकूं वी वैराग्य उदय होवै। ऐसै श्रीवापुजीमहाराज श्रीरामगुरुकी पत्रिका वांचिके मेघके आगमनसैं मयूरकी न्यांई परमआल्हादकूं प्राप्त भये औ तिसीहीं समयमैं मांडवीकूं पधारे ॥ तिन्हकूं विरक्तवेष देखिके श्रीरामगुरु साष्टांगप्रणाम करनैकूं ऊठे। तब वर्जनकरिके आप समित्पाणि होयके साष्टांगप्रणामकूं करतेभये ॥ तिन्हकूं विवेकादिसाधनकरि संपन्न जानिके शास्त्रोक्तसर्वसाधन आपविषै हैं ऐसैं अनुमोदनकरिके तत्त्वका साक्षात्कार करावतेभये ॥ पीछे श्रीवापुमहाराज सदा साथिहीं विचरते रहेहैं॥

श्रीवापुमहाराज हमारे निवासस्थान श्रीमङ्गलग्रामके सत्संगीजनोंकी प्रार्थनासैं मातापिताकी पालनाके लिये श्रीरामगुरुकी आज्ञापूर्वक भरतकी न्यांई रामगुरुकी

पादुकाका स्थापनकरिके कछुककाल मज्जलमैं रहेथे ॥

ऐसैं श्रीरामगुरु कछुककाल मांडवीमें वासकरिके फेर श्री भुजनगरविषै पधारे। तहां श्रीदेशलराहु (कच्छभुजका राजा) द्रव्यकी थेली लेके दर्शनकूं आया। तिसकूं कहनैलगे कि "यह विष्टा मेरे पास क्या धरताहै। यहं ब्राह्मणकूं देहु औ इस हाड चामका क्या दर्शन करताहै। यह राम नहीं है। जो देखनै योग्य है सो देख ॥" तब वह निस्तेज होयके दोनूंकर जोडिके "मैं आपका किंकर हूं" ऐसैं कहिके वह द्रव्य ब्राह्मणनकूं लुटाय देताभया ॥

ये महात्मा नित्य श्रवण करावैं तहां स्त्री-पुरुष सर्व श्रवण करतेथे। तब केइक रजोगुणी कारभारीलोक स्त्रीयनके सामनै दृष्टि करैं तिन्हकूं कहैं कि "हे काक (कौवा)! तहां क्या देखताहै। इहां देख। तेरा यह पिता (शास्त्र) क्या कहताहै" ॥ औ लक्ष्मीदास नाम बडा कारभारी था। जो पूर्व आपहीं सारा राज्य करताथा। सो सभाके वीचमैं इनके किये बहुततिरस्कारनकूं सहन करताथा। ऐसैं तहां अनेकअधिकारीनकूं बोध कियाहै ॥

कदाचित् श्रीनिवासताताचार्य्य विवाद करनैकूं आये। तिन्हकूं आप आचार्य्य जानिके साष्टांगप्रणाम और बहुतसत्कार करते-भये। तब सो तिन्हके गुणनकूं देखिके बहुतप्रसन्न भये औ वेदांतके अनुसार एकअष्टक बनायके सुनावतेभये। ताकूं कितनैक अधिकारी कंठ करतेभये ॥

एकवार आप अपरोक्षानुभूतिकी कथा करतेथे। तिसमैं राजयोगकी रीतिसैं जो निर्विकल्पसमाधि कह्याहै। तिसके वर्णन करतेहुये आप निर्विकल्पसमाधिविषै जुड गये। तब अष्टदिवसपर्य्यंत काष्ठवत् शरीर होयगया औ नेत्र अर्धखुले रहे औ मंदमंदस्वास चलताहीं रह्या औ केइक अविश्वासी जन नेत्रविषै अंगुली फिरावैं तथापि नेत्रकी पलका ढांपी नहीं औ शरीरकूं जैसैं गेरैं तैसैं पडा रहे। ऐसी लीला दिखाई ॥ फेर अष्टमदिनविषै सर्वशिष्य विचार करतेभये कि रामावतार पूर्ण भया क्यूं। तब श्रीबापुमहाराज "श्री-सद्गुरु ब्रह्मतनुं नौमि नररूपं यदाश्रिता न पतंति भूयो भवकूपं हे (इत्यादि)" इस गुरुस्तुतिकूं प्रेमसैं गायन करतेभये। तब प्रश्वासकूं छोडिके श्रीरामगुरु समाधितैं उत्थान करतेभये औ कहनै लगे कि कल क्या श्रवण भयाथा। सो कहो (इनकी यह रीतिथी कि पूर्वदिनकी कथा श्रोताके मुखसैं सुनिके पीछे कथा करनी)। तब श्रीबापुमहाराजजी कहतेभये कि हे महाराजजी। आप कलकी क्या बात करतेहो। अष्टदिवस व्यतीत होगये। ऐसैं कहिके फेर अष्टमदिनका श्रवण कह्या। तब कथा करनैलगे ॥ पीछे केइक मंदमतिवान् अधिकारीनकूं निःसंदेह करनैअर्थ अष्टदिन-पर्यंत समाधिका युक्ति औ प्रमाणसैं निषेध करतेभये ॥

एक दिन कहुं नदी वा तलावके ऊपर शिष्यसहित स्नान करनैकूं पधारेथे। तहां सर्व डुबकी देनै लगै। तब आप बी डुबकी दई। फेर दोप्रहरपर्यंत मालुम नहीं जो कहां गये। पीछे निकसै। सिंदूरवर्ण शरीर होगया। यह लीला दिखाई ॥

एकवार कोई साहुकारनै सौ रुपैयेकी साल (चद्दरविशेष) अर्पण करी। सो कोई शिष्यनै शीतकालमैं महाराजजीके आच्छादन निमित्त गठडीमैं बांधके धरी थी। पीछे कोई गरीबसाधु आयकर मागनै लग्या। तब कहते भये कि वह वस्त्र इसकूं देहु। तब रखनैवालेनै कह्या कि वह तौ अन्यसाधुकूं दीयागया ॥ सो सुनिके आप उठिके उसकी

गठडी खोलिके वह वस्त्र उस साधुकूं देदिया औ यह साधु होयके जूठ बोल्या औ संग्रह करनै लग्या तातैं इसकूं दंड दीयाचाहिये। यह जानिके उस शिष्यकी उपेक्षा करी । फेर श्रीबापुमहाराजकी अनशनकी प्रतिज्ञासैं कृपा करतेभये ॥

श्रीरामगुरुके समागमके अर्थ केईक देशी-परदेशीसाधु औ सत्संगी जन इकठे होते-थे । तिनसहित श्रीरामकूं केईक श्रद्धालुजन रसोइ देतेथे ॥ दिनमैं एकवार सर्वका भोजन होताथा औ अवशेष रहे कच्चेअन्नकूं अभ्यागतनके ताईं दिवाय देतेथे ॥ दूसरे दिनके भोजनअर्थ रहनै नहीं देतेथे ॥ एक-भजनीबावा बहुदिननसैं साथि रहताथा। सो आगिलेदिनके सर्वमंडलीके भोजनअर्थ अन्नकूं छिपायके रखताथा औ अवशेष रहे अन्नकूं अभ्यागतनकूं देताथा ॥ एकदिन भोजनके अनंतर अभ्यागत आये । "तिन्हकूं शेष अन्न देहू" ऐसैं श्रीरामगुरुनै कह्या तब भजनी-बावानै कह्या कि "शेष अन्न कछु नहीं है" तब आप उठिके देख्या तौ अन्न बहुत धर्याहै । सो अभ्यागतनकूं देदिया औ तिस शिष्यकूं "तुह्मनै साधु होयके काहेकूं संग्रह किया? क्या कलका प्रारब्ध नहीं होवैगा?" ऐसैं कहिके निकास दिया ॥

इसरीतिसैं भुजनगरविषै निवासकरिके जयकृष्णशास्त्री । सुंदरजीव्यास । वल्लभजी-महाराज । मुरारजी महाराज । अर्जुनशेठ औ लक्ष्मीदासकारभारी आदिकअनेकअधिकारि-नकूं बोधकरिके फेर जहां जहां सत्संगीजन लेगये । तिस तिस ग्रामविषै आठआठदशदश-दिन निवासकरिके महात्मासाधु श्रीविहारी-जी (बेराजी) क्षेमदासजीआदिकनकी प्रार्थनासैं तिन्हके गुरु महात्मा श्रीदेवासाहेब-के निवासके स्थानक श्रीहमलाग्राममैं पधारे । तहां साधुपुरुषनकूं अपनै स्वरूपका अनुसंधान करायके फेर मांडवीमैं पधारे ॥

श्रीरामगुरु जहां नगरमैं वा मार्गमैं चलतेथे तहां सर्वजन "ब्रह्मैवाहं । शिवोऽहं" ऐसैं घोष करतेथे औ आप औ स्वसमीपवर्त्ती-जन निश्वासआदिक कालविषैं बी "ब्रह्मै-वाहं" "शिवोऽहं" ऐसैं उचारतेथे ॥ ऐसैं इन देशनविषैं ब्रह्मज्ञानरूप ध्वजका आरोपण कियाहै ॥

एकवार श्रीरामगुरु सभाविषैं श्रवण करावतेथे। तहां केईक दुर्जननकी प्रेरणासैं एक टोकरास्वामी आयके गाली देनै लगे औ कहनै लगे कि तुह्म सभाके बीचमैं वेदांतका श्रवण क्यूं करावतेहो औ श्रुतिस्मृतिका उच्चारण करतेहो । यातैं आपका यज्ञोपवीत छीन ल्यौंगा ॥ ऐसैं तिरस्कार करनै लगे तथापि आप शास्त्रानुसार उत्तर देके मौनहीं रहे औ शिष्यनकूं कहनै लगे कि जो कोउ बोलैगा तिसका राम नहीं है ॥ पीछे कोई कारभारी मध्यस्थनै तिन्हकूं अनादरकरिके निकासे ॥ अनंतर सो श्रीरामगुरुका महिमा जानिके पश्चात्ताप करतेभये । ऐसै क्षमावान् थे ॥ कोई जन पूजा करैं तौ अत्यंतग्लानीकूं पावतेथे ॥

पीछे सुदामपुरी (पोरबंदर)कूं पधारते हुये महान् सुखलालगिरिजीकूं कहतेभये कि विद्याकी दक्षिणा मेरेकूं क्या देताहै । तब वह कहनै लगे कि जो आप आज्ञा करो सो देऊं ॥ तब कह्या कि कोइक पंडितकूं बिठाय-के वेदांतशास्त्रका श्रवण मांडवीमैं निरंतर करावना ॥ तब वे तथास्तु कहिके अब तलकि श्रवण करावतेभये ॥

श्रीरामगुरु सुदामपुरीकूं पधारे तहां श्री-जयकृष्ण भट्टजी । कानजी महाराज । अद्वैता-नंदजी। आत्मानंदजी। योगानंदजी। रूपगिरि-जी । देवजीभाई । कानराम औ बडोदेके

आबाशास्त्रीजी आदिकनकूं बोध करतेभये ॥ कितनैक मेहेरलोक (रजपूत) बी इनके उपदेशसैं परमहंस होयके विचरतेहैं ॥ एकदिन तहां बी कथा करतेहुये निर्विकल्पसमाधिके प्रसंगमैं समाधिस्थ होतेभये । तीनदिनपर्यंत काष्ठवत् शरीर रह्या । पीछे उत्थानकूं प्राप्त भये ॥

अनंतर जामनगरकूं पधारे । तहां श्रीविश्वनाथजीआदिकनकूं आल्हादकरिके फेर सुदामपुरीकूं आये । फेर मांडवीकूं पधारे । तहां गुर्जरभाषामैं श्रीपंचीकरणनामक पद्यात्मक ग्रंथ किया । सो ग्रंथ सुंदरप्रक्रियासंयुक्त होनैतैं मुमुक्षुनकूं ब्रह्मबोधमैं अतिउपयोगी भयाहै ॥ इस ग्रंथपर आपहीं पीछेसैं टीका करीहै औ मूलदासनाम शिष्यनै बी टीका करीहै । सो छपीहै औ अब भट्टजीमहाराज जयकृष्णजीने बी टीका करीहै ।

फेर तहांसैं सुदामपुरीमैं आये । तहांसैं जूनागढ (गिरिनार)कूं पधारे । तहां गोकलजीझालाआदिकअधिकारिनकूं बोध किया ॥

मस्तकमैं व्यथा देखिके जटा उतारिके चतुर्थाश्रम (संन्यास) कूं धारण करतेभये । तब "अखंडानंदसरस्वती" यह श्रीरामगुरुका नाम भयाहै ॥

फेर तहांसैं सुदामपुरीकूं आयके अमदावादकूं पधारे । तहां श्रवण करावतेभये । तब श्रीसदानंदस्वामीके श्रोते बहुत जानै लगे । सो जानिके श्रीसदानंदस्वामीनै आपका श्रवण बंध किया । पीछे श्रीरामगुरु श्रीसदानंदस्वामीके पास पधारे । तब अभ्युत्थान देके आपके आसनपर बिठाये ॥ कछु ज्ञानगोष्टिकरिके पीछे उत्थान करतेभये ॥

फेर तहांसैं वडोदेकूं पधारे । तहां शरीरविषै तापकी व्यथा भई । तब देहपातका अवसर देखिके आपकूं इच्छा भई जो इहांसैं १८ कोशपर श्रीनर्मदा है तहां शरीर पहुचे तौ नर्मदामैं गेऱ्या जावै औ इहां रहैगा तौ वायुकूं श्रम होवैगा ॥ यह जानिके हरिभाई नाम कारभारीकूं बुलाया । परंतु सो क्या आज्ञा करैंगे इस भयके लिये आया नहीं औ अन्यअधिकारीनकी यह इच्छा भई कि इन महात्माका इहां शरीर रहैगा तौ इस भूमिकामैं बडा आनंददायक सत्संग होवैगा । यातैं तहांहीं "ब्रह्मैवाहं शिवोऽहं" इन शब्दनकूं उचारतेहुये औ स्वरूपावस्थितिमैं आरूढ हुये संवत् १९०६ के भाद्रपद तृतीयाके दिन परब्रह्मभावकूं प्राप्त भये ॥

अनंतर तहां सत्संगिजनोंनै लिंग स्थापन किया औ सद्गुरु श्रीबापुमहाराजजी पूजन करतेहुये श्रवण करावतेभये ॥ ज्ञानके प्रचारसैं तिस स्थानका ज्ञानमठ नाम भयाहै ॥ पीछे केइक सत्संगिजननकी इच्छासैं तहां संस्थान औ निर्वाहका संकेत यदृच्छा (दैवगति)सैं बन्याहै ॥

श्रीबापुमहाराज यथाशास्त्र आचार करतेहुये अनेकजननकूं कृतार्थकरिके श्रीकाशीजीआदिकस्थलनमैं विहारकरि संन्यासकूं धारणकरिके गुरुस्थानविषैहीं स्वरूपावस्थितिपूर्वक परब्रह्मभावकूं प्राप्त भये ॥ इन परमदयालु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सर्वाचार्य्य गुणसंपन्न महात्माके अनुग्रहसैं हमकूं प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मगोचर प्रमा प्राप्त भईहै । तातैं हम धन्य हैं । हम धन्य हैं ॥

यह ब्रह्मनिष्ठसत्पुरुषनका चरित्र जो जन प्रीतिपूर्वक विचारैंगे तिन्हका चित्त शुद्धि होयके ज्ञानद्वारा कल्याण नाम मोक्ष होवैगा ॥

इति श्रीमत्‌रामगुरुका चरित्र समाप्त ॥

भाषाकर्त्ता ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ॥

॥ पंचकोशविवेकः ॥ ३ ॥

॥ द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥

॥ महावाक्यविवेकः ॥ ५ ॥

॥ चित्रदीपः ॥ ६ ॥

॥ तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥

॥ कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥

॥ ध्यानदीपः ॥ ९ ॥

॥ नाटकदीपः ॥ १० ॥

॥ इति प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अकारादिअनुक्रमणिका ॥

चिन्हरहितअंक टिकांकनकूं सूचन करैहै ॥

( ) यह चिन्ह टिप्पणांकनकूं सूचन करैहै ॥

* यह चिन्ह लघुप्रसंगके आरंभांकनकूं सूचन करैहै ॥

* * यह चिन्ह मध्यप्रसंगके आरंभांकनकूं सूचन करैहै ॥

अ

क

ख

ग

घ

च

ज

त

य

र

ल

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ श्लोकदर्शक अकारादि अनुक्रमणिका ॥

(श्लोकनके अर्धपूर्वार्ध सन्मुख जो अंक दियेहैं वे श्लोकांककूं सूचन करैहैं)

निर्गुण उपासना चक्र

॥ १११३ ॥ अनुभूतेरभावेऽपि ब्रह्मास्मीत्येव चिंत्यताम् ।
अप्यसत्प्राप्यते ध्यानान्नित्यासं ब्रह्म किं पुनः ॥ १५५ ॥

(श्रीपंचदशी–ध्यानदीपः)

॥ औ. देखो श्रीविचारसागरमैं अंक ॥ २८१–३०२ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥

॥ प्रथमप्रकरणम् ॥ १ ॥

॥ मूलकारकृतमंगलाचरणम् ॥

ॐ ॐ

नमः[1] श्रीशंकरानंदगुरुपादांबुजन्मने ।
सविलासमहामोहग्राहग्रासैककर्मणे ॥ १ ॥

ॐ ॐ

(अस्य व्याख्या तृतीयपृष्ठोपरि द्रष्टव्या)

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ प्रत्यक्तत्त्वविवेकव्याख्या ॥ १ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

गौरीघस्रेशहेरंबहरिशंकरसंज्ञकान् ।
पंचदेवानहं वंदे चित्तैकाग्र्योपकारकान् ॥ १ ॥

वेदांतार्थप्रकाशेन जगदांध्यनिवारकान् ।
सर्वाचार्याग्रगण्यांस्तान् वंदे शंकरदेशिकान् २

ॐ

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ प्रत्यक्तत्वविवेककी तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ १ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

प्रथम भाषाकर्त्ता अपने इष्टदेव औ गुरुनका संस्कृतश्लोकनसैं नमस्काररूप मंगल करैहैः—

टीकाः—अपनी उपासनाद्वारा वेदांतश्रवणमैं उपयोगी चित्तकी एकाग्रताके देनेरूप उपकारके करनेहारे मायाविशिष्ट ब्रह्मरूप सर्वकी उपादानकारण देवी[2] सूर्य गणपति विष्णु अरु शिव इन नामवाले पंचदेवनकूं मैं वंदन करूंहूं ॥ १ ॥

टीकाः—वेदनके अंतभागरूप जे उपनि-

१ यद्यपि प्रत्यक्तत्त्वविवेक नाम ब्रह्माभिन्नप्रत्यगात्माका उपाधितैं विवेचन (भेदज्ञान)का है। तिस(विवेक)कूं अंतःकरणकी वृत्तिरूप होनेतैं सो इस प्रकरणका नाम संभवे नहीं। तथापि जन्य (विवेक) जनक (ग्रंथ)के अभेदके अभिप्रायसैं इस प्रकरणका बी प्रत्यक्-तत्त्व-विवेक नाम है ॥ ऐसे और चारिविवेक नाम प्रकरणमैं बी जानी लेना ॥ और पांच आनंद नाम प्रकरणमैं वाच्यवाचकके अभेदअभिप्रायसैं आनंद-नाम है ॥ इति ॥

२ मूलश्लोकमैं गौरीपदका प्रथमनिवेश कियाहै सो प्रथमअक्षर औ गणकी श्रेष्ठताअर्थ है ॥ औ गौरी जो परमप्रकृति सो कारणब्रह्मरूप है। यातैं गणेशादिककी जननी है तातैं ताका प्रथमउच्चारण है ॥

येनास्तमितमज्ञानामज्ञानं ज्ञानभानुना ।
तस्मै मे रामसंज्ञाय परसद्गुरवे नमः ॥ ३ ॥
अहमेव परं ब्रह्म मयि सर्वं प्रकल्पितम् ।
ज्ञातं यत्कृपया तस्मै वापवे गुरवे नमः ॥ ४ ॥

परवाक्यरसाभिज्ञान् सज्जनान् ब्रह्मवित्तमान् ।
निंदासूयादिरहितान् प्रणमामि महत्तमान् ॥५॥
श्रीमत्सर्वगुरून्नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
प्रत्यक्तत्त्वविवेकस्य कुर्वे व्याख्यां यथामति ६

षद् औ तिनके अनुसारी ब्रह्मसूत्र अरु गीताआदिक वेदांत कहियेहैं। तिनके ब्रह्मात्माकी एकताप्रधानअर्थके पोडश–भाष्यादिद्वारा प्रसिद्ध करनेकरि सर्वजीवनके अविद्यारूप अंधपनेके निवारण करनेहारे औ याहीतें सर्वआचार्यनके अग्रमें गिनती करनेके योग्य ऐसे जे हमारे परमगुरु श्रीशंकराचार्य हैं। तिनकूं मैं वंदन करुंहूं ॥ २ ॥

टीका:—जिसकरि साक्षात् औ शिष्य प्रशिष्यद्वारा ज्ञानरूप सूर्यसें मंदबुद्धिवाले अगणितपुरुषनका मूलाज्ञान नाशकूं प्राप्त भयाहै। तिस रामसंज्ञक परसद्गुरुके ताईं मेरा वारंवार नमस्कार होहु ॥ ३ ॥

टीका:—"मैंहीं अखंडसच्चिदानंदपरब्रह्म हूं औ ब्रह्मभूत मेरेविषे सर्वकार्यकारणरूप प्रपंच नित्यनिवृत्त है" इसरीतिसें जिसके अनुग्रहसें जान्याहै । तिस ब्रह्मविद्याप्रद वापुमहाराजसंज्ञक साक्षात्सद्गुरुके ताईं मेरा नमस्कार होहु ॥ ४ ॥

टीका:—अन्यकविपुरुषनके वाक्यके रसकूं जाननेहारे औ संशयादिरहितब्रह्मनिष्ठ औ परके दोषकथनरूप निंदा अरु परके गुणनमें दोषके आरोपरूप असूया-इत्यादि-दुर्गुणतें रहित ऐसे अत्यंत–महान् जे संतजन हैं तिनकूं मैं अतिशयकरि नमन करुंहूं ॥ ५ ॥

टीका:—श्रीयुक्त[12]–सर्व[13]–गुरुनकूं नमनकरिके मैं पंचदशीके प्रत्यक्तत्त्वविवेक नाम प्रकरणकी नरभाषासें जैसी मेरी मति है तैसी टीका करुंहूं ॥ ६ ॥

३ ईश । केन । कठ । प्रश्न । मुंड। मांडूक्य । तैत्तिरीय। ऐतरेय । छांदोग्य । बृहदारण्यक । इन दशउपनिषदके भाष्य औ केनउपनिषदका दूसरा(वाक्य) भाष्य । ब्रह्मसूत्रभाष्य । गीताभाष्य । सनत्सुजात (महाभारतगत)भाष्य । विष्णुसहस्रनामभाष्य । नृसिंहतापिनीयउपनिषद्भाष्य । इनसें आदिलेके और उपदेशसहस्रीआदिकग्रंथरूप द्वारकरि ॥

४ **परमगुरु** कहिये परंपराके गुरु ॥

५ शंकरदेशिकपदका जो बहुवचन है सो तिनकी परमगुरुताका सूचक है ॥ औ और नारायणसें आदिलेके गोविंदपादपर्यंत औ दक्षिणामूर्ति दत्तात्रेयादिगुरुनका उपलक्षण है ॥ ६ **परगुरु** कहिये गुरुके गुरु ॥

७ अपनी निकृष्टता औ इष्टकी उत्कृष्टता करनेका नाम **नमस्कार** है ॥

८ आदिशब्दकरि परसुखका असहन (**स्पर्धा**) औ परकी उत्कृष्टताका असहन (**मत्सर**) सोइ **ईर्षा** औ परछिद्रनकी प्रकटता (**पिशुनता**) औ लोकरंजनका अनुष्ठान(**दंभ**) औ देहाभिमानिता (**मूर्खत्व**) इत्यादिदुर्गुणके निषेधका ग्रहण है ॥ औ दुर्गुणरहितताके संबंधि और सद्गुणनका अर्थसें ग्रहण है। सो सद्गुण गीताके त्रयोदशअध्यायमें "अमानित्व"सें आदिलेके "तत्त्वज्ञानार्थदर्शन"पर्यंत विंशति औ षोडशअध्यायमें "अभय"सें आदिलेके "नातिमानिता"पर्यंत षड्विंशतिदैवीसंपत्तिरूप वर्णन कियेहैं औ एकादशस्कंधके एकादशअध्यायमें परमकृपालुता अद्रोहता । क्षमावानता । औ सत्यभाषण । इनसें आदिलेके त्रिंशति सत्पुरुषनके लक्षणकरिके वर्णन कियेहैं। जिसकूं इच्छा होवै सो तहां देखे ॥

९ पंचमस्कंधमें महत्का यह लक्षण है:–जो समचित्त हैं। प्रशांत हैं। क्रोधरहित हैं। सुहृद् (प्रतिउपकारविना उपकारक) हैं। साधु (सदाचारवान्) हैं। सो **महान्** हैं ॥

१० यह जो बहुवचन है सो ब्रह्मनिष्ठसर्वसंतनका सूचक है ॥

११ "ऐसे संतनकूं अतिशय नमन करुंहूं" यह कहनेतें सामान्यतें परमात्मदृष्टिकरि सर्वकूं अपनाआप जानी नमन करुंहूं ॥

१२ पर (ब्रह्म)विद्या अथवा अपर (शास्त्र वा सगुणब्रह्म) विद्या तिसवाले ॥

१३ सर्वशब्दकरि दोनूं ग्रंथकर्त्ता । औ मातापिता । विद्याप्रदआदिकउपदेशकर्ता उक्तअनुक्तगुरुनका ग्रहण है ॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
प्रत्यक्तत्त्वविवेकस्य क्रियते पददीपिका ॥ १ ॥

१ प्रारिप्सितस्य ग्रंथस्याविघ्नेन परिसमाप्तिप्रचयगमनाभ्यां शिष्टाचारपरिप्राप्तमिष्टदेवतागुरुनमस्कारलक्षणं मंगलाचरणं स्वेनानुष्ठितं शिष्यशिक्षार्थं श्लोकेनोपनिबध्नाति । अर्थाद्विषयप्रयोजने च सूचयति (नम इति)—

२] सविलासमहामोहग्राहग्रासैककर्मणे श्रीशंकरानंदगुरुपादाम्बुजन्मने नमः ॥

३) शं सुखं करोतीति शंकरः । सकलजग-

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

प्रथम टीकाकार श्रीरामकृष्णपंडित ग्रंथकर्त्ताका नमस्काररूप मंगल करतेहुये इस प्रकरणकी टीका करनेकी प्रतिज्ञा करैहैं:—

टीकाः—श्रीभारतीतीर्थ औ विद्यारण्य दोनूं—मुनीश्वरनकूं नमस्कारकरि प्रत्यक्तत्त्वविवेक नाम जो पंचदशीका प्रथमप्रकरण है तिसकी पददीपिका मैं रामकृष्णपंडित करूंहूं ॥ १ ॥

॥ मूलकारकृत मंगलाचरण ॥

१अब श्री—विद्यारण्य—मुनीश्वरग्रंथकर्त्ता प्रारंभ करनेकूं इच्छित इस पंचदशीग्रंथकी निर्विघ्नकरि समाप्ति औ ग्रंथकर्त्तामें । नास्तिकपनेकी भ्रांति दूरी होयके । जिज्ञासुनकी ग्रंथमें प्रीतिसें प्रवृत्ति होवै । इन दोप्रयोजनके लिये शिष्टपुरुषनके आचारतें प्राप्त जो इष्टदेवतागुरुके नमस्काररूप मंगलका आचरण है । जो आपग्रंथकर्त्ताने अपने चित्तमें अनुष्ठान कियाहै सो मंगल ग्रंथके आरंभमें किया चाहिये । इसरीतिकी शिष्यनकूं शिक्षा (उपदेश) करनें अर्थ मूलश्लोककरि गुंथन करैहैं । औ अर्थतें इस वेदांतग्रंथके विषय-प्रयोजनकूं सूचन करैहैं:—

२] श्री-शंकरानंद-गुरुके दो-पादरूप जो अंबुजन्म है । जो विलाससहित महामोहरूप ग्राहके ग्रासरूप कर्मवाला है । तिसके ताईं मेरा नमस्कार होहु ॥

३) शं कहिये सुख । तिसके ताईं जो करैहैं

१४ मुनि जो संन्यासी तिनके ईश्वर (आचार्य) ॥
१५ पदपदार्थकूं दीपककी न्याईं प्रकाशनेवाली टीका ॥
१ शोभावान् वा ब्रह्मविद्यारूप लक्ष्मीवान् ॥

२ इहां प्रथमप्रकरणसें षष्ठप्रकरणपर्यंत श्रीविद्यारण्यकी कृति है औ पीछे श्रीभारतीतीर्थकी कृति है यातें केवल विद्यारण्यपद है । दोनूं एकग्रंथके कर्ता हैं यातें टीकाकारनें सर्वत्र दोनूंका मंगल कियाहै । औ श्रीभारतीतीर्थ कोइरीतिसें श्रीविद्यारण्यके गुरु हैं यातें सर्वत्र मंगलमें भारतीतीर्थका नाम प्रथम धर्याहै ॥

३ वेदअनुमतकर्मके करनेवाले व्यासादिक ॥
४ विघ्नध्वंसके अनुकूलव्यापारका ॥
५ उपदेशके योग्य साधनसंपन्नमुमुक्षु शिष्य कहियेहैं ॥
६ जीवब्रह्मकी एकता ॥
७ संपूर्णदुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति ॥

८ अधिकारी संबंध विषय औ प्रयोजन ये चारि ग्रंथके अनुबंध आरंभमें कहे चाहिये । तिनमें विषय औ प्रयोजन प्रथमश्लोकमें सूचन कियेहैं औ अधिकारी दूसरेश्लोकमें स्वमुखतेंही ग्रंथकर्तानें कहाहै । औ इन तीनकी सिद्धिसें प्रतिपाद्य (जीवब्रह्मकी एकता) प्रतिपादकभावआदिकसंबंध सहज सिद्ध होवैहै ॥

९ ब्रह्मविद्या वा सर्वज्ञतादिशक्ति वा आसनरूप पार्वती वा माया वा अणिमादिअष्टसिद्धि तिसकरि युक्त ॥

१० शंकरानंदस्वामी वा शंकरआचार्यरूप आनंदपरमात्मा वा दक्षिणामूर्ति शिवरूप परमात्मा वा ईश्वर वा प्रत्यक्—अभिन्नशुद्धब्रह्म ॥ ११ साक्षात् वा परंपरासें शिक्षक ॥

१२ प्रसिद्धचरण वा पाताल वा स्वरूपभूतप्रकाश ॥

१३ अंबु जो जल तिसमें जिसका जन्म है ऐसा मकरादिकनका भी भक्षक महातिमिंगिलमहामकर वा कमल ॥ इहां गुरुके पादकूं जो कमल कहैं तौ तिसमें मकरके ग्रसनरूप कर्म मूलश्लोकके उत्तरार्धमें कहाहै सो संभवै नहीं इस अभिप्रायसे प्रथमअर्थ महामकर है औ जैसें गजेंद्रकूं जब ग्राहने पकडाथा तब कमलपुष्पद्वारा विष्णुके आराधनसें विष्णुकी प्रकटताकरि चक्रसें ग्राहका नाश भया । तैसे गुरुपादरूप कमलद्वारा गुरुके आराधनसें प्राप्त ज्ञानकरि अज्ञा-

दानंदकरः परमात्मा । "एष ह्येवानंदयाति" इति श्रुतेः । आनंदः । निरतिशयप्रेमास्पदत्वेन परमानंदरूपः प्रत्यगात्मा । शंकरश्चासावानंदश्चेति शंकरानंदः प्रत्यगभिन्नः परमात्मा । स एव गुरुः । "परिपक्वमला ये तानुत्सादनहेतुशक्तिपातेन । योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाचार्यमूर्तिस्थ" इत्यागमात् ॥ श्रीमांश्चासौ शंकरानंदगुरुः चेति गंधद्विप इत्यादिवत्समासः ॥ अनेन श्रीगुरोरणिमाद्यैश्वर्यसंपन्नत्वं सूचितम् ॥ यद्वा श्रिया भूत्या शं करोतीति श्रीशंकरः । "रातेर्दातुः परायणम्" इति श्रुतेः । अनेन श्रीगुरोर्भक्तेष्टसंपादने सामर्थ्यं सूचितं भवति । तस्य गुरोः पादौ एव अम्बुजन्म कमलं । तस्मै नमः प्रह्वीभावोऽस्तु । किंविधाय सविलासमहामोहग्राहग्रासैककर्मणे । विलासः कार्यवर्गस्तेन सह वर्तत इति सवि-

सो "शंकर" है । इस व्युत्पत्तिकरि सकलजगतकूं आनंद करनेवाला ब्रह्म । शंकरपदका अर्थ है ॥ "यह परमात्माही आनंद करैहै" इस श्रुतितें औ सर्वसें अधिकप्रीतिका विषय होनेकरि परमानंदरूप जो प्रत्यगात्मा है सो आनंदपदका अर्थ है ॥ औ जो शंकर (ब्रह्म) है सोई आनंद (प्रत्यगात्मा) है ॥ इसरीतिसें प्रत्यक्–अभिन्न–परमात्मा सारेशंकरानंदपदका अर्थ है ॥ औ सोई ब्रह्माभिन्नप्रत्यक् गुरु है । "सो प्रत्यक्–अभिन्न–परमात्मा आचार्य(गुरु)की मूर्तिमें स्थित हुआ । दग्ध हैं रागादि जिनके तिन अधिकारिनकूं उपदेशसें अज्ञानादिप्रतिबंधके नाशकी हेतुशक्तिके देनेकरि प्रत्यक्अभिन्नपरमात्मामें जोडता है" । इस शास्त्रवाक्यतें ॥ औ जो श्रीमान् है सोइहीं शंकरानंदगुरु है । इसरीतिसें श्रीशंकरानंदगुरु इस सारेपदका अर्थ है ॥ इहां श्रीमान् कहनेकरि श्रीगुरुकूं अणिमादिविभूतिकरि युक्तता सूचन करी ॥ अथवा श्री जो लक्ष्मी तिसकरि शं कहिये सुखकूं जो करै सो श्रीशंकर है ॥ "धनका दाता है तिसका परमगती है" (कर्मफलका दाता होनेतें) इस श्रुतितें ॥ इस कहनेकरि श्रीगुरुकूं भक्तके इष्टके संपादनमें सामर्थ्य सूचन किया ॥ तिस श्रीशंकरानंदगुरुके दोपादरूप जो कमल है । तिसके ताईं मेरा नम्रभाव होहु ॥ सो पादरूप कमल कैसा है? विलास जो समष्टि–व्यष्टि–स्थूलसूक्ष्मप्रपंचरूप कार्यका समूह है तिसकरि सहित जो महामोह कहिये मूलाज्ञान है । सोइहीं मकरादिककी न्याईं अपने वशकूं प्राप्त हुये जंतुकूं अतिशयदुःखका हेतु होनेतें मकर है तिसकी निवृत्तिहीं है व्यापार जिस पादकमलका तिसके ताईं नमस्कार होहु । यह अर्थ है ॥ इस मूलश्लोकमें शंकर औ आनंद इन दोपदनका सामानाधिकरण्य है ॥ तिसकरि जीवब्रह्मकी एकतारूप ग्रंथका विषय सूचन

नका नाश होवैहै । यातें तिस गजेंद्रधृतकमल औ गुरुपादकी तुल्यताके संभवके अभिप्रायसें दूसराअर्थ कमल है ॥

१४ इहां गंधवान् ऐसा जो हस्ती सो कहिये गंधद्विप । इसकी न्याईं मध्यमपदलोपीसमास है ॥ जहां बीचलेपदका लोपकरिके उच्चार होवै तहां **मध्यमपदलोपीसमास** होवैहै ॥

१५ अणिमा । महिमा । गरिमा । लघिमा । प्राप्ति । प्राकाम्य । ईशित्व । वशित्व । ये **अष्टसिद्धि** हैं ॥ इनका अर्थ श्रीमद्भागवतके एकादशस्कंधके पंचदशअध्यायमें लिख्याहै ॥

१६ वनकी न्याईं या जातिकी न्याईं वा जलाशय तडागकी न्याईं **समष्टि** है ॥

१७ वृक्षकी न्याईं वा व्यक्तिकी न्याईं वा जलकी न्याईं **व्यष्टि** है ॥

१८ ब्रह्मात्मस्वरूपका आच्छादक अज्ञान **मूलाज्ञान** है ॥

१९ भिन्नअर्थके निमित्त जे पद हैं तिनका एकअर्थकूं विषय करनेपना **सामानाधिकरण्य** है ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः॥ १ ॥ श्लोकांकः २	॥ ग्रंथारंभप्रतिज्ञा ॥ तत्पादांबुरुहद्वंद्वसेवानिर्मलचेतसाम् । सुखबोधाय तत्त्वस्य विवेकोऽयं विधीयते ॥ २ ॥	टीकांकः ४ टिप्पणांकः २०

लासः । एवंविधो यो महामोहो मूलाज्ञानं स एव ग्राहः मकरादिवत्स्ववशं प्राप्तस्यातीव दुःखहेतुत्वात्तस्य ग्रासो ग्रसनं स एवैकं मुख्यं कर्म व्यापारो यस्य तत्तथा तस्मै इत्यर्थः ॥ अत्र च शंकरानंदपदद्वयसामानाधिकरण्येन जीवब्रह्मणोरेकत्वलक्षणो विषयः सूचितः । जीवस्य भूमब्रह्मरूपतयाऽपरिच्छिन्नसुखाविर्भावलक्षणं प्रयोजनं च सूचितं । सविलासेत्यादिना निःशेषानर्थनिवृत्तिलक्षणं प्रयोजनं मुखत एवाभिहितम् ॥ १ ॥

४ इदानीमवांतरप्रयोजनकथनपुरःसरं ग्रंथारंभं प्रतिजानीते—

५] तत्पादाम्बुरुहद्वंद्वसेवानिर्मलचेतसां सुखबोधाय अयं तत्त्वस्य विवेकः विधीयते ॥

६) तस्य गुरोः पादौ एव अम्बुरुहे कमले । तयोर्द्वंद्वं । तस्य सेवया परिचर्यया

किया ॥ औ जीवकूं भूमा[20] ब्रह्मरूप होनेकरि परिपूर्णसुखका आविर्भाव[21]रूप प्रयोजन सूचन कियाहै ॥ औ "विलाससहित" इत्यादिउत्तरार्धकरि संपूर्ण—अनर्थ[22]की निवृत्तिरूप प्रयोजन मूलकारने अपने मुखतेंही कथन कियाहै ॥१॥

॥ ग्रंथके आरंभकी प्रतिज्ञा ॥

४ अब ग्रंथके वीचके प्रयोजनके कथनपूर्वक ग्रंथके आरंभकी प्रतिज्ञा करैहैं:—

५] तिस गुरुके दोपादरूप कमलकी सेवा[23]सें जिनके चित्त निर्मल[24] भयेहैं तिनकूं सुखसें ज्ञानअर्थ यह तत्त्वका विवेक करियेहैं ॥

६) तिस गुरुके दोपादरूप जो दोकमल हैं तिनकी स्तुतिनमस्कारादिरूप परिचर्याकरि

२० देशकालवस्तुके परिच्छेदतें रहित सुखरूप ॥

२१ विद्यमानकी प्रकटता आविर्भाव है ॥

२२ कार्यसहित अज्ञान अनर्थ है ॥

२३ ईश्वरकी सेवाका पुण्यकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप अदृष्टफल है ॥ औ ब्रह्मवित्गुरुकी सेवाका अदृष्टरूप फल बी है औ दूसरा गुरुकी प्रसन्नतासें यथायोग्यउपदेशद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिरूप दृष्ट (प्रत्यक्ष)फल है ॥ सो सेवा वाणी शरीर मन औ धनके अर्पणसें होवैहै ॥ वाणीकरि गुरुकी स्तुति करनी औ निंदा करनी नहीं अरु अमुकमें आपकूं नमन करुंहूं वा नमोनमः वा जयजयइत्यादिकथनरूप वाणीकरि नमस्कार करना यह **वाणीके अर्पणसें सेवा** है ॥ औ पुरुषशिष्यकरि गुरुके चरण चंपने आदिककामकी आज्ञाका भंग करना नहीं औ दीर्घनमस्कार करना इत्यादि **शरीरके अर्पणसें सेवा** है ॥ औ पतिव्रतास्त्रीकूं जैसे पतिविषे ईश्वरभावना है तैसे मुमुक्षुकूं गुरुविषे परमेश्वरभावना करनी औ गुरु जब राजसव्यवहारविषे वर्त्तते होवैं तब तिनकूं ब्रह्मारूप जानै औ जब शिष्यनकी पालना करैं तब विष्णुरूप जानै औ जब क्रोध करैं तब शिवरूप जानै औ जब शांतिमें स्थित होवैं तब गंगादेवीरूप जानै औ जब शास्त्रमें तत्पर होवैं तब गणेशरूप जानै औ जब वचनरूप प्रकाशकरि भ्रमसंदेहसहित अज्ञानरूप अंधकारकूं दूरी करैं तब तिनकूं सूर्यरूप जानै । इसरीतिसें गुरुमें ईश्वरकी भावनाकूं धारण करै । परंतु कदाचित् दोषदृष्टि करै नहीं औ अंतरमें गुरुविषे सर्वसें उत्कृष्टभावके चिंतनरूप मनका नमस्कार करना औ गुरुमूर्त्तिका ध्यान करना इत्यादिक **मनके अर्पणसें सेवा** है ॥ औ धन धान्य गृह पत्नी पुत्र पशु दास दासी पृथ्वीआदिक जे वस्तु हैं सो **धन** कहियेहैं ॥ तिनकूं गृहस्थगुरुके तांई सर्वसमर्पण करना औ त्यागी (विरक्त) जो गुरु होवै तौ तिन धनकूं छोडिकें गुरुके शरण जाना । यह **धनअर्पणसें सेवा** है ॥ इस रीतिकी गुरुकी सेवा इहां उद्देश करीहै ॥ औ इहां जो पादकमल कहाहै सो गुरुकी मूर्त्तिका बी उपलक्षण है ॥

२४ इहां निर्मलचित्तरूप कारणके कथनतें तिसके कार्य वि-

टीकांक: ७ टिप्पणांक: २५	शब्दस्पर्शादयो वेद्या वैचित्र्याज्जागरे पृथक् । ततो विभक्ता तत्संविदैक्यरूप्यान्न भिद्यते ॥ ३ ॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ३

स्तुतिनमस्कारादिलक्षणया । निर्मलं रागादिरहितं चेतः अंतःकरणं येषां ते तथोक्तास्तेषां । सुखबोधाय अनायासेन तत्त्वज्ञानोत्पादनाय । अयं वक्ष्यमाणप्रकारः । तत्त्वस्य अनारोपितस्वरूपस्य "अखंडं सच्चिदानंदं महावाक्येन लक्ष्यते" इति वक्ष्यमाणस्य विवेक आरोपितात्पंचकोशलक्षणाज्जगतो विवेचनं । विधीयते क्रियते इत्यर्थः ॥ २ ॥

७ जीवब्रह्मणोरेकत्वलक्षणविषयसंभावनाय जीवस्य सत्यज्ञानादिरूपतां दिदर्शयिषुरादौ ज्ञानस्याभेदप्रतिपादनेन नित्यत्वं साधयति । शब्दस्पर्शादय इत्यादिना । तत्र तावद्विस्पष्टव्यवहारवति जागरे ज्ञानस्याभेदं साधयति (शब्देति)–

८] जागरे वेद्याः शब्दस्पर्शादयः वैचित्र्यात् पृथक् । ततः विभक्ता तत्संवित् ऐक्यरूप्यात् न भिद्यते ॥

९) जागरे "इंद्रियैरर्थोपलब्धिर्जागरितम्" इत्युक्तलक्षणेऽवस्थाविशेषे । वेद्याः संविद्वि-

रागादिरहित जिनके अंतःकरण भयेहैं तिन अधिकारिनकूं सुखसें बोधअर्थ कहिये परिश्रमसें विनाही तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ । "अकल्पित है स्वरूप जिसका" औ "अखंड सच्चिदानंद महावाक्यकरि लखियेहै" । इसरीतिसें आँगे कहियेगा ऐसा जो तत्त्व प्रत्यक्अभिन्नब्रह्म है ताका यह आँगे कहियेगा प्रकार जिसका ऐसा विवेक कहिये कल्पितपंचकोशरूप जगततें विवेचन करियेहै ॥ यह अर्थ है ॥२॥

॥ १ ॥ युक्तिकरि जीवब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन ॥ ७–२०८ ॥

॥ १ ॥ नित्य औ स्वयंप्रकाशसंवितका जाग्रदादिविषे अभेद औ विषयनका भेद ॥ ७–४३ ॥

॥ १ ॥ जाग्रतमें विषयनका परस्परभेद । तिनतें भिन्न संवित्का अभेद ॥

७ जीवब्रह्मकी एकतारूप जो इस ग्रंथका विषय[28] है तिसकी संभावनाअर्थ जीवकी सत्यज्ञानआदिरूपताके दिखावनेकूं इच्छते हुये आचार्य[29] "शब्दस्पर्शादिक" इस वाक्यसें प्रथम जाग्रत्आदिअवस्थाविषे ज्ञानके अभेदके प्रतिपादनकरि तिस ज्ञानकी नित्यताकूं साधतेहैं ॥ तिन तीनअवस्थाविषे स्पष्टव्यवहारवाले जागरणविषे प्रथम ज्ञानके अभेदकूं साधतेहैं:—

८] जागरणविषे वेद्य जो शब्दस्पर्शआदिक हैं सो विचित्र होनेतें परस्पर भिन्न हैं औ तिनतें विवेचित जो तिनकी संवित् है सो एकरूप होनेतें भेदकूं पावै नहीं ॥

९) जाग्रत्[30]अवस्थाविषे वेद्य कहिये संवि-

वेक वैराग्य षट्संपत्ति मुमुक्षुता ये चारिसाधन अर्थसें सूचन किये ॥ यातें मलविक्षेपदोषरहित औ चारिसाधनसहित अधिकारी कथन किया ॥

२५ देशकालवस्तुकृतपरिच्छेदतें रहित अखंड कहियेहै ॥

२६ अंक २१९ विषे देखो ॥

२७ अंक १७३ विषे देखो ॥

२८ ग्रंथविषे प्रतिपादन करनेकूं योग्य विषय कहियेहै ॥

२९ ग्रंथके कर्त्ता श्रीविद्यारण्यस्वामी ॥

३० देवताके अनुग्रहकरि युक्त इंद्रियनसें विषयनका ज्ञान जिसविषे होवै सो जाग्रत् कहियेहै ॥ अथवा इंद्रियजन्यज्ञानका औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कारका जो आधारकाल है सो जाग्रत्अवस्था कहियेहै ॥ ऐसें पंचीकरणवार्त्तिक वा वृत्तिप्रभाकरमें उक्तलक्षणवाली जाग्रत्अवस्थाविषे ॥

पथभूताः शब्दस्पर्शादयः आकाशादिगुणत्वेन प्रसिद्धास्तदाधारत्वेन प्रसिद्धाकाशादयश्च वैचित्र्यात् परस्परं गवाश्वादिवद्वैलक्षण्योपेतत्वात् पृथक् परस्परं भिद्यंते । ततः तेभ्यो विभक्ता बुद्ध्या विवेचिता तत्संवित् तेषां शब्दादीनां संविज्ज्ञानं ऐक्यरूप्यात् संवित्संविदित्येकाकारेणावभासमानत्वाद्गगनमिव न भिद्यते ॥ अत्रायं प्रयोगः । विवादाध्यासिता संवित्स्वाभाविकभेदशून्या उपाधिपरामर्शमंतरेणाविभाव्यमानभेदत्वाद्गगनवत् । शब्दसंवित्स्पर्शसंविदो न भिद्यते संवित्त्वात्स्पर्शसंविद्वदिति ॥ एकस्या एव संविदो गगनस्येवौपाधिकभेदेनापि भिन्नव्यवहारोपपत्तौ वास्तवभेदकल्पनायां गौरवं बाधकमुन्नेयम् ॥ ३ ॥

त्के विषयभूत हुये शब्दस्पर्शआदिक हैं जे आकाशआदिकके ३२गुण होनेकरि प्रसिद्ध हैं औ तिन शब्दस्पर्शादिकके आश्रय होनेकरि प्रसिद्ध जे आकाशादिक ३२द्रव्य हैं वे गौ अरु अश्वआदिककी न्याई ३३विलक्षणधर्मवाले होनेतें परस्पर भिन्न हैं ॥ औ तिन विषयनतें बुद्धिसें विचारिके भिन्न करी जो तिन शब्दादिकनकी संवित् सो "ज्ञान-ज्ञान" इस एकआकारसें भासमान होनेतें ३४आकाशकी न्याई परस्परभिन्न नहीं है ॥ इस अर्थविषे यह अनुमान हैः—विवादका विषय जो ३५संवित् है सो स्वरूपतें ३६भेदरहित है । ३७उपाधिके ग्रहणविना भेदके नहीं भासनेतें । ३८आकाशकी न्याई ॥ ऐसे शब्दका ३९ज्ञान स्पर्शके ज्ञानतें ४०भिन्न नहीं है । ज्ञानरूप ४१होनेतें ४२स्पर्शज्ञानकी न्याई ॥ एकहीं ज्ञानके आकाशकी न्याई उपाधिकृतभेदसें बी भिन्न कथनके संभव हुये वास्तवभेदकी कल्पनाविषे ४३गौरवरूप दोष विचारना ॥ यह अर्थ है ३

३१ अंक २९० विषे देखो ॥

३२ गुणका आश्रय । देखो श्लोक ५२ विषे विशेष ॥

३३ अन्यके आश्रय होवै औ स्वतंत्र होवै नहीं सो **धर्म** कहियेहै ॥

३४ जैसें घटाकाश मठाकाश कूपाकाश इत्यादिस्थलमें उपाधि भिन्न भिन्न हैं । औ "आकाश-आकाश" इस एकआकारकरि भासमान आकाश भिन्न नहीं है । किंतु एकहीं है तैसें संवित् बी एकहीं है ॥

३५ चिदात्माके स्वरूपभूत ज्ञान ॥

३६ अन्योन्याभावका नाम **भेद** है ॥ सो भेद सजातीय विजातीय औ स्वगतभेदतें तीनभांतिका है ॥ वा जीवईशका भेद । औ जीवनका परस्परभेद । औ जडईशका भेद । औ जडजीवका भेद । जडजडका भेद । यह पांचप्रकारका है । तिसतें रहित संवित् है ॥ इस अनुमानमें संवित् **पक्ष** है । औ स्वरूपतें भेदरहितता **साध्य** है औ उपाधिके ग्रहणविना भेदका न भासना हेतु है । औ आकाश **दृष्टांत** है ॥ यह सर्व **साधारण अनुमान** है ॥

३७ जो वस्तु आप जितने देशमें जिस कालविषे स्थित होवै तितने देशमें स्थित वस्तुकूं तिस कालमें औरसें भिन्न करिके जनावै औ आप पृथक् रहै । कहिये भीतर गिण्या जावै नहीं सो **उपाधि** कहियेहैं । ऐसे इहां शब्दादिक औ आकाशादिकसर्व अनात्मवस्तु हैं । सो **संवित्की उपाधि** हैं ॥

३८ जैसे आकाशका घटमठआदिकउपाधिके ग्रहण कियेसें भेद प्रतीत होवैहै औ तिन उपाधिनके स्वीकार कीयेसेंविना भेद प्रतीत होवै नहीं । यातें आकाश उपाधिसें कल्पितभेदवाला है । स्वाभाविक भेदवाला नहीं है ॥ ताकी न्याई संवित् बी स्वाभाविकभेदरहितहीं है ॥

३९ इस अनुमानमें शब्दका ज्ञान पक्ष है । स्पर्शके ज्ञानतें अभेदता साध्य है । ज्ञानरूपता हेतु है । स्पर्शका ज्ञान दृष्टांत है ॥ यह **असाधारण अनुमान** है ॥ इसरीतिके इहां संवित्की एकताके साधनेमें अनेकअनुमान होवैहैं । सो बुद्धिमाननें जानिलेनें ॥ ४० भेदवाला नहीं है ॥

४१ जो जो ज्ञानरूप है सो सो स्पर्शके ज्ञानतें भिन्न नहीं । इसरीतिकी व्याप्तिवाला यह हेतु है ॥

४२ जैसे स्पर्शका ज्ञान । ज्ञान होनेतें स्पर्शके ज्ञानतें भिन्न नहीं है तैसें ॥

४३ जहां थोडेसें निर्वाह होवै तहां अधिकअर्थ मानिके निर्वाह करनेतें **गौरवरूप दोष** शास्त्रकार कहैहैं ॥ जैसें एक पैसेसें जो वस्तु प्राप्त होवै ताकूं अधिकधन खरचिके लेनेतें गौरव है ॥

टीकांक: १० टिप्पणांक: ४४

तथा स्वप्नेऽत्र वेद्यं तु न स्थिरं जागरे स्थिरम् ।
तद्भेदोऽतस्तयोः संविदेकरूपा न भिद्यते ॥ ४ ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥ १ ॥ श्लोकांक: ४

१० उक्तन्यायं स्वप्नेऽप्यतिदिशति—

११] **तथा स्वप्ने ॥**

१२) यथा जागरे वैचित्र्याद्विषयाणां भेदः ऐक्यरूप्यात् संविदोऽभेदश्च । तथा तेनैव प्रकारेण । स्वप्ने "करणेषूपसंहृतेषु जागरितसंस्कारजः प्रत्ययः सविषयः स्वप्न" इत्युक्तलक्षणायां स्वप्नावस्थायामपि । विषया एव भिन्ना न संविदिति ॥

१३ ननु यदि स्वप्नजागरयोरेकाकारता । विषयतत्संविदोर्भेदाभेदाभ्यां । तर्हि स्वप्नो जागर इति भेदव्यवहारः किंनिमित्तक इत्याशंक्याह—

१४] **अत्र वेद्यं न स्थिरं जागरे तु स्थिरं अतः तद्भेदः ॥**

१५) अत्र स्वप्ने । वेद्यं परिदृश्यमानं वस्तुजातं । न स्थिरं न स्थायि प्रतीतिमात्रशरीरत्वात् । जागरे तु परिदृश्यमानं वस्तुजातं स्थिरं स्थायि कालांतरेऽपि द्रष्टुं योग्यत्वात् अतः स्थिरास्थिरविषयत्वलक्षणवैलक्षण्यात् तद्भेदः । तयोः स्वप्नजागरयोर्भेद इत्यर्थः ॥

१६ ननु स्वप्नजागरयोर्भेदश्चेत्तत्संविदोरपि भेदः स्यादित्याशंक्याह—

१७] **तयोः संवित् एकरूपा न भिद्यते ॥**

॥ २ ॥ जाग्रत औ स्वप्नकी विलक्षणता औ तिनके संवित्की एकरूपता ॥

१० जाग्रत्अवस्थाविषे कहा जो न्याय ताकूं स्वप्नमें बी अतिदेश[44] करैहैं:—

११] **तैसें स्वप्नविषे ॥**

१२) जैसें जाग्रत्विषे विचित्र होनेतें विषयनका भेद है एकरूप होनेतें संवित्का अभेद है तैसें स्वप्नविषे[45] बी शब्दादिकविषयहीं परस्परभिन्न हैं तिनकी संवित् भिन्न नहीं है ॥

१३ ननु जब विषय औ तिनके ज्ञानके क्रमतें भेद औ अभेदकरि स्वप्न औ जाग्रत्की एकआकारता है तब "यह स्वप्न है। यह जाग्रत है"ऐसा भेदव्यवहार किस कारणकरि होवैहै। यह आशंकाकारि कहैहैं:—

१४] **इस स्वप्नविषे वेद्य स्थिर नहीं है औ जाग्रत्विषे स्थिर है यातें तिनका भेद है**

१५) इस स्वप्नविषे वेद्य कहिये परिदृश्यमान जो वस्तुका समूह है सो प्रतीतिमात्र[47]-शरीरके होनेतें बहुकालस्थायी नहीं औ जाग्रत्विषे जो वस्तुका समूह है सो और[48]-कालमें बी देखनेकूं योग्य होनेतें स्थिर है यातें विषयनकी स्थिरता औ अस्थिरतारूप जो विलक्षणता है तिसतें स्वप्न औ जाग्रत् दोनूंका भेद है ॥

१६ ननु जब स्वप्न औ जाग्रत् दोनूंका भेद है तब तिन स्वप्न औ जाग्रत्के ज्ञानका बी भेद होवैगा यह आशंकाकारि कहैहैं:—

१७] **तिनकी संवित् एकरूप है भिन्न नहीं है ॥**

४४ एकठिकानें जो अर्थ लिख्या वा कह्या वा जनाया है ताकूं औरस्थलमें लिखनेकी वा कहनेकी वा जाननेकी आज्ञा करनेका नाम अतिदेश है ॥

४५ इंद्रियनके विलय हुये जाग्रत्के संस्कार (वासना) तें जन्य जो विषयसहित ज्ञान सो स्वप्न कहियेहै ॥ अथवा इंद्रियसें अजन्य ज्ञान औ तिनके विषयका जो आधारकाल सो स्वप्न कहियेहै ॥ इस प्रकार पंचीकरणवार्तिक औ वृत्तिप्रभाकरमें कह्याहै लक्षण जिसका एसी स्वप्नअवस्थाविषे ॥ ४६ चारिओरतें दिखातेहैं ॥

४७ प्रातिभासिकआकारवाले होनेतें ॥ ४८ वर्ष दोवर्षके

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ५ | टीकांकः १८ | टिप्पणांकः ४९

सुप्तोत्थितस्य सौषुप्ततमोबोधो भवेत्स्मृतिः ।
सा चावबुद्धविषयावबुद्धं तत्तदा तमः ॥ ५ ॥

१८) एकरूपा इति हेतुगर्भं विशेषणं ॥४॥

१९ एवमवस्थाद्वये ज्ञानस्यैकत्वं प्रसाध्य । सुषुप्तिकालीनस्यापि तस्य तेनैक्यप्रसाधनाय तत्र तावत् ज्ञानं साधयति—

२०] **सुप्तोत्थितस्य सौषुप्ततमोबोधः स्मृतिः भवेत् ॥**

२१) पूर्वं सुप्तः पश्चादुत्थितः सुप्तोत्थितः। सुप्तं सुषुप्तिः तस्मादुत्थित इति वा। तस्य। **सौषुप्ततमोबोधः** सुषुप्तिकालीनस्य तमसोऽज्ञानस्य यो बोधो ज्ञानमस्ति। "न किंचिदवेदिषमिति"। सः **स्मृतिः एव भवेत्**। नानुभवस्तत्कारणस्येंद्रियसन्निकर्षव्याप्तिलिंगादेरभावादिति भावः ॥

२२ ततः किं तत्राह—

---

१८) स्वप्न औ जाग्रत् दोनूंके ज्ञानका परस्परभेद नहीं है दोनूंके ज्ञानकूं एकरूप होनेतें ॥ "एकरूप" यह जो मूलविषे पद है सो हेतुगर्भितविशेषणरूप है ॥ यह अर्थ है ॥ ४ ॥

॥ ३ ॥ सुषुप्तिमें ज्ञानका सद्भाव ॥

१९ ऐसे जाग्रत्स्वप्न दोनूंअवस्थाविषे ज्ञानकी एकताकूं साधिकरि सुषुप्तिकालके ज्ञानकी तिस जाग्रत्स्वप्नके ज्ञानके साथि एकता साधनेअर्थ प्रथम सुषुप्तिविषे संवित्के सद्भावकूं साधतेहैं:—

२०] **सुप्तउत्थितपुरुषकूं सुषुप्तिकालके अज्ञानका जो बोध होवैहै सो स्मृतिरूप है**

२१) पूर्व सोया होवै पीछे उठा वा सुषुप्तितें उठा जो पुरुष सो "सुप्तउत्थित" कहियेहै ॥ तिस सुप्तउत्थितपुरुषकूं सुषुप्तिकालके अज्ञानका "मैं कछु बी न जानता भया" इसरीतिका जो ज्ञान है सो स्मृतिरूपहीं है अनुभवरूप नहीं है ॥ काहेतें तिस अनुभवका कारण जो इंद्रियका संनिकर्ष औ व्याप्ति लिंग आदिक हैं तिनके अभावतें ॥

२२ ननु तिसतें बी क्या सिद्ध भया? तहां कहैहैं:—

पीछे वा औरजाग्रत्विषे देखनेयोग्य होनेतें ॥

४९ जिस विशेषणके गर्भ(बीच)में "एकरूप होनेतें" इत्यादिआकारवाला हेतु बी सिद्ध होवै सो विशेषण हेतुगर्भित कहियेहै ॥ ५० विषयसें संबंध ॥

५१ अविनाभावरूप संबंधकूं व्याप्ति कहैहैं ॥ जा विना जो होवै नहीं ताका तामें **अविनाभावसंबंध** होवैहै ॥ जैसें अग्निविना धूम होवै नहीं यातें अग्निका धूममें अविनाभावसंबंध है । सो अग्निकी धूममें व्याप्ति है ॥

५२ जाके ज्ञानसें साध्यका ज्ञान (अनुमिति) होवै सो **लिंग** कहियेहै ॥ अनुमितिज्ञानका विषय **साध्य** कहियेहै ॥ जैसें अनुमितिका विषय अग्नि है । यातें अग्नि साध्य है ॥ धूमके ज्ञानतें अग्निरूप साध्यका ज्ञान होवैहै यातें धूम लिंग है॥

५३ इहां आदिशब्दकरि उपमितिरूप अनुभवज्ञानकी सामग्री उपमानप्रमाण (सादृश्यका ज्ञान) औ शाब्दीप्रमाकी सामग्री श्रोतृसंबंधी शब्द औ अर्थापत्तिकी सामग्री अर्थापत्तिप्रमाण (उपपाद्यका ज्ञान) औ अभावप्रमाकी सामग्री अनुपलब्धिप्रमाण (अप्रतीति) इनका ग्रहण है ॥

५४ सुषुप्तिसें ऊठे पुरुषकूं सुषुप्तिकालमें अनुभव किये अज्ञानसें इंद्रियका संबंध (प्रत्यक्षकी सामग्री) नहीं है । अज्ञानकूं इंद्रियका अविषय होनेतें ॥ औ व्याप्तिलिंगरूप अनुमितिकी सामग्री बी नहीं ॥ ऐसें औरचारिप्रमाकी सामग्रीका अभाव बी जानि लेना ॥ यातें सुषुप्तितें ऊठे पुरुषकूं जो अज्ञानका ज्ञान है । सो षट्प्रमारूप अनुभवज्ञानके अन्यतम नहीं है । किंतु अनुभवसें भिन्न **स्मृतिरूप ज्ञान** है ॥

५५ तिस ज्ञानकूं स्मृतिरूप होनेतें ॥

टीकांक: २३ टिप्पणांक: ५६

सैं बोधो विषयाद्भिन्नो न बोधात्स्वप्नबोधवत् ।
एवं स्थानत्रयेऽप्येका संवित्तद्वद्दिनांतरे ॥ ६ ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥ १ ॥ श्लोकांक: ६

२३] सा च अवबुद्धविषया ॥

२४) सा च स्मृतिरवबुद्धविषयावबुद्धोऽनुभूतो विषयो यस्याः सा तथोक्ता या स्मृतिः सानुभवपूर्विकेति व्याप्तिर्लोके दृष्टेति भावः ॥

२५ ततोऽपि किं तत्राह (अवबुद्धमिति)—

२६] तत् तमः तदा अवबुद्धम् ॥

२७) तत् तस्मात् कारणात् तत् सौषुप्तं तमस्तदा सुषुप्तौ अवबुद्धं अनुभूतमित्यवगंतव्यं ॥ अत्रायं प्रयोगः । विमतं न किंचिदवेदिषमिति ज्ञानं अनुभवपूर्वकं भवितुमर्हति स्मृतित्वात् "सा मे माता" इति स्मृतिवदिति ॥ ५ ॥

२८ तस्यानुभवस्य स्वविषयादज्ञानाद्भेदं बोधांतरादभेदं चाह—

२९] सः बोधः विषयात् भिन्नः बोधात् न । स्वप्नबोधवत् ॥

२३] सो स्मृति अनुभव किये हुये विषयकी है ॥

२४) सो स्मृति पूर्व सुषुप्तिकालमें अनुभव किया जो विषय है तिसीकूंहीं प्रकाश करैहै ॥ काहेतें जातें "जो स्मृति है सो अनुभवपूर्वक है" । यह व्याप्ति लोकमें देखीहै । तातें जिस अज्ञानरूप विषयकी स्मृति होवैहै तिसका पूर्व सुषुप्तिकालमें अनुभव अवश्य कियाहै । यह सिद्ध होवैहै ॥

२५ ननु तिसैंतें बी क्या सिद्ध भया? तहां कहैहैं:—

२६] तातें सुषुप्तिविषे सो अज्ञान अनुभूत है ॥

२७) तिसैं कारणतें सो सुषुप्तिसंबंधीअज्ञान तब सुषुप्तिविषे अनुभव कियाहीं है ऐसे जानना ॥ इहां यह अनुमान है:—विवादका विषय "निद्राविषे मैं कछु बी नहीं जानताथा" यह जो जाग्रत्‌विषे ज्ञान है । सो अनुभवपूर्वक होनेकूं योग्य है । स्मृति होनेतें । जो जो स्मृति है सो सो अनुभवपूर्वकहीं है । परदेशमें स्थित पुत्रकूं "सो मेरी माता है" इस स्मृतिकी न्याई५

॥ ४ ॥ सुषुप्तिके ज्ञानका विषयतें भेद औ अन्यज्ञानतें अभेद ॥

२८ तिस अनुभवज्ञानका अपने विषय अज्ञानतें भेद है औ जाग्रत्स्वप्नके बोधतें अभेद है । तिनकूं दोश्लोककरि कहैहैं:—

२९] सो बोध अपन विषयतें भिन्न है । बोधतें भिन्न नहीं । स्वप्नबोधकी न्याई ॥

---

५६ तिस स्मृतिकूं अनुभवपूर्वक होनेतें ॥

५७ जिस कारणतें स्मृति अनुभूतविषयकी होवैहै तिस कारणतें ॥

५८ यह पक्ष है ॥ तेजतें भिन्न प्रकाशस्वभावकूं ज्ञान कहैहैं ॥ सो ज्ञान चेतनरूप औ वृत्तिरूप भेदतें दोभांतिका है ॥ तिनमें वृत्तिरूप ज्ञान बी ८ प्रमा औ ५ अप्रमा भेदतें त्रयोदशभांतिका है ॥ सर्व मिलिके चतुर्दशप्रकारका ज्ञान है ॥

५९ यह साध्य है ॥ स्मृतिसें भिन्न ज्ञानकूं अनुभव कहैहैं ॥ सो अनुभव । यथार्थअयथार्थभेदतें दोभांतिका है ॥ तिनमें षट्प्रमारूप औ ईश्वरका ज्ञानरूप औ सुखदुःखका ज्ञानरूप ये आठभांतिका यथार्थअनुभव है ॥ औ भ्रम संशय तर्क भेदतें तीनभांतिका अयथार्थअनुभव है ॥

६० यह हेतु है ॥ उद्बुद्धसंस्कारमात्रसें जन्य ज्ञानकूं स्मृति कहैहैं ॥ सो स्मृति भ्रमरूप औ यथार्थ भेदतें दोभांतिकी है ॥ भ्रमरूप अनुभवके संस्कारतें जन्य स्मृति भ्रमरूप है ॥ औ यथार्थअनुभवके संस्कारतें जन्य स्मृति यथार्थ है ॥

६१ यह व्याप्ति है ॥ ६२ यह उदाहरण है ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः॥ १॥ श्लोकांकः ७

मासाब्दयुगकल्पेषु गतागम्येष्वनेकधा ।
नोदेति नास्तमेत्येका संविदेषा स्वयंप्रभा ॥ ७॥

टीकांकः ३० टिप्पणांकः ६३

३०) सः बोधः सौषुप्तज्ञानानुभवो विषयात् अज्ञानात् । भिन्नः पृथग्भवितुमर्हति बोधत्वात् घटबोधवत् । बोधांतरान्न भिद्यते बोधत्वात् स्वप्नबोधवत् ॥

३१ फलितं कथयन्नुक्तन्यायमन्यत्राप्यतिदिशति—

३२] **एवं स्थानत्रये अपि संवित् एका ॥**

३३) स्थानत्रयेऽपि एकदिनवर्तिनि जाग्रदाद्यवस्थात्रयेऽपि संवित् एका एव। "सर्वं वाक्यं सावधारणम्" इति न्यायात् ॥

३४] **तद्वत् दिनांतरे ॥**

३५) यथैकस्मिन्दिवसेऽवस्थात्रयेऽपि ज्ञानस्याभेद एवमन्यस्मिन्नपि दिवसे ज्ञानमेकमस्ति ॥ ६ ॥

३६] **(मासेति)—अनेकधा गतागम्येषु मासाब्दयुगकल्पेषु**

३७) अनेकधा अनेकप्रकारेण । **गतागम्येषु** अतीतागामिषु । **मासेषु** चैत्रादिषु। **अब्देषु** प्रभवादिषु। **युगेषु** कृतादिषु। **कल्पेषु** ब्राह्मादिषु च। ज्ञानस्याभेद एवेत्यर्थः॥

३८ संविद् एकत्वसमर्थने फलमाह (नोदेतीति)—

---

३०) सुषुप्तिकालका जो अनुभवज्ञान है सो अज्ञानरूप विषयतें भिन्न होनेकूं योग्य है। बोध होनेतें घटबोधकी न्याई॥ औ सो बोध जाग्रत्स्वप्नके बोधतें भिन्न नहीं है। बोध होनेतें। स्वप्नके ज्ञानकी न्याई ॥

॥ ९ ॥ अंक ७—३० उक्त रीतिका सर्वकालमें ग्रहण औ एकसंवित्की नित्यता औ स्वयंप्रकाशता ॥

३१ सिद्धअर्थकूं कहतेहुये उक्तन्यायकूं औरदिवसआदिकविषे वी अतिदेश करैहैं:—

३२] **ऐसें तीनस्थानजाग्रदादिविषे संवित् एक है ॥**

३३) ऐसें तीनस्थानमें वी कहिये एकदिनमें वर्तनेवाली तीनअवस्थामें वी संवित् एकहीं है ॥ "सर्ववाक्य निर्धैयसहित है" । इस न्यायतें ॥

३४] **तैसें अन्यदिनविषे ॥**

३५) जैसे एकदिनमें तीनअवस्थाविषे वी ज्ञान एक है । तैसें अन्यदिवसनविषे वी ज्ञान एक है ॥ ६ ॥

३६] **अनेकप्रकारसें अतीत आगामि जो मासवर्षयुगकल्प हैं तिनविषे संवित् एक है ॥**

३७) अनेकप्रकारकरि गये औ आवेंगे ऐसे चैत्रादिकमासनविषे औ प्रभवआदिसंवत्सरनविषे औ सत्यआदियुगनविषे औ ब्राह्मवाराहआदिकल्पनविषे ज्ञानका अभेदहीं है भेदकप्रमाणके अभावतें ॥ यह अर्थ है ॥

३८ संवित्की एकताके कहनेविषे फलकूं कहैहैं:—

---

६३ इहां भाषाटीकामें अवधारण (निश्चय)का वाची "एव" शब्दका अर्थ "हीं" शब्द पढाहै सो मूलसें अधिक है। ताके संभवअर्थ सर्ववाक्य सावधारण है। यह न्याय टीकाकारनें कहाहै ॥

६४ सर्ववाक्य एवकारके अर्थरूप अवधारण (निश्चय)करि युक्त हुवा अपने अर्थका बोधक है ॥ जो ऐसे नहीं मानो तौ प्रमाज्ञानकी जनकताके अभावतें वाक्यकूं अप्रमाणपनेकी प्राप्ति होवैगी ॥

३९] संवित् एका न उदेति न अस्तम् एति ॥

४०) यतः संविदेका अतो नोदेति नोत्पद्यते । नास्तमेति न विनश्यति च । असाक्षिकयोरुत्पत्तिविनाशयोरसिद्धेः । स्वोत्पत्तिविनाशयोस्तयैव संविदा ग्रहितुमशक्यत्वात्संविदंतराभावाच्चेति भावः ॥

४१ ननु संविदंतराभावे ग्राहकाभावादस्याप्यभाने जगदांध्यं प्रसज्जेतेत्यत आह—

४२] एषा स्वयंप्रभा ॥

४३) अत्रायं प्रयोगः । संवित्स्वयंप्रकाशा अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षत्वाद्व्यतिरेके घटवत् । नचायं विशेषणासिद्धो हेतुः । संविदः स्वसंवेद्यत्वे कर्मकर्तृत्वविरोधात् । परवेद्यत्वेऽनवस्थानादतः स्वप्रकाशत्वेन भासमानायाः संविदः सर्वावभासकत्वसंभवान्न जगदांध्यप्रसंग । इति भावः ॥७॥

३९] जातें संवित् एक है तातें यह संवित् उदय नहीं होवैहै औ अस्तकूं नहीं पावैहै ॥

४०) जातें संवित् एक है तातें उत्पन्न नहीं होवैहै औ नाश नहीं होवैहै ॥ साक्षी[६५]रहित उत्पत्ति औ नाश दोनूंकी असिद्धितें । अपने कहिये संवित्के उत्पत्तिविनाशकूं आप संवित्करि ग्रहण करनेकूं अशक्य होनेतें औ औरसंवित्के अभावतें संवित्के उत्पत्तिनाश असाक्षिक हैं । औ साक्षीविना संवित्के उत्पत्तिनाशकी असिद्धि है ॥ यह भाव है ॥

४१ ननु औरसंवित्के अभाव हुये ग्रहण करनेवाले साक्षीके अभावतें इस संवित्की बी अप्रतीतिके हुये जगत्विषे अंधता[६६]का प्रसंग होवैगा? तहां कहैहैं:—

४२] यह संवित् स्वयंप्रभा है ॥

४३) यह संवित् स्वं[६७]प्रकाशरूप है ॥ इहां यह अनुमान हैः—संवित् स्वयंप्रकाश है । ज्ञानकी अविषयताके होते अपरोक्षपनेके होनेतें । घटकी न्याई ॥ यह व्यतिरेकीदृष्टांत[६८] है ॥ यह हेतु[६९] विशेषणकी असिद्धिवाला नहीं है । काहेतें संवित्कूं आपकरि जाननेकी योग्यताके हुये एकहीं संवित्कूं कर्मरूप औ कर्त्तारूप होनेके विरोधतें ॥ औ संवित्कूं औरसंवित्करि वेद्यताके हुये अनवस्था[७०]के होनेतें हेतुके विशेषणकी सिद्धि है । तातें स्वप्रकाश होनेकरि भासमान संवित्कूं सर्वके प्रकाशकपनेके संभवतें जगत्‌की अंधताका प्रसंग नहीं है । यह भाव है ॥ ७ ॥

६५ प्रागभावके अंतके क्षणका नाम उत्पत्ति (जन्म) है ॥ औ प्रध्वंसाभावके प्रथमक्षणका नाम नाश है ॥ तातें कोइ बी पुरुष अपने जन्म वा नाशके देखनेकूं योग्य नहीं है॥ आत्मारूप संवित् दीपककी न्याई अपने समानकालके पदार्थनकी प्रकाशक है । तैसें हुये अपनी स्थितिकालमें अविद्यमानप्रागभाव औ प्रध्वंसाभावके ज्ञानके अभाव हुये प्रागभावके चरमक्षणरूप जन्मकूं औ प्रध्वंसाभावके प्रथमक्षणरूप नाशकूं । आपहीं संवित् जाननेकूं योग्य नहीं है ॥

६६ अप्रतीतिका ॥

६७ अपने प्रकाशनेमें औरप्रकाशकी अपेक्षारहित अथवा स्व कहिये अपनी सत्तासेंहीं प्रकाश कहिये संशयादिरहित जो होवै सो **स्वयंप्रकाश** कहियेहै ॥

६८ जैसें घट । ज्ञानका अविषय हुवा अपरोक्ष नहीं है । किंतु ज्ञानका विषय हुवा अपरोक्ष है । यातें स्वप्रकाश बी नहीं । तैसें यह संवित् ज्ञानकी अविषय हुई अपरोक्ष नहीं ऐसें नहीं । किंतु ज्ञानकी अविषय हुई अपरोक्ष है यातें स्वप्रकाशरूप है ॥ यह **व्यतिरेकीदृष्टांतका आकार** है ॥ हेतु औ दृष्टांत औ अनुमान अन्वयि औ व्यतिरेकी होवैहैं ॥ साध्य औ दृष्टांत दोनूंविषे व्याप्तिवाला **हेतु अन्वयि** है औ दृष्टांतविषे व्याप्तिरहित हुवा केवलसाध्यविषे वर्तनेवाला **हेतु व्यतिरेकी** है ॥ औ दार्ष्टांतके तुल्य वा हेतुकी व्याप्तिसहित जो दृष्टांत सो **अन्वयिदृष्टांत** है ॥ औ दार्ष्टांततें विरुद्ध वा हेतुकी व्याप्तिरहित जो दृष्टांत सो **व्यतिरेकीदृष्टांत** है । अन्वयिहेतु औ दृष्टांतयुक्त **अनुमान अन्वयि** है । इनतें विपरीत **व्यतिरेकीअनुमान** है ॥

६९ "अवेद्यताके होते अपरोक्ष होनेतें" यह जो संवित्की स्वप्रकाशतामें हेतु है ता हेतुका विशेषण जो संवित्की "अवेद्यता" है । सो असिद्ध नहीं है ॥

७० संवित्कूं औरसंवित्करि जाननेकी योग्यता हुये आपके सिद्ध हुये विना औरकी सिद्धि होवै नहीं । यातें तिसकी जाननेवाली औरसंवित् औ तिसकी और अपेक्षित है । इसरीतिसें **अनवस्था** है ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ८	इयमात्मा परानंदः परप्रेमास्पदं यतः । मानभूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते ॥ ८ ॥	टीकांकः ४४ टिप्पणांकः ७१

४४ भवत्वेवं संविदो नित्यत्वं स्वप्रकाशत्वं च । ततः किमित्यत आह—

४५] इयं आत्मा ॥

४६) अत्रायं प्रयोगः । इयं संवित् आत्मा भवितुमर्हति नित्यत्वे सति स्वप्रकाशत्वाद्यन्नैवं न तदेवं यथा घट इति । आत्मनो नित्यसंविद्रूपत्वप्रसाधनेन सत्यत्वमपि साधितं भवति नित्यत्वातिरिक्तसत्यत्वाभावात् । "नित्यत्वं सत्यत्वं तद्यस्यास्ति तन्नित्यं सत्यम्" इति वाचस्पतिमिश्रैरुक्तत्वादिति भावः ॥

४७ आत्मन आनंदरूपत्वं साधयति—

४८] परानंदः ॥

४९) आत्मेत्यनुपज्यते । परश्चासावानंदश्चेति परानंदः निरतिशयसुखस्वरूप इत्यर्थः ॥

५० तत्र हेतुमाह (परेति)—

५१] यतः परप्रेमास्पदम् ॥

५२) यतो यस्मात्कारणात् । परस्य निरुपाधिकत्वेन निरतिशयस्य प्रेम्णः स्नेहस्य आस्पदं विषयस्तस्मादत्रेदमनुमानं । आत्मा परमानंदरूपः परप्रेमास्पदत्वाद्यः परमानंदरूपो

मान संवित्‌कूं सर्वअनात्मवस्तुकी प्रकाशकताके संभवतें जगत्‌की अप्रतीतिका प्रसंग नहीं है ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ संवित्‌हीं आत्मा है औ आत्मा परमानंद है ॥ ४४-८५ ॥

॥ १ ॥ संवित्‌रूप आत्माकी परमप्रेमकी सिद्धिकरि परमानंदता ॥

४४ ननु । ऐसे संवित्‌की नित्यता औ स्वप्रकाशता होहु । तातें क्या सिद्ध हुआ? तहां कहैहैं:—

४५] यह संवित्‌हीं आत्मा है ॥

४६) यहां यह अनुमान है:—यह संवित् आत्मा होनेकूं योग्य है । नित्य[७१] होते स्वप्रकाश होनेतें । जो ऐसैं आत्मा नहीं है सो ऐसैं नित्य होते स्वप्रकाश वी नहीं है । जैसैं घट[७२] आत्मा नहीं है । यातें नित्यस्वप्रकाशरूप वी नहीं है । तैसैं यह संवित् नहीं है ॥ आत्माकी नित्यसंवित्‌रूपताके साधनेकरि सत्यता वी सिद्ध भई । नित्यतातें भिन्न सत्यताके अभावतें । "नित्यतारूप जो सत्यता सो जिस वस्तुकूं है सो वस्तु नित्य औ सत्य है" ऐसें वाचस्पतिमिश्रनाम आचार्योंनें कथन कियाहै । यातें[७३] ॥ यह भाव[७४] है ॥

४७ आत्माकी आनंदरूपताकूं साधतेहैं:—

४८] सो आत्मा[७५] परानंद है ॥

४९) सो संवित्‌रूप आत्मा परानंद है कहिये निरतिशय[७६]सुखरूप है ॥

५० तिस आत्माकी आनंदतामें कारणकूं कहैहैं:—

५१] जातें परमप्रेमका आस्पद है ॥

५२) आत्मा जिस कारणतें निरुपाधिक[७७]-

७१ उत्पत्तिनाशरहित वा भावरूप होते जो अजन्मा ॥

७२ यह व्यतिरेकीदृष्टांत है ॥

७३ नित्यताकी सिद्धितें सत्यता सिद्ध भई ॥

७४ भाव अभिप्राय आशय एकहींके नाम हैं ॥

७५ सत्रके अंतर प्रकाशनेवाला साक्षी ॥

७६ सर्वसें अधिकसुखरूप है ॥ आत्मानंदके लेश (विषयप्राप्तिसें अंतर्मुखवृत्तिमें प्रतिबिंब) करि चीटीसें आदिलेके ब्रह्मापर्यंत सर्वभूत आनंदमान् हैं । यातें आत्मारूप आनंदबिंब सर्वविषयानंदसें अधिक है ॥

७७ धन पुत्र देह इंद्रियादिउपाधिसहितपनेकरि आत्मा-

टीकांक: ५३ टिप्पणांक: ७८	[७९]तत्प्रेमात्मार्थमन्यत्र नैवमन्यार्थमात्मनि । अतस्तत्परमं तेन[८०] परमानंदतात्मनः ॥ ९ ॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ९

न भवति नासौ परप्रेमास्पदमपि । यथा घटो तथा चायं परप्रेमास्पदं न भवतीति न । तस्मात्परानंदरूपो न भवतीति न ॥

५३ ननु स्वात्मनि धिङ्मामिति द्वेषस्योपलभ्यमानत्वात्प्रेमास्पदत्वमेवासिद्धं कुतः परप्रेमास्पदत्वमित्याशंक्य । तस्य दुःखसंबंधनिमित्तकत्वेनान्यथासिद्धत्वात्प्रेम्णश्चात्मन्यनुभवसिद्धत्वान्नैवमिति परिहरति (मानभ्रूवमिति)—

५४] हि आत्मनि मा भूवं न । भूयासम् इति प्रेम इक्ष्यते ॥

५५) हि यस्मात्कारणात् । आत्मनि विषये मा न भूवम् अहं मा भूवम् इति न । ममासत्वं कदापि मा भूत् । किंतु भूयासम् एव सदा सत्वमेव मम भूयात् । इति एवं विधं । प्रेमेक्ष्यते सर्वैरनुभूयते । अतो नासिद्धिरित्यर्थः ॥ ८ ॥

५६ ननु मा भूत्स्वरूपासिद्धिः प्रेम्णः परत्वे

पनेकरि सर्वसें अधिकप्रेमका विषय है तातें परानंद है ॥ इहां यह अनुमान हैः—आत्मा परानंदरूप है । परमप्रेमका विषय होनेतें । जो परमानंदरूप नहीं है सो परमप्रेमका विषय वी नहीं है । जैसें घट है तैसें यह आत्मा परमप्रेमका आस्पद नहीं है ऐसें नहीं ॥ तातें परमानंदरूप नहीं है ऐसें नहीं । किंतु परमानंदरूपहीं है ॥

५३ ननु आत्माविषे "मेरेकूं धिकार है" इसरीतिसें द्वेषकी प्रतीतिके होनेतें प्रेमकी विषयताहीं असिद्ध है तब परमप्रेमकी विषयता कहांसें होवैगी? यह आशंकाकरिके तिसें द्वेषकूं दुःखके संबंधरूप निमित्तसें जन्य होनेकरि औरप्रकारसें सिद्ध होनेतें औ प्रेमकूं आत्माविषे अनुभवसिद्ध होनेतें आत्माकूं प्रेमकी विषयता असिद्ध है ऐसें नहीं है ॥ इसरीतिसें समाधान करैहैं:—

५४] जातें "मैं नहीं होवों" ऐसें नहीं किंतु "सदा होवों" इसरीतिका प्रेम आत्माविषे देखियेहै ॥

५५) जिस कारणतें लोकविषे "मैं नहीं होवौं" इसरीतिसें मेरा न होना किसीकालविषे वी मति होहु किंतु "होवोंहीं" कहिये सदा मेरा होनाहीं होहु । इसरीतिका प्रेम आत्माविषे सर्वजनकरि अनुभव करियेहैं ॥ इसकारणतें आत्माविषे प्रेमके विषयताकी असिद्धि नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ ८ ॥

५६ ननु आत्माविषे प्रेमके[८०] स्वरूपकी असिद्धि मति होहु । प्रेमकी सर्वसें अधिकताम प्रमाणके अभावतें आत्माकी परमानंदताके

विषे प्रीतिकी अधिकन्यूनता होवैहै औ देहादिउपाधिनकूं छोडिके केवलआत्माविषे सर्वसें अधिक प्रीति है ॥ देखो अंक ४५५९–४७२६ विषे ॥ ७८ आपविषे ॥

७९ आत्मा यद्यपि स्वभावसें दुःखके संबंधसें रहित है तथापि दुःखके संबंधयुक्त देहादिउपाधिके योगतें आत्मामें दुःखका संबंध प्रतीत होवैहै ॥ तिस दुःखनिमित्ततें उपाधिकूं द्वेषकी विषयता होवैहै ताके अध्यासतें आत्माकूं वी द्वेषकी विषयता प्रतीत होवै है स्वाभाविक नहीं ॥ लवणनिमित्तसें स्वाभाविक खटाइके औ स्वभावसें दाहकअग्निकी शक्तिके मणि वा मंत्र वा औषधिरूप निमित्तसें तिरोधानकी न्याईं दुःखसंबंधजन्य द्वेषरूप निमित्तसें आत्माकी स्वभावसिद्धप्रेमकी विषयता (प्रियतमता)का तिरोधान होवैहै ॥

८० आत्माविषे विद्यमानप्रेमकी ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांकः १०

टीकांकः ५७ टिप्पणांकः ८१

इत्थं सच्चित्परानंद आत्मा युक्त्या तथाविधम् । परं ब्रह्म तयोश्चैक्यं श्रुत्यंतेषूपदिश्यते ॥ १० ॥

मानाभावाद्विशेषणासिद्धिर्हेतोरित्याशंक्याह (तत्प्रेमेति)—

५७] **अन्यत्र प्रेम तत् आत्मार्थं एवं आत्मनि अन्यार्थं न । अतः तत् परमम् ॥**

५८) अन्यत्र स्वातिरिक्ते पुत्रादौ । यत् प्रेम । तदात्मार्थं । तेषामात्मशेषत्वनिमित्तकमेव न स्वाभाविकं । एवमात्मनि विद्यमानं प्रेम अन्यार्थं न । आत्मनोऽन्यशेषत्वनिमित्तकं न भवति । किंत्वात्मत्वनिमित्तकमेव । अतो निरुपाधिकत्वात् तत्परमम् निरतिशयं ॥

५९ फलितमाह—

६०] **तेन आत्मनः परमानंदता ॥**

६१) तेन निरतिशयप्रेमास्पदत्वेन । आत्मनः परमानंदता निरतिशयसुखरूपत्वं सिद्धम् ॥ ९ ॥

६२ एतैः सप्तभिः श्लोकैः प्रतिपादितमर्थं संक्षिप्य दर्शयति—

६३] **इत्थं युक्त्या आत्मा सच्चित्परानंदः ॥**

६४) शब्दस्पर्शादय इत्यादिना ज्ञानस्य नित्यत्वं प्रसाध्य । तस्यैवेयमात्मेत्यात्मत्वप्रसाधनेनात्मनः सच्चित् रूपत्वं साधितं । परानंद इत्यादिना च परानंदरूपत्वं समर्थितमतः

साधनेमें परप्रेमकी विषयतारूप जो हेतु तिसके विशेषण "सर्वसें अधिकता" की असिद्धि है? यह आशंकाकरिके कहैहैं:—

५७] **अन्यविषे जो प्रेम है सो आत्माके अर्थ है औ आत्माविषे जो प्रेम है सो अन्यअर्थ नहीं है । यातें सो आत्मगतप्रेम परम है ॥**

५८) अपनेसें भिन्न पुत्रादिकविषे जो प्रेम है सो आत्माके अर्थ है। कहिये तिन पुत्रादिकनकूं जो आत्माकी उपकारकता है तिस निमित्ततेंहीं है। स्वभावसें सिद्ध नहीं है॥ ऐसें आत्माविषे विद्यमान जो प्रेम है सो अन्यपुत्रादिकके अर्थ नहीं है ॥ आत्माकूं अन्यपुत्रादिककी उपकारतारूप निमित्ततें नहीं है किंतु आपके निमित्ततेंही है ॥ यातें सो आत्मगतप्रेम परम है कहिये सर्वसें अधिक है ॥

५९ सिद्धअर्थकूं कहैहैं:—

६०] **तिस हेतुकरि आत्माकी परमानंदता है ॥**

६१) तिस निरतिशयप्रेमकी विषयतारूप हेतुकरि आत्माकी निरतिशयसुखरूपता सिद्ध भई ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्म औ आत्माकी एकता ॥

६२ इन सप्तश्लोकनसें प्रतिपादन किये अर्थकूं संक्षेपसें दिखावैहैं:—

६३] **ऐसें युक्तिकरि आत्मा सत् चित् परानंदरूप सिद्ध भया ॥**

६४) "शब्दस्पर्शादिक" इस तीसरेश्लोकसें लेके सातवेंश्लोकपर्यंत संवित्की नित्यताकूं सिद्धकरिके तिसी ज्ञानहींकी "यह आत्मा है" इसरीतिसें अष्टमश्लोकके पदकरि आत्मताके साधनेसें आत्माकी सत्चित्

८१ श्लोक ३-९ ॥

टीकांक: ६५ टिप्पणांक: ८२

६६अभाने न परं प्रेम भाने न विषये स्पृहा ।
७०अतो भानेप्यभातासौ परमानंदतात्मनः ॥११॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ११

आत्मा महावाक्ये त्वंपदार्थः सच्चिदानंदरूपः सिद्धः ॥

६५ ननूक्तलक्षणस्यात्मनो युक्त्या एवावगतावुपनिषदां निर्विषयत्वेनाप्रामाण्यप्रसंग इत्याशंक्याह—

६६] **तथाविधं परं ब्रह्म । तयोः ऐक्यं च श्रुत्यंतेषु उपदिश्यते ॥**

६७) तथा तादृग्विधा प्रकारो यस्य तत् तथाविधं सच्चिदानंदरूपं । परं ब्रह्म तत्पदार्थः । तयोः तत्त्वंपदार्थयोः । ऐक्यं अखंडैकरसत्वं च । श्रुत्यंतेषु वेदांतेषु । उपदिश्यते प्रतिपाद्यतेऽतो न वेदांतानां निर्विषयत्वमित्यर्थः ॥ १० ॥

६८ आत्मनः परमानंदरूपत्वमाक्षिपति—

६९] **अभाने परं प्रेम न । भाने विषये स्पृहा न ॥**

७०) परमानंदरूपत्वं न भासते भासते वा । अभाने अप्रतीतौ । न परं प्रेम आत्मनि निरतिशयस्नेहो न स्याद्विषयसौंदर्यज्ञानजन्यत्वात्स्नेहस्य । भाने प्रतीतौ । तु विषये सुख-

रूपता सिद्ध करी ॥ औ "परानंद" इत्यादिअष्टमश्लोककरि आत्माकी परमानंदता सिद्ध करी । यातें आत्मा महावाक्यविषे "त्वं"पदका अर्थ सच्चिदानंदरूप सिद्ध भया ॥

६५ ननु उक्तसच्चिदानंदरूपवाले आत्माका युक्तिसेंहीं ज्ञान हुये ८२उपनिषदनकूं निर्विषय होनेकरि अप्रमाणताका प्रसंग होवैगा? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६६] **तथाविध परब्रह्म है। तिन ब्रह्म आत्मा दोनूंकी एकता उपनिषदनविषे उपदेश करियेहै ॥**

६७) तिस प्रकारका सच्चिदानंदरूप परब्रह्म महावाक्यविषे "तत्"पदका अर्थ है। तिन "तत्—त्वं"पद दोनूंके अर्थ ब्रह्मात्माकी अखंडएकरसतारूप एकता उपनिषदनविषे प्रतिपादन करियेहै तातें उपनिषदनकूं निर्विषयता नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ १० ॥

॥३॥ आत्माकी परमानंदतामें शंका औ समाधान ॥

६८ आत्माकी परमानंदताके तांई प्रतिवादी आक्षेप करैहै:—

६९] **आत्माकी परमानंदरूपताके अभानके होते आपविषे परमप्रेम होवै नहीं ॥ भानके होते विषयनकी इच्छा होवै नहीं ॥**

७०) आत्माकी परमानंदरूपता नहीं भासती है वा भासती है? ये दोपक्ष हैं ॥ तिनमें आत्माकी परमानंदताकी ८३अप्रतीतिके होनेतें आत्मामें सर्वसें अधिक स्नेहरूप परमप्रेम जो होवैहै सो नहीं हुवा चाहिये । काहेतें स्नेहकूं विषयकी सुंदरताके ज्ञानसें जन्य होनेतें ॥ औ आत्माकी परमानंदरूपताकी ८४प्रतीतिके होते तौ ८५सुखके साधन मालाचंदनस्त्रीआदिकविषे वा तिस विषयतें जन्य सुखविषे जो पुरुपनकूं इच्छा होवैहै सो नहीं हुई चाहिये ॥

८२ उपनिषदनकूं विषयके अभाववाली (व्यर्थ) होनेकरि अप्रमाणताकी प्राप्ति होवैगी । अथवा आत्मा उपनिषदनका अविषय होनेकरि आत्माविषे अप्रमाणताकी प्राप्ति होवैगी ॥ ८३ प्रथमपक्ष ॥ ८४ द्वितीयपक्ष ॥ ८५ विषयानंदके ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः १२

अध्येतृवर्गमध्यस्थपुत्राध्ययनशब्दवत् ।
भानेऽप्यभानं भानस्य प्रतिबंधेन युज्यते॥१२॥

टीकांकः ७१ टिप्पणांकः ८६

साधने स्रगादौ तज्जन्ये सुखे वा । स्पृहा इच्छा न स्यात् । फलप्राप्तौ सत्यां साधनेच्छानुपपत्तेः । नित्यनिरतिशयानंदलाभे सति । क्षणिके साधनपारतंत्र्यादिदोषदूषिते वैषयिके सुखे स्पृहायोगाच्च । तस्मान्नानंदरूपतात्मन उपपन्नेति ।

७१ प्रकारान्तरस्यात्र संभवान्मैवमिति परिहरति—

७२] अतः आत्मनः असौ परमानंदता भाने अपि अभाता ॥

७३) यतो भानाभानपक्षयोरुभयोरपि दोषोऽस्ति । **अतः** कारणात् । **आत्मनः असौ परमानंदता** । **भानेऽपि** प्रतीतौ सत्यामपि **अभाता** न प्रतीता भवति ॥ ११ ॥

७४ नन्वेकस्य युगपद्भानाभाने न युज्येते इत्याशंक्य । किमिदमयुक्तत्वं अदृष्टचरत्वमुपपत्तिरहितत्वं वा । नाद्य इत्याह—

७५] अध्येतृवर्गमध्यस्थपुत्राध्ययनशब्दवत् भाने अपि अभानम् ॥

७६) अध्येतॄणां वेदपाठकानां । वर्गः समूहस्तस्य मध्ये तिष्ठतीति **अध्येतृवर्गमध्यस्थः** । स चासौ पुत्रः चेति तथा । तस्य **अध्ययनं** तत्कर्तृकं पठनं । तस्य **शब्दो** ध्वनिर्यथा बहिस्थस्य पितुर्भासमानोऽपि सामान्यतो । न भासते विशेषतोऽयं मत्पुत्रध्वनिरिति । तथानंदस्यापि **भानेऽप्यभानं** भवतीत्यर्थः ।

७७ द्वितीयं प्रत्याह—

काहेतें परमसुखरूप फलकी प्राप्तिके होते विषयरूप साधनकी इच्छाके असंभवतें औ नित्य सर्वसें अधिक आनंदके लाभ हुये क्षणिक औ साधनके पराधीनताआदिकदोषनसें दोषयुक्तविषयजन्यसुखविषे इच्छाके असंभवतें आत्माकी परमानंदरूपता बनै नहीं ॥ (यह शंकाभाग है) ॥

७१ इहां भानअभान दोनूंसें औरप्रकारके संभवतें आत्माकी परमानंदरूपता बनै नहीं ऐसें नहीं है । इसरीतिसें सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७२] यातें आत्माकी परमानंदता भानके हुये बी नहीं भासतीहै ॥

७३) जातें भानअभान दोनूंपक्षनविषे दोष है । इस कारणतें आत्माकी परमानंदरूपता प्रतीत होते बी नहीं प्रतीत होवैहै ॥११॥

७४ ननु एककूं भान–अभान दोनूं युक्त होवै नहीं । किंतु अयुक्त होवैगा? यह आशंकाकरि यह अयुक्तपना क्या "एकविषे भानअभान कहुं देख्या नहीं" इसरूप है? वा संभवरहिततारूप है? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमें प्रथमविकल्प बनै नहीं यह कहैहैं:—

७५] अध्येतावर्गके मध्यमें स्थित पुत्रके अध्ययनके शब्दकी न्यांई भानके होते बी अभान है ॥

७६) वेदपाठकनका जो समूह है तिसके मध्यमें स्थित किसीके पुत्रके अध्ययनका जो शब्द है सो जैसें बाहीरस्थित तिसके पिताकूं सामान्यतें भासता हुआ बी "यह मेरे पुत्रका ध्वनि है" इसरीतिसें विशेषतें नहीं भासताहै । तैसें आनंदके भान हुये बी अभान होवैहै ॥

७७ दूसरेविकल्पके प्रति कहैहैं:—

८६ प्रतीति ॥ ८७ अप्रतीति ॥

८८ तिसकरि किये पठनका ॥

टीकांकः ७८ टिप्पणांकः ८९

प्रतिबंधोऽस्ति भातीति व्यवहारार्हवस्तुनि ।
तन्निरस्य विरुद्धस्य तस्योत्पादनमुच्यते ॥१३॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः॥ १॥ श्लोकांकः १३

७८] भानस्य प्रतिबंधेन युज्यते ॥

७९) भानेऽप्यभानमित्येतदत्राप्यनुषंजनीयं । भानस्य स्फुरणस्य । प्रतिबंधेन वक्ष्यमाणलक्षणेन । भानेऽप्यभानं सामान्यतः प्रतीतावपि विशेषाकारेणाप्रतीतिः । युज्यते उपपद्यत । इत्यर्थः ॥ १२ ॥

८० कोऽसौ प्रतिबंध इत्यत आह (प्रतिबंध इति)–

८१] अस्ति भाति इति व्यवहारार्हवस्तुनि तं निरस्य विरुद्धस्य तस्य उत्पादनं प्रतिबंध उच्यते ॥

८२) अस्तिभातीतिव्यवहारार्हवस्तुनि । अस्ति विद्यते । भाति प्रकाशते इत्येवंप्रकारं व्यवहारमर्हतीत्यस्तिभातीतिव्यवहारार्हं । तच्च तद्वस्तु चेति तथा तस्मिन् । तं पूर्वोक्तं व्यवहारं । निरस्य निराकृत्य । विरुद्धस्य नास्ति न भातीत्येवंरूपस्य । तस्य व्यवहारस्य । उत्पादनं जननं । प्रतिबंध इति उच्यते ॥ १३ ॥

७८] भानके प्रतिबंधकरि भानके होते बी अभान बनैहै ॥

७९) स्फुरणरूप भानका वक्ष्यमाणलक्षणवाले प्रतिबंधकरि सामान्यतैं प्रतीतिके हुये बी विशेषआकारसैं अप्रतीति संभवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १२ ॥

॥ ४ ॥ परमानंदताके भानके प्रतिबंधका लक्षण ॥

८० ननु कौन सो प्रतिबंध है? तहां कहैहैं:—

८१] "है"। "भासता है"। इस व्यवहारके योग्य वस्तुविषे तिसकूं निषेधकरि तिसतैं विरुद्ध "नहीं है"। "नहीं भासता है" ॥ इस व्यवहारका जो उत्पादन सो प्रतिबंध कहियेहै ॥

८२) "है"। "भासता है"। इसरीतिके व्यवहार कहिये प्रतीति औ कथनके योग्य वस्तुविषे तिस पूर्वउक्त। "विद्यमान है"। "भासता है" इस व्यवहारकूं निराकरण करिके तिस उक्तव्यवहारतैं विपरीत "नहीं है"। "नहीं भासता है" इस व्यवहारकी उत्पत्ति प्रतिबंध कहियेहै ॥ १३ ॥

८९ कार्यका विरोधि प्रतिबंध औ प्रतिबंधक कहियेहै ॥ इहां परमानंदताकी विशेषप्रतीतिरूप कार्यका विरोधिआवरण प्रतिबंध है ॥ इहां यह विवेक है:—अज्ञानीजननकूं अविद्याकृत वक्ष्यमाण १३ वें श्लोकमें आवरणरूप प्रतिबंधसैं परमानंदताकी सामान्यसैं प्रतीति होते बी विशेषतैं प्रतीति नहीं है। यातैं आत्मामें परमप्रेम बी है औ विषयकी इच्छा बी बनैहै ॥ औ विद्वान् (ज्ञानी)कूं कदाचित् व्यवहारमें विज्ञातआत्माके अविचारसैं जन्य बाहिर्मुखवृत्तिरूप प्रतिबंधसैं परमानंदताकी सामान्यतैं प्रतीतिके होते बी विशेषतैं प्रतीति किंचित्काल होवै नहीं ॥ यातैं आत्मामें परमप्रेम बी है औ विषय (इष्टपदार्थ)की इच्छा होवैहै। फेर विचारसैं उक्तप्रतिबंधके तिरस्कारसैं विशेषतैं परमानंदताकी प्रतीति होवैहै ॥ जैसैं समुद्र–नदीकी रेतीकूं कछु दूरीकरिके किये खड्डेमें जल प्रगट होवैहै पीछे बी रेतीके अनिवारणसैं जल आच्छादित होवैहै। फेर रेतीके निवारणसैं जल निरावरण प्रतीत होवैहै। तैसैं ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: १४ १५

तस्य हेतुः समानाभिहारः पुत्रध्वनिश्रुतौ ।
इहानादिरविद्यैव व्यामोहैकनिबंधनम् ॥१४॥
चिदानंदमयब्रह्मप्रतिबिंबसमन्विता ।
तमोरजःसत्त्वगुणा प्रकृतिर्द्विविधा च सा ॥१५॥

टीकांक: ८३ टिप्पणांक: ९०

८३ उक्तलक्षणस्य प्रतिबंधस्य कारणं दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोः क्रमेण दर्शयति (तस्येति)—

८४] पुत्रध्वनिश्रुतौ तस्य हेतुः समानाभिहारः इह व्यामोहैकनिबंधनं अनादिः अविद्या एव ॥

८५) पुत्रध्वनिश्रुतौ पुत्रध्वनिश्रवणलक्षणे दृष्टांते । तस्य प्रतिबंधस्य । हेतुः कारणं । समानाभिहारः बहुभिः सह पठनं । इह दार्ष्टांतिके । व्यामोहैकनिबंधनं व्यामोहानां विपरीतज्ञानानामेकं निबंधनं मुख्यं कारणं । अनादिः उत्पत्तिरहिता । अविद्या वक्ष्यमाणलक्षणा । प्रतिबंधस्य हेतुरित्यर्थः ॥ १४॥

८६ इदानीं प्रतिबंधहेतुभूतामविद्यां प्रतिपादयितुं तन्मूलभूतां प्रकृतिं व्युत्पादयति—

८७] चिदानंदमयब्रह्मप्रतिबिंबसमन्विता तमोरजःसत्वगुणा प्रकृतिः । सा च द्विविधा ॥

८८) यत् चिदानंदरूपं ब्रह्म । तस्य प्रतिबिंबेन प्रतिच्छायया । समन्विता युक्ता । तमोरजःसत्त्वगुणा सत्वरजस्तमोगुणानां साम्यावस्था । या सा प्रकृतिः इत्युच्यते । सा च द्विविधा द्विप्रकारा भवति ।

॥ ९ ॥ दृष्टांत औ सिद्धांतविषे प्रतिबंधका कारण ॥

८३ कथन किये लक्षणवाले प्रतिबंधके कारणकूं दृष्टांतदार्ष्टांत दोनूंविषे क्रमसें दिखावैहैं:—

८४] पुत्रकी ध्वनिके श्रवणरूप दृष्टांतविषे बहुतनके साथि पठन तिस प्रतिबंधका हेतु है औ इहां दार्ष्टांतविषे व्यामोहनकी मुख्यकारणरूप अनादि जो अविद्या है सो प्रतिबंधकी हेतु है ॥

८५) पुत्रके शब्दके श्रवणरूप दृष्टांतविषे बहुतनके साथि मिलिके जो पठन है सो तिस प्रतिबंधका कारण है ॥ औ विशेषतें परमानंदताके भानरूप दार्ष्टांतविषै विपरीतज्ञानोकी मुख्यकारण औ उत्पत्तिरहित जो वक्ष्यमाणलक्षणवाली अविद्या है सो प्रतिबंधका कारण है ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ प्रकृतिका स्वरूप ॥८६—९९ ॥

॥ १ ॥ प्रकृतिका स्वरूप औ भेद ॥

८६ अब प्रतिबंधकी हेतुरूप अविद्याकूं प्रतिपादन करनेकूं तिस अविद्याकी मूलभूत प्रकृतिकूं प्रतिपादन करैहैं:—

८७] चिदानंदमयब्रह्मके प्रतिबिंबकरि युक्त औ तमरजसत्वगुणरूप जो है सो प्रकृति है ॥ सो प्रकृति फेर दोभांतिकी है ॥

८८) चिदानंदरूप जो ब्रह्म है तिसका प्रतिबिंब कहिये आभास । तिसकरि युक्त औ सत्वरजतम इन तीनगुणनकी साम्यअवस्था जो है सो प्रकृति ऐसें कहियेहै ॥ सो प्रकृति फेर दोप्रकारकी है ॥ मूलश्लोकमें फेरअर्थवाला जो "च" शब्द है सो १८वे

९० तिसतें रहितविषे तिसका आरोपकरिके कथन ॥

टीकांक: ८९ टिप्पणांक: ॐ	सत्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते । मायाबिंबो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः॥१६॥ अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा । सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्॥१७॥	प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांक: १६ १७

चकाराद्वक्ष्यमाणं प्रकारांतरं सूचयति ॥ १९ ॥

८९ सहेतुकं द्वैविध्यमेव दर्शयति—

९०] सत्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां ते च मायाविद्ये मते ॥

९१) सत्वस्य प्रकाशात्मकस्य गुणस्य । शुद्धिः गुणांतरेणाकलुषीकृतता । अविशुद्धिः गुणांतरेण कलुषीकृतत्वं । ताभ्यां सत्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां ते च द्विविधे मायाविद्ये मायेत्यविद्येति च । मते संमते । विशुद्धसत्वप्रधाना माया । मलिनसत्वप्रधाना अविद्येत्यर्थः ॥

९२ यदर्थं मायाविद्ययोर्भेद उक्तस्तदिदानीं दर्शयति—

९३] मायाबिंबः तां वशीकृत्य सर्वज्ञः ईश्वरः स्यात् ॥

९४) मायाबिंबः मायायां प्रतिफलितश्चिदात्मा । तां मायां वशीकृत्य स्वाधीनीकृत्य वर्तमानः । सर्वज्ञः सर्वज्ञत्वादिगुणकः ईश्वरः स्यात् ॥ १६ ॥

९५] अविद्यावशगः तु अन्यः तद्वैचित्र्यात् अनेकधा ॥

९६) अविद्यावशगः अविद्यायां प्रतिबिंबत्वेन स्थितः तत्परतंत्रः तु चिदात्मा । अन्यः जीवः स्यात् । स च तद्वैचित्र्यात्

श्लोकमें आगे कहियेगा जो तमःप्रधानरूप प्रकृतिका औरतीसराप्रकार है ताकूं सूचन करैहै ॥ १९ ॥

॥ २ ॥ माया औ अविद्याका भेद औ ईश्वरका स्वरूप ॥

८९ हेतुसहित प्रकृतिके दोभांतिपनैकूं दीडश्लोकसें दिखावैहैं:—

९०] सत्वगुणकी शुद्धि औ अशुद्धिकरि सो प्रकृतिके दोभेद क्रमतें माया औ अविद्या संमत हैं ॥

९१) प्रकाशरूप सत्वगुणकी शुद्धि कहिये औररजतमगुणसें अमलिन होनेपना औ सत्वकी अशुद्धि कहिये औररजतमगुणसें मलिन होनेपना ॥ तिन सत्वगुणकी शुद्धि औ अशुद्धिकरि क्रमतें सो प्रकृति माया औ अविद्या दोभांति मानीहै ॥ तिनमें विशुद्धसत्वगुण है मुख्य जिसमें ऐसी माया है औ मलिनसत्वगुण है प्रधान जिसमें ऐसी अविद्या है ॥

९२ जिस अर्थ मायाअविद्याका भेद कहा तिस प्रयोजनकूं अब दिखावैहैं:—

९३] मायामें प्रतिबिंबकूं पाया चिदात्मा तिस मायाकूं वशकरिके सर्वज्ञईश्वर होवैहै ॥

९४) मायाविषे प्रतिबिंबकूं पाया चिदात्माब्रह्म तिस मायाकूं स्वाधीन करी वर्तमान हुवा सर्वज्ञतादिकगुणयुक्त ईश्वर होवैहै ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ जीवका स्वरूप (प्राज्ञका वर्णन) ॥

९५] अविद्याके वश भया अन्य जीव तिस अविद्याकी विचित्रतातें अनेकभांतिका होवैहै ॥

९६) अविद्याविषे प्रतिबिंब होयके स्थित

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः १८	तमःप्रधानप्रकृतेस्तद्भोगायेश्वराज्ञया । वियत्पवनतेजोऽम्बुभुवो भूतानि जज्ञिरे ॥ १८ ॥	टीकांकः ९७ टिप्पणांकः ॐ

तस्या अविद्याया उपाधिभूताया वैचित्र्याद्-विशुद्धितारतम्यात् । अनेकधा अनेकप्रकारो देवतिर्यगादिभेदेन विविधो भवतीत्यर्थः ॥

९७ "यथा मुंजादिषीकैवमात्मा युक्त्या समुद्धृतः । शरीरत्रितयाद्धीरैः परं ब्रह्मैव जायत" इत्युत्तरत्र शरीरत्रितयाद्विवेचितस्य जीवस्य परब्रह्मत्वं वक्ष्यति ॥ तत्र तानि कानि त्रीणि शरीराणि । तत्तदुपाधिको वा जीवः किंरूपो भवतीत्याकांक्षायां । तत्सर्वं क्रमेण व्युत्पादयति—

९८] **सा कारणशरीरं । तत्र अभिमानवान् प्राज्ञः स्यात् ॥**

९९) सा अविद्या । कारणशरीरं स्थूलसूक्ष्मशरीरादिकारणभूतं प्रकृत्यवस्थाविशेषत्वात्कारणमुपचाराच्छीर्यते तत्वज्ञानाद्विनश्यति चेति शरीरं स्यात् । तत्र कारणशरीरे । अभिमानवान् तादात्म्याध्यासेनाहमित्यभिमानवान् जीवः । प्राज्ञः प्रज्ञाऽविनाशिस्वरूपानुभवरूपा यस्य सः प्रज्ञः । प्रज्ञ एव प्राज्ञः एतन्नामकः स्यात् इत्यर्थः ॥ १७ ॥

१०० क्रमप्राप्तं सूक्ष्मशरीरं । तदुपाधिकं जीवं व्युत्पादयितुं तत्कारणाकाशादिसृष्टिमाह (तमःप्रधानेति)—

१] **तद्भोगाय तमःप्रधानप्रकृतेः ई-**

औ तिस अविद्याके पराधीन हुवा चिदात्मा जीव होवैहै ॥ औ सो जीव तिस उपाधिरूप अविद्याकी अशुद्धिके अधिकन्यूनरूप विचित्रपनेतें देवपशुपक्षीआदिकभेदसें नानाभांतिका होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥

९७ "जैसें मुंजतृणविशेषतें सलाका निकासियेहै । तैसें आत्मा धीरपुरुषनकरि युक्तिसें तीनशरीरनतें विवेचित हुवा परब्रह्मही होवैहै" । इस आगेके ४२ श्लोकविषे तीनशरीरनतें विवेचन कीये जीवका ब्रह्मभाव कहैंगे ॥ तहां वे तीनशरीर कौन हैं? औ तिस तिस शरीररूप उपाधिवाला जीव कौनरूप होवैहै? इस पूछनेकी इच्छाके हुये "सो कारणशरीर होवैहै" इत्यादिकरि तिस सर्वकूं क्रमसें कहैहैं:—

९८] **सो अविद्या कारणशरीर होवैहै ॥ तिस कारणशरीरविषे अभिमानवान्** हुवा जीव प्राज्ञ होवैहै ॥

९९) अविद्या स्थूलसूक्ष्मशरीरादिककी कारणरूप है । औ प्रकृतिकी अवस्थाविशेष होनेतें इस अविद्याकूं वी कारणपना उपचारतें कहियेहै ॥ औ तत्त्वज्ञानतें नाश होवैहै । तातें यह अविद्या शरीर कहियेहै ॥ तिस अविद्यारूप कारणशरीरविषे अभेदअध्यासकरि "मैं अज्ञ हूं" ऐसें हुवा जीव प्राज्ञ होवैहै ॥ ज्ञानदृष्टि अविनाशिस्वरूप है जिसकी सो प्रज्ञ है ॥ प्रज्ञही प्राज्ञ इस नामवाला होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १७ ॥

॥ ४ ॥ अपंचीकृतपंचमहाभूतनकी उत्पत्ति ॥ १००—१२६ ॥

॥ १ ॥ तमःप्रधानप्रकृतितें सूक्ष्मपंचमहाभूतनकी उत्पत्ति ॥

१०० क्रमतें प्राप्त सूक्ष्मशरीरकूं औ तिस सूक्ष्मशरीररूप उपाधिवाले जीवकूं प्रतिपादन करनेकूं तिस सूक्ष्मशरीरके कारण आकाशादिककी उत्पत्तिकूं कहैहैं:—

१] **तिन प्राज्ञ जीवनके भोगअर्थ**

टीकांक: १०२ टिप्पणांक: ९१	सत्वांशैः पंचभिस्तेषां क्रमाद्धींद्रियपंचकम् । श्रोत्रत्वगक्षिरसनघ्राणाख्यमुपजायते ॥ १९ ॥ तैरंतःकरणं सर्वैर्वृत्तिभेदेन तद्द्विधा । मनो विमर्शरूपं स्याद्बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका २०	प्रत्यक्तत्त्व-विवेक. ॥१॥ श्लोकांक: १९ २०

श्वराज्ञया वियत्पवनतेजोऽम्बुभुवः भूतानि जज्ञिरे ॥

२) तद्भोगाय तेषां प्राज्ञानां भोगाय सुखदुःखसाक्षात्कारसिद्धये । तमःप्रधानप्रकृतेः तमोगुणप्रधानायाः प्रकृतेः पूर्वोक्ताया उपादानकारणभूतायाः सकाशात् । ईश्वराज्ञया ईशानादिशक्तियुक्तस्य जगदधिष्ठातुराज्ञया ईक्षापूर्वकसर्जनेच्छारूपया निमित्तकारणभूतया । वियदादिपृथिव्यंतानि पंच-भूतानि जज्ञिरे प्रादुर्भूतान्युत्पन्नानीत्यर्थः ॥ १८ ॥

३ भूतसृष्टिमभिधाय भौतिकसृष्टिमभिदधान आदौ ज्ञानेंद्रियसृष्टिमाह (सत्वांशैरिति)—

४] तेषां पंचभिः सत्वांशैः श्रोत्रत्वगक्षिरसनघ्राणाख्यम् धींद्रियपंचकं क्रमात् उपजायते ॥

५) तेषां वियदादीनां । पंचभिः सत्वांशैः सत्वगुणभागैरुपादानभूतैः । श्रोत्रत्वगक्षिरसनघ्राणाख्यं धींद्रियपंचकं धींद्रियाणि ज्ञानेंद्रियाणि तेषां पंचकं । क्रमादुपजायते । एकैकभूतसत्वांशादेकैकमिंद्रियं जायत इत्यर्थः ॥ १९ ॥

६ सत्वांशानां प्रत्येकमसाधारणकार्याण्यभिधाय सर्वेषां साधारणकार्यमाह—

तमःप्रधानप्रकृतितें ईश्वरकी इच्छासें आकाश पवन तेज जल पृथिवी ये पांचभूत उत्पन्न होतेभये ॥

२) तिन प्राज्ञजीवनकूं सुखदुःखके साक्षात्कारकी सिद्धिअर्थ तमःप्रधानप्रकृतितें कहिये तमोगुण है मुख्य जिसविषे ऐसी जो तीसरी पूर्वउक्त जगत्‌की उपादानकारणरूप प्रकृति है तिसतें प्रेरणआदिशक्तिकरि युक्त ईश्वरकी ईक्षणापूर्वक निमित्तकारण भई सृष्टिकी इच्छारूप आज्ञासें आकाशसें आदिलेके पृथिवीपर्यंत पांचभूत प्रगट होतेभये ॥ यह अर्थ है ॥१८॥

॥ २ ॥ ज्ञानइंद्रियनकी उत्पत्ति ॥

३ भूतनकी उत्पत्तिकूं कहिके भूतनके कार्यनकी सृष्टिकूं कहतेहुये आदिविषे ज्ञानइंद्रियनकी सृष्टिकूं कहैहैं:—

४] तिनके पांचसत्वअंशकरि श्रोत्र त्वचा चक्षु रसना घ्राण इस नामवाले पांचज्ञानइंद्रिय क्रमतें उपजैहैं ॥

५) तिन आकाशादिकनके पांच उपादानरूप सत्वगुणके भागनकरि श्रोत्र त्वचा अक्षि रसन घ्राण इस नामवाला ज्ञानइंद्रियनका पंचक क्रमतें उपजैहै ॥ एकएक भूतमें स्थित सत्वगुणके भागतें एकएकज्ञानइंद्रिय उत्पन्न होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १९ ॥

॥ ३ ॥ अंतःकरणकी उत्पत्ति औ ताका भेद ॥

६ भूतनके सत्वगुणअंशके एकएक असाधारण–कार्यनकूं कहिके । सर्वभूतके सत्वगुणांशके साधारण–कार्यकूं कहैहैं:—

---

९१ देखो अंक ८७ ॥

९२ एकहीका कार्य ॥ ९३ सर्वका कार्य ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥ १ ॥ श्लोकांकः २१	रजोंऽशैः पंचभिस्तेषां क्रमात्कर्मेंद्रियाणि तु । वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानानि जज्ञिरे ॥२१॥	टीकांकः १०७ टिप्पणांकः ९४

७] तैः सर्वैः अंतःकरणम् ॥

८) तैः सह सत्वांशैः सर्वैः संभूय वर्तमानैः । अंतःकरणं मनोबुध्युपादानभूतं द्रव्यमुपजायत इत्यनुषंगः ॥

९ तस्यावांतरभेदं सनिमित्तमाह (वृत्तीति)—

१०] तत् वृत्तिभेदेन द्विधा ॥

११) तत् अंतःकरणं । वृत्तिभेदेन परिणामभेदेन । द्विधा द्विप्रकारं भवति ॥

१२ वृत्तिभेदमेव दर्शयति (मन इति)—

१३] विमर्शरूपं मनः स्यात् । निश्चयात्मिका बुद्धिः स्यात् ॥

१४) विमर्शरूपं विमर्शः संशयात्मिका वृत्तिः सा स्वरूपं यस्य तत्तथा तत् मनः स्यात् । निश्चयात्मिका निश्चयोऽध्यवसायः आत्मा स्वरूपं यस्याः सा निश्चयात्मिका सा वृत्तिः बुद्धिः स्यात् ॥ २० ॥

१५ क्रमप्राप्तानां रजोंऽशानां प्रत्येकमसाधारणकार्याण्याह (रजोंऽशैरिति)—

१६] तेषां पंचभिः रजोंऽशैः तु वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानानि कर्मेंद्रियाणि क्रमात् जज्ञिरे ॥

१७) तेषां वियदादीनामेव पंचभीरजोंऽशैः रजोभागैस्तूपादानभूतैः वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानानि एतन्नामकानि । कर्मेंद्रियाणि क्रियाजनकानि इंद्रियाणि । जज्ञिरे ॥ २१ ॥

७] तिन सर्वसें अंतःकरण होवैहै ॥

८) भूतनविषे मिलिके वर्तमान जो सर्वसत्वगुणके भाग हैं । तिनसें मन औ बुद्धिका उपादानरूप अंतःकरण द्रव्य उपजैहै ॥

९ तिस अंतःकरणके बीचके भेदकूं निमित्तसहित कहैहैं:—

१०] सो । वृत्तिके भेदसें दोप्रकारका है ॥

११) सो अंतःकरण वृत्तिके[९५] भेदसें दोप्रकारका होवैहै ॥

१२ वृत्तिके भेदकूं दिखावैहैं:—

१३] विमर्शरूप मन होवैहै औ निश्चयरूप बुद्धि होवैहै ॥

१४) संशयरूप वृत्ति है स्वरूप जिसका सो मन है ॥ निश्चय है स्वरूप जिसका ऐसी जो वृत्ति सो बुद्धि है ॥ २० ॥

॥ ४ ॥ कर्मइंद्रियनकी उत्पत्ति ॥

१५ क्रमतें प्राप्त रजोगुणअंशनके एकएकके असाधारणकार्यकूं कहैहैं:—

१६] तिन भूतनके पांचरजोगुणके अंशनसें वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ इस नामवाले पांचकर्मइंद्रिय क्रमतें उपजतेभये ॥

१७) तिन आकाशादिकनकेहीं पांचउपादानरूप जो रजोगुणके भाग हैं । तिनसें वाचा हस्त पाद पायु[९६] उपस्थ[९७] इसनामवाले क्रियाजनक पांचकर्मइंद्रिय क्रमतें उत्पन्न होतेभये ॥ एकएकभूतके एकएक रजोगुणभागसें एकएक कर्मइंद्रिय उपजी ॥ यह अर्थ है ॥ २१ ॥

९४ देखो श्लोक ५२ गत "आदिक" शब्दकी टिप्पणविषे ॥

९५ परिणामके ॥

९६ गुद ॥ ९७ शिश्न ॥

टीकांक: ११८ टिप्पणांक: ९८

तैः सर्वैः सहितैः प्राणो वृत्तिभेदात्स पंचधा ।
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च ते पुनः २२
बुद्धिकर्मेंद्रियप्राणपंचकैर्मनसा धिया ।
शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्मं तल्लिंगमुच्यते ॥ २३ ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांक: २२ २३

१८ रजोंऽशानामेवं साधारणं कार्यमाह (तैरिति)—

१९] सहितैः तैः सर्वैः प्राणः ॥

२०) सहितैः संभूय कारणतां गतैः प्राणो जायत इति शेषः ॥

२१ तस्यावांतरभेदमाह (वृत्तिभेदादिति)—

२२] सः वृत्तिभेदात् पंचधा ॥

२३) सः प्राणो वृत्तिभेदात् प्राणनादिव्यापारभेदात् । पंचधा पंचप्रकारो भवति॥

२४ वृत्तिभेदानेव दर्शयति (प्राण इति)—

२५] ते पुनः प्राणः अपानः समानः च उदानव्यानौ च ॥

२६) ते पुनः ते तु भेदाः । प्राणादिशब्दवाच्या इत्यर्थः ॥ २२ ॥

२७ यदर्थमाकाशादिप्राणांतानां सृष्टिरुक्ता तदिदानीं दर्शयति—

॥ ९ ॥ प्राणकी उत्पत्ति औ तिनका भेद ॥

१८ भूतनके रजोगुणअंशनके साधारणकार्यकूं कहैहैं:—

१९] मिले हुये तिन सर्वरजोअंशसें प्राण भया ॥

२०) मिलिके कारणताकूं प्राप्तभए जे पांचभूतनके रजोगुणके पांचअंश हैं तिनसें प्राण होवैहै ॥

२१ तिस प्राणके वीचके भेदकूं कहैहैं:—

२२] वृत्तिके भेदतें सो प्राण पांचप्रकारका है ॥

२३) सो प्राण प्राणन-आदि क्रियाके भेदतें पांचप्रकारका होवैहै:—

२४ वृत्तिके भेदनकूंहीं दिखावैहैं:—

२५] प्राण अपान समान उदान व्यान ये पंचभेद हैं ॥

२६) औ सो पांचभेद प्राणआदिशब्दके वाच्य हैं ॥ यह अर्थ है ॥ २२ ॥

॥ ५ ॥ सूक्ष्मशरीरका स्वरूप
॥ १२७—१४१ ॥

॥ १ ॥ लिंगदेहका कथन ॥

२७ जिस अर्थ आकाशसें आदिलेके प्राण

९८ आदिशब्दकरि अपानन समानन उदानन व्याननरूप क्रियाका ग्रहण है ॥ हृदयदेशमें रहिके श्वासउच्छ्वासरूपसें वाहीरभीतर जानेआनेका नाम **प्राणनक्रिया** है ॥ औ गुददेशमें रहिके मलमूत्रके नीचे उतारनेका नाम **अपाननक्रिया** है ॥ औ जैसें माली कूपके जलकूं नालेद्वारा सारे बगीचेमें पहुंचावताहै तैसें नाभिदेशमें रहिके भोजन कीये अन्नके रसकूं निकासिकरि नाडीद्वारा सारेशरीरमें पहुंचावनेका नाम **समाननक्रिया** है औ कंठदेशमें रहिके साथिहीं खाएपीएअन्नजलके विभाग करनेका औ उद्गारादिक करनेका नाम **उदाननक्रिया** है ॥ औ सारेशरीरदेशमें रहिके सर्वअंगनकी संधिनकूं फेरनेका नाम **व्याननक्रिया** है ॥ इन एकएकक्रियाका करनेवाला वायु क्रमतें प्राणआदिनामवाला कहियेहै ॥

९९ ऊर्ध्व कहिये ऊंचेगमनस्वभाववान् नासाके अग्रमें स्थायी **वायु प्राण** है ॥

१०० अधो- कहिये नीचेगमनस्वभाववान् गुदआदिमें स्थायी **वायु अपान** है ॥

१ शरीरके मध्यमें स्थित हुवा अन्नके रसआदिकका सारेशरीरमें नाडीद्वारा पहुंचावनेवाला **वायु समान** है ॥

२ ऊर्द्ध चलनेके स्वाभाववाला कंठमें स्थायी **वायु उदान** है ॥ ३ सर्व नाडीनमें गमनके स्वभाववान् सारे

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः २४	प्राँज्ञस्तत्राभिमानेन तैजसत्वं प्रपद्यते । हिरण्यगर्भतामीशस्तँयोर्व्यष्टिसमष्टिता ॥ २४ ॥	टीकांकः १२८ टीप्पणांकः १०४

२८] बुद्धिकर्मेंद्रियप्राणपंचकैः मनसा धिया सप्तदशभिः सूक्ष्मं शरीरम् ॥

२९) बुद्धयो ज्ञानानि । कर्माणि व्यापारास्तज्जनकानींद्रियाणि बुद्धींद्रियाणि कर्मेंद्रियाणि चेत्यर्थः । बुद्धिकर्मेंद्रियाणि च प्राणाश्च बुद्धिकर्मेंद्रियप्राणाः तेषां पंचकानि । तैर्मनसा विमर्शात्मकेन । धिया निश्चयरूपया बुद्ध्या । च सह सप्तदशभिः सप्तदशसंख्याकैः । सूक्ष्मं शरीरं भवति ॥

३० तस्यैव संज्ञांतरमाह—

३१] तत् लिंगम् उच्यते ॥

३२) उच्यते वेदांतेष्वित्यर्थः ॥ २३ ॥

३३ एवं सूक्ष्मशरीरमभिधाय तदभिमानित्वप्रयुक्तं प्राज्ञेश्वरयोरवस्थांतरं दर्शयति—

३४] प्राज्ञः तत्र अभिमानेन तैजसत्वं प्रपद्यते । ईशः हिरण्यगर्भतां ॥

३५) प्राज्ञः मलिनसत्वप्रधानाविद्योपाधिको जीवः । तत्र तेजःशब्दवाच्यांतःकरणोपलक्षितलिंगशरीरे । अभिमानेन तादात्म्याभिमानेन । तैजसत्वं तैजसनामकत्वं । प्रपद्यते प्राप्नोति । ईशः विशुद्धसत्वप्रधानमा-

---

पर्यंत पदार्थनकी उत्पत्ति कही तिस प्रयोजनकूं अब दिखावैहैं:—

२८] बुद्धिइंद्रिय औ कर्मइंद्रिय औ प्राण ये तीन पांचपांच हैं ॥ मन औ बुद्धिसहित तिन सप्तदशतत्त्वनसें सूक्ष्मशरीर होवैहै ॥

२९) बुद्धि कहिये ज्ञान । तिनकी जनक जे इंद्रिय हैं वे बुद्धिइंद्रिय हैं ॥ कर्म कहिये क्रिया । तिनकी जनक जे इंद्रिय हैं वे कर्मइंद्रिय हैं ॥ ज्ञानइंद्रिय कर्मइंद्रिय औ प्राण इन तीनके जे पंचक हैं औ संशयरूप मन है औ निश्चयरूप बुद्धि है । वे सर्व मिलिके सप्तदशसंख्यावाले जे तत्त्व हैं तिनसें सूक्ष्मशरीर होवैहै ॥

३० तिन सूक्ष्मशरीरकेहीं औरनामकूं कहैहैं:—

३१] सो लिंग कहियेहै ॥

३२) सो सूक्ष्मशरीर उपनिषदनविषे लिंग ऐसें कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ २३ ॥

॥ २ ॥ तैजस औ हिरण्यगर्भका स्वरूप ॥

३३ इसरीतिसें सूक्ष्मशरीरकूं कहिके तिसके अभिमानिपनेकरि युक्त जो प्राज्ञ औ ईश्वर हैं तिन दोनूंकी औरअवस्थाकूं दिखावैहैं:—

३४] प्राज्ञ तिस लिंगविषे अभिमानकरि तैजसपनेकूं पावैहै औ ईश्वर हिरण्यगर्भपनेकूं पावैहै ॥

३५) मलिनसत्वगुणकी मुख्यतायुक्त जो अविद्या है तिस उपाधिवाला प्राज्ञ कारणशरीरका अभिमानी जीव । तेजः शब्दके वाच्य

शरीरमें स्थायी वायु व्यान है ॥

४ प्रकृष्ट स्वयंप्रकाशरूप आनंदात्माविषे अज्ञानकी वृत्तिरूप बोध है जिस सुषुप्तिअभिमानीकूं सो प्राज्ञ कहियेहै ॥ संस्काररूप अस्पष्टउपाधियुक्त होनेकरि तिस उपाधिकरि आवृत होनेतें अतिप्रकाशकताके अभावतें इस सुषुप्तिअभिमानीजीवकूं प्राज्ञपना है ॥

५ सर्वजीवनकूं कर्मअनुसार ईशिता कहिये फलदाता होनेकरि परमात्मा ईश्वर है ॥

टीकांकः १२६ टिप्पणांकः १०६

समष्टिरीशः सर्वेषां स्वात्मतादात्म्यवेदनात् ।
तदभावात्ततोऽन्ये तु कथ्यंते व्यष्टिसंज्ञया ॥२५॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांकः २५

योपाधिकः परमेश्वरः । तत्र शरीरेऽहमित्यभिमानेन । **हिरण्यगर्भतां** हिरण्यगर्भसंज्ञकत्वं । प्रपद्यत इत्यनुषंगः ।

३६ तैजसहिरण्यगर्भयोर्लिंगशरीराभिमाने समाने सति तयोः परस्परं भेदः किंनिबंधन इत्यत आह—

३७] **तयोः व्यष्टिसमष्टिता ॥**

३८) **तयोः** तैजसहिरण्यगर्भयोः **व्यष्टित्वं समष्टित्वं** भवति । अत एव भेद इत्यर्थः ॥ २४ ॥

३९ ईश्वरस्य समष्टिरूपत्वे जीवानां व्यष्टिरूपत्वे च कारणमाह (**समष्टिरिति**)—

४०] **ईशः सर्वेषां स्वात्मतादात्म्यवेदनात् समष्टिः । ततः अन्ये तु तदभावात् व्यष्टिसंज्ञया कथ्यंते ॥**

४१) **ईशः** ईश्वरो हिरण्यगर्भः । **सर्वेषां** लिंगशरीरोपाधिकानां तैजसानां । **स्वात्मतादात्म्यवेदनात्** स्वात्मतादात्म्यस्यैकत्वस्य वेदनात् ज्ञानात् । **समष्टिः** भवति । **ततः** ईश्वरात् । **अन्ये** जीवाः । **तु** । **तदभावात्** तस्य तादात्म्यवेदनस्याभावात् । **व्यष्टिसंज्ञया** व्यष्टिशब्देन । **कथ्यंते** ॥ २५ ॥

अंतःकरणसैं उपलक्षित लिंगशरीरविषे अभेदअभिमानकरि तैजस नामकूं पावैहै ॥ औ विशुद्धसत्त्वगुणकी प्रधानतायुक्त जो माया तिस उपाधिवाला परमेश्वर तिस लिंगशरीरविषे "मैं हूं" इस अभिमानकरि हिरण्यगर्भ । सूत्रात्मा नामकूं पावैहै ॥

३६ ननु तैजस हिरण्यगर्भ दोनूंकूं लिंगशरीरअभिमानके समान हुये तिन तैजसहिरण्यगर्भका परस्परभेद किस निमित्ततैं होवैहै? तहां कहैहैं:—

३७] **तिन दोनूंकी व्यष्टिता औ समष्टिता है ॥**

३८) जातैं तैजस हिरण्यगर्भ दोनूंकूं व्यष्टिभाव औ समष्टिभाव होवैहै तातैंहीं तिनका भेद है । यह अर्थ है ॥ २४ ॥

॥ ३ ॥ तैजस औ हिरण्यगर्भकी व्यष्टी औ समष्टीपनैका वर्णन ॥

३९ ईश्वरकी समष्टिरूपताविषै औ जीवनकी व्यष्टिरूपताविषै कारणकूं कहैहैं:—

४०] **ईश। सर्वके स्वात्माके तादात्म्यके वेदनतैं समष्टि है ॥ औ अन्य जीव तिसके अभावतैं व्यष्टिनामसैं कहावैहैं ॥**

४१) ईश्वर जो हिरण्यगर्भ सो सर्वलिंगशरीरउपाधिवाले तैजसजीवनका जो स्वात्मा कहिये स्वरूप है तिसके साथि अपनी एकताके ज्ञानतैं समष्टि होवैहै ॥ तिस ईश्वरतैं अन्य जे जीव हैं वे तिस सर्वस्वात्माकी एकताके ज्ञानके अभावतैं व्यष्टिशब्दसैं कहावैहैं ॥ २५ ॥

---

६ तेजः शब्दके वाच्य अंतःकरणकूं न त्यागिके तिसके संबंधी प्राण औ इंद्रियनके ग्रहणतैं इहां अजहत्लक्षणा होवैहै तिसतैं लखे हुये ॥

७ अथवा तेजः कहिये अंतःकरण जो कार्यरूपसैं परिणामकूं पायाहै सोइ स्थूलशरीरआदिकसैं रहित है ॥ जिस स्वप्नाभिमानीकूं सो तेजः शब्दके वाच्य अंतःकरणका स्वामी स्वप्नाभिमानीजीव (चिदाभास) तैजस कहियेहै ॥

८ एकबुद्धिकी विषयता ॥ इहां सर्वसूक्ष्मशरीरनकूं हिरण्यगर्भनामवाले सूत्रात्माकरि वा अन्यजीवकरि वनवत् एकबुद्धिका विषय होनेतैं **समष्टिपना** है ॥

९ अनेकबुद्धिनकी विषयता ॥ इहां सर्वजीवनकूं एक एक अपने अपने लिंगशरीरकूं भिन्नभिन्नवृक्षकी न्यांई "ये अनेक हैं" ऐसैं अनेकबुद्धिकी विषयतासैं **व्यष्टिपना** है ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांकः २६ २७

[४३] तद्भोगाय पुनर्भोग्यभोगायतनजन्मने ।
पंचीकरोति भगवान्प्रत्येकं वियदादिकम् ॥ २६ ॥
[४६] द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः ।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पंच पंच ते ॥ २७ ॥

टीकांकः १४२ टिप्पणांकः ११०

४२ एवं लिंगशरीरं तदुपाधिकौ तैजसहिरण्यगर्भौ च दर्शयित्वा । स्थूलशरीराद्युत्पत्तिसिद्ध्ये पंचीकरणं निरूपयितुमाह (तद्भोगायेति)—

४३] भगवान् पुनः तद्भोगाय भोग्यभोगायतनजन्मने वियदादिकम् प्रत्येकं पंचीकरोति ॥

४४) भगवान् ऐश्वर्यादिगुणषट्कसंपन्नः परमेश्वरः । पुनः पुनरपि । तद्भोगाय तेषां जीवानां भोगायैव । भोग्यभोगायतनजन्मने भोग्यस्यान्नपानादेः भोगायतनस्य जरायुजादिचतुर्विधशरीरजातस्य च जन्मने उत्पत्तये । वियदादिकं आकाशादिभूतपंचकं । प्रत्येकं एकैकं । पंचीकरोति अपंचात्मकं पंचात्मकं संपद्यमानं करोति ॥ २६ ॥

४५ कथमेकैकस्य पंचपंचात्मकत्वमित्यत आह (द्विधेति)—

४६] एकैकं द्विधा विधाय । पुनः च प्रथमं चतुर्धा । स्वस्वेतरद्वितीयांशैः योजनात् ते पंच पंच ॥

॥६॥ पंचीकरणनिरूपण॥१४२–१६५॥

॥ १ ॥ पंचीकरणका प्रयोजन ॥

४२ ऐसे लिंगशरीरकूं औ तिस उपाधिवाले तैजसहिरण्यगर्भ दोनूंकूं दिखाइके । स्थूलशरीरआदि (ब्रह्मांडादि)ककी उत्पत्तिकी सिद्धिअर्थ पंचीकरणके निरूपण करनेकूं कहैहैं:—

४३] भगवान् तिन जीवनके भोगवास्ते भोग्य औ भोगायतनकी उत्पत्तिअर्थ प्रत्येक आकाशआदिककूं पांचप्रकार करैहै ॥

४४) भगवान् कहिये ऐश्वर्य्यआदिकषट्[१०]गुणकरि संपन्न परमेश्वर सो फेर वी तिन जीवनके भोग कहिये सुखदुःखसाक्षात्कार—ताके वास्ते अन्नपानादिरूप भोग्यके औ जरायुजअंडजआदि चारिप्रकारके शरीरकी जातिरूप भोगस्थानकी उत्पत्तिअर्थ आकाशआदिकपांचभूत हैं तिन एकएककूं पांचपांचप्रकार करैहै ॥ नहीं जो पांचरूप सो पांचरूप होवै तैसे करैहै ॥ एकएकभूतकूं पांचपांचप्रकार करनेकूंहीं पंचीकरण कहैहैं ॥ २६ ॥

॥ २ ॥ पंचीकरणका आकार ॥

४५ ननु एकएकभूतका पांचपना कैसैं होवैहै? तहां कहैहैं:—

४६] एकएक भूतकूं दोप्रकार विभाग करिके फेर प्रथम (एक)भागकूं चारिप्रकार करिके तिनकूं अपने अपनेतैं औरभूतनके दूसरे स्थूलअंशनके साथि जोडनेतैं वे भूत पांचपांच होवैहैं॥

१० संपूर्णऐश्वर्य्य (विभूति) संपूर्णधर्म संपूर्णयश संपूर्णलक्ष्मी संपूर्णज्ञान औ संपूर्णवैराग्य । इन षट्गुणनकूं भग कहैहैं । तिसवाला भगवान् है ॥

टीकांक: १४७ टिप्पणांक: ११	तैरंडस्तत्र भुवनभोग्यभोगाश्रयोद्भवः । हिरण्यगर्भः स्थूलेऽस्मिन्देहे वैश्वानरो भवेत् २८	प्रत्यक्तत्त्वविवेक॥ १ ॥ श्लोकांक: २८

४७) वियदादिकं एकैकं द्विधा द्विधा । तंत्रेणोच्चारितो द्विधाशब्दः । विधाय कृत्वा भागद्वयोपेतं कृत्वेत्यर्थः । पुनः च पुनरपि प्रथमं प्रथमं भागं । चतुर्धा भागचतुष्टयोपेतं विधायेत्यनुषज्यते । स्वस्वेतरद्वितीयांशैः स्वस्मात्स्वस्मादितरेषां चतुर्णां चतुर्णां भूतानां यो यो द्वितीयः स्थूलो भागस्तेन तेन सह प्रथमप्रथमभागांशानां चतुर्णां चतुर्णां मध्ये एकैकस्य योजनात् ते वियदादयः प्रत्येकं पंचपंचात्मका भवंति ॥ २७ ॥

४८ एवं पंचीकरणमभिधाय तैर्भूतैरुत्पाद्यं कार्यवर्गं दर्शयति—

४९] तैः अंडः । तत्र भुवनभोग्यभोगाश्रयोद्भवः ॥

५०) तैः पंचीकृतैर्भूतैरुपादानकारणभूतैः। अंडः ब्रह्मांडः उत्पद्यते । तत्र ब्रह्मांडांतः । भुवनानि उपरिभागे वर्तमाना भूम्यादयः सप्त लोकाः । भूमेरधः स्थितान्यतलादीनि सप्त पातालांतानि । तेषु च भुवनेषु तैस्तैः प्राणिभिर्भोक्तुं योग्यान्यन्नादीनि । तत्तल्लोकोचितशरीराणि च तैरेव पंचीकृतैर्भूतैरीश्वराज्ञया जायंते ॥

५१ एवं स्थूलशरीरोत्पत्तिमभिधाय । तेषु स्थूलशरीरेषु अभिमानवतो हिरण्यगर्भस्य स-

---

४७) एकएक आकाशादिभूतनकूं दोप्रकार[11] विभागकरिके कहिये दोभागयुक्त करिके फेर वी प्रथमप्रथमभागकूं चारिभागयुक्त करिके आपआपतैं औरचारिभूतनका जो जो दूसरादूसरास्थूलभाग है तिसतिसके साथि प्रथमप्रथमभागनके चारिचारिअंशनके वीचमैंसैं एकएकअंशके मिलावनैतैं । आकाशादिएकएक पांचपांचरूप होवैहै ॥ इहां प्रथम चारि औ द्वितीयशब्दनकी वी द्विधाशब्दकी न्याईं आवृत्ति जाननी ॥ २७ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मांडादिककी उत्पत्ति औ वैश्वानरका कथन ॥

४८ इसरीतिसैं पंचीकरणकूं कहिके तिन भूतनसैं उत्पत्ति करनेकूं योग्य कार्यके समूहकूं दिखावैहैं:—

४९] तिन भूतनसैं ब्रह्मांड होवैहै ॥ तिस ब्रह्मांडविषै भुवनभोग्य औ भोगके आश्रयका उद्भव होवैहै ॥

५०) उपादानकारणरूप पंचीकृतभूतनकरि ब्रह्मांड उत्पन्न होवैहै ॥ तिस ब्रह्मांडके भीतर ऊपरके भागविषै वर्तमानपृथिवीआदिकसप्तभुवन हैं। पृथिवीके नीचे सप्तअतलआदिकपातालरूप भुवन हैं ॥ तिन चतुर्दशभुवनविषै तिन तिन प्राणीनकरि भोगने योग्य अन्नादिक औ तिस तिस लोक (भुवन)के योग्य शरीर तिन पंचीकृतभूतनसैंहीं ईश्वरकी आज्ञा (इच्छा)सैं उत्पन्न होवैहैं ॥

५१ ऐसे स्थूलदेहकी उत्पत्तिकूं कहिके तिन स्थूलशरीरनविषै अभिमानी समष्टिरूप हिरण्यगर्भकूं वैश्वानरनामवानता औ एकएक-

---

११ मूलश्लोकविषै जो दोप्रकार इस अर्थवाला द्विधाशब्द है सो तंत्रसैं एकवार उच्चारण कियाहै । यातैं दोप्रकार दोप्रकार इसरीतिसैं द्विधाशब्दकी आवृत्तिका बोधक है ॥ एकवार उच्चारण कियाहोवै औ अनेकअर्थका बोधक होवै सो तंत्र कहियेहै ॥ १२ लोक ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः॥१॥ श्लोकांकः २९ | टीकांकः १५२ | टिप्पणांकः ११३

तैजसा[५४] विश्वतां याता देवतिर्यङ्नरादयः[५७] ।
ते पराग्दर्शिनः[५९] प्रत्यक्तत्त्वबोधविवर्जिताः[६२] ॥ २९ ॥

मष्टिरूपस्य वैश्वानरसंज्ञकत्वं एकैकस्थूलशरीराभिमानवतां व्यष्टिरूपाणां तैजसानां विश्वसंज्ञकत्वं च भवतीत्याह (हिरण्यगर्भ इति)—

५२] अस्मिन् स्थूले देहे हिरण्यगर्भः वैश्वानरः भवेत् ॥

५३) अस्मिन् स्थूले देहे वर्तमानः हिरण्यगर्भः वैश्वानरः भवेत् ॥ २८ ॥

५४] तैजसा विश्वतां याताः ॥

५५) तत्रैव वर्तमानाः तैजसा विश्वा भवंति ॥

५६ तेषामवांतरभेदमाह—

५७] देवतिर्यङ्नरादयः ॥

५८ इदानीं तेषां विश्वसंज्ञां प्राप्तानां जीवानां तत्त्वज्ञानरहितत्वेन संसारापत्तिप्रकारं सदृष्टांतं श्लोकद्वयेनाह—

५९] ते पराग्दर्शिनः ॥

६०) ते देवादयः। पराग्दर्शिनः बाह्यानेव शब्दादीन् पश्यंति न तु प्रत्यगात्मानं। "परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नांतरात्मन्" इति श्रुतेः ॥

६१ ननु तार्किकादयो देहव्यतिरिक्तमात्मानं जानंतीत्याशंक्य यद्यप्यात्मानं ते जानंति।

स्थूलशरीरके अभिमानी व्यष्टिरूप तैजसजीवनकूं विश्वनामवान्ता होवैहै ॥ यह श्लोक दोके अर्धनसैं कहैहैं:—

५२] इस समष्टिस्थूलदेहविषै हिरण्यगर्भ वैश्वानर होवैहै ॥

५३) इस ब्रह्मांडरूप स्थूलदेहविषै वर्तमान जो हिरण्यगर्भ है सो वैश्वानर[१३] होवैहै॥२८

॥ ४ ॥ विश्वकूं संसारकी प्राप्ती ॥

५४] तैजसजीव इन व्यष्टिस्थूलदेहविषै विश्वताकूं पावैहैं ॥

५५) तिस एकएकस्थूलशरीरविषै वर्तमान तैजसजीव विश्व[१४]नामवाले होवैहैं ॥

५६ तिन विश्वजीवनके अवांतरभेदकूं कहैहैं:—

५७] औ देव तिर्यक (पशुपक्षी) नरआदिक होवैहैं ॥

५८ अब विश्वसंज्ञाकूं प्राप्त जे जीव हैं तिनकूं तत्त्वज्ञानसैं रहित होनेकरि संसारप्राप्तिके प्रकारकूं दृष्टांतसहित अर्धसहित एकश्लोकसैं कहैहैं:—

५९] वे देवादिक बाह्यदर्शी हैं ॥

६०) वे देवादिकजीव बाह्यशब्दादिविषयनकूंहीं देखतेहैं औ प्रत्यक्आत्माकूं नहीं देखतेहैं ॥ "स्वयंभू (परमात्मा) इंद्रियनकूं बहिर्मुख रचताभया। तातैं पुरुष बाह्यवस्तुनकूं देखताहै अंतरआत्माकूं नहीं" इस श्रुतितैं॥

६१ ननु। नैयायिकआदिकजीव तौ देहतैं भिन्न आत्माकूं जानैहैं। यह आशंकाकरि

---

१३ सर्वनरका अभिमानी होनेतैं कहिये सर्वप्राणिनके समूहमैं "अहं" कहिये "मैं" इस अभिमानवान् होनेतैं ईश्वर वैश्वानर कहियेहै ॥ औ सो वैश्वानरहीं त्रिविधप्रकारसैं राजमान (प्रकाशमान) होनेतैं विराट् बी कहावैहै ॥

१४ सूक्ष्मदेहके अभिमानकूं न त्यागिके तिस तिस स्थूलशरीरविषै "अहं" इस अभिमानवाला जाग्रतअभिमानीजीव विश्व कहियेहै ॥

टीकांक: १६२ टिप्पणांक: ११५	कुर्वते कर्म भोगाय कर्म कर्तुं च भुंजते । नद्यां कीटा इवावर्तादावर्तांतरमाशु ते । व्रजंतो जन्मनो जन्म लभंते नैव निर्वृतिम् ॥३०॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ३०

तथापि श्रुतिसिद्धं तत्त्वं न जानंतीत्याशयेनोक्तमित्याह—

६२] प्रत्यक्तत्त्वबोधविवर्जिताः ॥

६३) ते जीवाः साक्षिरूपात्मनो ज्ञानाभावात् पराग्दर्शिनः स्युः ॥ २९ ॥

६४] (कुर्वत इति)—भोगाय कर्म कुर्वते कर्म कर्तुं भुंजते च ते नद्यां आवर्तात् आवर्तांतरम् आशु कीटाः इव जन्मनः जन्म व्रजंतः निर्वृतिं नैव लभंते ॥

६५) अत एव भोगाय सुखाद्यनुभवाय । मनुष्यादिशरीराण्यधिष्ठाय कर्म तत्तच्छरीरोचितानि कर्माणि कुर्वते । जातावेकवचनं । पुनश्च कर्म कर्तुं देवादिशरीरैस्तत्तत्फलं भुंजते च । फलानुभवाभावे तत्तत्सजातीयेच्छानुपपत्त्या तत्तत्साधनानुष्ठानानुपपत्तेः । एवं वर्तमानाः ते जीवाः नदी—प्रवाहपतिताः कीटाश्चावर्तादावर्तांतरमाशु व्रजंतो यथा निर्वृतिम् सुखं न लभंते एवमाशु जन्मनो जन्म व्रजंतः सुखं नैव लभंते इति ॥ ३० ॥

यद्यपि आत्माकूं वे नैयायिकादि देहतैं भिन्न जानतेहैं तथापि श्रुतिकरि सिद्ध तत्त्व जो शुद्धआत्मस्वरूप ताकूं नहीं जानतेहैं तातैं वे बहिर्मुखहींहैं इस अभिप्रायसैं कहै हैं:—

६२] प्रत्यक्तत्त्वके बोधतैं रहित हैं॥

६३) वे जीव साक्षीरूप आत्माके ज्ञानके अभावतैं बाह्यदर्शी हैं ॥ २९ ॥

६४] वे जीव भोगअर्थ कर्मकूं[15] करतेहैं औ कर्म करनेकूं[17] भोगतेहैं । औ नदीविषै आवर्त्ततैं[16] औरआवर्त्तकूं तत्काल पावतेहुये कीट(पक्षी)नकी न्याँई जन्मतैं जन्मकूं पावतेहुये निवृत्ति(सुख)कूं पावते नहीं ॥

६५) वे जीव प्रत्यक्तत्त्वके बोधके अभावतैं । सुखादिकके अनुभवरूप भोगके अर्थ मनुष्यआदिशरीरनकूं आश्रयकरि तिसतिस शरीरके योग्य कर्मकूं करैहैं औ कर्म करनेकूं देवादिकशरीरनसैं तिसतिस फलकूं भोगतेहैं । फलअनुभवके अभाव हुये । तिस तिस फलके सजातीयसुखकी इच्छाके असंभवकरि तिसतिस साधनके अनुष्ठानके असंभवतें ॥ जैसैं नदीके प्रवाहविषै पडे कीट भ्रमणतें औरभ्रमणकूं तत्काल पावतेहुये सुखकूं नहीं पावैहैं ऐसें संसारविषै वर्तमान जीव बी तत्काल जन्मतैं औरजन्मकूं पावतेहुये सुखकूं नहीं पावैहैं ॥ ३० ॥

[15] मूलविषै जो कर्मशब्दका एकवचन है सो जातिके अभिप्रायसैं है ॥ अजहत्लक्षणासैं एकके कहनेकरि जातिका ग्रहण होवैहै ॥   [16] भ्रमणतैं ॥

[17] दर्शनस्पर्शनआदिक्रियासैं विना प्रारब्धकर्मके फलका भोग बनै नहीं यातैं प्रारब्धकी प्रेरणासैं जीव । भोगके साधन धनादिअर्थ वा भोगअर्थ क्रिया करैहैं ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक:		टीकांक:
३१	[६७]सत्कर्मपरिपाकात्ते करुणानिधिनोद्धृताः । प्राप्य तीरतरुच्छायां विश्राम्यंति यथासुखम् ३१	१६६
३२	[७०]उपदेशमवाप्यैवमाचार्यात्तत्त्वदर्शिनः । पंचकोशविवेकेन लभंते निर्वृतिं पराम् ॥ ३२ ॥	टिप्पणांक: ११८

६६ एवं संसारापत्तिमभिधाय तन्निवृत्त्युपायं दर्शयितुं दृष्टांतं तावदाह (सत्कर्मेति)

६७] **ते सत्कर्मपरिपाकात् करुणानिधिना उद्धृताः तीरतरुच्छायां प्राप्य सुखं यथा विश्राम्यंति ॥**

६८) ते कीटाः **सत्कर्मपरिपाकात्** पूर्वोपार्जितपुण्यकर्मपरिपाकात् कृपालुना केनचित् पुरुषविशेषेण **उद्धृता** नदीप्रवाहाद्बहिर्निःसारिताः संतः **तीरतरुच्छायां प्राप्य सुखं यथा** भवति तथा यद्वत् **विश्राम्यंति** ॥ ३१ ॥

६९) इदानीं दृष्टांतसिद्धमर्थं दार्ष्टांतिके योजयति (उपदेशमिति)—

७०] **एवं तत्त्वदर्शिनः आचार्यात् उपदेशं अवाप्य पंचकोशविवेकेन परां निर्वृतिं लभंते ॥**

७१) एवं उक्तेन प्रकारेण पूर्वोपार्जितपुण्यकर्मपरिपाकवशादेव **तत्त्वदर्शिनः** प्रत्यगभिन्नब्रह्मसाक्षात्कारवतः । **आचार्यात्** गुरोः सकाशात् । **उपदेशं** तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थज्ञानसाधनं श्रवणं वक्ष्यमाणं **अवाप्य** संपाद्य **पंचकोशविवेकेन** अन्नादीनां पंचानां कोशानां विवेकेन वक्ष्यमाणविवेचनेन । **परां निर्वृतिम्** मोक्षसुखं । **लभंते** प्राप्नुवंति ॥३२॥

॥ ७ ॥ विश्वजीवकूं संसारनिवृत्तिका प्रकार ॥ १६६—१७१ ॥

॥ १ ॥ कीटके दृष्टांतमैं दुःखनिवृत्तिका उपाय ॥

६६ इसरीतिसैं जीवनकूं संसारप्राप्ति कहिके तिस संसारकी निवृत्तिके उपायके दिखावनेकूं प्रथम दृष्टांत कहैहैं:—

६७] **वे कीट सत्कर्मके परिपाकतैं । करुणानिधिपुरुषसैं उद्धारकूं पायेहुये तीरके तरुकी छायाकूं पायके जैसैं सुख होवै तैसैं विश्रांतिकूं पावैहैं ॥**

६८) वे कीट पूर्वजन्ममैं संपादन किये कर्मनकी परिपाकतातैं । कृपालु कोइक सत्पुरुषसैं नदीके प्रवाहतैं बाहरि निकासेहुये तीरमैं स्थित वृक्षकी छायाकूं पायके जैसैं सुख होवै तैसैं विश्रामकूं पावैहैं ॥ ३१ ॥

॥ २ ॥ कीटदृष्टांतके अर्थकी विश्वदार्ष्टांतमैं योजना ॥

६९ अब कीटरूप दृष्टांतमैं सिद्ध अर्थकूं सिद्धांतविषै जोडतेहैं:—

७०] **ऐसैं जीव । तत्त्ववेत्ता आचार्यतैं उपदेशकूं पायके पंचकोशनके विवेकतैं परमसुखकूं पावैहैं ॥**

७१) ऐसैं कीटविषै कथन किये प्रकारसैं वे जीव बी पूर्व उत्पादन किये पुण्यकर्मके परिपाकके वशतैंहीं प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मतत्त्वके साक्षात्कारवान्‌गुरुतैं । "तत्त्वमसि" आदिमहावाक्यके ब्रह्मात्माकी एकतारूप अर्थके संबंधी ज्ञानके साधन श्रवणरूप उपदेश जो आगे कहियेगा तिसकूं संपादन करिके अन्नमयादिपंचकोशनके वक्ष्यमाणविवेचनसैं परमनिर्वृतिकूं कहिये मोक्षसुखकूं पावैहैं ॥ ३२ ॥

१८ निरतिशय ॥

१९ अंक २४६ विषे देखो ॥

टीकांक: १७२ टिप्पणांक: १२०	अन्नं प्राणो मनो बुद्धिरानंदश्चेति पंच ते । कोशास्तैरावृतः स्वात्मा विस्मृत्या संसृतिं व्रजेत् ३३ स्यात्पंचीकृतभूतोत्थो देहः स्थूलोऽन्नसंज्ञकः । लिंगे तु राजसैः प्राणैः प्राणः कर्मेंद्रियैः सह ॥३४॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ३३ ३४

७२ के तेऽन्नादयः पंचकोशा इत्याकांक्षायां तानुपदिशति—

७३] अन्नं प्राणः मनः बुद्धिः आनंदः च इति ते पंच कोशाः ॥

७४) अन्नं प्राणो मनो बुद्धिरानंदश्चेति पंच कोशाः । बुद्धिर्विज्ञानं ॥

७५) तेषामन्नादीनां कोशशब्दाभिधेयत्वे कारणमाह—

७६] तैः आवृतः स्वात्मा विस्मृत्या संसृतिं व्रजेत् ॥

७७) तैः कोशैः । आवृतः आच्छादितः । स्वात्मा स्वरूपभूतात्मा विस्मृत्या स्वस्वरूपविस्मरणेन । संसृतिं जननादिप्राप्तिरूपं संसारं व्रजेत् ॥ स्पष्टं ॥ कोशो यथा कोशकारकृमेरावरकत्वेन क्लेशहेतुरेवमन्नादयोऽप्यद्वयानंदत्वाद्यावरकत्वेनात्मनः क्लेशहेतुत्वात्कोशा इत्युच्यंते इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

७८ तेषां कोशानां स्वरूपाणि क्रमेण व्युत्पादयति (स्यादिति)—

॥८॥ पंचकोश निरूपण ॥१७२–१८७॥

॥ १ ॥ हेतुसहित पंचकोशके नाम ॥

७२ ननु वे अन्नमयादिपंचकोश कौन हैं? इस आकांक्षाके हुये तिन पंचकोशनकूं कहैहैं:—

७३]अन्नमय । प्राणमय । मनोमय । विज्ञानमय । आनंदमय । ये पंचकोश हैं ।

७४) अन्नमयसैं आदिलेके आनंदमयपर्यंत पंचकोश हैं ॥

७५ तिन अन्नादिकनकूं कोशशब्दकी वाच्यताविषै कारणकूं कहैहैं:—

७६] तिन कोशनकरि आवरणकूं पायाहुआ आत्मा विस्मृतिकरि संसारकूं पावैहै ॥

७७) तिन अन्नादिकोशनकरि ढांप्या हुआ स्वरूपभूत आत्मा है सो स्वस्वरूपके विस्मरणकरि जन्मादिककी प्राप्तिरूप संसारकूं पावैहै ॥ कोशै । जैसैं कोशकार इस नामवाले कीडेका आवरक होनेकरि क्लेशका हेतु है । ऐसैं अन्नमयादिक बी अद्वयत्वआनंदत्वआदिक जे आत्माके विशेषण हैं तिनके आवरक होनेकरि आत्माकूं क्लेशके हेतु होनेतैं "कोश" ऐसैं कहियेहैं ॥ यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

॥ २ ॥ अन्नमय औ प्राणमयकोशका स्वरूप ॥

७८ तिन कोशनके स्वरूपकूं क्रमसैं अर्द्धसहितदोश्लोककरि कहैहैं:—

२० भोगायतनरूप है ॥ २१ क्रियाशक्तिमान् कार्यरूप है ॥ २२ इच्छाशक्तिमान् कारणरूप है ॥ २३ ज्ञानशक्तिमान् कर्त्तारूप है ॥ २४ भोक्तारूप है ॥

२५ कंटकादिकसैं रचित किसी कीडेका गृह ॥

२६ आत्माके सत्ता चेतनता आनंदरूपता औ अद्वयता । ये चारिविशेषण हैं । औ देहादिकके असत्ता जडता दुःखरूपता औ सद्वयता (द्वैतसहितता) ये चारिविशेषण हैं ॥ तिनमें आत्माकी सत्ता चेतनताने देहादिककी असत्ता (मिथ्यात्व) औ जडता आच्छादी है तातैं देहादिक सत् औ चेतनकी न्यांई प्रतीत होवैहैं ॥ औ देहादिककी दुःखरूपता औ सद्वयताने । आत्माकी आनंदरूपता औ अद्वयता (द्वैतरहितता) आच्छादी है तातैं आत्मा दुःखी औ द्वैतसहित प्रतीत होवैहै ॥ औ इन दोविशेषणके आवरणसैं औरपूर्णता औ नित्यमुक्तताआदिकविशेषणका आवरण बी सिद्ध होवैहै ॥ इसरीतिसैं आत्माका औ पंचकोशनका परस्पर अध्यास है । यातैं मुमुक्षुनकूं आत्माका औ पंचकोशनका विवेचन अवश्य करनेकूं योग्य है ॥ इति ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः		टीकांकः
३५	³सात्विकैर्धींद्रियैः साकं विमर्शात्मा मनोमयः । तैरेव साकं विज्ञानमयो धीर्निश्चयात्मिका ॥ ३५ ॥	१७९
३६	⁴कारणे सत्वमानंदमयो मोदादिवृत्तिभिः । ⁵तत्तत्कोशैस्तु तादात्म्यादात्मा तत्तन्मयो भवेत् ३६	टिप्पणांकः ॐ

७९] पंचीकृतभूतोत्थः स्थूलः देहः अन्नसंज्ञकः । प्राणः तु लिंगे राजसैः प्राणैः कर्मेंद्रियैः सह स्यात् ॥

८०) स्यात्पंचीकृतेत्यादिना मोदादिवृत्तिभिरित्यंतेन सार्धश्लोकद्वयेन ॥ पंचीकृतेभ्यो भूतेभ्य उत्पन्नः स्थूलो देहोऽन्नसंज्ञकः अन्नमयशब्दितः कोशः स्यात् । प्राणस्तु प्राणमयकोशस्तु लिंगशरीरे वर्तमानैः राजसैः रजोगुणकार्यभूतैः । प्राणैः प्राणापानादिभिर्वायुभिः । पंचभिर्वागादिभिः कर्मेंद्रियैः सह दशभिः स्यात् ॥ ३४ ॥

८१] (सात्विकैरिति)-विमर्शात्मा सात्विकैः धींद्रियैः साकं मनोमयः । निश्चयात्मिका धीः तैः एव साकं विज्ञानमयः ॥

८२) विमर्शात्मा संशयात्मकं । पंचभूतसत्वकार्यं यन्मनः उक्तं । तत् सात्विकैः प्रत्येकं भूतसत्वकार्यभूतैः धींद्रियैः श्रोत्रादिभिः पंचभिर्ज्ञानेंद्रियैः । साकं सहितं । मनोमयः कोशः स्यादिति पूर्वेण संबंधः ॥ निश्चयात्मिका धीः तेषामेव सत्वकार्यरूपा बुद्धिः । तैरेव पूर्वोक्तैर्ज्ञानेंद्रियैरेव । साकं सहिता सती । विज्ञानमयः विज्ञानमयाख्यः कोशः स्यात् ॥ ३५ ॥

८३] कारणे सत्वं मोदादिवृत्तिभिः आनंदमयः ॥

७९] पंचीकृतभूतनतैं उत्पन्न जो स्थूलदेह है सो अन्नसंज्ञक होवैहै औ लिंगशरीरविषै वर्त्तमानराजस पंच-प्राण कर्मेंद्रियसहित प्राणमयकोश होवैहै ॥

८०) पंचीकृतभूतनतैं उत्पन्न जो स्थूलदेह है सो अन्नसंज्ञक है । कहिये अन्नमयशब्दसैं कहावैहै । ऐसा कोश होवैहै ॥ लिंगशरीरविषै वर्त्तमान औ रजोगुणके कार्यरूप प्राणअपानआदिकपंचवायु हैं औ वाक्‌सैं आदिलेके पंचकर्मेंद्रिय हैं वे दशतत्त्व मिलिके प्राणमयकोश होवैहै ॥ ३४ ॥

॥ ३ ॥ मनोमय औ विज्ञानमयकोशका स्वरूप ॥

८१] विमर्शात्मा जो मन । सो सत्वगुणके कार्य ज्ञानेंद्रियसहित मनोमय होवैहै औ निश्चयरूप बुद्धि तिसीहीं ज्ञानेंद्रियसहित विज्ञानमय होवैहै ॥

८२) विमर्शात्मा कहिये संशयरूप अरु पंचभूतनके सत्वअंशनका कार्य जो मन कह्याहै सो मन एकएकभूतके सत्वगुणअंशके कार्यरूप जे श्रोत्रादिकपंचइंद्रिय हैं तिनके साथि मिलिके मनोमयकोश होवैहै ॥ निश्चयरूप अरु तिन भूतनके सत्वगुणके अंशकी कार्यरूप जो बुद्धि है सो पूर्वउक्तपंचज्ञानेंद्रियसहित हुई विज्ञानमय नाम कोश होवैहै ॥ ३५ ॥

॥ ४ ॥ आनंदमयका स्वरूप औ आत्माकूं कोशनकी वाच्यतामें कारण ॥

८३] कारणशरीरविषै जो सत्व है सो मोदादिवृत्तिसहित आनंदमय होवैहै ॥

टीकांक: १८४ टिप्पणांक: १२७	अन्वयव्यतिरेकाभ्यां पंचकोशविवेकतः । स्वात्मानं तत उद्धृत्य परं ब्रह्म प्रपद्यते ॥ ३७ ॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ३७

८४) कारणे कारणशरीरभूतायामविद्यायां । यन्मलिनसत्त्वं अस्ति । तत् मोदादिवृत्तिभिः प्रियमोदप्रमोदाख्यैरिष्टदर्शनलाभभोगजन्यैः सुखविशेषैः । सहितम् आनंदमय आनंदमयाख्यः कोशः स्यादिति ॥

८५ ननु स्थूलशरीरादीनामन्नमयादिशब्दवाच्यत्वे "स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय" इत्युपक्रम्य "तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽतर आत्मा प्राणमयोऽन्योऽतर आत्मा मनोमय" इत्यादि श्रुतत्वादात्मनोऽन्नमयादिशब्दवाच्यत्वं कथमुच्यते । इत्याशंक्य । देहादीनामन्नादिविकारत्वेनान्नमयादिशब्दवाच्यत्वमात्मनस्तु तेन तेन कोशेन तादात्म्याभिमानादित्याह (तत्तदिति)—

८६] आत्मा तु तत्तत्कोशैः तादात्म्यात् तत्तन्मयः भवेत् ॥

८७) आत्मा प्रत्यगात्मा । तत्तत्कोशैः तेन तेन कोशेन सह । तादात्म्यात् तादात्म्याभिमानात् । तत्तन्मयः तत्तत्कोशमयः स्यात् । व्यवहारकालेऽन्नमयादिकोशप्राधान्यादन्नमयादिशब्दवाच्य इत्यर्थः ॥ तु शब्दश्चात्मनः कोशेभ्यो वैलक्षण्यद्योतनार्थः ॥ ३६ ॥

८८ कथं तर्हि एवंविधस्यात्मनो ब्रह्मत्वं

८४) कारणशरीररूप अविद्याविषै जो मलिनसत्त्वगुण है सो प्रियमोदप्रमोदनामवाले क्रमतैं इष्ट जो प्रियवस्तु ताके दर्शनलाभभोगसैं जन्य जे सुखके भेद हैं तिनसहित आनंदमय नाम कोश होवैहै ॥

८५ ननु स्थूलशरीरआदिककूं अन्नमयआदिकशब्दकी वाच्यता हुये "सो यह पुरुष अन्नरसमय है" ऐसैं श्रुतिविषै आरंभकरि "तिस वा इस अन्नरसमयतैं अन्य अंतर–आत्मा प्राणमय है ॥ अन्यअंतरआत्मा मनोमय है ॥" इत्यादिवचनोंकरि आत्माकूं अन्नमयादिशब्दकी वाच्यता तुमकरि कैसैं कहियेहै? यह आशंकाकरि देहादिककूं अन्नादिकके विकार होनेकरि अन्नमयादिशब्दकी वाच्यता है ॥ आत्माकूं तौ तिस तिस कोशके साथि अभेदअध्यासतैं उक्तश्रुतिविषै[२७] अन्नमयादिशब्दकी वाच्यता है ऐसैं कहैहैं:—

८६] आत्मा तौ[२८] तिस तिस कोशनके साथि तादात्म्यतैं तिस तिस कोशमय होवैहै ॥

८७) प्रत्यगात्मा । तिस तिस अन्नमयादिकोशके साथि तादात्म्यअभिमानतैं तिस तिस कोशरूप होवैहै ॥ अर्थ यह जो व्यवहारकालविषै अन्नमयादिकोशनकी मुख्यतातैं अन्नमयादिशब्दका वाच्य होवैहै ॥ ३६ ॥

॥ ९ ॥ अन्वयव्यतिरेककरि आत्माकूं ब्रह्मरूप होना ॥ १८८–२०८ ॥

॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकका फल ॥

८८ ननु तव इस प्रकारके तिस तिस

२७ वेदके ब्राह्मणभागमैं उक्त ॥

२८ मूलश्लोकविषै जो "तौ" अर्थवाला "तु" शब्द है सो आत्माकी कोशनतैं विलक्षणताके जनावने अर्थ है ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ३८

अभाने स्थूलदेहस्य स्वप्ने यद्भानमात्मनः।
सोऽन्वयो व्यतिरेकस्तद्भानेऽन्याननवभासनम् ३८

टीकांकः १८९ टिप्पणांकः १२९

भवतीत्याशंक्य । कोशेभ्यो विवेचनाद्भवतीत्याह—

८९] अन्वयव्यतिरेकाभ्यां पंचकोशविवेकतः स्वात्मानं तत उद्धृत्य परं ब्रह्म प्रपद्यते ॥

९०) अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वक्ष्यमाणाभ्यां पंचकोशविवेकतः पंचानां कोशानामन्नमयादीनां विवेकतः प्रत्यगात्मनो विवेचनेन पृथक्करणेन । यद्वा पंचकोशेभ्योऽन्नमयादिभ्यः आत्मनः पृथक्करणेन । स्वात्मानं प्रत्यगात्मानं । ततः तेभ्यः कोशेभ्यः । उद्धृत्य बुध्या निष्कृष्य चिदानंदस्वरूपं निश्चित्य । परं ब्रह्म पूर्वोक्तलक्षणं प्रपद्यते प्राप्नोति ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

९१ इदानीं विवक्षितान्वयव्यतिरेकौ दर्शयति (अभान इति)—

९२] स्वप्ने स्थूलदेहस्य अभाने आत्मनः यत् भानम् सः अन्वयः । तद्भाने अन्याननवभासनम् व्यतिरेकः ॥

९३) स्वप्ने स्वप्नावस्थायां । स्थूलदेहस्य अन्नमयकोशस्य । अभाने अप्रतीतौ सत्यां । आत्मनः प्रतीचो यद्भानं स्वप्नसाक्षित्वेन यत्स्फुरणमस्ति । सः आत्मनः अन्वयः । तस्यामेव स्वप्नावस्थायां । तद्भाने तस्यात्मनः स्फुरणे सति । अन्याननवभासनं अन्यस्य स्थूलदेहस्यानवभासनमप्रतीतिः व्यतिरेकः

कोशरूप आत्माका ब्रह्मभाव कैसें होवैहै? यह आशंकाकरि कोशनतैं विवेचन कियेतैं सो ब्रह्मभाव होवैहै ऐसैं कहैहैं:—

८९] अन्वयव्यतिरेककरि पंचकोशनके विवेकतें आत्मा कहिये आपकूं तिन कोशनतैं निकासिके आत्मा परब्रह्मकूं पावैहै ॥

९०) वक्ष्यमाण जे अन्वयव्यतिरेक हैं तिनकरि पंचकोशनका प्रत्यगात्मातैं विवेचनकरि अथवा अन्नमयादिपंचकोशनतैं आत्माके पृथक् करनेकरि। प्रत्यक्आत्माकूं कहिये अपने आपकूं तिन कोशनतैं बुद्धिसूं निकासिके तिस आत्माका चिदानंदस्वरूप निश्चयकरिके अधिकारी पूर्वउक्त-लक्षणवाले ब्रह्मकूं पावैहै कहिये ब्रह्महीं होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ३७ ॥

॥ २ ॥ स्वप्नविषै आत्माका अन्वय औ स्थूलदेहका व्यतिरेक ॥

९१ अब कहनेकूं इच्छित अन्वयव्यतिरेककूं दिखावैहैं:—

९२] स्वप्नविषै स्थूलदेहके अभान हुये आत्माका जो भान है सो अन्वय है ॥ औ तिस आत्माके भान हुए जो देहका अभान है सो व्यतिरेक है ॥

९३) स्वप्नअवस्थाविषै अन्नमयकोशरूप स्थूलदेहकी अप्रतीतिके हुए साक्षीआत्माका जो स्वप्नका साक्षी होनेकरि स्फुरण है सो आत्माका अन्वय है औ तिसहीं स्वप्नअवस्थाविषै तिस आत्माके स्फुरण हुए स्थूलदेहकी जो अप्रतीति है सो स्थूलदेहका व्यतिरेक है ॥

२९ देखो श्लोक ३८–४२ पर्यंत ॥

३० देखो श्लोक १०–१५ विषे ॥

टीकांक: १९४ टिप्पणांक: १२१	लिंगाभाने सुषुप्तौ स्यादात्मनो भानमन्वयः । व्यतिरेकस्तु तद्भाने लिंगस्याभानमुच्यते ॥३९॥ तद्विवेकाद्विविक्ताः स्युः कोशाः प्राणमनोधियः । ते हि तत्र गुणावस्थाभेदमात्रात्पृथक्कृताः ॥४०॥	प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ३९ ४०

स्थूलदेहस्येति शेषः ॥ अस्मिन्प्रकरणेऽन्वयव्यतिरेकशब्दाभ्यामनुवृत्तिव्यावृत्ती उच्येते॥३८॥

९४ एवं स्थूलदेहस्यानात्मत्वावबोधकान्वयव्यतिरेकौ दर्शयित्वा । लिंगदेहस्य तथात्वावगमकौ तौ दर्शयति (लिंगेति)—

९५] **सुषुप्तौ लिंगाभाने आत्मनः भानम् अन्वयः स्यात् । तद्भाने लिंगस्य अभानं तु व्यतिरेकः उच्यते ॥**

९६) **सुषुप्तौ** सुषुप्त्यवस्थायां । **लिंगाभाने** लिंगस्य सूक्ष्मदेहस्याभानेऽप्रतीतौ । **आत्मनो भानं** तदवस्थासाक्षित्वेन स्फुरणम् । आत्मनः **अन्वयः स्यात्** । **तद्भाने** आत्मभाने । **लिंगस्याभानं** लिंगदेहस्यास्फुरणं । **व्यतिरेक उच्यते** ॥ ३९ ॥

९७ ननु पंचकोशविवेचनमुपक्रम्य लिंगदेहविवेचनं प्रकृतासंगतमित्याशंक्य । प्राणमयादिकोशत्रितयस्य तत्रैवांतर्भावान्न प्रकृतासंगतिरित्याह—

९८] **तद्विवेकात् प्राणमनोधियः कोशाः विविक्ताः स्युः ॥**

इस प्रसंगविषै अन्वय औ व्यतिरेकशब्दकरि क्रमतैं अनुवृत्ति[31] औ व्यावृत्ति[32] कहियेहै । ऐसैं जानना ॥ ३८ ॥

॥ ३ ॥ सुषुप्तिविषै आत्माका अन्वय औ लिंगदेहका व्यतिरेक ॥

९४ इसरीतिसैं स्थूलदेहके अनात्मभावके जनावनेवाले अन्वयव्यतिरेककूं दिखायके अब लिंगदेहके अनात्मभावके अवबोधक अन्वयव्यतिरेककूं दिखावैहैं:—

९५] **सुषुप्तिविषै लिंगके अभान हुए जो आत्माका भान है सो अन्वय है । औ तिस आत्माके भान हुये लिंगका जो अभान है सो व्यतिरेक कहियेहै ॥**

९६) सुषुप्तिअवस्थाविषै सूक्ष्मदेहरूप लिंगकी अप्रतीतिके हुये आत्माका जो तिस सुषुप्तिअवस्थाका साक्षी होनेकरि स्फुरण है सो आत्माका अन्वय है औ तिस आत्माके भान हुए जो लिंगदेहका अस्फुरण है सो तिस लिंगदेहका व्यतिरेक कहियेहै ॥ ३९ ॥

॥ ४ ॥ लिंगदेहके विवेचनमैं शंका औ समाधान ॥

९७ ननु पंचकोशके विवेचनकूं आरंभकरिके लिंगदेहका विवेचन प्रसंगविषै असंगत कहिये संबंधरहित होवैहै । यह आशंकाकरि प्राणमयसैं आदिलेके तीनकोशनका तिस लिंगविषैहीं अंतर्भाव होनेतैं पंचकोशके विवेचनमैं लिंगदेहका विवेचन प्रकृतविषै असंगत नहीं है ऐसैं कहैहैं:—

९८] **तिस लिंगदेहके विवेकतैं प्राणमय मनोमय विज्ञानमय तीनकोश विवेचित होवैहैं ॥**

---

[31] अनुस्यूतता ॥ [32] भिन्नता ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ४१	सुषुप्त्यभाने भानं तु समाधावात्मनोऽन्वयः । व्यतिरेकस्त्वात्मभाने सुषुप्त्यनवभासनम् ॥४१॥	टीकांक: १९९ टिप्पणांक: १३३

९९) तद्विवेकात् तस्य लिंगशरीरस्य विवेकात् विवेचनात् । प्राणमनोधियः एतन्नामकाः कोशा विविक्ताः आत्मनः पृथक्कृताः स्युः ॥

२०० कुत इत्यत आह (ते हीति)—

१] हि ते तत्र गुणावस्थाभेदमात्रात् पृथक् कृताः ॥

२) हि यस्मात्कारणात् । ते प्राणमयादयः। तत्र तस्मिन् लिंगशरीरे । गुणावस्थाभेदमात्रात् गुणयोः सत्वरजसोरवस्थाभेदमात्राद्गुणप्रधानभावनावेस्थाविशेषादेव । पृथक्कृताः भेदेन निर्दिष्टा इत्यर्थः ॥ ४० ॥

३ इदानीमानंदमयकोशत्वेन विवक्षितस्य कारणशरीरस्य विवेचनोपायमाह (सुषुप्तीति)—

४] समाधौ सुषुप्त्यभाने आत्मनः तु भानं अन्वयः । आत्मभाने सुषुप्त्यनवभासनं तु व्यतिरेकः ॥

५) समाधौ वक्ष्यमाणलक्षणायां समाध्यवस्थायां । सुषुप्त्यभाने सुषुप्तिशब्दोपलक्षितस्य कारणदेहरूपस्याज्ञानस्याप्रतीतौ । आत्मनस्तु तु शब्दोऽवधारणे । आत्मन एव

९९) तिस लिंगशरीरके विवेचनतैं प्राणमय मनोमय औ विज्ञानमय इस नामवाले तीनकोश आत्मातैं भिन्न किये होवैहैं ॥

२०० सो लिंगके विवेकतैं तीनकोशका विवेक काहेतैं है? तहां कहैहैं:—

१] जातैं वे तीनकोश तिस लिंगविषै सत्वरज–गुणकी अवस्थाके भेदमात्रतैं पृथक् कियेहैं ॥

२) जिस कारणतैं प्राणमयादितीनकोश । तिस लिंगशरीरविषै सत्वरजगुणके गौण औ मुख्यभावकरि । जो अवस्थाका भेद है तिसतैंहीं भेदकरि कहैहैं ॥ यह अर्थ है ॥ ४० ॥

॥ ९ ॥ समाधिविषै आत्माका अन्वय औ कारणदेहका व्यतिरेक ॥

३ अब आनंदमयकोशरूपकरि कहनेकूं इच्छित कारणशरीरके विवेचनके उपायकूं कहैहैं:—

४] समाधिविषै सुषुप्तिके अभान हुये जो आत्माका भान है सो अन्वय है । औ आत्माके भान हुये जो सुषुप्तिका अभान है सो व्यतिरेक है ॥

५) आगे कहियेगा लक्षण जिसका ऐसी समाधिअवस्थाविषै । सुषुप्तिशब्दसैं उपलक्षित कारणदेहरूप अज्ञानकी अप्रतीतिके हुये जो आत्माकाहीं भान कहिये स्फुरण है सो आत्माका अन्वय है ॥ औ आत्माके भान कहिये स्फूर्तिके होते सुषुप्तिशब्दसैं उपलक्षित अज्ञानकी अप्रतीतिहीं तिस अज्ञानका व्यतिरेक है ॥ इहां यह अनुमान है:—प्रत्यक् आत्मा । अन्नमयादिकतैं भिन्न है । काहेतैं तिन कोशनकूं प-

१३३ प्राणमय केवलरजोगुणकी अवस्था है ॥ औ मनोमय कर्मेंद्रियनसैं व्यवहार करनेतैं औ इच्छादि रजोगुणकी वृत्तिकरि युक्त होनेतैं सत्वरज दोनूंकी अवस्था है ॥ औ विज्ञानमय केवलसत्वकी अवस्था है ॥ इसरीतिसैं अवस्थाके भेदतैं एकहीं लिंगदेहविषै तीनकोश भिन्न कहेहैं ॥

३४ अज्ञानके ॥ ३५ देखो २५२ अंकविषै ॥

टीकांक: २०६ टिप्पणांक: १३६	यथा मुंजादिषीकैवमात्मा युक्त्या समुद्धृतः । शरीरत्रितयाद्धीरैः परं ब्रह्मैव जायते ॥ ४२ ॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेक:॥१॥ श्लोकांक: ४२

भानं स्फुरणं यदस्ति । स आत्मनः अन्वयः। आत्मभाने आत्मनः स्फूर्तौ सत्यां । सुषुप्त्यनवभासनं सुषुप्त्युपलक्षितस्याज्ञानस्याप्रतीतिरेव व्यतिरेकः तस्येति ॥ अत्रायं प्रयोगः । प्रत्यगात्मा अन्नमयादिभ्यो भिद्यते तेषु परस्परं व्यावर्तमानेष्वपि स्वयमव्यावृत्तत्वात् । यद्येषु व्यावर्तमानेष्वपि न व्यावर्तते तत्तेभ्यो भिद्यते । यथा कुसुमेभ्यः सूत्रं । यथा वा खंडादिव्यक्तिभ्यो गोत्वमिति ॥ ४१ ॥

६ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कोशपंचकाद्विविक्तस्यात्मनो ब्रह्मप्राप्तिर्भवतीत्युक्तम् । तत्प्रतिपादिकां "अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽतरात्मा" इत्यादिकां "तं विद्याच्छुक्रममृतम्" इत्यंतां कठश्रुतिमर्थतः पठति—

७] यथा मुंजात् इषीका एवं आत्मा युक्त्या शरीरत्रितयात् धीरैः समुद्धृतः परं ब्रह्म एव जायते ॥

८) यथा येन प्रकारेण । मुंजात् एतन्नामकात्तृणविशेषात् । इषीका गर्भस्थं कोमलं तृणं । युक्त्या बहिरावरकत्वेन स्थितानां स्थूलपत्राणां विभजनलक्षणोपायेन समुद्ध्रियते। एवमात्मा अपि युक्त्या अन्वयव्यतिरेक-

रस्परभिन्न प्रतीत होते वी आप अभिन्न होनेतैं ॥ जो तिन कोशनके परस्परभिन्नप्रतीतिके हुये भिन्नप्रतीत नहीं होवैहै । सो तिन कोशनतैं भिन्न है ॥ जैसैं पुष्पनतैं सूत्र[३६] वा जैसैं खंडीआदिक गौकी व्यक्तिनतैं गोत्वजाति[३७] ॥४१॥

॥ ६ ॥ पंचकोशनतैं विवेचन किये आत्माकूं ब्रह्मकी प्राप्ति ॥

६ अन्वयव्यतिरेककरि पंचकोशनतैं विवेचन किये आत्माकूं ब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै ऐसैं कह्या ॥ तिस वार्ताकी प्रतिपादक जो "अंगुष्ठमात्रपुरुष[३८] अंतरआत्मा है" इस आदि[३९]वाली औ "तिस अंतरात्माकूं शुक्र कहिये शुद्ध अरु अमृत जाने" इस अंतवाली कठवल्लीकी श्रुति है तिसकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

७] जैसैं मुंजतैं इषीका ऐसैं आत्मा वी युक्तिसैं तीनशरीरनतैं धीरपुरुषनकरि उद्धार्याहुवा परब्रह्महीं होवैहै ॥

८) जिस प्रकार मुंज इस नामवाले कोइक तृणतैं गर्भमैं स्थित कोमलतृणरूप शलाका । बाहिर आवरण करनेवाले होनेकरि स्थित स्थूलपत्रनके भंजनलक्षणउपायरूप युक्तिकरि उद्धार करियेहै । ऐसैं आत्मा वी अन्वयव्यतिरेकलक्षणउपायरूप युक्तिकरि । पूर्वउक्ततीन-

[३६] जैसैं पुष्पनकूं परस्परभिन्न प्रतीत हुये बी तिनविषे परोया जो सूत्र सो आप स्वरूपसैं अभिन्न प्रतीत होवैहै यातैं पुष्पनतैं भिन्न है ॥

[३७] जैसैं खंडा (खंडित) मुंडा (शृंगहीन) आदिक गौअनकी व्यक्ति (आकार) हैं तिनकूं भिन्न प्रतीत होते बी जो तिन व्यक्तिनमैं अनुस्यूत गोत्वजाति है सो आप भिन्न प्रतीत होवै नहीं यातैं तिन व्यक्तिनतैं भिन्नकरि कहियेहै तैसैं॥

[३८] अंक १८९ विषे देखो ॥

[३९] अंतःकरणकी उपाधि जो हृदयदेश है सो अंगुष्ठपरिमाण है यातैं अंतःकरण अंगुष्ठमात्र कहियेहै ॥ औ सो अंतःकरण आत्माकी उपाधि है यातैं परंपरासंबंधकरि उपचारसैं आत्मा बी अंगुष्ठमात्र कह्याहै ॥ विशेषणगत धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै । इस नियमतैं ॥ इति॥

[४०] अंक ९५ विषे देखो ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ४३

परापरात्मनोरेवं युक्त्या संभावितैकता ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैः सा भागत्यागेन लक्ष्यते ४३

टीकांकः २०९ टिप्पणांकः १४१

लक्षणोपायेन । शरीरत्रितयात् पूर्वोक्ताच्छरीरत्रितयात् । धीरैः ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नैरधिकारिभिः । समुद्धृतः पृथक्कृतश्चेत्सः परं ब्रह्मैव जायते । चिदानंदरूपत्वस्य लक्षणस्योभयोरविशिष्टत्वादित्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥

९ एतावता ग्रंथसंदर्भेण सफलस्य तत्त्वज्ञानस्य निरूपितत्वादुत्तरग्रंथभागस्यानारंभप्रसंग इत्याशंक्य । तदारंभसिद्धये वृत्तानुकथनपूर्वकमुत्तरग्रंथस्य तात्पर्यमाह (परापरेति)—

१०] एवम् परापरात्मनोः एकता युक्त्या संभाविता सा तत्त्वमस्यादिवाक्यैः भागत्यागेन लक्ष्यते ॥

११) एवम् उक्तप्रकारेण । परापरात्मनोः तत्त्वंपदार्थयोः परमात्मजीवात्मनोः । एकता अभिन्नता । युक्त्या लक्षणसाम्यप्रदर्शनाद्युपायेन । संभाविता अंगीकारिता । सा एकता । तत्त्वमस्यादिवाक्यैः । स्पष्टं ।

शरीरनतैं ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नअधिकारीरूप धीरपुरुषनकरि[४१] [४२] जब भिन्न करियेहै तब सो आत्मा परब्रह्महीं होवैहै ॥ चिदानंदस्वरूपतावान्‌रूप लक्षणकूं ब्रह्म अरु आत्मा दोनूंविषे तुल्य होनेतैं ॥ यह अभिप्राय है ॥४२॥

॥ २ ॥ महावाक्यकरि जीवब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन॥२०९—२८६॥

॥१॥ "तत्त्वमसि" महावाक्यका अर्थ ॥ २०९—२४४ ॥

॥ १ ॥ गतग्रंथका कथन औ उत्तरग्रंथका तात्पर्य ॥

९ इतनें ग्रंथकी रचनाकरि ब्रह्मभावरूप फलसहित तत्त्वज्ञानकूं निरूपण किया होनेतें उत्तरग्रंथभागके नहिं आरंभ करनेका प्रसंग होवैगा । यह आशंकाकरि तिस उत्तरग्रंथभागके आरंभकी सिद्धिवास्ते गतअर्थके फेरकथनपूर्वक उत्तरग्रंथके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

१०] ऐसें परात्मा औ अपरात्मा दोनूंकी एकता युक्तिकरि संभावित करी । सो एकता "तत्त्वमसि" आदिकवाक्यनकरि[४६] भागके त्यागसें लखियेहै ॥

११) कथन किये प्रकारसें परमात्मा औ जीवात्मा जो क्रमतैं "तत्"[४३]पद औ "त्वं"[४४]-पदके अर्थरूप हैं । तिन दोनूंकी एकता चिदानंदरूपतामय लक्षणकी समताके दिखावने आदिकउपायरूप[४५] युक्तिकरि जिज्ञासु वा वादीकी बुद्धिमैं अंगीकार कराईहै । सोई एकता "तत्त्व-

४१ इहां ब्रह्मचर्यका कथन वैराग्यादिकका उपलक्षण है । यातैं आदिपद पढ्याहै ॥

४२ धी कहिये बुद्धि ताकूं जो र कहिये विषयनतैं रक्षा करै सो धीर कहावैहै ॥

४३ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यका "तत्" प्रथमपद है ॥

४४ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यका "त्वं" दूसरापद है ॥

४५ आदिपदसैं अध्यारोपअपवाद औ अन्वयव्यतिरेकआदिकयुक्तिनका ग्रहण है ॥

४६ सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्‌गत महावाक्य है ॥ अंक ११७९—११८२ विषे देखो ॥

टीकांक: २१२ टिप्पणांक: १४७	जगतो यदुपादानं मायामादाय तामसीम् । निमित्तं शुद्धसत्त्वां तामुच्यते ब्रह्म तद्गिरा ॥४४॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ४४

भागत्यागेन विरुद्धांशपरित्यागेन । लक्ष्यते लक्षणया वृत्त्या बोध्यते ॥ ४३ ॥

१२ "तत्त्वमसि" इति वाक्यार्थज्ञानस्य तदादिपदार्थज्ञानपूर्वकत्वात्तत्पदस्य वाच्यार्थं तावदाह (जगत इति)—

१३] यत् तामसीं मायां आदाय जगतः उपादानं शुद्धसत्त्वां तां निमित्तं ब्रह्म "तत्"गिरा उच्यते ॥

१४) यत् सच्चिदानंदलक्षणं ब्रह्म । तामसीं तमोगुणप्रधानां । मायामादाय उपाधित्वेन स्वीकृत्य जगतः चराचरात्मकस्य कार्यवर्गस्य । उपादानम् अध्यासाधिष्ठानं । शुद्धसत्त्वां विशुद्धसत्त्वप्रधानां ताम् । उपाधित्वेन स्वीकृत्य निमित्तम् उपादानाद्यभिज्ञं कर्तृ भवति । तद्ब्रह्म निमित्तोपादानोभयरूपं ब्रह्म । तद्गिरा "तत्त्वमसि" इतिवाक्यस्थेन तत्पदेनोच्यते ॥ ४४ ॥

मसि" आदिक महावाक्यनसैं विरुद्धअंशके त्यागकरि लक्षणावृत्तिसैं बोधन करियेहै॥४३॥

॥ २ ॥ "तत्"पदका वाच्यार्थ ॥

१२ "तत्त्वमसि" इस वाक्यके जीवब्रह्मकी एकतारूप अर्थके ज्ञानकूं "तत्"पद औ "त्वं"पदके अर्थके ज्ञानपूर्वक होनेतें प्रथम "तत्"पदके वाच्यअर्थकूं कहैहैं:—

१३] जो ब्रह्म तामसीमाया कहिये प्रकृति ताकूं लेके जगत्का उपादान है औ शुद्धसत्त्वयुक्त तिस मायाकूं लेके जो ब्रह्म जगत्का निमित्तकारण है सो ब्रह्म "तत्"पदकरि कहियेहै ॥

१४) जो सच्चिदानंदरूप ब्रह्म तमोगुणप्रधानमायाकूं उपाधिपनैकरि अंगीकारकरिके चरअचररूप कार्यके समूह जगत्का उपादान होवैहै । कहिये जगत्के अध्यासका अधिष्ठान कहिये विवर्त्तोपादान होवैहै औ विशुद्धसत्त्वगुणप्रधान तिस मायाकूं उपाधिपनैकरि स्वीकारकरिके निमित्त होवैहै । कहिये तमःप्रधानप्रकृतिरूप उपादान—आदिकनका जाननेवाला कर्त्ता होवैहै । सो निमित्तउपादान दोनूंरूप ब्रह्म कहिये ईश्वर । "तत्त्वमसि" इस महावाक्यमैं स्थित "तत्"पदकरि कहियेहै ॥ अर्थ यह जो सो "तत्"पदका वाच्य है॥४४॥

४७ आदिशब्दकरि ऋग्वेदआदिकवेदकी उपनिषद्गत महावाक्यनका ग्रहण है ॥ देखो महावाक्य विवेकके १–४ औ ७–८ श्लोकनविषे ॥

४८ जीवब्रह्मकी एकताके बोधक वाक्य **महावाक्य** हैं॥

४९ सर्वज्ञतादिक औ अल्पज्ञतादिकरूप एकताके विरोधि धर्मके ॥

५० यह प्रतिज्ञा है ॥

५१ तमोगुण है मुख्य जिसविषै ऐसी ॥ अंक १०१ विषै देखो ॥

५२ रजतमसैं आप दव्या न जावै ऐसा विशुद्धसत्त्वगुण है मुख्य जिसविषै ऐसी ॥ अंक ९० विषै देखो ॥

५३ इहां आदिशब्दसैं जीवनके अदृष्ट औ अपनी इच्छा ज्ञान प्रयत्न काल दिशा प्रागभाव प्रतिबंधकाभाव । इन आठ और निमित्तकारणनका ग्रहण है ॥ जैसैं कुलालगुंष्ठप- उपादान मृत्तिका औ अन्य निमित्तदंडचक्रादिकी सो अंहारा हुवा घटका कर्त्ता है तैसैं विशुद्धसत्त्वप्रधानकरि उपतब्रह्म बी जगत्की उत्पत्तिआदिककी हेतुभूत धर्मका ज्ञाता है । यातैं जगत्का कर्त्ता है ॥

५४ जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः		टीकांकः
४५	यदा[५६] मलिनसत्वां तां कामकर्मादिदूषिताम् । आदत्ते तत्परं ब्रह्म त्वंपदेन तदोच्यते ॥ ४५ ॥	२१५
४६	त्रितयीमपि[५९] तां मुक्त्वा परस्परविरोधिनीम् । अखंडं सच्चिदानंदं महावाक्येन लक्ष्यते ॥ ४६ ॥	टिप्पणांकः १५५

१५ त्वंपदवाच्यार्थमाह (यदेति)—

१६] तत् परं ब्रह्म यदा मलिनसत्वां कामकर्मादिदूषितां तां आदत्ते तदा "त्वं"पदेन उच्यते ॥

१७) तत् एव ब्रह्म यदा यस्यामवस्थायां। मलिनसत्वां ईषद्रजस्तमोमिश्रणेन मलिनसत्वप्रधानां। अत एव कामकर्मादिदूषितां ताम् अविद्याशब्दवाच्यां मायाम् आदत्ते उपाधित्वेन स्वीकरोति । तदा त्वंपदेनोच्यते ॥ ४५ ॥

१८ एवं तत्त्वंपदार्थावभिधाय वाक्यार्थमाह—

१९] त्रितयीम् अपि परस्परविरोधिनीं तां मुक्त्वा अखंडं सच्चिदानंदं महावाक्येन लक्ष्यते ॥

२०) त्रितयीमपि त्रिप्रकारामपि । तमःप्रधानविशुद्धसत्वप्रधानमलिनसत्वप्रधानत्वभेदेनोक्तामत एव परस्परविरोधिनीं तां मायां मुक्त्वा परित्यज्य । अखंडं भेदरहितं । सच्चिदानंदं ब्रह्म । महावाक्येन लक्ष्यते इति उक्तम् ॥ ४६ ॥

॥ ३ ॥ "त्वं"पदका वाच्यार्थ ॥

१५ "त्वं"पदके वाच्यअर्थकूं कहैहैंः—

१६] सोई परब्रह्म जब मलिनसत्वगुणयुक्त औ कामकर्मआदिककरि दूषित तिस मायाकूं ग्रहण करैहै तब "त्वं"पदकरि कहियेहै ॥

१७) सोई ब्रह्म जब कहिये जिस संसारअवस्थाविषै किंचित्रजोगुणतमोगुणके मिश्रभावरूप हेतुकरि मलिनसत्वगुणप्रधान औ काम-कर्म-आदिककरि दूषित जो अविद्याशब्दकी वाच्य माया है। तिसकूं उपाधिपनैकरि अंगीकार करैहै तब "त्वं"पदकरि कहियेहै । सो "त्वं"पदका वाच्य है ॥ ४५ ॥

॥ ४ ॥ लक्षणासें वाक्यार्थके ज्ञानका प्रकार ॥

१८ इसरीतिसें "तत्"पद औ "त्वं" पदके अर्थकूं कहिके वाक्यके अर्थकूं कहैहैंः—

१९] तीनप्रकारकी औ परस्परविरोधिनी ऐसी तिस मायाकूं छोडिके अखंडसच्चिदानंदब्रह्म महावाक्यकरि लखियेहै ॥

२०) तमःप्रधान विशुद्धसत्वप्रधान औ मलिनसत्वप्रधानपनैके भेदकरि माया तीनप्रकारकी कथन करी औ याहितैं परस्परविरोधिनी ऐसी तिस मायाकूं छोडिके[६१] अखंड कहिये भेद[६२]रहित सच्चिदानंदब्रह्म महावाक्यकरि लक्षणासैं जानियेहै ॥ ४६ ॥

४१ ईह।
यातैं आदिपद ह्म अन्यउपाधिके योगतैं जगत्का निमित्तोब्रह्म ॥

४२ धी का मसैं दव्या जावै ऐसा मलिनसत्वगुण है करे सो धीर व ऐसी ॥ देखो श्लोक १६ विषै ॥

४३ "तत्वकी इच्छा काम है ॥ ५८ अदृष्ट ॥ ५९ प्रकृति॥

६० पदसमुदाय ॥

६१ श्रुति औ युक्तिकरि मिथ्या (असत्) जानिके ॥

६२ स्वगतादितीनभेदरहित वा पूर्व (देखो ३६ वें टिप्पनमें) उक्तपंचभेदरहित ॥ स्वगतादितीनभेदका स्वरूप औ निराकरण । देखो भूतविवेकके २०—२५ श्लोकनविषै ॥

टीकांक: २२१ टिप्पणांक: ६३	२२ सोऽयमित्यादिवाक्येषु विरोधात्तदिदंतयोः । त्यागेन भागयोरेक आश्रयो लक्ष्यते यथा ॥४७॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेक: ॥ १ ॥ श्लोकांक: ४७

२१ नन्वेवं लक्षणावृत्त्या वाक्यार्थबोधनं क्व दृष्टमित्याशंक्याह—

२२] सः अयं इत्यादिवाक्येषु तदिदंतयोः विरोधात् भागयोः त्यागेन एकः आश्रयः यथा लक्ष्यते ॥

२३) "सः अयं देवदत्त" इत्यादिवाक्येषु तदिदंतयोः तदेतद्देशकालवैशिष्ट्यलक्षणयोर्धर्मयोः। विरोधात् ऐक्यानुपपत्तेः। भागयोः विरुद्धांशयोः त्यागेन एक आश्रयः देवदत्तस्वरूपमेकमेव। यथा लक्ष्यते ॥४७॥

॥ ९ ॥ भागत्यागलक्षणामें दृष्टांत ॥

२१ ननु ऐसें लक्षणावृत्तिसैं वाक्यके अर्थका बोधन कहां देखाहै? यह आशंकाकरिके कहैहैं:—

२२] **"सो यह देवदत्त है" इत्यादिवाक्यनविषै तत्ता औ इदंताके विरोधतैं भागनके त्यागकरि एकआश्रय कहिये पिंड जैसें लखियेहै ।**

२३) "सो यह[६३] देवदत्त है" इत्यादिकवाक्यनविषै तत्ता कहिये तिस परोक्ष दूरदेश। भूतकालकरि विशिष्टपनैरूप धर्म औ इदंता कहिये यह अपरोक्ष समीपदेश। वर्त्तमानकालकरि विशिष्टपनैरूप धर्म। इन दोनूंके विरोधतैं कहिये एकताके असंभवतैं विरुद्धअंशनके त्यागकरि एकआश्रय कहिये देवदत्त कोई पुरुषका शरीररूप स्वरूप एकहीं जैसें लक्षणासैं जानियेहै ॥ ४७ ॥

६३ जैसें कोई देवदत्तनामवाला पुरुष था। तिसकूं और कोई यज्ञदत्तनामवाले पुरुषनै अन्यदेशविषै पूर्वकालमैं देखाथा औ वह देवदत्तपुरुष स्वदेशकूं छोडिके तिस यज्ञदत्तके देशविषै बहुतकालके पीछे गया तब यज्ञदत्तनैं अपनें पास बैठे पुरुषकूं कहाः—"सो यह देवदत्त है ॥" कहिये "सो" अन्यदेश पूर्वकालमैं मेरा देख्या। "यह"। इसदेश आधुनिककालमैं प्राप्त। देवदत्तपुरुष है ॥ यह सुनिके श्रोतापुरुषनैं यज्ञदत्तकूं कहा "अन्यदेशकाल औ इसदेशकालकी एकताका विरोध है यातैं तिसदेशकालवाला पुरुष। इसदेशकालवाला कैसैं संभवै?" तब यज्ञदत्तनैं कहाः—"तिसदेशकालयुक्ततारूप धर्म औ इसदेशकालयुक्ततारूप धर्मकी दृष्टि छोडिके। दोनूं धर्मनमैं अनुस्यूत वर्तनेवाला धर्मीरूप देवदत्तका पिंड एकहीं है यह मेरा कहनेका अभिप्राय है ॥" यह सुनिके "सो यह देवदत्त है" ऐसें वह श्रोता निश्चय करताभया ॥ * ॥ तैसें "सृष्टितैं पूर्व एकहीं अद्वितीयसत्‌रूप ब्रह्म था" यह श्रुतिविषै सुनियेहै तिस ब्रह्मकूं तत्त्वज्ञानीमहात्मानैं अपनाआपकरि जान्याहै ॥ सोई ब्रह्म सृष्टिअनंतरकालमैं अविद्याउपाधिकरि जीवभावकूं पायके। संसारमैं भ्रमणकरिके किसी सत्कर्मके परिपाकतैं विवेकादिसंपन्नशिष्य होयके। तिस महात्मागुरुके शरण विधिपूर्वक आया तब गुरुनैं कहाः—"सो"। सृष्टितैं पूर्व विद्यमान एकहीं अद्वितीयसत्‌रूप ब्रह्म। 'तूं'। सृष्टिअनंतरकालमैं संसारदशामैं भटकनेवाला जीव है" ॥ यह सुनिके तिस शिष्यरूप जीवनैं मनरूप श्रोतेद्वारा कहाः—"हे गुरो! मैं अल्पज्ञता अल्पशक्तिवान्‌ता पराधीनतादिनिकृष्टधर्मवाला सो सर्वज्ञता सर्वशक्तिवान्‌ता स्वतंत्रतादिश्रेष्ठधर्मवाला परमेश्वर कैसैं होउंगा?" तब गुरुनैं कहाः—"ईश्वरकी समष्टिस्थूलसूक्ष्मप्रपंचसहित मायाउपाधि औ तिसके किये सर्वज्ञतादिकधर्मनकूं औ जीवकी व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मशरीररूप कार्यसहित अविद्याउपाधि औ तिनके किये अल्पज्ञतादिधर्मनकूं औ उत्पत्तिस्थितिप्रलय अरु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति इस कालकूं स्वप्न औ मनोराज्यकी न्यांई कल्पित होनेतैं मिथ्या जानिके 'ये हैंहीं नहीं' इसरीतिसैं इनकी दृष्टि त्यागिके 'अवशेषअखंडसच्चिदानंदरूप ब्रह्म मैंहीं हूं' यह जान ॥" तब वह जीव मनरूप श्रोताद्वारा सुनिके मननिदिध्यासन करिके आपकूं ब्रह्मरूपकरि साक्षात्कार करताभया ॥ यह शिष्यकी बुद्धिमैं सुगमतासैं समजावने अर्थ रूपककरिके दृष्टांतसिद्धांतका वर्णन है ॥ इति ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ४८

२५ मायाविद्ये विहायैवमुपाधी परजीवयोः ।
अखंडं सच्चिदानंदं परं ब्रह्मैव लक्ष्यते ॥ ४८ ॥

श्लोकांकः ४९

२८ सविकल्पस्य लक्ष्यत्वे लक्ष्यस्य स्यादवस्तुता ।
३१ निर्विकल्पस्य लक्ष्यत्वं न दृष्टं न च संभवि॥४९॥

टीकांकः २२४ टिप्पणांकः १६४

२४ एवं दृष्टांतमभिधाय दार्ष्टांतिकमाह (मायाविद्ये इति)—

२५] एवम् परजीवयोः उपाधी मायाविद्ये विहाय अखंडं सच्चिदानंदं परं ब्रह्म एव लक्ष्यते ॥

२६) एवं "सोऽयं देवदत्त" इत्यादिवाक्ये यथा । तद्वत् परजीवयोरुपाधी उपाधिभूते । मायाविद्ये पूर्वोक्ते । विहाय अखंडं भेदरहितं सच्चिदानंदं परं ब्रह्मैव महावाक्येन लक्ष्यते ॥ ४८ ॥

२७ ननु किं महावाक्येन लक्ष्यं । सविकल्पमुत निर्विकल्पमिति विकल्प्य । प्रथमे पक्षे दोषमाह पूर्ववादी—

२८] सविकल्पस्य लक्ष्यत्वे लक्ष्यस्य अवस्तुता स्यात् ॥

२९) सविकल्पस्य विकल्पेन विपरीतत्वेन कल्पितेन नामजात्यादिना रूपेण सह वर्तत इति सविकल्पं । तस्य लक्ष्यत्वे वाक्येन बोध्यत्वे । लक्ष्यस्य वाक्यार्थतया लक्ष्यस्य अवस्तुता स्यात् मिथ्यात्वं स्यात् ॥

॥ ६ ॥ भागत्यागलक्षणामें सिद्धांत ॥

२४ इसरीतिसैं दृष्टांतकूं कहिके सिद्धांतकूं कहैहैं:—

२५] ऐसे पर औ जीवकी उपाधि माया औ अविद्याकूं छोडिके अखंडसच्चिदानंदपरब्रह्महीं लखियेहै ॥

२६) ऐसैं कहिये "सो देवदत्त है" इत्यादिवाक्यविषै जैसैं है तैसैं परमात्मा औ जीवकी उपाधिरूप पूर्वउक्तमायाअविद्याकूं छोडिके अखंड सच्चिदानंदरूप परब्रह्महीं महावाक्यकरि लक्षणासैं जानियेहै ॥ ४८ ॥

॥७॥ महावाक्यके लक्ष्यार्थमें पूर्ववादीकरि दोषका कथन ॥

२७ ननु महावाक्यकरि लक्षणासैं जाननेकूं योग्य ब्रह्म क्या सविकल्प कहिये विकल्पसहित है अथवा निर्विकल्प कहिये विकल्परहित है? इसरीतिसैं दोविकल्पकरिके प्रथमपक्षविषै पूर्ववादी दोषकूं कहैहैः—

२८] सविकल्पब्रह्मकी लक्ष्यताके हुये लक्ष्यकी अवस्तुता होवैगी ॥

२९) विपरीत होनेकरि कल्पित जो नामजातिआदिक हैं वे विकल्प कहियेहै ॥ तिसके साथि जो वर्तता है सो सविकल्प है ॥ ता सविकल्पवस्तुकी लक्ष्यताके हुये कहिये महावाक्यके अर्थ होनेकरि लक्षणासैं जाननेकी योग्यताके हुये । लक्ष्य जो ब्रह्म ताका मिथ्यापना होवैगा । काहेतैं नामजातिआदिकधर्मवाले घटादिकवस्तुनके मिथ्यापनैके देखनेतैं ॥

६४ वादीप्रतिवादी दोनूंकूं अनुकूल ॥

६५ देखो श्लोक १६।४४ औ ४५ विषे ॥

६६ रज्जुके स्वरूपतैं विपरीत होनेकरि कल्पित जैसैं सर्प है तैसैं अखंडसच्चिदानंदब्रह्मतैं विपरीत । खंडितअसदादिरूप होनेकरि कल्पित नामजातिआदिधर्म हैं ॥

टीकांकः २३० टिप्पणांकः १६७

विकल्पो निर्विकल्पस्य सविकल्पस्य वा भवेत् ।
आद्ये व्याहतिरन्यत्रानवस्थात्माश्रयादयः ॥५०॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥ १ ॥ श्लोकांकः ५०

३० द्वितीये दोषमाह—

३१] **निर्विकल्पस्य लक्ष्यत्वं न दृष्टं न च संभवि ॥**

३२) **निर्विकल्पस्य** नामजात्यादिना रहितस्य **लक्ष्यत्वं न दृष्टं** लोके न क्वापि दृष्टं। **न च संभवि** उपपद्यमानमपि न भवति लक्ष्यत्वधर्मवतो निर्विकल्पत्वव्याघातादिति यावत् ॥ ४९ ॥

३३ सिद्धांती । जात्युत्तरत्वान्नेदं चोद्यमिति विकल्पपूर्वकं दोषमाह—

३४] **विकल्पो निर्विकल्पस्य वा सविकल्पस्य भवेत्? आद्ये व्याहृतिः । अन्यत्र अनवस्थात्माश्रयादयः ॥**

३५) **सविकल्पस्य वा निर्विकल्पस्य** वा लक्ष्यत्वमिति तयोः **विकल्पः** त्वया कृतः । सः किं निर्विकल्पस्य उत सविकल्पस्य भवेत् । आद्ये प्रथमे पक्षे । **व्याहृतिः**

३० दूसरेपक्षविषै दोषकूं कहैहैं:—

३१] **निर्विकल्पवस्तुकी लक्ष्यता देखी नहीं है औ संभव होवै नहीं ॥**

३२) नामजातिआदिकसैं रहित जो निर्विकल्पवस्तु है तिसका लक्ष्यपना लोकविषै कहुं वी देखा नहीं है औ सिद्ध वी होवै नहीं । काहेतैं लक्ष्यतारूप धर्मवान्‌कूं निर्विकल्पपनैके [६७]व्याघाततैं ॥ ४९ ॥

॥ ८ ॥ सिद्धांतीका असत्‌उत्तर ॥

३३ (अथ चक्रिकादिदोषनका लेखनः—) अब सिद्धांतीः—[६८]असत्‌उत्तररूप जातिउत्तरके होनेतैं यह तेरा जो आश्चर्यकारकप्रश्न है सो बनै नहीं ॥ इसरीतिसैं विकल्पकूं पूर्वकरिके दोषकूं कहैहैं:—

३४] यह [६९]विकल्प । निर्विकल्पका कियाहै वा सविकल्कका कियाहै? प्रथमपक्षविषै व्याघातदोष होवैहै ॥ औ द्वितीयपक्षविषै अनवस्थाआत्माश्रयादिक च्यारिदोष होवैहैं ॥

३५) हे वादिन्! "महावाक्यकरि लक्ष्य जो ब्रह्म सो निर्विकल्प है वा सविकल्प है?" इस प्रकार तिन निर्विकल्पब्रह्मविषै औ सविकल्पब्रह्मविषै जो तैंने विकल्प कियाहै । सो विकल्प क्या निर्विकल्पब्रह्मका होवैगा अथवा सविकल्पब्रह्मका होवैगा?

६७ शब्दकी लक्षणारूप वृत्तिसैं जो जानिये सो वस्तु लक्ष्य (लक्षणाका विषय) कहियेहै ॥ तिस लक्ष्यविषै गौमैं गोत्वजातिरूप धर्मकी न्यांई औ घटविषै घटत्वजातिरूप धर्मकी न्यांई लक्ष्यतारूप धर्म है ॥ तिस लक्ष्यताधर्मरूप विकल्पवाला लक्ष्य । सविकल्प सिद्ध होवैगा । फिर तिसकूं निर्विकल्प कहनेकरि व्याघातरूप दोष होवैहै ॥ जातैं ताकूं लक्ष्य कहनेकरि सविकल्प वी कहतेहो औ निर्विकल्प वी कहतेहो यातैं व्याघात होवैहै ॥ जहां अपनेही कथनकरि अपने वचनका बाध होवै तहां व्याघातदोष कहियेहैं ॥ मेरी माता वंध्या थी याकी न्यांई ॥

६८ जैसा तेरा यथार्थनिर्णयमैं पूछनेरूप असत्‌प्रश्न है ताका उष्ट्रलकुटिकान्यायतैं पूछनेमैं पूछनेरूप असत्‌उत्तर दियाचाहिये ॥ तिस असत्‌उत्तरके विद्यमान होते यह तेरा प्रश्न असंगत होवैगा ॥ ऊंठ जब मस्ती करै तब ऊंठकेही ऊपर धरी लकरीसैं ताकूं समजावना होवैहै औरसाधन बनै नहीं । यातैं इस न्यायकूं उष्ट्रलकुटिकान्याय कहैहैं ॥

६९ एकहीं वार्ताविषै जो मतभेद है सो विकल्प कहियेहै ॥

त्वयोक्तो व्याघात एव ॥ अन्यत्र द्वितीये पक्षे। **अनवस्थात्माश्रयादयः** ॥ तथाहि । सविकल्पस्य विकल्प इत्यत्र । विकल्पेन सह वर्तत इत्यत्र । तृतीयांतविकल्पपदेन प्रथमांतविकल्पपदेन चैक एव विकल्पोऽभिधीयते द्वौ वा । एक एव चेत्स्वयमेक एव विकल्पाश्रय-

तिनमैं "निर्विकल्पका विकल्प कियाहै" । इस प्रथमपक्षविषै तैंने जो कथन किया निर्विकल्पका विकल्प है सो व्याघातयुक्तहीं होवैहै। जातैं तिसकूं निर्विकल्प बी कहताहै फेर तिसका विकल्प बी करताहै ॥ औ

"सविकल्पका विकल्प कियाहै" इस दूसरेपक्षविषै आत्माश्रयसैं आदिलेके अनवस्थापर्यंत चारिदोष होवैहैं ॥ सो आत्माश्रयादिक दिखावैहैं:—

(१ आत्माश्रयदोषः—) "सविकल्पब्रह्मका विकल्प है" इस वाक्यविषै सविकल्पशब्दका क्या अर्थ है सो श्रवण करः—विकल्पकरि सहित जो वर्तता होवै सो कहिये सविकल्पब्रह्मरूप धर्मी ॥ सो सविकल्पब्रह्म जिस विकल्पकरि सहित वर्तताहै सो विकल्प इस प्रसंगमैं तृतीयांतविकल्पपदकरि कहियेहै औ जो तैंनै तिस सविकल्पब्रह्मविषै विकल्प कियाहै सो विकल्प इहां प्रथमांतविकल्पपदकरि कहियेहै ॥ हे प्रतिवादी! इहां प्रथमांतविकल्पपदकरि औ तृतीयांतविकल्पपदकरि एकहीं विकल्प तेरेकरि कहियेहै वा दोनूं ? जब एकहीं विकल्प प्रथमांत औ तृतीयांतरूप कहे तब आप एकहीं विकल्प । विकल्पका आश्रय जो सविकल्पब्रह्म। तिसका विशेषण होनेकरि आपैहीं आपका आश्रय हुआ । कहिये प्रथमांतरूप जो तेरा विकल्प है तिसका आश्रय जो सविकल्पब्रह्मका विशेषणरूप तृतीयांतविकल्प है सो बी तेरे विकल्प प्रथमांतका आश्रय है॥ काहेतैं ? विशिष्टविषै वर्तनेवाले धर्मकूं विशेषणविषै वर्तनेके नियमतैं औ फेर तिस आश्रय हुये तृतीयांतविकल्परूप आपविषै प्रथमांतरूपकरि तेरे विकल्पकूं वर्तनेतैं आपहीं आपके आश्रित जब हुवा तब एकहीं विकल्प । तृतीयांतरूपसैं आश्रय औ प्रथमांतरूपसैं आश्रित हुवा ॥ यहहीं आपकी सिद्धिविषै आपकी अपेक्षा करनेरूप आत्माश्रयदोष है ॥

७० आश्रय (अधिकरण) । अनुयोगी ॥

७१ व्याकरणकी प्रक्रियाविषै सप्तविभक्ति होवैहैं । तिनमैंसैं तृतीयाविभक्ति जिस पदके अंतविषै है सो **तृतीयांतपद** है ॥

७२ प्रथमाविभक्ति जिस पदके अंतविषै है सो **प्रथमांतपद** है ॥ ७३ तृतीयांतविकल्परूप ॥

७४ ब्रह्मसहित आपविषै प्रथमांतविकल्परूपसैं वर्तनेवालेका ॥

७५ एकही विकल्प तृतीयांतरूपसैं प्रथमांतरूप आपका आश्रय किस प्रकार हुवा ? सो श्रवण करः—विशिष्टविषै वर्तनेवाले धर्मकूं विशेषणविषै वर्तनेके नियमतैं ॥ याका यह अर्थ है:—विशेषणसहित वस्तुविषै जो धर्म वर्तताहै सो धर्म विशेषणविषै बी नियमकरि वर्तताहै ॥ दृष्टांतः—जैसैं "दंडी (दंडवान्) आया है" इस वाक्यविषै दंडविशेषण (आधेय) है औ पुरुष विशेष्य (आधार) है ॥ दंडरूप विशेषणकरि विशिष्ट दंडीपुरुषविषै आगमनक्रियारूप जो धर्म वर्तताहै सो धर्म दंडरूप विशेषणविषै बी वर्तताहै ॥ जैसैं दंडीपुरुष आयाहै तैसैं दंड बी आयाहै ॥ इति ॥ ॥ सिद्धांतः—इहां दंडीकी न्यांई सविकल्पब्रह्मात्मा विशेष्य है औ दंडकी न्यांई तृतीयांतविकल्प विशेषण है औ दंडविशिष्टदंडीकी न्यांई तृतीयांतविकल्पविशिष्ट सविकल्प ब्रह्मात्मा है औ विशिष्ट (विशेषणसहित वस्तु) विषै वर्तनेवाले गमनक्रियारूप धर्मकी न्यांई प्रथमांतरूप तेरा (प्रतिवादीका) विकल्प है ॥ जैसैं गमनका आश्रय दंडीपुरुष है तैसैं दंड बी है ॥ इसरीतिसैं जैसैं तेरे विकल्प प्रथमांतरूपका आश्रय सविकल्पब्रह्म है तैसैं सविकल्पब्रह्मका विशेषणरूप तृतीयांतविकल्प बी तेरे विकल्प प्रथमांतका आश्रय है ॥ इतना अर्थ "आप एकही विकल्प । विकल्पके आश्रय ब्रह्मका विशेषण होनेकरि प्रथमांतरूप आपका आश्रय है ॥" इस कथनकरि सूचन कीयाहै ॥ ७६ प्रथमांतरूप विकल्प ॥

७७ तृतीयांतरूप आश्रयके ॥

विशेषणतयाश्रयस्तदाश्रितो विकल्पश्चेत्तदात्माश्रयता ॥ द्वौ चेत्तदा तृतीयांतशब्दनिर्दिष्टस्यापि विकल्पस्य विकल्परूपत्वात्तदाश्रयस्यापि सविकल्पत्वात्तद्विशेषणभूतो विकल्पः किं प्रथमांतशब्दनिर्दिष्ट एव विकल्प उत ताभ्यामन्यः । आद्ये अन्योऽन्याश्रयता ॥

(२ अन्योन्याश्रयदोषः–) जब प्रथमांतविकल्प औ तृतीयांतविकल्प परस्परभिन्न हैं तब तृतीयांतविकल्पकूं वी विकल्परूप होनेतें औ तिसके आश्रय ब्रह्मकूं सविकल्प होनेतें तिस तृतीयांतविकल्पके आश्रय ब्रह्मका विशेषणरूप कोइक विकल्प मान्या चाहिये ॥ इस वाक्यसैं यह सूचन कियाहैः– जो जो विकल्प है सो सो विकल्प । सविकल्प कहिये विकल्पसहित आश्रयविषै वर्तताहै । निर्विकल्पविषै नहीं ॥ जैसैं प्रथमांतरूप तेरा विकल्प सविकल्पआश्रयविषै वर्तताहै । तैसैं सर्वविकल्प । सविकल्पआश्रयविषै वर्तनेवाले भये ॥ यातैं जैसैं प्रथमांतरूप तेरे विकल्पकी स्थितिअर्थ तृतीयांतविकल्पकरि आश्रय जो ब्रह्मरूप धर्मी ताकूं सविकल्प कियाहै तैसैं तृतीयांतविकल्पकी स्थितिअर्थ कोईक वी विशेषणरूप विकल्पकरि आश्रय । सविकल्प करनेकूं योग्यहीं है ॥ औ जो तृतीयांतविकल्पके आश्रयका विशेषणरूप विकल्प है सो विकल्प विशेषणीभूत विकल्प कहियेहै ॥ सो विशेषणीभूत विकल्प क्या प्रथमांतरूपहीं है अथवा तिन प्रथमांतविकल्प औ तृतीयांतविकल्पतैं भिन्न तीसरा है ? प्रथमपक्षविषै अन्योन्याश्रयदोष है ॥ जो कहै किस प्रकार है? तौ इसप्रकार है सो श्रवण करः—परस्परकी सिद्धिविषै परस्परकी अपेक्षा यह अन्योन्याश्रयका लक्षण है ॥ सो लक्षण इस पक्षविषै है ॥ काहेतैं ? ईहां प्रथमांतरूप विकल्पकी स्थितिअर्थ तृतीयांतकी अपेक्षा है औ तृतीयांतकी स्थितिअर्थ विशेषणीभूत विकल्पकी अपेक्षा है ॥ सो विशेषणीभूत विकल्प प्रथमांतरूपहीं तैंनैं अंगीकार कीयाहै । यातैं तृतीयांतकूं प्रथमांतकीहीं अपेक्षा हुई ॥ इसरीतिसैं अन्योन्याश्रय है ॥

(३ चक्रिकादोषः–) जब विशेषणीभूत विकल्प । तिन प्रथमांत औ तृतीयांततैं भिन्न तीसरा अंगीकार करैहै तब इस विशेषणीभूत तीसरेविकल्पकूं वी पूर्वकी न्यांई विकल्परूप होनेतैं औ तिस विशेषणीभूत विकल्पके आश्रय ब्रह्मकूं सविकल्परूप होनेतैं आश्रयका अन्यविशेषणरूप धर्मी–विशेषणीभूत विकल्प अंगीकार कियाचाहिये ॥ सो अन्यविशेषणरूप विकल्प क्या प्रथमांतविकल्परूप है अथवा तिन प्रथमांत तृतीयांत औ विशेषणीभूत तीसरेविकल्पतैं भिन्न चतुर्थ है ? प्रथमपक्षविषै चक्रिकादोष होवैहै ॥ किस प्रकार होवैहै ? यह पूछताहै तौ इसप्रकार होवैहै सो श्रवण करः–चक्रकी न्यांई भ्रमणकूं चक्रक औ चक्रिका कहैहैं ॥ तैसैं दिखावैहैंः—ईहां

७८ ब्रह्मका ॥

७९ अपनेसहित ब्रह्मकूं आपसहित निर्विकल्पतैं व्यावर्तक ॥

८० तृतीयांतका आश्रय विशेषणीभूत विकल्प प्रथमांतरूपहीं है अन्य (तृतीय) नहीं इस पक्षविषै ॥

८१ उक्तप्रथमपक्षविषै ॥

८२ प्रथमांत औ तृतीयांतविकल्पकी न्यांई ॥

८३ जैसैं प्रथमांत तृतीयांत औ विशेषणीभूत ये तीनविकल्पनके संकेतकरि क्रमतैं नाम कहेहैं तैसैं तीसरेविकल्पके आश्रयरूप विकल्पका संस्कृतटीकाकाररामकृष्णनैं संकेतसैं धर्मिविशेषणीभूत यह नाम धरा है ताहीकूं अन्यविशेषणरूप इहां कहाहै ॥ इति ॥

८४ विशेषणीभूत तीसरेविकल्पका आश्रयरूप जो धर्मीविशेषणीभूत विकल्प है । सो प्रथमांतादितीनतैं भिन्न चतुर्थ है । इस प्रथमपक्षविषै ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ५१

इदं गुणक्रियाजातिद्रव्यसंबंधवस्तुषु । समं तेन स्वरूपस्य सर्वमेतदितीष्यताम् ॥५१॥

टीकांक: २३६ टिप्पणांक: १८५

द्वितीयेऽपि धर्मिविशेषणीभूतो विकल्पः किं प्रथमांतशब्दनिर्दिष्ट उत तेभ्योऽन्यः । आद्ये चक्रिकापत्तिर्द्वितीये तस्याप्यन्यस्तस्याप्यन्य इत्यनवस्थापात इति ॥ ५० ॥

द्विप्रथमांतकी स्थितिअर्थ तृतीयांतकी अपेक्षा है औ तृतीयांतकी स्थितिअर्थ विशेषणीभूत तीसरेविकल्पकी अपेक्षा है औ तिस विशेषणीभूतकी स्थितिअर्थ अन्यविशेषणरूप धर्मीविशेषणीभूत विकल्पकी अपेक्षा है ॥ सो अन्यविशेषणरूप विकल्प प्रथमांतरूपहीं अंगीकार कियाहै ॥ फेर प्रथमांतकी स्थितिअर्थ तृतीयांतकी अपेक्षा औ तृतीयांतकी स्थितिअर्थ तीसरेकी अपेक्षा है औ तिसकी स्थितिअर्थ प्रथमांतकी अपेक्षा है ॥ इसरीतिसैं चक्रकी न्यांई भ्रमण होनेतैं चक्रिका होवैहै ॥

(४ अनवस्थादोषः-) जब धर्मीविशेषणीभूत विकल्प तिन प्रथमांत तृतीयांत औ विशेषणीभूत विकल्पतैं भिन्न चतुर्थहीं है तब तिस अन्यविशेषणरूप चतुर्थविकल्पकूं पूर्वकी न्यांई विकल्परूप होनेतैं तिसके आश्रय ब्रह्मकूं बी सविकल्प (विकल्पसहित) करनेवास्ते कोइक विशेषणरूप विकल्प औरपंचमहीं अंगीकार किया चाहिये तब तिस पंचमविकल्पकूं बी विकल्परूप होनेतैं तिसके आश्रय ब्रह्मकूं सविकल्प करने वास्ते कोइक विशेषणरूप विकल्प औरषष्ठ अंगीकार कियाचाहिये ॥ ऐसैं आगे बी तिसकी स्थितिअर्थऔरसप्तम फेर तिसकी स्थितिअर्थ औरअष्टम अंगीकार किया चाहिये ॥ इसरीतिसैं अनवस्था होवैहै ॥ प्रमाणरहित धाराका नाम अनवस्था है ॥ तैसैं अन्यशास्त्रमैं बी कहाहैः— "विचक्षणपुरुष हैं वे इस अनवस्थाकूं मूलकी क्षय करनेवाली कहते भये ॥" इसप्रकार लक्ष्यकी न्यांई विकल्पपक्षविषै बी दोष है सो पृथिवीके संयोगी घटके दृष्टांतसैं जानिलेना ॥ इति ॥ ५० ॥

३६ न केवलमत्रैवेदं दूषणमपि तु सर्वत्रैवंविधविकल्पपूर्वकं दूषणं प्रसरतीत्याह—

३७] इदं गुणक्रियाजातिद्रव्यसंबंधवस्तुषु समम् ॥

३६ केवल इहां विकल्पपक्षविषैहीं यह व्याघातसैं आदिलेके अनवस्थापर्यंत दोष हैं ऐसैं नहीं किंतु सारेगुणादिअनात्मवस्तुविषै यह दोष प्रवृत्त होवैहै यह कहैहैंः—

३७] **यह दूषण। गुण क्रिया जाति द्रव्य संबंधरूप वस्तुनविषै समान हैं॥**

१८५ शुक्रघट । क्या घटसंयोग (संबंधविशेष) रहित पृथिवीविषै संयोगसंबंधसैं वर्तताहै वा घटसंयोगसहित पृथिवीविषै? प्रथमपक्षमैं "मेरे मुखमैं जिव्हा नहीं है" औ "मेरा पिता बालब्रह्मचारी है।" इन वचनकी न्यांई अपनेहीं वचनतैं अपने वचनका बाधरूप **व्याघातदोष** होवैहै ॥ जातैं तिस पृथिवीकूं घटसंयोगरहित बी कहताहै फिर तिसमैं घटसंयोग बी कहताहै यातैं व्याघात है ॥ औ "घटसंयोगसहित पृथिवीविषै शुक्रघट संयोगकारि वर्तताहै।" इस दूसरेपक्षविषै आत्माश्रयादिकच्यारिदोष होवैहैं ॥ ये च्यारिदोष शुक्रघटकी न्यांई नीलपीतरक्तआदिघटनकी कल्पनाकरिके बुद्धिमाननैं जानिलेने ॥

टीकांक: २३८ टिप्पणांक: १८६

विकल्पतदभावाभ्यामसंस्पृष्टात्मवस्तुनि ।
विकल्पितत्वलक्ष्यत्वसंबंधाद्यास्तु कल्पिताः॥५२॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ५२

३८) इदं विकल्पदूषणजातं । गुणक्रियाजातिद्रव्यसंबंधवस्तुषु गुणादिसंबंधांतेषु पंचसु वस्तुषु समं । तथाहि । गुणः किं निर्गुणे वर्तते अथवा गुणवति । क्रियापि क्रियारहिते वर्तते क्रियावति वा । आद्ये व्याघातोऽन्यत्रात्माश्रयादय इति ॥ सर्वत्र चैवमूह्यम् ॥

३९ नन्विदमसदुत्तरं चेत्किं सदुत्तरमित्याशंक्याह—

४०] तेन एतत् सर्वं स्वरूपस्य इति इष्यताम् ॥

४१) तेन एवं विकल्पस्यासंगतत्वेन । एतत् गुणादिकं सर्वं स्वरूपस्य इति इष्यतां । गुणादयः सर्वे वस्तुस्वरूपे वर्तंत इत्यभिप्रायः ॥ ९१ ॥

४२ भवत्वेवमन्यत्र । प्रकृते किमायातमित्यत आह—

४३] विकल्पतदभावाभ्यां असंस्पृष्टात्मवस्तुनि विकल्पितत्वलक्ष्यत्वसंबंधाद्याः तु कल्पिताः ॥

४४) विकल्पतदभावाभ्यां विकल्पेन विकल्पाभावेन च । असंस्पृष्टात्मवस्तुनि संस्पर्शरहितपरमात्मवस्तुनि । विकल्पितत्व-

३८) यह विकल्पपक्षमैं कह्या जो व्याघात आत्माश्रयसैं आदिलेके अनवस्थापर्यंतरूप दूषणका समूह सो गुण क्रिया जाति द्रव्य संबंध इन पांचवस्तुनविषै तुल्य है ॥ सो दिखावैहैं:—गुण क्या निर्गुणविषै वर्तता है अथवा गुणवान्‌विषै ? क्रिया बी क्या क्रियारहितविषै वर्तती है वा क्रियावान्‌विषै ? प्रथमपक्षमैं व्याघात है औ दूसरेपक्षविषै आत्माश्रयादिचारिदोष होवैहैं । वे पूर्वकी न्यांई विचारनें ॥ इसरीतिसैं जातिआदिकसर्वठिकाने बी बुद्धिमानोंनैं जानि लेना ॥

॥ ९ ॥ सिद्धांतीका सत्‌उत्तर ॥

३९ ननु यह उक्तप्रकारका प्रश्नमैं प्रश्नरूप असत्‌उत्तर जब है तब सत्‌उत्तर क्या है ? यह आशंकाकरिके सिद्धांती सत्‌उत्तर कहैहैं:—

४०] तिस हेतुतैं यह गुणादिकसर्व स्वरूपकेहीं हैं ऐसैं अंगीकार करना ॥

४१) इसरीतिसैं विकल्पके असंभवरूप हेतुकरि यह गुणादिकसर्वधर्म स्वरूपके हैं कहिये वस्तुके स्वरूपविषै कल्पिततादात्म्यसंबंधकरि वर्ततेहैं ॥ यह अभिप्राय है ॥ ९१ ॥

४२ ऐसे अन्यअनात्मस्थलविषै होहु । आत्मारूप प्रकृतप्रसंगविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

४३] विकल्प औ विकल्पके अभावकरि संस्पर्शरहित आत्मवस्तुविषै विकल्पितत्व लक्ष्यत्व औ संबंधादिक कल्पित हैं ॥

४४) विकल्प औ विकल्पके अभावकरि संबंधरहित आत्मवस्तुविषै विकल्पितपना

८६ गुणादिकविकल्पके असहनतैं संभवते नहीं औ व्यवहारमैं प्रतीत होवैहैं यातैं ॥

८७ अपनेंअपनें आश्रय गुणीआदिकवस्तुउपहितचेतनके स्वरूपविषै ॥

८८ आरंभितअर्थ ॥ अंक २१३ विषै देखो ॥

८९ प्रत्यक्‌अभिन्नपरमात्मवस्तुविषै ॥

९० विकल्प क्या निर्विकल्पविषै वर्तताहै वा सविकल्पविषै ? गुण क्या निर्गुणविषै है वा सगुणविषै ? इत्यादि वादीके दोमतरूप जो पूर्वउक्तविकल्प हैं तिसका विषय होना ॥

लक्ष्यत्वसंबंधाद्याः । तत्र । विकल्पितत्वं नाम । सविकल्पस्य वा निर्विकल्पस्य वेति पूर्वोक्तेन विषयीकृतत्वं ॥ लक्ष्यत्वं लक्षणावृत्त्या ज्ञाप्यत्वं ॥ संबंधः संयोगादिरादिशब्देन द्रव्यादयो गृह्यंते ॥ तु शब्दोऽवधारणे । तत्र द्रव्यं नाम । गुणानामाश्रयो द्रव्यं । समवायिकारणं द्रव्यमिति । वा तार्किकैर्लक्षितं ॥ कर्मान्यतिरिक्तत्वे सति जातिमात्राश्रयो गुणः ॥ नित्यमेकमनेकवृत्तिसामान्यमिति लक्षिता जातिः ॥ संयोगवियोगयोरसमवायिकारणजातीयं कर्मेति लक्षिता क्रिया ॥ एते सर्वे स्वरूपे कल्पिता एवेत्यर्थः ॥ ९२ ॥

लक्ष्यपना औ [९२]संबंध आदिक । यह सर्व रज्जुविषे सर्पकी न्यांई कल्पितहीं हैं ॥ यह अर्थ है ॥ ९२ ॥

९१ शब्दकी लक्षणावृत्तिसें जनावनेकी योग्यता ॥

९२ अभाव औ सादृश्यतें भिन्न । प्रतियोगीकी अपेक्षासहित प्रतीतिका विषय **संबंध** कहियेहै ॥ जिसविषै औरका संबंध होवै सो संबंधका **अनुयोगी** है औ जिसका संबंध औरविषै होवै सो संबंधका **प्रतियोगी** है ॥ प्रतियोगीकी प्रतीतिपूर्वक जाकी प्रतीति होवै ऐसे तो अभाव औ सादृश्य बी हैं परंतु वे तिनतें भिन्न नहीं हैं औ तिनतें भिन्न तो औरघटादिक बी हैं । वे प्रतियोगी सापेक्षप्रतीति (ज्ञान)के विषय नहीं यातें उक्तसंबंधके लक्षणकी कहुं बी अतिव्याप्तिआदिक नहीं है ॥ यह संबंधके लक्षणकी पदकृति (परीक्षा) है ॥ लक्षणके अतिव्याप्तिआदिक ३ दोषके अभावके दर्शक विचारका नाम **पदकृति** है ॥ असाधारण (एकवृत्ति)धर्मकूं **लक्षण** कहैहैं ॥ (१) **अव्याप्तिः**—लक्ष्यके एकदेशमें लक्षणका वर्तना । (२) **अतिव्याप्तिः**—लक्ष्यमें वर्तिके अलक्ष्यमें बी वर्तना । (३) **असंभवः**—लक्ष्यकूं छोडिके अलक्ष्यमें वर्तना ॥ इन तीनदोषतें रहितपनेका नाम **असाधारणधर्म** है ॥

उक्तलक्षणवाला जो संबंध सो संयोगादिरूप है ॥

इहां आदिशब्दकरि समवाय औ तादात्म्यआदिकअनेकसंबंधनका ग्रहण है ॥

दोद्रव्यनका जो संबंध सो **संयोगसंबंध** कहियेहै ॥ सो संयोग । कर्मजसंयोग औ संयोगजसंयोग औ सहजसंयोगभेदतें तीनप्रकारका है ॥

(१) जाकी उत्पत्तिमें क्रिया असमवायिकारण होवै सो **कर्मजसंयोग** है ॥ कर्मजसंयोग दोभांतिका है । एक अन्यतरकर्मज है औ दूसरा उभयकर्मज है ॥

[१] संयोगके उपादानकारणरूप आश्रय दो होवैहैं ॥ तिनमें एककी क्रियातें जो संयोग होवै सो **अन्यतरकर्मज** है। जैसें पक्षीकी क्रियातें वृक्ष औ पक्षीका संयोग है ॥

[२] दोनूं आश्रयकी क्रियासें जो संयोग जन्य होवै सो **उभयकर्मज** है । जैसें दोमेषनकी क्रियातें जन्य दोमेषनका संयोग है ॥

(२) संयोगरूप असमवायिकारणतें जो होवै सो **संयोगजसंयोग** है जैसें हस्त औ तरुके संयोगसें जन्य जो काय (शरीर) औ तरुका संयोग है सो **संयोगजसंयोग** है ॥

(३) संयोगीके जन्मके साथि जो संयोग उपजै ताकूं **सहजसंयोग** कहैहैं । जैसें सुवर्णमें पार्थिव (पृथिवीका कार्य) भाग औ तैजस (तेजतत्त्वका कार्य) भाग हैं तिनका संयोग है सो सहज है ॥ सुवर्णमें पीतरूप औ गुरु (भारी)पनेका आश्रय पार्थिवभाग है औ अग्निसंयोगतें जाका नाश होवै नहीं ऐसे द्रवत्वका आश्रय तैजसभाग है ॥

इसरीतिसें तीनभांतिका संयोगसंबंध कह्याहै ॥

(१) नित्यसंबंधका नाम **समवायसंबंध** है ॥ सो न्यायमतमें गुणगुणीका औ जातिव्यक्तिका औ क्रियाक्रियावान्‌का औ उपादानकारण अरु कार्यका परस्पर मान्याहै ॥ न्यायमतमें स्वरूपसंबंधका नाम **तादात्म्य** है ॥ औ

(२) पूर्वमीमांसाके वार्तिककारभट्टके मतमें किंचित्‌भेदकरि युक्त अभेद (भेदाभेदका) नाम **तादात्म्य** है ॥ औ

(३) सर्वशिरोमणिवेदांतसिद्धांतमें भेद औ अभेदतें विलक्षण संबंध **तादात्म्य** कहियेहै । ताहींकूं **अनिर्वचनीय** (कल्पित)**तादात्म्य** बी कहैहैं ॥ इहां भेदतें विलक्षण कहनेकरि वास्तवअभेदका ग्रहण है । औ अभेदतें विलक्षण कहनेकरि कल्पितभेदका ग्रहण है । यातें सिद्धांतमें कल्पितभेदसें युक्त वास्तवअभेदका नाम **तादात्म्यसंबंध** है ॥

जहां (उक्तगुणगुणीआदिकच्यारीमें) न्यायमतविषै समवायसंबंध मान्याहै तहां वेदांत औ भट्टके मतमें तादात्म्यसें व्यवहार करियेहै ॥

इसरीतिसें संयोग समवाय औ तादात्म्य ये तीनसंबंध कहे । ऐसें और बी अनेकसंबंध व्यवहारनिमित्त मानेहैं । वे विस्तारके भयतें लिखे नहीं ॥

९३ इहां मूलश्लोकमें जो आदिपद है तिसकरि द्रव्य गुण जाति औ क्रियाका ग्रहण है ॥ इन च्यारिके लक्षणकूं कहैहैं:—

टीकांक: २४५ टिप्पणांक: ॐ

इत्थं वाक्यैस्तदर्थानुसंधानं श्रवणं भवेत् ।
युक्त्या संभावितत्वानुसंधानं मननं तु तत्॥५३॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ५३

४५ एतावता ग्रंथसंदर्भेण किमुक्तं भवतीत्याकांक्षायां फलितमाह—

४६] इत्थं वाक्यैः तदर्थानुसंधानं श्रवणं भवेत् । युक्त्या संभावितत्वानुसंधानं तत् तु मननम् ॥

॥२॥ श्रवण मनन औ निदिध्यासनका लक्षण ॥ २४५—२५० ॥

॥ १ ॥ श्रवण औ मननका लक्षण ॥

४५ इतने ग्रंथके रचनेकरि क्या कथन किया होवैहै ? इस आकांक्षाविषै फलितअर्थकूं कहैहैं:—

४६] ऐसैं महावाक्यनसैं । तिन महावाक्यनके अर्थका अनुसंधान श्रवण होवैहै औ युक्तिसैं संभावितपनैका जो अनुसंधान सो मनन है ॥

(१) गुणनका आश्रय द्रव्य कहियेहै ॥ गुण तौ आप बी हैं वे तिनके आश्रय नहीं औ जातिआदिकके आश्रय तौ औरव्यक्तिआदिक बी हैं वे गुणनके आश्रय नहीं हैं । यातैं गुणका आश्रय द्रव्य है ॥ वा समवायिकारणकूं द्रव्य कहैहैं ॥ इसरीतिसैं नैयायिकोंनैं **द्रव्यका लक्षण** कियाहै ॥

नैयायिक । समवायि असमवायि औ निमित्तभेदतैं तीनभांतिका कारण कहैहैं औ वेदांतमतमैं असमवायिसैं विना दोइ कारण कहैहैं ॥ जिसकूं नैयायिक **समवायिकारण** कहैहैं ताहीकूं वेदांती **उपादानकारण** कहैहैं ॥ औ

नैयायिक । कार्यके समवायिकारणका संबंधी हुवा कार्यका जनक जो संयोग वा गुण वा क्रियारूप तीसरा **असमवायिकारण** कहैहैं ताकूं वेदांती **निमित्तकारण**मैंहीं गिनैहैं ॥ जिसके होते कार्य होवै औ जिसके न होते कार्य होवै नहीं ऐसा जो कार्यसैं समीप पूर्वकालमैं वर्तनेवाला है सो **कारण** है । तिनमैं कार्यकी उत्पत्तिमात्रकरि जो कारण है सो **निमित्तकारण** है । औ उत्पत्ति स्थिति अरु नाशका जो कारण है सो **उपादानकारण** है ॥ यह प्रसंगसैं कह्या ॥

अब उक्तलक्षणवाला जो द्रव्य सो न्यायमतमैं पृथिवी जल तेज वायु आकाश काल दिशा आत्मा मनके भेदतैं नवभांतिका मान्याहै ॥ इनके अवांतरभेद न्यायग्रंथनमैं प्रसिद्ध हैं । अनुपयोगतैं लिखे नहीं ॥

(२) कर्मसैं भिन्न । जातिमात्रका आश्रय **गुण** कहियेहै॥ कर्मसैं भिन्न तो जाति समवायसंबंध औ अभावआदिक बी हैं वे जातिके आश्रय नहीं औ कर्मसैं भिन्न जातिके आश्रय द्रव्य बी हैं वे जातिमात्र (केवल जाति)के आश्रय नहीं । किंतु गुणक्रियादिअन्यधर्मनके बी आश्रय हैं औ जातिमात्रका आश्रय तो कर्म बी है सो कर्मसैं भिन्न नहीं यातैं उक्तगुणके लक्षणकी कहुं बी अतिव्याप्ति नहीं ॥ उक्तलक्षणवाला जो गुण सो रूप रस गंध स्पर्श संख्यासैं आदिलेके संस्कारपर्यंत चौवीसप्रकारका है ॥ इसरीतिसैं नैयायिकोंनैं गुणका भेदसहित लक्षण कियाहै ॥

(३) नित्यएकसमवायसंबंधसैं अनेकधर्मीनमैं अनुगत (अनुस्यूतधर्म) **सामान्य** कहियेहै ॥ ताहीकूं **जाति** बी कहैहैं ॥ न्यायमतमैं नित्य तो मन बी है सो एक औ अनेकनमैं अनुगत नहीं किंतु नाना औ अणुरूप है ॥ नित्य औ अनेकनमैं अनुगत तौ आत्मा बी है सो एक नहीं किंतु नाना है ॥ नित्य एकअनेकनमैं अनुगत तौ आकाश बी है सो समवायसंबंधसैं अनेकनमैं अनुगत नहीं किंतु संयोगसंबंधसैं है ॥ यातैं इस जातिके लक्षणकी कहुं बी अतिव्याप्ति नहीं ॥

उक्त जो जाति सो पर (अधिकवर्ति) अपर (न्यूनवर्ति) भेदतैं दोभांतिकी है ॥ तिनमैं

[१] घट है । पट है । इस आकारकरि सर्वपदार्थनमैं वर्तमान जो न्यायमतकी रीतिसैं सत्तारूप जाति है सो **पर** है ॥ औ

[२] नवद्रव्यनमैं द्रव्यत्वरूप औ अनेककर्मनमैं कर्मत्वरूप औ चौवीसगुणनमैं गुणत्वरूप इत्यादि जो जाति है सो **अपर** है ॥

इसरीतिसैं नैयायिकोंनैं भेदसहित जातिका लक्षण कियाहै ॥

(४) संयोग अरु विभागका जो असमवायिकारण है तिसके सजातीयका नाम **कर्म** है । ताहीकूं **क्रिया** बी

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ५४	तांभ्यां निर्विचिकित्सेऽर्थे चेतसः स्थापितस्य यत्। एकतानत्वमेतद्धि निदिध्यासनमुच्यते ॥ ५४ ॥	टीकांक: २४७ टिप्पणांक: ९४

४७) इत्थं "जगतो यदुपादानम्" इत्यादि ग्रंथजातोक्तप्रकारेण वाक्यैः तत्त्वमस्यादिवाक्यैः तदर्थानुसंधानं तेषां वाक्यानामर्थस्य जीवब्रह्मणोरेकत्वलक्षणस्यानुसंधानं श्रवणं भवेत्। युक्त्या "शब्दस्पर्शादयो वेद्या" इत्यादिना "परापरात्मनोरेवं युक्त्या संभावितैकता" इत्यंतेन ग्रंथसंदर्भेणोक्तप्रकारेण। संभावितत्वानुसंधानं श्रुतस्यार्थस्योपपद्यमानत्वज्ञानं यदस्ति। तत् तु मननं इत्युच्यते ॥ ५३ ॥

४८ इदानीं निदिध्यासनमाह—

४७) "जो ब्रह्म तामसीमायाकूं लेके जगत्का उपादान है" इस ४४ श्लोकसैं आदि लेके इहां ५२ पर्यंत जो ग्रंथका समूह है तिसविषै कथन किये प्रकारकरि "तत्त्वमसि" आदिकमहावाक्यनसैं तिन वाक्यनके जीवब्रह्मकी एकतारूप अर्थका अनुसंधान श्रवण होवैहै ॥ औ "जागरणविषै वेद्य जे शब्दस्पर्शआदिक हैं" इस ३ श्लोकसैं आदिलेके "ऐसे परात्माब्रह्म औ अपरात्माजीव दोनूंकी युक्तिकरि एकता संभावित करी" इस ४३ श्लोकपर्यंत जो ग्रंथकी रचना है। तिसकरि कथन किये प्रकाररूप युक्तिसैं श्रवण किये अर्थके संभावितताका कहिये घटनाकी शक्यताका जो ज्ञान है सो मनन कहियेहै ॥५३॥

॥ २ ॥ निदिध्यासनका लक्षण ॥

४८ अब निदिध्यासनकूं कहैहैं:—

कहैहैं ॥ जैसें दोकपालनकी अपने संयोग औ विभागनिमित्तचेष्टा होवैहै सो दोकपालके संयोग औ विभागकी असमवायिकारण है काहेतें कार्यके समवायि (उपादान) कारणका संबंधी जो कार्यका जनक है सो **असमवायि** कहियेहै ॥ जाके स्वरूपमें कार्यका प्रवेश होवै सो **समवायिकारण** है ॥ दोकपालके संयोगविभागके समवायिकारण दोकपाल हैं ॥ तिनमें समवायसंबंधसैं दोकपालनकी चेष्टा रहैहै औ तिन (कपालन)के कार्य संयोगविभागकी जनक है यातें दोकपालनकी चेष्टा तिनके संयोगविभागकी असमवायिकारण है ॥ इसरीतिसैं औरतंतुआदिकके संयोगविभागमैं बी अपने उपादानकी चेष्टाहीं असमवायिकारण है ॥

तिस चेष्टाकी सजातीय कहिये समानजातिवाली और ॥ चेष्टा होवैहै ॥ तिसी चेष्टाका नाम **कर्म** औ **क्रिया** है ॥ इस लक्षणकी परीक्षा यह है:—संयोगविभाग तौ आप बी हैं वे तिनके कारण नहीं औ तिनके कारण तौ कपाल बी हैं वे तिनके असमवायिकारण नहीं हैं किंतु समवायिकारण हैं औ नीलपटके नीलरंगरूप गुणका असमवायिकारण तंतुका नीलरंगरूप गुण है औ घटका असमवायिकारण कपालसंयोग है वे संयोग औ विभागके असमवायिकारण नहीं हैं किंतु गुण औ घटके असमवायिकारण हैं यातें संयोगविभागके असमवायिकारणका सजातीयकर्म है। यह **कर्मका लक्षण** निर्दोष है ॥

सो कर्म उत्क्षेपण अपक्षेपण आकुंचन प्रसारण गमन भेदतें पांचप्रकारका है। ऐसें नैयायिकोंनें क्रिया लखाईहै ॥ वेदांतमतमैं जो करीयेहैं सो कर्म है॥ सो कर्म कायिकवाचिकमानसिकभेदतें तीनभांतिका है ॥ वा वचन आदान गमन रति औ मलत्याग भेदतें पांचप्रकारका है। सोई क्रिया है ॥ औरकृषिवाणिज्यादिकक्रिया तिनके अंतर्गत हैं ॥ इति ॥

९४ अंगी औ अंगभेदतें श्रवण दोभांतिका है ॥ तिनमें गुरुमुखद्वारा महावाक्यका उपदेश (श्रोत्रसंयोगरूप) प्रथम है औ तात्पर्यके निर्णयमें जो षट्लिंग कहेहैं तिसरूप युक्तिसें वेदांत (उपनिषद्)वाक्यनका अद्वैतब्रह्ममें तात्पर्यके निश्चयरूप फल (अवधि)वाला वेदांतवाक्यनका विचार दूसरा है ॥ तिनमें ज्ञानका हेतु प्रथम है औ प्रमाणगतसंदेहका निवर्तक दूसरा है ॥ प्रथमश्रवण यह ऊपर दिखाया है ॥ दूसराश्रवण अंक २५२१ मैं देखो ॥

९५ अंक २५२४ विषै देखो ॥

टीकांक: २४९ टिप्पणांक: १९६

ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद्ध्येयैकगोचरम् ।
निवातदीपवच्चित्तं समाधिरभिधीयते ॥ ५५ ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ५५

४९] ताभ्यां निर्विचिकित्से अर्थे स्थापितस्य चेतसः यत् एकतानत्वं एतत् निदिध्यासनं उच्यते हि ॥

५०) **ताभ्यां** श्रवणमननाभ्यां । **निर्विचिकित्से** निर्गता विचिकित्सा संशयो यस्मादसौ निर्विचिकित्सः । तस्मिन् **अर्थे** विषये । **स्थापितस्य** धारणावतः । **चेतसः** "देशसंबंधश्चित्तस्य धारणा" इति पतंजलिनोक्तत्वात् । **यत् एकतानत्वं** एकाकारवृत्तिप्रवाहवत्त्वं । **एतत् निदिध्यासनम् उच्यते** । हि प्रसिद्धं योगशास्त्रे । तत्र "प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" इति ॥ ५४ ॥

५१ तस्यैव निदिध्यासनस्य परिपाकदशारूपं समाधिमाह—

५२] ध्यातृध्याने क्रमात् परित्यज्य ध्येयैकगोचरं निवातदीपवत् चित्तं समाधिः अभिधीयते ॥

५३) निदिध्यासने तावत् ध्याता ध्यानं ध्येयं चेति त्रितयं भासते । तत्र यदा चित्तमभ्यासवशेन ध्यातृध्याने ध्यातारं ध्यानं च

४९] तिन श्रवणमननकरि निःसंदेह भये अर्थविषै स्थापन किये चित्तकी जो एकतानता है सो निदिध्यासन कहियेहै ॥

५०) उक्तश्रवणमननकरि निवृत्त भयेहैं संशय जिसतैं तिस जीवब्रह्मकी एकतारूप महावाक्यके अर्थविषै स्थापित कहिये धारणावाले चित्तकी जो एकतानता है कहिये ब्रह्मात्माकी एकतारूप एकवस्तुके आकार वृत्तिकी प्रवाहवान्ता है सो यह निदिध्यासन कहियेहै ॥ इहां मूलमैं "हि" शब्द जो है सो यह "प्रत्यय कहिये अंतःकरण ताकी एकतानता ध्यान है ॥" इसरीतिसैं योगशास्त्रमैं प्रसिद्ध है ऐसैं जनावैहै ॥ ५४ ॥

॥ ३ ॥ निर्विकल्पसमाधिका निरूपण ॥ २५१–२७४ ॥

॥ १ ॥ समाधिका स्वरूप औ तामें प्रश्न उत्तर अरु गीताप्रमाण ॥

५१ तिसीहीं निदिध्यासनके परिपाकदशारूप समाधिकूं कहैहैं:—

५२] ध्याता औ ध्यानकूं क्रमतैं परित्यागकरिके ध्येयएकके गोचर निवातदीपकी न्यांई जो चित्त है सो समाधि कहियेहै ॥

५३) निदिध्यासनमैं प्रथम अपक्वदशाविषै ध्याता ध्यान औ ध्येय ये त्रिपुटीरूप तीन प्रतीत होवैहैं ॥ तिनमैं जब चित्त । अभ्यासके

९६ विजातीय (अनात्माकार)प्रत्यय (वृत्ति)नका तिरस्कार औ सजातीय (आत्माकार)प्रत्ययनकी प्रवणता (प्रवाहकरण) **निदिध्यासन** है ॥ याहीकूं अनात्माकार वृत्तिरूप व्यवधानरहित **ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति** कहैहैं ॥ निदिध्यासननिरूपण देखो तृप्तिदीपके १०५–१२९ श्लोकपर्यंत ॥

९७ "चित्तका कोइकदेशसैं संबंध **धारणा** है ॥" इसरीतिसैं योगसूत्रविषै पतंजलीभगवाननें कथन कियाहै ॥ प्रथम धारणा होवै पीछे ध्यान होवैहै । यातैं धारणावाला चित्त कह्या ॥ विशेष देखो चित्रदीपमैं ६११ टिप्पणविषै ॥

९८ ध्यानका कर्त्ता (साभासअंतःकरण) **ध्याता** है ॥

९९ ध्येयाकारचित्तकी वृत्तिका प्रवाह **ध्यान** है ॥

२०० ध्यान करनेकूं योग्य जो ध्यानका विषय ब्रह्म है सो **ध्येय** है ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ५६

वृत्तयस्तु तदानीमज्ञाता अप्यात्मगोचराः ।
स्मरणादनुमीयंते व्युत्थितस्य समुत्थितात् ॥५६॥

टीकांकः २५४ टिप्पणांकः २०१

क्रमात् परित्यज्य । ध्येयैकगोचरं ध्येयमेकमेव गोचरो विषयो यस्य तत्तथाविधं भवति । तदा समाधिः इत्युच्यते ॥ तत्र दृष्टांतः । निवात इति वायुरहिते प्रदेशे वर्त्तमानो दीपो यथा निश्चलो भवति । तद्वदित्यर्थः ॥ ५५ ॥

५४ ननु समाधौ वृत्तीनामनुपलब्धौ ध्येयैकगोचरत्वमपि निश्चेतुं न शक्यत इत्याशंक्य । वृत्तिसद्भावस्यानुमानगम्यत्वान्मैवमित्याह (वृत्तयस्त्विवति)—

५५] आत्मगोचराः वृत्तयः तु तदानीं अज्ञाताः अपि व्युत्थितस्य समुत्थितात् स्मरणात् अनुमीयंते ॥

५६) आत्मगोचरा आत्मा गोचरो विषयो यासां ता वृत्तयस्तु । तदानीं समाधिकाले । अज्ञाता अपि । व्युत्थितस्य समाधेरुत्थितस्य । समुत्थितात् उत्पन्नात् । स्मरणात् "एतावंतं कालं समाहि-

---

वशकरि ध्याता औ ध्यानकूं क्रमतें परित्यागकरि ध्येयएकगोचर होवै कहिये ध्येय जो ब्रह्म सो एक है गोचर कहिये विषय जिसका ऐसा होवै । तब सो चित्त समाधि ऐसें कहियेहै ॥ ता चित्तकी समाधिरूपतामैं दृष्टांतः— वायुरहितप्रदेशमैं वर्तमान दीपक जैसें निश्चल होवैहै तैसें निश्चल कहिये एकहीं ध्येयके आकार जो चित्त सो समाधि है ॥ यह अर्थ है ॥ ५५ ॥

५४ ननु समाधिविषे वृत्तिनकी अप्रतीतिके हुये तिन वृत्तिनकी ध्येयएकगोचरता बी निश्चय करनेकूं अशक्य है ॥ यह आशंकाकरिके समाधिकालमैं जो वृत्तिनका सद्भाव है ताकूं अनुमानप्रमाणसें गम्य होनेतैं वृत्तिनकी ध्येयगोचरता निश्चय करनेकूं अशक्य है ऐसें नहीं । यह कहैहैं:—

५५] आत्मगोचरवृत्तियां तो तब समाधिमैं अज्ञात हैं तौ बी व्युत्थितके समुत्थितस्मरणतैं अनुमान करियेहैं ॥

५६) आत्मा है गोचर कहिये विषय जिनका ऐसी जे वृत्तियां वे तब समाधिकालमैं अप्रतीत हैं तौ बी समाधितैं उत्थित पुरुषका सम्यक् उत्पन्न जो "इतने कालपर्यंत मैं समाधिमैं स्थित था" इस रूपवाला स्मरण है तिसतैं अनुमान करियेहैं ॥ "जो जो स्मरण करियेहै सो सो पूर्व अनुभव कियाहै" इसरीतिकी

---

१ यह समाधिका आकार (स्वरूप) है ॥ समाधिका लक्षण देखो चित्रदीपमैं ६११ टिप्पणविषै ॥

२ अग्निका उपादानकारण वायु है तातैं अग्निकी उत्पत्ति स्थिति औ नाश वायुके अधीन हैं ॥ यातैं सर्वथा वायुका अभाव होवै तौ दीपककी स्थिति बी संभवै नहीं ॥ यातैं स्फुरणरूपसैं वायुके अभाववाले औ सूक्ष्म (अस्फुरण)रूपसैं ताके भाववाले कंदीलआदिस्थलमैं जैसैं दीप अचल होवैहै तैसैं समाधिमैं बी सर्वथा अंतःकरणका अभाव होवै तौ शरीरकी स्थिति संभवै नहीं किंतु शरीरका पात होवै । यातैं मन बुद्धि चित्त अहंकाररूप वृत्तिनकूं छोडिके सूक्ष्म (मूलअंतःकरण)रूपसैं समाधिमैं अंतःकरणकी स्थिति होवैहै ॥

३ ब्रह्मसैं अभिन्न प्रत्यगात्मा ॥

४ इहां यह अनुमान हैः—समाधिकालविषै वृत्तियां हैं । उत्थानकालमैं तिस समाधिका स्मरण होवैहै यातैं निद्राकी न्यांई जो जो स्मरण करियेहै सो सो पूर्व अनुभव कियाहै । "सो मेरा पिता है" याकी न्यांई ॥

टीकांक: २५७ टिप्पणांक: २०५	वृत्तीनामनुवृत्तिस्तु प्रयत्नात्प्रथमादपि । अदृष्टासकृदभ्याससंस्कारसचिवाद्भवेत् ॥ ५७ ॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ५७

तोऽभूवं" इत्येवंरूपात्। अनुमीयंते। "यद्यत्स्मर्यते तत्तदनुभूतम्" इति व्याप्तेर्लोकसिद्धत्वादित्यर्थः ॥ ५६ ॥

५७ ननु तदानीं वृत्त्युत्पादकप्रयत्नाभावात् कथं वृत्त्यनुवृत्तिरित्याशंक्य। तात्कालिकप्रयत्नाभावेऽपि प्राथमिकादेव प्रयत्नाददृष्टादिसहकारिसहिताद्भवतीत्याह—

५८] **वृत्तीनां अनुवृत्तिः तु प्रथमात् अपि प्रयत्नात् अदृष्टासकृदभ्याससंस्कारसचिवात् भवेत् ॥**

५९) ध्येयैकगोचराणां वृत्तीनां अनुवृत्तिस्तु प्रवाहरूपेणानुगतिस्तु। प्रथमादपि प्रयत्नात् समाधिपूर्वकालीनादपि। अदृष्टं अशुक्लकृष्णकर्माख्यो यः पुण्यविशेषः। "कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्" इति पतंजलिना सूत्रितत्वात्। यश्च असकृदभ्याससंस्कारः पुनः पुनः समाध्यभ्यासेन जनितो भावनाख्यः संस्कारविशेषस्ताभ्यां सहकारिकारणाभ्यां सह वर्तमानाद्भवति ॥५७॥

व्याप्तिकूं लोकविषै सिद्ध होनेतैं ॥ यह अर्थ है ॥ ५६ ॥

५७ ननु तब समाधिकालमैं वृत्तिनके उत्पादकप्रयत्नके अभावतैं तिन वृत्तिनकी अनुवृत्ति कैसैं होवैहै? यह आशंकाकरिके तिस कालसंबंधी प्रयत्नके अभाव हुये वी पुण्यरूप अदृष्टआदिकसहकारिसहित समाधितैं प्रथमकालकेहीं प्रयत्नतैं वृत्तिनकी अनुवृत्ति होवैहै यह कहैहैं:—

५८] **वृत्तिनकी अनुवृत्ति तो अदृष्ट औ वारंवार अभ्यासके संस्कारकरि सहित प्रथमकालके प्रयत्नतैं वी होवैहै ॥**

५९) अशुक्लकृष्ण नाम जो योगीका पुण्यविशेष है औ जो वारंवार समाधिके अभ्यासतैं जनित भावना नाम संस्कार विशेष है तिन दोनूंसहकारीकारणोंकरि सहवर्त्तमान जो समाधितैं पूर्वकालका प्रयत्न है तिसतैं ब्रह्मरूप ध्येय एककूं विषय करनेवाली वृत्तिनकी प्रवाहरूपसैं अनुगतिरूप अनुवृत्ति होवैहै ॥५७॥

५ ब्रह्माकारप्रवाहरूपसैं एकवृत्तिके पीछे दूसरीवृत्तिका वर्तमा जो है सो वृत्तिनकी **अनुवृत्ति** कहियेहै ॥ जैसे दंडसैं कुलालचक्रके फेरनेसैं पीछे वी कुलालचक्रका आपहीं फिरना होवैहै तैसैं पूर्वकालके प्रयत्नादिकतैं वृत्तिकी अनुवृत्ति होवैहै ॥

६ "अशुक्लकृष्णकर्म योगीका है औ त्रिविधकर्म इतरजीवनका है" । इसरीतिसैं पतंजलिभगवान्नैं योगसूत्रविषै कथन कियाहै ॥ अशुक्लकृष्णकर्म योगीका है औ शुक्ल। कृष्ण अरु शुक्लकृष्ण उभयरूप कर्म। अन्यजीवनका है ॥ इहां **अशुक्लकृष्ण** नाम। सकामरूप शुभ औ अशुभकर्मतैं विलक्षण योगानंदके हेतु (निमित्त) पुण्यविशेषका है ॥ औ **शुक्ल** नाम। स्वर्गादिविषयसुखके हेतु सकाम शुभकर्मका है औ **कृष्ण** नाम नरकादिदुःखके हेतु अशुभ कर्मका है ॥ इति ॥

७ अनुभवसैं जन्य औ स्मृतिका हेतु संस्कार **भावना** कहियेहै ॥

८ उत्साहविशेषका नाम **प्रयत्न** है। ताहीकूं कृति वी कहैहैं ॥

९ प्रवाहरूपसैं अनुगति ॥

प्रत्यक्तत्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ५८ ५९

[61]यथा दीपो निवातस्थ इत्यादिभिरनेकधा ।
भगवानिममेवार्थमर्जुनाय न्यरूपयत् ॥ ५८ ॥
[64]अनादाविह संसारे संचिताः कर्मकोटयः ।
अनेन विलयं यांति शुद्धो धर्मो विवर्धते ॥५९॥

टीकांक: २६० टिप्पणांक: २१०

६० नन्वयं समाधिः पूर्वाचार्यैर्निरूपितो न दृष्ट इत्याशंक्य । सर्वगुरुणा श्रीपुरुषोत्तमेन निरूपितत्वान्मैवमित्याह—

६१] "यथा निवातस्थः दीपः" इत्यादिभिः भगवान् अनेकधा इमम् एव अर्थं अर्जुनाय न्यरूपयत् ॥

६२) "यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता" इत्यादिभिः श्लोकैः । अनेकधा नानाप्रकारेण । भगवान् ज्ञानैश्वर्यादिसंपन्नः । इमम् एव निर्विकल्पसमाधिरूपम् अर्थं । अर्जुनाय शिष्याय । न्यरूपयत् निरूपितवान् ॥ ५८ ॥

६३ अस्य समाधेरवांतरफलमाह—

६४] अनादौ इह संसारे संचिताः कर्मकोटयः अनेन विलयं यांति शुद्धः धर्मः विवर्धते ॥

६५) अनादौ स्पष्टं । इह अस्मिन् संसारे । संचिताः संपादिताः । कर्मकोटयः

६० ननु यह समाधि । पूर्वके आचार्यों-करि निरूपण किया देख्या नहीं है । यह आशंकाकरिके । सर्वके गुरु पुरुषोत्तमश्रीकृष्ण-करि निरूपण किया होनेतैं पूर्वाचार्योंकरि निरूपण किया देख्या नहीं ऐसैं नहीं । यह कहैहैं:—

६१] "जैसैं निवातस्थ दीप है" इत्यादिकरि अनेकप्रकारसैं भगवान् इसीहीं अर्थकूं अर्जुनके अर्थ निरूपण करतेभये ॥

६२) "जैसैं निर्वातस्थलमें स्थित दीपक चलता नहीं कहिये हिलता नहीं । सो आत्माके समाधिरूप योगके प्रति जुडनेवाले योगीके एकाग्र भये चित्तकी उपमा स्मरण करीहै" ॥ इत्यादि-श्लोककरि अनेकप्रकारसैं ज्ञानऐश्वर्यआदि[11]-कपड्भगसंपन्नभगवान्श्रीकृष्ण इसीहीं समाधिरूप अर्थकूं अर्जुनशिष्यकेअर्थ निरूपण करतेभये ॥ ५८ ॥

॥ २ ॥ समाधिका अवांतरफल ॥

६३ इस समाधिके अवांतर[12]फलकूं कहैहैं:—

६४] अनादि इस संसारविषै संचित जे कर्मकी कोटियां हैं वे इस समाधिकरि विलयकूं प्राप्त होवैहैं औ शुद्धधर्म वृद्धिकूं पावैहै ॥

६५) अनादिकालके इस संसारविषै पुण्यअपुण्यरूप कर्मकी कोटियां कहिये अपरिमितकर्म संपादन कियेहैं वे इस निर्विकल्पसमाधिकरि ज्ञानद्वारा[13] नाशकूं पावैहैं "तिस

१० देखो गीताके ६ अध्यायके श्लोक १९ विषै ॥

११ आदिशब्दकरि धर्मयशलक्ष्मीवैराग्यका ग्रहण है ॥

१२ परमप्रयोजनका जो द्वार (साधन) होवै सो अवांतरप्रयोजन है ॥

१३ रामगीता औ देवीगीताआदिकपुराणके प्रसंगनमैं निदिध्यासनकी परिपाकदशारूप समाधिका फल ब्रह्मसाक्षात्कार है ॥ तिसतैं अज्ञानकृत आवरणकी निवृत्ति होवैहै । तिस आश्रयकी निवृत्तितैं अनंतसंचितकर्मकी निवृत्ति होवैहै औ "तिस परमात्माके देखे हुये इस पुरुषके कर्म क्षीण होवैहैं ॥" इस श्रुतितैं बी ब्रह्मसाक्षात्कारके हुये पीछे कर्मनिवृत्ति सुनियेहै यातैं इहां ज्ञानद्वारा कहाहै ॥

टीकांक: २६६ टिप्पणांक: २१४

धर्ममेघमिमं प्राहुः समाधिं योगवित्तमाः ।
वर्षत्येष यतो धर्मामृतधाराः सहस्रशः ॥ ६० ॥

प्रत्यक्तत्त्वविवेकः॥१॥ श्लोकांक: ६०

कर्मणां पुण्यापुण्यलक्षणानां कोटय इत्युपलक्षणं अपरिमितानि कर्माणीत्यर्थः । अनेन समाधिना विलयं यांति विनश्यंति । "क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे" इति श्रुतेः । "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि" इति स्मृतेश्च ॥ शुद्धः धर्मः सविलासाविद्यानिवर्तकसाक्षात्कारसाधनभूतो धर्मो विवर्धते स्पष्टम्॥५९॥

६६ तत्र किं प्रमाणमित्यत आह (धर्मेति)

६७] **योगवित्तमाः इमम् समाधिं धर्ममेघं प्राहुः ॥**

६८) योगवित्तमाः अतिशयेन योगज्ञाः ब्रह्मसाक्षात्कारवंत इति यावत् । इमम् निर्विकल्पसमाधिं धर्ममेघं प्राहुः स्पष्टम् ॥

६९ तदुपपादयति (वर्षतीति)—

७०] **यतः एषः धर्मामृतधाराः सहस्रशः वर्षति ॥**

७१) यतः कारणात् एषः समाधिः धर्मामृतधाराः धर्मलक्षणामृतधाराः सहस्रशः

परावर—ब्रह्मके देखेहुये[१५] इस पुरुषके कर्म[१६] क्षयकूं प्राप्त होवैहैं" ॥ इस श्रुतितैं ॥ औ "हे अर्जुन! ज्ञानअग्नि सर्वकर्मनकूं भस्मकी न्यांई करैहै" इस गीतास्मृतितैं औ॥ स्थूलसूक्ष्मकार्यसमूहरूप विलाससहित अविद्याके निवर्त्तक साक्षात्कारका प्रतिबंधकी निवृत्तिद्वारा साधनभूत पुण्यविशेषरूप शुद्धधर्म वृद्धिकूं पावैहै यह स्पष्ट है ॥ ५९ ॥

६६ समाधिकरि धर्मकी वृद्धि होवैहै तामैं कौंन प्रमाण है? तहां कहैहैं:—

६७] **योगवित्तम इस समाधिकूं धर्ममेघ कहतेभये ॥**

६८) अतिशयकरि योगके जाननेवाले ब्रह्मसाक्षात्कारवान्‌पुरुष इस निर्विकल्पसमाधिकूं धर्ममेघ कहतेभये । यह स्पष्ट है ॥

६९ तिस समाधिके धर्ममेघपनैकूं उपपादन करैहैं:—

७०] **जातैं यह समाधि सहस्रधर्मरूप अमृतधाराकूं वर्षताहै ॥**

७१) जिस कारणतैं यह समाधि । हजारोंहजारैं धर्मरूप अमृतकी धाराकूं वर्षताहै । समाधिका "एकक्षण ऋतुके कहिये यज्ञके

१४ पर कहिये ब्रह्मलोकादिकपुनरावृत्तिवाला पद सो है। अवर नाम निकृष्ट जिसतैं ऐसा जो प्रत्यक्‌अभिन्नपरब्रह्म सो परावर कहियेहै ॥

१५ अपरोक्ष जाने हुये ॥ दृष्टि नाम ज्ञानका है ॥ तिस ज्ञानका जो विषय सो दृष्ट (देख्या) कहियेहै ॥

१६ ज्ञानीके प्रारब्ध (फलारंभक)कर्मका तौ भोगसैंहीं क्षय होवैहै औ ज्ञानके अनंतर होनेहारे क्रियमाणकर्मका तौ "मैं अकर्त्ता अभोक्ता असंग हूं" इस निश्चयके बलतैं कमलपत्रकूं जलके असंस्पर्शकी न्यांई ज्ञानीके स्वरूपकूं संस्पर्श होवै नहीं यातैं अवशेषतैं अनंतजन्ममैं संपादित संचितकर्मकाहीं तत्त्वज्ञानतैं नाश होवैहै ॥

१७ चित्तके मल औ विक्षेपदोषआदिकरूप प्रतिबंधकी ॥

१८ प्रसंख्यान (चित्तकी एकाग्रता)के हुये बी जब यह ब्राह्मण (ब्रह्म होनेकी इच्छावाला मुमुक्षु) अकुसीद (विरक्त) है कहिये तातैं बी किंचित् सिद्धिआदिककी प्रार्थना (इच्छा) करै नहीं तब ताकूं विवेकख्याति (स्वरूपसाक्षात्कार) होवैहै ॥ तातैं इसकूं धर्ममेघनामक समाधि सिद्ध होवैहै ॥ इसरीतिसैं योगशास्त्रके चतुर्थकैवल्यपादके अष्टाविंशतिसूत्रविषै प्रसिद्ध है॥

१९ पूर्वपक्षादिविषयका परस्परहेतुवान् होने आदिकके विस्तारपूर्वक युक्तिसहित उच्चारण वा विवादकरिके सिद्ध करना । उपपादन कहियेहै ॥

२० पुण्यविशेषरूप ॥ उक्तधर्मतैं ज्ञानीकूं उत्तमलोककी प्राप्तिआदिरूप औरफल होवै नहीं किंतु ज्ञानतैं प्रथम तौ ज्ञानउत्पत्तिमैं प्रतिबंधकी निवृत्ति होवैहै औ दूसरा तिस ज्ञानीके दर्शन स्पर्शन संभाषण सेवातैं लोककूं पापनिवृत्ति औ यथाकामनाकी सिद्धिआदिक होवैहै ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांकः ६१ ६२

[73]अमुना वासनाजाले निःशेषं प्रविलापिते ।
समूलोन्मूलिते पुण्यपापाख्ये कर्मसंचये ॥ ६१ ॥
[76]वाक्यमप्रतिबद्धं सत्प्राक्परोक्षावभासिते ।
करामलकवद्बोधमपरोक्षं प्रसूयते ॥ ६२ ॥

टीकांकः २७२ टिप्पणांकः २२१

वर्षति । "क्षणमेकं ऋतुशतस्यापि" इति श्रुतेरतो धर्ममेघं प्राहुरिति पूर्वेणान्वयः ॥ ६० ॥

७२ इदानीं समाधेः परमप्रयोजनमाह—

७३] **अमुना वासनाजाले निःशेषं प्रविलापिते पुण्यपापाख्ये कर्मसंचये समूलोन्मूलिते ।**

७४) अमुना समाधिना । वासनाजाले अहंकारममकारकर्तृत्वाद्यभिमानहेतुभूते ज्ञानविरुद्धे संस्कारसमूहे । निःशेषं यथा भवति तथा प्रविलापिते विनाशिते । पुण्यपापाख्ये कर्मसंचये समूलोन्मूलिते मूलसहितं यथा भवति तथोन्मूलिते उद्धृते विनाशित इति यावत् ॥ ६१ ॥

७५ फलितमाह—

७६] **वाक्यं अप्रतिबद्धं सत् । प्राक् परोक्षावभासिते करामलकवत् अपरोक्षं बोधं प्रसूयते ॥**

७७) वाक्यं तत्त्वमस्यादिवाक्यं । अप्रतिबद्धं सत् कर्मवासनाभ्यां प्रतिबंधरहितं सत् । प्राक् परोक्षावभासिते पूर्वं परोक्षतया प्रकाशिते तत्त्वे । करामलकवत् करस्थितामलकगोचरमिव । अपरोक्षं अपरोक्ष-

शतका है" इस श्रुतितैं ॥ यातैं इस समाधिकूं धर्ममेघ कहतेभये यह पूर्वार्द्धसैं अन्वय है ॥६०॥

॥ ३ ॥ समाधिका परमप्रयोजन ॥

७२ अब समाधिके [21]परमप्रयोजनकूं कहैहैं:—

७३] **इस समाधिकरि वासनाजालके संपूर्णविनाश कियेहुये औ पुण्यपापनामक कर्मसंचयके मूलसहित उन्मूलित हुये ।**

७४) इस समाधिकरि अहंकारममकारकर्तृत्वआदिकअभिमानके हेतुभूत ज्ञानतैं विरुद्ध संस्कारके समूहरूप वासनाजालके संपूर्णविनाशकूं प्राप्तहुये औ पुण्यपापनामक कर्मसंचयके मूलसहित विनाश [22]हुये ॥ ६१ ॥

॥ ४ ॥ उत्तरग्रंथका फलितअर्थ ॥ २७५–२८६ ॥

॥ १ ॥ वाक्यतैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्ति ॥

७५ फलितकूं कहैहैं:—

७६] **वाक्य अप्रतिबद्ध हुवा पूर्वेपरोक्षअवभासिततत्त्वविषै करामलककी न्यांई अपरोक्षबोधकूं जनता है ॥**

७७) "तत्त्वमसि" आदिमहावाक्य । कर्म अरु वासनारूप प्रतिबंधतैं रहित हुवा पूर्व परोक्षपनैकरि प्रकाशिततत्त्व जो प्रत्यक्रूप ब्रह्म । तिसविषै करमें स्थित [23]आमलककूं वा हस्तमैं

२१ जिसतैं अधिक और प्रयोजन होवै नहीं ऐसा मुख्यप्रयोजन (फल) परमप्रयोजन है ॥

२२ इस श्लोकका उत्तरश्लोकसैं संबंध है ॥

२३ हाथमैं धन्या आमलेका फल जैसैं च्यारिओरतैं जानियेहै तैसैं ॥

टीकांक: २७८ टिप्पणांक: २२४	परोक्षं ब्रह्मविज्ञानं शाब्दं देशिकपूर्वकम् । बुद्धिपूर्वकृतं पापं कृत्स्नं दहति वह्निवत् ॥ ६३ ॥ अपरोक्षात्मविज्ञानं शाब्दं देशिकपूर्वकम् । संसारकारणाज्ञानतमसश्चंडभास्करः ॥ ६४ ॥	प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः ॥१॥ श्लोकांक: ६३ ६४

तया तत्त्वावभासनसमर्थं । बोधं ज्ञानं । प्रसूयते जनयति ॥ ६२ ॥

७८ इदानीं परोक्षज्ञानस्य फलमाह (परोक्षमिति)—

७९] देशिकपूर्वकं शाब्दं परोक्षं ब्रह्मविज्ञानं । बुद्धिपूर्वकृतं कृत्स्नं पापं वह्निवत् दहति ॥

८०) देशिकपूर्वकं गुरुमुखाल्लब्धं । शाब्दं तत्त्वमस्याद्यागमजन्यं । परोक्षं ब्रह्मविज्ञानं । बुद्धिपूर्वकृतं ज्ञानपूर्वकं यथा भवति तथा कृतं । कृत्स्नं समस्तं । पापं वह्निवद्दहति ॥ ६३ ॥

८१ अपरोक्षज्ञानफलमाह (अपरोक्षेति)

८२] शाब्दं देशिकपूर्वकं अपरोक्षात्मविज्ञानं संसारकारणाज्ञानतमसः चंडभास्करः ॥

८३) शाब्दं देशिकपूर्वकं व्याख्यातं ॥ अपरोक्षात्मविज्ञानं अपरोक्षस्यात्मनो विज्ञानं संशयविपर्ययरहितं यत् ज्ञानं । तत् संसारकारणाज्ञानतमसः संसारकारणं

स्थित अमलक[24] कहिये निर्मलजल ताकूं प्रकाश करनेवाले अपरोक्षज्ञानकी न्यांई अपरोक्षपनैकरि तत्त्वके प्रकाशनेमैं समर्थ ज्ञानकूं उपजावैहै ॥ ६२ ॥

॥ २ ॥ परोक्षज्ञानका फल ॥

७८ अब परोक्षज्ञानके फलकूं कहैहैं:—

७९] देशिकपूर्वक औ शाब्द ऐसा जो परोक्षब्रह्मका विज्ञान है सो ज्ञानतैं पूर्व किये समस्तपापकूं अग्निकी न्यांई दहन करैहै॥

८०) देशिकपूर्वक कहिये ब्रह्मनिष्ठगुरुके मुखतैं प्राप्त औ शाब्द कहिये "तत्त्वमसि" आदिकशास्त्रसैं जन्य ऐसा जो परोक्षब्रह्मका[25] ज्ञान है सो ज्ञानतैं[26] पूर्व जैसैं होवै तैसैं किये सर्वपापकूं अग्निकी न्यांई दहन करैहै ॥ ६३ ॥

॥ ३ ॥ अपरोक्षज्ञानका फल ॥

८१ अपरोक्षज्ञानके फलकूं कहैहैं:—

८२] देशिकपूर्वक औ शाब्द ऐसा जो अपरोक्षआत्माका विज्ञान है सो संसारके कारण अज्ञानरूप तमका चंडभास्कर है ॥

८३) देशिकपूर्वक[27] औ शाब्द[28] ऐसा जो अपरोक्षरूप ब्रह्माभिन्नआत्माका संशयविपर्ययरहित अपरोक्षज्ञान[29] है । सो ज्ञान । जन्मादिसंसारका कारण जो अज्ञानरूप अंधकार है ताका चंडभास्कर कहिये मध्यान्हका-

२४ करस्थआमलेका फल बाहिरतैं जानियेहै परंतु भीतर जान्या जावै नहीं ॥ इस अरुचितैं दूसरेअर्थ (करमें स्थित निर्मलजल)का ग्रहण है ॥

२५ अंक २२३३ विषे देखो ॥

२६ जानिके किये ऐसे ज्ञात वा या जन्मके अनंतर ज्ञानतैं पूर्व किये सर्वपापकूं ॥

२७ इस पदका व्याख्यान कियाहै ॥ अंक २१९ विषे देखो ॥

२८ इस पदका व्याख्यान ॥ अंक २१९ विषे देखो ॥

२९ अंक २२३३ विषे देखो ॥

प्रत्यक्तत्त्व-विवेकः॥ १॥ श्लोकांकः ६५

इत्थं तत्त्वविवेकं विधाय विधिवन्मनः समाधाय।
विगलितसंसृतिबंधः प्राप्नोति परं पदं नरो नचिरात्

॥ इति श्रीपंचदश्यां प्रत्यक्तत्त्वविवेकः ॥ १ ॥

टीकांकः २८४ टिप्पणांकः २३०

यदज्ञानमस्ति । तदेव तमस्तस्य चंडभास्करः मध्याह्नकालीनसूर्यः । बाह्यतमसश्चंडभास्कर इवाज्ञानतमसो निवर्तक इत्यर्थः॥६४॥

८४ ग्रंथाभ्यासफलमाह (इत्थमिति)—

८५] नरः इत्थं तत्त्वविवेकं विधाय। विधिवत् मनः समाधाय। विगलितसंसृतिबंधः। परं पदं नचिरात् प्राप्नोति॥

८६) नरः। इत्थं उक्तेन प्रकारेण। तत्त्वविवेकं तत्त्वस्य ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणस्य। विवेकं कोशपंचकाद्विवेचनं। विधाय कृत्वा। तस्मिंस्तत्त्वे विधिवत् शास्त्रोक्तप्रकारेण। मनः समाधाय स्थिरीकृत्य। विगलितसंसृतिबंधः अपरोक्षज्ञानेन निवृत्तसंसारबंधः सन् परं पदं निरतिशयानंदरूपं मोक्षं। नचिरात् अविलंबेन। प्राप्नोति सत्यज्ञानानंदलक्षणं ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः॥ ६५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्भारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिता तत्त्वविवेकव्याख्या समाप्ता॥ १॥

लका सूर्य है॥ बाह्यतमका जैसैं मध्यान्हकालका सूर्य निवर्त्तक है। तैसैं अज्ञानरूप आत्मविषयक आंतरतमका उक्तअपरोक्षज्ञान निवर्त्तक है॥ ६४॥

॥ ४ ॥ ग्रंथके अभ्यासका फल ॥

८४ इस प्रकरणरूप ग्रंथके वारंवारविचाररूप अभ्यासके फलकूं कहैहैं:—

८५] नर। ऐसैं तत्त्वके विवेककूं करिके औ तामैं विधिवत् मनकूं एकाग्र करिके विगलितसंसृतिबंध हुवा परमपदकूं अचिरतैं पावैहै॥

८६) मनुष्य इस उक्तप्रकारकरि[30] ब्रह्म औ आत्माकी एकतारूप तत्त्वके पंचकोशतैं विवेचनरूप विवेककूं करिके तिस तत्त्वविषै शास्त्रोक्त[31]प्रकारसैं मनकूं स्थिर करिके अपरोक्षज्ञानकरि निवृत्त भयाहै संसाररूप बंध जिसका ऐसा हुवा परमपद जो निरतिशयआनंदरूप मोक्ष ताकूं अविलंबतैं कहिये तत्काल पावैहै॥ सत्य ज्ञान आनंदरूप ब्रह्महीं होवैहै॥ यह अर्थ है॥ ६५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्म विदुषा विरचिता पंचदश्याः प्रत्यक्तत्त्वविवेकस्य तत्त्वप्रकाशिकाख्या व्याख्या समाप्ता॥ १॥

---

३० सारे प्रथमप्रकरणमैं कथन किया जो अध्यारोप औ अपवादादिरूप प्रकार है तिसकरि॥

३१ एकताका विचार औ लयचिंतनादिरूप उपायसैं। सर्वप्रपंचके अभावकूं विचारिके "मैं ब्रह्म हूं" इसरीतिसैं मनकूं तदाकारकरिकै॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ पंचमहाभूतविवेकः ॥

॥ द्वितीयप्रकरणम् ॥ २ ॥

पंचमहाभूत विवेकः ॥२॥ श्लोकाः ६६

सदद्वैतं श्रुतं यत्तत्पंचभूतविवेकतः ।
बोद्धुं शक्यं ततो भूतपंचकं प्रविविच्यते ॥ १ ॥
(अन्य व्याख्या ६२ पृष्ठोपरि द्रष्टव्या)

ॐ

ॐ

॥ पंचदशी ॥

॥ अथ पंचमहाभूतविवेक-दीपिका ॥ २ ॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
पंचभूतविवेकस्य व्याख्यानं क्रियते मया ॥ १ ॥

ॐ

॥ पंचदशी ॥

॥ अथ पंचमहाभूतविवेककी तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ २ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
पंचभूतविवेकस्य विवृतिः क्रियते मया ॥ १ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमनकरिके पंचदशीके पंचमहाभूतविवेकनामप्रकरणकी विवृति कहिये व्याख्या नरभाषासें मेरेकरि करियेहै ॥ १ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीभारतीतीर्थ औ विद्यारण्यनामक दोमुनीश्वरनकूं नमस्कारकरिके पंचभूतविवेक नामक पंचदशीके द्वितीयप्रकरणकी व्याख्या मैं (रामकृष्णपंडित) करूंहूं ॥ १ ॥

* महातें पंचभूतनका विवेक (विवेचन) वा पंचभूतनतें ब्रह्मका विवेक जिसविषै है सो ॥

८७ "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमिति" श्रुत्या जगदुत्पत्तेः पुरा यत् जगत्कारणं सद्रूपमद्वितीयं ब्रह्म श्रुतं तस्यावाङ्मनसगोचरत्वेन स्वतोऽवगंतुं अशक्यत्वात्तत्कार्यत्वेन तदुपाधिभूतस्य भूतपंचकस्य विवेकद्वारा तदवबोधनायोपोद्घातत्वेन भूतपंचकविवेकं प्रतिजानीते (सदद्वैतमिति)—

८८] यत् सत् अद्वैतं श्रुतं तत् पंच-

॥ "सृष्टिके आगे यह सत् था" इस श्रुतिके अर्थके कथनपूर्वक पंचमहाभूतविवेककी प्रतिज्ञा ॥

८७ "हे सौम्य! सृष्टितैं पूर्व यह[32] जगत् एक[33] हीं[34] अद्वितीय[35] सत्[36]रूप ब्रह्म[37] था[38]" इस श्रुति[39]करि जगत्की उत्पत्ति[40]तैं पूर्व जो जगत्का कारण सत्रूप अद्वितीय[41]-ब्रह्म श्रवण कियाहै तिस ब्रह्मकूं वाणी औ मनका अविषय[42] होनेतैं सो ब्रह्म आपतैंहीं जाननेकूं अशक्य[43] है। यातैं तिस ब्रह्मके कार्य होनेकरि तिसकी उपाधि[44]रूप जे पंचभूत हैं तिनके विवेकद्वारा तिस ब्रह्मके बोधनअर्थ उपोद्घातपनेकरि[45] पंचभूतनके विवेककी प्रतिज्ञा करैहैं:—

८८] जो सत्रूप अद्वैतब्रह्म सुन्या

३२ षट्प्रमाणादिककरि परिदृश्यमानजगत् प्रथम कारणब्रह्मरूप था ॥ जैसैं घट स्वउत्पत्तितैं पूर्व मृत्पिंडरूप होवैहै। तैसैं ॥ इति ॥

३३ एकभावके होनेतैं स्वगतभेदरहित ॥

३४ एव शब्दका पर्याय हीं शब्द अन्यके संबंधका निषेधक है ॥ यातैं हीं कहिये सजातीयभेदरहित ॥

३५ विजातीयभेदरहित **अद्वितीय** है ॥

३६ भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीनकालमैं जिसका बाध होवै नहीं ऐसा **सत्** ॥

३७ माया औ तत्कार्य इन सर्वसैं अधिक व्यापक होनेतैं निरपेक्षव्यापक **ब्रह्म** है ॥

३८ "था" इस पदकरि ब्रह्मकूं जो भूतकालयुक्तता प्रतीत होवैहै सो कालकी वासनासैं युक्त शिष्यके समजावनेअर्थ है यातैं द्वैत नहीं। अंक ४४७ विषे देखो ॥

३९ सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्गत षष्ठप्रपाठक (अध्याय)विषै श्वेतकेतु नाम पुत्रके तांई उद्दालक नाम मुनि कहैहैं ॥

४० आद्यक्षणसैं संबंधका नाम **उत्पत्ति** है ॥

४१ यद्यपि प्रलयकालमैं औरवस्तु तौ ब्रह्ममैं नहीं है तथापि शुद्धसैं सृष्टिके असंभवकरि औ "मायाकूं प्रकृति (उपादान) जानना।" इस श्रुतिकरि मायाशक्ति तौ ब्रह्मविषै है यातैं तिस मायाविशिष्टकी अद्वितीयता संभवै नहीं ॥ या शंकाका यह समाधान है:—जैसैं सुषुप्तिकालविषै आत्मामैं मिथ्याअविद्या है सो आपकी दृष्टिसैं वा अन्यकी दृष्टिसैं वा षट्प्रमाणसैं आत्मातैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं। यातैं आत्मा अद्वितीय है ॥ तैसैं प्रलयकालमैं बी मिथ्यामायाशक्ति भिन्न प्रतीत होवै नहीं। यातैं तिसकालमैं ब्रह्म अद्वितीय है ॥ औ सृष्टि अनंतर बी सर्वजगत् वामैं आरोपित (मिथ्या) है। यातैं सदाहीं ब्रह्म **अद्वितीय** है ॥

४२ जातैं ब्रह्म। जाति गुण क्रिया नाम औ संबंधादिसर्वधर्मनतैं वर्जित है तातैं मनवाणिका **अविषय** है ॥ औ ब्रह्मकूं शास्त्र तौ लक्षणासैं कहैहैं औ महात्मा तौ वृत्तिव्याप्तिसैं जानैहैं ॥

४३ विचार किये विना घटादिककी न्यांई जाननेकूं शक्य नहीं ॥

४४ मृत्तिकाका कार्य घट जैसैं मृत्तिकाके अन्वय औ व्यतिरेककरि युक्त होनेतैं अन्य तंतुआदिकतैं स्वकारणमृत्तिकाका व्यावर्त्तक है यातैं **उपाधि** है ॥ ऐसैं लूतातंतु (ऊर्णनाभि)की तंतुमैं बी जानना ॥ तैसैं ब्रह्मके कार्य। आकाशादिपंचभूत बी सच्चिदानंद (अस्तिभातिप्रिय)रूप ब्रह्मके अन्वयव्यतिरेकयुक्त होनेतैं। असत्आदिकतैं ब्रह्मके व्यावर्त्तक हैं। यातैं ब्रह्मकी उपाधिरूप कहियेहैं ॥ तिन उपाधिनके साथि ब्रह्मका तादात्म्य है यातैं तिनका औ ब्रह्मका परस्पर विवेचन करियेहै ॥

४५ प्रतिपादन करनेके योग्य अर्थकूं मनमैं राखिके तिसके अर्थ औरअर्थका जो प्रतिपादन। सो **उपोद्घात** कहियेहै ॥ जैसैं किसीकूं अन्यके गृहसैं छांछ (तक्र) लेनेकी इच्छा होवै तब सो प्रथमहीं जायके "छांछ देहु" ऐसा कथन करै तब लोभीमनुष्यसैं छांछ मिलै नहीं। यातैं तिस प्रयोजनकूं मनमैं राखिके तिसके अर्थहीं "तुमारी गौकी छांछ होती है वा नहीं?" इत्यादिकथन **उपोद्घात** है ॥ तैसैं इहां अद्वितीयब्रह्मके बोधरूप प्रयोजनकूं मनमैं राखिके तिसकेअर्थ पंचभूतके विवेचनआदिकका कथन **उपोद्घात** है ॥ ऐसैं अन्यस्थलमैं बी उपोद्घात जानना ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ६७ ६८ — टीकांकः २८९ टिप्पणांकः २४६

शब्दस्पर्शौ रूपरसौ गंधो भूतगुणा इमे ।
एकद्वित्रिचतुःपंच गुणा व्योमादिषु क्रमात् ॥ २ ॥
प्रतिध्वनिर्वियच्छब्दो वायौ वीसीति शब्दनम् ।
अनुष्णाशीतसंस्पर्शो वह्नौ भुगुभुगुध्वनिः ॥ ३ ॥

भूतविवेकतः बोद्धुं शक्यम् । ततः भूतपंचकं प्रविविच्यते ॥ १ ॥

८९ तत्र तावदाकाशादीनां पंचानां भूतानां गुणतो भेदज्ञापनाय तद्गुणानाह—

९०] शब्दस्पर्शौ रूपरसौ गंधः इमे भूतगुणाः ॥

९१ नन्वेते गुणाः किं सर्वेषामुत एकैकस्यैकैकगुण इति विमर्शयन्नोभयथापि किंतु प्रकारान्तरमस्ति इत्यभिप्रायेणाह (एकेति)—

९२] व्योमादिषु क्रमात् एकद्वित्रिचतुःपंचगुणाः ॥ २ ॥

९३ तदेव प्रकारान्तरं विशदयति (प्रतिध्वनिरिति)—

९४] वियच्छब्दः प्रतिध्वनिः ॥

९५) आकाशे तावत् शब्दः एव गुणः स च प्रतिध्वनिरूपः ॥

है सो पंचभूतनके विवेकतैं जाननैकूं शक्य है । तातैं पंचभूतनकूं प्रसत्तें प्रकर्ष कहिये अतिशयकरि विवेचन करियेहै। कहिये प्रसत्तें भिन्न करि जनाइयेहै ॥ १ ॥

॥ १ ॥ अपंचीकृतपंचमहाभूतके गुण औ कार्यका वर्णन ॥ २८९–३७० ॥

॥ १ ॥ आकाशादिकके गुणनका कथन ॥ २८९–३१४ ॥

॥ १ ॥ भूतनके गुणनके नाम औ तिनकी संक्षेपतें योजना ॥

८९ तहां प्रथम आकाशादिकपांचभूतनका गुणतैं भेद जनावनैंअर्थ तिन भूतनके गुणनकूं कहैहैं ॥

९०] शब्द स्पर्श रूप रस औ गंध ये पांच भूतनके गुण हैं ॥

९१ ननु ये पांचगुण क्या सर्वभूतनके हैं वा एकएकभूतका एकएकगुण है? यह आशंकाकरिके ए दोनूंप्रकार बी नहीं है किंतु इहां औरतीसराप्रकारहीं है । इस अभिप्रायसैं कहैहैं ॥

९२] आकाशआदिकपंचभूतनविषै क्रमतैं एक दो तीन च्यारि औ पांच गुण हैं ॥ २ ॥

॥ २ ॥ भूतनके गुणनका विभाग ॥

९३ तिसहीं उक्त औरतीसरे उपायरूप प्रकारांतरकूं स्पष्ट करैहैं:—

९४] आकाशका शब्द प्रतिध्वनि है ॥

९५)-प्रथम आकाशविषै एक शब्दहीं गुण है सो आकाशका गुण शब्द प्रतिध्वनिरूप है॥

४६ गुणका सामान्यलक्षण । देखो १९३ टिप्पणविषै ॥

४७ क्या एकएकभूतके पांचपांचगुण हैं?

४८ आकाशका एकगुण है । वायुके दो हैं । तेजके तीन हैं । जलके चारि हैं । पृथ्वीके पांच हैं ॥

४९ पर्वतादिकके मध्यमैं विद्यमान पुलारस्थलमैं अन्यशब्दका जो प्रतिबिंब होवैहै सो प्रतिध्वनि है ॥

टीकांक: २९६ टिप्पणांक: २५०	उष्णः स्पर्शः प्रभा रूपं जले बुलुबुलुध्वनिः । शीतः स्पर्शः शुक्लरूपं रसो माधुर्यमीरितम्॥४॥ भूमौ कडकडाशब्दः काठिन्यं स्पर्श इष्यते । नीलादिकं चित्ररूपं मधुराम्लादिको रसः॥ ५ ॥	पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ६९ ७०

९६ वायौ शब्दस्पर्शौ तत्र वायुशब्दमनुकारेण दर्शयति—

९७] वायौ "वीसी" इति शब्दनम् ॥

९८) वीसीति शब्दनं इति एवमुत्तरत्रानुकरणशब्दनं द्रष्टव्यम् ॥

९९ तस्य स्पर्शमाह—

३००] अनुष्णाशीतसंस्पर्शः ॥

१ वह्नौ शब्दस्पर्शरूपाणीति त्रयो गुणाः ते च क्रमेणाभिधीयंते—

२] वह्नौ भुगुभुगुध्वनिः ॥ ३ ॥

३] उष्णः स्पर्शः प्रभारूपम् ॥

४ जले शब्दादयो रसांताश्चत्वारो गुणास्तानाह—

५] जले बुलुबुलुध्वनिः शीतः स्पर्शः शुक्लरूपं रसः माधुर्यं ईरितम् ॥

६) जले बुलुबुलुध्वनिः शीतः स्पर्शः शुक्लं रूपं रसो माधुर्यम् ईरितम् ॥४॥

७ भूमौ शब्दादिगंधांताः पंच गुणास्तानुदाहरति—

---

९६ वायुविषै शब्दस्पर्श दोगुण हैं तिनमैं वायुके शब्दकूं अनुकरणकरि दिखावैहैं:—

९७] वायुविषै "वीसी" ऐसा शब्द है ॥

९८) वायुभूतविषै "वीसी" इस आकारका शब्द है ॥ इसरीतिसैं आगे तेजआदिकमैं शब्दका अँनुकरण है सो जानी लेना ॥

९९ तिस वायुके स्पर्शकूं कहैहैं:—

३००] वायुविषै उष्ण शीत अरु कठिनतैं विलक्षण संस्पर्श है ॥

१ अग्निविषै शब्द स्पर्श रूप ये तीनगुण हैं वे क्रमकरि कहियेहैं:—

२] वन्हिविषै "भुगुभुगु" ऐसा ध्वनि है ॥ ३ ॥

३] औ उष्णस्पर्श है अरु प्रभारूप है

४ जलविषै शब्द स्पर्श रूप रस ये चारिगुण हैं तिनकूं कहैहैं:—

५] जलविषै "बुलुबुलु" ध्वनि है औ शीतस्पर्श है औ शुक्लरूप है औ माधुर्यरस कहाहै ॥

६) जलविषै "बुलुबुलु" ऐसा ध्वनि है औ शीतलस्पर्श है औ शुक्लरूप है औ मधुरता रस है ॥ ४ ॥

७ भूमिविषै शब्द स्पर्श रूप रस औ गंध ये पांचगुण हैं तिनकूं कहैहैं:—

---

५० शब्दके जैसा औरशब्द करनेका नाम शब्दका अनुकरण है ॥ ताहीकूं शब्दका अनुकार बी कहैहैं ॥ जैसें कोकिलाआदिकपक्षीका शब्द सुनिके तैसा शब्द बालक उच्चारण करैहै सो तिसके शब्दका अनुकरण है ॥ तैसें इहां वायुआदिकनके शब्दका अनुकरण है ॥

५१ जलमैं स्वाभाविक तौ मधुररस है । परंतु विलक्षणभूमिके संबंधसैं क्षारतादि भासतेहैं ॥ हरडेआदिकका भक्षण किये पीछे जलके पान कियेसैं जलका मधुरस्वभाव भासताहै

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	सुरभीतरगंधौ द्वौ गुणाः सम्यग्विवेचिताः ।	
७१	श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चेंद्रियपंचकम् ॥६॥	३०८
	कर्णादिगोलकस्थं तच्छब्दादिग्राहकं क्रमात् ।	टिप्पणांकः
७२	सौक्ष्म्यात्कार्यानुमेयं तत्प्रायो धावेद्बहिर्मुखम् ॥७॥	२५२

८] भूमौ कडकडाशब्दः काठिन्यं स्पर्शः इष्यते । नीलादिकं चित्ररूपं । मधुराम्लादिकः रसः ॥ ९ ॥

९] सुरभीतरगंधौ द्वौ ॥

१०) सुरभीतरगंधौ द्वौ इत्यंतेन ॥

११ उक्तमर्थमुपसंहरति—

१२] गुणाः सम्यक् विवेचिताः ॥

१३ एवं गुणतो भेदमभिधाय कार्यतो भेदज्ञापनाय तत्कार्याणि ज्ञानेंद्रियाणि तावदाह—

१४] श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा च घ्राणं इंद्रियपंचकम् ॥ ६ ॥

१५ तेषां स्थानानि व्यापारांश्च दर्शयति (कर्णादीति)—

८] भूमिविषै "कडकडा" ऐसा शब्द है औ कठिनता स्पर्श कहियेहै औ नीलादिकचित्ररूप है औ मधुर आम्ल आदिक रस हैं ॥ ९ ॥

९] सुरभि औ इतर कहिये असुरभि ये दोगंध हैं ॥

१०) पृथिवीविषै सुगंध औ दुर्गंध ये दोगंध हैं ॥ इहांपर्यंत पृथिवीके गुण कहे ॥

११ उक्तभूतनके गुणरूप अर्थकी समाप्ति करैहैं:—

१२] इसरीतिसैं पांचभूतनके गुण सम्यक्विवेचन किये कहिये भिन्नकरि जनाये ॥

॥ २ ॥ पंचज्ञानइंद्रियनका वर्णन ॥ ३१३—३३१ ॥

॥ १ ॥ पंचज्ञानइंद्रियनके नाम ॥

१३ इसरीतिसैं पांचभूतनका गुणतैं भेद कहिके अब कार्यतैं भेदके जनावनेअर्थ तिन भूतनके कार्य ज्ञानेंद्रियनकूं प्रथम कहैहैं:—

१४] श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा औ घ्राण ये पांच ज्ञानेंद्रिय हैं ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ ज्ञानइंद्रियनका स्थान । व्यापार । सद्भाव औ स्वभाव ॥

१५ तिन ज्ञानेंद्रियनके स्थान औ व्यापारकूं दिखावैहैं:—

५२ भेरीआदिकमैं पार्थिव (पृथ्वीजन्य) शब्द प्रसिद्ध है॥

५३ नील कहिये श्याम औ आदिशब्दकरि शुक्ल पीत रक्त हरित (शुकपक्षीके रंगसमान)। कपिश (बंदरसमान)। इनका ग्रहण है सो सर्व मिलिके चित्ररूप (रंग) होवैहै सो पृथ्वीका रूप है ॥

५४ शर्करादिकका ॥ ५५ अंबलीआदिकका ॥

५६ आदिपदसैं। लवण (क्षार)। कटुक (निंबादिकका)। कषाय (हरडेआदिकका)। तिक्त (मिरचादिकका तीखा)। इनका ग्रहण है ॥ ये षट्रस पृथ्वीविषै हैं ॥

५७ शब्दादिकके ज्ञानके साधन इंद्रियनकूं ज्ञानेंद्रिय कहैहैं ॥

१६] तत् क्रमात् कर्णादिगोलकस्थं शब्दादिग्राहकम् ॥

१७ इंद्रियसद्भावे किं प्रमाणमित्याकांक्षायां कार्यलिंगकानुमानमित्याह (सौक्ष्म्यादिति)—

१८] सौक्ष्म्यात् कार्यानुमेयम् ॥

१९) तच्च रूपोपलब्धिः करणजन्या क्रियात्वात् छिदिक्रियावदित्यादि द्रष्टव्यं । सौक्ष्म्यात् अपंचीकृतपंचभूतकार्यत्वेन दुर्लक्ष्यत्वादित्यर्थः ॥

२० एतेषां स्वभावमाह (प्राय इति)—

२१] तत् प्रायः बहिर्मुखं धावेत् ॥

२२) "परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूः" इति श्रुतेरित्यर्थः ॥ ७ ॥

१६] सो ज्ञानेंद्रियनका पंचक क्रमतैं कर्ण–आदि गोलकमैं स्थित है औ क्रमतैं शब्द–आदिकका ग्राहक है ॥

१७ इंद्रियनके सद्भावमें कौंन प्रमाण है? इस आकांक्षाके हुये कार्यलिंगकअनुमानही प्रमाण है। ऐसैं कहैहैं:—

१८] सो इंद्रियपंचक सूक्ष्म होनेतैं अपने कार्यकरि अनुमेय है ॥

१९) रूपकी उपलब्धि जो ज्ञान सो करणसैं जन्य है। क्रिया होनेतैं। जो जो क्रिया है। सो सो करणसैं जन्य होवैहै। छिदिक्रियाकी न्यांई ॥ इनसैं आदिलेके चक्षुआदिकके सद्भावमैं अनुमान देखना ॥ तिन इंद्रियनकूं सूक्ष्म होनेतैं कहिये अपंचीकृतपंचभूतनके कार्य होनेकरि दुर्लक्ष्य होनेतैं। अनुमानसैं जाननेकी योग्यता है ॥ यह अर्थ है ॥

२० इन ज्ञानेंद्रियनके स्वभावकूं कहैहैं:—

२१] सो प्रायकरिके बहिर्मुख हुवा धावन करताहै ॥

२२) सो ज्ञानेंद्रियनका पंचक बहुतकरि बहिर्मुख हुवा कहिये बाह्यघटपटादिविषयनके सन्मुख हुवा धावन करताहै ॥ "स्वयंभू जो परमात्मा सो इंद्रियनकूं पराक् रचिकरि आत्माके दर्शनसैं छेदन करताभया। तातैं पुरुष पराक् देखताहै। अंतरआत्माकूं नहीं।" इस श्रुतितैं। यह अर्थ है ॥ ७ ॥

५८ आदिपदकरि शरीर नेत्र जिव्हा औ नासिकाका ग्रहण है ॥

५९ आदिपदसैं स्पर्श रूप रस औ गंधका ग्रहण है ॥

६० विषय करनेवाला है ॥

६१ कार्य (रूपादिज्ञानरूप व्यापार) है लिंगक (हेतु) जिस अनुमानका। सो **अनुमान कार्यलिंगक** है ॥

६२ जैसैं पर्वतमैं धूमरूप लिंगकरि अग्नि **अनुमेय** है। तैसैं रूपादिविषयनका ज्ञानरूप कार्य है। तिस लिंगकरि इंद्रिय अनुमानसैं जाननेकूं योग्य है ॥

६३ असाधारणकारणका नाम **करण** है। कारणमात्रका नाम करण नहीं ॥ एकहीं कार्यके कारणकूं **असाधारणकारण** कहैहैं ॥ इहां इंद्रिय। रूपादिज्ञानरूप एकएककार्यके कारण होनेतैं करण कहियेहै ॥

६४ काष्ठके दोभांति विभाग करनेका नाम **छिदिक्रिया** है। ताहीकूं **छेदन** बी कहैहैं ॥ छिदिक्रिया जैसैं क्रिया होनेतैं वास औ कुठारआदिककरणसैं जन्य है। तैसैं रूपादिकनका परिच्छेदक (भिन्नकरिके दर्शक) तिनका ज्ञान बी क्रिया होनेतैं अवश्य करणजन्य है ॥ यह इंद्रियके सद्भावमैं अनुमान है ॥

६५ आदिशब्दकरि शब्दका ज्ञान। स्पर्शका ज्ञान औ रसका ज्ञान। गंधका ज्ञान। करण (क्रमतैं श्रोत्र। त्वचा। जिव्हा औ घ्राणइंद्रिय) जन्य है ॥ अर्थ (विषय) की परिच्छित्ति (विभाग करने) रूप क्रिया होनेतैं छिदिक्रियाकी न्यांई ॥ इन मिलित चारिअनुमानोंका ग्रहण है ॥

६६ अनुमितिप्रमाका करण (असाधारणकारण) ॥

६७ विषय औ इंद्रियके संबंधसैं जन्य ज्ञानकूं **प्रत्यक्ष** कहैहैं ॥ पंचीकृतभूत औ तिनके कार्य यथायोग्य इंद्रियका विषय है ॥ अपंचीकृत (सूक्ष्म) भूत औ तिनका कार्य। १० इंद्रिय। २ अंतःकरण औ ५ प्राण। इंद्रियके विषय नहीं ॥ जातैं इंद्रिय अपंचीकृतभूतनके कार्य होनेकरि इंद्रियजन्य (प्रत्यक्ष) ज्ञानके विषय नहीं हैं। तातैं प्रत्यक्षकरि दुःखसैं बी जाननेकूं अयोग्य (**दुर्लक्ष्य**) हैं ॥ याहीसैं अनुमानसैं जानियेहैं ॥

६८ आपहीं विद्यमानपरमात्मा **स्वयंभू** है ॥ यद्यपि **स्वयंभू** नाम ब्रह्माका बी है तथापि इंद्रियनकी उत्पत्ति ब्रह्मदेवतैं पूर्व सिद्ध है। यातैं इहां परमात्माकाही ग्रहण है ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ७३ ७४ | टीकांक: ३२३ | टिप्पणांक: २६९

> [२४]कदाचित्पिहिते कर्णे श्रूयते शब्द आंतरः ।
> प्राणवायौ जाठराग्नौ [२७]जलपानेऽन्नभक्षणे ॥ ८ ॥
> व्यज्यंते ह्यांतराः स्पर्शा मीलने चांतरं तमः ।
> उद्गारे रसगंधौ चेत्यक्षाणामांतरग्रहः ॥ ९ ॥

२३ प्रायः शब्देन सूचितं क्वचित्करणानामांतरविषयग्राहकत्वं दर्शयति कदाचिदिति द्वाभ्यां—

२४] कदाचित् कर्णे पिहिते प्राणवायौ जाठराग्नौ आंतरः शब्दः श्रूयते॥

२५) कदाचित् कर्णस्य पिधाने कृते सति प्राणवायौ जाठराग्नौ च विद्यमान आंतरः शब्दः श्रूयते ॥

२६ आंतरस्पर्शान् दर्शयति—

२७] जलपाने अन्नभक्षणे हि आंतराः स्पर्शाः व्यज्यंते ॥

२८) जलपानेऽन्नभक्षणे चांतरः स्पर्शाः अभिव्यज्यंते अभिव्यक्ता भवंति ॥

२९ आंतरं रूपादिकं दर्शयति—

३०] मीलने च आंतरं तमः उद्गारे च रसगंधौ इति अक्षाणाम् आंतरग्रहः ॥

३१) नेत्रनिमीलने कृते सति आंतरं तमः उपलभ्यते । उद्गारे जाते रसगंधौ द्वौ गृह्येते । इति अनेन प्रकारेण । अक्षाणामांतरग्रहः । अक्षाणामिति कर्तरि षष्ठी ।

॥ ३ ॥ ज्ञानइंद्रियनकी आंतरविषयकी ग्राहकता ॥

२३ "इंद्रियपंचक बहुतकरि बाहिर धावन करताहै ।" इस कथनकरि सूचन करी जो इंद्रियनकी काहुसमयमैं आंतरविषयकी ग्राहकता तिसकूं दोश्लोकनसैं दिखावैहैं:—

२४] कदाचित् कर्णके ढांपेहुये प्राणवायुकेविषै औ जठराग्निकेविषै शरीरके भीतरका आंतरशब्द सुनियेहै ॥

२५) कोइकसमयमैं कानके हस्तादिकसैं आच्छादन कियेहुये प्राणवायुकेविषै औ जठराग्निकेविषै विद्यमान आंतरशब्द श्रवण करियेहै ॥

२६ आंतरके स्पर्शकूं दिखावैहैं:—

२७] जलके पान किये औ अन्नके भक्षण किये अंतरके स्पर्श अभिव्यक्त होवैहैं ॥

२८) जलपानके कियेहुये औ अन्नभक्षणके कियेहुये शीतोष्णादिरूप अंतरके स्पर्श प्रगट होवैहैं ॥

२९ अंतरके रूपादिककूं दिखावैहैं:—

३०] नेत्रनके निमीलन कियेहुये आंतरतम देखियेहै औ उद्गारके भये रस औ गंध ग्रहण करियेहैं ॥ इसरीतिसैं इंद्रियनका आंतरग्रह है ॥

३१) नेत्रनके ढांपेहुये शरीरके भीतरका अंधकार उपलभ्यमान होवैहै औ उद्गारके उत्पन्न हुये अंतरके रस औ गंध यथायोग्य

६९ जैसा भीतरभक्षितअन्न होवै तैसै रस औ गंधका ग्रहण होवैहै ॥

टीकांक: ३३२ टिप्पणांक: २७०	[३३] पंचोक्त्यादानगमनविसर्गानंदकाः क्रियाः । [३६] कृषिवाणिज्यसेवाद्याः पंचस्वंतर्भवंति हि ॥१०॥ [३८] वाक्पाणिपादपायूपस्थैरक्षैस्तत्क्रियाजनिः । [४१] मुखादिगोलकेष्वास्ते तत्कर्मेंद्रियपंचकम् ॥११॥	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ७५ ७६

आंतरस्य विषयस्य ग्रहो ग्रहणमिंद्रियकर्तृकमांतरविषयग्रहणं भवतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥

३२ एवं ज्ञानेंद्रियव्यापारानभिधाय कर्मेंद्रियासत्त्ववादिनं प्रति तत्सद्भावसमर्थनाय तल्लिंगभूतांस्तद्व्यापारानाह (पंचेति)—

३३] उक्त्यादानगमनविसर्गानंदकाः पंचक्रियाः ॥

३४) उक्तिः च आदानं च गमनं च विसर्गः च आनंदः चेति द्वंद्वसमासः । उक्त्यादानगमनविसर्गानंदाख्याः पंचक्रियाः प्रसिद्धा इति शेषः ॥

३५ ननु कृष्यादीनां क्रियांतराणामपि सत्त्वात्कथं पंचेत्युक्तमित्याशंक्याह (कृषीति)—

३६] हि कृषिवाणिज्यसेवाद्याः पंचसु अंतः भवंति ॥ १० ॥

३७ कानि तानि क्रियाजनकानींद्रियाणीत्यत आह—

ग्रहण करियेहैं ॥ इस कथन किये प्रकारसैं ज्ञानइंद्रियनका अंतरके विषयनका ग्रहण है ९

॥ ३ ॥ पंचकर्मइंद्रियनका वर्णन ॥ ३३२–३४२ ॥

॥ १ ॥ कर्मइंद्रियनका व्यापार ॥

३२ अब कर्मेंद्रियनके असद्भावके वादी नैयायिकादिकके प्रति तिन कर्मेंद्रियनके सद्भावके संमर्थनअर्थ तिन कर्मेंद्रियनके व्यापारनकूं कहैहैं:—

३३] उक्ति आदान गमन विसर्ग आनंद ये पांच क्रिया हैं ॥

३४) उक्ति आदान गमन विसर्ग औ आनंद इस नामवाली पांचक्रिया प्रसिद्ध[७३] हैं ॥

३५ ननु कृपिआदिक अन्यक्रियाके सद्भावतैं पांचहीं क्रिया हैं ऐसैं तुमनैं कैसैं कहा? यह आशंकाकरिके कहैहैं:—

३६] जातैं कृषि वाणिज्य सेवा आदिक औरसर्वक्रिया इन पांच–क्रियाके अंतर होवैहैं तातैं पांचक्रिया कहीहैं ॥१०॥

॥ २ ॥ कर्मइंद्रियनके नाम । सद्भाव औ स्थानक ॥

३७ कौंन वे क्रियाके जनक इंद्रिय हैं? तहां कहैहैं:—

७० इहां अक्ष (इंद्रिय)नका यह षष्ठीविभक्ति है सो कर्त्ताविषै है ॥ यातैं इसरीतिसैं इंद्रियरूप कर्त्ताका किया कर्म । आंतरविषयनका ग्रहण होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ इति ॥

७१ योग्यअयोग्यका विचार वा युक्तअयुक्तकी परीक्षाअर्थ ॥

७२ वीर्यनिःसरणद्वारा आनंदकी निमित्त होनेतैं पशुधर्मरूप क्रियाकूं आनंद कहैहैं ॥

७३ इहां प्रसिद्ध पदशेष (वाक्यशेष) है ॥ वाक्यपूर्तिके अर्थ वा अर्थपूर्तिके अर्थ वा अवशेष रहे पदका बाहिरसैं अधिककथनका नाम वाक्यशेष है । ताहीकूं अध्याहार बी कहैहैं ॥

७४ आदिशब्दकरि उत्क्रमण (कूदन) । धावन । प्रसारण औ आकुंचनआदिकक्रियाका ग्रहण है ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ७७	[44]मनो दशेंद्रियाध्यक्षं हृत्पद्मगोलके स्थितम् । [46]तच्चांतःकरणं बाह्येष्वस्वातंत्र्याद्विनेंद्रियैः ॥१२॥	टीकांक: ३३८ टिप्पणांक: २७५

३८] वाक्पाणिपादपायूपस्थैः अक्षैः तत्क्रियाजनिः ॥

३९) वाक्-आदिभिः अक्षैस्तत्क्रियाजनिः तासां क्रियाणां उत्पत्तिर्भवतीति शेषः । अत्रापि उक्तिः करणपूर्विका क्रियात्वादित्यादिकार्यलिंगकमनुमानं द्रष्टव्यम् ॥

४० तस्य कर्मेंद्रियपंचकस्य स्थानान्याह (मुखादीति)—

४१] तत् कर्मेंद्रियपंचकं मुखादिगोलकेषु आस्ते ॥

४२) आदिशब्देन करचरणौ गुदशिश्नछिद्रे च गृह्येते ॥ ११ ॥

४३ इदानीमुक्तदशेंद्रियप्रेरकत्वेन प्रस्तुतस्य मनसः कृत्यं स्थानं च दर्शयति—

४४] मनः दशेंद्रियाध्यक्षं हृत्पद्मगोलके स्थितम् ॥

४५ तस्यांतरिंद्रियत्वं सनिमित्तकमाह—

४६] तत् च इंद्रियैः विना बाह्येषु अस्वातंत्र्यात् अंतःकरणम् ॥ १२ ॥

३८] वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ इन पांचकर्मइंद्रियनकरि तिस तिस क्रियाकी उत्पत्ति होवैहै ॥

३९) वाक्आदिइंद्रियनकरि तिन वचनादिकक्रियाकी उत्पत्ति होवैहै ॥ इहां वी वचनरूप क्रिया करणपूर्वक है । क्रिया होनैतैं । छेदनक्रियाकी न्यांई ॥ इनसैं आदिलेके कार्यलिंगअनुमान देखना ॥

४० तिन पांचकर्मेंद्रियनके स्थानकूं दिखावैहैं:—

४१] वे पांचकर्मेंद्रिय मुखआदिकगोलकमैं स्थित हैं ॥

४२) आदिशब्दकरि कर चरण गुदछिद्र औ शिश्नछिद्ररूप गोलक ग्रहण करियेहैं॥११॥

॥ ४ ॥ मनका वर्णन ॥ ३४३—३६४ ॥

॥ १ ॥ मनका कार्य । स्थान औ आंतरइंद्रियपना ॥

४३ अब उक्तदशइंद्रियनका प्रेरक होनैकरि प्रसंगप्राप्त जो मन है तिसके कार्य औ स्थानकूं दिखावैहैं:—

४४] मन दशइंद्रियनका प्रेरक होनैतैं अधिपति है औ हृदयकमलरूप गोलकविषै स्थित है ॥

४५ तिस मनके अंतरइंद्रियपनैकूं निमित्तसहित कहैहैं:—

४६] सो मन इंद्रियनसैं विना बाह्यशब्दादिविषयनविषै प्रवृत्ति करनेकूं अस्वतंत्र होनेतैं अंतःकरण है ॥ १२ ॥

७५ यद्यपि पादपीडा औ शिरके सुखका एककालमैं ज्ञान होवैहै सो मनके संबंध विना बनै नहीं यातैं मनका निवास सारे शरीरमैं है । केवल हृदयमैं नहीं । तथापि विशेषताकरि हृदयकूं मुख्यनिवास होनेतैं हृदयस्थान कह्याहै ॥ जैसैं दीपकका प्रकाश सारे गृहमैं है । तथापि विशेषकरि बत्तीयुक्त पात्रमैंहीं होनेतैं सो वाका मुख्यनिवास है तैसैं ॥

टीकांक: ३४७ टिप्पणांक: २७६

अक्षेष्वर्थार्पितेष्वेतद्गुणदोषविचारकम् ।
सत्त्वं रजस्तमश्चास्य गुणा विक्रियते हि तैः॥१२॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ७८

४७ दशेंद्रियाध्यक्षत्वमेव विशदयति—

४८] अक्षेषु अर्थार्पितेषु एतत् गुणदोषविचारकम् ॥

४९) अक्षेषु इंद्रियेषु । अर्थार्पितेषु विषयेषु स्थापितेषु सत्सु । एतत् मनो गुणदोषविचारकं इदं समीचीनमिदमसमीचीनमित्यादिविचारकारीत्यर्थः ॥ अयं भावः । आत्मनः प्रमातृत्वेन सर्वज्ञानसाधारण्याच्चक्षुरादीनां च रूपादिज्ञानजननमात्रे चरितार्थत्वात्तद्गुणदोषविचारस्योपलभ्यमानस्यान्यथानुपपत्त्या तत्कारणत्वेन मनोऽभ्युपगंतव्यमिति ॥

५० मनसो वैराग्यकामाद्यनेकविधवृत्तिमत्त्वप्रदर्शनाय सत्त्वादिगुणवत्त्वं दर्शयति—

५१] सत्त्वं रजः तमः च अस्य गुणाः ॥

५२ तेषां तद्गुणत्वे कारणमाह(विक्रियते इति)

५३] हि तैः विक्रियते ॥

५४) हि यतः तैः गुणैः विक्रियते विकारं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

॥ २ ॥ मनका दशइंद्रियनका प्रेरकपना औ सत्वादिगुणवान्‌पना ॥

४७ मनकूं दशइंद्रियनका जो स्वामिपना है ताकूं स्पष्ट करैहैं:—

४८] इंद्रियनकूं अर्थनविषै अर्पित हुये यह मन गुणदोषका विचार करताहै ॥

४९) ज्ञानइंद्रिय जब अपनै अपनै विषयविषै स्थापित होवैहैं तब यह मन "यह समीचीन है यह असमीचीन है" इत्यादिरूप गुणदोषके विचारका करनेहारा होवैहै ॥ या कथनका यह भाव है:— आत्माकूं प्रमाज्ञानका आश्रयरूप प्रमाता होनेकरि सर्वज्ञानोंके प्रति साधारण होनेतें औ चक्षुआदिकइंद्रियनकूं रूपादिविषयनके ज्ञानके जननमात्रविषै कृतार्थ होनेतें तिन आत्मा अरु इंद्रियनसैं विषयगतगुणदोषका विचार बनै नहीं औ गुणदोषका विचार जो उपलभ्यमान होवैहै तिसका अन्यथाअनुपपत्ति (औरप्रकारसैं असंभव)करि तिस गुणदोषविचारके कारण होनेकरि परिशेषतें मनहीं अंगीकार करना योग्य है ॥ इति ॥

५० मनका वैराग्यकामआदिकअनेकप्रकारकी वृत्तिकरि युक्तपना दिखावनेअर्थ सत्वादिगुणयुक्तपना दिखावैहैं:—

५१] सत्त्व रज औ तम ये तीन इस मनके गुण हैं ॥

५२ तिन सत्वादिकनकूं तिस मनके गुण होनैविषै कारण कहैहैं:—

५३] जातैं तिनकरि विकारकूं पावैहै ॥

५४) जिसकारणतैं तिन सत्वादिगुणकरि मन विकारकूं प्राप्त होवैहै । तिसकारणतैं इसके उक्ततीनगुण हैं ॥ यह अर्थ है ॥ १२ ॥

७६ चिदाभाससहित अंतःकरणउपहितचेतनकूं ॥

७७ जैसैं कोई पीन (पुष्ट)पुरुष दिनमैं भोजन नहीं करताहोवै तब प्रतीत होतीहै जो पीनता सो भोजनरूप कारणसैं विना संभवै नहीं यातैं अर्थात् रात्रिमैं भोजनकी कल्पना होवैहै ॥ इहां पीनताके असंभवका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण है । तिसतैं जन्य रात्रिमैं भोजनका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा है । तैसैं इहां बी जानना ॥

७८ प्रकाशरूप गुणकूं सत्त्वगुण कहैहैं ॥

७९ प्रवृत्तिरूप गुणकूं रजोगुण कहैहैं ॥

८० मोह औ जाड्यस्वभाववान् गुणकूं तमोगुण कहैहैं॥

पंचमहाभूत-विवेकः॥२॥ श्लोकांकः ७९

वैराग्यं क्षांतिरौदार्यमित्याद्याः सत्वसंभवाः । कामक्रोधौ लोभयत्नावित्याद्या रजसोत्थिताः १४

टीकांकः ३५५ टिप्पणांकः २८१

५५ गुणैस्तस्य विक्रियमाणत्वमेव प्रपंचयति—

५६] वैराग्यं क्षांतिः औदार्यं इत्याद्याः सत्वसंभवाः कामक्रोधौ लोभयत्नौ इत्याद्याः रजसा उत्थिताः ॥

५७) स्पष्टत्वान्न व्याख्यायते ॥ १४ ॥

॥ ३ ॥ मनका गुणनके भेदकरि वृत्तिरूपसें विकारीपना ॥

५५ सत्वादिगुणकरि तिस मनके विकारी होनैपनैकूंहीं दिखावैहैं:—

५६] वैराग्य क्षमा औदार्य । इनसैं आदिलेके जे शांतवृत्तियां हैं वे सत्वगुणकरि उत्पन्न होवैहैं औ काम क्रोध लोभ प्रयत्न । इनसैं आदिलेके जे घोरवृत्तियां हैं वे रजोगुणकरि उत्पन्न होवैहैं ॥

५७) स्पष्ट होनेतें या श्लोककी व्याख्या नहीं करियेहै ॥ १४ ॥

८१ त्यागकी इच्छा वा इच्छाराहित्य वैराग्य है ॥ अंक २१४५ विषे देखो ॥

८२ अन्यपुरुषके अपराधका सहन । क्षमा है ॥

८३ धनादिदानका असंकोच । औदार्य है ॥

८४ आदिशब्दकरि:—

(१) विवेकः— नित्यानित्यवस्तुविचार ॥
(२) शमः— मनका निग्रह ॥
(३) दमः— इंद्रियनिग्रह ॥
(४) उपरतिः— त्यक्तविषयकी अनिच्छा ॥
(५) तितिक्षाः— शीतोष्णादिसहनस्वभाव ॥
(६) श्रद्धाः— गुरुशास्त्रवचनमैं दृढविश्वास ॥
(७) समाधानः— सत्ब्रह्मरूप लक्ष्यमैं चित्तकी एकाग्रता ॥
(८) मुमुक्षुताः— मोक्षेच्छावान्ता ॥
(९) तपः— स्वधर्ममैं वर्त्तन ॥
(१०) सत्यः— समदर्शन ॥
(११) दयाः— परदुःखके निवारणकी इच्छा ॥
(१२) स्मृतिः— पूर्वापरका अनुसंधान ॥
(१३) तुष्टिः— यथालाभसंतोष ॥
(१४) त्यागः— धन खर्चनेका स्वभाव दानस्वभाव ॥ अनुचितकर्ममैं लज्जा ॥
(१५) स्वनिर्वृत्तिः— आत्मामैं प्रीति ॥
(१६) अमानिताः— स्वगुणश्लाघाराहितता ॥
(१७) अदंभः— स्वधर्म अख्याति ॥
(१८) अहिंसाः— परपीडावर्जन ॥
(१९) क्षांतिः— तितिक्षा सो कही ॥
(२०) आर्जवः— अवक्रता ॥

इत्यादि गीताके त्रयोदशअध्याय उक्त ॥
इनसैं आदिलेके दैवीसंपत्तिका ग्रहण है ॥

८५ "मेरेकूं यह होवै । मेरेकूं यह होवै" इस आकारवाली इच्छा । काम है ॥

८६ स्वपरसंतापहेतु संतप्तवृत्ति क्रोध है । ताहीकूं द्वेष बी कहैहैं ॥

८७ परधनादिकमैं अभिलाषा । लोभ है ॥

८८ उत्साहविशेषरूप कृति । प्रयत्न है ॥

८९ आदिशब्दकरि:—

(१) यज्ञादिव्यापार ॥
(२) मदः— दर्प ॥
(३) तृष्णाः— लाभके हुवे बी असंतोष ॥
(४) स्तंभः— गर्व ॥
(५) आशीः— धनादिइच्छासैं देवादिककी प्रार्थना ॥
(६) भेदः— मैं अन्य औ यह अन्य यह भेदबुद्धि ॥
(७) सुखः— विषयानुभव ॥
(८) मदोत्साहः— मदसैं युद्धादिकमैं आग्रह ॥
(९) यशमैं प्रीयता ॥
(१०) हास्यः— उपहास ॥
(११) वीर्यः— प्रभावका प्रकट करना ॥
(१२) बलसैं उद्यम ॥
(१३) रागः— सुखमैं तृष्णा ॥

इत्यादि आसुरीसंपदाका ग्रहण है ॥

टीकांक: ३५८ टिप्पणांक: २९०	आलस्यभ्रांतितंद्राद्या विकारास्तमसोत्थिताः । सात्विकैः पुण्यनिष्पत्तिः पापोत्पत्तिश्च राजसैः १५ तामसैर्नोभयं किंतु वृथायुःक्षपणं भवेत् । अत्राहंप्रत्ययीकर्तेत्येवं लोकव्यवस्थितिः ॥१६॥	पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ८० ८१

५८] आलस्यभ्रांतितंद्राद्याः विकाराः तमसा उत्थिताः ॥

५९ वैराग्यादीनां कार्याणि विभज्य दर्शयति—

६०] सात्विकैः पुण्यनिष्पत्तिः च राजसैः पापोत्पत्तिः ॥ १५ ॥

६१] तामसैः न उभयं किन्तु वृथा आयुःक्षपणं भवेत् ॥

६२ एतेषां बुद्धिस्थत्वादंतःकरणादीनां सर्वेषां स्वामिनमाह—

६३] अत्र "अहं" इति प्रत्ययी कर्ता एवं लोकव्यवस्थितिः ॥

६४) अहं इति प्रत्ययवान् कर्ता प्रभु-

५८] आलस्य भ्रांति तंद्रासैं आदि-लेके जे मूढवृत्ति हैं । वे विकार तमोगुण-करि उत्पन्न होवैहैं ॥

॥ ४ ॥ गुणके विकारनका फल औ अंतःकरणा-दिकके स्वामी चिदाभासका कथन ॥

५९ वैराग्यआदिकवृत्तिनके कार्यनकूं वि-भागकरि दिखावैहैं :—

६०] सत्वगुणसैं उत्पन्न वृत्तिनसैं पु-ण्यकी उत्पत्ति होवैहै औ रजोगुणसैं उत्पन्न वृत्तिनसैं पापकी उत्पत्ति होवैहै १५

६१] औ तमोगुणसैं उत्पन्न वृत्तिनसैं दोनूं होवैं नहीं किंतु वृथाहीं आयुका क्षय होवैहै ॥

६२ इन वैराग्यादिक मनकी वृत्तिनकूं बुद्धिविषै स्थित होनैतें अंतःकरण आदिक सर्वके स्वामीकूं कहैहैं:—

६३] इनविषै "अहं" प्रत्ययवान् कर्त्ता है ऐसैं लोकविषै व्यवस्था है ॥

६४) इन अंतःकरण औ तिसकी वृत्तिन-

---

९० निरिच्छासैं उत्साहका प्रतिबंध वा अनुद्यम । आलस्य है ॥

९१ औरवस्तुविषै औरकी प्रतीति भ्रांति है । ताहीकूं मोह बी कहैहैं ॥

९२ निद्राकी आदिमैं जो आलस्य होवैहै सो तंद्रा ॥

९३ इहां आदिशब्दसैं:—

(१) प्रमादः— अन्यकार्यमैं आसक्तपनैसैं वांछितकर्तव्यका अकरण ॥
(२) निद्राः— वृत्तिका लय ॥
(३) अप्रकाशः— अविवेक ॥
(४) अप्रवृत्ति ॥
(५) कृपणताः— धनादिकके देनेका संकोच ॥
(६) अनृत ॥
(७) हिंसाः— परपीडा ॥
(८) श्रम ॥ (९) कलह ॥
(१०) शोकः— नष्टवस्तुकी चिंता ॥
(११) विषादः— खेद ॥
(१२) दीनताः— कंगालता ॥
(१३) आशाः— मेरेकूं यह होवैगा ऐसी दृष्टि ॥
(१४) भय ॥ (१५) जडता ॥

इत्यादिआसुरीसंपदाका ग्रहण है ॥

९४ इहां आदिशब्दसैं अंतःकरणकी वृत्ति औ इंद्रियादि-कनका ग्रहण है ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ८२	[६६] स्पष्टशब्दादियुक्तेषु भौतिकत्वमतिस्फुटम् । [६९] अक्षादावपि तच्छास्त्रयुक्तिभ्यामवधार्यताम् ॥१७॥	टीकांकः ३६५ टिप्पणांकः २९५

रित्यर्थः । लोके हि कार्यकारी प्रभुरित्येवमुपदिश्यते ॥ १६ ॥

६५ एवं जगतः स्थितिमभिधायेदानीं तस्य भौतिकत्वज्ञानोपायमाह—

६६] **स्पष्टशब्दादियुक्तेषु भौतिकत्वं अतिस्फुटम् ॥**

६७) स्पष्टशब्दादियुक्तेषु स्पष्टैः शब्दस्पर्शादिगुणैः सहितेषु घटादिषु वस्तुषु । भूतकार्यत्वं स्पष्टमेवावगम्यते ॥

६८ ननु इंद्रियादिषु कथं भूतकार्यत्वनिश्चय इत्याशंक्याऽऽगमानुमानाभ्यामित्याह—

६९] **अक्षादौ अपि शास्त्रयुक्तिभ्यां तत् अवधार्यताम् ॥**

विषै जो "अहं" कहिये मैं। इस वृत्तिवाला[९५] है सो कर्त्ता है कहिये प्रभु है ॥ जातैं लोकविषै कार्यका कर्त्ता स्वामी ऐसैं कहियेहै ॥ १६ ॥

॥ ५ ॥ श्लोक २ उक्त जगत्की भूतोंकी कार्यताका निश्चय ॥३६५–३७०॥

६५ इसरीतिसैं जगत्की स्थितिकूं कहिके अब तिस जगत्के भौतिकताके ज्ञानके उपायकूं कहैहैं:—

६६] **स्पष्टशब्दादियुक्त वस्तुनविषै भौतिकता अतिस्फुट है ॥**

६७) स्पष्टशब्दस्पर्शादिगुणकरि सहित घटादिवस्तुनविषै भूतनकी कार्यता स्पष्टहीं[९६] जानियेहै ॥

६८ ननु इंद्रियआदिकनविषै भूतनकी कार्यताका निश्चय कैसैं होवैहै? यह आशंकाकरिके आगम औ अनुमानप्रमाणकरि इंद्रियादिविषै भूतनकी कार्यताका निश्चय होवैहै यह कहैहैं:—

६९] **इंद्रिय आदिकविषै[९७] बी शास्त्र औ युक्तिकरि सो भूतनकी कार्यता निश्चय करना ॥**

"९५ मैं कर्त्ता मैं भोक्ता मैं प्रमाता मैं सुखी मैं दुःखी । ऐसैं अंतःकरणमैं "अहं"प्रत्यय (अहंवृत्ति)वाला औ मैं वैराग्यवान् क्षमावान् उदार कामी क्रोधी लोभी प्रयत्नशील आलसी औ भ्रांतइत्यादिक। ऐसैं अंतःकरणकी वृत्तिनमैं अहंप्रत्ययवाला साभासअहंकार ॥

९६ जैसैं पिताका कोईक गुण पुत्रमैं होवैहै तातैं यह ताका पुत्र जानियेहै ऐसैं आकाशका गुण शब्द वायुमैं है । तातैं वायु आकाशका कार्य है ॥ ऐसैं उत्तरउत्तर वायुआदिकके गुण स्पर्शादियुक्त उत्तरउत्तर तेजआदिक तिस तिस वायुआदिकके कार्य हैं ऐसैं स्पष्ट जानियेहैं । तैसैं भूतनके गुणयुक्त घटादिक बी भूतनके कार्य हैं यह स्पष्ट जानियेहै ॥

९७ आदिपदसैं मन मनोवृत्ति प्राण औ देहका ग्रहण है ॥ * ॥ ज्ञानइंद्रिय जातैं एकएकभूतके गुणके ग्राहक हैं तातैं बी भूतसंबंधी होनैतैं एकएकभूतनके एकएक कार्य हैं यह निश्चय होवैहै ॥ तिनमैं त्वचा औ नेत्र तौ क्रमतैं स्पर्श औ रूपगुण अरु तिनके आश्रय घटादिद्रव्यके ग्राहक हैं औ श्रोत्र जिव्हा घ्राण क्रमतैं शब्द रस अरु गंधके ग्राहक हैं ॥ इहां कछु विशेष है सो विस्तार औ कठिनताके भयसैं लिख्या नहीं ॥ * ॥ एकएकभूतके उक्तएकएकगुणकी निर्वाहक कर्मइंद्रिय हैं ॥ तिनमैं आकाशके गुण शब्दकी वचनक्रियाद्वारा निर्वाहक वाचा है ॥ ऐसैं सर्वविषै जानिलेना ॥ यातैं कर्मइंद्रिय बी भूतसंबंधी होनैतैं भूतनके कार्य हैं ॥ * ॥ मन सर्वभूतनके गुणका सर्वइंद्रियद्वारा निकसिके ग्राहक है यातैं सो मन मिलेहुये पांचभूतनका कार्य है परंतु (१) श्रोत्रादिकज्ञानके साधन हैं यातैं भूतनके सत्वगुणअंशके कार्य हैं औ (२) वागादिक्रियाके साधन हैं यातैं भूतनके रजोगुणके कार्य हैं औ (३) अंतःकरण सर्वज्ञानोंका साधन है यातैं भूतनके सत्वगुणका कार्य है । इतना भेद है ॥

७०) "अन्नमयं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्" इत्यादि शास्त्रं ॥ अनुमानं च । विमतानि श्रोत्रादीनि भूतकार्याणि भवितुमर्हंति भूतान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् । यद्यदन्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्तत्कार्यं दृष्टं । यथा मृदन्वयव्यतिरेकानुविधायी घटो मृत्कार्यो दृष्टस्तथा चेमानि । तस्मात्तथेति ॥ तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं च । "षोडशकलः सौम्य पुरुष" इत्यादिना छांदोग्यश्रुतौ मनसः श्रुतं । तद्वदन्यत्रापि द्रष्टव्यम् ॥ १७ ॥

७०) "हे सौम्य! निश्चयकरि मन अन्नमय है औ आपोमय प्राण है औ तेजोमय वाणी है"[300] इत्यादिशास्त्र है औ अनुमान यह है:–विवादके विषय जे श्रोत्रादिकइंद्रिय हैं वे भूतनके कार्य होनेकूं योग्य हैं। भूतनके अन्वय अरु व्यतिरेकके अनुसारी होनेतें ॥ जो जिस वस्तुके अन्वय अरु व्यतिरेकके अनुसारी है सो तिस वस्तुका कार्य देख्याहै॥ जैसें मृत्तिकाके अन्वय अरु व्यतिरेकके अनुसारी घट । मृत्तिकाका कार्य है तैसें यह श्रोत्रादिइंद्रिय वी भूतनके अन्वयव्यतिरेकके अनुसारी हैं तातें तिसप्रकारके भूतनके कार्य हैं ॥ इति ॥ औ "हे सौम्य! यह पुरुष षोडशकलावान् है।" इत्यादिवचनकरि छांदोग्यश्रुतिविषै मनकूं भूतनके अन्वयव्यतिरेकका अनुसारीपना सुन्याहै ॥ तैसैंहीं अन्यकर्मेंद्रिय औ प्राणादिविषै वी देखना ॥ १७ ॥

९८ इहां अन्नशब्दकरि अन्नकी उपादान पृथ्वीका वी अर्थसैं ग्रहण है ॥ अन्नके स्थूलभागसैं विष्ठा होवैहै औ अन्नके मध्यमभाग रससैं मांस होवैहै औ जैसें दधिके सूक्ष्मभागसैं मक्खन होवैहै तैसैं अन्नके पुण्यपापरूप सूक्ष्मभागसैं मन होवैहै ॥ बालकका मन अन्नके अभावसैं नहींसा है सो अन्नके सेवनसैं वृद्धिकूं पावैहै ॥ जातैं पृथ्वीके कार्यरूप तंदुलादिकके भक्षणसैं मनकी वृद्धि होवैहै औ षोडशदिनपर्य्यंत अन्नभक्षणके नहीं किये मनका नाश (अस्तता) होवैहै तातैं मन पृथ्वीभूतका कार्य है । यह वार्त्ता तेज जल पृथ्वी इन तीनभूतनके सृष्टिके प्रकारसैं सामवेदगत छांदोग्यउपनिषद्के षष्ठप्रपाठक नाम प्रकरणमैं कहीहै ॥

९९ पान किये जलके स्थूलभागसैं मूत्र होवैहै। मध्यमभागसैं रक्त (रुधिर) होवैहै औ सूक्ष्मभागसैं प्राण होवैहै ॥ औ १६ दिनपर्यंत जलपानविना प्राणकी व्याकुलता औ देहतैं निकसना होवैहै तातैं जलभूतका कार्य प्राण है । यह छांदोग्यमैं है ॥

३०० भक्षण किये अग्नि (घर्मपदार्थघृतादिक)के स्थूलभागसैं अस्थि (हाड) होवैहैं। मध्यमभागसैं मेद (श्वेतमांस) होवैहै औ सूक्ष्मभागसैं वाणी होवैहै ॥ शरीरमैं अतिशीतसैं जब घर्मी (उष्णता)का तिरोधान होवै तब वाचा बंध होवैहै तातैं वाणी तेजभूतका कार्य है ॥ वाणीके कथनतैं अन्यइंद्रिनकी वी भौतिकता जानीलेना ॥

१ जैसें मृत्तिका होवै तो घट वी होवै औ मृत्तिका न होवै तौ घट वी होवै नहीं । ऐसैं मृत्तिकाके अन्वय (भाव) व्यतिरेक (अभाव)का अनुसारी घट है । तैसें पूर्वटिप्पणउक्तप्रकारसैं पृथ्वीआदिकभूतनके होते वाक्आदिकका होना है औ न होते न होना है। यातैं भूतनके अन्वयव्यतिरेकके अनुसारी इंद्रिय हैं ॥

२ ब्रह्मसैं अभिन्नप्रत्यगात्मा पिंड औ ब्रह्मांडमैं पूर्ण होनेतैं पुरुष है ॥ सो अविद्यासैं अपनैमैं आरोपित उपाधिभूत षोडशकला (अवयव)वाला कहियेहै। वास्तव तौ सो निष्कल जाननै योग्य है ॥

३ "सो परमात्मा । समष्टिप्राण (अपंचीकृतभूतन औ तिनके कार्यकी समष्टिरूप सूत्रात्मानामयुक्त हिरण्यगर्भ)कूं सृजता (रचता)भया । तिस (समष्टिप्राण)तैं श्रद्धा (शुभकर्ममैं प्रवृत्तिकी हेतु)कूं औ आकाश । वायु । ज्योति (तेज) । जल । पृथ्वी । दशइंद्रिय । मन अरु अन्नकूं सृजताभया ॥ अन्नतैं (भक्षणद्वारा) वीर्य (बल)कूं औ तप (बलसाध्य) । मंत्र (ऋगादिरूप) । कर्म (मंत्रसाध्ययज्ञादि) । लोक (स्वर्गादि) अरु लोकनविषै नाम (देवदत्तयज्ञदत्तादि) । इन सर्वकलाकूं सृजता भया ॥" इस प्रश्नउपनिषद्के अंतके षष्ठप्रश्न (नाम प्रकरणगत) श्रुतिमैं षोडशकला कहीहैं ॥ तिनमैं मन वी गिन्याहै सो (मन) समष्टिप्राण (मिलेहुये भूतसूक्ष्मन)का कार्य कह्याहै । तातैं भूतनके अन्वयव्यतिरेकके अनुसारी है ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ८३	७२ एकादशेंद्रियैर्युक्त्या शास्त्रेणाप्यवगम्यते । यावत्किंचिद्भवेदेतदिदंशब्दोदितं जगत् ॥ १८ ॥	टीकांक: ३७१ टिप्पणांक: ३०४

७१ एवं भूतानि भौतिकानि च विविच्य दर्शयित्वा प्रकृतां "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" इत्याद्यद्वितीयब्रह्मप्रतिपादिकां श्रुतिं व्याचक्षाणस्तद्वाक्यस्थेदंपदस्यार्थमाह—

७२] एकादशेंद्रियैः युक्त्या शास्त्रेण अपि यावत् किंचित् जगत् अवगम्यते एतत् इदंशब्दोदितं भवेत् ॥

७३) प्रत्यक्षादिभिः सर्वैः प्रमाणैरपि शब्दादर्थापत्त्यादिप्रमाणज्ञानैश्च यावत्किंचिज्जगदवगम्यते तत्सर्वं "सदेव" इत्यादिवाक्यस्थेन "इदं"–पदेनाभिहितमित्यर्थः॥१८॥

॥ २ ॥ "हे सौम्य! सृष्टितैं पूर्व यह (जगत्) एकही अद्वितीय सत् था" इस श्रुतिकरि सत् (अद्वितीय)का प्रतिपादन ॥ ३७१–४७८ ॥

॥ १ ॥ श्लोक १ उक्त श्रुतिका अर्थ ॥ ३७१–३९९ ॥

॥ १ ॥ इदंशब्दके पर्याय "यह" पदका अर्थ ॥

७१ इसरीतिसैं भूतभौतिकनकूं विभागकरि दिखायके इस प्रकरणकी आदिविषै कही जो "हे सौम्य! यह जगत् आगे सत् कारणरूपहीं था ॥" इत्यादि अद्वितीयब्रह्मकी प्रतिपादक श्रुति हैं तिसकूं व्याख्यान करतेहुये तिस श्रुतिवाक्यमैं स्थित "इदं"पदके अर्थकूं कहैहैं:—

७२] एकादशइंद्रियनकरि युक्तिकरि अरु शास्त्रकरि बी जो कछु जगत् भासताहै सो सर्व श्रुतिविषै "इदं" शब्दकरि कहाहै ॥

७३) प्रत्यक्षआदिकसर्वप्रमाणोंकरि औ अपिशब्दतैं अर्थापत्तिआदिक प्रमाणनके ज्ञानोंकरि जितना कछु जगत् जानियेहै सो सर्वजगत् "आगे 'यह' जगत् सत्हीं था ॥" इस श्रुतिवाक्यविषै स्थित "इदं" पदकरि कथन कियाहै ॥ १८ ॥

४ इहां पांचज्ञानइंद्रिय औ पांचकर्मेंद्रिय औ मन ये ११ हैं। तिनमैं पांचज्ञानेंद्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाणकरि प्रत्यक्षप्रमाके पंचशब्दादिविषयनका ग्रहण होवैहै ॥ पांचकर्मेंद्रियकरि वचनआदानआदिकसर्वक्रिया औ क्रियाके विषय वक्तव्य दातव्यआदिकका ग्रहण होवैहै ॥ मनकरि आंतर (मानस)प्रत्यक्षप्रमाके विषय सुखादि औ प्रत्यक्षअनुमितिप्रमाआदिकसर्ववस्तुके ज्ञानका ग्रहण होवैहै ॥

५ युक्ति नाम अनुमानप्रमाणका है। तिसकरि अनुमितिप्रमाके विषयनका ग्रहण होवैहै ॥

६ शास्त्र नाम शब्दप्रमाण। तिसकरि शब्दजन्यज्ञानरूपशाब्दीप्रमाके विषय परोक्षस्वर्गादिधर्मादि औ अपरोक्षमनआदिकका ग्रहण होवैहै ॥

७ बी (अपि) शब्दसैं अवशेष उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धिप्रमाणका ग्रहण है। तिनकरि उपमितिप्रमाके विषय उपमेयपदार्थ। अर्थापत्तिप्रमाके विषय उपपादक औ अभावप्रमाके विषय पंचविधअभाव औ सर्वप्रमाणकूं विषय करनेवाले तिनके ज्ञानका ग्रहण होवैहै ॥

८ प्रमाणनके ज्ञानोंकरि तिन ज्ञानोंका विषय प्रमाणरूप प्रपंच ग्रहण होवैहै ॥

९ यद्यपि वर्त्तमानकालका पुरोदेश (सन्मुखदेश)सैं संबंध इदं (यह)पदका अर्थ है ॥ यातैं सर्वप्रमाणजन्यज्ञानका विषय परोक्षअपरोक्ष भूतभविष्यत् औ वर्त्तमानकालवर्त्तिपदार्थरूप सर्वप्रपंच इदं (यह) पदका अर्थ बनै नहीं। तथापि सर्वज्ञईश्वरकी अथवा सर्वज्ञउद्दालकमुनिकी दृष्टिसैं सर्वपदार्थ अपरोक्ष होनैतैं सन्मुखदेशमैंहीं स्थितकी न्यांई हैं औ सर्वकाल एकरस भासनैतैं वर्त्तमान तुल्य हैं। तातैं ईश्वरकरि वा उद्दालकमुनिकरि उच्चारित उक्तश्रुतिगत इदंपदका अर्थ सर्वकालसंबंधीसर्वपदार्थ बनतेहै ॥ इति ॥

टीकांक: ३७४ टिप्पणांक: ३१०		पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक:
	इदं सर्वं पुरा सृष्टेरेकमेवाद्वितीयकम् । सदेवासीन्नामरूपे नास्तामित्यारुणेर्वचः ॥ १९ ॥	८४
	वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादिभिः । वृक्षांतरात्सजातीयो विजातीयः शिलादितः २०	८५
	तथा सद्वस्तुनो भेदत्रयं प्राप्तं निवार्यते । ऐक्यावधारणद्वैतप्रतिषेधैस्त्रिभिः क्रमात् ॥ २१ ॥	८६

७४ एवं "इदं"-शब्दस्यार्थमभिधाय इदानीं तां श्रुतिं स्वयमेवार्थतः पठति—

७५] "इदं सर्वं सृष्टेः पुरा एकं एव अद्वितीयकं सत् एव आसीत् नामरूपे न आस्तां"। इति आरुणेः वचः ॥

७६) अरुणस्यापत्यमारुणिरुद्दालकस्तस्य वचनमित्यर्थः ॥ १९ ॥

७७ "एकमेवाद्वितीयम्" इतिपदत्रयेण सद्वस्तुनि स्वगतादिभेदत्रयं प्रसक्तं निवारयितुं लोके स्वगतादिभेदत्रयं तावद्दर्शयति—

७८] वृक्षस्य पत्रपुष्पफलादिभिः स्वगतः भेदः वृक्षांतरात् सजातीयः शिलादितः विजातीयः ॥ २० ॥

७९ एवमनात्मनि भेदत्रयं प्रदर्श्य सद्वस्तु-

॥ २ ॥ संक्षेपतें श्लोक १ उक्त श्रुतिका अर्थतें पठन ॥

७४ ऐसैं "इदं"शब्दके अर्थकूं कहिके अब तिस श्रुतिकूं अर्थतें पठन करैहैं:—

७५] "यह प्रतीयमानसर्वजगत् सृष्टितैं पूर्व एक-हीं अद्वितीयरूप सत् कारण-हीं था औ नामरूप नहीं थे" ॥ यह आरुणिका वचन है ॥

७६) यह आरुणिका कहिये अरुणिनामक ऋषिके पुत्र उद्दालकऋषिका अपनै पुत्र श्वेतकेतुके प्रति वचन है ॥ यह अर्थ है ॥ १९ ॥

॥ ३ ॥ लोकमें स्वगतादितीनभेद ॥

७७ उक्तश्रुतिगत "एक" "एव" "अद्वितीय"इन तीनपदनकरि सत्वस्तुविषै स्वगतादितीनभेद जे प्राप्त हैं तिनके निवारण करनेकूं लोकमैं स्वगतादितीनभेदनकूं प्रथम दिखावैहैं:—

७८] वृक्षका पत्रपुष्पफलआदिक-अवयवनसैं स्वगतभेद[10] है औ अन्यवृक्षसैं सजातीयभेद[11] है औ शिलाआदिकतैं विजातीय[12]-भेद[13] है ॥ २० ॥

॥ ४ ॥ सत्वस्तुमें प्राप्त तीनभेदका श्रुतिके तीनपदतें निवारण ॥

७९ ऐसैं अनात्मवस्तुविषै तीनभेदकूं दिखायके सत्वस्तुविषै बी वस्तुपनैकी भ्रांतिसैं

१०. **स्वगत** नाम अवयव (अंग) का है । तिसका किया भेद **स्वगतभेद** है। जैसैं ब्राह्मणका अपने अंग हस्तपादादिकनसैं है ॥

११ जातिवालेका किया भेद **सजातीयभेद** है। जैसैं ब्राह्मणका औरब्राह्मणसैं है ॥

१२ विरुद्धजातिवालेका किया भेद **विजातीयभेद** है। जैसैं ब्राह्मणका शूद्रादिकसैं है ॥

१३ परस्परअभावका नाम **भेद** है जैसैं घट औ पटका है। तिसमैं परस्पर अनुयोगी (आश्रय) औ प्रतियोगी (निरूपक) होवैहैं ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ८७

संतो नावयवाः शंक्यास्तदंशस्यानिरूपणात् ।
नामरूपे न तस्यांशौ तयोरद्याप्यनुद्भवात् ॥२२॥

टीकांकः ३८० टिप्पणांकः ३१४

न्यपि प्रसक्तं तत् भेदत्रयं श्रुतिः पदत्रयेण निवारयतीत्याह—

८०] तथा सद्वस्तुनः प्राप्तं भेदत्रयं ऐक्यावधारणद्वैतप्रतिषेधैः त्रिभिः क्रमात् निवार्यते ॥

८१) वस्तुत्वसामान्यादनात्मनीव सत्रूपात्मवस्तुनि अपि प्रसक्तं स्वगतादिभेदत्रयमैक्यावधारणद्वैतप्रतिषेध–अभिधायकैरेकमेवाद्वितीयमिति त्रिभिः पदैः क्रमेण निवार्यंत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

८२ सद्वस्तुनस्तावन्न स्वगतभेदः शंकितुं शक्यते अस्य निरवयवत्वादित्याह—

८३] सतः अवयवाः शंक्याः न । तदंशस्य अनिरूपणात् ॥

८४ नामरूपयोः सदवयवत्वं किं न स्यादित्याशंक्य सृष्टेः पुरा तयोरभावान्न सदंशत्वमित्याह—

प्राप्त भये तिन तीनभेदनकूं श्रुति तीनपदनसैं निवारण करैहै यह कहैहैं:—

८०] तैसैं सत्वस्तुकूं प्राप्त भये जे तीनस्वगतादिभेद हैं वे ऐक्य अवधारण औ द्वैतके निषेधरूप अर्थवाले तीन श्रुतिगतपदनकरि क्रमतैं निवारण करियेहैं ॥

८१) वस्तुपनैकी समानतातैं अनात्मवस्तुकी न्यांईं सत्रूप आत्मवस्तुविषै वी प्राप्त जे स्वगतादितीनभेद हैं वे भेद "एकता । अवधारण औ द्वैतका निषेध" इन तीनअर्थके वाचक "एक । एव । अद्वितीय" इन तीनपदनकरि क्रमसैं निवारण करियेहैं ॥ यह अर्थ है ॥ २१ ॥

॥ ९ ॥ सत्वस्तुमें स्वगतभेदका खंडन ॥

८२ सत्वस्तुका प्रथम स्वगतभेद शंका करनेकूं योग्य नहीं है । इस सद्वस्तुकूं अवयवरहित होनैतैं । यह कहैहैं:—

८३] सत्के अवयव शंका करनेकूं योग्य नहीं हैं। तिस सत्के अवयवके निरूपणके अभावतैं ॥

८४ ननु नामरूपकूं सत्का अवयवभाव क्यौं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरिके सृष्टितैं पूर्व तिन नामरूपके अभावतैं नामरूपकूं सत्का अंशभाव नहीं है यह कहैहैं:—

१४ सद्वस्तु जो जड होवै तौ सावयव (अवयवसहित) बनै औ सद्वस्तुकूं जड कहैं तौ सत्वस्तु विनाशि है जड होनैतैं । जो जड है सो विनाशि देख्याहै घटादिककी न्यांईं ॥ इस अनुमानप्रमाणसैं सद्वस्तुकूं विनाशि होनैतैं असत्पना होवैगा । यातैं सद्वस्तु जड नहीं किंतु चेतन है ॥ सो चेतनरूप सद्वस्तु सावयव बनै नहीं ॥*॥ औ ताकूं जो सावयव कहैहैं तिनकूं पूछैहैं:–सद्वस्तुके अवयव क्या चेतन हैं वा अचेतन (जड) हैं? चेतन कहौ तौ सद्वस्तुतैं भिन्न हैं वा अभिन्न हैं? भिन्न कहैं तौ अद्वितीयकी प्रतिपादक अनेकश्रुतिनसैं विरोद्ध होवैगा औ अभिन्न कहैं तौ सद्वस्तुका औ तिनका अवयवअवयवि (अंगअंगी)भाव बनै नहीं ॥ औ जड कहैं तौ जड (अचेतन)अवयवनसैं आरंभ किया (रचित) सद्वस्तु वी तंतुनसैं रचित जडपट (वस्त्र)की न्यांईं जड होवैगा । यातैं पूर्वउक्तअनुमानसैं विनाशि होनैकरि सत्पनैका भंग होवैगा । तातैं सत्के अवयवनके निरूपणका अभाव है ॥

टीकांक: ३८५ टिप्पणांक: ३१५	नामरूपोद्भवस्यैव सृष्टित्वात्सृष्टितः पुरा । न तयोरुद्भवस्तस्मान्निरंशं सद्यथा वियत् ॥ २३॥ सदंतरं सजातीयं न वैलक्षण्यवर्जनात् । नामरूपोपाधिभेदं विना नैव सतो भिदा ॥२४॥	पंचमहाभूतविवेक: ॥२॥ श्लोकांक: ८८ ८९

८५] नामरूपे तस्य अंशौ न । तयोः अद्य अपि अनुद्भवात् ॥ २२ ॥

८६ कुतो नामरूपयोरभाव इत्याशंक्याह—

८७] नामरूपोद्भवस्य एव सृष्टित्वात् सृष्टितः पुरा तयोः उद्भवः न ॥

८८ फलितमाह—

८९] तस्मात् यथा वियत् । सत् निरंशम् ॥

९०) अत्रायं प्रयोगः । सद्वस्तु स्वगतभेदशून्यं भवितुमर्हति निरवयवत्वाद्गगनवदिति २३

९१ माभूत्स्वगतभेदः सजातीयभेदः किं न स्यादित्याशंक्य तत्सजातीयं सदंतरमिति वक्तव्यं न तन्निरूपयितुं शक्यते सतो वैलक्षण्याभावादित्याह (सदंतरमिति)—

८५] नाम औ रूप ये दो तिस सत्के अंश नहीं हैं काहेतैं तिन नामरूपकी अबतलकी कहिये सृष्टितैं पूर्वतलकी अनुत्पत्तितैं ॥ २२ ॥

८६ सृष्टितैं पूर्व नामरूपका अभाव किस कारणतैं है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८७] नाम अरु रूपकी उत्पत्तिकूंहीं सृष्टिरूप होनैतैं सृष्टितैं पूर्व तिन नामरूपकी उत्पत्ति नहीं है ॥

८८ फलितअर्थकूं कहैहैं:—

८९] तिस कारणतैं जैसैं आकाश अंशरहित है तैसैं सत्ब्रह्म अंशरहित है ॥

९०) इहां यह अनुमान है:—सत्वस्तु स्वगतभेदसैं रहित होनेकूं योग्य है । निरवयव होनेतैं । आकाशकी न्याई ॥ इति ॥ २३ ॥

॥ ६ ॥ सत्वस्तुमें सजातीयभेदका खंडन ॥

९१ ननु सत्वस्तुका स्वगतभेद मति होहु । सजातीयभेद क्यौं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरिके तिस सत्का समानजातिवाला औरसत् कह्या चाहिये सो औरसत् निरूपण करनेकूं योग्य नहीं है । काहेतैं सत्की विलक्षणताके अभावतैं । यह कहैहैं:—

---

१५ सत् ऐसा नाम तौ व्यवहारके निमित्त कल्प्याहै ॥ औ रूप जो स्थूलसूक्ष्मह्रस्वदीर्घआकार सो सत्कूं है नहीं ॥ "अस्थूल अनणु अह्रस्व अदीर्घ" इस श्रुतिविषै आकारके निषेधतैं ॥ सत् चित् औ आनंदादिक सद्वस्तुके अवयव नहीं हैं किंतु स्वरूप हैं । काहेतैं कटुकता सुगंधता औ शीतलतारूप तीनगुण चंदनके कहियेहैं परंतु भिन्न किये जावैं नहीं । तैसैं सत्आदिक बी भिन्न होवैं नहीं ॥ (१) सत् जो चित्आनंदसैं भिन्न होवै तौ जड औ दुःखरूप होनैतैं असत् होवैगा औ (२) चित् जो सत्आनंदसैं भिन्न होवै तौ असत् औ दुःखरूप होनैतैं जड होवैगा औ (३) आनंद जो सत्चित्सैं भिन्न होवै तौ असत् जड होनैतैं दुःखरूप होवैगा । यातैं परस्परभिन्न नहीं किंतु जो ब्रह्म सत् (अबाध्य) है सो चित् (अलुप्त प्रकाश) है जो चित् है सो आनंद (दुःखके संबंधतैं रहित) है ॥ इसरीतिसैं सत्आदिक सद्वस्तुब्रह्मके स्वरूप हैं । गुण वा अवयव नहीं तातैं सत् निरवयव है ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ९० | टीकांकः ३९२ | टिप्पणांकः ३१६

विजातीयमसत्तत्तु न खल्वस्तीति गम्यते ।
नास्यातः प्रतियोगित्वं विजातीयाद्भिदा कुतः २५

९२] **सजातीयं सदंतरं न । वैलक्षण्यवर्जनात् ॥**

९३ ननु "घटसत्ता पटसत्ता" इति सतो भेदः प्रतिभासत इत्याशंक्य घटाकाशमठाकाशवदौपाधिको भेदो न स्वतो भातीत्याह—

९४] **नामरूपोपाधिभेदं विना सतः भिदा न एव ॥**

९५) अत्रायं प्रयोगः । सद्वस्तु सजातीयभेदरहितं भवितुमर्हति उपाधिपरामर्शमंतरेणाविभाव्यमानभेदत्वात् गगनवदिति ॥ २४ ॥

९६ भवतु तर्हि विजातीयाद्भेद इत्याशंक्य सतो विजातीयमसत्तस्यासत्त्वेनैव प्रतियोगित्वासंभवेन तत्प्रतियोगिकोऽपि भेदो नास्तीत्याह—

९२] सत्का [16]सजातीय औरसत् नहीं है। काहेतैं सत्की विलक्षणताके अभावतैं

९३ ननु "घट है" यह घटकी सत्ता है औ "पट है" यह पटकी सत्ता है। ऐसैं सर्ववस्तुविषै भिन्नभिन्नसत्ता प्रतीत होवैहै ॥ इसरीतिसैं सत्का भेद भासताहै । यह आशंकाकरिके घटाकाश औ मठाकाशकी न्यांई सत्का नामरूपमय उपाधिका किया भेद भासताहै औ स्वभावसैं सिद्ध भेद भासता नहीं। यह कहैहैं:—

९४] **नामरूप जे उपाधि हैं तिनके भेदसैं विना सत्का भेद नहीं है ॥**

९५) इहां यह अनुमान है:—सद्वस्तु सजातीयभेदसैं रहित होनेकूं योग्य है। उपाधिके ग्रहण कियेविना भेदके नहीं भासनेतैं। आकाशकी न्यांई ॥ इति ॥ २४ ॥

॥ ७ ॥ सत्वस्तुमें विजातीयभेदका खंडन ॥

९६ ननु तब सत्का विजातीयसैं भेद होहु ॥ यह आशंकाकरिके सत्का विजातीय असत् होवैगा ॥ तिसकूं असत् होनेकरिहीं प्रतियोगी होनेके असंभवसैं तिस असत्रूप प्रतियोगीवाला [17]भेदरूप अन्योन्यअभाव बनै नहीं यह कहैहैं:—

१६ जब सत् नाना होवै तब सत्का सजातीय औरसत् होवै ॥ सो सत् नाना बनै नहीं काहेतैं तिन नानासत्कूं वास्तव कहै तौ अद्वैतकी प्रतिपादक अनेकश्रुतिनसैं विरुद्ध होवैगा औ वास्तवनानासत् परिच्छिन्न है वा व्यापक है? जो परिच्छिन्न है तौ देशकालकृतपरिच्छेद (अंत)युक्त होनेतैं उत्पत्तिनाशवान्तासैं अनित्य होनैकरि असत्पनैकी प्राप्ति होवैगी औ जो व्यापक (अपरिच्छिन्न)है तौ देशकाल वस्तुकृतपरिच्छेदतैं रहित (व्यापक) होनैकरि नानात्व (अनेकता) संभवै नहीं ॥ औ तिन (नानासत्)कूं जो अवास्तव (मिथ्या) कहै तौ "मेरी माता वंध्या है" इस वाक्यकी न्यांई व्याघात होवैगा ॥ जो पारमार्थिक व्यावहारिक औ प्रातिभासिकभेदकरि तीनप्रकारके सत् कहै तौ बी बनै नहीं ॥ काहेतैं जैसैं धनीकी सत्ता (सामर्थ्य) जो है सो तिसके आश्रित कार्यकारीकी सत्ता भ्रांतिसैं प्रतीत होवैहै औ तिसद्वारा तिस कार्यकारीके किंकरकी सत्ता प्रतीत होवैहै परंतु तिनमैं एकहीं सत्ता है ॥ तैसैं इहां बी एकहीं पारमार्थिक "सत्" है औ तिसकी व्यावहारिकघटादिकवस्तुमैं औ प्रातिभासिकस्वप्नादिवस्तुमैं स्फटिकमैं लालरंगकी न्यांई अन्यथाख्यातिसैं वा सर्पसैं रज्जुके तादात्म्यसंबंधकी न्यांई संसर्गाध्यासकरि अनिर्वचनीयख्यातिसैं प्रतीति होवैहै ॥ ऐसैं सत्के नानात्वके अभावतैं सत्का सजातीय और सत् बनै नहीं । तातैं सत् सजातीयभेदसैं रहित है ॥

१७ अन्योन्याभावकूं भेद कहैहैं ॥ परस्परनिषेधकअभावकूं **अन्योन्याभाव** कहैहैं ॥ जैसैं घट है सो पट नहीं औ पट है सो घट नहीं । इहां घटपटका अन्योन्यअभाव है ॥ जिसविषै अन्यका अभाव होवै सो **अभावका** अनु-

टीकांक: ३९७ टिप्पणांक: ३१८	एकमेवाद्वितीयं सत्सिद्धमत्र तु केचन । विह्वला असदेवेदं पुराऽऽसीदित्यवर्णयन् ॥२६॥	पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ९१

९७] विजातीयं असत् तत् तु "अस्ति" इति खलु न गम्यते । अतः अस्य प्रतियोगित्वं न । विजातीयात् भिदा कुतः ॥ २५ ॥

९७] सत्का विजातीय असत् होवैगा ॥ सो असत् तौ "है" इसरीतिसैं निश्चयकरि नहीं जानियेहै ॥ यातैं इस असत्कूं प्रतियोगीभाव नहीं है तब सत्का विजातीयसैं भेद कैसै बनै? किसी प्रकार बी बनै नहीं ॥ २५ ॥

॥ ८ ॥ फलितअर्थ ॥

९८ सिद्धअर्थकूं कहैहैं:—

९८ फलितमाह—

९९] एकं एव अद्वितीयं सत् सिद्धम्॥

४०० इदानीं स्थूणानिखननन्यायेन सदद्वैतमेव द्रढयितुं पूर्वपक्षमाह—

९९] एकहीं अद्वितीय सत् ब्रह्म निर्णीत भया ॥

॥ २ ॥ शून्यवादी (माध्यमिक)का पूर्वपक्ष औ खंडन ॥ ४००—४७८ ॥

॥ १ ॥ शून्यवादीके पूर्वपक्षका कथन ॥

४०० अब स्थूणाखननन्यायकरि सत्रूप अद्वितीयकूंहीं दृढ करनेकूं पूर्वपक्षकूं कहैहैं:—

योगी (आश्रय) है औ जिसका अन्यविषे अभाव होवै सो अभावका प्रतियोगी औ निरूपक (निरूपण करनेवाला) कहियेहै ॥ अनुयोगी औ प्रतियोगीके ज्ञानपूर्वक अभावका ज्ञान होवैहै तिसविना होवै नहीं । यातैं सो अभाव अनुयोगीप्रतियोगीके आधीन है ॥ औ वे अनुयोगी औ प्रतियोगी सत्रूप अपेक्षित हैं असत्रूप नहीं ॥ इहां सत्ब्रह्मरूप अनुयोगीका सत्निष्ठ विजातीयरूप भेद (अन्योन्याभाव)का प्रतियोगी वंध्यापुत्र औ शशशृंगादिरूप असत् (शून्य) होवै सो निःस्वरूप होनैतैं हैही नहीं । यातैं ता असत्कूं प्रतियोगी होना संभवै नहीं ॥ तातैं तिस प्रतियोगिक (असत्रूप प्रतियोगीवाला) सत्का विजातीयभेद बी बनै नहीं ॥ औ सत्सैं विलक्षण (बाधयोग्य माया औ ताका कार्य) स्थूलसूक्ष्मप्रपंच बी असत्शब्दका अर्थ है ॥ तिस प्रतियोगिकसत्का विजातीयभेद कहैं तौ सो बी बनै नहीं । काहेतैं तिन माया औ ताके कार्यकूं दर्पणमैं प्रतीत नगरकी न्याईं औ स्वप्नके गजादिकनकी न्याईं अविद्यमान होते भासमान होनैतैं वास्तवता (पारमार्थिकता)के अभावकरि मिथ्या होनैतैं तिसतैं सत्का विजातीयभेद कदाचित् नहीं है ॥ प्रलयकालमैं तौ सत्सैं भिन्न मायाकी कोई प्रमाणसैं सिद्धि (निरूपण) होवै नहीं औ प्रपंचकी तौ उत्पत्ति बी नहीं । यातैं तिनकरि सत्का विजातीयभेद बनै नहीं ॥ तातैं सत् विजातीयभेदसैं रहित है ॥ इति ॥

१८ निःस्वरूप (तुच्छ) जो वंध्यापुत्र औ शशशृंगआदिक सो असत् कहियेहै ॥ अथवा सत् जो बाधरहिततातैं विलक्षण (बाध होनैके योग्य) व्यावहारिक वा प्रातिभासिकरूप अनिर्वचनीय मिथ्यापदार्थ (माया औ ताके कार्य) बी कहुं असत् शब्दका अर्थ है ॥ तिन दोनूं अर्थनमैंसैं इहां प्रलयमैं उक्तप्रकारसैं तौ प्राप्त बी नहीं है यातैं इहां प्राप्त प्रथमअर्थका ग्रहण है ॥

१९ स्थूणा नाम अश्वादिकके बंधनके योग्य स्थानरूप स्तंभ (खंभ)है । ताका खनन कहिये दृढअदृढकी परीक्षापूर्वक पृथ्वीविषै गाडना ॥ जो हिलै तौ अदृढ है ताकूं फेर मुद्गरादिकके प्रहारसैं दृढ करना होवैहै ॥ इस न्याय (दृष्टांत)करि कहिये या स्तंभके गाडनेकी न्याईं मनरूप चपलअश्वके बंधन (निष्ठा)के योग्य स्थान जो अद्वितीयसत्रूप स्तंभ है ताकूं दृढ (निश्चित) अदृढ (संदिग्ध)की परीक्षा पूर्वक मुमुक्षुकी मतिरूप पृथ्वीविषै गाडना (शंकासमाधानकरि निर्णीत करना)है ॥ जो पूर्वपक्षरूप हिलावनैसैं हिलै (संदेहयुक्त होवै) तौ फेर पूर्वपक्षके निराकरण (समाधान)रूप मुद्गरादिकके प्रहारसैं दृढ करना होवैहै ॥ या हेतुतैं ग्रंथकर्त्ता शून्यवादीके मतके पूर्वपक्ष (शंका)का कथनमात्र करैहैं । अर्थात् निरूपण नहीं करैहैं ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ९२ ९३ | टीकांक: ४०१ टिप्पणांक: ३२०

मॅग्नस्याब्धौ यथाऽक्षाणि विह्वलानि तॅथाऽस्य धीः।
अखंडैकरसं श्रुत्वा निःप्रचारा बिभेत्यतः ॥२७॥
गौडाचार्या निर्विकल्पे समाधावन्ययोगिनाम्।
साकारब्रह्मनिष्ठानामत्यंतं भयमूचिरे ॥ २८ ॥

१] अत्र तु विह्वलाः केचन "असत् एव इदं पुरा आसीत्" इति अवर्णयन् ॥ २६ ॥

२ विह्वलत्वे दृष्टांतमाह (मग्नस्येति)—

३] अब्धौ मग्नस्य अक्षाणि यथा विह्वलानि ॥

४ दार्ष्टांतिके योजयति—

५] तथा अस्य धीः अखंडैकरसं श्रुत्वा निःप्रचारा । अतः बिभेति ॥

६) अस्य असद्वादिनो । जातावेकवचनं । धीः अंतःकरणं । अखंडैकरसं वस्तु श्रुत्वा । निःप्रचारा साकारवस्तुनीवाखंडैकरसे वस्तुनि प्रचाररहिता सती । अतः अस्मात् वस्तुनो बिभेति ॥ २७ ॥

७ उक्तार्थे आचार्यसंमतिं दर्शयति—

१] इस सत्‌रूप अद्वितीयविषै व्याकुल हुये केइक शून्यवादी "असंत्‌हीं यह जगत् सृष्टितैं पूर्व था ॥" इसप्रकार वर्णन करतेभये ॥ २६ ॥

॥ २ ॥ शून्यवादीकी व्याकुलतामैं दृष्टांत औ प्रमाण ॥

२ शून्यवादिनकी व्याकुलतामैं दृष्टांत कहैहैं:—

३] समुद्रविषै डूबेहुये पुरुषके इंद्रिय जैसैं व्याकुल होवैहैं ।

४ दृष्टांतउक्तअर्थकूं सिद्धांतविषै जोडतेहैं:—

५] तैसैं इस असत्‌वादीकी बुद्धि स्वगतादितीनभेदरहित अखंडएकरसवस्तुकूं श्रवणकरि तिसविषै प्रवृत्तिरहित हुई इस वस्तुतैं भयकूं पावैहै ॥

६) इस असत्‌वादीकी[21] बुद्धि अखंडएकरसवस्तुकूं सुनिके साकारवस्तुकी[22] न्यांई अखंडएकरसवस्तुविषै प्रवृत्तिरहित हुई इस अखंडएकरसवस्तुतैं भयकूं पावैहै ॥ २७ ॥

७ उक्तअर्थविषै आचार्यकी संमतिकूं दिखावैहैं:—

२० बुद्ध जो सुगत ताका शिष्य माध्यमिकनामवाला शून्यवादी भयाहै । ताके मतमैं सृष्टितैं पूर्व औ पीछे सर्ववस्तु निर्विशेष (विलक्षणतारहित) शून्य (असत्)हीं हैं औ बीचमैं भ्रांतिसैं नामरूपआकार औ जगत् प्रतीत होवैहै ॥ सो जगत्‌की भ्रांति बी निरधिष्ठान है ॥ जो आदिअंतविषै होवै नहीं सो वस्तु असत्‌ख्यातिकी रीतिसैं मरीचिकाके जल औ रज्जुसर्पादिककी न्यांई बीचमैं बी नहीं है । यातैं शून्यहीं परम तत्त्व है ॥ इसरीतिसैं माध्यमिक (नास्तिक)के अनुसारी "यह जगत् आगे असत् था" यह वर्णन करतेहैं ॥

२१ अधिष्ठानब्रह्मके अज्ञानतैं अंतरदृष्टिरहित बहिर्मुख-शून्यवादीकी औ ताके तुल्य अन्यअज्ञानीपुरुषनकी ॥

२२ जैसैं भावअभावरूप आकारयुक्त वस्तुविषै बुद्धि प्रवृत्तिवाली होवैहै तैसैं निराकारब्रह्मविषै प्रवृत्त होवै नहीं यातैं शून्यकूं कल्पतेहैं ॥

टीकांक: ४०८ टिप्पणांक: ३२३	अस्पर्शयोगो नामैष दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः । योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः॥२९॥	पंचमहाभूत-विवेक:॥२॥ श्लोकांक: ९४

८] गौडाऽऽचार्याः साकारब्रह्मनिष्ठानाम् अन्ययोगिनां निर्विकल्पे समाधौ अत्यंतं भयं ऊचिरे ॥ २८ ॥

९ केन वाक्येनोक्तवंत इत्याकांक्षायां तदीयं वार्तिकमेव पठति—

१०] अस्पर्शयोगः नाम एषः सर्वयोगिभिः दुर्दर्शः ॥

११) योऽयम् अस्पर्शयोग–आख्यो निर्विकल्पः समाधिः । एष सर्वयोगिभिः साकारध्याननिष्ठैः । दुर्दर्शः दुःखेन द्रष्टुं योग्यः दुःप्राप इत्यर्थः ॥

१२ तत्रोपपत्तिमाह (योगिन इति)—

१३] हि योगिनः अभये भयदर्शिनः । अस्मात् बिभ्यति ॥

१४) हि यस्मात्कारणात् । योगिनः पूर्वोक्तद्वैतदर्शिनः । अभये भयशून्ये समाधौ ।

८] गौडपादाचार्य वी साकारब्रह्ममैं निष्ठावाले अन्यअज्ञानीयोगिनैंकूं निर्विकल्पसमाधिविषै अतिशयभय कहतेभये ॥ २८ ॥

९ गौडपादस्वामी किस वाक्यकरि कहतेभये? इस आकांक्षाके हुये तिन गौडपादस्वामीके वार्तिकरूप श्लोककूंहीं पठन करैहैं:—

१०] अस्पर्शयोग नाम यह निर्विकल्पसमाधि सर्वयोगिनकरि दुर्दर्श है ॥

११) जो यह अस्पर्शयोग नाम उपनिषदनमैं प्रसिद्ध निर्विकल्पसमाधि है। यह समाधि साकारवस्तुके ध्यानमैं निष्ठावाले सर्व वेदांतअर्थके ज्ञानसैं रहित कर्मिष्ठआदिकयोगिनकरि श्रवणादिरूप दुःखसैं देखनेकूं योग्य है ॥ यह अर्थ है ॥

१२ तिस समाधिकी दुःखसैं प्राप्त होनेकी योग्यतामैं युक्तिकूं कहैहैं:—

१३] जातैं साकारध्याननिष्ठयोगी अभयविषै भयकूं देखतेहुये इस समाधितैं भयकूं पावैहैं ॥

१४) जिस कारणतैं पूर्व (श्लोक २६-२८) उक्तद्वैतदर्शीयोगी भयरहित निर्विकल्पसमाधिविषै निर्जनदेशविषै बालकनकी न्यांई भयकूं देखतेहैं कहिये भयकी कारणताकूं कल्पतेहुये इस

२३ विराट् अथवा गोलोक वा वैकुंठादिलोकवासी द्विभुजचतुर्भुजादिचिन्हधारी वा रामकृष्णनृसिंहादिअवतारधारीविष्णु औ कैलासादिलोकवासी शिवआदिकतनुमैं वा तिनकी मूर्ति (प्रतिमा) अथवा कोईबी आरोपितवस्तुमैं ॥

२४ उक्तसाकारवस्तुमैं चित्तके जोडनैवाले उपासककूं ॥

२५ ध्याताध्यानादिरूप त्रिपुटीकी कल्पनातैं रहित समाधि। **निर्विकल्पसमाधि** है तिसविषै ॥

२६ श्रीशंकराचार्यके गुरु जे श्रीगोविंदपादाचार्य तिनके गुरु औ श्रीव्यासजीके पुत्र श्रीशुकदेवजीके शिष्य श्रीगौडपादाचार्यकृत मांडूक्यउपनिषद्की वार्तिकरूप कारिकाके अद्वैत नाम तृतीयप्रकरणविषै यह वार्तिकरूप श्लोक है ॥ वार्तिक नाम मूलमैं उक्त अनुक्त दुरुक्त (विरुद्धोक्त) के चिंतन (विचार) रूप व्याख्यानविशेषका है ॥

२७ वर्णाश्रमादिकके धर्मसैं औ पापरूप मलसैं वा सर्वअनात्मवस्तुसैं जिसकरि स्पर्श (संबंध) होवै नहीं औ जीवकूं ब्रह्मभावसैं जोडताहै ऐसा जो अद्वैत (ब्रह्म) का अनुभव (साक्षात्कार) है सो **अस्पर्शयोग** उपनिषदनमैं प्रसिद्ध है ॥ तिस अस्पर्शयोगकरि युक्त योगि (निर्गुणब्रह्मनिष्ठज्ञानी) नका यह **अस्पर्श नामक योग** है ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: | टीकांक: ४१५ | टिप्पणांक: ३२८

९५ [२६]भगवत्पूज्यपादाश्च शुष्कतर्कपटूनमून् ।
आहुर्माध्यमिकान्भ्रांतानचिंत्येऽस्मिन्सदात्मनि ॥ ३० ॥

९६ [२७]अनादृत्य श्रुतिं मौर्ख्यादिमे बौद्धास्तमस्विनः ।
आपेदिरे निरात्मत्वमनुमानैकचक्षुषः ॥ ३१ ॥

९७ [२८]शून्यमासीदिति ब्रूषे सद्योगं वा सदात्मताम् ।
शून्यस्य न तु तद्युक्तमुभयं व्याहतत्वतः ॥ ३२ ॥

निर्जने देशे वाला इव । भयदर्शिनः भयहेतुत्वं कल्पयंतः । अस्मात् अस्पर्शयोगात् । भीतिं प्राप्नुवंति ॥ २९ ॥

१५ श्रीमदाचार्यैरप्येतदभिहितमित्याह—

१६] भगवत्पूज्यपादाः च शुष्कतर्कपटून् अमून् माध्यमिकान् अचिंत्ये अस्मिन् सदात्मनि भ्रांतान् आहुः ३०

१७ तद्वार्तिकं पठति (अनादृत्येति)—

१८] तमस्विनः अनुमानैकचक्षुषः इमे बौद्धाः मौर्ख्यात् श्रुतिं अनादृत्य निरात्मत्वं आपेदिरे ॥ ३१ ॥

१९ इदानीमसद्वादं विकल्प्य दूषयति—

अस्पर्शनामयोगरूप निर्विकल्पसमाधितैं भयकूं प्राप्त होवैहैं । तातैं वह निर्विकल्पसमाधि तिनकूं दुर्लभ है ॥ २९ ॥

१५ श्रीमत्शंकराचार्योंनै वी यह अर्थ कह्याहै ऐसैं कहैहैं:—

१६] औ भगवत्पूज्यपादश्रीशंकराचार्य वी शुष्कतर्कनविषे चतुर इन माध्यमिक शून्यवादिनकूं अचिंत्य इस सत्ब्रह्मरूप आत्माविषे भ्रांत कहते-भये ॥ ३० ॥

१७ तिन श्रीशंकराचार्यनके वार्तिककूं पठन करैहैं:—

१८] तमस्वी औ अनुमानरूप एक-मुख्यचक्षुवाले यह बुद्धके शिष्य ऐसैं मूर्खतासैं श्रुतिकूं अनादरकरिकै निःस्वरूप शून्यभावकूं जानैहैं ॥ ३१ ॥

॥ २ ॥ "सृष्टितैं आगे शून्य होता भया" इस शून्यवादीके पक्षमैं विकल्पपूर्वक दूषण ॥

१९ अब शून्यवादकूं विकल्पकरिके दोष देतेहैं:—

२८ जातैं शास्त्रके अर्थकूं आचरतेहैं औ लोकनकूं शास्त्रोक्तआचारविषे स्थापन बी करैहैं औ आप (शास्त्रीयआचारकूं) आचरैहैं तिस (हेतु) करि आचार्य्य कहियेहैं ॥

२९ भगवत्करि कहिये ऐश्वर्यसंपन्नराजादिकरि वा पादपद्मादिविष्णुआदिकके अवतारकरि पूज्य (आचार्यके योग्य) पाद (चरण) हैं जिनके । वा भगवत् गोविंदपादके पूज्य हैं चरण जिनकूं । वा भगवत्‌रूप पूज्यपाद (आचार्य) ऐसैं ॥

३० अनिष्टके आपादनरूप वा नवीनअर्थकी कल्पनारूप जे तर्क हैं वे सुतर्क औ कुतर्कके भेदतैं दोभांतिके हैं ॥ श्रुतिअविरुद्ध **सुतर्क** हैं औ श्रुतिविरुद्ध **कुतर्क** (दुस्तर्क) हैं ॥ सो कुतर्क विरस औ निष्फल होनेतैं । शुष्कतर्क कहियेहैं ॥ नास्तिक । वेदकूं प्रमाण मानैं नहीं । यातैं सो शुष्कतर्कनमैं पटु (कुशल) हैं ॥

३१ माध्यमिकमतके अनुसारीनकूं ॥

३२ अन्य (अनात्म)वस्तुकी न्यांई चिंतन (चितावृत्ति)रूप चित्तके अविषय ॥

३३ कहूं (सगुणनिर्गुणादिरूप वस्तुमैं) स्थिति (निश्चय)कूं न पायके शून्यविषे स्थिति करनैतैं । **भ्रमिष्ट** ॥

३४ अज्ञानरूप अंधकारयुक्त ॥

३५ किंचिज्ज्ञता (अल्पज्ञता)के होते सर्वज्ञताके अभिमानीपनैरूप **मूर्खता**सैं ॥

टीकांक: ४२० टिप्पणांक: ३३६	न युक्तस्तमसा सूर्यो नापि चासौ तमोमयः । सच्छून्ययोर्विरोधित्वाच्छून्यमासीत्कथं वद ॥३३॥ वियदादेर्नामरूपे मायया सुविकल्पिते । शून्यस्य नामरूपे च तथा चेज्जीव्यतां चिरम् ३४	पंचमहाभूत विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ९८ ९९

२०] "शून्यं आसीत्" इति सद्योगं ब्रूषे वा सदात्मतां । तत् उभयं शून्यस्य व्याहतत्वतः न तु युक्तम् ॥

२१) "शून्यमासीत्" इति अनेन वाक्येन शून्यस्य सत्ताजातियोगं वा सद्रूपतां वा ब्रूषे इति विकल्पार्थः । तदुभयं सत्तासंबंधसद्रूपत्वलक्षणं । शून्यस्य व्याहतत्वान्न युज्यत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

२२ व्याहतत्वमेव दृष्टांतपूर्वकं दृढयति (न युक्त इति)—

२३] सूर्यः तमसा युक्तः न च असौ तमोमयः अपि न सच्छून्ययोः विरोधित्वात् शून्यं आसीत् कथं वद॥३३॥

२४ ननु भवन्मते वियदादीनां निर्विकल्पे ब्रह्मणि सत्वं व्याहतमित्याशंक्याह—

२५] वियदादेः नामरूपे मायया सुविकल्पिते ॥

२६ तर्हि शून्यस्यापि नामरूपे सद्वस्तुनि

२०] "शून्यही था" इस ३६ श्लोकउक्त वाक्यकरि शून्यकूं सत्‌का योग कहताहै वा सत्‌रूपता कहताहै? सो दोनूं पक्ष शून्यकूं व्याघातके होनैतैं घटित नहीं हैं ॥

२१) हे शून्यवादिन्! "सृष्टितैं पूर्व शून्यही था" इस वाक्यकरि तूं शून्यका सत्तारूप परजातिके साथि संबंध कहताहै वा शून्यकी सत्‌रूपता कहताहै? यह विकल्पका अर्थ है॥सो दोनूं सत्तासैं संबंध वा सत्‌रूपतारूप पक्ष शून्यकूं बनै नहीं । काहेतैं [३६]व्याघातरूप दोषके होनेतैं ॥ यह अर्थ है ॥ ३२ ॥

२२ व्याघातकूंहीं दृष्टांतपूर्वक दृढ करैहैं:—

२३] जैसैं सूर्य अंधकारकरि युक्त नहीं है औ यह सूर्य अंधकाररूप बी नहीं है । तैसैं सत् औ शून्यकूं परस्पर विरोधी होनेतैं "शून्यहीं आगे था" यह तेरा कथन कैसै बनैहै? हे शून्यवादी! सो तूं कथन कर ॥ व्याघातदोषयुक्त होनैतैं किसी प्रकार बी बनै नहीं । यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

२४ ननु हे सिद्धांती! तुमारे वेदांतमतविषै आकाशआदिकनकी जो निर्विकल्पब्रह्मविषै सत्ता है सो व्याघातकूं पावैहै । यह आशंकाकरिके कहैहैं:—

२५] आकाशआदिकनके नामरूप मायाकरि सत्‌विषै कल्पित हैं ॥

२६ तब शून्यके बी नामरूप मायाकरि

[३६] जातैं तिस (शून्य)कूं असत् बी कहताहै । फेर तिसकूं अंधकारयुक्त वा अंधकाररूप सूर्यकी न्याई सत्‌का संबंधी वा सत्‌रूप बी कहताहै । यातैं इहां व्याघात है ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांकः १००

सतोऽपि नामरूपे द्वे कल्पिते चेत्तदा वद ।
कुत्रेति निरधिष्ठानो न भ्रमः क्वचिदीक्ष्यते ॥ ३५ ॥

टीकांकः ४२७ टिप्पणांकः ३३७

कल्पिते इति वदतो बौद्धस्यापसिद्धांत इत्यभिप्रायेणाह—

२७] शून्यस्य नामरूपे च तथा चेत् चिरं जीव्यताम् ॥ ३४ ॥

२८ ननु तर्हि शून्यस्येव सद्वस्तुनोऽपि नामरूपे कल्पिते एवांगीकर्तव्ये भवन्मते वास्तवयोर्नामरूपयोरभावादिति शंकते—

२९] सतः अपि नामरूपे द्वे कल्पिते चेत् ।

३० विकल्पासहत्वादयं पक्ष एवानुपपन्न इत्यभिप्रायेण परिहरति—

३१] तदा कुत्र इति वद ॥

३२) अयमभिप्रायः । सतो नामरूपे किं सति कल्पिते उतासति अथवा जगति । नाद्यः । अन्यस्य रजतादेर्नामरूपयोः अन्यत्र शुक्तिकादावारोपदर्शनात्सतो नामरूपयोः सत्येव कल्पनायोगात् । न द्वितीयः । असतो निरात्मकस्य चाधिष्ठानत्वायोगात् । न तृतीयः । सत उत्पन्नस्य जगतः सन्नामरूपकल्पनाधिष्ठानत्वानुपपत्तेरिति ॥

सत्वस्तुविषै कल्पित हैं । ऐसें कहनेवाले बुद्धके शिष्य माध्यमिकरूप बौद्धका सिद्धांतभंग होवैहै । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

२७] शून्यके नामरूप बी तैसें मायाकरि सत्विषै कल्पितहीं हैं । जब ऐसें कहै तब बहुतकाल जीवौ ॥ ३४ ॥

॥ ४ ॥ "सत्ही होताभया" इस श्रुतिके कथनमैं शंकासमाधान ॥

२८ ननु तब शून्यकी न्यांई सत्वस्तुके बी नामरूप कल्पितहीं अंगीकार कियेचाहिये ॥ काहेतें तुमारे अद्वैतमतमैं वास्तव नामरूप दोनूंके अभावतें । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

२९] सत्ब्रह्मके बी नामरूप दोनूं कल्पित हैं ऐसें जब कहै ।

३० हे वादी! यह तेरा पूर्वपक्ष विकल्पके असहनतें अयुक्तहीं है । इस अभिप्रायसैं सिद्धांती शंकाकी निवृत्ति करैहै:—

३१] तब किस अधिष्ठानविषै कल्पित हैं? सो कथन कर ॥

३२) इहां यह अभिप्राय है:—सत्के बी नामरूप कल्पित हैं ऐसें कहनेवाले वादीकूं सिद्धांती पूंछतेहैं:—सत्के नामरूप क्या सत्अधिष्ठानविषै कल्पित हैं वा असत्विषै अथवा जगत्विषै? ये तीनपक्ष हैं ॥ तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं । काहेतें शुक्तिआदिकतें और जो रूप्यआदिक हैं तिनके नामरूपकी रजतआदिकतें भिन्न शुक्तिआदिकअधिष्ठानविषै भ्रांतिके दर्शनतें सत्के नामरूपकी आप सत्विषैहीं कल्पनाके असंभवतें ॥ औ दूसरापक्ष बी बनै नहीं । काहेतें असत् जो शून्य है तिसकूं अधिष्ठानपनैके असंभवतें ॥ औ तीसरापक्ष बी बनै नहीं । काहेतें सत्सैं उत्पन्न हुवा जो जगत् है तिस जगत्कूं सत्के नामरूपकी कल्पनाके अधिष्ठानपनैके असंभवतें ॥ इति ॥

३७ यह स्वसिद्धांतकूं त्यागिके वेदांतसिद्धांतके ग्राहक वादीके प्रति उपहास्यगर्भित आशीर्वाद है ॥

३८ सत्के नाम (वाचकशब्द) औ रूप (स्थूलादिआकार)के अभावतें युक्तिरहित है ॥

टीकांक: ४३३ टिप्पणांक: ३३९	³⁶सदासीदिति शब्दार्थभेदे वैगुण्यमापतेत् । अभेदे पुनरुक्तिः ³⁹स्यान्मैवं ⁴¹लोके तथेक्षणात् ३६	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १०१

३३ माभूदधिष्ठानं अनयोः कल्पना किं न स्यादित्याशंक्याह—

३४] निरधिष्ठानः भ्रमः कचित् न ईक्ष्यते ॥ ३५ ॥

३५ ननु "असदेवेदमग्र आसीत्" इत्यत्र यथा व्याघात उक्तः तथा "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" इत्यत्रापि दोषोऽस्तीति शंकते—

३६] "सत् आसीत्" इति शब्दार्थभेदे वैगुण्यं आपतेत् । अभेदे पुनरुक्तिः स्यात् ॥

३७) तथाहि "सदासीत्" इति शब्दभेदयोरर्थभेदोऽस्ति न वाऽस्ति चेदद्वैतहानिर्नास्ति चेत् पुनरुक्तिः स्यात् । अतः सदासीदित्यनुपपन्नमिति ॥

३८ द्वितीयं पक्षमादाय परिहरति (मैवमिति)—

३९] एवम् मा ॥

४० पुनरुक्तिदोषस्य कः परिहार इत्याशंक्याह—

३३ ननु सत्के नामरूपकी कल्पनाका अधिष्ठान मति होहु औ अधिष्ठानसैं विना बी इन सत्के नामरूपकी कल्पना क्यौं नहीं होवैगी? यह आशंकाकरिके कहैहैं:—

३४] जातैं अधिष्ठानरहित भ्रांति काहु स्थलमैं बी नहीं देखियेहै ॥ ३५ ॥

३५ ननु "असत्रूपहीं यह जगत् उत्पत्तितैं पूर्व था ।" इहां जैसैं तुमनैं व्याघातरूप दोष कहा तैसैं "हे सौम्य! यह जगत् आगे सत्हीं था" । इहां बी दोष है । इसरीतिसैं वादी पूर्वपक्ष करैहैः—

३६] "सत्" औ "था" इन श्रुतिगत दोशब्दनके अर्थका भेद है वा अभेद है? शब्दार्थ भेदके हुये सिद्धांतका भंगरूप विरूद्धपना प्राप्त होवैगा औ अभेदके हुये पुनरुक्ति होवैगी ॥

३७) "यह आगे सत् था" इस श्रुतिविषै जो दोष है सो दिखावै हैं:— "सत्" औ "था" इन भिन्न दोशब्दनके अर्थका भेद है वा नहीं है? जो कहो भेद है तौ अद्वैतकी हानि होवैहै औ जो कहो भेद नहीं है तौ पुनरुक्ति होवैहै । यातैं "सत् था" यह उच्चारण बनै नहीं ॥

३८ सिद्धांती "भेद नहीं है" इस दूसरे पक्षकूं स्वीकारकरिके उक्तपुनरुक्तिरूप दोषका परिहार करैहैं:—

३९] "सत् था" इहां दोष है ऐसैं मति कहो ॥

४० ननु तब "सत्" "था" इन दोशब्दनके अर्थके अभेदके अंगीकारमैं कहे पुनरुक्तिदोषका कौन परिहार है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३९ दोसत्के होनैतैं अद्वैतकी हानी होवैहै ॥

४० एकवार उच्चारण किये शब्द वा अर्थके फेरीउच्चारणका नाम पुनरुक्तिदोष है । सो शब्दपुनरुक्ति औ अर्थपुनरुक्ति भेदतैं दोभांतिका है ॥ तिनमैं भिन्नअर्थयुक्त शब्दनकी पुनरुक्ति दोषरूप नहीं बी है परंतु एकअर्थकरि युक्त । समान वा विलक्षणशब्दके उच्चारणसैं अर्थपुनरुक्ति होवैहै । सो दोषरूप है । सो इहां है ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १०२ १०३

[43]कर्तव्यं कुरुते वाक्यं ब्रूते धार्यस्य धारणम् ।
[45]इत्यादिवासनाऽऽविष्टं प्रत्यासीत्सदितीरणम् ३७
[47]कालाभावे पुरेत्युक्तिः कालवासनया युतम् ।
शिष्यं प्रत्येव तेनात्र द्वितीयं न हि शंक्यते॥३८॥

टीकांक: ४४१ टिप्पणांक: ३४१

४१] लोके तथा ईक्षणात् ॥ ३६ ॥

४२ लोके एवंविधेषु प्रयोगेषु पुनरुक्त्यभावः कुत्र दृष्ट इत्याशंक्याह—

४३] कर्तव्यं कुरुते वाक्यं ब्रूते धार्यस्य धारणम् ॥

४४ भवत्वेवं लोके श्रुतौ किमायातमित्यत आह—

४५] इत्यादिवासनाविष्टं प्रति "सत् आसीत्" इति ईरणम् ॥ ३७ ॥

४६ नन्वद्वितीये वस्तुनि भूतकालाभावादग्र आसीदित्युक्तिरनुपपन्नेत्याशंक्याह—

४७] कालाभावे "पुरा" इति उक्तिः कालवासनया युतम् शिष्यं प्रति एव ॥

४८ ननु जगदुत्पत्तेः पुरा जगदभावेन सद्वितीयत्वं ब्रह्मण इत्याशंक्य श्रुतिमहत्त्वेद्वैत-

४१] लोकविषै तिसरीतिके प्रयोगनके देखनैतैं ॥ ३६ ॥

४२ ननु लोकविषै "सत् था" इसरीतिके एकअर्थवाले दोशब्दनके उच्चारणविषै पुनरुक्तिदोषका अभाव कहां देखाहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४३] कर्त्तव्यकूं करैहै औ वाक्यकूं कहैहै औ धारण करनेके योग्यका धारण करैहै ॥

४४ लोकविषै इसरीतिके प्रयोग होहु। इनकरि "सतही था" इस श्रुतिविषै क्या प्राप्त भया? तहां कहैहैं:—

४५] इनसैं आदिलेके लोकप्रसिद्ध पुनरुक्तियुक्त प्रयोगनकी वासनाके आवेशयुक्त श्रोतापुरुषके प्रति "सत् आसीत्" कहिये सत् था यह श्रुतिनै कथन कियाहै ॥ ३७ ॥

४६ ननु अद्वितीयवस्तुविषै भूतकालके अभावतैं "सृष्टितैं पूर्व सत् था" इसरीतिका कथन अयुक्त है। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४७] अद्वितीयवस्तुविषै भूतादिकालके अभावके होते बी "सृष्टितैं पूर्वकालविषै" यह श्रुतिका कथन भूतभविष्यत्आदिरूप कालकी वासनाकरि युक्त शिष्यके प्रतिही है। वास्तवपनैके अभिप्रायसैं नहीं ॥

४८ ननु। जगत्की उत्पत्तितैं पूर्व। पूर्वकालादिरूप जगत्के प्राक्अभावकरि ब्रह्मकूं

४१ इहां आदिशब्दकरि आकर्ष (जलसिंचनआदि) विषै (खेंचखेंच)। हर्षविषै (अहोअहो)। क्रोधविषै (मारोमारो। धरोधरो। इत्यादि)। भयविषै (अरेअरे इत्यादि) दीनताविषै (देहुदेहु इत्यादि) औ निंदास्तुतिविषै पुनरुक्तिकी दोषरूपताके अभावका ग्रहण है ॥

४२ कालरहित परमात्माविषै काल है। वा कालसहितविषै कालहै? प्रथमपक्षमैं व्याघात होवैहै औ दूसरेविषै आत्माश्रयादिदोष होवैहैं ॥ सो (दोषसमूह) अंक २२४ विषै उक्त प्रकारसैं जाननैं ॥ इसरीतिसैं ब्रह्ममैं कालका अभाव है ॥

टीकांक: ४४९ टिप्पणांक: ३४३	[५१] चोद्यं वा परिहारो वा क्रियतां द्वैतभाषया । अद्वैतभाषया चोद्यं नास्ति नापि तदुत्तरम् ॥ ३९ ॥ [५४] तदा स्तिमितगंभीरं न तेजो न तमस्ततम् । अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किंचिदवशिष्यते ॥४०॥	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १०४ १०५

वासनाऽऽविष्टश्रोतृप्रतिबोधनार्थत्वात् नातिशंकनीयमित्याह—

४९] तेन अत्र द्वितीयं शंक्यते न हि ॥ ३८ ॥

५० इदानीं सिद्धांतरहस्यमाह—

५१] चोद्यं वा परिहारः वा द्वैतभाषया क्रियतां अद्वैतभाषया चोद्यं न अस्ति । तदुत्तरं अपि न ॥

५२) व्यवहारदशायां चोद्यादि कर्तव्यं परमार्थस्त्वद्वैतमेव तत्त्वमित्यर्थः ॥ ३९ ॥

५३ परमार्थतो द्वैताभावे स्मृतिं प्रमाणयति—

५४] तदा स्तिमितगंभीरं न तेजः न तमः ततं अनाख्यं अनभिव्यक्तं सत् किंचित् अवशिष्यते ॥

५५) स्तिमितं निश्चलं । गंभीरं दुरवगाहं मनसा विषयीकर्तुमशक्यं । न तेजः तेजस्त्वानधिकरणं । न तमः तमसो विलक्षणं

अभावरूप द्वैतसहितपना होवैगा । यह आशंकाकरि श्रुतिकी प्रवृत्तिकूं भावअभावरूप द्वैतकी अनुभवजन्य संस्काररूप वासनाके आवेशयुक्त श्रोताके प्रति बोधनअर्थ होनेतैं । इस अद्वैतविषै अतिशय शंका करनेकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैं:–

४९] तिस कारणकरि ब्रह्मविषै द्वैत शंकाका विषय नहीं करियेहै ॥ ३८ ॥

५० अब सिद्धांतके रहस्यकूं कहिये गूढअभिप्रायकूं कहैहैं:–

५१] प्रश्न वा उत्तर द्वैतकी भाषाकरि करियेहै औ अद्वैतकी भाषाकरि प्रश्न नहीं है औ तिस प्रश्नका उत्तर बी नहीं है ॥

५२) व्यवहारदशाविषै विकल्परूप प्रश्न औ परिहार । आरोपकरि करनेकूं योग्य हैं औ परमार्थतैं तौ अद्वैतहीं यथार्थवस्तु है ॥ यह अर्थ है ॥ ३९ ॥

॥ ९ ॥ वास्तवद्वैतके अभावमें स्मृतिप्रमाण ॥

५३ परमार्थतैं द्वैतके अभावविषै स्मृतिकूं प्रमाण करैहैं:–

५४] तब । निश्चल गंभीर औ न तेजरूप न तमरूप औ व्यापक आख्यारहित अनभिव्यक्त सत्रूप कछुक वस्तु अवशेष रहताहै ॥

५५) तब प्रलयविषै निश्चल कहिये क्रियारहित औ गंभीर नाम दुःखसैं अवगाहन करने योग्य कहिये मनकरि विषय करनेकूं अशक्य

४३ एक ब्रह्म (अनुयोगी) औ दूसरा तिसविषै जगत् (प्रतियोगी)का अभाव है । यातैं ब्रह्मकूं द्वैतसहितपना होवैगा ॥

४४ अज्ञानीकी दृष्टिसैं आरोपितद्वैतकूं विषयकरनैवाली भाषा (द्वैतभाषा)करि प्रश्नउत्तर बनैहैं ॥

४५ सकलआरोपसहित मन औ आप (वाणी)कूं निषेध (अपवाद) करनैद्वारा निर्धर्मकब्रह्मकी बोधक भाषा (अद्वैतभाषा)करि प्रश्नउत्तर बनै नहीं ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥५॥ श्रोकांकः १०६ १०७

ननु भूम्यादिकं मा भूत्परमाण्वंतनाशतः ।
कथं ते वियतोऽसत्वं बुद्धिमारोहतीति चेत्॥४१॥
अत्यंतं निर्जगद्व्योम यथा ते बुद्धिमाश्रितम् ।
तथैव सन्निराकाशं कुतो नाऽऽश्रयते मतिम्॥४२॥

टीकांकः ४५६ टिप्पणांकः ३४६

अनावरणस्वभावं । ततं व्याप्तं । अनाख्यं व्याख्यातुमशक्यम् । अनभिव्यक्तं चक्षुरादिभिरप्यविपयीकृतं । सत् शून्यविलक्षणं । अत एव किंचित् इदंतया निर्देष्टुमशक्यम् । अवशिष्यते द्वैतनिषेधावधित्वेनावतिष्ठत इत्यर्थः ॥ ४० ॥

५६ ननु जनिमत्वेन अनित्यस्य भूम्यादेरसत्वमस्तु नित्याकाशस्यासत्वं कथमंगीक्रियत इति शंकते—

५७] ननु परमाण्वंतनाशतः भूम्यादिकं माभूत् वियतः असत्वं ते बुद्धिं कथं आरोहति इति चेत् ॥४१॥

५८ दृष्टांतावष्टंभेन परिहरति—

औ न तेजरूप कहिये तेजस्त्वजातिका अनाश्रय औ न तमरूप कहिये आवरणरहित स्वभाव औ तत कहिये व्यापक औ अनाख्य कहिये व्याख्यान करनेकूं अशक्य औ अनभिव्यक्त-नाम अप्रगट । कहिये चक्षुआदिक इंद्रियनका वी अविषय हुवा औ सत् कहिये शून्यसैं विलक्षण याहीतैं किंचित् कहिये इदंपनैंकरि कथन करनेकूं अशक्य जो वस्तु है सो अवशेष रहताहै । कहिये द्वैत जो जगत् ताके निषेधकी अवधि होनेकरि स्थित होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ४० ॥

॥ ६ ॥ आकाशके असत्पनैमैं शंकासमाधान ॥

५६ ननु । उत्पत्तिवाले होनेकरि अनित्य जे भूमिआदिक हैं तिनका असत्पना होहु औ नित्य जो आकाश है ताका असत्पना तुम अद्वैतवादीकरि कैसें अंगीकार करियेहै? इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

५७] ननु पृथिवीजलतेजवायुके परमाणुरूप अवयवनके नाशतैं पृथिवीआदिक सत्य मति होहु । परंतु हे सिद्धांती! आकाशका असद्भाव तुमारी बुद्धिके प्रति कैसैं स्थित होवैहै? सिद्धांती कहैहैं हे वादी! ऐसैं जब कहै तब श्रवण कर॥४१॥

५८ सिद्धांती दृष्टांतके आश्रयकरि उक्तश्लोकगतशंकाका परिहार करैहैः—

४६ जैसैं सर्वघटनविषै घटत्वरूप जाति है औ सर्वब्राह्मणनविषै ब्राह्मणत्वरूप जाति है । तैसैं सूर्यचंद्रआदि सर्वतेज (प्रकाश)नविषै तेजत्व (तेजस्त्व) जातिरूप धर्म है । ताका अनाश्रय है ॥ परप्रकाश औ मिथ्यासूर्यादिकज्योतिनतैं विलक्षण (स्वयंप्रकाश औ सत्य) होनेतैं ॥

४७ अपना विवर्त्त होनेतैं अपनैंहीं स्वरूपभूत जगतके अत्यंताभावका अनुयोगी (अधिष्ठानरूप) होनैकरि ॥

४८ अपने पक्षमैं शिथिल भया जो वादी । सो नैयायिककी रीतिसैं मूलश्लोकविषै शंका करैहै ॥

४९ नैयायिकनके मतमैं पृथ्वीआदिकचारिभूतनके उपादानरूप परमाणु नित्य मानैहैं । तिनका नाश ताके मतसैं कहना संभवै नहीं । यातैं इहां नाशशब्दका विच्छेद (वियोग)हीं अर्थ है ॥ जाले (जरोखे)के अंतर्गतसूर्यकी किरणनविषै प्रतीयमान जो सूक्ष्मरजःकण सो त्र्यणुक (त्रिसरेणु) हैं तिसके तीसरेभागका नाम अणु है औ छठेभागका नाम परमाणु है ॥

टीकांकः ४५९ टिप्पणांकः ३५०	निर्जगद्व्योम दृष्टं चेत्प्रकाशतमसी विना । क्व दृष्टं किं च ते पक्षे न प्रत्यक्षं वियत्खलु ॥४३॥ सद्वस्तु शुद्धं त्वस्माभिर्निश्चितैरनुभूयते । तूष्णींस्थितौ न शून्यत्वं शून्यबुद्धेश्च वर्जनात् ४४	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः १०८ १०९

५९] अत्यंतं निर्जगद्व्योम यथा ते बुद्धिं आश्रितम् तथा एव निराकाशं सत् मतिम् कुतः न आश्रयते ॥

६०) अत्यंतं निर्जगत् जगन्मात्ररहितमित्यर्थः ॥ ४२ ॥

६१ "न हि दृष्टेऽनुपपन्नम्" इति न्यायमाश्रित्य चोदयति—

६२] निर्जगद्व्योम दृष्टं चेत् ।

६३ दर्शनमेवासिद्धमिति परिहरति—

६४]प्रकाशतमसी विना क्व दृष्टम् ॥

६५ अपसिद्धांतोऽपीत्याह—

६६] किंच ते पक्षे खलु वियत् प्रत्यक्षं न ॥ ४३ ॥

६७ ननु दर्शनाभावः सद्वस्तुन्यपि समान

५९] हे वादिन्! अत्यंतनिर्जगत्आकाश जैसैं तेरी बुद्धिके प्रति आश्रित भयाहै। तैसैंहीं आकाशरहित सत् तेरी बुद्धिके प्रति काहेतैं आश्रय नहीं करैहै?

६०) अत्यंतनिर्जगत् कहिये जगत्मात्ररहित ॥ यह अर्थ है ॥ ४२ ॥

६१ "अनुभव किये पदार्थका असंभव नहीं है" इस न्यायकूं आश्रयकरिके वादी शंका करैहैः—

६२] पृथ्वीआदिजगत्रहितआकाश अनुभव कियाहै। ऐसैं जो कहै।

६३ आकाशका देखनाहीं असिद्ध है। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

६४] तौ सूर्यादिकनके प्रकाश औ अंधकारसैं विनां कहां देखाहै? सो कहहु॥ कहुंवी देखना बनै नहीं ॥

६५ अवकाशकी प्रत्यक्षताके माननैसैं तेरा अपसिद्धांत बी होवैहै। यह कहैहैः—

६६] औ तेरे मतविषै निश्चयकरि आकाश।प्रत्यक्ष कहिये इंद्रियगोचर नहीं है ॥ ४३ ॥

॥ ७ ॥ सत्वस्तुके दर्शनमें शंकासमाधान ॥

६७ ननु देखनैका अभाव सद्वस्तुविषै बी समान है। यह आशंकाकरि सत्ब्रह्मके अज्ञ—

---

५० प्रसृतसूर्यादिकनका आलोक (प्रकाश) औ अंधकार दोनूंके संबंधतैं रूपरहित आकाशविषै भ्रांतिसैं नीलताकी प्रतीति होवैहै। सो नीलताही दृष्टिगोचर होवैहै। आकाश नहीं॥ तिस नीलताका आकाशविषै आरोपकरिके। "मैं आकाश देखा है।" यह तेरा कथन है। परंतु प्रकाशतमसैं विना कहूं आकाशकी प्रतीति बनै नहीं ॥

५१ शून्यवादीके मतमैं आवरणके अभावका अधिकरण (वंध्यापुत्रतुल्य) आकाश सिद्ध होवैहै। यातैं इंद्रियगोचर बनै नहीं औ न्यायमतमैं उद्भूत (प्रगटरूपवाले) पृथिवी। जल। तेज द्रव्यका नेत्रइंद्रियसैं प्रत्यक्षज्ञान होवैहै और उद्भूतरूप अरु स्पर्शवाले पृथिवी। जल। तेज द्रव्यका त्वक्इंद्रियसैं प्रत्यक्षज्ञान होवैहै और श्रोत्र। रसना। घ्राण इन इंद्रियनसैं द्रव्यका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं। किंतु एकएकगुणका ग्रहण होवैहै। यह नियम है॥ आकाश रूपस्पर्शगुणवाला है नहीं यातैं आकाश इंद्रियगोचर (प्रत्यक्ष) बनै नहीं ॥

पंचमहाभूत-विवेकः॥३॥ श्लोकांक: ११०	७२सद्बुद्धिरपि चेन्नास्ति मा७४ऽस्त्वस्य स्वप्रभत्वतः । ७६निर्मनस्कत्वसाक्षित्वात्सन्मात्रं सुगमं नृणाम् ४५	टीकांक: ४६८ टिप्पणांक: ३५२

इत्याशंक्य ततः सर्वानुभवसिद्धत्वान्मैवमित्याह (सद्वस्त्विति)—

६८] शुद्धं सद्वस्तु तु निश्चितैः अस्माभिः तूष्णींस्थितौ अनुभूयते ॥

६९ ननु तूष्णींभावे शून्यमेव इतरस्य कस्यापि प्रतीत्यभावादित्याशंक्य शून्यस्यापि प्रतीत्यभावाच्छून्यमपि न संभवतीत्याह (न शून्यत्वमिति)—

७०] च शून्यबुद्धेः वर्जनात् शून्यत्वं न ॥ ४४ ॥

७१ ननु तर्हि सद्बुद्ध्यभावात्सत्त्वमपि न घटत इति शंकते—

७२] सद्बुद्धिः अपि न अस्ति चेत् ।

७३ तस्य स्वप्रकाशकत्वान्न तद्बुद्ध्यभावोऽनिष्ट इति परिहरति (मास्त्वस्येति)—

७४] अस्य स्वप्रभत्वतः मा अस्तु ॥

७५ स्वगोचरबुद्ध्यभावे कथं सद्वस्त्ववगंतुं शक्यत इत्यत आह—

तद्व—सर्वजनके[52] अनुभवकरि सिद्ध होनैतैं सद्वस्तुविषै वी देखनैका अभाव आकाशके तुल्य है । ऐसैं बनै नहीं यह कहैहैं:—

६८] शुद्धसद्वस्तु तौ निश्चयवान् हुये हमों मनुष्योंकरि विकल्परहित उदासीनदशारूप तूष्णीस्थितिविषै अनुभव करियेहै ॥

६९ ननु चुपचापरूप मौनमय तूणीस्थितिविषै शून्यहीं है अन्य किसी वस्तुकी वी प्रतीतिके अभावतैं ॥ यह आशंकाकरि शून्यकी वी प्रतीतिके अभावतैं शून्य वी संभवै नहीं । यह कहैहैं:—

७०] औ शून्यकी प्रतीतिके अभावतैं मौनदशाविषै शून्य[53]भाव नहीं है ४४

॥ ८ ॥ सत्वस्तुके होनेमें शंकासमाधान ॥

७१ ननु तब तूणीभावविषै सत्की बुद्धिके अभावतैं सत्का होना वी नहीं घटताहै । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

७२] सत्की प्रतीति वी नहीं है । ऐसैं जब कहै ।

७३ तिस सत्कूं स्वप्रकाश होनैतैं तिसके ज्ञानका अभाव हम अद्वैतवादीकूं अनिच्छित नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७४] तब इस सत्कूं स्वप्रकाशरूप होनैतैं सत्का ज्ञान मति होहु ॥

७५ आप सत्के विषय करनैवाले ज्ञानके अभावके होते कैसैं सत्वस्तु जानि शकियेहै ? तहां कहैहैं:—

५२ "मैं सत् हूं" इस सामान्यआकारकरि सर्वजनकूं स्वरूपका ज्ञान होवैहै औ "मैं चित् हूं" "मैं आनंद हूं" इत्यादि विशेषआकारकरि ज्ञानीकूंहीं स्वरूपका ज्ञान है । अन्यकूं नहीं ॥

५३ इहां यह रहस्य है:–शून्यका जो ज्ञान होवै । तौ शून्यके जाननैवालेके सद्भावतैं शून्य (सर्वका अभाव) बनै नहीं ॥ औ शून्यका ज्ञान होवै नहीं । तौ बी साक्षीरहित शून्य बनै नहीं ॥ जातैं निस्फुरणरूप तुष्णींदशाविषै किसी वस्तुका ज्ञान नहीं है । यातैं शून्यके वी ज्ञानके अभावतैं तब शून्य नहीं है ॥

टीकांक: ४७६ टिप्पणांक: ३५४	[५४]मनोजृंभणराहित्ये यथा साक्षी निराकुलः । मायाजृंभणतः पूर्वं सत्तथैव निराकुलम् ॥ ४६ ॥ [५५]निस्तत्त्वा कार्यगम्याऽस्य शक्तिर्मायाऽग्निशक्तिवत् । [५६]न हि शक्तिः क्वचित्कैश्चिद्बुध्यते कार्यतः पुरा ४७	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १११ ११२

७६] निर्मनस्कत्वसाक्षित्वात् सन्मात्रं नृणाम् सुगमम् ॥ ४५ ॥

७७ एवं निःप्रपंचस्य साक्षिणस्तूर्णींस्थितौ भानं प्रदर्श्यैतद्दृष्टांतबलेन सृष्टेः पुराऽपि सद्वस्तु तथाऽवगंतुं शक्यत इत्याह—

७८] मनोजृंभणराहित्ये यथा साक्षी निराकुलः तथा एव मायाजृंभणतः पूर्वं सत् निराकुलम् ॥ ४६ ॥

७९ मायायाः किं लक्षणमित्यत आह—

८०] निस्तत्त्वा कार्यगम्या अस्य शक्तिः माया ॥

८१) निस्तत्त्वा जगत्कारणभूताद्वस्तुनः पृथक् तत्त्वरहिता । कार्यगम्या वियदादिकार्यलिंगगम्या । अस्य सद्वस्तुनः । शक्तिः

७६] मनरहित कहिये निर्विकल्पअवस्थाका साक्षी होनैतैं केवलसत्वस्तु विचारशीलनरनकूं सुखसैं जाननेकूं योग्य है ॥ ४५ ॥

७७ इसरीतिसैं प्रपंचरहित साक्षीप्रत्यगात्माका तूष्णींस्थितिविषै भान दिखायके इस तूष्णीदशारूप दृष्टांतके बलकरि सृष्टितैं पूर्व बी सत्वस्तु तैसैं जानि शकियेहै यह कहैहैं:—

७८] मनके स्फुरणकी अभावदशाविषै जैसैं साक्षी निराकुल है । तैसैं मायाके क्षोभ कहिये परिणाम होनैरूप कार्यकी सन्मुखतातैं पूर्व प्रलयअवस्थाविषै सत्ब्रह्म अव्याकुल[५६] है ॥ ४६ ॥

॥३॥ मायाशक्तिका वर्णन ॥ ४७९–५३४ ॥

॥ १ ॥ मायाका लक्षण औ तिसकरि द्वैतका अभाव ॥ ४७९–५२१ ॥

॥ १ ॥ मायाका लक्षण ॥

७९ मायाका असाधारणधर्मरूप लक्षण क्या है? यह आशंका भई तहां कहैहैं:—

८०] निस्तत्व कहिये मिथ्या औ कार्यसैं गम्य जो इस ब्रह्मकी शक्ति है[५७] । सो माया है ॥

८१) निस्तत्व कहिये जगत्‌के कारणरूप वस्तु ब्रह्मतैं भिन्न तत्त्व जो वास्तवस्वरूप

५४ "मैं हूं" इसरीतिसैं सामान्यतैं सत्‌हीं प्रतीत होवैहै ॥

५५ मनके संकल्पविकल्परूप विक्षेपतैं रहित केवल है ॥

५६ मायाके कार्य स्थूलसूक्ष्मप्रपंचरूप विक्षेपतैं रहित है॥

५७ मायाके लक्षणकी यह परीक्षा है:–निस्तत्व (मिथ्या) तौ जगत् बी है सो कार्यलिंगसैं गम्य नहीं । किंतु प्रसिद्ध औ कार्यरूप है ॥ कार्यलिंगगम्य तौ ब्रह्म बी है । सो निस्तत्त्व औ आप आपकी शक्ति नहीं । किंतु वास्तवस्वरूप औ शक्तिका आश्रय (शक्तिमान्) है ॥ निस्तत्त्व अरु कार्यलिंगगम्य तौं मृत्तिकादिककी शक्ति बीं है । सो सत्ब्रह्मकी शक्ति नहीं है । यातैं निस्तत्त्वकार्यलिंगगम्य सत्‌की शक्ति मायारूप मूलप्रकृति है ॥ इस मायाके लक्षणकी कहूं बी अतिव्याप्ति नहीं है॥

५८ अनुमानप्रमाणकरि जाननैकूं योग्य (अनुमितिप्रमाका विषय) ॥ सो अनुमान यह है:– आकाशादिप्रपंचरूप कार्य स्वकारणविवर्त्तोपादानब्रह्ममैं स्थित शक्तिकरि जन्य है। कार्य होनैतैं ॥ जो जो कार्य है सो सो अपनै अपनै उपादानकारणमैं स्थित शक्तिकरि जन्य है । अग्निमैं स्थित शक्तिसैं जन्य विस्फोटादिकार्यकी न्यांई औ मृत्तिकामैं स्थित शक्तिसैं जन्य घटादिकार्यकी न्यांई ॥ इति ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ११३

टीकांकः ४८२ टिप्पणांक: ३५९

न सद्वस्तु सतः शक्तिर्न हि वह्नेः स्वशक्तिता ।
सद्विलक्षणतायां तु शक्तेः किं तत्त्वमुच्यताम् ॥ ४८ ॥

वियदादिकार्यजननसामर्थ्यं । **माया** इत्युच्यते ॥

८२ वस्तुस्वरूपातिरिक्तशक्तिसद्भावे दृष्टांतमाह—

८३] **अग्निशक्तिवत्** ॥

८४) यथाऽग्न्यादिस्वरूपातिरिक्तं स्फोटादिकार्यलिंगगम्यं वह्न्यादिनिष्ठं सामर्थ्यमस्ति तद्वदित्यर्थः ॥

८५ शक्तेः कार्यलिंगगम्यत्वं व्यतिरेकमुखेन द्रढयति (नहि शक्तिरिति)—

८६] **क्वचित् कस्यचित् कार्यतः पुरा शक्तिः न हि बुध्यते ॥ ४७ ॥**

८७ एवं शक्तेः कार्यलिंगगम्यत्वमुपपाद्य निस्तत्त्वरूपतामुपपादयति (न सद्वस्त्विति)—

८८] **सद्वस्तु सतः शक्तिः न** ॥

८९) अयमभिप्रायः । सद्वस्तुनः शक्तिः किं सती उतासती । न तावत्सती । तथात्वे सतोऽभिन्नत्वेन तच्छक्तित्वायोगात् ॥

९० उक्तार्थे दृष्टांतमाह (न हीति)—

तातैं रहित औ कार्यसैं गम्य कहिये आकाशादिकार्यरूप लिंगसैं अनुमेय ऐसी जो इस सत्‌वस्तुकी शक्ति कहिये आकाशादिककार्यके उत्पादनका सामर्थ्य है सो "**माया**"। ऐसैं कहियेहै ॥

८२ शक्तिमान् ब्रह्मरूप वस्तुतैं भिन्न शक्तिके सद्भावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

८३] **अग्निकी शक्ति** कहिये दाह करनैका सामर्थ्य ताकी न्याई ॥

८४) जैसैं अग्निआदिक शक्तिवान्‌के स्वरूपतैं भिन्न स्फोट कहिये फूले आदिककार्यरूप लिंगसैं अनुमेय ऐसी जो अग्निआदिकनमैं स्थित सामर्थ्य है ताकी न्याई मायाशक्ति बी है ॥ यह अर्थ है ॥

८५ शक्तिकी कार्यरूप लिंगसैं जाननैकी योग्यताकूं व्यतिरेकरूप द्वारकरि दृढ करैहैं:—

८६] जातैं **किनोकरि बी कहां बी अग्निआदिशक्तिवालेविषै कार्यतैं प्रथम शक्ति नहीं जानियेहै** तातैं शक्ति कार्यरूप लिंगसैं गम्य है ॥ ४७ ॥

८७ इसरीतिसैं मायाशक्तिकी कार्यरूप लिंगसैं जाननैकी योग्यताकूं उपपादनकरिके अब शक्तिकी ब्रह्मतैं भिन्न सत्तारहिततारूप निस्तत्त्वताकूं उपपादन करैहैं:—

८८] **सद्वस्तु सत्‌की शक्ति नहीं** है ॥

८९) इहां यह अभिप्राय है:- सद्वस्तुकी शक्ति क्या सत्‌रूप है । वा असत्‌रूप है? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमैं प्रथम सत्‌की शक्ति सत्‌रूप है यह आद्यपक्ष बनै नहीं । काहेतैं तैसैं हुये कहिये सत्‌की शक्तिकूं सत्‌रूप हुये सत्‌सैं अभिन्न होनैकरि तिस सत्‌की शक्ति होनैके अयोग्यतैं ॥

९० उक्तशक्ति सत्‌रूप नहीं इस अर्थविषै दृष्टांत कहैहैं:—

---

५९ इहां आदिशब्दकरि मृत्तिकाजलआदिकनका ग्रहण है॥

६० आदिपदकरि घट औ शीतलता अरु चूर्णादिकका पिंड बांधना इत्यादि । तिसतिसके कार्यका ग्रहण है ॥

टीकांकः ४९१ टिप्पणांकः ३६१

शून्यत्वमिति चेच्छून्यं मायाकार्यमितीरितम् ।
न शून्यं नापि सद्यादृक्तादृक्तत्त्वमिहेष्यताम्॥४९॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥३॥ श्लोकांकः ११४

९१] हि वह्नेः स्वशक्तिता न ॥

९२ द्वितीयेऽपि किं नरविषाणतुल्या उत सद्विलक्षणेति विकल्पाभिप्रायेण पृच्छति—

९३] सद्विलक्षणतायां तु शक्तेः किं तत्त्वम् उच्यताम् ॥ ४८ ॥

९४ तत्राद्यं पक्षमनूद्य दूषयति—

९५] शून्यत्वं इति चेत् शून्यं मायाकार्यं इति ईरितम् ॥

९६) "शून्यस्य नामरूपे च तथा चेत् जीव्यतां चिरम्" इत्यर्थः ॥

९७ तस्माद्द्वितीयः पक्षः परिशिष्यत इत्याह (न शून्यमिति)—

९८] शून्यं न । सत् अपि न । यादृक् तादृक् तत्त्वम् इह इष्यताम् ॥

९१] अग्निकूं अपनी शक्तिरूपता नहीं है ॥

९२ औ सत्की शक्ति असत्रूप है । इस द्वितीयपक्षविषै वी असत्रूप सत्की शक्ति क्या नरशृंगतुल्य निःस्वरूप होनैतैं तुच्छ है । वा अवाध्यरूप सत्तैं विलक्षण वाधके योग्य है? इसरीतिके विकल्पके अभिप्रायसैं सिद्धांती वादीके प्रति पूछतेहैंः—

९३] शक्तिकूं सत्तैं विलक्षणताके कहिये [६२]असत्रूपताके हुये शक्तिका क्या स्वरूप है? सो कहो ॥ ४८ ॥

९४ तिन नरशृंग तुल्य है । वा सत्तैं विलक्षण है । इसरूपवाले दोनूं पक्षनविषै प्रथमपक्ष नरशृंगतुल्य है । इसकूं अनुवादकरिके दूषण देतेहैंः—

९५] शून्य कहिये निःस्वरूप । शक्तिका स्वरूप है । जब ऐसैं कहै तब शून्य मायाका कार्य है । ऐसैं पूर्व ३४ श्लोकविषै तैंनै कहाहै ॥

९६) "शून्यके नामरूप दोनूं तैसैं आकाशादिककी न्याई सत्विषै कल्पित हैं । जो ऐसैं मानौ तौ वहुतकाल जीते रहो ॥" इस पूर्वअंक ४२७ विषै उक्तवचनकरि तैंनै स्वमुखसैंहीं शून्यकूं मायाका कार्य कहाहै । यातैं सो शून्यरूप कार्य पूर्वसिद्धमायाशक्तिका स्वरूप वनै नहीं ॥ यह अर्थ है ॥

९७ तातैं शक्ति । सत्तैं विलक्षण है । यह द्वितीयपक्ष शेप रहताहै । यह कहैहैंः—

९८] सत्की शक्ति शून्य कहिये नरशृंग तुल्य निःस्वरूप वी नहीं है औ सत् कहिये अवाध्य वी नहीं है । किंतु जैसा अवशेष रहताहै तैसा शक्तिका स्वरूप इहां वेदांतसिद्धांतमैं अंगीकार करना ॥

---

६१ अग्नि । आपहीं आप अग्निकी शक्ति नहीं है । काहेतैं । जो अग्निहीं अग्निकी शक्ति होवै । तौ प्रतिबंधरूप मणिमंत्रऔषधीतैं अग्निके होते दाहका अभाव होवैहै औ उत्तेजक जो प्रतिबंधके निरोधक मणिमंत्रऔषधी हैं । ताके होते प्रतिबंधके विद्यमान कालमैं वी दाह होवैहै वो दोनूं नहीं हुये चाहिये औ होवैहैं यातैं अग्निकी शक्ति जो दाहादिकका सामर्थ्य सो अग्निरूप (अग्निसैं अभिन्न) नहीं है । किंतु अग्नितैं भिन्न निर्णीत है ॥

६२ सत्सैं विलक्षण जो असत् है । ताके दोअर्थ हैंः— एक निःस्वरूप (शून्य) है औ दूसरा बाधयोग्य स्वरूपवान् (मिथ्या) अनिर्वचनीय अर्थ है ॥ (देखो ३१८ टिप्पणविषै) तिन दोनूं असत्शब्दके अर्थनमैंसैं शक्तिका कौन स्वरूप है? सो कहो ॥ यह प्रश्नका अभिप्राय है ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ११५ | टीकांकः ४९९ | टिप्पणांकः ३६३

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं किंत्वभूत्तमः ।
संयोगात्तमसः सत्त्वं न स्वतस्तन्निषेधनात् ॥ ५० ॥

९९) मायास्वरूपं सत्त्वासत्त्वाभ्यां निर्वचनानर्हमित्यभिप्रायः ॥ ४९ ॥

५०० अस्मिन्नर्थे श्रुतिं प्रमाणयति (नासदिति)—

१] तदानीं न असत् आसीत् नो सत् आसीत् किंतु तमः अभूत् ॥

२) "तम आसीत् । तमसा गूढमग्रे" इत्यादिश्रुतिः प्रमाणमित्यर्थः ॥

३ तर्हि "तम आसीत्" इति कथं सत्त्वमुच्यत इत्यत आह—

९९) मायाका स्वरूप सत्पनैकरि औ असत्पनैकरि निर्वचनके अयोग्य कहिये अनिर्वचनीय है ॥ यह अभिप्राय है ॥ ४९ ॥

॥ २ ॥ मायाकी अनिर्वचनीयतामैं श्रुतिप्रमाण ॥

५०० इस मायाकी सत्असत्तैं विलक्षणतारूप अर्थविषै श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं:—

१] तब प्रलयकालविषै न असत् कहिये शून्य था औ न सत् था । किंतु क्या था ? अज्ञानही था ॥

२) "न सत् था न असत् था । किंतु तमहीं था" "सृष्टितैं पूर्व अज्ञानरूप तमकरि आवृत ब्रह्म था" इत्यादिकश्रुति । अज्ञानपदकी वाच्य जो माया है । ताकी सत्असत्सैं विलक्षणतारूप अनिर्वचनीयतामैं प्रमाण हैं ॥ यह अर्थ है ॥

३ ननु "तम था" इस श्रुतिवचनकरि अज्ञानका सत्पना कैसैं कहियेहै ? तहां कहैहैं:—

६३ सत् औ असत्सैं विलक्षणका नाम **अनिर्वचनीय** है ॥ मायाका स्वरूप सत् कहै । तौ सो (सत्) ब्रह्मसैं भिन्न है वा अभिन्न है? भिन्न कहै । तौ अद्वैतकी प्रतिपादकश्रुतिनसैं विरोध होवैगा । औ निश्छिद्रब्रह्मविषै तिस शक्तिकी स्थितिकाबी असंभव होवैगा । यातैं ब्रह्मतैं भिन्न सत् बनै नहीं ॥*॥ औ ब्रह्मतैं अभिन्न सत् शक्तिका स्वरूप है । यह कहै तौ शक्ति औ शक्तिवालेकी एकताका अंक ४८७ विषै उक्त असंभवदोष होवैगा अरु ज्ञानसैं निवृत्ति करनै योग्य पदार्थके अभावतैं साधनसहित ज्ञान औ ज्ञानसैं साध्य मोक्षके प्रतिपादक वेदादिकशास्त्र व्यर्थ होवैंगे ॥ * ॥ औ मायाका स्वरूप असत् कहै । तौ असत् (तुच्छ)रूप मायाकूं भावरूप जगत्की कारणताका असंभव होवैगा औ गीताके दूसरे अध्यायके १६ वें श्लोकविषै उक्त "असत्का भाव होवै नहीं" इस भगवद्वचनतैं विरोध होवैगा । यातैं मायाका स्वरूप असत् बी बनै नहीं ॥ किंतु सत् औ असत्तैं विलक्षण **मायाका स्वरूप** है ॥*॥ इहां यह शंका है:—सत्सैं विलक्षण असत् है । ताकूं असत्सैं विलक्षण कहना विरुद्ध है ॥ तैसैं असत्सैं विलक्षण सत् है । ताकूं सत्सैं विलक्षण कहना विरुद्ध है ॥ यातैं सत्असत्सैं विलक्षण कहनैकरि कछु बी मायाका स्वरूप सिद्ध होवै नहीं ॥ तिस विना ज्ञानसैं निवर्त्य प्रपंच सिद्ध होवै नहीं । यातैं ज्ञानादिककी व्यर्थता होवैगी ॥ या शंकाका यह समाधान है:—इहां सत्सैं विलक्षण शब्दका अर्थ । असत् विवक्षित (कहनैकूं इच्छित) नहीं । किंतु त्रिकालअबाध्य जो सत् है । तिसतैं विलक्षण जो बाधयोग्य । सो सत्सैं विलक्षण शब्दका अर्थ है औ असत्सैं विलक्षणशब्दका अर्थ सत् विवक्षित नहीं । किंतु असत् जो निःस्वरूप (शून्य) है । तिसतैं विलक्षण जो स्वरूपवान् । सो असत्सैं विलक्षण शब्दका अर्थ है ॥ **बाध** (मिथ्यात्वनिश्चय)के योग्य स्वरूप (आकार)वान् जो वस्तु है । सो सत्असत्सैं विलक्षण कहियेहै ॥ ताहीकूं **अनिर्वचनीय** बी कहैहैं ॥ इसरीतिसैं माया औ ताके कार्य आकाशादिव्यावहारिकवस्तु औ स्वप्न । रज्जुसर्पादिक प्रातिभासिकवस्तुविषै सारे बाधयोग्य स्वरूपवान्हीं **अनिर्वचनीयशब्दका** अर्थ है ॥ इति ॥

६४ इहां सत्असत्सैं विलक्षण "मायाहीं थी" यह अर्थ है ॥

टीकांक: ५०४ टिप्पणांक: ३६५

अत एव द्वितीयत्वं शून्यवन्न हि गण्यते ।
न लोके चैत्रतच्छक्त्योर्जीवितं लिख्यते पृथक् ५१

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: ११६

४] सद्योगात् तमसः सत्वं स्वतः न ॥

५ कुत इत्यत आह—

६] तन्निषेधनात् ॥ ५० ॥

७ फलितमाह—

८] अतः एव शून्यवत् द्वितीयत्वं न हि गण्यते ॥

९) यतः स्वतः सत्वं मायायाः नास्ति अतः शून्यस्येव मायाया अपि द्वितीयत्वं न गण्यते हि नैवाद्रियत इत्यर्थः ॥

१० अनृतस्य द्वितीयत्वानंगीकारे दृष्टांतमाह (न लोक इति)—

११] लोके चैत्रतच्छक्त्योः जीवितं पृथक् न लिख्यते ॥ ५१ ॥

४] सत् जो अधिष्ठानरूप ब्रह्म । ताके योग कहिये कल्पिततादात्म्यसंबंधतैं अज्ञानका सत्व नाम होना कहियेहै । स्वस्वभावसैं नहीं ॥

५ अज्ञानकी स्वतःसत्ता किस कारणतैं नहीं है ? तहां कहैहैं:—

६] "न सत् था" इत्यादिश्रुतिवाक्यकरि तिस अज्ञानकी सत्ताके निषेधतैं ॥ ५० ॥

॥ ३ ॥ शक्ति औ शक्तिके कार्यका शक्तिवान्तैं अपृथक्भावकरि द्वैतका निराकरण ॥

७ फलितकूं कहैहैं:—

८] याहीतैं शून्यकी न्यांई मायाका द्वितीयपना कहिये ब्रह्मसैं भिन्नपना नहीं गिनियेहै ॥

९) जातैं मायाकी स्वतःसत्ता नहीं है । यातैं शून्यकी न्यांई मायाका बी द्वितीयपना नहीं गिनियेहै । कहिये नहीं आदर करियेहै ॥ यह अर्थ है ॥

१० मिथ्याके द्वितीयपनैके अनंगीकारविषै दृष्टांत कहैहैं:—

११] लोकविषै शक्तिमान् कोई बी पुरुष औ तिसकी कार्य करनैकी सामर्थ्यरूप शक्तिका जीवित कहिये पगार । भिन्न भिन्न नहीं लिखियेहै ॥ ५१ ॥

६५ (१) दोद्रव्य (गुणके आश्रय वस्तु)नकाहीं संयोगसंबंध होवैहै (देखो १९३ टिप्पणविषै) ॥ जातैं ब्रह्म निर्गुण है औ माया सत्वादिगुणस्वरूप है । गुणनका आश्रय नहीं । यातैं ब्रह्म औ माया द्रव्य नहीं हैं । तातैं तिन दोनूंका संयोगसंबंध बनै नहीं ॥

(२) औ गुणगुणीका । जातिव्यक्तिका । क्रियाक्रियावान्का । उपादानकारण अरु कार्यका । समवायसंबंध होवैहै ॥ जातैं ब्रह्म अरु मायाका परस्पर गुणगुणीभाव । जातिव्यक्तिभाव । क्रियाक्रियावान्भाव औ कारणकार्यभाव नहीं है । तातैं ब्रह्म अरु मायाका समवायसंबंध बी बनै नहीं ॥

(३) औ स्वरूपसंबंधका नाम तादात्म्य है ॥ जातैं ब्रह्म अरु माया परस्पर विलक्षण हैं । तातैं तिनका तादात्म्यसंबंध बी बनै नहीं ॥ अथवा जहां गुण-(गुणीआदिकविषै) नैयायिक समवाय मानते हैं । तहां वेदांतमतमैं तादात्म्य कह्याहै । यातैं समवायके निषेधतैंहीं तादात्म्यका निषेध है ॥

(४) श्रुतिविषै ब्रह्मकी असंगताके प्रतिपादनतैं माया औ ब्रह्मका वास्तवसंबंध बनै नहीं । किंतु आकाश औ नीलताके संबंधकी न्यांई ब्रह्म औ मायाका कल्पित (आध्यासिक)तादात्म्यसंबंध मान्याहै ॥ ताहीकूं अनिर्वचनीयतादात्म्य बी कहैहैं ॥ ऐसैं समष्टिव्यष्टिप्रपंचका औ ब्रह्मका बी यहहीं संबंध मान्याहै ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ११७ ११८	शक्त्याधिक्ये जीवितं चेद्वर्धते तत्र वृद्धिकृत् । न शक्तिः किंतु तत्कार्यं युद्धकृष्यादिकं तथा॥५२॥ सर्वथा शक्तिमात्रस्य न पृथग्गणना क्वचित् । शक्तिकार्यं तु नैवास्ति द्वितीयं शंक्यते कथम् ५३	टीकांकः ५१२ टिप्पणांकः ॐ

१२ ननु शक्त्याधिक्ये जीविताधिक्यं दृश्यते अतः शक्तेरपि पृथक् जीवितत्वमस्तीति शंकते—

१३] **शक्त्याधिक्ये जीवितं वर्धते चेत् ॥**

१४ न शक्तिर्जीवितवर्धने कारणमपि तु तत्कार्यं युद्धकृष्यादि इति परिहरति—

१५] **तत्र वृद्धिकृत् शक्तिः न किंतु तत्कार्यम् युद्धकृष्यादिकम् ॥**

१६ दार्ष्टांतिके योजयति—

१७] **तथा ॥ ५२ ॥**

१८ उक्तमर्थं सर्वत्र प्रतिजानीते—

१९] **सर्वथा शक्तिमात्रस्य क्वचित् पृथक् गणना न ॥**

२० माभूच्छक्त्या सद्वितीयत्वं सतोऽपि तु तत्कार्येण तद्भवत्येवेत्याशंक्य तस्य तदानीमसत्त्वात्तेनापि न सद्वितीयत्वमित्याह—

---

१२ ननु । शक्तिकी अधिकताके होते आजीविका कहिये पगारकी अधिकता लोकमैं देखियेहै । यातैं शक्तिकी बी पुरुषतैं भिन्न आजीविका है । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

१३] **युद्धादिककी सामर्थ्यरूप शक्तिकी अधिकताके होते जीविका बढतीहै ऐसैं जो कहै ।**

१४ जीविकाके बढनैमैं शक्ति कारण नहीं है। किंतु कहिये तब क्या कारण है? तिस शक्तिका कार्य जो युद्ध । खेती । व्यापार । सेवाआदिक हैं । सो जीविकाके बढनैमैं कारण है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

१५] **तौ तहां पगारमैं वृद्धिका कारण शक्ति नहीं है । किंतु तिस शक्तिका कार्य जो युद्धकृषिआदिक है । सो पगारकी वृद्धिका कारण है ॥**

१६ इस दृष्टांतविषै उक्तअर्थकूं मायाशक्तिरूप दार्ष्टांतविषै जोडतेहैं:—

१७] **तैसैं मायाशक्ति ब्रह्मसैं भिन्न नहीं है ॥ ५२ ॥**

१८ उक्तअर्थकी सर्वशक्तिनके स्थलमैं प्रतिज्ञा करैहैं:—

१९] **सर्वप्रकारसैं बी सर्वशक्तिकी कहां बी शक्तिमान्तैं भिन्न गिनती नहीं है ॥**

२० ननु । मायाशक्तिकरि सत्ब्रह्मकूं द्वैतसहितता मति होहु । तथापि तिस मायाशक्तिके कार्य स्थूलसूक्ष्मप्रपंचकरि ब्रह्मकूं सद्वितीयता होवैहीं है ॥ यह आशंकाकरिके तिस शक्तिके कार्यकूं तब प्रलयविषै नहीं होनैतैं । तिस मायाके कार्यकरि बी ब्रह्मकूं सद्वितीयता बनै नहीं । यह कहैहैं:—

टीकांकः ५२१ टिप्पणांकः ३६६

नैं[23] कृत्स्नब्रह्मवृत्तिः सा शक्तिः किंत्वेकदेशभाक् ।
घटशक्तिर्यथा[25] भूमौ स्निग्धमृद्येव वर्तते ॥ ५४ ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः ११९

२१] शक्तिकार्यं तु न एव अस्ति कथं द्वितीयं शंक्यते ॥ ५३ ॥

२१] मायाशक्तिका कार्य नामरूप तौ तव नहीं है । तातैं तिस शक्तिके कार्यकरि कैसैं द्वैतकी शंका करिये ? किसी प्रकारसैं वी द्वैतकी शंका बनै नहीं ॥ ५३ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मके एकदेशमैं शक्तिका होना ॥ ५२२–५३४ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतसहित शक्तिका ब्रह्मके एकदेशमैं वर्त्तना ॥

२२ ननु सतकी शक्ति जो माया । सो स-

२२ ननु सच्छक्तिः सति सर्वत्र वर्तते उत्तैकदेशे । नाद्यो । मुक्तैः माप्य ब्रह्माभावप्रसंगात् ।

त्‌विषै सर्वत्र वर्त्ततीहै । वा तिसके एकदेशविषै कहिये एक अवयवविषै वर्त्ततीहै ? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं । काहेतैं ज्ञानीरूप मुक्तपुरुषनकरि प्राप्त होनैके योग्य[66] शुद्धब्रह्मके अभावके प्रसंगतैं ॥ औ एकदेशविषै[67] वर्त्ततीहै यह द्वितीयपक्ष वी बनै नहीं । काहेतैं ब्रह्मविषै जो निरंशता कहिये निरवयवता है तिससैं विरोधयुक्त होनैतैं ॥ यह आशंकाकरि "सर्वत्र वर्तती है" इस प्रथमपक्षके

६६ ज्ञानीकूं मायाअविद्यादिप्रपंचरहित शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै । यह वेदांतका सिद्धांत है ॥ जो माया संपूर्णब्रह्मविषै होवै । तौ सारे ब्रह्मकूं मायाविशिष्ट होनैकरि ब्रह्मविषै शुद्धता कहिये निर्मायता नहीं होवैगी । यातैं जीवन्मुक्तज्ञानीपुरुषनकूं विदेहमोक्षदशामैं प्राप्त होनैके उचित जो शुद्ध कहिये मायारहित केवलब्रह्म है । ताका अभाव होवैगा ॥ औ समाय कहिये (मायासहित) ब्रह्मकूं जो मुक्तपुरुष प्राप्त होवैं । तौ तहां वी अविद्याके सद्भावतैं मुक्तनके आत्माकूं अविद्याविशिष्ट होनैकरि । वा अविद्यामैं प्रतिबिंब (आभास) होनैकरि जीवभावकी प्राप्तितैं फेर वी जन्मादिसंसारकी प्राप्ति होवैगी ॥ इस उक्तअनर्थकी प्राप्तितैं ब्रह्मविषै सर्वत्र माया संभवै नहीं ॥

६७ ब्रह्मके एकदेशविषै माया वर्त्ततीहै ऐसैं जब कहै तब ब्रह्मविषै मायाकी स्थितिअर्थ देश (अवयव) कह्याचाहिये ॥ सो देश वास्तव है वा कल्पित है ?

(१) आद्य कहै तौ ब्रह्मके निरवयवताकी प्रतिपादक श्रुति औ ३१५ टिप्पणउक्त युक्तिसैं विरोध होवैगा । यातैं ब्रह्मका वास्तव (सत्य)देश (अवयव) बनै नहीं ॥

(२) ब्रह्मविषै कल्पित (अध्यस्त)देश कहै । तौ

[१] सो देश क्या स्थूलसूक्ष्मप्रपंचरूप है ?
[२] वा जीवईश्वररूप है ?
[३] वा कालरूप है ?
[४] वा शून्य (अभाव)रूप है ?
[५] वा मायारूप है ?
[६] वा अन्यरूप है ?

ये षट्‌विकल्प हैं । तिनमैंसैं

(१) आद्य कहै तौ बनै नहीं काहेतैं । उक्तप्रपंच मायाका कार्य है यातैं (प्रपंच)मायाकी स्थितिके आधीन होनैतैं सो ताका आश्रय संभवै नहीं ॥

(२) द्वितीयपक्ष (जीवईश्वर) कहै तौ बनै नहीं । काहेतैं जीवईश्वरकूं वी मायिक कहिये मायाकी स्थितिके आधीन अपनी स्थितिवाले होनैतैं सो तिसके आश्रय बनै नहीं ॥

(३) तीसरापक्ष (काल)कहै तौ बनै नहीं । काहेतैं कालकूं मायाकरि कल्पित होनैतैं औ ताकूं देशरूपताके असंभवतैं मायाकी आश्रयता बनै नहीं ॥

(४) चतुर्थ (शून्य) कहै तौ शून्यकूं वी मायाका कार्य (विकल्परूप) तुच्छ होनैतैं किसीकी वी आश्रयता बनै नहीं ॥

(५) पंचमपक्ष (माया) कहै तौ सो बनै नहीं । काहेतैं माया आपहीकूं आपकी आश्रय कहै तौ आत्माश्रयदोष होवैगा औ तिसकी आश्रय वी

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः १२० १२१

२७पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्ति स्वयंप्रभः।
इत्येकदेशवृत्तित्वं मायाया वदति श्रुतिः ॥ ५५ ॥
२९विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।
इति कृष्णोऽर्जुनायाऽऽह जगतस्त्वेकदेशताम् ५६

टीकांकः ५२३ टिप्पणांकः ॐ

न द्वितीयो। निरंशत्वेन विरोधित्वात्। इत्याशंक्याद्यानंगीकारात् द्वितीये परिहारो वक्ष्यत इत्यभिप्रायेणाह (न कृत्स्नेति)—

२३] सा शक्तिः कृत्स्नब्रह्मवृत्तिः न किंतु एकदेशभाक् ॥

२४ एकदेशवृत्तौ दृष्टांतमाह (घटेति)—

२५] यथा घटशक्तिः भूमौ स्निग्धमृदि एव वर्तते ॥ ५४ ॥

२६ शक्तेरेकदेशवृत्तित्वे प्रमाणमाह (पादोऽस्येति)—

२७] अस्य पादः सर्वा भूतानि त्रिपाद् स्वयंप्रभः अस्ति इति श्रुतिः मायाया एकदेशवृत्तित्वं वदति ॥ ५५ ॥

२८ न केवलं श्रुतिरेव स्मृतिरप्यस्तीत्याह॥ (विष्टभ्येति)—

२९] "अहं कृत्स्नं इदं जगत् एकांशेन

अनंगीकारतैं "एकदेशमैं है" इस दूसरेपक्षविषै निरंशताके विरोधकी शंकाका तिरस्काररूप परिहार इसके ५८ श्लोकविषै कहियेगा। इस अभिप्रायसैं कहैहैं:—

२३] सो शक्ति संपूर्णब्रह्मविषै नहीं वर्त्ततीहै किंतु एकदेशविषै वर्त्ततीहै ॥

२४ शक्तिके एकदेशविषै वर्त्तनैमैं दृष्टांत कहैहैं:—

२५] जैसैं घटरूप कार्यकी उत्पादन करनैका सामर्थ्यरूप शक्ति सारीपृथ्वीविषै नहीं है किंतु सचिक्कणमृत्तिकारूप एकदेशविषै वर्त्ततीहै ॥ तैसैं मायाशक्ति बी ब्रह्मके एकदेशविषै वर्त्ततीहै ॥ ५४ ॥

॥ २ ॥ शक्तिकूं सत्‌के एकदेशविषै वर्तनैमैं प्रमाण ॥

२६ शक्तिकूं ब्रह्मके एकदेशविषै वर्तनैमैं प्रमाणरूप श्रुतिकूं कहैहैं:—

२७] इस परमात्माके एकपाद सर्वभूत हैं औ इसके तीनपाद स्वप्रकाश हैं। ऐसैं श्रुति मायाके एकदेशपनैकूं कहतीहै ॥ ५५ ॥

२८ शक्तिकूं ब्रह्मके एकदेशविषै वर्त्तनैमैं केवल श्रुतिहीं प्रमाण नहीं किंतु गीतास्मृति बी प्रमाण है यह कहैहैं:—

२९] "हे अर्जुन! मैं परमेश्वर संपूर्ण इस परिदृश्यमान स्थूलसूक्ष्मरूप जगत्‌कूं एक-

दूसरीमाया कहै तौ अन्योन्याश्रय होवैगा औ तीसरीमाया कहै तौ चक्रिका होवैगी औ चतुर्थमाया कहै तौ अनवस्थाआदिक (विनिगमन विरह प्रागलोप प्रमाण अभाव) दोष होवैंगे ॥

(६) इनतैं अन्यकल्पनाके अभावतैं अंत्यपक्ष बी बनै नहीं ॥

यातैं निरवयवब्रह्मविषै देशके असंभवतैं ब्रह्मके एकदेशविषै माया वर्त्ततीहै। यह कथन बनै नहीं ॥ इति ॥

टीकांक: ५३० टिप्पणांक: ३६८	[31] सैं भूमिं विश्वतो वृत्वा ह्यत्यतिष्ठद्दशांगुलम् । विकारावर्ति चात्रास्ति श्रुतिसूत्रकृतोर्वचः ॥५७॥ [34] निरंशेऽप्यंशमारोप्य कृत्स्नेंऽशे वेति पृच्छतः । तद्भाषयोत्तरं ब्रूते श्रुतिः श्रोतृहितैषिणी ॥ ५८ ॥	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १२२ १२३

विष्टभ्य स्थितः" इति कृष्णः अर्जुनाय जगतः तु एकदेशतां आह ॥ ६६ ॥

३० इदानीं निर्मायस्वरूपसद्भावे प्रमाणमाह—

३१] सः भूमिं विश्वतः वृत्वा दशांगुलं हि अत्यतिष्ठत् । विकारावर्ति च अस्ति । अत्र श्रुतिसूत्रकृतोः वचः ॥

३२) "विकारावर्ति च तथाहि स्थितमाह" इति सूत्रकारवचनमित्यर्थः ॥ ५७ ॥

३३ तर्हि निरंशत्वे विरोध इत्यस्य कः परिहार इत्याशंक्य वास्तवनिरंशत्वाभ्युपगमान्न विरोध इत्यभिप्रायेणोदाहृतश्रुत्यभिप्रायमाह (निरंशेऽपीति)—

देशसैं धारिकरि स्थित हूं ॥" इसरीतिसैं श्रीकृष्ण । अर्जुनके तांई जगत्की एकदेशताकूं कहिये ब्रह्मके एकदेशमैं वर्त्तनैकूं कहतेभये ॥ ६६ ॥

॥ ३ ॥ अवशेषनिर्मायस्वरूपके सद्भावमैं प्रमाण ॥

३० अब निर्माय—स्वरूपके सद्भावमैं श्रुति औ व्याससूत्ररूप प्रमाण कहैहैं:—

३१] "सो परमात्मा भूमिकूं सर्वऔरतैं आच्छादनकरि दशअंगुल उल्लंघनकरि कहिये दशअंगुलपर्यंत स्थित भयाहै ॥" "विकारतैं अवर्ति है ॥" यह क्रमतैं । श्रुति औ सूत्रकारव्यासभगवान्का वचन इहां मायारहित स्वरूपके सद्भावमैं प्रमाण है ॥

३२) "विकार जो कार्यप्रपंच तातैं ब्रह्म अवर्ति कहिये न्यारा है औ तैसैंहीं ब्रह्मकी स्थितिकूं उक्तश्रुति कहैहै" यह सूत्रकारव्यासजीका वर्णन है ॥ यह अर्थ है ॥ ५७ ॥

॥ ४ ॥ वास्तवब्रह्मकी निरंशताकरि श्लोक ५५ औ ५७ उक्त श्रुतिका अभिप्राय ॥

३३ ननु । ब्रह्मके एकदेशमैं जब माया है तब ब्रह्मकी निरंशताविषै विरोध होवैहै । यह पूर्व ५४ श्लोकविषै कहाथा तिसका कौंन परिहार है ? यह आशंकाकरि । वास्तवनिरंशताके अंगीकारतैं आरोपितएकदेशविषै मायाके माननैकरि निरंशताविषै विरोध नहीं है । इस अभिप्रायसैं उदाहरणकरि कही जो श्रुति है ताके अभिप्रायकूं कहैहैं:—

६८ सर्वभूतस्वरूप जो प्रपंचकी उपादानशक्ति (माया) उपाधिवाला एकपाद (अवयव) है । तिसकरि इहां पूर्व अंक ५२७ विषै उक्तश्रुतिहीं मूल है । यह अर्थ भाष्यकार औ श्रीआनंदगिरिनै गीताके व्याख्यानमैं कह्याहै ॥

६९ देखो गीताके दशमअध्यायके अंत्य (४२) श्लोकविषै ॥

७० अवशेष मायारहित निर्माय है ॥

७१ तीनपादरूप स्वयंप्रकाश ॥

७२ इहां (श्रुतिविषै) भूमिशब्दसैं तिसकरि उपलक्षित सारेप्रपंचका ग्रहण है ॥

७३ इहां । दशअंगुलपर्यंतका जो कथन है सो उपचार (आरोप)सैं है ॥ याका अभिप्राय यह है:— सर्वप्रपंचसैं अतिरिक्त अपरिमित परमात्मा है ॥

७४ शारीरकके चतुर्थअध्यायके चतुर्थपादगत उन्नीसवां ब्रह्मसूत्र है ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १२४

[३६]सत्तत्त्वमाश्रिता शक्तिः कल्पयेत्सति विक्रियाः ।
[३९]वर्णा भित्तिगता भित्तौ चित्रं नानाविधं यथा५९

टीकांक: ५३४

श्लोकांक: १२५

[४२]आद्यो विकार आकाशः [४५]सोऽवकाशस्वरूपवान् ।
[४६]आकाशोऽस्तीति सत्त्वमाकाशेऽप्यनुगच्छति ६०

टिप्पणांक: ३७५

३४] श्रोतृहितैषिणी श्रुतिः कृत्स्ने अंशे वा इति पृच्छतः तद्भाषया निरंशे अपि अंशं आरोप्य उत्तरं ब्रूते ॥ ५८ ॥

३५ यदर्थं ब्रह्मणि माया समर्थिता तदिदानीमाह—

३६] सत्तत्वं आश्रिता शक्तिः सति विक्रियाः कल्पयेत् ॥

३७) विक्रियाः विविधत्वेन क्रियंत इति विक्रियाः कार्यविशेषा इत्यर्थः ॥

३८ तत्र दृष्टांतमाह (वर्णा इति)—

३९] यथा भित्तिगताः वर्णाः भित्तौ नानाविधं चित्रम् ॥

४०) वर्णा रक्तपीतादयो धातुविशेषाः ॥ ५९ ॥

४१ तत्र प्रथमं कार्यविशेषं दर्शयति—

३४] श्रुति जातैं श्रोताके ज्ञान औ मोक्षरूप हितकूं इच्छनैहारी है तातैं संपूर्णब्रह्मविषै माया है । वा ब्रह्मके एकअंशविषै है? इसरीतिसैं जो अधिकारी पूछता है तिसकूं तिसीके प्रश्नके अनुसारकरि निरंशब्रह्मविषै अंश कहिये अवयवकूं आरोपणकरिके श्रुति उत्तरकूं कहैहै ॥ ५८ ॥

॥ ४ ॥ सत्‌ब्रह्म औ पंचमहाभूतका विवेक ॥ ५३५–७११ ॥

॥ १ ॥ शक्तिके कथनके प्रयोजनका वर्णन ॥ ५३५–५४० ॥

३५ जिस प्रयोजनअर्थ ब्रह्मविषै माया कही तिस प्रयोजनकूं अब कहैहैं:—

३६] सत्‌तत्त्वब्रह्मकूं आश्रय करतीहुयी शक्ति । सत्‌विषै कार्यरूप विक्रियाकूं कल्पतीहै ॥

३७) विविधप्रकारकरि जो करियेहैं वो विक्रिया कहियेहैं ॥ यह अर्थ है ॥

३८ तहां दृष्टांत कहैहैं:—

३९] जैसैं भित्तिमैं स्थित वर्ण । भित्तिविषै नानाप्रकारके चित्रकूं रचतेहैं । तैसैं ॥

४०) सिंदूरादिरक्त । हर्तालादिपीत । धातुके भेद वर्ण कहियेहैं ॥ ५९ ॥

॥ २ ॥ सत्‌ अरु आकाशका विवेक ॥ ५४१–६१६ ॥

॥ १ ॥ शक्तिके प्रथमविकार आकाशका स्वरूप औ ताकी ब्रह्मकी कार्यतामैं हेतु ॥

४१ तिन शक्तिके विकाररूप कार्यविशेषौंविषै प्रथमकार्यविशेषकूं दिखावैहैं:—

७५ "माया है"। इस बुद्धिवाले श्रोता (अधिकारी)के सहस्रमातातुल्य हितकी इच्छनैहारी जो श्रुति है । सो वासिष्ठउक्त मूढबालकके प्रति धात्रीकी कथाकी न्यांई (देखो ब्रह्मानंदगत अद्वैतानंद प्रकरणके श्लोक २१सैं२७ विषै) आरोप (देशरहितब्रह्मविषै देशकी कल्पना) करिके उत्तर देतीहै ॥ मायाकी स्थितिअर्थ कल्पितदेशके अंगीकारविषै मायारूप देशहीं कह्या चाहिये ॥ सांख्य प्रभाकरादिअभिमतआत्मा (आपके प्रकाशक आप)की न्यांईं औ नैयायिकअभिमतभेद (अन्योन्याभाव)की न्यांईं । माया स्वपरकी निर्वाहक है । यातैं पूर्व ३६७ टिप्पणविषै उक्त आत्माश्रय दूषणरूप नहीं है । किंतु मध्यमादिअधिकारीके बोधनमैं उपयोगी जगत्‌के अध्यारोपकी सिद्धिअर्थ भूषणरूपहीं है ॥

टीकांक: ५४२ टिप्पणांक: ३७६	^४८^एकस्वभावं सत्तत्त्वमाकाशो द्विस्वभावकः । ^५०^नावकाशः सति व्योम्नि स चैषोऽपि द्वयं स्थितम् ॥ ^५३^यद्वा प्रतिध्वनिर्व्योम्नो गुणो नासौ सतीक्ष्यते । व्योम्नि द्वौ सद्ध्वनी तेन सदेकं द्विगुणं वियत् ६२	पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १२६ १२७

४२] आद्यः विकारः आकाशः ॥

४३ तत्स्वरूपमाह—

४४] सः अवकाशस्वरूपवान् ॥

४५ आकाशस्य ब्रह्मकार्यत्वे हेतुमाह—

४६] आकाशः "अस्ति" इति सत्तत्त्वं आकाशे अपि अनुगच्छति ॥६०॥

४७ ततः किमित्यत आह (एकेति)—

४८] सत्तत्त्वं एकस्वभावं। आकाशः द्विस्वभावकः ॥

४९ उक्तमर्थं विशदयति (नावकाश इति)—

५०] सति अवकाशः न। व्योम्नि सः च एषः अपि द्वयं स्थितम् ॥

५१) सति सद्वस्तुनि अवकाशः न अस्ति। किंतु सत्स्वभाव एक एव। आकाशे तु स च सत्स्वभावश्च। एषः अप्यवकाशस्वभावः अपि इति द्वयं स्थितं विद्यत इत्यर्थः ॥ ६१ ॥

५२ सदाकाशयोरेकद्विस्वभावत्वं प्रकारांतरेण व्युत्पादयति—

५३] यद्वा प्रतिध्वनिः व्योम्नः गुणः

४२] प्रथम शक्तिकरि कल्पितकार्य आकाश है ॥

४३ तिस आकाशके स्वरूपकूं कहैहैं:—

४४] सो आकाश अवकाशस्वरूपवान् है ॥[७६]

४५ आकाशकूं ब्रह्मके विवर्त्तरूप कार्य होनैमैं कारण कहैहैं:—

४६] आकाश "है"। इसरीतिसैं सत्‌तत्त्व आकाशविषै बी अनुस्यूत होवैहै ॥ ६० ॥

॥ २ ॥ सत्‌का एक औ आकाशके दो स्वभाव ॥

४७ तिसैंतैं[७७] क्या सिद्ध भया? तहां कहैहैं:—

४८] सत्‌वस्तु एकसत्तारूप स्वभाववाला है औ आकाश दोस्वभाववाला है ॥

४९ उक्तअर्थकूं स्पष्टकरि कहैहैं:—

५०] सत्‌विषै अवकाश नहीं है औ आकाशविषै सो सत्ता औ यह अवकाश दोनूं स्थित हैं।

५१) सत्‌वस्तुविषै अवकाश नहीं है किंतु सत्स्वभाव एकहीं है औ आकाशविषै तौ सो सत्स्वभाव औ यह अवकाशस्वभाव वी ये दोनूं विद्यमान हैं ॥ यह अर्थ है ॥ ६१ ॥

५२ सत् औ आकाशकी क्रमतैं एकस्वभाववान्ताकूं औ दोस्वभाववान्ताकूं औरप्रकारसैं कहैहैं:—

५३] अथवा प्रतिध्वनिरूप शब्द

---

७६ स्थिति औ प्रसरणविषै अनुकूलपदार्थ। अवकाश है। तिस स्वरूपवाला ॥

७७ आकाश अवकाशस्वरूप है औ आकाशविषै सत् अनुस्यूत है तिसतैं ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १२८	५६ यौ शक्तिः कल्पयेद्व्योम सा सद्व्योम्नोरभिन्नताम् । आपाद्य धर्मधर्मित्वं व्यत्ययेनावकल्पयेत् ॥ ६३॥	टीकांक: ५५४ टिप्पणांक: ३७८

असौ सति न ईक्ष्यते । व्योम्नि सद्ध्वनी द्वौ । तेन सदेकं वियत् द्विगुणम् ॥

५४) प्रतिध्वनिर्व्योम्नो गुणः इत्युपपादितमधस्तात् असौ प्रतिध्वनिः सद्वस्तुनि नेक्ष्यते नोपलभ्यते । व्योम्नि तु सद्ध्वनी सच्छब्दौ उभावप्युपलभ्येते । तेन कारणेन सदेकस्वभावं । वियत् द्विगुणं द्विस्वभावकमित्यर्थः ॥ ६२ ॥

५५ नन्वाकाशस्य सद्ब्रह्मकार्यत्वे आकाशस्य सत्त्वेति सत आकाशधर्मता कुतः प्रतिभातीत्याशंक्याह—

५६] या शक्तिः व्योम कल्पयेत् सा सद्व्योम्नोः अभिन्नतां आपाद्य धर्मधर्मित्वं व्यत्ययेन अवकल्पयेत् ॥

५७) या माया सद्वस्तुनि आकाशं कल्पयति । सा प्रथमतः सद्व्योम्नोः अभेदं कल्पयित्वा । पश्चात्तद्धर्मधर्मिभावं वैपरीत्येन कल्पयति । अत आकाशस्य सत्त्वेति भानमुपपद्यत इत्यर्थः ॥ ६३ ॥

आकाशका गुण है। सो सत्‌विषै नहीं देखियेहै ॥ औ आकाशविषै सत् औ ध्वनि दोनूंधर्म हैं ॥ तिस हेतुकरि सत् एक है औ आकाश द्विगुण है ॥

५४) प्रतिध्वनि आकाशका गुण है यह नीचे श्लोक ६८ विषै उपपादन कियाहै ॥ यह प्रतिध्वनि सद्वस्तुविषै नहीं देखियेहै औ आकाशविषै तौ सत् अरु ध्वनि दोनूं बी अनुभव करियेहैं ॥ तिस कारणकरि सत् एकस्वभाववाला है औ आकाश दोस्वभाववाला है ॥ यह अर्थ है ॥ ६२ ॥

॥ ३ ॥ मायाकरि सत् औ आकाशका विपरीतधर्मधर्मीभाव ॥

५५ ननु आकाशकूं सत्‌रूप ब्रह्मका कार्य हुये आकाशकी सत्ता कहिये सद्भाव है । इसरीतिसैं सत्‌कूं आकाशकी धर्मता काहेतैं प्रतीत होवैहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५६] जो शक्ति आकाशकूं कल्पैहै सो शक्ति सत् औ आकाशकी अभिन्नताकूं संपादनकरिके धर्मधर्मिभावकूं उलटा कल्पैहै ॥

५७) जो माया सत्‌वस्तुविषै आकाशकूं रचैहै सो माया प्रथम सत् औ आकाशके तादात्म्यरूप अभेदकूं कल्पिके पीछे तिनके धर्मधर्मिभावकूं[७९] विपरीतपनैकरि कल्पैहै । यातैं आकाशकी सत्ता है यह भान बनैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ६३ ॥

---

७८ पुलारदेशविषै पार्थिवादिकशब्दरूप निमित्तसैं उद्भूतशब्द प्रतिध्वनि है ॥

७९ सत्‌रूप जो धर्मी (आधार) है । तामैं धर्म (आश्रित)भाव कल्पतीहै औ आकाशरूप जो धर्म (कल्पित हुवा आश्रित) है । तामैं धर्मी (आश्रय । आधार)भाव कल्पतीहै ॥ जैसैं रज्जुअवच्छिन्नचेतनके आश्रित अविद्या । रज्जुविषै सर्पकूं कल्पिके । रज्जुमैं स्थित इदंता औ सर्पके अभेद (तादात्म्य)कूं कल्पिके पीछे "यह सर्प है" । इसरीतिसैं इदंतारूप धर्मी (आधार)विषै धर्म (आश्रित)भाव औ सर्परूप धर्ममैं धर्मीभाव । विपरीततताकरि कल्पतीहै ॥ तैसैं सत् औ आकाशके धर्मधर्मीभावकूं सर्वकार्यसमर्थमाया कल्पतीहै ॥ ऐसैं वायुआदिकसर्वप्रपंचविषै जानना ॥

टीकांक: ५५८ टिप्पणांक: ३८०		पंचमहाभूत-विवेक: ॥२॥ श्लोकांक:
	⁵⁹सतो व्योमत्वमापन्नं व्योम्नः सत्तां तु लौकिकाः ॥	
	तार्किकाश्चावगच्छंति ⁶²मायाया उचितं हि तत् ६४	१२९
	⁶⁵यद्यथा वर्तते तस्य तथात्वं भाति मानतः ।	
	अन्यथात्वं भ्रमेणेति न्यायोऽयं सार्वलौकिकः ६५	१३०

५८ मायया वैपरीत्यं कथं कृतमित्याशंक्याह (सत इति)—

५९] **लौकिकाः तु सतः व्योमत्वं आपन्नं । तार्किकाः च व्योम्नः सत्तां अवगच्छंति ॥**

६०) वस्तुतत्त्वविचारे क्रियमाणे मृदो घटरूपत्वमिव सतो व्योमत्वमापन्नं सद्वस्तुन आकाशरूपत्वं प्राप्तं लौकिकाः प्राणिनः । शास्त्रेषु मध्ये तार्किकाश्च तद्वैपरीत्येन व्योम्नः गगनस्य धर्मिणः सत्तां सद्रूपधर्मजातिं च अवगच्छंति जानंति ॥

६१ नन्वन्यस्यान्यथा प्रतीतिरनुपपन्नेत्याशंक्याह (मायाया इति)—

६२] **तत् मायाया उचितं हि ॥**

६३) तत् विपरीतदर्शनहेतुत्वं मायाया युक्तमित्यर्थः ॥ ६४ ॥

६४ मायाया विपरीतप्रतीतिहेतुत्वं लौकिकन्यायप्रदर्शनेन स्पष्टीकरोति—

६५] **यत् यथा वर्तते तस्य तथात्वं मानतः भाति । अन्यथात्वं भ्रमेण इति अयं न्यायः सार्वलौकिकः ॥**

५८ मायानै विपरीतपना कैसै कियाहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५९] **लौकिकजन तौ सत्‌कूं आकाशरूपता प्राप्त भई जानतेहैं औ नैयायिक आकाशकी सत्ताकूं जानतेहैं ॥**

६०) वस्तुके यथार्थस्वरूपके विचार कियेहुये । मृत्तिकाकूं घटरूपताकी प्राप्तिकी न्यांई सत्‌वस्तुकूं आकाशरूपता प्राप्त भईहै ऐसैं लौकिकप्राणी जानतेहैं औ शास्त्रनके मध्यमैं जे नैयायिक हैं वे तिन लौकिकजननतैं विपरीतपनैकरि आकाशरूप धर्मीकी सत्ताकूं कहिये सत्‌रूप धर्ममय सत्ताजातिकूं जानतेहैं ॥

६१ ननु सत्‌रूपधर्मी औ आकाशरूपधर्मकी धर्म औ धर्मीरूपसैं प्रतीति अयुक्त है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६२] **सो मायाकूं उचितहीं है ॥**

६३) सो विपरीतकरि दिखावनैकी कारणता मायाकूं योग्य है ॥ यह अर्थ है ॥६४ ॥

६४ मायाकूं विपरीतप्रतीतिकी कारकता है ताकूं लोकप्रसिद्धदृष्टांतके दिखावनैकरि स्पष्ट करैहैं:—

६५] **जो वस्तु जिसरूपकरि वर्त्तती-है ता वस्तुका तैसैपना कहिये सो यथार्थरूप । प्रमाणतैं भासताहै औ ता वस्तुका अन्यअयथार्थ रूप भ्रांतिसैं भासताहै । यह न्याय सर्वलोकनमैं प्रसिद्धहै ॥**

८० इहां लौकिकप्राणिके कथनतैं जगत्‌कूं ब्रह्मका परिणाम (दुग्धका दधिकी न्यांई विकार) माननैहारे परिणामवादी शुद्धाद्वैतमतवालेआदिक नवीनवैष्णवनका बी ग्रहण है ॥

८१ जातैं माया अघटित (दुर्घट)की घटनामैं समर्थ है। तातैं ताकूं विपरीतप्रतीति (विपर्यय)की हेतुता उचितहीं है॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १२१ १२२ — टीकांक: ५६६ टिप्पणांक: ३८२

एवं श्रुतिविचारात्प्राग्यथा यद्वस्तु भासते ।
विचारेण विपर्येति ततस्तच्चिंत्यतां वियत् ॥६६॥
भिन्ने वियत्सती शब्दभेदाद्बुद्धेश्च भेदतः ।
वाय्वादिष्वनुवृत्तं सन्न तु व्योमेति भेदधीः ॥६७॥

६६) यत् शुक्त्यादि । यथा येन शुक्त्यादिरूपेण वर्तते । तस्य तथात्वं शुक्त्यादिरूपत्वं । प्रमाणतः स्फुरति अन्यथात्वं रजतादिरूपत्वं तत् भ्रमेण भ्रांत्या प्रतिभाति इति अयं न्यायः सर्वलोकप्रसिद्ध इत्यर्थः ॥६५॥

६७ एवं भ्रांत्या विपरीतप्रतिभानं दर्शयित्वा तन्निवृत्त्युपायमाह—

६८] एवं श्रुतिविचारात् प्राक् यत् वस्तु यथा भासते । विचारेण विपर्येति । ततः तत् वियत् चिंत्यताम् ॥

६९) एवं उक्तेन प्रकारेण । श्रुतिविचारात् प्राक् श्रुत्यर्थविचारात्पूर्वं । यद्वस्तु यत्सद्रूपं ब्रह्म । भ्रांत्या यथा येन गगनादिरूपेण वर्तते । तच्छ्रुत्यर्थपर्यालोचनेन विपर्येति गगनादिभावं परित्यज्य सद्रूपं ब्रह्मैव भवति । ततः श्रुतिविचारेण वस्तुयाथात्म्यदर्शनसंभवात् तद्वियच्चिंत्यतां विचार्यतामित्यर्थः ॥ ६६ ॥

७० विचारस्वरूपमेव दर्शयति (भिन्न इति)—

६६] जो शुक्तिआदिक जिस शुक्तिआदिरूपसैं वर्त्तताहै ता शुक्तिआदिकका जो शुक्तिआदि रूप है । सो प्रत्यक्षादिकप्रमाणकरि प्रतीत होवैहै ॥ औ तिस शुक्तिआदिकका औररजतआदिक रूप है सो भ्रांतिसैं प्रतीत होवैहै । यह दृष्टांत सर्वजनविषे प्रसिद्ध है ॥ यह अर्थ है ॥ ६५ ॥

॥ ४ ॥ सत् औ आकाशके विपरीतप्रतीतिकी निवृत्तिका उपाय ॥

६७ ऐसैं भ्रांतिकरि विपरीतप्रतीतिकूं दिखायके तिस विपरीतप्रतीतिकी निवृत्तिके सत् औ आकाशके विवेकरूप उपायकूं कहैहैं:—

६८] ऐसैं श्रुतिके विचारतैं पूर्व जो ब्रह्मरूप वस्तु जैसैं अयथार्थ भासताहै सो ब्रह्म विचारसैं विपरीत कहिये यथार्थ होवैहै । तातैं सो आकाश चिंतवन करना ॥

६९) ऐसैं ६३ वें श्लोकसैं ६५ वें श्लोकपर्यंत कथन किये प्रकारकरि श्रुतिअर्थके विचारतैं प्रथम अविवेकदशामैं जो सत्रूप ब्रह्म । भ्रांतिसैं जैसा आकाशादिरूप वर्त्तताहै । सो सत्रूप ब्रह्म श्रुतिअर्थके विचारकरि देखनैसैं विपरीत होवैहै कहिये आकाशादिभावकूं परित्यागकरिके सत्रूप ब्रह्महीं होवैहै । तातैं श्रुतिके विचारकरि ब्रह्मरूप वस्तु औ आकाशके यथार्थस्वरूपके देखनैके संभवतैं सो आकाश विचार करना । कहिये सत्सैं भिन्न करिके जानना ॥ ६६ ॥

॥ ५ ॥ उक्तविचारका स्वरूप ॥

७० विचारके स्वरूपकूंहीं दिखावैहैं:—

३८२ विचार नाम भेदज्ञानका है । ताहीकूं विवेक औ विवेचन बी कहैहैं ॥

टीकांक: ५७१ टिप्पणांक: ३८३

सद्वस्त्वधिकवृत्तित्वाद्धर्मि व्योमस्तु धर्मता ।
धियौ सतः पृथक्कारे ब्रूहि व्योम किमात्मकम् ६८

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १२३

७१] **वियत्सती भिन्ने ॥**

७२ भिन्ने इति प्रतिज्ञातार्थे हेतुमाह—

७३] **शब्दभेदात् ॥**

७४) वियत्सच्छब्दयोरपर्यायत्वादित्यर्थः ॥

७५ हेत्वंतरमाह—

७६] **बुद्धेः च भेदतः ॥**

७७ तमेव हेतुं विशदयति—

७८] **वाय्वादिषु सत् अनुवृत्तं व्योम तु न इति भेदधीः ॥**

७९) सद्वाय्वादिषु भूतेषु सन्वायुः सत्तेज इत्येवं प्रकारेण अनुवृत्तं भासते। व्योम तु न एवं भासते इति यत् ज्ञानं सा भेदधीः भेदबुद्धिरित्यर्थः ॥ ६७ ॥

८० एवं सदाकाशयोर्भेदं प्रसाध्य व्योम्नः सत्तेति भ्रांत्या प्रतीतस्य धर्मिधर्मभावस्य विचारेण व्यत्ययं दर्शयति—

७१] **आकाश औ सत् दोई भिन्न हैं॥**

७२ आकाश औ सत् भिन्न हैं। इसरीतिसैं प्रतिज्ञा किये अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं:—

७३] **शब्द कहिये नामके भेदतैं ।**

७४) आकाश औ सत् इन दोशब्दनकूं अपर्यायरूप होनैतैं। सत् औ आकाश दोई भिन्न हैं ॥ यह अर्थ है ॥

७५ उक्तअर्थमैं औरहेतुकूं कहैहैं:—

७६] **औ बुद्धि कहिये ज्ञानके भेदतैं बी दोई भिन्न हैं ॥**

७७ तिस ज्ञानके भेदरूप हेतुकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

७८] **वायुआदिकविषै सत् अनुगत है औ आकाश तौ अनुवृत्त नहीं। यह भेदबुद्धि है ॥**

७९) वायुआदिकच्यारिभूतनविषै वायु सत् है औ तेज सत् है। इसरीतिसैं सत् अनुस्यूत भासताहै औ आकाश तौ इसरीतिसैं अनुस्यूत नहीं भासताहै। ऐसा जो ज्ञान है सो भेदबुद्धि है ॥ यह अर्थ है ॥ ६७ ॥

॥ ६ ॥ सत्का धर्मीभाव औ आकाशका धर्मभाव ॥

८० इसरीतिसैं सत् औ आकाशके भेदकूं सिद्धकरिके आकाशकी सत्ता है। ऐसैं भ्रांतिकरि प्रतीत होवैहै जो धर्मीधर्मभाव तिसका विचारकरि विपरीतपना दिखावैहैं:—

---

८३ एकअर्थवाले भिन्नभिन्नशब्द परस्पर **पर्याय** कहियेहैं ॥ तिसतैं विपरीत (भिन्नअर्थवाले भिन्नशब्द) **अपर्याय** कहियेहैं ॥ इहां यह अनुमान सूचित होवैहै:—सत् औ आकाश परस्पर भिन्न हैं। दोनूंके नामकूं अपर्याय होनैतैं घटपटकी न्याईं ॥

८४ इहां बी यह अनुमान होवैहै:—सत् औ आकाश भिन्न हैं। बुद्धि (ज्ञान)के भेदतैं घटपटकी न्याईं ॥ यद्यपि प्रत्यक्तत्त्वविवेकके ३ सैं ७ वे श्लोकपर्यंत सर्वकालमैं ज्ञानका अभेद प्रतिपादन कियाहै औ इहां ज्ञानका भेद कहियेहै यातैं पूर्वउत्तरका विरोध होवैहै। तथापि पूर्व (प्रथमप्रकरणमैं) चेतनरूप ज्ञानका अभेद प्रतिपादन कियाहै औ इहां बुद्धिकी वृत्तिरूप ज्ञानका भेद कहियेहै। यातैं पूर्वउत्तरका विरोध नहीं है ॥

८५ आकाशका धर्मी (आश्रय)भाव औ सत्का धर्म (आश्रित)भाव। भ्रांति (अविचार)सैं प्रतीत होवैहै ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १३४

टीकांक: ५८१ टिप्पणांक: ३८६

८६ अवकाशात्मकं तच्चेद्‌ सत्तादिति चिंत्यताम् ।
९० भिन्नं सतोऽसच्च नेति वक्षि चेद्व्याहतिस्तव ॥ ६९ ॥

८१] सद्वस्त्वधिकवृत्तित्वात् धर्मि व्योम्नः तु धर्मता ॥

८२) रूपरसादिष्वनुवृत्तस्य द्रव्यस्येव आकाशवाय्वादिष्वनुवृत्तस्य सतो धर्मित्वं । रसादिभ्यो व्यावृत्तस्य रूपस्येव वाय्वादिभ्यो व्यावृत्तस्य नभसो धर्मत्वमित्यर्थः ॥

८३ ननु तर्हि घटाद्भिन्नरूपस्य यथा वास्तवत्वं तथा सतो भिन्नस्य नभसोऽपि स्यादित्याशंक्य सद्व्यतिरिक्तस्य नभसो दुर्निरूपत्वान्नैवमित्याह—

८४] धिया सतः पृथक्कारे व्योम किमात्मकं ब्रूहि ॥ ६८ ॥

८५ दुर्निरूपत्वमसिद्धमिति शंकते (अवकाशात्मकमिति)—

८१] सत्वस्तु अधिकवृत्ति होनेतैं धर्मी है औ आकाशकूं तौ धर्मता कहिये आश्रितपना है ॥

८२) रूपरसआदिकगुणनविषै अनुगत द्रव्यघटादिककी न्यांई आकाशवायुआदिकनविषै अनुगत सत्कूं धर्मीपना कहिये आधारभाव है औ रसआदिकगुणनतैं भिन्न रूपगुणकी न्यांई वायुआदिकनतैं भिन्न आकाशकूं धर्मपना कहिये आधेयभाव है ॥ यह अर्थ है ॥

॥ ७ ॥ सत्सैं भिन्न आकाशका असत्पना ॥

८३ ननु तव घटद्रव्यतैं भिन्न रूपगुणकी जैसैं वास्तवता है । तैसैं सत्सैं भिन्न आकाशकी बी वास्तवता होवैगी! यह आशंका करि सत्सैं भिन्न आकाशका दुःखसैं बी निरूपण होवै नहीं यातैं सत्सैं भिन्न आकाशकी वास्तवता होवैगी । यह कहना बनै नहीं ऐसैं कहैहैं:—

८४] बुद्धिकरि आकाशकूं सत्सैं भिन्न कियेहुये आकाशका क्या स्वरूप है? सो कथन कर ॥ ६८ ॥

८५ आकाशका दुःखसैं बी निरूपण होवै नहीं यह कहना बनै नहीं । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

८६ जो वस्तु अधिकवर्त्तनैवाला (महत्) होवै सो व्यापक है ॥ सोई आधार (अन्यअल्पवस्तुका आश्रय) रूप धर्मी होवैहै:—जैसें । रूपरसआदिकगुणनका आश्रय जो द्रव्य है सो रूपादिक (एकएक) गुणतैं अधिकवृत्ति होनैतैं व्यापक है यातैं धर्मी है ॥ किंवा जैसें रज्जुविषै दशपुरुषनकूं कोइकूं सर्प । कोइकूं माला । कोइकूं पृथ्वीकी दरार। कोइकूं जलधारा । इत्यादिभ्रांति होवैहै । तहां । "यह सर्प है । यह माला है । यह पृथ्वीकी दरार है । यह जलधारा है ।" इसरीतिसैं रज्जुका इदंरूप प्रतीत होवैहै । सो सर्व (सर्पादिक) विषै अनुस्यूत (अधिकवृत्ति) होनैतैं व्यापक है यातैं धर्मी है ॥ तैसैं "आकाश है । वायु है । तेज है । जल है । पृथ्वी है ।" इसरीतिसैं एकएकभूतविषै वर्त्तनैवाला (अव्यभिचारी) सत् (ब्रह्म) व्यापक है यातैं धर्मी है ॥

८७ जो वस्तु न्यूनवर्त्ती (अल्प) होवै सो व्याप्य है । सोई आधेय (अन्यमहत्वस्तुके आश्रित) रूप धर्म होवैहै ॥ जैसें रूपआदिकगुण न्यूनवर्त्ती (परस्पर औ अपने आश्रय द्रव्यतैं व्यभिचारी) होनैतैं व्याप्य (आधेय) हैं । यातैं धर्म हैं ॥ किंवा जैसें (३८६ टिप्पणविषै) सर्पादिक न्यूनवर्त्ती (परस्पर औ अपने आश्रयतैं व्यभिचारी) होनैतैं व्याप्य (आधेय) हैं । यातैं धर्म हैं । तैसैं न्यूनवर्त्ती (वायुआदिकनतैं औ सत्सैं व्यभिचारी) आकाश व्याप्य है यातैं धर्म है ॥

८८ आकाशविषै दृष्टांत किये रूपका औ आकाशका अपने आश्रय घटद्रव्य औ सत्सैं भेदअंशविषै सादृश्य है ॥ औ वास्तवता अरु अवास्तवताअंशविषै सादृश्य (तुल्यता) नहीं है । यातैं घटनिष्ठरूपकी न्यांई आकाशकी वास्तवता नहीं है ॥

टीकांक: ५८६ टिप्पणांक: ॐ	भातीति चेद्भातु नाम भूषणं मायिकस्य तत् । यदसद्भासमानं तन्मिथ्या स्वप्नगजादिवत् ॥७०॥ जातिव्यक्ती देहिदेहौ गुणद्रव्ये यथा पृथक् । वियत्सतोस्तथैवास्तु पार्थक्यं कोऽत्र विस्मयः ७१	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १३५ १३६

८६] तत् अवकाशात्मकं चेत् ॥

८७ तर्हि सतो विलक्षणत्वादसदेव स्यादिति परिहरति (असदिति)—

८८] तत् असत् इति चिंत्यताम् ॥

८९ सतो विलक्षणस्यासत्वं नास्तीति वदतो दोषमाह (भिन्नमिति)—

९०] सतः भिन्नं च असत् न इति वक्षि चेत् तव व्याहतिः ॥ ६९ ॥

९१ असत्वे भानं न स्यादित्याशंक्य तुच्छविलक्षणत्वाद्भानं न विरुध्यत इत्याह—

९२] भाति इति चेत् भातु नाम तत् मायिकस्य भूषणम् ॥

९३ अविरोधं दर्शयितुं मिथ्यावस्तुनो लक्षणं सदृष्टांतमाह—

९४] यत् असत् भासमानं तत् स्वप्नगजादिवत् मिथ्या ॥

९५) यत् वस्तुस्वरूपेणाविद्यमानमपि भासते तत्स्वप्नगजादिवन्मिथ्या इत्यर्थः ७०

९६ ननु नियमेन सहोपलभ्यमानयोर्भेदो न दृष्टचर इत्याशंक्याह (जातीति)—

८६] सत्‌सैं भिन्न कियेहुये सो आकाश अवकाशरूप है । जो ऐसैं कहै ।

८७ तब सत्‌सैं विलक्षण होनैतैं आकाश असत्‌हीं होवैहै । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

८८] तौ सो आकाश असत् है ऐसैं चिंतन करना ॥

८९ सत्‌सैं भिन्न आकाशका असत्‌पना नहीं है । इसरीतिसैं कहनैवाले वादीकूं दोष कहैहैं:—

९०] सत्‌सैं भिन्न है औ असत् नहीं है ऐसैं जब कहै तब तेरे कथनका व्याघात होवैहै ॥ ६९ ॥

॥ ८ ॥ असतरूप आकाशकी प्रतीतिका अविरोध ॥

९१ आकाश जो असत् होवै तौ प्रतीत नहीं हुयाचाहिये । यह आशंकाकरि तुच्छशशशृंगादिकतैं विलक्षण अनिर्वचनीय होनैतैं आकाशका भान विरोधकूं पावै नहीं । यह कहैहैं:—

९२] आकाश भासताहै ऐसैं जो कहै तौ भासहु ॥ सो भासना मायाके कार्यका भूषण है ॥

९३ आकाशकी प्रतीतिके अविरोधकूं दिखावनैकूं मिथ्यावस्तुके लक्षणकूं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

९४] जो असत् होवै औ भासै सो स्वप्नगजादिककी न्यांई मिथ्या है ॥

९५) जो वस्तु स्वरूपसैं अविद्यमान होवै औ भासता होवै सो वस्तु स्वप्नके हस्तीआदिकनकी न्यांई मिथ्या है ॥ यह अर्थ है ॥७०॥

॥ ९ ॥ दृष्टांतसहित साथीहीं प्रतीयमान सत् औ आकाशका भेद ॥

९६ ननु नियमसैं साथीहीं भासमान दोवस्तुनका भेद देख्या नहीं है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १३७ १३८	बुद्धोऽपि भेदो नो चित्ते निरूढिं याति चेत्तदा । अनैकाग्र्यात्संशयाद्वा रूढ्यभावोऽस्य ते वद ॥७२॥ अप्रमत्तो भव ध्यानादाद्येऽन्यस्मिन्विवेचनम् । कुरु प्रमाणयुक्तिभ्यां ततो रूढतमो भवेत् ॥७३॥	टीकांक: ५९७ टिप्पणांक: ३८९

९७] यथा जातिव्यक्ती देहिदेहौ गुणद्रव्ये पृथक् । तथा एव वियत्सतोः पार्थक्यं अस्तु । अत्र कः विस्मयः ७१

९८ भेदो यद्यपि बुद्ध्यते तथापि निश्चितो न भवतीति शंकते (बुद्धोऽपीति)—

९९] भेदः बुद्धः अपि चित्ते निरूढिं नो याति चेत् ॥

६०० तस्य परिहारं वक्तुं निश्चयाभावे कारणं पृच्छति—

१] तदा ते अस्य रूढ्यभावः अनैकाग्र्यात् वा संशयात् । वद ॥ ७२ ॥

२ आद्ये परिहारमाह (अप्रमत्त इति)–

९७] जैसें जाति औ व्यक्ति । देही औ देह । गुण औ द्रव्य । भिन्न हैं । तैसैंहीं आकाश औ सत्का बी भेद होहु । इसविषै कौन विस्मय है? कोइ बी विस्मय नहीं है ॥ ७१ ॥

॥१०॥ श्लोक ६६–७१ उक्त भेदके निश्चयअर्थ सिद्धांतिका विकल्पपूर्वक उत्तर ॥

९८ आकाश औ सत्का भेद यद्यपि जानियेहै तथापि निश्चित नहीं होवैहै । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

९९] भेद जान्या बी है तौ बी मेरे चित्तविषै दृढताकूं पावता नहीं ऐसैं जब कहै ।

६०० तिस उक्तप्रश्नके परिहार करनैकूं निश्चयके अभावविषै कारणकूं सिद्धांती पूछतेहैंः—

१] तब तेरेकूं इस सत् औ आकाशके भेदकी रूढताका अभाव चित्तकी एकाग्रताके अभावतैं है। वा संशयतैं है? सो कथन कर ॥ ७२ ॥

२ चित्तकी एकाग्रताविना सत् औ आकाशके भेदका अनिश्चय है । इस प्रथमपक्षविषै समाधानकूं कहैहैंः—

८९ अनेकधर्मीविषै अनुगतधर्मरूप जाति औ जातिकी आश्रय व्यक्ति । इन दोनूंका धर्म होनैकरि औ धर्मी होनैकरि भेद है ॥ देही (आत्मा) औ देहका सत्यादिरूपकरि अरु मिथ्यात्वादिरूपकरि भेद है ॥ गुण औ द्रव्यका गुणभाव औ गुणीभावकरि भेद है ॥ यद्यपि सिद्धांतमैं वास्तव तौ अधिष्ठानसैं भिन्नसत्ताके अभावतैं सर्ववस्तुनका अधिष्ठान (ब्रह्म) रूपकरि अभेदहीं है तथापि व्यवहारके निमित्त कल्पितभेद मान्याहै ॥

९० यद्यपि कल्पितकी सत्ता अधिष्ठानतैं भिन्न नहीं है । इस नियमतैं अधिष्ठानसत्सैं कल्पितआकाशका भेद संभवै नहीं तथापि आकाशका बाधकरिके सत् औ आकाशका अभेद है औ आकाशके बाध (मिथ्यात्वनिश्चय) कियेविना तौ भ्रांतिसैं विना अभेद बनै नहीं । किंतु भ्रांतिसैं कल्पितहीं है ॥ जातैं विवेचन किये विना आकाशका बाध होवै नहीं । यातैं सत् औ आकाशके भेदकी कल्पना करीहै औ वास्तव तौ आकाश बी नहीं है तौ तिसका सत्सैं भेद कैसैं बनै ? किसी कारणसैं बी बनै नहीं ॥

टीकांक: ६०३ टिप्पणांक: ३९१

ध्यानान्मानाद्युक्तितोऽपि रूढे भेदे वियत्सतोः ।
न कदाचिद्वियत्सत्यं सद्वस्तु छिद्रवन्न च ॥ ७४ ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः १३९

३] आद्ये ध्यानात् अप्रमत्तः भव ॥

४) आद्ये प्रथमे विकल्पे ध्यानात् तत्र "प्रत्ययैकतानता ध्यानं" इत्युक्तलक्षणात् । अप्रमत्तो भव सावधानमना भवेति यावत् ॥

५ द्वितीये परिहारमाह—

६] अन्यस्मिन् प्रमाणयुक्तिभ्यां विवेचनं कुरु ॥

७ ततः किमित्यत आह—

८] ततः रूढतमः भवेत् ॥ ७३ ॥

९ ततोऽपि किमित्यत आह—

१०] ध्यानात् मानात् युक्तितः वियत्सतोः भेदे रूढे वियत् कदाचित् न सत्यं च सद्वस्तु अपि छिद्रवत् न ॥

११) ध्यानं पूर्वोक्तलक्षणं । मानं "भिन्ने वियत्सती शब्दभेदाद्बुद्धेश्च भेदतः" इत्यत्रोक्तं । युक्तिः तु "सद्वस्त्वधिकवृत्तित्वात्" इत्यादावुक्ता । एतैर्ध्यानादिभिः वियत्सतोः भेदे चित्ते निरूढिं याते सति । वियत्कदाचिन्न सत्यं किंतु सर्वदा मिथ्यैवावभासते ।

३] आद्यपक्षविषै ध्यानतैं अप्रमत्त होहु ॥

४) प्रथमविकल्पविषै "प्रत्ययकी एकतानता कहिये एकवस्तुके आकार जो प्रवाह है तिसकरि युक्तता । ध्यान है ॥" इसरीतिसैं पतंजलिभगवाननै योगसूत्रविषै जिसका लक्षण कह्याहै ऐसै ध्यानतैं सावधानमनवाला कहिये एकाग्रचित्तवाला होहु ॥

५ संशयतैं सत् औ आकाशका भेद आरूढ नहीं होवैहै । इस द्वितीयपक्षविषै परिहारकूं कहैहैं:—

६] दूसरेविकल्पविषै प्रमाण औ युक्तिकरि विवेचनकूं कर ॥

७ तिस मनकी सावधानता वा विवेचनतैं क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

८] तिस उक्तदोसाधनतैं सत् औ आकाशका भेद अत्यंतरूढ कहिये निश्चित होवैगा ॥ ७३ ॥

९ तिस आकाश औ सत्‌के भेदके निश्चयतैं बी क्या होवैहै? तहां कहैहैं:—

१०] ध्यानतैं प्रमाणतैं औ युक्तितैं आकाश अरु सत्‌के भेदके रूढ हुये आकाश कदाचित् सत्य होवै नहीं औ सत्‌वस्तु बी कदाचित् छिद्रवान् होवै नहीं ॥

११) ध्यान जो पूर्व (७३ वें श्लोकविषै) उक्तलक्षणवाला है । औ प्रमाण जो "आकाश औ सत् दोइ भिन्न हैं । शब्दके भेदतैं औ बुद्धिके भेदतैं" इस ६७ वें श्लोकविषै उक्त अनुमानरूप है वा श्रुतिआदिक है ॥ औ युक्ति तौ "सत्‌वस्तु वायुआदिकविषै अधिकवर्त्तनैवाला होनैतैं धर्मी है" इस ६८ वें श्लोकसैं आदिलेके ६ श्लोकनविषै कथन करीहै ॥ इन ध्यानआदिक कहिये निदिध्यासआदिक तीनकरि आकाश औ सत्‌का भेद जब चित्तविषै आरूढ होवै तब आकाश कदाचित्

---

९१ वृत्तिकी ॥

पंचमहाभूत-विवेकः॥३॥ श्लोकांकः १४० १४१ १४२

ज्ञस्य भाति सदा व्योम निस्तत्त्वोल्लेखपूर्वकम् ।
सद्वस्त्वपि विभात्यस्य निश्छिद्रत्वपुरःसरम् ॥७५॥
वासनायां प्रवृद्धायां वियत्सत्यत्ववादिनम् ।
सन्मात्राबोधयुक्तं च दृष्ट्वा विस्मयते बुधः ॥ ७६ ॥
एवमाकाशमिथ्यात्वे सत्सत्यत्वे च वासिते ।
न्यायेनानेन वाय्वादेः सद्वस्तु प्रविविच्यताम् ७७

टीकांकः ६१२ टिप्पणांकः ३९२

सद्वस्त्वपि छिद्रवत् अवकाशवत् न च नैव भवतीति शेषः ॥ ७४ ॥

१२ वियत्सतोर्विवेचने फलमाह—

१३] ज्ञस्य व्योम सदा निस्तत्त्वोल्लेखपूर्वकं भाति अस्य सद्वस्तु अपि निश्छिद्रत्वपुरःसरं विभाति ॥ ७५ ॥

१४ वियन्मिथ्यात्वं सतो वस्तुत्वं च सदा चिंतयतः किं भवतीत्यत आह—

१५] वासनायां प्रवृद्धायां बुधः वियत्सत्यत्ववादिनम् सन्मात्राबोधयुक्तं च दृष्ट्वा विस्मयते ॥

१६) बुधः वियत्सतोस्तत्त्ववेत्ता । गगनस्य सत्यत्वं ब्रुवाणं निरवकाशसद्वस्त्वबोधरहितं च दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ७६ ॥

१७ उक्तन्यायमन्यत्राप्यतिदिशति—

सत्य नहीं होवैहै किंतु सर्वदा मिथ्याहीं भासताहै औ सत्वस्तु बी अवकाशवाला नहीं होवैहै ॥ यह अध्याहार है ॥ ७४ ॥

॥ ११ ॥ सत् औ आकाशके विवेकका फल ॥

१२ आकाश औ सत्के विवेचनविषै फलकूं कहैहैं:—

१३] ज्ञानीकूं आकाश सदा मिथ्यापनैके ज्ञानपूर्वक भासताहै औ इस ज्ञानीकूं सत्वस्तु ब्रह्म बी अवकाशरहितताके पूर्वक भासताहै ॥ ७५ ॥

१४ आकाशके मिथ्यापनैकूं औ सत्के वस्तुपनैकूं सदा चिंतन करनैवाले पुरुषकूं क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

१५] वासना जब दृढताकूं पावै। तब ज्ञानी आकाशकी सत्यताके वादी औ सत्मात्रके अज्ञानकरि युक्तकूं देखिके आश्चर्यकूं पावैहै ॥

१६) बुध कहिये आकाश औ सत्के यथार्थस्वरूपका जाननैवाला पुरुष आकाशके सत्यपनैकूं कहनैवाला औ अवकाशरहित सत्वस्तुके बोधतें रहित जो अज्ञानीजन है ताकूं देखिके विस्मय पावैहै ॥ यह अर्थ है ॥७६॥

॥ ३ ॥ सत् औ वायुका विवेक ॥ ६१७-६४३ ॥

॥ १ ॥ आकाशविषै श्लोक ६०-७६ उक्त रीतिका वायुआदिकमैं अतिदेश ॥

१७ आकाशविषै कथन किये न्यायकूं अन्यवायुआदिकनविषै बी अतिदेश करैहैं:—

९२ आकाशकी असत्यताके औ सत्की सत्यताके वारंवारअनुभवकरि उत्पन्न जो पीछे बी स्मृतिका हेतु संस्कार है । सो जब दृढताकूं पावै ॥

टीकांक: ६१८ टिप्पणांक: २९३

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १४३ १४४

²⁰सद्वस्तुन्येकदेशस्था माया तत्रैकदेशगम् ।
वियत्तत्राप्येकदेशगतो वायुः प्रकल्पितः ॥ ७८ ॥
²²शोषस्पर्शौ गतिर्वेगो वायुधर्मा इमे मताः ।
²³त्रयः स्वभावाः सन्मायाव्योम्नां ये तेऽपि वायुगाः ७९

१८] एवं आकाशमिथ्यात्वे च सत्सत्यत्वे वासिते अनेन न्यायेन वाय्वादेः सद्वस्तु प्रविविच्यताम् ॥७७॥

१९ नन्वाकाशकार्यस्य वायोरकारणभूतेन सद्वस्तुना तादात्म्यप्रतीत्ययोगात्सतो विवेचनमप्रयोजकमित्याशंक्य साक्षात्संबंधाभावेऽपि परंपरया संबंधोऽस्तीत्याह—

२०] सद्वस्तुनि एकदेशस्था माया । तत्र एकदेशगम् वियत् । तत्र अपि एकदेशगतः वायुः प्रकल्पितः ॥ ७८॥

२१ एवं सद्वाय्वोः संबंधं प्रदर्श्य तयोर्धर्मतो भेदज्ञानाय वायौ प्रतीयमानान् धर्मानाह—

२२] शोषस्पर्शौ गतिः वेगः इमे वायुधर्माः मताः ॥

२३ एवं प्रातिस्विकान् धर्मान् अभिधाय कारणतः प्राप्तांस्तानाह (त्रय इति)—

१८] ऐसैं आकाशके मिथ्याभावकूं औ सत्‌के सत्यभावकूं चित्तविषै आरूढ हुये । इसही रीतिकरि वायुआदिक अन्यच्यारिभूतनतैं । सत्‌वस्तुकूं विवेचन करना । कहिये भिन्न करि जानना ॥७७॥

॥ २ ॥ सत्‌वस्तुसैं वायुका परंपरासैं तादात्म्यसंबंध ॥

१९ ननु आकाशका कार्य वायु है । तिसका अकारणरूप सत्‌वस्तुके साथि अभेदप्रतीतिका असंभव है । तातैं वायुतैं सत्‌का विवेचन निष्प्रयोजक है ॥ यह आशंकाकरि वायुका सत्‌सैं साक्षात्‌संबंधका अभाव है । तौ बी परंपरासैं आकाशद्वारा संबंध है । यह कहैहैं:—

२०] सत्‌वस्तुके एकदेशमैं स्थित माया है औ तिस मायाके एकदेशमैं स्थित आकाश है औ तिस आकाशके एकदेशमैं स्थित वायु कल्पित है ॥७८॥

॥ ३ ॥ वायुके निजधर्म च्यारि औ कारणतैं प्राप्त तीनधर्म ॥

२१ ऐसैं सत् औ वायुके संबंधकूं दिखायके । तिन सत् औ वायुका धर्मतैं भेदके ज्ञानअर्थ वायुविषै प्रतीत होवैहैं जो धर्म । तिनकूं कहैहैं:—

२२] शोषण करना । स्पर्श गति औ वेग । ये चारि वायुके धर्म मानेहैं ॥

२३ ऐसैं वायुके अपनै धर्मनकूं कहिके अब कारणतैं प्राप्त तिन धर्मनकूं कहैहैं:—

९३ आकाशकूं मायाउपहितचेतनविषै कल्पित होनैतैं तिसकूं अन्यकल्पितकी अधिष्ठानता बनै नहीं । यातैं इहां आकाशउपहितचेतनविषै वायु कल्पित (अध्यस्त) है । यह अभिप्राय है । ऐसैं सारेस्थलमैं जानना ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१४५	२७वायुरस्तीति सद्भावः सतो वायौ पृथक्कृते । निस्तत्त्वरूपता मायास्वभावो व्योमगो ध्वनिः ८०	६२४
१४६	३०सतोऽनुवृत्तिः सर्वत्र व्योम्नो नेति पुरेरितम् । व्योमानुवृत्तिरधुना कथं न व्याहतं वचः ॥ ८१ ॥	टिप्पणांकः ३९४

२४] सन्मायाव्योम्नां ये त्रयः स्वभावाः ते अपि वायुगाः ॥

२५) सन्मायाव्योम्नां ये त्रयः स्वभावाः शीलविशेषा धर्माः। तेऽपि वायुगा वायौ विद्यंत इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

२६ के ते धर्मा इत्यत आह—

२७] वायुः "अस्ति" इति सद्भावः सतः वायौ पृथक्कृते । निस्तत्त्वरूपता मायास्वभावः । ध्वनिः व्योमगः ॥

२८) वायुरस्तीति व्यवहारहेतुसद्रूपत्वं सद्वस्तुनो धर्म एकः । वायौ सद्वस्तुनो विवेचिते सति यत् निस्तत्त्वरूपत्वं स मायाधर्मो द्वितीयः । शब्दो व्योम्नः सकाशादागतो धर्मस्तृतीय इत्यर्थः ॥ ८० ॥

२९ ननु व्योमविवेचनप्रस्तावे "वाय्वादिष्वनुवृत्तं सन्न तु व्योमेति भेदधीः" इत्यत्र वाय्वादावाकाशानुवृत्तिः निवारिता इदानीं व्योमानुवृत्तिरभिधीयते अतः पूर्वोत्तरविरोध इति शंकते—

२४] औ सत् । माया अरु आकाश । इन तीनकारणके जे तीनस्वभाव हैं वे वी वायुविषै स्थित हैं ॥

२५) सत् । माया औ आकाशके जे अस्तिपना । मिथ्यापना औ शब्दरूप तीनस्वभाव कहिये शीलरूप विशेषधर्म हैं । वे वी वायुविषै विद्यमान देखियेहैं । यह अर्थ है ॥ ७९ ॥

२६ कौन वे वायुविषै सत् । माया औ आकाशके धर्म हैं ? तहां कहैहैं:—

२७] वायु "है" यह सत्का स्वभाव है औ सत्तैं वायुकूं भिन्न किये जो वायुकी मिथ्यारूपता है सो मायाका स्वभाव है औ ध्वनि आकाशका स्वभाव है ॥

२८) वायु "है" इस व्यवहारकी हेतु जो सत्रूपता है । सो वायुविषै सत्वस्तुका धर्म एक है औ वायुकूं सत्वस्तुतैं विवेचन कियेहुये जो मिथ्यारूपता है। सो वायुविषै मायाका धर्म दूसरा है औ शब्द[९४] आकाशतैं वायुविषै प्राप्त भया धर्म तीसरा है ॥ यह अर्थ है ॥ ८० ॥

॥ ४ ॥ पूर्वश्लोक ६७ औ उत्तरश्लोक ८० के विरोधकी शंका औ समाधान ॥

२९ ननु आकाशके विवेचनके प्रसंगमैं "वायुआदिकविषै सत् अनुवृत्त है औ आकाश तौ अनुवृत्त नहीं । यह सत् औ आकाशकी भेदबुद्धि है"इस ६७ श्लोकविषै वायुआदिकविषै आकाशकी अनुवृत्ति निवारण करीहै औ अब ८० वें श्लोकविषै "आकाशका धर्म शब्द वायुविषै है ॥" इसरीतिसैं आकाशकी अनुवृत्ति तुमकरि कहियेहै । यातैं पूर्वग्रंथभाग औ उत्तरग्रंथभागका विरोध होवैहै । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

९४ वायुविषै "वीसी" यह शब्द है ॥ अंक २९७ विषै देखो

टीकांक: ६३० टिप्पणांक: ॐ	छिद्रानुवृत्तिर्नेतीति पूर्वोक्तिरधुना त्वियम् । शब्दानुवृत्तिरेवोक्ता वचसो व्याहतिः कुतः ॥८२॥ ननु सद्वस्तुपार्थक्यादसत्त्वं चेत्तदा कथम् । अव्यक्तमायावैषम्यादमायामयतापि नो ॥ ८३ ॥	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १४७ १४८

३०] सतः अनुवृत्तिः सर्वत्र व्योम्नः न इति पुरा ईरितम् । अधुना व्योमानुवृत्तिः । वचः व्याहतं कथं न ॥

३१) व्योमानुवृत्तिरधुना उच्यते इति शेषः ॥ ८१ ॥

३२ पूर्वमवकाशलक्षणस्वरूपानुवृत्तिर्निवारिता इदानीं धर्मानुवृत्तिरेवाभिधीयते न स्वरूपानुवृत्तिरतो न व्याहतिरिति परिहरति—

३३] "छिद्रानुवृत्तिः न इति" इति पूर्वोक्तिः अधुना तु इयं शब्दानुवृत्तिः एव उक्ता । वचसः व्याहतिः कुतः॥८२

३४ ननु वायोः सद्ब्रह्मविलक्षणत्वादसत्वलक्षणं मायामयत्वं यद्युच्यते तर्ह्यव्यक्तस्वरूपमायावैलक्षण्यादमायामयत्वमपि किं न स्यादिति चोदयति—

३५] ननु सद्वस्तुपार्थक्यात् असत्वं चेत् तदा अव्यक्तमायावैषम्यात् अमायामयता अपि कथं नो ॥ ८३ ॥

३०] "सत्‌की अनुवृत्ति सर्वत्र वायुआदिकविषै है औ आकाशकी अनुवृत्ति नहीं" ऐसैं पूर्व ६७ श्लोकमैं कह्याहै औ अब आकाशकी अनुवृत्ति कहियेहै ॥ यातैं तुमारा वचन व्याघातदोषयुक्त कैसैं नहीं होवैगा?

३१) आकाशकी अनुवृत्ति कहियेहै । इहां "कहियेहै" यह पद शेष है कहिये बाहीरसैं कह्याहै ॥ ८१ ॥

३२ पूर्व ६७ वें श्लोकविषै आकाशके अवकाशरूप लक्षणवाले स्वरूपकी अनुवृत्ति निवारी है औ अब ८० वें श्लोकविषै आकाशके धर्म। शब्दकी अनुवृत्ति कहियेहै । अवकाशरूप स्वरूपकी अनुवृत्ति नहीं ॥ यातैं पूर्वउत्तरके विरोधके अभावतैं हमारे वचनका व्याघात नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

३३] "अवकाशकी अनुवृत्ति नहीं है" इसरीतिसैं पूर्वकी उक्ति है औ अब तौ यह शब्दरूप धर्मकी अनुवृत्तिहीं कहीहै । वचनका व्याघात काहेतैं होवैगा? किसी कारणतैं बी बनै नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ ८२ ॥

॥ ९ ॥ वायुमैं मायाकी अकार्यताकी शंका औ ताका समाधान ॥

३४ ननु वायुकूं सत्‌रूप ब्रह्मतैं विलक्षण होनैतैं मिथ्यात्वरूप मायामयता जब कहियेहै । तब अव्यक्तस्वरूपमायातैं विलक्षण होनैतैं वायुकूं अमिथ्यारूपता बी कैसैं नहीं होवैगी? इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

३५] ननु सत्‌वस्तुतैं विलक्षण होनैतैं वायुका जब असद्भाव होवैहै तब अप्रगटमायासैं विलक्षण होनैतैं वायुकी अमायामयता बी कैसैं नहीं होवैगी? किंतु होवैगीहीं ॥ ८३ ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१४९	[३७] निस्तत्त्वरूपतैवात्र मायात्वस्य प्रयोजिका । सा शक्तिकार्ययोस्तुल्या व्यक्ताव्यक्तत्वभेदिनोः ८४	६३६
१५०	[३९] सदसत्त्वविवेकस्य प्रस्तुतत्वात्स चिंत्यताम् । असतोऽवांतरो भेद आस्तां तच्चिंतयाऽत्र किम् ८५	टिप्पणांकः ३९५

३६ नाव्यक्तत्वं मायामयत्वे प्रयोजकं किंतु निस्तत्त्वरूपत्वं। तत्तु मायायामिव वाय्वादावप्यस्तीति न मायामयत्वहानिरिति परिहरति (निस्तत्त्वेति)—

३७] अत्र निस्तत्त्वरूपता एव मायात्वस्य प्रयोजिका सा व्यक्ताव्यक्तत्वभेदिनोः शक्तिकार्ययोः तुल्या ॥ ८४ ॥

३८ ननु शक्तिकार्ययोरुभयोरपि निस्तत्त्वरूपतायामविशिष्टायां व्यक्ताव्यक्तत्वलक्षणो भेदः कुत इत्याशंक्य तद्विचारः प्रस्तुतानुपयुक्त इति परिहरति—

३९] सदसत्त्वविवेकस्य प्रस्तुतत्वात् सः चिंत्यताम् । असतः अवांतरः भेदः आस्तां । तच्चिंतया अत्र किम् ॥

४०) असतो मायातत्कार्यरूपस्य अवांतरभेदो व्यक्ताव्यक्तत्वरूप इत्यर्थः॥८५॥

३६ अव्यक्तपना मायामयताविषै कारण नहीं है। किंतु निस्तत्त्वरूपता कहिये सत्सैं भिन्न वास्तवस्वरूपरहितताहीं। मायामयतामैं प्रयोजक है ॥ सो निस्तत्त्वरूपता जैसैं मायाविषै है तैसैं वायुआदिकविषै वी है । तातैं वायुके मायामयपनैकी हानि नहीं है ॥ इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

३७] इहां वायुविषै निस्तत्त्वरूपता कहिये सत्सैं भिन्न स्वरूपका अभावहीं मायामयता कहिये मिथ्यारूपताकी हेतु है। सो निस्तत्त्वरूपता । प्रगटपनैरूप अरु अप्रगटपनैरूप भेदवाले वी मायाशक्ति औ तिस शक्तिके कार्य वायुविषै तुल्य है ॥ ८४ ॥

३८ ननु मायाशक्ति औ तिसके कार्य वायुआदिक इन दोनूंकी निस्तत्त्वरूपताके तुल्य हुये । व्यक्तअव्यक्तपनैरूप तिनका भेद काहेतैं होवैहै? यह आशंकाकरि तिन व्यक्तअव्यक्तपनैका विचार इस प्रसंगविषै अनुपयोगी है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

३९] सत् अरु असत्पनैके विवेककूं प्रसंगविषै प्राप्त होनैतैं । सो सत्असत्पनैका विवेक चिंतन किया चाहिये औ असत्का बीचका भेद रहो । तिसकी चिंताकरि इहां सत्असत्पनैके विचारके प्रसंगविषै क्या प्रयोजन है? ॥

४०) असत् जो माया औ तिस मायाके कार्य वायुआदिरूप है तिसका अवांतरभेद जो इंद्रियादिगोचरतामय व्यक्तता औ इंद्रियादिअगोचरतामय अव्यक्ततारूप है[९६] सो रहो ॥ यह अर्थ है ॥ ८५ ॥

९५ व्यावहारिकपक्षकी रीतिसैं मायाका परिणाम जो आकाश है। ताका परिणाम होनैतैं परंपरासैं वायु मायाका कार्य है ॥

९६ शक्तिकी अव्यक्तता औ कार्यकी व्यक्ततामैं हेतु । आगे अद्वैतानंदके ३६ वे श्लोकविषै कहियेगा । यातैं इहां रहो ॥

टीकांक: ६४१ टिप्पणांक: ३९७	सद्वस्तु ब्रह्म शिष्टोंऽशो वायुर्मिथ्या यथा वियत् । वासयित्वा चिरं वायोर्मिथ्यात्वं मरुतं त्यजेत्॥८६ चिंतयेद्वह्निमप्येवं मरुतो न्यूनवर्तिनम् । ब्रह्मांडावरणेष्वेषा न्यूनाधिकविचारणा ॥ ८७ ॥	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १५१ १५२

४१ फलितमाह—

४२] सद्वस्तु ब्रह्म शिष्टः अंशः वायुः मिथ्या यथा वियत् । वायोः मिथ्यात्वं चिरं वासयित्वा मरुतं त्यजेत् ॥

४३) वायौ यः सत् अंशस्तद् ब्रह्मरूपं । **शिष्टोंऽशो** निस्तत्वादिर्वायोः स्वरूपं । स च वायुः निस्तत्वरूपत्वादेव आकाशवत् मिथ्या । इत्थं वायोर्मिथ्यात्वं चिरं वासयित्वा मरुतं त्यजेत् मरुत्सत्य इति बुद्धिं त्यजेत् इत्यर्थः ॥ ८६ ॥

४४ वायौ उक्तं विचारं तेजस्यप्यतिदिशति (चिंतयेदिति)—

४५] एवं मरुतः न्यूनवर्तिनं वह्निं अपि चिंतयेत् ।

४६ ननु "सद्वस्तुन्येकदेशस्था माया तत्र" इत्यादिना वियदादीनां न्यूनादिकभाव उक्तः स लोके न क्वापि दृश्यत इत्याशंक्याह—

॥ ६ ॥ फलितअर्थ ॥

४१ फलितकूं कहैहैं:—

४२] वायुविषै सत्अंश ब्रह्म है औ शेषअंशरूप वायु मिथ्या है ॥ जैसैं आकाश मिथ्या है । ऐसैं वायुके मिथ्यापनैंकूं चिरकाल वासनायुक्तकरिके वायुकूं त्याग करै ॥

४३) वायुविषै जो सत्अंश है सो ब्रह्मका रूप है औ शेषअंश जो निस्तत्त्वताआदिक[९७] है सो वायुका स्वरूप है। सो वायु निस्तत्व कहिये अधिष्ठानब्रह्मतैं भिन्नसत्ताके अभाववाला होनैतैंहीं आकाशकी न्यांई मिथ्या है ॥ ऐसैं मुमुक्षु वायुके मिथ्याभावकूं बहुकालपर्यंत निश्चयकरि वायुकूं त्याग करै । कहिये वायु सत्य है इस बुद्धिकूं छोडै ॥ यह अर्थ है ॥८६॥

॥ ४ ॥ सत् औ अग्निका विवेक ॥ ६४४-६६४ ॥

॥ १ ॥ वायुविषै श्लोक ७७-८६ उक्त विचारका अग्निमैं अतिदेश ॥

४४ वायुविषै कह्या जो विचार । ताकूं तेज विषै बी अतिदेश करैहैं:—

४५] जैसैं वायुकूं चिंतन किया ऐसैं वायुतैं दशअंशन्यूनदेशविषै वर्त्तनैवाले अग्निकूं बी चिंतन करै ॥

४६ ननु । "सत्वस्तुके एकदेशमैं स्थित माया है औ तिसके एकदेशमैं स्थित आकाश है औ तिसके एकदेशमैं स्थित वायु कल्पित है ।" इस ७८ वें श्लोकविषै आकाश आदिकका जो न्यूनअधिकभाव कह्याहै । सो लोकविषै कहुं बी नहीं देखियेहै । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९७ इहां आदिशब्दकरि शब्दस्पर्शआदिकनका ग्रहण है॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांकः १५३ १५४	[51]वायोर्दशांशतो न्यूनो वह्निर्वायौ प्रकल्पितः । [53]पुराणोक्तं तारतम्यं दशांशैर्भूतपंचके ॥ ८८ ॥ [55]वह्निरुष्णः प्रकाशात्मा पूर्वानुगतिरत्र च । [58]अस्ति वह्निः सनिस्तत्त्वः शब्दवान्स्पर्शवानपि ८९	टीकांकः ६४७ टिप्पणांकः ३९८

४७] ब्रह्मांडावरणेषु एषा न्यूनाधिकविचारणा ॥ ८७ ॥

४८ वायोः कियतांशेन न्यूनो वह्निरित्यत आह—

४९] वायोः दशांशतः वह्निः न्यूनः॥

५० तस्य वास्तवत्वशंकां वारयति—

५१] वायौ प्रकल्पितः ॥

५२ नन्वयं न्यूनाधिकभावः स्वकपोलकल्पित इत्याशंक्याह (पुराणोक्तमिति)—

५३] भूतपंचके दशांशैः तारतम्यं पुराणोक्तम् ॥ ८८ ॥

५४ वह्नेः स्वरूपमाह—

५५] वह्निः उष्णः प्रकाशात्मा ॥

५६ अत्रापि वायाविव कारणधर्मा अनुगता इत्याह (पूर्वेति)—

५७] अत्र च पूर्वानुगतिः ॥

५८ के ते धर्मा इत्याकांक्षायामाह (अस्तीति)—

५९] स वह्निः "अस्ति" । निस्तत्त्वः शब्दवान् स्पर्शवान् अपि ॥ ८९ ॥

४७] ब्रह्मांडके आवरणोंविषै यह न्यूनअधिकका विचार कहियेहै ॥ ८७ ॥

॥ २ ॥ प्रमाणसहित वायुतैं अग्निकी दशअंश-न्यूनता औ अवास्तवता ॥

४८ वायुतैं कितनै अंशकरि अग्नि न्यून है ? तहां कहैहैं:—

४९] वायुतैं दशअंशकरि अग्नि न्यून है ॥

५० तिस अग्निके सत्यताकी शंकाकूं निवारण करैहैं:—

५१] सो अग्नि [98]वायुविषै कल्पित है॥

५२ ननु यह न्यूनअधिकभाव स्वकपोलकरि कल्पित है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५३] पंचभूतनविषै दशअंशकरि जो न्यूअधिकभाव है सो पुराणनविषै कह्याहै ॥ ८८ ॥

॥ ३ ॥ अग्निका स्वरूप औ तिसमैं प्राप्त कारणके धर्म ॥

५४ अग्निके स्वरूपकूं कहैहैं:—

५५] अग्नि । उष्ण औ प्रकाशस्वरूप है ॥

५६ इहां अग्निविषै बी वायुकी न्यांई कारणके धर्म अनुगत है । यह कहैहैं:—

५७] इहां अग्निविषै बी कारण सत् । माया । आकाश औ वायुके धर्मनकी अनुगति है ॥

५८ कौन वे वायुविषै कारणतैं प्राप्त धर्म हैं ? इस पूछनेकी इच्छाविषै कहैहैं:—

५९] सो अग्नि "है" । मिथ्यारूप है । शब्दवान् है । स्पर्शवान् है ॥ ८९ ॥

---

९८ लोकप्रसिद्धपदार्थनविषै यह न्यूनाधिकका विचार नहीं है । यातैं लोकविषै इस न्यूनाधिकभावका देखना बनै नहीं ॥ यह अभिप्राय है ॥

९९ अग्नि वायुउपहितचेतनविषै कल्पित है ॥

टीकांकः ६६०
टिप्पणांकः ॐ

	श्लोकांकः
⁶¹सन्मायाव्योमवाय्वंशैर्युक्तस्याग्नेर्निजो गुणः ।	
रूपं ⁶³तत्र सतः सर्वमन्यद्बुद्ध्या विविच्यताम् ॥९०॥	१५५
⁶⁶सतो विवेचिते वह्नौ मिथ्यात्वे सति वासिते ।	
आपो दशांशतो न्यूनाः कल्पिता इति चिंतयेत् ९१	१५६
संत्यापोऽमूः शून्यतत्त्वाः सशब्दस्पर्शसंयुताः ।	
रूपवत्योऽन्यधर्मानुवृत्त्या स्वीयो रसो गुणः ॥९२॥	१५७

६० एवमग्नौ कारणधर्मानुगत्यनुवादपूर्वकं स्वकीयं धर्मं दर्शयति—

६१] **सन्मायाव्योमवाय्वंशैः युक्तस्य अग्नेः निजः गुणः रूपम् ॥**

६२ इत्थं सविशेषणं वह्निस्वरूपं व्युत्पाद्य इदानीं सद्वस्तुनो वह्निं विविनक्ति—

६३] **तत्र सतः अन्यत् सर्वं बुद्ध्या विविच्यताम् ॥**

६४) तत्र तेषु मध्ये । सतः सद्वस्तुनः । अन्यत्सर्वं धर्मजातं मिथ्येति बुद्ध्या विविच्यतां पृथक् क्रियतामित्यर्थः ॥ ९० ॥

६५ एवं वह्नेर्मिथ्यात्वनिश्चयानंतरमपां मिथ्यात्वं चिंतयेदित्याह—

६६] **सतः वह्नौ विवेचिते मिथ्यात्वे वासिते सति दशांशतः न्यूनाः आपः कल्पिताः इति चिंतयेत् ॥९१॥**

६७ अस्यापि कारणधर्मान् स्वधर्मांश्च विभज्य दर्शयति (संत्याप इति)—

॥ ४ ॥ अग्निके कारणके धर्म । निजधर्म औ सत्‌सैं अग्निका भेद ॥

६० ऐसैं अग्निविषै कारणके धर्मनके क्रमतैं अनुवादपूर्वक अपनै धर्मकूं दिखावैहैं:—

६१] **सत् । माया । आकाश औ वायु । इन च्यारिकारणके अंश जे अस्तित्व । मिथ्यात्व । शब्द औ स्पर्शरूप धर्म तिनकरि युक्त अग्निका निजगुण रूप है ॥**

६२ इसरीतिसैं विशेषणसहित अग्निके स्वरूपकूं कहिके । अब सत्‌वस्तुतैं अग्निकूं विवेचन करैहैं:—

६३] **तिन धर्मनविषै सत्‌सैं अन्य सर्वकूं बुद्धिकरि विवेचन करना ॥**

६४) तिन धर्मनके मध्यमैंसैं सत्‌वस्तुतैं अन्य सर्वधर्मके समूहकूं "मिथ्या है" । इस बुद्धिकरि विवेचन करना । यह अर्थ है ॥९०॥

॥ ५ ॥ सत् औ जलका विवेक ॥ ६६५–६६९ ॥

॥ १ ॥ अग्नितैं जलकी दशअंशन्यूनता औ अवास्तवता ॥

६५ ऐसैं अग्निके मिथ्यापनैके निश्चय भये पीछे । जलके मिथ्यापनैकूं मुमुक्षु चिंतन करै । यह कहैहैं:—

६६] **सत्‌सैं अग्निके विवेचन किये औ तिसके मिथ्याभावके दृढनिश्चित भये अग्नितैं दशअंशकरि न्यून जो जल है । सो अग्निउपहितचेतनविषै कल्पित है । ऐसैं चिंतन करै ॥ ९१ ॥**

॥ २ ॥ जलके कारणके धर्म औ निजधर्म ॥

६७ इस जलके बी कारणतैं प्राप्त धर्म औ अपनै धर्मनकूं विभाग करिके दिखावैहैं:—

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः १५८ १५९

सतो विवेचितास्वप्सु तन्मिथ्यात्वे च वासिते ।
भूमिर्दशांशतो न्यूना कल्पिताप्स्विति चिंतयेत् ॥९३॥
अस्ति भूस्तत्त्वशून्यास्यां शब्दस्पर्शौ सरूपकौ ।
रसश्च परतो गंधो नैजः सत्ता विविच्यताम् ॥९४॥

टीकांकः ६६८ टिप्पणांकः ॐ

६८] अन्यधर्मानुवृत्ता अम्बुः आपः संति शून्यतत्त्वाः सशब्दस्पर्शसंयुताः रूपवत्यः स्वीयः गुणः रसः ॥

६९) शब्देन सह वर्तत इति सशब्दः सशब्दश्चासौ स्पर्शश्च सशब्दस्पर्शः तेन युक्ता इत्यर्थः ॥ ९२ ॥

७० निरुक्तानामपां मिथ्यात्वं निश्चित्यानंतरं भूमेर्मिथ्यात्वं चिंतनीयमित्याह—

७१] सतः अप्सु विवेचितासु तन्मिथ्यात्वे च वासिते दशांशतः न्यूना भूमिः अप्सु कल्पिता इति चिंतयेत् ॥ ९३ ॥

७२ तस्या मिथ्यात्वचिंतनाय तद्धर्मानपि विभजते (अस्ति भूरिति)—

७३] भूः अस्ति तत्त्वशून्या अस्यां शब्दस्पर्शौ सरूपकौ रसः च परतः नैजः गंधः ॥

७४ तेभ्यः सत्तामात्रं पृथक् कर्तव्यमित्याह—

७५] सत्ता विविच्यताम् ॥ ९४ ॥

६८] कारणके धर्मनकी अनुगतिकरि यह जल है अरु मिथ्यात्वरूप है अरु शब्दसहित स्पर्शसंयुक्त है अरु रूपवान् है औ जलका गुण । रस है ॥

६९ शब्दकरि जो सहित वर्तता होवै । सो सशब्द कहियेहै औ सशब्द ऐसा जो स्पर्श । सो सशब्दस्पर्श कहियेहै ॥ तिस शब्दसहित स्पर्शकरि युक्त जल है ॥ यह अर्थ है ॥९२॥

॥ ६ ॥ सत् औ पृथिवीका विवेक ॥ ६७०-६७७ ॥

॥ १ ॥ जलके मिथ्यात्वका निश्चय। पृथिवीकी दशअंशन्यूनता औ अनात्मता ॥

७० जलके मिथ्याभावकूं निश्चय करिके पीछे भूमिका मिथ्याभाव चिंतन किया चाहिये यह कहैहैं:—

७१] सत्सैं जलके विवेचन किये हुये औ तिनके मिथ्यापनेके वासित हुये । जलतें दशअंशकरि न्यून पृथ्वी । जलरूपअधिष्ठानविषै कल्पित है । ऐसैं चिंतन करै ॥ ९३ ॥

॥ २ ॥ पृथ्वीके कारणके धर्म औ निजधर्म औ सत्का चिंतन ॥

७२ तिस पृथ्वीके मिथ्याभावके चिंतन-अर्थ । तिस पृथ्वीके धर्मनकूं विभाग करैहैं:—

७३] पृथ्वी "है" । मिथ्या है । इस पृथ्वीविषै शब्द । स्पर्श । रूप औ रस ये गुण । परतैं कहिये सत् । माया । आकाश । वायु । तेज औ जलरूप कारणतें प्राप्त हैं औ अपना पृथ्वीका गुण गंध है ॥

७४ तिन सर्वगुणनतें सत्तामात्रहीं विवेचन करनी योग्य है । ऐसें कहैहैं:—

७५] इन सर्वतें सत्ताका विवेचन करना ॥ ९४ ॥

टीकांक: ६७६ टिप्पणांक: ४००		पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक:
	७७पृथक्कृतायां सत्तायां भूमिर्मिथ्याऽवशिष्यते ।	
	७९भूमेर्दशांशतो न्यूनं ब्रह्मांडं भूमिमध्यगम् ॥९५॥	१६०
	८१ब्रह्मांडमध्ये तिष्ठंति भुवनानि चतुर्दश ।	
	भुवनेषु वसंत्येषु प्राणिदेहा यथायथम् ॥ ९६ ॥	१६१
	८३ब्रह्मांडलोकदेहेषु सद्वस्तुनि पृथक्कृते ।	
	असतोंऽडादयो भांतु तद्भानेऽपीह का क्षतिः ९७	१६२

७६ सत्तापृथक्करणे फलमाह (पृथगिति)

७७] **सत्तायां पृथक्कृतायां भूमिः मिथ्या अवशिष्यते ॥**

७८ इदानीं भौतिकेभ्यो ब्रह्मांडादिभ्यः सतो विवेचनाय तदवस्थानप्रकारं दर्शयति—

७९] **भूमेः दशांशतः न्यूनं भूमिमध्यगं ब्रह्मांडम् ॥ ९५ ॥**

८० ब्रह्मांडमध्यवर्त्तिपदार्थानाह—

८१] **ब्रह्मांडमध्ये चतुर्दश भुवनानि तिष्ठंति । एषु भुवनेषु यथायथं प्राणिदेहाः वसंति ॥ ९६ ॥**

८२ तेषु सद्विवेचने फलमाह—

८३] **ब्रह्मांडलोकदेहेषु सद्वस्तुनि**

॥ ७ ॥ सत् औ भूतनके कार्य ब्रह्मांडादिकका विवेक औ प्रपंचके भानका अविरोध

॥ ६७८-६९३ ॥

॥ १ ॥ पृथिवीतैं सत्के भिन्न करनेका फल ॥

७६ सत्ताके पृथक् करनैविषै फल कहैहैं:—

७७] **सत्ताके पृथ्वीतैं भिन्न कियेहुये । भूमि मिथ्याहीं शेष रहैहै ॥**

७८ अब भूतनके कार्य ब्रह्मांडआदिकनतैं सत्के विवेचन अर्थ । तिन ब्रह्मांडआदिकके स्थितिके प्रकारकूं दिखावैहैं:—

७९] **पृथ्वीतैं दशअंशकरि न्यून चतुर्दशभुवनरूप ब्रह्मांड है सो पृथ्वीके मध्यमैं स्थित है ॥ ९५ ॥**

॥ २ ॥ ब्रह्मांडके भीतरवर्तीवस्तुनका कथन ॥

८० ब्रह्मांडके भीतरवर्ती पदार्थनकूं कहैहैं:—

८१] **ब्रह्मांडके मध्यविषै चतुर्दशभुवन कहिये लोक स्थित हैं । इन चतुर्दशभुवनोंविषै यथायोग्य प्राणधारीजीवनके देह वसतेहैं ॥ ९६ ॥**

८२ तिन ब्रह्मांडादिकनविषै सत्के विवेचन किये फलकूं कहैहैं:—

८३] **ब्रह्मांड । चतुर्दशभुवन औ प्राणिनके देहनविषै जो सद्वस्तु है तिसके भिन्न कियेहुये ब्रह्मांडआदिक असत् हीं भासतेहैं ॥ तिन ब्रह्मांडादि-**

४०० अतल वितल सुतल तलातल रसातल महातल औ पाताल ये सप्तलोक (भुवन) नीचे हैं औ भूर् भुवर् स्वर् महर् जन तप सत्य (ब्रह्मलोक) ये सप्तलोक ऊपर हैं ॥ ये चौदालोक हैं ॥

पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१६३	भूतभौतिकमायानां समत्वेऽत्यंतवासिते । सद्वस्त्वद्वैतमित्येषा धीर्विपर्येति न क्वचित् ॥९८॥	६८४
१६४	सदद्वैतात्पृथग्भूते द्वैते भूम्यादिरूपिणि । तत्तदर्थक्रिया लोके यथा दृष्टा तथैव सा ॥९९॥	टिप्पणांकः ४०१

पृथक्कृते अंडादयः असंतः भांतु तद्भाने अपि इह का क्षतिः ॥ ९७ ॥

८४ तद्भाने का क्षतिरित्युक्तमेवार्थं स्पष्टीकरोति—

८५] **भूतभौतिकमायानां समत्वे अत्यंतवासिते सद्वस्तु अद्वैतं इति एषा धीः क्वचित् न विपर्येत्ति ॥**

८६) भूतानामाकाशादीनां भौतिकानां ब्रह्मांडादीनां मायायाश्च तत्कारणभूताया मिथ्यात्वे विवेकध्यानाभ्यां चित्ते दृढं वासिते सति । सद्वस्तुनोऽद्वैतत्वबुद्धिः कदाचिन्न विहन्यत इत्यर्थः ॥ ९८ ॥

८७ ननु भूम्यादीनामसत्वे विदुषो व्यवहारलोपः प्रसज्जेतेत्याशंक्य विवेकेन मिथ्यात्वनिश्चयेऽपि भूम्यादेः स्वरूपोपमर्दनाभावान्न व्यवहारो लुप्यत इत्याह (सदद्वैतादिति)—

८८] **भूम्यादिरूपिणि द्वैते सदद्वै-**

कनके प्रतीतिके होते इहां अद्वैतवस्तुविषै क्या हानि है? कछुवी हानि नहीं ॥९७॥

॥ ३ ॥ सततैं ब्रह्मांडादिकके विवेचनका फल औ तिनके प्रतीतिका अविरोध ॥

८४ "तिनके भानके होते इहां क्या हानि है?" इस ९७ श्लोकउक्तअर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

८५] **भूत भौतिक औ माया । इन तीनकी समता कहिये मिथ्याभावके अत्यंतवासित हुये "सद्वस्तु अद्वैतहीं है" इसप्रकारकी यह बुद्धि कदाचित् विपर्ययकूं प्राप्त होवै नहीं ॥**

८६) भूत जो आकाशादिकपंच औ भौतिक जो ब्रह्मांडादिक औ तिन भूतभौतिकनकी कारणरूप माया । इनके मिथ्यापनैकूं विवेक औ ध्यानकरि चित्तविषै दृढवासित हुये सत्वस्तुके अद्वैतभावकी बुद्धि कदाचित् नाश नहीं होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ९८ ॥

॥ ४ ॥ भूमिआदिकके असत् होते वी ज्ञानीके व्यवहारका अलोप ॥

८७ ननु भूमिआदिकनकूं मिथ्या हुये ज्ञानीके व्यवहारके लोपका प्रसंग होवैगा! यह आशंकाकरि विवेकसैं भूमिआदिकके मिथ्याभावके निश्चय हुये वी भूमिआदिकके स्वरूपके नाशके अभावतैं ज्ञानीका कथनप्रतीतिआदिरूप व्यवहार नाशकूं प्राप्त होवै नहीं यह कहैहैं:—

८८] **भूमिआदिकरूप द्वैत कहिये जो जगत् । ताकूं सत्‌रूप अद्वैततैं भिन्न कहिये**

---

१ मृगजलके भासनैसैं तिसकी अधिष्ठान पृथ्वी गीली होवै नहीं । तैसैं मिथ्याजगतके भासनेसैं अधिष्ठानअद्वैतब्रह्मविषै हानि होवै नहीं ॥

२ अधिष्ठानब्रह्मतैं भिन्नसत्ताके अभावतैं अधिष्ठानरूपताके

३ विपरीतभावनाकूं ॥

टीकांक: ६८९ टिप्पणांक: ४०४	सांख्यकाणादबौद्धाद्यैर्जगद्भेदो यथा यथा । उत्प्रेक्ष्यतेऽनेकयुक्त्या भवत्वेष तथा तथा॥१००॥ अवज्ञातं सदद्वैतं निःशंकैरन्यवादिभिः । एवं का क्षतिरस्माकं तद्द्वैतमवजानताम् ॥१०१॥	पंचमहाभूत-विवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १६५ १६६

तात् पृथक् भूते तत्तदर्थक्रिया लोके यथा दृष्टा तथा एव सा ॥ ९९ ॥

८९ ननु सत्तत्वस्याद्वैतरूपत्वे सांख्यादिभिरधीयमानस्य भेदस्य कुतो न निरासः क्रियत इत्याशंक्य व्यावहारिकभेदस्यास्माभिरभ्युपगतत्वान्न तन्निरासाय प्रयत्यत इत्याह—

९०] सांख्यकाणादबौद्धाद्यैः अनेकयुक्त्या यथा यथा जगद्भेदः उत्प्रेक्ष्यते तथा तथा एषः भवतु ॥ १०० ॥

९१ ननु प्रमाणसिद्धस्य सत्वभेदस्यावज्ञाऽनुपपन्नेत्याशंक्याह (अवज्ञातमिति)–

९२] निःशंकैः अन्यवादिभिः सद्द्वैतं अवज्ञातं एवं तद्द्वैतं अवजानताम् अस्माकं का क्षतिः ॥

९३) यथा अन्यवादिभिः सांख्यादिभिः

मिथ्या हुये वी तिस भूमिआदिकविषै तिस तिस अर्थरूप निमित्तवाली क्रिया जो प्रवृत्ति । सो लोकविषै जैसैं पूर्व अज्ञानकालमैं अनुभव करीहै तैसैंहीं होवैहै ९९

॥ ५ ॥ व्यावहारिकजगत्के भेदका अंगीकार ॥

८९ ननु सद्वस्तुकूं अद्वैतरूप हुये । सांख्यआदिकभेदवादिनकरि कथन किये भेदका निराकरण तुम अद्वैतवादी काहेतैं नहीं करतेहो? यह आशंकाकरि व्यावहारिक कहिये मिथ्याभेद हमोंकरि वी अंगीकार किया होनैतैं तिस व्यावहारिकभेदके निषेध वास्ते प्रयत्न नहीं करीयेहै । यह कहैहैंः—

९०] सांख्य काणाद औ बौद्ध आदिक वादिनकरि अनेकयुक्तिकरि जिस प्रकार जगत्का भेद कल्पना करियेहै तिस तिस प्रकार यह जगत्का भेद होहु ॥ १०० ॥

॥ ६ ॥ वास्तवभेदके अनादरमैं अहानि ॥

९१ ननु प्रत्यक्षादिप्रमाणकरि सिद्ध जो सत् कहिये वास्तवभेद है । तिसका पूर्व आकाशादिकके विवेकके प्रसंगमैं उक्त मिथ्याबुद्धिसैं तिरस्काररूप अनादर अयुक्त है । यह आशंकाकरि कहैहैंः—

९२] निःशंक जे अन्यवादी हैं तिनोंकरि जैसैं सत्अद्वैतकी अवज्ञा करीयेहै। ऐसैं तिनोंके द्वैतकी अवज्ञा करनैहारे हमकूं कौन हानि है? ॥

९३) जैसैं शंकारहित होयके अन्यवादी

---

४ कपिलमतके अनुसारी सांख्यवादि ॥

५ कणाद (कणभुक्) मतके अनुसारी वैशेषिक ॥

६ बुद्ध (पाखंडप्रवर्त्तक) अवतारके शिष्य माध्यमिक (शून्यवादी) । योगाचार (क्षणिकविज्ञानवादी) । सौत्रांतिक (बाह्यपदार्थकी अनुमेयताका वादी) औ वैभाषिक (बाह्यपदार्थकी प्रत्यक्षताका वादी)। ये च्यारि बौद्ध कहियेहैं ॥

७ आदिशब्दकरि गौतमके अनुसारी नैयायिकआदिकअन्यभेदवादिनका ग्रहण है ॥

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१६७	९५ द्वैतावज्ञा सुस्थिता चेदद्वैते धीः स्थिरा भवेत् । स्थैर्ये तस्याः पुमानेष जीवन्मुक्त इतीर्यते॥१०२॥	६९४
१६८	९७ एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति । स्थित्वास्यामंतकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति१०३	टिप्पणांकः ४०८

निःशंकैः श्रुत्यादिसिद्धस्यापि सदद्वैतस्यावज्ञा क्रियते । श्रुतियुक्त्यनुभवावष्टंभेनास्माभिस्तदीयद्वैतानादरणे किं हीयत इत्यर्थः॥१०१॥

९४ ननु निःप्रयोजनेयं द्वैतावज्ञेत्याशंक्य जीवन्मुक्तिलक्षणप्रयोजनसद्भावान्मैवमित्याह—

९५] द्वैतावज्ञा सुस्थिता चेत् अद्वैते धीः स्थिरा भवेत् । तस्याः स्थैर्ये एषः पुमान् जीवन्मुक्तः इति ईर्यते ॥१०२॥

९६ न केवलं जीवन्मुक्तिरेव प्रयोजनमपि तु विदेहमुक्तिरपीत्यभिप्रायेण कृष्णवाक्यमप्युदाहरति (एषेति)—

९७] पार्थ एषा ब्राह्मी स्थितिः । एनां प्राप्य न विमुह्यति । अस्यां अंतकाले अपि स्थित्वा ब्रह्म निर्वाणं ऋच्छति ॥ १०३ ॥

सांख्यादिकनकरि श्रुति-आदिसैं सिद्ध अद्वैतकी बी अवज्ञा करियेहै । तैसैं श्रुति युक्ति औ अनुभवके आश्रयसैं हमोंकरि तिन द्वैतवादिनके माने द्वैतके अनादर करनैविषै हमकूं क्या हानि होवैहै? कछु बी हानि नहीं है ॥ १०१ ॥

॥ ८ ॥ द्वैतके अनादरके फलका उपपादन ॥ ६९४—७११ ॥

॥ १ ॥ द्वैतके अनादरका प्रयोजन ॥

९४ ननु यह द्वैतका अनादर है सो निष्प्रयोजन कहिये निष्फल है । यह आशंकाकरि जीवन्मुक्तिरूप प्रयोजनके सद्भावतैं द्वैतका अनादर निष्प्रयोजन बनै नहीं । यह कहैहैं:—

९५] द्वैतका अनादर जब सम्यक्स्थित होवै तब अद्वैतवस्तुविषै बुद्धि स्थिर होवैहै औ तिस अद्वैतबुद्धिके स्थिर हुये यह पुरुष "जीवन्मुक्त" ऐसैं कहियेहै ॥ १०२ ॥

॥ २ ॥ प्रमाणसहित द्वैतके अनादरका प्रयोजन ॥

९६ केवल जीवन्मुक्तिहीं द्वैतके अनादरका प्रयोजन कहिये फल नहीं है । किंतु विदेहमुक्ति बी प्रयोजन है । इस अभिप्रायकरि भगवद्गीताके द्वितीयअध्यायके ७२ वें अंत्यश्लोकरूप श्रीकृष्णके वाक्यकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

९७] हे पार्थ कहिये अर्जुन! यह ब्राह्मीस्थिति है । इस स्थितिकूं पायके पुरुष भ्रांतिकूं पावै नहीं औ इस ब्रह्मकी स्थितिविषै अंतकालमैं बी स्थित होयके पुरुष ब्रह्मभावरूप विदेहमुक्तिमय ब्रह्मनिर्वाणकूं पावैहै ॥ १०३ ॥

८ आदिपदसैं युक्ति औ अनुभवका ग्रहण है ॥

९ प्रपंचकी प्रतीति होते अद्वैतब्रह्मस्वरूपमैं स्थिति । जीवन्मुक्ति है ॥ तिसवाला पुरुष जीवन्मुक्त कहियेहै ॥

१० यह गीताके दूसरेअध्यायके ५५ श्लोकसैं लेके ७२ वें (इस) श्लोकपर्यंत जो कही सो ॥

११ ब्रह्मविषै जो होवै सो ब्राह्मी कहियेहै ॥ ऐसी स्थिति नाम सर्वकर्मका त्यागकरिके ब्रह्मस्वरूपसैं अवस्थान (तात्पर्यकरि पर्यवसान) ब्राह्मीस्थिति है ॥

१२ प्रपंचकी प्रतीतिसैं रहित अद्वैतब्रह्मस्वरूपसैं स्थिति विदेहमुक्ति है ॥

टीकांकः ६९८ टिप्पणांकः ॐ

सदद्वैतेऽनृतद्वैते यदन्योऽन्यैक्यवीक्षणम् ।
तस्यांतकालस्तद्भेदबुद्धिरेव न चेतरः ॥ १०४ ॥
यद्वांऽतकालः प्राणस्य वियोगोऽस्तु प्रसिद्धितः ।
तस्मिन्कालेऽपि न भ्रांतिर्गतायाः पुनरागमः १०५
नीरोग उपविष्टो वा रुग्णो वा विलुठन्भुवि ।
मूर्च्छितो वा त्यजत्वेष प्राणान्भ्रांतिर्न सर्वथा १०६

पंचमहाभूतविवेकः ॥३॥ श्लोकांकः १६९ १७० १७१

९८ अंतकालशब्देन वर्तमानदेहपातोऽभिधीयत इत्याशंकां वारयितुं विवक्षितमर्थमाह—

९९] **सदद्वैते अनृतद्वैते यत् अन्योऽन्यैक्यवीक्षणम् तस्य अंतकालः तद्भेदबुद्धिः एव च इतरः न ॥**

७००) सद्रूपे अद्वैते अनृतरूपे द्वैते च यदन्योऽन्याध्यासलक्षणं ऐक्यज्ञानमस्ति। तस्य ऐक्यभ्रमस्य। अंतकालो नाम तयोरद्वैतद्वैतयोः सत्यानृतरूपेण भेदबुद्धिरेव नापरो वर्तमानदेहपात इत्यर्थः ॥ १०४ ॥

१ इदानीं लोकप्रसिद्धार्थस्वीकारेऽपि न दोष इत्यभिप्रायेणाह—

२] **यद्वा प्रसिद्धितः प्राणस्य वियोगः अंतकालः अस्तु। तस्मिन् काले अपि गतायाः भ्रांतेः पुनः आगमः न ॥ १०५ ॥**

३ उक्तमेवार्थं प्रपंचयति—

४] **नीरोगः उपविष्टः वा रुग्णः वा**

॥ ३ ॥ ज्ञानीके "अंतकाल"शब्दके दोअर्थ ॥

९८ उक्तगीतावचनविषै "अंतकाल"शब्दकरि वर्तमानदेहका पतन कहियेहै । इस आशंकाके निवारण करनै वास्ते "अंतकाल" शब्दके कहनैकूं इच्छित अर्थकूं कहैहैं:—

९९] **सत्अद्वैतविषै औ मिथ्याद्वैतविषै जो परस्परएकताका ज्ञानरूप भ्रम है। तिस भ्रमका अंतकाल तिन अद्वैत औ द्वैतकी भेदबुद्धिहीं है और नहीं ॥**

७००) सत्रूप अद्वैतविषै औ मिथ्यारूप द्वैतविषै जो अन्योऽन्यअध्यासरूप एकताका ज्ञानरूप भ्रम है। तिस एकताके भ्रमका अंतकाल नाम तिन सत्अद्वैत औ मिथ्याद्वैतकी क्रमतैं सत्य औ मिथ्यारूपकरि भेदबुद्धिहीं है। अन्य वर्तमानदेहका पात नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ १०४ ॥

१ अब लोकविषै प्रसिद्ध "अंतकाल"शब्दके वर्तमानदेहके पातरूप अर्थके अंगीकारविषै वी दोष नहीं है । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

२] **यद्वा लोकप्रसिद्धितैं देहतैं प्राणप्रधानलिंगका वियोगहीं अंतकाल होहु ॥**

॥ ४ ॥ ज्ञानीकूं भ्रांतिका अभाव ॥

तिस देहप्राणके वियोगकालमैं वी पूर्वनिवृत्त भई जो भ्रांति है ताका फेर आगम नहीं होवैहै ॥ १०५ ॥

३ "तिसकालमैं भ्रांति नहीं होवैहै" इस उक्तअर्थकूंहीं विस्तारकरि कहैहैं:—

४] **नीरोग हुवा वा उपविष्ट कहिये सिद्धादिआसनकरि बैठा वा ब्रह्ममैं स्थित**

पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांकः १७२

दिने दिने स्वप्नसुप्त्योरधीते विस्मृतेऽप्ययम् ।
परेद्युर्नानधीतः स्यात्तद्वद्विद्या न नश्यति ॥१०७॥

टीकांकः ७०५ टिप्पणांकः ४१३

भुवि विलुठन् मूर्च्छितः वा एषः प्राणान् त्यजतु सर्वथा भ्रान्तिः न॥१०६॥

५ ननु प्राणवियोगकाले मूर्च्छादिना ज्ञाननाशे भ्रांतिः स्यादेवेत्याशंक्य ज्ञाननाशाभावे दृष्टांतमाह—

६] दिने दिने स्वप्नसुप्त्योः अधीते विस्मृते अपि अयम् परेद्युः अनधीतः न स्यात् । तद्वत् विद्या न नश्यति ॥

७) यथा प्रत्यहमधीते वेदे स्वप्नसुषुप्त्याद्यवस्थायां विस्मृतेऽपि परेद्युरनधीतवेदत्वं नास्ति । तथा मृतिकालेऽपि तत्त्वानुसंधानाभावेऽपि ज्ञाननाशाभाव इत्यर्थः॥१०७॥

हुवा वा रोगग्रस्त होयके भूमिविषै लोटताहुवा वा अतिशयपीडासैं मूर्च्छाकूं प्राप्त हुवा । यह ज्ञानी प्राणनकूं त्यागै । [13]सर्वप्रकारसैं भ्रांति होवै नहीं ॥ १०६ ॥

॥९॥ मरणकालमें ज्ञानीकी विद्याके नाशका अभाव ॥

५ ननु प्राणके वियोगकालमैं मूर्च्छा–आँ[14]दिककरि ब्रह्माकारवृत्तिरूप ज्ञानके नाश हुये ज्ञानीकूं भ्रांति होवैगीहीं । यह आशंकाकरि तिसकालमैं ज्ञाननाशके अभावविषै दृष्टांतकूं कहैहैं:—

६] जैसैं दिनदिनविषै स्वप्न औ सुषुप्तिविषै अध्ययन किये वेदके विस्मृत हुये बी यह पुरुष अन्यदिनविषै अनधीत नहीं होवैहै । तैसैं ज्ञान । नाशकूं प्राप्त नहीं होवैहै ॥

७) जैसैं प्रतिदिनविषै पठन किये वेदके स्वप्नसुषुप्तिआदिकअवस्थाविषै विस्मरण हुये बी अन्यदिवसविषै वेदका अध्ययन किया नहीं ऐसैं होवै नहीं । तैसैं मरणकालमैं बी ब्रह्म औ आत्माकी एकतारूप तत्त्वके अनुसंधानरूप स्मरणके अभाव हुये बी ज्ञानके [15]नाशका अभाव है ॥ यह अर्थ है ॥ १०७ ॥

---

१३ "ब्रह्मैवाहं" करताहुवा वा "राम राम" करताहुवा वा पीडासैं व्याकुल हुवा वा "हाय हाय" करताहुवा वा रुदन करताहुवा औ काशीआदिकपवित्रदेशमैं वा मघाक्षेत्रआदिकअपवित्रदेशमैं । उत्तरायणादिउत्तमकालमैं वा दक्षिणायनादिनिकृष्टकालविषै यह ज्ञानी देहकूं त्यागै । तौ बी "मैं देहादिक हूं" वा "जीव हूं" औ "जगत् सत्य है" औ "ब्रह्मका औ मेरा भेद वास्तव है" औ "मैं जन्ममरणादिधर्मवान् हूं" इसरीतिकी भ्रांति ज्ञानीकूं सर्वथा होवै नहीं । किंतु सर्वथा ज्ञानी मुक्त है ॥ ज्ञानीके देहत्यागविषै कोई देशकालादिसंबंधी नियम नहीं है औ उपासक (योगी)के देहत्यागविषै नियम है । यह निष्कर्ष है ॥

१४ आदिशब्दकरि व्याकुलता वा सन्निपातआदिकका ग्रहण है ॥

१५ इहां यह रहस्य है:—यद्यपि "अहंब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूं) इस दृढनिश्चयरूप जो अपरोक्षब्रह्मनिष्ठा है। सो एकक्षणविषै उदय होवैहै औ दूसरेक्षणविषै स्थितिकूं पायके अविद्या औ ताके कार्यके बाधका प्रारंभ करैहै औ तृतीयक्षणमैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप बाध करैहै। ताही क्षणमैं कतकरेणुकी न्याईं वृत्तिज्ञानका बी मिथ्यात्वनिश्चयरूप वा त्रिकालअभावनिश्चयरूप बाध होवैहै ॥ याहीतैं ज्ञानी जीवन्मुक्त है ॥ * ॥ फेर जो ज्ञानीकूं जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदकी इच्छा होवै तौ ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्ति करै ॥ परंतु श्रुति ("तत्त्वमसि"आदि)प्रमाणकरि एकबेर नाश हुई जो अविद्या ताकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं अविद्याकी निवृत्तिअर्थ वृत्तिकी आवृत्तिका फेर विद्वान्‌कूं प्रयोजन नहीं है औ फेरिआवृत्तिकी विद्वान्‌कूं प्रेरकप्रमाणरूप विधि बी नहीं है औ मरणसमयमैं क्षण वा घटिका वा अधिककालपर्यंत मूर्च्छा बी होवैहै। तिस मूर्च्छाविषै ब्रह्माका-

टीकांक: ७०८ टिप्पणांक: ॐ	प्रमाणोत्पादिता विद्या प्रमाणं प्रबलं विना । न नश्यति न वेदांतात्प्रबलं मानमीक्ष्यते॥१०८॥ तस्माद्वेदांतसंसिद्धं सदद्वैतं न बाध्यते । अंतकालेऽप्यतो भूतविवेकान्निर्वृतिः स्थिता १०९ ॥ इति श्रीपंचदश्यां पंचमहाभूतविवेकः ॥ २ ॥	पंचमहाभूतविवेकः ॥२॥ श्लोकांक: १७३ १७४

८ ज्ञाननाशाभावमेवोपपादयति—

९] प्रमाणोत्पादिता विद्या प्रबलं प्रमाणं विना न नश्यति । वेदांतात् प्रबलं मानं न ईक्ष्यते ॥ १०८ ॥

१० उपपादितमर्थमुपसंहरति—

११] तस्मात् वेदांतसंसिद्धं सदद्वैतं अंतकाले अपि न बाध्यते अतः भूतविवेकात् निर्वृतिः स्थिता ॥१०९॥

इति श्रीमत्परहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्भारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिता महाभूतविवेकदीपिका समाप्ता ॥ २ ॥

८ ज्ञाननाशके अभावकूंहीं उपपादन करैहैं:—

९] "तत्त्वमसि"आदिकप्रमाणकरि उत्पन्न हुई जो विद्या कहिये ज्ञान । सो प्रबलप्रमाणसैं विना नाशकूं पावै नहीं औ उपनिषद्रूप वेदांततैं प्रबल औरप्रमाण नहीं देखियेहै ॥ १०८ ॥

॥६॥ पंचमहाभूतविवेकके फल मुक्तिकी सिद्धि ॥

१० उपपादन किये अर्थकी समाप्ति करैहैं:—

११] तातैं वेदांतरूप प्रमाणकरि सम्यक्‌सिद्ध भया जो सत्‌रूप अद्वैतब्रह्म । सो अंतकालविषै बी बाधकूं पावै नहीं। यातैं पंचभूतनके सत्‌सैं भेदज्ञानरूप विवेकतैं निर्वृति कहिये निरतिशयसुखकी प्राप्तिरूप मुक्ति निश्चित होवैहै ॥ १०९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यबापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्यपीतांबरशर्म विदुषा विरचिता पंचदश्याः पंचमहाभूतविवेकस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ २ ॥

रवृत्तिकी आवृत्ति (वारंवार करनै)का संभव बी नहीं है ॥*॥ औ आवरणहेतु अरु विक्षेपहेतुशक्तिवाली जो अविद्या है तामैं आवरणहेतुशक्तिका ज्ञानसमकालहीं नाश औ बाध दोनूं होवैहैं ॥ औ विक्षेपहेतु जो शक्ति है ताका कार्यप्रपंचसहित ज्ञानसमकाल बाध होवैहै । परंतु प्रारब्धके बलसैं नाश होवै नहीं औ जब प्रारब्धका भोगकरि अंत होवै तब विक्षेपहेतुशक्ति (लेशअज्ञान)का बी नाश होवैहै । परंतु ताकूं अविद्या होनैतैं विद्याके विना ताका नाश संभवै नहीं यातैं ताके नाशअर्थ ब्रह्मनिष्ठारूप विद्याकी अपेक्षा बी है तथापि मूर्च्छाकालमैं संस्काररूपकरि विद्याकी स्थिति होनैतैं ता विद्यारूप वृत्तिमैं आरूढ चेतनतैं तिस अविद्याके लेशका प्रपंच औ ताके ज्ञानसहित नाश होवैहै ॥ औ ताहि समयमैं काष्ठआरूढअग्निसैं अन्यकाष्ठ अरु तृणसहित तिस काष्ठके दाहकी न्यांई तिस विद्याके संस्कारका बी स्वविशिष्ट (संस्कारसहित) चेतनतैंहीं नाश होवैहै । यातैं ज्ञान हुये पीछे ज्ञानीकूं कर्त्तव्यका अभाव है ॥ औ विदेहमोक्षपर्य्यंत अनुसंधानके होते वा न होते ज्ञानका अभाव नहीं है किंतु विशेषरूपसैं वा सामान्यरूपसैं वा संस्काररूपसैं ज्ञानकी स्थिति है ॥ यातैं (अंक ६९७ विषै) उक्त अंतकालमैं बी ब्रह्मनिष्ठविषै स्थितिके संभवतैं जीवन्मुक्तज्ञानी विदेहमुक्तिकूं पावैहै । यह अर्थ बी सिद्ध भया ॥ इति ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ पंचकोशविवेकः ॥

॥ तृतीयप्रकरणम् ॥ ३ ॥

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः १७५	गुहाहितं ब्रह्म यत्तत्पंचकोशविवेकतः । बोद्धुं शक्यं ततः कोशपंचकं प्रविविच्यते ॥ १ ॥	टीकांकः ७१२ टिप्पणांकः ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ पंचकोशविवेकव्याख्या ॥३॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
पंचकोशविवेकस्य कुर्वे तत्त्वप्रकाशिकाम् ॥ १ ॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
पंचकोशविवेकस्य कुर्वे व्याख्यां समासतः ॥१॥

१२ तैत्तिरीयोपनिषत्तात्पर्यव्याख्यानरूपं पंचकोशविवेकाख्यं प्रकरणमारभमाण आचा-

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ पंचकोशविवेककी

तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ ३ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्त सर्वगुरुनकूं नमस्कारकरिके पंचदशीके पंचकोशविवेक नाम तृतीयप्रकरणकी नरभाषासैं तत्त्वप्रकाशिका । इस नामवाली व्याख्याकूं मैं करूंहूं ॥ १ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीमत्भारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दोनूंमुनीश्वरनकूं नमस्कारकरिके । पंचकोशविवेककी मैं संक्षेपकरिके व्याख्याकूं करूंहूं ॥ १ ॥

॥ ग्रंथके विषय (गुहामैं स्थित ब्रह्म) औ फलके कथनपूर्वक आरंभकी प्रतिज्ञा ॥

१२ यजुर्वेदगततैत्तिरीयउपनिषद्के तात्पर्यके व्याख्यानरूप पंचकोशविवेकनामक

* पंचकोशनका आत्मातैं विवेचन वा आत्माका पंचकोशनतैं विवेचन जिसविषै है सो ॥

टीकांक: ७१२ टिप्पणांक: ४१६	देहादभ्यंतरः प्राणः प्राणादभ्यंतरं मनः । ततः कर्त्ता ततो भोक्ता गुहा सेयं परंपरा ॥ २ ॥	पंचकोश-विवेकः॥३॥ श्लोकांक: १७६

यस्तत्र श्रोतृप्रवृत्तिसिद्धये सप्रयोजनमभिधेयं सूचयन् मुखतश्चिकीर्षितं ग्रंथं प्रतिजानीते—

१३] गुहाहितं यत् ब्रह्म तत् पंचकोशविवेकतः बोद्धुं शक्यं ततः कोशपंचकं प्रविविच्यते ॥

१४) "यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्" इति श्रुत्या गुहाहितत्वेनाभिहितं यद्ब्रह्म अस्ति । तत् गुहाशब्दवाच्यान्नमयादि कोशपंचकविवेकेन ज्ञातुं शक्यते । ततः तेषां कोशानां पंचकम् प्रकर्षेण प्रत्यगात्मनः सकाशाद्विभज्य प्रदर्श्यत इत्यर्थः १

१५ ननु केयं गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म कोशपंचकविवेकेनावबुध्यत इत्याशंक्य श्रुत्या गुहाशब्देन विवक्षितमर्थमाह—

१६] देहात् प्राणः अभ्यंतरः । प्राणात् मनः अभ्यंतरं । ततः कर्त्ता । ततः भोक्ता । सा इयं परंपरा गुहा ॥

पंचदशीके तृतीयप्रकरणकूं आरंभ करतेहुये । आचार्य्यश्रीविद्यारण्यस्वामी तिस प्रकरणविषै श्रोता जो अधिकारी ताकी प्रवृत्तिकी सिद्धि वास्ते इस प्रकरणरूप ग्रंथके प्रयोजन औ विषयकूं सूचन करतेहुये अपनैहीं मुखतैं प्रारंभ करनैकूं इच्छित ग्रंथकी प्रतिज्ञा करैहैं:—

१३] गुहाविषै स्थित जो ब्रह्म है सो जातैं पंचकोशनके विवेकतैं जाननैकूं शक्य है । तातैं पंचकोश विवेचन करियेहै ॥

१४) "प्रकर्षकरि परमव्योम जो अव्याकृतरूप आकाश है । तिसविषै विद्यमान जो पंचकोशरूप गुहा है तिसविषै स्थित ब्रह्मकूं जो पुरुष जानताहै । सो पुरुष ज्ञानस्वरूप ब्रह्मके साथि एकीभूत[१६] हुवा सर्वकामकूं[१७] भोगताहै कहिये पूर्णकाम होवैहै ॥" इस तैत्तिरीयश्रुतिकरि गुहाविषै स्थित होनैकरि कथन किया जो ब्रह्म है । सो ब्रह्म जातैं गुहाशब्दके वाच्यअर्थरूप जे पंचकोश हैं तिनके विवेकतैं जानि शकियेहै । तातैं तिन कोशनके पंचककूं अतिशयकरि प्रत्यगात्मा जो आंतरआत्मा तातैं विभागकरि दिखाइयेहैं ॥ यह अर्थ है ॥ १ ॥

॥ १ ॥ पंचकोश औ आत्माका विवेचन ॥ ७१५—७४७ ॥

॥ १ ॥ गुहाशब्दका भेदसहित अर्थ ॥ ७१५—७१७ ॥

१५ ननु कौन सो श्रुतिउक्त गुहा है । जा गुहामैं स्थित ब्रह्म । पंचकोशके विवेककरि जानियेहै ? यह आशंकाकरिके श्रुतिकरि गुहाशब्दके कहनैकूं इच्छित अर्थकूं कहैहैं:—

१६] देहतैं भीतर प्राण है औ प्राणतैं भीतर मन है औ तिस मनतैं भीतर कर्त्ता कहिये बुद्धि है औ तिस बुद्धितैं भीतर भोक्ता कहिये आनंदमय है ॥ सो यह परंपरा गुहा है कहिये आत्माकी आच्छादक कंदरा है ॥

[१६] महाकाशके साथि घटाकाशकी न्यांई एकरूप ॥

[१७] चक्रवर्तिराजासैं लेके ब्रह्मदेवपर्यंत विद्यमान सुखकूं ॥

पंचकोश-विवेकः॥३॥ श्लोकांकः १७७

१९ पितृभुक्तान्नजाद्वीर्याज्जातोऽन्नेनैव वर्धते । देहः सोऽन्नमयोऽनात्मा प्राक्चोर्ध्वं तदभावतः ३

टीकांकः ७१७ टिप्पणांकः ४१८

१७) देहात् अन्नमयात् प्राणः प्राणमयः अभ्यंतरः आंतरः । प्राणात् प्राणमयात् मनः मनोमयः अभ्यंतरः आंतरः । ततः मनोमयात् कर्त्ता विज्ञानमय आंतर इत्यनुपज्यते । ततः विज्ञानमयात् भोक्ता आनंदमयः सोऽपि पूर्ववदांतर । इत्यर्थः । सेयं अन्नमयाद्यानंदमयांतानां परंपरा गुहाशब्देनोच्यते । इत्यर्थः ॥ २ ॥

१८ इदानीमन्नमयस्य स्वरूपं तदनात्मत्वं च दर्शयति—

१९] पितृभुक्तान्नजात् वीर्यात् जातः अन्नेन एव वर्धते सः देहः अन्नमयः अनात्मा ॥

२०) पितृभुक्तान्नजात् मातृपितृभुक्ताद्यवव्रीह्यादिलक्षणादन्नाज्जायमानं यद्वीर्यमस्ति ।

१७) देह जो अन्नमयकोश है तिसतैं प्राणमयकोश आंतर है ॥ प्राणमयतैं मनोमयकोश आंतर है ॥ तिस मनोमयतैं कर्त्ता जो विज्ञानमयकोश सो आंतर है ॥ तिस विज्ञानमयतैं भोक्ता जो आनंदमयकोश सो बी पूर्वकी न्याईं आंतर है ॥ सो यह अन्नमयतैं लेके आनंदमयपर्य्यंत पंचकोशनकी परंपरा कहिये क्रमके अनुसार माला गुहा–शब्दकरि कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ २ ॥

॥ २ ॥ पंचकोशनका स्वरूप औ तिनकी अनात्मता ॥ ७१८–७४७ ॥

॥ १ ॥ अन्नमयकोशका स्वरूप औ अनात्मपना ॥

१८ अब अन्नमयकोशके स्वरूपकूं औ तिसके अनात्मपनैकूं दिखावैहैं:—

१९] पितौंकरि भुक्तअन्नतैं उपजे वीर्यतैं जो उत्पन्न होवैहै औ अन्नसैंहीं वृद्धिकूं पावैहै ऐसा जो देह है सो अन्नमयकोश है। सो अन्नमय आत्मा नहीं है॥

२०) माता औ पितानै खाया जो यव–

१८ जैसैं पर्वतअवच्छिन्नआकाशविषै विद्यमान पांचकिंवाडसहित द्वारयुक्तगुहा होवै तिसविषै अतिशयतेजोरूप बाहिर प्रकाशमानतेजतत्त्वकी अवस्थाविशेष मणिमयीभगवत्प्रतिमा स्थित होवै । तिस प्रतिमाकी आच्छादक जैसैं वह गुहा है । तैसैं आकाशादिकसर्वकूं अवकाशदेनैहारे अव्याकृत (माया)रूप आकाशविषै विद्यमान जे पांचकोश हैं । तिनविषै तिस मायातैं बी परप्रकाशमान ब्रह्महीं प्रत्यगात्मा (पंचकोशके साक्षी)रूपसैं स्थित है । तिसके पंचकोश आच्छादक हैं । यातैं वे गुहा कहियेहैं ॥ औ तिस मणिमयप्रतिमाके सेवकके अनुग्रहसैं किल्ली (चावी)द्वारा पांचकिंवाडके खोलनैकरि प्रतिमाका दर्शन (ज्ञान) होवैहै । तैसैं ब्रह्मनिष्ठगुरुके अनुग्रहसैं पंचकोशके विवेकरूप किल्लीद्वारा पांचकोशकृतआवरणरूप किंवाडके खोलनैकरि प्रत्यगात्मस्वरूप ब्रह्मका दर्शन (ज्ञान) होवैहै ॥ यातैं इन कोशनका विवेक कियाचाहिये ॥

१९ इहां पिताशब्दका जो कथन है सो परलोकतैं भ्रष्टजीवका धान्य (अन्न)विषै प्रवेशद्वारा प्रथम पिताके शरीरमैं प्रवेश होवैहै । इस अभिप्रायसैं है । परंतु शरीरका संभव तौ पितामाता दोनूंके वीर्यतैं है । यातैं टीकाकारनैं दोनूंका ग्रहण कियाहै ॥

टीकांक: ७२१ टिप्पणांक: ४२०

पूर्वजन्मन्यसन्नेतज्जन्म संपादयेत्कथम् ।
भाविजन्मन्यसत्कर्म न भुंजीतेह संचितम् ॥४॥

पंचकोश-विवेक: ॥३॥ श्लोकांक: १७८

तस्मात् वीर्यात् यो देहो जातः । यश्च जननानंतरं क्षीरादि अन्नेनैव वर्धते । सः देहः अन्नमयः अन्नस्य विकारः । सः आत्मा न भवति ॥

२१ कुत इत्यत आह—

२२] प्राक् ऊर्ध्वं च तदभावतः ॥

२३) जन्मनः प्राक् मरणात् ऊर्ध्वं च तदभावतः तस्य देहस्य अभावादित्यर्थः । विवादाध्यासितो देह आत्मा न भवति कार्यत्वात् घटादिवदिति भावः ॥ ३ ॥

२४ हेतुरस्तु साध्यं माभूद्विपक्षे बाधकाभावादप्रयोजकोऽयं हेतुरित्याशंक्याकृताभ्यागमकृतविप्रणाशाख्यबाधकसद्भावान्मैवमिति परिहरति—

तंडुलआदिरूप अन्न है । तिस अन्नतैं उत्पन्न होता जो रज औ रेतरूप वीर्य है तिस वीर्यतैं जो देह उत्पन्न भयाहै औ जन्मके अनंतर जो देह क्षीरआदिकअन्नकरिहीं बढताहै सो देह अन्नमय कहिये अन्नका विकार है ॥ सो अन्नमयकोशरूप देह आत्मा नहीं है ॥

२१ सो अन्नमय काहेतैं आत्मा नहीं है ? तहां कहैहैं:—

२२] पूर्व औ पश्चात् तिसके अभावतैं ॥

२३) जन्मतैं पूर्व औ मरणतैं पीछे तिस देहके अभावतैं ॥ यह अर्थ है ॥ इहां यह अनुमान है:—विवादका विषय जो देह है सो आत्मा नहीं होवैहै कार्य होनेतैं । कहिये उत्पत्ति अरु नाशवान् होनेकरि अनित्य होनेतैं घटादिककार्यकी न्याई ॥ यह भाव है ॥ ३ ॥

२४ ननु पूर्वश्लोकसैं सूचन किये अनुमानमैं देहरूप पक्षविषै "कार्य होनेतैं" यह जो हेतु कह्या सो होहु औ "देह आत्मा नहीं है" यह सांध्य कह्या सो बनै नहीं औ "देहहीं आत्मा है" इस विपरीतपक्षरूप विपक्षविषै दोषरूप बाधकके अभावतैं यह कार्यतारूप हेतु निष्प्रयोजन है ॥ यह चार्वाकमतके अनुसार आशंकाकरिके अकृताभ्यागम औ कृतविप्रनाश इस नामवाले दोषके सद्भावतैं साध्य जो "देहकी अनात्मता" । सो बनै नहीं ऐसैं नहीं है ॥ इसरीतिसैं चार्वाकमतकी शंकाका सिद्धांती परिहार करैहैं:—

२० माताका रज (रक्त)रूप वीर्य है । तिसतैं रक्त । मांस अरु त्वचा होवैहैं औ पिताके रेतरूप वीर्य तैं हाड । नाडी औ मज्जा होवैहै ॥

२१ अन्नके भक्षणतैं प्रसूतिके स्तनमैं क्षीर होताहै । यातैं क्षीर अन्न है औ बृहदारण्यकउपनिषद्विषै सप्ताचन्नाह्मण नामक प्रकरणमैं क्षीरकी अन्नरूपता प्रसिद्ध है ॥

२२ प्राक्अभाव अरु प्रध्वंसअभावके होनेतैं ॥

२३ जिसवस्तुविषै संदेह (अनेककोटिवाला ज्ञान) होवै सो वस्तु विवादका विषय कहियेहै ॥ जातैं यह देह चार्वाक औ लौकिकजनआदिककरि आत्मा मान्या है । यातैं संशययुक्त होनेतैं विवादका विषय है ॥ तिसका युक्ति (अनुमानप्रमाण)रूप मध्यस्थकरि अनात्मभाव निश्चित करैहैं ॥

२४ अनुमितिप्रमाका विषय साध्य है ॥

२५ नहीं किये कर्मके फलका भोग अकृताभ्यागम है ॥

२६ किये कर्मके फलका नाश कृतविप्रनाश है ॥

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्रोकांकः १७९

पूर्णो देहे बलं यच्छन्नक्षाणां यः प्रवर्तकः ।
वायुः प्राणमयो नासावात्मा चैतन्यवर्जनात् ॥५॥

टीकांकः ७२५ टिप्पणांकः ४२७

२५] पूर्वजन्मनि असत् एतत् जन्म कथं संपादयेत् । भाविजन्मनि असत् इह संचितं कर्म न भुंजीत ॥

२६) एतद्देहरूपस्यात्मनः पूर्वस्मिन् जन्मन्यसत्वादेतज्जन्महेत्वदृष्टासंभवेऽप्यस्य जन्मनोऽप्यंगीक्रियमाणत्वादकृताभ्यागमः प्रसज्येत । तथा भाविजन्मनि अप्यस्य देहरूपस्यात्मनो असत्वात् अभावात् इह अनुष्ठितयोः पुण्यपापयोः फलभोक्तुरभावेन भोगमंतरेणापि कर्मक्षयः प्रसज्येतायं कृतविप्रणाशः । एवं कृतनाशाकृताभ्यागमरूपबाधकसद्भावादात्मनः कार्यत्वं नांगीकर्तव्यमिति भावः ॥४॥

२७ एवमन्नमयकोशस्यानात्मत्वं प्रदर्श्य प्राणमयकोशस्य स्वरूपं तदनात्मत्वं च दर्शयति (पूर्ण इति)—

२८] यः देहे पूर्णः बलं यच्छन् अक्षाणां प्रवर्तकः वायुः प्राणमयः । असौ आत्मा न ॥

२९) यः वायुः देहे पूर्णः पादादिमस्तकपर्यंतं व्याप्तः सन् बलं यच्छन् व्यानरूपेण

२५] देहरूप आत्मा पूर्वजन्मविषै असत् कहिये अविद्यमान है सो इस जन्मकूं कैसें संपादन करैगा? औ भावि कहिये आगामिजन्मविषै असत् कहिये अविद्यमान जो देहरूप आत्मा है सो इस वर्त्तमानजन्मविषै संपादन किये कर्मकूं नहीं भोगेगा ॥

२६) इस देहरूप आत्माकूं पूर्वजन्मविषै असत् होनैतें औ इस देहके निमित्तकारण पुण्यपापरूप अदृष्टके असंभवके हुये वी । इस वर्त्तमानजन्मके वी अंगीकार करनैतें अकृताभ्यागमरूप दोष प्राप्त होवैहै ॥ तैसें भाविजन्मविषै कहिये मरणके पीछे वी इस देहरूप आत्माके असद्भावतें इस वर्त्तमानजन्मविषै आचरे जे पुण्यपाप हैं । तिन दोनूंके भोक्ता इस देहरूप आत्माके अभावतें भोगसें विना वी पुण्यपापरूप कर्मका नाश होवैगा ॥ यह भोगसें विना किये कर्मका नाशहीं कृतनाशरूप दोष है ॥ ऐसें कृतनाश औ अकृताभ्यागमरूप दोषके सद्भावतें आत्माका कार्यभाव कहिये देहरूपसें अन्नका विकारभाव अंगीकार करनैकूं योग्य नहीं है । किंतु स्थूलदेहतें भिन्नहीं आत्मा अंगीकार करना योग्य है ॥ यह भाव है ॥४॥

॥ २ ॥ प्राणमयकोशका स्वरूप औ अनात्मपना ॥

२७ ऐसें अन्नमयकोशके अनात्मपनैकूं दिखायके अब प्राणमयकोशके स्वरूपकूं औ तिसके अनात्मपनैकूं दिखावैहैं:—

२८] जो वायु देहविषै पूर्ण हुवा बलकूं देताहुवा इंद्रियनका प्रवर्त्तक है । सो देहके भीतरवर्ती वायु प्राणमय है । यह प्राणमयकोश आत्मा नहीं है ॥

२९) जो वायु देहविषै पादसें आदिलेके मस्तकपर्यंत पूर्ण हुवा व्यानरूपकरि सामर्थ्यरूप बलकूं देताहुवा चक्षुआदिकइंद्रियनका

२७ सारे शरीरमें वर्त्ती वायु व्यानवायु है ॥

टीकांक: ७३० टिप्पणांक: ४२८	[३६]अहंतां ममतां देहे गेहादौ च करोति यः । कामाद्यवस्थया भ्रांतो नासावात्मा मनोमयः ॥६॥ [३७]लीना सुप्तौ वपुर्बोधे व्याप्नुयादानखाग्रगा । चिच्छायोपेतधीर्नात्मा विज्ञानमयशब्दभाक् ॥७॥	पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक: १८० १८१

सामर्थ्यं प्रयच्छन् अक्षाणां चक्षुरादीनामिंद्रियाणां प्रवर्तकः प्रेरको वर्तते । सः वायुः प्राणमयः इत्युच्यते । असौ अपि आत्मा न भवति ॥

३० तत्र हेतुमाह—

३१] चैतन्यवर्जनात् ॥

३२) विवादाध्यासितः प्राण आत्मा न भवति जडत्वाद्घटादिवदिति भावः ॥ ५ ॥

३३ इदानीं मनोमयस्वरूपदर्शनपूर्वकं तस्याप्यनात्मत्वमाह (अहंतामिति)—

३४] देहे अहंतां गेहादौ ममतां च यः करोति कामाद्यवस्थया भ्रांतः मनोमयः । असौ आत्मा न ॥

३५) देहेऽहंतां अहंभावं । गृहादौ ममतां मदीयत्वाभिमानं च यः करोति । असौ मनोमयः इति । स आत्मा न भवति ॥ कुत इत्यत आह । कामादीति हेतुगर्भं विशेषणं कामक्रोधादिवृत्तिमत्त्वेनानियतस्वभावत्वादित्यर्थः । मनोमयः आत्मा न भवति विकारित्वाद्देहादिवदिति भावः ॥ ६ ॥

३६ अनंतरं कर्तृशब्दवाच्यस्य विज्ञानमयस्य

प्रवर्त्तक कहिये प्रेरक वर्त्तताहै । सो वायु प्राणमय ऐसैं कहियेहै ॥ यह प्राणमय बी आत्मा नहीं होवैहै ॥

३० तिस प्राणमयकी अनात्मताविषै हेतुकूं कहैहैं:—

३१] चैतन्यके अभावतैं ॥

३२) विवादका विषय जो प्राणमय है । सो आत्मा नहीं होवैहै । जड होनैतैं घटादिकनकी न्याई ॥ यह भाव है ॥ ५ ॥

॥ ३ ॥ मनोमयकोशका स्वरूप औ अनात्मपना ॥

३३ अब मनोमयकोशके स्वरूपके दिखावनैपूर्वक तिसके बी अनात्मपनैकूं कहैहैं:—

३४] जो देहविषै अहंताकूं औ गृहादिकविषै ममताकूं करताहै औ कामादिकअवस्थाकरि भ्रांत कहिये विकारी है सो मनोमय है । सो आत्मा नहीं है ॥

३५) देहविषै अहंभावरूप अहंताकूं औ गृहादिकविषै "यह मेरे हैं" इस अभिमानरूप ममताकूं जो करताहै सो मन मनोमयकोश है । सो मनोमयकोश आत्मा नहीं होवैहै ॥ काहेतैं कामक्रोधआदिकवृत्तिवाला होनैकरि नियमरहित स्वभाववाला होनैतैं ॥ यह अर्थ है ॥ इहां यह अनुमान है:— मनोमय आत्मा नहीं है विकारी होनैतैं देहकी न्याईं ॥ यह भाव है ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ विज्ञानमयकोशका स्वरूप औ अनात्मपना ॥

३६ अब कर्त्ताशब्दका वाच्यअर्थ जो

---

[२८] पूर्वअवस्था (वृत्ति)कूं त्यागकरिके अन्यअवस्था (वृत्ति)का ग्रहण करनैहारा होनैतैं विकारी ॥

[२९] जैसैं देह बाल्यआदिकअवस्थावाला होनैकरि विकारी होनैतैं आत्मा नहीं है । तैसैं यह मन बी है ॥

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः १८२

कर्तृत्वकरणत्वाभ्यां विक्रियेतांतरिंद्रियम् ।
विज्ञानमनसी अंतर्बहिश्चैते परस्परम् ॥ ८ ॥

टीकांकः ७३७ टिप्पणांकः ४३०

स्वरूपं प्रदर्शयन् तदनात्मत्वं दर्शयति (लीनेति)—

३७] **चिच्छायोपेतधीः सुप्तौ लीना बोधे आनखाग्रगा वपुः व्याप्नुयात् विज्ञानमयशब्दभाक् । आत्मा न ॥**

३८) या चिच्छायोपेता धीः चिदाभासयुक्ता बुद्धिः । सुप्तौ सुषुप्तिकाले । लीना विलीना सती । बोधे जागरकाले । आनखाग्रगा नखाग्रपर्यंतं वर्तमाना सती । वपुः शरीरं व्याप्नुयात् संव्याप्य वर्तते । सा विज्ञानमयशब्दभाक् विज्ञानमयशब्देनोच्यमानाऽसावपि आत्मा न भवति विलयाद्यवस्थावत्वात् घटादिवदित्यर्थः ॥ ७ ॥

३९ ननु मनोबुद्ध्योरन्तःकरणत्वाविशेषात् मनोमयविज्ञानमयरूपेण कोशद्वयकल्पनानुपपन्नेत्याशंक्य कर्तृत्वकरणत्वाभ्यां भेदसद्भावाद्घटत एव मनोमयत्वादिभेद इत्याह (कर्तृत्वेति)—

४०] **अंतरिंद्रियम् कर्तृत्वकरणत्वाभ्यां विक्रियेत एते विज्ञानमनसी । एते च परस्परं अंतः बहिः ॥**

विज्ञानमयकोश है तिसके स्वरूपकूं दिखावते हुये । तिसके अनात्मपनेकूं दिखावैहैं:—

३७] जो **चेतनकी छायाकरि युक्त बुद्धि सुषुप्तिविषै लीन होवैहै औ जाग्रत्विषै नखाग्रपर्यंत देहकूं व्याप्त होवैहै । सो बुद्धि विज्ञानमयशब्दकी वाच्य है । सो बी आत्मा नहीं है ॥**

३८) जो चेतनके प्रतिबिंबरूप चिदाभासकरि युक्त बुद्धि सुषुप्तिविषै विलीन हुयी वर्त्तती है औ जागरणकालविषै नखके अग्रभागपर्यंत वर्त्तमान हुयी शरीरकूं व्यापिके वर्त्ततीहै । सो बुद्धि विज्ञानमयशब्दकरि कथन करियेहै ॥ यह विज्ञानमयकोश बी आत्मा नहीं होवैहै विलयआदिकअवस्थावाला होनैतें घटादिककी न्याई ॥ यह अर्थ है ॥ ७ ॥

॥ ९ ॥ मनोमय औ विज्ञानमयका भेद ॥

३९ ननु मन औ बुद्धिके अंतःकरणपनैके अविशेषतैं एकहीं अंतःकरणविषै मनोमय औ विज्ञानमयरूपकरि दोकल्पना बनै नहीं ॥ यह आशंकाकरि बुद्धि औ मनकूं क्रमतैं कर्त्ताभावकरि[30] औ करणभावकरि[31] एकहीं[32] अंतःकरणविषै भेदके सद्भावतैं मनोमयआदिकभेद घटताहीं है । यह कहैहैं ॥

४०] जो **अंतरइंद्रिय** कहिये अंतःकरण **कर्त्ताभावकरि औ करणभावकरि विकारकूं पावताहै । यह** कर्त्ता औ करण **विज्ञान औ मन** कहियेहैं ॥ ये विज्ञान अरु मन दोनूं **परस्पर अंतर औ बाहिर व**र्त्ततेहैं ॥

---

३० क्रियाकी आश्रयताकरि ॥

३१ क्रियाकी साधनताकरि ॥

३२ जैसें एकहीं ब्राह्मण पाठन (पाठकरनै)रूप क्रियाकरि पाठक औ पाचन (रसोई)रूप क्रियाकरि पाचक कहियेहै । तैसें एकही अंतःकरण । कर्त्ताभावकरि बुद्धि औ करणभावकरि मन कहियेहै ॥

टीकांक: ७४१ टिप्पणांक: ४३३	४३ काचिदंतर्मुखा वृत्तिरानंदप्रतिबिंबभाक् । पुण्यभोगे भोगशांतौ निद्रारूपेण लीयते ॥ ९ ॥ ४५ कादाचित्कत्वतो नात्मा स्यादानंदमयोऽप्ययम् । ४६ बिंबभूतो य आनंद आत्माऽसौ सर्वदा स्थितेः १०	पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक: १८३ १८४

४१) अंतरिंद्रियम् अंतःकरणं । कर्तृत्वकरणत्वाभ्यां कर्तृरूपेण करणरूपेण च विक्रियेत परिणमत इत्यर्थः ॥ एते कर्तृकरणे विज्ञानमनसी विज्ञानमनःशब्दवाच्ये भवतः । एते च परस्परं अंतर्बहिर्भावेन वर्तेते । अतः कोशद्वयमुपपद्यते इत्यर्थः ॥ ८ ॥

४२ इदानीं भोक्तृशब्दवाच्यस्यानंदमयस्यानात्मत्वं दर्शयितुं तस्य च स्वरूपमाह (काचिदिति)—

४३] पुण्यभोगे काचित् वृत्तिः अंतर्मुखा आनंदप्रतिबिंबभाक् । भोगशांतौ निद्रारूपेण लीयते ॥

४४) पुण्यभोगे पुण्यकर्मफलानुभवकाले काचिद्वृत्तिरंतर्मुखा सती आनंदप्रतिबिंबभाक् आत्मस्वरूपस्यानंदस्य प्रतिबिंबं भजते । सैव भोगशांतौ पुण्यकर्मफलभोगोपरमे सति निद्रारूपेण लीयते विलीना भवति । सा वृत्तिरानंदमय इत्यभिप्रायः ॥९॥

४५ तस्यानात्मत्वमाह (कादाचित्कत्वत इति)—

४१) अंतरइंद्रिय जो अंतःकरण सो कर्त्तारूपकरि औ करणरूपकरि विकाररूप जो परिणाम ताकूं पावैहै ॥ यह अर्थ है ॥ यह कर्त्ता औ करण विज्ञान कहिये बुद्धि अरु मन है । कहिये विज्ञान औ मनःशब्दके वाच्य निश्चयरूप वृत्ति औ संशयरूप वृत्ति होवैहैं ॥ ये बुद्धि औ मन परस्पर[३३] अंतर औ बाहिर वर्त्तेहैं यातैं एकहीं अंतःकरणविषै दोकोशनकी कल्पना बनैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ८ ॥

॥ ६ ॥ आनंदमयकोशका स्वरूप ॥

४२ अब भोक्ताशब्दके वाच्यअर्थ आनंमयकोशके अनात्मपनैके दिखावनैकूं तिस आनंदमयके स्वरूप कहिये आकारकूं कहैहैं:—

४३] पुण्यके भोगकालविषै कोईक वृत्ति अंतर्मुख हुई आनंदके प्रतिबिंबकूं भजतीहै औ भोगकी शांतिके हुये निद्रारूपकरि लीन होवैहै ॥

४४) पुण्यकर्मके सुखरूप फलके अनुभवकालविषै कोइक कालमैं बुद्धिकी वृत्ति अंतर्मुख कहिये एकाग्र हुई आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं भजतीहै । सोई वृत्ति पुण्यकर्मके फलके अनुभवरूप भोगके निवृत्तिके हुये निद्रारूपसैं विलीन कहिये संस्काररूप होवैहै । सो वृत्ति आनंदमयकोश है ॥ यह अभिप्राय है ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ आनंदमयकोशका अनात्मपना ॥

४५ तिस आनंदमयके अनात्मपनैकूं कहैहैं:—

३३ बाहीरवृत्ति मन है । तिसकी अपेक्षाकरि बुद्धि आंतर है औ आंतरवृत्ति बुद्धि है । तिसकी अपेक्षाकरि मन बाहिर है ॥

४६] अयम् आनंदमयः अपि कादाचित्कत्वतः आत्मा न स्यात् ॥

४७) अयमानंदमयोऽपि कादाचित्कत्वादात्मा न स्यात्। अभ्रादिपदार्थवदित्यर्थः ॥

४८ ननु विद्यमानानामानंदमयादीनां सर्वेपामात्मत्वनिरासे नैरात्म्यं प्रसज्येतेत्याशंक्याह—

४९] विंवभूतः यः आनंदः असौ आत्मा ॥

५०) बुद्ध्यादौ प्रतिविंवतयाऽवस्थितस्य प्रियादिशब्दवाच्यस्य आनंदमयस्य विंवभूतः कारणभूतः यः आनंदः असौ एव आत्मा भवति ॥

५१ कुत इत्यत आह—

५२] सर्वदा स्थितेः ॥

५३) नित्यत्वादित्यर्थः ॥ विवादाध्यासित आनंद आत्मा भवितुमर्हति नित्यत्वात्। य आत्मा न भवति नासौ नित्यो यथा देहादिः। गगनादेरुत्पत्तिमत्त्वेनानित्यत्वान्नानैकांतिकतेति भावः ॥ १० ॥

४६] यह आनंदमय वी आत्मा नहीं है कादाचित्क होनैतैं ॥

४७) यह आनंदमय वी पुण्यभोग वा निद्रारूप किसी कालविषै स्थित होनैतैं आत्मा नहीं है वादलआदिकपदार्थनकी न्यांई ॥ यह अर्थ है ॥

॥ २ ॥ आत्माका स्वरूप ॥ ७४८–८८३ ॥

॥ १ ॥ आत्माकी आनंदरूपता ॥ ७४८–७५३ ॥

४८ ननु विद्यमान जे आनंदमयादिकपंचकोश हैं तिन सर्वके आत्मभावके निपेध कियेहुये शून्यभाव प्राप्त होवैहै। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४९] जो विंवभूत आनंद है सो आत्मा है ॥

५०) बुद्धिआदिकविषै प्रतिविंव होनैकरि स्थित प्रियआदिकशब्दनका वाच्य जो आनंदमय है तिसका विंवभूत कहिये कारणरूप जो आनंद है। यह आनंदहीं आत्मा होवैहै ॥

५१ ननु काहेतैं सो विंवरूप आनंद आत्मा है? तहां कहैहैं:—

५२] सर्वदा स्थित होनैतैं ॥

५३) सर्वदा कहिये सर्वकालविषै विद्यमान होनैतैं कहिये नित्य होनैतैं सो विंवरूप आनंद आत्मा है ॥ यह अर्थ है ॥ इहां यह अनुमान है:–विवादका विषय हुवा जो आनंद है सो आत्मा होनैकूं योग्य है नित्य होनैतैं ॥ जो आत्मा नहीं है सो नित्य वी नहीं है। जैसैं देहादिक हैं ॥ औ आकाशादिककूं उत्पत्तिमान् होनैकरि अनित्य होनैतैं विंवरूप आनंदकी आत्मताके साधनेमैं जो नित्यतारूप हेतु कह्या। तिसका व्यभिचारीपना कहिये आकाशादिकमैं वी वर्त्तनरूप अतिव्याप्ति नहीं है ॥ यह भाव है ॥ १० ॥

टीकांकः ७५४ टिप्पणांकः ४३४ पंचकोशविवेकः ॥३॥ श्लोकांकः

ॐ नैनु देहमुपक्रम्य निद्रानंदांतवस्तुषु ।
माभूदात्मत्वमन्यस्तु न कश्चिदनुभूयते ॥ ११ ॥ १८५

ॐ बाढं निद्रादयः सर्वेऽनुभूयंते न चेतरः ।
तथाप्येतेऽनुभूयंते येन तं को निवारयेत् ॥ १२ ॥ १८६

५४ चोदयति—

५५] ननु देहम् उपक्रम्य निद्रानंदांतवस्तुषु आत्मत्वं माभूत् । अन्यः तु कश्चित् न अनुभूयते ॥

५६) अन्नमयाद्यानंदमयांतानां कोशानामुक्तैर्हेतुभिः आत्मत्वं न घटते चेन्मा घटिष्ट अन्यस्तु आत्माऽनुपलभ्यमानत्वात् न एव संभवतीति ॥ ११ ॥

ॐ५६ परिहरति (बाढमिति)—

५७] निद्रादयः सर्वे अनुभूयंते च इतरः न । बाढम् ॥

५८) अत्र निद्राशब्देन निद्रानंदो लक्ष्यते । निद्रादयः देहांता उपलभ्यंते अन्यो नानुभूयते इति यदुक्तं तत्सत्यम् ॥

५९ कथं तर्हि तदतिरिक्तस्यात्मनोऽगीकार इत्यत आह—

॥ २ ॥ आत्माकी ज्ञानरूपता ॥ ७५४–८०३ ॥

॥ १ ॥ आत्माके अभावमैं वादीकी शंका ॥

५४ मूलविषै वादी शंका करैहै:—

५५] ननु । अन्नमयसैं लेके आनंदमयपर्य्यंत जे वस्तु हैं । तिनविषै आत्मभाव मति होहु । परंतु तिम पंचकोशनतैं अन्य आत्मा कोईबी अनुभव नहीं करियेहै ॥

५६) अन्नमयसैं आदिलेके आनंदमयपर्य्यंत जे कोश हैं तिनका कथन किये हेतुनसैं आत्मभाव नहीं घटताहै तौ मत घटो । परंतु इन कोशनतैं अन्य आत्मा अप्रतीत होनैतैं नहीं संभवेहै ॥ ११ ॥

॥ २ ॥ श्लोक ११ उक्त शंकाके प्रति सिद्धांतीका उत्तर ॥

ॐ५६ अब वादीकी शंकाकूं अनुवादपूर्वक सिद्धांती परिहार करैहैं:—

५७] आनंदमयआदिकसर्वकोश अनुभवके विषय होवैहैं औ तिनतैं भिन्न आत्मा अनुभूत नहीं होवैहै । यह तेरा कथन सत्य है ॥

५८) इहां मूलश्लोकमैं जो निद्रापद है । तिसकरि निद्रागतआनंद लक्षणासैं जानियेहै ॥ यातैं निद्रा जो आनंदमय तिससैं आदिलेके देह जो अन्नमय तिसपर्यंत जे पंचकोश हैं वे अनुभव करियेहैं । कहिये अन्यकरि देखियेहैं ॥ हे वादी ! यह जो तैंनैं कह्या सो सत्य है ॥

५९ तब तिन कोशनतैं भिन्नआत्माका अंगीकार कैसैं करियेहै ? तहां कहैहैं:—

---

३४ अंक ७२२ विषै "कार्य होनैतैं" औ अंक ७३१ विषै "जड होनैतैं" औ अंक ७३४ विषै "विकारी होनैतैं" औ अंक ७३७ विषै "विलयआदिकअवस्थावाला होनैतैं" औ अंक ७४६ विषै "कोइककालविषै स्थित होनैतैं" इन कथन किये हेतुनकरि क्रमतैं अन्नमयआदिक एकएकको आत्मता नहीं बनतीहै ॥

३५ जहां पूर्वपक्ष दृढ होवै । तहां बाढ (सत्य) ऐसैं कहियेहै ॥

पंचकोशविवेकः॥३॥ श्लोकांकः १८७	६३ स्वयमेवानुभूतित्वाद्विद्यते नानुभाव्यता । ६७ ज्ञातृज्ञानांतराभावादज्ञेयो ६९ न त्वसत्तया ॥ १३ ॥	टीकांकः ७६० टिप्पणांकः ४३६

६०] तथापि येन एते अनुभूयंते तं कः निवारयेत् ॥

६१) अन्यस्यानुपलभ्यमानत्वेऽपि यद्बलादेतेषां आनंदमयादीनामुपलभ्यमानता भवति सोऽनुभवः कथं नांगीक्रियत इत्यर्थः ॥ १२ ॥

६२ ननूक्तेभ्योऽन्य आत्मा यदि विद्यते तर्ह्युपलभ्येत नोपलभ्यते अतो नास्तीत्याशंक्याह—

६३] स्वयम् एव अनुभूतित्वात् अनुभाव्यता न विद्यते ॥

६४) आनंदमयादीनां साक्षिणोऽनुभवरूपत्वात् एवानुभाव्यत्वं न अस्तीति ॥

६५ ननु अनुभवरूपत्वेऽपि अनुभाव्यत्वं कुतो न स्यादित्याशंक्याह—

६६] ज्ञातृज्ञानांतराभावात् अज्ञेयः ॥

६७) ज्ञाता च ज्ञानं च ज्ञातृज्ञाने अन्ये ज्ञातृज्ञाने ज्ञातृज्ञानांतरे तयोः अभावः तस्मात् । अज्ञेयः ज्ञानविषयो न भवतीति ॥

६८ ज्ञात्राद्यभावाद्वा न ज्ञायते स्वस्यैवासत्त्वाद्वा किमत्र निगमने कारणमित्यत आह (न त्वसत्त्वयेति)—

६०] तथापि जिस अनुभवकरि ये पंचकोश अनुभव करियेहैं । तिस अनुभवकूं कौन निवारण करैगा? कोइबी करी शके नहीं ॥

६१) पांचकोशनतें अन्यकूं प्रतीत नहीं होते बी जिसके बलतें इन आनंदमयादिककोशनकी प्रतीति होवैहै । सो अनुभव तेरेकरि कैसें नहीं अंगीकार करियेहै? सो अनुभवआत्मा अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ यह अर्थ है ॥ १२ ॥

॥ ३ ॥ आत्माकूं ज्ञानकी अविषयता ॥

६२ ननु कथन किये कोशनतें अन्य आत्मा जो होवै । तौ अनुभूत कहिये प्रतीत हुयाचाहिये ॥ जातें अनुभूत नहीं होवैहै । यातें नहीं है । यह आशंकाकरिके कहैहैंः—

६३] आपहीं अनुभूतिरूप कहिये निजज्ञानरूप होनैतें आत्माकूं अनुभाव्यता नहीं है ॥

६४) आनंदमयआदिकनके साक्षी आत्माकूं अनुभवरूप होनेतैंहीं तिस आत्माकूं अनुभवकी विषयता नहीं है ॥

६५ ननु आत्माकूं अनुभवरूप होते बी अनुभवकी विषयता कहिये ज्ञेयता किस कारणतें नहीं है? यह आशंकाकरि कहैहैंः—

६६] ज्ञाता औ ज्ञानके अभावतैं आत्मा अज्ञेय है ॥

६७) जातैं आत्मातैं अन्यज्ञाता औ ज्ञानका अभाव है । तातैं आत्मा अज्ञेय कहिये ज्ञानका अविषय होवैहै ॥

६८ ननु आत्मा आपतैं अन्यज्ञाता औ ज्ञानके अभावतैं नहीं जानियेहै । वा आपकेहीं अभावतैं नहीं जानियेहै? इहां इन दोपक्षनमैं एकपक्षके निश्चय करनैरूप निर्गमनविषै कौंन युक्ति कारण है? तहां कहैहैंः—

३६ सिद्धांत (निर्णीतअर्थ)का वाक्य निगमन है ॥ न्यायशास्त्रमैं प्रतिज्ञा । हेतु । उदाहरण । उपनय औ निगमन ऐसैं कहेहैं । तिनमैं अंतका निगमन है ॥ "तस्मात् तथा (तातैं तैसैं है)" यह निगमनका आकार है ॥

टीकांक: ७६९ टिप्पणांक: ४३७	माधुर्यादिस्वभावानामन्यत्र स्वगुणार्पिणाम् । स्वस्मिंस्तदर्पणापेक्षा नो न चास्त्यन्यदर्पकम् १४	पंचकोश-विवेक: ॥३॥ श्लोकांक: १८८

६९] असत्तया तु न ॥

७०) निद्रानंदादिसाक्षित्वेनासत्त्वस्य पूर्वमेव निराकृतत्वादिति भावः ॥ १३ ॥

७१ अनुभवरूपस्यात्मनोऽनुभाव्यत्वाभावे दृष्टांतमाह (माधुर्यादीति)—

७२] अन्यत्र स्वगुणार्पिणां माधुर्यादिस्वभावानां स्वस्मिन् तदर्पणापेक्षा नो। च अन्यत् अर्पकं न अस्ति ॥

७३) आदिशब्देनाम्लादयो गृह्यंते । माधुर्यादयः स्वभावाः सहजा धर्मविशेषा येषां ते माधुर्यादिस्वभावाः गुडादयस्तेषां । अन्यत्र स्वसं सृष्टपदार्थेषु चणकादिषु । स्वगुणार्पिणां स्वगुणान् माधुर्यादीन् अर्पयंतीति स्वगुणार्पिणस्तेषां । स्वस्मिन् स्वस्वरूपे गुडादिलक्षणे । तदर्पणापेक्षा तेषां माधुर्यादीनां अर्पणे संपादनेऽपेक्षा आकांक्षा । "माधुर्यादिकं केनचित् संपादनीयम्" इत्येवंरूपा नो नैव विद्यते । किं च अन्यदर्पकं नास्ति

६९] असत्ताकरि आत्मा अज्ञेय कहिये ज्ञानका अविषय नहीं है ॥

७०) आनंदमयआदिकनका साक्षी होनैरूप हेतुकरि आत्माके असद्भावकूं पूर्व १२ वें श्लोकविषैहीं निषेध किया होनैतैं आत्माकी असत्ता बनै नहीं। यातैं आत्मा आपकेहीं अभावतैं अज्ञेय नहीं है । किंतु आपके विद्यमान होते बी अपनैतैं भिन्न ज्ञाता औ ज्ञानके अभावतैं अज्ञेय है कहिये स्वप्रकाशरूप है ॥ यह भाव है ॥ १३ ॥

॥ ४ ॥ आत्माके ज्ञानकी अविषयतामैं दृष्टांत ॥

७१ अनुभवरूप आत्माकूं अनुभव जो ज्ञान। ताके विषय होनैके अभावविषै दृष्टांतकूं कहैहैं:—

७२] अन्यविषै अपनै मधुरतादिकगुणके अर्पण करनैहारे जे माधुर्यआदिकस्वभाववाले गुडादिकपदार्थ हैं तिनकूं आपविषै तिस मधुरताके अर्पणकी अपेक्षा नहीं है औ अन्यमधुरताका संपादक नहीं है ॥

७३) इहां आदिशब्दकरि आम्लआदिक ग्रहण करियेहैं ॥ माधुर्य औ आम्लआदिक हैं स्वभाव कहिये साथिहीं उत्पन्न धर्मविशेष जिनोंके । ऐसैं मधुरताआम्लतादिरूप स्वाभाविकधर्मवाले जे गुडआदिक हैं औ जे गुडादिक अपनै संबंधी चना गोधूम चावलआदिकपदार्थनविषै अपनै मधुरता औ आम्लताआदिकगुणनकूं अर्पण करतेहैं। तिन गुडआदिककूं गुडादिरूप अपनै स्वरूपविषै तिन मधुरआदिकगुणके संपादनकी अपेक्षा कहिये "मधुरताआदिक हमारेविषै किसी अन्यकारणकरि संपादन करनैकूं योग्य है" इसरूपवाली आकांक्षा सो नहीं है ॥ किंवा गुड-

३७ अज्ञेय (ज्ञानका अविषय) वस्तु तीनभांतिका होवैहै ॥ एक असत् (वंध्यापुत्रादिक) है। दूसरा कदाचित् वृत्तिसंबंधरहित औ अज्ञानके संबंधवाला (घटादिक) है औ तीसरा स्वप्रकाश है ॥ तिनमैं आत्मा असत् नहीं औ कदाचित् वृत्तिसंबंधरहित औ अज्ञानके संबंधवाला नहीं । किंतु सत् औ सर्वदावृत्ति औ अज्ञानके वास्तवसंबंधसैं रहित है ॥ यातैं वंध्यापुत्रादिक औ घटादिक जैसा अज्ञेय नहीं । किंतु स्वप्रकाश होनैतैं अज्ञेय है ॥

पंचकोशविवेकः ॥३॥ श्लोकांक: १८९ १९०

[75]अर्पकांतरराहित्येऽप्यस्त्येषां तत्स्वभावता ।
मा भूत्तथाऽनुभाव्यत्वं बोधात्मा तु न हीयते १५
[78]स्वयंज्योतिर्भवत्येष पुरोऽस्माद्भासतेऽखिलात् ।
तमेव भांतमन्वेति तद्भासा भास्यते जगत्॥१६॥

टीकांक: ७७४ टिप्पणांक: ४३८

गुडादीनां माधुर्यादिप्रदं वस्त्वंतरं नास्तीत्यर्थः ॥ १४ ॥

७४ सदृष्टांतफलितमाह—

७५] अर्पकांतरराहित्ये अपि एषां तत्स्वभावता अस्ति । तथा अनुभाव्यत्वं मा भूत् । बोधात्मा तु न हीयते ॥

७६) माधुर्यादिसमर्पकवस्त्वंतराभावे अपि एषां गुडादीनां माधुर्यादिस्वभावता यथा विद्यते । एवमात्मनोऽप्यनुभवविषयत्वं मा भूत् अनुभवरूपता तु भवत्येवेत्यर्थः ॥१५॥

७७ उक्तार्थे प्रमाणमाह (स्वयमिति)—

७८] एषः स्वयंज्योतिः भवति । अस्मात् अखिलात् पुरः भासते । तम् एव भांतं अन्वेति तद्भासा जगत् भास्यते ॥

७९) "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भ-

आदिकनकूं मधुरताआदिकका अर्पक कहिये देनैवाला अन्य नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥१४॥

॥ ९ ॥ फलितअर्थ ॥

७४ दृष्टांतसहित फलितकूं कहैहैं:—

७५] जैसें अन्यअर्पकके अभाव हुये बी इन गुडादिककूं तिस मधुरतादिरूप स्वभाववान्‌ता है । ऐसें आत्माकूं अनुभाव्यता मति होहु औ आत्माकी अनुभवरूपता तौ क्षय नहीं होवैहै ॥

७६) गुडादिकविषै मधुरताआदिकगुणके देनैहारे औरवस्तुके अभाव होते बी । इन गुडादिकनकूं मधुरतादिकस्वभाववालेपना जैसें विद्यमान है । ऐसें आत्माकूं बी अनुभव जो ज्ञान ताकी विषयता मति होहु । परंतु आत्माकी अनुभवरूपता होवैहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ १५ ॥

॥६॥ श्लोक १३–१९ उक्त अर्थमैं श्रुतिप्रमाण ॥

७७ [39]उक्तअर्थविषै प्रमाणरूप श्रुतिकूं कहैहैं:—

७८] यह पुरुष स्वयंज्योति होवैहै औ इस अखिलजगत्‌तैं पूर्व भासता है औ तिसके प्रकाशकरि जगत् भासताहै ॥

७९) " इहां [39]स्वप्नअवस्थाविषै यह पुरुष-

३८ श्लोक १३ सैं १५ पर्यंत कथन किये अनुभवरूप आत्माकी अज्ञेयता (स्वप्रकाशता)रूप अर्थविषै ॥

३९ ऐसें जनकराजाके प्रति याज्ञवल्क्यमुनिनैं श्रीबृहदारण्यकउपनिषद्‌मैं जाग्रत्‌विषै प्रतीयमान सूर्यसैं आदिलेके वाणीपर्यंत (सूर्य । चंद्र [तारा । विद्युत्] अग्नि । वाक्) ज्योति (प्रकाशन)का निरूपणकरिके । स्वप्नविषै स्वयंज्योति (स्वप्रकाश)रूप आत्मज्योतिका उपदेश कियाहै ॥ यद्यपि तीनोअवस्थाविषै स्वयंज्योतिरूप आत्मा विद्यमान है । तथापि जाग्रत्‌विषै अन्यसूर्यादिकज्योतिनसैं पुरुषकी बुद्धि तिरस्कृत (आच्छादित) होवैहै । तामैं स्वयंज्योतिआत्माकी प्रतीति (ज्ञान) पुरुषकूं होवै नहीं औ सुषुप्तिविषै अज्ञानका अनुभवरूप सामान्यचेतन स्वयंप्रकाशवस्तु है । ताका ज्ञान अनुमानगर्भितसूक्ष्मबुद्धिवाले विना मंदबुद्धिवालेंपुरुषकूं अनायासैं होवै नहीं ॥ औ स्वप्नअवस्थाविषै सूर्यादिकज्योतिनसैं बुद्धिका तिरस्कार नहीं है अरु स्वप्नपदार्थनका अनुभव बी स्पष्ट होवैहै । इस अभिप्रायसैं इस श्रुतिविषै अत्र (इहां) इस पदकरि स्वप्नावस्थाका ग्रहण है ॥

टीकांकः ७८० टिप्पणांकः ४४०	[८१] येनेदं जानते सर्वं तत्केनान्येन जानताम् । [८४] विज्ञातारं केन विंद्याच्छक्तं वेद्ये तु साधनम् १७	पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्रोकांकः १९१

वति । अस्मात् सर्वस्मात् पुरतः सुविभाति । तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इत्यादिश्रुतयः आत्मनः स्वप्रकाशत्वं बोधयंतीत्यर्थः ॥१६॥

८० "येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" इति वाक्यमर्थतः पठति—

८१] **येन इदं सर्वं जानते तत् केन अन्येन जानताम् ॥**

८२) येन साक्षिचैतन्यरूपेणात्मना इदं सर्वं दृश्यजातं जानते प्राणिनः तं साक्षिणमात्मानं अन्येन केन साक्ष्यभूतेन जडेन जानताम् अवगच्छेयुः पुमांस इति शेषः ॥

८३ अस्यैव वाक्यस्य तात्पर्यमाह—

८४] **विज्ञातारं केन विंद्यात् ॥**

८५) दृश्यजातस्य ज्ञातारं केन दृश्यभूतेन विंद्यात् विजानीयान्न केनापि जानातीत्यर्थः ॥

८६ ननु मनसा ज्ञास्यतीत्याशंक्याह—(शक्तमिति)

८७] **साधनं तु वेद्ये शक्तम् ॥**

८८) साधनं तु ज्ञानसाधनं तु मनो वेद्ये ज्ञातव्यविषये । शक्तं समर्थं । न तु

स्वयंज्योति कहिये स्वप्रकाश होवैहै" औ "इस परिदृश्यमानसर्वजगत्तैं पूर्व प्रकाशता है ॥" औ "तिस आत्माके भानके पीछे सर्वप्रपंच भासताहै औ तिस आत्माके प्रकाशतैं यह सर्वजगत् भासताहै" इत्यादिकश्रुतियां आत्माकी स्वप्रकाशताकूं बोधन करैहैं ॥ यह अर्थ है॥१६

८० "जिस आत्माकरि इस सर्वजगत्कूं पुरुष जानताहै तिस आत्माकूं किस अन्यजडकरि जानैं ? अरे मैत्रेयी ! विज्ञाताकूं किस दृश्यरूपकरि जानै ?" इस श्रुतिवाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

८१] **जिसकरि इस सर्वकूं जानते हैं । तिसकूं अन्य किसकरि जानैंगे ?**

८२) जिस साक्षीचैतन्यरूप आत्माकरि इस सर्वदृश्यमात्रकूं प्राणी जानतेहैं तिस साक्षीरूप आत्माकूं अन्य किस साक्ष्यरूप जडकरि पुरुष जानैंगे ? इहां पुरुषपद शेष है कहिये बाहिरसैं कह्याहै ॥

८३ इसीहीं वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

८४] **विज्ञाताकूं किसकरि जानै ?**

८५) दृश्यमात्रके ज्ञाताकूं पुरुष किस दृश्यरूप साधनकरि जानै ? किसीकरि बी नहीं जानैहै ॥ यह अर्थ है ॥

८६ ननु मनरूप साधनकरि इस आत्माकूं पुरुष जानैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८७] **साधन तौ वेद्यविषै शक्त है ॥**

८८) ज्ञानका साधन जो मन है सो तौ वेद्यविषै कहिये ज्ञानके विषयवस्तुविषै समर्थ है । परंतु ज्ञातौं जो आत्मा है तिसविषै समर्थ नहीं है । काहेतैं "नहीं वाणीकरि औ न

---

४० इहां बुद्धिरूप उपाधिकरि आत्माकूं ज्ञाता (ज्ञानका आश्रय) । कहिये वृत्तिज्ञानरूप क्रियाका कर्त्ता कह्याहै । वास्तव तौ निरपेक्षज्ञानरूपहीं आत्मा है ॥

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१९२	सं वेत्ति वेद्यं तत्सर्वं नान्यस्तस्यास्ति वेदिता । विदिताविदिताभ्यां तत्पृथग्बोधस्वरूपकम् ॥१८॥	७८९
१९३	बोधेऽप्यनुभवो यस्य न कथंचन जायते । तं कथं बोधयेच्छास्त्रं लोष्टं नरसमाकृतिम् ॥१९॥	टिप्पणांक: ४४१

ज्ञातर्यात्मनि । "नैव वाचा न मनसा" इत्यादि श्रुतेः स्वस्यापि ज्ञेयत्वे कर्मकर्तृत्वविरोधाच्चेति भावः ॥ १७ ॥

८९ आत्मनः स्वप्रकाशत्वमेव "स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता । अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि" इति वाक्यद्वयमपि प्रमाणमिति मन्वानः तद्वाक्यद्वयमर्थतः पठति—

९०] **सः तत् सर्वं वेद्यं वेत्ति तस्य वेदिता अन्यः न अस्ति । तत् बोधस्वरूपकं विदिताऽविदिताभ्याम् पृथक् ॥**

९१) स आत्मा यद्यद्वेद्यं तत् तत् सर्वं वेद्यं वेत्ति । तस्य आत्मनो वेदिता ज्ञाता अन्यो नास्ति । तद्बोधस्वरूपकं ब्रह्म विदिताविदिताभ्याम् । विदितं ज्ञातं ज्ञानेन विषयीकृतं । अविदितमज्ञानेनावृतं । ताभ्यां पृथक् । विलक्षणं बोधस्वरूपत्वादेवेत्यर्थः ॥१८

९२ ननु विदिताविदितातिरिक्तो बोधो नानुभूयत इत्याशंक्य विदितविशेषणस्य वेदनस्यैव

मनकरि जानियेहै" इस श्रुतितैं ॥ औ तिस आत्माकूं आप आत्माकरि ज्ञेय हुये वी ऐंकहीकूं कर्म कहिये विषयभाव औ कर्त्ता कहिये ज्ञाताभावरूप विरोधके होनेतैं आत्माकूं अनुभवकी विषयताका अभाव है । यातैं आत्मा स्वप्रकाश है ॥ १७ ॥

८९ "सो आत्मा । वेद्य जो विषय ताकूं जानताहै औ तिस आत्माका वेत्ता नाम ज्ञाता नहीं है" ॥ औ "सो विदिततैं अन्य है औ अविदिततैं वी भिन्न है" ये दोनूं श्रुतिवाक्य वी आत्माकी स्वप्रकाशताविषै प्रमाण हैं ॥ ऐसैं मानतेहुये तिन दोनूंवाक्यनकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

९०] **सो तिस सर्ववेद्यकूं जानताहै तिसका ज्ञाता अन्य नहीं है औ सो बोधस्वरूप ब्रह्म विदित अरु अविदित-वस्तुतैं भिन्न है ॥**

९१) सो आत्मा । जो जो वेद्यविषय है तिस तिस सर्वकूं जानताहै अरु तिस आत्माका ज्ञाता अन्य नहीं है ॥ औ सो बोधस्वरूप प्रत्यक्अभिन्नब्रह्म विदित कहिये ज्ञात ऐसा जो ज्ञानकरि प्रकाशित किया व्याकृतरूप वस्तु है औ अविदित कहिये विदिततैं विपरीत ऐसा जो व्याकृतरूप जगत्का बीज अविद्यारूप अव्याकृतवस्तु है । तिन दोनूंतैं विलक्षण है । बोधस्वरूप होनैतैंहीं ॥ यह अर्थ है ॥ १८ ॥

॥ ७ ॥ अनुभवरूप आत्मामैं अनुभवके अभावकी शंकाका समाधान ॥

९२ ननु विदित जो कदी कदी ज्ञानका

४१ जैसैं कुलालकूं आपहीं आपका कर्म औ आपहीं आपका कर्त्ता कहनैविषै कर्मकर्तृभावरूप विरोध है । तैसैं इहां (आत्माकूं आपहींका ज्ञाता माननैविषै) वी कर्मकर्तृभावरूप विरोध होवैगा ॥

टीकांक: ७९३ टिप्पणांक: ॐ	जिह्वा मेऽस्ति न वेत्युक्तिर्लज्जायै केवलं यथा । न बुध्यते मया बोधो बोद्धव्य इति तादृशी २०	पंचकोश-विवेक: ॥३॥ श्लोकांक: १९४

बोधस्वरूपत्वात्तदनुभवाभावे विदितस्याप्यनुभवाभावप्रसंगाद्बोधानुभवोऽवश्यमंगीकर्तव्य इति सोपहासमाह (बोधेऽपीति)—

९३] यस्य बोधे अपि अनुभवः कथंचन न जायते तं नरसमाकृतिम् लोष्टं शास्त्रं कथं बोधयेत् ॥

९४) यस्य मंदस्य बोधेऽपि घटादिस्फुरणरूपेऽपि । अनुभवः साक्षात्कारः । कथंचन कथमपि । न जायते नोत्पद्यते । तं नरसमाकृतिं नरसमाकारं । लोष्टं लोष्टवज्जडं मनुष्यं । शास्त्रं कथं बोधयेत् न कथमपि बोधयेदित्यर्थः ॥ १९ ॥

९५ "बोधो न बुद्ध्यते" इत्युक्तिरेव व्याहतेति सदृष्टांतमाह (जिह्वेति)—

९६] "मे जिह्वा अस्ति न वा" इति उक्तिः यथा केवलं लज्जायै । "मया बोधः न बुध्यते बोद्धव्यः" इति तादृशी ॥

९७) "मे जिह्वाऽस्ति न वा" इत्युक्तिः भाषणं । यथा लज्जायै केवलं

विषय होवै ऐसा कार्यरूप वस्तु है औ अविदित जो कारणरूप वस्तु है तिन दोनूंतैं भिन्न बोध नहीं अनुभव करियेहै ॥ यह आशंकाकरि विदित जो ज्ञातवस्तु ताका अन्य-अज्ञातवस्तुनतैं व्यावर्त्तक होनैतैं विशेषण जो ज्ञान है । ताकूं बोधस्वरूप होनैतैं तिस ज्ञातवस्तुके विशेषणरूप ज्ञानके अनुभवके अभावके हुवे । ज्ञातवस्तुके वी अनुभवके अभावका प्रसंग होवैगा ॥ यातैं बोधका अनुभव अवश्य अंगीकार करनैं योग्य है । ऐसैं उपहाससहित उत्तरकूं कहैहैं:—

९३] जिसकूं बोधविषै बी किसीप्रकारसैं अनुभव होवै नहीं । तिस नरसमान आकृतिवाले लोष्ठकूं शास्त्र कैसै बोधन करै ?

९४) जिस मंदबुद्धिवाले मनुष्यकूं घटादिकके स्फुरणरूप चेतनस्वरूप बोधविषै वी अनुभव किसीप्रकारसैं वी होवै नहीं तिस मनुष्यके समान आकारवाले लोष्टकूं कहिये लोष्ठ जो भूमिके लेपनके पीछे शेष रहा निरुपयोगी मट्टीके चूर्णका ढीफा ताकी न्यांईं जडमनुष्यकूं शास्त्र किसप्रकारसैं बोधन करै ? किसीप्रकारसैं वी बोधन करी शकै नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ १९ ॥

९५ "मेरेकरि बोध नहीं जानियेहै" यह कथन वी व्याघातदोषयुक्त है । ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

९६] "मेरेकूं जिह्वा है वा नहीं है?" यह उक्ति जैसैं केवल लज्जाके अर्थ होवैहै । "ऐसैं मेरेकरि बोध नहीं जानियेहै औ अब बोद्धव्य है।" यह उक्ति वी तैसी कहिये लज्जाकी जनकहीं है ॥

९७) "मेरेकूं जिह्वा है वा नहीं है?" यह जो किसी उन्मत्तपुरुषकी उक्ति है । सो जैसैं केवल लज्जाकी उत्पत्तिअर्थहीं होवैहै । बुद्धिमान्पनैके जनावनैअर्थ होवै नहीं । काहेतैं जिह्वासैं

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः १९५ १९६

यस्मिन्यस्मिन्नस्ति लोके बोधस्तत्तदुपेक्षणे ।
यद्बोधमात्रं तद्ब्रह्मेत्येवं धीर्ब्रह्मनिश्चयः ॥ २१ ॥
पंचकोशपरित्यागे साक्षिबोधावशेषतः ।
स्वस्वरूपं स एव स्याच्छून्यत्वं तस्य दुर्घटम् ॥२२॥

टीकांक: ७९८ टिप्पणांक: ४४२

लज्जाजननायैव भवति न बुद्धिमत्त्वज्ञापनाय । जिह्वया विना भाषणानुपपत्तेः । एवं "मया बोधो न बुध्यते इतः परं बोद्धव्यः" इति । उक्तिरपि तादृशी लज्जाहेतुरेव । बोधेन विना तद्व्यवहारासिद्धेरित्यर्थः ॥ २० ॥

९८ भवत्वेवंविधः स बोधस्तथापि प्रकृते ब्रह्मावबोधे किमायातमित्याशंक्याह (यस्मिन्निति)—

९९] **लोके यस्मिन् यस्मिन् बोधः अस्ति तत्तदुपेक्षणे यत् बोधमात्रं तत्** ब्रह्म इति एवं धीः ब्रह्मनिश्चयः ॥

८००) लोके जगति । **यस्मिन्यस्मिन्** घटादिलक्षणे विषये । **बोधः** ज्ञानं **अस्ति तत्तदुपेक्षणे** तस्य तस्य घटादिविषयस्योपेक्षणेऽनादरणे कृते सति । **यद्बोधमात्रं** घटादौ सर्वत्रानुस्यूतं यत् स्फुरणमस्ति । **तत्** एव **ब्रह्मेत्येवंरूपा धीः** बुद्धिः **ब्रह्मनिश्चयः** ब्रह्मावगतिरित्यर्थः ॥ २१ ॥

१ ननु घटादिविषयोपेक्षया तदर्थानुभवरूपं ब्रह्मावगम्यते चेत्तर्हि कोशपंचविवेकोऽयं

विना "मेरेकूं जिव्हा है वा नहीं ?" इस भाषणके असंभवतैं ॥ ऐसैं "मेरेकरि बोध जो घटादिकका स्फुरणरूप ज्ञान सो नहीं जानियेहै । इस कालसैं पीछे जाननै योग्य है" यह किसी मूढपुरुषकी उक्ति बी तैसी लज्जाकी हेतुहीं है । काहेतैं बोधसैं विना तिस "बोधकूं मैं नहीं जानताहूं" इस प्रतीति औ कथनरूप तिस व्यवहारकी असिद्धितैं ॥ यह अर्थ है ॥ २० ॥

॥ ८ ॥ ब्रह्मके ज्ञानका (वृत्तिरूप) कथन ॥

९८ ननु इस प्रकारका सो घटादिकका बोध होहु । तथापि प्रकृत कहिये इस प्रकरणके आरंभविषै कथन किया ऐसा जो ब्रह्मका बोध है तिसविषै क्या आया ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९९] **लोकविषै जिस जिस वस्तुविषै बोध है तिस तिस वस्तुकी उपेक्षाके कियेहुये जो बोधमात्र है सो ब्रह्म है । ऐसी जो बुद्धि सो ब्रह्मका निश्चय है ॥**

८००) जगतविषै जिस जिस घटादिरूप विषयविषै ज्ञान है तिस तिस घटादिविषयके अनादर कहिये मिथ्या जानिके विस्मरण कियेहुये जो "बोधमात्र कहिये केवलज्ञानरूप घटादिकसर्ववस्तुविषै भासताहै । इस भातिरूपकरि अनुस्यूत जो स्फुरण है । सोइ ब्रह्म है ।" इस प्रकारकी जो बुद्धि है सो ब्रह्मका निश्चय कहिये ज्ञान है ॥ यह अर्थ है ॥ २१ ॥

॥ ९ ॥ ब्रह्मज्ञानमैं पंचकोशविवेकका उपयोग ॥

१ ननु घटादिकविषयनकी उपेक्षाकरिहीं तिस घटादिरूप विषयनका अनुभवरूप ब्रह्म

४४२ ज्ञानशब्दका मुख्यअर्थ चेतनहीं है ॥ औ घटादिविषयाकार भई जो बुद्धिवृत्ति । सो विषयनिष्ठचेतनकी अभिव्यंजक (आविर्भावकी करनैहारी) है । यातैं सो बुद्धिवृत्ति बी उपचारसैं **ज्ञानशब्दका अर्थ** (अमुख्य । गौण) है ॥

टीकांक: ८०२ टिप्पणांक: ॐ

अस्ति तावत्स्वयं नाम विवादाविषयत्वतः ।
स्वस्मिन्नपि विवादश्चेत्प्रतिवाद्यत्र को भवेत् २२

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक: १९७

निःप्रयोजनः स्यादित्याशंक्य ब्रह्मणः प्रत्यग्रूपताज्ञानेन विना संसारानिवृत्तेस्तथात्वावबोधोपयोगित्वान्न तस्यापि वैयर्थ्यमित्याह—

२] **पंचकोशपरित्यागे साक्षिबोधावशेषतः सः एव स्वस्वरूपं स्यात् ॥**

३) **पंचानां कोशानामन्नमयादीनां परित्यागे** बुद्ध्यानात्मत्वनिश्चये कृते । तत्सा**क्षिरूपस्य बोधस्यावशेषणात्सः** साक्षिरूपो बोध **एव स्वस्वरूपं** निजं रूपं ब्रह्मैव स्यात् ॥

४ नन्वन्नमयादीनां अनुभवसिद्धानां त्यागे शून्यपरिशेषः स्यादित्याशंक्याह (शून्यत्वमिति)—

५] **तस्य शून्यत्वं दुर्घटम् ॥**

६) **तस्य साक्षिबोधस्य शून्यत्वं दुर्घटं** दुःसंपाद्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥

७ दुर्घटत्वमेवोपपादयति (अस्तीति)—

८] **स्वयं तावत् अस्ति नाम ॥**

जब जानियेहै तब यह इस प्रकरणगत पांचकोशका विवेक व्यर्थ होवैगा । यह आशंकाकरि ब्रह्म जो परिपूर्णचेतन ताकी प्रत्यक्रूपता जो आंतरात्मस्वरूपता है तिसके ज्ञानसैं विना कर्तृत्वभोक्तृत्व औ जन्मादिरूप शोकरूप संसारकी अनिवृत्तितैं तिसप्रकारके ब्रह्मकी प्रत्यक् आत्मस्वरूपताके ज्ञानमैं पंचकोशके विवेककूं उपयोगी होनैतैं तिस पंचकोशके विवेककी व्यर्थता नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

२] **पंचकोशके परित्याग किये साक्षीरूप बोधके अवशेषतैं सोई स्वस्वरूप होवैहै ॥**

३) अन्नमयआदिकपंचकोशनके परित्याग किये कहिये बुद्धिकरि अनात्मभावके निश्चय कियेहुये तिस साक्षीप्रत्यगात्मारूप बोधके अवशेषतैं सो साक्षीरूप बोधहीं स्वस्वरूप कहिये निजरूप ब्रह्महीं होवैहै ॥

॥ ३ ॥ आत्माकी शून्यताके अभावपूर्वक स्वप्रकाशता

॥ ८०४—८४२ ॥

॥ १ ॥ साक्षीरूप बोधके शून्यपनैकी दुर्घटता ॥

४ ननु अनुभवसिद्ध जे अन्नमयादिक पांचकोश हैं । तिनके अनात्मभावके निश्चय कियेहुये शून्यहीं परिशेष होवैगा यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५] **तिसका शून्यभाव दुर्घट है ॥**

६) तिस साक्षीरूप बोधका शून्यपना दुर्घट है कहिये दुःखसैं बी संपादन करनैकूं अयोग्य है ॥ यह अर्थ है ॥ २२ ॥

॥ २ ॥ आत्माके शून्यपनैकी दुर्घटताका कथन ॥

७ आत्माके शून्यभावके दुर्घटपनैकूंहीं युक्तिसैं निरूपण करैहैं:—

८] **प्रथम स्वस्वरूप सर्वकूं विद्यमान है ॥**

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः १९८

१६ स्वासत्त्वं तु न कस्मैचिद्रोचते विभ्रमं विना ।
१९ अत एव श्रुतिर्बाधं ब्रूते चासत्त्ववादिनः ॥ २४ ॥

टीकांकः ८०९ टिप्पणांकः ४४३

९) स्वयंशब्दवाच्यं स्वस्वरूपं लौकिकानां वैदिकानां च मते तावत् अस्ति एव ॥

१० कुत इसत आह—

११] **विवादाविषयत्वतः ॥**

१२) स्वस्वरूपस्य विप्रतिपत्तिविषयत्वाभावादित्यर्थः ॥

१३ विपक्षे बाधकमाह—

१४] **स्वस्मिन् अपि विवादः चेत् अत्र कः प्रतिवादी भवेत् ॥**

ॐ १४) स्वात्मनि अपि विप्रतिपत्तौ सत्यां अत्र अस्यां विप्रतिपत्तौ कः प्रतिवादी स्यात् कोऽपीत्यर्थः ॥ २३ ॥

१५ ननु स्वासत्त्ववाद्येव प्रतिवादी भविष्यतीत्याशंक्य तथाविधः कोऽपि नास्तीत्याह—

१६] **स्वासत्वं तु विभ्रमं विना कस्मैचित् न रोचते ॥**

१७) भ्रांतिमेकां विहायान्यस्यां दशायां स्वस्याभावः केनापि नांगीक्रियत इत्यर्थः ॥

---

९) स्वयंशब्दका वाच्यअर्थ जो स्वस्वरूप है सो लौकिक जे प्राकृत औ वैदिक जे शास्त्रवेत्ता तिन सर्वजनके मतविषै प्रथम विद्यमानहीं है ॥

१० काहेतें ? तहां कहैहैं:—

११] **विवादका अविषय होनैतें ॥**

१२) स्वस्वरूपकूं "मैं हूं वा नहीं ?" इसरीतिका विप्रतिपत्ति जो विवाद ताके विषय होनैके अभावतें अपना स्वरूप सर्वकूं विद्यमानहीं है ॥ यह अर्थ है ॥

१३ स्वस्वरूप विवादका विषय है इस विपरीतपक्षविषै दोषकूं कहैहैं:—

१४] **आपविषै बी जब विवाद होवै तब इस विवादविषै जवाबका दैनैहारा वादीका प्रतिपक्षी ऐसा प्रतिवादी कौन होवैगा ?**

ॐ १४) स्वात्माविषै बी विप्रतिपत्तिके कहिये विवादके होते । इहां कहिये इस विप्रतिपत्तिविषै कौन प्रतिवादी कहिये सामने प्रतिउत्तरका देनेवाला होवैगा ? कोइ बी नहीं । यह अर्थ है ॥ २३ ॥

१५ ननु आपके असद्भावका वादी नाम करनैहाराहीं इहां आपके होनै न होनैके विवादविषै प्रतिवादी होवैगा । यह आशंकाकरि अपनै असत्पनैका प्रतिवादी कोइबी नहीं है यह कहैहैं:—

१६] **अपना असत्पना तौ विभ्रमसैं विना किसीकूं बी नहीं रुचिकर होताहै ॥**

१७) एक भ्रांतिरूप कारणकूं छोडिके अन्यअवस्थाविषै अपना अभाव किसी पुरुषकरि बी नहीं अंगीकार करियेहै ॥ यह अर्थ है ॥

---

४३ स्वात्मनिरूपण नामक आर्य्याबद्ध ग्रंथमैं श्रीमतआचार्योंनै बी कह्याहै:—"आप है" इस अर्थविषै कौनकूं विवादका कारण संशय होवैगा? कोइकूं बी होवै नहीं ॥ औ इहां (आपविषै) बी जब संशय होवै तब जो संशयिता (संदेहका करनैहारा) है । सोई तूं (तेरा स्वरूप) है ॥

टीकांक: ८१८ टिप्पणांक: ॐ	२२ असद्ब्रह्मेति चेद्वेद स्वयमेव भवेदसत् । २५ अतोऽस्य मा भूद्वेद्यत्वं स्वसत्त्वं त्वभ्युपेयताम् ॥ २५ ॥ २७ कीदृक्तर्हीति चेत्पृच्छेदीदृक्ता नास्ति तत्र हि । ३३ यदनीदृगताद्दक्च तत्स्वरूपं विनिश्चिनु ॥ २६ ॥	पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः १९९ २००

१८ कुत एवं निश्चीयत इत्याशंक्याह—

१९] अत एव च श्रुतिः असत्ववादिनः बाधं ब्रूते ॥

२०) यतः कस्मैचिन्न रोचते अत एव श्रुतिः अपि असत्ववादिनो बाधं ब्रूते ॥ २४ ॥

२१ केयं श्रुतिरित्याकांक्षायां "असन्नेव" इत्यादिकां तां श्रुतिमर्थतः पठति (असदिति)—

२२] ब्रह्म असत् इति वेद चेत् स्वयम् एव असत् भवेत् ॥

२३) यदि ब्रह्मासदिति जानीयात्तर्हि स्वयमेव ब्रह्मणोऽसत्वज्ञानी असद्भवेत् स्वस्यैव ब्रह्मरूपत्वादित्यर्थः ॥

२४ फलितमाह—

२५] अतः अस्य वेद्यत्वं मा भूत् स्वसत्त्वं तु अभ्युपेयताम् ॥ २५ ॥

२६ इदानीमात्मनः स्वप्रकाशत्वं वक्तुकामस्तस्य वेद्यताभावे कीदृक्स्वरूपमिति प्रश्नमुत्थापयति—

२७] कीदृक् इति पृच्छेत् चेत् ॥

२८) अयमभिप्रायः। आत्मन ईदृत्कादिना

---

१८ ननु अपना अभाव किसीकूं नहीं रुचिकर होताहै। यह काहेतैं निश्चय करियेहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१९] याहीतैं श्रुति असत्वादीके बाधकूं कहतीहै ॥

२०) जातैं अपना अभाव किसीके तांई प्रिय नहीं होवैहै। इस हेतुतैंहीं श्रुति बी असत्वादी जो शून्यवादी ताके बाधकूं कहिये निषेधकूं कहतीहै ॥ २४ ॥

२१ जो श्रुति असत्वादीके बाधकूं कहतीहै सो श्रुति कौन है? इस पूछनैकी इच्छाके हुये। "जो ब्रह्मकूं असत् जानताहै सो पुरुष आप असत्हीं होवैहै" इत्यादिकपदयुक्त तिस श्रुतिकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

२२] "जो ब्रह्म असत् है ऐसैं जब जानताहै। तब सो आपहीं असत् होवैहै ॥"

२३) जब ब्रह्म असत् है ऐसै जानै तब सो ब्रह्मके असद्भावका ज्ञानीपुरुष आपहीं असत् होवैहै। काहेतैं आपआत्माकूंहीं ब्रह्मरूप होनैतैं ॥ यह अर्थ है ॥

२४ फलितकूं कहैहैं:—

२५] यातैं इस आत्माकूं वेद्यता कहिये ज्ञानकी विषयता मति होहु औ आपका सत्पना तौ अंगीकार करना योग्य है ॥ २५ ॥

॥ ३ ॥ "आत्मा कैसा है?" इस प्रश्नका उत्तर ॥

२६ अब आत्माके स्वप्रकाशपनैके कहनैकूं इच्छतेहुवे आचार्य्य श्रीविद्यारण्यस्वामी। आत्माकी वेद्यता जो अनुभवकी विषयता ताके अभाव हुये आत्माका कैसा स्वरूप है? इस वादीके प्रश्नकूं उठावतेहैं:—

२७] कैसा आत्मा है? जब ऐसैं पूछेहै।

२८) आत्मा कैसा है? इस वादीके प्रश्नका

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक: २०१

ॐ अक्षाणां विषयस्त्वीदृक्परोक्षस्तादृगुच्यते । विषयी नाक्षविषयः स्वत्वान्नास्य परोक्षता २७

टीकांक: ८२९ टिप्पणांक: ॐ

केनचिद्रूपेण वैशिष्ट्यांगीकारे तेनैव रूपेण वेद्यत्वं स्यात् । तदनंगीकारे शून्यत्वमिति ॥

२९ सत्यमीदृक्त्वाद्यंगीकारे तथैव वेद्यत्वं तत्तु नांगीक्रियत इत्याह (ईदृगिति)—

३०] तर्हि तत्र ईदृक्ता न हि अस्ति ॥

३१) उपलक्षणमेतत्तादृक्त्वस्यापि ॥

३२ उभयाभावमेवाह—

३३] यत् अनीदृक् च अतादृक् तत् स्वरूपं विनिश्चिनु ॥ २६ ॥

३४ न हि प्रतिज्ञामात्रेणार्थसिद्धिरित्याशंक्य ईदृक्तादृक्शब्दयोरर्थमभिदधानस्तदवाच्यत्वमुपपादयति—

३५] अक्षाणां विषयः तु ईदृक् । परोक्षः तादृक् उच्यते । विषयी अक्षविषयः न । स्वत्वात् अस्य परोक्षता न ॥

३६) प्रत्यक्षस्यैव घटादेः ईदृक्शब्द-

यह अभिप्राय है:—आत्माकी ईदृक्ता कहिये ऐसैंपना । इसआदिक किसी वी रूपकरि विशेषणवान्तारूप विशिष्टताके अंगीकार किये तिसीहीं रूपकरि तिस आत्माकी वेद्यता होवैगी औ तिस ईदृक्पनेआदिकरूपके अनंगीकार किये इस आत्माका शून्यपना होवैगा ॥ इति ॥

२९ हे वादी ! आत्माके ईदृक्ताआदिकरूपके अंगीकार किये आत्माकी वेद्यता होवैगी । यह जो तैंनैं कह्या सो सत्य है । तैसैं वेद्यताहीं होवैहै ॥ परंतु सो आत्माका ईदृक्ताआदिकरूप हम अद्वैतवादीनकरि नहीं अंगीकार करियेहै । यह कहैहैं:—

३०] तब तिस आत्माविषै ऐसैंपना नहीं है ॥

३१) इहां मूलविषै जो ईदृक्ताका अभाव कह्या । सो अभाव तादृक्ताके अभावका वी उपलक्षण है । कहिये अजहतीलक्षणासैं बोधक है ॥

३२ आत्माके स्वरूपविषै दोनूं ईदृक्ता औ तादृक्ताके अभावकूंहीं कहैहैं:—

३३] जो वस्तु ईदृक् कहिये ऐसा नहीं औ तादृक् कहिये तैसा नहीं । तिस वस्तुकूं आपका स्वरूप निश्चय कर ॥२६॥

३४ ननु । प्रतिज्ञामात्रकरि पदार्थकी सिद्धि नहीं होवैहै । यह आशंकाकरि ईदृक्ता औ तादृक्ता इन दोनूंशब्दनके अर्थकूं कथन करतेहुये । आत्माकूं तिन ईदृक्तादृक्शब्दनकी अविषयतारूप अवाच्यता उपपादन करैहैं:—

३५] जो इंद्रियनका विषय वस्तु है सो तौ ईदृक् नाम ऐसा कहियेहै औ जो परोक्षवस्तु है सो तादृक् नाम तैसा कहियेहै औ जो विषयी कहिये सर्वका प्रकाशक साक्षी है। सो इंद्रियनका विषय नहीं है औ अपनाआप होनेतैं इस साक्षीरूप आत्माकी परोक्षता नहीं है॥

३६) प्रत्यक्ष जो इंद्रियजन्य ज्ञानका विषय घटादिकवस्तु है । तिसकूं ईदृक्शब्दकी वाच्यता देखीहै औ परोक्ष जो धर्मअधर्म औ स्वर्गआदिकवस्तु है । तिसकूं तादृक्-

टीकांकः ८३७ टिप्पणांकः ४४४	अवेद्योऽप्यपरोक्षोऽतः स्वप्रकाशो भवत्ययम् । सत्यं ज्ञानमनंतं चेत्यस्तीह ब्रह्मलक्षणम् ॥ २८॥	पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः २०२

वाच्यत्वं दृष्टं। परोक्षस्यैव धर्मादेः तादृक्शब्दवाच्यत्वं । द्रष्टुरात्मनस्तु । इंद्रियजन्यज्ञानविषयत्वाभावान्नेदृक्त्वं । स्वत्वेन एव परोक्षत्वाभावान्न तादृक्त्वमित्यर्थः ॥ २७ ॥

३७ तर्हि शून्यमिति द्वितीयं पक्षं फलदर्शनव्याजेन परिहरति (अवेद्य इति)—

३८] **अयम् अवेद्यः अपि अपरोक्षः। अतः स्वप्रकाशः भवति ॥**

३९) इंद्रियजन्यज्ञानविषयत्वाभावे अपि अपरोक्षत्वात् स्वप्रकाशः इत्यर्थः ॥ अत्रायं प्रयोगः । आत्मा स्वप्रकाशः । संवित्कर्मतामंतरेणापरोक्षत्वात् । संवेदनवदिति ॥ न च विशेषणासिद्धो हेतुः । आत्मनः संवित्कर्मत्वे कर्मकर्तृभावविरोधप्रसंगात् । स्वस्वरूपेण कर्तृत्वं विशिष्टरूपेण कर्मत्वमित्यविरोध इति चेत् गमनक्रियायामपि एकस्यैव स्वरूपेण कर्तृत्वं विशिष्टरूपेण कर्मत्वमित्यतिप्रसंगात् । न च साधनविकलो दृष्टांतः । संवेदनस्य संवेदनांतरापेक्षायामनवस्थानादिति । तर्कमते घटो घटज्ञानेन भासते घटज्ञानमनुव्यवसायेनेति संवेदन—

शब्दकी वाच्यता देखीहै औ दृष्टा कहिये इंद्रियादिकका साक्षी ऐसा जो आत्मा है। ताकूं तौ इंद्रियसैं जन्य ज्ञानकी विषयताके अभावतैं ईदृक्ता कहिये ईदृक्शब्दकी वाच्यता नहीं है औ स्वस्वरूप होनेकरिहीं परोक्षताके अभावतैं तादृक्ता कहिये तादृक्शब्दकी वाच्यता नहीं है ॥ यह अर्थ है॥२७॥

॥ ४ ॥ फलितअर्थ (आत्माकी स्वप्रकाशकता)के मिषकरि शून्यताका निषेध ॥

३७ तब आत्माकी शून्यता होवैगी । इस २६ वें श्लोकउक्त द्वितीयपक्षकूं फलितअर्थके दिखावनैके मिषकरि परिहार करैहैंः—

३८] **यह आत्मा अवेद्य हुवा बी अपरोक्ष है। यातैं स्वप्रकाश होवैहै ॥**

३९) यह आत्मा । इंद्रियसैं जन्य ज्ञानकी विषयताके अभाव हुये बी अपरोक्षरूप है यातैं स्वप्रकाशरूप है। यह अर्थ है ॥ इहां यह अनुमान हैः—आत्मा स्वप्रकाश है। काहेतैं संवित् जो ज्ञान ताका विषय होनैबिना अपरोक्ष होनैतैं। इंद्रियजन्यवृत्तिज्ञानकी न्याईं ॥ इस अनुमानविषै "संवित्का विषय होनै विना अपरोक्ष होनैतैं ।" यह जो हेतु कह्याहै तिसका विशेषण जो "आत्माकूं संवित्की अकर्मता कहिये अविषयता है ।" तिसकी असिद्धि नहीं है । काहेतैं आत्माकूं संवित् जो ज्ञान। ताकी कर्मताके नाम विषयताके हुये एकहीं आत्माकूं कर्मभाव औ कर्त्ताभावके होनैरूप विरोधके प्रसंगतैं ॥

ननु । एकहीं आत्माकूं चेतनमात्रसाक्षीरूप स्वस्वरूपकरि ज्ञानका कर्त्ताभाव कहिये ज्ञाताभाव है औ अंतःकरणविशिष्टरूपकरि ज्ञानका विषय होनेरूप कर्मभाव है। ऐसैं अविरोध होवैहै । इसरीतिसैं जो कहै तौ बनै नहीं । काहेतैं गमनरूप क्रियाविषै बी एकहीं पुरुषकूं जीवरूप स्वस्वरूपकरि गमनक्रियाका

४४ देखो अंक ८३० विषै ॥ "तिस (ईदृक्पनैआदिकरूप)के अनंगीकार किये इस (आत्मा)कूं शून्यपना होवैगा" इस दूसरेपक्षकूं ॥

वत्स्वप्रकाशे दृष्टांतः साधनविकल इति चेत् । न ज्ञानस्य ज्ञानांतरेण भासमानाभावात् साधनविकलः ॥

४० नन्वात्मनः स्वप्रकाशत्वेन सिद्धत्वेऽपि ब्रह्मलक्षणाभावात् न ब्रह्मत्वसिद्धिरित्याशंक्य । तल्लक्षणं तत्र योजयति—

४१] सत्यं ज्ञानं च अनंतं इति ब्रह्मलक्षणं इह अस्ति ॥

४२) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इति श्रुत्या यत् ब्रह्मणो लक्षणम् उक्तं तदात्मनि विद्यत इत्यर्थः ॥ २८ ॥

कर्त्ताभाव औ देहविशिष्टरूपकरि गमनक्रियाका विषय पृथ्वीस्वरूप होनेरूप कर्मभाव होवैगा । ऐसैं मर्यादाके उल्लंघनरूप अतिप्रसंगत ॥ औ इस उक्तअनुमानमैं "संवेदनकी न्याईं" यह जो दृष्टांत कह्याहै । सो साधनविकल कहिये सिद्धिरहित नहीं है । काहेतैं इंद्रियजन्य वृत्तिज्ञानरूप संवेदनकूं अपनै प्रकाशनैविषै अन्यसंवेदनकी अपेक्षाके हुये । तिस द्वितीयसंवित्कूं अन्यतृतीयकी औ तिस तृतीयकूं अन्यचतुर्थकी अपेक्षाके होनैकरि प्रमाणरहित धारारूप अनवस्थादोषके होनैतैं ॥ इति ॥

ननु न्यायमतविषै घट जो है सो घटाकारवृत्तिकरि भासताहै औ घटका ज्ञान अनुव्यवसायरूप ज्ञानकरि भासताहै ॥ इसरीतिसैं "संवेदनकी न्याईं" यह जो आत्माकी स्वप्रकाशताविषै दृष्टांत है । सो साधनविकल कहिये असिद्ध होवैहै । ऐसैं जो कहै तौ बनै नहीं । काहेतैं एकइंद्रियजन्य वृत्तिरूप ज्ञानकूं अन्यइंद्रियजन्य वृत्तिरूप ज्ञानकरि भासनैके अभावतैं । उक्तदृष्टांत साधनविकल कहिये असिद्ध नहीं है ॥

॥ ९ ॥ आत्मामैं ब्रह्मके लक्षण । सत्य । ज्ञान । अनंतकी योजना ॥

४० ननु । आत्माकूं स्वप्रकाश होनैकरि सिद्ध हुये बी तिस स्वप्रकाशआत्माविषै ब्रह्मके लक्षणके अभावतैं ब्रह्मभावकी सिद्धि नहीं है । यह आशंकाकरि तिस ब्रह्मके लक्षणकूं तिस आत्माविषै जोडतेहैं:—

४१] "सत्य । ज्ञान औ अनंत ।" यह जो ब्रह्मका लक्षण है । सो इस आत्माविषै बी है ॥

४२) "सत्य । ज्ञान । अनंत । ब्रह्म है ।" इस श्रुतिकरि जो ब्रह्मका लक्षण कह्याहै सो आत्माविषै विद्यमान है ॥ यह अर्थ है ॥ २८ ॥

४५ नैयायिक । ज्ञान (घटादिज्ञान)के ज्ञानकूं अनुव्यवसायज्ञान कहैहैं । ताहीकूं वेदांती साक्षीरूप ज्ञान कहैहैं ॥ "यह घट है" ऐसा घटज्ञानका आकार है औ "घटकूं मैं जानताहूं" ऐसा अनुव्यवसायज्ञानका आकार है ॥

४६ जो ब्रह्मकूं केवल सत्य कहै । तौ नैयायिक आकाशादिककूं सत्य मानतेहैं । तिनमैं ब्रह्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै । तिसके निवारणअर्थ श्रुतिनैं ब्रह्मके लक्षणमैं ज्ञानपदका निवेश कियाहै ॥ औ केवलज्ञान कहै । तौ क्षणिकविज्ञानवादी । क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिकूं ज्ञानरूप मानतेहैं औ नैयायिक आत्माका ज्ञान गुण मानतेहैं औ केईक सत्वगुणकूं औ तिसके कार्य अंतःकरणकूं बी ज्ञानरूप मानतेहैं । तिनमैं अतिव्याप्ति होवै । तिसके निवारणअर्थ ज्ञानके साथि अनंतपदका निवेश कियाहै ॥ नैयायिकादिक आत्माकूं विभु तौ कहैहैं परंतु अनंत (देशकालवस्तुपरिच्छेदरहित) होनैकरि विभु नहीं कहैहैं ॥ औ उपासकादिक । आत्माकूं सत्य (नित्य) औ ज्ञान (चेतन)रूप कहैहैं । परंतु विभु (अनंत) नहीं कहैहैं । किंतु कोइ अणु । कोइ मध्यमपरिमाण (देह जितना) कहैहैं ॥ यातैं "सत्य । ज्ञान औ अनंत ब्रह्म है ।" इस ब्रह्मके लक्षणकी कहूं बी अतिव्याप्तिआदिक नहीं है ॥ इहां अनंत कहनैकरि आनंदरूपता अर्थसैं सिद्ध होवैहै ॥ "जो भूमा (अपरिच्छिन्न) है । सो सुखरूप है" इस छांदोग्यश्रुतितैं ॥ इति ॥

टीकांक: ८४३ टिप्पणांक: ४४७

सत्यत्वं बाधराहित्यं जगद्बाधैकसाक्षिणः ।
बाधः किंसाक्षिको ब्रूहि न त्वसाक्षिक इष्यते॥२९॥

पंचकोश-विवेक:॥३॥ श्लोकांक: २०३

४३ आत्मनः सत्यत्वोपपादनाय तावत्सत्यत्वस्य लक्षणमाह (सत्यत्वमिति)—

४४] **बाधराहित्यं सत्यत्वम् ॥**

४५) बाधशून्यत्वं सत्यत्वं । सत्यमबाध्यं बाध्यं मिथ्येति तद्विवेक इति पूर्वाचार्यैरुक्तत्वात् ॥

४६ अस्तु। प्रकृते किमायातमित्यत आह—

४७] **जगद्बाधैकसाक्षिणः बाधः किंसाक्षिकः ब्रूहि ॥**

४८) जगतः स्थूलसूक्ष्मशरीरादिलक्षणस्य यो बाधः सुप्तिमूर्च्छासमाधिषु अविद्यमानता । तत्साक्षित्वेनैव वर्तमानस्यात्मनो बाधः किंसाक्षिकः कः साक्षी अस्य बाधस्यासौ किंसाक्षिकः । न कोऽपि साक्षी विद्यत इत्यर्थः ॥

४९ असाक्षिकोऽप्यात्मबाधः किं न स्यादित्याशंक्याह (न त्विति)—

५०] **असाक्षिकः तु न इष्यते ॥**

५१) साक्षिरहितो बाधो नाभ्युपगंतव्योऽन्यथाऽतिप्रसंगादिति भावः ॥ २९ ॥

॥ ४ ॥ आत्माकी सत्यरूपता
॥ ८४३—८७७ ॥

॥ १ ॥ सत्यताका लक्षण ॥

४३ आत्माकी सत्यताके उपपादनअर्थ प्रथम सत्यताके लक्षणकूं कहैहैं:—

४४] **बाधरहितता सत्यता है ॥**

४५) बाधशून्यता सत्यता कहियेहै ॥ "जो सत्य है सो अबाध्य कहिये बाधके अयोग्य है औ जो बाधयोग्य है सो असत्य है।" यह तिन सत्य औ मिथ्याका विवेक पूर्वाचार्योंनैं कह्याहै। यातैं बाधरहितताहीं सत्यता है ॥

॥ २ ॥ साक्षीके बाधका अभाव ॥

४६ ननु कह्या जो सत्यताका लक्षण सो होहु । इसकरि प्रकृतआत्माविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

४७] **जगत्के बाधका जो एकसाक्षी कहिये आत्मा है। तिसका बाध किंसाक्षिक कहिये किस साक्षीवाला है? सो तूं कथन कर ॥**

४८) स्थूलसूक्ष्मशरीरादिरूप जगत्का जो बाध है। कहिये सुषुप्ति मूर्छा औ समाधिविषै अभाव है। तिसका साक्षी होनेकरिहीं वर्त्तमान जो आत्मा है ताका अभाव किंसाक्षिक है? कौंन है साक्षी इस बाधका सो कहिये किंसाक्षिक ॥ अर्थ यह जो आत्माके बाधका कौंन साक्षी है? कोइ बी साक्षी नहीं देखियेहै। यह अर्थ है ॥

४९ ननु। साक्षीरहित बी आत्माका बाध क्यूं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५०] **जातैं असाक्षिक बाध तौ अंगीकार नहीं करियेहै ।**

५१) साक्षीरहित बाध अंगीकार करनैकूं योग्य नहीं है ॥ अन्यथा कहिये साक्षीरहित बाधके अंगीकार किये अतिप्रसंग होवैहै। यह भाव है ॥ २९ ॥

४७ कोईका बी बाध (नाश) साक्षीरहित कहूं बी नहीं देखियेहै। यह प्रसंग (मर्यादा) है। तिसका उलंघन होवैगा॥

पंचकोशविवेकः ॥३॥ श्लोकांकः २०४ २०५

अपनीतेषु मूर्तेषु ह्यमूर्तं शिष्यते वियत् ।
शक्येषु बाधितेष्वंते शिष्यते यत्तदेव तत् ॥३०॥
सर्वबाधे न किंचिच्चेर्द्यन्न किंचित्तदेव तत् ।
भाषा एवात्र भिद्यंते निर्बाधं तावदिष्यते ॥३१॥

टीकांकः ८५२ टिप्पणांकः ४४८

५२ उक्तमर्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति (अपनीतेष्विति)

५३] मूर्तेषु अपनीतेषु अमूर्तं वियत् हि शिष्यते । शक्येषु बाधितेषु अंते यत् शिष्यते । तत् एव तत् ॥

५४) मूर्तेषु गृहादिगतेषु घटादिषु । अपनीतेषु गृहादिभ्यो निःसारितेषु सत्सु । यथाऽपनेतुमशक्यं नभ एव अवशिष्यते । एवं स्वव्यतिरिक्तेषु मूर्तामूर्तेषु देहेंद्रियादिषु निराकर्तुं शक्येषु "नेति नेति" इतिश्रुत्या निराकृतेषु सत्सु । अंते अवसाने । सर्वनिराकरणसाक्षित्वेन यो बोधोऽवशिष्यते । स एव बाधरहित आत्मा इत्यर्थः ॥ ३० ॥

५५ ननु प्रतीयमानस्य सर्वस्यापि निषेधे किंचिन्नावशिष्यते । अतः कथं "शिष्यते यत्तदेव तत्" इत्यवशिष्टस्यात्मत्वमुच्यत इति शंकते—

५६] सर्वबाधे किंचित् न चेत् ॥

५७ न किंचिदवशिष्यत इति वदतामपि तथाप्रयोगसिद्धये सर्वाभावविषयं ज्ञानमवश्य-

---

५२ उक्तअर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैंः—

५३] मूर्तिमान्पदार्थनकूं ग्रहतैं निकासेहुये बी । जैसैं अमूर्तिमान्आकाश शेषहीं रहताहै । तैसैं बाध करनैकूं शक्य पदार्थनके बाध हुये अंतविषै जो वस्तु शेष रहैहै । सोइ सो आत्मा है ॥

५४) गृहादिकविषै स्थित आकारवान् जे घटादिकपदार्थ हैं तिनकूं गृहादिकतैं निकासैहुये जैसैं निकाशनैंकूं अशक्य आकाशहीं शेष रहताहै । ऐसैं आत्मासैं भिन्न मूर्तिमान् औ मूर्तिरहित जे देह औ इंद्रियआदिक बाध करनैकूं शक्य पदार्थ हैं । तिनकूं "नेति नेति" कहिये "नहीं ऐसैं औ नहीं ऐसैं" । इस श्रुतिकरि निराकरण कियेहुये अंतविषै सर्वअनात्मपदार्थनके निराकरणका साक्षी होनैकरि जो ज्ञानमात्र शेष रहताहै । सोइ बाधरहित आत्मा है ॥ यह अर्थ है ॥ ३० ॥

५५ ननु । प्रतीत होवैहै जो वस्तु तिस सर्वके निषेध हुये कछु बी शेष नहीं रहताहै ॥ यातैं जो शेष रहताहै सोइ सो आत्मा है । इसरीतिसैं शेष रहे वस्तुकी आत्मरूपता तुम सिद्धांतीकरि कैसैं कहियेहै ? इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

५६] सर्वके निषेध हुये किंचित् शेष नहीं रहताहै ऐसैं जब कहै ।

५७) "किंचित् शेष नहीं रहताहै" ऐसैं कहनैवाले तुम शून्यवादिनकूं बी तैसैं "कछुबी नहीं है" इस प्रकारके शब्दउच्चारणकी

---

४४८ जैसैं किसी बनविषै एकगुहामैं रहनैहारे दोनूंसिंह होवैं । वे दोनूं (पिता औ पुत्ररूप) मेषनमैंसैं एकएकमेषकूं भक्षण करैं । तैसैं ब्रह्मरूप बनविषै जो "नेति नेति" श्रुतिरूप गुहा है तिसमैं दोनूं निषेधरूप अर्थके वाची नञ् प्रत्यय हैं । वे कारण (अज्ञान) औ कार्य (स्थूलसूक्ष्म) रूप दोनूं प्रपंचनकूं क्रमतैं निषेध करैहैं ॥

टीकांकः ८५८ टिप्पणांकः ४४९

ॐ अत एव श्रुतिर्बाध्यं बाधित्वा शेषयत्यदः ।
स एष नेति नेत्यात्मेत्यतद्व्यावृत्तिरूपतः ॥३२॥

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः २०६

मभ्युपेतव्यं अतस्तदेवास्मदभिमतात्मस्वरूपम् इत्यभिप्रायेण परिहरति (यन्नेति)—

५८] **न किंचित् यत् तत् एव तत् ॥**

५९) न किंचित् इति शब्देन यत् चैतन्यमुच्यते तदेव तत् ब्रह्मेत्यर्थः ॥

६० ननु न किंचिदित्यभाववाचकेन न किंचिच्छब्देन कथं चैतन्यमुच्यते इत्याशंक्य बाधसाक्षिणोऽवश्यमभ्युपेयत्वादभिधायकशब्देषु एव विप्रतिपत्तिर्नाभिधेये इति परिहरति (भाषेति)—

६१] **अत्र भाषा एव भिद्यंते निर्बाधं तावत् इष्यते ॥**

६२) अत्र बाधसाक्षिणि प्रत्यगात्मनि भाषा एव "न किंचित् 'साक्षी" इत्यादिशब्दा एव भिद्यंते । निर्बाधं बाधरहितं साक्षिचैतन्यं तु विद्यते एवेत्यर्थः ॥ ३१ ॥

६३ उक्तमर्थं श्रुत्या दृढं करोति—

६४] **अत एव "सः एषः आत्मा 'न इति' 'न इति" इति श्रुतिः अतद्व्यावृत्तिरूपतः बाध्यं बाधित्वा अदः शेषयति ॥**

६५) यतः साक्षिचैतन्यमबाध्यम् अत

सिद्धिअर्थ सर्ववस्तुके अभावकूं विषय करनैहारा ज्ञान अवश्य अंगीकार करना योग्य है॥ यातैं सोइ सर्वके अभावकूं विषय करनैहारा ज्ञानहीं हमकूं मान्य आत्मस्वरूप है ॥ इस अभिप्रायकरि सिद्धांती परिहार करैहैं:—

५८] **जो न किंचित् है। सोइ सो ब्रह्म है ॥**

५९) "न किंचित्" इस शब्दकरि जो चैतन्य कहियेहै सोइ सो ब्रह्म है ॥

६० ननु । "किंचित् नहीं है" इस अभावके वाचक शब्दकरि कैसैं भावरूप चैतन्य कहियेहै ? यह आशंकाकरि अभावके साक्षीकूं अवश्य अंगीकार करनै योग्य होनैतैं वाचक कहिये कहनैहारे शब्दनविषैहीं विवाद है औ वाच्य कहिये अभावके साक्षी आत्मारूप अर्थविषै विवाद नहीं है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

६१] **इहां आत्मारूप अर्थविषै भाषाहीं भेदकूं पावतियांहैं औ निर्बाध आत्मा तौ विद्यमानहीं है ॥**

६२) इस सर्वबाधके साक्षीरूप आंतरआत्माविषै "किंचित् नहीं" औ "साक्षी" इत्यादि–शब्दहीं भेदकूं पावतेहैं औ बाधरहित साक्षीचैतन्य तौ विद्यमानहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ ३१ ॥

६३ उक्तअर्थकूं श्रुतिकरि दृढ करैहैं:—

६४] **याहीतैं सो यह आत्मा "नेति नेति" ऐसैं श्रुति । अतत् जो जगत् ताकी निषेधरूप व्यावृत्तिकरि बाध्यकूं बाधकरिके इस आत्मस्वरूपकूं शेष करतीहै ॥**

६५) जातैं साक्षीचैतन्य बाधरहित है ।

४९ जैसैं दोखंडवासीपुरुष घटकूं दोनूं विलक्षणनामसैं कहैहैं तहां शब्दनकाहीं भेद है । अर्थ (घट)का भेद नहीं है । तैसैं साक्षीविषै बी जानि लेना ॥

पंचकोश-विवेकः॥३॥ श्लोकांकः २०७

इदं रूपं तु यद्यावत्तत्त्यक्तुं शक्यतेऽखिलम् ।
अशक्यो ह्यनिदंरूपः सँ आत्मा बाधवर्जितः ३२

टीकांकः ८६६ टिप्पणांकः ॐ

एव "स एष नेति नेत्यात्मा" इति श्रुतिरतद्व्यावृत्तिरूपतः । अनात्मपदार्थनिराकरणद्वारेण । बाध्यं निराकरणयोग्यं सर्वमनात्मकवस्तुजातं । बाधित्वा निराकृत्य । अदः निराकर्तुमशक्यं प्रत्यक्स्वरूपं । शेषयति अवशेषयति ॥ ३२ ॥

६६ "नेति नेतीति" श्रुतिर्बाधयोग्यं बाधित्वा बाधितुमशक्यं अवशेषयतीत्युक्तं । तत्र कीदृशं बाधितुं शक्यं कीदृशमशक्यमिति विवक्षायां तदुभयं विभज्य दर्शयति (इदं रूपमिति)—

६७] यत् यावत् इदं रूपं तत् तु अखिलं त्यक्तुं शक्यते । अनिदंरूपः अशक्यः हि ॥

६८) इदंरूपं इत्येवं रूपं दृश्यत्वेनानुभूयमानं रूपं स्वरूपं यस्य देहादेस्तदिदं रूपं । तुशब्दोऽवधारणे । यद्यावत् इति पदद्वयं सर्वदृश्योपसंग्रहार्थं । एवं च सति यद्दृश्यं तदखिलं त्यक्तुं शक्यत एवेत्यर्थः ॥ संपद्यते अनिदंरूपः प्रत्यक्त्वेनेदंतयाऽवगंतुं अयोग्यः साक्षी अशक्यः त्यक्तुमित्यर्थः ॥ हि इति निपातेन प्रसिद्धिद्योतकेन त्यक्तुः स्वरूपत्वेन त्यागायोग्यतां सूचयति ॥

६९ फलितमाह (स आत्मेति)—

याहीतें सो यह आत्मा "नेति नेति" यह श्रुति । अतत्व्यावृत्तिरूपकरि कहिये अनात्मपदार्थनके निराकरणरूप द्वारकरि । बाधके योग्य सर्वअनात्मवस्तुके समूहकूं बाधकरिके । बाध जो निराकरण ताके करनेकूं अशक्य इस प्रत्यक्आत्मस्वरूपकूं अवशेष करतीहै ॥३२॥

॥ ३ ॥ बाधयोग्य औ बाधअयोग्य ॥

६६ ननु । "नेति नेति" यह श्रुति बाधके योग्यकूं बाधकरिके । बाध करनेकूं अशक्य जो है ताकूं अवशेष करतीहै । ऐसें जो तुमनें कह्या तिसविषै कौंन वस्तु बाध करनेकूं शक्य है औ कौंन वस्तु बाध करनेकूं अशक्यहै ? इस कहनेकी इच्छाके हुये तिन बाध करनेके शक्य औ अशक्य दोनूंकूं विभागकरिके दिखावैहैं:—

६७] जो जितना इदंरूप है सो तौ सर्व त्याग करनेकूं शक्य होवैहै औ अनिदंरूप जो साक्षी सो त्याग करनेकूं अशक्य प्रसिद्ध है ॥

६८) "यह" ऐसा रूप कहिये दृश्य होनेकरि अनुभूयमान है स्वरूप जिसका । ऐसा जो देहादिक है सो इदंरूप है ॥ इहां मूलमें "तौ" शब्द है सो निश्चयरूप अर्थविषै है औ इहां "जो" औ "जितना" । ये दोपद हैं सो सर्वदृश्यके ग्रहण अर्थ हैं । ऐसें हुये जो दृश्य है सो सर्व त्याग करनेकूं शक्यहीं है । यह अर्थ सिद्ध होवैहै ॥ औ अनिदंरूप कहिये सर्वांतर होनेसें यहपनेकरि जाननेकूं अयोग्य जो साक्षी । सो त्याग करनेकूं अशक्य है । यह अर्थ है ॥ औ मूलश्लोकविषै प्रसिद्धिरूप अर्थके जनावनेवाला जो "हि" ऐसा व्याकरणके संकेतसें उक्त निपातरूप शब्द है । सो आत्माकूं त्याग करनेहारेका स्वरूप होनेकरि आत्माके त्यागकी अयोग्यताकूं सूचन करैहै ॥

६९ अब फलितकूं कहैहैं:—

टीकांकः ८७० टिप्पणांकः ॐ	सिद्धं ब्रह्मणि सत्यत्वं ज्ञानत्वं तु पुरेरितम् । स्वयमेवानुभूतित्वादित्यादिवचनैः स्फुटम् ॥३४॥ न व्यापित्वाद्देशतोऽतो नित्यत्वान्नापि कालतः । न वस्तुतोऽपि सर्वात्म्यादानंत्यं ब्रह्मणि त्रिधा ३५	पंचकोशविवेकः ॥३॥ श्लोकांकः २०८ २०९

७०] बाधवर्जितः सः आत्मा ॥

७१) यो बाधरहितः साक्षी सः एव आत्मा नाहंकारादिर्दृश्य इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

७२ भवत्वात्मनोऽबाध्यत्वं प्रकृते किमायातमित्यत आह (सिद्धमिति)—

७३] ब्रह्मणि सत्यत्वं सिद्धम् ॥

७४) ब्रह्मणि ब्रह्मलक्षणे यत् सत्यत्वं अभिहितं तदात्मनि सिद्धम् ॥

७५ भवतु सत्यत्वं । ज्ञानत्वं कथमित्याकांक्षायां तत्पूर्वमेवोपपादितमित्याह (ज्ञानत्वमिति)

७६] "स्वयम् एव अनुभूतित्वात्" इत्यादिवचनैः ज्ञानत्वं तु पुरा स्फुटं ईरितम् ॥

७७) "स्वयमेवानुभूतित्वात् विद्यते नानुभाव्यता" इत्यादिभिः वचनैः ज्ञानरूपत्वं पूर्वमेव सम्यगभिहितमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

७८ ननु सत्यत्वज्ञानत्वयोरात्मनि सिद्धत्वे-

७०] जो बाधवर्जित है सो आत्मा है॥

७१) जो बाधरहितसाक्षी है सोइ आत्मा है औ अहंकारादिकदृश्य आत्मा नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

॥ ४ ॥ आत्मामैं ज्ञानरूपताके अनुवादसहित ब्रह्मके लक्षण सत्यपनैकी सिद्धि ॥

७२ ननु । आत्माका अबाध्यपना होहु । तिसकरि प्रकृतआत्मामैं ब्रह्मके लक्षणकी सिद्धिविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

७३] ब्रह्मविषै जो सत्यत्व है सो सिद्ध भया ॥

७४) ब्रह्मके लक्षणविषै जो सत्यत्व श्रुतिकरि कह्याहै सो सत्यपना आत्माविषै सिद्ध भया ॥

७५ ननु । आत्माविषै सत्यत्व होहु औ ज्ञानरूपता कैसैं सिद्ध होवैहै? इस पूछनैकी इच्छाके भये सो ज्ञानरूपता । पूर्व ११ सैं २२ श्लोकविषैहीं उपपादन करीहै । ऐसैं कहैहैं:—

७६] "आप आत्माहीं अनुभूतिरूप होनैतैं" इत्यादिकवचनोंकरि ज्ञानरूपता तौ पूर्व स्पष्ट कथन करीहै ॥

७७) "आपहीं अनुभवरूप होनैतैं आत्माकूं अनुभवकी विषयता नहीं है" इत्यादिकवचनोंकरि आत्माकी ज्ञानरूपता कहिये चितरूपता तौ पूर्वहीं सुंदरप्रकारसैं कथन करीहै ॥ यह अर्थ है ॥ ३४ ॥

॥ ५ ॥ आत्माकी अनंतरूपता

॥ ८७८—८८३ ॥

॥ १ ॥ ब्रह्ममैं प्रथम त्रिविधअनंतताकी श्रुतिकरि सिद्धि ॥

७८ ननु । सत्यरूपता औ ज्ञानरूपताकूं आत्माविषै सिद्ध हुये बी अनंतरूपता

ऽप्यानंत्यं न घटते । ब्रह्मण्यपि तस्यासिद्धेरित्याशंक्य । ब्रह्मणि तावत्तत्साधयति (न व्यापित्वादिति)—

७९] व्यापित्वात् देशतः अंतः न । नित्यत्वात् कालतः अपि न । सर्वात्म्यात् वस्तुतः अपि न । ब्रह्मणि आनंत्यं त्रिधा ॥

८०) "नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं । आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः । नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां । इदं सर्वं यदयमात्मा । सर्वं ह्येतद्ब्रह्म । ब्रह्मैवेदं सर्वं" इत्यादिश्रुतिषु व्यापित्वनित्यत्वसर्वात्मत्वप्रतिपादनाद् ब्रह्मणस्त्रिविधं अपि । आनंत्यं देशकालवस्तुकृतपरिच्छेदराहित्यमभ्युपगंतव्यमित्यर्थः ॥ ३९ ॥

आत्माविषै बनै नहीं । काहेतें ब्रह्मविषै बी तिस अनंतताकी असिद्धितें ॥ यह आशंकाकरिके ब्रह्मविषै प्रथम तिस अनंतरूपताकूं सिद्ध करतेहैं:—

७९] व्यापक होनैतें ब्रह्मका देशतें परिच्छेद नहीं है औ नित्य होनैतें कालतें बी अंत नहीं है औ सर्वका स्वरूप होनैतें । वस्तुतें बी अंत नहीं है । ऐसें ब्रह्मविषै त्रिविधअनंतता है ॥

८०) "नित्य है कहिये उत्पत्तिनाशरहित है। व्यापक है। सर्वगत है। अति सूक्ष्म है" औ "आकाशकी न्यांई सर्वगत कहिये सर्वमें अनुस्यूत है औ नित्य कहिये प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभावका अप्रतियोगी है" औ "नित्य जो सत्य तिनका नित्य है औ चेतनोंका चेतन है" औ "यह दृश्यमान सर्वप्रपंच जो है सो यह आत्मा है ॥" औ "यह सर्वहीं ब्रह्म है" औ "ब्रह्महीं यह सर्व है॥" इत्यादिकश्रुतिनविषै ब्रह्मके व्यापकपनै औ नित्यपनै औ सर्वात्मापनैके प्रतिपादनतें ब्रह्मकी तीनभांतिकी देश काल औ वस्तुकरि किये परिच्छेदतें रहितताररूप अनंतता अंगीकार करनी योग्य है ॥ यह अर्थ है ॥ ३९ ॥

५० अत्यंताभावका प्रतियोगीभाव देशपरिच्छेद कहियेहै ॥ जो वस्तु किसी देशविषै होवै औ किसी देशविषै नहीं होवै सो वस्तु देशपरिच्छेदवाला है ॥ जैसें घटादिक किसी देशविषै हैं यातें देशपरिच्छेदवाले हैं ॥ ब्रह्म जातें व्यापक है यातें ब्रह्मका देशपरिच्छेद नहीं है ॥ इहां यह अनुमानप्रमाण है:– ब्रह्म (पक्ष) देशपरिच्छेदरहित है । व्यापक होनैतें । जो देशपरिच्छेदतें रहित नहीं है सो व्यापक बी नहीं है । जैसें घटादिक हैं ॥

५१ प्रागभाव औ प्रध्वंसअभावका प्रतियोगीभाव कालपरिच्छेद कहियेहै ॥ जो वस्तु किसी कालमें होवै (उपजै) औ किसी कालमें न होवै ताका कालतें परिच्छेद (अंत) होवैहै । जैसें विद्युतआदिक किसी कालमें हैं । यातें कालपरिच्छेदवाले (कालपरिच्छेदके प्रतियोगी) हैं ॥ ब्रह्म जातें उत्पत्ति औ नाशकरि रहित होनैंकरि सर्वदा विद्यमान् होनैतें नित्य है । यातें ब्रह्मका कालतें परिच्छेद नहीं है ॥ इहां यह अनुमान है:– ब्रह्म कालपरिच्छेदरहित है । नित्य होनैतें । जो कालपरिच्छेदतें रहित नहीं है सो नित्य बी नहीं है । जैसें विद्युतआदिक हैं ॥

५२ अन्योन्याभाव (भेद)का प्रतियोगीभाव । वस्तुपरिच्छेद कहियेहै ॥ सो वस्तुपरिच्छेद तीनप्रकारका अथवा पांचप्रकारका है ॥ देखो ३६ वां टिप्पण ॥ जो वस्तु अन्यवस्तुतें भिन्न होवै ताका वस्तु (पदार्थ)तें परिच्छेद है । जैसें आकाशादिक औरनतें भिन्न हैं यातें वस्तुपरिच्छेदवाले हैं ॥ ब्रह्म जातें सर्व (कल्पितवस्तुन)का अधिष्ठान (विवर्त्तोपादानकारण) होनैतें सर्वका स्वरूप है । (कल्पितकी अधिष्ठानतें भिन्नसत्ता होवै नहीं) यातें ब्रह्मका वस्तुतें परिच्छेद (भिन्नता) नहीं है ॥ इहां यह अनुमान है:– ब्रह्म वस्तुपरिच्छेदतें रहित है । सर्वात्मा (सर्वका स्वरूप) होनैतें । जो वस्तुपरिच्छेदतें रहित नहीं है सो सर्वात्मा बी नहीं है । जैसें आकाशादिक हैं ॥

५३ प्रागभाव औ प्रध्वंसाभावका अप्रतियोगी नित्य है ॥ ५४ सत्य ॥

टीकांक: ८८१ टिप्पणांक: ४५५	८२ देशकालान्यवस्तूनां कल्पितत्वाच्च मायया । न देशादिकृतोंऽतोऽस्ति ब्रह्मानंत्यं स्फुटं ततः॥३६	पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक: २१०

८१ न केवलं श्रुतितः किंतु युक्तितोऽपीत्याह (देशकालेति)—

८२] च देशकालान्यवस्तूनां मायया कल्पितत्वात् देशादिकृतः अंतः न अस्ति । ततः ब्रह्मानंत्यं स्फुटम् ॥

८३) परिच्छेदहेतूनां देशकालान्यवस्तूनां मायया कल्पितत्वाच्च गंधर्वनगरादिभिर्गगनस्येव न देशादिभिः कृतः पारमार्थिकः परिच्छेदो ब्रह्मणि संभवति यतोऽतो ब्रह्मण्यानंत्यं तावद्व्यक्तमेव । "तदेतत् सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवात्र ह्येवं न विचिकित्स्यमित्यों सत्यमात्मैव । नृसिंहो देवो ब्रह्म भवति अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादिभिः श्रुतिभिरात्मनो ब्रह्माभेदप्रतिपादनात्तस्याप्यानंत्यं सिद्धमिति तात्पर्यम् ॥ ३६ ॥

॥ २ ॥ आत्मासैं अभिन्न ब्रह्ममैं त्रिविध-अनंतताकी युक्तिकरि सिद्धि ॥

८१ केवल श्रुतितैंहीं ब्रह्मकी अनंतता सिद्ध है ऐसैं नहीं । किंतु युक्तितैं बी सिद्ध होवैहै ऐसैं कहैहैं:—

८२] देश काल औ अन्य अनात्मवस्तुनकूं मायाकरि कल्पित होनैतैं ब्रह्मका देशआदिकका किया अंत नहीं है । तातैं ब्रह्मकी अनंतता स्पष्ट है ॥

८३) परिच्छेद जो अंत तिसवान्‌ताके हेतु जे देश । भूतआदिरूप काल औ ब्रह्मसैं भिन्न पदार्थरूप वस्तु हैं । तिनकूं माया जो अज्ञान तिसकरि ब्रह्मविषै कल्पित होनैतैं आकाशविषै कल्पित—गंधर्वनगरआदिककरि[५५] किया परिच्छेद जैसैं आकाशविषै संभवै नहीं । तैसैं कल्पितदेशआदिककरि किया वास्तवपरिच्छेद ब्रह्मविषै संभवै नहीं ॥ जातैं ब्रह्मविषै परिच्छेद संभवै नहीं यातैं ब्रह्मकी त्रिविधपरिच्छेदरहिततारूप अनंतता प्रथम श्रुति औ युक्तिकरि स्पष्टहीं है ॥ "सो यह आत्मा सत्यरूप ब्रह्महीं है औ ब्रह्म आत्माहीं है ॥ इस ब्रह्म औ आत्माकी एकताविषै संशय करनैकूं योग्य नहीं है" औ "ओंकारका वाच्य सत्यब्रह्म आत्माहीं है" औ "नृसिंह[५६] जो आत्मारूप देव सो ब्रह्म होवैहै" औ "यह आत्मा ब्रह्म है" इत्यादिकअनेकश्रुतिनकरि आत्माका ब्रह्मके साथि अभेद प्रतिपादन कियाहै । यातैं सोई पूर्वउक्त ब्रह्मकी अनंतताहीं तिस आत्माकी बी अनंतता सिद्ध भई ॥ यह ग्रंथकर्त्ताका इच्छारूप[५७] तात्पर्य है ॥ ३६ ॥

५५ आकाशविषै बादलका समूह नगराकार प्रतीत होवैहै । वा आकाशमैं इंद्रजालरचितनगर प्रतीत होवैहै । वा मरणकालमैं नगर प्रतीत होवैहै। सो गंधर्वनगर कहियेहै॥ इहां आदिशब्दकरि आकाशविषै नीलता औ कटाहाकारता औ तंबूका आकार प्रतीत होवैहै तिनका ग्रहण है ॥

५६ नृ नाम नर (मनुष्य)नका है ॥ तिनके सिं नाम जन्मादिसंसाररूप मलकूं ह नाम अपनै ज्ञानकरि नाश करताहै । ऐसा जो आत्मा सो इहां (इस श्रुतिविषै) "नृसिंह" कहियेहै ॥ नृसिंह (आत्मा)रूप जो देव कहिये स्वप्रकाश चैतन्य । सो नृसिंहदेव कहियेहै ॥

५७ जातैं आत्मामैं ब्रह्मके लक्षणकी योजनाके प्रसंगविषै ब्रह्मकी अनंतता प्रतिपादन करीहै । यातैं सो ब्रह्मकी अनंतता महाकाशसैं अभिन्न घटाकाशकी न्याईं ब्रह्मसैं अभिन्न-आत्माकीहीं है । ऐसैं प्रसंगके बलसैं ग्रंथकर्त्ताकी इच्छा जानी जावैहै ॥

पंचदशि-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः		टीकांकः
२११	सत्यं ज्ञानमनंतं यद्ब्रह्म तद्वस्तु तस्य तत् । ईश्वरत्वं च जीवत्वमुपाधिद्वयकल्पितम् ॥ ३७ ॥	८८४
२१२	शक्तिरस्त्यैश्वरी काचित्सर्ववस्तुनियामिका । आनंदमयमारभ्य गूढा सर्वेषु वस्तुषु ॥ ३८ ॥	टिप्पणांकः ॐ

८४ ननु जडस्य जगतो ब्रह्मण्यारोपितत्वेन ब्रह्मणः परिच्छेदकत्वाभावेऽपि चेतनयोर्जीवेश्वरयोस्तद्संभवात्तत्कृतपरिच्छेदवत्त्वेनाऽऽनंत्यं ब्रह्मणो न संगच्छेत इत्याशंक्य । तयोरप्यौपाधिकत्वेन पारमार्थिकत्वाभावान्न तयोरपि वास्तवपरिच्छेदहेतुत्वमित्यभिप्रायेणाह (सत्यमिति)—

८५] यत् सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म तत् वस्तु । तस्य ईश्वरत्वं च जीवत्वं तत् । उपाधिद्वयकल्पितम् ॥

८६) यत् सत्यादिरूपं ब्रह्म तद्वस्तु तदेव पारमार्थिकं । तस्य ब्रह्मणो यल्लोकप्रसिद्धम् । ईश्वरत्वं जीवत्वं च तत् । वक्ष्यमाण–उपाधिद्वयेन कल्पितं । अतः कल्पितत्वादेव जडवज्जीवेश्वरयोरपि तत्परिच्छेदकत्वाभाव इति भावः ॥ ३७ ॥

८७ किं तदुपाधिद्वयमित्याकांक्षायां । तदु-

॥ ३ ॥ जीवब्रह्मकी अभेदताका प्रतिपादन ॥ ८८४–९१५ ॥

॥ १ ॥ ब्रह्मकूं उपाधिकरि जीव औ ईश्वरभाव ॥ ८८४–९०७ ॥

॥ १ ॥ ब्रह्मकी अनंततामैं शंकाका समाधान तथा जीवईश्वरकी कल्पितता ॥

८४ ननु जड जो जगत् है तिसकूं ब्रह्मविषै कल्पित होनैकरि ब्रह्मके परिच्छेदकी कारकताके अभाव हुये बी । चेतन जे जीवईश्वर हैं । तिनकूं तिस ब्रह्मविषै कल्पित होनेके असंभवतें । ब्रह्मकूं तिन जीवईश्वरके किये सजातीयभेदरूप परिच्छेदवाला होनैकरि ब्रह्मका अनंतपना असंगत है ॥ यह आशंकाकरि तिन जीवईश्वरकूं बी माया औ पंचकोशमयउपाधिकृतरूपवाले होनैकरि वास्तवताके अभावतें तिन जीवईश्वरकूं बी वस्तुकृतअंतकी हेतुता नहीं है । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

८५] सत्य ज्ञान अनंतरूप जो ब्रह्म है सो वस्तु कहिये वास्तव है ॥ तिसकूं जो ईश्वरभाव औ जीवभाव है सो दोनूं उपाधिकरि कल्पित हैं ॥

८६) जो सत्यादिरूप ब्रह्म है सोइ वस्तु कहिये पारमार्थिक है ॥ तिस ब्रह्मकूं जो लोकप्रसिद्धईश्वरपना औ जीवपना है । सो आगे ३८–४१ वें श्लोकपर्यंत कहियेगी जो दोउपाधि माया औ पंचकोश । तिनकरि क्रमतें कल्पित है । यातें कल्पित होनैतेंहीं जडकी न्याई जीवईश्वर दोनूंकूं बी तिस ब्रह्मकी अन्यवस्तुनतें भेदरूप वस्तुपरिच्छेदकी कारकताका अभाव है ॥ यह भाव है ॥३७॥

॥ २ ॥ शक्तिका निरूपन ॥

८७ कौंन वे ईश्वरभाव औ जीवभावकी कल्पक दोउपाधि हैं? इस पूछनैकी इच्छाके

टीकांक: ८८८ टिप्पणांक: ४५८	वस्तुधर्मा नियम्येरञ्छक्त्या नैव यदा तदा । अन्योऽन्यधर्मसांकर्याद्विप्लवेत जगत्खलु ॥ ३९ ॥	पंचकोश-विवेक: ॥३॥ श्लोकांक: २१३

भयं क्रमेण दिदर्शयिषुरादावीश्वरोपाधिभूतां शक्तिं निरूपयति (शक्तिरिति)—

८८] **ऐश्वरी काचित् सर्ववस्तुनियामिका शक्तिः अस्ति ॥**

८९) ऐश्वरी ईश्वरोपाधितया ईश्वरसंबंधिनी । काचित् सदसत्वादिभी रूपैर्निर्वक्तुमशक्या । सर्ववस्तुनियामिका सर्वेषामंतर्यामिब्राह्मणोक्तानां पृथिव्यादीनां नियम्यवस्तूनां नियमनकर्त्री शक्तिरस्ति ॥

९० सा कुत्र तिष्ठति कुतो वा नोपलभ्यत इत्याशंक्याह—

९१] **आनंदमयं आरभ्य सर्वेषु वस्तुषु गूढा ॥**

९२)आनंदमयादिषु ब्रह्मांडांतेषु सर्वेषु वस्तुषु गूढा वर्तते । अतो नोपलभ्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

९३ नियमेनानुपलभ्यमानायास्तस्या असत्वमेव किं न स्यादित्याशंक्य जगन्नियमनान्यथाऽनुपपत्त्या साऽवश्यमभ्युपेयेत्याह—

हुये । तिन दोनूंउपाधिनकूं क्रमतैं दिखावनैकूं इच्छतेहुवे आचार्य्यग्रंथकर्त्ता आदिविषै ईश्वरकी उपाधिरूप शक्ति जो माया ताकूं निरूपन करैहैं:—

८८] **ईश्वरसंबंधिनी कोइक सर्ववस्तुनकी नियामक शक्ति है ॥**

८९) ईश्वरकी उपाधि होनैकरि ईश्वरसंबंधिनी ऐसी कोइक कहिये सत्असत्पनैआदिकरूपकरि कहनैकूं अशक्य औ श्रीबृहदारण्यक उपनिषद्के तृतीयअध्यायगत अंतर्यामीब्राह्मणनामकप्रकरणविषै उक्तपृथिवीआदिक नियममैं रखनै योग्य सर्ववस्तुनके नियमनकी करनैहारी शक्ति है ॥

९० ननु । सो शक्ति कहां रहतीहै औ काहेतैं प्रतीत नहीं होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९१] **सो आनंदमयकोशकूं आरंभकरिके सर्ववस्तुनविषै गूढ है ॥**

९२) सो शक्ति आनंदमयसैं आदिलेके ब्रह्मांडपर्य्यंत सर्ववस्तुनविषै गुप्त वर्ततीहै यातैं प्रतीत नहीं होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ३८ ॥

९३ ननु । नियमकरि अप्रतीयमान जो शक्ति है तिसका असत्पनाहीं क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंकाकरिके जगत्के नियम करनैकी अन्यथा कहिये शक्तिरूप कारणसैं विना अनुपपत्तिकरि कहिये असंभवकरि । सो जगत्के नियमकी करनैहारी शक्ति अवश्य अंगीकार करनैकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं:—

५८ इहां आदिशब्दकरि शक्तिकूं सत्असत्उभयरूपता औ अधिष्ठानब्रह्मसैं भिन्नता वा अभिन्नता वा भिन्नअभिन्नउभयरूपता औ निरवयवता वा सावयवता वा निरवयवसावयवउभयरूपताके असंभवका ग्रहण है ॥ ऐसैं किसी धर्मसैं निरूपण करनैकूं अशक्य होनैतैं शक्ति अनिर्वचनीय है ॥

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांकः २१४	९७ चिच्छायाऽऽवेशतः शक्तिश्चेतनेव विभाति सा । ९०० तच्छक्त्युपाधिसंयोगाद्ब्रह्मैवेश्वरतां व्रजेत् ॥ ४० ॥	टीकांकः ८९४ टिप्पणांकः ॐ

९४] वस्तुधर्मा यदा शक्त्या न एव नियम्येरन् । तदा अन्योऽन्यधर्मसांकर्यात् खलु जगत् विप्लवेत ॥

९५) वस्तूनां पृथिव्यादीनां काठिण्यद्रवत्वादयो यदा शक्त्या न व्यवस्थाप्यंते । तदा तेषां धर्माणां सांकर्यात् विमिश्रणे नैकत्रावस्थानात् । जगद्विप्लवेत । अनियतव्यवहारविषयतां प्राप्नुयादित्यर्थः ॥ खलु इति प्रसिद्धिं द्योतयति ॥ ३९ ॥

९६ ननु जडाया अस्या जगन्नियामकत्वं न युज्यते इत्याशंक्याह (चिच्छायेति)—

९७] सा शक्तिः चिच्छायाऽऽवेशतः चेतना इव विभाति ॥

९८) सा शक्तिश्चिच्छायाऽऽवेशतः । चिदाभासप्रवेशात् । चेतनेव चेतनत्वमापन्नेव । विभाति प्रतीयते । अतोऽस्या नियामकत्वं घटत इत्यर्थः ॥

९९ अस्तु । प्रस्तुते किमायातमित्यत आह—

९००] तच्छक्त्युपाधिसंयोगात् ब्रह्म एव ईश्वरतां व्रजेत् ॥

१) सा चासौ शक्तिश्चेति कर्मधारयः । सैव उपाधिः । तेन संयोगः संबंधः तस्मात् । ब्रह्मैव सत्यादिलक्षणम् । ईश्वरतां सर्वज्ञतादिधर्मयोगितां । व्रजेत् प्राप्नुयात् ॥ ४० ॥

९४] वस्तुनके धर्म । जो शक्तिकरि नियमविषै स्थित किये नहीं होवैं तौ परस्परधर्मके मिलापतैं प्रसिद्धजगत् नाशकूं पावै ॥

९५) पृथिवीआदिकवस्तुनके धर्म जे कठिणताआदिक हैं । वे जब मायारूप शक्तिकरि व्यवस्थाकूं प्राप्त होवैं नहीं । तब तिन धर्मनके परस्परमिश्रभावकरि एकठिकानै स्थितितैं । जगत् जो है सो नियमरहितव्यवहारकी विषयताकूं प्राप्त हुवा चाहिये ॥ यह अर्थ है ॥ इहां सूलविषै जो प्रसिद्धअर्थवाला खलुपद है सो शक्तिविना जगत् नियमित होवै नहीं यह वार्त्ता प्रसिद्ध है । ऐसैं जनावैहै ॥ ३९ ॥

९६ ननु जडरूप इस शक्तिकूं जगत्का नियामकभाव कहिये नियमका कर्त्तापना बनै नहीं ॥ यह आशंकाकरिकै कहैहैं:—

९७] सो शक्ति । चेतन जो ब्रह्म ताके आभासके आवेशतैं चेतनकी न्यांई भासतीहै ॥

९८) सो शक्ति चिदाभासके प्रवेशतैं चेतनकी न्यांई । कहिये चेतनभावकूं प्राप्त हुयेकी न्यांई प्रतीत होवैहै ॥ यातैं इस शक्तिकूं नियामकभाव बनैहै ॥ यह अर्थ है ॥

॥ २ ॥ मायाउपाधिकरि ब्रह्मकूं ईश्वरभाव ॥

९९ ननु ऐसैं शक्तिकूं जगत्की नियामकता होहु ॥ इसकरि ब्रह्मकूं ईश्वरभावकी प्राप्तिरूप प्रसंगविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

९००] तिस शक्तिरूप उपाधिके संबंधतैं ब्रह्महीं ईश्वरताकूं पावताहै ॥

१) सो चिदाभासयुक्त शक्तिहीं उपाधि है। तिससैं जो कल्पिततादात्म्यसंबंध है । तिसतैं सत्यादिकलक्षणवाला ब्रह्महीं ईश्वरभावकूं कहिये सर्वज्ञतादिकधर्मके संबंधीपनैकूं प्राप्त होवैहै ॥ ४० ॥

टीकांक: ९०२ टिप्पणांक: ॐ	कोशोपाधिविवक्षायां याति ब्रह्मैव जीवताम् । पिता पितामहश्चैकः पुत्रपौत्रौ यथा प्रति ॥४१॥ पुत्रादेरविवक्षायां न पिता न पितामहः । तद्वन्नेशो नापि जीवः शक्तिकोशाविवक्षणे ॥४२॥	पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक: २१५ २१६

२ जीवत्वोपाधिभूतानां कोशानां प्रागेवाभिहितत्वात् तन्निमित्तकं जीवत्वमिदानीमाह—

३] **कोशोपाधिविवक्षायां ब्रह्म एव जीवतां याति ॥**

४) कोशा एव उपाधिः कोशोपाधिः । तद् विवक्षायां पर्यालोचनायां क्रियमाणायां। ब्रह्मैव सत्यादिलक्षणमेव । जीवतां जीवव्यवहारविषयतां गच्छति ॥

५ नन्वेकस्यैव विरुद्धधर्मद्वययोगित्वं युगपन्न क्वापि दृष्टचरमित्याशंक्याह (पितेति)—

६] **यथा एकः पुत्रपौत्रौ प्रति पिता च पितामहः ॥**

७) यथैकः एव देवदत्त एकदैव पुत्रं प्रति पिता भवति । पौत्रं प्रति तु पितामहः । एवं ब्रह्मापि कोशोपाधिविवक्षायां जीवो भवति । शक्त्युपाधिविवक्षायां ईश्वरश्च भवतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

८ वस्तुतस्तु जीवत्वमीश्वरत्वं वा ब्रह्मणो नास्तीत्येतत्सदृष्टांतमाह—

९] **पुत्रादेः अविवक्षायां पिता न**

॥ ४ ॥ पंचकोशरूप उपाधिकरि ब्रह्मकूं जीवभाव ॥

२ जीवभावके उपाधिरूप पंचकोशनकूं पूर्व २–१० वें श्लोक तोडीहीं कथन किये होनेतैं। तिन पंचकोशरूप निमित्तका किया जो ब्रह्मकूं जीवभाव है तिसकूं अब कहैहैं:—

३] **पंचकोशरूप उपाधिकी दृष्टिके हुये ब्रह्महीं जीवताकूं पावताहै ॥**

४) पंचकोशरूप जो उपाधि कहिये विशेषण है। तिसकी दृष्टिके कियेहुये सत्यादिलक्षणवाला ब्रह्महीं जीवभावकूं कहिये "जीव" इस प्रतीति औ कथनरूप व्यवहारकी विषयताकूं पावैहै ॥

॥ ५ ॥ एकब्रह्मकूं जीव औ ईश्वरभावका दृष्टांतकरि संभव ॥

५ ननु । एकवस्तुहीकूं विरोधी दोनूं धर्मनका संबंधीहोना एककालविषै कहुंबी देख्या नहीं है ॥ यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६] **जैसैं एकहीं पुरुष पुत्र औ पौत्रकेप्रति पिता औ पितामह होवैहै ॥**

७) जैसैं एकहीं देवदत्त कहिये कोइक पुरुष एकहीं कालविषै पुत्रका पिता होवैहै औ पौत्रका पितामह होवैहै । ऐसैं ब्रह्म वी कोशरूप उपाधिकी दृष्टिके हुये जीव होवैहै औ शक्तिरूप उपाधिकी दृष्टिके हुये ईश्वर होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ४१ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मकूं वास्तवजीवईश्वरपनैका अभाव ॥ ९०८–९१५ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतकरि ब्रह्मकूं उपाधिविना जीवईश्वरपनैका अभाव ॥

८ वास्तव तौ जीवभाव औ ईश्वरभाव ब्रह्मकूं नहीं है । यह वार्त्ता दृष्टांतसहित कहैहैं:—

९] **जैसैं पुत्र औ पौत्रकी दृष्टिसैं**

पंचकोश-विवेकः ॥३॥ श्लोकांक: २१७

११ यः एवं ब्रह्म वेदैष ब्रह्मैव भवति स्वयम् ।
१४ ब्रह्मणो नास्ति जन्मातः पुनरेष न जायते ॥४३॥

॥ इति श्रीपंचदश्यां पंचकोशविवेकः ॥ ३ ॥

टीकांक: ९१० टिप्पणांक: ४५९

पितामहः न । तद्वत् शक्तिकोशाविवक्षणे ईशः न जीवः अपि न ॥ ४२ ॥

१० इदानीमुक्तज्ञानस्य फलमाह—

११] यः एवं ब्रह्म वेद एषः स्वयं ब्रह्म एव भवति ॥

१२) यः साधनचतुष्टयसंपन्नः । एवं उक्तेन प्रकारेण । पंचकोशविवेकपुरःसरं ब्रह्म प्रत्यगभिन्नं सत्यादिलक्षणं वेद साक्षात्करोति । एष स्वयं ब्रह्मैव भवति । "स यो हवै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति । ब्रह्मविदाप्नोति परम्" इत्यादिश्रुतिभ्यः ॥

१३ ततोऽपि किम् इत्यत आह—

१४] ब्रह्मणः जन्म नास्ति । अतः एषः पुनः न जायते ॥

१५) "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" इत्यादिश्रुतेः ब्रह्मणः तावत् जन्म नास्ति ।

विना वह देवदत्तपुरुष पिता वी नहीं औ पितामह वी नहीं होवैहै । तैसैं शक्ति औ पंचकोशकी दृष्टिके अभाव हुये ब्रह्म । ईश्वर वी नहीं औ जीव वी नहीं होवैहै ॥ ४२ ॥

॥ २ ॥ श्लोक ४२ उक्त ब्रह्मके ज्ञानका फल ॥

१० अब उक्त जीवब्रह्मके अभेदनिश्चयरूप ज्ञानके फलकूं कहैहैं:—

११] जो पुरुष ऐसैं ब्रह्मकूं जानताहै सो आप ब्रह्महीं होवैहै ॥

१२) जो विवेकादिच्यारिसाधनसंपन्नअधिकारी ऐसैं कथन किये प्रकारकरि पंचकोशनके विवेकपूर्वक प्रत्यक्आत्मासैं अभिन्न सच्चिदानंदलक्षणब्रह्मकूं जानताहै कहिये साक्षात् करताहै । यह पुरुष आप ब्रह्महीं होवैहै ॥ "जो पुरुष निश्चयकरि इस परमब्रह्मकूं जानताहै सो ब्रह्महीं होवैहै" औ "ब्रह्मवित् परब्रह्मकूं पावताहै ॥" इत्यादिकश्रुतितैं यह ज्ञानीकूं ब्रह्मप्राप्तिरूप अर्थ सिद्ध होवैहै ॥

१३ तिस ब्रह्मकी प्राप्तितैं क्या होवैहै? तहां कहैहैं:—

१४] जातैं ब्रह्मकूं जन्म नहीं है । यातैं यह ब्रह्मवित् फेर जन्मता नहीं है॥

१५) "विपश्चित् कहिये सर्वका साक्षी ब्रह्म। सो जन्मता नहीं औ मरता नहीं ॥" इत्यादिकश्रुतितैं प्रथम ब्रह्मकूं जन्म नहीं है । याहीतैं विद्वान् जो ज्ञानी सो वी स्वात्मा जो आप ताकी ब्रह्मरूपताके ज्ञानतैं जन्मता नहीं

---

५९ जैसैं निर्विकारकुंतीके पुत्र कर्णविषे राधापुत्र (दास)-भावकी प्रतीति भईहै । तैसैं निर्विकारचिदानंदघनब्रह्मविषे अविद्याकरि जीवभावकी प्रतीति होवैहै ॥ यातैं सर्वकूं सर्वदा ब्रह्मरूप होनेतैं वास्तवजन्मआदिकसंसारका अभावहीं है । तथापि अविद्याकृतजीवभावकरि अज्ञानिनकूं अपनैआपविषे जन्मादिककी प्रतीति होवैहै ॥ औ सूर्यके वचनसैं कर्णकूं कुंतीपुत्रताके ज्ञानकरि राधापुत्रताकी निवृत्तिकी न्याई । ज्ञानीकूं गुरुउपदेशतैं निर्विकार अपनैं ब्रह्मभावके ज्ञानकरि नेत्रावरकदोषकी न्याई । स्वावरकअविद्याअंशकी निवृत्तिद्वारा जन्मादिसंसारकी निवृत्ति प्रतीत होवैहै । यह भाव है ॥

अत एव विद्वानपि स्वात्मनस्तद्रूपत्वावगमात् न एव जायते । "न स पुनरावर्तते" इति श्रुतेरिति ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्भारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिता पंचकोशविवेकव्याख्या समाप्ता ॥ ३ ॥

है ॥ "सो ज्ञानी पुनरावृत्ति जो फेर जन्मादिसंसारविषै आगमन ताकूं पावता नहीं ॥" इस श्रुतितैं । इति ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्म विदुषा विरचिता पंचदश्याः पंचकोशविवेकस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ३ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ द्वैतविवेकः ॥

॥ चतुर्थप्रकरणम् ॥ ४ ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २१८	[17] ईश्वरेणापि जीवेन सृष्टं द्वैतं प्रपंच्यते । [20] विवेके सति जीवेन हेयो बंधः स्फुटीभवेत् ॥१॥	टीकांक: ९१६ टिप्पणांक: ॐ

ॐ

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ द्वैतविवेकपदयोजना ॥ ४ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
कुर्वे द्वैतविवेकस्य व्याख्यां तत्त्वप्रकाशिकाम् ॥१॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
मया द्वैतविवेकस्य क्रियते पदयोजना ॥ १ ॥

१६ चिकीर्षितस्य ग्रंथस्य निष्प्रत्यूहपरिपूरणायाभिलषितदेवतातत्त्वानुस्मरणलक्षणमंगल-

ॐ

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ द्वैतविवेककी* तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ ४ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमस्कारकरिके पंचदशीके द्वैतविवेकनामचतुर्थप्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिकानामव्याख्या मैं करूंहूं ॥ १ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीभारतीतीर्थ औ श्रीविद्यारण्य इन दोनूंमुनीश्वरनकूं नमनकरिके मेरेकरि द्वैतविवेककी पदयोजना कहिये टीका करियेहै ॥ १ ॥

॥ ग्रंथके आरंभकी प्रतिज्ञा औ प्रयोजन ॥

१६ करनेकूं इच्छित ग्रंथके निर्विघ्न परिपूर्ण होनेअर्थ इष्टदेवता जो परमेश्वर ताका तत्त्व जो स्वरूप ताके स्मरणरूप मंगलकूं आ-

* दोप्रकारकूं जो पावै सो कहिये द्वैत (जगत्)। ताका विवेक कहिये जीवकृतजगत् औ ईश्वरकृतजगत् इत्यादि-भेदकरिके विवेचन जिसमैं है सो द्वैतविवेक ॥

टीकांक: ९१७ टिप्पणांक: ४६०

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
स मायी सृजतीत्याहुः श्वेताश्वतरशाखिनः ॥२॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २१९

माचरन्नस्य वेदांतप्रकरणत्वाच्छास्त्रीयमेवानुबंध-चतुष्टयं सिद्धवत्कृत्य ग्रंथारंभं प्रतिजानीते—

१७] **ईश्वरेण जीवेन अपि सृष्टं द्वैतं प्रपंच्यते ॥**

१८) **ईश्वरेण** कारणोपाधिकेनांतर्यामिणा। **जीवेनापि** कार्योपाधिकेनाहंप्रत्ययिना च । **सृष्टम्** उत्पादितं । **द्वैतं** जगत् । विविच्यते वि-भज्य प्रदर्श्यते ॥

१९ अस्य द्वैतविवेचनस्य काकदंतपरीक्षाव-न्निःप्रयोजनत्वं वारयति—

२०] **विवेके सति जीवेन हेयः बंधः स्फुटीभवेत् ॥**

२१) **विवेके सति** जीवेश्वरसृष्टयोर्द्वैतयो-र्विवेचने कृते सति । **जीवेन** पूर्वोक्तेन । **हेयः** परित्याज्यो **बंधः** बंधहेतुर्द्वैतं । **स्फुटी-भवेत्** स्पष्टतां गच्छेत् । एतावज्जीवेन हेय-मिति निश्चीयत इत्यर्थः ॥ १ ॥

२२ नन्वदृष्टद्वारा जीवानामेव जगद्धेतुत्वं वादिनो वर्णयंति अतः कथमीश्वरसृष्टत्वमुच्यते

चरतेहुये आचार्य्य । इस द्वैतविवेककूं वेदांत-शास्त्र जो शारीरकआदिक ताका प्रकरणरूप होनैतैं वेदांतशास्त्रके जे च्यारिअनुबंध हैं । सोई इस द्वैतविवेकके वी हैं । ऐसैं वेदांतशा-स्त्रकेहीं च्यारिअनुबंधनकूं इसविषै सिद्ध हु-येकी न्यांई जानिके । द्वैतविवेकनामक ग्रंथके आरंभकूं प्रतिज्ञा करैहैं:—

१७] **ईश्वरकरि औ जीवकरि र-चित द्वैत विवेचन करियेहै ॥**

१८) मायारूप कारणउपाधिवाले अंत-र्यामीईश्वरकरि औ अंतःकरणरूप कार्यउपा-धिवाले "मैं" इस प्रतीतिवान् जीवकरि वी रचित ऐसा द्वैत जो जगत् सो विवेचन करियेहै कहिये विभागकरिके दिखाइयेहै ॥

१९ इस द्वैतविवेचनके काकके दंतनकी परीक्षाकी न्यांई निष्प्रयोजनपनेकूं निवारण करैहैं:—

२०] **विवेकके हुये जीवकरि त्याज्य जो जगत्‌रूप बंध है सो स्पष्ट होवैहै ॥**

२१) विवेकके हुये कहिये जीव औ ई-श्वरकरि रचित दोनूंद्वैतनके विवेचन किये-हुये। पूर्वउक्तजीवकरि परित्याग करनैकूं योग्य जो बंध है कहिये सुखदुःखरूप बंधका हेतु द्वैत जो जगत् है । सो स्पष्टताकूं पावताहै ॥ अर्थ यह जो इतना द्वैतहीं जीवकूं त्याग करनै योग्य है यह निश्चय करियेहै ॥ १ ॥

॥ १ ॥ ईश औ जीवकूं जगत् जो द्वैत ताका स्रष्टापना ९२२–१०६२ ॥

॥ १ ॥ ईश्वररचित द्वैत ॥९२२–९६२॥

॥ १ ॥ ईश्वरकूं जगत्‌के स्रष्टापनैमैं श्रुतिप्रमाण ॥

२२ ननु अदृष्ट जो धर्मअधर्म तिस द्वारा जीवनकूंहीं जगत्‌की कारणता केइक मीमांसका-दिकवादी वर्णन करतेहैं । यातैं तुमकरि ज-गत्‌का ईश्वररचितपना कैसै कहियेहै ? यह

---

६० पूर्वले पंचकोशविवेकप्रकरणमैं कथन किया जो पंचकोशरूप उपाधिवाला जीव । तिसकरि ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २२०	२६ आत्मा वा इदमग्रेऽभूत्स ईक्षत सृजा इति । संकल्पेनासृजल्लोकान्स एतानिति बह्वृचाः ॥ ३ ॥	टीकांकः ९२३ टिप्पणांकः ॐ

जगत इत्याशंक्य । बहुश्रुतिविरोधान्नेदं चोद्यमुत्थापयितुमर्हति इत्यभिप्रेत्य श्वेताश्वतरवाक्यं तावदर्थतः पठति—

२३] "**मायां तु प्रकृतिं विद्यात् । मायिनं तु महेश्वरं । सः मायी सृजति" इति श्वेताश्वतरशाखिनः आहुः ॥**

२४) मायोपाधिकमीश्वरं प्रस्तुत्य "अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्" इति तस्यैवेश्वरस्य जगत्स्रष्टृत्वं **श्वेताश्वतरशाखिनो** वर्णयंतीत्यर्थः ॥ २ ॥

२५ ऐतरेयोपनिषद्वाक्यं अर्थतोऽनुसंक्रामति (आत्मेति)—

२६] "**इदं अग्रे आत्मा वा अभूत् । सः सृजै इति ईक्षत । सः संकल्पेन एतान् लोकान् असृजत्" इति बह्वृचाः ॥**

२७) "**आत्मा वा इदम् एक एव** अग्रे आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् । स ईक्षत **लोकान् नु सृजै इति स इमान् लोकान् असृजत**" इत्यनेन वाक्येनाद्वितीयस्य पर-

---

आशंकाकरिके बहुश्रुतिनके विरोधतैं यह जगत् जीवरचितहीं है ईश्वररचित नहीं । ऐसा अद्भुतप्रश्नरूप चोद्य उठावनैकूं योग्य नहीं है । इस अभिप्रायकरिके कृष्णयजुर्वेदगत श्वेताश्वतरउपनिषद्के वाक्यकूं प्रथम अर्थतैं पठन करैहैं:—

२३] "**मायाकूं प्रकृति** कहिये उपादानकारण जानै औ **मायी** जो मायाका अधिष्ठानब्रह्म ताकूं **महेश्वर जानै । सो मायाउपाधिवाला परमेश्वर जगत्कूं रचताहै ॥" ऐसैं श्वेताश्वतरशाखावाले कहतेहैं ॥**

२४) "मायाकूं प्रकृति जानै औ मायीकूं महेश्वर जानै ।" ऐसैं मायाउपाधिवाले ईश्वरकूं प्रसंगविषे प्राप्तकरिके "इस कारणतैं मायावी जो ईश्वर सो इस विश्वकूं सृजताहै ।" इसरीतिसैं तिसी मायाविशिष्टईश्वरहींकूं जगत्का स्रष्टापना कहिये कर्त्तापना श्वेताश्वतरशाखावाले ब्राह्मण वर्णन करतेहैं ॥ यह अर्थ है ॥ २ ॥

२५ अब ऋग्वेदगत ऐतरेयउपनिषद्के वाक्यकूं अर्थतैं अनुक्रमकरि कहैहैं:—

२६] "**यह आगे आत्माहीं होताभया । सो मैं लोकनकूं सृजूं । ऐसैं ईक्षण करताभया ॥ सो संकल्पकरि इन लोकनकूं सृजताभया ॥" ऐसैं ऋक्शाखावाले कहतेहैं ॥**

२७) "आगे सृष्टितैं पूर्व यह जगत् निश्चयकरि एकहीं आत्मा होताभया । अन्यक्रियावान् कछुबी नहीं था ॥ सो परमात्मा 'लोक जे प्रजा तिनकूं मैं रचूं' ऐसैं ईक्षण कहिये जो आलोचनरूप संकल्प ताकूं करताभया ॥ सो इन लोकनकूं सृजताभया ॥" इसरीतिके इस वाक्यकरि अद्वितीयपरमात्मा-

टीकांक: ९२८ टिप्पणांक: ४६१	[२९] खं वाय्वग्निजलोर्व्योषध्यन्नदेहाः क्रमादमी । संभूता ब्रह्मणस्तस्मादेतस्मादात्मनोऽखिलाः ॥४॥ [३०] बहु स्यामहमेवातः प्रजायेयेति कामतः । तपस्तप्त्वाऽसृजत्सर्वं जगदित्याह तित्तिरिः ॥५॥	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २२१ २२२

मात्मन एव जगत्स्रष्टृत्वं बह्वृचाः ऋक्शाखाध्यायिन आहुरित्यर्थः ॥ ३ ॥

२८ ईश्वरस्य जगत्कारणत्वे तैत्तिरीयश्रुतिरपि प्रमाणमित्यभिप्रेत्य तद्वाक्यमर्थतः पठति द्वाभ्यां—

२९] खं वाय्वग्निजलोर्व्योषध्यन्नदेहाः अमी अखिलाः क्रमात् तस्मात् एतस्मात् आत्मनः ब्रह्मणः संभूताः ॥ ४ ॥

३०] (बह्विति)—"अहम् एव बहु स्यां अतः प्रजायेय इति कामतः तपः तप्त्वा सर्वं जगत् असृजत्" इति तित्तिरिः आह ॥

३१) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्युपक्रम्य । "तस्मात् वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः" इत्यादिना । "अन्नात्पुरुषः" इत्यंतेन वाक्येन गुहाहितत्वेन प्रत्यगभिन्नात् ब्रह्मणः आकाशादिदेहपर्यंतं जगदुत्पन्नमित्यभिधायोपरिष्टादपि "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय इति । स तपो तप्यत ।

कूंहीं जगत्का स्रष्टापना । ऋग्वेदकी शाखाके अध्ययन करनेहारे ब्राह्मण कहतेहैं ॥ यह अर्थ है ॥ ३ ॥

२८ ईश्वरकूं जगत्की कारणता है तिसविषै कृष्णयजुर्वेदगत तैत्तिरीयश्रुति बी प्रमाण है ॥ इस अभिप्रायकरिके तिस तैत्तिरीयउपनिषद्के वाक्यकूं दोश्लोककरि अर्थतैं पठन करैहैं:—

२९] आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी औषधि अन्न अरु देह । ये सर्व क्रमकरि तिस वा इस आत्मारूप ब्रह्मतैं उत्पन्न भयेहैं ॥ ४ ॥

३०] "मैंहीं बहु होवों याहितैं अतिशयकरि होवों इस इच्छातैं तप तपिके सर्वजगत्कूं सृजताभया" ऐसैं तैत्तिरीयउपनिषद् कहतीहै ॥

३१) तैत्तिरीयश्रुतिविषै "सत्य ज्ञान अनंतरूप ब्रह्म है।" ऐसैं आरंभकरिके "तिस वा इस आत्मासैं अभिन्नब्रह्मतैं आकाश उत्पन्न भया ॥" इनसैं आदिलेके "अन्नतैं वीर्यद्वारा पुरुष जो देह सो भया ॥" इतनैपर्य्यंत जो वाक्य है । तिसकरि पंचकोशरूप गुहाविषै स्थित होनैकरि प्रत्यक्आत्मासैं अभिन्न ब्रह्मतैं । आकाशसैं आदिलेके देहपर्य्यंत जगत् उत्पन्न भया । ऐसैं पूर्वले चतुर्थश्लोकविषै कहिके ऊपरतैं बी "सो परमेश्वर इच्छा करताभया॥ बहु होवों॥ प्रकर्षकरि होवों॥" ऐसैं। फेर "सो परमेश्वर तप जो विचारकरि देखनैरूप पर्यालोचन ताकूं करताभया॥ सो तपकूं तपिके जो यह कछु जगत् है इस

---

६१ वेदके परिमितअक्षररूप मंत्रभागकरि प्रतिपादित ॥

६२ वेदके अपरिमितअक्षररूप ब्राह्मणभागकरि प्रतिपादित

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
२२३	[33]इदमग्रे सदेवासीद्बहुत्वाय तदैक्षत । तेजोऽबन्नांडजादीनि ससर्जेति च सामगाः ॥६॥	९३२
२२४	[36]विस्फुलिंगा यथा वह्नेर्जायंतेऽक्षरतस्तथा । विविधाश्चिज्जडा भावा इत्याथर्वणिका श्रुतिः॥७॥	टिप्पणांकः ४६३

स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किंचन" इति वाक्येन तस्यैव ब्रह्मणो जगत्सर्जनेच्छापूर्वकपर्यालोचनेन जगत्स्रष्टृत्वं तित्तिरिराह । इत्यर्थः ॥ ५ ॥

३२ छांदोग्येऽपि ब्रह्मण एव जगत्स्रष्टृत्वं श्रुतमित्याह (इदमिति)—

३३] "अग्रे इदं सत् एव आसीत्। तत् बहुत्वाय ऐक्षत च तेजोऽबन्नांडजादीनि ससर्ज" इति सामगाः ॥

३४) "सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्" इति सद्रूपमद्वितीयं ब्रह्मोपक्रम्य "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत" इत्यादिना तस्यैवेक्षणपूर्वकं तेजोऽबन्नस्रष्टृत्वमभिधाय "तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवंत्यंडजं जरायुजमुद्भिज्जम्" इत्यादिना अंडजादिशरीरनिर्मातृत्वं च सामगाः वर्णयंतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

३५ मुंडकोपनिषद्यपि "तदेतत्सत्यं यथा

सर्वकूं सृजताभया ॥" इस वाक्यकरि तिसी प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मकूंहीं जगत्‌के उपजावनैकी इच्छापूर्वक पर्य्यालोचन[63]करि जगत्‌का उत्पत्तिकर्त्तापना तैत्तिरीयश्रुति कहतीहै ॥ यह अर्थ है ॥

३२ सामवेदगत छांदोग्यनामउपनिषद्‌विषै बी ब्रह्मकूंहीं जगत्‌का स्रष्टापना सुन्याहै ऐसैं कहैहैं:—

३३] "सृष्टितैं पूर्व यह जगत् सत्‌ब्रह्महीं था औ सो ब्रह्म बहु होनैके अर्थ ईक्षण जो आलोचन ताकूं करताभया ॥ सो तेज जल औ अन्न जो पृथ्वी औ अंडजआदिक तिनकूं सृजताभया" ॥ ऐसैं सामवेदी कहतेहैं ॥

३४) छांदोग्यविषै "हे सोम्य नाम प्रियदर्शन श्वेतकेतो! आगे यह जगत् एकहींअद्वितीयविवर्त्तउपादान जो सत् तिसरूप था ॥" ऐसैं सत्‌रूप अद्वितीयब्रह्मकूं आरंभकरिके "सो सत्‌रूप ब्रह्म ईक्षण करताभया ॥ बहु होवों । यातैं अतिशयकरि होवों । ऐसैं सो तेज जो अग्नितत्त्व ताकूं सृजताभया ॥" इनसैं आदिलेके तिसी ब्रह्मकूंहीं ज्ञानदृष्टिरूप ईक्षणपूर्वक । तेज जल औ पृथ्वीका स्रष्टापना कहिके "तिन प्रसिद्ध इन प्राणिनके शरीररूप भूतनके तीनहीं[64] बीज होवैहैं ॥ अंडज जो पक्षीसर्पादिक औ जरायुज जो मनुष्यपशुआदिक औ उद्भिज्ज जो वृक्षआदिक ॥" इत्यादिकवाक्यनकरि अंडजआदिकशरीरनका स्रष्टापना सामवेदके गायन करनैहारे ब्राह्मण वर्णन करतेहैं ॥ यह अर्थ है ॥ ६ ॥

३५ अथर्वणवेदगत मुंडकनामउपनिषद्‌विषै बी "सो यह ब्रह्म सत्य है ॥ जैसैं प्र-

---

६३ मायाके परिणामरूप ज्ञानदृष्टिकरि ॥

६४ इहां तीनपद । चतुर्थ स्वेदज कहिये पसीनासैं होनैहारे यूकादिकका बी उपलक्षण है ॥

टीकांक: ९३६ टिप्पणांक: ४६५	ॐजगदव्याकृतं पूर्वमासीद्व्याक्रियताधुना । दृश्याभ्यां नामरूपाभ्यां विराडादिषु ते स्फुटे ८	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २२५

सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवंते सरूपास्तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायंते तत्र चैवापियंति" इत्यक्षरशब्दवाच्याद्ब्रह्मणो जगदुत्पत्तिः श्रूयत इत्याह (विस्फुलिंगा इति)—

३६] "यथा वह्नेः विस्फुलिंगाः जायंते । तथा अक्षरतः विविधाः चिज्जडाः भावाः" इति आथर्वणिकी श्रुतिः ॥ ७ ॥

३७ एवं बृहदारण्यकेऽप्यव्याकृतशब्दवाच्याद्ब्रह्मणो नामरूपात्मकं जगदुत्पन्नमिति श्रुतमित्याह द्वाभ्याम् (जगदिति)—

३८] पूर्वं जगत् अव्याकृतं आसीत् । अधुना दृश्याभ्यां नामरूपाभ्यां व्याक्रियत । ते विराडादिषु स्फुटे ॥

ज्वलितअग्नितैं हजारोहजार विस्फुलिंग जे चिणगारे वे प्रकर्षकरि होवैहैं । तैसैं हे सोम्य ! अक्षर जो ब्रह्म तातैं रूप जो आकार तिस सहित विविधपदार्थ प्रकर्षकरि उपजतेहैं । फेर तिसी अक्षरशब्दके अर्थ ब्रह्मविषैहीं लय होवैहैं ॥" इसरीतिसैं अक्षरशब्दके वाच्यअर्थरूप ब्रह्मतैं जगत्की उत्पत्ति सुनियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

३६] "जैसैं अग्नितैं[६५] विस्फुलिंग जे सूक्ष्मअंश वे उपजतेहैं तैसैं अविनाशीब्रह्मतैं विविध चित् जे जंगम अरु जड जे स्थावर ऐसैं पदार्थ उपजतेहैं"। ऐसैं अथर्वणवेदकी श्रुति जो मुंडकउपनिषद् सो कहतीहै ॥ ७ ॥

३७ ऐसैं शुक्लयजुर्वेदगत बृहदारण्यकनामउपनिषद्विषै बी अव्याकृतशब्दके वाच्यअर्थ ब्रह्मतैं नामरूपमय जगत् उत्पन्न भया । इसरीतिसैं सुन्याहै । ऐसैं दोश्लोककरि कहैहैं:—

३८] पूर्व कहिये सृष्टितैं प्रथम जगत् अव्याकृत जो ब्रह्म तिसरूप था औ अब सृष्टिके पीछे द्रष्टाके विषय ऐसे दृश्य जे नामरूप हैं तिनकरि व्याकृत कहिये स्पष्ट होता भया ॥ वे नामरूप विराट्आदिककार्यनविषै स्पष्ट हैं ॥

६५ अग्नि जो महातेज ताका एक सामान्यरूप है । दूसरा विशेषरूप है ॥ तिनमैं निरुपाधिक अग्निका सामान्यरूप है सो जलतैं सूक्ष्म है औ दशगुणव्यापक है ॥ काष्ठआदिकउपाधिवाला अग्निका विशेषरूप है सो उपाधिके भेदसैं नानाभांतिका है औ परिच्छिन्न है ॥ इहां सोपाधिकअग्निके पुंजतैं कहिये ढेरतैं उपाधिके अंशनसैं विस्फुलिंगरूप अंश हुयेकी न्यांई अंश होवैहैं । फेर उपाधिके अंशनके विलयतैं विलय होतेकी न्यांई विलय होवैहैं ॥ वास्तव अग्निकूं नानाभावकरि उत्पत्ति औ विनाश नहीं है ॥ तैसैं चेतनके बी सामान्य औ विशेषभेदकरि दोरूप हैं । तिनमैं निरुपाधिकब्रह्म चेतनका सामान्यरूप है सो एक व्यापक है ॥ औ मायाअविद्याउपाधिविशिष्टचिदाभास चेतनका विशेषरूप है । सो नाना है औ परिच्छिन्न है ॥ तिस विशेषअंशकी उपाधिअंशके नानात्वकरि नानाभांतिपना औ उत्पत्ति औ विलयआदिक हैं। वास्तव चेतनकूं नानाभावकरि उत्पत्तिविलयआदिक नहीं हैं ॥ यातैं जीवब्रह्मका वास्तवअंशअंशीभाव नहीं है । यह प्रसंगसैं जनाया है ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २२६

[41] विराण्मनुर्नरो गावः खराश्वाजावयस्तथा ।
पिपीलिकावधि द्वंद्वमिति वाजसनेयिनः ॥ ९ ॥

२२७

[43] कृत्वा रूपांतरं जैवं देहे प्राविशदीश्वरः ।
इति ताः श्रुतयः प्राहुर्जीवत्वं [46] प्राणधारणात् १०

टीकांकः ९३९ टिप्पणांकः ॐ

३९) "तद्धीदं तर्हि अव्याकृतमासीत् तन् नामरूपाभ्यां एव व्याक्रियता असौ नामायमिदꣳरूपम्" इति वाक्येन सृष्टेः पुराऽस्पष्टनामरूपत्वेनाव्याकृतशब्दवाच्यान्मायोपाधिकाद्ब्रह्मणो नामरूपस्पष्टीकरणलक्षणा सृष्टिरुक्ता । तयोर्नामरूपयोः । विराडादिषु स्थूलकार्येषु स्पष्टता च "तदिदमप्येतर्हि नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियतेऽसौ नामायमिदंरूपम्" । इति वाक्येनाभिहितास्ते च विराडादय "आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविध" इत्यादिना "एवमेव यदिदं किंच मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत" इत्यंतेन दर्शिता इत्यर्थः ॥ ८ ॥

४० विराडादिसृष्टिप्रतिपादिकां पूर्वोक्तश्लोकटीकोक्तां श्रुतिमर्थतः पठति—

४१] "**विराड् मनुः नरः गावः खराश्वाजावयः तथा पिपीलिकावधि द्वंद्वम्" इति वाजसनेयिनः ॥ ९ ॥**

४२ उदाहृताभिः श्रुतिभिः द्वैतसृष्ट्यभि-

३९) "रुद्ध कहिये मायाकरि आवृतसंस्काररूप यह जगत् तब सृष्टितैं पूर्व अव्याकृत जो मायोपाधिकब्रह्म तिसरूप था ॥ सो जगत् नाम औ रूपकरिहीं यह आकाशादिकपदार्थ इस नामवाला है ॥ यह इसका रूप कहिये आकार है । ऐसैं स्पष्ट होताभया" ॥ इस वाक्यकरि सृष्टितैं पूर्व अस्पष्ट नामरूपयुक्त होनैकरि अव्याकृतशब्दका वाच्य जो मायाउपाधिवाला ब्रह्म है । तिसतैं नामरूपके स्पष्ट करनैरूप सृष्टि जो जगत्की उत्पत्ति सो कही ॥ औ तिन नामरूपकी विराट्आदिकपंचीकृतभूतनतैं उत्पन्न स्थूलकार्यनविषै स्पष्टता है । सो स्पष्टता । "सो यह जगत् बी सृष्टितैं उत्तरकालविषै 'यह' घटादिक इस नामवाला है । यह इसका आकार है ॥ ऐसैं नामरूपकरिहीं स्पष्टताकूं पावताहै" इस वाक्यकरि कहीहै ॥ औ सो विराट्आदिकस्थूलकार्य "यह जगत् पूर्व 'पुरुष' इस विशेषणवाला आत्माहीं था ॥" इनसैं आदिलेके "ऐसैंहीं पिपीलिकाकूं आरंभकरिके जो यह कछु स्त्रीपुरुषमयजगत्रूप मिथुन है । तिस सर्वकूं सृजताभया ॥" इहांपर्यंत जो वाक्य है तिसकरि स्थूलकार्य दिखायेहैं । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

४० विराट्आदिकके सृष्टिकी प्रतिपादक पूर्व अष्टमश्लोककी टीकाविषै उक्तश्रुतिके अर्थकूं कहैहैं:—

४१] **विराट्** । स्वायंभुवआदिक **मनु** । **मनुष्य** । **गौ** । **गर्दभ** । **घोडे** । **बकरे** । **पक्षी वा मैंढा औ चीटिपर्यंत** जो **द्वैत** नाम स्त्रीपुरुषमय **मिथुनरूप** जगत् है । ताकूं सृजताभया । ऐसैं **वाजसनेयीशाखावाले** ब्राह्मण कहतेहैं ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मका जीवरूपकरि तिस द्वैतविषै प्रवेश ॥

४२ उदाहरणकरि कही जे श्रुतियां हैं । तिनकरि द्वैत जो जगत् ताकी उत्पत्तिके

टीकांक: ९४३ टिप्पणांक: ४६६

चैतन्यं यदधिष्ठानं लिंगदेहश्च यः पुनः ।
चिच्छाया लिंगदेहस्था तत्संघो जीव उच्यते ११

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २२८

धानानंतरं ब्रह्मणो जीवरूपेण तत्र प्रवेशोऽप्यभिहित इत्याह (कृत्वेति)—

४३] **ईश्वरः जैवं रूपांतरं कृत्वा देहे प्राविशत् । इति ताः श्रुतयः प्राहुः ॥**

४४) *श्रुतयः जैवं जीवसंबंधि रूपांतरं* अविक्रियब्रह्मणो विलक्षणं विकारिरूपमित्यर्थः । देहे देहजाते ॥

४५ जीवत्वं कुत इत्यत आह (जीवत्वमिति)—

४६] **प्राणधारणात् जीवत्वम् ॥**

४७) प्राणादीनां स्वामित्वेन प्रेरकत्वं प्राणधारणं । तस्माज्जैवं रूपं कृत्वा प्राविशदित्युक्तम् ॥ १० ॥

४८ किं तदित्यपेक्षायामाह (चैतन्यमिति)—

४९] *यत् अधिष्ठानं चैतन्यं । पुनः* **यः च लिंगदेहः । लिंगदेहस्था चिच्छाया । तत्संघः जीवः उच्यते ॥**

५०) **यदधिष्ठानं** लिंगदेहकल्पनाधारभूतं। यत् चैतन्यं अस्ति। यः च तत्र कल्पितो लिंगदेहः । यश्च तस्मिन् लिंगदेहे वर्त-

---

कथन कीये पीछे ब्रह्मका जीवरूपकरि तिस विराट्देहआदिकजगत्विषै [६६] प्रवेश बी कह्याहै। यह कहैहैं:—

४३] **ईश्वर । जीवसंबंधि अन्यचिदाभासरूपकरिके देहविषै प्रवेश करताभया । ऐसैं सो पूर्वउक्त** सृष्टिप्रतिपादक**श्रुतियां कहैहैं ॥**

४४) श्रुतियां । जीवसंबंधि अन्यरूपकूं कहिये विकाररहित ब्रह्मतैं विलक्षण विकारिरूपकूं करीके परमेश्वर । देहके समूहविषै प्रवेश करताभया । ऐसैं कहैहैं ॥ यह अर्थ है ॥

४५ तिस विकारिरूपकूं जीवभाव काहेतैं है ? तहां कहैहैं:—

४६] **प्राणनके धारणतैं जीवभाव है॥**

४७) प्राण जे इंद्रिय तिसआदिकवस्तुनका अभिमानीरूप स्वामी होनैकरि प्रेरणाका कर्त्तापनाहीं प्राणधारण कहियेहै ॥ तिसतैं इस परमेश्वरकूं जीवभाव है कहिये जीवसंबंधिरूपकरिके प्रवेश करताभया । ऐसैं कहाहै ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ जीवका स्वरूप ॥

४८ कौन सो जीवभाव है ? इस पूछनैकी इच्छाके भये कहैहैं:—

४९] **जो अधिष्ठानचैतन्य है औ जो लिंगदेह है औ लिंगदेहविषै स्थित जो चेतनका आभास है । तिन तीनका संघ जीव कहियेहै ॥**

५०) लिंगदेहकी कल्पनाका आधाररूप अधिष्ठान जो चैतन्य कहिये घटाकाशस्थानी कूटस्थ है औ जो तिस कूटस्थविषै अध्यस्त लिंगदेह कहिये जलपूरितघटस्थानी है औ जो तिस लिंगदेहविषै वर्तमान चिदाभास जो महाकाशके प्रतिबिंबस्थानीय ब्रह्मका प्रतिबिंब

---

६६ देहइंद्रियादिकका अभिमान प्रवेश कहियेहै ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २२९ २३०

[५२] माहेश्वरी तु माया या तस्या निर्माणशक्तिवत् ।
[५५] विद्यते मोहशक्तिश्च तं जीवं मोहयत्यसौ ॥१२॥
[५८] मोहादनीशतां प्राप्य मग्नो वपुषि शोचति ।
[६१] ईशसृष्टमिदं द्वैतं सर्वमुक्तं समासतः ॥ १३ ॥

टीकांकः ९५१ टिप्पणांकः ॐ

मानश्चिदाभासः । तत्संघः तेषां त्रयाणां समूहो जीवशब्देन उच्यत इत्यर्थः ॥ ११ ॥

५१ नन्वीश्वरस्यैव जीवरूपेण प्रविष्टत्वे तस्याज्ञत्वदुःखित्वादिविरुद्धधर्मवत्त्वं कुत इत्याशंक्याह—

५२] माहेश्वरी तु या माया तस्या निर्माणशक्तिवत् मोहशक्तिः च विद्यते ॥

५३) माहेश्वरी "मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्रुत्युक्ता महेश्वरसंबंधिनी या माया अस्ति। तस्या निर्माणशक्तिवत् जगत्सर्जनसामर्थ्यवत् । मोहशक्तिश्च मोहनसामर्थ्यं अप्यस्ति । "तदेतज्जडं मोहात्मकम्" इति श्रुतेः ॥

५४ ततः किमित्यत आह (तं जीवमिति)—

५५] असौ तं जीवं मोहयति ॥

५६) असौ मोहनशक्तिः । तं पूर्वोक्तं जीवं । मोहयति चिदानंदादिस्वरूपज्ञानरहितं करोति ॥ १२ ॥

५७ ततोऽपि किमित्यत आह—

हैं । तिन तीनका संघ जो समूह सो जीवशब्दकरि कहियेहै । यह अर्थ है ॥ ११ ॥

॥४॥ जीवकूं मायाकरि अज्ञत्वदुःखित्वादिमोह ॥

५१ ननु ईश्वरकाहीं जब जीवरूपकरि देहनविषै प्रवेश भयाहै तब तिस जीवरूप भये ईश्वरकूं अज्ञानीपनै औ दुःखीपनैसैं आदिलेके विरोधिधर्मयुक्तपना काहेतें है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं:—

५२] **माहेश्वरी जो माया है तिसकी निर्माणशक्तिकी न्यांई मोहशक्ति बी है ॥**

५३) "मायावालेकूं महेश्वर जानै ।" इस श्रुतिविषै कथन करी जो महेश्वरसंबंधी माया कहिये मूलप्रकृति है । तिस मायाका जगत्के सृजनैके सामर्थ्यकी न्यांई मोह करनेका सामर्थ्य बी है ॥ "सो यह अज्ञानका कार्य जडरूप औ मोहरूप है ।" इस श्रुतितैं ॥

५४ मायाकी मोहशक्ति है तिसतैं क्या सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं:—

५५] **यह मोहनशक्ति तिस जीवकूं मोह जो भ्रांति ताकूं प्राप्त करतीहै ॥**

५६) यह मायाकी मोहनशक्ति जो है। सो तिस पूर्व तृतीयसैं एकादशवें श्लोकविषै उक्त ईश्वरके अन्यरूप जीवकूं मोह करतीहै । कहिये चिदानंदआदिकस्वरूपके ज्ञानसैं रहित करतीहै ॥ १२ ॥

॥ ५ ॥ मोहतैं जीवकूं अनीश्वररूप दीनभाव ॥

५७ मायाकी मोहनशक्ति तिस जीवकूं मोह करतीहै । तिसतैं बी क्या सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं:—

टीकांकः ९५८ टिप्पणांकः ४६७	⁶⁶सप्तान्नब्राह्मणे द्वैतं जीवसृष्टं प्रपंचितम् । ⁶⁶अन्नानि सप्त ज्ञानेन कर्मणाऽजनयत्पिता ॥१४॥	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २३१

५८] **मोहात् अनीशतां प्राप्य वपुषि मग्नः शोचति ॥**

५९) **मोहात्** पूर्वोक्तात् । **अनीशतां** इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारयोरसामर्थ्यं **प्राप्य** । **वपुषि निमग्नः** शरीरे तादात्म्याभिमानं गतः । **शोचति** दुःखित्वाद्यभिमानं करोति । "समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः" इति श्रुतेरित्यर्थः ॥

६० वक्ष्यमाणसांकर्यपरिहाराय वृत्तं निगमयति (ईशेति)—

६१] **इदं ईशसृष्टं सर्वं द्वैतं समासतः उक्तम् ॥**

६२) **समासतः** संक्षेपेणेत्यर्थः ॥ १३ ॥

६३ ननु जीवस्य द्वैतस्रष्टृत्वे किं मानमित्याशंक्याह—

६४] **सप्तान्नब्राह्मणे जीवसृष्टं द्वैतं प्रपंचितम् ॥**

६५ कथं तत्र प्रपंचितमित्याशंक्य । सप्तान्नशब्दवाच्यद्वैतसृष्टिप्रतिपादकं "यत्सप्तान्नानि

५८] **मोहतैं अनीशताकूं पायके वपुविषै मग्नहुवा शोचताहै ॥**

५९) पूर्व द्वादशवें श्लोकविषै उक्त मोहतैं अनीशताकूं पायके कहिये इच्छाके विषय अनुकूलवस्तुरूप इष्टकी प्राप्ति औ प्रतिकूल जे अप्रियवस्तु तिसरूप अनिष्टकी निवृत्तिके असामर्थ्यकूं प्राप्त होयके शरीरविषै तादात्म्यअभिमानकूं प्राप्तहुवा शोच करताहै । कहिये "मैं दुःखी हूं" इत्यादिकअभिमानकूं करताहै ॥ "एकदेहविषै निमग्न जो पुरुष सो मोहकूं प्राप्तहुया असामर्थ्यरूप दुःखकरि दुःखीपनेआदिकका अभिमान करताहै ॥" इस श्रुतितैं ॥ यह अर्थ है ॥

६० वक्ष्यमाण चतुर्दशवेंश्लोकसैं आगे कहियेगा जो जीवरचितद्वैत । तिसके साथि ईशरचितद्वैतके मिलापकी निवृत्ति करनैअर्थ उक्तईश्वरद्वैतकूं सूचन करैहैं:—

६१] **ऐसैं यह ईशसृष्टसर्वद्वैत समासतैं कह्या ॥**

६२) ऐसैं प्रथमसैं इस श्लोकपर्यंत यह ईश्वररचित सर्वजडचेतनरूप द्वैत जो जगत् सो संक्षेपकरि कथन किया । यह अर्थ है ॥१३॥

॥ २ ॥ जीवरचित द्वैत ॥९६३–९७४॥

॥ १ ॥ सप्तान्नजीवद्वैतमैं बृहदारण्यककी श्रुतिप्रमाण ॥

६३ ननु जीवकूं द्वैतजगत्के कर्त्ता होनैविषै कौन प्रमाण है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६४] **⁶⁶सप्तान्नब्राह्मणविषै जीवरचितद्वैत विस्तारसैं कह्याहै ॥**

६५ ननु तहां सप्तान्नब्राह्मणविषै जीवरचितद्वैत कैसैं प्रपंचन कियाहै ? यह आशंकाकरि सप्तअन्नशब्दके वाच्यअर्थरूप द्वैत जो कार्यमात्र ताकी उत्पत्तिका प्रतिपादक जो

---

६६ बृहदारण्यकउपनिषद्के प्रथमअध्यायगत पंचम ब्राह्मणनामकप्रकरणविषै ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २३२ २३३ — टीकांकः ९६६ टिप्पणांकः ४६८

६९ मर्त्यान्नमेकं देवान्ने द्वे पश्वन्नं चतुर्थकम् ।
अन्यत्त्रितयमात्मार्थमन्नानां विनियोजनम् ॥१५॥
७१ व्रीह्यादिकं दर्शपूर्णमासौ क्षीरं तथा मनः ।
वाक्प्राणाश्चेति सप्तत्वमन्नानामवगम्यताम् ॥१६॥

मेधया तपसाऽजनयत्पिता" इति वाक्यमर्थतः संगृह्णाति (अन्नानीति)—

६६] पिता सप्त अन्नानि ज्ञानेन कर्मणा अजनयत् ॥

६७) पिता स्वादृष्टद्वारा जगदुत्पादनेन सर्वलोकपालको जीव इत्यर्थः ॥ १४ ॥

६८ नन्वन्नसप्तकसर्जनं किमर्थमित्याशंक्य तद्विनियोगोऽपि "एकमस्य साधारणं द्वे देवानभाजयत् त्रीण्यात्मनेऽकुरुत पशुभ्य एकं प्रायच्छत्" इति वाक्येनोक्त इत्याह— मर्त्यान्नमिति विनियोजनमुक्तमिति शेषः ॥

६९] एकं मर्त्यान्नं । द्वे देवान्ने । चतुर्थकं पश्वन्नं । अन्यत् त्रितयम् आत्मार्थे । अन्नानां विनियोजनम् ॥१५॥

७० तानि च सप्तान्नानि "एकमस्य साधारणमितीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यत" इत्यादिना "अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः" इत्यंतेन वाक्यसंदर्भेणैपदूनकंडिकाद्वयरूपेण दर्शितानीत्याह—

"सप्तअन्नकूं ज्ञानकरि औ कर्मकरि पिता जो जीव सो जनताभया ॥" यह वाक्य है । तिसकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

६६] पिता जो जीव सो सप्तअन्नोंकूं ज्ञान जो चिंतन तिसकरि औ कर्मकरि जनताभया ॥

६७) अपनै अदृष्टरूप पुण्यपापद्वारा जगत्के उत्पादन करनैकरि सर्वलोकनका पालन करनैहारा जीव । इहां श्रुतिवाक्यविषै पिता कहियेहै । यह अर्थ है ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ सप्तअन्नका अधिकारीभेदकरि उपयोग ॥

६८ ननु सप्तअन्नका उत्पादन किसअर्थ है ? यह आशंकाकरिके "एक इस मनुष्यका साधारणअन्न है । दोअन्न देवनकूं देताभया । तीनअन्नोंकूं अपनै जीवके अर्थ करताभया । एकअन्न पशुनके तांई देताभया" ॥ इसवाक्यकरि तिन सप्तअन्नका उपयोग बी कह्याहै। ऐसैं कहैहैं:—

६९] तंडुलादिरूप एक मनुष्यका अन्न है औ दर्श औ पूर्णमासरूप दो देवनके अन्न हैं । दुग्धरूप चतुर्थ पशुनका अन्न है औ मन वाणी औ प्राणरूप अन्यतीनअन्न आप जीवके अर्थ हैं ॥ ऐसैं अन्नका विनियोजन कहिये उपयोग कह्याहै ॥ १५ ॥

॥ ३ ॥ सप्तअन्नके नाम ॥

७० "तंडुलादिरूप एक इस मनुष्यका साधारण अन्न है। यहहीं इसका सो साधारण अन्न है । जो यह भक्षण करियेहै" ॥ इनसैं आदिलेके "यह आत्मा वाणीमय मनोमय प्राणमय है" ॥ इहांपर्य्यंत जो किंचित् न्यून दोकंडिकारूप वाक्यका समूह है । तिंसकरि सो सप्तअन्न दिखायेहैं । ऐसैं कहैहैं:—

६८ सर्वभूतप्राणीनकूं विभाग करनैके योग्य । सो विभाग पंचसूनानाम ग्रहस्थके पापके निवारक (प्रायश्चित्तरूप) पंचमहायज्ञनविषै परिगणित भूतयज्ञविषै प्रसिद्ध है ॥

टीकांकः ९७१ टिप्पणांकः ४६९	७३ ईशेन यद्यप्येतानि निर्मितानि स्वरूपतः। तथापि ज्ञानकर्मभ्यां जीवोऽकार्षीत्तदन्नताम् १७	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २३४

७१] व्रीह्यादिकं दर्शपूर्णमासौ क्षीरं तथा मनः वाक् च प्राणाः इति अन्नानां सप्तत्वं अवगम्यताम् ॥ १६ ॥

७२ ननूक्तसप्तान्नानां जगदंतःपातित्वेनेश्वरनिर्मितत्वाज्जीवनिर्मितत्वाभिधानमयुक्तमित्याशंक्य। तत्स्वरूपस्येश्वरनिर्मितत्वेऽपि भोग्यत्वाकारस्य जीवनिर्मितत्वात् मैवमित्याह (ईशेनेति)—

७३] यद्यपि एतानि स्वरूपतः ईशेन निर्मितानि। तथापि जीवः ज्ञानकर्मभ्यां तदन्नताम् अकार्षीत् ॥

७४) ज्ञानकर्मभ्यां ज्ञानं विहितं प्रतिषिद्धं च देवतापरयोषिदादिविषयध्यानं। कर्म च विहितं यज्ञादिरूपं प्रतिषिद्धं हिंसादिरूपं ताभ्यामित्यर्थः ॥ तदन्नतां तेषां व्रीह्यादिप्राणांतानां स्वभोगोपकरणत्वमित्यर्थः ॥ १७ ॥

७१] तंडुलआदिक तथा दर्श[69] औ पूर्णमास[70] तथा दुग्ध तथा मन वाणी औ प्राण ऐसैं अन्नोंका सप्तपना जानना ॥

॥ ४ ॥ सप्तअन्नका भोग्यत्वआकारसैं जीवकरि रचितपना ॥

७२ ननु उक्तसप्तअन्नोंकूं जगत्के अंतर्गत होनैकरि ईश्वररचित होनैतैं जीवकरि रचित हैं। यह कथन अयुक्त है। यह आशंकाकरिके तिन सप्तअन्नोंके अपनै आकारकूं ईश्वररचित होते वी भोगनैकी योग्यता जो भोग्यता तिसरूप आकारकूं जीवकरि कल्पित होनैतैं सप्तअन्नकूं जीवरचित कहना अयुक्त है। यह कथन बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

७३] यद्यपि यह सप्तअन्न स्वरूपसैं ईश्वरकरि रचित हैं तथापि जीव ज्ञान औ कर्मकरि तिनकी भोग्यता करताभया ॥

७४) ज्ञान जो विषयका ध्यान है सो विहित कहिये शास्त्रोक्त औ निषिद्ध कहिये शास्त्रनिषिद्ध इस भेदतैं दोभांतिका है ॥ तिनमैं देवतादिविषयका ध्यान जो उपासन सो विहित है औ परस्त्रीआदिकविषयका ध्यान जो चिंतन सो निषिद्ध है। ऐसैं दोभांतिका ज्ञान कहिये विषयका ध्यान है ॥ औ कर्म। यज्ञादिरूप विहित औ हिंसादिरूप निषिद्ध इस भेदतैं दोभांतिका है। तिन ज्ञान औ कर्म दोनूंकरि जीव। तिन तंडुलसैं आदिलेके प्राणपर्यंत सप्तअन्नोंकूं अन्नभाव कहिये अपनै भोगकी सामग्रीपना कल्पताभया ॥ यह अर्थ है ॥ १७ ॥

६९ अग्निहोत्री। प्रतिपद्के दिन सर्वदा जो इष्टि (याग) करताहै सो दर्श कहियेहै ॥

७० पूर्णमास नाम यागविशेषका है ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
२३५	७६ ईशकार्यं जीवभोग्यं जगद्वाभ्यां समन्वितम् । ७९ पितृजन्या भर्तृभोग्या यथा योषित्तथेष्यताम् १८	९७५
२३६	मायावृत्त्यात्मको हीशसंकल्पः साधनं जनौ । मनोवृत्त्यात्मको जीवसंकल्पो भोगसाधनम् १९	टिप्पणांकः ४७१

७५ किमुक्तं भवतीति तत्राह—

७६] **ईशकार्यं जीवभोग्यं जगत् द्वाभ्यां समन्वितम् ॥**

७७) जगत् सप्तान्नत्वेन उक्तं व्रीह्यादिरूपं। **ईशकार्यत्वेन जीवभोग्यत्वेन च द्वाभ्यां** संबद्धमित्यर्थः ॥

७८ एकस्योभयसंबंधे दृष्टांतमाह (पितृजन्येति)—

७९] **यथा योषित् पितृजन्या भर्तृभोग्या । तथा इष्यताम् ॥ १८ ॥**

८० ईशजीवयोर्जगत्सर्जने किं साधनमित्यत आह—

८१] **मायावृत्त्यात्मकः हि ईशसंकल्पः जनौ साधनं । मनोवृत्त्यात्मकः जीवसंकल्पः भोगसाधनम् ॥ १९ ॥**

॥ ३ ॥ उक्तसप्तअन्नरूप जगत्का जीवईश दोनूंसैं स्रष्टापनैकरि संबंध ॥ ९७५—१०२१ ॥

॥ १ ॥ एकजगत्कूं ईशजीव दोनूंसैं संबंधविषै दृष्टांत ॥

७५ इतनै ग्रंथकरि क्या कथन किया होवैहै ? तहां कहैहैं:—

७६] **ईशका कार्य औ जीवका भोग्य । यह जगत् दोनूंकरि संबद्ध है ॥**

७७) सप्तअन्न होनैकरि कह्या जो व्रीहिआदिकरूप जगत् है। सो ईश्वरका कार्य होनैकरि औ जीवका भोग्य कहिये भोगका साधन होनैकरि ईश औ जीव दोनूंसैं संबंधवाला है ॥ यह अर्थ है ॥

७८ एकजगत्के ईश औ जीव दोनूंसैं संबंधविषै दृष्टांत कहैहैं:—

७९] **जैसैं एकहीं स्त्री पितासैं उत्पन्न है औ पतिसैं भोगनैकूं योग्य है । तैसैं जगत्कूं वी जानना ॥ १८ ॥**

॥ २ ॥ जीव औ ईशकूं जगत्के रचनैमैं साधन ॥

८० ईश्वर औ जीवकूं जगत्के रचनैविषै कौंन सामग्री है ? तहां कहैहैं:—

८१] **मायाकी वृत्तिरूप ईश्वरका संकल्प** जगत्की उत्पत्तिविषै **साधन** है औ **अंतःकरणकी वृत्तिरूप जीवका संकल्प** सुखादिअनुभवरूप **भोगका साधन है ॥ १९ ॥**

७१ परिणामरूप ॥

टीकांकः ९८२ टिप्पणांकः ॐ	ईशनिर्मितमण्यादौ वस्तुन्येकविधे स्थिते । भोक्तृधीवृत्तिनानात्वात्तद्भोगो बहुधेष्यते ॥ २० ॥ हृष्यत्येको मणिं लब्ध्वा क्रुद्धयत्यन्यो ह्यलाभतः । पश्यत्येव विरक्तोऽत्र न हृष्यति न कुप्यति ॥ २१ ॥	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २३७ २३८

८२ नन्वीशसृष्टवस्तुस्वरूपातिरिक्तो भोग्यत्वाकार एव नास्ति को जीवेन सृज्यत इत्याशंक्याह—

८३] **ईशनिर्मितमण्यादौ एकविधे वस्तुनि स्थिते भोक्तृधीवृत्तिनानात्वात् तद्भोगः बहुधा इष्यते ॥**

७४) एकस्मिन्नेव विषये बहुविधोपभोग उपलभ्यमानस्तत्प्रयोजकं भोग्याकारभेदं गमयतीत्यर्थः ॥ २० ॥

८५ ननु सति भोगभेदे भोग्यभेदः कल्प्येत स एव नास्तीत्याशंक्य । दृश्यमानत्वान्मैवमित्याह (हृष्यतीति)—

८६] **एकः मणिं लब्ध्वा हृष्यति हि । अन्यः अलाभतः क्रुध्यति । अत्र विरक्तः पश्यति एव । न हृष्यति न कुप्यति ॥**

८७) एको मण्यर्थी तं लब्ध्वा हृष्यति अन्यः तथाविधः तद् अलाभात् क्रुध्यति । अत्र मणौ विषये विरक्तः तु तं मणिं

॥ ३ ॥ ईशरचित एकआकारमैं जीवरचित अनेकआकार ॥

८२ ननु ईश्वररचित जो वस्तु है तिसके स्वरूपतैं भिन्नवस्तुका भोग्यपनैरूप आकारहीं नहीं है । तब जीवकरि कौंन आकार रचियेहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं:—

८३] **ईश्वररचित मणिआदिक एकप्रकारके वस्तुके स्थित होते बी भोक्ता जे जीव तिनकी बुद्धिवृत्तिनके नाना होनैतैं तिन मणिआदिकका भोग बहुत प्रकारका अंगीकार करियेहै ॥**

८४) एकहीं विषय जो मणिआदिक तिसविषै जो बहुतप्रकारका भोग देखियेहै । सो भोगका भेद । तिस भोगके भेदका प्रयोजक कहिये निमित्तकारण जो भोग्यरूप विषयके आकारका भेद है तिसकूं लखावैहै ॥ यह अर्थ है ॥ २० ॥

८५ ननु भोग जो सुखादिअनुभव ताके भेद हुये । भोग्य जो विषय तिसका भेद कल्पिये । सो भोगका भेदहीं नहीं है ॥ यह आशंकाकरिके भोगके भेदकूं देख्या होनैतैं भोगका भेद नहीं है यह कथन बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

८६] **एकपुरुष मणिकूं पायके हर्षकूं पावताहै अरु अन्य तिसके अलाभतैं क्रोधकूं करताहै औ इहां विरक्त जो है सो तौ देखताहीं है । न हर्षकूं पावताहै अरु न कोपकूं पावताहै ॥**

८७) एक । मणिका अर्थी कहिये इच्छावाला पुरुष तिस मणिकूं पायके हर्षकूं पावताहै औ दूसरा। तिसीप्रकारका कहिये मणिकी इच्छावालापुरुष । तिस मणिके अलाभतैं क्रोधकूं करताहै औ इहां मणिविषै वैराग्यवान् जो तीसरापुरुष है सो तौ तिस मणिकूं

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २३९ २४०

प्रियोऽप्रिय उपेक्ष्यश्चेत्याकारा मणिगास्त्रयः ।
स्रष्टा जीवैरीशसृष्टं रूपं साधारणं त्रिषु ॥ २२ ॥
भार्या स्नुषा ननांदा च याता मातेत्यनेकधा ।
प्रतियोगिधिया योषिद्भिद्यते न स्वरूपतः ॥ २३ ॥

टीकांक: ९८८ टिप्पणांक: ४७२

पश्यत्येव । लाभालाभनिमित्तौ हर्षक्रोधौ न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

८८ के ते भोगभेदोपरक्ता जीवसृष्टा आकारभेदा इत्यत आह (प्रिय इति)—

८९] मणिगाः प्रियः अप्रियः च उपेक्ष्यः इति त्रयः आकाराः जीवैः सृष्टाः। त्रिषु साधारणं रूपं ईशसृष्टम् ॥

९०) मणिनिष्ठाः प्रियत्व अप्रियत्व उपेक्ष्यत्वलक्षणा आकारभेदाः । जीवैः सृष्टास्त्रिषु अपि साधारणं अनुस्यूतं यन्मणिरूपं तदीश्वरनिर्मितमित्यर्थः ॥ २२ ॥

९१ उक्तं जीवसृष्टाकारभेदमुदाहरणांतरेण स्पष्टयति—

९२] भार्या स्नुषा ननांदा याता च माता इति अनेकधा योषित् प्रतियोगिधिया भिद्यते । न स्वरूपतः ॥

९३) ननांदा भर्तृभगिनी । याता देवरपत्नी । प्रतियोगिधिया भर्तृश्वशुरादि-

केवल देखताहीं है औ लाभ अरु अलाभ निमित्त हर्ष औ क्रोधकूं नहीं पावताहै ॥ यह अर्थ है ॥ २१ ॥

८८ ननु सो भोगभेदके अधीन जीवरचित आकारके भेद कौनसे हैं? तहां कहैहैं:—

८९] मणिविषै स्थित प्रियअप्रिय औ उपेक्ष्य ये तीन जे आकार हैं वे जीवोंनैं रचेहैं औ तीनआकारनविषै साधारण जो रूप कहिये आकार है सो ईशरचित हैं ।

९०) मणिविषै स्थित जो प्रियपना अप्रियपना औ [७२]उपेक्ष्यपना । इस रूपवाले आकारके भेद हैं वे जीवनकरि रचित हैं औ प्रियपनेआदिक तीनआकारनविषै साधारण अनुस्यूत जो मणिरूप आकार है सो ईश्वरकरि रचित है ॥ यह अर्थ है ॥ २२ ॥

९१ उक्त जीवरचितआकारके भेदकूं अन्यउदाहरणकरि स्पष्ट करैहैं:—

९२] भार्या। स्नुषा कहिये पुत्रवधू । ननांदा कहिये भर्ताकी भगिनी। याता कहिये देवरकी पत्नी औ माता । ऐसैं अनेकप्रकार एकहीं स्त्री । प्रतियोगीकी बुद्धिसैं भेदकूं पावतीहै औ ईशरचितस्त्री आकारतैं भिन्न नहीं है ॥

९३) प्रतियोगीकी बुद्धिकरि कहिये पतिश्वशुरआदिरूप प्रतियोगी जो संबंधी ताकूं विषयकरनैवाली बुद्धिके भेदकरि कहिये तिस

७२ राग औ द्वेषसैं रहित वृत्तिकूं उपेक्षा कहैहैं । तिसका विषय जो उपेक्षा करनैकूं योग्य वस्तु है। सो उपेक्ष्य कहियेहै ॥ ऐसा विरक्तकूं मणिका आकार है ॥

टीकांक: ९९४ टिप्पणांक: ४७३	^९५^नैनु ज्ञानानि भिद्यंतामाकारस्तु न भिद्यते । योषिद्वपुष्यतिशयो न दृष्टो जीवनिर्मितः ॥ २४ ॥ ^९७^मैवं मांसमयी योषित्काचिदन्या मनोमयी । मांसमय्या अभेदेऽपि भिद्यते हि मनोमयी २५	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २४१ २४२

लक्षणप्रतियोगिगोचरया बुध्या । तत्तदपेक्षयेत्यर्थः ॥ २३ ॥

९४ ननु योषिद्विषयाणि भार्यास्नुषेत्यादिज्ञानान्येव भिन्नान्युपलभ्यंते न तु तद्विषयभूताया योषितः स्वरूपे भेदो दृश्यते । अतः "प्रतियोगिधिया योषिद्भिद्यत" इत्युक्तमयुक्तमिति शंकते—

९५] ननु ज्ञानानि भिद्यंतां आकारः तु न भिद्यते । योषिद्वपुषि जीवनिर्मितः अतिशयः न दृष्टः ॥ २४ ॥

९६ ज्ञानवैलक्षण्यस्य ज्ञेयवैलक्षण्याविनाभूतत्वात् ज्ञेयाकारभेदोऽगीकर्तव्य एवेत्याशयेन परिहरति—

९७] मा एवम् । काचित् मांसमयी योषित् । अन्या मनोमयी । मांसमय्याः अभेदे अपि मनोमयी हि भिद्यते ॥ २५ ॥

तिस संबंधीकी ^७३^अपेक्षाकरि एकहीं ईश्वररचितस्त्री भेदकूं पावैहै ॥ यह अर्थ है ॥ २३ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक २०–२३ उक्त अर्थमैं शंका ॥

९४ ननु स्त्रीकूं विषय करनैहारे "भार्या है" "पुत्रवधू है" इत्यादिकज्ञानहीं भिन्न देखियेहैं औ तिन ज्ञानोंकी विषयरूप स्त्रीका स्वरूप जो आकार तिसविषै तौ भेद नहीं देखियेहै ॥ यातैं "प्रतियोगीकी कहिये तिस तिस संबंधीकी बुद्धिकरि स्त्री भेदकूं पावतीहै" ऐसैं जो तुमनैं २३ वें श्लोकमैं कह्या सो अयुक्त है । इसरीतिसैं मूलविषै वादी शंका करैहै:—

९५] ननु ज्ञानहीं भेदकूं पावहु औ स्त्रीका आकार तौ भेदकूं पावता नहीं है ॥ यातैं स्त्रीके शरीरविषै जीवरचित अतिशयरूप जो भेद सो नहीं देख्याहै ॥ २४ ॥

॥ ५ ॥ श्लोक २४ उक्त शंकाका समाधान ॥

९६ ज्ञानके भेदकूं ज्ञेय जो विषय ताके भेदके अधीन होनैतैं ज्ञेय जो विषय ताके आकारका भेद अंगीकार करनैकूं योग्यहीं है । इस अभिप्रायकरिके सिद्धांती परिहार करैहैं:—

९७] ऐसैं ^७४^नहीं है । काहेतैं एक मांसमयी ईशरचितस्त्री है औ अन्यकोइक मनोमयी जीवरचितस्त्री है । तिनमैं मांसमयीके अभेदके कहिये एकपनैके हुये बी मनोमयीहीं भेदकूं पावतीहै ॥ २५ ॥

---

७३ एकहीं स्त्री । पतिकी अपेक्षासैं भार्या है औ श्वशुरकी अपेक्षासैं स्नुषा है औ भ्रातृपत्नीकी अपेक्षासैं ननांदा है औ पतिके ज्येष्ठभ्राताके स्त्रीकी अपेक्षासैं याता है औ पुत्र वा पुत्रीकी अपेक्षासैं माता है ॥

७४ स्त्रीके शरीरविषै जीवरचित अतिशय (अधिकआकार) नहीं है ऐसैं नहीं ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २४३ २४४	भ्रांतिस्वप्नमनोराज्यस्मृतिष्वस्तु मनोमयम् । जाग्रन्मानेन मेयस्य न मनोमयतेति चेत् ॥२६॥ बाढं माने तु मेयेन योगात्स्याद्विषयाकृतिः । भाष्यवार्तिककाराभ्यामयमर्थ उदीरितः ॥ २७ ॥	टीकांक: ९९८ टिप्पणांक: ४७५

९८ ननु भ्रांत्यादिस्थले बाह्यविषयाभावात् तत्रसं वस्तु मनोमयमस्तु । प्रमितिस्थले तु तदनुपपन्नं बाह्यवस्तुनः सत्वादिति शंकते—

९९] भ्रांतिस्वप्नमनोराज्यस्मृतिषु मनोमयम् अस्तु । जाग्रन्मानेन मेयस्य मनोमयता न इति चेत् ॥

१०००) मानेन प्रत्यक्षादिप्रमाणेन **मेयस्य** प्रमेयस्येत्यर्थः ॥ २६ ॥

१ प्रमितिस्थले बाह्यविषयसत्वमंगीकरोति—

२] बाढम् ॥

३ कथं तर्हि तद्विषयस्य मनोमयत्वमुच्यते इत्यत आह—

४] माने विषयाऽऽकृतिः तु मेयेन योगात् स्यात् ॥

५) माने विषयाऽऽकृतिस्तु तस्य **मेयेन योगात्** संबंधात् **स्यात् ॥**

॥ ६ ॥ प्रमाके विषय जो बाह्यवस्तु तिनकी मनोमयतामैं शंका ॥

९८ ननु भ्रांतिआदिकस्थलविषै बाह्यविषयके अभावतैं तहां मनोमयवस्तु होहु औ प्रमा जो यथार्थज्ञान ताके स्थलविषै तौ सो मनोमयवस्तु बनै नहीं । काहेतैं मनसैं बाहिर वस्तुके विद्यमान होनैतैं ॥ इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

९९] भ्रांति स्वप्न मनोराज्य औ स्मृति । इनविषै मनोमयवस्तु होहु औ जाग्रत्के प्रमाणकरि प्रमेयकी मनोमयता नहीं है ॥ ऐसैं जो कहै ।

१०००) जाग्रत्के मानकरि कहिये प्रत्यक्षादिकप्रमाणकरि । मेय कहिये प्रमेय जो बाह्यवस्तु ताकी मनोरूपता बनै नहीं ॥ यह वादीकी शंका है ॥ २६ ॥

॥ ७ ॥ प्रमास्थलमैं बाह्यविषयके सद्भावका अंगीकार औ ताकी सप्रमाण मनोमयता (समाधान) ॥

१ सिद्धांती । प्रमाज्ञानके स्थलविषै बाह्यविषयके सद्भावकूं अंगीकार करैहैः—

२] तौ सत्य है ॥

३ ननु तब तिस प्रत्यक्षादिप्रमाणके विषयकी मनोमयता तुमकरि कैसैं कहियेहै? तहां कहैहैंः—

४] प्रमाणविषै विषयकी आकृति तौ प्रमेयके साथि योगतैं होवैहै ॥

५) प्रमाणविषै विषयका आकार कहिये मनोमयस्वरूप तौ तिस प्रमाणका जो विषयके साथि संबंध है तिसतैं होवैहै ॥

७५ जहां पूर्वपक्ष दृढ होवै तहां बाढ (सत्य) ऐसैं कहियेहै ॥ इहां पूर्वपक्ष यथार्थ है । ताकूं इष्टापत्ति (व्यावहारिकपक्षविषै अनुकूल होनै)करि अंगीकार करनैके लिये सिद्धांतीनैं "सत्य" ऐसैं कह्याहै ॥

७६ इंद्रियद्वारा निकसिके विषयपर्यंत प्राप्त नालेके समान आकारवाली मनोवृत्तिविषै ॥

टीकांकः १००६ टिप्पणांकः ॐ	मूषासिक्तं यथा ताम्रं तन्निभं जायते तथा । रूपादीन्व्याप्नुवच्चित्तं तन्निभं दृश्यते ध्रुवम् ॥२८॥ व्यंजको वा यथाऽऽलोको व्यंग्यस्याऽऽकारतामियात् । सर्वार्थव्यंजकत्वाद्धीरर्थाकारा प्रदृश्यते ॥ २९ ॥	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २४५ २४६

६ नन्विदं स्वकपोलकल्पितमित्याशंक्याह—

७] भाष्यवार्तिककाराभ्यां अयं अर्थः उदीरितः ॥ २७ ॥

८ तत्र तावद्भाष्यकारवचनमुदाहरति (मूषेति)—

९] यथा ताम्रं मूषासिक्तं तन्निभं जायते। तथा रूपादीन् व्याप्नुवत् चित्तं ध्रुवम् तन्निभं दृश्यते ॥

१०) यथा द्रुतं ताम्रं मूषायां सिक्तं सत् तन्निभं जायते तत्समानाकारवद्भवति। तथा रूपादीन् विषयान् । व्याप्नुवत् विषयीकुर्वत् । चित्तं । ध्रुवम् अवश्यं । तन्निभं दृश्यते उपलभ्यत इत्यर्थः ॥ २८ ॥

११ ननु ताम्रादेरग्निसंपर्काद्द्रुतस्य मूषासिक्तस्य कठिनमूषाभिघातेन शैत्यापत्तौ मूषाकारापत्तावपि बुद्धेरमूर्तायास्ताम्रादिविलक्षणाया विषयव्याप्तावपि कुतस्तदाकारापत्तिरित्याशंक्य। दृष्टांतांतरमाह (व्यंजक इति)—

१२] यथा वा व्यंजकः आलोकः व्यंग्यस्य आकारतां इयात् । धीः स-

६ ननु यह वृत्तिरूप प्रमाणविषै विषयके आकारका कथन स्वकपोलकरि कल्पित है । यह आशंकाकरि कहैहैंः—

७] भाष्यकार श्रीशंकराचार्य औ वार्त्तिककार श्रीसुरेश्वराचार्य्य इन दोनूंनैं यह अर्थ कह्याहै ॥ २७ ॥

॥ ८ ॥ प्रमाके विषयकी मनोमयतामैं भाष्यकारका वचनप्रमाण ॥

८ तिन दोनूंवाक्यनमैंसैं प्रथम भाष्यकारके उपदेशसहस्रीगत दोश्लोकरूप वचनकूं कहैहैंः—

९] जैसैं मूषाविषै गेऱ्याहुवा ताम्र है । सो तिसके तुल्य आकारवाला होवैहै । तैसैं रूपादिकनके प्रति व्याप्त हुवा जो चित्त । सो अवश्य तिनके तुल्य आकारवाला देखियेहै ॥

१०) जैसैं प्रगलित भया जो तांबा सो मूषा जो सांचा तिसविषै गेऱ्याहुवा तिस मूषाके समान आकारवाला होवैहै । तैसैं रूपादिकविषयनके प्रति व्याप्त हुवा जो चित्त सो अवश्य तिन रूपादिकनके समान मनोमयआकारवाला देखियेहै कहिये सर्वकरि अनुभव करियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ २८ ॥

११ ननु अग्निके संयोगतैं प्रगलित औ मूषामैं गेऱ्या जो ताम्रआदिकधातु है। तिसकूं कठिनमूषाके संयोगकरि शीतलताकी प्राप्ति हुये मूषाके आकारकी प्राप्तिके हुये बी मूर्त्तिरहित औ ताम्रआदिकनतैं विलक्षण जो चित्त है । तिसकूं विषयके तांई व्याप्त हुये बी कैसैं तिस विषयके आकारकी प्राप्ति होवैहै ? यह आशंकाकरि अन्यदृष्टांतकूं कहैहैंः—

१२] वा जैसैं प्रकाशक जो सूर्यादिकका प्रकाश । सो प्रकाश्यके आकारताकूं पावताहै ॥ तैसैं बुद्धि बी सर्वविषय-

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	१५ मातुर्मानाभिनिष्पत्तिर्निष्पन्नं मेयमेति तत्। मेयाभिसंगतं तच्च मेयाऽऽभत्वं प्रपद्यते ॥ ३०॥	१०१२
२४७		टिप्पणांकः
२४८	सत्येवं विषयौ द्वौ स्तो घटौ मृन्मयधीमयौ। १६ मृन्मयो मानमेयः स्यात्साक्षिभास्यस्तु धीमयः ३१	४७७

र्वार्थव्यंजकत्वात् अर्थाकारा प्रदृश्यते

१३) यथा वा व्यंजकः प्रकाशकः। आलोकः आतपादिः। व्यंग्यस्य प्रकाश्यस्य घटादेः। आकारतां आकारवत्तां। इयात् प्राप्नुयात् ॥ एवं धीः अपि सर्वार्थस्य व्यंजकत्वात् सकलपदार्थप्रकाशकत्वात्। अर्थाकारा अर्थस्याकार इव आकारो यस्याः सा तथा। प्रदृश्यते प्रकर्षेणोपलभ्यत इत्यर्थः ॥ २९ ॥

१४ इदानीं वार्तिककारवचनमाह—

१५] मातुः मानाभिनिष्पत्तिः। निष्पन्नं तत् मेयम् एति च। तत् मेयाभिसंगतं मेयाभत्वं प्रपद्यते ॥

१६) मातुः साधिष्ठानबुद्धिस्थचिदाभासरूपात् प्रमातुः। मानाभिनिष्पत्तिः मानस्य साभासांतःकरणवृत्तिरूपस्याभिनिष्पत्तिः उत्पत्तिर्भवतीति शेषः। निष्पन्नं उत्पन्नं। तत् मानं। मेयं घटादिरूपम्। एति प्राप्नोति। किं च तत् मानं मेयाभिसंगतं प्रमेयेण संबद्धं सत्। मेयाभत्वं मेयस्याभेवाभा यस्य तन्मेयाभं तस्य भावस्तत्त्वं मेयसमानाकारतां। प्रपद्यते प्राप्नोतीत्यर्थः ॥३०॥

१७ भवत्वेवं। प्रकृते किमायातमित्यत आह (सत्येवमिति)—

नकी प्रकाशक होनैतैं अर्थाकार देखियेहै ॥

१३) अथवा जैसैं प्रकाश करनैहारा जो आलोक कहिये धूपआदिक है। सो प्रकाश करनैके योग्य घटादिकके आकारताकूं प्राप्त होवैहै। तैसैं बुद्धि बी सकलपदार्थनकी प्रकाशक होनैतैं अर्थाकार प्रकर्षकरि देखियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ २९ ॥

॥ ९ ॥ उक्तअर्थमैंही वार्तिककारका वचनप्रमाण ॥

१४ अब वार्तिककारके एकश्लोकरूप वचनकूं कहैहैं:—

१५] प्रमातातैं प्रमाणकी उत्पत्ति होवैहै औ उत्पन्न हुवा सो प्रमाण प्रमेयकूं पावताहै ॥ फेर सो प्रमाण प्रमेयके साथि संबद्ध हुवा प्रमेयके तुल्य आकारकूं पावैहै ॥

१६) अधिष्ठान जो कूटस्थ तिससहित बुद्धिविषै स्थित चिदाभासरूप जो प्रमाज्ञानका कर्त्ता जीव है। तिसतैं चिदाभाससहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रमाणकी उत्पत्ति होवै है औ उत्पन्न हुवा सो प्रमाण। घटादिरूप प्रमेयकूं प्राप्त होवैहै औ सो प्रमाण प्रमेयके साथि संबंधकूं पायाहुवा प्रमेयके समान आकारकूं पावताहै ॥ यह अर्थ है ॥ ३० ॥

॥ १० ॥ विषयके दोरूप औ दोग्राहक ॥

१७ ऐसैं प्रमाणकूं विषयके तुल्य आकारकरि युक्तता होहु। इसकरि विषयके भेदरूप प्रसंगविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

---

७७ घटादिरूप अर्थके आकारकी न्याई जिसका आकार है ऐसी ॥

टीकांक: १०१८ टिप्पणांक: ४७८	²³अन्वयव्यतिरेकाभ्यां धीमयो जीवबंधकृत् । ²⁵सत्यस्मिन्सुखदुःखे स्तस्तस्मिन्नसति न द्वयम् ॥३२॥	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २४९

१८] एवं सति मृन्मयधीमयौ घटौ विषयौ द्वौ स्तः ॥

१९ ननु मृन्मयघटस्येव मनोमयघटस्य तेनैव मनसा गृहीतुमशक्यत्वात् ग्राहकांतराभावाच्चासिद्धिरेवेत्याशंक्य । ग्राहकांतराभावोऽसिद्ध इत्याह—

२०] मृन्मयः मानमेयः धीमयः तु साक्षिभास्यः स्यात् ॥

२१) यथा मृन्मयो मानमेयः तथा धीमयः साक्षिभास्यः इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

२२ भवत्वेवं द्विविधं द्वैतं । अत्र कस्य हेयत्वं । कस्य वा न इति न ज्ञायत इत्याशंक्य । जीवसृष्टस्यैव हेयत्वमित्यभिप्रेत्य तस्य बंधहेतुत्वं दर्शयति—

२३] अन्वयव्यतिरेकाभ्यां धीमयः जीवबंधकृत् ॥

१८] ऐसैं हुये मृत्तिकामय औ मनोमयके भेदतैं घटरूप विषय दो होवैहैं ॥

१९ ननु मृत्तिकामयघटकी न्याईं मनोमयघटकूं तिसीहीं मनकरि विषय करनैकूं अशक्य होनैतैं औ तिसके अन्य विषय करनैहारेके अभावतैं तिस मनोमयघटकी असिद्धिहीं है ॥ यह आशंकाकरि मनतैं अन्यग्राहकका अभाव असिद्ध है । ऐसैं कहैहैं:—

२०] मृत्तिकामय मानकरि मेय कहिये ज्ञेय है । धीमय तौ साक्षीभास्य है ॥

२१) जैसैं मृत्तिकामयघट प्रमाण जो मनोवृत्ति तिसकरि मेय कहिये प्रमाज्ञानका विषय होनैकूं योग्य प्रमाताभास्य[७८] है । तैसैं मनोमयघट साक्षीभास्य[७९] है । कहिये साक्षीकरि भासनेकूं कहिये प्रकाशनैकूं योग्य है ॥ यह अर्थ है ॥ ३१ ॥

॥ ४ ॥ जीवरचित द्वैतकूं सुखदुःखरूप बंधकी हेतुता ॥ १०२२–१०६२ ॥

॥ १ ॥ *जीवद्वैतकूं बंधकी हेतुतामैं अन्वयव्यतिरेक ॥*

२२ ऐसैं ईश्वररचित औ जीवरचित भेदकरि दोभांतिका द्वैत जो जगत् सो होहु । इन दोनूंविषै किस द्वैतकी हेयता कहिये त्याज्यता है औ किसकी हेयता नहीं है । ऐसैं नहीं जानियेहै ॥ यह आशंकाकरि जीवरचितद्वैतकीहीं त्याग करनैकी योग्यता है । इस अभिप्रायकरि तिस जीवरचितद्वैतकूं बंधकी हेतुता दिखावैहैं:—

२३] अन्वय औ व्यतिरेककरि मनोमयविषय जीवकूं सुखदुःखरूप बंधनका कर्ता है ॥

[७८] प्रमाणवृत्तिद्वारा जिनकूं साक्षी प्रकाशै ऐसैं जे बाह्यघटादिक हैं । वे प्रमाताभास्य कहियेहैं ॥

[७९] अविद्याकी वृत्तिद्वारा वा अंतरहीं उत्पन्न भई वृत्तिद्वारा जिनकूं साक्षी प्रकाशै · ऐसैं जे स्वप्न सुखदुःख · औ कामादिकमनोमयपदार्थ हैं । वे साक्षीभास्य हैं ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २५०

असत्यपि च बाह्यार्थे स्वप्नादौ बद्ध्यते नरः ।
समाधिसुप्तिमूर्छासु सत्यप्यस्मिन्न बद्ध्यते ॥३३॥

टीकांकः १०२४ टिप्पणांकः ४८०

२४ अन्वयव्यतिरेकावेव दर्शयति (सत्यस्मिन्निति)—

२५] अस्मिन् सति सुखदुःखे स्तः । असति तस्मिन् न द्वयम् ॥

२६) अस्मिन् जीवसृष्टे मानसप्रपंचे । सति विद्यमाने । सुखदुःखे स्तः भवतः । असति तु तस्मिन्न द्वयं । सुखं दुःखं च नास्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

२७ ननूक्तावन्वयव्यतिरेकौ बाह्यार्थविषयौ किं न स्यातामित्यत आह (असतीति)—

२८] नरः स्वप्नादौ बाह्यार्थे च असति अपि बद्ध्यते । समाधिसुप्तिमूर्छासु अस्मिन् सति अपि न बद्ध्यते ॥

२९) नरः मनुष्यः । एतदुपलक्षणमन्येपामपि । स्वप्नादौ स्वप्नस्मृत्यादिकाले बाह्यार्थे अनुकूले योपिदादौ प्रतिकूले व्याघ्रादौ च । पारमार्थिके विषये असत्यपि अविद्यमानेऽपि । बद्ध्यते सुखदुःखाभ्यां युज्यते ॥ समाधिआदिषु तु अस्मिन् बाह्यार्थे सत्यपि न बद्ध्यते न सुखदुःखादिभाग् भवति । अतस्तद्विपयावन्वयव्यतिरेकौ न स्त इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

२४ अन्वय औ व्यतिरेककूंहीं दिखावैहैंः—

२५] इस मनोमयद्वैतके होते सुखदुःख होवैहैं औ तिसके न होते तौ सुखदुःख दोनूं नहीं हैं॥

२६) इस जीवरचित मनोमयप्रपंचके विद्यमान होते सुख अरु दुःख होवैहैं। यह अन्वय है औ तिस मानसद्वैतके न होते तौ दोनूं सुख अरु दुःख नहीं हैं । यह व्यतिरेक है । इतना अर्थ है ॥ ३२ ॥

२७ ननु कहे जे अन्वय औ व्यतिरेक वे दोनूं बाह्यअर्थ जो ईश्वररचितप्रपंच ताकूं विषयं करनैहारे क्यूं नहीं होवैंगे ? तहां कहैहैंः—

२८] स्वप्नआदिकविषै बाह्यअर्थके न होते बी नर बंधनकूं पावताहै औ समाधि सुषुप्ति अरु मूर्च्छाविषै इस बाह्यअर्थके होते बी बंधनकूं पावता नहीं ॥

२९) मनुष्य । स्वप्नस्मृतिमनोराज्य औ भ्रांतिआदिककालविषै अनुकूल जे सुख औ तिसका साधन स्त्रीआदिरूप औ प्रतिकूल जे दुःख औ तिसका साधन व्याघ्रआदिबाह्यअर्थरूप पारमार्थिकविषय ताके अविद्यमान हुये बी बंधनकूं पावताहै कहिये सुखदुःखकरि जुडताहै औ समाधिआदिकविषै तौ इस बाह्यअर्थके होते बी मनुष्य बंधनकूं पावता नहीं। कहिये सुखदुःखआदिककूं भोगता नहीं ॥ यातें तिस ईश्वररचितबाह्यप्रपंचकूं विषय करनैहारे अन्वय औ व्यतिरेक नहीं हैं। किंतु जीवरचित मनोमयप्रपंचकूं विषयकरनैहारे सुखादिरूप बंधनकी हेतुताके साधक अन्वयव्यतिरेक हैं ॥ यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

८० ईश्वररचितप्रपंच होवै तौ सुखादि होवै औ सो न होवै तौ न होवै। ऐसैं ईश्वरकृत द्वैतके संबंधी ॥

८१ इहां जो मनुष्यपद है सो देवादिकनका बी उपलक्षण है ॥

टीकांक: १०३० टिप्पणांक: ॐ	³¹दूरदेशं गते पुत्रे जीवत्येवात्र तत्पिता । विप्रलंभकवाक्येन मृतं मत्वा प्ररोदिति ॥३४॥ ³³मृतेऽपि तस्मिन्वार्तायामश्रुतायां न रोदिति । ³⁶अतः सर्वस्य जीवस्य बंधकृन्मानसं जगत् ॥३५॥	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २५१ २५२

३० मनोमयप्रपंचस्य बंधकत्वेनान्वयव्यतिरेकावुदाहरणेन स्पष्टयति—

३१] दूरदेशं गते पुत्रे जीवति एव अत्र तत्पिता विप्रलंभकवाक्येन मृतं मत्वा प्ररोदिति ॥

३२) देशांतरं प्राप्ते पुत्रे तत्र जीवत्येव सति अत्र स्वगृहे स्थितः तस्य पिता विप्रलंभकस्य मिथ्यावचनैः परवंचकस्य "त्वत्पुत्रो मृत" इत्येवंरूपेण वाक्येन स्वपुत्रं मृतं कल्पयित्वा प्रकर्षेण रोदनं करोति ॥ ३४ ॥

३३] (मृत इति)–तस्मिन् मृते अपि वार्तायां अश्रुतायां न रोदिति ॥

३४) तस्मिन् एव पुत्रे तत्रैव मृतेऽपि तन्मृतिवार्तायां अश्रुतायां सत्यां न रोदनं करोति ॥

३५ फलितमाह—

३६] अतः सर्वस्य जीवस्य मानसं जगत् बंधकृत् ॥ ३५ ॥

॥२॥ श्लोक ३२–३३ उक्त अन्वय-व्यतिरेकमैं उदाहरण ॥

३० मनोमयप्रपंचकूं बंधकारी कहिये सुखदुःखादिकका कर्त्ता होनैकरि तिसके अन्वय औ व्यतिरेककूं उदाहरणकरि दोश्लोकनसैं स्पष्ट करैहैं:—

३१] दूरदेशके प्रति गया जो कोईका पुत्र है। तहां तिसके जीवतेहुयेहीं इहां तिसका पिता विप्रलंभकके वाक्यसैं तिसकूं मृत मानिके रोवैहै ॥

३२) अन्यदेशके प्रति प्राप्त पुत्रकूं तहां परदेशमैं जीवते हुयेहीं इहां अपनै गृहविषै स्थित तिसका पिता। विप्रलंभक जो मिथ्यावचनकरि अन्यपुरुषका वंचक पुरुष। तिसके "तेरा पुत्र मर गया" इस आकारवाले वाक्यकरि। अपनै पुत्रकूं मृत कल्पिकरि अतिशय रुदन करैहै ॥ ३४ ॥

३३] औ तिस पुत्रके मरेहुये बी वार्त्ताके नहीं सुनैहुये रुदन नहीं करैहै ॥

३४) औ तिसीहीं पुत्रके तहां परदेशविषैहीं मृत हुये बी तिसके मरणकी वार्त्ताके नहीं सुनेहुये रुदन नहीं करैहै ॥

॥ ३ ॥ फलितअर्थ ॥

३५ फलितकूं कहैहैं:—

३६] यातैं सर्वजीवनकूं मानस जगतहीं बंधकारी है ॥ ३५ ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २५३ २५४

[38]विज्ञानवादो बाह्यार्थे वैयर्थ्यात्स्यादिहेति चेत् ।
[40]न हृद्याकारमाधातुं बाह्यस्यापेक्षितत्वतः ॥३६॥
[43]वैयर्थ्यमस्तु वा बाह्यं न वारयितुमीश्महे ।
प्रयोजनमपेक्षंते न मानानीति हि स्थितिः ॥३७॥

टीकांक: १०३७ टिप्पणांक: ४८२

३७ धीमयस्य जगतो बंधहेतुत्वांगीकारे बाह्यार्थापलापादपसिद्धांतापातः स्यादिति शंकते (विज्ञानेति)—

३८] बाह्यार्थे वैयर्थ्यात् इह विज्ञानवादः स्यात् इति चेत् ॥

३९ परिहरति—

४०] न । हृदि आकारं आधातुं बाह्यस्य अपेक्षितत्वतः ॥

४१) यद्यपि मानसप्रपंचस्यैव बंधहेतुत्वं । तथाऽपि तद्धेतुत्वेन बाह्यार्थस्यापि स्वीकारान्न विज्ञानवादप्रसंग इति भावः ॥ ३६ ॥

४२ ननु न हृद्याकारसमर्पणाय बाह्यपदार्थोऽपेक्षणीयः पूर्वपूर्वमानसप्रपंचस्यैवोत्तरोत्तरमानसप्रपंचहेतुत्वोपपत्तेरित्याशंक्य । प्रौढिवादेन तदंगीकरोति (वैयर्थ्यमिति)—

४३] वा वैयर्थ्यम् अस्तु ॥

॥४॥ मनोमयकी बंधहेतुतामें शंका औ समाधान॥

३७ बुद्धिरूप जगत्की बंधहेतुताके अंगीकार हुये बाह्यअर्थके अभावतें अपसिद्धांत कहिये तुमारे वेदांतके सिद्धांतके भंगकी प्राप्ति होवैगी । इसरीतिसें वादी शंका करैहैं:—

३८] बाह्यअर्थके व्यर्थ होनैतें इहां विज्ञानवादकी प्राप्ति होवैगी । ऐसें जो कहै ।

३९ सिद्धांती विज्ञानवादके प्राप्तिकी शंकाका परिहार करैहैं:—

४०] तौ बनै नहीं । काहेतें बुद्धिविषै आकारके धारनैकूं बाह्यवस्तुकूं हमारे मतमैं अपेक्षित होनैतैं ॥

४१) यद्यपि बुद्धिरूप प्रपंचकूंहीं बंधकी हेतुता कहिये कारणता है । तथापि तिस मानसप्रपंचका हेतु होनैकरि बाह्यपदार्थके बी अंगीकारतें हमारे सिद्धांतविषै विज्ञानवादकी प्राप्ति नहीं है ॥ यह भाव है ॥ ३६ ॥

॥ ५ ॥ बाह्यप्रपंचकी व्यर्थताका अंगीकार ॥

४२ ननु अंतःकरणविषै आकारके समर्पणअर्थ कहिये धारनैअर्थ बाह्यपदार्थकी अपेक्षा नहीं है । काहेतें पूर्वपूर्वमानसप्रपंचके वासनारूप संस्कारकूंहीं उत्तरउत्तरमानसप्रपंचका हेतु होनैके संभवतें ॥ यह आशंकाकरि प्रौढिवादकरि तिस बाह्यवस्तुकी व्यर्थताकूं अंगीकार करैहैं:—

४३] वा बाह्यवस्तुकी व्यर्थता होहु ॥

८२ क्षणिकविज्ञानवादीके मतमैं बाह्य (बुद्धिसें भिन्न) अर्थ (विषय)का अभाव मान्या है। ताका प्रसंग इहां कहिये सिद्धांतमतमैं होवैगा ॥

८३ दुर्जनतोषन्यायकरि अपनी उत्कर्षताके वास्ते जो कथन सो प्रौढिवाद है ॥ इहां बाह्यवस्तुकी व्यर्थता हुये बी ताका अंगीकार प्रौढिवाद है ॥

टीकांकः १०४४ टिप्पणांकः ४८४	५१ बंधश्चेन्मानसं द्वैतं तन्निरोधेन शाम्यति । अभ्यसेद्योगमेवातो ब्रह्मज्ञानेन किं वद ॥ ३८ ॥	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २५५

४४ तर्हि विज्ञानवादात् को भेद इत्यत आह—

४५] बाह्यं वारयितुं न ईश्महे ॥

४६) विज्ञानवादिनो बाह्यार्थमेवापलपंति वयं न तथेत्ययमेव भेद इत्यर्थः ॥

४७ प्रयोजनशून्यत्वादभ्युपगमोऽप्ययुक्त एवेत्याशंक्याह (प्रयोजनमिति)—

४८] मानानि प्रयोजनम् न अपेक्षंते इति हि स्थितिः ॥

४९) मानाधीना वस्तुसिद्धिर्न प्रयोजनाधीना । मानसिद्धस्य प्रयोजनशून्यत्वमात्रेणासत्त्वस्य लौकिकैर्वादिभिर्वाऽनभ्युपगमादितिभावः ॥ ३७ ॥

५० मानसद्वैतस्यैव बंधहेतुत्वे तस्य मनोनिरोधात्मकयोगेनैव निवृत्तिसंभवाद्ब्रह्मज्ञानस्य बंधनिवर्तकत्वाभ्युपगमो विरुध्येतेति शंकते (बंधश्चेदिति)—

५१] मानसं द्वैतं बंधः चेत् । तत् निरोधेन शाम्यति । अतः योगम् एव अभ्यसेत् । ब्रह्मज्ञानेन किं वद ॥ ३८ ॥

---

४४ ननु जब बाह्यवस्तुकी व्यर्थता स्वीकार करी तब क्षणिकविज्ञानवादरूप बौद्धमततैं कौंन भेद हुआ? तहां कहैहैं:—

४५] बाह्यवस्तुकूं निवारण करनैकूं हम समर्थ नहीं हैं ॥

४६) योगाचारके अनुसारी बुद्धिसैं भिन्न पदार्थकूं निषेध करैहैं औ हम तैसैं बाह्यअर्थका निषेध करैं नहीं । किंतु बाह्यअर्थकी प्रयोजनरहितता मात्र मानतेहैं । यहहीं विज्ञानवादतैं हमारे मतका भेद है ॥ यह अर्थ है ॥

४७ ननु बाह्यअर्थकूं प्रयोजनरहित होनैतैं तिसका मानना बी अयुक्तहीं है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४८] जातैं प्रत्यक्षादिप्रमाण जे हैं वे प्रयोजनकूं अपेक्षा करते नहीं । यह लोकप्रसिद्धमर्यादारूप स्थिति है । तातैं बाह्यअर्थका मानना अयुक्त नहीं ॥

४९) प्रमाणके आधीन वस्तुकी सिद्धि है। फलके आधीन नहीं । काहेतैं प्रत्यक्षादिप्रमाणकरि निश्चित बाह्यवस्तुके प्रयोजनरहितपनैमात्रकरि लौकिकजनोंकरि वा वादिनकरि असद्भावके अंगीकारतैं ॥ यह भाव है ॥ ३७ ॥

॥ ६ ॥ ब्रह्मज्ञानसैं बंधनिवृत्तिके विरोधकी शंका ॥

५० ननु जब मानस कहिये मनोमयद्वैत जो जगत् सोई बंधका हेतु है । तब मनका निरोधरूप योग जो समाधि तिसकरिहीं तिस मानसद्वैतकी निवृत्तिके संभवतैं ब्रह्मज्ञानकूं बंधकी निवर्त्तकता कहिये निवारकता जो अंगीकार करीहै । सो विरोधयुक्त होवैगी ॥ इसरीतिसैं योगमतका अनुसारी ऐसा जो वादी सो शंका करैहैः—

५१] जब मानसद्वैतहीं बंध है तब सो निरोधकरिहीं बाधित होवैगा । यातैं मुमुक्षु चित्तके निरोधरूप योगकूं अभ्यास करै औ ब्रह्मज्ञानसैं क्या प्रयोजन है? सो कहो ॥ ३८ ॥

---

८४ मार्गमैं स्थित तृणकंटकादिकपदार्थनका प्रयोजन नहीं है । तथापि तिनके असद्भावका अंगीकार कोईलोक वा वादी करै नहीं । यातैं प्रयोजनविना बी बाह्यवस्तुनका अंगीकार करैं तौ बी दोष नहीं है ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २५६ २५७	५३ तात्कालिकद्वैतशांतावप्यागामिजनिक्षयः । ब्रह्मज्ञानं विना न स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥३९ ५६ अनिवृत्तेऽपीशसृष्टे द्वैते तस्य मृषात्मताम् । बुद्धा ब्रह्माद्वयं बोद्धुं शक्यं वस्त्वैक्यवादिनः ४०	टीकांकः १०५२ टिप्पणांकः ४८५

५२ योगेन किं द्वैतोपशमस्तात्कालिक उच्यते आत्यंतिको वेति विकल्प्याद्यमंगीकृत्य द्वितीयं दूषयति—

५३] **तात्कालिकद्वैतशांतौ, अपि "आगामिजनिक्षयः ब्रह्मज्ञानं विना न स्यात्" इति वेदांतडिंडिमः ॥**

५४) "ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैर्ज्ञात्वा शिवं शांतिमत्यंतमेति । यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति" । इत्यादिश्रुतिष्वन्वयव्यतिरेकाभ्यां ब्रह्मज्ञानादेव बंधनिवृत्तिरभिधीयत । इति भावः ॥ ३९ ॥

५५ ननु बाह्यद्वैतनिवारणमंतरेणाद्वितीयब्रह्मज्ञानमेव नोदीयादित्याशंक्य । तन्निवार-

॥ ७ ॥ श्लोक ३८ उक्तशंकाका समाधान ॥

५२ हे वादी! योगकरि द्वैतकी निवृत्ति क्या तात्कालिक तेरेकरि कहियेहै वा आत्यंतिक? ऐसैं दोविकल्पकरिके सिद्धांती प्रथमविकल्पकूं अंगीकारकरिके दूसरेकूं दूषण देतेहैं:—

५३] योगकरि तिस चित्तनिरोधकालसंबंधी **द्वैतकी निवृत्तिके हुये बी 'भाविजन्मकी आत्यंतिकनिवृत्ति ब्रह्मज्ञान विना होवै नहीं"। यह वेदांत** जे उपनिषद तिनका **डिंडिम** कहिये ढंढोरा है॥

५४) "देव जो स्वप्रकाशब्रह्म ताकूं जानिके सर्वबंधनकरि मुक्त होवैहै औ शिव जो कल्याणरूप ब्रह्म ताकूं जानिके आत्यंतिकअनर्थनिवृत्तिरूप मुक्तिकूं पावैहै" यह अन्वय है॥ "जब मनुष्य चर्मकी न्यांई आकाशकूं वेष्टन करैंगे। तब देव जो ब्रह्मअभिन्नआत्मा ताकूं न जानिके जन्मादिअनर्थका अंत कहिये नाश होवैगा" यह व्यतिरेक है॥ ईत्यादिकश्रुतिनविषै अन्वय औ व्यतिरेककरि ब्रह्मज्ञानतैंहीं बंधनिवृत्ति कहियेहै ॥ यह भाव है ॥ ३९ ॥

॥ ८ ॥ बाह्यद्वैतके नाशविना मिथ्यात्वज्ञानतैंहीं ब्रह्मज्ञानकी सिद्धि ॥

५५ बाह्य जो ईश्वररचितद्वैत ताके निवारणविना अद्वितीयब्रह्मका ज्ञानहीं उत्पन्न नहीं होवैगा । यह आशंकाकरि तिस बाह्यद्वैतके

८५ जिस कालमैं चित्तका निरोध होवै तिस कालविषैहीं द्वैतकी निवृत्ति तात्कालिकनिवृत्ति है ॥

८६ द्वैतकी निवृत्ति हुये पछि उत्पत्ति होवै नहीं। ऐसी कारणसहित द्वैतकी निवृत्ति आत्यंतिकनिवृत्ति है॥

८७ जैसैं आकाशकूं निरवयव होनेतैं औ विभु होनैकरि मनुष्यनके संस्पर्शरहित होनैतैं तिसका वेष्टन काहुकालविषै होवै नहीं । तैसैं ब्रह्मरूपकरि आत्मदेवकूं जानैविना दुःख जो जन्मादिअनर्थ ताकी निवृत्ति होवै नहीं ॥ यह अर्थ है॥

८८ इहां आदिशब्दकरि "ज्ञानतैं विना मुक्ति नहीं है" औ "ज्ञानतैंहीं कैवल्य (मुक्ति) है" औ "तिस प्रत्यक्अभिन्नपरमात्माकूंहीं जानिके मृत्युकूं लंघताहै औ अयन (मोक्षके ताई गमन)अर्थ अन्य (ज्ञानसैं भिन्न) पंथ (मार्ग) नहीं है" इत्यादिअनंतश्रुति औ स्मृतिनका ग्रहण है॥

टीकांक: १०५६ टिप्पणांक: ४८९

प्रलये तन्निवृत्तौ तु गुरुशास्त्राद्यभावतः ।
विरोधिद्वैताभावेऽपि न शक्यं बोद्धुमद्वयम् ॥४१॥
अबाधकं साधकं च द्वैतमीश्वरनिर्मितम् ।
अपनेतुमशक्यं चेत्यास्तां तद्विष्यते कुतः ॥४२॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २५८ २५९

णाभावेऽपि तस्य मिथ्यात्वज्ञानादेव पारमार्थिकमद्वैतं बोद्धुं शक्यत इत्याह (अनिवृत्तेऽपीति)—

५६] ईशसृष्टे द्वैते अनिवृत्ते अपि तस्य मृषात्मतां बुध्वा वस्त्वैक्यवादिनः अद्वयं ब्रह्म बोद्धुं शक्यम् ॥४०॥

५७ न द्वैतमृषात्वज्ञानमद्वैतज्ञानप्रयोजकमपि तु तन्निवारणमेवेत्यभिनिवेशमानं प्रत्याह—

५८] प्रलये तन्निवृत्तौ तु विरोधिद्वैताभावे अपि गुरुशास्त्राद्यभावतः अद्वयं बोद्धुं शक्यं न ॥

५९) प्रलये प्रलयावस्थायां । तन्निवृत्तौ तु तस्य द्वैतस्य निवृत्तौ सत्यां तु । विरोधिद्वैताभावेऽपि अद्वैतज्ञानविरोधित्वेन भवदभिमतस्य द्वैतस्य निवारणे सत्यपि । गुरुशास्त्राद्यभावतः गुरुशास्त्रादिरूपस्य ज्ञानसाधनस्याभावाद्धेतोः । अद्वयं वस्तु बोद्धुं शक्यं न भवति । अतस्तन्निवारणमप्रयोजकमिति भावः ॥ ४१ ॥

६० तथापि सति द्वैते कथमद्वैतज्ञानमित्याशंक्याह (अबाधकमिति)—

नाशके अभाव हुये बी तिस बाह्यद्वैतके मिथ्यापनेके ज्ञानरूप बाधतैंहीं पारमार्थिक कहिये वास्तविक अद्वैतरूप ब्रह्म जाननैकूं शक्य होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

५६] ईश्वररचितद्वैतके न निवृत्त हुये बी तिसके मिथ्यापनैकूं जानिके वास्तवअद्वैतके वादीकूं अद्वैतब्रह्म जाननैकूं शक्य है ॥ ४० ॥

५७ द्वैतके मिथ्यापनैका ज्ञान अद्वैतज्ञानका प्रयोजक कहिये कारण नहीं है । किंतु तिस द्वैतका नाशहीं अद्वैतज्ञानका प्रयोजक है । इस आग्रहवाले वादीके प्रति कहैहैं:—

५८] प्रलयविषै तिस द्वैतकी निवृत्तिके हुये तौ विरोधिद्वैतके अभावके होते बी गुरुशास्त्रआदिकके अभावतैं अद्वयब्रह्म जाननैकूं शक्य नहीं है ॥

५९) प्रलयअवस्थाविषै तिस ईश्वरकृत द्वैतकी निवृत्तिके हुये तौ विरोधिद्वैतके अभाव होते बी । कहिये अद्वैतज्ञानका विरोधि होनैकरि तेरेकरि मानैहुये द्वैतके निवारण हुये बी गुरुशास्त्रादिरूप ज्ञानसाधनके अभावरूप हेतुतैं अद्वयवस्तु जाननैकूं शक्य होवै नहीं । यातैं तिस ईश्वरद्वैतका नाश अद्वैतज्ञानका अकारण है ॥ यह भाव है ॥ ४१ ॥

॥ ९ ॥ ईश्वररचित द्वैतकूं अद्वैतज्ञानकी अबाधकता औ साधकतातैं द्वेषकी अयोग्यता ॥

६० तथापि द्वैतके होते अद्वैतवस्तुका ज्ञान कैसैं होवै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८९ जैसैं सूर्यविषै किरण प्रतीत होवैहैं । वे तिसतैं भिन्न नहीं ॥ औ जैसैं रज्जु शुक्ति मरुभूमि दर्पण अरु आकाशआदिकविषै क्रमतैं सर्प रजत मृगजल प्रतिबिंब अरु नीलताआदिक प्रतीत होवैहैं वे तिसतैं भिन्न नहीं हैं । तैसैं ईश्वररचितजगत् बी अधिष्ठानब्रह्मतैं भिन्न नहीं है । किंतु मिथ्या है ॥ ईश्वरद्वैतका बाधकरिके वास्तवसदाअद्वैतरूपब्रह्म जाननैकूं शक्य है ॥

९० यद्यपि ईश्वरद्वैतका नाश अद्वैतज्ञानका कारण नहीं है तथापि ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २६० | टीकांकः १०६१ | टिप्पणांकः ४९१

६४ जीवद्वैतं तु शास्त्रीयमशास्त्रीयमिति द्विधा ।
६६ उपाददीत शास्त्रीयमातत्त्वस्यावबोधनात् ॥ ४३ ॥

६१] ईश्वरनिर्मितं द्वैतं अबाधकं च साधकं च अपनेतुं अशक्यं इति तत् आस्तां । कुतः द्विष्यते ॥

६२) ईश्वरनिर्मितं द्वैतमबाधकं तन्मृषात्वज्ञानेनैवाद्वैतज्ञानोत्पत्तेरुक्तत्वात् । साधकं च । गुरुशास्त्रादिरूपस्य तस्य ज्ञानसाधनत्वात् । आकाशादिरूपद्वैतमस्माभिः अपनेतुमशक्यं चेति हेतोः । तत् द्वैतम् आस्तां । कुतः कारणात् द्विष्यत इत्यर्थः ४२

६३ इदानीं जीवसृष्टद्वैतं विभजते—

६४] जीवद्वैतं तु शास्त्रीयं अशास्त्रीयं इति द्विधा ॥

६५ किं तत् द्विविधमपि सदा हेयमेव । नेत्याह (उपाददीतेति)—

६१] ईश्वररचितद्वैत अबाधक औ साधक है अरु सो ईशद्वैत निवारण करनैकूं अशक्य है यातैं सो रहो । काहेतैं तिसविषै द्वेष करियेहै ?

६२) ईश्वररचितद्वैत जो है सो अद्वैतके ज्ञानका अबाधक है । काहेतैं तिस द्वैतके मिथ्यापनैके ज्ञानसैंहीं अद्वैतवस्तुके ज्ञानकी उत्पत्तिकूं श्रुतिविषै कथन करी होनैतैं ॥ फेर सो ईश्वरद्वैत अद्वैतके ज्ञानका साधक है । काहेतैं गुरुशास्त्रआदिरूप तिस ईश्वरद्वैतकूं ज्ञानका साधन होनैतैं औ आकाशादिरूप द्वैत हमोंकरि नाश करनैकूं अशक्य है । इस हेतुतैं सो ईश्वररचितद्वैत जैसैं है तैसैं रहो ॥ काहेतैं तिसविषै तुमकरि द्वेष करियेहै ? यह अर्थ है ॥ ४२ ॥

॥ २ ॥ जीवद्वैतकी भेदपूर्वक त्याज्यता ॥ १०६३–११५८ ॥

॥१॥ जीवकृत शास्त्रीयद्वैतका व्यवस्थापूर्वक ग्रहण औ त्याग ॥ १०६३–१०७८ ॥

॥ १ ॥ जीवकृत दोद्वैतके नाम ॥

६३ अब जीवरचितद्वैत जो मानसजगत् ताकूं विभाग करैहैंः—

६४] जीवद्वैत तौ शास्त्रीय कहिये शास्त्रविषै विहित औ अशास्त्रीय कहिये शास्त्रविषै निषिद्ध । इस भेदतैं दोभांतिका है ॥

॥ २ ॥ ज्ञानतैं पूर्व शास्त्रीयद्वैतका अंगीकार ॥

६५ ननु सो दोभांतिका जीवकृतद्वैत क्या सर्वकालविषै त्याग करनैकूं योग्यहीं है वा नहीं ? तहां दोनूं सदा त्याज्य नहीं हैं । ऐसैं कहैहैंः—

९१ जैसैं घटकुंडलआदिकनका आकार । मृत्तिका औ सुवर्णआदिकनके ज्ञानका बाधक नहीं है औ जैसैं दर्पणगतप्रतिबिंब । आकाशगतनीलता । मरुभूमिगतजल औ स्वप्नप्रपंच । क्रमतैं मुख आकाश मरुभूमि । पुरुषके अद्वैतज्ञानके बाधक नहीं हैं । तैसैं ईश्वरद्वैत बी अद्वैतब्रह्मके ज्ञानका बाधक (विरोधी) नहीं है । किंतु मिथ्या होनैतैं अबाधक है ॥

टीकांक: १०६६ टिप्पणांक: ४९२

आत्मब्रह्मविचाराख्यं शास्त्रीयं मानसं जगत् ।
बुद्धे तत्त्वे तच्च हेयमिति श्रुत्यनुशासनम् ॥ ४४॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २६१

६६] **तत्त्वस्य अवबोधनात् आ। शास्त्रीयं उपाददीत ॥ ४३ ॥**

ॐ ६६) आ तत्त्वस्यावबोधनात् तत्त्वस्यावबोधनपर्य्यंतमित्यर्थः ॥ ४३ ॥

६७ किं तच्छास्त्रीयं द्वैतमित्याकांक्षायामाह-

६८] **आत्मब्रह्मविचाराख्यं शास्त्रीयं मानसं जगत् ॥**

६९) प्रत्यग्रूपस्य ब्रह्मणो विचाराख्यं यच्छ्रवणादिकं तत् शास्त्रीयं मानसं जगत् इत्यर्थः ॥

७० नन्वातत्वस्यावबोधनादित्युक्तमनुपपन्नं "आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया" इत्युक्तत्वादित्याशंक्याह (बुद्धे इति)—

७१] **तत्त्वे बुद्धे तत् च हेयम् इति श्रुत्यनुशासनम् ॥**

७२) तत्त्वे ब्रह्मात्मैक्यलक्षणे बुद्धे साक्षात्कृते सतीत्यर्थः ॥ तर्हि "सुप्तेः" इति वाक्यस्य का गतिरिति चेत् " दद्यान्नावसरं किंचित् कामा-

६६] **तत्त्वके अवबोध कहिये ज्ञानपर्यंत शास्त्रीयद्वैतकूं ग्रहण करना ॥**

ॐ ६६) तत्त्वके बोधतैं आ । याका तत्त्वके बोधपर्यंत । यह अर्थ है ॥ ४३ ॥

॥ ३ ॥ शास्त्रीयद्वैतका स्वरूप ॥

६७ कौंन सो शास्त्रीय द्वैत है? इस पूछनैकी इच्छाके हुये कहैहैं:—

६८] **आत्मासैं अभिन्न ब्रह्मके विचार नामक जो श्रवणआदिक है सो शास्त्रीयमानस कहिये जीवकृत जगत् है ॥**

६९) प्रत्यक्आत्मारूप ब्रह्मका विचार । इस नामवाला जो श्रवणआदिकरूप है सो शास्त्रप्रतिपादित मनोमयजगत् है॥यह अर्थ है॥

॥ ४ ॥ ज्ञानअनंतर शास्त्रीयद्वैतकी त्याज्यता ॥

७० ननु "तत्त्वके अवबोधपर्य्यंत शास्त्रीयद्वैतकूं ग्रहण करना" यह जो ४३ में श्लोकविषै तुमनै कह्या सो बनै नहीं । काहेतैं "सुषुप्तिपर्य्यंत कहिये जाग्रत्सैं निद्रा तोडी औ मरणपर्य्यंत कालकूं वेदांतशास्त्रके विचाररूप चिंतनकरि निवृत्त करै ॥" ऐसैं शास्त्रविषै कथन किया होनैतैं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७१] **"तत्त्वके जानेहुये पीछे सो शास्त्रीयद्वैत त्याज्य है ॥" यह श्रुतिकी आज्ञा है ॥**

७२) ब्रह्म औ आत्माकी एकतारूप तत्त्वके साक्षात् कियेहुये सो शास्त्रीयद्वैत त्याग करनैकूं योग्य है ॥ यह अर्थ है ॥ तब "सुषुप्तिपर्य्यंत" इस वाक्यकी कौंन गति कहिये व्यवस्था है? ऐसैं जो कहै तौ टीकाविषैहीं श्रवण कर ॥ "कामआदिक जीवन्मुक्तिसुखके विरोधिनकूं कदाचित् बी किंचित् अवसर कहिये चित्तविषै प्रगट होनैकूं अवकाश देवै नहीं ।" इस "सुषुप्तिपर्य्यंत" इत्यादिरूप उक्तशास्त्रवाक्यके पूर्वार्द्धविषै कामआदिकनकूं अवसर देनैके निषेधतैं । उक्तवाक्यकूं तिस कामादिककूं अवसर देनैके निषेधकी परायणताहीं है ॥ औ विद्वान्कूं श्रवणादिकरूप

९२ श्रवणमननआदिकविचारकूं मनकी कल्पनारूप होनैतैं सो जीवकृत द्वैत है ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
२६२	शास्त्राण्यधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः । परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत् ॥४५॥	१०७३
		टिप्पणांकः
२६३	ग्रंथमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्परः । पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रंथमशेषतः ॥ ४६ ॥	४९३

दीनां मनागपि" इति पूर्वार्द्धे कामाद्यवसरप्रदानस्य निषिद्धत्वात्तत्परतैवेति वदामः अतो न काऽप्यनुपपत्तिरितिभावः ॥ ४४ ॥

७३ तत्त्वबोधोत्तरकालं तद्धेयत्वप्रतिपादनपराः श्रुतीरुदाहरति शास्त्राणीत्यारभ्य । (शास्त्राणीति)—

७४] मेधावी शास्त्राणि अधीत्य च पुनः पुनः अभ्यस्य परमं ब्रह्म विज्ञाय अथ उल्कावत् तानि उत्सृजेत् ॥ ४५ ॥

७५] (ग्रंथमिति)—मेधावी ग्रंथम् अभ्यस्य ज्ञानविज्ञानतत्परः सन् धान्यार्थी पलालम् इव अशेषतः ग्रंथम् त्यजेत् ॥ ४६ ॥

वेदांतचिंतनके विधिकी परता कहिये विषयता नहीं है । ऐसैं उक्तवाक्यकी गति हम कहतेहैं यातैं "तत्त्वके बोधपर्यंत शास्त्रीयद्वैतकूं ग्रहण करना" इस हमारी उक्तिविषै कोइ बी असंभव नहीं ॥ यह भाव है ॥ ४४ ॥

॥ ९ ॥ शास्त्रीयद्वैतकी ज्ञानउत्तर त्याज्यतामैं श्रुतिप्रमाण ॥

७३ तत्त्वबोधके पीछलेकालविषै तिस शास्त्रीयद्वैतकी त्याज्यताके प्रतिपादनपरायण श्रुतिनकूं च्यारिश्लोकनसैं उदाहरणकरि कहैहैं:—

७४] मेधावी कहिये विवेकादियुक्त बुद्धिवाला अधिकारी शास्त्रनकूं अध्ययन करिके कहिये गुरुमुखसैं श्रवणकरिके औ तिनकूं वारंवार विचारनैरूप मननकरिके परमब्रह्मकूं विशेषकरि कहिये संशयादिरहित जानिके पीछे जैलेहुये काष्ठरूप उल्काकी न्याई तिन शास्त्रनकूं त्याग करै ॥ ४५ ॥

७५] बुद्धिमान् । ग्रंथकूं अभ्यासकरिके ज्ञान औ विज्ञानविषै कुशल हुवा । धान्यका अर्थी जैसें पैलालकूं त्यागै । तैसैं संपूर्णग्रंथकूं त्याग करै ॥४६॥

९३ जैसैं पाक जो रसोई ताका अर्थी पुरुष । पाककूं संपादनकरिके पीछे जलेहुये काष्ठनकूं त्याग करैहै । तैसैं मुमुक्षु । परब्रह्मकूं जानिके पीछे शास्त्र (शास्त्रवासना)कूं तजै औ बोधतैं पूर्व तजै नहीं । काहेतैं ब्रह्मकूं जाननाहीं शास्त्रका प्रयोजन है और नहीं ॥ सो श्रीशंकराचार्य्योंनैं विवेकचूडामणिग्रंथमैं कह्याहैः—"परतत्त्वके न जानैहुये विद्याका अध्ययन निष्फल है औ परतत्त्वके जानैहुये बी विद्याका अध्ययन निष्फल है ॥"

९४ परोक्षअनुभव वा श्रवणमननसैं जन्य वा गुरुशास्त्रसैं जन्य जगत्के मिथ्यात्वपूर्वक ब्रह्मआत्माकी एकताका निर्णय । ज्ञान कहियेहै ॥

९५ अपरोक्षअनुभव वा निदिध्यासनसैं जन्य वा गुरुशास्त्रद्वारा निर्णीतअर्थका अपनेकूं ज्योंकात्यूं अनुभव। विज्ञान कहियेहै ॥

९६ तृणपर्णादिरूप भूसेकूं किसानकी न्याई तजै ॥

टीकांक: १०७६ टिप्पणांक: ४९७

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत् ४७
तमेवैकं विजानीथ ह्यन्या वाचो विमुंचथ ।
यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञ इत्याद्याः श्रुतयः स्फुटाः ४८

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २६४ २६५

७६] (तमेवेति)—धीरः ब्राह्मणः तम् एव विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत । बहून् शब्दान् न अनुध्यायात् हि तत् वाचः विग्लापनम् ॥ ४७ ॥

७७] (तमेवैकमिति)— एकं तम् एव विजानीथ हि । अन्याः वाचः विमुंचथ । प्राज्ञः वाङ्मनसी यच्छेत् इत्याद्याः श्रुतयः स्फुटाः ॥

७८) तमेवैकं विजानीथ इत्यनेन "तमेवैकं जानथ । आत्मानं अन्या वाचो विमुंचथ । अमृतस्यैष सेतुरिति" श्रुतिरर्थतः पठितेति ॥ ४८ ॥

७६] धीर जो ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्न ऐसा ब्राह्मण कहिये ब्रह्म होनैकी इच्छावाला मुमुक्षु है। सो एक तिसी प्रत्यक्अभिन्नपरमात्माकूंहीं विशेषकरि जानिके तिसविषै निष्ठारूप प्रज्ञाकूं[97] करै औ बहुतशब्दनकूं ध्यावै[98] नहीं कहिये चितवै नहीं॥ जातैं सो शब्दनका ध्यान वाणीकूं[99] परिश्रमका हेतु है ॥ ४७ ॥

७७] एक तिसी ब्रह्मअभिन्नआत्माहीकूं तुम जानो । अन्य वाणी जो शास्त्र तिनकूं छोडो ॥ "ज्ञानी वाक्[500]कूं मनविषै लय करै" इत्यादिकअनेकश्रुतियां ज्ञान भये पीछे श्रवणादिरूप शास्त्रीयद्वैतकी त्याज्यताविषै प्रमाणरूप स्पष्ट हैं ॥

७८) "एक तिसीहींकूं विशेषकरि जानो । अन्य अनात्मारूप वाणीनकूं छोडो" इस कहनैकरि "एक तिसीहीं आत्माकूं तुम जानो। अन्यवाणीनकूं छोडो ॥ यह आत्मा अमृत जो मोक्ष ताका सेतु है ॥" यह श्रुति इहां अर्थतैं पठन करी ॥ ४८ ॥

---

९७ निरंतर ब्रह्मविषै वर्तमान वृत्तिरूप एकाग्रताकूं करै ॥

९८ इहां ध्यान (चिंतन) शब्द कथनका बी उपलक्षण है। यातैं बहुतशब्दनकूं कथन बी नहीं करै ॥

९९ इहां वाणीशब्द मनका बी उपलक्षण है। यातैं जैसैं शब्दनका कथन वाणीकूं परिश्रमका हेतु है। तैसैं शब्द वा शब्दार्थरूप अनात्माका चिंतन मनकूं परिश्रम (खेद)का हेतु है ॥

५०० वाक्शब्दकरि दशइंद्रियनका ग्रहण है ॥ यातैं "श्रोत्रादिदशइंद्रियनकूं विषयके अग्रहणपूर्वक मनविषै लय करै (मनोमात्र अवशेष करै) औ तिस मनकूं निःसंकल्पभावकरि ज्ञानआत्मा (निश्चयरूप बुद्धि)विषै लय करै औ तिस ज्ञान (बुद्धि)कूं 'अहंब्रह्मास्मि' इस वृत्तिरूप उपायकरि महत्आत्मा (अव्यक्त)विषै लय करै औ तिस (निर्विकल्पमहत्आत्मा)कूं शांतआत्मा (आपतैं भिन्न वस्तुतैं शांतनिरुपाधिकपरमात्मा)विषै लय करै (परमात्ममात्र अवशेष करै)॥" यह उपरि उक्तश्रुतिका अर्थ है ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २६६ २६७	अशास्त्रीयमपि द्वैतं तीव्रं मंदमिति द्विधा । कामक्रोधादिकं तीव्रं मनोराज्यं तथेतरत् ॥४९॥ उभयं तत्त्वबोधात्प्राङ्निवार्यं बोधसिद्धये । शमः समाहितत्वं च साधनेषु श्रुतं यतः ॥५०॥	टीकांकः १०७९ टिप्पणांकः ॐ

७९ अशास्त्रीयस्यापि द्वैतस्यावांतरभेदमाह—

८०] अशास्त्रीयं द्वैतं अपि तीव्रं मंदं इति द्विधा ।

८१ द्विविधमपि द्वैतं क्रमेणोदाहरति—

८२] कामक्रोधादिकं तीव्रं । तथा मनोराज्यं इतरत् ॥

ॐ ८२) इतरत् मंदमित्यर्थः ॥ ४९ ॥

८३ किमनयोः शास्त्रीयद्वैतस्येव तत्त्वबोधोत्तरकालमेव हेयत्वं । नेत्याह—

८४] उभयं तत्त्वबोधात् प्राक् निवार्यम् ॥

८५ प्राङ् निवारणं किमर्थमित्यत आह—

८६] बोधसिद्ध्ये ॥

८७ तत्र लिंगमाह (शम इति)—

८८] यतः शमः च समाहितत्वं साधनेषु श्रुतम् ॥

८९) यतः तत्त्वबोधात् प्राक् तयोर्हेयत्वं । तत एव नित्यानित्यवस्तुविवेकादिब्रह्मज्ञान-

॥ २ ॥ जीवकृत दोअशास्त्रीयद्वैतका स्वरूप औ त्यागका प्रयोजन

॥ १०७९—११०२ ॥

॥ १ ॥ तीव्र औ मंदभेदकरि अशास्त्रीयद्वैतकी द्विविधता ॥

७९ अब अशास्त्रीयद्वैतके बी अवांतरभेदकूं कहैहैं:—

८०] अशास्त्रीयजीवद्वैत बी तीव्र औ मंद । इस भेदतैं दोभांतिका है ॥

८१ दोनूंप्रकारके बी जीवद्वैतकूं क्रमसैं उदाहरण करैहैं:—

८२] कामक्रोधादिकरूप तीव्र है औ मनोराज्यरूप इतर है ॥

ॐ ८२) इतर याका मंद है। यह अर्थ है ४९

॥२॥ दोनूंद्वैतनकी बोधतैं पूर्व बोधअर्थ त्याज्यता॥

८३ ननु इन दोनूंअशास्त्रीयद्वैतनकी शास्त्रीयद्वैतकी न्याईं तत्त्वबोधके उत्तरकालहीं त्याज्यता है? तहां ऐसैं नहीं। यह कहैहैं:—

८४] दोनूंअशास्त्रीयद्वैत तत्त्वबोधतैं पूर्व निवारण करनैकूं योग्य हैं ॥

८५ तत्त्वबोधतैं पूर्व तिसका निवारण किस प्रयोजनअर्थ है? तहां कहैहैं:—

८६] बोधकी सिद्धिअर्थ पूर्व निवारण है ॥

८७ बोधकी सिद्धिअर्थ तिसका पूर्व निवारण है। तिसविषै श्रुतिउक्त लिंग जो हेतु ताकूं कहैहैं:—

८८] जातैं शम औ समाहितपना ये दोनूंसाधनोंविषै सुनेहैं ॥

८९) जातैं तत्त्वबोधतैं पूर्व तिन दोनूंअशास्त्रीयद्वैतनकी त्याज्यता है। ताहीतैं नित्य औ अनित्यवस्तुके विवेकआदिक ब्रह्मज्ञानके

टीकांकः १०९० टिप्पणांकः ५०१	^९१ बोधादूर्ध्वं च तद्धेयं जीवन्मुक्तिप्रसिद्धये । ^९३ कामादिक्लेशबंधेन युक्तस्य न हि मुक्तता ॥५१॥ ^९६ जीवन्मुक्तिरियं माऽभूज्जन्माभावे त्वहं कृती । तर्हि जन्मापि तेऽस्त्वेव स्वर्गमात्रात्कृती भवान् ५२	द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २६८ २६९

साधनेषु मध्ये "शांतः समाहित" इति पदाभ्यां शांतिसमाधी श्रूयेते इत्यर्थः ॥५०॥

९० ननु तत्त्वबोधात्प्राक् निवार्यमित्यभिधानादुत्तरकालमस्य स्वीकार्यता स्यादिसाशंक्याह (बोधादिति)—

९१] च बोधात् ऊर्ध्वं जीवन्मुक्तिप्रसिद्ध्ये तत् हेयम् ॥

९२ उक्तमर्थं व्यतिरेकमुखेन द्रढयति—

९३] कामादिक्लेशबंधेन युक्तस्य मुक्तता न हि ॥

९४) कामादिरूपो यः क्लेशः स एव बंधः तेन युक्तस्य बद्धस्य । मुक्तता जीवन्मुक्तत्वं । न हि नास्त्येवेत्यर्थः ॥ ५१ ॥

९५ ननु जन्मादिसंसारादुद्विग्नस्यात्यंतिकपुरुषार्थरूपया विदेहमुक्त्यैवाऽलं किमनया आपातिकया जीवन्मुक्त्येति शंकते (जीवन्मुक्तिरिति)—

९६] इयं जीवन्मुक्तिः माभूत् । तु जन्माभावे अहं कृती ।

साधनोंके मध्यमैं "शांत औ समाहित" इन श्रुतिगत दोपदनकरि शम औ समाधान। श्रुतिविषै सुनियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ५० ॥

॥ ३ ॥ बोधअनंतर बी दोनूंअशास्त्रीयद्वैतनकी जीवन्मुक्तिअर्थ त्याज्यता ॥

९० ननु "तत्त्वबोधतैं पूर्व दोनूंद्वैत निवारण करनै योग्य हैं" इस कहनैतैं तत्त्वबोधतैं उत्तरकाल। इस अशास्त्रीयद्वैतके अंगीकार करनैकी योग्यता होवैगी ! यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९१] औ बोधतैं पीछे जीवन्मुक्तिकी प्रसिद्धिअर्थ सो अशास्त्रीयद्वैत **त्यागनै योग्य है ॥**

९२ उक्तजीवन्मुक्तिकी प्रसिद्धिरूप अर्थकूं व्यतिरेकरूप द्वारकरि दृढ करैहैं:—

९३] जातैं **कामादिक्लेशरूप बंधकरि युक्तकूं मुक्तता नहीं है ॥**

९४) कामादिरूप जो क्लेश हैं सोइ बंध है। तिस बंधकरि युक्त कहिये बद्धपुरुषकूं जीवन्मुक्तपना नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ ५१ ॥

॥ ४ ॥ जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिमैं शंका औ समाधान

९५ ननु जन्ममरणादिरूप संसारतैं जो उद्वेगकूं पायाहै। ताकूं आत्यंतिक कहिये अभावरहित पुरुषार्थ जो नित्यानंद। तिसरूप भाविजन्मके अभावस्वरूप विदेहमुक्तिकरिहीं पूर्णता है औ आपातिक कहिये क्षणिकसुखरूप इस जीवन्मुक्तिकरि क्या प्रयोजन है? इसरीतिसैं वादी मूलमैं शंका करैहै:—

९६] यह जीवन्मुक्ति मेरेकूं मति होहु। किंतु भाविजन्मादिकके **अभाव हुये मैं कृतार्थ हूं। ॥**

१ इहां शमके कथनकरि कामादिरूप तीव्रजीवद्वैतके निषेधका ग्रहण है ॥ औ समाधि (समाधान)के कथनकरि मनोराज्यरूप मंदजीवद्वैतके निषेधका ग्रहण है ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २७० २७१	क्षयातिशयदोषेण स्वर्गो हेयो यदा तदा । स्वयं दोषतमात्माऽयं कामादिः किं न हीयते ५३ तत्त्वं बुद्ध्वाऽपि कामादीन्निःशेषं न जहासि चेत् । यथेष्टाचरणं ते स्यात्कर्मशास्त्रातिलंघिनः ॥५४॥	टीकांकः १०९७ टिप्पणांकः ५०२

९७ ऐहिकभोगनिवृत्तिभयाज्जीवन्मुक्तित्यागे आमुष्मिकभोगनिवृत्तिभयात् विदेहमुक्तिरपि त्याज्या स्यादिति प्रतिबंद्या परिहरति—

९८] तर्हि जन्म अपि ते अस्तु एव। स्वर्गमात्रात् भवान् कृती ॥ ५२ ॥

९९ प्रतिबंदिमोचनं शंकते—

११००] क्षयातिशयदोषेण स्वर्गः हेयः यदा ।

१ दोषयुक्तत्वेन स्वर्गादेस्त्याज्यत्वे सकलपुरुषार्थविघातकत्वेनातीवदोषरूपस्य कामादेः सुतरां त्याज्यत्वमित्याह—

२] तदा स्वयं दोषतमा आत्मा अयं कामादिः किं न हीयते ॥ ५३ ॥

३ ननु वैराग्यादिसंपादनेनात्यंतानर्थहेतोः

---

९७ इसलोकके भोगकी निवृत्तिके भयतैं जीवन्मुक्तिके त्याग हुये। स्वर्गादिपरलोकके भोगकी निवृत्तिके भयतैं विदेहमुक्ति बी तेरेकरि त्यागनैकूं योग्य होवैगी! इसप्रकार वचनके बंधनरूप प्रतिबंदिकरिके सिद्धांती परिहार करैहैं:—

९८] तब जन्म बी तेरेकूं होवै । स्वर्गमाप्तिमात्रतैंहीं तूं कृतार्थ होहु ! ॥५२॥

॥ ९ ॥ कामादिकके त्यागकी योग्यताकी शंका औ समाधान ॥

९९ प्रतिबंदितैं छूटनेकूं वादी शंका करैहैं:—

११००] क्षय औ अतिशयरूप दोषकरि स्वर्ग त्याज्य है । ऐसैं जब कहै ।

१ जब दोषयुक्त होनैकरि स्वर्गादिककी त्याज्यता है । तब सकलधर्मादिरूप पुरुषार्थका नाशक होनैकरि अतिशयहीं दोषरूप कामादिककी निरंतर त्याज्यता है । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं:—

२] तब स्वरूपसैं दोषरूप जो यह कामादिक है। सो तुजकरि क्यूं नहीं छोडियेहै ? ॥ ५३ ॥

॥ ३ ॥ जीवकृत तीव्रअशास्त्रीयद्वैतकी अनर्थहेतुताकरि त्याज्यता ॥ ११०३—११२१ ॥

॥ १ ॥ कामादिकके अत्यागतैं ज्ञानीकूं यथेच्छाचरणकी प्राप्ति ॥

३ ननु वैराग्यादिकके संपादनकरि अत्यंतअनर्थके हेतु जे कामादिक हैं। तिनकूं त्याग

---

२ पुण्यक्षयतैं पतन होवैहै वा प्रलयकालमैं स्वर्गका नाश होवैहै। सो क्षयदोष है ॥

३ अपनैतैं औरदेवनका पुण्यके उत्कर्षतैं अधिकऐश्वर्य है। सो अतिशयदोष है ॥

४ स्वरूपतैं च्युति (पतन) द्वारा जन्मादिकअनर्थके हेतु स्वर्गादिकभोगसंबंधी काम औ गुरुपिताआदिकसंबंधी क्रोध है । इस आदिकदुर्गुण जन्मादिअनर्थके हेतु हैं । तिनकूं त्यागकरिके ॥

टीकांक: ११०४ टिप्पणांक: ५०५	बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि । शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥५५॥	द्वैतविवेक: ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २७२

कामादेस्त्यक्तलादैहिकभोगमात्रोपयोगिकामाद्यभ्युपगमे को दोष इत्याशंक्याह—

४] तत्त्वं बुद्ध्वा अपि निःशेषं कामादीन् न जहासि चेत् कर्मशास्त्रातिलंघिनः ते यथेष्टाचरणं स्यात् ॥

५) तत्त्ववित्त्वाभिमानेन विधिनिषेधशास्त्रमतिक्रम्य कामाद्यधीनतया वर्तमानस्य तव यथेष्टाचरणं स्याद् इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

६ अस्तु को दोष इत्याशंक्य। तदनिष्टत्वप्रतिपादनपरं सुरेश्वराचार्यवचनमुदाहरति—

किये होनैतैं । इसलोकसंबंधी शास्त्रअनिषिद्धविषयसुखके अनुभवरूप भोगमात्रमैं उपयोगी जे कामादिक हैं। तिनके अंगीकारविषै कौन दोष है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४] तत्त्वकूं जानिके बी संपूर्णकामादिकनकूं जब नहीं छोडताहै । तब कर्मशास्त्रकूं उल्लंघन करनैवाले तेरेकूं यथेष्टाचरण होवैगा ॥

५)"मैं तत्त्ववेत्ता हूं । मेरेकूं कौन दोष है?" इसरीतिके तत्त्वज्ञानीपनैके अभिमानकरि विधिनिषेधशास्त्रकूं उल्लंघनकरिके कामादिकके आधीन होयके वर्त्तमान तेरेकूं यथेष्टाचरण कहिये पशु अरु पामरकी न्याई जैसें इच्छा होवै तैसें वर्त्तनैरूप प्रमाद होवैगा! यह अर्थ है ॥५४॥

॥ २ ॥ यथेष्टाचरणकी प्रमाणसहित अनिष्टता ॥

६ ज्ञानीकूं यथाइच्छा आचरण होहु। कौन दोष है? यह आशंकाकरि तिस यथेष्टाचरणकी दोषरूपताके प्रतिपादनके तात्पर्यवाले सुरेश्वराचार्यके वचनकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

५ इसलोकसंबंधी यदृच्छाकरि प्राप्त स्त्रीआदिकविषयक काम (इच्छा) औ प्रतिकूलजंतुविषयक क्रोध है । तिन प्रारब्धभोगमैं उपयोगी कामक्रोधके अंगीकार किये कौन बाधक है?

६ प्रारब्धरूप पूर्वका पुरुषार्थ है औ इसजन्मवर्ती पुरुषार्थ है । तिनमैं जो बलिष्ठ होवै तिसका जय होवैहै ॥ यातैं इसजन्मवर्तीअधिकपुरुषार्थतैं प्रारब्धजनितकामादिकका बी जय होवैहै । यह निर्णय वासिष्ठके द्वितीय मुमुक्षुप्रकरणमैं स्पष्ट है ॥ तातैं प्रारब्धके मिषकरि प्रयत्नकी शिथिलतासैं विद्वान्‌कूं जीवन्मुक्तिसुखके विरोधी कामादिकमैं लंपट होना घटै नहीं ॥

७ विषयनके परवश होनैका नाम **प्रमाद** है। वा कर्तव्यके विस्मरणका नाम **प्रमाद** है ॥ ज्ञानीकूं मोक्षअर्थ वा तत्त्वज्ञानअर्थ वा इसलोकपरलोकअर्थ कछू बी कर्त्तव्य नहीं हैं। तथाऽपि लोकसंग्रह (लोकनकूं कुमार्गविषै प्रवृत्तितैं निवारण)अर्थ यथाशास्त्र वर्त्तना योग्य है । वा जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदअर्थ ब्रह्मविचार कर्त्तव्य है ॥ तिसकूं विस्मरण करिके (छोडीके) जो अन्यथा वर्तना है । सो **प्रमाद** है ॥ सो प्रमाद । कामचार कामवाद औ कामभक्षणके भेदतैं अनेकभांतिका है । सो विधिनिषेधरहित भये बी विद्वान्‌कूं होवै नहीं ॥ तहां भागवतके एकादशस्कंधके सप्तमअध्यायविषै स्थित वाक्य प्रमाण है:–विधिनिषेध उभयतैं रहित जो ज्ञानी। सो दोषबुद्धिकरि निषेधतैं निवर्त्त होवै नहीं। किंतु पूर्वलेशुभसंस्कारतैंहीं निषेधतैं निवर्त्त होवैहै औ गुणबुद्धिकरि विहित नाम शुभकर्मकूं करता नहीं । किंतु पूर्वलेशुभसंस्कारतैंहीं पुण्यकर्मकूं करैहै ॥ जैसें बालक है सो गुणदोषबुद्धिसैं विनाहीं आचरताहै ॥ अन्यस्मृतिप्रमाणः–"पुरुषनकूं पापकर्मके क्षयतैं ज्ञान उत्पन्न होवैहै ॥ जैसें आदर्शतल स्वच्छविषै मुखकूं देखताहै। तैसें आत्मा जो स्वच्छबुद्धि तिसविषै आत्माकूं देखताहै ॥" इहां यह रहस्य है:– दुराचारविषै जो प्रवृत्ति होवैहै सो पूर्वले पापकर्म (पापके आधिक्य)तैं होवैहै ॥ सो पाप (पापका आधिक्य) ज्ञानीकूं है नहीं । यातैं ज्ञानीकी निषिद्धकर्मरूप दुराचारविषै प्रवृत्ति होवै नहीं ॥ इति ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	[10] बोधात्पुरा मनोमात्रदोषात्क्लिश्नास्यथाऽधुना ।	
२७३	अशेषलोकनिंदा चेत्यहो ते बोधवैभवम् ॥५६॥	११०७
	[13] विड्वराहादितुल्यत्वं मा कांक्षीस्तत्त्वविद्भवान् ।	टिप्पणांकः
२७४	सर्वधीदोषसंत्यागाल्लोकैः पूज्यस्व देववत् ॥५७॥	ॐ

७] बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि । अशुचिभक्षणे । शुनां च एव तत्त्वदृशां को भेदः ॥

८) बुद्धमद्वैतसतत्त्वं अद्वैतस्वरूपं ब्रह्म येन स बुद्धाद्वैतसतत्त्वः तत्त्ववित्तस्य यथेष्टाचरणं यदि स्यात् । तर्हि अशुचिभक्षणादिकमपि स्यात् । तथा सति । शुनां तत्त्वदृशां चैव न कोऽपि विशेषः स्यादित्यर्थः ॥ ५५ ॥

९ एतावता किमनिष्टमापादितमित्याशंक्य सोपहासमुत्तरमाह—

१०] बोधात् पुरा मनोमात्रदोषात् क्लिश्नासि । अथ अधुना च अशेषलोकनिंदा । इति ते बोधवैभवं अहो ॥

११) तत्त्वज्ञानोदयात्प्राक् कामक्रोधादिचित्तदोषैस्तव क्लेशोऽभूत् । इदानीं तु सर्वलोकनिंदामपि सहस्व । इति क्लेशद्वैगुण्यमिति भावः ॥ ५६ ॥

१२ तर्हि किं कर्तव्यमित्यत आह (विड्वराहेति)—

१३] तत्त्ववित् भवान् विड्वराहादितुल्यत्वं मा कांक्षीः सर्वधीदोषसंत्यागात् लोकैः देववत् पूज्यस्व ॥

७] अद्वैततत्त्वकूं जो जानताहै । तिसकूं जब यथेष्टाचरण होवै । तब अशुचिभक्षणके बी हुये श्वानोंका औ तत्त्वदर्शिनका कौन भेद होवैगा ?

८) अद्वैतसतत्त्व कहिये अद्वैतस्वरूप ब्रह्म जिसनै जान्याहै ऐसा जो तत्त्ववित्पुरुष है । तिसकूं यथाइच्छा आचरण जब होवैगा तब अशुचि जो मलादिअपवित्रवस्तु ताका भक्षणआदिक बी होवैगा ॥ तैसैं हुये श्वानोंका औ तत्त्वदर्शिनका कोइबी भेद नहीं होवैगा ॥ यह अर्थ है ॥ ५५ ॥

९ ननु इतनैकरि क्या अनिष्ट प्राप्त भया ? यह आशंकाकरि उपहाससहित उत्तरकूं कहैहैं:—

१०] बोधतैं पूर्वे केवल मनके दोषतैं तूं क्लेश पावता था औ अब सर्वलोकमैं निंदा बी होवैगी । यातैं तेरे बोधका ऐश्वर्य अहो है कहिये बडा है !!

११) तत्त्वज्ञानके उदयतैं प्रथम अज्ञानदशामैं कामक्रोधादिक जे चित्तके दोष हैं । तिनकरिहीं तेरेकूं क्लेश होताभया औ अब ज्ञानदशामैं तौ सर्वलोककृत निंदाकूं बी सहन कर ॥ ऐसैं दुगुणाक्लेश हुआ । यह भाव है ॥ ५६ ॥

॥ ३ ॥ सर्व बुद्धिके कामादिकदोषनके त्यागकी कर्त्तव्यता ॥

१२ ननु तब क्या कर्तव्य है ? तहां कहैहैं:—

१३] तत्त्ववित् जो तूं हैं । सो ग्रामसूकरआदिककी तुल्यताकूं मत इच्छा कर औ सर्वबुद्धिदोषनके त्यागतैं लोकनकरि देवनकी न्यांई पूज्य हो ॥

टीकांक: १११४ टिप्पणांक: ५०८

काम्यादिदोषदृष्ट्याद्याः कामादित्यागहेतवः ।
प्रसिद्धा मोक्षशास्त्रेषु तानन्विष्य सुखी भव ५८

द्वैतविवेक: ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २७५

१४) सर्वोत्कर्षहेतुज्ञानवान् त्वं कामादित्यागाशक्तत्वेन सर्वाधमविड्वराहादिसाम्यं मा कांक्षीः । किंतु कामादिलक्षणसकलमनोदोषहानेन सर्वजनैः देववत् पूज्यस्व पूज्यो भवेत्यर्थः ॥ ५७ ॥

१५ तत्त्यागोपायमाह—

१६] काम्यादिदोषदृष्ट्याद्याः कामादित्यागहेतवः ॥

१७) काम्याः कामनाविषयाः स्रगादय आद्यो येषां द्वेष्यादीनां ते काम्यादयः । तेषां ये दोषाः अनित्यत्वसातिशयत्वादयः । तेषां दृष्टिः अवलोकनम् आद्यं येषां कोपस्वरूपविचारादीनां ते तथोक्ताः ॥

१४) सर्वतैं श्रेष्ठताका हेतु जो ज्ञान है । तिस ज्ञानवाला तूं । कामादिकके त्यागविषै असमर्थ होनैकरि सर्वसैं अधम जो विट्वराह कहिये विट्चर जो डुकर है । तिसआदिककी तुल्यताकूं मत इच्छा कर । किंतु कामआदिक सकल मनके दोषनका त्यागकरि । सर्वजनोंकरि विष्णुआदिकदेवनकी न्याई पूजा करनैकूं योग्य हो ॥ यह अर्थ है ॥ ५७ ॥

॥ ४ ॥ कामादिकके त्यागका उपाय ॥

१५ तिन कामआदिकनके त्यागके उपायकूं कहैहैं:—

१६] काम्य जे भोगके साधन । तिन आदिकनविषै जे दोषदृष्टिआदिक हैं । वे कामआदिकनके त्यागके हेतु हैं ॥

१७) कामनाके विषय जे मालाचंदनस्त्रीआदिक हैं आदि जिनके । ऐसैं जे द्वेषके विषयआदिकपदार्थ वे काम्यआदिक कहियेहैं ॥ तिनोंके अनित्यता औ सातिशयता कहिये अन्यके अतिशयकरि सहितताआदिक जे दोष हैं । तिनकी दृष्टि है प्रथम जिनोंके । ऐसै जे क्रोधस्वरूपके विचारआदिक हैं । वे काम्यआदिकनविषै दोषदृष्टिआदिक हैं । वे कामक्रोधआदिकनके त्यागके हेतु हैं ॥

८ आदिकशब्दकरि लोभमयआदिक अनेकराजसीतामसीवृत्तिनके विषयनका ग्रहण है ॥

९ आदिकशब्दकरि लोभमयआदिकनका ग्रहण है ॥ तिनमैं कामके विषय स्त्रीआदिकमैं जो दोषदृष्टि है सो **कामके त्यागका हेतु** है ॥ औ क्रोधके स्वरूपका अनर्थरूपताकरि विचार **क्रोधके त्यागका हेतु** है ॥ **दोषदृष्टि** कहिआये ॥ * ॥ औ **क्रोधके स्वरूपका विचार** शास्त्रांतरके वाक्यनविषै कह्याहै:—“राक्षस अन्यके रुधिरकूं पान करैहै औ क्रोधी अपनै अरु अन्यके रुधिरकूं पान करैहै औ राक्षस । निशाचर होनैतैं रात्रिमैं नृत्य करताहै । अरु क्रोधी रात्रिदिवस नाचताहै औ राक्षस अन्यकूं भय करताहै अरु क्रोधी अन्यकूं अरु आपकूं आपकरि भय करताहै । यातैं क्रोधीपुरुष क्रूर है ऐसा राक्षस क्रूर नहीं ॥” औ “अन्यकूं ताडन वा दुर्वचनरूप फलकरि युक्त हुवा धर्म यश औ अर्थ (धन)का नाश करैहै औ सो क्रोध व्यर्थ हुवा स्वशरीरकूं ताप करैहै औ इसलोक अरु परलोकविषै हितवास्ते होवै नहीं । ऐसा जो रोष है । सो सत्पुरुषनके मनकूं कैसैं आश्रय करै?” औ “अपकारी (शत्रु)विषै जो कोप होवै तौ धर्म अर्थ काम मोक्ष इन च्यारीपुरुषार्थनके वलसैं बिगाडनैहारे कोपरूप शत्रुविषै तेरेकूं क्षमारूप कोप कैसैं नहीं होवैहै?” [३] इसरीतिसैं अनर्थरूप कोपस्वरूपका विचार **कोप (क्रोध)के त्यागका हेतु** है ॥

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २७६	२३ त्यज्यतामेष कामादिर्मनोराज्ये तु का क्षतिः । अशेषदोषबीजत्वात्क्षतिर्भगवतेरिता ॥ ५९ ॥	टीकांकः ११५८ टिप्पणांकः ५१०

१८ तेषां कामादित्यागहेतुत्वे प्रमाणमाह (प्रसिद्धा इति)—

१९] मोक्षशास्त्रेषु प्रसिद्धाः ॥

२० भवतु । ततः किमायातमित्यत आह—

२१] तान् अन्विष्य सुखी भव ५८

२२ ननु कामादीनामनर्थहेतुत्वात्त्याज्यत्वमस्तु । मनोराज्यस्य त्वतथात्वात्तत्त्यागो नापेक्षित इति शंकते (त्यज्यतामिति)—

२३] एषः कामादिः त्यज्यतां । तु मनोराज्ये का क्षतिः ॥

२४ साक्षादनर्थहेतुत्वाभावेऽपि परंपरया तद्धेतुत्वात्त्याज्यत्वमेवेत्यभिप्रेत्य परिहरति—

२५] अशेषदोषबीजत्वात् भगवता क्षतिः ईरिता ॥ ५९ ॥

---

१८ काम्यविषयविषै दोषदृष्टि औ कोपस्वरूपके विचारआदिकनकूं क्रमतैं काम औ क्रोधआदिकनके त्यागकी कारणता है । तिसविषै प्रमाणकूं कहैहैं:—

१९] जे कामादि त्यागके हेतु मोक्षशास्त्रविषै प्रसिद्ध हैं ।

२० ऐसैं मोक्षोपदेशकशास्त्रनविषै उपाय होहु ॥ तिसतैं कामादित्यागके उपायरूप प्रसंगविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

२१] तिन कामादिकके त्यागके उपायनकूं विचारकरिके सुखी हो ॥ ५८ ॥

॥ ४ ॥ जीवकृत मंदअशास्त्रीयद्वैतकी त्याज्यता औ ताके त्यागका उपाय ॥ ११२२—११५८ ॥

॥ १ ॥ मंदअशास्त्रीयद्वैतकी त्याज्यतामैं शंकासमाधान ॥

२२ ननु कामादिकनकूं अपुरुषार्थके हेतु होनैतैं तिनकी त्याज्यता होहु औ मनोराज्यकूं तैसा अनर्थहेतु नहीं होनैतैं तिसका त्याग अपेक्षित नहीं है । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैं:—

२३] यह कामादिक त्याग करने योग्य है परंतु मनोराज्यविषै कौन हानि है?

२४ मनोराज्यकूं साक्षात् अनर्थकी हेतुताके अभाव हुये बी परंपरासैं कहिये कामादिद्वारा तिस अनर्थका हेतु होनैतैं विषयचिंतनरूप मनोराज्यकी त्याज्यताहीं है । इस अभिप्रायकरिके परिहार करैहैं:—

२५] मनोराज्यकूं कामादिक सर्वदोषनका कारण होनैतैं भगवत्श्रीकृष्णनैं मनोराज्यविषै हानि कहीहै ॥ ५९ ॥

---

१० श्रीमद्भागवत आत्मपुराण वासिष्ठआदिकशास्त्रनविषै विलक्षणयुक्तिकरि प्रगट हैं ॥ भागवतके सप्तमस्कंधविषै "निःसंकल्पभावसैं कामकूं जीते औ कामके वर्जनतैं क्रोधकूं जीते औ धनादिकअर्थके अनर्थकी दृष्टिकरि लोभकूं जीते औ तत्त्व जो ब्रह्मात्माका एकत्व । ताके विचारतैं भयकूं जीते" ऐसैं कामादिकनके त्यागके उपाय कहैहैं ॥ मोह (अविवेक)-रूप बीजतैं गुणबुद्धि अरु रमणीयबुद्धि कहिये संकल्पद्वारा काम होवैहै । तिसतैं क्रोध होवैहै ॥ विवेकरूप दोषदृष्टितैं मोहादिकनके नाशद्वारा कामका नाश औ तातैं क्रोधका नाश होवैहै । यह बी कामादिनाशका उपाय है ॥

टीकांकः ११२६ टिप्पणांकः ॐ

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ६०
शक्यं जेतुं मनोराज्यं निर्विकल्पसमाधितः ।
सुसंपादः क्रमात्सोऽपि सविकल्पसमाधिना ६१
बुद्धतत्त्वेन धीदोषशून्येनैकांतवासिना ।
दीर्घं प्रणवमुच्चार्य मनोराज्यं विजीयते ॥ ६२ ॥

द्वैतविवेकः ॥ २ ॥ श्लोकांकः २७७ २७८ २७९

२६ परंपरयाऽनर्थहेतुत्वप्रदर्शनपरं भगवद्वाक्यमुदाहरति (ध्यायत इति)—

२७] **विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु संगः उपजायते । संगात् कामः संजायते । कामात् क्रोधः अभिजायते ॥६०॥**

२८ तर्ह्यस्य मनोराज्यस्य कः परिहारोपाय इत्यत आह (शक्यमिति)—

२९] **निर्विकल्पसमाधितः मनोराज्यं जेतुं शक्यं ॥**

३० सोऽपि कुतः सिध्यतीत्याह (सुसंपाद इति)—

३१] **सः अपि क्रमात् सविकल्पसमाधिना सुसंपादः ॥ ६१ ॥**

३२ नन्वष्टांगयोगयुक्तस्य तथाऽस्तु तद्रहितस्य का गतिरित्यत आह—

३३] **बुद्धतत्त्वेन धीदोषशून्येन एकांतवासिना दीर्घं प्रणवम् उच्चार्य मनोराज्यं विजीयते ॥**

॥ २ ॥ मनोराज्यकूं परंपराकरि अनर्थहेतुतामैं प्रमाण (गीतावचन) ॥

२६ मनोराज्यकी परंपरासैं अनर्थकी हेतुताके दिखावनैके परायण भगवत्श्रीकृष्णके गीताके द्वितीयअध्यायगत ६३ वें श्लोकरूप वाक्यकूं उदाहरणकरि कहैहैंः—

२७] **विषयनकूं ध्यावता** कहिये गुणबुद्धिसैं चिंतवता जो **पुरुष** है । तिसकूं **तिन विषयनविषै संग** कहिये आसक्ति **होवैहै** औ **संगतैं** इच्छारूप **काम होवैहै** औ किसीकरि भंग हुये **कामतैं क्रोध होवैहै६०**

॥ ३ ॥ मनोराज्यके निवृत्तिके द्विविधउपाय ॥

२८ तब इस मनोराज्यके निवृत्तिका उपाय कौन है? तहां कहैहैंः—

२९] **निर्विकल्पसमाधितैं मनोराज्य जय करनैकूं शक्य है ॥**

३० ननु सो निर्विकल्पसमाधि बी काहेतैं सिद्ध होवैहै? तहां कहैहैंः—

३१] **सो बी क्रमतैं सविकल्पसमाधिकरि सुखसैं** कहिये श्रमविना **संपादन होवैहै ॥ ६१ ॥**

३२ ननु यमसैं लेके सविकल्पसमाधिपर्यंत जो अष्टांगयोग है । तिसकरि युक्त पुरुषकूं तौ तैसैं मनोराज्यके जयका उपायरूप निर्विकल्पसमाधि होहु औ तिस अष्टांगयोगरहितकी कौन गति है कहिये ताके मनोराज्यके जयका कौन उपाय है? तहां कहैहैंः—

३३] **बुद्धतत्त्व** कहिये ज्ञातज्ञेय औ **बुद्धिदोषतैं रहित औ एकांतवासी जो पुरुष है। तिसकरि दीर्घप्रणवकूं उच्चारकरिके मनोराज्य जीतियेहै ॥**

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
२८०	३६ जिते तस्मिन्वृत्तिशून्यं मनस्तिष्ठति मूकवत् । ३९ एतत्पदं वसिष्ठेन रामाय बहुधेरितम् ॥ ६३ ॥	११३४
२८१	४१ दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम् । संपन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृतिः ॥ ६४ ॥	टिप्पणांकः ५११

३४) बुद्धमवगतं तत्त्वं ब्रह्मात्मैक्यलक्षणं येन स बुद्धतत्त्वस्तेन । कामक्रोधादिबुद्धिदोषरहितेन । एकांतवासिना विजनदेशनिवासशीलेन पुरुषेण । दीर्घं पड्द्वादशादिमात्रोपेतं प्रणवम् ओंकारम् । उच्चार्य । मनोराज्यं विजीयते निवार्यत इत्यर्थः ॥६२॥

३५ मनोराज्यविजये किं भवतीत्यत आह (जित इति)—

३६] तस्मिन् जिते मनः वृत्तिशून्यं मूकवत् तिष्ठति ॥

३७) यथा मूकः सकलवाग्व्यवहाररहितः तिष्ठति । एवं मनः । अपि सर्वव्याररहितं अवतिष्ठत इत्यर्थः ॥

३८ अवृत्तिकमनोऽवस्थानस्य पुरुषार्थत्वे प्रमाणमाह—

३९] एतत् पदं वसिष्ठेन रामाय बहुधा ईरितम् ॥

ॐ ३९) एतत्पदं इयं दशेत्यर्थः ॥ ६३ ॥

४० वसिष्ठश्लोकद्वयवाक्यमुदाहरति—

४१] "दृश्यं नास्ति" इति बोधेन

---

३४) बुद्ध कहिये जान्याहै ब्रह्म औ आत्माकी एकतारूप तत्त्व जिसनैं । सो बुद्धतत्त्व है॥ औ जो कामक्रोधआदिक बुद्धिके दोषतैं रहित है औ एकांतवासी कहिये जनरहितदेशविषै निवासके स्वभाववाला है । तिस पुरुषकरि दीर्घ कहिये षड्द्वादशआदिकमात्रा जो क्षण तिनकरि युक्त ॐकारकूं उचारणकरिके मनोराज्य विशेषकरि जीतियेहै । अर्थ यह जो निवारण करियेहै ॥ ६२ ॥

॥ ४ ॥ मनोराज्यके जयका उदासीनतारूप फल ॥

३५ मनोराज्यके जीतनैविषै क्या फल होवैहै ? तहां कहैहैं:—

३६] तिस मनोराज्यके जीतेहुये । मन जो है सो वृत्तिशून्य हुआ मूककी न्यांई स्थित होवैहै ॥

३७) जैसैं मूक जो वाचारहित पुरुष सो सकलवाणीके व्यापारसैं रहित हुआ स्थित होवैहै । ऐसैं मनोराज्यके अभाव हुये मन बी सर्वव्यापार जे संकल्पविकल्पआदिक तिनसैं रहित हुआ स्थित होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥

३८ वृत्तिरहित मनकी स्थितिकी पुरुषार्थरूपताविषै प्रमाण कहैहैं:—

३९] यह इसदशारूप पद वसिष्ठजीनैं रामजीके तांई बहुतप्रकारसैं कथन कियाहै ॥

ॐ ३९) इहां "यह पद" याका "यह दशा" । यह अर्थ है ॥ ६३ ॥

॥ ५ ॥ श्लोक ६३ उक्त अर्थमैं श्रीवसिष्ठका वचनप्रमाण ॥

४० वसिष्ठमुनिके दोश्लोकरूप वाक्यकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

४१] "दृश्य नहीं है।" इस बोधकरि

---

११ इहां यह रहस है:—मनके च्यारिपाद हैं:—वाचा श्रोत्र चक्षु औ संकल्पविकल्पादिआंतरकल्पना ॥ तिनमैं एकांतविषै निवास करनैतैं वाचा श्रोत्र औ चक्षुका । वचन श्रवण दर्शनरूप विषयके अभावतैं निरोध होवैहै औ इन तीनपादनके रोकनैतैं आगमनविना तालके जलवत् चतुर्थपाद आंतरकल्पनाकी निवृत्ति होवैहै ॥

टीकांकः		द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥
११४२	४३ विचारितमलं शास्त्रं चिरमुद्ग्राहितं मिथः । ४६ संत्यक्तवासनान्मौनादृते नास्त्युत्तमं पदम् ६५ ४९ विक्षिप्यते कदाचिद्धीः कर्मणा भोगदायिना । पुनः समाहिता सा स्यात्तदैवाभ्यासपाटवात् ६६	श्लोकांकः
टिप्पणांकः		२८२
ॐ		२८३

मनसः दृश्यमार्जनं संपन्नं चेत् तत् परा निर्वाणनिर्वृतिः उत्पन्ना ॥

४२) "नेह नानाऽस्ति किंचन" इत्यादिश्रुत्याऽद्वितीयब्रह्मातिरिक्तजगदभावज्ञानेन मनसः सकाशात् दृश्यनिवारणं संपन्नं यदि । तर्हि निरतिशयं मोक्षसुखं निष्पन्नमिति जानीयादित्यर्थः ॥ ६४ ॥

४३] (विचारितमिति) शास्त्रं अलं विचारितं । मिथः चिरं उद्ग्राहितम् ॥

४४) किंच अद्वैतशास्त्रम् । अत्यर्थं विचारितं । तथा परस्परं गुरुशिष्यादिसंवादद्वारा चिरकालं प्रत्यायितं च ॥

४५ एवं कृत्वा किं निश्चितमित्यत आह—

४६] संत्यक्तवासनात् मौनात् ऋते उत्तमं पदं न अस्ति ॥

४७) सम्यक्परित्यक्तकामादिवासनात् । मनसः तूष्णींभावात् ऋते अधिकः पुरुषार्थो नास्ति । इति निश्चितमित्यर्थः ॥६५॥

४८ एवं निर्वृत्तिकस्य चित्तस्य प्रारब्धकर्मणा विक्षेपे सति तत्प्रतीकारोपायः क इत्यपेक्षायामाह (विक्षिप्यते इति)—

मनतैं दृश्यका मार्जन जब संपन्न हुआ तब परमनिर्वाणनिर्वृति संपन्न भई ॥

४२) "इस अनानारूप ब्रह्मविषै नाना कछु बी नहीं है" इत्यादिकश्रुतिसैं अद्वितीयब्रह्मतैं भिन्न जगत्‌के अभावके ज्ञानकरि। मनतैं द्रष्टाके विषय जगत्‌रूप दृश्यका जब निवारण सिद्ध होवै । तब परम कहिये निरतिशयनिर्वाणनिर्वृत्ति जो मोक्षसुख सो सिद्ध भया। ऐसैं जानना । यह अर्थ है ॥ ६४ ॥

४३] शास्त्र जो है सो अतिशय विचार्‌या औ परस्पर चिरकाल ग्रहण करायाहै ॥

४४) किंवा अद्वैतशास्त्र जो वेदांत सो अतिशय विचार किया। तैसैं परस्पर गुरुशिष्यादिकके संवादद्वारा बहुतकालपर्य्यंत प्रतीतिबी करायाहै ॥

४५ ननु इसप्रकारकरिके क्या निश्चित होवैहै? तहां कहैहैं:—

४६] सम्यक् त्यक्त भईहै वासना जिसतैं। ऐसा जो मौन है। तिसतैं विना उत्तमपद नहीं है ॥

४७) ऐसैं परित्याज्य भईहै कामक्रोधआदिकरूप वासना जिसतैं। ऐसा जो मनका तूष्णीभाव है तिसविना औरअधिकपुरुषार्थ जो सुख सो नहीं है। ऐसैं निश्चित भया॥ यह अर्थ है ॥ ६५ ॥

॥ ६ ॥ उदासीनकूं कदाचित् भये विक्षेपकी निवृत्तिका उपाय ॥

४८ ऐसैं वृत्तिरहित भये चित्तकूं प्रारब्धकर्मकरि विक्षेपके हुये तिस विक्षेपकी निवृत्तिका उपाय कौन है? इस पूछनैकी इच्छाविषै कहैहैं:—

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांकः २८४ २८५	५२ विक्षेपो यस्य नास्त्यस्य ब्रह्मवित्त्वं न मन्यते । ब्रह्मैवायमिति प्राहुर्मुनयः पारदर्शिनः ॥ ६७ ॥ ५३ दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः । यस्तिष्ठति स तु ब्रह्मन्ब्रह्म न ब्रह्मवित्स्वयम् ॥६८॥	टीकांकः ११४९ टिप्पणांकः ॐ

४९] भोगदायिना कर्मणा धीः कदाचित् विक्षिप्यते तदा सा अभ्यासपाटवात् पुनः समाहिता स्यात् ॥

५०) भोगप्रदेन प्रारब्धकर्मणा बुद्धिः कदाचिद्विक्षिप्यते चेत् । तर्हि सा बुद्धिः अभ्यासदार्ढ्यात् तदैव पुनरपि समाहिता स्यात् । इत्यर्थः ॥ ६६ ॥

५१ सदा चित्तविक्षेपरहितस्य ब्रह्मवित्त्वमप्यौपचारिकमित्याह (विक्षेप इति)

५२] यस्य विक्षेपः न अस्ति अस्य ब्रह्मवित्त्वं न मन्यते । पारदर्शिनः मुनयः "अयम् ब्रह्म एव" इति प्राहुः ॥

ॐ ५२) पारदर्शिनो वेदांतपारगा इत्यर्थः ॥ ६७ ॥

५३ अत्रापि वसिष्ठवाक्यमुदाहरति (दर्शनादर्शने इति)—

५४] यः दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः तिष्ठति । सः तु ब्रह्मन् स्वयं ब्रह्म । ब्रह्मवित् न ॥

५५) यः ब्रह्म जानामि न जानामीति

४९] भोगदायिकर्मकरि बुद्धि कदाचित् जो विक्षेपकूं पावै । तौ सो अभ्यासके पाटवतैं तबहीं फेर समाहित होवैहै ॥

५०) भोगप्रदप्रारब्धकर्मकरि बुद्धि कदाचित् जो विक्षेपकूं पावैहै । सो बुद्धि अभ्यासकी दृढतासैं तिसीहीं कालविषै फेर बी एकाग्र होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ६६ ॥

॥ ७ ॥ चित्तविक्षेपरहित पुरुषकी ब्रह्मरूपता ॥

५१ सदा चित्तके विक्षेपतैं रहित पुरुषका ब्रह्मवित्पना बी आरोपरूप उपचारसैं है । ऐसैं कहैहैं:—

५२] जिस पुरुषकूं विक्षेप नहीं है तिसका ब्रह्मवित्पना नहीं मानियेहै । किंतु पारदर्शी कहिये वेदांतनके पारगामी जे मननशील मुनि हैं वे "यह कहिये ब्रह्मवित् ब्रह्महीं है" ऐसैं कहतेभये ॥

ॐ ५२) इस पारदर्शी । याका वेदांत जेउपनिषद् तिनके पारके तांई प्राप्त । यह अर्थ है ॥ ६७ ॥

॥ ८ ॥ श्लोक ६७ उक्त अर्थमैं श्रीवासिष्ठका प्रमाण ॥

५३ इहां बी वसिष्ठके वाक्यकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

५४] "जो दर्शन कहिये ज्ञान औ अदर्शन कहिये अज्ञान । इन दोनूंकूं छोडिके आप केवलचिद्रूपसैं स्थित होवैहै सो तौ । हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्महीं है ब्रह्मवित् नहीं ॥

५५) जो पुरुष "ब्रह्मकूं जानताहूं" औ

टीकांक: ११५६ टिप्पणांक: ॐ

द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥ श्लोकांक: २८६

५७ जीवन्मुक्तेः परा काष्ठा जीवद्वैतविवर्जनात् ।
लभ्यतेऽसावतोऽत्रेदमीशद्वैताद्विवेचितम् ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीपंचदश्यां द्वैतविवेकः ॥ ४ ॥

व्यवहारद्वयं परित्यज्य स्वयम् अद्वितीयचैतन्यमात्ररूपेणावतिष्ठते । सः स्वयं ब्रह्म एव । न ब्रह्मवित् इत्यर्थः ॥ ६८ ॥

५६ सकलद्वैतविवेचनमुपसंहरति (जीवन्मुक्तेरिति)—

५७] असौ जीवन्मुक्तेः परा काष्ठा जीवद्वैतविवर्जनात् लभ्यते अतः अत्र इदं ईशद्वैतात् विवेचितम् ॥

५८) असौ उक्तप्रकारा । जीवन्मुक्तेः परा काष्ठा निरतिशयपर्यवसानभूमिः । जीवद्वैतस्य मनोमयप्रपंचस्य । विवर्जनात् परित्यागात् । लभ्यते प्राप्यते । अतः कारणात् । इदं जीवद्वैतं । ईशद्वैतात् ईश्वरसृष्टद्वैतात् । विवेचितं विविच्य प्रदर्शितमित्यर्थः ॥ ६९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्भारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिता द्वैतविवेकपदयोजना समाप्ता ॥ ४ ॥

"नहीं जानताहूं" इन दोनूंप्रतीति औ कथनरूप व्यवहारोंकूं छोडिके आप अद्वितीयचैतन्यमात्ररूपकरि रहताहै सो आप ब्रह्महीं है। ब्रह्मवित् नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ ६८ ॥

॥ ९ ॥ द्वैतके विवेचनकी फलसहित समाप्ति ॥

५६ सकलद्वैतके विवेचनकूं समाप्त करैहैं:—

५७] यह जो जीवन्मुक्तिकी पराकाष्ठा है सो जीवद्वैतके वर्जनतैं प्राप्त होवैहै। यातैं इस प्रकरणविषै यह जीवद्वैत। ईशद्वैततैं विवेचन किया ॥

५८) यह उक्तप्रकारकी जो जीवन्मुक्तिकी पराकाष्ठा कहिये निरतिशयपर्य्यवसानरूप सर्वसैं अधिक स्थितिकी भूमि कहिये अवस्था है। सो मनोमयप्रपंचरूप जीवद्वैतके त्यागतैं प्राप्त होवैहै ॥ इस कारणतैं यह जीवरचितजगत् ईश्वररचितजगततैं विवेचन किया। अर्थ यह जो विवेचन करीके दिखाया ॥ ६९ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्म विदुषा विरचिता पंचदश्या द्वैतविवेकस्य तत्त्वप्रकाशिकाख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ४ ॥
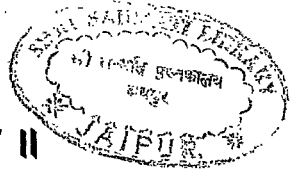
॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ महावाक्यविवेकः ॥

॥ पंचमप्रकरणम् ॥ ५ ॥

महावाक्य-विवेकः ॥५॥ श्लोकांक: २८७	६० येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च । स्वाद्वस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ १ ॥	टीकांक: ११५९ टिप्पणांक: ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ महावाक्यविवेकव्याख्या ॥ ५ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
महावाक्यविवेकस्य कुर्वे तत्त्वप्रकाशिकाम् ॥ १ ॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
महावाक्यविवेकस्य कुर्वे व्याख्यां समासतः ॥ १ ॥

५९ मुमुक्षोः मोक्षसाधनब्रह्मात्मैकत्वावगति-

ॐ

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ महावाक्यविवेककी तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ ५ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्त सर्वगुरुनकूं नमनकरिके नरभाषासैं पंचदशीके महावाक्यविवेकनाम पंचमप्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिका नाम व्याख्या मैं करुंहूं ॥ १ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीमत्भारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दोमुनीश्वरनकूं नमनकरिके महावाक्यविवेककी व्याख्या मैं संक्षेपतैं करुंहूं ॥ १ ॥

॥ १ ॥ ऋग्वेदकी ऐतरेयउपनिषद्गत "प्रज्ञानं ब्रह्म" इस महावाक्यका अर्थ ॥ ११५९–११६७ ॥

॥ १ ॥ "प्रज्ञान" पदका अर्थ ॥ ११५९–११६१ ॥

५९ मुमुक्षुनकूं मोक्षका साधन जो ब्रह्म-

* च्यारिमहावाक्यनका है विवेक कहिये वाच्यलक्ष्यरूप अर्थका विभाग जिसविषै सो ॥

सिद्धये प्रसिद्धानां चतुर्णां महावाक्यानां अर्थं क्रमेण निरूपयन् परमकृपालुराचार्य आदौ तावदैतरेयारण्यकगते "प्रज्ञानं ब्रह्म" इति महावाक्ये "प्रज्ञान"-शब्दस्यार्थमाह—

६०] येन इदं ईक्षते शृणोति जिघ्रति व्याकरोति च स्वाद्वस्वादू विजानाति। तत् "प्रज्ञानं" उदीरितम् ॥

६१) येन चक्षुर्द्वारा निर्गतांतःकरणवृत्त्युपहितचैतन्येन। इदं दर्शनयोग्यं रूपादिकम् ईक्षते पश्यति। पुरुषः। तथा श्रोत्रद्वारा निर्गतांतःकरणवृत्त्युपाधिकेन येन शब्दजातं शृणोति। तथैव घ्राणद्वारा निर्गतांतःकरणवृत्त्युपहितेनौपाधिकेन येन गंधजातं जिघ्रति। येन वागिंद्रियावच्छिन्नेन व्याकरोति शब्दजातं व्याहरति। येन रसनेंद्रियद्वारा निर्गतांतःकरणवृत्त्युपाधिकेन। स्वाद्वस्वादू रसौ विजानाति ॥ अनुक्तसमुच्चयार्थः चशब्दः। तथा चोक्तानुक्तैः सकलेंद्रियैः अंतःकरणवृत्तिभेदैश्चोपलक्षितं यच्चैतन्यमस्ति। तत् एवात्र "प्रज्ञानम्" इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ अनेन "येन वा पश्यति" इत्यादेः "सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि" इत्यंतस्यावांतरवाक्यसंदर्भस्यार्थः संक्षिप्य दर्शितः ॥ १ ॥

आत्माकी एकताका ज्ञान है। तिसकी सिद्धिअर्थ च्यारिवेदनमैं प्रसिद्ध जे च्यारिमहावाक्य हैं। तिनके अर्थकूं क्रमतैं निरूपन करतेहुये परमकृपालुआचार्यश्रीविद्यारण्यस्वामी। आदिविषै प्रथम ऋग्वेदकी ऐतरेयारण्यकगत "प्रज्ञानं ब्रह्म" कहिये "प्रज्ञान ब्रह्म है" इस महावाक्यविषै "प्रज्ञान" शब्दके अर्थकूं कहैहैंः—

६०] जिस चैतन्यकरि पुरुष इस रूपादिककूं देखताहै औ शब्दकूं सुनताहै औ गंधकूं सूंघताहै औ शब्दकूं बोलताहै औ स्वादूअस्वादूरसकूं जानताहै। सो वृत्तिउपलक्षितचैतन्य प्रज्ञान कह्याहै ॥

६१) जिस चक्षुद्वारा निकसी अंतःकरणकी वृत्तिउपहितसाक्षीचैतन्यकरि इस देखनैयोग्य रूपआदिककूं संघातरूप पुरुष देखताहै। तैसैं श्रोत्रद्वारा निर्गत अंतःकरणवृत्तिरूप उपाधिवाले जिस चैतन्यकरि पुरुष शब्दके समूहकूं सुनताहै। तैसैंहीं नासिकाद्वारा निर्गत अंतःकरणवृत्तिरूप उपाधिवाले जिस चैतन्यकरि पुरुष गंधके समूहकूं सूंघताहै औ जिस वाक्इंद्रियअवच्छिन्नचैतन्यकरि पुरुष शब्दके समूहकूं बोलताहै औ रसनइंद्रियद्वारा निर्गत अंतःकरणवृत्तिरूप उपाधिवाले जिस चैतन्यकरि स्वादुअस्वादु दोनूंभांतिके रसकूं पुरुष जानताहै ॥ इहां मूलश्लोकविषै जो "च" शब्द है सो नहीं कहे अन्यइंद्रियनके ग्रहण अर्थ है ॥ तैसैं हुये। कही औ नहीं कही सकलइंद्रिय औ अंतःकरणकी वृत्तिनकरि उपलक्षित जो कूटस्थचैतन्य है। सोइ इहां "प्रज्ञानं ब्रह्म" इस महावाक्यविषै "प्रज्ञान" ऐसैं कहियेहै। यह अर्थ है ॥ इस कहनैकरि जिसकरि "प्रसिद्ध देखताहै" इस आदिवाला औ "सर्वहीं यह प्रज्ञानके नाम हैं" इस अंतवाला जो आत्माके स्वरूपके बोधक अवांतरवाक्यका समूह है तिसका अर्थ संक्षेपकरिके दिखाया ॥ १ ॥

१२ ऐतरेयारण्यकके षष्ठअध्यायविषै उपरिउक्त अवांतर वाक्यका कहिये आत्माके स्वरूपके बोधक वाक्यका समूह इसरीतिसैं हैः—

प्रश्नः-"केइक मुमुक्षु विचार करतेहुये परस्पर प्रश्न करतेभये ॥ जिसकूं 'यह आत्मा है' ऐसैं हम उपासना करैं कहिये जानैं। सो आत्मा कौन है? सो कौन आत्मा है?"

महावाक्य-विवेकः ॥५॥ श्लोकांकः २८८	चतुर्मुखेंद्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु । चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥ २ ॥	टीकांक: ११६२ टिप्पणांक: ५१३

६२ एवं "प्रज्ञान"—शब्दस्यार्थमभिधाय "ब्रह्म"—शब्दस्यार्थमाह—

६३] चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु एकं चैतन्यं ब्रह्म ॥

६४) उत्तमेषु देवादिषु । मध्यमेषु मनुष्येषु । अधमेषु अश्वगवादिषु देहधारिषु । आकाशादिभूतेषु च जगज्जन्मादिहेतुभूतं यत् एकं चैतन्यम् अस्ति । तत् ब्रह्म इत्यर्थः ॥ अनेन च "एष ब्रह्मैष इंद्र" इत्यादेः "प्रज्ञा प्रतिष्ठा" इत्यंतस्यावांतरवाक्यस्यार्थः संक्षिप्य दर्शितः ॥

॥ २ ॥ "ब्रह्म"पदका अर्थ औ एकतारूप वाक्यार्थ ॥ ११६२—११६७ ॥

६२ ऐसैं "प्रज्ञान"शब्दके अर्थकूं कहिके "ब्रह्म"शब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

६३] ब्रह्मा इंद्र देवनविषै औ मनुष्य अश्व गौआदिकनविषै जो एक चैतन्य है सो ब्रह्म है ॥

६४) उत्तम जे देवादिक हैं औ मध्यम जे मनुष्य हैं औ अधम जे अश्वगौआदिक हैं। तिन सर्वदेहधारिनविषै औ आकाशआदिकभूतनविषै जगत्के जन्म स्थिति अरु लयका हेतुरूप जो एकचैतन्य है। सो ब्रह्म है। यह अर्थ है ॥ इस कहनैकरि "यह ज्ञानरूप आत्मा ब्रह्मा है। यह इंद्र है ॥" इस आदिवाला औ "चैतन्यज्ञानरूप प्रज्ञा प्रतिष्ठा है" कहिये सर्वका अधिष्ठान है। इस अंतवाला जो ब्रह्मके स्वरूपका बोधक अवांतरवाक्य[13]का समूह है तिसका अर्थ संक्षेपकरिके दिखाया ॥

(१) उत्तरः—जिसकरि रूपकूं देखताहै ।
(२) जिसकरि शब्दकूं सुनताहै ।
(३) जिसकरि गंधनकूं सूंघताहै ।
(४) जिसकरि वाणीकूं बोलताहै औ
(५) जिसकरि स्वादु औ अस्वादुकूं जानताहै ॥ १ ॥
(१) जो हृदय है ।
(२) यह मन है ।
(३) संज्ञान कहिये चेतनभाव है ।
(४) अज्ञान कहिये ईश्वरभाव है ।
(५) विज्ञान जो चौसठकलादिज्ञान है ।
(६) प्रज्ञान नाम तत्कालसंबंधी प्रतिभा है ।
(७) मेधा । कहिये ग्रंथधारणविषै सामर्थ्य है ।
(८) दृष्टि कहिये इंद्रियद्वारा सर्वविषयनकी उपलब्धि है।
(९) धृति जो धैर्यरूप धारणा है।
(१०) मति कहिये मनन है ।
(११) मनीषा नाम मननविषै स्वातंत्र्य है ।
(१२) जूति कहिये चित्तकूं रोगादिजन्यदुःखीपना औ
(१३) स्मृति नाम स्मरण है ।
(१४) संकल्प कहिये सामान्यकरि प्राप्त रूपादिकनका शुक्लादिरूपसैं कल्पन है ।
(१५) क्रतु कहिये निश्चय है ।
(१६) असु कहिये प्राणनआदिकजीवनक्रियानिमित्त वृत्ति है ।
(१७) काम जो असमीपविषयकी इच्छारूप तृष्णा है ॥
(१८) वश कहिये स्त्रीसंबंधआदिककी अभिलाषा है ॥

ऐसैं सर्वहीं यह प्रज्ञान कहिये प्रकृष्टज्ञानमात्रचेतनरूप उपलब्धाके नामधेय कहिये तिसतिस वृत्तिरूप उपाधिविशिष्टपनैकरि उपचारतैं नाम होवैहैं ॥ २ ॥" इति ॥

इस वाक्यसमूहकरि सर्वकरण औ तिनकी वृत्तिनतैं व्यतिरिक्त स्वप्रकाशस्वरूप सर्वका साक्षी । सर्ववृत्तिनविषै अनुगत । एकआत्मा शोधन किया ॥

१३ ऐतरेयारण्यकके षष्ठअध्यायविषै आत्मस्वरूपबोधकवाक्यसैं अनंतरहीं यह अवांतर कहिये ब्रह्मके स्वरूपका बोधक वाक्यका समूह इसरीतिसैं है:—"यह प्रज्ञानरूप आत्मा

टीकांकः ११६५ टिप्पणांकः ५१४

६९ परिपूर्णः परात्माऽस्मिन्देहे विद्याऽधिकारिणि ।
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥३॥

महावाक्यविवेकः ॥५॥ श्लोकांकः २८९

६५ इत्थं पदार्थमभिधाय वाक्यार्थमाह—

६६] अतः मयि अपि प्रज्ञानं ब्रह्म ॥

६७) यतः सर्वत्रावस्थितं प्रज्ञानं ब्रह्म अतो मय्यपि स्थितं प्रज्ञानं ब्रह्म एव प्रज्ञानत्वाविशेषादित्यर्थः ॥ २ ॥

६५ ऐसैं "प्रज्ञान" औ "ब्रह्म" इन दोपदनके अर्थकूं कहिके अब पदसमुदायरूप वाक्यके अर्थकूं कहैहैं:—

६६] यातैं मेरेविषै बी स्थित प्रज्ञान ब्रह्म है ।

६७) जातैं सर्वदेव मनुष्य पशु आकाशादिकविषै स्थित प्रज्ञान ब्रह्म है । यातैं मेरेविषै बी स्थित प्रज्ञान ब्रह्म है ॥ काहेतैं प्रज्ञानपनैके अविशेषतैं कहिये अविलक्षणपनैतैं ॥ यह अर्थ है ॥ २ ॥

६८ एवं ऋक्शाखागतं महावाक्यार्थं निरूप्य । यजुःशाखासु मध्ये बृहदारण्यकोपनिषद्गतस्य "अहं ब्रह्मास्मि" इति महावाक्यस्यार्थाविष्करणाय "अहं"–शब्दस्यार्थमाह—

॥२॥ यजुर्वेदकी बृहदारण्यकउपनिषद्गत "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यका अर्थ ॥११६८-११७७॥

॥ १ ॥ "अहं" पदका अर्थ ॥
॥ ११६८—११७० ॥

६८ ऐसैं ऋग्वेदकी शाखाविषै स्थित वाक्यके अर्थकूं निरूपणकरिके अब यजुर्वेदकी शाखाऊंके मध्यमैं जो बृहदारण्यकउपनिषद् है। तिसविषै गत "अहं ब्रह्मास्मि" कहिये "मैं ब्रह्म हूं" ईसैं महावाक्यके अर्थके प्रगट करनैवास्ते ॥ "अहं" शब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

ब्रह्मा है । यह इंद्र है । यह प्रजापति है । यह सर्वदेव औ यह पंचमहाभूत । पृथिवी । वायु । आकाश । आप नाम जल । ज्योति नाम तेज यह है । औ यह क्षुद्र (अल्प) । मिश्र (सर्पादिक) । बीज (कारणरूप) । इतर (स्थावर) । औ इतर (जंगम) । अंडज (पक्षीआदिक) । जारुज (जरायुजमनुष्यादिक) । स्वेदज (यूकादिक) । उद्भिज्ज (वृक्षादिक) । अश्व । गौ । पुरुष । हस्ती औ अन्य जो कछुक यह प्राणीसमूह है । जंगम जो पगनसैं चलता है औ पतत्रि (जो आकाशविषै पतनशील) हैं। जो स्थावर नाम अचल है । जातैं सो सर्व प्रज्ञानेत्र कहिये प्रज्ञारूप ब्रह्म है नेत्र प्रवर्त्तक जिसका ऐसा है । औ प्रज्ञान (ब्रह्म) विषै प्रतिष्ठित (उत्पत्यादिकालमैं आश्रित) है । औ प्रज्ञानेत्र (ब्रह्मरूप चक्षुवाला) लोक (सर्वजगत्) है औ प्रज्ञा प्रतिष्ठा (सर्वजगत्की पर्यवसानभूमि । अवशेषवस्तु) है । तातैं "प्रज्ञान कहिये प्रत्यगात्मा । ब्रह्म है" यह महावाक्यका अर्थ है॥ इन वाक्यनका भाष्य औ आनंदगिरिकृतव्याख्याविषै शंकासमाधानपूर्वक अधिकअर्थ है सो विस्तारके भयसैं लिख्या नहीं ॥ इति ॥

१४ बृहदारण्यकके तृतीयप्रपाठक (अध्याय) गत चतुर्थब्राह्मणकी दशमकंडिकाके अंतर्गत यह महावाक्य है । सो कंडिका यह है:—"आगे (प्रबोधतैं पूर्व) यह (शरीरविषै स्थित पुरुष) ब्रह्महीं था । सो आत्मा (आप) कूंहीं 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूं) ऐसैं जानताभया ॥ तातैं सो सर्व (सर्वात्मा) होताभया ॥ जो जो देवनके मध्य तिसकूं जानताभया । सोई (प्रबुद्धआत्मा) सो (ब्रह्म) होताभया ॥ तैसैं ऋषिनके मध्यमैं तैसैं मनुष्यनके मध्यमैं बी जानना ॥ औ सो प्रसिद्ध यह देखताहुवा । वामदेवऋषि प्राप्त होताभया 'मैं मनु होताभया औ सूर्य (होताभया)' ऐसैं तिस इसी (आत्मा) हींकूं अब (वर्तमानकालमैं) बी जो (मनुष्यादिक) 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार जानै । सो यह सर्व (सर्वात्मा) होवैहै ॥ तिसकूं निश्चयकरि देव अभूति (ब्रह्मभावरूप ऐश्वर्यकी निवृत्ति) अर्थ समर्थ नहीं होवैहैं (तब अन्यफलके विनाशमैं

महावाक्य-विवेकः ॥५॥ श्लोकांकः २९०

स्वतः पूर्णः परात्माऽत्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः।
अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥ ४ ॥

टीकांकः ११६९ टिप्पणांकः ॐ

६९] परिपूर्णः परात्मा अस्मिन् विद्याधिकारिणि देहे बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन् "अहं" इति ईर्यते ॥

७०) परिपूर्णः स्वभावतो देशकालवस्तुभिरपरिच्छिन्नः परमात्मा । अस्मिन् मायाकल्पिते जगति । विद्याधिकारिणि शमादिसाधनसंपन्नत्वेन विद्यासंपादनयोग्ये । अस्मिन् श्रवणाद्यनुष्ठानवति देहे मनुष्यादिशरीरे । बुद्धेः बुद्ध्युपलक्षितस्य सूक्ष्मशरीरस्य । साक्षितयाऽविकारित्वेनावभासकतया स्थित्वा । अवस्थाय । स्फुरन् प्रकाशमानः "अहं" इतीर्यते लक्षणया अहंपदेनोच्यत इत्यर्थः ॥ ३ ॥

७१ "ब्रह्म"–शब्दार्थमाह—

७२] स्वतः पूर्णः परात्मा अत्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ।

७३) स्वतः परिपूर्णः स्वभावतो देशकालाद्यनवच्छिन्नः । पूर्वोक्तः परमात्मा अत्र अस्मिन् महावाक्ये। ब्रह्मशब्देन "ब्रह्म" इत्यनेन पदेन । वर्णितः लक्षणया उक्त इत्यर्थः ॥

६९] परिपूर्णपरमात्मा । विद्या जो ज्ञान ताके अधिकारी इस देहविषै बुद्धिका साक्षी होनैकरि स्थित होयके जो स्फुरताहै । सो "अहं" इस पदकरि कहियेहै ॥

७०) परिपूर्ण कहिये स्वभावतैं देश काल अरु वस्तुकरि अपरिच्छिन्न जो परमात्मा है।सो इस मायाकरि कल्पितजगत्‌विषै विद्याधिकारी कहिये शमआदिकसाधनयुक्त होनैकरि ब्रह्मविद्यासंपादनके योग्य इस श्रवणादिकके अनुष्ठानवाले मनुष्यादिशरीरविषै बुद्धिकरि उपलक्षित सूक्ष्मशरीरका अविकारीपनैसैं अवभासकसाक्षी होनैकरि स्थित होयके स्फुरताहै कहिये प्रकाशमान है । सो लक्षणासैं "अहं"पदकरि कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ "ब्रह्म"पदका अर्थ औ "अस्मि"पदके अर्थकरि एकतारूप वाक्यार्थ ॥ ११७१—११७७ ॥

७१ "ब्रह्म"शब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

७२] स्वतःपूर्णपरमात्मा जो है सो इहां "ब्रह्म"शब्दकरि वर्णन कियाहै॥

७३) स्वतःपरिपूर्ण । कहिये स्वभावतैं देशकालादिकरि अपरिच्छिन्न जो पूर्व तृतीयवें श्लोकविषै उक्त परमात्मा है । सो इहां "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यविषै "ब्रह्म"शब्दकरि लक्षणासैं कहाहै ॥ यह अर्थ है ॥

समर्थ नहीं होवैहै वामैं कहा कहना है !) जातैं सो इन (देवन) का आत्मा होवैहै औ ॥*॥ जो अन्य (आपतैं भिन्न) देवताकूं उपासताहै 'यह अन्य है' 'मैं अन्य हूं ।' ऐसैं सो जानता नहीं । जैसैं पशु है ऐसैं सो देवनका है ॥ जैसैं प्रसिद्ध बहुतपशुमनुष्यकूं भोगते (पालते)हैं। ऐसैं एकएकपुरुष देवनकूं भोगता (पालता)है॥ एकहीं पशुकूं हरण किये (सिंहादिकतैं उठायलिये) अप्रिय होवैहै तौ बहुतनके हरणकिये (अप्रियतामैं) क्या कहनाहै? तातैं जो (स्वस्वरूपकूं) यह मनुष्य जानतेहैं सो इन (देवन)कूं प्रिय नहीं है ॥ १० ॥"

टीकांक: ११७४ टिप्पणांक: ५१५	ॐ एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् । सृष्टेः पुराधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते ॥ ५ ॥	महावाक्य-विवेकः ॥५॥ श्लोकांक: २९१

७४ एतद्वाक्यगतेन "अस्मि" इति पदेन पदद्वयसामानाधिकरण्यलभ्यं जीवब्रह्मणोरैक्यं परामृश्यत इत्याह—

७५] "अस्मि" इति ऐक्यपरामर्शः ।

७६ फलितमाह—

७७] तेन अहम् ब्रह्म भवामि ॥४॥

७८ इदानीं छांदोग्यश्रुतिगतस्य "तत्त्वमसि" इति वाक्यार्थप्रकाशनाय "तत्" पदलक्ष्यार्थमाह (एकमेवेति)—

७४ इस वाक्यगत "अस्मि" इस पदकरि दोनूं "अहं" अरु "ब्रह्म" इन पदनके सामानाधिकरण्यसैं प्राप्य जो जीवब्रह्मकी एकता है सो स्मरण करियेहै । ऐसैं कहैहैंः—

७५] "अस्मि" यह पद एकताका स्मरण करावनैहारा है ॥

७६ वाक्यार्थकूं कहैहैंः—

७७] तिस हेतुकरि "मैं ब्रह्महीं हूं" ॥ ४ ॥

॥३॥ सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्गत "तत्त्वमसि" इस महावाक्यका अर्थ ॥ ११७८—११८८ ॥

॥ १ ॥ "तत्"पदका अर्थ ॥ ११७८—११८० ॥

७८ अब सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्गत "तत्त्वमसि"[१६] कहिये सो तूं हैं। इस महावाक्यके

१५ भिन्नअर्थयुक्त अपर्यायरूप पदनकी समानविभक्तिके बलसैं एकहीं अर्थविषे जो प्रवृत्ति (संबंध) सो **सामानाधिकरण्य** कहियेहै ॥ इहां (इस वाक्यविषे) "अहं" औ "ब्रह्म" ये दोपद क्रमतैं आत्मा औ ब्रह्मरूप अर्थके बोधक हैं । यातैं भिन्नअर्थयुक्त अपर्याय हैं। परंतु समान (प्रथमा)विभक्तिके बलसैं तिन दोपदनकी अखंडएकरसतारूप एकहीं अर्थविषे प्रवृत्ति (लक्षणारूप संबंध) है ।सो **सामानाधिकरण्य** है ॥ तिसहीसैं ब्रह्मात्माकी एकता सिद्ध है ॥ तिसका "अस्मि"पद स्मरण करावनैहारा है। अन्यअर्थका बोधक "अस्मि"पद नहीं है ॥

१६ **"तत्त्वमसि"** यह सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्के षष्ठअध्यायगत **महावाक्य** है। सो नववार उपदेश कियाहै॥ तहां प्रथम श्वेतकेतुपुत्र औ उद्दालकपिताके संवादके प्रसंगअर्थ यह संक्षेपतैं कथा हैः—श्वेतकेतु नाम उद्दालकऋषिका पुत्र होताभया ॥ तिसकूं योग्यविद्याका पात्र मानिके औ तिसके जनोई धारणके कालकी निवृत्तिकूं देखिके पिता कहताभयाः—

उद्दालकउवाचः—हे श्वेतकेतो! हमारे कुलके अनुसारी गुरुके पास जायके ब्रह्मचर्य धारण करीके विद्या पढनैअर्थ वास कर ॥ हे सोम्य ! हमारे कुलमैं उत्पन्न भया पुरुष विद्या न पढिके जैसै कोइ आप मूर्ख हुवा अपने निर्वाहअर्थ ब्राह्मणनकूं बंधु माननैहारा ब्रह्मबंधु है ताकी न्याई होवै । यह युक्त नहीं है ॥ औ

जिसकारणकरि पिता आप गुणवान् होवै तौ बी पुत्रकूं जनोईकरिके पढावता नहीं है । तिसकारणतैं पुत्रका पितातैं अन्यदेशमैं पढनैअर्थ गमन अनुमानसैं जानियेहै ॥

ऐसैं जब पितानैं कहा तब सो श्वेतकेतु द्वादशवर्षका भयाथा औ जनोइ धारिके । आचार्यके पास चौवीसवर्षका भया तहां पर्यंत च्यारीवेदनकूं पढिके बडेमनवाला औ आपकूं विद्वान् माननैहारा अनम्रस्वभाववान् हुवा । अहंकूं आवताभया ॥ तिस पुत्रकूं उक्तप्रकारका देखिके उद्दालकपिता कहताभयाः—

उद्दालकउवाचः—हे श्वेतकेतो ! हे सोम्य नाम प्रियदर्शन ! यह जो तूं बडेमनवाला औ आपकूं विद्वान् माननैहारा अनम्रस्वभाववान् हुवाहै । सो कौन तेरेकूं आचार्यतैं अतिशय प्राप्त भयाहै ? जिस आदेश (ब्रह्मके उपदेश)करि नहिं सुन्या अन्य (कार्यरूप जगत्) सुन्या होवैहै औ नहीं मनन किया अन्य मनन किया होवैहै

औ नहीं निश्चय किया अन्य निश्चय किया होवैहै। तिस आदेशकूं बी आचार्य्यके प्रति पूंछ्याहै? ऐसैं पितानैं कहा तब श्वेतकेतु पूंछताभयाः—

श्वेतकेतुरुवाचः—हे भगवन्! सो आदेश कैसैं होवैहै? तब पिता कहैहैं:—

उद्दालकउवाचः—"हे सोम्य! जैसैं एक मृत्तिकाके पिंडकरि सर्वघटादिककार्य मृत्तिकामय निश्चित होवैहै॥वाणीका आश्रय (विषय) विकार (कार्य) नाममात्र है औ मृत्तिकाहीं सत्य है" इहांसै लेके मृत्तिका सुवर्ण औ लोहरूप तीनदृष्टांत कहिके "हे सोम्य! ऐसैं यह आदेश होवैहै" इहांपर्यंत पितानैं कहा तब पुत्र कहैहैः—

श्वेतकेतुरुवाचः—पूजावान् जो मेरे गुरु हैं वे निश्चयकरि यह आपनै जो उपदेश कह्या ताकूं नहीं जानतेहैं॥ जो जानते होवैं तौ गुणवान्भक्तअनुगतइत्यादिगुणयुक्त मुजकूं कैसैं नहि कहतेभये? यातैं तुह्महीं यह कहो॥ तब पिता कहते भयेः—

उद्दालकउवाचः—हे सोम्य! तथाऽस्तु (सो कहताहूं)। हे सोम्य! "आगे यह एकहीं अद्वितीय सत्हीं था" इहांसैं आरंभकरिके सत्रूप ब्रह्मसैं ईक्षण (ज्ञान) पूर्वक तेज जल औ अन्न (पृथ्वी)रूप तीनभूत अरु भौतिक (भूतनके कार्यन)की उत्पत्ति कहिके पीछे जीवब्रह्मकी एकताके बोधक "तत्त्वमसि (सो तूं है)" इस महावाक्यकूं नववार उपदेश करतेभये॥ वे नवउपदेश दिखावैहैं॥ अरुणिका पुत्र आरुणि ऐसा जो उद्दालक है। सो श्वेतकेतुपुत्रके तांई सुषुप्तिकूं कहैहैं:—

अथ प्रथमउपदेश प्रारंभः ॥ १ ॥

पृथिवी जल तेज। इन तीनभूतनके परस्परमिलापरूप **त्रिवृत्करण**कूं विषय करनैहारे अवांतरप्रकरणकूं समासकरिके। सत् जो ब्रह्म ताकूं विषय करनैहारे महाप्रकरणकूं कहतेहुये। सुषुप्तिविषै मनके लयहुये जीवकूं सत्की प्राप्ति होवैहै। यह कहनैकूं पूर्व कहे मनउपाधिवान्पनैकूं अनुवाद करैहैं॥

उद्दालकउवाचः—हे सोम्य! मेरेतैं जान॥ जिसकालविषै पुरुष सोवताहै तिस कालविषै "यह पुरुष सोवताहै" यह नाम पुरुषका होवैहै॥ तब हे सोम्य! सत्ब्रह्मसैं एकरूप होताहै॥ औ परमार्थसत्रूप आपकूं प्राप्त होताहै॥ जातैं अपनैआपकूं प्राप्त होवैहै तातैं इस पुरुषकूं "सोवताहै" ऐसैं कहैहैं। कहिये चिदानंदादिकगुणनकी अप्रसिद्धितैं बी स्वात्माकी प्राप्ति होवैहै॥ यह भाव है॥ [१]

जाग्रत्स्वप्नजनितश्रमकी निवृत्तिअर्थ ब्रह्मरूप नीड जो आश्रय ताकी प्राप्ति सुषुप्तिअवस्थाविषै जानियेहै यह कहैहैं:— जैसैं शकुनिपक्षी सूत्रकरि बांध्याहुवा दिशादिशाकेप्रति पतनकरिके अन्यठिकानैं आश्रयकूं नहीं पायके बंधनकूंहीं आश्रय करताहै। ऐसैंहीं निश्चयकरि हे सोम्य! सो मन कहिये मनउपाधिवाला जीव जाग्रत्स्वप्नमैं सुखदुःखरूप दिशादिशाके प्रति पतन (अनुभवरूप गमन)करिके अन्यठिकानैं आश्रयकूं नहीं पायके प्राणरूप बंधनकूं आश्रय करताहै॥ हे सोम्य! जातैं प्राण (प्राणसैं उपलक्षित परब्रह्म) है बंधन (आश्रय) जिसका। ऐसा मन (मनउपाधिवाला जीव) है। तातैं सो मन प्राणकूंहीं आश्रय करताहै॥ [२]

ऐसैं **"सोवताहै" इस नामकी प्रसिद्धिरूप द्वारकरि** जीवका सत्यस्वरूप जो जगत्का मूल है सो पुत्रकूं दिखायके। अब **अन्नादिकार्यकारणकी परंपराकरि** बी जगत्के मूल सत्कूं दिखावैहैं:—हे सोम्य! क्षुधातृषाकूं मेरेतैं जान॥ जिसकालविषै पुरुष भोजन करनैकूं इच्छताहै तिसकालविषै "यह पुरुष भोजन करनैकूं इच्छताहै" यह नाम पुरुषका होवैहै॥ तब तिस भक्षण किये कठिनअन्नकूं पान किये जे जल हैं वे ले जातेहैं। कहिये कठिनअन्नकूं कोमलकरिके रसादिप्रभावसैं परिणाम करैहैं॥ सो जैसैं गौवनका पालन करनैहारा गोपाल "गोनाय" ऐसैं कहियेहै औ घोडेका पालन करनैहारा अश्वपाल "अश्वनाय" ऐसैं कहियेहै औ पुरुषनका पालन करनैहारा राजा वा सेनापति "पुरुषनाय" ऐसैं कहियेहै। तैसैं भोजन किये अन्नके पाचन करनैके समय जल बी भोजन किये अन्नका पालन करनैहारा होनैतैं "अशनाय" (अशनपाल) ऐसैं कहियेहै॥ ऐसैं जब जलनैं भोजन किये अन्नकूं पाचन किया तब तहां मांसआदिकद्वारा यह शरीररूप कार्य उत्पन्न भया॥ हे सोम्य! तिस कार्यकूं जान॥ यह शरीररूप कार्य अमूल (कारणरहित) नहीं होवैगा [३]॥ इस शरीररूप कार्यका अन्नतैं अन्यठिकानैं कहां मूल होवैगा? अन्नहीं मूल है। यह अर्थ है॥

हे सोम्य! ऐसैंहीं अन्नरूप कार्यकरि जलरूप मूलकूं जान॥ हे सोम्य! जलरूप कार्यकरि तेजरूप मूल (कारण)कूं जान॥ हे सोम्य! तेजरूप कार्यकरि सत् (ब्रह्म)रूप मूलकूं जान॥ हे सोम्य! सत् है मूल (कारण) जिनोंका। ऐसी ये स्थावरजंगमरूप सर्वप्रजा हैं औ सत् है स्थितिकालमैं आश्रय जिनोंका औ सत् है प्रतिष्ठा (अंतविषै लय) जिनोंका। ऐसी प्रजा हैं [४]॥ जिसकालविषै पुरुष पान करनैकूं इच्छताहै तिसकालविषै "यह पान करनैकूं इच्छताहै" यह नाम पुरुषका होवैहै॥ तब शरीरगतअग्निअंशरूप तेजहीं तिस पान किये जलकूं ले जाताहै। कहिये पान किये जलकूं रक्तआदिकभावकरि परिणामकूं प्राप्त करताहै॥ सो जैसैं गोपाल अश्वपाल पुरुषपाल हैं। ऐसैंहीं तिस तेजकूं उदकका ले जानैहारा होनैतैं "उदन्य" (उदकपाल) ऐसैं लोक कहैहैं॥ तहां जलका बी यह शरीररूपहीं कार्य उत्पन्न भयाहै॥ हे सोम्य! यह देहरूप कार्य अमूल (अकारण) नहीं होवैगा ऐसैं जान [५]॥ तिस शरीरका जलतैं अन्यठिकानैं कहां मूल होवैगा? जलहीं मूल है॥ यह अर्थ है॥

हे सोम्य! जलरूप कार्यकरि तेजरूप मूलकूं जान ॥ हे सोम्य! सत्‌रूप मूलवाली औ सत्‌रूप आश्रयवाली औ सत्‌रूप प्रतिष्ठा (अंतवाली) ये स्थावरजंगमरूप सर्वप्रजा हैं ॥ हे सोम्य! जैसें प्रसिद्ध यह तेज जल अन्नरूप तीनदेवता। अधिष्ठानरूप पुरुष (ब्रह्म)कूं पायके एकएक । तीनतीनप्रकार होवैहैं। सो इस प्रथमउपदेशतैं पूर्वहीं कहाहै ॥ ऐसें तेज जल औ अन्नके कार्यभूत शरीररूप कार्यद्वारा सत्‌तत्त्वका निरूपण किया ॥

अब **मरणरूप द्वारकरि** बी तिस सत्‌के निरूपण करनैकूं आरंभ करैहैं:-हे सोम्य! इस मरनैहारे पुरुषकी वाणी मनविषै लय होवैहै औ मन प्राणविषै लय होवैहै औ प्राण तेजविषै लय होवैहै औ तेज परदेवता (ब्रह्म)विषै लय होवैहै ॥ सो जो (सत्‌रूप) यह (उक्तप्रकारका) अणिमा कहिये जगत्‌का कारणरूप अतिशयसूक्ष्म है [६]। सो इस सत्‌रूप आत्मा (स्वरूप)वाला सर्व यह (जगत्) है। सो (सत्‌रूप कारण) सत्य (परमार्थसत्) है। सोई आत्मा है ॥ यातैं हे श्वेतकेतो! **"तत्त्वमसि"** (सो [सत्] तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाचः-हे भगवन्! आपनै जो कह्या "दिनदिनविषै सर्वप्रजा सुषुप्तिमैं सत्‌कूं पावैहैं" सो मेरेकूं संदेहयुक्त है ॥ काहेतैं जातैं सत्‌कूं पायके "हम सत्‌कूं प्राप्त भयेहैं" ऐसें नहीं जानैहैं। तिस हेतुकरि मेरेकूं संदेह होवैहै ॥ यातैं दृष्टांतकरि फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाचः-हे सोम्य! तथाऽस्तु ॥
ऐसें पिता कहतेभये [७]॥ इति प्रथमउपदेशः समाप्तः ॥१॥

अथ द्वितीयउपदेश प्रारंभः ॥ २ ॥

उद्दालकउवाचः-हे सोम्य! जैसें मधुमक्षिका मधुकूं उत्पादन करैहैं औ नानागतिवाले वृक्षनके रसनकूं मिलायके रसके तांई मधुभावरूप एकताकूं संपादन करैहैं [१]। सो रस जैसें तिस मधुविषै विवेक (भेदज्ञान)कूं पावते नहीं। जो "अमुक पनसआदिकवृक्षका मैं रस हूं ॥" हे सोम्य! ऐसैंहीं निश्चयकरि यह सर्वप्रजा सुषुप्ति मरण औ प्रलयकालमैं सत्‌विषै एकताकूं प्राप्त होयके नहीं जानैहैं। जो "हम सत्‌कूं प्राप्त भयेहैं" [२] ॥ सो आत्मा इसलोकविषै व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा दंश (मक्षिका) वा मशक (मच्छर) वा जो जो होवैहै। सो सो (उक्तव्याघ्रसिंहआदिक) तब उत्थानकालमैंहीं होवैहै [३] ॥ सो जो यह अणिमा (सूक्ष्मभाव)है। इस आत्मा(स्वरूप)वाला सर्व यह जगत् है। सो सत्य है। सो आत्मा है ॥ यातैं हे श्वेतकेतो! **"तत्त्वमसि"** (सो तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाचः-जैसें लोकमैं अपनै गृहविषै सोया पुरुष उठिके अन्यग्रामकूं गयाहोवै सो "मैं अपनै गृहतैं आयाहूं" ऐसें जानताहै। तैसें सुषुप्तिआदिकतैं उठे जंतुनकूं "मैं सत्‌सैं आयाहूं" ऐसा विज्ञान काहेतैं नहीं होवैहै? यातैं फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाचः-हे सोम्य! तथाऽस्तु ॥
ऐसें पिता कहतेभये [४]॥ इति द्वितीयउपदेशः समाप्तः ॥२॥

अथ तृतीयउपदेश प्रारंभः ॥ ३ ॥

उद्दालकउवाचः-हे सोम्य! जैसें पूर्वदिशाके प्रति गमन करनैहारी *गंगाआदिकनदियां* पूर्वदिशाके प्रति जावैहैं औ पश्चिमदिशाके प्रति गमन करनैहारी सिंधुआदिकनदियां पश्चिमदिशाके प्रति जावैहैं। वे नदियां प्रथम समुद्रतैं वृष्टिरूपसैं पतन भईहैं। फेर समुद्रकूंहीं प्राप्त होयके समुद्ररूपहीं होवैहैं ॥ जैसें वे नदियां तिस समुद्रविषै "यह गंगा मैं हूं" "यह यमुना मैं हूं" ऐसें नहीं जानैहैं [१] ॥ हे सोम्य! ऐसैंहीं निश्चयकरि ये सर्वप्रजा सुषुप्तिआदिकतैं उत्थानकालमैं सत्‌सैं आयके "हम सत्‌सैं आयेहैं" ऐसें नहीं जानैहैं ॥ सो जीव इसलोकविषै व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा दंश वा मशक। सुषुप्तिआदिकमैं सत्‌कूं प्राप्त होयके जे होवैहैं वे व्याघ्रसिंहआदिक तब उत्थानकालमैं सत्‌सैं आयकेहीं होवैहै [२] ॥ सो जो यह अणिमा (अतिसूक्ष्म) है। इस रूपवाला सर्व यह है। सो सत्य है। सो आत्मा है। यातैं हे श्वेतकेतो! **"तत्त्वमसि"** (सो तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाचः-लोकमैं जलविषै लहरी फेन बुद्बुदआदिक उठतेहैं। फेर जलरूपकूं प्राप्त होयके नाश होवैहैं यह देख्याहै औ जीव तौ सुषुप्ति मरण औ प्रलयविषै प्रतिदिन (सर्वदा) तिस सत्‌रूप कारणभावकूं प्राप्त होवैहैं तौ बी नाश नहीं होवैहैं। यातैं यह फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाचः-तथाऽस्तु ॥
ऐसें पिता कहतेभये [३] ॥ इति तृतीयउपदेशः समाप्तः ॥३॥

अथ चतुर्थउपदेश प्रारंभः ॥ ४ ॥

उद्दालकउवाचः-हे सोम्य! इस अग्रभागमैं स्थित बडेवृक्षके मूलविषै जो कोइक पुरुष परशु (कुठार)आदिकशस्त्रकरि हनन करै तब सो वृक्ष सूके नहीं किंतु जीवताहीं रहैहै औ शस्त्रके प्रहारकरि तिसका रस स्रवताहै औ जो मध्यविषै हनन करै तब जीवताहुवा स्रवताहै औ जो उपरि हनन करै तब जीवताहुवा स्रवताहै ॥ सो यह वृक्ष जीवात्माकरि व्याप्त औ पेपीयमान (अतिशयजलकूं पान करता औ भूमिके रसनकूं मूलनसैं ग्रहण करता)है। अरु आनंदकूं पायाहुवा स्थित होवैहै [१] ॥ जब इस वृक्षकी एकशाखाकूं जीव *त्याग* देताहै। कहिये शाखातैं उपाधिके संकोचद्वारा आपकूं संकोचताहै तब सो शाखा सूकतीहै औ जब दूसरीशाखाकूं जीव त्यागताहै तब सो शाखा सूकतीहै औ जब तीसरीशाखाकूं जीव त्यागताहै तब सो सूकतीहै औ जब सारेवृक्षकूं जीव त्यागताहै तब साराबृक्ष सूक जाताहै ॥ हे

सोम्य! ऐसैंहीं निश्चयकरि जान ॥ यह पिता कहतेभये [२]॥ जैसैं जीवकरि युक्त वृक्ष जीवताहै औ जीवसैं रहित वृक्ष मरताहै। जीव मरता नहीं। तैसैं जीवसैं वियोगकूं पाया प्रसिद्ध यह शरीर निश्चयकरि मरताहै औ जीव मरता नहीं ॥ सो जो यह अणिमा (अतिसूक्ष्म) है। इसरूप सर्व यह है। सो सत्य है। सो आत्मा है। यातैं हे श्वेतकेतो! **"तत्त्वमसि"** (सो तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाच:—यह पृथिवीआदिकनामरूपवाला जो जगत् है। सो अत्यंतसूक्ष्म सत्‌रूप औ नामरूपरहित सत्‌तैं कैसैं होवैहै? यह दृष्टांतकरि फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाच:—हे सोम्य! तथाऽस्तु ॥

ऐसैं पिता कहतेभये [३]॥ इति चतुर्थउपदेशः समाप्तः॥४॥

अथ पंचमउपदेश प्रारंभः ॥ ५ ॥

उद्दालकउवाच:—इस सन्मुख खडे बडेवटके वृक्षतैं इस वटवृक्षके फलकूं ले आव ॥

श्वेतकेतुरुवाच:—हे भगवन्! यह फल लेआया ॥

उद्दालकउवाच:—इस फलकूं भेदन कर ॥

श्वेतकेतुरुवाच:—हे भगवन्! भेदन किया ॥

उद्दालकउवाच:—इस भेदन किये फलविषै क्या देखताहै?

श्वेतकेतुरुवाच:—हे भगवन्! अतिशयसूक्ष्मकी न्यांई इन बीजनकूं देखताहूं ॥

उद्दालकउवाच:—हे अंग (प्रिय)! इन बीजनमैंसैं एक बीजकूं भेदन कर ॥

श्वेतकेतुरुवाच:—हे भगवन्! एक बीज भेदन किया॥

उद्दालकउवाच:—इस भेदन किये बीजविषै क्या देखताहै?

श्वेतकेतुरुवाच:—हे भगवन्! कछूबी नहीं देखताहूं॥

उद्दालकउवाच:—हे सोम्य! जिस इस अतिसूक्ष्मबीजकूं प्रसिद्ध नहीं देखताहैं। इस सूक्ष्मबीजका प्रसिद्धकार्यरूप यह बडावटवृक्ष स्थित है [२] ॥ हे सोम्य! श्रद्धा कर ॥ ऐसैं सो (सत्‌रूप) जो यह अत्यंतसूक्ष्म है। इस (सत्) रूप सर्व यह (जगत्) है। सो सत्य है। सो आत्मा है। यातैं हे श्वेतकेतो! **"तत्त्वमसि"** (सो तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाच:—जब सो सत् जगत्‌का मूल (कारण) है। तब काहेतैं नहीं देखियेहै? यह दृष्टांतकरि फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाच:—हे सोम्य! तथाऽस्तु ॥

ऐसैं पिता कहतेभये [३]॥ इति पंचमउपदेशः समाप्तः॥५॥

अथ षष्ठउपदेश प्रारंभः ॥ ६ ॥

उद्दालकउवाच:—इस लवणकूं घटमैं स्थित जलविषै डारिके मेरे प्रति प्रातःकालमैं आवना ॥

तब सो श्वेतकेतु तैसैंहीं करताभया ॥ तिस पुत्रकूं दूसरेदिन सबेरमैं पिता कहतेभये:—

उद्दालकउवाच:—हे अंग! जिस लवणकूं रात्रिविषै जलमैं डाऱ्याहै तिसकूं लेआव ॥

जब सो पुत्र तिस लवणकूं जलविषै विचारिके (देखिके) न जानताभया। तब पिता कहैहैं:—

उद्दालकउवाच:—हे अंग! यद्यपि सो लवण विलीन (गलित)हीं होताभया तथापि [१] इस जलके ऊपरतैं आचमन (पान) कर ॥

जब पुत्रनै ऊपरतैं जलका पान किया तब ताकूं पिता कहैहैं:-

उद्दालकउवाच:—हे वत्स! यह जल स्वादतैं कैसैं है?

श्वेतकेतुरुवाच:—हे भगवन्! यह जल स्वादतैं लवण है ॥

उद्दालकउवाच:—इस जलके मध्यतैं आचमन (आस्वादन) कर ॥

जब पुत्रनै बीचतैं जलकूं आचमन किया। तब ताकूं पिता कहैहैं:—

उद्दालकउवाच:—यह जल स्वादतैं कैसैं है?

श्वेतकेतुरुवाच:—यह जल स्वादतैं लवण है ॥

उद्दालकउवाच:—हे वत्स! इस जलके नीचेतैं आचमन कर ॥

जब पुत्रनैं नीचेतैं आचमन किया तब ताकूं पिता कहैहैं:—

उद्दालकउवाच:—इस जलकूं आचमनकरि छोडिके मेरे पास आगमन कर ॥

तब पुत्र लवणकूं छोडिके पिताके समीप आवताभया ॥

श्वेतकेतुरुवाच:—हे भगवन्! सो लवण सदा सम्यक् वर्त्तताहै ॥

ऐसैं जब पुत्रनैं कहा तब तिसकूं पिता कहैहैं:—

उद्दालकउवाच:—हे सोम्य! ऐसैं यह लवण प्रथम दर्शन औ स्पर्शनकरि ग्रहण किया था। फेर जब जलविषै विलीन भया तब दर्शनस्पर्शनकरि ग्रहण होता नहीं। तौबी विद्यमानहीं है। काहेतैं अन्यउपायकरि (जिव्हासैं) प्रतीत होनैतैं ॥ ऐसैंहीं इस तेजजलअन्नआदिकके कार्य देहविषै आचार्यके उपदेशतैं प्रसिद्ध सत् है। जो तेजजलअन्नआदिककार्यका कारण है। तिसकूं वटके सूक्ष्मबीजकी न्याई विद्यमान हुयेकूं बी इंद्रियनसैं नहीं देखताहैं औ जिव्हासैं लवणके ज्ञानकी न्याई तिस विद्यमान जगत्‌के मूल सत्‌कूं अन्यउपायसैं जानैगा [२] ॥ सो (सत्) जो यह अत्यंतसूक्ष्म है। इसरूप सर्व यह (जगत्) है। सो सत्य है। सो आत्मा है। यातैं हे श्वेतकेतो! **"तत्त्वमसि"** (सो तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाच:—जब ऐसैं सो जगत्‌का मूल सत्। लवणकी न्याई इंद्रियनकरि अप्रतीयमान है तौ बी औरउप

यकारि जाननैकूं शक्य है औ जिसके जाननैतैं मैं कृतार्थ होवों औ जिसके नहीं जाननैतैं मैं अकृतार्थ होवों तिस सत्के जाननैविषै कौन उपाय है? यह फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाचः–हे सोम्य! तथाऽस्तु ॥

ऐसैं पिता कहतेभये ॥ इति षष्ठउपदेशः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमउपदेश प्रारंभः ॥ ७ ॥

उद्दालकउवाचः–हे सोम्य! जैसैं द्रव्यहर्त्तातस्कर किसी एकपुरुषकूं नेत्र बांधिकै गंधारनाम देशनतैं आनिके। तिसकूं तहांसैं बी अतिशय जनरहित देशविषै छोड देवै। फेर सो पुरुष तहां दिशाकी भ्रांतिकरि युक्त हुआ पूर्व वा उत्तर वा पश्चिमदिशाके सन्मुख भया ॥ सो "बद्धचक्षु मैं इहां आयाहूं औ बद्धचक्षुहीं छोड्या गयाहूं।" ऐसैं पुकार करै [१]। तिसकूं कोइक दयालुपुरुष बंधन छोडिके कहै कि "इस उत्तरदिशाके प्रति गंधारदेश है। यातैं इसदिशाके प्रति गमन कर ॥" तब सो पंडित औ मेधावी कहिये दूसरेकरि उपदेश किये ग्रामप्रवेशमार्गके निश्चय करनैमैं समर्थ गंधारदेशवासीपुरुष ग्रामतैं अन्यग्रामकूं पूछताहुवा गंधारदेशनकूं प्राप्त होवैहै ॥ ऐसैंहीं इहां (दार्ष्टांतविषै) जगदात्मासत्के स्वरूपतैं तेज जल अन्नआदिमय औ वात पित्त कफ रुधिर मेद मांस अस्थि मज्जा शुक्र कृमि मूत्र विष्ठायुक्त औ शीतउष्णआदिकअनेकद्वंद्वरूप दुःखवाले इस देहरूप वनके प्रति। मोहरूप पटकरि बांधेहैं नेत्र जिसके औ भार्यापुत्रपशुबंधुआदिकदृष्टअदृष्टअनेकविषयविषै तृष्णारूप पाशकरि बांध्याहुवा औ पुण्यपापआदिककर्मरूप तस्करनकरि। जीव प्रवेशकूं पायाहै ॥ औ "मैं अमुकका पुत्र हूं। मेरे ये बांधव हैं। मैं सुखी हूं। दुःखी हूं। मूढ हूं। पंडित हूं। धार्मिक हूं। बंधमान् हूं। जन्म्याहूं। मर्याहूं। जीर्ण (क्षीण) भयाहूं। पापी हूं। पुत्र मेरा मृतक भया। धन मेरा नष्ट भया। हा हत भयाहूं। मैं कैसैं जीवूंगा। मेरी कौन गति (व्यवस्था) होवैगी। मेरा कौन रक्षक है?" ऐसै अनेक शतसहस्र अनर्थजालवान्की न्याई पुकारताहुवा। जब कैसैं बी (अकस्मात्) पुण्यके अतिशयतैं परमदयालु किसी सद्ब्रह्मआत्माके जाननैहारे मुक्तबंधनब्रह्मनिष्ठपुरुषकूं पावताहै औ तिस ब्रह्मवेत्तानैं करुणाकरि दिखायाहै संसारगतविषयनके दोषदर्शनका मार्ग जिसकूं। याहीतैं संसारके विषयनतैं विरक्त भयाहै। तिसकूं आचार्य जब कहैः–"तूं संसारी औ अमुकके पुत्रपनैआदिकधर्मवान् नहीं हैं। किंतु जो सत् है। तत्त्वमसि (सो तूं हैं)"। तब अविद्याकृतमोहरूप पटके बंधनतैं छूट्याहुवा गंधारदेशके पुरुषकी न्याई अपनैं सत्रूप आत्माकूं पायके सुखी होवैहै ॥ इसहीं अर्थकूं कहैहैं:–आचार्यवान् पुरुष जानताहै औ तिस ज्ञानीका जिसकालतोडी देहपात भया नहीं तितनैकालतोडीहीं चिर (सदात्मस्वरूपकी प्राप्तितैं अवकाश) है औ तब (देहपात समयतैं)हीं सत्कूं पावताहै [२] ॥ सो (सत्) जो यह अतिसूक्ष्म है। इसरूप सर्व यह (जगत्) है। सो सत्य है। सो आत्मा है। यातैं हे श्वेतकेतो! "तत्त्वमसि" (सो तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाचः–ननु यह देहपातसमयमैं सत्की प्राप्तिरूप तौ संसारीके मरनैंका क्रम है। विद्वान्कूं सत्की प्राप्तिका क्रम नहीं है। तिन मरणवान्कूं सत्की प्राप्ति औ विद्वान्कूं सत्की प्राप्ति। इन दोनूंका भेद कहनैकूं योग्य है ॥ यातैं आचार्यवान्पुरुषकी न्याई सो मरणवान्पुरुष जिस क्रमकरि सत्कूं पावताहै तिस क्रमकूं दृष्टांतकरि फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाचः–हे सोम्य! तथाऽस्तु ॥

ऐसैं पिता कहतेभये [३] ॥ इति सप्तमउपदेशः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमउपदेश प्रारंभः ॥ ८ ॥

उद्दालकउवाचः–हे सोम्य! ज्वरआदिकरोगकूं प्राप्त भये पुरुषकूं ज्ञाति (बांधव) घेरिके पूछतेहैं:–"मेरेकूं जानताहै। मेरेकूं जानताहै। मेरेकूं जानताहै?" ऐसैं पूछतेहैं ॥ तिस मरनैहारे पुरुषकेहीं जहांतलकि वाक् मनविषै। मन प्राणविषै। प्राण तेजविषै। तेज परदेवता (सत्)विषै प्राप्त (लय) नहीं होवैहैं। तितनै कालतोडी सो पुरुष जानताहै [१] ॥ औ जब इस मरनैहारे पुरुषके वाक् मनविषै। मन प्राणविषै। प्राण तेजविषै। तेज परदेवताविषै प्राप्त (लय) होवैहैं तब नहीं जानताहै [२] ॥ सो जो यह अतिसूक्ष्म है। इस (ब्रह्म)रूप सर्व यह (जगत्) है। सो सत्य है। सो आत्मा है। यातैं हे श्वेतकेतो! "तत्त्वमसि" (सो तूं हैं) ॥

श्वेतकेतुरुवाचः–जब मरनैहारेकूं औ मोक्ष होनैहारेकूं सत्की प्राप्ति तुल्य है। तब तिन दोनूंविषै विद्वान् सत्कूं प्राप्त हुया जन्मादिरूप आवृत्तिकूं पावता नहीं औ अविद्वान् आवृत्तिकूं पावताहै। इसविषै कौन कारण है? ताकूं दृष्टांतकरि फेरहीं मेरेकूं भगवान् आप समुजावहु ॥

उद्दालकउवाचः–हे सोम्य! तथाऽस्तु ॥

ऐसैं पिता कहतेभये [३] ॥ इति अष्टमउपदेशः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमउपदेश प्रारंभः ॥ ९ ॥

उद्दालकउवाचः–हे सोम्य! जैसैं चौर्यकर्ममैं संदेहसहित (संदेहके विषय) पुरुषकूं हस्त बांधिके राजदूत ले आवतेहैं। जब काहूनैं पूंछा तब राजदूत कहैहैं:–यह धनकूं हरता (चोरता)भयाहै ॥ इसकी परीक्षाअर्थ परशु (लोहके कुठार)कूं तप्त करो ॥ सो पुरुष जब तिस चोरीका कर्त्ता होवै ताहीतैं आपकूं अनृत (जूठा) करताहै ॥ सो जूठीप्रतिज्ञावाला अनृततैं आपकूं ढांपिके तप्त परशुकूं

ग्रहण करैहै। सो दाहकूं पावताहै ॥ पीछे राजदूतनसैं हननकूं पावताहै [१] ॥ औ जब सो पुरुष तिस चोरीका अकर्त्ता होवै ताहीतैं आपकूं सत्य करताहै ॥ सो सत्यप्रतिज्ञावाला सत्यसैं आपकूं ढांपिके तप्तपरशुकूं ग्रहण करैहै। सो दाहकूं पावता नहीं औ मिथ्याचोरीके आरोप करनेहारे पुरुषनतैं छूटताहै [२] ॥ सो सत्यप्रतिज्ञावाला पुरुष जैसैं तहां नहीं दहन होताहै। ऐसैं सत्ब्रह्मकी सत्यप्रतिज्ञावान् औ मिथ्याप्रतिज्ञावान् दोनूंकूं शरीरपातके समयमैं। सत्की प्राप्तिके तुल्य होते भी। विद्वान् सत्कूं पायके फेर व्याघ्रदेवादिकदेहके ग्रहणअर्थ जन्मादिकरूप आवृत्तिकूं पावता नहीं औ अविद्वान् तौ जैसैं कर्म कियेहै अरु तिन कर्मनका फल जैसैं शास्त्रविषै सुन्याहै। तैसैं फेर व्याघ्रादिभाव वा देवादिभावकूं पावताहै ॥ तातैं जिसके स्वरूपकी प्रतिज्ञा औ अप्रतिज्ञाके किये मोक्ष औ बंध हैं औ जो जगत्का मूल हैं औ जिसके आश्रय औ जिसविषै अंतवाली सर्वप्रजा है औ जो यह अमृत अभय शिव अद्वितीय है। इस (सत्ब्रह्म)रूप सर्व यह (जगत्) है। सो (सत्) सत्य (परमार्थसत्) है। सो (सत्) तेरा आत्मा (स्वरूप) है। यातैं हे श्वेतकेतो! "**तत्त्वमसि**" (सो तूं हैं)॥

इसरीतिसैं पितानैं कथन किये सत्ब्रह्मकूं श्वेतकेतुपुत्र "सो मैं हूं" ऐसैं जानताभया ॥ जानता भया [३] ॥ इति नवमउपदेशः समाप्तः ॥ ९ ॥

इहां यह **श्रीभाष्यकारकी उक्ति है:–**

प्रश्नः–षष्ठअध्यायमैं उक्त "तत्त्वमसि" महावाक्यरूप प्रमाणकरि इस आत्माविषै जनित फलित फेर क्या सिद्ध भया ?

उत्तरः–जो आत्मा। अश्रुतके श्रवणअर्थ औ अमतके मननअर्थ औ अविज्ञातके विज्ञानरूप फलअर्थ अधिकारकूं पायाहै। अरु जिस आत्मारूप अर्थकूं हम "त्वं"पदका वाच्य कहतेहैं। तिस आत्मारूप अर्थकूं स्वस्वरूपविषै क्रियाके कर्त्तापनेमैं औ तिसके फलके भोक्तापनेमैं जो मिथ्याहीं अधिकारीपनेका विज्ञान है। तिस विज्ञानकी निवृत्तिहीं तिस **महावाक्यरूप प्रमाणका फल है ॥**

इस उक्तप्रकारके प्रमाणके फलकूंहीं वर्णन करैहैं:–इस महावाक्यजनित ब्रह्मआत्माकी एकताके विज्ञानतैं पूर्व "मैंहीं अग्निहोत्रादिककर्मनकूं करूंगा औ मैंहीं इन कर्मनविषै अधिकारी हूं औ इन कर्मनके फलकूं इसलोक औ परलोकविषै भोगूंगा वा किये कर्मनविषै कृतकृत्य होऊंगा। ऐसैं कर्तृत्वभोक्तृत्वविषै मैं अधिकारी हूं" इसप्रकार आत्माविषै तिस अज्ञानीकूं विज्ञान होताभया ॥ सो (विपरीतज्ञान) जो एकहींअद्वितीय जगत्का मूल (विवर्त्तउपादानकारण) सत् है। "तत्त्वमसि" (सो तूं हैं) इस महावाक्यकरि प्रबोधकूं प्राप्त भया जो पुरुष है तिसकूं निवृत्त होवैहै। काहेतैं आत्माका कर्त्तापनेआदिकका ज्ञान औ ब्रह्मरूपताका ज्ञान। इन दोनूंका परस्परविरोध है। यातैं ब्रह्मज्ञानकरि कर्त्तापनेआदिकके ज्ञानकी निवृत्ति संभवैहै ॥

उक्तविरोधकूंहीं स्पष्ट करैहैं:–जातैं एकअद्वितीयआत्माकूं "यह आत्मा मैं हूं" ऐसैं जानेहुये "मेरेकूं इस साधनकरि यह कर्म कर्त्तव्य है वा इस कर्मकूंकरिके इसके फलकूं भोगूंगा" ऐसा भेदज्ञान संभवै नहीं ॥ तातैं अद्वितीयआत्माके विज्ञान हुये। विकार अनृत (मिथ्या)जीवात्माका विज्ञान निवृत्त होवैहै ॥ यह युक्त है ॥

ऐसैं "तत्त्वमसि" यह वाक्य मुख्य एकतापर है। इस अपने पक्षकूं कहिके अब परपक्षकूं शंकाकरि निवारण करैहैं:–

ननु "तत्त्वमसि" इस वाक्यमैं "त्वं" शब्दके वाच्यअर्थविषै सत्ब्रह्मकी बुद्धि उपदेश करियेहै ।। जैसैं आदित्यमनआदिकनविषै ब्रह्मआदिककी बुद्धि है औ जैसैं लोकमैं प्रतिमाआदिकनविषै विष्णुआदिककी बुद्धि है। ताकी न्याई इस महावाक्यमैं "त्वं"पदके वाच्य जीवविषै ब्रह्मकी बुद्धि उपदेश करियेहै ॥ ऐसैं पूर्वपक्षी स्वमतकूं कहिके अन्यशंकाकरि सिद्धांतकूं दूषण देवैहै:–

ननु "सत्हीं तूं हैं ॥" ऐसैं जब सत्हीं श्वेतकेतु होवै तब आत्मा (आप)कूं कैसैं न जानैगा ? जिस न जाननेरूप कारणकरि तिस श्वेतकेतुके तांई "तत्त्वमसि" (सो तूं हैं) ऐसैं पिताकरि उपदेश करियेहै ॥ श्वेतकेतुकूं सत्मात्ररूप हुये तिस सत्मात्ररूपके अज्ञानका असंभव है ।। यातैं वारंवार उपदेशकी असिद्धि है। यह अर्थ है ॥

यह पूर्वपक्षीका कथन बनै नहीं। काहेतैं "तत्त्वमसि" इस वाक्यकूं "आदित्य ब्रह्म है" इत्यादिवाक्यनतैं विलक्षण होनेतैं "आदित्य (सूर्य) ब्रह्म है" इत्यादिकवाक्यविषै। इतिशब्दके अंतरायतैं आदित्यादिकनका साक्षात्ब्रह्मपना नहीं जानियेहै। किंतु आदित्यादिकनकूं औ आकाश अरु मनकूं रूपादिगुणवाले होनेतैं ॥ औ इतिशब्दके अंतरायतैंहीं अब्रह्मपना है औ इस (षष्ठअध्यायरूप) प्रकरणविषै तौ सत्काहीं देहविषै जीवरूपकरि प्रवेश दिखायके "तत्त्वमसि" (सो सत् तूं हैं) ऐसैं निरंकुश सदात्मभाव पिता उपदेश करैहैं। यातैं सो तिनतैं विलक्षण है ॥

ननु "पराक्रमादिगुणवाला सिंह तूं हैं" इस वाक्यकी न्याई "तत्त्वमसि" यह वाक्य गौणएकताका बोधक होवैगा ॥

यह कथन बनै नहीं ॥ काहेतैं घटादिकार्यसैं अभिव्यक्तिकादिककारणकी न्याई "एकहीं अद्वितीयसत् सो तूं हैं" ऐसैं उपदेशके देखनैतैं ॥ औ "तिस ज्ञानीका तितनैंकालतोंहीं चिर (अवकाश) है" ऐसैं सत्की प्राप्तिरूप

विदेहमोक्ष। उपचार (आरोपितएकता)के विज्ञानतैं नहीं उपदेश करियेहै। काहेतैं "तूं इंद्र हैं। यम हैं" याकी न्याई उपचारके विज्ञानकूं मिथ्या होनैतैं ॥ औ

"सो सत् तूं हैं" यह श्वेतकेतुकी **स्तुति वी नहीं है॥** काहेतैं श्वेतकेतुकूं उपास्य (उपासना करनैकूं योग्य) होनैके अभावतैं ॥ औ

सत्वस्तु वी श्वेतकेतुपनैके उपदेशकरि स्तुतिका विषय करियेहै **ऐसैं वी नहीं है** ॥ काहेतैं जातैं "दास तूं हैं" ऐसैं राजा स्तुतिका विषय होवै नहीं ॥ औ सर्वात्मा जो सत् है ताकूं श्वेतकेतुपनैके उपदेशकरि एकदेशका निरोध (परिच्छिन्नभाव) वी युक्त नहीं है ॥ औ "तत्त्वमसि" (सो [सत्] तूं हैं) ऐसैं देशके अधिपतिकूं ग्रामका अधिपति होनैकी न्याई सत्की आत्मरूपताके उपदेशतैं अन्यअर्थरूप अन्यगति इहां संभवै नहीं ॥

ननु "मैं सत् हूं" ऐसी बुद्धिमात्र इस महावाक्यविषै कर्त्तव्यपनैकरि विधान करियेहै। अरु "अज्ञातसत् मैं हूं" ऐसैं बोधन नहीं करियेहै ॥ ऐसैं जो पूर्ववादी कहै। तौ

सो बनै नहीं ॥ काहेतैं तिस पक्षविषै वी "अश्रुत श्रुत होवैहै" इत्यादिकथनका असंभव होवैगा ॥

जो कहै "सत् मैं हूं" इस बुद्धिके विधि (विधान)कूं स्तुतिअर्थ होनैतैं उक्त असंभव नहीं है ॥

यह कथन बनै नहीं ॥ काहेतैं (१) आचार्यवान् पुरुष जानताहै" (२) "तिसका तहांपर्यंतहीं चिर है" ऐसैं उपदेशतैं ॥ जब

(१) "सत् मैं हूं" यह बुद्धिमात्र कर्त्तव्यपनैकरि विधान करियेहै औ "त्वं" शब्दके वाच्यकी सत्रूपताहीं नहीं होवै। तब "आचार्यवान् पुरुष जानताहै" ऐसैं ज्ञानके उपायका उपदेश कहनैकूं योग्य नहीं होवैगा ॥ जैसैं "अग्निहोत्रकूं यजै" इत्यादिवाक्यनविषै अर्थतैं प्राप्तहीं आचार्यवान्ता है तौ वी नहीं उपदेश करियेहै। ताकी न्याई इहां नहीं है ॥ किंतु आचार्यवान्ताका उपदेश करियेहीहै ॥ यातैं "अग्निहोत्रकूं यजै" इस विधिवाक्यतैं "तत्त्वमसि" इस वाक्यकी विलक्षणता है ॥ औ

(२) *यह कहियेगा जो हेतु तातैं वी यह महावाक्य* "मैं सत् हूं" इस बुद्धि करनैके विधिपर माननैकूं योग्य नहीं है। यह कहैहैं:—जो इस महावाक्यकरि "मैं सत् हूं" इस बुद्धिमात्रका विधान किया होवै तब "तिसका तवलगहीं चिर है" ऐसैं मोक्षके विलंबका कथन अयुक्त होवैगा ॥ काहेतैं सत्रूप आत्मतत्त्वके अज्ञात हुये वी एकवार परोक्ष "मैं सत् हूं" इस बुद्धिमात्रके करनैविषै मोक्षके प्रसंगतैं ॥ औ "तत्त्वमसि" (सो तूं हैं) ऐसैं अधिकारीके प्रति कहनैकरि "मैं सत् हूं" ऐसी महावाक्यरूप प्रमाणसैं उत्पन्न भई बुद्धि निवृत्त करनैकूं शक्य नहीं है ॥

वा अधिकारीकूं महावाक्यके श्रवणकरि "सत्ब्रह्म मैं हूं" यह बुद्धि नहीं उत्पन्न भई। ऐसैं कहनैकूं शक्य नहीं है ॥ काहेतैं "अधिकारीकूं प्रमाज्ञानका जनक वेद है" इस न्यायतैं ॥ औ सर्वउपनिषदनके वाक्यनकूं तिस (ब्रह्मआत्माकी एकता)पर होनैकरिहीं कृतार्थ होनैतैं "तत्त्वमसि" यह वाक्य वस्तुपरहीं है ॥ यातैं जैसैं अग्निहोत्रादिककी विधिसैं उत्पन्न अग्निहोत्रादिकके कर्त्तव्यपनैकी बुद्धिनकूं तिस अर्थका अभाव वा अनुत्पन्नपना कहनैकूं शक्य नहीं है। ताकी न्याई "तत्त्वमसि" इस प्रमाणतैं जनित "सत्ब्रह्म मैं हूं" यह बुद्धि निवृत्त होनैकूं वा अनुत्पन्न है। ऐसैं कहनैकूं शक्य नहीं है ॥ औ

सत्रूप आत्मा सत्रूप आपकूं कैसैं नहीं जानैगा? ऐसैं जो पूर्व कहाथा **यह दोष वी नहीं है** ॥ काहेतैं "कार्यकारणरूप देहादिसंघाततैं भिन्न मैं जीव कर्त्ताभोक्ता हूं" ऐसैं स्वभावतैं चार्वाकतैं भिन्न वादीरूप प्राणिनकूं वी विज्ञानका अदर्शन है ॥ यातैं इस श्वेतकेतुकूं सत्रूप आत्माका विज्ञान नहीं है। यामैं कौन भेद है? ऐसैं संघाततैं भिन्न आत्माके विज्ञान हुये तिन देहतैं भिन्न आत्मवादिनकूं आत्माविषै कर्त्तापनैआदिकका विज्ञान कैसैं संभवै? किंतु संघातअभिमानके निवृत्त भये नहीं संभवैहै औ देखियेहै। ताकी न्याई तिस श्वेतकेतुकूं वी अज्ञानदोषकरि देहादिकविषै आत्मबुद्धिके होनैतैं सत्रूप आत्माका विज्ञान नहीं है ॥ तातैं विकार अनृतविषै अधिकारी जीवात्मभावके विज्ञानका निवर्त्तकहीं यह "तत्त्वमसि" वाक्य है ॥ ऐसैं सिद्ध भया ॥ इति ॥

इहां सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्का षष्ठपाठक (अध्याय) समाप्त भया ॥ इस अध्यायके बीचके सृष्टिप्रतिपादकचतुर्थभागकूं छोडिके तीनभागकी व्याख्या इस प्रसंगमैं लिखीहै ॥ इसरीतिसैं ये अभ्यासरूप नवउपदेश कहेहैं ॥ इनका श्रीमत्शंकराचार्यकृतभाष्य औ श्रीआनंदज्ञानकृतटीकाविषै अधिकअर्थ है। सो संपूर्ण अर्थ विस्तार औ कठिनताके भयसैं हमनैं लिख्या नहीं (अबी क्रियमाण छांदोग्यके व्याख्यानमैं लिख्याहै)। किंतु कछुकभाष्यटीका औ तिनके अनुसार स्वउक्तिसहित संपूर्णमूलश्रुतिका अर्थ। मुमुक्षुकूं अतिउपयोगी जानिके प्रसंगसैं लिख्याहै ॥

यद्यपि या ग्रंथकी रीतिसैं " " ऐसै अवतरणचिन्ह औ ( ) ऐसै द्विकपालचिन्हआदिकरि मूलश्रुतितैं भाष्यटीकाआदिकके पर्याय औ अधिकशंकासमाधानरूप अर्थका विभाग कियाचाहिये। तथापि इस अति अज्ञात औ विस्तीर्णप्रसंगविषै सो रीति कठिन होवैगी यह जानिके हमनैं कछुकभाष्यटीका औ स्वउक्ति औ संपूर्णमूलश्रुतिका मिश्रभावकरिहीं व्याख्यान कियाहै। सो भाषाके जाननैवाले अधिकारिनकूं बुद्धिकी सुकरता वास्ते होवैगा ॥ इति ॥

महावाक्य-विवेकः ॥५॥ श्लोकांकः २९२	८२ श्रोतुर्देहेंद्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम् । एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम् ॥ ६ ॥	टीकांकः ११७९ टिप्पणांकः ५१७

७९] सृष्टेः पुरा एकं एव अद्वितीयं नामरूपविवर्जितम् सत् । अस्य अधुना अपि तादृक्त्वं "तत्" इति ईर्यते ॥

८०) "सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्" इति वाक्येन सृष्टेः पुरा स्वगतादिभेदशून्यं नामरूपरहितं यत् सत् वस्तु प्रतिपादितमस्ति । अस्य सद्वस्तुनः अधुनाऽपि सृष्ट्युत्तरकालेऽपि । तादृक्त्वं विचारदृष्ट्या तथात्वं । "तत्" इति पदेन ईर्यते लक्ष्यते इत्यर्थः ॥ ५ ॥

८१ "त्वं"-पदलक्ष्यार्थमाह—

८२] श्रोतुः देहेंद्रियातीतं वस्तु अत्र त्वंपदेरितम् ॥

८३) श्रोतुः श्रवणाद्यनुष्ठानेन महावाक्यार्थप्रतिपत्तुः । देहेंद्रियातीतं देहेंद्रियोपलक्षितस्थूलादिशरीरत्रयसाक्षितया तद्विलक्षणं । वस्तु सद्वस्त्वेव । त्वंपदेरितम् वाक्यगतेन "त्वम्" इतिपदेन लक्षितमित्यर्थः ॥

अर्थके प्रकाश करनैवास्ते "तत्" कहिये सो पदके लक्ष्यअर्थकूं कहैहैं:—

७९] सृष्टितैं पूर्व एकहीं अद्वितीय नामरूपरहित जो सत् था । इस सत्का अब सृष्टिके पीछे बी तैसैपना "तत्" कहिये सो । ऐसैं कहियेहै ॥

८०) "हे सोम्य । यह जगत् आगे एकहीं अद्वितीयरूप सत्हीं था" इस श्रुतिवाक्यकरि सृष्टितैं पूर्व स्वगतादिभेदशून्य औ नामरूपरहित जो सत्वस्तु प्रतिपादन कियाहै । इस सद्वस्तुका अब सृष्टितैं उत्तरकालविषै बी विचारदृष्टिसैं जो तैसैपना कहिये स्वगतादिभेदरहित नामरूपवर्जित सत्पना है । सो "तत्" इस पदकरि लक्षणासैं जानियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ "त्वं"पदका अर्थ औ "असि"पदके अर्थकरि एकतारूप वाक्यार्थ ॥ ११८१—११८८ ॥

८१ "त्वं"पदके लक्ष्यअर्थकूं कहैहैं:—

८२] श्रोताके देहइंद्रियतैं अतीत जो वस्तु कहिये सत्रूप आत्मा है । सो इहां "त्वं"पदकरि कहियेहै ॥

८३) श्रवणादिकके अनुष्ठानसैं महावाक्यके अर्थकी प्रतिपत्ति कहिये निश्चय ताका करनैहारा जो श्रोता है । तिसके देहइंद्रियतैं अतीत कहिये देह औ इंद्रियतैं उपलक्षित स्थूल सूक्ष्म अरु कारणरूप तीनशरीर हैं । तिनका साक्षी होनैकरि तिनतैं विलक्षण जो सद्वस्तु है सो महावाक्यगत "त्वं" इस पदकरि लक्षणासैं जनायाहै ॥ यह अर्थ है ॥

---

१७ लक्षणावृत्तिका विषय लक्ष्य है । ताके अर्थकूं ॥

१८ यद्यपि जीवसाक्षी तौ उपाधिके भेदसैं आरोपदशाविषै आभासवादआदिककी रीतिसैं नाना कहियेहैं । यातैं प्रत्येक संघातमैं "त्वं"पदका अर्थ कहनैकूं शक्य है । तथापि अधिकारीकूंहीं महावाक्यके अर्थके ज्ञानविषै उपयोगी पदार्थका ज्ञान अपेक्षित है अन्यकूं नहीं । यातैं इहां श्रोताकेहीं संघाततैं अतीत नाम न्यारा साक्षी "त्वं" पदका अर्थ लखायाहै । ऐसैं पूर्व तीसरेश्लोकउक्त यजुर्वेदके "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यगत "अहं"पदके अर्थविषै बी जानि लेना ॥

टीकांक: ११८४ टिप्पणांक: ५१९	स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् । अहंकारादिदेहांतात्प्रत्यगात्मेति गीयते ॥ ७ ॥	महावाक्य-विवेक: ॥५॥ श्लोकांक: २९३

८४ एतद्वाक्यस्थेन "असि" इतिपदेन "तत्त्वं"—पदसामानाधिकरण्यलब्धं पदार्थद्वयैक्यं शिष्यं प्रति प्रत्याय्यत इत्याह (एकतेति)—

८५] "असि" इति एकता ग्राह्यते ॥

८६ सिद्धमर्थमाह—

८७] तदैक्यम् अनुभूयताम् ॥

८८) तयोः तत्त्वंपदार्थयोः ऐक्यं प्रमाणसिद्धमेकत्वम् अनुभूयतां मुमुक्षुभिरित्यर्थः ॥ ६ ॥

८९ क्रमप्राप्तस्याथर्वणवेदगतस्य "अयमात्मा ब्रह्म" इति वाक्यस्यार्थं व्याचिकीर्षुरादौ "अयमात्मा" इतिपदद्वयेन विवक्षितमर्थं क्रमेण दर्शयति (स्वप्रकाशेति)—

८४ इस वाक्यमैं स्थित "असि" कहिये "है"। इस पदकरि "तत्" औ "त्वं" इन दोपदनके सामानाधिकरण्यसैं प्राप्त। कहिये सिद्ध जो दोनूंपदनके ब्रह्म औ आत्मारूप अर्थनकी एकता है सो शिष्यके तांई प्रतीति कराइयेहै। ऐसैं कहैहैं:—

८५] "असि" इस पदकरि एकता ग्रहण कराइयेहै ॥

८६ इस निरूपणकरि सिद्ध भया जो वाक्यार्थ ताकूं कहैहैं:—

८७] यातैं तिनकी एकता अनुभव करना ॥

८८) यातैं तिन "तत्" औ "त्वं" पदके ब्रह्मआत्मारूप अर्थनकी प्रमाणसिद्धएकता मुमुक्षुजनोंकरि अनुभवकी विषय करनी चाहिये ॥ यह अर्थ है ॥ ६ ॥

॥४॥ अथर्वणवेदकी मांडूक्यउपनिषद्गत "अयमात्मा ब्रह्म" इस महावाक्यका अर्थ ॥११८९—१२००॥

॥ १ ॥ "अयं" औ "आत्मा" पदका अर्थ ॥ ११८९—११९४ ॥

८९ अब क्रमतैं प्राप्त अथर्वणवेदकी मांडूक्यउपनिषद्गत "अयमात्मा ब्रह्म" कहिये "यह आत्मा ब्रह्म है" इस महावाक्यके अर्थकूं व्याख्या करनैंकूं इच्छतेहुये आचार्य। आदिविषै "अयं" कहिये "यह" औ "आत्मा" कहिये "आप"। इन दोपदनकरि विवक्षितअर्थकूं क्रमकरि दिखावैहैं:—

१९ इस महावाक्यविषै जो "असि" पद है सो "तत्" पद औ "त्वं" पदके सामानाधिकरण्य कहिये एकअर्थविषै तात्पर्यकरि सिद्ध जो जीवब्रह्मकी एकता है। तिसका अनुवादमात्र करैहै। अन्यअर्थकूं बोधन नहीं करैहै ॥ औ संस्कृतविद्याके ज्ञानसैं रहित जे केइक आधुनिकप्राकृतग्रंथनके कर्त्ता औ तिनके अनुसारी जन हैं। वे "असि"पदकूं ब्रह्म कहैहैं सो सर्वथाविरुद्ध है ॥ काहेतैं व्याकरणरीतिसैं "असि"पदका वाच्यअर्थ "है" वा "हो" इतनांहीं है ॥ औ लक्षणाकी प्रवृत्ति तौ "तत्"पद औ "त्वं"पदके अर्थविषैहीं है। "असि"पदविषै नहीं ॥ यातैं "असि"पदका लक्ष्यअर्थ बी ब्रह्म बनै नहीं। तब "असि"पद (शब्द) कहांसै ब्रह्म होवैगा? सर्वथा होवै नहीं ॥ ऐसैं "अस्मि"पदविषै बी जानिलेना।

२० यह अथर्वणवेदकी मांडूक्यउपनिषद्गत महावाक्य है॥ जातैं "सर्वं यह (उक्त ॐकारमात्र जगत्) ब्रह्म है" यातैं "अयं आत्मा ब्रह्म" (यह आत्मा ब्रह्म है)। "सो यह आत्मा च्यारीपादवाला है" [२] ॥ इहां जाननैंकी सुगमता अर्थ धान्यके परिमाणमैं उपयोगी कार्षापणप्रस्थादिककी न्याई पादकी कल्पना है। गौकी न्याई नहीं। इति ॥

महावाक्यविवेकः ॥५॥ श्लोकांकः २९४ | टीकांकः ११९० | टिप्पणांकः ५२१

²⁹⁶दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ।
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीपंचदश्यां महावाक्यविवेकः ॥ ५ ॥

९०] "अयम्" इति उक्तितः स्वप्रकाशापरोक्षत्वं मतम् ॥

९१) अयमित्युक्तितः । "अयम्" इतिशब्देन स्वप्रकाशापरोक्षत्वं स्वयंप्रकाशेनापरोक्षत्वं मतम् अभिमतं । अदृष्टादिवन्नित्यपरोक्षत्वं घटादिवत् दृश्यत्वं च व्यावर्त्तयितुं विशेषणद्वयमिति बोद्धव्यम् ॥

९२ देहादिष्वप्यात्मशब्दप्रयोगदर्शनात् अत्रात्मशब्देन किं विवक्षितमित्याकांक्षायामाह—

९३] अहंकारादिदेहांतात् प्रत्यक् आत्मा इति गीयते ॥

९४) अहंकारः आदिर्यस्य प्राणमनइंद्रियदेहसंघातस्य सः अहंकारादिः । तथा देहः अंतो यस्य उक्तसंघातस्य सः देहांतः अहंकारादिश्चासौ देहांतश्चेति तथा तस्मात् । प्रत्यक् अधिष्ठानतया साक्षितया चांतर "आत्मा" इति गीयते अस्मिन् वाक्ये इत्यर्थः ॥ ७ ॥

९५ ब्राह्मणादिष्वपि ब्रह्मशब्दस्य प्रयोगदर्शनात् तद्व्यावर्तनाय अत्र विवक्षितमर्थमाह—

९६] दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतः तत्त्वं ब्रह्मशब्देन ईर्यते ॥

९०] "अयं" इस उक्तिकरि आत्माका स्वप्रकाशपनैकरि युक्त अपरोक्षपना मान्याहै ॥

९१) "अयं" इस उक्तिकरि कहिये शब्दकरि साक्षीका स्वप्रकाशताकरि युक्त अपरोक्षपना मान्याहै ॥ अदृष्ट जे धर्मअधर्मआदिक । तिनकी न्याई नित्यपरोक्षपना औ घटादिकनकी न्याई दृश्यपना इन दोनूंअनात्मधर्मनकूं आत्मातैं निवारण करनैकूं मूलविषै "स्वप्रकाश" औ "अपरोक्षपना" ये दोविशेषण हैं । ऐसैं जानना ॥

९२ देहआदिकविषै बी आत्मशब्दके योजनारूप प्रयोगके देखनैतैं इस महावाक्यविषै आत्मशब्दकरि क्या कहनैकूं इच्छित है? इस पूछनैकी इच्छाके हुये कहैहैं:—

९३] अहंकारसैं आदिलेके देहपर्यंत जो संघात है । तिसतैं जो आंतर है । सो "आत्मा" ऐसैं कहियेहै ॥

९४) अहंकार है आदि जिस प्राणमनइंद्रियदेहरूप संघातके । सो संघात अहंकारादि है ॥ तैसैं देह है अंत जिस कथन किये संघातके । सो संघात देहांत नाम देहपर्यंत कहियेहै ॥ तिस अहंकारसैं आदिलेके देहपर्यंत संघाततैं जो प्रत्यक् है कहिये तिस संघातका अधिष्ठान होनैकरि औ साक्षी होनैकरि आंतर जो चेतन है । सो इस महावाक्यविषै "आत्मा" ऐसैं कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ "ब्रह्म"पदका अर्थ औ एकतारूप वाक्यार्थ ॥ ११९५—१२०० ॥

९५ ब्राह्मणआदिकविषै बी ब्रह्मशब्दकी योजनाके देखनैतैं तिन ब्राह्मणादिकनतैं भेद जनावनै वास्ते इस महावाक्यविषै "ब्रह्म" शब्दके विवक्षितअर्थकूं कहैहैं:—

९६] दृश्यमान सर्वजगत्का जो तत्त्व है । सो "ब्रह्म"शब्दकरि कहियेहै ॥

२१ परप्रकाश्यताकरि युक्त अपरोक्षपना ॥

९७) दृश्यत्वेन मिथ्याभूतस्य सर्वस्याकाशादेः जगतस्तत्त्वं अधिष्ठानतया तद्बाधावधित्वेन च पारमार्थिकं सच्चिदानंदलक्षणं यद्रूपमस्ति । तद्ब्रह्मशब्देनेर्यते कथ्यत इत्यर्थः॥

९८ वाक्यार्थमाह—

९९] **तत् ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम्॥**

१२००) यदुक्तलक्षणं ब्रह्म तत् स्वप्रकाशात्मरूपं स्वरूपं यस्य तत् स्वप्रकाशात्मरूपकं । स एवेत्यर्थः ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्भारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिता महावाक्यविवेकव्याख्या समाप्ता ॥ ५ ॥

---

९७) दृश्य होनैकरि मिथ्यारूप जो सर्व-आकाशादिकजगत् है । तिसका तत्त्व कहिये अधिष्ठान होनैकरि औ तिस उक्तजगत्के बाधका अवधि होनैकरि पारमार्थिक कहिये वास्तविक। ऐसा सच्चिदानंदलक्षणयुक्त जो स्वरूप है । सो इस महावाक्यविषै "ब्रह्म"शब्दकरि कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥

९८ पदसमुदायरूप वाक्यके अर्थकूं कहैहैं:—

९९] **सो ब्रह्म स्वप्रकाशआत्मस्वरूप है ॥**

१२००) जो उक्तलक्षणवाला ब्रह्म है सोई स्वप्रकाशआत्मा है रूप कहिये स्वरूप जिसका । ऐसा स्वप्रकाशात्मस्वरूप है ॥ अर्थ यह जो सोई है कहिये आत्माहीं है ॥ यह ब्रह्मआत्माकी एकतारूप वाक्यका अर्थ है ॥ [२२] ईसैरीतिसैं कह्या जो च्यारिमहावाक्यनका ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अर्थ । ताकूं जिस जिस प्रकियाविषै रुचि होवै तिस तिस प्रक्रियाकी रीतिसैं विवेकवैराग्यआदिकच्यारी-साधनसंयुक्त हुये मुमुक्षुजनोंनैं वेदांतशास्त्र औ ब्रह्मनिष्ठगुरुके मुखद्वारा । वाच्यअर्थ औ लक्ष्य-अर्थके विचारकरि पदार्थशोधनपूर्वक यथार्थ जानिके श्रवणमननादिद्वारा संशयविपर्ययकूं निवारण करी । दृढअपरोक्षनिष्ठासैं अज्ञान औ ताके कार्यरूप अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप जीवन्मुक्ति औ विदेहमुक्तिका अनुभव करना योग्य है ॥ इति ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या महावाक्यविवेकस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ५ ॥

---

२२ वाक्यार्थके ज्ञानमैं पदार्थका ज्ञान उपयोगी है औ पदार्थके ज्ञानमैं शब्दकी वृत्ति (शक्ति औ लक्षणा)का ज्ञान उपयोगी है ॥ पदका जो अर्थसैं संबंध सो **वृत्ति** कहियेहै ॥ सो **वृत्ति दोप्रकारकी है:**— एक शक्तिवृत्ति है । दूसरी लक्षणावृत्ति है ॥

पदमैं जो अर्थके ज्ञान करनैकी सामर्थ्य सो **पदकी शक्ति** है ॥ जैसैं घटपदके श्रोताकूं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनैकी जो घटपदविषै सामर्थ्य है सोई घटपदमैं शक्ति है । ऐसैं सर्वपदनमैं जानि लेनी ॥

पदकी शक्तिवृत्तिसैं जिस अर्थका ज्ञान होवैहै सो अर्थ **शक्यअर्थ** कहियेहै । ताहीकूं **वाच्यअर्थ** बी कहैहैं ॥

शक्य नाम वाच्यअर्थ ताका जो संबंध सो **लक्षणावृत्ति** कहियेहै ॥ सो **लक्षणावृत्ति तीनप्रकारकी है:**— (१) एक जहत्लक्षणा है (२) दूसरी अजहत्लक्षणा है (३) तीसरी भागत्यागलक्षणा है ॥

(१) जहां संपूर्णवाच्यअर्थका त्यागकरिके वाच्यअर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै । तहां **जहत्लक्षणा** कहियेहै ॥ जैसैं "गंगामैं ग्राम है" वा स्थानमैं गंगापदकी तीरमैं जहत्लक्षणा है ॥ काहेतैं गंगाशब्दका वाच्यअर्थ जो देवनदीका प्रवाह है । ताकेविषै ग्रामकी स्थितिका असंभव है । यातैं सारे-वाच्यअर्थकूं त्यागिके तीरविषै गंगापदकी जहत्लक्षणा है औ

(२) जहां वाच्यअर्थसहित वाच्यके संबंधीकी प्रतीति

होवै। तहां **अजहत्लक्षणा** कहियेहै ॥ जैसें "शोण (लालरंग) धावत करैहै ॥" तहां शोणपदकी लालरंगवाले अश्वविषै अजहत्लक्षणा है ॥ काहेतें केवललालरंगमें धावनका असंभव है। यातें शोणपदका वाच्य जो लालरंग तासहित अश्वमें शोणपदकी अजहत्लक्षणा है औ

(२) जहां वाच्यअर्थके मध्य एक विरोधिभागका त्याग होवै औ एक अविरोधिभागका ग्रहण होवै तहां **भागत्यागलक्षणा** कहियेहै ॥

जैसें पूर्व देखे वस्तुकूं अन्यदेशमें देखीके किसीनें कह्या "सो यह है" ॥ तहां भागत्यागलक्षणा है ॥ काहेतें भूतकाल औ अन्यदेशमें स्थित वस्तुकूं "सो" कहैहै। यातें भूतकाल औ अन्यदेशसहित वस्तु "सो" पदका वाच्यअर्थ है औ वर्त्तमानकाल समीपदेशमें स्थित वस्तुकूं "यह" कहैहै ॥ यातें वर्त्तमानकाल औ समीपदेशसहित वस्तु "यह" पदका वाच्यअर्थ है औ भूतकाल अन्यदेशसहित जो वस्तु। सोई वर्त्तमानकाल औ समीपदेशसहित है। यह सारे वाक्यरूप समुदायका वाच्यअर्थ है। सो संभवै नहीं ॥ काहेतें भूतकाल औ वर्त्तमानकालका विरोध है। तैसें अन्यदेशका औ समीपदेशका विरोध है। यातें दोनूंपदनमें देशकाल जो वाच्यभाग। ताकूं त्यागिके वस्तुमात्रमें दोनूंपदनकी **भागत्यागलक्षणा** है ॥

शब्दकी लक्षणावृत्तिसें जिस अर्थका ज्ञान होवै। सो अर्थ **लक्ष्यअर्थ** कहियेहै ॥ जैसें पलाश कहिये किंशुक(खाखरा)वृक्षकी एकहीं लघुशाखाविषै तीनपर्ण होवैहैं। तैसें एकहीं वेदांतसिद्धांतमें उत्तममध्यमकनिष्ठअधिकारिनके बोधनअर्थ **तीनपक्ष** हैं:- (१) अजातवाद (२) दृष्टिसृष्टिवाद (३) व्यावहारिकपक्ष कहिये सृष्टिदृष्टिवाद है ॥

(१) जहां एकहीं परमार्थसत्ता जो चेतन ताका अंगीकार है। सो **मुख्य** (विद्वानोंकी दृष्टिका विषय) **अजातवाद** कहियेहै ॥

(२) जहां परमार्थसत्ता औ प्रातिभासिकसत्ता दोनूंका अंगीकार है। सो **दृष्टिसृष्टिवाद** कहियेहै ॥

(३) जहां परमार्थ। प्रातिभासिक औ व्यावहारिक इन तीनसत्ताका अंगीकार है। सो **व्यावहारिकपक्ष** वा **सृष्टिदृष्टिवाद** कहियेहै ॥ तिनमें

(१) मुख्य अजातवादविषै तौ आरोप औ अपवादके अभावतें वाच्यार्थलक्ष्यार्थकी कल्पना बनै नहीं ॥

(२) दृष्टिसृष्टिवादविषै स्वप्नकल्पितराजाकी न्याईं जीवकल्पित जो ईश्वर है सो "तत्"पदका वाच्यार्थ है औ अविद्याआवृत अज्ञातब्रह्मरूप जो जीव है सो "त्वं"पदका वाच्यर्थ है ॥ दोनूंपदनका शुद्धब्रह्म लक्ष्यार्थ है ॥

(३) व्यावहारिकपक्षके अंतर्गत पांचपक्ष हैं ॥ [१] बिंबप्रतिबिंबवाद। [२] कार्यकारणउपाधिवाद। [३] अवच्छिन्नअनवच्छिन्नवाद। [४] अवच्छेदवाद। [५] आभासवाद। ये पांचपक्ष हैं ॥ तिनमें

[१] **बिंबप्रतिबिंबवाद**की रीतिसें अज्ञानउपहितशुद्धब्रह्मरूप बिंब ईश्वर है ॥ सो "तत्"पदका वाच्यअर्थ है औ समष्टिअज्ञानके संबंधकरि भ्रांतिसें प्रतिबिंबभावकूं प्राप्त भया ब्रह्मरूप जो एकहीं जीव। सो "त्वं"पदका वाच्यअर्थ है ॥ औ बिंबप्रतिबिंबभावकी कल्पनासें रहित असंग जो शुद्धचैतन्य सो दोनूंपदनका लक्ष्यअर्थ है ॥

[२] **कार्यकारणउपाधिवाद**की रीतिमें मायारूप कारण उपाधिवाला चेतन। ईश्वर ("तत्" पदका वाच्य) है औ अंतःकरणरूप कार्यउपाधिवाला चेतन। जीव ("त्वं" पदका वाच्य) है ॥ दोनूंउपाधिरहित शुद्धब्रह्म दोनूंपदनका लक्ष्यअर्थ है ॥

[३] **अवच्छिन्नअनवच्छिन्नवाद**की रीतिसें अंतःकरणअनवच्छिन्नचेतन। ईश्वर ("तत्" पदका वाच्य) है औ अंतःकरणअवच्छिन्नचेतन। जीव ("त्वं" पदका वाच्य) है औ अवच्छिन्नपनै औ अनवच्छिन्नपनैरूप उपाधिरहित शुद्धब्रह्म दोनूंपदनका लक्ष्यअर्थ है ॥

[४] **अवच्छेदवाद**की रीतिसें मायाकरि अवच्छिन्न (विशिष्ट)चेतनरूप ईश्वर "तत्"पदका वाच्यअर्थ है औ मायाअनवच्छिन्नब्रह्मचेतन "तत्"पदका लक्ष्यअर्थ है। औ अंतःकरण वा व्यष्टिअज्ञानकरि अवच्छिन्न (विशिष्ट) चेतनरूप जीव। "त्वं" पदका वाच्यअर्थ है औ अंतःकरण वा व्यष्टिअज्ञानअनवच्छिन्नकूटस्थचेतन। "त्वं"पदका लक्ष्यअर्थ है ॥ तिन दोनूंलक्ष्यअर्थनकी कहिये ब्रह्म औ कूटस्थकी अखंडएकरसता है औ

[५] इस ग्रंथउक्त **आभासवाद**की रीतिसें साभास कहिये चिदाभाससहित मायाविशिष्टचेतनरूप ईश्वर। "तत्" पदका वाच्यअर्थ है औ साभासमायाभागका त्यागकरिके अवशेषशुद्धब्रह्म लक्ष्यार्थ है ॥ औ साभासअंतःकरण वा व्यष्टिअज्ञानअंशविशिष्टचेतनरूप जीव। "त्वं" पदका वाच्यअर्थ है औ साभासअंतःकरण वा व्यष्टिअज्ञानअंशरूप उपाधि (विशेषण)भागका त्यागकरिके अवशेषचेतन कहिये कूटस्थ। लक्ष्यअर्थ है। तिन दोनूंलक्ष्यअर्थकी कहिये कूटस्थ औ ब्रह्मकी अखंडएकरसता है ॥

उक्तसर्वप्रक्रियाका जीवभाव। ईश्वरभाव औ जगत्का आरोपकरिके तिनके अपवादद्वारा अद्वैतब्रह्मके बोधनमें तात्पर्य है ॥ यातें जिस मुमुक्षुकूं जिस प्रक्रियाकी रीतिसें अद्वैतब्रह्मका ज्ञान होवै। तिसकूं सोई प्रक्रिया समीचीन है ॥

ऐसें "तत्वमसि" महावाक्यविषै दिखाई जो वाच्यलक्ष्यकी रीति। सो और तीनमहावाक्यनविषै बी जानिलेनी ॥ यद्यपि इस महावाक्यविवेकप्रकरणविषै सर्वमहावाक्यगत दोनूं-दोनूंपदनके लक्ष्यअर्थ कहिके तिनकी एकता परस्पर जनाई है सोई मुमुक्षुकूं उपादेय है। तथापि वाच्यअर्थके ज्ञानविना

वाच्यअर्थमैं प्रविष्ट लक्ष्यअर्थका स्पष्टज्ञान होवै नहीं ॥ यातैं इस प्रकरणके आगेपीछेअनेकस्थलमैं वाच्यलक्ष्य दोनूंका कथन कियाहै ॥ तिसकूं न जानिके मुमुक्षुकूं ब्रह्मात्माकी एकताका निश्चयरूप तत्त्वज्ञान होवै नहीं ॥ इहां शंकासमाधानरूप विवाद बहुत है । सो शुद्धबुद्धिवाले जिज्ञासुकूं उपयोगके अभावतैं औ ग्रंथविस्तारके भयतैं लिख्या नहीं । किंतु दिशामात्र दिखाईहै ॥

यद्यपि उक्तच्यारीमहावाक्यनविषै क्रमकरि विद्यमान जे "प्रज्ञानं" "अहं" "त्वं" औ "अयं" विशेषणवाला आत्मा ये च्यारीपद हैं । तिनका वाच्यअर्थ सर्वमतकी रीतिसैं **जीव** है ॥ ऐसे "ब्रह्म" "ब्रह्म" "तत्" "ब्रह्म" इन च्यारीपदनका वाच्यअर्थ **ईश्वर** है ॥ इन जीव औ ईश्वर दोनूंकूं अल्पज्ञतादि औ सर्वज्ञतादिरूप विरुद्धधर्मवाले होनैतैं इन दोनूंकी एकताका । घटाकाश कहिये घटविशिष्टआकाश औ मठाकाश कहिये मठविशिष्टआकाशके एकताकी न्याईं असंभव है । तथापि घटमठकी दृष्टिकूं त्यागिके तिन दोनूंमैं स्थित जो आकाशमात्र है तिसकी एकताके संभवकी न्याईं । लक्षणासैं धर्मसहित उपाधिभागकूं त्यागिके जीवईश्वर दोनूंविषै जो लक्ष्यअर्थ चेतनमात्र है । ताकी एकता संभवैहै ॥

(१) इहां महावाक्यनके दोनूंदोनूंपदनविषै **जहत्लक्षणा संभवै नहीं** ॥ काहेतैं लक्ष्यअर्थ जे आत्मा औ ब्रह्म है । वे वाच्यअर्थ (जीवईश्वर)विषै प्रविष्ट हैं ॥ जो जहत्लक्षणाकी रीतिसैं सारेवाच्यअर्थका त्याग होवै तौ तिसके साथि लक्ष्यअर्थका बी त्याग हौवैगा ॥ औ

(२) **अजहत्लक्षणा बी संभवै नहीं** ॥ काहेतैं अजहत्लक्षणाकी रीतिसैं वाच्यअर्थके अत्यागकरि विरोधके विद्यमान हेनैसैं लक्षणाके व्यर्थताका प्रसंग होवैगा ॥

(३) यातैं "सो यह देवदत्त है" इस ६३ वें टिप्पणविषै उक्त दृष्टांतकी न्याईं विरोधीभागके त्यागकरि अविरोधीअंशके ग्रहणसैं एकताके संभवतैं इहां **भागत्यागलक्षणाहीं संभवैहै** ॥

इसरीतिसैं आचार्यनैं एकताकरि बोधनकिये दोनूंपदनके लक्ष्यअर्थविषै अधिकारीकूं यथार्थएकताके ज्ञानके अभावतैं एकताअंशविषै स्थित मायाअविद्यारूप कारणकरि होती जो है परोक्षता औ परिच्छिन्नताभ्रांति । तिसके निवारणअर्थ ओतप्रोतभाव कर्त्तव्य है ॥

तिस **ओतप्रोतभावकी रीति** यह है:—"तत्" पदके अर्थविषै परोक्षताभ्रांतिके निवारणअर्थ "तत् त्वं" (सो तूं हैं) । ऐसैं "तत्" पदके अर्थकूं उद्देशकरिके "त्वं" पदकी अर्थरूपता विधेय है औ "त्वं" पदके अर्थविषै परिच्छिन्नताभ्रांतिके निवारणअर्थ "त्वं तत्" (तूं सो हैं) ऐसैं "त्वं" पदके अर्थकूं उद्देशकरिके "तत्" पदकी अर्थरूपता विधेय है । काहेतैं "तत्" पदके अर्थ ब्रह्मकी "त्वं" पदके अर्थ नित्यअपरोक्षसाक्षीरूपताकरि । परोक्षताभ्रांतिकी हानि होवैहै॥ औ "त्वं" पदके अर्थ साक्षीकी "तत्" पदकेअर्थ व्यापकब्रह्मरूपताकरि परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि होवैहै ॥ तैसैं

"अहं ब्रह्म" । "प्रज्ञानं ब्रह्म" । "आत्मा ब्रह्म" । ऐसैं जाननैतैं परिच्छिन्नताकी हानि होवैहै औ "ब्रह्म अहं" । "ब्रह्म प्रज्ञानं" । "ब्रह्म आत्मा" । ऐसैं जाननैतैं परोक्षताकी हानि होवैहै ॥

यह **ओतप्रोतभावकी रीति** कही सो श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कंधगत पंचमअध्यायके एकादशवेंश्लोकविषै श्रीशुकदेवजीनैं "मैं परमधाम (निरतिशयस्वरूप) ब्रह्म हूं औ परमपद (निरतिशयस्वरूप) ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं सम्यक् देखता (विचारता)हुया । आत्मा (मन)कूं निष्कल (निरुपाधिक) आत्मा (ब्रह्म) विषै धारणकरिके (देहादिकसर्वकूं आपतैं भिन्न नहीं देखैगा)" । ऐसैं परिक्षित्राजाके प्रति कहीहै औ आचार्योंनैं तिस तिस महावाक्यके प्रसंगमैं लिखीहै ॥ यातैं जीवके परिच्छिन्नतादिककी औ ब्रह्मके परोक्षतादिककी भ्रांतिकी निवृत्तिअर्थ उक्तओतप्रोतभाव अवश्य कर्त्तव्य है ॥

उक्तप्रकारसैं मुमुक्षुजन । सत्शास्त्र औ सद्गुरुकी कृपासैं अभिलषितप्रक्रियाके ज्ञानकरि । त्रिविधपरिच्छेदशून्यअखंडसच्चिदानंदादिविशेषणयुक्त समष्टिव्यष्टिसर्वप्रपंचका अधिष्ठान । माया अविद्या औ ताके कार्यप्रपंचतैं रहित औ उपाधिकृतजीवईश्वरके भेदआदिकपंचभेदविवर्जित । बंधमोक्षतत्साधनकल्पनाशून्य । प्रवृत्तिनिवृत्तिरहित शुद्धएकरसपरमार्थतत्त्व । अपनैंआपकूं यथार्थ दृढअपरोक्ष जानिके कृतार्थ होहु ॥ इति ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ चित्रदीपः ॥

॥ षष्ठं प्रकरणम् ॥ ६ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: २९५	*यथा चित्रपटे दृष्टमवस्थानां चतुष्टयम् । परमात्मनि विज्ञेयं तथाऽवस्थाचतुष्टयम् ॥ १ ॥ (अस्य व्याख्या २२४ पृष्ठोपरि द्रष्टव्या)	टीकांक: ॐ टिप्पणांक: ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ चित्रदीपतात्पर्यबोधिनी-व्याख्या ॥ ६ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

वाणीविनायकावीशौ सर्वसिद्धिविधायकौ ।
भवतां भवतां ग्रंथरचने च सहायकौ ॥ १ ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
कुर्वेऽहं चित्रदीपस्य व्याख्यां तत्त्वप्रकाशिकाम्

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशांतये ॥ १ ॥
यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ना दूरं प्रयांति हि ।
वंदेऽहं दंतिवक्त्रं तं वांछितार्थप्रदायकम् ॥२॥

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ श्रीचित्रदीपकी तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ ६ ॥

॥ भाषाकर्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—वाणी जो सरस्वती औ विनायक जो गणपति ये दोनूं ईश्वर हैं। सो सर्वसिद्धिके विधायक कहिये कारक होहु औ ग्रंथकी रचनाविषैं सहायक होहु ॥ १ ॥

टीकाः—श्रीयुक्त सर्वगुरुनकूं नमनकरिके । पंचदशीके चित्रदीपनाम प्रकरणकी नरभाषासैं तत्त्वप्रकाशिकानाम व्याख्याकूं मैं करूंहूं ॥ २ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—शुक्लअंबर कहिये श्वेतवस्त्रकूं धारणेहारे औ शशी नाम चंद्रमाके तुल्य वर्णवाले औ चतुर्भुज अरु प्रसन्नवदन जो सत्ययुगवर्ती विष्णु हैं। तिनकूं सर्वविघ्नोंकी शांतिअर्थ ध्यान करना ॥ १ ॥

टीकाः—जिसके स्मरणमात्रकरिहीं प्रतिबंधकपापरूप विघ्न दूरकूं प्रकर्ष कहिये अतिशयकरि

* अधिष्ठानचेतनरूप वस्त्रविषै जगत्रूप चित्रकूं दीपककी न्याई प्रकाशनैहारा जो ग्रंथ नाम प्रकरण सो चित्रदीप कहियेहै ॥

* यद्यपि दूर गये जे विघ्न वे परदेशकूं गये पुरुषकी न्याई फेर प्राप्त होवैंगे । तथापि इहां प्रकर्षपद पडाहै तिसकरि विघ्न फेर प्राप्त होवैं नहीं किंतु नष्टहीं होवैहैं ॥ यह अर्थ है ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
क्रियते चित्रदीपस्य व्याख्यां तात्पर्यबोधिनीम्

१ चिकीर्षितस्य ग्रंथस्य निष्प्रत्यूहपरिपूरणाय "परमात्मनि" इतिपदेन इष्टदेवतातत्त्वानुसंधानलक्षणं मंगलमाचरन्नस्य ग्रंथस्य वेदांतप्रकरणत्वात्सदीयैरेव विषयादिभिः तद्वत्तासिद्धिं मनसि निधाय "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यत" इति न्यायमनुसृत्य परमात्मन्यारोपितस्य जगतः स्थितिप्रकारं सदृष्टांतं प्रतिजानीते (यथेति)—

२] चित्रपटे यथा अवस्थानां चतुष्टयं दृष्टं। तथा परमात्मनि अवस्थाचतुष्टयं विज्ञेयम् ॥

३) यथा चित्रपटे वक्ष्यमाणानां अवस्थानां चतुष्टयं तथा एव परमात्मनि अपि वक्ष्यमाणं अवस्थाचतुष्टयं ज्ञेयं इति ॥ १ ॥

जाते हैं। तिस वांछित नाम प्रियअर्थका प्रकर्षकरि देनैहारा दंतिवक्र जो गजवदन गणेश ताकूं मैं वंदन करूंहूं ॥ २ ॥

टीकाः—श्रीभारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दोनूंमुनीश्वरनकूं नमनकरिके चित्रदीपकी तात्पर्यबोधिनी नाम व्याख्या मेरेकरि करियेहै ॥ ३ ॥

॥१॥ आरोपितजगत्की स्थिति औ ज्ञानकरि निवृत्तिका प्रकार ॥ १२०१–१२४६ ॥

॥१॥ जगत्के आरोपमैं पटरूप दृष्टांत औ चेतनरूप सिद्धांतकी च्यारीअवस्था ॥ ॥ १२०१–१२१२ ॥

॥ १ ॥ उक्तदृष्टांतसिद्धांतके च्यारी-अवस्थाकी प्रतिज्ञा ॥

१ करनैकूं इच्छित चित्रदीपरूप ग्रंथकी निर्विघ्नपरिपूर्णताअर्थ "परमात्मनि" कहिये परमात्माविषै। इस पदकरि इष्टदेवता जो प्रसक्अभिन्नब्रह्म ताका तत्त्व जो स्वरूप। ताके स्मरणरूप मंगलकूं आचरतेहुये आचार्य। इस चित्रदीपग्रंथकूं वेदांतशास्त्रका प्रकरण होनैतें तिस वेदांतशास्त्रकेहीं विषयआदिकच्यारिअनुबंधनकरि तिस अनुबंधवान्ताकी सिद्धिकूं मनविषै धारिके "अध्यारोप औ अपवादकरि निष्प्रपंचब्रह्मकूं वर्णन करियेहै।" इस न्यायकूं आश्रयकरिके परमात्माविषै आरोपित कहिये कल्पित जो जगत् ताकी स्थितिके प्रकारकूं दृष्टांतसहित प्रतिज्ञा करैहैंः—

२] जैसैं चित्रपटविषै अवस्थाका चतुष्टय देख्याहै। तैसैं परमात्माविषै अवस्थाका चतुष्टय जान्याचाहिये॥

२) जैसैं चित्रयुक्तवस्त्रविषै आगे श्लोक २–४ मैं कहियेगी जे च्यारिअवस्था हैं। तैसैंही परमात्माविषै बी आगे श्लोक २–४ मैं कहियेगा जो अवस्थाका चतुष्टय। सो जाननैकूं योग्य है ॥ इति ॥ १ ॥

* पद औ वाक्यमके वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्यकूं बोधन करनैहारी टीका ॥

२३ "परमात्मनि" यह जो मूलश्लोकविषै पद है सो अन्यअर्थ किये बी मंगलके प्रयोजक मृदंगआदिकध्वनिकी न्याई प्रसंगप्राप्तअर्थ औ मंगल दोनूंका प्रयोजक है ॥

२४ असर्पभूत रज्जुविषै सर्पके आरोपकी न्याई। वस्तु जो ब्रह्म तिसविषै। अवस्तु जो अज्ञान औ तत्कार्य। ताका आरोप अध्यारोप कहियेहै ॥

२५ रज्जुके विवर्त्त सर्पकी रज्जुमात्रताकी न्याई अवस्तुरूप अज्ञानादिकप्रपंचकी जो ब्रह्मरूप वस्तुमात्रता सो अपवाद कहियेहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः २९६ २९७	यथा धौतो घट्टितश्च लांछितो रंजितः पटः । चिदंतर्यामी सूत्रात्मा विराडात्मा तथेर्यते ॥२॥ स्वतः शुभ्रोऽत्र धौतः स्याद्घट्टितोऽन्नविलेपनात् । मष्याकारैर्लांछितः स्याद्रंजितो वर्णपूरणात् ॥३॥	टीकांकः १२०४ टिप्पणांकः ॐ

४ किं तदित्याकांक्षायां दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोः उभयोः अप्यवस्थाचतुष्टयं क्रमेणोदिशति—

५] यथा धौतः घट्टितः लांछितः च रंजितः पटः तथा चित् अंतर्यामी सूत्रात्मा विराट् आत्मा ईर्यते ॥

६) धौतो घट्टितो लांछितो रंजित इत्येवंप्रकाराः चतस्रोऽवस्था यथा चित्रपटे उपलभ्यंते। तथा परमात्मन्यपि चिदंतर्यामी सूत्रात्मा विराट् चेत्यवस्थाचतुष्टयं बोद्धव्यमित्यर्थः ॥ २ ॥

७ दृष्टांतस्थितानामवस्थानां स्वरूपं क्रमेण व्युत्पादयति (स्वत इति)—

८] अत्र स्वतः शुभ्रः धौतः । अन्नविलेपनात् घट्टितः स्यात् । मष्याकारैः लांछितः। वर्णपूरणात् रंजितः स्यात् ॥

९) अत्र आस्ववस्थासु मध्ये । स्वतो द्रव्यांतरसंबंधं विना । शुभ्रो धौत इत्युच्यते । अन्नेन लिप्तो घट्टितः । मषीमयैः आकारैः युक्तो लांछितः । यथायोग्यं वर्णैः पूरितो रंजितः स्यात् ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ श्लोक १ उक्त च्यारीअवस्थाके भिन्न भिन्न नाम ॥

४ कौन सो अवस्थाका चतुष्टय है? इस आकांक्षाके हुये दृष्टांत जो पट औ दार्ष्टांतिक जो चेतन। तिन दोनूंविषे वी अवस्थाके चतुष्टयकूं क्रमकरि उपदेश करैहै। कहिये नामकरि कहैहैं:—

५] जैसैं धौत घट्टित लांछित औ रंजित इस भेदकरि च्यारिप्रकारका चित्रपट है। तैसैं चित् जो शुद्धचेतन। अंतर्यामी जो ईश्वर । सूत्रात्मा जो हिरण्यगर्भ। औ विराट्। इस भेदकरि च्यारिप्रकारका परमात्मा कहियेहै ॥

६) धौत घट्टित लांछित औ रंजित। इसप्रकारकी च्यारीअवस्था जैसैं चित्रपटविषै देखियेहैं। तैसैं परमात्माविषै वी चित् अंतर्यामी सूत्रात्मा औ विराट्। इसप्रकारकी च्यारीअवस्था जाननैकूं योग्य है ॥ यह अर्थ है ॥२॥

॥ ३ ॥ दृष्टांतकी च्यारीअवस्थाका अर्थ ॥

७ पटरूप दृष्टांतविषै स्थित अवस्थाओंके स्वरूपकूं क्रमकरि कहैहैं:—

८] स्वरूपतैं शुभ्र जो पट है सो इहां धौत होवैहै । अन्नके विलेपनतैं घट्टित होवैहै। स्याईके आकारनकरि लांछित होवैहै औ रंगनके भरनैतैं रंजित होवैहै ॥

९) इन च्यारीअवस्थाके मध्यमैं आपतैं कहिये अन्यद्रव्यके संबंधविनाहीं श्वेत जो पट है सो "धौत" ऐसैं कहियेहै औ अन्नकरि लेपनकूं पाया जो पट है सो "घट्टित" कहियेहै औ स्याईमय देवमनुष्यादिमूर्त्तिरूप आकारनकरि युक्त जो पट है सो "लांछित" कहियेहै औ यथायोग्यनीलपीतादिरंगनकरि पूरित जो पट है सो "रंजित" होवैहै ॥ ३॥

टीकांक: १२१० टिप्पणांक: ५२६	स्वतश्चिदंतर्यामी तु मायावी सूक्ष्मसृष्टितः । सूत्रात्मा स्थूलसृष्ट्यैव विराडित्युच्यते परः ॥४॥ ब्रह्माद्याः स्तंबपर्यंताः प्राणिनोऽत्र जडा अपि । उत्तमाधमभावेन वर्तंते पटचित्रवत् ॥ ५ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: २९८ २९९

१० दार्ष्टांतिके ताः व्युत्पादयति (स्वत इति)—

११] परः स्वतः तु चित् । मायावी-अंतर्यामी । सूक्ष्मसृष्टितः सूत्रात्मा । स्थूलसृष्ट्या विराट् एव इति उच्यते ॥

१२) परः परमात्मा मायातत्कार्यरहितः । चित् इत्युच्यते । मायायोगात् । अंतर्यामी अपंचीकृतभूतकार्यसमष्टिसूक्ष्मशरीरयोगात् सूत्रात्मा । पंचीकृतभूतकार्यसमष्टिस्थूलशरीरोपाधियोगात् विराट् इति ॥ ४ ॥

१३ ननु परमात्मनः चित्रपटस्थानीयत्वे तदाश्रितानि चित्राणि वक्तव्यानीत्यत आह (ब्रह्माद्या इति)—

१४] अत्र उत्तमाधमभावेन ब्रह्माद्याः । स्तंबपर्यंताः प्राणिनः जडाः अपि पटचित्रवत् वर्तंते ॥

॥ ४ ॥ सिद्धांतकी च्यारीअवस्थाका अर्थ ॥

१० अब चेतनरूप दार्ष्टांतविषै तिन च्यारीअवस्थाकूं कहैहैं:—

११] परमात्मा स्वतः कहिये स्वरूपतैं चित् कहियेहै औ मायावी हुवा अंतर्यामी कहियेहै औ सूक्ष्मसृष्टितैं सूत्रात्मा कहियेहै औ स्थूलसृष्टिकरिहीं विराट् ऐसैं कहियेहै ॥

१२) परमात्मा जो है सो माया औ तत्कार्यके संबधसैं रहित चित् कहियेहै औ मायाके योगतैं[२६] अंतर्यामी कहियेहै औ अपंचीकृतपंचभूतनका कार्य जो समष्टिसूक्ष्मशरीर है तिसके योगतैं कहिये संबंधतैं सूत्रात्मा कहियेहै औ पंचीकृतपंचभूतनका कार्य जो समष्टिस्थूलशरीर है । तिसरूप उपाधिके योगतैं विराट् ऐसैं कहियेहै ॥ ४ ॥

॥ २ ॥ चेतनमैं आरोपित चित्रका वर्णन ॥ १२१३—१२२९ ॥

॥ १ ॥ ब्रह्मादिरूप चित्रका कथन ॥

१३ ननु परमात्माकूं चित्रपटके स्थानीय हुये तिस परमात्मारूप चित्रपटके आश्रित चित्र कहे चाहिये । तहां कहैहैं:—

१४] ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत जे प्राणी कहिये चेतन औ जडपदार्थ बी हैं । जे उत्तमअधमभावकरि वर्त्ततेहैं । वे इस परमात्माविषै पटके चित्रकी न्याई हैं ॥

२६ तादात्म्यसंबंधतैं ॥

२७ ब्रह्मांड ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३०० ३०१	[१७] चित्रार्पितमनुष्याणां वस्त्राऽभासाः पृथक् पृथक् । चित्राधारेण वस्त्रेण सदृशा इव कल्पिताः ॥ ६ ॥ [२०] पृथक्पृथक्चिदाभासाश्चैतन्याध्यस्तदेहिनाम् । कल्प्यंते जीवनामानो बहुधा संसरंत्यमी ॥ ७ ॥	टीकांक: १२१५ टिप्पणांक: ५२८

१५) अत्र परमात्मनि उत्तमाधमभावेन वर्तमानं ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं चेतनाचेतनात्मकं गिरिनद्यादि जडजातं च चित्रस्थानीयमित्यर्थः ॥ ५ ॥

१६ ब्रह्मादिजगतः चेतनत्वे कारणं वक्तुं दृष्टांतमाह—

१७] **चित्रार्पितमनुष्याणां पृथक् पृथक् वस्त्राभासाः चित्राधारेण वस्त्रेण सदृशा इव कल्पिताः ॥**

१८) यथा चित्रे लिखितानां मनुष्यआदिशरीराणामेव नानावर्णोपेता वस्त्रविशेषा लिख्यंते । ते च शीताद्यनिवारकत्वात् वस्त्राभासा एव ॥ ६ ॥

१९ दार्ष्टांतिकमाह (पृथगिति)—

२०] **चैतन्याध्यस्तदेहिनां पृथक् पृथक् जीवनामानः चिदाभासाः कल्प्यंते ॥**

२१) एवं परमात्मन्यारोपितानां देवादीनां शरीराणामेव जीवनामानः चिदाभासाः प्रत्येकं कल्प्यंते । न पर्वतादीनाम् ॥

१५) इस परमात्माविषै उत्तम औ अधमभावकरि वर्त्तमान जे ब्रह्मासैं आदिलेके [२८]स्तंबपर्यंत [२९]चेतन औ [३०]अचेतनरूप औ पर्वतनदीआदिकजडवस्तुनका जो समूह है । सो चित्रस्थानीय है ॥ यह अर्थ है ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ पटदृष्टांतकरि ब्रह्मादिककी चेतनरूपतामैं हेतु ॥

१६ ब्रह्माआदिकजगत्के चेतनपनैविषै कहिये जंगमपनैविषै कारण कहनैकूं दृष्टांत कहैहैं:—

१७] **चित्रविषै लिखित मनुष्यनके जे भिन्नभिन्न वस्त्राभास हैं । वे चित्रके आधाररूप वस्त्रकरि तुल्य हुयेकी न्याई जैसैं कल्पित हैं ।**

१८ जैसैं चित्रविषै लिखित मनुष्यआदिक शरीरनकेहीं नानारंगयुक्त भिन्नभिन्नप्रकारके वस्त्र लिखियेहैं । वे वस्त्रनके भेद शीतआदिकके अनिवारक होनैतैं [३१]वस्त्राभासहीं हैं ॥ ६ ॥

१९ दार्ष्टांतिककूं कहैहैं:—

२०] **तैसैं चैतन्यविषै अध्यस्त देही नाम प्राणिनके भिन्नभिन्न जीवनामक चिदाभास कल्पियेहैं ॥**

२१) ऐसैं परमात्माविषै आरोपित देवादिकशरीरनकेहीं जीवनामक चिदाभास। प्रत्येक नाम एकएकदेहके प्रति एकएकचिदाभास कल्पियेहैं औ पर्वतादिकजडपदार्थनके [३२]चिदाभास नहीं कल्पियेहैं ॥

२८ जिसके मूलसैंहीं पर्ण नाम पान उत्पन्न होवैं। ऐसा जो क्षुद्र कहिये तुच्छ वृक्षदर्भादिक सो कोशविषै स्तंब कहियेहै ॥

२९ जंगम ॥

३० स्थावर ॥

३१ वस्त्रके लक्षण जे शीतादिककी निवारकता तातैं रहित हुये जे वस्त्रकी न्याई भासैहैं। वे **वस्त्राभास** कहियेहैं॥

३२ चेतनके लक्षणतैं रहित हुये जे चेतनकी न्याई भासैहै। सो **चिदाभास** है ॥

टीकांक: १२२२ टिप्पणांक: ५३३

[२६] वस्त्राऽऽभासस्थितान्वर्णान्यद्वदाधारवस्त्रगान् ।
वदंत्यज्ञास्तथा जीवसंसारं चिद्गतं विदुः ॥ ८ ॥
[२८] चित्रस्थपर्वतादीनां वस्त्राऽऽभासो न लिख्यते ।
सृष्टिस्थमृत्तिकादीनां चिदाभासस्तथा न हि॥९॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३०२ ३०३

२२ तेषां तत्कल्पने कारणमाह (बहुधेति)—

२३] अमी बहुधा संसरंति ॥

२४) अमी जीवाः । देवतिर्यङ्मनुष्यादिशरीरप्राप्त्या संसरंति । न परमात्मा । तस्य निर्विकारित्वादित्यभिप्रायः ॥ ७ ॥

२५ ननु सर्वे वादिनो लौकिकाश्चाऽऽत्मन एव संसार इति वदंति तत्र किं कारणमित्याशंक्य अज्ञानं एव कारणं इति सदृष्टांतमाह—

२६] वस्त्राभासस्थितान् वर्णान् यद्वत् आधारवस्त्रगान् वदंति । तथा अज्ञाः जीवसंसारं चिद्गतं विदुः ॥८॥

२७ गिरिनद्यादीनां तु चिदाभासकल्पनाऽभावं दृष्टांतपुरःसरमाह—

२८] चित्रस्थपर्वतादीनां वस्त्राभासः न लिख्यते तथा सृष्टिस्थमृत्तिकादीनां चिदाभासः न हि ॥

२९) प्रयोजनाभावादितिभावः ॥ ९ ॥

---

२२ तिन देवादिकशरीरनके चिदाभासके कल्पनेविषै कारणकूं कहैहैं:—

२३] यह जीव बहुधा संसारकूं पावतेहैं ॥

२४) ये जीव[33] कहिये चिदाभास। देव तिर्यक्[34] औ मनुष्यआदिकशरीरनकी प्राप्तिकरि बहुतप्रकारसैं जन्ममरणादिरूप संसारकूं पावतेहैं औ परमात्मा संसारकूं पावता नहीं। तिसकूं निर्विकार होनैतैं। यह अभिप्राय है ॥७॥

॥ ३ ॥ साक्षीआत्मामैं संसारप्रतीतिका कारण अज्ञान ॥

२५ ननु नैयायिकादिकसर्ववादी औ लौकिक। आत्माकूंहीं संसार है। ऐसैं कहैहैं तिसविषै कौन कारण है? यह आशंकाकरि अज्ञानहीं कारण है। ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

२६] वस्त्राभासविषै स्थित रंगनकूं जैसैं आधाररूप वस्त्रगत कहतेहैं। तैसैं अज्ञजन जीवगतसंसारकूं साक्षीचेतनगत जानतेहैं ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ घटदृष्टांतकरि पर्वतादिकके चिदाभासकी कल्पनाका अभाव ॥

२७ पर्वतनदीआदिकनके तौ चिदाभासकल्पनके अभावकूं दृष्टांतपूर्वक कहैहैं:—

२८] जैसैं चित्रविषै स्थित पर्वतादिकनका वस्त्राभास नहीं लिखियेहै। तैसैं सृष्टिमैं स्थित मृत्तिकाआदिकनका चिदाभास नहीं कल्पियेहै ॥

२९) मृत्तिकाआदिकजडपदार्थनके चिदाभासके कल्पनविषै प्रयोजनके कहिये संसाररूप फलके अभावतैं ॥ यह भाव है ॥ ९ ॥

---

३३ चिदाभास ॥

३४ पशुपक्षीसर्पादि ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३०४ ३०५ ३०६

टीकांकः १२३० टिप्पणांकः ५३५

[३१] संसारः परमार्थोऽयं संलग्नः स्वात्मवस्तुनि ।
इति भ्रांतिरविद्या स्याद्विद्ययैषा निवर्तते ॥ १० ॥
[३३] आत्माऽऽभासस्य जीवस्य संसारो नाऽऽत्मवस्तुनः।
इति बोधो भवेद्विद्या लभ्यतेऽसौ विचारणात् ११
[३५] सदा विचारयेत्तस्माज्जगज्जीवपरात्मनः ।
[३७] जीवभावजगद्भावबाधे स्वात्मैव शिष्यते ॥ १२ ॥

३० एवमात्मन्यारोपितस्य संसारस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वसिद्धये तन्मूलभूतामविद्यामाह (संसार इति)—

३१] अयं संसारः परमार्थः स्वात्मवस्तुनि संलग्नः इति भ्रांतिः अविद्या स्यात् । एषा विद्यया निवर्तते ॥ १० ॥

३२ केयं विद्या तल्लाभोपायः क इत्याकांक्षायां विद्यास्वरूपं तल्लाभोपायं च दर्शयति—

३३] आत्माभासस्य जीवस्य संसारः आत्मवस्तुनः न इति बोधः विद्या भवेत् । असौ विचारणात् लभ्यते ॥ ११ ॥

३४ विचाराल्लभ्यते विद्येत्युक्तं कस्य विचाराल्लभ्यते विद्येत्याशंक्याह (सदेति)—

॥ ३ ॥ अविद्याके स्वरूपपूर्वक साधनसहित तिसकी निवर्त्तक विद्याका स्वरूप ॥ १२३०—१२४६ ॥

॥ १ ॥ अविद्याकास्वरूप औ ताकी निवृत्तिका विद्यारूप उपाय ॥

३० ऐसैं आत्माविषै आरोपितसंसारकी ज्ञानसैं निवृत्ति होनैके योग्यताकी सिद्धिअर्थ तिस संसारकी कारणरूप अविद्याकूं कहैहैंः—

३१] "यह कर्तृत्वादिरूप संसार । परमार्थ कहिये वास्तव है । सो स्वात्मवस्तुविषै संलग्न कहिये आत्माका धर्म है" यह जो भ्रांति[३५] है सो अविद्या[३६] है ॥ यह अविद्या। विद्या जो ज्ञान तासैं निवृत्त होवैहै ॥ १० ॥

॥२॥ विद्याका स्वरूप औ ताके लाभका उपाय॥

३२ ननु कौंन यह विद्या है औ तिस विद्याके लाभका उपाय कौंन है ? इस आकांक्षाविषै विद्याके स्वरूपकूं औ तिसके लाभके उपायकूं दिखावैहैंः—

३३] आत्माके आभासरूप जीवकूंहीं संसार है औ आत्मवस्तुकूं नहीं है । इस प्रकारका जो बोध है सो विद्या होवैहै ॥ यह विद्या। विचार जो विवेक तातैं प्राप्त होवैहै ॥ ११ ॥

॥ ३ ॥ विचारका विषय औ उपयोग ॥

३४ ननु "विचारतैं विद्या प्राप्त होवैहै" इसप्रकार श्लोक ११ विषै जो कह्या । सो किसके विचारतैं विद्या प्राप्त होवैहै? यह आशंकाकरि कहैहैंः—

३५ अन्यथाबुद्धि सो भ्रांति है ॥

३६ कार्यरूप अज्ञान ॥

टीकांक: १२३५ टिप्पणांक: ५३७

नाप्रतीतिस्तयोर्बाधः किंतु मिथ्यात्वनिश्चयः ।
नो चेत्सुषुप्तिमूर्छादौ मुच्येतायत्नतो जनः॥ १३॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३०७

३५] तस्मात् जगज्जीवपरात्मनः सदा विचारयेत् ॥

३६ ननु परमात्मा विचार्यतां मोक्षावस्थायां फलरूपेणावस्थानात् जीवजगतोर्विचारः क्वोपयुज्यत इत्याशंक्य तयोरपवादेन परमात्मावशेषेणोपयुज्यत इत्याह—

३७] जीवभावजगद्भाववाधे स्वात्मा एव शिष्यते ॥ १२ ॥

३८ ननु विचारेण जीवभावजगद्भाववाधे स्वात्मैव शिष्यत इत्युक्तं । विचारेण जीवजगतोर्बाधे तदप्रतीत्या व्यवहारलोपः प्रसज्येतेत्याशंक्य । बाधशब्दस्य विवक्षितमर्थं विपक्षे दंडं चाह (नाप्रतीतिरिति)—

३९] अप्रतीतिः तयोः बाधः न किंतु मिथ्यात्वनिश्चय। नो चेत् सुषुप्तिमूर्छादौ जनः अयत्नतः मुच्येत ॥

४०) सुषुप्तिमूर्छादौ सत एव द्वैतप्रतीत्यभावात् तत्त्वज्ञानं विनापि मुक्तिः स्यादित्यर्थः ॥ १३ ॥

३५] तातैं जगत् । जीव औ परमात्मा । इन तीनकूं मुमुक्षु सदा विचारै ॥

३६ ननु परमात्माहीं विचारनैयोग्य है । काहेतैं मोक्षअवस्थाविषै फलरूपकरि तिसकी स्थितितैं औ जीव अरु जगत् इन दोनूंका विचार कहां उपयोगकूं पावताहै ? यह आशंकाकरि तिन जगत् औ जीवके बाधरूप अपवादकरि होता जो है परमात्माका अवशेष। तिसके साथि जीव औ जगत्का विचार उपयोगकूं पावैहै । ऐसें कहैहैं:—

३७] जीवभाव औ जगद्भावके बाध हुये। स्वात्मा कहिये ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माहीं शेष रहताहै ॥ १२ ॥

॥ ४ ॥ बाधशब्दका अर्थ ॥

३८ ननु "विचारकरि जीवभाव औ जगद्भावके बाधहुये स्वात्माहीं शेष रहताहै" इसप्रकार १२ वें श्लोकविषै जो कहा सो बनै नहीं। काहेतैं विचारकरि जीव औ जगत्के बाध हुये। तिन जीव औ जगत्की अप्रतीतिसैं कथन औ प्रतीतिरूप व्यवहारका लोप प्राप्त होवैगा। यह आशंकाकरि बाधशब्दके विवक्षितअर्थकूं औ इस अर्थके नहीं माननैरूप विपक्षविषै अनिष्टकारीतर्करूप दंडकूं कहैहैं:—

३९] अप्रतीति । तिन जीव औ जगत्का बाध नहीं है ।किंतु मिथ्यात्वनिश्चयहीं बाध है ॥ जो ऐसैं नहीं मानै तौ सुषुप्तिमूर्छाआदिकविषै जन अयत्नतैं मुक्त होवैगा ॥

४०) सुषुप्ति औ मूर्छाआदिकविषै प्रयत्नसैं विनाहीं द्वैतकी प्रतीतिके अभावतैं तत्त्वज्ञानविना बी मुक्ति होवैगी । यह अर्थ है ॥ इहां आदिशब्दसैं मरण औ प्रलयका ग्रहण है ॥१३॥

---

३७ बाधहुये पीछे जगत्की प्रतीति होवैहै ॥ देखो अंक ३०८४ विषै औ इस बाध नाम निवृत्तिका लक्षण देखो अंक ४८९९ विषै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
३०८	⁴²परमात्मावशेषोऽपि तत्सत्यत्वविनिश्चयः । न जगद्विस्मृतिर्नो चेज्जीवन्मुक्तिर्न संभवेत्॥१४॥	१२४१
३०९	⁴⁴परोक्षा चापरोक्षेति विद्या द्वेधा विचारजा । तत्रापरोक्षविद्याप्तौ विचारोऽयं समाप्यते ॥ १५ ॥	टिप्पणांकः
३१०	⁴⁶अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद परोक्षज्ञानमेव तत् । अहं ब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते॥ १६ ॥	ॐ

४१ स्वात्मैव शिष्यत इत्यनेनापि परमात्मनः सत्यत्वज्ञानमेव विवक्ष्यते न तदतिरिक्तजगद्विस्मृतिः जीवन्मुक्त्यभावप्रसंगादित्याह—

४२] परमात्मावशेषः अपि तत्सत्यत्वविनिश्चयः जगद्विस्मृतिः न । नो चेत् जीवन्मुक्तिः न संभवेत् ॥ १४ ॥

४३ सदा विचारयेदित्युक्त्या देहपातपर्यंतं विचारप्रसक्तौ सत्यां तस्यावधिमाह (परोक्षेति)—

४४] विचारजा विद्या परोक्षा च अपरोक्षा इति द्वेधा । तत्र अपरोक्षविद्याप्तौ अयं विचारः समाप्यते ॥ १५ ॥

४५ विचारजन्या विद्या परोक्षत्वापरोक्षत्वभेदेन द्वैधेत्युक्तं तयोरुभयोः स्वरूपं क्रमेण दर्शयति (अस्ति ब्रह्मेति)—

४६] "ब्रह्म अस्ति" इति चेत् वेद तत् परोक्षज्ञानं एव । "अहं ब्रह्म" इति चेत् वेद सः साक्षात्कारः उच्यते ॥ १६ ॥

॥ ५ ॥ आत्माकी अवशेषताका अर्थ ॥

४१ "स्वात्माहीं शेष रहताहै" इस १२ वें श्लोकविषै कहनैकरि बी परमात्माकी सत्यताका ज्ञानहीं कहनैकूं इच्छित है औ तिस परमात्मातैं भिन्न जगत्की विस्मृति कहनेकूं इच्छित नहीं है । काहेतैं जीवन्मुक्तिके अभावके प्रसंगतैं । ऐसैं कहैहैं:—

४२] परमात्माका अवशेष बी तिस परमात्माकी सत्यताका निश्चयहीं है औ जगत्की विस्मृति नहीं ॥ जो ऐसैं नहीं मानै तौ जीवन्मुक्ति संभवै नहीं ॥१४॥

॥ ६ ॥ विद्याके भेदपूर्वक विचारकी अवधि ॥

४३ "सदा विचार करै" इस १२ वें श्लोककी उक्तिकरि देहपातपर्यंत विचारकी प्राप्तिके हुये तिस विचारकी अवधिकूं कहैहैं:—

४४] विचारसैं जन्य जो विद्या है सो परोक्ष औ अपरोक्ष इस भेदकरि दोभांतिकी है ॥ तिनमैं अपरोक्षविद्याकी प्राप्ति हुये यह विचार समाप्त होवैहै ॥ १५ ॥

॥ ७ ॥ विचारजन्य परोक्षअपरोक्षज्ञानका स्वरूप॥

४५ "विचारसैं जन्य जो विद्या है सो परोक्षपनै औ अपरोक्षपनैके भेदकरि दोभांतिकी है" इस प्रकार जो १५ वें श्लोकविषै कहा तिन परोक्षज्ञान औ अपरोक्षज्ञान दोनूंके स्वरूपकूं क्रमकरि दिखावैहैं:—

४६] "ब्रह्म है" इसरीतिसैं जब जानै तब सो परोक्षज्ञानहीं है औ "मैं ब्रह्म हूं" इसरीतिसैं जब जानै तब सो जानना साक्षात्कार नाम अपरोक्षज्ञान कहियेहै ॥ १६ ॥

टीकांकः १२४७ टिप्पणांकः ५३८	तत्साक्षात्कारसिद्ध्यर्थमात्मतत्त्वं विविच्यते । येनायं सर्वसंसारात्सद्य एव विमुच्यते ॥ १७ ॥ कूटस्थो ब्रह्म जीवेशावित्येवं चिच्चतुर्विधा । घटाकाशमहाकाशौ जलाकाशाभ्रखे यथा॥१८॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्रोकांकः ३११ ३१२

४७ एवंविधाऽऽत्मसाक्षात्कारासाधारणकारणं आत्मतत्त्वविवेचनं प्रतिजानीते (तत्सक्षात्कारेति)—

४८] येन अयं सर्वसंसारात् सद्य एव विमुच्यते । तत्साक्षात्कारसिद्ध्यर्थं आत्मतत्त्वं विविच्यते ॥

४९) येन साक्षात्कारेण । पुमान् सद्य एव विमुच्यते । तत्साक्षात्कारसिद्ध्यर्थं इति पूर्वेणान्वयः ॥ १७ ॥

५० चिदात्मनः पारमार्थिकमेकत्वं निश्चेतुं व्यवहारदशायां प्रतीयमानं चैतन्यभेदमुद्दिशति—

५१] कूटस्थः ब्रह्म जीवेशौ इति एवं चित् चतुर्विधा ॥

(आत्मतत्त्वका विवेचन ॥ १२४७–१८९५ ॥)

॥२॥ आत्मतत्त्वके विवेचनमैं जीव औ कूटस्थका विवेचन ॥ १२४७–१३८८ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतआकाश औ दार्ष्टांतचेतनके भेद ॥ १२४७–१२७१ ॥

॥ १ ॥ आत्मतत्त्वके विवेचनकी प्रतिज्ञा ॥

४७ इस १६ वें श्लोकउक्तप्रकारके आत्मसाक्षात्कारका असाधारणकारण जो आत्मतत्त्वका विवेचन है। ताकूं प्रतिज्ञा करैहैंः—

४८] जिस साक्षात्कारकरि यह जीव सर्वसंसारतैं सद्यहीं छूटताहै। तिस साक्षात्कारकी सिद्धिअर्थ आत्मतत्त्व विवेचन करियेहैं ॥

४९) जिस साक्षात्कारकरि पुरुष तत्काल कहिये साक्षात्कारके उत्पत्तिसमयमैंहीं मुक्त होवैहै। इस साक्षात्कारकी सिद्धिअर्थ आत्माका स्वरूप विचारियेहैं ॥ यह श्लोकके पूर्वार्द्धसैं अन्वय है ॥ १७ ॥

॥२॥ च्यारिचेतन औ च्यारिआकाशके नाम ॥

५० चिदात्माकी पारमार्थिकएकताकूं निश्चय करनेकूं। व्यवहारदशा जो संसारअवस्था तिसविषै प्रतीयमान चैतन्यके भेदकूं कहैहैंः—

५१] कूटस्थ। ब्रह्म। जीव औ ईश। इसरीतिसैं चैतन्य च्यारीप्रकारका है॥

३८ कितनेक अद्वैतमतके अनुसारी पक्षनमैं जीव। ईश्वर औ शुद्धब्रह्म। इसभेदसैं तीनप्रकारका चेतन मान्याहै। याहीतैं वार्त्तिकमैं शुद्धचेतन। ईश्वरचेतन। जीवचेतन। अविद्या। अविद्या औ चेतनका परस्पर संबंध औ इन पांचोंका परस्परभेद। ये उत्पत्तिरहित होनैतैं षट्पदार्थ अनादि कहेहैं॥ इनमैं चेतनके तीनिही भेद कहियेहैं ॥ औ इहां विद्यारण्यस्वामीनैं चेतनके च्यारीभेद कहेहैं वे यद्यपि वार्त्तिकवचनतैं विरुद्ध है औ तीनचेतनके माननैसैं बी मुमुक्षुकूं ब्रह्मआत्माकी एकताके बोधके संभव हुये। अधिक कूटस्थचेतनकी कल्पनासैं गौरवदोष बी होवैहै। तथापि कूटस्थ औ ब्रह्मका नाममात्रसैं विना और किंचित् बी भेद नहीं है ॥ अथवा विद्यारण्यस्वामीनैं दृग्दृश्यविवेकनामग्रंथमैं कूटस्थ पारमार्थिकजीव है औ जाग्रत्गतअंतःकरणप्रतिबिंबित व्यावहारिकजीव है औ व्यावहारिकजीवमैं अध्यस्तस्वप्नगत प्रातिभासिकजीव है । इसरीतिसैं कूटस्थका जीवविषै अंतर्भाव कह्या है। यातैं तीनचेतनकी सिद्धितैं वार्त्तिकके वचनसैं विरोध

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३१२

घटावच्छिन्नखे नीरं यत्तत्र प्रतिबिंबितः ।
साभ्रनक्षत्र आकाशो जलाकाश उदीर्यते ॥१९॥

टीकांकः १२५२ टिप्पणांकः ५३९

५२ एकस्याश्रितेः चातुर्विध्ये दृष्टांतमाह (घटाकाशेति)—

५३] यथा घटाकाशमहाकाशौ जलाकाशाभ्रखे ॥ १८ ॥

५४ घटाद्यवच्छिन्नस्य घटाकाशस्य तदनवच्छिन्नस्य च महाकाशस्य प्रसिद्धत्वात्तौ विहायाप्रसिद्धं जलाकाशं व्युत्पादयति—

५५] घटावच्छिन्नखे यत् नीरं तत्र प्रतिबिंबितः साभ्रनक्षत्रः आकाशः जलाकाशः उदीर्यते ॥

५६) घटावच्छिन्ने आकाशे यत् उदकमस्ति । तत्र जले प्रतिबिंबितोऽभ्रनक्षत्रसहित आकाशो जलाकाश इत्युच्यते ॥ १९ ॥

५२ एकचैतन्यके च्यारीभांतिपनैंविषै दृष्टांतकूं कहैहैं:—

५३] जैसैं घटाकाश महाकाश जलाकाश औ अभ्राकाश कहिये मेघाकाश । इसभेदकरि आकाश च्यारीप्रकारका है तैसैं ॥ १८ ॥

॥ २ ॥ जलाकाशका स्वरूप ॥

५४ घटकरि अवच्छिन्न कहिये उपहित जो घटाकाश है औ तिस घटकरि अनवच्छिन्न जो महाकाश है । तिन दोनूंकूं प्रसिद्ध होनैतैं तिनकूं छोडिके अप्रसिद्ध जो जलाकाश है तिसकूं कहैहैं:—

५५] घटकरि अवच्छिन्नआकाशविषै जो जल है । तिसविषै प्रतिबिंबित जो अभ्र औ नक्षत्रसहित आकाश है । सो जलाकाश कहियेहै ॥

५६) घटरूप उपाधिवाले आकाशविषै जो जल है । तिस जलविषै प्रतिबिंबकूं पाया जो बादल औ तारासहित आकाश है । सो जलाकाश ऐसैं कहियेहै ॥ १९ ॥

नहीं है ॥ औ "माया जो प्रकृति सो जीवईश्वरकूं आभासकरि करैहै औ मायाअविद्या आप कहिये प्रकृतिहीं होवैहै" इत्यादिश्रुतिअर्थके संभवअर्थ च्यारिआकाशके दृष्टांतकरि च्यारीप्रकारका चेतन मानिके। सुगमरीतिसैं जीवईश्वर औ तिनके अधिष्ठानका स्वरूप समुजायके ब्रह्मात्माकी एकताका निर्णय कियाहै । यातैं उक्तगौरवदोष अकिंचित्कर है ॥

३९ इस कथनकरि घटके भीतर जो आकाश है औ जितनें आकाशविषै घट स्थित है। सो घटाकाश है। यह सिद्ध होवैहै ॥

४० जलसैं पूर्ण घटविषै जो आकाशका प्रतिबिंब है। सो घटके भीतर जो घटाकाश है तिसका होवैगा । इस शंकाकी निवृत्तिअर्थ बादल औ नक्षत्रसहित प्रतिबिंबका ग्रहण है ॥ जातैं बादल औ नक्षत्रसहित आकाशका प्रतिबिंब होवैहै । तातैं बाहिरके महाकाशकाहीं प्रतिबिंब है ॥ किंवा जंघापरिमाण घटके जलविषै जो गंभीरता प्रतीत होवैहै सो गंभीरता घटभीतरके आकाशविषै है नहीं । किंतु बाहिरके आकाशविषैहीं है । यातैं बी महाकाशका प्रतिबिंब है । यह जानियेहै ॥

टीकांक: १२५७ टिप्पणांक: ५४१	महाकाशस्य मध्ये यन्मेघमंडलमीक्ष्यते । प्रतिबिंबतया तत्र मेघाकाशो जले स्थितः॥२०॥ ६० मेघांशरूपमुदकं तुषाराकारसंस्थितम् । तत्र खप्रतिबिंबोऽयं नीरत्वादनुमीयते ॥ २१ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३१४ ३१५

५७ अभ्राकाशं व्युत्पादयति—

५८] महाकाशस्य मध्ये यत् मेघमंडलं ईक्ष्यते तत्र जले प्रतिबिंबतया स्थितः मेघाकाशः ॥

ॐ ५८) तत्र मेघमंडले । यत् जलं तस्मिन्नित्यर्थः ॥ २० ॥

५९ ननु मेघजलस्याप्रतीयमानत्वात् नभसस्तत्र कथं प्रतिबिंबितत्वज्ञानमित्याशंक्याह (मेघांशेति)—

६०] तुषाराकारसंस्थितं मेघांशरूपं उदकं तत्र अयं खप्रतिबिंबः नीरत्वात् अनुमीयते ॥

६१ मेघस्थजलस्य प्रत्यक्षेणानुपलंभेऽपि वृष्टिलक्षणकार्येण मेघे तदुपादानं उदकं सूक्ष्मावयवरूपमस्ति इत्यनुमीयते । उदकत्वेनैव लिंगेन प्रतिबिंबवत्त्वमपि ॥ विमतं जलं आकाशप्रतिबिंबवद्भवितुमर्हति । जलत्वात् । घटगतजलवत् इत्यनुमानेन मेघांशरूपे जलेऽप्याकाशप्रतिबिंबसद्भावोऽवगम्यत इत्यर्थः॥२१

॥ ४ ॥ मेघाकाशका स्वरूप ॥

५७ मेघाकाशकूं कहैहैं:—

५८] महाकाशके मध्यमैं जो मेघमंडल देखियेहै । तिस मेघमंडलविषै जो जल है । तिसविषै प्रतिबिंबपनैकरि स्थित जो आकाश है । सो मेघाकाश कहियेहै ॥ २० ॥

ॐ ५८) तिस मेघमंडलविषै जो जल है तिसविषै । यह अर्थ है ॥ २० ॥

५९ ननु मेघके जलकूं अप्रतीयमान होनैतैं तिस मेघगतजलविषै आकाशके प्रतिबिंबितपनैका ज्ञान कैसैं होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६०] जो जलके सूक्ष्मबिंदुरूप तुषार-आकारकरि सम्यक्स्थित मेघका अंशरूप जल है । तिस जलविषै जो यह आकाशका प्रतिबिंब है । सो नीरके होनैतैं अनुमान करियेहै ॥

६१) मेघमैं स्थित जलकी प्रत्यक्षकरि अप्रतीतिके हुये वी । वृष्टिरूप कार्यकरि मेघविषै तिस वृष्टिका उपादानसूक्ष्मअवयव कहिये बिंदुरूप जल है । ऐसैं अनुमानसैं जानियेहै ॥ औ उदकका सद्भावरूप लिंग जो हेतु । तिसकरिहीं तिस जलकूं प्रतिबिंबवानता है । सो वी अनुमानसैं जानियेहै ॥ सो अनुमान यह है:–विवादका विषय जो मेघका जल है । सो आकाशके प्रतिबिंबवाला होनैकूं योग्य है । जल होनैतैं । घटविषै स्थित जलकी न्यांई ॥ इस अनुमानकरि मेघके अंशरूप जलविषै वी आकाशके प्रतिबिंबका सद्भाव जानियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ २१ ॥

५४१ सो अनुमान यह है:—मेघनविषै जल है । वृष्टिरूप कार्यके होनैतैं । जहां जहां वृष्टि होवैहै तहां तहां अवश्य जल है । पर्वतके निर्झरतैं पतित जलबिंदुयुक्त पर्वतकी न्यांई ॥ इति ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३१६ ३१७ | टीकांक: १२६२ | टिप्पणांक: ५४२

[६३]अधिष्ठानतया देहद्वयावच्छिन्नचेतनः ।
[६६]कूटवन्निर्विकारेण स्थितः कूटस्थ उच्यते ॥२२॥
[६८]कूटस्थे कल्पिता बुद्धिस्तत्र चित्प्रतिबिंबकः ।
प्राणानां धारणाज्जीवः [७२]संसारेण स युज्यते॥२३॥

६२ एवं दृष्टांतभूतमाकाशचतुष्टयं व्युत्पाद्य दार्ष्टांतिके प्रथमोद्दिष्टं कूटस्थं व्युत्पादयति—

६३] **अधिष्ठानतया देहद्वयावच्छिन्नचेतनः ॥**

६४) पंचीकृतापंचीकृतभूतकार्यत्वेन स्थूलसूक्ष्मरूपस्य देहद्वयस्याविद्याकल्पितस्याधारतया वर्तमानत्वेन ताभ्यां अवच्छिन्न आत्मा कूटस्थ इत्युच्यते ॥

६५ तत्र कूटस्थशब्दप्रवृत्तौ निमित्तमाह—

६६] **कूटवत् निर्विकारेण स्थितः कूटस्थः उच्यते ॥ २२ ॥**

६७ एवं कूटस्थं व्युत्पाद्य जीवस्य कूटस्थे कल्पितबुद्धिप्रतिबिंबकत्वेन तत्पक्षपातित्वात् तं व्युत्पादयति—

६८] **कूटस्थे कल्पिता बुद्धिः तत्र चित्प्रतिबिंबकः ॥**

॥ ५ ॥ कूटस्थका स्वरूप ॥

६२ ऐसैं दृष्टांतरूप च्यारीआकाशनकूं कहिके अब दार्ष्टांतिकचेतनविषै प्रथम कह्या जो घटाकाशस्थानीय कूटस्थचेतन ताकूं कहैहैं:—

६३] **अधिष्ठान होनैकरि दोनूंदेहनसैं अवच्छिन्न जो चेतन। सो कूटस्थ कहियेहै ॥**

६४) पंचीकृत औ अपंचीकृतभूतनके कार्य होनैकरि स्थूल औ सूक्ष्मरूप जे अविद्याकल्पित दोनूंदेह हैं। तिनका आधार होनैकरि वर्तमान होनैसैं तिन दोनूंदेहनकरि अवच्छिन्न कहिये उपहित जो [४३]आत्मा है। सो कूटस्थ ऐसैं कहियेहै ॥

६५ तिस आत्माविषै कूटस्थशब्दकी प्रवृत्तिमैं निमित्तकूं कहैहैं:—

६६] **कूट जो लोहारकी अहिरन। ताकी न्यांई निर्विकारपनैकरि स्थित है। यातैं कूटस्थ कहियेहै ॥ २२ ॥**

॥ ६ ॥ संसारीजीवका स्वरूप ॥

६७ ऐसैं कूटस्थकूं कहिके। जीवकूं कूटस्थविषै कल्पितबुद्धिमैं प्रतिबिंबरूप होनैकरि तिस कूटस्थका पक्षपाती कहिये बरोबरीका दूसरा होनैतैं। तिस जलाकाशस्थानीय जीवकूं कहैहैं:—

६८] **कूटस्थविषै कल्पित जो बुद्धि। तिसविषै जो ब्रह्मचेतनका प्रतिबिंब कहिये [४३]चिदाभास है। सो जीव है ॥**

४२ जीवसाक्षी ॥

४३ घटाकाशके आश्रित जलपूरितघटविषै महाकाशके प्रतिबिंबकी न्याई। कूटस्थविषै कल्पितस्थूलदेहरूप घटविषै स्थित अंतःकरण वा अविद्याअंशरूप जलविषै व्यापकचेतनका प्रतिबिंब **चिदाभास** है। सो अधिष्ठानकूटस्थसहित जीव कहियेहै ॥ इहां

कोई **आशंका** करैहै:—यद्यपि रूपरहित आकाशका रूपसहित जलविषै औ रूपरहित लालगुणका रूपसहित दर्पणआदिकविषै प्रतिबिंब देख्याहै। तथापि रूपरहित उपाधिविषै प्रतिबिंब देख्या नहीं ॥ यातैं रूपरहित कहिये चक्षुइंद्रियका अविषय अंतःकरण वा अविद्याअंशविषै रूपरहित चेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं ॥

या शंकाका यह **समाधान** है:—रूपसहित वस्तुविषै अवश्य प्रतिबिंब होवै यह नियम नहीं है ॥ काहेतैं नीलादिरूपसहित घटादिकविषै प्रतिबिंबके अदर्शनतैं ॥ अरु स्वच्छवस्तुविषै अवश्य प्रतिबिंब होवैहै यह नियम है ॥ यातैं रूपस-

टीकांक: १२६९ टिप्पणांक: ५४४	जलव्योम्ना घटाकाशो यथा सर्वस्तिरोहितः । तथा जीवेन कूटस्थः सोऽन्योऽन्याध्यास उच्यते ॥ ७६	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३१८

६९ तस्य जीवशब्दाभिधेयत्वे निमित्तमाह—

७०] **प्राणानां धारणात् जीवः ॥**

७१ कूटस्थातिरिक्तजीवकल्पनमप्रयोजकमित्याशंक्य अविकारिणः कूटस्थस्य संसारासंभवान्निर्वाहार्थं सोऽङ्गीकर्तव्य इत्याह (संसारेणेति)—

७२] **सः संसारेण युज्यते ॥ २३ ॥**

७३ ननु जीवातिरिक्तः कूटस्थोऽस्ति चेत् किमिति न प्रतिभासत इत्याशंक्य जीवेन तिरोहितत्वादिति सदृष्टांतमाह (जलेति)—

७४] **यथा जलव्योम्ना घटाकाशः**

---

६९ तिस चेतनके प्रतिबिंबकूं जीवशब्दके वाच्य होनैविषै निमित्तकूं कहैहैं:—

७०] **प्राणनके धारणतैं सो जीव कहियेहै ॥**

७१ ननु कूटस्थतैं भिन्न जीवका कल्पन निष्प्रयोजन है ॥ यह आशंकाकरि अविकारी जो कूटस्थ है। तिसकूं संसारके असंभवतैं प्रतीयमानसंसारके निर्वाहअर्थ। सो जीव अंगीकार करनैकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं:—

७२] **सो जीव जन्ममरणादिरूप संसारके साथि जुडताहै ॥ २३ ॥**

॥ २ ॥ जीव औ कूटस्थका अन्योऽन्याध्यास ॥ १२७३–१३१८ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतसिद्धांतमैं अध्यासका स्वरूप ॥

७३ ननु जीवसैं भिन्न जब कूटस्थ है तब क्यूं नहीं भासताहै ? यह आशंकाकरि जीवकरि तिरोहित होनैतैं नहीं भासताहै। ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

७४] **जैसैं जलाकाशकरि घटाकाश**

हित वस्तु प्रतिबिंबवान् होनैकूं योग्य है रूपवान् होनैतैं ॥ यह अनुमान रूपसहित वस्तुविषै प्रतिबिंबका साधक नहीं है॥ काहेतैं जो जो रूपवान् है सो सो प्रतिबिंबवान् है । इस व्याप्तिके नीलादिरूपवान् घटादिकविषै व्यभिचारतैं ॥ औ स्वच्छवस्तु प्रतिबिंबवान् होनैकूं योग्य है स्वच्छ होनैतैं ॥ यह अनुमान स्वच्छविषै प्रतिबिंबवान्‌ताका साधक है । काहेतैं जो जो स्वच्छ है सो सो प्रतिबिंबवान् है । इस व्याप्तिके अव्यभिचारतैं ॥

ऐसैं अंतःकरण वा अविद्याअंश रूपरहित है तौ बी सत्वगुणयुक्तताकरि स्वच्छ है। यातैं चेतनके प्रतिबिंबवान् है ॥ इहां यह अनुमान है:–अंतःकरण वा अविद्याअंश चेतनके प्रतिबिंबवान् होनैकूं योग्य है स्वच्छ होनैतैं । दर्पणआदिकनकी न्याई ॥ औ

विचारकरि देखिये तौ श्रुतिप्रतिपादितअर्थविषै तर्क करना अयोग्यहीं है औ दृष्टकल्पनारूप युक्तिकूं पुरुषकी बुद्धिकरि कल्पित होनैतैं तिसकी श्रुतिअर्थविषै योजना संभवै बी नहीं । काहेतैं श्रुतिप्रतिपादितस्वर्गादिकविषै दृष्टकल्पनाका अभाव है ॥ यातैं "जीवईशकूं आभासकरि कहैहै" । "छाया । आतप (प्रतिबिंब अरु सूर्यकी न्याई विलक्षण जीव अरु परमात्मा)कूं ब्रह्मवित् कहतेहैं" । "रूप रूप (उपाधि उपाधि)कै तांई प्रतिरूप (प्रतिबिंब) होताभया" । "एकहीं भूतात्मा भूतभूतविषै स्थित हुया जलचंद्रकी न्याई एकभांतिसैं औ बहुभांतिसैंहीं देखियेहै" इत्यादिश्रुतिउक्त औ "याहीतैं सूर्यक (जलगतसूर्य)आदिककी न्याई उपमा है" इत्यादिसूत्रउक्त चिदाभास आरोपविषै मान्याचाहिये ॥

४४ प्राणधारणका नाम **जीवन** है ॥ प्राणके निर्गमन हुये स्थित होनैकूं असमर्थ औ प्राणकूं शरणकरिके प्राणसंज्ञाकूं प्राप्त जे वाकूआदिकइंद्रिय हैं । तिनकी शरीरविषै स्थितिकी कारणताका नाम **प्राणधारण** है ॥ यह प्राणइंद्रियसंवाद ब्राह्मण नाम बृहदारण्यकके प्रकरणविषै स्पष्ट है ॥ तिस प्राण कहिये इंद्रियनके धारणरूप प्राणके व्यापारका सन्निधिमात्रकरि प्रेरकपना कूटस्थविषै कल्पितबुद्धिमैं प्रतिबिंबरूप चिदाभासकूं है । यातैं प्राणोंके धारणतैं यह चिदाभास **जीव** कहियेहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३१९ | टीकांकः १२७५ | टिप्पणांकः ५४५

अयं जीवो न कूटस्थं विविनक्ति कदाचन ।
अनादिरविवेकोऽयं मूलाविद्येति गम्यताम् ॥ २५ ॥

सर्वः तिरोहितः तथा जीवेन कूटस्थः ॥

७५ नन्वेतत्तिरोधानं न क्वापि शास्त्रे प्रतिपादितम् इत्याशंक्य तस्यान्योऽन्याध्यासशब्देनाभिधानान्मैवमित्याह—

७६] सः अन्योऽन्याध्यासः उच्यते ॥ २४ ॥

सर्व तिरोहित कहिये ढांप्या होवैहै । **तैसें जीवकरि कूटस्थ तिरोहित है ॥**

७५ ननु यह चिदाभासकरि कूटस्थका तिरस्कार कहूं वी शास्त्रविषै प्रतिपादन किया नहीं है ॥ यह आशंकाकरि तिस उक्ततिरोधानकूं अन्योऽन्याध्यासशब्दकरि शास्त्रविषै कथनकिया होनैतैं । यह तिरोधान कहूं प्रतिपादन कीया नहीं । ऐसें कहना बनै नहीं । यह कहैहैं:—

७६] सो जीवकरि कूटस्थका तिरोधान शारीरकभाष्यआदिकशास्त्रनविषै **अन्योऽन्याध्यास कहियेहै ॥ २४ ॥**

७७ नन्वयमेवाध्यासश्चेदस्य कारणरूपाऽविद्या वक्तव्येत्याशंक्य जीवकूटस्थयोः संसारदशायां भेदाप्रतीतिरेव अविद्येत्याह—

७८] अयं जीवः कदाचन कूटस्थं न विविनक्ति अयं अनादिः अविवेकः मूलाविद्या इति गम्यताम् ॥ २५ ॥

॥ २ ॥ अध्यासका कारण अविद्या ॥

७७ ननु जब यह जीवकरि कूटस्थका तिरोधानहीं अध्यास है । तब इस अध्यासकी कारणरूप अविद्या कहीचाहिये ॥ यह आशंकाकरि जीव औ कूटस्थकी संसारअवस्थाविषै जो भेदकी अप्रतीति है सोई अविद्या है। ऐसें कहैहैं:—

७८] यह जीव कदाचित् कूटस्थनिजरूपकूं विवेचन करता नहीं । कहिये अपनैतैं भिन्नकरि जानता नहीं है । **यह जो अनादिकालका अविवेक** कहिये कार्यअज्ञान है सो **मूलाविद्या है । ऐसें जानना ॥ २५ ॥**

४५ विचार किये जो होवै नहीं वा आवरणविक्षेपशक्तिवाली अनादिभावरूप जो है । सो **अविद्या** कहियेहै ॥ सो अविद्या । मूलाविद्या औ तूलाविद्याके भेदतैं **दोभांतिकी है ॥** ब्रह्मआत्माके स्वरूपकी आच्छादक जो अविद्या सो **मूलाविद्या है** औ घटादिअवच्छिन्नचेतनकी आच्छादक (शुक्तिरजतादिककी उपादान) जो अविद्या सो **तूलाविद्या है ॥** तिनमैं कार्यकारणभेदतैं **मूलाविद्या दोभांतिकी है ॥** औरविषै औरकी बुद्धिआदिककी जनक **कारणरूप मूलाविद्या है** औ औरविषै औरकी बुद्धिआदिकस्वरूप **कार्यरूप मूलाविद्या है ॥** सो कार्यरूप बी । अविद्या । अस्मिता । राग । द्वेष । अभिनिवेश । भेदतैं जे **पंचक्लेश** हैं तिस आदिरूप है ॥ यह उपरि कही जो अविवेकरूप मूलाविद्या सो प्रथम क्लेशरूप कार्याविद्या है ॥ सो कारणरूप मूलाविद्याके अविनाभूत है यातैं तिसपूर्वकहीं है ॥ पंचक्लेशका लक्षण आगे ५७२ वें टिप्पणविषै कहियेगा ॥ इहां जो मूलाविद्या कहीहै सो प्रत्यक्षअनर्थकी हेतु होनैतैं कार्यरूपहीं है ॥

टीकांक: १२७९ टिप्पणांक: ५४६	[८०] विक्षेपावृत्तिरूपाभ्यां द्विधाऽविद्या व्यवस्थिता । [८२] न भाति नास्ति कूटस्थ इत्यापादनमावृतिः २६ [८५] अज्ञानी विदुषा पृष्टः कूटस्थं न प्रबुध्यते । न भाति नास्ति कूटस्थ इति बुद्ध्वा वदत्यपि २७	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३२० ३२१

७९ पूर्वोक्तस्य जीवस्य अविद्याकल्पितत्वस्य स्पष्टीकरणाय अविद्यां विभजते—

८०] विक्षेपाऽऽवृत्तिरूपाभ्यां द्विधा अविद्या व्यवस्थिता ॥

८१ विक्षेपहेतुत्वेनाभ्यर्हितत्वादावृतिं प्रथमं लक्षयति (न भातीति)—

८२] कूटस्थः "न भाति" "न अस्ति" इति आपादनं आवृत्तिः ॥

८३) कूटस्थो "न भाति" न प्रकाशते । "नास्ति" चेतिव्यवहारहेतुरावरणमित्यर्थः ॥ २६ ॥

८४ नन्वविद्यायास्तत्कृतावरणस्य च सद्भावे किं प्रमाणमित्याशंक्य लोकानुभव एवेत्याह (अज्ञानीति)—

८५] विदुषा पृष्टः अज्ञानी "कूटस्थं न प्रबुध्यते । कूटस्थः न भाति न अस्ति" इति बुद्ध्वा वदति अपि ॥

८६) विदुषा कूटस्थं किं जानासीति पृष्टोऽज्ञानी तं न जानामीत्यज्ञानमनुभूय वक्ति । अयमविद्याऽनुभवः । न केवलमज्ञानानुभवमेव वक्ति । अपि तु "नास्ति न भाति

॥ ३ ॥ अविद्याके दोविभाग औ आवरणका स्वरूप ॥

७९ पूर्व २३ वें श्लोकविषै उक्त जीवके अविद्याकरि कल्पितपनैके स्पष्ट करनैवास्ते अविद्याकूं विभाग करैहैं:—

८०] विक्षेप औ आवृत्तिरूपकरि दोप्रकारसैं अविद्या स्थित है ॥

८१ विक्षेपके[४६] हेतुपनैकरि अंगीकार करी होनैतैं आवृत्ति जो आवरण । ताकूं प्रथम लखावैहैं:—

८२] "कूटस्थ नहीं भासताहै औ नहीं है" इसप्रकारका जो संपादन सो आवृत्ति है ॥

८३) "कूटस्थ नहीं भान होताहै औ नहीं है" इस व्यवहारका हेतु आवरण है ॥ यह अर्थ है ॥ २६ ॥

॥ ४ ॥ अविद्या औ आवरणके सद्भावमैं स्वानुभूतिप्रमाण ॥

८४ ननु अविद्या औ तिसके किये आवरणके सद्भावविषै कौंन प्रमाण है ? यह आशंकाकरि लोकनका अनुभवहीं प्रमाण है । ऐसैं कहैहैं:—

८५] अज्ञानी । ज्ञानीकरि पूछ्याहुवा "कूटस्थकूं मैं नहीं जानताहूं औ कूटस्थ नहीं भासताहै अरु नहीं है" ऐसैं जानिकरि कहता बी है ॥

८६) ज्ञानीकरि "कूटस्थकूं क्या जानता हैं ?" इसरीतिसैं पूछ्याहुवा अज्ञानी "तिस कूटस्थकूं नहीं जानताहूं" ऐसैं अज्ञानकूं अनुभवकरिके कहताहै । यह अविद्याका अनुभव है ॥ औ केवल अज्ञानके अनुभवकूंहीं

४६ कर्तृत्वभोक्तृत्वआदिकशोकरूप संसारसहित जो देहादिप्रपंच औ ताका ज्ञान। सो विक्षेप है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३२२	स्वप्रकाशे कुतोऽविद्या तां विना कथमावृतिः । इत्यादितर्कजालानि स्वानुभूतिर्ग्रसत्यसौ ॥२८॥	टीकांकः १२८७ टिप्पणांकः ५४७

कूटस्थ" इति कूटस्थाभावाभाने चानुभूय वदन्ति । अयमावरणानुभवः । अत उभयत्रानुभवः प्रमाणमिति भावः ॥ २७ ॥

८७ ननु भवन्मते आत्मनः स्वप्रकाशत्वात्तस्मिन् अविद्या नोपपद्यते तेजस्तिमिरयोरिव विरुद्धस्वभावत्वेन तयोः संबंधानुपपत्तेरविद्याऽभावे च तत्कृतमावरणं दुर्निरूप्यं स्यात् तदभावे च तन्मूलकस्य विक्षेपस्यासंभवः विक्षेपाभावे च ज्ञाननिवर्त्यस्यानर्थस्याभावात् ज्ञानवैयर्थ्यं ततस्तत्प्रतिपादकं शास्त्रं अप्रमाणं स्यादित्याशंक्यैतत्सर्वं पूर्वोक्तानुभववाधितमित्याह—

८८] स्वप्रकाशे अविद्या कुतः तां विना आवृतिः कथं इत्यादितर्कजालानि असौ स्वानुभूतिः ग्रसति ॥

८९) "न हि दृष्टेऽनुपपन्नं नाम" । इति न्यायादिति भावः ॥ २८ ॥

कहताहै ऐसैं नहीं। किंतु "कूटस्थ नहीं है औ नहीं भासताहै" ऐसैं कूटस्थके अभावकूं औ अभान कहिये अप्रतीतिकूं अनुभवकरिके कहताहै ॥ यह आवरणका अनुभव है ॥ यातैं अविद्या औ आवरण इन दोनूंविषै अनुभवरूप प्रमाण है ॥ २७ ॥

८७ ननु तुमारे वेदांतमतमैं आत्माकूं स्वप्रकाश होनैतैं तिस स्वप्रकाशआत्माविषै अविद्या बनै नहीं। काहेतैं तेज जो प्रकाश औ तिमिर जो अंधकार। इन दोनूंकी न्याई परस्परविरुद्धस्वभाववाले होनैकरि तिन आत्मा औ अविद्याके संबंधके असंभवतैं ॥ औ अविद्याके अभाव हुए तिस अविद्याका किया आवरण दुःखसैं वी निरूपण करनैकूं अयोग्य होवैगा औ तिस आवरणके अभावहुये तिस आवरणरूप कारणवाले विक्षेपरूप संसारका असंभव होवैगा ॥ औ विक्षेपके अभावहुये ज्ञानसैं निवारण करनै योग्य अनर्थके अभावतैं ज्ञानकी व्यर्थता होवैगी ॥ ता ज्ञानकी व्यर्थतातैं तिस ज्ञानका प्रतिपादक वेदांतशास्त्र अप्रमाण होवैगा ॥ यह आशंकाकारि यह सर्वशंकाजाल पूर्व २७ वें श्लोकाविषै उक्त लोकानुभवकरि बाधित है। ऐसैं कहैहैं:—

८८] स्वप्रकाशआत्माविषै अविद्या। सूर्यविषै तमकी न्याई कहांसैं होवैगी औ तिस अविद्याविना आवृत्ति कैसैं होवैगी? इनसैं आदिलेके तर्कके जालनकूं यह स्वानुभूति कहिये २७ श्लोकउक्त अनुभवप्रमाण ग्रसैहै नाम निवारैहै ॥

८९) "दृष्ट जो अनुभूतवस्तु । तिसविषै अनुपपन्न कहिये असंभवित नहीं है ॥" इस न्यायके बलतैं अनुभूति विकल्पजालकूं विनाश करैहै ॥ यह भाव है ॥ २८ ॥

५४७ "सूर्यविषै तमकी न्याई" यह जो दृष्टांत है सो सिद्धांतके तुल्य नहीं है ॥ काहेतैं सूर्यआदिक जे प्रकाश हैं वे अग्निके विशेषरूप हैं ॥ यातैं तिनका तौ वृत्तिआरूढविशेषचैतन्यसैं अज्ञानके विरोधकी न्याई अंधकारसैं विरोध है तथापि काष्ठादिकवस्तुनविषै अनुस्यूत जो अग्निका सामान्यरूप है। तिसका सुषुप्तिआदिकस्थलविषै प्रकाशमान सामान्यचैतन्यसैं अज्ञानके अविरोधकी न्याई विरोध नहीं है ॥ तातैं यह दृष्टांत असदृश है औ स्वप्रकाशविषै अविद्याके संभवमैं स्वानुभूतिरूप प्रबलप्रमाण है ॥

टीकांक: १२९० टिप्पणांक: ॐ	स्वानुभूतावविश्वासे तर्कस्याप्यनवस्थितेः । कथं वा तार्किकंमन्यस्तत्त्वनिश्चयमाप्नुयात् ॥२९॥ बुद्ध्यारोहाय तर्कश्चेदपेक्षेत तथा सति । स्वानुभूत्यनुसारेण तर्क्यतां मा कुतर्क्यताम् ॥३०॥ स्वानुभूतिरविद्यायामावृतौ च प्रदर्शिता । अतः कूटस्थचैतन्यमविरोधीति तर्क्यताम् ॥३१॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३२३ ३२४ ३२५

९० नन्वनुभवस्योक्ततर्कविरोधेनाभासत्वात् न तेन तत्त्वनिश्चय इत्याशंक्य अनुभवभामाण्यानभ्युपगमे केवलं तर्कस्य निश्चायकत्वस्य त्वयैवाभ्युपगतत्वान्न तार्किकस्य तत्त्वनिश्चयः क्वापि स्यादित्याह—

९१] **स्वानुभूतौ अविश्वासे तर्कस्य अपि अनवस्थितेः तार्किकंमन्यः तत्त्वनिश्चयं कथं वा आप्नुयात् ॥ २९ ॥**

९२ नन्वनुभवस्तत्त्वनिश्चायक एव तथाऽप्यनुभूयमानस्यार्थस्य संभावितत्वज्ञानाय तर्कोऽप्यभ्युपेतव्य इत्याशंकामनूद्य तर्ह्यनुभवानुसारेणैव तर्को वर्णनीयो न तद्विरोधेनेत्याह—

९३] **बुद्ध्यारोहाय तर्कः अपेक्षेत चेत् तथा सति स्वानुभूत्यनुसारेण तर्क्यतां मा कुतर्क्यताम् ॥ ३० ॥**

९४ कोऽसावनुभवो यदनुसारेण तर्को वर्णनीय इत्याकांक्षायां पूर्वोक्तमविद्यादिगोचरमनुभवं स्मारयति—

९५] **स्वानुभूतिः अविद्यायां च आवृतौ प्रदर्शिता ॥**

॥ ९ ॥ अनुभवविरुद्ध तर्कका अनादर ॥

९० ननु २७ श्लोकउक्तअनुभवकूं २८ श्लोकउक्ततर्कके विरोधकरि आभासरूप होनैतैं तिस अनुभवकरि तत्त्वका निश्चय नहीं होवैहै ॥ यह आशंकाकरि अनुभवकी प्रमाणताके अनंगीकार हुये केवल तर्कके निश्चायकपनैकूं तेरेकरिहीं अंगीकार कियाहोनैतैं । हे तार्किक ! तेरेकूं तत्त्वका निश्चय कहूं वी नहीं होवैगा। ऐसैं कहैहैं:—

९१] **स्वानुभूतिविषै अविश्वासके हुये औ तर्ककी वी स्थितिके अभावतैं । तार्किकमन्य** कहिये आपकूं तर्कमतके अनुसारी माननैहारा । **वस्तुस्वरूपके निश्चयकूं कैसैं प्राप्त होवै ? ॥ २९ ॥**

॥ ६ ॥ अनुभवअनुसारीतर्कका आदर ॥

९२ ननु अनुभव । तत्त्वका निश्चय करावनैहाराहीं है तथापि अनुभव किया अर्थ जो तत्त्व । ताके संभव होनैके ज्ञानअर्थ तर्क वी अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ इस आशंकाकूं अनुवादकरिके । तब अनुभवके अनुसारकरिहीं तर्क वर्णन करनैकूं योग्य है औ तिस अनुभवके विरोधकरि नहीं । यह कहैहैं:—

९३] **बुद्धिविषै पदार्थके आरूढ होनैअर्थ जब तर्क अपेक्षित है। तब तैसैं हुये अपनै अनुभवके अनुसारकरि तर्क करना औ कुतर्क मति करना ॥ ३० ॥**

॥ ७ ॥ अविद्याके अनुभवके स्मरणपूर्वक फलितार्थ ॥

९४ ननु कौंन यह अनुभव है जिसके अनुसारकरि तर्क वर्णन करनैकूं योग्य है ? इस पूछनैकी इच्छाविषै पूर्व २७ श्लोकउक्त अविद्या औ आवरणके विषय करनैहारे अनुभवकूं स्मरण करावैहैं:—

९५] **स्वानुभूति । अविद्या औ आवरणविषै पूर्व दिखाई ॥**

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३२६ ३२७	तच्चेद्विरोधि केनेयमावृतिर्ह्यनुभूयताम् । विवेकस्तु विरोध्यस्यास्तत्त्वज्ञानिनि दृश्यताम् ३२ अविद्यावृतकूटस्थे देहद्वययुता चितिः । शुक्तौ रूप्यवदध्यस्ता विक्षेपाध्यास एव हि॥३३॥	टीकांकः १२९६ टिप्पणांकः ॐ

९६ फलितमाह—

९७] अतः "कूटस्थचैतन्यं अविरोधि" इति तर्क्यताम् ॥ ३१ ॥

९८ तमेव तर्कमभिनीय दर्शयति—

९९] तत् विरोधि चेत् । इयम् आवृतिः केन अनुभूयताम् हि ॥

१३००) अविद्यावरणसाधकचैतन्यस्यैव तद्विरोधित्वे अविद्याप्रतीतिरेव न स्यादिति भावः ॥

१ तर्ह्यविद्यायाः को विरोधी इत्यत आह—

२] विवेकः तु अस्याः विरोधी ॥

३) विवेक उपनिषद्विचारजन्यं ज्ञानम् ॥

४ विवेकस्य अविद्याविरोधित्वं क दृष्टमित्यत आह—

५] तत्त्वज्ञानिनि दृश्यताम् ॥ ३२ ॥

६ एवमविद्यावरणे दर्शयित्वा विक्षेपाध्यासमाह—

७] अविद्यावृतकूटस्थे शुक्तौ रूप्यवत् अध्यस्ता देहद्वययुता चितिः विक्षेपाध्यास एव हि ॥

---

९६ फलितअर्थकूं कहैहैं:—

९७] यातैं कूटस्थचैतन्य अविद्या औ आवरणसैं विरोधरहित है। इसरीतिसैं तर्क करना ॥ ३१ ॥

॥ ८ ॥ ३० श्लोकउक्ततर्कका स्वरूप औ अविद्याका विरोधि (विवेक) ॥

९८ तिसी अनुभवअनुसारीहीं तर्ककूं आकारकरि दिखावैहैं:—

९९] सो कूटस्थचैतन्य जब विरोधी होवै तब यह आवरण किसकरि अनुभव करियें ?

१३००) अविद्याआवरणके साधक चैतन्यकूंहीं तिस अविद्याआवरणके विरोधी हुये "कूटस्थकूं मैं नहीं जानूंहूं" इस आकारवाली अविद्याकी प्रतीति नहीं होवैगी औ प्रतीति होवैहै । यातैं कूटस्थ । अविद्याका विरोधी नहीं है । यह भाव है ॥

१ ननु तब अविद्याका कौंन विरोधी है? तहां कहैहैं:—

२] विवेक तौ इस अविद्याका विरोधी है ॥

३) उपनिषदनके विचारसैं जन्य ज्ञान तौ अविद्याका विरोधी है ॥

४ "ननु विवेककूं अविद्याका विरोधीपना कहां देख्याहै ? तहां कहैहैं:—

५] तत्त्वज्ञानीविषै सो विवेककूं अविद्याका विरोधीपना देखलेना ॥ ३२ ॥

॥९॥ शुक्तिदृष्टांतसहित विक्षेपके अध्यासका स्वरूप ॥

६ ऐसैं अविद्या औ आवरणकूं दिखायके विक्षेपके अध्यासकूं कहैहैं:—

७] अविद्याकरि आवृत कूटस्थविषै । सीपीविषै रूपेकी न्याई अध्यस्त जो स्थूलसूक्ष्म दोनूंदेहयुक्त चिदाभास है । सो विक्षेपका अध्यासहीं है ॥

टीकांकः १३०८ टिप्पणांकः ५४८	इदमंशश्च सत्यत्वं शुक्तिगं रूप्य ईक्ष्यते । स्वयंत्वं वस्तुता चैवं विक्षेपे वीक्ष्यतेऽन्यगम् ॥ ३४ ॥ नीलपृष्ठत्रिकोणत्वं यथा शुक्तौ तिरोहितम् । असंगानंदताद्येवं कूटस्थेऽपि तिरोहितम् ॥ ३५ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३२८ ३२९

८ पूर्वोक्ताविद्यावरणवति कूटस्थे प्रत्यगात्मन्यारोपितस्थूलसूक्ष्मशरीरसहितश्चिदाभासो **विक्षेपाध्यास** इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

९ अस्य विक्षेपस्याध्यासत्वसिद्धये शुक्तिरजताध्याससाम्यं दर्शयति (इदमंशश्चेति)—

१०] शुक्तिगं इदमंशः च सत्यत्वं रूप्ये ईक्ष्यते । एवं अन्यगं स्वयंत्वं च वस्तुता विक्षेपे वीक्ष्यते ॥

११) शुक्तिकायां स्थितं पुरोदेशादिसंबंधत्वमबाध्यत्वं च यथारोपिते च रजतेऽवभासते । एवं स्वयंत्वं वस्तुत्वं च कूटस्थनिष्ठमारोपिते चिदाभासेऽवभासते इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

१२ एवं सामान्यांशप्रतीतिमुभयत्र प्रदर्श्य विशेषांशाप्रतीतिसाम्यं दर्शयति—

१३] नीलपृष्ठत्रिकोणत्वं यथा

८) पूर्व २७ श्लोकउक्तअविद्या औ आवरणवाले कूटस्थरूप प्रत्यगात्माविषै आरोपित स्थूलसूक्ष्मशरीरसहित जो चिदाभास है सो विक्षेपाध्यास है ॥ यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

॥ १० ॥ विक्षेपअध्यासकी शुक्तिगतअध्याससैं तुल्यता कहिये सामान्यअंशकी प्रतीति ॥

९ इस विक्षेपके अध्यासताकी कहिये भ्रांतिरूपताकी सिद्धिअर्थ शुक्तिरजतके अध्यासकी समताकूं दिखावैहैं:—

१०] शुक्तिगतइदंअंश औ सत्यत्व जैसैं रूपेविषै देखियेहै । ऐसैं अन्य जो कूटस्थ तद्गत स्वयंपना कहिये आपपना औ वस्तुपना कहिये सत्पना । विक्षेपविषै देखियेहै ॥

११) शुक्तिविषै स्थित जो सन्मुखदेश औ[48] वर्तमानकालसैं संबंधपना औ अबाध्यपना जैसैं आरोपितरूपेविषै भासताहै। ऐसैं स्वयंपना औ वस्तुता कहिये वास्तवपना जो कूटस्थविषै स्थित है सो आरोपितचिदाभासविषै भासताहै ॥ यह अर्थ है ॥ ३४ ॥

॥ ११ ॥ विक्षेपअध्यासकी शुक्तिगतरजतअध्याससैं विशेषअंशकी अप्रतीतिकरि तुल्यता ॥

१२ ऐसैं सामान्यअंशकी[49] प्रतीतिकी समताकूं शुक्ति औ कूटस्थरूप इन दोनूंठिकानै दिखायके विशेषअंशकी[50] अप्रतीतिकी समताकूं दिखावैहैं:—

१३] नीलपृष्ठ औ त्रिकोणयुक्तपना ।

४८ इसरूपवाला इदंअंश ॥

४९ जो भ्रांतिके साथि प्रतीत होवैहै औ जिसकी प्रतीति विना भ्रांति होवै नहीं। ऐसा जो अंश सो **सामान्यअंश** कहियेहै ॥ ताहीकूं **आधार** बी कहैहैं ॥ ऐसा दृष्टांतविषै इदंपना नाम इदंअंश औ अबाध्यपना है औ सिद्धांतविषै स्वयंपना औ वास्तवपना **सामान्यअंश** हैं ॥

५० जो भ्रांतिकालमैं प्रतीत होवै नहीं किंतु जिसकी प्रतीतिके हुये भ्रांति दूरी होवैहै सो **विशेषअंश** कहियेहै ॥ ताहीकूं **अधिष्ठान** बी कहैहैं ॥ ऐसे शुक्तिदृष्टांतविषै नीलपृष्ठता त्रिकोणता शुक्तित्वआदिक हैं ॥ सिद्धांतविषै चेतनता आनंदता असंगता अद्वयताआदिक **विशेषअंश** हैं ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
२३०	आरोपितस्य दृष्टांते रूप्यं नाम यथा तथा । कूटस्थाध्यस्तविक्षेपनामाहमिति निश्चयः ॥२६॥	१३१४
२३१	इदमंशं स्वतः पश्यन्रूप्यमित्यभिमन्यते । तथा स्वं च स्वतः पश्यन्नहमित्यभिमन्यते ॥२७॥	टिप्पणांक: ॐ

शुक्तौ तिरोहितम् । एवं कूटस्थे अपि असंगाऽऽनंदतादि तिरोहितम् ॥३५॥

१४ साम्यांतरं दर्शयति (आरोपितस्येति)—

१५] दृष्टांते आरोपितस्य रूप्यं नाम यथा । तथा कूटस्थाध्यस्तविक्षेपनाम "अहं" इति निश्चयः ॥

१६) दृष्टांते शुक्तिस्थले आरोपितपदार्थस्य रूप्यं नाम रूप्यमिति नाम यथा । एवं कूटस्थे कल्पितस्य चिदाभासरूपविक्षेपस्य पूर्वोक्तस्य । "अहं" इति नाम इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

१७ ननु दृष्टांते पुरोवर्त्तिनि शुक्तिशकले इंद्रियसन्निकर्षे जाते सति रूप्यमिदमिति तदतिरिक्तरजताभिमान उपपद्यते नैवं दार्ष्टांतिके आत्मातिरिक्तवस्त्वभिमान इत्याशंक्यात्रापि स्वप्रकाशतया चिदात्मन्यवभासमाने तदतिरिक्तोऽहमित्यभिमान उपलभ्यतेऽतो न वैषम्यमित्यभिप्रायेणाह—

१८] इदमंशं स्वतः पश्यन् रूप्यम् इति अभिमन्यते । तथा स्वं च स्वतः पश्यन् अहम् इति अभिमन्यते ॥३७॥

यह विशेषअंश जैसें शुक्तिविषै अविद्यासैं तिरोधानकूं पायाहै । ऐसैं कूटस्थविषै बी असंगता औ आनंदताआदिकविशेषअंश तिरोहित है ॥ ३५ ॥

॥ १२ ॥ विक्षेपअध्यासकी शुक्तिगतरजतअध्याससैं नामकल्पनाकी तुल्यता ॥

१४ अन्यसमताकूं दिखावैहैं:—

१५] जैसैं सीपीरूप दृष्टांतविषै आरोपितका रूप्य नाम है । तैसैं कूटस्थविषै अध्यस्तविक्षेपका नाम "अहं" है । यह निश्चय है ॥

१६) शुक्तिदृष्टांतविषै आरोपितपदार्थका जैसें रूपा ऐसा नाम है । ऐसैं दार्ष्टांतकूटस्थविषै कल्पित पूर्व ३३ वें श्लोकउक्तचिदाभासरूप विक्षेपका "अहं" कहिये "मैं" यह नाम है ॥ यह अर्थ है ॥ ३६ ॥

॥ १३ ॥ सिद्धांतमें सामान्यविशेषअंशके भेदकी शंकाका समाधान ॥

१७ ननु सन्मुखदेशमें स्थित सीपीके टुकडेरूप दृष्टांतविषै इंद्रियके संबंधके उपजेहुये "रूप्य यह है" इसरीतिसैं तिस शुक्तितैं भिन्न रूपेका अभिमान बनैहै । ऐसैं दार्ष्टांतिक जो कूटस्थआतमा । तिसविषै आत्मातैं भिन्नवस्तुका अभिमान बनै नहीं । यह आशंकाकरि इहां दार्ष्टांतविषै बी स्वप्रकाशपनैकरि चिदात्माकूटस्थके भासमान होते तिस कूटस्थतैं भिन्न "अहं" इसरीतिका अभिमान प्रतीत होवैहै ॥ यातैं शुक्तिरूप दृष्टांत औ कूटस्थरूप दार्ष्टांतकी विषमता नहीं है । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

१८] जैसैं इदंअंशकूं पुरुष स्वरूपतैं देखताहुआ "रूप्य है" ऐसैं मानताहै । तैसैं स्वयंकूं निजरूपतैं देखताहुवा "अहं" ऐसैं मानताहै ॥ ३७ ॥

टीकांकः १३१९ टिप्पणांकः ॐ

इदंत्वरूप्यते भिन्ने स्वत्वाहंते तथेष्यताम् ।
सामान्यं च विशेषश्च उभयत्रापि गम्यते ॥३८॥
२२
देवदत्तः स्वयं गच्छेत्त्वं वीक्षस्व स्वयं तथा ।
अहं स्वयं न शक्नोमीत्येवं लोके प्रयुज्यते ॥३९॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३३२ ३३३

१९ ननु स्वयमहंशब्दयोरेकार्थत्वात् कथं दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोः साम्यमित्याशंक्येदंरूप्यशब्दार्थयोः स्वयमहंशब्दार्थयोश्च सामान्यविशेषरूपत्वस्योभयत्र साम्यान्मैवमित्याह—

२०] इदंत्वरूप्यते भिन्ने तथा स्वत्वाहंते इष्यताम् सामान्यं च विशेषः च उभयत्र अपि गम्यते ॥ ३८ ॥

२१ स्वयंशब्दार्थस्य सामान्यरूपत्वं स्पष्टीकर्तुं लौकिकं प्रयोगं तावद्दर्शयति—

२२] "देवदत्तः स्वयं गच्छेत्" । तथा "त्वं स्वयं वीक्षस्व" । "अहं स्वयं न शक्नोमि" इति एवं लोके प्रयुज्यते ॥ ३९ ॥

॥ ३ ॥ स्वयंशब्द औ आत्माशब्दके अर्थके अभेदसहित कूटस्थ औ चिदाभासका भेद ॥ १३१९–१३८८ ॥

॥ १ ॥ स्वयंअहंशब्दके अर्थके भेदकी शंकाका समाधान ॥

१९ ननु स्वयंशब्द औ अहंशब्द । इन दोनूंका एकअर्थ होनैतैं शुक्तिदृष्टांत औ दार्ष्टांतिकआत्माकी समता कैसैं होवैगी ? यह आशंकाकरि इदंशब्द औ रूप्यशब्दके अरु स्वयंशब्द औ अहंशब्दके क्रमतैं सामान्यरूप औ विशेषरूपपनैकूं दृष्टांत औ दार्ष्टांत दोनूंस्थलमैं सम होनैतैं । दृष्टांत औ दार्ष्टांतकी समता कैसैं होवैगी । यह शंका बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

२०] जैसैं इदंता कहिये यहपना औ रूप्यता दोनूं भिन्न हैं । तैसैंहीं स्वयंता औ अहंता भिन्न अंगीकार कियेचाहिये । काहेतैं सामान्य औ विशेष जातैं दृष्टांत दार्ष्टांत दोनूंविषै बी देखियेहै ॥ ३८ ॥

॥ २ ॥ स्वयंशब्दके अर्थकी सामान्यरूपतामैं लौकिकव्यवहार ॥

२१ स्वयंशब्दके अर्थकी सामान्यरूपताकूं स्पष्ट करनैकूं लोकप्रसिद्धव्यवहारकूं प्रथम दिखावैहैं:—

२२] "देवदत्त कहिये अमुकपुरुष स्वयं नाम आप जाताहै" तैसैं "तूं स्वयं देख" औ "मैं स्वयं नहीं समर्थ हौं" इसप्रकार लोकविषै प्रयोग होवैहै ॥ ३९ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
३३४	[२४]इदं रूप्यमिदं वस्त्रमिति यद्वदिदं तथा । असौ त्वमहमित्येषु स्वयमित्यभिमन्यते ॥ ४० ॥	१३२३
३३५	[२७]अहंत्वाद्भिद्यतां स्वत्वं कूटस्थे तेन किं तव । [२८]स्वयंशब्दार्थ एवैष कूटस्थ इति मे भवेत् ॥४१॥	टिप्पणांकः ५५१

२३ भवत्वेवं लोके प्रयोगः कथमेतावता स्वयंशब्दार्थस्य सामान्यरूपत्वमित्याशंक्येदंशब्दार्थवदित्याह—

२४] "इदं रूप्यं । इदं वस्त्रं" । इति यद्वत् इदं। तथा "असौ । त्वं । अहं"। इति एषु "स्वयं" इति अभिमन्यते ॥

२५) यथा रूप्यवस्त्रादौ सर्वत्र इदंशब्दस्य प्रयुज्यमानत्वात्तदर्थस्य सामान्यरूपत्वं। तथाऽसौ त्वमहमिति आदौ सर्वत्र स्वयंशब्दप्रयोगात्तदर्थस्यापि सामान्यरूपत्वमवगम्यत इत्यर्थः ॥ ४० ॥

२६ भवतु स्वयमहंशब्दयोः लोके भेद एतावता कूटस्थात्मनि किमायातमिति पृच्छति—

२७] अहंत्वात् स्वत्वं भिद्यतां तेन कूटस्थे तव किम् ॥

॥ ३ ॥ स्वयंशब्दके अर्थकी सामान्यरूपताकी इदंशब्दार्थरूप उदाहरणकरि सिद्धि ॥

२३ ऐसैं लोकविषै प्रयोग होहु । इतनैंकरि स्वयंशब्दके अर्थकी सामान्यरूपता कैसैं होवैगी ? यह आशंकाकरि इदंशब्दके अर्थकी न्याईं स्वयंशब्दके अर्थकी सामान्यरूपता होवैगी । यह कहैहैं:—

२४] "यह रूप्य है" "यह वस्त्र है" इहां जैसैं इदंशब्दका प्रयोग है। तैसैं "यह" "तूं" "मैं" इनविषै स्वयंशब्दका प्रयोग मानियेहै ॥

२५) जैसैं रूप्य औ वस्त्रआदिकविषै सर्वठिकानै इदंशब्दके प्रयोगके होनैतैं । तिस इदंशब्दके अर्थकी सामान्यरूपता है। तैसैं "यह" "तूं" औ "मैं" इत्यादिकविषै सर्वठिकानै स्वयंशब्दके प्रयोगतैं तिस स्वयंशब्दके अर्थकी बी सामान्यरूपता जानियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ४० ॥

॥ ४ ॥ स्वयंशब्दके अर्थकी कूटस्थरूपता ॥

२६ स्वयंशब्द औ अहंशब्दका लोकविषै भेद होहु । इतनैकरि कूटस्थरूप आत्माविषै क्या आया ? इसरीतिसैं वादी सिद्धांतीकूं पूछताहै:—

२७] अहंतातैं स्वयंपना भिन्न होहु। इसकरि कूटस्थविषै तुमकूं क्या आया ?

५५१ इहां यह भाव है:—बुद्धिस्थचिदाभास औ कूटस्थका अन्योन्याध्यास है ॥ काहेतैं चिदाभासविशिष्टबुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ है । अहंप्रतीतिका विषय चिदाभासविशिष्टबुद्धि है औ स्वयंप्रतीतिका विषय कूटस्थ है ॥ उक्त ३९ श्लोककी रीतिसैं सकलप्रतीतिनमैं अनुगत स्वयंशब्दका अर्थ है ॥ औ अहंत्वंआदिकशब्दनका अर्थ व्यभिचारी है ॥ स्वयंशब्दका अर्थ कूटस्थ सारे अनुगत होनैतैं अधिष्ठान है औ अहंत्वंआदिकशब्दनका अर्थ चिदाभासविशिष्टबुद्धिरूप जीव व्यभिचारी होनैतैं अध्यस्त है ॥ कूटस्थमैं जीवका स्वरूपाध्यास है औ जीवमैं कूटस्थका संबंधाध्यास है ॥ यातैं अज्ञानींकूं कूटस्थ औ जीवका अन्योऽन्याध्यास होनैतैं परस्परविवेक होवै नहीं परंतु कूटस्थ औ चिदाभास दोनूं भिन्न हैं ॥

टीकांक: १३२८ टिप्पणांक: ॐ	³¹अन्यत्ववारकं स्वत्वमिति चेद³³न्यवारणम् । कूटस्थस्यात्मतां वक्तुरिष्टमेव हि तद्भवेत् ॥ ४२ ॥ ³⁵स्वयमात्मेति पर्यायौ ³⁷तेन लोके तयोः सह । प्रयोगो ³⁹नास्त्यतः स्वत्वमात्मत्वं चान्यवारकम् ॥४३॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३३६ ३३७

२८ सामान्यरूपः स्वयंशब्दार्थ एव कूटस्थ इतीदमायातमित्याह—

२९] **"स्वयंशब्दार्थः एव एषः कूटस्थः" इति मे भवेत् ॥ ४१ ॥**

३० ननु स्वत्वरूपो धर्मोऽन्यत्वं निवारयति न कूटस्थत्वं बोधयतीति शंकते—

३१] **"अन्यत्ववारकं स्वत्वं" इति चेत् ॥**

३२ स्वयंशब्दार्थस्य कूटस्थस्यैवात्मत्वात् स्वत्वेनान्यवारणम् इष्टमेवेति परिहरति (अन्यवारणमिति)—

३३] **कूटस्थस्य आत्मतां वक्तुः तत् अन्यवारणं इष्टं एव हि भवेत् ॥ ४२ ॥**

३४ ननु स्वयमात्मशब्दयोर्भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोर्गवाश्वादिशब्दयोरिवैकार्थत्वाभावात् कथं स्वयंशब्दार्थस्य कूटस्थस्यात्मत्वमित्याशंक्य हस्तकरादिशब्दवदेकार्थत्वोपपत्तेर्मैवमिति परिहरति—

३५] **स्वयं आत्मा इति पर्यायौ ॥**

---

२८ सामान्यरूप जो स्वयंशब्दका अर्थ है सोई कूटस्थ है ॥ ऐसैं यह मेरेकूं कूटस्थविषै आया कहिये प्राप्तभया । इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैं:—

२९] **स्वयंशब्दका अर्थहीं यह कूटस्थ है । यह मेरेकूं सिद्ध होवैहै ॥४१॥**

॥ ९ ॥ स्वयंपनैके कूटस्थपनैमैं शंकासमाधान ॥

३० ननु स्वयंपनैरूप जो धर्म है सो अन्यपनैकूं निवारण करैहै । कूटस्थपनैकूं बोधन नहीं करैहै । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

३१] **अन्यपनैका निवारक स्वयंपना है । ऐसैं जो मानैं तौ ।**

३२ स्वयंशब्दका अर्थ जो कूटस्थ है । तिसीकूंहीं आत्मा कहिये अपनाआप होनैतैं । स्वयंपनैकरि अन्यका निवारण हमकूं इष्ट कहिये वांछितहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैंः—

३३] **कूटस्थकी आत्मताकूं कहनैहारा जो मैं सिद्धांती हूं । तिस मुजकूं सो अन्यका निवारण इच्छितहीं होवैहै ॥ ४२ ॥**

॥ ६ ॥ स्वयं औ आत्माशब्दका पर्यायपना अरु फलित ॥

३४ ननु भिन्नप्रवृत्तिके निमित्त जे स्वयंशब्द औ आत्मशब्द हैं । तिनके गौ औ अश्वादिकशब्दनकी न्याईं एकअर्थवान्ताके अभावतैं स्वयंशब्दका अर्थ जो कूटस्थ है । तिसकूं आत्मरूपता कैसैं होवैगी? यह आशंकाकरि हस्त औ करआदिकपर्यायरूप शब्दनकी न्याईं स्वयंशब्द औ आत्मशब्दके एकअर्थके संभवतैं "स्वयंशब्दके अर्थ कूटस्थकी आत्मता कैसैं होवैगी" यह शंका बनै नहीं । ऐसैं परिहार करैहैंः—

३५] **स्वयं औ आत्मा ये दोनूं पर्यायशब्द हैं ॥**

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३३८ ३३९	घटैः स्वयं न जानातीत्येवं स्वत्वं घटादिषु । अचेतनेषु दृष्टं चेद्दृश्यतामात्मसत्त्वतः ॥ ४४ ॥ चेतनाचेतनभिदा कूटस्थात्मकृता न हि । किंतु बुद्धिकृताऽऽभासकृतैवेत्यवगम्यताम् ॥४५॥	टीकांक: १३२६ टिप्पणांक: ॐ

३६ पर्यायत्वे सह प्रयोगाभावे हेतुमाह—

३७] तेन लोके तयोः सह प्रयोगः न अस्ति ॥

३८ फलितमाह—

३९] अतः स्वत्वं च आत्मत्वं अन्यवारकम् ॥ ४३ ॥

४० ननु घटादिष्वचेतनेष्वपि स्वयंशब्दस्य प्रयोगदर्शनात् स्वयंत्वात्मत्वयोरेकत्वं न घटत इति शंकते—

४१] "घटः स्वयं न जानाति" इति एवं अचेतनेषु घटादिषु स्वत्वं दृष्टं चेत्॥

४२ घटादिष्वपि स्फुरणरूपेणात्मचैतन्यस्य सत्त्वात्तेष्वपि स्वयंशब्दप्रयोगो न विरुध्यत इत्याह (दृश्यतामिति)—

४३] आत्मसत्त्वतः दृश्यताम्॥४४॥

४४ ननु घटादिष्वप्यात्मचैतन्यस्य सत्त्वे चेतनाचेतनविभागो निर्निमित्तकः स्यादित्याशंक्य चेतनाचेतनविभागस्य चिदाभाससत्त्वासत्त्वलक्षणकारणसद्भावान्मैवमिति परिहरति—

---

३६ दोनूंशब्दनकूं पर्यायपनैके हुये साथिहीं प्रयोगके अभावविषै हेतुकूं कहैहैं:—

३७] तिस हेतुकरि लोकविषै तिन स्वयं औ आत्मा इन शब्दनका साथि प्रयोग कहिये उच्चारण नहीं है ॥

३८ फलितकूं कहैहैं:—

३९] यातैं स्वयंपना औ आत्मपना अन्यका निषेधक है ॥ ४३ ॥

॥ ७ ॥ घटादिकविषै स्वयंशब्दके प्रयोगतैं स्वयंपनैकी आत्मतामैं शंकासमाधान ॥

४० ननु अचेतन कहिये जड जे घटादिक हैं तिनविषै बी स्वयंशब्दके प्रयोगके देखनैतैं स्वयंपनैकी औ आत्मपनैकी एकता बनै नहीं। इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

४१] घट आप नहीं जानताहै। ऐसैं अचेतनघटादिकनविषै बी स्वयंपना कहिये आपपना देख्याहै। जो ऐसैं कहै।

४२ घटादिकनविषै बी भातिस्वरूप स्फुरणरूपकरि आत्मचैतन्यके सद्भावतैं तिन घटादिकनविषै बी स्वयंशब्दका प्रयोग विरोधकूं पावता नहीं। ऐसैं सिद्धांती कहैहैं:—

४३] तौ आत्माके सद्भावतैं घटादिकविषै बी स्वयंपना देखो ॥ ४४ ॥

॥ ८ ॥ जडचेतनके भेदकूं चिदाभासकी कार्यता ॥

४४ ननु घटादिकनविषै बी आत्मचैतन्यके सद्भाव हुये चेतन जो जंगम औ अचेतन जो स्थावर। तिनका विभाग निमित्तरहित होवैगा। यह आशंकाकरि चेतन औ अचेतनके विभागका कारण जो चिदाभासका सद्भाव औ असद्भाव है। तिसके सद्भावतैं "चेतनअचेतनका विभाग निर्निमित्तक होवैगा" यह कथन बनै नहीं। ऐसैं परिहार करैहैं:—

टीकांकः १३४५ टिप्पणांकः ॐ	यथा चेतन आभासः कूटस्थे भ्रांतिकल्पितः । अचेतनो घटादिश्च तथा तत्रैव कल्पितः ॥ ४६ ॥ तत्तेदंते अपि स्वत्वमिव त्वमहमादिषु । सर्वत्रानुगते तेन तयोरप्यात्मतेति चेत् ॥ ४७ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३४० ३४१

४५] चेतनाचेतनभिदा कूटस्थात्मकृता न हि किंतु बुद्धिकृताऽऽभासकृता एव इति अवगम्यताम् ॥ ४५ ॥

४६ ननु चेतनाचेतनविभागस्य चिदाभाससत्वासत्वप्रयुक्तत्वाभ्युपगमेऽचेतनेष्वात्मसत्वाभ्युपगमो निष्प्रयोजनः स्यादित्याशंक्य चेतनाचेतनविभागहेतुत्वेन कूटस्थस्यानभ्युपगम्यत्वेऽप्यचेतनकल्पनाधिष्ठानत्वेन कूटस्थोऽभ्युपगंतव्य इत्यभिप्रायेण घटादेः तत्र कल्पितत्वं सदृष्टांतमाह—

४७] यथा चेतन आभासः कूटस्थे भ्रांतिकल्पितः तथा अचेतनः घटादिः च तत्र एव कल्पितः ॥ ४६ ॥

४८ स्वत्वात्मत्वयोरेकत्वेऽतिप्रसंगं शंकते (तत्तेदंते अपीति)—

४९] स्वत्वं इव तत्तेदंते अपि त्वमहमादिषु सर्वत्र अनुगते तेन तयोः अपि आत्मता इति चेत् ॥

५०) त्वमहमादिषु सर्वत्रानुगतस्य

४५] चेतन औ अचेतनका जो भेद है सो कूटस्थआत्माका किया नहीं है किंतु बुद्धिके आधीन जो आभास कहिये चेतनका प्रतिबिंब है । तिस कारणका कियाहीं है । ऐसैं जानना ॥ ४५ ॥

॥ ९ ॥ कूटस्थमैं चिदाभासकी न्यांई घटादिकका कल्पितपना ॥

४६ ननु चेतन औ अचेतनके विभागकूं चिदाभासके सद्भाव औ असद्भावरूप कारणका किया अंगीकार कियेहुये । अचेतनविषै आत्माके सद्भावका अंगीकार निष्प्रयोजन होवैगा । यह आशंकाकरि चेतन औ अचेतन दोनूंके विभागका हेतु होनैकरि कूटस्थका अनअंगीकार हुये बी । अचेतनकी कल्पनाका अधिष्ठान होनैकरि कूटस्थ अंगीकार करनैकूं योग्य है । इस अभिप्रायकरि घटादिकनका जो तिस कूटस्थविषै कल्पितपना है ताकूं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

४७] जैसैं चेतन जो आभास है सो कूटस्थविषै भ्रांतिकरि कल्पित है । तैसैं अचेतन जो घटादिक है सो बी तहां कूटस्थचैतन्यविषैहीं कल्पित है॥४६॥

॥ १० ॥ स्वयंपनै औ आत्मपनैकी एकतामैं अतिप्रसंगकी शंका ॥

४८ स्वत्व औ आत्मपनैकी एकताविषै मर्यादाके उल्लंघनरूप अतिप्रसंगकूं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

४९] स्वयंपनैकी न्यांई तत्ता कहिये सोपना औ इदंता कहिये यहपना । ये दोनूं धर्म बी "तूं" औ "मैं" आदिकनविषै सर्वठिकानैं अनुगत हैं । तिस हेतुकरि तिन तत्ता औ इदंताकी बी आत्मता होवैगी । ऐसैं जो कहै तौ ।

५०) "तूं" औ "मैं" आदिकनविषै सर्वठिकानैं अनुगत कहिये अनुस्यूत स्वयंता नाम

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३४२ ३४३	५२ ते आत्मत्वेऽप्यनुगते तत्तेदंते ततस्तयोः । आत्मत्वं नैव संभाव्यं ५५सम्यक्त्वादेर्यथा तथा ४८ तत्तेदंते स्वतान्यत्वे त्वंताऽहंते परस्परम् । प्रतिद्वंद्वितया लोके प्रसिद्धे नास्ति संशयः॥४९॥	टीकांकः १३५१ टिप्पणांकः ॐ

स्वत्वस्येव सर्वत्रानुगतयोः तत्तेदंतयोरप्यात्मस्वरूपता किं न स्यादिति भावः॥४७॥

५१ तत्तेदंतयोरात्मत्वाधिकवृत्तित्वादात्मत्वं न संभवतीत्याह—

५२] ते तत्तेदंते आत्मत्वे अपि अनुगते ततः तयोः आत्मत्वं संभाव्यं न एव ॥

५३) तत्तेदंते स्वत्वमिव यद्यपि त्वमहमादिषु अनुगते । तथापि तेष्वनुवर्तमाने आत्मत्वेऽप्यनुगते तदात्मत्वमिदमात्मत्वमित्यादिव्यवहारसंभवादतः तयोः आत्मत्वाधिकवृत्तित्वादात्मस्वरूपता न संभाव्यते ॥

५४ तत्र दृष्टांतः (सम्यक्त्वादेरिति)

५५] यथा सम्यक्त्वादेः तथा ॥

५६) आत्मत्वं सम्यगात्मत्वमसम्यगिति व्यवहारवशादात्मत्वेऽप्यनुवर्तमानयोः सम्यक्त्वासम्यक्त्वयोरिवेत्यर्थः ॥ ४८ ॥

५७ एवं प्रासंगिकं परिसमाप्य फलितप्रदर्शनाय लोकव्यवहारसिद्धमर्थमनुवदति—

५८] तत्तेदंते स्वतान्यत्वे त्वंता-

आपपनैकी न्याई सर्वठिकानै अनुगत जो तत्ता औ इदंतारूप धर्मविशेष हैं । तिनकूं वी आत्मस्वरूपता क्यूं नहीं होवैगी? यह भाव है ॥४७॥

॥ ११ ॥ स्वयंपनै औ आत्मपनैकी एकतामैं अतिप्रसंगकी शंकाका समाधान ॥

५१ तत्ता औ इदंता इन दोनूंकूं आत्मपनैतैं अधिकवर्त्तनैवाले होनैतैं आत्मता नहीं संभवैहै । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं:—

५२] सो तत्ता औ इदंता । दोनूं आत्मपनैविषै वी अनुगत हैं । तातैं तिन तत्ता औ इदंताकी आत्मस्वरूपता संभव होनैकूं योग्य नहीं है ॥

५३ तत्ता औ इदंता दोनूं वी स्वयंपनैकी न्याई यद्यपि "त्वं" औ "अहं"आदिकवस्तुनविषै अनुगत हैं। तथापि तिन "त्वं" औ "अहं"आदिकनविषै अनुस्यूत जो आत्मता है । तिसविषै वी वे तत्ता औ इदंता अनुगत हैं । काहेतैं "सो आत्मता कहिये आत्मस्वरूप है" औ "यह आत्मता है" इत्यादिकव्यवहारका संभव है ॥ यातैं तिन तत्ता औ इदंताकूं आत्मतातैं अधिकदेशवर्ती होनैतैं आत्मस्वरूपता नहीं संभावना करियेहै ॥

५४ तहां दृष्टांतः—

५५] जैसैं सम्यक्पनैआदिककूं आत्मता नहीं संभवैहै तैसैं ॥

५६) "आत्मपना सम्यक् कहिये समीचीन है औ आत्मपना असम्यक् कहिये असमीचीन है" इस व्यवहारके वशतैं आत्मपनैविषै वी अनुवर्तमान जे सम्यक्पना औ असम्यक्पना हैं । तिनकी न्याई तत्ता औ इदंता वी है ॥ यह अर्थ है ॥ ४८ ॥

॥ १२ ॥ प्रतियोगीरूप लोकव्यवहारसिद्धअर्थका अनुवाद ॥

५७ ऐसैं प्रसंगप्राप्तअर्थकूं समाप्तकरिके फलितअर्थके दिखावनैवास्ते लोकव्यवहारकरि सिद्धअर्थकूं अनुवाद करैहैं:—

५८] तत्ता औ इदंता । स्वयंता

टीकांक: १३५९ टिप्पणांक: ॐ	⁶¹अन्यतायाः प्रतिद्वंद्वी स्वयं कूटस्थ इष्यताम् । त्वंतायाः प्रतियोग्येषोऽहमित्यात्मनि कल्पितः ॥ ५० ॥ ⁶⁴अहंतास्वत्वयोर्भेदे रूप्यतेदंतयोरिव । स्पष्टेऽपि मोहमापन्ना एकत्वं प्रतिपेदिरे ॥ ५१ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३४४ ३४५

ऽहंते परस्परं प्रतिद्वंद्वितया लोके प्रसिद्धे संशयः न अस्ति ॥

५९) तत्ताप्रतियोगित्वं इदंतायास्तदिदमिति । स्वत्वप्रतियोगित्वं अन्यत्वस्य स्वयमन्य इति । त्वंताप्रतियोगित्वं अहंतायास्त्वमहमिति । लोके प्रतिद्वंद्वित्वेन प्रयोगदर्शनात् प्रसिद्धमिति भावः ॥ ४९ ॥

६० भवत्वेवं लोके प्रकृते किमायातमित्यत आह—

६१] अन्यतायाः प्रतिद्वंद्वी स्वयं कूटस्थः इष्यताम् त्वंतायाः प्रतियोगी एषः अहं इति आत्मनि कल्पितः ॥

६२) अन्यत्वप्रतियोगी स्वयंशब्दार्थः त्वंताप्रतियोगी अहंशब्दार्थः चिदाभासः कूटस्थे कल्पित इत्यर्थः ॥ ५० ॥

६३ ननूक्तप्रकारेण जीवकूटस्थयोर्भेदे सत्यपि सर्वे इत्थं किमिति न जानंतीत्याशंक्याह (अहंतेति)—

६४] रूप्यतेदंतयोः इव अहंतास्व-

औ अन्यता । त्वंता औ अहंता । ये परस्परप्रतियोगीपनैकरि लोकविषै प्रसिद्ध हैं। इसविषै संशय नहीं है ॥

५९) तत्ता जो सोपना । ताका प्रतियोगीपना इदंताकूं है ॥ "सो है" औ "यह है" ऐसैं । औ स्वयंपनैका प्रतियोगीपना अन्यपनैकूं है ॥ "स्वयं है" औ "अन्य है" ऐसैं औ त्वंताका प्रतियोगीपना अहंताकूं है ॥ "तूं है" औ "मैं हूं" ऐसैं ॥ इसरीतिसैं लोकविषै इन शब्दनके प्रतिद्वंद्वीपनैकरि कहिये बरोबरीके दूसरेपनैकरि प्रयोगके देखनैतैं इनका परस्परप्रतियोगीपना प्रसिद्ध है॥ यह भाव है ॥ ४९ ॥

॥ १३ ॥ जीवकूटस्थका भेदरूप फलितअर्थ ॥

६० ऐसैं लोकविषै व्यवहार होहु । इसकरि प्रकृत जो ३८ श्लोकउक्तजीव औ कूटस्थका भेद । तिसविषै क्या प्राप्त भया ? तहां कहैहैं:—

६१] अन्यताका प्रतिद्वंद्वी कहिये बरोबरीका दूसरा जो स्वयं है । सो कूटस्थ अंगीकार करना औ त्वंताका प्रतियोगी कहिये प्रतिद्वंद्वी जो यह अहं है। सो आत्माविषै कल्पित है ॥

६२) अन्यपनैका प्रतियोगी स्वयंशब्दका अर्थ कूटस्थ है औ त्वंताका प्रतियोगी अहंशब्दका अर्थ चिदाभास है ॥ सो चिदाभास कूटस्थविषै कल्पित है ॥ यह अर्थ है ॥ ५० ॥

॥ १४ ॥ जीवकूटस्थके भेद हुवे बी एकताबुद्धिमैं भ्रांतिरूप कारण ॥

६३ ननु ३८ सें ५० वें श्लोकपर्यंत कथन किये प्रकारकरि जीव औ कूटस्थके भेदके होते बी । सर्वजीव ऐसैं काहेतैं नहीं जानैहैं ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६४] रूप्यता औ इदंताके भेदकी न्याई । अहंता औ स्वयंताके भेदकूं

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः २४६	६७ तादात्म्याध्यास एवात्र पूर्वोक्ताविद्यया कृतः । ६८ अविद्यायां निवृत्तायां तत्कार्यं विनिवर्तते ॥५२॥	टीकांकः १३६५ टिप्पणांकः ५५२

त्वयोः भेदे स्पष्टे अपि मोहं आपन्नाः एकत्वं प्रतिपेदिरे ॥

६५) बुद्धिसाक्षिणः कूटस्थस्य बुद्ध्या प्रत्यक्षीकर्तुमशक्यत्वादहमितिप्रतिभासमानयोः जीवकूटस्थयोर्भ्रांत्या एकत्वं प्रतिपन्ना इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

६६ नन्वस्य जीवकूटस्थयोरेकत्वभ्रमस्य किं कारणमित्यपेक्षायामाह—

६७] तादात्म्याध्यास एव अत्र पूर्वोक्ताविद्यया कृतः ॥

६८) अत्रास्मिन् ग्रंथे अनादिरविवेकोऽयमित्यत्र उक्तयाऽविद्यया इत्यर्थः ॥

६९ यतोऽविद्या कार्यत्वमस्यातोऽविद्यानिवर्त्तकज्ञानेनैव तन्निवृत्तिरित्याह—

७०] अविद्यायां निवृत्तायां तत्कार्यं विनिवर्तते ॥ ५२ ॥

स्पष्ट होते बी मोह जो भ्रांति। ताकूं प्राप्त भये जीव एकताकूं जानैहैं ॥

६५) बुद्धिका साक्षी जो कूटस्थ है। ताकूं बुद्धिकरि प्रत्यक्ष करनैकूं अशक्य होनैतैं "अहं" इस वृत्तिविषै भासमान जे जीव औ कूटस्थ दोनूं हैं। तिनकी भ्रांतिकरि एकताकूं अज्ञानीजन जानैहैं औ भेदकूं नहीं जानैहैं ॥ यह अर्थ है ॥ ५१ ॥

॥ १९ ॥ श्लोक ५१ उक्त एकताभ्रांतिका कारण (अविद्या) ॥

६६ ननु इस जीव औ कूटस्थकी एकताके भ्रमका कौंन कारण है? इस पूछनैकी इच्छाके हुये कहैहैं:—

६७] यह तादात्म्यअध्यास इस प्रकरणविषै पूर्व १९ औ ३४ श्लोकउक्त जो अविद्या है तिसका कियाहै ॥

६८) इस चित्रदीपरूप ग्रंथविषै "यह जो अनादिकालका अविवेक है सो मूलाविद्या है" इस ३४ वें श्लोकरूप स्थलविषै कथन करी जो अविद्या है। तिसकरि किया ताका कार्य जीवकूटस्थकी एकताका भ्रम है ॥ यह अर्थ है ॥

६९ जातैं यह ५१ श्लोकउक्तभ्रम। अविद्याका कार्य है। यातैं अविद्याके निवृत्ति करनैहारे ज्ञानकरिहीं तिस भ्रमकी निवृत्ति होवैहै। ऐसैं कहैहैं:—

७०] अविद्याके निवृत्त हुये। तिस अविद्याका कार्य जो ५१ श्लोकउक्तभ्रम। सो निवृत्त होवैहै ॥ ५२ ॥

---

५२ "अहं (मैं)" इस वृत्तिविषै एककालमैंहीं चिदाभास औ कूटस्थ दोनूंका भान होवैहै। परंतु इतना भेद है:— चिदाभास तौ कूटस्थका विषय होयके भान होवैहै औ कूटस्थ कहिये आत्मा अहंवृत्तिसहित चिदाभासकूं प्रकाशता हुया आप स्वयंप्रकाशताकारि भान होवैहै ॥

५३ जीव औ कूटस्थकी एकताके भ्रमकूं तादात्म्यअध्यास कहैहैं ॥

टीकांक: १३७१ टिप्पणांक: ५५४	७२ अविद्याऽऽवृत्तितादात्म्ये विद्ययैव विनश्यतः । विक्षेपस्य स्वरूपं तु प्रारब्धक्षयमीक्षते ॥ ५३ ॥ ७५ उपादाने विनष्टेऽपि क्षणं कार्यं प्रतीक्षते । इत्याहुस्तार्किकास्तद्वदस्माकं किन्न संभवेत् ॥५४॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३४७ ३४८

७१ नन्वध्यासस्याविद्याकार्यत्वात् तन्निवृत्त्या निवृत्तिरित्येतदनुपपन्नं ब्रह्मात्मैकत्वविद्यायामुत्पन्नायामप्यविद्याकार्यस्य देहादेरुपलभ्यमानत्वादित्यत आह—

७२] **अविद्यावृत्तितादात्म्ये विद्यया एव विनश्यतः विक्षेपस्य स्वरूपं तु प्रारब्धक्षयं ईक्षते ॥**

७३) **अविद्या एककारणयोः आवृत्तितादात्म्ययोर्विद्ययैव विनिवृत्तिः** कर्मसहितविद्याजन्यस्य तु विक्षेपस्वरूपस्य कर्मावसानपर्यंतमवस्थानमित्यविरोध इति भावः ५३

७४ ननु प्रारब्धकर्मणो निमित्तमात्रत्वात्तत्सद्भावमात्रेणोपादाने विनष्टेऽपि कथं कार्यानुवृत्तिरित्याशंक्य शास्त्रांतरसिद्धदृष्टांतेन तदनुवृत्तिं संभावयति—

७५] **उपादाने विनष्टे अपि क्षणं कार्यं प्रतीक्षते इति तार्किकाः आहुः॥ तद्वत् अस्माकं किं न संभवेत् ॥५४॥**

॥ १६ ॥ अविद्याके निवृत्त हुए पीछे तिसके कार्यकी प्रतीतिकी शंका औ समाधान ॥

७१ ननु "अध्यासकूं अविद्याका कार्य होनैतैं । ताकी तिस अविद्याकी निवृत्तिकरि निवृत्ति होवैहै ॥" यह जो ५२ श्लोकविषै कहा सो बनै नहीं । काहेतैं ब्रह्म औ आत्माकी एकताकी विद्या जो ज्ञान ताके उत्पन्न हुये बी । अविद्याके कार्य देहादिककूं प्रतीयमान होनैतैं । तहां कहैहैं:—

७२] **अविद्याकृत आवरण औ तादात्म्य ये दोनूं विद्याकरिहीं विनाशकूं पावैहैं औ विक्षेपका स्वरूप तौ प्रारब्धके क्षयकूं देखताहै ॥**

७३) अविद्या है एक नाम मुख्यकारण जिनोंका । ऐसैं जे आवरण औ जीवकूटस्थके एकताका भ्रमरूप तादात्म्य । तिन दोनूंकी विद्याकरिहीं विशेषतैं निवृत्ति होवैहै ॥ औ प्रारब्धकर्मरूप उपाधिसहित अविद्यासैं जन्य जो विक्षेपका स्वरूप है । ताका कर्मके अंतपर्यंत अवस्थान है ॥ इसरीतिसैं देहादिककी प्रतीतिका अविरोध है ॥ यह भाव है ॥५३॥

॥ १७ ॥ उपादानके नाश हुये बी क्षणमात्र कार्यकी स्थितिमैं नैयायिकसंमत दृष्टांत ॥

७४ ननु प्रारब्धकर्मकूं निमित्तमात्र होनैतैं तिस प्रारब्धकर्मके सद्भावमात्रकरि उपादानके नाश हुये बी । कैसैं कार्यरूप विक्षेपकी अनुवृत्ति कहिये बाध हुये पीछे वर्त्तना होवैहै ? यह आशंकाकरि न्यायरूप अन्यशास्त्रविषै सिद्ध दृष्टांतकरि तिस कार्यकी अनुवृत्तिकूं प्रतीति करावैहैं:—

७५] **उपादानके नाश हुये बी क्षणमात्र कार्य रहैहै । ऐसैं नैयायिक कहैहैं ॥ तिनकी न्याईं हम वेदांतिनकूं क्या नहीं संभवैगा ? ॥ ५४ ॥**

---

५४ स्थूलसूक्ष्मशरीरसहित चिदाभास विक्षेप कहियेहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
३४९	७७ तंतूनां दिनसंख्यानां तैस्तादृक् क्षण ईरितः । भ्रमस्यासंख्यकल्पस्य योग्यः क्षण इहेष्यताम् ५५	१३७६
३५०	८० विना क्षोदक्षमं मानं तैर्वृथा परिकल्प्यते । श्रुतियुक्त्यनुभूतिभ्यो वदतां किन्नु दुःशकम् ५६	टिप्पणांक: ॐ

७६ ननु तार्किकैः कार्यस्य क्षणमात्रमवस्थानमंगीकृतं न चिरकालमित्याशंक्याह (तंतूनामिति)—

७७] **दिनसंख्यानां तंतूनां तैः तादृक् क्षणः ईरितः । इह असंख्यकल्पस्य भ्रमस्य योग्यः क्षणः इष्यताम् ॥**

७८) संसारस्यानादिकालमारभ्यानुवृत्तत्वात् तत्संस्कारवशेन कुलालचक्रभ्रमवच्चिरकालानुवृत्तिर्न विरुध्यते । इति भावः ॥५५॥

७९ ननु तार्किकैर्यथाऽयुक्तमभिहितं तद्वद्भवताऽपीत्याशंक्य स्वोक्तौ ततो वैषम्यं दर्शयति (विनेति)—

८०] **क्षोदक्षमं मानं विना तैः वृथा परिकल्प्यते श्रुतियुक्त्यनुभूतिभ्यः वदतां किं नु दुःशकम् ॥**

८१) क्षोदक्षमं विचारसहं । मानं विना प्रमाणमंतरेणेत्यर्थः ॥ "तस्य तावदेव

॥ १८ ॥ अनादिसंसारभ्रमके योग्यक्षणका कथन ॥

७६ ननु नैयायिकोनैं कार्यका क्षणमात्रअवस्थान कहिये उपादानके नाश हुये पीछे कार्यका रहना अंगीकार कियाहै । चिरकाल नहीं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७७] **दिनसंख्यावाले** कहिये गिनती करनैके योग्य दिननसैं उत्पत्तिवाले **तंतुनका तिन नैयायिकोनैं । तैसा** कहिये तिसके योग्य **क्षण कहाहै** औ **इहां** हमारे सिद्धांतविषै **असंख्यकल्पनका जो भ्रम है । तिसका योग्यक्षण अंगीकार कियाचाहिये ॥**

७८) संसारकूं अनादिकालसैं आरंभकरिके वर्त्तमान होनैतैं । तिस संसारके संस्कारके वशतैं कुलालचक्रके भ्रमणकी न्याईं । भ्रमरूप संसारकी चिरकाल कहिये प्रारब्धपर्यंत अनुवृत्ति कहिये अविद्यारूप उपादानके नाश हुये पीछे वर्त्तना विरोधकूं पावता नहीं ॥ यह भाव है ॥ ५५ ॥

॥ १९ ॥ श्लोक ५५ उक्त अर्थकी अयोग्यताकी शंकाका समाधान ॥

७९ ननु नैयायिकोनैं जैसैं अयुक्त कहाहै तैसैं तुमनैं बी अयुक्त कहाहै ॥ यह आशंकाकरि सिद्धांती अपनी उक्तिविषै तिन नैयायिकनकी विलक्षणताकूं दिखावैहैं:—

८०] जब **विचारसमर्थ** कहिये विचारकूं सहन करै ऐसै **प्रमाणविना तिन नैयायिकोकरि वृथा क्षण कल्पियेहै** । तब **श्रुति युक्ति अरु अनुभवरूप प्रमाणतैं कहनेवाले हमकूं क्या अशक्य है?**

८१)"तिस ज्ञानीकूं तहांपर्यंतहीं चिरं कहिये मोक्षविषै विलंब है जहांपर्यंत देहपात नहीं होवैहै ॥ तब देहपातके समकालहीं मोक्ष होवैहै"

टीकांक: १३८२ टिप्पणांक: ॐ	आस्तां दुस्तार्किकैः साकं विवादः प्रकृतं ब्रुवे । स्वाहमोः सिद्धमेकत्वं कूटस्थपरिणामिनोः॥५७॥ भ्राम्यंते पंडितंमन्याः सर्वे लौकिकतैर्थिकाः । अनादृत्य श्रुतिं मौर्ख्यात्केवलां युक्तिमाश्रिताः५८	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३५१ ३५२

चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये" इति श्रुतिः । चक्रभ्रमादिदृष्टांतो युक्तिः । अनुभूतिः विद्वदनुभवः एतेभ्यः प्रमाणेभ्यः । किं वक्तुमशक्यमित्यभिप्रायः ॥ ५६ ॥

८२ प्रकृतमनुसरति (आस्तामिति)-

८३] दुस्तार्किकैः साकं विवादः आस्तां । प्रकृतं ब्रुवे । कूटस्थपरिणामिनोः स्वाहमोः एकत्वं सिद्धम् ॥

८४) स्वयमहंशब्दार्थयोः कूटस्थपरिणामिनोरेकत्वं भ्रांत्या सिद्धम् ॥ ५७ ॥

८५ ननु कूटस्थजीवयोरेकत्वं भ्रांतिसिद्धं चेदिदं भ्रांतमिति केऽपि कुतो न जानंतीत्याशंक्य श्रुतितात्पर्यपर्यालोचनशून्यत्वादित्याह (भ्राम्यंत इति)—

८६] पंडितंमन्याः लौकिकतैर्थिकाः सर्वे मौर्ख्यात् श्रुतिं अनादृत्य केवलां

यह छांदोग्यकी श्रुति है औ कुलालचक्रके भ्रमणसैं आदिलेके दृष्टांतरूप युक्ति है औ अनुभूति कहिये विद्वान्‌का अनुभव है ॥ इन तीनप्रमाणनतैं हमकूं कहनैकूं क्या अशक्य कहिये अयोग्य है ? कछु वी अयोग्य नहीं है ॥ यह अभिप्राय है ॥ ५६ ॥

॥ २० ॥ स्वयं औ अहंकी एकताका भ्रांतिसिद्धपना ॥

८२ अब प्रकृत जो ५१ श्लोकसैं आरंभ कीया प्रसंग ताकूं अनुसरैहैं:—

८३] कुतर्क करनैहारे नैयायिकनके साथि विवाद रहो ॥ अब हम प्रसंगकूं कहैहैं:— कूटस्थ औ परिणामी जो स्वयं औ अहं हैं । तिनकी एकता सिद्ध भई ॥

८४) स्वयं औ अहंशब्दके अर्थ जे कूटस्थ कहिये निर्विकारसाक्षी औ परिणामी कहिये विकारीचिदाभास हैं । तिन दोनूंकी एकता भ्रांतिसैं सिद्ध भई ॥ ५७ ॥

॥ २१ ॥ भ्रांतिके न जाननैमैं श्रुतितात्पर्यका अविचाररूप कारण ॥

८५ ननु कूटस्थ औ जीवकी एकता जब भ्रांतिसैं सिद्ध है । तब "यह भ्रांति है" ऐसैं कितनैक पुरुष काहेतैं नहीं जानैहैं ? यह आशंकाकरि । श्रुतितात्पर्यके विचारतैं रहित होनैतैं नहीं जानैहैं । ऐसैं कहैहैं:—

८६] आप अपंडितकूं पंडित माननैहारे जे लौकिक कहिये अज्ञजन औ तैर्थिक कहिये नैयायिकादिकशास्त्रवेत्ता हैं । वे

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३५३ ३५४ — टीकांकः १३८७ टिप्पणांकः ५५५

पूर्वापरपरामर्शविकलास्तत्र केचन ।
वाक्याभासान्स्वस्वपक्षे योजयंत्यप्यलज्जया ५९
कूटस्थादिशरीरांतसंघातस्यात्मतां जगुः ।
लोकायताः पामराश्च प्रत्यक्षाभासमाश्रिताः ६०

युक्तिं आश्रिताः भ्राम्यंते ॥ ५८ ॥

८७ ननु श्रुत्यर्थप्रवक्तारोऽपि केचिदित्थं कुतो न जानंतीत्याशंक्य तेषां साकल्येन श्रुत्यर्थपर्यालोचनाभावादित्याह (पूर्वापरेति)

८८] तत्र पूर्वापरपरामर्शविकलाः केचन स्वस्वपक्षे वाक्याभासान् अपि अलज्जया योजयंति ॥ ५९ ॥

८९ तत्र तावत्प्रत्यक्षैकप्रमाणाभ्युपगमेनातिस्थूलत्वाल्लोकायतादिपक्षं प्रथमतोऽनुभाषते (कूटस्थादीति)—

९०] लोकायताः च पामराः कूटस्थादिशरीरांतसंघातस्य आत्मतां जगुः ॥

९१ प्रत्यक्षसिद्धत्वेन देहादेरात्मत्वं पारमार्थिकं स्यादित्याशंक्योक्तम्—

सर्व मूर्खतातैं श्रुतिकूं अनादरकरिके केवल पुरुषकी कल्पनारूप युक्तिकूं आश्रय करतेहुये भ्रमतेहैं ॥ ५८ ॥

८७ ननु श्रुतिअर्थके वक्ता वी कितनैक पुरुष । ऐसैं कूटस्थजीवकी एकताकूं भ्रांतिरूप काहेतैं नहीं जानैहैं ? यह आशंकाकरि तिनकूं संपूर्णश्रुतिअर्थके विचारनैका अभाव है यातैं नहीं जानैहैं । ऐसैं कहैहैं:—

८८] तिनोविषै आगे औ पीछेके विचारतैं रहित जो केईक अल्प श्रुतिअर्थके वेत्ता पुरुष हैं । वे अपनै अपनै मतरूप पक्षविषै वाक्यनके आभासनकूं वी अलज्जाकरि जोडतेहैं ॥ ५९ ॥

॥ २ ॥ आत्मतत्त्वके विवेचनमैं आत्माविषै विवाद ॥ १३८९—१५३६ ॥

॥ १ ॥ आत्माके स्वरूपमैं विवाद ॥ १३८९—१४४९ ॥

॥१॥ लोकायत अरु पामरका मत (संघात आत्मा) ॥

८९ तिन वादिनविषै प्रथम एकप्रत्यक्षप्रमाणके अंगीकारकरि अतिस्थूल होनैतैं जो लोकायतआदिकनका मत है । ताकूं प्रथमतैं अनुवाद करैहैं:—

९०] लोकायत जे चार्वाकके अनुसारी नास्तिक औ पामर जे हैं । वे कूटस्थसैं आदिलेके शरीरपर्यंत जो संघात है । तिसकूं आत्मा कहतेहैं ॥

९१ ननु प्रत्यक्षसिद्ध होनैकरि देहादिकसंघातकी आत्मता पारमार्थिक कहिये वास्तविक होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५५ पूर्वापर (आगें पीछे) के विरोधतैं अन्यअर्थविषै तात्पर्यवाले जे वाक्य । वे **वाक्याभास** कहियेहैं ॥

टीकांकः १३९२ टिप्पणांकः ५५६

९४
श्रौतीकर्तुं स्वपक्षं ते कोशमन्नमयं तथा ।
विरोचनस्य सिद्धांतं प्रमाणं प्रतिजज्ञिरे ॥ ६१ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्रोकांकः ३५५

९२] प्रत्यक्षाभासं आश्रिताः॥६०॥

९३ ते प्रत्यक्षैकप्रमाणवादिनोऽपि परव्यामोहनाय स्वमतं श्रुतिसिद्धमिति दर्शयितुं वाक्यमप्युदाहरंतीत्याह (**श्रौतीकर्तुमिति**)

९४] ते स्वपक्षं श्रौतीकर्तुं अन्नमयं कोशं तथा विरोचनस्य सिद्धांतं प्रमाणं प्रतिजज्ञिरे ॥

९५) **कोशमन्नमयं** इतिशब्देनान्नमयकोशप्रतिपादकं "स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय" इत्यादिवाक्यं लक्ष्यते । **विरोचनस्य सिद्धांतं** इति तत्सिद्धांतप्रतिपादकं "आत्मैव देहमय" इत्यादिवाक्यं लक्ष्यते । एतद्वाक्यद्वयं प्रमाणत्वेन प्रतिजानंत एव न तूपपादयितुं क्षमाः प्रकरणविरोधादिति भावः ॥ ६१ ॥

९२] वे प्रत्यक्षप्रमाके आभासकूं आश्रय करैहैं ॥ ६० ॥

९३ वे चार्वाकादिकदेहात्मवादी प्रत्यक्षरूप एकप्रमाणके वादी बी । दूसरेपुरुषनके भ्रमावनैअर्थ अपना मत श्रुतिसिद्ध है ऐसैं दिखावनैवास्ते वाक्यकूं बी उदाहरण करैहैं । ऐसैं कहैहैं:—

९४] वे अपनै पक्षकूं श्रुतिसिद्ध करनैके लिये अन्नमयकोशकूं तथा प्रल्हादपुत्रअसुरस्वामी जो विरोचन ताके सिद्धांतकूं प्रतिज्ञाकरि कहैहैं ॥

९५) "अन्नमयकोशकूं" इस कहनैकरि अन्नमयकोशका प्रतिपादक जो "सो यह पुरुष अन्नरसमय है" इत्यादिवाक्य है सो ग्रहण करियेहै ॥ औ "विरोचनके सिद्धांतकूं" इस कहनैकरि तिस विरोचनके सिद्धांतका प्रतिपादक जो "आत्माहीं देहमय है" इत्यादिवाक्य है सो लक्षणासैं जानियेहै ॥ इन अन्नमयकोश औ विरोचनसिद्धांतके प्रतिपादक दोनूंश्रुतिवाक्यनकूं प्रमाणकरिके प्रतिज्ञाकूंहीं करैहैं औ उपपादन जो निरूपण ताकूं करनैकूं समर्थ नहीं होवैहैं । प्रसंगके विरोधतैं ॥ यह भाव है ॥ ६१ ॥

५६ जैसें देहका "अहं"प्रतीतिकरि प्रत्यक्षभान होवैहै । तैसें इंद्रियादिकनका बी अहंप्रतीतिकरि प्रत्यक्षभान होवैहै ॥ यातैं देहकूं विषयकरनैवाले प्रत्यक्षज्ञानकूं व्यभिचारी होनैतैं इस प्रत्यक्षज्ञानकूं आभासरूपता है ॥

५७ इहां यह विशेष है:–**चार्वाक औ लोकायतमतके** अनुसारी क्रमतैं वायुआदिकच्यारीभूतनके औ आकाशादिपांचभूतनके संघातरूप देहकूं आत्मा मानैहैं औ यह युक्ति कहतेहैं:–

(१) जो अहंबुद्धिका विषय होवै सो आत्मा है ॥ "मैं मनुष्य हूं। स्थूल हूं। कृश हूं। ब्राह्मण हूं" इत्यादि अनुभवसैं मनुष्यपनैआदिकधर्मविशिष्टस्थूलदेहहीं अहंप्रतीतिका विषय होवैहै । यातैं देह आत्मा है ॥

(२) किंवा जो परमप्रीतिका विषय होवै सो आत्मा है ॥ इस देहके उपकार करनैरूप निमित्तकरि स्त्रीपुत्रधनादिक बी प्रिय प्रतीत होवैहैं । सो देहहीं परमप्रीतिका विषय है ॥ यातैं परमप्रीतिकी विषयतारूप लक्षणकरि बी स्थूलदेहहीं आत्मा है ॥

(३) तिस देहरूप आत्माका स्नान मंजन अंजन वस्त्र आभूषण औ नानाविधभोजनसैं शृंगारपोषणजन्यभोगहीं परमपुरुषार्थ है ॥ औ

(४) मरणहीं मोक्ष है ॥ एक प्रत्यक्षहीं प्रमाण है अन्यप्रमाण नहीं । यह चार्वाकआदिकका मत है सो

चार्वाकका मत असंगत है ॥ काहेतैं

[१] "मैं देखूंहूं । मैं सुनूंहूं । मैं बोलताहूं" इत्यादिरीतिसैं इंद्रिय बी अहंप्रतीतिके विषय प्रतीत होवैहैं औ "मेरा देह स्थूल है वा कृश है" इत्यादिरीतिसैं देहविषै ममताकी

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३५६ | टीकांक: १३९६ | टिप्पणांक: ॐ

९७
जीवात्मनिर्गमे देहमरणस्यात्र दर्शनात् ।
देहातिरिक्त एवात्मेत्याहुर्लोकायताः परे ॥ ६२ ॥

९६ अस्मिन् मते दोषदर्शनपुरःसरं मतांतरमुत्थापयति—

९७] जीवात्मनिर्गमे अत्र देहमरणस्य दर्शनात् देहातिरिक्तः एव आत्मा इति परे लोकायताः आहुः ॥ ६२ ॥

॥ २ ॥ श्लोक ६०–६१ उक्त मतमैं दोषपूर्वक इंद्रियआत्मवादीका मत (इंद्रिय आत्मा) ॥

९६ इस देहात्मवादीके मतविषै दोषके दिखावनेपूर्वक अन्यइंद्रियात्मवादीके मतकूं उठावैहैं:—

९७] जीवात्माके देहतैं निकसेहुये । इहां इसलोकविषै देहके मरणके देखनेतैं देहतैं भिन्नहीं आत्मा है । इसरीतिसैं दूसरे इंद्रियात्मवादीरूप लोकायत कहिये तिनके एकदेशी कहतेहैं ॥६२॥

विषयता बी देखियेहै ॥ जो ममताका विषय होवै सो अहंताका विषय होवै नहीं ॥ यातैं स्थूलदेहविषै अहंप्रतीतिकी विषयताका व्यभिचार है । तातैं स्थूलदेह आत्मा बनै नहीं ॥ औ

[२] स्त्रीपुत्रधनादिकतैं जैसैं देहविषै अधिकप्रीति देखिये है । तैसैं देहतैं इंद्रियनविषै अधिकप्रीति देखियेहै । यातैं देहविषै सर्वसैं अधिकप्रीतिके अभावतैं देह परमप्रीतिका विषय नहीं है । तातैं बी स्थूलदेह आत्मा नहीं है ॥

किंवा:—चेतनहीं आत्मा होवैहै । जड भूतनके संघातदेहविषै चेतनताका अभाव है ॥ यासैं बी देह आत्मा नहीं है ॥

जो चार्वाकआदिक कहैं:— कथ्थाचूनाआदिकयुक्त तांबूलविषै रंगकी शक्ति है तैसैं भूतसमुदायदेहविषै ज्ञानशक्ति है ॥ **सो बनै नहीं** ॥ काहेतैं तैसैं हुये भूतनके समुदायरूप घटविषै बी चेतनता हुयीचाहिये औ होवै नहीं ॥ औ सुषुप्तिमूर्छामरणआदिकअवस्थाविषै घटकी न्याई देहकी जडता प्रसिद्ध है । यातैं जड होनैतैं बी देह आत्मा बनै नहीं ॥

किंवा:—देह आत्मा होवै तौ बालकशरीरतैं भिन्न युवाशरीरविषै । "सोई मैं हूं" यह प्रत्यभिज्ञा नहीं हुईचाहिये औ होवै है । यातैं बी देह आत्मा नहीं ॥

किंवा:—जातैं देहकूं जन्ममरणवान् होनैकरि जन्मतैं पूर्व औ मरणतैं पीछे देहका अभाव है । तातैं बी देह आत्मा नहीं है ॥ काहेतैं पूर्व पंचकोशविवेकके चतुर्थश्लोकविषै उक्त कृतनाश औ अकृताभ्यागमरूप दोषके सद्भावतैं ॥ औ तिन दोषनका अंगीकार बी असंगत है ॥ काहेतैं जो मरणके पीछे भोक्ताआत्माके अभावतैं किये कर्मका नाश होवै तौ कोइबी पुरुष वेदोक्तकर्मका अनुष्ठान करै नहीं औ करते देखियेहैं ॥ औ हुई बाल्यआदिकअवस्थाके भेदकरि शरीररूप आत्माकूं भिन्न होनैतैं । बालादिककरि किये वेदअध्ययनआदिककर्मके फलकूं युवा औ वृद्धशरीरकरि भोगनैकूं अयोग्य होनैकरि इसलोकविषै किये कर्मकी बी व्यर्थता होवैगी । यातैं कृतनाशका अंगीकार अनिष्ट होवैहै ॥ औ पूर्वजन्मविषै कर्त्ताके अभावतैं नहीं किये कर्मका वर्त्तमानजन्मविषै जो भोग होवै । तौ सर्वजनके भोगकी विलक्षणता नहीं हुईचाहिये औ विलक्षणता देखियेहै ॥ यातैं अकृताभ्यागमका अंगीकार बनै नहीं ॥ ताहीतैं देह आत्मा नहीं है ॥

इसरीतिसैं देहके अनात्मताकी प्रतिपादक और बी अनेकयुक्तियां हैं । वे विस्तारके भयसैं लिखी नहीं ॥ औ

[३] चार्वाकआदिक जो देहके शृंगारपोषणरूप भोगकूं परमपुरुषार्थ कहैहैं सो बी बनै नहीं ॥ काहेतैं पुरुषकी इच्छाका जो विषय होवै सो पुरुषार्थ कहियेहै । सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिहीं सर्वपुरुषनकी इच्छाका विषय है सोई **पुरुषार्थ** है ॥ औ सर्वसैं अधिकसुख औ अत्यंत दुःखका अभाव **परमपुरुषार्थ** है । सोई सिद्धांतमैं **मोक्ष** है ॥ भोगकूं सातिशयताआदिकदोषकरि ग्रस्त होनैतैं परमपुरुषार्थरूपता बनै नहीं ॥ औ

[४] मरणके भये दाहादिककरि युक्त होनैहारे देहरूप आत्माकेहीं अभावतैं मरणकूं मोक्षरूपता प्रलापमात्र है ॥ औ अभुक्तभोजनविषै तृप्तिकी हेतुताकूं अनुमानप्रमाणकरि सिद्ध होनैतैं औ परदेशविषै मृतपिताके मरणकूं शब्दप्रमाणकरि सिद्ध होनैतैं । इत्यादिअन्यप्रमाणनकरि बी व्यवहारकी सिद्धितैं एक प्रत्यक्षप्रमाणका अंगीकार हठमात्र है ॥

इसरीतिसैं **देहात्मवादी**चार्वाकआदिकका मत असंगत है ॥

टीकांक: १३९८ टिप्पणांक: ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:
	९९ प्रत्यक्षत्वेनाभिमताऽहंधीर्देहातिरेकिणम् । गमयेदिंद्रियात्मानं वच्मीत्यादिप्रयोगतः ॥ ६३ ॥	३५७
	२ वागादीनामिंद्रियाणां कलहः श्रुतिषु श्रुतः । तेन चैतन्यमेतेषामात्मत्वं तत एव हि ॥ ६४ ॥	३५८
	६ हैरण्यगर्भाः प्राणात्मवादिनस्त्वेवमूचिरे । चक्षुराद्यक्षलोपेऽपि प्राणसत्त्वे तु जीवति ॥ ६५ ॥	३५९

९८ कीदृशो देहातिरिक्त आत्मा केन वा प्रमाणेनावगम्यत इत्याशंकायामाह—

९९] **प्रत्यक्षत्वेन अभिमता अहंधीः वच्मि इत्यादिप्रयोगतः देहातिरेकिणं इंद्रियात्मानं गमयेत् ॥**

१४००) अहं वच्मि अहं पश्यामि इत्यादिप्रयोगदर्शनात् देहातिरिक्ताहंबुद्धिगम्यानि इंद्रियाणि आत्मा इत्यर्थः ॥ ६३ ॥

१ नन्विंद्रियाणामचेतनानां कथमात्मत्वमित्याशंक्य श्रुतिष्विंद्रियसंवादश्रवणादचेतनत्वमसिद्धमित्याह—

२] **वागादीनां इंद्रियाणां कलहः श्रुतिषु श्रुतः तेन एतेषां चैतन्यम् ॥**

३ चेतनत्वस्यैवात्मलक्षणत्वात् चेतनानामिंद्रियाणां आत्मत्वमुचितमित्याह (आत्मत्वमिति)—

४] **ततः आत्मत्वं एव हि ॥ ६४ ॥**

५ मतांतरमुत्थापयति—

६] **हैरण्यगर्भाः प्राणात्मवादिनः**

---

९८ ननु देहतैं भिन्न आत्मा कैसा है औ कौंन प्रमाणसैं जानियेहै ? इस आशंकाके हुये कहैहैं:—

९९] **प्रत्यक्षपनेकरि मानी** जो अहंबुद्धि है। सो **"मैं बोलताहूं"** इत्यादिक**व्यवहारतैं देहतैं भिन्न इंद्रियरूप आत्माकूं जनावैहै ॥**

१४००) "मैं बोलताहूं" "मैं देखताहूं" इनसैं आदिलेके प्रयोगके देखनैतैं । देहतैं भिन्न अहंबुद्धिसैं जाननै योग्य इंद्रिय आत्मा हैं। यह अर्थ है ॥ ६३ ॥

१ ननु अचेतन जे इंद्रिय हैं तिनकूं आत्मरूपता कैसैं संभवै ? यह आशंकाकरि श्रुतिनविषै इंद्रियनके संवादके श्रवणतैं इंद्रियनकूं अचेतनपना असिद्ध है। ऐसैं कहैहैं:—

२] **वाक्आदिकइंद्रियनका कलह** कहिये संवाद **श्रुतिनविषै सुन्याहै । तिस हेतुकरि इन इंद्रियनकूं चेतनपना है ॥**

३ चेतनपनैकूंहीं आत्माका लक्षण होनैतैं चेतन जे इंद्रिय हैं। तिनकूं आत्मरूपता योग्य है। ऐसैं कहैहैं:—

४] **जातैं इंद्रिय चेतन हैं। ताहीतैं इनकूं आत्मरूपता संभवैहै ॥ ६४ ॥**

॥ ३ ॥ श्लोक ६२–६४ उक्त मतमैं दोषपूर्वक प्राणात्मवादीका मत (प्राण आत्मा) ॥

५ अन्य प्राणात्मवादीके मतकूं उठावतेहैं:—

६] समष्टिप्राणरूप **हिरण्यगर्भके उपासक जे प्राणात्मवादी हैं। वे इसप्र-**

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३६०	प्राणो जागर्ति सुप्तेऽपि प्राणश्रैष्ठ्यादिकं श्रुतम्। कोशः प्राणमयः सम्यग्विस्तरेण प्रपंचितः॥६६॥	टीकांकः १४०७ टिप्पणांकः ५५८

तु एवम् ऊचिरे चक्षुराद्यक्षलोपे अपि प्राणसत्वे तु जीवति ॥ ६५ ॥

७ प्राणस्यात्मत्वे श्रौतलिंगानीति दर्शयति (प्राण इति)—

८] सुप्ते अपि प्राणः जागर्ति प्राणश्रैष्ठ्यादिकं श्रुतम् प्राणमयः कोशः सम्यक् विस्तरेण प्रपंचितः ॥

९) "प्राणादय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति"

कार कहतेभयेः—चक्षुआदिकइंद्रियनके नाश हुये वी प्राणके होते तौ पुरुष जीवता रहैहै । तातैं प्राण आत्मा है। इंद्रियैं नहीं ॥ ६५ ॥

७ प्राणकी आत्मस्वरूपताविषै श्रुतिउक्त लिंग जो हेतु ताकूं दिखावैहैंः—

८] इंद्रियनके सोयेहुये वी प्राण जागताहै औ प्राणका श्रेष्ठताआदिक श्रुतिविषै सुन्याहै औ प्राणमयकोश सम्यक् विस्तारसैं श्रुतिनविषै वर्णन कियाहै ॥

९) "प्राणआदिकपंचवायुहीं इस देहरूप

५८ चार्वाकके एकदेशी इंद्रियआत्मवादीका जो मत है सो असंगत है ॥ काहेतैं जिसविना शरीर रहै नहीं सो आत्मा है ॥ चक्षुआदिकएकएकइंद्रियके नाश हुये वी। अंधबधिरआदिक होयके शरीर रहताहै । यातैं इंद्रिय आत्मा नहीं है ॥ औ

जो इंद्रियआत्मवादी कहै। "मैं देखूंहूं। सुनूंहूं" इत्यादिरीतिसैं अहंप्रतीतिके विषय होनैंकरि वी इंद्रिय आत्मा हैं।

सो वी बनै नहीं। काहेतैं इहां "मैं नेत्रवाला देखताहूं। मैं श्रोत्रवाला सुनताहूं" यह पुरुषका अभिप्राय है औ "मैं नेत्ररूप देखताहूं। मैं श्रोत्ररूप सुनताहूं" यह पुरुषका अभिप्राय नहीं है ॥ यातैं इस अहंप्रतीतिका विषय। इंद्रियनतैं भिन्न सिद्ध होवैहै इंद्रिय नहीं ॥ औ

"दृष्टि मेरी मंद है । वाणी मेरी स्पष्ट है" ऐसैं इंद्रियनकूं ममताकी विषयताके देखनैतैं अहंप्रतीतिकी विषयताका व्यभिचार है ॥ यातैं इंद्रिय आत्मा नहीं हैं ॥ औ

जो जिसकूं जानताहै सो तिससैं घटद्रष्टाकी न्याई भिन्न है। इस नियमतैं इंद्रियनकी मंदता औ स्पष्टताका जाननैहारा आत्मा तिनतैं भिन्न सिद्ध होवैहै ॥ औ

मनकी व्याकुलताआदिककालमैं इंद्रियनतैं श्रवणआदिकस्वस्वव्यापारकी वी असिद्धिकरि इंद्रियनकी जडता अनुभवसिद्ध है ॥ यातैं जड होनैकरि वी इंद्रिय आत्मा नहीं ॥ औ

ऐसैं हुये वी इंद्रियनकी चेतनतामैं हठ करनैहारा वादी पूछनैकूं योग्य हैः—

(१) क्या एकहीं इंद्रिय चेतन है (२) वा इंद्रियनका समुदायहीं चेतन है (३) वा सर्वइंद्रिय भिन्न भिन्न चेतन हैं? ये तीनविकल्प हैं । इनमैं

(१) प्रथमपक्ष। एकही इंद्रिय चेतन है। यह बनै नहीं ॥ काहेतैं श्रोत्रादिकनमैसैं जिस एकइंद्रियकूं चेतन कहेगा तिस इंद्रियविना वी ज्ञान औ जीवनके देखनैतैं एकहीं इंद्रिय चेतन नहीं है ॥ औ

(२) दूसरापक्ष। इंद्रियनका समुदाय चेतन है। यह वी बनै नहीं ॥ काहेतैं एकइंद्रियके नाश हुये समुदायरूपताके भंगतैं ज्ञान औ जीवन नहीं हुवाचाहिये औ होवैहै यातैं इंद्रियनका समुदाय बी चेतन नहीं है ॥

(३) तीसरापक्ष। सर्वइंद्रिय भिन्न भिन्न चेतन हैं। यह बी बनै नहीं ॥ काहेतैं ऐसैं हुये एकशरीरविषे दशचेतन (आत्मा) होवैंगे ॥ तिन सर्वकी भिन्नभिन्नइच्छाकरि एक कदलीवृक्षमैं बांधे दशहस्तिनकरि कदलीस्तंभके भंगकी न्याई शरीरका भंग होवैगा ॥ यातैं सर्वइंद्रिय भिन्न भिन्न चेतन नहीं हैं ॥

इसरीतिसैं अचेतन होनैतैं इंद्रिय आत्मा नहीं हैं ॥ औ श्रुतिविषै इंद्रियनका संवाद सुन्या है सो इंद्रियनके अभिमानी देवनकाहीं है। तिसकरि बी इंद्रियनकूं चेतनता नहीं है ॥ यातैं इंद्रियआत्मवादीका मत असंगत है ॥

टीकांक: १४१० टिप्पणांक: ५५९

[11]मन आत्मेति मन्यंत उपासनपरा जनाः ।
[13]प्राणस्याभोक्तृता स्पष्टा भोक्तृत्वं मनसस्ततः ६७

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: २६१

इत्यादिना प्राणजागरणं श्रूयते । "तत् प्राणे प्रपन्न उदतिष्ठत् तदुक्थमभवत्तदेतदुक्थम्" इति प्राणस्य श्रैष्ठ्यादिकं श्रूयते । "अन्योऽतर आत्मा प्राणमय" इत्यादिना प्राणमयः कोशः प्रपंचितः आदिशब्देन प्राणसंवादप्रवेशादिकं ग्राह्यम् ॥ ६६ ॥

१० प्राणादभ्यांतरस्य मनसः आत्मत्ववादिनो मतं दर्शयति (मन आत्मेति)–

११] **उपासनपराः जनाः मनः आत्मा इति मन्यंते ॥**

१२ प्राणस्यानात्मत्वे युक्तिमाह—

१३] **प्राणस्य अभोक्तृता स्पष्टा ततः मनसः भोक्तृत्वम् ॥ ६७ ॥**

पुरविषै जागतेहैं" इत्यादिकश्रुतिवाक्यकरि प्राणका जागरण सुनियेहै ॥ "सो इंद्रियगण सुषुप्तिमैं प्राण लय हुया जाग्रत्‌विषै प्राणतैं ऊठताभया । तातैं सो प्राण उक्थ कहिये ऊठताहै इंद्रियगण जिसतैं । सो उक्थ है । इस अर्थयुक्त नामवाला होताभया । ताहीतैं यह प्राण उक्थ है ॥" इसप्रकार प्राणके श्रेष्ठताआदिक सुनियेहैं ॥ औ "अन्य कहिये अन्नमयतैं भिन्न आंतरआत्मा प्राणमय है ।" इत्यादिकश्रुतिवाक्यकरि प्राणमयकोश विस्तारसैं कहाहै ॥ औ मूलविषै "प्राणका श्रेष्ठताआदिक सुन्याहै" इहां जो आदिशब्द है तिसकरि प्राणका संवाद औ शरीरविषै प्रवेशआदिक ग्रहण करना ॥ ६६ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक ६९–९९ उक्त मतमैं दोषपूर्वक उपासकनका मत (मन आत्मा) ॥

१० प्राणसैं बी आंतर जो मन है । तिस मनकी आत्मताके वादी नारदपंचरात्रके अनुसारिनके मतकूं दिखावैहैं:—

११] **उपासनके परायण जे जन हैं । वे मन आत्मा है । ऐसैं मानतेहैं ॥**

१२ प्राणकी अनात्मताविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

१३] **जातैं प्राणका अभोक्तापना स्पष्टहै । तातैं मनकूं भोक्तापना है॥६७॥**

५९ श्रेष्ठ ॥

६० (१) प्राण आत्मा नहीं है । काहेतैं वायु होनैतैं । बाह्यवायुकी न्याई ॥ औ

(२) प्राणके अदर्शनकरि नियमसैं मृत्यु नहीं होवैहै । काहेतैं स्थावर जे वृक्षादिक तिनविषै प्राणके अदर्शन हुये बी मृत्यु नहीं देखियेहै ॥ औ जंगम जे मनुष्यआदिकप्राणीन तिनविषै बी मूर्छादिकसमयमैं प्राण नहीं देखियेहैं तौ बी सो प्राणी मरते नहीं किंतु जीवते रहैहैं ॥ तातैं प्राण आत्मा नहीं है ॥ औ

(३) निद्राकालमैं प्राण जागताहै तौ बी कोई शरीरके भूषणादिककूं लेजावै तौ बी निवारण करता नहीं औ कोई संबंधी आया होवै ताका सत्कार करता नहीं ॥ यातैं प्राण जड है ताहीतैं आत्मा नहीं है ॥ औ

(४) जो प्राणात्मवादी कहै । प्राणके निर्गमनतैं देहका मरण होवैहै यातैं प्राण आत्मा है । यह कथन बी असंगत है । काहेतैं जठराग्निके निर्गमनतैं बी देहका मरण होवैहै तहां व्यभिचार है ॥ यातैं । औ

(५) श्रुतिविषै प्राणके श्रेष्ठताआदिक जे कहेहैं वे प्राणकी उपासनाविषै प्रवृत्तिअर्थ स्तुतिमात्रहीं है । यातैं सो अर्थवादमात्र हैं औ श्रुतिविषै प्राणमयकोशकी आत्मताका प्रतिपादक जो वचन है । तिसका मनोमयकोशकी आत्मताके प्रतिपादकवचनकरि बाध होनैतैं । तिन कोशनकी आत्म-

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३६२	१५ मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः । १७ श्रुतो मनोमयः कोशस्तेनात्मेतीरितं मनः॥६८॥	टीकांक: १४१४ टिप्पणांक: ५६१

१४ मनस आत्मत्वे युक्तिप्रतिपादिकां श्रुतिमाह (मन एवेति)—

१५] मनुष्याणां बंधमोक्षयोः कारणं मनः एव ॥

१६ "तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयादन्योंऽतर आत्मा मनोमय" इति श्रुत्यंतरं दर्शयति (श्रुत इति)—

१७] मनोमयः कोशः श्रुतः ॥

१८ फलितमाह—

१९] तेन मनः आत्मा इति ईरितम् ॥ ६८ ॥

१४ मनकी आत्मताविषै युक्तिकी प्रतिपादक श्रुतिकूं कहैहैं:—

१५] मनुष्यनकूं बंध औ मोक्षका कारण मनहीं है ॥

१६ "तिस मंत्रभागउक्त वा इस ब्राह्मणभागउक्त प्राणमयतैं अन्य आंतरआत्मा मनोमय है" इस अन्यश्रुतिकूं दिखावैहैं:—

१७] मनोमयकोश सुन्याहै ॥

१८ फलितकूं कहैहैं:—

१९] तिस कारणकरि "मन आत्मा" ऐसैं कह्याहै ॥ ६८ ॥

ताके प्रतिपादक श्रुतिवाक्यनका स्थूलारुंधतिन्यायकरि अधिष्ठानप्रत्यक्अभिन्नब्रह्मके लखावनैमैंहीं तात्पर्य है ॥ यह सर्वकोशनकी आत्मताकी प्रतिपादक श्रुतिनविषै जानना ॥ इंद्रियनसैं प्राणका संवाद औ शरीरविषै प्रवेश कह्याहै सो बी वायुके अभिमानीदेवताका कह्याहै ॥ औ

(६) "क्षुधाकरि मेरे प्राण निकसैंगे" वा "भोजनकरि मेरे प्राण संतुष्ट भये" ऐसैं प्राणविषै ममताकी विषयताके देखनैतैं अहंप्रतीतिकी विषयताके अभावतैं बी प्राण आत्मा नहीं है ॥ औ

(७) अपनै प्राणके गमनआगमनआदिक अपनैकरि अनुभव करियेहैं । यातैं प्राणका जाननैहारा आत्मा आप प्राणतैं न्यारा है ॥

६१ (१) मन आत्मा नहीं है । करण कहिये साधन होनैतैं । वास्यादिककी न्याई ॥ औ

(२) सुषुप्तिआदिकविषै सामान्यचेतनके सद्भावतैं । मन होवै तौ चेतनता बी होवै औ मन न होवै तौ न होवै । इस अन्वयव्यतिरेकके भंगतैं मन चेतन नहीं है किंतु जड है ॥ यातैं बी आत्मा नहीं है ॥ औ

(३) "पहिले मेरा मन और ठिकानै गया था" औ "अब मेरा मन स्थिर कियाहै" ॥ ऐसैं मनविषै ममताकी विषयताकरि अहंप्रतीतिकी विषयता नहीं है ॥ यातैं मनकी अस्थिरता औ स्थिरताका जाननैहारा आत्मा मनतैं भिन्न सिद्ध होवैहै ॥ औ

(४) चेतनके आभासविशिष्ट होनैकारि मनकूं भोक्तृता है स्वतंत्र नहीं । यातैं भोक्तृताकरि बी मनकूं आत्मता नहीं है ॥ औ

(५) "मनुष्यनकूं बंधमोक्षका कारण मनहीं है ॥ विषयविषै आसक्त भया जो मन सो बंधअर्थ है औ निर्विषय कहिये विषयवासनारहित भया जो मन सो मुक्तिअर्थ है" यह श्रुति मनकूं ज्ञानप्राप्तिद्वारा, मनके बाधकरि मोक्षहेतुता औ विषयवासनाकरि मोक्षसाधनके प्रतिबंधद्वारा अध्यासके सद्भावकरि बंधकी हेतुता कहतीहै औ मनकी आत्मरूपता कहती नहीं ॥ यातैं यह श्रुति मनकी आत्मतामैं प्रमाण नहीं है किंतु बंधके साधनतैं निवृत्ति औ मोक्षके साधनमैं प्रवृत्तिकी बोधक यह श्रुति है ॥ औ

(६) श्रुतिविषै मनोमयकोशकूं आत्मता कहीहै तिसका निराकरण ५६० टिप्पणविषैहीं कह्याहै ॥ इसरीतिसैं मनकी आत्मता असंगत है ॥

टीकांक: १४२० टिप्पणांक: ५६२	[21] विज्ञानमात्मेति पर आहुः क्षणिकवादिनः । [23] यतो विज्ञानमूलत्वं मनसो गम्यते स्फुटम् ॥६९॥ [25] अहंवृत्तिरिदंवृत्तिरित्यंतःकरणं द्विधा । विज्ञानं स्यादहंवृत्तिरिदंवृत्तिर्मनो भवेत् ॥ ७० ॥ [27] अहंप्रत्ययबीजत्वमिदंवृत्तेरिति स्फुटम् । [29] अविदित्वा स्वमात्मानं बाह्यं वेत्ति न तु क्वचित् ॥७१॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३६३ ३६४ ३६५

२० मनसोऽप्यांतरस्य विज्ञानस्य आत्मत्ववादिनः बौद्धस्य मतं दर्शयति (**विज्ञानमिति**)—

२१] परे क्षणिकवादिनः विज्ञानं आत्मा इति आहुः ॥

२२ विज्ञानस्यांतरत्वे युक्तिमाह—

२३] यतः मनसः विज्ञानमूलत्वं स्फुटं गम्यते ॥ ६९ ॥

२४ विज्ञानमनःशब्दवाच्यस्यांतःकरणस्यैकत्वात् कथं मनोविज्ञानयोः कार्यकारणभाव इत्याशंक्य तमुपपादयितुं तयोर्भेदं तावदर्शयति—

२५] अहंवृत्तिः इदंवृत्तिः इति अंतःकरणं द्विधा । अहंवृत्तिः विज्ञानं स्यात् । इदंवृत्तिः मनः भवेत् ॥ ७० ॥

२६ तयोः कार्यकारणभावमाह—

२७] अहंप्रत्ययबीजत्वं इदंवृत्तेः इति स्फुटम् ॥

२८ तदेवोपपादयति (**अविदित्वेति**)

॥९॥ क्षणिकविज्ञानवादीका मत (बुद्धि आत्मा) ॥

२० मनतैं बी आंतर जो बुद्धि है । तिसकूं आत्मा कहनैहारा बौद्ध कहिये जो बुद्धका शिष्य योगाचारनामक नास्तिक । ताके मतकूं दिखावैहैं:—

२१] और जे क्षणिकवादी हैं । वे क्षणिकज्ञानरूप बुद्धिरूप "विज्ञानहीं आत्माहै" ऐसैं कहतेहैं ॥

२२ बुद्धिकी मनसैं बी आंतरताविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

२३] जातैं मनकूं विज्ञानरूप कारणवान्पना स्पष्ट जानियेहै ॥ ६९ ॥

२४ ननु विज्ञान औ मनःशब्दके वाच्य अंतःकरणकूं एक होनैतें मन औ विज्ञानका क्रमतैं कार्य औ कारणभाव कैसैं होवैगा? यह आशंकाकरि तिस मन औ विज्ञानके कार्यकारणभावकूं उपपादन करनैकूं तिन मन औ विज्ञानके भेदकूं प्रथम दिखावैहैं:—

२५] अहंवृत्ति औ इदंवृत्ति इस भेदकरि अंतःकरण दोभांतिका है ॥ तिनमैं अहंवृत्ति विज्ञान कहिये बुद्धि होवैहै औ इदंवृत्ति मन होवैहै ॥७०॥

२६ तिन मन औ बुद्धिके कार्यकारणभावकूं कहैहैं ॥

२७] अहंवृत्तिरूप हेतुवान्पना इदंवृत्तिकूं अतिशय स्पष्ट है ॥

२८ तिस अहंवृत्तिगत इदंवृत्तिकी कारणताकूंहीं उपपादन करैहैं:—

६२ क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
३६६	क्षणे क्षणे जन्मनाशावहंवृत्तेर्मितौ यतः । विज्ञानं क्षणिकं तेन स्वप्रकाशं स्वतो मितेः ७२	१४२९
३६७	विज्ञानमयकोशोऽयं जीव इत्यागमा जगुः । सर्वसंसार एतस्य जन्मनाशसुखादिकः ॥ ७३ ॥	टिप्पणांकः ॐ

२९] स्वं आत्मानं अविदित्वा कचित् बाह्यं न तु वेत्ति ॥

३०) अहंवृत्त्युदयाभावे इदंवृत्त्यनुदयाद् अनयोः कार्यकारणभाव इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

३१ तस्य विज्ञानस्य क्षणिकत्वेऽनुभवं प्रमाणयति (क्षणे इति)—

३२] यतः क्षणे क्षणे अहंवृत्तेः जन्मनाशौ मितौ तेन विज्ञानं क्षणिकम् ॥

३३ क्षणिकत्वमुपपाद्य स्वप्रकाशत्वमुपपादयति (स्वप्रकाशमिति)—

३४] स्वतः मितेः स्वप्रकाशम् ॥

ॐ ३४) स्वेनैव प्रमितत्वादित्यर्थः ॥७२॥

३५ विज्ञानस्यात्मत्वे आगमः प्रमाणमित्याह—

३६] "विज्ञानमयकोशः अयं जीवः जन्मनाशसुखादिकः सर्वसंसारः एतस्य" इति आगमाः जगुः ॥

३७) "तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः" "विज्ञानं यज्ञं तनुते" इत्यादिवाक्यं विज्ञानस्यात्मत्वप्रतिपादकमिति भावः ॥ ७३ ॥

२९] अपनै आत्माकूं कहिये स्वरूपकूं न जानिके पुरुष कहूं बी बाह्यअनात्मवस्तुकूं नहीं जानताहै ॥

३०) "अहं" इस वृत्तिके उदयके अभाव होते इदं कहिये "यह है" इस वृत्तिके अनुदयतैं इन इदंवृत्तिरूप मन औ अहंवृत्तिरूप बुद्धिका क्रमतैं कार्यकारणभाव है ॥ यह अर्थ है॥७१॥

३१ तिस विज्ञानकी क्षणिकताविषै अनुभवकूं प्रमाण करैहैं:–

३२] जातैं क्षणक्षणविषै अहंवृत्तिके जन्म औ नाश प्रमाण करियेहैं । तिस हेतुकरि विज्ञान क्षणिक है॥

३३ विज्ञानके क्षणिकपनैकूं उपपादनकरिके स्वप्रकाशपनैकूं उपपादन करैहैं:–

३४] आपकरिहीं प्रमित किया होनैतैं । विज्ञान स्वप्रकाश है ॥ ७२ ॥

ॐ ३४) आपकरिहीं प्रमाका विषय किया होनैतैं । यह अर्थ है ॥ ७२ ॥

३५ विज्ञानकी आत्मताविषै वेद प्रमाण हैं । ऐसैं कहैहैं:–

३६] "विज्ञानमयकोश यह जीव है औ जन्म नाश अरु सुखआदिकरूप सर्वसंसार इस विज्ञानकूंहीं है" ऐसैं आगम कहतेहैं ॥

३७) "तिस वा इस मनोमयतैं अन्य आंतरआत्मा विज्ञानमय है" औ "विज्ञान यज्ञकूं विस्तारताहै" इत्यादिकश्रुतिवाक्य विज्ञानकी आत्मताके प्रतिपादक हैं ॥ यह भाव है ॥ ७३ ॥

टीकांकः १४३८ टिप्पणांकः ५६३

३९ विज्ञानं क्षणिकं नात्मा विद्युदभ्रनिमेषवत् ।
अन्यस्यानुपलब्धत्वाच्छून्यं माध्यमिका जगुः ७४

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३६८

३८ बौद्धावांतरभेदस्य शून्यवादिनो मतं दर्शयति (विज्ञानमिति)—

३९] विद्युदभ्रनिमेषवत् क्षणिकं विज्ञानं आत्मा न । अन्यस्य अनुपलब्धत्वात् माध्यमिकाः शून्यं जगुः ॥ ७४ ॥

॥ ६ ॥ श्लोक ६९–७३ उक्त मतमैं दोषपूर्वक माध्यमिकका मत (शून्य आत्मा) ॥

३८ अब बौद्ध कहिये बुद्धके शिष्यनका अवांतरभेद जो शून्यवादी कहिये माध्यमिकनामानास्तिक है । ताके मतकूं दिखावैहैं:—

३९] बीजली मेघ औ नेत्रके पलककी न्याई क्षणिक् जो विज्ञान[६३] । सो आत्मा नहीं है ॥ औ अन्यकूं अप्रतीत होनैतैं माध्यमिकमतके अनुसारी शून्यकूं आत्मा कहतेभये ॥७४॥

६३ **क्षणिकविज्ञानवादी** योगाचारके अनुसारी बुद्धिकूं आत्मा मानैहैं तिनका यह आशय है:–आंतरबाह्यसर्ववस्तु विज्ञानकाहीं आकार है ॥ सो विज्ञान । बीजली बादल औ निमेषकी न्याई क्षणक्षणमैं उत्पत्तिनाशकूं पावैहै यातैं **क्षणिक है** ॥ औ अपना औ औरका प्रकाशकज्ञानरूप होनैतैं **स्वप्रकाश है** ॥ औ

पहिले विज्ञानके तुल्य औरविज्ञानकी उत्पत्तिके भये प्रथमविज्ञानका नाश होवैहै औ तीसरेविज्ञानकी उत्पत्ति भये दूसरेविज्ञानका नाश होवैहै ॥ इसरीतिसैं दीपज्योति औ नदीके प्रवाहकी न्याई विज्ञानकी धारा बनी रहैहै ॥ आलयविज्ञानधारा औ प्रवृत्तिविज्ञानधाराके भेदसैं **विज्ञानकी धारा दोभांतिकी** हैं ॥ "अहं अहं" इस आकारवाली **आलयविज्ञानधारा** है सो बुद्धिरूप है ॥ "यह घट है । यह देह है" इस इदंआकारवाली **प्रवृत्तिविज्ञानधारा** है । सो मनआदिकबाह्यपदार्थरूप है ॥ प्रथम आलयविज्ञानधारा होवै । पीछे प्रवृत्तिविज्ञानधारा होवैहै ॥ यातैं आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिकी प्रवृत्तिविज्ञानधारा कार्य है ॥ सो आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिहीं आत्मा है ॥ तामैं प्रवृत्तिविज्ञानधारारूप मनआदिकके बाधकूं चिंतनकरिके एकरसक्षणिकविज्ञानधाराकी स्थितिहीं मोक्ष है ॥ यह

विज्ञानवादीका मत असंगत है ॥ काहेतैं रूपादिज्ञानरूप कार्यके करण चक्षुआदिकइंद्रियनकी न्याई । निश्चयरूप कार्यकी करण (साधन) होनैतैं बुद्धि आत्मा बनै नहीं किंतु सर्वपदार्थनकूं निश्चय करनैवाली बुद्धिकूं जो जानताहै सो आत्मा है ॥ सो आत्मा प्रकाशस्वरूपकरि सर्वदा प्रकाशताहै ॥ यातैं भास्य (रूप) औ भासक (सूर्यादिप्रकाश) के भेदकी न्याई भास्या बुद्धितैं अन्य भासक आत्मा है ॥

जैसैं दीपादिकका प्रकाश । घटादिकके आकारकूं प्राप्त हुवा मिश्रभावकरि भासमान है तौ बी वस्तुतैं भिन्न स्वभाववालाहीं है । तैसैं ज्ञानस्वरूप आत्मा बुद्धिवृत्तिनके साथि एकआकारताकूं प्राप्त हुया मिश्रभाव (मिलित होने)करि भासमान है । तौबी वस्तुतैं बुद्धिवृत्तिनतैं भिन्न नित्य शुद्धहीं है ॥ औ

जैसैं एकहीं ब्राह्मण पाठक्रियाकरि पाठक औ पाचन (रसोईरूप) क्रियाकरि पाचक कहियेहै । तैसैं अपंचीकृतभूतनके मिलित सत्वगुणके अंशनका कार्य जो अंतःकरण है । सो निश्चयरूप क्रियाकरि **बुद्धि** कहियेहै । औ संकल्पविकल्परूप क्रियाकरि **मन** कहियेहै ॥ यातैं अहंआकारवाली आंतरवृत्ति बुद्धि औ इदंआकारवाली बाह्यवृत्तिरूप मनका अंतःकरणतैं भेद सिद्ध होवै नहीं ॥ ऐसैं भौतिक होनैकरि देह इंद्रिय औ मनकी न्याई बुद्धि अनात्मा है ॥ औ

कठउपनिषद्की तीसरीवल्लीविषै "आत्माकूं रथी (रथमैं बेठनैवाला) जान औ शरीरकूं रथहीं जान औ बुद्धिकूं सारथि जान औ मनकूं प्रग्रह (अश्वकी लगाम)हीं जान औ इंद्रियनकूं हय (अश्व) कहतेभये औ तिन (हयरूप इंद्रियन) विषै विषय (रूपादिकन)कूं गोचर (मार्ग) जान औ शरीरइंद्रियमनकरि युक्त (आत्मा)कूं भोक्ता (संसारी) जान । ऐसैं मनीषी (पंडितजन) कहतेभये " इस श्रुतिउक्तरूपकविषै बुद्धिकी अनात्मता (सारथिरूपकरि आत्मातैं भिन्नता) प्रसिद्ध है ॥

विज्ञानवादी जो आत्माकूं क्षणिकरूप अंगीकार करै हैं **सो बी असंगत है** ॥ काहेतैं जो आत्मा (ज्ञाता) क्षणिक होवै तौ पूर्व धन देनैआदिककार्यके कर्त्ता आत्माके नाश हुये । वर्षदिन पीछे धन लेनैआदिककार्यका असंभव

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
३६९	असदेवेदमित्यादाविदमेव श्रुतं ततः । ज्ञानज्ञेयात्मकं सर्वं जगद्भ्रांतिप्रकल्पितम् ॥७५॥	१४४०
३७०	निरधिष्ठानविभ्रांतेरभावादात्मनोऽस्तिता । शून्यस्यापिससाक्षित्वादन्यथा नोक्तिरस्य ते ७६	टिप्पणांकः ॐ

४० तत्र श्रुतिमाह (असदेवेदमितीति)—

४१] इदं असत् एव इत्यादौ इदं एव श्रुतं ततः ॥

४२ शून्यस्यैव तद्रूपत्वे प्रतीयमानस्य जगतः का गतिरित्यत आह—

४३] ज्ञानज्ञेयात्मकं सर्वं जगत् भ्रांतिप्रकल्पितम् ॥ ७५ ॥

४४ तदेतन्मतं दूषयति—

४५] निरधिष्ठानविभ्रांतेः अभा-

४० तिस शून्यकी आत्मताविषे श्रुतिकूं कहैहैं:—

४१] "यह जगत् आगे असत्हीं था" इत्यादिकश्रुतिवाक्यविषे जातें यह शून्यहीं सुन्याहै। तातें शून्य आत्मा है ॥

४२ ननु शून्यकूंहीं आत्मरूपता हुये भासमानजगत्की कौन गति कहिये व्यवस्था है? तहां कहैहैं:—

४३] ज्ञान औ ज्ञेयरूप जो सर्वजगत् है। सो तिस शून्यविषे भ्रांतिकरि कल्पित है ॥ ७५ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक ७४–७५ उक्त मतमैं दोषपूर्वक भट्टआदिकनका मत (आनंदमयकोश आत्मा) ॥

४४ तिस शून्यवादीके इस मतकूं दूषण देवैहैं:—

४५] अधिष्ठानरहित भ्रांतिके अभावतैं औ शून्यकूं बी आत्मारूप साक्षीवाला होनेतैं आत्माकी सत्ता

होवैगा औ प्रथमक्षणविषे भोजन करनेहारेकूं द्वितीयक्षणविषे अपनै नाशकरि भोजनके अनंतर जो "मैं भोजन करने बैठा सोई मैं तृप्त भयाहूं" ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवैहै सो नहीं हुईचाहिये औ नष्ट भया मनुष्य उत्तरक्षणमैं पशु होवैगा औ भोजन करनेकूं ग्रहण किया दुग्धआदिक उत्तरक्षणमैं विष होवैगा औ

जो क्षणिकविज्ञानवादी कहै। भ्रांतिसैं प्रत्यभिज्ञा होवैहै अरु पूर्व नष्ट भये आत्माआदिकके संस्कारकरि द्वितीयआत्माआदिककी उत्पत्ति होवैहै॥ यातैं उक्तप्रत्यभिज्ञा औ पूर्व सदृशअन्यपदार्थकी उत्पत्ति संभवै है॥ यह कथन बनै नहीं ॥ काहेतैं विज्ञानवादीके मतमैं क्षणिकआत्माकूं उत्तरक्षणविषे विनाशी होनेकरि भ्रांतिके द्रष्टा औ अधिष्ठानके अभावतैं भ्रांतिका असंभव है औ विज्ञानकूं निर्विशेष होनेकरि संस्कारका अंगीकार अयुक्त है ॥ औ समाधानके लोभकरि संस्कारका अंगीकार करै तौबी संस्कारका आश्रय कह्याचाहिये ॥ सो आश्रय विज्ञानरूप कहै तौ निर्विशेषसिद्धांतका भंग होवैगा औ विज्ञानसैं भिन्न पदार्थका अभाव है। यातैं संस्कारकूं विज्ञानरूप होनेकरि आत्माश्रयदोषकी प्राप्ति होवैगी ॥ औ

आत्माकूं क्षणिक होनेकरि पूर्वक्षणविषे विद्यमान आपके उत्तरक्षणविषे अभावतैं मोक्षनिमित्त जो वैराग्यादिकसाधन कहेहैं। तिसविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी ॥ किंतु पापआचरणविषे प्रवृत्ति होयके तिनकूं नरकप्राप्ति होवैगी ॥ औ क्षणिकविज्ञानधाराकी स्थितिरूप तिनके मोक्षविषे विश्रांति औ अपनै सद्भावके अभावतैं कोइ कुशलकी इच्छा बी नहीं होवैगी ॥ औ

"मेरी बुद्धि मंद है वा तीव्र है" ऐसैं ममताके विषय बुद्धिकी मंदताआदिकका जाननैहारा आत्मा भिन्न सिद्ध है। यातैं बुद्धि स्वप्रकाश नहीं है किंतु परप्रकाश है ॥

इसरीतिसैं विज्ञानवादीका मत असंगत है ॥

टीकांकः १४४७ टिप्पणांकः ५६४	ॐअन्यो विज्ञानमयत आनंदमय आंतरः । अस्तीत्येवोपलब्धव्य इति वैदिकदर्शनम् ॥ ७७ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३७१

वात् शून्यस्य अपि ससाक्षित्वात् आत्मनः अस्तिता । अन्यथा अस्य उक्तिः ते न ॥

४६) निःस्वरूपस्य शून्यस्याधिष्ठानत्वायोगात् निरधिष्ठानस्य भ्रमस्यानुपपत्तेर्जगत्कल्पनाधिष्ठानस्य आत्मनः सत्ताभ्युपगंतव्या । किं च शून्यवादिनोऽपि शून्यसाक्षित्वेनावश्यमात्माभ्युपगंतव्यः । अन्यथा तस्यानभ्युपगमे अस्य शून्यस्योक्तिः शून्यमित्यभिधानं ते बौद्धस्य तव मते न सिद्ध्येदिति भावः ॥ ७६ ॥

४७ कस्तर्ह्यात्मेत्यत आह (अन्य इति)—

४८] विज्ञानमयतः अन्यः आंतरः आनंदमयः "अस्ति' इति एव उपलब्धव्यः" इति वैदिकदर्शनम् ॥

४९) "तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्यो-

मानीचाहिये । अन्यथा इस शून्यकी उक्ति बी तुज शून्यवादीकूं बनै नहीं

४६) वंध्यापुत्रादितुल्य निःस्वरूप शून्यकूं अधिष्ठानपनैके अयोगतैं औ अधिष्ठानरहित भ्रमके असंभवतैं जगत्की कल्पनाके अधिष्ठान आत्माकी सत्ता अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ किंवा शून्यवादीकूं बी शून्यके साक्षीपनैकरि अवश्य आत्मा अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ अन्यथा कहिये तिस शून्यसैं भिन्न आत्माके अंगीकार नहीं कीये । इस शून्यका "शून्य 'है" ऐसा कथन तुज माध्यमिकके मतविषै सिद्ध होवै नहीं ॥ यह भाव है ॥ ७६ ॥

४७ ननु तव कौंन आत्मा है? तहां नैयायिक प्रभाकर औ भट्टमतके अनुसारी अन्यवादी कहैहैं:—

४८] विज्ञानमयतैं अन्य आंतर आनंदमय आत्मा है । सो आत्मा "है' ऐसैंहीं जाननैकूं योग्य है" । इस प्रकार वैदिकदर्शन है ॥

४९) "तिस वा इस विज्ञानमयतैं अन्य

६४ बुद्धके शिष्य माध्यमिकके अनुसारी । शून्यकूंहीं आत्मा मानैहैं । तिनका यह आशय है:—आत्मा औ आत्मातैं भिन्न सर्ववस्तु शून्यरूप हैं ॥ सो शून्यहीं सर्वका निजरूप होनैतैं परमतत्त्व है ॥ सुषुप्तिविषै सर्वपदार्थनके अभाव होनैकरि "मैं कछु बी नहीं जानताथा" इस प्रतीतिका विषय औ विद्वान्की दृष्टितैं तुच्छअज्ञानरूप जो आनंदमयकोश अवशेष रहताहै सोइ शून्यरूप आत्मा है ॥

ऐसैं माननैहारे शून्यवादीकूं पूछेहैं:—(१) यह शून्य ससाक्षिक कहिये साक्षीसहित है (२) वा असाक्षिक कहिये साक्षीरहित है (३) वा स्वप्रकाश है? ये तीनविकल्प हैं ॥ तिनमैं

(१) प्रथमपक्ष कहै तौ जो शून्यका साक्षी है । सो शून्यसैं विलक्षण आत्मा सिद्ध होवैगा ॥ औ

(२) द्वितीयपक्ष कहै तौ साक्षीरहित शून्यकी असिद्धि होवैगी ॥ औ

(३) तृतीयपक्ष कहै तौ स्वप्रकाशरूपकरि हमकूं वांच्छितब्रह्मकोहीं "शून्य" इस अन्यनामकरि सिद्धितैं शून्यकी असिद्धि भई ॥ औ

"यह (जगत्) आगे असत्हीं था" यह छांदोग्यश्रुतिका वाक्य पूर्वउत्तरके विरोधतैं शून्यके प्रतिपादनपर नहीं है । किंतु नैयायिकवैशेषिकबौद्धआदिकवादी । प्राक्अभावआदिककूं जगत्का कारण मानतेहैं तिनका अनुवादकरिके तिस विपरीतग्रहणकी निवृत्तिविषैहीं उक्तश्रुतिका तात्पर्य है ॥ इसरीतिसैं शून्यवादीका मत असंगत है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्ोकांकः ३७२ ३७३

अणुर्महान्मध्यमो वेत्येवं तत्रापि वादिनः ।
बहुधा विवदंते हि श्रुतियुक्तिसमाश्रयात् ॥ ७८ ॥
अणुं वदंत्यांतरालाः सूक्ष्मनाडीप्रचारतः ।
रोम्णः सहस्रभागेन तुल्यासु प्रचरत्ययम् ॥७९॥

टीकांकः १४५० टिप्पणांकः ॐ

ऽतर आत्मानंदमयः । अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन" इति च श्रुतिसद्भावात् आनंदमय आत्माऽभ्युपगंतव्य इति वैदिकदर्शनं वैदिकसिद्धांतः ॥ ७७ ॥

५० एवमात्मस्वरूपे विप्रतिपत्तिं प्रदर्श्य तत्परिमाणविशेषेऽपि वादिविप्रतिपत्तिं दर्शयति—

५१] अणुः महान् वा मध्यमः इति एवं तत्र अपि वादिनः श्रुतियुक्तिसमाश्रयात् बहुधा विवदंते हि ॥ ७८ ॥

५२ अत्राणुत्ववादिनस्तावद्दर्शयति (अणुमिति)—

५३] आंतरालाः अणुं वदंति ॥

५४ अणुत्वाभिधाने हेतुमाह—

५५] सूक्ष्मनाडीप्रचारतः ॥

५६ तदुपपादयति—

५७] रोम्णः सहस्रभागेन तुल्यासु अयं प्रचरति ॥

५८) नाडीष्विति शेषः । सूक्ष्मासु नाडीषु

आंतरआत्मा आनंदमय है" औ " है" ऐसैंहीं आत्मा परमार्थरूपकरि जाननैकूं योग्य है" इस श्रुतिके सद्भावतैं आनंदमयकोशहीं आत्मा अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ इस प्रकारका यह वेदका सिद्धांत है । ऐसैं नैयायिकआदिक कहैहैं ॥ ७७ ॥

॥ २ ॥ आत्माके परिमाण (माप)मैं विवाद ॥ १४५०—१४८६ ॥

॥ १ ॥ त्रिविधपरिमाणका साधारणकथन ॥

५० ऐसैं आत्माके स्वरूपविषै विवादकूं दिखायके अब तिस आत्माके परिमाणविशेषमैं बी वादिनके विवादकूं दिखावैहैं:—

५१] "अणु है" वा "महान् है" वा "मध्यम है"। ऐसैं तिस आत्माके परिमाणविषै बी वादी । श्रुति औ युक्तिके आश्रयतैं बहुतप्रकारसैं विवादकूं करतेहैं ॥ ७८ ॥

॥ २ ॥ अणुपरिमाणवादी आंतरालका मत (अणु आत्मा) ॥

५२ इन परिमाणभेदके वादिनविषै अणुपरिमाणवादीके मतकूं प्रथम दिखावैहैं:—

५३] आंतराल इस नामवाले वादी जे हैं वे आत्माकूं अणुपरिमाण कहतेहैं ॥

५४ आत्माके अणुभावके कथनविषै हेतुकूं कहैहैं:—

५५] सूक्ष्मनाडीनविषै प्रचार कहिये प्रवृत्तितैं ॥

५६ तिस सूक्ष्मनाडीनविषै आत्माके प्रचारकूं उपपादन करैहैं:—

५७] बालके हजारवे भागसैं तुल्य सूक्ष्मनाडीनविषै यह आत्मा संचरताहै कहिये विचरताहै ॥

५८) सूक्ष्मनाडीनविषै जो आत्माका संचार है । सो आत्माके अणु होनैविना

टीकांकः १४५९ टिप्पणांकः ५६५	अणोरणीयानेषोऽणुः सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं त्विति । अणुत्वमाहुः श्रुतयःशतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८० ॥ वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेय इति चाहापरा श्रुतिः ८१	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३७४ ३७५

संचारोऽणुत्वमंतरेण न घटत इत्यभिप्रायः ॥ ७९ ॥

५९ अणुत्वे किं प्रमाणमित्यत आह—

६०] **अणोः अणीयान् । एषः अणुः। सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं तु इति शतशः अथ सहस्रशः श्रुतयः अणुत्वं आहुः॥**

६१) "अणोरणीयान् महतो महीयान्। एषोऽणुः आत्मा चेतसा वेदितव्यः" । "सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं" इत्यादि श्रुतय इत्यर्थः ॥ ८० ॥

६२ श्रुत्यंतरमुदाहरति—

६३] **वालाग्रशतभागस्य च शतधा कल्पितस्य भागः सः जीवः विज्ञेयः इति च अपरा श्रुतिः आह ॥ ८१ ॥**

घटता नहीं यातैं आत्मा अणु है । यह अभिप्राय है ॥ ७९ ॥

५९ ननु आत्माके अणुपनैविषै कौन प्रमाण है ? तहां कहैहैं:—

६०] **"अणुतैं अत्यंत अणु है" । "यह आत्मा अणु है" । "सूक्ष्मतैं अत्यंत सूक्ष्म है" । ऐसैं सैकडो औ हजारोश्रुतियां आत्माके अणुपनैकूं कहैहैं ॥**

६१) "अणुतैं अत्यंतअणु अरु महानतैं अत्यंतमहान् है" औ "यह अणु कहिये सूक्ष्मरूप आत्मा शुद्धमनकरि जाननैकूं योग्य है" औ "सूक्ष्मतैं सूक्ष्मतर औ नित है" इत्यादिकअनेकश्रुतियां आत्माकी अणुताविषै प्रमाण हैं ॥ यह अर्थ है ॥ ८० ॥

६२ आत्माकी अणुताविषैहीं अन्यश्रुतिकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

६३] **वालके अग्रका जो शत (१००) भाग है । जो शतभाग शतधा कहिये सो (१००) प्रकार कल्पित (किया) है । तिसका एकभाग कहिये तैसा सूक्ष्म सो जीव जाननैकूं योग्य है ॥ ऐसैं दूसरीश्रुति आत्माके अणुभावकूं कहतीहै ॥८१॥**

---

५६५ आत्माके अणुपरिमाणवादी जे आंतरालआदिक हैं तिन **आंतरालआदिकका मत असंगत है** ॥ काहेतैं जो आत्मा अणु होवै तौ ज्ञाताआत्माकूं अणुरूप होनैकरि शरीरके एकदेशविषै स्थित होनैतैं । पाद औ मस्तक दोनूंस्थलमैं पीडाका वा सुखका ज्ञान एककालमैं नहीं हुवाचाहिये ॥ औ

जो अणुवादी कहै । एकदेशमैं स्थित पुष्पादिकनका गंध बहुतदेशमैं प्रसरताहै । तैसैं शरीरविषै एकदेशमैं स्थित अणुरूप आत्माका ज्ञानगुण सारे शरीरविषै व्याप्त होवैहै ॥ तातैं पाद औ मस्तकगतपीडाका वा सुखका ज्ञान एककालमैं संभवैहै ॥ **यह कथन बनै नहीं** ॥ काहेतैं घटादिकमैं स्थित नीलादिगुणनकी न्याई गुणीकूं छोडिके बाहिर गुण रहै नहीं। इस नियमकरि आत्मासैं बाहिर ज्ञानगुण रहै नहीं ॥ औ

जो अणुवादी कहै । जैसैं शरीरके एकदेशमैं स्पर्शकूं पाये चंदनकी शीतलता सारेशरीरमैं व्याप्त होवैहै । तैसैं शरीरके एकदेशमैं स्थित अणुरूप आत्माका ज्ञान सारेशरीरमैं व्याप्त होवैहै । **यह कथन बी बनै नहीं** ॥ काहेतैं शरीरके एकदेशमैं चंदनके स्पर्शकरि सारेशरीरमैं व्याप्त जलांशके घनीभावका उद्बोध होवैहै । तिसतैं सारेशरीरमैं शीतलता होवैहै । सो शीतलता चंदनकी नहीं । यातैं यह दृष्टांत दार्ष्टांतसैं विषम है ॥ औ

जो अणुवादी कहै । एकदेशमैं स्थित दीपकके

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
३७६	६५ दिगंबरा मध्यमत्वमाहुरापादमस्तकम् । ६७ चैतन्यव्याप्तिसंदृष्टेरानखाग्रश्रुतेरपि ॥ ८२ ॥	१४६४
३७७	सूक्ष्मनाडीप्रचारस्तु सूक्ष्मैरवयवैर्भवेत् । स्थूलदेहस्य हस्ताभ्यां कंचुकप्रतिमोकवत् ॥ ८३ ॥	टिप्पणांकः ॐ

६४ मध्यमपरिणामवादिनो मतं दर्शयति—

६५] दिगंबराः मध्यमत्वं आहुः ॥

६६ तत्रोपपत्तिमाह—

६७] आपादमस्तकं चैतन्यव्याप्तिसंदृष्टेः ॥

६८ "स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः" इति श्रुतिरप्यत्र प्रमाणमित्याह—

६९] आनखाग्रश्रुतेः अपि ॥ ८२ ॥

७० ननु मध्यमपरिमाणत्वे श्रुतिसिद्धो नाडीप्रचारो न घटत इत्याशंक्याह—

७१] सूक्ष्मनाडीप्रचारः तु स्थूलदेहस्य हस्ताभ्यां कंचुकप्रतिमोकवत् सूक्ष्मैः अवयवैः भवेत् ॥

७२) यथा देहावयवयोः हस्तयोः कंचुकप्रवेशेन देहस्य कंचुकप्रवेशः । तद्वदात्मा-

॥ ३ ॥ मध्यमपरिमाणवादीदिगंबरका मत (देहजितना आत्मा) ॥

६४ अब मध्यमपरिमाणवादीदिगंबर नामक नास्तिकके मतकूं दिखावैहैं:—

६५] दिगंबर जे हैं वे आत्माके मध्यमपरिमाणकूं कहतेहैं ॥

६६ तिस आत्माके मध्यमपरिमाणविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

६७] पादसैं लेके मस्तकपर्यंत चैतन्यकी व्याप्तिके सम्यक् देखनैतैं ॥

६८ "सो यह आत्मा इस शरीरविषै नखके अग्रपर्यंत प्रवेश करताभयाहै" यह श्रुति वी इस आत्माके मध्यमपरिमाणविषै प्रमाण है । ऐसैं कहैहैं:—

६९] "नखाग्रपर्यंत देहविषै प्रवेश भयाहै" इस श्रुतितैं वी आत्मा मध्यमपरिमाणवाला है ॥ ८२ ॥

७० ननु आत्माके मध्यमपरिमाणपनैके हुये श्रुतिसिद्ध "नाडीनविषै प्रचार" जो ७९ श्लोकविषै कह्या सो नहीं घटताहै । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७१] सूक्ष्मनाडीनविषै आत्माका प्रचार कहिये प्रवेश तौ स्थूलदेहके दोहस्तनकरि कंचुक कहिये जामाविषै प्रवेशकी न्याई सूक्ष्मआत्माके अंगनकरि होवैहै ॥

७२) जैसैं देहके अवयवरूप दोहस्तनके कंचुकविषै प्रवेशकरि देहका कंचुकविषै प्रवेश

सारेगृहमैं प्रकाशकी न्याई एकदेशमैं स्थित आत्माका ज्ञान सारेशरीरमैं व्याप्त होवैहै ॥ सो वी बनै नहीं ॥ काहेतैं दीपककी न्याई आत्माकूं सावयव औ परप्रकाश्य होनेकरि । दृश्य औ विनाशिपनैकी प्राप्ति होवैगी । यातैं आत्माकूं अणुरूप माननैकरि । वृद्धिके इच्छनैवालेकूं मूलधनके नाशकी न्याई । आत्माकाहीं अभावरूप महानअनर्थ होवैगा ॥ औ

आत्माकी अणुरूपतामैं जो श्रुति कहीहैं तिनका स्थूलबुद्धिवाले पुरुषनकूं आत्मा अणुकी न्याई दुर्ज्ञेय है यह तात्पर्य है ॥ काहेतैं उपनिषदनमैं बहुतठिकानै आत्मा व्यापकरूप वर्णन कियाहै । तातैं आत्मा अणुरूप नहीं है ॥ इसरीतिसैं अणुवादीउपासकआदिकनका मत असंगत है ॥

टीकांक: १४७३ टिप्पणांक: ॐ	७४ न्यूनाधिकशरीरेषु प्रवेशोऽपि गमागमैः । ७६ आत्मांशानां भवेत्तेन मध्यमत्वं विनिश्चितम् ८४ ७८ सांशस्य घटवन्नाशो भवत्येव तथा सति । कृतनाशाकृताभ्यागमयोः को वारको भवेत् ८५	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३७८ ३७९

वयवानां सूक्ष्माणां नाडीषु प्रचारेणात्मनोऽपि प्रचार उपचर्यत इत्यर्थः ॥ ८३ ॥

७३ नन्वात्मनो नियतमध्यमपरिमाणत्वे कर्मवशान्न्यूनाधिकशरीरप्रवेशो न घटत इत्याशंक्यावयवागमापायाभ्यामात्मनो नियतमध्यमपरिमाणत्वाद्देहवदुभयं न विरुध्यत इत्याह—

७४] न्यूनाधिकशरीरेषु प्रवेशः अपि आत्मांशानां गमागमैः भवेत्॥

७५ फलितमाह—

७६] तेन मध्यमत्वं विनिश्चितम्८४

७७ आत्मनः सावयवत्वे घटादिवदनित्यत्वप्रसंगेनैतत् दूषयति—

७८] सांशस्य घटवत् नाशः भवति एव ॥

७९ भवतु को दोषस्तत्राह—

८०] तथा सति कृतनाशाकृताभ्यागमयोः वारकः कः भवेत् ॥

८१) कृतयोः पुण्यपापयोर्भोगमंतरेण नाशः । अकृतयोरकस्मात् फलदातृत्वम्

कहियेहै । तैसैं सूक्ष्मआत्माके अवयवनके नाडीनविषै प्रचारकरि । आत्माका बी प्रचार उपचार करियेहै कहिये आरोपसैं कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ८३ ॥

७३ ननु आत्माकी नियमितमध्यमपरिमाणता हुये कर्मके वशतैं चीटीआदिकन्यून औ हस्तीआदिक अधिकशरीरनविषै प्रवेश नहीं घटताहै । यह आशंकाकरि आत्माके अवयवनके उत्पत्ति औ नाशकरि आत्माकूं नियमितमध्यमपरिमाणवाला होनैतैं देहकी न्याईं न्यूनआदिकशरीरविषै प्रवेश । ये दोनूं विरोधकूं पावता नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

७४] पूर्वसैं छोटे औ पूर्वसैं बडे शरीरनविषै आत्माका प्रवेश बी । आत्माके अंशनके जानै औ आनैकरि होवैहै ॥

७५ फलितअर्थकूं कहैहैं:—

७६] तिस हेतुकरि आत्माका मध्यमत्व कहिये शरीरसैं समानपना विशेषकरि निश्चित है ॥ ८४ ॥

॥ ४ ॥ आत्माके मध्यमपरिमाणमैं दोषपूर्वक । विभुपरिमाणवादी जो प्राचीननैयायिकआदिक तिनका मत (विभु आत्मा)॥

७७ आत्माकूं सावयवपनैके हुये घटादिकसावयववस्तुनकी न्याईं । अनित्यताके प्रसंगकरि इस मध्यमपरिमाणवादीदिगंबरके मतकूं दूषण देतेहैं:—

७८] सावयववस्तुका घटकी न्याईं नाश होवैहीं है ॥

७९ सावयव होनैतैं घटकी न्याईं आत्माका नाश होहू । तिसकरि कौंन दोष है? तहां कहैहैं:—

८०] तैसैं आत्माके नाश हुये कृतनाश औ अकृताभ्यागमरूप दोनूं दोषनका निवारक कौन होवैगा ?

८१) किये जे पुण्य औ पाप तिनका

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
३८०	तस्मादात्मा महानेव नैवाणुर्नापि मध्यमः । आकाशवत्सर्वगतो निरंशः श्रुतिसंमतः ॥ ८६ ॥	१४८२
३८१	इत्युक्त्वा तद्विशेषे तु बहुधा कलहं ययुः । अचिद्रूपोऽथ चिद्रूपश्चिदचिद्रूप इत्यपि ॥ ८७ ॥	टिप्पणांक: ॐ

अकृताभ्यागमः । एतद्दोषद्वयमात्मनो नित्यत्वाभ्युपगमे भवेदिति भावः ॥ ८५ ॥

८२ अतः परिशेषादात्मनो विभुत्वं सिद्धमित्याह—

८३] तस्मात् आत्मा महान् एव । अणुः न एव । मध्यमः अपि न ॥

८४ तत्र प्रमाणमाह—

८५] आकाशवत् सर्वगतः निरंशः श्रुतिसंमतः ॥

८६) "आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः" । "निष्कलं निष्क्रियम्" । इत्याद्यागमः प्रमाणमित्यर्थः ॥ ८६ ॥

८७ एवमात्मनो विभुत्वं प्रसाध्य तस्य चिद्रूपत्वं निश्चेतुं तावद्वादिविप्रतिपत्तिं दर्शयति—

८८] इति उक्त्वा तद्विशेषे तु अचिद्रूपः अथ चिद्रूपः चिदचिद्रूपः इति अपि बहुधा कलहं ययुः ॥ ८७ ॥

भोगविना जो नाश सो कृतनाश है औ नहीं किये जे पुन्य औ पाप तिनका अकस्मात् जो फलदातापना सो अकृताभ्यागम है ॥ आत्माकी अनित्यताके अंगीकार हुये ये दोनूंदोष होवैहैं ॥ यह भाव है ॥ ८५ ॥

८२ जातैं आत्माकी अणुपरिमाणता औ मध्यमपरिमाणतारूप दोनूंपक्षनविषै दोष है यातैं परिशेषतैं आत्माका विभुत्व कहिये महत्परिमाणपना सिद्ध भया । ऐसैं कहैहैं:—

८३] तातैं आत्मा महान् कहिये व्यापकहीं है ॥ अणु वी नहीं है औ मध्यम कहिये शरीर जितना वी नहीं है ॥

८४ तिस आत्माके विभुपनैविषै प्रमाणकूं कहैहैं:—

८५] आकाशकी न्याई सर्वगत औ निरंश कहिये निरवयव आत्मा श्रुतिकरि मान्याहै ॥

८६) "आकाशकी न्याई सर्वगत कहिये सर्वत्रस्थित अरु नित्य है" औ "निष्कल कहिये निरवयव अरु निष्क्रिय कहिये क्रियारहित है" इत्यादिकवेदवाक्य आत्माकी महत्ताविषै प्रमाण हैं ॥ यह अर्थ है ॥ ८६ ॥

॥ ३ ॥ आत्माके विशेषरूपमैं कहिये विलक्षणरूपमैं विवाद ॥

॥ १४८७—१५३६ ॥

॥ १ ॥ आत्माके त्रिविधविशेषरूपका कथन ॥

८७ ऐसैं आत्माके विभुपनैकूं साधिके तिस आत्माकी चिद्रूपताकूं निश्चय करनैवास्ते प्रथम वादिनके विवादकूं दिखावैहैं:—

८८] ऐसैं आत्माके महत्पनैकूं कहिके तिस आत्माका विशेष जो विलक्षणता । तिसविषै तौ आत्मा जड है औ चेतन है औ जडचेतन उभयरूप है । ऐसैं बी बहुतप्रकार वादी कलहकूं कहिये विवादकूं पावतेहैं ॥ ८७ ॥

टीकांकः १४८९ टिप्पणांकः ५६६

प्राभाकरास्तार्किकाश्च प्राहुरस्याचिदात्मताम् ।
आकाशवद्द्रव्यमात्मा शब्दवत्तद्गुणश्चितिः ॥८८॥
इच्छाद्वेषप्रयत्नाश्च धर्माधर्मौ सुखासुखे ।
तत्संस्काराश्च तस्यैते गुणाश्चितिवदीरिताः ॥८९॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३८२ ३८३

८९ अचिद्रूपत्ववादिनो मतं दर्शयति—

९०] प्राभाकराः च तार्किकाः अस्य अचिदात्मतां प्राहुः ॥

९१ तत्प्रक्रियामनुभाषते—

९२] आकाशवत् आत्मा द्रव्यम् । शब्दवत् । तद्गुणः चितिः ॥

९३) आत्मा द्रव्यं भवितुमर्हति । गुणवत्वात् आकाशवत् इति अनुमानं सूचितं । आत्मनः पृथिव्यादिभ्यो भेदसाधकं विशेषगुणं दर्शयति आत्मा पृथिव्यादिभ्यो भिद्यते ज्ञानगुणत्वात् यत्पृथिव्यादिभ्यो न भिद्यते तत् ज्ञानगुणकमपि न भवति यथा पृथिव्यादीत्यनुमानं द्रष्टव्यम् ॥ ८८ ॥

९४ तस्यैव विशेषगुणांतराण्याह—

९५] इच्छाद्वेषप्रयत्नाः च धर्माधर्मौ सुखासुखे च तत्संस्काराः एते चितिवत् तस्य गुणाः ईरिताः ॥ ८९ ॥

॥ २ ॥ प्रभाकर औ तार्किकका मत (आत्मा जडरूप) ॥

८९ आत्माकी जडताके वादी प्रभाकर औ नैयायिकके मतकूं दिखावैहैं:—

९०] भट्टके शिष्यके अनुसारी प्रभाकर औ तार्किक जे नैयायिक वे इस आत्माकी जडरूपताकूं कहतेहैं ॥

९१ तिनकी प्रक्रियाकूं अनुवाद करैहैं:—

९२] आकाशकी न्याईं आत्मा द्रव्य[६६] है औ शब्दकी[६७] न्याईं तिस आत्माका गुण चैतन्य है ॥

९३) आत्मा द्रव्य कहिये गुणाश्रय होनैकूं योग्य है गुणवाला होनैतैं आकाशकी न्याईं ॥ यह अनुमान सूचन कियाहै ॥ आत्मा पृथ्वीआदिकअन्यद्रव्यनतैं भेदकूं पावैहै ज्ञानगुणवाला होनैतैं । जो वस्तु पृथिवीआदिकनतैं भेदकूं पावै नहीं सो ज्ञानगुणवाला वी होवै नहीं । जैसैं पृथिवीआदिक हैं ॥ यह वी अनुमान देखलेना ॥ इति ॥ ८८ ॥

९४ तिस ज्ञानगुणवाले आत्माकेहीं विशेषअन्यगुणनकूं कहैहैं:—

९५] इच्छा द्वेष प्रयत्न पुण्य पाप सुख दुःख औ तिनका भावनारूप संस्कार । ये अष्ट । ज्ञानकी[६८] न्याईं तिस आत्माके गुण कहैहैं ॥ ८९ ॥

६६ गुणनका आश्रय द्रव्य कहियेहै ॥
६७ आकाशके गुण ॥
६८ ज्ञान ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३८४

ॐआत्मनो मनसा योगे स्वादृष्टवशतो गुणाः ।
जायंतेऽथ प्रलीयंते सुषुप्तेऽदृष्टसंक्षयात् ॥ ९० ॥

३८४ चितिमत्त्वाच्चेतनोऽयमिच्छाद्वेषप्रयत्नवान् ।

३८५ स्याद्धर्माधर्मयोः कर्ता भोक्ता दुःखादिमत्त्वतः ९१

यथात्र कर्मवशतः कादाचित्कं सुखादिकम् ।

३८६ तथा लोकांतरे देहे कर्मणेच्छादि जन्यते ॥ ९२ ॥

टीकांक: १४९६ टिप्पणांक: ॐ

९६ एषां गुणानामुत्पत्तिविनाशकारणमाह (आत्मन इति)—

९७] स्वादृष्टवशतः आत्मनः मनसा योगे गुणाः जायंते अथ सुषुप्ते अदृष्टसंक्षयात् प्रलीयंते ॥

ॐ ९७) स्वादृष्टवशत आत्मनो मनसा योगे इत्यन्वयः ॥९०॥

९८ आत्मनोऽचिद्रूपत्वे कथं चेतनत्वाभ्युपगम इत्याशंक्य चितिमत्त्वादित्याह—

९९] चितिमत्त्वात् अयं चेतनः ॥

१५०० आत्मनश्चेतनत्वे हेत्वंतरमाह—

१] इच्छाद्वेषप्रयत्नवान् ॥

२ तस्येश्वराद्वैलक्षण्यमाह (स्यादिति)—

३] धर्माधर्मयोः कर्त्ता दुःखादिमत्त्वतः भोक्ता स्यात् ॥ ९१ ॥

४ नन्वात्मनो विभुत्वे लोकांतरगमनादिकं कथं घटेतेत्याशंक्यास्मिन् देहे कर्मवशादिच्छाद्युत्पत्तौ सत्यामत्रात्मनोऽवस्थानादिव्यवहार इव कर्मवशाल्लोकांतरे देहांतरोत्पत्तौ

---

९६ इन ज्ञानादिकगुणनके उत्पत्ति औ विनाशके कारणकूं कहैहैंः—

९७] आपके प्रारब्धकर्मरूप अदृष्टके वशतैं आत्माका मनके साथि संयोग हुये गुण उत्पन्न होवैहैं । फेर सुषुप्तिविषै अदृष्टके क्षयतैं आत्मा औ मनके संयोगके अभावतैं गुण लीन होवैहैं ॥

ॐ ९७) स्वअदृष्टके वशतैं आत्माके मनके साथि संयोगके हुये । ऐसैं अन्वय है ॥९०॥

९८ आत्माकी जडरूपताके हुये चेतनपनैका अंगीकार कैसैं करतेहो? यह आशंकाकरि आत्माकूं ज्ञानगुणवाला होनैतैं चेतनताका अंगीकार है। ऐसैं कहैहैंः—

९९] ज्ञानगुणवाला होनैतैं यह आत्मा चेतन है ॥

१५०० आत्माकी चेतनताविषै अन्यहेतुकूं कहैहैंः—

१] सो आत्मा इच्छा द्वेष औ उत्साहविशेषरूप प्रयत्नवान् है ॥

२ तिस आत्माकी ईश्वरतैं विलक्षणताकूं कहैहैंः—

३] आत्मा । धर्म अरु अधर्म दोनूंका कर्त्ता है औ दुःखादिकवाला होनैतैं भोक्ता है ॥ ९१ ॥

४ ननु आत्माकूं व्यापकताके हुये आत्माका परलोकविषै गमनआदिक कैसैं घटैगा? यह आशंकाकरि इस देहविषै कर्मके वशतैं इच्छाआदिककी उत्पत्तिके हुये । इहां कहिये इसलोकविषै आत्माकी स्थितिआदिकव्यवहार जैसैं होवैहै । तैसैं कर्मके वशतैं

टीकांकः १५०५ टिप्पणांकः ॐ

एवं च सर्वगस्यापि संभवेतां गमागमौ ।
कर्मकांडः समग्रोऽत्र प्रमाणमिति तेऽवदन् ॥९३॥
आनंदमयकोशो यः सुषुप्तौ परिशिष्यते ।
अस्पष्टचित्स आत्मैषां पूर्वकोशोऽस्य ते गुणाः ९४

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३८७ ३८८

तदवच्छिन्नात्मप्रदेशे सुखाद्युत्पत्तिवशात्तत्रात्मनो गमनादिव्यवहार इत्यौपचारिकमात्मनो गमनादिकमित्यभिप्रेत्याह—

५] यथा अत्र कर्मवशतः कादाचित्कं सुखादिकं तथा लोकांतरे देहे कर्मणा इच्छादि जन्यते ॥ ९२ ॥

६] एवं च सर्वगस्य अपि गमागमौ संभवेताम् ॥

७ आत्मनः कर्तृत्वादिधर्मवत्त्वे किं प्रमाणमित्यत आह (कर्मकांड इति)—

८] समग्रः कर्मकांडः अत्र प्रमाणं इति ते अवदन् ॥ ९३ ॥

९ ननु "अन्यो विज्ञानमयात् आनंदमय आंतरः" इत्यत्रानंदमयस्यात्मत्वमुक्तमिदानीमिच्छादिमान् अन्यः प्रतिपाद्यते अतः पूर्वोत्तरविरोध इत्याशंक्याह (आनंदमयेति)—

१०] सुषुप्तौ अस्पष्टचित् यः आनंदमयकोशः परिशिष्यते सः पूर्वकोशः एषां आत्मा अस्य ते गुणाः ॥

११) सुषुप्तावस्पष्टचिद्य आनंदमय-

लोकांतरविषै अन्यदेहकी उत्पत्तिके हुये तिस देहअवच्छिन्नआत्माके प्रदेशविषै सुखआदिकनकी उत्पत्तिके वशतैं । तहां कहिये परलोकविषै आत्माके गमनआदिकका व्यवहार होवैहै ॥ ऐसैं उपचारकरि किये आत्माके गमनआदिक हैं । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

५] जैसैं इसलोकविषै कर्मके वशतैं कबी कबी होनैहारे सुखादिक होवैहैं। तैसैं लोकांतरमैं प्राप्त देहविषै कर्मकरि इच्छादिक उत्पन्न होवैहैं ॥९२॥

६] ऐसैं ९२ श्लोकउक्त प्रकारके हुये व्यापकआत्माके बी गमन अरु आगमन संभवैहैं ॥

७ ननु आत्माकूं कर्त्तापनैआदिकधर्मवान्ता है । तिसविषै कौंन प्रमाण है? तहां कहैहैं:—

८] सारा कर्मकांड इसविषै प्रमाण है । ऐसैं वे प्रभाकर औ नैयायिक कहतेभये ॥ ९३ ॥

९ ननु "विज्ञानमयतैं अन्यआनंदमय आंतर है" । इहां कहिये ७७ वें श्लोकविषै आनंदमयकोशका आत्मापना कह्या औ अब तौ इच्छादिमान् आनंदमयतैं अन्यआत्मा तुमकरि कहियेहै । यातैं पूर्वउत्तरका विरोध है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१०] सुषुप्तिविषै अस्पष्टचेतनवाला जो आनंदमयकोश परिशेष होवैहै । सो प्रथमकोश । इन वादिनका आत्मा है ॥ इस आत्माके वे गुण हैं ॥

११) सुषुप्तिअवस्थाविषै अस्पष्टचित् कहिये विलीनज्ञानगुणवाला जो आनंदमय-

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ३८९	गूढं चैतन्यमुत्प्रेक्ष्य जडबोधस्वरूपताम् । आत्मनो ब्रुवते भाट्टाश्चिदुत्प्रेक्षोत्थितस्मृतेः ॥९५	टीकांकः १५१२ टिप्पणांकः ५६९

कोशः परिशिष्यते । सः पूर्वकोशः श्रौतेषु पंचकोशेषु प्रथमः । एषां प्राभाकरादीनाम् आत्मा । अस्य आत्मनः ते पूर्वोक्ताः ज्ञानादयः गुणाः इत्यर्थः ॥ ९४ ॥

१२ अस्यैवात्मनश्चिदचिद्रूपत्वं भाट्टा वर्णयंतीत्याह (गूढमिति)—

१३] भाट्टाः गूढं चैतन्यं उत्प्रेक्ष्य आत्मनः जडबोधस्वरूपतां ब्रुवते ॥

१४) भाट्टा आत्मनो गूढम् अस्पष्टं । चैतन्यमुत्प्रेक्ष्य उहिला चिज्जडोभयात्मकतां वर्णयंति ॥

१५ चैतन्योत्प्रेक्षायां कारणमाह (चिदुत्प्रेक्षेति)—

१६] उत्थितस्मृतेः चिदुत्प्रेक्षा ॥

१७) उत्थितस्मृतेश्चिदुत्प्रेक्षा भवतीति योजना । सुप्तेरुत्थितस्य जायमानात्स्मरणात्सौषुप्तचैतन्यस्योत्प्रेक्षा भवतीत्यर्थः ॥ ९५ ॥

कोश अवशेष रहताहै सो श्रुतिउक्तपंचकोशनविषै प्रथमकोश । इन प्रभाकर औ नैयायिकनका आत्मा है ॥ इस आत्माके वे पूर्व ८९ श्लोकउक्त ज्ञानादिकगुण हैं ॥ यह अर्थ है ॥ ९४ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक ८८–९४ उक्त मतमें दोषपूर्वक भट्टका मत (आत्मा चिद्जडरूप) ॥

१२ अब इसी आनंदमयकोशरूपहीं आत्माकी जडचेतनउभयरूपताकूं पूर्वमीमांसाके वार्तिककार भट्टमतके अनुसारी वर्णन करैहैं । ऐसैं कहैहैं:—

१३] भट्टके अनुसारी जे हैं वे गूढ-चैतन्यकूं उत्प्रेक्षाकरिके आत्माकी जड औ बोधस्वरूपताकूं कहतेहैं ॥

१४) भट्टके अनुसारी आत्माके गूढचैतन्यकूं कहिये अस्पष्टचेतनपनेकूं कल्पनाकरिके आत्माकी चिद्जडउभयरूपताकूं वर्णन करैहैं ॥

१५ चैतन्यकी कल्पनाविषै कारण कहैहैं:—

१६] उत्थितकी स्मृतितैं चेतनकी उत्प्रेक्षा कहिये कल्पना होवैहै ॥

१७) सुषुप्तितैं ऊठे पुरुषकूं उत्पन्न भया जो स्मरण है । तातैं सुषुप्तिमैं स्थित चैतन्यकी कल्पना होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ९५ ॥

---

६९ यह नैयायिक औ प्रभाकरका मत असंगत है । काहेतैं यह जो "सुषुप्तिविषै ज्ञानके अभावतैं आत्मा जडरूप शेष रहताहै" ऐसैं कहैहैं सो सुषुप्तितैं ऊठे पुरुषकूं "मैं कछुबी नहीं जानताभया औ सुखसैं सोयाथा" यह जो सुषुप्तिकालमैं अनुभव किये सुख औ अज्ञानकी स्मृति होवैहै तिसकरि बाधित है ॥ जो आत्मा जड होवै तौ उक्तस्मृति नहीं हुईचाहिये औ होवैहै यातैं आत्मा जडरूप नहीं । किंतु चेतनरूप है औ

श्रुतिविषै आत्मा निर्गुण कह्याहै । यातैं इच्छादिकगुणवाला आत्मा नहीं है । किंतु अंतःकरणके धर्म इच्छादिक । आत्माविषै अध्यासकरि प्रतीत होवैहैं औ इच्छादिकनकूं अंतःकरणकी धर्मता श्रुतिविषै प्रसिद्ध है औ जाग्रत्स्वप्नविषै अंतःकरणके होते इच्छादिक प्रतीत होवैहैं औ सुषुप्तिविषै अंतःकरणके विलय हुये इच्छादिकनका अभाव होवैहै । इस युक्तिकरि बी इच्छादिक । अंतःकरणके धर्म सिद्ध होवैहैं । आत्माके नहीं ॥ औ

नैयायिकादिक आत्माकूं विभु औ नाना अंगीकार करैहैं यातैं सर्वआत्माके सर्वदेह सर्वकर्म औ सर्वभोग औ सर्वमनके साथि संबंधतैं किस आत्माके कौन देहादिक हैं । यह व्यवस्था दुर्लभ है ॥ इत्यादिअनेकदूषणयुक्त होनेतैं नैयायिक औ प्रभाकरका मत असंगत है ॥

टीकांक: १५१८ टिप्पणांक: ॐ | चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३९०, ३९१

[१९]जडो भूत्वा तदाऽस्वाप्समिति जाड्यस्मृतिस्तदा विना जाड्यानुभूतिं न कथंचिदुपपद्यते ॥ ९६ ॥

[२२]द्रष्टुर्दृष्टेरलोपश्च श्रुतः सुप्तौ ततस्त्वयम् । अप्रकाशप्रकाशाभ्यामात्मा खद्योतवद्युतः ॥९७॥

१८ चिदुत्प्रेक्षाप्रकारमेव स्पष्टयति (जडो भूत्वेति)—

१९] **तदा जडः भूत्वा अस्वाप्सं इति जाड्यस्मृतिः तदा जाड्यानुभूतिं विना कथंचित् न उपपद्यते ॥**

२०) तदा सुषुप्तिकाले । जडो भूत्वाऽस्वाप्समिति एवंरूपा जाड्यस्मृतिः उत्थितस्य पुरुषस्य जायमाना । सुषुप्तिकालीनजाड्यानुभवमंतरेण अनुपपद्यमाना तदानींतनजाड्यानुभवं कल्पयतीति भावः ॥९६॥

२१ सुषुप्तौ चैतन्यलोपाभावे प्रमाणमाह (द्रष्टुरिति)—

२२] **सुप्तौ द्रष्टुः दृष्टेः अलोपः च श्रुतः ततः तु अयम् आत्मा खद्योतवत् अप्रकाशप्रकाशाभ्यां युतः ॥**

२३) "न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वात्" इति श्रुतौ द्रष्टुः आत्मनः स्वरूपभूतायाः दृष्टेर्लोपो न विद्यते । विनाशरहितस्वभावत्वात् । अन्यथा लोपवादिनोऽपि निःसाक्षिकस्य वक्तुमशक्यत्वात् सुषुप्तौ चैतन्यलोपाभावः श्रूयते । ततोऽपि कारणात् अयमात्मा खद्योतवत् अस्फुरणस्फुरणाभ्यां युक्तो भवतीत्यर्थः ॥ ९७ ॥

१८ चेतनकी उत्प्रेक्षाके प्रकारकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

१९] **"तब सुषुप्तिविषै मैं जड होयके सोयाथा" यह जो जाग्रत्‌विषै जडताकी स्मृति है। सो तब जडताकी अनुभूतिसैं विना किसी प्रकार वी बनै नहीं ॥**

२०) "तब सुषुप्तिकालविषै मैं जड होयके सोयाथा" इसरूपवाली जो सुषुप्तितैं ऊठे पुरुषकूं जडताकी स्मृति उत्पन्न होवैहै । सो स्मृति सुषुप्तिकालके जडताके अनुभवविना नहीं बनतीहुई । तिस सुषुप्तिकालके जडताके अनुभवकूं कहिये ज्ञानकूं कल्पतीहै ॥ यह भाव है ॥ ९६ ॥

२१ सुषुप्तिविषै चैतन्यलोपके अभावमैं प्रमाणरूप श्रुतिकूं कहैहैं:—

२२] **औ सुषुप्तिविषै द्रष्टाकी दृष्टिका अलोप सुन्याहै । तातैं यह आत्मा खद्योतकी न्याईं प्रकाश औ अप्रकाश दोनूंकरि युक्त है ॥**

२३) "द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप कहिये नाश नहीं होवैहै अविनाशी होनैतैं ॥" इस श्रुतिविषै द्रष्टाआत्माकी स्वरूपभूत दृष्टि जो ज्ञान ताका लोप विद्यमान नहीं है । काहेतैं आत्माकूं विनाशरहितस्वभाव होनैतैं । अन्यथा कहिये चैतन्यलोपके अंगीकार कीये । लोपवादीकूं वी साक्षीरहितलोप कहनैकूं अशक्य होनैतैं सुषुप्तिविषै चैतन्यलोपका अभाव सुनियेहै । तिस कारणतैं वी यह आत्मा खद्योतकी न्याईं अस्फुरण औ स्फुरण दोनूंकरि युक्त होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ९७ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
३९२	२५ निरंशस्योभयात्मत्वं न कथंचिद्धटिष्यते । तेन चिद्रूप एवात्मेत्याहुः सांख्या विवेकिनः ९८	१५२४
३९३	२७ जाड्यांशः प्रकृते रूपं विकारि त्रिगुणं च तत् । ३० चितो भोगापवर्गार्थं प्रकृतिः सा प्रवर्तते ॥ ९९ ॥	टिप्पणांकः ५७०

२४ अस्मिन् भाट्टमते दूषणाभिधानपुरःसरं सांख्यमतमुत्थापयति (निरंशस्येति)—

२५] विवेकिनः सांख्याः निरंशस्य उभयात्मत्वं कथंचित् न घटिष्यते तेन आत्मा चिद्रूपः एव इति आहुः ॥ ९८ ॥

२६ जाड्यस्मृतेस्तर्हि का गतिरित्याशंक्याह—

२७] जाड्यांशः प्रकृतेः रूपं तत् विकारि च त्रिगुणम् ॥

२८) तत् प्रकृतिरूपं सत्वरजस्तमोगुणात्मकम् ॥

॥ ४ ॥ श्लोक ९१-९७ उक्त मतमैं दोषपूर्वक सांख्यका मत (आत्मा चिद्रूप) ॥

२४ इस भट्टमतविषै दूषणके कथनपूर्वक सांख्यमतकूं उठावैहैं:—

२५] विवेकी कहिये प्रकृतिपुरुषके विवेचन करनेहारे जे **सांख्य** कहिये कपिलमतके अनुसारी हैं। वे **निरवयवआत्माकूं जडचेतनउभयरूपता किसी प्रकार बी बंनै नहीं । तिस हेतुकरि आत्मा चेतनरूपहीं है ऐसें कहतेहैं ॥ ९८ ॥**

२६ ननु जब चेतनरूपहीं आत्मा है तब पूर्व ९६ वें श्लोकउक्त जडताके स्मृतिकी कौंन गति है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२७] जाड्यांश जो है सो प्रकृतिका रूप है । सो प्रकृतिका रूप विकारी औ त्रिगुणस्वरूप है ॥

२८) सो प्रकृतिका रूप सत्व रज औ तमगुणरूप है ॥

७० आत्माकूं जडचेतनउभयरूप माननैहारे **भट्टका** मत असंगत है । काहेतैं तेजतिमिरकी न्याई वा "यह मनुष्य घट है" याकी न्याई एकवस्तुविषै जडचेतन दोनूंरूप विरुद्ध हैं ॥ यद्यपि दोनूंअंशका अंगीकार करैहैं । तथापि जडअंश गोचर होवैहै औ चेतनअंश अगोचर है ॥ दोनूंअंश अनुभवगोचर होवैं नहीं ॥ एकहीं आत्माविषै यह विलक्षणता संभवै नहीं ॥ जैसें एकहीं दंडके देखनैतें दंडी नहीं कहियेहै ॥ दंड औ पुरुष दोनूंके देखनैतें दंडी कहियेहै । तैसें एकहीं जडअंशके ज्ञानतें । उभयरूप आत्मा नहीं सिद्ध होवैहै ॥ औ जो चेतनअंशकूं बी अनुभवगोचर मानै तौ सो जड औ कल्पित होवैगा ॥ औ

भट्टमतवालेकूं पूछेहैं:—आत्माके जडचेतन दोनूंअंशनका कौन संबंध है? (१) संयोग है (२) वा तादात्म्य है (३) वा विषयविषयीभाव है?

(१) प्रथमपक्षविषै आत्माकूं अनित्यरूपता होवैगी ॥ काहेतैं अनित्य दोद्रव्यनकेहीं संयोगके नियमतैं औ

(२) द्वितीयपक्षविषै चिद्जड दोनूंअंशनकी एकस्वरूपताके होनैकरि जडअंश चेतन होवैगा औ चेतनअंश जड होवैगा औ

(३) तृतीयपक्षविषै दोनूंकूं घटकी न्याई अनात्मता होवैगी औ

श्रुतिविषै आत्माकूं विज्ञानघनहीं कह्याहै । यातैं आत्माकी अर्द्धजडरूपतामैं प्रमाणका अभाव है ॥ औ जो आत्माके जडताकी संपादक स्मृति कही सो सुषुप्तिमैं स्थित अज्ञानअंशकूंहीं विषय करैहै । आत्मताकी जडताकूं नहीं ॥ इसरीतिसैं आत्माकी जडचेतनउभयरूपता असंगत है ॥

टीकांक: १५२९ टिप्पणांक: ॐ

[३२]असंगायाश्चितेर्बंधमोक्षौ भेदाग्रहान्मतौ ।
[३४]बंधमुक्तिव्यवस्थार्थं पूर्वेषामिव चिद्भिदा १००
[३६]महतः परमव्यक्तमिति प्रकृतिरुच्यते ।
श्रुतावसंगता तद्वदसंगो हीत्यतः स्फुटा ॥ १०१ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्रोकांक: ३९४ ३९५

२९ प्रकृतिकल्पनायां प्रयोजनमाह (चित इति)—

३०] सा प्रकृतिः चितः भोगापवर्गार्थं प्रवर्तते ॥

ॐ ३०) चितः पुरुषस्येति यावत् ॥९९॥

३१ ननु चितोऽसंगत्वेन प्रकृतिपुरुषयोरत्यंतविविक्तत्वात् प्रकृतिप्रवृत्त्या कथं पुरुषस्य भोगापवर्गावित्याशंक्य तयोर्विवेकस्याग्रहणात्पुरुषे भोगापवर्गौ व्यवह्रियेते इत्याह—

३२] असंगायाः चितेः भेदाग्रहात् बंधमोक्षौ मतौ ॥

३३ तार्किकादिभिरिव सांख्यैरात्मभेदोंऽगीक्रियत इत्याह—

३४] बंधमुक्तिव्यवस्थार्थं पूर्वेषां इव चिद्भिदा ॥ १०० ॥

३५ प्रकृतिसद्भावे पुरुषस्यासंगत्वे च श्रुतिमुदाहरति—

३६] महतः परम् अव्यक्तं इति श्रुतौ प्रकृतिः उच्यते तद्वत् असंगः

---

२९ प्रकृतिकी कल्पनाविषै प्रयोजनकूं कहैहैं:—

३०] सो प्रकृति चेतन जो पुरुष ताके भोग औ मोक्षअर्थ प्रवृत्त होवैहै ॥

ॐ ३०) चित् जो पुरुष ताके । यह अर्थ है ॥ ९९ ॥

३१ ननु चेतनपुरुषकूं असंग होनैकरि प्रकृति औ पुरुषकूं अत्यंतविवेचन किये होनैतैं । प्रकृतिकी प्रवृत्तिकरि पुरुषकूं भोग औ मोक्ष दोनूं कैसैं होवैंगे? यह आशंकाकरि तिन प्रकृति औ पुरुष दोनूंके भेदरूप विवेकके अग्रहणतैं पुरुषविषै भोग औ मोक्षका व्यवहार होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

३२] असंग जो चेतन कहिये पुरुष है । ताके भेदके अग्रहणरूप भ्रांतितैं बंध औ मोक्ष मानै है ॥

३३ नैयायिकादिकनकी न्याईं सांख्यवादिनकरि बी आत्माका कहिये जीवोंका भेद अंगीकार करियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

३४] बंध औ मुक्तिकी व्यवस्था जो विभाग । तिसअर्थ पूर्वउक्तवादी जे नैयायिकादिक तिनकी न्याईं सांख्यमतविषै बी चेतन जो आत्मा । तिसका भेद मान्या है ॥ १०० ॥

३५ प्रकृतिके सद्भावविषै औ पुरुषकी असंगताविषै श्रुतिकूं उदाहरण करैहैं:—

३६] "महत्तत्त्वतैं पर कारण होनैतैं श्रेष्ठ औ न्यारा अव्यक्त कहिये अज्ञान है"। इस श्रुतिविषै अव्यक्तशब्दकरि प्रकृति कहियेहै । तैसैं "यह पुरुष असंगहीं

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ३९६	३८ चित्सन्निधौ प्रवृत्तायाः प्रकृतेर्हि नियामकम् । ईश्वरं ब्रुवते योगाः सः जीवेभ्यः परः श्रुतः १०२	टीकांक: १५३७ टिप्पणांक: ५७१

हि इति अतः असंगता स्फुटा॥१०१॥

३७ एवं जीवविषयां वादिविप्रतिपत्तिं प्रदर्श्येश्वरविषयां तां प्रदर्शयितुं ईश्वररूपं तावत्स्थापयति (चित्सन्निधाविति)—

३८] योगाः चित्सन्निधौ प्रवृत्तायाः प्रकृतेः नियामकं हि ईश्वरं ब्रुवते ॥

३९ ननु प्रकृतिपुरुषातिरिक्तेश्वरकल्पनमप्रमाणमित्याशंक्याह—

४०] सः जीवेभ्यः परः श्रुतः ॥१०२

है॥" इस श्रुतितैं पुरुषकी असंगता स्पष्ट होवैहै ॥ यह सांख्यका मत है ॥१०१॥

॥ ४ ॥ आत्मतत्त्वके विवेचनमैं ईश्वरके स्वरूपविषै विवाद ॥ १५३७-१६०१ ॥

॥ १ ॥ अंतर्यामीतैं विराट्पर्यंत ईश्वरमैं विवाद ॥ १५३७-१५७९ ॥

॥ १ ॥ योगमत (असंगचेतन ईश्वर)

३७ ऐसैं जीवकूं विषय करनैहारी वादिनकी विप्रतिपत्ति कहिये विरुद्धसंमतिरूप विवादकूं दिखायके ईश्वरकूं विषय करनैहारी तिस विप्रतिपत्तिके दिखावनैकूं ईश्वरके रूपकूं प्रथम स्थापन करैहैं:—

३८] योगमतके अनुसारी जे हैं वे चैतन्यके समीपविषै प्रवृत्त भयी जो प्रकृति है। तिसके नियामककूं कहिये प्रेरकपुरुषविशेषकूं ईश्वर कहतेहैं ॥

३९ ननु प्रकृति औ पुरुषतैं भिन्न ईश्वरका कल्पन अप्रमाण है। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४०] सो ईश्वर जीवनतैं पर कहिये न्यारा सुन्याहै ॥ १०२ ॥

७१ सांख्यमतविषै प्रधान (प्रकृति)कूं जगत्का कारण मानिके पुरुषके भोगमोक्षका हेतु कह्याहै। सो बनै नहीं। काहेतैं प्रलयकालमैं सत्वादिगुणनकी साम्य (मिलित) अवस्थाकूं प्रधान कहैहैं ॥ सो जब सृष्टिकालमैं साम्यअवस्थाकूं त्याग करै तब जगत्की उत्पत्ति होवै ॥ प्रधान जड होनैतैं साम्यअवस्थाके त्यागविषै प्रवीण होवै नहीं ॥ औ चेतनपुरुषकूं असंग होनैतैं तिसका प्रधानके साथि संबंध नहीं है औ चेतनके संबंधसैं विना जडतैं कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं। यातैं प्रधानतैं सृष्टि संभवै नहीं। तातैं प्रधानरूप मायाविशिष्टचेतन अंतर्यामीईश्वर है। सोई जगत्का कर्त्ता है औ सांख्यमतविषै विभुचेतनरूप आत्माकें नानापनैका अंगीकार है सो निष्फल है ॥ काहेतैं एकहीं व्यापकचेतनके अंगीकार किये। नानाअंतःकरणउपाधिकरि भोगआदिकके असंकरकी व्यवस्था होवैहै। फेर तिस व्यवस्थाके अर्थहीं आत्माके नानात्वका अंगीकार व्यर्थ है औ

आत्माके नानात्व अरु प्रकृतिकी नित्यताके अंगीकारकरि आत्माविषै सजातीयसंबंध औ विजातीयसंबंधकी प्राप्तितैं नानाआत्माके असंगताका कथन बी व्याघातदोषयुक्त है ॥ इसरीतिसैं सांख्यका मत असंगत है ॥

टीकांक: १५४१ टिप्पणांक: ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:
	४२ प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश इति हि श्रुतिः ।	
	४५ आरण्यके संभ्रमेण ह्यंतर्याम्युपपादितः ॥ १०३ ॥	३९७
	४७ अत्रापि कलहायंते वादिनः स्वस्वयुक्तिभिः ।	
	वाक्यान्यपि यथाप्रज्ञं दार्ढ्यायोदाहरंति हि १०४	३९८
	४९ क्लेशकर्मविपाकैस्तदाशयैरप्यसंयुतः ।	
	पुंविशेषो भवेदीशो जीववत्सोऽप्यसंगचित् १०५	३९९

४१ तामेवेश्वरसद्भावप्रतिपादिकां श्रुतिं पठति—

४२] **प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः गुणेशः इति हि श्रुतिः ॥**

४३) प्रधानगुणसाम्यावस्थारूपं क्षेत्रज्ञा जीवास्तेषां पतिः । गुणाः सत्वादयस्तेषां ईशः नियामक इत्यर्थः ॥

४४ न केवलमियमेव श्रुतिरीश्वरप्रतिपादिका । अंतर्यामिब्राह्मणमपीत्याह—

४५] **आरण्यके संभ्रमेण हि अंतर्यामी उपपादितः ॥ १०३ ॥**

४६ तामेव वादिविप्रतिपत्तिं प्रतिजानीते—

४७] **अत्र अपि वादिनःस्वस्वयुक्तिभिः कलहायंते । दार्ढ्याय वाक्यानि अपि यथाप्रज्ञं उदाहरंति हि ॥**

ॐ४७)प्रज्ञामनतिक्रम्य यथाप्रज्ञम् १०४

४८ इदानीं पतंजलिनोक्तमीश्वरप्रतिपादकं "क्लेशकर्मविपाकैस्तदाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वर" इत्येतत्सूत्रमर्थतः पठति—

४१ तिस ईश्वरके सद्भावकी प्रतिपादक श्रुतिकूंहीं पठन करैहैं:—

४२] **"प्रधानप्रकृति औ क्षेत्रज्ञजीवोंका पति है औ गुणनका ईश है ॥"** यह श्रुति ईश्वरके स्वरूपकूं कहतीहै ॥

४३)गुणनकी साम्य कहिये मिलितअवस्थारूप जो प्रधान औ क्षेत्रज्ञ कहिये शरीररूप क्षेत्रके जाननैहारे जीव हैं तिनका पति है औ गुण जे सत्वादिक हैं तिनका ईश कहिये नियामक है ॥ यह अर्थ है ॥

४४ केवल यहहीं श्रुति ईश्वरकी प्रतिपादक है ऐसैं नहीं । किंतु सारा अंतर्यामीब्राह्मणरूप बृहदारण्यकउपनिषद्का प्रकरण बी ईश्वरका प्रतिपादक है । ऐसैं कहैहैं:—

४५] **आरण्यक कहिये बृहदारण्यक उपनिषद्विषै आदरकरि अंतर्यामी-ईश्वर उपपादन कियाहै ॥ १०३ ॥**

४६ तिस ईश्वरकूं विषय करनैहारीहीं वादिनकी विप्रतिपत्ति जो विवाद ताकूं प्रतिज्ञा करैहैं:—

४७] **इस ईश्वरविषै बी वादीजन अपनी अपनी युक्तिनकरि परस्पर कलहकूं करतेहैं औ अपनै अपनै पक्षकी दृढताअर्थ श्रुतिके वाक्यनकूं बी बुद्धिअनुसार उदाहरण करतेहैं ॥**

ॐ ४७) प्रज्ञा जो बुद्धि ताकूं न उलंघन करिके जो होवै सो यथाप्रज्ञ है ॥ १०४ ॥

४८ अब पतंजलिभगवानकरि उक्त ईश्वरका प्रतिपादक जो "क्लेश कर्मविपाक फल औ तिनके आशयनकरि अपरामृष्ट कहिये असंग पुरुषविशेष ईश्वर है" यह सूत्र है । इसकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४००	[५२]तथापि पुंविशेषत्वाद्घटतेऽस्य नियंतृता । [५४]अव्यवस्थौ बंधमोक्षावापतेतामिहान्यथा॥१०६॥	टीकांकः १५४९ टिप्पणांकः ५७२

४९] क्लेशकर्मविपाकैः तदाशयैः अपि असंयुतः पुंविशेषः ईशः भवेत्। सः अपि जीववत् असंगचित् ॥

५०) क्लेशा अविद्यादयः पंच । "कर्माणि कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्" इति सूत्रितानि । "सति मूले तद्विपाका जात्यायुर्भोगा" इत्युक्ताः कर्मविपाकाः फलविशेषाः । तदाशयाः तेषां संस्कारास्तैः क्लेशादिभिरसंस्पृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरो भवति सोऽपि जीववत् असंगः चिद्रूपश्चेत्यर्थः ॥ १०५ ॥

५१ नन्वसंगचिद्रूपत्वे कथं नियंतृत्वमित्याह

५२] तथापि पुंविशेषत्वात् अस्य नियंतृता घटते ॥

४९] क्लेश कर्म विपाक औ तिनके आशयनकरि बी संबंधरहित जो पुरुषविशेष है। सो ईश्वर होवैहै । सो ईश्वर बी जीवकी न्याई असंगचेतन है॥

५०) अविद्या अस्मिता राग द्वेष औ अभिनिवेश ये [७२]पंचक्लेश हैं । औ "अशुक्लकृष्ण कहिये शुभअशुभतैं विलक्षण कर्म योगीका है औ पुण्य पाप औ मिश्रभेदकरि तीनप्रकारका कर्म अन्यजीवनका है" इस पतंजलिउक्तसूत्रकरि कर्म कहेहैं ॥ औ "कर्मरूप कारणके होते तिस कर्मके विपाक कहिये फल जाति आयु औ भोग होवैहैं" ऐसैं पतंजलिसूत्रविषै कर्मके विपाकरूप फलविशेष कहेहैं औ तिन क्लेशआदिकनके आशय जे संस्कार हैं । तिन क्लेशादिकनकरि स्पर्शरहित जो पुरुषविशेष है सो ईश्वर है ॥ सो ईश्वर बी जीवकी न्याई असंग औ चिद्रूप है ॥ यह अर्थ है ॥१०५॥

५१ ननु ईश्वरकूं असंगचिद्रूपताके होते नियंतापना कहिये नियामकपना कैसैं घटैगा ? तहां कहैहैं:—

५२] तथापि पुरुषविशेष होनैतैं इस ईश्वरकूं नियंतापना घटताहै ॥

---

७२ (१) अनित्य जो स्वर्गादिरूप जगत् । तिसविषै नित्यताकी ख्याति (बुद्धि) औ

(२) अशुचि जो शरीर वा पुत्रमुखचुंबनादिक । तिसविषै शुचि (पवित्रता)की ख्याति औ

(३) दुःखरूप जो धनादिक भोगके साधन । तिनविषै सुखकी ख्याति औ

(४) अनात्मा जे देहादिक । तिनविषै आत्माकी ख्याति

[१] इसरीतिसैं च्यारीप्रकारकी अविद्या है औ

[२] दृक् (पुरुषशक्ति) । दर्शन (दृश्यशक्ति) । इन दोनूंकी एकात्मता (तादात्म्यअध्यास) अस्मिता है । औ

[३] सुखके अनुशायी (पीछे होनैवाला) वा अनुकूलपदार्थके ज्ञानजन्य राग है । औ

[४] दुःखके अनुशायी वा प्रतिकूलपदार्थके ज्ञानसैं जन्य द्वेष है । औ

[५] अनुभव किये मरणादिकतैं बी भय होवैहै । जो विद्वानकूं बी अपनै रसमैं वहनकरनैहारा है । ऐसा जो अनुभव किये मरणादिकके भयनिमित्तसैं शरीरकी रक्षामैं आग्रह । सो अभिनिवेश है ।

ये पंचक्लेश हैं ॥

७३ जैसैं सांख्यमतविषै असंग स्वप्रकाश कूटस्थ औ चेतनरूप जीव मान्याहै । तैसैं योगमतविषै बी जीव मान्या है ॥ औ सो जीव केवल भोक्ताहीं है कर्त्ता नहीं औ बुद्धिके धर्म सुखदुःखकरि बुद्धिके साथि अपनै अविवेकतैं उपलक्षित अनुभवस्वरूप भोक्तापना तिसकूं है । बुद्धिहीं कर्त्ता है । तिस बुद्धिके अविवेकतैं आत्माकूं कर्त्तापनैका व्यवहार है । तिस भोक्ताआत्माकूं संप्रज्ञात (सविकल्प) औ असंप्रज्ञात (निर्विकल्प) समाधिके परिपाकपर्यंत बुद्धिके विवेकज्ञानकरि अविवेककी निवृत्तिद्वारा दुःखका अत्यंतउच्छेद है । सो योगमतमैं मोक्ष है ॥ औ निरीश्वरसांख्यमतविषै ईश्वरका अंगीकार नहीं है ॥ योगमतविषै ईश्वरका अंगीकार है । सो ईश्वर बी जीवकी न्याई असंगचेतन है ॥

टीकांक: १५५२ टिप्पणांक: ५७४	५६ भीषास्मादित्येवमादावसंगस्य परात्मनः । श्रुतं तद्युक्तमप्यस्य क्लेशकर्माद्यसंगमात् ॥ १०७ ॥ ६० जीवानामप्यसंगत्वात्क्लेशादिर्न ह्यथापि च । विवेकाग्रहतः क्लेशकर्मादि प्रागुदीरितम् ॥१०८॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४०१ ४०२

५३ ईश्वरस्य नियंतृत्वानभ्युपगमे दोषमाह (अव्यवस्थाविति)—

५४] अन्यथा इह बंधमोक्षौ अव्यवस्थौ आपतेताम् ॥ १०६ ॥

५५ असंगस्येश्वरस्य नियंतृत्वं निष्प्रमाणकमित्याशंक्याह (भीषेति)—

५६] "अस्मात् भीषा" इति एवमादौ असंगस्य परमात्मनः तत् श्रुतम् ॥

५७ ननु श्रुतमप्ययुक्तं कथमंगीक्रियत इत्यत आह (युक्तमपीति)—

५८] अस्य क्लेशकर्माद्यसंगमात् युक्तं अपि ॥

ॐ ५८) जीवधर्मस्य क्लेशादेरभावादुपपन्नं चेत्यर्थः ॥ १०७ ॥

५९ ननु जीवा अप्यसंगचिद्रूपाः क्लेशादिरहिता एव । तथा च ईश्वरे को विशेष इत्याशंक्य जीवानां स्वतः क्लेशादिरहितत्वेऽपि बुद्ध्या सह विवेकाग्रहात् क्लेशादिरस्तीति पूर्वोक्तं स्मारयति—

६०] जीवानां अपि असंगत्वात् क्लेशादिः न हि । अथ अपि च

---

५३ ईश्वरकूं नियंतापनैके अनंगीकारविषै दोषकूं कहैहैं:—

५४] अन्यथा ईश्वरके नियंतापनैके अनंगीकार किये इहां जगत्‌विषै बंध औ मोक्ष दोनूं अव्यवस्थाकूं प्राप्त होवैंगे ॥ १०६

५५ ननु असंग जो ईश्वर है तिसका नियंतापना प्रमाणरहित है। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५६] "इस परमेश्वरतैं भयकरि वायु चलताहै" इत्यादिकश्रुतिविषै असंगपरमात्माका सो नियंतापना सुन्याहै ॥

५७ ननु ईश्वरका नियंतापना सुन्याहै तौवी तुमकरि अयुक्त कैसैं अंगीकार करियेहै? तहां कहैहैं:—

५८] इस परमात्माकूं क्लेशकर्मआदिक जीवधर्मके असंगमतैं कहिये अभावतैं सो नियंतापना युक्त वी है ॥

ॐ ५८) औ जीवका धर्म जो क्लेशादिक तिसके अभावतैं घटित है ॥ यह अर्थ है ॥ १०७ ॥

५९ ननु जीव वी असंगचिद्रूप औ क्लेशादिकरहितहीं है तब ईश्वरविषै कौंन विशेष है? यह आशंकाकरि जीवनकूं स्वतः क्लेशादिरहितताके होते वी बुद्धिके साथि भेदके अग्रहणतैं क्लेशादिक हैं। ऐसैं पूर्व १०० वे श्लोकउक्तकूं स्मरण करावैहैं—

६०] यद्यपि जीवनकूं वी असंग होनैतैं क्लेशादिक नहीं है। तथापि विवेकके

:७४ जगत्‌का नियंता नहीं होवै तौ राजासैं विना प्रजाकूं शुभकर्मसैं उत्तमपदवी औ अशुभकर्मसैं बंधनादिदंडके अव्यवस्थाकी न्याई। "इस जीवकूं बंध होवै। इसीकूं मोक्ष होवै।" इसरीतिकी व्यवस्था (मर्यादा) करनैवालेके अभावतैं बंधमोक्ष व्यवस्थारहित होवैंगे ॥ यह योगमतका अभिप्राय है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४०३ ४०४

६२ नित्यज्ञानप्रयत्नेच्छागुणानीशस्य मन्वते ।
असंगस्य नियंतृत्वमयुक्तमिति तार्किकाः॥१०९॥
६४ पुंविशेषत्वमप्यस्य गुणैरेव न चान्यथा ।
६६ सत्यकामः सत्यसंकल्प इत्यादिश्रुतिर्जगौ॥११०॥

टीकांकः १५६१ टिप्पणांकः ॐ

विवेकाग्रहतः क्लेशकर्मादि प्राक् उदीरितम् ॥ १०८ ॥

६१ तार्किकास्त्वसंगस्य नियामकत्वमसहमाना जीवविलक्षणत्वाय ज्ञानादिगुणत्रयं नित्यमंगीकुर्वत इत्याह (नित्येति)—

६२] तार्किकाः ईशस्य नित्यज्ञानप्रयत्नेच्छागुणान् मन्वते असंगस्य नियंतृत्वं अयुक्तं इति ॥ १०९ ॥

६३ नन्विच्छादिगुणकस्य तस्य कथं जीवाद्वैलक्षण्यमित्याशंक्य गुणानां नित्यत्वादेवेति परिहरति (पुंविशेषत्वमिति)—

६४] अस्य पुंविशेषत्वं अपि गुणैः एव च अन्यथा न ॥

६५ गुणानां नित्यत्वे प्रमाणमाह—

६६] "सत्यकामः सत्यसंकल्पः" इत्यादिश्रुतिः जगौ ॥ ११० ॥

अग्रहणतैं क्लेशकर्मादिक पूर्व १०० वे श्लोकविषै कह्याहै ॥ १०८ ॥

॥ २ ॥ श्लोक १०२–१०८ उक्त मतमैं दोषपूर्वक नैयायिकनका मत ॥

६१ नैयायिक तौ असंगकी नियामकताकूं असहन करतेहुये । ईश्वरकी जीवनतैं विलक्षणताअर्थ ईश्वरके ज्ञानादिकतीनगुणनकूं नित्य अंगीकार करतेहैं । ऐसैं कहैहैं:—

६२] तार्किक जे हैं वे ईश्वरके ज्ञान प्रयत्न इच्छारूप गुणनकूं नित्य मानतेहैं औ असंगकूं नियंतापना अयुक्त हैं । ऐसैं कहतेहैं ॥ १०९ ॥

६३ ननु इच्छादिगुणवाले तिस ईश्वरकी कैसैं जीवनतैं विलक्षणता है? यह आशंकाकरि ईश्वरके गुणनकूं नित्य होनैतैंहीं ईश्वरकी जीवनतैं विलक्षणता है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

६४] इस ईश्वरकूं जो पुरुषविशेषता कहिये विलक्षणपुरुषपना है । सो बी नित्यज्ञानादिरूप गुणनकरिहीं है । अन्यथा नहीं ॥

६५ ईश्वरकी गुणनकी नित्यताविषै प्रमाणकूं कहैहैं:—

६६] "सत्यकाम कहिये नित्यइच्छावाला है औ सत्यसंकल्प कहिये नित्यआलोचनरूप ज्ञानवाला है" इत्यादिकश्रुति ईश्वरके गुणनकी नित्यताकूं कहती भई ॥ ११० ॥

टीकांकः १५६७ टिप्पणांकः ५७५	६८ नित्यज्ञानादिमत्त्वेऽस्य सृष्टिरेव सदा भवेत् । ७० हिरण्यगर्भ ईशोऽतो लिंगदेहेन संयुतः ॥१११॥ ७३ उद्गीथब्राह्मणे तस्य माहात्म्यमतिविस्तृतम् । ७५ लिंगसत्त्वेऽपि जीवत्वं नास्य कर्माद्यभावतः ११२	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४०५ ४०६

६७ तत्रापि दोषसद्भावात् पक्षांतरमाह (नित्येति)—

६८] **अस्य नित्यज्ञानादिमत्त्वे सदा एव सृष्टिः भवेत् अतः हिरण्यगर्भः ईशः ॥**

६९ तस्य हिरण्यगर्भस्य किं रूपमित्यत आह—

७०] **लिंगदेहेन संयुतः ॥**

७१) मायोपाधिकः परमात्मा लिंगशरीरसमष्ट्यभिमानेन हिरण्यगर्भः इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ १११ ॥

७२ हिरण्यगर्भस्येश्वरत्वे किं प्रमाणमित्यत आह—

७३] **उद्गीथब्राह्मणे तस्य माहात्म्यं अतिविस्तृतम् ॥**

७४ ननु लिंगशरीरयोगे जीवः स्यादित्याशंक्याविद्याकामकर्माभावान्न जीव इत्याह (**लिंगसत्त्वेऽपीति**)—

७५] **अस्य लिंगसत्त्वे अपि कर्माद्यभावतः जीवत्वं न ॥ ११२ ॥**

॥ ३ ॥ श्लोक १०९–११० उक्त मतमैं दोषपूर्वक हिरण्यगर्भउपासकनका मत (हिरण्यगर्भ ईश्वर) ॥

६७ तिस नैयायिकमतविषै बी दोषके सद्भावतैं अन्य हिरण्यगर्भउपासकके पक्षकूं कहैहैं:—

६८] **इस ईश्वरकूं नित्यज्ञानादिमान् हुये सदाहीं सृष्टि** कहिये जगत्की उत्पत्ति **होवैगी। यातैं हिरण्यगर्भ ईश्वर है ॥**

६९ ननु तिस हिरण्यगर्भका क्या रूप है? तहां कहैहैं:—

७०] **सो हिरण्यगर्भ लिंगदेहकरि संयुक्त है ॥**

७१) मायाउपाधिवाला परमात्माही लिंगशरीरकी समष्टिके अभिमानकरि हिरण्यगर्भ ऐसैं कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ १११ ॥

७२ हिरण्यगर्भकी ईश्वरताविषै कौंन प्रमाण है? तहां कहैहैं:—

७३] **उद्गीथब्राह्मणविषै तिस हिरण्यगर्भका महिमा अतिविस्तृत है ॥**

७४ ननु लिंगशरीरके संबंधके हुये सो हिरण्यगर्भ जीव होवैगा। यह आशंकाकरि अविद्या काम कर्मके अभावतैं सो जीव नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

७५] **इस हिरण्यगर्भकूं लिंगशरीरके सद्भाव होते बी कामकर्मआदिकके अभावतैं जीवभाव नहीं है ॥ ११२ ॥**

७५ ईश्वरके ज्ञानादिककूं नित्य कहैं तौ श्रुतिविषै सृष्टिके आरंभकालमैं ईश्वरके ज्ञानादिककी उत्पत्ति कहीहै तिसतैं भी श्रुतिप्रतिपादितअद्वैतसिद्धांतसैं विरोध होवैहै ॥ औ "सत्यकाम सत्यसंकल्प" इस श्रुतिविषै "सत्य" शब्दका यथार्थ वा प्रलयपर्यंत स्थायी अर्थ है। नित्य अर्थ नहीं ॥ यातैं नैयायिकनका मत असंगत है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
	⁷⁷स्थूलदेहं विना लिंगदेहो न क्वापि दृश्यते ।	
४०७	वैराजो देह ईशोऽतः सर्वतो मस्तकादिमान् ॥११३॥	१५७६
	⁷⁹सहस्रशीर्षेत्येवं च विश्वतश्चक्षुरित्यपि ।	
४०८	श्रुतमित्याहुरनिशं विश्वरूपस्य चिंतकाः ॥११४॥	टिप्पणांक:
	⁸¹सर्वतः पाणिपादत्वे कृम्यादेरपि चेशता ।	ॐ
४०९	ततश्चतुर्मुखो देव एवेशो नेतरः पुमान् ॥११५॥	

७६ केवलं लिंगशरीरस्य स्थूलदेहं विहायानुपलभ्यमानत्वात् स्थूलशरीरसमष्ट्यभिमानी विराडेवेश्वर इत्याह—

७७] स्थूलदेहं विना लिंगदेहः क्व अपि न दृश्यते अतः सर्वतः मस्तकादिमान् वैराजः देहः ईशः ॥ ११३ ॥

७८ तत्सद्भावे प्रमाणमाह—

७९] सहस्रशीर्ष इति । एवं च विश्वतश्चक्षुः इति अपि श्रुतं इति अनिशं विश्वरूपस्य चिंतकाः आहुः ॥

ॐ ७९) श्रुतं वाक्यमिति शेषः । विश्वरूपस्य चिंतकाः विराडुपासकाः ॥११४॥

८० अत्रापि दोषदृष्ट्या देवतांतरमालंबत इत्याह—

८१] सर्वतः पाणिपादत्वे कृम्यादेरपि च ईशता ततः चतुर्मुखः देवः एव ईशः इतरः पुमान् न ॥ ११५ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक १११—११२ उक्त मतमैं दोषपूर्वक विराट्उपासकनका मत (विराट् ईश्वर) ॥

७६ स्थूलदेहकूं छोडिके केवल लिंगशरीरकूं अप्रतीयमान होनैतैं स्थूलशरीरकी समष्टिका अभिमानी विराट्हीं ईश्वर है। ऐसैं अन्य विराट्के उपासक कहैहैं:—

७७] स्थूलदेह विना लिंगदेह कहूं बी नहीं देखियेहै ॥ यातैं सर्वऔरतैं मस्तकादिअंगवान् जो विराट्पुरुषका देह है। सो ईश्वर है ॥ ११३ ॥

७८ तिस विराट्ईश्वरके सद्भावविषै प्रमाणकूं कहैहैं:—

७९] "हजारोहजारशिरवाला है" औ "सर्वऔरतैं चक्षुवाला है"। ऐसैं बी श्रुतिवाक्य सुन्याहै ॥ इसप्रकार निरंतर विश्वरूप जो विराट्। ताके उपासक कहतेहैं ॥

ॐ ७९)सुन्या वाक्य है। यह शेष है ॥विश्वरूपके चिंतक कहिये विराट्के उपासक ॥११४॥

॥ २ ॥ ब्रह्मासैं स्थावरपर्यंत ईश्वरमैं विवाद ॥ १५८०—१६०१ ॥

॥ १ ॥ श्लोक ११३—११४ उक्त मतमैं दोषपूर्वक प्रजाअर्थिनका मत (ब्रह्मा ईश्वर) ॥

८० इस विराट्उपासकनके मतविषै बी दोषदृष्टिकरि केईक ब्रह्मारूप अन्यदेवताकूं आश्रय करतेहैं। ऐसैं कहैहैं:—

८१] सर्वऔरतैं हस्तपादादिकवाला जब ईश्वर है। तब कीडेआदिककूं बी ईश्वरता होवैगी। तातैं चतुर्मुखदेव ब्रह्माहीं ईश्वर है। इतरपुरुष ईश्वर नहीं है ॥११५॥

टीकांक: १५८२ | टिप्पणांक: ॐ | चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:

पुत्रार्थं तमुपासीना एवमाहुः प्रजापतिः ।
प्रजा असृजतेत्यादिश्रुतिं चोदाहरंत्यमी ॥ ११६ ॥ ४१०

विष्णोर्नाभेः समुद्भूतो वेधाः कमलजस्ततः ।
विष्णुरेवेश इत्याहुर्लोके भागवता जनाः ॥ ११७ ॥ ४११

शिवस्य पादावन्वेष्टुं शाङ्गर्यशक्तस्ततः शिवः ।
ईशो न विष्णुरित्याहुः शैवा आगममानिनः ११८ ४१२

८२ एवं कैरुच्यत इत्यत आह—

८३] पुत्रार्थं तम् उपासीनाः एवम् आहुः ॥

८४ "प्रजापतिः प्रजा असृजत" इत्यादिवाक्यं तत्र प्रमाणमित्याहुरित्याह (प्रजापतिरिति)—

८५] च "प्रजापतिः प्रजाः असृजत" इत्यादि श्रुतिं अमी उदाहरंति ॥ ११६ ॥

८६ भागवतमतमाह (विष्णोरिति)—

८७] कमलजः वेधाः विष्णोः नाभेः समुद्भूतः ततः विष्णुः एव ईशः इति लोके भागवताः जनाः आहुः ॥ ११७ ॥

८८ शैवानां मतमाह—

८९] शिवस्य पादौ अन्वेष्टुं शार्ङ्गी अशक्तः ततः शिवः ईशः । विष्णुः न इति आगममानिनः शैवाः आहुः ॥ ११८ ॥

---

८२ ऐसैं किन वादिनकरि कहियेहै ? तहां कहैहैं:—

८३] पुत्रके अर्थ तिस ब्रह्मदेवकूं जे उपासते हैं वे ऐसैं कहैहैं:—

८४ "प्रजापति जो ब्रह्मा सो प्रजाकूं सृजता भया" इत्यादिकश्रुतिवाक्य तिस ब्रह्माकी ईश्वरताविषै प्रमाण है ऐसैं कहतेहैं । यह कहैहैं:—

८५] "प्रजापति प्रजाकूं सृजताभया" इत्यादिश्रुतिकूं यह प्रजार्थी उदाहरण करैहैं ॥ ११६ ॥

॥ २ ॥ वैष्णवनका मत (विष्णु ईश्वर) ॥

८६ भागवत जे भगवद्भक्त तिनके मतकूं कहैहैं:—

८७] कमलतैं उत्पन्न जो ब्रह्मा । सो विष्णुकी कमलरूप नाभितैं उदय भयाहै । तातैं विष्णुही ईश्वर है। ऐसैं लोकविषै जे वैष्णवजन हैं वे कहैहैं ॥ ११७ ॥

॥ ३ ॥ शैवनका मत (शिव ईश्वर) ॥

८८ शैव जे शिवभक्त तिनके मतकूं कहैहैं:—

८९] शिवके दोनूंपादनकूं ढूंढनैकूं विष्णु अशक्त भया । तातैं शिवही ईश्वर है विष्णु नहीं । ऐसैं शैवशास्त्रविशेष आगमके मानी जे शैव हैं वे कहतेहैं ॥ ११८ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४१३ ४१४ ४१५ | टीकांकः १५९० टिप्पणांकः ५७६

९१पुरत्रयं सादयितुं विघ्नेशं सोऽप्यपूजयत् ।
विनायकं प्राहुरीशं गाणपत्यमते रताः ॥ ११९ ॥
९३एवमन्ये ९५स्वस्वपक्षाभिमानेनान्यथान्यथा ।
मंत्रा९७र्थवादकल्पादीनाश्रित्य प्रतिपेदिरे॥ १२० ॥
९९अंतर्यामिणमारभ्य स्थावरांतेशवादिनः ।
संत्यीश्वरथार्कवंशादेः कुलदैवत्वदर्शनात् ॥ १२१ ॥

९० गाणपत्यमतमाह (पुरत्रयमिति)

९१] सः अपि पुरत्रयं सादयितुं विघ्नेशं अपूजयत् गाणपत्यमते रताः विनायकं ईशं प्राहुः ॥ ११९ ॥

९२ उक्तन्यायमन्यत्राप्यतिदिशति—

९३] एवम् अन्ये ॥

ॐ ९३) अन्ये भैरवमैरालाद्युपासकाः ॥

९४ अन्यथान्यथा वर्णने कारणमाह—

९५] स्वस्वपक्षाभिमानेन अन्यथा अन्यथा ॥

९६ तत्र तत्र प्रमाणानि संतीति दर्शयंति-

९७] मंत्रार्थवादकल्पादीन् आश्रित्य प्रतिपेदिरे ॥ १२० ॥

९८ एवं कति मतानीत्याशंक्य असंख्यानीत्याह—

९९] अंतर्यामिणं आरभ्य स्थावरांतेशवादिनः संति ॥

॥ ४ ॥ गणपतिभक्तनका मत (गणपति ईश्वर)

९० गाणपत्य जे गणपतिके भक्त तिनके मतकूं कहैहैं:—

९१] सो शिव पुरत्रयकूं जीतनैवास्ते विघ्नेश जो गणपति । ताकूं पूजताभया । यातैं गणपतिके मतविषै आसक्त जे जन हैं । वे गणपतिकूं ईश्वर कहतेहैं ॥ ११९ ॥

॥ ५ ॥ स्थावर(जड ईश्वर)वादीका कथन ॥

९२ श्लोक १०२—११९ उक्त न्यायकूं अन्यमतनविषै बी अतिदेश करैहैं:—

९३] ऐसैं अन्य बी वर्णन करैहैं:—

ॐ ९३) अन्य कहिये भैरव औ मैराल जो खंडूवा इन आदिक देवनके उपासक ॥

९४ तिनके अन्यथाअन्यथावर्णनविषै कारणकूं कहैहैं:—

९५] अपनै अपनै पक्षके अभिमानकरि अन्यथाअन्यथा कहिये औरऔरप्रकारसैं वर्णन करैहैं ॥

९६ तिस तिस मतविषै प्रमाण हैं। ऐसैं दिखावैहैं:—

९७] मंत्र अर्थवाद औ कल्पआदिकनकूं आश्रयकरिके वर्णन करैहैं १२०

९८ ननु ऐसे कितनै मत हैं ? यह आशंकाकरि असंख्यमत हैं । ऐसैं कहैहैं:—

९९] अंतर्यामीसैं लेके स्थावर जे वृक्षादिक तिसपर्यंत ईश्वरके वादी हैं ॥

७६ मारण उच्चाटण औ वशीकरणादिरूप सिद्धिके हेतु अपने अपनै इष्टदेव भैरवादिकनके मंत्र । औ अर्थवाद जो लोकप्रसिद्ध भैरवादिदेवनकी स्तुति वा अन्य देवनकी निंदा । औ कल्प जो मंत्रतंत्रके प्रतिपादक । कल्प इस नामवाले आधुनिक ग्रंथ । इनसैं आदिलेके प्रमाणनकूं आश्रयकरिके औरऔरप्रकारसैं वर्णन करैहैं ॥

टीकांकः १६०० टिप्पणांकः ॐ	तत्त्वनिश्चयकामेन न्यायागमविचारिणाम् । एकैव प्रतिपत्तिः स्यात्साऽप्यत्र स्फुटमुच्यते १२२ मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । अस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥१२३॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४१६ ४१७

१६०० स्थावरेशवादो न क्वापि दृष्टचर इत्याशंक्याह—

१] अश्वत्थार्कवंशादेः कुलदैवत्वदर्शनात् ॥ १२१ ॥

२ नन्वेवं मतभेदे कस्योपादेयत्वं कस्य वा हेयत्वमित्याकांक्षायामाह—

३] तत्त्वनिश्चयकामेन न्यायागमविचारिणां प्रतिपत्तिः एका एव स्यात्

४) तत्त्वनिश्चयकामेन तत्त्वनिश्चयेच्छया न्यायागमयोर्विचारणशीलानां पुरुषाणां प्रतिपत्तिरेकैव स्यात् ॥

५ सा कीदृशीत्यत आह—

६] सा अत्र अपि स्फुटं उच्यते १२२

७ तामेव प्रतिपत्तिं दर्शयितुं तदनुकूलां श्रुतिं पठति—

८] मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरं । अस्य अवयवभूतैः तु सर्वं इदं जगत् व्याप्तम् ॥

१६०० ननु स्थावरईश्वरका वाद कहूं वी नहीं देख्याहै । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१] लोकनविषै पिप्पल औ अर्क कहिये आकडा औ वंश कहिये वांसआदिकनके कुलदेवतापनैके देखनैतैं ॥ १२१ ॥

॥ ५ ॥ आत्मतत्त्वके विवेचनमैं सर्वमतसैं अविरुद्ध ईश्वरका निर्णय ॥ १६०२–१८९५ ॥

॥ १ ॥ ईश्वरपनैकी उपाधि (जगत्की उपादान) मायाका वर्णन ॥ १६०२–१७१६ ॥

॥ १ ॥ सर्वमतसैं अविरुद्ध ईश्वरके संमतिकी प्रतिज्ञा ॥

२ ननु ऐसैं मतनके भेद हुये किस मतकी ग्राह्यता है औ किसकी त्याज्यता है? इस आकांक्षाविषै कहैहैं:—

३] तत्त्वनिश्चयके कामकरि न्याय औ आगमके विचार करनैहारे पुरुषनकी प्रतिपत्ति एकहीं होवैहै ॥

४) यथार्थ ईश्वरका स्वरूप । ताके निश्चयकी इच्छाकरि न्याय जो युक्ति औ आगम जो शास्त्र इन दोनूंके विचारनैके स्वभाववाले पुरुषनकी प्रतिपत्ति कहिये निर्णय एकहीं होवैहै ॥

५ सो एकहीं प्रतिपत्ति कैसी है? तहां कहैहैं:—

६] सो निर्णय इहां इसप्रकरणविषै बी स्पष्ट जैसैं होवै तैसैं कहियेहैं ॥१२२॥

॥२॥ श्लोक १२२ उक्त संमतिके अनुकूल श्रुति ॥

७ तिस १२२ श्लोक उक्त निर्णयके दिखावनैकूं तिस निर्णयके अनुकूल श्रुतिकूं पठन करैहैं:—

८] "मायाकूं तौ प्रकृति जानना औ मायावान्कूं तौ महेश्वर जानना" इस मायाउपाधिकचेतनके अवयवभूत जीवनकरि तौ यह सर्वजगत् व्याप्त है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्रोकांकः		टीकांकः
४१८	इति श्रुत्यनुसारेण न्याय्यो निर्णय ईश्वरे । तथा सत्यविरोधः स्यात्स्थावरांतेशवादिनाम् १२४	१६०९
४१९	माया चेयं तमोरूपा तापनीये तदीरणात् । अनुभूतिं तत्र मानं प्रतिजज्ञे श्रुतिः स्वयम् १२५	टिप्पणांकः ॐ

९) मायाम् एव प्रकृतिं जगदुपादानकारणं विद्यात् जानीयात् । मायिनं तु मायोपाधिकमंतर्यामिणमेव । महेश्वरं मायाधिष्ठातारं निमित्तकारणं जानीयात् । अस्य मायिनो महेश्वरस्य अवयवभूतैः अंशरूपैश्चराचरात्मकैर्जीवैः कृत्स्नं इदं जगद्व्याप्तं इत्यस्याः श्रुतेरर्थः ॥ १२३ ॥

१० एतच्छ्रुत्यनुसारेणेश्वरविषयो निर्णयो युक्त इत्याह—

११] इति मत्यनुसारेण ईश्वरे निर्णयः न्याय्यः ॥

१२ कुतो युक्त इत्याशंक्य सर्वत्राविरुद्धत्वादित्याह—

१३] तथा सति स्थावरांतेशवादिनां अविरोधः स्यात् ॥

१४) सर्वस्यापीश्वरत्वाभ्युपगमान्न केनापि विरोध इति भावः ॥ १२४ ॥

१५ ननु जगत्प्रकृतिभूतायाः मायायाः किंरूपमित्यत आह (माया चेयमिति)—

९) मायाकूंही प्रकृति कहिये जगत्‌की उपादानकारण जानना औ मायाउपाधिकअंतर्यामीकूंहीं महेश्वर कहिये मायाका अधिष्ठानरूप निमित्तकारण जानना ॥ इस मायाउपाधिकमहेश्वरके अवयवरूप चराचर कहिये स्थावरजंगमस्वरूप जीवनकरि संपूर्ण यह जगत् व्याप्त है ॥ यह श्लोकके उत्तरार्धसैं उक्त इस मूलश्लोकके पूर्वार्द्धमैं उक्तश्रुतिका अर्थ है ॥ १२३ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक १२३ उक्त श्रुतिअनुसार ईश्वरके निर्णयकी योग्यता ॥

१० इस १२३ श्लोकउक्तश्रुतिअनुसारकरि ईश्वरकूं विषय करनेहारा निर्णय कहिये निर्धार युक्त है । ऐसैं कहैहैं:—

११] इस श्रुतिअनुसारकरि जो ईश्वरविषै निर्णय है । सो युक्त है ॥

१२ यह निर्णय काहेतैं युक्त है ? यह आशंकाकरि । सर्वत्र अंतर्यामीसैं लेके स्थावरपर्यंत ईश्वरवादिनके मतविषै अविरुद्ध होनैतैं युक्त है । ऐसैं कहैहैं:—

१३] तैसैं हुये स्थावरपर्यंत ईश्वरके वादिनका अविरोध होवैहै ॥

१४) स्थावरजंगमादिरूप सर्वजगत्‌के बी ईश्वरभावके अंगीकारतैं किसी वादीसैं बी विरोध नहीं है । यह भाव है ॥ १२४ ॥

॥ ४ ॥ मायाका रूप (अज्ञान) औ तामैं प्रमाण ॥

१५ ननु जगत्‌की उपादानकारणरूप मायाका क्या रूप है ? तहां कहैहैं:—

टीकांकः १६१६ टिप्पणांकः ५७७

जडं मोहात्मकं तच्चेत्यनुभावयति श्रुतिः ।
आबालगोपं स्पष्टत्वादानंत्यं तस्य साब्रवीत् १२६

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४२०

१६] इयं च माया तमोरूपा ॥

१७ कुत इत्यत आह—

१८] तापनीये तदीरणात् ॥

१९) माया च तमोरूपेति तापनीयोपनिषदि तमोरूपत्वस्याभिधानादित्यर्थः ॥

२० मायायास्तमोरूपत्वे किं प्रमाणमित्याकांक्षायां "अनुभूतेः" इति श्रुतिरेवात्रानुभवः प्रमाणमिति प्रतिजानीत इत्याह (अनुभूतिमिति)—

२१] तत्र अनुभूतिं मानं श्रुतिः स्वयं प्रतिजज्ञे ॥ १२५ ॥

२२ तत्र मायायास्तमोरूपत्वे कोऽसावनुभव इत्याकांक्षायां "तदेतज्जडं मोहात्मकं" इति श्रुतिरेवात्रानुभवं स्पष्टयतीत्याह (जडमिति)—

२३] तत् जडं च मोहात्मकं इति श्रुतिः अनुभावयति ॥

२४ "अनंतं" इति श्रुत्या सर्वानुभवसिद्धत्वमुच्यत इत्याह—

२५] आबालगोपं स्पष्टत्वात् तस्य आनंत्यं सा अब्रवीत् ॥

१६] यह माया तम जो अज्ञान तिसरूप है ॥

१७ माया तमोरूप है। यह काहेतैं जानियेहै ? तहां कहैहैं:—

१८] तापनीयविषै तिसके कथनतैं॥

१९) औ "माया तमोरूप है" ऐसैं नृसिंहतापनीयउपनिषद्विषै मायाकी तमोरूपताके कथनतैं ॥

२० मायाकी तमोरूपताविषै कौंन प्रमाण है ? इस आकांक्षाविषै "अनुभूतितैं" यह श्रुतिहीं इस मायाकी तमोरूपताविषै अनुभवप्रमाण है । ऐसैं प्रतिज्ञा करैहै। यह कहैहैं:—

२१] तिसविषै अनुभूतिरूप प्रमाणकूं श्रुति आप प्रतिज्ञा करैहै ॥१२५॥

॥ ९ ॥ मायाकी अज्ञानरूपतामैं श्रुतिअनुसार लोकअनुभव ॥

२२ ननु तिस मायाकी तमोरूपताविषै कौंन यह श्रुतिउक्तअनुभव है? इस आकांक्षाविषै "सो यह मायाका कार्य जड औ मोहरूप है" यह श्रुतिहीं इस मायाकी तमोरूपताविषै अनुभवकूं स्पष्ट करैहै । ऐसैं कहैहैं:—

२३] सो "जड औ मोहरूप मायाका कार्य है" ऐसैं श्रुति अनुभव करावैहै ॥

२४ औ "अनंत है" इस श्रुतिकरि सर्वलोकके अनुभवसैं सिद्धता कहियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

२५] स्पष्ट होनैतैं बालगोपालपर्यंत तिस जडमोहरूप मायाके कार्यकी अनंतता सो उक्तश्रुति कहतीभई ॥

७७ लोकविषै बी ऐंद्रजालिकमंत्रऔषधिआदिकनकरि देखनैवाले पुरुषनके अज्ञानके क्षोभकरिही । तिस तिस आकारसैं ऐंद्रजालिकके दर्शनतैं माया अज्ञानहीं है ॥ एकहीं अज्ञान दुर्घटकूं बी संपादन करैहै यातैं माया कहियेहै ॥ औ ब्रह्मात्माके स्वरूपकूं आच्छादन करैहै वा ज्ञान है विरोधी जिसका ऐसा है। यातैं अज्ञान कहियेहै ॥ तातैं माया अज्ञानतैं भिन्न नहीं है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
४२१	²⁸अचिदात्मघटादीनां यत्स्वरूपं जडं हि तत् । ³⁰यत्र कुंठीभवेद्बुद्धिः स मोह इति लौकिकाः १२७	१६२६
४२२	³²इत्थं लौकिकदृष्ट्यैतत्सर्वैरप्यनुभूयते । ³⁴युक्तिदृष्ट्या त्वनिर्वाच्यं नासदासीदिति श्रुतेः १२८	टिप्पणांकः ॐ

२६) जडं मोहं च प्रकृतेः कार्यं इति आबालगोपालादीनां सर्वेषां अनुभव इत्यर्थः ॥ १२६ ॥

२७ जडशब्दस्यार्थमाह—

२८] अचिदात्मघटादीनां यत् स्वरूपं तत् हि जडम् ॥

२९ मोहशब्दार्थमाह—

३०] यत्र बुद्धिः कुंठीभवेत् सः मोहः इति लौकिकाः ॥ १२७ ॥

३१ उक्तप्रकारेण सर्वानुभवसिद्धत्वलक्षणमानंत्यं सिद्धमित्याह—

३२] इत्थं लौकिकदृष्ट्या एतत् सर्वैः अपि अनुभूयते ॥

ॐ ३२) एतत् जाड्यमोहलक्षणतमोरूपत्वम् ॥

३३ नन्वेवं मायायाः सर्वानुभवसिद्धत्वे घटादिवत् ज्ञानेनानिवर्त्यत्वं स्यादित्याशंक्याह—

३४] युक्तिदृष्ट्या तु अनिर्वाच्यम् ॥

३५) तुशब्दः शंकाव्यावृत्त्यर्थः । अनिर्वाच्यं सत्वेनासत्वेन वा निर्वक्तुमशक्यम् ॥

---

२६) "जड औ मोह प्रकृतिका कार्य है" यह बालगोपालआदिकसर्वलोकनका अनुभव है । यह अर्थ है ॥ १२६ ॥

॥ ६ ॥ मायाके विशेषण । जड औ मोहका अर्थ ॥

२७ जडशब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

२८] अचेतनरूप घटादिकनका जो स्वरूप है । सोई जड है ॥

२९ मोहशब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

३०] जिसविषै बुद्धि कुंठित होवै कहिये न जानीके पीछे हटतीहै सो मोह है । ऐसैं लौकिकजन मानतेहैं ॥ १२७ ॥

॥ ७ ॥ युक्ति औ श्रुतिकरि मायाकी अनिर्वचनीयता ॥

३१ श्लोक १२५–१२६ उक्त प्रकारकरि सर्वजनके अनुभवकरि सिद्ध होनैरूप मायाकी अनंतता कहिये अज्ञानरूपता सिद्ध है । ऐसैं कहैहैं:—

३२] इसप्रकारसैं लौकिकदृष्टिकरि यह जडता अरु मोहलक्षणमायाकी तमोरूपता । सर्वजनकरि बी अनुभव करियेहै ॥

ॐ ३२) यह कहिये जाड्य अरु मोह लक्षणतमोरूपता ॥

३३ ननु ऐसैं मायाकूं सर्वके अनुभवकरि सिद्धता हुये घटादिकनकी न्याईं ज्ञानकरि निवृत्त होनैकी अयोग्यता होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३४] युक्तिकरि देखनैसैं तौ अनिर्वाच्य है ॥

३५) मूलश्लोकविषै तौ अर्थवाला जो "तु" शब्द है सो मायाके तमोरूपकी अनिर्वचनीयताविषै शंकाकी निवृत्तिअर्थ है ॥ सत्पनैकरि वा असत्पनैकरि कहनैकूं जो अशक्य होवै सो अनिर्वाच्य कहियेहै ॥

टीकांक: १६३६ टिप्पणांक: ५७८	[३९] नासदासीद्विभातत्वान्नो सदासीच्च बाधनात् । [४२] विद्यादृष्ट्या श्रुतं तुच्छं [४४] तस्य नित्यनिवृत्तितः ॥१२९॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४२३

३६ तत्र किं प्रमाणमित्यत आह—

३७] न असत् आसीत् इति श्रुतेः ॥ १२८ ॥

३८ अस्याः श्रुतेरभिप्रायमाह—

३९] न असत् आसीत् विभातत्वात् च नो सत् आसीत् बाधनात् ॥

४०) बाधनात् "नेह नानाऽस्ति किंचन" इति श्रुत्या निषेधादित्यर्थः ॥ सदसद्रूपत्वं तु विरुद्धत्वादयुक्तमिति श्रुत्योपेक्षितम् ॥

४१ एवं युक्तिदृष्ट्याऽनिर्वचनीयत्वं प्रदर्श्य "तुच्छमिदं रूपमस्य" इति श्रुतिर्विद्वदनुभवेन तस्यास्तुच्छत्वं दर्शयतीत्याह—

४२] विद्यादृष्ट्या तुच्छं श्रुतम् ॥

४३ तुच्छत्वे हेतुमाह—

४४] तस्य नित्यनिवृत्तितः ॥ १२९ ॥

---

३६ तिस मायाके अज्ञानरूपकी अनिर्वाच्यताविषै कौंन प्रमाण है? तहां कहैहैं:—

३७] "न असत् होताभया" इत्यादिरूप इस श्रुतितैं ॥ १२८ ॥

॥ ८ ॥ श्लोक १२८ उक्त मायाकी अनिर्वचनीयताप्रतिपादकश्रुतिका अभिप्राय ॥

३८ इस श्लोक १२८ विषै उक्त श्रुतिके अभिप्रायकूं कहैहैं:—

३९] नहीं असत् होताभया भासमान होनैतैं औ न सत् होताभया बाध होनैतैं ॥

४०) बाध होनैतैं कहिये "इस अनानारूप ब्रह्मविषै नाना कछु बी नहीं है" इस श्रुतिकरि अज्ञानके निषेधतैं औ मायाके रूप अज्ञानकी सत्असत् दोनूंरूपता तौ तमप्रकाशकी न्याई विरुद्ध होनैतैं । अयुक्त कहिये विकल्प करनैकूं बी अयोग्य है ॥ यह जानिके श्रुतिनैं सो दोनूंरूपता उपेक्षित करीहै ॥

४१ ऐसैं युक्तिदृष्टिकरि अज्ञानके अनिर्वचनीयत्वकूं कहिये मिथ्यापनैकूं दिखायके । "तुच्छ यह इस अज्ञानका रूप है" यह श्रुति विद्वान् जो ज्ञानी ताके अनुभवकरि तिस मायाकी तुच्छताकूं दिखावैहै । ऐसैं कहैहैं:—

४२] ज्ञानदृष्टिकरि तुच्छ सुन्याहै ॥

४३ अज्ञानकी शशशृंगकी न्याई निःस्वरूपतारूप तुच्छताविषै हेतुकूं कहैहैं:—

४४] तिस मायारूप अज्ञानकी नित्यनिवृत्तितैं सो मायाका रूप अज्ञान तुच्छ है ॥ १२९ ॥

---

७८ निवृत्ति नाम बाधका है ॥ (१) विषयरूप औ (२) विषयीरूप भेदतैं सो बाध दो भांतिका है ॥ तिनमैं

(१) अविद्यातत्कार्यका रज्जुविषै सर्पके तीनीकालमैं व्यावहारिकअभावकी न्याई अधिष्ठानब्रह्मविषै तीन कालविषै जो पारमार्थिकअभाव है । सो विषयरूप बाध है ॥ औ

(२) सदाही विद्यमान अविद्यादिकके उक्तअभावका निश्चयरूप जो बाध । सो विषयीरूप बाध है ॥

जाका प्रकाश होवै सो विषय कहियेहै ॥ औ जो प्रकाश करनैवाला होवै सो विषयी कहियेहै ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" इस निश्चयरूप तत्त्वज्ञानके उत्तरक्षणमैं होनैहारी "मेरेविषै तीनकाल अविद्या औ प्रपंच नहीं है" इस आकारवालीवृत्तिरूप बाध । जातैं पूर्वसिद्धअविद्यादिकके अभावकूं प्रकाश करैहै । यातैं सो वृत्ति विषयीरूप बाध है ॥ औ विषयरूप बाधसैं विना केवल तिसके निश्च-

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४२४ ४२५ | टीकांकः १६४५ | टिप्पणांकः ॐ

४६ तुच्छाऽनिर्वचनीया च वास्तवी चेत्यसौ त्रिधा।ज्ञेया माया त्रिभिर्बोधैः श्रौतयौक्तिकलौकिकैः ॥१३०॥

४८ अस्य सत्त्वमसत्त्वं च जगतो दर्शयत्यसौ। प्रसारणाच्च संकोचाद्यथा चित्रपटस्तथा ॥१३१॥

४५ उपपादितमर्थमुपसंहरति (तुच्छेति)

४६] **श्रौतयौक्तिकलौकिकैः त्रिभिः बोधैः असौ माया तुच्छा अनिर्वचनीया च वास्तवी इति त्रिधा ज्ञेया ॥**

४७) श्रौतबोधेन तुच्छा कालत्रयेऽप्यसती। यौक्तिकबोधेन अनिर्वचनीया। लौकिकबोधेन वास्तवी च। इत्येवं त्रिधा माया ज्ञेया इत्यर्थः ॥ १३० ॥

४८ "अस्य सत्वमसत्वं च दर्शयति" इति श्रुतेरर्थम् अस्याः कृत्यमाह (अस्येति)—

४९] **असौ अस्य जगतः सत्त्वं च असत्त्वं दर्शयति ॥**

५० एकस्या एव मायाया जगतसत्त्वासत्त्वप्रदर्शकत्वे दृष्टांतमाह—

५१] **प्रसारणात् च संकोचात् यथा चित्रपटः तथा ॥ १३१ ॥**

॥ ९ ॥ मायाकी त्रिविधता कहिके श्लोक १२९ उक्त अर्थकी समाप्ति ॥

४५ उपपादन किये अर्थकूं समाप्ति करैहैं:—

४६] **श्रौत यौक्तिक औ लौकिक। इन तीनबोधनकरि यह माया तुच्छा अनिर्वचनीया औ वास्तवी। इस भेदकरि तीनप्रकारकी जाननैकूं योग्यहै ॥**

४७) श्रुतिजन्य बोधकरि तुच्छा कहिये तीनकालविषै बी असत् है औ युक्तिजन्यबोधकरि अनिर्वचनीया कहिये सत्असत्‌सैं विलक्षण मिथ्या है औ लोकप्रसिद्धबोधकरि सत्या है। ऐसैं तीनप्रकारकरि माया जाननैकूं योग्य है। यह अर्थ है ॥ १३० ॥

॥ १० ॥ मायाका कार्य (जगत्‌के सत्-असत्‌पनैका दिखावना) ॥

४८ "इस जगत्‌के सद्भाव औ असद्भावकूं माया दिखावैहै" इस श्रुतिके अर्थरूप इस मायाके कृत्यकूं कहैहैं:—

४९] **यह माया। इस जगत्‌के सद्भाव औ असद्भावकूं दिखावैहै ॥**

५० एकहीं मायाकूं जगत्‌के सद्भाव औ असद्भावके दिखावनैविषै दृष्टांत कहैहैं:—

५१] **प्रसारणतैं औ संकोचतैं जैसैं चित्रपट चित्रके सद्भाव औ असद्भावके दिखावनैहारा है। तैसैं माया बी है ॥ १३१ ॥**

यरूप विषयीबाधकूं अंगीकार करै। तौ औरविषै औरकी बुद्धि होनैतैं सो निश्चय बी भ्रमरूप होवैगा ॥ यातैं विषयरूप बाध अवश्य अंगीकार कियाचाहिये ॥ तातैं इहां नित्यनिवृत्तिशब्दकरि विषयरूप बाधकाहीं ग्रहण है ॥

टीकांकः १६५२ टिप्पणांकः ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः
	⁵³अस्वतंत्रा हि माया स्यादप्रतीतेर्विना चितिम् । स्वतंत्रापि तथैव स्यादसंगस्यान्यथाकृतेः ॥१३२॥	
	⁵⁶कूटस्थासंगमात्मानं जगत्त्वेन करोति सा ।	४२६
	⁵⁸चिदाभासस्वरूपेण जीवेशावपि निर्ममे ॥१३३॥	४२७
	⁶⁰कूटस्थमनुपद्रुत्य करोति जगदादिकम् । ⁶²दुर्घटैकविधायिन्यां मायायां का चमत्कृतिः १३४	४२८

५२ "स्वतंत्रास्वतंत्रत्वेन" इति श्रुत्या मायायाः स्वातंत्र्यास्वातंत्र्ये दर्शिते तत्रोभयत्रोपपत्तिमाह (अस्वतंत्रेति)—

५३] **माया चितिं विना अप्रतीतेः अस्वतंत्रा हि स्यात्। तथा एव असंगस्य अन्यथाकृतेः स्वतंत्रा अपि स्यात् ॥**

५४) स्वभासकचैतन्यं विहाय न प्रकाशत इति अस्वतंत्रासंगस्य आत्मनो अन्यथाकरणात् स्वतंत्रापि इत्यर्थः ॥ १३२ ॥

५५ अन्यथाकरणमेव स्पष्टयति (कूटस्थासंगमिति)—

५६] **सा कूटस्थासंगं आत्मानं जगत्त्वेन करोति ॥**

५७ "जीवेशावाभासेन करोति" इति श्रुत्युक्तं जीवेश्वरविभागं च करोतीत्याह—

५८] **चिदाभासस्वरूपेण जीवेशौ अपि निर्ममे ॥ १३३ ॥**

५९ नन्वात्मनोन्यथाकरणे कूटस्थत्वहानिः स्यादित्याशंक्याह—

॥ ११ ॥ युक्तिकरि मायाकी स्वतंत्रता औ अस्वतंत्रता ॥

५२ "स्वतंत्र औ अस्वतंत्रभावकरि माया वर्त्ततीहै ॥" इस श्रुतिनैं मायाकी स्वतंत्रता औ अस्वतंत्रता दोनूं दिखाईहैं। तिन दोनूंविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

५३] **माया चेतनविना अप्रतीतितैं अस्वतंत्र** कहिये पराधीन **है औ तैसैंहीं असंगके अन्यथा करनेतैं स्वतंत्र** कहिये स्वाधीन **बी है ॥**

५४) अपना प्रकाशक जो चैतन्य है तिसकूं छोडिके नहीं भासतीहै । यातैं माया अस्वतंत्र है । औ असंग कहिये मायाके संबंधतैं रहित आत्मा ताके औरप्रकारसैं करनैतैं माया स्वतंत्र बी है ॥ यह अर्थ है ॥ १३२ ॥

॥ १२ ॥ मायाकरि आत्माके अन्यथा करनैकी स्पष्टता ॥

५५ मायाकरि आत्माके अन्यथा करनैकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

५६] **सो माया कूटस्थ** कहिये निर्विकार **अरु असंगआत्माकूं** अहंकारादिप्रपंचमय**जगत्रूपताकरि करैहै ॥**

५७ "जीव औ ईशकूं आभासकरि करतीहै" इस श्रुतिविषै उक्त जीवईश्वरके विभागकूं माया करैहै । ऐसैं कहैहैं:—

५८] **चिदाभासस्वरूपकरि जीव औ ईशकूं बी माया रचतीहै ॥ १३३ ॥**

॥ १३ ॥ श्लोक १३३ उक्त अर्थमैं शंकाके समाधानपूर्वक मायाकी दुर्घटकारीता ॥

५९ ननु आत्माके अन्यथा करनैविषै

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४२९ ४३०

द्रवत्वमुदके वह्नावौष्ण्यं काठिन्यमश्मनि ।
मायायां दुर्घटत्वं च स्वतः सिद्ध्यति नान्यतः १३५
न वेत्ति लोको यावत्तं साक्षात्तावच्चमत्कृतिम् ।
धत्ते मनसि पश्चात्तु मायैषेत्युपशाम्यति ॥१३६॥

टीकांकः १६६० टिप्पणांकः ॐ

६०] कूटस्थं अनुपद्रुत्य जगदादिकं करोति ॥

६१ ननु कूटस्थत्वाविघातेन जगदादिस्वरूपतापादनं दुर्घटमित्याशंक्य मायाया दुर्घटैकविधायित्वान्नेदमाश्चर्यकारणमित्याह—

६२] दुर्घटैकविधायिन्यां मायायां का चमत्कृतिः ॥

६३) अन्यथा मायात्वमेव भज्येतेति भावः ॥ १३४ ॥

६४ मायाया दुर्घटकारित्वस्वभावत्वे दृष्टांतमाह (द्रवत्वमिति)—

६५] उदके द्रवत्वं वह्नौ औष्ण्यं अश्मनि काठिन्यं च मायायां दुर्घटत्वं स्वतः सिद्ध्यति अन्यतः न ॥

६६) उदकादीनां द्रवत्वादि यथा स्वाभाविकं तद्वत् मायाया दुर्घटकारित्वमित्यर्थः ॥ १३५ ॥

६७ ननु मायाया दुर्घटकारित्वमाश्चर्यकारणं न भवतीति उक्तमनुपपन्नं लोके मायायाश्चमत्कारहेतुत्वदर्शनादित्याशंक्य मायायाः

कूटस्थताकी कहिये निर्विकारपनैकी हानि होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६०] कूटस्थकूं न नाशकरिके जगत्‌आदिककूं करैहै ॥

६१) ननु कूटस्थपनैके अनाशकरि जगत्‌आदिकस्वरूपताका कहिये जगत् जीवभाव ईश्वरभावरूपताका संपादन दुर्घट है। यह आशंकाकरि मायाकूं दुर्घटरूप मुख्यकार्यकी करनैवाली होनैतैं। मायाविषै यह दुर्घटका संपादन आश्चर्यका कारण नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

६२] दुर्घटरूप एक कहिये मुख्यकार्यताकी करनैहारी मायाविषै कौन चमत्कार है ?

६३) अन्यथा कहिये माया जो दुर्घटकूं संपादन करै नहीं तौ मायापनाहीं भंग होवैगा । यह भाव है ॥ १३४ ॥

॥ १४ ॥ मायाकी दुर्घटकारीतामैं दृष्टांत ॥

६४ मायाके दुर्घटकारीपनैके स्वभावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

६५] जलविषै द्रवत्व है औ अग्निविषै उष्णता है औ पाषाणविषै कठिनता है। सो जैसैं स्वतःसिद्ध है अन्यतैं नहीं। तैसैं मायाविषै दुर्घटपना स्वतःसिद्ध है अन्यतैं नहीं ॥

६६) जलआदिकनके द्रवत्वआदिक जैसैं स्वाभाविक हैं। तैसैं मायाका दुर्घटकारीपना स्वाभाविक है । यह अर्थ है ॥ १३५ ॥

॥१५॥ मायाकी दुर्घटकारीतामैं शंकाका समाधान ॥

६७ ननु "मायाका दुर्घटकारीपना आश्चर्यका कारण नहीं है।" इसप्रकार जो पूर्व १३४ श्लोकविषै कहा। सो बनै नहीं। काहेतैं लोकविषै मायाके चमत्काररूप हेतुपनैके देखनैतैं ॥ यह आशंकाकरि लोकविषै मायाका

टीकांक: १६६८ टिप्पणांक: ॐ	प्रसरंति हि चोद्यानि जगद्वस्तुत्ववादिषु । न चोदनीयं मायायां तस्याश्चोद्यैकरूपतः॥१३७॥ [७२] चोद्येऽपि यदि चोद्यं स्यात्त्वच्चोद्ये चोद्यते मया । [७४] परिहार्यं ततश्चोद्यं न पुनः प्रतिचोद्यताम्॥१३८॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४३१ ४३२

प्रयोक्तृसाक्षात्कारपर्यंतमेवास्या आश्चर्यकारणत्वं नोपरिष्टादित्याह (न वेत्तीति)—

६८] लोकः यावत् तं साक्षात् न वेत्ति तावत् मनसि चमत्कृतिं धत्ते पश्चात् तु एषा माया इति उपशाम्यति ॥ १३६ ॥

६९ किं च जगत्सत्यत्ववादिनो नैयायिकादीन् प्रत्येवंविधानि चोद्यानि कर्तव्यानि न मायावादिनं प्रति इत्याह (प्रसरंतीति)—

७०] जगद्वस्तुत्ववादिषु चोद्यानि प्रसरंति हि मायायां चोदनीयं न तस्याः चोद्यैकरूपतः ॥ १३७ ॥

७१ मायावादिनं प्रति चोद्यकरणेऽतिप्रसंगमाह—

७२] चोद्ये अपि यदि चोद्यं स्यात् त्वच्चोद्ये मया चोद्यते ॥

७३ तर्हि किं कर्तव्यमित्यत आह (परिहार्यमिति)—

७४] ततः चोद्यं परिहार्यं पुनः प्रतिचोद्यतां न ॥ १३८ ॥

प्रयोक्ता कहिये प्रयोगका कर्त्ता ऐंद्रजालिक जो है। ताके साक्षात्कार कहिये "यह ऐंद्रजालिक है।" ऐसैं ज्ञानपर्यंतहीं इस मायाकूं आश्चर्यकी कारणता है पीछे नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

६८] लोक जहांलगि तिस मायाके प्रेरककूं साक्षात् नहीं जानताहै। वहांलगि मनविषै चमत्कार जो आश्चर्य ताकूं धारताहै औ मायावीके ज्ञान भये पीछे तौ "यह माया है।" ऐसैं उपशमकूं कहिये आश्चर्यकी निवृत्तिकूं पावताहै १३६

६९ किंवा जगत्की सत्यताके वादी जे नैयायिकादिक हैं। तिनके प्रति इस १३६ श्लोकउक्तप्रकारके प्रश्न करनेकूं योग्य हैं औ मायावादी जे हम वेदांती हैं। तिनके प्रति ऐसैं प्रश्न करनैकूं योग्य नहीं हैं। ऐसैं कहैहैं:—

७०] जातैं जगत्की वस्तुताके वादिनविषै प्रश्न प्रवृत्त होतेहैं। यातैं मायाविषै प्रश्न करना योग्य नहीं है॥ काहेतैं तिस मायाकूं प्रश्नरूपहीं होनेतैं ॥ १३७ ॥

७१ मायावादीके प्रति प्रश्न करनैविषै अतिप्रसंगकूं कहैहैं:—

७२] प्रश्नरूप मायाविषै बी जब प्रश्न होवैगा। तब तेरे प्रश्नविषै मेरेकरि प्रश्न करियेहै ॥

७३ तब क्या करनैकूं योग्य है? तहां कहैहैं:—

७४] तातैं प्रश्न निवारण करनैकूं योग्य है। फेर प्रतिप्रश्न करनैकूं योग्य नहीं है ॥ १३८ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
४३३	७६ विस्मयैकशरीराया मायायाश्चोद्यरूपतः । अन्वेष्यः परिहारोऽस्या बुद्धिमद्भिः प्रयत्नतः १३९	१६७५
४३४	७८ मायात्वमेव निश्चेयमिति चेत्तर्हि निश्चिनु । ८२ लोकप्रसिद्धमायाया लक्षणं यत्तदीक्षताम् ॥१४०	टिप्पणांक: ॐ
४३५	८४ न निरूपयितुं शक्या विस्पष्टं भासते च या । सा मायेतींद्रजालादौ लोकाः संप्रतिपेदिरे १४१	

७५ उक्तमेवार्थं प्रपंचयति—

७६] विस्मयैकशरीरायाः मायायाः चोद्यरूपतः अस्याः परिहारः बुद्धिमद्भिः प्रयत्नतः अन्वेष्यः ॥ १३९ ॥

७७ मायात्वनिश्चये तत्परिहारान्वेषणमुचितं स एव नेदानीं सिद्ध इति शंकते—

७८] मायात्वं एव निश्चेयं इति चेत्।

७९ मायालक्षणसद्भावान्मायात्वं निश्चीयतामित्यभिप्रायेणाह—

८०] तर्हि निश्चिनु ॥

८१ किं लक्षणमित्यत आह—

८२] लोकप्रसिद्धमायायाः यत् लक्षणं तत् ईक्षताम् ॥ १४० ॥

८३ तस्या अपि किं लक्षणमित्यत आह (न निरूपयितुमिति)—

८४] या निरूपयितुं शक्या न । च विस्पष्टं भासते सा माया इति इंद्रजालादौ लोकाः संप्रतिपेदिरे॥१४१॥

---

७५ श्लोक १३८ उक्त अर्थकूंहीं कहैहैं:—

७६] आश्चर्यरूप एक कहिये मुख्यशरीरवाली जो माया है। ताकूं प्रश्नरूप होनैतैं इस मायारूप प्रश्नका निवृत्तिका उपाय ज्ञान। बुद्धिमानोंकारि प्रयत्नतैं ढूंढना योग्य है ॥ १३९ ॥

॥ १६ ॥ मायाके लक्षणके असिद्धिकी शंका औ समाधान ॥

७७ ननु मायापनैके निश्चय हुये तिस मायाके निवृत्तिके उपायका ढूंढना उचित है। सो मायापनैका निश्चयहीं अवलगि सिद्ध भया नहीं है । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

७८] मायापनाहीं निश्चय करनैकूं योग्य है। ऐसैं जब कहै ।

७९ मायाके लक्षणके सद्भावतैं मायापना निश्चय करना योग्य है। इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

८०] तब निश्चय कर ॥

८१ मायाका क्या लक्षण है? तहां कहैहैं:—

८२] लोकप्रसिद्धइंद्रजालरूप मायाका जो लक्षण है। सो इस मायाविषै बी देखना ॥ १४० ॥

॥ १७ ॥ इंद्रजालरूप लौकिकमायाका लक्षण ॥

८३ इस लोकप्रसिद्धमायाका बी क्या लक्षण है? तहां कहैहैं:—

८४] जो निरूपण करनैकूं शक्य होवै नहीं औ विस्पष्ट भासै सो माया है ॥ ऐसैं इंद्रजालआदिकविषै लोक देखतेहैं ॥ १४१ ॥

टीकांक: १६८५ | टिप्पणांक: ॐ | चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:

८६ स्पष्टं भाति जगच्चेदमशक्यं तन्निरूपणम् ।
मायामयं जगत्तस्मादीक्षस्वापक्षपाततः ॥ १४२ ॥ ४३६

८८ निरूपयितुमारब्धे निखिलैरपि पंडितैः ।
अज्ञानं पुरतस्तेषां भाति कक्षासु कासु चित् १४३ ॥ ४३७

९० देहेंद्रियादयो भावा वीर्येणोत्पादिताः कथम् ।
कथं वा तत्र चैतन्यमित्युक्ते ते किमुत्तरम् १४४ ॥ ४३८

८५ दृष्टांते सिद्धं लक्षणं दार्ष्टांतिके योजयति (स्पष्टमिति)—

८६] इदं जगत् स्पष्टं भाति च तन्निरूपणं अशक्यं तस्मात् जगत् अपक्षपाततः मायामयं ईक्षस्व ॥ १४२॥

८७ जगतोऽशक्यनिरूपणत्वं कथमित्याशंक्य तद्दर्शयति (निरूपयितुमिति)—

८८] निखिलैः पंडितैः अपि निरूपयितुं आरब्धे तेषां कासुचित् कक्षासु पुरतः अज्ञानं भाति ॥ १४३ ॥

८९ अशक्यनिरूपणत्वमेवोदाहरणेन स्पष्टयति—

९०] देहेंद्रियादयः भावाः वीर्येण कथं उत्पादिताः वा तत्र चैतन्यं कथं इति उक्ते ते किं उत्तरम् ॥ १४४ ॥

॥ १८ ॥ श्लोक १४१ उक्त इंद्रजालकी दार्ष्टांत (जगत्)मैं योजना ॥

८५ इंद्रजालादिमायारूप दृष्टांतविषै सिद्ध लक्षणकूं प्रकृतमायारूप दार्ष्टांतविषै जोडतेहैंः—

८६] यह जगत् स्पष्ट भासताहै औ इसका निरूपण अशक्य है। तातैं जगत्कूं पक्षपातसैं विना मायामय देख ॥ १४२ ॥

॥ १९ ॥ जगत्के निरूपणकी अशक्यता ॥

८७ जगत्का अशक्य निरूपणपना कैसैं है ? यह आशंकाकरि तिसकूं दिखावैहैंः—

८८] सर्वपंडितोंनै बी जगत्के निरूपण करनेकूं आरंभ कियेहुये तिनकूं कोईकोईकस्थलरूप कोटिविषै आगेतैं अज्ञान भासताहै ॥ १४३ ॥

॥ २० ॥ श्लोक १४३ उक्त अर्थकी उदाहरणसैं स्पष्टता ॥

८९ जगत्के अशक्य निरूपणपनेकूंहीं उदाहरणकरि स्पष्ट करैहैंः—

९०] देहइंद्रियआदिक जे पदार्थ हैं। वे वीर्यकरि कैसैं उत्पन्न होवैहैं। वा तिनविषै चैतन्य कैसैं होवैहै? इस प्रकार उक्तहुये कहिये पूछेहुये तेरेकूं कौन उत्तर आवताहै ? ॥ १४४ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्रोकांकः		टीकांकः
४३९	९२ वीर्यस्यैषः स्वभावश्चेत्कथं तद्विदितं त्वया । ९६ अन्वयव्यतिरेकौ यौ भग्नौ तौ वंध्यवीर्यतः ॥१४५॥	१६९१
४४०	९९ न जानामि किमप्येतदित्यंते शरणं तव । अत एव महांतोऽस्य प्रवदंतींद्रजालताम् ॥१४६॥	टिप्पणांकः ॐ

९१ स्वभाववादी शंकते (वीर्यस्येति)—

९२] एषः वीर्यस्य स्वभावः चेत् ।

९३ सिद्धांती पृच्छति (कथं तदिति)—

९४] त्वया तत् कथं विदितम् ॥

९५ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां जानामीत्याशंक्य व्याप्त्यभावान्नैवमित्याह—

९६] अन्वयव्यतिरेकौ यौ तौ वंध्यवीर्यतः भग्नौ ॥

९७) वंध्यवीर्यतः वंध्यायां च तत्र वीर्यस्य व्यर्थत्वात् व्याप्तिर्न घटते । "यत्र वीर्यं तत्र तत्र देहादिकं" इति न अन्वयः अपि ॥ १४५ ॥

९८ एवं पुनः पुनः पृष्टे सति किमपि न जानामि इत्येवोत्तरं देयमिति फलितमाह (न जानामीति)—

९९] "एतत् किम् अपि न जानामि" इति अंते तव शरणं । अतः एव महांतः अस्य इंद्रजालतां प्रवदंति १४६

॥ २१ ॥ श्लोक १४४ उक्त अर्थमैं स्वभाववादीकी शंका औ समाधान ॥

९१ स्वभाववादी जो स्वभावसैं जगत्की उत्पत्तिका वादी चार्वाकादिक । सो मूलविषै शंका करैहैः—

९२] यह देहादिकका उत्पादन करना वीर्यका स्वभाव है । ऐसैं जब कहै ।

९३ सिद्धांती पूछतेहैंः—

९४] तब तैनैं सो वीर्यका स्वभाव कैसैं जान्याहै? ॥

९५ अन्वय औ व्यतिरेककरि जानताहूं । यह आशंकाकरि व्याप्तिके अभावतैं अन्वयव्यतिरेककरि वीर्यके स्वभावकूं मैं जानताहूं यह कथन बनै नहीं । ऐसैं सिद्धांती कहैहैंः—

९६] अन्वयव्यतिरेक जो हैं सो दोनूं वंध्यवीर्यतैं भंगकूं प्राप्त भयेहैं ।

९७) वंध्यपुरुषके वीर्यतैं औ वंध्यास्त्रीविषै। तहां वीर्यके व्यर्थ होनैतैं । जहां जहां वीर्य है तहां तहां देहादिक होवैहैं । यह व्याप्ति नहीं घटतीहै औ व्याप्तिके अभावतैं वीर्य होवै तौ देहादिक होवैं । यह अन्वय बी नहीं घटताहै औ यूकादिरूप स्वेदज औ वृक्षादिरूप उद्भिज्जविषै वीर्यकरि उत्पत्तिके व्यभिचारतैं वीर्य न होवै तौ देहादिक बी न होवैं । यह व्यतिरेक बी घटै नहीं ॥ १४५ ॥

॥ २२ ॥ फलितअर्थ (जगत्की इंद्रजालता) ॥

९८ इस प्रकार फेरिफेरि पूछेहुये "कछु बी नहीं जानताहूं" ऐसैंहीं तेरेकूं उत्तर देना योग्य होवैगा । ऐसैं कहतेहुये सिद्धांती फलितकूं कहैहैंः—

९९] "मैं यह तुमारा पूछ्या कछु बी नहीं जानताहूं" ऐसैं अंतविषै तेरा शरण कहिये रक्षण अज्ञानहीं होवैगा ॥ इस कारणतैंहीं महत्पुरुष इस जगत्की इंद्रजालताकूं कहतेहैं ॥ १४६ ॥

टीकांक: १७००	ऐतस्मात्किमिवेंद्रजालमपरं यद्गर्भवासस्थितम् । रेतश्चेतति हस्तमस्तकपदप्रोद्भूतनानाऽङ्कुरम् । पर्यायेण शिशुत्वयौवनजरावेषैरनेकैर्वृतं । पश्यत्यत्ति शृणोति जिघ्रति तथा गच्छत्यथागच्छति॥१४७॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४४१
टिप्पणांक: ॐ	देहवद्वटधानादौ सुविचार्य विलोक्यताम् । क्व धाना कुत्र वा वृक्षस्तस्मान्मायेति निश्चिनु १४८	४४२

१७०० उक्तानिर्वचनीयत्वे वृद्धसंमतिं दर्शयति—

१] एतस्मात् अपरं इंद्रजालं किम् इव । यत् गर्भवासस्थितं रेतः चेतति हस्तमस्तकपदप्रोद्भूतनानांकुरम् पर्यायेण अनेकैः शिशुत्वयौवनजरावेषैः वृतं । पश्यति अत्ति शृणोति जिघ्रति तथा गच्छति अथ आगच्छति ॥ १४७ ॥

२ न केवलं देहस्यैव दुर्निरूपत्वं किंतु वटवृक्षादेरपीत्याह—

३] देहवत् वटधानादौ सुविचार्य विलोक्यतां क्व धाना कुत्र वा वृक्षः तस्मात् माया इति निश्चिनु ॥ १४८ ॥

॥ २३ ॥ श्लोक १४६ उक्त मायाकी अनिर्वचनीयता (इंद्रजालता)मैं वृद्धसंमति ॥

१७०० श्लोक १४२–१४७ उक्त जगत्की अनिर्वचनीयताविषै वृद्धसंमतिकूं दिखावैहैं:—

१] इस जगत्तैं औरइंद्रजाल क्या है? जातैं गर्भवासमैं स्थित वीर्य चेतन होवैहै कहिये चेष्टा करैहै ॥ औ सो वीर्य कैसा है कि हस्त मस्तक पाद अरु तिन हस्तादिकनतैं उत्पन्न अंगुलि करण नासा औ नेत्रआदिक हैं अंकुर जिसके औ फेर सो वीर्य कैसा है कि समयभेदकरि बालभाव अरु यौवन अरु जरारूप अनेकवेषनकरि युक्त हुया । देखताहै खाताहै सुनताहै सूंघताहै जाताहै औ आवताहै । इनकरि उपलक्षित और क्रिया वी करताहै । यातैं यह जगत्हीं इंद्रजाल है ॥ १४७ ॥

॥ २४ ॥ देहकी न्याईं वृक्षादिकनकी वी दुर्निरूप्यता ॥

२ केवल देहकाहीं दुर्निरूपणत्व कहिये अनिर्वचनीयपना है ऐसैं नहीं। किंतु वटवृक्षआदिकका वी दुर्निरूपणपना है। ऐसैं कहैहैं:—

३] देहकी न्याईं वटवृक्षके बीजआदिकविषै सुंदरप्रकारसैं विचारकरिके विलोकन करनाः—कहां सूक्ष्मबीज है औ कहां वृक्ष है! तातैं यह माया है। ऐसैं निश्चय कर ॥ १४८ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
४४३	निरुक्तावभिमानं ये दधते तार्किकादयः । हर्षमिश्रादिभिस्ते तु खंडनादौ सुशिक्षिताः १४९	१७०४
४४४	अचिंत्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केषु योजयेत् । अचिंत्यरचनारूपं मनसापि जगत्खलु ॥ १५० ॥	टिप्पणांक: ॐ
४४५	अचिंत्यरचनाशक्तिबीजं मायेति निश्चिनु । मायाबीजं तदेवैकं सुषुप्तावनुभूयते ॥ १५१ ॥	

४ नन्वस्माभिर्निर्वक्तुमशक्यत्वेऽपि उदयनादिभिराचार्यैः निरुच्यत इत्याशंक्याह (निरुक्ताविति)—

५] ये तार्किकादयः निरुक्तौ अभिमानं दधते ते तु हर्षमिश्रादिभिः खंडनादौ सुशिक्षिताः ॥ १४९ ॥

६ उक्तार्थे सांप्रदायिकानां वाक्यं संवादयति (अचिंत्या इति)—

७] ये भावाः अचिंत्याः खलु तान् तर्केषु न योजयेत् । जगत् मनसा अपि अचिंत्यरचनारूपं खलु ॥ १५० ॥

८ ननु भवत्वेवं जगतोऽचिंत्यरचनात्वं । मायायां किमायातमित्यत आह—

९] "अचिंत्यरचनाशक्तिबीजं" माया इति निश्चिनु ॥

ॐ ९) अचिंत्यरचनाशक्तिमत् यद्बीजं कारणं सैव मायेत्यर्थः ॥

१० नन्वेवंविधं कारणं क दृष्टमित्यत आह (मायेति)—

॥ २५ ॥ नैयायिककरि मायाके निरूपण कियेकी शंका औ समाधान ॥

४ ननु हमोंकरि कहनेकूं अशक्य हुये वी उदयनादिकआचार्यनकरि कहियेहै । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५] जे नैयायिकादिक इस जगत्के कहनेविषे अभिमानकूं धारतेहैं। वे तौ हर्षमिश्रादिकआचार्यनकरि खंडनआदिकग्रंथनविषे सम्यक् खंडनरूप दंडकूं प्राप्त भयेहैं ॥ १४९ ॥

॥ २६ ॥ श्लोक १४२—१४९ उक्त अर्थ (जगत्की अचिंतता) मैं वेदांतआचार्यनका वाक्यप्रमाण ॥

६ श्लोक १४२—१४९ पर्यंत उक्तअर्थरूप जगत्की अनिर्वचनीयताविषे वेदांतसंप्रदायवाले आचार्यनके वाक्यकूं प्रमाण करैहैं:—

७] जे पदार्थ अचिंत्यहीं हैं। तिनकूं कल्पनारूप तर्कविषे जोडना नहीं॥जातैं यह जगत् मनकरि वी अचिंत्यरचनारूप है। यह निश्चय है ॥ १५० ॥

॥ २७ ॥ मायारूप बीज (कारण) का कथन ॥

८ ननु इस १४२—१५० वें श्लोक उक्त प्रकारकरि जगत्का अचिंत्यरचनापना होहु । इसकरि मायाविषे क्या आया? तहां कहैहैं:—

९] "अचिंत्यरचनाकी शक्तिवाला जो बीज है। सोई माया है" ऐसें निश्चय कर॥

ॐ ९) अचिंत्यरचनावाला जो बीज कहिये कारण सो माया है। यह अर्थ है ॥

१० ननु इसप्रकारका अचिंत्यरचनाशक्तिवाला कारण कहां देख्याहै? तहां कहैहैं:—

टीकांक: १७११ टिप्पणांक: ५७९	[१३]जाग्रत्स्वप्नजगत्तत्र लीनं बीज इव द्रुमः । [१५]तस्मादशेषजगतो वासनास्तत्र संस्थिताः ॥१५२॥ [१८]या बुद्धिवासनास्तासु चैतन्यं प्रतिबिंबति । [२०]मेघाकाशवदस्पष्टचिदाभासो[२२]ऽनुमीयताम् ॥१५३॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४४६ ४४७

११] तत् एव एकं मायाबीजं सुषुप्तौ अनुभूयते ॥ १५१ ॥

१२ कथं तस्य जगद्बीजत्वमित्यत आह—

१३] जाग्रत्स्वप्नजगत् तत्र बीजे द्रुमः इव लीनम् ॥

१४ ततः किमित्यत आह—

१५] तस्मात् अशेषजगतः वासनाः तत्र संस्थिताः ॥

१६) यतो जगत्कारणं मायातो अशेषजगद्वासनास्तत्र मायायां तिष्ठंतीत्यर्थः॥१५२

१७ ततोऽपि किं तत्राह—

१८] याः बुद्धिवासनाः तासु चैतन्यं प्रतिबिंबति ॥

१९ ननु तासु प्रतिबिंबोऽस्ति चेत्कुतो नानुभूयत इत्याशंक्यास्पष्टत्वादित्याह—

२०] मेघाकाशवत् अस्पष्टचिदाभासः ॥

११] सो एकहीं मायारूप बीज सुषुप्तिविषै अनुभव करियेहै ॥१५१॥

॥ २८ ॥ श्लोक १५१ उक्त बीजमैं सर्वजगत्के संस्कारकी स्थिति ॥

१२ ननु तिस मायारूपकूं जगत्की बीजरूपता कैसैं है ? तहां कहैहैं:—

१३] जाग्रत्स्वप्नरूप जो जगत् है । सो तिस सुषुप्तिमैं विद्यमान मायारूप बीजविषै वृक्षकी न्याईं लीन होवैहै ॥

१४ तिस मायाविषै जगत्के विलयतैं क्या सिद्ध भया ? तहां कहैहैं:—

१५] तातैं सर्वजगत्की वासना तिसविषै स्थित हैं ॥

१६) जातैं जगत्का कारण माया है । तातैं सर्वजगत्की वासना[७९] तिस मायाविषै स्थित हैं । यह अर्थ है ॥ १५२ ॥

॥ २ ॥ ईश्वरका स्वरूप (आनंदमयकोश) ॥ १७१७–१७३८ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतसहित ईश्वरका रूप (मायामैं स्थित बुद्धिवासनागत चिदाभास) ॥

१७ तिस मायाविषै वासनाकी स्थितितैं बी क्या सिद्ध भया ? तहां कहैहैं:—

१८] जे मायाविषै स्थित जाग्रत्स्वप्नरूप जगत्के ज्ञानरूप बुद्धिकी अपनैं उपादान सत्वगुणरूपसैं रही वासना हैं । इनविषै चैतन्य प्रतिबिंबकूं पावताहै ॥

१९ ननु तिन वासनाविषै प्रतिबिंब जब है । तब काहेतैं नहीं अनुभव करियेहै ? यह आशंकाकरि अस्पष्ट होनैतैं नहीं अनुभव करियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

२०] मेघाकाशकी न्याईं तिन वासनाविषै अस्पष्टचिदाभास है ॥

७९ ज्ञानजन्यसंस्कार ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
४४८	[२४] साभासमेव तद्बीजं धीरूपेण प्ररोहति । अतो बुद्धौ चिदाभासो विस्पष्टं प्रतिभासते १५४	१७२१
४४९	[२७] मायाभासेन जीवेशौ करोतीति श्रुतौ श्रुतम् । [२९] मेघाकाशजलाकाशाविव तौ सुव्यवस्थितौ १५५	टिप्पणांकः ॐ

२१ तर्हि कुतः तत्सिद्धिरित्यत आह—

२२] अनुमीयताम् ॥ १५३ ॥

२३ ननु मेघांशोदकस्यास्पष्टाकाशप्रतिबिंबत्वेऽपि तज्जातीयस्य घटोदकस्य स्पष्टाकाशप्रतिबिंबवतः सद्भावान्मेघाकाशानुमानं घटते । इह तथाविधदृष्टांताभावात्कथमनुमानोदय इत्याशंक्यात्रापि तथाविधदृष्टांतसंपादनायाह—

२४] साभासं एव तत् बीजं धीरूपेण प्ररोहति । अतः बुद्धौ चिदाभासः विस्पष्टं प्रतिभासते ॥

२५) चिदाभासविशिष्टं तदेव अज्ञानं बुद्धिस्वरूपेण परिणममानं विस्पष्टचिदाभासवद्भवतीति भावः । एवं चेदमनुमानमत्र सूचितं भवति। विमता बुद्धिवासनाश्चित्प्रतिबिंबवत्यो भवितुमर्हन्ति बुद्ध्यवस्थाविशेषत्वाद्बुद्धिवृत्तिवदिति ॥ १५४ ॥

२६ एवं जीवेश्वरयोर्मायिकत्वं श्रुत्युक्तमुपपादितमुपसंहरति—

---

२१ ननु जब वासनाविषै अस्पष्टचिदाभास है। तब किस प्रमाणतैं तिस चिदाभासकी सिद्धि होवैहै? तहां कहैहैः—

२२] सो चिदाभास अनुमानकरि जानना ॥ १५३ ॥

॥ २ ॥ मायामैं अस्पष्टचिदाभासका अनुमान ॥

२३ ननु मेघके अंशरूप जलकूं अस्पष्टआकाशके प्रतिबिंबवाला होते बी । तिस मेघजलके सजातीय स्पष्टआकाशके प्रतिबिंबवाले घटजलरूप दृष्टांतके सद्भावतैं मेघाकाशका अनुमान घटताहै औ इहां वासनागत चिदाभासविषै ताके सदृशदृष्टांतके अभावतैं कैसैं अनुमानका उदय होवैहै? यह आशंकाकरि इहां बी तिस प्रकारके दृष्टांतके संपादनअर्थ कहैहैः—

२४] साभासहीं सो मायारूप बीज बुद्धिरूपकरि उदयकूं पावताहै। यातैं बुद्धिविषै चिदाभास विस्पष्ट भासताहै ॥

२५) चिदाभासकरि सहित सोई अज्ञान। बुद्धिरूपकरि परिणामकूं पायाहुया स्पष्टचिदाभासवाला होवैहै। यह भाव है ॥ ऐसैं जब हुवा तब इहां यह अनुमान सूचन कियाहोवैहैः— विवादकी विषय जे बुद्धिकी वासना हैं। वे चेतनके प्रतिबिंबवाली होनैकूं योग्य हैं। बुद्धिकी अवस्थाविशेष होनैतैं बुद्धिवृत्तिकी न्याईं। इति ॥ १५४ ॥

॥ ३ ॥ श्रुतिउक्तजीवईशके मायिकताकी समाप्ति ॥

२६ ऐसैं जीव औ ईश्वरका मायिकपना जो श्रुतिविषै कहाहै। सो उपपादन किया ताकूं समाप्ति करैहैः—

टीकांकः १७२७ टिप्पणांकः ५८०	३१ मेघवद्वर्तते माया मेघस्थिततुषारवत् । धीवासनाश्चिदाभासस्तुषारस्थखवत्स्थितः १५६	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४५०

२७] "माया आभासेन जीवेशौ करोति" इति श्रुतौ श्रुतम् ॥

२८ ननु जीवेशयोर्मायिकत्वे समाने कथमवांतरभेदसिद्धिरित्याशंक्यास्पष्टस्पष्टोपाधिमत्त्वेन मेघाकाशजलाकाशयोरिव तत्सिद्धिरित्याह— .

२९] मेघाकाशजलाकाशौ इव तौ सुव्यवस्थितौ ॥ १५५ ॥

३० ईशस्य मेघाकाशसाम्यं स्फुटीकरोति—

३१] मेघवत् माया वर्तते । मेघस्थिततुषारवत् धीवासनाः । तुषारस्थखवत् आभासः स्थितः ॥ १५६ ॥

२७] "माया जो मूलप्रकृति। सो अपनैविषै चेतनके प्रतिबिंबरूप आभासकरि जीव ईशकूं करैहै" ऐसैं इस श्रुतिविषै जीवईश्वरका मायिकपना सुन्याहै ॥

२८ ननु जीवईश्वर दोनूंके मायिकपनैंके समान हुये तिनके परोक्षत्वादिअपरोक्षत्वादिरूप अवांतरभेदकी सिद्धि कैसैं होवैहै ? यह आशंकाकरि अज्ञानआवृतवासनारूप अस्पष्ट औ बुद्धिरूप स्पष्टउपाधिवाले होनैंकरि मेघाकाश औ जलाकाशकी न्याईं तिन ईश्वर औ जीवके भेदकी सिद्धि होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

२९] मेघाकाश औ जलाकाशकी न्याईं सो ईश्वर औ जीव दोनूं व्यवस्थाकूं कहिये व्यवहारविषै भेदकूं प्राप्त होवैहैं ॥ १५५ ॥

॥ ४ ॥ ईशकूं श्लोक २०–२१ उक्त मेघाकाशके तुल्यताकी स्पष्टता ॥

३० ईश्वरकी मेघाकाशसैं तुल्यताकूं स्पष्ट करैहैं:—

३१] मेघकी न्याईं माया वर्त्ततीहै औ मेघविषै स्थित तुषार जो सूक्ष्म जलबिंदु । तिनकी न्याईं बुद्धिवासना हैं औ तुषारविषै स्थित जो आकाश कहिये आकाशका प्रतिबिंब ताकी न्याईं चिदाभास स्थित है। सो ईश्वर है ॥१५६॥

८० जीवईश्वर मायिक हैं ॥ इहां मायिकशब्दका अर्थ "मायाके कार्य जीवईश्वर हैं" यह नहीं । किंतु "मायाकी सिद्धिके अधीन अपनी सिद्धिवाले जीवईश्वर हैं" यह अर्थ है ॥ काहेतैं जीव । ईश । शुद्धचेतन । अविद्या । अविद्या अरु शुद्धचेतनका संबंध । औ इन पंचवस्तुनका परस्परभेद । ये षट्वस्तु स्वरूपतैं अनादि हैं । इस वार्त्तिककारउक्त सिद्धांतके विरोधतैं॥ औ "माया। आभासकरि जीवईश्वरकूं करैहै"। इस श्रुतिगत "करैहै" इस पदका बी माया अपनी सिद्धिके अधीन जीवईश्वरकी सिद्धिकूं दिखावैहै । यहहीं अर्थ है ॥

८१ शंकाः—इहां विद्यारण्यस्वामीनैं बुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकूं ईश्वरता कहीहै सो संभवै नहीं औ तिसविषै जो आग्रह करै ताकूं यह पूछ्याचाहियेः–(१) ईश्वरभावकी उपाधि केवल अज्ञान है (२) अथवा वासनासहितअज्ञान है (३) अथवा केवल वासना है ?

(१) जो प्रथमपक्ष कहै। तौ बुद्धिवासनाविशिष्टअज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं जो ईश्वरता कहीहै तासैं विरोध होवैगा ॥

(२) जो द्वितीयपक्ष कहै। तौ केवलअज्ञानकूंही ईश्वरभावकी उपाधि माननीचाहिये ॥ बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि कहना निष्फल है ॥ जो कहै केवलअज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि मानैं तौ ईश्वरमैं सर्वज्ञता सिद्ध होवै नहीं । यातैं सर्वज्ञताके लाभअर्थ बुद्धिवासना बी अज्ञानकी विशेषण मानीहै । यह कथन बी असंगत है ॥ काहेतैं अज्ञानस्थसत्वअंशकी सर्वगोचरवृत्तिसैंही सर्वज्ञताका लाभ होनैतैं । बुद्धिवासनाकूं अज्ञानकी विशेषणता माननी निष्फल है ॥ औ अज्ञानस्थसत्वअंशकी वृत्तिसैंही सर्वज्ञता संभवै है ।

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४५१	३३ मायाधीनश्चिदाभासः श्रुतो मायी महेश्वरः । ३५ अंतर्यामी च सर्वज्ञो जगद्योनिः स एव हि १५७	टीकांकः १७३२ टिप्पणांकः ५८२

३२ मायाप्रतिबिंबस्येश्वरत्वे किं प्रमाणमित्याशंक्य श्रुतिरेवेत्याह—

३३] मायाधीनः चिदाभासः मायी महेश्वरः श्रुतः ॥

३४ न केवलमीश्वरत्वमस्य श्रुतमपि त्वंतर्यामित्वादिकमपि धर्मजातं श्रुतमस्तीत्याह (अंतर्यामीति)—

३५] च अंतर्यामी सर्वज्ञः जगद्योनिः सः एव हि ॥ १५७ ॥

॥ ९ ॥ मायागतप्रतिबिंबके ईश्वरपनै आदिकमें श्रुतिप्रमाणका सूचन ॥

३२ मायाविषै जो प्रतिबिंब है । ताकी ईश्वरताविषै कौन प्रमाण है ? यह आशंकाकरि श्रुतिहीं प्रमाण है । ऐसैं कहैहैंः—

३३] माया है अधीन जिसके ऐसा जो चिदाभास । सो मायावाला महेश्वर है । ऐसैं श्रुतिविषै सुन्याहै ॥

३४ केवल ईश्वरपनाहीं इस मायागत प्रतिबिंबका सुन्याहै ऐसैं नहीं । किंतु अंतर्यामीपनैसैं आदिलेके धर्मनका समूह बी सुन्याहै । ऐसैं कहैहैंः—

३५] अंतर्यामी सर्वज्ञ औ जगद्योनि कहिये जगत्का कारण सोईहीं है ॥ १५७ ॥

बुद्धिवासनातैं सर्वज्ञता सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं एकएकवासनाकूं तौ सर्वपदार्थगोचरता संभवै नहीं ॥ सर्वज्ञताके लाभअर्थ सकलवासनाकूं अज्ञानकी विशेषणता मानीचाहिये ॥ सो प्रलयकालविना एककालमैं सर्ववासनाका सद्भाव संभवै नहीं । यातैं सर्वज्ञताकी सिद्धिवास्ते होवै नहीं ॥ इसरीतिसैं बुद्धिवासनासहित अज्ञान ईश्वरकी उपाधि है । यह द्वितीयपक्ष बी संभवै नहीं ॥

(३) जो केवल वासना ईश्वरकी उपाधि है । यह तृतीयपक्ष कहै । तथापि यह पूछ्याचाहियेः—[१] एकएकवासनामैं प्रतिबिंब ईश्वर है [२] अथवा सकलवासनामैं एकप्रतिबिंब ईश्वर है ?

[१] जो प्रथमपक्ष कहै तौ जीवजीवकी बुद्धिकी वासना अनंत होनैतैं तिनमैं प्रतिबिंबईश्वर बी अनंत होवैंगे औ एकएकवासनाकूं अल्पगोचरता होनैतैं तिनमैं प्रतिबिंबरूप अनंतईश्वर बी अल्पज्ञहीं होवैंगे ॥

[२] सर्ववासनामैं एकप्रतिबिंब मानै तौ सर्ववासना प्रलयविना युगपत् (एककालमैं) होवैं नहीं औ अनेकउपाधिमैं अनेकहीं प्रतिबिंब होवैहैं । यातैं सर्ववासनामैं एकप्रतिबिंब संभवै नहीं ॥

इसरीतिसैं केवलअज्ञानहीं ईश्वरकी उपाधि है ॥ विद्या-

रण्यस्वामीनैं इहां वासनाका निष्फल अनुसरण कर्याहै यह वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशगत शंका है ॥ याका

यह समाधान हैः—यद्यपि इस पंचदशीग्रंथके पूर्वउत्तरके विचारनैकरि अनेकस्थलविषै मायारूप अज्ञानकूंहीं ईश्वरभावकी उपाधिता प्रतीत होवैहै । यातैं अज्ञानहीं ईश्वरभावकी उपाधि है बुद्धिवासना नहीं । तथापि इहां अज्ञानविषै बुद्धिवासनाका अनुसरण कर्याहै ताका यह अभिप्राय हैः— अज्ञानविषै सर्वज्ञताका कारण जो सत्वगुण है तिसकूं ज्ञानरूप सर्वबुद्धिनका उपादान होनैतैं सुषुप्तिविषै सर्वबुद्धिनकी अपनै उपादानअंशविषै लय होनैकरि उपादानरूपसैं स्थिति होवैहै ॥ औ उपादानरूपसैं स्थितिहीं सूक्ष्मअवस्थारूप संस्कारशब्दकी वाच्य है । सो संस्कारहीं वासना कहियेहैं ॥ इसरीतिसैं अज्ञाननिष्ठसत्वअंशतैं भिन्न वासनाशब्दका अर्थ नहीं है ॥ यातैं इहां बुद्धिवासनाशब्दकरि अज्ञाननिष्ठसत्वअंशकाहीं ग्रहण कियाहै औ वासनाशब्दका जो कथन है सो सर्वजनके अनुभवविषै आरूढताअर्थ है । वा जीवईश्वरकी अभेदताकी प्रसिद्धिके जनावनैअर्थ है ॥ औ सुषुप्तिगतअज्ञानका समष्टिअज्ञानसैं भेद नहीं । इस अभिप्रायतैं सो ईश्वरकी उपाधि है ॥ इति ॥

८२ शुद्धसत्वप्रधानप्रकृतिका अंश ॥

टीकांकः १७३६ टिप्पणांकः ५८३	३७ सौषुप्तमानंदमयं प्रक्रम्यैवं श्रुतिर्जगौ । एष सर्वेश्वर इति सोऽयं वेदोक्त ईश्वरः ॥१५८॥ ३९ सर्वज्ञत्वादिके तस्य नैव विप्रतिपद्यताम् । ४२ श्रौतार्थस्यावितर्क्यत्वान्मायायां सर्वसंभवात् ॥१५९॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४५२ ४५३

३६ ननु धीवासनाप्रतिबिंबस्येश्वरत्वादिकं कथं श्रुतिसिद्धमित्याशंक्य तदुपपादिकां श्रुतिं दर्शयति—

३७] सौषुप्तं आनंदमयं प्रक्रम्य "एष सर्वेश्वरः" इति एवं श्रुतिः जगौ । सः अयं वेदोक्तः ईश्वरः ॥

३८) "सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एव" इत्यादिका श्रुतिः धीवासनाप्रतिबिंबरूपस्यानंदमयस्येश्वरत्वादिकं प्रतिपादयतीत्यर्थः ॥१५८

३९ नन्वानंदमयस्य सर्वज्ञत्वादिकमनुभवविरुद्धमित्याशंक्याह (सर्वज्ञत्वादिक इति)—

॥ ६ ॥ आनंदमयके ईश्वरताकी प्रतिपादक श्लोक १९७ मैं सूचित श्रुति ॥

३६ ननु बुद्धिकी वासनाविषै जो प्रतिबिंब है । तिनके ईश्वरताआदिक धर्म कैसैं श्रुतिसिद्ध हैं? यह आशंकाकरि तिन ईश्वरताआदिकधर्मनकी उपपादन करनैहारी श्रुतिकूं दिखावैहैं:—

३७] सुषुप्तिकालके आनंदमयकोशकूं प्रथम आरंभकरिके यह आनंदमयकोश सर्वेश्वर है। ऐसैं श्रुति कहती भई ॥ यातैं सो यह आनंदमयकोश वेदोक्तईश्वर है ॥

३८) "सुषुप्तिस्थानविषै एकरूप हुवा प्रकर्षकरि ज्ञानघनहीं होवैहै" इत्यादिकश्रुति बुद्धिवासनागतप्रतिबिंबरूप आनंदमयके ईश्वरताआदिकधर्मकूं प्रतिपादन करैहै । यह अर्थ है ॥ १५८ ॥

॥ ३ ॥ ईश्वरके गुण सर्वेश्वरतादिक ॥ १७३९—१८२८ ॥

॥ १ ॥ ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिकका संभव ॥

३९ ननु आनंदमयके सर्वज्ञतादिक अनुभवसैं विरुद्ध हैं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८३ शंकाः—इहां आनंदमयकोशकूं ईश्वरताका कथन असंगत है ॥ काहेतैं जाग्रत्स्वप्नमैं स्थूलावस्थाविशिष्टप्रतिबिंबसहित अंतःकरणकूं विज्ञानमय कहैहैं ॥ विज्ञानमयजीवहीं सुषुप्तिकालमैं सूक्ष्मरूपतैं विलीन हुया आनंदमय कहियेहै। तिसकूं ईश्वर मानै तौ जाग्रत्स्वप्नमैं अंतःकरणकी विलीनअवस्थारूप आनंदमयके अभावतैं ईश्वरका बी अभाव हुयाचाहिये ॥ अनंतपुरुषनकी सुषुप्तिमैं अनंतईश्वर हुयेचाहिये ॥ जीवके पंचकोश सकलग्रंथकारोंनैं कहेहैं औ पंचकोशविवेकमैं विद्यारण्यस्वामीनैं आप बी जीवके पंचकोश कहेहैं ॥ आनंदमयकूं ईश्वरता मानै सकलवचन असंगत होवैंगे । यातैं आनंदमयकूं ईश्वरता संभवै नहीं । यह वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशगत शंका है ॥

ताका तहांही लिखेहुये समाधानका संक्षेपतैं यह उल्लेख है:—जिस मंदबुद्धिवाले पुरुषकूं महावाक्यविचारतैं तत्त्वसाक्षात्कार होवै नहीं । ताकूं प्रणवचिंतन कियाचाहिये । तिसका प्रकार मांडूक्यउपनिषद्मैं कहाहै ॥ तहां आनंदमयकूं सर्वज्ञतासर्वेश्वरता कहीहै ॥ तिस मांडूक्यवचनका जैसैं जीवईश्वरके अभेदचिंतनमैं तात्पर्य है तैसैं विद्यारण्यस्वामीका बी जीवईश्वरके अभेदचिंतनमैं तात्पर्य है औ आनंदमयकूं ईश्वरता विवक्षित (कहनैकूं इच्छित) नहीं है ॥ जो आनंदमयकूं ईश्वरता विवक्षित होवै तौ पंचदशीके ब्रह्मानंद नाम ११ वें प्रकरणमैं ६२—६३ श्लोकपर्यंत "जीवकी अवस्थाविशेष आनंदमयकोश है" यह लिख्याहै तासैं विरोध होवैगा । यातैं विद्यारण्यस्वामीकूं आनंदमयकोशकी ईश्वरता इष्ट नहीं है किंतु मंदबुद्धिपुरुषनकूं जीवईश्वरकी अभेदताके चिंतनअर्थ आनंदमयविषै ईश्वरताका आरोप कियाहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४५४

अयं यत्सृजते विश्वं तदन्यथयितुं पुमान् ।
न कोऽपि शक्तस्तेनायं सर्वेश्वर इतीरितः॥१६०॥

टीकांकः १७४० टिप्पणांकः ५८४

४०] तस्य सर्वज्ञत्वादिके न एव विप्रतिपद्यताम् ॥

४१ कुत इत्यत आह—

४२] श्रौतार्थस्य अवितर्क्यत्वात् ॥

४३ इतोऽपि न विमतिपत्तिः कार्येत्याह–

४४] मायायां सर्वसंभवात्॥१५९॥

४५ नन्वनुकूलयुक्त्यभावे श्रुतिरपि ग्रावप्लववाक्यवदर्थवादः स्यादित्याशंक्य श्रुतिप्रामाण्यसिद्धये सर्वेश्वरत्वादिकमुपपादयति—

४६] अयं यत् विश्वं सृजते तत् अन्यथयितुं कः अपि पुमान् न शक्तः । तेन अयं सर्वेश्वरः इति ईरितः ॥

४७) अयं आनंदमयो यत् जाग्रदादिविश्वं सृजति तन्न केनापि अन्यथाकर्तुं शक्यते । अतः अयं सर्वेश्वर इत्यर्थः १६०

४०] तिस आनंदमयके सर्वज्ञताआदिकविषै विवाद करना नहीं ॥

४१ काहेतैं तिसविषै विवादका अभाव है। तहां कहैहैं:—

४२] श्रुतिउक्तअर्थकूं तर्कके अयोग्य होनैतैं ।

४३ औ इस वक्ष्यमाणकारणतैं वी आनंदमयके सर्वज्ञताआदिकविषै विवाद करनैकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

४४] मायाविषै सर्वके संभवतैं ॥ १५९ ॥

॥ २ ॥ ईश्वरकी सर्वेश्वरता ॥

४५ ननु अनुकूलयुक्तिके अभाव होते श्रुति वी "ग्रावः प्लवः" कहिये "पाषाणकी नौका" इसवाक्यकी न्याईं अर्थवादरूप होवैगी । यह आशंकाकरि श्रुतिकी प्रमाणताकी सिद्धिअर्थ आनंदमयके सर्वेश्वरताआदिककूं युक्ति औ हेतुकरि उपपादन करैहैं:—

४६] यह जिस विश्वकूं रचताहै । तिसकूं अन्यथा करनैकूं कोइ वी पुरुष समर्थ नहीं है ॥ तिस हेतुकरि यह "सर्वेश्वर" ऐसैं कहाहै ॥

४७) यह आनंदमय जिस जाग्रदादिरूप विश्वकूं रचताहै।सो विश्व किसीकरि वी औरप्रकारसैं करनैकूं शक्य नहीं है । यातैं यह आनंदमयकोश सर्वेश्वर है । यह अर्थ है ॥ १६०॥

---

८४ मायाकूं अघटितपदार्थकी घटनाविषै समर्थ होनैतैं तिसविषै ऐंद्रजालिकमायाकी न्याईं सर्वका संभव है ॥

८५ निंदा वा स्तुतिका बोधक वचन **अर्थवाद** कहियेहै ॥ भूतार्थवाद औ अभूतार्थवाद भेदकरि **अर्थवाद** दोभांतिका होवैहै ॥

(१) "वज्रयुक्त हस्तवाला इंद्र है" यह इंद्रकी स्तुतिका बोधक वचन यथार्थअर्थका वाचक होनैतैं **भूतार्थवाद** है ॥ औ

(२) "पाषाणरूप नौका है" वा "यह स्तंभ सूर्य है ॥" इत्यादिवाक्य अयथार्थअर्थके वाचक स्तुतिबोधक होनैतैं **अभूतार्थवाद** है ॥

(१) तैसैं "यह पुरुष पापी है" ऐसा पापिष्ठकी निंदाका बोधक वचन **भूतार्थवाद** है । औ

(२) "यह पुरुष पिशाच है" ऐसा पुरुषकी निंदाका बोधक वचन **अभूतार्थवाद** है ॥

कहूं गुण अनुवाद भूत भेदतैं तीनभांतिका अर्थवाद कहाहै । सो मतभेदसैं है ॥

टीकांक: १७४८ टिप्पणांक: ॐ	अशेषप्राणिबुद्धीनां वासनास्तत्र संस्थिताः । ताभिः क्रोडीकृतं सर्वं तेन सर्वज्ञ ईरितः॥१६१॥ वासनानां परोक्षत्वात्सर्वज्ञत्वं न हीक्ष्यते । सर्वबुद्धिषु तद्दृष्ट्वा वासनास्वनुमीयताम् ॥ १६२॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४५५ ४५६

४८ इदानीं सर्वज्ञत्वमुपपादयति (अशेषेति)—

४९] **तत्र अशेषप्राणिबुद्धीनां वासनाः संस्थिताः ताभिः सर्वं क्रोडीकृतं तेन सर्वज्ञः ईरितः ॥**

५०) तत्र सौषुप्तेऽज्ञाने कारणभूते कार्यभूतानां सर्वप्राणिबुद्धीनां **वासनाः** निवसंति । **ताभिः** च वासनाभिः **सर्वं** जगत् । क्रोडीकृतं विषयीकृतं तेन सर्वबुद्धिवासनावदज्ञानोपाधिकत्वेन **सर्वज्ञः** उच्यत इत्यर्थः ॥ १६१ ॥

५१ ननु यदि सर्वज्ञत्वमस्ति तर्हि तत् कुतो नानुभूयत इत्याशंक्य तदुपाधीनां वासनानां परोक्षत्वान्नानुभव इत्याह—

५२] **वासनानां परोक्षत्वात् सर्वज्ञत्वं न हि ईक्ष्यते ॥**

५३ कथं तर्हि तदवगम इत्याशंक्याह—

५४] **सर्वबुद्धिषु तत् दृष्ट्वा वासनासु अनुमीयताम् ॥**

५५) सर्वबुद्धिनिष्ठं सर्वज्ञत्वं सकारणभूतवासनागतसर्वज्ञत्वपुरःसरं भवितुमर्हति कार्यनिष्ठधर्मविशेषत्वात्पटगतरूपादिवदित्यर्थः ॥ १६२ ॥

॥ ३ ॥ ईश्वरकी सर्वज्ञता ॥

४८ अब सर्वज्ञपनैकूं उपपादन करैहैं:—

४९] **सर्वप्राणिनके बुद्धिके जे वासनारूप संस्कार हैं। वे तिस सुषुप्तिकालके अज्ञानविषै स्थित है ॥ तिन वासनाकरि सर्वजगत् विषय कियाहै । तिस हेतुकरि यह "सर्वज्ञ" कहाहै ॥**

५०) तिस कारणभूत सुषुप्तिकालके अज्ञानविषै तिस अज्ञानकी कार्यरूप सर्वप्राणिनके बुद्धिनकी वासना वसतीयांहैं ॥ तिन वासनाओंनैं सर्वजगत् विषय कियाहै ॥ तिस सर्वबुद्धिनकी वासनायुक्त अज्ञानउपाधिवाला होनैकरि यह आनंदमय "सर्वज्ञ" कहियेहै । यह अर्थ है ॥ १६१ ॥

५१ ननु जब सर्वज्ञपना है तब सो काहेतैं नहीं अनुभव करियेहै ? यह आशंकाकरि तिस आनंदमयरूप ईश्वरकी उपाधि वासनाकूं परोक्ष होनैतैं । ईश्वरके सर्वज्ञपनैका अनुभव नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

५२] **वासनाकूं परोक्ष होनैतैं सर्वज्ञपना नहीं देखियेहै** । कहिये प्रत्यक्ष अनुभव नहीं करियेहै ॥

५३ तब कैसैं तिस सर्वज्ञपनैका ज्ञान होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५४] **सर्वबुद्धिनविषै तिस सर्वज्ञपनैकूं देखिके वासनाविषै अनुमान करना॥**

५५) इहां यह अनुमान है:—सर्वबुद्धिनविषै स्थित जो सर्वज्ञपना है । सो अपनै कारणरूप वासनागतसर्वज्ञपनैके पूर्वक होनैकूं योग्य है । कार्यरूप सर्वबुद्धिविषै स्थित धर्मविशेष होनैतैं । तंतुके कार्य वस्त्रगत रूपआदिकनकी न्याई । यह अर्थ है ॥ १६२ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
४५७	५७ विज्ञानमयमुख्येषु कोशेष्वन्यत्र चैव हि । अंतस्तिष्ठन्यमयति तेनांऽतर्यामितां व्रजेत्॥१६३॥	१७५६
४५८	५९ बुद्धौ तिष्ठन्नांतरोऽस्या धियानीक्ष्यश्च धीवपुः । धियमंतर्यमयतीत्येवं वेदेन घोषितम् ॥ १६४ ॥	टिप्पणांकः ॐ
४५९	६१ तंतुः पटे स्थितो यद्वदुपादानतया तथा । सर्वोपादानुरूपत्वात्सर्वत्रायमवस्थितः ॥ १६५ ॥	

५६ सर्वज्ञत्वमुपपाद्य "एषोंऽतर्यामी" इति श्रुत्युक्तमंतर्यामित्वमुपपादयति—

५७] विज्ञानमयमुख्येषु कोशेषु च अन्यत्र एव हि अंतः तिष्ठन् यमयति। तेन अंतर्यामितां व्रजेत् ॥

ॐ ५७) अन्यत्र पृथिव्यादौ तिष्ठन् यमयति यतः तेन इत्यन्वयः ॥ १६३ ॥

५८ अस्मिन्नर्थेऽतर्यामिब्राह्मणं कृत्स्नं प्रमाणमिति दर्शयितुं तदेकदेशभूतं "यो विज्ञाने तिष्ठन्" इत्यादि वाक्यमर्थतोऽनुक्रामति—

५९] बुद्धौ तिष्ठन् अस्याः आंतरः च धिया अनीक्ष्यः धीवपुः धियं अंतः यमयति। इति एवं वेदेन घोषितम्॥१६४

६० इदानीमंतर्यामिब्राह्मणस्य प्रतिपर्यायव्याख्याने ग्रंथबाहुल्यभयात् व्याख्यानस्य सर्वपर्यायसंचारित्वसिद्धये "यः सर्वेषु भूतेषु" इतिपर्यायं व्याचक्षाणो "यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्" इत्यस्यार्थं दृष्टांतेनाह (तंतुरिति)—

॥ ४ ॥ ईश्वरकी अंतर्यामिता ॥

५६ सर्वज्ञपनैकूं उपपादनकरिके "यह (आनंदमयरूप ईश्वर) अंतर्यामी है" इस श्रुतिविषै कथन किये अंतर्यामीपनैकूं उपपादन करैहैं:—

५७] **विज्ञानमय है मुख्य जिनोंके। ऐसै च्यारिकोशनविषै औ अन्यपृथिवीआदिकनविषै जातैं भीतरस्थित हुवा प्रेरणाकूं करताहै। तिस हेतुकरि यह अंतर्यामीपनैकूं पावताहै ॥**

ॐ ५७) अन्यत्र कहिये पृथिवीआदिकविषै स्थित हुया जातैं नियमन करैहै तिसकरि। ऐसैं अन्वय है ॥ १६३ ॥

५८ इस ईश्वरकी अंतर्यामितारूप अर्थविषै अंतर्यामीब्राह्मणरूप बृहदारण्यकउपनिषद्का साराप्रकरण प्रमाण है। ऐसैं दिखावनैकूं तिस अंतर्यामीब्राह्मणके एकदेशरूप "जो बुद्धिविषै स्थित हुवा विज्ञानकूं प्रेरताहै" इत्यादिवाक्य हैं। तिसकूं अनुक्रमकरि कहैहैं:—

५९] **जो विज्ञानमयकोशरूप बुद्धिविषै स्थित हुवा इस बुद्धिके अंतर है औ बुद्धिकरि नहीं देखियेहै औ बुद्धि जिसका शरीर है औ बुद्धिकूं भीतर प्रेरणा करताहै। ऐसैं वेदनैं कहाहै ॥ १६४ ॥**

६० अब अंतर्यामीब्राह्मणके सर्वपर्यायनके व्याख्यानविषै ग्रंथकी वृद्धिके भयतैं।व्याख्यानकूं सर्वपर्यायनविषै प्रवृत्त होनैकी सिद्धिअर्थ "जो सर्वभूतनविषै" इस पर्यायकूं व्याख्यान करतेहुये "जो सर्वभूतनविषै स्थित हुया सर्वकूं प्रेरताहै" इस वाक्यके अर्थकूं दृष्टांतकरि कहैहैं:—

टीकांक: १७६१ टिप्पणांक: ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:
	६३ पटादप्यांतरस्तंतुस्तंतोरप्यंशुरांतरः । आंतरत्वस्य विश्रांतिर्यत्रासावनुमीयताम् ॥१६६॥	४६०
	६६ द्वित्र्यांतरत्वकक्षाणां दर्शनेऽप्ययमांतरः । न वीक्ष्यते ६६ ततो युक्तिश्रुतिभ्यामेव निर्णयः १६७	४६१

६१] यद्वत् तंतुः उपादानतया पटे स्थितः तथा अयं सर्वोपादानरूपत्वात् सर्वत्र अवस्थितः ॥ १६५ ॥

६२ ननूपादानतया सर्वत्रायमवस्थितश्चेत् किमिति सर्वत्र नोपलभ्यत इत्याशंक्य सर्वांतरत्वादित्याह—

६३] पटात् अपि आंतरः तंतुः तंतोः अपि आंतरः अंशुः । आंतरत्वस्य विश्रांतिः यत्र असौ अनुमीयताम् ॥

६४) अत्रेदमनुमानं । आंतरत्वतारतम्यं क्वचिद्विश्रान्तं तारतम्यत्वादणुत्वतारतम्यवदिति ॥ १६६ ॥

६५ नन्वांतरत्वेऽप्यंश्वादिवदंतर्यामिणो दर्शनं किं न स्यादित्याशंक्य तेषामिव बाह्यत्वाभावान्न दृश्यत इत्यभिप्रायेणाह—

६६] द्वित्र्यांतरत्वकक्षाणां दर्शने अपि अयं आंतरः न वीक्ष्यते ॥

६७ कुतस्तर्हि तन्निर्णय इत्यत आह—

६८] ततः युक्तिश्रुतिभ्यां एव निर्णयः ॥

६१] जैसैं तंतु उपादानपनैकरि पटविषै स्थित है। तैसैं यह ईश्वर सर्वका उपादानरूप होनैतैं सर्वभूतनविषै स्थित है ॥ १६५ ॥

६२ ननु उपादानपनैकरि जो यह सर्वत्र स्थित होवै । तौ काहेतैं सर्वत्र नहीं देखियेहै? यह आशंकाकरि सर्वके आंतर होनैतैं नहीं देखियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

६३] पटतैं बी आंतर कहिये भीतर तंतु है औ तंतुतैं बी आंतर अंशु कहिये सूक्ष्मतंतु है। ऐसैं आंतरताकी स्थिति जहां होवै । तहां यह ईश्वर अनुमानकरि जानना ॥

६४) इहां यह अनुमान है:—आंतरताका तारतम्य कहिये अधिकन्यूनभाव कहूं बी विश्रांतिकूं पायाहै । काहेतैं तारतम्य होनैतैं अणुपनैके तारतम्यकी न्याई । इति ॥ १६६ ॥

६५ ननु अंतर्यामीकूं आंतर होते बी सूक्ष्मतंतुआदिककी न्याई अंतर्यामीका दर्शन क्यूं नहीं होवैहै ? यह आशंकाकरि तिन अंशुआदिकनकी न्याई बाह्यपनैके अभावतैं अंतर्यामी नहीं देखियेहै । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

६६] दो तीन आंतरताकी अवस्थाके दर्शन हुये बी जो यह सर्वांतर है सो नहीं देखियेहै ॥

६७ तब किस प्रमाणतैं तिस अंतर्यामीका निर्णय होवैहै? तहां कहैहैं:—

६८] तातैं श्रुति औ युक्तिकरिहीं निर्णय होवैहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	पटरूपेण संस्थानात्पटस्तंतोर्वपुर्यथा ।	
	सर्वरूपेण संस्थानात्सर्वमस्य वपुस्तथा ॥ १६८ ॥	
४६२	[७४] तंतोः संकोचविस्तारचलनादौ पटो यथा ।	१७६९
४६३	अवश्यमेव भवति न स्वातंत्र्यं पटे मनाक् १६९	टिप्पणांकः ॐ
	तथांऽतर्याम्ययं यत्र यया वासनया यथा ।	
४६४	विक्रियते तथावश्यं भवत्येव न संशयः ॥१७०॥	

६९) अचेतनस्य चेतनाधिष्ठानमंतरेण प्रवृत्त्यनुपपत्तिः युक्तिः । श्रुतिः तूदाहृतैव१६७

७० यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरमित्यस्यार्थमाह—

७१] पटरूपेण संस्थानात् तंतोः पटः वपुः यथा । तथा सर्वरूपेण संस्थानात् अस्य सर्वं वपुः ॥

७२) पटरूपेण अवस्थितस्य तंतोः पटः शरीरं यथा । एवं सर्वरूपेण अवस्थितस्य सर्वं शरीरमित्यर्थः ॥ १६८ ॥

७३ "यः सर्वाणि भूतान्यंतरो यमयति" इति वाक्यस्य तात्पर्यं सदृष्टांतमाह श्लोकद्वयेन (ततोरिति)—

७४] यथा तंतोः संकोचविस्तारचलनादौ पटः अवश्यं एव भवति । पटे स्वातंत्र्यं मनाक् न ॥ १६९ ॥

७५] तथा अयं अंतर्यामी यत्र यया वासनया यथा विक्रियते तथा अवश्यं भवति एव संशयः न ॥

७६) तंतुसंकोचादिना पटसंकोचादिर्यथा भवति । एवं पृथिव्यादिषूपादानत्वेन स्थितः अंतर्यामी यथा यया वासनया यथा

---

६९) जडजगत्की चेतनरूप अधिष्ठानविना जो प्रवृत्तिका असंभव है । सो युक्ति है औ श्रुति तौ पूर्व १६४ वें श्लोकविषै उदाहरण करीहीं है ॥ १६७ ॥

७० "जिस ईश्वरका सर्वभूत शरीर है" इस वाक्यके अर्थकूं कहैहैंः—

७१] जैसैं पटरूपकरि तंतुकी स्थितितैं तंतुका पट शरीर है । तैसैं सर्वरूपकरि ईश्वरकी स्थितितैं इस ईश्वरका सर्वजगत् शरीर है ॥

७२) जैसैं पटरूपकरि अवस्थित तंतुका पट शरीर है । ऐसैं सर्वरूपकरि अवस्थित ईश्वरका सर्व शरीर है । यह अर्थ है ॥१६८॥

७३ "जो सर्वभूतनकूं अंतर हुया प्रेरणा करैहै" इस वाक्यके तात्पर्यकूं दृष्टांतसहित दोश्लोककरि कहैहैंः—

७४] जैसैं तंतुके संकोच विस्तार औ चलनआदिकविषै पट अवश्यहीं तैसैं तैसैं होवैहै । तातैं पटविषै स्वतंत्रपना किंचित् बी नहीं है ॥ १६९ ॥

७५] तैसैं यह अंतर्यामी जहां जिस वासनाकरि विक्रियाकूं पावताहै । तैसैं अवश्यहीं जगत् होवैहै । यामैं संशय नहीं है ॥

७६) तंतुके संकोचआदिककरि जैसैं पटका संकोचआदिक होवैहै । ऐसैं पृथिवीआदिकवस्तुनविषै उपादानपनैकरि स्थित जो अंतर्यामी है । सो जिस जिस वासनाकरि

टीकांक: १७७७ टिप्पणांक: ५८६	ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥१७१॥ सर्वभूतानि विज्ञानमयास्ते हृदये स्थिताः । तदुपादानभूतेशस्तत्र विक्रियते खलु ॥ १७२ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४६५ ४६६

घटिकादिकार्यरूपेण विक्रियते । तथा तत्कार्यजातं अवश्यं भवति इति भावः ॥ १७० ॥

७७ एवमंतर्यामिप्रतिपादिकां श्रुतिमुपन्यस्य स्मृतिमप्युपन्यस्यति (ईश्वर इति)—

७८] अर्जुन । ईश्वरः यंत्रारूढानि सर्वभूतानि मायया भ्रामयन् सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति ॥ १७१ ॥

७९ सर्वभूतानामिति पदस्यार्थमाह—

८०] सर्वभूतानि विज्ञानमयाः ते हृदये स्थिताः ॥

ॐ ८०) ते च हृदयपुंडरीके स्थिताः ॥

जैसैं घटादिकार्यरूपकरि परिणामकूं पावैहै । तैसैं तिस ईश्वरके कार्यका समूह अवश्य होवैहै ॥ यह भाव है ॥ १७० ॥

७७ ऐसैं अंतर्यामीकी प्रतिपादक श्रुतिकूं कहिके गीतास्मृतिके अष्टादशअध्यायगत ६१ वें श्लोकरूप वाक्यकूं बी कहैहैं:—

७८] हे अर्जुन ! ईश्वर जो है सो सर्वभूतनके हृदयदेशविषै स्थित है । सो यंत्रविषै स्थित सर्वभूतनकूं मायाकरि भ्रमावताहै ॥ १७१ ॥

७९ श्लोक १७१ उक्त गीतावाक्यगत "सर्वभूतनके" इस पदके अर्थकूं कहैहैं:—

८०] सर्वभूत कहिये जीव विज्ञानमयकोशरूप हैं । वे विज्ञानमय हृदयकमलविषै स्थित हैं ॥

ॐ ८०) औ वे हृदयपुंडरीकविषै स्थित हैं॥

---

८६ इस भगवत्वाक्यगत ईश्वर। इस पदकूं प्रथमाविभक्तिका एकवचन होनैकरि ईश्वर एकहीं है नाना नहीं । यह सिद्ध होवैहै ॥ यातैं ईश्वररूप अंतर्यामीके नानात्ववादी विष्णुस्वामीके अनुसारिनका मत निरस्त है ॥ जो विष्णुस्वामीका अनुसारी कहै । नाना हृदयदेशके एकवचनकी न्याई जातिके अभिप्रायसैं एकवचन होवैगा। सो बनै नहीं । काहेतैं अन्यस्थलमैं हृदयदेशके नानात्वके श्रवणतैं औ लोकअनुभवकरि सिद्ध होनैतैं । हृदयदेशके एकवचनका निर्देश जातिके अभिप्रायसैं संभवैहै ॥ औ ईश्वरका नानात्व श्रुति स्मृति औ पुराणादिकनमैं कहूं बी सुन्या नहीं औ लोकअनुभवका विषय बी नहीं । किंतु शास्त्र औ लोकअनुभवकरि एकहीं ईश्वर प्रतीत होवैहै ॥ तिसका जातिके अभिप्रायसैं एकवचनकरि निर्देश संभवै नहीं ॥ किंवा प्रतिशरीरविषै भिन्न भिन्न ईश्वर होवै तौ एक एक प्रजाके भिन्न भिन्न राजेकी न्याई एकदेशरूप एकब्रह्मांडके अनेकनियंताकी विलक्षणइच्छाकरि जगत्की अव्यवस्थाका प्रसंग होवैगा ॥ औ एकराजाके अनेककिंकरनकी न्याई एकब्रह्मरूप महेश्वरके अंशभूत नानानियंताके अंगीकार किये विरोध नहीं है । ऐसैं कहै ताकूं पूछ्याचाहिये:—सो एकमहेश्वर सर्वशक्ति औ सर्वज्ञताकरि युक्त है वा अयुक्त है ? अयुक्त कहै तौ राजाकी न्याई अनीश्वर जीव होवैगा औ युक्त कहै तौ तिस एकहींकूं सर्वज्ञतापूर्वक सर्वके प्रेरणकी सामर्थ्यके होनैतैं औरअंशभूत नानाअंतर्यामीका अंगीकार निष्फल गौरवदोषयुक्त अप्रमाण है ॥ औ वाचस्पतिमिश्राचार्योंनै जो ईश्वरका नानात्व अंगीकार कियाहै । तिनका अध्यारोप समुझायके अपवादद्वारा मुमुक्षुनकूं अद्वैतबोधनमैं तात्पर्य है । माननैमैं तात्पर्य नहीं । यातैं अविरोध है ॥ इसरीतिसैं ईश्वरनानात्ववादीविष्णुस्वामीके अनुसारी वल्लभका मत "ईश्वर" इस एकवचनांतपदकरि निरस्त है । वल्लभसैं कृष्णवाक्यकी प्रबलतातैं ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४६७ ४६८

८४ देहादिपंजरं यंत्रं तदारोहोऽभिमानिता ।
८६ विहितप्रतिषिद्धेषु प्रवृत्तिर्भ्रमणं भवेत् ॥ १७३ ॥
८८ विज्ञानमयरूपेण तत्प्रवृत्तिस्वरूपतः ।
स्वशक्त्येशो विक्रियते मायया भ्रामणं हि तत् १७४

टीकांकः १७८१ टिप्पणांकः ॐ

८१ ननु तेषां कुतो हृद्यवस्थानमित्याशंक्य हृद्यंतर्यामिणो विज्ञानमयाकारेण परिणामादित्याह—

८२] तदुपादानभूतेशः तत्र खलु विक्रियते ॥ १७२ ॥

८३ यंत्रारूढानीत्यत्र यंत्रारोहशब्दयोरर्थमाह—

८४] देहादिपंजरं यंत्रं । अभिमानिता तदारोहः ॥

८५ भ्रामयन्नितिपदे प्रकृत्यर्थमाह—

८६] विहितप्रतिषिद्धेषु प्रवृत्तिः भ्रमणं भवेत् ॥ १७३ ॥

८७ इदानीं णिच्प्रत्ययमायापदयोरर्थमाह—

८८] विज्ञानमयरूपेण तत्प्रवृत्तिस्वरूपतः स्वशक्त्या ईशः विक्रियते तत् हि मायया भ्रामणम् ॥ १७४ ॥

---

८१ ननु तिन विज्ञानमयरूप जीवनका काहेतैं हृदयविषै अवस्थान कहिये रहना है? यह आशंकाकरि हृदयविषै अंतर्यामीके विज्ञानमयरूप आकारकरि परिणामतैं तिनका हृदयविषै अवस्थान है। ऐसैं कहैहैंः—

८२] तिन विज्ञानमयरूप जीवनका उपादानरूप जो ईश्वर आनंदमय है । सो तिस हृदयविषै निश्चयकरि विज्ञानमयरूप करि परिणामकूं पावैहै ॥ १७२ ॥

८३ "यंत्रविषै आरूढ" इहां जो "यंत्र" औ "आरोह" शब्द हैं। तिन दोनूंके अर्थकूं कहैहैंः—

८४] देहादिकसंघातरूप जो पंजर है सो यंत्र है औ अभिमानितारूप तिस यंत्रविषै स्थिति है ॥

८५ अब "भ्रमावताहुया" इस पदविषै प्रकृति जो भ्रमणरूप धातु है। ताके अर्थकूं कहैहैंः—

८६] विहित जे शुभ औ निषिद्ध जे अशुभकर्म हैं। तिनविषै जो प्रवृत्ति है। सो भ्रमण होवैहै ॥ १७३ ॥

८७ अब भ्रमणधातुके साथि वर्त्तमान जो "णिच्" प्रत्यय है औ "माया" पद है। इन दोनूंके अर्थकूं कहैहैंः—

८८] विज्ञानमयजीवरूपकरि औ तिस विज्ञानमयकी प्रवृत्तिके स्वरूपतैं अपनी मायाशक्तिकरि ईश्वर विकारकूं पावताहै। सोइहीं मायाकरि भ्रमावना है ॥ १७४ ॥

टीकांकः १७८९ टिप्पणांकः ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः
	[९०] अंतर्यमयतीत्युक्त्याऽयमेवार्थः श्रुतौ श्रुतः ।	
	[९२] पृथिव्यादिषु सर्वत्र न्यायोऽयं योज्यतां धिया१७५	४६९
	[९४] जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-	
	जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।	
	केनापि देवेन हृदि स्थितेन	
	यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥१७६॥	४७०
	[९६] नार्थः पुरुषकारेणेत्येवं मा शंक्यतां यतः ।	
	ईशः पुरुषकारस्य रूपेणापि विवर्तते ॥ १७७ ॥	४७१

८९ श्रौतस्य यमयतीतिपदस्याप्ययमेवार्थ इत्याह—

९०] अंतः यमयति इति उक्त्या अयं एव अर्थः श्रुतौ श्रुतः ॥

९१ उक्तव्याख्यानं पर्यायांतरेष्वतिदिशति (पृथिव्यादिष्विति)—

९२] अयं न्यायः पृथिव्यादिषु सर्वत्र धिया योज्यताम् ॥ १७५ ॥

९३ प्रवृत्तिजातस्य सर्वेश्वराधीनत्वे वचनांतरमुदाहरति (जानामि धर्ममिति)—

९४] धर्मं जानामि च मे प्रवृत्तिः न । च अधर्मं जानामि मे निवृत्तिः न । केन अपि हृदि स्थितेन देवेन यथा नियुक्तः अस्मि तथा करोमि ॥ १७६ ॥

९५ ननु प्रवृत्तेरीश्वराधीनत्वे पुरुषप्रयत्नो व्यर्थः स्यादित्याशंक्य पुरुषप्रयत्नस्यापीश्वररूपत्वान्मैवमिति परिहरति (नार्थ इति)—

८९ पूर्व १६४ वें श्लोकउक्त श्रुतिगत "नियमन करैहै" कहिये प्रेरणा करताहै। इस पदका वी यहहीं अर्थ है । ऐसैं कहैहैं:—

९०] अंतरविषै प्रेरणाकूं करताहै। इस कहनैकरि यह १७४ श्लोकउक्त भ्रमणरूपहीं अर्थ श्रुतिविषै सुन्याहै ॥

९१ उक्तव्याख्यानकूं अन्यपर्यायरूप शब्दनविषै वी अतिदेश करैहैं:—

९२] यह १७४ श्लोकउक्त श्रुतिगत "नियमन" पदविषै उक्त जो न्याय कहिये रीति है। सो "पृथिवी"आदिकसर्वठिकानै बुद्धिकरि जोडना ॥ १७५ ॥

९३ प्रवृत्तिमात्रकूं सर्वेश्वरके अधीन होनैविषै अन्यशास्त्रवाक्यकूं उदाहरण करैहैं:—

९४] मैं धर्मकूं जानताहूं तिसविषै मेरी प्रवृत्ति नहीं होवैहै औ मैं अधर्मकूं जानताहूं तिसतैं मेरी निवृत्ति नहीं होवैहै। यातैं यह निश्चय होवैहै जो किसी वी हृदयविषै स्थित देव कहिये अंतर्यामीकरि जैसैं प्रेरणाकूं पायाहूं । तैसैं करुहूं ॥ १७६ ॥

९५ ननु प्रवृत्तिकूं ईश्वरअधीन हुये कार्यविषै प्रवृत्तिका हेतु उत्साहरूप पुरुषका प्रयत्न व्यर्थ होवैगा । यह आशंकाकरि पुरुषके प्रयत्नकूं वी ईश्वररूप होनैतैं पुरुषका प्रयत्न व्यर्थ होवैगा यह कथन बनै नहीं । ऐसैं परिहार करैहैं:—

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
४७२	ईदृग्बोधेनेश्वरस्य प्रवृत्तिर्मैव वार्यताम् । तथापीशस्य बोधेन स्वात्मासंगत्वधीजनिः १७८	१७९६
४७३	तावता मुक्तिरित्याहुः श्रुतयः स्मृतयस्तथा । श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे इत्यपीश्वरभाषितम् ॥१७९॥	टिप्पणांक: ॐ

९६] "पुरुषकारेण अर्थः न" इति एवं मा शंक्यतां । यतः ईशः पुरुषकारस्य रूपेण अपि विवर्तते ॥

ॐ ९६) अर्थः प्रयोजनं । पुरुषकारः पुरुषप्रयत्नः ॥ १७७ ॥

९७ ननु पुरुषप्रयत्नस्यापीश्वररूपत्वे यमयति भ्रामयतीति प्रतिपादितमंतर्यामिप्रेरणं वृथा स्यादित्याशंक्य तद्बोधेन स्वात्मासंगत्वज्ञानलक्षणफलस्य सत्वान्मैवमिति परिहरति—

९८] ईदृग्बोधेन ईश्वरस्य प्रवृत्तिः मा एव वार्यतां । तथापि ईशस्य बोधेन स्वात्मासंगत्वधीजनिः ॥

ॐ ९८) ईदृग्बोधेन ईशस्य पुरुषकारादिरूपेणाप्यवस्थानज्ञानेन । प्रवृत्तिः अंतर्यामिरूपेण प्रेरणा ॥ १७८ ॥

९९ आत्मनोऽसंगत्वज्ञानेनापि किं प्रयोजनमित्यत आह—

१८००] "तावता मुक्तिः" इति श्रुतयः तथा स्मृतयः आहुः ॥

१ श्रुतिस्मृत्युदितस्यानतिलंघनीयत्वे स्मृतिं दर्शयति—

२] "श्रुतिस्मृती मम एव आज्ञे" इति अपि ईश्वरभाषितम् ॥ १७९ ॥

९६] "पुरुषकारकरि अर्थ नहीं है।" ऐसैं मत आशंका करना। जातैं ईश्वर पुरुषप्रयत्नके रूपकरि बी वर्त्तताहै ॥

ॐ९६) अर्थ कहिये प्रयोजन । पुरुषकार कहिये पुरुषप्रयत्न ॥ १७७ ॥

९७ ननु पुरुषप्रयत्नकूं बी ईश्वररूप हुये "नियमन करताहै" कहिये भ्रमावताहै। ऐसैं १६४–१७६ श्लोकविषै प्रतिपादन किया जो अंतर्यामीका प्रेरण । सो वृथा होवैगा ॥ यह आशंकाकरि तिस बोधकरि अपनै आत्मासाक्षीकी असंगताके ज्ञानरूप फलके सद्भावतैं अंतर्यामीका प्रेरण वृथा होवैगा यह बनै नहीं । ऐसैं परिहार करैहैं:—

९८] इसप्रकारके बोधकरि ईश्वरकी प्रवृत्ति निवारण नहीं करियेहै । तथापि ईश्वरके उक्तप्रकारके ज्ञानकरि अपनै आत्माके असंगताकी बुद्धिकी उत्पत्ति होवैहै ॥

ॐ९८) इस प्रकारके बोधकरि कहिये ईश्वरके पुरुषप्रयत्नआदिरूपकरि बी स्थितिके ज्ञानकरि औ ईश्वरकी प्रवृत्ति कहिये अंतर्यामीरूपसैं प्रेरणा ॥ १७८ ॥

९९ आत्माकी असंगताके ज्ञानकरि बी क्या प्रयोजन है? तहां कहैहैं:—

१८००] "तितनैकरि कहिये आत्माकी असंगताके ज्ञानकरिहीं मुक्ति है।" ऐसैं अनेकश्रुति तथा स्मृति कहैहैं ॥

१ श्रुतिस्मृतिकरि कथन किये अर्थके न उल्लंघन करनैविषै स्मृतिकूं दिखावैहैं:—

२] "श्रुति औ स्मृति । ये दोनूं मेरीहीं आज्ञा हैं।" ऐसैं बी ईश्वरनैं कहाहै ॥ १७९ ॥

टीकांक: १८०३ टिप्पणांक: ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:
	आज्ञाया भीतिहेतुत्वं भीषाऽस्मादिति हि श्रुतम् । सर्वेश्वरत्वमेतत्स्यादन्तर्यामित्वतः पृथक् ॥१८०॥	४७४
	एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासन इति श्रुतिः । अंतःप्रविष्टः शास्तायं जनानामिति च श्रुतिः १८१	४७५
	जगद्योनिर्भवेदेष प्रभवाप्ययकृत्त्वतः । आविर्भावतिरोभावावुत्पत्तिप्रलयौ मतौ ॥१८२॥	४७६

३ श्रुत्यापीश्वरस्य भीतिहेतुत्वमुक्तमित्याह—

४] आज्ञाया भीतिहेतुत्वं "भीषा अस्मात्" इति हि श्रुतम् ॥

५ ईश्वरस्य भीतिहेतुत्वं किमर्थमुक्तमित्याशंक्य सर्वेश्वरत्वस्यांतर्यामित्वतः पार्थक्यसिद्धये इति मत्वाह (सर्वेश्वर इति)—

६] एतत् सर्वेश्वरत्वं अंतर्यामित्वतः पृथक् स्यात् ॥ १८० ॥

७ बहिरंतश्चेश्वर एव नियामक इत्यत्र श्रुतिद्वयमाह—

८] "एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने" इति श्रुतिः । च "अंतः प्रविष्टः अयं जनानां शास्ता" इति श्रुतिः ॥१८१॥

९ क्रमप्राप्तस्य "एष योनिः" इत्यस्यार्थमाह (जगद्योनिरिति)—

१०] एषः जगद्योनिः भवेत् ॥

११ प्रतिज्ञातार्थे "प्रभवाप्ययौ हि भूतानां" इति वाक्यं हेतुत्वेन योजयति—

---

३ श्रुतिनैं बी ईश्वरकूं भयका कारण कहाहै । ऐसैं कहैहैं:—

४] ईश्वरकी आज्ञाकूं भयकी कारणता । "भयकरि इस ईश्वरतैं वायु चलताहै" इस श्रुतिविषै जातैं सुनीहै ।

५ श्रुतिनैं ईश्वरकूं भयकी कारणता किसअर्थ कहीहै ? यह आशंकाकरि ईश्वरके सर्वेश्वरताकी अंतर्यामीतासैं भिन्नताकी सिद्धिअर्थ कहीहै । ऐसैं अंगीकारकरिके कहैहैं:—

६] यातैं यह सर्वेश्वरपना अंतर्यामीपनेतैं पृथक् है ॥ १८० ॥

७ बाहिर औ भीतर ईश्वरहीं नियामक कहिये प्रेरक है इस अर्थविषै दोनूंश्रुतिकूं कहैहैं:—

८] "इस अक्षरब्रह्मके प्रशासनविषै कहिये आज्ञाविषै सूर्यचंद्रमा स्थित हैं" यह एकश्रुति है । औ "भीतरप्रवेशकूं पायाहुवा यह परमात्मा । जीवनका शास्ता कहिये नियामक है ।" यह दूसरीश्रुति है ॥ १८१ ॥

॥ ९ ॥ ईश्वरकूं जगत्की योनितारूप कारणता ॥

९ अब क्रमकरि प्राप्त जो "यह योनि कहिये कारण है" इस श्रुतिवाक्यके अर्थकूं कहैहैं:—

१०] यह परमात्मा जगत्का कारण होवैहै ॥

११ प्रतिज्ञा किये जगत्कारणतारूप अर्थविषै "भूतनके उत्पत्ति औ प्रलयकूं करताहै" इस शास्त्रवाक्यकूं हेतुपनैकरि जोडतेहैं:—

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४७७ ४७८

आविर्भावयति स्वस्मिन्विलीनं सकलं जगत् ।
प्राणिकर्मवशादेष पटो यद्वत्प्रसारितः ॥ १८३ ॥
पुनस्तिरोभावयति स्वात्मन्येवाखिलं जगत् ।
प्राणिकर्मक्षयवशात्संकोचितपटो यथा ॥ १८४ ॥

टीकांकः १८१२ टिप्पणांकः ॐ

१२] प्रभवाप्ययकृत्त्वतः ॥

१३) प्रभवाप्ययौ उत्पत्तिप्रलयौ तत्कर्तृत्वात् जगद्योनिरित्यर्थः ॥

१४ उत्पत्तिप्रलयशब्दयोर्विवक्षितमर्थमाह (आविर्भावेति)—

१५] उत्पत्तिप्रलयौ आविर्भावतिरोभावौ मतौ ॥

१६) उत्पत्तिप्रलयावाविर्भावतिरोभावौ मतौ इति योजना ॥ १८२ ॥

१७ आविर्भावकारित्वं सदृष्टांतमुपपादयति (आविर्भावयतीति)—

१८] यद्वत् प्रसारितः पटः । एषः प्राणिकर्मवशात् स्वस्मिन् विलीनं सकलं जगत् आविर्भावयति ॥

१९) यथा संकुचितश्चित्रपटः स्वस्य प्रसारणेन स्वनिष्ठानि चित्राणि आविर्भावयति । एवमीशोऽपीत्यर्थः ॥ १८३ ॥

२० तस्यैव प्रलयकारणत्वं दर्शयति (पुनरिति)—

२१] यथा संकोचितपटः । प्राणिकर्मक्षयवशात् पुनः स्वात्मनि एव अखिलं जगत् तिरोभावयति ॥

२२) स एव पटः संकुचितः चित्राणि यथा तिरोभावयति तद्वदित्यर्थः ॥१८४॥

१२] उत्पत्ति औ प्रलयका करनैहारा होनैतैं यह जगत्का योनि है ॥

१३) उत्पत्ति औ प्रलयका कर्त्ता होनैतैं ईश्वर जगद्योनि है । यह अर्थ है ॥

१४ उत्पत्ति औ प्रलय इन दोनूंशब्दनके कहनैकूं इच्छित अर्थकूं कहैहैं:—

१५] उत्पत्ति अरु प्रलय । आविर्भाव औ तिरोभावरूप मानेहैं ॥

१६) उत्पत्ति औ प्रलय क्रमतैं प्रगटता औ अप्रगटतारूप मानैहैं । ऐसैं अन्वय है ॥ १८२ ॥

१७ ईश्वरकूं जो जगत्के उत्पत्तिकी कारणता है । ताकूं दृष्टांतसहित उपपादन करैहैं:—

१८] जैसैं प्रसारित हुवा पट है । तैसैं यह ईश्वर प्राणिनके कर्मनके वशतैं अपनैविषै विलीन कहिये प्रयलमैं संस्काररूपसैं स्थित सकलजगत्कूं प्रगट करैहै ॥

१९) जैसैं संकोचकूं पाया चित्रपट । अपनै प्रसारणकरि अपनैविषै स्थित चित्रनकूं आविर्भाव करैहै । तैसैं ईश्वर बी जगत्कूं आविर्भाव करैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १८३ ॥

२० तिस ईश्वरकूंहीं प्रलयकी कारणता दिखावैहैं:—

२१] जैसैं संकोचितपट है । तैसैं ईश्वर प्राणिनके कर्मक्षयके वशतैं फेर प्रलयकालमैं अपनैविषैहीं सर्वजगत्कूं विलीन करैहै ॥

२२) सोई प्रसारितपट । संकोचकूं पाया हुया जैसैं चित्रनकूं तिरोधान करैहै । ताकीन्याई ईश्वर बी जगत्कूं तिरोधान करैहै । यह अर्थ है ॥ १८४ ॥

टीकांकः १८२३ टिप्पणांकः ५८७	रात्रिघस्रौ सुप्तिबोधावुन्मीलननिमीलने । तूष्णींभावमनोराज्ये इव सृष्टिलयाविमौ ॥१८५॥ आविर्भावतिरोभावशक्तिमत्त्वेन हेतुना । आरंभपरिणामादिचोद्यानां नात्र संभवः ॥१८६॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४७९ ४८०

२३ आविर्भावतिरोभावयोर्दृष्टांतांतराणि दर्शयति—

२४] **रात्रिघस्रौ सुप्तिबोधौ उन्मीलननिमीलने तूष्णींभावमनोराज्ये इव इमौ सृष्टिलयौ ॥**

ॐ २४) घस्रोऽहः ॥ १८९ ॥

२५ नन्वीश्वरस्य जगद्योनित्वं किमारंभकत्वेन । किं वा तदाकारपरिणामित्वेन । नाद्यः । अद्वितीयस्यारंभकत्वायोगात् । न द्वितीयः । निरवयवस्य परिणामासंभवादित्याशंक्य । विवर्तवादाश्रयणान्नायं दोष इति परिहरति—

२३ उत्पत्ति औ प्रलय । इन दोनूंविषै अन्यदृष्टांतनकूं कहैहैं:—

२४] **रात्रि अरु घस्र । सुषुप्ति अरु जाग्रत् । नेत्रका खोलना अरु नेत्रका ढांपना । मनकी निर्विकल्पतारूप तूष्णींभाव अरु मनकी सविकल्पतारूप मनोराज्य । इनकी न्याई ये सृष्टि औ प्रलय हैं ॥**

ॐ २४) घस्र कहिये अहः नाम दिवस १८९

२५ ननु ईश्वरकूं वी जगत्की कारणता है सो क्या आरंभकर्त्तापनैकरि है । किंवा तिस जगत्के आकारसैं परिणामीपनैकरि है ? ये दो विकल्प हैं ॥ तिनमैं प्रथमविकल्प वनै नहीं । काहेतैं अद्वितीयकूं आरंभकपनैके असंभवतैं ॥ औ द्वितीयविकल्प वी वनै नहीं । काहेतैं अवयवरहितकूं परिणामके असंभवतैं ॥ यह आशंकाकरि तीसरेविवर्त्तवादके आश्रयतैं यह दोनूंपक्षनमैं उक्त दोष नहीं है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

८७ जहां अनेककारणरूप अवयवनके संयोगकरि अत्यंतभिन्नआरंभकरिके अवयवीरूप कार्यद्रव्य । समवायसंबंधकरि समवेत (युक्त) हुया उत्पन्न होवैहै ऐसैं मान्याहै । सो **आरंभवाद** है ॥ जैसैं कपालरूप अवयवनके संयोगकरि कपालनतैं भिन्न घटरूप कार्य उत्पन्न होवैहै वा पुराने गृहके पाषाणादि अवयवनतैं भिन्न नवीनगृहरूप कार्य उत्पन्न होवैहै । तहां उपादानकारण अपनै स्वरूपकूं त्यागै नहीं अरु उपादानसैं भिन्नकार्यकी उत्पत्ति होवैहै ॥ औ जैसैं क्रियाद्वारा दोपरमाणूके संयोगकरि द्व्यणुकका औ तीनद्व्यणुककरि त्र्यणुकका औ तंतुनकरि पटका आरंभ होवैहै । तहां वी कार्य औ कारणका अत्यंतभेदहीं मान्याहै ॥ यह आरंभवाद । ब्रह्मतैं जगत्की उत्पत्तिविषै बनै नहीं । काहेतैं ब्रह्मकूं अद्वितीय होनैकरि तिसतैं भिन्नकार्यके अभावतैं ॥ औ ब्रह्मकी अद्वितीयता उपनिषदनविषै प्रसिद्ध है । औ आरंभवादके अंगीकार हुये कार्यकी उत्पत्तिके अनंतर वी कार्यतैं भिन्न कारणकूं ज्यूंका त्यूं विद्यमान होनैतैं एकहीं कारणविषै अनेककार्यनकी उत्पत्ति हुईचाहिये ॥ यातैं नैयायिकअभिमत **आरंभवाद** असंगत है ॥

८८ जहां उपादानकीहीं समानसत्ताकरि एकअंशके परिणामसैं कार्यरूप रूपांतरकरि उत्पत्ति होवैहै ऐसैं मान्याहै । सो **परिणामवाद** है ॥ तिसविषै परिणाम जो कार्य औ परिणामी जो कारण इन दोनूंके अभेदका अंगीकार है ॥ जैसैं मृत्तिकाका घटरूप परिणाम औ अंतःकरणका वृत्तिरूप परिणाम औ प्रकृतिका महत्तत्त्वादिरूप परिणाम है ॥ यह सांख्यनकूं औ केईक उपासकनकूं अभिमत है सांख्यवादी जगत्कूं प्रकृतिका परिणाम मानैहैं ॥ औ केइक उपासक जगत्कूं ब्रह्मका परिणाम मानैहैं । सो दोनूंका मत असंगत है ॥ काहेतैं ब्रह्ममीमांसाविषै सूत्रकार औ भाष्यकारनैं श्रुतियुक्तिके बलकरि जडप्रधानकी कारणताका सविस्तर खंडन कियाहै औ चेतनकूं निरवयव होनैकरि तिसके परिणामका असंभव है ॥ औ चेतनके परिणामके अंगीकार किये चेतनकूं विनाशिताकी प्राप्ति होवैगी ॥ यातैं **परिणामवाद** असंगत है ॥

८९ जहां उपादानकारणकाहीं स्वस्वरूपकूं न छोडिके विषमसत्ताकरि कार्यरूप रूपांतरसैं उत्पत्ति अरु भान होवै

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
४८१	अचेतनानां हेतुः स्याज्जाड्यांशेनेश्वरस्तथा । चिदाभासांशतस्त्वेष जीवानां कारणं भवेत् १८७	१८२६
४८२	तमःप्रधानः क्षेत्राणां चित्प्रधानश्चिदात्मनाम् । परः कारणतामेति भावनाज्ञानकर्मभिः ॥ १८८ ॥	टिप्पणांकः ५९०

२६] आविर्भावतिरोभावशक्तिमत्त्वेन हेतुना अत्र आरंभपरिणामादिचोद्यानां संभवः न ॥ १८६ ॥

२७ नन्वेक एवेश्वरः कथं चेतनाचेतनजगदुपादानं भविष्यतीत्याशंक्योपाधिप्राधान्येनाचेतनोपादानं चित्प्राधान्येन चेतनोपादानं च भविष्यतीत्याह (अचेतनानामिति)—

२८] जाड्यांशेन ईश्वरः अचेतनानां हेतुः स्यात् । तथा चिदाभासांशतः तु एषः जीवानां कारणं भवेत् ॥ १८७ ॥

२९ ननु मायाविन ईश्वरस्य जगत्कारणत्वप्रतिपादनमनुपपन्नं सुरेश्वराचार्यैः परमात्मन एव तदभिधानादिति शंकते द्वाभ्यां (तमःप्रधान इति)—

३०] परः भावनाज्ञानकर्मभिः तमप्रधानः क्षेत्राणां कारणतां एति । चित्प्रधानः चिदात्मनाम् ॥

२६] ईश्वरकूं आविर्भाव औ तिरोभावकी शक्ति जो मायारूप सामर्थ्य । तिसकरि युक्ततारूप हेतुकरि इहां हमारे सिद्धांतविषै आरंभ औ परिमाणआदिकविकल्पनका संभव नहीं है ॥१८६॥

२७ ननु एकहीं ईश्वर चेतनअचेतनरूप दोनूंप्रकारके जगत्का उपादान कैसैं होवैगा ? यह आशंकाकरि मायाउपाधिकी मुख्यताकरि । देहादिजडवस्तुनका उपादान होवैहै औ चिदाभासअंशकी प्रधानताकरि चिदाभासनका उपादान होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

२८] जडता जो माया तिसरूप अंशकरि ईश्वर जडनका कारण होवैहै । तैसैं चिदाभासरूप अंशकरि यह ईश्वर । जीव जो चिदाभास तिनका कारण होवैहै ॥ १८७ ॥

॥ ४ ॥ प्रसंगसैं ब्रह्म औ ईश्वरका विवेचन ॥ १८२९–१८५३ ॥

॥ १ ॥ वार्तिककारोंनैं परमात्माकूंहीं जगत्कारण कहाहै । यह शंका ॥

२९ ननु मायाविशिष्टचेतन जो ईश्वर है । ताकूं जगत्की कारणताका प्रतिपादन अयुक्त है । काहेतैं सुरेश्वराचार्यवार्त्तिककारकरि परमात्मा जो परब्रह्म । ताकूंहीं तिस जगत्की कारणताके कथनतैं ॥ इसरीतिसैं दोश्लोककरि वादी शंका करैहैं:—

३०] परमात्मा जो है । सो भावना ज्ञान औ कर्म इसरूप निमित्तनकरि । तमःप्रधान हुया क्षेत्रनकी कारणताकूं पावताहै औ चित्प्रधान हुया चिदाभसनकी कारणताकूं पावताहै ॥

ऐसैं मान्याहै । सो विवर्त्तवाद है ॥ जैसैं शुक्तिविषै रजतकी उत्पत्ति औ स्वर्णविषै भूषणकी उत्पत्ति होवैहै ॥ यह वेदांतमतविषै मान्याहै । तिसके अंगीकार किये आरंभवाद औ परिणामवादउक्तदोष नहीं है ॥

९० इहां आदिशब्दकरि स्वभाववादआदिकनका ग्रहण है ॥ आरंभ परिणाम औ विवर्त्तवादका कछुक प्रतिपादन औ विवर्त्तसैं भिन्न दोनूंपक्षनका असंभव देखो अंक ५२१०–५२३४ विषै ॥

टीकांकः १८३१ टिप्पणांकः ॐ

[३२]इति वार्तिककारेण जडचेतनहेतुता ।
परमात्मन एवोक्ता नेश्वरस्येति [३४]चेच्छृणु॥१८९॥
[३६]अन्योऽन्याध्यासमत्रापि जीवकूटस्थयोरिव ।
ईश्वरब्रह्मणोः सिद्धं कृत्वा ब्रूते सुरेश्वरः ॥१९०॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४८३ ४८४

३१) तमःप्रधानः तमोगुणप्रधानमायोपाधिकः । क्षेत्राणां शरीरादीनां । भावनाज्ञानकर्मभिः भावना संस्कारः । ज्ञानं देवताध्यानादि । कर्म पुण्यापुण्यलक्षणं । तैर्निमित्तभूतैरित्यर्थः ॥ १८८ ॥

३२] इति वार्तिककारेण जडचेतनहेतुता परमात्मनः एव उक्ता । ईश्वरस्य न ॥

३३ इदानीं परिहर्तुकामः प्रतिवादिनमभिमुखीकरोति—

३४] इति चेत् शृणु ॥ १८९ ॥

३५ त्वंपदार्थे इव तत्पदार्थेऽप्यधिष्ठानारोपयोरन्योऽन्याध्यासस्य विवक्षितत्वान्मैवमिति परिहरति (अन्योऽन्याध्यासमिति)—

३६] अत्र अपि जीवकूटस्थयोः इव ईश्वरब्रह्मणोः अन्योऽन्याध्यासं सिद्धं कृत्वा सुरेश्वरः ब्रूते ॥ १९० ॥

---

३१) तमःप्रधान कहिये तमोगुण है प्रधान जिसविषै । ऐसी जो माया कहिये प्रकृतिका भेद है । तिस उपाधिवाला हुया परमात्मा क्षेत्ररूप शरीरादिकनका कारण है ॥ औ चित्प्रधान कहिये चेतन है मुख्य जिसविषै ऐसा जो परमात्मा सो चिदाभासनका कारण है ॥ भावना कहिये संस्कार औ ज्ञान कहिये देवताके ध्यानादिक औ कर्म जो पुण्यपापरूप । तिन तीननिमित्तरूपनकरि परमात्मा जडचेतनरूप जगत्का कारण होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १८८ ॥

३२] ऐसैं वार्तिककारनैं जड औ चेतनकी कारणता परमात्माकूंहीं कहीहै । ईश्वरकूं नहीं ॥

३३ अब समाधान करनेकी इच्छावाले हुये सिद्धांती वादीकूं अभिमुख करैहैं:—

३४] हे वादी ! ऐसैं जो कहै तौ श्रवण कर ॥ १८९ ॥

॥ २ ॥ वार्तिककारोंनैं ईश्वरब्रह्मका अध्यास सिद्ध करी परमात्मा कारण कहाहै । यह श्लोक १८८–१८९उक्त शंकाका समाधान ॥

३५ "त्वं"पदके अर्थकी न्याई "तत्" पदके अर्थविषै बी अधिष्ठान औ आरोपके अन्योन्य कहिये परस्परअध्यासकूं कहनैकूं वांछित होनैतैं । परमात्माकूंहीं जगत्की कारणता है । यह कथन बनै नहीं । ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

३६] इहां "तत्"पदके अर्थविषै जीव औ कूटस्थकी न्याई मायावीईश्वर औ ब्रह्मके अन्योऽन्यअध्यासकूं सिद्धकरिके सुरेश्वराचार्य परमात्माकूं जगत्की कारणता कहतेहैं ॥ १९० ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
४८५	सत्यं ज्ञानमनंतं यद्ब्रह्म तस्मात्समुत्थिताः । खं वाय्वग्निजलोर्व्योपध्यन्नदेहा इति श्रुतिः १९१	१८३७
४८६	आपातदृष्टितस्तत्र ब्रह्मणो भाति हेतुता । हेतोश्च सत्यता तस्मादन्योऽन्याध्यास इष्यते १९२	टिप्पणांक: ॐ

३७ ननु सुरेश्वराचार्यैरीश्वरब्रह्मणोरन्योऽन्याध्यासः सिद्धवत्कृत्य व्यवहृत इति कुतोऽवगम्यत इत्याशंक्य श्रुत्यर्थपर्यालोचनवशादिति दर्शयितुं श्रुतिमर्थतः पठति—

३८] सत्यं ज्ञानं अनंतं यत् ब्रह्म तस्मात् खं वाय्वग्निजलोर्व्योपध्यन्नदेहाः समुत्थिताः इति श्रुतिः ॥ १९१ ॥

३९ भवत्वेषा श्रुतिरनया कथमन्योऽन्याध्यासावगतिरित्यत आह (आपातेति)—

४०] तत्र आपातदृष्टितः ब्रह्मणः हेतुता भाति । च हेतोः सत्यता । तस्मात् अन्योऽन्याध्यासः इष्यते ॥

४१) तत्र तस्यां श्रुतौ । सत्यादिलक्षणस्य निर्गुणब्रह्मणो जगत्कारणत्वं। जगत्कारणस्य मायाधीनचिदाभासस्य च सत्यत्वं । आपाततः प्रतीयमानमन्योऽन्याध्यासमंतरेण न घटत इति भावः ॥ १९२ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक १९० उक्त अर्थके अनुसार श्रुतिप्रमाण ॥

३७ ननु सुरेश्वराचार्यांनैं ईश्वर औ ब्रह्मके अध्यासकूं सिद्ध हुयेकी न्याई करिके व्यवहार किया कहिये परब्रह्मकूं जगत्का कारण कह्याहै । ऐसैं काहेतें जानियेहै ? यह आशंकाकरि। श्रुतिअर्थके विचारके वशतें जानियेहै । ऐसैं दिखावनैवास्ते श्रुतिकूं अर्थतें पठन करैहैं:—

३८] सत्यज्ञानअनंतरूप जो ब्रह्म है । तिसतैं आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी ओपधि अन्न औ देह उत्पन्न होवैहैं । यह अर्थरूप श्रुति है ॥ १९१ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक १९० उक्त अन्योऽन्याध्यासकी श्लोक १९१ उक्त श्रुतिकरि सिद्धि ॥

३९ ननु यह श्रुति होहु । इस श्रुतिकरि अन्योन्याध्यासका ज्ञान कैसैं होवैहै ? तहां कहैहैं:—

४०] तिस श्रुतिविषै आपातदृष्टितैं कहिये अविचारदृष्टितैं ब्रह्मकूं हेतुता प्रतीत होवैहै औ हेतु जो ईश्वर ताकी सत्यता प्रतीत होवैहै । तातैं अन्योऽन्याध्यास अंगीकार करियेहै ॥

४१) तिस १९१ श्लोक उक्तश्रुतिविषै सत्यादिलक्षणब्रह्मकूं जगत्की कारणता औ जगत्का कारण जो मायाकूं अधीन करनैहारा चिदाभास है । ताकी सत्यता अविचारतैं प्रतीयमान होवैहै । सो अन्योऽन्याध्यासविना घटै नहीं । तातैं अन्योन्याध्यास अंगीकार करियेहै । यह भाव है ॥ १९२ ॥

टीकांकः १८४२ टिप्पणांकः ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः
	ॐअन्योऽन्याध्यासरूपोऽसावन्नलिप्तपटो यथा । घट्टितेनैकतामेति तद्भ्रांत्यैकतां गतः ॥ १९३ ॥	४८७
	४५ मेघाकाशमहाकाशौ विविच्येते न पामरैः । तद्वद्ब्रह्मेशयोरैक्यं पश्यंत्यापातदर्शिनः ॥ १९४ ॥	४८८
	ॐउपक्रमादिभिर्लिंगैस्तात्पर्यस्य विचारणात् । असंगं ब्रह्म मायावी सृजत्येष महेश्वरः ॥१९५॥	४८९

४२ एवमन्योऽन्याध्याससिद्धमीश्वरब्रह्मणोरेकत्वं पूर्वत्रोदाहृतं घट्टितपटदृष्टांतस्मारणेन द्रढयति (अन्योऽन्येति)—

४३] यथा अन्नलिप्तपटः घट्टितेन एकतां एति । तद्वत् असौ अन्योऽन्याध्यासरूपः भ्रांत्या एकतां गतः॥१९३॥

४४ भ्रांत्यैकत्वापत्तौ दृष्टांतमभिधायापातदर्शिनां भेदाप्रतीतौ पूर्वोक्तमेव दृष्टांतांतरं दर्शयति (मेघाकाशेति)—

४५] पामरैः मेघाकाशमहाकाशौ न विविच्येते । तद्वत् आपातदर्शिनः ब्रह्मेशयोः ऐक्यं पश्यंति ॥

ॐ४५) तद्वत् ब्रह्मेशयोरैक्यं पश्यंति न भेदमित्यर्थः ॥ १९४ ॥

४६ कुतस्तर्हि ब्रह्मेशयोर्भेदावगतिरित्यत आह—

४७] उपक्रमादिभिः लिंगैः तात्पर्यस्य विचारणात् ब्रह्म असंगं मायावी एषः महेश्वरः सृजति ॥

॥ ५ ॥ घट्टितपटके दृष्टांतकरि श्लोक १९२ उक्त अर्थकी दृढता ॥

४२ ऐसैं अन्योऽन्यअध्यासकरि सिद्ध जो ईश्वर औ ब्रह्मकी एकता । ताकूं पूर्व १–४ श्लोकविषै उदाहरणकरि कहे अन्नलिप्तपटदृष्टांतके स्मरण करावनैकरि दृढ करैहैं:—

४३] जैसैं अन्नकरि लिप्त जो पट है सो घट्टितपनैंरूप धर्मविशिष्टपटके साथि भ्रांतिसैं एकताकूं पावताहै । तैसैं यह अन्योऽन्यअध्यासका रूप भ्रांतिसैं एकताकूं प्राप्त भयाहै ॥ १९३ ॥

॥ ६ ॥ श्लोक १९२ उक्त अर्थमैं अन्यदृष्टांत ॥

४४ भ्रांतिकरि ब्रह्मकूं ईश्वरके साथि एकताकी प्राप्तिविषै घट्टितपटरूपदृष्टांतकूं कहिके अविचारदृष्टिवाले जे पुरुष हैं । तिनकूं ब्रह्म औ ईश्वरके भेदकी अप्रतीतिविषै पूर्व २० श्लोक उक्त अन्यदृष्टांतकूंहीं दिखावैहैं:—

४५] जैसैं पामरपुरुषनकरि मेघाकाश औ महाकाश विवेचन नहीं करियेहैं । तैसैं आपातदर्शी जे हैं वे ब्रह्म औ ईश्वरकी एकताकूं देखतेहैं ॥

ॐ४५) तातैं ब्रह्म औ ईश्वरकी एकताकूं देखतेहैं । भेदकूं नहीं । यह अर्थ है ॥१९४॥

॥ ७ ॥ उपक्रमादिषट्लिंगनकरि ईश्वरब्रह्मका भेदज्ञान ॥

४६ तब ब्रह्म औ ईश्वरके भेदकी प्रतीति काहेतैं होवैहै ? तहां कहैहैं:—

४७] उपक्रमआदिकलिंगनकरि तात्पर्यके विचारनैतैं ब्रह्म असंग है औ मायावी जो यह महेश्वर है सो सृजताहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४९० ४९१	⁵⁰सत्यं ज्ञानमनंतं चेत्युपक्रम्योपसंहृतम् । यतो वाचो निवर्तंत इत्यसंगत्वनिर्णयः ॥१९६॥ ⁵²मायी सृजति विश्वं सन्निरुद्धस्तत्र मायया । अन्य इत्यपरा ब्रूते श्रुतिस्तेनेश्वरः सृजेत् ॥१९७॥	टीकांकः १८४८ टिप्पणांकः ५९१

४८) "उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता-फलं। अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णय" इत्युक्तैः षड्विधैः लिंगैः श्रुतितात्पर्यावधारणे सति । ब्रह्मासंगं मायावी स्रष्टा इति अवगम्यत इति शेषः ॥ १९५ ॥

४९ श्रुतावुपक्रमोपसंहारैकरूपप्रदर्शनेनोक्तं ब्रह्मणोऽसंगत्वं स्पष्टयति—

५०] **सत्यं ज्ञानं च अनंतं इति उपक्रम्य यतः वाचः निवर्तंते इति उपसंहृतं इति असंगत्वनिर्णयः ॥**

ॐ ५०) अतः **असंगत्वनिर्णयः** भवतीति शेषः ॥ १९६ ॥

५१ मायाविन ईश्वरस्य स्रष्टृत्वप्रतिपादिकां श्रुतिमर्थतो दर्शयति—

५२] **मायी विश्वं सृजति । तत्र अन्यः मायया सन्निरुद्धः इति अपरा श्रुतिः ब्रूते । तेन ईश्वरः सृजेत् ॥**

५३) "अस्मान्मायी सृजते विश्वं एतत्तस्मिंश्च अन्यो मायया सन्निरुद्ध"

---

४८) "उपक्रम अरु उपसंहार औ अभ्यास अपूर्वता फल अर्थवाद औ उपपत्ति यह तात्पर्यके निर्णयविषै षट्प्रकारका लिंग है ॥" इसरीतिसैं कथन किये षट्प्रकारके लिंगनकरि श्रुतितात्पर्यके निश्चय हुये ब्रह्म असंग है औ मायावी जो मायामैं प्रतिबिंबरूप ईश्वर। सो स्रष्टा कहिये जगत्का कर्त्ता है। ऐसैं जानियेहै ॥ १९५ ॥

॥ ८ ॥ ब्रह्मके असंगताकी स्पष्टता ॥

४९ श्रुतिविषै उपक्रम जो आरंभ औ उपसंहार जो समाप्ति । तिनकी एकरूपताके दिखावनैकरि । कह्या जो ब्रह्मका असंगपना तिसकूं स्पष्ट करैहैं:—

५०] **"सत्य ज्ञान औ अनंत ब्रह्म है।" ऐसैं उपक्रमकरिके "जिस ब्रह्मतैं वाणीयां निवर्त्त होवैहैं"। ऐसैं उपसंहार कियाहै ॥ यातैं ब्रह्मके असंगपनैका निर्णय होवैहै ॥**

ॐ ५०) यातैं असंगपनैका निर्णय होवैहै। यह शेष है ॥ १९६ ॥

॥ ९ ॥ ईश्वरके स्रष्टापनैकी प्रतिपादक दोश्रुति ॥

५१ मायावी जो ईश्वर है। इसके स्रष्टापनैकी प्रतिपादक श्रुतिकूं अर्थतैं दिखावैहैं:—

५२] **"मायी जो है सो विश्वकूं सृजताहै ॥ तिस विश्वविषै अन्यजीव मायाकरि सम्यक्निरुद्ध है" । ऐसैं अपर कहिये १९१–१९६ श्लोक उक्त श्रुतितैं अन्यश्रुति कहतीहै ॥ तिस हेतुकरि ईश्वर सृजताहै ॥**

५३) "इस कारणतैं मायीईश्वर । इस विश्वकूं रचताहै औ इसविषै अन्यजीव मायाकरि सम्यक्निरोधकूं पायाहै कहिये बद्ध

---

५१ तात्पर्यके निर्णायक षट्लिंगका अर्थ देखो ६५३ वें टिप्पणविषै । वा अस्मत्कृत श्रुतिषड्लिंगसंग्रहविषै ॥

टीकांक: १८५४ टिप्पणांक: ॐ	⁵⁵आनंदमय ईशोऽयं बहु स्यामित्यवैक्षत । हिरण्यगर्भरूपोऽभूत्⁵⁶सुप्तिः स्वप्नो यथा भवेत् १९८ ⁶⁰क्रमेण युगपद्वैषा सृष्टिर्ज्ञेया यथाश्रुति । ⁶³द्विविधश्रुतिसद्भावाद्द्विविधस्वप्नदर्शनात् ॥ १९९ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ४९२ ४९३

इति श्रुतिरीश्वरस्य स्रष्टृत्वं । जीवस्य तत्र जगति बद्धत्वं च । दर्शयतीति भावः ॥ १९७॥

५४ एवमानंदमयस्येश्वरस्य जगत्कारणत्वं प्रतिपाद्य तस्मात् जगदुत्पत्तिप्रकारमाह (आनंदमय इति)—

५५] अयं आनंदमयः ईशः बहु स्यां इति अवैक्षत । हिरण्यगर्भरूपः अभूत् ॥

५६) ईक्षित्वा च हिरण्यगर्भरूपोऽभूत् । इत्यन्वयः ॥

५७ तत्र दृष्टांतमाह (सुप्तिरिति)—

५८] यथा सुप्तिः स्वप्नः भवेत् ॥१९८॥

५९ "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत" इत्यादौ क्रमेण सृष्टिश्रवणात्॥"इदं सर्वमसृजत" इति युगपच्छ्रवणाच्च कस्योपादेयत्वं कस्य वा हेयत्वमित्याकांक्षायां श्रुतियुक्त्युपेतत्वात् उभयं ग्राह्यमित्याह (क्रमेति)—

६०] एषा सृष्टिः द्विविधश्रुति-

है ॥" यह श्रुति ईश्वरके स्रष्टापनैकूं जीवके तिस जगत्विषै बद्धपनैकूं दिखावतीहै ॥ यह भाव है ॥ १९७ ॥

॥ ५ ॥ ईश्वरतैं जगत्की उत्पत्तिका प्रकार ॥ १८५४—१८८७ ॥

॥ १ ॥ ईक्षण (आलोचन)पूर्वक हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति ॥

५४ ऐसैं आनंदमयकोशरूप ईश्वरकी जगत्कारणताकूं प्रतिपादनकरिके तिस ईश्वरतैं जगत्की उत्पत्तिके प्रकारकूं कहैहैं:—

५५] यह आनंदमयरूप ईश्वर "मैं बहु होवों" ऐसैं ज्ञानदृष्टिरूप ईक्षणकूं करताभया । सो हिरण्यगर्भरूप होताभया ॥

५६) ईश्वर ईक्षणकूं करिके समष्टिसूक्ष्मप्रपंचरूप हिरण्यगर्भ होताभया। ऐसैं अन्वय है ॥

५७ तिस ईश्वरके हिरण्यगर्भरूप होनैविषै दृष्टांतकूं कहैहैं:—

५८] जैसैं सुषुप्ति स्वप्नरूप होवैहै तैसैं ॥ १९८ ॥

॥ २ ॥ श्रुति औ युक्तिकरि क्रम औ क्रमविना इन दोप्रकारनसैं सृष्टिका कथन ॥

५९ "तिस मंत्रभागउक्त वा इस ब्राह्मणभागउक्त आत्मातैं आकाश होताभया ॥" इत्यादिकश्रुतिविषै क्रमकरि सृष्टिके श्रवणतैं औ "इस सर्वजगत्कूं सृजताभया" ऐसैं युगपत् कहिये एककालविषैहीं सृष्टिके श्रवणतैं। श्रुतिउक्त दोनूं क्रम औ अक्रमरूप पक्षनमैंसैं किस पक्षकी ग्राह्यता है औ किस पक्षकी त्याज्यता है ? इस आकांक्षाविषै दोनूंपक्षनकूं श्रुति अरु युक्तिकरि युक्त होनैतैं दोनूंपक्ष ग्राह्य कहिये अधिकारीभेदसैं अंगीकार करनैकूं योग्य हैं । ऐसैं कहैहैं:—

६०] यह जगत्की उत्पत्ति दोनूंप्रकारकी कहिये क्रमसृष्टि औ अक्रमसृष्टिकी प्रतिपादक श्रुतिके सद्भावतैं । क्रमकरि

सूत्रात्मा सूक्ष्मदेहाख्यः सर्वजीवघनात्मकः ।
सर्वाहंमानधारित्वात्क्रियाज्ञानादिशक्तिमान् २००

सद्भावात् क्रमेण युगपत् वा यथाश्रुति ज्ञेया ॥

६१) एषा जगत्सृष्टिर्द्विविधश्रुतिसद्भावात् क्रमेण युगपद्वा यथाश्रुति ज्ञेया इति योजना ॥

६२ तत्रोपपत्तिः—

६३] द्विविधस्वप्नदर्शनात् ॥

६४) लोके क्रमयुक्तस्य चाक्रमयुक्तस्य च स्वप्नपदार्थजातस्य दर्शनात् इति भावः ॥ १९९ ॥

६५ हिरण्यगर्भस्य स्वरूपं निरूपयति—

६६] सूत्रात्मा सूक्ष्मदेहाख्यः सर्वजीवघनात्मकः ॥

वा एककालमैं जैसैं श्रुति कहैहै तैसैं जाननैकूं योग्य है ॥

६१) यह जगत्की सृष्टि । दोनूंप्रकारकी श्रुतिनके विद्यमान होनैतैं क्रमकरि वा एककालविषै यथाश्रुति जाननैकूं योग्य है। ऐसैं योजना कहिये श्लोकका अन्वय है ॥

६२ तिस दोनूंप्रकारकी सृष्टिविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

६३] दोनूंप्रकारके स्वप्नदृष्टांतरूप युक्तिके देखनैतैं ।

६४) लोकविषै क्रमयुक्त अरु अक्रमयुक्त स्वप्नपदार्थनके समूहके देखनैतैं दोनूंभांतिकी सृष्टि संभवैहै । यह भाव है ॥ १९९ ॥

॥ ३ ॥ हिरण्यगर्भका स्वरूप ॥

६५ हिरण्यगर्भके स्वरूपकूं निरूपण करैहैं:—

६६] सूत्रात्मा जो है सो सूक्ष्मदेहाख्य है औ सर्वजीवघनात्मक है ॥

---

९२ इहां क्रमसृष्टिशब्दकरि **सृष्टिदृष्टिवाद** (व्यावहारिकपक्ष) कहियेहै औ अक्रमसृष्टिशब्दकरि **दृष्टिसृष्टिवाद** कहियेहै ॥

(१) कितनेक ग्रंथकर्त्तानैं स्थूलबुद्धिवाले पुरुषनके बोधअर्थ **सृष्टिदृष्टिवाद** मान्याहै ॥ प्रथम सृष्टि विद्यमान है पीछे प्रत्यक्षादिप्रमाणके संबंधसै दृष्टि (ज्ञान होवैहै) यह **सृष्टिदृष्टिशब्दका** अर्थ है ॥ इस पक्षमैं घटादिकअनात्मवस्तुकी चेतनकी न्याईं अज्ञातसत्ता है औ शुक्तिरजतादिकनकी ज्ञातसत्ता है ॥ घटादिकअनात्मपदार्थ व्यावहारिकसत्तावाले हैं औ शुक्तिरजतादिक प्रातिभासिकसत्तावाले हैं ॥ घटादिकअनात्मपदार्थ प्रमाणके विषय हैं तातैं गुरुशास्त्रादिक बी व्यावहारिक हैं ॥ औ

(२) **दृष्टिसृष्टिपक्षमैं** सर्वअनात्मपदार्थनकी ज्ञातसत्ताहीं है औ शुक्तिरजतादिकनकी न्याईं सर्वअनात्मपदार्थ प्रातिभासिक होनैतैं साक्षीभास्य हैं । प्रमाणके विषय नहीं औ तिनमैं प्रमाणके विषयताकी प्रतीति भ्रांतिरूप है । औ पदार्थका दर्शनहीं उत्पत्ति है औ अदर्शनहीं नाश है ॥ औ "सो यह देवदत्त है" इत्यादिप्रत्यभिज्ञा बी नदी औ दीपज्योतिके प्रवाह औ स्वप्नपदार्थनके प्रत्यभिज्ञाकी न्याईं भ्रांतिरूप है ॥ औ गुरुशास्त्रादिक बी प्रातिभासिक हैं ॥ इस **दृष्टिसृष्टिपक्षमैं** दोभेद हैं ॥

[१] दृष्टि (ज्ञानस्वरूप)हीं सृष्टि है ज्ञानतैं भिन्न सृष्टि नहीं॥ यह सिद्धांतमुक्तावलीआदिकग्रंथनमैं लिख्याहै औ

[२] दृष्टि (ज्ञान)के समयमैंहीं सृष्टि होवैहै । ज्ञानतैं प्रथम अनात्मवस्तु नहीं हैं। ऐसैं आकरग्रंथनविषै प्रतिपादन कियाहै॥

यह सर्वअद्वैतशास्त्रविषै संमत है ॥ इसरीतिसैं सृष्टिदृष्टिवाद औ दृष्टिसृष्टिवाद दोनूं । श्रुतिअनुसार प्रतिपादन कियेहैं ॥ तिनमैं व्यावहारिकसुवर्णादिपदार्थनतैं कुंडलादिकार्यकी सिद्धि होवैहै । प्रातिभासिकनसैं नहीं । तौ बी अधिष्ठानके ज्ञानसैं बाध औ सत्असत्सैं विलक्षण (बाधयोग्य)तारूप अनिर्वचनीयपना औ अपने अधिष्ठानमैं पारमार्थिकअभाववानता । व्यावहारिक प्रातिभासिक दोनूंमैं तुल्य है ॥ यातैं व्यावहारिकपक्षके माननैसैं बी हानि नहीं । ऐसैं अधिकारीके भेदसैं दोनूंपक्षनका श्रुति औ अद्वैतग्रंथनविषै ग्रहण कियाहै ॥

टीकांकः १८६७ टिप्पणांकः ॐ	प्रत्यूषे वा प्रदोषे वा मग्नो मंदे तमस्ययम् । लोको भाति यथा तद्वदस्पष्टं जगदीक्ष्यते ॥२०१॥ सर्वतो लांछितो मष्या यथा स्याद्घट्टितः पटः । सूक्ष्माकारैस्तथेशस्य वपुः सर्वत्र लांछितम् २०२	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ४९५ ४९६

६७) सूत्रात्मा पटे सूत्रमिव जगत्यनुस्यूत आत्मा स्वरूपं यस्य सः । सूक्ष्मदेहः इति आख्या यस्य स तथाविधः । सर्वजीवघनात्मकः सर्वेषां जीवानां लिंगशरीरोपाधिकानां घनात्मकः समष्टिस्वरूपः ॥

६८ तत्र हेतुः—

६९] **सर्वाहंमानधारित्वात् ॥**

७०) सर्वेषु व्यष्टिलिंगशरीरेषु अहंमानवत्वात् इति भावः ॥

७१ पुनश्च कीदृशः—

७२] **क्रियाज्ञानादिशक्तिमान् ॥**

७३) इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिमान् च ॥ २०० ॥

७४ हिरण्यगर्भावस्थायां जगत्प्रतीतौ दृष्टांतमाह (प्रत्यूष इति)—

७५] **यथा वा प्रत्यूषे वा प्रदोषे अयं लोकः मंदे तमसि मग्नः भाति । तद्वत् अस्पष्टं जगत् ईक्ष्यते ॥**

ॐ ७५) प्रत्यूषः उषःकालः ॥२०१॥

७६ एवं लोकप्रसिद्धदृष्टांतमभिधाय "यथा धौत" इति पूर्वोक्तश्लोकेऽभिहितं लांछितं पटं दृष्टांतयति (सर्वत इति)—

६७) सूत्रात्मा कहिये पटविषै सूत्रकी न्याई जगत्‌विषै अनुस्यूत है आत्मा कहिये स्वरूप जिसका ऐसा हिरण्यगर्भ । सो कैसा है ? सूक्ष्मदेह है आख्या कहिये नाम जिसका ऐसा है ॥ फेर सो कैसा है? लिंगशरीरउपाधिवाले जे सर्वजीव हैं तिनका घनात्मक कहिये समष्टिस्वरूप है ॥

६८ तिस हिरण्यगर्भकी समष्टिरूपताविषै हेतु कहैहैं:—

६९] **सर्वविषै अहंमानधारी होनैतैं ॥**

७०) सर्वव्यष्टिलिंगशरीरनविषै "मैं हूं" इस अभिमानवाला होनैतैं यह हिरण्यगर्भ सर्वजीवनकी समष्टिरूप है । यह भाव है ॥

७१ फेर सो कैसा है ?

७२] **क्रियाज्ञानादिशक्तिमान् है ॥**

७३) इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति औ ज्ञानशक्तिवाला है ॥ २०० ॥

॥ ४ ॥ हिरण्यगर्भअवस्थामैं जगत्‌की प्रतीतिविषै दृष्टांत ॥

७४ हिरण्यगर्भअवस्थाविषै जगत्‌की प्रतीतिमैं दृष्टांत कहैहैं:—

७५] **जैसैं प्रातःकालविषै वा सायंकालविषै यह लोक मंदअंधकारविषै मग्न हुवा भासताहै । तैसैं हिरण्यगर्भअवस्थाविषै अस्पष्टजगत् देखियेहै ॥**

ॐ ७५) प्रत्यूष कहिये प्रातःकालरूप उषःकाल ॥ २०१ ॥

७६ ऐसैं लोकप्रसिद्धदृष्टांतकूं कहिके "जैसैं धौत घट्टित लांछित और रंजित पट है" इस पूर्व द्वितीयश्लोकविषै कथन किये लांछितपटके दृष्टांतकूं कहैहैं:—

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः

टीकांकः १८७७

टिप्पणांकः ॐ

सस्यं वा शाकजातं वा सर्वतोऽङ्कुरितं यथा ।
कोमलं तद्वदेवैष पेलवो जगदंकुरः ॥ २०३ ॥ (४९७)

आतपाभातलोको वा पटो वा वर्णपूरितः ।
सस्यं वा फलितं यद्वत्तथा स्पष्टवपुर्विराट् ॥२०४॥ (४९८)

विश्वरूपाध्याय एष उक्तः सूक्तेऽपि पौरुषे ।
धात्रादिस्तंबपर्यंतानेतस्यावयवान्विदुः ॥ २०५॥ (४९९)

७७] यथा घट्टितः पटः सर्वतः मष्या लांछितः स्यात् । तथा ईशस्य वपुः सूक्ष्माकारैः सर्वत्र लांछितम् ॥

७८) यथा घट्टितः पटो मषीमयैराकारविशेषैः लांछितो भवति। तथा मायिन ईश्वरस्य वपुः अपंचीकृतभूतकार्यैर्लिंगशरीरैर्लांछितमित्यर्थः ॥ २०२ ॥

७९ बुद्ध्यारोहाय वैभवात् दृष्टांतांतरमाह (सस्यं वेति)—

८०] यथा वा सस्यं वा शाकजातं सर्वतः कोमलं अंकुरितं । तद्वत् एव एषः पेलवः जगदंकुरः ॥ २०३ ॥

८१ एवं सूत्रात्मस्वरूपं विशदीकृत्य तस्यैवावस्थाभेदं पंचीकृतभूतकार्योपाधिकं विराजं दृष्टांतत्रयेण विशदयति (आतपेति)—

८२] यद्वत् वा आतपाभातलोकः वा वर्णपूरितः पटः वा फलितं सस्यं । तथा स्पष्टवपुः विराट् ॥

८३) सूर्योदयानंतरमातपेन प्रकाशितो लोकः आतपाभातलोकः ॥ २०४ ॥

८४ तत्सद्भावे प्रमाणमाह—

७७] जैसैं घट्टितपट सर्वऔरतैं स्याईकरि लांछित होवैहै । तैसैं ईश्वरका वपु । सूक्ष्मआकारनकरि सर्वत्र लांछित होवैहै ॥

७८) जैसैं घट्टित जो अन्नलिप्तपट सो मषीमयआकारविशेषनकरि लांछित होवैहै । ऐसैं मायावीईश्वरका शरीर अपंचीकृतभूतनके कार्य लिंगशरीरनकरि लांछित होवैहै । यह अर्थ है ॥ २०२ ॥

७९ शिष्यकी बुद्धिविषै बैठनैअर्थ वैभव जो अपनी बडाई। तातैं अन्यदृष्टांतकूं कहैहैं:—

८०] जैसैं धान्यका वृक्ष वा शाकनका समूह सर्वऔरतैं कोमलअंकुरयुक्त होवैहै । तैसैंहीं यह हिरण्यगर्भ कोमलजगत्का अंकुर है ॥ २०३ ॥

॥ ९ ॥ तीनदृष्टांतकरि विराट्का कथन ॥

८१ ऐसैं सूत्रात्माके स्वरूपकूं स्पष्ट कहिके। तिसी सूत्रात्माकीहीं अवस्थाका भेद जो पंचीकृतभूतनके कार्यरूप उपाधिवाला विराट् है । तिसकूं तीनदृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं:—

८२] जैसैं आतपाभात कहिये धूपसैं भासमान लोक है । वा वर्णपूरित कहिये रंजितपट है । वा फलकूं पाया सस्य कहिये धान्यवृक्ष है । तैसैं स्पष्टवपुवाला विराट् है ॥

८३) सूर्यके उदय भये पीछे धूपकरि प्रकाशित जो लोक है। सो आतपाभातलोक कहियेहै ॥ २०४ ॥

८४ इस विराट्के सद्भावविषै प्रमाणकूं कहैहैं:—

टीकांकः १८८५ टिप्पणांकः ५९३	ईशसूत्रविराड्वेधो विष्णुरुद्रेंद्रवह्नयः । विघ्नभैरवमैरालमारिकायक्षराक्षसाः ॥ २०६ ॥ [९०] विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा गवाश्वमृगपक्षिणः । अश्वत्थवटचूताद्या यवव्रीहितृणादयः ॥ २०७ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५०० ५०१

८५] विश्वरूपाध्याये पौरुषे सूक्ते अपि एषः उक्तः ॥

८६ विश्वरूपाध्यायादौ कीदृक् रूपमुदितमित्याकांक्षायां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं जगद्रूपमुदितमित्याह—

८७] धात्रादिस्तंबपर्यंतान् एतस्य अवयवान् विदुः ॥ २०५ ॥

८८ एतावता प्रकृते किमायातमित्याशंक्यां-तर्यामिप्रभृति कुद्दालकादिपर्यंतं वस्तुजातं प्रत्येकमीश्वरत्वेन पूज्यतामित्याह ईशेत्यादिना श्लोकत्रयेण—

८९] ईशसूत्रविराड्वेधो विष्णुरुद्रेंद्रवह्नयः । विघ्नभैरवमैरालमारिका यक्षराक्षसाः ॥ २०६ ॥

९०] विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः गवाश्वमृगपक्षिणः। अश्वत्थवटचूताद्याः यवव्रीहितृणादयः ॥ २०७ ॥

८५] विश्वरूप[९३] अध्यायविषै औ पौरुषसूक्तविषै[९४] बी यह विराट् कह्याहै॥

८६ ननु विश्वरूप अध्यायआदिकविषै कैसा विराट्का रूप कहाहै? इस आकांक्षाविषै ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत जो जगत् है। सो विराट्का रूप कह्याहै। ऐसैं कहैहैं:—

८७] ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत चराचरजगत्कूं इस विराट्के अवयव। वेदके वेत्ते जानतेहैं ॥ २०५ ॥

॥ ६ ॥ सर्वरूप ईश्वरके उपासनका फल ॥ १८८८–१८९५ ॥

॥ १ ॥ अंतर्यामीसैं लेकरि कुद्दालकादिपर्यंतकी ईश्वरभावकरि पूज्यता औ तिसके फलसद्भावमैं प्रमाण ॥

८८ इतनै १२२–२०९ श्लोककरि प्रकृत जो सर्वमतसैं अविरुद्ध ईश्वरका स्वरूप। तिसविषै क्या प्राप्तभया? यह आशंकाकरि अंतर्यामीसैं आदिलेके कुद्दालक जो भूखंडी तिस आदिकपर्यंत जे वस्तुमात्र हैं। वे एकएकईश्वरभावकरि पूजनैकूं योग्य हैं। ऐसैं तीनश्लोककरि कहैहैं:—

८९] ईश जो अंतर्यामी। सूत्र जो सूत्रात्मा। विराट्। ब्रह्मा। विष्णु। रुद्र। इंद्र। अग्नि। विघ्नराज गणेश। भैरव। मैराल। मारिकारूप देवीविशेष। यक्ष औ राक्षस हैं॥ २०६ ॥

९०] विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र हैं॥ औ गौ अश्व मृग पक्षी हैं औ पिप्पल वट आम्रआदिकवृक्ष हैं औ यवशालितृणआदिक हैं ॥ २०७ ॥

---

९३ यजुर्वेदकी संहिताके द्वितीयअष्टकका पंचमअध्याय विश्वरूपाध्याय है ॥

९४ यजुर्वेदकी तैत्तिरीयशाखाके दशोपनिषद्नामकअरणके चितिनामकतृतीयउपनिषद्का प्रकरणविशेष पौरुषसूक्तहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	⁹¹जलपाषाणमृत्काष्ठवास्याकुद्दालकादयः ।	
५०२	ईश्वराः सर्व एवैते पूजिताः फलदायिनः ॥२०८॥	१८९१
	⁹³यथा यथोपासते तं फलमीयुस्तथा तथा ।	
५०३	⁹⁵फलोत्कर्षापकर्षौ तु पूज्यपूजानुसारतः ॥ २०९ ॥	टिप्पणांकः
	⁹⁷मुक्तिस्तु ब्रह्मतत्त्वस्य ज्ञानादेव न चान्यथा ।	ॐ
५०४	⁹⁸स्वप्रबोधं विना नैव स्वस्वप्नो हीयते यथा॥२१०॥	

९१] जलपाषाणमृत्काष्ठवास्याकुद्दालकादयः। एते सर्वे एव ईश्वराः पूजिताः फलदायिनः ॥ २०८ ॥

९२ "तं यथा यथोपासते तदेव भवति" इति श्रुतिः। तत्तत्पूजातस्तत्फलसद्भावे प्रमाणमित्याह (यथा यथेति)—

९३] तं यथा यथा उपासते तथा तथा फलं ईयुः ॥

९४ ननु सर्वेषामीश्वरत्वे फलवैषम्यं कुत इत्याशंक्य पूज्यानामधिष्ठानानां पूजनानामर्चादीनां च सात्विकादिभेदेन वैषम्यमित्याह—

९५] फलोत्कर्षापकर्षौ तु पूज्यपूजानुसारतः ॥ २०९ ॥

९६ सांसारिकफलसिद्धिरेवं भवतु। मुक्तिः कस्योपासनाद्भवतीत्याशंक्य ज्ञानव्यतिरेकेण केनापि न भवतीत्याह—

९७] मुक्तिः तु ब्रह्मतत्त्वस्य ज्ञानात् एव । च अन्यथा न ॥

९१] जल पाषाण मृत्तिका काष्ठ वास्या कहिये काष्ठके छीलनैंका साधन कुद्दालक-आदिक हैं। यह सर्वहीं ईश्वर हैं औ पूजन कियेहुये फलदायिक हैं ॥२०८॥

॥ २ ॥ श्लोक २०६–२०८ उक्त अर्थमैं श्रुति औ फलकी विषमताकी शंकाका समाधान ॥

९२ "तिस ईश्वरकूं जैसें जैसें उपासना करैहैं। सोइ कहिये तैसा तैसा फल होवैहै।" यह श्रुति तिस तिस ईश्वरकी पूजातैं तिस तिस फलके सद्भावविषै प्रमाण है। ऐसैं कहैहैं:—

९३] तिसकूं जैसें जैसें उपासना करतेहैं। तैसैं तैसैं फलकूं पावतेहैं ॥

९४ ननु सर्ववस्तुनकूं ईश्वरभावके हुये फलकी विषमता काहेतैं होवैहै ? यह आशंकाकरि पूज्य जे अधिष्ठानदेवता हैं औ पूजन जे अर्चा-आदिक हैं । तिनके सात्विकआदिकभेदकरि फलकी विषमता होवैहै । ऐसैं कहैहैः—

९५] फलका अधिकपना औ न्यूनपना तौ पूज्य औ पूजाके अनुसारतैं होवैहै ॥ २०९ ॥

॥ ६ ॥ अद्वैतब्रह्मके ज्ञानमैं विशेषउपयोगीअर्थ ॥ १८९६–२०७९ ॥

॥ १ ॥ जीवईश्वरके विवादमैं बुद्धिके प्रवेशके निषेधपूर्वक विवेचनसहित तिनकी एकता ॥१८९६–२००३॥

॥ १ ॥ ज्ञानसैंही मुक्ति होनैमैं स्वप्नदृष्टांत ॥

९६ ऐसैं संसारसंबंधि फलकी सिद्धि होहु। परंतु मुक्ति किस देवकी उपासनातैं होवैहै ? यह आशंकाकरि मुक्ति तौ ज्ञानविना किसीकरि बी नहीं होवैहै। ऐसैं कहैहैः—

९७] मुक्ति तौ ब्रह्मतत्त्वके ज्ञानतैंहीं होवैहै । औरप्रकारसैं नहीं ॥

टीकांक: १८९८ टिप्पणांक: ॐ	अद्वितीयब्रह्मतत्त्वे स्वप्नोऽयमखिलं जगत् । ईशजीवादिरूपेण चेतनाचेतनात्मकम् ॥ २११ ॥ आनंदमयविज्ञानमयावीश्वरजीवकौ । मायया कल्पितावेतौ ताभ्यां सर्वं प्रकल्पितम् २१२	चित्रदीप: ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५०५ ५०६

९८ तत्र दृष्टांतमाह (स्वप्रबोधमिति)—

९९] **यथा स्वप्रबोधं विना स्वस्वप्नः न एव हीयते ॥**

१९००) स्वजागरणमंतरेण स्वनिद्राकल्पितस्वप्नः यथा न निवर्तते । तथा ब्रह्मतत्त्वज्ञानमंतरेण तदज्ञानकल्पितः स्वसंसारो न निवर्तत इति भावः ॥ २१० ॥

१ ननु द्वैतनिवृत्तिलक्षणाया मुक्तेः स्वप्नदृष्टांतेन तत्त्वबोधसाध्यत्वाभिधानमनुपपन्नं निवर्त्यस्य द्वैतस्य स्वप्नतुल्यत्वाभावादित्याशंक्यान्यथाग्रहणरूपत्वेन स्वप्नतुल्यत्वमस्त्येव "त्रयमेतत् सुषुप्तं स्वप्नमायामात्रम्" इति श्रुत्याभिहितत्वात् मैवम् इत्याह (अद्वितीयेति)—

२] **ईशजीवादिरूपेण चेतनाचेतनात्मकम् अखिलं जगत् अयं अद्वितीयब्रह्मतत्त्वे स्वप्नः ॥**

३) ईशजीवादिरूपेण वर्तमानं चेतनाचेतनात्मकं यत् अखिलं जगत् अस्ति अयमद्वितीयब्रह्मतत्त्वे स्वप्न इति योजना ॥ २११ ॥

४ नन्वीशजीवयोर्ब्रह्माभिन्नयोः कथं जगदंतःपातित्वमित्याशंक्य तयोर्मायाकल्पितत्वेन जगदंतःपातित्वमित्याह—

९८ज्ञानतैंहीं मुक्तिके होनैविषै दृष्टांत कहैहैं:-

९९] **जैसैं अपनै प्रबोधविना अपना स्वप्न नाश नहीं होवैहै ॥**

१९००) अपनै जागरणविना अपनी निद्राकरि कल्पित स्वप्न जैसैं निवृत्त नहीं होवैहै। तैसैं ब्रह्मतत्त्वके ज्ञानविना तिस ब्रह्मके अज्ञानकरि कल्पित अपना जन्मादिरूप संसार निवृत्त नहीं होवैहै । यह भाव है ॥ २१० ॥

॥ २ ॥ द्वैत (जगत्)की स्वप्नसैं तुल्यता ॥

१ ननु द्वैतकी निवृत्तिरूप जो मुक्ति है । ताकी स्वप्नदृष्टांतकरि तत्त्वबोधतैं साध्यताका नाम प्राप्यताका कथन अयुक्त है । काहेतैं निवृत्त होनैके योग्य द्वैतकी स्वप्नतुल्यताके अभावतैं । यह आशंकाकरि अन्यथा कहिये विपरीतग्रहणरूप होनैकरि जाग्रत्द्वैतकी स्वप्नतुल्यताहीं है । काहेतैं "यह तीन (जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति) सुषुप्ति है औ स्वप्न मायामात्र है" इस श्रुतितैं स्वप्नतुल्यता कथन करीहै । यातैं द्वैतकी स्वप्नतुल्यता नहीं है । यह कथन बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

२] **ईशजीवादिरूपकरि चेतनअचेतनस्वरूप जो सर्वजगत् है । सो यह अद्वितीयब्रह्मतत्त्वविषै स्वप्न है ॥**

३) ईश्वरजीवआदिकरूपकरि वर्त्तमान जो जडचेतनरूप सर्वजगत् है । सो यह अद्वितीयब्रह्मतत्त्वविषै स्वप्न है । ऐसैं योजना है ॥२११॥

॥ ३ ॥ ईश्वर औ जीवका जगत्विषै अंतर्भाव ॥

४ ननु ब्रह्मसैं अभिन्न ईश्वर औ जीव हैं। तिनका जगत्के अंतर्गतपना कैसैं संभवै ? यह आशंकाकरि तिन ईश्वरजीव दोनूंका मायासैं कल्पित होनैकरि जगत्के अंतःपातीपना है । ऐसैं कहैहैं:—

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५०७	ईक्षणादिप्रवेशांता सृष्टिरीशेन कल्पिता । जाग्रदादिविमोक्षांतः संसारो जीवकल्पितः २१३	१९०५
५०८	अद्वितीयं ब्रह्मतत्त्वमसंगं तन्न जानते । जीवेशयोर्मायिकयोर्वृथैव कलहं ययुः ॥ २१४ ॥	टिप्पणांकः ॐ

५] आनंदमयविज्ञानमयौ ईश्वरजीवकौ एतौ मायया कल्पितौ ताभ्यां सर्वं प्रकल्पितम् ॥ २१२ ॥

६ ताभ्यां सर्वं कल्पितमित्युक्तं तत्र केन कियत्कल्पितमित्याकांक्षायामाह—

७] ईक्षणादिप्रवेशांता सृष्टिः ईशेन कल्पिता। जाग्रदादिविमोक्षांतः संसारः जीवकल्पितः ॥

८) "स ईक्षत लोकान्नु सृजै" इत्यादिकया "एतया द्वारा प्रापद्यत" इत्यंतया श्रुत्या प्रतिपादिता सृष्टिरीश्वरकर्तृका। "तस्य त्रय आवसथा" इत्यादिकया "स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यत्" इत्यंतया श्रुत्या प्रतिपादितः संसारः जीवकर्तृक इत्यर्थः २१३

९ ननु ब्रह्मण एव पारमार्थिकत्वे वादिनां जीवेश्वरतत्त्वविषया विमतिपत्तिः कुत इत्याशंक्य श्रुतिसिद्धतत्त्वज्ञानशून्यत्वादित्याह—

५] आनंदमय औ विज्ञानमय क्रमतें ईश्वर औ जीव हैं। ये दोनूं मायाकरि कल्पित हैं। तिन दोनूंनैं सर्वजगत् कल्प्याहै ॥ २१२ ॥

॥ ४ ॥ विभागकरि जीवईश्वरकृत सृष्टिकी अवधि ॥

६ "तिन दोनूंकरि सर्वजगत् कल्प्याहै" ऐसैं २१२ वें श्लोकविषै कह्या। तिनविषै किसनैं कितना जगत् कल्प्याहै ? इस पूछनैकी इच्छाविषै कहैहैं:—

७] ईक्षणसैं आदिलेके प्रवेशपर्यंत जो सृष्टि है। सो ईश्वरनैं कल्पी है औ जाग्रत्सैं आदिलेके मोक्षपर्यंत जो संसार है। सो जीवनैं कल्प्याहै ॥

८) "सो परमेश्वर। मैं लोकनकूं निश्चयकरि रचों। ऐसैं अवलोकनकूं करताभया" इस आदिवाली औ "इस मूर्धनीके मध्यगतछिद्ररूप द्वारकरि प्राप्त होताभया कहिये जीवरूपकरि शरीरविषै प्रवेश करताभया" इस अंतवाली श्रुतिकरि प्रतिपादन करी जो सृष्टि है। सो ईश्वरनैं कीन्ही है औ "इस चिदाभासरूप जीवकी जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूप तीनअवस्था हैं" इस आदिवाली औ "सो जीव इस आत्मारूपहीं पुरुषकूं परिपूर्णब्रह्मरूप देखताभया" इस अंतवाली श्रुतिनैं प्रतिपादन किया जाग्रत्सैं लेके मोक्षतोडी जो संसार है। सो जीवनैं कियाहै। यह अर्थ है ॥ २१३ ॥

॥ ५ ॥ जीवईश्वरमैं वादिनके विवादका कारण (अज्ञान) ॥

९ ननु ब्रह्मकूंहीं पारमार्थिकता हुये जीवईश्वरके स्वरूपकूं विषय करनैहारा वादिनका विवाद काहेतैं होवैहै ? यह आशंकाकरि। श्रुतिकरि निर्णीत तत्त्व जो ब्रह्मआत्माकी एकता। ताके ज्ञानसैं शून्य होनैतैं जीवईश्वरविषै वादिनका विवाद होवैहै। ऐसैं कहैहैं:—

टीकांक: १९१० टिप्पणांक: ५९५

¹²ज्ञात्वा सदा तत्त्वनिष्ठाननुमोदामहे वयम् ।
अनुशोचाम एवान्यान्न भ्रांतैर्विवदामहे ॥२१५॥
¹⁴तृणार्चकादियोगांता ईश्वरे भ्रांतिमाश्रिताः ।
लोकायतादिसांख्यांता जीवे विभ्रांतिमाश्रिताः१६

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५०९ ५१०

१०] अद्वितीयं असंगं ब्रह्मतत्त्वं तत् न जानते। मायिकयोः जीवेशयोः वृथा एव कलहं ययुः ॥ २१४ ॥

११ जीवेश्वरविषयाया वादिविप्रतिपत्तेरज्ञानमूलत्वे तथाविधत्वेन बोधनीया इत्याशंक्य वृथाश्रमत्वान्नेत्याह (ज्ञात्वेति)—

१२] तत्त्वनिष्ठान् ज्ञात्वा वयं सदा अनुमोदामहे । अन्यान् अनुशोचामः एव । भ्रांतैः न विवदामहे ॥ २१५ ॥

१३ ईश्वरे जीवे च भ्रांत्या विमतिपन्नान् वादिनो विभज्य दर्शयति—

१४] तृणार्चकादियोगांताः ईश्वरे

१०] अद्वितीय औ असंग जो ब्रह्मतत्त्व है। ताकूं जे नहीं जानतेहैं। वे मायाकल्पितजीवईश्वरविषै वृथाहीं कलहकूं करतेहैं ॥ २१४ ॥

॥ ६ ॥ ज्ञानिनकूं वादिनके प्रति बोध करनैकी अयोग्यता ॥

११ ननु जीवईश्वरविषै वादिनके विवादकूं अज्ञानकी कार्यता हुये तिसप्रकारसैं वे वादी तुमारेकरि बोधन करनैकूं योग्य हैं। यह आशंकाकरि वृथाश्रमके होनैतैं हमारेकरि वे बोधनीय नहीं हैं। ऐसैं कहैहैं:—

१२] तत्त्वनिष्ठ जे मुक्तपुरुष। तिनकूं जानिके हम सदा भारवाहीकी न्याईं मुदितावृत्तिरूप अनुमोदनकूं करैहैं औ अन्य जिज्ञासु अरु विपर्यीपुरुषनकूं जानिके हम अनुशोचकी कारण करुणा औ मैत्रीकूंहीं करैहैं औ भ्रांत जे पामर तिनके साथि हम विवादकूं नहीं करैहैं ॥ २१५ ॥

॥ ७ ॥ जीवईश्वरमैं भ्रांतिसैं विवादवाले वादिनका विभाग ॥

१३ ईश्वरविषै औ जीवविषै भ्रांतिकरि विरुद्धसंमतिरूप संशयकूं प्राप्त भये वादिनकूं विभागकरिके दिखावैहैं:—

१४] तृण औ ईंटसैं आदिलेके योगपर्यंत जे वादी हैं। वे ईश्वरविषै भ्रांतिकूं

---

९५ जिसविषै करुणा होवै तिसविषै अनुशोच होवैहै। सो दयालुपुरुषमैं प्रसिद्ध है। यातैं करुणा अनुशोचकी कारण है ॥ औ जिससैं मैत्री होवै तिसका दुःख देखिके अनुशोच होवैहै ॥ भीष्मादिककी मैत्रीतैं अर्जुनकूं अनुशोच भयाहै सो गीतामैं प्रसिद्ध है। यातैं मैत्री बी अनुशोचकी कारण है ॥ यातैं अनुशोचशब्दकरि इहां तिनके कारण धात्रीकी न्याईं करुणा अरु बालककी न्याईं मैत्रीका क्रमसैं ग्रहण है ॥

९६ उत्तम मध्यम औ कनिष्ठभेदकरि पामर त्रिविध हैं ॥

(१) शास्त्रसंस्कारकरि युक्त हुये बी जे शास्त्रअर्थविषै श्रद्धारहितनास्तिक हैं। वे उत्तमपामर हैं ॥

(२) शास्त्रसंस्काररहित हुये जे शास्त्रवाक्यविषै विश्वासरहित यथेच्छाचारी हैं। वे मध्यमपामर हैं ॥

(३) शास्त्रवाक्यविषै विश्वासवान् हुये बी जे अज्ञानकरि यथेच्छाचारी हैं। वे कनिष्ठपामर हैं।

वे सर्व बहिर्मुख होनैतैं भ्रांत हैं ॥ तिनके साथि हम विवाद नहीं करैहैं। किंतु मलकी न्याईं तिनकी उपेक्षाहीं करैहैं ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५११ ५१२	[१६]अद्वितीयब्रह्मतत्त्वं न जानंति यदा तदा । भ्रांता एवाखिलास्तेषां [१८]क्व मुक्तिः [२०]क्वेह वा सुखम् ॥२१७॥ [२२]उत्तमाधमभावश्चेत्तेषां स्यादस्तु तेन किम् । स्वप्नस्थराज्यभिक्षाभ्यां न बुद्धः स्पृश्यते खलु ॥२१८॥	टीकांक: १९१५ टिप्पणांक: ॐ

भ्रांतिं आश्रिताः लोकायतादिसांख्यांताः जीवे विभ्रांतिं आश्रिताः ॥ २१६ ॥

१५ कुतो भ्रांतत्वं तेषामित्याह—

१६] अद्वितीयब्रह्मतत्त्वं यदा न जानंति तदा अखिलाः भ्रांताः एव ॥

१७ ततः किं तत्राह—

१८] तेषां क्व मुक्तिः ॥

१९ परिगृहीतपक्षप्रतिपादनाभिनिवेशेन चित्तविश्रांत्यभावात् नैहिकमपि सुखं तेषामित्याह (क्वेह वेति)—

२०] इह वा क्व सुखम् ॥ २१७ ॥

२१ ननु तेषां ब्रह्मविद्याऽभावेऽपि इतरविद्याप्रयुक्त उत्तमाधमभावो दृश्यते उत्तमत्वप्रयुक्तं सुखं केषांचित्स्यादित्याशंक्य तस्य मुमुक्षुभिरनादरणीयत्वं दृष्टांतेनाह (उत्तमाधमेति)—

२२] तेषां उत्तमाधमभावः चेत्

आश्रय करैहैं औ लोकायत जे चार्वाक तिनसैं आदिलेके सांख्यपर्यंत जे वादी हैं। वे जीवविषै भ्रांतिकूं आश्रय करैहैं ॥ २१६ ॥

॥ ८ ॥ वादिनके भ्रांतपनैका कारण (अज्ञान) औ तिनकूं मुक्ति औ सुखका अभाव ॥

१५ तिन वादिनका भ्रांतपना काहेतैं है? तहां कहैहैं:—

१६] अद्वितीयब्रह्मतत्त्वकूं जब नहीं जानतेहैं। तब सर्ववादी भ्रांतही हैं ॥

१७ सर्व भ्रांतही हैं। तिसतैं तिनकूं क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

१८] तिन भ्रांतनकूं कहां मुक्ति है? कहूं वी नहीं ॥

१९ ग्रहण किये पक्षके प्रतिपादनविषै आग्रहकरि चित्तकी स्थितिके अभावतैं तिन वादिनकूं इसलोकसंबंधि सुख वी नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

२०] वा तिनकूं इसलोकविषै वी कहां सुख है? ॥ २१७ ॥

॥ ९ ॥ इतरविद्याके सुखकी मुमुक्षुकरि अनादरणीयता ॥

२१ ननु तिन वादिनकूं ब्रह्मविद्याके अभाव हुये वी इतर जो शास्त्रविद्या। ताका किया उत्तमअधमभाव देखियेहै। यातैं उत्तमताका किया सुख कितनैक वादिनकूं होवैगा? यह आशंकाकरि तिस उत्तमताके किये सुखकी मुमुक्षुकरि आदर करनैकी अयोग्यता है। ताकूं दृष्टांतकरि कहैहैं:—

२२] जो तिन वादिनकूं उत्तमअधमभाव होवै तौ होहु। तिस उत्तमअधमभावकरि मुमुक्षुनकूं क्या प्रयोजन है?

टीकांकः १९२३ टिप्पणांकः ॐ

२४तस्मान्मुमुक्षुभिर्नैव मतिर्जीवेशवादयोः ।
कार्या किं२६तु ब्रह्मतत्त्वं विचार्यं बुध्यतां च तत् २१९
२८पूर्वपक्षतया तौ चेत्तत्त्वनिश्चयहेतुताम् ।
प्राप्नुतोऽस्तु निमज्जस्व तयोर्नैतावतावशः॥२२०॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५१३ ५१४

स्यात् अस्तु।तेन किं। स्वप्नस्थराज्यभिक्षाभ्यां बुद्धः खलु न स्पृश्यते ॥२१८॥

२३ जीवेश्वरवादयोर्मुक्तिहेतुत्वाभावान्न मुमुक्षुभिस्तत्र मतिर्निवेशनीयेत्युपसंहरति—

२४] तस्मात् मुमुक्षुभिः जीवेशवादयोः मतिः न एव कार्या ॥

२५ तर्हि किं कर्तव्यमित्याशंक्य श्रुतिविचारेण ब्रह्मबोध एव कर्तव्य इत्याह—

२६] किंतु ब्रह्मतत्त्वं विचार्य च तत् बुध्यताम् ॥ २१९ ॥

२७ ननु ब्रह्मतत्त्वनिश्चयाय तयोः स्वरूपं हेयत्वेन ज्ञातव्यमित्याशंक्य तथात्वे जीवेशवादयोरेव बुद्धिर्न परिसमापनीयेत्याह—

२८] पूर्वपक्षतया तौ तत्त्वनिश्चयहेतुतां प्राप्नुतः चेत् अस्तु । एतावता तयोः अवशः न निमज्जस्व ॥

२९) एतावता पूर्वपक्षतया तत्त्वनिर्णयहेतुत्वसंभवेन तयोः जीवेशवादयोरेव अवशः विवेकज्ञानशून्यो न निमज्जस्व इति योजना ॥ २२० ॥

कछु बी नहीं। किंतु जैसैं स्वप्नविषै स्थित राज्य औ भिक्षाकरि जाग्रत् हुवा पुरुष निश्चयकरि स्पर्शकूं पावता नहीं। तैसैं उत्तमअधमभावकरि मुमुक्षुका प्रयोजन नहीं है ॥ २१८ ॥

॥ १० ॥ मुमुक्षुकरि ब्रह्मविचारकी कर्तव्यता औ उक्तअर्थ (जीवईश्वरके विवादके निषेध)की समाप्ति ॥

२३ जीवईश्वरके वादकूं मुक्तिकी हेतुताके अभावतैं तिन वादनविषै मुमुक्षुजनोंनैं मति प्रवेश करनी योग्य नहीं है । ऐसैं समाप्ति करैहैं:—

२४] तातैं मुमुक्षुजनोंनैं जीवईश्वरके वादनविषै मति करनी नहीं ॥

२५ तब मुमुक्षुनकूं क्या कर्त्तव्य है? यह आशंकाकरि श्रुतिविचारसैं ब्रह्मबोधहीं कर्त्तव्य है। ऐसैं कहैहैं:—

२६] किंतु ब्रह्मतत्त्व विचार करनैकूं योग्य है औ सो ब्रह्मतत्त्व जानना योग्य है ॥ २१९ ॥

॥ ११ ॥ त्याज्यताकरि जीवईश्वरके ज्ञानका अंगीकार ॥

२७ ननु ब्रह्मतत्त्वके निश्चय करनेवास्ते तिन जीवईश्वरका स्वरूप त्याज्यताकरि जाननैकूं योग्य है। यह आशंकाकरि तैसैं हुये जीवईश्वरके वादविषैहीं बुद्धिकी परिसमाप्ति करनी नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

२८] जब पूर्वपक्षपनैकरि वे जीवईश्वर तत्त्वनिश्चयकी हेतुताकूं प्राप्त होवैहैं तौ होहु। इतनैकरि तिन वादनविषै अवश हुवा मग्न होना नहीं ॥

२९) इतनैकरि कहिये पूर्वपक्षपनैकरि तत्त्वनिर्णयकी हेतुताके संभवकरि तिन जीवईश्वरके वादनविषैहीं अवश कहिये विवेकज्ञानकरि शून्य हुवा डूबना नहीं । ऐसैं योजना है ॥ २२० ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५१५	असंगचिद्विभुर्जीवः सांख्योक्तस्तादृगीश्वरः । योगोक्तस्तत्त्वमोरर्थौ शुद्धौ ताविति चेच्छृणु २२१	१९३०
५१६	न तत्त्वमोरुभावर्थावस्मत्सिद्धांततां गतौ । अद्वैतबोधनायैव सा कक्षा काचिदिष्यते ॥२२२॥	टिप्पणांकः ॐ

३० ननु सांख्ययोगशास्त्रोक्तयोर्जीवेशयोः शुद्धचिद्रूपत्वेन भवद्भिरप्युपादेयत्वान्न तयोः पूर्वपक्षत्वमिति शंकते—

३१] असंगचित् विभुः जीवः सांख्योक्तः । तादृक् ईश्वरः योगोक्तः । तौ शुद्धौ तत्त्वमोः अर्थौ इति चेत् ॥

३२ सांख्ययोगशास्त्रोक्तयोर्जीवेशयोः शुद्धचिद्रूपत्वेऽपि तयोर्वास्तवभेदस्य तैरंगीकारान्नायमस्मत्सिद्धांत इत्याह—

३३] शृणु ॥ २२१ ॥

३४] (नेति)– तत्त्वमोः उभौ अर्थौ अस्मत्सिद्धांततां न गतौ ॥

३५) तत्त्वंपदयोः। उभावर्थावस्मत्सिद्धांतत्वं न गतौ इति योजना ॥

३६ ननु कूटस्थब्रह्मशब्दाभ्यां शुद्धौ तत्त्वंपदार्थौ भवद्भिरपि भिन्नौ निरूपिताविल्याशंक्याह—

३७] अद्वैतबोधनाय एव सा काचित् कक्षा इष्यते ॥

॥ १२ ॥ जीवईश्वरकी त्याज्यतामैं शंका औ समाधान ॥

३० ननु सांख्यशास्त्र औ योगशास्त्रविषै कथन किये जे जीवईश्वर हैं । तिनकूं शुद्धचेतनरूप होनैंकरि तुम अद्वैतवादिनकरि वी तिनकी ग्राह्यताके होनैतैं तिन जीवईश्वरकूं पूर्वपक्षता नहीं है । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

३१] असंग चेतनरूप विभु जीव सांख्यविषै कह्याहै औ तैसा असंग चेतन विभु ईश्वर योगविषै कह्याहै। सो शुद्धजीवईश्वर "तत्"पदके औ "त्वं"-पदके अर्थ हैं । ऐसैं जब कहै ।

३२ सांख्यशास्त्र औ योगशास्त्रविषैं उक्त जीवईश्वरकूं शुद्धचेतनरूप हुये वी तिन जीवईश्वरके वास्तवभेदका तिनोनैं अंगीकार कियाहै। यातैं यह हमारा वेदांतका सिद्धांत नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

३३] तब श्रवण कर ॥ २२१ ॥

॥ १३ ॥ अद्वैतबोधअर्थ कूटस्थब्रह्मका भेद ॥

३४] "तत्"पद औ "त्वं"पदके जे दोनूंअर्थ हैं । वे हमारे सिद्धांतकूं नहीं प्राप्त होवैहैं ॥

३५) "तत्"पद औ "त्वं"पदके जे दोनूं-अर्थ हैं। वे हमारे सिद्धांतपनैकूं नहीं प्राप्त होवैहैं । ऐसैं योजना है ॥

३६ ननु कूटस्थ औ ब्रह्मशब्दकरि शुद्ध कहिये उपाधिरहित। ऐसै "तत्"पद औ "त्वं" पदके अर्थ तुमकरि वी भिन्न निरूपन कियेहैं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३७] अद्वैतके बोधनअर्थहीं सो कोइक कक्षा कहिये दिशा अंगीकार करियेहै ॥

टीकांक: १९३८	ॐअनादिमायया भ्रांता जीवेशौ सुविलक्षणौ ।	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:
	मन्यंते तद्व्युदासाय केवलं शोधनं तयोः॥२२३॥	५१७
टिप्पणांक: ॐ	ॐअत एवात्र दृष्टांतो योग्यः प्राक् सम्यगीरितः ।	
	घटाकाशमहाकाशजलाकाशाभ्रखात्मकः॥२२४॥	५१८

३८) लोकप्रसिद्धभेदनिरासद्वारा तदैक्यप्रतिपादनायैव तौ भेदेनानूदितौ न तु तयोर्भेदः प्रतिपाद्यत इति भावः ॥ २२२ ॥

३९ तर्हि पदार्थशोधनं किमर्थमित्यत आह—

४०] **अनादिमायया भ्रांताः जीवेशौ सुविलक्षणौ मन्यंते । केवलं तद्व्युदासाय तयोः शोधनम् ॥**

४१) अत्र मायाशब्देन स्वाश्रयव्यामोहिका अविद्या लक्ष्यते । तथा विपरीतज्ञानं प्राप्ताः कर्तृत्वादिमत्त्वं जीवस्य सर्वज्ञत्वादिगुणयोगित्वं चेश्वरस्य पारमार्थिकं मन्यंते । अतः तन्निवृत्त्यर्थमेव शोधनं क्रियत इत्यर्थः॥२२३॥

४२ पदार्थशोधनप्रकारमेव दिदर्शयिषुस्तदुपायत्वेन पूर्वोक्तदृष्टांतं स्मारयति—

४३] **अतः एव अत्र घटाकाशमहाकाशजलाकाशाभ्रखात्मकः योग्यः दृष्टांतः प्राक् सम्यक् ईरितः ॥**

४४) यतः पदार्थशोधनं कर्तव्यं । अत एव इत्यर्थः ॥ २२४ ॥

---

३८) लोकप्रसिद्ध जो भेद है। तिसके निषेधद्वारा तिन "तत्"पदार्थ औ "त्वं"पदार्थकी एकताके प्रतिपादनवास्तेहीं सो "तत्" पद औ "त्वं"पदके अर्थ भेदकरि कथन कियेहैं औ तिनका वास्तवभेद प्रतिपादन नहीं करियेहै । यह भाव है ॥ २२२ ॥

॥ १४ ॥ पदार्थशोधनका प्रयोजन
(भ्रांतिनिराकरण) ॥

३९ ननु तब पदार्थनका शोधन किस अर्थ है ? तहां कहैहैं:—

४०] **अनादिमायाकरि भ्रांत जे पुरुष हैं। वे जीवईश्वरकूं निरंतर विलक्षण मानतेहैं । केवल तिस विलक्षणताकी निवृत्तिअर्थ तिन पदार्थनका शोधन है ॥**

४१) इहां मायाशब्दकरि अपनै आश्रय आत्माकूं व्यामोह करनैहारी अविद्याहीं लखियेहै ॥ तिस अनादिअविद्याकरि विपरीतज्ञानकूं प्राप्त भये जे जीव हैं । वे जीवके कर्तृत्वादियुक्तपनैकूं औ ईश्वरके सर्वज्ञतादिकगुणयोगिपनैकूं । पारमार्थिक कहिये वास्तव मानतेहैं। यातैं तिनकी निवृत्तिअर्थहीं शोधन करियेहै । यह अर्थ है ॥ २२३ ॥

॥ १५ ॥ पदार्थशोधनमैं उपयोगी च्यारीआकाशके दृष्टांतका स्मरण ॥

४२ पदार्थशोधनके प्रकारकूंहीं दिखावनैकूं इच्छतेहुये । तिस पदार्थशोधनके उपाय होनैकरि पूर्व १८ श्लोकउक्तदृष्टांतकूं स्मरण करावैहैं:—

४३] **याहीतैं इहां पदार्थशोधनविषै घटाकाश महाकाश जलाकाश औ मेघाकाशरूप योग्यदृष्टांत पूर्व सम्यक् कह्याहै ॥**

४४) जातैं पदार्थशोधन कर्त्तव्य है। याहीतैं च्यारीआकाशका दृष्टांत पूर्व १८ श्लोकविषै कह्याहै । यह अर्थ है ॥ २२४ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
५१९	४६ जलाभ्रोपाध्यधीने ते जलाकाशाभ्रखे तयोः । आधारौ तु घटाकाशमहाकाशौ सुनिर्मलौ॥२२५॥	१९४५
५२०	४९ एवमानंदविज्ञानमयौ मायाधियोर्वशौ । तदधिष्ठानकूटस्थब्रह्मणी तु सुनिर्मले ॥ २२६ ॥	टिप्पणांक: ॐ
५२१	५१ एतत्कक्षोपयोगेन सांख्ययोगौ मतौ यदि । देहोऽन्नमयकक्षत्वादात्मत्वेनाभ्युपेयताम् ॥२२७॥	

४५ पदार्थशोधनप्रकारमाह(जलाभ्रेति)—

४६] जलाकाशाभ्रखे ते जलाभ्रोपाध्यधीने । तयोः आधारौ तु घटाकाशमहाकाशौ सुनिर्मलौ ॥

४७) ये जलाकाशाभ्रखे ते जलाभ्रोपाध्यधीनत्वादपारमार्थिके । तयोराधारभूतौ घटाकाशमहाकाशौ सुनिर्मलौ जलाद्युपाधिनिरपेक्षाकाशमात्ररूपावित्यर्थः ॥ २२५ ॥

४८ दार्ष्टांतिकमाह—

४९] एवं आनंदविज्ञानमयौ मायाधियोः वशौ । तदधिष्ठानकूटस्थब्रह्मणी तु सुनिर्मले ॥ २२६ ॥

५० ननु पदार्थद्वयशोधनकक्षोपयोगित्वेनापि सांख्ययोगमतद्वयमंगीकार्यमिति चेदत्यल्पमिदमुच्यते इतरेषामपि शास्त्राणां तत्तत्कक्षोपयोगित्वेनास्माभिरभ्युपेयत्वादित्याह—

५१] एतत्कक्षोपयोगेन यदि सांख्य-

४५ पदार्थशोधनके प्रकारकूंहीं कहैहैं:—

४६] जलाकाश औ मेघाकाश जे हैं। वे जल औ मेघरूप उपाधिके अधीन हैं औ तिनके आधार घटाकाश महाकाश निर्मल हैं ॥

४७) जलाकाश औ मेघाकाश जे हैं। वे जल औ मेघरूप उपाधिके अधीन होनैतैं अपारमार्थिक हैं औ तिन जलाकाश औ मेघाकाशके आधाररूप जे घटाकाश औ महाकाश हैं। वे निर्मल कहिये जलादिकउपाधिकी अपेक्षारहित आकाशमात्ररूप हैं। यह अर्थ है ॥ २२५ ॥

॥ १६ ॥ श्लोक २२४–२२५ उक्त दृष्टांतका दार्ष्टांत ॥

४८ दार्ष्टांतिककूं कहैहैं:—

४९] ऐसैं आनंदमयईश्वर औ विज्ञानमयजीव जे हैं। वे माया औ बुद्धिउपाधिके अधीन हैं औ तिन आनंदमय औ विज्ञानमयके अधिष्ठान जे ब्रह्म औ कूटस्थ वे निरंतर निर्मल हैं ॥ २२६ ॥

॥ १७ ॥ पदार्थशोधनमैं सांख्ययोगकी न्याईं लोकायतादिकनके मतका उपयोग ॥

५० ननु दोनूंपदार्थके शोधनकी कक्षा जो अवस्था। तिसविषै उपयोगी होनैकरि वी सांख्ययोग दोनूंमत अंगीकार करनैकूं योग्य हैं ॥ ऐसैं जब कहै। तब यह तेरेकरि अतिअल्प कहियेहै ॥ काहेतैं अन्य चार्वाकआदिकशास्त्रनकूं वी तिस तिस देहादिकतैं आत्माके शोधनकी अवस्थाविषै उपयोगी होनैकरि हमोकरि अंगीकार कियेहोनैतैं। ऐसैं कहैहैं:—

५१] इस दोनूंपदार्थके शोधनरूप कक्षाविषै उपयोगकरि जब सांख्य औ

टीकांक: १९५२ टिप्पणांक: ॐ		चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:
	५३ आत्मभेदो जगत्सत्यमीशोऽन्य इति चेत्त्रयम् । त्यज्यते तैस्तदा सांख्ययोगवेदांतसंमतिः॥२२८॥	५२२
	५५ जीवोऽसंगत्वमात्रेण कृतार्थ इति चेत्तदा । स्रक्चंदनादिनित्यत्वमात्रेणापि कृतार्थता ॥२२९॥	५२३
	५७ यथा स्रगादिनित्यत्वं दुःसंपाद्यं तथात्मनः । असंगत्वं न संभाव्यं जीवतोर्जगदीशयोः॥२३०॥	५२४

योगौ मतौ अन्नमयकक्षत्वात् देहः आत्मत्वेन अभ्युपेयताम् ॥ २२७ ॥

५२ कुतस्तर्हि सांख्ययोगयोर्वेदांतविरोधित्वमित्याशंक्य जीवभेदजगत्सत्यत्वेश्वरताटस्थ्यलक्षणेंऽशे इत्याह—

५३] आत्मभेदः । जगत् सत्यं । ईशः अन्यः इति त्रयं तैः त्यज्यते चेत् तदा सांख्ययोगवेदांतसंमतिः॥२२८॥

५४ ननु जीवस्यासंगत्वज्ञानादेव मुक्तिसिद्धेः किमद्वैतबोधेनेत्याशंक्याद्वैतज्ञानमंतरेणासंगत्वादिकं न संभाव्यते इत्यभिसंधिं हृदि निधायोत्तरमाह—

५५] जीवः असंगत्वमात्रेण कृतार्थः इति चेत् तदा स्रक्चंदनादिनित्यत्वमात्रेण अपि कृतार्थता॥ २२९ ॥

५६ अभिसंधिमाविःकरोति—

५७] यथा स्रगादिनित्यत्वं दुःसंपाद्यं तथा जगदीशयोः जीवतोः आत्मनः असंगत्वं न संभाव्यम् ॥

योग मानैहैं । तब अन्नमयकोशकी शोधनदशामैं देह । उपयोगी होनैतैं देह बी आत्मापनैकरि अंगीकार करना योग्य है॥ २२७ ॥

॥१८॥ सांख्य औ योगका वेदांतसैं विरोधअंश ॥

५२ तब सांख्य योग औ वेदांतका विरोधिपना किस अंशतैं है? यह आशंकाकरि जीवनका भेद जगत्का सत्यत्व औ ईश्वरका जीवजगत्तैं भिन्नपना। इन तीनअंशनविषै सांख्य औ योगका वेदांतसैं विरोधीपना है। ऐसैं कहैहैंः—

५३] आत्माका भेद है औ जगत् सत्य है । यह सांख्य योग दोनूंका मत है औ ईश्वर अन्य कहिये जीव औ जगत्तैं न्यारा है । यह योगमत है। यह तीन जब तिन सांख्ययोगवादिनकरि त्याग करिये। तब सांख्य योग औ वेदांतका एक निश्चय होवै ॥ २२८ ॥

५४ ननु जीवकी असंगताके ज्ञानतैंहीं मुक्तिकी सिद्धितैं अद्वैतके बोधकरि क्या प्रयोजन है? यह आशंकाकरि अद्वैतज्ञानविना असंगताआदिक नहीं संभावना करियेहै । इस अभिप्रायकूं हृदयविषै धारिके उत्तर कहैहैंः—

५५] जीव असंगतामात्रकरि कृतार्थ है। जब ऐसैं कहै तब मालाचंदनआदिककी नित्यतामात्रकरि कहिये सत्यताके जाननैकरि बी जीवकी कृतार्थता होवैगी ॥ २२९ ॥

५६ अभिप्रायकूं प्रगट करैहैंः—

५७] जैसैं स्रगादिककी नित्यता दुःसंपाद्य है। ऐसैं जगत् औ ईश्वरके जीवतेहुये। आत्मा जो जीव। ताकी असंगताका संभव होनैकूं योग्य नहीं हैं॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५२५	६०अवश्यं प्रकृतिः संगं पुरेवापादयेत्तथा । नियच्छ-त्येतमीशोऽपि ६२कोऽस्य मोक्षस्तथा सति ॥२३१॥	१९५८
५२६	६४अविवेककृतः संगो नियमश्चेति चेत्तदा । ६६बलादापतितो मायावादः सांख्यस्य दुर्मतेः २३२	टिप्पणांकः ॐ

५८) जीवतोः विशेष्यविशेषणाकारेण भासमानयोः ॥ २३० ॥

५९ असंभवमेव स्पष्टयति (अवश्य-मिति)—

६०] **प्रकृतिः पुरा इव अवश्यं संगं आपादयेत्। तथा एतं ईशः अपि नियच्छति ॥**

६१ फलितमाह (कोऽस्येति)—

६२] **तथा सति अस्य कः मोक्षः** ॥ २३१ ॥

६३ संगनियमनयोरविवेककार्यत्वात् विवेक-ज्ञानेन च अविवेकनिवृत्तौ कुतः पुनः संगा-द्युत्पत्तिरिति शंकते (अविवेकेति)—

६४] **संगः च नियमः अविवेककृ-तः इति चेत् । तदा**

६५ एवं सत्यपसिद्धांतापात इति परिहरति (बलादिति)—

६६] **दुर्मतेः सांख्यस्य बलात् मा-यावादः आपतितः ॥**

६७) अयं भावः । अविवेको नाम किं विवेकाभावः किं वा तदन्य उत तद्विरोधी । नाद्यः । अभावमात्रस्य भावकार्यजनकत्वायो-गात् । न द्वितीयः । विवेकादन्यस्य घटादेः

---

५८) जगत् औ ईश्वरके जीवतेहुये कहिये विशेष्य औ विशेषणआकारकरि भासमान हुये ॥ २३० ॥

५९ जगत् औ ईश्वरके होते आत्माकी अ-संगताका जो असंभव है। ताहीकूं स्पष्ट करैहैं:—

६०] **प्रकृति जो है सो पूर्वकी न्याई अवश्य संगकूं संपादन करैगी तैसैं तिस जीवकूं ईश्वर बी प्रेरणा करैहै ॥**

६१ फलितअर्थकूं कहैहैं:—

६२] **तैसैं संग औ प्रेरणाके हुये इस जीवकूं कौन मोक्ष होवैगा ?** ॥ २३१ ॥

६३ ननु संग औ नियमन जो प्रेरणा। ताकूं अविवेकके कार्य होनैतैं औ विवेकज्ञानकरि अविवेककी निवृत्तिके हुये फेर संगआदि-ककी उत्पत्ति कहांसैं होवैगी ? इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

६४] **संग औ नियम अविवेकका कियाहै । ऐसैं जब कहै तब ।**

६५ ऐसैं हुये तेरेकूं अपसिद्धांतकी प्राप्ति होवैगी । ऐसैं परिहार करैहैं:—

६६] **दुर्मतिवालेसांख्यकूं बलतैं मा-यावाद प्राप्तभया ॥**

६७) इहां यह भाव है:—अविवेक नाम क्या विवेकका अभाव है । किंवा तिस विवे-कतैं अन्य है वा सो विवेक है विरोधी जि-सका ऐसा है ? ये तीनविकल्प हैं॥ तिनमैं प्रथ-मविकल्प जो "विवेकका अभाव अविवेक है" सो बनै नहीं । काहेतैं अभावमात्रकूं संगनि-यमरूप भावकार्यकी जनकताके अयोगतैं ॥ औ द्वितीयविकल्प जो "विवेकतैं अन्य विवेक है" सो बी बनै नहीं । काहेतैं विवेकतैं अन्य घटादिककूं संगहेतुताके अदर्शनतैं औ तृतीय-

टीकांक: १९६८ टिप्पणांक: ॐ

चित्रदीप: ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५२७ ५२८

६९ बंधमोक्षव्यवस्थार्थमात्मनानात्वमिष्यताम् ।
इति चेन्न्र यतो माया व्यवस्थापयितुं क्षमा २३३
७३ दुर्घटं घटयामीति विरुद्धं किं न पश्यसि ।
७५ वास्तवौ बंधमोक्षौ तु श्रुतिर्न सहतेतराम् ॥२३४॥

संगहेतुत्वादर्शनात् । तृतीये तु तस्य भावरूपाज्ञानत्वमेवेति मायावादप्रसंग इति ॥ २३२ ॥

६८ अद्वैताभ्युपगमे बंधमोक्षव्यवस्थानुपपत्तेरात्मभेदोऽगीकर्तव्य इति चोदयति—

६९] **बंधमोक्षव्यवस्थार्थं आत्मनानात्वं इष्यतां इति चेत् ॥**

७० एकस्यात्मनो मायया बंधमोक्षव्यवस्थोपपत्तेर्नैवमिति परिहरति—

७१] **न । यतः माया व्यवस्थापयितुं क्षमा ॥ २३३ ॥**

७२ मायाऽपि कथं व्यवस्थापयेदित्याशंक्य तस्या दुर्घटकारित्वस्वाभाव्यादित्याह—

७३] **दुर्घटं घटयामि इति विरुद्धं किं न पश्यसि ॥**

७४ बंधस्याऽऽविद्यकत्वेऽपि मोक्षो वास्तवोऽभ्युपेतव्य इत्याशंक्य श्रुतिविरोधान्नैवमित्याह—

७५] **वास्तवौ बंधमोक्षौ तु श्रुतिः न सहतेतराम् ॥**

विकल्प जो "विवेकरूप विरोधीवाला अविवेक है" इसके हुये तौ तिस अविवेककूं भावरूप अज्ञानस्वरूपताहीं सिद्ध भई ॥ ऐसैं हुये सांख्यमतविषै हमारे मायावाद मतका प्रसंग हुवा ॥ इति ॥ २३२ ॥

॥ १९ ॥ अद्वैतमतमैं बंधमोक्षकी मायाकरि व्यवस्था ॥

६८ अद्वैतके अंगीकारविषै बंधमोक्षकी व्यवस्थाके असंभवतैं आत्माका भेद अंगीकार करनैकूं योग्य है । इसरीतिसैं वादी पूर्वपक्षकूं करैहैं:—

६९] **बंधमोक्षकी व्यवस्था** जो विभाग **तिसअर्थ आत्माका भेद अंगीकार कियाचाहिये । ऐसैं जो** कहै ।

७० एकहीं आत्माकी मायाकरि बंधमोक्षकी व्यवस्थाके संभवतैं । तिसअर्थ आत्माका भेद मान्याचाहिये । यह कथन बनै नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७१] **तौ बनै नहीं । जातैं माया व्यवस्था करनैकूं समर्थ है ॥ २३३ ॥**

७२ ननु माया बी कैसैं बंध मोक्षकी व्यवस्था करैगी ? यह आशंकाकरि तिस मायाकूं दुर्घटकारितारूप स्वभाववान्‌ताके होनैतें माया बंधमोक्षकी व्यवस्था करनैकूं बी समर्थ है । ऐसैं कहैहैं:—

७३] **"दुर्घटकूं घटावती हूं" ऐसैं मायाके विरुद्धस्वभावकूं क्या इंद्रजालादिकविषै नहीं देखताहै ? ॥**

७४ बंधकूं अविद्याकी कार्यता हुये बी । मोक्ष वास्तवअंगीकार कियाचाहिये ॥ यह आशंकाकरि श्रुतिके विरोधतैं ऐसैं मत कहो । यह कहैहैं:—

७५] **वास्तवबंधमोक्षकूं तौ श्रुति अतिशयकरि नहीं सहन करैहै ॥**

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५२९	न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ २३५ ॥	१९७६
५३०	मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ । यथेच्छं पिबतां द्वैतं तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि ॥ २३६ ॥	टिप्पणांकः ॐ

७६) न सहतेतरां अतितरां नैव सहत इत्यर्थः । बंधमिव मोक्षमपि वास्तवं न सहत इति भावः ॥ २३४ ॥

७७ मोक्षादेर्वास्तवत्वप्रतिषेधिकां श्रुतिं पठति—

७८] न निरोधः च न उत्पत्तिः न बद्धः च न साधकः न मुमुक्षुः वै न मुक्तः इति एषा परमार्थता ॥

७९) निरोधः नाशः । उत्पत्तिः देहसंबंधः । बद्धः सुखदुःखादिधर्मवान् । साधकः श्रवणाद्यनुष्ठाता । मुमुक्षुः साधनचतुष्टयसंपन्नः । मुक्तः निवृत्ताविद्यः । इत्येतत्सर्वं वस्तुतः नास्तीत्यर्थः ॥ २३५ ॥

८० एवं जीवेश्वरादिभेदस्य मायामयत्वमुपपादितमुपसंहरति—

८१] मायाख्यायाः कामधेनोः जीवेश्वरौ उभौ वत्सौ यथेच्छं द्वैतं पिबतां । तत्त्वं तु अद्वैतं एव हि ॥२३६॥

---

७६) श्रुति । बंधकी न्याईं मोक्षकूं वी वास्तव नहीं सहन करैहै । यह भाव है ॥२३४॥

॥ २० ॥ वास्तवबंधमोक्षके निषेधकी श्रुति ॥

७७ मोक्षादिकके वास्तवताकी निषेधक श्रुतिकूं पठन करैहैं:—

७८] "न निरोध है । न उत्पत्ति है । न बद्ध है । न साधक है । न मुमुक्षु है औ न मुक्त है । ऐसैं यह परमार्थता है" ॥

७९) निरोध कहिये नाश । उत्पत्ति कहिये देहसैं संबंध । बद्ध कहिये सुखदुःखादिधर्मवान् । साधक कहिये श्रवणादिकके अनुष्ठानका कर्त्ता । मुमुक्षु कहिये साधनचतुष्टयसंपन्न औ मुक्त कहिये निवृत्त भईहै अविद्या जिसकी सो । यह सर्व वस्तुतैं नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ २३५ ॥

॥ २१ ॥ जीवईश्वरादिभेदके मायामयपनेकी समाप्ति ॥

८० ऐसैं जीवईश्वरआदिकके भेदकी मायामयता नाम मिथ्यारूपता उपपादन करी । ताकूं समाप्ति करैहैं:—

८१] माया है आख्या कहिये नाम जिसका । ऐसी जो कामधेनु है । ताके जीवईश्वर दोनूं वत्स हैं ॥ वे वत्स जैसैं इच्छा होवै तैसैं द्वैतरूप दुग्धकूं पान करैहैं औ तत्त्व जो वास्तवस्वरूप सो तौ अद्वैतहीं है ॥ २३६ ॥

टीकांक: १९८२ टिप्पणांक: ॐ	कूटस्थब्रह्मणोर्भेदो नाममात्राहते न हि। घटाकाशमहाकाशौ वियुज्येते न हि क्वचित् २३७ यदद्वैतं श्रुतं सृष्टेः प्राक्तदेवाद्य चोपरि। मुक्तावपि वृथा माया भ्रामयत्यखिलान् जनान् २३८	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५३१ ५३२

८२ ननु जीवेश्वरयोर्मायिकत्वेन तद्भेदस्य मिथ्यात्वेऽपि कूटस्थब्रह्मणोः पारमार्थिकत्वेन तद्भेदोऽपि पारमार्थिकः स्यादित्याशंक्य भेदप्रयोजकस्य स्वरूपवैलक्षण्याभावान्नैवमिति परिहरति—

८३] **कूटस्थब्रह्मणो भेदः नाममात्रात् ऋते न हि ॥**

८४ नाममात्राद्भेदप्रतीतावपि वस्तुतो भेदाभावे दृष्टांतं पूर्वोक्तं स्मारयति—

८५] **घटाकाशमहाकाशौ क्वचित् हि न वियुज्येते ॥ २३७ ॥**

८६ एवं भेदस्य मिथ्यात्वसमर्थनेन किं फलमित्याह—

८७] **यत् अद्वैतं सृष्टेः प्राक् श्रुतं तत् एव अद्य च उपरि मुक्तौ अपि ॥**

८८) "सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्" इति श्रुतौ यदद्वितीयं ब्रह्म प्रतिपादितं। तदेव कालत्रयेऽप्यबाध्यत्वेन वास्तवं न भेद इति भावः ॥

८९ कुतस्तर्हि सर्वैर्भेदाभिनिवेशः क्रियत इत्यत आह (**वृथा मायेति**)—

॥२२॥ दृष्टांतपूर्वक कूटस्थब्रह्मके भेदका अभाव ॥

८२ ननु जीवईश्वरकूं मायिक होनैकरि तिन जीवईश्वरके भेदकूं मिथ्यापनैके हुये बी कूटस्थ औ ब्रह्मकूं पारमार्थिक होनैकरि तिन कूटस्थब्रह्मका भेद बी पारमार्थिक होवैगा ॥ यह आशंकाकरि भेदकी कारण जो स्वरूपकी विलक्षणता है। ताके अभावतैं कूटस्थ औ ब्रह्मका भेद बी पारमार्थिक है यह कथन बनै नहीं। ऐसैं परिहार करैहैं:—

८३] **कूटस्थ औ ब्रह्मका भेद नाममात्रतैं विना नहीं है ॥**

८४ नाममात्रतैं भेदकी प्रतीतिके हुये बी वस्तु जो स्वरूप तातैं भेदके अभावविषै पूर्व २१२ श्लोकउक्त दृष्टांतकूं स्मरण करावैहैं:—

८५] **घटाकाश औ महाकाश कहूं बी वियोगकूं पावते नहीं ॥ २३७ ॥**

॥ २३ ॥ भेदके मिथ्यात्वकथनका फल (अद्वैतनिश्चय) ॥

८६ ऐसैं भेदके मिथ्यापनैके कथनकरि क्या फल हुवा? तहां कहैहैं:—

८७] **जो अद्वैत। सृष्टितैं पूर्व सुन्याहै। सोई अद्वैत अब सृष्टिकालमैं है औ पीछे प्रलयविषै होवैगा औ मुक्तिविषै बी सोई है ॥**

८८) "हे सौम्य! यह आगे एकहीं अद्वितीयसत्हीं था" इस श्रुतिविषै जो अद्वितीयब्रह्म प्रतिपादन कियाहै। सोई तीनकालविषै बी अबाध्य होनैकरि वास्तव है। भेद नहीं है। यह भाव है ॥

८९ तब सर्वपुरुषनकरि भेदविषै आग्रह किस कारणतैं करियेहै? तहां कहैहैं:—

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्रोकांकः		टीकांकः
५३३	९३ ये वदंतीत्थमेतेऽपि भ्राम्यंते विद्ययात्र किम् । ९५ न यथा पूर्वमेतेषामत्र भ्रांतेरदर्शनात् ॥ २३९ ॥	१९९०
५३४	९७ ऐहिकामुष्मिकः सर्वः संसारो वास्तवस्ततः । न भाति नास्ति चाद्वैतमित्यज्ञानिविनिश्चयः २४०	टिप्पणांकः ॐ

९०] माया अखिलान् जनान् वृथा भ्रामयति ॥

९१) तत्त्वज्ञानरहितत्वादभिनिवेशं कुर्वंतीति भावः ॥ २३८ ॥

९२ ननु प्रपंचस्य मायामयत्वं तत्त्वस्याद्वितीयत्वं च ये वर्णयंति तेऽपि संसारवंतो दृश्यंते । अतस्तत्त्वज्ञानेन किं प्रयोजनमिति शंकते—

९३] ये इत्थं वदंति एते अपि अत्र भ्राम्यंते विद्यया किम् ॥

९४ कर्मवशात्केषांचिद्व्यवहारे सत्यपि पूर्ववदभिनिवेशाभावान्नैवमिति परिहरति—

९५] न । पूर्वं यथा एतेषां अत्र भ्रांतेः अदर्शनात् ॥ २३९ ॥

९६ ज्ञानिनां भ्रांत्यभावं दर्शयितुं अज्ञानिनां निश्चयं तावदाह—

९७] ऐहिकामुष्मिकः सर्वः संसारः वास्तवः । ततः अद्वैतं न भाति । च न अस्ति इति अज्ञानिविनिश्चयः ॥

९८) इह लोके भवः ऐहिकः । पुत्रकलत्रादिपोषणरूपः । अमुष्मिन्परलोके भव आमुष्मिकः । स्वर्गसुखाद्यनुभवरूपः ॥२४०॥

९०] माया । सर्वजननकूं वृथा भ्रमावतीहै ॥

९१) सर्वजन तत्त्वज्ञानकरि रहित होनैतैं भेदविषै अभिनिवेश जो आग्रह ताकूं करतेहैं । यह भाव है ॥ २३८ ॥

॥ २४ ॥ ज्ञानीके बी संसारविषै भ्रमणकी शंका औ समाधान ॥

९२ ननु प्रपंचकी मिथ्यारूपताकूं औ तत्त्वकी अद्वितीयताकूं जे वर्णन करतेहैं वे बी संसारवान् देखियेहैं । यातैं तत्त्वज्ञानकरि क्या प्रयोजन है ? इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

९३] जे पुरुष ऐसैं कहतेहैं । वे बी इस संसारविषै भ्रमतेहैं । यातैं विद्याकरि क्या प्रयोजन है ? ॥

९४ प्रारब्धकर्मके वशतैं कितनैक ज्ञानिनकूं व्यवहारके होते बी पूर्व अज्ञानअवस्थाकी न्याई व्यवहारविषै आग्रहके अभावतैं वे ज्ञानी बी भ्रमतेहैं । यह कथन बनै नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

९५] ऐसैं नहीं है । काहेतैं पूर्वकी न्याई इन ज्ञानिनकूं इस संसारविषै भ्रांतिके अदर्शनतैं ॥ २३९ ॥

॥ २५ ॥ अज्ञानीका निश्चय ॥

९६ ज्ञानिनकूं भ्रांतिका अभाव है । यह दिखावनैकूं अज्ञानिनके निश्चयकूं प्रथम कहैहैः—

९७] "ऐहिक औ आमुष्मिक सर्व संसार वास्तव है । तातैं अद्वैत नहीं भासताहै औ नहीं है ।" यह अज्ञानीजनोंका निश्चय है ॥

९८) इसलोकविषै जो होवै पुत्रकलत्रआदिकका पोषणरूप संसार सो । कहिये ऐहिक औ परलोकविषै जो होवै स्वर्गसुखादिकका अनुभवरूप संसार सो । कहिये आमुष्मिक २४०

टीकांक: १९९९ टिप्पणांक: ॐ

२०००
ज्ञानिनां विपरीतोऽस्मान्निश्चयः सम्यगीक्ष्यते ।
स्वस्वनिश्चयतो बद्धो मुक्तोऽहं चेति मन्यते २४१
नाद्वैतमपरोक्षं चेन्न चिद्रूपेण भासनात् ।
अंशेषेण न भातं चेद्द्वैतं किं भासतेऽखिलम् २४२

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५३५ ५३६

९९ तत्त्वविनिश्चयस्य ततो वैलक्षण्यं दर्शयति—

२०००] **ज्ञानिनां निश्चयः अस्मात् विपरीतः सम्यक् ईक्ष्यते** ॥

१) अद्वैतं पारमार्थिकं भाति । च संसारस्त्वपारमार्थिक इति निश्चय इत्यर्थः ॥

२ ततः किमित्याशंक्य स्वस्वनिश्चयानुसारेण फलं भवतीत्याह—

३] **स्वस्वनिश्चयतः अहं बद्धः च मुक्तः इति मन्यते** ॥ २४१ ॥

४ अद्वैतं भातीत्युक्तिः शास्त्रत एव नानुभवतोऽतो न तन्निश्चय इति शंकते (नाद्वैतमिति)—

५] **अद्वैतं अपरोक्षं न चेत्** ॥

६ अनुभवागोचरत्वमसिद्धमिति परिहरति-

७] **न । चिद्रूपेण भासनात्** ॥

॥ २६ ॥ ज्ञानीका निश्चय औ दोनूंके निश्चयका फल ॥

९९ यथार्थवस्तुके *निश्चयकी तिस अज्ञानीके* निश्चयतैं विलक्षणताकूं दिखावैहैं:—

२०००] **ज्ञानिनका निश्चय इस अज्ञानीके निश्चयतैं विपरीत सम्यक् देखियेहै** ॥

१) अद्वैत पारमार्थिक है औ भासताहै । संसार तौ अपारमार्थिक मिथ्या है । ऐसा ज्ञानीका निश्चय है । यह अर्थ है ॥

२ तिस निश्चयतैं क्या होवैहै ? यह आशंकाकरि अपनै अपनै निश्चयके अनुसारसैं फल होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

३] **अपनै अपनै निश्चयतैं "मैं बद्ध हूं"। "मैं मुक्त हूं"। ऐसैं अज्ञानी औ ज्ञानी मानताहै** ॥ २४१ ॥

॥ २ ॥ द्वैतअद्वैतके वादपूर्वक अद्वैतका अपरोक्षत्व औ द्वैतका मिथ्यात्व ॥ २००४–२०७९ ॥

॥ १ ॥ अद्वैतके न भासनैकी शंका औ समाधान ॥

४ "अद्वैत भासताहै" यह कथन शास्त्रतैंहीं है अनुभवतैं नहीं । यातैं तिस अद्वैतका निश्चय बनै नहीं । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

५] **अद्वैत अपरोक्ष नहीं है । ऐसैं जो कहै** ।

६ अद्वैतकूं अनुभवकी अविषयता असिद्ध है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७] **तौ बनै नहीं । काहेतैं चिद्रूपकरि भासनैतैं** ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५२७	[14] दिङ्मात्रेण विभानं तु द्वयोरपि समं खलु । [17] द्वैतसिद्धिवदद्वैतसिद्धिस्ते तावता न किम् २४३	टीकांक: २००८ टिप्पणांक: ५९७

८) "घटः स्फुरति । पटः स्फुरति" इति घटादिष्वनुस्यूतस्फुरणरूपेण भानादित्यर्थः ॥

९ ननु चिद्रूपत्वस्य भानेऽपि तत्कात्स्न्र्येन न प्रतीयत इति शंकते—

१०] अशेषेण न भातं चेत् ॥

११ साकल्येन भानाभावो द्वैतेऽपि समान इत्याह—

१२] द्वैतं किं अखिलं भासते २४२

१३ एवं दोषसाम्यमभिधाय परिहारसाम्यमाह—

१४] दिङ्मात्रेण विभानं तु द्वयोः अपि खलु समम् ॥

१५) दिङ्मात्रेण एकदेशेन द्वयोः द्वैताद्वैतयोरित्यर्थः ॥

१६ एतावता कथं परिहारसाम्यमित्याशंक्याह (द्वैतसिद्धिवदिति)—

१७] ते तावता द्वैतसिद्धिवत् अद्वैतसिद्धिः किं न ॥

१८) ते तव पक्षे । तावता एकदेश-

---

८) "घट स्फुरताहै कहिये भासताहै । पट स्फुरता है ।" ऐसें घटादिकनविषै अनुस्यूत स्फुरणरूपकरि अद्वैतके भासनेतें अद्वैत अनुभवका अविषय नहीं है । यह अर्थ है ॥

९ ननु चिद्रूपताके भान हुये बी सो चिद्रूपता संपूर्णपनैकरि नहीं प्रतीत होवैहै । इसरीतिसें वादी शंका करैहैः—

१०] अद्वैत संपूर्णकरि नहीं भासताहै । ऐसें जब कहै ।

११ संपूर्णपनैकरि भानका अभाव । द्वैत जो जगत् तिसविषै बी समान है । इसरीतिसें सिद्धांती कहैहैः—

१२] तब द्वैत क्या संपूर्ण भासताहै ? ॥ २४२ ॥

१३ ऐसें द्वैतअद्वैत दोनूंपक्षनविषै दोषकी समताकूं कहिके अब दोषनिवृत्तिकी समताकूं कहैहैः—

१४] एकदेशकरि प्रतीति तौ दोनूं द्वैतअद्वैतविषै बी निश्चयकरि समान है॥

१५) दिशामात्रकरि कहिये एकदेशकरि द्वैतअद्वैत दोनूंका भान तुल्य है । यह अर्थ है ॥

१६ इतनैकरि परिहार जो दोषकी निवृत्ति ताकी समता कैसें है? यह आशंकाकरि कहैहैः—

१७] तेरे पक्षविषै तितनैकरि द्वैतसिद्धिकी न्याईं अद्वैतकी सिद्धि क्या नहीं होवैहै ?

१८) तेरे पक्षविषै तितनैकरि कहिये एँक-

---

९७ स्थालीपुलाकन्यायकरि वा एकगृहगतआकाशके दृष्टांतकरि शरीरके भीतरस्थित अंतर्मुखनिश्चयरूप वृत्तिकरि चेतनता । आनंदता । अद्वयता । पूर्णता । नित्यमुक्तता । असंगताआदिक ब्रह्मके विशेषणनकरि युक्त प्रत्यगात्माके ग्रहणतें । प्रत्यगात्मनिष्ठअविद्याअंशकी निवृत्तिकरि प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मका स्वयंप्रकाशताकरि भान संभवैहै ॥ ऐसें एकदेशकी प्रतीतिकरि अद्वैतका निश्चय होवैहै ॥ एकतंडुलके पाककी परिक्षाकरि सर्वतंडुलके पाकका निश्चय होवैहै । इस दृष्टांतकूं स्थालीपुलाकन्याय कहैहैं ॥ एकगृहगत आकाशके असंगताआदिकके निश्चयकरि सारेब्रह्मांडादिगत आकाशके असंगतादिकका निश्चय होवैहै । ताकी न्याईं ॥

टीकांकः २०१९ टिप्पणांकः ॐ

२० द्वैतेन हीनमद्वैतं द्वैतज्ञाने कथं त्विदम् ।
२३ चिद्भानं त्वविरोध्यस्य द्वैतस्यातोऽसमे उभे २४४
२६ एवं तर्हि शृणु द्वैतमसन्मायामयत्वतः ।
तेन वास्तवमद्वैतं परिशेषाद्विभासते ॥ २४५ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५३८ ५३९

प्रतीतिसद्भावेन। द्वैतसिद्धिवत् द्वैतनिश्चय इव अद्वैतसिद्धिः अद्वैतनिश्चयोऽपि किं न भवति किंतु भवत्येवेत्यर्थः ॥ २४३ ॥

१९ पूर्ववादी प्रकारांतरेणाद्वैतासिद्धिं शंकते (द्वैतेनेति)—

२०] अद्वैतं द्वैतेन हीनं इदं द्वैतज्ञाने तु कथम् ॥

२१) अद्वैतं द्वैतरहितं तयोः परस्परविरोधात्तथा सति द्वैतप्रतीतावद्वैतं न संभवतीत्यर्थः॥

२२ ननु तर्हि द्वैतस्याप्यद्वैतविरोधित्वादद्वैते प्रतिभासमाने द्वैतस्यासिद्धिरिति चोद्यं समानमित्याशंक्याह पूर्ववादी—

२३] चिद्भानं तु अस्य द्वैतस्य अविरोधी अतः उभे असमे ॥

२४) भवन्मते चिद्रूपप्रतीतेरेवाद्वैतप्रतीतित्वात्तस्याश्च द्वैतविरोधित्वाभावान्नोभयोः साम्यमिति भावः ॥ २४४ ॥

२५ प्रतीयमानस्यापि द्वैतस्य वास्तवत्वाभावान्न वास्तवाद्वैतविघातित्वमिति परिहरति सिद्धांती—

२६] एवं तर्हि शृणु। द्वैतं असत् मायामयत्वतः तेन परिशेषात् वास्तवं अद्वैतं विभासते ॥

द्वैतकी प्रतीतिके सद्भावकरि द्वैतकी सिद्धिवत् नाम द्वैतके निश्चयकी न्याई अद्वैतकी सिद्धि वी क्या नहीं होवैहै? किंतु होवैहीं है। यह अर्थ है२४३

॥ २ ॥ द्वैतके ज्ञान हुये अद्वैतके असिद्धिकी शंका ॥

१९ पूर्वपक्षी अन्यप्रकारसैं अद्वैतकी असिद्धिकूं शंका करताहैः—

२०] द्वैतकरि रहित अद्वैत है। यह अद्वैत। द्वैतके ज्ञान होते कैसैं संभवै?

२१) अद्वैत कहिये द्वैतरहित। तिन अद्वैत औ द्वैतके परस्पर विरोधतैं तैसैं विरोधके हुये द्वैतकी प्रतीतिके होते अद्वैत संभवै नहीं ॥ यह अर्थ है ॥

२२ ननु तब द्वैतकूं वी अद्वैतका विरोधी होनैतैं अद्वैतके भासमान होते द्वैतकी वी असिद्धि होवैहै। यह तेरा औ मेरा प्रश्न समान है। यह आशंकाकरि पूर्ववादी कहैहैः—

२३] चेतनरूप भान तौ इस द्वैतका अविरोधी है। यातैं दोनूं प्रश्न असम हैं॥

२४) हे सिद्धांती! तुह्मारे मतविषै चेतनरूप प्रतीतिकूंहीं अद्वैतकी प्रतीति होनैतैं। तिस चेतनरूप प्रतीतिकूं हमारे द्वैतके साथि विरोधी होनैके अभावतैं। दोनूं तेरे औ मेरे प्रश्नकी समता नहीं है ॥ यह भाव है ॥ २४४ ॥

२५ प्रतीयमानद्वैतकी वी वास्तवताके अभावतैं द्वैतकूं वास्तवअद्वैतका विरोधीपना नहीं है। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

२६] ऐसैं जब कहै। तब हे वादी श्रवण करः—द्वैत असत् है। मायामय होनैतैं॥ तिस हेतुकरि परिशेषतैं वास्तवअद्वैत भासताहै ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५४०	[31]अचिंत्यरचनारूपं मायैव सकलं जगत् । इति निश्चित्य वस्तुत्वमद्वैते परिशेष्यताम् ॥२४६॥	२०२७
५४१	[32]पुनर्द्वैतस्य वस्तुत्वं भाति चेत्त्वं तथा पुनः । परिशीलय को वात्र प्रयासस्तेन ते वद ॥२४७॥	टिप्पणांकः ॐ

२७) प्रसक्तप्रतिषेधेऽन्यत्राप्रसंगाच्छिष्यमाणे संप्रत्ययः परिशेषः ॥ २४५ ॥

२८ परिशेषप्रकारमेव दर्शयति—

२९] "अचिंत्यरचनारूपं सकलं जगत् माया एव" इति निश्चित्य वस्तुत्वं अद्वैते परिशेष्यताम् ॥

३०) न चिंत्या अचिंत्या । अचिंत्या रचना रूपं यस्य तत्तथाविधं सकलं जगत् मायैव मिथ्यैवेत्यनेन प्रकारेणानिर्वचनीयत्वान्मिथ्यात्वं द्वैतस्य निश्चित्य वास्तवमद्वैतं परिशेष्यताम् इत्यर्थः ॥ २४६ ॥

३१ नन्वेवमद्वैतनिश्चये कृतेऽपि पुनः पुनर्द्वैतसत्यत्वं पूर्ववासनया भातीत्याशंक्य तन्निवृत्तये पुनः पुनर्मिथ्यात्वं विचारयेदित्याह—

३२] पुनः द्वैतस्य वस्तुत्वं भाति चेत् । त्वं तथा पुनः परिशीलय तेन ते अत्र कः वा प्रयासः वद ॥

३३) "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" इति चतुर्थाध्याये आत्मनः श्रवणाद्यावर्तनस्य विहितत्वाद्व्यासेनेति भावः ॥ २४७ ॥

---

२७) प्राप्तके प्रतिषेध हुये अन्यविषै अप्रसंगतें अवशेष रहे वस्तुविषै जो सम्यक्प्रतीति। सो परिशेष कहियेहै ॥ २४५ ॥

॥ ३ ॥ अद्वैतके परिशेषका प्रकार ॥

२८ परिशेषके प्रकारकूंहीं दिखावैहैं:—

२९] अचिंत्यरचनारूप सकलजगत् मायाहीं है। ऐसैं निश्चयकरिके वस्तुपना अद्वैतविषै परिशेष करना ॥

३०) नहीं जो चिंतन करनैकूं योग्य सो कहिये अचिंत्य ॥ अचिंत्य ऐसी जो रचना सो है रूप जिसका। ऐसा जो सकलजगत्। सो मायां कहिये मिथ्याहीं है ॥ इस प्रकारकरि अनिर्वचनीय होनैतें द्वैतके मिथ्यापनैकूं निश्चयकरिके वास्तवअद्वैत परिशेष करना ॥ यह अर्थ है ॥ २४६ ॥

॥ ४ ॥ अद्वैतज्ञानके अनंतर द्वैतकी वस्तुताके भानमैं प्रश्न औ उत्तर ॥

३१ ननु ऐसैं अद्वैतके निश्चय हुये बी पूर्ववासनासैं फेरि फेरि द्वैतकी सत्यता भासती- है। यह आशंकाकरि तिसकी निवृत्तिअर्थ फेरि फेरि द्वैतके मिथ्यापनैकूं विचार कर। ऐसैं कहैहैं:—

३२] फेरि द्वैतकी वस्तुता जब भासतीहै। तब तूं तैसैं फेर विचार कर॥ तिस विचारकरि तेरेकूं इहां कौन प्रयास है? सो कथन कर ॥

३३) "श्रुतिके उपदेशतैं वारंवारआवृत्ति जो श्रवणादिकका अनुष्ठान। सो करनै योग्य है" यह जो शारीरकके चतुर्थअध्यायविषै सूत्र है। तिसविषै व्यासभगवान्करि आत्माके श्रवणादिकके आवर्तनकूं विधान किया होनैतैं वारंवार विचार करना योग्य है ॥ यह भाव है ॥ २४७ ॥

टीकांकः २०३४ टिप्पणांकः ॐ	३५ कियंतं कालमिति चेत्खेदोऽयं द्वैते इष्यताम् । अद्वैते तु न युक्तोऽयं सर्वानर्थनिवारणात्॥२४८॥ ३६ क्षुत्पिपासादयो दृष्टा यथापूर्वं मयीति चेत् । ३९ मच्छब्दवाच्येऽहंकारे दृश्यतां नेति को वदेत्२४९	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५४२ ५४३

३४ कियंतं कालमित्थं विचारणीयमित्याशंक्य "तत्रापरोक्षविद्याप्तौ विचारोऽयं समाप्यते" इति विचारकालावधेरुक्तत्वान्नाद्वैतविचारेऽयं खेदो युक्तः किंतु द्वैतप्रतिभास एव युक्त इत्याह—

३५] कियंतं कालं इति चेत् । अयं खेदः द्वैते इष्यतां । अद्वैते तु अयं न युक्तः सर्वानर्थनिवारणात् ॥ २४८ ॥

३६ नन्वेवमद्वैतात्मतत्त्वापरोक्षज्ञानवत्यपि मयि क्षुत्पिपासाऽनर्थस्य परिदृश्यमानत्वादनर्थनिवारकत्वमात्मज्ञानस्यासिद्धमिति शंकते—

३७] क्षुत्पिपासादयः मयि यथापूर्वं दृष्टाः इति चेत् ।

३८ किं मच्छब्दवाच्येऽहंकारे दृश्यंते उत मच्छब्दोपलक्षिते चिदात्मनीति विकल्प्य आद्यमंगीकरोति—

३९] मच्छब्दवाच्ये अहंकारे दृश्यतां । न इति कः वदेत् ॥

४०) न द्वितीयः । तस्यासंगत्वादविषयत्वाच्चेति बहिरेव द्रष्टव्यम् ॥ २४९ ॥

॥ ९ ॥ विचारकी अवधिके प्रश्नपूर्वक अद्वैतके विचारमैं खेदकी अयोग्यता ॥

३४ ननु कितनै कालपर्यंत ऐसैं श्रवणादिकरूप विचार करनैकूं योग्य है? यह आशंकाकरि "तहां अपरोक्षविद्याकी प्राप्ति हुये यह विचार समाप्त होवैहै" ऐसैं १९वें श्लोकविषै विचारकालके अवधिकूं कथन किया होनैतैं । अद्वैतके विचारविषै यह खेद युक्त नहीं है। किंतु द्वैतके प्रतीतिविषैहीं यह खेद युक्त है । ऐसैं कहैहैं:—

३५] कितनै कालपर्यंत विचार करना। ऐसैं जब कहै। तब यह खेद द्वैतके विचारविषै अंगीकार करना। अद्वैतके विचारविषै यह खेद युक्त नहीं है। काहेतैं अद्वैतके विचारकरि सर्वअनर्थके निवारणतैं २४८

॥ ६ ॥ क्षुधापिपासादिककूं अहंकारकी धर्मता ॥

३६ ननु ऐसैं अद्वैतआत्मतत्त्वके अपरोक्षज्ञानवाले मेरेविषै बी क्षुधातृषाआदिरूप अनर्थके परिदृश्यमान होनैतैं। आत्मज्ञानकूं अनर्थका निवारकपना असिद्ध है । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

३७] क्षुधातृषाआदिकसंसारधर्म मेरेविषै जैसैं पूर्व अज्ञानकालमैं थे तैसैं देखियेहैं । ऐसैं जब कहै ।

३८ क्षुधातृषाआदिक क्या मत् कहिये मेरे। इस शब्दके वाच्य अहंकारविषै देखियेहैं अथवा मत् शब्दकरि उपलक्षित चिदात्माविषै देखियेहैं? ऐसैं दोविकल्पकरिके प्रथमपक्षकूं सिद्धांती अंगीकार करैहैं:—

३९] तब मत्शब्दके वाच्य अहंकारविषै भलैं देखो । नहीं देखो ऐसैं कौन कहताहै ॥

४०) चिदात्माविषै देखियेहैं । यह द्वितीयपक्ष बनै नहीं। काहेतैं तिस चिदात्माकूं असंग होनैतैं औ अविषय होनैतैं । यह उत्तर मूलश्लोकसैं बाहिरहीं देखना ॥ २४९ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५४४	[४२] चिद्रूपेऽपि प्रसज्येरंस्तादात्म्याध्यासतो यदि । [४४] मांध्यासं कुरु किंतु त्वं विवेकं कुरु सर्वदा॥२५०॥	२०४१
५४५	[४६] झटित्यध्यास आयाति दृढवासनयेति चेत् । आवर्तयेद्विवेकं च दृढं वासयितुं सदा ॥ २५१ ॥	टिप्पणांकः
५४६	[४८] विवेके द्वैतमिथ्यात्वं युक्त्यैवेति न भण्यताम् । अचिंत्यरचनात्वस्यानुभूतिर्हि स्वसाक्षिकी २५२	ॐ

४१ वस्तुतस्तत्प्रतीत्यभावेऽपि भ्रांत्या तत्प्रसक्तिः स्यादिति शंकते (चिद्रूपेऽपीति)—

४२] तादात्म्याध्यासतः यदि चिद्रूपे अपि प्रसज्येरन् ॥

४३ एवं तर्ह्यनर्थहेतोरध्यासस्य निवृत्तये सदा विवेकः क्रियतामित्याह (माध्यासमिति)—

४४] त्वं अध्यासं मा कुरु किंतु सर्वदा विवेकं कुरु ॥ २५० ॥

४५ अनादिवासनावशात् पुनरध्यासागमने तन्निवृत्तये विवेक एवावर्तनीयो नोपायांतरमित्याह (झटितीति)—

४६] दृढवासनया झटिति अध्यासः आयाति इति चेत् । दृढं वासयितुं सदा विवेकं च आवर्तयेत् ॥ २५१ ॥

४७ ननु विचारेण द्वैतस्य मायामयत्वं युक्त्यैव सिध्यति नानुभवत इत्याशंक्याचिंत्यरचनात्वलक्षणमिथ्यात्वानुभवस्य सर्वसाक्षित्वान्मैवमिति परिहरति—

४८] विवेके द्वैतमिथ्यात्वं युक्त्या

---

४१ वस्तुतैं तिन क्षुधादिकनकी प्रतीतिके अभाव हुये वी भ्रांतिसैं आत्माविषै तिन क्षुधादिकनकी प्राप्ति होवैगी । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैं:—

४२] तादात्म्यअध्यासतैं जब चिदात्माविषै वी क्षुधादिक प्राप्त होवैंगे । ऐसैं जो मानै ।

४३ जब ऐसैं है । तब अनर्थके हेतु अध्यासकी निवृत्तिअर्थ सदा विवेककूंहीं करना । ऐसैं कहैहैं:—

४४] तौ तूं अध्यासकूं मत कर। किंतु सर्वदा विवेककूं कर ॥ २५० ॥

४५ अनादिवासनाके वशतैं फेर अध्यासके आगमन हुये तिसकी निवृत्तिअर्थ विवेकहीं वारंवार करनैकूं योग्य है। और उपाय नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

४६] दृढवासनाकरि तत्काल अध्यास आवताहै । ऐसैं जब कहै। तब दृढवासनायुक्त करनैकूं सदा विवेककूंहीं आवर्त्तन करना ॥ २५१ ॥

॥ ७ ॥ विचारकरि द्वैतके मिथ्यापनैके अनुभववैं शंकासमाधान ॥

४७ ननु विचारकरि जो द्वैतका मिथ्यापना है । सो युक्तिकरिहीं सिद्ध होवैहै। अनुभवतैं नहीं ॥ यह आशंकाकरि अचिंत्यरचनारूप मिथ्यापनैके अनुभवकूं सर्वसाक्षिवाला होनैतैं द्वैतका मिथ्यापना युक्तिकरिहीं सिद्ध है अनुभवतैं नहीं । यह कथन बनै नहीं। ऐसैं परिहार करैहैं:—

४८] विवेक जो विचार। ताके हुये जो

टीकांक: २०४९ टिप्पणांक: ॐ	चिदप्यचिंत्यरचना यदि तर्ह्यस्तु नो वयम् । चितिं सुचिंत्यरचनां ब्रूमो नित्यत्वकारणात् २५३ प्रागभावो नानुभूतश्चितेर्नित्या ततश्चितिः ॥ द्वैतस्य प्रागभावस्तु चैतन्येनानुभूयते ॥ २५४ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५४७ ५४८

एव इति न भण्यतां हि अचिंत्यरचनात्वस्य अनुभूतिः स्वसाक्षिकी २५२

४९ नन्वचिंत्यरचनात्वं मिथ्यात्वपदार्थलक्षणमुक्तं चिदात्मन्यतिव्याप्तमिति शंकते—

५०] चित् अपि अचिंत्यरचना यदि ॥

५१ प्रागभावयुक्तत्वे सत्यचिंत्यरचनात्वं मिथ्यात्वलक्षणमिति विवक्षुरचिंत्यरचनात्वमात्मनोऽङ्गीकरोति—

५२] तर्हि अस्तु ॥

५३ एवमंगीकारेऽपसिद्धांत इत्याशंक्य परिहरति (नो वयमिति)—

५४] वयं चितिं सुचिंत्यरचनां नो ब्रूमः ॥

५५ तत्र हेतुमाह—

५६] नित्यत्वकारणात् ॥

५७) वयं चितिं सुचिंत्यरचनां नो ब्रूम इति योजना ॥ २५३ ॥

५८ चितेर्नित्यत्वं कुत इत्याशंक्य प्रागभावानुभवाभावादित्याह (प्रागभाव इति)-

---

द्वैतका मिथ्यापना है। सो युक्तिकरिहीं है। ऐसैं नहीं कहा चाहिये ॥ जातैं अचिंत्यरचनापनैकी अनुभूति सर्वसाक्षिगम्य है ॥ २५२ ॥

॥ ८ ॥ अचिंत्यरचनारूप मिथ्यापदार्थके लक्षणमैं शंकासमाधान ॥

४९ ननु अचिंत्यरचनापना जो मिथ्यापदार्थका लक्षण २४६ श्लोकविषै कहा। सो लक्षण चिदात्माविषै अतिव्याप्तिकूं पायाहै। इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

५०] चेतन बी अचिंत्यरचनावाला है। ऐसैं जब कहै।

५१ प्राक्अभावकरि युक्तताके होते अचिंत्यरचनापना मिथ्यापनैका लक्षण है। ऐसैं कहनैकूं इच्छतेहुये सिद्धांती आत्माके अचिंत्यरचनापनैकूं अंगीकार करैहैः—

५२] तब ऐसैं चेतन बी अचिंत्यरचनावाला होहु ॥

५३ ऐसैं चेतनकूं अचिंत्यरचनावाला अंगीकार किये अपसिद्धांत होवैगा। यह आशंकाकरि सिद्धांती परिहार करैहैः—

५४] हम चेतनकूं सुचिंत्यरचनावाला नहीं कहतेहैं ॥

५५ तिस चेतनकी सुचिंत्यरचनाके अभावविषै हेतुकूं कहैहैः—

५६] नित्यतारूप कारणतैं ॥

५७) नित्यतारूप कारणतैं कहिये उत्पत्तिके अभावतैं हम चेतनकूं सुचिंत्यरचनावाला कहिये सुखसैं चिंतन करनैयोग्य है रचना कहिये उत्पत्ति जिसकी। ऐसा नहीं कहतेहैं॥ यह योजना है ॥ २५३ ॥

॥ ९ ॥ चेतनका नित्यत्व औ द्वैतका अनित्यत्व ॥

५८चेतनकी नित्यता काहेतैं है? यह आशंकाकरि चेतनके प्राक्अभावके अनुभवके अभावतैं चेतनकी नित्यता है। ऐसैं कहैहैः—

५९] चितेः प्रागभावः न अनुभूतः ततः चितिः नित्या ॥

६०) यतः चितेः प्रागभावो नानुभूतस्ततो नित्या इति योजना ॥ इदमत्राकूतं । चितेः प्रागभावोऽस्तीति वदन् प्रष्टव्यः । चित्प्रागभावः किं चितानुभूयते उतान्येन । नान्येन । तदन्यस्य जडत्वेनानुभवितृत्वानुपपत्तेः । चितानुभूयत इत्यपि पक्षे किं चिदंतरेणोत स्वेनैव । नाद्यः । अद्वैतवादे चिदंतरस्यैवाभावात् । तत्स्वीकारेऽपि चित्प्रतियोगिकस्य अभावस्य चिद्ग्रहणमंतरेण गृहीतुमशक्यत्वात् । तस्या अपि गृह्यमाणत्वे घटादिवदचित्त्वापत्तेः । नापि द्वितीयः । स्वाभावस्य स्वेन गृहीतुमशक्यत्वादिति ॥

६१ ननु द्वैतस्य प्रमात्रादिभेदरूपत्वात्तदभावस्य च तेनैवानुभवितुमशक्यत्वादनुभवित्रंतराभावाच्च चैतन्यवदेव द्वैतस्यापि नित्यत्वापत्तिरित्याशंक्यानुभवित्रंतराभावोऽसिद्ध इति परिहरति—

६२] द्वैतस्य प्रागभावः तु चैतन्येन अनुभूयते ॥

५९] चेतनका प्रागभाव अनुभव किया नहीं है । तातैं चेतन नित्य है ॥

६०) जातैं चेतनका प्रागभाव अनुभव किया नहीं है । तातैं चेतन नित्य है । यह योजना है ॥ इहां यह आशय है:—चेतनका प्रागभाव है । ऐसैं कहनैहारा वादी पूछनैकूं योग्य है:—चेतनका प्रागभाव क्या चेतनकरि अनुभव करियेहै वा अन्यजडकरि? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमैं चेतनका प्रागभाव अन्यकरि अनुभव करियेहै । यह दूसरापक्ष बनै नहीं । काहेतैं तिस चेतनतैं अन्यकूं जड होनैकरि अनुभवकर्त्तापनैके असंभवतैं ॥ औ चेतनका प्रागभाव चेतनकरि अनुभव करियेहै । इस प्रथमपक्षविषै बी क्या अन्यचेतनकरि अनुभव करियेहै वा जिस चेतनका प्रागभाव है । तिस आपहींकरि अपना प्रागभाव अनुभव करियेहै ? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं । काहेतैं अद्वैतवादविषै दूसरेचेतनकेहीं अभावतैं ॥ औ तिस दूसरेचेतनके स्वीकार हुये बी चेतन है प्रतियोगी जिसका । ऐसैं अभावकूं चेतनके ग्रहणविना जाननैकूं अशक्य होनैतैं ॥ औ तिस चेतनके बी ग्रहण हुये घटादिकनकी न्याई चेतनकूं जडताकी प्राप्तितैं औ आपहींकरि आपका प्रागभाव अनुभव करियेहै । यह द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं । काहेतैं अपनै अभावकूं आपकरि ग्रहण करनैकूं अशक्य होनैतैं ॥

६१ ननु द्वैतकूं प्रमाताआदिकभेदरूप होनैतैं तिस द्वैतके अभावकूं तिस द्वैतहींकरि अनुभव करनैकूं अशक्य होनैतैं । तिस द्वैतके प्रागभावके अन्यअनुभवकर्ताके अभावतैं चैतन्यकी न्याईहीं द्वैतकूं बी नित्यताकी प्राप्ति होवैगी । यह आशंकाकरि द्वैतके प्रागभावके अन्य अनुभव करनैहारेका अभाव असिद्ध है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

६२] द्वैतका प्रागभाव तौ चैतन्यकरि अनुभव करियेहै ॥

९८ जिसका अभाव होवै सो अभावका प्रतियोगी है ॥ प्रतियोगीकी प्रतीतिपूर्वक अभावकी प्रतीति होवैहै । यह नियम है ॥ यातैं चेतनरूप प्रतियोगीकी प्रतीतिविना चेतनके अभावकी प्रतीति संभवै नहीं ॥ चेतनके प्रतीतिके मानै चेतनकूं घटादिककी न्याई जडताकी प्राप्ति होवैगी ॥

९९ अपने अभावकालमैं आपकूं अविद्यमान होनैतैं आपके अभावका आपकरि ग्रहण होवै नहीं ॥

टीकांक: २०६३ टिप्पणांक: ॐ	६५ प्रागभावयुतं द्वैतं रच्यते हि घटादिवत् । तथापि रचनाऽचिंत्या मिथ्या तेनेंद्रजालवत् २५५ ६८ चित्प्रत्यक्षा ततोऽन्यस्य मिथ्यात्वं चानुभूयते । नाद्वैतमपरोक्षं चेत्येतन्न व्याहतं कथम् ॥ २५६ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्रोकांक: ५४९ ५५०

६३) जाग्रदादिद्वैताभावस्य सुषुप्तौ साक्षिणाऽनुभूयमानत्वात् "तमसः साक्षी सर्वस्य साक्षी" इति श्रुतेश्चेति भावः ॥ २५४ ॥

६४ एवं च प्रागभावयुतत्वे सति अचिंत्यरचनात्वस्य मिथ्यात्वलक्षणस्य सद्भावात् द्वैतामिथ्यात्वं सिद्धमित्याह—

६५] **प्रागभावयुतं द्वैतं घटादिवत् रच्यते हि । तथापि रचना अचिंत्या । तेन इंद्रजालवत् मिथ्या ॥**

६६) **प्रागभावयुतं** इति हेतुगर्भितं विशेषणं । द्वैतं प्रागभावयुतत्वात् घटादिवद्रच्यते हि । तथापि रच्यमानत्वेऽपि । तस्य द्वैतस्य **रचनाऽचिंत्या तेन** रच्यमानत्वे सत्यचिंत्यरचनात्वेनैंद्रजालिकमासादवत् मिथ्येत्यर्थः ॥ २५५ ॥

६७ चितिस्तावत्स्वप्रकाशत्वेन नित्यापरोक्षा च भासते चिद्व्यतिरिक्तस्य च मिथ्यात्वं तयैव चिताऽनुभूयते इतिदर्शितं। एवं च सत्यद्वैतस्यापरोक्षत्वं नास्तीति वदतो व्याघातश्च स्यादित्याह—

६८] **चित् प्रत्यक्षा च ततः अन्यस्य**

---

६३) जाग्रदादिरूप द्वैतके अभावकूं सुषुप्तिविषै साक्षीकरि अनुभूयमान होनैतैं औ "तम जो अज्ञान।ताका साक्षी है औ सर्वका साक्षी है" इस श्रुतितैं ॥ यह भाव है ॥२५४॥

॥ १० ॥ द्वैतके मिथ्यापनैकी सिद्धि ॥

६४ ऐसैं प्राक्‌अभावयुक्त हुये अचिंत्यरचनापनैरूप मिथ्यापनैके लक्षणके सद्भावतैं द्वैतका मिथ्यापना सिद्ध भया। ऐसैं कहैहैं:—

६५]**प्रागभावकरि युक्त जो द्वैत कहिये जगत् सो घटादिककी न्याई रचियेही है। तथापि द्वैतकी रचना अचिंत्य है। तिस हेतुकरि इंद्रजालकी न्याई द्वैत मिथ्या है ॥**

६६) "प्रागभावकरि युक्त" यह जो मूलविषै द्वैतका विशेषण है। सो हेतुगर्भित है। यातैं द्वैत प्रागभावकरि युक्त होनैतैं घटादिककी न्याई रचियेही है। तथापि कहिये रच्यमान हुये बी तिस द्वैतकी रचना अचिंत्य है। तिस रच्यमानताके हुये अचिंत्यरचनापनैरूप हेतुकरि इंद्रजालरचित राजमंदिरकी न्याई द्वैत मिथ्या है ॥ यह अर्थ है ॥ २५५ ॥

॥ ११ ॥ अद्वैतकूं अपरोक्ष नहीं माननैमैं व्याघातदोष ॥

६७ चेतन । प्रथम स्वप्रकाश होनैकरि नित्य औ अपरोक्ष भासैहै औ चेतनतैं व्यतिरिक्त जगत्का मिथ्यापना तिसीहीं चेतनकरि अनुभव करियेहै। ऐसैं २४२–२५५ श्लोकपर्यंत दिखाया ॥ इसप्रकार हुये अद्वैत अपरोक्ष नहीं है। ऐसैं कहनैहारे वादीका व्याघात होवैगा। यह कहैहैं:—

६८] **चेतन अपरोक्ष है औ तिस चेतनतैं अन्य द्वैतका मिथ्यापना अनु-**

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५५१	७१इत्थं ज्ञात्वाप्यसंतुष्टाः केचित्कुत इतीर्यताम् । ७३चार्वाकादेः प्रबुद्धस्याप्यात्मा देहः कुतो वद २५७	२०६९
५५२	७६सम्यग्विचारो नास्त्यस्य धीदोषादिति चेत्तथा । असंतुष्टास्तु शास्त्रार्थं न त्वैक्षंत विशेषतः २५८	टिप्पणांकः ॐ

मिथ्यात्वं अनुभूयते । च अद्वैतं अपरोक्षं न इति एतत् कथं न व्याहतम्॥

६९) चिद्रूपेण भासनादित्यभिहितयुक्तिसमुच्चयार्थः चशब्दः । अद्वैतमपरोक्षं नेत्येतत्कथं न व्याहृतं चेति योजना ॥२५६॥

७० एवं वेदांतार्थं जानतामपि पुरुषाणां केषांचिदत्र विश्वासः कुतो न जायत इति पृच्छति—

७१] इत्थं ज्ञात्वा अपि केचित् असंतुष्टाः कुतः इति ईर्यताम् ॥

७२ सम्यग्विचारशून्यत्वादिति विवक्षुः प्रतिबंदी गृह्णाति (चार्वाकादेरिति)—

७३] प्रबुद्धस्य चार्वाकादेः अपि देहः आत्मा कुतः वद ॥

७४) आदिशब्देन पामरा गृह्यंते । प्रबुद्धस्य ऊहापोहकुशलस्य ॥ २५७ ॥

७५ प्रतिबंदीमोचनं शंकते(सम्यगिति)—

७६] अस्य धीदोषात् सम्यग्विचारः न अस्ति इति चेत् ॥

७७ साम्येन समाधत्ते—

भव करियेहै ॥ यातैं अद्वैत अपरोक्ष नहीं है । यह वचन व्याघातयुक्त कैसैं नहीं होवैगा ?

६९) मूलविषै जो च शब्द है । सो "चेतनरूपकरि भासनैतैं" ऐसैं २४२ श्लोकविषै कथन करी युक्तिके मिलावनैअर्थ है ॥ "अद्वैत अपरोक्ष नहीं है" यह २४२ श्लोकउक्तवचन कैसैं व्याघातयुक्त नहीं होवैहै? किंतु होवैही है । ऐसैं योजना है ॥ २५६ ॥

॥ १२ ॥ श्लोक २४२–२५६ उक्त वेदांतअर्थके जाननैवालेके असंतोषमैं शंकासमाधान ॥

७० ऐसैं २४२–२५६ श्लोकउक्त वेदांतके अर्थकूं जाननैहारे बी कितनेक पुरुषनकूं इस वेदांतअर्थविषै विश्वास काहेतैं नहीं होवैहै ? इसरीतिसैं वादी सिद्धांतीकूं पूछताहैः—

७१] ऐसैं जानिके बी केइक असंतुष्ट काहेतैं हैं ? यह मुजकूं कहो ॥

७२ सम्यक्विचारकरि शून्य होनैतैं तिनकूं अविश्वास है । ऐसैं कहनैकूं इच्छतेहुये सिद्धांती प्रतिबंदी जो वचनका बंधन । तिसकरि वादीका रोधन करैहैः—

७३] प्रबुद्ध जे चार्वाकआदिक हैं । तिसकूं बी देह आत्मा काहेतैं है? सो तूं कथन कर ॥

७४) आदिशब्दकरि पामर ग्रहण करियेहैं ॥ प्रबुद्ध कहिये विकल्प औ खंडनविषै कुशल जे चार्वाकआदिक हैं । तिसकूं देहविषै आत्मबुद्धि काहेतैं है ? सो तूं कथन कर ॥ २५७ ॥

७५ अब वादी प्रतिबंदीकरि छूटनैकूं शंका करैहैः—

७६] इस चार्वाकादिककूं बुद्धिके दोषतैं सम्यक्विचार नहीं है । ऐसैं जो कहै तौ ।

७७ सिद्धांती समताकरि समाधान करैहैः—

टीकांक: २०७८ टिप्पणांक: ॐ

यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
इति श्रौतं फलं दृष्टं नेति चेद्दृष्टमेव तत् ॥२५९॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५५३

७८] तथा असंतुष्टाः तु विशेषतः शास्त्रार्थं न तु ऐक्षंत ॥

७९) धीदोषादित्यनुषज्यते । तुशब्द एवशब्दार्थः ॥ २५८ ॥

८० इत्थं तत्त्वं विचार्य तज्जन्यतत्त्वज्ञानफलं विचारयितुं तत्प्रतिपादिकां श्रुतिं पठति (यदेति)—

८१] अस्य हृदि श्रिताः ये कामाः सर्वे यदा प्रमुच्यंते ॥

८२) "अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" इत्यस्य मंत्रस्योत्तरार्धम् ॥ अस्य मुमुक्षोः हृदि श्रिताः ये कामाः तादात्म्याध्यासमूला इच्छादयः संति । ते सर्वे यदा यस्मिन्काले प्रमुच्यंते तत्त्वज्ञानेनाध्यासनिवृत्तौ निवर्तंते । "अथ" तदानीमेव "मर्त्यः" पूर्वं देहतात्म्याध्यासेन मरणशीलः पुरुषः "अमृतः" अध्यासाभावेन तद्रहितो भवति । तत्र हेतुमाह "अत्र ब्रह्म समश्नुते" इति अत्रास्मिन्नेव देहे ब्रह्म सत्यादिलक्षणं समश्नुते सम्यगाप्नोतीत्यस्याः श्रुतेरर्थः ॥

७८] तैसैंहीं असंतुष्ट जे पुरुष हैं। वे बुद्धिके दोषतैं विशेषकरि शास्त्रके अर्थकूं नहीं विचारतेहैं ॥

७९) इहां बुद्धिके दोषतैं । यह जो उच्चारण है। सो पूर्वार्द्धसैं संबंधकूं पावैहै औ मूलविषै जो तौशब्द है सो निश्चयके वाची हीं शब्दके पर्याय एवशब्दके अर्थ है ॥ २५८ ॥

॥ ७ ॥ तत्त्वज्ञानका फल
॥ २०८०—२१७७ ॥

॥ १ ॥ तत्त्वज्ञानके फलकी प्रतिपादक श्रुतिका व्याख्यान
॥ २०८०—२१३६ ॥

॥ १ ॥ ज्ञानके फलकी प्रतिपादक श्रुति औ ताकी अनुभवसिद्धतामैं शंकासमाधान ॥

८० ऐसैं ब्रह्मात्मारूप तत्त्वकूं विचारकरिके तिस तत्त्वविचारतैं जन्य तत्त्वज्ञानके फलके विचारनैकूं तिस तत्त्वज्ञानके फलकी प्रतिपादक कठश्रुतिकूं पठन करैहैं:—

८१] "जब इस मुमुक्षुके हृदयविषै स्थित जे इच्छारूप काम हैं। वे सर्व छूटतेहैं" ॥

८२) "तब मर्त्य अमृत होवैहै औ इहांहीं ब्रह्मकूं पावताहै ॥" यह इस मूलश्लोकके पूर्वार्द्धउक्त वेदके मंत्रका उत्तरार्द्ध है ॥ इस मुमुक्षुके हृदयविषै आश्रित जे काम कहिये तादात्म्याध्यासरूप मूलवाले इच्छादिक हैं । वे सर्व जब छूटतेहैं कहिये तत्त्वज्ञानकरि अध्यासकी निवृत्तिके होते निवृत्त होवैहैं । तबहीं मर्त्य कहिये ज्ञानसैं पूर्व देहके साथि तादात्म्यअध्यासकरि मरणस्वभाववाला पुरुष । अमृत कहिये अध्यासके अभावकरि मरणरहित होवैहै ॥ तिस अमृत होनैविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां इसहीं देहविषै ब्रह्मकूं सम्यक् प्राप्त होवैहै । यह इस तत्त्वज्ञानके फलकी प्रतिपादक श्रुतिका अर्थ है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५५४	यदा सर्वे प्रभिद्यंते हृदयग्रन्थयस्त्विति । कामा ग्रंथिस्वरूपेण व्याख्याता वाक्यशेषतः ॥ २६० ॥	२०८३
५५५	अहंकारचिदात्मानावेकीकृत्याविवेकतः । इदं मे स्यादिदं मे स्यादितीच्छाः कामशब्दिताः ॥ ६१ ॥	टिप्पणांकः ॐ

८३ श्रुत्या प्रतिपादितं फलं कामनिवृत्त्यादिलक्षणं नानुभवसिद्धं किंतु शाब्दमेवेति शंकते—

८४] इति फलं श्रौतं दृष्टं न इति चेत्।

८५ समनंतरश्रुतिवाक्यतात्पर्यालोचनया तस्य दृष्टत्वं सिध्यतीत्यभिप्रायेण परिहरति (दृष्टमेवेति)—

८६] तत् दृष्टं एव ॥ २५९ ॥

८७ तस्य द्रष्टृत्वस्पष्टीकरणाय तद्वाक्यमुदाहृत्य तस्यार्थमाह—

८८] यदा सर्वे हृदयग्रंथयः तु प्रभिद्यंते इति वाक्यशेषतः कामाः ग्रंथिस्वरूपेण व्याख्याताः ॥

८९) अनेन वाक्यशेषेण कामप्रमोकस्य ग्रंथिभेदत्वेन व्याख्यातत्वात् ग्रंथिभेदस्य अहंकारचिदात्मनोस्तादात्म्याध्यासनिवृत्तिलक्षणस्यानुभवसिद्धत्वान्नाप्रत्यक्षतेति भावः। वाक्यशेषतः इत्यनेन वाक्येनेत्यर्थः ॥ २६० ॥

९० ननु लोके कामशब्देनेच्छाभेद एवोच्यते अतः कथं तस्य ग्रंथित्वेन व्याख्यान-

---

८३ ननु इस श्रुतिनैं प्रतिपादन किया जो कामनिवृत्तिआदिरूप तत्त्वज्ञानका फल । सो अनुभवसिद्ध नहीं है । किंतु शास्त्रसिद्धही है । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

८४] यह जो फल है । सो श्रुतिकरि सुन्याहै । देख्या नहीं है । ऐसैं जो कहै ।

८५ उक्तश्रुतिके पीछेही विद्यमान श्रुतिवाक्यके तात्पर्यके विचारनैंकरि तिस श्रुतिउक्त तत्त्वज्ञानके फलका दृष्टपना नाम देखनाही सिद्ध होवैहै । इस अभिप्रायकरि सिद्धांती परिहार करैहै:—

८६] तौ ऐसैं बनै नहीं । काहेतैं सो श्रुतिउक्तफल दृष्ट कहिये विद्वानोकरि अनुभव कियाहीं है ॥ २५९ ॥

॥ २ ॥ श्लोक २५९ उक्त श्रुतिअर्थ (कामरूप ग्रंथिभेद)करि तिसकें अर्थकी स्पष्टता ॥

८७ तिस कामनिवृत्तिरूप ज्ञानके फलके दृष्टपनैंके स्पष्ट करनैंवास्ते तिस २५९ श्लोकउक्तश्रुतिके पीछली श्रुतिके वाक्यकूं उदाहरणकरिके तिसके अर्थकूं कहैहैं:—

८८] "जब सर्व हृदयग्रंथि भेद जो नाश ताकूं पावैहैं" इस वाक्यशेषतैं काम जे हैं । वे ग्रंथिस्वरूपकरि व्याख्यान कियेहैं ॥

८९) इस वाक्यशेषकरि कामनिवृत्तिकूं ग्रंथिभेद होनैंकरि व्याख्यान कियाहोनैंतैं औ अहंकार अरु चिदात्माके तादात्म्यअध्यासकी निवृत्तिरूप ग्रंथिभेदकूं अनुभवसिद्ध होनैंतैं । श्रुतिउक्तकामनिवृत्तिरूप ज्ञानके फलकी अप्रत्यक्षता नहीं है । यह भाव है ॥ २६० ॥

॥ ३ ॥ कामशब्दका अर्थ ॥

९० ननु लोकविषै कामशब्दकरि इच्छाका भेदही कहियेहै । यातैं तिस कामका श्रुतिविषै ग्रंथिरूपकरि व्याख्यान कैसैं किया है ?

टीकांक: २०९१ टिप्पणांक: ६००	अप्रवेश्य चिदात्मानं पृथक्पश्यन्नहंकृतिम् । इच्छंस्तु कोटिवस्तूनि न बाधो ग्रंथिभेदतः २६२	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५५६

मित्याशंक्याध्यासमूलस्यैव इच्छाविशेषस्य कामशब्दवाच्यत्वं नेच्छामात्रस्येत्याह—

९१] अहंकारचिदात्मानौ अविवेकतः एकीकृत्य "मे इदं स्यात् मे इदं स्यात्" इति इच्छाः कामशब्दिताः ॥ २६१ ॥

९२ नन्वध्यासमूलस्यैव कामस्य त्याज्यत्वे सतीतरोऽभ्युपेतव्यः स्यादित्याशंक्य बाधकत्वाभावादभ्युपेयत एवेत्याह(अप्रवेश्येति)-

९३] चिदात्मानं अप्रवेश्य अहंकृतिं पृथक् पश्यन् कोटिवस्तूनि इच्छन् तु ग्रंथिभेदतः बाधः न ॥

९४) अहंकारे चिदात्मानमप्रवेश्य तादात्म्याध्यासेनानंतर्भाव्येत्यर्थः ॥ २६२ ॥

यह आशंकाकरि अध्यास है मूलहीं जिसका। ऐसी इच्छाविशेषकूं कामशब्दकी वाच्यता है। इच्छामात्रकूं कामशब्दकी वाच्यता नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

९१] अहंकार औ चिदात्माकूं अविवेकतैं एककी न्याई करीके "मेरेकूं यह होवै। मेरेकूं यह होवै" इसप्रकारकी जे इच्छा हैं। वे कामशब्दकरि कहियेहैं ॥ यातैं कठवल्लीकी श्रुतिउक्त कामकूं ग्रंथिरूपता है ॥ २६१ ॥

॥ ४ ॥ अध्यासरहित काम जो इच्छा। ताका अंगीकार ॥

९२ ननु अध्यासरूप मूलवालेहीं कामकी त्याज्यताके हुये इतर जो अध्यासरूप मूलरहित काम। सो अंगीकार करनैकूं योग्य होवैगा ॥ यह आशंकाकरि बाधकके अभावतैं अध्यासरहित कहिये आभासरूप काम अंगीकार करियेहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

९३] अहंकारविषै चिदात्माकूं अप्रवेश करीके। अहंकारकूं चिदात्मातैं भिन्न देखताहुवा कोटिवस्तुनकूं इच्छै। तौ बी ग्रंथिके भेदतैं साक्षीआत्माका वा बोधमोक्षका बाध नहीं है ॥

९४) अहंकारविषै चिदात्माकूं अप्रवेश करीके कहिये तादात्म्यअध्यासकरि अंतर्भाव नहीं करीके। यह अर्थ है ॥ २६२ ॥

६०० इहां यह रहस्य है:—चिदाभास देह औ साक्षीके साथि क्रमतैं सहज कर्मज औ भ्रमज भेदकरि अहंकारका **तादात्म्यअध्यास तीनभांतिका** है ॥

(१) चिदाभासके साथि जो अहंकारका तादात्म्य सो **सहज** (स्वाभाविक) **तादात्म्यअध्यास** है। काहेतैं अहंकार औ चिदाभासके साथिहीं उत्पत्ति अरु नाशके होनैतैं ॥ औ

(२) वर्त्तमानदेहके साथि जो अहंकारका तादात्म्य। सो **कर्मज** (प्रारब्धकर्मतैं जन्य) **तादात्म्यअध्यास** है। काहेतैं जीवत्अवस्थाविषै "मैं मनुष्य हूं" इत्यादि सर्वजनका अनुभव है औ प्रारब्धकर्मरूप उपाधिके क्षय हुये देहके साथि तादात्म्यके क्षयतैं देहपातके अनंतर देहविषै अहंइत्यादिव्यवहार नहीं देखियेहै। यातैं सो कर्मजन्य है ॥ औ

(३) असंगसाक्षीचेतनके साथि जो अहंकारका तादात्म्य। सो **भ्रमज** (अज्ञानकृत पूर्व पूर्व भ्रांतिसैं सिद्ध) **तादात्म्यअध्यास** है। काहेतैं तत्त्वज्ञानकरि भ्रांतिके निवृत्त हुये तादात्म्यके अभावतैं ज्ञानीकूं साक्षीविषै "मैं कर्त्ता हूं। भोक्ताहूं। सुखी हूं। दुःखी हूं" इस अभिमानका अभाव है। यातैं सो भ्रमज है ॥

ऐसैं श्रीशंकराचार्यनैं वाक्यवृत्तिविषै त्रिविधअहंकारका तादात्म्य कहाहै ॥ इन तीनविषै सहज औ भ्रमजकी तौ ज्ञानीविषै बी कदाचित् प्रतीति होवैहै औ ज्ञानीकूं अज्ञान औ भ्रांतिकी निवृत्तितैं तीसराभ्रमजतादात्म्य होवै नहीं। यातैं अहंकारके धर्म आभासरूप इच्छादिककरि पूर्वकी न्याई ज्ञानीके स्वरूप (साक्षी)का बाध होवै नहीं ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५५७	९६ ग्रंथिभेदेऽपि संभाव्या इच्छाः प्रारब्धदोषतः । बुध्वापि पापबाहुल्यादसंतोषो यथा तव॥२६३॥	२०९५
५५८	२१०० अहंकारगतेच्छाद्यैर्देहव्याध्यादिभिस्तथा । वृक्षादिजन्मनाशैर्वा चिद्रूपात्मनि किं भवेत्॥२६४॥	टिप्पणांकः ॐ

९५ नन्वध्यासाभावे कामानामनुदय एव स्यादित्याशंक्यारब्धकर्मवशात्तेषामुत्पत्तिः संभविष्यतीत्याह—

९६] ग्रंथिभेदे अपि प्रारब्धदोषतः इच्छाः संभाव्याः ॥

९७ अत्र दृष्टांतमाह (बुध्वाऽपीति)—

९८] यथा बुध्वा अपि पापबाहुल्यात् तव असंतोषः ॥ २६३ ॥

९९ अध्यासाभावेऽहंकारगतेच्छादेरबाधकत्वं दृष्टांतद्वयप्रदर्शनेन विशदयति (अहंकारेति)—

२१००] देहव्याध्यादिभिः वा वृक्षादिजन्मनाशैः तथा अहंकारगतेच्छाद्यैः चिद्रूपात्मनि किं भवेत् ॥

१) यथा देहगतव्याध्यादिभिः अहंकारसाक्षिणो बाधो नास्ति देहसंबंधरहितत्वाद्यथा वृक्षादिगतैर्जन्मादिभिरेवमध्यासनिवृत्तौ अहंकारगतेच्छादिभिरपीति भावः ॥ २६४ ॥

॥ ५ ॥ अध्यासबिना बी प्रारब्धतैं कामका संभव ॥

९५ ननु अध्यासके अभाव हुये कामका उदयहीं नहीं होवैगा । यह आशंकाकरि प्रारब्धकर्मके वशतैं तिन कामोंकी उत्पत्ति संभवैगी । ऐसें कहैहैं:—

९६] ग्रंथिके भेद हुये बी प्रारब्धरूप दोषतैं इच्छा संभवैहैं ॥

९७ इहां दृष्टांत कहैहैं:—

९८] जैसें तत्त्वकूं जानिके बी पापकी अधिकतातैं तेरेकूं असंतोष है॥२६३॥

॥ ६ ॥ अध्यासरहित कामकी अबाधकतामैं दोदृष्टांत ॥

९९ अध्यासके अभाव हुये अहंकारगतइच्छादिककूं अबाधकता है । सो दोनूंदृष्टांतनकें दिखावनैकरि स्पष्ट करैहैं:—

२१००] जैसें देहके व्याधिआदिककरि वा वृक्षादिकनके जन्मनाशकरि चिद्रूप आत्माविषै बाध नहीं होवैहै । तैसें अहंकारगतइच्छादिकनकरि चिद्रूप आत्माविषै क्या होवैहै । कछु-बी नहीं ॥

१) जैसें देहगतरोगआदिकधर्मनकरि अहंकारके साक्षी आत्माका बाध नहीं है । काहेतें आत्माकूं देहके संबंधतैं रहित होनैतैं ॥ वा जैसें वृक्षादिकगतजन्मादिककरि देह औ अहंकारके साक्षीका बाध नहीं है । ऐसें अध्यासकी निवृत्ति हुये अहंकारगतइच्छाआदिकधर्मनकरि बी साक्षीआत्माका बाध नहीं है ॥ यह भाव है ॥ २६४ ॥

टीकांक: २१०२ टिप्पणांक: ॐ	ग्रंथिभेदात्पुराप्येवमिति चेत्तन्न विस्मर । अयमेव ग्रंथिभेदस्तव तेन कृती भवान् ॥२६५॥ नैवं जानंति मूढाश्चेत्सोऽयं ग्रंथिर्न चापरः । ग्रंथितद्भेदमात्रेण वैषम्यं मूढबुद्धयोः ॥ २६६ ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५५९ ५६०

२ चिदात्मनोऽसंगत्वस्यैकरूपत्वात् पूर्वमपि कामादिबाधो नास्तीति शंकते—

३] ग्रंथिभेदात् पुरा अपि एवं इति चेत् ॥

४ एवंविधबोधस्यैव ग्रंथिभेदत्वेनास्माभिरभिधीयमानत्वादिदं चोद्यमस्मदनुकूलमित्याह—

५] तं न विस्मर। अयं एव तव ग्रंथिभेदः तेन भवान् कृती ॥ २६५ ॥

६ एवंविधज्ञानाभाव एव ग्रंथिरित्याह (नैवमिति)—

७] मूढाः एवं न जानंति चेत् सः अयं ग्रंथिः । च अपरः न ॥

८ ननु ज्ञानिनोऽपीच्छाभ्युपगमे ज्ञान्यज्ञानिनोः कुतो वैलक्षण्यमित्याशंक्य ग्रंथिभेदातिरेकेण न कुतोऽपीत्याह—

९] ग्रंथितद्भेदमात्रेण मूढबुद्धयोः वैषम्यम् ॥ २६६ ॥

॥ ७ ॥ ग्रंथिके भेद (नाश)का रूप ॥

२ चिदात्माके असंगताकूं तीनकालमैं समान होनैतैं । ग्रंथिभेदतैं पूर्व बी कामादिकनकरि आत्माका बाध नहीं है । इसरीतिसैं पूर्ववादी मूलविषै शंका करैहै:—

३] ग्रंथिभेदतैं पूर्व बी ऐसैं कामादिककरि आत्माके बाधका अभाव है । इसप्रकार जो जानताहैं ।

४ ग्रंथिभेदतैं पूर्व बी अहंकारगतकामादिकनकरि सदाअसंगआत्माका बाध नहीं है। इसप्रकारके बोधकूंही ग्रंथिभेद होनैकरि हमोनैं कथन कियाहै । यातैं यह तेरा प्रश्न हमकूं अनुकूल है । इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैं:—

५] तौ तिस जाननैकूं विस्मरण करना नहीं। यह कहिये ऐसा बोधहीं तेरेकूं ग्रंथिभेद हुयाहै ॥ तिस ग्रंथिभेदकरि तूं कृतार्थ हैं ॥ २६५ ॥

॥ ८ ॥ ज्ञानी औ अज्ञानीका ग्रंथिके नाश-अनाशकरि भेद ॥

६ "ग्रंथिभेदतैं पूर्वहीं कामादिककरि आत्माका बाध नहीं है"। इसरीतिके ज्ञानका अभावहीं ग्रंथि है । ऐसैं कहैहैं:—

७] मूर्खपुरुष जब ऐसैं नहीं जानैहै। तब सो ऐसैं नहीं जाननाहीं । यह ग्रंथि है औरग्रंथि नहीं ॥

८ ननु ज्ञानीकूं बी इच्छाके अंगीकार हुये ज्ञानीअज्ञानीकी विलक्षणता काहेतैं है ? यह आशंकाकरि ग्रंथिभेदतैं विना अन्य किसीतैं बी ज्ञानीअज्ञानीकी विलक्षणता नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

९] ग्रंथि औ तिस ग्रंथिके भेदमात्रकरि अज्ञानी औ ज्ञानीकी विलक्षणता है ॥ २६६ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५६१	११ प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा देहेंद्रियमनोधियाम् । न किंचिदपि वैषम्यमस्त्यज्ञानिविबुद्धयोः ॥२६७॥	२११०
५६२	१३ व्रात्यश्रोत्रिययोर्वेदपाठापाठकृता भिदा । नाहारादावस्ति भेदः सोऽयं न्यायोऽत्र योज्यताम् २६८	टिप्पणांकः ६०१
५६३	१५ न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति । उदासीनवदासीन इति ग्रंथिभिदोच्यते ॥२६९॥	

१० कारणांतराभावमेव विशदयति (प्रवृत्ताविति)—

११] देहेंद्रियमनोधियां प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा अज्ञानिविबुद्धयोः किंचित् अपि वैषम्यं न अस्ति ॥ २६७ ॥

१२ उक्तार्थे दृष्टांतमाह—

१३] व्रात्यश्रोत्रिययोः वेदपाठापाठकृता भिदा आहारादौ भेदः न अस्ति । सः अयं न्यायः अत्र योज्यताम् ॥ २६८ ॥

१४ ज्ञानिनो ग्रंथिशून्यत्वे गीतावाक्यं प्रमाणयति (न द्वेष्टीति)—

१५] "संप्रवृत्तानि न द्वेष्टि निवृत्तानि न कांक्षति । उदासीनवत् आसीनः" इति ग्रंथिभिदा उच्यते ॥

॥ ९ ॥ ज्ञानीअज्ञानीके भेदमैं ग्रंथिभेदविना अन्यकारणका अभाव ॥

१० ज्ञानी औ अज्ञानीकी विलक्षणताविषै ग्रंथिभेदसैं विना अन्यकारणके अभावकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

११] देह इंद्रिय मन अरु बुद्धि । इनकी प्रवृत्तिविषै वा निवृत्तिविषै अज्ञानी औ ज्ञानीकी किंचित् बी विलक्षणता नहीं है ॥ २६७ ॥

१२ उक्तअर्थविषै दृष्टांतकूं कहैहैं:—

१३] व्रात्य औ श्रोत्रियका वेदके अपाठ औ पाठका किया भेद है औ आहारआदिकविषै भेद नहीं है । सो यह दृष्टांत इहां ज्ञानीअज्ञानीके भेदविषै जोडना ॥ २६८ ॥

॥ १० ॥ ज्ञानीकी ग्रंथिरहिततामैं गीतावाक्य ॥

१४ ज्ञानीकी ग्रंथिरहितताविषै गीताके चतुर्दशअध्यायगत २२–२३ श्लोकरूप वाक्यकूं प्रमाण करैहैं:—

१५] "प्राप्तदुःखनकूं द्वेष करता नहीं औ निवृत्तसुखनकूं इच्छा करता नहीं । किंतु उदासीनकी न्याईं वर्तताहै ।" ऐसैं ग्रंथिभेदकरि कहियेहैं ॥

१ षोडशवर्षपर्यंत जिसका यज्ञोपवीत (मौंजीबंधन) नहीं भयाहै याहीतैं जाकूं वेदअध्ययनका बी अभाव है । ऐसैं ब्राह्मण क्षत्रिय औ वैश्यके बालककूं व्रात्य कहैहैं ॥

२ यज्ञोपवीत धारणके अनंतर सांग (षट्अंगसहित) औ संकल्प (अर्थ अरु कर्मविधानसहित) स्वशाखारूप वेदके अध्ययनकरि संपन्न अरु षट्कर्मरत ब्राह्मणादिक श्रोत्रिय कहियेहैं ॥

टीकांकः २११६ टिप्पणांकः ॐ

[१८]औदासीन्यं विधेयं चे[२०]द्वच्छब्दव्यर्थता तदा ।
[२२]न शक्ता अस्य देहाद्या इति चेद्रोग एव सः २७०
[२४]तत्त्वबोधं क्षयं व्याधिं मन्यंते ये महाधियः ।
तेषां प्रज्ञातिविशदा किं तेषां दुःशकं वद ॥२७१॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५६४ ५६५

१६) संप्रवृत्तानि प्राप्तानि दुःखानि न द्वेष्टि। निवृत्तानि सुखानि न कांक्षति। उदासीनवद्वर्तत इत्यर्थः । ग्रंथिभिदा ग्रंथिभेदः ॥ २६९ ॥

१७ इदं वाक्यमौदासीन्यविधिपरं न तु ग्रंथिभेदे प्रमाणमिति शंकते—

१८] औदासीन्यं विधेयं चेत् ॥

१९ विधिपरत्वे वच्छब्दो व्यर्थः स्यादिति परिहरति (वच्छब्देति)—

२०] तदा वच्छब्दव्यर्थता ॥

२१ ज्ञानिदेहादेरकार्यक्षमत्वादप्रवृत्तिर्न तु ग्रंथिभेदात् इत्याशंक्योपहसति (न शक्ता इति)—

२२] अस्य देहाद्याः शक्ताः न इति चेत् सः रोगः एव ॥ २७० ॥

२३ भवतु को दोषस्तत्राह (तत्त्वबोधमिति)—

२४] ये महाधियः तत्त्वबोधं क्षयं व्याधिं मन्यंते तेषां प्रज्ञा अतिविशदा। तेषां किं दुःशकं वद ॥

१६) सम्यक्प्राप्त भये दुःखनकूं द्वेष करता नहीं है औ निवृत्त भये सुखनकूं कांक्षा करता नहीं है। किंतु तूष्णींभावकूं प्राप्त भये पुरुषकी न्याईं वर्त्तताहै। यह अर्थ ग्रंथिभेदकरि कहियेहै ॥ २६९ ॥

॥ ११ ॥ श्लोक २६९ उक्त वाक्यके अर्थ (उदासीनकी न्याईं)मैं शंकासमाधान ॥

१७ ननु यह २६९ श्लोक उक्तगीताका वाक्य "ज्ञानीकूं उदासीन रहनाचाहिये" इसरीतिके उदासीनताके विधिपर है। ग्रंथिभेदविषै प्रमाण नहीं है।इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

१८] इस गीतावाक्यकरि उदासीनभाव विधान करनैकूं योग्य है। जब ऐसैं कहै।

१९ इस वाक्यकूं विधिपरताके हुये मूलश्लोकगत "वत्"शब्द व्यर्थ होवैगा। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

२०] तब "वत्" इस शब्दकी व्यर्थता होवैगी ॥

२१ ननु ज्ञानीके देहादिककूं कार्य करनैविषै असमर्थ होनैतैंहीं अप्रवृत्ति है। ग्रंथिभेदतैं अप्रवृत्ति नहीं । यह आशंकाकरि सिद्धांती उपहास करैहैः—

२२] इस ज्ञानीके देहादिक कार्य करनैविषै समर्थ नहीं हैं। ऐसैं जब कहै। तब सो बोध रोगही है!! ॥ २७० ॥

२३ ननु तत्त्वबोधही रोग होहु। कौन दोष है? तहां कहैहैः—

२४] जो महाबुद्धिवाले तत्त्वबोधकूं क्षयरूप रोग मानतेहैं। तिनकी बुद्धि अतिशय शुद्ध है औ तिनकूं क्या दुःशक है!! सो कथन कर॥ ऐसैं माननैहारे महामूर्ख हैं। यह भाव है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
५६६	२६ भरतादेरप्रवृत्तिः पुराणोक्तेति चेत्तदा । २८ जक्षन्क्रीडन्रतिं विंदन्नित्यश्रौषीर्न किं श्रुतिम् २७२	२१२४
५६७	३१ न ह्याहारादि संत्यज्य भरताद्याः स्थिताः क्वचित् । काष्ठपाषाणवत्किन्तु संगभीता उदासते ॥२७३॥	टिप्पणांक: ॐ

ॐ २४) दुःशकं असाध्यमित्यर्थः॥२७१॥

२५ नन्वस्थाने परिहासोऽयं । ज्ञानिनां प्रवृत्त्यभावस्य पुराणसिद्धत्वादिति शंकते—

२६] भरतादेः अप्रवृत्तिः पुराणोक्ता इति चेत् । तदा

२७ श्रुतिमजानानश्चोदयसीति परिहरति—

२८] जक्षन् क्रीडन् रतिं विंदन् इति श्रुतिं किं न अश्रौषीः ॥

२९) "जक्षन् क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा वयस्यैर्वा नोपजनं स्मरन्निदं शरीरम्" इति श्रौतं वाक्यं न अश्रौषीः इत्यर्थः । जक्षन् भक्षयन् । जक्ष भक्षहसनयोरिति धातुः । क्रीडन् स्वेच्छया विहरन् । रममाणस्त्र्यादिभिर्नोपजनं स्मरन् इदं शरीरमित्युपजनं जनानां समीपे वर्तमानमिदं स्वशरीरं न स्मरन्नानुसंदधान इत्यर्थः । श्लोके रतिं विंदन् । इति श्रौतस्य रममाण इति पदस्य व्याख्यानम् ॥ २७२ ॥

३० ननु तर्हि पुराणस्य का गतिरित्याशंक्य पुराणमप्यौदासीन्यबोधनपरं न प्रवृत्त्यभावपरमित्यभिप्रेत्याह (न ह्याहारादीति)—

ॐ २४) दुःशक है । अर्थ यह जो असाध्य है ॥ २७१ ॥

२५ ननु यह २७१ श्लोकविषै किया जो परिहास सो अप्रसंगविषै है । काहेतें ज्ञानिनकी प्रवृत्तिके अभावकूं पुराणसिद्ध होनैतें । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

२६] भरतादिकनकी अप्रवृत्ति पुराणनविषै कहीहै । ऐसैं जब कहै तब ।

२७ श्रुतिकूं नहीं जानताहुवा तूं प्रश्न करताहै। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

२८] "ज्ञानवान् खाताहुवा । क्रीडाकूं करताहुवा। रतिकूं पावताहुवा" इस श्रुतिकूं तूं क्या नहीं सुनताभयाहै ?

२९) "ज्ञानवान् भक्षण करताहुवा। क्रीडा करताहुवा । स्त्रियनके साथि वा अश्वादिवाहनकरि वा ज्ञातिनके साथि वा समानवयवालोंके साथि रममाण कहिये प्रीतिकूं पावताहुवा। जननके समीप वर्तमान इस शरीरकूं नहीं स्मरण करताहै" इस श्रुतिके वाक्यकूं क्या तैंनें नहीं श्रवण कियाहै ? यह अर्थ है॥ जक्षधातु भक्ष औ हसनरूप अर्थविषै वर्तताहै। यातें जक्षण जो भक्षण ताकूं करताहुया औ क्रीडन जो स्वेच्छाकरि विहार ताकूं करताहुया औ स्त्रीआदिकनके साथि रमणकरताहुया । उपजन । इस अपनै शरीरकूं ज्ञानी नहीं स्मरण करताहै । यह अर्थ है ॥ मूलश्लोकविषै "रतिकूं नाम प्रीतिकूं पावताहुवा" यह जो पद है । सो श्रुतिगत "रममाण" इस पदका व्याख्यानरूप है ॥ २७२ ॥

३० ननु तब पुराणकी कौन गति है ? यह आशंकाकरि पुराण बी उदासीनताके बोधनके पर कहिये परायण नहीं है । किंतु प्रवृत्तिअभावके पर है। ऐसैं अभिप्रायकरि कहैहैः—

टीकांक: २१३१ टिप्पणांक: ॐ

^३३^संगी हि बाध्यते लोके निःसंगः सुखमश्नुते ।
तेन संगः परित्याज्यः सर्वदा सुखमिच्छता ॥ २७४ ॥
^३५^अज्ञात्वा शास्त्रहृदयं मूढो वक्त्यन्यथाऽन्यथा ।
^३७^मूर्खाणां निर्णयस्त्वास्तामस्मत्सिद्धांत उच्यते २७५

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५६८ ५६९

३१] हि भरताद्याः आहारादि संत्यज्य काष्ठपाषाणवत् कचित् स्थिताः न। किंतु संगभीताः उदासते ॥२७३॥

३२ संगोऽपि कुतस्त्यज्यत इत्यत आह— (संगी हीति)—

३३] हि लोके संगी बाध्यते निःसंगः सुखं अश्नुते। तेन सुखं इच्छता संगः सर्वदा परित्याज्यः ॥ २७४ ॥

३४ ननु तर्हि मानससंगस्यैव त्याज्यत्वेंऽतःसंगशून्यानां बहिर्व्यवहरतामज्ञत्वादिकं जनैः कथमुच्यत इत्याशंक्य शास्त्रतात्पर्यज्ञानशून्यत्वादित्याह (अज्ञात्वेति)—

३५] मूढः शास्त्रहृदयं अज्ञात्वा अन्यथा अन्यथा वक्ति ॥

३६ अतो मूढव्यवहारो नात्र विचारणीय इत्याह—

३७] मूर्खाणां निर्णयः तु आस्ताम् ॥

३८ तर्हि किमनुसंधेयमित्याकांक्षायां शास्त्रहृदयमित्याह—

३९] अस्मत्सिद्धान्तः उच्यते ॥२७५॥

३१] जातैं जडभरतादिक आहारआदिककूं त्यागिके काष्ठपाषाणकी न्याई कहुं वी स्थित नहीं थे। किंतु संगतैं भयकूं पावतेहुये उदास रहतेथे ॥ २७३ ॥

३२ ननु संग वी किस कारणतैं त्याग करियेहै? तहां कहैहैं:—

३३] जातैं लोकविषै संगवान् बाधकूं पावताहै औ संगरहित सुखकूं भोगताहै। तिसकारणकरि सुखकूं इच्छनैवाले पुरुषकरि संग सर्वदा परित्याज्य है ॥ २७४ ॥

३४ ननु तब मनकरि किये स्नेहरूप संगकीहीं त्याज्यताके सिद्ध हुये। अंतरसंगतैं रहित औ बाहिरतैं व्यवहार करनैहारे ज्ञानीपुरुषनके अज्ञानीपनाआदिक जननकरि कैसैं कहियेहैं? यह आशंकाकरि शास्त्रतात्पर्यके ज्ञानकरि शून्य होनैतैं जननकरि ज्ञानीपुरुषनके अज्ञताआदिक कहियेहैं। ऐसैं कहैहैं:—

३५] मूढ जो है। सो शास्त्रके तात्पर्यकूं न जानिके अन्यथा अन्यथा कहताहै ॥

३६ यातैं मूढनका व्यवहार इहां शास्त्रके व्यवहारविषै विचारनैकूं योग्य नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

॥ २ ॥ वैराग्य बोध औ उपरतिका वर्णन

॥ २१३७—२१७७ ॥

॥ १ ॥ ज्ञानीकी स्थितिमैं स्वसिद्धांतकी प्रतिज्ञा ॥

३७] मूर्खनका निर्णय रहो ॥

३८ तब क्या विचार करनैकूं योग्य है? इस आकांक्षाके हुये शास्त्रका अभिप्राय विचारनैकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं:—

३९] हमारा विद्वानोंका सिद्धांत कहियेहै ॥ २७५ ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		
५७०	वैराग्यबोधोपरमाः सहायास्ते परस्परम् । प्रायेण सह वर्तंते वियुज्यंते क्वचित्क्वचित् ॥२७६॥	टीकांक: २१४०
५७१	[४३] हेतुस्वरूपकार्याणि भिन्नान्येषामसंकरः । यथावदवगंतव्यः शास्त्रार्थं प्रविविच्यता ॥२७७॥	टिप्पणांक: ६०३
५७२	[४५] दोषदृष्टिर्जिहासा च पुनर्भोगेष्वदीनता । असाधारणहेत्वाद्या वैराग्यस्य त्रयोप्यमी॥२७८॥	

४० कोसावित्यत आह—

४१] वैराग्यबोधोपरमाः ते परस्परं सहायाः प्रायेण सह वर्तंते क्वचित् क्वचित् वियुज्यंते ॥ २७६ ॥

४२ वैराग्यादीनामन्योन्यापरिहारेणावस्थानदर्शनात् अभेदशंकायां तद्धेत्वादीनां भेदाद्भेदोऽवगंतव्य इत्याह—

४३] हेतुस्वरूपकार्याणि भिन्नानि । शास्त्रार्थं प्रविविच्यता एषां असंकरः यथावत् अवगंतव्यः ॥ २७७ ॥

४४ तत्र वैराग्यस्य हेत्वादित्रयं दर्शयति—

॥ २ ॥ शास्त्रका अभिप्रायः—

४० कौन यह तुमारा सिद्धांत है ? तहां कहैहैं:—

४१] वैराग्य बोध औ उपरति । ये तीन परस्परसहायक हैं । सो [३]बहुतकरि साथिहीं वर्त्ततेहैं औ [४]कहूं कहूं वियोगकूं पावतेहैं ॥ २७६ ॥

॥ ३ ॥ हेतुआदिकरि वैराग्यादितीनके भेदके जाननैकी योग्यता ॥

४२ वैराग्यादिकनके परस्पर अत्याग करिके स्थितिके दर्शनतें अभेदकी शंकाके हुये तिन वैराग्यादिकनके हेतुआदिकनके भेदतें वैराग्यादिकनका भेद जाननैकूं योग्य है। ऐसें कहैहैं:—

४३] इन वैराग्यादिकनके हेतु स्वरूप औ कार्य जो फल वे भिन्न भिन्न हैं। तातें शास्त्रके अर्थकूं विचारकरनैहारे पुरुषकरि इन वैराग्यादिकनका असंकर कहिये भेद जैसें है तैसें जाननेकूं योग्य है ॥ २७७ ॥

॥ ४ ॥ वैराग्यके हेतु स्वरूप औ फल ॥

४४ तिनविषै वैराग्यके हेतुआदिकतीनकूं दिखावैहैं:—

३ शुक औ वामदेवादिकनकी न्याई प्रतिबंधककर्मसैं रहित अनुकूलदेशकालादियुक्त निवृत्तिवान्पुरुषनविषै बहुतकरि साथिहीं वर्त्ततेहैं ॥

४ प्रतिबंधककर्मसहित अरु प्रतिकूलदेशकालादियुक्त शास्त्रीय औ लौकिकव्यवहारमैं प्रवृत्तिपरायणपुरुषनविषै कहूं कहूं वियोगकूं पावतेहैं ॥

४५] दोषदृष्टिः च जिहासा भोगेषु पुनः अदीनता अमी त्रयः अपि वैराग्यस्य असाधारणहेत्वाद्याः ॥ २७८ ॥

४५] दोषदृष्टि औ जिहासा कहिये त्यागकी इच्छा औ त्याग किये भोगनविषै फेर अदीनता। ये तीन। वैराग्यके असाधारण कहिये इस एकहीके संबंधी हेतुआदिक कहिये हेतु स्वरूप औ फल हैं ॥ २७८ ॥

५ (१) जन्म (२) मृत्यु (३) जरा औ (४) व्याधि। इनविषै दुःख औ दोषका जो वारंवार दर्शन (शास्त्र औ अपनै अनुभवकूं अनुसरिके आलोचन) सो **दोषदृष्टि-शब्दका अर्थ** है ॥

(१) **जन्म** पदकरि जन्मके समीपस्थित गर्भवास बी ग्रहण करियेहै ॥ गर्भवासविषै नवमासपर्यंत पिंडरूप होयके स्थिति औ विष्ठाके कृमिकरि दंशन औ माताके जठराग्निकरि दहन औ माताके विषमशयनगमनादिककरि उलटा सूधा होना औ दृढजरायु (गर्भोच्छादकचर्म)करि वेष्टन इत्यादिरूप महान्दुःख हैं औ मलमूत्रके मध्यमै स्थिति औ तिसके रसका पान दोष है ॥ औ जन्मविषै प्रसवके वायुकरि आकर्षण औ योनिरूप यंत्रकरि पीडनरूप महान्दुःख है औ योनिद्वारा आगमनरूप दोष है ॥ औ

(२) **मरण**विषै *सर्वनाडीनका आकर्षण अरु मर्मस्थानका* भेदन औ प्राणका संकोच अरु ऊर्ध्वश्वास अरु मरणका ताप। इसरूप महान्दुःख है औ यमदूतके आकर्षण अरु पीडाकरि मलजलका पतनआदिरूप दोष है ॥ मृत्युपदकरि मृत्युके समीपस्थित नरकवास बी ग्रहण करियेहै ॥ कुंभीपाक रौरव असिपत्रवन वैतरणि आदिकनरकनविषै यमदूतकरि पातनरूप महानुदुःख है औ श्लेष्म रक्त पूय वीर्य मलमूत्रके कुंडनविषै वास औ श्लेष्मआदिकका पानरूप दोष है औ

(३) **जरा**विषै सर्वअंगनकी शिथिलता अरु मंदता अरु बधिरता औ गदगदवाणी अरु कंपादिक अरु उत्थानआदिकविषै पतन। स्वजनकरि तिरस्काररूप महान्दुःख है औ मलजल अरु लालाका पतनरूप दोष है औ

(४) **व्याधि** (रोगन)विषै दुर्बलता अरु शीतज्वरआदिकके वेगकरि परितापआदिक औ कषाय (औषध)के पानआदिकरूप महान्दुःख है औ देहकी दुर्गंधी अरु प्रसीनाआदिक दोष है ॥

ऐसैं जन्मादिकविषै वारंवार दुःख औ दोषके दर्शनकरि विवेकीपुण्यशीलपुरुषकूं सर्वत्र तीव्रवैराग्य अरु मोक्षइच्छा औ तिनकी सिद्धिअर्थ प्रवृत्ति सिद्ध होवैहै। यातैं यह दर्शन मुमुक्षुकूं सम्यक्कर्तव्य है ॥ यह दोषदृष्टि वैराग्यकी हेतु है ॥

६ त्यागकी इच्छा वा इच्छाराहित्य। **वैराग्यका स्वरूप** है ॥ परअपरभेदतैं **वैराग्य दोभांतिका** है ॥

(१) प्राप्तअणिमादिकऐश्वर्यके त्यागकी इच्छाकूं वा सत्वादिगुणमात्रकी तृष्णाके त्यागकूं **परवैराग्य** कहैहैं ॥

(२) तातैं अन्यकूं **अपरवैराग्य** कहैहैं ॥ [१] यतमान [२] व्यतिरेकि [३] एकेंद्रिय औ [४] वशीकारभेदतैं **अपरवैराग्य च्यारीभांतिका** है ॥

[१] दोषदृष्टिरूप मंदविवेककूं **यतमानवैराग्य** कहैहैं औ

[२] अपनै चित्तमैं जितनैं गुण परिपक्व भये। तिनकूं देखिके प्रसन्न होना। फेर औरगुणनका प्रयत्न करना। सो **व्यतिरेकी वैराग्य** है ॥ औ

[३] हृदयमैं सूक्ष्मरागके हुये बाह्यइंद्रियनके निग्रहकूं **एकेंद्रियवैराग्य** कहैहैं ॥ औ

[४] हृदयगत वासनारूप सूक्ष्मरागके अभावकूं **वशीकारवैराग्य** कहैहैं ॥ (क) मंद (ख) तीव्र (ग) तीव्रतर भेदतैं सो **वशीकारवैराग्य तीनभांतिका** है ॥

(क) पुत्रदाराधनादिकअनुकूलविषयके नाशतैं तत्काल ऐसी बुद्धि होवै जो "संसारकूं धिकार है"। या बुद्धिपूर्वक जो त्यागकी इच्छा वा इच्छाराहित्य। सो **मंदवशीकारवैराग्य** है ॥ औ

(ख) या जन्मकेविषै पुत्रदारादिकविषय मेरेकूं मति होवै। ऐसी निरंतर स्थिरबुद्धिपूर्वक जो वैराग्य। सो **तीव्रवशीकारवैराग्य** है ॥ औ

(ग) पुनरावृत्तिसहितब्रह्मादिक कोइ बी लोक मेरेकूं मति होवै। या बुद्धिपूर्वक जो वैराग्य। सो **तीव्रतरवशीकारवैराग्य** है ॥

इसरीतिसैं भेदसहितवैराग्यका स्वरूप कहा ॥

७ स्वप्रयत्नविना प्रारब्धकरि प्राप्तधनादिकविषयनविषै फेरि इष्टबुद्धिकरि ग्रहणका अभावरूप जो विषयनविषै अदीनता। सो **वैराग्यका फल** है ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५७३	श्रवणादित्रयं तद्वत्तत्त्वमिथ्याविवेचनम् । पुनर्ग्रंथेरनुदयो बोधस्यैते त्रयो मताः ॥ २७९ ॥	टीकांकः २१४६ टिप्पणांकः ६०८

४६ इदानीं तत्त्वबोधस्य कारणादीनि दर्शयति—

४७] श्रवणादित्रयं तद्वत् तत्त्वमिथ्याविवेचनं पुनः ग्रंथेः अनुदयः एते त्रयः बोधस्य मताः ॥

४८) आदिशब्देन मनननिदिध्यासने गृह्येते । "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य" इत्यात्मदर्शनसाधनत्वेन श्रवणादिविधानाच्छ्रवणादेर्ज्ञानहेतुत्वं । तत्त्वमिथ्याविवेचनं कूटस्थाहंकारादेश्च भेदज्ञानं ग्रंथेरनुदयः अन्योऽन्याध्यासानुत्पत्तिः ॥ २७९ ॥

॥ ९ ॥ तत्त्वबोधके हेतु स्वरूप औ फल ॥

४६ अब तत्त्वबोधके कारणआदिकतीनकूं दिखावैहैं:—

४७] **श्रवणसैं आदिलेके तीन । तैसैं तत्त्व अरु मिथ्याका विवेचन औ फेरि ग्रंथिका अनुदय । ये तीन । बोधके क्रमतैं हेतु स्वरूप औ फल मानेहैं ॥**

४८) इहां आदिशब्दकरि मनन औ निदिध्यासन ग्रहण करियेहैं ॥ "हे मैत्रेयी! आत्मा निश्चयकरि देखनेकूं कहिये साक्षात्करनैकूं योग्य है । श्रवण करनैकूं योग्य है । मनन करनैकूं योग्य है । निदिध्यासन करनैकूं योग्य है" । ऐसैं श्रुतिविषै आत्मदर्शनके साधन होनैंकरि श्रवणादिकके विधानतैं श्रवणादिककूं ज्ञानकी हेतुता है । औ तत्त्वमिथ्याका विवेचन कहिये कूटस्थ औ अहंकारादिकनका भेदज्ञान बोधका स्वरूप है । औ ग्रंथिका अनुदय कहिये अन्योऽन्याध्यासकी अनुत्पत्ति बोधका फल है ॥ २७९ ॥

८ यद्यपि श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठगुरुमुखद्वारा श्रवण किये "तत्त्वमसि"आदिकमहावाक्य । सूर्यदर्शनके साक्षात्हेतु चक्षुकी न्याईं ज्ञानका साक्षात्हेतु है । तथापि चक्षुदोषकी निवृत्तिद्वारा जैसैं अंजनादिक सूर्यदर्शनके हेतु हैं । तैसैं असंभावनाविपरीतभावनारूप प्रतिबंधकी निवृत्तिद्वारा श्रवणादिक । ज्ञानके हेतु हैं ॥

९ यद्यपि ब्रह्मआत्माके अभेदका निश्चय तत्त्वबोधका स्वरूप कहाहै । तथापि कूटस्थ औ अहंकारादिकका भेदज्ञानरूप ग्रंथिभेद तिसतैं भिन्न नहीं है ॥ काहेतैं "देहेंद्रियादिकसैं व्यतिरिक्त मैं स्वप्रकाश असंग साक्षी चिद्रूप ब्रह्म हूं अरु यह प्रपंच प्रतीयमान हुवा बी मिथ्या है" ऐसैं संशय औ विपरीतभावनारहित दृढनिश्चयरूप जो चित्तवृत्ति । सो तत्त्व औ मिथ्याका विवेचनरूप **परिपक्वनिष्ठा है** । सोई ब्रह्मात्माका अभेदनिश्चयरूप **तत्त्वबोधका स्वरूप है** ॥

१० यद्यपि तत्त्वबोधका फल तौ जन्मादिकार्यसहितअविद्याकी निवृत्ति औ परमानंदस्वरूपब्रह्मकी प्राप्तिरूप **मोक्ष** है । फेरि ग्रंथिका अनुदय नहीं । तथापि अविद्या अन्योन्याध्यासकी हेतु है औ अन्योन्याध्यास जन्मादिअनर्थका हेतु है । तिस अन्योन्याध्यासकी निवृत्ति अविद्याकी निवृत्तिविना होवै नहीं ॥ अविद्याकी निवृत्ति कूटस्थ औ अहंकारके भेदज्ञानविना होवै नहीं ॥ यातैं अविद्याकी निवृत्तिका हेतु तत्त्व औ मिथ्याका विवेचनरूप **ग्रंथिभेद** है । सो अविद्याकी निवृत्ति अदृढ होवै तौ फेरि अन्योन्याध्यासरूप ग्रंथिका उदय होवैहै औ अविद्याकी निवृत्ति दृढ होवै तौ अन्योन्याध्यासका उदय होवै नहीं औ ग्रंथिके अनुदयसैंहीं जन्मादिअनर्थकी निवृत्ति सिद्ध है ॥ जैसैं पितामह पिता औ पौत्र । तीनकूं साथिहीं कोई राजा निकास देवै । तैसैं बोधरूप राजा । अविद्या औ ताका कार्य अध्यास औ ताका कार्य जन्मादिक । इन तीनकूं साथिहीं निवृत्त करैहै । यातैं जीवत्कालउपलक्षितसुखदुःखादि अवस्थामैं । अहंकारादिअनात्माविषै फेरि आत्मबुद्धिके अभावरूप चिद्जडग्रंथिका अनुदयहीं **कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति है** ॥ सो निवृत्ति अधिष्ठानआनंदरूप ब्रह्मसैं भिन्न नहीं । किंतु अधिष्ठानरूपहीं है । यातैं फेरि ग्रंथिका अनुदयहीं **मोक्षरूप है** ॥

टीकांकः २१४९ टिप्पणांकः ६११

यमादिर्धीनिरोधश्च व्यवहारस्य संक्षयः ।
स्युर्हेत्वाद्या उपरतेरित्यसंकर ईरितः ॥ २८० ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५७४

४९ उपरतेस्तानि दर्शयति—

५०] **यमादिः च धीनिरोधः व्यवहारस्य संक्षयः उपरतेः हेत्वाद्याः स्युः** इति असंकरः ईरितः ॥

५१) आदिपदेन नियमादयो गृह्यंते। धीनिरोधः चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणो योगः॥२८०॥

॥ ६ ॥ उपरतिके हेतु स्वरूप औ फल ॥

४९ उपरति जो उपशम। ताके तीन हेतु स्वरूप औ फलकूं दिखावैहैं:—

५०] **यमआदिक अरु बुद्धिका निरोध अरु व्यवहारका सम्यक्क्षय । ये तीन उपरतिके हेतुआदिक हैं । ऐसैं वैराग्यादिकतीनका भेद कथन कियाहै ॥**

५१) यमआदिक । इहां आदिपदकरि नियमआदिक ग्रहण करियेहैं ॥ यह अष्टअंग उपरतिके हेतु हैं । औ बुद्धिका निरोध कहिये चित्तवृत्तिका निरोधरूप योग उपरतिका स्वरूप है। औ लौकिकवैदिकव्यवहारका विस्मरण उपरतिका फल है ॥ ऐसैं साथिहीं वर्त्तमान वैराग्यादिकतीनका हेतुआदिककरि भेद कहाहै ॥ २८० ॥

११ (१) यम। (२) नियम। (३) आसन। (४) प्राणायाम। (५) प्रत्याहार। (६) धारणा। (७) ध्यान। औ (८) सविकल्पसमाधि। ये **अष्टअंग उपरतिके हेतु** (साधन) हैं ॥

(१) अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह भेदतैं **पांचप्रकारका यम** हैं ॥

(२) शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानभेदतैं **पांचप्रकारका नियम** है ॥

(३) पद्म वीर भद्र स्वस्तिक दंड सोपाश्रय पर्यंक क्रौंच हस्ती उष्ट्र समसंस्थान स्थिरसुख यथासुख। इनसैं आदिलेके **चौर्‍यासीप्रकारका आसन** है ॥

(४) बाहिरके वायुका भीतरग्रहणरूप श्वास अरु भीतरके वायुका बाहिर निकासनैरूप प्रश्वास। तिन दोनूंकी गतिका जो विच्छेद (श्वासप्रश्वास दोनूंका अभाव) सो **प्राणायाम** कहियेहै ॥ [१] बाह्य [२] आभ्यंतर [३] स्तंभवृत्ति भेदतैं सो **प्राणायाम तीनभांतिका** है ॥

[१] जहां प्रश्वासपूर्वक गतिका अभाव होवै सो **बाह्यप्राणायाम** है ॥

[२] जहां श्वासपूर्वक गतिका अभाव होवै। सो **आभ्यंतर प्राणायाम** है ॥

[३] जहां श्वासप्रश्वास दोनूंकी गतिका पाषाणविषै गेरे तप्तजलके सर्वऔरतैं संकोचकी न्याई एककालमैं अभाव होवै सो तृतीय **स्तंभवृत्तिरूप प्राणायाम** है ॥ इसरीतिसैं **अनेकप्रकारका प्राणायाम** है ॥

(५) शब्दादिकविषयनतैं श्रोत्रादिकइंद्रियनके निरोधकूं **प्रत्याहार** कहैहैं ॥

(६) नाभिचक्रविषै वा हृदयकमलविषै वा मूर्द्धविषै वा ज्योतिविषै वा नासिकाके अग्रविषै इत्यादिदेशनविषै वा बाह्य (मूर्तिआदिक) विषयविषै चित्तका वृत्तिमात्रकरि जो बंध (बंधन)। सो **धारणा** कहियेहै ॥ औ

(७) तिन देशनविषै देहकूं आश्रय करनेवाला जो प्रत्यय (चित्तवृत्ति) तिसकी एकतानता (अन्यप्रत्ययरूप अंतरायसैं रहित सदृशप्रवाह)। **ध्यान** कहियेहै। अथवा अन्यवृत्तिरूप अंतरायसहित प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मविषै चित्तका प्रवाह **ध्यान** कहियेहै ॥

(८) व्युत्थानसंस्कारका तिरस्कार अरु निरोधसंस्कारकी प्रकटतापूर्वक अंतःकरणका एकाग्रतारूप परिणाम। **समाधि** कहियेहै॥सो समाधि [१] सविकल्प [२] निर्विकल्प भेदतैं दोभांतिकी है ॥

[१] त्रिपुटीके भानसहित **सविकल्प** है औ

[२] त्रिपुटीके भानरहित **निर्विकल्प** है ॥

तिनमैं सविकल्पसमाधि साधनं होनैतैं अंग है।

इसरीतिसैं कहे जे यमआदिकअष्टअंग वे **उपरतिके साधन** हैं ॥

१२ सविकल्पनिर्विकल्पसमाधिके अभ्यासकरि जो प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा औ स्मृतिरूप पंचवृत्तिनका निरोध होवै है। सो **उपरतिका स्वरूप** है।

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
५७५	[५३] तत्त्वबोधः प्रधानं स्यात्साक्षान्मोक्षप्रदत्वतः । बोधोपकारिणावेतौ वैराग्योपरमावुभौ ॥ २८१ ॥	२१५२
५७६	[५६] त्रयोऽप्यत्यंतपक्वाश्चेन्महतस्तपसः फलम् । दुरितेन क्वचित्किंचित्कदाचित्प्रतिबध्यते ॥२८२॥	टिप्पणांक: ॐ

५२ किमेतेषां समप्राधान्यमुत नेत्याशंक्याह—

५३] **तत्त्वबोधः प्रधानं स्यात् साक्षान्मोक्षप्रदत्वतः । वैराग्योपरमौ एतौ उभौ बोधोपकारिणौ ॥**

५४) "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" इति श्रुतिरित्यर्थः । इतरयोस्तूपकारित्वं । "ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् शांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येत्" इति श्रुतिभ्यामवगम्यते ॥ २८१ ॥

५५ "मायेण सह वर्तंते वियुज्यंते क्वचित्क्वचित्" इत्युक्तं तत्र कारणमाह—

५६] **त्रयः अपि अत्यंतपक्काः चेत् महतः तपसः फलं । दुरितेन क्वचित् किंचित् कदाचित् प्रतिबध्यते ॥**

५७) अनेकजन्मार्जितपुण्यपुंजपरिपाके त्र-

॥ ७ ॥ वैराग्य बोध औ उपरति । इन तीनमैं तत्त्वबोधकी प्रधानता ॥

५२ इन वैराग्यादिकतीनकी क्या तुल्यप्रधानता है वा नहीं? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५३] **तत्त्वबोध प्रधान है । काहेतैं साक्षात्मोक्षका देनैहारा होनैतैं । औ वैराग्य अरु उपरम ये दोनूं बोधके उपकारी कहिये साधन हैं ॥**

५४) "तिस प्रत्यक्अभिन्नपरमात्माकूंहीं जानिके मृत्यु जो जन्ममरणादिसंसार । ताकूं उल्लंघन करताहै औ मोक्षकी प्राप्तिअर्थ ज्ञानसैं भिन्न मार्ग नहीं है" । इस श्रुतितैं तत्त्वबोधकी प्रधानता जानियेहैं । यह अर्थ है ॥ औ "लोकनकूं कर्मरचित जानिके । ब्राह्मण जो ब्रह्म होनैकी इच्छावाला मुमुक्षु । सो वैराग्यकूं पावै ॥ क्रियाकरि असाध्य मोक्ष कर्मकरि नहीं है औ "तिस प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मके अनुभवअर्थ सो मुमुक्षु गुरुके प्रतिहीं गमन करै । शमवान् दमवान् उपरतिवान् तितिक्षावान् समाधानवान् होयके आत्माविषैहीं आत्माकूं देखै" इन दोश्रुतिनकरि । इतर जो वैराग्य औ उपरति । तिनकूं तौ बोधकी साधनता जानियेहै ॥ २८१ ॥

॥ ८ ॥ वैराग्यादिकके इकट्ठे वर्तनैमैं औ वियोगमैं कारण ॥

५५ वैराग्य बोध औ उपरति । ये तीन "बहुतकरि इकठे वर्त्ततेहैं औ कहुं कहुं वियोगकूं पावतेहैं" ऐसै २७६ वें श्लोकविषै कहा । तिसविषै कारण कहैहैं:—

५६] **वैराग्यादिकतीन बी जो अत्यंत परिपक होवैं तौ महान्तपका फल है औ दुरित कहिये पापकर्मरूप निमित्तकरि कोइक पुरुषविषै कोइक कदाचित् प्रतिबंधकूं पावताहै ॥**

५७) अनेकजन्मविषै संपादन किये पुण्यपुंजके परिपाकके होते । तीनका सहभाव

टीकांक: २१५८ टिप्पणांक: ६१२	वैराग्योपरती पूर्णे बोधस्तु प्रतिबध्यते । यस्य तस्य न मोक्षोऽस्ति पुण्यलोकस्तपोबलात् ॥ पूर्णे बोधे तदन्यौ द्वौ प्रतिबद्धौ यदा तदा । मोक्षो विनिश्चितः किंतु दृष्टदुःखं न नश्यति २८४	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांक: ५७७ ५७८

याणां सहभावो भवति । अन्यथा तु प्रतिबंधकपापानुसारेण पुरुषविशेषे कालविशेषेण कस्यचित्प्रतिबंधो भवतीति भावः ॥ २८२ ॥

५८ तत्रापि तत्त्वज्ञानप्रतिबंधे मोक्षो नास्तीत्याह (वैराग्योपरतीति)—

५९] यस्य वैराग्योपरती पूर्णे बोधः तु प्रतिबध्यते तस्य मोक्षः न अस्ति ॥

६० तर्हि वैराग्यादिसंपादनं निष्फलमित्याशंक्य "प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायत" इति भगवद्वचनात् पुण्यलोकप्राप्तिर्भवतीत्याह (पुण्यलोक इति)—

६१] तपोबलात् पुण्यलोकः ॥२८३॥

६२ वैराग्योपरत्योस्तु प्रतिबंधे जीवन्मुक्तिसुखं न सिद्ध्यतीत्याह (पूर्णे बोध इति)—

६३] बोधे पूर्णे तदन्यौ द्वौ यदा

नाम इकट्ठावर्त्तना होवैहै । अन्यथा कहिये उक्तपुण्यराशिके परिपाकसैं विना तौ प्रतिबंधक पापके अनुसारकरि पुरुषभेदविषै कालभेदकरि वैराग्यादिकतीनमैंसैं कोइकका प्रतिबंध कहिये तिरोधान होवैहै ॥ यह भाव है ॥ २८२ ॥

॥ ९ ॥ वैराग्यउपरतिके पूर्ण हुये बी तत्त्वज्ञानविना मोक्षका अभाव ॥

५८ तिन तीनविषै बी तत्त्वज्ञानके प्रतिबंधहुये मोक्ष नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

५९] जिस पुरुषकूं वैराग्य औ उपरति पूर्ण होवैं औ बोध तौ प्रतिबंधकूं पावताहै । तिसकूं मोक्ष नहीं है ॥

६० ननु तब वैराग्यआदिकका संपादन निष्फल होवैगा । यह आशंकाकरि "योग[63]भ्रष्ट जो है सो पुण्यकर्त्ताओंके लोक जे स्वर्गादिक तिनकूं पायके । बहुतवर्ष निवासकरीके पीछे । पवित्र औ श्रीमान्पुरुषनके गृहविषै जन्मताहै" इस गीताके षष्ठअध्यायगत ४१ वें श्लोकरूप भगवत्‌वचनतैं वैराग्यादिकके संपादनतैं पुण्यलोककी प्राप्ति होवैहै । ऐसैं कहैहैः—

६१] तप जो वैराग्यउपरतिरूप पुण्यकर्म । ताके बलतैं पुण्यवानकूं प्राप्त होनैयोग्य स्वर्गादिलोक प्राप्त होवैहै ॥ २८३ ॥

॥ १० ॥ वैराग्यउपरतिविना पूर्णतत्त्वबोधतैं मोक्षका निश्चय औ दृष्टदुःखका अनाश ॥

६२ वैराग्य औ उपरतिके प्रतिबंध हुये जीवन्मुक्तिका विलक्षणआनंद नहीं सिद्ध होवैहै । ऐसैं कहैहैः—

६३] बोधके पूर्ण हुये तिस बोधतैं अन्य वैराग्य औ उपरति दोनूं जब

---

६३ वैराग्यउपरतिरूप बोधके साधनकूं पायके जो बोधकूं नहीं पायाहै । सो पुरुष योगभ्रष्टहीं है ॥ यातैं गीताके षष्ठअध्यायउक्त "योगभ्रष्टकी गतिकूं वैराग्यउपरतिवाला पुरुष पावताहै" ॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५७९	[६५] ब्रह्मलोकतृणीकारो वैराग्यस्यावधिर्मतः । देहात्मवत्परात्मत्वदार्ढ्ये बोधः समाप्यते ॥२८५॥	२१६४
५८०	[६६] सुप्तिवद्विस्मृतिः सीमा भवेदुपरमस्य हि । [६८] दिशाऽनया विनिश्चेयं तारतम्यमवांतरम् ॥२८६॥	टिप्पणांकः ६१४

प्रतिबद्धौ तदा मोक्षः विनिश्चितः किंतु दृष्टदुःखं न नश्यति ॥ २८४ ॥

६४ इदानीं वैराग्यादीनामवधिं दर्शयति—

६५] ब्रह्मलोकतृणीकारः वैराग्यस्य अवधिः मतः। देहात्मवत् परात्मत्वदार्ढ्ये बोधः समाप्यते ॥ २८५ ॥

६६] सुप्तिवत् विस्मृतिः उपरमस्य सीमा भवेत् हि ॥

६७ अवांतरतारतम्यं स्वस्वबुद्ध्या निश्चेयमित्याह (दिशेति)—

६८] अनया दिशा अवांतरं तारतम्यं विनिश्चेयम् ॥ २८६ ॥

प्रतिबंधकूं प्राप्त होवैहैं। तब मोक्ष निश्चित होवैहै। किंतु इसलोकके व्यवहारसैं जन्य विक्षेपरूप [१५]दृष्टदुःख नहीं नाश होवैहै ॥ ॥ २८४ ॥

॥ ११ ॥ वैराग्यादितीनकी अवधि ॥

६४ अब वैराग्यादिकनके अवधिकूं दिखावैहैं:—

६५] ब्रह्मलोकका तृणीकार कहिये तृणसमान तुच्छताका ज्ञान जो है सो वैराग्यका अवधि मान्याहै औ २९७ श्लोकउक्त देहात्माकी न्याईं परब्रह्मके आत्मताकी दृढताके हुये बोध समाप्त होवैहै ॥ २८५ ॥

६६] सुषुप्तिकी न्याईं जो विस्मृति है। सो उपरमकी सीमा है ॥

६७ वैराग्यादिकनका अवांतर जो अधिकन्यूनपना है । सो अपनीअपनी बुद्धिकरि निश्चय करनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं:—

६८] इस २८५–२८६ श्लोकउक्तदिशाकरि । इन तीनका अवांतरतारतम्य निश्चय करना योग्य है ॥ २८६ ॥

१४ ज्ञानकरि बंधकी कारणअविद्याकी निवृत्ति भईहै । फेर अविद्याकी उत्पत्तिके असंभवतैं मोक्ष अवश्य होवैहै ॥

१५ क्रमतैं वासनाक्षय औ मनोनाशके कारण वैराग्य अरु उपशमके अभावतैं रजतमगुणकी अधिकताकरि शुद्धसत्वगुणके तिरोधानतैं इसलोकसंबंधि अनुकूलप्रतिकूलपदार्थरूप निमित्तसैं जन्य विक्षेपरूप दृष्टदुःखकी निवृत्ति नहीं होवैहै । किंतु बोधकरि जन्मांतरके असंभवतैं परलोकसंबंधी आगामिदुःखका अभाव होवैहीं है ॥

१६ जैसैं अज्ञानीकूं "मैं ब्राह्मण हूं। मैं क्षत्रिय हूं। मैं मनुष्य हूं।मैं देवदत्त नामवाला हूं" ऐसैं देहादिकविषै संशयविपरीतभावनाविना दृढआत्म (अहं)बुद्धि होवैहै । तैसैं श्रवणादिरूप ब्रह्माभ्यासके बलकरि ब्राह्मणत्वादिविशिष्टदेहादिकविषै आत्मबुद्धिकूं बाधकरिके । ब्रह्मसैं अभिन्नआत्माविषै संशयविपरीतभावनासैं रहित स्वभावसिद्ध जो दृढआत्मबुद्धि होवैहै। सो बोधका अवधि है ॥

टीकांकः २१६९ टिप्पणांकः ॐ

ॐआरब्धकर्मनानात्वाद्बुद्धानामन्यथाऽन्यथा ।
वर्तनं तेन शास्त्रार्थे भ्रमितव्यं न पंडितैः ॥२८७॥
स्वस्वकर्मानुसारेण वर्ततां ते यथा तथा । अविशिष्टः सर्वबोधः समा मुक्तिरिति स्थितिः ॥२८८॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५८१ ५८२

६९ ननु तत्त्ववोधवतामपि रागादिमत्त्वेन वैषम्योपलंभात् ज्ञानस्यापि मुक्तिहेतुत्वं निश्चेतुं न शक्यमित्याशंक्य रागादेर्व्याध्यादिवदारब्धकर्मफलत्वात् मुक्तिप्रतिवंधकत्वमसिद्धं । अतो न शास्त्रार्थे विप्रतिपत्तव्यमित्याह—

७०] **आरब्धकर्मनानात्वात् बुद्धानां अन्यथा अन्यथा वर्तनं । तेन पंडितैः शास्त्रार्थे न भ्रमितव्यम् ॥२८७॥**

७१ किं तर्हि प्रतिपत्तव्यमित्यत आह (स्वस्वेति) —

७२] **ते स्वस्वकर्मानुसारेण यथा तथा वर्ततां । सर्वबोधः अविशिष्टः मुक्तिः समा । इति स्थितिः ॥**

७३) सर्वेषां ब्रह्माहमस्मीति ज्ञानमेकाकारं निरवद्यब्रह्मरूपेणावस्थानं च समानमिति भावः ॥ २८८ ॥

॥ १२ ॥ प्रारब्धभेदकरि ज्ञानीके विलक्षण-वर्त्तनतैं मोक्षका अप्रतिबंध ॥

६९ ननु तत्त्ववोधवान्पुरुषनकूं वी राग-द्वेषादिमान् होनैकरि विलक्षणताकी प्रतीतितैं ज्ञानकूं वी मुक्तिकी हेतुता निश्चय करनैकूं शक्य नहीं है । यह आशंकाकरि रागादिकनकूं व्याधिआदिककी न्याईं प्रारब्धकर्मका फल होनैतैं । तिन रागादिकनकूं मुक्तिकी प्रतिवंधकता असिद्ध है। यातैं दृढवोधकरि मोक्षप्राप्तिरूप शास्त्रके अर्थविषै विवाद करनैकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैंः—

७०] **प्रारब्धकर्मके नाना होनैकरि ज्ञानिनका औरऔरप्रकारसैं वर्त्तना है । तिस विलक्षण वर्त्तनैकरि पंडितजनोंनैं शास्त्रके अर्थविषै भ्रांत होना योग्य नहीं है ॥ २८७ ॥**

॥ १३ ॥ सर्वज्ञानीकूं ज्ञान औ मोक्षकी तुल्यता ॥

७१ तव क्या निर्धार करनैकूं योग्य है? तहां कहैहैंः—

७२] **सो ज्ञानी अपनै अपनै कर्मके अनुसारकरि जैसैं तैसैं वर्त्तन करो । सर्वका बोध समान है औ वोधका फलरूप मुक्ति समान है। यह स्थिति** कहिये निर्द्धार है ॥

७३) सर्वज्ञानिनकूं "ब्रह्म मैं हूं" यह ज्ञान एकआकारवाला है । औ निरवद्य कहिये अविद्यादिदोषरहित ब्रह्मरूपकरि अवस्थानरूप मुक्ति समान है । यह भाव है॥२८८॥

चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५८३	ँजगच्चित्रं स्वचैतन्ये पटे चित्रमिवार्पितम् । मायया तदुपेक्ष्यैव चैतन्ये परिशेष्यताम्॥२८९॥	२१७४
५८४	चिँत्रदीपमिमं नित्यं येऽनुसंदधते बुधाः । पश्यंतोऽपि जगच्चित्रं ते मुह्यंति न पूर्ववत् २९०	टिप्पणांकः ॐ

इति श्रीपंचदश्यां चित्रदीपः ॥ ६ ॥

७४ प्रकरणस्यास्य तात्पर्यं संक्षिप्य दर्शयति—

७५] जगच्चित्रं पटे चित्रं इव स्वचैतन्ये मायया अर्पितम् । तत् उपेक्ष्य चैतन्ये एव परिशेष्यताम् ॥ २८९ ॥

७६ ग्रंथाभ्यासफलमाह (चित्रदीपमिति)—

७७] ये बुधाः इमं चित्रदीपं नित्यं अनुसंदधते । ते जगच्चित्रं पश्यंतः अपि पूर्ववत् न मुह्यंति ॥ २९० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्भारतीतीर्थविद्यारण्यश्रीचरणशिष्येण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचितम् तात्पर्यबोधिनीनामकं चित्रदीपव्याख्यानं समाप्तम् ॥ ६ ॥

॥ १४ ॥ इस प्रकरणका संक्षेपसैं तात्पर्य ॥

७४ इस चित्रदीपनामकप्रकरणके तात्पर्यकूं संक्षेपकरिके दिखावैहैं:—

७५] जगत्रूप जो चित्र है । सो पटविषै चित्रकीन्याई स्वस्वरूप चैतन्यविषै मायानैं कल्प्याहै । तिस जगत्रूप चित्रकूं उपेक्षाकरिके कहिये मिथ्या ज्ञानकरि विस्मरणकरिके चैतन्यविषैही परिशेष करना ॥ २८९ ॥

॥ १५ ॥ ग्रंथके अभ्यासका फल ॥

७६ ग्रंथअभ्यासके फलकूं कहैहैं:—

७७] जो शुद्धबुद्धिवाले मुमुक्षु इस चित्रदीपकूं सदा अनुसंधान कहिये अविस्मरण करतेहैं । वे जगत्रूप चित्रकूं देखतेहुये बी पूर्वकी न्याई मोहकूं पावते नहीं हैं ॥ २९० ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्याश्चित्रदीपस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ६ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ तृप्तिदीपः ॥

॥ सप्तमं प्रकरणम् ॥ ७ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ५८५	ओंआत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ १ ॥ (अस्य व्याख्या ३७४ पृष्ठोपरि द्रष्टव्या)	टीकांकः ॐ टिप्पणांकः ॐ

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ तृप्तिदीपव्याख्या ॥ ७ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

अखंडानंदबोधाय शिष्यसंतापहारिणे ।
सच्चिदानंदरूपाय रामाय गुरवे नमः ॥ १ ॥

अज्ञानवारणव्रातसुनिवारणकारिणे ।
महावाक्यरवेणैव बापवे गुरवे नमः ॥ २ ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
कुर्वेऽहं तृप्तिदीपस्य व्याख्यां तत्त्वप्रकाशिकाम् ३

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ *तृप्तिदीपकी तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ ७ ॥

॥ भाषाकर्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—अखंडआनंदका है बोध जिसकूं औ शिष्यनके संतापकूं हरनैहारे औ सच्चिदानंदस्वरूप । ऐसै हमारे परगुरु राम (अखंडानंदसरस्वती)के तांई मेरा नमस्कार होहु ॥ १ ॥

टीकाः—" तत्त्वमसि " आदिकमहावाक्यरूप रव (शब्द)करिहीं अनेकजीवनके अज्ञानांशरूप हस्तिनके समुदायके सुष्ठुप्रकारकरि निवारणके करनैहारे बापुसरस्वतीसद्गुरुरूप केसरीके तांई मेरा नमस्कार होहु ॥२॥

टीकाः— श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमस्कारकरिके पंचदशीके तृप्तिदीपनामप्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिकानामव्याख्याकूं मैं करूंहूं ॥ ३ ॥

* अनुकूलवस्तुके अनुभवरूप भोगकी आवृत्तिके हुये जो सुखका उदय होवैहै। सो तृप्ति कहियेहै। ताकूं दीपककी न्याई प्रकाशनैहारा प्रकरण तृप्तिदीप है ॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

अखंडानंदरूपाय शिवाय गुरवे नमः ।
शिष्याज्ञानतमोध्वंसपट्वर्केंद्वग्निमूर्तये ॥ १ ॥
वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः २
नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
क्रियते तृप्तिदीपस्य व्याख्यानं गुर्वनुग्रहात् ३

॥ संस्कृतटीकाकारकृतमंगलाचरण ॥

टीकाः—अखंडआनंदरूप औ शिव (कल्याण)स्वरूप औ शिष्यनके अज्ञानरूप तमके नाशविषै पटु (कुशल) है ।सूर्य चंद्र औ अग्निकी न्याई मूर्ति जिसकी । ऐसैं गुरुके तांई मेरा नमस्कार होहु ॥ १ ॥

टीकाः—विद्यातीर्थ जो महेश्वर है। सो वेद्‌अर्थके प्रकाशकरि हृदयगततमकूं निवारण करताहुया । धर्म अर्थ काम औ मोक्षरूप च्यारीपुरुषार्थनकूं देहु ॥ २ ॥

टीकाः—श्रीभारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दोनूं मुनीश्वरनकूं नमनकरिके गुरुनके अनुग्रहतैं मेरेकरि तृप्तिदीपका व्याख्यान करियेहै ॥ ३ ॥

७८ तृप्तिदीपाख्यं प्रकरणमारभमाणः श्रीभारतीतीर्थगुरुः तस्य श्रुतिव्याख्यानरूपत्वात् तद्व्याख्येयां श्रुतिमादौ पठति (आत्मानं चेदिति)—

७९] पूरुषः आत्मानं "अयं अस्मि" इति विजानीयात् चेत् किम् इच्छन् कस्य कामाय शरीरं अनुसंज्वरेत्॥१॥

॥ १ ॥ "आत्माकूं जब जानै" इस श्रुतिगत "पुरुष" औ "अहं अस्मि" पदका अभिप्राय (प्रयोजनसहित पुरुषका स्वरूप) ॥ २१७८–२२४५ ॥

॥ १ ॥ ग्रंथारंभ ॥२१७८–२१८२॥

॥ १ ॥ सारेतृप्तिदीपमैं व्याख्यान योग्य श्रुतिका पठन ॥

७८ अब तृप्तिदीपनामप्रकरणकूं आरंभ करतेहुये श्रीभारतीतीर्थगुरु । तिस तृप्तिदीपकूं श्रुतिका व्याख्यानरूप होनैतैं तिसविषै व्याख्यान करनैके योग्य बृहदारण्यकउपनिषद्‌गतश्रुतिकूं आदिविषै पठन करैहैं:—

७९] पुरुष कहिये जीव । आत्माकूं "यह मैं हूं" इसप्रकार जब जानै । तब किस भोग्यविषयकूं इच्छताहुया किस भोक्ताके कामअर्थ कहिये भोगअर्थ शरीरके पीछे ज्वर जो संताप ताकूं पावै ॥ १ ॥

* सूर्य। तमका निवारक है। तौ बी तापका जनक है । इसतैं विलक्षणताअर्थ चंद्रकी उपमा है ॥ औ चंद्र शांतप्रकाशवान् हुया तमका निवारक है। तौ बी आंतरबाह्यसर्वतमका निवारक नहीं है ॥ औ अग्नि जो (महातेजरूप) सो दीपसूर्यचंद्रआदिकज्योतिरूपकरि आंतरबाह्यसर्वतमका निवारक है । यातैं अग्निकी उपमाका ग्रहण है ॥

† भारतीतीर्थ वा विद्याकूं पवित्र करनैहारे शंकराचार्य ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
५८६	अस्याः श्रुतेरभिप्रायः सम्यगत्र विचार्यते । जीवन्मुक्तस्य या तृप्तिः सा तेन विशदायते॥२॥	२१८०
५८७	मायाभासेन जीवेशौ करोतीति श्रुतत्वतः । कल्पितावेव जीवेशौ ताभ्यां सर्वं प्रकल्पितम् ३	टिप्पणांकः ६१७

८० इदानीं चिकीर्षितग्रंथविचारं तत्फलं च दर्शयति (अस्या इति)—

८१] अत्र अस्याः श्रुतेः अभिप्रायः सम्यक् विचार्यते। तेन जीवन्मुक्तस्य या तृप्तिः सा विशदायते ॥

८२) अत्र तृप्तिदीपाख्ये ग्रंथे अस्या"आत्मानं चेत्" इत्यादिकायाः श्रुतेरभिप्रायः तात्पर्यं सम्यग्विचार्यते। तेन अभिप्रायविचारेण जीवन्मुक्तस्य श्रुतिप्रसिद्धा या तृप्तिः सा विशदायते स्पष्टीभवति ॥ २॥

८३ "पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना । आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम्॥" इति व्याख्यानलक्षणस्योक्तत्वात् पुरुष इति पदस्यार्थमभिधातुं तदुपोद्घातत्वेन सृष्टिं संक्षिप्य दर्शयति—

८४] "माया आभासेन जीवेशौ करोति" इति श्रुतत्वतः जीवेशौ कल्पितौ एव । ताभ्यां सर्वं प्रकल्पितम् ॥

॥ २ ॥ ग्रंथका विचार औ फल ॥

८० अब करनैकूं इच्छित ग्रंथके विचारकूं औ तिस विचारके फलकूं दिखावैहैं:—

८१]इहां इस प्रथमश्लोकउक्त श्रुतिका अभिप्राय सम्यक्विचार करियेहै ॥ तिस विचारकरि जीवन्मुक्तकी जो तृप्ति है। सो स्पष्ट होवैहै ॥ २ ॥

८२) इस तृप्तिदीपनामग्रंथविषै "आत्माकूं जब जानै" इस आदिवाली श्रुतिका अभिप्राय सम्यक्विचार करियेहै । तिस श्रुतिअभिप्रायके विचारकरि जीवन्मुक्तकी श्रुतिनविषै प्रसिद्ध जो तृप्ति है। सो स्पष्ट होवैहै ॥ २ ॥

॥ २ ॥ "पुरुष" पदके अर्थमैं उपयोगी सृष्टिके कथनपूर्वक"पुरुष"शब्दका अर्थ ॥२१८३—२१९७॥

॥ १ ॥ जीवईशआदिकसृष्टिका कथन ॥

८३ "पदच्छेद[17] । पदनके अर्थका कथन । विग्रह[18] । वाक्यकी योजना[19]। औ आक्षेपका[20] समाधान । इन पंचलक्षणवाला व्याख्यान है।" ऐसैं शास्त्रांतरविषै व्याख्यानके लक्षणकूं कथन किया होनैतें प्रथमश्लोकउक्त श्रुतिगत "पुरुष" इस पदके अर्थकूं कथन करनैकूं तिस "पुरुष"पदके अर्थके उपोद्घातपनैकरि सृष्टिकूं संक्षेपसैं दिखावैहैं:—

८४] "माया आभासकरि जीवईशकूं करैहै ॥" ऐसैं श्रवण किया-

१७ श्लोकके पदनकूं भिन्न भिन्न करनैका नाम पदच्छेद है ॥

१८ समासयुक्त अरु विभक्तिअंतवाले पदनका यथायोग्य-अर्थके अनुसार भिन्न भिन्नकरि जनावना विग्रह है ॥

१९ अन्वय ॥

२० शंकाका ॥

टीकांक: २१८५ टिप्पणांक: ॐ	ईक्षणादिप्रवेशांता सृष्टिरीशेन कल्पिता । जाग्रदादिविमोक्षांतः संसारो जीवकल्पितः ॥४॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ५८८

८५) प्रतिपाद्यमर्थं बुद्धौ संगृह्य तदर्थमर्थांतरवर्णनम् उपोद्घातः । अत्र मायाशब्देन चिदानंदमयब्रह्मप्रतिबिंबसमन्विता सत्वरजस्तमोगुणात्मिका जगदुपादानभूता प्रकृतिरुच्यते । सा च सत्वगुणस्य शुद्ध्यविशुद्धिभ्यां द्विधा भिद्यमाना क्रमेण माया चाविद्या च भवति । तयोर्मायाविद्ययोः प्रतिबिंबितं ब्रह्मचैतन्यमेवेश्वरो जीवश्चेत्युच्यते । तदिदं तत्त्वविवेकाख्ये ग्रंथे श्रीमद्विद्यारण्यगुरुभिर्निरूपितम् ।
"चिदानंदमयब्रह्मप्रतिबिंबसमन्विता ।
तमोरजःसत्वगुणा प्रकृतिर्द्विविधा च सा १५
सत्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते ।
मायाबिंबो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः १६
अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा । सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान् १७"
इति इममेवार्थं मनसि निधाय "जीवेशावाभासेन करोति । माया चाविद्या च स्वयमेव भवति" इति श्रुतिरपि प्रवृत्ता । अतो जीवेश्वरयोर्मायाकल्पितत्वं । अन्यत्कृत्स्नं जगत् ताभ्यामेव कल्पितम् ॥ ३ ॥

८६ तत्र केन कियत्कल्पितमित्यत आह—

८७] ईक्षणादिप्रवेशांता सृष्टिः

होनैतैं जीवईश कल्पितहीं हैं ॥ तिन दोनूंकरि सर्वजगत् कल्पित है ॥

८५) प्रतिपादन करनैके योग्य अर्थकूं बुद्धिविषै सम्यक्ग्रहणकरिके । तिसके वास्ते अन्यअर्थका वर्णन उपोद्घात है ॥ इहां मूलश्लोकउक्तश्रुतिविषै मायाशब्दकरि चिदानंदरूप ब्रह्मके प्रतिबिंबकरि युक्त औ सत्वरजोतमोगुणरूप जगत्की उपादानरूप प्रकृति कहियेहै ॥ सो प्रकृति सत्वगुणकी शुद्धि औ अशुद्धिकरि दोप्रकारसैं भेदकूं पाईहुई । क्रमकरि माया औ अविद्या होवैहै ॥ तिन माया-अविद्याविषै प्रतिबिंबकूं पाया ब्रह्मचैतन्यहीं ईश्वर औ जीव ऐसैं कहियेहै ॥ सो यह प्रत्यक्तत्त्वविवेकनामग्रंथविषै श्रीमत्विद्यारण्यगुरुनैं निरूपण कियाहै:—

"चिदानंदमयब्रह्मके प्रतिबिंबकरि युक्त औ तमरजसत्वगुणरूप जो है । सो प्रकृति है ॥ सो प्रकृति फेर दोप्रकारकी है" (१५) ॥

वे प्रकृतिके दोप्रकार । सत्वगुणकी शुद्धि औ अशुद्धिकरि माया औ अविद्या संमतहैं ॥ मायामैं प्रतिबिंबकूं पाया चिदात्मा । तिस मायाकूं वशकरिके सर्वज्ञईश्वर होवैहै(१६)"॥औ

अविद्याके वश भया अन्य जीव । तिस अविद्याकी विचित्रतातैं अनेकभांतिका होवैहै ॥ सो अविद्या कारणशरीर होवैहै । तिस कारणशरीरविषै अभिमानवान् हुवा जीव प्राज्ञ होवैहै (१७) ॥"

इसहीं अर्थकूं मनविषै राखिके "जीवईशकूं आभासकरि करैहै । माया औ अविद्या आप प्रकृतिहीं होवैहै ॥" यह श्रुति बी प्रवर्त्त भईहै ॥ यातैं जीवईश्वरकूं मायाकरि कल्पितपना है । अन्यसर्वजगत् तिन दोनूंकरिहीं कल्पित है ॥ ३ ॥

८६ ननु जीवईश्वर दोनूंके मध्य किसनैं कितना जगत् कल्प्याहै? तहां कहैहैं:—

८७] "ईक्षण"सैं आदिलेके "प्रवेश"पर्यंत जो सृष्टि । सो ईश्वरकरि

ईशेन कल्पिता जाग्रदादिविमोक्षांतः संसारः जीवकल्पितः ॥

८८) "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय" इति श्रुतम् । ईक्षणमादिर्यस्याः सा ईक्षणादिः । "अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य" इति श्रुतेः । प्रवेशोंऽतो यस्याः सा प्रवेशांता । ईक्षणादिश्चासौ प्रवेशांता चेति पश्चात्कर्मधारयः । सेयं सृष्टिः ईश्वरेण कल्पिता॥ जाग्रदादिर्यस्य संसारस्य असौ जाग्रदादिः । विमोक्षो मुक्तिरंतो यस्य सः विमोक्षांतः संसारः जीवेन कल्पितः । तदभिमानित्वाज्जीवस्येत्यर्थः । ते च जाग्रदादय इत्थं श्रूयंते । "स एष मायापरिमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वम् । स्त्रीअन्नपानादिविचित्रभोगैः स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ॥ स्वप्नेऽपि जीवः सुखदुःखभोक्ता स्वमायया कल्पितविश्वलोके । सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति ॥ पुनश्च जन्मांतरकर्मयोगात् स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः ॥ पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवस्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम् ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपंचं यत्प्रकाशते । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबंधैः प्रमुच्यते" इति॥४॥

कल्पित है अरु "जाग्रत्" सैं आदिलेके "मोक्ष" पर्यंत जो **संसार** । सो जीवकरि कल्पित है ॥

८८) "सो ब्रह्म मैं बहु होवौं । प्रकर्षकरि होवौं । ऐसैं ईक्षण करताभया ॥" इस श्रुतिकरि श्रवण किया जो अवलोकनरूप ज्ञान सो है आदि जिसके । ऐसी जो सृष्टि । सो ईक्षणआदि कहियेहै ॥ औ "इस जीवरूप आत्माकरि[21] पीछे प्रवेशकरिके" इस श्रुतितैं सुन्या जो प्रवेश सो है अंत जिसका । ऐसी जो सृष्टि । सो प्रवेशांत कहियेहै ॥ इसरीतिसैं "ईक्षणादिप्रवेशांत" जो यह सृष्टि है । सो ईश्वरकरि कल्पित है॥ औ जाग्रत्अवस्था है आदि जिसके । ऐसा जो यह संसार । सो जाग्रदादि कहियेहै ॥ औ विमोक्ष जो मुक्ति सो है अंत जिसका । ऐसा जो संसार । सो विमोक्षांत कहियेहै ॥ इसरीतिसैं "जाग्रदादिविमोक्षांत" जो संसार है । सो जीवकरि कल्पित है । काहेतैं जीवकूं तिसका अभिमानी होनैतैं । यह अर्थ है॥ वे जाग्रत्आदिक इसरीतिसैं श्रुतिविषै सुनियेहैं:—

(१) "सो यह जीव मायाकरि च्यारिऔरतैं मोहित है आत्मा जिसका । ऐसा हुवा शरीरके प्रति आश्रयकरिके[22] सर्वकर्मकूं करता है औ स्त्रीअन्नपानआदिक विचित्रभोगनकरि सोइ जीव जाग्रत्विषै तृप्तिकूं पावताहै"

(२) "स्वप्नविषै वी जीव । अपनी मायाकरि कल्पित सारेलोकविषै सुखदुःखका भोक्ता होवैहै औ सुषुप्तिविषै सर्वके विलीन हुये अज्ञानकरि आवृत हुवा सुखरूपकूं पावताहै" औ ॥

(३) "फेर जन्मांतरके कर्मके योगतैं सोई जीव स्वप्न वा जाग्रत्कूं पावताहै औ जो जीव तीनअवस्था वा शरीररूप पुरविषै क्रीडा करताहै । तिसतैं सकलविचित्रमनोमयजगत् हुवाहै ॥"

(४) "जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्तिआदिकप्रपंचकूं जो प्रकाशताहै । सो ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं जानिके सर्वबंधनतैं मुक्त होवैहै" इति ॥ ४ ॥

२१ स्वरूपकरि ॥

२२ अभिमानकरिके ॥

टीकांक: २१८९ टिप्पणांक: ६२३

भ्रमाधिष्ठानभूतात्मा कूटस्थासंगचिद्वपुः ।
अन्योऽन्याध्यासतोऽसंगधीस्थजीवोऽत्र पूरुषः ॥५॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ५८९

८९ एवं पुरुषशब्दार्थावबोधोपयोगिनीं सृष्टिमभिधायेदानीं पुरुषशब्दार्थमाह (भ्रमाधिष्ठानेति)—

९०] **कूटस्थासंगचिद्वपुः भ्रमाधिष्ठानभूतात्मा अन्योऽन्याध्यासतः असंगधीस्थजीवः अत्र पूरुषः ॥**

९१) यः कूटस्थासंगचिद्वपुः अविकार्यसंगचित्स्वरूपभ्रमाधिष्ठानभूतात्मा भ्रमस्य देहेंद्रियाद्यध्यासस्य । अधिष्ठानभूतः अधिष्ठानत्वेन वर्तमानः परमात्मास्ति । सोऽसंग एव । अन्योऽन्याध्यासतः अन्योऽन्यस्मिन्नन्योऽन्यात्मकतामन्योऽन्यधर्मांश्चाध्यस्य

॥ २ ॥ "पुरुष" पदका अर्थ ॥

८९ ऐसैं "पुरुष" शब्दके अर्थके बोधविषै उपयोगी सृष्टिकूं कहिके। अब "पुरुष" शब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

९०] **जो कूटस्थअसंगचिद्वपु भ्रमका अधिष्ठानरूप आत्मा है । सो अन्योऽन्याध्यासतैं असंगबुद्धिविषै** स्थित जीव हुया इस प्रथमश्लोकउक्त श्रुतिविषै "पुरुष" कहियेहै ॥

९१) जो अविकारी असंगचेतनस्वरूप औ देहइंद्रियआदिकके अध्यासरूप भ्रमका अधिष्ठानरूप परमात्मा है । सो असंगही अन्योऽन्याध्यासतैं कहिये "परस्परविषै परस्परके स्वरूपकूं औ परस्परके धर्मनकूं अध्यासकरिके सर्वव्यवहारका भजनैहारा होवैहै"

२३ अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अवभास (विषय औ ज्ञान) । वा अपने अभाववाले अधिकरणमैं अवभास । अध्यास कहियेहै ॥ सो अध्यास (१) ज्ञानाध्यास औ (२) अर्थाध्यास इस भेदतैं दोभांतिका है ॥

१ औरविषै औरकी प्रतीति **ज्ञानाध्यास** है ॥ औ

(२) तिस भ्रमज्ञानका विषय **अर्थाध्यास** है ॥

तिनमैं परोक्षअपरोक्षभेदतैं ज्ञानाध्यास दोप्रकारका है औ अर्थाध्यास कहिये **विषयाध्यास** बी केवलसंबंध (संसर्ग) का अध्यास । संबंधविशिष्टसंबंधीका अध्यास । केवलधर्मका अध्यास । धर्मविशिष्टधर्मीका अध्यास । अन्योन्याध्यास औ अन्यतराध्यासभेदतैं षट्प्रकारका है ॥

अथवा केवल संबंधाध्यासकूं संसर्गाध्यासरूप होनेतैं औ अन्योन्याध्यासकूं सर्वअध्यासनविषै अनुस्यूत होनेतैं औ अन्यतरध्यास केवलधर्माध्यास अरु धर्मसहितधर्मीके अध्यासकूं संबंधसहित संबंधीका अध्यासरूप होनेतैं [१] स्वरूपाध्यास औ [२] संसर्गाध्यासके भेदतैं **अर्थाध्यास दोप्रकारका** है । तिसविषैही उक्तषट्भेदनका अंतर्भाव है।यह बालबोधके ७४ अंकविषै लक्षणावलिमैं बी हमनैं लिख्याहै ॥

[१] (क) "मैं अज्ञ हूं" ऐसैं अज्ञानका शुद्धचैतन्यविषै अध्यास है । औ

(ख) "मैं हूं" ऐसैं अज्ञानउपहितचेतनविषै अहंकार (अंतःकरण)का अध्यास होवैहै । औ

(ग) "मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं । कर्ता हूं । भोक्ता हूं" ऐसैं सुखदुःखकामसंकल्पादिक अंतःकरणके धर्मनका अंतःकरणउपहितचेतनविषै अध्यास होवैहै । औ

(घ) "मैं काण (एकाक्षी) हूं । अंध हूं । बधिर हूं । देखताहूं । सुनताहूं । चलताहूं । बोलताहूं" ऐसैं इंद्रियनके धर्मनका बी अंतःकरणउपहितचेतनविषै अध्यास होवैहै । औ

(ङ) "मैं मनुष्य हूं । बालक हूं । युवा हूं । ब्राह्मण हूं" इत्यादिधर्मसहित देहका अंतःकरण औ इंद्रियनके धर्मउपहितचेतनविषै अध्यास होवैहै । औ

(च) "मैं स्थूल हूं । कृश हूं । गौर हूं । श्याम हूं ।" इत्यादि देहके धर्मनका देहउपहितचेतनविषै अध्यास होवैहै । औ पुत्रस्त्रीआदिकनके सुखदुःखादिधर्मनका देहधर्मउपहितचेतनविषै अध्यास होवैहै ॥

इंद्रिय औ देहका स्वरूपसैं कूटस्थविषै अध्यास नहीं है । किंतु ब्रह्मचेतनविषैही है । परंतु धर्मसहित तिनकी कूटस्थविषै

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ५९० | टीकांकः २१९२ | टिप्पणांकः ६२४

सांधिष्ठानो विमोक्षादौ जीवोऽधिक्रियते न तु ।
केवलो निरधिष्ठानविभ्रांतेः क्वाप्यसिद्धितः ॥ ६ ॥

सर्वव्यवहारभाग्भवतीत्याचार्यनिरूपितेन तादात्म्याध्यासेन। असंगधीस्थजीवः स्वेन पारमार्थिकसंबंधशून्यायां बुद्धौ वर्तमानो जीवः सन् अत्र अस्यां श्रुतौ पुरुषः इत्युच्यते। "स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशय" इति श्रुत्या पुरुषशब्दस्य व्युत्पादितत्वात्पुरुषस्यैव च पूरुषत्वात् पुरुष एव पूरुषः। बुद्ध्यादिकल्पनाधिष्ठानं कूटस्थचैतन्यमेव बुद्धौ प्रतिबिंबितत्वेन प्राप्तजीवभावं सत्पुरुषशब्देनोच्यत इत्यभिप्रायः ॥ ५ ॥

९२ नन्वत्र पुरुषशब्देन केवलचिदाभासरूपो जीव एव उच्यतां। किमनेन कूटस्थचैतन्येनाधिष्ठानभूतेनेत्याशंक्य तस्य मोक्षाद्यन्वयित्वसिद्धये तदपि स्वीकर्तव्यमित्याह—

९३] साधिष्ठानः जीवः विमोक्षादौ अधिक्रियते। न तु केवलः॥

९४) साधिष्ठानः अधिष्ठानेन कूटस्थचैतन्येन सहितः। जीवः विमोक्षादौ

ऐसैं उत्तरमीमांसाके प्रथमअध्यायके प्रथमपादगत प्रथमसूत्रके भाष्यविषै आचार्यांनैं निरूपण किये तादात्म्यअध्यासकरि। असंगबुद्धिविषै स्थित कहिये अपनैसैं परमार्थिकसंबंधरहित बुद्धिविषै वर्तमान जीव हुया इस प्रथमश्लोकउक्त श्रुतिविषै "पुरुष" ऐसैं कहियेहै। काहेतें "सो यह पुरुष सर्वशरीररूप पुरिनविषै "पुरिशय है।" इस श्रुतिकरि "पुरुष" शब्दका अर्थ किया है। यातें बुद्धिआदिककी कल्पनाका अधिष्ठान कूटस्थचैतन्यहीं बुद्धिविषै प्रतिबिंबरूप होयके जीवभावकूं प्राप्तहुया "पुरुष" शब्दकरि कहियेहै ॥ अभिप्राय यह है कि:—साभासअंतःकरणविशिष्टचैतन्यरूप जीव "पुरुष" शब्दका अर्थ है ॥५॥

॥ ३ ॥ बंधमोक्षमैं अधिष्ठानकूटस्थसहित चिदाभासका अधिकार ॥

९२ ननु इस प्रथमश्लोकउक्त श्रुतिविषै "पुरुष" शब्दकरि केवल चिदाभासरूप जीवही कहाचाहिये। इस अधिष्ठानरूप कूटस्थ चैतन्यकरि क्या प्रयोजन है? यह आशंकाकरि तिस चिदाभासकूं मोक्षआदिकविषै संबंधीपनैकी सिद्धिअर्थ सो अधिष्ठानचैतन्य बी स्वीकार करनैकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं:—

९३] अधिष्ठानसहितजीव। मोक्षआदिकविषै अधिकारी होवैहै। केवल नहीं॥

९४) अधिष्ठान जो कूटस्थचैतन्य तिसकरि सहित जीव जो चिदाभास। सो मोक्षस्वर्गा-

अभेदप्रतीति होवैहै ॥ "मैं चक्षु हूं औ देह हूं" ऐसैं केवल इंद्रिय औ देहकी अभेदप्रतीति नहीं होवैहै ॥

इसरीतिसैं अज्ञानआदिकनका चेतनविषै **स्वरूपाध्यास** है ॥ औ

[२] आनंदआदिकधर्मयुक्तचेतनका अज्ञानआदिकनविषै **संसर्गाध्यास** है ॥

जहां पदार्थका स्वरूप अनिर्वचनीय उपजे तहां **स्वरूपाध्यास** कहियेहै औ जहां पदार्थका स्वरूप तौ व्यावहारिक वा पारमार्थिक प्रथम सिद्ध होवै औ ताका अनिर्वचनीयसंबंध उपजे। तहां **संसर्गाध्यास** कहियेहै ॥

इसरीतिसैं आत्मा औ अनात्माका अन्योन्याध्यास (परस्परअध्यास) है। यह संक्षेपतैं दिखाया ॥ इनका शारीरक औ तिनके व्याख्यानोविषै विस्तार है ॥ इति ॥

२४ पूर्ण ॥

टीकांक: २१९५	अधिष्ठानांशसंयुक्तं भ्रमांशमवलंबते ।	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ५९१
	यदा तदाऽहं संसारीत्येवं जीवोऽभिमन्यते ॥ ७ ॥	
टिप्पणांक: ॐ	भ्रमांशस्य तिरस्कारादधिष्ठानप्रधानता ।	५९२
	यदा तदा चिदात्माहमसंगोऽस्मीति बुध्यते ॥८॥	

मोक्षस्वर्गादिसाधनानुष्ठाने । अधिक्रियते अधिकारी भवति । न केवलः चिदाभासः ॥

९५कुत इत्यत आह (निरधिष्ठानेति)—

९६] क अपि निरधिष्ठानविभ्रांतेः असिद्धितः ॥

९७) अधिष्ठानरहितस्यारोप्यस्य लोकेऽदृष्टत्वादिति भावः ॥ ६ ॥

९८ इदानीं साधिष्ठानस्यैव तस्य संसाराद्यन्वयितृत्वं श्लोकद्वयेन विभज्य दर्शयति (अधिष्ठानांशेति)—

९९] जीवः यदा अधिष्ठानांशसंयुक्तं भ्रमांशं अवलंबते । तदा "अहं संसारी" इति एवं अभिमन्यते ॥

२२००) जीवो यदा अधिष्ठानांशसंयुक्तं कूटस्थसहितं ॥ भ्रमांशं चिदाभासोपेतं शरीरद्वयं । अवलंबते स्वस्वरूपत्वेन स्वीकरोति । तदाऽहं संसारीत्येवमभिमन्यते ॥ ७ ॥

१] (भ्रमांशस्येति)–यदा भ्रमांशस्य तिरस्कारात् अधिष्ठानप्रधानता। तदा "अहं चिदात्मा असंगः अस्मि" इति बुध्यते ॥

२) यदा पुनः भ्रमांशस्य देहद्वयसहितस्य चिदाभासस्य । तिरस्कारात् मिथ्यात्वज्ञानेनानादरणात् । अधिष्ठानप्रधानता

दिकके साधनके अनुष्ठानविषै अधिकारी होवैहै । केवलचिदाभास नहीं ॥

९५ केवलचिदाभास काहेतैं मोक्षादिकविषै अधिकारी नहीं ? तहां कहैहैं:–

९६] कहूं बी निरधिष्ठानभ्रांतिकी असिद्धितैं ॥

९७)अधिष्ठानरहित आरोपितवस्तुकूं लोकविषै नहीं देख्या होनेतैं ॥ यह भाव है ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ "अहं अस्मि "पदके अर्थमैं "अहं "पदके अर्थका विवेचन ॥ २१९८—२२४५ ॥

॥ १ ॥ "अहं" औ "असि" पदके अर्थपूर्वक जीवके संसार औ मोक्षका विभाग ॥

९८ अब अधिष्ठानसहितहीं चिदाभासके संसारआदिकसैं संबंधीपनेकूं दोश्लोककरि विभागकरिके दिखावैहैं:–

९९] जीव जब अधिष्ठानके अंशकरि संयुक्त भ्रमअंशकूं आश्रय करैहै। तब "मैं संसारी हूं" ऐसैं मानताहै॥

२२००) जीव जब अधिष्ठानअंशरूप कूटस्थकरि सहित भ्रमअंशरूप चिदाभासयुक्त दोनूंशरीरकूं आश्रय करैहै । कहिये स्वस्वरूपकरिके स्वीकार करैहै । तब "मैं संसारी हूं" ऐसैं अभिमान करताहै ॥ ७ ॥

१] जब भ्रमअंशके तिरस्कारतैं अधिष्ठानकी प्रधानता जीवकरि मानियेहै । तब "मैं चिदात्मा असंग हूं" ऐसैं जीव जानताहै ॥

२) जब फेर दोनूंदेहसहित चिदाभासरूप भ्रमअंशके तिरस्कारतैं कहिये मिथ्यापनेके ज्ञानकरि अनादर करनेतैं । अधिष्ठानरूप

नासंगेऽहंकृतिर्युक्ता कथमस्मीति चेच्छृणु ।
एको मुख्यो द्वावमुख्यावित्यर्थस्त्रिविधोऽहमः ॥९॥

अधिष्ठानभूतस्यैव कूटस्थस्य स्वरूपत्वं जीवेन स्वीक्रियते । तदा अहं चिदात्माऽसंगः च अस्मीति बुद्ध्यते जानाति ॥ ८ ॥

३ नन्वधिष्ठानचैतन्यस्य जीवस्वरूपत्वस्वीकारे "चिदात्माहमसंगोऽस्मीति बुद्ध्यते" इति यदुक्तं तदनुपपन्नं स्यादसंगचिद्रूपस्य कूटस्थस्याहंप्रत्ययविषयत्वाभावादिति शंकते (नासंग इति)—

४] असंगे अहंकृतिः न युक्ता । कथं "अस्मि" इति चेत् ॥

५) असंगे चिदात्मनि अविषये अहंप्रत्ययो न युज्यते यतः अतः कथं अहं अस्मीति जानीयान्न कथमपीत्यर्थः ॥

६ मुख्यया वृत्त्याऽहंप्रत्ययविषयत्वाभावेऽपि लक्षणया तदस्तीति विवक्षुरहंशब्दार्थं तावद्विभजते—

७] शृणु । एकः मुख्यः द्वौ अमुख्यौ इति अहमः त्रिविधः अर्थः ॥ ९ ॥

कूटस्थकी प्रधानता कहिये स्वस्वरूपता जीवकरि स्वीकार करियेहै । तब "मैं चिदात्मा औ असंग हूं" ऐसैं जीव जानताहै ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ कूटस्थकूं "अहं"प्रत्ययकी विषयताके अभावकी शंका औ "अहं"शब्दके अर्थके विभागकरि समाधान ॥

३ ननु "अधिष्ठानचैतन्यकूं जीवकी स्वरूपताके स्वीकार किये 'मैं चिदात्मा औ असंग हूं' ऐसैं जीव जानताहै ॥" यह जो कहा सो अयुक्त होवैगा । काहेतें असंगचेतनरूप कूटस्थकूं अहंप्रत्ययके विषय होनैके अभावतें । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

४] असंगविषै अहंकार युक्त नहीं है । यातैं कैसैं "मैं असंग हूं" ऐसैं जीव जानताहै ? इसप्रकार जो कहै ।

५) "मैं" इस आकारवाले शब्द औ वृत्तिरूप अहंप्रत्ययके अविषय असंगचिदात्माविषै जातैं अहंप्रत्यय बनै नहीं । यातैं कैसैं "मैं असंग चिदात्मा हूं" ऐसैं जीव जानैगा ? कैसैं बी नहीं जानैगा । यह अर्थ है ॥

६ शब्दकी मुख्या जो शक्ति । तिसरूप वृत्तिकरि आत्माकूं अहंप्रत्ययकी विषयताके अभाव हुये बी लक्षणावृत्तिकरि अहंप्रत्ययकी विषयता है । ऐसैं कहनैकूं इच्छतेहुये आचार्य अहंशब्दके अर्थकूं प्रथम विभाग करैहैः—

७] तौ हे वादी! श्रवण करः—एक मुख्य औ दोअमुख्य । ऐसैं अहंशब्दका त्रिविधअर्थ है ॥ ९ ॥

---

२५ "अहं" शब्दका मुख्य (शक्य) अर्थ । साभासअंतःकरणविशिष्टचेतन है । सोई अहंशब्दका विषय है ॥ शुद्धचैतन्य "अहं"शब्दका मुख्यअर्थ नहीं । यातैं ताका विषय बी नहीं । परंतु भागत्यागलक्षणासैं साभासअंतःकरण वा चेतन इन दोनूंमैंसैं लौकिकवैदिकप्रसंगके अनुसार एकभागका त्यागकरिके अवशिष्टएकभाग "अहं"शब्दका लक्ष्यअर्थ है । सोई अहंशब्दका मुख्यअर्थ कहियेहै ॥ ऐसैं लक्षणावृत्तिसैं शुद्धचैतन्यकूं "अहं" शब्दकी विषयता है औ वृत्तिकी विषयता तौ शब्दकी विषयताके अधीन है । तातैं लक्षणासैं चेतनकूं "अहं"वृत्तिकी विषयता बी कहियेहै ॥ अपने प्रकाशकचैतन्यके आवरणकी निवृत्तिही इहां वृत्तिकी विषयता है । औरप्रकारकी नहीं ॥ इहां साभासअंतःकरणसहित चेतनरूप "अहं"शब्दके वाच्यअर्थका गमनादिकलौकिकव्यवहारमैं वा ज्ञानदृष्टिरूप वैदिकव्यवहारमैं असंभवही लक्षणाका बीज है ॥

टीकांक: २२०७ टिप्पणांक: ॐ	अन्योऽन्याध्यासरूपेण कूटस्थाभासयोर्वपुः । एकीभूय भवेन्मुख्यस्तत्र मूढैः प्रयुज्यते ॥ १० ॥ पृथगाभासकूटस्थावमुख्यौ तत्र तत्त्ववित् । पर्यायेण प्रयुंक्तेऽहंशब्दं लोके च वैदिके ॥ ११ ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ५९४ ५९५

ॐ७) अहमः अहंशब्दस्येत्यर्थः ॥

८ कीदृशो मुख्योऽर्थ इत्याकांक्षायां तं दर्शयति (अन्योऽन्येति)—

९] कूटस्थाभासयोः वपुः अन्योऽन्याध्यासरूपेण एकीभूय मुख्यः भवेत्

१०) कूटस्थचिदाभासयोः स्वरूपं अन्योऽन्याध्यासेन ऐक्यं प्राप्तं अहंशब्दस्य वाच्यत्वेन मुख्यः अर्थो भवति ॥

११ अस्य कुतो मुख्यत्वमित्यत आह—

१२] तत्र मूढैः प्रयुज्यते ॥

१३) यत इत्यध्याहारः । तत्र तस्मिन्नविविक्तकूटस्थचिदाभासयोः स्वरूपे । यतो विवेकज्ञानशून्यैः सर्वैरप्यहंशब्दः प्रयुज्यते अतोऽस्य मुख्यत्वमित्यर्थः ॥ १० ॥

१४ इदानीममुख्यौ द्वौ दर्शयति—

१५] पृथक् आभासकूटस्थौ अमुख्यौ

१६) आभासकूटस्थौ प्रत्येकमहंशब्दार्थत्वेन यदा विवक्षितौ तदा अमुख्यार्थौ भवतः॥

१७ अनयोरमुख्यत्वे कारणमाह (तत्र तत्त्वविदिति)—

ॐ ७) इहां अहमः याका अहंकारका । यह अर्थ है ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥ "अहं"शब्दका मुख्यअर्थ ॥

८ "अहं"शब्दका मुख्यअर्थ किसप्रकारका है? इस आकांक्षाके हुये तिस अहंशब्दके मुख्यअर्थकूं दिखावैहैं:—

९] **कूटस्थ औ आभासका स्वरूप अन्योअन्याध्यासरूपकरि एक होयके अहंशब्दका मुख्यअर्थ होवैहै ॥**

१०) कूटस्थ अरु चिदाभास । इन दोनूंका स्वरूप अन्योअन्यअध्यासकरि एकताकूं प्राप्त है । सो अहंशब्दका वाच्य होनैकरि मुख्यअर्थ होवैहै ॥

११ इस मिलित कूटस्थचिदाभासके स्वरूपकूं मुख्यपना काहेतैं है? तहां कहैहैं:—

१२] **तिसविषै मूढनकरि अहंशब्द जोडियेहै ॥**

१३) तिस नहीं विवेचन किये कूटस्थ औ चिदाभासके स्वरूपविषै जातैं विवेकज्ञानसैं शून्य सर्वजनकरि वी अहंशब्द जोडियेहै । यातैं इस मिलित कूटस्थचिदाभासके स्वरूपकूं मुख्यपनां कहिये अहंशब्दकी मुख्यअर्थता है ॥ यह अर्थ है ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ "अहं"शब्दके दोभांतिके अमुख्यअर्थ ॥

१४ अब अमुख्य दोनूं अहंशब्दके अर्थनकूं दिखावैहैं:—

१५] **भिन्नआभास औ कूटस्थ अहंशब्दके अमुख्यअर्थ हैं ॥**

१६) आभास औ कूटस्थ एक एक अहंशब्दके अर्थ होनैकरि जब कहनैकूं इच्छित होवैं । तब वे अहंशब्दके अमुख्यअर्थ कहिये लक्ष्यअर्थ होवैहैं ॥

१७ भिन्नआभास औ कूटस्थ इन दोनूंके अमुख्यपनैविषै कारण कहैहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
५९६	[२१]लौकिकव्यवहारेऽहं गच्छामीत्यादिके बुधः । विविच्यैव चिदाभासं कूटस्थात्तं विवक्षति ॥१२॥	२२१८
५९७	[२३]असंगोऽहं चिदात्माऽहमिति शास्त्रीयदृष्टितः । अहंशब्दं प्रयुंक्तेऽयं कूटस्थे केवले बुधः ॥ १३ ॥	टिप्पणांक: ॐ

१८] तत्त्ववित् तत्र अहंशब्दं लोके च वैदिके पर्यायेण प्रयुंक्ते ॥

१९) अत्रापि यत इत्यध्याहारः । तत्त्ववित् यतः तत्र तयोः कूटस्थचिदाभासयोः अहंशब्दं लोके लौकिके । वैदिके वैदिकव्यवहारे च । पर्यायेण प्रयुंक्ते इति योजना ॥ अयं भावः । चिदाभासकूटस्थयोरविविक्तस्वरूपस्य सार्वजनीनव्यवहारविषयत्वात् मुख्यार्थत्वम् । विविक्तरूपस्य तु कतिपयजनैः कदाचिदेव व्यवह्रियमाणत्वादमुख्यार्थत्वमिति ॥ ११ ॥

२० "पर्यायेण प्रयुंक्ते" इत्युक्तमेवार्थं प्रपंचयति प्रतिपत्तिसौकर्याय श्लोकद्वयेन (लौकिकेति)—

२१] बुधः "अहं गच्छामि" इत्यादिके लौकिकव्यवहारे कूटस्थात् चिदाभासं विविच्य तं एव विवक्षति ॥

२२) बुधः विद्वान् । अहं गच्छामीत्यादिलौकिकव्यवहारे कूटस्थाच्चिदाभासं विविच्य तमेव अहंशब्देन विवक्षति वक्तुमिच्छति ॥ १२ ॥

२३] (असंग इति)— अयं बुधः शास्त्रीयदृष्टितः केवले कूटस्थे "अहं असंगः अहं चिदात्मा" इति अहंशब्दं प्रयुंक्ते ॥

१८] तत्त्ववित् । तिन दोनूंमें अहंशब्दकूं लौकिक औ वैदिकव्यवहारविषै पर्यायकरि जोडताहै ॥

१९) तत्त्ववित्पुरुष जातैं तिस कूटस्थ औ चिदाभासविषै अहंशब्दकूं लौकिक औ वैदिकव्यवहारविषै क्रमकरि उच्चारताहै । यातैं आभास औ कूटस्थ एक एक अहंशब्दके अमुख्यअर्थ हैं । ऐसैं योजना है ॥ याका यह भाव हैः—चिदाभास औ कूटस्थके नहीं विवेचन किये रूपकूं सर्वअज्ञजनोंके व्यवहारका विषय होनैतैं अहंशब्दका मुख्यअर्थपना है औ चिदाभास अरु कूटस्थके विवेचन किये रूपकूं तौ कितनैक तज्ज्ञजनोंकरि कदाचित् विचारकालमैंहीं व्यवहार करनैतैं अहंशब्दका अमुख्यअर्थपना है ॥ ११ ॥

२० "क्रमकरि अहंशब्दकूं जोडताहै ।" इस ११ वें श्लोकउक्तअर्थकूंहीं ज्ञानकी सुगमताअर्थ दोश्लोककरि वर्णन करैहैंः—

२१] ज्ञानी । "मैं जाताहूं" इत्यादिक लौकिकव्यवहारविषै । कूटस्थतैं चिदाभासकूं विवेचनकरिके कहिये भिन्न जानिके तिस चिदाभासकूंहीं कहनैकूं इच्छताहै ॥

२२) बुध जो विद्वान् । सो "मैं गमन करूंहूं" इत्यादिक लौकिकव्यवहारविषै कूटस्थतैं चिदाभासकूं विवेचनकरिके । तिस केवलचिदाभासकूंहीं अहंशब्दकरि कहनैकूं इच्छताहै ॥ १२ ॥

२३] यहहीं बुध । शास्त्रीयदृष्टितैं केवलकूटस्थविषै "मैं असंग हूं । मैं चिदात्मा हूं" ऐसैं अहंशब्दकूं जोडताहै ॥

टीकांक: २२२४ टिप्पणांक: ५२६

²⁶ज्ञानिताऽज्ञानिते त्वात्माभासस्यैव न चात्मनः ।
तथा च कथमाभासःकूटस्थोऽस्मीति बुद्ध्यताम् १४

तृप्तिदीप: ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ५९८

२४) अयं एव बुधः शास्त्रीयदृष्टितः वेदांतश्रवणजनितज्ञानेन । केवले चिदाभासाद्विविक्ते । कूटस्थेऽसंगोऽहं चिदात्माऽहमिति लक्षणया अहंशब्दं प्रयुंक्ते । अतो लक्षणया अहंशब्दार्थत्वेनाहंप्रत्ययविषयत्वसंभवादसंगोऽहमस्मीति ज्ञानमुत्पद्यत इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

२५ ननु पृथगाभासकूटस्थावहंशब्दस्यामुख्यार्थावित्युक्तं तयोर्मध्ये कूटस्थः किमज्ञाननिवृत्तयेऽसंगोऽस्मीति जानाति । किंवा चिदाभासः । न तावत्कूटस्थः तस्यासंगचिद्रूपत्वेन ज्ञानित्वाज्ञानित्वयोरनुपपत्तेः । अतश्चिदाभासस्य ज्ञानित्वादिकं वक्तव्यं । तथा च सति कूटस्थादन्यश्चिदाभासोऽहं कूटस्थोऽस्मीति न ज्ञातुमर्हतीति शंकते—

२६] **ज्ञानिताऽज्ञानिते तु आत्माभासस्य एव न च आत्मनः । तथा च आभासः "कूटस्थः अस्मि" इति कथं बुध्यताम् ॥ १४ ॥**

२४) यहहीं ज्ञानी । वेदांतके श्रवणसैं उत्पन्न भये ज्ञानकरि केवल चिदाभासतैं विवेचन किये कूटस्थविषै "मैं असंग हूं। मैं चिदात्मा हूं।" ऐसैं लक्षणासैं अहंशब्दकूं जोडताहै ॥ यातैं लक्षणासैं अहंशब्दका अर्थ होनैकरि अहंप्रत्ययकी विषयताके संभवतैं "मैं असंग हूं" यह ज्ञान बनैहै । यह ९ वें श्लोकउक्त शंकाका समाधान कहा ॥ यह अभिप्राय है ॥ १३ ॥

॥ ९ ॥ कूटस्थतैं भिन्न चिदाभासकूं "मैं कूटस्थ हूं" इस ज्ञानके अयोग्यताकी शंका ॥

२५ ननु "भिन्न आभास औ कूटस्थ । अहंशब्दके अमुख्यअर्थ हैं" । इसप्रकार जो तुमनैं ११ वें श्लोकविषै कहा । तिन आभास औ कूटस्थ दोनूंके मध्यमैं क्या कूटस्थ अज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ "मैं असंग हूं" ऐसैं जानताहै । किंवा चिदाभास जानताहै? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमैं कूटस्थ जानताहै । यह प्रथमपक्ष बनै नहीं ॥ काहेतैं तिस कूटस्थकूं असंगचेतनरूप होनेकरि ज्ञानीपनैका औ अज्ञानीपनैका असंभव है । यातैं चिदाभासके ज्ञानीपनैआदिकधर्म कहेचाहिये ॥ तैसैं ज्ञानआदिककूं चिदाभासकी धर्मता हुये कूटस्थतैं अन्य जो चिदाभास सो "मैं कूटस्थ हूं" ऐसैं जाननैकूं योग्य नहीं है । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

२६] **ज्ञानीपना औ अज्ञानीपना तौ आत्माके आभासकूंही हैं औ आत्माकूं नहीं । तैसैं हुये आभास "मैं कूटस्थ हूं" इसप्रकार कैसैं ²⁶जानैगा ? ॥ १४ ॥**

२६ जातैं चिदाभास कूटस्थतैं भिन्न कल्पित है । तातैं चिदाभासकूं "मैं कूटस्थ हूं" इसप्रकारका ज्ञान औरविषै औरकी बुद्धिरूप होनैतैं भ्रांतिरूप है । यातैं सो कैसैं संभवै ? यह पूर्ववादीकी शंका है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ५९९ ६००	[२७]नायं दोषश्चिदाभासः कूटस्थैकस्वभाववान् । [३०]आभासत्वस्य मिथ्यात्वात्कूटस्थत्वावशेषणात् १५ [३३]कूटस्थोऽस्मीति बोधोऽपि मिथ्या चेन्नेति[३५] को वदेत् [३७]न हि सत्यतयाऽभीष्टं रज्जुसर्पविसर्पणम् ॥१६॥	टीकांकः २२२७ टिप्पणांकः ६२७

२७ तस्य कूटस्थादन्यत्वमेवासिद्धमिति परिहरति (नायमिति)—

२८] अयं दोषः न । चिदाभासः कूटस्थैकस्वभाववान् ॥

२९ तत्रोपपत्तिमाह—

३०] आभासत्वस्य मिथ्यात्वात् कूटस्थत्वावशेषणात् ॥

३१) यथा दर्पणे प्रतीयमानस्य मुखाभासस्य ग्रीवास्थं मुखमेव तत्त्वं तद्वदिति भावः १५

३२ ननु चिदाभासस्य मिथ्यात्वे तदाश्रितं "कूटस्थोऽस्मीति" ज्ञानमपि मिथ्या स्यादिति शंकते—

३३] "कूटस्थः अस्मि" इति बोधः अपि मिथ्या चेत् ।

॥ ६ ॥ कूटस्थतैं चिदाभासके वास्तवभेदकी असिद्धितैं समाधान ॥

२७ तिस चिदाभासका कूटस्थतैं अन्यपना हीं असिद्ध है। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

२८] यह कूटस्थतैं चिदाभासकी भिन्नतारूप दोष नहीं है। काहेतैं जातैं चिदाभास। कूटस्थरूप एकस्वभाववान् कहिये मुख्यस्वरूपवान् है ॥

२९ तिस आभासकी कूटस्थएकस्वभाववान्ताविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

३०] आभासपनैके मिथ्या होनैतैं औ कूटस्थपनैके अवशेष रहनैतैं ॥

३१) जैसैं दर्पणविषै प्रतीयमान मुखके आभासका ग्रीवाविषै स्थित मुखहीं वास्तवस्वरूप है। तैसैं चिदाभासका बिंबरूप कूटस्थहीं वास्तवस्वरूप है ॥ यह भाव है ॥ १५॥

॥ ७ ॥ मिथ्याचिदाभासके आश्रित ज्ञानके मिथ्यापनैकी शंका औ इष्टापत्तिकरि समाधान ॥

३२ ननु चिदाभासके मिथ्या हुये तिस चिदाभासके आश्रित "मैं कूटस्थ हूं" यह ज्ञान बी मिथ्या होवैगा । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैं:—

३३] "मैं कूटस्थ हूं" यह बोध बी मिथ्या होवैगा । ऐसैं जो कहै ।

२७ आभासवादकी रीतिसैं जैसैं दर्पणविषै मुखके प्रतिबिंबका अधिष्ठान दर्पणअवच्छिन्नचेतन है । तैसैं अंतःकरणविषै ब्रह्मचेतनके प्रतिबिंबरूप चिदाभासका अधिष्ठान अंतःकरणअवच्छिन्नकूटस्थचेतन है ॥कल्पितवस्तु अधिष्ठानसैं भिन्न सिद्ध होवै नहीं । यातैं प्रतिबिंबत्वविशिष्टप्रतिबिंबका बाधकरिके । अवशेष अधिष्ठानकूटस्थचेतनहीं प्रतिबिंबका स्वरूप है ॥ ब्रह्म औ कूटस्थका महाकाशघटाकाशकी न्यांई मुख्यसामानाधिकरण्य है औ चिदाभास कूटस्थका बाधसामानाधिकरण्य है ॥ यातैं बाध (अभाव) किये विना चिदाभासका कूटस्थसैं अभेद नहीं है । किंतु बाधकरिहीं अभेद है ॥ सामानाधिकरण्यशब्दका अर्थ देखो टिप्पण १९ विषै औ टिप्पण ५१५ विषै औ आगे देखो अंक ३३४४ विषै ॥

टीकांकः २२३४ टिप्पणांकः ६२८	⁴⁰तादृशेनापि बोधेन संसारो हि निवर्तते । ⁴²यक्षानुरूपो हि बलिरित्याहुर्लौकिका जनाः॥१७	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६०१

३४ कूटस्थस्वरूपातिरिक्तस्य कृत्स्नस्यापि मिथ्यात्वाभ्युपगमात् तन्मिथ्यात्वमस्माकमिष्टमेवेति परिहरति—

३५] **न इति कः वदेत् ॥**

३६ उक्तमर्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति (न हीति)—

३७] **हि रज्जुसर्पविसर्पणं सत्यतया अभीष्टं न ॥**

३८) रज्ज्वां कल्पितस्य सर्पस्य गत्यादिकमपि प्रतीयमानं वास्तवं नांगीक्रियते यथा। तद्वदिति भावः ॥ १६ ॥

३९ ज्ञानस्य मिथ्यात्वे तेन संसारनिवृत्तिर्न स्यादित्याशंक्य निवर्त्यस्य संसारस्यापि तथात्वात्तन्निवृत्तिरुपपद्यते स्वप्नव्याघ्रदर्शनेन निद्रानिवृत्तिवदित्यभिप्रायेणाह—

४०] **तादृशेन बोधेन अपि संसारः निवर्तते हि ॥**

३४ कूटस्थके स्वरूपतैं भिन्न सर्ववस्तुके वी मिथ्यापनैके अंगीकारतैं तिस चिदाभासके आश्रित "मैं कूटस्थ हूं" इस आकारवाले ज्ञानका मिथ्यापना हम अद्वैतवादिनकूं इष्टहीं है। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

३५] **तौ बोध मिथ्या नहीं है। ऐसैं कौंन कहताहै ?**

३६ उक्तबोधके मिथ्यापनैरूप अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं:—

३७] **जातैं रज्जुसर्पका गमनआदिक सत्यपनैकरि इच्छित नहीं है ॥**

३८) जैसैं रज्जुविषै कल्पितसर्पका गतिआदिक प्रतीयमान हुया वी वास्तव अंगीकार नहीं करियेहै। तैसैं चिदाभासके आश्रित ज्ञान वी वास्तव अंगीकार नहीं करियेहै ॥ यह भाव है ॥ १६ ॥

॥ ८ ॥ मिथ्यासंसारकी मिथ्याज्ञानसैं निवृत्तिका संभव ॥

३९ ननु ज्ञानकूं मिथ्या हुये तिस मिथ्याज्ञानकरि संसारकी निवृत्ति नहीं होवैगी ॥ यह आशंकाकरि ज्ञानकरि निवृत्त करनैयोग्य संसारकूं वी तैसा मिथ्या होनैतैं। स्वप्नगतव्याघ्रके दर्शनकरि निद्राके निवृत्तिकी न्याई। मिथ्या ज्ञानकरि मिथ्यासंसारकी निवृत्ति संभवैहै। इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

४०] **तिसप्रकारके मिथ्याबोधकरि वी संसार निवृत्त होवैहै। तिस संसारकूं वी मिथ्या होनैतैं ॥**

२८ इहां यह अभिप्राय है:—समानसत्तावाले पदार्थ परस्परसाधकबाधक हैं। विषमसत्तावाले नहीं ॥ जैसैं व्यावहारिकअन्न वा जलकरि व्यावहारिकक्षुधा वा तृषाकी निवृत्ति होवैहै। प्रातिभासिकअन्नजलकरि नहीं ॥ व्यावहारिकरजतादिककरि व्यावहारिककटकादिकभूषणरूप कार्यकी सिद्धि होवैहै। प्रातिभासिकरजतादिककरि नहीं ॥ स्वप्नगतप्रातिभासिकरोगक्षुधादिककी प्रातिभासिकऔषधअन्नादिककरि निवृत्ति होवैहै। व्यावहारिकऔषधादिककरि नहीं। तैसैं दृष्टिसृष्टिवादकी रीतिसैं प्रातिभासिकरूप औ सृष्टिदृष्टिवादकी रीतिसैं व्यावहारिकरूप मिथ्यासंसारकी स्वसमानसत्तावाले मिथ्याज्ञानसैंहीं निवृत्ति संभवैहै। पारमार्थिकज्ञानसैं नहीं ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	तस्मादाभासपुरुषः सकूटस्थो विविच्य तम् । कूटस्थोऽस्मीति विज्ञातुमर्हतीत्यभ्यधाच्छ्रुतिः॥१८	२२४१
६०२	असंदिग्धाविपर्यस्तबोधो देहात्मनीक्ष्यते ।	टिप्पणांकः
६०३	तद्वदत्रेति निर्णेतुमयमित्यभिधीयते ॥ १९ ॥	ॐ

४१ तत्र "यादृशो यक्षस्तादृशो वलिः" इति लौकिकगाथां संवादयति (यक्षेति)—

४२] हि यक्षानुरूपः वलिः इति लौकिकाः जनाः आहुः ॥ १७ ॥

४३ उपपादितमर्थमुपसंहरति—

४४] तस्मात् सकूटस्थः आभासपुरुषः तं विविच्य "कूटस्थः अस्मि" इति विज्ञातुं अर्हति। इति श्रुतिः अभ्यधात्॥

४५) यस्मात्कूटस्थ एव चिदाभासस्य निजं स्वरूपं तस्मात् पुरुषशब्दवाच्यः कूटस्थसहितश्चिदाभासः तं कूटस्थं मिथ्याभूतात्स्वस्मात् विविच्य लक्षणया कूटस्थोऽहमस्मीति अवगंतुं शक्नोतीत्यभिप्रायेण श्रुतिः असीत्युक्तवतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

४६ एवं पुरुषोऽस्मीति पदद्वयप्रयोगाभिप्रायमभिधाय । अयमिति पदप्रयोगाभिप्रायमाह (असंदिग्धेति)—

---

४१ मिथ्यावोधकरि मिथ्यासंसारकी निवृत्तिविषै "जैसा यक्ष है तैसा तिसका वलिदान है" इस लौकिकवार्त्ताकूं प्रमाण करैहैं:—

४२] जातैं यक्षके तुल्य वलि है। ऐसैं लौकिकजन कहतेहैं ॥ १७ ॥

॥९॥ श्लोक ६ सैं उपपादन किये अर्थकी समाप्ति॥

४३ श्लोक ६ सैं उपपादन किये अर्थकूं समाप्त करैहैं:—

४४] तातैं "पुरुष" शब्दका वाच्य जो कूटस्थसहित आभास है। सो तिस कूटस्थकूं आपतैं भिन्नकरिके "मैं कूटस्थ हूं" ऐसैं जाननैकूं योग्य होवैहै ॥ इस अर्थकूं श्रुति "अस्मि" कहियेमैं "हूं" इस पदकरि कहतीहै ॥

४५) जातैं कूटस्थहीं चिदाभासका निज कहिये वास्तवस्वरूप है। तातैं "पुरुष" शब्दका वाच्य जो कूटस्थसहित चिदाभास। सो तिस कूटस्थकूं मिथ्यारूप आपतैं भिन्नकरिके भागत्यागलक्षणासैं "मैं कूटस्थ हूं" ऐसैं जाननैकूं समर्थ होवैहै ॥ इस अभिप्रायकरि प्रथमश्लोकउक्तश्रुति "अस्मि" कहिये मैं "हूं"। ऐसैं कहतीभई ॥ यह अर्थ है ॥ १८ ॥

॥ २ ॥ प्रथम श्लोकउक्त श्रुतिगत "आत्माकूं जब जानै" इन पदसहित "अयं (यह)" पदका अभिप्राय (चिदाभासकी सप्तअवस्थाका वर्णन) ॥ ॥ २२४६—२६५६ ॥

॥ १ ॥ अपरोक्षज्ञान औ तिनके नित्यअपरोक्षविषय (चेतन)का "अयं" पदके अर्थसैं कथन ॥ २२४६—२२६२ ॥

॥ १ ॥ देहमैं आत्मज्ञानकी न्यांई आत्मामैं अपरोक्षज्ञानरूप "अयं" पदका एकअभिप्राय ॥

४६ ऐसैं श्रुतिगत "पुरुष" औ "अस्मि" इन दोपदनके प्रयोगके नाम उच्चारणके अभिप्रायकूं कहिके "अयं" कहिये यह। इस पदके प्रयोगके अभिप्रायकूं कहैहैं:—

टीकांकः २२४७ टिप्पणांकः ॐ	देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् । आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते ॥२०॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६०४

४७] देहात्मनि असंदिग्धाविपर्यस्तबोधः ईक्ष्यते । अत्र तद्वत् इति निर्णेतुं "अयं" इति अभिधीयते ॥

४८) लौकिकानां प्रसिद्धे देहरूप आत्मनि संशयविपर्ययरहितोऽयमस्मीति बोधः यद्वदुपलभ्यते । अत्र प्रत्यगात्मनि विषये तद्वत् तथाविधं ज्ञानं मुक्तिसिद्धये संपाद्यं इति निर्णेतुमयमित्यभिधीयते श्रुत्येति शेषः ॥ १९ ॥

४९ ईदृशस्यैव बोधस्य मोक्षसाधनत्वे चाचार्यवाक्यं संवादयति—

५०] देहात्मज्ञानवत् आत्मनि एव देहात्मज्ञानबाधकं ज्ञानं यस्य भवेत् । सः न इच्छन् अपि मुच्यते ॥

५१)"अहं मनुष्य" इति देहात्मविषयो दृढप्रत्ययो यथा । एवं प्रत्यगात्मन्येव देह एवात्मेत्येवं देहात्मत्वज्ञानापवाधनेन ब्रह्माहमस्मीति ज्ञानं यस्य जायते । सः विद्वान् नेच्छन्नपि मोक्षेच्छारहितोऽपि मुच्यते । संसारहेतोरज्ञानस्य ज्ञानेनापवाधितत्वादिति भावः ॥ २० ॥

४७] जैसैं देहरूप आत्माविषै संशय औ विपर्ययरहित बोध देखियेहै । ताकी न्यांई इस आत्माविषै बोध संपादन करनैकूं योग्य है । यह निर्णय करनैकूं श्रुतिकरि "अयं" ऐसैं कहियेहै ॥

४८)लौकिकजननकूं प्रसिद्धदेहरूप आत्माविषै संशय औ विपरीतभावनासैं रहित "यह ब्राह्मणमनुष्यआदिक मैं हूं" इसप्रकारका बोध जैसैं देखियेहै । इस प्रत्यगात्माविषै तैसा ज्ञान मुक्तिकी सिद्धिअर्थ संपादन करनैकूं योग्य है ॥ यह निर्णय करनैकूं श्रुतिकरि "अयं" नाम यह । ऐसैं कहियेहै ॥ १९ ॥

॥ २ ॥ श्लोक १९ उक्त ज्ञानकूं मुक्तिका साधन होनैमैं उपदेशसहस्रीका वाक्यप्रमाण ॥

४९ इसप्रकारकेही बोधकूं मोक्षका साधन होनैविषै उपदेशसहस्रीगत श्रीशंकराचार्यके वाक्यकूं प्रमाण करैहैं:—

५०] देहरूप आत्माके ज्ञानकी न्यांई आत्माविषैहीं देहात्मज्ञानका बाधक ज्ञान जिसकूं होवै । सो नहीं इच्छताहुया बी मुक्त होवैहै ॥

५१) जैसैं "मैं मनुष्य हूं" इसप्रकारका देहरूप आत्माकूं विषय करनैहारा दृढनिश्चय होवैहै । ऐसैं प्रत्यक्‌आत्माविषैहीं "देहहीं आत्मा है" इसरीतिके देहविषै आत्मभावके ज्ञानका बाधकरि "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान जिसकूं होवैहै । सो विद्वान् नहीं इच्छता कहिये मोक्षकी इच्छासैं रहित हुया बी मुक्त होवैहै । काहेतैं संसारका कारण जो अज्ञान है । ताकूं ज्ञानकरि बाधित होनैतैं ॥ यह भाव है ॥ २० ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६०५

टीकांकः २२५२ टिप्पणांकः ६२९

अयमित्यपरोक्षत्वमुच्यते चेत्तदुच्यताम् ।
स्वयंप्रकाशचैतन्यमपरोक्षं सदा यतः ॥ २१ ॥

५२ अयमिति पदप्रयोगस्याभिप्रायांतरं शंकते—

५३] अयं इति अपरोक्षत्वं उच्यते चेत् ।

५४) यथाऽयं घट इत्यादिप्रयोगेष्विदमानिर्दिष्टस्य वस्तुन आपरोक्ष्यं दृष्टम् । तथा अयं अस्मीत्यत्रापीति भावः ॥

५५ तदप्यस्माकमिष्टमेवेत्याह—

५६] तत् उच्यताम् ॥

५७ कुत इत्यत आह (स्वयमिति)—

५८] यतः स्वयंप्रकाशचैतन्यं सदा अपरोक्षम् ॥

५९) साधनांतरनिरपेक्षतयाऽवभासमानं चैतन्यं व्यवधायकाभावान्नित्यमपरोक्षमित्यस्माभिरभ्युपेतत्वादित्यर्थः ॥ २१ ॥

॥ ३ ॥ चेतनकी सदाअपरोक्षतारूप "अयं" पदका दूसरा अभिप्राय ॥

५२ "अयं" इस पदके कथनके अन्यअभिप्रायकूं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

५३] "अयं" इस पदकरि आत्माका अपरोक्षपना कहियेहै । ऐसैं जो कहै ।

५४) जैसैं "यह घट है" इत्यादिकवाक्यके उच्चारणविषै इदंताकरि कहिये यहपनैंकरि निर्देश किये वस्तुका अपरोक्षपना देख्याहै । तैसैं "अयं अस्मि" कहिये "यह मैं हूं" । इस वाक्यके कथनविषै वी श्रुतिकरि आत्माका अपरोक्षपना कहियेहै ॥ यह वादीका अभिप्राय है ॥

५५ सो आत्माका अपरोक्षपना वी हमकूं इष्टहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैंः—

५६] तौ भलैं कहो ॥

५७ ननु तुमकरि आत्माका अपरोक्षपना काहेतैं कहियेहै ? तहां कहैहैंः—

५८] जातैं स्वयंप्रकाशरूप चैतन्य सदा अपरोक्ष है ॥

५९) अन्यसाधनकी अपेक्षारहित होनैंकरि भासमान जो चैतन्य । सो आवरणकर्त्ताके अभावतैं नित्यअपरोक्ष है । ऐसैं हमोंकरि अंगीकार कियाहोनैंतैं आत्माका अपरोक्षपना कहियेहै । यह अर्थ है ॥ २१ ॥

२९ इहां यह रहस्य हैः—चैतन्यकूं जो आवरण होवै तौ प्रकाशकके अभावतैं जगत्की अंधता (अप्रतीति)का प्रसंग होवैगा औ आवरणके अनंगीकार किये आचार्योंनैं "मैं अज्ञानी हूं औ ब्रह्मकूं नहीं जानता हूं" इस अनुभवके अनुसार अज्ञानकूं ब्रह्मके आश्रित औ ब्रह्मकूं विषय (आच्छादित) करनैहारा होनैकरि । स्वाश्रयस्वविषय कह्याहै । तिस आचार्यनकी उक्तिका भंग होवैगा । यातैं सामान्यअंशकी प्रतीति औ विशेषअंशकी अप्रतीतिके अंगीकारकरि अविरोध होवैहै ॥

टीकांक: २२६०	⁶¹परोक्षमपरोक्षं च ज्ञानमज्ञानमित्यदः ।	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:
	नित्यापरोक्षरूपेऽपि द्वयं स्याद्दशमे यथा ॥ २२ ॥	६०६
टिप्पणांक: ॐ	⁶⁴नैवसंख्याहृतज्ञानो दशमो विभ्रमात्तदा ।	
	न वेत्ति दशमोऽस्मीति वीक्ष्यमाणोऽपि तान्नव २३	६०७

६० नन्वात्मनः स्वप्रकाशचिद्रूपत्वेन नित्यापरोक्षत्वाभ्युपगमे "अयं" इति पदप्रयोगस्याभिप्रायवर्णनांगीकारबलादागतमात्मनः परोक्षविषयत्वमपरोक्षविषयत्वं पूर्वोक्तज्ञानाज्ञानाश्रयविषयत्वं वाऽनुपपन्नं स्यादित्याशंक्य "दशम" इव सर्वमुपपत्स्यत इत्याह—

६१] **परोक्षं च अपरोक्षं । ज्ञानं अज्ञानं । इति अदः द्वयं यथा दशमे । नित्यापरोक्षरूपे अपि स्यात् ॥**

६२) परोक्षमपरोक्षं चेत्येकं युगलम् । ज्ञानमज्ञानमित्यपरम् । इदं द्वयं नित्यापरोक्षरूपेऽपि आत्मनि दशम इव स्यात् इत्यर्थः २२

६३ दृष्टांतं व्युत्पादयति—

६४] **नवसंख्याहृतज्ञानः दशमः तदा तान् नव वीक्ष्यमाणः अपि विभ्रमात् "दशमः अस्मि" इति न वेत्ति॥**

६५) परिगणनीयपुरुषनिष्ठया नवसंख्ययाऽपहृतविवेकज्ञानो दशमस्तदा तान्

॥ ४ ॥ नित्यअपरोक्षचेतनमैं परोक्षअपरोक्ष ज्ञान औ अज्ञानका दशमकी न्याईं संभव ॥

६० ननु आत्माकूं स्वप्रकाश चेतनरूप होनैकरि नित्यअपरोक्षपनैके अंगीकार किये "अयं" इस पदके कथनके १९–२१ श्लोकउक्त अभिप्रायवर्णनके अंगीकारके बलतैं प्राप्त भया जो आत्माकूं परोक्षविषयपना औ अपरोक्षविषयपना वा पूर्व १४ वें श्लोकउक्त ज्ञान अरु अज्ञानका आश्रयविषयपना । सो अघटित होवैगा ॥ यह आशंकाकरि दशमकी न्याईं सर्व घटता है । ऐसें कहैहैं:—

६१] **परोक्ष औ अपरोक्ष । ज्ञान औ अज्ञान । यह दोनूंयुगल कहिये जोडा जैसें दशमविषै बनैहै । तैसें नित्यअपरोक्षरूप आत्माविषै बी बनैहै ॥**

६२) परोक्ष औ अपरोक्ष । यह एकयुगल है । ज्ञान औ अज्ञान । यह दूसराधुगल है ॥ यह दोनूंयुगल । नित्यअपरोक्षरूप आत्माविषै बी दशपुरुषकी न्याईं बनैहै । यह अर्थ है ॥ २२ ॥

॥ २ दार्ष्टांतसहित दशमके दृष्टांतका सप्तअवस्थायुक्तपनैकरि प्रतिपादन ॥

॥ २२६३–२२७७ ॥

॥ १ ॥ दशमकी अज्ञानअवस्था ॥

६३ दशमके दृष्टांतकूं प्रथम प्रतिपादन करैहैं:—

६४] **नवकी संख्याकरि हरण भयाहै ज्ञान जिसका । ऐसा जो दशमपुरुष है । सो तब तिन नवपुरुषनकूं देखताहुया बी विभ्रमतैं "मैं दशम हूं" ऐसैं नहीं जानताहै ॥**

६५) गिनती करनैके योग्य पुरुषनविषै स्थित नवसंख्याकरि नाश भयाहै विवेकज्ञान जिसका । ऐसा जो दशमपुरुष है । सो तब

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः टीकांकः २२२६ टिप्पणांकः ॐ

६०८ न६७ भाति नास्ति दशम इति स्वं दशमं तदा ।
मत्वा वक्ति तदज्ञानकृतमावरणं विदुः ॥ २४ ॥

६०९ न६९ द्यां ममार दशम इति शोचन्प्ररोदिति ।
अज्ञानकृतविक्षेपं रोदनादिं विदुर्बुधाः ॥ २५ ॥

६१० न७२ मृतो दशमोऽस्तीति श्रुत्वाप्तवचनं तदा ।
परोक्षत्वेन दशमं वेत्ति स्वर्गादिलोकवत् ॥ २६ ॥

परिगणनीयान् नवसंख्याकान् वीक्ष्यमाणोऽपि सम्यक्पश्यन्नपि । भ्रांत्या गणनाकर्तारं स्वात्मानं दशमोऽहमस्मीति न वेत्ति इत्यर्थः ॥ २३ ॥

६६ एवं दशमेऽज्ञानं प्रदर्श्य तत्कार्यमावरणं दर्शयति (न भातीति)—

६७] तदा स्वं दशमं "दशमः न भाति न अस्ति" इति मत्वा वक्ति । तत् अज्ञानकृतं आवरणं विदुः ॥

६८) तदा दशमः स्वं दशमं संतं "दशमो न भाति नास्ति" इति मत्वा वक्ति । अस्य व्यवहारस्य यत्कारणं तद् ज्ञानकृतं अज्ञानकार्यं आवरणं विदुः बुधाः इति शेषः ॥ २४ ॥

६९ अज्ञानस्यैव कार्यविशेषविक्षेपं दर्शयति—

७०] "नद्यां दशमः ममार" इति शोचन् प्ररोदिति । रोदनादिं बुधाः अज्ञानकृतविक्षेपं विदुः ॥ २५ ॥

७१ दशमस्यासत्वांशनिवर्तकं परोक्षज्ञानमाह (न मृत इति)—

७२] "दशमः न मृतः । अस्ति"

तिन गिनती करनैके योग्य नवसंख्यावाले पुरुषनकूं सम्यक् देखताहुया बी भ्रांतिसैं गिनतीके करनैहारे आपकूं "मैं दशम हूं" ऐसैं नहीं जानताहै । यह अर्थ है ॥ २३ ॥

॥२॥ दशमकी दोभांतिकी अज्ञानकार्यरूप आवरणअवस्था ॥

६६ ऐसैं दशमविषै अज्ञानकूं दिखायके तिस अज्ञानके कार्य आवरणकूं दिखावैहैंः—

६७] तब दशमपुरुष । आप दशमकूं "दशम नहीं भासताहै औ नहीं है" ऐसैं मानिके कहताहै । तिसकूं पंडितजन अज्ञानकृत आवरण जानतेहैं ॥

६८) तब अज्ञानकालमैं दशमपुरुष । आप दशमकूं होते बी "दशम नहीं भासताहै औ नहीं है" । ऐसैं मानिके कहताहै ॥ इस कथनप्रतीतिरूप व्यवहारका जो कारण है । तिसकूं अज्ञानकृत आवरण बुधजन जानतेहैं ॥ २४ ॥

॥ ३ ॥ दशमकी अज्ञानकार्य विक्षेपअवस्था ॥

६९ अज्ञानकेहीं कार्यविशेष विक्षेपकूं दिखावैहैंः—

७०] "नदीविषै दशम मर गया" ऐसैं शोच करताहुया रुदन करैहै ॥ इस रोदनआदिककूं बुधजन अज्ञानकृतविक्षेप जानतेहैं ॥ २५ ॥

॥ ४ ॥ दशमकी परोक्षज्ञानअवस्था ॥

७१ दशमके असत्वअंशके निवर्त्तक परोक्षज्ञानकूं कहैहैंः—

७२] "दशम मऱ्या नहीं । किंतु है ।"

टीकांक: २२७३	७४त्वमेव दशमोऽसीति गणयित्वा प्रदर्शितः । अपरोक्षतया ज्ञात्वा हृष्यत्येव न रोदिति ॥२७॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६११
टिप्पणांक: ६३०	७७अज्ञानावृतिविक्षेपद्विविधज्ञानतृप्तयः । शोकापगम इत्येते योजनीयाश्चिदात्मनि ॥ २८॥	६१२

इति आप्तवचनं श्रुत्वा तदा स्वर्गादिलोकवत् परोक्षत्वेन दशमं वेत्ति॥२६॥

७३ तस्यैवाभानांशनिवर्तकमपरोक्षज्ञानं दर्शयति (त्वमेवेति)—

७४] गणयित्वा "त्वं एव दशमः असि" इति प्रदर्शितः अपरोक्षतया ज्ञात्वा हृष्यति एव । न रोदिति ॥

७५) स्वेन परिगणितैर्नवभिः सह स्वात्मानं गणयित्वा "त्वमेव दशमोऽसि" इति प्रदर्शितः । अहं दशमोऽस्मीति अपरोक्षतया ज्ञात्वा हर्षं प्राप्नोति । रोदनं त्यजति ॥ २७ ॥

७६ एवं दृष्टांतभूते दशमे प्रदर्शितमवस्थासप्तकमनूद्य दार्ष्टांतिके आत्मन्यपि तद्योजनीयमित्याह—

७७] अज्ञानावृतिविक्षेपद्विविधज्ञानतृप्तयः शोकापगमः।इति एते चिदात्मनि योजनीयाः ॥

इस आप्त जो यथार्थवक्तापुरुष ताके वचनकूं सुनिके । तब स्वर्गादिकलोककी न्याईं परोक्षपनैकरि दशमकूं जानताहै ॥ २६ ॥

॥ ९ ॥ दशमका अपरोक्षज्ञान । शोकनिवृत्ति । औ तृप्तिअवस्था ॥

७३ तिस दशमकेहीं अभानअंशके निवर्त्तक अपरोक्षज्ञानकूं दिखावैहैं:—

७४] जब गिनतीकरिके "तूंहीं दशम है" ऐसैं दिखाया । तब अपरोक्षपनैकरि जानिके हर्षकूंहीं पावताहै औ रोदन करता नहीं ॥

७५) अपनैकरि गिनेहुये नवपुरुषनके साथि आपकूं गिनतीकरिके "तूंहीं दशम है" ऐसैं आप्तपुरुषनैं जब दिखाया । तब "मैं दशम हूं" ऐसैं अपरोक्षपनैकरि आप दशमकूं जानिके हर्षकूं पावताहै औ रोदनकूं त्याग देताहै ॥ २७ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतसिद्धसप्तअवस्थाकी अनुवादपूर्वक आत्मामैं योजना ॥

७६ ऐसैं दृष्टांतरूप दशमविषै २३–२७ श्लोक तोडी दिखाई जे सप्तअवस्था । तिनकूं अनुवादकरिके दार्ष्टांतरूप आत्माविषै बी वे सप्तअवस्था योजना करनैकूं योग्य हैं । ऐसैं कहैहैं:—

७७] अज्ञान।आवरण।विक्षेप।परोक्षअपरोक्षभेदकरि दोभांतिका ज्ञान।तृप्ति[३०] औ शोकनिवृत्ति। ऐसैं यह सप्तअवस्था कही । वे चिदात्माविषै जोडनैकूं योग्य हैं ॥

---

३० शोक (भ्रांति) ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६१३

७९संसारासक्तचित्तः संश्चिदाभासः कदाचन ।
स्वयंप्रकाशकूटस्थं स्वतत्त्वं नैव वेत्त्ययम् ॥ २९ ॥

६१४

८१न भाति नास्ति कूटस्थ इति वक्ति प्रसंगतः ।
कर्त्ताभोक्ताऽहमस्मीति विक्षेपं प्रतिपद्यते ॥३०॥

टीकांकः २२७७ टिप्पणांकः ॐ

ॐ ७७) अज्ञानं च आवृतिः च विक्षेपः च द्विविधं ज्ञानं तृप्तिः चेति द्वंद्वः समासः ॥ २८ ॥

७८ तत्रात्मन्यज्ञानादिकं क्रमेण दर्शयति चतुर्भिः (संसारासक्तेति)—

७९] अयं चिदाभासः संसारासक्तचित्तः सन् कदाचन स्वतत्त्वं स्वयंप्रकाशकूटस्थं न एव वेत्ति ॥

८०) अयं चिदाभासः विषयसंपादनादिध्यानासक्तचित्तः सन् । कदाचन श्रुतिविचारात्पूर्वं कदापि स्वतत्त्वं स्वस्य निजं रूपं । स्वप्रकाशचिद्रूपं कूटस्थं प्रत्यगात्मानं। नैव वेत्ति न जानाति यत्तदज्ञानम् २९

८१] (न भातीति)—प्रसंगतः "कूटस्थः न अस्ति न भाति" इति वक्ति "अहं कर्ता भोक्ता अस्मि" इति विक्षेपं प्रतिपद्यते ॥

८२) चिदात्मविषये प्रसंगे जाते कूटस्थो नास्ति न भातीति मत्वा ब्रूते इदमज्ञानकार्यमावरणं । कूटस्थासत्वाभानाभिधानवत् कर्तृत्वादिकमात्मन्यारोपयति । अस्यारोपस्य हेतुर्देहद्वययुतश्चिदाभासो विक्षेपः ॥ ३० ॥

ॐ ७७) इहां अज्ञान औ आवृति कहिये आवरण औ विक्षेप औ द्विविधज्ञान औ तृप्ति। ऐसैं द्वंद्वसमास है ॥ २८ ॥

॥ ३ ॥ चिदाभासकी सप्तअवस्थाका वर्णन ॥ २२७८–२३३५ ॥

॥ १ ॥ चिदाभासकी अज्ञानअवस्था ॥

७८ तिस आत्माविषै अज्ञानआदिकसप्तअवस्थाकूं क्रमतैं इहां २९ सैं च्यारीश्लोकनकरि दिखावैहैंः—

७९] यह चिदाभास । संसारविषै आसक्तचित्तवान् हुया कदाचित् अपनै तत्त्व स्वयंप्रकाशकूटस्थकूं नहीं जानताहै ॥

८०) यह चिदाभास । विषयसंपादनआदिकके ध्यानविषै आसक्तचित्तवाला हुया श्रुतिविचारतैं पूर्व कदाचित् अपनै तत्त्व कहिये निजरूप ऐसैं स्वप्रकाशचेतनरूप कूटस्थ जो प्रत्यगात्मा ताकूं नहीं जानताहै ॥ यह नहीं जानना जो है सो अज्ञान है ॥ २९ ॥

॥ २ ॥ चिदाभासकी दोभांतिकी आवरण औ विक्षेपअवस्था ॥

८१] प्रसंगतैं "कूटस्थ नहीं है औ नहीं भासताहै" ऐसैं कहताहै औ "मैं कर्त्ता भोक्ता हूं" ऐसैं विक्षेप जो शोक ताकूं पावताहै ॥

८२) चिदात्माकूं विषय करनैहारे प्रसंगके भये "कूटस्थ नहीं है औ नहीं भासताहै॥" ऐसैं मानिके कहताहै । यह अज्ञानका कार्य आवरण है ॥ औ कूटस्थके असद्भाव अरु अभान जो अप्रतीति ताके कथनकी न्यांई कर्त्तापनैआदिककूं आत्माविषै आरोप करताहै । इस आरोपका हेतु जो स्थूलसूक्ष्मरूप दोनूंदेहसहित चिदाभास । सो विक्षेप है ॥ ३० ॥

टीकांकः २२८३ टिप्पणांकः ६३१	अस्ति कूटस्थ इत्यादौ परोक्षं वेत्ति वार्त्तया । पश्चात्कूटस्थ एवास्मीत्येवं वेत्ति विचारतः ॥३१॥ कर्ता भोक्तेत्येवमादिशोकजातं प्रमुंचति । कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्येव तुष्यति ॥ ३२॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६१५ ६१६

८३] (अस्ति कूटस्थ इति)—आदौ वार्तया "कूटस्थः अस्ति" इति परोक्षं वेत्ति । पश्चात् विचारतः "कूटस्थः एव अस्मि" इति एवं वेत्ति ॥

८४) परेण बोधितः "कूटस्थोऽस्ति" इति जानाति इदं परोक्षज्ञानम् । श्रवणादिपरिपाकवशात् "कूटस्थः अहं एवास्मि" इति जानाति इदमपरोक्षज्ञानम् ॥ ३१ ॥

८५] कर्ता भोक्ता इत्येवमादिशोकजातं प्रमुंचति । कृत्यं कृतं प्रापणीयं प्राप्तं इति एव तुष्यति ॥

८६) कूटस्थासंगात्मज्ञानानंतरं कर्तृत्वादिशोकजातं त्यजतीति यदयं शोकापगमः । कृत्यं कर्तव्यजातं कृतं निष्पादितं । प्रापणीयं फलजातं प्राप्तं लब्धमिति तुष्यति इयं तृप्तिरित्यर्थः ॥ ३२ ॥

॥ ३ ॥ चिदाभासकी परोक्षज्ञान औ अपरोक्षज्ञान अवस्था ॥

८३] प्रथमवार्त्ताकरि "कूटस्थ है" ऐसैं परोक्ष जानताहै । पीछै विचारतैं "कूटस्थ मैंहीं हूं" ऐसैं अपरोक्ष जानताहै ॥

८४) दूसरेकरि कहिये ब्रह्मनिष्ठसद्गुरुकरि बोधनकूं पायाहुया "कूटस्थ है" ऐसैं जानताहै । यह परोक्षज्ञान है ॥ औ श्रवणादिकके परिपाकके वशतैं "कूटस्थ जो ब्रह्माभिन्नप्रत्यगात्मा । सो मैंहीं हूं" ऐसैं जानताहै ॥ यह अपरोक्षज्ञान है ॥ ३१ ॥

॥४॥ चिदाभासकी शोकनिवृत्ति औ तृप्तिअवस्था ॥

८५] "मैं कर्त्ता हूं । मैं भोक्ता हूं" । इनसैं आदिलेके शोकके समूहकूं छोडताहै औ "करनैकूं योग्य था सो किया अरु प्राप्त होनैकूं योग्य था सो पाया ।" ऐसैंहीं तुष्टि जो संतोष ताकूं पावताहै ॥

८६) निर्विकार औ असंगआत्माके ज्ञान भये पीछे । कर्त्तापनैआदिकशोकके समूहकूं त्यागताहै ॥ यह जो शोकके समूहका त्याग है । सो शोकनाश है औ करनैकूं योग्य जो कर्त्तव्यका समूह सो किया कहिये संपादन भया औ प्राप्त होनैकूं योग्य जो फलका समूह सो प्राप्त भया । ऐसैं संतोष जो हर्ष ताकूं पावताहै । यह तृप्ति है ॥ यह अर्थ है ॥ ३२ ॥

३१ यद्यपि "मैं कूटस्थ हूं" यह "त्वं" पदार्थगोचरअपरोक्षज्ञान है । तितनाहीं ज्ञान सर्वअज्ञानादिअनर्थकी निवृत्तिका हेतु नहीं । किंतु "तत्" पदार्थसैं अभिन्न "त्वं" पदार्थगोचर "मैं ब्रह्म हूं" यह अपरोक्षज्ञान सर्वअनर्थकी निवृत्तिका हेतु है । तथापि इहां "मैं ब्रह्म हूं" इसज्ञानकी अपरोक्षताके जनावनै अर्थ कर्तृत्वादिकार्यरूप अनर्थका निवारक "मैं कूटस्थ हूं" यह अपरोक्षज्ञान उदाहरणकरि जनायाहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
६१७	अज्ञानमावृतिस्तद्वद्विक्षेपश्च परोक्षधीः । अपरोक्षमतिः शोकमोक्षस्तृप्तिर्निरंकुशा ॥ ३३ ॥	२२८७
६१८	सप्तावस्था इमाः संति चिदाभासस्य तास्विमौ । बंधमोक्षौ स्थितौ तत्र तिस्रो बंधकृतः स्मृताः ३४॥	टिप्पणांकः ॐ

८७ दार्ष्टांतिकेऽप्युक्तमवस्थासप्तकं अनुवदति—

८८] अज्ञानं आवृतिः तद्वत् विक्षेपः च परोक्षधीः अपरोक्षमतिः शोकमोक्षः निरंकुशा तृप्तिः ॥ ३३ ॥

८९ ननूक्तावस्थासप्तकस्यात्मधर्मत्वांगीकारे तस्य कूटस्थत्वं व्याहन्येतेत्याशंक्य । एताः सप्तावस्थाः चिदाभासस्यैव न कूटस्थस्येत्याह (सप्तावस्था इति)—

९०] इमाः सप्तावस्थाः चिदाभासस्य संति ॥

९१) "सर्वं वाक्यं सावधारणं" इति न्यायेन चिदाभासस्यैवेत्यवगम्यते न कूटस्थस्य ॥

९२ सप्तावस्थानां आसामत्रोपन्यासो वृथा इत्याशंक्य न वृथात्वं बंधमोक्षकारित्वद्योतनफलत्वादुपन्यासस्येत्यभिप्रायेणाह—

९३] तासु इमौ बंधमोक्षौ स्थितौ ॥

९४ किमासां सप्तानामप्यविशेषेण बंधमोक्षकारित्वं नेत्याह—

९५] तत्र तिस्रः बंधकृतः स्मृताः ॥

॥ ५ ॥ चिदाभासरूप दार्ष्टांतमैं २९-३२ श्लोकउक्त सप्तअवस्थाका अनुवाद ॥

८७ दार्ष्टांतिकचिदात्माविषै बी २९-३२ श्लोकउक्तसप्तअवस्थाकूं फेरि कथन करैहैं:—

८८] अज्ञान। आवरण। तैसैं विक्षेप। परोक्षज्ञान । अपरोक्षज्ञान। शोकनिवृत्ति औ निरंकुशातृप्ति । ये सप्तअवस्था हैं ॥ ३३ ॥

॥६॥ श्लोक ३३ उक्त सप्तअवस्थाकूं चिदाभासकी धर्मता औ व्यवस्थासहितबंधमोक्षकारिता ॥

८९ ननु उक्तसप्तअवस्थाकूं आत्माका धर्मपना अंगीकार किये तिस आत्माका कूटस्थत्व जो निर्विकारपना सो व्याघातकूं पावैगा । यह आशंकाकरि यह सप्तअवस्था चिदाभासकीहीं हैं कूटस्थकी नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

९०] यह सप्तअवस्था चिदाभासकी हैं ॥

९१) "सर्ववाक्य निश्चयके वाची हींशब्दके पर्याय एवकारसहित है" इस न्यायकरि सप्तअवस्था चिदाभासकीहीं कहिये निश्चयकरि हैं। कूटस्थकी नहीं। ऐसैं जानियेहै ॥

९२ ननु इन सप्तअवस्थाका इहां उपन्यास कहिये कहनैका आरंभ वृथा है। यह आशंकाकरि यह उपन्यास । सप्तअवस्थाकूं जो बंधमोक्षकी करणता है । तिसके जनावनैरूप फलवाला है। यातैं इस उपन्यासका वृथापना नहीं है। इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

९३] तिन सप्तअवस्थाविषै ये बंधमोक्ष दोनूं स्थित हैं ॥

९४ क्या इन सप्तअवस्थाकूं बी अविशेषकरि कहिये सर्वकूं बंधमोक्षकी कारणता है? तहां नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

९५] तिन सप्तआवस्थाविषै तीनअवस्था बंधकी कारण हैं ॥

टीकांकः २२९५ टिप्पणांकः ॐ	९७ न जानामीत्युदासीनव्यवहारस्य कारणम् । विचारप्रागभावेन युक्तमज्ञानमीरितम् ॥ ३५ ॥ २३०० अमार्गेण विचार्याथ नास्ति नो भाति चेत्यसौ । विपरीतव्यवहृतिरावृत्तेः कार्यमिष्यते ॥ ३६ ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६१९ ६२०

ॐ ९५) अज्ञानावरणविक्षेपरूपाः तिस्र इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

९६ आसां बंधकारित्वदर्शनाय तिसृणामपि स्वरूपं प्रत्येकं कार्यप्रदर्शनेन स्पष्टीचिकीर्षुरज्ञानस्य स्वरूपं तावद्दर्शयति (न जानामीति)—

९७] **विचारप्रागभावेन युक्तं उदासीनव्यवहारस्य कारणं "न जानामि" । इति अज्ञानं ईरितम् ॥**

९८) आत्मतत्त्वविचारप्रागभावसहितं उदासीनव्यवहारस्य कारणं "न जानामि" इति अनुभूयमानम् अज्ञानमीरितं इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

९९ आवृत्तिस्वरूपं तत्कार्यं च दर्शयति–

२३००] **अमार्गेण विचार्य अथ "असौ न आस्ति च न भाति" इति विपरीतव्यवहृतिः आवृत्तेः कार्यम् इष्यते ॥**

१) शास्त्रोक्तं प्रकारमतिलंघ्य केवलं तर्केण विचार्यानंतरं "कूटस्थो नास्ति न भातीति" एवंरूपो विपरीतव्यवहार आवरणकार्यमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

ॐ ९५) इहां अज्ञान आवरण औ विक्षेपरूप तीन । यह अर्थ है ॥ ३४ ॥

॥ ७ ॥ अज्ञानका स्वरूप ॥

९६ इन तीनअवस्थाकूं बंधकी कारणता दिखावनैअर्थ तीनके बी स्वरूपकूं एकएककार्यके दिखावनैकरि स्पष्ट करनैकूं इच्छतेहुये आचार्य। अज्ञानके स्वरूपकूं प्रथम दिखावैहैं:—

९७] **विचारके प्राक्‌अभावकरि युक्त औ उदासीनव्यवहारका कारण औ "नहीं जानताहूं" ऐसैं प्रतीयमान अज्ञान कहाहै ॥**

९८) आत्मतत्त्वविचारके प्राक्‌अभावकरि सहित औ तूर्णीभावरूप उदासीन ऐसा जो व्यवहार कहिये कथन औ प्रतीति ताका कारण औ "मैं नहीं जानताहूं" । ऐसैं अनुभूयमान जो है । सो अज्ञान कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ३५ ॥

॥ ८ ॥ आवरणका स्वरूप औ कार्य ॥

९९ आवरणके स्वरूप औ तिसके कार्यकूं दिखावैहैं:—

२३००] **अमार्गसैं विचारकरिके पीछे "यह कूटस्थ नहीं है औ नहीं भासताहै" ऐसा जो विपरीतव्यवहार । सो आवरणका कार्य अंगीकार करियेहै ॥**

१) शास्त्रउक्तप्रकारकूं उल्लंघनकरिके केवल तर्कसैं विचारकरिके पीछे "कूटस्थ नहीं है औ नहीं भासताहै" इसरूपवाला विपरीतव्यवहार आवरणका कार्य है । यह अर्थ है ॥ ३६ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६२१ ६२२ | टीकांकः २३०२ टिप्पणांकः ॐ

देहद्वयचिदाभासरूपो विक्षेप ईरितः।
कर्तृत्वाद्यखिलः शोकः संसाराख्योऽस्य बंधकः ३७
अज्ञानमावृतिश्चैते विक्षेपात्प्राक् प्रसिद्ध्यतः।
यद्यप्यथाप्यवस्थे ते विक्षेपस्यैव नात्मनः ॥३८॥

२ विक्षेपस्य स्वरूपं तत्कार्यं च दर्शयति—

३] देहद्वयचिदाभासरूपः विक्षेपः ईरितः। बंधकः संसाराख्यः कर्तृत्वाद्यखिलः शोकः अस्य ॥

४) स्थूलसूक्ष्माख्यशरीरद्वयसहितः चिदाभासः एव विक्षेपः। बंधकः बंधहेतुः संसाराख्यः कर्तृत्वाद्यखिलः शोकः अस्य चिदाभासस्य कार्यमिति शेषः। कर्तृत्वादीत्यत्रादिशब्देन प्रमातृत्वादयो गृह्यंते ३७

५ ननु सप्तावस्थाः चिदाभासस्येत्युक्तमनुपपन्नं अज्ञानावरणयोर्विक्षेपोत्पत्तेः पुरा स्थितत्वात् चिदाभासस्य च विक्षेपांतःपातित्वात् तदवस्थात्वानुपपत्तेरित्याशंक्याह (अज्ञानमिति)—

६] यद्यपि अज्ञानं च आवृतिः एते विक्षेपात् प्राक् प्रसिध्यतः। अथापि ते अवस्थे विक्षेपस्य एव आत्मनः न ॥

७) अनयोरज्ञानावरणयोः विक्षेपात् पुरा स्थितत्वेऽपि नात्मावस्थात्वं। तस्यासंगत्वेनावस्थावत्त्वानुपपत्तेः। अतः परिशेषाच्चिदाभासावस्थात्वमेव तयोर्वक्तव्यमिति भावः ३८

॥ ९ ॥ विक्षेपका स्वरूप औ कार्य ॥

२ विक्षेपके स्वरूप औ तिसके कार्यकूं दिखावैहैं:—

३] दोनूंदेहसहित चिदाभासरूप विक्षेप कहाहै औ बंधका हेतु संसार इस नामवाला, कर्त्तापनैआदिकसंपूर्णशोक इस चिदाभासका कार्य है॥

४) स्थूलसूक्ष्मनामकदोनूंशरीरसहित चिदाभासहीं विक्षेप है औ बंधका कारण संसारनामक कर्त्तापनैसैं आदिलेके संपूर्णशोक इस चिदाभासका कार्य है ॥ इहां कार्यपद शेष है कहिये बाहिरसैं कहाहै औ कर्त्तापनैआदिक इस आदिशब्दकरि प्रमातापनैआदिकका ग्रहण है ॥ ३७ ॥

॥ १० ॥ सप्तअवस्था चिदाभासकी हैं। ब्रह्मकी नहीं। यामैं शंकासमाधान ॥

५ ननु "सप्तअवस्था चिदाभासकी हैं" ऐसैं ३४ वें श्लोकविषै कहा सो बनै नहीं ॥ काहेतैं अज्ञान औ आवरणकूं दोनूंदेहसहित चिदाभासरूप विक्षेपकी उत्पत्तितैं पूर्व स्थित होनैतैं औ चिदाभासकूं विक्षेपके अंतर्गत होनैतैं चिदाभासकी सप्तअवस्था बनै नहीं। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६] यद्यपि अज्ञान औ आवरण ये दोनूंअवस्था विक्षेपतैं पूर्व प्रसिद्ध हैं। तथापि वे दोनूंअवस्था विक्षेपकीहीं हैं। आत्माकी नहीं ॥

७) इन अज्ञान औ आवरणकूं विक्षेपतैं पूर्व स्थित हुये बी आत्माका अवस्थापना नहीं है। काहेतैं तिस आत्माकूं असंग होनैकरि अवस्थावान्‌ताका असंभव है। यातैं परिशेषतैं तिन अज्ञान औ आवरणकूं चिदाभासका अवस्थापनाहीं कहाचाहिये। यह भाव है ॥ ३८ ॥

टीकांकः २३०८ टिप्पणांकः ॐ	विक्षेपोत्पत्तितः पूर्वमपि विक्षेपसंस्कृतिः । अस्त्येव तदवस्थात्वमविरुद्धं ततस्तयोः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मण्यारोपितत्वेन ब्रह्मावस्थे इमे इति । न शंकनीयं सर्वासां ब्रह्मण्येवाधिरोपणात् ॥४०॥ संसार्यहं विबुद्धोऽहं निःशोकस्तुष्ट इत्यपि । जीवगा उत्तरावस्था भांति न ब्रह्मगा यदि ४१	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६२३ ६२४ ६२५

८ अवस्थावतो विक्षेपस्य तदानीमभावात् तदवस्थात्वाभिधानमनुपपन्नमित्याशंक्य विक्षेपाभावेऽपि तत्संस्कारस्य तदानीं सत्त्वाद्विक्षेपावस्थात्वाभिधानं न विरुध्यत इत्याह—

९] विक्षेपोत्पत्तितः पूर्वं अपि विक्षेपसंस्कृतिः। ततः तयोः तदवस्थात्वं अविरुद्धं अस्ति एव ॥

ॐ ९)ततः कारणात्। तयोः तदवस्थात्ववर्णनं अविरुद्धं इति योजना ॥ ३९ ॥

१० नन्वप्रसिद्धसंस्काराभ्युपगमद्वारा विक्षेपावस्थात्ववर्णनाद्वरमधिष्ठानतया प्रसिद्धब्रह्मावस्थात्ववर्णनमित्याशंक्यातिप्रसंगान्नैवमिति परिहरति—

११] "ब्रह्मणि आरोपितत्वेन इमे ब्रह्मावस्थे" इति शंकनीयं न। सर्वासां ब्रह्मणि एव अधिरोपणात् ॥ ४० ॥

१२ ननु ब्रह्मण्यारोपितत्वाविशेषेऽपि विक्षेपोत्पत्त्युत्तरकालभाविनीनां संसारित्वाद्यवस्थानां जीवाश्रितत्वेनानुभूयमानत्वान्न ब्रह्मावस्थात्वमिति शंकते (संसारीति)—

८ ननु अवस्थावाले विक्षेपके तब अपनी उत्पत्तितैं पूर्व अभावतैं अज्ञान औ आवरणकूं विक्षेपके अवस्थापनैका कथन अयुक्त है। यह आशंकाकरि विक्षेपके अभाव होते बी तिस विक्षेपके संस्कारकूं तब अपनी उत्पत्तितैं पूर्व विद्यमान होनैतैं अज्ञान औ आवरणकूं विक्षेपके अवस्थापनैका कथन विरोधकूं पावता नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

९] **विक्षेपकी उत्पत्तितैं पूर्व बी विक्षेपका संस्कार हैहीं। तिस कारणतैं तिन अज्ञान औ आवरणकूं तिस चिदाभासके अवस्थापनैका वर्णन अविरुद्ध है॥**

ॐ९) तिस कारणतैं तिन अज्ञान अरु आवरणका तिस चिदाभासकी अवस्थावानपनैका वर्णन अविरुद्ध है। ऐसैं योजना है॥३९॥

१० ननु अप्रसिद्धसंस्कारके अंगीकारद्वारा अज्ञान औ आवरणकूं विक्षेपकी अवस्थापनैके वर्णनतैं अधिष्ठानपनैकरि प्रसिद्ध ब्रह्मकी अवस्थापनैका वर्णन श्रेष्ठ है। यह आशंकाकरि अन्यअवस्थाविषै बी अतिप्रसंगतैं यह कथन बनै नहीं। ऐसैं परिहार करैहैं:—

११]**"ब्रह्मविषै आरोपित होनैकरि यह अज्ञान औ आवरण दोनूं ब्रह्मकी अवस्था हैं" ऐसैं शंका करनैकूं योग्य नहीं है। काहेतैं सर्व जे सप्तअवस्था तिनके ब्रह्मविषैहीं आरोपतैं ॥ ४० ॥**

१२ ननु सर्वअवस्थाके ब्रह्मविषै आरोपितपनैके तुल्य हुये बी विक्षेपकी उत्पत्तितैं उत्तरकालविषै होनैहारी संसारीपनैआदिक अवस्थाकूं जीवके आश्रित होनैकरि अनुभवकी विषय होनैतैं ब्रह्मका अवस्थापना नहीं है। इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
६२६	[१६]तर्ह्यज्ञोऽहं ब्रह्मसत्त्वभाने मद्दृष्टितो न हि । इति पूर्वे अवस्थे च भासेते जीवगे खलु ॥४२॥	२३१२
६२७	[१७]अज्ञानस्याश्रयो ब्रह्मेत्यधिष्ठानतया जगुः । [२०]जीवावस्थात्वमज्ञानाभिमानित्वादवादिषम् ४३	टिप्पणांकः ॐ

१३] "अहं संसारी । अहं विबुद्धः । निःशोकः । तुष्टः" इति अपि उत्तरावस्थाः जीवगाः भांति । न ब्रह्मगाः यदि ।

१४) संसारी कर्तृत्वादिधर्मवान् । विबुद्धः तत्त्वसाक्षात्कारवान् । निःशोकः शोकरहितः । तुष्टः वक्ष्यमाणकृतकृत्यत्वादिजनितसंतोषवान् अहमस्मि इत्युत्तरावस्था जीवगा जीवाश्रिता भांति न ब्रह्माश्रिता इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

१५ एवं तर्ह्यज्ञानावरणयोरपि जीवाश्रितत्वेन अनुभूयमानत्वाज्जीवावस्थात्वमेवेति परिहरति—

१६] तर्हि "अहं अज्ञः । ब्रह्मसत्त्वभाने मद्दृष्टितः न हि" इति पूर्वे अवस्थे च खलु जीवगे भासेते ॥ ४२ ॥

१७ ननु तर्ह्यज्ञानाश्रयत्वं ब्रह्मणः पूर्वाचार्यैः कथमुक्तमित्याशंक्य तद्विवक्षां दर्शयति (अज्ञानस्येति)—

१८] अधिष्ठानतया अज्ञानस्य आश्रयः ब्रह्म इति जगुः ॥

१९) ब्रह्मणोऽज्ञानाधिष्ठानत्वविवक्षया तदाश्रयत्वमुक्तमित्यर्थः ॥

१३] "मैं संसारी हूं" "मैं विबुद्ध हूं" "मैं निःशोक हूं" "मैं तुष्ट हूं"। ऐसैं बी उत्तरअवस्था जीवगत भासती हैं । ब्रह्मगत नहीं । जब ऐसैं कहै ।

१४) "मैं संसारी कहिये कर्त्तापनैआदिकधर्मवान् हूं" औ "मैं विबुद्ध कहिये तत्त्वसाक्षात्कारवान् हूं" औ "मैं निःशोक कहिये कर्त्तापनैआदिकशोकरहित हूं" औ "मैं तुष्ट कहिये आगे २५२-२९८ श्लोकपर्यंत कहनैके कृतकृत्यपनैआदिकतैं जनित संतोषवान् हूं" ऐसैं उत्तर कहिये अज्ञान औ आवरणतैं पीछली अवस्था जीवगत कहिये जीवके आश्रित भान होवैहैं ब्रह्मके आश्रित नहीं । यह अर्थ है ॥४१॥

१५ जब ऐसैं है । तब अज्ञान औ आवरणकूं बी जीवके आश्रित होनैकरि अनुभूयमान होनैतैं जीवकी अवस्थापनाहीं है । इस रीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

१६] तब "मैं अज्ञानी हूं औ ब्रह्मके सत्ता अरु भान मेरी दृष्टितैं कहिये मेरे अनुभवकरि नहीं हैं" ऐसैं जातैं पूर्वकी अज्ञान औ आवरणरूप दोनूंअवस्था प्रसिद्ध जीवके आश्रित भासतीहैं । यातैं वे जीवकी अवस्था हैं ॥ ४२ ॥

१७ ननु तब ब्रह्मकूं अज्ञानका आश्रयपना पूर्वाचार्योंनैं कैसैं कहाहै? यह आशंकाकरि तिन आचार्यनकी कहनैकी इच्छाकूं दिखावैहैं:—

१८] अधिष्ठानपनैकरि अज्ञानका आश्रय ब्रह्म है । ऐसैं आचार्य कहतेभये ॥

१९) ब्रह्मकूं अज्ञानके अधिष्ठानपनैके कहनैकी इच्छाकरि अज्ञानका आश्रयपना कहा है । यह अर्थ है ॥

टीकांक: २३२०	ज्ञानद्वयेन नष्टेऽस्मिन्नज्ञाने तत्कृताऽऽवृतिः ।	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:
	न भाति नास्ति चेत्येषा द्विविधाऽपि विनश्यति ४४	६२८
टिप्पणांक:	परोक्षज्ञानतो नश्येदसत्वावृत्तिहेतुता ॥	
ॐ	अपरोक्षज्ञाननाश्या ह्यभानावृत्तिहेतुता ॥ ४५ ॥	६२९

२० भवद्भिस्तर्हि किं विवक्षया जीवावस्थात्वं उक्तमित्याशंक्य स्वविवक्षां दर्शयति (जीवावस्थात्वमिति)—

२१] **अज्ञानाभिमानित्वात् जीवावस्थात्वं अवादिषम् ॥ ४३ ॥**

२२ एवं बंधहेतुमवस्थात्रयं प्रदर्श्य अवशिष्टासु अवस्थासु मध्ये पूर्वोक्ताज्ञानावरणनिवृत्तिद्वारा मुक्तिहेतुमवस्थाद्वयं दर्शयति—

२३] **ज्ञानद्वयेन अस्मिन् अज्ञाने नष्टे तत्कृता "न भाति । न अस्ति"। इति एषा द्विविधा आवृतिः अपि विनश्यति च ॥**

२४) परोक्षत्वापरोक्षत्वलक्षणेन ज्ञानद्वयेन आवरणकारणे अज्ञाने नष्टे सति तत्कृताऽऽवृतिः तेनाज्ञानेनोत्पादितं "न भाति। नास्तीति" व्यवहारकारणं द्विविधमपि आवरणं कारणाभावान्नश्यतीति ४४

२५ कस्यांशस्य केन निवृत्तिरित्यपेक्षायां उभयं विभज्य दर्शयति—

२६] **परोक्षज्ञानतः असत्वावृत्तिहेतुता नश्येत् । अपरोक्षज्ञाननाश्या अभानावृत्तिहेतुता हि ॥**

---

२० ननु तब तुमनैं क्या कहनैकी इच्छाकरि अज्ञानकूं जीवकी अवस्थापना कहाहै ? यह आशंकाकरि अपनै कहनैकी इच्छाकूं दिखावैहैं:—

२१] जीवकूं "मैं अज्ञ हूं" ऐसैं **अज्ञानका अभिमानी होनैतैं** अज्ञानकूं जी**वकी अवस्थापना कहाहै ॥ ४३ ॥**

॥ ११ ॥ अज्ञान औ आवरणकी निवृत्तिद्वारा मुक्तिकी हेतु परोक्षज्ञान औ अपरोक्षज्ञानरूप दोअवस्थाका कथन ॥

२२ ऐसैं बंधकी कारण अज्ञान आवरण औ विक्षेपरूप तीनअवस्थाकूं दिखायके । अवशेष रही जे च्यारिअवस्था तिनके मध्य पूर्व ३६ श्लोकउक्त अज्ञान औ आवरणकी निवृत्तिद्वारा मुक्तिकी हेतु दोनूंअवस्थाकूं दिखावैहैं:—

२३] **दोनूंज्ञानकरि इस अज्ञानके नाश हुये** । तिस अज्ञानकी कार्य जो **"नहीं है औ नहीं भासताहै" ऐसी ये दोनूंप्रकारकी आवृत्ति बी नाश होवैहै ॥**

२४) परोक्षपनै औ अपरोक्षपनैरूप लक्षणवाले दोनूंज्ञानोंकरि आवरणके कारण अज्ञानके नाश हुये । तिस अज्ञानकरि उत्पन्न भया जो "नहीं भासताहै औ नहीं है" इस व्यवहारका कारण दोनूंप्रकारका बी आवरण । कारणके अभावतैं नाश होवैहै ॥४४॥

२५ किस ज्ञानकरि अज्ञानके किस अंशकी निवृत्ति होवैहै ? इस पूंछनैकी इच्छाके हुये दोनूंकूं विभागकरिके दिखावैहैं:—

२६] **परोक्षज्ञानतैं असत्वआवरणकी हेतुता नाश होवैहै औ अपरोक्षज्ञानकरि नाश होनैयोग्य अभानआवरणकी हेतुता है ॥**

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
६३०	³¹अभानावरणे नष्टे जीवत्वारोपसंक्षयात् । कर्तृत्वाद्यखिलः शोकः संसाराख्यो निवर्तते॥४६	२३२७
६३१	³²निर्वृत्ते सर्वसंसारे नित्यमुक्तत्वभासनात् । निरंकुशा भवेत्तृप्तिः पुनः शोकासमुद्भवात् ॥४७॥	टिप्पणांक: ॐ

२७)कूटस्थोऽस्तीत्येवंरूपात्परोक्षज्ञानात् अज्ञानस्यासत्वावरणकारणत्वं निवर्तते । कूटस्थोऽस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन तु कूटस्थो न भातीत्येवंरूपावरणकारणत्वं निवर्तते ॥ ४५ ॥

२८ इदानीं ज्ञानस्य फलरूपावस्थाद्वये प्रथमावस्थामाह—

२९] अभानावरणे नष्टे जीवत्वारोपसंक्षयात् कर्तृत्वाद्यखिलः संसाराख्यः शोकः निवर्तते ॥

३०) अभानावरणे निवृत्ते । भ्रांत्या प्रतीयमानस्य जीवत्वस्यापि निवृत्तत्वात्तन्निमित्तकः कर्तृत्वादिलक्षणः संसाराख्यः शोकः सर्वोऽपि निवर्तते इत्यर्थः ॥४६॥

३१ एवं शोकापगमरूपामवस्थां प्रदर्श्य निरंकुशतृप्तिलक्षणां द्वितीयां दर्शयति (निवृत्त इति)—

३२] सर्वसंसारे निवृत्ते नित्यमुक्तत्वभासनात् पुनः शोकासमुद्भवात् निरंकुशा तृप्तिः भवेत् ॥ ४७ ॥

---

२७) "कूटस्थ है" इसरूपवाले परोक्षज्ञानतैं अज्ञानका "कूटस्थ नहीं है" इस आकारवाले असत्वआवरणका कारनपना निवृत्त होवैहै औ "कूटस्थ मैं हूं" इसरूपवाले अपरोक्षज्ञानकरि तौ अज्ञानका "कूटस्थ नहीं भासताहै" इस आकारवाले अभानआवरणका कारनपना निवर्त्त होवैहै ॥ ४५ ॥

॥ १२ ॥ अपरोक्षज्ञानकी फलरूप प्रथमअवस्था ॥

२८ अब ज्ञानकी फलरूप दोनूंअवस्थाविषै शोकनिवृत्तिरूप प्रथमअवस्थाकूं कहैहैं:—

२९] अभानआवरणके नाश हुये जीवभावके आरोपके सम्यक्क्षयतैं । कर्तापनाआदिरूप संपूर्णसंसारनामक शोक निवर्त होवैहै ॥

३०) अभानआवरणके निवृत्त हुये भ्रांतिसैं प्रतीयमान जीवभावकूं बी निवृत्त होनेतैं। तिस जीवभावरूप निमित्तवाला जो कर्तापनाआदिरूप संसारनामवाला शोक है । सो सर्व बी निवर्त होवैहै । यह अर्थ है ॥ ४६ ॥

॥ १३ ॥ अपरोक्षज्ञानकी फलरूप द्वितीयअवस्था ॥

३१ ऐसैं शोकनिवृत्तिरूप अवस्थाकूं दिखायके अब निरंकुशातृप्तिरूप दूसरी अवस्थाकूं दिखावैहैं:—

३२] सर्वसंसारके निवृत्त हुये । नित्यमुक्तपनैके भासनैकारि फेर शोककी अनुत्पत्तितैं निरंकुशातृप्ति होवैहै ॥ ४७ ॥

टीकांक: २३३३ टिप्पणांक: ॐ	ॐअपरोक्षज्ञानशोकनिवृत्त्याख्ये उभे इमे । अवस्थे जीवगे ब्रूत आत्मानं चेदिति श्रुतिः॥४८॥ ॐअयमित्यपरोक्षत्वमुक्तं तद्द्विविधं भवेत् । ॐविषयस्वप्रकाशत्वाद्धियाप्येवं तदीक्षणात् ॥ ४९॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६३२ ६३३

३३ ननु "आत्मानं चेद्विजानीयात्" इति मंत्रव्याख्याने प्रवृत्तत्वात्तद्विहाय मध्येऽज्ञानाद्यवस्थासप्तकनिरूपणं प्रकृतासंगतमित्याशंक्य "आत्मानं चेद्विजानीयात्" इत्यस्याः श्रुतेस्तात्पर्यनिरूपणशेषत्वेनाभिहितत्वात् न प्रकृतासंगतमित्यभिप्रेत्य श्रुतितात्पर्यमाह—

३४] अपरोक्षज्ञानशोकनिवृत्त्याख्ये उभे इमे अवस्थे "आत्मानं चेत्" इति श्रुतिः जीवगे ब्रूते ॥

३५) चिदाभासनिष्ठं यदवस्थासप्तकमस्ति तत्र अपरोक्षज्ञानशोकनिवृत्तिलक्षणमवस्थाद्वयं प्रतिपादयितुं अयं मंत्रः प्रवृत्त इत्यभिप्रायः ॥ ४८ ॥

३६ "अयमित्यपरोक्षत्वं" इत्यत्र "अयं" इति पदेन आत्मनोऽपरोक्षत्वमुच्यत इत्युक्तं । तथासति अपरोक्षज्ञानविषयत्वमेव स्यान्न परोक्षज्ञानविषयत्वमित्याशंक्य । तदुपपादनायापरोक्षज्ञानं विभजते—

॥ १४ ॥ उक्तश्रुतिके व्याख्यानमैं सप्तअवस्थाके निरूपणकी संगति ॥

३३ ननु "आत्माकूं जब जानै" इस वेदमंत्रके व्याख्यानविषै प्रवृत्त होनैतैं। तिस वेदमंत्रके व्याख्यानकूं छोडिके मध्यमैं अज्ञानआदिकसप्तअवस्थाका निरूपण । प्रकृत जो आरंभ किया अर्थ। तिसविषै संबंधरहित है । यह आशंकाकरि सप्तअवस्थाके निरूपणकूं "आत्माकूं जब जानै" इस श्रुतिके तात्पर्यनिरूपणका उपयोगी होनैकरि कथन किया होनैतैं सप्तअवस्थाका निरूपण प्रकृतविषै असंगत नहीं है । इस अभिप्रायकरि प्रथमश्लोकउक्त श्रुतिके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

३४] अपरोक्षज्ञान औ शोकनिवृत्ति इस नामवाली दोनूंअवस्थाके तांई "आत्माकूं जब जानै" यह श्रुति जीवके आश्रित कहतीहै ॥

३५) चिदाभासविषै स्थित जे सप्तअवस्था हैं। तिनविषै अपरोक्षज्ञान औ शोकनिवृत्तिरूप दोनूंअवस्थाके प्रतिपादन करनैकूं "आत्माकूं जब जानै" यह वेदका मंत्र प्रवृत्त भयाहै । यह अभिप्राय है ॥ ४८ ॥

॥ ४ ॥ आत्माकूं परोक्षज्ञानकी विषयताका संभव ॥ २३३६—२३७६ ॥

॥ १ ॥ आत्माकूं परोक्षज्ञानकी विषयताके प्रतिपादनअर्थ हेतुसहित अपरोक्षज्ञानका दोभांतिपना ॥

३६ "'अयं' यह अपरोक्षपना कहियेहै" ॥ इस २१ वैं श्लोकविषै "अयं' इस पदकरि आत्माका अपरोक्षपना कहियेहै" ऐसैं कहा। तिस प्रकार हुये आत्माकूं अपरोक्षज्ञानकी विषयताहीं होवैगी । परोक्षज्ञानकी विषयता नहीं होवैगी । यह आशंकाकरि तिस परोक्षज्ञानकी विषयताके उपपादनअर्थ अपरोक्षज्ञानकूं विभाग करैहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६३४

परोक्षज्ञानकालेऽपि विषयस्वप्रकाशता ।
समा ब्रह्म स्वप्रकाशमस्तीत्येवं विबोधनात्॥५०॥

टीकांकः २३३७ टिप्पणांकः ॐ

३७] **"अयं" इति अपरोक्षत्वं उक्तं तत् द्विविधं भवेत् ॥**

३८ द्वैविध्ये कारणमाह—

३९] **विषयस्वप्रकाशत्वात् । धिया अपि एवं तदीक्षणात् ॥**

४०) **विषयस्य** चिद्रूपस्यात्मनः । **स्वप्रकाशत्वात्** स्वव्यवहारसाधनांतरनिरपेक्षत्वात् । **धिया** बुद्ध्या । **एवं** स्वप्रकाशत्वेन **तदीक्षणात्** । तस्य विषयस्यात्मनोऽवलोकनाच्चेत्यर्थः ॥ ४९ ॥

४१ भवतु द्वैविध्यं एतावता परोक्षज्ञानविषयत्वे किमायातमित्याशंक्य विषयस्वप्रकाशत्वं परोक्षज्ञानविषयत्वविरोधि न भवतीत्याह—

४२] **परोक्षज्ञानकाले अपि विषयस्वप्रकाशता समा ॥**

४३) अपरोक्षज्ञानकाल इव **परोक्षज्ञानकालेऽपि विषयस्य** ब्रह्मणः **स्वप्रकाशता** अस्त्येव ॥

४४ तत्रोपपत्तिमाह—

४५] **ब्रह्म स्वप्रकाशं अस्ति इति एवं विबोधनात् ॥ ५० ॥**

३७] **"अयं"** इस पदकरि जो अपरोक्षपना २१ वें श्लोकविषै कहा । सो दोप्रकारका है ॥

३८ अपरोक्षपनेके दोप्रकार होनैविषै कारण कहैहैं:—

३९] **विषय** जो आत्मा ताकूं **स्वप्रकाश होनैतें औ बुद्धिकरि बी ऐसैं तिस विषयके देखनैतें ।**

४०) विषय जो चिद्रूपआत्मा तिसकूं स्वप्रकाश होनैतें । कहिये अपनै प्रतीतिरूप व्यवहारअर्थ अन्यसाधनकी अपेक्षारहित होनैतें औ बुद्धिकरि ऐसैं स्वप्रकाशपनैकरि तिस आत्मारूप विषयके देखनैतें ज्ञानतें "अयं" पदकरि उक्त जो अपरोक्षपना । सो विषय नाम जो आत्मा औ विषयी जो बुद्धिवृत्ति तिनके भेदतें दोप्रकारका है ॥ यह अर्थ है ॥ ४९ ॥

॥ २ ॥ विषयकी स्वप्रकाशतासैं परोक्षज्ञानका अविरोध ॥

४१ ननु अपरोक्षपना दोप्रकारका होहु । इतनैकरि आत्माकूं परोक्षज्ञानकी विषयताविषै क्या आया? यह आशंकाकरि आत्मारूप विषयका स्वप्रकाशपना परोक्षज्ञानकी विषयताका विरोधि नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

४२] **परोक्षज्ञानकालविषै बी विषयकी स्वप्रकाशता समान है ॥**

४३) अपरोक्षज्ञानकालकी न्यांई परोक्षज्ञानकालविषै बी ब्रह्मरूप विषयकी स्वप्रकाशता विद्यमानहीं है ॥

४४ तिस परोक्षज्ञानकालमैं विषयकी स्वप्रकाशताके सद्भावविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

४५] **ब्रह्म स्वप्रकाश है । ऐसैंहीं जाननैतें ॥ ५० ॥**

टीकांक: २२४६ टिप्पणांक: ॐ	अहं ब्रह्मेत्यनुल्लिख्य ब्रह्मास्तीत्येवमुल्लिखन् । परोक्षज्ञानमेतन्न भ्रांतं बाधानिरूपणात् ॥ ५१ ॥ ब्रह्म नास्तीति मानं चेत्स्याद्बाध्येत तदा ध्रुवम् । न चैवं प्रबलं मानं पश्यामोऽतो न बाध्यते ॥५२॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६३५ ६३६

४६ प्रत्यगभिन्नब्रह्मगोचरस्य ज्ञानस्य कुतः परोक्षत्वमित्याशंक्य प्रत्यगंशाग्रहणादित्याह—

४७] "अहं ब्रह्म" इति अनुल्लिख्य "ब्रह्म अस्ति" इति एवं उल्लिखन् परोक्षज्ञानम् ॥

४८ नन्विदं भ्रांतमित्याशंक्यास्य भ्रांतत्वं किं बाध्यत्वादुत व्यक्त्यनुल्लेखादथवा आपरोक्ष्येण ग्रहणयोग्यस्य पारोक्ष्येण ग्रहणात् यद्वांऽशाग्रहणादिति चतुर्द्धा विकल्प्य । प्रथमं प्रत्याह—

४९] एतत् भ्रांतं न । बाधानिरूपणात् ॥ ५१ ॥

५० हेतुं विवृणोति—

५१] "ब्रह्म न अस्ति" इति चेत् मानं स्यात् तदा बाध्येत । च एवं प्रबलं मानं ध्रुवं न पश्यामः । अतः न बाध्यते ॥ ५२ ॥

॥ ३ ॥ प्रत्यक्अंशकेअग्रहणतैं प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मगोचरज्ञानकी परोक्षताका संभव ॥

४६ प्रत्यक् जो अंतरात्मा तिससैं अभिन्नब्रह्मके विषय करनैवाले ज्ञानकूं परोक्षपना काहेतैं है? यह आशंकाकरि प्रत्यक्अंशके अग्रहणतैं प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मके गोचर ज्ञानकूं परोक्षपना है । ऐसैं कहैहैं:—

४७] "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं विषय नहीं करिके "ब्रह्म है" ऐसैं विषय करताहुया परोक्षज्ञान होवैहै ॥

॥ ४ ॥ च्यारिविकल्पकरि ब्रह्मके परोक्षज्ञानकी अभ्रांतता ॥

४८ ननु यह परोक्षज्ञान भ्रांत कहिये भ्रांतिरूप होवैगा। यह आशंकाकरि इस परोक्षज्ञानका भ्रांतपना क्या बाध होनैके योग्य स्वरूपतैं है। वा ब्रह्मके आकारके अविषय करनैतैं है । अथवा अपरोक्षकरि ग्रहण करनैके योग्य ब्रह्मरूप विषयके परोक्षपनैकरि ग्रहण करनैतैं है। यद्वा प्रत्यक्अंशके अग्रहणतैं परोक्षज्ञानका भ्रांतपना है? ऐसैं सिद्धांती च्यारीप्रकारसैं वादीके प्रति विकल्पकरिके बाध होनैके योग्य स्वरूपवाला होनैतैं इस परोक्षज्ञानका भ्रांतपना है । इस प्रथमविकल्पके प्रति कहैहैं:—

४९] यह परोक्षज्ञान भ्रांत नहीं है । काहेतैं तिसके बाधके अनिरूपणतैं॥५१॥

५० परोक्षज्ञानके अभ्रांतपनैविषै "बाधके अनिरूपणतैं" यह जो हेतु कहा ताकूं वर्णन करैहैं:—

५१] "ब्रह्म नहीं है" ऐसा जब प्रमाण होवै तब परोक्षज्ञान बाधकूं पावै औ ऐसा प्रबलप्रमाण निश्चयकरि नहीं देखियेहै । यातैं परोक्षज्ञान बाधकूं कहिये अयथार्थपनैकूं पावता नहीं ॥५२॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
६३७	५३व्यक्त्यनुल्लेखमात्रेण भ्रमत्वे स्वर्गधीरपि । भ्रांतिः स्याद्व्यक्त्यनुल्लेखात्सामान्योल्लेखदर्शनात् ॥ ५३ ॥	२३५२
६३८	५६अपरोक्षत्वयोग्यस्य न परोक्षमतिर्भ्रमः । परोक्षमित्यनुल्लेखादर्थात्पारोक्ष्यसंभवात् ॥ ५४ ॥	टिप्पणांकः ॐ

५२ द्वितीयमतिप्रसंगेन दूषयति—

५३] व्यक्त्यनुल्लेखमात्रेण भ्रमत्वे व्यक्त्यनुल्लेखात् सामान्योल्लेखदर्शनात् स्वर्गधीः अपि भ्रांतिः स्यात् ॥

५४) अयं स्वर्ग इत्येवमाकारेण ग्रहणाभावात् किंतु स्वर्गोऽस्तीत्येवं सामान्याकारेण प्रतीतेः स्वर्गबुद्धेरपि भ्रमत्वप्रसंग इत्यर्थः॥५३॥

५५ तृतीयं निराकरोति—

५६] अपरोक्षत्वयोग्यस्य परोक्षमतिः भ्रमः न ॥

५७) अपरोक्षत्वेन ग्रहणयोग्यस्य प्रत्यगभिन्नब्रह्मविषयस्य परोक्षज्ञानस्य भ्रमत्वं न संभवति ॥

५८ कुत इत्यत आह—

५९] परोक्षं इति अनुल्लेखात् ॥

६०) ब्रह्म परोक्षमिति । एवमाकारेण ग्रहणाभावात् ॥

६१ कुतस्तर्हि तस्य परोक्षत्वमित्याशंक्याह—

६२] अर्थात् पारोक्ष्यसंभवात् ॥

६३) इदं ब्रह्मेत्येवं व्यक्त्युल्लेखाभावसामर्थ्यात् परोक्षत्वसिद्धिरिति भावः ॥ ५४ ॥

---

५२ "व्यक्ति जो ब्रह्मका आकार ताके अविषय करनैतैं परोक्षज्ञानकूं भ्रांतपना है"। इस दूसरे विकल्पकूं स्वर्गके ज्ञानविषै अतिप्रसंगकरि दूषण देतेहैं:—

५३] व्यक्तिके अविषय करनैमात्रकरि परोक्षज्ञानकूं भ्रमरूपताके हुये व्यक्तिके अग्रहणतैं औ सामान्यआकारके ग्रहणके देखनैतैं स्वर्गकी बुद्धि बी भ्रांति होवैगी ॥ ५३ ॥

५४) "यह स्वर्ग है" इस आकारकरि ग्रहणके अभावतैं। किंतु "स्वर्ग है" इस सामान्यआकारकरि प्रतीतितैं स्वर्गकी बुद्धिकूं बी भ्रमरूपताका प्रसंग होवैगा ॥ यह अर्थ है ॥ ५३ ॥

५५ "अपरोक्षकरि ग्रहण करनैके योग्य ब्रह्मके परोक्षपनैकरि ग्रहणतैं परोक्षज्ञानकूं भ्रांतपना है" इस तीसरेविकल्पकूं निराकरण करैहैं:—

५६] अपरोक्ष होनैके योग्यकी परोक्षमति भ्रमरूप नहीं है ॥

५७) अपरोक्षपनैकरि ग्रहण करनैके योग्य जो प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मरूप विषय है। तिसके परोक्षज्ञानकूं भ्रमरूपता नहीं संभवैहै ॥

५८ ब्रह्मके परोक्षज्ञानकूं भ्रमरूपता काहेतैं नहीं संभवैहै ? तहां कहैहैं:—

५९] परोक्ष है। ऐसैं अविषय करनैतैं॥

६०) "ब्रह्म परोक्ष है" इस आकारकरि अपरोक्ष होनैके योग्य ब्रह्मके ग्रहणके अभावतैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान भ्रमरूप नहीं है ॥

६१ तब तिस ज्ञानकूं परोक्षपना काहेतैं है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६२] अर्थतैं परोक्षपनैके संभवतैं ॥

६३) "यह ब्रह्म है" ऐसैं ब्रह्मके आकारके ग्रहणके अभावके सामर्थ्यतैं तिस ज्ञानके परोक्षपनैकी सिद्धि होवैहै ॥ ५४ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
६३९	[६५]अंशाग्रहीतेर्भ्रांतिश्चेद्[६८]घटज्ञानं भ्रमो भवेत् । [७१]निरंशस्यापि सांशत्वं व्यावर्त्यांशविभेदतः ॥५५॥	२२६४
६४०	[७३]असत्वांशो निवर्तेत परोक्षज्ञानतस्तथा । अभानांशनिवृत्तिः स्यादपरोक्षधिया कृता ॥५६॥	टिप्पणांकः ॐ

६४ चरममाशंकते—

६५] अंशाग्रहीतेः भ्रांतिः चेत् ॥

६६) ब्रह्मांशग्रहणेऽपि प्रत्यगंशाग्रहणात् भ्रमत्वमित्यर्थः ॥

६७ एवं तर्हि घटादिज्ञानस्यापि भ्रमत्वप्रसंग इति परिहरति—

६८] घटज्ञानं भ्रमः भवेत् ॥

६९) आंतरावयवानामग्रहणादिति भावः ॥

७० ननु घटस्य सावयवत्वादंशग्रहणेऽपि अंशाग्रहणं संभवति । ब्रह्मणस्तु निरंशत्वात् कथमंशाग्रहणसंभव इत्याशंक्य व्यावर्त्यांशोपाधिनिमित्तकं सांशत्वं तस्य भविष्यतीत्याह (निरंशस्येति)—

७१] व्यावर्त्यांशविभेदतः निरंशस्य अपि सांशत्वम् ॥ ५५ ॥

७२ कौ तौ व्यावर्त्यांशावित्याकांक्षायामाह (असत्वांश इति)—

७३] परोक्षज्ञानतः असत्वांशः निवर्तेत तथा अपरोक्षधिया कृता अभानांशनिवृत्तिः ॥ ५६ ॥

---

६४ "अंशके अग्रहणतैं परोक्षज्ञानकूं भ्रांतपना है" इस अंतके चतुर्थविकल्पके प्रतिवादी शंका करैहैं:—

६५] अंशके अग्रहणतैं परोक्षज्ञान भ्रांतिरूप है । ऐसैं जो कहै ।

६६) ब्रह्मरूप अंशके ग्रहण हुये बी प्रत्यक्साक्षीरूप अंशके अग्रहणतैं परोक्षज्ञानकूं भ्रमरूपता है ॥ यह अर्थ है ॥

६७ ऐसैं कोइकअंशके अग्रहणतैं परोक्षज्ञानकूं भ्रमरूपता जब है । तब घटादिकनके ज्ञानकूं बी भ्रमरूपताका प्रसंग होवैगा । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

६८] तौ घटका ज्ञान बी भ्रमरूप होवैगा ॥

६९) घटके बी भीतरके अवयवनके अग्रहणतैं घटका ज्ञान भ्रमरूप होवैगा। यहभाव है॥

७० ननु घटकूं सावयव होनैतैं तिसके केइकअंशनके ग्रहण हुये बी केइक अंशनका अग्रहण संभवैहै । ब्रह्मकूं तौ निरवयव होनैतैं तिसके अंशके अग्रहणका संभव कैसैं होवैगा? यह आशंकाकरि व्यावृत्ति करनै योग्य कहिये निषेध करनैके योग्य अंशरूप जे उपाधि हैं । तिसरूप निमित्तकारणका किया सावयवपना तिस ब्रह्मकूं होवैगा । ऐसैं कहैहैं:—

७१] निषेध करनैके योग्य अंशनके भेदतैं निरवयवब्रह्मकूं बी अंशसहितपना होवैहै ॥ ५५ ॥

॥ ९ ॥ परोक्षज्ञान औ अपरोक्षज्ञानकरि निवृत्त करनैयोग्य अज्ञानअंशका भेद ॥

७२ कौंन वे व्यावृत्ति करनैके योग्य दो अंश हैं? इस आकांक्षाके हुये कहैहैं:—

७३] परोक्षज्ञानतैं असत्व जो असद्भाव ताका संपादक अज्ञानअंश निवृत्त होवैहै । तैसैं अपरोक्षज्ञानकरि अभान जो अप्रतीति ताका संपादक जो अज्ञानतांश ताकी निवृत्ति होवैहै ॥ ५६ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
६४१	दशमोऽस्तीत्यविभ्रांतं परोक्षज्ञानमीक्ष्यते । ब्रह्मास्तीत्यपि तद्वत्स्यादज्ञानावरणं समम् ॥५७॥	२३७४
६४२	आत्मा ब्रह्मेति वाक्यार्थे निःशेषेण विचारिते । व्यक्तिरुल्लिख्यते यद्वद्दशमस्त्वमसीत्यतः॥ ५८ ॥	टिप्पणांकः ॐ

७४ अपरोक्षत्वेन ग्रहणयोग्यविषयं परोक्षज्ञानं भ्रमो न भवतीत्येतत् दृष्टांतदर्शनेनापि द्रढयति—

७५] "दशमः अस्ति" इति परोक्षज्ञानं अविभ्रांतं ईक्ष्यते। तद्वत् "ब्रह्म अस्ति" इति अपि स्यात् अज्ञानावरणं समम् ॥

७६) दशमोऽस्तीति। आप्तवाक्यजन्यं परोक्षज्ञानम् अभ्रांतं यथा ब्रह्मास्तीति वाक्यजन्यज्ञानं । अपि तद्वत् अभ्रांतं स्यात् अज्ञानकृतस्यासत्वावरणांशस्य समत्वात् इति भावः ॥ ५७ ॥

७७ ननु वाक्यात्परोक्षज्ञानं उत्पद्यते चेत् अपरोक्षज्ञानं कुतो जायत इत्याशंक्य विचारसहितात् वाक्यादेवेत्याह—

७८] "आत्मा ब्रह्म" इति वाक्यार्थे निःशेषेण विचारिते व्यक्तिः उल्लिख्यते ॥

॥ ६ ॥ अपरोक्षपनैकरि ग्रहणयोग्यके परोक्षज्ञानकी विषयताके अभ्रांतपनैमैं दृष्टांत ॥

७४ "अपरोक्षपनैकरि ग्रहण करनैयोग्य वस्तु जो प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्म ताकूं विषय करनैहारा परोक्षज्ञान भ्रमरूप नहीं होवैहै" इस ५४ श्लोक उक्त तीसरेविकल्पके समाधानकूं दृष्टांतके दिखावनैकरि वी दृढ करैहैं:—

७५] जैसैं "दशम है" यह परोक्षज्ञान अभ्रांत कहिये अभ्रांतिरूप देखियेहै। तैसैं "ब्रह्म है" यह परोक्षज्ञान बी अभ्रांत है ॥ दोनूंविषै अज्ञानका आवरण सम है ॥

७६) "दशम है" इस यथार्थवक्तारूप आप्तपुरुषके वाक्यसैं जन्य परोक्षज्ञान जैसैं अभ्रांत है। तैसैं "ब्रह्म है" इस वाक्यतैं जन्य ज्ञान वी अभ्रांत होवैहै ॥ काहेतैं दोनूंविषै अज्ञानकृत-असत्वआवरणअंशकूं समान होनैतैं ॥ यह भाव है ॥ ५७ ॥

॥ ५ ॥ केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान औ विचारसहित महावाक्यतैं अपरोक्षज्ञानका प्रतिपादन ॥

॥ २३७७—२४५६ ॥

॥ १ ॥ वाक्यार्थके विचारतैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिका दशमके दृष्टांतसहित कथन ॥

७७ ननु जब वाक्यतैं परोक्षज्ञान उत्पन्न होवैहै तब अपरोक्षज्ञान काहेतैं होवैहै ? यह आशंकाकरि विचारसहित वाक्यतैंहीं अपरोक्षज्ञान होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

७८] "आत्मा ब्रह्म है" इस वाक्यअर्थके संपूर्णकरि विचार कियेहुये व्यक्ति कहिये प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मभाव अपरोक्ष जानियेहै ॥

७९) "अयं आत्मा ब्रह्म" इति वाक्यार्थे सम्यक् विचार्यमाणे पूर्वमस्तीति परोक्षतया अवगतस्य ब्रह्मणः प्रत्यगभिन्नत्वं साक्षात्क्रियते ॥

८० तत्र दृष्टांतः (यद्वदिति)—

८१] यद्वत् "दशमः त्वं असि" इति अतः ॥

८२) दशमस्त्वमसीत्यतः वाक्यात्स्वात्मनि दशमत्वं यथा साक्षात् क्रियते तद्वदित्यर्थः ॥ ५८ ॥

७९) "यह आत्मा ब्रह्म है" इस महावाक्यके अर्थके सम्यक्विचार कियेहुये पूर्व "है" ऐसैं परोक्षपनैकरि जानेहुये ब्रह्मका अंतरात्मासैं अभिन्नपना साक्षात् करियेहै ॥

८० तिस वाक्यअर्थके विचारसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिविषै दृष्टांत कहैहैंः—

८१] जैसैं "दशम तूं हैं" इस वाक्यतैं व्यक्ति जो "दशम" सो अपरोक्ष करियेहै ॥

८२) "दशम तूं हैं" इस वाक्यतैं जैसैं अपनै आपविषै दशमपना साक्षात् करियेहै। ताकी न्यांई ॥ यह अर्थ है ॥ ५८ ॥

३२ उत्तमअधिकारीकूं तौ श्रवणादिक **ज्ञानके साधन** हैं औ मध्यमअधिकारीकूं निर्गुणब्रह्मका अहंग्रहउपासनहीं **ज्ञानका साधन** है । यह सर्वअद्वैतग्रंथनका सिद्धांत है । परंतु दोनूंस्थलमैं वृत्तिका प्रवाहरूप प्रसंख्यानहीं **ज्ञानका करणरूप प्रमाण** है ॥ जैसैं मध्यमअधिकारीकूं निर्गुणब्रह्माकारनिरंतरवृत्तिरूप उपासन कर्तव्य है। सोई **प्रसंख्यान** है । तैसैं उत्तमअधिकारीकूं बी श्रवणमननके पीछे निदिध्यासनरूप प्रसंख्यान है । सोई ब्रह्मसाक्षात्कारका करण (असाधारणकारण) है ॥ यद्यपि षट्प्रकारके प्रमाणनविषै प्रसंख्यान नहीं है यातैं ताकूं प्रमाकी करणता घटै नहीं । तथापि सगुणब्रह्मके ध्यानकूं सगुणब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता औ निर्गुणब्रह्मके ध्यानकूं निर्गुणब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता सर्वश्रुतिस्मृतिनविषै प्रसिद्ध है औ देशकालके अंतरायवाली स्त्रीके ध्यान (प्रसंख्यान)कूं स्त्रीके साक्षात्कारकी करणता लोकमैं प्रसिद्ध है । तातैं निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानकूं ब्रह्मसाक्षात्कारकी करणता घटैहै औ संवादीभ्रमकी न्याईं विषयके अबाधतैं वा प्रसंख्यानकूं शब्दप्रमाणरूप मूलवाला होनैतैं। प्रसंख्यानसैं उत्पन्न ब्रह्मज्ञानकूं प्रमाणजन्यताके अभाव हुये बी प्रमापना है। ऐसा केइक ग्रंथकारनका मत है औ वाचस्पतिके मतमैं ब्रह्मज्ञानका करण मन है । प्रसंख्यान मनका सहकारी है। औ

अद्वैतग्रंथनका मुख्यमत यह हैः—महावाक्यसैं ज्ञानकी उत्पत्ति भये पीछे प्रसंख्यानकी अपेक्षा नहीं है। किंतु महावाक्यतैंही अद्वैतब्रह्मका साक्षात्कार होवैहै । यातैं वेदांतवाक्यरूप शब्दहीं ब्रह्मके साक्षात्कारका करण है औ निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानसैं जन्य एकाग्रतासहित मन। ताका सहकारी है॥ तहां बी अन्यग्रंथकारके मतमैं विचारसहित महावाक्य अपरोक्षज्ञानका हेतु है औ संक्षेपशारीरककारके मतमैं सर्वप्रकारसैं महावाक्य अपरोक्षज्ञानकाहीं हेतु है । यह भेद है ॥ प्रमाज्ञानके करणकूं **प्रमाण** कहैहैं ॥ जातैं महावाक्यरूप शब्द । प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मगोचरप्रमाज्ञानका कारण है । यातैं प्रमाण है ॥ यातैं महावाक्यरूप प्रमाणतैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिका कथन योग्य है ॥

३३ "मैं दशम हूं" इस आकारवाला दशमके स्वरूपका अपरोक्षज्ञान "दशम तूं हैं" इस दशमके स्वरूपके बोधक शब्दप्रमाणसैं जन्य है । इंद्रिय वा मनतैं जन्य नहीं ॥ काहेतैं शरीररूप दशम अन्यइंद्रियके योग्य तौ है नहीं । किंतु नेत्रेंद्रियके योग्य है ॥ जो नेत्रइंद्रियसैंही शरीरमैं दशमपनैका ज्ञान होवै । तौ नेत्रके व्यापारसैं विनाही निमिलितनयनवाले पुरुषकूं "दशम तूं हैं" यह वाक्य सुनिके दशमका ज्ञान होवैहै सो नहीं हुयाचाहिये ॥ यातैं दशमका ज्ञान नेत्रइंद्रियजन्य नहीं है औ मनमैं बाह्यपदार्थके ज्ञानका सामर्थ्य नहीं है । किंतु आंतरपदार्थके ज्ञानका सामर्थ्य है ॥ औ देवदत्तयज्ञदत्तादिकनाम सूक्ष्मशरीरसहित स्थूलशरीरके हैं अरु "त्वं" "अहं" यह व्यवहार बी सूक्ष्मसहित स्थूलदेहमैं होवैहै । तिस स्थूलदेहका ज्ञान मनसैं संभवै नहीं ॥ इसरीतिसैं दशमका ज्ञान शब्दप्रमाणजन्य है । ताका नेत्र औ मन सहकारी है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६४३ — टीकांकः २३८३

दशमः क इति प्रश्ने त्वमेवेति निराकृते ।
गणयित्वा स्वेन सह स्वमेव दशमं स्मरेत् ॥ ५९ ॥

६४४ — टिप्पणांकः ॐ

दशमोऽस्मीति वाक्योत्था न धीरस्य विहन्यते ।
आदिमध्यावसानेषु न नवत्वस्य संशयः ॥ ६० ॥

८३ विचारसहकृतेन वाक्येन अपरोक्षज्ञानोत्पत्तिप्रकारं सदृष्टांतमाह—

८४] "दशमः कः" इति प्रश्ने "त्वं एव" इति निराकृते । स्वेन सह गणयित्वा स्वं एव दशमं स्मरेत् ॥

८५) त्वयाऽस्तीतिनिरूपितः दशमः क इति प्रश्ने कृते । तस्य त्वमेवेति परिहारेऽभिहिते । स्वात्मना सह । इतरान्नव गणयित्वा । अहं दशमोऽस्मीति स्वमेव दशमं स्मरेत् । इत्यर्थः ॥ ५९ ॥

८६ अस्य दशमोऽस्तीति ज्ञानस्य विचारसहितवाक्यजनितत्वान्न विपर्ययादिरूपतेत्याह—

८७] "दशमः अस्मि" इति वाक्योत्था अस्य धीः न विहन्यते । आदिमध्यावसानेषु नवत्वस्य संशयः न ॥

८८) अस्य दशमस्य त्वमेव दशमोऽसीति वाक्यात्परिगणनादिलक्षणविचारसहितादुत्पन्नोऽहं दशमोऽस्मीति बुद्धिः न विहन्यते न केनापि ज्ञानेन बाध्यते। परिगणनक्रियायां च नवानां आदिमध्यावसानेषु परिगणनेऽपि अहं दशमो न वेति संशयः च न भवेदतः सा दृढाऽपरोक्षरूपेत्यर्थः ॥ ६० ॥

॥ २ ॥ विचारसहित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिप्रकारमैं दृष्टांत ॥

८३ विचारसहित वाक्यसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिके प्रकारकूं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

८४] "दशम कौन हैं?" ऐसैं प्रश्नके किये "तूंहीं हैं" ऐसैं तिस प्रश्नके निराकरण कियेहुये अपनैसहित नवकूं गिनिके आपहीकूं दशम स्मरण करै ॥

८५) तैंनैं "है" ऐसैं निरूपण किया जो दशम सो कौन है ? ऐसैं आप्तपुरुषके प्रति दशमपुरुषकरि प्रश्न कियेहुये औ तिस प्रश्नके "तूंहीं दशम हैं" ऐसैं आप्तपुरुषकरि परिहारके कहेहुये अपनैसहित अन्यनवपुरुषनकूं गणनाकरिके "मैं दशम हूं" ऐसैं आपहीं दशमकूं स्मरण करै । यह अर्थ है ॥ ५९ ॥

८६ "दशम मैं हूं" इस ज्ञानकूं विचारसहित वाक्यतैं उत्पन्न होनैतैं विपरीतभावनाआदिरूपता नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

८७] "दशम मैं हूं" यह वाक्यतैं उत्पन्न इस दशमकी बुद्धि नहीं नाश होवैहै औ आदिमध्यअंतविषै नवपनैका संशय नहीं होवैहै ॥

८८) इस दशमपुरुषकी "तूंहीं दशम हैं" इस गिनतीआदिरूप विचारसहित वाक्यतैं उत्पन्न जो "मैं दशम हूं" यह ज्ञान सो नाश नहीं होवैहै । कहिये किसी बी ज्ञानकरि बाधकूं पावै नहीं औ गिनतीरूप क्रियाविषै नवपुरुषनके आदिमध्यअंतविषै दशमकूं स्थित करिके । तिसकी गिनतीके कियेहुये बी "मैं दशम हूं वा नहीं?" ऐसा संशय नहीं होवैहै । यातैं सो विचारसहित वाक्यसैं उत्पन्न "मैं दशम हूं" यह बुद्धि दृढअपरोक्षरूप है ॥ यह अर्थ है ॥ ६० ॥

टीकांक: २३८९ टिप्पणांक: ॐ

सदेवेत्यादिवाक्येन ब्रह्मसत्त्वं परोक्षतः ।
गृहीत्वा तत्त्वमस्यादिवाक्याद्व्यक्तिं समुल्लिखेत् ६१

आदिमध्यावसानेषु स्वस्य ब्रह्मत्वधीरियम् ।
नैव व्यभिचरेत्तस्मादापरोक्ष्यं प्रतिष्ठितम् ॥६२॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६४५ ६४६

८९ एतत्सर्वं दार्ष्टांतिके योजयति—

९०] सत् एव इत्यादिवाक्येन परोक्षतः ब्रह्मसत्त्वं गृहीत्वा तत्त्वमस्यादिवाक्यात् व्यक्तिम् समुल्लिखेत् ॥

९१) "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" इत्यादिवाक्येन ब्रह्मसद्भावं प्रथमं निश्चित्य। तस्य जीवरूपेण प्रवेशादियुक्तिपर्यालोचनया प्रत्यग्रूपत्वं संभाव्य "तत्त्वमसि" इत्यादिवाक्येनाद्वितीयब्रह्मरूपमात्मानं "अहं ब्रह्मास्मि" इति साक्षात् कुर्यात् ॥ ६१ ॥

९२] (आदिमध्येति)—इयम् स्वस्य ब्रह्मत्वधीः आदिमध्यावसानेषु न एव व्यभिचरेत्। तस्मात् आपरोक्ष्यं प्रतिष्ठितम् ॥

९३) अत इयं आत्मनो ब्रह्मत्वबुद्धिः पंचानां कोशानां आदिमध्यावसानेषु आत्मनो व्यवहारेऽपि नैवान्यथा भवति । अतोऽस्या बुद्धेरपरोक्षज्ञानत्वं सुस्थितमित्यर्थः ॥ ६२ ॥

॥ ३ ॥ उक्तदशमके दृष्टांतकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

८९ इस दृष्टांतउक्तसर्वअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

९०] "आगे सतहीं था" इत्यादिवाक्यकरि परोक्षतैं ब्रह्मके सद्भावकूं ग्रहणकरिके "तत्त्वमसि" आदिकवाक्यतैं व्यक्ति जो प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्म ताकूं अपरोक्ष करै ॥

९१) "हे सोम्य ! आगे यह जगत् एकहीं अद्वितीय सतहीं था" । इत्यादिअवांतरवाक्यसैं ब्रह्मके सद्भावकूं प्रथम निश्चयकरिके तिस ब्रह्मके जीवरूपकरि देहविषै प्रवेश आदिकयुक्तिके विचारनैंकरि प्रत्यक्‌रूपताकूं संभावनाकरिके। "तत्त्वमसि" कहिये सो तूं है इत्यादिमहावाक्यसैं अद्वितीयब्रह्मरूप आत्माकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं मुमुक्षु साक्षात् करै॥६१॥

९२] यह अपनै ब्रह्मभावकी बुद्धि। आदि मध्य औ अंतविषै व्यभिचारकूं पावै नहीं। तातैं इस बुद्धिका अपरोक्षपना स्थित है ॥

९३) जातैं यह आत्माके ब्रह्मभावकी बुद्धि पंचकोशनके आदि मध्य औ अंतविषै आत्माके व्यवहार हुये बी विपरीत नहीं होवैहै। यातैं इस बुद्धिका अपरोक्षज्ञानपना सम्यक्‌स्थित है। यह अर्थ है ॥ ६२ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६४७	९५ जन्मादिकारणत्वाख्यलक्षणेन भृगुः पुरा । पारोक्ष्येण गृहीत्वाऽथ विचाराद्व्यक्तिमैक्षत ॥६३॥	टीकांक: २३९४
६४८	९८ यद्यपि त्वमसीत्यत्र वाक्यं नोचे भृगोः पिता । तथाप्यन्नं प्राणमिति विचार्यस्थलमुक्तवान् ॥६४॥	टिप्पणांक: ॐ

९४ नन्वेवं प्रथमतः केवलं वाक्यात् परोक्षज्ञानं उत्पद्यते पश्चात् विचारसहितादपरोक्षज्ञानमित्येतत्कुतोऽवगम्यत इत्याशंक्य तैत्तिरीयकादिश्रुत्यर्थपर्यालोचनयेत्याह (जन्मादीति)–

९५] भृगुः पुरा जन्मादिकारणत्वाख्यलक्षणेन पारोक्ष्येण गृहीत्वा अथ विचारात् व्यक्तिं ऐक्षत् ॥

९६) भृगुनामकः कश्चिदृषिः पुरा "यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंतीति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति" इति वाक्यश्रुतेन जगज्जन्मादिकारणत्वाख्यलक्षणेन जगत्कारणं ब्रह्म परोक्षतयाऽवगत्यान्नमयादिपंचकोशविचारात् व्यक्तिं प्रत्यगात्मरूपं ब्रह्म दृष्टवानित्यर्थः ॥ ६३ ॥

९७ नन्वस्मिन्प्रकरणे "त्वं ब्रह्मासि" इत्येवमाद्युपदेशवाक्याभावात् कथं भृगोरात्मसाक्षात्कार इत्याशंक्य आत्मसाक्षात्कारहेतुविचारयोग्यस्थलप्रदर्शनादित्याह—

९८] यद्यपि अत्र भृगोः पिता "त्वम् असि" इति वाक्यं न ऊचे । तथापि

॥ ४ ॥ केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान औ विचारसहितवाक्यतैं अपरोक्षज्ञानमैं तैत्तिरीयश्रुतिका प्रमाण॥

९४ ननु ऐसैं "प्रथम केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान उत्पन्न होवैहै । पीछे विचारसहितवाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै" यह काहेतैं जानियेहै? यह आशंकाकरि तैत्तिरीयकआदिश्रुतिअर्थके विचारकरि देखनैसैं जानियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

९५] भृगु। जन्मआदिकके कारणपनैरूप लक्षणकरि पूर्व परोक्षपनैसैं निश्चयकरिके पीछे विचारतैं व्यक्तिकूं देखताभया ॥

९६) भृगु । इस नामवाला कोईक वरुणनामकऋषिका पुत्र ऋषि था । सो प्रथम "जिसतैं यह भूत उत्पन्न होवैहैं औ जिसकरि उपजेहुये जीवतैहैं औ जिसके तांई मरेहुये प्रवेश करैहैं। सो ब्रह्म है । तिसकूं तूं विशेषकरि जान" इसवाक्यकरि श्रवण किये जगत्के जन्मआदिकके कारणपनैरूप लक्षणकरि जगत्के कारण ब्रह्मकूं परोक्षपनैकरि जानिके पीछे अन्नमयआदिकपंचकोशनके विचारतैं प्रत्यगात्मारूप ब्रह्मकूं साक्षात् करताभया । यह अर्थ है ॥ ६३ ॥

९७ ननु इस श्रुतिके प्रसंगविषै "त्वं ब्रह्मासि" कहिये तूं ब्रह्म हैं। इसप्रकारसैं आदिलेके उपदेशवाक्यके अभावतैं भृगुऋषिकूं आत्माका साक्षात्कार कैसैं भया? यह आशंकाकरि तैसैं उपदेशवाक्यके अभाव हुये बी आत्मसाक्षात्कारके हेतु विचारके योग्य पंचकोशरूप स्थलके दिखावनैतैं भृगुकूं आत्माका साक्षात्कार भया । ऐसैं कहैहैं—

९८] यद्यपि इस प्रसंगविषै भृगुका पिता "तूं ब्रह्म है" ऐसा वाक्य नहीं कहताभया । तथापि अन्नमयकोश

टीकांकः २३९९ टिप्पणांकः ॐ	२४०० अन्नप्राणादिकोशेषु सुविचार्य पुनः पुनः । आनंदव्यक्तिमीक्षित्वा ब्रह्मलक्ष्माप्ययूयुजत् ६५ सत्यं ज्ञानमनंतं चेत्येवं ब्रह्मस्वलक्षणम् । उक्त्वा गुहाहितत्वेन कोशेष्वेतत्प्रदर्शितम् ॥६६॥	तृप्तिदीपः ॥७॥ श्लोकांकः ६४९ ६५०

"अन्नं प्राणम्" इति विचार्यस्थलम् उक्तवान् ॥ ६४ ॥

९९ नन्वन्नमयादिकोशेषु विचारितेषु प्रतीचः साक्षात्कारो भवतु । ब्रह्मणस्तु कथमित्याशंक्य प्रतीच एव ब्रह्मत्वात्पंचकोशविचारेणानंदात्मव्यक्तिं साक्षात्कृत्य "आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते आनंदेन जातानि जीवंति आनंदं प्रयंत्यभिसंविशंति" इत्येवं ब्रह्मलक्षणमपि प्रतीच्येव योजितवानित्याह—

२४००] अन्नप्राणादिकोशेषु पुनः पुनः सुविचार्य आनंदव्यक्तिं ईक्षित्वा ब्रह्मलक्ष्म अपि अयूयुजत् ॥ ६५ ॥

१ ननु ब्रह्मलक्षणस्यानंदात्मरूपेण प्रतीचि योजनं न घटते ब्रह्मणस्तटस्थत्वेन प्रतीचो भिन्नत्वात् इत्याशंक्य न भेदः सत्यादिलक्षणस्य ब्रह्मणः प्रत्यग्रूपेणावस्थानश्रवणादित्याह—

२] "सत्यं ज्ञानं च अनंतम्" इति एवं ब्रह्मस्वलक्षणं उक्त्वा कोशेषु गुहाहितत्वेन एतत् प्रदर्शितम् ॥

औ प्राणमयकोश इत्यादिपंचकोशरूप विचार करनैके योग्य स्थलकूं कहताभया ॥ ६४ ॥

९९ ननु अन्नमयादिकपंचकोशनके विचार कियेहुये । प्रत्यगात्मा जो कूटस्थ ताका साक्षात्कार होहु । ब्रह्मका साक्षात्कार तौ कैसैं भया? यह आशंकाकरि प्रत्यगात्माकूंहीं ब्रह्म होनैतैं पंचकोशके विचारकरि आनंदरूप आत्माके स्वरूपकूं अपरोक्षकरिके "आनंदतैंहीं निश्चयकरि यह सर्वप्राणी उत्पन्न होवैहैं औ आनंदकरि उत्पन्न हुये जीवतेहैं औ आनंदके तांई मरेहुये प्रवेश करैहैं" इसप्रकारके ब्रह्मके लक्षणकूं बी प्रत्यगात्माविषैहीं भृगु जोडताभया । ऐसैं कहैहैं:—

२४००] अन्नप्राणआदिककोशनविषै वारंवार विचारकरिके । आनंदरूप आत्माके स्वरूपकूं देखिके तहां ब्रह्मके लक्षणकूं बी जोडताभया ॥ ६५ ॥

१ ननु ब्रह्मके लक्षणका आनंदआत्मरूपकरि प्रत्यक्आत्माविषै जोडना बनै नहीं। काहेतैं ब्रह्मकूं पंचकोशनतैं बाह्यस्थित होनैकरि प्रत्यगात्मासाक्षीतैं भिन्न होनैतैं। यह आशंकाकरि सत्यआदिकलक्षणवाले ब्रह्मकी प्रत्यक्आत्मारूपकरि स्थितिके श्रवणतैं ब्रह्म औ प्रत्यगात्मारूप साक्षीका भेद बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

२] "सत्यज्ञानअनंत ब्रह्म है" ऐसैं ब्रह्मके स्वलक्षणकूं कहिके "पंचकोशनविषै गुहामैं स्थित होनेकरि" यह ब्रह्मका प्रत्यक्रूपपना दिखायाहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६५१	पारोक्ष्येण विबुध्येंद्रो य आत्मेत्यादिलक्षणात् । अपरोक्षीकर्तुमिच्छंश्चतुर्वारं गुरुं ययौ ॥ ६७ ॥	टीकांकः २४०३ टिप्पणांकः ६३४

३) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्येवं ब्रह्मस्वलक्षणं ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणमभिधाय "यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्" इत्यनेन वाक्येन पंचकोशगुहांतस्थितत्वेन तस्यैव प्रत्यग्रूपत्वमभिहितमित्यर्थः ॥ ६६ ॥

४ एवं तैत्तिरीयश्रुतिपर्यालोचनया भृगोः परोक्षज्ञानपूर्वकं विचारजन्यत्वं साक्षात्कारस्य दर्शयित्वा छांदोग्यश्रुतिपर्यालोचनेनापि तद्दर्शयति (पारोक्ष्येणेति)—

५] इंद्रः यः आत्मा इत्यादिलक्षणात् पारोक्ष्येण विबुध्य अपरोक्षीकर्तुं इच्छन् चतुर्वारं गुरुं ययौ ॥

३) "सत्यज्ञानअनंत ब्रह्म है" ऐसें ब्रह्मके स्वरूपलक्षणकूं कहिके "परमव्योम जो अव्याकृतरूप आकाश तिसविषै विद्यमान पंचकोशरूप गुहाविषै स्थित ब्रह्मकूं जो जानताहै" इस वाक्यकरि पंचकोशरूप गुहाके भीतर स्थित होनैकरि तिसीहीं ब्रह्मकी प्रत्यगात्मरूपता तिस श्रुतिगतप्रसंगविषै कहीहै ॥ यह अर्थ है ॥६६॥

॥ ९ ॥ श्लोक ९८ उक्त अर्थमैं छांदोग्यश्रुतिका प्रमाण ॥

४ ऐसैं ६३–६६ श्लोकपर्यंत यजुर्वेदकी तैत्तिरीयश्रुतिके विचारकरि देखनेसैं भृगुके परोक्षपनैके ज्ञानपूर्वक साक्षात्कारके विचारजन्यपनैकूं दिखायके । छांदोग्यश्रुतिके विचारकरि देखनैसैं बी तिस परोक्षज्ञानपूर्वक साक्षात्कारके विचारकरि जन्यपनैकूं दिखावैहैं:—

५] इंद्र । " जो आत्मा " इत्यादिलक्षणतैं परोक्षपनैकरि जानिके अपरोक्ष करनेकूं इच्छताहुया च्यारिवार गुरुके प्रति गया ॥

३४ असाधारण (एकवर्त्ति)धर्मकूं लक्षण कहैहैं ॥ असंभव । अव्याप्ति औ अतिव्याप्ति । इन तीनदोषनतैं रहित धर्मकूं **असाधारणधर्म** कहैहैं ॥ सो लक्षण (१) तटस्थलक्षण औ (२) स्वरूपलक्षणभेदतैं दोभांतिका है ॥

(१) कदाचित् हुया जो व्यावर्त्तक (अन्योंतैं भिन्नकरि जनावनैहारा) होवै । सो **तटस्थलक्षण** है सोई **उपलक्षण** है ॥ जैसैं "काकयुक्त देवदत्तका गृह है" ॥ इहां काकयुक्तपना कदाचित् हुया अन्यगृहनतैं देवदत्तके गृहका व्यावर्त्तक है । यातैं सो गृहका तटस्थलक्षण है । तैसैं "जिसतैं यह भूत उत्पन्न होवैहैं औ जिसकरि उत्पन्न हुये जीवतेहैं (पालनकूं पावतेहैं) औ जिसविषै मरेहुये प्रवेशकूं पावतेहैं । तिसकूं 'सो ब्रह्म है' ऐसैं जान" इस श्रुतिउक्त अरु "इस (जगत्)का जन्मादिक जिसतैं होवैहै" इस व्याससूत्रउक्तजगत्की उत्पत्ति । स्थिति । प्रलयकी कारणता औ तिसतैं उपलक्षितसर्वज्ञताआदिकयुक्तपना । ब्रह्मविषै कदाचित् (अज्ञानदशाविषै) वर्त्तताहुया माया औ ताके कार्यनतैं ब्रह्मका व्यावर्त्तक है । यातैं सो **ब्रह्मका तटस्थलक्षण** है ॥ औ

(२) सर्वदा वर्त्तताहुया जो व्यावर्त्तक होवै । सो **स्वरूपलक्षण** है ॥ जैसैं "श्वेतरंगयुक्त देवदत्तका गृह है" ॥ इहां श्वेतरंगयुक्तपना गृहका स्वरूप होनैतैं सर्वकालविषै गृहमैं वर्त्तताहुया अन्यनीलपीतादिकरंगयुक्तगृहनतैं देवदत्तके गृहका व्यावर्त्तक है । यातैं सो गृहका स्वरूपलक्षण है ॥ तैसैं "सत्यज्ञानअनंत ब्रह्म है" इस श्रुतिउक्तसत्यज्ञानादिरूपपना ब्रह्मका स्वरूप होनैतैं सर्वकाल (ज्ञानअज्ञानदशा)विषै ब्रह्ममैं वर्त्तताहुया । अन्य असत्जडपरिच्छिन्न (याहीतैं दुःखरूप) प्रपंचतैं ब्रह्मका व्यावर्त्तक है । यातैं सो **ब्रह्मका स्वरूपलक्षण** है ॥

टीकांकः २४१२ टिप्पणांकः ६३८

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६५४

[13] ब्रह्मापरोक्षसिद्ध्यर्थं महावाक्यमितीरितम् ।
वाक्यवृत्तावतो ब्रह्मापरोक्षे विमतिर्न हि ॥ ७० ॥
[15] आलंबनतया भाति योऽस्मत्प्रत्ययशब्दयोः ।
अंतःकरणसंभिन्नबोधः स त्वंपदाभिधः ॥ ७१ ॥

६५५

१२ ननु महावाक्यविचारस्य अपरोक्षज्ञानजनकत्वं स्वकपोलकल्पितमित्याशंक्य वाक्यवृत्तौ आचार्यैस्तथाप्रतिपादितत्वान्नैवमित्याह (ब्रह्मापरोक्षेति)—

१३] वाक्यवृत्तौ "ब्रह्मापरोक्ष्यसिद्ध्यर्थं महावाक्यम्" इति ईरितं। अतः ब्रह्मापरोक्षे विमतिः न हि ॥

ॐ१३) अतः वाक्यात् ब्रह्मापरोक्षज्ञाने विमतिपत्तिर्नास्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥

१४ वाक्यवृत्तावुपपादनप्रकारं दर्शयति (आलंबनतयेति)—

१५] यः अंतःकरणसंभिन्नबोधः अस्मत्प्रत्ययशब्दयोः आलंबनतया भाति। सः त्वंपदाभिधः ॥

॥ ८ ॥ महावाक्यके विचारकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकतामैं वाक्यवृत्तिगत आचार्यवाक्यका प्रमाण ॥

१२ ननु महावाक्यके विचारकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता । स्वकपोलकरि कल्पित है । यह आशंकाकरि वाक्यवृत्तिग्रंथविषै श्रीमत्शंकराचार्योंकरि तैसैं प्रतिपादन कियाहोनेतें महावाक्यके विचारकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता हमारे कपोलकरि कल्पित नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

१३] जातैं वाक्यवृत्तिविषै ब्रह्मकी अपरोक्षताकी सिद्धिअर्थ महावाक्य है । ऐसैं कहाहै । यातैं महावाक्यतैं ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानविषै विवाद नहीं है॥

ॐ१३) इहां यातैं महावाक्यतैं ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानविषै विप्रतिपत्ति कहिये विवाद नहीं है । यह अर्थ है ॥ ७० ॥

१४ वाक्यवृत्तिविषै महावाक्यतैं अपरोक्षज्ञानके उपपादनका जो प्रकार है । ताकूं दिखावैहैं:—

१५] जो अंतःकरणकरि अवच्छिन्न चेतन अस्मत् नाम मैं । ऐसा प्रत्यय जो वृत्ति औ शब्द । ताका आश्रय होनैकरि भासताहै । सो "त्वं" पदका वाच्य है॥

सो एक एक बी प्रत्यक्षज्ञान बाह्यआंतरभेदतैं दोभांतिका है ॥ श्रोत्रजप्रमा त्वाचप्रमा चाक्षुषप्रमा रासनप्रमा औ घ्राणजप्रमाके भेदतैं बाह्यप्रत्यक्षज्ञान पंचप्रकारका है औ आंतरप्रत्यक्षज्ञान आत्मगोचर अरु अनात्म (सुखदुःखादि) गोचरभेदतैं दोभांतिका है ॥ आत्मगोचरप्रत्यक्षज्ञान बी विशिष्टात्म (मैं जीवकर्त्ताभोक्ताआदिकरूप) गोचर औ शुद्धात्मगोचर भेदतैं दोभांतिका है ॥ शुद्धात्मगोचरप्रत्यक्षज्ञान बी "त्वं" पदार्थगोचर "तत्" पदार्थगोचर औ "तत्" पदार्थसैं अभिन्न "त्वं" पदार्थगोचर भेदतैं तीनभांतिका है ॥ इसरीतिसैं प्रत्यक्षज्ञानका संक्षेपतैं लक्षणसहित भेद दिखाया ॥

३८ इहां "स्वकपोलकरि कल्पित है" इस कहनैकरि शास्त्रप्रमाणसैं प्रतिपादित नहीं है औ अपने चित्तविषै बी विचारित नहीं है । यह अर्थ सूचन कियाहै ॥

३९ जैसैं "घट" इस वृत्ति औ "घट" इस शब्दका विषय घट है ॥ तहां "घट" यह वृत्ति अंतःकरणविषै स्थित है औ "घट" यह शब्द वाणीविषै स्थित है औ "घट" विषय पृथ्वीविषै स्थित है । यातैं तीनों भिन्न भिन्न हैं । तैसैं "अहं" इस वृत्ति औ "अहं" इस शब्दका विषय अंतःकरणविशिष्टचेतनरूप जीव है । तहां "अहं" यह वृत्ति अंतःकरणविषै स्थित है औ "अहं" यह शब्द वाणीविषै स्थित है

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६५६	मायोपाधिर्जगद्योनिः सर्वज्ञत्वादिलक्षणः । पारोक्ष्यशबलः सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः ॥७२॥	टीकांकः २४१६ टिप्पणांकः ॐ

१६) योऽन्तःकरणसंभिन्नबोधः अंतःकरणोपाधिकश्चिदात्मा । अस्मत्प्रत्ययशब्दयोः । अहमितिज्ञानस्य अहमितिशब्दस्य च आलंबनतया विषयत्वेन । भाति सः तथाविधो बोधः त्वंपदाभिधः । त्वमितिपदमभिधायकं यस्य सः त्वंपदाभिधः । त्वंपदवाच्य इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

१७ एवं त्वंपदवाच्यार्थमभिधाय तत्पदवाच्यार्थमाह—

१८] मायोपाधिः जगद्योनिः सर्वज्ञत्वादिलक्षणः पारोक्ष्यशबलः ॥

ॐ १८) पारोक्ष्यशबलः परोक्षत्वधर्मविशिष्ट इत्यर्थः ॥

१९ एवं तटस्थलक्षणमभिधाय स्वरूपलक्षणमाह—

२०] सत्याद्यात्मकः तत्पदाभिधः ॥

२१) सत्यमादिर्येषां ज्ञानादीनां ते सत्यादयः आत्मा स्वरूपं यस्य सः तथाविधः । तत्पदाभिधः । तत्पदमभिधा वाचकं यस्य सः तत्पदाभिधः । तत्पदवाच्य इत्यर्थः ॥७२॥

---

१६) जो अंतःकरणरूप उपाधिवाला चिदात्मा "अहं" इस ज्ञानका औ "अहं" इस शब्दका विषय होनैकरि भासताहै । सो तिस प्रकारका बोध "त्वं"पदाभिध है । कहिये "त्वं" यह पद है अभिधायक कहिये वाचक जिसका सो "त्वं"पदाभिध कहियेहै । यह अर्थ है ॥ ७१ ॥

१७ ऐसैं "त्वं"पदके वाच्यार्थकूं कहिके "तत्"पदके वाच्यार्थकूं कहैहैं—

१८] मायाउपाधिवाला जगत्का कारण औ सर्वज्ञतादिकलक्षणवाला औ पारोक्ष्यसबल ईश्वर है ॥

ॐ १८) पारोक्ष्यसबल । कहिये परोक्षतारूप धर्मविशिष्ट । यह अर्थ है ॥

१९ ऐसैं तटस्थलक्षणकूं कहिके स्वरूपलक्षणकूं कहैहैं:—

२०] जो सत्यादिक कहिये सच्चिदानंदस्वरूप है । सो "तत्"पदका वाच्य है ॥

२१) सत्य है आदि जिन ज्ञानादिकनके । सो सत्यादिक कहियेहैं ॥ सो सत्यज्ञानआनंद है स्वरूप जिसका । सो "तत्"पदाभिध है । "तत्" पद है अभिधा कहिये वाचक जिसका । सो "तत्"पदाभिध कहियेहै । यह अर्थ है ॥ ७२ ॥

औ इन दोनूंका विषय अंतःकरणविशिष्टचेतन स्वमहिमामैं स्थित है । यातैं "अहं"वृत्ति औ "अहं"शब्दतैं न्यारा है ॥ यद्यपि अहंवृत्तिकूं अंतःकरणके अंतर्गत होनैतैं जीवतैं भिन्नता संभवै नहीं । तथापि घटत्व औ घटाकाशत्वरूप धर्मकरि घट औ घटाकाशके भेदकी न्याई अंतःकरणत्व औ अंतःकरणविशिष्टचेतनत्वरूप धर्मके भेदकरि अंतःकरण औ जीवका भेदव्यवहार होवैहै ॥ यातैं "अहं"वृत्तिका जीवतैं भेद है । औ "अहं"शब्दका लक्ष्यार्थ । "अहं"-वृत्तिका प्रकाशककूटस्थचैतन्य तौ अहंवृत्तितैं सर्वथा न्याराहीं है ॥ यह अर्थ प्रसंगसैं जनायाहै ॥

टीकांकः २४२२ टिप्पणांकः ॐ	[23] प्रत्यक्परोक्षतैकस्य सद्वितीयत्वपूर्णता । विरुद्ध्येते यतस्तस्माल्लक्षणा संप्रवर्तते ॥ ७३ ॥ [26] तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा । [28] सोऽयमित्यादिवाक्यस्थपदयोरिव नापरा ॥७४ ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६५७ ६५८

२२ एवं पदार्थावभिधाय वाक्यार्थबोधनाय लक्षणावृत्तिराश्रयणीयेत्याह—

२३] प्रत्यक्परोक्षता सद्वितीयत्वपूर्णता एकस्य यतः विरुद्ध्येते। तस्मात् लक्षणा संप्रवर्तते ॥

२४) प्रत्यक्परोक्षत्वे सद्वितीयत्वेन सहिता पूर्णता इति मध्यमपदलोपी समासः। सद्वितीयत्वपूर्णत्वे च एकस्य वस्तुनो यतो विरुद्ध्येते अतो लक्षणावृत्तिः आश्रयणीयेत्यर्थः ॥ ७३ ॥

२५ सा च कीदृशीत्यत आह—

२६] तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा ॥

ॐ २६) भागलक्षणा भागत्यागलक्षणेत्यर्थः ॥

२७ तत्र दृष्टांतः—

२८] सोऽयमित्यादिवाक्यस्थपदयोः इव अपरा न ॥

२९) "सोऽयं देवदत्त" इतिवाक्यस्थयोः सोऽयमिति पदयोर्यथा जहदजहल्लक्षणावृत्तिराश्रिता। नापरा न जहल्लक्षणा नाप्यजहल्लक्षणा। तद्वदत्रापीत्यर्थः ॥ ७४ ॥

---

२२ ऐसैं दोनूं "त्वं" "तत्" पदनके अर्थनकूं कहिके अब पदसमुदायरूप वाक्यके अर्थके बोधनवास्ते लक्षणावृत्ति आश्रय करनी योग्य है। ऐसैं कहैहैं:—

२३] प्रत्यक्पना कहिये आंतरपना औ परोक्षपना तैसैं सद्वितीयपना औ पूर्णपना एकवस्तुकूं जातैं विरोधकूं पावतेहैं। तातैं लक्षणावृत्ति प्रवर्त्त होवैहै॥

२४) प्रत्यक्ता औ अपरोक्षता परिच्छिन्नता औ पूर्णता ये धर्म। एकवस्तुकूं जातैं विरुद्ध होवैहैं। यातैं लक्षणावृत्ति आश्रय करनी योग्य है। यह अर्थ है ॥ ७३ ॥

२५ सो महावाक्यनविषै आश्रय करनैयोग्य लक्षणा किसप्रकारकी है? तहां कहैहैं:—

२६] "तत्त्वमसि" आदिकवाक्यनविषै आश्रय करी जो लक्षणा है। सो भागलक्षणा है ॥

ॐ २६) इहां भागलक्षणा। याका भागत्यागलक्षणा। यह अर्थ है ॥

२७ तिस भागत्यागलक्षणाविषै दृष्टांत कहैहैं:—

२८] "सोऽयं" कहियेसोयह इत्यादिवाक्यविषै स्थित दोनूंपदनकी न्यांई महावाक्यनविषै अन्यलक्षणा नहीं है॥

२९) "सोऽयं देवदत्तः" कहिये सो यह देवदत्त है। इसवाक्यविषै स्थित जो "सो" औ "यह" ये दोनूंपद हैं। तिनविषै जैसैं भागत्यागरूप लक्षणावृत्ति आश्रय करीहै। अन्य नहीं कहिये जहत्लक्षणा वी नहीं औ अजहत्लक्षणा वी नहीं। ताकी न्यांई "तत्त्वमसि" आदिकमहावाक्यनविषै वी "तत्" "त्वं" आदिकपदनमैं भागत्यागलक्षणाहीं आश्रय करीहै। अन्य कहिये जहत्लक्षणा वा अजहत्लक्षणा नहीं। यह अर्थ है ॥ ७४ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६५९ — टीकांकः २४३० टिप्पणांकः ६४०

३१ संसर्गो वा विशिष्टो वा वाक्यार्थो नात्र संमतः। अखंडैकरसत्वेन वाक्यार्थो विदुषां मतः ॥ ७५ ॥

३० ननु गामानयेत्यादिवाक्येषु लक्षणावृत्त्या विनाऽपि वाक्यार्थबोधो दृश्यते। तद्वदत्रापि किं न स्यादित्याशंक्याह (संसर्ग इति)—

३१] अत्र संसर्गः वा विशिष्टः वा वाक्यार्थः संमतः न। अखंडैकरसत्वेन वाक्यार्थः विदुषां मतः॥

३२) लोके गामानयेत्यादौ पदैः स्मारितानां आकांक्षादिमतां गवादिपदार्थानामन्वयो वाक्यार्थत्वेनांगीकृतः। यथा "नीलं महत्सु-

३० ननु "गां आनय" कहिये "गौकूं ले आव" इत्यादिवाक्यनविषै लक्षणावृत्तिसैं विना वी वाक्यार्थका बोध देखियेहै। ताकी न्यांई इहां "तत्त्वमसि"आदिकवाक्यनविषै वी क्या नहीं होवैगा? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३१] इहां महावाक्यनविषै संसर्गरूप वा विशिष्टरूप वाक्यका अर्थ मान्या नहीं है। किंतु अखंडएकरसताकरि वाक्यका अर्थ विद्वानोंनैं मान्याहै ॥

३२) लोकविषै "गौकूं ले आव" इत्यादिवाक्यविषै "गौकूं" औ "ले आव" इन पदनकरि स्मरण करवाये जो आकांक्षाआदिकवाले गौआदिकपदार्थ। तिनका अन्वय जो संबंध। सो वाक्यका अर्थ होनैकरि अंगीकार कियाहै ॥ औ जैसैं "नील औ महत्सुगंधि-

४० शब्दकी शक्तिवृत्ति वा लक्षणावृत्तिका ज्ञान वाक्यार्थके ज्ञानका कारण है ॥ औ (१) आकांक्षाका ज्ञान (२) आदिशब्दकरि योग्यताका ज्ञान (३) तात्पर्यका ज्ञान औ (४) आसत्ति। ये च्यारी सहकारी हैं ॥

(१) अन्वयके ज्ञानपर्यंत अपनै अर्थके ज्ञानवास्ते उच्चारण किये पदकूं अन्यपदकी इच्छा **आकांक्षा** कहियेहै ॥ जैसैं उच्चारण किये "गां (गौकूं)" इस पदकूं "आनय (ले आव)" इस पदकी अपेक्षा (इच्छा) है। सो आकांक्षा है ॥

(२) एकपदके अर्थका अन्यपदके अर्थसैं संबंध **योग्यता** कहियेहै ॥ जैसैं "गां"पदके अर्थका "आनय"पदके अर्थसैं विषयविषयीभावरूप संबंध है ॥ गोपदका अर्थ गौव्यक्ति सो आनयपदके अर्थ ल्यावनैरूप क्रियाका विषय है औ गौव्यक्तिकी आनयन (ल्यावनैरूप) क्रिया विषयी है। यातैं "गां"पदके अर्थका आनयपदके अर्थसैं विषयीतारूप संबंध है औ आनयपदके अर्थका गांपदके अर्थसैं विषयतारूप संबंध है ॥ दोनूंका परस्पर विषयविषयीभावसंबंध है। सो योग्यता है ॥

(३) वक्ताकी इच्छाकूं **तात्पर्य** कहैहैं ॥ जैसैं "गां आनय" इस वाक्यतैं रसोईके समयमैं गोशब्दके अर्थ अग्निके ल्यावनैमैं वक्ताकी इच्छा होवैहै औ युद्धके समयमैं गोशब्दके अर्थ बाणके ल्यावनैमैं वक्ताकी इच्छा होवैहै औ ज्ञानके समयमैं गोशब्दके अर्थ जलके ल्यावनैमैं वक्ताकी इच्छा होवैहै औ दुग्ध दोहनके समयमैं धेनुके ल्यावनैमैं वक्ताकी इच्छा होवैहै ॥ इसरीतिसैं जो वक्ताकी इच्छा। सो तात्पर्य है ॥ जैसैं लौकिकवाक्यके तात्पर्यका ज्ञान प्रसंगादिकतैं होवैहै। तैसैं वैदिकवाक्यके तात्पर्यका ज्ञान ६५३ टिप्पणविषै कहनैके उपक्रमउपसंहारआदिकषट्लिंगनतैं होवैहै ॥ लौकिकवाक्यके अर्थमैं पुरुषकी इच्छाकी न्याई वैदिकवाक्यके अर्थमैं ईश्वरकी इच्छारूप तात्पर्य है ॥

(४) पदनकी समीपता **आसत्ति** कहियेहै ॥ ताहीकूं **सन्निधि** वी कहैहैं ॥ वा योग्यपदके शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूप संबंधतैं अंतरायरहित पदनके अर्थनकी स्मृति **आसत्ति** कहियेहै। जैसैं "गां" औ "आनय" इन पदनकी समीपता होवैहै ॥ वा शक्तिवृत्तिसैं "गौकूं" औ "ले आव" इन पदार्थनकी अंतरायरहित स्मृति होवैहै। सो **आसत्ति** है ॥

इनमैं आकांक्षा। योग्यता। तात्पर्यका ज्ञान औ आसत्तिका ज्ञान वा स्वरूप। वाक्यार्थके बोधमैं कारण हैं। इनसैं विना वाक्यार्थका बोध होवै नहीं ॥ इसरीतिसैं सर्ववाक्यनमैं जानना ॥ यह प्रसंगसैं कह्याहै ॥

गंध्युत्पलम्" इत्यादौ नीलत्वादिविशिष्टस्योत्पलस्य वाक्यार्थत्वं स्वीकृतं । न एवं अत्र महावाक्येषु **संसर्गविशिष्टयोः** । अन्यतरस्य वाक्यार्थत्वमभ्युपगम्यते । किंतु अखंडैकरसत्वेन स्वगतादिभेदशून्यवस्तुमात्ररूपेण **वाक्यार्थः** विद्वद्भिरभ्युपेयते । अतो लक्षणा आश्रयणीयेत्यर्थः ॥ ७५ ॥

वाला उत्पल कहिये कमल है" इत्यादिवाक्यविषै नीलपनैआदिककरि विशिष्ट उत्पलका वाक्यार्थपना स्वीकार कियाहै । ऐसैं इहां महावाक्यनविषै संसर्गरूप नाम संबंधरूप वाक्यार्थ औ विशिष्टरूप कहिये विशेषणयुक्तरूप वाक्यार्थविषै अन्यतर कहिये इन दोनूंविषै एकका वाक्यार्थपना अंगीकार नहीं करियेहै । किंतु अखंडएकरस होनैकरि स्वगतआदिकतीनभेदकरि रहित वस्तुमात्ररूपकरि वाक्यका अर्थ विद्वत्जनोंकरि अंगीकार करियेहै ॥ यातैं लक्षणा आश्रय करनी योग्य है । यह अर्थ है ॥ ७५ ॥

४१ जैसैं "गामानय त्वं" यह वाक्य है । तामैं "गां (गौकूं)" "आनय (ले आव)" "त्वं (तूं)" ये तीनपद हैं ॥ तिनके अर्थनका परस्परसंबंध है ॥ सो पदार्थनका संबंध वा संबंधसहितपदार्थ **वाक्यार्थ** है ॥ यातैं "तूं गौकूं ले आव" यह सारेवाक्यका अर्थ है । सो **संसर्गरूप वाक्यार्थ** कहियेहै ॥ ऐसैं लौकिकवैदिकरूप बहुतवाक्यनविषै वाक्यका अर्थ होवैहै । तैसैं महावाक्यका अर्थ संभवै नहीं । काहेतैं

(१) "त्वं"पदार्थका संबंधी "तत्"पदार्थ है । वा "तत्" पदार्थका संबंधी "त्वं"पदार्थ है । ऐसैं अंगीकार किये "यह पुरुष असंग है" इत्यादिकश्रुतिवाक्योंनैं वेदांतप्रतिपाद्यब्रह्मकी असंगता कहीहै । ताका बाध होवैगा । यातैं महावाक्यका **संसर्ग (संबंध)रूप वाक्यार्थ बनै नहीं** ॥ औ

(२) जैसैं "नीलं महत्सुगंध्युत्पलं" यह वाक्य है । तामैं नील महत्सुगंधि औ उत्पल ये तीनपद हैं ॥ तिनमैं नील औ महत्सुगंधि ये दोपद विशेषणरूप गुणनके वाचक हैं औ उत्पलपद कमलद्रव्यका वाचक है । यातैं "नीलरंगविशिष्ट औ महत्सुगंधिवान् कमलद्रव्य है" यह सारेवाक्यका अर्थ है। सो **विशिष्टरूप वाक्यार्थ** कहियेहै ॥ ऐसैं अनेकवाक्यनविषै होवैहै ॥ तैसैं बी महावाक्यका अर्थ संभवै नहीं । काहेतैं "त्वं"पदार्थविशिष्ट ("त्वं"पदार्थरूप विशेषणवाला) "तत्" पदार्थ है । वा "तत्"पदार्थविशिष्ट "त्वं"पदार्थ है ऐसैं महावाक्यका अर्थ अंगीकार किये एकहीकूं सर्वज्ञतादि औ अल्पज्ञतादिधर्मयुक्तताकरि प्रत्यक्षादिप्रमाणसैं विरुद्ध होवैगा औ "चेतनरूप केवलनिर्गुण है । एकही अद्वितीय है" "जो अल्प बी (विशेषणविशेष्यभावरूप वा उपास्यउपासकभावरूप आदिक) अंतर (भेद)कूं करताहै पीछे तिसकूं भय (जन्मादिअनर्थ) होवैहै" इत्यादिकश्रुतिवाक्योंनैं ब्रह्मकी केवलता नाम सर्वधर्मरहितता । निर्गुणता । सजातीयादिभेदरहितता औ अन्यभावकृतभेदगंधरहितता प्रतिपादन करीहै । ताका बाध होवैगा ॥ यातैं महावाक्यका **विशिष्टरूप वाक्यार्थ** बी **बनै नहीं** । किंतु लक्षणासैं अखंडएकरसतारूप महावाक्यका अर्थ विद्वानोंनै अंगिकार कियाहै ॥ यहां

यह प्रश्न है:—वाच्यअर्थका लक्ष्यअर्थरूप चेतनसैं संबंध अंगीकार करैं तौ लक्ष्यअर्थमैं असंगपनैकी हानि होवैगी औ संबंध नहीं अंगीकार करैं । तौ लक्षणा बनै नहीं । काहेतैं शक्यसंबंध वा बोध्यसंबंधका नाम **लक्षणा** है । सो असंगमैं संभवै नहीं ॥ याका

यह उत्तर है:—"तत्"पद औ "त्वं"पदके वाच्यअर्थविषै चेतन अरु जड दोभाग हैं ॥ तिनमैं चेतनभागका लक्ष्यअर्थविषै तादात्म्य (अभेद)संबंध है औ जडभागका लक्ष्यसैं अधिष्ठानतासंबंध है ॥ कल्पितके संबंधसैं वा अपनै तादात्म्यसंबंधसैं लक्ष्यअर्थ चेतनके असंगपनैरूप स्वभावकी हानि होवै नहीं ॥

प्रश्नः—"तत्"पद औ "त्वं"पद दोनूंकी अखंडचेतनमैं लक्षणा अंगीकार करैं तौ "घट घट है" इस वाक्यकी न्याई पुनरुक्तिदोषकरि महावाक्य अप्रमाण होवैगा औ दोनूंपदनका लक्ष्यअर्थ भिन्न अंगीकार करैं तौ महावाक्यकूं अभेदअर्थकी बोधकता संभवै नहीं ॥

उत्तरः—मायाविशिष्टचेतन औ अंतःकरणविशिष्टचेतन "तत्"पद औ "त्वं"पदका वाच्यअर्थ है औ मायाउपहितचेतन अरु अंतःकरणउपहितचेतन । दोनूंका लक्ष्यअर्थ है ॥ जो ब्रह्मचेतन लक्ष्य मानैं तौ पुनरुक्तिदोष होवै । सो ब्रह्मचेतन लक्ष्य नहीं । किंतु माया औ अंतःकरणउपहितचेतन लक्ष्य है ॥ ताका उपाधिके भेदतैं भेद है । पुनरुक्तिदोष नहीं ॥ औ माया अरु अंतःकरणउपहित दोनूं चेतनका वास्तवसैं अभेद है। यातैं "तत्"पदार्थ औ "त्वं" पदार्थका ५२२ टिप्पणभागउक्त परस्परउद्देश विधेयभाव मानिके महावाक्यकूं अभेदअर्थकी बोधकता संभवैहै ॥ अथवा दोनूंपदनकूं भिन्नलक्षकपना मानैं तौ पुनरुक्तिकी शंका होवै । सो भिन्न भिन्न लक्षकपना नहीं । किंतु दोनूंपद मिलिके अखंडब्रह्मके लक्षक हैं । यातैं पुनरुक्तिदोष नहीं है ॥

इसरीतिसैं अखंडएकरसतारूप महावाक्यका अर्थ संभवैहै॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	[३४]प्रत्यग्बोधो य आभाति सोऽद्वयानंदलक्षणः ।	
	अद्वयानंदरूपश्च प्रत्यग्बोधैकलक्षणः ॥ ७६ ॥	२४३३
६६०	[३७]इत्थमन्योऽन्यतादात्म्यप्रतिपत्तिर्यदा भवेत् ।	
६६१	अब्रह्मत्वं त्वमर्थस्य व्यावर्त्येत तदैव हि ॥७७॥	टिप्पणांकः
	[३८]तदर्थस्य च पारोक्ष्यं [४०]यद्येवं किं ततः [४१]शृणु ।	ॐ
६६२	पूर्णानंदैकरूपेण प्रत्यग्बोधोऽवतिष्ठते ॥ ७८ ॥	

३३ अखंडैकरसं वाक्यार्थं दर्शयति (प्रत्यग्बोध इति)—

३४] यः प्रत्यग्बोधः आभाति सः अद्वयानंदलक्षणः च अद्वयानंदरूपः प्रत्यग्बोधैकलक्षणः ॥

३५) यः प्रत्यग्बोधः सर्वांतरश्चिदात्मा आभाति बुद्ध्यादिसाक्षित्वेन स्फुरति । सोऽद्वयानंदलक्षणः अद्वितीय आनंदरूपः परमात्मेत्यर्थः ॥ अद्वयानंदरूपश्च तथाविधः परमात्मा प्रत्यग्बोधैकलक्षणः चिदेकरसः प्रत्यगात्मैवेत्यर्थः ॥ ७६ ॥

३६ एवमखंडार्थबोधेन किं स्यादित्यत आह—

३७] इत्थं अन्योन्यतादात्म्यप्रतिपत्तिः यदा भवेत् । तदा एव त्वमर्थस्य अब्रह्मत्वं व्यावर्त्येत हि ॥ ७७ ॥

३८] (तदर्थस्येति)— च तदर्थस्य पारोक्ष्यम् ॥

३९) त्वमर्थस्य प्रत्यगात्मनोऽब्रह्मत्वं भ्रांतिसिद्धा ब्रह्मरूपता । तदर्थस्य ब्रह्मणः । च पारोक्ष्यं परोक्षज्ञानैकविषयत्वं च निवर्तते ॥

४० ततोऽपि किमिति पृच्छति—

३३ अखंडएकरसवाक्यके अर्थकूं दिखावैहैं:—

३४] जो प्रत्यग्बोधरूप भासताहै । सो अद्वयआनंदरूप है औ जो अद्वयआनंदरूप है। सो प्रत्यग्बोधएकरूप है॥

३५) जो प्रत्यक्बोध कहिये सर्वके अंतर चिदात्मा बुद्धिआदिकके साक्षीपनैकरि स्फुरताहै। सो अद्वितीयआनंदरूप परमात्मा है। यह अर्थ है ॥ अद्वयआनंदरूप तिसप्रकारका परमात्मा प्रत्यग्बोधएकरूपहीं है । यह अर्थ है ७६

॥ ९ ॥ अखंडअर्थके अपरोक्षज्ञानका फल ॥

३६ ऐसैं अखंडअर्थके बोधकरि क्या फल होवैहै ? तहां कहैहैं:—

३७] ऐसैं परस्पर ब्रह्मआत्माके अभेदका निश्चय जब होवै । तबहीं "त्वं"-पदके अर्थ प्रत्यगात्माका अब्रह्मपना निवृत्त होवैहै ॥ ७७ ॥

३८] औ "तत्"पदके अर्थका परोक्षपना निवृत्त होवैहै ॥

३९) "त्वं"पदके अर्थ प्रत्यगात्माकी भ्रांतिकरि सिद्ध अब्रह्मरूपता औ "तत्"पदके अर्थ ब्रह्मकी एकहीं परोक्षज्ञानकी विषयता निवृत्त होवैहै ॥

४० तिस "त्वं"पदार्थकी अब्रह्मताकी औ "तत्"पदार्थकी परोक्षताकी निवृत्तितैं बी क्या होवैहै ? ऐसैं वादी पूछताहै:—

टीकांक: २४४१ टिप्पणांक: ॐ	ऐवं सति महावाक्यात्परोक्षज्ञानमीर्यते । यैस्तेषां शास्त्रसिद्धांतविज्ञानं शोभतेतराम् ॥७९॥ आस्तां शास्त्रस्य सिद्धांतो युक्त्या वाक्यात्परोक्षधीः [५१] स्वर्गादिवाक्यवन्नैवं दशमे व्यभिचारतः ॥ ८० ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६६३ ६६४

४१] यदि एवं ततः किम् ॥

४२ उत्तरमाह—

४३] शृणु पूर्णानंदैकरूपेण प्रत्यग्बोधः अवतिष्ठते ॥ ७८ ॥

४४ ननु "समयबलेन सम्यक्परोक्षानुभवसाधनमागम" इत्यागमलक्षणं । अतो वाक्यस्यापरोक्षज्ञानजनकत्वं कथमुच्यत इत्याशंक्य सिद्धांतपरिज्ञानशून्योऽयमिति मनसि निधायोपहसति—

४५] एवं सति यैः महावाक्यात् परोक्षज्ञानं ईर्यते । तेषां शास्त्रसिद्धांतविज्ञानं शोभतेतराम् ॥

४६) एवं वदंतः सिद्धांतरहस्यं ते न जानंति इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

४७ ननु सिद्धांतस्तावत्तिष्ठतु वाक्यस्य परोक्षज्ञानजनकत्वं त्वनुमानसिद्धमिति शंकते (आस्तामिति)—

४८] शास्त्रस्य सिद्धांतः आस्तां । युक्त्या स्वर्गादिवाक्यवत् वाक्यात् परोक्षधीः ॥

४९) विमतं वाक्यं परोक्षज्ञानजनकं भवितुमर्हति वाक्यत्वात् । स्वर्गादिप्रतिपादकवाक्यवत् इत्यनुमानेन परोक्षज्ञानजनकत्वं सिद्धमित्यर्थः ॥

४१] जब ऐसैं भया । तब तिसतैं क्या होवैहै ? ॥

४२ सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं:—

४३] तहां श्रवण कर:—पूर्णआनंदएकरूपकरि प्रत्यगात्मा स्थित होवैहै ७८

॥ १० ॥ महावाक्यसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं शंकावालेका उपहास ॥

४४ ननु "निर्णीतअर्थके बलकरि सम्यक्परोक्षअनुभवका साधन आगम है कहिये शास्त्र है" यह आगमका लक्षण है । यातैं वाक्यकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता तुमकरि कैसैं कहियेहै ? यह आशंकाकरि सिद्धांतके परिज्ञानतैं शून्य यह वादी है । ऐसैं मनविषै राखिके उपहास करैहैं:—

४५] ऐसैं हुये । जिन एकदेशीके मतके अनुसारिनकरि महावाक्यतैं परोक्षज्ञान कहियेहै । तिनकूं शास्त्रके सिद्धांतका विज्ञान अतिशय शोभताहै!

४६) ऐसैं महावाक्यतैं परोक्षज्ञान जे कहतेहैं । वे सिद्धांतके रहस्यकूं नहीं जानैहैं । यह अर्थ है ॥ ७९ ॥

॥ ११ ॥ वाक्यतैं परोक्षज्ञानके जनकताकी शंका औ समाधान ॥

४७ ननु सिद्धांत प्रथम रहो । वाक्यकूं परोक्षज्ञानकी जनकता तौ अनुमानप्रमाणसैं सिद्ध है । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

४८] शास्त्रका सिद्धांत रहो । औ युक्तिकरि स्वर्गादिवाक्यकी न्यांई वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै ॥

४९) विवादका विषय जो वाक्य । सो परोक्षज्ञानका जनक होनैकूं योग्य है । वाक्य होनैतैं । स्वर्गादिकके प्रतिपादक वाक्यकी न्यांई ॥ इस अनुमानकरि महावाक्यकूं परोक्षज्ञानकी जनकता सिद्ध है । यह अर्थ है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
६६५	५४ स्वतोऽपरोक्षजीवस्य ब्रह्मत्वमभिवांछतः । नश्येत्सिद्धापरोक्षत्वमिति युक्तिर्महत्यहो ॥ ८१ ॥	२४५०
६६६	५६ वृद्धिमिष्टवतो मूलमपि नष्टमितीदृशम् । लौकिकं वचनं सार्थं संपन्नं त्वत्प्रसादतः ॥८२॥	टिप्पणांक: ६४२

५० अनैकांतिकोऽयं हेतुरिति परिहरति—

५१] न एवं दशमे व्यभिचारतः ॥

५२) "दशमस्त्वमसि" इति वाक्ये वाक्यत्वे सति अपरोक्षज्ञानजनकत्वस्योपलंभादिति भावः ॥ ८० ॥

५३ किं च त्वंपदार्थस्य जीवस्यापरोक्षाभावप्रसंगादपि न महावाक्यं परोक्षज्ञानजनकमिति अंगीकार्यमित्याह—

५४] "स्वतः अपरोक्षजीवस्य ब्रह्मत्वं अभिवांछतः सिद्धापरोक्षत्वं नश्येत्" इति युक्तिः महती अहो ८१

५५ इष्टापत्तिरित्याशंक्याह—

५६] "वृद्धिं इष्टवतः मूलं अपि

५०इस अनुमानविषै "वाक्य होनैतैं" यह जो हेतु कहा। सो अनैकांतिक कहिये व्यभिचारी है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

५१] ऐसैं नहीं है। काहेतैं दशमपुरुषविषै व्यभिचारतैं ॥

५२) "दशम तूं है" । इस वाक्यविषै वाक्यपनैके होते अपरोक्षज्ञानकी जनकता प्रतीत होवैहै। यातैं हेतुके व्यभिचारीपनैकरि तिस हेतुतैं जन्य अनुमानतैं महावाक्यकूं परोक्षज्ञानकी जनकता सिद्ध होवै नहीं । यह भाव है ॥ ८० ॥

॥ १२ ॥ "त्वं"पदार्थजीवकी अपरोक्षताअभावके प्रसंगतैं महावाक्यकूं परोक्षज्ञानजनकताका अनंगीकार ॥

५३ किंवा "त्वं"पदके अर्थ जीवके अपरोक्षपनैके अभावके प्रसंगतैं बी महावाक्य परोक्षज्ञानका जनक नहीं है । इसप्रकार अंगीकार कियाचाहिये । ऐसैं कहैहैं:—

५४] आपहींतैं अपरोक्ष जो जीव है औ ब्रह्मभावकूं अभिवांछा करता है। तिसका सिद्धअपरोक्षपना नाश होवैगा। यह तेरी युक्ति बडी आश्चर्यरूप है ॥ ८१ ॥

॥ १३ ॥ जीवकी अपरोक्षताहानिकी इष्टापत्तिकी शंकाका उपहाससैं समाधान ॥

५५ जीवकी अपरोक्षताके नाशकरि मुज वादीकूं इष्टापत्ति कहिये वांछितकी सिद्धि होवैहै । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५६] व्यापारादिद्वारा धनकी वृद्धिकूं इच्छनैहारे पुरुषका "मूलधन बी नष्ट

४२ शब्दका यह स्वभाव है:—अंतरायसहित वस्तुका शब्दसैं परोक्षज्ञानहीं होवैहै । किसी प्रकारसैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं ॥ जैसैं स्वर्गादिकका औ धर्मअधर्मका शास्त्ररूप शब्दसैं परोक्षज्ञानहीं होवैहै॥औ अंतरायरहित वस्तुका शब्दसैं परोक्ष औ अपरोक्ष दोनूंज्ञान होवैहैं ॥ इसरीतिसैं वस्तुके बोधकवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै ॥ "तूं है" वा "यह है ।" ऐसैं वस्तुके बोधक वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै॥ जैसैं "दशम है" । वा विस्मरण भया "कंठका भूषण है"। इस आप्तवाक्यसैं अंतरायरहित दशमका औ कंठभूषणका परोक्षज्ञान होवैहै। औ "दशम तूं है"।वा "कंठभूषण यह है"। इस आप्तवाक्यसैं दशमका औ कंठभूषणका अपरोक्षज्ञान होवैहै॥ऐसैं ब्रह्मका बी अवांतरवाक्यसैं परोक्षज्ञान होवैहै औ महावाक्यसैं अपरोक्षज्ञान होवैहै ॥

टीकांक: २४५७ टिप्पणांक: ॐ	अंतःकरणसंभिन्नबोधो जीवोऽपरोक्षताम् । अर्हत्युपाधिसद्भावान्न तु ब्रह्मानुपाधितः ॥ ८३ ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६६७
	६० नैवं ब्रह्मत्वबोधस्य सोपाधिविषयत्वतः । ६३ यावद्विदेहकैवल्यमुपाधेरनिवारणात् ॥ ८४ ॥	६६८

नष्टम्" इति ईदृशं लौकिकं वचनं त्वत्प्रसादतः सार्थं संपन्नम् ॥ ८२ ॥

५७ ननु सोपाधिकत्वाज्जीवस्यापरोक्षत्वं युक्तं । ब्रह्मणस्तु निरुपाधिकत्वात् तन्न युज्यत इति शंकते—

५८] अंतःकरणसंभिन्नबोधः जीवः उपाधिसद्भावात् अपरोक्षतां अर्हति । ब्रह्म तु अनुपाधितः न ॥ ८३ ॥

५९ ब्रह्मणो निरुपाधिकत्वमसिद्धमिति परिहरति—(नैवमिति)—

६०] एवं न ब्रह्मत्वबोधस्य सोपाधिविषयत्वतः ॥

६१) जीवस्य ब्रह्मरूपताज्ञानं यदस्ति। तस्य सोपाधिकवस्तुविषयत्वात् तद्विषयस्य ब्रह्मणोऽपि सोपाधिकत्वं । ज्ञानस्य सोपाधिकविषयत्वं च ज्ञेयस्य सोपाधिकत्वमंतरेण न घटत इति भावः ॥

६२ तदेव कुत इत्यत आह—

६३] यावत् विदेहकैवल्यं उपाधेः अनिवारणात् ॥ ८४ ॥

भया" इस प्रकारका लौकिकविषै वचन है। सो हे वादी! तेरे प्रसादतैं अर्थसहित भया ॥ ८२ ॥

॥ ६ ॥ अपरोक्ष होनैयोग्य सोपाधिक-प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मके महावाक्यजन्य अपरोक्षज्ञानका वृत्तिव्याप्तिसैं वर्णन ॥ २४५७—२५०८ ॥

॥ १ ॥ निरुपाधिक होनैतैं ब्रह्मकी अपरोक्षतामैं शंका ॥

५७ ननु अंतःकरणउपाधिसहित होनैतैं जीवकूं अपरोक्षपना युक्त है औ निरुपाधिकब्रह्मकूं तौ सो अपरोक्षपना नहीं घटैहै। इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

५८] अंतःकरणविशिष्ट चेतनरूप जो जीव । सो उपाधिके सद्भावतैं अपरोक्ष होनैकूं योग्य होवैहै औ ब्रह्म तौ उपाधिके अभावतैं अपरोक्ष होनैकूं योग्य नहीं है ॥ ८३ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मकी निरुपाधिकताकी असिद्धि ॥

५९ ब्रह्मकी निरुपाधिकता असिद्ध है। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

६०] ऐसैं ब्रह्मकी निरुपाधिकता नहीं है । काहेतैं ब्रह्मभावके बोधकूं सोपाधिकविषयवाला होनैतैं ॥

६१) जीवकूं ब्रह्मरूपताका जो ज्ञान है। तिसकूं सोपाधिकवस्तुरूप विषयवाला होनैतैं। तिस ज्ञानके विषय ब्रह्मकूं बी सोपाधिकपना है ॥ ज्ञानका सोपाधिकविषयवालेपना ब्रह्मरूप विषयके सोपाधिकपनैविना बनै नहीं । यह भाव है ॥

६२ सोई ज्ञानका सोपाधिकविषयवान्पना काहेतैं सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैंः—

६३] जहांलगि विदेहमुक्ति होवै तहांलगि उपाधिके अनिवारणतैं ॥८४॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
६६९	अंतःकरणसाहित्यराहित्याभ्यां विशिष्यते । उपाधिर्जीवभावस्य ब्रह्मतायाश्च नान्यथा ॥८५॥	२४६४
६७०	यथा विधिरुपाधिः स्यात्प्रतिषेधस्तथा न किम् । सुवर्णलोहभेदेन शृंखलात्वं न भिद्यते ॥ ८६ ॥	टिप्पणांकः ६४३

६४ ननु तर्हि जीवब्रह्मणो विलक्षणमुपाधिद्वयं वक्तव्यमित्याशंक्याह (अंतःकरणेति ॥)—

६५] जीवभावस्य च ब्रह्मतायाः उपाधिः अंतःकरणसाहित्यराहित्याभ्यां विशिष्यते अन्यथा न ॥

६६) जीवभावब्रह्मभावयोरंतःकरणसाहित्यराहित्ये एवोपाधी इत्यर्थः ॥ ८५ ॥

६७ नन्वंतःकरणसंबंधस्य भावरूपत्वादुपाधित्वमस्तु नाभावरूपस्य तद्राहित्यस्य तदुचितमित्याशंक्य "यावत्कार्यमवस्थायिभेदहेतोरुपाधिता" इत्युक्तोपाधिलक्षणस्य साहित्यराहित्ययोरुभयोः अपि सत्त्वादुचितमेवोपाधित्वमित्यभिप्रायेण परिहरति (यथेति)—

६८] विधिः यथा उपाधिः स्यात् । तथा प्रतिषेधः न किम् ॥

६९) विधिः भावरूपोंऽतःकरणसंबंधो यथा उपाधिः स्यात्तथा प्रतिषेधः अ-

॥३॥ जीव औ ब्रह्मकी विलक्षणउपाधिका कथन ॥

६४ ननु तब जीव औ ब्रह्मकी विलक्षण दोनूंउपाधि कहीचाहिये । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६५] जीवभाव औ ब्रह्मभावकी उपाधि है । सो अंतःकरणसहितता औ रहितताकरि भिन्न होवैहै । अन्यथा नहीं है ॥

६६) जीवभाव औ ब्रह्मभावकी क्रमकरि अंतःकरणसहितपना औ अंतःकरणरहितपनाहीं उपाधि है । यह अर्थ है ॥ ८५ ॥

॥४॥ अंतःकरणकी रहितताके उपाधिपनेकी सिद्धि॥

६७ ननु अंतःकरणके संबंधकूं भावरूप कहिये "अस्ति" प्रतीतिका विषय होनैतैं उपाधिपना होहु । औ अंतःकरणरहितपना जो अभावरूप कहिये "नास्ति"प्रतीतिका विषय है। ताकूं सो उपाधिपना उचित नहीं है । यह आशंकाकरि "जहांलगि कार्य होवै तहांलगि स्थित भेदके हेतुकूं उपाधिपना है ॥ ऐसैं शास्त्रउक्तउपाधिके लक्षणकूं अंतःकरणकरि सहितता औ रहितता दोनूंविषै बी विद्यमान होनैतैं अंतःकरणरहितताकूं उपाधिपना उचित है । इस अभिप्रायकरि परिहार करैहैं:—

६८] जैसैं विधि उपाधि होवैहै । तैसैं निषेध क्या उपाधि नहीं है ?

६९) विधि कहिये भावरूप अंतःकरणका संबंध जैसैं उपाधि होवैहै । तैसैं निषेध कहिये

४३ यह उपाधिका लक्षण अद्वैतसिद्धिविषै मधुसूदनस्वामीनैं लिख्याहै । सो अंतःकरणसाहित्य औ राहित्य दोनूंपक्षविषै घटताहै । काहेतैं जैसैं जीवविषै अपरोक्षतारूप कार्यपर्यंत स्थित औ ब्रह्मसैं जीवके भेदका हेतु अंतःकरण साहित्य (भावरूप) है। तैसैं जीवसैं ब्रह्मके भेदका हेतु अंतःकरण राहित्य (अभावरूप) बी है ॥ यातैं जीवके उपाधि अंतःकरणसाहित्यकी न्यांई अंतःकरणराहित्य बी ब्रह्मका उपाधि है ॥

टीकांक: २४७० टिप्पणांक: ॐ	अतद्व्यावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन च । वेदांतानां प्रवृत्तिः स्याद्विधेत्याचार्यभाषितम् ८७	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६७१

भावरूपोऽतःकरणवियोगः न किं उपाधिर्न स्यात्किंतु स्यादेवेत्यर्थः ॥

७० तथापि भावाभावरूपत्वलक्षणमवांतरवैलक्षण्यं दृश्यत एवेत्याशंक्य तस्याकिंचित्करत्वेन अनादरणीयत्वमित्यभिप्रेत्य दृष्टांतमाह—

७१] **सुवर्णलोहभेदेन शृंखलात्वं न भिद्यते ॥**

७२) पुरुषप्रचारनिरोधकत्वांशेऽनुपयुक्तं सुवर्णत्वलोहत्वादिवैलक्षण्यं यद्वदनादरणीयं तद्वदित्यर्थः ॥ ८६ ॥

७३ विधिरिव निषेधस्यापि ब्रह्मबोधोपायत्वेन ब्रह्मोपाधित्वं द्रढयितुं विधिनिषेधयोरुभयोरपि ब्रह्मबोधोपायत्वमाचार्यैर्निरूपितमिति दर्शयति—

७४] **"अतद्व्यावृत्तिरूपेण च साक्षात् विधिमुखेन द्विधा वेदांतानां प्रवृत्तिः स्यात्"इति आचार्यभाषितम्॥**

७५) तच्छब्देन ब्रह्माभिधीयते । अतच्छब्देन तदतिरिक्तमज्ञानादि । "नेति नेति" इत्यादिव्यावृत्तिर्निरसनं न तत् अतत् तस्य प्रपंचस्य व्यावृत्तिः निरसनं तदेव रूपं

अभावरूप अंतःकरणका वियोग क्या उपाधि नहीं होवैहै ? किंतु होवैहीं है । यह अर्थ है ॥

७० यद्यपि विधि निषेध दोनूं उपाधि हैं तथापि तिनका भावअभावरूप लक्षणवाला बीचका विलक्षणपना देखियेहीं है । यह आशंकाकरि तिस बीचके विलक्षणपनैकूं अकिंचित्कर कहिये उपाधिपनैका अबाधक होनैकरि अनादर करनैकी योग्यता है । इस अभिप्रायकरिके दृष्टांत कहैहैं:—

७१] **सुवर्ण औ लोहके भेदकरि शृंखलापना भेदकूं पावता नहीं ॥**

७२) पुरुषके संचारके निरोधकपनैरूप अंशविषै अनुपयोगी जो सुवर्णपना औ लोहपनाआदिरूप विलक्षणता जैसैं अनादर करनैकूं योग्य है । तैसैं विधिनिषेध उपाधिकी भावअभावरूप विलक्षणता बी अनादर करनैकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥ ८६ ॥

॥ ९ ॥ विधिनिषेध दोनूंकूं बोधके उपाय होनैमैं आचार्यवचन ॥

७३ विधिकी न्यांई निषेधकूं बी ब्रह्मबोधका उपाय होनैकरि ब्रह्मका उपाधिपना है । ऐसैं दृढ करनैकूं विधिनिषेध दोनूंकूं बी ब्रह्मबोधका उपायपना आचार्यांनैं निरूपण कियाहै । ऐसैं दिखावैहैं:—

७४] **अतत् जो जगत् । ताकी व्यावृत्ति जो निषेध । तिसरूपकरि औ साक्षात्-विधिमुखकरि । इन दोप्रकारनसैं वेदांतनकी प्रवृत्ति होवैहै । ऐसैं आचार्यांनैं कहाहै ॥**

७५) "तत्"शब्दकरि ब्रह्म कहियेहै औ "अतत्" शब्दकरि ब्रह्मतैं भिन्न अज्ञानआदिकप्रपंच कहियेहै औ"नेति नेति"कहिये ऐसैं नहीं ऐसैं नहीं । इत्यादिक प्रपंचका निषेध व्यावृत्ति है॥ नहीं जो तत् नाम ब्रह्म। सो अतत् नाम प्रपंच है ॥ तिस प्रपंचकी जो

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६७२	[७७]अहमर्थपरित्यागादहं ब्रह्मेति धीः कुतः । [७९]नैवमंशस्य हि त्यागो भागलक्षणयोदितः ॥८८॥	टीकांकः २४७६ टिप्पणांकः ॐ

उपायस्तेन । साक्षाद्विधिमुखेन च विधिविधानं साक्षाद्वाचकशब्दप्रयोगः "सत्यं ज्ञानमनंतम्" इत्येवमादिरूपः तेन च विधिमुखेन तद्वारेणापीत्यर्थः ॥ वेदांतानां उपनिषदां प्रवृत्तिः प्रवर्तनं प्रतिपादितं ब्रह्मणीति शेषः ॥ ८७ ॥

७६ ननु वेदांतानामतद्व्यावृत्त्या ब्रह्मबोधकत्वांगीकारे अहंशब्दार्थस्य कूटस्थस्यापि त्यागप्रसंगात् "अहं ब्रह्मास्मि" इति सामानाधिकरण्येन ज्ञानं न उदेतुमर्हतीति शंकते—

७७] अहमर्थपरित्यागात् "अहं ब्रह्म" इति धीः कुतः ॥

७८ अहंशब्दार्थस्य सर्वस्य अत्यक्तत्वात् नैवमिति परिहरति (नैवमिति)—

७९] एवं न हि भागलक्षणया अंशस्य त्यागः उदितः ॥

८०) हि यस्मात् कारणात् । भागलक्षणया जहदजहल्लक्षणया । अंशस्य अहंशब्दार्थैकदेशस्य जडांशस्य त्यागः ईरितः न कूटस्थस्य । अतो "अहं ब्रह्मास्मि" इति ज्ञानमुपपद्यत इत्यर्थः ॥ ८८ ॥

व्यावृत्ति सोई उपाय है॥ तिस प्रपंचके निषेधरूप उपायकरि औ साक्षात्विधिमुखकरि कहिये विधि जो "सत्यज्ञानअनंत ब्रह्म है" इत्यादिरूप साक्षात्वाचकशब्दका कथनरूप विधान । तिस विधिमुखद्वारकरि बी वेदांतनकी ब्रह्मविषै प्रतिपादन करनैरूप प्रवृत्ति होवैहै ॥ ८७ ॥

॥ ६ ॥ निषेधउपदेशतैं कूटस्थके त्यागतैं बोधके अनुत्पत्तिकी शंका औ समाधान ॥

७६ ननु वेदांतनकूं प्रपंचके निषेधकरि ब्रह्मके बोधकपनैके अंगीकार कियेहुये "अहं" शब्दके अर्थ कूटस्थके बी त्यागके प्रसंगतैं "अहं ब्रह्मास्मि" कहिये मैं ब्रह्म हूं ऐसा "अहं' ब्रह्म" इन दोनूंपदनके एकअर्थविषै तात्पर्यरूप सामानाधिकरण्यकरि ज्ञान उदय होनैकूं योग्य नहीं है । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

७७] "अहं"शब्दके अर्थके परित्यागतैं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान कहांसैं होवैगा ?

७८ सारे "अहं"शब्दके अर्थ कूटस्थविशिष्टजीवकूं नहीं त्याग किया होनैतैं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान उदय होनैकूं योग्य नहीं है । ऐसैं मति कहो । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

७९] ऐसैं सारे "अहं"शब्दार्थका त्याग नहीं है । जातैं भागत्यागलक्षणाकरि अंशका त्याग कहाहै ॥

८०) जिस कारणतैं भागत्यागलक्षणाकरि "अहं"शब्दके अर्थके एकदेशरूप जडांशका त्याग कहाहै कूटस्थका नहीं । यातैं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान बनैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ८८ ॥

टीकांक: २४८१ | टिप्पणांक: ॐ | तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६७३, ६७४

अंतःकरणसंत्यागादवशिष्टे चिदात्मनि ।
अहं ब्रह्मेति वाक्येन ब्रह्मत्वं साक्षिणीक्ष्यते ॥८९॥
स्वप्रकाशोऽपि साक्ष्येव धीवृत्त्या व्याप्यतेऽन्यवत् ।
फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निवारितम् ॥९०॥

८१ अंशत्यागेन बोधनप्रकारमभिनीय दर्शयति—

८२] **अंतःकरणसंत्यागात् अवशिष्टे चिदात्मनि साक्षिणि "अहं ब्रह्म" इति वाक्येन ब्रह्मत्वं ईक्ष्यते ॥ ८९ ॥**

८३ ननु केवलस्य प्रत्यगात्मनः स्वप्रकाशकत्वाद्बुद्धिवृत्तिविषयत्वं न घटत इत्याशंक्याह (स्वप्रकाश इति)—

८४] **साक्षी स्वप्रकाशः अपि अन्यवत् धीवृत्त्या एव व्याप्यते ॥**

८५) अन्यवत् घटादिवदित्यर्थः ॥ "स्वप्रकाशोऽहम्" इति एवं बुद्धिवृत्तिसंभवादिति भावः ॥

८६ तर्हि अपसिद्धांतापात इत्याशंक्य पूर्वाचार्यैरपि वृत्तिव्याप्यत्वस्यांगीकृतत्वात् नायमपसिद्धांतः इति परिहरति—

८७] **फलव्याप्यत्वं एव अस्य शास्त्रकृद्भिः निवारितम् ॥**

८८) फलं वृत्तिप्रतिबिंबितचिदाभासः तत्व्याप्यत्वमेवास्य प्रत्यगात्मनो निराकृतं स्वस्यैव स्फुरणरूपत्वादिति भावः ॥ ९० ॥

॥ ७ ॥ निषेधउपदेशतैं कोईक अंशके त्यागकरि बोधनका प्रकार ॥

८१ जडअंशरूप एकताके विरोधीभागके त्यागकरि बोधनके प्रकारकूं आकारकरि दिखावैहैं:—

८२] "अहं" शब्दके अर्थ अंतःकरणविशिष्टचेतनरूप जीवविषै **अंतःकरणके त्यागतैं अवशेष रहे चिदात्मारूप साक्षीविषै "अहं ब्रह्मास्मि" नाम मैं ब्रह्म हूं । इस वाक्यकरि ब्रह्मपना देखियेहै** कहिये अपरोक्ष करियेहै ॥ ८९ ॥

॥ ८ ॥ स्वप्रकाशसाक्षीकूं बुद्धिवृत्तिकी विषयता औ फलकी अविषयता ॥

८३ ननु केवलप्रत्यगात्माकूं स्वप्रकाश होनैतैं बुद्धिवृत्तिकी विषयता बनैं नहीं। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८४] **साक्षी स्वप्रकाश है तौ बी अन्यघटादिकनकी न्यांई बुद्धिवृत्तिकरिहीं व्याप्य** कहिये विषय **होवैहै** ॥

८५) "मैं स्वप्रकाश हूं" इसप्रकारकी बुद्धिवृत्तिके संभवतैं बुद्धिवृत्तिके विषय होनैंकरि साक्षीकी स्वप्रकाशता भंग होवै नहीं ॥ यह भाव है ॥

८६ तब साक्षीकूं वृत्तिकी विषयता अंगीकार करनैतैं अपसिद्धांतकी कहिये "आत्मा स्वप्रकाश है" इस सिद्धांतके भंगकी प्राप्ति होवैगी । यह आशंकाकरि पूर्वके आचार्योंनैं बी आत्माकूं वृत्तिकी विषयता अंगीकार करीहै । यातैं यह अपसिद्धांत नहीं है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

८७] **इस साक्षीकी फलव्याप्यताहीं शास्त्रकारोंनैं निवारण करीहै ॥**

८८) फल जो वृत्तिविषै प्रतिबिंबरूप भया चिदाभास। तिसकी व्याप्यता नाम विषयताहीं इस प्रत्यगात्माकी निराकरण करीहै ॥ काहेतैं आप प्रत्यगात्माकूंहीं स्फुरण नाम प्रकाशरूप होनैतैं ॥ यह भाव है ॥ ९० ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६७५ ६७६	बुद्धितत्स्थचिदाभासौ द्वावपि व्याप्नुतो घटम् । तत्राज्ञानं धिया नश्येदाभासेन घटः स्फुरेत् ९१ ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता । स्वयंस्फुरणरूपत्वान्नाभास उपयुज्यते ॥ ९२ ॥	टीकांकः २४८९ टिप्पणांकः ॐ

८९ आत्मनि फलव्याप्त्यभावं दर्शयितुमनात्मनो वृत्त्या फलेन च व्याप्यत्वं दर्शयति—

९०] बुद्धितत्स्थचिदाभासौ द्वौ अपि घटं व्याप्नुतः ॥

९१ उभयव्याप्तेः प्रयोजनमाह—

९२] तत्र धिया अज्ञानं नश्येत् । आभासेन घटः स्फुरेत् ॥

९३) तत्र तयोर्बुद्धिचिदाभासयोर्मध्ये । धिया बुद्धिवृत्त्या प्रमाणभूतया अज्ञानं नश्यति। ज्ञानाज्ञानयोर्विरोधादाभासेन चिदाभासेन घटः स्फुरेत् । जडत्वेन स्वतःस्फुरणायोगादिति भावः ॥ ९१ ॥

९४ इदानीमात्मनि ततो वैलक्षण्यं दर्शयति—

९५] ब्रह्मणि अज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिः अपेक्षिता । स्वयं स्फुरणरूपत्वात् आभासः न उपयुज्यते ॥

९६) प्रत्यक्ब्रह्मणोरेकत्वस्याज्ञानेनावृतत्वात् तस्य अज्ञानस्य निवृत्तये वाक्यजन्यया "अहं ब्रह्मास्मि" इत्येवमाकारया धीवृत्त्या

॥ ९ ॥ अनात्माकूं वृत्ति औ फल दोनूंकी विषयता ॥

८९ आत्माविषै फल जो चिदाभास ताकी व्याप्ति जो विषयता ताके अभावके दिखावनैकूं अनात्माकी कहिये घटादिकजडपदार्थनकी वृत्तिकरि औ चिदाभासरूप फलकरि विषयताकूं दिखावैहैंः—

९०] बुद्धि औ तिसविषै स्थित चिदाभास । ये दोनूं बी घटके प्रति व्याप्त कहिये विषय करनैहारे होवैहैं ॥

९१ घटादिकके प्रति बुद्धिवृत्ति औ चिदाभास दोनूंकी व्याप्तिके प्रयोजनकूं कहैहैंः—

९२] तिन दोनूंविषै बुद्धिकरि अज्ञानरूप आवरण नाश होवैहै औ आभासकरि घट स्फुरताहै ॥

९३) तिन बुद्धि औ चिदाभास दोनूंके मध्यमैं प्रमाणरूपकूं प्राप्त भई बुद्धिवृत्तिकरि घटविषै स्थित अज्ञान नाश होवैहै । काहेतैं बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान अरु अज्ञानके विरोधतैं ॥ औ चिदाभासकरि घट स्फुरताहै कहिये "यह घट है" ऐसैं भासताहै काहेतैं घटकूं जड होनैकरि आपहीतैं प्रकाशके असंभवतैं । यह अर्थ है ॥ ९१ ॥

॥१०॥ आत्मामैं तिस अनात्मातैं विलक्षणता॥

९४ अब आत्माविषै तिस अनात्मातैं विलक्षणपना दिखावैहैंः—

९५] ब्रह्मविषै अज्ञानके नाशअर्थ वृत्तिव्याप्ति अपेक्षित है औ आपहीकूं प्रकाशरूप होनैतैं आभास उपयोगकूं पावता नहीं ॥

९६) प्रत्यगात्मा औ ब्रह्मकी एकताकूं अज्ञानकरि आवृत होनैतैं तिस एकताके अज्ञानकी निवृत्तिअर्थ महावाक्यसैं जन्य " मैं ब्रह्म हूं" इस आकारवाली बुद्धिवृत्तिकरि विषयता

टीकांक: २४९७ टिप्पणांक: ॐ	चक्षुर्दीपावपेक्ष्येते घटादिदर्शने यथा । न दीपदर्शने किंतु चक्षुरेकमपेक्ष्यते ॥ ९३ ॥ स्थितोऽप्यसौ चिदाभासो ब्रह्मण्येकीभवेत्परम् । न तु ब्रह्मण्यतिशयं फलं कुर्याद्घटादिवत् ॥९४॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६७७ ६७८

व्याप्तिरपेक्ष्यते । स्वस्यैव स्फुरणरूपत्वात् तत्स्फुरणाय चिदाभासो नापेक्ष्यते । अतो युज्यमानोऽपि चिदाभासो नोपयुज्यते इ-त्यर्थः ॥ ९२ ॥

९७ उक्तमर्थं दृष्टांतप्रदर्शनेन विशदयति (चक्षुरिति)—

९८] यथा घटादिदर्शने चक्षुर्दीपौ अपेक्ष्येते दीपदर्शने न । किंतु एकं च-क्षुः अपेक्ष्यते ॥

९९) अंधकारावृतघटादिदर्शने चक्षुर्दीपौ उभावपि अपेक्ष्येते दीपप्रदर्शने तु तथा न । किंतु एकं चक्षुः एव अपेक्ष्यते यथा । तथा ब्रह्मण्यज्ञाननाशायेति पूर्वेण सं-बंधः ॥ ९३ ॥

२५०० ननु बुद्धितद्वृत्तीनां चिदाभासवैशिष्ट्यस्वाभाव्यात् घटादिष्विव ब्रह्मण्यपि फल-व्याप्तिर्बलात् भवेदित्याशंक्याह (स्थितोऽपीति ॥)—

१] असौ चिदाभासः स्थितः अपि ब्रह्मणि एकीभवेत् । ब्रह्मणि घटादि-वत् परं अतिशयं फलं तु न कुर्यात् ॥

अपेक्षा करियेहै औ आपहीं ब्रह्मात्माकी एकताकूं स्फुरणरूप होनैतैं तिसके स्फुरणअर्थ चिदाभास अपेक्षित नहीं होवैहै । यातैं ब्रह्मा-कारवृत्तिके साथि जुडताहुया बी चिदाभास प्रसक्अभिन्नब्रह्मविषै स्फुरणरूप उपयोगकूं पावता नहीं । यह अर्थ है ॥ ९२ ॥

॥ ११ ॥ श्लोक ९२ उक्त अर्थकी दृष्टांतसैं स्पष्टता ॥

९७ श्लोक ९०–९२ विषै उक्त अर्थकूं दृष्टांतके दिखावनैकरि स्पष्ट करैहैं:—

९८] जैसैं घटादिकके दर्शनविषै चक्षु औ दीप दोनूं अपेक्षित होवैहैं । दीपकके दर्शनविषै नहीं । किंतु एक चक्षुहीं अपेक्षित होवैहै ॥

९९) अंधकारकरि आवृत घटादिकके देखनैविषै चक्षु औ दीपक दोनूं बी अपेक्षित होवैहैं औ दीपकके देखनैविषै तौ तैसैं चक्षु औ दीप दोनूं अपेक्षित नहीं । किंतु दीपकके देखनैविषै एक चक्षुहीं जैसैं अपेक्षित होवैहै । तैसैं घटादिकनविषै आवरणनिवृत्ति औ स्फु-रणरूप प्रयोजनअर्थ वृत्ति औ चिदाभास दोनूं अपेक्षित होवैहैं औ ब्रह्मविषै अज्ञानके नाशअर्थ वृत्तिव्याप्ति अपेक्षित है । ऐसैं पूर्व-श्लोकसैं संबंध है ॥ ९३ ॥

॥ १२ ॥ ब्रह्माकारवृत्तिमैं चिदाभासके स्थित हुए बी ब्रह्मकूं तिसकी अविषयता ॥

२५०० ननु बुद्धि औ बुद्धिकी वृत्तिनकूं चिदाभासविशिष्टपनैके स्वभाववाली होनैतैं घटादिकनविषै जैसैं फलव्याप्ति होवैहै । तैसैं ब्रह्मविषै बी बलतैं फलव्याप्ति होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१] यह चिदाभास वृत्तिविषै स्थित है तौ बी ब्रह्मविषै एककी न्यांई होवैहै औ ब्रह्मविषै घटादिकनकी न्यांई अन्य अतिशयरूप फलकूं नहीं करैहै।

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६७९ ६८०	अप्रमेयमनादिं चेत्यत्र श्रुत्येदमीरितम् । मनसैवेदमाप्तव्यमिति धीव्याप्यता श्रुता ॥९५॥ आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति वाक्यतः । ब्रह्मात्मव्यक्तिमुल्लिख्य यो बोधः सोऽभिधीयते९६	टीकांक: २५०२ टिप्पणांक: ॐ

२) यद्यपि घटाकारवृत्तिवत् ब्रह्मगोचरवृत्तौ अपि चिदाभासः अस्ति । तथापि नासौ ब्रह्मणो भेदेन भासते। किंतु प्रचंडातपमध्यवर्ति-प्रदीपप्रभावत्तेनैकीभूत इव भवति । अतः स्फुरणलक्षणातिशयजनको न ब्रह्मणि इत्यर्थः ॥

३ ननु ब्रह्मणि फलव्याप्तिर्नास्ति वृत्तिव्याप्तिः तु विद्यत इत्युक्तं तत्र किं प्रमाणमित्याशंक्य आगमः प्रमाणमित्याह—

४] "अप्रमेयं च अनादिम्" इति अत्र श्रुत्या इदं ईरितम् । "मनसा एव इदं आप्तव्यम्" इति धीव्याप्यता श्रुता ॥

५) "निर्विकल्पमनंतं च हेतुदृष्टांतवर्जितं । अप्रमेयमनादिं च यज्ज्ञात्वा मुच्यते बुधः" इत्यत्र अस्मिन्मंत्रे श्रुत्या अमृतबिंदूपनिषदा । अप्रमेयशब्देन इदम् फलव्याप्तिराहित्यमुक्तं । "मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन" इति कठवल्ल्यां धीव्याप्यता श्रुता वृत्तिव्याप्यत्वं श्रुतमित्यर्थः ॥ ९५ ॥

६ "आत्मानं चेद्विजानीयात्" इति मंत्रेणापरोक्षज्ञानं शोकनिवृत्त्याख्यं जीवगतमवस्थाद्वयमभिधीयते इत्युक्त "अपरोक्षज्ञानशोकनिवृत्त्याख्ये उभे इमे । अवस्थे जीवगे ब्रूत

---

२) यद्यपि घटादिआकारवृत्तिकी न्यांई ब्रह्माकारवृत्तिविषै बी चिदाभास है तथापि यह चिदाभास ब्रह्मतैं भेदकरि भासता नहीं। किंतु मध्यान्हकालके धूपके मध्यवर्त्ती दीपकके प्रभाकी न्यांई । तिस ब्रह्मसैं एक हुयेकी न्यांई होवैहै । यातैं ब्रह्मविषै स्फुरणरूप अतिशयका जनक नहीं है । यह अर्थ है॥९४॥

॥१३॥ ब्रह्मकूं वृत्तिके विषय होनैमैं श्रुतिप्रमाण ॥

३ ननु ब्रह्मविषै फलव्याप्ति नहीं है वृत्तिव्याप्ति तौ है । ऐसैं जो ९०-९४ श्लोकविषै कहा तिसविषै कौंन प्रमाण है ? यह आशंकाकरि वेद प्रमाण है । ऐसैं कहैहैं:—

४] "अप्रमेय औ अनादिकूं" इस मंत्रविषै श्रुतिनैं यह फलव्याप्तिसैं रहितपना कहाहै औ "मनकरिहीं यह प्राप्त होनैकूं योग्य है" इस श्रुतिविषै वृत्तिव्याप्ति सुनीहै ॥

५) "जिस निर्विकल्प औ अनंत औ हेतुदृष्टांतसैं वर्जित औ अप्रमेय नाम विषयाकारसाभासवृत्तिरूप प्रमाज्ञानका अविषय औ अनादि नाम उत्पत्तिरहितकूं जानिके । बुद्धिमान् पुरुष मुक्त होवैहै" इस मंत्रविषै अमृतबिंदुउपनिषदूनैं "अप्रमेय" शब्दकरि यह फलव्याप्तिसैं रहितपना कहाहै औ "मनकरिहीं यह ब्रह्म प्राप्त होनैकूं योग्य है । इस अनानारूप ब्रह्मविषै नाना कछु बी नहीं है" इस कठवल्लीउपनिषद्विषै ब्रह्मकूं वृत्तिकी विषयता सुनीहै । यह अर्थ है ॥ ९५ ॥

॥ १४ ॥ उक्तश्रुतिके अपरोक्षज्ञानके कहनैवाले भागका कथन ॥

६ "अपरोक्षज्ञान औ शोकनिवृत्ति इस नामवाली इन दोनूं अवस्थाकूं 'आत्माकूं जब जानैं' यह श्रुति जीवगत कहतीहै" इस पूर्वउक्त ४८ वैं श्लोककरि "आत्माकूं जब जानैं"

टीकांक: २५०७ टिप्पणांक: ६४४	अस्तु बोधोऽपरोक्षोऽत्र महावाक्यात्तथाऽप्यसौ । न दृढः श्रवणादीनामाचार्यैः पुनरीरणात्॥ ९७॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६८१

आत्मानं चेदिति श्रुतिः" । इत्यनेन श्लोकेन । तत्र कियतांशेनापरोक्षज्ञानमुच्यत इत्याकांक्षायामाह (आत्मानमिति)—

७] ब्रह्मात्मव्यक्तिं उल्लिख्य यः बोधः सः "अयं अस्मि" इति आत्मानं विजानीयात् चेत् वाक्यतः अभिधीयते ॥

८) ब्रह्मात्मव्यक्तिं सत्यादिलक्षणब्रह्माभिन्नप्रत्यगात्मस्वरूपं उल्लिख्य विषयीकृत्य । यो बोधः जायते "ब्रह्माहमस्मि" इति सोऽभिधीयते अनेन वाक्येनेत्यर्थः ॥९६॥

९ ननु तर्हि पूर्वोक्तरीत्या सकृद्वाक्यविचारादेवापरोक्षज्ञानसिद्धेः "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" इत्यादौ विहितं श्रवणाद्यावर्तनमननुष्ठेयं स्यादित्याशंक्य ज्ञानदार्ढ्याय तदावर्तनानुष्ठानस्याचार्यैरभिहितत्वात् अनुष्ठेयमेवेत्याह (अस्तु बोध इति)—

इस मंत्रसैं अपरोक्षज्ञान औ शोकनिवृत्ति । इस नामवाली जीवगत दोनूं अवस्था कहियेहैं। ऐसैं कहा । तिस श्रुतिमंत्रविषै कितनैं अंशकरि अपरोक्षज्ञान कहियेहै? इस आकांक्षाविषै कहैहैं:—

७] ब्रह्मआत्माकि व्यक्तिकूं विषयकरिके जो बोध होवैहै । सो "यह मैं हूं ऐसैं आत्माकूं जब जानै" इस वाक्यतैं कहियेहै ॥

८) ब्रह्मआत्माकी व्यक्तिकूं कहिये सत्यादिलक्षणवाले ब्रह्मसैं अभिन्नप्रत्यगात्माके स्वरूपकूं विषयकरिके जो "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा बोध होवैहै। सो इस श्रुतिवाक्यकरि कहियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ९६ ॥

॥ ७ ॥ बोधकी दृढताअर्थ श्रवणादिरूप अभ्यासका वर्णन ॥ २५०९—२६५६ ॥

॥१॥ वाक्यकरि अपरोक्षज्ञानसिद्धितैं श्रवणादिकके व्यर्थताकी शंका औ समाधान ॥

९ ननु तब पूर्व ५८—८२ श्लोकविषै उक्त रीतिकरि । एकवार महावाक्यके विचारतैंहीं अपरोक्षज्ञानकी सिद्धितैं "वारंवार आवृत्ति करीचाहिये। श्रुतिके उपदेशतैं" ऐसैं व्याससूत्रआदिकविषै विधान किया जो श्रवणादिकका आवर्त्तन सो अनुष्ठान करनैकूं अयोग्य होवैगा॥यह आशंकाकरि एकवार महावाक्यके विचारतैं उत्पन्न भया जो अपरोक्षज्ञान । तिसकी दृढताअर्थ तिन श्रवणादिकनके आवर्त्तनके अनुष्ठानकूं आचार्योंकरि कथन किया होनैतैं । ज्ञान भये पीछे श्रवणादिकका आवर्त्तन अनुष्ठान करनैकूं योग्यहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

४४ यह ब्रह्ममीमांसाके चतुर्थअध्यायगतप्रथमपादका प्रथमसूत्र है॥ इहां आदिशब्दकरि "अरे मैत्रेयी! आत्मा देखनै योग्य है । श्रवण करनै योग्य है । मनन करनै योग्य है । निदिध्यासन करनै योग्य है।" इस श्रुतिआदिकनका ग्रहण है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
६८२	ॐ अहं ब्रह्मेति वाक्यार्थबोधो यावद्दृढीभवेत् । शमादिसहितस्तावदभ्यसेच्छ्रवणादिकम् ॥ ९८ ॥	२५१०
६८३	ॐ बाढं संति ह्यदार्ढ्यस्य हेतवः श्रुत्यनेकता । असंभाव्यत्वमर्थस्य विपरीता च भावना ॥९९॥	टिप्पणांकः ॐ

१०] अत्र महावाक्यात् अपरोक्षः बोधः अस्तु । तथापि न असौ दृढः । आचार्यैः पुनः श्रवणादीनां ईरणात्॥

११) अत्र ब्रह्मात्मविषये महावाक्यात् । सकृच्छ्रुताद्विचारसहितात् । अपरोक्षो बोधोऽस्तु भवत्वेवं तथापि नासौ दृढः। अतः श्रवणाद्यावर्तनीयं श्रीमच्छंकराचार्यैः पुनः वाक्यार्थज्ञानोत्पत्त्यनंतरमपि श्रवणाद्यावर्तनाभिधानादित्यर्थः ॥ ज्ञानदार्ढ्यायेत्येतदर्थात् लभ्यते ॥ ९७ ॥

१२ आचार्यैः केन वाक्येनाभिहितमित्याशंक्य तद्वाक्यं पठति—

१३] "अहं ब्रह्म" इति वाक्यार्थबोधः यावत् दृढीभवेत् । तावत् शमादिसहितः श्रवणादिकं अभ्यसेत् ९८

१४ ननु वाक्यप्रमाणजनितज्ञानस्यादार्ढ्यं कुत इत्याशंक्याह (बाढमिति)—

१५] हि श्रुत्यनेकता च अर्थस्य असंभाव्यत्वं विपरीता भावना अदार्ढ्यस्य हेतवः बाढं संति ॥

१०] इस ब्रह्मआत्माविषै महावाक्यतैं अपरोक्षबोध होहु । तथापि यह बोध दृढ नहीं है । काहेतैं आचार्योंकरि फेर श्रवणादिकनके कथनतैं ॥

११) इस ब्रह्मात्माविषै एकवार श्रवण किये महावाक्यतैं ऐसैं अपरोक्षबोध होहु । तथापि यह अपरोक्षबोध दृढ नहीं है । यातैं श्रवणादिक आवृत्ति करनैकूं योग्य हैं । काहेतैं श्रीमत्शंकराचार्योंकरि फेर वाक्यार्थज्ञानकी उत्पत्तिके अनंतर बी ज्ञानकी दृढताअर्थ श्रवणादिकके आवर्त्तनके कथनतैं ॥ यह अर्थ है ॥ ९७ ॥

॥ २ ॥ अपरोक्षज्ञानके भये श्रवणादिककर्त्तव्यतामैं आचार्यवाक्य ॥

१२ आचार्योंनैं किस वाक्यकरि श्रवणादिकका आवर्त्तन कहाहै? यह आशंकाकरि तिनके वाक्यकूं पठन करैहैंः—

१३] "मैं ब्रह्म हूं" इस वाक्यके अर्थका बोध जहांलगि दृढ होवै तहांलगि शमादिसाधनकरि सहित हुया मुमुक्षु श्रवणादिककूं अभ्यास करै" ९८

॥ ३ ॥ वाक्यप्रमाणसैं जन्य ज्ञानकी अदृढताके हेतु ॥

१४ ननु महावाक्यरूप प्रमाणसैं जनित ज्ञानकी अदृढता किस कारणतैं है ? यह आशंकाकरि कहैहैंः—

१५] जातैं श्रुतिनकी अनेकता औ अर्थका असंभावितपना औ विपरीतभावना । ये तीन अदृढताके हेतु सर्वथा हैं ॥

टीकांक: २५१६ टिप्पणांक: ६४५	शाखाभेदात्कामभेदाच्छ्रुतं कर्मान्यथान्यथा । एवमत्रापि माऽऽशंकीत्यतः श्रवणमाचरेत्॥१००॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६८४

१६) हि यस्मात् कारणात् श्रुत्यनेकता श्रुतीनां नानात्वमेको हेतुः । अर्थस्य अपि अखंडैकरसस्याद्वितीयब्रह्मरूपस्यालौकिकत्वेनासंभावितत्वमपरः । विपरीतभावना च पुनः कर्तृत्वाभिमानरूपस्तृतीयः । इत्येवंविधा अदार्ढ्यस्य हेतवो बाढं संति सर्वथा विद्यंते । अतोऽपरोक्षानुभवदार्ढ्याय श्रवणादिकमावर्तनीयमिति भावः ॥ ९९ ॥

१७ एवं त्रिविधान् अदार्ढ्यहेतूनुपन्यस्य श्रुतिनानात्वप्रयुक्तादार्ढ्यनिवृत्तये श्रवणावृत्तिः कार्या इत्याह—

१८] शाखाभेदात् कामभेदात् अन्यथा अन्यथा कर्म श्रुतं । एवं अत्र

१६) जिसकारणतैं श्रुतिनका नानापना यह एकहेतु औ अखंडएकरसअद्वितीयब्रह्मरूप महावाक्यके अर्थका बी अलौकिकपनैकरि असंभावितपना दूसरा हेतु है औ कर्तापनेआदिकका अभिमानरूप विपरीतभावना तीसरा हेतु है ॥ इसरीतिके तीन अदृढताके हेतु सर्वथा विद्यमान हैं ॥ यातैं अपरोक्षअनुभवकी दृढताअर्थ श्रवणादिक आवृत्ति करनैकूं योग्य हैं ॥ यह भाव है ॥ ९९ ॥

॥ ४ ॥ श्रुतिनानापनैकरि जन्य अदृढतानिवृत्तिअर्थ श्रवणकर्तव्यता ॥

१७ ऐसैं तीनप्रकारके बोधकी अदृढताके हेतुनकूं आरंभकरिके । श्रुतिनके नानापनैकरि कृत अदृढताकी निवृत्तिअर्थ श्रवणकी आवृत्ति करनैकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं:—

१८] शाखाके भेदतैं औ इच्छाके भेदतैं औरऔरप्रकारसैं कर्म सुन्या है।

४५ प्रमाणगतसंशयका जनक ॥

४६ प्रमेयगतसंशयकी विषयता ॥

४७ ऋग्वेदकी एकविंशति(२१)शाखा हैं।यजुर्वेदकी एकसो नव(१०९) शाखा हैं। सामवेदकी सहस्र (१०००) शाखा हैं औ अथर्वणवेदकी पंचाशत् (५०) शाखा हैं ॥ जैसैं वृक्षका अधिपति अपनै पुत्रनकूं वृक्षकी शाखाका विभाग करी देवै। तैसैं मंदबुद्धिवाले पुरुषनकूं देखिके व्यासभगवान्नैं एकवेदकूं ऋग् यजु साम औ अथर्व भेदसैं च्यारीप्रकारका करी । तिनकी शाखा कल्पिके तिन शाखाके अभिमानी ब्राह्मणनके कर्मका भेद बी निर्णय कियाहै ॥ तातैं " यह ऋग्वेदी अमुकशाखावाले ब्राह्मण हैं " इत्यादिकव्यवहार होवैहै ॥ तिन एकएक शाखाकी एकएकउपनिषद् है । यह मुक्तिकउपनिषद्विषै लिख्याहै ॥ बहुतकरि शाखा औ उपनिषदनके समान नाम हैं ॥ सर्वमिलिके ग्यारासो अस्सी(११८०) शाखा औ उपनिषद् हैं॥ तिनमैं

(१) आठसैं चालीस(८४०) उपनिषद् कर्मकी बोधक हैं। सो **कर्मकांड** कहियेहै ॥ औ

(२) दोसैं बत्तीस(२३२)उपनिषद् ध्येयब्रह्मकी बोधक हैं। सो **उपासनाकांड** कहियेहै ॥ कोई ग्रंथकार कायिक वाचिक औ मानसभेदतैं त्रिविधकर्म कहैहै ॥ उपासना बी मानस क्रिया होनैतैं कर्मही है । तातैं पृथक् नहीं। यातैं कर्मउपासनाकी प्रतिपादक उपनिषद् मिलिके एक कर्मकांड कहैहै ॥ औ

(३) एकसैं आठ(१०८)उपनिषद् ज्ञेयब्रह्मकी प्रतिपादक हैं । सो वेदका अंतभाग वा वेदके सारभूतअर्थका निर्णायक होनैतैं **वेदांत** औ **ज्ञानकांड** कहियेहै ॥ सो वेदांतभाग अल्प होनैतैं चिंतामणिआदिककी न्याई सर्ववेदका सारभूत है ॥ तिन १०८ विषै । ईशा । केन । कठ । प्रश्न । मुंडक । मांडूक्य । तैत्तिरीय । ऐतरेय । छांदोग्य औ बृहदारण्यक । ये **दशउपनिषद् मुख्य** हैं ॥ तिनमैं ऐतरेय ऋग्वेदकी है औ ईशावास्य अरु बृहदारण्यक । ये दो शुक्लयजुर्वेदकी हैं औ कठवल्ली औ तैत्तिरीय । ये दो कृष्णयजुर्वेदकी है ॥ औ केन अरु छांदोग्य । ये दो सामवेदकी हैं औ मुंडक अरु मांडूक्य । ये दो अथर्वणवेदकी हैं ॥

जितनी शाखा हैं तितनी उपनिषद् हैं । यह निर्णय मुक्तिकोपनिषद्के अनुसारी महावाक्यरत्नावलीमैं बी लिख्याहै ॥ इसप्रकार **शाखाका भेद** है । तातैं कर्मका बी भेद हैं ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६८५ | टीकांकः २५११ | टिप्पणांकः ६४८

२१
वेदांतानामशेषाणामादिमध्यावसानतः ।
ब्रह्मात्मन्येव तात्पर्यमिति धीः श्रवणं भवेत् १०१

अपि मा आशंकी । इति अतः श्रवणं आचरेत् ॥

१९) यथा शाखाभेदात् कर्मभेदः श्रूयते "यद्दचैव होत्रं क्रियते यजुषाऽध्वर्यवं साम्नोद्गीथम्" इति यथा वा कामभेदात् "कारीर्या वृष्टिकामो यजेत" "शतकृष्णलमायुष्कामः" इत्यादि कर्मभेदः श्रुत एवं उपनिषत्सु अपि प्रतिपाद्यतत्वस्य भेदशंकायां तन्निवारणाय श्रवणं पुनः पुनः कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १०० ॥

२० किं तच्छ्रवणमित्याकांक्षायां तल्लक्षणमाह (वेदांतानामिति)—

२१] अशेषाणां वेदांतानां आदिमध्यावसानतः ब्रह्मात्मनि एव तात्पर्यं इति धीः श्रवणं भवेत् ॥

२२) सर्वासामप्युपनिषदामुपक्रमोपसंहारादिपर्यालोचनायां ब्रह्मरूपे प्रत्यगात्मन्येव तात्पर्यमिदं पारंपर्येण पर्यवसानमित्येवंरूपो निश्चयः श्रवणमित्यर्थः ॥ १०१ ॥

ऐसैं इहां बी आशंका मति होवै । यातैं श्रवणकूं करै ॥

१९) जैसैं "जो होत्र सो ऋग्वेदकरि करियेहै औ अध्वर्यव यजुर्वेदकरि करियेहै औ उद्गीथ सामवेदकरि करियेहै" ऐसैं शाखाके भेदतैं कर्मका भेद सुनियेहै ॥ अथवा जैसैं "वृष्टिकी कामनावाला राजा कारीरीयागकरि यजै" औ "आयुकी कामनावाला शतकृष्णलकूं करै" इत्यादिककामके भेदतैं कर्मका भेद सुन्याहै । ऐसैं उपनिषदनविषै बी प्रतिपादन करनैके योग्य तत्त्व जो ब्रह्मआत्मा ताके भेदकी शंकाके हुये । तिस शंकाके निवारणअर्थ वारंवार श्रवण कर्त्तव्य है ॥ यह अर्थ है ॥ १०० ॥

॥ ९ ॥ श्रवणका लक्षण ॥

२० कौंन सो श्रवण है? इस आकांक्षाके हुये तिस श्रवणके लक्षणकूं कहैहैं:—

२१] "सर्ववेदांतनका आदि मध्य औ अंततैं ब्रह्मात्माविषैहीं तात्पर्य है ।" ऐसी बुद्धि श्रवण होवैहै ॥

२२) सर्वउपनिषदनका बी उपक्रम अरु उपसंहारआदिकषट्प्रकारके तात्पर्यके निश्चायक लिंगके विचार कियेहुये । ब्रह्मरूप प्रत्यगात्माविषैहीं तात्पर्य कहिये यह परंपराकरि पर्यवसान है । इसरीतिका निश्चय श्रवण है ॥ यह अर्थ है ॥ १०१ ॥

---

४८ ऋग्वेदवेत्ता ऋत्विक्रूप जो होता । ताका कर्म होत्र है ॥

४९ यजुर्वेदपठित ऋत्विक्रूप जो अध्वर्यु । ताका कर्म अध्वर्यव है ॥

५० सामवेदपठित सामगायक ऋत्विक्रूप जो उद्गाता । ताका कर्म उद्गीथ है ॥

५१ राजा प्रजाके पाससैं कर (धनका भाग) लेके जो याग करै । वा जिसविषै वंशवृक्षके अंकुररूप करीरनका होम होवैहै । ताकूं कारीरीयाग कहैहैं ॥

५२ जिस यागविषै शत(१००)कृष्णल (सुवर्णके मासे)के दानका विधान कियाहै । सो शतकृष्णलयाग कहियेहै ॥

५३ (१) उपक्रमउपसंहारकी एकरूपता (२) अभ्यास (३) अपूर्वता (४) फल (५) अर्थवाद (६) उपपत्ति । ये षट् वैदिकवाक्यनके तात्पर्यके लिंग हैं ॥ जैसैं अग्निका ज्ञान धूमतैं होवैहै । यातैं धूम अग्निका लिंग कहियेहैं । तैसैं वैदिकवाक्यनके तात्पर्यका ज्ञान उपक्रम-उपसंहारआदिकनतैं होवैहै । यातैं वे तात्पर्यके लिंग हैं ॥ उपनिषदनतैं भिन्न कर्मकांडबोधकवेदका तात्पर्य कर्म-

विधिमैं है। ताके उपसंहारआदिक जैमिनिकृत द्वादशाध्यायीरूप पूर्वमीमांसामैं स्पष्ट हैं ॥ औ उपनिषद्रूप ब्रह्मबोधक वेदका तात्पर्य अद्वैतब्रह्ममैं है । ताके उपक्रमउपसंहारआदिक सूत्रभाष्यमैं उपनिषदनके व्याख्यानके प्रसंगमैं भाष्यकारनैं सूचन कियेहैं ॥ औ आनंदगिरिस्वामीनैं तत्वालोकमैं तथा हमनैं श्रुतिषड्लिंगसंग्रहमैं स्पष्ट लिखेहै ॥ तिन सर्वउपनिषदनके उपक्रमउपसंहारआदिकनके लिखनैकरि ग्रंथका विस्तार होवैहै । यातैं

छांदोग्यउपनिषदके उपक्रमउपसंहारआदिकनकूं उदाहरणकरि कहैहैं ॥

(१) जैसैं छांदोग्यके षष्ठअध्यायका उपक्रम (आरंभ)विषे " हे सोम्य ! आगे एकहीं अद्वितीय सत् था ॥ " इस वाक्यकरि जगत्के कारण अद्वितीयब्रह्मका प्रतिपादन है। सो **उपक्रम** कहियेहै ॥ औ उपसंहार (षष्ठअध्यायकी समाप्ति)विषे " सो इस (सत्रूप) आत्मा (स्वरूप) वाला सर्व यह (जगत्) है ॥ " इस वाक्यकरि अद्वितीयब्रह्मका जो प्रतिपादन है। सो **उपसंहार** कहियेहै ॥ जो अर्थ आरंभविषे होवै सोई समाप्तिविषे होवै ॥ तहां **उपक्रमउपसंहारकी एकरूपता** कहियेहै। सो **प्रथमलिंग** है ॥ जैसैं आदिअंतविषे समानगतिवाले औ मध्यविषे विचित्रगतिवाले शंखदुंदुभिआदिकवाद्यविशेषनकी आदिअंतकी गतिविषैहीं तात्पर्य है। तैसैं आदिअंतविषे अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादक औ मध्यविषे सृष्टिआदिकके प्रतिपादक उपनिषद्के प्रकरणका उपक्रमउपसंहारकी एकरूपताके बलकरि अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादनमैं तात्पर्यका निश्चय होवैहै ॥

(२) फेरिफेरि कथनका नाम **अभ्यास** है ॥ जैसैं छांदोग्यके षष्ठअध्यायविषे " तत्वमसि (सो तूं हैं) " इस वाक्यकरि नववार अद्वितीयब्रह्मका प्रतिपादन है । सो अभ्यासरूप **दूसरा लिंग** है ॥ जैसैं वारंवार भिन्नभिन्नरीतिसैं एकहीं वार्ताके कथन करनैहारे याचकआदिकपुरुषके वाक्यका तिस वार्ताके विषय (स्वप्रयोजन)विषे तात्पर्य है। तैसैं वारंवार भिन्नभिन्नयुक्तिकरि अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादक श्रुतिवाक्यका अद्वितीयब्रह्मविषेहीं तात्पर्य है । ऐसैं जानियेहै ।

(३) शास्त्रतैं अन्यप्रमाणकी अविषयता (अज्ञेयता)का नाम **अपूर्वता** है ॥ जैसैं " तिस उपनिषदनकरि गम्य (ज्ञेय) पुरुषकूं मैं पूछताहूं " इस श्रुतिवाक्यकरि अद्वितीयब्रह्मकूं उपनिषद्रूप शब्दप्रमाणतैं भिन्न प्रत्यक्षादिप्रमाणकी अविषयता (रूप अलौकिकता) कहीहै । वा ब्रह्मकूं स्वयंप्रकाशरूप होनैकरि अपनैं व्यवहारविषे अन्यप्रमाणकी अपेक्षासैं रहितता है । सो ब्रह्मकी अपूर्वतारूप **तीसरा लिंग** है ॥ जैसैं व्यापारीपुरुष । जिस वस्तुकी अपूर्वता वर्णन करै। तिस वस्तुके ग्राहककूं देनैविषे तिसका तात्पर्य होवैहै। अथवा जैसैं नाटककर्त्ता औरअनेकचेष्टा करैहै । तिन सर्वचेष्टाका अपूर्व (अलौकिकखेलविषैहीं) तात्पर्य है ॥ तैसैं श्रुतिवाक्य बी जिसअर्थकी अपूर्वता वर्णन करैहैं । तिसी अर्थविषैही तिनका तात्पर्य होवैहै ॥

(४) छांदोग्यके षष्ठअध्यायविषे " आचार्यवान् पुरुष जानताहै । तिस (ज्ञानी)का जिसकालतोडी देहपात भया नहीं तिसकालतोडीहीं चिर (विदेहमुक्तिविषे देरी) है औ तब (देहपातसमयमैं) हीं सत् (ब्रह्म)कूं पावता है" । इस वाक्यकरि अद्वितीयब्रह्मके ज्ञानतैं जन्मादिअनर्थकी निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्ति(विदेहकैवल्य)रूप **फल** कहाहै । सो **चतुर्थलिंग** है ॥ जैसैं एकादशीआदिकव्रतनके माहात्म्यमैं जिस व्रतका फल वर्णन कियाहोवै । तिस व्रतके अनुष्ठानमैं तिसका तात्पर्य होवैहै । तैसैं उपनिषदनविषे बी अद्वितीयब्रह्मके ज्ञानका फल वर्णन कियाहै । यातैं तिसविषैहीं तिनका तात्पर्य है ॥

(५) स्तुति वा निंदाका बोधक वाक्य **अर्थवाद** कहियेहै॥ जैसैं छांदोग्यके षष्ठअध्यायमैं "जिसकरि नहीं सुन्या अन्य सुन्या होवैहै औ नहीं मनन किया अन्य मनन किया होवैहै औ नहीं निश्चय किया अन्य निश्चित होवैहै । तिस आदेशकूं बी तैंनै गुरुके प्रति पूछ्याहै ? " इस वाक्यकरि अद्वितीयब्रह्मके बोधकी स्तुति करीहै । सो अर्थवादरूप **पंचमलिंग** है ॥ जैसैं पुरुष किसीक दुसरे पुरुषकी अन्यपुरुषके पास स्तुति करताहोवै । तिसका स्तुति करनैयोग्य पुरुषविषे गुरुमित्रादिभावसैं तात्पर्य है । तैसैं अद्वितीयब्रह्मके बोधकी स्तुति करनेहारे श्रुतिवाक्यनका बी अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादनमैं तात्पर्य है ॥

(६) कथन किये अर्थके अनुकूल युक्ति (दृष्टांतादिक) का नाम **उपपत्ति** है ॥ छांदोग्यके षष्ठअध्यायतैं सर्ववस्तुनका ब्रह्मसैं अभेद कथनअर्थ मृत्तिकासुवर्णआदिकअनेकदृष्टांतनसैं कार्य (जगत्)का कारण (ब्रह्म)सैं अभेद प्रतिपादन कियाहै। सो अभेदप्रतिपादकदृष्टांत उपपत्तिरूप **षष्ठलिंग** है ॥ जैसैं पुरुष जिसअर्थविषे दृष्टांतादियुक्ति कहै । तिसअर्थके दृढ करनैविषे ताका तात्पर्य है । तैसैं उपनिषदनमैं अद्वैतअर्थके अनुकूलदृष्टांतादि कहेहैं । यातैं तिनका अद्वितीयब्रह्मविषेहीं तात्पर्य है ॥

इसरीतिसैं उपक्रमउपसंहारआदिकषड्लिंगके उदाहरणरूप श्रुतिवाक्य कहे । वे बहुतकरि छांदोग्यके षष्ठअध्यायगत हैं ॥ तिस अध्यायका बहुतसा व्याख्यान ५१६ टिपणविषे लिख्याहै तहां देखलेना ॥ ऐसैं कही जे षड्विधलिंग (रूप युक्तियां) तिनकरि सर्ववेदांत (उपनिषदन)का अद्वैतब्रह्मविषे तात्पर्यका निश्चय । **श्रवण** कहियेहै ॥ यह **अंगरूप श्रवण** है औ **अंगीरूप श्रवण** १५४ टिप्पणविषे पूर्व दिखायाहै ॥ इति ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६८६

२४ समन्वयाध्याय एतत्सूक्तं २७ धीस्वास्थ्यकारिभिः ।
तर्कैः संभावनार्थस्य द्वितीयाध्याय ईरिता १०२॥

टीकांकः २५२३ टिप्पणांकः ६५४

२३ एवंविधं श्रवणं कुत्र निरूपितमित्यत आह (समन्वयाध्याय इति)—

२४] एतत् समन्वयाध्याये सूक्तम्॥

२५) एतत् श्रवणं समन्वध्याये सुष्ठूक्तं व्यासादिभिरितिशेषः ॥

२६ अर्थासंभावनानिवृत्तिहेतुर्मननं तु द्वितीयाध्याये निरूपितमित्याह—

२७] धीस्वास्थ्यकारिभिः तर्कैः अर्थस्य संभावना द्वितीयाध्याये ईरिता ॥

२८) प्रमेयगतानुपपत्तिपरिहारद्वारा बुद्धिस्वास्थ्यकारिभिस्तर्कैः युक्तिशब्दाभिधेयैः अर्थस्य संभावना संभावितत्वानुसंधानं मननं द्वितीयाध्याये निरूपितमित्यर्थः १०२

॥ ६ ॥ श्रवण औ लक्षणसहित मनननिरूपणमैं प्रमाण ॥

२३ इसप्रकारका श्रवण कहां निरूपण कियाहै? तहां कहैहैं:—

२४] समन्वयअध्यायविषै यह श्रवण सम्यक् कहाहै ॥

२५) यह श्रवण । शारीरकके प्रथमसमन्वयनामअध्यायविषै व्यासादिकोंनैं सुंदरप्रकारसैं कहाहै ॥ इहां आदिशब्दकरि भाष्यकार औ आनंदगिरिआदिकव्यांख्याकारनका ग्रहण है ॥

२६ अर्थ जो ब्रह्मात्माकी एकतारूप प्रमेय ताकी असंभवनाकी निवृत्तिका हेतु मनन तौ शारीरकके द्वितीयअध्यायविषै व्यासादिकोंनैं निरूपण कियाहै । ऐसैं कहैहैं:—

२७] बुद्धिकी स्थिरताके करनैहारे तर्कनकरि अर्थकी संभावना दूसरेअध्यायविषै कहीहै ॥

२८) प्रमेयगतसंदेहकी निवृत्तिद्वारा बुद्धिकी स्वस्वरूपमैं एकाग्रताके करनैहारे । अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्ति शब्दके वाच्य तर्कनकरि ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अर्थकी संभावना नाम संभावितपनैका अनुसंधानरूप मनन शारीरकके दूसरेअध्यायविषै निरूपण कियाहै ॥ यह अर्थ है ॥ १०२ ॥

५४ श्रीव्यासभगवान्नैं ब्रह्मसूत्रनामक पदार्थनिर्णायक ५५५ सूत्र कियेहैं ॥ तिनकी संख्या श्लोक २२५ की है । ताकूं ब्रह्ममीमांसा अरु उत्तरमीमांसा कहैहैं ॥ तिसके च्यारिअध्याय हैं औ एकएक अध्यायके च्यारिच्यारि पाद हैं ॥ तिसका

(१) श्रीमत्शंकराचार्योंनैं दशसहस्र परिमितभाष्य कियेहैं । ताका नाम शारीरकभाष्य है ॥

(२) तिस भाष्यके ऊपर पद्मपादाचार्यनैं विजयाभिदंडिनीनामकव्याख्या करीथी।ताकां तिनके मातुलनैं गृहसहित दाह किया । पीछे पंचपादनकी व्याख्या भाष्यकारनैं कही औ पादपद्माचार्यनैं लिखी। ताका नाम पंचपादिका ५०० है । तिसके ऊपर

(३) श्रीप्रकाशात्मचरणनामकस्वामीनै विवरण नामक १४००० व्याख्यान कियाहै । तिसके ऊपर

(४) अखंडानंदसंन्यासीकृत विवरणतत्त्वदीपन नामक व्याख्यान २५००० है ॥

(५) विवरणके ऊपर विद्यारण्यस्वामीकृत विवरणप्रमेयसंग्रह है ॥

(६) पंचपादिकापर नृसिंहाश्रमकृत टीका है ॥

(७) रामानंदसरस्वतीकृत विवरणोपन्यास है ॥

(८) शारीरकभाष्यके उपर और भामतीनिबंध नामक व्याख्यान १२००० वाचस्पतिमिश्रनैं किया है ॥ तिसके ऊपर

टीकांक: २५२९ टिप्पणांक: ॐ	बहुजन्मदृढाभ्यासाद्देहादिष्वात्मधीः क्षणात् । पुनः पुनरुदेत्येवं जगत्सत्यत्वधीरपि ॥ १०३ ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६८७

२९ इदानीं विपरीतभावनां तन्निवृत्त्युपायं च दर्शयति—

३०] बहुजन्मदृढाभ्यासात् क्षणात् पुनः पुनः देहादिषु आत्मधीः उदेति । एवं जगत्सत्यत्वधीः अपि ॥ १०३ ॥

॥ ७ ॥ विपरीतभावनाका स्वरूप औ ताकी निवृत्तिका उपाय ॥

२९ अब विपरीतभावना औ तिसकी निवृत्तिके उपायकूं दिखावैहैं:—

३०] बहुजन्मके दृढअभ्यासतैं क्षण-क्षणतैं फेरिफेरि देहादिकविषै आत्म-बुद्धि उदय होवैहै । ऐसैं जगत्‌विषै सत्यताकी बुद्धि बी उदय होवैहै ॥१०३

(९) अमलानंदस्वामीकृत कल्पतरु नामक व्याख्यान १४००० है ॥ तिसके ऊपर

(१०) अप्पैयदीक्षितकृत परिमल नामक व्याख्यान ९००० है ॥

(११) शारीरकभाष्यके ऊपर अद्वैतानंदकृत और ब्रह्मविद्याऽऽभरणनामक व्याख्यान २६००० हैं ॥

(१२) भाष्यपर आनंदगिरि स्वामीकृत आनंदगिरा नामक १८००० व्याख्यान है ॥

(१३) रामाश्रमकृत रत्नप्रभानामक व्याख्या ११००० हैं ॥

(१४) शारीरकभाष्यके ऊपर सर्वज्ञात्ममुनिकृत २५०० श्लोकात्मक वार्तिरूप संक्षेपशारीरक नामक व्याख्यान है ॥ ताके ऊपर

(१५) मधुसूदनस्वामीकृत १५०००

(१६) रामाश्रमस्वामीकृत १२००० ये दोव्याख्यानहैं ॥

(१७–१८) शारीरकभाष्यपर नारायणसरस्वतीकृत तथा बालकृष्णानंदकृत दोवार्तिक हैं ॥

(१९) ब्रह्मसूत्रभाष्यके ऊपर मधुसूदनस्वामीकृत वेदांतकल्पलता नामक ४५०० का ग्रंथ ग्यारीस्तबकरूप है ॥

(२०) केवलब्रह्मसूत्रनके ऊपर रामाश्रमस्वामीकृत रामाश्रमीनामक सूत्रवृत्ति ६००० है

(२१) नारायणभट्टकृत सूत्रवृत्ति ४००० है ॥

(२२) अप्पयदीक्षितकृत शारीरकन्यायरक्षामणि नामक सूत्रवृत्ति २००० है ॥

(२३) शंकरानंदस्वामीकृत सूत्रवृत्ति १५०० है ॥

(२४) भैरवदत्तपंडितकृत ब्रह्मसूत्रतात्पर्य है ॥

(२५) रामानंदस्वामीकृत ब्रह्मामृतवर्षिणी नामक सूत्रवृत्ति है ॥

(२६) गंगाधरस्वामीकृत स्वाराज्यसिद्धि ग्रंथ है ॥

(२७) ब्रह्मसूत्रनमैं १९२ अधिकरणसूत्र हैं। तिनके ऊपर विद्यारण्यस्वामीकृत श्लोकशतचतुष्टयरूप अधिकरणरत्नमाला है । ताकी टीका ४००० श्रीविद्यारण्यस्वामीजीनैंही करीहै ॥ ।

(२८) ब्रह्मसूत्रनके ऊपर रघुनाथशास्त्रीकृत शंकरपादभूषण ७००० है ॥

इनसैं आदिलेके अन्यबी ब्रह्मसूत्रपर

(२९) अद्वैतवृत्ति

(३०) दिग्दर्शिनी ।

(३१) अनूपनारायणकृत समंजसा ।

(३२) अन्नंभट्टकृत मिताक्षरा ।

(३३) ज्ञानेंद्रस्वामीकृत ब्रह्मसूत्रार्थप्रकाशिका ।

(३४) नागेशकृत ब्रह्मसूत्रेंदुशेखर ।

(३५) प्रकाशात्मचरणकृत शारीरकमीमांसान्यायसंग्रह ।

(३६) ब्रह्मानंदसरस्वतीकृत वेदांतसूत्रमुक्तावलि ।

(३७) भवदेवकृत सूत्रवृत्ति ।

(३८) रंगनाथकृत विद्वज्जनमनोहरा ।

(३९) स्वयंप्रकाशानंदकृत वेदांतवचनभूषण ।

(४०) जगन्नाथयतिकृत भाष्यदीपिका ।

(४१) अमलानंदकृत शारीरकशास्त्रदर्पण औ

(४२) गंगाधरसरस्वतीकृत शारीरकसूत्रसारार्थचंद्रिका है ॥

इनसेआदिलेके अनेक व्याख्यानरूप ग्रंथ हैं ॥ ये सर्व बी मिलिके २०३४०० के ऊपर प्रमेयग्रंथ कहियेहैं ॥ यह प्रसंगसैं मुमुक्षुकूं स्वसिद्धांतकी बलिष्ठताके बोधनअर्थ जनायाहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
६८८	[31]विपरीता भावनेयमैकाग्र्यात्सा निवर्तते । [33]तत्त्वोपदेशात्प्रागेव भवत्येतदुपासनात् ॥ १०४॥	२५३१
६८९	[35]उपास्तयोऽत एवात्र ब्रह्मशास्त्रेऽपि चिंतिताः । [37]प्रागनभ्यासिनः पश्चाद्ब्रह्माभ्यासेन तद्भवेत् १०५	टिप्पणांक: ॐ

३१] (विपरीतेति)–इयं विपरीता भावना । सा ऐकाग्र्यात् निवर्तते ॥

३२ विपरीतभावनानिवर्तकं यदैकाग्र्यं तत्कुतो जायत इत्याशंक्याह—

३३] (तत्त्वोपदेशादिति)–एतत् तत्त्वोपदेशात् प्राक् एव उपासनात् भवति ॥

ॐ ३३) एतत् ऐकाग्र्यं ब्रह्मोपदेशात् प्रागेव सगुणब्रह्मोपासनाद्भवति भवेदित्यर्थः ॥ १०४ ॥

३४ नन्वेतत्कुतोऽवगतमित्याशंक्य उपासनाविचारस्य वेदांतशास्त्रे कृतत्वादित्याह (उपास्तय इति)—

३५] अतः एव अत्र ब्रह्मशास्त्रे अपि उपास्तयः चिंतिताः ॥

३६ अकृतोपास्तिकस्य कुतस्तज्जन्मेत्यत आह—

३७] प्राक् अनभ्यासिनः पश्चात् ब्रह्माभ्यासेन तत् भवेत् ॥ १०५ ॥

॥ ८ ॥ विपरीतभावनाकी निवारक एकाग्रताका उपाय ॥

३१] यह विपरीतभावना है ॥ सो विपरीतभावना चित्तकी एकाग्रतातैं निवर्त्त होवैहै ॥

३२ विपरीतभावनाकी निवर्त्तक जो चित्तकी एकाग्रता है। सो काहेतैं होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३३] यह एकाग्रता । तत्त्व जो ब्रह्म ताके उपदेशतैं प्रथमहीं सगुणब्रह्मकी उपासनातैं होवैहै ॥

ॐ ३३) इहां यह एकाग्रता ब्रह्मके उपदेशतैं पूर्वहीं सगुणब्रह्मके उपासनतैं होवैहै । यह अर्थ है ॥ १०४ ॥

३४ ननु सगुणब्रह्मरूप ओंकारआदिककी उपासनातैं चित्तकी एकाग्रता होवैहै । यह तुमनैं काहेतैं जान्याहै? यह आशंकाकरि जातैं उपासनाका विचार वेदांतशास्त्रविषै कियाहै तातैं जान्याहै । ऐसैं कहैहैं ॥

३५] जातैं विपरीतभावकी निवारकएकाग्रता उपासनातैं होवैहै। याहीतैं इस ब्रह्मशास्त्रविषै कहिये वेदांतशास्त्रविषै बी अनेक उपासना विचारीहैं ॥

३६ जिस पुरुषनैं इस ब्रह्मके उपदेशतैं पूर्व इस जन्मविषै वा जन्मांतरविषै उपासना नहीं करीहै सो अकृतोपास्तिक है। तिसकूं तिस विपरीतभावनाकी निवर्त्तक एकाग्रताकी उत्पत्ति काहेतैं होवैहै ? तहां कहैहैं:—

३७] ब्रह्मके उपदेशतैं पूर्व उपासनाके अभ्यासतैं रहित पुरुषकूं पीछे ब्रह्माभ्यासकरि सो एकाग्रता होवैहै ॥१०५॥

टीकांक: २५३८ टिप्पणांक: ॐ	३९ तच्चिंतनं तत्कथनमन्योऽन्यं तत्प्रबोधनम् । एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ १०६ ॥ ४१ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत् १०७	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ६९० ६९१

३८ ब्रह्माभ्यासश्च कीदृश इत्याकांक्षायामाह—

३९] तच्चिंतनं तत्कथनं अन्योऽन्यं तत्प्रबोधनम् च एतदेकपरत्वं बुधाः ब्रह्माभ्यासं विदुः ॥ १०६ ॥

४० एतदेकपरत्वं विशदयितुं श्रुतिमाह (तमेवेति)—

४१] धीरः ब्राह्मणः तं एव विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत । बहून् शब्दान् न अनुध्यायात् ॥

४२) धीरः ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नः । ब्राह्मणः ब्रह्म भवितुमिच्छुर्मुमुक्षुः । तमेव प्रत्यग्रूपं परमात्मानमेव । विज्ञाय संशयाद्यभावो यथा भवति तथा ज्ञात्वा । प्रज्ञां ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानसंततिरूपमैकाग्र्यं । कुर्वीत संपादयेत् । अनात्मगोचरान् बहून् शब्दाञ्जानुध्यायात् नानुस्मरेत् । ध्यानेनाभिधानमप्युपलक्ष्यते । नाभिदध्याच । अन्यथा शब्दध्यानेन वाग्विग्लापनानुपपत्तेः ॥

४३ कुत इत्यत आह (वाच इति)—

४४] हि तत् वाचः विग्लापनम् ॥

॥ ९ ॥ ब्रह्माभ्यासका स्वरूप ॥

३८ ब्रह्मका अभ्यास किसप्रकारका है? इस आकांक्षाविषै कहैहैं:—

३९] एकांतविषै तिस ब्रह्मका चिंतन करना औ मुमुक्षुके प्राप्तभये तिस ब्रह्मका कथन करना औ समानअभ्यासीके प्राप्तभये परस्पर तिस ब्रह्मका प्रबोध करना। ऐसैं इसी एकब्रह्मविषै तत्परताकूं पंडितजनब्रह्माभ्यास जानतेहैं ॥१०६॥

॥ १० ॥ ब्रह्ममैं चित्तएकाग्रताकी प्रतिपादक श्रुति औ स्मृति ॥

४० इसी एकब्रह्मविषै तत्परताकूं स्पष्ट करनैकूं श्रुति कहैहैं:—

४१] धीरब्राह्मण । तिसहीकूं विशेषकरि जानिके प्रज्ञाकूं करै औ बहुतशब्दनकूं चितवै नहीं ॥

४२) धीर जो ब्रह्मचर्यादिसाधनकरि संपन्न औ ब्राह्मण जो ब्रह्महोनैकी इच्छावाला मुमुक्षु है । सो तिस प्रत्यक्रूप परमात्माकूंहीं संशयआदिकका अभाव जैसैं होवै तैसैं जानिके प्रज्ञा जो ब्रह्मात्माकी एकताके ज्ञानकी संततिरूप एकाग्रता ताकूं संपादन करै औ अनात्माकूं विषय करनैहारे बहुतशब्दनकूं ध्यावै कहिये स्मरण करै नहीं ॥ इहां ध्यानकरि कथन बी लक्षणासैं जानियेहै । यातैं बहुतशब्दनकूं कथन करै नहीं । यह अर्थ होवैहै ॥ शब्दनके कथनविना शब्दनके ध्यानकरि वाणीके श्रमके असंभवतैं ॥

४३ बहुतशब्दनका ध्यान किस कारणतैं नहीं करना? तहां कहैहैं:—

४४] जिसकारणतैं सो बहुतशब्दनका कथन वाणीकूं श्रमका हेतु है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
६९२	अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् १०८	२५४५
६९३	५० इति श्रुतिस्मृती नित्यमात्मन्येकाग्रतां धियः । विधत्तो विपरीताया भावनायाः क्षयाय हि १०९	टिप्पणांक: ॐ

४५) हि यस्मात्तात् अभिध्यानं । अनेन स्मरणमपि उपलक्ष्यते । वाचः इति मनसोऽप्युपलक्षणं विग्लापयति इति विग्लापनं श्रमहेतुः । अयमभिप्रायः । इतरशब्दानुसंधाने मनसः श्रमो भवति। तदभिधाने तु वाच इति ॥ १०७ ॥

४६ एवमेकाग्र्यप्रतिपादिकां श्रुतिमभिधाय स्मृतिमप्याह (अनन्या इति)—

४७] ये जनाः अनन्याः मां चिंतयंतः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां अहं योगक्षेमं वहामि ॥

४८) ये जना अनन्याः " अहं ब्रह्मास्मि " इति ज्ञानेन मदभिन्नाः संतस्तथैव मां चिंतयंतः पर्युपासते परितः सर्वेष्वपि कालेषु उपासते मद्रूपा एव वर्तंते । तेषां नित्याभियुक्तानां सदा मच्चित्तानां तेषां अहं तदात्मत्वेन अनुसंधीयमानः अहं योगक्षेमं अलब्धलाभलब्धपरिरक्षणरूपौ योगक्षेमौ वहामि संपादयामीत्यर्थः ॥ १०८ ॥

४९ उदाहृतयोः श्रुतिस्मृत्योस्तात्पर्यमाह—

५०] इति श्रुतिस्मृती विपरीतायाः भावनायाः क्षयाय हि आत्मनि नित्यं धियः एकाग्रतां विधत्तः ॥

---

४५) इहां कथनशब्द स्मरणका बी उपलक्षण है औ वाणीशब्द मनका बी उपलक्षण है ॥ याका यह अभिप्राय हैः—अन्यअनात्मगोचरशब्दनके स्मरणविषै मनकूं श्रम होवैहै औ तिन शब्दनके कथनविषै तौ वाणीकूं श्रम होवैहै ॥ १०७ ॥

४६ ऐसें एकाग्रताकी प्रतिपादक श्रुतिकूं कहिके भगवद्गीताके नवमें अध्यायके २२ वें श्लोकरूप स्मृतिकूं बी कहैहैंः—

४७] "जे जन अनन्य होयके मेरेकूं चिंतन करतेहुये सर्वओरतें उपासना करैहैं । तिन नित्यअभियुक्तनके योगक्षेमकूं मैं वहन करूंहूं" ॥

४८) जो जन अनन्य कहिये "मैं ब्रह्म हूं" इस ज्ञानकरि मेरेतें अभिन्न हुये तैसेंहीं मेरेकूं चिंतन करतेहुये सर्वकालविषै उपासतेहैं कहिये मेरेरूप हुये वर्त्ततेहैं । तिन सदा मेरेविषै चित्तवालोंके तद्रूपताकरि स्मरणका विषय भया मैं अप्राप्तकी प्राप्ति औ प्राप्तकी रक्षारूप योगक्षेमकूं संपादन करूंहूं ॥ यह अर्थ है ॥ १०८ ॥

॥ ११ ॥ श्लोक १०७—१०८ उक्त श्रुतिस्मृतिका तात्पर्य ॥

४९ उदाहरण करी श्रुति स्मृति दोनूंके तात्पर्यकूं कहैहैंः—

५०] ये श्रुतिस्मृति । विपरीतभावनाके क्षयअर्थहीं आत्माविषै नित्य बुद्धिकी एकाग्रताकूं विधान करैहैं ॥

टीकांकः २५५१ | टिप्पणांकः ॐ

यद्यथा वर्तते तस्य तत्त्वं हित्वान्यथात्वधीः ।
विपरीता भावना स्यात्पित्रादावरिधीर्यथा ॥११०॥
आत्मा देहादिभिन्नोऽयं मिथ्या चेदं जगत्तयोः ।
देहाद्यात्मत्वसत्यत्वधीर्विपर्ययभावना ॥ १११ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६९४ | ६९५

५१) एते श्रुतिस्मृती विपरीतभावनानिवृत्तये आत्मनि सदा चित्तैकाग्र्यं प्रतिपादयतः इत्यर्थः ॥ १०९ ॥

५२ ननु देहाद्यात्मत्वबुद्धेः जगत्सत्यत्वबुद्धेः च कुतो विपरीतभावनात्वमित्याशंक्य तल्लक्षणयोगादिति दर्शयितुं तस्याः लक्षणमाह—

५३] **यत् यथा वर्तते । तस्य तत्त्वं हित्वा अन्यथात्वधीः विपरीता भावना स्यात् ॥**

५४) यत् वस्तु शुक्त्यादि । यथा येन शुक्त्यादिरूपेण वर्तते । तस्य तत्त्वं शुक्त्यादिरूपत्वं । परित्यज्य अन्यथात्वधीः अन्यथात्वस्य रजतादिरूपत्वस्य धीर्ज्ञानं । विपरीतभावना स्यात् । अतस्मिंस्तद्बुद्धिरिति यावत् ॥

५५ तामुदाहरति (पित्रादाविति)—

५६] **यथा पित्रादौ अरिधीः ॥११०**

५७ उक्तलक्षणं प्रकृते योजयति (आत्मेति)—

---

५१) ये श्रुति औ स्मृति विपरीतभावनाकी निवृत्तिअर्थ आत्माविषै सदा चित्तकी एकाग्रताकूं प्रतिपादन करैहैं। यह अर्थ है १०९

॥१२॥ विपरीतभावनाका लक्षणसहित उदाहरण ॥

५२ ननु देहादिकविषै जो आत्मापनैकी बुद्धि है औ जगत्‌के सत्यताकी बुद्धि है। इन दोनूंकूं विपरीतभावनापना काहेतैं है? यह आशंकाकरि विपरीतभावनाके लक्षणके योगतैं तिन दोनूंबुद्धिनकूं विपरीतभावनापना है। ऐसैं दिखावनैकूं तिस विपरीतभावनाके लक्षणकूं कहैहैं:—

५३] **जो वस्तु जैसैं वर्त्ततीहै तिसके तत्त्वकूं कहिये यथार्थस्वरूपकूं छोडिके अन्यथापनैकी बुद्धि विपरीतभावना होवैहै ॥**

५४) जो वस्तु शुक्तिआदिक जैसैं कहिये जिस शुक्तिआदिकरूपकरि वर्त्तताहै । तिसका तत्त्व जो शुक्तिआदिरूप ताकूं परित्यागकरिके अन्यथापनैकी कहिये रजतादिरूपताका ज्ञान । विपरीतभावना कहिये विपर्ययज्ञान होवैहै । औ अन्य शुक्ति वा आत्माविषै जो अन्य रजत वा देहादिककी बुद्धि विपरीतभावना है ॥ यह अर्थ है ॥

५५ तिस उक्तलक्षणवाली विपरीतभावनाकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

५६] **जैसैं दुष्टपुत्रादिककूं पिताआदिकविषै शत्रुबुद्धि है । सो विपरीतभावना है ॥ ११० ॥**

॥ १३ ॥ उक्तविपरीतभावनाके लक्षणकी प्रकृतयोजना ॥

५७ श्लोक ११० विषै उक्तविपरीतभावनाके लक्षणकूं प्रकृत जो श्लोक १०२ सैं आरंभ किया देहादिकमैं आत्मताबुद्धि औ जगत्‌विषै सत्यताबुद्धिरूप अर्थ तिसविषै जोडतेहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ६९६ | ६१ तत्त्वभावनया नश्येत्साऽतो देहातिरिक्तताम् । आत्मनो भावयेत्तद्वन्मिथ्यात्वं जगतोऽनिशम् ११२ | टीकांकः २५५८

६९७ | ६४ किं मंत्रजपवन्मूर्तिध्यानवद्वात्मभेदधीः । जगन्मिथ्यात्वधीश्चात्र व्यावर्त्या स्यादुतान्यथा ११३ | टिप्पणांकः ॐ

५८] अयं आत्मा देहादिभिन्नः च इदं जगत् मिथ्या । तयोः देहाद्यात्मत्वसत्यत्वधीः विपर्ययभावना ॥

५९) अयमात्मा वस्तुतो देहादिभ्यो भिन्नः इदं जगच्च मिथ्या । एवं सत्यपि तयोः आत्मजगतोः यथाक्रमं देहादिरूपत्वबुद्धिः सत्यत्वबुद्धिश्च या । सा विपरीतभावनेत्यर्थः ॥ १११ ॥

६० पूर्वमैकाग्र्यात्सा निवर्तते इति सामान्योक्तं अर्थं विशेषाकारेणाह (तत्त्वभावनयेति)—

६१] सा तत्त्वभावनया नश्येत् । अतः आत्मनः देहातिरिक्ततां तद्वत् जगतः मिथ्यात्वं अनिशं भावयेत् ॥

६२) सा देहाद्यात्मत्वजगत्सत्यत्वधीरूपा विपरीता भावना । तत्त्वभावनया आत्मनो देहातिरिक्तत्वस्य जगतो मिथ्यात्वस्य च भावनया निरंतरध्यानेन नश्येत् । अत आत्मनो देहाद्यतिरिक्तत्वं देहादेः । जगतः मिथ्यात्वं च सदा भावयेत् । इत्युक्तम् ॥ ११२ ॥

६३ तत्र जपादाविव नियमापेक्षाऽस्ति वा न वा इति पृच्छति (किमिति)—

५८] यह आत्मा देहादिकतैं भिन्न है औ यह जगत् मिथ्या है । तिन दोनूंविषै देहादिरूपता औ सत्यताकी बुद्धि विपर्ययभावना है ॥

५९) यह आत्मा वस्तुतैं देहादिकनतैं भिन्न है औ यह जगत् मिथ्या है । ऐसैं हुये वी तिन आत्मा औ जगत्‌विषै क्रमकरि देहादिरूपताकी बुद्धि औ सत्यताकी बुद्धि जो है। सो विपरीतभावना है । यह अर्थ है ॥१११

॥ १४ ॥ विपरीतभावनाकी निवृत्तिके उपायका विशेषआकारकरि कथन ॥

६० पूर्व १०४ श्लोकविषै "सो विपरीतभावना एकाग्रतातैं निवृत्त होवैहै ।" ऐसैं सामान्यकरि कहे अर्थकूं विशेषआकारकरि कहैहैं:—

६१] जातैं सो विपरीतभावना तत्त्वकी भावनासैं नाश होवैहै । यातैं आत्माकी देहादिकतैं भिन्नताकूं तैसैं जगत्‌के मिथ्यापनैकूं निरंतर भावना करै ॥

६२) सो देहादिकाविषै आत्मताकी बुद्धि औ जगत्‌विषै सत्यताकी बुद्धिरूप विपरीतभावना । तत्त्वकी कहिये आत्माकी । देहादिकतैं भिन्नता औ जगत्‌के मिथ्यापनैरूप यथार्थवस्तुकी भावना जो निरंतरध्यान तिसकरि नाश होवैहै । यातैं आत्माकी देहादिकतैं भिन्नताकूं औ देहादिकरूप जगत्‌के मिथ्यापनैकूं मुमुक्षु सदा भावना करै । यह कहा ॥११२॥

॥ १५ ॥ विपरीतभावनाके निवर्त्तक ध्यानमैं जपादिककी न्याईं नियमकी अपेक्षाका प्रश्न ॥

६३ तिस आत्माकी देहादिकतैं भिन्नता औ जगत्‌के मिथ्यापनैकी भावनाविषै जपादिककी न्याईं नियमकी अपेक्षा है वा नहीं ? ऐसैं वादी पूंछताहै:—

टीकांकः २५६४ टिप्पणांकः ॐ

अन्यथेति विजानीहि दृष्टार्थत्वेन भुक्तिवत् ।
बुभुक्षुर्जपवद्भुंक्ते न कश्चिन्नियतः क्वचित् ॥११४॥

तृप्तिदीपः ॥७॥ श्लोकांकः ६९८

६४] अत्र आत्मभेदधीः च जगन्मिथ्यात्वधीः मंत्रजपवत् किं वा मूर्तिध्यानवत् उत अन्यथा व्यावर्त्या स्यात्॥

६५) आत्मभेदधीः आत्मनो देहादिभ्यो विभिन्नज्ञानं । जगतो मिथ्यात्व अनुसंधानं च । मंत्रजपवत् देवताध्यानादिवत् । किं नियमेनानुष्ठातव्यं । उत लौकिकव्यवहारवन्नियममंतरेणापि कर्तुं शक्यत इति ॥११३॥

६६ दृष्टफलकत्वान्नात्र नियमः कश्चिदस्तीत्याह—

६७] अन्यथा इति विजानीहि ॥

ॐ६७) अन्यथा नियमं विना इत्यर्थः ॥

६८ तत्र हेतुमाह—

६९] दृष्टार्थत्वेन ॥

७० तत्र दृष्टांतमाह—

७१] भुक्तिवत् ॥

७२ दृष्टार्थेऽपि भोजने नियमाः श्रुतिस्मृत्योरुपलभ्यंत इत्याशंक्याह—

७३] बुभुक्षुः कश्चित् क्वचित् जपवत् नियतः न भुंक्ते ॥

७४) क्षुदपनयनाय भोक्तुमिच्छन्पुरुषो जपं कुर्वाण इव न नियमेन भुंक्ते । अपि तु यथा क्षुद्बाधोपशांतिः स्यात् तथा भोजनं करोतीत्यर्थः ॥ ११४ ॥

६४] इहां आत्माके भेदकी बुद्धि औ जगत्के मिथ्यापनैकी बुद्धि । क्या मंत्रके जपकी न्यांई वा मूर्तिके ध्यानकी न्यांई करनैकूं योग्य है अथवा औरप्रकारसैं करनैकूं योग्य है ?

६५) आत्माके देहादिकनतैं भेदका ज्ञान औ जगत्के मिथ्यापनैका अनुसंधान । जो पूर्व ११२ वें श्लोकविषै कहा सो मंत्रके जपकी न्यांई अरु देवताके ध्यानआदिककी न्यांई क्या नियमकरि अनुष्ठान करनैकूं योग्य है अथवा लौकिकव्यवहारकी न्यांई नियमसैं विना वी करनैकूं शक्य है? यह वादीका प्रश्न है ॥ ११३ ॥

॥ १६ ॥ दृष्टांतसहित नियमके अभावका प्रतिपादनरूप उत्तर ॥

६६ श्लोक ११२ उक्त तत्त्वभावनारूप निदिध्यासनकूं दृष्ट नाम प्रत्यक्षफलवाला होनैतैं इसविषै कोई वी नियम नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

६७] श्लोक ११२ उक्त तत्त्वकी भावना अन्यथा करनैकूं शक्य है ॥

ॐ ६७) इहां "अन्यथा" कहिये नियमविना करनैकूं शक्य है । यह अर्थ है ॥

६८ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं:—

६९] दृष्टअर्थवान् कहिये प्रत्यक्षफलवान् होनैतैं ॥

७० तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

७१] भोजनकी न्यांई ॥

७२ प्रत्यक्षफलवाले भोजनविषै वी श्रुतिस्मृतिकरि उक्तनियम देखियेहैं। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७३] भोजन करनैकूं इच्छता कोई वी पुरुष कहूं वी जपकी न्यांई नियमवान् हुवा भोजन नहीं करैहै ॥

७४) क्षुधाकी निवृत्तिवास्ते भोजन करनैकूं इच्छता पुरुष । जपकरताकी न्यांई नियमकरि भोजन नहीं करैहै किंतु जैसैं क्षुधाकी पीडाकी शांति होवै तैसैं भोजन करताहै । यह अर्थ है ॥ ११४ ॥

७६ अश्नाति वा न वाश्नाति भुंक्ते वा स्वेच्छयान्यथा ।
येन केन प्रकारेण क्षुधामपनिनीषति ॥ ११५ ॥
७९ नियमेन जपं कुर्यादकृतौ प्रत्यवायतः ।
८२ अन्यथाकरणेऽनर्थः स्वरवर्णविपर्ययात् ॥ ११६॥

७५ एतदेव प्रपंचयति—

७६] अश्नाति वा न वा अश्नाति वा अन्यथा स्वेच्छया भुंक्ते । येन केन प्रकारेण क्षुधां अपनिनीषति ॥

७७) अश्नाति वा । अन्ने सति कदाचिद्भुंक्ते । न वा अश्नाति तस्मिन्नसति क्षुद्बाधाविस्मारकद्यूतादिचेष्टया अनश्नन्नेव कालं नयति । अन्यथा वा तिष्ठन् गच्छन् शयानो वा स्वेच्छया भुंक्ते । एवं येन केन प्रकारेण तात्कालिकीं क्षुद्बाधामपनेतुमिच्छति ॥ अयमभिसंधिः । क्षुद्बाधानिवृत्तिलक्षणदृष्टफलाय भोजनमेव कार्यं । नियमास्तु परलोकहेतव इति ॥ ११५ ॥

७८ जपादौ भोजनाद्वैलक्षण्यं दर्शयति—

७९] नियमेन जपं कुर्यात् ॥

८० तत्र हेतुमाह—

८१] अकृतौ प्रत्यवायतः ॥

८२ भवत्वेवमकरणे प्रत्यवायश्च अन्यथाकरणे तु स नास्तीत्याशंक्याह—

---

७५ इस श्लोक ११४ उक्त दृष्टांतकूंहीं वर्णन करैहैंः—

७६] क्षुधावान्पुरुष भोजन करैहै वा भोजन नहीं करैहै वा औरप्रकारसैं अपनी इच्छाकरि भोजन करैहै । जिस किस प्रकारकरि भोजनइच्छारूप क्षुधाकी निवृत्तिकूं इच्छताहै ॥

७७) क्षुधावान्पुरुष । अन्नके होते कदाचित् भोजन करैहै अथवा अन्नके न होते क्षुधाकी पीडाके विस्मरण करावनैहारी जुवाआदिकचेष्टाकरि भोजनकूं नहीं करताहुयाहीं कालकूं गमावताहै अथवा औरप्रकारसैं बैठा वा चलता वा सोवताहुया अपनी इच्छाकरि भोजन करैहै । ऐसैं जिस किस प्रकारकरि तिसकालसंबंधी क्षुधाके दुःखकी निवृत्तिकूं इच्छताहै ॥ इहां यह गूढअभिप्राय हैः—क्षुधाके बाधाकी निवृत्तिरूप दृष्ट नाम अनुभवसिद्ध-फलके अर्थ भोजनहीं करनैकूं योग्य है औ श्रुति-स्मृतिविषै उक्तनियम तौ परलोकके हेतु हैं । क्षुधाजन्यदुःखकी निवृत्तिके हेतु नहीं ॥ ११५

॥ १७ ॥ जपादिकमैं भोजनरूप दृष्टांततैं विलक्षणता ॥

७८ जपआदिकविषै भोजनतैं विलक्षणता दिखावैहैंः—

७९] नियमकरि जपकूं करै ॥

८० तिस नियमकरि जपके करनैविषै कारण कहैहैंः—

८१] जपके नहीं कियेहुये प्रत्यवाय जो पाप ताकी उत्पत्तितैं ॥

८२ ऐसैं जपके अकरणविषै प्रत्यवाय होहु औ जपके अन्यथा करनैविषै तौ सो प्रत्यवाय नहीं है । यह आशंकाकरि कहैहैंः—

क्षुधेव दृष्टबाधाकृद्विपरीता च भावना ।
जेया केनाप्युपायेन नास्त्यत्रानुष्ठितेः क्रमः ११७

८३] अन्यथाकरणे स्वरवर्णविपर्ययात् अनर्थः ॥

८४) "मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेंद्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्" इत्युक्तत्वादिति भावः ॥ ११६ ॥

८५ ननु क्षुधाया दृष्टबाधाहेतुत्वात्तन्निवृत्तये अनियमेनापि भोक्तव्यमेव विपरीतभावनायास्तु तथात्वाभावात्तन्निवर्तकम् ध्यानमदृष्टफलाय नियमेनानुष्ठेयमित्याशंक्याह—

८६] क्षुधा इव विपरीता भावना च दृष्टबाधाकृत् । केन अपि उपायेन जेया । अत्र अनुष्ठितेः क्रमः न अस्ति॥

८७) विपरीतभावनाया दुःखहेतुत्वस्यानुभवसिद्धत्वादिति भावः ॥ ११७ ॥

८३] जपके अन्यथाकरणविषै स्वर औ वर्णके विपर्ययतैं अनर्थ होवैहै ॥

८४) " उच्चनीचआदियथोक्तरूपवाले स्वरतैं वा अक्षरतैं हीन जो मंत्र है । सो मिथ्याउच्चारकूं पायाहुया तिस वांछितअर्थकूं कहता नहीं औ सो वाणीरूप वज्र यजमानकूं नाश करताहै। जैसैं इंद्रका शत्रु जो वृत्रासुर सो स्वरके अपराधतैं ॥" ऐसैं शास्त्रविषै कथन कियाहोनैतैं जपके नियमविना करनैविषै स्वरवर्णके विपर्ययतैं अनर्थ होवैहै । यह भाव है॥११६॥

॥ १८ ॥ क्षुधाकी न्यांई विपरीतभावनाकूं दृष्टदुःखकी हेतुतापूर्वक ताके निवर्त्तकध्यानके अनुष्ठानमैं अनियम ॥

८५ ननु क्षुधाकी बाधाकूं दृष्टबाधाकी हेतु होनैतैं । तिसकी निवृत्तिअर्थ अनियमकरि वी भोजन करनैकूं योग्य है औ विपरीतभावनाकूं तौ दृष्टबाधाके हेतुपनैके अभावतैं तिस विपरीतभावनाका निवर्त्तक ध्यान । अदृष्ट नाम अप्रत्यक्षफलके अर्थ नियमकरि अनुष्ठान करनैकूं योग्य है । यह आशंकाकरि कहैहैंः—

८६] क्षुधाकी न्यांई विपरीतभावना वी प्रत्यक्षदुःखकी करनैहारी है। सो किसी वी उपायकरि जय करनैकूं योग्य है॥इसके जय करनैविषै अनुष्ठानका क्रम नहीं है ॥

८७) विपरीतभावनाकूं जो दुःखकी हेतुता है । ताकूं अनुभवसिद्ध होनैतैं तिसका निवर्त्तक ध्यान दृष्टदुःखकी निवृत्तिरूप दृष्टफलअर्थ नियमसैं विना अनुष्ठान करनैकूं योग्य है ॥ यह भाव है ॥ ११७ ॥

५५ "हे इंद्र! शत्रो वृद्धिकूं पाव" इस त्वष्टा (इस नामवाले सूर्य)करि उच्चारित मंत्रविषै इंद्रपदविषै उच्चस्वर औ शत्रुपदविषै नीचस्वरके उच्चारणरूप अपराधतैं तिस वृत्रासुरका इंद्रहीं शत्रु भया ॥

नृसिंहदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
७०२	८९उपायः पूर्वमेवोक्तस्तच्चिंताकथनादिकः । ९१एतदेकपरत्वेऽपि निर्बंधो ध्यानवन्न हि ॥ ११८ ॥	२५८८
७०३	९३मूर्तिप्रत्ययसांतत्यमन्यानंतरितं धियः । ध्यानं ९६तत्रातिनिर्बंधो मनसश्चंचलात्मनः ॥ ११९ ॥	टिप्पणांकः ॐ

८८ तर्हि स उपायः प्रदर्शनीय इत्याशंक्य पूर्वमेव प्रदर्शित इत्याह—

८९] **उपायः तच्चिंताकथनादिकः पूर्वं एव उक्तः ॥**

९० ननु जपवत् प्राङ्मुखत्वादिनियमो माभूत् ध्यानवदेतदेकपरत्वलक्षणैकाग्रतानिर्बंधोऽस्तीत्याशंक्याह—

९१] **एतदेकपरत्वे अपि ध्यानवत् निर्बंधः न हि ॥ ११८ ॥**

९२ ननु ध्यानस्य ध्येयचिंतामात्रात्मकत्वात् तत्र को निर्बंध इत्याशंक्य ध्याने निर्बंधं दर्शयितुं ध्यानस्वरूपं तावदाह (मूर्तीति)

९३] **धियः मूर्तिप्रत्ययसांतत्यं अन्यानंतरितं ध्यानम् ॥**

९४) **धियः** बुद्धेः । संबंधिनां **मूर्ति**प्रत्ययानां देवतादिमूर्तिगोचराणां प्रत्ययानां यत् **सांतत्यं** अविच्छिन्नतया वर्तमानत्वं तत् **अन्यानंतरितं** अन्येन विजातीयप्रत्ययेनाव्यवहितं सत् **ध्यानम्** इत्युच्यते ॥

९५ एवं ध्यानस्वरूपं निरूप्य तत्र निर्बंधं दर्शयति—

॥ १९ ॥ विपरीतभावनाकी निवृत्तिके पूर्व १०६ श्लोकउक्त उपायका अनुवाद ॥

८८ तब सो विपरीतभावनाका निवर्त्तक-उपाय दिखावनैकूं योग्य है । यह आशंकाकरि सो उपाय पूर्व १०६ श्लोकविषैहीं दिखायाहै । ऐसैं कहैहैंः—

८९] **सो उपाय तिस ब्रह्मके चिंतन-कथनादिरूप पूर्वहीं कह्याहै ॥**

९० ननु विपरीतभावनाकी निवृत्तिके उपायविषै "पूर्वदिशाके सन्मुख बैठना" इत्यादिकनियम मति होहु । परंतु मूर्तिआदिकके ध्यानकी न्यांई इसी एक ब्रह्मकी तत्परता नाम परायणतारूप एकाग्रताका नियम है । यह आशंकाकरि कहैहैंः—

९१] **इसी एकब्रह्मकी तत्परताविषै बी ध्यानकी न्यांई निर्बंध कहिये चित्तका निरोध नहीं है ॥ ११८ ॥**

॥२०॥ ध्यानका स्वरूप औ तामैं मनका निरोध॥

९२ ननु ध्यानकूं ध्येय जो ध्यानका विषय ताके चिंतनमात्ररूप होनैतैं तिस ध्यानविषै कौन निर्बंध है? यह आशंकाकरि ध्यानविषै निर्बंधके दिखावनैकूं ध्यानके स्वरूपकूं प्रथम कहैहैंः—.

९३] **बुद्धिके मूर्तिगोचर वृत्तिनका निरंतरपना जो है। सो अन्यवृत्तिनकरि अंतरायरहित हुवा ध्यान कहियेहै ॥**

९४) बुद्धिके संबंधी जे देवताआदिककी मूर्तिकूं विषय करनैहारियां वृत्तियां हैं । तिनका जो उच्छेदरहिततोकरि वर्त्तमानपना है। सो अन्य विजातीयप्रत्ययकरि अंतरायरहित हुया । ध्यान ऐसैं कहियेहै ॥

९५ ऐसैं ध्यानके स्वरूपकूं निरूपणकरिके तिसविषै निर्बंध जो नियम ताकूं दिखावैहैंः—

टीकांकः २५९६ टिप्पणांकः ॐ	९९ चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् । तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥१२०॥ अप्यब्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि । अपि वन्ह्यशनात्साधो विषमश्चित्तनिग्रहः ॥१२१॥	तृप्तिदीपः ॥७॥ श्लोकांकः ७०४ ७०५

९६] तत्र चंचलात्मनः मनसः अतिनिर्बंधः ॥

९७) सदा पर्यटनशीलस्य करितुरंगादेरेकत्र स्तंभादौ बंधने यथोपरोधः भवति तद्वदिति भावः ॥ ११९ ॥

९८ मनसश्चापल्यादौ गीतावाक्यं प्रमाणयति (चंचलमिति)—

९९] कृष्ण हि मनः चंचलं प्रमाथि बलवत् दृढं । तस्य निग्रहं वायोः इव अहं सुदुष्करं मन्ये ॥

२६००) प्रमाथि प्रमथनशीलं पुरुषस्य व्याकुलत्वकारणं । बलवत् समर्थमनिग्राह्यमित्यर्थः । दृढं सत्यसति वा विषये लग्नं । तत उद्धर्तुमशक्यमित्यर्थः । अतः तस्य मनसो निग्रहो वायोः निग्रह इव सुदुष्करः ॥ १२० ॥

१ मनसो दुर्निग्रहत्वे वासिष्ठवाक्यमपि प्रमाणयति (अपीति)—

२] साधो । अब्धिपानात् अपि महतः सुमेरोः उन्मूलनात् अपि वन्ह्यशनात् अपि चित्तनिग्रहः विषमः१२१

९६] तिस ध्यानविषै चंचलरूप मनका अतिशयनिरोध होवैहै ॥

९७) जैसैं सदा विचरनेके स्वभाववाले हस्ती औ तुरंगआदिकका एकठिकानै स्तंभादिकविषै बंधनसैं निरोध होवैहै । तैसैं ध्यानविषै चंचलरूप मनका बी निरोध होवैहै ॥ यह भाव है ॥ ११९ ॥

॥ २१ ॥ मनके चंचलताआदिकस्वभावमैं गीतावाक्य ॥

९८ मनकी चंचलताआदिकविषै गीताके षष्ठअध्यायगत ३४ वें श्लोकरूप वाक्यकूं प्रमाण करैहैं:—

९९] अर्जुन कहैहैः—"हे कृष्ण! जातैं मन चंचल प्रमाथि बलवान् औ दृढ है । यातैं तिस मनका निग्रह जो निरोध सो वायुके निग्रहकी न्याई मैं दुष्कर मानताहूं" ॥

२६००) हे कृष्ण! जातैं यह मन चंचल है औ प्रमाथि कहिये प्रकर्षकरि मथन करनैके स्वभाववाला पुरुषकूं व्याकुलताका कारण है औ बलवान् कहिये समर्थ नाम निग्रह करनैकूं अयोग्य है। यह अर्थ है॥ औ दृढ कहिये सत्असत्विषयके विषै आसक्त है । तातैं उद्धार करनैकूं अशक्य है । यह अर्थ है॥ यातैं तिस मनका निग्रह वायुके निग्रहकी न्याई दुःखसैं करनैकूं शक्य है ॥ १२० ॥

॥ २२ ॥ मनके दुःखकरि निग्रह होनेमैं वासिष्ठवाक्य ॥

१ मनकी दुःखसैं निग्रहकी योग्यताविषै वासिष्ठके वाक्यकूं बी प्रमाण करैहैं:—

२] "हे साधो कहियेरामजी! समुद्रके पानतैं बी औ बडे सुमेरुके मूलतैं उखाडनैतैं बी औ अग्निके भक्षणतैं बी चित्तका निग्रह विषम कहिये कष्टसाध्य है" ॥ १२१ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७०६ ७०७

कथनादौ न निर्बंधः शृंखलाबद्धदेहवत् ।
किंत्वनंतेतिहासाद्यैर्विनोदो नाट्यवद्धियः ॥१२२॥
चिदेवात्मा जगन्मिथ्येत्यत्र पर्यवसानतः ।
निदिध्यासनविक्षेपो नेतिहासादिभिर्भवेत् १२३

टीकांक: २६०३ टिप्पणांक: ॐ

३ प्रकृते ततो वैषम्यं दर्शयति—

४] कथनादौ शृंखलाबद्धदेहवत् निर्बंधः न ॥

५) शृंखलाबद्धदेहस्य यथा निर्बंधः । न तथा कथनादौ इत्यर्थः ॥ आदिशब्देन तच्चिंतनादिकं गृह्यते ॥

६ न केवलं निर्बंधाभावश्च प्रत्युत धियो विनोदः इत्याह—

७] किंतु अनंतेतिहासाद्यैः धियः विनोदः ॥

८) इतिहासः पूर्वेषां कथा आद्या येषां लौकिककथानुकूलयुक्तिदृष्टांतप्रदर्शनादीनां ते । असंख्याता अनंताः च ते इतिहासाद्याश्च इति अनंतेतिहासाद्याः तैः धियः बुद्धेः विनोदः क्रीडाविषयो भवति ॥

९ तत्र दृष्टांतः—

१०] नाट्यवत् ॥

ॐ १०) नृत्यक्रियानिरीक्षणमित्यर्थः १२२

११ ननु कथादिभिरपि तदेकपरत्वविघातः स्यादित्याशंक्याह (चिदेवेति)—

॥ २३ ॥ ब्रह्माभ्यासमैं ११९ श्लोक उक्त लक्षण ध्यानतैं विलक्षणता ॥

३ प्रकृत जो १०६ श्लोकसैं आरंभित विपरीतभावनाका निवर्त्तक निदिध्यासन तिसविषै । तिस ११९ श्लोकसैं उक्त ध्यानतैं विलक्षणता दिखावैहैं:—

४] कथनआदिकविषै शृंखला जो बेडी तिसकरि बद्धदेहकी न्याईं निरोध नहीं है ॥

५) शृंखलाकरि बद्धदेहका जैसैं निर्बंध कहिये निरोध होवैहै । तैसैं कथनआदिकविषै निर्बंध नहीं है। यह अर्थ है॥ इहां आदिशब्दकरि तिस ब्रह्मके चिंतनआदिक ग्रहण करियेहै ॥

६ ब्रह्मके कथनचिंतनआदिकविषै केवल निरोधका अभाव है ऐसैं नहीं । किंतु उलटा बुद्धिकूं विनोद होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

७] किंतु कहिये तौ क्या होवैहै? अनंतइतिहासआदिकनकरि बुद्धिकूं विनोद होवैहै ॥

८) इतिहास जो पूर्वके महत्पुरुषनकी कथा वे है आदि जिनोके। ऐसी जे लौकिककथा औ अनुकूलयुक्ति अरु दृष्टांतके दिखावनैआदिक सो कहिये इतिहासादिक औ अनंत जो इतिहासादिक सो कहिये अनंतइतिहासादिक । तिन अनंतइतिहासादिकनकरि बुद्धिकूं विनोद होवैहै ॥

९ तिस कथनादिकमैं होनैयोग्य बुद्धिके विनोदविषै दृष्टांत कहैहैं:—

१०] नाट्यकी न्याईं ॥

ॐ१०) इहां नृत्यकलाका देखना । यह अर्थ है ॥ १२२ ॥

॥ २४ ॥ ब्रह्माभ्यासमैं प्रवृत्तकूं कथादिककरि ब्रह्मविषै तत्परताका अविघात ॥

११ ननु कथाआदिककरि बी तिसी एकब्रह्मकी तत्परतारूप निदिध्यासनका भंग होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

टीकांकः २६१२ टिप्पणांकः ॐ	कृषिवाणिज्यसेवादौ काव्यतर्कादिकेषु च । विक्षिप्यते प्रवृत्त्या धीस्तैस्तत्त्वस्मृत्यसंभवात् १२४ अनुसंदधतैवात्र भोजनादौ प्रवर्तितुम् । शक्यतेऽत्यंतविक्षेपाभावादाशु पुनः स्मृतेः १२५	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७०८ ७०९

१२] "आत्मा चित् एव । जगत् मिथ्या" इति अत्र पर्यवसानतः इतिहासादिभिः निदिध्यासनविक्षेपः न भवेत् ॥

१३) इतिहासादीनां आत्मा चित् मात्ररूपो न देहादिरूपः। जगत् च मिथ्या इत्येतस्मिन्नर्थे पर्यवसानात् । नैतदेकपरत्वशब्दाभिधेयस्य निदिध्यासनस्य विक्षेप इत्यर्थः ॥ १२३ ॥

१४ नन्वितिहासानामंगीकारे कृष्यादेरपि प्रसक्तिः स्यादित्याशंक्याह—

१५] कृषिवाणिज्यसेवादौ च काव्यतर्कादिकेषु प्रवृत्त्या धीः विक्षिप्यते । तैः तत्त्वस्मृत्यसंभवात् ॥ १२४ ॥

१६ ननु कृष्यादीनां तत्त्वानुसंधानविघातित्वेन त्याज्यत्वे भोजनादेरपि तथात्वात्तदपि त्याज्यमेवेत्या शंक्याह—

१७] अनुसंदधता एव अत्र भोजनादौ प्रवर्तितुं शक्यते ॥

१८ कुत इत्यत आह—

१९] अत्यंतविक्षेपाभावात् ॥

१२] चेतनरूपहीं आत्मा है औ जगत् मिथ्या है। इस अर्थविषै पर्यवसानतैं इतिहासादिकनकरि निदिध्यासनका विक्षेप नहीं होवैहै ॥

१३) आत्मा चेतनमात्ररूप है। देहादिकरूप नहीं औ देहादिकरूप जगत् मिथ्या है। इस अर्थविषै इतिहासादिकनके तात्पर्यकरि वर्त्तनैतैं इतिहासादिकनकरि इसी एकपरताशब्दके वाच्य निदिध्यासनका भंग नहीं होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १२३ ॥

॥ २१ ॥ कृषिआदिक औ काव्यनाटकादिककरि तत्त्वके स्मरणका विरोध ॥

१४ ननु इतिहासनके अंगीकार किये कृषि जो खेती तिसआदिककी बी प्राप्ति होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१५] कृषिवाणिज्यसेवाआदिकविषै औ काव्यन्यायशास्त्रआदिकनविषै प्रवृत्तिकरि बुद्धि विक्षेपकूं पावतीहै । काहेतें तिन कृषिआदिकनकरि तत्त्वकी स्मृतिके असंभवतैं॥१२४

॥ २२ ॥ भोजनादिककरि तत्त्वके स्मरणका अविरोध ॥

१६ ननु कृषिआदिकनकी तत्त्वस्मरणके विघातीपनैकरि त्याज्यताके हुये भोजनादिकनकूं बी तैसैं तत्त्वस्मरणके विघातक होनैतैं सो भोजनादिक बी त्याज्यहीं है। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१७] तत्त्वके स्मरण करनैहारे पुरुषकरि इस भोजनादिकविषै प्रवृत्ति करनैकूं शक्यहीं है ॥

१८ काहेतैं? तहां कहैहैं:—

१९] भोजनादिकविषै प्रवृत्तिकरि अत्यंतविक्षेपके अभावतैं ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
७१०	[२३]तत्त्वविस्मृतिमात्रान्नानर्थः [२५]किंतु विपर्ययात् । [२६]विपर्येतुं न कालोस्ति झटिति स्मरतः क्वचित् ॥१२६॥	२६२०
७११	[२८]तत्त्वस्मृतेरवसरो नास्त्यन्याभ्यासशालिनः । [३१]प्रत्युताभ्यासघातित्वाद्बलात्तत्त्वमुपेक्ष्यते ॥ १२७ ॥	टिप्पणांक: ॐ

२० विक्षेपाभावोऽपि कुत इत्यत आह (आश्विति)—

२१] पुनः आशु स्मृतेः ॥ १२५ ॥

२२ ननु तदानीं विक्षेपाभावेऽपि तत्त्वविस्मृतिसद्भावात् पुरुषार्थहानिः स्यादित्याशंक्याह—

२३] तत्त्वविस्मृतिमात्रात् अनर्थः न ॥

२४ कुतस्तर्ह्यनर्थ इत्यत आह—

२५] किंतु विपर्ययात् ॥

२६ विस्मरणे सति विपर्ययोऽपि स्यादित्याशंक्याह (विपर्येतुमिति)—

२७] झटिति स्मरतः विपर्येतुं क्वचित् कालः न अस्ति ॥ १२६ ॥

२८ ननु भोजनादिषु प्रवृत्तस्येव तर्काद्यभ्यासप्रवृत्तस्यापि तत्त्वस्मरणं किं न स्यादित्याशंक्याह (तत्त्वस्मृतेरिति)—

२९] अन्याभ्यासशालिनः तत्त्वस्मृतेः अवसरः न अस्ति ॥

---

२० भोजनादिकविषै प्रवृत्तिकरि विक्षेपका अभाव बी काहेतैं है? तहां कहैहैं:—

२१] फेर भोजनादिकके पीछे तत्काल स्मृतिके होनैतैं ॥ १२५ ॥

२२ ननु तब भोजनादिककालविषै विक्षेपके अभाव हुये बी तत्त्वकी विस्मृतिके सद्भावतैं पुरुषार्थकी हानि होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२३] चिदात्मारूप तत्त्वकी देहादिकतैं भिन्नता औ जगत्के मिथ्यापनैकी विस्मृतिमात्रकरि पुरुषार्थकी हानिरूप अनर्थ नहीं होवैहै ।

२४ तब काहेतैं अनर्थ होवैहै? तहां कहैहैं:-

२५] किंतु विपरीतज्ञानतैं अनर्थ होवैहै ॥

२६ ननु भोजनादिकालविषै यथार्थवस्तुरूप तत्त्वके विस्मरण हुये विपर्यय बी होवैगा। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२७] पीछे तिसीकालविषै स्मरण करनैहारे मुमुक्षुकूं विपर्यय होनैके लिये कहूं बी अवकाश नहीं है ॥ १२६ ॥

॥ २७ ॥ न्यायादिअभ्यासमैं प्रवृत्तकूं तत्त्वस्मरणका असंभव ॥

२८ ननु भोजनादिकविषै प्रवृत्तभये पुरुषकी न्यांई तर्कशास्त्रआदिकके अभ्यासविषै प्रवृत्त भये पुरुषकूं बी तत्त्वका स्मरण क्यूं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२९] अन्यन्यायशास्त्रआदिकके अभ्याससयुक्तपुरुषकूं तत्त्वकी स्मृतिका अवसर नहीं है ॥

टीकांक: २६३० टिप्पणांक: ॐ	³³तमेवैकं विजानीथ ह्यन्या वाचो विमुंचथ । इति श्रुतं ³⁵तथान्यत्र वाचो विग्लापनं त्विति ॥१२८॥ ³⁶आहारादि त्यजन्नैव जीवेच्छास्त्रांतरं त्यजन् । किं न जीवसि येनैवं करोष्यत्र दुराग्रहम् ॥१२९॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७१२ ७१३

३० न केवलं तत्त्वानुसंधानावसराभाव एव किंतु काव्यतर्काद्यभ्यासस्य तत्वाभ्यासविरोधित्वात्तदानीं स्मृतमपि तत्त्वं बलादुपेक्ष्यत इत्याह—

३१] प्रत्युत अभ्यासघातित्वात् बलात् तत्त्वं उपेक्ष्यते ॥ १२७ ॥

३२ तत्त्वानुसंधानविरोधिवाग्व्यवहारस्य त्याज्यत्वे प्रमाणत्वेन "तमवैकं जानीथ आत्मानमन्या वाचो विमुंचथ अमृतस्यैष सेतुः" इति श्रुतिवाक्यमर्थतः पठति—

३३] "तम् एव एकं विजानीथ हि अन्याः वाचः विमुंचथ" इति श्रुतम्॥

३४ "नानुध्यायाद्बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्" इत्येतदपि वाक्यं श्रूयत इत्याह—

३५] तथा अन्यत्र वाचः विग्लापनं तु इति ॥ १२८ ॥

३६ ननु तत्त्वानुसंधानातिरिक्तमाहारादि यथा न त्यज्यत एवमितरशास्त्राद्यभ्यासोऽपि क्रियतामित्याग्रहं कुर्वाणं प्रत्याह—

३० न्यायशास्त्रआदिकके अभ्यासवान्-पुरुषकूं केवल तत्त्वअनुसंधानके अवसरका अभावहीं है ऐसैं नहीं । किंतु काव्यतर्कआदिकके अभ्यासकूं तत्त्वके अभ्यासका विरोधी होनैतैं तब काव्यतर्कादिकके अभ्यासकालमैं स्मरण हुया बी तत्त्व बलतैं उपेक्षा नाम विस्मरण करियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

३१] काव्यादिकके अभ्यासकूं उलटा तत्त्वअभ्यासका विघाती होनैतैं बलतैं तत्त्व उपेक्षा करियेहै ॥ १२७ ॥

॥ २८ ॥ न्यायादिकअभ्यासकूं तत्त्वस्मृतिके विरोधि होनैमैं श्रुतिप्रमाण ॥

३२ काव्यतर्कादिकके अभ्यासकूं तत्त्वके अनुसंधानका विरोधी होनैतैं तिसकी त्याज्यता है । तामैं प्रमाण होनैकरि "तिसीहीं एकआत्माकूं जानो । अन्यवाणीनकूं छोडो । यह आत्मा अमृत जो मरणभावरहितमोक्ष ताका सेतु नाम पांज है ।" इस श्रुतिवाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

३३] "तिसीहीं एककूं जानो । अन्यवाणीनकूं छोडो" ऐसैं श्रुतिविषै सुन्याहै ॥

३४ "बहुतशब्दनकूं चितवै नहीं । जातैं सो वाणीकूं विग्लापन कहिये श्रमका हेतु है" यह बी वाक्य सुनियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

३५] तैसैं अन्यश्रुतिविषै "वाणीकूं विग्लापन है" ऐसैं सुन्याहै ॥ १२८ ॥

॥ २९ ॥ वेदांततैं भिन्न शास्त्रअभ्यासमैं दुराग्रहीवादीके प्रति उत्तर ॥

३६ ननु तत्त्वके अनुसंधानतैं भिन्न आहारआदिक जैसैं नहीं त्याग करियेहै । ऐसैं वेदांततैं भिन्न शास्त्रादिकका अभ्यास बी करना । इस आग्रहकूं करनैहारे वादीकेप्रति कहैहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
७१४	³⁹जनकादेः कथं राज्यमिति चेद्दृढबोधतः । ⁴³तथा तवापि चेत्तर्कं पठ यद्वा कृषिं कुरु ॥१३०॥	२६३७
७१५	⁴⁵मिथ्यात्ववासनादार्ढ्ये प्रारब्धक्षयकांक्षया । अक्लिश्यंतः प्रवर्तंते स्वस्वकर्मानुसारतः ॥ १३१॥	टिप्पणांक: ॐ

३७] आहारादि त्यजन् न एव जीवेत् । शास्त्रांतरं त्यजन् किं न जीवसि । येन एवं अत्र दुराग्रहं करोषि ॥ १२९ ॥

३८ ननु तर्हि जनकादीनां तत्त्वविदामपि कथं राज्यपरिपालनादौ प्रवृत्तिरिति शंकते—

३९] जनकादेः राज्यं कथं इति चेत्

४० दृढापरोक्षज्ञानित्वात्तेषां सा न बाधिकेत्यभिप्रायेण परिहरति—

४१] दृढबोधतः ॥

४२ तर्हि ममापि दृढबोधोस्तीति वदंतं प्रत्याह (तथेति)—

४३] तव अपि तथा चेत् । तर्कं पठ यद्वा कृषिं कुरु ॥ १३० ॥

४४ ननु तत्त्वविदः संसारासारतां जानंतः कुतस्तत्र प्रवर्तिष्यंत इत्याशंक्य प्रारब्धस्यावश्यंभाविफलकत्वाद्भोगेन तत्तत्क्षयाय प्रवृत्तिरित्याह—

४५] मिथ्यात्ववासनादार्ढ्ये प्रारब्धक्षयकांक्षया अक्लिश्यंतः स्वस्वकर्मानुसारतः प्रवर्तंते ॥ १३१ ॥

३७] आहारआदिककूं त्यागताहुया पुरुष जीवै नहीं औ अन्यशास्त्रकूं त्यागताहुया तूं क्या नहीं जीवताहै? जिस हेतुकरि ऐसैं इस न्यायादिअन्यशास्त्रविषै दुराग्रह करताहै ॥ १२९ ॥

॥ ३० ॥ जनकादिकज्ञानीके राज्यपालनमैं शंकासमाधान ॥

३८ ननु तब जनकादिकतत्त्वविदनकूं बी राज्यपरिपालनआदिकविषै प्रवृत्ति कैसैं भई? इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैः—

३९] जनकादिककूं राज्य कैसैं भया। ऐसैं जो कहै ।

४० दृढअपरोक्षज्ञानी होनैतैं तिन जनकादिकनकूं सो राज्यपालनादिकविषै प्रवृत्ति बाध करनैहारी नहीं भई। इस अभिप्रायकरि सिद्धांती परिहार करैहैः—

४१] तौ दृढबोधतैं जनकादिककूं राज्य भया ॥

४२ तब मेरेकूं बी दृढबोध है। ऐसैं कहनैहारे वादीकेप्रति सिद्धांती कहैहैः—

४३] तेरेकूं बी जो तैसैं दृढबोध होवै तौ तर्ककूं पठन कर यद्वा खेतीकूं कर ॥ १३० ॥

॥ ३१ ॥ तत्त्ववित्की असारसंसारमैं प्रवृत्तिकी शंकाका समाधान ॥

४४ ननु तत्त्ववित् जे हैं । वै संसारकी असारताकूं जानतेहुये काहेतैं तिस संसारविषै प्रवृत्ति करैंगे? यह आशंकाकरि प्रारब्धकूं अवश्य होनैहारे फलवाला होनैतैं भोगकरि तिस तिस प्रारब्धकर्मके क्षयअर्थ तत्त्वविदनकी प्रवृत्ति होवैगी । ऐसैं कहैहैः—

४५] संसारके मिथ्यापनैकी वासनाकी दृढताके होते प्रारब्धके क्षयकी इच्छाकरि क्लेशकूं नहीं पावतेहुये । अपनै अपनै कर्मके अनुसारतैं विद्वान् प्रवृत्तिकूं करैहै ॥ १३१ ॥

टीकांक: २६४६ टिप्पणांक: ६५६	अतिप्रसंगो मा शंक्यः स्वकर्मवशवर्तिनाम् । अस्तु वा कोऽत्र शक्येत कर्म वारयितुं वद १३२ ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चात्र समे प्रारब्धकर्मणी । न क्लेशो ज्ञानिनो धैर्यान्मूढः क्लिश्यत्यधैर्यतः १३३	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७१६ ७१७

४६ तर्ह्यनाचारेपि प्रवृत्तिः स्यादित्याशंक्याह (अतिप्रसंग इति)—

४७] **स्वकर्मवशवर्तिनाम् अतिप्रसंगः मा शंक्यः ॥**

४८ प्रारब्धवशादेवातिप्रसंगोऽपि स्यादित्याशंक्यांगीकरोति (अस्त्विति)—

४९] **वा अस्तु । कः अत्र कर्म वारयितुं शक्येत वद ॥ १३२ ॥**

५० ननु ज्ञान्यज्ञानिनोः प्रारब्धकर्मण्यवश्यभोक्तव्यतया समाने तयोः कुतो वैलक्षण्यसिद्धिरित्याशंक्याह—

५१] **ज्ञानिनः च अज्ञानिनः अत्र प्रारब्धकर्मणी समे ज्ञानिनः धैर्यात् क्लेशः न । मूढः अधैर्यतः क्लिश्यति ॥ १३३ ॥**

॥ ३२ ॥ तत्त्वज्ञानीकी अनाचारमैं प्रवृत्तिकी शंकाका समाधान ॥

४६ ननु तब विद्वानोंकी अनाचारविषै वी प्रवृत्ति होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४७] **अपनै कर्मके वशवर्त्ति ज्ञानीनकूं अतिप्रसंग होवैगा । यह शंका मत्त कर ॥**

४८ ज्ञानीकूं प्रारब्धके वशतैंहीं अनाचारमैं प्रवृत्तिकरि मर्यादाका उल्लंघन वी होवैगा । यह आशंकाकरि अंगीकार करैहैं:—

४९] **वा प्रारब्धके वशतैं अतिप्रसंग होहु। कौंन इहां कर्म जो तीव्रप्रारब्ध ताके वारनैकूं समर्थ होवैगा? सो कैथन कर ॥ १३२ ॥**

॥ ३३ ॥ ज्ञानीअज्ञानीकूं प्रारब्धके तुल्य हुये वी तिनकूं क्रमतैं अक्लेश औ क्लेश ॥

५० ननु ज्ञानीअज्ञानी दोनूंके प्रारब्धकर्मकूं अवश्य भोगनैयोग्य होनैकरि समान हुये तिन ज्ञानी औ अज्ञानीके विलक्षणताकी सिद्धि काहेतैं है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५१] **ज्ञानी औ अज्ञानीके इस प्रारब्धकर्मके समान हुये वी ज्ञानीकूं धैर्यतैं क्लेश नहीं है औ मूढअज्ञानी अधैर्यतैं क्लेशकूं पावताहै ॥ १३३ ॥**

५६ जैसैं मनुष्यमात्रकूं मलभक्षणविषै प्रवृत्ति होनी यह अतिप्रसंग है। परंतु अतिमंदप्रारब्धके वशतैं कोइ विरल-अघोरमंत्रसाधकपुरुषकी प्रवृत्ति होवै । वा विषभक्षणादिद्वारा अपनै मरणविषै कोइकी प्रवृत्ति होवै तौ इहां कर्मका निवारक कौन है? तैसैं सर्वोत्कृष्टब्रह्मानंदमैं निमग्न ज्ञानीकी लोकनिंदितदुराचारमैं प्रवृत्ति होनि अतिप्रसंग (मर्यादाका उल्लंघन) है। तथापि अतिशयपापरूप प्रारब्धके वशतैं कोइकी दुराचारमैं वी प्रवृत्ति होवै तौ इस अतिप्रसंगके कारण कर्मका निवारक कौन होवैगा? कोइ वी नहीं ॥ इस प्रारब्धके माहात्म्यका प्रमाणसहित वर्णन आगे देखो अंक २७११–२७४१ विषै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
७१८	५३ मार्गे गंत्रोर्द्वयोः श्रांतौ समायामप्यदूरताम् । जानन्धैर्याद्द्रुतं गच्छेदन्यस्तिष्ठति दीनधीः १३४	२६५२
७१९	५५ साक्षात्कृतात्मधीः सम्यगविपर्ययबाधितः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥१३५	टिप्पणांक: ॐ

५२ तत्र दृष्टांतमाह—

५३] मार्गे गंत्रोः द्वयोः श्रांतौ समायाम् अपि अदूरताम् जानन् धैर्यात् द्रुतं गच्छेत् । अन्यः दीनधीः तिष्ठति ॥ १३४ ॥

५४ इत्थमुपपादितं "आत्मानं चेत्" इति मंत्रस्य पूर्वार्धार्थं अनुवदन् फलप्रदर्शनपरमुत्तरार्धमवतारयति (साक्षादिति)—

५५] सम्यक् साक्षात्कृतात्मधीः अविपर्ययबाधितः किम् इच्छन् कस्य कामाय शरीरं अनुसंज्वरेत् ॥

५६) सम्यक् साक्षात्कृतात्मधीः साक्षात्कृत आत्मा यया सा साक्षात्कृतात्मा । तादृशी धीर्यस्य सः साक्षात्कृतात्मधीः । अविपर्ययबाधितः विपर्ययेण देहाद्यात्मत्वबुद्ध्या बाधितो न भवतीत्यविपर्ययबाधितः । उभयं हेतुगर्भितं विशेषणम् ॥ १३५ ॥

॥ ३४ ॥ श्लोक १३३ उक्त अर्थमैं दृष्टांत ॥

५२ तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

५३] मार्गविषै गमन करनैहारे दोनूं पुरुषनकूं श्रमके समान हुये बी एकपुरुष वांछितदेशकी अदूरताकूं जानताहुया धैर्यतैं शीघ्र चलताहै औ दूसरा वांछितदेशकी अदूरताकूं नहीं जाननैहारा पुरुष । दीनबुद्धिवाला हुया तहांहीं बैठताहै ॥ १३४ ॥

॥ ३५ ॥ प्रथमश्लोकउक्तश्रुतिके पूर्वार्द्धका अनुवाद औ फल दिखावनैपर उत्तरार्द्धका अवतार ॥

५४ ऐसैं उपपादन किया जो "आत्माकूं जब जानै" इस वेदमंत्रके पूर्वार्द्धका अर्थरूप अपरोक्षज्ञान । ताकूं फेरी कथन करतेहुये शोकनिवृत्तिरूप फलके दिखावनैके परायण उत्तरार्द्धकूं प्रगट करैहैं:—

५५] सम्यक्आत्माके साक्षात्कारकरि युक्त बुद्धिवाला अरु विपर्ययकरि अबाधित जो पुरुष है सो किस भोग्यकूं इच्छताहुया किस भोक्ताके भोगअर्थ शरीरके पीछे संतापकूं पावै॥

५६) सम्यक्प्रकारसैं अपरोक्ष कियाहै आत्मा जिसनैं। ऐसी जो बुद्धि। तिसकरि युक्त औ देहादिकविषै आत्मभावकी बुद्धिरूप विपर्ययकरि बाधित होवै नहीं । ये दोनूं हेतुगर्भित ज्ञानीके विशेषण हैं ॥ १३५ ॥

टीकांक: २६५७ टिप्पणांक: ॐ	[५८]जगन्मिथ्यात्वधीभावादाक्षिप्तौ काम्यकामुकौ । [६१]तयोरभावे संतापः शाम्येन्निःस्नेहदीपवत् ॥१३६॥ [६४]गंधर्वपत्तने किंचिन्नैंद्रजालिकनिर्मिते । जानन्कामयते किंतु जिहासति हसन्निदम् १३७	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७२० ७२१

५७ अस्य मंत्रार्थस्य तात्पर्यमाह—

५८] जगन्मिथ्यात्वधीभावात् काम्यकामुकौ आक्षिप्तौ ॥

५९) काम्यं च कामुकश्च काम्यकामुकौ तौ आक्षिप्तौ निरस्तौ । तन्निराकरणे कारणमाह जगन्मिथ्यात्वेति ॥

६० ततः किमित्यत आह—

६१] तयोः अभावे निःस्नेहदीपवत् संतापः शाम्येत् ॥

६२) तयोः काम्यकामुकयोः अभावे संतापः कामनानिमित्तकः कारणाभावात् निःस्नेहदीपवत् शाम्येत् इत्यर्थः॥१३६॥

६३ काम्याभावात्कामनाऽभावः क्व दृष्टः इत्याशंक्याह (गंधर्वेति)—

६४] ऐंद्रजालिकनिर्मिते गंधर्वपत्तने किंचित् जानन् न कामयते। किंतु इदं हसन् जिहासति ॥

॥ ३ ॥ "किसकूं इच्छताहुआ" इस प्रथमश्लोकउक्तश्रुतिपदके अर्थ (भोग्यविषयनके अभाव)तें इच्छानिमित्तसंतापका अभाव ॥ २६५७—२८५७ ॥

॥ १ ॥ भोग्यनमैं दोषदृष्टिपूर्वक भोगकी इच्छाका अभाव ॥ २६५७—२६७८ ॥

॥ १ ॥ प्रथमश्लोकउक्तश्रुतिके उत्तरार्धका तात्पर्य ॥

५७ इस १३९ श्लोकउक्तवेदमंत्रके उत्तरार्द्धके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

५८] जगत्के मिथ्यापनैकी बुद्धिके भावतें कामनाका विषय औ कामनाका कर्त्ता दोनूं निरास किये ॥

५९) काम्य जे भोग्यरूप विषय औ कामुक जे भोगकी इच्छावाला भोक्ता। वे दोनूं निराकरण किये ॥ तिनके निराकरणविषै हेतुकूं कहैहैं:—जगत्के मिथ्यापनैकी बुद्धिके होनैतें॥

६० तिस भोग्य औ भोक्ताके निषेधतें क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

६१] तिन दोनूंके अभाव हुये तैलरहित दीपकी न्यांई संताप निवृत्त होवैहै ॥

६२) तिन काम्य औ कामुकके अभाव हुये कामनारूप निमित्तका किया जो संताप है। सो कारणके अभावतें तैलरहित दीपककी न्यांई निवृत्त होवैहै । यह अर्थ है ॥ १३६ ॥

॥ २ ॥ काम्यविषयके अभावतें कामनाके अभावमैं दृष्टांत ॥

६३ कामनाके विषय भोग्यके अभावतें कामना जो इच्छा। ताका अभाव कहां देख्याहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६४] इंद्रजालिककरि रचित गंधर्वनगरविषै कछुकवस्तुकूं वी जानताहुया पुरुष कामना नहीं करैहै । किंतु इसकूं हसताहुया त्यागनैकूं इच्छताहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७२२

ॐ आपातरमणीयेषु भोगेष्वेवं विचारवान् ।
नानुरज्यति किंत्वेतान्दोषदृष्ट्या जिहासति १३८

टीकांकः २६६५

ॐ अर्थानामर्जने क्लेशस्तथैव परिपालने ।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान्क्लेशकारिणः १३९

७२३ टिप्पणांकः ६५७

६५) मायाविनिर्मिते पत्तने स्थितं वस्तु किंचित् अपि इदं ऐंद्रजालिकनिर्मितमिति जानन्न कामयते । न केवलं कामनाभावः प्रत्युत इदं अनृतमिति हसञ्जिहासति परित्यक्तुमिच्छति ॥ १३७ ॥

६६ दार्ष्टांतिके योजयति (आपातेति)

६७] **एवं आपातरमणीयेषु भोगेषु विचारवान् न अनुरज्यति किंतु एतान् दोषदृष्ट्या जिहासति ॥**

६८) एवमापातरमणीयेषु प्रतीतिमात्ररम्येषु । भोगेषु भुज्यंत इतिभोगा विषयाः स्रक्चंदनवनितादयः तेषु । एवं **विचारवान्** । आपातरमणीयत्वानुसंधानवान् । **नानुरज्यति** नासक्तिं करोति । **किंतु** दोषदर्शनेन एतान् परित्यक्तुमिच्छति ॥ १३८ ॥

६९ के ते विषयदोषा इत्यत आह—

७०] **अर्थानां अर्जने क्लेशः । तथा एव परिपालने । नाशे दुःखं व्यये दुःखं । क्लेशकारिणः अर्थान् धिक्** १३९

६५) मायावीकरि रचित नगरविषै स्थित किंचित्वस्तुकूं बी "यह ऐंद्रजालिककरि रचित है" ऐसैं जानताहुया पुरुष कामना नहीं करैहै औ केवल कामनाका अभाव है ऐसैं नहीं । किंतु उलटा यह "मिथ्या है" ऐसैं जानताहुया त्याग करनैकूं इच्छताहै ॥ १३७ ॥

॥ ३ ॥ दृष्टांतसिद्धअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

६६ दृष्टांतविषै उक्तअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

६७] **ऐसैं आपात** कहिये दोषदृष्टिपर्यंत **रमणीयभोगनविषै विचारवान्पुरुष अनुरागकूं पावता नहीं । किंतु इन भोगनकूं दोषदृष्टिकरि त्यागनैकूं इच्छताहै ॥**

६८) ऐसैं प्रतीतिमात्ररम्य जे मालाचंदन औ वनिताआदिकविषयरूप भोग हैं । तिनविषै ऐसै विचारवाला कहिये आपातरमणीयपनैके अनुसंधानवाला पुरुष । अनुराग जो आसक्ति ताकूं करता नहीं । किंतु दोषनके देखनैकरि इन भोगनकूं त्याग करनैकूं इच्छताहै ॥ १३८ ॥

॥ ४ ॥ विषयनके दोषनका वर्णन ॥

६९ कौन वे विषयनके दोष हैं? तहां कहैहैं:—

७०] **अर्थ** जे विषय तिनके **संपादनविषै क्लेश है । तैसैंहीं रक्षाविषै क्लेश है औ नाशविषै दुःख है औ खर्चनैविषै दुःख है । यातैं क्लेशकारिअर्थ** जे विषय तिनकूं **धिक्कार है** ॥ १३९ ॥

५७ इहां अर्थशब्दकरि धन औ धनकरि साध्य विषयनका ग्रहण है ॥ श्रीमद्भागवतके एकादशस्कंधगत त्रयोविंशतिमअध्यायमैं बी कह्याहै:— अर्थके साधनमैं । सिद्ध भये अर्थमैं । उत्कर्ष (बढनै) मैं । रक्षणमैं । व्यय (खर्च)मैं । नाशमैं औ उपभोगमैं । मनुष्यनकूं (१) आयास (खेद) (२) त्रास (३) चिंता औ (४) भ्रम होवैहै ॥

(१) साधन औ वर्द्धनमैं आयास होवैहै औ

(२) सिद्धअर्थके रक्षणमैं त्रास (भय) होवैहै औ

टीकांकः २६७१ टिप्पणांकः ६५८	⁷²मांसपांचालिकायास्तु यंत्रलोलेऽगपंजरे। स्नाय्वस्थिग्रंथिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम् ४० ⁷⁴एवमादिषु शास्त्रेषु दोषाः सम्यक् प्रपंचिताः। विमृशन्ननिशं तानि कथं दुःखेषु मज्जति ॥१४१॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७२४ ७२५

७१ एवं विषयाणां दुःखहेतुत्वं प्रदर्श्याशोभनत्वं कचिद्दर्शयति (मांसेति)—

७२] स्नाय्वस्थिग्रंथिशालिन्याः मांसपांचालिकायाः स्त्रियाः यंत्रलोले अंगपंजरे किं शोभनं इव ॥

७३) स्नायवः शिराश्च । अस्थीनि प्रसिद्धानि । ग्रंथयः मांसनिचयरूपनितंबस्तनादयः । एतैश्च सहिते । मांसपांचालिकायाः पुत्तलिकाया योषितः । यंत्रलोले यंत्रवच्चंचलशीले । अंगपंजरे अंगान्येव पंजरं नीडं तस्मिन् । शरीरे किं शोभनमिव न किमपीत्यर्थः ॥ १४० ॥

७४] एवमादिषु शास्त्रेषु दोषाः सम्यक् प्रपंचिताः । तानि अनिशं विमृशन् कथं दुःखेषु मज्जति ॥

७५) एवमादिषु । इत्यादिशब्देन "त्वङ्मांसरक्तबाष्पांबु पृथक् कृत्वा विलोचने

---

७१ ऐसैं विषयनकूं दुःखकी हेतुता दिखायके अब तिनके अशोभनपनैकूं ⁵⁸प्रधानस्थलविषै दोश्लोककरि कहिके दिखावैहैः—

७२] नाडी । अस्थि औ मांसकी ग्रंथिकरि युक्त मांसकी पूतली स्त्रीके यंत्रकी न्यांई चंचलअंगपंजरविषै क्या शोभनकी न्यांई है?

७३) स्नायु जे नाडीयां औ हाड प्रसिद्ध हैं औ ग्रंथि जो मांसके समूहरूप कटिपश्चात्भाग औ स्तनआदिक हैं। इनकरि सहित जो मांसकी पुतलिकारूप स्त्रीका यंत्रकी न्यांई चंचलस्वभाववाला अंगपंजर है। कहिये अंगरूपहीं मानो विषयीपुरुषरूप पक्षीके निवासका स्थान पिंजरा है । तिस स्त्रीके शरीरविषै शोभावानकी न्यांई क्या है? कछु बी नहीं है। यह अर्थ है ॥ १४० ॥

७४] इससैं आदिलेके शास्त्रनविषै विषयनके दोष सम्यक् वर्णन कियेहैं । तिनकूं निरंतर विचारताहुया पुरुष कैसैं दुःखनविषै मग्न होवै?

७५) इससैं आदिलेके शास्त्रनविषै इहां आदिशब्दकरि "त्वचा मांस रक्त औ अश्रुके

---

(३) व्ययमैं अरु उपभोगमैं चिंता होवैहै औ
(४) नाशमैं भ्रम होवैहै ॥

अर्थकी प्राप्तिके वास्ते चोरी। हिंसा। असत्यभाषण। दंभ। कामना औ क्रोध। ये षट्अनर्थ हैं॥ औ प्राप्तअर्थविषै गर्व। मद (अभिमान)। भेद (स्नेहका त्याग)। वैर। अविश्वास। स्पर्धा (परसुखका असहन) औ स्त्री। द्यूत अरु मद्य। इन तीनकूं विषय करनैवाले तीनव्यसन । ये नवअनर्थ हैं ॥ ऐसैं पंचदशअनर्थ होवैं तब एकअर्थ सिद्ध होवैहै ॥ यातैं यह अर्थ अनर्थका मूल है ॥

५८ जैसैं अनेकमल्लनविषै प्रधानमल्लके पराजयतैं सर्वका पराजय होवैहै। तैसैं व्यतीत भये सर्वजन्मविषै स्त्रीपुरुषका सहवास होवैहै। तिसतैं जन्य प्रबलवासनातैं औ स्त्रीविषै शब्द (स्वर)। स्पर्श (आलिंगन)। रूप (वस्त्रभूषणादिक)। रस (मुखचुंबनआदिक)। गंध (फुलेलआदिक) । इन पांचविषयनकी प्राप्तितैं स्त्रीरूप विषय सर्वविषयनमैं प्रधान (मुख्य) है औ अन्यविषय तिसके उपकरण (साधन) हैं ॥ यातैं स्त्रीविषै दोषदृष्टिकरि वैराग्यके उदय भये सर्वविषयनविषै वैराग्य होवैहै। यातैं स्त्रीविषै दोषदृष्टिअर्थ अशोभनपनैकूं दिखावैहैं ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
७२६	क्षुधया पीड्यमानोऽपि न विषं ह्यत्तुमिच्छति । मिष्टान्नध्वस्ततृड् जानन्नामूढस्तज्जिघत्सति १४२	२६७६
७२७	प्रारब्धकर्मप्राबल्याद्भोगेष्विच्छा भवेद्यदि । क्लिश्यन्नेव तदाप्येष भुंक्ते विष्टिगृहीतवत् ॥१४३॥	टिप्पणांक: ६५९

समालोकय रम्यं चेत् किं मुधा परिमुह्यसि" इत्येवमादयो गृह्यंते ॥ १४१ ॥

७६ विषयदोषदर्शने सति भोगेच्छाभावे युक्तिसहितं दृष्टांतमाह—

७७] क्षुधया पीड्यमानः अपि विषं अत्तुं न हि इच्छति । अमूढः मिष्टान्नध्वस्ततृट् जानन् तत् न जिघत्सति ॥

७८) स्वयं अमूढः विवेकी । मिष्टान्नभोजनेन ध्वस्ता विनष्टा तृट् तृष्णा आकांक्षा यस्य स तथोक्तः। इदं विषं। इत्येवं जानन् तत् विषं न जिघत्सति नात्तुम् इच्छतीत्यर्थः ॥ १४२ ॥

७९ ननु प्रारब्धकर्मणः प्रबलत्वात् ज्ञानिनोऽपीच्छा भवेदित्याशंक्य सत्यामपीच्छायां प्रीतिपुरःसरं न भुंक्त इत्याह (प्रारब्धेति)—

८०] यदि प्रारब्धकर्मप्राबल्यात् भोगेषु इच्छा भवेत् । तदा अपि एषः विष्टिगृहीतवत् क्लिश्यन् एव भुंक्ते१४३

जल । इनकूं भिन्नकरिके देखेहुये जो रमणीक होवै तौ सम्यक् देख । क्या वृथामोहकूं पावताहै?"इसआदिक अन्यशास्त्रउक्तविषयनके दोष ग्रहण करियेहैं ॥ १४१ ॥

॥ ९ ॥ विषयमैं दोषदृष्टिके हुये भोगइच्छाके अभावमैं युक्तिसहित दृष्टांत ॥

७६ विषयविषै दोषदर्शनके हुये भोगइच्छाके अभावविषै युक्तिसहित दृष्टांत कहैहैं:—

७७] क्षुधाकरि पीडाकूं पावताहुया बी जो पुरुष है।सो विषकूं भक्षण करनेकूं इच्छता नहीं । तब मिष्टान्नभोजनकरि नाश भईहै तृष्णा जिसकी । ऐसा जो अमूढपुरुष है सो विषकूं जानताहुया तिसके खानेकूं इच्छता नहीं । इसविषै क्या कहनाहै ॥

७८) आप अमूढ कहिये विवेकी औ मिष्टान्नके भोजनकरि नाश भईहै तृष्णा जिसकी ऐसा पुरुष "यह विष है" ऐसैं जानताहुया तिस विषकूं भक्षण करनेकूं इच्छता नहीं ॥ ऐसैं विषयनविषै दोषदृष्टिके भये भोगकी इच्छा होवै नहीं । यह अर्थ है ॥ १४२ ॥

॥ २ ॥ ज्ञानीकूं प्रीतिसैं विना प्रारब्धभोग ॥ २६७९—२७०३ ॥

॥ १ ॥ प्रबलप्रारब्धसैं इच्छाके हुये ज्ञानीकूं क्लेशपूर्वक भोग ॥

७९ ननु प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं ज्ञानीकूं बी इच्छा होवैगी । यह आशंकाकरि इच्छाके होते बी प्रीतिपूर्वक ज्ञानी भोगता नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

८०] जब प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं ज्ञानीकूं भोगनविषै इच्छा होवै । तब बी यह ज्ञानी विष्टिगृहीतकी न्यांई क्लेशकूं पावताहुयाहीं भोगताहै ॥१४३

---

५९ इहां आदिशब्दकरि वासिष्ठका प्रथमप्रकरण औ आत्मपुराणका प्रथमअध्याय औ अध्यात्मरामायणके प्रकरण। इत्यादिशास्त्रविषै उक्त दोषनका ग्रहण है ॥

६० जैसैं कोइ राजाकरि बलसैं धऱ्या पुरुष । परवश हुया अप्रीतिकरि कार्यविषै जुडताहै । तैसैं ज्ञानी प्रारब्धकरि प्रीतिसैं विना भोगकूं भोगताहै ॥

टीकांक: २६८१ टिप्पणांक: ॐ	८२ भुंजानाना अपि बुधाः श्रद्धावंतः कुटुंबिनः । नाद्यापि कर्म नश्छिन्नमिति क्लिश्यंति संततम्॥१४४॥ नायं क्लेशोऽत्र संसारतापः किंतु विरक्तता । भ्रांतिज्ञाननिदानो हि तापः सांसारिकः स्मृतः॥१४५॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७२८ ७२९

८१ कथमेतदवगम्यते इत्याशंक्य लोकदर्शनादित्याह (भुंजानाना इति)—

८२] **श्रद्धावंतः कुटुंबिनः बुधाः भुंजानाना अपि "अद्य अपि नः कर्म न छिन्नम्" इति संततं क्लिश्यंति॥१४४**

८३ ननु तत्त्वविदां संसारनिमित्तकस्तापोऽनुपपन्नः ज्ञानवैयर्थ्यापातादित्याशंक्याह (नायमिति)—

८४] **अयं क्लेशः संसारतापः न । किंतु अत्र विरक्तता ॥**

८५) अयं क्लेशः "नाद्यापि कर्म नश्छिन्नम्" इत्येवमनुतापात्मकः **संसारतापो न** भवति । **किंत्वत्र** संसारे **विरक्तता** आसक्तिरहितता ॥

८६ तापकत्वाभावे युक्तिमाह (भ्रांतीति)

८७] **हि सांसारिकः तापः भ्रांतिज्ञाननिदानः स्मृतः ॥**

८८) हि यस्मात्कारणात् । **सांसारिकस्तापो भ्रांतिज्ञाननिदानः** भ्रांतिज्ञानकारणकः **स्मृतः** पूर्वाचार्यैः । अयं तु विवेकज्ञानमूलत्वान्न तथाविध इत्यर्थः ॥१४५॥

८१ ज्ञानी क्लेशकूं पावताहुयाहीं भोगता है । यह कैसैं जानियेहै? यह आशंकाकरि लोकविषै देखनैतैं जानियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

८२] गुरुशास्त्रकरि उपदेश किये ब्रह्मविचारविषै **श्रद्धावान् औ कुटंबी** कहिये गृहस्थ जे **ज्ञानी हैं । वे भोगनकूं भोगतेहुये बी "अजहूं हमारे कर्म नाश भये नहीं" ऐसैं चित्तविषै सदा क्लेशकूं करैहैं॥१४४॥**

॥ २ ॥ ज्ञानीकूं भोगनमैं जो क्लेश सो वैराग्य है। संसारताप नहीं ॥

८३ ननु तत्त्ववेत्तापुरुषनकूं संसारनिमित्तका किया ताप अयुक्त है । काहेतैं ज्ञानके व्यर्थताकी प्राप्तितैं॥ यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८४] **यह क्लेश संसारका ताप नहीं है । किंतु इस संसारविषै विरक्तता है॥**

८५) "अजहूं बी हमारे कर्म नाश भये नहीं" इस आकारवाला यह पश्चात्तापरूप क्लेश संसारका ताप नहीं है । किंतु इस संसारविषै आसक्तिरहिततारूप विरक्तता है ॥

८६ श्लोक १४४ उक्त क्लेशकी तापरूपताके अभावविषै युक्ति कहैहैं:—

८७] **जातैं संसारका ताप भ्रांतिज्ञानरूप कारणवाला कहाहै ॥**

८८) जिसकारणतैं संसारका किया ताप भ्रांतिज्ञानरूप कारणवाला पूर्वाचार्योंनैं कहाहै औ यह १४४ श्लोकउक्तक्लेश तौ विवेकज्ञानरूप कारणवाला होनैतैं तिस प्रकारका कहिये भ्रांतिज्ञानसैं जन्य संसारका ताप नहीं है । यह अर्थ है ॥ १४५ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		
७३०	[९०] विवेकेन परिक्लिश्यन्नल्पभोगेन तृप्यति । अन्यथानंतभोगेऽपि नैव तृप्यति कर्हिचित् १४६	टीकांकः २६८९
७३१	[९२] न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४७ ॥	टिप्पणांकः ॐ
७३२	[९४] परिज्ञायोपभुक्तो हि भोगो भवति तुष्टये । [९६] विज्ञाय सेवितश्चोरो मैत्रीमेति न चोरताम् १४८	

८९ अयं क्लेशो विवेकमूलः अविवेकमूलो वेति कुतः गम्यत इत्याशंक्य कामनिवर्तकत्वाद्विवेकमूल इत्याह—

९०] **विवेकेन परिक्लिश्यन् अल्पभोगेन तृप्यति । अन्यथा अनंतभोगे अपि कर्हिचित् न एव तृप्यति॥१४६॥**

९१ विवेकिन इवाविवेकिनोऽपि भोगेनैव तृप्तिः स्यात् । अतो विवेकोऽप्रयोजक इत्याशंक्य भोगस्य तृप्तिहेतुत्वाभावप्रतिपादिकां श्रुतिं पठति (न जात्विति)—

९२] **कामः कामानां उपभोगेन जातु न शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मा इव भूयः एव अभिवर्धते १४७**

९३ विवेकमूलस्य भोगस्य तृप्तिहेतुत्वमनुभवसिद्धमित्याह—

९४] **परिज्ञाय उपभुक्तः भोगः तुष्टये हि भवति ॥**

९५) अयं भोग एतावानेवं प्रयाससाध्य

॥ ३ ॥ श्लोक १४४ उक्त ज्ञानीके क्लेशकी विवेककूं कारणता ॥

८९ यह १४४ श्लोकउक्तक्लेश विवेकरूप कारणवाला है वा अविवेकरूप कारणवाला है । यह काहेतैं जानियेहै? यह आशंकाकरि काम जो इच्छा । ताका निवर्त्तक होनैतैं यह क्लेश विवेकरूप कारणवाला है । ऐसैं कहैहैंः—

९०] दोपदृष्टिरूप **विवेककरि क्लेशकूं पावताहुया पुरुष । अल्पभोगकरि** अलंभावमय संतोषरूप **तृप्तिकूं पावताहै ॥ अन्यथा कहिये** विवेकजन्य क्लेशके अभाव **हुये अनंतभोगके हुये बी कदाचित् तृप्तिकूं पावता नहीं ॥ १४६ ॥**

॥ ४ ॥ भोगकूं तृप्तिकी हेतुताके अभावकी प्रतिपादक श्रुति ॥

९१ विवेकीकी न्यांई अविवेकीकूं बी भोगसैंहीं तृप्ति होवैगी । यातैं विवेक तृप्तिका कारण नहीं है । यह आशंकाकरि भोगकूं तृप्तिकी कारणताके अभावकी प्रतिपादक श्रुतिकूं पठन करैहैंः—

९२] भोगकी इच्छारूप **काम जो है सो विषयनके उपभोगकरि कदाचित् निवृत्तिकूं पावता नहीं । किंतु घृतकरि अग्निकी न्यांई अधिकहीं वृद्धिकूं पावताहै ॥ १४७ ॥**

॥ ५ ॥ दृष्टांतसहित विवेककरि किये भोगकूं तृप्तिके कारणताकी प्रसिद्धि ॥

९३ विवेकरूप कारणवाले भोगकूं तृप्तिकी हेतुता अनुभवसिद्ध है । ऐसैं कहैहैंः—

९४] **जानिके भोग्या जो भोग । सो तृप्तिअर्थहीं होवैहै ॥**

९५) "यह भोग इतना है औ ऐसैं श्रम-

टीकांकः २६९६ टिप्पणांकः ६६१	२७०० मनसो निगृहीतस्य लीलाभोगोऽल्पकोऽपि यः । तमेवालब्धविस्तारं क्लिष्टत्वाद्बहु मन्यते ॥१४९॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७३३

इत्येवमनुभवपूर्वकश्चेदलंबुद्धिहेतुर्हि दृश्यत इत्यर्थः ॥

९६ ननु तृष्णाहेतोर्भोगस्य विवेकसाहचर्यमात्रेण कथं तुष्टिकरत्वमित्याशंक्य सहचारिविशेषवशात् विपरीतकार्यकारित्वं लौकिके दृष्टमित्याह—

९७] विज्ञाय सेवितः चोरः मैत्रीं एति । चोरतां न ॥

९८) "अयं चोरः" इति ज्ञात्वा तेन सह वर्तमानस्य पुरुषस्य न चोरो भवति । किंतु मित्रतामेतीत्यर्थः ॥ १४८ ॥

९९ ननु कामनास्वरसत्वान्मनसः कथं स्वल्पभोगेन तृप्तिः स्यादित्याशंक्य निदिध्यासनेन गृहीतस्यातथात्वाद्भवत्येव तृप्तिरित्याह (मनस इति)—

२७००] निगृहीतस्य मनसः अल्पकः अपि लीलाभोगः यः अलब्धविस्तारं तं एव क्लिष्टत्वात् बहु मन्यते ॥

१) निगृहीतस्य योगाभासेन वशीकृतस्य । मनसः अल्पकोपि स्वल्पोपि लीलाभोगः लीलानुभवो यः अस्ति । अलब्धविस्तारं अप्राप्तबाहुल्यं तमेव भोगं क्लिष्टत्वात् दोषयुक्तत्वात् । बहु मन्यते अधिकत्वेन जानातीत्यर्थः ॥ १४९ ॥

करि साध्य है।" ऐसे अनुभवपूर्वक भोग्या जो भोग। सो अलंबुद्धिका हेतुहीं देखियेहै। यह अर्थ है ॥

९६ ननु तृष्णाके हेतु भोगकूं विवेककी सहायकतामात्रकरि कैसैं तुष्टिकी कारकता है? यह आशंकाकरि कोइक सहकारीके वशतैं विपरीतकार्यकी कारकता लौकिकजनविषै देखीहै। ऐसैं कहैहैं:—

९७] जानिके सेवन किया जो चोर सो मैत्रीकूं पावताहै। चोरताकूं पावता नहीं ॥

९८) "यह चोर है" ऐसैं जानिके तिसके साथि वर्तमान पुरुषकूं सो चोर नहीं होवैहै। किंतु मित्रताकूं पावताहै। यह अर्थ है॥१४८॥

॥ ६ ॥ निदिध्यासनतैं निग्रह किये मनकूं अल्पभोगसैं तृप्ति ॥

९९ ननु मनकूं कामनाविषै रागी होनैतैं स्वल्पभोगकरि कैसैं तृप्ति होवैगी? यह आशंकाकरि निदिध्यासनकरि स्वाधीन किये मनकूं तैसा कहिये कामनाविषै अपनै रसवाला नहीं होनैतैं स्वल्पभोगकरि तृप्ति होवैहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

२७००] निग्रह किये मनकूं अल्प बी लीलाभोग जो है। तिसीहीं विस्तारकूं अप्राप्त भये भोगकूं क्लेशयुक्त होनैतैं पुरुष बहु मानताहै॥

१) योगाभ्यासकरि वशकिये मनकूं अल्प बी लीलाका अनुभवरूप भोग जो है। तिसीहीं बहुलताकूं अप्राप्त भये भोगकूं दोषयुक्त होनैतैं अधिकपनैकरि जानताहै॥ यह अर्थ है॥१४९॥

---

६१ जैसैं रात्रिविषै मनुष्यनका संचार अल्प होवैहै। तैसैं निदिध्यासनके परिपक्व हुये अंतःकरणके धर्म होनैतैं उत्पन्न भये बी कामादिकनका विक्षेप अल्प होवैहै। काहेतैं. कामादिक वृत्तिनके उपादान मनकूं शिथिल होनैतैं। ऐसैं वासिष्ठविषै प्रसिद्ध है। यातैं ज्ञानवान्के मनकूं अल्पभोगकरि तृप्ति संभवैहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
७३४	वंद्धमुक्तो महीपालो ग्राममात्रेण तुष्यति । परैरवद्धो नाक्रांतो न राष्ट्रं बहु मन्यते ॥ १५० ॥	२७०२
७३५	विवेके जाग्रति सति दोषदर्शनलक्षणे । कथमारब्धकर्मापि भोगेच्छां जनयिष्यति ॥ १५१ ॥	टिप्पणांकः ॐ
७३६	नैषँ दोषो यतोऽनेकविधं प्रारब्धमीक्ष्यते । इच्छानिच्छापरेच्छा च प्रारब्धं त्रिविधं स्मृतं ॥ १५२ ॥	

२ निगृहीतस्यापि मनसः स्वल्पेनापि भोगेन तृप्तिः भवतीत्यत्र दृष्टांतमाह—

३] बद्धमुक्तः महीपालः ग्राममात्रेण तुष्यति। परैः अवद्धः न आक्रांत राष्ट्रं बहु न मन्यते ॥ १५० ॥

४ ननु "प्रारब्धकर्मप्रावल्यात् भोगेष्विच्छा भवेद्यदि" । इत्यत्र कर्मवशादिच्छा भवेदित्युक्तं तदनुपपन्नम् इच्छाविघातिनि विवेकज्ञाने सति तदुत्पत्त्यसंभवात् इति शंकते (विवेक इति)—

५] दोषदर्शनलक्षणे विवेके जाग्रति सति आरब्धकर्म अपि भोगेच्छां कथं जनयिष्यति ॥ १५१ ॥

६ दोषदर्शने सत्यपि इच्छाजन्म संभविष्यति प्रारब्धस्य नानाप्रकारकत्वादिति परिहरति (नैष इति)—

७] एषः दोषः न । यतः प्रारब्धं अनेकविधं ईक्ष्यते ॥

॥ ७ ॥ श्लोक १३९ उक्त अर्थमैं दृष्टांत ॥

२ निग्रह किये मनकूं अल्पभोगकरि वी तृप्ति होवैहै । इसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

३] बंधनकूं पायके छूट्या जो राजा । सो ग्राममात्रकरि संतोषकूं पावताहै। औ दूसरे शत्रुराजनकरि बंधनकूं पाया नहीं औ पराजयकूं पाया नहीं जो राजा। सो शत्रुराजाके दिये देशकूं बहुत मानता नहीं ॥ १५० ॥

॥ ३ ॥ इच्छाअनिच्छापरेच्छारूप तीनभांतिके प्रारब्धकर्मका वर्णन ॥ २७०४—२७४३ ॥

॥१॥ ज्ञानीकूं दोषदृष्टिके होते प्रारब्धकरि इच्छा-असंभवकी शंका ॥

४ ननु "जब प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं भोगकी इच्छा होवैहै" इस१४३ वैं श्लोकविषै कर्मके वशतैं इच्छा होवैहै । यह जो कहा । सो बनै नहीं । काहेतैं इच्छाके विरोधी विवेक-ज्ञानके होते तिस इच्छाकी उत्पत्तिके असंभवतैं । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैं:—

५] दोषदर्शन है लक्षण जिसका। ऐसै विवेकके जाग्रत् होते प्रारब्धकर्म बी भोगकी इच्छाकूं कैसैं उत्पन्न करैगा ? ॥ १५१ ॥

॥ २ ॥ त्रिविधप्रारब्धके नामसहित उक्तशंकाका समाधान ॥

६ दोषदृष्टिके होते बी प्रारब्धकूं नाना-प्रकारका होनैतैं इच्छाकी उत्पत्ति संभवैगी । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७] यह १५१ श्लोकउक्त दोष नहीं है । जातैं प्रारब्ध नानाप्रकारका देखियेहै ॥

टीकांक: २७०८ टिप्पणांक: ॐ	[12]अपथ्यसेविनश्चोरा राजदाररता अपि । जानंत इव स्वानर्थमिच्छंत्यारब्धकर्मतः ॥१५३॥ [14]न चात्रैतद्वारयितुमीश्वरेणापि शक्यते । [17]यत ईश्वर एवाह गीतायामर्जुनं प्रति ॥ १५४ ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७३७ ७३८

८ नानाप्रकारत्वमेव दर्शयति—

९] इच्छा अनिच्छा च परेच्छा प्रारब्धं त्रिविधं स्मृतम् ॥

१०) इच्छाजनकं अनिच्छया भोगप्रदं परेच्छया भोगप्रदं च इति त्रिविधं इत्यर्थः ॥ १५२ ॥

११ इच्छाप्रारब्धं दर्शयति—

१२] अपथ्यसेविनः चोराः राजदाररताः अपि स्वानर्थं जानंतः इव आरब्धकर्मतः इच्छंति ॥ १५३ ॥

१३ अपथ्यसेवादीच्छायाः प्रारब्धफलत्वं कुत अवगम्यत इत्याशंक्य अपरिहार्यत्वादित्यभिप्रेत्याह (न चेति)—

१४] च अत्र एतत् ईश्वरेण अपि वारयितुं न शक्यते ॥

१५) अत्र अस्मिन् लोके ॥

१६ अपथ्यादीच्छंतीत्येतत् कुत इत्यत आह—

१७] यतः ईश्वरः एव गीतायां अर्जुनं प्रति आह ॥ १५४ ॥

---

८ प्रारब्धके नानाप्रकारपनैकूंहीं दिखावैहैं:—

९] इच्छा अनिच्छा औ परेच्छा भेदतैं प्रारब्ध तीनप्रकारका है ॥

१०) इच्छाजनक औ अनिच्छाकरि भोगप्रद औ परेच्छाकरि भोगप्रद । इस भेदकरि प्रारब्ध तीनप्रकारका है । यह अर्थ है ॥ १५२ ॥

॥ ३ ॥ इच्छाप्रारब्धका वर्णन ॥

११ इच्छाप्रारब्धकूं दिखावैहैं:—

१२] अपथ्य जो रोगहेतु अन्नादिक ताके भक्षण करनैहारे औ चोर औ राजदाराविषै आसक्त पुरुष अपनै अनर्थकूं जानतेहुयेकी न्याईं हैं। तौ बी प्रारब्धकर्मतैं कुपथ चोरी औ यारीकूं इच्छतेहैं ॥ १५३ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक १५३ उक्त प्रारब्धका ईश्वरसैं बी अनिवारण ॥

१३ ननु अपथ्यसेवाआदिककी इच्छाकूं प्रारब्धका फल होना काहेतैं जानियेहै ? यह आशंकाकरि निवारण करनैकूं अशक्य होनैतैं जानियेहै । इस अभिप्रायकरिके कहैहैं:—

१४] इहां यह ईश्वरकरि बी वारनैकूं शक्य नहीं है ॥

१५) इसलोकविषै अपथ्यआदिककूं जे इच्छतेहैं । यह ईश्वरकरि बी निवारण करनैकूं अशक्य है ॥

१६ प्रारब्धका फल जो अपथ्यादिककी इच्छा । सो ईश्वरकरि बी निवारनेकूं अशक्य है । यह काहेतैं जानियेहै ? तहां कहैहैं:—

१७] जातैं ईश्वर जो श्रीकृष्ण । सोहीं गीताविषै अर्जुनके प्रति कहतेभये ॥ १५४ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७३९ ७४०	[19]सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि । प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति १५५ [22]अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि । तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥१५६॥	टीकांक: २७१८ टिप्पणांक: ॐ

१८ गीतावाक्यं पठति (सदृशमिति)—

१९] ज्ञानवान् अपि स्वस्याः प्रकृतेः सदृशं चेष्टते । भूतानि प्रकृतिं यांति । निग्रहः किं करिष्यति ॥

२०) विवेकज्ञानवानपि पुरुषः स्वस्याः स्वकीयायाः प्रकृतेः सदृशं अनुरूपं चेष्टते । प्रकृतिर्नाम पूर्वकृतधर्माधर्मादिसंस्कारो वर्तमानजन्मादावभिव्यक्तः । ज्ञानवानपि किं पुनर्मूर्खस्तस्मात् । प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः प्रवृत्तिनिवृत्त्योर्निरोधो भयान्येन वा कृतः किं करिष्यति । न किमपीत्यर्थः ॥ १५५ ॥

२१ तीव्रप्रारब्धस्यापरिहार्यत्वे वचनांतरसंमतिमाह—

२२] अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारः यदि भवेत् । तदा नलरामयुधिष्ठिराः दुःखैः न लिप्येरन् ॥

ॐ२२) अवश्यंभाविनां भावानां दुःखादीनामित्यर्थः ॥ १५६ ॥

॥ ९ ॥ श्लोक १९४ उक्त ईश्वरकी नीतिमैं गीतावाक्यका पठन ॥

१८ गीताके तृतीयअध्यायगत ३३ वैं श्लोकरूप वाक्यकूं पठन करैहैं:—

१९] ज्ञानवान् वी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करैहै । तातैं भूत जे सर्वप्राणी वे प्रकृतिकूं जातेहैं । निग्रह क्या करेगा ?

२०) विवेकज्ञानवाला पुरुष वी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करैहै । पूर्वकृतधर्मअधर्मआदिकका संस्कार वर्त्तमानजन्मआदिकविषै प्रगटताकूं पावताहै । सो प्रकृति कहियेहै ॥ जब ज्ञानवान् वी पूर्वसंस्कारके अनुसार चेष्टा करैहै । तब फिर मूर्ख पूर्वसंस्कारके अनुसार चेष्टा करै यामैं क्या कहनाहै ॥ तातैं सर्वभूत प्रकृतिकूं जातेहैं ॥ तिसविषै प्रभु ईश्वरकरि वा अन्यजीवकरि किया जो प्रवृत्तिनिवृत्तिका निरोध । सो क्या करैगा ? कछु वी करै नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ १५५ ॥

॥ ६ ॥ तीव्रप्रारब्धके अनिवारणमैं अन्यशास्त्रवचनकी संमति ॥

२१ तीव्रप्रारब्धके निवारण करनैकी अयोग्यताविषै अन्यशास्त्रके वचनकी संमतिकूं कहैहैं:—

२२] अवश्य होनैहारे भावोंकी निवृत्तिका उपाय जब होवै । तब नल राम औ युधिष्ठिर दुःखनकरि लिप्त होते नहीं ॥ जातैं वे वी दुःखग्रस्त भये यातैं सो अनिवार्य है ॥

ॐ २२) इहां अवश्य होनैहारे भावोंकी कहिये दुःखआदिकनकी । यह अर्थ है ॥१५६॥

टीकांक: २७२३ टिप्पणांक: ॐ	न चेश्वरत्वमीशस्य हीयते तावता यतः । अवश्यंभावितास्प्येषामीश्वरेणैव निर्मिता ॥१५७॥ प्रश्नोत्तराभ्यामेवैतद्गम्यतेऽर्जुनकृष्णयोः । अनिच्छापूर्वकं चास्ति प्रारब्धमिति तच्छृणु१५८	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७४१ ७४२

२३ प्रारब्धस्यापरिहार्यत्वे तत्परिहारासमर्थस्य ईश्वरस्यानीश्वरत्वप्रसंग इत्याशंक्याह (न चेति)—

२४] तावता ईशस्य ईश्वरत्वं च न हीयते ॥

२५ कुत इत्यत आह—

२६] यतः एषां अवश्यंभाविता अपि ईश्वरेण एव निर्मिता ॥

२७) यतः कारणात् एषां दुःखादीनां अवश्यंभावितापि ईश्वरेणैव निर्मिता अतो नानीश्वरत्वप्रसंग इत्यर्थः ॥ १५७ ॥

२८ एवं सप्रपंचमिच्छाप्रारब्धमभिधायानिच्छाप्रारब्धं वक्तुमारभते (प्रश्नोत्तराभ्यामिति)—

२९] च "अनिच्छापूर्वकं प्रारब्धं अस्ति" इति एतत् अर्जुनकृष्णयोः प्रश्नोत्तराभ्यां एव गम्यते ॥

३० तदभिधानाय शिष्यमभिमुखीकरोति—

३१] तत् शृणु ॥ १५८ ॥

॥ ७ ॥ प्रारब्धके अनिवारणसैं ईश्वरकूं अनीश्वरताकी अप्राप्ति ॥

२३ ननु प्रारब्धके निवारण करनैकी अयोग्यताके हुये तिस प्रारब्धके निवारणविषै असमर्थ ईश्वरकूं अनीश्वरताका प्रसंग होवैगा। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२४] तितनैंकरि कहिये प्रारब्धके न निवारनैकरि ईश्वरकी ईश्वरता हानिकूं पावती नहीं ॥

२५ काहेतैं ईश्वरताकी हानि नहीं है? तहां कहैहैं:—

२६] जातैं इन दुःखादिकनका अवश्य होनैहारेपना बी ईश्वरकरिहीं रचित है ॥

२७) जिस कारणतैं इन दुःखादिकनका अवश्यभावीपना बी ईश्वरकरिहीं रचित है। यातैं इनके अनिवारणतैं ईश्वरकूं अनीश्वरताका प्रसंग नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ १५७ ॥

॥ ८ ॥ अनिच्छाप्रारब्धके कथनका प्रारंभ ॥

२८ ऐसैं विस्तारसहित इच्छाप्रारब्धकूं कहिके अब अनिच्छाप्रारब्धके कहनैकूं आरंभ करैहैं:—

२९]औ "अनिच्छापूर्वकप्रारब्ध है।" यह अर्जुन औ कृष्णके प्रश्नउत्तरकरिहीं जानियेहै ॥

३० तिस अनिच्छाप्रारब्धके कथनअर्थ शिष्यकूं अभिमुख करैहैं:—

३१] तिस अनिच्छाप्रारब्धकूं श्रवण कर ॥ १५८ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
७४३	३३ अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः । अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः १५९	२७३२
७४४	३६ काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् १६०	टिप्पणांकः ॐ

३२ तत्रार्जुनस्य प्रश्नं तावद्दर्शयति—

३३] **"अथ वार्ष्णेय 'अयं पूरुषः केन प्रयुक्तः अनिच्छन् अपि बलात् नियोजितः इव पापं चरति"** ॥

३४) हे **वार्ष्णेय** वृष्णिसंबंधिन् । **अयं पुरुषः केन प्रयुक्तः** प्रेरितः । **अनिच्छन्नपि** इच्छामकुर्वन्नपि राज्ञा **बलान्नियोजित इव पापं चरति** आचरतीति ॥१५९

३५ श्रीकृष्णस्योत्तरमाह (काम इति)—

३६] **"एषः रजोगुणसमुद्भवः कामः एषः क्रोधः महाशनः महापाप्मा इह एनं वैरिणं विद्धि"** ॥

३७) **एषः** पुरुषप्रवर्तकः **रजोगुणात् समुद्भवः** उत्पत्तिर्यस्य सः **रजोगुणसमुद्भवः कामः** । **एषः** प्रसिद्धोऽयं कामः कदाचित् क्रोधरूपेणापि परिणमते । ततः **क्रोधः** । स पुनः कीदृशः । **महाशनः** महदशनं विषयजातं यस्य स महाशनः । **महापाप्मा** महतः पापस्य हेतुत्वादुपचारान्महापाप्मत्वमस्य अत **इह** संसारे **एनं** कामक्रोधरूपिणं **वैरिणं विद्धि** ॥ अयमभिप्रायः । प्रारब्धवशादुद्रिक्तरजोगुणकार्ययोः कामक्रोधयोरन्यतरस्यैव पुरुषप्रवर्तकत्वेन प्रवृत्तिरिच्छायाः इति ॥१६०

॥ ९ ॥ अनिच्छाप्रारब्धमैं अर्जुनका प्रश्नरूप गीतावाक्य ॥

३२ तिस अनिच्छाप्रारब्धविषै गीताके तृतीयअध्यायगत ३६ वें श्लोकरूप अर्जुनके प्रश्नकूं प्रथम दिखावैहैं:—

३३] **"हे वार्ष्णेय ! यह पुरुष किसकरि प्रेरित हुया । नहीं इच्छताहुया बी बलतैं योजना किये पुरुषकी न्यांई पापकूं आचरताहै"** ॥

३४) हे वार्ष्णेय ! कहिये हे वृष्णिनामक यादवका संबंधी । यह पुरुष किसकरि प्रेरणाकूं पायाहुया । नहीं इच्छताहुया बी राजाकरि बलतैं जोडेहुये दूतकी न्यांई पापकूं आचरताहै ॥ १५९ ॥

॥ १० ॥ श्लोक १५९ उक्त प्रश्नमैं श्रीकृष्णका उत्तररूप गीतावाक्य ॥

३५ अब गीताके तृतीयअध्यायगत ३७ वें श्लोकरूप श्रीकृष्णके उत्तरकूं कहैहैं:—

३६] **"यह काम । यह क्रोध । रजोगुणतैं उत्पत्तिवाला है औ महत्भोजनवाला है औ महापाप है । इस कामकूं इहां वैरी जान"** ॥

३७) यह पुरुषका प्रवर्त्तक कहिये प्रेरक । रजोगुणतैं उत्पत्तिवाला इच्छाविशेषरूप काम है । यह प्रसिद्धकाम कदाचित् क्रोधरूपकरि बी परिणामकूं पावताहै । तातैं क्रोधरूप है ॥ सो काम फिर कैसा है ? विषयनका समूहरूप बडा है भोजन जिसका ऐसा है औ महापापरूप है । पापका हेतु होनैतैं ॥ उपचारकरि इस कामकूं पापरूपता है । यातैं इहां संसारविषै इस कामरूप वैरीकूं जान ॥ इहां यह अभिप्राय है:—प्रारब्धके वशतैं वृद्धिकूं पाया जो रजोगुण है । तिसके कार्य काम औ क्रोध दोनूंमैंसैं एककूंहीं पुरुषका प्रवर्त्तक होनैकरि अनिच्छातैं बी पापविषै पुरुषकी प्रवृत्ति होवैहै ॥ १६० ॥

टीकांकः २७३८ | टिप्पणांकः ॐ | तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्रोकांकः ७४५ ७४६

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥१६१॥
नानिच्छंतो न चेच्छंतः परदाक्षिण्यसंयुताः ।
सुखदुःखे भजंत्येतत्परेच्छापूर्वकर्म हि ॥ १६२॥

३८ नन्वत्र कामक्रोधयोरेव पुरुषप्रवर्तकत्वमुपलभ्यते नानिच्छाप्रारब्धस्येत्याशंक्य तस्यैव प्रवर्तकत्वप्रतिपादकं तद्वाक्यं पठति (स्वभावजेनेति)—

३९] "कौंतेय । स्वभावजेन स्वेन कर्मणा निबद्धः यत् कर्तुं न इच्छसि। तत् अपि मोहात् अवशः करिष्यसि" ॥

४०) कौंतेय । स्वेन एवानुष्ठितेन अत एव स्वकीयेन प्रारब्धेनकर्मणा निबद्धः सन् यत्कर्तुं नेच्छसि । तदपि मोहात् अविवेकतः । अवशः परवशः ।करिष्यसि इति अतोऽनिच्छाप्रारब्धमस्तीत्यभ्युपगंतव्यमिति भावः ॥ १६१ ॥

४१ इदानीं परेच्छाप्रारब्धमस्तीत्याह (नानिच्छंत इति)—

४२] अनिच्छंतः न च इच्छंतः न । परदाक्षिण्यसंयुताः सुखदुःखे भजंति। एतत् परेच्छापूर्वकर्म हि ॥

४३) अनिच्छंतः अपि न भजंति। इच्छंतः अपि न भजंति । किंतु परदाक्षिण्यसंयुताः संतः तत्प्रतीत्यर्थमेव सुखदुःखे अनुभवंति । अत एतत् सुखादिभोगहेतुभूतम् परेच्छापूर्वकं प्रारब्धं प्रसिद्ध-

---

३८ ननु इस १६० वें श्लोकउक्तगीताके वाक्यविषै रागद्वेषरूप जे कामक्रोध तिनकूंहीं पुरुषका प्रवर्त्तकपना देखियेहै । अनिच्छाप्रारब्धकूं नहीं । यह आशंकाकरि तिस अनिच्छाप्रारब्धकेहीं प्रवर्त्तकपनैके प्रतिपादक तिस गीताके अष्टादशअध्यायगत ६० वें श्लोकरूप वाक्यकूं पठन करैहैं:—

३९] "हे अर्जुन! स्वभावतैं जन्य अपनै कर्मकरि बद्ध हुया तूं जिसकूं करनैकूं नहीं इच्छताहै । तिसकूं बी मोहतैं अवश हुवा करैगा ॥"

४०) हे कुंतिनंदन अर्जुन! स्वभावतैं जन्य कहिये आपकरिहीं अनुष्ठान किया । याहीतैं अपना जो प्रारब्धकर्म है । तिसकरि प्रेरित हुया तूं जिस युद्धकूं करनैकूं नहीं इच्छताहै । तिसकूं बी मोह जो अविवेक तातैं परवश होयके करैगा ॥ यातैं अनिच्छाप्रारब्ध है । ऐसैं अंगीकार करनैकूं योग्य है। यह भाव है॥१६१

॥ ११ ॥ परेच्छाप्रारब्धका कथन ॥

४१ अब परेच्छाप्रारब्ध है। ऐसैं कहैहैं:—

४२] अनिच्छतेहुये भोगते नहीं औ इच्छतेहुये भोगते नहीं । किंतु परउपकारकी बुद्धिकरि युक्त हुये सुखदुःखकूं भोगतेहैं । यह परेच्छापूर्वककर्म प्रसिद्ध है ॥

४३) नहीं इच्छतेहुये बी सुखदुःखकूं भजते नहीं औ इच्छते हुये बी भजते नहीं । किंतु दूसरेपुरुषके उपकारकी बुद्धिकरि संयुक्त हुये तिनकी प्रीतिके अर्थहीं सुखदुःखकूं अनुभव करैहैं।यातैं यह सुखादिकभोगका हेतुरूप परेच्छापूर्वक प्रारब्धकर्म प्रसिद्ध है । यह अर्थ है ॥ याहीतैं ज्ञानीकूं विषयनविषै दोषदृष्टिकेहोतेबी प्रारब्धकूं

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्रोकांक: ७४७	४४ कथं तर्हि किमिच्छन्नित्येवमिच्छा निषिध्यते । ४८ नेच्छानिषेधः किंत्विच्छाबाधो ५० भर्जितबीजवत् १६३	टीकांक: २७४४ टिप्पणांक: ॐ

मित्यर्थः ॥ अत एव दोषदर्शने सत्यपि प्रारब्धस्यापरिहार्यत्वात्तस्येच्छाजनकत्वं न निवारयितुं शक्नोतीति भावः ॥ १६२ ॥

४४ ननु तत्त्वविदोऽपीच्छांगीकारे "किमिच्छन्" इति श्रुतिविरोध इति शंकते (कथमिति)—

४५] तर्हि "किं इच्छन्" इति एवं इच्छा कथं निषिध्यते ॥

४६) "किमिच्छन्" इत्यनेन वाक्येन कथमिच्छाभावो वर्णित इत्यर्थः ॥

४७ नानेच्छाऽभावोऽभिधीयते किंतु सत्या अपि तस्याः समर्थप्रवृत्तिजनकत्वं नास्तीति बोध्यत इति परिहरति (नेच्छानिषेध इति)—

४८] इच्छानिषेधः न किंतु इच्छाबाधः ॥

४९ स्वरूपेण सत्या अपि तस्याः-सामर्थ्यराहित्ये दृष्टांतमाह—

५०] भर्जितबीजवत् ॥ १६३ ॥

अनिवार्य होनैतैं तिस प्रारब्धकूं जो इच्छाकी जनकता है । सो निवारण करनैकूं पुरुष समर्थ होवै नहीं ॥ यह भाव है ॥ १६२ ॥

॥ ४ ॥ ज्ञानीकूं बाधितइच्छाके संभवपूर्वक भोगतैं व्यसनका अभाव ॥ ॥ २७४४—२७८० ॥

॥ १ ॥ ज्ञानीकूं इच्छाके अंगीकार किये "किसकूं इच्छताहुआ" इस श्रुतिके विरोधकी शंका औ दृष्टांतसहित समाधान ॥

४४ ननु तत्त्ववेत्ताकूं बी इच्छाके अंगीकार किये "किस भोग्यकूं इच्छताहुआ" इस प्रथमश्लोकउक्तश्रुतिका विरोध होवैगा । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैं:—

४५] तब "किसकूं इच्छताहुआ" । ऐसैं श्रुतिकरि इच्छाका निषेध कैसैं करियेहै ?

४६) जब ज्ञानीकूं प्रारब्धकरि इच्छाका अंगीकार है । तब "किसकूं इच्छताहुआ" इस श्रुतिवाक्यकरि कैसैं इच्छाका अभाव वर्णन कियाहै ? यह अर्थ है ॥

४७ "किसकूं इच्छताहुआ" । इस श्रुतिवाक्यकरि इच्छाका अभाव नहीं कहियेहै । किंतु इच्छाके होते बी तिस इच्छाकूं समर्थप्रवृत्तिकी जनकता नहीं है । ऐसैं बोधन करियेहै । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

४८] इस श्रुतिकरि इच्छाका जो निषेध सो नाश नहीं कहियेहै । किंतु इच्छाका बाध कहियेहै ॥

४९ स्वरूपकरि हुइ बीइच्छाकी सामर्थ्यरहिततविषै दृष्टांत कहैहैं:—

५०] भूंजेहुये बीजकी न्याई ॥१६३॥

टीकांक: २७५१		तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७४८
टिप्पणांक: ६६२	[५१]भर्जितानि तु बीजानि संत्यकार्यकराणि च । विद्वदिच्छा तथेष्टव्या सत्त्वबोधान्न कार्यकृत् ॥१६४॥ [५४]दग्धबीजमरोहेऽपि भक्षणायोपयुज्यते । विद्वदिच्छाप्यल्पभोगं कुर्यान्न व्यसनं बहु ॥१६५॥	७४९

५१ संक्षेपेणोक्तमर्थं प्रपंचयति—

५२] भर्जितानि तु बीजानि अकार्यकराणि च संति । तथा विद्वदिच्छा इष्टव्याऽसत्त्वबोधात् कार्यकृत् न ॥

५३) यथा भर्जितानि बीजानि स्वयं स्वरूपेण विद्यमानान्यपि नांकुरादिकार्यकराणि भवंति । तथा विद्वदिच्छा स्वयंविद्यमानापीष्यमाणपदार्थस्यासत्वज्ञानेन बाधितत्वान्न व्यसनादिकार्यक्षमेत्यर्थः ॥१६४॥

५४ ननु तर्हि विदुषइच्छैव नांगीकर्तव्या फलाभावादित्याशंक्य फलाभावो असिद्धो भोगलक्षणफलसद्भावादिति सदृष्टांतमाह—

५५] दग्धबीजं अरोहे अपि भक्षणाय उपयुज्यते । विद्वदिच्छा अपि अल्पभोगं कुर्यात् । बहु व्यसनं न ॥

५६) दग्धं भर्जितमिति यावत् । व्यसनं विपदादिरूपं बहुविधं । "व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे" इत्यभिधानात् ॥ १६५ ॥

---

५१ संक्षेपकरि १६३ श्लोकउक्तअर्थकूं विस्तारसैं कहैहैं:—

५२] जैसैं भूंजेबीज । कार्य जो अंकुरकी उत्पत्ति ताके करनैहारे नहीं हैं । तैसैं विद्वान्‌की इच्छा अपनै विषयके असद्भावके बोधतैं कार्यकर नहीं है ॥

५३) जैसैं भूंजेबीज आप स्वरूपसैं विद्यमान हैं । तौ बी अंकुरादिकरूप कार्यके करनैहारे नहीं होवैहैं । तैसैं ज्ञानीकी इच्छा आप विद्यमान हुई बी इच्छाके विषय पदार्थके मिथ्यापनैके ज्ञानकरि बाधित होनैतैं । व्यसनआदिककार्यविषै समर्थ होवै नहीं । यह अर्थ है ॥ १६४ ॥

॥ २ ॥ ज्ञानीकी बाधितइच्छाके बी भोगफलके सद्भावमैं दृष्टांत ॥

५४ ननु तब विद्वान्‌कूं फलके अभावतैं इच्छाहीं अंगीकार करनैकूं योग्य नहीं है । यह आशंकाकरि भोगरूप फलके सद्भावतैं विद्वानकी इच्छाके फलका अभाव असिद्ध है । ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

५५] जैसैं दग्धबीज है । सो अंकुरकी उत्पत्तिके अभाव हुये बी भक्षणअर्थ उपयोगकूं पावताहै । तैसैं विद्वान्‌की इच्छा बी अल्पभोगकूं करैहै । बहुतप्रकारके व्यसनकूं करै नहीं ॥

५६) व्यसनशब्द । विपत् जो आपदा तिसविषै औ नाशविषै औ कामजन्य अरु क्रोधजन्यदोषविषै वर्त्तताहै । ऐसैं कोशविषै कथन कियाहोनैतैं विपत्‌आदिरूप [६६२]व्यसन बहुतप्रकारका है ॥ १६५ ॥

---

६६२ (१) आसक्ति औ विषयादिकमैं एकवार मधुरपनैकरि पीछे तिनके वियोगसैं चित्तकूं सुख होवै नहीं । ऐसा जो तिन विषयनका जुडना । सो आपदरूप व्यसन है औ

(२) पतन वा पृथक्‌पना वा पृथक्‌चित्तता । इत्यादिक भ्रंशरूप व्यसन है औ

(३) मृगयादिक अरु दिवसका सोवणा । जुगार । चुगली करनी । जारकर्म । नृत्य करना । गायन करना । वृथा फिरना ।

तृसिदीपः ॥ ७ ॥ श्रोकांक:		टीकांक:
७५०	[५८] भोगेन चरितार्थत्वात्प्रारब्धं कर्म हीयते । [६१] भोक्तृव्यसत्यताभ्रांत्या व्यसनं तत्र जायते १६६	२७५७
७५१	[६३] मा विनश्यत्वयं भोगो वर्द्धतामुत्तरोत्तरम् । मा विघ्नाःप्रतिबध्नंतु धन्योऽस्म्यस्मादिति भ्रमः१६७	टिप्पणांक: ॐ

५७ ननु कर्मैव भोगद्वारा व्यसनमपि जनयेत् इत्याशंक्याह (भोगेनेति)—

५८] प्रारब्धं कर्म भोगेन चरितार्थत्वात् हीयते ॥

५९) प्रारब्धकर्मणो भोगमात्रहेतुत्वान्न व्यसनजनकत्वमित्यर्थः ॥

६० कुतस्तर्हि व्यसनजन्मेत्यत आह—

६१] भोक्तृव्यसत्यताभ्रांत्या तत्र व्यसनं जायते ॥

ॐ ६१) तत्र तस्मिन्विषये ॥ १६६ ॥

६२ व्यसनहेतुं भ्रमं दर्शयति (मा विनश्यत्विति)—

६३] "अयं भोगः मा विनश्यतु । उत्तरोत्तरम् वर्द्धताम् । विघ्नाः मा प्रतिबध्नंतु । अस्मात् धन्यः अस्मि" इति भ्रमः ॥

६४) अयं भोगो मा विनश्यतु । एष उत्तरोत्तरं वर्द्धतां । विघ्नाश्चैनं मा प्रतिबध्नंतु । अस्य प्रतिबंधं मा कुर्वंतु । अस्मात् एव भोगादहं धन्यः कृतार्थः अस्मि । इति एवंरूपो भ्रमः भवति । ततश्च व्यसनमित्यर्थः ॥ १६७ ॥

॥ ३ ॥ ज्ञानीके कर्मका व्यसनअनुत्पत्तिपूर्वक भोगसैं नाश औ व्यसनउत्पत्तिका कारण ॥

५७ ननु प्रारब्धकर्महीं भोगद्वारा व्यसनकूं बी उपजावैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५८] प्रारब्धकर्म । भोगकरि कृतार्थ होनैतैं नाश होवैहै ॥

५९) प्रारब्धकर्मकूं भोगमात्रका हेतु होनैतैं व्यसनकी जनकता नहीं है । यह अर्थ है ॥

६० तब व्यसनका जन्म काहेतैं होवैहै ? तहां कहैहैं:—

६१] भोगनैके योग्य विषयके सत्यताकी भ्रांतिकरि तहां व्यसन होवैहै ॥

ॐ ६१) तहां कहिये तिस विषयविषै ॥ १६६ ॥

॥ ४ ॥ व्यसनके हेतु भोग्यकी सत्यताके भ्रमका स्वरूप ॥

६२ व्यसनके हेतु भ्रमकूं दिखावैहैं:—

६३] "यह भोग विनाशकूं मति पावो । किंतु उत्तरउत्तर वृद्धिकूं पावो । इस भोगकूं विघ्न प्रतिबंध मति करो । इस भोगतैं मैं धन्य हूं ।" यह भ्रम है ॥

६४) यह भोग विनाशकूं मति पावो । किंतु यह भोग आगे आगे वृद्धिकूं पावो । इस भोगकूं विघ्न प्रतिबंध मति करो औ इसहीं भोगतैं मैं कृतार्थ हूं । इस रूपवाला अज्ञानीकूं भ्रम होवैहै । तिस भ्रमतैं व्यसन होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १६७ ॥

मदिरादिकका पान । यह दशप्रकारके कामजन्यदोष पुरुषकूं जुडतेहैं ॥ वे प्रत्येक व्यसन कहियेहैं औ (४) दुष्टकर्म । साहस (विनाविचार शीघ्र जुलम करना)। दुःखापत (कष्ट) । मत्सर । द्वेष । कपट । गाली देनी । कामहानि । ये अष्ट क्रोधजन्यदोष हैं । सो प्रत्येक व्यसन कहियेहैं ॥

टीकांक: २७६५ टिप्पणांक: ॐ	६६ यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा । इति चिंताविषघ्नोऽयं बोधो भ्रमनिवर्तकः ॥१६८॥ ६९ समेऽपि भोगे व्यसनं भ्रांतो गच्छेन्न बुद्धवान् । ॐ अशक्यार्थस्य संकल्पाद्भ्रांतस्य व्यसनं बहु ॥१६९॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७५२ ७५३

६५ प्रसंगादस्य परिहारोपायमाह—

६६] यत् अभावि तत् भावि न । भावि चेत् तत् अन्यथा न । इति चिंताविषघ्नः अयं बोधः भ्रमनिवर्तकः

६७) यत् भवितुमयोग्यं तन्न भवेदेव । भवितुं योग्यं चेत्तदन्यथा न भवेदेव । इत्येवंरूपः चिंताविषघ्नः "इदं मे श्रेयः कदा भविष्यति इदमनिष्टं कदा निवर्तिष्यत" इत्येवमादिचिंतैव विषमिव स्वसंसृष्टपुरुषस्य नाशहेतुत्वात् विषं । इदं चिंताविषं हंतीति चिंताविषघ्नः । एवंभूतो यः बोधः सः । अयं भ्रमनिवर्तकः पूर्वोक्तभ्रमस्य निवर्तक इत्यर्थः ॥ १६८ ॥

६८ ननु विद्वदविदुषोरुभयोरपि भोगित्वाविशेषे एकस्य व्यसनमपरस्य तु तन्नेत्येतत्कुत इत्याशंक्य विपरीतज्ञानसत्वासत्वाभ्यां तत्सिद्धिरित्याह (समेऽपीति)—

६९] भोगे समे अपि भ्रांतः व्यसनं गच्छेत् । बुद्धवान् न ॥

ॐ ६९) बुद्धवान् ज्ञानवान् ज्ञानीत्यर्थः॥

७० भ्रांतेः कथं व्यसनहेतुत्वमित्यत आह—

॥ ९ ॥ प्रसंगसैं श्लोक १६७ उक्त भ्रमकी निवृत्तिका उपाय ॥

६५ प्रसंगतैं इस १६७ वें श्लोकउक्तव्यसनहेतुभ्रमकी निवृत्तिके उपायकूं कहैहैं:—

६६] जो नहीं होनैहारा है सो नहीं होवैगा औ जो होनैहारा है सो अन्यथा न होवैगा । इसप्रकारका जो चिंतारूप विषका नाश करनैहारा बोध है । सो भ्रमका निवर्त्तक है ॥

६७) जो होनैकूं अयोग्य है सो न होवैंगाहीं औ जो होनैकूं योग्य है सो औरप्रकारसैं न होवैंगाहीं । इसरूपवाला चिंतारूप विषका नाश करनैहारा । कहिये यह मेरा इष्ट कब होवैगा औ यह अनिष्ट कब निवृत्त होवैगा । इत्यादिरूप चिंताहीं अपनैकरि संबंधयुक्त पुरुषकूं नाशकी हेतु होनैतैं विषकी न्याई विष है ॥ इस चिंतारूप विषकूं नाश करै । इस प्रकारका जो बोध है।सो यह बोध पूर्व १६७ वें श्लोकउक्तभ्रमका निवर्त्तक है ॥ यह अर्थ है ॥ १६८ ॥

॥ ६ ॥ ज्ञानीअज्ञानीकूं भोगीपनैके तुल्य हुये बी व्यसनके भावअभावमैं कारण ॥

६८ ननु ज्ञानी अज्ञानी दोनूंकूं बी भोगवान्‌पनैके अविशेष हुये । एकअज्ञानीकूं व्यसन होवैहै औ दूसरे ज्ञानीकूं तौ सो व्यसन नहीं होवैहै । यह भेद किस कारणतैं है ? यह आशंकाकरि विपरीतज्ञान जो भ्रांतिज्ञान । ताके सद्भावअसद्भावकरि तिसव्यसनके होनै नहोनैरूप भेदकी सिद्धि होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

६९] भोगके समान हुये बी भ्रांत जो अज्ञानी । सो व्यसनकूं पावताहै औ बुद्धवान् व्यसनकूं पावता नहीं ॥

ॐ ६९) इहां बुद्धवान् कहिये ज्ञानवान् । अर्थ यह जो ज्ञानी ॥

७० ननु भ्रांतपुरुषविषै व्यसनकी कारणता कैसैं है ? तहां कहैहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: | टीकांक: २७७१ | टिप्पणांक: ॐ

[७३] मायामयत्वं भोगस्य बुध्वाऽऽस्थामुपसंहरन् ।
भुंजानोऽपि न संकल्पं कुरुते व्यसनं कुतः १७०

७५४ [७५] स्वप्नेंद्रजालसदृशमचिंत्यरचनात्मकम् ।
७५५ दृष्टनष्टं जगत्पश्यन्कथं तत्रानुरज्यति ॥ १७१ ॥

[७७] स्वस्वप्नमापरोक्ष्येण दृष्ट्वा पश्यन्स्वजागरम् ।
७५६ चिंतयेदप्रमत्तः सन्नुभावनुदिनं मुहुः ॥ १७२ ॥

७१] अशक्यार्थस्य संकल्पात् भ्रांतस्य बहु व्यसनम् ॥ १६९ ॥

७२ विवेकिनस्तदभावं दर्शयति (मायामयत्वमिति)—

७३] भोगस्य मायामयत्वं बुध्वा आस्थां उपसंहरन् भुंजानः अपि संकल्पं न कुरुते । व्यसनं कुतः १७०

७४ ननु मायामयत्वबोधे सत्यपि भोगस्य तदानींतनसुखहेतुत्वात्कुत आस्थोपसंहार इत्याशंक्य बहुविधदोषदर्शनादित्याह—

७५] स्वप्नेंद्रजालसदृशं अचिंत्यरचनात्मकं दृष्टनष्टं जगत् पश्यन् तत्र कथं अनुरज्यति ॥ १७१ ॥

७६ ननूक्तस्वप्नेंद्रजालसादृश्यादिज्ञाने सत्यासक्तिभावो न भवेत्तदेव कुतो जायत इत्याशंक्य तज्जन्मोपायमाह—

७७] स्वस्वप्नं आपरोक्ष्येण दृष्ट्वा

७१] होनेकूं अयोग्य विषयके संकल्पतैं भ्रांतपुरुषकूं बहुतप्रकारका व्यसन होवैहै ॥ १६९ ॥

७२ विवेकीकूं तिस व्यसनकी हेतुताके अभावकूं दिखावैहैं:—

७३] ज्ञानी । भोगकी मायामयता जो मिथ्यारूपता ताकूं जानिके । तिसविषै आस्था जो आसक्ति ताकूं संकोचताहुया भोगताहै । तौ बी अशक्यअर्थका चिंतन करता नहीं । यातैं किस कारणतैं व्यसन होवैगा ? ॥ १७० ॥

॥ ७ ॥ बहुविधदोषके देखनैतैं सुखहेतुभोग्यके बी आस्थाकी निवृत्ति ॥

७४ ननु मिथ्यारूपताके बोध हुये बी भोगकूं तिसकालसंबंधी सुखका हेतु होनैतैं आस्थाका संकोच काहेतैं होवैगा ? यह आशंकाकरि बहुतप्रकारके दोषनके देखनैतैं आस्थाका उपसंहार होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

७५] स्वप्न औ इंद्रजालके तुल्य अचिंत्यरचनारूप नाम अनिर्वचनीयरूप अरु देखतेहीं नष्ट होवैहै । ऐसा जगत्कूं देखताहुया ज्ञानी तिसविषै कैसैं अनुराग जो आसक्ति ताकूं करैगा? १७१॥

॥ ८ ॥ भोग्यमैं अनासक्तिकी उत्पत्तिका उपाय ॥

७६ ननु १७१ श्लोकउक्त स्वप्न औ इंद्रजालके सादृश्यआदिकके ज्ञान हुये आसक्तिका भाव होवै नहीं । सो स्वप्नादिकके सादृश्यआदिकका ज्ञानहीं काहेतैं होवैहै? यह आशंकाकरि तिस जाग्रत्जगत् औ स्वप्नके सादृश्य ज्ञानकी उत्पत्तिके उपायकूं दोश्लोककरि कहैहैं:—

७७] अपने स्वप्नकूं अपरोक्षपनैकरि

टीकांक: २७७८ टिप्पणांक: ६६३	७९ चिरं तयोः सर्वसाम्यमनुसंधाय जागरे । सत्यत्वबुद्धिं संत्यज्य नानुरज्यति पूर्ववत् ॥१७३॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७५७

स्वजागरं पश्यन् उभौ अप्रमत्तः सन् अनुदिनं मुहुः चिंतयेत् ॥

७८) श्लोकद्वयेन स्वकीयस्वप्नं अपरोक्षतया दृष्ट्वा स्वकीयं च जागरं अनुभवन् स्वप्नजागरौ उभौ अपि अप्रमत्तः सन् मुहुः चिंतयेत् स्वप्नतुल्योऽयं जागर इति ॥ १७२ ॥

७९] (चिरमिति)— तयोः सर्वसाम्यं चिरं अनुसंधाय जागरे सत्यत्वबुद्धिं संत्यज्य पूर्ववत् न अनुरज्यति ॥

८०) एवं तयोः स्वप्नजागरयोः सर्वसाम्यं तात्कालिकभोगहेतुत्वपरिणतिविरसत्वविनाशित्वादिलक्षणं चिरमनुसंधाय जागरे अपि सत्यत्वबुद्धिं परित्यज्य जाग्रद्वस्तुष्वपि पूर्ववत् जगत्सत्यत्वज्ञानदशायामिव नानुरज्यति अनुरक्तो न भवतीत्यर्थः ॥ १७३ ॥

देखिके । अपनै जागरणकूं देखताहुया । स्वप्न औ जागरण दोनूंकूं प्रमादरहित हुया नित्य वारंवार चिंतन करै ॥

७८) अपनै स्वप्नकूं अपरोक्षपनैकरि देखिके अपनै जागरणकूं अनुभव करताहुया । स्वप्न औ जाग्रत् दोनूंकूं वी सावधान हुया "स्वप्नतुल्य यह जागरण है ।" ऐसैं वारंवार चिंतन करै ॥ १७२ ॥

७९] तिन स्वप्न औ जागरणकी सर्वसमताकूं चिरकाल अनुसंधानकरिके। जागरणविषै सत्यताबुद्धिकूं छोडिके पूर्वकी न्यांई अनुरागकूं पावता नहीं ॥

८०) ऐसैं तिन स्वप्न औ जागरणकी स्वप्रतीतिकालविषै भोगकी हेतुता औ परिणामतैं विरसता औ विनाशिताआदिरूप सर्वसमताकूं बहुतकालपर्यंत चिंतनकरिके । जाग्रत्‌विषै वी सत्यताकी बुद्धिकूं परित्यागकरिके । जाग्रत्‌के वस्तुनविषै वी पूर्वकी न्यांई कहिये [६३] जगत्‌की सत्यताके ज्ञानदशाकी न्यांई आसक्त नहीं होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १७३ ॥

६३ "जैसैं क्षीरतैं उपायद्वारा सर्पि (मसके)कूं निकासिके । फेर तिस दुग्ध वा तक्रविषै गेन्याहुया पूर्वकी न्यांई होवै नहीं। तैसैं असत्य कहिये मिथ्यारूप बुद्धिआदिकनतैं विवेचन किया ज्ञानस्वरूप आत्मा । पूर्वकी न्यांई देही (देहअभिमानवान्) होवै नहीं । ऐसैं अन्यव्यवहारकूं वी पूर्वकी न्यांई भजता नहीं" ऐसैं आचार्योंनैं उपदेशसहस्रीविषै कहाहै । यातैं ज्ञानवान् पूर्वकी न्यांई विषयनविषै आसक्त होवै नहीं । यह अर्थ युक्त है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
७५८	इंद्रजालमिदं द्वैतमचिंत्यरचनात्वतः । इत्यविस्मरतो हानिः का वा प्रारब्धभोगतः ॥१७४॥	२७८१
७५९	निर्बंधस्तत्त्वविद्याया इंद्रजालत्वसंस्मृतौ । प्रारब्धस्याग्रहो भोगे जीवस्य सुखदुःखयोः ॥१७५॥	टिप्पणांक: ॐ

८१ ननु प्रपंचगोचरस्य मिथ्यात्वज्ञानस्य विषयसत्त्वोपजीविनो भोगस्य च परस्परविरोधान्मिथ्यात्वज्ञाने सति कथं भोगसिद्धिरित्याशंक्य भोगस्य विषयसत्यत्वापेक्षाभावात् न विरोध इति परिहरति(इंद्रजालमिति)—

८२] "इदं द्वैतं अचिंत्यरचनात्वतः इंद्रजालम्" इति अविस्मरतः प्रारब्धभोगतः का वा हानिः ॥

८३) "इदं द्वैतं भोग्यजातं अचिंत्यरचनात्वादिंद्रजालवत् मिथ्या" इति युक्त्यानुसंधाय । अविस्मरतः विदुषः प्रारब्धभोगतः प्रारब्धकर्मफलयोः सुखदुःखयोरनुभवेन । मिथ्यात्वानुसंधानस्य का वा हानिः । वाशब्दान्मिथ्यात्वानुसंधानेन वा भोगस्य का हानिः विभिन्नविषयत्वादिति भावः ॥ १७४ ॥

८४ विभिन्नविषयत्वमेव दर्शयति (निर्बंध इति)—

८५] तत्त्वविद्यायाः इंद्रजालत्व-

॥ ५ ॥ प्रपंचके मिथ्यापनैके ज्ञानका औ प्रारब्धभोगका अविरोध ॥

॥ २७८१—२८२२ ॥

॥ १ ॥ प्रारब्धभोगकूं विषयके सत्यताकी अपेक्षाका अभाव ॥

८१ ननु प्रपंचकूं विषय करनैहारे मिथ्यापनैके ज्ञानके औ विषयकी सत्यताके अधीन भोगके परस्परविरोधतैं मिथ्यापनैके ज्ञानके होते कैसैं ज्ञानीकूं भोगकी सिद्धि होवैगी ? यह आशंकाकरि भोगकूं विषयकी सत्यताकी अपेक्षाके अभावतैं मिथ्यापनैके ज्ञान औ भोगका विरोध नहीं है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

८२] यह द्वैत जो जगत् । सो अचिंत्यरचनावाला होनैतैं इंद्रजाल है । इस अर्थकूं अविस्मरण करनैहारे ज्ञानीकूं प्रारब्धभोगतैं कौन हानि होवैहै ?

८३) "यह भोग्यका समूहरूप द्वैत अचिंत्यरचनावाला होनैतैं इंद्रजालकी न्यांई मिथ्या है ।" ऐसैं युक्तिकरि जानिके इसकूं विस्मरण नहीं करनैहारे ज्ञानीकूं प्रारब्धकर्मके फल सुखदुःखके अनुभवरूप भोगकरि मिथ्यापनैके ज्ञानकी कौंन हानि होवैहै ? वा मिथ्यापनैके ज्ञानकरि भोगकी कौंन हानि होवैहै ? मिथ्यापनैका ज्ञान औ प्रारब्ध । इन दोनूंकूं भिन्न विषयवाले होनैतैं तिनका कछु वी परस्परविरोध नहीं हैं ॥ यह भाव है ॥१७४॥

॥ २ ॥ तत्त्वविद्या औ प्रारब्धकी भिन्नविषयता ॥

८४ जगत्के मिथ्यापनैका ज्ञान औ प्रारब्ध । इन दोनूंकी भिन्नविषयताकूंहीं दिखावैहैं:—

८५] तत्त्वविद्याका इंद्रजालपनैकी स्मृतिविषै आग्रह है औ प्रारब्धका

टीकांक: २७८६ टिप्पणांक: ६६४	विद्याऽऽरब्धे विरुद्ध्येते न भिन्नविषयत्वतः । जानद्भिरप्यैंद्रजालविनोदो दृश्यते खलु ॥१७६॥	तृप्तिदीप: ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७६०

संस्मृतौ निर्बंधः । प्रारब्धस्य जीवस्य सुखदुःखयोः भोगे आग्रहः ॥

८६) तत्त्वविद्यायाः जगत्तत्वगोचरस्य ज्ञानस्य । इंद्रजालवत् जगतो मिथ्यात्वानुसंधाने निर्बंधः । न तु भोगापलापे प्रारब्धकर्मणश्च जीवस्य सुखदुःखयोः प्रदाने आग्रहः न तु भोग्यसत्यत्वापादान इति भावः ॥ १७५ ॥

८७ एवं विभिन्नविषयत्वं प्रदर्श्य प्रयोगमाह—

८८] विद्यारब्धे न विरुद्ध्येते भिन्नविषयत्वतः ॥

८९) विद्याप्रारब्धकर्मणी परस्परं न विरुद्ध्येते विभिन्नविषयत्वात् संप्रतिपन्नरूपरसज्ञानवदित्यर्थः ॥

९० भोग्यमिथ्यात्वज्ञानं भोगबाधकं न भवतीत्येतत् क दृष्टमित्याशंक्याह (जानद्भिरिति)—

९१] ऐंद्रजालविनोदः जानद्भिः अपि खलु दृश्यते ॥

९२) ऐंद्रजालविनोदः ऐंद्रजालसंबंधिचमत्कारविशेषः । जानद्भिरपि इंद्रजालं जानद्भिरप्यवलोक्यत इति प्रसिद्धमित्यर्थः ॥१७६

जीव जो चिदाभास ताकूं सुखदुःखके भोगविषै आग्रह है ॥

८६) जगत्के तत्त्वकूं विषय करनैहारे ज्ञानका इंद्रजालकी न्याईं जगत्के मिथ्यापनैके अविस्मरणविषै आग्रह है । भोगके विनाशविषै नहीं । औ प्रारब्धकर्मका जीवकूं सुखदुःखके देनैविषै आग्रह है । भोग्य जो विषय ताकी सत्यताके संपादनविषै नहीं ॥ यह भाव है ॥ १७५ ॥

॥ ३ ॥ विद्या औ प्रारब्धके अविरोधमैं अनुमान ॥

८७ ऐसैं मिथ्यात्वज्ञान औ प्रारब्धकी भिन्नविषयवानता दिखायके । तिसविषै अनुमानकूं कहैहैं:—

८८] विद्या औ प्रारब्ध विरोधकूं पावते नहीं । भिन्नविषयवाले होनैतैं ॥

८९) विद्या औ प्रारब्धकर्म परस्परविरोधकूं पावते नहीं । काहेतैं । भिन्नविषयवाले होनैतैं । अनुभव किये भिन्नविषयवाले रूपरसके ज्ञानकी न्याईं ॥ यह अर्थ है ॥

९० भोग्यके मिथ्यापनैका ज्ञान भोगकूं बाधक नहीं होवैहै । यह कहां देख्याहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९१] इंद्रजालका विनोद जाननैहारे पुरुषनकरि बी प्रसिद्ध देखियेहै ॥

९२) इंद्रजालसंबंधी चमत्कारविशेष जो है सो इंद्रजालपनैके जाननैहारे पुरुषनकरि बी अवलोकन करियेहै । यह प्रसिद्ध है ॥ यह अर्थ है ॥ १७६ ॥

---

६४ जैसैं शरकराविषे शुक्ल रूप है । औ मधुर रस है । इन दोनूंके ज्ञान भिन्नवस्तु (गुणरूप)कूं विषय करनैवाले होनैतैं परस्पर विरोधकूं पावते नहीं । तैसैं मिथ्यापनैके अविस्मरण औ सुखदुःखप्रदानरूप भिन्नविषयवाले जगत्के मिथ्यात्वके ज्ञान औ प्रारब्धकर्मका परस्परविरोध नहीं है । किंतु निष्कामकर्मजन्यज्ञान औ देहादिककी स्थितिके हेतु सकामकर्मरूप प्रारब्धका भ्रातृपुत्र औ पितृभ्राताकी न्याईं परस्परस्नेह है ॥

६५ अनुकूलप्रतिकूलविषयरूप निमित्ततैं जन्य सुखदुःखके अनुभवका ॥

नृसिंहदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
७६१	^९४^जगत्सत्यत्वमापाद्य प्रारब्धं भोजयेद्यदि । तदा विरोधि विद्याया ^९७^भोगमात्रान्न सत्यता ॥ १७७ ॥	२७९३
७६२	^२८००^अनूनो जायते भोगः कल्पितैः स्वप्नवस्तुभिः । जाग्रद्वस्तुभिरप्येवमसत्यैर्भोग इष्यताम् ॥ १७८ ॥	टिप्पणांक: ॐ

९३ किं च विद्याप्रारब्धकर्मणोर्विरोधोऽस्तीति वदन् प्रष्टव्यः किं प्रारब्धकर्म विद्याविरोधीत्युच्यते उत विद्या प्रारब्धकर्मविरोधिनीति । नाद्य इत्याह (जगदिति)—

९४] **प्रारब्धं जगत्सत्यत्वं आपाद्य यदि भोजयेत् । तदा विद्यायाः विरोधि ॥**

९५) आरब्धं कर्म जगतो भोग्यजातस्य सत्यत्वम् अवाध्यत्वम् आपाद्य संपाद्य यदि भोजयेत् जीवस्य सुखदुःखे दद्यात् तदा विद्याविषयस्य मिथ्यात्वस्यापहारात् विद्याया विरोधि स्यान्न च तथा करोति किंतु भोगमेव प्रयच्छति । अतो न विद्याविरोधि प्रारब्धमिति भावः ॥

९६ भोगवलादेव भोग्यस्य सत्यत्वमपि स्यादित्याशंक्याह—

९७] **भोगमात्रात् सत्यता न ॥**

९८) विमतं जगत् सत्यं भोग्यत्वादित्यत्र दृष्टांताभाव इति भावः ॥ १७७ ॥

९९ ननु मिथ्यापदार्थैर्भोगो भवतीत्यत्रापि दृष्टांतो नास्तीत्याशंक्याह (अनून इति)—

२८००] **कल्पितैः स्वप्नवस्तुभिः अनूनः भोगः जायते । एवम् असत्यैः जाग्रद्वस्तुभिः अपि भोगः इष्यताम् ॥ १७८ ॥**

॥ ४ ॥ प्रारब्धका विद्यासैं अविरोध ॥

९३ किंवा । विद्या औ प्रारब्धकर्मका विरोधहै । ऐसैं कहताहुया वादी पूंछनैकूं योग्य है:– क्या प्रारब्धकर्म विद्याका विरोधि है ? ऐसैं तेरेकरि कहियेहै । अथवा विद्या प्रारब्धकर्मकी विरोधिनी है । ऐसैं कहियेहै ? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमैं प्रथमपक्ष प्रारब्धकर्म विद्याका विरोधी है । यह बनै नहीं । ऐसैं दोश्लोककरि कहैहैं:—

९४] **प्रारब्ध । जगत्की सत्यताकूं संपादनकरिके जब भोगकूं देवै । तब विद्याका विरोधी होवै ॥**

९५) प्रारब्धकर्म भोग्यके समूहरूप जगत्की अवाधतारूप सत्यताकूं संपादनकरिके जब जीवकूं सुखदुःखरूप भोग देवै । तब विद्याके विषय मिथ्यापनैके निवारणतैं विद्याका विरोधी होवै औ तैसैं प्रारब्ध करता नहीं । किंतु भोगकूंहीं देताहै । यातैं प्रारब्ध विद्याका विरोधी नहीं ॥ यह भाव है ॥

९६ ननु भोगके बलतैंहीं भोग्यकी सत्यता बी होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९७] **भोगमात्रतैं विषयकी सत्यता होवै नहीं ॥**

९८) विवादका विषय जो भोग्यसमूहरूप जगत् सो सत्य है । भोग्य होनैतैं । इस अनुमानविषै दृष्टांतका अभाव है । यातैं यह असत्अनुमान है । यह भाव है ॥ १७७ ॥

९९ ननु मिथ्यापदार्थनकरि भोग होवैहै । इसविषै बी दृष्टांत नहीं है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२८००] **जैसैं कल्पितस्वप्नवस्तुनकरि अनून नाम संपूर्णभोग होवैहै । ऐसैं असत्यजाग्रत्के वस्तुनकरि बी संपूर्णभोग अंगीकार करना ॥ १७८ ॥**

टीकांक: २८०१ टिप्पणांक: ६६६	यदि विद्याऽपह्नुवीत जगत्प्रारब्धघातिनी । तदा स्यान्न तु मायात्वबोधेन तदपह्नवः ॥१७९॥ अनपह्नुत्य लोकास्तदिंद्रजालमिदं त्विति । जानंत्येवानपह्नुत्य भोगं मायात्वधीस्तथा ॥१८०॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७६३ ७६४

१ नापि द्वितीय इत्याह (यदीति)—

२] **विद्या यदि जगत् अपह्नुवीत तदा प्रारब्धघातिनी स्यात् ॥**

३) विद्या यदि जगत् भोग्यजातम् अपह्नुवीत नेदं रजतमिति निषेधकज्ञानवत् प्रतीयमानस्य भोग्यस्य स्वरूपं विलापयेत् । तदा प्रारब्धकर्मभोगस्य सुखदुःखानुभवस्य साधनापहारेण प्रारब्धकर्मविघातिनी स्यात् न च तत्करोति । किंतु मिथ्यात्वमेव बोधयति । अतो न प्रारब्धकर्मविरोधिनीति भावः ॥

४ ननु मिथ्यात्वबोधनादेव स्वरूपमपि विलापयेत् इत्याशंक्याह (न त्विति)—

५] **मायात्वबोधेन तु तदपह्नवः न ॥**

६) इंद्रजालादौ स्वरूपविलापनमंतरेणापि मिथ्यात्वज्ञानदर्शनात् इति भावः ॥ १७९ ॥

७ एतदेव प्रपंचयति (अनपह्नुत्येति)—

८] **लोकाः तत् अनपह्नुत्य "इदं**

॥ ९ ॥ विद्याका प्रारब्धसैं अविरोध ॥

१ "विद्या । प्रारब्धकर्मकी विरोधिनी है" यह १७७ श्लोककी उत्थानिकामैं उक्त द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं । ऐसैं १७९–१८४ श्लोकपर्यंत कहैहैं:—

२] **विद्या जब जगत्कूं विलय करै । तब प्रारब्धकी विघात करनैहारी होवै ॥**

३) विद्या जो प्रपंचके मिथ्यापनैका ज्ञान । सो जब जगत्कूं नाश करै । तब प्रारब्धकर्मके भोगके साधन जो भोग्यविषय ताकी निवृत्तिकरि विद्या प्रारब्धकर्मकी विरोधिनी होवै औ तिस प्रारब्धभोगके साधनभोग्यरूप जगत्के नाशकूं विद्या नहीं करैहै । किंतु आकाशकी नीलता औ मरीचिकाके जलप्रतिबिंबके मिथ्यात्वज्ञानकी न्यांई जगत्के मिथ्यापनैकूंहीं बोधन करैहै । यातैं विद्या प्रारब्धकर्मकी विरोधिनी नहीं है ॥ यह भाव है ॥

४ ननु मिथ्यापनैके बोधनतैंहीं विद्या जगत्के स्वरूपकूं बी विलय करैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५] **मिथ्यापनैके बोधकरि तौ तिस जगत्का विलय नहीं होवैहै ॥**

६) इंद्रजालआदिकविषै स्वरूपके विलयसैं विना बी मिथ्यापनैका ज्ञान देखियेहै । यातैं मिथ्यापनैके ज्ञानकरि जगत्का विलय होवै नहीं ॥ यह भाव है ॥ १७९ ॥

७ इसी १६९ श्लोकउक्तअर्थकूंहीं वर्णन करैहैं:—

८] **जैसैं लोक तिस इंद्रजालकूं न**

---

६६ रजतकूं "यह रजत नहीं है" ऐसैं रजतके निषेधके करनैहारे ज्ञानकी न्यांई प्रतीयमान भोग्यके स्वरूपकूं विद्या जब विलय करै तब ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७६५	यत्र त्वस्य जगत्स्वात्मा पश्येत्कस्तत्र केन कम् । किं जिघ्रेत्किं वदेद्वेति श्रुतौ तु बहु घोषितम् १८१	टीकांकः २८०९ टिप्पणांकः ॐ

तु इंद्रजालम्" इति जानंति एव। तथा भोगं अनपह्नुत्य मायात्वधीः ॥

९) लोका जनाः तत् इंद्रजालस्वरूपं अनपह्नुत्य अनिरस्य । इदमिंद्रजालमिति जानंत्येव यथा । तथा भोगं भोग्यं अनपह्नुत्य अविनाश्य । मायात्वधीः जगन्मिथ्यात्वज्ञानं भवतीत्यर्थः १८०

१० "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्" इत्यादिश्रुतिः द्रष्टृदर्शनदृश्याभावं बोधयत्यतो विद्योत्पद्यमाना जगत्प्रविलापयेदेव । एवं सति विदुषो भोगश्च कथं स्यादिति श्रुत्यवष्टंभेन शंकते श्लोकद्वयेन—

११] "यत्र तु जगत् अस्य स्वात्मा तत्र कः केन कं पश्येत्। किं जिघ्रेत्। किं वा वदेत्" इति श्रुतौ तु बहु घोषितम् ॥

१२) यत्र यस्यां विद्याऽवस्थायां । कृत्स्नं जगदस्य विदुषः स्वात्मा एवाभूत् "इदं सर्वं यदयमात्मा" इति ज्ञानेन स्वरूपमेव भवति । तत्र तस्यां दशायां। को द्रष्टा केन साधनेन चक्षुषा किं दृश्यं रूपजातं पश्येत्। एवं घ्राणलक्षणेन किं कुसुमादिकं जिघ्रेत् । किं वाक्यं केन वागिंद्रियेण वा वदेत् । एवमितरेंद्रियव्यापाराभावद्योतनाय वाशब्दः । इति एवंप्रकारेण श्रुतौ बहुवारमभिहितमित्यर्थः ॥ १८१ ॥

निषेधकरिके "यह तौ इंद्रजाल है" ऐसैं जानतेहीं हैं । तैसैं भोगकूं न विनाशकरिके मायापनैकी बुद्धि होवैहै

९) जैसैं लोक । तिस इंद्रजालके स्वरूपकूं न निषेधकरिके "यह इंद्रजाल है" ऐसैं जानतेहीं हैं । तैसैं भोगकूं नाश नहीं करिके मायापनेकी नाम मिथ्यापनैकी बुद्धि होवैहै । यह अर्थ है ॥ १८० ॥

१० "जिस अवस्थाविषै इस विद्वान्कूं सर्वजगत् आत्माहीं होताभया । तहां किस कारणकरि किस विषयकूं देखै ?" इत्यादिकश्रुति । द्रष्टा दर्शन औ दृश्यरूप त्रिपुटीके अभावकूं बोधन करैहै । यातैं विद्या उत्पन्न हुई जगत्कूं विलय करैगीहीं । ऐसैं हुये विद्वानकूं प्रारब्धका भोग कैसैं होवैगा ? इसरीतिसैं श्रुतिके आश्रयकरि वादी दोश्लोकनसैं मूलविषै शंका करैहैः—

११] "जिस अवस्थाविषै इस ज्ञानीकूं जगत् अपना आत्माहीं होताभया । तहां कौंन किसकरि किसकूं देखै । किसकूं सूंघै । वा किसकूं कहै ?" इस श्रुतिविषै तौ बहुतवार कहाहै ॥

१२) जिस विद्याअवस्थाविषै संपूर्णजगत् इस ज्ञानीकूं स्वात्माहीं होताभया कहिये "जो यह सर्व है । सो यह आत्मा है" इस ज्ञानकरि स्वरूपहीं होवैहै। तिस दशाविषै कौंन द्रष्टा किस चक्षुरूप साधनकरि किस दृश्य कहिये रूपके समूहकूं देखै। ऐसैं घ्राणइंद्रियरूप साधनकरि किस पुष्पादिककूं सूंघै । वा किस वाक्इंद्रियकरि किस वाक्यकूं कहै । ऐसैं अन्यअनउक्तइंद्रियनके व्यापारनके अभावके जनावनेअर्थ मूलश्लोकविषै वाशब्द है ॥ इसप्रकारसैं बहुवार विद्यादशामैं जगत्का विलय कहाहै ॥ यह अर्थ है ॥ १८१ ॥

टीकांक: २८१२ टिप्पणांक: ६६७	तेन[14] द्वैतमपह्नुत्य विद्योदेति न चान्यथा । तथा च विदुषो भोगः कथं स्यादिति चेच्छृणु[16] १८२ सुषुप्ति[17]विषया मुक्तिविषया वा श्रुतिस्त्विति । उक्तं स्वाप्ययसंपत्त्योरिति सूत्रे ह्यतिस्फुटम् १८३	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७६६ ७६७

१३ ततः किमित्यत आह—

१४] तेन द्वैतं अपह्नुत्य विद्या उदेति । च अन्यथा न । तथा च विदुषः भोगः कथं स्यात् । इति चेत् ।

१५ "स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हीति" अस्मिन् सूत्रे "यत्र त्वस्य" इत्युदाहृतायाः श्रुतेः सुप्तिमोक्षयोरन्यतरविषयत्वेन व्याख्यातत्वान्न विद्यया जगदपह्नव इति परिहरति—

१६] शृणु ॥ १८२ ॥

१७] (सुषुप्तिविषयेति)– श्रुतिः तु सुषुप्तिविषया वा मुक्तिविषया इति "स्वाप्ययसंपत्त्योः" इति सूत्रे अतिस्फुटं हि उक्तम् ॥

ॐ १७) स्वाप्ययः सुषुप्तिः । संपत्तिः मुक्तिरित्यर्थः ॥ १८३ ॥

---

१३ तिस श्रुतिउक्तत्रिपुटीके अभावके कथनतैं क्या सिद्ध होवैहै ? तहां पूर्ववादी कहैहैः—

१४] तिस हेतुकरि द्वैतकूं विलयकरिके विद्या उदय होवैहै । अन्यथा नहीं ॥ तैसैं हुये विद्वान्कूं भोग कैसैं होवैगा ? इसप्रकार जो कहै ।

१५ "सुषुप्ति औ मोक्ष इन दोनूंमैंसैं एकअवस्थाका अपेक्षावान्पना जातैं श्रुतिनैं प्रगट कियाहै" ईंसैं व्याससूत्रविषै "जिस अवस्थाविषै इसकूं सर्व आत्मा होताभया ।" इस उदाहरणकरि श्रुतिकूं सुषुप्ति औ मोक्ष इन दोनूंमैंसैं एकविषयवाली होनैकरि व्याख्यान करी होनेतैं विद्यासैं जगत्का विलय होवै नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

१६] तौ श्रवण कर ॥ १८२ ॥

१७] यह १८१श्लोकउक्तश्रुति सुषुप्तिकूं विषय करनैहारी है । वा मुक्तिकूं विषय करनैहारी है । ऐसैं "स्वाप्यय औ संपत्ति इन दोनूंमैंसैं एककी अपेक्षा श्रुतिनैं प्रगट करीहै" इस ब्रह्मसूत्रविषै जातैं अतिशय स्पष्ट कहाहै ॥

ॐ१७) इहां स्वाप्यय कहिये सुषुप्ति औ संपत्ति कहिये मुक्ति । यह अर्थ है ॥ १८३ ॥

---

६७ यह ब्रह्मसूत्रके चतुर्थअध्यायगत चतुर्थपादका षोडशसूत्र है ॥ जातैं तिसीहीं श्रुतिविषै सुषुप्ति औ मुक्तिके प्रकरणके बलतैं उक्तवचनका सुषुप्ति औ मुक्ति । इन दोनूं अवस्थामैंसैं एकका अपेक्षावान्पना प्रगट कियाहै । तातैं तिन दोनूंमैंसैं एकअवस्थाकूं अपेक्षाकरिके। यह विशेषज्ञानके अभावका वचन है । सो काहूस्थलमैं सुषुप्तिअवस्थाकूं अपेक्षाकरिके कहियेहै औ काहूस्थलमैं कैवल्य (मोक्ष) अवस्थाकूं अपेक्षाकरिके कहियेहै । ऐसैं जानियेहै ॥ यह सूत्रका अर्थ है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७६८ ७६९

अन्यथा याज्ञवल्क्यादेराचार्यत्वं न संभवेत् ।
द्वैतदृष्टावविद्वत्ता द्वैतादृष्टौ न वाग्वदेत् ॥१८४॥
निर्विकल्पसमाधौ तु द्वैतादर्शनहेतुतः ।
सैवापरोक्षविद्येति चेत्सुषुप्तिस्तथा न किम् ॥१८५॥

टीकांक: २८१८ टिप्पणांक: ॐ

१८ अस्याः श्रुतेः सुषुप्त्यादिविषयत्वानंगीकारे बाधकमाह—

१९] **अन्यथा याज्ञवल्क्यादेः आचार्यत्वं न संभवेत् ॥**

२० तत्रोपपत्तिमाह—

२१] **द्वैतदृष्टौ अविद्वत्ता द्वैतादृष्टौ वाक् न वदेत् ॥**

२२) याज्ञवल्क्यादिः यदि द्वैतं पश्येत्तर्हि तदाऽद्वैतज्ञानाभावान्नाचार्यो भवेत् । अथ द्वैतं न पश्यति तर्हि बोध्यशिष्याद्यनुपलंभात् आचार्यवाक् शिष्यं प्रति बोधनाय न प्रवर्त्तेत । अतो विद्यासंप्रदायोच्छेदप्रसंग इति भावः ॥ १८४ ॥

२३ ननु याज्ञवल्क्यादीनामाचार्यत्वदशायां विद्यमानस्य ज्ञानस्य विद्यात्वमस्त्वेव तथापि तस्य नापरोक्षविद्यात्वं द्वैतप्रतीतिसद्भावान्निर्विकल्पसमाधौ तु द्वैतदर्शनाभावात् सैवापरोक्षविद्येति शंकते—

२४] **निर्विकल्पसमाधौ तु द्वैता-**

---

१८ इस १८१ वें श्लोकउक्तश्रुतिकी सुषुप्ति वा मुक्तिरूप विषयके अनंगीकारविषै अनिष्टताके संपादक तर्करूप बाधककूं कहैहैं:—

१९] **अन्यथा कहिये ऐसैं अनंगीकार किये याज्ञवल्क्यादिककूं आचार्यपना संभवै नहीं ॥**

२० तिसविषै युक्तिकूं कहैहैं:—

२१] **द्वैतकी दृष्टिके हुये अविद्वान्पना होवैगा औ द्वैतकी अदृष्टिके हुये वाणी नहीं कहैगी ॥**

२२) याज्ञवल्क्यआदिक जब द्वैतकूं देखै तब अद्वैतज्ञानके अभावतैं आचार्य नहीं होवैगा औ जब द्वैतकूं नहीं देखै तब बोधन करनैके योग्य शिष्यआदिकनकी अप्रतीतितैं आचार्यकी वाणी शिष्यके प्रति बोधनअर्थ प्रवर्त्त नहीं होवैगी । यातैं विद्यासंप्रदायके नाशका प्रसंग होवैगा ॥ यह भाव है ॥ १८४ ॥

॥ ६ ॥ अपरोक्षविद्याके स्वरूपका निर्धार ॥ २८२३–२८५७ ॥

॥ १ ॥ द्वैतअदर्शनतैं निर्विकल्पसमाधिके अपरोक्षविद्यापनैकी शंका औ सुषुप्तिमैं अतिप्रसंगकरि समाधान ॥

२३ ननु याज्ञवल्क्यादिकनकूं आचार्यदशाविषै विद्यमान जो ज्ञान है । तिसकूं विद्यापना हैहीं । तथापि तिस ज्ञानकूं अपरोक्षविद्यापना नहीं है । काहेतैं द्वैतकी प्रतीतिके सद्भावतैं ॥ औ निर्विकल्पसमाधिविषै तौ द्वैतदर्शनके अभावतैं सो निर्विकल्पसमाधिहीं अपरोक्षविद्या है । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

२४] **निर्विकल्पसमाधिविषै तौ द्वैतके अदर्शन कहिये अप्रतीतिरूप**

टीकांक: २८२५ टिप्पणांक: ॐ	आत्मतत्त्वं न जानाति सुप्तौ यदि तदा त्वया । आत्मधीरेव विद्येति वाच्यं न द्वैतविस्मृतिः ॥१८६॥ उभयं मिलितं विद्या यदि तर्हि घटादयः । अर्धविद्याभाजिनः स्युः सकलद्वैतविस्मृतेः ॥१८७॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७७० ७७१

दर्शनहेतुतः सा एव अपरोक्षविद्या इति चेत् ।

२५ द्वैताप्रतीतेरप्यतिप्रसंगापादकत्वान्नैवमिति परिहरति (सुषुप्तिरिति)—

२६] तथा सुषुप्तिः किं न ॥ १८५ ॥

२७ अतिप्रसंगपरिहारं शंकते (आत्मतत्त्वमिति)—

२८] सुप्तौ आत्मतत्त्वं न जानाति यदि ।

२९) सुप्तौ द्वैतदर्शनाभावेऽपि आत्मगोचरज्ञानाभावात् न विद्यात्वं तस्या इत्यर्थः ॥

३० तर्हि प्राप्तं विवेकज्ञानस्यैव विद्यात्वं न द्वैतदर्शनाभावस्येत्याह—

३१] तदा "आत्मधीः एव विद्या द्वैतविस्मृतिः न" इति त्वया वाच्यम् ॥ १८६ ॥

३२ ननु द्वैतादर्शनात्मज्ञानयोर्मिलितयोरेव विद्यात्वं । न एकैकस्येति शंकते—

३३] उभयं मिलितं विद्या यदि ।

३४ द्वैतविस्मृतेरपि विद्यांशत्वांगीकारे

हेतुतैं सोई अपरोक्षविद्या है । ऐसैं जो कहै ।

२५ द्वैतकी अप्रतीतिकूं वी अतिव्याप्तिरूप अतिप्रसंगकी संपादक होनेतैं सोइ अपरोक्षविद्या है । यह कथन बनै नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

२६] तौ तैसैं द्वैतकी अप्रतीतिवाली सुषुप्ति क्या नहीं है ? किंतु हैहीं । तहां विद्याके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी॥१८५॥

॥ २ ॥ श्लोक १८९ उक्त अतिप्रसंगके परिहारकी शंका औ द्वैतअदर्शनतैं भिन्न आत्मज्ञानका विद्यापना ॥

२७ सुषुप्तिविषै उक्तअतिप्रसंगकी निवृत्तिकूं वादी शंका करैहैः—

२८] सुषुप्तिविषै पुरुष आत्मतत्त्वकूं नहीं जानताहै । ऐसैं जब मानै ।

२९) सुषुप्तिविषै द्वैतदर्शनके अभाव हुये वी आत्माकूं विषय करनैहारे ज्ञानके अभावतैं तिस सुषुप्तिकूं विद्यापना नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥

३० तब विवेकज्ञानकूंहीं विद्यापना प्राप्त भया । द्वैतदर्शनके अभावकूं नहीं । ऐसैं सिद्धांती कहैहैः—

३१] तब आत्मबुद्धिहीं विद्या है । द्वैतकी विस्मृति नहीं । ऐसैं तेरेकरि कहनैकूं योग्य है ॥ १८६ ॥

॥ ३ ॥ द्वैतअदर्शन औ आत्मज्ञान । इन मिलेहुये दोनूंके विद्यापनेकी शंका औ जडमैं अतिप्रसंगसैं समाधान ॥

३२ ननु द्वैतका अदर्शन औ आत्मज्ञान । इन मिलेहुये दोनूंकूंहीं विद्यापना है । एकएककूं नहीं । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

३३] दोनूं मिलेहुये विद्या है । ऐसैं जब कहै ।

३४ द्वैतकी विस्मृतिकूं वी विद्याके अंशपनैके अंगीकार किये जडकूं वी अर्द्ध-

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	³⁹मशकध्वनिमुख्यानां विक्षेपाणां बहुत्वतः ।	२८३५
७७२	तव विद्या तथा न स्याद्धटादीनां यथा दृढा॥१८८॥	
	⁴²आत्मधीरेव विद्येति यदि ⁴⁴तर्हि सुखी भव ।	टिप्पणांकः
७७३	⁴⁶दुष्टचित्तं निरुंध्याच्चे⁴⁸न्निरुंधि त्वं यथासुखम्॥१८९॥	ॐ

जडस्याप्यर्धविद्यात्वप्रसंग इति परिहरति—

३५] तर्हि घटादयः अर्द्धविद्याभाजिनः स्युः ॥

३६ अत्रोपपत्तिमाह—

३७] सकलद्वैतविस्मृतेः ॥ १८७ ॥

३८ अस्मिन्नेव पक्षे समाधिमतां पुरुषाणां अर्धविद्यावत्वमपि न स्यादिति सोपहासमाह—

३९] मशकध्वनिमुख्यानां विक्षेपाणां बहुत्वतः घटादीनां यथा विद्या दृढा । तथा तव न स्यात् ॥

४०) घटादीनां यथा द्वैतविस्मरणं दृढं । तथा तव समाधौ द्वैतविस्मरणं न संभवति । मशकध्वन्यादीनामनेकेषां विक्षेपाणां सद्भावादित्यर्थः ॥ १८८ ॥

४१ ननु आत्मज्ञानस्यैव विद्यात्वं । न द्वैतविस्मृतेरिति शंकते—

४२] आत्मधीः एव विद्या इति यदि ।

४३ तदस्माकमिष्टमित्यभिप्रायेणाशीर्वादयति—

४४] तर्हि सुखी भव ॥

विद्यावान्‌पनैका प्रसंग होवैगा । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

३५] तब घटादिक वी अर्द्धविद्यावाले होवैंगे ।

३६ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं:—

३७] घटादिककूं सकलद्वैतकी विस्मृतितैं ॥ १८७ ॥

॥ ४ ॥ समाधिवाले पुरुषनतैं घटादिकके विद्याकी दृढतापूर्वक उपहास ॥

३८ इस १८७ श्लोकउक्तहीं पक्षविषै समाधिवाले पुरुषनकूं अर्द्धविद्यावान्‌ता वी न होवैगी । यह उपहाससहित कहैहैं:—

३९] मच्छरनकी ध्वनि है मुख्य जिनविषै ऐसैं जे विक्षेप हैं । तिनकी बहुलतातैं जैसैं घटादिकनकी विद्या दृढ है। तैसैं तेरी विद्या दृढ नहीं होवैगी ॥

४०) घटादिकनकूं जैसैं द्वैतका विस्मरण दृढ है। तैसैं तेरेकूं समाधिविषै द्वैतका विस्मरण नहीं संभवैहै । काहेतैं तेरेकूं मशाकनकी ध्वनिसैं आदिलेके अनेकविक्षेपनके सद्भावतैं ॥ यह अर्थ है ॥ १८८ ॥

॥ ९ ॥ आत्मज्ञानके विद्यापनैकी शंकाकर्त्ताकूं आशीर्वाद औ दोषयुक्तचित्तनिरोधकी शंकाका अंगीकार ॥

४१ ननु आत्मज्ञानकूंहीं विद्यापना है । द्वैतकी विस्मृतिकूं नहीं । इसरीतिसैं वादी दुराग्रह छोडिके सिद्धांतके अनुकूल शंकाकूं करैहै:—

४२] आत्मबुद्धिहीं विद्या है । ऐसैं जब मानै ।

४३ सो आत्मज्ञानकूं विद्यापना हमकूं इष्ट है । इस अभिप्रायकरि सिद्धांती पूर्ववादीकूं आशीर्वाद देतेहैं:—

४४] तब सुखी होहु ॥

टीकांकः २८४५ टिप्पणांकः ॐ

४९ ५१
तदिष्टमेष्टव्यमायामयत्वस्य समीक्षणात् ।
५४
इच्छन्नप्यज्ञवन्नेच्छेत्किमिच्छन्नपि हि श्रुतम्॥१९०

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७७४

४५ नन्वात्मधीरेव विद्या सा न दुष्टचित्ते संभवति । अतश्चित्तदोषपरिहाराय चित्तवृत्तिनिरोधः कार्य इति शंकामनुभाषते—

४६] दुष्टचित्तं निरुंध्यात् चेत् ।

४७ तदंगीकरोति (निरुंधि त्वमिति)—

४८] त्वं यथासुखं निरुंधि ॥ १८९ ॥

४९] तत् इष्टम् ॥

ॐ ४९) अस्माकमपीति शेषः ॥

५० कुत इत्यत आह—

५१] एष्टव्यमायामयत्वस्य समीक्षणात् ॥

५२) चित्तदोषापगमे सति अद्वितीयात्मज्ञानायेष्यमाणं जगन्मायामयत्वं सम्यगीक्ष्यते यतः अत इष्टमित्यर्थः ॥

५३ एवं किमिच्छन्निति मंत्रांशेनाभिमेतमर्थमुपपादितं उपसंहरति—

५४] इच्छन् अपि अज्ञवत् न इच्छेत् हि । किम् इच्छन् अपि श्रुतम् ॥

ॐ५४) इच्छन्नपि अयं अज्ञवत् नेच्छेत् अतः किमिच्छन् इति श्रुतं इति योजना ॥ १९० ॥

४५ ननु आत्मज्ञानहीं विद्या है। परंतु सो विक्षेपादिदोषयुक्तचित्तविषै संभवै नहीं। यातैं चित्तके दोषकी निवृत्तिअर्थ चित्तवृत्तिका निरोध करनैंकूं योग्य है। इस शंकाकूं वादी फेर कथन करैहैः—

४६] दुष्टचित्तकूं निरोध कियाचाहिये। ऐसैं जब कहै।

४७ तिसकूं सिद्धांती अंगीकार करैहैंः—

४८] तब तूं जैसैं सुख होवै तैसैं चित्तकूं निरोध कर ॥ १८९ ॥

॥ ६ ॥ दुष्टचित्तके निरोधकरि इष्टापत्ति मानिके "किसकूं इच्छताहुआ" इस श्रुतिअंशके अभिप्रेतअर्थकी समाप्ति ॥

४९] सो दोषयुक्तचित्तका निरोध इष्ट है॥

ॐ ४९) इहां हमकूं बी (इष्ट है)। यह शेष है ॥

५० चित्तका निरोध तुमकूं काहेतैं इष्ट है? तहां कहैहैंः—

५१] इच्छा करनैंकूं योग्य जगत्के मायामयपनैके सम्यक् देखनैतैं ॥

५२) जातैं चित्तनिरोधकरि चित्तके दोषकी निवृत्तिके भये। अद्वितीयआत्माके ज्ञानअर्थ वांछित जो जगत्का मिथ्यापना है। सो सम्यक् देखियेहै। यातैं सो चित्तका निरोध हमकूं इष्ट है ॥ यह अर्थ है ॥

५३ ऐसैं १३६–१९० श्लोकपर्यंत "किस भोग्यकूं इच्छताहुआ" इस श्रुतिमंत्रके पद्करि कहनैंकूं इच्छितअर्थ उपपादन किया ताकूं समाप्त करैहैंः—

५४] इच्छताहुया कहिये चित्रदीपगत २६२ वें श्लोकउक्तबाधितइच्छावान् हुया बी यह अज्ञानीकी न्यांई इच्छे नहीं। कहिये चित्रदीपगत २६१ वें श्लोकउक्तआध्यासिकइच्छा करै नहीं। यातैं कहिये इसअर्थके निर्णय वास्ते "किसकूं इच्छताहुआ" ऐसैं बी श्रुतिविषै सुन्याहै ॥

ॐ ५४) इहां इच्छताहुया यह ज्ञानी। अज्ञानीकी न्यांई नहीं इच्छे। यातैं "किसकूं इच्छताहुया" ऐसैं इस प्रकृतश्रुतिविषै सुन्याहै। ऐसैं योजना है ॥ १९० ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७७५

५६ रागो लिंगमबोधस्य संतु रागादयो बुधे।
इति शास्त्रद्वयं सार्थमेवं सत्यविरोधतः ॥ १९१ ॥

टीकांकः २८५५ टिप्पणांकः ६६८

५५ एवमभिप्रायवर्णने कारणमाह—

५६] रागः अबोधस्य लिंगं। बुधे रागादयः संतु इति एवं सति शास्त्रद्वयं अविरोधतः सार्थम् ॥

५७) "रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु। कुतः शाद्वलता तस्य यस्याग्निः कोटरे तरोः" इति तत्त्वविदो रागनिषेधपरं शास्त्रं। "शास्त्रार्थस्य समाप्तत्वान्मुक्तिः स्यात् तावताऽपि ते रागादयः संतु कामं न तद्भावोऽपराध्यते" इति तस्यैव रागांगीकारपरं च शास्त्रम्। एवं च सति तत्त्वविदो दृढरागाभावे सति। शास्त्रद्वयं सार्थं अर्थवद्भवति अविरोधतः रागनिषेधपरस्य शास्त्रस्य दृढरागविषयत्वात् तदभ्युपगमपरस्य शास्त्रस्य रागाभासविषयत्वादिति भावः १९१

॥ ७ ॥ ज्ञानीकूं अदृढरागके अंगीकाररूप प्रथमश्लोकउक्तश्रुतिअंशके अभिप्रायके वर्णनमैं कारण ॥

५५ ऐसैं इस श्रुतिपदके अभिप्रायके वर्णनविषै कारण कहैहैं:—

५६] "दृढआसक्तिरूप राग अज्ञानका चिन्ह है" औ "ज्ञानीविषै रागादिक होहु" ये दोनूं शास्त्र। ऐसैं हुये अविरोधतैं अर्थवान् होवैहैं ॥

५७) "चित्तके विहार करनैकी भूमिरूप विषयनविषै जो राग है। सो अबोधका लिंग है जिस वृक्षके बीचके पोलारविषै अग्नि है। तिस वृक्षकी हरियावली कहांसैं होवैगी!" यह तत्त्ववित्‌के रागके निषेधपर शास्त्र है औ "शास्त्रके अर्थकूं समाप्त होनैतैं तितनैं असंग-अद्वितीयआत्माके ज्ञानकरि बी तुज ज्ञानीकूं मुक्ति होवैगी औ मनके धर्म रागादिक जैसैं इच्छा होवै तैसैं होवैं। तिनका होना अपराधकूं पावता नहीं ॥" यह तिसी ज्ञानीहींके रागके अंगीकारपर शास्त्र है। तातैं ऐसैं कहिये तत्त्ववित्‌कूं दृढरागके अभाव हुये दोनूं शास्त्र अर्थवान् होवैहैं। काहेतैं दोनूंके अविरोधतैं कहिये रागके निषेधपर शास्त्रकूं दृढरागकूं विषय करनैहारा होनैतैं औ तिस रागके अंगीकारपर शास्त्रकूं अदृढरागरूप रागाभासकूं विषय करनैहारा होनैतैं ॥ यह भाव है॥१९१॥

६८ जैसैं धूम अग्निके जाननैका लिंग है। तैसैं विषयनविषै जो राग है। सो अज्ञानके जाननैका लिंग (चिन्ह) है ॥ इहां यह अनुमान है:—यह पर्वत अग्निमान् है। धूमवान् होनैतैं। रसोईके स्थानकी न्याईं ॥ यह धूमके ज्ञानतैं अग्निके ज्ञानका साधक अनुमान है ॥ ऐसैं यह पुरुष अज्ञानी है। रागवान् होनैतैं। अन्यअज्ञानीकी न्याईं ॥ यह रागके ज्ञानतैं अज्ञानके ज्ञानका साधक अनुमान है ॥

६९ जैसैं किसी निमित्तसैं कोटर(कुक्षि)विषै अग्निवाला वृक्ष आर्द्र नहीं देखियेहै। तैसैं अज्ञानरूप निमित्तसैं अनुकूलता ज्ञानके साधक भेदज्ञानद्वारा उत्पन्न रागरूप आंतरअग्निवाला पुरुष बहुतप्रवृत्तिकरि शांतिकूं पावता नहीं। किंतु विक्षेपरूप ज्वालाकरि जलताहीं रहताहै ॥ यह अर्थ है ॥

७० स्थूलअंतःकरणरूप उपादानके संबंध होते औ अनुकूलपदार्थरूप निमित्तके संबंध हुये निरंतरपनैकरि रागका अभाव अदृढराग कहियेहै। यहहीं ज्ञानीका लक्षण है ॥ इस लक्षणकी यह परीक्षा है:—

टीकांक: २८५८ टिप्पणांक: ॐ	५९ जगन्मिथ्यात्ववत्स्वात्मासंगत्वस्य समीक्षणात् । कस्य कामायेति वचो भोक्तृभावविवक्षया १९२	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७७६

५८ एवं "किमिच्छन्" इत्यंशस्याभिप्राय-मुपवर्ण्य "कस्य कामाय" इत्यंशस्याभि-प्रायमाह—

५९] जगन्मिथ्यात्ववत् स्वात्मा-संगत्वस्य समीक्षणात् भोक्तृभाव-विवक्षया "कस्य कामाय" इति वचः ॥

६०) यथा जगन्मिथ्यात्वबोधेन वास्तवकाम्याभावविवक्षया "किमिच्छन्" इत्युक्तं । एवमात्मनोऽसंगत्वबोधेन वास्तव-भोक्तृत्वाभावविवक्षया "कस्य का-माय" इति श्रुत्याऽभिहितमित्यर्थः ॥१९२॥

॥ ४ ॥ "किस (भोक्ता)के काम (भोग)अर्थ" इस श्रुतिके अंशका अभिप्राय (भोक्ताके अभावतैं भोगइच्छाजन्य संतापका अभाव) ॥२८५८—२९६१॥

॥ १ ॥ भोक्ताके निषेधपूर्वक कूटस्थ-आत्माकी असंगता ॥२८५८—२८८९॥

॥ १ ॥ आत्माकी असंगताकरि भोक्ताका निषेध॥

५८ ऐसैं "किसकूं इच्छताहुआ" इस श्रुतिअंशके अभिप्रायकूं वर्णनकरिके । अब "किस भोक्ताके कामअर्थ कहिये भोगअर्थ" इस श्रुतिअंशके अभिप्रायकूं कहैहैं:—

५९] जगत्के मिथ्यापनैकी न्यांई स्वात्माके असंगपनैके सम्यक् देखनैतैं भोक्ताके अभावकी विवक्षासैं नाम कहनैकी इच्छासैं "किसके कामअर्थ" यह श्रुतिका वचन है ॥

६०) जैसैं जगत्के मिथ्यापनैके बोधकरि वास्तवभोग्यके अभावकी विवक्षासैं "किसकूं इच्छताहुआ" । यह वचन कहाहै । ऐसैं आत्माके असंगपनैके बोधकरि वास्तवभोक्ता-पनैके अभावकी विवक्षासैं "किसके काम-अर्थ" । यह वचन प्रथमश्लोकउक्तश्रुतिनैं कहाहै ॥ यह अर्थ है ॥ १९२ ॥

(१) अंतःकरणका संबंध तौ अज्ञानीकूं बी है । परंतु रागका अभाव नहीं ॥

(२) रागका अभाव तौ सर्वकूं सुषुप्तिमैं बी है । परंतु तहां अंतःकरणका संबंध नहीं ॥

(३) सूक्ष्म (संस्काररूप) अंतःकरणका संबंध औ रागका अभाव तौ सुषुप्तिमैं बी है । परंतु तहां स्थूलअवस्थावाले अंतःकरणका संबंध नहीं ॥

(४) स्थूलअंतःकरणके संबंध हुये कदाचित् (उद्योग-कालमैं) रागका अभाव तौ अज्ञानीकूं बी है । परंतु तहां अनुकूलपदार्थकी स्मृति वा सन्निधि नहीं ॥

(५) स्थूलअंतःकरण औ अनुकूलवस्तुके संबंध हुये कदाचित् (अविचारदशामैं) राग तौ ज्ञानीकूं बी होवैहै । परंतु निरंतर नहीं ॥

(६) स्थूलअंतःकरण औ अनुकूलपदार्थके संबंधके होते कदाचित् रागका अभाव तौ उपासकादिशुद्धचित्तवाले अज्ञानीकूं देखियेहै । परंतु सो (अभाव) बाहिरसैं (स्थूलराग-का) होवैहै । आंतरसैं (सूक्ष्मरागका) होवै नहीं ॥ यह वार्त्ता "रस (सूक्ष्मराग) बी इस (पुरुषका) पर (ब्रह्म)कूं देखिके (साक्षात्करिके) निवृत्त होवैहै ॥" इस गीताके द्वितीय-अध्यायगत ५९ वें श्लोकरूप वाक्यतैं जानियेहै ॥

यातैं कहा जो अदृढरागरूप ज्ञानीका लक्षण । सो निर्दोष है ॥ ऐसैंहीं अदृढद्वेषआदिकविषै बी जानी लेना । इहां अदृढ-रागआदिकशब्दकरि दृढरागआदिकका अभाव ग्रहण करियेहै । काहेतैं अदृढराग होवै अथवा न होवै परंतु दृढरागके अभाववाला ज्ञानी है । इस ज्ञानीके लक्षणकूं सर्वभूमिकाविषै घटनैतैं ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्रोकांकः ७७७ ७७८

[६२]पतिजायादिकं सर्वं तत्तद्भोगाय नेच्छति।
किं त्वात्मभोगार्थमिति श्रुतावुद्घोषितं बहु १९३
किं[६५] कूटस्थचिदाभासौ यथा किं चोभयात्मकः।
भोक्ता तत्र न कूटस्थोऽसंगत्वाद्भोक्तृतां व्रजेत् १९४

टीकांकः २८६१ टिप्पणांकः ॐ

६१नन्वात्मनो भोक्तृत्वप्रतिषेधस्तत्प्रसक्तिपूर्वकोक्तव्यः सा तु न विद्यते असंगत्वादात्मन इत्याशंक्य तस्य स्वानुभवसिद्धत्वान्मैवमित्यभिप्रेत्य तदनुवादिकां श्रुतिम् अर्थतः अनुक्रामति—

६२] "पतिजायादिकं सर्वं तत्तद्भोगाय न इच्छति। किंतु आत्मभोगार्थं" इति श्रुतौ बहु उद्घोषितम् ॥

६३) "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति" इत्यारभ्य। "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" इत्यंतेन वाक्यसंदर्भेण पतिजायादिकस्य प्रपंचस्यात्मनो भोगसाधनत्वं प्रतिपाद्यते। तत आत्मनो भोक्तृत्वप्रसक्तिरित्यर्थः ॥ १९३ ॥

६४ एवमात्मनो भोक्तृत्वं प्रदर्श्य तदपवादाय भोक्तारं विकल्पयति—

६५] किं कूटस्थचिदाभासौ यथा किं च उभयात्मकः भोक्ता ॥

॥ २ ॥ आत्माके भ्रांतिसिद्धभोक्तापनेके अनुवाद करनैहारी श्रुति ॥

६१ ननु आत्माके भोक्तापनेका निषेध जो है। सो तिस भोक्तापनेकी प्राप्तिपूर्वक कहनैकूं योग्य है ॥ सो आत्माकूं भोक्तापनेकी प्राप्ति तौ आत्माकूं असंग होनेतें नहीं है। यातैं ताका निषेध कैसैं होवैगा? यह आशंकाकरि तिस आत्माके आरोपितभोक्तापनेकूं अपनै अनुभवकरि सिद्ध होनेतें आत्माकूं भोक्तापनेकी प्राप्ति नहीं है। यह कथन बनै नहीं। इस अभिप्रायकरिके तिस आत्माके लोकअनुभवसिद्धभोक्तापनेके अनुवादकी करनैहारी श्रुतिकूं अर्थतें अनुक्रमकरि कहैहैं:—

६२] पतिजायाआदिकसर्वकूं तिस तिस पतिजायाआदिकके भोगअर्थ पुरुष इच्छता नहीं। किंतु आपके भोगअर्थ इच्छताहै" ऐसैं श्रुतिविषै बहुत कथन कियाहै ॥

६३) याज्ञवल्क्यऋषि अपनी स्त्री मैत्रेयीकूं कहैहैं:—अरे स्त्री! पतिके कामअर्थ नाम भोगअर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै ॥" इहांसैं आरंभकरिके "आत्माके कामअर्थ सर्व प्रिय होवैहै ॥" इहांपर्यंत जो श्रुतिवाक्यका समूह है। तिसकरि पतिस्त्रीआदिकप्रपंचकूं आत्माके भोगका साधनतारूप भोग्यपना प्रतिपादन करियेहै। तातैं आत्माकूं भोक्तापनेकी प्राप्ति है ॥ यह अर्थ है ॥ १९३ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक १९३ उक्त आत्माके भोक्तापनेके अपवादअर्थ भोक्ताकेप्रति विकल्प ॥

६४ ऐसैं आत्माके भोक्तापनेकूं दिखायके। तिस भोक्तापनेके निषेधअर्थ भोक्ताकेप्रति विकल्प करैहैं:—

६५] क्या कूटस्थ भोक्ता है। वा चिदाभास भोक्ता है। किंवा कूटस्थचिदाभास दोनूं मिलिके भोक्ता है?

टीकांकः २८६६ टिप्पणांकः ६७१	सुँखदुःखाभिमानाख्यो विकारो भोग उच्यते । कूटस्थश्च विकारी चेत्येतन्न व्याहतं कथम् १९५ विँकारिबुद्धयधीनत्वादाभासो विकृतावपि । निरधिष्ठानविभ्रांतिः केवला न हि तिष्ठति॥१९६॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७७९ ७८०

६६) किं कूटस्थस्य भोक्तृत्वं उत चिदाभासस्य किं वा उभयात्मकस्येति विकल्पार्थः ॥

६७ तत्र प्रथमं प्रत्याह—

६८] तत्र कूटस्थः असंगत्वात् भोक्तृतां न व्रजेत् ॥ १९४ ॥

६९ असंगत्वमस्तु भोक्तृत्वमप्यस्तु को दोषः इत्याशंक्याह—

७०] सुखदुःखाभिमानाख्यः विकारः भोगः उच्यते । कूटस्थः च विकारी च इति एतत् कथं न व्याहतम् ॥

७१) सुखित्वदुःखित्वाभिमानलक्षणो विकारो भोगः सोऽसंगस्य कूटस्थस्य न युज्यते । कूटस्थत्वविकारित्वयोरेकत्र समावेशायोगादित्यर्थः ॥ १९५ ॥

७२ ननु तर्हि विकारिणश्चिदाभासस्य भोक्तृत्वं स्यादित्याशंक्य विकारित्वेऽपि निरधिष्ठानस्य तस्यैवासिद्धेः मैवमिति परिहरति (विकारिबुद्ध्येति)—

---

६६) क्या कूटस्थकूं भोक्तापना है। अथवा चिदाभासकूं है। किंवा उभयरूपकूं है? यह विकल्पका अर्थ है ॥

॥ ४ ॥ कूटस्थके भोक्तापनैरूप प्रथमविकल्पका निषेध ॥

६७ तिन तीनविकल्पनविषै क्या कूटस्थ भोक्ता है? इस प्रथमविकल्पके प्रति कहैहैं:—

६८] तिनविषै कूटस्थ असंग होनैतैं भोक्तापनैकूं पावता नहीं १९४

६९ ननु कूटस्थकूं असंगपना होहु औ भोक्तापना वी होहु। कौंन दोष है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७०] सुखदुःखका अभिमानरूप जो विकार। सो भोग कहियेहै। यातैं "कूटस्थ है औ विकारी है" यह वचन कैसैं व्याघातदोषयुक्त नहीं होवैगा? किंतु होवैंगाहीं ॥

७१) "मैं सुखी हूं। मैं दुःखी हूं" यह सुखीपनैका औ दुःखीपनैका अभिमानरूप विकार भोग है। सो असंगकूँटस्थकूं नहीं संभवैहै। काहेतैं निर्विकारपना औ विकारीपना इन दोनूंके एकठिकानै रहनैके अयोगतैं। यह अर्थ है ॥ १९५ ॥

॥ ५ ॥ चिदाभासके भोक्तापनैरूप दूसरेविकल्पका निषेध ॥

७२ ननु तब विकारी जो चिदाभास है ताकूं भोक्तापना होहु। यह आशंकाकरि चिदाभासकूं विकारीपनैके हुये वी कूटस्थरूप अधिष्ठानविना तिस चिदाभासकीहीं असिद्धितैं चिदाभासकूं भोक्तापना है। यह कथन बनै नहीं। ऐसैं परिहार करैहैं:—

---

७१ "विक्रियाविना 'मैं दुःखी हूं' यह प्रतीति होवै नहीं औ चिदात्माकूं कौन विक्रिया है? (कोइ वी नहीं) किंतु बुद्धिकी हजारोंहजारविक्रिया (विकारन)का मैं साक्षी एक अविक्रिय हूं" इस शास्त्रवाक्यतैं असंगकूटस्थकूं सुखदुःखका अभिमाननामक विकाररूप भोग संभवै नहीं। यातैं केवलकूटस्थ वी भोक्ता नहीं है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७८१	उँभयात्मक एवातो लोके भोक्ता निगद्यते । तौँदृगात्मानमारभ्य कूटस्थः शेषितः श्रुतौ१९७	टीकांकः २८७३ टिप्पणांकः ॐ

७३] आभासः विकारिबुद्ध्यधीनत्वात् विकृतौ अपि हि निरधिष्ठानविभ्रांतिः केवला न तिष्ठति ॥

७४) चिदाभासस्य विकारिबुद्ध्युपाध्यधीनत्वात् स्वस्मिन् विकारे संभवत्यपि।तस्यारोपितस्यारोपितस्वरूपत्वेनाधिष्ठानभूतं कूटस्थं विहाय । स्वातंत्र्येणावस्थानासंभवात्केवलचिदाभासस्यापि भोक्तृत्वं न संभवतीति भावः ॥ १९६ ॥

७५ तस्मात् तृतीयः पक्षः परिशिष्यत इत्याह (उभयात्मक इति)—

७६] अतः लोके उभयात्मकः एव भोक्ता निगद्यते ॥

७७) यत एकैकस्य भोक्तृत्वं न संभवति । अत उभयात्मकः साधिष्ठानचिदाभास एव लोके व्यवहारदशायां भोक्ता इत्यभिधीयते । परमार्थतस्तूभयात्मकत्वमेव न घटत इति भावः ॥

७८ ननु "असंगो ह्ययं पुरुषः" इत्यादावसंगस्यैव "योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु" इत्यादौ बुद्धिसाक्षित्वस्यापि श्रवणादुभयात्मकभोक्तृस्वरूपमपि पारमार्थिकमेव स्यात् न

७३] चिदाभास विकारीबुद्धिके अधीन होनेतैं विकारी है ॥ ऐसैं अपनेविषै विकारके होते बी जातैं अधिष्ठानरहित भ्रांति केवल नहीं स्थित होवैहै । तातैं चिदाभास बी भोक्ता नहीं है॥

७४) चिदाभासकूं विकारीबुद्धिके अधीन होनेतैं अपनैविषै विकारके संभव हुये बी । तिस आरोपितचिदाभासकूं आरोपितका स्वरूप होनैकरि अधिष्ठानरूप कूटस्थकूं छोडिके स्वतंत्रपनैकरि तिसके अवस्थानके असंभवतैं केवलचिदाभासकूं बी भोक्तापना संभवै नहीं॥ यह भाव है ॥ १९६ ॥

॥ ६ ॥ कूटस्थ औ चिदाभास दोनूंके भोक्तापनैरूप तीसरेविकल्पका अंगीकार ॥

७५ तातैं केवलकूटस्थके वा चिदाभासके भोक्तापनैके असंभवतैं दोनूं मिलिके भोक्ता है । यह तीसरापक्ष परिशेषकूं पावताहै । ऐसैं कहैहैं:—

७६] यातैं लोकविषै उभयरूपहीं भोक्ता कहियेहै ॥

७७) जातैं कूटस्थ औ चिदाभास दोनूंमैंसैं एकएककूं भोक्तापना नहीं संभवैहै । यातैं उभयरूप कहिये कूटस्थरूप अधिष्ठानसहित चिदाभासहीं । लोकविषै कहिये व्यवहारदशाविषै भोक्ता है । ऐसैं कहियेहै औ परमार्थतैं तौ उभयरूपताहीं नहीं घटैहै ॥ यह भाव है ॥

॥ ७ ॥ कूटस्थकी श्रुतिप्रमाणसिद्धअसंगतासैं वास्तवअभोक्तापना ॥

७८ ननु "यह पुरुष असंग है ॥" इत्यादिवाक्यविषै आत्माकी असंगताकेहीं श्रवणतैं औ "जो यह विज्ञानमय प्राणनविषै है" इत्यादिवाक्यविषै आत्माके बुद्धिके साक्षीपनैके बी श्रवणतैं । उभयरूप भोक्ताका स्वरूप बी पारमार्थिकहीं होवैगा । लोकव्यवहारमात्रकरि सिद्ध होवै नहीं । यह आशंकाकरि श्रुतिके तिस पारमार्थिकभोक्तापनैविषै तात्पर्यके

टीकांक: २८७९ टिप्पणांक: ॐ	आत्मा कतम इत्युक्ते याज्ञवल्क्यो विबोधयन् । विज्ञानमयमारभ्यासंगं तं पर्यशेषयत् ॥ १९८ ॥ कोऽयमात्मेत्येवमादौ सर्वत्रात्मविचारतः । उभयात्मकमारभ्य कूटस्थः शेष्यते श्रुतौ॥१९९	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७८२ ७८३

लोकव्यवहारमात्रसिद्धमित्याशंक्य श्रुतेस्तत्र तात्पर्याभावान्नैवमित्याह—

७९] **तादृक् आत्मानं आरभ्य श्रुतौ कूटस्थः शेषितः ॥**

८०) तादृगात्मानं बुद्ध्युपाधिकं भोक्तारमात्मानम् आरभ्य अनूद्य कूटस्थः बुद्ध्यादिकल्पनाधिष्ठानभूतश्चिदात्मा शेषितः बुद्ध्याद्यनात्मनिरसनेन परिशेषितः । श्रुतौ बृहदारण्यकादावित्यर्थः ॥ १९७ ॥

८१ तत्र बृहदारण्यकवाक्यार्थं तावत्संक्षिप्य दर्शयति (आत्मेति)—

८२] **"कतमः आत्मा" इति उक्ते याज्ञवल्क्यः तं विबोधयन् विज्ञानमयं आरभ्य असंगं पर्यशेषयत् ॥**

८३) जनकेन "कतम आत्मेति" एवमात्मनि पृष्टे सति याज्ञवल्क्यस्तं विबोधयन् "योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु" इत्यादिना **विज्ञानमयम्** उपक्रम्य "असंगो ह्ययं पुरुषः" इति असंगं कूटस्थं परिशेषितवानित्यर्थः ॥ १९८ ॥

८४ एवं बृहदारण्यकेऽसंगात्मपरिशेषप्रकारं प्रदर्श्य ऐतरेयादिश्रुत्यंतरेष्वपि तद्दर्शयति—

अभावतैं भोक्ताका स्वरूप पारमार्थिक है। यह कथन बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

७९] **तैसैं भोक्तारूप आत्माकूं आरंभकरिके श्रुतिविषै कूटस्थ अवशेष कियाहै ॥**

८०) तैसैं बुद्धिउपाधिवाले भोक्तारूप आत्माकूं अनुवादकरिके । बृहदारण्यकआदिश्रुतिविषै कूटस्थ जो बुद्धिआदिककी कल्पनाका अधिष्ठानरूप चिदात्मा । सो अवशेष कियाहै कहिये बुद्धिआदिकअनात्माका निरसनकरिके चित्रदीपगत २४९ श्लोकउक्तलक्षणवाले परिशेषका विषय कियाहै । यह अर्थ है ॥१९७॥

८१ तिसविषै बृहदारण्यकउपनिषद्के अर्थकूं प्रथम संक्षेपकरिके दिखावैहैं:—

८२] जनकनैं "आत्मा कौन है?" ऐसैं **कहेहुये याज्ञवल्क्य तिसकूं बोधन करतेहुये। विज्ञानमयकूं आरंभकरिके असंगकूं परिशेष करतेभये ॥**

८३) जनकराजानै "कौंन आत्मा है?" ऐसैं आत्माके पूंछेहुये । याज्ञवल्क्यमुनि तिसकूं बोधन करतेहुये "जो यह विज्ञानमय प्राणनविषै है" इत्यादिवाक्यकरि विज्ञानमयकूं आरंभकरिके । "यह पुरुष असंग है" ऐसैं असंगकूटस्थकूं परिशेषका विषय करतेभये ॥ यह अर्थ है ॥ १९८ ॥

८४ ऐसैं बृहदारण्यकविषै असंगआत्माके परिशेषके प्रकारकूं दिखायके ऐतरेयआदिकअन्यश्रुतिनविषै बी तिस असंगआत्माके परिशेषके प्रकारकूं दिखावैहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७८४ | टीकांकः २८८५ | टिप्पणांकः ॐ

कूटस्थसत्यतां स्वस्मिन्नध्यस्यात्माऽविवेकतः ।
तात्विकीं भोक्तृतां मत्वा न कदाचिज्जिहासति ॥ २०० ॥

८५] "कः अयं आत्मा" इति एवमादौ सर्वत्र श्रुतौ आत्मविचारतः उभयात्मकं आरभ्य कूटस्थः शेष्यते ॥

८६) "कोऽयमात्मा इति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा" इत्येवमादौ आत्मविचारेणांतःकरणोपाधिकमात्मानं आरभ्य प्रज्ञानमात्रात्मकः कूटस्थः परिशेषितः । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् । एवं युक्तिश्रुतिपर्यालोचनायामुभयात्मकस्य भोक्तुः मिथ्यात्वं पारमार्थिकस्य असंगस्य कूटस्थस्य अभोक्तृत्वं सिद्धम् ॥ १९९ ॥

८७ ननूक्तरीत्या भोक्तुर्मिथ्यात्वे प्राणिनां तस्मिन् सत्यत्वबुद्धिः कुतो जायत इत्याशंक्याह (कूटस्थेति)—

८८] आत्मा अविवेकतः कूटस्थसत्यतां स्वस्मिन् अध्यस्य भोक्तृतां तात्विकीं मत्वा कदाचित् न जिहासति ॥

८९) आत्मा लोकप्रसिद्धो भोक्ता अविवेकतः स्वस्य कूटस्थस्य विवेकज्ञानाभावेन कूटस्थनिष्ठं सत्यत्वमात्मनि अध्यस्य । तद्द्वारा स्वनिष्ठस्य भोक्तृत्वस्यापि सत्यतां मत्वा । भोगं कदाचित् अपि न हातुमिच्छति ॥ २०० ॥

८५] "कौन यह आत्मा है?" इत्यादिक वाक्यमैं सर्वश्रुतिनविषै आत्माके विचारतैं उभयरूप आत्माकूं आरंभकरिके कूटस्थ अवशेष करियेहै ॥

८६) "कौन यह आत्मा है। जिसकूं हम उपासना करैं। कौनसा सो आत्मा है?"-इत्यादिवाक्यविषै आत्माके विचारकरि अंतःकरणउपाधिवाले आत्माकूं आरंभकरिके प्रज्ञानमात्ररूप कूटस्थ ऐतरेयउपनिषद्विषै परिशेष कियाहै। ऐसैं अन्यश्रुतिनविषै वी देखलेना ॥ उक्तरीतिसैं युक्ति औ श्रुतिनके विचार कियेहुये कूटस्थचिदाभास उभयरूप भोक्ताका मिथ्यापना औ पारमार्थिकअसंगकूटस्थका अभोक्तापना सिद्ध होवैहै ॥१९९॥

॥ ८ ॥ चिदाभासकूं अविवेकतैं भोक्तापनैकी वास्तवताकरि भोगत्यागकी अनिच्छा ॥

८७ ननु १९७–१९९ श्लोकउक्तरीतिसैं भोक्ताके मिथ्यापनैके हुये प्राणिनकूं तिस भोक्ताविषै सत्यताबुद्धि काहेतैं होवैहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८८] आत्मा अविवेकतैं कूटस्थकी सत्यताकूं अपनैविषै अध्यासकरिके भोक्तापनैकूं वास्तव मानिके कदाचित् वी त्यागनैकूं इच्छता नहीं ॥

८९) आत्मा जो लोकप्रसिद्धभोक्ता। सो अपनै औ कूटस्थके विवेकज्ञानके अभावकरि कूटस्थविषै स्थित सत्यताकूं अपनैविषै आरोपकरिके । तिसद्वारा अपनैविषै स्थित भोक्तापनैकी वी सत्यताकूं मानिके भोगकूं कदाचित् वी त्यागनैकूं इच्छता नहीं ॥ २०० ॥

टीकांक: २८९० टिप्पणांक: ॐ	भोक्ता स्वस्यैव भोगाय पतिजायादिमिच्छति । एष लौकिकवृत्तांतः श्रुत्या सम्यगनूदितः॥२०१॥ भोग्यानां भोक्तृशेषत्वान्मा भोग्येष्वनुरज्यताम् । भोक्तर्येव प्रधानेऽतोऽनुरागे तं विधित्सति॥२०२॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७८५ ७८६

९० ननु तर्हि "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" इत्यात्मशेषत्वं भोग्यस्य कथं प्रतिपाद्यते इत्याशंक्य न कूटस्थात्मशेषत्वं प्रतिपाद्यते । किंतु लोकप्रसिद्धोभयात्मकभोक्तृशेषत्वमेव श्रुत्याऽनूद्यत इत्याह—

९१] **भोक्ता स्वस्य एव भोगाय पतिजायादिम् इच्छति । एषः लौकिकवृत्तांतः श्रुत्या सम्यक् अनूदितः ॥**

९२) लोके यो भोक्ता सः स्वस्यैव भोगाय पतिजायादिभोगोपकरणं इच्छति । इत्ययं लौकिकवृत्तांतः श्रुत्या सम्यक् अनूदितः नार्थांतरं प्रतिपाद्यत इत्यर्थः ॥ २०१ ॥

९३ अनुवादः किमर्थमित्याशंक्य भोक्तर्येव प्रेम्णो विधानायेत्याह—

९४] **भोग्यानां भोक्तृशेषत्वात् भोग्येषु मा अनुरज्यतां । प्रधाने भोक्तरि एव । अतः अनुरागे तं विधित्सति ॥**

॥ २ ॥ भोग्यनमैं प्रेमके त्यागकरि भोक्तामैं प्रेमकी कर्त्तव्यता

॥ २८९०–२९०१ ॥

॥ १ ॥ श्रुतिउक्तलोकप्रसिद्धभोक्ताकूं अपनैअर्थ भोग्यकी इच्छाके अनुवादकी सूचना ॥

९० ननु जब भोक्ताका मिथ्यापना है। तब "आत्माके कामअर्थ सर्व प्रिय होवैहै ।" ऐसैं भोग्य जो पतिजायादिरूपभोगकी सामग्री। ताकूं आत्माकी शेषता कहिये उपकारकता श्रुतिकरि कैसैं प्रतिपादन करियेहै? यह आशंकाकरि भोग्यकूं कूटस्थआत्माकी शेषता प्रतिपादन नहीं करियेहै । किंतु लोकप्रसिद्ध उभयरूप भोक्ताकी शेषताहीं श्रुतिकरि अनुवाद करियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

९१] **भोक्ता अपनैहीं भोगअर्थ पतिजायाआदिकभोग्यकूं इच्छताहै । यह लौकिकवृत्तांत श्रुतिनैं सम्यक् अनुवाद कियाहै ॥**

९२) लोकविषै जो भोक्ता है । सो अपनैंहीं भोगअर्थ पतिजायादिरूप भोगके साधनकूं इच्छताहै । इसरीतिका यह लोकप्रसिद्धवृत्तांत श्रुतिनैं सम्यक् अनुवाद कियाहै । अन्यअलौकिकअर्थ प्रतिपादन नहीं करियेहै । यह अर्थ है ॥ २०१ ॥

॥ २ ॥ श्लोक २०१ उक्त अनुवादका प्रयोजन ॥

९३ ननु श्रुतिनैं २०१ श्लोकउक्तअनुवाद किसअर्थ कियाहै? यह आशंकाकरि भोक्ताविषैहीं प्रेमके करनैकी प्रेरणारूप विधानअर्थ श्रुतिनै अनुवाद कियाहै। ऐसैं कहैहैं:—

९४] **भोग्यनकूं भोक्ताके शेष नाम साधन होनैतैं । भोग्यनविषै अनुराग करना नहीं किंतु मुख्यभोक्ताविषैहीं अनुराग करना । यातैं भोक्ताविषै अनुरागमैं श्रुति तिस भोक्ताकूं विधान करनैकूं इच्छतीहै ॥**

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७८७ | टीकांकः २८९५

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥ २०३ ॥

२९००
श्लोकांकः ७८८ | टिप्पणांकः ॐ

इति न्यायेन सर्वस्माद्भोग्यजाताद्विरक्तधीः ।
उपसंहृत्य तां प्रीतिं भोक्तर्येव बुभुत्सते ॥२०४॥

९५) भोग्यानां पतिजायादीनां भोक्तुः स्वस्य भोगोपकरणत्वात् । भोग्येषु अनुरागो न कर्तव्यः। किंतु प्रधानभूते भोक्तर्येवानुरागः कर्तव्य इति विधानायेत्यर्थः॥२०२

९६ भोग्येषु प्रेमत्यागपुरःसरं आत्मप्रेमप्रकर्त्तव्यतायां दृष्टांतत्वेनेश्वरे प्रेमप्रार्थनापुरःसरं पुराणवचनमुदाहरति (या प्रीतिरिति)—

९७] अविवेकिनां विषयेषु अनपायिनी या प्रीतिः । माप सा त्वां अनुस्मरतः मे हृदयात् सर्पतु यद्वा मा अपसर्पतु ॥

९८) अविवेकिनां आत्मज्ञानशून्यानां विषयेष्वनपायिनी दृढा या प्रीतिः अस्ति । हे माप लक्ष्मीपते । सा प्रीतिः त्वामनुस्मरतः त्वां सदा चिंतयतो । मे हृदयात् मनसः । सर्पतु अपगच्छतु । मम मनो विषयेष्वासक्तिं परित्यज्य त्वय्येव सदा तिष्ठत्वित्यर्थः ॥ यद्वा अविवेकिनां विषयेषु दृढा या यादृशी प्रीतिरस्ति । सा तादृशी विषयेषु विद्यमाना प्रीतिः त्वामनुस्मरतो मे हृदयान् माऽपसर्पतु मा अपगच्छतु सदा तिष्ठत्वित्यर्थः ॥ २०३ ॥

९९ भवत्वेवं पुराणे श्रुतौ किमायातमित्यत आह—

---

९५) पतिजायादिरूप भोग्यनकूं आप भोक्ताके भोगके उपकरण होनैतैं । अमुख्यरूप भोग्यनविषै प्रेम करनैकूं योग्य नहीं है किंतु प्रधानरूप भोक्ताविषैहीं अनुराग करनैकूं योग्य है । ऐसैं विधानअर्थ श्रुतिनैं अनुवाद कियाहै ॥ यह अर्थ है ॥ २०२ ॥

॥ ३ ॥ आत्माविषै प्रेमकी कर्त्तव्यतामैं दृष्टांतरूप पुराणवचन ॥

९६ भोग्यनविषै प्रेमके त्यागपूर्वक आत्माविषै प्रेमकी कर्त्तव्यतामैं दृष्टांत होनैकरि ईश्वरविषै प्रेमकी प्रार्थनापूर्वक जो पुराणका वचन है । ताकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

९७] अविवेकीजननकूं विषयनविषै जैसी दृढप्रीति है । हे विष्णो ! तैसी प्रीति तेरेकूं स्मरणकरनैहारे मेरे हृदयतैं जाहु । यद्वा मति जाहु ॥

९८) अविवेकी जे आत्मज्ञानरहित जन तिनकी विषयनविषै दृढ जो प्रीति है । हे लक्ष्मीपते ! सो प्रीति तेरेकूं सदा चिंतन करनैहारा जो मैं हूं । तिस मेरे हृदयतैं जाहु कहिये मेरा मन विषयनविषै आसक्तिकूं छोडिके तेरेविषैहीं सदा स्थित होहु । यह अर्थ है ॥ यद्वा अविवेकीनकूं विषयनविषै दृढ जैसी प्रीति है । सो तैसी विषयनविषै विद्यमान प्रीति तेरेकूं स्मरण करनैहारे मेरे हृदयतैं मति जाहु किंतु सदा स्थित होहु । यह अर्थ है ॥२०३॥

॥ ४ ॥ पुराणोक्तरीतिसैं भोग्यमैं वैराग्यकरि भोग्यगतप्रीतिके भोक्तामैं संकोचनका बोधन ॥

९९ ऐसैं पुराणविषै होहु । इसकरि श्रुतिविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

टीकांकः २९०० टिप्पणांकः ॐ	³स्रक्चंदनवधूवस्त्रसुवर्णादिषु पामरः । अप्रमत्तो यथा तद्वन्न प्रमाद्यति भोक्तरि ॥२०५॥ ⁶काव्यनाटकतर्कादिमभ्यस्यति निरंतरम् । विजिगीषुर्यथा तद्वन्मुमुक्षुः स्वं विचारयेत् २०६	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ७८९ ७९०

२९००] इति न्यायेन सर्वस्मात् भोग्यजातात् विरक्तधीः तां प्रीतिं भोक्तरि एव उपसंहृत्य बुभुत्सते ॥

१) इति अनेन पुराणोक्तन्यायेन । सर्वस्माद्भोग्यजातात् पतिजायादिलक्षणात् । विरक्तधीः विरक्ता धीर्यस्यासौ विरक्तधीः पुरुषः । तां भोग्यगोचरां प्रीतिं भोक्तरि आत्मनि । उपसंहृत्य एनमात्मानं बुभुत्सते बोद्धुमिच्छति ॥ २०४ ॥

२ एवमात्मन्येव प्रेमोपसंहारे फलितं सदृष्टांतमाह (स्रक्चंदनेति)—

३] पामरः स्रक्चंदनवधूवस्त्रसुवर्णादिषु यथा अप्रमत्तः । तद्वत् भोक्तरि न प्रमाद्यति ॥

४) पामरः पृथक्जनः । स्रगादिविषये यथाऽप्रमत्तः सावधानो भवति । एवं मुमुक्षुरप्यात्मविषये न प्रमाद्यति अनवधानं न करोति । किंतु तच्चिंतयैव तिष्ठतीत्यर्थः२०५

५ अनवधानाभावमेव बहुभिः दृष्टांतैः स्पष्टयति (काव्येति)—

६] यथा विजिगीषुः निरंतरं काव्यनाटकतर्कादिम् अभ्यस्यति । तद्वत् मुमुक्षुः स्वं विचारयेत् ॥

२९००] इस न्यायकरि सर्वभोग्यके समूहतैं विरक्तबुद्धिवाला पुरुष । तिस प्रीतिकूं भोक्ताविषैहीं संकोचकरिके आत्माकूं जाननैकूं इच्छताहै ॥

१) इस २०३ श्लोकउक्तपुराणवचनविषै कथन किये न्यायकरि पतिजायादिरूप सर्वभोग्यके समूहतैं विरक्त है बुद्धि जिसकी । ऐसा हुया पुरुष तिस भोग्यकूं विषय करनैहारी प्रीतिकूं भोक्ताआत्माविषै संकोचकरिके ऐसैं आत्माकूं जाननैकूं इच्छताहै ॥ २०४ ॥

॥ ३ ॥ मुमुक्षुकूं आत्मामैं सावधानताकी कर्त्तव्यतापूर्वक भोक्ताके तत्त्वका नाम वास्तवरूपका विवेचन ॥ २९०२—२९३० ॥

॥१॥ आत्मामैं प्रेमके संकोचनमैं दृष्टांतसहित फलित॥

२. ऐसैं आत्माविषैहीं प्रेमके संकोचनैविषै दृष्टांतसहित फलितकूं कहैहैं:—

३] पामरजन जैसैं माला चंदन स्त्री वस्त्र औ सुवर्णआदिकनविषै प्रमादरहित होवैहै । तैसैं मुमुक्षु। भोक्ता जो आत्मा तिसविषै प्रमादकूं करै नहीं ॥

४) पामर जो मोक्षमार्गतैं भिन्न जन । सो जैसैं मालाआदिकनविषै सावधान होवैहै । ऐसैं मुमुक्षुजन बी आत्माविषै विस्मरणरूप प्रमादकूं करै नहीं । किंतु तिस आत्माकी चिंताकरिहीं स्थित होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ २०५ ॥

॥ २ ॥ बहुतदृष्टांतनसैं आत्मामैं अप्रमादकी स्पष्टता ॥

५ आत्माविषै असावधानतारूप प्रमादके अभावकूंहीं बहुतदृष्टांतनकरि स्पष्ट करैहैं:—

६] जैसैं जीतनैकी इच्छावाला पुरुष । निरंतर काव्य नाटक औ तर्कआदिककूं अभ्यास करैहै। तैसैं मुमुक्षु स्वस्वरूपकूं विचार करै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	जपयागोपासनादि कुरुते श्रद्धया यथा ।	
७९१	स्वर्गादिवांच्छया तद्वच्छ्रद्दध्यात्स्वे मुमुक्षया २०७	२९०७
७९२	चित्तैकाग्र्यं यथा योगी महायासेन साधयेत् । अणिमादिप्रेप्सयैवं विविच्यात्स्वं मुमुक्षया २०८	टिप्पणांकः ॐ
७९३	कौशलानि विवर्धंते तेषामभ्यासपाटवात् । यथा तद्वद्विवेकोऽस्याप्यभ्यासाद्विशदायते ॥२०९	

७) यथा विजिगीषुः प्रतिवादिजयकामः इह लोके प्रधानः पुरुषो निरंतरं काव्यादीनभ्यस्यति । एवं मुमुक्षुः अपि सदा स्वात्मानं विचारयेत् ॥ २०६ ॥

८] (जपेति)— यथा स्वर्गादिवांच्छया जपयागोपासनादि श्रद्धया कुरुते । तद्वत् मुमुक्षया स्वे श्रद्दध्यात् ॥

९) यथा वैदिकश्च स्वर्गाद्यर्थी तत्तत्साधनानि जपादीनि श्रद्धापुरःसरमनुतिष्ठति । तथा मुमुक्षुरपि मोक्षेच्छया स्वे श्रौते आत्मनि विश्वासं कुर्यात् ॥ २०७ ॥

१०] (चित्तैकाग्र्यमिति)—योगी अणिमादिप्रेप्सया महायासेन चित्तैकाग्र्यं यथा साधयेत् । एवं मुमुक्षया स्वं विविच्यात् ॥

११) योगी योगाभ्यासवान् । अणिमाद्यैश्वर्यलाभेच्छया महायासेन चित्तैकाग्र्यं यथा संपादयेत् । तद्वदयमप्यात्मानं सदा विविच्यात् देहादिभ्यो विविच्य जानीयादित्यर्थः ॥ २०८ ॥

१२ नन्वेवमेतेषां सदाभ्यासेन किं फलमित्यत आह (कौशलानीति)—

---

७) जैसैं प्रतिवादीके जयकी कामनावाला जो इसलोकविषै प्रधानपुरुष है । सो निरंतर काव्यआदिकनकूं अभ्यास करैहै । ऐसैं मुमुक्षु बी सदा अपनै आत्माकूं विचार करै ॥२०६॥

८] जैसैं सकामीपुरुष स्वर्गादिककी वांच्छाकरि जप याग औ उपासनाआदिककूं श्रद्धासैं करताहै । तैसैं मुमुक्षु मोक्षइच्छाकरि स्वस्वरूपविषै श्रद्धा करै ॥

९) जैसैं स्वर्गादिकका अर्थी वैदिकपुरुष तिसतिस जपादिकसाधनकूं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करैहै । तैसैं मुमुक्षु बी मोक्षकी इच्छाकरि अपनै श्रुतिप्रतिपादितआत्माविषै विश्वासकूं करै ॥ २०७ ॥

१०] जैसैं योगी अणिमादिककी इच्छाकरि महान्‌आयाससैं चित्तकी एकाग्रताकूं साधै । ऐसैं मुमुक्षु मोक्षकी इच्छाकरि स्वस्वरूपकूं विवेचन करै ॥

११) योगाभ्यासवान् । अणिमाआदिकसिद्धिरूप ऐश्वर्यके लाभकी इच्छाकरि अष्टअंगयुक्त समाधिआदिकरूप महान्‌श्रमसैं चित्तकी एकाग्रताकूं जैसैं संपादन करै । तैसैं यह मुमुक्षु बी आत्माकूं सदा विवेचन करै कहिये देहादिकनतैं भिन्नकरि जानै । यह अर्थ है ॥ २०८ ॥

॥ ३ ॥ दृष्टांतदार्ष्टांतमैं अभ्यासका फल ॥

१२ ननु इस २०६—२०८ श्लोकउक्तप्रकारसैं इन शास्त्राभ्यासीआदिकपुरुषनकूं सदा अभ्याससैं क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

टीकांक: २९१२ टिप्पणांक: ६७२	१६ विविंचता भोक्तृतत्त्वं जाग्रदादिष्वसंगता । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां साक्षिण्यध्यवसीयते ॥२१०॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७९४

१३] यथा तेषां अभ्यासपाटवात् कौशलानि विवर्धंते। तद्वत् अस्य अपि अभ्यासात् विवेकः विशदायते ॥

१४) यथा तेषां काव्याद्यभ्यासवतां । अभ्यासपाटवेन तस्मिन् तस्मिन्विषये कौशलानि विवर्धंते । एवं । अस्यापि मुमुक्षोः अभ्यासाद्विवेको देहादिभ्य आत्मनो भेदज्ञानं । विशदायते स्पष्टं भवति ॥ २०९ ॥

१५ विवेकवैशद्यस्य फलमाह (विविंचतेति)—

१६] अन्वयव्यतिरेकाभ्यां भोक्तृतत्त्वं विविंचता जाग्रदादिषु साक्षिणि असंगता अध्यवसीयते ॥

१७) अन्वयव्यतिरेकाभ्यां भोक्तृतत्त्वं भोक्तुः पारमार्थिकस्वरूपं विविंचता भोग्येभ्यो जडजातेभ्यो भेदेन जानता पुरुषेण। जाग्रदादिषु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिष्ववस्थासु । साक्षिण्यसंगताऽध्यवसीयते निश्चीयत इत्यर्थः ॥ २१० ॥

१३] जैसैं तिन शास्त्राभ्यासी सकामी औ योगीपुरुषनकूं अभ्यासकी दृढतातैं कुशलता वृद्धिकूं पावैहै । तैसैं इस मुमुक्षुकूं बी अभ्यासतैं विवेक स्पष्ट होवैहै ॥

१४) जैसैं तिन काव्यादिकअभ्यासवाले पुरुषनकूं अभ्यासका पाटव जो दृढता तिसकरि तिसतिस विषयविषै कुशलपना बढताहै । ऐसैं इस मुमुक्षुकूं बी अभ्यासतैं देहादिकनतैं आत्माके भेदका ज्ञानरूप विवेक स्पष्ट होवैहै ॥ २०९ ॥

॥ ४ ॥ विवेककी स्पष्टताका फल ॥

१५ विवेककी स्पष्टताके फलकूं कहैहैं:—

१६] अन्वयव्यतिरेककरि भोक्ताके तत्त्वकूं विवेचन करनैहारे पुरुषकरि जाग्रत्आदिकनमैं साक्षीविषै असंगता निश्चय करियेहै ॥

१७) अन्वय औ व्यतिरेकरूप युक्तिकरि भोक्ताके पारमार्थिकस्वरूपमय तत्त्वकूं विवेचन करनैहारे कहिये जडनके समूह भोग्यनतैं भेदकरि जाननैहारे पुरुषकरि । जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्तिअवस्थामैं साक्षी जो कूटस्थ तिसविषै असंगता निश्चय करियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ २१० ॥

७२ जैसैं काव्यादिकके अभ्यासवानकूं शास्त्रार्थविषै कुशलता बढतीहै औ जपयागआदिकके अनुष्ठानकर्त्ताकूं वैदिककर्मविषै कुशलता वा पुण्ययुक्तता वा बुद्धिकी शुद्धता बढतीहै औ योगाभ्यासीकूं चित्तके निरोध अरु अणिमादिकसिद्धिविषै कुशलता बढतीहै । तैसैं मुमुक्षुकूं अभ्यासतैं विवेक स्पष्ट होवैहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
७९५	[२१] यत्र यद्दृश्यते द्रष्ट्रा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । तत्रैव तन्नेतरत्रेत्यनुभूतिर्हि संमता ॥ २११ ॥	२९१८
७९६	[२२] स यत्तत्रेक्षते किंचित्तेनानन्वागतो भवेत् । दृष्ट्वैव पुण्यं पापं चेत्येवं श्रुतिषु डिंडिमः ॥२१२	टिप्पणांकः ॐ

१८ अन्वयव्यतिरेकौ दर्शयति—

१९] यत्र जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु यत् द्रष्ट्रा दृश्यते । तत् तत्र एव । इतरत्र न । इति अनुभूतिः संमता हि ॥

२०) जाग्रदादिषु मध्ये यत्र यस्मिन्स्थाने जाग्रति स्वप्ने सुषुप्तौ वा । यत् स्थूलं सूक्ष्ममानंदश्चेति त्रिविधं भोग्यं द्रष्ट्रा साक्षिणा दृश्यते अनुभूयते । तत् दृश्यं तत्र एव तस्यामेवावस्थायां तिष्ठति । इतरत्र न इतरस्यामवस्थायां नास्ति । द्रष्टा तु सर्वत्रानुगततया वर्तत इति अनुभवः सर्वसंमतः । हि प्रसिद्धमेतदित्यर्थः ॥ २११ ॥

२१ न केवलमनुभवः आगमोऽपीत्यभिप्रायेण "स यत् तत्र किंचित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसंगो ह्ययं पुरुषः" "स वा एष एतस्मिन् संप्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्यां द्रवति" इत्यादिवाक्यद्वयमर्थतः पठति—

२२] स तत्र यत् किंचित् ईक्षते । तेन अनन्वागतः भवेत् । पुण्यं च पापं दृष्ट्वा एव । इति एवं श्रुतिषु डिंडिमः ॥

॥ ९ ॥ साक्षीकी असंगतामैं अन्वयव्यतिरेक ॥

१८ अन्वयव्यतिरेककूं दिखावैहैं:—

१९] जिस जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूप स्थानविषै जो द्रष्टाकरि देखियेहै । सो वस्तु तहांहीं है । अन्यठिकानै नहीं । यह अनुभूति प्रसिद्ध सर्व संमत है ॥

२०) जाग्रत्आदिकके मध्यमैं जिस जाग्रत् वा स्वप्न वा सुषुप्तिरूप स्थानविषै जो स्थूल सूक्ष्म औ आनंदरूप । यह तीनप्रकारका भोग्य द्रष्टाकरि नाम साक्षीकरि अनुभव करियेहै । सो दृश्य तिसीहीं अवस्थाविषै स्थित होवैहै । अन्यअवस्थाविषै नहीं औ द्रष्टा जो साक्षी सो तौ सर्वअवस्थाविषै अनुगत होनैकरि वर्तताहै । यह अनुभव सर्वजनकरि संमत प्रसिद्ध है ॥ यह अर्थ है ॥ २११ ॥

॥ ६ ॥ साक्षीकी असंगतामैं श्रुति ॥

२१ अन्वयव्यतिरेककरि आत्माके विवेचनविषै केवलअनुमानप्रमाण नहीं है । किंतु वेद बी प्रमाण है । इस अभिप्रायकरि सो आत्मा तिस अवस्थाविषै जिसकिस भोग्यकूं देखताहै । तिस दृश्यकरि अनुसारी होयके अन्यअवस्थाकूं प्राप्त नहीं होवैहै कहिये सो दृश्यवस्तु दूसरीअवस्थाविषै तिसके पीछे नहीं आवताहै । "जातैं यह पुरुष असंग है" औ "सो यह आत्मा इस सुषुप्तिविषै रमणकरिके विचरिके स्वप्नविषै पुण्य औ पापकूं देखिकेहीं फेर जाग्रत्के प्रति इंद्रियके तांई दौडताहै" इत्यादि दोनूंवाक्यनकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

२२] "सो तहां जिस किसी वस्तुकूं देखताहै । तिसकरि असंबंधवान् होयके गया होवैहै" औ "पुण्य अरु पापकूं देखिकेहीं" ऐसैं श्रुतिनविषै ढंढोरा है ॥

टीकांक: २९२३ टिप्पणांक: ॐ	२५ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपंचं यत्प्रकाशते । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबंधैः प्रमुच्यते ॥२१३॥ २७ एक एवात्मा मंतव्यो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । स्थानत्रयव्यतीतस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥२१४॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ७९७ ७९८

२३) स आत्मा तत्र तस्यामवस्थायां यत्किंचित् भोग्यं ईक्षते पश्यति । तेन दृश्येन अनन्वागतो भवेत् । अनुसृत्य गतो न भवेत् । किंतु स्वयमेवावस्थांतरं गच्छति इत्यर्थः। पुण्यं पुण्यफलं सुखं। पापं तत् फलं दुःखं च दृष्ट्वैव अनादायैवेत्यर्थः ॥ २१२ ॥

२४ भोक्तृतत्वविवेचनपराणि श्रुत्यंतराणि दर्शयति (जाग्रदिति)—

२५] यत् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपंचं प्रकाशते। "तत् ब्रह्म अहं" इति ज्ञात्वा सर्वबंधैः प्रमुच्यते ॥

२६) यत् सत्यज्ञानानंदलक्षणं ब्रह्म साक्षिरूपेणावस्थितं तत् जाग्रदादिप्रपंचं प्रकाशते प्रकाशयति । तद्ब्रह्माहमस्मि । न बुद्धिचिदाभासाद्यहमस्मि । इति ज्ञात्वा श्रुत्यनुभवाभ्यां निश्चित्य । सर्वप्रतिबंधैः प्रमातृत्वकर्तृत्वादिभिः प्रमुच्यते प्रकर्षेण सर्वात्मना मुच्यते ॥ २१३ ॥

२७] (एक इति)— जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु एकः एव आत्मा मंतव्यः । स्थानत्रयव्यतीतस्य पुनः जन्म न विद्यते ॥

२८) जाग्रदादिष्ववस्थासु एक एवात्मा मंतव्यः । एवं विवेकज्ञानेन

---

२३) सो आत्मा तिस अवस्थाविषै जिस किसी भोग्यवस्तुकूं देखताहै । तिस दृश्यकरि अनुसारी होयके दूसरीअवस्थाकूं प्राप्त नहीं होवैहै । किंतु आपहीं अन्यअवस्थाकूं प्राप्त होताहै । यह अर्थ है ॥ औ पुण्य अरु पुण्यके फल सुख । पाप अरु पापके फल दुःखकूं देखिकेहीं कहिये न ग्रहण करिकेहीं जाताहै। यह अर्थ है ॥ २१२ ॥

॥ ७ ॥ भोक्ताके वास्तवस्वरूपके विवेचनके परायण अन्यश्रुतियां ॥

२४ भोक्ताके वास्तवस्वरूपमय तत्त्वके विवेचनके परायण अन्यश्रुतिनकूं दिखावैहैं:—

२५] "जो ब्रह्म । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति-आदिकप्रपंचकूं प्रकाशताहै । सो ब्रह्म मैं हूं" ऐसैं जानिके सर्वबंधनतैं मुक्त होवैहै ॥

२६) "जो सत्यज्ञानआनंदलक्षणवाला ब्रह्म साक्षीरूपकरि स्थित है । सो जाग्रत्-आदिकप्रपंचकूं प्रकाशताहै । सो ब्रह्म मैं हूं औ बुद्धिचिदाभासआदिक मैं नहीं हूं।" ऐसैं श्रुति औ अनुभवकरि निश्चयकरिके प्रमातापनै औ कर्त्तापनैआदिकसर्वप्रतिबंधनतैं अतिशयकरि छूटताहै ॥ २१३ ॥

२७] जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिविषै एकहीं आत्मा माननैकूं योग्य है ॥ ऐसैं जाग्रदादिरूप तीनस्थानतैं व्यतिरिक्त आत्माकूं फेर जन्म नहीं है ॥

२८) जाग्रत्आदिकअवस्थाविषै एकहीं आत्मा माननैकूं योग्य है । ऐसैं विवेकज्ञान-

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
७९९	त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् । तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः॥१५	२९२९
८००	एवं विवेचिते तत्त्वे विज्ञानमयशब्दितः । चिदाभासो विकारी यो भोक्तृत्वं तस्य शिष्यते॥१६	टिप्पणांकः ॐ

स्थानत्रयव्यतीतस्य अवस्थात्रयाद्विविक्तस्यात्मनः पुनर्जन्म न विद्यते । एतच्छरीरपातानंतरं शरीरांतरप्राप्तिर्नास्तीत्यर्थः॥ २१४॥

२९] त्रिषु धामसु यत् भोग्यं यत् भोक्ता च भोगः भवेत् । तेभ्यः विलक्षणः चिन्मात्रः साक्षी सदाशिवः अहम् ॥

३०) त्रिषु धामसु त्रिष्ववस्थानेषु । यद्भोग्यं स्थूलप्रविविक्तानंदरूपं । यश्च भोक्ता विश्वतैजसप्राज्ञरूपो यः च भोगः तदनुभवरूपश्चेति ये विद्यंते । तेभ्यः स्थानादिभ्यो विलक्षणः यः चिन्मात्ररूपः साक्षी सदाशिवः निरतिशयानंदरूपत्वेन सर्वदा शोभमानः परमात्मास्ति । सः अहं अस्मीत्यर्थः ॥ २१५ ॥

३१ एवं विवेकेनात्मतत्त्वे असंगे निश्चिते सति भोक्तृत्वं कस्येत्यत आह—

३२] एवं तत्त्वे विवेचिते विज्ञानमयशब्दितः विकारी यः चिदाभासः तस्य भोक्तृत्वं शिष्यते ॥

३३) यः विज्ञानशब्देनाभिधीयमानः चिदाभासः तस्य विकारित्वात् भोक्तृत्वं इत्यर्थः ॥ २१६ ॥

करि तीनअवस्थारूपतैं व्यतिरिक्त आत्माकूं फेर जन्म नहीं देखिये है कहिये इस शरीरके पात भये पीछे अन्यशरीरकी प्राप्ति नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ २१४ ॥

२९] "तीनधाम जे अवस्था तिनविषै जो भोग्य। जो भोक्ता औ जो भोग होवैहै। तिनतैं विलक्षण जो चिन्मात्रसाक्षी सदाशिव है। सो मैं हूं" ॥

३०) तीनधामविषै जो स्थूलसूक्ष्मआनंदरूप भोग्य है औ जो विश्वतैजसप्राज्ञरूप भोक्ता है औ जो तिन भोग्यनका अनुभवरूप भोग है । ऐसैं जे विद्यमान हैं। तिन स्थानादिकनतैं विलक्षण जो चिन्मात्ररूप साक्षी सदाशिव कहिये निरतिशयआनंदरूप होनैकरि सर्वदा शोभायमान परमात्मा है। सो मैं हूं। यह अर्थ है ॥ २१५ ॥

॥ ४ ॥ भोक्ताचिदाभासकूं अपनै मिथ्यात्वके ज्ञानसैं भोगमैं अनाग्रह ॥ २९३१-२९६१ ॥

॥ १ ॥ चिदाभासका धर्म भोक्तापना है ॥

३१ ऐसैं विवेककरि आत्मतत्त्वकूं असंग निश्चय कियेहुये भोक्तापना कौनकूं है ? तहां कहैहैं:—

३२] ऐसैं तत्त्वकूं विवेचन कियेहुये विज्ञानमयशब्दका वाच्य जो विकारीचिदाभास है । ताकूं भोक्तापना अवशेष रहताहै ॥

३३) विज्ञानमयशब्दकरि जो चिदाभास कहियेहै । ताकूं विकारी होनैतैं भोक्तापना है । यह अर्थ है ॥ २१६ ॥

टीकांक: २९३४ टिप्पणांक: ॐ	[35] मायिकोऽयं चिदाभासः श्रुतेरनुभवादपि । [38] इंद्रजालं जगत्प्रोक्तं तदंतःपात्ययं यतः ॥२१७॥ [41] विलयोऽप्यस्य सुप्त्यादौ साक्षिणा ह्यनुभूयते । [43] एतादृशं स्वस्वभावं विविनक्ति पुनः पुनः ॥२१८॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८०१ ८०२

३४ ननु चिदाभासस्य भोक्तृत्वांगीकारे "कस्य कामाय" इति वचो भोक्त्रऽभावविवक्षयेति पूर्वोक्तं व्याहन्येतेत्याशंक्य तस्य वचनस्य पारमार्थिकभोक्त्रऽभावपरत्वमभिप्रेत्य भोक्तुः चिदाभासस्य मिथ्यात्वं साधयति (मायिक इति)—

३५] **अयं चिदाभासः मायिकः श्रुतेः अनुभवात् अपि ॥**

३६) अयं चिदाभासो मायिको मृषात्मकः। श्रुतेः "जीवेशावाभासेन करोति" इति श्रुतेः। अनुभवादपि द्रष्ट्रादित्रितयमध्यवर्तित्वेन अनुभूयमानत्वादपीत्यर्थः ॥

३७ तदेवोपपादयति (इंद्रजालमिति)—

३८] **यतः इंद्रजालं जगत् प्रोक्तं तदंतःपाती अयम् ॥**

३९) इंद्रजालवन्मिथ्याभूते जगत्यंतर्भूतत्वादस्यापि मिथ्यात्वं तद्वदनुभूयते विद्वद्भिरिति शेषः। यस्मात्। जगदंतःपाती इत्यतो मृषेतियोजना ॥ २१७ ॥

४० अस्य जगत इव विनाशित्वानुभवादपि मृषात्वमित्याह (विलय इति)—

४१] **हि अस्य विलयः अपि सुप्त्यादौ साक्षिणा अनुभूयते ॥**

॥ २ ॥ भोक्ताचिदाभासका मिथ्यापना ॥

३४ ननु चिदाभासकूं भोक्तापनैके अंगीकार किये "किस भोक्ताके भोगअर्थ" यह श्रुतिका वचन भोक्ताके अभावकी कहनैकी इच्छासैं है" यह जो पूर्व १९२ श्लोकविषै कहा सो व्याघातकूं पावैगा। यह आशंकाकरि तिस १९२ श्लोकउक्तवचनकी पारमार्थिकभोक्ताके अभावकी विषयताकूं अभिप्रायकरिके भोक्ता चिदाभासके मिथ्यापनैकूं साधतेहैं:—

३५] **यह चिदाभास श्रुतितैं औ अनुभवतैं बी मायिक है ॥**

३६) यह चिदाभास मायिक कहिये मिथ्यारूप है। काहेतैं "जीवईशकूं आभासकरि माया करैहै" इस श्रुतितैं औ द्रष्टादर्शनदृश्यरूप त्रिपुटीके मध्यवर्त्ती होनैकरि अनुभूयमान होनैतैं बी चिदाभास मिथ्या है। यह अर्थ है ॥

३७ तिस चिदाभासके मिथ्यापनैकूंहीं उपपादन करैहैं:—

३८] **जातैं इंद्रजालरूप जगत् कहा है। तिसके अंतर्भूत यह चिदाभास है॥**

३९) इंद्रजालकी न्यांई मिथ्यारूप जगत्विषै अंतर्भूत होनैतैं इस चिदाभासका बी मिथ्यापना तिस जगत्की न्यांई विद्वान्पुरुषनकरि अनुभव करियेहै ॥ जातैं यह चिदाभास जगत्के अंतर्गत है यातैं मिथ्या है। यह अन्वय है ॥ २१७ ॥

४० जगत्की न्यांई विनाशीपनैके अनुभवतैं बी इस चिदाभासका मिथ्यापना है। ऐसैं कहैहैं:—

४१] **जातैं इस चिदाभासका विनाश बी सुषुप्तिआदिकविषै साक्षीकरि अनुभव करियेहै। यातैं बी मिथ्या है ॥**

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
८०३	[४६] विविच्य नाशं निश्चित्य पुनर्भोगं न वांछति । [४८] मुमूर्षुः शायितो भूमौ विवाहं कोऽभिवांछति २१९	२९४१
८०४	[५०] जिहेति व्यवहर्तुं च भोक्ताहमिति पूर्ववत् । [५१] छिन्ननास इव ह्रीतः क्लिश्यन्नारब्धमश्नुते ॥ २२० ॥	टिप्पणांक: ॐ

ॐ ४१) मूर्छादिरादिशब्दार्थः ॥

४२ भवतु मृषात्वं ततः किमित्यत आह (एतादृशमिति)—

४३] स्वस्वभावं एतादृशं पुनः पुनः विविनक्ति ॥

४४) यदा कूटस्थाद्विवेचितश्चिदाभासो मायिको ज्ञातस्तदा स्वस्वभावं स्वतत्वं एतादृशं मृषात्मकं पुनः पुनः विविनक्ति कूटस्थाद्विविच्य जानाति ॥ २१८ ॥

४५ ततोऽपि किमित्यत आह—

४६] विविच्य नाशं निश्चित्य पुनः भोगं न वांच्छति ॥

४७ स्वविनाशनिश्चये भोगेच्छाभावे दृष्टांतमाह—

४८] मुमूर्षुः भूमौ शायितः कः विवाहं अभिवांच्छति ॥ २१९ ॥

४९ किंच पूर्ववदहं भोक्तेति व्यवहर्तुमपि लज्जत इत्याह (जिहेतीति)—

५०] च पूर्ववत् अहं भोक्ता इति व्यवहर्तुं जिहेति ॥

ॐ४१) इहां मूर्छाआदिक । आदिशब्दका अर्थ है ॥

४२ चिदाभासका मिथ्यापना होहु। तिसकरि क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

४३] अपनै स्वभावकूं ऐसा फेरि फेरि विवेचन करताहै ॥

४४) जब कूटस्थतैं विवेचन किया चिदाभास मिथ्या जान्या । तब अपना स्वभाव जो स्वरूप ताकूं ऐसा मिथ्यारूप वारंवार विवेचन करताहै कहिये निजरूप कूटस्थतैं भिन्नकरिके जानताहै ॥ २१८ ॥

॥ ३ ॥ चिदाभासकूं अपनै मिथ्यात्वके ज्ञानसैं भोगकी अनिच्छा ॥

४५ तिस कूटस्थतैं अपनै विवेचन कियेतैं वी क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

४६] विवेचनकरि अपनै नाशकूं निश्चयकरिके फेरि भोगकूं नहीं इच्छताहै ॥

४७ अपनै विनाशके निश्चय हुये भोगकी इच्छाके अभावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

४८] मरणइच्छु होयके भूमिविषै शयनकूं प्राप्त भया कौंन पुरुष विवाहकूं इच्छेगा? कोइ वी इच्छै नहीं ॥ २१९ ॥

॥ ४ ॥ ज्ञानीकूं भोक्तापनैसैं भोगमैं लज्जाकरि क्लेशपूर्वक प्रारब्धभोग ॥

४९ किंवा पूर्व अज्ञानदशाकी न्यांई "मैं भोक्ता हूं" ऐसैं कथनप्रतीतिरूप व्यवहार करनैकूं वी ज्ञानीचिदाभास लज्जाकूं पावताहै । ऐसैं कहैहैं:—

५०] औ पूर्वकी न्यांई "मैं भोक्ता हूं" ऐसैं व्यवहार करनैकूं लज्जा पावताहै ।

टीकांक: २९५१ टिप्पणांक: ॐ

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८०५

> यदा स्वस्यापि भोक्तृत्वं मंतुं जिह्रेत्ययं तदा ।
> साक्षिण्यारोपयेदेतदिति कैव कथा वृथा॥२२१॥

श्लोकांक: ८०६

> इत्यभिप्रेत्य भोक्तारमाक्षिपत्यविशंकया ।
> कस्य कामायेति ततः शरीरानुज्वरो नहि ॥ २२२ ॥

५१ तर्हि ज्ञानोत्पत्त्यनंतरं प्रारब्धावसानपर्यंतं कथं व्यवहरतीत्यत आह—

५२] **छिन्ननासः इव ह्रीतः क्लिश्यन् प्रारब्धं अश्नुते ॥**

५३) ह्रीतो लज्जितः । क्लिश्यन् इदानीमपि कर्म न क्षीयते इति क्लेशमनुभवन् । प्रारब्धमश्नुते प्रारब्धकर्मफलं भुंक्ते इत्यर्थः ॥ २२० ॥

५४ इदानीं ज्ञानानंतरं साक्षिणो भोक्तृत्वाभावः कैमुतिकन्यायसिद्ध इत्याह(यदेति)—

५५] **अयं स्वस्य अपि भोक्तृत्वं मंतुं जिह्रेति यदा । तदा एतत् साक्षिणि आरोपयेत् इति वृथा कथा का इव ॥**

५६) अयं चिदाभासः । स्वस्यापि भोक्तृत्वं मंतुं "अहं भोक्ता" इति ज्ञातुं जिह्रेति विलज्जते । यदा । तदा एतत् । स्वगतं साक्षिणि असंगे आरोपयेदिति वृथा अर्थशून्या कथा केव न कापीत्यर्थः ॥२२१

५७ उक्तमर्थं श्रुत्यारूढं करोति (इतीति)

५८] **"कस्य कामाय इति" इति अभिप्रेत्य अविशंकया भोक्तारं आक्षिपति ॥**

---

५१ तब ज्ञानकी उत्पत्तिके अनंतर प्रारब्धके अंतपर्यंत ज्ञानीचिदाभास कैसैं व्यवहार करताहै ? तहां कहैहैं:—

५२] **नकटेकी न्यांई लज्जित होयके क्लेशकूं पावताहुया प्रारब्धकूं भोगताहै ॥**

५३) नकटेकी न्यांई लज्जावान् होयके "अबी बी मेरा प्रारब्धकर्म क्षय नहीं होवैहै" इस १४४ श्लोकउक्तक्लेशकूं अनुभव करताहुया प्रारब्धकर्मके फलकूं भोगताहै । यह अर्थ है ॥२२० ॥

॥ ९ ॥ कैमुतिकन्यायसैं साक्षीमैं भोक्तापनैका अभाव ॥

५४ अब ज्ञान भये पीछे साक्षीकूं भोक्तापनैका अभाव कैमुतिकन्यायकरि सिद्ध है । ऐसैं कहैहैं:—

५५] **यह ज्ञानीचिदाभास जब अपनै बी भोक्तापनैके माननैकूं लज्जा पावताहै । तब इस भोक्तापनैकूं साक्षीविषै आरोप करैगा । यह वृथाकथा कौन है ?**

५६) यह चिदाभास जब अपनै बी भोक्तापनैके माननैकूं कहिये "मैं भोक्ता हूं" ऐसैं जाननेकूं लज्जा पावताहै । तब इस अपनैविषै स्थित भोक्तापनैकूं असंगसाक्षीविषै आरोप करैगा । यह अर्थसैं शून्य कथा कौन है ? कोई बी नहीं । यह अर्थ है ॥ २२१ ॥

॥ १ ॥ श्लोक २२१ उक्त अर्थकी प्रकृतश्रुतिकरि आरूढता ॥

५७ श्लोक १९२–२२१ उक्त अर्थकूं श्रुतिकरि आरूढ करैहैं:—

५८] **"किसके कामअर्थ" यह श्रुति इस अभिप्रायकरि अशंकासैं भोक्ताकूं निषेध करैहै ॥**

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८०७ ८०८

स्थूलं सूक्ष्मं कारणं च शरीरं त्रिविधं स्मृतम् ।
अवश्यं त्रिविधोऽस्त्येव तत्र तत्रोचितो ज्वरः२२३
वातपित्तश्लेष्मजन्यव्याधयः कोटिशस्तनौ ।
दुर्गंधित्वकुरूपत्वदाहभंगादयस्तथा ॥ २२४ ॥

टीकांकः २९५९ टिप्पणांकः ॐ

५९) कस्य कामायेति श्रुतिरित्यर्थः । कूटस्थस्य चिदाभासस्य वा पारमार्थिकभोक्तृत्वाभावं अभिप्रेत्य अविशंकया शंकाराहित्येन भोक्तारमाक्षिपति निराकरोति॥

६० भवत्वेवं भोक्त्राक्षेपस्ततः किमित्यत आह—

६१] ततः शरीरानुज्वरः न हि ॥

ॐ ६१) न हि ज्वरः ज्वरणं संतापः२२२

६२ तत्त्वविदः शरीरानुज्वराभावं दर्शयितुं शरीरभेदं तत्र तत्र ज्वरसद्भावं च दर्शयति—

६३] स्थूलं सूक्ष्मं च कारणं त्रिविधं शरीरं स्मृतं । तत्र तत्र उचितः त्रिविधः ज्वरः अवश्यम् ॥ २२३ ॥

६४ तत्र स्थूलशरीरे ज्वरांस्तावदाह (वातेति)—

६५] तनौ कोटिशः वातपित्तश्लेष्मजन्यव्याधयः तथा दुर्गंधित्वकुरूपत्वदाहभंगादयः ॥ २२४ ॥

५९) "किसके कामअर्थ" यह श्रुति । कूटस्थके वा चिदाभासके पारमार्थिकभोक्तापनैके अभावकूं अभिप्रायका विषयकरिके निःशंक होयके भोक्ताकूं निराकरण करैहै ॥

६० ऐसैं भोक्ताका निषेध होहू । तिसतैं क्या फल होवैहै ? तहां कहैहैं:—

६१] तातैं ज्ञानीकूं शरीरके पीछे ज्वर नहीं है॥

ॐ ६१) ज्वर जो ज्वरण नाम संताप। सो नहीं है ॥ २२२ ॥

॥ ५ ॥ ज्ञानीकूं तीनशरीरगत ज्वरका अभाव (शोकनिवृत्ति) ॥ २९६२–३०५६ ॥

॥ १ ॥ तीनशरीरगत ज्वरका स्वरूप ॥ २९६२–२९८१ ॥

॥१॥ शरीरके भेदपूर्वक तहां तहां ज्वरका सद्भाव ॥

६२ तत्त्ववेत्ताकूं शरीरके पीछे ज्वरके अभावके दिखावनैवास्ते शरीरके भेद औ तिस तिस शरीरविषै ज्वरके सद्भावकूं दिखावैहैं:—

६३] स्थूल सूक्ष्म औ कारणभेदकरि तीनप्रकारका शरीर है ॥ तिस तिस शरीरविषै उचित तीनप्रकारका ज्वर अवश्यहीं है ॥ २२३ ॥

॥ २ ॥ स्थूलशरीरगत ज्वरका कथन ॥

६४ तिनमैं स्थूलशरीरविषै ज्वरनकूं प्रथम दिखावैहैं:—

६५] स्थूलशरीरविषै वायुपित्त औ कफरूप तीनदोषनतैं जन्य कोटिअवधि रोग हैं। तैसैं दुर्गंधिपना । कुरूपपना । दाह औ भंगआदिक हैं । वे स्थूलदेहगत ज्वर हैं ॥ २२४ ॥

टीकांक: २९६६ टिप्पणांक: ६७३	[६७] कामक्रोधादयः शांतिदांत्याद्या लिंगदेहगाः । [६९] ज्वरा द्वयेपि बाधंते प्राप्त्याऽप्राप्त्या नरं क्रमात् २२५ [७२] स्वं परं च न वेत्त्यात्मा विनष्ट इव कारणे । आगामिदुःखबीजं चेत्येतदिंद्रेण दर्शितम् २२६	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८०९ ८१०

६६ सूक्ष्मशरीरे ज्वरान् दर्शयति—

६७] **कामक्रोधादयः शांतिदांत्याद्याः लिंगदेहगाः ॥**

६८ कामशांत्यादीनां च ज्वरत्वमुपपादयति—

६९] **द्वये अपि ज्वराः क्रमात् प्राप्त्या अप्राप्त्या नरं बाधंते ॥**

७०) द्वयेऽपि द्विविधा अपि । क्रमेण प्राप्त्यप्राप्तिभ्यां नरं बाधंते । अतो ज्वरसाम्यात् ज्वरा इत्युच्यंते इत्यर्थः ॥ २२५॥

७१ कारणशरीरगतो ज्वरः छांदोग्यश्रुतौ उक्तः इत्याह (**स्वं परमिति**)—

७२] **कारणे आत्मा स्वं च परं न वेत्ति च विनष्टः इव च आगामिदुःखबीजं इति इंद्रेण दर्शितम् ॥**

॥ ३ ॥ सूक्ष्मशरीरगत ज्वरका कथन ॥

६६ सूक्ष्मशरीरविषै ज्वरनकूं दिखावैहैंः—

६७] **कामक्रोधआदिक औ शम औ दमआदिक लिंगदेहगत ज्वर हैं ॥**

६८ काम औ शांतिआदिकनकी ज्वररूपताकूं उपपादन करैहैंः—

६९] **दोनूं भांतिके बी ज्वर क्रमतैं प्राप्तिकरि औ अप्राप्तिकरि नरकूं बाध जो दुःख ताकूं करैहैं ॥**

७०) कामादिक औ शांतिआदिक ये दोनूंप्रकारके बी ज्वर क्रमतैं प्राप्ति औ अप्राप्तिकरि नरकूं[७३] बाध जो दुःख ताकूं करैहैं। यातैं ज्वरके समान होनैतैं ज्वर ऐसैं कहियेहैं। यह अर्थ है ॥ २२५ ॥

॥ ४ ॥ छांदोग्यश्रुतिउक्तकारणशरीरगत-ज्वरका कथन ॥

७१ कारणशरीरगतज्वर छांदोग्यश्रुतिविषै कहाहै। ऐसैं कहैहैंः—

७२] **कारणशरीरविषै आत्मा जो पुरुष। सो आपकूं औ परकूं नहीं जानताहै औ विनाशकूं प्राप्त भयेकी न्यांई होवैहै औ आगामीदुःखका संस्काररूप बीज है। यह अर्थ इंद्रनैं दिखायाहै ॥**

७३ जैसैं अज्ञानीमनुष्यकूं "मेरा काम गया नहीं। मेरा क्रोध गया नहीं" इसरीतिसैं दुर्जनपुरुषकी न्यांई कामादिक प्राप्तिकरि तपायमान करैहैं। तैसैं "मेरेकूं मनके निग्रहरूप शांति भई नहीं औ इंद्रियके निग्रहरूप दांति भई नहीं" ऐसैं सज्जनपुरुषकी न्यांई शांतिआदिक बी अप्राप्तिकरि अज्ञानीकूं तपायमान करैहैं। यातैं दोनूंज्वरके समान होनैतैं ज्वर कहियेहैं ॥ औ ज्ञानवान् तौ "प्रकाश (सत्वगुणका कार्य) औ प्रवृत्ति (रजोगुणका कार्य) औ मोह (तमोगुणका कार्य) यह तीनो प्रवृत्त (उद्भूत) होवैं तिनकूं द्वेष करता नहीं औ निवृत्त होवैं तिनकूं इच्छता नहीं ॥" इस गीताके चतुर्दशअध्यायगत २२ वें श्लोकरूप वाक्यविषै उक्त स्वसंवेद्यलक्षणकरि गुणातीत होनैतैं तिन सात्विकादिवृत्तिनकी अनात्मताकूं सम्यक् देखताहुया। आत्माकी अनुकूलता औ प्रतिकूलताके आरोपणकरि तिनतैं भयकूं पावता नहीं औ तिनकूं इच्छता बी नहीं। यातैं ज्ञानवान् तौ देहके ज्वरनतैं ज्वरकूं पावता नहीं ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्रोकांकः ८११ | टीकांकः २९७३ टिप्पणांकः ॐ

७५ एते ज्वराः शरीरेषु त्रिषु स्वाभाविका मताः।
७८ वियोगे तु ज्वरैस्तानि शरीराण्येव नासते ॥२२७॥

७३) "न हि खल्वयमेव संप्रत्यात्मानं जानाति अयमहमस्मि" इति । "नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति" । "नाहमत्र भोग्यं पश्यामि" इतिवाक्येन स्वपरज्ञानशून्यत्वमज्ञाने नष्टप्रायत्वं परेद्युः आगामिदुःखबीजं च इंद्रेण शिष्येण गुरोः प्रजापतेः पुरतो निवेदितमित्यर्थः ॥ २२६ ॥

७४ एवं त्रिष्वपि देहेषु ज्वरानभिधाय तेपामपरिहार्यत्वमाह (एत इति)—

७५] त्रिषु शरीरेषु एते ज्वराः स्वाभाविकाः मताः ॥

७६) त्रिषु अपि। शरीरेषु प्रतीयमानाः एते ज्वराः शरीरैः सहोत्पन्नत्वेन स्वाभाविकाः संमताः ॥

७७ स्वाभाविकत्वं व्यतिरेकमुखेन द्रढयति (वियोगे त्विति)—

७८] ज्वरैः वियोगे तु तानि शरीराणि न आसते एव ॥

७९) यतः कारणादेभिः ज्वरैः तेषां शरीराणाम् वियोगे सति तानि शरीराणि नासते एव नैव भवंति। अतः स्वाभाविका इत्यर्थः ॥ २२७॥

---

७३) "यह पुरुष अब सुपुप्तिकालविषै निश्चयकरि 'यह मैं हूं'। ऐसैं आपकूं नहीं जानताहै किंतु विनाशकूंहीं प्राप्त भयेकी न्यांई होवैहै ॥" "इस सुषुप्तिविषै मैं भोग्यकूं देखता नहीं हूं"। इस वाक्यकरि अपनै औ परके ज्ञानसैं शून्यपना औ अज्ञानविषै नाश हुयेके तुल्यपना औ आगिलेदिनविषै होनैहारे दुःखरूप ज्वरकी बीजरूप वासनाका सद्भाव। छांदोग्यउपनिषद्के अष्टमअध्यायविषै इंद्ररूप शिष्यनैं ब्रह्मारूप गुरुके आगे निवेदन कियाहै, नाम दिखायाहै ॥ यह अर्थ है ॥ २२६ ॥

॥ ९ ॥ शरीरनसैं ज्वरनकी अनिवृत्ति ॥

७४ ऐसैं तीनदेहनविषै वी ज्वरनकूं कहिके तिन ज्वरनकी अनिवार्यताकूं कहैहैं:—

७५] तीनशरीरनविषै ये ज्वर स्वाभाविक कहिये सहजधर्म मानेहैं ॥

७६) तीनशरीरनविषै वी प्रतीयमान ये ज्वर शरीरनके साथि उत्पन्न होनेकरि स्वाभाविक मानेहैं ॥

७७ ज्वरनके स्वाभाविकपनैकूं ज्वरके अभावतैं शरीरके अभावमय व्यतिरेकरूप द्वारकरि दृढ करैहैं:—

७८] ज्वरनकरि वियोगके हुये तौ सो शरीरहीं होवैं नहीं ॥

७९) जिस कारणतैं इन ज्वरनसैं तिन शरीरनके वियोगके हुये वे शरीरहीं नहीं होवैहैं। यातैं ये ज्वर स्वाभाविक हैं । यह अर्थ है ॥ २२७ ॥

टीकांक: २९८० टिप्पणांक: ६७४	तंतोर्वियुज्येत पटो वालेभ्यः कंवलो यथा । मृदो घटस्तथा देहो ज्वरेभ्योऽपीति दृश्यताम् ॥ २२८ ॥ चिदाभासे स्वतः कोऽपि ज्वरो नास्ति यतश्चितः । प्रकाशैकस्वभावत्वमेव दृष्टं न चेतरत् ॥ २२९ ॥	नृसिंदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८१२ ८१३

८० तत्र दृष्टांतमाह (तंतोरिति)—

८१] यथा तंतोः पटः वियुज्येत । वालेभ्यः कंवलः । मृदः घटः । तथा ज्वरेभ्यः देहः अपि । इति दृश्यतां २२८

८२ इदानीं कूटस्थे ज्वराभावं कैमुतिकन्यायेन दिदर्शयिषुश्चिदाभासे तावत् ज्वराभावं दर्शयति—

८३] चिदाभासे स्वतः कः अपि ज्वरः न अस्ति ॥

८४) चिदाभासे स्वतः शरीरत्रयगत ज्वरसंवंधमंतरेण न कोऽपि ज्वरो विद्यते ॥

८५ कुत इत्यत आह—

८६] यतः चितः प्रकाशैकस्वभावत्वं एव दृष्टं च इतरत् न ॥

८७) चितः प्रकाशैकस्वभावस्य विद्वदनुभवसिद्धत्वात्प्रतिविंवस्य चिदाभासस्य तथात्वमेष्टव्यमिति भावः ॥ २२९ ॥

॥ १ ॥ श्लोक २२७ उक्त अर्थमैं दृष्टांत ॥

८० तिस ज्वरनके स्वाभाविकपनैविषै दृष्टांत कहैहैं:—

८१] जैसैं तंतुतैं पट वियोगकूं पावै औ वालनतैं कंवल वियोगकूं पावै औ मृत्तिकातैं घट वियोगकूं पावै तौ पट कंवल औ घट होवै नहीं। तैसैं ज्वरनतैं देह बी वियोगकूं पावै तो देह होवै नहीं। ऐसैं देखलेना ॥ २२८ ॥

॥ २ ॥ चिदाभासमैं वास्तवज्वरके अभावपूर्वक कूटस्थमैं ज्वरका अभाव ॥ २९८२—३००८ ॥

॥ १ ॥ चिदाभासमैं ज्वरका अभाव ॥

८२ अव कूटस्थविषै ज्वरके अभावकूं कैमुतिकन्यायकरि दिखावनैकूं इच्छतेहुये आचार्य चिदाभासविषै प्रथम ज्वरके अभावकूं दिखावैहैं:—

८३] चिदाभासविषै स्वभावतैं कोई बी ज्वर नहीं है ॥

८४) चिदाभासविषै स्वभावतैं कहिये तीनशरीरगतज्वरके संवंध विना कोई बी ज्वर नहीं है ॥

८५ चिदाभासविषै स्वभावतैं ज्वर काहेतैं नहीं है? तहां कहैहैं:—

८६] जातैं चेतनकूं प्रकाशरूप एकस्वभाववान्पनाहीं देख्याहै। और नहीं ॥

८७) प्रकाशरूप एकस्वभाववाले चेतनकूं विद्वानोंके अनुभवकरि सिद्ध होनैतैं तिसके प्रतिविंव चिदाभासका तैसैपना कहिये प्रकाशरूप एकस्वभाववान्पना माननैकूं योग्य है । यह भाव है ॥ २२९ ॥

७४ जैसैं तप्ततैलविषै स्थित आकाशके प्रतिविंवकूं बी जब तापका संवंध नहीं है । तब आकाशविषै तापका संवंध कहांसैं होवैगा? इस आकारवाले न्यायकूं कैमुतिकन्याय कहैहैं ॥ तैसैं इहां चिदाभासविषै बी जब वास्तवज्वर नहीं है । तब कूटस्थविषै ज्वर कहांसैं होवैगा? इस आकारवाला कैमुतिकन्याय है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
८१४	चिदाभासेऽप्यसंभाव्या ज्वराः साक्षिणि का कथा । ९२ एवमप्येकतां मेने चिदाभासो ह्यविद्यया ॥२३०॥	२९८८
८१५	साक्षिसत्यत्वमध्यस्य स्वेनोपेते वपुस्त्रये । तत्सर्वं वास्तवं स्वस्य स्वरूपमिति मन्यते ॥२३१॥	टिप्पणांक: ॐ

८८ यदर्थं चिदाभासे ज्वराभाव उपपादितस्तदिदानीं दर्शयति—

८९] **चिदाभासे अपि ज्वराः असंभाव्याः । साक्षिणि का कथा ॥**

९०) यदा चिदाभासेऽपि ज्वरा न संभाव्यंते । तदा न साक्षिणि संभवंतीति किमु वक्तव्यं इति भावः ॥

९१ ननु तर्हि ज्वरामीत्यनुभवस्य का गतिः इत्यत आह—

९२] **एवम् अपि चिदाभासः हि अविद्यया एकतां मेने ॥ २३० ॥**

९३ एकतां मेन इति संक्षेपेणोक्तमर्थं प्रपंचयति (साक्षीति)—

९४] **स्वेन उपेते वपुस्त्रये साक्षिसत्यत्वं अध्यस्य तत् सर्वं स्वस्य वास्तवं स्वरूपं इति मन्यते ॥**

९५) चिदाभासः स्वेन सहिते शरीरत्रये साक्षिगतं सत्यत्वमध्यस्य तत् सर्वं ज्वरवत् शरीरत्रयं स्वस्य वास्तवं रूपमिति मन्यते इत्यर्थः ॥ २३१ ॥

॥ २ ॥ साक्षीविषै ज्वरके अभावपूर्वक चिदाभासकूं तीनशरीरमैं एकताकी भ्रांति ॥

८८ जिसअर्थ चिदाभासविषै ज्वरका अभाव उपपादन किया । तिस प्रयोजनकूं अब दिखावैहैं:—

८९] **जब चिदाभासविषै बी ज्वर संभव होनेकूं योग्य नहीं हैं । तब साक्षीविषै तिनकी कौन कथा है ?**

९०) जब चिदाभासविषै बी ज्वर नहीं संभवैहैं तब साक्षीविषै नहीं संभवैहै । यामैं कहा कहना है ॥ यह भाव है ॥

९१ ननु तब "मैं ज्वरकूं पावताहूं" इस अनुभवकी कौंन गति है? तहां कहैहैं:—

९२] **ऐसैं ज्वरके अभाव हुये बी चिदाभास जातैं अविद्याकरि शरीरनके साथि एकताकूं मानताहै । तातैं ज्वरकूं पावताहै ॥ २३० ॥**

९३ "चिदाभास एकताकूं मानताहै । ऐसैं २३० श्लोकविषै संक्षेपकरि कहे अर्थकूं विस्तारसैं कहैहैं:—

९४] **अपनैकरि युक्त तीनशरीरविषै साक्षीकी सत्यताकूं अध्यासकरिके तिस सर्व तीनशरीरकूं अपना वास्तवस्वरूप है । ऐसैं मानताहै ॥**

९५) चिदाभास । आपकरिसहित तीनशरीरविषै साक्षीगतसत्यताकूं अध्यासकरिके तिस सर्व ज्वरयुक्ततीनशरीरकूं अपना वास्तवरूप है । ऐसैं मानताहै ॥ यह अर्थ है ॥ २३१ ॥

टीकांक: २९९६ टिप्पणांक: ॐ	एतस्मिन्भ्रांतिकालेऽयं शरीरेषु ज्वरत्स्वथ । स्वयमेव ज्वरामीति मन्यते हि ३००० कुटुंबिवत् २३२	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:
	पुत्रदारेषु तप्यत्सु तपामीति वृथा यथा । मन्यते पुरुषस्तद्वदाभासोऽप्यभिमन्यते ॥२३३॥	८१६ ८१७
	विविच्य भ्रांतिमुज्झित्वा स्वमप्यगणयन्सदा । चिंतयन्साक्षिणं कस्माच्छरीरमनुसंज्वरेत् ॥ २३४	८१८

९६ एवं भ्रांतिज्ञाने सति किं भवतीत्याह (एतस्मिन्निति)—

९७] अयं एतस्मिन् भ्रांतिकाले शरीरेषु ज्वरत्सु अथ स्वयं एव ज्वरामि । इति मन्यते हि ॥

९८) अयं चिदाभासः अस्यां भ्रांतिवेलायां शरीरनिष्ठं ज्वरं स्वात्मन्यारोपयतीत्यर्थः ॥

९९ तत्र दृष्टांतमाह—

३०००] कुटुंबिवत् ॥ २३२ ॥

१ दृष्टांतं विशदयति (पुत्रदारेष्विति)—

२] यथा पुरुषः पुत्रदारेषु तप्यत्सु "तपामि ।" इति वृथा मन्यते । तद्वत् आभासः अपि अभिमन्यते ॥ २३३ ॥

३ एवमविवेकदशायां चिदाभासस्य भ्रांत्या ज्वरं प्रदर्श्य विवेकदशायां तदभावं दर्शयति—

४] विविच्य भ्रांतिं उज्झित्वा स्वयं अपि अगणयन् साक्षिणं सदा चिंतयन् कस्मात् शरीरं अनुसंज्वरेत्॥

५) चिदाभासः कूटस्थं स्वात्मानं शरीराणि च विविच्य भेदेन ज्ञात्वा । "तत् सर्वं मम वास्तवं रूपमिति मन्यते" इत्युक्तां

॥ ३ ॥ चिदाभासकूं दृष्टांतसहित २३१ श्लोक-उक्तभ्रांतिका फल (ज्वरसंबंध) ॥

९६ ऐसैं भ्रांतिज्ञानके हुये क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

९७] यह चिदाभास इस भ्रांतिकालविषै शरीरनविषै ज्वरके हुये "मैंहीं ज्वरकूं पावताहूं।" ऐसैं मानताहै ॥

९८) यह चिदाभास इस भ्रांतिकी वेलाविषै शरीरगतज्वरकूं आपविषै आरोप करैहै । यह अर्थ है ॥

९९ तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

३०००] पुत्रादिकनके दुःखकरि संतप्त होनैहारे कुटुंबी जो गृहस्थ ताकी न्यांई ॥२३२

१ उक्तदृष्टांतकूं स्पष्ट करैहैं:—

२] जैसैं कुटुंबीपुरुष पुत्र स्त्रीके तपायमान हुये "मैं तपताहूं" ऐसैं वृथा मानताहै । तैसैं चिदाभास बी "मैं तपताहूं" ऐसैं वृथा मानताहै ॥२३३॥

॥४॥ विवेकदशामैं चिदाभासकूं ज्वरका अभाव ॥

३ ऐसैं अविवेकदशाविषै चिदाभासकूं भ्रांतिकरि ज्वर दिखायके विवेकदशाविषै ज्वरके अभावकूं दिखावैहैं:—

४] विवेचनकरिके भ्रांतिकूं छोडिके आपकूं बी न गिनताभया। सदा साक्षीकूं चिंतन करताहुया काहेतैं शरीरके पीछे ज्वरकूं पावै ॥

५) चिदाभास । कूटस्थकूं अरु अपनै स्वरूपकूं औ शरीरनकूं भेदकरि जानिके "यह सर्व मेरा वास्तवरूप है । ऐसैं मानताहै" इस २२८ वें श्लोकविषै कथन करी भ्रांतिकूं

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
८१९	अयथावस्तुसर्पादिज्ञानं हेतुः पलायने । रज्जुज्ञानेऽहिधीध्वस्तौ कृतमप्यनुशोचति॥२३५॥	३००६
८२०	मिथ्याभियोगदोषस्य प्रायश्चित्तत्वसिद्धये । क्षमापयन्निवात्मानं साक्षिणं शरणं गतः॥२३६॥	टिप्पणांकः ॐ

भ्रांतिं परित्यज्य । स्वसाभासरूपत्वज्ञानेन । स्वस्मिन्नप्यादरमकुर्वन् । स्वस्य निजं रूपं ज्वरादिरहितं साक्षिणं सदा चिंतयन् कस्मात् शरीरमनुसंज्वरेत् ज्वरवत् शरीरमनुसृत्य स्वयं कस्मात् संज्वरेत् । न संज्वरेदेवेत्यर्थः ॥ २३४ ॥

६ भ्रांतिज्ञानतत्त्वज्ञानयोर्ज्वरतदभावकारणत्वं दृष्टांतप्रदर्शनेन स्पष्टयति—

७] अयथावस्तुसर्पादिज्ञानं पलायने हेतुः । रज्जुज्ञाने अहिधीध्वस्तौ कृतं अपि अनुशोचति ॥

८) रज्ज्वादौ कल्पितस्य सर्पादेः ज्ञानं पलायने कारणं भवति । आदिशब्देन स्थाणौ कल्पितश्चोरो गृह्यते । रज्ज्वादिज्ञानेन सर्पादिबुद्धिनिवृत्तौ तत् अपि पलायनं अनुशोचति वृथा कृतं मयेत्यनुतप्यत इत्यर्थः ॥ २३५ ॥

९ साक्षिणं सदा चिंतयन्नित्युक्तमर्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति—

१०] मिथ्याभियोगदोषस्य प्रायश्चित्तत्वसिद्धये साक्षिणं आत्मानं क्षमापयन् इव शरणं गतः ॥

परित्यागकरिके अपनै आभासरूपताके ज्ञानकरि अपनैविषै बी आदरकूं नहीं करताभया । अपनै निजरूप ज्वरादिरहित साक्षीकूं सदा चिंतन करताहुया । ज्वरवाले शरीरकूं अनुसरिके आप किस कारणतें ज्वरकूं पावै ? किंतु ज्वरकूं पावैहीं नहीं । यह अर्थ है॥२३४॥

॥ ९ ॥ भ्रांतिज्ञान औ तत्त्वज्ञानकूं ज्वर औ ज्वरअभावके कारणताकी दृष्टांतसैं स्पष्टता ॥

६ भ्रांतिज्ञान औ तत्त्वज्ञानकूं ज्वर औ ज्वरके अभावकी कारणता है । ताकूं दृष्टांतके दिखावनैकरि स्पष्ट करैहैं:—

७] अयथार्थवस्तुरूप सर्पादिकका ज्ञान पलायनमैं नाम पीछे भागनैविषै कारण है औ रज्जुके ज्ञान हुये सर्पकी बुद्धिके नाश भये । किये पलायनकूं बी शोच करैहै ॥

८) रज्जुआदिकविषै कल्पित सर्पादिकका ज्ञान पलायनमैं कारण होवैहै ॥ इहां आदिशब्दकरि स्थाणुविषै कल्पित चोरका ग्रहण करियेहै औ रज्जुआदिकके ज्ञानकरि सर्पादिकके बुद्धिकी निवृत्तिके भये तिस किये पलायनकूं बी शोच करताहै कहिये "मैंनैं वृथा पलायन किया" ऐसैं पश्चात्ताप करताहै ॥ यह अर्थ है ॥ २३५ ॥

॥ ३ ॥ साक्षीमैं आरोपित भोक्तापनैरूप दोषकी निवृत्तिअर्थ चिदाभासकूं साक्षीकी तत्परता ॥३००९—३०२६॥

॥ १ ॥ पूर्व २३४ श्लोकउक्तसाक्षीके चिंतनकी दृष्टांतसैं स्पष्टता ॥

९ "साक्षीकूं सदा चिंतन करताहुया" ऐसैं २३४ श्लोकविषै कथन किये अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं:—

१०] मिथ्याभियोगदोषके प्रायश्चित्त होनैकी सिद्धिअर्थ क्षमा करावनैहारेकी न्याई यह साक्षी । आत्माकूं शरण प्राप्त होवैहै ॥

टीकांक: ३०११ टिप्पणांक: ॐ

१३ आवृत्तपापनुत्त्यर्थं स्नानाद्यावर्त्यते यथा ।
आवर्तयन्निव ध्यानं सदा साक्षिपरायणः॥२३७॥
१६ उपस्थकुष्ठिनी वेश्या विलासेषु विलज्जते ।
जानतोऽग्रे तथाभासः स्वप्रख्यातौ विलज्जते२३८

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८२१ ८२२

११) यथा लोके मिथ्याभियोगकर्ता तत् दोषस्य प्रायश्चित्तसिद्ध्यर्थं मिथ्याभियुक्तं पुनः पुनः क्षमापयति । एवमयं चिदाभासोऽपि साक्षिण्यसंगात्मनि भोक्तृत्वाद्यारोपलक्षणमिथ्याभियोगदोषप्रायश्चित्तार्थं **साक्षिणमात्मानं क्षमापयन्निव शरणं गतः** ॥ २३६ ॥

१२ तत्रैव दृष्टांतांतरमाह (आवृत्तेति)—

१३] **यथा आवृत्तपापनुत्त्यर्थं स्नानादि आवर्त्यते । ध्यानं आवर्तयन् इव सदा साक्षिपरायणः** ॥

१४) यथा पापकारिणा पुरुषेण आवृत्तपापनुत्त्यर्थं अभ्यस्तपापापनोदाय विहितं **स्नानादिकं** प्रायश्चित्तं **आवर्त्यते** पुनः पुनरनुष्ठीयते । तथायमपि चिरं साक्षिणि संसारित्वाद्यारोपणदोषपरिहाराय **ध्यानं परिवर्तयन्निव सदा साक्षिपरायणो** भवति ॥ २३७ ॥

१५ एवं साक्षिपरत्वं दृष्टांतैरुपवर्ण्य स्वगुणप्रख्याने लज्जालुत्वं सदृष्टांतमाह—

१६] **उपस्थकुष्ठिनी वेश्या विलासेषु**

११) जैसैं लोकविषै मिथ्याअभियोग जो चोरीआदिदोषका आरोप। ताका कर्त्ता पुरुष तिस दोषके निवारणरूप प्रायश्चित्तकी सिद्धिअर्थ । मिथ्याअभियोगके विषय किये पुरुषकूं वारंवार क्षमा करावताहै । ऐसैं यह चिदाभास बी साक्षीरूप असंगआत्माविषै भोक्तापनैके आरोपरूप मिथ्याअभियोगजन्यदोषके प्रायश्चित्तअर्थ साक्षीआत्माकूं क्षमा करावतेहुयेकी न्यांईं शरणकूं प्राप्त होवैहै ॥ २३६ ॥

॥ २ श्लोक २३९ उक्त अर्थमैं अन्यदृष्टांत ॥

१२ तिसी साक्षीके सदा चिंतनविषैहीं अन्यदृष्टांत कहैहैं:—

१३] **जैसैं आवृत्ति किये पापकी निवृत्तिअर्थ स्नानादिककी आवृत्ति करियेहैं । तैसैं चिदाभास ध्यानकूं आवृत्ति करतेहुयेकी न्यांईं सदा साक्षीके परायण होवैहै** ॥

१४) जैसैं पापकारीपुरुषकरि अभ्यास किये पापके निवारणअर्थ शास्त्रविषै विधान किया स्नानादिकरूप प्रायश्चित्त फेरिफेरि अनुष्ठान करियेहै । तैसैं यह चिदाभास बी चिरकाल साक्षीविषै संसारीपनैआदिकके आरोपणरूप दोषके परिहारअर्थ । ध्यानकूं वारंवार करतेहुयेकी न्यांईं सदा साक्षीके परायण होवैहै ॥ २३७ ॥

॥ ३ ॥ ज्ञानीचिदाभासकूं अपनै गुणकी प्रसिद्धिमैं लज्जावानूताका दृष्टांतसहित कथन ॥

१५ ऐसैं दृष्टांतनसैं चिदाभासकूं साक्षीकी तत्परता वर्णनकरिके । अपनै कर्तृत्वादिकगुणकी प्रख्यातिविषै लज्जावान्पनैकूं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

१६] **गुप्तअंगविषै कोढरोगवाली वेश्या जैसैं विलासनविषै लज्जाकूं**

नृसिंहदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८२३ ८२४	गृहीतो ब्राह्मणो म्लेच्छैः प्रायश्चित्तं चरन्पुनः । म्लेच्छैः संकीर्यते नैव तथाभासः शरीरकैः॥२३९ यौवराज्ये स्थितो राजपुत्रः साम्राज्यवांछया । राजानुकारी भवति तथा साक्ष्यनुकार्ययम् ॥२४०	टीकांकः ३०१७ टिप्पणांकः ६७५

विलज्जते । तथा आभासः जानतः अग्रे स्वप्रख्यातौ विलज्जते ॥ २३८ ॥

१७ इदानीं शरीरत्रयाद्विवेचितस्य चिदाभासस्य पुनस्तैः सह तादात्म्यभ्रमाभावे दृष्टांतमाह (गृहीत इति)—

१८] म्लेच्छैः गृहीतः ब्राह्मणः प्रायश्चित्तं चरन् पुनः म्लेच्छैः न एव संकीर्यते । तथा आभासः शरीरकैः ॥ २३९ ॥

१९ न केवलं स्वापराधनिवृत्तये साक्ष्यनुसरणं किंतु महत्प्रयोजनसिद्ध्यर्थमपीति सिंहावलोकनन्यायेन सदृष्टांतमाह—

२०] यौवराज्ये स्थितः राजपुत्रः साम्राज्यवांछया राजानुकारी भवति । तथा अयं साक्ष्यनुकारी ॥

ॐ २०) राजानुकारी भवति राजेव प्रजारंजनादिगुणवान् भवतीत्यर्थः ॥ २४० ॥

पावतीहै । तैसैं चिदाभास ज्ञातापुरुषके आगे अपनी प्रसिद्धिविषै लज्जाकूं पावताहै ॥ २३८ ॥

॥ ४ ॥ तीनशरीरनतैं विवेचन किये चिदाभासकूं फेर तिनके साथि एकताकी भ्रांतिके अभावमैं दृष्टांत ॥

१७ अब तीनशरीरनतैं विवेचन किये चिदाभासकूं फेर तिन शरीरनके साथि तादात्म्यभ्रांतिके अभावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

१८] जैसैं म्लेच्छनकरि ग्रहण किया ब्राह्मण प्रायश्चित्तकूं आचरताहुया फेर म्लेच्छनकरि मिलापवान् होवै नहीं । तैसैं चिदाभास विवेकवान् हुया फेर शरीरनके साथि अध्यासवान् होवै नहीं ॥ २३९ ॥

॥ ५ ॥ चिदाभासकूं महत्लाभअर्थ साक्षीकी अनुसारिताका दृष्टांतसहित कथन ॥

१९ चिदाभासकूं केवल अपनै अपराधकी निवृत्तिअर्थ साक्षीका अनुसरण नाम अनुसारी होना नहीं है । किंतु महान्प्रयोजनकी सिद्धिअर्थ बी साक्षीका अनुसरण है । ऐसैं सिंहावलोकनन्यायकरि दृष्टांतसहित कहैहैं:—

२०] युवराजताविषै कहिये राजाके जीवत होते राजपदवीविषै स्थित राजपुत्र जैसैं चक्रवर्तीपनैरूप साम्राज्यकी वांच्छाकरि राजाके अनुसारी होवैहै । तैसैं यह चिदाभास ब्रह्मभावकी इच्छाकरि साक्षीके अनुसारी होवैहै ॥

ॐ २०) राजाका अनुकारी होवैहै । अर्थ यह जो राजाकी न्यांई प्रजारंजनआदिक गुणवाला होवैहै ॥ २४० ॥

७५ सिंह जैसैं अपनै स्थानकतैं कूदिमारिके बीचकी भूमिकूं उलंघनकरि पीछे अपनै स्थानकूं अवलोकन करता (देखता)है । ताकी न्याई जहां प्रकृतअर्थकूं छोडिके बीचमैं औरअर्थका कथनकरि पीछे प्रकृतअर्थका अनुसंधान होवै । तहां सिंहावलोकनन्याय कहियेहै ॥ इहां चिदाभासकूं साक्षीका अनुसरण (तत्परपना) प्रकृत है । ताकूं छोडिके बीचमैं दोश्लोकसैं औरअर्थका कथनकरि फेर साक्षीके अनुसरणरूप प्रकृतअर्थके कथनतैं सिंहावलोकनन्याय है ॥

टीकांक: ३०२१ टिप्पणांक: ॐ

२२ यो ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवत्येव इति श्रुतिम् ।
श्रुत्वा तदेकचित्तः सन्ब्रह्म वेत्ति न चेतरत्॥२४१॥
२५ देवत्वकामा ह्यग्न्यादौ प्रविशंति यथा तथा ।
साक्षित्वेनावशेषाय स्वविनाशं स वांछति॥२४२॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८२५ ८२६

२१ ननु युवराजस्य राजानुसरणे साम्राज्यफलं दृश्यते नैवं साक्ष्यनुसरणे । अतस्तदनुसरणे कथं प्रवर्तते इत्याशंक्याह—

२२] "यः ब्रह्म वेद ब्रह्म एव भवति" इति श्रुतिं श्रुत्वा तदेकचित्तः सन् ब्रह्म वेत्ति च इतरत् न ॥

२३) "स यो ह वै एतत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति । नास्याब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं । गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति" इति श्रुतौ ब्रह्मभावादिरूपस्य फलस्य श्रूयमाणत्वात् तत्फलवांछया साक्ष्यनुसरणे प्रवर्तनं युक्तमित्यर्थः ॥ २४१ ॥

२४ ननु ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मभावप्राप्तौ चिदाभासत्वमेव विनश्येदतः स्वविनाशाय कथं प्रवर्तेत इत्याशंक्याह (देवत्वकामा इति)-

२५] यथा देवत्वकामाः हि अग्न्यादौ प्रविशंति । तथा साक्षित्वेन अवशेषाय सः स्वविनाशं वांछति ॥

॥ ६ ॥ चिदाभासकूं साक्षीकी अनुसारितामैं फल॥

२१ ननु युवराजकूं राजाके अनुसारी होनैविषै मंडलेश्वरनके अधिपतिपनैरूप साम्राज्यमय फल देखियेहै । ऐसैं चिदाभासकूं साक्षीके अनुसारी होनैविषै फल नहीं देखियेहै । यातैं साक्षीके अनुसरणविषै कैसैं प्रवर्त्त होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२२] "जो ब्रह्मकूं जानताहै । सो निश्चयकरि ब्रह्महीं होवैहै" इस श्रुतिकूं सुनिके तिस एकब्रह्मविषै चित्तवान् हुया ब्रह्मकूं जानताहै । औरकूं नहीं ॥

२३) "जो निश्चयकरि इस परमब्रह्मकूं जानताहै सो ब्रह्महीं होवैहै । इस ब्रह्मवित्के शिष्यपरंपरारूप कुलविषै अब्रह्मवित् नहीं होवैहै । शोककूं तरताहै । पापकूं तरताहै । गुहा जे पंचकोश तिसरूप ग्रंथिनतैं मुक्त हुया मरणभावरहित मोक्षरूप होवैहै ॥" इस श्रुतिविषै ब्रह्मभावादिरूप फलकूं श्रवण कियाहोनैतैं । तिस फलकी इच्छाकरि चिदाभासकूं साक्षीके अनुसरणविषै प्रवर्त्तनां युक्त है। यह अर्थ है ॥ २४१ ॥

॥ ७ ॥ दृष्टांतकरि चिदाभासकूं ब्रह्मभावकी प्राप्तिअर्थ अपनै विनाशकी इच्छा ॥

२४ ननु ब्रह्मज्ञानकरि ब्रह्मभावकी प्राप्तिके हुये चिदाभासपनाहीं विनाशकूं पावैगा। यातैं चिदाभास अपनै विनाशअर्थ कैसैं प्रवर्त्त होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२५] जैसैं देवभावकी कामनावाले अग्निआदिकविषै प्रवेश करैहैं । तैसैं साक्षीभावकरि अवशेष रहनैअर्थ सो चिदाभास अपनै विनाशकूं इच्छताहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८२७

यावत्स्वदेहदाहं स नरत्वं नैव मुंचति ।
तावदारब्धदेहं स्यान्नाभासत्वविमोचनम् ॥२४३॥

टीकांकः ३०२६ टिप्पणांकः ६७६

२६) यथा लोके देवत्वमाप्तिकामा मनुष्या भृग्वग्निप्रयागगंगाप्रवेशादौ प्रवर्तंते। एवं साक्षिरूपेणावस्थानलक्षणस्याधिकफलस्य विद्यमानत्वाच्चिदाभासत्वापगमहेतौ ब्रह्मज्ञानेऽपि प्रवृत्तिर्घटत एवेत्यर्थः ॥२४२॥

२७ ननु तत्त्वज्ञानेनाभासत्वमपगच्छति चेत्कथं तत्त्वविदां जीवत्वव्यवहार इत्याशंक्य प्रारब्धकर्मक्षयपर्यंतं तदुपपत्तिं सदृष्टांतमाह—

२८] यावत् स्वदेहदाहं सः नरत्वं न एव मुंचति । आरब्धदेहं स्यात् तावत् आभासत्वविमोचनं न ॥

२९) यथाग्न्यादौ प्रविष्टः पुरुषः दाहादिना

---

२६) जैसैं लोकविषै देवभावके प्राप्तिकी कामनावाले मनुष्य। पर्वतके शिखरतैं पतनरूप भृगु औ अग्नि अरु प्रयागगंगामैं प्रवेशआदिकस्वविनाशके साधनविषै प्रवर्त्ततेहैं । ऐसैं साक्षीस्वरूपसैं स्थितिरूप अधिकफलकूं विद्यमान होनैतैं चिदाभासभावके विनाशके हेतु ब्रह्मज्ञानविषै बी प्रवृत्ति घटैहीं है। यह अर्थ है ॥ २४२ ॥

॥ ४ ॥ ज्ञानीचिदाभासकूं प्रारब्धपर्यंत व्यवहारके संभवका प्रतिपादन ॥ ३०२७—३०५६ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतसहित ज्ञानीकूं प्रारब्धपर्यंत व्यवहारका संभव ॥

२७ ननु तत्त्वज्ञानकरि जब चिदाभासपना निवृत्त होवैहै । तब तत्त्वज्ञानिनका लोकविषै जीवपनैका व्यवहार कैसैं होवैहै ? यह आशंकाकरि प्रारब्धकर्मके क्षयपर्यंत तिस चिदाभासपनैके संभवकूं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

२८] जैसैं जहांलगि अपनै देहका दाह होवै। तहांलगि सो अग्निविषै प्रवेश भया पुरुष मनुष्यभावकूं नहीं छोडताहै। तैसैं जहांलगि प्रारब्धकर्मके अधीन देह होवै । तहांलगि आभासपनैकी निवृत्ति नहीं होवैहै ॥

२९) जैसैं अग्निआदिकविषै प्रवेशकूं पाया पुरुष दाहआदिककरि अपनै देहके नाशपर्यंत

---

७६ यद्यपि देवभावके प्राप्तिकी इच्छावाले पुरुष अग्निआदिकविषै प्रवेशकरि स्थूलदेहके विनाशकूं इच्छतेहैं। अपनै (जीवके) विनाशकूं इच्छते नहीं । यातैं तिनकूं देवभावकी प्राप्ति संभवैहै औ चिदाभास तौ अपनै विनाशकूं इच्छताहै। यातैं तिस प्रापकके अभावतैं ताकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति संभवै नहीं । तथापि इहां (द्वैतविवेकगत ११ वें औ चित्रदीपगत २३ वें औ इसप्रकरणगत ५ वें आदिकश्लोकनविषै) कूटस्थविशिष्टबुद्धिगतप्रतिबिंबरूप चिदाभासकूंहीं जीव कहाहै । तिसीकूंहीं बंधमोक्षादिकविषै अधिकार है । यातैं ब्रह्मज्ञानकरि बुद्धिसहित चिदाभास औ जीवभावके विनाश हुये बी अवशेषकूटस्थकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति संभवैहै ॥ औ "कहूं विशेषणके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै अरु कहूं विशेष्यके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवैहै।" इस शास्त्रउक्तनियमतैं अंतःकरणसहित चिदाभासरूप विशेषणके नाशतैं साभासअंतःकरणविशिष्टचेतनरूप जीवके नाशका व्यवहार होवैहै औ कूटस्थरूप विशेष्यकूं ब्रह्मभावकी प्राप्तिकरि साभासअंतःकरणविशिष्टचेतनरूप जीवकूं ब्रह्मभावकी प्राप्तिका व्यवहार होवैहै । यातैं इहां कोई बी असंभव नहीं है ॥

टीकांकः ३०३० टिप्पणांकः ॐ | तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः

[३१] रज्जुज्ञानेऽपि कंपादिः शनैरेवोपशाम्यति ।
पुनर्मंदांधकारे सा रज्जुः क्षिप्तोरगी भवेत्॥२४४॥ ८२८
[३३] एवमारब्धभोगोऽपि शनैः शाम्यति नो हठात् ।
भोगकाले कदाचित्तु मर्त्योहमिति भासते॥२४५॥ ८२९
[३५] नैतावतापराधेन तत्त्वज्ञानं विनश्यति ।
[३६] जीवन्मुक्तिव्रतं नेदं किंतु वस्तुस्थितिः खलु २४६ ८३०

स्वदेहनाशपर्यंतं नरत्वं नरव्यवहारयोग्यत्वं नैव मुंचति । एवं प्रारब्धकर्मक्षयपर्यंतं चिदाभासत्वव्यवहारो न निवर्तत इत्यर्थः २४३

३० ननु भोक्तृत्वादिभ्रमोपादानस्याज्ञानस्य निवृत्तत्वात्कथं पुनर्भोगानुवृत्तिः कथं वा "मर्त्योऽहम्" इति विपरीतप्रतीतिरित्याशंक्य दृष्टांतप्रदर्शनेन एतत् संभावयति—

३१] रज्जुज्ञाने अपि कंपादिः शनैः एव उपशाम्यति । पुनः मंदांधकारे क्षिप्ता सा रज्जुः उरगी भवेत्॥२४४॥

३२ दार्ष्टांतिके योजयति—

३३] एवं आरब्धभोगः अपि शनैः शाम्यति । हठात् न । भोगकाले कदाचित् तु "अहं मर्त्यः" इति भासते ॥ २४५॥

३४ ननु पुनर्मर्त्यत्वबुद्ध्युदये तेन तत्त्वज्ञानं बाध्येतेत्याशंक्याह (नैतावतेति)—

३५] एतावता अपराधेन तत्त्वज्ञानं न विनश्यति ॥

नरव्यवहारकी योग्यताकूं नहीं छोडताहै। ऐसैं प्रारब्धकर्मके क्षयपर्यंत चिदाभासरूप जीवपनैका व्यवहार निवृत्त नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥ २४३ ॥

॥ २ ॥ ज्ञानीकूं बाध हुये प्रपंचके अनुवृत्तिकी दृष्टांतसैं संभावना ॥

३० ननु ज्ञानीकूं भोक्तापनैआदिकभ्रांतिके उपादान अज्ञानके निवृत्त होनैतैं फेर ज्ञान भये पीछे भोगकी अनुवृत्ति जो बाध हुये पीछे वर्त्तना। सो कैसैं होवैहै? वा "मैं मनुष्य हूं" ऐसी विपरीतप्रतीति कैसैं होवैहै ? यह आशंकाकरि दृष्टांतके दिखावनैकरि इसकूं घटावतेहैं:—

३१] जैसैं रज्जुके ज्ञान हुये बी सर्पके भयसैं जन्य जो कंपआदिक हैं। सो कछुक कालसैंहीं निवृत्त होवैहै औ फेर मंदअंधकारविषै गेरीहुई सो रज्जु सर्पिणी होवैहै ॥ २४४ ॥

३२ दृष्टांतमैं सिद्धअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

३३] ऐसैं प्रारब्धका भोग बी कछुक कालसे निवृत्तिकूं पावताहै । हठतैं नहीं औ भोगकालविषै कदाचित् तौ "मैं मनुष्य हूं" ऐसैं भासताहै॥२४५॥

॥ ३ ॥ बाधितकी अनुवृत्तिसैं तत्त्वज्ञानका अबाध ।

३४ ननु फेर "मैं मनुष्य हूं"। इस बुद्धिके उदय हुये तिसकरि तत्त्वज्ञान बाधकूं पावैगा। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३५] इतनैं कहिये "मैं मनुष्य हूं" इस प्रतीतिरूप अपराधकरि तत्त्वज्ञान विनाशकूं पावता नहीं ॥

३६) कदाचित् "अहं मर्त्य" इत्येवंविधज्ञानोदयमात्रेणागमप्रमाणजनिततत्त्वज्ञानं न बाध्यते ॥

३७ कुत इत्यत आह (जीवन्मुक्तीति)–

३८] इदं जीवन्मुक्तिव्रतं न किंतु वस्तुस्थितिः खलु ॥

३९) इदं मर्त्यत्वबुद्ध्युपाकरणलक्षणं जीवन्मुक्तिव्रतं नियमेनानुष्ठेयं न भवति। किंतु सम्यग्ज्ञानेन भ्रांतिज्ञाननिवृत्तिरित्ययं वस्तुस्वभावः। अतः कदाचिन्मर्त्यत्वबुद्ध्युदयेऽपि पुनस्तत्त्वज्ञानांतरेण तस्या एव बाध्यत्वमिति भावः ॥ २४६ ॥

३६) कदाचित् "मैं मनुष्य हूं" इस प्रकारके ज्ञानके उदयमात्रकरि वेदरूप प्रमाणसैं जनित तत्त्वज्ञान बाधकूं पावता नहीं ॥

३७ "मैं मनुष्य हूं" इस ज्ञानकरि तत्त्वज्ञान काहेतैं बाधकूं पावता नहीं? तहां कहैहैं:—

३८] यह जीवन्मुक्तिका व्रत नहीं है। किंतु वस्तुकी स्थिति है ॥

३९) यह मनुष्यपनैकी बुद्धिके न करनैरूप जीवन्मुक्तिका नियमकरि अनुष्ठान करनैके योग्य व्रत नहीं होवैहै। किंतु सम्यक्ज्ञानकरि भ्रांतिज्ञानकी निवृत्ति होवैहै। यह वस्तुका स्वभाव है॥ यातैं कदाचित् व्यवहारकालमैं मनुष्यपनैकी बुद्धिके उदय हुये बी। फेर दूसरी ब्रह्मात्माकारवृत्तिरूप अन्यतत्त्वज्ञानकरि तिस मनुष्यपनैकी बुद्धिके बाध होनैकी योग्यताहै॥ यह भाव है॥ २४६ ॥

७७ इहां यह अभिप्राय है:—रज्जुके ज्ञानसैं सर्पभ्रांतिके बाधकी न्याईं प्रत्यक्अभिन्नअधिष्ठानब्रह्मके ज्ञानसैं अहंकारादिजगद्भ्रांतिके बाध हुये बी। सर्पज्ञानसैं जन्य कंपादिककी विलंबसैं निवृत्तिकी न्याईं प्रारब्धकर्मका भोग प्रारब्धके अंतपर्यंत कालसैं निवृत्त होवैहै। साधनांतरसैं नहीं॥ औ फेरी मंदअंधकारमैं मेरी रज्जुकी सर्परूपसैं प्रतीतिकी न्याईं भोगकालमैं कदाचित् "मैं मनुष्य हूं" इत्यादिप्रतीति बाधितानुवृत्तिसैं होवैहै॥

मिथ्यात्वनिश्चयका नाम **बाध** है॥ जिसका बाध होवैहै। सो (प्रपंच) **बाधित** कहियेहै औ बाधितकी जो अनुवृत्ति कहिये प्रारब्धपर्यंत पीछे वर्त्तना। सो **बाधितानुवृत्ति** कहियेहै॥

यद्यपि उपादानअज्ञानके निवृत्त हुये पीछे कार्य (प्रपंच)की स्थिति अयुक्त है। तथापि जैसैं गौविषे व्याघ्रबुद्धिसैं बाणके छोडे पीछे गौके ज्ञान हुये पश्चात्तापसैं धनुषमैं अनुसंधान किये दूसरेबाणके औ तूणीर (तर्गस)मैं स्थित बाणनके नाश किये बी मुक्तबाणका वेग शांत होवै नहीं। किंतु जहांलगि वेग होवै तहांलगि चलिके फेर स्थित होवैहै॥ तैसैं वेगके कारण धनुषस्थानी अज्ञानके औ अनुसंधान किये दूसरेबाणस्थानी क्रियमाणकर्मके औ तूणीरमैं स्थित अनेकबाणनके स्थानीय संचितकर्मके ज्ञानसैं नाश हुये बी। मुक्तबाणस्थानीप्रारब्धकर्मसैं बाणके वेगस्थानीकार्यकी अनुवृत्ति होवैहै॥

इहां यह **शंका** है:—धनुषकूं बाणके वेगका निमित्तकारण होनैतैं धनुषके नाश हुये बी कुलालादिकनिमित्तकारणके नाशकरि घटकी स्थितिकी न्याईं बाणके वेगकी स्थिति बनैहै औ अज्ञानकूं भोक्तृत्वआदिकभ्रमरूप कार्यका उपादान होनैतैं ताके नाश हुये मृत्तिकाके नाशकरि घटके स्थितिके असंभवकी न्याईं कार्यकी स्थिति बनै नहीं। या शंकाका

यह **समाधान** है:—दग्धधान्यके कणकी न्याईं प्रारब्धके बलसैं भोगपर्यंत अज्ञानके आवरण विक्षेपरूप दोनूंअंश बाधित होयके रहैहै। ताहीकूं **अज्ञानका लेश** कहैहैं। यातैं उपादानके होनैतैं व्यवहारकालमैं स्वरूपविस्मृतिरूप वा सुषुप्तिआदिस्थलमैं निद्रारूप **आवरण** औ "मैं अमुक कार्यका कर्त्ता हूं। अमुक भोगका भोक्ता हूं। मनुष्य हूं। ब्राह्मण हूं। देखताहूं" इत्यादिक**विक्षेपरूप कार्य**की अनुवृत्ति होवैहै। परंतु ज्ञानाग्निसैं बाधित हुया अज्ञान। अंकुरकी उत्पत्तिमैं असमर्थ दग्धकणकी न्याईं वर्त्तमानजन्मविषै जीवईशादिपंचभेद औ जगत्की पारमार्थिकसत्ताबुद्धिका हेतु वा प्रारब्धभोगके अनंतर अन्यजन्मका हेतु होवै नहीं। यह किसी ग्रंथकारका मत है॥

यद्वा आवरणकी हेतुशक्ति औ देहादिप्रपंच अरु ताके ज्ञानरूप विक्षेपकी हेतुशक्ति। ये **अज्ञानके दोअंश** हैं। तिनमैं आवरणशक्तिविशिष्टअंश तौ तत्त्वज्ञानसैं नष्ट होवैहै औ विक्षेपशक्तिविशिष्टअज्ञानका अंश तौ प्रारब्धरूप प्रतिबंधपर्यंत दग्धकणकी न्याईं बाधित होयके शेष रहैहै। सोई **अविद्यालेश** है॥ यातैं दर्पणके ज्ञान हुये प्रतिबिंबकी न्याईं तत्त्वज्ञानसैं अनंतर विद्वान्कूं देहादिकविक्षेपकी प्रतीति होवैहै। यातैं प्रारब्धभोग बी बनैहै औ कदाचित् व्यवहारकालमैं "मैं मनुष्य हूं। ब्राह्मण हूं। बधिर हूं। अंध हूं।" इत्यादिअध्यास बाधितानुवृत्तिसैं होवैहै औ "मैं देह हूं। वा

टीकांकः ३०४० टिप्पणांकः ॐ	दशमोऽपि शिरस्ताडं रुदन्बुध्वा न रोदिति । शिरोव्रणस्तु मासेन शनैः शाम्यति नो तदा २४७ दशमामृतिलाभेन जातो हर्षो व्रणव्यथाम् । तिरोधत्ते मुक्तिलाभस्तथा प्रारब्धदुःखिताम् २४८	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८३१ ८३२

४० भवतु रज्जुसर्पादिस्थले विपरीतज्ञाननिवृत्तौ अपि तत्कार्यकंपाद्यनुवृत्तिः प्रकृतदृष्टांते दशमे "दशमः त्वमसि" इति वाक्यविचारजन्यज्ञानेन भ्रमनिवृत्तौ तत्कार्यानुवृत्तिर्नोपलभ्यत इत्याशंक्याह—

४१] दशमः अपि शिरस्ताडं रुदन् बुद्ध्वा न रोदिति । शिरोव्रणं तु शनैः मासेन शाम्यति । तदा नो ॥

४२) "दशमोऽस्मि" इति ज्ञानोदये सति शिरस्ताडनपूर्वकं रोदनमात्रं निवर्तते । ताडनव्रणस्तु अनुवर्तते एवेत्यर्थः ॥ २४७ ॥

४३ ननु ज्ञानोत्तरकालेऽपि संसारानुवृत्तौ जीवन्मुक्तेः कुतः पुरुषार्थतेत्याशंक्य मुक्तिलाभजन्यहर्षस्य तद्दुःखाच्छादकस्य सत्वात् पुरुषार्थतेति दृष्टांतपूर्वकमाह—

४४] दशमामृतिलाभेन जातः

॥ ४ ॥ दशमके दृष्टांतमैं बाधितकी अनुवृत्तिका कथन ॥

४० ननु रज्जुसर्पादिकस्थलविषै विपरीतज्ञानकी निवृत्ति हुये बी तिसके कार्य कंपादिककी अनुवृत्ति नाम कारणके नाश भये पीछे वर्तना होहु औ सप्तअवस्थाके प्रसंगमैं पठित दशमरूप दृष्टांतविषै "दशम तूं है" इस वाक्यके विचारसैं जन्य ज्ञानकरि भ्रांतिकी निवृत्तिके हुये। तिस भ्रांतिके कार्यकी अनुवृत्ति नहीं देखियेहै । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४१] दशमपुरुष बी शिरकूं ताडन करता रुदन करताहुया जानिके रुदन नहीं करैहै औ शिरका व्रण जो छेदन। सो तौ धीरेसैं मासकरि निवृत्त होवैहै । तिसी कालमैं नहीं ॥

४२) "दशम मैं हूं" इस ज्ञानके उदय हुये मस्तकके ताडनपूर्वक रोदनमात्र निवर्त्त होवैहै औ ताडनका किया जो मस्तकका फूटना।सो तो पीछे वर्तताहीं है । यह अर्थ है ॥ २४७ ॥

॥ ५ ॥ दृष्टांतपूर्वक जीवन्मुक्तिके लाभसैं प्रारब्धदुःखके तिरोधानका कथन ॥

४३ ननु ज्ञानके उत्तरकालविषै बी संसारकी अनुवृत्तिके हुये जीवन्मुक्तिकूं काहेतैं पुरुषार्थता है ? यह आशंकाकरि दुःखके आच्छादक जीवन्मुक्तिके लाभसैं जन्य हर्षरूप तृप्तिके सद्भावतैं जीवन्मुक्तिकूं पुरुषार्थता है । ऐसैं दृष्टांतपूर्वक कहैहैं:—

४४] जैसैं दशमके अमरणके लाभसैं

इंद्रिय हूं । वा अंतःकरण हूं ।" यह अध्यास कदाचित् होवै नहीं औ आवरणशक्तिवाले अज्ञानअंशके नाशतैं "मैं अज्ञानी हूं। कूटस्थ नहीं है। वा नहीं भासताहै ।" इसरीतिका आवरण विद्वानकूं होवै नहीं । औ व्यवहारकालमैं कदाचित् स्वरूपकी विस्मृति होवैहै। सो आवरणरूप नहीं । किंतु अनात्माकारवृत्तिसैं आत्माकारवृत्तिका तिरोधान है । काहेतैं । यह नियम है:—भिन्नविषयरूप अधिकरणवाले दोज्ञान विशेषरूपकरि एककालमैं होवैं नहीं। जैसैं घटके विशेषज्ञानके होते पटका विशेषज्ञान होवै नहीं । तैसैं जब अनात्माकारवृत्ति होवै तब ब्रह्माकारवृत्ति होवै नहीं । किंतु ताका तिरोधान होवैहै । आवरण होवै नहीं औ सुषुप्तिआदिकस्थलमैं विद्यमान आवरणका तूलाज्ञानसैं निर्वाह होवैहै । यह पंचपादिकाकार पद्मपादाचार्यकी रीतिसैं समाधान है ॥

इसरीतिसैं विद्वानकूं ज्ञानसैं अनंतर भोगकी अनुवृत्तिऔ कदाचित् भोगकालविषै "मैं मनुष्य हूं" इत्यादिविपरीतप्रतीति बनैहै ॥ इति ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८३३

४६ व्रताभावाद्यदाध्यासस्तदा भूयो विविच्यताम् ।
४८ रससेवी दिने भुंक्ते भूयो भूयो यथा तथा ॥२४९॥

टीकांक: ३०४५ टिप्पणांक: ६७८

हर्षः व्रणव्यथां तिरोधत्ते । तथा मुक्तिलाभः प्रारब्धदुःखिताम् ॥२४८॥

४५ "जीवन्मुक्तिव्रतं नेदं" इत्युक्तं तत्र व्रतत्वाभावे किमायातमित्यत आह—

४६] व्रताभावात् यदा अध्यासः तदा भूयः विविच्यताम् ॥

४७ पुनः पुनर्विचारकरणे दृष्टांतमाह (रससेवीति)—

४८] यथा रससेवी दिने भूयः भूयः भुंक्ते तथा ॥

४९) यथा रससेवी नरः एकस्मिन्नेव दिने क्षुद्बाधापरिहाराय पुनः पुनः भुंक्ते तद्वदध्यासनिवृत्तये पुनः पुनर्विवेकः क्रियतामित्यर्थः ॥ २४९ ॥

उत्पन्न भया हर्ष व्रणकी पीडाकूं तिरोधान करैहै। तैसैं मुक्तिका लाभ प्रारब्धकी दुःखिताकूं तिरोधान करैहै२४८

॥ ६ ॥ दृष्टांतसहित अध्यासनिवृत्तिअर्थ वारंवार विचारकी कर्त्तव्यता ॥

४५ "यह मनुष्यपनैकी बुद्धिका न करना जीवन्मुक्तिका व्रत नहीं है" ऐसैं जो २४६ श्लोकविषै कहा। तिसमैं व्रतपनैके अभावविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

४६] व्रतके अभावतैं जब अध्यास होवै। तब फेर विवेचन करना ॥

४७ फेरि फेरि विचारके करनैविषै दृष्टांत कहैहैं:—

४८] जैसैं रससेवीपुरुष दिनविषै फेरि फेरि भोजन करैहै । तैसैं फेरि फेरि विचार करना ॥

४९) जैसैं पारा हर्ताल औ तांबाआदिक कोइक रसका सेवन करनैहारा मनुष्य। एकहीं दिनविषै क्षुधाजन्यदुःखकी निवृत्तिअर्थ फेरि फेरि भोजन करैहैं। तैसैं अध्यासकी निवृत्ति-अर्थ ज्ञानीकूं फेरि फेरि देहादिकतैं अपना भेदज्ञानरूप विवेक कियाचाहिये । यह अर्थ है ॥ २४९ ॥

७८ जैसैं अन्नकणके भक्षणतैं भंग होवै ऐसा एकादशीका व्रत होवैहै। तैसैं अध्यासकी उत्पत्तिसैं भंग होवै ऐसा जीवन्मुक्तिका व्रत नहीं है । तथापि रससेवीपुरुषकूं क्षुधाजन्य दृष्टदुःखकी निवृत्तिअर्थ वारंवार भोजनकी न्याई । ज्ञानीकूं अध्यासजन्य दृष्टदुःखरूप विक्षेपकी निवृत्तिअर्थ वारंवार ब्रह्मविचार कर्त्तव्य है ॥ इहां यह रहस्य है:—आगे ३५६४-३६१७वें अंकपर्यंत कहियेगा जो भूत भविष्यत् औ वर्त्तमानरूप तीनभांतिका प्रतिबंध। सो ज्ञानकी उत्पत्तिमैं प्रतिबंध है ॥ संशय औ विपरीतभावना ज्ञानकी उत्पत्तिमैं प्रतिबंध नहीं है । किंतु मातापिताकी सेवामैं असक्त रोगीपुत्रके रोगकी न्याई ज्ञानके फलमैं वा सफलदृढज्ञानमैं प्रतिबंध है ॥ औ ज्ञानउत्पत्तिके पीछे प्रारब्धपर्यंत अनष्ट-अविद्याकी विक्षेपहेतुशक्तिजन्य अध्यासरूप विक्षेप जो है । सो ज्ञानके फल जीवन्मुक्ति औ विदेहमुक्तिमैं प्रतिबंध नहीं है। किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदमैं प्रतिबंध है ॥ यातैं अध्यासके न करनैरूप व्रतके अभाव हुये बी जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदअर्थ वारंवार ब्रह्मविचार कर्त्तव्य है ॥

टीकांक: २०५० टिप्पणांक: ६७९	⁵¹शमयत्यौषधेनायं दशमः स्वं व्रणं यथा । भोगेन शमयित्वैतत्प्रारब्धं मुच्यते तथा॥२५०॥ ⁵³किमिच्छन्निति वाक्योक्तः शोकमोक्ष उदीरितः । ⁵⁶आभासस्य ह्यवस्थैषा षष्ठी तृप्तिस्तु सप्तमी २५१	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८३४ ८३५

५० ज्ञानेनानिवर्त्यस्य प्रारब्धकर्मफलस्य केन तर्हि निवृत्तिरित्याशंक्य ताडनजन्यव्रणस्य औषधेनेव भोगेनैव निवृत्तिरित्याह (शमयतीति)—

५१] यथा अयं दशमः औषधेन स्वं व्रणं शमयति । तथा भोगेन एतत् प्रारब्धं शमयित्वा मुच्यते ॥ २५० ॥

५२ "अपरोक्षज्ञानशोकनिवृत्त्याख्ये उभे इमे अवस्थे जीवगे ब्रूत आत्मानं चेदिति श्रुतिः" इत्यनेन श्लोकेन "आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्" इत्यस्मिन्मंत्रे परोक्षज्ञानशोकनिवृत्त्याख्ये जीवावस्थे द्वे अभिहिते इत्युक्तम् । इदानीं तदभिधानसूचितां जीवस्य सप्तमीं तृप्तिलक्षणावस्थां वृत्तानुकीर्तनपूर्वकं वक्तुमारभते—

५३] "किम् इच्छन्" इति वाक्योक्तः शोकमोक्षः उदीरितः ॥

॥ ७ ॥ दृष्टांतपूर्वक भोगसैं प्रारब्धकी निवृत्ति ॥

५० ननु तब ज्ञानकरि न निवृत्त होनैयोग्य प्रारब्धकर्मके फलकी किसकरि निवृत्ति होवैहै? यह आशंकाकरि ताडनसैं जन्य व्रणकी औषधकरि निवृत्तिकी न्याई । प्रारब्धकर्मके फलकी भोगकरिहीं निवृत्ति होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

५१] जैसैं यह दशमपुरुष । औषधकरि अपनै व्रणकूं निवारण करैहै । तैसैं भोगकरि इस प्रारब्धकूं निवारणकरिके ज्ञानी विदेहमुक्त होवैहै ॥२५०॥

॥ ८ ॥ श्लोक १३६–१९१ उक्त शोकनिवृत्तिके कथनपूर्वक सप्तमी तृप्तिअवस्थाका प्रारंभ ॥

५२ "आत्माकूं जब जानै । यह प्रथमश्लोकउक्तश्रुति अपरोक्षज्ञान अरु शोकनिवृत्ति । इस नामवाली इन दोनूंअवस्थाकूं जीवगत कहतीहै" । इस ४८ वैं श्लोककरि "पुरुष 'यह मैं हूं' ऐसैं आत्माकूं जब जानै । तब किसकूं इच्छताहुया किसके कामअर्थ शरीरके पीछे ज्वरकूं पावै" इस प्रथमश्लोकउक्तवेदमंत्रविषै अपरोक्षज्ञान औ शोकनिवृत्ति । इस नामवाली दोनूं जीवकी अवस्था कहीहैं । ऐसैं कहा ॥ अब २५२–२९८ श्लोकपर्यंत तिन दोनूंअवस्थाके कथनतैं सूचन करी जो जीवकी सप्तमी तृप्तिरूप अवस्था । ताकूं गतअर्थके अनुवादपूर्वक कहनैकूं आरंभ करैहैं:—

५३] "किसकूं इच्छताहुया" इस श्रुतिवाक्यविषै उक्त जो शोकका नाश सो कहा ॥

७९ जैसैं दशमपुरुषकूं ताडनरूप निमित्तसैं जन्य व्रण है । तैसैं प्रारब्धरूप निमित्तसैं जन्य शरीरकूं व्रणकी न्याई देखना औ अन्नकूं व्रणके लेपकी न्याई देखना औ जलकूं व्रणके प्रक्षालनकी न्याई देखना औ वस्त्रकूं व्रणके पटकी न्याई देखना । ऐसैं अन्नपानादिकभोगरूप उपायद्वारा प्रारब्धकी निवृत्तिकरि ज्ञानी विदेहमुक्त होवैहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८३६	सांकुशा विषयैस्तृप्तिरियं तृप्तिर्निरंकुशा । कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्येव तृप्यति॥२५२॥	टीकांक: ३०५४ टिप्पणांक: ॐ

५४) "किमिच्छन्" इत्युत्तरार्धेनाभिहितो यः शोकमोक्षः स एतावता ग्रंथसंदर्भेण उदीरितः अभिहितः ॥

५५ एषा "अज्ञानमावृतिस्तद्वद्विक्षेपश्च परोक्षधीः अपरोक्षमतिः शोकमोक्षस्तृप्तिर्निरंकुशा" इत्यनेन श्लोकेनाभिहितासु सप्तसु जीवावस्थासु षष्ठीत्याह (आभासस्येति)—

५६] एषा आभासस्य षष्ठी अवस्था हि तृप्तिः तु सप्तमी ॥

ॐ५६) सप्तमी व्याख्याता इतिशेषः २५१

५७ अपरोक्षज्ञानजन्यायास्तृप्तेः निरंकुशत्वं प्रतियोगिप्रदर्शनपुरःसरं प्रतिजानीते (सांकुशेति)—

५८] विषयैः तृप्तिः सांकुशा । इयं तृप्तिः निरंकुशा ॥

५९) विषयलाभजन्यायास्तृप्तेर्विषयांतरकामनया कुंठितत्वात्सांकुशत्वं । अस्यास्तु तदभावात् निरंकुशत्वम् ॥

५४) "किसकूं इच्छताहुया" इस प्रथमश्लोकउक्तवेदमंत्रके उत्तरार्धकरि कथन किया जो शोकनाश । सो इतनै कहिये १३६–२५१ श्लोकपर्यंत उक्त ग्रंथके समूहकरि कथन किया ॥

५५ "अज्ञान । आवरण । विक्षेप । परोक्षज्ञान । अपरोक्षज्ञान । शोकनिवृत्ति औ निरंकुशातृप्ति।" इस ३३वें श्लोकसैं कथन करी जे सप्त जीवकी अवस्था हैं । तिनविषै यह शोकनिवृत्ति षष्ठअवस्था है । ऐसें कहैहैं:—

५६] यह शोकनिवृत्ति आभासकी षष्ठअवस्था है औ सप्तमअवस्था तृप्ति तौ अब व्याख्या करियेहैं ॥

ॐ५६) इहां सप्तमीअवस्था व्याख्यान करी । यह शेष है ॥ २५१ ॥

॥ ६ ॥ ज्ञानीचिदाभासकी सप्तमी निरंकुशातृप्तिअवस्थाका वर्णन ॥ ३०५७–३२०२ ॥

॥ १ ॥ प्रतियोगिनके स्मरणपूर्वक ज्ञानीकी कृतकृत्यता (कर्तव्यका अभाव) ॥ ३०५७–३०९४ ॥

॥ १ ॥ प्रतियोगीके कथनपूर्वक अपरोक्षज्ञानसैं जन्य तृप्तिकी निरंकुशता ॥

५७ अपरोक्षज्ञानसैं जन्य तृप्तिके निरंकुशपनैकूं कर्तव्य औ प्राप्तव्यरूप प्रतियोगीके दिखावनैपूर्वक प्रतिज्ञा करैहैं:—

५८] विषयनसैं जो तृप्ति होवैहै । सो सांकुशा है औ यह अपरोक्षज्ञानसैं जन्य तृप्ति निरंकुशा है ॥

५९) विषयके लाभसैं जन्य तृप्तिकूं अन्यविषयकी कामनाकरि कुंठित नाम छेदित होनेतैं अंकुशसहितपना है औ इस अपरोक्षज्ञानसैं जन्य तृप्तिकूं तौ तिस अन्यविषयकी कामनासैं कुंठितपनैके अभावतैं निरंकुशपना है ॥

टीकांकः २०६० टिप्पणांकः ॐ	६३ ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्ध्यै मुक्तेश्च सिद्धये । बहु कृत्यं पुरास्याभूत्तत्सर्वमधुना कृतम् ॥२५३॥ ६६ तदेतत्कृतकृत्यत्वं प्रतियोगिपुरःसरम् । अनुसंदधदेवायमेवं तृप्यति नित्यशः ॥ २५४ ॥	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८३७ ८३८

६० तदेव दर्शयति (कृतमिति)—

६१] कृत्यं कृतं प्रापणीयं प्राप्तं इति एव तृप्यति ॥ २५२ ॥

६२कृतकृत्यत्वमेवोपपादयति(ऐहिकेति)—

६३] अस्य पुरा ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्ध्यै च मुक्तेः सिद्धये बहु कृत्यं अभूत् । तत् सर्वं अधुना कृतम् ॥

६४) अस्य विदुषस्तत्त्वज्ञानोदयात्पूर्वमिह लोके इष्टप्राप्तये अनिष्टनिवृत्तये च कृषिवाणिज्यादिकं स्वर्गादिसिद्धये यागोपासनादिकं । मोक्षसाधनज्ञानसिद्धये श्रवणादिकं चेति बहुविधं कर्तव्यमासीत् । इदानीं तु सांसारिकफलेच्छाभावात् ब्रह्मानंदसाक्षात्कारस्य सिद्धत्वाच्च तत्सर्वं कृषियागश्रवणादिकं कृतं कृतमायमभूदतः परमनुष्ठेयत्वाभावादित्यर्थः ॥ २५३ ॥

६५ एवं कृतकृत्यत्वमुपपाद्य तत्फलभूतां तृप्तिं दर्शयति (तदेतदिति)—

६६] अयं तत् एतत् कृतकृत्यत्वं प्रतियोगिपुरःसरम् अनुसंदधत् एव एवं नित्यशः तृप्यति ॥

---

६० तिस निरंकुशपनैकूंहीं दिखावैहैंः—

६१] जो करनैयोग्य था सो किया औ प्राप्त होनै योग्य था सो पाया । ऐसैंहीं ज्ञानी तृप्ति जो हर्ष ताकूं पावताहै ॥ २५२ ॥

॥ २ ॥ कृतकृत्यताका प्रतिपादन ॥

६२ ज्ञानीके कृतकृत्यपनैकूंहीं उपपादन करैहैंः—

६३] इस ज्ञानीकूं पूर्व अज्ञानकालमैं इसलोक औ परलोकसंबंधी भोगके समूहकी सिद्धिअर्थ औ मुक्तिकी सिद्धिअर्थ बहुत कर्तव्य था । सो सर्व अब ज्ञानउदयतैं पीछे किया ॥

६४) इस विद्वान्कूं तत्त्वज्ञानके उदयतैं पूर्व इसलोकविषै वांछितविषयकी प्राप्तिअर्थ अरु प्रतिकूलविषयकी निवृत्तिअर्थ । खेतिवणजआदिक औ स्वर्गआदिककी सिद्धिअर्थ । यागउपासनाआदिक औ मोक्षके साधन ज्ञानकी सिद्धिअर्थ श्रवणादिक । ऐसैं बहुतप्रकारका कर्त्तव्य होताभया औ अब ज्ञानकालविषै तौ संसारसंबंधी फलकी इच्छाके अभावतैं औ ब्रह्मानंदके साक्षात्कारकूं सिद्ध होनैतैं । सो कृषियागश्रवणादिकसर्वकर्तव्य कियेकी न्यांई होताभया । काहेतैं। इस ज्ञानउदयके पीछे अनुष्ठान करनैके योग्य साधनके अभावतैं ॥ यह अर्थ है ॥ २५३ ॥

॥ ३ ॥ प्रतियोगीके स्मरणपूर्वक ज्ञानीकूं तृप्तिका होना ॥

६५ऐसैं कृतकृत्यपनैकूं उपपादनकरिकेतिस कृतकृत्यपनैकी फलरूप तृप्तिकूं दिखावैहैंः—

६६] यह ज्ञानी । तिस संक्षेपसैं उक्त इस विशेषकरी कहनैयोग्य कृतकृत्यपनैकूं प्रतियोगीपूर्वक अनुसंधान करताही है । ऐसैं सर्वदा तृप्तिकूं पावताहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८३९ ८४०

६९ दुःखिनोऽज्ञाः संसरंतु कामं पुत्राद्यपेक्षया ।
परमानंदपूर्णोऽहं संसरामि किमिच्छया ॥२५५॥
७१ अनुतिष्ठंतु कर्माणि परलोकयियासवः ।
सर्वलोकात्मकः कस्मादनुतिष्ठामि किं कथम् २५६

टीकांकः ३०६७ टिप्पणांकः ६८०

६७) प्रतियोगिपुरःसरं प्रतियोग्यनुसंधानपूर्वकं यथा भवति । तथा एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण सर्वदा तृप्यति ॥ २५४ ॥

६८ तदेवानुसंधानं प्रपंचयति "दुःखिनोऽज्ञाः" इत्यादिना "कृतकृत्यतया तृप्तः प्राप्तप्राप्यतया पुनः"। इत्यतः प्राक्तनेन ग्रंथेन। तत्र तावदैहिकसुखार्थिभ्यो वैलक्षण्यं स्वस्य दर्शयति—

६९] दुःखिनः अज्ञाः पुत्राद्यपेक्षया कामं संसरंतु । परमानंदपूर्णः अहं किमिच्छया संसरामि ॥ २५५ ॥

७० स्वर्गाद्यर्थं कर्मानुष्ठातृभ्यो वैलक्षण्यमाह (अनुतिष्ठंत्विति)—

७१] परलोकयियासवः कर्माणि अनुतिष्ठंतु । सर्वलोकात्मकः कस्मात् किं कथं अनुतिष्ठामि ॥ २५६ ॥

६७) "यह ज्ञानी । इस कर्त्तव्यके अभावकूं प्रतियोगीके स्मरणपूर्वक जैसैं होवै तैसैं स्मरण करताहुयाहीं ।" ऐसैं २५२–२९८ श्लोकपर्यंत आगे कहनैके प्रकारकरि सर्वदा तृप्तिकूं पावताहै ॥ २५४ ॥

॥ ४ ॥ प्रतियोगीके अनुसंधानपूर्वक ज्ञानीकरि इसलोकके सुखअर्थिनतैं अपनी विलक्षणता ॥

६८ तिसी कर्त्तव्यरूप प्रतियोगीपूर्वक कृतकृत्यपनैके अनुसंधानकूंहीं "दुःखी जे अज्ञानी हैं ।" इस २५५ वें श्लोकसैं आदिलेके "कृतकृत्यपनैकरि तृप्त भया । फेर प्राप्तप्राप्यपनैकरि तृप्त भया ।" इस २९१ वें श्लोकपर्यंत आगे कहनैके ग्रंथकरि विस्तारसैं कहैहैं ॥ तहां प्रथम इसलोकसंबंधी सुखके अर्थीतैं ज्ञानी। अपनी विलक्षणता दिखावैहैः—

६९] दुःखी जो अज्ञानी है । सो जैसैं इच्छा होवै तैसैं पुत्रादिकनकी अपेक्षासैं इसलोकसंबंधी व्यवहारकूं करहु औ परमानंदकरि पूर्ण जो मैं हूं । सो किसकी इच्छाकरि व्यवहारकूं करौं? २५५

॥ ५ ॥ परलोकार्थिनतैं ज्ञानीकरि अपनी विलक्षणताका स्मरण ॥

७० स्वर्गादिकके अर्थ कर्मके अनुष्ठान करनैहारे पुरुषनतैं ज्ञानी अपनी विलक्षणता कहैहैः—

७१] परलोकके तांई जानैकी इच्छावाले पुरुष कर्मनकूं अनुष्ठान करहु औ सर्वलोकस्वरूप जो मैं । सो किस कारणतैं किस कर्मकूं कैसैं अनुष्ठान करौं ? ॥ २५६ ॥

६८० अज्ञानीकूं वर्णाश्रमअभिमान औ कर्तृत्वअध्यासआदिककरण (साधन) औ यज्ञादिकर्म औ स्वर्गादिफलके सद्भावतैं कर्मअनुष्ठानकी योग्यता है औ मुज (ज्ञानी)कूं साधन । कर्म औ कर्मफलके ज्ञानकरि बाध होनेतैं कर्मअनुष्ठानकी योग्यता नहीं है यातैं औ देहसैं अतिरिक्तअकर्त्ता होनैकरि साधनके अभावतैं औ देहादिरूप जगत्के बाध होनैकरि सामग्रीसहितकर्मके अभावतैं औ सर्वलोकात्मक होनैकरि कर्मफलके अभावतैं "मैं कैसैं अनुष्ठान करूं ?" किसीप्रकार बी अनुष्ठान बनै नहीं ॥

टीकांक:		तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:
३०७२	७३व्याचक्षतां ते शास्त्राणि वेदानध्यापयंतु वा । येत्राधिकारिणो मे तु नाधिकारोऽक्रियत्वतः २५७	८४१
	७५निद्राभिक्षे स्नानशौचे नेच्छामि न करोमि च । द्रष्टारश्चेत्कल्पयंति किं मे स्यादन्यकल्पनात् २५८	८४२
टिप्पणांक: ॐ	७७गुंजापुंजादि दह्येत नान्यारोपितवह्निना । नान्यारोपितसंसारधर्मानेवमहं भजे ॥ २५९ ॥	८४३

७२ ननु स्वार्थप्रवृत्त्यभावेऽपि परार्थप्रवृत्तिः किं न स्यादित्याशंक्याधिकाराभावात् सापि नास्तीत्याह (व्याचक्षतामिति)—

७३] ये अत्र अधिकारिणः ते शास्त्राणि व्याचक्षतां वा वेदान् अध्यापयंतु । मे तु अक्रियत्वतः अधिकारः न ॥ २५७ ॥

७४ ननु स्वदेहभरणार्थं भिक्षाऽऽहरणादिकं परलोकार्थं स्नानादिकं च भवता क्रियमाणं उपलभ्यते अतोऽक्रियत्वमसिद्धमित्याशंक्य तदपि स्वदृष्ट्या नैवास्ति किंत्वन्यैरेव कल्पितमित्याह—

७५] निद्राभिक्षे स्नानशौचे न इच्छामि च न करोमि । द्रष्टारः कल्पयंति चेत् । अन्यकल्पनात् मे किं स्यात् ॥ २५८ ॥

७६ अन्यकल्पनयापि बाधोऽस्तीत्याशंक्य तदभावे दृष्टांतमाह—

७७] गुंजापुंजादि अन्यारोपित-

॥ ६ ॥ ज्ञानीकूं अधिकारअभावतैं परअर्थ प्रवृत्तिका अभाव ॥

७२ ननु ज्ञानीकी अपनैंअर्थ प्रवृत्तिके अभाव हुये वी । परअर्थ कहिये लोकसंग्रहअर्थ प्रवृत्ति कैसैं नहीं होवैगी ? यह आशंकाकरि मेरेकूं व्यासादिकआचार्यनकी न्यांई अधिकारके अभावतैं सो परअर्थप्रवृत्ति वी नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

७३] जे आचार्यपुरुष इस परअर्थप्रवृत्तिविषै **अधिकारी होवैं । वे शास्त्रनकूं व्याख्यान करो वा वेदनकूं अध्ययन करावहु औ मेरेकूं तौ अक्रिय होनैतैं परअर्थप्रवृत्तिविषै अधिकार नहीं है** ॥ २५७

॥ ७ ॥ अपनी दृष्टितैं ज्ञानीकी अक्रियता ॥

७४ ननु अपनै देहके भरणअर्थ नाम पोषणअर्थ भिक्षा ल्यावनैआदिक औ परलोकअर्थ स्नानादिक । तुम ज्ञानीनकरि कियाहुया देखियेहै । यातैं तुमारा अक्रियपना असिद्ध है । यह आशंकाकरि सो भिक्षास्नानादिक वी अपनी दृष्टिसैं नहीं है । किन्तु अन्यपुरुषोंनैंहीं कल्प्याहै । ऐसैं कहैहैं:—

७५] **निद्रा भिक्षा स्नान औ शौच ।** इन क्रियाकूं मैं चिदात्मा **इच्छता नहीं हूं अरु करता वी नहीं हूं औ देखनैवाले** पुरुष जो **कल्पतेहैं । तौ अन्यपुरुषनकी कल्पनातैं मेरेकूं क्या बाध होवैगा?** २५८

॥ ८ ॥ अज्ञानीकी कल्पनासैं ज्ञानीकूं बाधके अभावमैं दृष्टांत ॥

७६ अन्यकी कल्पनाकरि वी बाध होवैहै । यह आशंकाकरि तिस अन्यकी कल्पनासैं बाधके अभावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

७७] जैसैं अग्निके सदृश रक्तपदार्थरूप

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
८४४	७९ शृण्वन्त्वज्ञाततत्त्वास्ते जानन्कस्माच्छृणोम्यहम् मन्यंतां संशयापन्ना न मन्येऽहमसंशयः ॥२६०॥	३०७८
८४५	विपर्यस्तो निदिध्यासेत्किं ध्यानमविपर्ययात् । देहात्मत्वविपर्यासं न कदाचिद्भजाम्यहम् ॥२६१॥	टिप्पणांक: ॐ

वह्निना न दह्येत । एवं अन्यारोपितसंसारधर्मान् अहं न भजे ॥ २५९ ॥

७८ ननु फलांतरेच्छाभावे कर्मानुष्ठानं माऽभूत् तत्त्वसाक्षात्काराय श्रवणादिकं कर्तव्यमेवेति आशंक्याज्ञानाद्यभावात् श्रवणादिकर्तृत्वमपि नास्तीत्याह (शृण्वंत्विति)—

७९] अज्ञाततत्त्वाः ते शृण्वन्तु अहं जानन् कस्मात् शृणोमि। संशयापन्नाः मन्यंतां अहं असंशयः न मन्ये ॥

८०) अज्ञाततत्त्वाः अज्ञातं ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणं तत्त्वं यैस्ते तथाभूताः श्रवणं कुर्वंतु। तत्त्वमित्थमन्यथा वेति संशयवंतो मननं कुर्वंतु। मम तदुभयाभावान्नोभयत्र प्रवृत्तिः इत्यर्थः ॥२६०॥

८१ माऽभूतां श्रवणमनने विपर्ययनिरासार्थं निदिध्यासनं कर्त्तव्यमित्याशंक्य देहादावात्मत्वबुद्धिलक्षणस्य विपर्ययस्याभावात् तदपि नानुष्ठेयमित्याह—

८२] विपर्यस्तः निदिध्यासेत् । अहं देहात्मत्वविपर्यासं कदाचित् न भजामि । अविपर्ययात् किं ध्यानम् ॥ २६१

चिनोठीका ढेरआदिक अन्य वानरादिकनकरि आरोपितअग्निकरि दहन करै नहीं । ऐसैं अन्य अज्ञपुरुपनकरि आरोपितसंसारके धर्मनकूं मैं नहीं प्राप्त होताहूं ॥ २५९ ॥

॥ ९ ॥ ज्ञानीकूं श्रवणमननकी अकर्तव्यता ॥

७८ ननु तुजकूं अन्यसांसारिकफलकी इच्छाके अभाव हुये कर्मका अनुष्ठान मति होहु । परंतु तत्त्वके साक्षात्कारअर्थ श्रवणादिक कर्त्तव्यहीं है । यह आशंकाकरि मुजकूं अज्ञानआदिकके अभावतैं श्रवणादिकका कर्त्तापना बी नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

७९] जे अज्ञाततत्त्व हैं । वे श्रवणकूं करो । मैं तत्त्वकूं जानताहुया किस प्रयोजनके लिये श्रवण करूं? औ जे संशयकूं प्राप्त भयेहैं । वे मननकूं करो । मैं असंशय हुया मननकूं करता नहीं ॥

८०) नहीं जान्याहै ब्रह्मआत्माकी एकतारूप तत्त्व जिनोनैं । ऐसैं जे मुमुक्षुपुरुप । वे श्रवणकूं करो औ "तत्त्व ऐसैं है वा औरप्रकारसैं है" । इसरीतिके संशयवाले जे पुरुष हैं । वे मननकूं करो । मेरेकूं तिन अज्ञान औ संशय दोनूंके अभावतैं श्रवणमननदोनूंविषै प्रवृत्ति नहीं है । यह अर्थ है ॥ २६० ॥

॥ १० ॥ ज्ञानीकूं निदिध्यासनकी अकर्त्तव्यता ॥

८१ ननु तुजकूं श्रवणमनन मति होहु । परंतु विपरीतभावनाके निवारणअर्थ निदिध्यासन कर्त्तव्य है । यह आशंकाकरि मेरेकूं देहादिकविषै आत्मापनैकी बुद्धिरूप विपर्ययके अभावतैं सो निदिध्यासन बी अनुष्ठान करनैकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

८२] विपर्ययवान्पुरुष निदिध्यासनकूं करो औ मैं देहविषै आत्मताके ज्ञानरूप विपर्ययकूं कदाचित् भजता नहीं । यातैं मेरेकूं विपर्ययके अभावतैं कौन ध्यान है? कोइ बी नहीं ॥ २६१ ॥

टीकांकः		तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः
३०८३	अहं मनुष्य इत्यादिव्यवहारो विनाप्यमुम् । विपर्यासं चिराभ्यस्तवासनातोऽवकल्पते ॥२६२॥	८४६
	प्रारब्धकर्मणि क्षीणे व्यवहारो निवर्तते । कर्माक्षये त्वसौ नैव शाम्येद्ध्यानसहस्रतः॥२६३॥	८४७
टिप्पणांकः ॐ	विरलत्वं व्यवहृतेरिष्टं चेद्ध्यानमस्तु ते । अबाधिकां व्यवहृतिं पश्यन् ध्यायाम्यहं कुतः२६४	८४८

८३ ननु विपर्ययाभावे "अहं मनुष्यः" इतिव्यवहारः कथं घटत इत्याशंक्य वासनावशाद्भवतीत्याह—

८४] अहं मनुष्यः इत्यादिव्यवहारः अमुं विपर्यासं विना अपि चिराभ्यस्तवासनातः अवकल्पते ॥२६२ ॥

८५ तर्ह्यस्य व्यवहारस्य निवृत्तिसिद्धये ध्यानं संपाद्यमित्याशंक्य प्रारब्धक्षयमंतरेणास्य निवृत्तिर्नास्तीत्याह—

८६] प्रारब्धकर्मणि क्षीणे व्यवहारः निवर्तते । कर्माक्षये तु असौ ध्यानसहस्रतः न एव शाम्येत् ॥ २६३ ॥

८७ ननु प्रारब्धनिमित्तकस्यापि व्यवहारस्य विरलत्वाय ध्यानं कर्तव्यमेवेत्याशंक्य व्यवहारस्याबाधकत्वदर्शनात्तन्निवृत्तये ध्यानम् अननुष्ठेयमित्याह (विरलत्वमिति)—

८८] व्यवहृतेः विरलत्वं इष्टं चेत् । ते ध्यानं अस्तु । अहं व्यवहृतिं

॥ ११ ॥ ज्ञानीकूं "मैं मनुष्य हूं" इत्यादिव्यवहारका वासनासैं संभव ॥

८३ ननु विपर्ययके अभाव हुये "मैं मनुष्य हूं" यह व्यवहार कैसैं घटैहै? यह आशंकाकरि वासना जो पूर्वका संस्कार ताके वशतैं "मैं मनुष्य हूं । ब्राह्मण हूं ।" इत्यादिव्यवहार बाधितकी अनुवृत्तिसैं होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

८४] "मैं मनुष्य हूं" इत्यादिकव्यवहार इस विपर्ययसैं विना बी अनादिकालतैं अभ्यासकरी वासनातैं कुलालचक्रके भ्रमणकी न्यांई होवैहै ॥२६२॥

॥ १२ ॥ प्रारब्धकी निवृत्तिविना व्यवहारकी अनिवृत्ति ॥

८५ ननु तब इस व्यवहारकी निवृत्तिकी सिद्धिअर्थ ध्यान संपादन करनैकूं योग्य है । यह आशंकाकरि प्रारब्धकर्मके क्षयविना इस व्यवहारकी निवृत्ति नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

८६] प्रारब्धकर्मके क्षय हुये व्यवहार निवर्त्त होवैहै औ कर्मके नहीं नाश हुये तौ यह व्यवहार हजारोंहजार ध्यानतैं बी निवर्त्त नहीं होवैहै ॥ २६३ ॥

॥ १३ ॥ ज्ञानीकूं व्यवहारकी न्यूनताअर्थ ध्यानकी अकर्त्तव्यता ॥

८७ ननु प्रारब्धरूप निमित्तवाले बी व्यवहारकी न्यूनताअर्थ ध्यान कर्त्तव्यहीं है । यह आशंकाकरि व्यवहारके अबाधकपनैके देखनैतैं तिस व्यवहारकी निवृत्तिअर्थ ध्यान अनुष्ठान करनैकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

८८] हे वादी ! व्यवहारकी अल्पता जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखअर्थ इच्छित है । जो ऐसैं रुचि होवै तौ तेरेकूं ध्यान होहु

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८४९ ८५०	९० विक्षेपो नास्ति यस्मान्मे न समाधिस्ततो मम । विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसः स्याद्विकारिणः॥२६५ ९३ नित्यानुभवरूपस्य को मे वानुभवः पृथक् । ९४ कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्येव निश्चयः॥२६६॥	टीकांक: ३०८९ टिप्पणांक: ६८१

अथाधिकां पश्यन् कुतः ध्यायामि२६४

८९ ध्यानस्याकर्तव्यत्वेऽपि विक्षेपपरिहाराय समाधिः कर्तव्य इत्याशंक्य विक्षेपसमाधानयोर्मनोधर्मत्वान्न विक्षेपनिवारकेऽपि समाधौ ममाधिकार इत्याह (विक्षेप इति)—

९०] यस्मात् मे विक्षेपः न अस्ति। ततः मम समाधिः न। विक्षेपः वा समाधिः वा विकारिणः मनसः स्यात् ॥ २६५ ॥

९१ ननु तथापि समाधिफलमनुभवः संपादनीय इत्याशंक्य तस्य मत्स्वरूपत्वात् न संपाद्यतेत्याह—

९२] नित्यानुभवरूपस्य मे कः वा अनुभवः पृथक् ॥

९३ उपपादितं कृतकृत्यत्वं निगमयति (कृतमिति)—

९४] "कृत्यं कृतं। प्रापणीयं प्राप्तं" इति एव निश्चयः ॥ २६६ ॥

औ मैं व्यवहारकूं आत्मा ज्ञान औ मोक्षका बाध न करनैद्वारा देखताहुया काहेतें ध्यानकूं करूं? ॥ २६४ ॥

॥ १४ ॥ ज्ञानीकूं समाधिकी अकर्त्तव्यता ॥

८९ ननु ध्यानकी अकर्त्तव्यताके हुये बी विक्षेपके निवारणअर्थ समाधि कर्त्तव्य है। यह आशंकाकरि विक्षेप औ समाधि इन दोनूंकूं मनका धर्म होनैतें एकाग्रताद्वारा विक्षेपके निवारक समाधिविषै बी मेरेकूं अधिकार नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

९०] जिस कारणतैं मेरेकूं विक्षेप नहीं है। तिस कारणतैं मेरेकूं समाधि बी नहीं है औ विक्षेप वा समाधि ये दोनूं विकारीमनकूं होवैहै ॥ २६५ ॥

॥ १५ ॥ ज्ञानीकूं समाधिसैं अनुभवके संपादनकी अयोग्यतापूर्वक २५२–२६६ श्लोकउक्त-कृतकृत्यपनैकी प्रगटता ॥

९१ ननु तौ बी समाधिका फल जो अनुभव। सो संपादन करनैकूं योग्य है। यह आशंकाकरि तिस अनुभवकूं मेरा स्वरूप होनैतें संपादन करनैकी योग्यता नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

९२] वा उत्पत्तिनाशरहित होनैतें नित्य-अनुभवरूप मेरेकूं कौंन अनुभव भिन्न है? कोई बी नहीं ॥

९३ ऐसैं २५३–२६६ श्लोकपर्यंत उपपादन किये कृतकृत्यपनैकूं सूचन करैहैं:—

९४] "जो करनैयोग्य था सो किया औ प्राप्त होनैयोग्य था सो पाया"। यहहीं मेरा निश्चय है ॥ २६६ ॥

---

८१ ज्ञानीकूं कर्म कर्त्तव्य है। ऐसैं दुराग्रह करनैवाला वादी पूछनैकूं योग्य है:—ज्ञानीकूं कर्मका करना क्या स्वार्थ है वा परार्थ है? जो प्रथमपक्ष (स्वार्थ) कहै। तौ बी क्या इसलोकसंबंधी फल अर्थ है वा परलोकसंबंधी फल अर्थ है? ये दोपक्ष हैं। तिनमैं प्रथमपक्ष कहै तौ बी (१) क्या शरीररक्षार्थ है (२) वा परिग्रह (पुत्रशिष्यादिक)की रक्षार्थ है (३) वा विलासअर्थ है? ये तीनपक्ष हैं। तिनमैं

(१) प्रथमपक्ष बनै नहीं। काहेतैं "औरप्रकारसैं अर्थ

(देहनिर्वाह)के सिद्ध भये तिस देहरक्षानिमित्त कर्मविषै परिश्रमकूं देखताहुया तिसविषै प्रयत्न करै नहीं ॥" इस भागवतके द्वितीयस्कंधके वचनतैं शरीरकी स्थितिकूं प्रारब्धके आधीन होनैतैं तिसकूं उद्देशकरिके विद्वान्कूं कर्मके असंभवतैं औ

(२) द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं। काहेतैं "तिस इस आत्माकूं जानिके" इस श्रुतितैं संपूर्ण निवृत्त भयेहैं भ्रांतिज्ञान जिनोंके। ऐसैं ब्रह्मवित्पुरुषनके पुत्र वित्त औ लोकगोचर। इन तीनएषणातैं व्युत्थानके श्रवणतैं। तिनसैं उत्थान करनैवाले विद्वान्कूं परिग्रहके अभावकरि तिस (परिग्रह)की रक्षानिमित्तक कर्मके असंभवतैं औ

(३) तृतीयपक्ष बी बनै नहीं। काहेतैं सर्वकूं आत्माहीं देखनैहारे औ आत्माविषै अंतःकरणके रमणवाले विद्वान्कूं अन्यठिकानै रति (रमण)की अप्राप्तिके हुये विलासके असंभवतैं ॥

तब परलोकअर्थ कर्तव्य होहु। **ऐसैं जो कहै** तहां बी (१)क्या स्वर्गअर्थ है (२) वा अपवर्ग (मोक्ष)अर्थ है (३) वा आत्माकी शुद्धिअर्थ है? **ये तीनपक्ष** हैं। तिनमैं

(१) प्रथमपक्ष बनै नहीं। काहेतैं "पूर्णकाम औ कृतात्मा (वशीकृतमनवाले)के तौ इहांहीं सर्वकाम प्रकर्षकरि विलय होवैहैं" इस शास्त्रवाक्यतैं सर्वकामके विलयके श्रवणतैं विद्वान्कूं स्वर्गकामके असंभवतैं तिस (स्वर्ग)अर्थ कर्मअनुष्ठानका असंभव है औ

(२) द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं। काहेतैं "न कर्मकरि न प्रजाकरि अमृतकूं पावतेहैं" इसश्रुतिकरि कर्मनकूं मोक्षकी साधनताके निषेधतैं औ विद्वान्कूं जीवन्मुक्त होनैतैं। तिस (मोक्ष)अर्थ कर्मकी असिद्धि है औ

(३)आत्मशुद्धिअर्थ कर्म कर्तव्य है। इस **तृतीयपक्ष**विषै [१] क्या शरीरशुद्धिअर्थ [२] वा चित्तशुद्धिअर्थ [३] वा आत्माकी शुद्धिअर्थ कर्म कर्तव्य है? **ये तीनपक्ष** हैं। तिनमैं

[१] प्रथमपक्ष बनै नहीं। काहेतैं "कलेवर मूत्र औ पुरीष (विष्ठा)का भाजन (पात्र) है" ऐसैं शास्त्रविषै श्रवणतैं औ प्रत्यक्ष होनैतैं मल मांस औ अस्थिवाले शरीरकी कर्मकरि शुद्धिके असंभवतैं औ

[२] द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं। काहेतैं- "शुद्धचित्तवाले जे यति हैं" इस शास्त्रवचनके श्रवणतैं शुद्धचित्तवान् होनैतैंहीं सम्यक् उत्पन्न भयाहै आत्मज्ञान जिसकूं। ऐसैं विद्वान्कूं तिस चित्तशुद्धिकी अपेक्षाकी असिद्धि है औ

[३] तृतीयपक्ष बी बनै नहीं। काहेतैं "सो (आत्मा) न्यारीऔरतैं गया (व्यापी)है औ शुक्र (शुद्धज्योतिवान्) है। अकाय (लिंगशरीरवर्जित) है। अव्रण औ अस्नाविर (क्षत औ नाडीयुक्त स्थूलशरीरवर्जित) है। शुद्ध (निर्मल) है औ अपापविद्ध (धर्माधर्मादिपापवर्जित) है" इस ईशावासउपनिषद् वाक्यके श्रवणतैं औ निरवयवपनैकरि अविषय होनैतैं कर्मकरि आत्माके शुद्धिकी कल्पनाके अयोगतैं। "जिस (आत्मा)के ज्ञानके बलकरि विष्णुरुद्रादिक शतकोटिअकार्यकूं बी करीके आप शुद्ध होवैहैं औ अन्य (शरणागतन)कूं शुद्ध करतेहैं। तिस आत्माकूं कौंन पुरुष किस साधनकरि शुद्ध करै?" औ "आपहीं सत्वस्तुकी शुद्धि जिस किस असत्करि होवै नहीं"। इस वचनकरि आत्माकूं स्वरूपतैंहीं शुद्ध होनैतैं आत्माकी शुद्धिअर्थ कर्म कर्तव्य नहीं है ॥

ऐसैं विद्वानोंकूं अपनैअर्थ कर्म कर्तव्य है। इस **आरंभविषै उक्त प्रथमपक्षका निषेध किया ॥**

तब विद्वान्का कर्माचरण परअर्थहीं होहु। ऐसैं जब आरंभमैं उक्त द्वितीयपक्ष कहै। तब हे वादी! तूं इहां पूछनै योग्य हैः—जो ज्ञानी लोकअर्थ कर्म करैहै। सो क्या अपरोक्षज्ञानी है वा परोक्षज्ञानी है? प्रथमपक्षविषै (१) सो क्या संन्यासी है (२) वा गृहस्थ है? **ये दोपक्ष** हैं तिनमैं

(१) प्रथमपक्ष बनै नहीं। काहेतैं तिस संन्यासीकूं निरभिमानी होनैतैं औ सर्वकर्म अरु तिनके साधनका त्याग कियाहोनैतैं। कर्मशब्दकी अप्राप्तितैं औ देहवर्णआश्रमआदिकनविषै "अहं मम" ऐसा अभिमान। प्रपंचविषै सत्यताबुद्धि। अर्थीपना नाम इच्छावान्पना। कर्तव्यताबुद्धि। अकरणविषै प्रत्यवायका भय औ शास्त्रका भय। **ये षट्प्रवृत्तिके बीज हैं।** वे ये सर्व मूलसहित बी ब्रह्मात्माकी एकताके विज्ञानवाले स्वात्मारामयतिकूं अतिशय कहनैकूं बी नहीं संभवैहैं। तब कर्मविषै प्रवृत्ति नहीं संभवैहै यामैं क्या कहनाहै? इस अर्थविषै "यह प्राण सर्वभूतनके साथि भासताहै। ऐसैं जानताहुया विद्वान् अतिवादी नहीं होवैहै।" यह श्रुति प्रमाण है। तातैं ब्रह्मनिष्ठ आत्माविषै रति (चित्तके रमण)वाले पुरुषकूं स्वार्थ वा परार्थ कर्मविषै प्रवृत्ति नहीं संभवैहै औ

(२) लोकअर्थ कर्म करनैवाला अपरोक्षज्ञानी गृहस्थ है। यह **द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं।** काहेतैं अनेकसहस्रजन्मविषै किये पुन्यकर्मपुंजके परिपाकसैं औ ईश्वरके प्रसादसैं सर्वदृश्यके मिथ्यात्वनिश्चयपूर्वक "ब्रह्महीं मैं हूं" ऐसैं ब्रह्मआत्माकी एकताका विज्ञान अप्रतिबद्ध (प्रतिबंधरहित) जब उत्पन्न होवै। तबहीं गृहस्थ बी याज्ञवल्क्यादिककी न्याईं तीनएषणा (इच्छा)तैं उत्थान करैगा औ "मैं औ मेरा" ऐसैं व्यवहार करनैकूं योग्य नहीं है। काहेतैं तिस (व्यवहार)के कारणके असंभवतैं अनात्मादेहादिकविषै अहंभाव औ तिसतैं अन्यविषै ममभाव। ये दोनूं निश्चयकरि संसार (व्यवहार)का कारण है ॥ सो यह दोनूं जिसकूं ब्रह्मआत्माकी एकताके विज्ञानसैं नाश भयेहैं। सो फेर संसारके अर्थ कल्प (समर्थ) होवै नहीं ॥ "ब्रह्महीं मैं हूं" यह विज्ञान औ "ब्राह्मण मैं हूं। यह मेरा है" ऐसी बुद्धि। ये दोनूं तमःप्रकाशकी न्याईं

परस्परविरुद्ध होनेतें एकठिकाने रहनेकूं शक्य नहीं हैं । तातें ब्रह्मतत्वके विज्ञानरूप खड्गसें भेदनकूं पायाहै हृदयग्रंथि जिसका । ऐसें विद्वान्कूं फेर संसरण (अहंममबुद्धिका करना) संभवे नहीं । यातें गृहस्थविद्वान् बी संसारतें उत्थानहीं करैहै ॥ जब सो उत्थान करै नहीं । तब सो अव्युत्थानहीं तिसका अज्ञान औ ताके कार्यकरि गृहीतपना जनावैहै ॥

नतु संन्यासके हेतु प्रारब्धके अभावतें गृहस्थ । ब्रह्म-भावकूं प्राप्तहुया बी जो उत्थान करै नहीं । तौ जडभरतकी न्यांई वास करै । "यह मैं हूं । यह मेरा है" ऐसें संसारता नहीं । काहेतें मिथ्यात्वज्ञानका औ संसारका परस्परविरोध होनेतें जैसें मरुस्थलकूं निर्जल देखिके फेर दूरतें प्रतीयमान जलकूं ग्रहण वा पान करनैकूं विवेकी आप जाता नहीं औ बलवान्पुरुषका भेज्याहुया बी वेगकरि औ हर्षकरि जाता नहीं । किंतु "हा कष्ट है" ऐसें रुदन करताहुया मंदमंद चलताहै औ अन्यकूं बी प्रेरणा करता नहीं । तैसें प्रतिकूल-प्रारब्धवान् बी विद्वान् । तिस सर्वके मिथ्यात्वका दर्शी संसरने-कूं हर्ष पावता नहीं अरु अन्यकूं प्रेरणा करता नहीं । किंतु भग्नकटिवाले सर्पकी न्यांई मंदगति होवैगा । काहेतें प्रवृत्तिके हेतु अनात्माविषै अहंभावके अभावतें "ब्रह्महीं मैं हूं" ऐसें ब्रह्म-रूपकरि ब्रह्मविषैहीं स्थितिवाले ब्रह्मवित्ब्राह्मणकूं चांडालकी न्यांई शरीरकूं स्पर्श करनैकूं रुचता नहीं औ देहादिकके साथि तादात्म्यविना "मैं औ मेरा" ऐसें व्यवहार करनैकूं शक्य होवै नहीं औ ब्रह्मविदनकूं देहादिकसें तादात्म्य अतिहीं दुःखरूप है । तिसके तादात्म्यसें "मैं औ मेरा" ऐसी प्रवृत्ति होवैहै तातें अतिदुःख है ॥ तहां बी कर्मका करना अत्यंत दुःखहीं है । ऐसें जानिके गृहस्थविद्वान् बी सर्व-कर्मकूं त्याग करैगाहीं । स्वार्थ वा परार्थकर्म करनैकूं समर्थ होवै नहीं । यातें परोक्षज्ञानीहीं लोकसंग्रहकूं करैगा । औ संपूर्ण नाश भयाहै अनात्माविषै अहंभाव जिसका । ऐसा अपरोक्षज्ञानी कहूं बी लोकसंग्रहकूं नहीं करैगा । ऐसें हुये

अपरोक्षज्ञानीकूं बी लोकसंग्रहार्थ कर्म कर्त्तव्य है । ऐसें कहनैवाला वादी पूछनैयोग्य है:—अपरोक्षज्ञानी दोभांतिका है । एक सिद्ध है । दूसरा साधक है । तिनमैं (१) क्या सिद्धकूं लोकसंग्रह कहियेहै (२) वा साधककूं? यामैं

(१) **प्रथमपक्ष बनै नहीं** । काहेतें तिस सिद्धकूं ब्रह्मादिस्तंबपर्यंत सर्वप्राणीसहित अपनैकूं मुक्त देखनैहारा होनेतें । तिसकी दृष्टिसें बद्धलोकके अभावतें लोकसंग्रहका अभाव है । औ

(२) **द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं** । काहेतें साधकमुमुक्षुकूं लोकसंग्रहअर्थ कर्म कर्तव्य है । ऐसा विधि (प्रेरकप्रमाण) नहीं है । किंतु मुमुक्षुकूं ब्रह्मनिष्ठाहीं करनैयोग्य होनैकरि श्रुतिस्मृतिविषै कहीहै । यातें साधकआत्मज्ञानीकूं समाधिहीं कर्त्तव्य है । स्वार्थ वा परार्थ श्रौतस्मार्तकर्मकर्तव्य नहीं है ॥ "शौच आचमन स्नान । शास्त्रकी प्रेरणासैं मुमुक्षु आचरै नहीं" औ "जिज्ञासा (आत्मविचार)विषै सम्यक् प्रवृत्त भया पुरुष कर्मकी प्रेरणाकूं आदर करै नहीं" इसवाक्यतें जिज्ञासूकूं श्रवणादिरूप ज्ञानके साधनविना अन्य कर्तव्य नहीं है ॥

जब साधककूं कर्माधीन होनेका अवकाश नहीं है । तब सिद्धकूं कहांसें होवैगा ! यातें बहुधा कियाहै श्रवण जिसनैं औ आभासरूप आत्मज्ञानवान् अहंममादिकबाह्यवासनासैं बद्ध हुया परोक्षज्ञानीहीं लोकसंग्रहवचनका विषय है अथवा लोकनके अनुग्रह (कुमार्गतें प्रवृत्तिके निवारण)अर्थ ब्रह्मानैं उत्पन्न किये जे महांत व्यास । अगस्त्य । पराशर । वसिष्ट-आदिक वा तिनके सदृश अन्यअधिकारिके । निग्रह औ अनुग्रह विषै समर्थ हैं । वे लोकसंग्रहवचनके विषय होवैंगे । सिद्ध बी नहीं औ साधकमुमुक्षु बी नहीं । ताहीतें सर्वज्ञश्रीकृष्ण-भगवान्करि गीताके तृतीयअध्यायगत सप्तदशवैं श्लोकविषै "तिस (आत्मरति आत्मतृप्त आत्मसंतुष्टमानव)कूं कार्य (कर्तव्य) नहीं है ।" ऐसें कहियेहै । औ

(१) सिद्धविद्वान्कूं अनुष्ठान किये कर्मकरि प्राप्त होनै-योग्य कोइ बी अर्थ नहीं है । काहेतें विद्वान्कूं आत्माविषै तृप्त होनेतें औ

(२) सर्वके मिथ्याभावका दर्शी होनेतें योगक्रियाकरि प्राप्तव्य आकाशगमनअणिमादिसिद्धि अपेक्षित नहीं है औ

(३) सर्वात्मभावकी प्राप्तितें तपक्रियाकरि प्राप्तव्य ब्रह्म-इंद्रादिकके पदनकी अपेक्षा संभवे नहीं औ

(४) जीवन्मुक्त होनेतें वैदिकक्रियाकरि प्राप्तव्य चित्त-शुद्धिरूप द्वारवाले मोक्षकी अपेक्षा बी नहीं है ॥

यातें ब्रह्मवित्तमकूं कर्मकरि साधनैयोग्य कोइ बी अर्थ नहीं है औ

(५) विहितकर्मके अनाचरणकरि कोइ बी अनर्थ संभवै नहीं । काहेतें "यह द्वैत मायामात्र है" इस न्यायकरि विधिकूं बी अविद्याकल्पित होनेकरि मिथ्या होनेतें । विद्वान्-कूं विधिके उल्लंघनविषै दोषका अभाव है औ

(६) मुक्तिप्रतिबंधकके निवृत्तिअर्थ वा अध्यात्मादिक-उपद्रवकी निवृत्तिअर्थ । उपासनारूप क्रियाकरि शिव वा विष्णु वा अन्यकोइ आश्रय करनैकूं योग्य नहीं है औ

(७) शरीरकी यात्रा (निर्वाह)अर्थ ब्राह्मण वा क्षत्रिय बी अनुसारी होयके आश्रय करनैकूं योग्य नहीं है । काहेतें ब्रह्मनिष्ठाकरि भावीशरीरप्रापकअज्ञान औ ताके कार्य औ संचितादिसर्वकर्मसमूहकूं निर्मूलन करीके स्थित ब्रह्मविद्कूं इहांहीं मुक्त होनेतें । इससें अन्य मुक्तिके प्रतिबंधकका असं-भव है ॥ यातें मिथ्यात्वकोटिके अंतःपाती । शिवविष्णु-आदिक आराधन करनैकूं योग्य नहीं होवैहैं । औ आध्या-

टीकांक: ३०९५ टिप्पणांक: ६८२	९६ व्यवहारो लौकिको वा शास्त्रीयो वान्यथापि वा । ममाकर्तुरलेपस्य यथाऽऽरब्धं प्रवर्तताम् ॥२६७॥ ९९ अथवा कृतकृत्योऽपि लोकानुग्रहकाम्यया । शास्त्रीयेणैव मार्गेण वर्तेऽहं का मम क्षतिः २६८	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८५१ ८५२

९५ एवं सर्वत्र कर्तृत्वानभ्युपगमेऽनियतवृत्तित्वं प्रसज्येतेत्याशंक्य प्रारब्धवशात्प्राप्तम-नियतवृत्तित्वमंगीकरोति (व्यवहार इति)—

९६] **लौकिकः वा शास्त्रीयः वा अन्यथा अपि वा व्यवहारः अकर्तुः अलेपस्य मम यथाऽऽरब्धं प्रवर्तताम्॥**

९७) लौकिको भिक्षाहारादिः । शास्त्रीयो जपसमाध्यादिः अन्यथापि वा प्रतिषिद्धहिंसादिः । वा व्यवहारः । कर्तृत्वभोक्तृत्वरहितस्य मम प्रारब्धं कर्मानतिक्रम्य प्रवर्ततां । इत्यर्थः ॥ २६७ ॥

९८ एवं वस्तुतत्वमभिधाय प्रौढिवादेनाह—

९९] **अथवा अहं कृतकृत्यः अपि लोकानुग्रहकाम्यया शास्त्रीयेण**

॥ २ ॥ कृतकृत्य भये ज्ञानीके आचरणका निर्द्धार ॥ ३०९५—३१७५ ॥

॥ १ ॥ कृतकृत्यज्ञानीकूं तीव्रप्रारब्धके वशतैं प्राप्त अनियतआचारका अंगीकार ॥

९५ ननु ऐसैं सर्वठिकानै अकर्त्तापनैके अंगीकार किये ज्ञानीकूं नियमरहित वर्त्तना प्राप्त होवैगा । यह आशंकाकरि प्रारब्धके वशतैं प्राप्त नियमरहित वर्त्तनैकूं ज्ञानी अंगीकार कहैहैं:—

९६] **लौकिक वा शास्त्रीय वा दोनूंतैं विपरीत बी व्यवहार अकर्त्ता औ अलेप कहिये अभोक्तारूप मेरा जैसैं प्रारब्ध होवै तैसैं प्रवर्त्त होहु ॥**

९७) लौकिक जो भिक्षा ल्यावनैआदिक वा शास्त्रीय जो जपसमाधिआदिक वा अन्यथा जो प्रसिद्धहिंसाआदिकरूप बी व्यवहार कर्त्तापनै औ भोक्तापनैसैं रहित मेरा प्रारब्धकर्मकूं न उल्लंघनकरिके प्रवर्त्त होहु । काहेतैं तीव्रप्रारब्धकी भोगसैं विना निवृत्तिके अभावतैं । यह भाव है ॥ २६७ ॥

॥ २ ॥ प्रौढिवादसैं ज्ञानीका शास्त्रोक्तमार्गमैं प्रवृत्तिका अंगीकार ॥

९८ ऐसैं वास्तवपनैकूं कहिके । प्रौढिवादसैं कहैहैं:—

९९] **अथवा मैं कृतकृत्य हुया बी लोकके अनुग्रहकी कामनाकरि कहिये शास्त्रउक्तमार्गकरिहीं वर्तूंगा ।**

त्मिकादिउपद्रव औ शरीररक्षाकूं प्रारब्धके आधीन होनेकरि तिसविषै पुरुषप्रयत्नकी व्यर्थताके देखनैतैं । तिसअर्थ कोई बी ब्राह्मणआदिक आश्रय करनैकूं योग्य नहीं है ॥

यातैं ब्रह्मवित्वर्यमुक्तकूं कहूं बी यत्किंचित् बी कर्म कर्तव्य नहीं है ॥ जाकूं कर्त्तव्य होवै सो ब्रह्मवित् बी नहीं है ॥ तहां स्मृतिः—"ज्ञानरूप अमृतकरि तृप्त औ कृतकृत्य-योगीकूं किंचित् कर्तव्य नहीं है । जो कर्तव्य है तौ सो तत्ववित् नहीं है ॥" यह अर्थ गीताके तृतीयअध्यायगत १७ औ १८ वैं श्लोकनके व्याख्यानविषै शंकरानंदस्वामीनैं प्रतिपादन कियाहै । यातैं विद्वान्कूं कर्त्तव्य औ प्राप्तव्यके अभावका निश्चय योग्य है ॥

८२ विद्वान्कूं वास्तवतैं नियमरहितआचारके प्राप्त हुये बी । सदाचारका निरूपणकरिके इहां अपनी उत्कृष्टताका कथन कियाहै । सो प्रौढिवाद है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८५३ ८५४	देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौ वर्ततां वपुः । तारं जपतु वाक् तद्वत्पठत्वाम्नायमस्तकम् ॥२६९॥ विष्णुं ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानंदे विलीयताम् । साक्ष्यहं किंचिदप्यत्र न कुर्वे नापि कारये ॥२७०	टीकांकः ३०९९ टिप्पणांकः ६८३

मार्गेण एव वर्ते । मम का क्षतिः ॥

ॐ ९९) लोकानुग्रहकाम्यया प्राण्यनुग्रहेच्छयेसर्थः ॥ २६८ ॥

३१०० शास्त्रीय एव मार्गे प्रवर्तनांगीकारे तर्हि तदभिमानप्रयुक्तो विकारः स्यादिसाशंक्याह श्लोकद्वयेन (देवार्चनेति)—

१] वपुः देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौ वर्ततां । वाक् तारं जपतु तद्वत् आम्नायमस्तकं पठतु ॥

ॐ १) तारं प्रणवं आम्नायमस्तकं वेदांतशास्त्रम् ॥ २६९ ॥

२] (विष्णुमिति)—धीः विष्णुं ध्यायतु यद्वा ब्रह्मानंदे विलीयतां । साक्षी अहं अत्र किंचित् अपि न कुर्वे । न अपि कारये ॥ २७० ॥

तिसतैं मेरी कौंन हांनि है? कोई बी नहीं ॥

ॐ ९९) लोकनके अनुग्रहकी कामनाकरि याका प्राणीनके अनुग्रहकी इच्छाकरि । यह अर्थ है ॥ २६८ ॥

॥ ३ ॥ शास्त्रोक्तआचारतैं ज्ञानीकूं अभिमानकृतविकारका अभाव ॥

३१०० ननु शास्त्रउक्तमार्गविषैहीं वर्त्तनका अंगीकार जब करोगे। तब तिस शास्त्रानुसारीवर्त्तनके अभिमानका किया विकार होवैगा। यह आशंकाकरि दोश्लोकसैं उत्तर कहैहैं:—

१] देवताका पूजन स्नान शौच औ भिक्षाआदिकविषै शरीर वर्त्तौ औ वाक्इंद्रिय तारकूं जपो । तैसैं आम्नायमस्तककूं पठन करो ॥

ॐ १) तारकूं कहिये प्रणव जो ॐकार ताकूं औ आम्नायमस्तककूं कहिये वेदांतशास्त्रकूं ॥ २६९ ॥

२] बुद्धि । विष्णुकूं ध्यावहु यद्वा ब्रह्मानंदविषै विलीन होहु औ साक्षीरूप जो मैं । सो इहां कछु बी राजाके अनुचरकी न्यांईं करता बी नहीं औ राजाकी न्यांईं प्रेरणाकरि करावता बी नहीं हूं । तातैं मुजकूं शुभआचरणके अभिमानतैं जन्य विकार होवै नहीं ॥ २७० ॥

८३ जिस मंत्रवेत्ताकूं कंटककी शय्यासैं बी कष्ट होवै नहीं तिसकूं पुष्पकी शय्याकरि कहांसैं कष्ट होवैगा? ऐसैं जिस मेरेकूं तीव्रप्रारब्धसैं प्राप्त अनाचारसैं बी ज्ञानके बलसैं हानि होवै नहीं । तिस मेरेकूं सदाचारकरि कहांसैं हानि होवैगी? यह भाव है ॥

टीकांक: ३१०३ | टिप्पणांक: ६८४ | तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:

एवं च कलहः कुत्र संभवेत्कर्मिणो मम ।
विभिन्नविषयत्वेन पूर्वापरसमुद्रवत् ॥ २७१ ॥ ८५५
वपुर्वाग्धीषु निर्बंधः कर्मिणो न तु साक्षिणि ।
ज्ञानिनः साक्ष्यलेपत्वे निर्बंधो नेतरत्र हि॥२७२॥ ८५६
एवं चान्योऽन्यवृत्तांतानभिज्ञौ बधिराविव ।
विवदेतां बुद्धिमंतो हसंत्येव विलोक्य तौ॥२७३॥ ८५७

३ फलितमाह—

४] एवं पूर्वापरसमुद्रवत् विभिन्नविषयत्वेन मम च कर्मिणः कलह कुत्र संभवेत् ॥ २७१ ॥

५ विभिन्नविषयत्वमेव स्पष्टयति (वपुरिति)—

६] कर्मिणः वपुर्वाग्धीषु निर्बंधः साक्षिणि तु न । ज्ञानिनः साक्ष्यलेपत्वे निर्बंधः इतरत्र न हि ॥ २७२॥

७ अथापि यौ ज्ञानिकर्मिणौ कलहं कुर्वाते तौ विद्वद्भिः परिहसनीयावित्याह—

८] एवं च अन्योऽन्यवृत्तांतान-

॥ ४ ॥ ज्ञानी औ कर्मीके कलहका असंभवरूप फलितअर्थ ॥

३ फलितकूं कहैहैंः—

४] ऐसैं हुये ज्ञानी औ कर्मीकूं भिन्नदेशमैं स्थित पूर्वअपरसमुद्रकी न्यांई भिन्नविषयवाले होनैकरि मेरा ज्ञानीका औ कर्मनिष्ठका कलह जो विवाद सो कहां संभवैगा? ॥ २७१ ॥

॥ ५ ॥ कर्मी औ ज्ञानीकी भिन्नविषयता ॥

५ ज्ञानी औ कर्मीके भिन्नविषयवान्पनैकूंहीं स्पष्ट करैहैंः—

६] कर्मीकूं शरीर वाणी औ बुद्धिविषै कहिये निर्बंध आग्रहपूर्वक निश्चय है। साक्षीविषै नहीं औ ज्ञानीकूं साक्षीके अलेपपनैविषै निर्बंध है। अन्यठिकानै कहिये शरीरादिकविषै नहीं । यातैं दोनूंका भिन्न विषय है ॥ २७२ ॥

॥ ६ ॥ भिन्नविषयके होते बी परस्परकलहकारि ज्ञानी औ कर्मीकी विद्वानोंकरि हसनैकी योग्यता ॥

७ ऐसैं भिन्नविषयताके हुये बी जो ज्ञानी औ कर्मी परस्पर कलहकूं करतेहैं । वे दोनूं विद्वानोंकरि परिहास करनैकूं योग्य हैं । ऐसैं कहैहैंः—

८] ऐसैं परस्परके वृत्तांत जो वार्त्ता ताकूं नहीं जानतेहुये जे ज्ञानी औ कर्मी ये

८४ जैसैं भिन्नदेशविषै स्थित आगेके औ पीछेके समुद्रनका शब्द वा संगम एकत्र संभवै नहीं । ऐसैं आत्मा औ अनात्मारूप भिन्नदेशविषै निष्ठा(स्थिति)वाले ज्ञानी औ कर्मीका विवाद संभवै नहीं औ जैसैं दोपुरुष समीपविद्यमान दोनूंक्षेत्रनके भिन्नभिन्न अधिपति होवैं। तिनकी भूमिका जो परस्पर रोकी जावै । तौ तिनकूं कलह करना योग्य है औ भूमिकाके अटकावसैं विना जो कलह करैं । तौ वे हसनै योग्य हैं । तैसैं ज्ञानी औ कर्मीका आत्मा औ अनात्मारूप क्षेत्र । कर्मविषै प्रवृत्ति औ अप्रवृत्तिकरि रोक्या जावै तौ तिनकूं कलह करना योग्य है। परंतु असंगआत्मा औ मिथ्याअनात्माका प्रवृत्ति औ अप्रवृत्तिकरि विरोध होवै नहीं । यातैं तिनविषै निष्ठावाले ज्ञानी औ कर्मीकूं परस्पर कलह करना अयोग्य है ॥ ऐसैं हुये जो वृथाकलहकूं करतेहैं वे बुद्धिमानोंकरि हसनैयोग्य हैं । यह इस प्रसंगका तात्पर्य है ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८५८ ८५९ | टीकांकः २१०९ | टिप्पणांकः ॐ

१० यं कर्मी न विजानाति साक्षिणं तस्य तत्त्ववित्। ब्रह्मत्वं बुद्ध्यतां तत्र कर्मिणः किं विहीयते ॥२७४॥

११ देहवाग्बुद्धयस्त्यक्ता ज्ञानिनानृतबुद्धितः। कर्मी प्रवर्तयत्वाभिर्ज्ञानिनो हीयतेऽत्र किम्॥२७५

भिज्ञौ बधिरौ इव विवदेतां । तौ विलोक्य बुद्धिमंतः हसंति एव २७३

९ कुतः परिहास्यत्वमित्याशंक्य निर्विषय-कलहकारित्वादित्याह—

१०] यं साक्षिणं कर्मी न विजानाति । तस्य ब्रह्मत्वं तत्त्ववित् बुद्ध्यतां । तत्र कर्मिणः किं हीयते ॥

ॐ १०) कर्मी यं साक्षिणं कर्मानुष्ठानो-पयोगि देहवाग्बुद्ध्यतिरिक्तं प्रत्यगात्मानं न विजानाति तत्त्वविदा तस्य ब्रह्मत्वे बुद्धे कर्मिणः कर्मानुष्ठाने किं हीयते ॥ २७४ ॥

११] (देहेति)— ज्ञानिना अनृत-बुद्धितः देहवाग्बुद्धयः त्यक्ताः कर्मी आभिः प्रवर्तयतु अत्र ज्ञानिनः किं हीयते ॥

१२) ज्ञानिना मिथ्यात्वबुद्ध्या परित्य-क्ताभिः देहवाग्बुद्धिभिः कर्मानुष्ठाने ज्ञानिनो वा किं हीयते । अतो निर्विषय-कलहकारिणोः परिहसनीयत्वमित्यर्थः ॥२७५

दोनूं बधिरनकी न्यांई विवादकूं करतेहैं । तिनकूं देखिके बुद्धिमान्-पुरुष हसतेहीं हैं ॥ २७३ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक२७२ उक्तविध ज्ञानीकर्मीके हसनैकी योग्यतामैं हेतु ॥

९ परस्परविवाद करनैहारे ज्ञानी औ कर्मीकी परिहास करनैकी योग्यता काहेतें है ? यह आशंकाकरि विषयरहित कलहके करनै-हारे होनैतें तिनके हास्य करनेकी योग्यता है । ऐसें कहैहैं:—

१०] जिस साक्षीकूं कर्मी नहीं जानताहै। तिस साक्षीके ब्रह्मभावकूं तत्त्ववित् जानो । तिसविषै कर्मीका क्या विनाश होवैहै ?

ॐ १०) कर्मी। जिस साक्षीकूं कहिये कर्मके अनुष्ठानविषै उपयोगी जे देह वाणी औ बुद्धि तिनतें भिन्न प्रत्यगात्माकूं नहीं जानताहै । तत्त्ववेत्ताकरि तिस साक्षीके ब्रह्मभावके जाने-हुये कर्मीपुरुषकी कर्मके अनुष्ठानविषै क्या हानि होवैहै ? कछु बी नहीं ॥ २७४ ॥

११] ज्ञानीनैं मिथ्यापनैकी बुद्धितैं देह वाक् औ बुद्धि ये त्याग कियेहैं औ कर्मी इन देहादिकनकरि प्रवर्त्त होहु । तिसविषै ज्ञानीका क्या विनाश होवैहै ?

१२) ज्ञानीनैं मिथ्यापनैके ज्ञानसैं परि-त्याग किये देह वाणी औ बुद्धिकरि कर्मके अनुष्ठानविषै ज्ञानीकी क्या हानी होवैहै ? यातैं विषयरहित कलहके करनैहारे ज्ञानी औ कर्मी दोनूंके हसनैकी योग्यता है । यह अर्थ है ॥ २७५ ॥

टीकांकः ३११३ टिप्पणांकः ६८५ | तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८६०

प्रवृत्तिर्नोपयुक्ता चेन्निवृत्तिः क्वोपयुज्यते ।
बोधहेतुर्निवृत्तिश्चेद्बुभुत्सायां तथेतरा ॥ २७६ ॥

१३ कर्मानुष्ठानं प्रयोजनशून्यत्वान्न ज्ञानिनाऽभ्युपगम्यत इति शंकते—

१४] प्रवृत्तिः न उपयुक्ता चेत् ।

१५ उपयोगाभावो निवृत्तावपि समान इति परिहरति—

१६] निवृत्तिः क्व उपयुज्यते ॥

१७ निवृत्तेर्बोधहेतुत्वान्नोपयोगाभाव इति शंकते—

१८] बोधहेतुः निवृत्तिः चेत् ।

१९ तर्हि प्रवृत्तिरपि बुभुत्साहेतुत्वादुपयोगवतीत्याह (बुभुत्सेति)—

२०] तथा बुभुत्सायां इतरा ॥२७६

॥ ८ ॥ ज्ञानीकूं प्रवृत्ति औ निवृत्तिसैं अप्रयोजन ॥

१३ ननु कर्मका अनुष्ठान प्रयोजनशून्य होनैतैं ज्ञानीकरि नहीं अंगीकार करियेहै । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

१४] ज्ञानीकूं प्रवृत्तिका उपयोग नहीं है । ऐसैं जो कहै ।

१५ ज्ञानीकूं उपयोगका अभाव निवृत्तिविषै वी समान है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

१६] तौ ज्ञानीकूं निवृत्तिका कहां उपयोग है ?

१७ निवृत्तिकूं बोधकी हेतु होनैतैं तिसके उपयोगका अभाव नहीं है । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

१८] बोधकी हेतु निवृत्ति है । ऐसैं जो कहै ?

१९ तब शुभकर्ममें प्रवृत्ति वी चित्तशुद्धि औ वैराग्यद्वारा जिज्ञासाकी हेतु होनैतैं उपयोगवाली है । इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैः—

२०] तौ तैसैं प्रवृत्ति वी स्वरूपके जाननैकी इच्छारूप जिज्ञासाविषै उपयोगी है ॥ २७६ ॥

८५ बहुतश्रुतिस्मृतिनविषै कर्मके समुच्चयवाले ज्ञानसैं मोक्षकी प्राप्तिका कथन कियाहै औ भाष्यकारनैं अनेकस्थलमैं समुच्चयवादका खंडन कियाहै । ताका यह अभिप्राय हैः—

(१) एक समसमुच्चय है (२) दूसरा क्रमसमुच्चय है ।

(१) ज्ञान औ कर्म दोनूंकूं मोक्षका साधन जानिके एककालमें दोनूंका अनुष्ठान । **समसमुच्चय** है औ

(२) एकहीं अधिकारीकूं प्रथम कर्मअनुष्ठान औ पीछे सर्वकर्मका संन्यास कहिये ज्ञानके साधन श्रवणादिकका अनुष्ठान । **क्रमसमुच्चय** है ॥

श्रुतिस्मृतिविषै ज्ञानकर्मका समुच्चय लिख्याहै । ताका क्रमसमुच्चयमैं तात्पर्य है औ भाष्यकारनैं जो निषेध कियाहै सो समसमुच्चयका है । तहां भाष्यकारका यह सिद्धांत हैः—मोक्षका साक्षात् साधन कर्म नहीं है । किंतु ज्ञान है । अरु ज्ञानका साधन कर्म है । परंतु साक्षात् वा जिज्ञासाद्वारा ज्ञानका साधन कर्म है । यह विशेषविचार तिस प्रसंगमैं लिख्या नहीं औ भाष्यके भामतीनिबंधनामक व्याख्याकार वाचस्पतिमिश्रनैं जिज्ञासाका साधन कर्म है औ जिज्ञासाद्वारा कर्म । ज्ञानका साधन है साक्षात् नहीं ॥ काहेतैं ब्रह्ममीमांसाके तृतीयाध्यायके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं "जिज्ञासाके साधन कर्म हैं" ऐसैं कहाहै औ "वेदके अनुवचन (अध्ययन) औ यज्ञ । दान । तप (कृच्छ्रचांद्रायणादिक) औ अनाशक (अनशन) करि ब्राह्मण । इस (आत्मा)कूं जाननैंकूं इच्छतेहैं ॥" इस कैवल्यशाखाकी श्रुतिमैं सकलआश्रमके कर्म जिज्ञासाके साधन स्पष्ट कहेहैं । यातैं जिज्ञासाके साक्षात्साधन कर्म हैं ज्ञानके साक्षात्साधन नहीं ॥ जो ऐसैं नहीं मानै तौ ज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत कर्मअनुष्ठानके प्रसंगतैं साधनसहित कर्मके त्यागरूप संन्यासका लोप होवैगा । यह वाचस्पतिका मत है औ

विवरणकारनैं ज्ञानका साधन कर्म कहाहै । जिज्ञासाका साधन नहीं औ उक्तश्रुतिवाक्यका बी इच्छाके विषय ज्ञानका साधन कर्म है । यह तात्पर्य है औ वैराग्यसहित तीव्रजिज्ञासा-

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८६१

टीकांकः ३१२१ टिप्पणांकः ॐ

[22]बुद्धश्चेन्न बुभुत्सेत [24]नोऽप्यसौ बुद्ध्यते पुनः ।
[26]अबाधादनुवर्तेत बोधो न त्वन्यसाधनात् ॥२७७॥

२१ ननु बुद्धस्य बुभुत्साभावात् प्रवृत्तेरनुपयोगित्वमिति पुनः शंकते—

२२] बुद्धः न बुभुत्सेत चेत् ।

२३ तर्हि बुद्धस्य पुनर्बोधाभावात् तद्धेतुनिवृत्तिरपि बुद्धं प्रत्यनुपयोगिनीत्याह (नापीति)—

२४] असौ पुनः बुद्ध्यते अपि न ॥

२५ सकृज्जातस्य बोधस्य स्थिरत्वाय निवृत्तिरपेक्षत इत्याशंक्य स्थिरत्वं बाधकाभावमपेक्षते । न साधनांतरमित्याह (अबाधादिति)—

२६] बोधः अबाधात् अनुवर्तेत । अन्यसाधनात् तु न ॥

२७) वाक्यप्रमाणजन्यज्ञानस्य बलवता प्रमाणेन बाधाभावादनुवृत्तिः स्यादेव अतो न साधनांतरं तदर्थमनुष्ठेयमित्यर्थः ॥ २७७ ॥

---

२१ ननु ज्ञानीकूं जिज्ञासाके अभावतैं प्रवृत्तिका उपयोग नहीं है । इसरीतिसैं फेर निवृत्तिविषै आग्रहवान् वादी शंका करैहै:—

२२] बुद्ध जो ज्ञानी सो बोधकी इच्छारूप जिज्ञासाकूं करै नहीं । यातैं ताकूं प्रवृत्तिका उपयोग नहीं है । ऐसैं जो कहै ।

२३ तब बुद्धकूं फेर बोधके अभावतैं तिस बोधकी हेतु निवृत्ति बी बुद्धके प्रति उपयोगी नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

२४] तो यह ज्ञानी फेर बोधकूं बी पावता नहीं । यातैं ताकूं निवृत्तिका बी उपयोग नहीं है ॥

२५ ननु एकवार उत्पन्न भये बोधकी स्थिरताअर्थ निवृत्ति अपेक्षित है । यह आशंका करि स्थिरता जो है । सो बाध करनैहारेके अभावकूं अपेक्षा करैहै । अन्य साधनकूं नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

२६] एकवार उत्पन्न भया जो बोध । सो अबाधतैं पीछे वर्त्तताहै । अन्यसाधनतैं नहीं ॥

२७) महावाक्यरूप प्रमाणतैं जन्य ज्ञानके । बलवान्प्रमाणकरि बाधके अभावतैं अनुवृत्ति कहिये उत्पत्तिके भये पीछे वर्तना होवैहीं है । यातैं एकवार उत्पन्न भये बोधकी स्थिरताअर्थ अन्यसाधन अनुष्ठानकरनैकूं योग्य नहीं है । यह अर्थ है ॥ २७७ ॥

पर्यंत कर्म कर्त्तव्य है । पीछे ताका त्यागरूप संन्यास कर्त्तव्य है। यातैं तृतीयअध्यायगत भाष्यवचनसैं बी विरोध नहीं औ जिज्ञासापर्यंत किये कर्मसैं अपूर्व (पुण्यरूप संस्कार)की उत्पत्ति होवैहै । सो ज्ञानके उदयपर्यंत रहैहै पीछे नष्ट होवैहै ॥ तातैं जिज्ञासापर्यंत किया कर्म अपूर्वद्वारा ज्ञानका साधन है । यातैं संन्यासके लोपका प्रसंग बी नहीं ॥

आश्रमके कर्मनकाहीं विद्यामैं उपयोग है । वर्णमात्रके धर्मनका नहीं । ऐसैं केइ आचार्य कहैहैं औ

कल्पतरुकारके मतमैं सर्वनित्यकर्मनका निष्कामकर्म होनैंकरि ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा विद्यामैं उपयोग है । काम्यकर्मका उपयोग नहीं औ

संक्षेपशारीरककर्त्ताके मतमैं काम्य औ नित्य सकलशुभकर्मनका विद्यामैं उपयोग है। काहेतैं पूर्वउक्तश्रुतिमैं "नित्य । काम्य । साधारण । यज्ञ" शब्द हैं औ "धर्मकरि पापकूं नाश करैहै" इत्यादिवाक्यतैं सर्वशुभकर्मकूं पापकी नाशकता प्रतीत होवैहै । यातैं ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्मकी न्याईं काम्यकर्मका बी विद्यामैं उपयोग है ।

परंतु तीव्रजिज्ञासापर्यंत सर्वशुभकर्म कर्त्तव्य हैं पीछे नहीं। यह सर्वआचार्यनका साधारण मत है ॥ इसरीतिसैं प्रवृत्ति (कर्मका अनुष्ठान) जिज्ञासामैं उपयोगी है ॥

टीकांक: ३१२८ टिप्पणांक: ॐ

[२९]नाविद्या नापि तत्कार्यं बोधं बाधितुमर्हति ।
[३१]पुरैव तत्त्वबोधेन बाधिते ते उभे यतः ॥२७८॥
[३३]बाधितं दृश्यतामक्षैस्तेन बाधो न दृश्यते ।
[३५]जीवन्नाखुर्न मार्जारं हंति हन्यात्कथं मृतः ॥२७९॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८६२ ८६३

२८ ननु प्रमाणांतरेणाबाधेऽप्यविद्यया तत्कार्येण कर्तृत्वाध्यासेन वा बाधः स्यादित्याशंक्याह—

२९] न अविद्या न तत्कार्यं अपि बोधं बाधितुं अर्हति ॥

३० तत्र हेतुमाह (पुरैवेति)—

३१] यतः ते उभे पुरा एव तत्त्वबोधेन बाधिते ॥ २७८ ॥

३२ नन्वविद्याया बाधितत्वेऽपि तत्कार्यस्य प्रतीयमानस्य बाधितत्वासंभवात्तेन बोधस्य बाधो भवेदित्याशंक्य उपादाननिवृत्त्यैव तस्यापि बाधितत्वान्न तेनापि बाधः शंकितुं शक्यत इत्याह—

३३] बाधितं अक्षैः दृश्यतां तेन बाधः न दृश्यते ॥

३४ तत्र दृष्टांतमाह—

३५] जीवन् आखुः मार्जारं न हंति । मृतः कथं हन्यात् ॥

ॐ ३५) आखुः मूषकः ॥ २७९ ॥

॥ ९ ॥ बाधितअविद्या औ ताके कार्यसैं प्रमाणजनितबोधका अबाध ॥

२८ ननु अन्यप्रत्यक्षादिप्रमाणकरि बोधके अबाध हुये बी अविद्याकरि वा तिस अविद्याके कार्यकर्तापनैके अध्यासकरि बोधका बाध होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२९] न अविद्या औ न तिसका कार्य बी बोधकूं बाध करनैकूं योग्य है ॥

३० तिसविषै कारण कहैहैं:—

३१] जातैं वे अविद्या औ ताका कार्य दोनूं पूर्वहीं तत्त्वबोधकरि बाधित भयेहैं। तातैं बोधके बाधकरनैकूं योग्य नहीं हैं ॥ २७८ ॥

३२ ननु अविद्याकूं बाधितपनैके हुये बी तिस अविद्याका कार्य जो प्रतीयमान है। ताके बाधके असंभवतैं तिस अविद्याके कार्यकरि बोधका बाध होवैगा । यह आशंकाकरि उपादानअविद्याकी निवृत्तिके हुये तिस अविद्याके कार्यकूं बी बाधित होनैतैं । तिस अविद्याके कार्यकरि बी बोधका बाध शंका करनैकूं शक्य नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

३३] बाधितअविद्याका कार्य इंद्रियनसैं प्रतीत होहु । तिसकरि बोधका बाध नहीं देखियेहै ॥

३४ तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

३५] जब जीवताहुया आखु बिल्लेकूं मारै नहीं। तब मन्याहुया मूषा कैसैं मारेगा ? ॥

ॐ ३५) आखु कहिये मूषक नाम उंदिर जाकूं चूआ बी कहतेहैं । सो ॥ २७९ ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
८६४	अपि पाशुपतास्त्रेण विद्धश्चेन्न ममार यः । निष्फलेषु विनुन्नांगो नंक्ष्यतीत्यत्र का प्रमा ॥२८०	३१२६
८६५	आदावविद्यया चित्रैः स्वकार्यैर्जृंभमाणया । युध्वा बोधोऽजयत्सोऽद्य सुदृढो बाध्यतां कथं २८१	टिप्पणांकः ॐ

३६ द्वैतदर्शनेन तत्त्वबोधस्य बाधाभावं कैमुतिकन्यायप्रदर्शनेन द्रढयितुं तदनुकूलं दृष्टांतमाह (अपीति)—

३७] यः पाशुपतास्त्रेण विद्धः अपि न ममार चेत् । निष्फलेषु विनुन्नांगः नंक्ष्यति । इति अत्र का प्रमा ॥

३८) यः समर्थः पाशुपतास्त्रेण विद्धोऽपि न ममार चेत् । किल स निष्फलेषु विनुन्नांगः शल्यरहितेषुणा व्यथितदेहः सन् नंक्ष्यति नाशं प्राप्स्यति इत्यत्र का प्रमा प्रमाणं नास्तीत्यर्थः ॥ २८० ॥

३९ दृष्टांतसिद्धमर्थं दार्ष्टांतिके योजयति ॥

४०] आदौ चित्रैः स्वकार्यैः जृंभमाणया अविद्यया बोधः युद्ध्वा अजयत् । सः सुदृढः अद्य कथं बाध्यताम् ॥

४१) आदौ विद्याभ्याससमये । चित्रैः बहुविधैस्तत्कार्यैः प्रमातृत्वभोक्तृत्वकर्तृत्वादिभिः । जृंभमाणया विवर्धमानया अविद्यया । बोधो युद्ध्वा युद्धं कृत्वा तां अजयत् । सः एवाभ्यासपाटवेन सुदृढोऽद्य इदानीमविद्यानिवृत्तौ सत्यां

॥ १० ॥ द्वैतदर्शनतैं तत्त्वबोधके बाधके अभावमैं दृष्टांत ॥

३६ द्वैतके दर्शनकरि तत्त्वबोधके बाधके अभावकूं कैमुतिकन्यायके दिखावनैकरि दृढ करनैकूं तिसके अनुकूल दृष्टांतकूं कहैहैं:—

३७] जो पुरुष पाशुपत नाम अस्त्रकरि विद्ध हुया बी मर्‍या नहीं । तब सो निष्फलबाणकरी विद्ध अंगवाला हुया नाशकूं पावैगा। इसविषै कौन प्रमाणहै?

३८) जो समर्थपुरुष पशुपतिसंबंधी जो पाशुपतअस्त्र तिसकरि वेधनकूं प्राप्त हुया बी जब मर्‍या नहीं । तब सो, लोहरचित शल्यरूप फलसैं रहित बाणकरि पीडाकूं प्राप्त भया है देह जिसका ऐसा हुया नाशकूं पावैगा । इसविषै कौन प्रमाण है? कोइ बी प्रमाण नहीं । यह अर्थ है ॥ २८० ॥

॥ ११ ॥ दृष्टांतसिद्धअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

३९ दृष्टांतमैं सिद्धअर्थकूं दार्ष्टांतिकमैं जोडतैहैं:—

४०] आदिविषै विचित्र अपनै कार्यनकरि वृद्धिकूं प्राप्त भई अविद्यासैं बोध युद्धकरिके तिसकूं जय करताभया । सो बोध दृढ हुया अब कैसैं बाधकूं पावैगा ?

४१) प्रथम विद्याअभ्यासके समयमैं बहुप्रकारके प्रमातापनै भोक्तापनै औ कर्त्तापनैआदिक तिस अविद्याके कार्यनकरि वृद्धिकूं पावतीहुई अविद्यासैं । बोधरूप राजा युद्धकरिके तिस अविद्याकूं जीतताभया । सोई बोध अभ्यासकी दृढताकरि अतिशय दृढ हुया । अब अविद्याकी निवृत्तिके हुये कारणरहित तिस अविद्याके कार्य अध्यासकरि

टीकांक: ३१४२ टिप्पणांक: ६८६	४३ तिष्ठंत्वज्ञानतत्कार्यशवा बोधेन मारिताः । न भीतिर्बोधसम्राजः कीर्तिः प्रत्युत तस्य तैः २८२ ४४ एवमतिशूरेण बोधेन न वियुज्यते । प्रवृत्त्या वा निवृत्त्या वा देहादिगतयास्य किम् २८३	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८६६ ८६७

निर्मूलेन तत्कार्येणाध्यासेन कथं बाध्यतां न कथमपि बाध्येत इत्यर्थः ॥ २८१ ॥

४२ उपपादितमर्थं श्रोतृबुध्यारोहाय रूपकेण आह (तिष्ठंत्विति)—

४३] बोधेन मारिताः अज्ञानतत्कार्यशवाः तिष्ठंतु । तैः बोधसम्राजः भीतिः न । प्रत्युत तस्य कीर्तिः॥२८२॥

४४ भवत्वेवं प्रकृते किमायातमित्यत आह—

४५] यः एवं अतिशूरेण बोधेन न वियुज्यते । अस्य देहादिगतया प्रवृत्त्या वा निवृत्त्या किम् ॥

४६) यः पुमान् एवं उक्तप्रकारेण अतिशूरेण अविद्यातत्कार्यघातकेन बोधेन ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानेन न वियुज्यते न कदापि वियुक्तो भवति । अस्य पुंसो देहादिनिष्ठया प्रवृत्त्या वा निवृत्त्या वा किं । न किमपीष्टमनिष्टं चेत्यर्थः ॥ २८३ ॥

कैसैं बाधकूं पावैगा? किसीप्रकारसे वी बाधकूं पावै नहीं । यह अर्थ है ॥ २८१ ॥

॥ १२ ॥ श्लोक २७८–२८१ विषै उपपादित-अर्थका रूपकसैं कथन ॥

४२ उपपादन किये अर्थकूं श्रोताकी बुद्धिविषै बैठावनैअर्थ रूपककरि कहैहैं:—

४३] बोधकरि मारे हुये अज्ञान औ अज्ञानके कार्यरूप शव जे मुडदे वे स्थित रहो । तिनकरि बोधरूप राजाकूं भय नहीं है । किंतु तिनकरि तिस बोधराजाकी उलटी [८६]कीर्त्ति होवैहै॥२८२॥

॥ १३ ॥ श्लोक २७६ सैं उक्त प्रकृतमैं सिद्धअर्थका कथन ॥

४४ ऐसैं बोधके बाधका अभाव होहु इसकरि प्रवृत्तिनिवृत्तिके अनियमरूप प्रसंगविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

४५] जो पुरुष ऐसैं अतिशूरवीर बोधकरि वियोगकूं पावता नहीं। इस पुरुषकूं देहादिकविषै गत प्रवृत्तिकरि वा निवृत्तिकरि क्या है?

४६) जो पुरुष २८२ तैं श्लोकउक्तप्रकारके अतिशूरवीर। अविद्या औ ताके कार्यके घातक ब्रह्मआत्माकी एकताके ज्ञानकरि कदाचित् वी वियोगवान् नहीं होवैहै । इस पुरुषकूं देहादिकविषै स्थित प्रवृत्तिसैं वा निवृत्तिसैं क्या है? कछु वी इष्ट वा अनिष्ट नहीं । यह अर्थ है ॥ २८३ ॥

८६ जैसैं मृतक होयके भूमिमैं गिरे प्रबलयोद्धेकूं देखिके शूरवीरराजाकी कीर्ति होवैहै । तैसैं बाधित होयके प्रतीत होते अज्ञानके कार्यनकरि "क्या इस बोधका प्रभाव है!" ऐसैं मुमुक्षुआदिकनके पास वर्णनद्वारा बोधरूप राजाकी कीर्ति होवैहै ॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
८६८	प्रवृत्तावाग्रहो न्याय्यो बोधहीनस्य सर्वथा । स्वर्गाय वापवर्गाय यतितव्यं यतो नृभिः॥२८४॥	२१४७
८६९	विद्वांश्चेत्तादृशां मध्ये तिष्ठेत्तदनुरोधतः । कायेन मनसा वाचा करोत्येवाखिलाः क्रियाः२८५	टिप्पणांकः ६८७

४७ तर्हि ज्ञानिवदज्ञानिनोऽपि प्रवृत्तावाग्रहो न युक्त इत्याशंक्याह (प्रवृत्ताविति)—

४८] बोधहीनस्य सर्वथा प्रवृत्तौ आग्रहः न्याय्यः ॥

४९ तत्रोपपत्तिमाह (स्वर्गायेति)—

५०] यतः नृभिः स्वर्गाय वा अपवर्गाय यतितव्यम् ॥ २८४॥

५१ विदुष आग्रहो न युक्त इत्युक्तं तर्हि कर्मिणां मध्ये वर्तमानेन तेन किं कर्तव्यमित्याह—

५२] विद्वान् तादृशां मध्ये तिष्ठेत् चेत् । तदनुरोधतः कायेन मनसा वाचा अखिलाः क्रियाः करोति एव ॥

५३) विद्वांस्तादृशां कर्मिणां मध्ये तिष्ठेत् चेत्तदनुरोधतः तेपामनुसारेण । शरीरादिभिः सर्वाः क्रियाः करोत्येव । न तान् कर्मिणो निवारयेदित्यर्थः ॥ २८५ ॥

॥ १४ ॥ अज्ञानीकूं युक्तिसहित प्रवृत्तिमैं आग्रहकी योग्यता ॥

४७ ननु तब ज्ञानीकी न्याईं अज्ञानीकूं बी प्रवृत्तिविषै आग्रह युक्त नहीं है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४८] बोधहीनकूं सर्वथा यागश्रवणादिरूप प्रवृत्तिविषै आग्रह योग्य है ॥

४९ तिसविषै कारण कहैहैं:—

५०] जातैं मनुष्यनकूं स्वर्ग जो परलोक तिसअर्थ वा अपवर्ग जो मोक्ष तिसअर्थ प्रयत्न कियाचाहिये ॥ २८४॥

॥ १५ ॥ कर्मिनके मध्यमैं स्थित ज्ञानीका कृत्य ॥

५१ ज्ञानीकूं आग्रह युक्त नहीं है। ऐसैं कहा। तब कर्मिनके मध्यमैं वर्तमान ज्ञानीकूं क्या कर्तव्य है? तहां कहैहैं:—

५२] विद्वान् जब तैसैं पुरुषनके मध्यमैं स्थित होवै। तब तिनके अनुसारतैं शरीरकरि मनकरि औ वाणीकरि सर्वक्रियाकूं करताहीं है ॥

५३) विद्वान् जब तैसैं कर्मीपुरुषनके मध्यमैं स्थित होवै । तब तिनके अनुसारकरि शरीरादिकनसैं सर्वक्रियाकूं करताहीं है औ तिन कर्मिनकूं निर्वारण करै नहीं। यह अर्थ है॥२८५॥

८७ “जिसकरि रात्रिविषै सुखसैं वसिये । सो दिवसकरि कर्त्तव्य है औ जिसकरि वर्षाकालमैं सुखसैं वसिये । सो अष्टमासकरि कर्त्तव्य है औ जिसकरि वृद्धावस्थामैं सुखसैं वसिये। सो पूर्वअवस्थाविषै कर्त्तव्य है औ जिसकरि मरणके पीछे सुखसैं वसिये । सो जहांलगि जीवतकाल है तहांलगि कर्त्तव्य है” इस महाभारतगत विदुरवचनतैं अज्ञानीमनुष्यनकूं जातैं इष्टवस्तुका साधन करना योग्य है। तातैं बोधहीनकूं प्रवृत्तिविषै आग्रह उचित है ॥

८८ “हे भारत (अर्जुन)! जैसैं अविद्वानपुरुष कर्मविषै आसक्त हुये करतेहैं तैसैं लोकसंग्रह करनैकूं इच्छताहुया विद्वान् अनासक्त (कर्तृत्वादिअभिमान वा फलेच्छासैं रहित) हुया करै ॥ २५ ॥ औ कर्मविषै संगी (आसक्त) जे अज्ञजन हैं। तिनकी बुद्धिके भेदकूं उपजावै नहीं। किंतु आप युक्त होयके सम्यक् आचरताहुया सर्वकर्मनकूं करावै ॥ २६ ॥” इस गीताके तृतीयअध्यायगत दो (२५–२६) श्लोकरूप वाक्यतैं यह अर्थ जानियेहै इति ॥

टीकांक: ३१५४ टिप्पणांक: ॐ

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक:

एष मध्ये बुभुत्सूनां यदा तिष्ठेत्तदा पुनः ।
बोधायैषां क्रियाः सर्वा दूषयंस्त्यजतु स्वयम् ॥२८६ ८७०
अविद्वदनुसारेण वृत्तिर्बुद्धस्य युज्यते ।
स्तनंधयानुसारेण वर्तते तत्पिता यतः ॥ २८७ ॥ ८७१
अधिक्षिप्तस्ताडितो वा बालेन स्वपिता तदा ।
न क्लिश्नाति न कुप्येत बालं प्रत्युत लालयेत् ॥२८८ ८७२

५४ अस्यैव तत्त्वबुभुत्सूनां मध्येऽवस्थितस्य कृत्यमाह (एष इति)—

५५] पुनः एषः बुभुत्सूनां मध्ये यदा तिष्ठेत् । तदा एषां बोधाय सर्वाः क्रियाः दूषयन् स्वयं त्यजतु ॥

५६) एष विद्वान् बुभुत्सूनां मध्ये यदा तिष्ठेत्तदा एषां बुभुत्सूनां बोधाय तत्त्वज्ञानजननाय ताः क्रियाः दूषयन् स्वयम् अपि त्यजतु ॥ २८६ ॥

५७ कुत एवं कर्तव्यमित्याह—

५८] अविद्वदनुसारेण बुद्धस्य वृत्तिः युज्यते ॥

५९) अज्ञान्यनुसारेण ज्ञानिनो वर्तनमुचितं कृपालुत्वात्तेषामनुकंपनीयत्वाच्चेति भावः ॥

६० एवं क दृष्टमित्यत आह (स्तनंधयेति)–

६१] यतः स्तनंधयानुसारेण तत्पिता वर्तते ॥

ॐ ६१) स्तनंधयाः स्तनपानकर्तारः शिशव इत्यर्थः ॥ २८७ ॥

६२ पितुः स्तनंधयानुसारित्वमेव दर्शयति (अधिक्षिप्त इति)—

॥ १६ ॥ तत्त्वजिज्ञासुनके मध्यमैं स्थित ज्ञानीका कृत्य ॥

५४ तत्त्वके जिज्ञासुपुरुषनके मध्यमैं स्थित इसीहीं ज्ञानीके कर्त्तव्यकूं कहैहैं:—

५५] फेर यह ज्ञानी जब जिज्ञासुनके मध्यमैं स्थित होवै । तब इनके बोधअर्थ सर्वक्रियाकूं दूषण देताहुया आप बी त्याग करहु ॥

५६) यह विद्वान् । जिज्ञासुनके मध्यमैं जब स्थित होवै । तब इन जिज्ञासुनकूं तत्त्वज्ञानके जननअर्थ तिन क्रियाकूं दूषण देताहुया आप बी त्याग करहु ॥ २८६ ॥

॥ १७ ॥ ज्ञानीकूं २८५–२८६ श्लोकउक्तरीतिके कर्त्तव्यमैं दृष्टांत ॥

५७ विद्वानकूं ऐसैं काहेतैं कर्त्तव्य है ? तहां कहैहैं:—

५८] अविद्वानोंके अनुसारकरि ज्ञानीकूं वर्त्तना योग्य है ॥

५९) अज्ञानीजननके अनुसारकरि ज्ञानीकूं वर्त्तना उचित है । काहेतैं ज्ञानीकूं कृपालु होनेतैं औ तिन अज्ञानीजननकूं कृपा करनेके योग्य कहिये कृपापात्र होनेतैं । यह भाव है ॥

६० ऐसैं कहां देख्याहै ? तहां कहैहैं:—

६१] जातैं स्तनंधयके अनुसारकरि तिसका पिता वर्त्तताहै ॥

ॐ ६१) स्तनंधय । याका स्तनपानके कर्त्ता शिशु । यह अर्थ है ॥ २८७ ॥

॥ १८ ॥ दृष्टांतमैं पिताकूं बालककी अनुसारिता ॥

६२ पिताके बालकके अनुसारीपनेकूंहीं दिखावैहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८७३ ८७४

टीकांकः ३१६३ टिप्पणांकः ॐ

६५ निंदितः स्तूयमानो वा विद्वानज्ञैर्न निंदति । न स्तौति किं तु तेषां स्याद्यथा बोधस्तथाचरेत्॥२८९॥

६८ येनायं नटनेनात्र बुद्ध्यते कार्यमेव तत् । ७० अज्ञप्रबोधान्नैवान्यत्कार्यमस्त्यत्र तद्विदः ॥२९०॥

६३] बालेन स्वपिता अधिक्षिप्तः वा ताडितः तदा न क्लिश्नाति । न कुप्येत प्रत्युत बालं लालयेत् ॥२८८॥

६४ दार्ष्टांतिके योजयति (निंदित इति)—

६५] विद्वान् अज्ञैः निंदितः वा स्तूयमानः न निंदति । न स्तौति किंतु तेषां यथा बोधः स्यात् तथा आचरेत् ॥

६६) विद्वान् अज्ञैर्निंदितः स्तूयमानः वा स्वयं न निंदति । न स्तौति किंतु तेषां अज्ञानां यथा बोध उपजायते तथाचरेत् ॥ २८९ ॥

६७ एवमाचरणे निमित्तमाह (येनेति)—

६८] अयं अत्र येन नटनेन बुद्ध्यते तत् कार्यं एव ॥

६९) अयं अज्ञानी अत्र अस्मिन् लोके विदुषः येन यादृशेन नटनेन आचरणेन बुद्ध्यते तत्त्वमवगच्छति । तत् आचरणं तेन कर्तव्यं एव ॥

७० तर्हि तद्वदेव कार्यांतरमपि प्रसज्येत इत्यत आह (अज्ञेति)—

६३] बालककरि अपना पिता जब भूमिविषै पतनकूं प्राप्त होवै वा ताडनकूं प्राप्त होवै । तब सो पिता क्लेशकूं पावता नहीं औ कोप करता नहीं । किंतु उलटा बालककूं लडावताहै कहिये अनुकूलयुक्तिसैं समुजावताहै ॥२८८॥

॥१९॥ दृष्टांतमैं ज्ञानीकूं अज्ञानीकी अनुसारिता॥

६४ दृष्टांतउक्तअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

६५] विद्वान् । अज्ञजनोंकरि निंदित वा स्तूयमान हुया आप निंदा करता नहीं औ स्तुति करता नहीं । किंतु तिनकूं जैसैं बोध होवै तैसैं आचरताहै ॥

६६) ज्ञानीपुरुष । अज्ञानीजनोंकरि निंदाकूं प्राप्त हुया वा स्तुतिकूं प्राप्त हुया बी । आप तिनकी निंदा करता नहीं औ स्तुति करता नहीं । किंतु तिन अज्ञानीजनोंकूं जैसैं बोध उत्पन्न होवै तैसैं आचरण करताहै ॥ २८९ ॥

॥ २० ॥ ज्ञानीके २८६–२८९ श्लोकउक्तआचरणमैं निमित्त ॥

६७ ऐसैं अज्ञानीके अनुसार ज्ञानीके आचरणविषै निमित्त कहैहैं:—

६८] यह अज्ञानी इसलोकविषै जिस आचरणकरि बोधकूं पावै । सो कर्त्तव्यहीं है ॥

६९) यह अज्ञानीजन । इसलोकविषै ज्ञानीके जैसैं आचरणकरि तत्त्वबोधकूं पावताहै । तैसा आचरण ज्ञानीकूं कर्त्तव्यहीं है ॥

७० ननु तब तैसैंहीं ज्ञानीकूं अन्यकर्त्तव्य बी प्राप्त होवैगा । तहां कहैहैं:—

टीकांक: ३१७१ टिप्पणांक: ॐ	कृतकृत्यतया तृप्तः प्राप्तप्राप्यतया पुनः । तृप्यन्नेवं स्वमनसा मन्यतेऽसौ निरंतरम्॥२९१॥ धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमंजसा वेद्मि। धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानंदो विभाति मे स्पष्टं२९२	तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८७५ ८७६

७१] तद्विदः अत्र अज्ञप्रबोधात् अन्यत् कार्यं न एव अस्ति ॥

७२) यतः तद्विदः तत्त्वविदः । अत्र लोके अज्ञप्रबोधादन्यत् कर्तव्यं नैवास्ति । अतस्तदनुसरणेन तत्त्वबोधनं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ २९० ॥

७३ इत्तवर्तिष्यमाणयोस्तात्पर्यमाह (कृतेति)—

७४] असौ कृतकृत्यतया तृप्तः पुनः प्राप्तप्राप्यतया तृप्यन् स्वमनसा निरंतरं एवं मन्यते ॥

७५) असौ विद्वान् पूर्वोक्तप्रकारेण कृतकृत्यतया कृतं कृत्यजातं येनासौ कृतकृत्यः तस्य भावस्तत्ता तया तृप्तः सन् । वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राप्तप्राप्यतया प्राप्तं प्राप्यं येन सः प्राप्तप्राप्यस्तस्य भावस्तत्ता तया । तृप्यन् तृप्तो भवन् । स्वमनसा निरंतरमेवं मन्यते ॥ २९१ ॥

७६ किं मन्यत इत्यत आह (धन्य इति)—

७७] नित्यं स्वं आत्मानं अंजसा वेद्मि । अहं धन्यः अहं धन्यः ॥

७१] ज्ञानीकूं इसलोकविषै अज्ञानीके बोधतैं अन्य कर्त्तव्य नहीं है ॥

७२) जातैं तत्त्ववेत्ताकूं इसलोकविषै अज्ञानीजनोंके प्रबोधतैं अन्य कर्त्तव्य नहीं है । यातैं तिन अज्ञानिनके अनुसारकरि तत्त्वका बोधन कर्त्तव्य है । यह अर्थ है ॥ २९० ॥

॥ २१ ॥ कथन किये औ कथन करनैके अर्थका तात्पर्य ॥

७३ श्लोक २५२-२९० पर्यंत कथन किया औ २९२-२९८ श्लोक पर्यंत कहनैका जो अर्थ है । तिन दोनूंके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

७४] यह ज्ञानी कृतकृत्यपनैकरि तृप्त हुया फेर प्राप्तप्राप्यपनैकरि तृप्त हुया अपनै मनसैं निरंतर ऐसैं मानताहै ॥

७५) यह विद्वान् पूर्व २५२-२९० श्लोकपर्यंत उक्त प्रकारसैं कृतकृत्यताकरि कहिये कियाहै करनै योग्यका समूह जिसनैं । सो कहिये कृतकृत्य । तिस कृतकृत्यका जो भाव कहिये होना । सो कृतकृत्यता कहियेहै॥ तिसकरि तृप्त हुया औ आगे २९२-२९८ श्लोक पर्यंत कहनैके प्रकारसैं प्राप्तप्राप्यताकरि कहिये पायाहै प्राप्त होनैयोग्य ज्ञानादिक जिस पुरुषनैं । सो कहिये प्राप्तप्राप्य । तिस प्राप्तप्राप्यका जो भाव सो प्राप्तप्राप्यता कहियेहै । तिसकरि तृप्त होता अपनै मनसैं निरंतर ऐसैं मानताहै ॥ २९१ ॥

॥ ३ ॥ ज्ञानीकी प्राप्तप्राप्यता

॥ ३१७६-३२०३ ॥

॥ १ ॥ ज्ञान औ ताके फलके लाभनिमित्त तृप्तिका कथन ॥

७६ ज्ञानी क्या मानताहै ? तहां कहैहैं:—

७७] "जातैं नित्य अपनै आत्माकूं साक्षात् जानताहूं । यातैं मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं ॥"

नृसिंदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८७७	धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽद्य । धन्योऽहं धन्योहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि २९३	टीकांक: ३१७८ टिप्पणांक: ॐ

७८) धन्यः कृतार्थः । आदरार्थे वीप्सा । नित्यं अनवरतं । स्वात्मानं स्वस्य निजं रूपं देशाद्यनवच्छिन्नं प्रत्यगात्मानं अंजसा साक्षात् यतो वेद्मि जानामि अतो धन्यः ॥

७९ एवमात्मज्ञानलाभनिमित्तां तुष्टिमभिधाय तत्फललाभनिमित्तां तां दर्शयति (धन्योऽहमिति)—

८०] ब्रह्मानंदः मे स्पष्टं विभाति । अहं धन्यः । अहं धन्यः ॥

८१) ब्रह्मानंदः ब्रह्मभूतानंदः । मे स्पष्टं विभाति स्पष्टं यथा भवति तथा स्फुरतीत्यर्थः ॥ २९२ ॥

८२ एवमिष्टप्राप्तौ तुष्टिमभिधायानिष्टनिवृत्त्याऽपि तुष्यतीत्याह (धन्योऽहमिति)—

८३] अद्य सांसारिकं दुःखं न वीक्षे । अहं धन्यः । अहं धन्यः ॥

८४) अद्य इदानीं दुःखं दुःखस्वरूपं संसारं न वीक्षे न पश्याम्यतः कृतार्थ इत्यर्थः ॥

८५ दुःखाप्रतीतौ कारणमाह (धन्योऽहमिति)—

८६] स्वस्य अज्ञानं क्व अपि पलायितं । अहं धन्यः । अहं धन्यः ॥

८७) अनेन कर्मवासनाजालं अज्ञानं क्वापि पलायितं नष्टमित्यर्थः ॥ २९३ ॥

---

७८) धन्य नाम कृतार्थका है ॥ इहां धन्यशब्दका जो दोवार कथन है । सो आदरअर्थ है । जातें नित्य अपनैं देशकालादिककरि अपरिच्छिन्ननिजरूप प्रत्यगात्माकूं साक्षात् नाम अपरोक्ष जानताहूं । यातें मैं धन्य हूं ॥

७९ ऐसैं आत्मज्ञानके लाभरूप निमित्तसैं जन्य तुष्टि जो तृप्ति ताकूं कहिके तिस आत्मज्ञानके फल परमानंदआविर्भावके लाभरूप निमित्तसैं जन्य तिस तुष्टिकूं दिखावैहैं:—

८०] "जातें मेरेकूं ब्रह्मानंद स्पष्ट भासताहै । यातें मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं ॥"

८१) जातें ब्रह्मरूप आनंद मेरेकूं स्पष्ट जैसें होवै तैसें स्फुरताहै । तातें मैं धन्य हूं । यह अर्थ है ॥ २९२ ॥

॥ २ ॥ अनिष्टनिवृत्तिसैं ज्ञानीकूं तृप्तिका कथन ॥

८२ ऐसैं वांछितकी प्राप्तिविषै तुष्टिकूं दिखायके अनर्थकी निवृत्तिसैं वी ज्ञानी तुष्टिकूं पावताहै । ऐसैं कहैहैं:—

८३] "जातें अव सांसारिकदुःखकूं मैं नहीं देखताहूं । यातें मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं ॥"

८४) अव दुःखस्वरूप संसारकूं मैं नहीं देखताहूं । यातें धन्य कहिये कृतार्थ हूं । यह अर्थ है ॥

८५ दुःखकी अप्रतीतिविषै कारण कहैहैं:—

८६] "जातें अपना अज्ञान कहूं वी भाग गया । यातें मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं ॥"

८७) इस कहनैकरि जातें कर्म औ वासनाका जाल कहिये आश्रयअज्ञान कहूं वी भाग गया कहिये नाशभया । तातें कर्मवासनाजन्य संसारदुःखके अभावतैं मैं कृतार्थ हूं । यह अर्थ है ॥ २९३ ॥

टीकांक: ३१८८ टिप्पणांक: ॐ

धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किंचित् ।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य संपन्नम् २९४

धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके ।
धन्योऽहं धन्योहं धन्यो धन्यः पुनः पुनर्धन्यः २९५

अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढम् ।
अस्य पुण्यस्य संपत्तेरहो वयमहो वयम् ॥२९६॥

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांक: ८७८ ८७९ ८८०

८८ अज्ञाननिवृत्तिफलं कृतकृत्यत्वं प्राप्तप्राप्यत्वं च दर्शयति (धन्य इति)—

८९] मे किंचित् कर्तव्यं न विद्यते। अहं धन्यः। अहं धन्यः। प्राप्तव्यं सर्वं अद्य संपन्नं। अहं धन्यः। अहं धन्यः २९४

९० इदानीं कृतकृत्यत्वमित्यादिना जातायाः तृप्तेर्निरतिशयत्वमाह (धन्य इति)—

९१] अहं धन्यः । अहं धन्यः । मे तृप्तेः लोके का उपमा भवेत् ॥

९२ इतःपरं वक्तव्यादर्शनात्तुष्टिरेव परिस्फुरतीति दर्शयति (धन्य इति)—

९३] अहं धन्यः । अहं धन्यः । धन्यः । धन्यः । पुनः पुनः धन्यः ॥२९५॥

९४ अस्य सर्वस्य कारणभूतपुण्यपुंजपरिपाकमनुस्मृत्य तुष्यतीत्याह (अहो पुण्यमिति)—

९५] पुण्यं अहो । पुण्यं अहो । दृढं फलितं फलितम् ॥

९६ एवंविधपुण्यसंपादकमात्मानं अनुस्मृत्य तुष्यति—

॥ ३ ॥ अज्ञानकी निवृत्तिके फलका कथन ॥

८८ अज्ञानकी निवृत्तिके फल कृतकृत्यपनैकूं औ प्राप्तप्राप्यपनैकूं दिखावैहैं:—

८९] "जातैं मेरेकूं किंचित् कर्तव्य नहीं हैं। तातैं 'मैं धन्य हूं। मैं धन्य हूं॥' औ जातैं प्राप्त होनैयोग्य सर्व अब पाया । तातैं 'मैं धन्य हूं ।मैं धन्य हूं '"॥ २९४ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक २९२-२९४ उक्ततृप्तिकी निरंकुशता ॥

९० अब कृतकृत्यपनैआदिककरि उत्पन्न भई जो तृप्ति । तिसकी अन्यसर्वतृप्तिनसैं अधिकतारूप निरतिशयताकूं कहैहैं:—

९१] "मैं धन्य हूं। मैं धन्य हूं। मेरी तृप्तिकी लोकविषै कौंन उपमा होवैगी ? कोइ वी नहीं" ॥

९२ इसके पीछे कहनैयोग्यके अदर्शनतैं तृप्तिहीं च्यारीऔरतैं स्फुरतीहै । ऐसैं दिखावैहैं:—

९३] "मैं धन्य हूं। मैं धन्य हूं। धन्य हूं। धन्य हूं। फेरीफेरी धन्य हूं" ॥ २९५ ॥

॥ ५ ॥ श्लोक २९१-२९९ उक्त फलके हेतु पुण्य औ ताके कर्त्ता आपके स्मरणसैं ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

९४ इस सर्व ज्ञानादिरूप फलके कारणरूप पुण्यसमूहके परिपाककूं पीछे स्मरणकरिके ज्ञानी तृप्तिकूं पावताहै । ऐसैं कहैहैं:—

९५] "मेरा पुण्य अहो है। पुण्य अहो है" कहिये सर्वसैं उत्कृष्ट है। जो दृढ फल्याहै। फल्याहै कहिये फलकूं प्राप्त भयाहै ॥

९६ इसप्रकारके पुण्यके संपादन करनैहारे आपकूं स्मरणकरिके तृप्तिकूं पावैहैं:—

तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥ श्लोकांकः ८८१ ८८२

अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः ।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम् २९७
तृप्तिदीपमिमं नित्यं येऽनुसंदधते बुधाः ।
ब्रह्मानंदे निमज्जंतस्ते तृप्यंति निरंतरम् ॥२९८॥

॥ इति श्रीपंचदश्यां तृप्तिदीपः ॥ ७ ॥

टीकांकः ३१९७ टिप्पणांकः ॐ

९७] अस्य पुण्यस्य संपत्तेः वयं अहो । वयं अहो ॥ २९६ ॥

९८ इदानीं सम्यक्ज्ञानसाधनं शास्त्रं तदुपदेष्टारमाचार्यमनुस्मृत्य तुष्यति (अहो इति)—

९९] शास्त्रं अहो । शास्त्रं अहो । गुरुः अहो । गुरुः अहो ॥

३२०० पुनश्च शास्त्रजन्यं ज्ञानं तत्सुखं चानुस्मृत्य संतुष्यति (अहो ज्ञानमिति)—

१] ज्ञानं अहो । ज्ञानं अहो । सुखं अहो । सुखं अहो ॥ २९७ ॥

२ग्रंथाभ्यासफलमाह (तृप्तिदीपमिति)—

३] ये बुधाः इमं तृप्तिदीपं नित्यं अनुसंदधते । ते ब्रह्मानंदे निमज्जंतः निरंतरं तृप्यंति ॥ २९८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिता पंचदशीयतृप्तिदीपव्याख्या समाप्ता ॥ ७ ॥

९७] "इस पुण्यके संपादनतैं हम अहो हैं। हम अहो हैं कहिये सर्वोत्तम हैं" ॥ २९६ ॥

॥६॥ सम्यक्ज्ञानके हेतु शास्त्र गुरु औ तज्जन्यज्ञान औ सुखस्मरणसैं ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

९८ अब सम्यक्ज्ञानके साधन वेदांतशास्त्र औ तिसके उपदेश करनैहारे आचार्यकूं स्मरणकरिके तुष्टिकूं पावताहै:—

९९] शास्त्र अहो है। शास्त्र अहो है कहिये सर्वशास्त्रनका शिरोमणि है ॥ गुरु अहो है। गुरु अहो है कहिये सर्वकरि पूज्य है ॥

३२०० फेर वी शास्त्रजन्यज्ञान औ तिसके सुखकूं स्मरणकरिके ज्ञानी संतोषकूं पावताहै:—

१] ज्ञान अहो है। ज्ञान अहो है कहिये सर्वसाधनोंका फलरूप है ॥ सुख अहो है। सुख अहो है कहिये निरतिशय है ॥ २९७ ॥

॥ ७ ॥ तृप्तिदीपग्रंथके अभ्यासका फल ॥

२ तृप्तिदीपरूप ग्रंथके अभ्यासके फलकूं कहैहैं:—

३] जे बुद्ध कहिये शुद्धबुद्धिमान्‌पुरुष । इस तृप्तिदीपकूं नित्य अनुसंधान करतेहैं कहिये चिंतन करतेहैं । वे ब्रह्मानंदविषै निमग्न हुये निरंतर तृप्तिकूं पावतेहैं ॥ २९८ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्म विदुषा विरचिता पंचदश्याः तृप्तिदीपस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ७ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ कूटस्थदीपः ॥

॥ अष्टमं प्रकरणम् ॥ ८ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ८८३

खादित्यदीपिते कुड्ये दर्पणादित्यदीप्तिवत् ।
कूटस्थभासितो देहो धीस्थजीवेन भास्यते ॥१॥

(अस्य व्याख्या ५४६ पृष्ठोपरि द्रष्टव्या)

टीकांकः ॐ टिप्पणांकः ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ कूटस्थदीपतात्पर्यदीपिका ॥ ८

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
कुर्वे कूटस्थदीपस्य टीकां तत्त्वप्रकाशिकाम् ॥१॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
कुर्वे कूटस्थदीपस्य व्याख्यां तात्पर्यदीपिकां ॥१

॥ ॐ पंचदशी ॥

॥ अथ श्रीकूटस्थदीपकी तत्त्वप्रकाशिका व्याख्या ॥ ८ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमस्कारकरिके पंचदशीके कूटस्थदीप नाम अष्टमप्रकरणकी नरभाषासें तत्त्वप्रकाशिका नामक टीकाकूं मैं करुंहूं ॥ १ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीमद्भारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दोनूंमुनीश्वरनकूं नमस्कारकरिके मैं कूटस्थदीपकी तात्पर्यदीपिका कहिये तात्पर्यरूप अर्थकूं प्रकाशनैहारी व्याख्याकूं करुंहूं ॥१

* चित्रदीपगत २२ वें श्लोकउक्तअर्थरूप "त्वं" पदके लक्ष्यार्थ प्रत्यगात्मारूप कूटस्थका दीपककी न्याईं प्रकाशनैहारा प्रकरणरूप ग्रंथ ।

४ अत्र मुमुक्षोर्मोक्षसाधनस्य ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानस्य त्वंपदार्थशोधनपूर्वकत्वात्त्वंपदार्थशोधनपरं कूटस्थदीपाख्यं ग्रंथमारभमाण आचार्योऽस्य ग्रंथस्य वेदांतप्रकरणत्वेन तदीयैरेव विषयादिभिस्तद्वत्तासिद्धिमभिमेत्य त्वंपदलक्ष्यवाच्यौ कूटस्थजीवौ सदृष्टांतं भेदेन निर्दिशति—

५] स्वादित्यदीपिते कुड्ये दर्पणादित्यदीप्तिवत् कूटस्थभासितः देहः धीस्थजीवेन भास्यते ॥

६) खादित्यदीपिते खे आदित्यः खादित्यः प्रसिद्धः सूर्य इत्यर्थः । तेन च तत्संबंध्यालोको लक्ष्यते । तेन दीपिते प्रकाशिते। कुड्ये दर्पणादित्यदीप्तिवत् दर्पणेषु निपत्य पर्यावृत्तैश्च कुड्यसंबद्धैरादित्यरश्मिभिस्तत्प्रकाशनमिव । कूटस्थभासितः कूटस्थेनाविकारिचैतन्येन भासितः प्रकाशितो देहो धीस्थजीवेन बुद्धिस्थचिदाभासेन भास्यते प्रकाश्यते । अनेन सामान्यतो विशेषतश्च कुड्यावभासकादित्यप्रकाशद्वयमिव देहावभासकचैतन्यद्वयमस्तीति प्रतिज्ञातं भवति ॥ १ ॥

॥ १ ॥ देहके बाहिर औ भीतर चिदाभासका ब्रह्म औ कूटस्थसैं भेदकरि निरूपण

॥ ३२०४—३३६४ ॥

॥ १ ॥ "त्वं"पदके लक्ष्य औ वाच्यके कथनपूर्वक देहके बाहिर चिदाभास औ ब्रह्मका भेद ॥

॥ ३२०४—३२५९ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांतसहित "त्वं"पदके लक्ष्य औ वाच्यका कथन ॥

४ इस संसारविषै मुमुक्षुपुरुषकूं मोक्षका साधन जो ब्रह्मआत्माकी एकताका ज्ञान है ताकूं "त्वं" पदार्थके शोधनपूर्वक होनैतैं । "तत्त्वमसि" महावाक्यगत "त्वं"पदके अर्थके शोधनपर कूटस्थदीपनामकग्रंथकूं आरंभ करतेहुये आचार्य । इस कूटस्थदीपग्रंथकूं वेदांतशास्त्रका प्रकरण होनैकरि तिस वेदांतशास्त्रकेहीं विषयआदिकच्यारीअनुबंधनकरि अनुबंधवान्‌ताकी सिद्धि है। इस अभिप्रायकरिके "त्वं"पदके लक्ष्य औ वाच्यरूप कूटस्थ औ जीवकूं दृष्टांतसहित भेदकरि कहैहैं:—

५] आकाशगतआदित्यकरि प्रकाशित भित्तिविषै दर्पणगतआदित्यके दीप्ति जो प्रकाश ताकी न्याई कूटस्थकरि भासित जो देह है। सो बुद्धिविषै स्थित जीवकरि भासित होवैहै ॥

६) आकाशविषै प्रसिद्ध सूर्य है । तिसकरि इहां तिसका संबंधी आलोक जो प्रकाश सो लखियेहै ॥ तिस आकाशविषै स्थित सूर्यके प्रकाशकरि प्रकाशित भित्तिविषै दर्पणगतआदित्यकी दीप्तिकी न्याई कहिये अनेक दर्पणनविषै पतन होयके पीछे लौटे औ भित्तिसैं संबंधकूं पाये जे सूर्यके किरण तिनकरि भित्तिके प्रकाशकी न्याई । अविकारी चैतन्यकरि प्रकाशित जो देह है। सो बुद्धिविषै स्थित चिदाभासरूप जीवकरि प्रकाशित होवैहै ॥ इस कथनकरि सामान्यतैं औ विशेषतैं भित्तिके प्रकाशक सूर्यके दोप्रकाशनकी न्याई देहके सामान्यतैं औ विशेषतैं प्रकाशक दोचैतन्य हैं । यह अर्थ प्रतिज्ञा कियाहै ॥ १ ॥

अनेकदर्पणादित्यदीप्तीनां बहुसंधिषु ।
इतरा व्यज्यते तासामभावेऽपि प्रकाशते ॥ २ ॥
चिदाभासविशिष्टानां तथानेकधियामसौ ।
संधिं धियामभावं च भासयन्प्रविविच्यताम् ॥३॥

७ ननु तत्र दर्पणादित्यदीप्तिव्यतिरेकेण खादित्यदीप्तिर्नोपलभ्यत इत्याशंक्य ताभ्यस्तां विभज्य दर्शयति—

८] अनेकदर्पणादित्यदीप्तीनां बहुसंधिषु इतरा व्यज्यते। तासां अभावे अपि प्रकाशते ॥

९) या अनेका बहुदर्पणजन्याः कुड्ये तत्र तत्र मंडलाकारविशेषप्रभा दृश्यंते । तासां संधौ मध्ये । इतरा सामान्यप्रकाशरूपा खादित्यप्रभा व्यज्यते अभिव्यक्तोपलभ्यते। तासां दर्पणजन्यप्रभाणां अभावे दर्पणापगमादिना असत्त्वे च स्वयं सर्वत्र प्रकाशते ॥ २ ॥

१० दृष्टांतसिद्धमर्थं दार्ष्टांतिके योजयति (चिदाभासेति)—

११] तथा चिदाभासविशिष्टानां अनेकधियां संधिं च धियां अभावं भासयन् असौ प्रविविच्यताम् ॥

१२) तथा तेनैव प्रकारेण। चिदाभासविशिष्टानां चित्प्रतिबिंबयुक्तानां अनेकधियां अनेकासां बुद्धिवृत्तीनां घटज्ञानादि-

॥ २ ॥ प्रथमश्लोकउक्तदृष्टांतका वर्णन ॥

७ ननु । तिस भित्तिविषै दर्पणगतसूर्यकी दीप्ति जे प्रकाश । तिनसैं भिन्नकरि आकाशगतसूर्यकी दीप्ति नहीं देखियेहै । यह आशंकाकरि तिन दर्पणगतदीप्तिनतैं तिस आकाशगतसूर्यकी प्रभाकूं विभागकरिके दिखावैहैं:—

८] अनेकदर्पणगतसूर्यकी दीप्तिनकी बहुतसंधिनविषै अन्यसूर्यकी प्रभा प्रगट देखियेहै। सो तिनकेअभाव हुये बी प्रकाशतीहै ॥

९) जो बहुतदर्पणनसैं जन्य भित्तिविषै तहां तहां गोलआकारवाली विशेषप्रभा देखियेहैं । तिनकी संधि जो मध्य तिसविषै दूसरी सामान्यप्रकाशरूप आकाशगतसूर्यकी प्रभा स्पष्ट प्रतीत होवैहै औ सो आकाशगतसूर्यकी प्रभा तिन दर्पणसैं जन्य अनेकप्रभाओंके अभावके हुये कहिये दर्पणनके नाशआदिककरि असद्भावके हुये आप सारीभित्तिविषै प्रकाशतीहै ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ दृष्टांतसिद्धअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

१० दृष्टांतमैं सिद्धअर्थकूं दार्ष्टांतिकाविषै जोडतेहैं:—

११]तैसैं चिदाभासविशिष्ट अनेकबुद्धिवृत्तिनकी संधिकूं औ बुद्धिवृत्तिनके अभावकूं प्रकाशताहुया यह कूटस्थ है। सो विवेचन करना ॥

१२) तैसैं तिस दर्पणउक्तप्रकारसैंहीं चिदाभासविशिष्ट कहिये चेतनके प्रतिबिंबकरि युक्त अनेक घटादिज्ञानके वाच्य बुद्धिवृत्तिनकी

टीकांकः ३२१३ टिप्पणांकः ६८९	¹⁴घटैकाकारधीस्था चिद्घटमेवावभासयेत् । घटस्य ज्ञातता ब्रह्मचैतन्येनावभासते ॥ ४ ॥	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ८८६

शब्दवाच्यानां । संधिं अंतरालं जाग्रदादौ धियां तासामेव बुद्धिवृत्तीनां अभावं च सुषुप्त्यादौ भासयन् प्रकाशयन् । असौ कूटस्थः प्रविविच्यतां ताभ्यो भेदेन ज्ञायतामित्यर्थः ॥ ३ ॥

१३ इदानीं देहांतः कूटस्थचिदाभासयोः भेदमदर्शनाय देहाद्बहिरपि चिदाभासब्रह्मणी विभज्य दर्शयति—

१४] घटैकाकारधीस्था चित् घटं एव अवभासयेत् । घटस्य ज्ञातता ब्रह्मचैतन्येन अवभासते ॥

१५) घटैकाकारधीस्था चित् घटस्यैकस्याकार इवाकारो यस्याः सा घटैकाकारा । तथाविधायां बुद्धौ वर्तमानः चिदाभासः घटमेवावभासयेत् । तस्य घटस्य ज्ञातताख्यो धर्मो घटो ज्ञात इति व्यवहारहेतुर्यः स घटकल्पनाधिष्ठानेन ब्रह्मचैतन्येन साधनभूतेन अवभासते प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ४ ॥

---

⁸⁹संधिनकूं जाग्रतादिकविषै औ तिसीहीं बुद्धिवृत्तिनके अभावकूं सुषुप्तिआदिकविषै प्रकाशताहुया यह कूटस्थ कहिये सामान्यचेतन स्थित है । सो विवेचन करना कहिये तिन चिदाभाससहित बुद्धिवृत्तिनतैं भेदकरि जानना। यह अर्थ है ॥ ३ ॥

॥ ४ ॥ चिदाभाससैं घटकी औ ब्रह्मसैं घटके ज्ञाततारूप धर्मकी प्रकाश्यता ॥

१३ अब देहके भीतर कूटस्थ औ चिदाभासके भेदके दिखावनैंअर्थ । देहतैं वाहिर वी चिदाभास औ ब्रह्मकूं विभागकरिके दिखावैहैंः—

१४] घटके एकआकार कहिये समान आकार भई बुद्धिविषै स्थित चेतन घटकूंहीं प्रकाशताहै औ घटकी ज्ञातता ब्रह्मचैतन्यकरि भासतीहै ॥

१५) घटके एकआकारकी न्यांई है आकार जिसका ऐसी जो बुद्धि । तिसविषै वर्त्तमान जो चिदाभास । सो "यह घट है" । ऐसैं घटकूंहीं प्रकाशताहै औ तिस घटकी ज्ञातता कहिये ज्ञानकी विषयता तिसरूप धर्म जो "घट जान्या" इस व्यवहारका हेतु है । सो घटकी कल्पनाके अधिष्ठानसाधनरूप ब्रह्मचैतन्यकरि प्रकाशित होवैहै । यह अर्थ है॥४॥

---

८९ बाहिर घटाकारवृत्ति नष्ट भयी औ पटाकारवृत्ति उत्पन्न भई नहीं । तिसके बीचमैं जो अवकाश है । सो तिन वृत्तिनकी संधि है ॥ औ भीतरइच्छारूप वृत्ति नष्ट भई औ क्रोधरूप वृत्ति उपजी नहीं । तिसके बीचमैं जो अवकाश है सो संधि है ॥ यह जाग्रत्अवस्थाका अंत औ स्वप्न वा सुषुप्तिकी आदि औ स्वप्नका अंत अरु सुषुप्ति वा जाग्रतकी आदि औ सुषुप्तिका अंत अरु जाग्रत् वा स्वप्नकी आदिविषै जे अवकाशरूप संधियां हैं । तिनका उपलक्षण है ॥ इन संधिनविषै वृत्तिके स्फुरणके अभावतैं चिदाभासका अभाव है। यातैं केवलसामान्यचैतन्यरूप कूटस्थहीं प्रकाशताहै ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
८८७	अज्ञातत्वेन ज्ञातोऽयं घटो बुद्ध्युदयात्पुरा । ब्रह्मणैवोपरिष्टात्तु ज्ञातत्वेनेत्यसौ भिदा ॥ ५ ॥	३२१६
८८८	चिदाभासांतधीवृत्तिर्ज्ञानं लोहांतकुंतवत् । जाड्यमज्ञानमेताभ्यां व्याप्तः कुंभो द्विधोच्यते ६	टिप्पणांकः ६९०

१६ ननु ज्ञाततावभासकचैतन्येनैव घटप्रतीतिसंभवात् बुद्धिः किमर्थेत्याशंक्य घटस्य ज्ञाततादिभेदसिद्ध्यर्थेत्याह (अज्ञातत्वेनेति)—

१७] बुद्ध्युदयात् पुरा अयं घटः ब्रह्मणा एव अज्ञातत्वेन ज्ञातः उपरिष्टात् तु ज्ञातत्वेन इति असौ भिदा ॥

१८) बुद्ध्युदयात् पुराऽयं घटो ब्रह्मणैवाज्ञातत्वेन प्रकाशितः। बुद्ध्युत्पत्तौ सत्यां ज्ञातत्वेन ब्रह्मणैव प्रकाश्यत इति इयानेव भेदः नान्य इत्यर्थः ॥ ५ ॥

१९ नन्वेकस्यैव घटस्यं ज्ञातत्वाज्ञातत्वलक्षणं द्वैरूप्यं कथं संभवतीत्याशंक्य तदवबोधनाय ज्ञातताऽज्ञाततानिमित्तयोर्ज्ञानाज्ञानयोः स्वरूपं तावद्दर्शयति—

२०] चिदाभासांतधीवृत्तिः लोहांतकुंतवत् ज्ञानं। जाड्यं अज्ञानं। एताभ्यां व्याप्तः कुंभः द्वीधा उच्यते॥

॥ ५ ॥ घटकी ज्ञातताअज्ञातताके भेदअर्थ बुद्धिका उपयोग ॥

१६ ननु ज्ञातताके प्रकाशक चैतन्यकरिहीं घटकी प्रतीतिके संभवतें बुद्धि किसअर्थ है? यह आशंकाकरि घटकी ज्ञातता औ अज्ञातताके भेदकी सिद्धिअर्थ बुद्धि है। ऐसें कहैहैं:—

१७] **बुद्धिके उदयतें पूर्व यह घट ब्रह्मकरिहीं अज्ञात होनैकरि जान्याहै औ पीछे तौ ज्ञात होनैकरि जानियेहै। यह भेद है ॥**

१८) घटाकार भई बुद्धिकी उत्पत्तितैं पूर्व यह घट ब्रह्मचैतन्यकरिहीं "घटकूं मैं नहीं जानूंहूं" ऐसैं अज्ञात होनैकरि प्रकाशित होवैहै औ बुद्धिकी उत्पत्तिके भये घटकूं "मैं जानूंहूं।" ऐसैं ज्ञात होनैकरि यह घट ब्रह्मचैतन्यकरिहीं प्रकाशित होवैहै ॥ बुद्धिके नहोनै औ होनैविषै इतनाहीं भेद है। अन्य नहीं। यैंह अर्थ है ॥ ५ ॥

॥ ६ ॥ एकघटके ज्ञातपनै औ अज्ञातपनैके निमित्त ज्ञानअज्ञानका स्वरूप ॥

१९ ननु। एकहीं घटके ज्ञातता औ अज्ञातता-स्वरूप दोनूंरूप कैसैं संभवैहै? यह आशंकाकरि तिन दोनूंरूपनके बोधनअर्थ ज्ञातताअज्ञातताके निमित्त ज्ञानअज्ञानके स्वरूपकूं प्रथम दिखावैहैं:—

२०] **चिदाभास है अंतविषै जिसके। ऐसी बुद्धिवृत्ति ज्ञान है। लोहांतकुंतकी न्याई औ जडपना अज्ञान है। इन दोनूंकरि व्याप्त कुंभ दोप्रकारका कहियेहै ॥**

---

९० जैसैं अज्ञानरूप विशेषणविशिष्ट "अज्ञात घट वा मेरुआदिककूं मैं नहीं जानूंहूं" ऐसैं ब्रह्मचैतन्य प्रकाशताहै ॥ तैसैं ज्ञानरूप विशेषणकरि विशिष्ट "ज्ञातघटआदिककूं मैं जानूंहूं" ऐसैं ब्रह्मचैतन्यहीं प्रकाशताहै। यातैं बुद्धिके अनुदयतैं घटविषै अज्ञातता रहैहै औ बुद्धिके उदयतैं घटविषै अज्ञातता नष्ट होयके ज्ञातता प्रतीत होवैहै। यह बुद्धिके होनै नहोनैका किया भेद है। अन्य नहीं ॥

टीकांक: ३२२१ टिप्पणांक: ॐ	अज्ञातो ब्रह्मणा भास्यो ज्ञातः कुंभस्तथा न किम् ज्ञातत्वजननेनैव चिदाभासपरिक्षयः ॥ ७ ॥	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ८८९

२१) चिदाभासांतधीवृत्तिः चिदाभासश्चित्प्रतिबिंबः सोऽते पुरोभागे यस्याः सा धीवृत्तिः ज्ञानं इत्युच्यते । "बोधेद्धा बुद्धिः" इत्याचार्यैरभिधानात् । तत्र दृष्टांतः लोहांतकुंतवत् इति । जाड्यं स्वतः स्फूर्तिरहितत्वं अज्ञानं इत्युच्यते । एताभ्यां पर्यायेण व्याप्तः सर्वतः संबद्धः कुंभो द्विधोच्यते । ज्ञात इति अज्ञात इति चोच्यते इत्यर्थः ॥ ६ ॥

२२ नन्वज्ञातस्य कुंभस्य अज्ञानव्याप्तत्वाद्भवतु ब्रह्मावभास्यत्वं ज्ञानव्याप्तस्य तु ज्ञातस्य कुंभस्य कुतो ब्रह्मचैतन्यावभास्यत्वमित्याशंक्य अज्ञानस्य अज्ञातताजननमात्रेणेव ज्ञानस्यापि ज्ञातताजननमात्रेणोपक्षीणत्वादज्ञातकुंभवत् ज्ञातस्यापि ब्रह्मावभास्यत्वं भवतीत्याह—

२३] अज्ञातः ब्रह्मणा भास्यः तथा ज्ञातः कुंभः न किम् ॥

२४) यथा अज्ञातकुंभः ब्रह्मणा भास्यस्तथा ज्ञातकुंभो न किं ब्रह्मावभास्यो भवति किंतु भवत्येवेत्यर्थः ॥

२५ कुत इत्यत आह—

२६] ज्ञातत्वजननेन एव चिदाभासपरिक्षयः ॥ ७ ॥

---

२१) चिदाभास कहिये चेतनका प्रतिबिंब सो है अंतविषै जिसके ऐसी जो बुद्धिवृत्ति । सो ज्ञान ऐसैं कहियेहै ॥ "बोधविषै साक्षात्-बुद्धि है" इसप्रकार आचार्यनकरि कथन कियाहोनैतैं ॥ तिसविषै दृष्टांतः—लोहांतकुंतकी न्याई कहिये लोहरचितफल है अग्रभागविषै जिसके । ऐसै भाला । इस नामवाले शस्त्रविशेषकी न्याई औ जडपना जो आपतैंहीं स्फूर्तिरहितपना । सो अज्ञान ऐसैं कहियेहै ॥ इन ज्ञानअज्ञान दोनूंकरि क्रमसैं सर्वओरतैं संबंधकूं पाया जो घट । सो ज्ञात है अरु अज्ञात है । इसरीतिसैं दोभांतिका कहियेहै। यह अर्थ है ॥ ६ ॥

॥ ७ ॥ अज्ञातघटकी न्याई ज्ञातघटकी बी ब्रह्मसैं प्रकाश्यता ॥

२२ ननु । अज्ञातकुंभकूं अज्ञानसैं व्याप्त होनैतैं ब्रह्मकरि भासनैकी योग्यता होहु औ ज्ञानसैं व्याप्त ज्ञातकुंभकी तौ काहेतैं ब्रह्मचैतन्यकरि भासनैकी योग्यता है? यह आशंकाकरि अज्ञानकूं घटविषै अज्ञाततारूप धर्मके जननकरि कृतार्थ होनैकी न्याई ज्ञानकूं बी ज्ञाततारूप धर्मके जननमात्रकरि कृतार्थ होनैतैं। अज्ञातकुंभकी न्याई ज्ञातकुंभकूं बी ब्रह्मकरि भासनैकी योग्यता होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

२३] जैसैं अज्ञातकुंभ ब्रह्मकरि भासनैकूं योग्य है । तैसैं ज्ञातकुंभ क्या नहीं है ?

२४) जैसैं अज्ञातघट ब्रह्मकरि भासनैकूं योग्य है । तैसैं ज्ञातघट क्या ब्रह्मकरि भासनैकूं योग्य नहीं होवैहै ? किंतु होवैहीं है । यह अर्थ है ॥

२५ ज्ञातघट किस कारणतैं ब्रह्मकरि भासनैकूं योग्य है? तहां कहैहैं:—

२६] जातैं ज्ञातताके जननमात्रकरिहीं चिदाभासका परिक्षय कहिये कृतार्थपना होवैहै। तातैं ज्ञातघट बी ब्रह्मकरि भासताहै॥७॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ८९०	ॐआभासहीनया बुद्ध्या ज्ञातत्वं नैव जन्यते । तादृग्बुद्धेर्विशेषः को मृदादेः स्याद्विकारिणः ॥८॥	टीकांकः ३२२७
८९१	ज्ञात इत्युच्यते कुंभो मृदा लिप्तो न कुत्रचित् । धीमात्रव्याप्तकुंभस्य ज्ञातत्वं नेष्यते तथा ॥९॥	टिप्पणांकः ॐ

२७ नन्वज्ञाततताजननायाज्ञानमिव ज्ञातताजननायापि बुद्धिरेवालं किमनेन चिदाभासेनेत्याशंक्य चिदाभासरहिताया बुद्धेर्घटादिवदप्रकाशरूपत्वेन ज्ञातताजननं न संभवतीत्याह—

२८]**आभासहीनया बुद्ध्या ज्ञातत्वं न एव जन्यते तादृग्बुद्धेः विकारिणः मृदादेः कः विशेषः स्यात् ॥ ८ ॥**

२९ चिदाभासरहितबुद्धिव्याप्तस्य घटस्य ज्ञातत्वाभावं दृष्टांतप्रदर्शनेन स्पष्टयति (ज्ञात इति)—

३०] **कुत्रचित् मृदा लिप्तः कुंभः ज्ञातः इति न उच्यते तथा धीमात्रव्याप्तकुंभस्य ज्ञातत्वं न इष्यते ॥**

३१) लोके कुत्रचित् अपि घटः मृदा शुक्लकृष्णरूपया लिप्तः लेपनं प्राप्तः ज्ञातः इति नोच्यते यथा । तथा चिदाभासरहितबुद्धिव्याप्तस्यापि कुंभस्य ज्ञातत्वं न अभ्युपगम्यते इति भावः ॥ ९ ॥

॥ ८ ॥ चिदाभासरहित बुद्धिसैं घटज्ञातताके जननका असंभव ॥

२७ ननु । अज्ञातताके जननअर्थ अज्ञानकी न्याईं ज्ञातताके जननअर्थ बी बुद्धिहीं पूर्ण है। इस चिदाभासकरि क्या प्रयोजन है? यह आशंकाकरि चिदाभासरहितबुद्धिकूं घटादिककी न्याईं जडरूप होनैंकरि ज्ञातताका जनन संभवै नहीं । ऐसैं कहैहैंः—

२८] **आभासरहितबुद्धिकरि ज्ञातत्वकाहीं जनन होवै नहीं। यातैं तैसी चिदाभासरहित बुद्धिका औ विकारी** कहिये लेपनरूप परिणामकूं प्राप्त **मृत्तिकाआदिकका कौन भेद होवैगा? कोई** बी नहीं ॥ ८ ॥

॥९॥ चिदाभासरहितबुद्धिसैं व्याप्तघटकी ज्ञातताके अभावमैं दृष्टांत ॥

२९ चिदाभासरहितबुद्धिकरि व्याप्त घटकी ज्ञातताके अभावकूं दृष्टांतके दिखावनैंकरि स्पष्ट करैहैंः—

३०]**जैसैं कहूं बी मृत्तिकाकरि लिप्त हुया घट "ज्ञात" ऐसैं नहीं कहियेहै । तैसैं बुद्धिमात्रकरि व्याप्त घटकी ज्ञातता अंगीकार नहीं करियेहै ॥**

३१) लोकविषै काहुस्थलमैं बी जैसैं घट शुक्लकृष्णरूप मृत्तिकाकरि लेपनकूं प्राप्त भया "ज्ञात" ऐसैं नहीं कहियेहै।तैसैं चिदाभासरहितबुद्धिकरि व्याप्तघटकी बी ज्ञातता अंगीकार नहीं करियेहै । यह भाव है ॥ ९ ॥

टीकांकः ३२३२ टिप्पणांकः ६९१

३३ ज्ञातत्वं नाम कुंभे तच्चिदाभासफलोदयः ।
३६ न फलं ब्रह्मचैतन्यं मानात्प्रागपि सत्वतः ॥१०॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ८९२

३२ फलितमाह (ज्ञातत्वमिति)—

३३] तत् कुंभे चिदाभासफलोदयः ज्ञातत्वं नाम ॥

३४) यतः केवलायाः बुद्धेर्ज्ञातत्वजननासमर्थत्वमतः कुंभे चिदाभासलक्षणस्य फलस्योत्पत्तिरेव ज्ञातत्वं नाम प्रसिद्धमित्यर्थः ॥

३५ नन्वथापि चिदाभासो न कल्पनीयः ब्रह्मचैतन्यस्यैव फलस्य सद्भावादित्याशंक्याह (न फलमिति)—

३६] ब्रह्मचैतन्यं फलं न ॥

ॐ ३६) ब्रह्मचैतन्यं फलं घटादिस्फुरणं न भवति इति ॥

३७ कुत इत्यत आह—

३८] मानात् प्राक् अपि सत्वतः ॥

३९) मानात् प्रागपि प्रमाणप्रवृत्तेः पूर्वमपि विद्यमानत्वात् फलस्य तु तदुत्तरकालीनत्वनियमादिति भावः ॥ १० ॥

॥ १० ॥ फलितअर्थ ॥

३२ फलितअर्थकूं कहैहैं:—

३३] तातैं घटविषै चिदाभासरूप फलका उदयहीं ज्ञातपना प्रसिद्ध है ॥

३४)जातैं केवलबुद्धिकूं ज्ञातताके जननविषै असमर्थपना है। यातैं घटविषै चिदाभासरूप फलकी उत्पत्तिहीं ज्ञातता प्रसिद्ध है। यह अर्थ है ॥

३५ ननु। तौ बी चिदाभास कल्पना करनेकूं योग्य नहीं है। काहेतें ब्रह्मचैतन्यरूपहीं फलके सद्भावतें। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३६] ब्रह्मचैतन्य फल नहीं है ॥

ॐ ३६) ब्रह्मचैतन्य घटादिकका स्फुरणरूप फल नहीं होवैहै ॥

३७ ब्रह्मचैतन्य काहेतें फल नहीं है? तहां कहैहैं:—

३८] प्रमाणतैं पूर्व बी सद्भावतैं ॥

३९) प्रमाणकी प्रवृत्तितैं पूर्व बी ब्रह्मकूं विद्यमान होनैतैं औ फल जो घटादिकका स्फुरण ताकूं तौ प्रमाणकी प्रवृत्तितैं पीछलेकालविषैहीं होनैके नियमतैं ब्रह्मचैतन्य फल नहीं है। यह भाव है ॥ १० ॥

९१ इहां यह प्रक्रियाका भेद है:—जैसैं कोठेमैं भर्या जो जल सो छिद्रद्वारा निकसिके नालेका आकार होयके बगीचेके केदार नाम क्यारीविषै जायके तिसके समानआकारवाला होवैहै। तैसैं देहके भीतर स्थित जो अंतःकरण। सो इंद्रियरूप छिद्रद्वारा निकसिके नालेके समानआकार होयके केदारस्थानीघटादिकविषयके समानआकार होवैहै। तहां

अवच्छेदवादकी रीतिसैं

(१) अंतःकरणविशिष्टचेतन। **प्रमाताचेतन** है औ

(२) इंद्रियसैं लेके विषयपर्यंत जो वृत्ति है। तिसकरि विशिष्टचेतन। **प्रमाणचेतन** है औ

(३) घटादिअवच्छिन्नचेतन अज्ञात होवै तब **विषयचेतन** औ **प्रमेयचेतन** कहियेहै औ

(४) सोइ ज्ञात होवै तब **फलचेतन** कहियेहै। ताहीकूं **प्रमितिचेतन** औ **प्रमाचेतन** बी कहैहैं।

ऐसैं **च्यारीप्रकारकाचेतन** है औ

आभासवादकी रीतिसैं

(१) साभास (चिदाभाससहित) अंतःकरणविशिष्टचेतन **प्रमाताचेतन** है औ

(२) साभासवृत्तिविशिष्टचेतन। **प्रमाणचेतन** है औ

(३) घटादिअवच्छिन्नचेतन **विषयचेतन** है। ताहीकूं **प्रमेयचेतन** बी कहैहैं औ

(४) वृत्तिके संबंधसैं घटादिकनमैं जो चेतनका प्रतिबिंब नाम आभास होवैहै। सो **फलचेतन** है। घटादिअवच्छिन्नब्रह्मचेतन फल नहीं ॥

इतना भेद है ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
८९३	४१पराग्र्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता । संवित्सैवेह मेयोऽर्थो वेदांतोक्तिप्रमाणतः ॥११॥	३२४०
८९४	४३इति वार्तिककारेण चित्सादृश्यं विवक्षितम् । ४६ब्रह्मचित्फलयोर्भेदः सहस्र्यां विश्रुतो यतः ॥१२॥	टिप्पणांकः ॐ

४० नन्विदं "परागर्थप्रमेयेषु" इत्यादि-सुरेश्वरवार्तिकविरुद्धमित्याशंक्य तद्विवक्षानभिज्ञस्य इदं चोद्यमिति परिहरति—

४१] परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता संवित् सा एव इह वेदांतोक्तिप्रमाणतः मेयः अर्थः ॥

४२) अस्य चायमर्थः । **परागर्थाः** बाह्या घटादयः पदार्थाः तेषु **प्रमेयेषु** प्रमाणविषयेषु सत्सु । **या** प्रमाणफलत्वेन अभ्युपेता **संवित्** अस्ति । **सैवेह** अस्मिन्वेदांतशास्त्रे । **वेदांतोक्तिप्रमाणतः** वेदांतवाक्यलक्षणप्रमाणेन **मेयोऽर्थः** ज्ञातव्योऽर्थः ॥११॥

४३] इति वार्तिककारेण चित् सादृश्यं विवक्षितम् ॥

४४) इति अनेन वार्तिकेन ब्रह्मचैतन्यसदृशश्चिदाभासः प्रमाणफलत्वेन विवक्षितो न ब्रह्मचैतन्यमिति भावः ॥

४५ वार्तिककाराणामीदृशी विवक्षेति कुतोऽवगम्यत इत्याशंक्य तद्गुरुभिः श्रीमदाचार्यैरुपदेशसहस्र्यां ब्रह्मचैतन्यचिदाभासयोर्भेदस्य प्रतिपादितत्वादित्याह (ब्रह्मचिदिति)—

॥ ११ ॥ भिन्नचिदाभासरूप फलकी सिद्धि ॥

४० ननु । यह ब्रह्मतैं भिन्न चिदाभासरूप फलका कथन "पराक्अर्थरूप प्रमेयनके हुये" इत्यादि सुरेश्वराचार्यके वार्तिकसैं विरुद्ध है । यह आशंकाकरि तिन सुरेश्वराचार्यनकी कहनैकी इच्छाके नहीं जाननैहारे अवच्छेद्वादीका यह प्रश्न है। ऐसैं परिहार करैहैं:—

४१] पराक्अर्थरूप प्रमेयनके हुये जो फलरूप होनैकरि मानी संवित् है । सोईहीं इहां वेदांतउक्तिरूप प्रमाणतैं प्रमेयअर्थ है ॥

४२) इस वार्तिककारके वचनका यह अर्थ है:— पराक्अर्थ जो बाह्यघटादिकपदार्थ हैं। तिनकूं प्रमाणके विषय हुये जैसा प्रमाणके फलरूप होनैकरि अंगीकार करी संवित् कहिये चेतन है। सोई तैसा चेतनहीं इहां वेदांतशास्त्रविषै वेदांतवाक्यरूप प्रमाणकरि प्रमेयअर्थ कहिये ज्ञातव्यअर्थ है ॥ ११ ॥

४३] ऐसैं वार्तिककारकरि चेतनका सदृशपना कहनैकूं इच्छित है ॥

४४) इस वार्तिकरूप वचनकरि ब्रह्मचैतन्यके तुल्य चिदाभास प्रमाणका फल होनैकरि कहनैकूं इच्छित है । ब्रह्मचैतन्य नहीं । यह भाव है ॥

४५ वार्तिककारनकी ऐसी कहनैकी इच्छा है। यह काहेतैं जानियेहै? यह आशंकाकरि तिन वार्तिककारनके गुरु श्रीमत्शंकराचार्यनकरि उपदेशसहस्रीनामक ग्रंथविषै ब्रह्मचैतन्य औ चिदाभासके भेदकूं प्रतिपादन किया होनैतैं । वार्तिककारनकी ऐसी कहनैकी इच्छा जानियेहै। ऐसैं कहैहैं:—

टीकांकः ३२४६ टिप्पणांकः ॐ

ॐआभास उदितस्तस्माज्ज्ञातत्वं जनयेद्घटे ।
तत्पुनर्ब्रह्मणा भास्यमज्ञातत्ववदेव हि ॥ १३ ॥
५१
धीवृत्त्याभासकुंभानां समूहो भास्यते चिता ।
कुंभमात्रफलत्वात्स एक आभासतः स्फुरेत् ॥ १४ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ८९५ ८९६

४६] यतः ब्रह्मचित्फलयोः भेदः सहस्र्यां विश्रुतः ॥

ॐ ४६) ब्रह्म च चित्फलं च ब्रह्मचित्फले तयोरिति विग्रहः ॥ १२ ॥

४७ एवं च सति प्रकृते किमायातमित्यत आह (आभास इति)—

४८] तस्मात् घटे उदितः आभासः ज्ञातत्वं जनयेत्। तत् पुनः अज्ञातत्ववत् ब्रह्मणा एव भास्यं हि ॥

४९) यस्माद्ब्रह्मचित्फलयोर्भेदः प्रसिद्धः । तस्मात् घटे उदितः उत्पन्नः आभासः चिदाभासः । तत्र घटे ज्ञातत्वं जनयेत् । उत्पन्नं तत् ज्ञातत्वं पुनरज्ञातत्ववत् ब्रह्मणैव अवभास्यं भवति । हि प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ १३ ॥

५० एवं ब्रह्मचिदाभासयोर्भेदमुपपादितं विषयप्रदर्शनेन स्पष्टयति—

५१] धीवृत्त्याभासकुंभानां समूहः चिता भास्यते । कुंभमात्रफलत्वात् आभासतः सः एकः स्फुरेत् ॥

ॐ ५१) चिता ब्रह्मचैतन्येनेत्यर्थः । चिदाभासस्य कुंभमात्रनिष्ठफलरूपत्वात्तेनाभासेन सः घटः एकः एव स्फुरेत् भासेतेत्यर्थः ॥ १४ ॥

४६] जातैं ब्रह्मचित्फलका भेद उपदेशसहस्रीविषै सुन्याहै । तातैं यह जानियेहै ॥

ॐ ४६) ब्रह्मचित्फल कहिये ब्रह्म औ चिदाभासरूप फल तिनका। यह समास है १२

॥ १२ ॥ ज्ञातताकी चिदाभाससैं उत्पत्ति औ ब्रह्मसैं भास्यता ॥

४७ ऐसैं हुये प्रकृत जो घटकी ज्ञातता तिसविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

४८] तातैं घटविषै उदय भया आभास ज्ञातपनैकूं जनताहै । सो ज्ञातपना फेर अज्ञातपनैकी न्याईं ब्रह्मकरिहीं भास्य होवैहै । यह प्रसिद्ध है ॥

४९) जातैं ब्रह्म औ चिदाभासरूप फलका भेद प्रसिद्ध है। तातैं घट जो बुद्धिवृत्तिविशिष्ट-कुंभ । तिसविषै उत्पन्न भया चिदाभास तिस घटविषै ज्ञातपनैकूं जनताहै औ उत्पन्न भया सो ज्ञातपना अज्ञातपनैकी न्याईं ब्रह्मकरिहीं भासनैकूं योग्य होवैहै सो प्रसिद्ध है । यह अर्थ है ॥ १३ ॥

॥ १३ ॥ चिदाभास औ ब्रह्मके उपपादन किये भेदकी विषयके दिखावनैकरि स्पष्टता ॥

५० ऐसैं ब्रह्म औ चिदाभासके उपपादन किये कहिये युक्तिकरि कथन किये भेदकूं विषयके दिखावनैंकरि स्पष्ट करैहैं:—

५१] इंद्रियद्वारा निर्गत बुद्धिवृत्ति आभास औ घट । इन तीनका समूह चित्‌करि भासताहै औ चिदाभासकूं घटमात्रविषै स्थित फलरूप होनैतैं तिस आभासकरि सो घट एकहीं स्फुरताहै॥

ॐ ५१) चित्‌करि कहिये ब्रह्मचैतन्यकरि । यह अर्थ है ॥ चिदाभासकूं घटमात्रविषै स्थित फलरूप होनैतैं आभासकरि सो घट एकहीं स्फुरताहै कहिये भासताहै ॥ १४ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
८९७	चैतन्यं द्विगुणं कुंभे ज्ञातत्वेन स्फुरत्यतः । अन्येऽनुव्यवसायाख्यमाहुरेतद्यथोदितम् ॥१५॥	३२५२
८९८	घटोऽयमित्यसावुक्तिराभासस्य प्रसादतः । विज्ञातो घट इत्युक्तिर्ब्रह्मानुग्रहतो भवेत् ॥१६॥	टिप्पणांकः ६९२

५२ कुंभस्य चिदाभासब्रह्मोभयभास्यत्वे लिंगमाह (चैतन्यमिति)—

५३] अतः कुंभः ज्ञातत्वेन द्विगुणं चैतन्यं स्फुरति ॥

५४) अतः घटस्य ब्रह्मचिदाभासोभयभास्यत्वात् कुंभे ज्ञातत्वेन द्विगुणं चैतन्यं भाति ॥

५५ इदमेव घटज्ञातताविभासकं चैतन्यं तार्किकैर्नामांतरेण व्यवह्रियत इत्याह (अन्य इति)—

५६] यथोदितं एतत् अन्ये अनुव्यवसायाख्यं आहुः ॥

५७) यथोदितं यथोक्तं । एतत् एवं ब्रह्मचैतन्यं । अन्ये तार्किकाः अनुव्यवसायाख्यं ज्ञानांतरं आहुः । इति योजना ॥ १५ ॥

५८ अयं घट इति व्यवहारभेदादपि चिदाभासब्रह्मणोर्भेदोऽवगंतव्य इत्याह (घटोऽयमिति)—

५९] "अयं घटः" इति असौ उक्तिः आभासस्यप्रसादतः।"विज्ञातः घटः" इति उक्तिः ब्रह्मानुग्रहतः भवेत्॥१६॥

॥१४॥ घटकूं चिदाभास औ ब्रह्म दोनूंकरि भास्य होनैमें हेतु औ नैयायिकनसें उक्त ब्रह्मका नामांतरसें व्यवहार ॥

५२ घटकूं चिदाभास औ ब्रह्म इन दोनूंकरि भास्य होनेविषै लिंग जो हेतु ताकूं कहैहैं:—

५३] यातें घटविषै ज्ञातपनैकरि द्विगुणचैतन्य स्फुरताहै ॥

५४) यातें घटकूं ब्रह्म औ चिदाभास इन दोनूंकरि भास्य होनैतें घटविषै ज्ञातपनैकरि द्विगुण कहिये दोप्रकारका चैतन्य । ब्रह्म औ चिदाभासरूप प्रकाशताहै ॥

५५ यहहीं घटकी ज्ञातताका प्रकाशक चैतन्य जो ब्रह्म । सो नैयायिकनकरि अन्यनामसें व्यवहार करियेहै । ऐसें कहैहैं:—

५६] यथाउक्त इस चेतनकूं अन्यवादी अनुव्यवसायनामवाला कहतेहैं ॥

५७) जैसें है तैसें कथन किये इसीहीं ब्रह्मचैतन्यकूं अन्य तार्किक अनुव्यवसायनामवाला दूसराज्ञान कहतेहैं। यह योजना है१५

॥ १५ ॥ घटके व्यवहारके भेदतें चिदाभास औ ब्रह्मका भेद ॥

५८ "यह घट है" औ "ज्ञात कहिये जान्या घट है" इस व्यवहारके भेदतें बी चिदाभास औ ब्रह्मका भेद जाननैकूं योग्य है । ऐसें कहैहैं:—

५९] "यह घट है" ऐसा यह कथन आभासके प्रसादतें होवैहै औ "विज्ञात घट है" यह कथन ब्रह्मके अनुग्रहतें होवैहै ॥ १६ ॥

६९२ ज्ञानके ज्ञानका नाम अनुव्यवसायज्ञान है ॥ देखो ४४५ वें टिप्पणविषै ॥

टीकांक: ३२६० टिप्पणांक: ॐ		कूटस्थदीप: ॥ ८ ॥ श्लोकांक:
	[६१] आभासब्रह्मणी देहाद्बहिर्यद्वद्विवेचिते । तद्वदाभासकूटस्थौ विविच्येतां वपुष्यपि ॥ १७ ॥	८९९
	[६३] अहंवृत्तौ चिदाभासः कामक्रोधादिकेषु च । संव्याप्य वर्तते तप्ते लोहे वह्निर्यथा तथा ॥ १८ ॥	९००
	[६५] स्वमात्रं भासयेत्तप्तं लोहं नान्यत्कदाचन । एवमाभाससहिता वृत्तयः स्वस्वभासिकाः ॥ १९ ॥	९०१

६० देहाद्बहिश्चिदाभासब्रह्मणी विविच्येते यथा । तथा देहांतश्चिदाभासकूटस्थौ विवेचनीयावित्याह (आभासेति)—

६१] देहात् बहिः आभासब्रह्मणी यद्वत् विवेचिते । तद्वत् वपुषि अपि आभासकूटस्थौ विविच्येताम् ॥ १७ ॥

६२ ननु देहाद्बहिश्चिदाभासव्याप्यघटाकारवृत्तिवदांतरविषयगोचरवृत्त्यभावात् कथं तद्व्यापकश्चिदाभासोऽभ्युपगम्यते इत्याशंक्य विषयगोचरवृत्त्यभावेप्यहमादिवृत्तिसद्भावात्तद्व्यापकश्चिदाभासोऽभ्युपगंतुं शक्यते इति सदृष्टांतमाह (अहमिति)—

६३] यथा तप्ते लोहे वह्निः संव्याप्य वर्तते तथा अहंवृत्तौ च कामक्रोधादिकेषु चिदाभासः ॥ १८ ॥

६४ अहमादिवृत्तीनामेव चिदाभासभास्यत्वं दृष्टांतप्रपंचनेन स्पष्टयति (स्वमात्रमिति)—

॥ २ ॥ देहके भीतर कूटस्थ औ चिदाभासका भेद ॥ ३२६०—३२८८ ॥

॥ १ ॥ उक्तअर्थके अनुवादपूर्वक देहके भीतर कूटस्थ औ चिदाभासके विवेचनकी प्रेरणा ॥

६० देहतैं बाहिर चिदाभास औ ब्रह्म जैसैं विवेचन करियेहैं । तैसैं देहके भीतर चिदाभास औ कूटस्थ विवेचन करनैकूं योग्य हैं । ऐसैं कहैहैं:—

६१] देहतैं बाहिर आभास औ ब्रह्म जैसैं विवेचन किये । तैसैं देहविषै बी आभास औ कूटस्थ विवेचन करना ॥ १७ ॥

॥ २ ॥ दृष्टांतसैं देहके भीतरकी वृत्तिनमैं चिदाभासका वर्णन ॥

६२ ननु देहतैं बाहिर चिदाभासकरि व्याप्य घटाकारवृत्तिकी न्याईं देहके भीतर विषयगोचरवृत्तिनके अभावतैं तिन वृत्तिनविषै व्यापकचिदाभास तुमकरि कैसैं अंगीकार करियेहै ? यह आशंकाकरि देहके भीतर विषयगोचरवृत्तिनके अभाव हुये बी अहंआदिकवृत्तिनके सद्भावतैं तिन अहंआदिकवृत्तिनविषै व्यापकचिदाभास अंगीकार करनैकूं शक्य होवैहै । ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

६३] जैसैं तप्तलोहविषै अग्नि व्यापिके वर्तताहै । तैसैं अहंवृत्तिविषै औ कामक्रोधादिरूप वृत्तिनविषै चिदाभास सम्यक् व्यापिके वर्तताहै ॥ १८ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक १८ उक्त दृष्टांतके विस्तारसैं चिदाभासकूं वृत्तिनकीहीं भास्यता ॥

६४ अहंआदिकवृत्तिनकीहीं चिदाभासकरि भासनैकी योग्यताकूं १८ वें श्लोकउक्तदृष्टांतके वर्णनकरि स्पष्ट करैहैं:—

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
९०२	६७ क्रमाद्विच्छिद्य विच्छिद्य जायंते वृत्तयोऽखिलाः । सर्वा अपि विलीयंते सुप्तिमूर्छासमाधिषु ॥ २० ॥	३२६५
९०३	६९ संधयोऽखिलवृत्तीनामभावाश्चावभासिताः । निर्विकारेण येनासौ कूटस्थ इति चोच्यते॥२१॥	टिप्पणांकः ६९३

६५] तप्तं लोहं स्वमात्रं भासयेत् । अन्यत् कदाचन न । एवं आभाससहिताः वृत्तयः स्वस्वभासिकाः ॥१९॥

६६ एवं चिदाभासं व्युत्पाद्य कूटस्थस्वरूपं व्युत्पादयितुं तदुपयोगिनं वृत्त्यभावावसरं दर्शयति—

६७] क्रमात् विच्छिद्य विच्छिद्य अखिलाः वृत्तयः जायंते । सुप्तिमूर्छासमाधिषु सर्वाः अपि विलीयंते ॥२०॥

६८ भवत्वेवं समाध्यादौ वृत्तिविलयो अनेन कथं कूटस्थोऽवगम्यते इत्याशंक्य वृत्त्यभावसाक्षित्वेनासाववगम्यते इत्याह (संधय इति)—

६९] अखिलवृत्तीनां संधयः च अभावाः येन निर्विकारेण अवभासिताः असौ कूटस्थः इति च उच्यते ॥

६५] जैसैं तप्तलोह केवल आपकूंहीं प्रकाशताहै । अन्यवस्तुकूं कदाचित् प्रकाशता नहीं । ऐसैं चिदाभाससहित अहंआदिकवृत्तियां बी अपनी अपनी प्रकाशक हैं । अन्यविषयकी नहीं ॥ १९ ॥

॥ ४ ॥ कूटस्थके उपपादनमैं उपयोगी वृत्तिनके अभावका अवसर ॥

६६ ऐसैं देहके भीतर चिदाभासकूं बोधनकरिके कूटस्थके स्वरूपकूं बोधन करनैवास्ते तिसमैं उपयोगी वृत्तिनके अभावके कालकूं दिखावैहैं:—

६७] जाग्रत् औ स्वप्नविषै क्रमतैं विच्छेदकूं पायके विच्छेदकूं पायके कहिये अवकाशकूं पायके । सकलवृत्तियां उत्पन्न होवैहैं औ सुषुप्ति मूर्छा अरु समाधिविषै सर्व बी वृत्तियां विलयकूं पावैहैं ॥ २० ॥

॥ ५ ॥ वृत्तिनके अभावके साक्षीपनेकरि कूटस्थकी प्रतीति ॥

६८ ननु ऐसैं समाधिआदिकविषै वृत्तिनका विलय होहु । इसकरि कूटस्थ कैसैं जानियेहै? यह आशंकाकरि वृत्तिनके अभावका साक्षी होनैंकरि यह कूटस्थ जानियेहै। ऐसैं कहैहैं:—

६९] सर्ववृत्तिनकी संधि औ अभाव जिस निर्विकारकरि भासतेहैं । सो चैतन्य कूटस्थ ऐसैं कहियेहैं ॥

९३ यद्यपि तत्वानुसंधानआदिकग्रंथनविषै प्रकाशक (आवरणनिवर्त्तक) माया औ अंतःकरणके परिणामकूं वृत्ति कहाहै औ वृत्तिप्रभाकरविषै अस्तित्व्यवहारके हेतु अविद्याअंतःकरणके परिणामकूं वृत्ति कहाहै । यातैं माया औ अंतःकरणका ज्ञानरूप परिणामहीं वृत्तिशब्दका अर्थ है। परिणाममात्र नहीं ॥ यातैं क्रोधसुखादिकअनेकपरिणामनकूं वृत्ति मानिके वृत्तिके विषयका अभाव कहना बनै नहीं । किंतु सो सर्वपरिणामहीं वृत्तिके विषय हैं औ तिनकी प्रकाशक सत्वगुणके परिणामरूप वृत्ति तिनतैं अन्य होवैहै । तथापि सुख। दुःख। काम। क्रोध। तृप्ति। क्षमा। धृति। अधृति। लज्जा औ भयआदिक सर्व अंतःकरणके परिणामनका अनेकस्थलमैं वृत्तिशब्दसैं व्यवहार लिख्याहै । यातैं स्थूलबुद्धिवाले अधिकारिनकूं सुगमताकरि समुजावनै निमित्त या ग्रंथकारनै बी अंतःकरणके परिणाममात्रका वृत्तिशब्दसैं व्यवहार कियाहै। यातैं अहंआदिकवृत्तिनकूं विषयरूपताके वा विषयवान्‌ताके आभावतैं वे वृत्तियां अन्यविषयकी प्रकाशक नहीं हैं । यह कथन संभवैहै ॥

टीकांकः २२६९ टिप्पणांकः ॐ	घटे द्विगुणचैतन्यं यथा बाह्ये तथांतरे । वृत्तिष्वपि ततस्तत्र वैशद्यं संधितोऽधिकम् ॥२२॥ ज्ञातताऽज्ञातते नस्तो घटवद्वृत्तिषु क्वचित् । स्वस्य स्वेनाग्रहीतत्वात्ताभिश्चाज्ञाननाशनात्॥२३	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९०४ ९०५

ॐ ६९) वृत्तिसंधयः वृत्त्यभावाश्च येन चैतन्येनावभास्यंते स कूटस्थः अवगंतव्य इत्यर्थः ॥ २१ ॥

७० एवं च सति किं फलितमित्यत आह (घट इति)—

७१] बाह्ये घटे यथा द्विगुणचैतन्यं तथा आंतरे वृत्तिषु अपि ॥

७२) बाह्ये घटे यथा घटमात्रावभासकश्चिदाभासः घटस्य ज्ञाततावभासकं ब्रह्मचैतन्यं चेति चैतन्यद्वैगुण्यं । तथांतरे अहंकारादिवृत्तिष्वपि कूटस्थचैतन्यं वृत्त्यवभासकश्चिदाभासकश्चेति द्विगुणचैतन्यं अस्ति ॥

७३ तत्रोपपत्तिमाह—

७४] ततः संधितः तत्र वैशद्यं अधिकम् ॥

७५) यतो द्विगुणचैतन्यमस्ति ततः संधितः संधिभ्यः तत्र वृत्तिषु वैशद्यम् अधिकं दृश्यत इति शेषः ॥ २२ ॥

७६ नन्वत्रापि घटादिष्विव ज्ञातताज्ञाततावभासकत्वेन कूटस्थः किं नेष्यत इत्याशंक्य तत्र ज्ञाततायभावादेवेत्याह (ज्ञाततेति)—

७७]घटवत् वृत्तिषु क्वचित् ज्ञातताऽज्ञातते न स्तः ॥

ॐ ६९) वृत्तिनकी संधियां औ वृत्तिनका अभाव जिस चैतन्यकरि भासतेहैं । सो "कूटस्थ" ऐसैं जाननैकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥ २१ ॥

॥ ६ ॥ संधिनतैं वृत्तिनमैं अधिकस्वच्छतारूप फलित॥

७० ऐसैं हुये क्या फलित भया ? तहां कहैहैं:—

७१] जैसैं बाह्यघटविषै द्विगुणचैतन्य है तैसैं आंतरवृत्तिविषै बी द्विगुणचैतन्य है ॥

७२) बाह्यघटविषै जैसैं घटमात्रका प्रकाशक चिदाभास है औ घटकी ज्ञातताका प्रकाशक ब्रह्मचैतन्य है। ऐसैं चैतन्यकी द्विगुणता होवैहै । तैसैं आंतरअहंकारादिकवृत्तिनविषै बी कूटस्थचैतन्य औ वृत्तिनका अवभासक चिदाभास है । ऐसैं द्विगुणचैतन्य है ॥

७३ तिसविषै कारणकूं कहैहैं:—

७४] तातैं संधितैं तिन वृत्तिनविषै विशदता कहिये प्रकाश अधिक है ॥

७५) जातैं द्विगुणचैतन्य है । तातैं संधिनतैं तिन वृत्तिनविषै विशदपना अधिक देखियेहै। इहां "देखियेहै" यह पद बाहिरसैं कहाहै॥२२॥

॥ ७ ॥ वृत्तिनमैं घटकी न्याई ज्ञातता औ अज्ञातताका अभाव ॥

७६ ननु । इन वृत्तिनविषै बी घटादिकनकी न्याई ज्ञातता औ अज्ञातताका प्रकाशक होनैंकरि कूटस्थ क्यूं नहीं अंगीकार करियेहै? यह आशंकाकरि तिन वृत्तिनविषै ज्ञातता औ अज्ञातताके अभावतैंहीं तिनका प्रकाशक होनैंकरि कूटस्थ नहीं अंगीकार करियेहै। ऐसैं कहैहैं:—

७७] घटकी न्यांई वृत्तिनविषै कदाचित् ज्ञातता औ अज्ञातता नहीं है ।

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९०६

८२
द्विगुणीकृतचैतन्ये जन्मनाशानुभूतितः ।
अकूटस्थं तदन्यत्तु कूटस्थमविकारितः ॥ २४ ॥

टीकांकः ३२७८ टिप्पणांकः ६९४

७८ तत्रोपपत्तिमाह—

७९] **स्वस्य स्वेन अग्रहीतत्वात् च ताभिः अज्ञाननाशनात् ॥**

८०) ज्ञानाज्ञानव्याप्तिभ्यां ज्ञातताज्ञातते भवतः । वृत्तीनां तु स्वप्रकाशत्वेन ज्ञानव्याप्तिर्नास्ति । ताभिः वृत्तिभिः स्वोत्पत्तिमात्रेण स्वगोचराज्ञानस्य निवर्तितत्वादज्ञानस्य व्याप्तिरपि नास्तीति भावः ॥ २३ ॥

८१ ननु कूटस्थचिदाभासयोरुभयोरपि चित्त्वे समाने एकस्य कूटस्थत्वमपरस्य अकूटस्थत्वमित्येतत् कुत इत्याशंक्य चिदाभासनिष्ठयोर्जन्मनाशयोः अनुभूयमानत्वादस्य अकूटस्थत्वमपरस्य विकारित्वे प्रमाणाभावात् कूटस्थत्वमित्याह—

८२] **द्विगुणीकृतचैतन्ये जन्मनाशानुभूतितः तत् अकूटस्थं अन्यत् तु अविकारितः कूटस्थम् ॥ २४ ॥**

७८ तिसविषै कारणकूं कहैहैं:—

७९] **आप वृत्तिकूं आप वृत्तिकरि अग्रहीत होनैतैं औ तिन वृत्तिनकरि अज्ञानके नाशतैं ॥**

८०) ज्ञान औ अज्ञानकी व्याप्तिकरि क्रमतैं ज्ञातता जो ज्ञानका विषय होना औ अज्ञातता जो अज्ञानका विषय होना। सो होवैहै॥ वृत्तिनकूं तौ घटादिकनकी अपेक्षासैं स्वप्रकाश होनैकरि ज्ञानकी व्याप्ति जो विषयता। सो नहीं है औ तिन वृत्तिनकरि अपनी उत्पत्तिमात्रसैं अपनै गोचर अज्ञानकी निवृत्तिके होनैतैं अज्ञानकी व्याप्ति बी नहीं है। यह भाव है ॥ २३ ॥

॥ ८ ॥ चिदाभासकी अकूटस्थता औ आत्माकी कूटस्थतामैं हेतु ॥

८१ ननु । कूटस्थ औ चिदाभास दोनूंकूं बी चेतनपनैके समान हुये एककूं कूटस्थता कहिये अविकारीपना है औ दूसरेकूं अकूटस्थता कहिये विकारीपना है । यह भेद काहेतैं है ? यह आशंकाकरि चिदाभासविषै स्थित जन्मनाशकूं अनुभूयमान होनैतैं इस चिदाभासकूं अकूटस्थपना है औ दूसरेसाक्षीकूं विकारी होनैविषै प्रमाणके अभावतैं कूटस्थपना है । ऐसैं कहैहैं:—

८२] **द्विगुण किये चैतन्यविषै चिदाभासके जन्मनाशकी अनुभूतितैं सो अकूटस्थ है औ अन्य चैतन्य तौ अविकारी होनैतैं कूटस्थ है ॥ २४ ॥**

९४ जैसैं जलबिंबरूप चंद्रमाके विद्यमान होते बी पक्ष अरु तिथिरूप कालकरि तिसविषै सूर्यके प्रतिबिंबरूप कलाका बढने घटनैरूप परिणाम होवैहै औ जैसैं वृक्षके विद्यमान होते बी फलनकूं जन्मादिकषट्विकाररूप परिणाम होवैहैं । तैसैं कूटस्थकूं निर्विकार होते बी देहादिकनकूं जन्मादिषट्विकाररूप परिणाम होवैहैं ॥ जो कूटस्थका परिणाम होवै तौ तिसकूं चेतनताके भंगकरि जडताकी प्राप्ति होवैगी । काहेतैं पूर्वअवस्थाके त्यागपूर्वक अन्यअवस्थाके ग्रहणका नाम **परिणाम** है । ताहीकूं **विकार** बी कहैहैं ॥ इस लक्षणके योगतैं औ ऐसैं अंगीकार किये देहादिरूप जगत्के प्रकाशकके अभावतैं जगत्के अंधताका प्रसंग होवैगा । यातैं कूटस्थकूं विकारी कहना बनै नहीं । किंतु सो अविकारी है औ जन्मादिविकारवान् दोनूंदेहसहित चिदाभास विकारी है ॥

टीकांक: ३२८३ टिप्पणांक: ॐ	८४ अंतःकरणतद्वृत्तिसाक्षीत्यादावनेकधा । कूटस्थ एव सर्वत्र पूर्वाचार्यैर्विनिश्चितः ॥ २५ ॥ आत्माभासाश्रयाश्चैवं मुखाभासाश्रया यथा । गम्यंते शास्त्रयुक्तिभ्यामित्याभासश्च वर्णितः ॥ २६	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९०७ ९०८

८३ चिदाभासव्यतिरिक्तकूटस्थाभ्युपगमः स्वकपोलकल्पित इत्याशंक्याचार्यैः कूटस्थस्योपपादितत्वान्मैवमित्याह (अंतःकरणेति)—

८४] पूर्वाचार्यैः अंतःकरणतद्वृत्तिसाक्षीत्यादौ अनेकधा सर्वत्र कूटस्थः एव विनिश्चितः ॥

८५) "अंतःकरणतद्वृत्तिसाक्षी चैतन्यविग्रहः आनंदरूपः सत्यः सन् किं नात्मानं प्रपद्यसे" इत्यादौ इत्यर्थः ॥ २५ ॥

८६ कूटस्थातिरिक्तश्चिदाभासोऽपि तैः वर्णित इत्याह (आत्माभासेति)—

८७] यथा मुखाभासाश्रयाः एवं आत्माभासाश्रयाः च शास्त्रयुक्तिभ्यां गम्यंते इति आभासः च वर्णितः॥

८८) आत्मा चाभासः चाश्रयः च आत्माभासाश्रयाश्च इति द्वंद्वः समासः। मुखाभासाश्रया इत्यत्रापि तथा मुखं प्रसिद्धम् । आभासो मुखप्रतिबिंबः आश्रयः दर्पणादिश्चेति त्रयं यथा प्रत्यक्षेणावगम्यते। एवं आत्मा कूटस्थः । आभासश्चिदाभासः । आश्रयोंऽतःकरणादिरिति त्रयोऽपि शास्त्रयुक्तिभ्याम् अवगम्यंते इत्यर्थः । अत्र

॥ ९ ॥ आचार्यकरि उपदेशसहस्रीमैं कूटस्थका उपपादन ॥

८३ चिदाभासतैं भिन्न कूटस्थका अंगीकार अपने कपोलकरि कल्पित है। यह आशंकाकरि श्रीमत्शंकराचार्योंनैं उपदेशसहस्रीआदिकग्रंथनविषै कूटस्थकूं उपपादन कियाहोनैतैं कूटस्थका अंगीकार स्वकपोलकल्पित नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

८४] पूर्वाचार्योंनैं "अंतःकरण औ तिनकी वृत्तिनकासाक्षी" इत्यादिकवाक्यविषै अनेकप्रकारसैं सर्वत्र कूटस्थहीं निश्चित कियाहै ॥

८५) "अंतःकरण औ तिसकी वृत्तिनका साक्षी चैतन्यस्वरूप आनंदरूप सत्यरूप हुया तूं आत्माकूं कहिये आपकूं क्यूं नहीं प्राप्त होताहै?" इत्यादिकवाक्यविषै । यह अर्थ है ॥ २५ ॥

॥ १० ॥ कूटस्थसैं भिन्न चिदाभासका आचार्यकरि वर्णन ॥

८६ कूटस्थतैं भिन्न चिदाभास बी तिन श्रीशंकराचार्योंनैं उपदेशसहस्रीविषैहीं वर्णन कियाहै । ऐसैं कहैहैं:—

८७] "जैसैं मुख आभास औ आश्रय प्रत्यक्ष जानियेहैं । ऐसैं आत्मा आभास औ आश्रय। शास्त्र औ युक्तिकरि जानियेहैं" ऐसैं आभास वर्णन कियाहै ॥

८८) जैसैं मुखप्रसिद्ध औ आभास जो मुखका प्रतिबिंब अरु आश्रय जो दर्पणादिक। ये तीन प्रत्यक्षकरि जानियेहैं।ऐसैं आत्मा जो कूटस्थ औ आभास जो चिदाभास अरु आश्रय जो अंतःकरणादिक। ये तीन बी शास्त्र औ युक्तिकरि जानियेहैं । यह अर्थ है ॥ इस उपदेशसहस्रीके वाक्यविषै आभासशब्दकरि

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९०९	बुद्ध्यवच्छिन्नकूटस्थो लोकांतरगमागमौ । कर्तुं शक्तो घटाकाश इवाभासेन किं वद॥२७॥	टीकांकः ३२८९ टिप्पणांकः ६९५

चाभासशब्देन कूटस्थातिरिक्तश्चिदाभासो वर्णितः इति भावः । "मनसः साक्षी बुद्धेः साक्षी" इति बुद्धिसाक्षिणः कूटस्थस्य प्रतिपादकं शास्त्रं "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव" इति चिदाभासप्रतिपादकं। विकारित्वाविकारित्वादिरूपा युक्तिः पूर्वमेवोक्ता इति भावः २६

८९ तत्र चिदाभासमाक्षिपति—

९०] बुद्ध्यवच्छिन्नकूटस्थः घटाकाशः इव लोकांतरगमागमौ कर्तुं शक्तः। आभासेन किं वद ॥

९१) स्वस्मिन् कल्प्यमानया बुद्ध्यावच्छिन्नकूटस्थ एव घटद्वारा घटाकाश इव बुद्धिद्वारा लोकांतरे गमनागमने कर्तुं शक्नोति अतश्चिदाभासकल्पनायां गौरवमिति भावः ॥ २७ ॥

कूटस्थतैं भिन्न चिदाभास वर्णन कियाहै। यह भाव है॥ "मनका साक्षी है। बुद्धिका साक्षी है"। यह बुद्धिके साक्षी कूटस्थकी प्रतिपादक श्रुति है अरु "रूपरूपके तांई कहिये अंतःकरणादिकउपाधिउपाधिके तांई प्रतिरूप कहिये प्रतिबिंबस्वरूप होताभया" यह चिदाभासकी प्रतिपादक श्रुतिरूप शास्त्र हैं औ विकारीपनैआदिरूप युक्ति पूर्व २४ वें श्लोकविषै कही। यह भाव है ॥ २६ ॥

॥ ३ ॥ चिदाभासका निरूपण

॥ ३२८९-३३६४ ॥

॥ १ ॥ चिदाभासकेप्रति आक्षेप ॥

८९ तहां चिदाभासकेप्रति अवच्छेदवादका अनुसारी आक्षेप जो निषेध ताकूं करैहैः—

९०] बुद्धिकरि अवच्छिन्न कहिये विशिष्ट कूटस्थरूप जीव । घटाकाश जो घटविशिष्टआकाश ताकी न्यांई लोकांतरविषै गमन औ आगमन करनैकूं शक्त है। यातैं हे सिद्धांती! चिदाभासकरि क्या प्रयोजन है? सो कथन कर ॥

९१) अपनैविषै कल्पित हुई बुद्धिकरि अवच्छिन्न कहिये अन्यचेतनोतैं व्यावृत्तिकूं पाया कूटस्थहीं घटद्वारा घटाकाशकी न्यांई बुद्धिद्वारा अन्यलोकविषै गमन औ आगमन करनैकूं समर्थ होवैहै । यातैं चिदाभासकी कल्पनाविषै गौरवदोष है॥ यैह भाव है॥२७॥

६९५ अवच्छेदवादकी रीतिसैं अंतःकरणविशिष्टचेतनहीं जीव है। अंतःकरणमैं चिदाभासका अंगीकार नहीं ॥ सो अंतःकरण कर्मके वशतैं जहां जहां गमनआगमन करै। तहां तहां पूर्वहीं विद्यमान जो चेतन है । सो तिस अंतःकरणविशिष्ट होयके संसारीजीव इस व्यवहारका विषय होवैहै ॥ तहां अंतःकरणरूप विशेषणभागविषै संसार है । कूटस्थरूप विशेष्यभागविषै वास्तवसंसार नहीं । किंतु भ्रांतिसैं प्रतीत होवैहै औ "विशेषणके धर्मका बी विशिष्टविषै व्यवहार होवैहै" इस शास्त्रके संकेतसैं अंतःकरणके धर्म संसारका अंतःकरणविशिष्टचेतनविषै व्यवहारके संभवतैं अंतःकरणविशिष्टचेतन संसारीजीव कहियेहै॥यातैं चिदाभासविनाहीं सर्वव्यवहारके संभव होते आभासवादविषै चिदाभासकी कल्पनासैं गौरवदोष है ॥ यह अवच्छेदवादीकी शंका है ॥

टीकांक: ३२९२ टिप्पणांक: ६९६	^९३^शृणवसंगः परिच्छेदमात्राज्जीवो भवेन्न हि । अन्यथा घटकुड्याद्यैरवच्छिन्नस्य जीवता ॥२८॥ ^९५^नैं कुड्यसदृशी बुद्धिः स्वच्छत्वादिति चेत्तैंथा । अस्तु नाम परिच्छेदे किं स्वाच्छयेन भवेत्तव॥२९॥	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९१० ९११

९२ असंगस्य कूटस्थस्य बुद्ध्यवच्छेदमात्रेण जीवत्वं न घटते अन्यथाऽतिप्रसंगादिति परिहरति—

९३] शृणु हि असंगः परिच्छेदमात्रात् जीवः न भवेत् । अन्यथा घटकुड्याद्यैः अवच्छिन्नस्य जीवता ॥ २८ ॥

९४ बुद्धिकुड्ययोः स्वाच्छयास्वाच्छयाभ्यां वैषम्यं शंकते (नेति)—

९५] कुड्यसदृशी बुद्धिः न स्वच्छत्वात् इति चेत् ।

९६ उक्तं स्वच्छत्वं परिच्छेदप्रयोजकं न भवतीत्याह—

९७] तथा अस्तु नाम । स्वाच्छयेन तव परिच्छेदे किं भवेत् ॥ २९ ॥

॥ २ ॥ श्लोक २७ उक्त आक्षेपका समाधान ॥

९२ असंगकूटस्थकूं बुद्धिकरि अवच्छेदमात्रसैं जीवपना घटै नहीं । अन्यथा कहिये बुद्धिअवच्छिन्नचेतनकूं जीवभाव मानै। घटादिअवच्छिन्नचेतनविषै जीवभावके अतिप्रसंगतैं कहिये अतिव्याप्तितैं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

९३] हे अवच्छेदवादी ! श्रवण कर:— जातैं असंगरूप कूटस्थ जो है । सो अन्योतैं व्यावृत्तिरूप परिच्छेदमात्रकरि जीव होवै नहीं । यातैं चिदाभाससैं प्रयोजन है । अन्यथा कहिये बुद्धिविषै चिदाभासके नहीं मानै घट औ भित्तिआदिकनकरि अवच्छिन्नचेतनकूं बी जीवभाव होवैगा[९६] ॥ २८ ॥

॥ ३ ॥ बुद्धि औ भित्तिकी विषमताकी शंका औ समाधान ॥

९४ बुद्धि औ भित्ति । इन दोनूंकी क्रमतैं स्वच्छता औ अस्वच्छताकरि विलक्षणताकूं वादी शंका करैहै:—

९५] भित्तिके समान बुद्धि नहीं है । स्वच्छ होनैतैं । ऐसैं जब कहै ।

९६ कही जो बुद्धिकी स्वच्छता । सो भित्तिआदिअवच्छिन्नचेतनतैं बुद्धिअवच्छिन्नचेतनकी विलक्षणतारूप परिच्छेदका कारण होवै नहीं । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं:—

९७] तैसैं बुद्धिकी स्वच्छता प्रसिद्ध होहु ॥ हे वादी ! तिस स्वच्छताकरि तेरे पक्षविषै चेतनके परिच्छेदविषै क्या अधिक होवैहै ? कछु बी नहीं ॥ २९ ॥

९६ जैसैं जलकाष्ठादिरूप संपूर्णसामग्रीमैंसैं एकवस्तुकी न्यूनतासैं बी न होनैहारे पाककी संपूर्णसामग्रीकरि सिद्धि करनैविषै जो गौरव है। सो अकिंचित्कर है। तैसैं चिदाभासविना बुद्धिके परिच्छेदमात्रकरि न होनैहारे जीवभावकी चिदाभासके अंगीकारसैं सिद्धि करनैविषै जो गौरव है । सो अकिंचित्कर (दोषरूप नहीं) है ॥ औ अवच्छेदवादविषै जैसैं अंतःकरणविशिष्टचेतनकूं जीव माननैकरि घटभित्तिआदिकविशिष्टचेतनविषै जीवभावकी अतिव्याप्तिरूप दोष है । तैसैं इसलोकविषै स्थित अंतःकरणविशिष्टचेतन औ अन्यलोकविषै स्थित अंतःकरणविशिष्टचेतनके भेदतैं अन्यकरि किये कर्मके फलका अन्यकूं भोग होनैरूप असंभवदोष बी है।यह पूर्व ९५ वें टिप्पणविषै उक्त शंकाका समाधान है ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९१२

[११] प्रस्थेन दारुजन्येन कांस्यजन्येन वा न हि ।
विक्रेतुस्तंडुलादीनां परिमाणं विशिष्यते ॥३०॥

९१३

[२] परिमाणाविशेषेऽपि प्रतिबिंबो विशिष्यते ।
कांस्ये यदि तदा बुद्धावप्याभासो भवेद्बलात् ३१

९१४

[३] ईषद्भासनमाभासः प्रतिबिंबस्तथाविधः ।
बिंबलक्षणहीनः सन्बिंबवद्भासते स हि ॥३२॥

टीकांकः ३२९८ टिप्पणांकः ६९७

९८ उक्तमर्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति (प्रस्थेनेति)—

९९] दारुजन्येन वा कांस्यजन्येन प्रस्थेन विक्रेतुः तंडुलादीनां परिमाणं न हि विशिष्यते ॥

३३००) दारुकांस्यजन्ययोः प्रस्थयोः स्थिते स्वच्छत्वास्वच्छत्वे तंडुलपरिमाणे न्यूनाधिकभावहेतू न भवत इत्यर्थः ॥ ३० ॥

१ कांस्यप्रस्थे तंडुलपरिमाणाधिक्याभावे अपि प्रतिबिंबलक्षणमाधिक्यमस्तीत्याशंक्य तर्हि बुद्धावपि चिदाभासो भवतैवांगीकृतः स्यात् इत्याह (परिमाणाविशेष इति)—

२] यदि कांस्ये परिमाणाविशेषे अपि प्रतिबिंबः विशेष्यते। तदा बुद्धौ अपि अभासः बलात् भवेत् ॥ ३१ ॥

३ प्रतिबिंबांगीकारे चिदाभासः कथमंगीकृतः स्यादित्याशंक्य प्रतिबिंबाभासशब्दाभ्यामभिधेयस्य अर्थस्य ऐक्यादित्याह—

॥ ४ ॥ श्लोक २९ उक्त अर्थकी दृष्टांतसैं स्पष्टता॥

९८ श्लोक २९ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं:—

९९] काष्टसैं जन्य वा कांसेसैं जन्य प्रस्थकरि वेचनैवालेके तंडुलादिकधान्यका परिमाण जो माप। सो न्यूनअधिकरूप भेदकूं पावता नहीं ॥

३३००) काष्ठरचित औ कांस्यरचित धान्य भरनेके पात्ररूप प्रस्थनकी स्वच्छता औ अस्वच्छता जो है। सो तंडुलके परिमाणविषै न्यूनअधिकभावकी हेतु होवै नहीं । यह अर्थ है ॥ ३० ॥

॥ ५ ॥ दृष्टांतमैं प्रतिबिंबसिद्धिसैं बुद्धिमैं बलकरि आभासका अंगीकार ॥

१ ननु कांस्यरचितप्रस्थविषै तंडुलके परिमाणकी अधिकताके अभाव हुये बी प्रतिबिंबरूप अधिकता है। यह आशंकाकरि तब बुद्धिविषै चिदाभास तुमकरिहीं अंगीकार कियाहोवैहै। ऐसैं कहैहैं:—

२] जब कांसेके पात्रविषै परिमाणकी अधिकताके न होते बी प्रतिबिंब अधिक होवैहै । ऐसैं कहै तब बुद्धिविषै बी आभासबलतैं तुमकरि अंगीकार कियाहोवैहै ॥ ३१ ॥

॥ ६ ॥ प्रतिबिंब औ आभासशब्दके वाच्यअर्थकी एकता॥

३ ननु । हमोंकरि प्रतिबिंबके अंगीकार किये चिदाभास कैसैं अंगीकार कियाहोवैहै? यह बिंबप्रतिबिंबवादके अनुसारीकी आशंकाकरि प्रतिबिंब औ आभासशब्दकरि वाच्य जो अर्थ है। ताकूं एक होनैतैं प्रतिबिंबके अंगीकार किये चिदाभासकाहीं अंगीकार कियाहोवैहै। ऐसैं कहैहैं:—

९७ शारीरकभाष्यकी पंचपादिकानामकटीकाके व्याख्यानरूप विवरणग्रंथविषै श्रीप्रकाशात्मचरणस्वामीनैं

टीकांक: ३२०४ टिप्पणांक: ॐ

ससंगत्वविकाराभ्यां बिंबलक्षणहीनता ।
स्फूर्तिरूपत्वमेतस्य बिंबवद्भासनं विदुः ॥ ३२ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९१५

४] ईषद्भासनं आभासः तथाविधः प्रतिबिंबः ॥

५ प्रतिबिंबस्याभासत्वं कथमित्याशंक्य आभासलक्षणयोगादित्याह (बिंबलक्षणेति)—

६] हि सः बिंबलक्षणहीनः सन् बिंबवत् भासते ॥

७) हि यस्मात्कारणात् प्रतिबिंबो बिंबलक्षणरहितः बिंबवत् अवभासते अतो बिंबाभास इति भावः ॥ ३२ ॥

८ आभासलक्षणयोगित्वमेव स्पष्टयति (ससंगत्वेति)—

९] एतस्य ससंगत्वविकाराभ्यां

४] किंचित् भासनाहीं आभासशब्दका अर्थ है ॥ तिसप्रकारका प्रतिबिंबशब्दका अर्थ बी है ॥

५ ननु । प्रतिबिंबकूं आभासपना किस प्रकार है? यह आशंकाकरि प्रतिबिंबविषै आभासके लक्षणके योगतैं प्रतिबिंबकूं आभासपना है । ऐसैं कहैहैं:—

६] जातैं सो प्रतिबिंब बिंबके लक्षणसैं हीन हुया बिंबकी न्याईं भासताहै॥

७) जिस कारणतैं प्रतिबिंब । बिंबके लक्षणसैं रहित हुया बिंबकी न्याईं भासताहै। इसकारणतैं बिंबका आभास है। यह भाव है ३२

॥७॥ प्रतिबिंबमैं आभासके लक्षणके योगकी स्पष्टता॥

८ प्रतिबिंबविषै आभासके लक्षणके संबंधवान्‌ताकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

९] इस चिदाभासकूं संगत्व औ

बिंबप्रतिबिंबवाद लिख्याहै ताकी यह रीति है:—जहां दर्पणविषै मुखके प्रतिबिंबका भान होवै । तहां दर्पणविषै मुखकी छाया औ प्रातिभासिक वा व्यावहारिकप्रतिबिंबकी उत्पत्ति नहीं है। किंतु दर्पणकूं विषय करनैहारी चक्षुकी वृत्ति दर्पणसैं प्रतिहत (संलग्न) होयके ग्रीवामैं स्थित मुखकूंहीं विषय करैहै । तैसैं ग्रीवामैं स्थित मुखविषैहीं बिंबप्रतिबिंबभाव प्रतीत होवैहै॥ सो मुख सत्य है । तातैं मुखरूप बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप बी सत्य है। परंतु ग्रीवामैं स्थित मुखमैं बिंबभाव औ प्रतिबिंबभावरूप धर्म अनिर्वचनीयमिथ्या हैं । तिनका अधिष्ठान मुखहीं है औ जहां भित्तिआदिकके सन्मुख दर्पणरूप उपाधि होवै। तहां चक्षुकी वृत्ति दर्पणसैं संलग्न होयके भित्तिआदिककूंहीं विषय करैहै औ जहां जलविषै सूर्यका प्रतिबिंब होवै तहां चक्षुकी वृत्ति जलरूप उपाधिसैं संलग्न होयके आकाशविषै स्थित सूर्यकूं विषय करैहै ॥ यद्यपि आकाशविषै स्थित सूर्यकूं विषय करनैवास्ते चक्षुकी वृत्ति ऊपर गई होवै। तौ जलविषै सूर्यका प्रतिबिंब औ शर्करा (धूलिविशेष) साथि प्रतीत होवैहैं सो नहीं हुयेचाहिये । यातैं जलविषैहीं उत्पन्न भये सूर्यके प्रतिबिंबकूं वृत्ति विषय करैहै । आकाशगतसूर्यकूं नहीं । तथापि जलरूप उपाधिकी सामर्थ्यसैं अलात (जलकाष्ठके भ्रमणकरि भये) चक्रकी न्याईं वृत्तिका भ्रमण होवैहै। तातैं क्षणके भेदकरि आकाशगतसूर्य औ जलगतशर्करा दोनूंकूं चक्षुकी वृत्ति विषय करैहै । परंतु क्षणकी सूक्ष्मताकरि कालका भेद प्रतीत होवै नहीं ॥

इसरीतिसैं सर्वत्र बिंबप्रतिबिंबका भेद औ मिथ्यात्व नहीं है। किंतु प्रतिबिंबत्व औ बिंबसैं भिन्नत्व औ प्रत्यङ्मुखत्व (बिंबसैं विपरीतपना) औ प्रतिबिंबकी अपेक्षासैं बिंबत्वइत्यादिधर्महीं भ्रांतिसिद्ध होनैतैं मिथ्या हैं। ऐसैं दर्पणस्थानीअज्ञानके सन्निधिसैं शुद्धचेतनमैं बिंबस्थानीईश्वर औ प्रतिबिंबस्थानीजीवका भेद औ मिथ्यात्व नहीं है। किंतु शुद्धचेतनरूप जीवईश्वरका स्वरूप सत्य है औ प्रतिबिंबकी अपेक्षासैं बिंबत्वरूप ईश्वरत्व औ प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व औ ईश्वरसैं भिन्नत्व औ परिच्छिन्नत्व ये धर्म मिथ्या हैं । तिनका अधिष्ठान शुद्धचेतन है औ जैसैं दर्पणआदिकउपाधिके लघुत्वपीतत्वआदिकधर्मका आरोप प्रतिबिंबमैं होवैहै। बिंबमैं नहीं। तैसैं आवरणस्वभाववाले अज्ञानके किये अल्पज्ञताआदिक जीवमैं हैं औ बिंबरूप ईश्वरमैं स्वरूपप्रकाशतैं सर्वज्ञता है । यह **बिंबप्रतिबिंबवादकी रीति है ॥**

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९१६

[१२]न हि धीभावभावित्वादाभासोऽस्ति धियः पृथक्। यथा मृद[१५]ल्पमेवोक्तं धीरप्येवं स्वदेहतः ॥ ३४ ॥

टीकांकः ३३१० टिप्पणांकः ॐ

बिंबलक्षणहीनता स्फूर्तिरूपत्वं बिंबवत् भासनं विदुः ॥

१०) एतस्य चिदाभासस्य ससंगत्वविकारित्वाभ्यां बिंबभूतासंगाविकारिचैतन्यलक्षणहीनत्वं । स्फुरणरूपत्वं बिंबवत् अवभासनं इत्यर्थः। हेतुलक्षणरहिता हेतुवदवभासमाना हेत्वाभासा इतिवदित्यर्थः ॥ ३३ ॥

११ इत्थं चिदाभासस्य अप्रयोजकतां निराकृत्य इदानीं तस्य बुद्धेः पृथक् सत्त्वं साधयितुं पूर्वपक्षमाह (न हीति)—

१२] यथा मृत् धीभावभावित्वात् आभासः धियः पृथक् न हि अस्ति ॥

१३) यथा मृदि सत्यामेव भवन् घटो न मृदो भिद्यते तद्वदितिभावः ॥

१४ नन्वेवं तर्हि देहातिरिक्ता धीरपि न सिध्येदिति प्रतिबंद्या परिहरति—

१५] अल्पं एव उक्तं। एवं धीः अपि स्वदेहतः ॥ ३४ ॥

विकारसहितपनेकरि बिंबके लक्षणसैं रहितता है औ स्फूर्तिरूपपना जो है। सो बिंबकी न्यांई भासना है । ऐसैं विद्वान् जानतेहैं ॥

१०) इस चिदाभासकूं संगपनै औ विकारीपनैकरि बिंबरूप असंगअविकारीचैतन्यके लक्षणसैं हीनता है औ स्फुरणरूपपना बिंबकी न्यांई भासना है। यह अर्थ है॥ हेतुके लक्षणसैं रहित हुये हेतुकी न्यांई भासमान जे हैं। वे हेत्वाभास कहियेहैं ॥ इनकी न्यांई यह चिदाभास चेतनरूप बिंबके लक्षणसैं रहित हुया बिंबकी न्यांई भासमान है । यातैं बिंबाभास है । यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

॥ ८ ॥ चिदाभासका बुद्धिसैं भेद साधनैकूं पूर्वपक्ष औ प्रतिबंदीकरि समाधान ॥

११ ऐसैं चिदाभासकी अनावश्यकतारूप अप्रयोजकताकूं निराकरण करीके । अब तिस चिदाभासके बुद्धितैं भिन्न सद्भावके साधनैकूं अवच्छेदवादीके पूर्वपक्षकूं कहैहैं:—

१२] जैसैं मृत्तिका है । तैसैं बुद्धिके भावतैं भाववान् होनैतैं चिदाभास बुद्धितैं पृथक् नहीं है ॥

१३) जैसैं मृत्तिकाके होतेहीं होनैहारा घट मृत्तिकातैं भेदकूं पावता नहीं। तैसैं बुद्धिके होतेहीं होनैहारा चिदाभास बुद्धितैं भिन्न नहीं है । यह भाव है॥

१४ ननु जब ऐसैं है । तब देहतैं भिन्न बुद्धि बी नहीं सिद्ध होवैगी। इसरीतिसैं सिद्धांती प्रतिबंदी जो वचनरूप बंधन तिसकरिके परिहार करैहैं:—

१५] हे वादी! तैनैं अल्पहीं कहा । क्यूं कि ऐसैं देहके होतेहीं बुद्धिके होनैतैं बुद्धि बी अपनै देहतैं भिन्न नहीं है ॥ ३४ ॥

टीकांकः ३३१६ टिप्पणांकः ॐ

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९१७

देहे मृतेऽपि बुद्धिश्चेच्छास्त्रादस्ति तथा सति ।
बुद्धेरन्यश्चिदाभासः प्रवेशश्रुतिषु श्रुतः ॥ ३५ ॥

९१८

धीयुक्तस्य प्रवेशश्चेन्नैतरेये धियः पृथक् ।
आत्मा प्रवेशं संकल्प्य प्रविष्ट इति गीयते ॥३६॥

१६ प्रतिबंदीमोचनं शंकते—

१७] देहे मृते अपि शास्त्रात् बुद्धिः अस्ति चेत् ।

१८) देहव्यतिरिक्ताया बुद्धेः "सविज्ञानो भवति" इत्यादिश्रुतिसिद्धत्वान्नासत्वमिति भावः ॥

१९ ननु श्रुतिबलाद्देहातिरिक्ता बुद्धिरभ्युपगम्यते चेत्तर्हि प्रवेशश्रुतिबलाद्बुद्ध्यतिरिक्तश्चिदाभासोऽप्यभ्युपेय इत्याह—

२०] तथा सति बुद्धेः अन्यः चिदाभासः प्रवेशश्रुतिषु श्रुतः ॥ ३५ ॥

२१ ननु बुद्ध्युपाधिकस्यैव प्रवेशो युज्यते नेतरस्येति शंकते—

२२] धीयुक्तस्य प्रवेशः चेत् ।

२३ ऐतरेयश्रुतौ बुद्ध्यतिरिक्तस्यैव प्रवेशश्रवणान्नैवमिति परिहरति (ऐतरेय इति)—

२४] न ऐतरेये धियः पृथक् आत्मा प्रवेशं संकल्प्य प्रविष्टः इति गीयते ॥ ३६ ॥

॥ ९ ॥ प्रतिबंदीसैं छूटनैकूं शंका औ समाधान ॥

१६ पूर्ववादी प्रतिबंदीतैं छूटनैकूं शंका करैहैः—

१७] देहके मरेहुये बी शास्त्रप्रमाणतैं बुद्धि है । ऐसैं जब कहै ।

१८) देहतैं भिन्न बुद्धिकूं "विज्ञान जो बुद्धि तिसकरि सहित होवैहै" इत्यादिश्रुतिकरि सिद्ध होनैतैं ताका देहके मरेहुये असद्भाव नहीं है । यह भाव है ॥

१९ जब श्रुतिके बलकरि देहतैं भिन्न बुद्धि अंगीकार करियेहै । तब प्रवेशश्रुतिके बलकरि बुद्धितैं भिन्न चिदाभास बी अंगीकार करनैकूं योग्य है । ऐसैं सिद्धांती कहैहैंः—

२०] तब तैसैं हुये बुद्धितैं अन्य चिदाभास बी प्रवेशश्रुतिनविषै सुन्याहै ॥ ३५ ॥

॥ १० ॥ बुद्धिउपाधिवाले चिदाभासके प्रवेशकी शंका औ समाधान ॥

२१ ननु बुद्धिउपाधिवालेकाहीं प्रवेश संभवैहै । इतर बुद्धिरहितका नहीं । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

२२] बुद्धियुक्तिकाहीं प्रवेश संभवैहै । ऐसैं जो कहै ।

२३ ऐतरेयश्रुतिविषै बुद्धितैं भिन्न परमात्माकेहीं प्रवेशके श्रवणतैं बुद्धिरहितका प्रवेश संभवै नहीं ऐसैं मति कहो । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैंः—

२४] तौ बनै नहीं।काहेतैं ऐतरेयउपनिषद्‌विषै "बुद्धितैं भिन्न आत्मा प्रवेशकूं संकल्पकरिके प्रवेशकूं करताभया" ऐसैं कहियेहै ॥ ३६ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९१९ ९२०

²⁶कथं न्विदं साक्षदेहं मद्दते स्यादितीरणात् ।
विदार्य मूर्धसीमानं प्रविष्टः संसरत्ययम् ॥३७॥
²⁹कथं प्रविष्टोऽसंगश्चेत्³¹सृष्टिर्वास्य कथं वद ।
³³मायिकत्वं तयोस्तुल्यं विनाशश्च समस्तयोः ॥३८॥

टीकांक: ३३२५ टिप्पणांक: ६९८

२५ तां श्रुतिमर्थतः पठति (कथं न्विति)—

२६] "अयं साक्षदेहं इदं मद्दते कथं नु स्यात्' इति ईरणात् मूर्धसीमानं विदार्य प्रविष्टः संसरति" ॥

२७) अयं परमात्मा साक्षदेहं अक्षाणि च देहाश्चाक्षदेहाः तैः सह वर्तत इति साक्षदेहं । इदं जडजातं । मद्दते चेतनं मां विहाय । कथं नु स्यात् । न कथमपि निर्वहेदिति विचार्य । मूर्धसीमानं कपालत्रयमध्यदेशं विदार्य स्वसन्निधिमात्रेण भित्त्वा । प्रविष्टः सन् संसरति जाग्रदादिकमनुभवतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

२८ नन्वसंगस्यात्मनः प्रवेशोऽप्ययुक्त इति शंकते (कथं प्रविष्ट इति)—

२९] असंगः कथं प्रविष्टः चेत् ।

३० इदं चोद्यं सृष्टावपि समानमित्याह (सृष्टिरिति)—

३१] अस्य सृष्टिः वा कथं वद ॥

३२ सृष्टिकर्तुर्मायिकत्वान्न दोष इत्याशंक्य

॥ ११ ॥ श्लोक ३६ उक्त प्रवेश-श्रुतिका अर्थकरि पठन ॥

२५ तिस ऐतरेयउपनिषद्‌की श्रुतिकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

२६] "यह परमात्मा अक्ष औ देह-सहित यह जडसमूह मेरेविना कैसैं होवैगा।' इस संकल्पतैं मस्तककी सीमाकूं विदारणकरिके प्रविष्ट हुया संसरताहै ॥"

२७) यह परमात्मा । इंद्रिय औ देहकरि सहवर्तमान यह जडसमुदाय जो है । सो चेतनरूप मुजकूं छोडिके कैसैं होवैगा? किसी-प्रकार बी निर्वाहकूं नहीं पावैगा। ऐसैं संकल्प-करिके मस्तककी सीमा[९८] जो तीनकपालनका मध्यदेश ताकूं विदारणकरिके कहिये अपनी सन्निधिमात्रकरि भेदनकरिके । प्रवेशकूं प्राप्त हुया संसरताहै कहिये जाग्रदादिककूं अनुभव करताहै । यह अर्थ है ॥ ३७ ॥

॥ १२ ॥ असंगआत्माके प्रवेशकी शंका औ समाधान ॥

२८ ननु असंगआत्माका प्रवेश बी अयुक्त है । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

२९] असंग कैसैं प्रवेशकूं प्राप्तभया? ऐसैं जब कहै ।

३० यह प्रश्न सृष्टिविषै बी समान है। ऐसैं सिद्धांती कहैहैः—

३१] तब इस असंगकी सृष्टि बी कैसैं होवैहै? सो हे वादी! कथन कर ॥

३२ ननु सृष्टिकर्त्ताकूं मायिक होनैतैं इसकी सृष्टि जो जगत्‌रूपसैं उत्पत्ति ।

९८ स्त्रियनके केशविभागके मध्यमैं रेखारूप जो सीमंत है। तिसकी जहां समाप्ति होवैहै औ जो दुर्बलमनुष्यके मस्तकविषै मुंडन किये जे तीनकपाल प्रतीत होवैहैं । तिनका मध्यदेश है । सो मस्तककी सीमा कहियेहै ॥

टीकांक: ३३३३ टिप्पणांक: ॐ

समुत्थायैष भूतेभ्यस्तान्येवानुविनश्यति ।
विनष्टमिति मैत्रेय्यै याज्ञवल्क्य उवाच हि ॥३९॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९२१

अयं परिहारः प्रविष्टर्यपि समान इत्याह (**मायिकत्वमिति**)—

३३] **तयोः मायिकत्वं तुल्यम् ॥**

३४ अनयोर्मायिकत्वे हेतुः समान इत्याह (**विनाश इति**)—

३५] **च तयोः विनाशः समः॥३८॥**

३६ "प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति" इति औपाधिकरूपस्य विनाशित्वप्रतिपादिकां श्रुतिं दर्शयति (**समुत्थायेति**)—

३७] **"एषः भूतेभ्यः समुत्थाय तानि एव अनु विनश्यति" इति विनष्टं याज्ञवल्क्यः मैत्रेय्यै हि उवाच ॥**

३८) एषः प्रज्ञानघन आत्मा । एतेभ्यो देहेंद्रियादिरूपेभ्यः पंचभूतकार्येभ्यो निमित्तभूतेभ्यः उपाधिभ्यः । समुत्थाय जीवत्वाभिमानं प्राप्य । तान्येव देहादीनि विनश्यंति अनुविनश्यति तेषु विनश्यत्सु तत्कृतं जीवत्वाभिमानं जहाति । एवं प्रकारेण सोपाधिकरूपस्य विनाशित्वं याज्ञवल्क्यो मैत्रेय्यै उवाच उक्तवानित्यर्थः ॥ ३९ ॥

तिसविषै दोष नहीं है । यह आशंकाकरि यह समाधान प्रवेशकर्ताविषै बी समान है । ऐसैं कहैहैं:—

३३] **तिन सृष्टिकर्ता औ प्रवेशकर्ता दोनूंका मायिकपना तुल्य है ॥**

३४ इन दोनूंके मायिकपनैविषै मायाकी निवृत्तितैं निवृत्ति होनैरूप हेतु बी समान है । ऐसैं कहैहैं:—

३५] **औ तिनकी निवृत्ति बी समान है ॥ ३८ ॥**

॥ १३ ॥ जीवके औपाधिकरूपकें विनाशीपनैकी प्रतिपादक श्रुति ॥

३६ प्रज्ञानघन जो अतिशयज्ञानरूप आत्मा सोईहीं इन देहादिकभूतनतैं सम्यक्उत्थानकरिके कहिये तिनके जन्मकरि जन्मकूं पायके । तिनकेहीं पीछे विनाशकूं पावताहै औ नाशके अनंतर इसकूं संज्ञा जो ज्ञान सो नहीं है" इस औपाधिकरूपके विनाशीपनैकी प्रतिपादक श्रुतिकूं दिखावैहैं:—

३७] **"यह आत्मा भूतनतैं ऊठिके तिनकेहीं पीछे विनाशकूं पावताहै" ऐसैं विनाशकूं प्राप्त इस सोपाधिकआत्माकूं याज्ञवल्क्यमुनि मैत्रेयीके ताईं कहतेभये ॥**

३८) यह प्रकर्षज्ञानघनआत्मा । इन देहइंद्रियादिरूप पंचभूतनके कार्यनिमित्तरूप उपाधिनतैं ऊठिके कहिये जीवपनैके अभिमानकूं पायके। तिन देहादिकनके नाश हुये पीछे नाशकूं पावताहै कहिये देहादिकनके किये जीवपनैके अभिमानकूं त्यागताहै । इसप्रकारसैं देहादिउपाधिसहित आत्माके स्वरूपके विनाशिपनैकूं याज्ञवल्क्यमुनि मैत्रेयीनामक अपनी स्त्रीके ताईं कहतेभये । यह अर्थ है ॥ ३९ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९२२ ९२३	४०अविनाश्ययमात्मेति कूटस्थः प्रविवेचितः । ४२मात्रासंसर्ग इत्येवमसंगत्वस्य कीर्तनात् ॥ ४० ॥ ४५जीवापेतं वाव किल शरीरं म्रियते न सः । इत्यत्र न विमोक्षोऽर्थः किंतु लोकांतरे गतिः४१	टीकांकः ३३३९ टिप्पणांकः ॐ

३९ "अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा" इति श्रुत्या कूटस्थस्ततो विभिन्नः प्रदर्शितः इत्याह (अविनाशीति)—

४०] अयं आत्मा अविनाशी इति कूटस्थः प्रविवेचितः ॥

४१ "मात्रासंसर्गस्त्वस्य भवति" इति श्रुत्याऽविनाशित्वे हेतुमसंगत्वं च उक्तवान् इत्याह—

४२] मात्रासंसर्गः इति एवं असंगत्वस्य कीर्तनात् ॥

४३) मीयंत इति मात्राः देहादयः ताभिरस्यात्मनः असंसर्गः भवतीत्यर्थः॥४०॥

४४ ननु "जीवापेतं वाव किल इदं म्रियते न जीवो म्रियते" इति श्रुत्या अस्य औपाधिकस्याप्यविनाशित्वं प्रतिपाद्यत इत्याशंक्य तस्याः श्रुतेर्देहांतरप्राप्यविषयतया नात्यन्तिकनाशाभावपरत्वमित्याह—

४५] जीवापेतं वाव शरीरं किल म्रियते सः न इति अत्र विमोक्षः अर्थः न । किंतु लोकांतरे गतिः ॥

॥ १४ ॥ श्रुतिकरि कूटस्थका विवेचन औ ताकी अविनाशीतामैं हेतु ॥

३९ "अरे मैत्रेयी ! यह आत्मा अविनाशी उच्छेदरहितधर्मवान् है" इस श्रुतिकरि कूटस्थ जो निरुपाधिकआत्मा । सो तिस सोपाधिकचिदाभासरूपतैं भिन्न दिखायाहै । ऐसैं कहैहैं:—

४०] "यह आत्मा अविनाशी है" ऐसैं कूटस्थ विवेचन किया कहिये सोपाधिकरूपतैं भिन्न दिखायाहै ॥

४१ "औ इस कूटस्थआत्माका मात्रा जे देहादिक तिनसैं असंसर्ग होवैहै" इस श्रुतिकरि आत्माके अविनाशीपनैविषै असंगपनैरूप हेतुकूं याज्ञवल्क्यमुनि कहतेभये । ऐसैं कहैहैं:—

४२] "मात्रासैं असंसर्ग है" इसप्रकारसैं आत्माके असंगपनैके कथनतैं॥

४३) प्रमाज्ञानके विषय करियेहैं ऐसै जे देहादिक वे इहां मात्रा कहियेहैं । तिनके साथि इस आत्माका असंसर्ग कहिये असंबंध होवैहै । यह अर्थ है ॥ ४० ॥

॥ १५ ॥ जीवके औपाधिकरूपके अविनाशीपनैकी प्रतिपादक श्रुतिका अभिप्राय ॥

४४ ननु "जीवरहित प्रसिद्ध यह शरीर मरताहै । जीव मरता नहीं ।" इस श्रुतिकरि इस औपाधिकआत्माका बी अविनाशीपना प्रतिपादन करियेहै । यह आशंकाकरि तिस श्रुतिकूं अन्यदेहकरि प्राप्य परलोककूं विषय करनैहारी होनैकरि आत्यंतिकनाशरूप जीवके मोक्षके अभावरूप विषयवान्ता नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

४५] "जीवरहित प्रसिद्ध यह शरीरहीं मरताहै । सो जीव मरता नहीं ।" इस श्रुतिविषै जीवका पूर्व ३९ श्लोकउक्त जीवके मोक्षकी न्यांई मोक्षरूप अर्थ नहीं कहाहै । किंतु लोकांतरविषै गति कहीहै ॥

टीकांक: ३३४५ टिप्पणांक: ६९९

नाहं ब्रह्मेति बुध्येत स विनाशीति चेन्न तत्।
सामानाधिकरण्यस्य बाधायामपि संभवात्॥४२॥

कूटस्थदीप: ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९२४

ॐ ४५) जीवापेतं जीवरहितं जीवेन त्यक्तमिति यावत्। वाव एव जीवो न म्रियते इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

४६ ननु जीवस्य विनाशित्वे "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यविनाशिब्रह्मतादात्म्यज्ञानं न घटते इति शंकते (नाहमिति)—

४७] विनाशी सः "अहं ब्रह्म" इति न बुध्येत इति चेत्।

४८ विनाशी स जीवः "अहं ब्रह्म" इति ब्रह्मरूपेणात्मानं न बुध्येत न जानीयात् विनाश्यविनाशिनोरेकत्वविरोधादिति चेत् मुख्यसामानाधिकरण्याभावेऽपि बाधायां सामानाधिकरण्यसंभवात् जीवभावबाधेन ब्रह्मभावोऽवगंतुं शक्यत इत्याह (न तदिति)—

४९] तत् न सामानाधिकरण्यस्य बाधायां अपि संभवात् ॥ ४२ ॥

ॐ ४५) जीवरहित कहिये जीवकरि त्यक्त प्रसिद्ध कहिये निश्चयकरि जीव नहीं मरता-है। यह अर्थ है ॥ ४१ ॥

॥ १६ ॥ विनाशीजीवके ब्रह्मसैं अभेदज्ञानके असंभवकी शंका औ समाधान ॥

४६ ननु जीवकूं विनाशीपनैके हुये "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा अविनाशीब्रह्मसैं अभेदका ज्ञान घटै नहीं। इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

४७] सो जीव जब विनाशी है। तब "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं नहीं जानैगा ॥

४८ विनाशी सो जीव। सो "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं ब्रह्मरूपकरि आपकूं न जानैगा। काहेतैं विनाशिजीव औ अविनाशिब्रह्म इन दोनूंकी एकताके विरोधतैं ॥ इसप्रकार जब कहै तब मुख्यसामानाधिकरण्यके अभाव हुये बी बाध-विषै सामानाधिकरण्यके संभवतैं जीवभावके बाधकरि ब्रह्मभाव जाननैकूं शक्य है। ऐसैं सिद्धांती कहैहैं:—

४९] सो कहना बनै नहीं। काहेतैं सामानाधिकरण्यके बाधविषै बी संभवतैं ॥ ४२ ॥

९९ अपर्यायरूप पदनका एकविभक्तिवान्ताके हुये एक-अर्थविषै प्रवृत्ति (तात्पर्यरूप संबंध) **सामानाधिकरण्य** कहियेहै अथवा कहूं एकअधिकरण (आश्रय) विषै रहनैवाले धर्मनका जो एकअधिकरणवान्तारूप संबंध है। सो **सामानाधिकरण्य** कहियेहै अथवा कहूं परस्परअभिन्न-दोपदार्थनका अभिन्नतारूप संबंध बी **सामानाधिकरण्य** कहियेहै ॥ सामानाधिकरण्यवाले दोपद वा धर्म वा पदार्थ **समानाधिकरण** हैं ॥तिनका संबंध **सामानाधिकरण्य** कहियेहै ॥ सो (१) मुख्यसामानाधिकरण्य औ (२) बाध-सामानाधिकरण्यके भेदतैं दोप्रकारका है ॥

(१) जा वस्तुका जाके साथि सदा अभेद होवै। ता वस्तुका ताकेसाथि **मुख्यसामानाधिकरण्य** कहियेहै। ताहीकूं **अभेदसामानाधिकरण्य** बी कहैहैं ॥ जैसैं घटाकाशका महाकाशके साथि सदा अभेद है। यातैं घटाकाशका महाकाशके साथि **मुख्यसामानाधिकरण्य** है ॥ ऐसैं कूटस्थका ब्रह्मसैं सदा अभेद है। यातैं कूटस्थका ब्रह्मके साथि **मुख्यसामानाधिकरण्य** है औ

(२) जा वस्तुका बाध होयके जाके साथि अभेद होवै। ता वस्तुका ताके साथि **बाधसामानाधिकरण्य** कहियेहै॥ जैसैं स्थाणु वा प्रतिबिंबका बाध होयके पुरुष वा बिंबके साथि अभेद होवैहै। यातैं स्थाणु वा प्रतिबिंबका पुरुष वा बिंबके साथि **बाधसामानाधिकरण्य** है ॥ ऐसैं चिदाभासका बी बाध होयके कूटस्थके साथि वा ब्रह्मके साथि अभेद होवैहै। यातैं चिदाभासका कूटस्थ वा ब्रह्मके साथि **बाधसामानाधिकरण्य** है ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९२५ ९२६

टीकांकः ३३५० टिप्पणांकः ॐ

[५१] योऽयं स्थाणुः पुमानेष पुंधिया स्थाणुधीरिव ।
ब्रह्मास्मीति धियाप्येषा ह्यहं बुद्धिर्निवर्त्यते ॥४३॥
[५३] नैष्कर्म्यसिद्धावप्येवमाचार्यैः स्पष्टमीरितम् ।
सामानाधिकरण्यस्य बाधार्थत्वम[५६]तोऽस्तु तत् ४४

५० बाधसामानाधिकरण्येन वाक्यार्थप्रतिपत्तिप्रकारो वार्तिककारैः सदृष्टांतोऽभिहित इतीममर्थं तद्वाक्योदाहरणपूर्वकं दर्शयति—

५१] "यः अयं स्थाणुः एषः पुमान्" पुंधिया स्थाणुधीः इव "ब्रह्म अस्मि" इति धिया अपि एषा हि अहंबुद्धिः निवर्त्यते ॥

५२) सामानाधिकरण्यस्य बाधार्थत्वं । "स्थाणुरेष पुमान्" इत्यस्मिन्वाक्ये पुरुषत्वबोधेन स्थाणुत्वबुद्धिः निवर्त्यते यथा । एवम् "अहं ब्रह्मास्मि" इति बोधेन अहंबुद्धिः "कर्ताऽहमस्मि" इत्येवमादिरूपा सर्वापि निवर्त्यते इति ॥ ४३ ॥

५३] (नैष्कर्म्येति)– एवं आचार्यैः नैष्कर्म्यसिद्धौ अपि सामानाधिकरण्यस्य बाधार्थत्वं स्पष्टं ईरितम् ॥

५४) एवं उक्तेन प्रकारेण । आचार्यैः वार्तिककारैः । नैष्कर्म्यसिद्धौ सामानाधिकरण्यस्य बाधार्थत्वं स्पष्टमीरितम् इति ॥

५५ फलितमाह—

५६] अतः तत् अस्तु ॥

५७) अतः कारणात् "ब्रह्माहमस्मि" इति वाक्ये तत् सामानाधिकरण्यस्य बाधार्थत्वम् अस्तु इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

॥ १७ ॥ वार्तिककारकरि बाधसामानाधिकरण्यके प्रकारका दृष्टांतसहित निरूपण ॥

५० बाधसामानाधिकरण्यकरि वाक्यार्थके निश्चयका प्रकार वार्तिककारोंनैं दृष्टांतसहित कहाहै । इसीहीं अर्थकूं तिनके वाक्यके उदाहरणपूर्वक दिखावैहैंः—

५१] "जो यह स्थाणु है । यह पुरुष है" । इहां पुरुषबुद्धिकरि स्थाणुबुद्धिकी न्यांई 'मैं ब्रह्म हूं' इस बुद्धिकरि बी यह अहंबुद्धि निवारण करियेहै ॥

५२) सामानाधिकरण्यका बाधअर्थपना इसप्रकार हैः—"स्थाणु यह पुरुष है ।" इस वाक्यविषै जैसैं पुरुषपनैके बोधकरि स्थाणुपनैकी बुद्धि निवारण करियेहै। ऐसैं "मैं ब्रह्म हूं" इस बोधकरि "मैं कर्ता हूं" इत्यादिआकारवाली अहंबुद्धि सर्व बी निवारण करियेहै ॥ ४३ ॥

॥ १८ ॥ श्लोक ४३ उक्त अर्थकी समाप्ति औ फलित ॥

५३] ऐसैं ४३ वें श्लोकविषै आचार्योंनैं नैष्कर्म्यसिद्धिविषै बी सामानाधिकरण्यका बाधअर्थपना स्पष्ट कहाहै ॥

५४) इस ४३ श्लोकउक्तप्रकारकरि आचार्यश्रीवार्तिककारोंनैं नैष्कर्म्यसिद्धिनामकग्रंथविषै सामानाधिकरण्यका बाधअर्थपना स्पष्ट कहाहै ॥

५५ फलितकूं कहैहैंः—

५६] यातैं सो होहु ॥

५७) इस कारणतैं "ब्रह्म मैं हूं" इस वाक्यविषै सो सामानाधिकरण्यका बाधअर्थपना होहु । यह अर्थ है ॥ ४४ ॥

टीकांक: ३३५८ टिप्पणांक: ७००	सर्वं ब्रह्मेति जगता सामानाधिकरण्यवत् । अहं ब्रह्मेति जीवेन सामानाधिकृतिर्भवेत् ॥४५॥ सामानाधिकरण्यस्य बाधार्थत्वं निराकृतम् । प्रयत्नतो विवरणे कूटस्थत्वविवक्षया ॥ ४६ ॥	कूटस्थदीप: ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९२७ ९२८

५८ नन्वेवमपि श्रुतिषु बाधायां सामानाधिकरण्यं न क्वापि दृष्टमित्याशंक्य "सर्वं ह्येतद्ब्रह्म" इत्यत्र बाधायां सामानाधिकरण्यं दृष्टमतोऽत्रापि तद्भविष्यतीत्याह—

५९] "सर्वं ब्रह्म" इति जगता सामानाधिकरण्यवत् "अहं ब्रह्म" इति जीवेन सामानाधिकृतिः भवेत् ॥ ४५ ॥

६० ननु तर्हि विवरणाचार्यैर्बाधसामानाधिकरण्यं कुतो निराकृतमित्याशंक्य तैरहंशब्देन कूटस्थस्य विवक्षितत्वादित्याह (सामानाधिकरण्यस्येति)—

६१] विवरणे कूटस्थत्वविवक्षया सामानाधिकरण्यस्य बाधार्थत्वं प्रयत्नतः निराकृतम् ॥ ४६ ॥

॥ १९ ॥ श्रुतिकरि बाधसामानाधिकरण्यका कथन

५८ ननु । ऐसैं वार्तिककारकरि कहेहुये बी श्रुतिनमैं बाधविषै सामानाधिकरण्य कहुं बी नहीं देख्याहै । यह आशंकाकरि "सर्व यह जगत् निश्चयकरि ब्रह्म है" इस श्रुतिवाक्यमैं बाधविषै सामानाधिकरण्य देख्याहै । यातैं इहां महावाक्यविषै बी सो सामानाधिकरण्य होवैगा । ऐसैं कहैहैं:—

५९] "सर्व जगत् ब्रह्म है" ईस श्रुतिवाक्यविषै जगत्के साथि ब्रह्मके सामानाधिकरण्यकी न्यांई "मैं ब्रह्म हूं" इस वाक्यविषै जीवके साथि ब्रह्मका सामानाधिकरण्य होवैगा ॥ ४५ ॥

॥ २० ॥ सामानाधिकरण्यके निराकरणका अभिप्राय ॥

६० ननु । तब विवरणाचार्यश्रीप्रकाशात्मचरणस्वामीनैं विवरणनामग्रंथविषै बाधसामानाधिकरण्य काहेतैं निराकरण कियाहै? यह आशंकाकरि तिन विवरणाचार्यनकूं अहंशब्दकरि कूटस्थ कहनैकूं इच्छित है। यातैं निराकरण कियाहै । ऐसैं कहैहैं:—

६१] विवरणग्रंथविषै कूटस्थपनैकी विवक्षाकरि सामानाधिकरण्यका बाधअर्थपना कहिये ब्रह्मकूं चिदाभासके अभाववान् वा अभावअर्थरूपता प्रयत्नतैं निराकरण कियाहै ॥ ४६ ॥

७०० "सर्व (जगत्) ब्रह्म है" इस श्रुतिवाक्यविषै जगत्का ब्रह्मके साथि एकतारूप सामानाधिकरण्य कह्याहै । तहां मुख्यसामानाधिकरण्यके अंगीकार किये ब्रह्मविषै दृश्यत्वविनाशित्वविकारित्वआदिक जगत्के धर्मनकी प्राप्तिरूप अनर्थ होवैगा । यातैं जगत्का बाधकरिके ब्रह्मके साथि एकतारूप बाधसामानाधिकरण्य संभवैहै। यातैं (१) "जगत्के अभाववाला ब्रह्म है" वा (२) "जगत्का अभाव ब्रह्म है" । यह श्रुतिका अर्थ है ॥

(१) जाके मतमैं आरोपितका अभाव (निवृत्ति) अधिष्ठानतैं भिन्न है । ताके मतमैं "जगत्के अभाववाला ब्रह्म है" । ऐसा बोध होवैहै औ

(२) जाके मतमैं आरोपितका अभाव अधिष्ठानरूप है। ताके मतमैं "जगत्का अभाव ब्रह्म" है । ऐसा श्रुतिके अर्थका बोध होवैहै ॥

इसरीतिसैं सामानाधिकरण्यकी बाधअर्थरूपता श्रुतिविषै सुनीहै ॥ ऐसैं "मैं ब्रह्म हूं" इस वाक्यविषै बी जानना ॥

१ विवरणग्रंथविषै महावाक्यमैं बाधसामानाधिकरण्यका जो निराकरण कियाहै। ताका यह समाधान है:—'अहं' औ

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
९२९	६३ शोधितस्त्वंपदार्थो यः कूटस्थो ब्रह्मरूपताम् । तस्य वक्तुं विवरणे तथोक्तमितरत्र च ॥ ४७ ॥	३३६२
९३०	६६ देहेंद्रियादियुक्तस्य जीवाभासभ्रमस्य या । अधिष्ठानचितिः सैषा कूटस्थात्र विवक्षिता ॥४८॥	टिप्पणांकः ॐ

६२ "कूटस्थत्वविवक्षया" इत्युक्तमर्थं विवृणोति—

६३] शोधितः त्वंपदार्थः यः कूटस्थः तस्य ब्रह्मरूपतां वक्तुं विवरणे च इतरत्र तथा उक्तम् ॥

६४) शोधितः बुद्ध्यादिभ्यो विवेचितः। त्वंपदलक्ष्यो यः कूटस्थः वक्ष्यमाणलक्षणः तस्य ब्रह्मरूपतां सत्यत्वादिलक्षणब्रह्मरूपतां वक्तुं विवरणादिषु बाधसामानाधिकरण्यनिराकरणपूर्वकं मुख्यसामानाधिकरण्यं उक्तम् इत्यर्थः ॥ ४७ ॥

६५ इदानीं कूटस्थस्य ब्रह्मणैक्यं संभावयितुं कूटस्थशब्देन विवक्षितमर्थमाह—

६२ "कूटस्थपनैकी विवक्षाकरि" ऐसैं ४६ श्लोकउक्तअर्थकूं वर्णन करैहैं:—

६३] शोधित "त्वं"पदका अर्थ जो कूटस्थ है । तिसकी ब्रह्मरूपता कहनैकूं विवरणविषै औ अन्यग्रंथनविषै तैसैं कहाहै ॥

६४) बुद्धिआदिकनतैं विवेचित "त्वं" पदका लक्ष्य जो आगे ४८ श्लोकविषै कहनैके लक्षणवाला कूटस्थ है । तिसकी सत्यादिलक्षणब्रह्मरूपता कहनैकूं विवरणआदिकग्रंथनविषै बाधसामानाधिकरण्यके निराकरणपूर्वक मुख्यसामानाधिकरण्य कहाहै । यह अर्थ है ॥ ४७ ॥

॥ २ ॥ कूटस्थकी ब्रह्मसैं एकताकी संभावनाअर्थ ताके विवेचनपूर्वक जीवादिकजगत्का मिथ्यापना ॥३३६५–३४४१॥

॥ १ ॥ कूटस्थका ब्रह्मसैं एकताअर्थ बुद्धिआदिकतैं विवेचन ॥३३६५–३३९५॥

॥ १ ॥ कूटस्थशब्दका अर्थ ॥

६५ अब कूटस्थकी ब्रह्मके साथि एकताकी घटना करनैकूं कूटस्थशब्दकरि विवक्षितअर्थकूं कहैहैं:—

'त्वं' आदिकशब्दनका अर्थ चिदाभासविशिष्ट बुद्धिरूप जीव व्यभिचारी होनैतैं अध्यस्त है औ 'स्वयं' शब्दका अर्थ कूटस्थ सर्वत्रअनुगत होनैतैं अधिष्ठान है ॥ कूटस्थमैं जीवका स्वरूपाध्यास है औ जीवमैं कूटस्थका संबंधाध्यास है । ऐसैं कूटस्थ औ जीवका अन्योन्याध्यासकरि परस्परविवेक होवै नहीं । यातैं ब्रह्मसैं कूटस्थके मुख्यसामानाधिकरण्यका जीवमैं व्यवहार करैहैं औ जीवमैं कूटस्थधर्मके आरोपविना मिथ्याजीवका सत्यब्रह्मसैं मुख्यसामानाधिकरण संभवै नहीं । यातैं जीवके आश्रय अंतःकरणका अधिष्ठान जो कूटस्थ । ताके धर्मकी विवक्षासैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्यसामानाधिकरण्य विवरणकारनैं लिख्याहै ॥ ऐसैं विद्यारण्यस्वामीनैं चित्रदीपमैं विवरणकारके वचनतैं अविरोधका प्रकार लिख्याहै (देखो अंक १३१५–१३८८ विषै) परंतु विवरणकारके मतमैं चिदाभासरूप जीव कूटस्थविषै आरोपित नहीं है । किंतु बिंबका स्वरूपहीं प्रतिबिंब है । यातैं प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व तौ मिथ्या है औ प्रतिबिंबरूप जीवका स्वरूप सत्य है । यातैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्यसामानाधिकरण्य संभवैहै ॥ औ विद्यारण्यस्वामीनैं विवरणग्रंथका उक्तअभिप्राय कहा सो प्रौढिवादसैं कहाहै ॥ प्रतिबिंबकूं मिथ्या मानै बी जीवमैं कूटस्थपनैकी विवक्षातैं महावाक्यनविषै विवरणउक्तमुख्यसामानाधिकरण्य संभवैहै । यातैं मुख्यसामानाधिकरण्यके असंभवकरि प्रतिबिंबकूं सत्यता अंगीकार करनी योग्य नहीं है । ऐसैं अपनै उत्कर्षसैं वाद (कथन) कियाहै। यातैं यह प्रौढिवाद है ॥

टीकांक: ३३६६ टिप्पणांक: ॐ

जगद्भ्रमस्य सर्वस्य यदधिष्ठानमीरितम् ।
त्र्यंतेषु तदत्र स्याद्ब्रह्मशब्दविवक्षितम् ॥ ४९ ॥
एतस्मिन्नेव चैतन्ये जगदारोप्यते यदा ।
तदा तदेकदेशस्य जीवाभासस्य का कथा ॥५०॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९३१ ९३२

६६] देहेंद्रियादियुक्तस्य जीवाभासभ्रमस्य या अधिष्ठानचितिः सा एषा अत्र कूटस्था विवक्षिता ॥

६७) आदिशब्देन मन आदयो गृह्यंते । एवं च देहेंद्रियादियुक्तस्य शरीरद्वययुक्तस्य जीवाभासभ्रमस्य चिदाभासरूपभ्रमस्य याधिष्ठानचितिः यदधिष्ठान चैतन्यमस्ति तत् अत्र वेदांतेषु कूटस्थत्वेन विवक्षितमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

६८ ब्रह्मशब्दस्य चार्थमाह (जगदिति)—

६९] सर्वस्य जगद्भ्रमस्य अधिष्ठानं यत् त्र्यंतेषु ईरितम् । तत् अत्र ब्रह्मशब्दविवक्षितं स्यात् ॥

७०) कृत्स्नजगत्कल्पनाधिष्ठानं यत् चैतन्यं वेदांतेषु निरूपितं । तदत्र ब्रह्मशब्देन विवक्षितम् इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

७१ ननु "जीवभ्रमाधिष्ठानं चैतन्यं कूटस्थं" इत्युक्तमनुपपन्नं जीवस्यारोपितत्वासिद्धेरित्याशंक्य तस्यारोपितत्वं कैमुतिकन्यायेन साधयति—

७२] एतस्मिन् एव चैतन्ये यदा जगत् आरोप्यते । तदा तदेकदेशस्य जीवाभासस्य का कथा ॥

६६] देहइंद्रियादिककरि युक्त जीवाभासरूप भ्रमका जो अधिष्ठान चैतन्य है । सो इहां कूटस्थ विवक्षित है ॥

६७) आदिकशब्दकरि मनआदिक ग्रहण करियेहै ॥ ऐसें हुये देहइंद्रियआदिकदोनूंशरीरकरि युक्त चिदाभासरूप भ्रमका जो अधिष्ठान चैतन्य है । सो इहां वेदांतशास्त्रनविषै कूटस्थपनैकरि कहनैकूं इच्छित है । यह अर्थ है ॥ ४८ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मशब्दका अर्थ ॥

६८ ब्रह्मशब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

६९] सर्वजगत्भ्रमका अधिष्ठान जो चैतन्य उपनिषद्विषै कह्याहै । सो इहां ब्रह्मशब्दकरि विवक्षित है ॥

७०) संपूर्णजगत्की कल्पनाका अधिष्ठान जो चैतन्य वेदान्तविषै निरूपण कियाहै । सो इहां ब्रह्मशब्दकरि कहनैकूं इच्छित है । यह अर्थ है ॥ ४९ ॥

॥ ३ ॥ जीवका कैमुतिकन्यायसैं आरोपितपना ॥

७१ननु "जीवरूप भ्रमका अधिष्ठान चैतन्य-कूटस्थ है" ऐसें ४८ श्लोकविषै जो कह्या । सो बनै नहीं । काहेतें चिदाभासके आरोपितपनैकी असिद्धितें । यह आशंकाकरि तिस जीवके आरोपितपनैकूं कैमुतिकन्यायकरि साधतेहैं:—

७२] इसीहीं चैतन्यविषै जब जगत् आरोपित होवैहै । तब जगत्के एकदेशरूप चिदाभासकी आरोपितताविषै क्या कहना है ?

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९३३ ९३४	जँगत्तदेकदेशाख्यसमारोप्यस्य भेदतः । तत्त्वंपदार्थौ भिन्नौ स्तो वस्तुतस्त्वेकता चितेः ५१ कँर्तृत्वादीन्बुद्धिधर्मान्स्फूर्त्याख्यां चात्मरूपताम् । दधद्विभाति पुरत आभासोऽतो भ्रमो भवेत् ५२	टीकांकः २२७२ टिप्पणांकः ७०२

७३) जगदेकदेशत्वं च "अनेन जीवेनानुप्रविश्य" इत्यादिश्रुतिसिद्धम् ॥५०॥

७४ ननु जगदधिष्ठानचैतन्यस्यैकत्वात् "तत् त्वं"पदार्थयोर्भेदाभावे "तत् त्वं" पदार्थयोः पौनरुक्त्यमित्याशंक्य तयोरौपाधिको भेदो वास्तवमैक्यमित्याह—

७५] जगत्तदेकदेशाख्यसमारोप्यस्य भेदतः तत्त्वंपदार्थौ भिन्नौ स्तः वस्तुतः तु चितेः एकता ॥

७६) जगदेकदेश इति च आख्या यस्य समारोप्यस्य तत्तथा । जातावेकवचनम् ॥ ५१ ॥

७७ ननु चिदाभासस्य शुक्तिकारजतादिवदधिष्ठानारोप्योभयधर्मवत्त्वानुपलंभात् कथमारोपितत्वमित्याशंक्याह (कर्तृत्वादीनिति)—

७८] बुद्धिधर्मान् कर्तृत्वादीन् च स्फूर्त्याख्यां आत्मरूपतां दधत् पुरतः विभाति । अतः आभासः भ्रमः भवेत् ॥

७३) "इस जीवरूपकरि पीछे प्रवेश करिके" इत्यादिश्रुतिकरि जीवकूं जगत्की एकदेशरूपता सिद्ध है ॥ ५० ॥

॥ ४ ॥ "तत्" औ "त्वं" पदके अर्थका औपाधिकभेद औ वास्तवअभेद ॥

७४ ननु जगत्के अधिष्ठान चैतन्यकूं एक होनेतें "तत् त्वं" इन दोपदके अर्थनके भेदके अभाव हुये । "तत् त्वं"पदके अर्थनकी भिन्नकथनकरि पुनरुक्ति होवैगी।यह आशंकाकरि तिन "तत् त्वं" पदनके अर्थनका उपाधिका किया भेद है औ वास्तवअभेद है यातैं पुनरुक्तिदोष नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

७५] जगत् औ जगत्का एकदेश इस नामवाले आरोपितवस्तुरूप उपाधिके भेदतैं " तत् त्वं " पदके अर्थ भिन्न हैं । वस्तुतैं तौ चेतनकी एकता है ॥

७६) जगत् औ जगत्का एकदेश दोनूं देहसहित चिदाभास हैं संज्ञा जिसकी । ऐसैं आरोप्यके भेदतैं ॥ इहां आरोप्यशब्दका जातिविषै एकवचन है ॥ ५१ ॥

॥ ५ ॥ चिदाभासकी अधिष्ठान औ आरोप्य दोनूंके धर्मसैं युक्तपनैकरि आरोपितता ॥

७७ ननु चिदाभासकूं शुक्तिके रजतआदिककी न्याई[२] अधिष्ठान औ आरोप्य दोनूंके धर्मवान्ताकी अप्रतीतितैं कैसैं आरोपितपना है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७८] कर्तृत्वआदिकबुद्धिके धर्मनकूं औ स्फूर्तिनामकआत्मरूपताकूं धारताहुया आगेतैं भासताहै । यातैं आभास भ्रमरूप होवैहै ॥

२ जैसैं शुक्तिमैं आरोपित रजतविषै अधिष्ठानशुक्तिका इदंपना औ आरोप्यरजतका रजतपना । ये दोनूं धर्म प्रतीत होवैहैं। यातैं रजत आरोपित है । तैसैं कूटस्थमैं आरोपितचिदाभासविषै बी आरोपितपनैकी सिद्धिअर्थ अधिष्ठान औ आरोप्यके धर्मकी प्रतीति कहीचाहिये । यह शंकाका अभिप्राय है ॥

टीकांकः ३३७९ टिप्पणांकः ॐ	का बुद्धिः कोऽयमाभासः को वात्मात्र जगत्कथम्। इत्यनिर्णयतो मोहः सोऽयं संसार इष्यते ॥५३॥ बुद्ध्यादीनां स्वरूपं यो विविनक्ति स तत्त्ववित्। स एव मुक्त इत्येवं वेदांतेषु विनिश्चयः ॥ ५४ ॥	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९३५ ९३६

७९) बुद्ध्युपाधिद्वारा समारोप्यमाणान् कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रमातृत्वादीन् स्फुरणलक्षणमात्मरूपत्वं च दधत्पुरतो भाति स्पष्टं प्रतिभासते । अत आभासः कल्पित इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

८० अस्य भ्रमस्य किं कारणमित्याकांक्षायां बुद्ध्यादिस्वरूपापरिज्ञानमेवेत्याह (का इति)—

८१] "बुद्धिः का । अयं आभासः कः । वा आत्मा कः । अत्र जगत् कथं ।" इति अनिर्णयतः मोहः ॥

८२ तस्य निवर्तनीयत्वायानर्थहेतुमाह—

८३] सः अयं संसारः इष्यते ॥५३॥

८४ अस्य किं निवर्तकमित्याकांक्षायां बुद्ध्यादिस्वरूपविवेक एव निवर्तक इत्यभिप्रेत्य तद्वानेव ज्ञानी तत एवानर्थनिवृत्तिः इत्याह—

८५] बुद्ध्यादीनां स्वरूपं यः विविनक्ति सः तत्त्ववित् सः एव मुक्तः इति एवं वेदांतेषु विनिश्चयः ॥ ५४ ॥

---

७९) बुद्धिउपाधिद्वारा आरोपित भये कर्तृत्व भोक्तृत्व औ प्रमातृत्वआदिकनकूं औ स्फुरणस्वरूप आत्माकी रूपताकूं धारताहुया स्पष्ट प्रतीत होवैहै । यातैं आभास कल्पित है । यह अर्थ है ॥ ५२ ॥

॥ ६ ॥ श्लोक ९२ उक्त भ्रमरूप संसारभ्रमका कारण ॥

८० इस भ्रमका कौन कारण है? इस आकांक्षाविषै बुद्धिआदिकके स्वरूपका अज्ञानहीं कारण है । ऐसैं कहैहैं:—

८१] "बुद्धि कौन है ? यह आभास कौन है वा आत्मा कौन है ? इसविषै जगत् कैसैं है?" इसके अनिर्णयतैं भ्रम होवैहै ॥

८२ तिस मोहकूं निवृत्ति करनैकी योग्यताअर्थ अनर्थहेतु कहैहैं:—

८३] सो यह मोह संसार कहियेहै ॥ ५३ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक ९२ उक्त संसारका निवर्त्तक विवेक ॥

८४ ननु । इस भ्रमका कौन निवर्त्तक है ? इस आकांक्षाविषै बुद्धिआदिकके स्वरूपका विवेकहीं निवर्त्तक है । इस अभिप्रायकरिके तिस बुद्धिआदिकके विवेकवालाहीं ज्ञानी है तिसतैंहीं अनर्थकी निवृत्ति होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

८५] बुद्धिआदिकनके स्वरूपकूं जो विवेचन करताहै सो तत्त्ववित् है । सोइ मुक्त है । ऐसैं वेदांतविषै निर्णय है ॥ ५४ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९३७ ९३८	एवं च सति बंधः स्यात्कस्येत्यादिकुतर्कजाः । विडंबना दृढं खंड्याः खंडनोक्तिप्रकारतः ॥५५॥ वृत्तेः साक्षितया वृत्तिप्रागभावस्य च स्थितः । बुभुत्सायां तथाज्ञोऽस्मीत्याभासाज्ञानवस्तुनः ५६	टीकांकः ३३८६ टिप्पणांकः ७०३

८६ एवं बंधमोक्षयोरविवेकमूलत्वे सति अद्वैतवादे कस्य बंधः कस्य वा मोक्षः इत्येवमादिरूपास्तार्किकैः क्रियमाणाः कुतर्कमूलाः परिहासविशेषाः खंडनोक्तयुक्तिभिः तेषां निरुत्तरत्वापादनेन परिहरणीया इत्याह—

८७] एवं च सति कस्य बंधः स्यात् इत्यादिकुतर्कजाः विडंबनाः खंडनोक्तिप्रकारतः दृढं खंड्याः ॥ ५५ ॥

८८ एवं श्रुतियुक्तिभ्यां कूटस्थं बुद्ध्यादिभ्यो विविच्य दर्शयित्वा पुराणेष्वपि तद्विवेकः कृत इत्याह—

८९] वृत्तेः च वृत्तिप्रागभावस्य बुभुत्सायां तथा अज्ञः अस्मि इति आभासज्ञानवस्तुनः साक्षितया स्थितः ॥

९०) कामादिवृत्त्युत्पत्तौ सत्यां तत्साक्षित्वेन वृत्त्युदयात्पूर्वं तत्प्रागभावसाक्षित्वेन जिज्ञासायां सत्यां तत्साक्षित्वेन ततः पूर्वम्

॥ ८ ॥ बंधमोक्षके मिथ्यापनैमैं नैयायिकादिकृत कुतर्कसैं जन्य हास्यनके खंडनकी योग्यता ॥

८६ ऐसैं बंधमोक्षकूं अविवेकरूप मूलवानता हुये अद्वैतवादविषै किसकूं बंध है वा किसकूं मोक्ष है? इत्यादिआकारवाले नैयायिकनकरि करियेहैं जो कुतर्करूप मूलवाले परिहासविशेष । सो श्रीहर्षमिश्राचार्यकृत खंडनखंडखाद्यनामकग्रंथविषै कथनकरि युक्तिनसैं तिन नैयायिकनकी उत्तररहितताके संपादनकरि परिहार करनैकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं:—

८७] ऐसैं हुये "कौनकूं बंध होवैगा" इत्यादिकुतर्कनसैं जन्य जो हासविशेष हैं । सो खंडनग्रंथकी उक्तिके प्रकारतैं दृढ जैसैं होवै तैसैं खंडन करनैकूं योग्य हैं ॥ ५५ ॥

॥ ९ ॥ पुराणनमैं उक्त कूटस्थके विवेचनका अनुवाद ॥

८८ ऐसैं श्रुति औ युक्तिकरि कूटस्थकूं बुद्धिआदिकनतैं विवेचनकरि दिखायके । पुराणनविषै बी तिस कूटस्थका विवेक कियाहै । ऐसैं इहांसैं आदिलेके तीनश्लोककरि कहैहैं:—

८९] वृत्तिका औ वृत्तिके प्रागभावका औ जिज्ञासाके हुये तैसैं "मैं अज्ञ हूं" ऐसैं भासमान अज्ञानवस्तुका साक्षी होनैकरि स्थित है ॥

९०) वृत्तिकी उत्पत्तिके हुये तिस वृत्तिका साक्षी होनैकरि औ वृत्तिके उदयतैं पूर्व तिस वृत्तिके प्राक्‌अभावका साक्षी होनैकरि औ स्वरूपके जाननैकी इच्छाके हुये तिसका साक्षी होनैकरि औ तिस जिज्ञासातैं पूर्व "मैं

३ जो परमआस्तिकअधिकारी है । तिसके बोधनका प्रकार इस ग्रंथविषैहीं लिख्याहै औ जिसकूं नैयायिकादिकनके किये कुतर्कजन्य परिहासबुद्धिविषै संशयरूप विक्षेपके जनक होवैं । तिसकूं खंडनआदिकआकरग्रंथउक्तप्रकारसैं वे तर्क खंडन करनैकूं योग्य हैं । यह अर्थ है ॥

टीकांक: २३९१ टिप्पणांक: ७०४	असत्यालंबनत्वेन सत्यः सर्वजडस्य तु । साधकत्वेन चिद्रूपः सदा प्रेमास्पदत्वतः ॥५७॥ आनंदरूपः सर्वार्थसाधकत्वेन हेतुना । सर्वसंबंधवत्त्वेन संपूर्णः शिवसंज्ञितः ॥ ५८ ॥	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९३९ ९४०

"अज्ञोऽस्मि" इत्यनुभूयमानाज्ञानसाक्षित्वेन शिवः एव तिष्ठति ॥ ५६ ॥

९१] (१) असत्यालंबनत्वेन सत्यः । (२) सर्वजडस्य तु साधकत्वेन चिद्रूपः । (३) सदा प्रेमास्पदत्वतः आनंदरूपः (४) सर्वार्थसाधकत्वेन हेतुना सर्वसंबंधवत्त्वेन संपूर्णः शिवसंज्ञितः ॥

९२) स च असत्यस्य जगतः आलंबनत्वेन अधिष्ठानत्वेन सत्यः । जडस्य सर्वस्य साधकत्वेन अवभासकत्वात् चिद्रूपः । सर्वदा प्रेमविषयत्वात् आनंदरूपः । सर्वार्थावभासकत्वेन सर्वसंबंधित्वात् संपूर्णः इत्युच्यते ।

अत्र चेदमभिप्रेतं ॥

विमतः शिवः वृत्त्यादिभ्यो भिद्यते वृत्त्यादिसाक्षित्वात् । यत् यत् वृत्त्यादिभ्यो न भिद्यते तत्तद्वृत्त्यादिसाक्षी न भवति । यथा वृत्त्यादिः ॥

(१) विमतः सत्यो भवितुमर्हति । मिथ्याधिष्ठानत्वादसत्यरजताधिष्ठानशुक्तिवत् ।

(२) विमतश्चिद्रूपः । जडमात्रावभासकत्वात् ।

अज्ञानी हूं" ऐसैं अनुभूयमान अज्ञानका साक्षी होनैकरि । शिव कहिये कल्याणरूप कूटस्थहीं स्थित है ॥ ५६ ॥

९१] (१) सो शिव असत्यका आलंबन होनैकरि सत्य है औ (२) सर्वजडका साधक होनैकरि चिद्रूप है औ (३) सर्वदा प्रेमका विषय होनैकरि आनंदरूप है औ (४) सर्व अर्थके साधकपनैरूप हेतुकरि औ सर्वका संबंधी होनैकरि संपूर्ण । ऐसैं कहियेहै ॥

९२) औ सो शिव असत्यजगत्का अधिष्ठान होनैकरि सत्य है औ सर्वजडका प्रकाशक होनैकरि चिद्रूप है औ सर्वदा प्रेमका विषय होनैकरि आनंदरूप है औ सर्वविषयनके अवभासकपनैरूप हेतुकरि औ सर्वका संबंधि होनैकरि संपूर्ण । ऐसैं कहियेहै ॥

इहां यह अभिप्राय है:—

विवादका विषय जो शिव । सो वृत्तिआदिकनतैं भेदकूं पावताहै । वृत्तिआदिकनका साक्षी होनैतैं । जो जो वृत्तिआदिकनतैं भेदकूं पावै नहीं सो सो वृत्तिआदिकनका साक्षी होवै नहीं । जैसैं वृत्तिआदिक हैं । औ

(१) विवादका विषय जो शिव । सो सत्य होनैकूं योग्य है । मिथ्याका अधिष्ठान होनैतैं । औ असत्यरजतके अधिष्ठान शुक्तिकी न्याईं । औ

(२) विवादका विषय जो शिव सो चिद्रूप है । जडमात्रका अवभासक होनैतैं । जो चिद्रूप

४ वृत्तिआदिक आपतैं भिन्न नहीं । यातैं आपके साक्षी बी नहीं । ऐसैं कूटस्थ वृत्तिआदिकनतैं भिन्न नहीं ऐसैं नहीं । यातैं वृत्तिआदिकनका साक्षी नहीं ऐसैं नहीं । किंतु साक्षीही है । यह व्यतिरेकी दृष्टांतयुक्त व्यतिरेकिअनुमानका आकार है । ऐसैं अन्यविषै बी जानीलेना ॥

कूटस्थदीपः ॥८॥ श्लोकांक: ९४१ | टीकांक: ३३९३ | टिप्पणांक: ७०५

इति शैवपुराणेषु कूटस्थः प्रविवेचितः ।
जीवेशत्वादिरहितः केवलः स्वप्रभः शिवः ॥५९॥

यच्चिद्रूपं न भवति तत्सर्वं जडावभासकमपि न भवति । यथा घटादिः ॥

(३) विमतः परमानंदरूपः । परप्रेमास्पदत्वात् । यत्परमानंदरूपं न भवति तत्परमप्रेमास्पदमपि न भवति । यथा घटादिः ॥

(४) विमतः परिपूर्णः । सर्वसंबंधित्वाद्गगनवत् । सर्वसंबंधित्वं च सर्वार्थसाधकत्वेन विमतः सर्वसंबंधवान् सर्वावभासकत्वात् । यः सर्वसंबंधवान् न भवति सः सर्वावभासकोऽपि न भवति । यथा दीपादिरिति ॥ ५७–५८ ॥

९३ उदाहृतपुराणवाक्यस्य तात्पर्यमाह—

९४] इति शैवपुराणेषु जीवेशत्वादिरहितः केवलः स्वप्रभः शिवः कूटस्थः प्रविवेचितः ॥

९५) इति एवं प्रकारेण । सूतसंहितादिषु पुराणेषु जीवेश्वरत्वादिकल्पनारहितः केवलः अद्वितीयः । स्वप्रभः स्वयंप्रकाशः । चैतन्यरूपः शिवः कूटस्थो विवेचितः इत्यन्वयः ॥ ५९ ॥

होवै नहीं सो सर्वजडका अवभासक वी होवै नहीं । जैसैं घटादिक हैं ॥ औ

(३) विवादका विषय जो शिव । सो परमानंदरूप है । परप्रेमका आस्पद होनैतैं । जो परमानंदरूप होवै नहीं सो परमप्रेमका आस्पद वी होवै नहीं । जैसैं घटादिक हैं ॥ औ

(४) विवादका विषय जो शिव । सो परिपूर्ण है । सर्वका संबंधी होनैतैं । गगनकी न्याई ॥ यह अन्वयिअनुमान है । इनसैं और सब इहां व्यतिरेकी हैं ॥ औ इसका सर्वसंबंधीपना सर्वअर्थका अवभासक होनैकरि है ॥ विवादका विषय जो शिव । सो सर्वसैं आध्यासिक५संबंधवान् है । सर्वका प्रकाशक होनैतैं । जो सर्वसंबंधवान् होवै नहीं सो सर्वका अवभासक वी होवै नहीं । जैसैं दीपादिक हैं ॥ ५७–५८ ॥

॥ १० ॥ उदाहरण किये पुराणके वाक्यका तात्पर्य ॥

९३ उदाहरण किये पुराणके वाक्यका तात्पर्य कहैहैं:—

९४] ऐसैं शैवपुराणविषै जीवईश्वरभावआदिकतैं रहित केवलस्वप्रभशिव कूटस्थ विवेचन कियाहै ॥

९५) इस कथन किये प्रकारकरि सूतसंहिताआदिकपुराणनाविषै जीवभावईश्वरभावआदिककी कल्पनासैं रहित केवलअद्वितीयस्वयंप्रकाशचैतन्यरूप कल्याणरूप कूटस्थ विवेचन कियाहै । यह अन्वय है ॥ ५९ ॥

---

५ प्रकाशविना पदार्थका सद्भाव नहीं है । काहेतैं अप्रकाशमान शशशृंगआदिकके सद्भावके अदर्शनतैं । यातैं जडजगत्‌का चेतनके संबंधसैं विना आपहींतैं भान (प्रकाश) नहीं है । जो जडका आपहींतैं भान होवै तौ जडपनैके अभावका प्रसंग होवैगा । तातैं जडरूप सर्वजगत्‌सैं चेतनका संबंध मान्याचाहिये । सो संबंध आध्यासिकरूपहीं संभवैहै । औरप्रकारका नहीं औ जो जडचेतनके आध्यासिकसंबंधतैं भिन्न संबंधकूं कहै ताकूं यह पूछ्याचाहियेः—जडचेतनका संबंध क्या (१) संयोग है वा (२) समवाय है वा (३) तादात्म्य है वा (४) विषयविषयीभाव है ? ये च्यारीपक्ष हैं । तिनमैं

(१) **प्रथमपक्ष (संयोग)** बनै नहीं काहेतैं दोनूं द्रव्यनकांहीं संयोग होवैहै औ जो गुणनका आश्रय होवै सो

टीकांक: ३३९६ टिप्पणांक: ॐ	मायाभासेन जीवेशौ करोतीति श्रुतत्वतः । मायिकावेव जीवेशौ स्वच्छौ तौ काचकुंभवत् ६०	कूटस्थदीप: ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९४२

९६ जीवेश्वरत्वादिरहितत्वं कुत इत्याशंक्य श्रुत्या तयोर्मायिकत्वप्रदर्शनादित्याह—

९७] **"माया आभासेन जीवेशौ करोति" इति श्रुतत्वतः जीवेशौ मायिकौ एव ॥**

९८) **"जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति" इति** श्रुतिः मायाविद्याधीनयोश्चिदाभासयोर्मायिकत्वं प्रतिपादयतीति भावः ॥

९९ मायिकत्वे तयोर्देहादिभ्यो वैलक्षण्यं न स्यादित्याशंक्य पार्थिवत्वाविशेषेऽपि काचकुंभस्य घटादिभ्यो वैलक्षण्यमिवानयोरपि स्यादित्याह (स्वच्छाविति)—

३४००] **तौ काचकुंभवत् स्वच्छौ ६०**

॥ २ ॥ कूटस्थके अद्वितीयताकी संभवनाअर्थ जीवादिजगत्की मायिकता ॥ ३३९६–३४४१ ॥

॥ १ ॥ जीवईशके मायिकताकी प्रतिपादक श्रुति औ तिनकी देहादिकतैं विलक्षणता ॥

९६ कूटस्थका जीवईश्वरभावआदिकसैं रहितपना काहेतैं है? यह आशंकाकरि श्रुतिकरि तिन जीवईश्वरभावके मायाकरि कल्पितपनैके देखनैतैं कूटस्थका जीवईश्वरभावआदिकसैं रहितपना है। ऐसैं कहैहैं:—

९७] **"माया आभासकरि जीवईशकूं करैहै ॥" ऐसैं श्रुतिविषै सुन्याहोनैतैं जीवईश मायिकहीं हैं ॥**

९८) "जीवईशकूं आभासकरि करैहै। माया औ अविद्या आप मूलप्रकृतिहीं होवैहै ॥" यह श्रुति मायाअविद्याके आधीन चिदाभासरूप जीवईश्वरके मायिकपनैकूं प्रतिपादन करैहै। यह भाव है ॥

९९ जीवईश्वरकूं मायिकपनैके हुये। तिनकी देहादिकजडनतैं विलक्षणता नहीं होवैगी। यह आशंकाकरि पृथिवीके कार्यभावके समान हुये बी काचके कुंभकी घटादिकनतैं विलक्षणताकी न्यांई इन जीवईश्वरकी बी देहादिकनतैं विलक्षणता होवैगी। ऐसैं कहैहैं:—

३४००] **सो जीवईश्वर काचके कुंभकी न्यांई स्वच्छ हैं ॥ ६० ॥**

द्रव्य कहियेहै। चेतन जातैं निर्गुण है तातैं द्रव्य नहीं। यातैं जडचेतनका संयोगसंबंध बनै नहीं ॥ औ

(२) **द्वितीयपक्ष (समवाय) बी बनै नहीं** काहेतैं गुणगुणीआदिनका समवायसंबंध होवैहै। जड चेतनका परस्पर-गुणगुणीआदिकभाव नहीं है। देखो ३६५वें टिप्पणविषै। यातैं समवायसंबंधका असंभव है। औ **जो कहै**। तंतु औ पटकी न्यांई चेतन अरु जडका कार्यकारणभावतैं संबंध है। **सो बनै नहीं**। काहेतैं तंतु औ पटके समवायविषै अवयवअवयवीभावकेहीं कारणपनैकरि कार्यकारणभावकी अकारणता है। अन्यथा तुरीपटके बी समवायका प्रसंग होवैगा। यातैं चेतन औ जडके अवयवअवयवीभावके अभावतैं तिनके समवायका असंभव है ॥ औ

(३) **तृतीयपक्ष (तादात्म्य) बी बनै नहीं**। काहेतैं परस्पर विलक्षणवस्तुनके तादात्म्यके असंभवतैं ॥ औ

(४) **चतुर्थपक्ष (विषयविषयीभाव) बी बनै नहीं**। काहेतैं विषयविषयीभावसंबंधकूं अवयव अरु अवयवीके तादात्म्यआदिकरूप मूलसंबंधपूर्वक होनैतैं औ तिस (उक्त-तादात्म्यादिरूप) मूलसंबंधके असंभवकूं नेडेहीं कथन किया-होनैतैं सो बनै नहीं ॥

तातैं जडजगत्सैं चेतनका आध्यासिक (कल्पित) हीं संबंध है। ऐसैं कहाचाहिये ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९४३ ९४४	अन्नजन्यं मनो देहात्स्वच्छं यद्वत्तथैव तौ । मायिकावपि सर्वस्मादन्यस्मात्स्वच्छतां गतौ॥६१॥ चिद्रूपत्वं च संभाव्यं चित्त्वेनैव प्रकाशनात् । सर्वकल्पनशक्ताया मायाया दुष्करं न हि ॥६२॥	टीकांकः ३४०१ टिप्पणांकः ॐ

१ ननु घटकाचकुंभारंभकयोर्मृद्विशेषयोः भेदात्तद्वैलक्षण्यमुचितं जगज्जीवेश्वरभेदहेतोः मायाया एकत्वात्तयोर्जगतो वैलक्षण्यमनुचितमित्याशंक्य अन्नजन्ययोः देहमनसोर्यथा वैलक्षण्यं तद्वदित्याह—

२] अन्नजन्यं मनः यद्वत् देहात् स्वच्छं । तथा एव तौ मायिकौ अपि अन्यस्मात् सर्वस्मात् स्वच्छतां गतौ ॥ ६१ ॥

३ भवतु काचादिवत् स्वच्छत्वं चित्त्वं तु कुत इत्याशंक्यानुभवादित्याह (चिद्रूपेति)—

४] चित्त्वेन एव प्रकाशनात् चिद्रूपत्वं च संभाव्यम् ॥

५ चिद्रूपत्वेन प्रकाशनमपि मायिकयोः अनुपपन्नमित्याशंक्य तस्याः दुर्घटकारित्वात् उपपन्नमित्याह (सर्वेति)—

६] हि सर्वकल्पनशक्तायाः मायायाः दुष्करं न ॥ ६२ ॥

॥ २ ॥ जीवईशकी जगत्तैं विलक्षणताका साधक दृष्टांत ॥

१ ननु घट औ काचकुंभकी आरंभक मृत्तिकाविशेषके भेदतैं तिनकी विलक्षणता उचित है । जगत् औ जीवईश्वरके भेदकी हेतु मायाकूं एक होनैतैं तिन जीवईश्वरकी जगत्तैं विलक्षणता अनुचित है । यह आशंकाकरि अन्नसैं जन्य देह औ मनकी जैसैं विलक्षणता है। तैसैं मायाकल्पितजगत् औ जीवईश्वरकी वी विलक्षणता है । ऐसैं कहैहैं:—

२] अन्नसैं उत्पन्न मन जैसैं देहतैं स्वच्छ है । तैसैंहीं सो जीवईश्वर मायिक हुये बी अन्यसर्वजगत्तैं स्वच्छताकूं प्राप्त हैं ॥ ६१ ॥

॥ ३ ॥ जीवईशकी चेतनता ॥

३ काचआदिककी न्यांई जीवईश्वरकूं स्वच्छपना होहु । परंतु चेतनपना काहेतैंहै ? यह आशंकाकरि अनुभवज्ञानतैं इनकूं चेतनपना है । ऐसैं कहैहैं:—

४] चेतन होनैकरि प्रकाशनैतैं चिद्रूपता संभव होनैकूं योग्य है ॥

५ चिद्रूप होनैकरि प्रकाशना वी मायाकल्पितजीवईश्वरकूं अघटित है।यह आशंकाकरि तिस मायाकूं दुर्घटकार्यकी करनैहारी होनैतैं मायिकनकूं वी चिद्रूप होनैकरि प्रकाशना घटित है । ऐसैं कहैहैं:—

६] जातैं सर्वके कल्पनविषै समर्थ मायाकूं दुष्कर नहीं है । तातैं इनकूं चिद्रूपता संभवैहै ॥ ६२ ॥

टीकांक: ३४०७ टिप्पणांक: ॐ

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक:

अस्मन्निद्रापि जीवेशौ चेतनौ स्वप्नगौ सृजेत् ।
महामाया सृजत्येताविल्याश्चर्यं किमत्र ते ॥६३॥ ९४५
सर्वज्ञत्वादिकं चेशे कल्पयित्वा प्रदर्शयेत् ।
धर्मिणं कल्पयेद्यास्याः को भारो धर्मकल्पने॥६४ ९४६
कूटस्थेऽप्यतिशंका स्यादिति चेन्मातिशंक्यताम् ।
कूटस्थमायिकत्वे तु प्रमाणं न हि विद्यते ॥६५॥ ९४७

७ उक्तमर्थं कैमुतिकन्यायेन द्रढयति—

८] अस्मन्निद्रा अपि स्वप्नगौ चेतनौ जीवेशौ सृजेत् । महामाया एतौ सृजति इति अत्र ते किं आश्चर्यम् ६३

९ ईश्वरस्यापि मायिकत्वे तस्य जीववत् असर्वज्ञत्वादिकं स्यादित्याशंक्य सर्वज्ञत्वादिकमपि मायैव कल्पयिष्यति इत्याह (सर्वज्ञत्वेति)—

१०] च ईशे सर्वज्ञत्वादिकं कल्पयित्वा प्रदर्शयेत् ॥

११ तत्रोपपत्तिमाह (धर्मिणमिति)—

१२] या धर्मिणं कल्पयेत् अस्याः धर्मकल्पने कः भारः ॥ ६४ ॥

१३ ननु जीवेशयोरिव कूटस्थस्यापि मायिकत्वं प्रसज्येतेति शंकते—

१४] कूटस्थे अपि अतिशंका स्यात् इति चेत् ।

१५ प्रमाणाभावान्नैवमिति परिहरति (मातिशंक्यतामिति)—

१६] हि कूटस्थमायिकत्वे तु प्रमाणं न विद्यते मा। अति शंक्यताम्॥६५॥

७ श्लोक ६२ उक्तअर्थकूं कैमुतिकन्यायकरि दृढ करैहैं:—

८] हमारी जीवनकी निद्रा बी जब स्वप्नगत चेतनरूप जीवईशकूं सृजतीहै । तब मूलप्रकृति इन चेतनरूप जीवईश्वरकूं सृजतीहै । इसविषै तेरेकूं यह क्या आश्चर्य है ? कछु बी नहीं ॥ ६३ ॥

॥ ४ ॥ युक्तिकरि ईश्वरके सर्वज्ञतादिककी मायासैं कल्पितता ॥

९ ईश्वरकूं बी मायिकपनैके हुये तिसका जीवकी न्याई असर्वज्ञताआदिकधर्म होवैगा । यह आशंकाकरि ईश्वरके सर्वज्ञतादिककूं बी मायाहीं कल्पतीहै । ऐसैं कहैहैं:—

१०] औ ईश्वरविषै सर्वज्ञताआदिककूं कल्पिके दिखावतीहै ॥

११ तहां युक्तिकूं कहैहैं:—

१२]जो माया ईश्वररूपधर्मीकूं कल्पतीहै । इस मायाकूं सर्वज्ञतादिकधर्मके कल्पनविषै कौन श्रम है? कछु बी नहीं६४

॥ ५ ॥ कूटस्थके मायिकताकी शंका औ प्रमाणअभावतैं समाधान ॥

१३ ननु जीवईश्वरकी न्याई कूटस्थकूं बी मायिकपना प्राप्त होवैगा । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैं:—

१४] कूटस्थविषै बी मायिकपनैकी अतिशंका होवैगी । ऐसैं जो कहै तौ ।

१५ प्रमाणके अभावतैं ऐसैं मति कहो । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

१६] जातैं कूटस्थके मायिकपनैविषै तौ प्रमाण नहीं है । यातैं अतिशंकाकूं मति कर ॥ ६५ ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
९४८	वस्तुत्वं घोषयंत्यस्य वेदांताः सकला अपि । सपत्नरूपं वस्त्वऽन्यन्न सहन्तेऽत्र किंचन ॥ ६६ ॥	३४१७
९४९	श्रुत्यर्थं विशदीकुर्मो न तर्काद्वच्मि किंचन । तेन तार्किकशंकानामत्र कोऽवसरो वद ॥ ६७ ॥	टिप्पणांकः ॐ

१७ कूटस्थस्य वास्तवत्वेऽपि प्रमाणं नोपलभ्यत इत्याशंक्य श्रुतयः सर्वा अपि प्रमाणमित्याह (वस्तुत्वमिति)—

१८] वेदांताः सकलाः अपि अस्य वस्तुत्वं घोषयंति । अत्र सपत्नरूपं अन्यत् वस्तु किंचन न सहंते ॥

१९) अत्र कूटस्थस्य पारमार्थिकत्वे प्रतिपक्षभूतं । अन्यद्वस्तु किंचन न सहंते इत्यर्थः ॥ ६६ ॥

२० ननु कूटस्थस्य जीवेशयोश्च वास्तवत्वावास्तवत्वसाधने श्रुतय एव पठ्यंते न तर्कैः किंचिदपि साध्यते इत्याशंक्य मुमुक्षूणां श्रुत्यर्थविशदीकरणाय प्रवृत्तत्वात् न तर्कोपन्यास इत्याह (श्रुत्यर्थमिति)—

२१] श्रुत्यर्थं विशदीकुर्मः तर्कात् किंचन न वच्मि । तेन तार्किकशंकानां अत्र कः अवसरः वद ॥ ६७ ॥

॥ ६ ॥ कूटस्थकी वास्तवतामैं सर्वश्रुतिनकी प्रमाणता ॥

१७ ननु कूटस्थके वास्तवपनैविषै वी प्रमाण नहीं देखियेहै । यह आशंकाकरि कूटस्थके वास्तवपनैविषै सर्वश्रुतियां वी प्रमाण हैं । ऐसैं कहैहैंः—

१८] सकलवेदांत वी इस कूटस्थके वस्तुपनैकूं कथन करैहैं औ इसविषै विरोधीरूप अन्यकिसी वस्तुकूं वी श्रुतियां नहीं सहारेहैं ॥

१९) इस कूटस्थकी पारमार्थिकताविषै प्रतिपक्षरूप कहिये बरोबरीके दूसरे अन्यकिसी वस्तुकूं वी श्रुतियां सहन नहीं करैहैं । यह अर्थ है ॥ ६६ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक ६०—६६ पर्यंत उक्त अर्थमैं तार्किकनकी शंकाका अनवकाश ॥

२० ननु कूटस्थ औ जीवईश्वरकी वास्तवता अरु अवास्तवताके साधनैविषै तुमकरि श्रुतियांही पठन करियेहैं औ तर्ककरि कछु वी नहीं साधियेहै । यह आशंकाकरि मुमुक्षुनके लिये श्रुतिका अर्थ स्पष्ट करनैवास्ते हमकूं प्रवृत्त होनैतैं तर्कका कहनैका प्रारंभ नहीं करियेहै । ऐसैं कहैहैंः—

२१] यह श्रुतिनके अर्थकूं स्पष्ट करैहैं । तर्कतैं कछु वी नहीं कहैहैं ॥ तिस हेतुकरि तार्किकनके कुतर्कनका इहां कौन अवकाश है? सो कथन कर । कछु वी नहीं ॥ ६७ ॥

टीकांक: २४२२ टिप्पणांक: ७०६	२३ तस्मात्कुतर्कं संत्यज्य मुमुक्षुः श्रुतिमाश्रयेत् । २५ श्रुतौ तु माया जीवेशौ करोतीति प्रदर्शितम् ॥६८॥ २६ ईक्षणादिप्रवेशांता सृष्टिरीशकृता भवेत् । जाग्रदादिविमोक्षांतः संसारो जीवकर्तृकः ॥६९॥ असंग एव कूटस्थः सर्वदा नास्य किंचन । भवत्यतिशयस्तेन मनस्येवं विचार्यताम् ॥ ७० ॥	कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्रोकांक: ९५० ९५१ ९५२

२२ ततः किमित्यत आह—

२३] तस्मात् मुमुक्षुः कुतर्कं संत्यज्य श्रुतिं आश्रयेत् ॥

२४ मुमुक्षूणां श्रुत्यर्थः कीदृशोऽनुसंधेयः इत्याह—

२५] श्रुतौ तु माया जीवेशौ करोति इति प्रदर्शितम् ॥

ॐ२५) श्रुतिषु जीवेशयोर्मायिकत्वम्॥६८॥

२६] ईक्षणादिप्रवेशांता सृष्टिः ईशकृता भवेत् जाग्रदादिविमोक्षांतः संसारः जीवकर्तृकः ॥

२७) ईक्षणादिप्रवेशांतायाः सृष्टेः ईश्वरकर्तृत्वं । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिबंधमोक्षलक्षणस्य संसारस्य जीवकर्तृत्वम् ॥ ६९ ॥

२८](असंग इति)—कूटस्थः असंगः एव अस्य किंचन अतिशयः न भवति। तेन एवं सर्वदा मनसि विचार्यताम्॥

२९)कूटस्थस्यासंगत्वादिकं मृतिजन्मादिलक्षणव्यवहारजातस्यासत्त्वं च प्रतिपादितमतो मुमुक्षुरिममर्थं सर्वदा विचारयेदित्यभिप्रायः ॥ ७० ॥

॥ ८ ॥ मुमुक्षुनकूं तर्कके त्यागपूर्वक श्रुतिअर्थके आश्रय करनैकी योग्यता ॥

२२ तिस श्रुतिअर्थके स्पष्ट करनैतैं क्या सिद्ध भया ? तहां कहैहैं:—

२३] तातैं मुमुक्षु कुतर्ककूं त्याग करिके श्रुतिकूं आश्रय करै ।

२४ मुमुक्षुनकूं श्रुतिका अर्थ कैसा अनुसंधान करनैकूं योग्य है ? तहां कहैहैं:—

२५] श्रुतिविषै तौ "माया जीवईशकूं करैहै ।" ऐसैं दिखायाहै ॥

ॐ २५) श्रुतिनविषै जीव ईशका मायिकपना स्पष्ट है ॥ ६८ ॥

॥ ९ ॥ ईशजीवरचित जगत्का कथन ॥

२६] ईक्षणसैं आदिलेके प्रवेशपर्यंत सृष्टि ईश्वरकृत होवैहै औ जाग्रत्सैं आदिलेके मोक्षपर्यंत संसार जीवका कियाहै ॥

२७) ईक्षणसैं आदिलेके प्रवेशपर्यंत सृष्टिकूं ईश्वरकी कार्यता है औ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूप बंध अरु मोक्षरूप संसारकूं जीवकी कार्यता है ॥ ६९ ॥

॥ १० ॥ मुमुक्षुकूं विचारनैयोग्य अर्थका कथन ॥

२८] कूटस्थ असंगहीं है औ इसकूं कछू बी जन्मादिरूप अतिशय होवै नहीं। तिस कारणकरि ऐसैं सर्वदा मनविषै विचार करना ॥

२९) कूटस्थके असंगपनैआदिकं औ मरणजन्मादिरूप व्यवहारमात्रका असद्भाव प्रतिपादन किया। यातैं मुमुक्षु इसीअर्थकूं सर्वदा विचारै । यह अभिप्राय है ॥ ७० ॥

---

६ जीवईशका मायिकपना है ॥ इहां जो मायिकशब्दका अर्थ है सो देखो ५८० वें टिप्पणविषै ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
९५३	³¹ न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ७१ ॥	३४३०
९५४	³³ अवाङ्मनसगम्यं तं श्रुतिर्बोधयितुं सदा । जीवमीशं जगद्वापि समाश्रित्य प्रबोधयेत्॥७२॥	टिप्पणांकः
९५५	³⁵ यया यया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि । सा सैव प्रक्रियेह स्यात्साध्वीत्याचार्यभाषितम् ७३	७०७

३० कूटस्थस्य जन्माद्यतिशयाभावः कुतोऽवगम्यत इत्याशंक्य श्रुतिवाक्यादिति अभिप्रेत्य तद्वाक्यं पठति (न निरोध इति)—

३१] निरोधः न । च उत्पत्तिः न । बद्धः न । च साधकः न । मुमुक्षुः न । वै मुक्तः न । इति एषा परमार्थता ॥७१॥

३२ ननु तर्हि श्रुतिषु तत्र तत्र जीवेश्वरादिस्वरूपप्रतिपादनं किमर्थमित्याशंक्यावाङ्मनसगोचरस्यात्मनोऽवबोधनायेत्याह—

३३] अवाङ्मनसगम्यं तं प्रबोधयितुं श्रुतिः सदा जीवं ईशं वा जगत् अपि समाश्रित्य प्रबोधयेत् ॥ ७२ ॥

३४ ननु तत्त्वस्यैकरूपस्य श्रुतिबोध्यत्वे श्रुतिषु विगानं कुतो दृश्यत इत्याशंक्य न तत्त्वे

॥ ११ ॥ कूटस्थके जन्मादिअभावकी प्रतिपादक श्रुति ॥

३० कूटस्थके जन्मादिरूप अतिशयका अभाव काहेतें जानियेहै? यह आशंकाकरि श्रुतिवाक्यतें जानियेहै। इस अभिप्रायकरिके तिस श्रुतिवाक्यकूं पठन करैहैं:—

३१] "न निरोध कहिये नाश है औ न उत्पत्ति है औ न बद्ध है औ न साधक है औ न मुमुक्षु है औ न मुक्त है। ऐसैं यह परमार्थता है ॥ ७१ ॥

॥ १२ ॥ मनवाणीके अविषय आत्माके बोधअर्थ जीवईशादिजगत्के आरोपका कथन ॥

३२ ननु तब श्रुतिनविषै जीवईश्वरआदिक जगत्के स्वरूपका प्रतिपादन किस अर्थ है? यह आशंकाकरि वाणी अरु मनके अविषय आत्माके बोधनअर्थ जीवईश्वरआदिकके स्वरूपका प्रतिपादन है। ऐसैं कहैहैं:—

३३] वाणी अरु मनके अगम्य तिस आत्माकूं बोधन करनैकूं श्रुति सदा जीवईशकूं वा जगत्कूं बी आश्रय करिके बोधन करैहैं ॥ ७२ ॥

॥ १३ ॥ श्रुतिनके भिन्नभिन्नकथनका सुरेश्वराचार्यउक्तउपयोग ॥

३४ ननु एकअद्वैतरूप तत्त्वकूं श्रुतिकरि बोधन करनैकी योग्यताके हुये श्रुतिनविषै विगान कहिये विविधप्रकारसैं कथनरूप विवाद काहेतैं देखियेहै? यह आशंकाकरि तत्त्व जो

७ इस श्रुतिका स्पष्ट व्याख्यान देखो अंक १९७७—१९७९ विषै

८ जातैं नामजातिआदिकशब्द औ शब्दद्वारा मनकी प्रवृत्तिके निमित्त धर्मनतैं रहित होनैकरि अद्वैतब्रह्म। वाणी औ मनका अविषय होनैतैं साक्षात्बोधन करनैकूं अशक्य है। यातैं जीवईश औ जगत्कूं आरोपकरिके शाखाविषै चंद्रके बोधक पुरुषकी न्याई श्रुति। अद्वैतब्रह्मकूं लक्षणासैं बोधन करैहै ॥

टीकांक: ३४३५ टिप्पणांक: ७०९

श्रुतितात्पर्यमखिलमबुध्वा भ्राम्यते जडः ।
विवेकी त्वखिलं बुध्वा तिष्ठत्यानंदवारिधौ ॥७४॥
मायामेघो जगन्नीरं वर्षत्वेष यथा तथा ।
चिदाकाशस्य नो हानिर्न वा लाभ इति स्थितिः ७५

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांक: ९५६ ९५७

विगानमस्ति अपि तु तद्बोधनप्रकारे तदपि बोध्यपुरुषचित्तवैषम्यानुसारेण सुरेश्वराचार्यैरुक्तमित्याह—

३५] "यया यया पुंसां प्रत्यगात्मनि व्युत्पत्तिः भवेत् । सा सा एव प्रक्रिया इह साध्वी स्यात्" इति आचार्यभाषितम् ॥ ७३ ॥

३६ श्रुत्यर्थस्यैकरूपत्वे तत्प्रतिपादकानामेव कुतो विप्रतिपत्तिरित्याशंक्य श्रुतितात्पर्यबोधशून्यानामेव विप्रतिपत्तिर्न तु तद्विदामित्याह (श्रुतितात्पर्यमिति)—

३७] जडः अखिलं श्रुतितात्पर्यं अबुध्वा भ्राम्यते । विवेकी तु अखिलं बुध्वा आनंदवारिधौ तिष्ठति ॥ ७४ ॥

३८ तर्हि विवेकिनो निश्चयः कीदृश इत्याकांक्षायामाह (मायेति)—

३९] एषः मायामेघः जगन्नीरं यथा

ब्रह्मआत्माकी एकता औ प्रपंचका मिथ्यात्व तिसविषै विगान नहीं है । किंतु तिस तत्त्वके बोधनका प्रकार जो प्रक्रिया तिसविषै विगान है ॥ सो बी बोधन करनैयोग्य पुरुषनके चित्तकी विलक्षणताके अनुसारकरि सुरेश्वराचार्योंनैं कहाहै । ऐसैं कहैहैं:—

३५] जिसजिस प्रक्रियाकरि पुरुषनकूं ब्रह्मसैं अभिन्न प्रत्यगात्माविषै स्पष्ट बोध होवै । सोईसोई प्रक्रिया इहां अद्वैतशास्त्रविषै समीचीन होवैगी । ऐसैं आचार्योंनैं कहाहै ॥ ७३ ॥

॥ १४ ॥ श्रुतिनके एकरूप अर्थविषै मूढनके विवाद औ अमूढनके अविवादका कारण ॥

३६ ननु श्रुतिनके अर्थकूं एकरूपके हुये तिनके प्रतिपादक अन्यभेदवादीनकाहीं काहेतैं विवाद होवैहै ? यह आशंकाकरि श्रुतितात्पर्यके बोधतैं शून्य पुरुषनकाहीं विवाद होवैहै तिसके जाननैवालोंका नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

३७] जड कहिये जो मूर्ख है । सो संपूर्ण श्रुतिके तात्पर्यकूं न जानिके भ्रांतिकूं पावताहै औ विवेकी तौ संपूर्ण श्रुतिके तात्पर्यकूं जानिके आनंदके समुद्रविषै स्थितहोवैहै ॥ ७४ ॥

॥ १५ ॥ विवेकीके निश्चयका आकार ॥

३८ तब विवेकीका निश्चय किस प्रकारका है ? इस आकांक्षाविषै कहैहैं:—

३९] यह माया कहिये विवेकीकूं बाधित होयके वर्त्तमान अज्ञानलेश तिसरूप जो

९ परस्परकी प्रक्रियाविषै दूषण देनैरूप विवादका वाच्य जो विगान । सो अनेक अद्वैतके ग्रंथनविषै है । सो अप्पय्यदीक्षितनामकपंडितनैं सिद्धांतलेशनामग्रंथविषै सर्वके दूषणभूषणके दिखावनैपूर्वक स्पष्ट लिख्याहै । जिसकूं इच्छा होवै सो सिद्धांतलेशविषै वा तिसके अनुसारी वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशविषै देखै ॥

कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥ श्लोकांकः ९५८	ईमं कूटस्थदीपं योऽनुसंधत्ते निरंतरम् । स्वयं कूटस्थरूपेण दीप्यतेऽसौ निरंतरम् ॥ ७६॥ ॥ इति श्रीपंचदश्यां कूटस्थदीपः ॥ ८ ॥	टीकांकः ३४४० टिप्पणांकः ॐ

तथा वर्षंतु । चिदाकाशस्य हानिः नो । वा लाभः न । इति स्थितिः ॥ ७५ ॥

४० ग्रंथाभ्यासफलमाह (इममिति)—

४१] यः इमं कूटस्थदीपं निरंतरं अनुसंधत्ते असौ स्वयं कूटस्थरूपेण निरंतरं दीप्यते ॥ ७६ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारती-तीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण राम-कृष्णाख्येन विदुषा विरचिता कूटस्थदीपतात्पर्यदीपिका समाप्तिमगमत् ॥ ८ ॥

मेघ है । सो जगत्‌रूप जलकूं जैसैं तैसैं वर्षावहु । तिसकरि ब्रह्मरूप मुज चिदाकाशकी न हानि है वा न लाभ है । यह स्थिति कहिये ज्ञानीका निश्चय है ॥ ७५ ॥

॥ १६ ॥ कूटस्थदीपनामग्रंथके अभ्यासका फल

४० कूटस्थदीपग्रंथके आवृत्तिरूप अभ्यास-के फलकूं कहैहैं:—

४१] जो पुरुष इस कूटस्थदीपकूं निरंतर अनुसंधान करताहै कहिये विचारताहै । सो पुरुष आप कूटस्थरूपकरि निरंतरप्रकाशताहै ॥ ७६ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसर-स्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्याः कूटस्थदीपस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ८ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ध्यानदीपः ॥

॥ नवमप्रकरणम् ॥ ९ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९५९	संवादि भ्रमवद्ब्रह्मतत्त्वोपास्त्यापि मुच्यते । उत्तरे तापनीयेऽतः श्रुतोपास्तिरनेकधा ॥ १ ॥ (अस्य व्याख्या ५९० पृष्ठोपरि द्रष्टव्या)	टीकांकः ॐ टिप्पणांकः ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ध्यानदीपव्याख्या ॥ ९ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
कुर्वेऽहं ध्यानदीपस्य व्याख्यां तत्त्वप्रकाशिकाम्

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
क्रियते ध्यानदीपस्य व्याख्या संक्षेपतो मया १

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ श्रीध्यानदीपकी तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ ९ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्त सर्वगुरुनकूं नमस्कार-करिके पंचदशीके ध्यानदीपनामक नवम-प्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिका नाम व्याख्याकूं नरभाषासैं मैं करूंहूं ॥ १ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीभारतीतीर्थ औ विद्यारण्य-मुनीश्वरनकूं नमस्कारकरिके ध्यानदीपकी संक्षेपतैं व्याख्या मेरेकरि करियेहै ॥ १ ॥

* ध्यान (निर्गुणउपासन)कूं प्रकाशनेहारा प्रकरण ॥

४२ इह तावद्वेदांतशास्त्रे नित्यानित्यवस्तुविवेकादिसाधनचतुष्टयसंपन्नस्य सम्यक्श्रवणमनननिदिध्यासनानुष्ठानवतः तत्त्वंपदार्थविवेचनपूर्वकं महावाक्यार्थापरोक्षज्ञानेन ब्रह्मभावलक्षणो मोक्षो भवतीति प्रतिपादितं। तत्र श्रुतोपनिषत्कस्यापि बुद्धिमांद्यादिना केनचित् प्रतिबंधेन वाक्यार्थविषयापरोक्षप्रमित्यनुत्पत्तौ सत्यां तदुत्पादनद्वारा मोक्षफलकोपासनानि दिदर्शयिषुरादौ तावत्सदृष्टांतं ब्रह्मतत्त्वोपासनयापि मोक्षो भवतीति प्रतिजानीते—

४३] संवादिभ्रमवत् ब्रह्मतत्त्वोपास्त्या अपि मुच्यते ॥

४४) यथा संवादिभ्रमेण प्रवृत्तस्याभिप्रेतार्थलाभो भवति । एवं ब्रह्मतत्त्वो-

॥ १ ॥ संवादीभ्रमकी न्याईं ब्रह्मतत्त्वकी उपासनातैं बी मुक्तिके कथनपूर्वक परोक्षज्ञानसैं ब्रह्मकी उपासनाका प्रकार ॥ ३४४२—३५३७ ॥

॥ १ ॥ संवादीभ्रमकी न्याईं ब्रह्मतत्त्वकी उपासनासैं बी मुक्तिका संभव ॥ ३४४२—३४८२ ॥

॥ १ ॥ दृष्टांत औ प्रमाणसहित ब्रह्मतत्त्वकी उपासनासैं मुक्तिकी प्रतिज्ञा ॥

४२ इहां प्रथम वेदांतशास्त्रविषै नित्यानित्यवस्तुके विवेकसैं आदिलेके च्यारीसाधनकरि संयुक्त औ सम्यक् श्रवण मनन अरु निदिध्यासनके अनुष्ठानवाले अधिकारीकूं "तत् त्वं" पदके अर्थ ब्रह्म औ आत्माके विवेचनपूर्वक महावाक्यके अर्थरूप ब्रह्मआत्माका अपरोक्षज्ञानकरि ब्रह्मभावरूप मोक्ष होवैहै। ऐसैं प्रतिपादन कियाहै ॥ तहां उपनिषदनका जिसनैं श्रवण कियाहै । ऐसै अधिकारीकूं बी बुद्धिमंदताआदिक किसी बी प्रतिबंधकरि महावाक्यके अर्थकूं विषय करनैहारी यथार्थअनुभवरूप अपरोक्षप्रमाकी अनुत्पत्तिके हुये तिस अपरोक्षप्रमाकी उत्पत्तिद्वारा मोक्षफलवाली उपासनाके दिखावनैकूं इच्छतेहुये आचार्य । आदिविषै प्रथम दृष्टांतसहित ब्रह्मतत्त्वकी उपासनासैं बी मोक्ष होवैहै । ऐसैं प्रतिज्ञा करैहैं:—

४३]संवादीभ्रमकी न्याईं ब्रह्मतत्त्वकी उपासनासैं बी पुरुष मुक्त होवैहै ॥

४४) जैसैं संवादीभ्रमकरि प्रवर्त्त भये पुरुषकूं

१० (१) नित्यवस्तु जो ब्रह्मात्मा औ अनित्यवस्तु जो अनात्मारूप जगत् ताका **विवेक** कहिये अविकारित्वविकारित्वआदिकभेदज्ञानरूप विचार प्रथमसाधन है। सो सर्वसाधनका कारण है ॥ औ

(२) आदिशब्दकरि त्यागकी इच्छा वा इच्छाराहित्यरूप **वैराग्य** ॥ औ

(३) **शम** कहिये बाह्यविषयनतैं मनका निग्रह । **दम** कहिये विषयनतैं बाह्यइंद्रियनका निग्रह । **उपरति** कहिये त्याग किये वस्तुकी अनिच्छा। **तितिक्षा** कहिये शीतोष्णादिकद्वंद्वके सहनका स्वभाव । **श्रद्धा** नाम गुरुवेदांतवाक्यविषै विश्वास । **समाधान** कहिये ब्रह्मरूप लक्ष्यविषै चित्तकी एकाग्रतारूप **षट्संपत्ति** औ

(४) **तीव्रमोक्षकी इच्छा**

इनका ग्रहण है । ये **च्यारीसाधन** हैं । तिनकरि संयुक्त जो पुरुष है । सो **अधिकारी** है ॥

११ श्रवणका लक्षण देखो प्रत्यक्तत्त्वविवेकगत ५३ वें औ तृप्तिदीपगत १०१ वें श्लोकनविषै ॥ मननका लक्षण देखो प्रत्यक्तत्त्वविवेकके ५३ वें औ तृप्तिदीपके १०२ वें श्लोकनविषै ॥ निदिध्यासनका लक्षण देखो प्रत्यक्तत्त्वविवेकके ५४ वें औ तृप्तिदीपगत १०६ अरु ११२ वें श्लोकनविषै ॥ इन तीनके अनुष्ठान (आचरण)वाले अधिकारीकूं ॥

१२ प्रतिबंधका स्वरूप देखो आगे ३५६३–३६२३ अंकपर्यंत

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९६० | टीकांकः ३४४५ | टिप्पणांकः ७१३

मणिप्रदीपप्रभयोर्मणिबुद्ध्याभिधावतोः ।
मिथ्याज्ञानाविशेषेऽपि विशेषोऽर्थक्रियां प्रति ॥२॥

पासनया अपि अभिलपितब्रह्मभावलक्षणो मोक्षो भवतीत्यर्थः ॥

४५ तत्र किं प्रमाणमित्यत आह (उत्तर इति)—

४६] अतः उत्तरे तापनीये अनेकधा उपास्तिः श्रुता ॥

४७) यत उपासनयापि मोक्षोऽस्ति अतः **तापनीयोपनिषद्यनेकप्रकारेण** ब्रह्मतत्त्वोपासना **श्रुता** उक्ता इत्यर्थः ॥ १ ॥

४८ "संवादिभ्रमवत्" इत्युक्तं प्रपंचयितुं संवादिभ्रमप्रतिपादकवार्तिकं पठति—

४९] मणिप्रदीपप्रभयोः मणिबुद्ध्या अभिधावतोः मिथ्याज्ञानाविशेषे अपि अर्थक्रियां प्रति विशेषः ॥

५०) मणिश्च प्रदीपश्च मणिप्रदीपौ तयोः प्रभे **मणिप्रदीपप्रभे** तयोरिति विग्रहः ॥ मणिप्रभायां दीपप्रभायां च या मणिबुद्धिः सा मिथ्याज्ञानमेव अतस्मिंस्तद्बुद्धित्वात् ।

वांछितअर्थका लाभ होवैहै । ऐसैं ब्रह्मतत्त्वकी उपासनासैं भी मुमुक्षुकूं वांछित ब्रह्मभावरूप मोक्ष होवैहै । यह अर्थ है ॥

४५ "ब्रह्मतत्त्वकी उपासनासैं बी मोक्ष होवैहै" तिसविषै कौंन प्रमाण है? तहां कहैहैं:—

४६] यातैं उत्तरतापनीयविषै अनेकप्रकारसैं उपासना सुनीहै ॥

४७) जातैं उपासनासैं बी मोक्ष है । यातैं तापनीयनामक उपनिषद्‌विषै अनेकप्रकारसैं ब्रह्मतत्त्वकी उपासना कहीहै । यह अर्थ है ॥ १ ॥

॥२॥ संवादीभ्रमके प्रतिपादक वार्तिकका पठन ॥

४८ "संवादीभ्रमकी न्याईं" ऐसैं प्रथमश्लोकविषै उक्त दृष्टांतके वर्णन करनैकूं संवादीभ्रमके प्रतिपादक वार्त्तिककूं पठन करैहैं:—

४९] मणिकी प्रभा औ दीपककी प्रभाविषै मणिबुद्धिकरि धावनकरनैहारे दोनूंपुरुषनके मिथ्याज्ञानरूप भ्रांतिज्ञानके अविशेष नाम समान हुये बी। अर्थक्रिया जो सफलप्रवृत्ति ताकेप्रति विशेष नाम भेद है ॥

५०) मणिकी प्रभाविषै औ दीपककी प्रभाविषै जो मणिबुद्धि है। सो मिथ्याज्ञानहीं है। काहेतें । नहीं जो मणि तिसविषै मणिकी

---

१३ निरंतर अन्यवस्तुके आकार वृत्तिरूप अंतरायरहित उपास्यवस्तुके आकार वृत्तिके प्रवाहकूं **उपासन** औ **उपासना** कहैहैं । सो सगुण औ निर्गुण भेदतैं दोभांतिकी है । सो प्रत्येक बी (१) प्रतीकरूप औ (२) ध्येयकेअनुसार भेदतैं दोभांतिकी है

(१) औरवस्तुविषै औरकी बुद्धिकरिके जो होवै । सो **प्रतीकरूप उपासना** है ॥ जैसैं शालिग्रामविषै विष्णुबुद्धिकरिकै औ नर्मदेश्वरविषै शंकरबुद्धिकरिकै औ आगे ११ वें श्लोकविषै कहियेगी जो स्त्रीआदिकविषै अग्निबुद्धिकरिकें उपासना होवैहै । सो **प्रतीकरूप उपासना** है । सो अनेकप्रकारकी है । औ

(२) उपास्यवस्तुके यथार्थस्वरूपका जो चिंतन । सो **ध्येयानुसार उपासना** है । जैसैं निर्गुणब्रह्मकी अहंग्रहरूप उपासना है औ शास्त्रनिर्णीत ईश्वरके स्वरूपका ध्यान है । सो **ध्येयानुसार उपासना** है ॥

इसरीतिसैं उपासनाके अनेकभेद हैं ॥ तिनका भाष्यकारआदिकआचार्योंनैं तिस तिस उपनिषद्‌आदिकके व्याख्यानमैं निर्धार कियाहै औ मुमुक्षुकूं उपयोगी जो निर्गुणउपासना है । तिसका निर्धार इस ध्यानदीपप्रकरणविषै स्पष्ट है ॥

टीकांक: ३४५१ टिप्पणांक: ॐ | ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्लोकांक: ९६१

५२ दीपोऽपवरकस्यांतर्वर्तते तत्प्रभा बहिः ।
दृश्यते द्वार्यथान्यत्र तद्वद्दृष्टा मणेः प्रभा ॥ ३ ॥
५४ दूरे प्रभाद्वयं दृष्ट्वा मणिबुद्ध्याभिधावतोः ।
प्रभायां मणिबुद्धिस्तु मिथ्याज्ञानं द्वयोरपि ॥ ४ ॥ ९६२

अथापि मणिप्रभायां च या मणिबुद्धिः सार्थक्रियाकारिणी मणिप्रभायां मणिबुद्ध्याभिधावतः पुरुषस्य मणिलाभो भवति इतरस्य तु नास्तीति अर्थक्रियायां वैषम्यमस्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

९१ वार्तिकं श्लोकत्रयेण व्याचष्टे (दीपोऽपवरकस्यांतरिति)—

९२] अपवरकस्य अंतः दीपः वर्तते। तत्प्रभा बहिः द्वारि दृश्यते । अथ तद्वत् अन्यत्र मणेः प्रभा दृष्टा ॥

९३) कस्मिंश्चिन्मंदिरे अपवरकस्यांतर्दीपः तिष्ठति । तस्य प्रभा बहिर्द्वारप्रदेशे रत्नमिव वर्तुलोपलभ्यते । तथान्यस्मिन्मंदिरे अपवरकस्यांतः स्थितस्य रत्नस्य प्रभा बहिर्द्वारप्रदेशे दीपप्रभेव रत्नसमानोपलभ्यते ॥ ३ ॥

९४] (दूर इति)—प्रभाद्वयं दूरे दृष्ट्वा मणिबुद्ध्या अभिधावतोः द्वयोः अपि प्रभायां मणिबुद्धिः तु मिथ्याज्ञानम् ॥

९५) तथाविधं प्रभाद्वयं दूरतो दृष्ट्वा अयं मणिरयं मणिरिति बुद्ध्या द्वौ पुरुषावभिधावनं कुरुतस्तयोः द्वयोरपि प्रभाविषये जायमानं मणिज्ञानं भ्रांतमेव ॥ ४ ॥

बुद्धिके होनैतैं ॥ तथापि मणिकी प्रभाविषै जो मणिबुद्धि है । सो अर्थक्रियाकारिणी कहिये सफलप्रवृत्तिकी जनक है । यातैं मणिकी प्रभाविषै मणिबुद्धिकरि धावनकरनैहारे पुरुषकूं मणिका लाभ होवैहै औ दूसरे दीपककी प्रभाविषै मणिबुद्धिकरि धावनकरनैहारे पुरुषकूं तौ मणिका लाभ नहीं होवैहै । इसरीतिसैं लाभहेतुप्रवृत्तिरूप अर्थ क्रियाविषै भेद है । यह अर्थ है ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ द्वितीयश्लोकउक्तवार्तिककी व्याख्या ॥

९१ द्वितीयश्लोकउक्तवार्त्तिककूं तीनश्लोककरि व्याख्यान करैहैं:—

९२] अपवरक जो अंतर्गृह ताके भीतर दीपक वर्त्तताहै । तिसकी प्रभा बाहिरद्वारविषै देखियेहै औ तैसैं अन्यमंदिरविषै अपवरकके भीतर मणि स्थित है । तिसकी प्रभा द्वारविषै देखियेहै ॥

९३) कोइक मंदिरविषै अंतर्गृह जो गर्भमंदिर ताके भीतर दीपक स्थित है । तिसकी प्रभा बाहिरद्वारदेशविषै रत्न जो मणि ताकी न्यांई गोलाकार देखियेहै । तैसैं अन्यमंदिरविषै अंतर्गृहके भीतर स्थित रत्नकी प्रभा बाहिरदेशविषै दीपकके प्रभाकी न्यांई मणिके समान देखियेहै ॥ ३ ॥

९४] दूरविषै दोनूंप्रभाकूं देखिके मणिबुद्धिकरि धावन करनैहारे दोनूं पुरुषनकूं बी प्रभाविषै जो मणिबुद्धि है । सो तौ मिथ्याज्ञानहीं है ॥

९५) तिसप्रकारकी दोनूंप्रभाकूं दूरतैं देखिके "यह मणि है । यह मणि है ।" ऐसी बुद्धिकरि दोनूंपुरुष धावनकूं करतेभये तिन दोनूंकूं बी प्रभाविषै उत्पन्न भया जो मणिका ज्ञान है । सो भ्रमरूपहीं है ॥ ४ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः		टीकांक:
९६३	[56] न लभ्यते मणिर्दीपप्रभां प्रत्यभिधावता । प्रभायां धावतावश्यं लभ्यतैव मणिर्मणेः ॥ ५ ॥	३४५६
९६४	[59] दीपप्रभामणिभ्रांतिर्विसंवादिभ्रमः स्मृतः । मणिप्रभामणिभ्रांतिः संवादिभ्रम उच्यते ॥ ६ ॥	टिप्पणांक: ७१४

५६] (नेति)- दीपप्रभां प्रत्यभिधावता मणिः न लभ्यते। मणेः प्रभायां धावता अवश्यं मणिः लभ्यते एव ॥

५७) अथापि दीपप्रभायां मणिबुद्धिं कृत्वा धावता पुरुषेण मणिर्न उपलभ्यते मणेः प्रभायां मणिबुद्ध्या धावता मणिर्लभ्यतैव ॥ ५ ॥

५८ भवत्वेवं वार्तिकार्थः प्रकृते किमायातमित्यत आह—

५९] दीपप्रभामणिभ्रांतिः विसंवादिभ्रमः स्मृतः । मणिप्रभामणिभ्रांतिः संवादिभ्रमः उच्यते ॥

६०) या दीपप्रभायां मणिभ्रांतिः अस्ति । सः विसंवादिभ्रमः इति स्मृतः विद्वद्भिः मणिलाभलक्षणार्थक्रियारहितत्वात् । या मणिप्रभायां मणिबुद्धिरस्ति । सा तु मणिलाभलक्षणार्थक्रियावत्त्वात् संवादिभ्रमः इति उच्यते इत्यर्थः ॥ ६ ॥

५६] दीपककी प्रभाकेप्रति धावन करनैहारे पुरुषकूं मणि प्राप्त होवै नहीं औ मणिकी प्रभाविषै मणिबुद्धिसैं धावन करनैहारे पुरुषकूं अवश्य मणि प्राप्त होवैहीं है ॥

५७) तौ वी दीपककी प्रभाविषै मणिबुद्धिकरिके धावन करनैहारे पुरुषकूं मणिका लाभ होवै नहीं औ मणिकी प्रभाविषै मणिबुद्धिकरि धावन करनैहारे पुरुषकूं मणिका लाभ होवैहीं है ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ विसंवादीभ्रम औ प्रकृतसंवादीभ्रमका स्वरूप ॥

५८ ऐसैं द्वितीयश्लोकउक्तवार्तिकका अर्थ होहु। इसकरि प्रकृत जो संवादीभ्रम ताके स्वरूपविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

५९] दीपककी प्रभाविषै मणिकी भ्रांति विसंवादीभ्रम कहियेहै औ मणिकी प्रभाविषै मणिकी भ्रांति संवादीभ्रम कहियेहै ॥

६०) जो दीपककी प्रभाविषै मणिकी भ्रांति है। सो विद्वज्जनोकरि विसंवादीभ्रम[14] कहियेहै। काहेतैं मणिके लाभरूप अर्थ जो फल तिसवाली क्रिया जो प्रवृत्ति तिसकरि रहित होनैतैं ॥ औ जो मणिकी प्रभाविषै मणिकी बुद्धि है। सो तौ मणिके लाभरूप अर्थवाली क्रियाकरि युक्त होनैतैं संवादीभ्रम ऐसैं कहियेहै। यह अर्थ है ॥ ६ ॥

१४ निष्फलप्रवृत्तिके जनक भ्रांतिज्ञान औ ताके विषयकूं विसंवादीभ्रम कहैहैं ॥

१५ सफलप्रवृत्तिके जनक भ्रांतिज्ञान औ ताके विषयकूं संवादीभ्रम कहैहैं ॥

टीकांक: ३४६१ | टिप्पणांक: ॐ | ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: ९६५, ९६६, ९६७

६२ बाष्पं धूमतया बुध्वा तत्रांगारानुमानतः ।
वह्निर्यदृच्छया लब्धः स संवादिभ्रमो मतः ॥७॥
६५ गोदावर्युदकं गंगोदकं मत्वा विशुद्धये ।
संप्रोक्ष्य शुद्धिमाप्नोति स संवादिभ्रमो मतः ॥८॥
६८ ज्वरेणाप्तः सन्निपातं भ्रांत्या नारायणं स्मरन् ।
मृतः स्वर्गमवाप्नोति स संवादिभ्रमो मतः ॥ ९ ॥

६१ एवं प्रत्यक्षविषये संवादिभ्रमं दर्शयित्वाऽनुमानविषयेऽपि तं दर्शयति—

६२] बाष्पं धूमतया बुध्वा तत्र अंगारानुमानतः यदृच्छया वह्निः लब्धः सः संवादिभ्रमः मतः ॥

६३) कचित्प्रदेशे स्थितं बाष्पं धूमत्वेन निश्चित्य तन्मूलप्रदेशे "अयं प्रदेशः अग्निवान् धूमवत्त्वात्" इत्यनुमानाय प्रवृत्तेन पुरुषेण दैवगत्या यद्यग्निस्तत्रोपलभ्येत तदा बाष्पविषयं धूमज्ञानं संवादिभ्रमो मतः ॥ ७ ॥

६४ आगमविषयेऽपि तं दर्शयति—

६५] गोदावर्युदकं गंगोदकं मत्वा विशुद्धये संप्रोक्ष्य शुद्धिं आप्नोति सः संवादिभ्रमः मतः ॥

६६) गोदावर्युदकस्यापि विशुद्धिहेतुत्वमागमसिद्धमतः तत्प्रोक्षणादपि विशुद्धिरस्त्येव । अथापि गोदावर्युदके या गंगोदकबुद्धिः सा भ्रांतिरेव ॥ ८ ॥

६७ उदाहरणांतरमाह—

६८] ज्वरेण सन्निपातं आप्तः

॥ ५ ॥ अनुमानके विषयविषै संवादीभ्रम ॥

६१ ऐसैं प्रत्यक्षप्रमाणके विषयविषै संवादिभ्रमकूं दिखायके अब अनुमानप्रमाणके विषयविषै बी तिस संवादीभ्रमकूं दिखावैहैं:—

६२] बाष्प जो वाफ ताकूं धूमपनैकरि जानिके तहां अंगार जो अग्नि ताके अनुमानतैं यदृच्छाकरि अग्नि प्राप्त होवै। सो संवादीभ्रम मान्याहै ॥

६३) कोइक प्रदेशविषे स्थित वाफकूं धूमपनैकरि निश्चयकरिके । तिस वाफके मूलदेशविषै "यह देश अग्निमान् है । धूमवाला होनैतें ।" ऐसैं अनुमानके अर्थ प्रवृत्त भये पुरुषकूं दैवगतिसैं जब अग्नि तहां प्राप्त होवै । तब सो वाफकूं विषय करनैहारा धूमका ज्ञान संवादीभ्रम कहियेहै ॥ ७ ॥

॥ ६ ॥ शास्त्रके विषयविषै संवादीभ्रम ॥

६४ शास्त्रके विषयविषै बी तिस संवादीभ्रमकूं दिखावैहैं:—

६५] गोदावरीके जलकूं गंगाजल मानिके शुद्धिके अर्थ प्रोक्षणकरिके शुद्धिकूं पावताहै । सो संवादीभ्रम मान्याहै ॥

६६) गोदावरीके जलकूं बी शुद्धिकी कारणता शास्त्रकरि सिद्ध है । यातैं तिस गोदावरीके जलके प्रोक्षणतैं कहिये छिडकारनैतैं बी विशुद्धि हैहीं । तथापि गोदावरीके जलविषै जो गंगाजलकी बुद्धि है । सो भ्रांतिहीं है॥ ८॥

६७ शास्त्रके विषयविषै अन्यउदाहरणकूं कहैहैं:—

६८] ज्वरकरि सन्निपातकूं प्राप्त भया पुरुष भ्रांतिसैं नारायणकूं स्मरण

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९६८

प्रत्यक्षस्यानुमानस्य तथा शास्त्रस्य गोचरे ।
उक्तन्यायेन संवादिभ्रमाः संति हि कोटिशः ॥१०॥

टीकांकः ३४६९ टिप्पणांकः ७१६

भ्रांत्या नारायणं स्मरन् मृतः स्वर्गं अवाप्नोति। सः संवादिभ्रमः मतः ॥

६९) ज्वरेण सन्निपातं प्राप्तः पुरुष "इदं नारायणस्मरणं मम स्वर्गसाधनम्" इति ज्ञानमंतरेणापि सन्निपातप्रयुक्तभ्रमवशात् साधारणपुरुषतया चैद्यादिवत् । नारायणं स्मरन् मृतः स्वर्गं अवाप्नोति एव । "हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः" इति "आक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिं" इत्यादि-पुराणवचनेभ्यः । अत्रापि नारायणनाम्नः पुत्रनामत्वज्ञानं भ्रांतिरेव ॥ ९ ॥

७० एवं त्रिविधसंवादिभ्रमोदाहरणेन सिद्धं अर्थमाह—

७१] प्रत्यक्षस्य अनुमानस्य तथा शास्त्रस्य गोचरे उक्तन्यायेन कोटिशः संवादिभ्रमाः संति हि ॥ १० ॥

करता मर्‍याहुया स्वर्गकूं पावताहै । सो संवादीभ्रम मान्याहै ॥

६९) ज्वर जो ताप तिसकरि सन्निपात जो वात पित्त अरु कफरूप तीनधातुनका उद्बोध ताकूं प्राप्त भया पुरुष । "यह नारायणका स्मरण मेरेकूं स्वर्गका साधन है ।" ऐसैं ज्ञानसैं विना वी सन्निपातके किये भ्रमके वशतैं साधारणपुरुषपनैंकरि शिशुपालआदि-कनकी न्यांई नारायणकूं स्मरण करताहुया मृत होयके स्वर्गकूं पावताहीं है ॥ "दुष्टचित्त-वाले पुरुषनकरि वी स्मरण कियाहुया हरि पापनकूं हरताहै । जैसैं अनिच्छाकरि वी स्पर्श किया अग्नि जलावताहीं है" ॥ औ जातैं पापवान्अजामिल वी "हे नारायण" । ऐसैं पुत्रकूं पुकारकरिके मरताहुया सालोक्यरूप वा यमदंडकी निवृत्तिरूप मुक्तिकूं प्राप्त भया" इत्यादिक पुराणके वचननतैं भ्रांतिसैं नारायणके स्मरणकूं उत्तमलोकके प्राप्तिकी साधनता जानियेहै ॥इस अजामिलके प्रसंगविषै वी नारायणके नामका पुत्रके नामपनैंकरि ज्ञान भ्रांतिहीं है ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक २–९ उक्त त्रिविधसंवादीभ्रमके उदाहरणसैं सिद्धअर्थका कथन ॥

७० ऐसैं तीनप्रकारके संवादीभ्रमके उदाहरणकरि सिद्धअर्थकूं कहैहैं:—

७१] प्रत्यक्ष अनुमान तथा शास्त्र-के विषयविषै कथनकिये न्यायकरि कोटिसंवादीभ्रम प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥

---

१६ इहां आदिशब्दकरि दंतवक्रआदिकनका ग्रहण है ॥ इनकूं ईश्वरभावसैं विना द्वेषआदिककरि नारायणके स्मरणतैं उत्तमगतिकी प्राप्ति भईहै । सो श्रीमद्भागवतविषै कहाहै ॥ गोपिका कामतैं औ कंस भयतैं औ शिशुपालआदिकराजा द्वेषतैं औ यादव संबंधतैं औ तुम (पांडव) स्नेहतैं औ हम (नारदादिक-ऋषि) भक्तितैं भगवत्का स्मरण करिके भगवत्कूं पायेहैं ।" जैसैं चंदनका वृक्ष छेदनआदिकके किये वी संबंधकरि सुगंधकूं देताहै । तैसैं भगवान् बी द्वेषादिभावकरि स्मरण किया हुवा फलदायक होवैहै । ऐसैं जानना ॥

टीकांक: ३४७२ टिप्पणांक: ७१७

ॐअन्यथा मृत्तिकादारुशिलाः स्युर्देवताः कथम् ।
ॐअग्नित्वादिधियोपास्याः कथं वा योषिदादयः ११

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: ९६९

७२विपक्षे बाधकप्रदर्शनेनोक्तमर्थं द्रढयति–

७३] अन्यथा मृत्तिकादारुशिलाः देवताः कथं स्युः ॥

७४) अन्यथा संवादिभ्रमाभावे मृदादयः फलसिद्ध्ये देवतात्वेन पूज्या न भवेयुः स्वतो देवतात्वाभावादित्यर्थः ॥

७५ बाधकांतरमाह (अग्नित्वादिति)–

७६] वा योषिदादयः अग्नित्वादिधिया कथम् उपास्याः ॥

७७) पंचाग्निविद्यायां "योषा वाव गोतमाग्निः पुरुषो वाव गोतमाग्निः पृथिवी वाव गोतमाग्निः पर्जन्यो वाव गोतमाग्निरसौ वाव

॥ ८ ॥ विपक्षविषै बाधकसैं ९–१० श्लोकउक्त-अर्थकी दृढता ॥

७२ संवादीभ्रमके अनंगीकाररूप विपक्षविषै अनिष्टके संपादनस्वरूप तर्करूप बाधके दिखावनैकरि ९–१० श्लोकउक्तअर्थकूं दृढ करैहैं:—

७३] अन्यथा । मृत्तिका काष्ठ अरु शिला देवता कैसैं होवैंगे ?

७४) संवादीभ्रमके अभाव हुये मृत्तिका-आदिक फलकी सिद्धिवास्ते देवताभावकरि पूज्य नहीं होवैंगे । काहेतैं मृत्तिकाआदिककूं स्वरूपतैं देवता होनैके अभावतैं संवादीभ्रमतैंहीं देवताभाव है । यह अर्थ है ॥

७५ संवादीभ्रमके अनंगीकारविषै अन्य-बाधककूं कहैहैं:—

७६] वा स्त्रीआदिक अग्निपनैं-आदिककी बुद्धिकरि उपासना करनैके योग्य कैसैं होवैंगे ?

७७)सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्के चतुर्थ-अध्यायगत पंचाग्निविद्याविषै "हे गौतम ! स्त्री अग्नि है । हे गौतम ! पुरुष अग्नि है । हे गौतम ! पृथिवी अग्नि है । हे गौतम ! मेघ अग्नि है। हे गौतम ! यह स्वर्गलोक अग्नि है ॥" इत्यादिवाक्यनकरि स्त्री पुरुष पृथिवी मेघ स्वर्गलोक। इन पांचका ॐअग्निभावकरि उपासन कहाहै औ वीर्य अन्न वर्षा सोम औ

१७ इन पंचअग्निका छांदोग्यविषै वर्णन है । सो संक्षेपसैं दिखावैहैं:—

(१) हे गौतम ! यह स्वर्गलोक अग्नि है । तिसका आदित्यहीं (सूर्यहीं) समित् (प्रदीप्त करनैतैं इंधन) है औ सूर्यके किरण धूम हैं औ दिवस ज्वाला है औ चंद्रमा (सूर्य औ दिवसरूप इंधन औ ज्वालाके रात्रिमैं अभाव हुये स्पष्ट होनैतैं अंगार है) औ नक्षत्र जो तारे सो विस्फुलिंग हैं ॥ इस अग्निविषै देव (यजमानके प्राणरूप अध्यात्म अरु अग्निआदिरूप अधिदैवत) श्रद्धारूप जलकूं होमतेहैं ॥ तिस आहुतितैं सोमराजा (चंद्रमा) होवैहै ॥

(२) हे गौतम ! पर्जन्य (वृष्टिके साधनका अभिमानी देवता) अग्नि है । तिसका वायुहीं समित् है औ बादल धूम है औ विद्युत् जो बीजली सो ज्वाला है औ अशनि (वज्ररूप) अंगार है औ गर्जितशब्द विस्फुलिंग हैं ॥ इस अग्निविषै पूर्वउक्तदेव सोमराजा (चंद्रमा)कूं होमतेहैं । तिस आहुतितैं वृष्टि होवैहै ॥

(३) हे गौमत ! पृथिवीहीं अग्नि है ॥ तिसका संवत्सरहीं समित् है (संवत्सररूप कालकरि व्रीहिआदिककी उत्पत्तिविषै उपयोगी होनैतैं) औ आकाश धूम है औ रात्रि ज्वाला है औ दिशा अंगार है औ अवांतरदिशा विस्फुलिंग है ॥ इस अग्निविषै पूर्वउक्तदेव वर्षाकूं होमतेहैं । तिस आहुतितैं अन्न होवैहै ।

(४) हे गौतम ! पुरुषहीं अग्नि है ॥ तिसका वाक्इंद्रिय समित् है औ प्राण धूम है औ जिव्हा ज्वाला है औ चक्षु अंगार हैं औ श्रोत्र विस्फुलिंग हैं । इस अग्निविषै पूर्वउक्तदेव अन्नकूं होमतेहैं । तिस आहुतितैं रेत (वीर्य) होवैहै ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९७०	ॐयथावस्तुविज्ञानात्फलं लभ्यत ईप्सितम् । काकतालीयतः सोऽयं संवादिभ्रम उच्यते ॥१२॥	टीकांकः ३४७८ टिप्पणांकः ७१८

द्युलोको गौतमाग्निः" इत्यादिवाक्यैः योषित् पुरुषपृथिवीपर्जन्यद्युलोकानामग्नित्वेनोपासनम् ब्रह्मलोकावाप्तिफलकं न भवेदित्यर्थः । आदिपदेन"मनोब्रह्मेत्युपासीत""आदित्यो ब्रह्मेत्यादेश" इत्येवमादयो गृह्यंते ॥ ११ ॥

७८ इदानीं बहुभिर्ग्रंथैरुपपादितं संवादिभ्रमं बुद्धिसौकर्याय संक्षिप्य दर्शयति—

७९] अयथावस्तुविज्ञानात् ईप्सितं फलं काकतालीयतः लभ्यते । सः अयं संवादिभ्रमः उच्यते ॥

८०) विहितादविहिताद्वा यस्मात् अयथावस्तुविज्ञानात् विपरीतज्ञानात् । ईप्सितं अभिलषितं फलं । काकतालीयन्यायतः दैवगत्या लभ्यते । सोऽयं संवादिभ्रमः इत्यर्थः ॥ १२ ॥

श्रद्धा । इन पांचका आहुतिरूपकरि उपासन कहाहै । सो ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फलवाला नहीं होवैगा । यह अर्थ है ॥ औ मूलविषै जो आदिपद है तिसकरि "मन ब्रह्म है । ऐसैं उपासन करै ।" औ "आदित्य ब्रह्म है। यह आदेश कहिये उपदेश है ॥" ईत्यादिक-उपास्य कहिये उपासनाके विषय ग्रहण करियेहैं ॥ ११ ॥

॥ ९ ॥ श्लोक २–११ उक्त संवादीभ्रमका संक्षेपसैं कथन ॥

७८ अब बहुतग्रंथनकरि उपपादन किये संवादीभ्रमकूं ज्ञानकी सुगमताअर्थ संक्षेपकरिके दिखावैहैः—

७९] अयथार्थवस्तुके विज्ञानतैं वांछितफल काकतालीयन्यायतैं प्राप्त होवै । सो यह संवादीभ्रम कहियेहै ॥

८०) विहित कहिये शास्त्रविषै विधान किये वा अविहित कहिये शास्त्रविषै अविधान किये जिस अयथार्थवस्तुके विज्ञानतैं कहिये विपरीतज्ञानतैं वांछितफलका काकतालीयन्यायतैं नाम दैवगतिसैं लाभ होवै । सो यह संवादीभ्रम है । यह अर्थ है ॥ १२ ॥

(५) हे गौतम! योषा (स्त्री)हीं अग्नि है । तिसका उपस्थहीं समित् है औ जो उपमंत्रण (गुप्तभाषण) करियेहै । सो धूम है औ योनि ज्वाला हैं औ जो भीतर करैहै सो अंगार हैं औ सुखके लव (लेश) विस्फुलिंग हैं ॥ इस अग्निविषै पूर्वउक्तदेव रेतकूं होमतेहैं । तिस आहुतितैं गर्भ होवैहै ॥

टीकाकारनैं जो अनुलोमकरि क्रम दिखायाहै । सो मूलश्लोकके अनुसार है औ यह जो लोमकरि क्रम है । सो श्रुतिगत प्रसंगअनुसार है ॥ इति ॥

१८ इहां आदिशब्दकरि ईश्वरआदिकभावकरि उपासना करने योग्य पतिआदिकअनेकउपास्य जानिलेनें ॥ जो संवादीभ्रमका अनंगीकार होवै । तौ शास्त्रउक्त इन सर्वउपासनका निषेध होवैगा । सो अनिष्ट है । यातैं संवादीभ्रम मान्याचाहिये ॥

१९ (१) कोइक पुरुष दोनूं हाथकरि ताली देवै । तिसके हाथनके बीच दैवगतिसैं काकपक्षी आय जावै । सो काकतालीयन्याय कहियेहै ॥

(२) अथवा तालवृक्ष गिरनैहारा होवै तिसके ऊपर काकपक्षीके बैठतैंहीं सो वृक्ष दैवगतिसैं गिरै । ताकूं काकतालीयन्याय कहैहैं ।

ताकी न्यांई जिस भ्रांतिज्ञानसैं वांछितफलका लाभ होवै । सो संवादीभ्रम कहियेहै ॥

टीकांक: ३४८१ टिप्पणांक: ॐ	८२ स्वयं भ्रमोऽपि संवादी यथा सम्यक्फलप्रदः । ब्रह्मतत्त्वोपासनापि तथा मुक्तिफलप्रदा ॥ १३ ॥ ८४ वेदांतेभ्यो ब्रह्मतत्त्वमखंडैकरसात्मकम् । परोक्षमवगम्यैतदहमस्मीत्युपासते ॥ १४ ॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: ९७१ ९७२

८१ ननु ब्रह्मोपासनस्यायथावस्तुविषयस्य कथं सम्यग्ज्ञानसाध्यमुक्तिफलप्रदत्वमित्याशंक्य संवादिभ्रमवदेवेत्याह (स्वयं भ्रम इति)—

८२] यथा संवादी स्वयं भ्रमः अपि सम्यक्फलप्रदः तथा ब्रह्मतत्त्वोपासना अपि मुक्तिफलप्रदा ॥ १३ ॥

८३ ननु ब्रह्मतत्त्वं ज्ञात्वोपासनं क्रियतेऽज्ञात्वा वा । आद्ये उपासनावैयर्थ्यं मोक्षसाधनस्य ज्ञानस्यैव विद्यमानत्वात् । द्वितीये विषयापरिज्ञानादुपासनमेव न घटत इत्याशंक्याह—

८४] वेदांतेभ्यः अखंडैकरसात्मकं ब्रह्मतत्त्वं परोक्षं अवगम्य "एतत् अहं अस्मि" इति उपासते ॥

८५) अयमभिप्रायः । ब्रह्मात्मैकत्वापरोक्षज्ञानस्य मोक्षसाधनस्यानुत्पन्नत्वान्नोपासनावैयर्थ्यं शास्त्रात् परोक्षतयावगतत्वात् ब्रह्मण उपासनाविषयत्वमिति ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ श्लोक ९–१२ उक्त दृष्टांतकी सिद्धांतमैं योजना ॥

८१ ननु अयथार्थवस्तुकूं विषय करनैहारे ब्रह्मके उपासनकूं सम्यक्ज्ञानकरि साध्य मुक्तिरूप फलका देना कैसैं है? यह आशंकाकरि संवादीभ्रमकी न्यांईहीं ब्रह्मके उपासनकूं बी फलका देना है । ऐसैं कहैहैं:—

८२] जैसैं संवादी कहिये सफलप्रवृत्तिका जनक ज्ञान आप भ्रमरूप हुया बी सम्यक्फलका देनैहारा है । तैसैं ब्रह्मतत्त्वकी उपासना बी मुक्तिरूप फलकी देनैहारी है ॥ १३ ॥

॥२॥ परोक्षज्ञानसैं ब्रह्मतत्त्वकी उपासनाका प्रकार ॥ ३४८३–३५३७ ॥

॥ १ ॥ शास्त्रद्वारा परोक्षपनैकरि ज्ञातब्रह्मकी उपास्यता ॥

८३ ननु ब्रह्मतत्त्वकूं जानिके उपासन करियेहै वा न जानिके उपासन करियेहै? ये दोपक्ष हैं ॥ तिनमैं प्रथमपक्षविषै उपासनाकी व्यर्थता होवैगी । काहेतैं मोक्षके साधन ज्ञानकूंहीं विद्यमान होनैतैं औ द्वितीयपक्षविषै विषयके अज्ञानतैं उपासनहीं घटै नहीं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८४] वेदांततैं अखंडएकरसरूप ब्रह्मतत्त्वकूं परोक्ष जानिके "यह अखंडएकरसरूप ब्रह्म मैं हूं" ऐसैं उपासना करैहै ॥

८५) इहां यह अभिप्राय है:—ब्रह्मआत्माकी एकताके अपरोक्षज्ञानरूप मोक्षके साधनकूं अनुत्पन्न होनैतैं उपासनाकी व्यर्थता नहीं है औ शास्त्रतैं ब्रह्मकूं परोक्षपनैकरि जान्या होनैतैं ब्रह्मकूं उपासनाकी विषयता है । यातैं ब्रह्मकी उपासना बनैहै ॥ १४ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९७३ ९७४

प्रत्यग्व्यक्तिमनुल्लिख्य शास्त्राद्विष्णवादिमूर्तिवत् ।
अस्ति ब्रह्मेति सामान्यज्ञानमत्र परोक्षधीः॥१५॥
चतुर्भुजाद्यवगतावपि मूर्तिमनुल्लिखन् ।
अक्षैः परोक्षज्ञान्येव न तदा विष्णुमीक्षते॥१६॥

टीकांकः ३४८६ टिप्पणांकः ॐ

८६ उपास्यब्रह्मतत्त्वगोचरस्य परोक्षज्ञानस्य किं रूपमित्याशंकायामाह—

८७] **प्रत्यग्व्यक्तिं अनुल्लिख्य शास्त्रात् "ब्रह्म अस्ति" इति सामान्यज्ञानं अत्र परोक्षधीः। विष्णवादिमूर्तिवत् ॥**

८८) प्रत्यग्व्यक्तिं बुद्ध्यादिसाक्षिणमानंदात्मानम् अनुल्लिख्य अविषयीकृत्य । शास्त्रात् सत्यज्ञानादिवाक्यजाताद् । "ब्रह्मास्तीति" एवं सामान्याकारेण जायमानं ज्ञानं अत्र अस्यामुपासनायां परोक्षधीः परोक्षज्ञानं विवक्षितमित्यर्थः। तत्र दृष्टांतः विष्णवादिमूर्त्तिप्रतिपादकशास्त्रजन्यज्ञानवदित्यर्थः ॥ १५ ॥

८९ ननु शास्त्रेण विष्णवादिमूर्तेश्चतुर्भुजत्वादिविशेषप्रतीतेः तज्ज्ञानस्यापि कुतः परोक्षत्वमित्याशंक्याह—

९०] **चतुर्भुजाद्यवगतौ अपि अक्षैः मूर्तिं अनुल्लिखन् परोक्षज्ञानी एव ॥**

९१) शास्त्रेण चतुर्भुजत्वादिविशेषप्रतीतौ अपि चक्षुरादिभिः विष्णवादिमूर्तिं अविषयी कुर्वन् पुरुषः परोक्षज्ञान्येव ॥

॥ २ ॥ दृष्टांतसहित उपास्यगोचरपरोक्षज्ञानका स्वरूप ॥

८६ उपास्य कहिये उपासन करनैकूं योग्य ऐसै ब्रह्मतत्त्वके गोचर परोक्षज्ञानका क्या रूप कहिये आकार है? इस आकांक्षाविषै कहैहैं:—

८७] **आंतरआत्माके स्वरूपकूं अविषयकरिके शास्त्रतैं "ब्रह्म है।" ऐसा सामान्यज्ञान इहां परोक्षज्ञान है। विष्णुआदिकनकी मूर्तिकी न्यांई ॥**

८८) बुद्धिआदिकके साक्षी आनंदरूप आत्माकूं अविषयकरिके "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है।" इत्यादिवाक्यके समूहरूप शास्त्रतैं "ब्रह्म है" इसप्रकार सामान्यआकारकरि उत्पन्न होवैहै जो ज्ञान। सो इस उपासनाविषै परोक्षज्ञान कहनैकूं इच्छित है। यह अर्थ है ॥ तहां दृष्टांत कहैहैं:—विष्णुआदिकनकी मूर्तिके प्रतिपादक शास्त्रसैं जन्य परोक्षज्ञानकी न्यांई ॥ यह अर्थ है ॥ १५ ॥

॥ ३ ॥ दृष्टांतरूप विष्णुआदिकमूर्तिके ज्ञानकी परोक्षता ॥

८९ ननु शास्त्रकरि विष्णुआदिकनका मूर्तिके चतुर्भुजपनैआदिरूप विशेषकी प्रतीतितैं तिस विष्णुआदिकनकी मूर्तिके ज्ञानकूं बी काहेतैं परोक्षपना है। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९०] **चतुर्भुजादिकके ज्ञान हुये बी इंद्रियनकरि मूर्तिकूं अविषय करताहुया पुरुष परोक्षज्ञानीहीं है ॥**

९१) शास्त्रकरि चतुर्भुजपनैआदिक विशेषधर्मकी प्रतीतिके हुये बी । चक्षुआदिकनकरि विष्णुआदिकनकी मूर्तिकूं अविषय करताहुया पुरुष परोक्षज्ञानीहीं है ॥

टीकांकः ३४९२ टिप्पणांकः ॐ

परोक्षत्वापराधेन भवेन्नातत्त्ववेदनम् ।
प्रमाणेनैव शास्त्रेण सत्यमूर्तेर्विभासनात् ॥१७॥
सच्चिदानंदरूपस्य शास्त्राज्ज्ञानेऽप्यनुल्लिखन् ।
प्रत्यंचं साक्षिणं तत्तु ब्रह्म साक्षान्न वीक्षते॥१८॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९७५ ९७६

९२ तत्रोपपत्तिमाह (न तदेति)—

९३] तदा विष्णुं न ईक्षते ॥

ॐ ९३) तदा उपासनाकाले । विष्णुं उपास्यं । नेक्षते नेंद्रियैर्विषयीकरोतीत्यर्थः १६

९४ ननु विष्णवादिगोचरज्ञानस्य व्यक्त्युल्लेखित्वाभावात् भ्रमत्वमित्याशंक्य प्रमाणेन जनितत्वान्न भ्रमत्वमित्याह—

९५] परोक्षत्वापराधेन अतत्त्ववेदनं न भवेत्। प्रमाणेन शास्त्रेण एव सत्यमूर्तेः विभासनात् ॥

९६) परोक्षज्ञानत्वं भ्रांतिज्ञानत्वे कारणं न भवति । किंतु विषयासत्यत्वम् । इह तु प्रमाणभूतेन शास्त्रेणैव यथार्थभूताया विष्ण्वादिमूर्तेः अवभासनात् न भ्रमत्वमित्यर्थः ॥ १७ ॥

९७ ननु सच्चिदानंदव्यक्त्युल्लेखिनो ब्रह्मतत्त्वज्ञानस्य शास्त्रजन्यस्यापि कुतः परोक्षतेत्याशंक्य परोक्षत्वप्रयोजकप्रत्यक्त्वोल्लेखाभावादित्याह (सच्चिदानंदेति)—

९८] शास्त्रात् सच्चिदानंदरूपस्य भाने अपि प्रत्यंचं साक्षिणं अनुल्लिखन् तत् ब्रह्म तु साक्षात् न वीक्षते॥

---

९२ तहां संभवकूं कहैहैंः—

९३] तब विष्णुकूं देखता नहीं है ॥

ॐ ९३) तब उपासनाकालविषै विष्णु जो उपास्य ताकूं देखता नहीं है कहिये इंद्रियनकरि विषय करता नहीं है । यह अर्थ है ॥ १६ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक १६ उक्त प्रमाणसिद्धपरोक्षज्ञानकी अभ्रमरूपता ॥

९४ ननु विष्णुआदिककूं विषय करनैहारे ज्ञानकूं व्यक्ति जो आकार ताके ग्रहण करनैके अभावतैं भ्रमरूपता होवैगी। यह आशंकाकरि विष्णुआदिकके ज्ञानकूं प्रमाणकरि जनित होनैतैं भ्रमरूपता नहीं है । ऐसैं कहैहैंः—

९५] परोक्षपनैके अपराधकरि यह ज्ञान अतत्त्वज्ञान कहिये भ्रमरूप होवै नहीं औ इहां तौ प्रमाणरूप शास्त्रकरिहीं सत्यमूर्तिके भासनैतैं भ्रमरूपता नहीं है॥

९६) परोक्षज्ञानपना भ्रांतिज्ञानविषै कारण नहीं होवैहै । किंतु विषयका असत्यपना भ्रांतिज्ञानविषै कारण है ॥ इहां उपासनाविषै तौ प्रमाणभूत शास्त्रकरिहीं यथार्थरूप विष्णुआदिकनकी मूर्तिके भासनैतैं परोक्षज्ञानकूं भ्रमरूपता नहीं है । यह अर्थ है ॥ १७ ॥

॥५॥ प्रत्यक्व्यक्तिकूं अविषय करनैतैं १९ वें श्लोकउक्त शास्त्रजन्य ब्रह्मके ज्ञानकी परोक्षता ॥

९७ ननु सच्चिदानंदस्वरूपकूं विषय करनैहारे शास्त्रसैं जन्य बी ब्रह्मतत्त्वके ज्ञानकूं काहेतैं परोक्षपना है? यह आशंकाकरि परोक्षपनैका कारण जो प्रत्यक्रूप साक्षीके ग्रहणका अभाव है । तिसतैं तिस ब्रह्मके ज्ञानकूं परोक्षता है । ऐसैं कहैहैंः—

९८] शास्त्रतैं सच्चिदानंदरूपका भान हुये बी प्रत्यक्साक्षीकूं अविषय करताहुया पुरुष तिस ब्रह्मकूं तौ साक्षात् नहीं देखताहै ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९७७ ९७८

शास्त्रोक्तेनैव मार्गेण सच्चिदानंदनिश्चयात् ।
परोक्षमपि तज्ज्ञानं तत्त्वज्ञानं न तु भ्रमः ॥१९॥
ब्रह्म यद्यपि शास्त्रेषु प्रत्यक्त्वेनैव वर्णितम् ।
महावाक्यैस्तथाप्येतद्दुर्बोधमविचारिणः ॥ २० ॥

टीकांकः २४९९ टिप्पणांकः ॐ

९९) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ।" "नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरंजनः।" "सद्धीदं सर्वं तत्सदिति" "चिद्धीदं सर्वं प्रकाशते" इत्यादिशास्त्रात् सच्चिदानंदरूपस्य ब्रह्मणो भानेऽपिप्रत्यंचं साक्षिणमनुल्लिखन् तस्य ब्रह्मणः प्रत्यगात्मरूपत्वमजानानः तद्ब्रह्म साक्षान्न वीक्षते नैव पश्यति ॥१८॥

३५०० कथं तर्हि तथाविधब्रह्मगोचरस्य ज्ञानस्य तत्त्वज्ञानत्वमित्याशंक्यागमप्रमाणजन्यत्वादित्याह—

१] शास्त्रोक्तेन एव मार्गेण सच्चिदानंदनिश्चयात् परोक्षं अपि तत् ज्ञानं तत्त्वज्ञानं । भ्रमः तु न ॥

२) तज्ज्ञानं परोक्षमपि शास्त्रोक्तेनैव प्रकारेण ब्रह्मणः सच्चिदानंदरूपनिश्चायकत्वात् सम्यग्ज्ञानमेव न भ्रम इत्यर्थः ॥ १९ ॥

३ ननु सत्यज्ञानादिवाक्यैर्ब्रह्मणः सच्चिदानंदरूपत्वमिव तत्त्वमस्यादिवाक्यैः प्रत्यग्रूपत्वमपि तस्य बोध्यत एव । अतः शास्त्रजन्यस्यापि ज्ञानस्य प्रत्यग्व्यक्त्युल्लेखित्वादपरोक्षमेवेत्याशंक्याह (ब्रह्मेति)—

९९) "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है" औ "नित्यशुद्ध बुद्ध सत्य मुक्त निरंजन है" औ "कार्यकारणरूप सत्असत् सर्व यह जगत् सत्रूप है" औ "चिद्रूप यह सर्व प्रकाशताहै" इत्यादिकशास्त्रतैं सच्चिदानंदरूप ब्रह्मके भान हुये वी प्रत्यक् कहिये आंतर ऐसे साक्षीकूं अविषय करताहुया कहिये तिस ब्रह्मकी प्रत्यगात्मरूपताकूं न जानताहुया पुरुष । तिस ब्रह्मकूं साक्षात् नहीं देखताहै ॥ १८ ॥

॥ ६ ॥ श्लोक १८ उक्त ब्रह्मगोचरज्ञानकी तत्त्वज्ञानता ॥

३५०० ननु तब तिसप्रकारके ब्रह्मकी प्रत्यगात्मरूपताके अग्राहक ब्रह्मगोचरज्ञानकूं तत्त्वज्ञानपना कहिये यथार्थज्ञानपना कैसैं है ? यह आशंकाकरि शास्त्ररूप प्रमाणसैं जन्य होनैतैं तिसकूं तत्त्वज्ञानपना है । ऐसैं कहैहैं:—

१] शास्त्रउक्तमार्गकरिहीं सच्चिदानंदके निश्चयतैं परोक्ष हुया वी सो ज्ञान तत्त्वज्ञान कहिये प्रमारूप है । भ्रमरूप नहीं ॥

२) सो ज्ञान परोक्ष हुया वी शास्त्रउक्तप्रकारकरिहीं ब्रह्मके सच्चिदानंदरूपका निश्चय करावनैहारा होनैतैं सम्यक्ज्ञानहीं है । भ्रमरूप नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ १९ ॥

॥ ७ ॥ विचाररहित नरकूं केवलमहावाक्यसैं ब्रह्मकी दुर्बोधता ॥

३ ननु "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है" इत्यादिकअवांतरवाक्यनकरि ब्रह्मके सच्चिदानंदरूपताकी न्यांई "तत्त्वमसि" आदिकमहावाक्यकरि इस ब्रह्मकी प्रत्यक्स्वरूप साक्षीरूपता वी बोधन करियेहीं है। यातैं शास्त्रजन्य ज्ञानकूं वी प्रत्यगात्माकूं विषय करनैहारा होनैतैं अपरोक्षपनाहीं होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

टीकांकः ३५०४ टिप्पणांकः ॐ	देहाद्यात्मत्वविभ्रांतौ जागृत्यां न हठात्पुमान् । ब्रह्मात्मत्वेन विज्ञातुं क्षमते मंदधीस्त्वतः ॥ २१ ॥ ब्रह्ममात्रं सुविज्ञेयं श्रद्धालोः शास्त्रदर्शिनः । अपरोक्षद्वैतबुद्धिः परोक्षाद्वैतबुद्ध्यनुत् ॥ २२ ॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९७९ ९८०

४] यद्यपि शास्त्रेषु महावाक्यैः ब्रह्म प्रत्यक्त्वेन एव वर्णितं तथापि एतत् अविचारिणः दुर्बोधम् ॥

५) यद्यपि वेदांतेषु महावाक्यैर्ब्रह्म प्रत्यगात्मत्वेन एव उपदिष्टं तथाप्येतत् प्रत्यग्रूपत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यां तत्त्वंपदार्थविवेकशून्यस्य दुर्बोधं बोद्धुमशक्यमतः केवलाद्वाक्यात्रापरोक्षज्ञानमुत्पद्यत इत्यर्थः ॥ २० ॥

६ ननु सम्यग्ज्ञानस्य प्रमाणवस्तुपरतंत्रत्वात् प्रमाणस्य च तत्त्वमस्यादिवाक्यरूपस्य सद्भावाद्वस्तुनश्च ब्रह्मात्मैक्यलक्षणस्य विद्यमानत्वात्कुतो विचारमंतरेण दुर्बोधत्वमित्याशंक्याह—

७] देहाद्यात्मत्वविभ्रांतौ जाग्रत्यां पुमान् मंदधीत्वतः हठात् ब्रह्म आत्मत्वेन विज्ञातुं न क्षमते ॥

८) ब्रह्मात्मैकत्वापरोक्षज्ञानविरोधिनो देहेंद्रियादिष्वात्मभ्रमस्य विचारनिवर्त्यस्य सद्भावात्तन्निवृत्तये विचारोऽपेक्ष्यत इत्यर्थः ॥२१॥

९ ननु तर्हि देहेंद्रियादिगोचरस्य द्वैतभ्रमस्य

४] यद्यपि शास्त्रनविषै महावाक्यनसैं ब्रह्म प्रत्यक्रूप होनैकरिहीं वर्णन कियाहै । तथापि यह प्रत्यक्रूपपना अविचारीपुरुषकूं दुर्बोध है॥

५) यद्यपि वेदांतनविषै महावाक्यनसैं ब्रह्म प्रत्यगात्मरूप होनैकरिहीं उपदेश कियाहै । तथापि यह ब्रह्मका प्रत्यगात्मरूपपना अन्वयव्यतिरेककरि "तत् त्वं"पदार्थके विवेकसैं रहित पुरुषकूं दुर्बोध है कहिये जाननैकूं अशक्य है । यातैं केवल कहिये विचाररहितवाक्यतैं अपरोक्षज्ञान उत्पन्न होवै नहीं । यह अर्थ है ॥ २० ॥

॥ ८ ॥ देहादिकमैं आत्मभ्रांतिके होते मंदबुद्धियुक्तकूं हठसैं आत्मरूपसैं ब्रह्मके ज्ञानकी अशक्यता ॥

६ ननु सम्यक्ज्ञानकूं प्रमाण औ वस्तु जो प्रमेय ताके आधीन होनैतैं औ "तत्त्वमसि" आदिकवाक्यरूप प्रमाणके सद्भावतैं अरु ब्रह्मआत्माकी एकतारूप वस्तुके विद्यमान होनैतैं। विचारसैं विना ब्रह्मके प्रत्यगात्मरूपताका काहेतैं दुर्बोधपना है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७] देहादिकविषै आत्मापनैकी भ्रांतिके जाग्रत् कहिये विद्यमान होते । पुरुष मंदबुद्धिवाला होनैकरि हठतैं ब्रह्मकूं आत्मारूप होनैकरि जाननैकूं समर्थ नहीं होवैहै ॥

८) ब्रह्म औ आत्माकी एकताके अपरोक्षज्ञानके विरोधी औ विचारसैं निवृत्ति करनैके योग्य जो देहइंद्रियआदिकनविषै आत्मापनैका भ्रम है । तिसके सद्भावतैं तिस भ्रमकी निवृत्तिअर्थ विचार अपेक्षित होवैहै । यह अर्थ है ॥ २१ ॥

॥ ९ ॥ अपरोक्षद्वैतभ्रम औ परोक्ष अद्वैतज्ञानका अविरोध ॥

९ ननु तब देहइंद्रियआदिककूं विषय करनेहारे द्वैतभ्रमके सद्भावतैं अद्वितीयब्रह्मगोचर-

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९८१

[13]अपरोक्षशिलाबुद्धिर्न परोक्षेशतां नुदेत् ।
[15]प्रतिमादिषु विष्णुत्वे को वा विप्रतिपद्यते॥२३॥

९८२

[17]अश्रद्धालोरविश्वासो नोदाहरणमर्हति ।
[18]श्रद्धालोरेव सर्वत्र वैदिकेष्वधिकारतः ॥ २४ ॥

टीकांकः ३५१० टिप्पणांकः ७२०

सद्भावादद्वितीयब्रह्मगोचरं परोक्षज्ञानमपि नोदीयादित्याशंक्यापरोक्षद्वैतभ्रमस्य परोक्षाद्वैतज्ञानाविरोधित्वात् श्रद्धावतः पुंसः शास्त्रात् परोक्षज्ञानमुत्पद्यत एवेत्याह (ब्रह्ममात्रमिति)—

१०] अपरोक्षद्वैतबुद्धिः परोक्षाद्वैतबुद्ध्यनुत् श्रद्धालोः शास्त्रदर्शिनः ब्रह्ममात्रं सुविज्ञेयम् ॥

११) अपरोक्षद्वैतबुद्धिः यतः परोक्षाद्वैतबुद्ध्यनुत् । अतो ब्रह्ममात्रं सुविज्ञेयं इति योजना ॥ २२ ॥

१२ अपरोक्षभ्रमस्य परोक्षसम्यग्ज्ञानाविरोधित्वे दृष्टांतमाह—

१३] अपरोक्षशिलाबुद्धिः परोक्षेशतां न नुदेत् ॥

१४ विरोधाभावमेवोदाहृत्य दर्शयति—

१५] प्रतिमादिषु विष्णुत्वे कः वा विप्रतिपद्यते ॥ २३ ॥

१६ केचन विप्रतिपद्यमाना उपलभ्यंत इत्याशंक्याह—

परोक्षज्ञान वी उदय नहीं होवैगा । यह आशंकाकरि अपरोक्षरूप द्वैतके भ्रमकूं परोक्षरूप अद्वैतके ज्ञानका अविरोधी होनैतैं । श्रद्धावान्‌पुरुषकूं शास्त्रतैं परोक्षज्ञान उत्पन्न होवैहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

१०] अपरोक्षद्वैतकी बुद्धि जातैं परोक्षअद्वैतबुद्धिकी अविरोधी है।यातैं श्रद्धावान्‌शास्त्रदर्शीपुरुषकूं ब्रह्ममात्र सुखसैं जाननैकूं योग्य है॥

११) अपरोक्षरूप द्वैतका ज्ञान जातैं परोक्षरूप अद्वैतके ज्ञानका अविरोधी है । यातैं ब्रह्ममात्र सुखसैं जाननैकूं योग्य है । ऐसैं योजना है ॥ २२ ॥

॥ १० ॥ श्लोक २२ उक्त अर्थमैं दृष्टांत ॥

१२ अपरोक्षभ्रमकूं परोक्षसम्यक्‌ज्ञानका अविरोधी होनैविषै दृष्टांत कहैहैं:—

१३] अपरोक्षरूप पाषाणकी बुद्धि जो ज्ञान। सो परोक्ष ईश्वरता कहिये ईश्वरपनैकी बुद्धि। ताकेप्रति विरोधकूं पावै नहीं ॥

१४ विरोधके अभावकूंहीं उदाहरणकरिके दिखावैहैं:—

१५] प्रतिमाआदिकनविषै औ विष्णुपनैविषै कौन आस्तिकपुरुष विवादकूं करताहै? कोइ वी नहीं ॥२३॥

॥ ११ श्लोक २३ उक्त दृष्टांतमैं शंकाका परिहार ॥

१६ कोइक नास्तिकपुरुष विवाद करतेहुये देखियेहैं। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

---

२० यह नियम है:—एकवस्तुकूं विषय करनैहारे भिन्नआकारवाले दोज्ञान एकअंतःकरणविषै होवै नहीं। यातैं एकहीं द्वैतके वा अद्वैतके अपरोक्षज्ञान औ परोक्षज्ञानका एकअंतःकरणविषै होनैका विरोध है। परंतु द्वैतके अपरोक्षज्ञान औ अद्वैतके परोक्षज्ञानका विरोध नहीं है । तातैं उपासककूं देहादिरूप द्वैतकी अपरोक्षभ्रांतिके होते बी परोक्षपनैंकरि अद्वैतब्रह्मका ज्ञान संभवैहै ॥

टीकांक: ३५१७ टिप्पणांक: ॐ	२२ सकृदाप्तोपदेशेन परोक्षज्ञानमुद्भवेत् । २४ विष्णुमूर्त्युपदेशो हि न मीमांसामपेक्षते ॥२५॥ २६ कर्मोपास्ती विचार्येते अनुष्ठेयाविनिर्णयात् । २८ बहुशाखाविप्रकीर्णं निर्णेतुं कः प्रभुर्नरः ॥ २६ ॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९८३ ९८४

१७] अश्रद्धालोः अविश्वासोः उदाहरणं न अर्हति ॥

१८ कुत इत्यत आह(श्रद्धालोरेवेति)—

१९] सर्वत्र वैदिकेषु श्रद्धालोः एव अधिकारतः ॥

२०) सर्वेषु वेदोक्तानुष्ठानेषु श्रद्धालोरेव श्रद्धावतः एवाधिकारित्वादित्यर्थः ॥ २४ ॥

२१ एतावता परोक्षज्ञाने किमायातमित्यत आह—

२२] सकृत् आप्तोपदेशेन परोक्षज्ञानं उद्भवेत् ॥

२३ उक्तमर्थं लोकानुभवेन द्रढयति (विष्णुमूर्तीति)—

२४] हि विष्णुमूर्त्युपदेशः मीमांसां न अपेक्षते ॥ २५ ॥

२५ ननु तर्हि शास्त्रेषु कुतः विचाराः क्रियंत इत्याशंक्यानुष्ठेययोः कर्मोपासनयोः संदेहसंभवात्तन्निर्णयाय विचाराः क्रियंतइत्याह (कर्मोपास्तीति)—

२६] अनुष्ठेयाविनिर्णयात् कर्मोपास्ती विचार्येते ॥

२७ संदेहसंभवमेवोपपादयति—

१७] अश्रद्धालु औ अविश्वासु पुरुषका उदाहरण देनैकूं योग्य नहीं है ॥

१८ काहेतैं ? तहां कहैहैं:—

१९] श्रद्धालुकूंहीं सर्ववैदिककर्मनविषै अधिकारतैं ॥

२०) सर्व वेदउक्तअनुष्ठानोंविषै श्रद्धावान्पुरुषकूंहीं अधिकारी होनैतैं श्रद्धा औ विश्वाससैं रहित पुरुषका उदाहरण अयोग्य है । यह अर्थ है ॥ २४ ॥

॥ १२ ॥ लोकानुभवसहित एकवार आप्तउपदेशतैं परोक्षज्ञानकी उत्पत्ति ॥

२१ इतनैं कहिये १४–२४ श्लोकपर्यंत किये कथनकरि परोक्षज्ञानविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

२२] एकवार आप्त जो यथार्थवक्तापुरुष ताके उपदेशकरि परोक्षज्ञान उत्पन्न होवैहै ॥

२३ उक्तअर्थकूं लोकनके अनुभवकरि दृढ करैहैं:—

२४] जातैं विष्णुकी मूर्तिका उपदेश परोक्षज्ञानके जननविषै विचारकी अपेक्षा नहीं करैहै । किंतु विचारसैं विनाहीं परोक्षज्ञानकूं जनताहै ॥ २५ ॥

॥ १३ ॥ संदेहके संभवकरि कर्मउपासनाके विचार करनैकी योग्यता ॥

२५ ननु तब शास्त्रनविषै विचार काहेतैं करियेहै ? यह आशंकाकरि अनुष्ठान करनैके योग्य कर्म औ उपासनविषै संदेहके संभवतैं तिनके निर्णयअर्थ शास्त्रनविषै विचार करियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

२६] अनुष्ठान करनैयोग्य कर्मउपासनके अनिर्णयतैं कर्मउपासना दोई । शास्त्रनविषै विचार करियेहैं ॥

२७ कर्मउपासनाविषै संदेहके संभवकूंहीं उपपादन करैहैं:—

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९८५

[31] निर्णीतोऽर्थः कल्पसूत्रैर्ग्रथितस्तावतास्तिकः ।
विचारमंतरेणापि शक्तोऽनुष्ठातुमंजसा ॥ २७ ॥

टीकांकः ३५२८ टिप्पणांकः ७२१

२८] बहुशाखाविप्रकीर्णं निर्णेतुं नरः कः प्रभुः ॥

२९) अनेकासु शाखासु तत्र तत्र चोदितं कर्म उपासनं वा एकत्र समाहृत्य निर्णेतुं अस्मदादिः नरः कः प्रभुः समर्थः न कोऽपीत्यर्थः ॥ २६ ॥

३० ननु तर्ह्यननुष्ठेयत्वमेव कर्मोपासनयोः प्राप्तमित्याशंक्याह—

३१] निर्णीतः अर्थः कल्पसूत्रैः ग्रथितः तावता आस्तिकः विचारं अंतरेण अपि अंजसा अनुष्ठातुं शक्तः ॥

३२) जैमिन्यादिभिः पूर्वाचार्यैर्निश्चितः अर्थः अनुष्ठानप्रकारः कल्पसूत्रैः संगृहीतोऽस्ति । तावता तैर्ग्रथितत्वेनैव तेषु विश्वासवान् पुरुषः विचारं विना अपि कर्म सम्यक् अनुष्ठातुं शक्नोत्येव ॥ २७ ॥

२८] बहुशाखाविषै बिखरे हुये कर्म-उपासनकूं निर्णय करनैकूं कौन नर प्रभु है ?

२९) अनेकशाखाविषै तहां तहां भिन्नभिन्न-स्थलविषै कथन किये कर्म वा उपासनकूं एकठिकानै मिलायके निर्णय करनैकूं अस्मदादिकआधुनिकमनुष्य कौन समर्थ है ? कोई बी नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ २६ ॥

॥ १४ ॥ कल्पसूत्रनकरि निर्णीतअर्थसैं विश्वासयुक्तकूं विचारविना कर्मअनुष्ठानकी शक्यता ॥

३० ननु जब निर्णयका अभाव है । तब कर्म औ उपासनके अनुष्ठान करनैकी योग्यताका अभाव प्राप्त भया । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३१] जो निर्णीतअर्थ कल्पसूत्रनकरि गुंथन कियाहै । तितनैंकरि आस्तिकपुरुष विचारसैं विना बी अनायासकरि अनुष्ठान करनैकूं समर्थ होवैहै ॥

३२) जैमिनिआदिक पूर्वके आचार्योंनै निश्चित किया जो अनुष्ठानका प्रकाररूप अर्थ सो [722]कल्पसूत्रनकरि संग्रहीत कहिये गुंथित है ॥ तितनैं कल्पसूत्रनकरि गुंथित होनैंकरिहीं तिन कल्पसूत्रनविषै विश्वासवान्पुरुष विचारसैं विना बी कर्मकूं सम्यक्अनुष्ठान करनैकूं समर्थ होवैहीं है ॥ २७ ॥

७२१ शाखाके भेदका प्रकार देखो ६४७ वें टिप्पणविषै ।

७२२ जैमिनीय (जैमिनिऋषिकृत) । आश्वलायन (आश्वलायनऋषिकृत)। आपस्तंब (आपस्तंबऋषिकृत)। बौद्धायन । (बोधायनऋषिकृत) । कात्यायनीय (कात्यायनऋषिकृत) । वैखानसीय (वैखानसऋषिकृत) । भेदतैं कल्पसूत्र षट्प्रकारके हैं ॥ इनविषै वैदिककर्मके अनुष्ठानका प्रकार दिखायाहै ॥ यह वेदके षट्अंगनके भीतर एक अंग है ॥

टीकांकः ३५३३ टिप्पणांकः ७२३

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९८६ ९८७

उपास्तीनामनुष्ठानमार्षग्रंथेषु वर्णितम् ।
विचाराक्षममर्त्याश्च तच्छ्रुत्वोपासते गुरोः ॥२८॥
वेदवाक्यानि निर्णेतुमिच्छन्मीमांसतां जनः ।
आप्तोपदेशमात्रेण ह्यनुष्ठानं हि संभवेत् ॥ २९ ॥

३३ ननु तत्रोपासनाविचाराभावात् तदनुष्ठानं न संभवेदित्याशंक्याह (उपास्तीनामिति)—

३४] आर्षग्रंथेषु उपास्तीनां अनुष्ठानं वर्णितं विचाराक्षममर्त्याः च तत् गुरोः श्रुत्वा उपासते ॥

३५) आर्षग्रंथेषु ब्राह्मवासिष्ठादिमंत्रकल्पेषु उपासनाप्रकारो वर्णितः । ततो विचारासमर्था मनुष्याः कल्पेषूक्तं तत् उपासनं गुरुमुखादवगत्य अनुतिष्ठंतीति भावः ॥ २८ ॥

३६ ननु तर्हि इदानींतनैरपि ग्रंथकर्तृभिर्वेदवाक्यविचारः कुतः क्रियत इत्याशंक्य स्वस्वबुद्धिपरितोषायैव क्रियते नानुष्ठानसिद्ध्य इत्याह (वेदेति)—

३७] जनः वेदवाक्यानि निर्णेतुं इच्छन् मीमांसतां हि । आप्तोपदेशमात्रेण अनुष्ठानं हि संभवेत् ॥ २९ ॥

॥ १९ ॥ आर्षग्रंथनमैं निर्णीत उपासनाका विचाररहितकूं गुरुमुखद्वारा श्रवणसैं अनुष्ठान ॥

३३ ननु तिन कल्पसूत्रनविषै उपासनाके विचारके अभावतैं तिस उपासनाका अनुष्ठान नहीं संभवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३४] उपासननका अनुष्ठान आर्षग्रंथनविषै कहिये सर्वज्ञऋषिकृतग्रंथनविषै वर्णन किया है । तातैं विचारविषै असमर्थ मनुष्य तिस उपासनकूं गुरुतैं सुनिके उपासनाकूं करैहैं ॥

३५) आर्षग्रंथ जे ब्राह्मवासिष्ठआदिकमंत्रकल्प[२३] तिनविषै उपासनाका प्रकार वर्णन किया है । तातैं विचारविषै असमर्थ जे मनुष्य हैं । वे कल्पग्रंथनविषै उक्त तिस उपासनकूं गुरुके मुखतैं जानिके अनुष्ठान करैहैं ॥ यह भाव है ॥ २८ ॥

॥ ११ ॥ आप्तोपदेशमात्रकरि उपासनके अनुष्ठानका संभव ॥

३६ ननु तब आधुनिकग्रंथकारनकरि बी वेदवाक्यनका विचार काहेतैं करियेहै ? यह आशंकाकरि अपनी अपनी बुद्धिके संतोषअर्थहीं तिनोंकरि वेदवाक्यनका विचार करिये है । अनुष्ठानकी सिद्धिअर्थ नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

३७] विद्वान्जन जो हैं । सो वेदवाक्यनके निर्णय करनैकूं इच्छताहुया भलैं विचारकूं करै । परंतु आप्तपुरुषके उपदेशमात्रकरिहीं उपासनाका अनुष्ठान संभवैहै ॥ २९ ॥

२३ ब्राह्म (ब्रह्मदेवकृत)कल्प । वासिष्ठ (वशिष्ठमुनिकृत)कल्प । इनसैं आदिलेके जे तंत्रग्रंथ हैं । तिनविषै उपासनाके अनुष्ठानका प्रकार दिखायाहै ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९८८ ९८९

टीकांक: ३५३८ टिप्पणांक: ॐ

[३९]ब्रह्मसाक्षात्कृतिस्त्वेवं विचारेण विना नृणाम् ।
आप्तोपदेशमात्रेण न संभवति कुत्रचित् ॥ ३० ॥
[४२]परोक्षज्ञानमश्रद्धा प्रतिबध्नाति नेतरत् ।
अविचारोऽपरोक्षस्य ज्ञानस्य प्रतिबंधकः ॥ ३१ ॥

३८ ननु ब्रह्मोपासनवत् ब्रह्मसाक्षात्कारस्याप्युपदेशमात्रादेव सिद्धिः किं न स्यादित्याशंक्याह (ब्रह्मेति)—

३९] एवं नृणां ब्रह्मसाक्षात्कृतिः तु विचारेण विना आप्तोपदेशमात्रेण कुत्रचित् न संभवति ॥

४०) आप्तोपदेशमात्रेण उपासनानुष्ठानोपयोगिपरोक्षज्ञानमुत्पद्यते। अपरोक्षज्ञानं तु विचारमंतरेण न जायते इत्युक्तम् ॥ ३० ॥

४१ तत्र कारणमाह (परोक्षेति)—

४२] अश्रद्धा परोक्षज्ञानं प्रतिबध्नाति इतरत् न । अविचारः अपरोक्षस्य ज्ञानस्य प्रतिबंधकः ॥

४३) यतोऽविश्वास एव परोक्षज्ञानं प्रतिबध्नाति । नाविचारोऽतस्तन्निवृत्तौ सकृदुपदेशादेव परोक्षज्ञानजन्मोपपद्यते । अविचारप्रतिबंधस्य अपरोक्षज्ञानस्य तु विचारद्वारा तन्निवृत्तिमंतरेणोत्पत्तिः न संभवति । अतो विचारः कर्तव्य इति भावः ॥ ३१ ॥

॥ २ ॥ विचारसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिके कथनपूर्वक तिसके प्रतिबंधका कथन ॥ ॥ ३५३८—३६२३ ॥

॥ १ ॥ विचारसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिका कथन ॥ ३५३८—३५६२ ॥

॥ १ ॥ विचारसैंविना अपरोक्षज्ञानका असंभव ॥

३८ ननु ब्रह्मके उपासनकी न्याई ब्रह्मके साक्षात्कारकी बी उपदेशमात्रतैंहीं सिद्धि क्यूं नहीं होवैगी ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३९] ऐसैं । मनुष्यनकूं ब्रह्मका साक्षात्कार तौ विचारसैं विना आप्तके उपदेशमात्रकरि कहूं बी नहीं संभवैहै ॥

४०) आप्तपुरुषके उपदेशमात्रकरि उपासनाके अनुष्ठानविषै उपयोगी परोक्षज्ञान उत्पन्न होवैहै । अपरोक्षज्ञान तौ विचारसैं विना नहीं होवैहै । ऐसैं १४—२९ श्लोकपर्यंत कहा॥३०॥

॥ २ ॥ श्लोक ३० उक्त अर्थमैं कारण ॥

४१ विचारसैं विना आप्तके उपदेशमात्रकरि अपरोक्षज्ञान होवै नहीं। तिसविषै कारण कहैहैं:—

४२] अश्रद्धा परोक्षज्ञानकूं प्रतिबंध करैहै। अन्यअविचार नहीं औ अविचार अपरोक्षज्ञानका प्रतिबंधक है ॥

४३) जातैं अविश्वासहीं परोक्षज्ञानकूं प्रतिबंध करैहै । अविचार नहीं। यातैं तिस अविश्वासकी निवृत्तिके हुये एकवार उपदेशतैंहीं परोक्षज्ञानका जन्म संभवैहै औ अविचाररूप प्रतिबंधवाले अपरोक्षज्ञानकी तौ विचारद्वारा तिस अविचारकी निवृत्तिसैं विना उत्पत्ति संभवै नहीं। यातैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ विचार कर्त्तव्य है ॥ यह भाव है ॥ ३१ ॥

टीकांक: ३५४४ टिप्पणांक: ॐ

विचार्याप्यपरोक्षेण ब्रह्मात्मानं न वेत्ति चेत् ।
आपरोक्ष्यावसानत्वाद्भूयो भूयो विचारयेत् ॥३२॥
विचारयन्नामरणं नैवात्मानं लभेत चेत् ।
जन्मांतरे लभेतैव प्रतिबंधक्षये सति ॥ ३३ ॥
इह वामुत्र वा विद्येत्येवं सूत्रकृतोदितम् ।
शृण्वंतोऽप्यत्र बहवो यन्न विद्युरिति श्रुतिः॥३४॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९९० ९९१ ९९२

४४ ननु विचारे कृतेऽपि यदाऽपरोक्षज्ञानं न जायते तदा किं कर्तव्यमित्यत आह—

४५] **विचार्य अपि ब्रह्मात्मानं अपरोक्षेण न वेत्ति चेत्। आपरोक्ष्यावसानत्वात् भूयः भूयः विचारयेत् ॥**

४६) तत्त्वंपदार्थौ सम्यक् विचार्यापि वाक्यार्थं ब्रह्मात्मैकत्वमपरोक्षतया न जानातीति चेत् तदापि पुनः पुनर्विचार एव कर्तव्योऽपरोक्षज्ञानहेतोरन्यस्याभावादितिभावः ॥ ३२ ॥

४७ ननु भूयो भूयो विचारेणापि इह साक्षात्कारानुदये सति विचारो व्यर्थः स्यादित्याशंक्याह (विचारयन्निति)—

४८] **आमरणं विचारयन् आत्मानं न एव लभेत चेत्। जन्मांतरे प्रतिबंधक्षये सति लभेत एव ॥ ३३ ॥**

४९ नन्विदं कुतोऽवगतमित्याशंक्य ब्रह्म-

॥ ३ ॥ विचारसैं अपरोक्षज्ञानके न हुये बी वारंवार विचारकी कर्तव्यता ॥

४४ ननु विचारके किये हुये बी जब अपरोक्षज्ञान होवै नहीं तब क्या कर्तव्य है ? तहां कहैहैं:—

४५] **विचारकरिके बी जब ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माकूं अपरोक्षपनैकरि नहीं जानताहै । तब विचारकूं अपरोक्षतारूप अंतवाला होनैतैं वारंवार विचारकूं करै ॥**

४६) "तत्"पद औ "त्वं"पदके अर्थ ब्रह्म औ आत्माकूं सम्यक्विचारकरिके बी वाक्यार्थरूप ब्रह्म औ आत्माकी एकताकूं अपरोक्षपनैकरि जो नहीं जानताहै । तौ बी वारंवार विचारहीं कर्तव्य है । काहेतैं अन्य कहिये विचारसैं भिन्न अपरोक्षज्ञानके हेतुके कहिये असाधारण अंतरंगसाधनके अभावतैं॥ यह भाव है ॥ ३२ ॥

॥ ४ ॥ प्रतिबंधके होते पूर्व किये विचारसैं जन्मांतरमैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्ति ॥

४७ ननु वारंवार विचारकरिके बी इसजन्मविषै साक्षात्कारकी अनुत्पत्तिके हुये विचार व्यर्थ होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४८] **मरणपर्यंत विचार करता हुया जब आत्माकूं पावता कहिये जानता नहीं । तब जन्मांतरविषै प्रतिबंधके क्षय हुये आत्माकूं पावैगाहीं । यातैं विचार व्यर्थ होवै नहीं ॥ ३३ ॥**

॥ ५ ॥ श्लोक ३३ उक्त अर्थमैं व्याससूत्र औ श्रुतिप्रमाण ॥

४९ ननु प्रतिबंधके होते इसजन्मविषै

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९९२

टीकांकः ३५५० टिप्पणांकः ७२४

गर्भ एव शयानः सन्वामदेवोऽवबुद्धवान् ।
पूर्वाभ्यस्तविचारेण यद्वदध्ययनादिषु ॥ ३५ ॥

सूत्रकृता व्यासेन "ऐहिकमप्यमस्तुतप्रतिबंधे तद्दर्शनात्" इत्यस्मिन् सूत्रेऽभिधानादित्याह—

५०] इह वा अमुत्र वा विद्या इति एवं सूत्रकृता उदितम् ॥

५१ सति प्रतिबंधे इह जन्मनि ज्ञानानुत्पत्तौ श्रुतिं दर्शयति (श्रृण्वंत इति)—

५२] "बहवः श्रृण्वंतः अपि यत् अत्र न विद्युः" इति श्रुतिः ॥ ३४ ॥

५३ इह जन्मनि श्रवणादिकर्तुः जन्मांतरेऽपरोक्षज्ञानं भवतीत्यत्रापि "गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा" इत्यादिकां श्रुतिमर्थतः पठति—

५४] गर्भे एव शयानः सन् वामदेवः पूर्वाभ्यस्तविचारेण अवबुद्धवान् ॥

ज्ञान होवै नहीं औ जन्मांतरविषै प्रतिबंधके क्षय हुये ज्ञान होवैहै। यह तुमनैं किस प्रमाणतैं जान्याहै ? यह आशंकाकरि ब्रह्मसूत्रनके कर्त्ता श्रीव्यासजीनैं "प्रस्तुतप्रतिबंधके न होते इसजन्मविषै बी विद्याका जन्म होवैहै । ऐसैं श्रुतिस्मृतिविषै तिसके देखनैंतैं" ईसैं सूत्रविषै कथन कियाहै । तिसकरि हमनैं जान्याहै ऐसैं कहैहैं:—

५०] "इसजन्मविषै वा अन्यजन्मविषै विद्या जो ज्ञान सो होवैहै" ऐसैं सूत्रकारनै कह्याहै ॥

५१ प्रतिबंधके होते इसजन्मविषै ज्ञानकी अनुत्पत्तिमैं श्रुतिकूं दिखावैहैं:—

५२] "बहुतपुरुष श्रवण करतेहुये बी प्रतिबंधके होते जिस आत्माकूं इसजन्मविषै नहीं जानतेहैं ।" यह श्रुति है ॥ ३४ ॥

॥ ६ ॥ इसजन्ममैं श्रवणादियुक्तकूं अन्यजन्मविषै ज्ञानकी उत्पत्तिमैं दृष्टांतसहित श्रुति ॥

५३ इसजन्मविषै श्रवणादिकके करनैहारे मुमुक्षुकूं जन्मांतरविषै अपरोक्षज्ञान होवैहै । इसअर्थविषै बी "इन अधिकारिनके मध्यमैंसैं गर्भविषै वसताहुया वामदेवऋषि पीछे नवमैं मासविषै । 'मैं सर्वदेवनका उत्पत्तिआदिकका करनैहारा हूं' ऐसैं जानताभया" इसआदिपदनवाली श्रुतिकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

५४] गर्भविषैहीं वास करताहुयाहीं वामदेवऋषि पूर्वअभ्यासके विचारकरि जानताभया ॥

२४ यह शारीरकके तृतीयअध्यायगत चतुर्थपादका एकपंचाशत् (५१) वां सूत्र है ॥ कोइ बी पुरुष अन्यजन्मविषै मेरेकूं ज्ञान प्राप्त होवै । ऐसैं इच्छाकरिके श्रवणादिकविषै प्रवर्त होता नहीं । किंतु इस कहिये वर्तमानजन्मविषै ज्ञानउत्पत्तिकी इच्छाकरिकै प्रवृत्त होवैहै । यातैं इसजन्मविषै होनैहारा विद्याका जन्म है । ऐसैं हुये प्रस्तुत कहिये प्रसंगसैं प्राप्त प्रतिबंधके न होते इसजन्मविषै विद्याकी उत्पत्ति होवैहै। यह कथन किया होवैहै। ऐसैं श्रुतिस्मृतिविषै देखनैतैं । "बहुतपुरुषनकरि श्रवणके अर्थ बी यह (परमात्मा) प्राप्त होता नहीं" औ "बहुतपुरुष श्रवण करतेहुये बी जिसकूं नहीं जानतेहैं" औ "इस (आत्मा)का वक्ता आश्चर्यरूप है औ प्राप्त होनैहारा (साक्षात्कारवान्) कुशल है औ ज्ञाता (परोक्षकरि बी जाननैहारा) आश्चर्यरूप है । कुशल (आचार्यकरि) उपदेशकूं पायाहुया बी" इत्यादिकश्रुति आत्माके दुर्बोधताकूं दिखावैहैं ॥ औ अंक ३५९९-३६११ पर्यंत कथन किये वाक्यनकरि गीतास्मृतिविषै बी सो अर्थ दिखायाहै ॥ यह सूत्रका संक्षेपसैं अर्थ है ॥

टीकांक: ३५५५

टिप्पणांक: ॐ

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक:

५८बहुवारमधीतेऽपि यदा नाऽऽयाति चेत्पुनः ।
दिनांतरेऽनधीत्यैव पूर्वाधीतं स्मरेत्पुमान् ॥ ३६ ॥ ९९४

६०कालेन परिपच्यंते कृषिदर्भादयो यथा ।
६२तद्वदात्मविचारोऽपि शनैः कालेन पच्यते ॥३७॥ ९९५

६४पुनः पुनर्विचारेऽपि त्रिविधप्रतिबंधतः ।
न वेत्ति तत्त्वमित्येतद्वार्तिके सम्यगीरितम् ॥३८॥ ९९६

५५ इह जन्मन्युत्पन्नस्य ज्ञानस्य कालांतरोत्पत्तौ दृष्टांतमाह—

५६] यद्वत् अध्ययनादिषु ॥ ३५ ॥

५७ दृष्टांतं विवृणोति—

५८] बहुवारं अधीते अपि यदा न आयाति चेत् । पुनः दिनांतरे अनधीत्य एव पूर्वाधीतं पुमान् स्मरेत् ॥ ३६ ॥

५९ आदिशब्देन परिगृहीतानि दृष्टांतांतराण्याह (कालेनेति)—

६०] यथा कृषिदर्भादयः कालेन परिपच्यंते ॥

६१ दार्ष्टांतिके योजयति—

६२] तद्वत् आत्मविचारः अपि शनैः कालेन पच्यते ॥ ३७ ॥

६३ बहुवारं विचारितेऽपि तत्त्वे प्रतिबंधबलात्साक्षात्कारो न जायत इत्येतद्वार्तिककारैरपि निरूपितमित्याह—

---

५५ इसजन्मविषै अनुत्पन्न भये ज्ञानकी कालांतरमैं उत्पत्तिविषै दृष्टांत कहैहैं:—

५६] जैसैं अध्ययनआदिकविषै पूर्वअभ्यासके विचारकरि पुरुष जानताहै। तैसैं ३५

॥ ७ ॥ श्लोक ३५ उक्त दृष्टांतका विवरण ॥

५७ श्लोक ३५उक्त दृष्टांतकूं वर्णन करैहैं:—

५८] बहुवार अध्ययन कियेहुये बी जब वेदवाक्यका पाठ आवता नहीं तब पीछे अन्यदिनविषै अध्ययनसैं विनाहीं पूर्वअध्ययन किये वेदवाक्यकूं पुरुष स्मरण करताहै । तैसैं इसजन्मविषै अनुत्पन्नज्ञानकी कालांतरविषै उत्पत्ति होवैहै ॥ ३६ ॥

॥ ८ ॥ श्लोक ३५–३६ उक्त दृष्टांतकी दार्ष्टांतमैं योजनासहित औरदृष्टांत ॥

५९ श्लोक ३३ विषै उक्त आदिशब्दकरि ग्रहण किये अन्यदृष्टांतनकूं कहैहैं:—

६०] जैसैं खेति औ दर्भआदिक कालकरि परिपक्क कहिये फलवान् होवैहैं॥

६१ दृष्टांतउक्तअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतैहैं:—

६२] तैसैं आत्माका विचार बी धीरैसैं कालकरि परिपक्क कहिये ज्ञानरूप फलवान् होवैहै ॥ ३७ ॥

॥ २ ॥ अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं त्रिविधप्रतिबंधका कथन ॥

॥ ३५६३–३६२३ ॥

॥ १ ॥ बहुवार तत्त्वविचार कियेहुये प्रतिबंधतैं साक्षात्कारकी अनुत्पत्तिमैं वार्तिकका सूचन ॥

६३ बहुवार तत्त्वके विचार कियेहुये प्रतिबंधके बलतैं साक्षात्कार होवै नहीं । यह अर्थ वार्तिककारोंनैं बी निरूपण कियाहै । ऐसैं कहैहैं:—

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: ९९७ ९९८

कुतस्तज्ज्ञानमिति चेत्तद्धि बंधपरिक्षयात् ।
असावपि च भूतो वा भावी वा वर्ततेऽथवा॥३९॥
अधीतवेदवेदार्थोऽप्यत एव न मुच्यते ।
हिरण्यनिधिदृष्टांतादिदमेव हि दर्शितम् ॥ ४० ॥

टीकांक: ३५६४ टिप्पणांक: ॐ

६४] "पुनः पुनः विचारे अपि त्रिविधप्रतिबंधतः तत्त्वं न वेत्ति" इति एतत् वार्तिके सम्यक् ईरितम् ॥३८॥

६५ तान्येव वार्तिकान्युदाहरति—"कुतस्तज्ज्ञानमित्यादिना भरतस्य त्रिजन्मभिः" इत्यंतेन तत्र तावत्पूर्वमनुत्पन्नस्य ज्ञानस्येदानीमुत्पत्तौ कारणं पृच्छति—

६६] कुतः तत् ज्ञानं इति चेत् ।

६७ उत्तरमाह—

६८] तत् हि बंधपरिक्षयात् ॥

ॐ ६८) बंधः प्रतिबंधस्तस्य परिक्षयात् इत्यर्थः ॥

६९ सोऽपि प्रतिबंधो भूतो भावी वर्तमानश्चेति त्रिविध इत्याह—

७० असौ अपि च भूतः वा भावी वा अथवा वर्तते ॥ ३९ ॥

७१ भवत्वेवं त्रिविधप्रतिबंधस्ततः किमित्यत आह—

७२] अधीतवेदवेदार्थः अपि अतः एव न मुच्यते ॥

ॐ ७२) अत एव प्रतिबंधसद्भावादेवेत्यर्थः ॥

७३ सति प्रतिबंधे ज्ञानं नोदेतीत्येतत् "यथा हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि

६४] "वारंवार विचारके किये बी तीनप्रकारके प्रतिबंधतैं तत्त्वकूं नहीं जानताहै ।" यह अर्थ वार्तिकविषै स्पष्ट कह्याहै ॥ ३८ ॥

॥ २ ॥ उदाहरणसहित त्रिविधप्रतिबंधके बोधक वार्तिकका आरंभ ॥

६५ तिनहीं वार्तिकनकूं ३९—४५ श्लोकपर्यंत कहनैके ग्रंथभागकरि उदाहरण करैहैं ॥ तहां प्रथम आगिलेजन्मविषै अनुत्पन्न भये ज्ञानकी अब वर्तमानजन्ममैं उत्पत्तिविषै वादी कारणकूं पूछताहै:—

६६] सो पूर्वजन्मविषै अनुत्पन्न भया ज्ञान काहेतैं होवैहै ? ऐसैं जो कहै ॥

६७ सिद्धांती उत्तर कहैहैं:—

६८] सो ज्ञान बंधके क्षयतैं होवैहै॥

ॐ ६८) बंध जो प्रतिबंध ताके परिक्षयतैं कहिये निःशेष नाशतैं ॥ यह अर्थ है ॥

६९ सो प्रतिबंध बी भूत भावी औ वर्तमान भेदतैं तीनिप्रकारका है। ऐसैं कहैहैं:—

७०] यह प्रतिबंध बी भूत वा भावी अथवा वर्तमान है ॥ ३९ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक ३९ उक्त प्रतिबंधमैं श्रुतिप्रमाण ॥

७१ ऐसैं तीनप्रकारका प्रतिबंध होहु । तिसतैं क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

७२] अध्ययन कियाहै वेद औ वेदका अर्थ जिसनैं। ऐसा पुरुष बी इसतैं ही मुक्त होवै नहीं ॥

ॐ ७२) इसतैंही याका प्रतिबंधके सद्भावतैं । यह अर्थ है ॥

७३ प्रतिबंधके होते ज्ञानका उदय होवै नहीं । यह अर्थ " जैसैं भूमिविषै गाड्याहुया

टीकांकः ३५७४ टिप्पणांकः ॐ	ॐअतीतेनापि महिषीस्नेहेन प्रतिबंधतः । भिक्षुस्तत्त्वं न वेदेति गाथा लोके प्रगीयते॥४१॥ ॐअनुसृत्य गुरुः स्नेहं महिष्यां तत्त्वमुक्तवान् । ततो यथावद्वेदैष प्रतिबंधस्य संक्षयात् ॥ ४२ ॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ९९९ १०००

संचरंतो न विंदेयुः एवमेवेमाः सर्वाः प्रजाः अहरहर्ब्रह्मलोकं गच्छंत्य एतं ब्रह्मलोकं न विंदंत्यनृतेन हि प्रत्यूढा" इत्यनया श्रुत्या प्रदर्शितमित्याह (हिरण्येति)—

७४] हि हिरण्यनिधिदृष्टांतात् इदं एव दर्शितम् ॥ ४० ॥

७५ नन्वतीतस्य प्रतिबंधकत्वं न दृष्टमित्याशंक्याह—

७६] "अतीतेन अपि महिषीस्नेहेन प्रतिबंधतः भिक्षुः तत्त्वं न वेद" इति गाथा लोके प्रगीयते ॥

७७) अयमर्थः । कश्चिद्यतिः पूर्वं गार्हस्थ्यदशायां कस्यांचिन्महिष्यां स्नेहं कृत्वा पश्चात्संन्यासानंतरं श्रवणे प्रवृत्तोऽपि तेनैव स्नेहेन जनितात्प्रतिबंधात् तत्त्वं गुरुणोपदिष्टमपि न ज्ञातवानित्येवंविधा गाथा लोके प्रगीयते न पुराणादिषु पठ्यत इत्यर्थः॥४१॥

७८ तर्हि तथाविधस्य तस्य कथं ज्ञानोत्पत्तिः इत्यत आह (अनुसृत्येति)—

७९] गुरुः स्नेहं अनुसृत्य महिष्यां

हिरण्यनिधिकूं कहिये सुवर्णरूप द्रव्यके समूहकूं तिस हिरण्यनिधियुक्त भूमिकूं नहीं जाननैहारे पुरुष ऊपर ऊपर विचरते हुये नहीं जानतेहैं । ऐसैंहीं यह सर्वजीव दिनदिनविषै सुषुप्तिकालमैं ब्रह्मलोक जो ब्रह्मस्वरूप ताकूं पावतेहैं औ जातैं अनृत जो मिथ्याज्ञानरूप प्रतिबंध तिसकरि प्रतिबंधकूं पायेहैं । यातैं इस ब्रह्मलोककूं नहीं जानतेहैं" इस श्रुतिनैं दिखायाहै । ऐसैं कहैहैं:—

७४] जातैं हिरण्यनिधिके दृष्टांततैं यहहीं अर्थ श्रुतिनैं दिखायाहै । तातैं प्रतिबंधके होते ज्ञान होवै नहीं । यह सिद्ध भया ॥ ४० ॥

॥ ४ ॥ भूतप्रतिबंधके उदाहरणसहित निवृत्तिका उपाय ॥

७५ ननु गतवस्तुकूं प्रतिबंध करनैपना नहीं देख्याहै । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७६] "पूर्वकालविषै किये महिषीके स्नेहकरि प्रतिबंधतैं संन्यासी तत्त्वकूं न जानताभया ।" ऐसी गाथा लोकविषै गायन करियेहै ॥

७७) याका यह अर्थ है:—"कोइक संन्यासी पूर्व गृहस्थदशाविषै किसी महिषीरूप पशुमैं स्नेहकूं करिके । पीछे संन्यासके अनंतर श्रवणविषै प्रवृत्त हुया बी तिसीहीं स्नेहकरि उत्पन्न भये प्रतिबंधतैं गुरुनैं उपदेश किये तत्त्वकूं बी न जानताभया ॥" इस प्रकारकी गाथा जो वार्त्ता सो लोकविषै कहियेहै औ पुराणादिकनविषै पठन नहीं करियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ४१ ॥

७८ तब तिसप्रकारके भूतप्रतिबंधवाले तिस संन्यासीकूं कैसैं ज्ञानकी उत्पत्ति भई ? तहां कहैहैं:—

७९] गुरु स्नेहकूं अनुसरिके महिषी-

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १००१ १००२

प्रतिबंधो वर्तमानो विषयासक्तिलक्षणः ।
प्रज्ञामांद्यं कुतर्कश्च विपर्ययदुराग्रहः ॥ ४३ ॥
शमाद्यैः श्रवणाद्यैश्च तत्र तत्रोचितैः क्षयम् ।
नीतेऽस्मिन्प्रतिबंधेऽतः स्वस्य ब्रह्मत्वमश्नुते ॥४४॥

टीकांकः ३५८० टिप्पणांकः ॐ

तत्त्वं उक्तवान् ततः एषः प्रतिबंधस्य संक्षयात् यथावत् वेद ॥

८०) गुरुः तस्य तत्त्वोपदेष्टा । तदीयमहिषीस्नेहम् अनुसृत्य तस्यामेव महिष्यां तत्त्वं तन्महिष्युपाधिकं ब्रह्म उक्तवान् । ततः सोऽपि महिषीस्नेहलक्षणप्रतिबंधकापगमेन गुरूपदिष्टं तत्त्वं यथावत् शास्त्रोक्तप्रकारेणैव ज्ञातवानित्यर्थः ॥ ४२ ॥

८१ एवमतीतप्रतिबंधं प्रदर्श्य वर्तमानं दर्शयति (प्रतिबंध इति)—

८२] वर्तमानः प्रतिबंधः विषयासक्तिलक्षणः प्रज्ञामांद्यं कुतर्कः च विपर्ययदुराग्रहः ॥

८३) वर्तमानः प्रतिबंधः चित्तस्य विषयासक्तिरूपः एकः । प्रज्ञामांद्यं बुद्धेस्तैक्ष्ण्याभावः । कुतर्कश्च शुष्कतार्किकत्वेन श्रुत्यर्थस्यान्यथोहनं । विपर्ययदुराग्रहः विपर्यये आत्मनः कर्तृत्वादिधर्मयुक्तत्वज्ञानलक्षणे । दुराग्रहो युक्तिरहितोऽभिनिवेशः । एतेषामन्यतमस्यापि सत्त्वे ज्ञानं नोदेतीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

८४ अस्यापि प्रतिबंधस्य केन निवृत्तिरित्यत आह—

विषै तत्त्वकूं कहतेभये । तातैं सो प्रतिबंधके क्षयतैं यथावत् तत्त्वकूं जानताभया ॥

८०) तब तिसकूं तत्त्वके उपदेश करनैहारे गुरु तिसके किये महिषीके स्नेहकूं अनुसरिके तिस महिषीविषैहीं । तिस महिषीरूप उपाधिवाले ब्रह्मरूप तत्त्वकूं कहतेभये ॥ तातैं सो संन्यासी बी महिषीके स्नेहरूप प्रतिबंधके नाशकरि गुरुनैं उपदेश किये तत्त्वकूं यथावत् नाम शास्त्रउक्तप्रकारकरिहीं जानताभया ॥ यह अर्थ है ॥ ४२ ॥

॥ ९ ॥ वर्तमानप्रतिबंधके ४ भेद औ निवृत्तिका उपाय ॥

८१ ऐसैं भूतप्रतिबंधकूं दिखायके वर्तमानप्रतिबंधकूं दिखावैहैं:—

८२] वर्तमानप्रतिबंध । विषयआसक्तिरूप । प्रज्ञाकी मंदता । कुतर्क औ विपर्ययदुराग्रह भेदतैं च्यारीप्रकारका है॥

८३) (१)वर्तमानप्रतिबंध चित्तकी विषयनविषै आसक्तिरूप एक है ॥ औ

(२) बुद्धिकी मंदता कहिये ग्रहणधारणकी शक्तिरूप तीक्ष्णताका अभाव दूसरा है ॥ औ

(३) शुष्कतर्कवाला होनैकरि श्रुतिनके अर्थका अन्यथाकल्पन कुतर्क तीसरा है ॥ औ

(४) विपर्ययदुराग्रह कहिये आत्माके कर्त्तापनैआदिकधर्मयुक्तपनैके ज्ञानरूप विपर्ययविषै युक्तिरहित हठ चतुर्थ है ॥

इन च्यारीवर्तमानप्रतिबंधनमैंसैं एकके बी होते ज्ञान उदय होवै नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ ४३ ॥

८४ इस वर्त्तमानप्रतिबंधकी बी किस उपायकरि निवृत्ति होवैहै? तहां कहैहैं:—

टीकांक: ३५८५ टिप्पणांक: ॐ

आगामिप्रतिबंधश्च वामदेवे समीरितः ।
एकेन जन्मना क्षीणो भरतस्य त्रिजन्मभिः ॥४५॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १००३

८५] **शमाद्यैः च श्रवणाद्यैः तत्र तत्र उचितैः अस्मिन् प्रतिबंधे क्षयं नीते अतः स्वस्य ब्रह्मत्वं अश्नुते ॥**

८६) शमादयः "शांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा" इतिश्रुत्युक्ताः । श्रवणादयः "श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः" इति श्रुत्या अभिहिताः । एतैः साधनैः तत्र तत्र तस्य तस्य प्रतिबंधस्य निवर्तने । उचितैः योग्यैः । तस्मिंस्तस्मिन् प्रतिबंधे क्षयं नीते सति विनाशिते सति। अतः प्रतिबंधापगमादेव स्वस्य प्रत्यगात्मनो ब्रह्मत्वं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

८७ इदानीं भाविप्रतिबंधं दर्शयति (आगामीति)—

८८] **च आगामिप्रतिबंधः वामदेवे समीरितः ॥**

८९) आगामिप्रतिबंधः जन्मांतरहेतुः प्रारब्धशेष इत्यर्थः ॥

९० तस्य च भोगमंतरेण निवृत्त्यभावात्तन्निवृत्तौ कालनियमो नास्तीत्याह—

९१] **एकेन जन्मना क्षीणः भरतस्य त्रिजन्मभिः ॥**

९२) स च एकेन जन्मना क्षीणः वामदेवस्येति शेषः । भरतस्य त्रिजन्मभिः क्षीण इत्यनुषज्यते ॥ ४५ ॥

८५] **शमादिक औ श्रवणादिकरूप तहां तहां उचित साधननकरि इस वर्तमानप्रतिबंधके विनाश कियेहुये । इसतैं अपनै ब्रह्मभावकूं पावताहै ॥**

८६) "शमवान् । दमवान् । उपरतिवान् । तितिक्षावान् औ समाधानवान् होयके" इस श्रुतिकरि कथन किये जे शमदमआदिक हैं । औ "आत्मा श्रवण करनै योग्य है । मनन करनै योग्य है औ निदिध्यासन करनै योग्य है ।" इस श्रुतिकरि कथन किये जे श्रवणादिक हैं । इन तिस तिस प्रतिबंधके निवर्त्त करनैविषै योग्य साधनोंकरि तिस तिस प्रतिबंधके विनाश कियेहुये । इस प्रतिबंधके नाशतैंहीं प्रत्यगात्माके ब्रह्मभावकूं पुरुष पावताहै ॥ यह अर्थ है ॥ ४४ ॥

॥ ६ ॥ आगामीप्रतिबंधकी निवृत्तिमैं कालका अनियम ॥

८७ अब भावीप्रतिबंधकूं दिखावैहैं:—

८८] **औ भावीप्रतिबंध वामदेवविषै कह्याहै ॥**

८९) जन्मांतरका हेतु जो प्रारब्धशेष। सो आगामीप्रतिबंध है । यह अर्थ है ॥

९० तिस आगामीप्रतिबंधकी भोगसैं विना निवृत्तिके अभावतैं तिसकी निवृत्तिविषै कालका नियम नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

९१] **सो एकजन्मकरि वामदेवका क्षीण भया औ भरतका तीनजन्मकरि क्षीण भया ॥**

९२) औ सो भावीप्रतिबंध वामदेवका एकजन्मकरि नाश भया औ भरतका तीनजन्मकरि नाश भया ॥ ४५ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १००४

९४ योगभ्रष्टस्य गीतायामतीते बहुजन्मनि ।
प्रतिबंधक्षयः प्रोक्तो न[९६] विचारोऽप्यनर्थकः ॥४६॥

टीकांकः ३५९३ टिप्पणांकः ७२५

९३ नन्वेकेन त्रिजन्मभिरिति नियतकालत्वं भवतैवोच्यत इत्याशंक्याह (योगेति)—

९४] गीतायां योगभ्रष्टस्य बहुजन्मनि अतीते प्रतिबंधक्षयः प्रोक्तः॥

ॐ ९४) योगभ्रष्टः तत्त्वसाक्षात्कारपर्यंतं विचाररहित इत्यर्थः ॥

९५ तर्हि तत्त्वविचारो निष्फलः स्यादित्याशंक्याह (नेति)—

९६] विचारः अपि अनर्थकः न ॥

९७) प्रतिबंधनिवृत्त्यनंतरमेवापरोक्षज्ञानलक्षणफलसद्भावादिति भावः ॥ ४६ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक ४५ उक्त अर्थके कथनपूर्वक पूर्वकृतविचारकी अव्यर्थता ॥

९३ ननु "एकजन्मकरि औ तीनजन्मकरि नाश भया" ऐसैं भावीप्रतिबंधकी निवृत्तिके कालका नियम तुमकरिहीं कहिये है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९४] गीताविषै योगभ्रष्ट पुरुषकूं बहुजन्मके व्यतीत भये प्रतिबंधका क्षय कह्याहै ।

ॐ ९४) योगभ्रष्ट याका तत्वसाक्षात्कारपर्यंत विचाररहित । यह अर्थ है ॥

९५ ननु तब तत्त्वका विचार निष्फल होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९६] विचार बी निष्फल होवै नहीं ॥

९७) प्रतिबंधकी निवृत्तिके अनंतरहीं अपरोक्षज्ञानरूप फलके सद्भावतैं पूर्वजन्मविषै किया विचार निष्फल होवै नहीं । यह भाव है ॥ ४६ ॥

२५ इहां यह रहस्य है । कोईएककर्म अनेकजन्मका हेतु होवैहै ॥ जैसैं एकहीं ब्रह्महत्यारूप कर्म । नरकदुःखके अनुभवके अनंतर श्वानसर्पभेडआदिकदशजन्मका हेतु है औ जैसैं एकहीं कार्तिकीपौर्णिमाके दिन किया कार्तिकस्वामीका दर्शनरूप कर्म । धनादिविभूतिसंपन्नसप्तब्राह्मणनके जन्मका हेतु शास्त्रविषै कह्याहै ॥ ऐसा अनेकजन्मका हेतु कोइककर्म प्रारब्धरूपकरि फलका आरंभक भया होवै । सो **आगामीप्रतिबंध** है ॥

श्रवणादिविचाररूप ज्ञानके साधनविषै प्रवर्तक भये पुरुषकूं बी इस प्रतिबंधके होते ज्ञानकी उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं इस कर्मके फलरूप चर्म (अंतके) जन्मविषैहीं ज्ञान होवैहै । ऐसैं मान्याचाहिये ॥ काहेतैं

(१) फल देनेका जिसनै आरंभ कियाहै । ऐसा जो प्रारब्धकर्म तिसका भोगसैं विना नाश होवै नहीं । यह ईश्वरका संकल्प है । औ

(२) "इस (ज्ञानी)के प्राण देहसैं बाहीर जावैं नहीं । किंतु इस देहविषैहीं लय होवैहैं" । इस श्रुतितैं ॥ औ "तिस (ज्ञानी)कूं तहांलगि चिर (मोक्ष होनेविषै विलंब) है । जहांलगि देहपात भया नहीं औ पीछे (देहपातके अनंतर) ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै" । इस छांदोग्यश्रुतितैं ज्ञानवान्कूं दूसराजन्म होवै नहीं । यह **ज्ञानका महिमा** है ॥

(१) यातैं पीचके जन्मविषै ज्ञानकी उत्पत्ति मानिके जो अन्यजन्मका अनंगीकार करैं । तौ प्रारब्धकी व्यर्थताकरि ईश्वरका संकल्प भंग होवैगा । औ

(२) अन्यजन्मका अंगीकार करैं । तौ ज्ञानका महिमा भंग होवैगा ।

ये दोनूं अनिष्ट हैं ॥ तातैं चर्मजन्मविषै ज्ञानकी उत्पत्ति अंगीकार करीचाहिये ॥ इसकरि ईश्वरके संकल्प औ ज्ञानके महिमाका भंग होवै नहीं औ पूर्व किया विचार बी व्यर्थ होवै नहीं । किंतु सफल होवैहै ॥

टीकांक: ३५९८ टिप्पणांक: ॐ	९९ प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानात्मतत्त्वविचारतः । शुचीनां श्रीमतां गेहे साभिलाषोऽभिजायते ४७ अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् । निस्पृहो ब्रह्मतत्त्वस्य विचारात्तद्धि दुर्लभम् ॥४८॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १००५ १००६

९८ गीतायां प्रतिपादितमर्थं दर्शयति । प्राप्येत्यादिना ततो याति परां गतिमित्यंतेन (प्राप्येति)—

९९] आत्मतत्त्वविचारतः पुण्यकृताँल्लोकान् प्राप्य साभिलाषः शुचीनां श्रीमतां गेहे अभिजायते ॥

३६००) योगभ्रष्ट आत्मतत्त्वविचारबलादेव पुण्यकारिणां लोकान् स्वर्गविशेषान् प्राप्य । तत्र बहुकालं सुखमनुभूय तद्भोगावसाने साभिलाषः चेदस्मिन्लोके शुचीनां मातृतः पितृतः शुद्धानां श्रीमतां कुले अभिजायते ॥ ४७ ॥

१ पक्षांतरमाह—

२] अथवा निस्पृहः ब्रह्मतत्त्वस्य विचारात् एव धीमतां योगिनां कुले भवति ॥

३) निस्पृहः स्वयमतिविरक्तश्चेत् ब्रह्मतत्त्वविचारादेव । धीमतां आत्मतत्त्वनिश्चयविचारवतां योगिनां चित्तैकाग्र्यवतां । कुले भवति जायत इत्यर्थः ॥

४ पूर्वस्मात् पक्षात्को विशेष इत्याह (तद्धीति)—

५] हि तत् दुर्लभम् ॥

६) हि यस्मात्कारणात् । तत् योगिकुले जन्म । दुर्लभम् अल्पपुण्येनालभ्यमित्यर्थः ४८

॥ ८ ॥ गीतामैं प्रतिपादित योगभ्रष्टके फलरूप अर्थका कथन ॥

९८ गीताविषै षष्ठअध्यायगत ४१–४५ वें श्लोकपर्यंत प्रतिपादन किये अर्थकूं ४७–५० श्लोपर्यंत दिखावैहैं:—

९९] योगभ्रष्ट आत्मतत्त्वके विचारतैं पुण्यकारिनके लोकनकूं पायके पीछे अभिलाषासहित जो होवै । तौ शुचिश्रीमानपुरुषके गृहविषै जन्मताहै ॥

३६००) योगभ्रष्ट जो है । सो आत्मतत्त्वके श्रवणादिमय ब्रह्माभ्यासरूप विचारके बलतैंहीं पुण्यकारिनके लोक स्वर्गविशेषनकूं पायके तहां बहुतकाल सुखकूं अनुभवकरिके । तिस भोगके अंतविषै इसलोकके भोगकी इच्छावाला जो होवै । तौ इसलोकविषै मातातैं औ पितातैं शुद्ध ऐसे शुचिश्रीमान्पुरुषनके गृहमैं नाम कुलविषै जन्मताहै ॥४७॥

१ दूसरे इच्छारहित योगभ्रष्टके पक्षकूं कहैहैं:—

२] अथवा निस्पृह जो होवै । तौ ब्रह्मतत्त्वके विचारतैं बुद्धिमान् योगी पुरुषनकेहीं कुलविषै जन्मताहै ॥

३) अथवा निस्पृह कहिये आप अतिविरक्त जो होवै । तौ ब्रह्मतत्त्वके विचारतैंहीं आत्मतत्त्वके निश्चयके विचारयुक्त बुद्धिवान् ऐसैं चित्तकी एकाग्रतावाले योगीपुरुषनके कुलविषै जन्मताहै ॥ यह अर्थ है ॥

४ पूर्वके पक्षतैं इसपक्षविषै कौन विशेष है ? तहां कहैहैं:—

५] जातैं सो जन्म दुर्लभ है ॥

६) जिसकारणतैं सो योगीकुलविषै जन्म दुर्लभ कहिये अल्पपुण्यसैं अलभ्य है । तातैं सो विशेष है ॥ यह अर्थ है ॥ ४८ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १००७ १००८	तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् । यतते च ततो भूयस्तस्मादेतद्धि दुर्लभम् ॥४९॥ पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः । अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥५०॥	टीकांकः ३६०७ टिप्पणांकः ७२६

७ तस्य दुर्लभत्वमुपपादयति (तत्रेति)—

८] हि तत्र पौर्वदेहिकं तं बुद्धिसंयोगं लभते च ततः भूयः यतते । तस्मात् एतत् दुर्लभम् ॥

९) हि यस्मात्कारणात् । तत्र तस्मिन्जन्मनि । पौर्वदेहिकं पूर्वदेहभवं तं बुद्धिसंयोगं तत्त्वविचारगोचरबुद्धिसंबंधं शीघ्रं लभते प्राप्नोति । न केवलं बुद्धिसंबंधमात्रलाभः किंतु ततः पूर्वस्मात् प्रयत्नात् भूयो यतते चाधिकं प्रयत्नं करोति तस्मादेतज्जन्म दुर्लभम् इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

१० भूयोऽभ्यासे कारणमाह (पूर्वेति)—

११] सः तेन पूर्वाभ्यासेन एव हि अवशः अपि ह्रियते । अनेकजन्मसंसिद्धः ततः परां गतिं याति ॥

१२) योगभ्रष्टः तेन पूर्वाभ्यासेनैवावशोऽपि अस्वाधीनोऽपि । ह्रियते आकृष्यते । एवमनेकेषु जन्मसु कृतेन प्रयत्नेन संसिद्धः तत्त्वज्ञानसंपन्नः । ततः तस्मात् तत्त्वज्ञानात् परां गतिं मुक्तिं । याति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५० ॥

७ तिस योगीकुलविषै जन्मकी दुर्लभताकूं उपपादन करैहैं:—

८] जातैं तिस जन्मविषै तिस पूर्वदेहमैं भये बुद्धिके संयोगकूं पावताहै औ तिसतैं अधिकयत्न करताहै । तातैं यह जन्म दुर्लभ है ॥

९) जिसकारणतैं तिस योगीकुलमैं भये जन्मविषै पूर्वदेहमैं भये तत्त्वविचारकूं विषय करनेहारी बुद्धिके संबंधकूं तत्काल पावताहै ॥ केवल बुद्धिके संबंधमात्रका लाभ नहीं । किंतु तिस पूर्वके प्रयत्नतैं अधिकप्रयत्नकूं करताहै । तिस कारणतैं यह योगीकुलमैं जन्म दुर्लभ है ॥ यह अर्थ है ॥ ४९ ॥

१० अधिकअभ्यासविषै कारणकूं कहैहैं:—

११] सो तिसी पूर्वके अभ्यासकरिहीं अवश हुया बी हरणकूं कहिये आकर्षणकूं पावताहै । ऐसैं अनेकजन्मविषै सम्यक् सिद्ध हुया तिस ज्ञानतैं परमगतिकूं पावताहै ॥

१२) सो योगभ्रष्ट तिस पूर्वअभ्यासकरिहीं अस्वाधीन हुया बी आकर्षित होता कहिये अधिकअभ्यासविषै खीचाताहै । ऐसैं अनेकजन्मविषै किये प्रयत्नकरि संसिद्ध कहिये तत्त्वज्ञानसंपन्न हुया तिस तत्त्वज्ञानतैं परमगति जो मुक्ति ताकूं पावताहै ॥ यह अर्थ है ॥ ५० ॥

२६ जब योगाभ्याससैं जन्य संस्कारतैं अतिशयबलवान् अधर्मादिरूप कर्म न कियाहोवै । तब योगाभ्यासजनित संस्कारकरि योगभ्रष्टपुरुष संसिद्धिविषै प्रवृत्त होवै औ जब अधर्म बलवान् कियाहोवै । तब तिसकरि योगजन्यसंस्कार बी पराभवकूं पावैहै ॥ पराभवके क्षयविषै तौ योगजन्यसंस्कार आपहीं कार्यकूं आरंभ करताहै औ दीर्घकालकरि स्थित भये तिस संस्कारका बी विनाश होवै नहीं । यातैं तिस संस्कारकरि परवश हुयाहीं योगभ्रष्ट अधिकप्रयत्नविषै आकर्षणकूं पावताहै । ऐसैं गीताके व्याख्यानविषै भाष्यकारनैं लिख्याहै ॥

टीकांक: ३६१३ टिप्पणांक: ॐ	[१४] ब्रह्मलोकाभिवांछायां सम्यक् सत्यां निरुध्य ताम्। विचारयेद्य आत्मानं न तु साक्षात्करोत्ययम् ५१ [१७] वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्था इति शास्त्रतः। ब्रह्मलोके स कल्पांते ब्रह्मणा सह मुच्यते ॥५२॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १००९ १०१०

१३ आगामिप्रतिबंधांतरं दर्शयति—

१४] ब्रह्मलोकाभिवांछायां सम्यक् सत्यां तां निरुध्य यः आत्मानं विचारयेत् अयं तु न साक्षात् करोति॥

१५) ब्रह्मलोकप्राप्तीच्छायां दृढायां सत्यां तां निरुध्य य आत्मानं विचारयेत् तस्य साक्षात्कारो नैव जायत इत्यर्थः ॥५१

१६ ननु तर्हि तस्य कदापि मुक्तिर्न स्यादित्याशंक्याह—

१७]"वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः" इति शास्त्रतः सः ब्रह्मलोके कल्पांते ब्रह्मणा सह मुच्यते॥

१८) "वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मलोके तु परांतकाले परामृतात्परिमुच्यंति सर्वे" "ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे। परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम्" इत्यादिशास्त्रवशात् ब्रह्मलोकप्राप्त्यनंतरं तत्त्वं साक्षात्कृत्य ब्रह्मणा सह मुक्तिर्भविष्यतीत्यर्थः॥५२॥

॥ ९ ॥ अन्यआगामीप्रतिबंधका कथन ॥

१३ दूसरेआगामीप्रतिबंधकूं दिखावैहैं:—

१४] ब्रह्मलोककी इच्छाके सम्यक् होते। तिस इच्छाकूं निरोधकरिके जो आत्माकूं विचारै। सो साक्षात् करै नहीं॥

१५) ब्रह्मलोककी प्राप्तिकी इच्छाके दृढ होते तिस इच्छाकूं रोकिके जो पुरुष आत्माकूं विचारै। तिसकूं साक्षात्कार होवै नहीं॥ यह अर्थ है॥ ५१॥

१६ ननु। तब तिस ब्रह्मलोकप्राप्तिकी इच्छावालेकी किसीकालविषै बी मुक्ति न होवैगी। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१७] "वेदांतके विज्ञानकरि सुष्ठुप्रकारसैं निश्चय कियाहै अर्थ जिनोनैं ऐसैं यति"। इस श्रुतिरूप शास्त्रतैं सो पुरुष ब्रह्मलोकविषै कल्पके अंतमैं ब्रह्माके साथि मुक्त होवैहै॥

१८) "वेदांतके विज्ञानकरि सुंदरप्रकारसैं निश्चय कियाहै अर्थ कहिये मोक्षरूप प्रयोजन जिनोनैं औ संन्यासयोगतैं शुद्ध भयाहै अंतःकरण जिनोका। ऐसैं जे संन्यासी। वे तौ ब्रह्मलोकविषै ब्रह्माके अंतकालविषै ब्रह्माके दिये वा स्वतः भये ज्ञानकरि सर्व मुक्तिकूं पावतेहैं" औ वे सर्व प्रलयकालके प्राप्त भये ब्रह्माके अंत हुये ब्रह्माके साथि शुद्धआत्मावाले होयके परमपदके तांई प्रवेश करतेहैं।" इत्यादिकशास्त्रके वशतैं ब्रह्मलोककी प्राप्तिके अनंतर तत्त्वकूं साक्षात्करिके ब्रह्माके साथि तिसकी मुक्ति होवैगी। यह अर्थ है॥ ५२॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०११ १०१२

[२०] केषांचित्स विचारोऽपि कर्मणा प्रतिबद्ध्यते ।
[२२] श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्य इति श्रुतेः ॥५३॥
[२४] अत्यंतबुद्धिमांद्याद्वा सामग्र्या वाप्यसंभवात् ।
यो विचारं न लभते ब्रह्मोपासीत सोऽनिशम् ५४

टीकांकः ३६१९ टिप्पणांकः ॐ

१९ एवं तत्त्वविचारे क्रियमाणे प्रतिबंधवशादत्र साक्षात्कारो न जायत इत्यभिधाय तीव्रपापिनां तु सोऽपि विचारो दुर्लभ इत्याह—

२०] केषांचित् सः विचारः अपि कर्मणा प्रतिबद्ध्यते ॥

२१ तत्र प्रमाणमाह (श्रवणायेति)—

२२] यः बहुभिः श्रवणाय अपि न लभ्यः इति श्रुतेः ॥

२३) यः परमात्मा बहुभिः पुरुषैः श्रवणायापि श्रोतुमपि न लभ्यः दुर्लभ इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

२४ एतावता सति प्रतिबंधे तत्त्वसाक्षात्कारस्तत्साधनभूतो विचारश्च न संभवति इत्यभिधायेदानीं विचारासमर्थेन पुरुषार्थार्थिना किं कर्त्तव्यमित्यपेक्षायां "विचाराक्षममर्त्याश्च तच्छ्रुत्वोपासते गुरोः" इति यत्प्राक् प्रतिज्ञातं तदुपपादयति—

॥ १० ॥ विचारका प्रतिबंध ॥

१९ ऐसैं तत्त्वविचारके कियेहुये प्रतिबंधकें वशतैं इसजन्मविषै साक्षात्कार होवै नहीं । यह कहिके तीव्रपापवाले पुरुषनकूं सो विचार बी दुर्लभ है। ऐसैं कहैहैं:—

२०] कितनेक पुरुषनकूं सो विचार बी तीव्रपापरूप कर्मकरि प्रतिबंधकूं पावताहै ॥

२१ तिस विचारके प्रतिबंधविषै श्रुतिरूप प्रमाणकूं कहैहैं:—

२२] "जो बहुतपुरुषनकरि श्रवणके अर्थ बी प्राप्त होता नहीं" इस श्रुतितैं ॥

२३) जो परमात्मा बहुतपुरुषनकरि श्रवण करनैकूं बी अलभ्य कहिये दुर्लभ है ॥ यह अर्थ है ॥ ५३ ॥

॥ ३ ॥ निर्गुणउपासनाके संभव औ प्रकारपूर्वक बोध औ उपासनाकी विलक्षणता ॥

॥ ३६२४–३७०९ ॥

॥१॥ ज्ञानकी न्यांई निर्गुणउपासनाका संभव औ प्रकार ॥३६२४—३६८१॥

॥ १ ॥ विचारमैं असमर्थमुमुक्षुकूं कर्त्तव्य ॥

२४ इतनैं कहिये ३८–५३ श्लोकपर्यंत उक्त ग्रंथकरि प्रतिबंधके होते तत्त्वका साक्षात्कार औ तिसका साधनरूप विचार संभवै नहीं । यह कहिके अब विचारविषै असमर्थ औ मोक्षके अर्थी पुरुषकरि क्या कर्त्तव्य है? इस पूछनैकी इच्छाके हुये "विचारविषै असमर्थ जे मनुष्य हैं । वे गुरुके मुखतैं तिस उपासनकूं सुनिके उपासना करैहैं" इस २८ वैं श्लोकविषै जो पूर्व प्रतिज्ञा किया उपासन है। तिसकूं उपपादन करैहैं:—

टीकांक: ३६२५ टिप्पणांक: ॐ	२८ निर्गुणब्रह्मतत्त्वस्य न ह्युपास्तेरसंभवः । सगुणब्रह्मणीवात्र प्रत्ययावृत्तिसंभवात् ॥ ५५ ॥ ३० अवाङ्मनसगम्यं तन्नोपास्यमिति चेत्तदा । अवाङ्मनसगम्यस्य वेदनं न च संभवेत् ॥ ५६ ॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०१३ १०१४

२५] अत्यंतबुद्धिमांद्यात् वा सामग्र्याः असंभवात् अपि वा यः विचारं न लभते । सः अनिशं ब्रह्म उपासीत ॥

२६) सामग्र्यसंभवो नाम तदुपदेष्टुर्गुरोरध्यात्मशास्त्रस्य देशकालादेर्वा असंभवस्तस्मादित्यर्थः ॥ ५४ ॥

२७ ननु निर्गुणब्रह्मतत्त्वस्य गुणरहितत्वात्तदुपासनं न घटत इत्याशंक्योपासनस्य प्रत्ययाऽऽवृत्तिरूपत्वात् सगुणब्रह्मणीव निर्गुणेऽपि तत्संभवतीत्याह—

२८] निर्गुणब्रह्मतत्त्वस्य उपास्तेः असंभवः न हि सगुणब्रह्मणि इव अत्र प्रत्ययाऽऽवृत्तिसंभवात् ॥ ५५ ॥

२९ ननु निर्गुणस्य ब्रह्मणो वाङ्मनसगोचरत्वाभावात् नोपास्यत्वमित्याशंक्य वेदनपक्षेऽप्ययं दोषः समान इत्याह—

३०] अवाङ्मनसगम्यं तत् उपास्यं न इति चेत् । तदा अवाङ्मनसगम्यस्य वेदनं च न संभवेत् ॥ ५६ ॥

२५] अत्यंत बुद्धिकी मंदतातैं वा विचारकी सामग्रीके असंभवतैं बी जो पुरुष विचारकूं पावता नहीं । सो निरंतर ब्रह्मकूं उपासे कहिये चितवै ॥

२६) विचारकी सामग्रीका असंभव कहिये तिस तत्त्वके विचारका उपदेश करनैहारे गुरुका वा अध्यात्मशास्त्रका वा अनुकूल देशकालआदिकका असंभव तिसतैं । यह अर्थ है ॥ ५४ ॥

॥ २ ॥ निर्गुणब्रह्मकी उपासनाके संभवकी प्रतिज्ञा ॥

२७ ननु । निर्गुणब्रह्मतत्त्वकूं गुणरहित होनैतैं तिसका उपासन नहीं घटताहै । यह आशंकाकरि उपासनकूं वृत्तिनकी आवृत्तिरूप होनैतैं सगुणब्रह्मकी न्यांई निर्गुणब्रह्मविषै वी सो वृत्तिनकी आवृत्तिरूप उपासन संभवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

२८] निर्गुणब्रह्मतत्त्वकी उपासनाका असंभव नहीं है । काहेतैं सगुणब्रह्मकी न्यांई इस निर्गुणब्रह्मविषै वृत्तिनकी आवृत्तिके संभवतैं ॥ ५५ ॥

॥ ३ ॥ वाणी औ मनके अविषय ब्रह्मकी उपास्यताकी शंका औ उक्तदोषकी ज्ञानमैं समता ॥

२९ ननु निर्गुणब्रह्मकूं वाणी अरु मनका विषय होनैके अभावतैं उपासन करनैकी योग्यता नहीं है । यह आशंकाकरि ज्ञानपक्षविषै वी यह दोष समान है । ऐसैं कहैहैं:—

३०] वाणी अरु मनका अविषय जो निर्गुणब्रह्म सो उपास्य नहीं है । ऐसैं जब कहै । तब वाणी अरु मनके अविषय निर्गुणब्रह्मका ज्ञान वी नहीं संभवैगा ॥ ५६ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१०१५	³²वागाद्यगोचराकारमित्येवं यदि वेत्त्यसौ । वागाद्यगोचराकारमित्युपासीत नो कुतः ॥५७॥	३६३१
१०१६	³⁴सगुणत्वमुपास्यत्वाद्यदि वेद्यत्वतोऽपि तत् । ³⁶वेद्यं चेल्लक्षणावृत्त्या लक्षणं समुपास्यताम् ॥५८॥	टिप्पणांकः ॐ

३१ ननु ब्रह्मावाङ्मनसगोचरमित्येवं ज्ञातुं शक्यमित्याशंक्य एवमेवोपासितुमपि शक्यमित्याह—

३२] **वागाद्यगोचराकारं इति एवं यदि असौ वेत्ति । वागाद्यगोचराकारं इति कुतः न उपासीत ॥ ५७ ॥**

३३ ब्रह्मण उपास्यत्वे सगुणत्वं प्रसज्येतेत्याशंक्य वेद्यत्वेऽपि तत्सगुणत्वं स्यादित्याह (सगुणत्वमिति)—

३४] **उपास्यत्वात् यदि सगुणत्वं । वेद्यत्वतः अपि तत् ॥**

३५ ननु लक्षणावृत्त्याश्रयणान्न वेद्यत्वे सगुणत्वप्रसंग इत्याशंक्य उपासनमपि तथैव क्रियतामित्याह (वेद्यमिति)—

३६] **लक्षणावृत्त्या वेद्यं चेत् । लक्षणं समुपास्यताम् ॥ ५८ ॥**

॥ ४ ॥ ज्ञानमैं दोषनिवारणकी शंका औ तैसैं उपासनामैं दोषनिवारणका समाधान ॥

३१ ननु । "ब्रह्म । वाणी अरु मनका अगोचर है ।" ऐसैं जाननैकूं शक्य है । यह आशंकाकरि ऐसैंहीं उपासन करनैकूं वी शक्य है । ऐसैं कहैहैं:—

३२] **"वाणीआदिकके अगोचर-आकारवाला** कहिये स्वरूपवाला ब्रह्म है ।" **ऐसैं जब यह पुरुष जानताहै । तब "वाणीआदिकके अगोचरआकार-वाला ब्रह्म है ।" ऐसैं काहेतैं उपासना नहीं करैगा ?** किंतु करैगाहीं ॥ ५७ ॥

॥ ५ ॥ उपास्यब्रह्मके सगुणताकी शंका औ ज्ञेयमैं तुल्यताकरि समाधान ॥

३३ ननु ब्रह्मकूं उपास्यपनैके हुये सगुण-पना प्राप्त होवैगा । यह आशंकाकरि वेद्यता नाम जाननैकी योग्यताके हुये वी सो सगुण-पना होवैगा । ऐसैं कहैहैं:—

३४] ब्रह्मकूं **उपास्य** कहिये उपासनाका विषय **होनैतैं जब सगुणपना होवैगा । तब वेद्य** कहिये ज्ञानका विषय **होनैतैं बी सो** सगुणपना होवैगा ॥

३५ ननु लक्षणावृत्तिके आश्रय करनैतैं वेद्यपनैविषै सगुणपनैका प्रसंग नहीं होवैहै । यह आशंकाकरि उपासन वी तैसैं लक्षणा-वृत्तिके आश्रयतैंहीं कियाचाहिये । ऐसैं कहैहैं:—

३६] **जब लक्षणावृत्तिकरि वेद्य** कहिये ज्ञेय है । तब **लक्षण** नाम लक्ष्यरूप ब्रह्मकूं **उपासना करना** ॥ ५८ ॥

टीकांक: ३६३७ टिप्पणांक: ॐ

ब्रह्म विद्धि तदेव त्वं न त्विदं यदुपासते ।
इति श्रुतेरुपास्यत्वं निषिद्धं ब्रह्मणो यदि ॥ ५९ ॥
विदितादन्यदेवेऽति श्रुतेर्वेद्यत्वमस्य न ।
यथाश्रुत्यैव वेद्यं चेत्तथा श्रुत्याप्युपास्यताम् ॥६०॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०१७ १०१८

३७ ननु ब्रह्मण उपास्यत्वं श्रुत्या निषिध्यत इति शंकते (ब्रह्म विद्धीति)—

३८] "त्वं तत् एव ब्रह्म विद्धि । यत् तु उपासते इदं न" इति श्रुतेः ब्रह्मणः उपास्यत्वं निषिद्धं यदि ।

३९) "यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" इति श्रुतिरूपास्यास्य ब्रह्मत्वं निषेधयतीत्यर्थः। त्वं यद्यवाङ्मनसगम्यं तदेव ब्रह्म विद्धि । इदमिति यत्तूपासते पुरुषास्तन्न विद्धीति योजना ॥ ५९ ॥

४० उपास्यत्ववद् वेद्यत्वस्यापि तन्निषेधः समान इत्याह—

४१] विदितात् अन्यत् एव इति श्रुतेः अस्य वेद्यत्वं न ॥

ॐ ४१) "अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि" इति ब्रह्मणो वेद्यत्वमपि निवारयतीत्यर्थः। विदितात् ज्ञातादित्यर्थः। अविदितात् अज्ञातादित्यर्थः ॥

॥ ६ ॥ श्रुतकरि ब्रह्मकी उपास्यताके निषेधकी शंका ॥

३७ ननु । ब्रह्मका उपास्यपना श्रुतिकरि निषेध करियेहै । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

३८] "तूं तिसीकूंहीं 'यह ब्रह्म है' ऐसैं जान औ जिसकूं पुरुष उपासतेहैं तिसकूं ब्रह्म नहीं जान ।" इस श्रुतिसैं ब्रह्मका उपास्यपना निषेध कियाहै । ऐसैं जब कहै ।

३९) "जो मनकरि मनन नहीं करियेहै अरु जिसनैं मनका मनन कियाहै । ऐसैं विद्वान् कहतेहैं:—'तूं तिसीहींकूं 'यह ब्रह्म है' ऐसैं जान औ जिसकूं पुरुष उपासतेहैं । तिसकूं ब्रह्म नहीं जान ।" यह श्रुति उपास्यवस्तुके ब्रह्मभावका निषेध करैहै । यह अर्थ है ॥ "तूं जो वाणी अरु मनका अविषय है । तिसीहींकूं 'यह ब्रह्म है' । ऐसैं जान औ जिसकूं पुरुष उपासतेहैं तिसकूं ब्रह्म नहीं जान ।" ऐसैं योजना है ॥ ५९ ॥

॥ ७ ॥ ब्रह्मकी वेद्यतामैं श्लोक ५९ उक्त दोषकी तुल्यताकरि समाधान ॥

४० उपास्यवस्तुकी न्यांई ज्ञानके विषय वस्तुके वी ब्रह्मभावका निषेध समान है । इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैं:—

४१] "विदिततैं अन्यहीं है" इस श्रुतितैं इस ब्रह्मका वेद्यपना क्या निषेध नहीं कियाहै ? किंतु कियाहीं है ॥

ॐ ४१) "सो ब्रह्म विदिततैं अन्य है औ अविदित जो अज्ञातवस्तु तातैं अन्य है" यह श्रुति ब्रह्मके वेद्यपनैकूं वी निवारण करैहै॥ इहां विदिततैं याका ज्ञाततैं । यह अर्थ है औ अविदिततैं याका अज्ञाततैं । यह अर्थ है ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१०१९	अवास्तवी वेद्यता चेदुपास्यत्वं तथा न किम् । वृत्तिव्याप्तिर्वेद्यता चेदुपास्यत्वेऽपि तत्समम् ॥६१॥	३६४२
१०२०	का ते भक्तिरुपास्तौ चेत्कस्ते द्वेषस्तदीरय । मानाभावो न वाच्योऽस्यां बहुश्रुतिषु दर्शनात् ॥६२॥	टिप्पणांकः ॐ

४२ विदिताविदिताभ्यामन्यद् ब्रह्मेति श्रुतिः प्रतिपादयतीति चेत्तर्हि तथैव । तज्जानीयादित्याशंक्योपासनेऽप्येतत्समानं इत्याह—

४३] यथा श्रुत्या एव वेद्यं चेत् । तथा श्रुत्या अपि उपास्यताम् ॥ ६० ॥

४४ ननु वेद्यत्वं ब्रह्मणो वास्तवं न भवतीत्याशंक्योपास्यत्वमपि तथेत्याह (अवास्तवीति)—

४५] वेद्यता अवास्तवी चेत् । उपास्यत्वं किं तथा न ॥

४६ ननु वेदनपक्षे वृत्तेर्ब्रह्माकारत्वमस्ति नोपासन इत्याशंक्य शब्दबलात्तदाकारत्वमुभयत्र समानमित्याह—

४७] वृत्तिव्याप्तिः वेद्यता चेत् । उपास्यत्वे अपि तत् समम् ॥ ६१ ॥

४८ युक्तिशून्य उपालंभस्तु त्वत्पक्षेऽपि समान इत्याह (केति)—

४९] ते उपास्तौ का भक्तिः चेत् । ते कः द्वेषः तत् ईरय ॥

---

४२ ननु ज्ञानके विषय विदिततैं औ अज्ञानके विषय अविदिततैं न्यारा ब्रह्म है । ऐसें जब श्रुति प्रतिपादन करैहै । तब तैसें ज्ञातअज्ञातवस्तुतैं अन्यहीं तिस ब्रह्मकूं जानना । यह आशंकाकरि उपासनाविषै बी यह समाधान समान है । ऐसें कहैहैं:—

४३] श्रुतिअनुसारकरि जब ब्रह्म वेद्य कहिये जाननेकूं योग्य है । तब श्रुतिअनुसारकरि ब्रह्मकी उपासना बी करना ॥ ६० ॥

॥ ८ ॥ वेद्यताकी न्यांई उपास्यताका मिथ्यापना औ वृत्तिव्याप्तिरूपता ॥

४४ ननु । ब्रह्मका वेद्यपना वास्तव नहीं है । यह आशंकाकरि ब्रह्मका उपास्यपना बी तैसें अवास्तवहीं है । ऐसें कहैहैं:—

४५] जब वेद्यता अवास्तव है । तब उपास्यता क्या तैसें अवास्तव नहीं ? किंतु हैहीं ॥

४६ ननु । ज्ञानपक्षविषै वृत्तिकूं ब्रह्माकारता है । उपासनाविषै नहीं । यह आशंकाकरि शब्दके बलतैं वृत्तिकूं ब्रह्माकारता ज्ञान औ उपासना दोनूंविषै समान है । ऐसें कहैहैं:—

४७] जब वृत्तिव्याप्ति कहिये वृत्तिकी विषयतारूप वेद्यता है । तब उपास्यताविषै बी सो वृत्तिकी विषयता समान है ॥ ६१ ॥

॥ ९ ॥ युक्तिरहित उपालंभकी उभयपक्षमैं तुल्यता औ उपासनामैं प्रमाण ॥

४८ युक्तिरहित उपालंभ जो पूछना सो तेरेपक्षविषै बी समान है । ऐसें कहैहैं:—

४९] हे सिद्धांती ! तेरेकूं उपासनाविषै कौनसी भक्ति कहिये प्रीति है ? ऐसें जो कहै । तौ हे वादी! तेरेकूं कौनसा द्वेष है ? सो कथन कर ॥

टीकांक: ३६५० टिप्पणांक: ॐ

उत्तरस्मिंस्तापनीये शैब्यप्रश्नेऽथ काठके।
मांडूक्यादौ च सर्वत्र निर्गुणोपास्तिरीरिता ॥६३॥

ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०२१

५० ननु निर्गुणोपासने प्रमाणं नास्तीत्याशंक्यानेकासु श्रुतिषु उपलभ्यमानत्वान्मैवमित्याह (मानाभाव इति)—

५१] बहुश्रुतिषु दर्शनात् अस्यां मानाभावः वाच्यः न ॥ ६२ ॥

५२ बहुश्रुतिषु दर्शनादित्युक्तमर्थं विवृणोति—

५३] उत्तरस्मिन् तापनीये शैब्यप्रश्ने अथ काठके च मांडूक्यादौ सर्वत्र निर्गुणोपास्तिः ईरिता ॥

५४) तापनीयोपनिषदि तावत् "देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्नणोरणीयांसमिममात्मानमोंकारं नो व्याचक्ष्व" इत्यादिना बहुधा निर्गुणोपासनमभिधीयते। शैब्यप्रश्ने प्रश्नोपनिषदि पंचमे प्रश्ने "यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्यनेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत" इति। काठके कठवल्ल्यां "सर्वे वेदा यत्पदमामनंति" इत्युपक्रम्य "एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदालंबनं श्रेष्ठम्" इत्यादिना प्रणवोपासनमुच्यते। मांडूक्योपनिषदि "ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं" इत्यादिनाऽवस्थात्रयातीततुरीयोपासनमेवाभिधीयत इत्यर्थः। आदिशब्देन तैत्तिरीयमुंडकादयः गृह्यंते ॥ ६३ ॥

५० ननु निर्गुणउपासनाविषै प्रमाण नहीं है। यह आशंकाकरि अनेकश्रुतिनविषै निर्गुणउपासनाके देखनैतैं निर्गुणउपासनाविषै प्रमाण नहीं है। यह कथन बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

५१] बहुतश्रुतिनविषै देखनैतैं इस निर्गुणउपासनाविषै प्रमाणका अभाव कहनैकूं योग्य नहीं है ॥ ६२ ॥

॥ १० ॥ निर्गुणउपासनमैं प्रमाणरूप उपनिषदनका कथन ॥

५२ "बहुतश्रुतिनविषै देखनैतैं" इस ६२ वें श्लोकउक्तअर्थकूं वर्णन करैहैं:—

५३] उत्तरतापनीयविषै औ शैब्य तथा प्रश्नविषै औ कठवल्लीविषै औ मांडूक्यआदिकविषै सर्वठिकानै निर्गुणउपासना कहीहै ॥

५४) तापनीयउपनिषदविषै प्रथम तिस निर्गुणउपासनाकूंहीं कहैहैं:—"ब्रह्मदेवकूं कहते भयेः— 'सूक्ष्मतैं अतिसूक्ष्म इस ओंकाररूप आत्माकूं हमारे तांई कहो। जिसकूं हम उपासना करैं।" इत्यादिकवाक्यनकरि बहुतप्रकारसैं निर्गुणउपासन कहियेहै औ प्रश्नउपनिषद्‌विषै पंचमप्रश्नमैं "जो पुरुष फेर अकार उकार मकाररूप तीनमात्रावाले ॐ इसप्रकारके अक्षरकरिहीं इस परमपुरुषब्रह्मकूं ध्यावताहै" इत्यादिवाक्यकरि निर्गुणउपासना कहियेहै औ कठवल्लीविषै "सर्ववेद जिसके स्वरूपकूं कहतेहैं।" इहांसैं आरंभकरिके "यहहीं अक्षरब्रह्म है। यह आलंबन कहिये ध्येय श्रेष्ठ है।" इत्यादिवचनकरि ओंकारकी उपासना कहियेहै। औ मांडूक्यउपनिषद्‌विषै "ॐ यह जो अक्षर है। सो यह सर्व है।" इत्यादिवचनकरि तीनअवस्थातैं अतीत तुरीयसाक्षीरूप ब्रह्मका उपासनहीं कहियेहै। यह अर्थ है ॥ मूलविषै जो आदिशब्द है। तिसकरि तैत्तिरीय औ मुंडकआदिकउपनिषद् ग्रहण करियेहैं। तिनविषै बी निर्गुणउपासना कहीहै ॥ ६३ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०२२ १०२३

५६ अनुष्ठानप्रकारोऽस्याः पंचीकरण ईरितः ।
५७ ज्ञानसाधनमेतच्चेन्नेति केनात्र वारितम् ॥ ६४ ॥
६० नानुतिष्ठति कोऽप्येतदिति चेन्मानुतिष्ठतु ।
पुरुषस्यापराधेन किमुपास्तिः प्रदुष्यति ॥ ६५ ॥

टीकांक: ३६५५ टिप्पणांक: ७२७

५५ ननु निर्गुणोपासनं कथमनुष्ठेयमित्यत आह (अनुष्ठानेति)—

५६] अस्याः अनुष्ठानप्रकारः पंचीकरणे ईरितः ॥

५७ नन्वेतदुपासनं ज्ञानसाधनमेव न मुक्तिसाधनमित्याशंक्य "ब्रह्मतत्त्वोपास्त्यापि मुच्यते" इतिवदतामस्माकमनुकूलमित्याह (ज्ञानसाधनमिति)—

५८] एतत् ज्ञानसाधनं चेत् । अत्र न इति केन वारितम् ॥ ६४ ॥

५९ ननु सगुणोपासनमेव सर्वैरनुष्ठीयते न निर्गुणोपासनमित्याशंक्य तस्य प्रमाणसिद्धस्यापलापो न युक्त इत्याह (नानुतिष्ठतीति)—

६०] कः अपि एतत् न अनुतिष्ठति इति चेत् मा । अनुतिष्ठतु । पुरुषस्य अपराधेन किं उपास्तिः प्रदुष्यति ॥६५

॥ ११ ॥ उपासनाके अनुष्ठानके प्रकारका सूचन औ ताकूं ज्ञानकी साधनता ॥

५५ ननु निर्गुणउपासना किस प्रकार अनुष्ठान करनैकूं योग्य है । तहां कहैहैं:—

५६] इस निर्गुणउपासनाके अनुष्ठानका प्रकार सुरेश्वराचार्यकृत [२७]"पंचीकरण"विषै कहाहै ॥

५७ ननु यह निर्गुणब्रह्मकी उपासना ज्ञानका साधनहीं है मुक्तिका साधन नहीं । यह आशंकाकरि "ब्रह्मतत्त्वके उपासनासैं वी पुरुष मुक्त होवैहै ।" ऐसैं प्रथमश्लोकविषै उक्त प्रकारकरि कहनैवाले हमकूं यह तेरा कथन अनुकूल है । ऐसैं कहैहैं:—

५८] यह निर्गुणउपासन जब ज्ञानका साधन है । तब इहां नहीं है ऐसैं कौनकरि निवारण करियेहै ? किसीकरि वी नहीं ॥ ६४ ॥

॥ १२ ॥ दृष्टांतसहित निर्गुणउपासनाके लोकनकरि अनुष्ठानके अभावतैं निषेधकी अयुक्तता ॥

५९ ननु सर्वपुरुषनकरि सगुणउपासनाहीं अनुष्ठान करियेहै निर्गुणउपासन नहीं । यह आशंकाकरि उपनिषद्रूप प्रमाणकरि निर्णीत जो निर्गुणउपासन है । तिसका निषेध युक्त नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

६०] कोई वी बहुतलोक इस निर्गुणउपासनकूं अनुष्ठान नहीं करैहै । ऐसैं जो कहै । तौ मति अनुष्ठान करहीं ॥ पुरुषके अपराधकरि क्या उपासना दूषित होवैहै ? किंतु नहीं होवैहै ॥ ६५ ॥

२७ अंक ३६५३ उक्त अनेकउपनिषदनविषै संक्षेपसैं निर्गुणउपासना कहीहै औ मांडूक्यउपनिषद्विषै विशेष कहीहै ॥ ताके व्याख्यानमैं भाष्यकार औ आनंदगिरिस्वामीनैं निर्गुणउपासनाका प्रकार स्पष्ट लिख्याहै ॥ सोई प्रकार सुरेश्वराचार्यनैं पंचीकरणविषै कह्याहै औ विचारसागरके पंचम तरंगविषै वी स्पष्ट लिख्याहै । जिसकूं इच्छा होवै सो देखे। विस्तारके भयसैं हमनैं लिख्या नहीं ॥

टीकांक: ३६६१ टिप्पणांक: ॐ

ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्लोकांक:

६२ इतोऽप्यतिशयं मत्वा मंत्रान्वश्यादिकारिणः ।
मूढा जपंतु तेभ्योऽतिमूढाः कृषिमुपासताम् ॥ ६६ ॥ १०२४
६५ तिष्ठंतु मूढाः प्रकृता निर्गुणोपास्तिरीर्यते ।
६७ विद्यैक्यात्सर्वशाखास्थान् गुणानत्रोपसंहरेत् ॥ ६७ ॥ १०२५

६१ प्रमाणसिद्धस्यानुष्ठानाभावेनापरित्याज्यत्वे दृष्टांतमाह—

६२] इतः अपि अतिशयं मत्वा मूढाः वश्यादिकारिणः मंत्रान् जपंतु । तेभ्यः अतिमूढाः कृषिं उपासताम् ॥

६३) अयमभिप्रायः । यथा सगुणोपासनेभ्यः कालांतरभाविफलेभ्यो वश्यादिकारिमंत्रेषु ऐहिकफलप्रदत्वमतिशयं बुध्वा मूढानां तन्मंत्रजपादौ प्रवृत्तावपि विवेकिभिः सगुणोपासनं न परित्यज्यते । यथा वा नियमानुष्ठानापेक्षेभ्यः तेभ्योऽपि मंत्रेभ्यः कृष्यादावतिशयं नियमनैरपेक्ष्यं मत्वा मूढतराणां तत्र प्रवृत्तावपि तन्मंत्रानुष्ठानं न परित्यज्यते । तथा सांसारिकफलेप्सूनां निर्गुणोपासनानुष्ठानाभावेऽपि न मुमुक्षुभिर्निर्गुणोपासनं त्यज्यत इति ॥ ६६ ॥

६४ एवं प्रासंगिकं परिसमाप्य प्रकृतमनुसरति (तिष्ठंत्विति)—

६५] मूढाः तिष्ठंतु । प्रकृता निर्गुणोपास्तिः ईर्यते ॥

६१ प्रमाणकरि सिद्ध निर्गुणउपासनकी अनुष्ठानके अभाव हुये परित्याज्यता नहीं है । तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

६२] इस सगुणउपासनसैं बी अतिशय जानिके मूढ जो हैं । सो वश्यआदिकके करनैहारे मंत्रनकूं जपहु औ तिनतैं अतिमूढ जो हैं । सो खेतिकूं सेवहु ॥

६३) इहां यह अभिप्राय हैः—जैसैं कालांतरविषै होनैहारे परलोकरूप फलवाले सगुणउपासनतैं बी वश्यआदिकके करनैहारे मंत्रनविषै इसलोकसंबंधी फलके देनैरूप अतिशयकूं जानिके । मूढनकी तिन मंत्रनके जपआदिकविषै प्रवृत्तिके होते बी शास्त्रसंस्कारयुक्त जे विवेकीपुरुष तिनकरि सगुणउपासना परित्याग नहीं करियेहै ॥ वा जैसैं वांछितफलके अनियम औ अनुष्ठानकी अपेक्षावाले तिन मंत्रनतैं बी खेतीआदिकविषै अतिशयनियमकरि इच्छा करनैयोग्य फलकूं जानिके अतिमूढनकी तिस खेतीआदिकविषै प्रवृत्तिके होते बी तिनकरि तिन मंत्रनका अनुष्ठान परित्याग नहीं करियेहै । तैसैं संसारसंबंधी फलकी इच्छावाले पुरुषनकूं निर्गुणउपासनाके अनुष्ठानके अभाव हुये बी मुमुक्षुपुरुषनकरि निर्गुणउपासन त्याग नहीं करियेहै ॥ ६६ ॥

॥१३॥ उपसनाकी एकता होनैतैं भिन्नभिन्नश्रुतिनमैं उक्त उपास्यके गुणनका एकत्रउपसंहार ॥

६४ ऐसैं प्रसंगप्राप्तअर्थकूं समाप्त करीके । प्रकृतनिर्गुणउपासनकूं अनुसरैहैं:—

६५] मूढपुरुष रहो । हमोकरि प्रकृत कहिये प्रारंभित जो निर्गुणउपासना है । सो कहियेहै ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०२६

आनंदादेर्विधेयस्य गुणसंघस्य संहृतिः ।
आनंदादय इत्यस्मिन्सूत्रे व्यासेन वर्णिता ॥६८॥

टीकांक: ३६६६ टिप्पणांक: ७२८

६६ "सर्ववेदांतप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्" इत्युक्तन्यायेन निर्गुणोपासनस्यैकत्वात् तासु तासु शाखासु श्रुतानुपास्यगुणानेकत्रोपसंहृत्योपासनं कर्तव्यमित्याह—

६७] **विद्यैक्यात् सर्वशाखास्थान् गुणान् अत्र उपसंहरेत् ॥ ६७ ॥**

६८ ते च गुणाः द्विप्रकाराः विधेया निषेध्याश्चेति । तत्र "आनंदो ब्रह्म । विज्ञानमानंदं ब्रह्म । नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरंजनो विभुरद्वय आनंदः परः प्रत्यगेकरसः" इत्यादयो ये विधेयगुणास्तेषामु-

६६ "सर्वउपनिषद्‌रूप वेदांतविषै उपासन एकहीं है । विधिआदिकनके अविशेषतैं" ॥ इस उत्तरमीमांसाके तृतीयअध्यायगत तृतीयपादविषै उक्त न्यायकरि कहिये प्रथमसूत्रकरि निर्गुणउपासनकूं एकरूप होनैतैं तिन तिन शाखाउंविषै श्रवण किये उपास्यब्रह्मके गुणनकूं एकठिकानैं उपसंहारकरिके कहिये मिलायके उपासन कर्तव्य है । ऐसैं कहैहैं:-

६७] **विद्या जो निर्गुणउपासना ताकूं एकरूप होनैतैं सर्वशाखाउंविषै स्थित गुणनकूं एकठिकानैं उपसंहार करना ॥ ६७ ॥**

॥ १४ ॥ व्याससूत्रकरि विधेय औ निषेध्यगुणनका वर्णन ॥

६८ वे उपास्यके गुण नाम धर्म विधेय कहिये विधिवाक्यबोधित औ निषेधवाक्यबोधित भेदतैं दोप्रकारके हैं । तिनमैं "आनंदरूप ब्रह्म है ।" "विज्ञानआनंदरूप ब्रह्म है ।" "नित्य । शुद्ध । बुद्ध कहिये ज्ञानस्वरूप । सत्य । मुक्त । निरंजन । विभु कहिये व्यापक । अद्वय । आनंद । पर कहिये सर्वोत्कृष्ट । प्रत्यक् कहिये सर्वांतर औ एकरस ।" इत्यादिक जे विधेयगुण हैं तिनका उपसंहार

२८ "स्वल्पअक्षरवाला औ असंदिग्ध (निःसंदेह) औ सारअर्थवान् औ सर्वओरतैं प्रवृत्त औ अस्तोभ्य (किसीकरि बी रोधनेकूं अशक्य) औ निर्दोष जो होवै । तिसकूं सूत्रलक्षणके जाननेहारे पुरुष । सूत्र कहतेहैं" यह **सूत्रका लक्षण** है ॥

सर्वनामकूं भेदकी हेतुता प्रसिद्ध है औ इहां भिन्नभिन्नउपनिषदनउक्तउपासननविषै नामका भेद बी कर्मके भेदका प्रतिपादक प्रसिद्ध है । तैसैं पुनरुक्तिआदिक बी भेदके हेतु हैं । तातैं प्रतिउपनिषद्‌विषै उपासनका भेद होवैगा । इस शंकाके प्राप्त हुये आचार्य कहैहैं कि "सर्वउपनिषदनकरि प्रतीयमान (उक्त) जो विज्ञान (उपासन) हैं । वे तिस तिस उपनिषद्‌विषै सोइ सोइ (एकरूप) हीं होनेकूं योग्य हैं । काहेतैं चोदनाआदिकके अविशेष (एकरूप होने) तैं" । इहां आदिशब्दकरि अन्य शाखा (उक्तनामादिकरि अग्निहोत्रादिककर्मनके शाखाशाखाके प्रति भेदके प्राप्त हुये तिन शाखाउं)के अधिकरणरूप सिद्धांतसूत्रविषै उक्त जो कर्मके अभेदके हेतु हैं । वे ग्रहण करियेहैं । यातैं संयोगरूप चोदना (प्रेरणारूप) नामके अविशेष (अभेद) तैं (अनेक उपनिषद्‌गतउपासनकी एकता है) । यह सूत्रका अर्थ है ॥

२९ तिस ब्रह्मके वाचक आनंदादिकपदनका एकवाक्यरूप होनैंकरि उचारण **उपसंहार** कहियेहै ॥ सो गुणोपसंहारन्यायकरि होवैहै ॥ जैसैं कोई व्यारीपुरुष सहस्रसहस्रमुद्राकूं मिलायके साथिहीं व्यापार करतेहोवै । तिनमैंसैं एकएककूं कोई पूछे जो "तूं कितने द्रव्यका व्यापार करताहै" तब वह सर्वमुद्राकूं एकत्र बुद्धिविषै निश्चयकरिके कहताहै जो "च्यारीसहस्रमुद्राका मैं व्यापार करताहूं" **तैसैं** भिन्नशाखागत गुण (धर्म)नका वा अंग (साधन)नका वा विशेषणनका एकबुद्धिविषै आरोहणकूं कहिये स्थापनकूं **गुणोपसंहारन्याय** कहैहैं ।

टीकांक: ३६६९ टिप्पणांक: ७३०	अस्थूलादेर्निषेध्यस्य गुणसंघस्य संहृतिः । तथा व्यासेन सूत्रेऽस्मिन्नुक्ताक्षरधियां त्विति ६९	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०२७

पसंहार "आनंदादयः प्रधानस्य" इत्यस्मिन्नधिकरणेऽभिहित इत्याह—

६९] आनंदादेः विधेयस्य गुणसंघस्य संहृतिः "आनंदादयः" इति अस्मिन् सूत्रे व्यासेन वर्णिता ॥६८॥

७० ये च "अस्थूलमनणवह्रस्वं यत्तदद्रश्यमग्राह्यमशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादयो निषेध्यगुणास्तत्र तत्र श्रुतास्तेषामुपसंहारः "अक्षरधियां त्वविरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदनवत्तदुक्तं" इत्यस्मिन्नधिकरणेऽभिहित इत्याह (अस्थूलादेरिति)—

७१] तथा अस्थूलादेः निषेध्यस्य गुणसंघस्य संहृतिः "अक्षरधियां तु" इति अस्मिन् सूत्रे व्यासेन उक्ता ॥६९

कहिये एकठिकानै मिलावना । "आनंदआदिक । प्रधान जो ब्रह्म ताके (धर्म जाननैकूं योग्य) हैं ॥" इस अधिकरणसूत्रविषै कह्याहै। ऐसैं कहैहैं:—

६९]आनंदआदिक विधेयरूप गुणनके समूहका उपसंहार "आनंदआदिक प्रधानके हैं ।" इस सूत्रविषै व्यासजीनैं वर्णन कियाहै ॥ ६८ ॥

७० औ जो "स्थूल नहीं औ अणुरूप नहीं औ टूंका नहीं ।" "जो सो अदृश्य । अग्राह्य । अशब्द । अस्पर्श । अरूप । अव्यय है" इत्यादिकनिषेध्यगुण जे तिस तिस शाखाविषै सुनैजावैहैं । तिनका उपसंहार ॥ "अक्षरबुद्धि जो ब्रह्मरूप धर्मीविषै द्वैतके निषेधकी बुद्धि ताके हेतु शब्दनका अवरोध कहिये उपसंहार है । सामान्य औ तिसके भावकरि औपसदवत् कहिये पुरोडाश प्रदानके संबंधकी न्यांई सो इस दृष्टांतका प्रकार जैमिनिऋषिनैं पूर्वकांडविषै कह्याहै ।" इस अधिकरणसूत्रविषै कह्याहै । ऐसैं कहैहैं:—

७१] तैसैं अस्थूलआदिकनिषेध्यरूप गुणनके समूहका उपसंहार "अक्षरकी बुद्धिनका तौ अवरोध है ।" इत्यादि इस सूत्रविषै व्यासजीनैं कह्याहै ॥ ६९ ॥

३० यह उत्तरमीमांसाके तृतीयअध्यायगत तृतीयपादका एकादशसूत्र है ॥ इस सूत्रका व्याख्यान आगे ३६३२ वें टिप्पणविषै लिखेंगे ॥

३१ यह ब्रह्ममीमांसाके तृतीयअध्यायगत तृतीयपादका ३३ वां सूत्र है ॥ सर्वमिलिके ५५५ सूत्र हैं । तिनविषै १९२ अधिकरण हैं । तिनके अंतर्गत होनैतैं यह अधिकरणसूत्र कहियेहै ॥

(१) वाजसनेयकशाखाविषै सुनियेहै:—"हे गार्गि ! इस अक्षरब्रह्मकूं ब्राह्मण जो ब्रह्मवेत्ता सो अस्थूल । अनणु । कहिये अणुभावरहित । अह्रस्व । अदीर्घ । अलोहित नाम अरक्त औ अस्नेह कहिये चिक्कणतारहित कहतेहैं (इत्यादि) ॥" औ

(२) अथर्वण (मुंडक) उपनिषद्विषै सुनियेहै:—" (सो विद्या) पर कहिये श्रेष्ठ है । जिसकरि सो अक्षरब्रह्म जानियेहै । सो अक्षरब्रह्म । अदृश्य । अग्राह्य । अगोत्र औ अवर्ण है (इत्यादि) ॥"

तैसैंही अन्यशाखाउंविषै बी विशेष (द्वैत)के निराकरणरूप द्वारकरि अक्षररूप परब्रह्म सुनियेहै ॥

तहां कहूं कितनैक भिन्नविशेष कहिये धर्म निषेध करियेहैं । तिन सर्वविशेषणके निषेधकी बुद्धिनकी क्या सर्वत्र प्राप्ति है अथवा व्यवस्था है ? इस संशयविषै श्रुतिनके विभागतैं व्यवस्थाकी प्राप्तिके हुये कहियेहै:—"अक्षरब्रह्मकूं विषय करनैहारी विशेषके निषेधकी बुद्धियां सर्वठिकानै अवरोध करनैकूं कहिये उपसंहार करनैकूं योग्य हैं ॥ सामान्य औ

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०२८ १०२९ | टीकांकः ३६७२ | टिप्पणांकः ॐ

[७३] निर्गुणब्रह्मतत्त्वस्य विद्यायां गुणसंहृतिः ।
न युज्येतेत्युपालंभो व्यासं प्रत्येव मां न तु ॥७०॥
[७५] हिरण्यश्मश्रुसूर्यादिमूर्तीनामनुदाहृतेः ।
अविरुद्धं निर्गुणत्वमिति चेत्तुष्यतां त्वया ॥७१॥

७२ ननु निर्गुणब्रह्मविद्यायां न गुणोपसंहार एव युज्यते निर्गुणविद्यात्वविरोधादित्याशंक्य सूत्रकारेणैवमभिहितस्योपसंहारस्यास्माभिरभिधीयमानत्वान्नास्मान्प्रतीदं चोद्यमुचितमित्याह—

७३] **निर्गुणब्रह्मतत्त्वस्य विद्यायां गुणसंहृतिः न युज्येत इति उपालंभः व्यासं प्रति एव मां तु न ॥ ७० ॥**

७४ हिरण्यश्मश्रुत्वादिगुणविशिष्टमूर्तीनां अनभिधानादिदं निर्गुणोपासनमेवेति चेत्तर्हि न विरोध इत्याह—

७५] **हिरण्यश्मश्रुसूर्यादिमूर्तीनां अनुदाहृतेः निर्गुणत्वं अविरुद्धं इति चेत् । त्वया तुष्यताम् ॥**

७६) **हिरण्यश्मश्रुसूर्यादिमूर्तीनां** हिरण्मयानि श्मश्रूणि यस्यासौ हिरण्यश्मश्रुः

॥ १९ ॥ निर्गुणमैं गुणनके उपसंहारके असंभवके उपालंभकी व्यासजीके प्रति योग्यता ॥

७२ ननु । निर्गुणब्रह्मविद्याविषै गुणनका उपसंहारहीं संभवै नहीं । काहेतें निर्गुणविद्यापनैके विरोधतें । यह आशंकाकरि सूत्रकार श्रीवेदव्यासजीनैं ऐसैं कथन किया जो उपसंहार है । ताकूं हमोंकरि कथन कियाहोनैतें हमारेप्रति यह प्रश्न उचित नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

७३] **निर्गुणब्रह्मतत्त्वकी विद्या जो उपासना तिसविषै गुणनका उपसंहार संभवै नहीं । इस प्रकारका उपालंभ जो प्रश्न करना सो व्यासजीके प्रतिहीं योग्य है । मेरेप्रति नहीं ॥ ७० ॥**

॥ ११ ॥ मूर्तिनके अकथनतें निर्गुणउपासनाका अविरोध ॥

७४ हिरण्यश्मश्रुता कहिये सुवर्णमयदाढीयुक्तपना इसआदिकगुणविशिष्ट मूर्तिनके अकथनतें यह निर्गुणउपासनाहीं है । ऐसैं जब कहै । तब निर्गुणउपासनापनैका विरोध नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

७५] **सुवर्णमयश्मश्रुवाले सूर्यआदिकनकी मूर्तिके अकथनतैं निर्गुणपनैका अविरोध है । ऐसैं जब कहै । तब तेरेकरि संतोष करना ॥**

७६) सुवर्णमय हैं श्मश्रु कहिये चिबुकके केश जिसके । ऐसा जो सूर्य । इसआदिक-

तिसके भावकरि कहिये सर्वत्र विशेषके निराकरणरूप ब्रह्मके प्रतिपादनका प्रकार समान है औ सोइ सर्वत्र प्रतिपादन करनैयोग्य ब्रह्म अभिन्न जानियेहै ॥ इन दोहेतुनकरि इहां अन्यशाखाविषै श्रवण किये विशेषके निषेधकविशेषणरूप शेषनके अन्यशाखाविषै स्थित शेषीब्रह्मके साथि संबंधविषै औपसदकी न्यांईं यह दृष्टांत है ॥ जैसैं जमदग्निके किये अहीन (चतुरात्रनामकयज्ञ)विषै विधान किये पुरोडाशके प्रदानविषै उद्गाताके वेद (सामवेद)मैं उत्पन्न भये मंत्रनका बी अध्वर्यु (यजुर्वेदके पढनैवाले ऋत्विक्)के साथि संबंध होवैहै । काहेतें यव (धान्यविशेष)आदिकके पिष्टके पिंडकूं घृतविषै भुंजिके जो होमद्रव्य होवैहै । ताकूं **पुरोडाश** कहैहैं ॥ तिसके प्रदानकूं अध्वर्युका कार्य होनैतें औ अंगनकूं प्रधान कहिये मुख्यअधिकारीके आधीन होनेतें ॥ ऐसैं इहां बी जहां कहां उत्पन्न भये विशेषणनकूं अक्षरब्रह्मके आधीन होनैतें । अक्षरब्रह्मके साथि सर्वत्र संबंध है ॥ सो उक्तदृष्टांतका प्रकार पूर्वमीमांसाविषै जैमिनिऋषिनैं कहाहै ॥ यह सूत्रका अर्थ है ॥

टीकांक: ३६७७ टिप्पणांक: ७३२	गुॅणानां लक्षकत्वेन न तत्त्वेंऽतःप्रवेशनम् । इति चेदस्त्वेवमेव ब्रह्मतत्त्वमुपास्यताम् ॥ ७२ ॥	ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०३०

तथाविधः सूर्यो हिरण्यश्मश्रुः सूर्यः आदिर्येषां ते हिरण्यश्मश्रुसूर्यादयस्तेषां मूर्तयो हिरण्यश्मश्रुसूर्यादिमूर्तयस्तासामिति विग्रहः ॥७१॥

७७ ननु आनंदादीनामस्थूलादीनां च गुणानामुपास्यतत्त्वेंऽतःप्रवेशाभावात्तद्गुणविशिष्टत्वेन कथमुपास्यत्वमित्याशंक्य तेषां तत्त्वांतःप्रवेशाभावेऽपि तेषां लक्षकत्वसंभवात्तैः लक्षितं ब्रह्मोपास्यमित्याह—

७८] गुणानां लक्षकत्वेन तत्त्वे अंतःप्रवेशनं न इति चेत् । अस्तु एवं एव ब्रह्मतत्त्वं उपास्यताम् ॥ ७२ ॥

देवनकी मूर्तिनके अकथनतैं उपासनाका निर्गुणपना विरोधरहित है ॥ ७१ ॥

॥ १७ ॥ आनंदादिगुणनकरि लक्ष्यब्रह्मकी उपास्यता ॥

७७ ननु आनंदादिक औ अस्थूलादिकगुणनकूं उपास्यपनैके हुये ब्रह्मके भीतर तिनके प्रवेशके अभावतैं तिस गुणविशिष्टपनैकरि कैसैं उपास्यपना होवैगा ? यह आशंकाकरि तिन गुणनके ब्रह्मतत्त्वके भीतर प्रवेशके अभाव हुये बी तिनके लक्षकपनैके संभवतैं तिन गुणनकरि लक्षित ब्रह्म उपासन करनैयोग्य है। ऐसैं कहैहैं:—

७८] गुणनका लक्षकपनैकरि तत्त्व जो लक्ष्यरूप ब्रह्म तिसविषै भीतर प्रवेश[32] नहीं है । ऐसैं जब कहै तब इस प्रकार लक्ष्यरूपहीं ब्रह्मतत्त्व उपासन करनैकूं योग्य है ॥ ७२ ॥

३२ टिप्पण ७३० विषै "आनंदआदिक । प्रधानके हैं" इस सूत्रके अर्थके लिखनैकी प्रतिज्ञा करीथी । तिसके अर्थकूं अब दिखावैहैं:—ब्रह्मस्वरूपके प्रतिपादनपरायणश्रुतिनविषै आनंदरूपत्व । विज्ञानघनत्व । सर्वगतत्व । सर्वात्मत्व । ऐसे जातिवाले ब्रह्मके धर्म कहुं कितनैक सुनियेहै । ज्ञेयब्रह्मकूं एक होनैतैं औ निर्विशेष कहिये सर्वधर्मरहित होनैतैं तिन धर्मनविषै संशय है:—

क्या आनंदादिक ब्रह्मके धर्म । जहां जितने सुनियेहैं तितनैहीं निश्चय करनैकूं योग्य हैं। किंवा सर्वधर्म सर्वत्र निश्चय करनैकूं योग्य हैं ?

तहां जैसैं श्रुतिनका विभाग है । तैसैं धर्मनके निश्चयके प्राप्त हुये यह कहियेहै:—"आनंदआदिक । प्रधान (ब्रह्म)के धर्म सर्वत्र कहिये सर्वशाखाविषै निश्चय करनैकूं योग्य हैं । काहेतैं सर्वके अभेदतैंहीं सर्वत्रहीं जातैं सोई एक प्रधानविशेष्यब्रह्म भेदकूं पावता नहीं। तातैं ब्रह्मके धर्मकूं नाम विशेषणनकूं सर्वत्र एकज्ञानकी विषयता है । सो तिसीहीं पूर्वके अधिकरणसूत्रविषै देवदत्तके शौर्य कहिये शूरवीरताआदिकगुणनके दृष्टांतकरि जानना"

उक्तकथनका यह भाव है:—आनंदत्व । सत्यत्व । ज्ञानत्वआदिक जो सामान्य नाम जातिके वाचक पद हैं । सो ब्रह्मविषै कल्पितधर्म हैं तिनका सर्वशाखाविषै उपसंहार है ॥ आनंद । सत्य । ज्ञान । अनंत । ब्रह्म । शुद्ध । अद्वय । आत्मा । यह जे एकअर्थविषै तात्पर्यवाले समानाधिकरण पद हैं । वे आनंदत्वआदिकजातिरूप विरुद्धधर्मके त्यागकरि सर्वकी अधिष्ठानभूत एकअखंड (सजातीयादिभेदरहित)व्यक्ति(अद्वयवस्तुमात्र)कूं लक्षणासैं बोधन करैहैं औ

एकहीं पदकरि लक्ष्यकी सिद्धितैं अन्यपद व्यर्थ हैं। ऐसैं कहनैकूं योग्य नहीं है । काहेतैं एकहीं पदविषै विरोधके अभावकरि लक्षणाके असंभवतैं ॥ यद्यपि दोनूंपदविषै बी लक्षणा संभवैहै तथापि "आनंद ब्रह्म है" ऐसैं कहेहुये दुःखत्व औ अल्पत्व (परिच्छिन्नत्व)की भ्रांतिके निषेध हुये बी । असत्वजडत्वआदिककी भ्रांति होवैहै यातैं तिसके निषेधअर्थ सत्यज्ञानआदिकपद कहनैकूं योग्य हैं औ भ्रमकूं अवधिरहित होनैतैं वाक्य पर्यवसान (अंत)रहित होवैगा। ऐसैं कहनैकूं योग्य नहीं है। काहेतैं "सच्चिदानंदरूप सर्वधर्मशून्य अद्वय अविकल्प ब्रह्म मैं हूं" ऐसैं विशेषदर्शनके हुये

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०३१

आनंदादिभिरस्थूलादिभिश्चात्मात्र लक्षितः । अखंडैकरसः सोऽहमस्मीत्येवमुपासते ॥ ७३ ॥

टीकांकः ३६७९ टिप्पणांकः ॐ

७९ तथोपासनप्रकारमेव दर्शयति (आनंदादिभिरिति)—

८०] अत्र अखंडैकरसः आत्मा आनंदादिभिः च अस्थूलादिभिः लक्षितः "सः अहं अस्मि" इति एवं उपासते ॥

७९ तैसें उपासनके प्रकारकूंहीं दिखावैहैं:—

८०] इहां "आनंदआदिक औ अस्थूलआदिकगुणनकरि लक्षित जो अखंडएकरस आत्मा है । सो मैं हूं" ऐसें उपासना करैहैं ॥

सर्वभ्रमके निषेधतें औ सो विशेपदर्शन जितने पदनकरि होवै तितनें पद उपसंहार करनेकूं योग्य हैं ॥ औ

देवदत्तके शौर्यआदिकके दृष्टांतका यह वर्णन है:—जैसें देवदत्त नामक कोईक पुरुष शौर्यआदिकगुणवाला होनेकरि स्वदेशविषै प्रसिद्ध है । सो अन्यदेशविषै जब प्राप्त होवै । तब तिस देशके निवासी पुरुषनकरि तिसके गुणनके अनिश्चयतें तिन गुणनकरि रहित हुयेकी न्याईं होवैहै औ परिचयके विशेषतें तहां अन्यदेशविषै बी देवदत्तके गुण प्रसिद्ध होवैहैं । ऐसें अन्यशाखाविषै बी जे उपास्यके गुण सुनियेहैं । वे अन्यशाखाविषै बी होवैहैं गुणवान्‌के अभेदतें।तातें एकब्रह्मसें संबंधवाले धर्म । एकठिकानैं उच्चारण किये बी सर्वत्रहीं उपसंहार करनेकूं योग्य हैं । यह सूत्रका अर्थ है ॥

ऐसें ६८ वें श्लोकउक्तविधेयविशेषणरूप पद औ ६९ वें श्लोकउक्तनिषेध्यविशेषणरूप पद एकहीं अद्वितीयब्रह्मके लक्षक हैं। भिन्नभिन्न अर्थके बोधक नहीं । काहेतें

(१) यह पुरुष अमुकका पिता है । अमुकका पुत्र है । अमुकका पौत्र है । अमुकका जामाता है । अमुकका भ्राता है । इत्यादि पितृत्वपुत्रत्वपौत्रत्वआदिकविशेषण ।जैसें एकहीं पुरुषके बोधक होयके अन्यके निषेधक हैं । ऐसें सत्‌चित्‌आनंदआदिक जे पद हैं।वे विधिमुखकरि प्रथम स्वरूपकूं बोधनकरिके पीछे प्रपंचकी व्यावृत्ति जो निषेध ताकूं बोधन करैहैं।औ

(२) यह पुरुष कुंडलवाला नहीं । श्याम नहीं । श्वेतशिरोवेष्टनवाला नहीं । इत्यादिकविशेषण जैसें अन्यपुरुषनके धर्मनकूं निषेध करीके तिसी एकपुरुषके बोधक हैं । ऐसें अद्वितीयअस्थूलआदिक जे शब्द हैं। वे साक्षात्प्रपंचके धर्मनकी व्यावृत्ति कहिये निषेधकूं प्रतिपादनकरिके अर्थात् स्वरूपकूं बोधन करैहैं ॥

यातें एकहीं वस्तुके लक्षक हैं ॥

यद्यपि सत्‌चित्‌आनंदादिकपदनके वाच्य सच्चिदानंदादिरूप ब्रह्मकूं अविवादकरि सिद्ध होनैतें औ सदादिवाचकपदनकरिहीं असत्पनैआदिकप्रपंचकी व्यावृत्तितें लक्षणाका प्रयोजन नहीं है । यातें इन पदनकूं लक्षकता बनै नहीं ।

तथापि पारमार्थिकव्यावहारिकप्रातिभासिकरूप सत्‌का भेद प्रतीत होवैहै औ चेतनरूप ज्ञान औ अनेकबुद्धिवृत्तिरूप ज्ञानका भेद प्रतीत होवैहै औ प्रियमोदप्रमोदआदिक आनंदका भेद प्रतीत होवैहै । इत्यादिक जो जो वाणी औ तिसद्वारा मनके साक्षात्विषयवस्तु है । सो द्वैतकी अपेक्षावाला है । तिस द्वैतकी व्यावृत्तिकरि पारमार्थिक सत्‌चेतनरूप अखंडआनंदआदिकरूपवाले ब्रह्मके बोधनअर्थ सत्‌आदिकशब्दनविषै बी लक्षणावृत्ति आश्रय करीचाहिये । याहीतें श्रुति मनवाणीका अविषय ब्रह्मकूं कहतीहै ॥

यद्यपि सच्चिदानंदादिकपदनकरि लक्षित सत्‌आदिकधर्म परस्परअभिन्न हुये एकहीं ब्रह्मविषै विद्यमान होवै । तौ तिनका औ ब्रह्मका धर्मधर्मीभावकरि भेदव्यवहार बनै नहीं ।

तथापि धर्मधर्मीभाव तौ अश्वकी न्याईं अत्यंतभिन्नका वा घटकलशकी न्याईं अत्यंतअभिन्नका संभवै नहीं। किंतु भेद अभेद दोनूंकी अपेक्षावाला धर्मधर्मीभाव होवैहै। तिनविषै सत्‌आदिकनके औ ब्रह्मके पारमार्थिकअभेदके प्राप्त हुये बी । तैसें भेदके अलाभतें सो चित्रदीपके १५० वें श्लोकउक्तबद्धमुक्तन्यायकरि कल्पितभेदसें बी संतोषकूं पावैगा । ऐसें ग्रहण करियेहै औ

जैसें गृहविषै सोया पुरुष स्वप्नविषै राजमंडलकूं देखिके प्रमाणिकपुरुषनकरि यह द्वैतसहित है । ऐसें व्यवहार नहीं करियेहै । तैसें कल्पितभेदकरि ब्रह्मकूं द्वैतसहितता होवै नहीं। ऐसें वास्तवभेद औ कल्पितअभेदकरि धर्मधर्मीके भेदका व्यवहार बनैहै ॥

इसरीतिसें सत्पनै चेतनपनै औ आनंदपनैआदिकजातिरूप गुणनकूं कहिये धर्मनकूं कल्पित होनैकरि तिनके अद्वितीयब्रह्मविषै भीतरप्रवेशके अभावतें तिनकरि लक्षित कहिये भागत्यागलक्षणासें बोधित ब्रह्म मैं हूं। ऐसें उपास्य है ॥ इति ॥

टीकांक: ३६८१ टिप्पणांक: ७३३

८३ बोधोपास्त्योर्विशेषः क इति चेदुच्यते शृणु । वस्तुतंत्रो भवेद्बोधः कर्तृतंत्रमुपासनम् ॥ ७४ ॥

ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्रोकांक: १०३२

८१) अत्र आसु श्रुतिषु । यः अखंडैकरसः आत्मा आनंदादिभिरस्थूलादिभिश्च गुणैः लक्षितः सोऽहमस्मीत्येवमुपासते मुमुक्षवः इति शेषः ॥ ७३ ॥

८२ नन्वेवं सति विद्योपासनयोः कुतो भेद इत्याशंक्य वस्तुतंत्रकर्तृतंत्रत्वाभ्यां भेद इत्याह—

८३] बोधोपास्त्योः कः विशेषः इति चेत् । उच्यते शृणु । वस्तुतंत्रः बोधः कर्तृतंत्रं उपासनं भवेत् ॥ ७४ ॥

८१) इन श्रुतिनविषै जो अखंडएकरसआत्मा । आनंदआदिक औ अस्थूलआदिकगुणनकरि लक्षणासैं जनायाहै । "सो मैं हूं" इसप्रकार मुमुक्षुजन उपासना करतेहैं ॥ ७३॥

॥ २ ॥ बोध औ उपासनाके भेदका प्रश्नपूर्वक कथन ॥३६८२—३७०९॥

॥ १ ॥ बोध औ उपासनाके भेदके प्रश्नपूर्वक भेदका कथन ॥

८२ ननु ऐसैं हुये बोध अरु उपासनका काहेतैं भेद है? यह आशंकाकरि वस्तुके आधीन औ कर्त्ताके आधीनहोनैंकरि बोध औ उपासनका भेद[३३] है । ऐसैं कहैहैंः—

८३] बोध औ उपासनका कौन भेद है? ऐसैं जब कहै । तब कहियेहै सो श्रवण करः— वस्तुके आधीन बोध होवै है औ कर्त्ताके आधीन उपासन होवैहै ॥ ७४ ॥

३३ अंक ३६८३—३७१५ पर्यंत आगे कहनैके सारेप्रकरणका भाव यह हैः—साधारणज्ञानमात्र । वस्तुके अधीन है । तिनमैं भ्रमज्ञान तौ अयथार्थवस्तुके अधीन है औ प्रमाज्ञान । प्रमेय (यथार्थवस्तु) औ प्रमाणके अधीन है । विधि औ पुरुषकी इच्छा औ हठ अरु विश्वासके अधीन नहीं काहेतैं । जैसैं मार्गगततृणादिक वा भाद्रपदशुद्धचतुर्थीके चंद्रमारूप प्रमेयका चक्षुरूप प्रमाणसैं संबंध होतेहीं विधि औ पुरुषकी इच्छाआदिकसैं विनाहीं प्रत्यक्षज्ञान होवैहै । ऐसैं ब्रह्मका प्रत्यक्षज्ञान बी विधिआदिककी अपेक्षासैं विना प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मरूप प्रमेयकूं विषय करनैहारे महावाक्यरूप प्रमाणके गुरुमुखद्वारा श्रवणतैंहीं होवैहै ।

यद्यपि

(१) "आत्मा जाननैकूं योग्य है" यह श्रुति प्रेरकप्रमाणरूप होनैतैं **विधि** है औ

(२) जिज्ञासारूप पुरुषकी **इच्छा** है । औ

(३) श्रवणादिकके प्रयत्नका हेतु **हठ** है । औ

(४) गुरुवेदांतवाक्यमैं श्रद्धारूप **विश्वास** है।

यह सामग्री आत्मज्ञानविषै अपेक्षित है ।

तथापि

(१) आत्मज्ञानकूं प्रमेय औ प्रमाणसैं विना पुरुषकी इच्छाके अनुसार उत्पन्न होनैकूं अशक्य होनैतैं औ पुरुषके आधीन वस्तुविषै विधिके संभवतैं । यह श्रुतिवाक्य आत्मज्ञानकी विधिपर नहीं है । किंतु पुरुषकी प्रवृत्तिके अर्थ आत्मज्ञानके संपादनकी योग्यतापर है । औ

(२) जिज्ञासारूप इच्छा बी महावाक्यरूप प्रमाणतैं विना बोधकी उत्पत्तिविषै समर्थ नहीं है । यातैं घटके कारण कुलालादिककी न्यांई ज्ञानकी नियमित कारण नहीं है। किंतु कुलालपत्नीआदिककी न्यांई अन्यथा सिद्ध है । औ

(३) श्रवणादिप्रयत्नके हेतु हठकूं श्रवणादिककी कारणता है । परंतु महावाक्यके श्रवणसैं विना हठमात्रतैं बोधकी उत्पत्तिके अभावतैं औ बोधकी उत्पत्तिके अनंतर क्षणमात्रसैं अज्ञानके नाशकरि पीछे हठसैं बोधकी स्थितिविषै शास्त्रकी विधिके अभावतैं । बोधविषै हठकी कारणता नहीं है । औ

(४) गुरुवेदांतवाक्यविषै श्रद्धारूप विश्वास बी श्रवणविषै उपयोगी है । परंतु बोधका कारण नहीं । यद्यपि परोक्षज्ञानका कारण तौ विश्वास है । परंतु अपरोक्षज्ञानका

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०३३ १०३४

विचाराज्जायते बोधोऽनिच्छा यं न निवर्तयेत् ।
स्वोत्पत्तिमात्रात्संसारे दहत्यखिलसत्यताम् ॥७५॥
तावता कृतकृत्यः सन्नित्यतृप्तिमुपागतः ।
जीवन्मुक्तिमनुप्राप्य प्रारब्धक्षयमीक्षते ॥ ७६ ॥

टीकांक: ३६८४ टिप्पणांक: ॐ

८४ वैलक्षण्यांतरसिद्धये बोधस्य हेत्वादिकं श्लोकद्वयेन दर्शयति—

८५] विचारात् बोधः जायते । यं अनिच्छा न निवर्तयेत् । स्वोत्पत्तिमात्रात् संसारे अखिलसत्यतां दहति॥

८६) विचारात् वस्तुतत्त्वविचारात् बोधो जायते । किं च विचाराज्जायमानं यं बोधं अनिच्छा "बोधो मा भूत्" इत्येवंरूपा न निवर्तयेत् न निवारयेत् । उत्पद्यमानः च बोधः स्वजन्ममात्रात् संसारे अखिलस्य प्रपंचस्य सत्यतां दहति नाशयति ॥ ७५ ॥

८७] तावता कृतकृत्यः सन् नित्यतृप्तिं उपागतः जीवन्मुक्तिं अनुप्राप्य प्रारब्धक्षयं ईक्षते ॥

॥ २ ॥ उपासनातैं बोधके विलक्षणताकी सिद्धिअर्थ बोधके हेतु । स्वरूप औ फलका कथन ॥

८४ बोध औ उपासनाके अन्यविलक्षणपनैकी सिद्धिअर्थ बोधके हेतुआदिककूं दोश्लोककरि दिखावैहैं:—

८५] विचारतैं बोध होवैहै औ जिस हुये बोधकूं अनिच्छा निवारण करै नहीं औ जो बोध अपनी उत्पत्तिमात्रतैं संसारविषै सर्वकी सत्यताकूं दहन करैहै ॥

८६) वस्तुके स्वरूपके विचारतैं बोध उत्पन्न होवैहै । किंवा विचारतैं उत्पन्न भये जिस बोधकूं "बोध मेरेकूं मति होहु ।" इस रूपवाली अनिच्छा निवारण करै नहीं औ उत्पन्न हुया बोध अपनै जन्ममात्रतैं संसारविषै सर्वप्रपंचकी सत्यताकूं नाश करैहै ॥७५

८७] तितनैकरि पुरुष कृतकृत्य कहिये कृतार्थ होयके । नित्यतृप्तिकूं कहिये निरतिशयसुखकूं प्राप्त हुया जीवन्मुक्तिकूं पायके प्रारब्धके क्षयकूं देखताहै ॥

कारण नहीं । काहेतैं विचारसैं विना विश्वासमात्रसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिके अदर्शनतैं ॥

इसरीतिसैं ब्रह्मका ज्ञान प्रमेय औ प्रमाणके अधीन है औ उपासना तौ (१) विधि । (२) कर्तापुरुषकी इच्छा । (३) हठ औ (४) विश्वासके अधीन है । काहेतैं

(१) शास्त्रविधिके अनुसार करी जो उपासना सो यथाशास्त्र फलकी हेतु है । विधिसैं विना अपनै मनकरि कल्पित उपासना फलकी हेतु नहीं है । यातैं उपासनामैं विधिकी अपेक्षा है ॥ औ

(२) पुरुषकी इच्छा होवै तौ होवै औ इच्छा न होवै तौ न होवै औ औरप्रकारसैं करनैकी इच्छा होवै तौ तैसैं बी उपासना होवैहै । यातैं उपासनामैं पुरुषकी इच्छाकी अपेक्षा है ॥ औ

(३) बहिर्मुखमनकूं हठकरिहीं उपास्यके आकार करना होवैहै । यातैं हठकी बी अपेक्षा है ॥ औ

(४) यह शालिग्राम विष्णु है औ यह नर्मदेश्वर शंकर है। ऐसैं शास्त्रमैं लिख्याहै । तहां विचारकरि देखिये तौ विष्णुके चतुर्भुजआदिकचिन्ह शालिग्राममैं नहीं है औ शिवके त्रिनेत्रादि चिन्ह नर्मदेश्वरविषै नहीं है । परंतु तिस शास्त्रवाक्यमैं विश्वासकरिकै विष्णुरूपकरि वा शिवरूपकरि तिनका चिंतन करियेहै । यातैं विश्वासकी बी अपेक्षा है ॥

इसरीतिसैं उपासना कर्त्ताआदिकके अधीन है । यह बोध औ उपासनाका भेद है ।

टीकांक: ३६८७ टिप्पणांक: ॐ		ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्लोकांक:
	आप्तोपदेशं विश्वस्य श्रद्धालुरविचारयन् । चिंतयेत्प्रत्ययैरन्यैरनंतरितवृत्तिभिः ॥ ७७ ॥	१०३५
	यावच्चिंत्यस्वरूपत्वाभिमानः स्वस्य जायते । तावद्विचिंत्य पश्चाच्च तथैवामृति धारयेत् ॥७८॥	१०३६
	ब्रह्मचारी भिक्षमाणो युतः संवर्गविद्यया । संवर्गरूपतां चित्ते धारयित्वा ह्यभिक्षत ॥ ७९ ॥	१०३७

ॐ ८७) तावता तत्त्वज्ञानोत्पत्तिमात्रेण निरतिशयं सुखं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ७६ ॥

८८ उपासनायाश्च बोधाद्वैलक्षण्यान्तरसिद्धये तद्दर्शयति (आप्त इति)—

८९] श्रद्धालुः आप्तोपदेशं विश्वस्य अविचारयन् अन्यैः प्रत्ययैः अनंतरितवृत्तिभिः चिंतयेत् ॥

९०) आप्तस्य गुरोः उपदेशं उपास्यस्वरूपप्रतिपादकवाक्यजातं विश्वस्य विश्वासं कृत्वा । अविचारयन् उपास्यत्वं प्रत्ययैः अन्यैः विजातीयघटादिविषयैः अनंतरितवृत्तिभिः अव्यवहितवृत्तिभिः चिंतयेत् इति ॥ ७७ ॥

९१ कियंतं कालं चिंतयेदित्याशंक्याह—

९२] यावत् चिंत्यस्वरूपत्वाभिमानः स्वस्य जायते तावत् विचिंत्य पश्चात् च तथा एव आमृति धारयेत् ७८

९३ उपासकस्य तद्रूपत्वाभिमानमुदाहरणप्रदर्शनेन स्पष्टीकरोति (ब्रह्मचारीति)—

९४] संवर्गविद्यया युतः ब्रह्मचारी भिक्षमाणः संवर्गरूपतां चित्ते धारयित्वा हि अभिक्षत ॥

ॐ ८७) तितनैकरि कहिये तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिमात्रकरि । निरतिशयसुखकूं पावता है । यह अर्थ है ॥ ७६ ॥

॥ ३ ॥ बोधतैं अन्यविलक्षणताअर्थ उपासनाका स्वरूप ॥

८८ उपासनाकी बोधतैं अन्यविलक्षणताकी सिद्धिअर्थ तिस उपासनाकूं दिखावैहैं:—

८९] श्रद्धालु जो पुरुष है । सो आप्तके उपदेशकूं विश्वासकरिके अविचार करताहुया अन्यवृत्तिनकरि अंतरायरहित वृत्तिनसैं चिंतन करै ॥

९०) आप्त जो गुरु ताके उपास्यके स्वरूपके प्रतिपादक वाक्यके समूहरूप उपदेशकूं विश्वासकरिके विचार न करताहुया । उपास्यपनैकूं अन्य विजातीयघटादिकनकूं विषयकरनैहारी वृत्तिनकरि अंतरायरहित वृत्तिनसैं चिंतन करै ॥ ७७ ॥

॥ ४ ॥ उदाहरणसहित उपासनाकी अवधि ॥

९१ कितनैकालपर्यंत चिंतन करै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९२] जहांलगि उपास्यवस्तुकी स्वरूपताका अभिमान अपनैकूं होवै । तहांलगि चिंतन करीके पीछे तैसैंहीं मरणपर्यंत धारण करै ॥ ७८ ॥

९३ उपासनके तिस उपास्यकी रूपताके अभिमानकूं उदाहरणके दिखावनैकरि स्पष्ट करैहैं:—

९४] कोईक संवर्गविद्याकरि युक्त ब्रह्मचारी भिक्षा मागनैहारा हुया । संवर्गरूपताकूं चित्तविषै धारणकरिके भिक्षाकूं मांगताभया ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०३८

पुरुषस्येच्छया कर्तुमकर्तुं कर्तुमन्यथा ।
शक्योपास्तिरतो नित्यं कुर्यात्प्रत्ययसंततिम् ॥८०॥

टीकांकः ३६९५ टिप्पणांकः ७३४

९५) कश्चित् संवर्गत्वगुणविशिष्टप्राणोपासकब्रह्मचारी भिक्षाहरणार्थमागत्याभिप्रतारिनाम्नो राज्ञः पुरतः "महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेयं नाभिपश्यंति मर्त्याः अभिप्रतारिन् बहुधा वसंतं" इति मंत्रेण स्वात्मनः संवर्गरूपत्वं चित्ते धृतं प्रकटीकृतवानिति छांदोग्ये श्रूयत इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

९६ आमृतिधारणे निमित्तं दर्शयन् "अनिच्छा यं न निवर्तयेत्" इत्युक्ताद्बोधधर्माद्वैलक्षण्यमाह (पुरुषस्येति)—

९७] उपास्तिः पुरुषस्य इच्छया कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं शक्या। अतः प्रत्ययसंततिं नित्यं कुर्यात् ॥

९८) उपास्तिः पुरुषस्य उपासकस्य इच्छया कर्तुमकर्तुमन्यथा प्रकारांतरेण वा कर्तुं शक्या अतः पुरुषस्येच्छाधीनत्वादुपासनं सर्वदा कुर्यात् इत्यर्थः ॥ ८० ॥

---

९५) कोईक संवर्गपनैरूप गुणकरि विशिष्ट प्राणका उपासक ब्रह्मचारी था। सो भिक्षाके लेनैअर्थ आयके अभिप्रतारीराजाके आगे "हे अभिप्रतारी! कोईएक देव है। सो वायुआदिकच्यारीमहात्माओंकूं नाम वडोंकूं गिलताभयाहै औ भुवनका गोप्ता रक्षक कहिये है। हे कापेय! बहुतप्रकारसैं वसताहै। तिसकूं मनुष्य नहीं देखतेहैं" इस मंत्रकरि चित्तविषै धारण करी अपनी प्राणरूपताकूं प्रगट करताभया। ऐसैं छांदोग्यविषै चतुर्थअध्यायके तृतीयखंडगत संवर्गविद्याके प्रकरणमैं सुनियेहै। यह अर्थ है ॥ ७९ ॥

॥ ९ ॥ श्लोक ७९ उक्त बोधके धर्मतैं उपासनाकी विलक्षणता ॥

९६ मरणपर्यंत धारणविषै निमित्तकूं दिखावतेहुये "जिस बोधकूं अनिच्छा निवारण करै नहीं।" इस ७५ वें श्लोकउक्तबोधके धर्मतैं उपासनाकी विलक्षणता कहैहैं:—

९७] उपासना। पुरुषकी इच्छाकरि करनैकूं। न करनैकूं। अन्यथा करनैकूं शक्य है। यातैं वृत्तिनकी संततिकूं कहिये प्रवाहरूप उपासनाकूं नित्य करै ॥

९८) उपासना जो है। सो उपास्य जो पुरुष ताकी इच्छाकरि करनैकूं वा न करनैकूं वा औरप्रकारसैं करनैकूं शक्य है। यातैं पुरुषकी इच्छाके अधीन होनैतैं उपासनाकूं सर्वदा करै। यह अर्थ है ॥ ८० ॥

---

३४ अग्नि। सूर्य। चंद्र औ जल। इन सर्वमहाबलवान् च्यारीकूं जातैं वायु अधिदैव (समष्टि) रूपकरि अपनैविषै संवर्जन (प्रलयकालविषै विलय) करताहै। तातैं वायु संवर्ग (संवर्गपनैरूप गुणवाला) कहियेहै ॥ औ वाक्। चक्षु। श्रोत्र अरु मन। इन सर्वच्यारीकूं जातैं वायु अध्यात्म (व्यष्टिप्राण) रूपकरि प्रसता कहिये सुषुप्तिकालमैं अपनैविषै विलय करताहै। तातैं भी वायु संवर्ग कहियेहै ॥

३५ छांदोग्यके चतुर्थअध्यायके तृतीयखंडविषै यह आख्यायिका है:—एक शुनक नाम राजेका पुत्र शौनकनामवाला कापेय कहिये कपिगोत्रविषै उत्पन्न भया राजा था औ दूसरा कक्षसेन नाम राजेका पुत्र काक्षसेनि अभिप्रतारी इस नामवाला राजा था। सो दोनूं भोजन करनैवास्ते बैठेथे। तिनकूं रसोइये परिवेषण करतेथे। तब ब्रह्मवित्पनैका अभिमानी कोईक ब्रह्मचारी भिक्षा कहिये अन्नकी याचना

टीकांक: ३६९९ टिप्पणांक: ॐ	३७०० वेदाध्यायी ह्यप्रमत्तोऽधीते स्वप्नेऽभिवासितः । जपिता तु जपत्येव तथा ध्यातापि वासयेत्॥८१॥ ३ विरोधिप्रत्ययं त्यक्त्वा नैरंतर्येण भावयन् । लभते वासनावेशात्स्वप्नादावपि भावनाम्॥८२॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०३९ १०४०

९९ एवं सदा चिंतने किं भवतीत्यत आह (वेदाध्यायीति)—

३७००] अप्रमत्तः वेदाध्यायी जपिता अभिवासितः तु स्वप्ने हि अधीते जपति एव । तथा ध्याता अपि वासयेत् ॥

१) अप्रमत्तो वेदाध्यायी सदाऽध्ययनशीलः । जपिता सदा जपशीलः । अभिवासितः दृढवासनया स्वप्नादिष्वध्ययनं जपं वा करोति । एवमुपासकोऽपि वासनादार्ढ्यात् स्वप्नादावपि ध्यायीतेत्यर्थः॥८१

२ स्वप्नादावपि ध्यानानुवर्तने कारणमाह—

३] विरोधिप्रत्ययं त्यक्त्वा

॥ ६ ॥ सदाचिंतनका फल ॥

९९ ऐसैं सदाचिंतन किये क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

३७००] जैसैं अप्रमत्त कहिये सावधान जो वेदाध्यायी है । सो वासनायुक्त हुया स्वप्नविषै अध्ययनकूं करताहै औ जपकर्त्ता जो है । सो वासनायुक्त हुया स्वप्नविषै जपकूं करताहीं है । तैसैं ध्यानकरनैहारा पुरुष बी वासनाकूं करै ॥

१) प्रमादरहित जो वेदाध्यायी है औ जपकर्त्ता है । सो अध्ययन वा जपकी संस्काररूप वासनाकरि युक्त हुया दृढवासनाकरि स्वप्नआदिकनविषै अध्ययनकूं वा जपकूं करताहै । ऐसैं उपासकपुरुष बी वासनाकी दृढतासैं स्वप्नआदिकविषै बी ध्यानकूं करै । यह अर्थ है ॥ ८१ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक ८१ उक्त उपासनाके फलमैं हेतु ॥

२ स्वप्नआदिकविषै बी ध्यानके पीछेवर्त्तनैविषै कारण कहैहैं:—

३] उपास्यसैं भिन्नवस्तुके आकारवाली वृत्तिरूप विरोधीप्रत्ययकूं त्यागकरिके निरंतरपनैंकरि भावना करताहुया वासनाके आवेशतैं कहिये संस्कारकी दृढतातैं स्वप्नआदिकविषै बी भावनाकूं पावताहै ॥

करताभया ॥ तिस ब्रह्मचारीके ब्रह्मवित्पनैके अभिमानीपनैकूं जानिके तिसकूं जाननैकी इच्छावाले हुये दोनूं राजा यह ब्रह्मचारी क्या कहैगा सो सुनैंगे । इस अभिप्रायतैं तिसके ताईं भिक्षा न देतेभये । तब सो ब्रह्मचारी कहताभया:—एक (वायु अरु प्राणरूप) देव प्रजाका पति है । सो महाबलवान्अग्निआदिकमहात्माकूं औ वाक्आदिकच्यारीकूं ग्रसता कहिये अपनैविषै विलय करताहै औ भुवनका नाम पृथ्वीआदिकसर्वलोकका गोपा कहिये रक्षणकरनैहारा है॥ हे कापेय! कहिये कपिगोत्रविषै उत्पन्न औ हे अभिप्रतारिन्! अध्यात्मअधिदैवअधिभूतप्रकारनकरि वास करनैहारे तिस प्रजापतिकूं मर्त्य कहिये मरणधर्मवाले वा अविवेकीमनुष्य नहीं देखते नाम जानतेहैं ॥ जिसकेअर्थ दिनदिनविषै भक्षण करनैके लिये यह अन्न बनताहै । तिस प्राणरूप प्रजापतिके ताईं यह अन्न तुमनैं नहीं दिया" इत्यादि यह प्रसंग है ॥ इसरीतिसैं सो ब्रह्मचारी अपने उपास्य प्राणके स्वरूपका अपनैसैं अभेदका अभिमान धारिके भिक्षाकूं मांगताभया ॥ यातैं उपास्यवस्तुकी स्वरूपताका अभिमान उपासनाका अवधि है । यह अर्थ प्रसंगसैं जनाया ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: टीकांक: ३७०३ टिप्पणांक: ॐ

१०४१ भुंजानोऽपि निजारब्धमास्थातिशयतोऽनिशम् । ध्यातुं शक्तो न संदेहो विषयव्यसनी यथा॥८३॥

१०४२ परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मणि । तदेवास्वादयत्यंतः परसंगरसायनम् ॥ ८४ ॥

१०४३ परसंगं स्वादयंत्या अपि नो गृहकर्म तत् । कुंठीभवेदपि त्वेतदापातेनैव वर्तते ॥ ८५ ॥

नैरंतर्येण भावयन् वासनावेशात् स्वप्नादौ अपि भावनां लभते ॥

ॐ ३) वासनावेशात् संस्कारपाटवात् भावनां ध्यानम् ॥ ८२ ॥

४ ननु प्रारब्धकर्मवशाद्विषयाननुभवतः कथं नैरंतर्येण भावनासिद्धिरित्याशंक्यास्थातिशये सति विषयव्यसनिवद्भावनासिद्धिः स्यादित्याह (भुंजान इति)—

५] निजारब्धं भुंजानः अपि आस्थातिशयतः अनिशं ध्यातुं शक्तः संदेहः न। यथा विषयव्यसनी ॥८३॥

६ दृष्टांतं विवृणोति—

७] परव्यसनिनी नारी गृहकर्मणि व्यग्रा अपि अंतः तत् एव परसंगरसायनं आस्वादयति ॥ ८४ ॥

८ परसंगास्वादने गृहकृत्यविच्छेदः स्यादित्याशंक्याह—

९] परसंगं स्वादयंत्या अपि तत् गृहकर्म नो कुंठीभवेत् अपि तु एतत् आपातेन एव वर्तते ॥ ८५ ॥

ॐ ३) वासनाके आवेशतैं कहिये संसारकी दृढतातैं औ भावनाकूं पावताहै कहिये ध्यानकूं पावताहै ॥ ८२ ॥

॥ ८ ॥ कर्मवशतैं विषयके अनुभवयुक्त उपासककूं निरंतर भावनाकी सिद्धिका दृष्टांतसहित कथन ॥

४ ननु प्रारब्धकर्मके वशतैं विषयनकूं अनुभव करनैहारे पुरुषकूं निरंतरपनैंकरि ध्यानकी सिद्धि कैसैं होवैगी ? यह आशंकाकरि आस्था जो प्रीति ताके अतिशय हुये विषयके व्यसनवाली स्त्रीकी न्यांई भावनाकी सिद्धि होवैगी। ऐसैं कहैहैं:—

५] अपनै प्रारब्धकूं भोगताहुया बी पुरुष आस्थाके अतिशयतैं निरंतर ध्यान करनैकूं समर्थ होवैहै । यामैं संदेह नहीं हैं। जैसैं विषयके व्यसनवाली स्त्री है तैसैं ॥ ८३ ॥

॥ ९ ॥ श्लोक ८३ उक्त दृष्टांतका विवरण ॥

६ दृष्टांतकूं वर्णन करैहैं:—

७] परपुरुषके व्यसनवाली जो नारी है। सो गृहके कर्मविषै प्रवृत्त हुई बी अंतरविषै तिसीहीं परपुरुषके संगरूप रसायनकूं आस्वादन करतीहै ॥ ८४ ॥

८ ननु परपुरुषके संगके आस्वादनविषै गृहके कार्यका भंग होवैगा। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९] परसंगकूं आस्वादन करनैवाली तिस नारीका बी सो गृहका कार्य भंग होवै नहीं । किंतु यह ग्रहका कर्म आपातसैंहीं कहिये उदासीनपनैंकरिहीं वर्तताहै ॥ ८५ ॥

टीकांकः ३७१० टिप्पणांकः ॐ

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः

ग्रृहकृत्यव्यसनिनी यथा सम्यक्करोति तत् ।
परव्यसनिनी तद्वन्न करोत्येव सर्वथा ॥ ८६ ॥

एवं ध्यानैकनिष्ठोऽपि लेशाल्लौकिकमाचरेत् । १०४४
तत्त्वविस्त्वविरोधित्वाल्लौकिकं सम्यगाचरेत् ॥८७॥ १०४५

मायामयः प्रपंचोयमात्मा चैतन्यरूपधृक् ।
इति बोधे विरोधः को लौकिकव्यवहारिणः॥८८॥ १०४६

१० "आपातेनैव वर्तते" इत्युक्तमर्थं विवृणोति (गृहकृत्येति)—

११] यथा गृहकृत्यव्यसनिनी तत् सम्यक् करोति । तद्वत् परव्यसनिनी सर्वथा न करोति एव ॥ ८६ ॥

१२ दार्ष्टांतिके योजयति—

१३] एवं ध्यानैकनिष्ठः अपि लेशात् लौकिकं आचरेत् ॥

१४ ननु तत्त्वविदपि लौकिकव्यवहारं किं लेशेनाचरति किं वा सम्यगिति विषयव्यवहारस्य तत्त्वज्ञानाविरोधित्वात् सम्यगेवाचरति इत्याह—

१५] तत्त्ववित् तु अविरोधित्वात् लौकिकं सम्यक् आचरेत् ॥ ८७ ॥

१६ अविरुद्धत्वमेव दर्शयति (मायामय इति)—

॥ ४ ॥ ज्ञानी औ उपासककी विलक्षणतापूर्वक ज्ञानके अन्यसाधनतैं श्रेष्ठ निर्गुणउपासनाका फल ॥ ३७१०—३९४४ ॥

॥ १ ॥ उपासकतैं ज्ञानीकी व्यवहारकरि विलक्षणता ॥ ३७१०—३७९१ ॥

॥ १ ॥ श्लोक ८९ उक्त दृष्टांतके अंशका वर्णन औ ज्ञानीके व्यवहारमैं अनुकूलदृष्टांत ॥

१० "आपातसैंहीं वर्तताहै" इस ८५ वें श्लोकउक्तअर्थकूं वर्णन करैहैं:—

११] जैसैं गृहकार्यके व्यसनवाली स्त्री । तिस गृहके कार्यकूं सम्यक् करतीहै । तैसैं परव्यसनवाली स्त्री सर्वथा नहीं करतीहै । यातैं सो उदासीनपनै करिहीं है ॥ ८६ ॥

॥ २ ॥ दार्ष्टांतका कथन ॥

१२ दृष्टांतसिद्धअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

१३] ऐसैं एकध्यानविषैहीं निष्ठावाला पुरुष बी लेशतैं शौच आहारादिरूपलौकिककूं आचरताहै ॥

१४ ननु । तत्त्ववित् बी लौकिकव्यवहारकूं क्या लेशकरि आचरताहै । किंवा सम्यक् आचरताहै? यह आशंकाकरि शब्दादिविषयके व्यवहारकूं तत्त्वज्ञानका अविरोधी होनैतैं सम्यक्हीं आचरताहै । ऐसैं कहैहैं:—

१५] तत्त्ववित् तौ अविरोधी होनैतैं लौकिककूं सम्यक् आचरताहै ॥ ८७ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक ८७ उक्त अविरोधका दर्शन ॥

१६ लौकिकव्यवहारके औ तत्त्वज्ञानके अविरोधिपनैकूंहीं दिखावैहैं:—

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः | टीकांकः ३७१७ | टिप्पणांकः ॐ

[१७]अपेक्षते व्यवहृतिर्न प्रपंचस्य वस्तुताम्।
नाप्यात्मजाड्यं किं त्वेषा साधनान्येव कांक्षति८९ — १०४७

[२१]मनोवाक्कायतद्बाह्यपदार्थाः साधनानि तान्।
तत्त्वविन्नोपमृद्नाति व्यवहारोऽस्य नो कुतः॥९०॥ — १०४८

[२३]उपमृद्नाति चित्तं चेद्ध्यातासौ न तु तत्त्ववित्।
[२४]न बुद्धिमर्दयन्दृष्टो घटतत्त्वस्य वेदिता ॥ ९१ ॥ — १०४९

१७] "अयं प्रपंचः मायामयः आत्मा चैतन्यरूपधृक्" इति बोधे लौकिकव्यवहारिणः कः विरोधः ॥ ८८ ॥

१८ विरोधाभावमेव प्रपंचयति (अपेक्षत इति)—

१९] व्यवहृतिः प्रपंचस्य वस्तुतां न अपेक्षते आत्मजाड्यं अपि न किंतु एषा साधनानि एव कांक्षति ॥ ८९ ॥

२० कानि तानि व्यवहारसाधनानि इत्यत आह—

२१] मनोवाक्कायतद्बाह्यपदार्थाः साधनानि तान् तत्त्ववित् न उपमृद्नाति अस्य व्यवहारः कुतः नो॥९०॥

ॐ २१) तद्बाह्यपदार्थाः गृहक्षेत्रादयः। तान् मनआदान् तत्त्वज्ञानी न निवारयति अतः अस्य ज्ञानिनो व्यवहारः कुतो न भवति भवत्येवेत्यर्थः ॥

२२ ननु विषयानुपमर्दनेऽपि तत्त्वविदा

१७] "यह परिदृश्यमान प्रपंच मायामय कहिये मिथ्यारूप है औ आत्मा चैतन्यरूपधारी है।" इसप्रकारके बोधके होते लौकिकव्यवहार करनैहारे ज्ञानीकूं कौन विरोध है? कोइ बी नहीं॥ ८८ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक ८८ उक्त अविरोधका विस्तार ॥

१८ श्लोक ८८ उक्त विरोधके अभावकूंहीं विस्तारसैं कहैहैं:—

१९] व्यवहार जो है। सो प्रपंचकी सत्यताकूं अपेक्षा करता नहीं औ आत्माकी जडताकूं बी अपेक्षा करता नहीं। किंतु यह व्यवहार साधनकूंहीं कहिये सामग्रीकूंहीं अपेक्षा करताहै ॥८९॥

॥ ५ ॥ तत्त्ववित्करि मनआदिकके अलोपतैं व्यवहारका संभव ॥

२० कौन वे व्यवहारके साधन हैं? तहां कहैहैं:—

२१] मन वाणी शरीर औ तिनतैं बाह्यपदार्थ गृहक्षेत्रआदिक जो हैं। वे व्यवहारके साधन हैं॥ तिनकूं तत्त्ववित् उपमर्दन करता नहीं। यातैं इसका व्यवहार काहेतैं नहीं होवैगा?

ॐ २१) तिनतैं बाह्यपदार्थ कहिये गृहक्षेत्रआदिक जे हैं। वे व्यवहारके साधन हैं। तिनकूं कहिये मनआदिकनकूं तत्त्वज्ञानी उपमर्दन करता नहीं कहिये स्वरूपतैं नाश करता नहीं। यातैं इस ज्ञानीका व्यवहार काहेतैं नहीं होवैगा? किंतु होवैगाहीं। यह अर्थ है॥ ९० ॥

॥ ६ ॥ चित्तके रोधनैवालेका अतत्त्ववित्पना ॥

२२ ननु विषयनके नहीं नाश कियेहुये

टीकांक: ३७२३ टिप्पणांक: ॐ	सकृत्प्रत्ययमात्रेण घटश्चेद्भासते सदा । स्वप्रकाशोऽयमात्मा किं घटवच्च न भासते ॥९२॥ स्वप्रकाशतया किं ते तद्बुद्धिस्तत्त्ववेदनम् । बुद्धिश्च क्षणनाश्येति चोद्यं तुल्यं घटादिषु ॥९३॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०५० १०५१

चित्तोपमर्दनं कार्यमित्याशंक्य तथाकरणे तत्त्वविदेव न स्यादित्याह (उपमृद्नातीति)—

२३] चित्तं उपमृद्नाति चेत् । असौ ध्याता तत्त्ववित् तु न ॥

२४ ननु तत्त्वविदा चित्तं नोपमृद्यते इत्येतत् क दृष्टं इत्याशंक्याह (न बुद्धिमिति)—

२५] घटतत्त्वस्य वेदिता बुद्धिं अर्दयन् न दृष्टः ॥

२६) घटतत्त्वस्य वेदिता ज्ञाता बुद्धिमर्दयन् पीडयन्नैकाग्र्यं कुर्वन्पुरुषो न दृष्टो नोपलब्ध इत्यर्थः ॥ ९१ ॥

२७ ननु घटस्य स्थूलत्वेन स्पष्टत्वात्तद्दर्शने चित्तपीडनं नापेक्ष्यते ब्रह्मणस्त्वतथात्वात् तज्ज्ञाने तदपेक्ष्यते इत्याशंक्य तस्य स्वप्रकाशत्वेन घटादपि स्पष्टतरत्वाच्चित्तनिरोधनं नैवापेक्ष्यते इत्याह—

२८] सकृत् प्रत्ययमात्रेण घटः सदा भासते चेत् । स्वप्रकाशः अयं आत्मा किं घटवत् च न भासते ॥९२॥

२९ ननु ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वेऽपि तद्गोचराया बुद्धिवृत्तेरेव तत्त्वज्ञानत्वात्तस्याश्च

वी तत्त्ववेत्ताकरि चित्तका निरोध करनैकूं योग्य है। यह आशंकाकरि तैसैं चित्त निरोधके कियेहुये सो तत्त्ववित्‌हीं नहीं होवैगा। ऐसैं कहैहैं:—

२३] जब चित्तकूं रोकताहै। तब यह पुरुष ध्याता है। तत्त्ववित् नहीं॥

२४ ननु तत्त्ववेत्ताकरि चित्तका निरोध नहीं करियेहै। यह कहां देख्याहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२५]घटके तत्त्वका वेत्ता पुरुष बुद्धिकूं पीडन करताहुया देख्या नहीं है॥

२६) घटके स्वरूपका ज्ञाता कोइ वी पुरुष बुद्धिकूं निरोध करताहुया देख्या नहीं। यह अर्थ है॥ ९१॥

॥ ७ ॥ अतिस्पष्टब्रह्मके ज्ञानमैं चित्तनिरोधकी अपेक्षाका अभाव ॥

२७ ननु घटकूं स्थूलपनैकरि स्पष्ट होनैतैं तिसके दर्शनविषै चित्तका पीडन जो निरोध सो अपेक्षित नहीं है औ ब्रह्मकूं तौ तैसा स्पष्ट नहीं होनैतैं तिसके ज्ञानविषै सो चित्तका पीडन अपेक्षित है। यह आशंकाकरि तिस ब्रह्मकूं प्रकाशरूप होनैकरि घटतैं वी अतिशय स्पष्ट होनैतैं तिसके ज्ञानवि चित्तका निरोध करना अपेक्षित नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

२८] एकवार ज्ञानमात्रकरि जब घट सदा भासताहै। तब स्वप्रकाशरूप यह आत्मा क्या घटकी न्यांई सदा नहीं भासताहै? किंतु भासताहीं है॥ ९२॥

॥८॥ ज्ञानीकूं फेरिफेरि ब्रह्ममैं स्थितिके अपेक्षाकी शंका औ ताका घटादिकमैं अतिप्रसंग॥

२९ ननु ब्रह्मकूं स्वप्रकाशपनैके हुये वी तिसकूं विषय करनैहारी "अहं ब्रह्मास्मि"

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०५२ १०५३

[३२] घटादौ निश्चिते बुद्धिर्नश्यत्येव यदा घटः ।
इष्टो नेतुं तदा शक्य इति चेत्सममात्मनि॥९४॥
[३४] निश्चित्य सकृदात्मानं यदापेक्षा तदैव तम् ।
वक्तुं मंतुं तथा ध्यातुं शक्नोत्येव हि तत्त्ववित् ॥९५॥

टीकांक: ३७३० टिप्पणांक: ॐ

क्षणिकत्वेन ब्रह्मणि पुनः पुनरवस्थानमपेक्ष्यत इत्याशंक्येदं चोद्यं घटादिष्वपि समानमित्याह—

३०] स्वप्रकाशतया ते किं । तद्बुद्धिः तत्त्ववेदनं च बुद्धिः क्षणनाश्या इति चोद्यं घटादिषु तुल्यम् ॥ ९३ ॥

३१ घटादिज्ञानस्य क्षणिकत्वेऽपि सकृन्निश्चितस्य घटस्य सर्वदा व्यवहर्तुं शक्यत्वात् तत्र चित्तस्थैर्यसंपादनमप्रयोजकमित्याशंक्येदमात्मन्यपि समानमित्याह—

३२] घटादौ निश्चिते यदा बुद्धिः नश्यति एव । तदा इष्टः घटः नेतुं शक्यः इति चेत् । आत्मनि समम् ॥९४

३३ "सममात्मनि" इत्युक्तमर्थं विवृणोति (निश्चित्येति)—

३४] हि तत्त्ववित् सकृत् आत्मानं निश्चित्य यदा अपेक्षा । तदा एव तं वक्तुं मंतुं तथा ध्यातुं शक्नोति एव ॥ ९५ ॥

इस आकारवाली बुद्धिवृत्तिकूंहीं तत्त्वज्ञान होनैतैं औ तिस बुद्धिवृत्तिकूं क्षणिक होनैकरि तिसका ब्रह्मविषै वारंवार स्थिर करना अपेक्षित है । यह आशंकाकरि यह प्रश्न घटादिकनविषै वी समान है । ऐसैं कहैहैंः—

३०] हे सिद्धांती! ब्रह्मके स्वप्रकाशपनैकरि तेरेकूं क्या ज्ञान होवैहै? किंतु तिस ब्रह्मकी बुद्धिहीं तत्त्वज्ञान है औ सो बुद्धि क्षणकरि नाश होनैयोग्य है। ऐसैं जो कहै। तौ हे वादी! यह प्रश्न घटादिकविषै वी तुल्य है॥ ९३ ॥

॥ ९ ॥ घटादिकमैं चित्तकी स्थिरताकी अपेक्षाके अभावकी शंका औ ताकी ब्रह्ममैं समताकरि समाधान ॥

३१ घटादिकनके ज्ञानकूं क्षणिकपनैके हुये वी एकवार निश्चय किये घटका सर्वदा व्यवहार करनैकूं शक्य होनैतैं । तिस घटविषै चित्तकी स्थिरताका संपादन निष्फल है । यह आशंकाकरि यह समाधान आत्माविषै वी समान है । ऐसैं कहैहैंः—

३२] घटादिकके निश्चय कियेहुये जब बुद्धि जो घटाकारवृत्ति सो नाशकूं पावै । तब वी इच्छित जो घट सो अन्यठिकानै लेजानैकूं शक्य है। ऐसैं जो कहै। तौ सो आत्माविषै वी समान है ॥ ९४ ॥

३३ "सो आत्माविषै वी समान है" इस ९४ श्लोकउक्तअर्थकूं वर्णन करैहैंः—

३४] जातैं तत्त्ववित्पुरुष एकवार आत्माकूं निश्चयकरिके पीछे जब इच्छा होवै। तबहीं तिस आत्माकूं कहनैकूं वा मनन करनैकूं । तैसैं ध्यान करनैकूं समर्थ होवैहीं है ॥ ९५ ॥

टीकांक: ३७३५ टिप्पणांक: ७३६	३६ उपासक इव ध्यायँल्लौकिकं विस्मरेद्यदि । विस्मरत्येव सा ध्यानाद् विस्मृतिर्न तु वेदनात्९६ ३७ ध्यानं त्वैच्छिकमेकस्य वेदनान्मुक्तिसिद्धितः । ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति शास्त्रेषु डिंडिमः ॥९७॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०५४ १०५५

३५ ननु तत्त्वविदप्युपासकवदात्मानुसंधानवशाज्जगदनुसंधानरहितो दृश्यते इत्याशंक्य सोऽनुसंधानाभावो ध्यानप्रयुक्तो न वेदनप्रयुक्त इत्याह—

३६] उपासकः इव ध्यायन् यदि लौकिकं विस्मरेत् विस्मरति एव। सा विस्मृतिः ध्यानात् वेदनात् तु न ॥९६

३७ ननु तत्त्वविदापि मुक्तिसिद्धये ब्रह्मध्यानं कर्त्तव्यं इत्याशंक्य "ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' 'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपापैः" इत्यादिशास्त्रसद्भावान्न मोक्षाय ध्यानं कर्त्तव्यमित्याह—

३८] ध्यानं तु एतस्य ऐच्छिकं वेदनात् मुक्तिसिद्धितः "ज्ञानात् एव तु कैवल्यं" इति शास्त्रेषु डिंडिमः ॥९७॥

॥ १० ॥ किसी तत्त्ववित्कूं प्रतीयमान व्यवहारविस्मृतिअर्थ ध्यानकी कार्यता ॥

३५ ननु तत्त्ववित् बी उपासककी न्यांई आत्माके अविस्मरणरूप अनुसंधानके वशतैं जगत्के अनुसंधानतैं रहित देखियेहै। यह आशंकाकरि सो जगत्के अनुसंधानका अभाव ध्यानका कियाहै। ज्ञानका किया नहीं। ऐसें कहैहैं:—

३६] तत्त्ववेत्ता। उपासककी न्यांई ध्यान करताहुया जब लौकिककूं विस्मरण करताहै। तब सो विस्मरण करहु। सो विस्मृति ध्यानतैं है। ज्ञानतैं नहीं ॥ ९६ ॥

॥११॥ तत्त्ववित्कूं मुक्तिअर्थ ध्यानकी अकर्तव्यता॥

३७ ननु। तत्त्ववित्पुरुषकूं बी मुक्तिकी सिद्धिअर्थ ब्रह्मका ध्यान कर्त्तव्य है। यह आशंकाकरि "ज्ञानतैंहीं कैवल्य जो अद्वैतब्रह्मभाव सो प्राप्त होवैहै। जिसकरि मुक्त होवैहै" औ "तिसी प्रत्यक्अभिन्नपरमात्माकूंहीं जानिके मृत्यु जो संसार ताकूं उल्लंघनकरिके जाताहै। मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ अन्य (ज्ञानसैं भिन्न) मार्ग नहीं है" औ "स्वप्रकाशचैतन्यरूप देवकूं जानिके सर्वपापनकरि मुक्त होवैहै॥" इत्यादिक श्रुतिरूप शास्त्रके सद्भावतैं मोक्षके अर्थ ध्यान कर्तव्य नहीं है। ऐसें कहैहैं:—

३८] ध्यान तौ इस ज्ञानीकूं [३६] इच्छाका कियाहै। काहेतैं। ज्ञानतैं मुक्तिकी सिद्धितैं॥ "ज्ञानतैंहीं कैवल्य प्राप्त होवैहै" ऐसा शास्त्रनविषै ढंढोरा है ॥ ९७ ॥

३६ याका यह भाव है:—श्रुतिस्मृतिआदिकप्रमाणकरि निरूपित मोक्षके साधन तत्त्वज्ञानकूं विद्यमान होनेतैं ज्ञानअर्थ वा मोक्षअर्थ विद्वान्कूं ध्यान कर्तव्य नहीं है। किंतु चित्तकी एकाग्रतासैं आविर्भावकूं पावनैहारे जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदकी जो विद्वान्कूं इच्छा होवै तौ विद्वान् ध्यानकूं करै औ इच्छा न होवै तौ न करै। सर्वथा विद्वान्कूं ध्यानकी कर्तव्यता नहीं है ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०५६ १०५७

तत्त्वविद्यदि न ध्यायेत्प्रवर्तेत तदा बहिः ।
प्रवर्ततां सुखेनायं को बाधोऽस्य प्रवर्तने ॥९८॥
अतिप्रसंग इति चेत् प्रसंगं तावदीरय ।
प्रसंगो विधिशास्त्रं चेन्न तत्तत्त्वविदं प्रति ॥९९॥

टीकांक: ३७३९ टिप्पणांक: ॐ

३९ ननु तत्त्वविदो ध्यानानभ्युपगमे तस्य सदा बहिः प्रवृत्तिः स्यादित्याशंक्य बाधकत्वात्प्रवृत्तेः साभ्युपेयत इत्याह—

४०] तत्त्ववित् यदि न ध्यायेत् तदा बहिः प्रवर्तेत। सुखेन अयं प्रवर्तताम्। अस्य प्रवर्तने कः बाधः ॥ ९८ ॥

४१ बहिःप्रवृत्त्यभ्युपगमेऽतिप्रसंगः स्यादित्याशंक्य प्रसंगस्य दुर्निरूप्यत्वान्नैवमिति परिहरति—

४२] अतिप्रसंगः इति चेत्। तावत् प्रसंगं ईरय ॥

४३ न प्रसंगो दुर्निरूप्यो विधिशास्त्रस्य प्रसंगशब्देन विवक्षितत्वात् इति चेन्न तस्याज्ञानिविषयत्वेन तत्त्वविद्विषयत्वाभावादित्याह (प्रसंग इति)—

४४] विधिशास्त्रं प्रसंगः चेत्। तत् तत्त्वविदं प्रति न ॥

४५) विधिशास्त्र इत्युपलक्षणं निषेधशास्त्रस्यापि ॥ ९९ ॥

॥ १२ ॥ तत्त्ववित्कूं ध्यानके अनंगीकारतैं हुई बाह्यप्रवृत्तिका अंगीकार ॥

३९ ननु। तत्त्ववित्कूं ध्यानके अनंगीकार हुये तिस तत्त्ववित्की सदा बाहिरप्रवृत्ति होवैगी। यह आशंकाकरि प्रवृत्तिकूं ज्ञानकी बाध करनैहारी न होनैतैं सो बाहिरप्रवृत्ति अंगीकार करियेहै। ऐसैं कहैहैं:—

४०] तत्त्ववित् जब ध्यान नहीं करैगा। तब बाहिर अनात्मवस्तुनके व्यवहारविषै प्रवर्त होवैगा॥ जो ऐसैं कहै। तौ सुखसैं यह ज्ञानी प्रवृत्तिवान् होहु। इस ज्ञानीकूं प्रवृत्तिविषै कौन बाध है? ॥ ९८ ॥

॥ १३ ॥ बाहिरप्रवृत्तिके अंगीकारमैं अतिप्रसंगकी शंका औ समाधान ॥

४१ ननु। बाहिरप्रवृत्तिके अंगीकार किये मर्यादाका उल्लंघनरूप अतिप्रसंग होवैगा। यह आशंकाकरि प्रसंगकूं दुःखसैं वी निरूपण करनैकूं अशक्य होनैतैं अतिप्रसंग होवैगा। यह कथन बनै नहीं। ऐसैं परिहार करैहैं:—

४२] अतिप्रसंग होवैगा। ऐसैं जो कहै। तौ प्रथम प्रसंगशब्दके अर्थकूं कथन कर॥

४३ प्रसंग दुःखसैं वी निरूपण करनैकूं अयोग्य नहीं है। काहेतैं विधिशास्त्रकूं प्रसंगशब्दकरि कहनैकूं इच्छित होनैतैं। ऐसैं जो कहै। तौ बनै नहीं। काहेतैं तिस विधिशास्त्रकूं अज्ञानीपुरुषरूप विषयवाला होनैकरी तत्त्ववेत्तारूप विषयवान्‌ताके अभावतैं। ऐसैं कहैहैं:—

४४] जब विधिशास्त्र प्रसंग है। तब सो विधिशास्त्र तत्त्ववेत्ताकेप्रति नहीं है॥

४५) इहां विधिशास्त्रका जो कथन है। सो निषेधशास्त्रका वी उपलक्षण है। यातैं विधिनिषेधरूप अर्थका बोधक शास्त्ररूप जो प्रसंग नाम मर्यादा है। सो तत्त्ववेत्ताके प्रति नहीं है। किंतु अज्ञजनके प्रतिहीं है ॥ ९९ ॥

टीकांक: ३७४६ टिप्पणांक: ॐ		ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक:
	^४७^वर्णाश्रमवयोऽवस्थाऽभिमानो यस्य विद्यते । तस्यैव च निषेधाश्च विधयः सकला अपि ॥१००॥	१०५८
	^४८^वर्णाश्रमादयो देहे मायया परिकल्पिताः । नात्मनो बोधरूपस्येत्येवं तस्य विनिश्चयः॥१०१॥	१०५९
	^५१^समाधिमथ कर्माणि मा करोतु करोतु वा । हृदयेनास्तसर्वास्थो मुक्त एवोत्तमाशयः ॥१०२॥	१०६०

४६विधिशास्त्रस्याविद्वद्विषयत्वमेव दर्शयति—

४७] **वर्णाश्रमवयोवस्थाभिमानः यस्य विद्यते । तस्य एव च सकलाः अपि निषेधाः च विधयः ॥ १०० ॥**

४८ ननु तत्त्वविदोऽपि देहधारित्वेन वर्णाश्रमाद्यभिमानित्वमस्तीत्याशंक्याह (वर्णाश्रमेति)—

४९] **"देहे मायया परिकल्पिताः वर्णाश्रमादयः बोधरूपस्य आत्मनः न" इति एवं तस्य विनिश्चयः ॥१०१॥**

५० ननु तत्त्वविनिश्चयस्तावत्तिष्ठतु शास्त्रं तु तस्य कर्तव्यं प्रतिपादयतीत्याशंक्य तदपि तस्य कर्तव्याभावमेव बोधयतीत्याह (समाधिमिति)—

५१] **हृदयेन अस्तसर्वास्थः उत्तमाशयः मुक्तः एव समाधिं अथ कर्माणि मा करोतु वा करोतु ॥**

५२) यो हृदयेन बुद्ध्या । अस्तसर्वास्थः अस्ताः परित्यक्ताः अशेषाः आसक्तिविशेषा

॥ १४ ॥ विधिशास्त्रकूं अज्ञानीकी परता ॥

४६ विधिशास्त्रके अज्ञानीरूप विषयवान्पनेकूंहीं दिखावैहैं:—

४७] ब्राह्मणादिकवर्ण । गृहस्थादिकआश्रम । बाल्यादिकवय औ स्थितिकी दशारूप अवस्था । इनका अभिमान जिस पुरुषकूं है । तिसीकूंहीं सकल बी निषेध औ विधियां हैं ॥ १०० ॥

॥ १५ ॥ वर्णाश्रमके अभिमानतैं रहित ज्ञानीका निश्चय ॥

४८ ननु । तत्त्ववेत्ताकूं बी देहधारी होनैकरि वर्णआश्रमआदिकका अभिमानीपना है । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४९] "देहविषै मायाकरि कल्पित जे वर्णआश्रमआदिक हैं । वे बोधरूप आत्माके कहिये 'मेरे धर्म नहीं हैं ।'" ऐसा तिस ज्ञानीका निश्चय है । यातैं तिसकूं वर्णाश्रमआदिकका अभिमानीपना नहीं है ॥ १०१ ॥

॥ १६ ॥ शास्त्रकरि विद्वानकूं कर्तव्यका अभाव ॥

५० ननु । तत्त्ववित्का निश्चय प्रथम रहो । शास्त्र तौ तिस तत्त्ववित्कूं कर्तव्य प्रतिपादन करैहै । यह आशंकाकरि सो शास्त्र बी तिस तत्त्ववित्कूं कर्तव्यका अभावहीं बोधन करैहै । ऐसैं कहैहैं:—

५१] हृदयसैं अस्त भई हैं सर्वआस्था जिसकी । ऐसा जो उत्तमआशयवाला पुरुष है । सो मुक्तहीं है । यातैं समाधि औ कर्मनकूं मति करहु वा करहु ॥

५२) जो पुरुष । बुद्धिसैं परित्यागकूं प्राप्त भयेहैं सर्व आसक्तिके भेद जिसके । ऐसा है

ध्यानदीपः ॥ १ ॥ श्लोकांकः १०६१ १०६२	नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः । न समाधानजप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः ॥१०३॥ आत्माऽसंगस्ततोऽन्यत्स्यादिंद्रजालं हि मायिकम् । इत्यचंचलनिर्णीते कुतो मनसि वासना ॥१०४॥	टीकांकः ३७५२ टिप्पणांकः ७३७

यस्य तथाविधः । अतः एव उत्तमाशयः उत्तमः आशय अभिप्रायो निर्मलं ज्ञानं यस्य स तथोक्तः । स मुक्तः एव अतः समाधिमथ कर्माणि इत्यन्वयः ॥ १०२ ॥

५३ विदुषः कर्तव्यं नास्तीत्यत्र वचनांतरमुदाहरति (नैष्कर्म्येणेति)—

५४] यस्य मनः निर्वासनं तस्य नैष्कर्म्येण न अर्थः । तस्य कर्मभिः अर्थः न अस्ति । समाधानजप्याभ्यां न ॥

ॐ ५४) नैष्कर्म्यं कर्मराहित्यं तेन कर्मत्यागेनेत्यर्थः । समाधानं समाधिः । जप्यं जपः ॥ १०३ ॥

५५ ननु विदुषापि वासनानिवृत्तये ध्यानं कर्तव्यमित्याशंक्य सम्यग्ज्ञानिनो वासनैव नास्तीत्याह—

५६] "आत्मा असंगः ततः अन्यत् इंद्रजालं मायिकं हि स्यात्" इति अचंचलनिर्णीते मनसि कुतः वासना ॥ १०४ ॥

औ याहीतैं उत्तम कहिये निर्मल ज्ञानरूप है आशय कहिये अभिप्राय जिसका । ऐसा है । सो मुक्तहीं है । यातैं सो समाधि अथवा कर्मनकूं मति करहु वा करहु । तिसकूं कछु कर्तव्य[३७] नहीं है ॥ यह अन्वय है ॥ १०२ ॥

५३ विद्वान्कूं कर्तव्य नहीं है । इसविषै अन्यवचनकूं उदाहरण करैहैं:—

५४] जिस पुरुषका मन वासनारहित है । तिसका नैष्कर्म्यसैं अर्थ नाम प्रयोजन नहीं है औ तिसका कर्मनसैं अर्थ नहीं है औ समाधान अरु जप्यसैं अर्थ नहीं है ॥

ॐ ५४) इहां नैष्कर्म्य जे कर्मसैं रहितपना नाम तिस कर्मके त्यागकरि । यह अर्थ है । औ समाधान कहिये समाधी औ जप्य कहिये जप ॥ १०३ ॥

॥ १७ ॥ सम्यक्ज्ञानीकूं वासनाका अभाव ॥

५५ ननु । ज्ञानिनकूं वी वासनाकी निवृत्तिअर्थ ध्यान कर्तव्य है । यह आशंकाकरि सम्यक्ज्ञानी जो यथार्थतत्त्वदर्शी ताकूं वासनाहीं नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

५६] "आत्मा असंग कहिये सजातीयविजातीयस्वगतसंबंधसैं रहित है औ तिसतैं अन्य इंद्रजालरूप जगत् मायिक कहिये मिथ्या है" । ऐसैं दृढ निर्णय कियेहुये काहेतैं मनविषै वासना होवैगी ? किसीतैं वी नहीं ॥ १०४ ॥

---

३७ "यह मैं करूंगा तौ मेरेकूं स्वर्गमोक्षादिरूप फल होवैगा औ न करूंगा तौ मेरेकूं इष्टविनाश औ अनिष्टप्राप्तिरूप हानि होवैगी" इस बुद्धिसैं जो करियेहै । सो कर्तव्य कहियेहै औ इस बुद्धिसैं विना जो क्रिया करियेहै । सो कर्तव्य नहीं है ॥

३८ दृढभावनाकरि पूर्वापरके कहिये आगेपीछेके विचारके त्यागपूर्वक जो पदार्थका ग्रहण नाम अंगीकार । सो वासना कहियेहै ॥ सोई अभिनिवेश कहिये आग्रहरूप व्यसन है । सो वासना शुद्ध औ अशुद्ध भेदतैं दोभांतिकी है ॥

(१) जैसैं तक्रके सेचनसैं क्षीर घन (दधि)रूप होवै वा

जैसैं प्रगलित घृतभर्यंतशीतलदेशविषै बहुकालपर्यंत स्थापन कियाहुया घनरूप होवैहै। **तैसैं** पंचकोश औ चिदात्माके भेदका आवरक जो अज्ञान। तिसकरि सम्यक्घनरूप भयाहै आकार जिसका औ घनरूप अहंकारकरि युक्त जो वासना है। सो जन्ममरणकी हेतुरूप **मलिनवासना** है। सो श्रीकृष्णभगवान्नैं आसुरीसंपद्रूपकरि वर्णन करीहै। यह एक है॥ औ

(२) लोकवासना (३) शास्त्रवासना अरु (४) देहवासना ये तीन हैं॥ ऐसैं सर्व मिलिके **च्यारीप्रकारकी मलिनवासना** है॥ तिनमैं दंभदर्पआदिक आसुरसंपद्रूप जो मानसवासना है। ताकूं नरककी हेतु होनैतैं मलिनता प्रसिद्ध है॥ औ

(२) "सर्वजन जैसैं मेरी निंदा करैं नहीं। किंतु जैसैं स्तुति करैं। तैसैं मैं आचरण करूंगा" इसप्रकारका जो अभिनिवेश नाम आग्रह। सो **लोकवासना** है॥ सो जातैं संपादन करनैकूं अशक्य है यातैं मलिन है। काहेतैं सर्वगुणसंपन्नरामचंद्र औ पतिव्रताकी शिरोमणिरूप सीताका बी जब श्रवण करनैकूं अशक्य लोकापवाद प्रवृत्त भया। तब अन्यजीवनका लोकापवाद कहिये निंदा होवै। यामैं क्या कहना है? औ

देशभेदकरि परस्पर निंदाकी बहुलता देखियेहै॥ **जैसैं** दक्षिणदेशके ब्राह्मणनकरि उत्तरदेशके निवासी वेदवेत्ता मांसभक्षण करनैहारे जन निंदित होवैहैं औ उत्तरदेशके ब्राह्मणनकरि मातुलकन्यासैं विवाह करनैहारे औ यात्राविषै मृत्तिकापात्रके ग्रहण करनैहारे दक्षिणदेशके निवासी ब्राह्मण निंदित होवैहैं औ ऋग्वेदकरि आश्वलायन अरु काण्वशाखावाले ब्राह्मण श्रेष्ठ मानियेहैं अरु वाजसनेयीशाखावाले तिनतैं विलक्षणरीतिसैं श्रेष्ठ मानियेहै। ऐसैं अपनैं अपनैं कुलगोत्रबंधुवर्गइष्टदेवताआदिककी प्रशंसा औ अन्यके कुलआदिककी निंदा विद्वान्सैं आदिलेके स्त्री औ गोपालपर्यंत सर्वत्र प्रसिद्ध है॥ इसरीतिसैं अपूर्ण होनैतैं लोकवासना मलिन है औ

(३) [१] पाठव्यसन [२] बहुशास्त्रव्यसन औ [३] अनुष्ठानव्यसन भेदतैं **शास्त्रवासना तीनप्रकारकी** है:—

[१] सर्वशास्त्रनकूं जिव्हाग्र करनैके लिये "मैं सर्वदा वेदादिका पाठ करूंगा"। ऐसा जो आग्रह सो **पाठव्यसनरूप शास्त्रवासना** है॥ तिस पाठकूं बी अशक्य होनैतैं सो मलिनवासना है औ

[२] "सर्वशास्त्रनकूं मैं एकत्र संपादन करूंगा" ऐसा जो आग्रह सो **बहुशास्त्रव्यसनरूप शास्त्रवासना** है॥ आत्यंतिकपुरुषार्थके अभावतैं बहुशास्त्रवासना मलिन है॥ औ

[३] कर्मजडताकरि अतिशयश्रद्धापूर्वक जो सकामकर्मनके अनुष्ठानविषै आग्रह। सो **अनुष्ठानव्यसनरूप शास्त्रवासना** है॥ तिस कर्मवासनाकूं पुनर्जन्मकी हेतु होनैतैं सो मलिन है॥

इसरीतिसैं तीनप्रकारकी शास्त्रवासना कही औ

(४) [१] आत्मताकी भ्रांति [२] गुणाधानभ्रांति औ [३] दोषापनयनभ्रांतिके भेदतैं **देहवसना तीनप्रकारकी** है:—

[१] "देहहीं मैं हूं" ऐसा जो अभिनिवेश सो **आत्मताकी भ्रांतिरूप देहवासना** है। यह चार्वाकआदिकनविषै प्रसिद्ध है॥ अप्रामाणिक होनैतैं औ सर्वदुःखका हेतु होनैतैं देहकी आत्मता मलिन है औ

[२] (क) लौकिक (ख) शास्त्रीयभेदतैं **गुणाधान** कहिये देहविषै गुणका संपादन **दोप्रकारका** है:—

(क) देहविषै समीचीनशब्दादिकका जो संपादन सो **लौकिकगुणाधान** है। कोमलध्वनिसैं गायन औ अध्ययन करनैकूं इच्छतेहुये लोक तैलअपान अरु मरिचभक्षणआदिककरि प्रयत्न करतेहैं औ देहके कोमलस्पर्शअर्थ पुष्टिकरऔषध अरु आहारकूं करतेहैं औ देहकी सुंदरताअर्थ अंगमर्दनवस्त्रभूषणकूं सेवन करतेहैं औ देहकी सुगंधयुक्तताअर्थ पुष्पमाला अरु चंदनके लेपनकूं धारण करतेहैं औ

(ख) गंगास्नानशालिग्रामसेवातीर्थआदिकका संपादनरूप पुण्यकर्म है। सो **शास्त्रीयगुणाधान** है औ

[३] (क) लौकिक (ख) वैदिकभेदसैं **दोषका अपनयन दोप्रकारका** है:—

(क) वैद्यउक्तऔषध अरु मुखप्रक्षालनआदिककरि किया जो दोषका अपनयन नाम निवारण। सो **लौकिकअपनयन** है॥ औ

(ख) शौचआचमनकरि किया जो दोषका अपनयन सो **वैदिकअपनयन** है॥

गुणाधान बहुतकरि हम नहीं देखतेहैं। काहेतैं प्रसिद्धहीं गायन करनैहारे औ अध्ययन करनैहारे प्रयत्न करतेहुये बी ध्वनिकी सुंदरताकूं नहीं पावतेहैं औ कोमलस्पर्श अरु पुष्टि नियमित नहीं हैं॥ सुंदरतासुगंधयुक्तता बी वस्त्रमालाआदिकविषै स्थित है। देहविषै नहीं। यातैं लौकिकगुणाधान बनै नहीं॥ औ

शास्त्रीयगुणाधान तौ प्रबलशास्त्रकरि निषेध करियेहै॥ सो प्रबलशास्त्र यह है:—"जिसकूं तीन (वात कफ पित्तरूप) धातुसैं रचित शरीरविषै आत्मबुद्धि (अहंबुद्धि) है औ कलत्र (स्त्री)आदिकनविषै स्वधी (ममबुद्धि) है औ भूमिके विकार (काष्ठपाषाणादिककी मूर्ति)विषै पूज्यबुद्धि है औ जलविषै जिसकूं तीर्थबुद्धि है औ अभिज्ञ (तत्त्ववेत्ता) जननविषै कदाचित् तीर्थबुद्धि नहीं है। सोइ पुरुष बलीवर्द औ गर्दभ है वा बलीवर्दनका (तृणादि उठावनैद्वारा उपयोगी) गर्दभ है" यह भागवतगत श्रीकृष्णके मुखका वाक्य है औ

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०६३

एवं नास्ति प्रसंगोऽपि कुतोऽस्यातिप्रसंजनम् ।
प्रसंगो यस्य तस्यैव शंक्येतातिप्रसंजनम् १०५

टीकांक: ३७५७ टिप्पणांक: ॐ

५७ भवत्वेवं प्रकृते किमायातमित्यत आह—

५८] एवं अस्य प्रसंगः अपि न अस्ति कुतः अतिप्रसंजनम् ॥

५९ कस्य तर्ह्यतिप्रसंग इत्यत आह (प्रसंग इति)—

६०] यस्य प्रसंगः तस्य एव अति-प्रसंजनं शंक्येत ॥ १०५ ॥

॥१८॥ ज्ञानी औ अज्ञानीकूं क्रमतैं अतिप्रसंगका अभाव औ भाव ॥

५७ ऐसैं प्रसंगका अभाव होहु । इसकरि प्रकृतअतिप्रसंगके अभावविषै क्या प्राप्त भया ? तहां कहैहैं:—

५८] ऐसैं १००–१०४ श्लोकपर्यंत उक्त प्रकारकरि इस ज्ञानीकूं प्रसंग बी नहीं है। तौ अतिप्रसंग कहांसैं होवैगा ?

५९ तब अतिप्रसंग किसकूं है ? तहां कहैहैं:—

६०] जिसकूं प्रसंग है । तिसीहींकूं अतिप्रसंग शंका करियेहै ॥ १०५ ॥

"देह अत्यंतमलिन है अरु देही (आत्मा) अत्यंतनिर्मल है । इन दोनूंके अंतर (भेद)कूं जानिके किसका शौच करियेहै ? (किसीका बी बनै नहीं)"

यद्यपि उक्त शास्त्रकरि देहके दोषका अपनयन निषेध करियेहै । गुणाधानका निषेध नहीं । **तथापि** विरोधीप्रबल-दोषके होते गुण धारण करनेकूं अशक्य हैं । यातैं अर्थतैं गुणाधानका निषेध है । ऐसैं अशक्य होनैतैं गुणाधानभ्रांति औ दोषापनयनभ्रांतिरूप देहवासना मलिन है ।

तातैं किसीबी उपायकरि ये च्यारीप्रकारकी मलिनवासना निवारण करनैकूं योग्य हैं ॥

तत्त्ववेत्ताकूं आत्माके असंगपनैं औ तिसतैं अन्य अनात्म-वस्तुके मिथ्यापनैंके निश्चयतैं अनात्मपदार्थविषै दृढभावना-रूप अभिनिवेशका अभाव है । तातैं पूर्वापरके विचारके त्यागका अभाव है । यातैं तत्त्ववेत्ताके मनविषै अनात्मवस्तु-गतदृढभावनाकरि पूर्वापरके अविचारपूर्वक अनात्मपदार्थके स्वीकाररूप मलिनवासनाका असंभव है औ देहनिर्वाहकी हेतु जो आगे कहनैंकी शुद्धवासना है।ताकूं ज्ञानकरि अज्ञान-के नाश भये। अज्ञानकरि घनआकारयुक्तता वा घन (रूढ) अहंकारकरि युक्तताके अभावतैं मलिनभाव नहीं है औ फेर जन्मांतरकी हेतुताकूं त्याग करिके दग्धबीजकी न्यांई स्थित हुई देहनिर्वाहअर्थ धारण करियेहै ऐसी जो ज्ञातज्ञेयरूप वासना है । सो **शुद्धवासना** कहियेहै ॥ ज्ञात होवैहै ज्ञेयब्रह्म जिसकरि ऐसी जो वासना । सो **ज्ञातज्ञेय-वासना** कहियेहै ॥

शंका:—पूर्वापरविचारके त्यागकरि युक्तपनाहीं तुमनैं वासनाका लक्षण कहा औ ज्ञेयका ज्ञान तौ विचारसैं जन्य है । यातैं शुद्धवासनाविषै वासनाका लक्षण घटता नहीं ॥

समाधान:—वासनाके लक्षणविषै "दृढभावनाकरि" ऐसैं कहाहै । यातैं **जैसैं** बहुतजन्मविषै दृढभावनाकरि इस-जन्मविषै अन्यके उपदेशसैं विना बी अहंकारममकार–कामक्रोधआदिकमलिनवासना उत्पन्न होवैहैं । **तैसैं** प्रथम उदय भये बोधकूं विचारसैं जन्य हुये बी दीर्घकाल अरु निरंतरके संस्कारकरि तत्त्वकी भावनाके हुये पीछे वाक्य-युक्तिके विचारसैं विना बी सन्मुखवर्तीघटआदिककी न्यांई तत्काल तत्त्व स्फुरताहै । तैसी बोधकी अनुवृत्तिसहित जो इंद्रियनका व्यवहार। सो **शुद्धवासना** है ॥ सो देहके जीवन-मात्रअर्थ उपयोगकूं पावतीहै औ दंभदर्पआदिकआसुरसंपत्-की उत्पत्तिअर्थ नहीं है औ जन्मांतरके हेतु धर्मकी उत्पत्ति-अर्थ नहीं है ॥

सो शुद्धवासना **यद्यपि** प्रारब्धभोगपर्यंत विद्वान्के मन-विषै बी रहैहै । **तथापि जैसैं** मोक्षकी इच्छा फलतैं अनिच्छा है औ सत्पुरुषका संग फलतैं असंग है । **तैसैं** यह वासना बी फलतैं अवासना है ॥

इसरीतिसैं सम्यक्ज्ञानीका मन निर्वासनिक है ॥ यह वासनाका विवेचन जीवन्मुक्तिविवेकनामग्रंथविषै श्रीविद्यारण्य-स्वामीनैंहीं कियाहै । सो संक्षेपसैं इहां लिख्याहै ॥ इति ॥

टीकांक: ३७६१ टिप्पणांक: ७३९

विध्यभावान्न बालस्य दृश्यतेऽतिप्रसंजनम् ।
स्यात्कुतोऽतिप्रसंगोस्य विध्यभावे समे सति १०६
न किंचिद्वेत्ति बालश्चेत्सर्वं वेत्त्येव तत्त्ववित् ।
अल्पज्ञस्यैव विधयः सर्वे स्युर्नान्ययोर्द्वयोः॥१०७

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०६४ १०६५

६१ एवं क दृष्टमित्यत आह—

६२] विध्यभावात् बालस्य अतिप्रसंजनं न दृश्यते ॥

६३ दार्ष्टांतिके योजयति (स्यादिति)—

६४] विध्यभावे समे सति अस्य कुतः अतिप्रसंगः स्यात् ॥ १०६ ॥

६५ बालस्य विध्यभावे प्रयोजकमज्ञत्वमस्ति न विदुष इत्याशंक्य तस्याज्ञत्वाभावेऽपि विध्यभावप्रयोजकं सर्वज्ञत्वमस्तीत्याह (न किंचिदिति)—

६६] बालः किंचित् न वेत्ति चेत् । तत्त्ववित् सर्वं वेत्ति एव ॥

६७ तर्हि विध्यधिकारः कस्येत्याशंक्याह—

६८] अल्पज्ञस्य एव सर्वे विधयः स्युः । अन्ययोः द्वयोः न ॥ १०७ ॥

॥ १९ ॥ श्लोक १०९ उक्त अर्थमैं दृष्टांत-दार्ष्टांत ॥

६१ ऐसैं कहां देख्याहै? तहां कहैहैं:—

६२] विधिरूप प्रसंगके अभावतैं बालककूं अतिप्रसंग नहीं देखियेहै ।

६३] दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं ॥

६४] ज्ञानीकूं विधिअभावके बालकसमान हुये । इस ज्ञानीकूं कहांसैं अतिप्रसंग होवैगा? ॥ १०६ ॥

६५ बालककूं विधिके अभावविषै कारण अज्ञपना है । ज्ञानीकूं नहीं । यह आशंकाकरि तिस ज्ञानीकूं अज्ञपनैके अभाव हुये बी विधिके अभावका कारण सर्वज्ञपना है । ऐसैं कहैहैं ॥

६६] बालक कछू बी नहीं जानता है । ऐसैं जो कहै । तौ तत्त्ववित् सर्वकूं जानताहीं है ॥

६७ तब विधिका अधिकार किसकूं है? यह आशंकाकरि कहैहैं ॥

६८] अल्पज्ञपुरुषकूंहीं सर्वविधियां होवैहैं । अन्य अज्ञ औ सर्वज्ञ दोनूंकूं नहीं ॥ १०७ ॥

३९ "जो अतिशय मूढ (बालक) है औ जो बुद्धिके पर (ब्रह्मसैं अभिन्न आत्मा)कूं प्राप्त है । सो दोनूं लोकविषै सुखकूं पावतेहैं औ जो मध्यवर्ती (अतिमूढ औ तत्त्वज्ञजनसैं भिन्न अल्पज्ञ) है । सो विधिनिषेधादिरूप क्लेशकूंहीं पावताहै ॥" यह भागवतका वाक्य है ॥ इत्यादिशास्त्रवाक्यनतैं अल्पज्ञपुरुषकूंहीं समुद्रके मध्यवर्तीपुरुषकी न्याईं होनैतैं विधिनिषेध हैं औ अतिमूढ अरु विद्वान्‌कूं क्रमकरि अवारपारतीरगत पुरुषकी न्याईं होनैतैं विधिनिषेध नहीं हैं । परंतु उत्तमकुलउत्पन्नबालक अरु ज्ञानी गुणदोषबुद्धिसैं विनाहीं शुभसंस्कारतैं शुभकूं आचरतेहैं । अशुभकूं नहीं । यह ८९ वें टिप्पणविषै लिख्याहै ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०६६ १०६७

शाँपानुग्रहसामर्थ्यं यस्यासौ तत्त्वविद्यदि ।
तँन्न शाँपादिसामर्थ्यं फलं स्यात्तपसो यतः १०८
व्याँसादेरपि सामर्थ्यं दृश्यते तपसो बलात् ।
शाँपादिकारणादन्यत्तपो ज्ञानस्य कारणम् १०९

टीकांकः ३७६९ टिप्पणांकः ॐ

६९ ननु व्यासादिवच्छापानुग्रहसामर्थ्यं यस्य स एव तत्त्वविन्नान्य इति शंकते (शापेति)—

७०] **यस्य शापानुग्रहसामर्थ्यं असौ तत्त्ववित् यदि ।**

७१ परिहरति—

७२] **तत् न ॥**

७३ तत्र हेतुमाह (शापादिसामर्थ्यमिति)—

७४] **यतः शापादिसामर्थ्यं तपसः फलं स्यात् ॥ १०८ ॥**

७५ ननु व्यासादीनां तत्त्वविदामपि शापादिसामर्थ्यं दृश्यत इत्याशंक्य तेषां न तत्त्वज्ञानफलमपि तु तपःफलमित्याह—

७६] **व्यासादेः अपि तपसः बलात् सामर्थ्यं दृश्यते ॥**

७७ ननु तर्हि "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" इति श्रुतेस्तपोरहितस्य तत्त्वज्ञानमपि न घटेतेत्याशंक्य शापादिकारणादन्यस्य तपसः सत्वान्नैवमित्याह—

७८] **शापादिकारणात् अन्यत् तपः ज्ञानस्य कारणम् ॥ १०९ ॥**

॥ २० ॥ शापादिसामर्थ्ययुक्तकूं तत्त्ववित्पनेकी शंका औ समाधान ॥

६९ ननु व्यासआदिकनकी न्यांई शाप औ अनुग्रहका सामर्थ्य जिसकूं है। सोइ तत्त्ववित् है अन्य नहीं। इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

७०] **शाप औ अनुग्रहका सामर्थ्य जिसकूं है सो तत्त्ववित् है । ऐसैं जब कहै ।**

७१ सिद्धांती परिहार करैहैंः—

७२] **तब सो बनै नहीं ॥**

७३ तिसविषै हेतु कहैहैंः—

७४] **जातैं शापादिकका सामर्थ्य तपका फल है । ज्ञानका नहीं ॥ १०८ ॥**

॥ २१ ॥ व्यासादिकके शापादिसामर्थ्यकूं तपकी कारणता औ ज्ञानहेतु अन्यतपका कथन ॥

७५ ननु व्यासआदिकतत्त्वविदनकूं बी शापादिकका सामर्थ्य देखियेहै। यह आशंकाकरि सो तिन व्यासादिकनकूं तत्त्वज्ञानका फल नहीं किंतु तपका फल है । ऐसैं कहैहैंः—

७६] **व्यासादिककूं बी तपके बलतैं शापादिकका सामर्थ्य देखियेहै ॥**

७७ ननु तब "तपकरि ब्रह्मकूं जान" इस श्रुतितैं तपकरि रहित पुरुषकूं तत्त्वज्ञान बी नहीं घटैगा। यह आशंकाकरि "शापादिकके कारण सकामादितपतैं अन्य ज्ञानके साधन निष्कामतपके सद्भावतैं तत्त्वज्ञान बी नहीं घटैगा । यह कथन बनै नहीं । ऐसैं कहैहैंः—

७८] **शापादिकके कारण तपतैं अन्यतप ज्ञानका कारण है ॥ १०९ ॥**

टीकांक: ३७७९ टिप्पणांक: ॐ		ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्लोकांक:
	द्वयं यस्यास्ति तस्यैव सामर्थ्यज्ञानयोर्जनिः । एकैकं तु ततः कुर्वन्नेकैकं लभते फलम् ॥११०॥	१०६८
	सामर्थ्यहीनो निंद्यश्चेद्यतिर्विधिविवर्जितः । निंद्यते तत्तपोऽप्यन्यैरनिशं भोगलंपटैः ॥१११॥	१०६९
	भिक्षावस्त्रादिरक्षेयुर्यद्येते भोगतुष्टये । अहो यतित्वमेतेषां वैराग्यभरमंथरम् ॥ ११२ ॥	१०७०

७९ तर्हि तेषां व्यासादीनां तत्त्वज्ञानित्वं शापादिकारणत्वं च कथं दृश्यत इत्याशंक्य उभयविधतपसः सद्भावादित्याह (द्वयमिति)-

८०] यस्य द्वयं अस्ति तस्य एव सामर्थ्यज्ञानयोः जनिः ततः एकैकं तु कुर्वन् एकैकं फलं लभते ॥ ११० ॥

८१ ननु यः शापादिसामर्थ्यरहितस्तस्य विध्यभावेऽपि विहितानुष्ठातृभिर्निंद्यत्वं स्यादित्याशंक्य तेषामपि विषयलंपटैर्निंद्यत्वं स्यादित्याह—

८२] सामर्थ्यहीनः यतिः विधिविवर्जितः निंद्यः चेत् । अन्यैः भोगलंपटैः तत्तपः अपि अनिशं निंद्यते ॥ १११ ॥

८३ एतेऽपि भोगतुष्ट्यर्थं विषयान्संपादयेयुरित्याशंक्य तदा तेषां यतित्वमेव हीयेतेत्यभिप्रायेणोपहसति (भिक्षेति)—

॥ २२ ॥ दोनूंतपयुक्तकूं सामर्थ्य अरु ज्ञानकी उत्पत्ति औ एकतपयुक्तकूं एकफलकी प्राप्ति ॥

७९ ननु । तब तिन व्यासादिकनकूं तत्त्वज्ञानीपना औ शापादिकका कारणपना दोनूं कैसैं देखियेहै? यह आशंकाकरि दोनूंप्रकारके तपके सद्भावतें देखियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

८०] **जिस पुरुषकूं दोनूंप्रकारका तप है । तिसीहींकूं शापादिकका सामर्थ्य औ ज्ञान दोनूंकी उत्पत्ति होवैहै । तातैं एकएकतपकूं करताहुया एकएकफलकूं पावताहै ॥ ११० ॥**

॥२३॥ सामर्थ्यकी विधितैं हीन यतिकी कर्मिनसैं निंदाकी शंका औ समतासैं समाधान ॥

८१ ननु । शापादिकके सामर्थ्यतैं रहित यतिकूं सामर्थ्यके संपादनविषै प्रेरकवचनरूपविधिके अभाव हुये बी विहितकर्मके अनुष्ठान करनैहारे कर्मिष्ठपुरुषनकरि निंदा करनैयोग्यपना होवैगा । यह आशंकाकरि तिन कर्मिनका बी विषयलंपटपामरपुरुषनकरि निंद्यपना होवैगा । ऐसैं कहैहैं:—

८२] शापअनुग्रहके **सामर्थ्यतैं रहित जो संन्यासी है । सो विधिरहित हुया बी** कर्मिनकरि **निंदित होवैगा ।** ऐसैं जब कहै । तब **अन्य भोगलंपटपुरुषनकरि तिन** कर्मिनका कर्मानुष्ठानरूप **तप बी निरंतर निंदित होवैहै ॥ १११ ॥**

॥ २४ ॥ भोगलंपटनका यतिपनैकी हानिके अभिप्रायसैं उपहास ॥

८३ यह संन्यासी बी भोगकी तुष्टि जो संतोष तिसअर्थ विषयनकूं संपादन करैंगे । यह आशंकाकरि तब तिनका यतिपनाहीं नाश होवैगा । इस अभिप्रायकरि उपहास करैहैं:—

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: 1071	वर्णाश्रमपरान्मूढा निंदंत्वित्युच्यते यदि । देहात्ममतयो बुद्धं निंदंत्वाश्रममानिनः ॥११३॥	टीकांक: २७८४
1072	तदित्थं तत्त्वविज्ञाने साधनानुपमर्दनात् । ज्ञानिनाचरितुं शक्यं सम्यग्राज्यादि लौकिकं११४	टिप्पणांक: ॐ

८४] यदि एते भोगतुष्टये भिक्षावस्त्रादि रक्षेयुः वैराग्यभरमंथरं एतेषां यतित्वं अहो ॥ ११२ ॥

८५ विषयलंपटैः पामरैश्च क्रियमाणया निंदया क्रियापराणां शिष्टानां हानिर्नास्तीत्युच्यते चेत्तर्हि देहाभिमानिभिः क्रियापरैः क्रियमाणया निंदया तत्त्वविदोऽपि न हानिरित्याह (वर्णाश्रमेति)—

८६] मूढाः वर्णाश्रमपरान् निंदंतु। इति उच्यते यदि । देहात्ममतयः आश्रममानिनः बुद्धं निंदंतु ॥ ११३ ॥

८७ प्रासंगिकं परिसमाप्य प्रकृतमनुसरति-

८८] तत् इत्थं तत्त्वविज्ञाने साधनानुपमर्दनात् लौकिकं राज्यादि ज्ञानिना सम्यक् आचरितुं शक्यम् ॥

८९) तत् तस्मात्कारणात् । इत्थं उक्तेन प्रकारेण। तत्त्वविज्ञाने सति साधनानुपमर्दनात् लौकिकव्यवहारसाधनानां मनआदीनामविलापनात् । लौकिकं राज्यादि राज्यपरिपालनादिकर्म वा ज्ञानिना सम्यगाचरितुं शक्यम् इत्यर्थः ॥ ११४ ॥

८४] जब यह संन्यासी भोगकी तुष्टिअर्थ भिक्षावस्त्रआदिकरक्षणकूं करैंगे । तब वैराग्यके भारकरि भारी इनका यतिपना अहो है! ॥ ११२ ॥

॥ २९ ॥ विषयीकृतनिंदासैं कर्मिनकी अहानिकी न्यांई कर्मिकृतनिंदासैं तत्त्ववित्की अहानि ॥

८५ विषयलंपट जे पामर हैं तिनकरि करियेहै जो निंदा । तिससै क्रियापरायणशिष्टपुरुषनकी हानि नहीं है । ऐसैं जब कहै। तब देहाभिमानीक्रियापरायणपुरुषनकरि करियेहै जो निंदा।तिसकरि तत्त्ववेत्ताकी बी हानि नहीं है । ऐसैं कहैहैंः—

८६] मूढ जे हैं। वे वर्णआश्रमके परायण पुरुषनकूं भलैं निंदा करहु । तिसतैं तिनकी हानि नहीं। ऐसैं जब कहै । तब देहविषै आत्मबुद्धिवाले जे आश्रमके अभिमानी हैं । वे बुद्धकूं कहिये ज्ञानीकूं भलैं निंदा करहु । तिसतैं ताकी हानि नहीं ॥ ११३ ॥

८७ श्लोक ९१-११३ पर्यंत उक्त प्रसंगसैं प्राप्तअर्थकूं समाप्त करीके प्रकृत तत्त्वज्ञानी औ व्यवहारके अविरोधकूंहीं अनुसरैहैंः—

८८] तातैं ऐसैं तत्त्वज्ञानके हुये मनआदिकव्यवहारकी सामग्रीरूप साधनके विनाशके अभावतैं ज्ञानीकरि लौकिक वा राज्यादिक सम्यक् आचरनैकूं शक्य है ॥

८९) तिस कारणतैं इस ९१-११३ श्लोकउक्तप्रकारकरि तत्त्वविज्ञानके साधन जे मनआदिक हैं । तिनके अविनाशतैं लौकिककर्म वा राज्यपरिपालनआदिककर्म ज्ञानवान्करि सम्यक् आचरनैकूं शक्य है । यह अर्थ है ११४

टीकांक: ३७९० टिप्पणांक: ॐ	⁹¹मिथ्यात्वबुद्ध्या तत्रेच्छा नास्ति चेत्तर्हि मास्तु तत्। ध्यायन्वाथ व्यवहरन्यथारब्धं वसत्वयम्॥११५॥ ⁹³उपासकस्तु सततं ध्यायन्नेव वसेदितः। ध्यानेनैव कृतं तस्य ब्रह्मत्वं ⁹⁸विष्णुतादिवत् ११६	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०७३ १०७४

९० ननु तत्त्वविदः प्रपंचमिथ्यात्वज्ञानेन तत्रेच्छैव नोदीयादिति चेत्तर्हि स्वकर्मानुसारेण वर्ततामित्याह—

९१] मिथ्यात्वबुद्ध्या तत्र इच्छा न अस्ति चेत्। तर्हि तत् मा अस्तु। अयं ध्यायन् वा अथ व्यवहरन् यथारब्धं वसतु ॥ ११५ ॥

९२ इदानीमुपासकस्यातो वैषम्यं दर्शयति-

९३] उपासकः तु सततं ध्यायन् एव वसेत् ॥

९४ तत्रोपपत्तिमाह—

९५] यतः तस्य ब्रह्मत्वं ध्यानेन एव कृतम् ॥

९६) यतः कारणात्। तस्य ब्रह्मत्वं ध्यानेनैव कृतं। न प्रमाणेन प्रमितमतो ध्यायिना सदा ध्यानं कर्त्तव्यमित्यर्थः ॥

९७ तत्र दृष्टांतः—

९८] विष्णुतादिवत् ॥

९९) यथा स्वस्मिन् ध्यानेन संपादितस्य विष्णुत्वादेः पारमार्थिकत्वं नास्ति तद्वदित्यर्थः ॥ ११६ ॥

---

९० ननु। तत्त्ववेत्ताकूं प्रपंचके मिथ्यापनैके ज्ञानकरि तिस प्रपंचविषै इच्छाहीं नहीं होवैगी। ऐसें जब कहै तब अपनै कर्मके अनुसारकरि वर्तहु। ऐसैं कहैहैं:—

९१] मिथ्यापनैकी बुद्धिकरि तिस प्रपंचविषै जब इच्छा नहीं है। तब सो मति होहु॥ यह ज्ञानी ध्यान करताहुया वा व्यवहार करताहुया जैसैं प्रारब्धकर्म होवै तैसैं वास करहु॥११५॥

॥ २ ॥ ज्ञानीतैं उपासककी विलक्षणता

॥ ३७९२—३८१७ ॥

॥ १ ॥ हेतु औ दृष्टांतसहित उपासककूं सदा ध्यानकी कर्तव्यता ॥

९२ अब उपासककी इस ज्ञानीतैं विलक्षणता दिखावैहैं:—

९३] उपासक तौ निरंतर मरणपर्यंत ध्यान करताहुयाहीं वसै कहिये वर्तै॥

९४ तिसविषै कारण कहैहैं:—

९५] जातैं तिस उपासकका ब्रह्मपना ध्यानकरिहीं कियाहै ॥

९६) जिस कारणतैं तिस उपासकका ब्रह्मपना ध्यानकरिहीं कियाहै। प्रमाणकरि जनित प्रमाज्ञानका विषय किया नहीं। यातैं ध्यानी जो उपासक ताकूं सदा ध्यान कर्तव्य है। यह अर्थ है ॥

९७ तिस ध्यानकरि किये ब्रह्मपनैविषै दृष्टांत कहैहैं:—

९८] विष्णुपनैआदिककी न्याईं ॥

९९) जैसैं किसी सगुणउपासककरि अपनैंविषै ध्यानकरि संपादन किये विष्णुपनैआदिकका पारमार्थिकपना नहीं है। ताकी न्याईं इस निर्गुणउपासकका ब्रह्मपना बी पारमार्थिक नहीं है। यह अर्थ है ॥ ११६ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०७५ १०७६

टीकांक: ३८०० टिप्पणांक: ॐ

ध्यानोपादानकं यत्तद्ध्यानाभावे विलीयते ।
वास्तवी ब्रह्मता नैव ज्ञानाभावे विलीयते ११७
ततोऽभिज्ञापकं ज्ञानं न नित्यं जनयत्यदः ।
ज्ञापकाभावमात्रेण न हि सत्यं विलीयते ११८

३८०० ध्यानसंपादितस्यापि तस्य पारमार्थिकत्वं किं न स्यादित्याशंक्य ध्यानसंपादितस्य वाग्धेनुत्वादेर्ध्यानापायेऽपगमदर्शनान्नैवमित्याह—

१] ध्यानोपादानकं यत् तत् ध्यानाभावे विलीयते ॥

२ ज्ञानेन प्रकाशितस्य ब्रह्मत्वस्य ततो वैलक्षण्यमाह—

३] वास्तवी ब्रह्मता ज्ञानाभावे न एव विलीयते ॥

४) हेतुगर्भितं विशेषणं । यतो ब्रह्मत्वं वास्तवं अतो ज्ञापकज्ञानाभावे सति नैव विलीयते ॥ ११७ ॥

५ वास्तवत्वादेव ज्ञानेन नैव जन्यत इत्याह-

६] ततः अभिज्ञापकं ज्ञानं नित्यं अदः न जनयति ॥

ॐ ६) यतोऽदो ब्रह्मत्वं नित्यं ततो ज्ञानं तस्य अभिज्ञापकं अवबोधकमेव न जनकमित्यर्थः ॥

७ तत्रोपपत्तिं व्यतिरेकमुखेनाह (ज्ञापकेति)—

८] हि ज्ञापकाभावमात्रेण सत्यं न विलीयते ॥

॥ २ ॥ ध्यानसंपादितब्रह्मभावकी अवास्तवता औ ज्ञानप्रकाशितब्रह्मभावकी वास्तवता ॥

३८०० ननु ध्यानकरि संपादन किये बी तिस ब्रह्मपनैका पारमार्थिकपना कैसैं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरि ध्यानकरि संपादित वाणीरूप धेनुपनैआदिकके ध्यानकी निवृत्तिके हुये। निवृत्तिके देखनैतैं ध्यानकरि संपादितका पारमार्थिकपना बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

१] ध्यान है संपादन करनैहारा जिसका । ऐसा जो वस्तु है। सो ध्यानके अभाव हुये विलय होवैहै ॥

२ ज्ञानकरि प्रकाशित ब्रह्मपनैकी तिस ध्यानसंपादितब्रह्मपनैतैं विलक्षणता कहैहैं:—

३] वास्तव जो ब्रह्मपना है। सो ज्ञानके अभाव हुये विलय नहीं होवैहै ॥

४) इहां वास्तवपद हेतुगर्भितविशेषणरूप है ॥ जातैं ब्रह्मपना वास्तव है। यातैं ज्ञापक नाम प्रकाशक ज्ञानके अभाव हुये विलय नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥ ११७ ॥

॥ ३ ॥ ज्ञानके अभावतैं अविनाशी ज्ञेयब्रह्मकी ज्ञानतैं अजन्यता ॥

५ वास्तव होनैतैंहीं ब्रह्मभाव ज्ञानकरि जन्य नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

६] तातैं अभिज्ञापकज्ञान नित्य इस ब्रह्मपनैकूं जनता नहीं ।

ॐ ६) जातैं यह ब्रह्मपना नित्य है। तातैं ज्ञान तिस ब्रह्मपनैका अवबोधकहीं है। जनक नहीं । यह अर्थ है ॥

७ तिस ब्रह्मपनैकी अजन्यताविषै व्यतिरेकमुखकरि कारण कहैहैं:—

८] जातैं ज्ञापकके अभावमात्रकरि सत्यवस्तु विलय होवै नहीं ॥

टीकांक: ३८०९ टिप्पणांक: ॐ	अस्त्येवोपासकस्यापि वास्तवी ब्रह्मतेति चेत् । पामराणां तिरश्चां च वास्तवी ब्रह्मता न किं ११९ अज्ञानादपुमर्थत्वमुभयत्रापि तत्समम् । उपवासाद्यथा भिक्षा वरं ध्यानं तथान्यतः १२०	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्रोकांक: १०७७ १०७८

९) अयमभिप्रायः । ब्रह्मत्वं यदि ज्ञानजन्यं स्यात्तर्हि ज्ञाननाशे स्वयं विलीयते । न च विलीयते अतो न जन्यत इत्यर्थः ॥ ११८ ॥

१० ननु ज्ञानिवदुपासकस्यापि ब्रह्मत्वं वास्तवमस्त्येवेति शंकते (अस्त्येवेति)—

११] उपासकस्य अपि ब्रह्मता वास्तवी एव अस्ति । इति चेत् ।

१२ अत्यल्पमिदमुच्यत इत्यभिप्रायेणाह—

१३] पामराणां च तिरश्चां ब्रह्मता वास्तवी किं न ॥ ११९ ॥

१४ पामरादीनां विद्यमानमपि तद्ब्रह्मत्वमज्ञातत्वान्न पुरुषार्थोपयोगीत्याशंक्य अज्ञातत्वेनापुरुषार्थोपयोगित्वमुपासकस्यापि समानमित्याह—

१५] अज्ञानात् अपुमर्थत्वं तत् उभयत्र अपि समम् ॥

१६ ननु तर्ह्युपासनं किमर्थमभिधीयत इत्याशंक्येतरानुष्ठानेभ्यः श्रेष्ठत्वाभिप्रायेणोक्तमिति दृष्टांतपूर्वकमाह (उपवासादिति)—

१७] यथा उपवासात् भिक्षा तथा अन्यतः ध्यानं वरम् ॥ १२० ॥

९) इहां यह अभिप्राय हैः—ब्रह्मपना जब ज्ञानसैं जन्य होवै।तब ज्ञानके नाश हुये आप विलय होवै औ विलय नहीं होवैहै यातैं ज्ञानसैं जन्य नहीं है । यह अर्थ है ॥११८॥

॥ ४ ॥ उपासकके ब्रह्मताकी शंका औ पामरपशुआदिकमैं तुल्यता ॥

१० ननु । ज्ञानीकी न्यांई उपासकका वी ब्रह्मपना वास्तवहीं है।इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

११] उपासकका वी ब्रह्मपना वास्तवहीं है।ऐसैं जब कहै ।

१२ यह तेरेकरि अतिशयअल्प कहियेहै। इस अभिप्रायकरि सिद्धांती कहैहैः—

१३] तब पामरपुरुषनका औ तिर्यक्रूप पशुपक्षीआदिकनका ब्रह्मपना क्या वास्तव नहीं है? किंतु हैहीं ॥ ११९ ॥

॥ ५ ॥ उपासक औ पामरादिकके ब्रह्मताकी अपुरुषार्थता औ अन्यसाधनसैं उपासनाकी श्रेष्ठता ॥

१४ ननु पामरआदिकनका विद्यमान हुया वी सो ब्रह्मपना अज्ञात होनैतैं पुरुषार्थ जो मोक्ष तिसविषै उपयोगी नहीं है । यह आशंकाकरि उपासकके वी ब्रह्मपनैकूं अज्ञात होनैकरि पुरुषार्थविषै अनुपयोगीपना समान है । ऐसैं कहैहैः—

१५] अज्ञानतैं जो अपुरुषार्थपना है सो दोनूं पामरादिक औ उपासकके ब्रह्मपनैविषै वी समान है ॥

१६ ननु तब उपासना किसअर्थ कहिये है? यह आशंकाकरि अन्यअनुष्ठानतैं श्रेष्ठपनैके अभिप्रायकरि कहीहै । ऐसैं दृष्टांतपूर्वक कहैहैः—

१७] जैसैं उपवासतैं भिक्षा श्रेष्ठ है। तैसैं अन्यसाधनतैं उपासन श्रेष्ठ है १२०

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः

१०७९ १९पामराणां व्यवहृतेर्वरं कर्माद्यनुष्ठितिः ।
ततोऽपि सगुणोपास्तिर्निर्गुणोपासना ततः १२१

१०८० २१यावद्विज्ञानसामीप्यं तावच्छ्रैष्ठ्यं विवर्धते ।
२३ब्रह्मज्ञानायते साक्षान्निर्गुणोपासनं शनैः॥१२२॥

१०८१ २५यथा संवादिविभ्रांतिः फलकाले प्रमायते ।
विद्यायते तथोपास्तिर्मुक्तिकालेऽतिपाकतः १२३

टीकांकः ३८१८ टिप्पणांकः ॐ

१८ इतरानुष्ठानाच्छ्रैष्ठ्यमेव दर्शयति—

१९] पामराणां व्यवहृतेः कर्माद्यनुष्ठितिः वरं । ततः अपि सगुणोपास्तिः । ततः निर्गुणोपासना ॥ १२१ ॥

२० उत्तरोत्तरश्रैष्ठ्ये कारणमाह—

२१] यावत् विज्ञानसामीप्यं तावत् श्रैष्ठ्यं विवर्धते ॥

२२ निर्गुणोपासनस्य सर्वश्रैष्ठ्ये कारणमाह (ब्रह्मज्ञानायत इति)—

२३] निर्गुणोपासनं शनैः साक्षात् ब्रह्मज्ञानायते ॥ १२२ ॥

२४ उक्तमर्थं दृष्टांतप्रदर्शनपूर्वकं द्रढयति—

२५] यथा संवादिविभ्रांतिः फलकाले प्रमायते । तथा उपास्तिः अतिपाकतः मुक्तिकाले विद्यायते ॥१२३॥

॥ ३ ॥ निर्गुणउपासनाकी श्रेष्ठतापूर्वक ताके फल (मुक्ति)का कथन ॥ ३८१८—३९४४ ॥

॥ १ ॥ औरअनुष्ठानतैं निर्गुणउपासनाकी श्रेष्ठता ॥

१८ औरअनुष्ठानतैं निर्गुणउपासनाकी श्रेष्ठताकूंहीं दिखावैहैं:—

१९] पामरनके खेतीआदिकव्यवहारतैं कर्मादिकका अनुष्ठान श्रेष्ठ है। तिस कर्मादिकतैं बी सगुणउपासना श्रेष्ठ है। तिस सगुणउपासनातैं बी निर्गुण-उपासना श्रेष्ठ है ॥ १२१ ॥

॥ २ ॥ उत्तरउत्तरसाधनकी श्रेष्ठता औ निर्गुण-उपासनाकी सर्वतैं श्रेष्ठतामैं कारण ॥

२० पीछले पीछले साधनकी श्रेष्ठताविषै कारण कहैहैं:—

२१] जितना विज्ञानका समीपपना है। तितना श्रेष्ठपना बढताहै ॥

२२ निर्गुणउपासनाकी सर्वतैं श्रेष्ठताविषै कारण कहैहैं:—

२३] निर्गुणउपासना कछुककालसैं साक्षात्ब्रह्मज्ञानकी न्यांई होवैहै। तातैं सर्वतैं श्रेष्ठ है ॥ १२२ ॥

॥३॥ श्लोक १२२ उक्त अर्थकी दृष्टांतसैं दृढता ॥

२४ श्लोक १२२ उक्त अर्थकूं दृष्टांतके दिखावनैपूर्वक दृढ करैहैं:—

२५] जैसैं संवादीभ्रांति फलकालविषै प्रमाकी न्यांई होवैहै। तैसैं उपासना अतिशयपरिपाकतैं मुक्तिकालविषै विद्याकी न्यांई होवैहै १२३

टीकांक: ३८२६ टिप्पणांक: ॐ	संवादिभ्रमतः पुंसः प्रवृत्तस्यान्यमानतः । प्रमेति चेत्तथोपास्तिर्मांतरे कारणायताम् १२४ मूर्तिध्यानस्य मंत्रादेरपि कारणता यदि । अस्तु नाम तथाप्यत्र प्रत्यासत्तिर्विशिष्यते १२५	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्रोकांक: १०८२ १०८३

२६ ननु संवादिविभ्रांतिः स्वयमेव न प्रमा भवति किंतु तया प्रवृत्तस्येंद्रियार्थसन्निकर्षात् प्रमा जायत इति शंकते—

२७] संवादिभ्रमतः प्रवृत्तस्य पुंसः अन्यमानतः प्रमा । इति चेत् ।

२८ अस्तु तर्हि निर्गुणोपासनमपि निदिध्यासनरूपं सद्वाक्यजन्यापरोक्षज्ञाने कारणं भविष्यतीत्याह—

२९] तथा उपास्तिः मांतरे कारणायताम् ॥ १२४ ॥

३० नन्वेवं सति मूर्तिध्यानादेरपि चित्तैकाग्र्यसंपादनद्वारा अपरोक्षज्ञानसाधनत्वं स्यादिति चेत्तदप्यंगीक्रियत इत्याह—

३१] मूर्तिध्यानस्य मंत्रादेः अपि यदि कारणता अस्तु नाम ॥

३२ तर्हि निर्गुणोपासने कोऽतिशयस्तत्राह—

३३] तथापि अत्र प्रत्यासत्तिः विशिष्यते ॥

ॐ ३३) **प्रत्यासत्तिः** सामीप्यं ज्ञानं प्रतीतिशेषः ॥ १२५ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक १२३ उक्त दृष्टांतमैं शंका औ निर्गुण-उपासनाकी ज्ञानमैं हेतुताकरि समाधान ॥

२६ ननु संवादीभ्रांति आपहीं यथार्थ-ज्ञानरूप प्रमा नहीं होवैहै। किंतु तिस संवादीभ्रांतिकरि प्रवृत्त भये पुरुषकूं इंद्रिय औ विषयके संबंधतैं प्रमा होवैहै। इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

२७] संवादीभ्रमकरि प्रवृत्त भये पुरुषकूं अन्यप्रमाणतैं प्रमा होवैहै। ऐसैं जो कहै।

२८ होहु। तब निर्गुणउपासन बी निदिध्यासनरूप हुया वाक्यसैं जन्य अपरोक्ष-ज्ञानविषै कारण होवैगा। ऐसैं कहैहैं:—

२९] तौ तैसैं उपासना बी अन्य-प्रमाविषै कारण होहु ॥ १२४ ॥

॥ ९ ॥ मूर्तिध्यानादिककूं ज्ञानकी साधनताके अंगीकारपूर्वक निर्गुणउपासनाकी तिनतैं अधिकता ॥

३० ननु ऐसैं हुये मूर्तिध्यानआदिककूं बी चित्तकी एकाग्रताके संपादनद्वारा अपरोक्ष-ज्ञानकी साधनता होवैगी। ऐसैं जब कहै। तब सो बी अंगीकार करियेहै। ऐसैं कहैहैं:—

३१] मूर्तिके ध्यानकूं औ मंत्रादिककूं बी जब ज्ञानकी कारणता है। तब होहु ॥

३२ तब निर्गुणउपासनविषै कौन अतिशय है? तहां कहैहैं:—

३३] तथापि इस निर्गुणउपासनविषै प्रत्यासत्ति विशेष होवैहै ॥

ॐ ३३) प्रत्यासत्ति कहिये ज्ञानके प्रति समीपता ॥ १२५ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०८४ १०८५	३५ निर्गुणोपासनं पक्वं समाधिः स्याच्छनैस्ततः । यः समाधिर्निरोधाख्यः सोऽनायासेन लभ्यते १२६ ३८ निरोधलाभे पुंसोंतरसंगं वस्तु शिष्यते । पुनः पुनर्वासितेस्मिन्वाक्याज्जायेत तत्त्वधीः १२७	टीकांकः ३८३४ टिप्पणांकः ॐ

३४ प्रत्यासत्तिप्रकारमेव दर्शयति—

३५] निर्गुणोपासनं पक्वं समाधिः स्यात् । ततः शनैः निरोधाख्यः यः समाधिः सः अनायासेन लभ्यते ॥

३६) निर्गुणोपासनं यदा पक्वं भवति तदा सविकल्पकसमाधिः स्यात् । ततः सविकल्पकसमाधेः । निरोधाख्यः यः "तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः" इति सूत्रोक्तलक्षणो निर्विकल्पकः समाधिः सोऽनायासेन लभ्यते ॥१२६॥

३७ भवत्वेवं निर्विकल्पकलाभस्ततः किमित्यत आह—

३८] निरोधलाभे पुंसः अंतः असंगं वस्तु शिष्यते ॥

३९ ततोऽपि किमित्यत आह (पुनः पुनरिति)—

४०] अस्मिन् पुनः पुनः वासिते वाक्यात् तत्त्वधीः जायेत ॥

४१) अस्मिन् असंगे वस्तुनि पुनः पुनर्वासिते भाविते सति वाक्यात् । तत्त्वमस्यादिलक्षणात् । तत्त्वधीः तत्त्वज्ञानं "अहं ब्रह्मास्मि" इत्येवमाकारं । जायेत उत्पद्येत ॥ १२७ ॥

॥६॥ निर्गुणउपासनाकी ज्ञानसैं समीपताका प्रकार ॥

३४ ज्ञानके प्रति समीपताके प्रकारकूंहीं दिखावैहैं:—

३५] **निर्गुणउपासन** जब पक्व होवै । तब **समाधि होवैहै** ॥ **तिसके पीछे धीरेसैं जो निरोधनामक समाधि है। सो अनायासकरि प्राप्त होवैहै** ॥

३६) निर्गुणउपासना जब पक्व होवै तब सविकल्पसमाधि होवैहै ॥ तिस सविकल्पसमाधितैं "तिसके बी निरोध हुये सर्ववृत्तिनके निरोधतैं निर्बीजसमाधि होवैहै" इस पतंजलिसूत्रविषै कहाहै लक्षण जिसका । ऐसी निरोधनामवाली जो निर्विकल्पसमाधि है । सो श्रमसैं विना प्राप्त होवैहै ॥ १२६ ॥

३७ ऐसैं निर्विकल्पसमाधिका लाभ होहु। तिसतैं क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

३८] **निरोधके लाभ हुये पुरुषके अंतरविषै असंगवस्तु शेष रहताहै** ॥

३९ तिस असंगवस्तुके अवशेषपतैं बी क्या होवैहै? तहां कहैहैं:—

४०] **इसके फेरि फेरि वासित हुये वाक्यतैं तत्त्वबुद्धि होवैहै** ॥

४१) इस असंगवस्तुके वारंवार वासित कहिये भावित हुये "तत्त्वमसि" आदिकरूप वाक्यतैं तत्त्वबुद्धि कहिये "मैं ब्रह्म हूं" इस आकारवाला तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवैहै॥१२७॥

टीकांक: ३८४२

टिप्पणांक: ॐ

ध्यानदीप: ॥ ९ ॥ श्लोकांक:

४३ निर्विकारासंगनित्यस्वप्रकाशैकपूर्णताः ।
बुद्धौ झटिति शास्त्रोक्ता आरोहंत्यविवादतः १२८ ॥ १०८६

४५ योगाभ्यासस्त्वेतदर्थोऽमृतबिंद्वादिषु श्रुतः ।
४७ एवं च दृष्टद्वारापि हेतुत्वादन्यतो वरम् ॥१२९॥ १०८७

४८ उपेक्ष्य तत्तीर्थयात्राजपादीनेव कुर्वताम् ।
पिंडं समुत्सृज्य करं लेढीति न्याय आपतेत् १३० ॥ १०८८

४२ तत्त्वज्ञानस्वरूपमेव विशदयति(निर्विकारेति)—

४३] शास्त्रोक्ताः निर्विकारासंगनित्यस्वप्रकाशैकपूर्णताः अविवादतः झटिति बुद्धौ आरोहंति ॥ १२८ ॥

४४ ननु निर्विकल्पकसमाधिवशादपरोक्षज्ञानमुदेतीत्यत्र किं प्रमाणमित्याशंक्यामृतबिंद्वादिश्रुतयः सर्वा अपि प्रमाणं इत्याह (योगाभ्यास इति)—

४५] एतदर्थः तु अमृतबिंद्वादिषु योगाभ्यासः श्रुतः ॥

४६ फलितमाह—

४७] एवं च दृष्टद्वारा अपि हेतुत्वात् अन्यतः वरम् ॥

४८) एवं च सति निर्गुणोपासनस्य अपि अपरोक्षज्ञानप्रत्यासत्तिसंभवे सति। दृष्टद्वारापि निर्विकल्पकसमाधिलाभद्वारेणापिशब्दाददृष्टद्वारापि । हेतुत्वात् ज्ञानसाधनत्वात् अन्यतः सगुणोपासनादिभ्यो वरं श्रेष्ठमित्यर्थः ॥ १२९ ॥

४९एवं निर्गुणोपासनस्यापरोक्षज्ञानसाधनत्वे सिद्धे सति तत्परित्यज्यान्यत्र प्रवृत्तानां

॥ ७ ॥ तत्त्वज्ञानका स्वरूप ॥

४२ तत्त्वज्ञानके स्वरूपकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

४३] शास्त्रउक्त जो निर्विकारता। असंगता। नित्यता। स्वप्रकाशता। एकता औ पूर्णतारूप आत्माके विशेषण हैं। वे अविवादतैं तत्काल बुद्धिविषै स्थितिकूं पावतेहैं ॥ १२८ ॥

॥ ८ ॥ निर्विकल्पसमाधितैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं प्रमाण औ फलित ॥

४४ ननु निर्विकल्पकसमाधिके वशतैं अपरोक्षज्ञान उदय होवैहै। इसविषै कौन प्रमाण है? यह आशंकाकरि अमृतबिंदुआदिकश्रुतियां सर्व बी प्रमाण हैं। ऐसैं कहैहैं:—

४५] इस अपरोक्षज्ञानके अर्थ अमृतबिंदुआदिकउपनिषदनविषै योगाभ्यास सुन्याहै ॥

४६ फलितकूं कहैहैं:—

४७] ऐसैं दृष्टद्वारकरि बी हेतु होनैतैं अन्यतैं श्रेष्ठ है ॥

४८) ऐसैं हुये कहिये निर्गुणउपासकनकूं बी अपरोक्षज्ञानकी समीपताके संभव हुये। दृष्टद्वारकरि कहिये निर्विकल्पसमाधिके लाभरूप प्रत्यक्षद्वारकरि औ "बी"शब्दतैं पुण्यउत्पत्तिरूप अदृष्टद्वारकरि बी अपरोक्षज्ञानका हेतु होनैतैं अन्य सगुणउपासनआदिक ज्ञानके साधनतैं निर्गुणउपासन श्रेष्ठ है। यह अर्थ है ॥ १२९ ॥

॥ ९ ॥ प्राप्तनिर्गुणउपासनाकूं त्यागीके अन्य साधनमैं प्रवृत्तकूं लौकिक (करंलेढी) न्यायसैं वृथाश्रमकी प्राप्ति ॥

४९ ऐसैं निर्गुणउपासनकूं अपरोक्षज्ञानके साधनपनैके सिद्ध हुये। तिस निर्गुण-

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०८९ १०९०	[५२]उपासकानामप्येवं विचारत्यागतो यदि । वाढं [५४]तस्माद् विचारस्यासंभवे योग ईरितः॥१३१॥ [५७]बहुव्याकुलचित्तानां विचारात्तत्त्वधीर्न हि । [५९]योगो मुख्यस्ततस्तेषां [६१]धीदर्पस्तेन नश्यति॥१३२॥	टीकांकः ३८५० टिप्पणांकः ७४०

वृथा श्रमः स्यादिति लौकिकन्यायदर्शनेनाह (उपेक्ष्येति)—

५०] तत् उपेक्ष्य तीर्थयात्राजपादीन् एव कुर्वतां "पिंडं समुत्सृज्य करं लेढि" इति न्यायः आपतेत् ॥ १३० ॥

५१ नन्वात्मतत्त्वविचारं परित्यज्य निर्गुणोपासनं कुर्वतामप्ययं न्यायः समान इत्याशंक्यांगीकरोति—

५२] उपासकानां अपि विचारत्यागतः यदि एवं बाढम् ॥

५३ तर्हि निर्गुणोपासनं कुतः प्रतिपाद्यत इत्यत आह—

५४] तस्मात् विचारस्य असंभवे योगः ईरितः ॥

५५) यस्मादुक्तन्यायप्रसंगः तस्मात् विचारासंभवे योगः उपासनमुक्तमित्यर्थः ॥ १३१ ॥

५६ विचारासंभवे कारणमाह—

५७] बहुव्याकुलचित्तानां हि विचारात् तत्त्वधीः न ॥

उपासनकूं परित्यागकरिके अन्यसाधनविषै प्रवर्त्त भये पुरुषनकूं वृथाश्रम होवैहै । यह लौकिकन्यायके दिखावनैंकरि कहैहैं:—

५०] तिस निर्गुणउपासनकूं त्यागकरिके तीर्थयात्रारूप जपआदिकनकूंहीं करनैहारे पुरुषनकूं "ग्रासकूं छोडिके हाथकूं चाटताहै" यह न्याय प्राप्त होवैगा ॥ १३० ॥

॥ १० ॥ विचारकूं त्यागिके निर्गुणउपासनामैं प्रवृत्तकूं १३०श्लोकउक्तन्यायकी तुल्यता औ निर्गुणउपासनाका उपयोग ॥

५१ ननु आत्मतत्त्वके विचारकूं परित्यागकरिके निर्गुणउपासनकूं करनैहारे पुरुषनकूं बी यह न्याय समान है । यह आशंकाकरि अंगीकार करैहैं:—

५२] उपासकनकूं बी विचारके त्यागतैं जब ऐसैं हाथ चाटनैके न्यायकी प्राप्ति होवैहै । तब सत्य है ॥

५३ तब निर्गुणउपासन काहेतैं प्रतिपादन करियेहै ? तहां कहैहैं:—

५४] तातैं विचारके असंभव हुये योग कहाहै ॥

५५) जातैं १३०वें श्लोकउक्तन्यायकी प्राप्ति होवैहै । तातैं विचारके असंभव हुये योग जो उपासन सो कहाहै । यह अर्थ है ॥ १३१ ॥

॥ ११ ॥ व्याकुलचित्तकूं हेतुसहित योगकी मुख्यता ॥

५६ विचारके असंभवविषै कारण कहैहैं:—

५७] बहुतव्याकुल कहिये बहुतचंचल जिनके चित्त हैं । तिनकूं जातैं विचारतैं तत्त्वज्ञान होवै नहीं ।

---

४० जैसैं किसी गृहस्थके गृहमैं पंक्तिविषै भोजनके अर्थ स्थित एकब्राह्मणकूं सर्वसाधारणएकलड्डुका प्राप्त भई । पीछे भात आया जब तिसनैं प्राप्तलड्डुकाकूं पिछाडी छुपायके "मेरेकूं लड्डुका मिली नहीं" । ऐसैं कहा तब तिसकूं दूसरी लड्डुका मिली नहीं औ पिछाडी रखि थी सो बी श्वान ले गया। पीछे हाथकूं चाटतारह्या । इस दृष्टांतकूं शास्त्रविषै "करं लेढी न्याय" कहैहैं ।

टीकांक: ३८५८ टिप्पणांक: ॐ	६३ अव्याकुलधियां मोहमात्रेणाच्छादितात्मनाम् । ६६ सांख्यनामा विचारः स्यान्मुख्यो झटिति सिद्धिदः ६८ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति १३४	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्रोकांक: १०९१ १०९२

५८ यतो विचारो न संभवति अतो योगः कर्तव्य इत्याह (योग इति)—

५९] ततः तेषां योगः मुख्यः ॥

६० मुख्यत्वे कारणमाह (धीदर्प इति)—

६१] तेन धीदर्पः नश्यति ॥

ॐ६१) तेन योगेन यतो धीदर्पो नश्यति। अतो मुख्य इत्यर्थः ॥ १३२ ॥

६२ एवं व्याकुलचित्तानां योगस्य मुख्यत्वमभिधाय तद्रहितानां विचार एव मुख्य इत्याह—

६३] अव्याकुलधियां मोहमात्रेण आच्छादितात्मनां सांख्यनामा विचारः मुख्यः स्यात् ॥

६४) सांख्यनामा विचारः सांख्यशब्दवाच्यस्तत्त्वविचारो मुख्यः ॥

६५ कुत इत्यत आह—

६६] झटिति सिद्धिदः ॥ १३३ ॥

६७ योगसांख्ययोरुभयोरपि तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिसाधनत्वे गीतावाक्यं प्रमाणयति—

६८] यत् स्थानं सांख्यैः प्राप्यते तत्

---

५८ जातैं विचार संभवै नहीं यातैं योग कर्त्तव्य है। ऐसैं कहैहैं:—

५९] तातैं तिनकूं योग मुख्य है ॥

६० योगकी मुख्यताविषै कारण कहैहैं:—

६१] तिस योगकरि बुद्धिका दर्प नाश होवैहै।

ॐ६१) तिस योगकरि जातैं बुद्धिका दर्प जो विक्षेप सो नाश होवैहै। यातैं सो मुख्य है। यह अर्थ है ॥ १३२ ॥

॥ १२ ॥ अव्याकुलचित्तकूं हेतुसहित विचारकी मुख्यता ॥

६२ ऐसैं व्याकुलचित्तवाले पुरुषनकूं योगकी मुख्यता कहिके तिस चित्तकी व्याकुलतातैं रहित पुरुषनकूं विचारहीं मुख्य है। ऐसैं कहैहैं:—

६३] अव्याकुल कहिये शांत है बुद्धि जिनोंकी औ अज्ञानजनित अध्यासरूप मोहमात्रकरि आच्छादित है आत्मा जिनोंका। ऐसैं पुरुषनकूं सांख्यनामवाला विचार मुख्य है ॥

६४) सांख्यशब्दका वाच्य तत्त्वविचार मुख्य है ॥

६५ काहेतैं विचार मुख्य है? तहां कहैहैं:—

६६] सो विचार तिनकूं तत्काल ज्ञानरूप सिद्धिका देनैहारा है। यातैं मुख्य है ॥ १३३ ॥

॥ १३ ॥ योग औ सांख्य दोनूंकूं ज्ञानद्वारा मुक्तिकी हेतुतामैं प्रमाण औ विरुद्धअंशकी त्याज्यता ॥

६७ उपासनरूप योग औ तत्त्वविचाररूप सांख्य दोनूंकूं वी तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिके साधन होनैविषै गीताके पंचमअध्यायगत ५ वें श्लोकरूप वाक्यकूं प्रमाण करैहैं:—

६८] जो स्थान सांख्यनकरि कहिये विवेकिनकरि प्राप्त होवैहै। सो स्थान योगिनकरि वी प्राप्त होवैहै। ऐसैं जो

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्रोकांक:		टीकांक:
१०९३	तत्कारणं सांख्ययोगाभिपन्न इति हि श्रुतिः । यस्तु श्रुतेर्विरुद्धः स आभासः सांख्ययोगयोः १३५	३८६८
१०९४	उपासनं नातिपक्वमिह यस्य परत्र सः । मरणे ब्रह्मलोके वा तत्त्वं विज्ञाय मुच्यते॥१३६॥	टिप्पणांक: ७४१

योगैः अपि गम्यते । यः सांख्यं च योगं च एकं पश्यति सः पश्यति ॥

ॐ ६८) यः सांख्यं च योगं च फलतः एकं पश्यति सः शास्त्रार्थं सम्यक् पश्यति इत्यर्थः ॥ १३४ ॥

६९ न केवलं गीतावाक्यं किंतु तन्मूलभूता श्रुतिरप्यस्तीत्याह—

७०] तत्कारणं सांख्ययोगाभिपन्न इति हि श्रुतिः ॥

७१ ननु सांख्ययोगयोरुभयोरपि तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिसाधनत्वेनांगीकारे तच्छास्त्रे प्रतिपादितानां तत्त्वानामपि स्वीकार्यत्वं स्यादित्याशंक्याह (यस्त्विति)—

७२] सांख्ययोगयोः यः तु श्रुतेः विरुद्धः सः आभासः ॥

ॐ ७२) आभासः बाध्यत इत्यर्थः १३५

७३ ननूपासनं कुर्वाणस्य तत्त्वज्ञानात्प्राङ् मरणे सति मोक्षो न सिद्ध्येदित्याशंक्याह (उपासनमिति)—

पुरुष सांख्यकूं औ योगकूं एक देखताहै । सो पुरुष देखताहै ॥

ॐ ६८) जो पुरुष सांख्यकूं औ योगकूं फलतैं एक देखताहै । सो शास्त्रके अर्थकूं सम्यक् देखताहै । यह अर्थ है ॥ १३४ ॥

६९ सांख्ययोग दोनूंकूं मुक्तिका साधन होनैविषै केवलगीतावाक्यहीं प्रमाण नहीं। किंतु तिस गीतावाक्यकी मूलभूतश्रुति बी प्रमाण है । ऐसैं कहैहैं:—

७०] "तिन प्रकृतकामनका जो देव कारण है । तिसकूं सांख्य अरु योगकरि युक्त हुया जानिके अविद्यादिकसर्वपाशनकरि छूटताहै" यह श्रुति है ॥

७१ ननु सांख्ययोग दोनूंकूं बी तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिके साधनकरि अंगीकार किये । तिन सांख्ययोगमतके शास्त्रविषै प्रतिपादन किये तत्त्वनकी बी अंगीकार करनैकी योग्यता होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७२] सांख्ययोगविषै जो श्रुतितैं विरुद्धअंश है । सो आभास है ॥

ॐ ७२) आभास है कहिये बाधित होवैहै ॥ १३५ ॥

॥ १४ ॥ उपासककूं तत्त्वज्ञानतैं पूर्व मरणके हुये फल ॥

७३ ननु उपासना करनैहारे पुरुषकूं तत्त्वज्ञानतैं पूर्व मरणके हुये मोक्ष नहीं सिद्ध होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

---

७४१ (१) "केवलप्रकृतिहीं जगत्का कारण है। ईश्वर नहीं। सो प्रकृति नित्य है अरु आत्मा नाना है।" इतना अंश सांख्यशास्त्रविषै श्रुतितैं विरुद्ध है औ (२) "ईश्वर तटस्थ (जगत्सैं भिन्न स्थित) है अरु प्रधान नित्य है औ जीव वास्तव नाना है।" इतना अंश योगशास्त्रविषै श्रुतितैं विरुद्ध है ॥

टीकांक: ३८७४ टिप्पणांक: ॐ

७६ यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ।
तं तमेवैति यच्चित्तस्तेन यातीति शास्त्रतः ॥१३७॥

७९ अंत्यप्रत्ययतो नूनं भावि जन्म तथा सति ।
निर्गुणप्रत्ययोऽपि स्यात्सगुणोपासने यथा ॥१३८॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: १०९५ १०९६

७४] यस्य उपासनं इह अतिपक्कं न सः मरणे वा ब्रह्मलोके परत्र तत्त्वं विज्ञाय मुच्यते ॥ १३६ ॥

७५ मरणावसरे ज्ञानान्मुक्तिलाभे प्रमाणमाह—

७६] "यं यं वा अपि भावं स्मरन् अंते कलेवरं त्यजति। तं तं एव एति॥" "यच्चित्तः तेन याति" इति शास्त्रतः॥

७७) "यच्चित्तः तेन एव प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति" इति वाक्याच्चेत्यर्थः १३७

७८ ननूदाहृताभ्यां श्रुतिस्मृतिवाक्याभ्यामंत्यप्रत्ययतो भाविजन्माभिधीयते न ज्ञानान्मुक्तिरित्याशंक्य मुखतस्तथा अभिधानमंगीकरोति—

७९]अंत्यप्रत्ययतः नूनं भावि जन्म॥

८० कथं तर्हि मरणकाले ज्ञानान्मोक्षो

७४] जिसका उपासन इसशरीरविषै अतिपक्क भया नहीं । सो मरणकालविषै वा ब्रह्मलोकविषै अन्यदेहमैं तत्त्वकूं जानिके मुक्त होवैहै ॥ १३६ ॥

॥ १९ ॥ उपासककूं मरणसमयमैं तत्त्वज्ञानकरि मुक्तिलाभविषै गीता औ श्रुतिप्रमाण ॥

७५ मरणअवसरविषै ज्ञानतैं मुक्तिके लाभमैं गीताके अष्टमअध्यायगत ६ वें श्लोकरूप प्रमाणकूं कहैहैं:—

७६] "जिस जिस बी देवतादिरूप भावकूं स्मरण करताहुया अंतकालविषै कलेवरकूं त्यागताहै । तिस तिस भावकूंहीं पावताहै॥" "जो पुरुष जिसविषै चित्तवान् है । तिसके साथिहीं मिलताहै ।" इस शास्त्रतैं ॥

७७) "यह जीव मरणकालमैं जिस लोकविषै चित्त नाम संकल्पकूं धारताहै । तिस इंद्रियसहित संकल्परूप चित्तकरि सहितहीं प्राणकूं पावताहै कहिये क्षीणइंद्रियवृत्तिवान् हुया मुख्यरूप प्राणवृत्तिकरि स्थित होवैहै । सो प्राण। तेज जो उदानवृत्ति तिसकरि युक्त हुया आत्मा जो अपना स्वामी भोक्ता ताके साथि तिस भोक्ताकूं जिस लोकका संकल्प कियाहै तिस लोकके प्रति ले जाताहै" इस प्रश्नउपनिषद्के वाक्यतैं बी यह जान्याजावैहै । यह अर्थ है ॥ १३७ ॥

॥ १६ ॥ श्लोक १३७ उक्त अर्थका निरूपण ॥

७८ ननु । उदाहरण किये श्रुतिस्मृतिके वाक्यनकरि अंतकालविषै होनैयोग्य वृत्तितैं भाविजन्म कहियेहै । ज्ञानतैं मुक्ति नहीं कहियेहै । यह आशंकाकरि अमुख्यतैं तैसैं कथनकूं अंगीकार करैहैं:—

७९] अंतकालकी भावनातैं निश्चयकरि भावि कहिये भावनाके अनुसार होनैहारा जन्म कहियेहै ॥

८० तब मरणकालविषै ज्ञानतैं मोक्ष होवैहै।

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०९७	८४ नित्यनिर्गुणरूपं तन्नाममात्रेण गीयताम् । ८५ अर्थतो मोक्ष एवैष संवादिभ्रमवन्मतः ॥१३९॥	टीकांकः ३८८१ टिप्पणांकः ७४२

भवतीत्यत्रेदं वाक्यद्वयं प्रमाणत्वेनोपन्यस्तमित्याशंक्याह—

८१] तथा सति यथा सगुणोपासने निर्गुणप्रत्ययः अपि स्यात् ॥

८२) तथा सति अंत्यप्रत्ययाद्भाविजन्मविनिश्चये सति । सगुणोपासकस्य यथा मरणावसरे पूर्वाभ्यासवशात्सगुणब्रह्माकारः प्रत्ययो जायते । एवं निर्गुणोपासकस्यापि निर्गुणब्रह्मगोचरः प्रत्ययो जायते जनिष्यते इत्यर्थः ॥ १३८ ॥

८३ ननु निर्गुणप्रत्ययाभ्यासवशान्निर्गुणब्रह्मप्राप्तिरेव भवेन्न मुक्तिरित्याशंक्य ब्रह्मप्राप्तिमुक्त्योः शब्दमात्रेण भेदो नार्थत इत्याह (नित्यनिर्गुणेति)—

८४] तत् नित्यनिर्गुणरूपं नाममात्रेण गीयतां । अर्थतः एषः मोक्षः एव ॥

८५) "तत् ब्रह्म नित्यं" इति नाममात्रेण उच्यतां । अर्थतः तु एष मोक्ष एव । "स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिः" इत्यभिधानादिति भावः ॥

इस अर्थविषै यह श्रुतिस्मृतिके दोनूवाक्य प्रमाण होनैकरि कैसैं कहनैकूं आरंभित किये? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८१] तैसैं हुये जैसैं सगुणउपासनविषै सगुणप्रत्यय होवैहै । ऐसैं निर्गुणउपासनविषै निर्गुणप्रत्यय बी होवैगा ॥

८२) तैसैं हुये मरणअवसरके प्रत्ययतैं भाविजन्मके निश्चय हुये सगुणउपासककूं जैसैं मरणअवसरविषै पूर्वअभ्यासके वशतैं सगुणब्रह्माकार प्रत्यय नाम ज्ञान होवैहै । ऐसैं निर्गुणउपासककूं बी निर्गुणब्रह्माकारप्रत्यय होवैगा । यह अर्थ है ॥ १३८ ॥

॥ १७ ॥ निर्गुणप्रत्ययके अभ्याससैं प्राप्य निर्गुणब्रह्मकी मोक्षरूपता ॥

८३ ननु । निर्गुणप्रत्ययके अभ्यासके वशतैं निर्गुणब्रह्मकी प्राप्तिहीं होवैगी । मुक्ति नहीं । यह आशंकाकरि ब्रह्मकी प्राप्ति औ मुक्तिका नाममात्रकरि भेद है । अर्थतैं भेद नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

८४] सो ब्रह्म । नित्यनिर्गुणरूप नाममात्रकरि कहियेहै । अर्थतैं यह मोक्षहीं है ॥

८५) "सो ब्रह्म नित्य है । निर्गुण है ।" ऐसैं नाममात्रकरि कहियेहै । परंतु अर्थतैं यह मोक्षहीं है । काहेतैं "स्वरूपसैं अवस्थिति मुक्ति है" ऐसैं मुक्तिके लक्षणके कथनतैं । यह भाव है ॥

---

४२ यद्यपि यह प्रकरणगत १३७ वें श्लोकउक्तश्रुतिस्मृतिविषै मरणकालमैं किये प्रत्ययतैं कहिये परलोकके संकल्पतैं परलोककी प्राप्तिरूप भाविजन्म कहाहै । तथापि अंतकालविषै जिस वस्तुका प्रत्यय होवै तिसकी प्राप्ति होवैहै । यह तिस श्रुतिस्मृतिका तात्पर्य है । यातैं सगुणब्रह्माकारवृत्तिरूप अंतके प्रत्ययकरि जैसैं सगुणब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै । तैसैं निर्गुणब्रह्माकार अंतके प्रत्ययकरि निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति होवैगी । इस अभिप्रायकरि उक्त श्रुतिस्मृतिका "निर्गुणउपासककूं मरणकालविषै ज्ञानतैं मोक्ष होवैहै" इस अर्थविषै प्रमाण होनैकरि कहनैका आरंभ कियाहै । यह भाव है ॥

टीकांकः ३८८६ टिप्पणांकः ॐ	तत्सामर्थ्याज्जायते धीर्मूलाविद्यानिवर्तिका । अविमुक्तोपासनेन तारकब्रह्मबुद्धिवत् ॥ १४० ॥ सोऽकामो निष्काम इति ह्यशरीरो निरिंद्रियः । अभयं हीति मुक्तत्वं तापनीये फलं श्रुतम् १४१	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः १०९८ १०९९

८६ तत्र दृष्टांतमाह—

८७] संवादिभ्रमवत् मतः ॥

८८) यथा संवादिभ्रमः नाममात्रेण भ्रम इत्युच्यते। वस्तुतस्तत्त्वज्ञानमेव तद्वदित्यर्थः ॥ १३९ ॥

८९ ननु निर्गुणोपासनस्य मानसक्रियारूपस्य मुक्तिसाधनत्वाभिधानं विरुद्धमित्याशंक्य तज्जन्यज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वाभिधानान्न विरोध इत्याह—

९०] तत्सामर्थ्यात् मूलाविद्यानिवर्तिका धीः जायते ॥

९१ तत्र दृष्टांतमाह—

९२] अविमुक्तोपासनेन तारकब्रह्मबुद्धिवत् ॥

९३) यथा अविमुक्तसगुणब्रह्मोपासनसामर्थ्यात् तारकब्रह्मविद्या जायते एवं निर्गुणोपासनान्निर्गुणब्रह्मज्ञानम् जायत इत्यर्थः ॥ १४० ॥

९४ ननु निर्गुणोपासनस्य मोक्षः फलमित्यत्र किं प्रमाणमित्याशंक्याह—

९५] "सः अकामः निष्कामः" इति "हि अशरीरः निरिंद्रियः" "अभयं हि" इति तापनीये मुक्तत्वं फलं श्रुतम्।

---

८६ तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

८७] संवादीभ्रमकी न्यांई सो मोक्षरूप मान्याहै ॥

८८) जैसैं संवादीभ्रम नाममात्रकरि भ्रम ऐसैं कहियेहै । वस्तुतैं तत्त्वज्ञानहीं है। ताकी न्यांई । यह अर्थ है ॥ १३९॥

॥ १८ ॥ दृष्टांतसैं निर्गुणउपासनकूं ज्ञानद्वारा मुक्तिकी हेतुतामैं अविरोध ॥

८९ ननु। मानसक्रियारूप निर्गुणउपासनकूं मुक्तिकी साधनताका कथन विरुद्ध है । यह आशंकाकरि तिस निर्गुणउपासनतैं जन्य ज्ञानकूं मोक्षकी साधनताके कथनतैं विरोध नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

९०] तिस निर्गुणउपासनके सामर्थ्यतैं मूलअविद्याकी निवर्त्त करनैहारी बुद्धि होवैहै ।

९१ तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

९२] अविमुक्त जो सगुणब्रह्म ताके उपासनकरि तारकब्रह्मबुद्धिकी न्यांई

९३)जैसैं अविमुक्तरूप सगुणब्रह्मके उपासनके सामर्थ्यतैं तारकब्रह्म जो सगुणब्रह्म ताकी विद्या होवैहै । ऐसैं निर्गुणउपासनतैं निर्गुणब्रह्मका ज्ञान होवैहै। यह अर्थ है॥१४०

॥ १९ ॥ निर्गुणउपासनाके फल मोक्षमैं श्रुतिप्रमाण ॥

९४ ननु । निर्गुणउपासनका मोक्ष फल है। इसविषै कौन प्रमाण है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९५] "सो अकाम निष्काम होवैहै" औ "अशरीर अरु इंद्रियरहित होवैहै" औ "अभय नाम ब्रह्महीं होवैहै।" ऐसैं तापनीयउपनिषद्विषै निर्गुणउपासनका मोक्षरूप फल सुन्याहै ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ११०० | टीकांकः ३८९६

उपासनस्य सामर्थ्याद्विद्योत्पत्तिर्भवेत्ततः ।
नान्यः पंथा इति ह्येतच्छास्त्रं नैव विरुध्यते ॥१४२॥

श्लोकांकः ११०१ | टिप्पणांकः ॐ | ३९००

निष्कामोपासनान्मुक्तिस्तापनीये समीरिता ।
ब्रह्मलोकः सकामस्य शैब्यप्रश्ने समीरितः ॥१४३॥

९६) सोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयंते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति अशरीरो निरिंद्रियः अप्राणो ह्यमनाः सच्चिदानंदमात्रः स स्वराट् भवति। य एवं वेद चिन्मयो ह्ययमोंकारश्चिन्मयमिदं सर्वं तस्मात् परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्येतदमृतं अभयं एतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यं" इत्यादिवाक्यैः तापनीयोपनिषदि निर्गुणोपासनस्य मोक्षः फलत्वेन श्रूयते इत्यर्थः ॥ १४१ ॥

९७ ननूपासनया मुक्तिः स्याच्चेत् "नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" इति श्रुतिविरोध इत्याशंक्य विद्याव्यवधानेन मोक्षप्रदत्वाभिधानान्न विरोध इत्याह—

९८] उपासनस्य सामर्थ्यात् विद्योत्पत्तिः भवेत् । ततः अन्यः पंथा न । इति हि एतत् शास्त्रं न एव विरुध्यते ॥ १४२ ॥

९९ "मरणे ब्रह्मलोके वा तत्त्वं विज्ञाय मुच्यते" इत्युक्तार्थे श्रुतिं प्रमाणयति (निष्काम इति)—

९६) सो उपासक अकाम कहिये अंतररागरहित औ निष्काम कहिये बाह्यविषयरागरहित आप्तकाम औ आत्मकाम होवैहै ॥ तिसके प्राण अन्यलोक वा देहविषै गमनरूप उत्क्रमण करैं नहीं । किंतु इहां नाम इसलोकसंबंधी इसदेहविषैहीं सम्यक् विलीन होवैहैं" औ "ब्रह्म हुयाहीं ब्रह्मकूं पावताहै" औ "सो अशरीर । अनिंद्रिय । अप्राण । अमन होवैहै। सो सच्चिदानंदमात्र स्वराट् कहिये स्वप्रकाश होवैहै" औ "जो पुरुष ऐसें जानताहैः— चिन्मय यह ओंकार है। चिन्मय यह सर्व है। तातैं एकपरमेश्वरहीं सो होवैहै ॥ यह अमृत है । अभय है। यह ब्रह्म अभयब्रह्महीं होवैहै। जो ऐसें इस रहस्यकूं जानताहै" इत्यादिवाक्यनकरि तापनीयउपनिषद्विषै निर्गुणउपासनका फल होनैकरि मोक्ष सुनियेहै । यह अर्थ है ॥ १४१ ॥

॥ २० ॥ श्लोक १४१ उक्त श्रुतिका ज्ञानतैं मोक्षकी प्रतिपादक श्रुतिसैं अविरोध ॥

९७ ननु । उपासनाकरि जब मुक्ति होवैहै । तब "मोक्षकी प्राप्तिअर्थ अन्य (ज्ञानसैं भिन्न) पंथ नहीं है ।" इस श्रुतिका विरोध होवैगा । यह आशंकाकरि उपासनकूं विद्याके ज्ञानरूप द्वारकरि मोक्षके देनैहारेपनैके कथनतैं श्रुतिका विरोध नहीं है । ऐसें कहैहैंः—

९८]उपासनके सामर्थ्यतैं विद्याकी उत्पत्ति होवैहै । तातैं "अन्यपंथ नहीं है ।" इसरीतिका यह श्रुतिवाक्य विरोधकूं पावता नहीं ॥१४२॥

॥२१॥ निर्गुणउपासककूं मरणकाल वा ब्रह्मलोकविषै ज्ञानतैं मुक्तिमैं श्रुति ॥

९९ "मरणकालविषै वा ब्रह्मलोकविषै तत्त्वकूं जानिके मुक्त होवैहै" इस १३६ श्लोकउक्तअर्थविषै श्रुतिकूं प्रमाण करैहैंः—

टीकांकः ३९०० टिप्पणांकः ॐ	यः उपास्ते त्रिमात्रेण ब्रह्मलोके स नीयते । स एतस्माज्जीवघनात्परं पुरुषमीक्षते ॥ १४४ ॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ११०२

३९००] **तापनीये निष्कामोपासनात् मुक्तिः समीरिता । सकामस्य शैब्यप्रश्ने ब्रह्मलोकः समीरितः ॥**

१) तत्र "सोऽकाम" इत्यादितापनीयवाक्यं पूर्वमेवोदाहृतम् ॥ १४३ ॥

२ इदानीं शैब्यप्रश्नोपनिषद्वाक्यमर्थतः पठति—

३] **यः त्रिमात्रेण उपास्ते । सः ब्रह्मलोके नीयते ॥**

४) "यः पुनरेतत् त्रिमात्रेण ओमित्यनेन वाऽक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये संपन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते" इति सकामस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः श्रूयत इत्यर्थः ॥

५ ननु शैब्यप्रश्ने सकामस्य ब्रह्मलोकगतिरेव प्रतीयते इत्याशंक्य तत्र तत्त्वसाक्षात्कारश्च श्रूयत इत्याह—

६] **सः एतस्मात् जीवघनात् परं पुरुषं ईक्षते ॥**

७) ब्रह्मलोकं गतः स उपासकः एतस्माज्जीवघनात् जीवसमष्टिरूपात् हिरण्यगर्भात् । परं उत्कृष्टं । पुरुषं निरुपाधिकचैतन्यरूपं परमात्मानं । ईक्षते साक्षात् करोति ॥ १४४ ॥

३९००] **तापनीयउपनिषद्विषै निष्कामउपासनतैं मुक्ति कहीहै औ सकामउपासककूं शैब्यप्रश्नउपनिषद्विषै ब्रह्मलोक कहाहै ॥**

१) तिनविषै "सो अकाम" इत्यादिक तापनीयउपनिषद्का वाक्य पूर्व १४१ श्लोकविषैहीं कहाहै ॥ १४३ ॥

२ अब शैब्यप्रश्नउपनिषद्के वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

३] **"जो त्रिमात्रकरि उपासन करताहै। सो ब्रह्मलोककूं पावताहै ॥"**

४) "जो फेर तीनमात्रावाले ॐ इसअक्षरकरिहीं तिस परमपुरुषब्रह्मकूं ध्यावताहै । सो तेजरूप सूर्यविषै प्राप्त हुया जैसैं सर्प कंचुकसैं मुक्त होवैहै । ऐसैं निश्चयकरि सो उपासक पापसैं मुक्त होवैहै ॥ सो मंत्राभिमानी सामवेदनकरि ब्रह्मलोककूं जाताहै । सो इस जीवघनतैं परम शरीररूप पुरिनविषै रहनैहारे पुरुषकूं देखताहै ।" ऐसैं शैब्यप्रश्नविषै सकामउपासककूं ब्रह्मलोककी प्राप्ति सुनियेहै । यह अर्थ है ॥

५ ननु शैब्यप्रश्नविषै सकामकूं ब्रह्मलोककी गतिहीं प्रतीत होवैहै । यह आशंकाकरि तहां ब्रह्मलोकविषै तत्त्वका साक्षात्कार बी सुनियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

६] **सो इस जीवघनतैं परपुरुषकूं देखताहै ॥**

७) ब्रह्मलोकके प्रति गयाहुया सो उपासक । इस जीवनकी समष्टिरूप हिरण्यगर्भतैं उत्कृष्टपुरुष जो निरुपाधिकचैतन्यरूप परमात्मा ताकूं साक्षात् करताहै ॥ १४४ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः ११०३ ११०४

अप्रतीकाधिकरणे तत्क्रतुर्न्याय ईरितः ।
ब्रह्मलोकफलं तस्मात्सकामस्येति वर्णितम् १४५
[11]निर्गुणोपास्तिसामर्थ्यात्तत्र तत्त्वमवेक्षते ।
पुनरावर्तते नायं कल्पांते च विमुच्यते ॥१४६॥

टीकांकः ३९०८ टिप्पणांकः ७४३

८ किं च "अप्रतीकालंबनान्नयतीति बादरायणः उभयथाऽदोषात्तत्क्रतुश्च" इत्यत्र कामानुसारेण फलप्राप्तिर्भवतीति प्रतिपादितं तस्मादपि सकामस्य ब्रह्मलोकगतिरित्युक्तेत्याह—

९] अप्रतीकाधिकरणे तत्क्रतुः न्यायः ईरितः तस्मात् सकामस्य ब्रह्मलोकफलं इति वर्णितम् ॥ १४५ ॥

१० तर्हि सकामस्य तत्त्वज्ञानं कुतो जायत इत्याशंक्याह—

११] निर्गुणोपास्तिसामर्थ्यात् तत्र तत्त्वं अवेक्षते ॥

॥ २२ ॥ श्रुतिअनुसार सूत्रकरि सकामउपासककूं ब्रह्मलोकफल ॥

८ किंवा "प्रतीकउपासकतें भिन्न जे उपासक हैं। तिनकूं अमानवपुरुष ब्रह्मलोकके प्रति लेजाताहै। ऐसें बादरायणनामकआचार्य मानताहै। ऐसें दोनूं प्रकार बी अंगीकार किये अविरोधतें औ तत्क्रतु कहिये जो जिसकूं ध्यावताहै । सो तिसकूं पावताहै । इस श्रुतिरूप मूलवाले न्यायतें इस ब्रह्मसूत्रके चतुर्थअध्यायगत तृतीयपादके पंचदशवें अधिकरणसूत्रविषै कामनाके अनुसारकरि फलकी प्राप्ति होवैहै । ऐसें प्रतिपादन कियाहै । तातें बी सकामउपासककूं ब्रह्मलोककी गति कहीहै । ऐसें कहैहैं—

९] "अप्रतीक" इस अधिकरणविषै तत्क्रतुन्याय कहाहै । तातें सकामकूं ब्रह्मलोकफल होवैहै । ऐसें वर्णन कियाहै ॥ १४५ ॥

॥ २३ ॥ सकामनिर्गुणउपासककूं ब्रह्मलोकमैं तत्त्वज्ञानतें मुक्ति ॥

१० तब सकामकूं तत्त्वज्ञान काहेतें होवैहै? यह आशंकाकरि कहैहैं—

११] निर्गुणउपासनके सामर्थ्यतें तहां ब्रह्मलोकविषै तत्त्वकूं देखताहै ॥

४३ "सर्व (उपासकन)का अनियम है" इस पूर्वउक्तअधिकरणसूत्रविषै तत्त्ववेत्तातें अन्यठिकानें सर्वउपासकनके मार्गका उपसंहार कहाहै औ अब कहिये इस सूत्रविषै प्रतीकउपासकनतें भिन्न उपासकनकाहीं मार्ग है । सर्वविकारके उपासकनका नहीं । ऐसें दोनूंप्रकारके भाव (होनै)की उक्तिविषै पूर्वउक्तका विरोध होवैगा । तातें उपासकमात्रकूं उत्तरमार्गकी सिद्धि है । यह **पूर्वपक्ष** है ॥

ताका **समाधान** प्रकृतसूत्रविषै ऐसें है:—"प्रतीकके आलंबनवाले (प्रतीकउपासकन)कूं छोडिके अन्यसर्वविकारनकूं आलंबन (ध्यान) करनैहारे उपासकनकूं अमानवपुरुष ब्रह्मलोकके प्रति लेजाताहै ।" ऐसें बादरायणआचार्य (सूत्रकार) मानतेहैं ॥ ऐसें अंगीकार किये पूर्वपक्षउक्तदोनूंप्रकारके भावके अंगीकारविषै कोई बी दोष नहीं है औ पूर्वसूत्रविषै जो 'सर्व' शब्द है। तिसकूं प्रतीकउपासकनतें अन्यउपासकनके पर होनैतें औ "जो जिसकूं ध्यावताहै सो तिसकूं पावताहै।" यह तत्क्रतुन्याय श्रुतिविषै कहाहै । सो इस दोनूंप्रकारके भावका प्रतिपादक हेतु देखना योग्य है ।। जो ब्रह्मके क्रतु (संकल्प वाला है । सो ब्रह्मसंबंधी ऐश्वर्यकूं पावताहै औ नामादिकरूप प्रतीकध्येयनविषै ब्रह्मका संकल्प नहीं है । यातें सो बीजलीके लोकपर्यंत जातेहैं । ब्रह्म (ब्रह्मलोक)कूं पावते नहीं । यह सूत्रका भावार्थ है ॥

टीकांक: ३९१२ टिप्पणांक: ॐ	१५प्रणवोपास्तयः प्रायो निर्गुणा एव वेदगाः । क्वचित्सगुणताप्युक्ता प्रणवोपासनस्य हि॥१४७॥ १६परापरब्रह्मरूप ओंकार उपवर्णितः । पिप्पलादेन मुनिना सत्यकामाय पृच्छते॥१४८॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: ११०५ ११०६

१२ "इमं मानवमावर्तं नावर्तते न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते इति ब्रह्मणा सह ते सर्वे" इत्यादिश्रुतिस्मृतिसद्भावान्न तस्य पुनः संसारप्राप्तिः किंतु मुक्तिरेवेत्याह (पुनरिति)—

१३] अयं पुनः न आवर्तते । च कल्पांते विमुच्यते ॥ १४६ ॥

१४ इदानीं प्रणवोपासनप्रसंगात् बुद्धिस्थं तद्द्वैविध्यं दर्शयति—

१५] प्रणवोपास्तयः प्रायः निर्गुणाः एव वेदगाः क्वचित् प्रणवोपासनस्य सगुणता अपि उक्ता हि ॥ १४७ ॥

१६ द्वैविध्ये प्रमाणमाह (परापरेति)—

१७] पिप्पलादेन मुनिना पृच्छते सत्यकामाय परापरब्रह्मरूपः ओंकारः उपवर्णितः ॥

१८) "एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेन एकतरमन्वेति" इति उभयरूपत्वं प्रतिपादितमित्यर्थः ॥ १४८ ॥

१२ "निर्गुणउपासक इस मानवआवर्तकूं नहीं आवताहै । सो फेर नहीं आवताहै ॥" औ "सो सर्व ब्रह्माके साथि परमपदकूं पावतेहैं" इत्यादिश्रुतिस्मृतिके सद्भावतैं तिस सकामनिर्गुणउपासककूं फेर संसारकी प्राप्ति नहीं है । किंतु मुक्तिहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

१३] यह सकामनिर्गुणउपासक फेर संसारकूं पावता नहीं । किंतु कल्पके अंतविषै मुक्त होवैहै ॥ १४६ ॥

॥ २४ ॥ प्रणव (ओंकार)उपासनकी द्विविधता ॥

१४ अब ओंकारउपासनके प्रसंगतैं बुद्धिविषै स्थित तिसके दोभांतिपनैकूं दिखावैहैं:—

१५] प्रणवउपासना बहुतकरिके निर्गुणरूपहीं वेदविषै कहीहैं औ काहुस्थलविषै प्रणवउपासनकी सगुणता बी कहियेहै ॥ १४७ ॥

॥ २५ ॥ श्लोक १४७ उक्त द्विविधतामैं प्रमाण ॥

१६ प्रणवउपासनाके दोभांतिपनैविषै प्रमाण कहैहैं:—

१७] पिप्पलादमुनिनैं पूछनैहारे सत्यकामशिष्यके तांई पर कहिये निर्गुण । अपर कहिये सगुणब्रह्मरूप ओंकार वर्णन कियाहै ॥

१८) "हे सत्यकाम! यह जो पर औ अपर ब्रह्मरूप ओंकार है । तातैं विद्वान् इसी ओंकाररूपहीं आश्रयकरि निर्गुणब्रह्म औ सगुणब्रह्म इन दोनूंमैसैं एककूं पावताहै ॥" ऐसैं प्रश्नउपनिषद्के पंचमप्रश्नविषै प्रणवउपासनकी उभयरूपता प्रतिपादन करीहै । यह अर्थ है ॥ १४८ ॥

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
११०७	[२०] एतदालंबनं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् । इति प्रोक्तं यमेनापि पृच्छते नचिकेतसे ॥१४९॥	३९१९
११०८	[२२] इह वा मरणे चास्य ब्रह्मलोकेऽथवा भवेत् । ब्रह्मसाक्षात्कृतिः सम्यगुपासीनस्य निर्गुणम् १५०	टिप्पणांक: ॐ
११०९	[२४] अर्थोऽयमात्मगीतायामपि स्पष्टमुदीरितः । विचाराक्षम आत्मानमुपासीतेति संततम् १५१	

१९ कठवल्ल्यां यमेनापि "एतदालंबनं ज्ञात्वा" इत्यादिना द्वैविध्यमुक्तमित्याह—

२०] "एतत् आलंबनं ज्ञात्वा यः यत् इच्छति तस्य तत्" इति यमेन अपि पृच्छते नचिकेतसे प्रोक्तम् १४९

२१ उक्तमर्थं उपसंहरति (इह वेति)—

२२] अस्य सम्यक् निर्गुणं उपासीनस्य इह वा मरणे च अथवा ब्रह्मलोके ब्रह्म साक्षात्कृतिः भवेत् ॥१५०॥

२३ विचाराचत्त्वज्ञानसंपादनासमर्थस्य निर्गुणब्रह्मध्यानेऽधिकार इत्ययमर्थ आत्मगीतायां सम्यगभिहित इत्याह (अर्थोऽयमिति)—

२४]"विचाराक्षमः संततं आत्मानं उपासीत" इति अयं अर्थः आत्मगीतायां अपि स्पष्टं उदीरितः ॥१५१॥

---

१९ कठवल्लीविषै यमराजानैं वी "इस परअपरब्रह्मरूप आश्रयकूं जानिके ब्रह्मलोक जो पर वा अपरब्रह्मरूप तिसविषै ब्रह्मकी न्यांई उपास्य होवैहै" इत्यादिवाक्यकरि ओंकारउपासनका दोभांतिपना कहाहै । ऐसैं कहैहैं:—

२०] "इस आलंबनकूं जानिके जो जिसकूं इच्छताहै । तिसकूं सो प्राप्त होवैहै ।" ऐसैं यमनैं वी पूछनैहारे नचिकेताशिष्यके तांई कहाहै ॥ १४९॥

॥ २६ ॥ श्लोक १३६–१४९ उक्त अर्थकी समाप्ति ॥

२१ श्लोक १३६–१४९ पर्यंत उक्त अर्थकूं समाप्त करैहैं:—

२२] इस सम्यक्निर्गुणब्रह्मकूं उपासन करनैहारे पुरुषकूं इस देहविषै वा मरणअवसरविषै अथवा ब्रह्मलोकविषै ब्रह्मका साक्षात्कार होवैहै ॥ १५० ॥

॥ २७ ॥ विचारमैं असमर्थकूं निर्गुणब्रह्मके ध्यानमैं अधिकारविषै आत्मगीताप्रमाण ॥

२३ विचारतैं तत्त्वज्ञानके संपादनविषै असमर्थपुरुषकूं निर्गुणब्रह्मके ध्यानविषै अधिकार है । यह अर्थ आत्मगीतामैं सम्यक् कहाहै । ऐसैं कहैहैं:—

२४] "विचारविषै असमर्थपुरुष निरंतर आत्माकूं उपासना करै ।" यह अर्थ आत्मगीताविषै वी स्पष्ट कहाहै ॥ १५१ ॥

टीकांकः ३९२५ टिप्पणांकः ॐ		ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः
	[२६]साक्षात्कर्तुमशक्तोऽपि चिंतयेन्मामशंकितः । कालेनानुभवारूढो भवेदाफलितो ध्रुवम् ॥१५२॥	११९०
	[२८]यथागाधनिधेर्लब्धौ नोपायः खननं विना । [३०]मल्लाभेपि तथा स्वात्मचिंतां मुक्त्वा न चापरः१५३	११९१
	[३२]देहोपलमपाकृत्य बुद्धिकुद्दालकात्पुनः । खात्वा मनोभुवं भूयो गृह्णीयान्मां निधिं पुमान् ॥ १५४	११९२
	[३४]अनुभूतेरभावेऽपि ब्रह्मास्मीत्येव चिंत्यताम् । [३६]अप्यसत्प्राप्यते ध्यानान्नित्याप्तं ब्रह्म किं पुनः१५५	११९३

२५ आत्मगीतावाक्यान्येवोदाहरति—

२६] साक्षात्कर्तुं अशक्तः अपि अशंकितः मां चिंतयेत् । कालेन अनुभवारूढः आफलितः ध्रुवं भवेत् ॥ १५२

२७ ध्यानस्य सम्यग्ज्ञानोपायत्वे दृष्टांतमाह—

२८] यथा अगाधनिधेः लब्धौ खननं विना उपायः न ॥

२९ दार्ष्टांतिके योजयति (मल्लाभ इति)—

३०] "तथा मल्लाभे अपि स्वात्मचिंतां मुक्त्वा च अपरः न" ॥ १५३ ॥

३१ व्यतिरेकेणोक्तमर्थमन्वयमुखेनाह—

३२] "देहोपलं अपाकृत्य पुनः बुद्धिकुद्दालकात् मनोभुवं खात्वा भूयः पुमान् मां निधिं गृह्णीयात्" ॥ १५४ ॥

३३ ज्ञानेऽसमर्थस्य ध्यानेऽधिकार इत्यत्र वाक्यांतरं पठति—

२५ आत्मगीताके वाक्यनकूंहीं उदाहरण करैहैं:—

२६] "साक्षात् करनैकूं जो अशक्तपुरुष है । सो बी शंकारहित हुया मुज प्रत्यक्‌अभिन्नपरमात्माकूं चिंतन करै । कालकरि सो अनुभवविषै आरूढ होयके पूर्णफलमोक्षकूं निश्चयकरि प्राप्त होवैगा" ॥ १५२ ॥

२७ ध्यानकूं सम्यक्‌ज्ञानके उपाय होनैविषै दृष्टांत कहैहैं:—

२८] जैसैं भूमिमैं गाढीहुई अगाधनिधिके लाभविषै खोदनैसैं विना और उपाय नहीं है ॥

२९ दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

३०] "तैसैं मेरे लाभविषै बी स्वात्माकी चिंताकूं छोडिके औरउपाय नहीं है" ॥ १५३ ॥

३१ व्यतिरेककरि उक्तअर्थकूं अन्वयमुखकरि कहैहैं:—

३२] "देहरूप पाषाणकूं दूरिकरिके फेर बुद्धिरूप कुद्दालकतैं मनरूप भूमिकाकूं खोदिके पीछे पुरुष मुज प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मरूप निधिकूं ग्रहण करै" कहिये जानै ॥ १५४ ॥

॥ २८ ॥ श्लोक १९१ उक्त अर्थमैं अन्यशास्त्रका वचनप्रमाण ॥

३३ ज्ञानविषै असमर्थपुरुषकूं ध्यानविषै अधिकार है । इसमैं अन्यवाक्यकूं पंठन करैहैं:—

ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
११११४	अनात्मबुद्धिशैथिल्यं फलं ध्यानाद्दिने दिने । पश्यन्नपि न चेद्ध्यायेत्कोऽपरोऽस्मात्पशुर्वद १५६	३९३४
११११५	देहाभिमानं विध्वस्य ध्यानादात्मानमद्वयम् । पश्यन्मर्त्योऽमृतो भूत्वा ह्यत्र ब्रह्म समश्नुते १५७	टिप्पणांकः ॐ

३४] अनुभूतेः अभावे अपि "ब्रह्म अस्मि" इति एव चिंत्यताम् ॥

३५ ध्यानाद्धि ब्रह्मप्राप्तौ कैमुतिकन्यायमाह (अपीति)—

३६]असत् अपि ध्यानात् प्राप्यते । पुनः नित्याप्तं ब्रह्म किं ॥

३७) उपासकस्य पूर्वमविद्यमानमपि देवत्वादिकं ध्यानात् प्राप्यते किल । स्वरूपत्वेन नित्यप्राप्तं सर्वात्मकं ब्रह्म ध्यानात् प्राप्यते इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥ १५५ ॥

३८ ब्रह्मध्यानफलस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वादपि ध्यानं कर्तव्यमित्याह (अनात्मेति)—

३९] ध्यानात् दिने दिने अनात्मबुद्धिशैथिल्यं फलं पश्यन् अपि चेत् न ध्यायेत् अस्मात् अपरः कः पशुः वद ॥ १५६ ॥

४० इदानीमुपपादितमर्थं संक्षिप्य दर्शयति (देहाभिमानमिति)—

४१] ध्यानात् देहाभिमानं विध्वस्य अद्वयं आत्मानम् पश्यन् मर्त्यः अमृतः भूत्वा अत्र हि ब्रह्म समश्नुते ॥

३४] अनुभूतिके अभाव हुये वी "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैंहीं चिंतन करना ॥

३५ ध्यानतैंहीं ब्रह्मकी प्राप्तिविषै कैमुतिकन्याय कहैहैं:—

३६] असत् कहिये अविद्यमानवस्तु वी ध्यानतैं प्राप्त होवैहै । तब फेर नित्यप्राप्त जो ब्रह्म । सो ध्यानतैं प्राप्त होवै यामैं क्या कहना है ?

३७) कीटकूं भ्रमरभावकी न्यांई उपासककूं पूर्व अविद्यमान वी देवभावआदिक ध्यानतैं प्राप्त होवैहै । तब स्वरूप होनैकरि नित्यप्राप्त जो सर्वात्मकब्रह्म है । सो ध्यानतैं प्राप्त होवैहै यामैं क्या कहना है? यह अर्थ है ॥ १५५ ॥

॥ २९ ॥ प्रत्यक्षफलयुक्तताकरि ध्यानकी कर्तव्यता ॥

३८ ब्रह्मध्यानके फलकूं प्रत्यक्षसिद्ध होनैतैं वी ध्यान कर्त्तव्य है । ऐसैं कहैहैं:—

३९] ध्यानतैं दिनदिनविषै अनात्माकारबुद्धिकी शिथिलतारूप फल होवैहै । तिसकूं देखताहुया वी जब ध्यान करै नहीं । तब इसतैं दूसरा कौन पशु कहिये मूढ है? सो कथन कर ॥ यहहीं मूढ है ॥ १५६ ॥

॥ ३० ॥ ध्यानदीपमैं उपपादितअर्थका संक्षेपसैं कथन ॥

४० अब उपपादन किये अर्थकूं संक्षेपकरिके दिखावैहैं:—

४१] ध्यानतैं देहाभिमानकूं नाशकरिके अद्वयरूप आपकूं देखताहुया मरणधर्मवान्मनुष्य अमृत होयके इहांहीं ब्रह्मकूं पावताहै ॥

टीकांक: ३९४२ टिप्पणांक: ॐ	ध्यानदीपमिमं सम्यक् परामृशति यो नरः । मुक्तसंशय एवायं ध्यायति ब्रह्म संततम्॥१५८॥ इति श्रीपंचदश्या ध्यानदीपः ॥ ९ ॥	ध्यानदीपः ॥ ९ ॥ श्लोकांक: ११६

४२) मरणशीले देहे अहमित्यभिमानपरित्यागात्स्वयं अमृतो भूत्वा अत्र अस्मिन्नेव शरीरे । स्वस्य निजं रूपं सच्चिदानंदरूपं ब्रह्म प्राप्नोति ॥ १५७ ॥

४३ ध्यानदीपानुसंधानफलमाह (ध्यानदीपमिति)—

४४] यः नरः इमं ध्यानदीपं सम्यक् परामृशति अयं मुक्तसंशयः एव संततं ब्रह्म ध्यायति ॥ १५८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण श्रीरामकृष्णाख्यविदुषा विरचितं ध्यानदीपव्याख्यानं समाप्तम् ॥ ९ ॥

---

४२) मरणस्वभाववाले देहविषै "मैं हूं" इस अभिमानके परित्यागतैं आप अमर होयके इसीहीं शरीरविषै अपनै निजरूप सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्मकूं पावताहै ॥ १५७ ॥

॥ ३१ ॥ ध्यानदीपके चिंतन (अभ्यास)का फल ॥

४३ ध्यानदीपके अनुसंधानस्मरणके फलकूं कहैहैं:—

४४] जो मनुष्य इस ध्यानदीपकूं सम्यक् स्मरण करताहै । सो निःसंदेह हुयाहीं निरंतर ब्रह्मकूं ध्यावताहै ॥ १५८ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या ध्यानदीपस्य तत्त्वप्रकाशिकाख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ९ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ नाटकदीपः ॥

॥ दशमप्रकरणम् ॥ १० ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: १११७	[४६] परमात्माद्वयानंदपूर्णः पूर्वं स्वमायया । स्वयमेव जगद्भूत्वा प्राविशज्जीवरूपतः ॥ १ ॥	टीकांक: ३९४५ टिप्पणांक: ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ नाटकदीपव्याख्या ॥ १० ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
कुर्वे नाटकदीपस्य टीकां तत्त्वप्रकाशिकाम् ॥१॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
अर्थो नाटकदीपस्य मया संक्षिप्य वक्ष्यते ॥१॥

४६ चिकीर्षितस्य ग्रंथस्य निष्प्रत्यूहपरि-

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ नाटकदीपकी तत्त्वप्रकाशिका व्याख्या ॥ १० ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमनकरिके पंचदशीके नाटकदीपनामदशमप्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिकानामकटीकाकूं नरभाषासैं मैं करूंहूं १

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीमत्भारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दोमुनीश्वरनकूं नमनकरिके मेरेकरि नाटकदीपका अर्थ संक्षेपकरिके कहियेहै ॥ १ ॥

॥ १ ॥ अध्यारोप औ अपवादपूर्वक बंधनिवृत्तिके उपाय विचारका विषय (जीव परमात्मा) सहित कथन ॥ ३९४५–३९९९ ॥

॥ १ ॥ अध्यारोप औ साधन (विचारजन्य ज्ञान) सहित अपवाद ॥ ॥ ३९४५–३९६२ ॥

॥ १ ॥ आत्मामैं अध्यारोप ॥

४६ प्रारंभ करनैकूं इच्छित नाटकदीपरूप

* चेतनविषै अध्यस्तअहंकारादिककूं औ तिनके प्रकाशक साक्षीकूं नाटकका रूपककरि प्रकाश करनैहारा प्रकरण॥

टीकांक: २९४६ टिप्पणांक: ७४४	४९ विष्णवाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टो देवताऽभवत् । मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितो भजति देवताम् ॥ २ ॥	नाटकदीप: ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११९८

पूरणायाभिमतदेवतातत्त्वानुस्मरणलक्षणं मंगलमाचरन्मंदाधिकारिणामनायासेन निष्प्रपंचब्रह्मात्मप्रतिपत्तिसिद्धये "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते । शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः" इति न्यायमनुसृत्यात्मन्यध्यारोपं तावदाह (परमात्मेति)—

४६] पूर्वं अद्वयानंदपूर्णः परमात्मा स्वमायया स्वयं एव जगत् भूत्वा जीवरूपतः प्राविशत् ॥

४७) पूर्वं सृष्टेः प्राक् । अद्वयानंदपूर्णः "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" "विज्ञानमानंदं ब्रह्म" । "पूर्णमदः पूर्णम्" इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः स्वगतादिभेदशून्यः परमानंदरूपः परिपूर्णः । परमात्मा स्वमायया "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्रुत्युक्तया स्वनिष्ठया मायाशक्त्या स्वयमेव जगद्भूत्वा "तदात्मानं स्वयमकुरुत सच्च त्यच्चाभवत्" इति श्रुतेः स्वयमेव जगदाकारतां प्राप्य जीवरूपतः प्राविशत् । "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य" इत्यादिश्रुतेः जीवरूपेण प्रविष्टवानित्यर्थः ॥ १ ॥

४८ ननु परमात्मन एवैकस्य सर्वशरीरेषु

ग्रंथकी निर्विघ्नपरिपूर्णताअर्थ इष्टदेवताके स्वरूपके स्मरणरूप मंगलकूं आचरतेहुये आचार्य्य। मंदअधिकारिनकूं श्रमसैं विना निष्प्रपंचब्रह्मआत्माके निश्चयकी सिद्धिअर्थ "अध्यारोप औ अपवादकरि प्रपंचरहित परमात्माकूं निरूपण करियेहै ॥ शिष्यनके बोधकी सिद्धिअर्थ तत्त्वज्ञपुरुषोनैं क्रम कल्प्याहै" इस न्यायकूं अनुसरिके आत्माविषै अध्यारोपकूं प्रथम कहैहैं:—

४६) पूर्व अद्वय आनंद औ पूर्णरूप जो परमात्मा था । सो अपनी मायाकरि आपहीं जगत्रूप होयके तिसविषै जीवरूपसैं प्रवेश करताभया ॥

४७) सृष्टितैं पूर्व अद्वय आनंद औ पूर्ण कहिये "हे सोम्य! यह जगत् आगे एकहीं अद्वितीय सत्हीं था" औ "विज्ञानआनंदरूप ब्रह्म है" औ "यह पूर्ण है। यह पूर्ण है" इत्यादिश्रुतिकरि प्रसिद्ध जो स्वगतआदिकभेदरहित परमानंदरूप परिपूर्णपरमात्मा था । सो अपनी मायाकरि कहिये "मायाकूं तौ प्रकृति नाम उपादान जानै औ मायावालेकूं तौ महेश्वर नाम मायाका अधिष्ठाननिमित्त जानै" इसश्रुतिमैं उक्त अपनैविषै स्थित मायाशक्तिकरि आपहीं जगत्रूप होयके कहिये "सो ब्रह्म आपहीं आपकूं करतभया । स्थूलसूक्ष्मरूप होताभया" इस श्रुतितैं आपहीं जगत्आकारताकूं पायके जीवरूपकरि प्रवेश करताभया कहिये "तिस जगत्कूं रचिके तिसीहींके प्रति पीछे प्रवेश करताभया । इस जीवरूपकरि प्रवेशकरिके" इत्यादिकश्रुतितैं जीवरूपसैं प्रवेशकूं प्राप्त भया । यह अर्थ है ॥ १ ॥

४८ ननु । एकहीं परमात्माकूं सर्वशरीरन-

---

४४ परमात्माकी स्वगतआदिकतीनभेदसैं रहितताकूं देखो पंचमहाभूतविवेकगत २०–२५ श्लोकविषै औ तिनकी ३१०–३१८ टिप्पणविषै ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: १११९ ११२०	अनेकजन्मभजनात्स्वविचारं चिकीर्षति । विचारेण विनष्टायां मायायां शिष्यते स्वयम् ॥३॥ अद्वयानंदरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता । बंधः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थितिर्मुक्तिरितीर्यते ॥४॥	टीकांक: ३९४९ टिप्पणांक: ॐ

प्रविष्टत्वे पूज्यपूजकादिभावेन प्रतीयमान उत्तमाधमभावो विरुध्येतेत्याशंक्याह—

४९] विष्ण्वाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टः देवता अभवत् । मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितः देवतां भजति ॥

५०) नायं स्वाभाविक उत्तमाधमभावः किंतु शरीरोपाधिनिबंधनोऽतो न विरोध इति भावः ॥ २ ॥

५१ इत्थमात्मन्यध्यारोपं संक्षेपेण प्रदर्श्य ससाधनं तदपवादं संक्षिप्य दर्शयति—

५२] अनेकजन्मभजनात् स्वविचारं चिकीर्षति विचारेण मायायां विनष्टायां स्वयं शिष्यते ॥

५३) अनेकजन्मभजनात् अनेकेषु जन्मस्वनुष्ठितानां कर्मणां ब्रह्मणि समर्पणरूपात् भजनात् । स्वविचारं स्वस्यात्मनो ब्रह्मरूपस्य ज्ञानसाधनं श्रवणादिकं । चिकीर्षति कर्तुमिच्छति । ततः स्वविचारेण विचारजनितज्ञानेन । मायायां स्वस्याद्वयानंदत्वादिरूपाच्छादिकायामज्ञानाविद्यादिशब्दवाच्यायां विनष्टायां निवृत्तायां । स्वयं अद्वयानंदपूर्णः परमात्मैवावशिष्यते ॥ ३ ॥

५४ ननु "तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबंधैः

विषै प्रवेशकूं पायेहुये पूज्य औ पूजकआदिकभावकरि प्रतीयमान जो उत्तमअधमभाव है । सो विरोधकूं पावैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४९] विष्णुआदिकउत्तमदेहनविषै प्रवेशकूं पायाहुया परमात्मा देवता कहिये पूज्य होताभया औ मनुष्यआदिकअधमदेहनविषै स्थित हुया परमात्मा देवताकूं भजताहै ॥

५०) यह उत्तमअधमभाव स्वाभाविक नहीं है । किंतु शरीररूप उपाधिका कियाहै । यातैं विरोध नहीं है । यह भाव है ॥ २ ॥

॥ २ ॥ साधन (विचारजन्य ज्ञान)सहित अपवाद ॥

५१ ऐसैं आत्माविषै अध्यारोपकूं संक्षेपसैं दिखायके साधनसहित तिसके अपवादकूं संक्षेपकरिके दिखावैहैं:—

५२] अनेकजन्मविषै भजनतैं अपनै विचारकूं करनैकूं इच्छताहै । विचारकरि मायाके नष्ट भये आप अवशेष रहताहै ॥

५३) अनेकजन्मविषै अनुष्ठान किये कर्मनके ब्रह्मविषै समर्पणरूप भजनतैं अपनै ब्रह्मरूपके ज्ञानके साधन श्रवणादिरूप विचारकूं करनैकूं इच्छताहै । तातैं अपनै विचारकरि कहिये विचारजनितज्ञानकरि अपनै अद्वयआनंदपनैआदिकरूपकी आच्छादक अज्ञानअविद्याआदिकशब्दकी वाच्य मायाके निवृत्त भये आप अद्वयआनंदपूर्णरूप परमात्माहीं अवशेष रहताहै ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ तृतीयश्लोकउक्तअपवादकूं बंधनिवृत्ति (मुक्ति)रूप ज्ञानफलरूपताकी सिद्धि ॥

५४ ननु । "सो ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं जानिके

प्रमुच्यते" इत्यादि श्रुतिभिर्बंधनिवृत्तिलक्षणस्य मोक्षस्य ज्ञानफलत्वाभिधानात् परमात्मावशेषणस्य तत्फलताभिधानमनुपपन्नमित्याशंक्याह—

५५] अद्वयानंदरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता बंधः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थितिः मुक्तिः इति ईर्यते ॥

५६) अद्वितीये ब्रह्मणि वास्तवस्य बंधस्य मोक्षस्य वा दुर्निरूपत्वात् दुःखित्वादिभ्रम एव बंधः स्वरूपावस्थितिलक्षणा तन्निवृत्तिरेव मोक्षः अतो न श्रुतिविरोध इति भावः ४

सर्वबंधनोंतैं छूटताहै" इत्यादिकश्रुतिनकरि बंधकी निवृत्तिरूप मोक्षकूं ज्ञानकी फलरूपताके कथनतैं परमात्माके अवशेष रहनैकूं तिस ज्ञानकी फलरूपताका कथन बनै नहीं। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५५] अद्वयआनंदरूप आत्माकूं द्वैतसहितपना औ दुःखीपना बंध कहा है औ स्वरूपकरि स्थिति मुक्ति कहियेहै॥

५६) अद्वितीयब्रह्मविषै वास्तवबंध वा मोक्षकूं दुःखसैं बी निरूपण करनैकूं अशक्य होनैतैं दुःखीपनेआदिकका भ्रमहीं बंध है औ स्वरूपकरि स्थितिरूप तिस बंधकी निवृत्तिहीं मोक्ष है। यातैं श्रुतिनका विरोध नहीं है। यह भाव है ॥ ४ ॥

४५ इहां यह रहस्य है:—

(१) महावाक्यके श्रवणसैं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी अंतःकरणकी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञान होवैहै। तिससैं प्रपंचसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै। सोई **मोक्ष** है॥ कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवैहै यातैं ब्रह्मरूप मोक्ष है। यह सिद्ध होवैहै ॥ यह भाष्यकारका सिद्धांत है। औ

(२) न्यायमकरंदकार (अद्वैतवादी)नैं कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं मानीहै। किंतु अधिष्ठानसैं भिन्न सत्‌रूप असत्‌रूप सत्‌असत्‌रूप औ सत्‌असत्‌सैं विलक्षण अनिर्वचनीय। इन च्यारीप्रकारसैं विलक्षणप्रकारवाली कल्पितकी निवृत्ति मानीहै ताहीकूं पंचमप्रकार कहैहैं। यह समीचीन नहीं। काहेतैं सत्‌रूपआदिकवस्तु लोकशास्त्रआदिकमैं प्रसिद्ध हैं। इनसैं विलक्षण कोइ वस्तु प्रसिद्ध नहीं। अप्रसिद्धवस्तुविषै पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं। किंतु प्रसिद्धविषै होवैहै। यातैं पंचमप्रकाररूप निवृत्तिके मानै पुरुषकी अभिलाषाकी विषयतारूप पुरुषार्थताका अभाव होवैगा। यातैं अधिष्ठानरूपहीं निवृत्ति मानीचाहिये।

(१) सो अधिष्ठानरूप निवृत्ति अज्ञातअधिष्ठानरूप मानैं तौ प्रयत्नविनाहीं सर्वकूं मोक्षकी प्राप्तिके होनैतैं श्रवणादिककी निष्फलता होवैगी। औ

(२) ज्ञातअधिष्ठानरूप निवृत्ति मानैं तौ विदेहमोक्षदशामैं ब्रह्मविषै ज्ञातत्व कहिये ज्ञानके विषय होनैरूप धर्मका अभाव है। यातैं मोक्षकूं परमपुरुषार्थताका अभाव होवैगा औ

(३) ज्ञातत्वरूप धर्मके अभावतैं ज्ञातत्वविशिष्ट वा ज्ञातत्वउपहित अधिष्ठानरूप बी निवृत्ति संभवै नहीं। काहेतैं विशेषणवाला **विशिष्ट** कहियेहै औ उपाधिवाला **उपहित** कहियेहै। **विशेषण औ उपाधि** जितनैकालविषै आपविद्यमान होवैं तितनै कालपर्यंत अपनै संबंधीवस्तुकूं अन्यवस्तुतैं भिन्नकरिके जनावैहैं। विदेहमोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं तिस ज्ञातत्वकूं विशेषणरूपकरि वा उपाधिरूपकरि अज्ञातअवस्थावाले ब्रह्मतैं भिन्नकरि जनावना संभवै नहीं।

यातैं ज्ञातत्वउपलक्षित अधिष्ठानरूप कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति है। काहेतैं उपलक्षण जो है। सो अपनै भाव (वर्त्तमान) अभाव (भविष्यत्) दोनूंकालमैं बी अपनै संबंधीकूं अन्यसैं भिन्नकरि जनावताहै। यातैं जैसैं देवदत्तके ग्रहके उपलक्षण काकके होते न होते बी "यह देवदत्तका गृह है" ऐसा व्यवहार होवैहै ॥ तैसैं जीवन्मुक्तिदशामैं ज्ञातत्वके होते औ विदेहमुक्तिदशामैं ताके न होते बी कार्यसहितअज्ञानकी निवृत्तिरूप अधिष्ठान जो है। सो ज्ञातत्वउपलक्षित है। यह व्यवहार होवैहै ॥ औ

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है। इस पक्षमैं आग्रह होवै तौ बी अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीयरूप है पंचमप्रकाररूप नहीं ॥ **निवृत्ति** नाम ध्वंसका है। सो ध्वंस न्यायमतमैं तौ अनंतअभावरूप है। परंतु सिद्धांतमतमैं क्षणिकभाव विकाररूप है। काहेतैं यास्कमुनिनैं जन्मादिकषट्‌भाव (अनिर्वचनीय) विकार कहेहैं। तिनमैं ध्वंसशब्दकापर्याय नाश क्षणिकरूप भिन्याहै। यातैं सो ध्वंस क्षणिकभावरूप है। सो ज्ञानसैं उत्तरकाल एकक्षण रहैहै। पीछे तिस निवृत्तिका अत्यंत अभाव होवैहै। सो अत्यंतअभाव ब्रह्मरूप है। यातैं द्वैतकी शंका नहीं ॥ औ

कल्पितकी निवृत्ति ज्ञानसैं जन्य होनैतैं सादि है औ ब्रह्मरूप होनैतैं अनंत है। यातैं सिद्धांतमैं मोक्ष सादि औ अनंत कहियेहै ॥ इसरीतिसैं स्वरूपकरि स्थितिरूप बंधकी निवृत्तिहीं **मोक्ष** है।

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
११२१	अविचारकृतो बंधो विचारेण निवर्तते । तस्माज्जीवपरात्मानौ सर्वदैव विचारयेत् ॥ ५ ॥	३९५७
११२२	अहमित्यभिमंता यः कर्तासौ तस्य साधनम् । मनस्तस्य क्रिये अंतर्बहिर्वृत्ती क्रमोत्थिते ॥ ६ ॥	टिप्पणांकः ॐ

५७ ननु "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" इति स्मृतेर्मोक्षस्य कर्मसाधनतावगमात् किमनेन विचारजनितज्ञानेनेत्यत आह—

५८] अविचारकृतः बंधः विचारेण निवर्तते ॥

५९) विचारप्रागभावोपलक्षिताज्ञानकृतस्य बंधस्य न विचारजन्यज्ञानादन्यतो निवृत्तिरुपपद्यते । उदाहृतस्मृतौ च संसिद्धिशब्देन चित्तशुद्धिरेवाभिधीयते न मोक्ष इति भावः ॥

६० विचारेण बंधनिवृत्तिरुक्ता किं विषयेण विचारेणेत्यत आह—

६१] तस्मात् जीवपरात्मानौ सर्वदा एव विचारयेत् ॥

६२) तत्त्वसाक्षात्कारपर्यंतं सर्वदा विचारं कुर्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

६३ तत्र जीवस्वरूपं तावन्निरूपयति (अहमिति)—

६४] यः "अहं" इति अभिमंता असौ कर्ता ॥

६५) यः चिदाभासविशिष्टोऽहंकारो

॥ ४ ॥ बंधनिवृत्तिअर्थ विचारकी कर्तव्यता औ विचारके विषयका सूचन ॥

५७ ननु "जनकआदिक जे भयेहैं । वे कर्मकरिहीं संसिद्धिकूं प्राप्त भये" इस गीतास्मृतितैं मोक्षकूं कर्मरूप साधनवान्‌ताके जाननैतैं इस विचारसैं जनित ज्ञानकरि क्या प्रयोजन है? तहां कहैहैं:—

५८] अविचारका किया जो बंध है । सो विचारकरि निवर्त्त होवैहै ॥

५९) विचारके प्राक्‌अभावकरि उपलक्षित अज्ञानका किया जो बंध है । ताकी विचारसैं जन्य ज्ञानतैं अन्यसाधनतैं निवृत्ति संभवै नहीं औ उदाहरण करी गीतास्मृतिविषै "संसिद्धि"-शब्दकरि चित्तशुद्धिहीं कहियेहै । मोक्ष नहीं । यह भाव है ॥

६० विचारकरि बंधकी निवृत्ति कही । सो किसकूं विषय करनैहारे नाम किस वस्तुके विचारकरि बंधकी निवृत्ति होवैहै? तहां कहैहैं:—

६१] तातैं जीव औ परमात्माकूं सर्वदाहीं विचार करना ॥

६२) तत्त्वके साक्षात्कारपर्यंत सर्वदा जीव-परमात्माके विचारकूं करना । यह अर्थ है ॥५॥

॥ २ ॥ पंचमश्लोकउक्तविचारके विषय जीव औ परमात्माका स्वरूप ॥ ३९६३—३९८४ ॥

॥ १ ॥ क्रियायुक्त कारणसहित कर्त्तारूप जीवका स्वरूप ॥

६३ तिन जीवपरमात्मारूप विचारके विषयनविषै जीवके स्वरूपकूं प्रथम निरूपण करैहैं:—

६४] जो "अहं" ऐसैं मानताहै । यह कर्त्ता है ॥

६५) जो चिदाभासविशिष्टअहंकार

टीकांक: २९६६ टिप्पणांक: ॐ	७२ अंतर्मुखाहमित्येषा वृत्तिः कर्तारमुल्लिखेत् । बहिर्मुखेदमित्येषा बाह्यं वस्त्विदमुल्लिखेत् ॥७॥ ७३ इदंमो ये विशेषाः स्युर्गंधरूपरसादयः । असांकर्येण तान्भिद्याद्घ्राणादींद्रियपंचकम् ॥ ८ ॥	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११२३ ११२४

व्यवहारदशायां देहादौ अहमिति अभिमन्यते असौ कर्ता कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टो जीव इत्यर्थः ॥

६६ तस्य किं करणमित्यपेक्षायामाह—

६७] **तस्य साधनं मनः ॥**

६८)**कामादिवृत्तिमानंतःकरणभागो मनः।**

६९ करणस्य क्रियाव्याप्तत्वात्तत्क्रियां दर्शयति—

७०] **तस्य क्रमोत्थिते अंतर्बहिर्वृत्ती क्रिये ॥ ६ ॥**

७१ अनयोः स्वरूपं विषयं च विविच्य दर्शयति—

७२] अंतर्मुखा "अहं" इति वृत्तिः एषा कर्तारं उल्लिखेत् बहिर्मुखा "इदं" इति एषा बाह्यं इदं वस्तु उल्लिखेत् ॥

७३)इदमित्येषा इति बहिर्वृत्तेः स्वरूपाभिनयः।अविशिष्टेन विषयप्रदर्शनं बाह्यं देहाद्बहिर्वर्तमानमिदंतया निर्दिश्यमानं वस्तूल्लिखेत् विषयीकुर्यादित्यर्थः ॥ ७ ॥

७४ ननु मनसैव सर्वव्यवहारसिद्धौ चक्षुरादिवैयर्थ्यं प्रसज्येतेत्याशंक्याह—

व्यवहारदशामैं देहादिकविषै "अहं" कहिये मैं ऐसैं मानताहै । यह कर्त्ता कहिये कर्त्तापनैआदिकधर्मविशिष्टजीव है । यह अर्थ है ॥

६६ तिस कर्त्ताका कौन करण है ? इस पूछनैंकी इच्छाके भये कहैहैं:—

६७] **तिस कर्त्ताका साधन कहिये करण मन है ॥**

६८) **कामादिकवृत्तिमान्अंतःकरणका भाग मन है ॥**

६९ करणकूं क्रियाकरि व्याप्त होनैतैं तिस मनरूप करणकी क्रियाकूं दिखावैहैं:—

७०] **तिस मनकी क्रमकरि उत्पन्न अंतर्वृत्ति औ बहिर्वृत्तिरूप क्रिया हैं ६**

॥ २ ॥ जीवके कारण मनकी क्रियाका स्वरूप औ विषय ॥

७१ इन अंतरबाहिरवृत्तिनके स्वरूपकूं औ विषयकूं विवेचनकरिके दिखावैहैं:—

७२] **अंतर्मुख जो "मैं" इस आकारवाली वृत्ति है। सो कर्त्ताकूं विषय करैहै औ बहिर्मुख जो "इदं" कहिये यह इस आकारवाली वृत्ति है । सो बाह्य इदंवस्तुकूं कहिये इसवस्तुकूं विषय करैहै ॥**

७३) "इदं" (यह) इस आकारवाली" इतनै मूलके पदकरि बाहिरवृत्तिके स्वरूपका कथन किया औ अवशेष रहे उत्तरार्धगत मूलके भागकरि बाहिरवृत्तिके विषयकूं दिखावतेहैं:—यह बाहिरवृत्ति देहतैं बाहिर वर्तमान जो इदंपनैकरि निर्देश करियेहै वस्तु । तिसकूं विषय करैहै । यह अर्थ है ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ स्वव्यवहारके हेतु मनके होते बी घ्राणादिइंद्रियनका उपयोग ॥

७४ ननु । मनकरिहीं सर्वव्यवहारकी सिद्धिके हुये चक्षुआदिकइंद्रियनकी व्यर्थताका प्रसंग होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११२५ ११२६

कर्तारं च क्रियां तद्वद् व्यावृत्तविषयानपि ।
स्फोरयेदेकयत्नेन योऽसौ साक्ष्यत्र चिद्वपुः ॥ ९॥
ईक्षे शृणोमि जिघ्रामि स्वादयामि स्पृशाम्यहम् ।
इति भासयते सर्वं नृत्यशालास्थदीपवत् ॥ १० ॥

टीकांक: ३९७५ टिप्पणांक: ॐ

७५] इदमः विशेषाः ये गंधरूपरसादयः स्युः। तान् घ्राणादींद्रियपंचकं असांकर्येण भिद्यात् ॥

७६) मनसेदमिति सामान्यमात्रं गृह्यते न तु तद्विशेषो गंधादिरतस्तद्ग्रहणे घ्राणादिकमुपयुज्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

७७ एवं सोपकरणं जीवस्वरूपं निरूप्य परमात्मानं निरूपयति—

७८] कर्तारं च क्रियां तद्वत् व्यावृत्तविषयान् अपि एकयत्नेन यः चिद्वपुः स्फोरयेत् असौ अत्र साक्षी ॥

७९) कर्तारं पूर्वोक्तमहंकाररूपं । क्रियां अहमिदमात्मकमनोवृत्तिरूपां । व्यावृत्तविषयानपि व्यावृत्तानन्योऽन्यविलक्षणान् घ्राणादिग्राह्यान् गंधादीन् विषयान् च । एकयत्नेन युगपदेव।यः चिद्वपुः चिद्रूप एव सन्। स्फोरयेत् प्रकाशयेत् । असावत्र वेदांतशास्त्रे साक्षी इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ९ ॥

८० साक्षिण एकयत्नेन सर्वस्फोरकत्वमभिनीय दर्शयति (ईक्षे शृणोमीति)—

८१] "अहं ईक्षे । शृणोमि । जिघ्रामि । स्वादयामि । स्पृशामि" इति सर्वं भासयेत् ॥

७५] इदंपदार्थके भेद जे गंधरूपरसआदिक हैं । तिनकूं घ्राणआदिकइंद्रियनका पंचक परस्पर मिलापविना भेदकरि ग्रहण करैहै ॥

७६) मनकरि "यह" ऐसैं सामान्यवस्तुमात्र ग्रहण करियेहै। परंतु तिसका विशेप गंधादिक नहीं। यातैं तिस वस्तुके विशेषकेग्रहणविषै घ्राणआदिकइंद्रियनका पंचक उपयोगकूं पावताहै । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ परमात्मा (साक्षी)का निरूपण ॥

७७ ऐसैं सामग्रीसहित जीवके स्वरूपकूं निरूपण करीके। अब परमात्माकूं निरूपण करैहैं:—

७८]कर्ताकूं औ क्रियाकूं तैसैं भिन्नभिन्नविषयनकूं बी एकयत्नकरि जो चिद्रूप हुया प्रकाशताहै। सो इहां साक्षी कहियेहै ॥

७९) पूर्व श्लोक ६ विषै उक्त अहंकाररूप कर्ताकूं औ "अहं" अरु "इदं" इस आकारवाली मनकी वृत्तिरूप क्रियाकूं औ परस्परविलक्षण अरु घ्राणआदिकइंद्रियनसैं ग्रहण करनै योग्य गंधादिकविषयनकूं एकयत्नकरि कहिये एककालविषैहीं जो चेतनरूपहीं हुया प्रकाशताहै। यह चेतन इहां वेदांतशास्त्रविषै साक्षी ऐसैं कहियेहै । यह अर्थ है ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ साक्षी (परमात्मा)के एकप्रयत्नसैं सर्वकी प्रकाशकताका दृष्टांतसहित आकार ॥

८० साक्षीके एकयत्नकरि सर्वके प्रकाशकरनैकूं आकारकरि दिखावैहैं:—

८१] "मैं देखताहूं। मैं सुनताहूं। मैं सूंघताहूं। मैं स्वाद लेताहूं। मैं स्पर्श करताहूं।" ऐसैं सर्वकूं प्रकाशताहै॥

टीकांक: ३९८२ टिप्पणांक: ॐ	नृत्यशालास्थितो दीपः प्रभुं सभ्यांश्च नर्तकीम् । दीपयेदविशेषेण तदभावेऽपि दीप्यते ॥ ११ ॥ अहंकारं धियं साक्षी विषयानपि भासयेत् । अहंकाराद्यभावेऽपि स्वयं भात्येव पूर्ववत् १२	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११२७ ११२८

८२) ईक्षे रूपमहं पश्यामीत्येवं द्रष्टृदर्शनदृश्यलक्षणां त्रिपुटीमेकयत्नेन भासयेत् । एवं शृणोमि इत्यादावपि योज्यम् ॥

८३ युगपदविकारित्वेनानेकावभासकत्वे दृष्टांतमाह—

८४] नृत्यशालास्थदीपवत् ॥ १० ॥

८५ दृष्टांतं स्पष्टयति—

८६] नृत्यशालास्थितः दीपः प्रभुं च सभ्यान् नर्तकीं अविशेषेण दीपयेत् । तदभावे अपि दीप्यते ॥

८७) अविशेषेण प्रभ्वादिविषयविशेषावभासनाय वृद्ध्यादिविकारमंतरेणेति यावत् ११

८८ दार्ष्टांतिके योजयति (अहंकारमिति)—

८९] साक्षी अहंकारं धियं विषयान् अपि भासयेत् । अहंकाराद्यभावे अपि स्वयं पूर्ववत् भाति एव ॥

---

८२) "रूपकूं मैं देखताहूं" ऐसैं रूपद्रष्टा जो अहंकार । दर्शन जो वृत्तिरूप क्रिया अरु घटादिरूप दृश्य । इस त्रिपुटीकूं एकयत्नकरि प्रकाशताहै । ऐसैं "मैं शब्दकूं सुनताहूं" इत्यादिकव्यहारविषै वी श्रोता श्रवण औ श्रोतव्य । इत्यादिकत्रिपुटीनकूं एकयत्नकरि प्रकाशताहै । सो योजना करनैकूं योग्य है ॥

८३ एककालविषै अविकारी होनैकरि अनेकनके प्रकाशकपनैविषै दृष्टांत कहैहैं:—

८४] नृत्यशालाविषै स्थित दीपककी न्याई ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ श्लोक १० उक्त दृष्टांतके वर्णनकरि परमात्माकूं निर्विकारी होनैकरि सर्वकी प्रकाशकता ॥३९८५-३९९९॥

॥ १ ॥ श्लोक १० उक्त दृष्टांतकी स्पष्टता ॥

८५ दृष्टांतकूं स्पष्ट करैहैं:—

८६] नृत्यशालाविषै स्थित जो दीप । सो प्रभु जो सभापति ताकूं औ सभ्य जे सभाविषै स्थित लोक तिनकूं औ नर्तकी जो नृत्य करनैहारी स्त्री ताकूं संपूर्णताकरि प्रकाशताहै औ तिन प्रभुआदिकनके अभाव हुये बी प्रकाशताहै ॥

८७) अशेषकरि कहिये प्रभुआदिकविषयनके भेदके प्रकाशनैअर्थ वृद्धिआदिकविकारसैं विना दीपक प्रकाशताहै । यह अर्थ है ॥ ११ ॥

॥ २ ॥ दृष्टांतउक्तअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

८८ दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

८९] ऐसे साक्षी । अहंकारकूं औ बुद्धिकूं औ शब्दादिकविषयनकूं बी प्रकाशताहै औ अहंकारआदिकके अभाव हुये बी आप पूर्वकी न्याई भासताहीं है ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
११२९	१२ निरंतरं भासमाने कूटस्थे ज्ञप्तिरूपतः । तद्भासा भासमानेयं बुद्धिर्नृत्यत्यनेकधा ॥ १३ ॥	३९९०
११३०	१४ अहंकारः प्रभुः सभ्या विषया नर्तकी मतिः । तालादिधारीण्यक्षाणि दीपः साक्ष्यवभासकः १४	टिप्पणांकः ॐ

९०) सुषुप्त्यादौ अहंकाराद्यभावेऽपि तत्साक्षितया भात्येव इत्यर्थः ॥ १२ ॥

९१ ननु प्रकाशरूपाया बुद्धेरेवाहंकारादिसर्ववस्त्ववभासकत्वसंभवात् किं तदतिरिक्तसाक्षिकल्पनयेत्याशंक्याह (निरंतरमिति)—

९२] कूटस्थे ज्ञप्तिरूपतः निरंतरं भासमाने इयं बुद्धिः तद्भासा भासमाना अनेकधा नृत्यति ॥

९३) कूटस्थे निर्विकारे साक्षिणि । ज्ञप्तिरूपतः स्वप्रकाशचैतन्यतया । निरंतरं भासमाने सदा स्फुरति सति । इयं बुद्धिस्तद्भासा तस्य साक्षिणः स्वरूपचैतन्येन । भासमाना प्रकाशमानैव अनेकधा घटोऽयं पटोऽयमित्यादिज्ञानाकारेण नृत्यति विक्रियते ॥ अयं भावः । यतो बुद्धेर्विकारितया जडत्वात् स्वतः स्फूर्तिराहित्यमतस्तदतिरिक्तः सर्वावभासकः साक्ष्यभ्युपगंतव्य इति ॥ १३ ॥

९४ उक्तमर्थं श्रोतृबुद्धिसौकर्याय नाटकत्वेन निरूपयति—

९५] अहंकारः प्रभुः । विषयाः सभ्याः । मतिः नर्तकी । अक्षाणि तालादिधारीणि । अवभासकः साक्षी दीपः ॥

---

९०) सुषुप्तिआदिकविषै अहंकारआदिकके अभाव हुये बी आत्मा तिस अभावका साक्षी होनैकरि भासताहीं है । यह अर्थ है ॥ १२ ॥

॥ ३ ॥ बुद्धितैं भिन्न सर्वप्रकाशकसाक्षीके अंगीकारकी योग्यता ॥

९१ ननु प्रकाशरूप बुद्धिकूंहीं अहंकारआदिकसर्ववस्तुनके अवभासकपनैके संभवतैं तिस बुद्धितैं भिन्न साक्षीकी कल्पनासैं क्या प्रयोजन है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९२] कूटस्थकूं ज्ञप्तिरूपतैं निरंतर भासमान होते तिस कूटस्थके प्रकाशकरि भास्यमान यह बुद्धि अनेकप्रकारसैं नृत्य करतीहै ॥

९३) निर्विकारसाक्षीकूं स्वप्रकाश चैतन्य होनैकरि सदास्फुरायमान होते । यह बुद्धि तिस साक्षीके स्वरूप चैतन्यकरि भासमानहीं हुई अनेकप्रकारसैं कहिये "यह घट है । यह पट है ।" इत्यादिकज्ञानके आकारसैं नृत्य करतीहै कहिये विकारकूं पावतीहै ॥ इहां यह भाव हैः— जातैं बुद्धिकूं विकारीपनैकरि जड होनैतैं आपकरि प्रकाशरहितपना है । यातैं तिस बुद्धितैं भिन्न सर्वका अवभासक साक्षी अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ १३ ॥

॥ ४ ॥ श्रोताकी बुद्धिमैं सुगम करनैवास्तै श्लोक १२–१३ उक्तअर्थका नाटकपनैकरि निरूपण ॥

९४ श्लोक १२–१३ उक्तअर्थकूं श्रोताकी बुद्धिविषै सुगम होनैअर्थ नाटकपनैकरि निरूपण करैहैं:—

९५] अहंकार स्वामी है औ विषय सभावासी पुरुष हैं । बुद्धि नर्तकी है औ इंद्रिय तालआदिकके धारण करनैहारे हैं औ अवभासक साक्षी दीप है ॥

९६) विषयभोगसाकल्यवैकल्याभिमानप्रयुक्तहर्षविषादवत्त्वान्नृत्याभिमानिप्रभुतुल्यत्वमहंकारस्य। परिसरवर्तित्वेऽपि विषयाणां तद्राहित्यात्सभ्यपुरुषसाम्यं । नानाविधविकारित्वात् नर्तकीसाम्यं धियः।धीविक्रिया-

९६) विषयभोगकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानके किये हर्ष औ विषादवाला होनैतैं अहंकारकूं नृत्यका अभिमानी प्रभु जो राजा ताकी तुल्यता है औ च्यारीओरतैं वर्तनैहारे हुये बी तिस उक्तहर्षविषादवान्‌ताकरि रहित होनैतैं विषयनकूं सभ्यपुरुषनकी समता है औ नानाप्रकारके विकारवाली होनैतैं बुद्धिकूं नर्त्तकी जो नृत्य करनैहारी स्त्री ताकी समता है औ बुद्धिके विकारन-

४६ जैसैं नृत्यका अभिमानी राजा नृत्यकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानकरि हर्षविषादवाला होवैहै औ नर्तकीआदिकका धनाढ्यताकरि आश्रय है औ नृत्यशालाका निर्वाहक है औ अनेकदारायुक्त है औ बडेकार्यका कर्त्ता है औ बडेभोगका भोक्ता है। तैसैं अहंकार बी भोगकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानकरि हर्षविषादवाला होवैहै औ उपाधिरूपतासैं आत्मधनयुक्त होनैकरि बुद्धिआदिकनका आश्रय है औ समष्टिव्यष्टिदेहरूप शालाका अहंममभावकरि निर्वाहक है औ शुभाशुभवृत्तिरूप अनेकदाराकरि युक्त है औ सर्वकर्मका कर्त्ता है औ सर्वभोगका भोक्ता है। यातैं साभास-अहंकार नृत्यअभिमानीराजाके तुल्य है ॥

४७ जैसैं सभाविषै स्थित पुरुष (ऊपरके टिप्पणविषै उक्त) राजाके धर्मनसैं रहित हुये च्यारीओरतैं वर्त्ततैहैं औ राजाके स्वाधीन हैं। तैसैं शब्दादिकविषय बी कर्तृत्वभोक्तृत्वआदिक अहंकारके धर्मनसैं रहित हुये च्यारीऔरतैं परिदृश्यमान हैं औ अहंकारके स्वाधीन हैं। यातैं सभ्यपुरुषनके तुल्य हैं ॥

४८ जैसैं नर्तकी। नृत्यउपयोगी अनेकचेष्टारूप विकार (अन्यथाअवयव)वाली होवैहै औ सर्वलोकनकेऔर हस्तआदिककूं प्रसारतीहै औ (१) शृंगार (२) वीर (३) करुण (४) अद्भुत (५) हास्य (६) भयानक (७) बीभत्स (८) रौद्र अरु (९) शांत। इन **नवरस**रूप मनोभावकरि राजाकूं रंजन करतीहै।

तैसैं बुद्धि बी कामादिपरिणामरूप अनेकविकारवाली होवैहै औ सर्वविषयाकार होनैकरि अपनै अग्रभागरूप हस्तकूं सर्वऔरतैं प्रसारतीहै। औ

(१) शास्त्रसंस्कारसैं रहित होवै तब वस्त्रभूषणादिककी शोभाके अभिमानकरि **शृंगाररस**कूं दिखावतीहै। औ

(२) शरीरकी प्रबलता देखिके युद्धादिकके प्रसंगमैं पुरुषपनैके अभिमानकरि **वीररस**कूं दिखावतीहै। औ

(३) पुत्रकलत्रादिसंबंधिनके दुःखकूं देखिके कोमल भये अंतःकरणमैं **करुणारस**कूं दिखावतीहै। औ

(४) इंद्रजालादिकअपूर्वपदार्थकूं देखिके आश्चर्यकूं पावतीहुई **अद्भुतरस**कूं दिखावतीहै। औ

(५) वांछितविषयके लाभतैं आनंदकूं पावतीहुई **हास्यरस**कूं दिखावतीहै। औ

(६) शत्रुआदिकसैं जन्य दुःखकी चिंताकरि भयकूं पावतीहुई **भयानकरस**कूं दिखावतीहै। औ

(७) मलीनपदार्थके संसर्गकरि ग्लानीकूं पावतीहुई **बीभत्सरस**कूं दिखावतीहै। औ

(८) क्रोधादिकके प्रसंगसैं भय दिखावतीहुई **रौद्ररस**कूं दिखावतीहै। औ

(९) प्रियपदार्थके नाशकरि उदासीनहुई **शांतिरस**कूं दिखावतीहै ॥

(१) बुद्धि जब शास्त्रसंस्कारसहित होवै तब द्वितीयपृष्ठगत ८ वें टिप्पणविषै उक्त अमानित्वसैं आदिलेके औ ८४ वें टिप्पणविषै उक्त दैवीसंपत्तिरूप भूषणयुक्त हुई **शृंगाररस**कूं दिखावतीहै। औ

(२) कामादिकशत्रुनके जयविषै पुरुषार्थकरि **वीररस**कूं दिखावतीहै। औ

(३) अध्यात्मादिदुःखकरि ग्रस्त पुरुषकूं देखिके द्रवीभावकूं पाईहुई **करुणारस**कूं दिखावतीहै। औ

(४) एकहीं अद्वितीय असंग निर्विकार निष्प्रपंच ब्रह्मविषै सजातीयआदिभेदयुक्त औ संग अरु कर्तृत्वादिविकारवान् प्रपंचकूं देखिके वा गुरुकृपासैं अलौकिकवस्तुकूं जानिके आश्चर्यवान् हुई **अद्भुतरस**कूं दिखावतीहै। औ

(५) राज्यपदसैं पतन होयके रंकपदकूं प्राप्त भये राजेकी न्याईं ब्रह्मभावसैं पतन होयके जीवभावकूं प्राप्त भये परमात्माकूं देखिके वा अपरोक्षज्ञानकी प्राप्तिकरि हर्षकूं पायके वा निरावरणस्वरूपानंदकूं अनुभवकरिके **हास्यरस**कूं दिखावतीहै। औ

(६) ज्ञानसैं विना निवारण करनैकूं अशक्य जन्ममरणादिसंसारदुःखकी चिंताकरि भयकूं पावतीहुई **भयानकरस**कूं दिखावतीहै। औ

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११३१	स्वस्थानसंस्थितो दीपः सर्वतो भासयेद्यथा । स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरंतः प्रकाशयेत् १५	टीकांकः ३९९७ टिप्पणांकः ७४९

णामनुकूलव्यापारवत्त्वात्तालादिधारिसमानत्वमिंद्रियाणां । एतत्सर्वावभासकत्वात् साक्षिणोदीपसादृश्यमस्तीति द्रष्टव्यम् ॥१४

९७ ननु साक्षिणोऽप्यहंकाराद्यभासकत्वे तेन । तेन संबंधापगमागमरूपविकारवत्त्वं स्यादित्याशंक्याह (स्वस्थानेति)—

९८] दीपः यथा स्वस्थानसंस्थितः सर्वतः भासयेत् तथा स्थिरस्थायी साक्षी बहिः अंतः प्रकाशयेत् ॥

९९) दीपो यथा गमनादिविकारशून्यः स्वदेशेऽवस्थित एव सन् स्वसंनिहिताखिलपदार्थानवभासयति । एवं साक्षी अपीति भावः ॥ १५ ॥

के अनुकूलव्यापारवान् होनैतैं इंद्रियनकूं तालआदिकके धारण करनेहारे पुरुषनकी समानता है औ इन सर्वका अवभासक होनैतैं सांक्षीकूं दीपककी सदृशता है। ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥ १४ ॥

॥ ९ ॥ साक्षीके निर्विकारीपनैंका श्लोक १० उक्त दृष्टांतपूर्वक कथन ॥

९७ ननु । साक्षीकूं बी अहंकारआदिकके अवभासकपनैके हुये तिस अहंकारादिकके साथि संबंधके अपगम नाम नाश औ आगम नाम उत्पत्तिरूप विकारवान्‌पना होवैगा। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९८] जैसैं दीप अपनै स्थानकविषै स्थित हुया सर्वओरतैं प्रकाशताहै तैसैं स्थिरस्थायी कहिये तीनिकाल अचल हुया साक्षी बाहिरभीतर प्रकाशताहै॥

९९) जैसैं गमनआदिकविकाररहित दीपक अपनै देशविषै स्थित हुयाहीं अपनै समीपके सर्वपदार्थनकूं प्रकाशताहै । ऐसैं गमनादिकविकाररहित स्वस्वरूपविषै स्थित हुया साक्षी बी सर्वकूं प्रकाशताहै । यह भाव है ॥ १५ ॥

(७) शिष्टनिंदित यथेच्छाचरणरूप दुराचारसैं ग्लानीकूं पावतीहुई **बीभत्सरस**कूं दिखावतीहै । औ

(८) अज्ञजननकूं सन्मार्गविषै प्रवृत्ति करावनैके वास्ते संसारदुःखके भयकूं जनावतीहुई वा तत्त्वज्ञानके बलकरि कालकूं बी डरावतीहुई **रौद्ररस**कूं दिखावतीहै । औ

(९) दोषदृष्टिजन्य वा मिथ्यात्वदृष्टिजन्य वैराग्यके उदयकरि वा जगत्‌की विस्मृतिरूप उपरामके उदयकरि प्रपंचकी अरुचिकूं पायके **शांतिरस**कूं दिखावतीहै । औ

(१०) निरावरण परिपूर्ण सवृत्तिक जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदकूं आस्वादन करतीहुई नवरसतैं विलक्षण **दशमरस**कूं दिखावतीहै ॥

इसरीतिसैं बुद्धि नवरसकूं दिखायके साभास अहंकारकूं रंजन करतीहै यातैं । नर्तकीके समान है ॥

४९ जैसैं तालमृदंगसारंगीआदिकवाद्यनके धारनेहारे पुरुष नर्तकीकी चेष्टाके अनुकूल व्यापारवान् होवैहैं। तैसैं इंद्रिय बी जिस जिस विषयके ग्रहण करनैकूं बुद्धि जातीहै । तिस तिस विषयके सन्मुख होनैकरि बुद्धिके विकार जे परिणाम तिनके अनुकूलव्यापारवान् होवैहैं । यातैं इंद्रिय तालआदिकधारिनके समान हैं ॥

५० जैसैं नृत्यशालाविषै स्थित दीपक जब सभास्थित होवै तब बाहिरभीतर सर्वओरतैं राजाआदिकसर्वकूं प्रकाशताहै औ जब सभा न होवै तब बी प्रकाशता है औ आप गमनआगमनआदिकक्रियारूप विकारसैं रहित हुया ज्यूंका त्यूं अपनै स्थानविषै स्थित है। तैसैं साक्षी बी जाग्रत्‌स्वप्नकालमैं स्थित अहंकारादिकसर्वकूं प्रकाशताहै औ सुषुप्ति मूर्छा अरु समाधिकालविषै इन सर्वके अभाव हुये तिनके अभावकूं प्रकाशताहै औ आप गमनआगमनआदिकविकारनसैं रहित हुया ज्यूंका त्यूं स्वमहिमामैं स्थित है । यातैं साक्षी दीपकके समान है ॥

टीकांक: ४०००
टिप्पणांक: ॐ

बहिरंतर्विभागोऽयं देहापेक्षो न साक्षिणि ।
विषया बाह्यदेशस्था देहस्यांतरहंकृतिः ॥ १६ ॥
अंतस्था धीः सहैवाक्षैर्बहिर्याति पुनः पुनः ।
भास्यबुद्धिस्थचांचल्यं साक्षिण्यारोप्यते वृथा १७

नाटकदीपः ॥ १० ॥
श्लोकांक: ११३२ ११३३

४००० ननु साक्षिणो बहिरंतरवभासकत्वाभिधानमनुपपन्नं "अपूर्वमनपरमनंतरमबाह्यम्" इति श्रुत्या तस्य बाह्यांतरविभागाभावाभिधानादित्याशंक्याह (बहिरिति)—

१] **अयं बहिरंतर्विभागः देहापेक्षः न साक्षिणि ॥**

२ कस्य बाह्यत्वं कस्य चांतरत्वमित्यत आह—

३] **विषयाः बाह्यदेशस्थाः । देहस्य अंतः अहंकृतिः ॥ १६ ॥**

४ ननु "स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरंतः प्रकाशयेत्" इति अविकारिणः सतो बहिरंतरवभासकोक्तिरयुक्ता "अहं घटं पश्यामि" इत्यत्राहमित्यंतरहंकारसाक्षितया प्रथमतो भासकस्यानंतरं "घटं पश्यामि" इति घटाकारवृत्तिस्फुरणरूपेण बहिर्निर्गमानुभावादित्याशंक्याह-

५] **अंतस्था धीः अक्षैः सह एव पुनः**

॥ २ ॥ परमात्माके यथार्थस्वरूपका विशेषकरि निर्द्धार ॥ ४०००—४०५० ॥

॥ १ ॥ साक्षीपरमात्मामैं बुद्धिकी चंचलताका आरोप ॥ ४०००—४०११ ॥

॥ १ ॥ वास्तवसाक्षीकूं बाहिरभीतरपनैके अभावपूर्वक बाह्यभीतरके वस्तुका कथन ॥

४००० ननु साक्षीकूं बाहिरभीतरअवभासकपनैका कथन अयुक्त है। काहेतैं "न पूर्व कहिये कारण है । न अपर कहिये कार्य है । न अंतर है । न बाह्य है" इस श्रुतिकरि तिस साक्षीआत्माके बाहिरभीतरविभागके अभावके कथनतैं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१] **यह जो "बाहिरभीतर" ऐसा विभाग है । सो देहके अपेक्षाकरि है । साक्षीविषै नहीं है ॥**

२ तब किसकूं बाह्यपना है औ किसकूं आंतरपना है ? तहां कहैहैं:—

३] **शब्दादिकविषय बाह्यदेशविषै स्थित हैं औ देहके भीतर अहंकार है ॥ १६ ॥**

॥ २ ॥ बाहिरभीतरप्रकाशमान साक्षीविषै बुद्धिकी चंचलताका आरोप ॥

४ ननु "तैसैं स्थिरस्थायी हुया साक्षी बाहिरभीतर प्रकाशता है" इस १५ वें श्लोकउक्तप्रकारकरि अविकारी हुये साक्षीके बाहिरभीतरअवभासकपनैका कथन अयुक्त है । काहेतैं "मैं घटकूं देखताहूं ।" इहां "मैं" ऐसैं भीतर अंहकारका साक्षी होनैकरि प्रथमतैं भासकसाक्षीके पीछे "घटकूं देखताहूं" ऐसैं घटाकारवृत्तिके स्फुरणरूपकरि बाहिरनिर्गमनके अनुभवतैं। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५] **देहके भीतर स्थित जो बुद्धि है। सो इंद्रियनके साथिहीं वारंवार**

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११३४ ११३५	गृहांतरगतः स्वल्पो गवाक्षादातपोऽचलः । तत्र हस्ते नर्त्यमाने नृत्यतीवातपो यथा ॥१८॥ निजस्थानस्थितः साक्षी बहिरंतर्गमागमौ । अकुर्वन्बुद्धिचांचल्यात्करोतीव तथा तथा ॥१९॥	टीकांक: ४००६ टिप्पणांक: ॐ

पुनः बहिः याति । भास्यबुद्धिस्थचांचल्यं साक्षिणि वृथा आरोप्यते ॥

६) द्रष्टृग्राहकत्वेन देहांतरावस्थिता बुद्धिः रूपादिग्रहणाय चक्षुरादिद्वारा भूयो भूयो निर्गच्छति । तथा च तन्निष्ठं चांचल्यं तद्भासके साक्षिण्यारोप्यते अतो न वास्तवं साक्षिणः चांचल्यमिति भावः ॥१७॥

७ भासके भास्यचांचल्यारोपः क्व दृष्ट इत्याशंक्याह (गृहांतरगत इति)—

८] गवाक्षात् गृहांतरगतः स्वल्पः आतपः अचलः तत्र हस्ते नर्त्यमाने यथा आतपः नृत्यति इव ॥

९) गवाक्षात् गृहांतरगतः स्वल्पातपोऽचल एव वर्तते तत्र तस्मिन्नातपे पुरुषेण हस्ते नर्त्यमाने इतस्ततः चाल्यमाने यथा आतपो नृत्यतीव चलतीव लक्ष्यते न तु चलतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

१० दार्ष्टांतिकमाह—

११] निजस्थानस्थितः साक्षी बहिः अंतः गमागमौ अकुर्वन् बुद्धिचांचल्यात् तथा तथा करोति इव ॥ १९ ॥

बाहिर जातीहै । ऐसैं हुये साक्षीकरि भासनैयोग्य बुद्धिकी चंचलता साक्षीविषै वृथा आरोपित होवैहै ॥

६) "मैं" इस आकारकरि द्रष्टा जो साभासअहंकार । ताकी ग्राहक कहिये विषय करनैहारी होनैकरि देहके भीतर स्थित जो बुद्धि है । "सो यह घट है ।" इत्यादिआकारकरि रूपादिकके ग्रहणअर्थ कहिये विषय करनैअर्थ चक्षुआदिकइंद्रियद्वारा फेरि फेरि बाहिरगमन करतीहै । तैसैं हुये तिस बुद्धिविषै स्थित जो चंचलपना है । सो तिस बुद्धिके भासक साक्षीविषै मूढनकरि आरोप करियेहै । यातैं साक्षीकूं वास्तव बाहिरभीतरगमन करनैरूप चंचलपना नहीं है । यह भाव है ॥१७॥

॥ ३ ॥ प्रकाशकविषै प्रकाश्यकी चंचलताके आरोपमैं दृष्टांत ॥

७ भासक जो प्रकाशक ताविषै भास्य जो प्रकाश्यवस्तु ताकी चंचलताका आरोप कहां देख्याहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८] गवाक्षतैं गृहके भीतर प्राप्त जो स्वल्पआतप कहिये सूर्यका प्रकाश है । सो स्वरूपतैं अचल होवैहै । तहां हस्तके नर्त्यमान कहिये नचायेहुये जैसे आतप नृत्य करतेहुयेकी न्यांई होवैहै ॥

९) गवाक्ष जो झरोखा तातैं गृहके भीतर आया जो थोडा आतप कहिये धूप है । सो अचलहीं वर्तताहै । तिस आतपविषै पुरुषकरि हस्तके इधर उधर चलायमान कियेहुये जैसैं आतप चलतेकी न्यांई देखियेहै औ चलता नहीं । यह अर्थ है ॥ १८ ॥

॥ ४ ॥ दृष्टांतउक्तअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

१० दार्ष्टांतिककूं कहैहैं:—

११] तैसैं निजस्थानमैं कहिये स्वस्वरूपविषै स्थित हुया साक्षी बाहिरभीतरगमनआगमनकूं न करताहुया बुद्धिकी चंचलतातैं तैसैं तैसैं करतेहुयेकी न्यांई होवैहै ॥ १९ ॥

टीकांक: ४०१२ टिप्पणांक: ॐ

न बाह्यो नांतरः साक्षी बुद्धेर्देशौ हि तावुभौ ।
बुद्ध्याद्यशेषसंशांतौ यत्र भात्यस्ति तत्र सः ॥ २० ॥
देशः कोऽपि न भासेत यदि तर्ह्यस्त्वदेशभाक् ।
सर्वदेशप्रक्लृप्त्यैव सर्वगत्वं न तु स्वतः ॥ २१ ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११२६ ११२७

१२ "निजस्थानस्थितः" इत्यनेन किं बाह्यादिदेशस्थत्वमेवोच्यते नेत्याह (न बाह्य इति)—

१३] साक्षी बाह्यः न आंतरः न ॥

१४ तत्र हेतुमाह (बुद्धेरिति)—

१५] हि तौ उभौ बुद्धेः देशौ ॥

१६ तर्हि किं विवक्षितमित्यत आह—

१७] बुद्ध्याद्यशेषसंशांतौ सः यत्र भाति तत्र अस्ति ॥

१८) आदिशब्देनेंद्रियादयो गृह्यंते । संशांतिशब्देन तत्प्रतीत्युपरतिर्विवक्षिता२०

१९ ननु सर्वव्यवहारोपरतौ देश एव नोपलभ्यते कुतस्तन्निष्ठत्वमुच्यत इत्याशंक्य स्वाभिप्रायमाविष्करोति (देश इति)—

२०] यदि कः अपि देशः न भासेत तर्हि अदेशभाक् अस्तु ॥

२१) देशादिकल्पनाधिष्ठानस्य स्वातिरिक्तदेशापेक्षा नास्तीति भावः ॥

॥ २ ॥ साक्षीके देशकालादिरहित निजस्वरूपके कथनपूर्वक ताके अनुभवका उपाय ॥ ४०१२-४०५० ॥

॥ १ ॥ बुद्धिके बाह्यअंतरदेशतैं रहित साक्षीका निजस्थान ॥

१२ "निजस्थानविषै स्थित हुया" इस १९ श्लोकगत कथनकरि क्या साक्षीका बाह्यआदिकदेशविषै स्थितपना कहियेहै ? यह आशंकाकरि साक्षीविषै बाह्यअंतरदेशकी कल्पना नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

१३] साक्षी बाह्य नहीं है औ आंतर नहीं है ॥

१४ तिसविषै कारण कहैहैं:—

१५] जातैं सो बाहिरभीतर दोनूं बुद्धिके देश हैं । यातैं साक्षीके नहीं ॥

१६ तब साक्षीका स्थान क्या कहनैकूं इच्छित है ? तहां कहैहैं:—

१७] बुद्धिआदिकसर्वकी संशांतिके हुये सो साक्षी जहां स्वस्वरूपविषै भासताहै तहांहीं है ॥

१८) इहां आदिशब्दकरि इंद्रियआदिक ग्रहण करियेहैं औ संशांतिशब्दकरि तिन बुद्धिआदिकनके प्रतीतिकी निवृत्ति कहनैकूं इच्छित है ॥ २० ॥

॥ २ ॥ देशादिरहित आत्माके सर्वगतपनै औ सर्वसाक्षीपनैकी अवास्तवता ॥

१९ ननु सर्वव्यवहार जो प्रतीति ताकी निवृत्तिके हुये देशहीं प्रतीत नहीं होवैहै । तब साक्षीका तिसविषै स्थितपना काहेतैं कहियेहै ? यह आशंकाकरि अपनै अभिप्रायकूं प्रगट करैहैं:—

२०] जब कोइ बी देश नहीं भासताहै । तब देशकूं न भजनैहारा कहिये देशरहित साक्षी होहु ॥

२१) देशादिककी कल्पनाके अधिष्ठानकूं अपनैतैं भिन्न देशकी अपेक्षा नहीं है। यह भावहै॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्रोकांकः ११३८ ११३९

अंतर्बहिर्वा सर्वं वा यं देशं परिकल्पयेत् ।
बुद्धिस्तद्देशगः साक्षी तथा वस्तुषु योजयेत्॥२२॥
यैंर्यद्रूपादि कल्प्येत बुद्ध्या तत्तत्प्रकाशयन् ।
तस्य तस्य भवेत्साक्षी स्वतो वाग्बुद्ध्यगोचरः॥२३

टीकांकः ४०२२ टिप्पणांकः ॐ

२२ ननु देशाद्यभावे शास्त्रे सर्वगतसर्वसाक्षित्वाद्युक्तिर्विरुध्येतेत्यत आह—

२३] सर्वदेशप्रक्लृप्त्या एव सर्वगत्वम्

२४ स्वाभाविकमेव किं न स्यादित्यत आह (न तु स्वत इति)—

२५] स्वतः तु न ॥

२६) अद्वितीयत्वादसंगत्वाच्चेति भावः ॥ २१ ॥

२७ सर्वगतत्ववत्सर्वसाक्षित्वमपि न वास्तवमित्याह—

२८] अंतः वा बहिः वा यं सर्वं देशं बुद्धिः परिकल्पयेत् । तद्देशगः साक्षी तथा वस्तुषु योजयेत् ॥ २२ ॥

२९ "तथा वस्तुषु योजयेत्" इत्येतत् प्रपंचयति—

३०] यत् यत् रूपादि बुद्ध्या कल्प्येत । तत् तत् प्रकाशयन् तस्य तस्य साक्षी भवेत् ॥

३१ तर्हि किं तस्य निजं रूपमित्यत आह—

३२] स्वतः वाग्बुद्ध्यगोचरः ॥ २३ ॥

---

२२ ननु देशआदिकके अभाव हुये शास्त्रविषै सर्वगत कहिये सर्वविषै व्यापक औ सर्वके साक्षीपनैका जो कथन है । सो विरोधकूं पावैगा । तहां कहैहैं:—

२३] सर्वदेशकी कल्पनाकरिहीं आत्माकूं सर्वगतपना है ॥

२४ स्वाभाविक कहिये स्वरूपसैंहीं सर्वगतपना क्यूं नहीं होवैगा ? तहां कहैहैं:—

२५] स्वतः कहिये स्वरूपतैं सर्वगतपना नहीं है ॥

२६) आत्माकूं अद्वितीय होनैतैं औ असंग होनैतैं स्वाभाविकसर्वगतपना नहीं है । यह भाव है ॥ २१ ॥

२७ सर्वगतपनैकी न्यांई सर्वसाक्षीपना बी वास्तव नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

२८] अंतर वा बाहिरदेशकूं वा जिस सर्ववस्तुकूं बुद्धि कल्पतीहै । तिस देशविषै स्थित साक्षी कहियेहै तैसैं सर्ववस्तुनविषै योजना करना २२

॥ ३ ॥ बुद्धिकल्पितवस्तुकी साक्षिताके कथनपूर्वक साक्षीका निजरूप ॥

२९ "तैसैं वस्तुनविषै योजना करना" इस २२ श्लोकउक्तकूं वर्णन करैहैं:—

३०] जो जो रूपादिकवस्तु बुद्धिकरि कल्पना करियेहै । तिस तिस वस्तुकूं प्रकाशताहुया तिस तिस वस्तुका साक्षी होवैहै ॥

३१ तब तिसका निजरूप क्या है ? तहां कहैहैं:—

३२] स्वरूपतैं वाणी औ बुद्धिका अविषय है ॥ २३ ॥

टीकांक: ४०३२ टिप्पणांक: ७५१	[३४] कथं तादृङ्मया ग्राह्य इति चेन्[३६] मैव गृह्यताम् । [३८] सर्वग्रहोपसंशांतौ स्वयमेवावशिष्यते ॥ २४ ॥ [४१] न तत्र मानापेक्षास्ति [४३] स्वप्रकाशस्वरूपतः । [४४] तादृग्व्युत्पत्त्यपेक्षा चेच्छ्रुतिं पठ गुरोर्मुखात् २५	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११४० ११४१

३३ अवाङ्मनसगोचरत्वे मुमुक्षुणा न गृह्येतेति शंकते (कथमिति)—

३४] **तादृक् मया कथं ग्राह्यः इति चेत् ।**

३५ अग्राह्यत्वमिष्टमेवेत्याह—

३६] **मा एव गृह्यताम् ॥**

३७ नन्वात्मनो "विचारेण विनष्टायां मायायां शिष्यते स्वयम्" इत्युक्तं परमात्मावशेषणं न सिध्येदित्यत आह—

३८] **सर्वग्रहोपसंशांतौ स्वयं एव अवशिष्यते ॥**

३९) स्वात्मातिरिक्तस्य द्वैतस्य मिथ्यात्वनिश्चयेन तत्प्रतीत्युपशांतौ स्वात्मा एव सत्यतया अवशिष्यते इति भावः ॥ २४ ॥

४० यद्यप्युक्तन्यायेन स्वात्मा परिशिष्यते तथापि तदापरोक्ष्याय किंचित्प्रमाणमपेक्षितमित्यत आह (न तत्रेति)—

४१] **तत्र मानापेक्षा न अस्ति ॥**

॥ ४ ॥ श्लोक २३ उक्त निजरूपकी अग्राह्यताकी इष्टापत्तिपूर्वक । श्लोक २३ उक्त परमात्माके अवशेषका कथन ॥

३३ वाणी अरु मनके अविषय हुये मुमुक्षुकरि ग्रहण नहीं होवैगा । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

३४] **तैसा मनवाणीका अविषय साक्षी मेरेकरि कैसैं ग्रहण करनैकूं योग्य है? ऐसैं जो कहै ।**

३५ अग्राह्यपना इष्टहीं है । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं—

३६] **तौ मति ग्रहण करो ॥**

३७ ननु "आत्माके विचारकरि मायाके नाश हुये । आप परमात्माहीं शेष रहताहै" ऐसैं तृतीयश्लोकविषै कह्या जो परमात्माका अवशेष रहना । सो नहीं सिद्ध होवैगा । तहां कहैहैं:—

३८] **सर्वग्रहकी कहिये सर्वप्रतीतिकी सम्यक्शांतिके हुये आपहीं अवशेष रहताहै ॥**

३९) स्वात्मातैं भिन्न द्वैतके मिथ्यापनैके निश्चयकरि तिस द्वैतकी प्रतीतिकी उपरतिके हुये स्वात्माहीं सत्यपनैकरि अवशेष रहताहै। यह भाव है ॥ २४ ॥

॥ ५ ॥ प्रमाणअपेक्षारहित स्वप्रकाशवस्तुकें श्रुतिकरि उत्तमअधिकारीकूं बोधनका उपाय ॥

४० यद्यपि श्लोक २४ उक्त न्यायकरि स्वात्मा परिशेषका विषय होवैहै । तथापि तिसके अपरोक्ष करनैअर्थ कछुक प्रमाण अपेक्षित है । तहां कहैहैं:—

४१] **तिस स्वात्माविषै प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है ॥**

५१ स्वयंप्रकाशरूप आत्माकूं माननैहारे हमकूं तिसका नहीं ग्रहण (विषय) करना इष्ट है औ शब्दकी लक्षणावृत्तिकरि औ मनकी वृत्तिव्याप्तिकरि मनआदिकका साक्षी स्वयंप्रकाशरूप सो आत्मा जानना योग्य है ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११४२

यँदि सर्वगृहत्यागोऽशक्यस्तर्हि धियं व्रज ।
शरणं तँदधीनोंऽतर्बहिर्वैषोऽनुभूयताम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीपंचदश्यां नाटकदीपः ॥ १० ॥

टीकांकः ४०४२ टिप्पणांकः ७५२

४२ तत्र हेतुमाह—

४३] स्वप्रकाशस्वरूपतः ॥

४४ नन्वात्मनः स्वप्रकाशतया स्वतः स्फूर्तौ मानं नापेक्ष्यत इति व्युत्पत्तिसिद्ध्ये मानमपेक्षितमित्याशंक्य श्रुतिरेवात्र प्रमाणमित्याह—

४५] तादृग्व्युत्पत्त्यपेक्षा चेत् गुरोः मुखात् श्रुतिं पठ ॥ २५ ॥

४६ एवमुत्तमाधिकारिण आत्मानुभवोपायमभिधाय मंदाधिकारिणस्तं दर्शयति (यदीति)—

४७] सर्वगृहत्यागः यदि अशक्यः। तर्हि धियं शरणं व्रज ॥

४८ बुद्धिशरणत्वे किं फलमित्यत आह—

४९] तदधीनः अंतः वा बहिः एषः अनुभूयताम् ॥

४२ तिसविषै हेतु कहैहैं:—

४३] स्वप्रकाशस्वरूप होनैतैं ॥

४४ ननु "आत्माकी स्वप्रकाशताकरि आपहींतैं स्फूर्तिविषै प्रमाण अपेक्षित नहीं है" ऐसैं बोधकी सिद्धिअर्थ प्रमाण अपेक्षित है। यह आशंकाकरि श्रुतिहीं इहां प्रमाण है । ऐसैं कहैहैं:—

४५] तैसैं बोधकी अपेक्षा जो होवै तौ ब्रह्मनिष्ठगुरुके मुखतैं श्रुतिकूं पठन कर ॥ २५ ॥

॥ ६ ॥ मंदअधिकारीकूं आत्माके अनुभवका उपाय ॥

४६ ऐसैं उत्तमाधिकारीकूं आत्माके अनुभवके उपायकूं कहिके। अब मंदअधिकारीकूं तिस आत्मानुभवके उपायकूं दिखावैहैं:—

४७] सर्वप्रतीतिका त्याग जब अशक्य है। तब बुद्धिके प्रति शरण जावहु कहिये लँक्ष्य करहु ॥

४८ बुद्धिके शरण होनैविषै क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

४९] तिस बुद्धिके अधीन अंतर वा बाहिर यह परमात्मा अनुभव करना ॥

५२ जैसैं "शाखाविषै चंद्र है" इस वचनकूं सुनिके स्थूलदृष्टिवाला पुरुष । शाखाकूं लक्ष्यकरिके पीछे धर्मसहित शाखाकी दृष्टिकूं छोडिके शाखाके समीप स्थित होनैकरि शाखाके आधीन चंद्रकूं देखताहै । तैसैं मंदबुद्धिवाला अधिकारी । गुरुके उपदेशतैं बुद्धिकूं लक्ष्यकरिके बाह्यअंतर धर्मसहित बुद्धिकी दृष्टिकूं छोडिके अधिष्ठान साक्षीरूपकरि बुद्धिके समीप स्थित होनैंकरि बुद्धिके आधीन हुयेकी न्याईं जो परमात्मा है। ताकूं स्वस्वरूपकरि अनुभव करताहै ॥

५०) बुद्ध्या यद्यत्परिकल्प्यते बाह्यमांतरं वा तस्य तस्य साक्षित्वेन तदधीनः परमात्मा तथैव अनुभूयतां इत्यर्थः ॥२६॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिते पंचदशीप्रकरणे नाटकदीपव्याख्या समाप्ता ॥ १० ॥

---

५०) बुद्धिकरि जो जो बाह्य वा आंतरवस्तु च्यारीऔरतैं कल्पना करियेहै। तिस तिस वस्तुका साक्षी होनैंकरि तिस बुद्धिके अधीन परमात्मा है। सो तैसैं साक्षीपनैंकरिहीं अनुभव करना। यह अर्थ है ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या नाटकदीपस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ १० ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ एकादशं प्रकरणम् ॥ ११ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांक: ११४२

[५२] ब्रह्मानंदं प्रवक्ष्यामि ज्ञाते तस्मिन्नशेषतः ।
ऐहिकामुष्मिकानर्थव्रातं हित्वा सुखायते ॥ १ ॥

(अस्य व्याख्या ६५२ पृष्ठोपरि द्रष्टव्या)

टीकांक: ॐ टिप्पणांक: ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
योगानंदस्य व्याख्यानं ब्रह्मानंदगतस्य हि ॥१॥

॥ टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ॥

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
ब्रह्मानंदाभिधं ग्रंथं व्याकुर्वे बोधसिद्धये ॥१॥

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदगत योगानंदकी तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ ११ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमनकरिके पंचदशीके तीन वा पांचअध्यायरूप ब्रह्मानंद-नामग्रंथगत योगानंदनामप्रकरणके व्याख्यान-कूं नरभाषाकरि मैं स्पष्ट करूंहूं ॥ १ ॥

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीभारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दोनूंमुनीश्वरनकूं नमनकरिके बोधकी सिद्धि-अर्थ मैं ब्रह्मानंदनामक ग्रंथकूं व्याख्यान करूंहूं ॥ १ ॥

* ब्रह्मानंदका प्रतिपादक ब्रह्मानंदनामकजो तीन वा पांच-अध्यायरूप ग्रंथ है। तिसके अंतर्गतजो चित्तकी एकाग्रतारूप योगकरि आविर्भूत कहिये प्रगट होनैयोग्य आनंदका प्रतिपादक प्रकरण। सो योगानंद कहियेहै ॥

५१ चिकीर्षितग्रंथस्य निष्प्रत्यूहपरिपूरणाय परिपंथिकल्मषनिवृत्तये अभिमतदेवतातत्त्वानुसंधानलक्षणमंगलमाचरन् श्रोतृप्रवृत्तिसिद्ध्ये सप्रयोजनमभिधेयमाविष्कुर्वन् ग्रंथारंभं प्रतिजानीते—

५२] ब्रह्मानंदं प्रवक्ष्यामि । तस्मिन् ज्ञाते ऐहिकामुष्मिकानर्थव्रातं अशेषतः हित्वा सुखायते ॥

५३) "निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः । ये मंदास्तेऽनुकंप्यंते सविशेषनिरूपणैः" इति सविशेषब्रह्मरूपाणां देवतानां तत्त्वस्य निर्विशेषब्रह्मरूपत्वाभिधानाद्ब्रह्मणश्च "आनंदो ब्रह्म" इत्यादिश्रुतिभिरानंदरूपताभिधानाद्ब्रह्मानंदं इत्यानंदरूपस्य ब्रह्मणो वाचकशब्दप्रयोगेण "यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति" इति श्रुतिप्रोक्तन्यायेन ब्रह्मानुसंधानलक्षणं मंगलाचरणं सिद्धं । ब्रह्मणश्च सर्ववेदांतप्रतिपाद्यत्वात् तत्प्रकरणरूपस्य अस्य ग्रंथस्यापि तदेव विषय इति ब्रह्मशब्दप्रयोगेण

॥ १ ॥ श्रुतिकरि ब्रह्मज्ञानकूं अनर्थनिवृत्ति औ परमानंदप्राप्तिकी कारणताके कथनपूर्वक ब्रह्मकी आनंदता । अद्वितीयता औ स्वप्रकाशताकी सिद्धि ॥ ४०५१–४२०८ ॥

॥ १ ॥ अनेकश्रुतिकरि ब्रह्मज्ञानकूं अनर्थनिवृत्ति औ परमानंदप्राप्तिकी हेतुताका कथन ॥४०५१–४१९७॥

॥ १ ॥ फलसहित ब्रह्मानंदग्रंथके आरंभकी प्रतिज्ञा ॥

५१ प्रारंभ करनैकूं इच्छित ब्रह्मानंदग्रंथकी निर्विघ्नपरिपूर्णताअर्थ औ विघ्नरूप पापनकी निवृत्तिअर्थ इष्टदेवताके स्वरूपके अनुसंधानरूप मंगलकूं आचरतेहुये आचार्य जो ग्रंथकर्ता श्रीभारतीतीर्थस्वामी सो ग्रंथविषै श्रोताकी प्रवृत्तिकी सिद्धिअर्थ प्रयोजनसहित ग्रंथके विषयकूं प्रगट करतेहुये ग्रंथके आरंभकी प्रतिज्ञा करैहैं:—

५२] ब्रह्मानंदकूं कथन करूंहूं । तिस ब्रह्मानंदके ज्ञात हुये यह पुरुष इसलोकसंबंधी औ परलोकसंबंधी अनर्थनके समूहकूं त्यागिके सुखी होवैहै ॥

५३) "निर्विशेष कहिये निरुपाधिक ऐसै परब्रह्मकूं साक्षात् कहिये अपरोक्ष करनैकूं असमर्थ जे मंदबुद्धिवाले अधिकारी हैं । वे सविशेष जो सोपाधिकब्रह्म ताके निरूपणनकरि कृपाके विषय करियेहैं" इस शास्त्रके वचनकरि सविशेषब्रह्मरूप जे विष्णुआदिकदेवता हैं । तिनका तत्त्व जो वास्तवस्वरूप ताकी निर्विशेषब्रह्मरूपताके कथनतैं औ "आनंद ब्रह्म है" इत्यादिश्रुतिकरि ब्रह्मकी आनंदरूपताके कथनतैं । "ब्रह्मानंद" इस आनंदरूप ब्रह्मके वाचक शब्दके उच्चारणकरि "जिसकूं मनकरि ध्यावताहै तिसकूं वाणीकरि कहताहै" इस श्रुतिउक्तन्यायसैं ब्रह्मके स्मरणरूप मंगलका आचरण सिद्ध भया औ ब्रह्मकूं सर्ववेदांतनविषै प्रतिपादन करनैयोग्य विषयरूप होनैतैं । तिस वेदांतशास्त्रके प्रकरणरूप इस ब्रह्मानंदनामकग्रंथका बी सोई ब्रह्महीं विषय

५३ मूलके स्पर्श किये वृक्षगतशाखापत्रआदिकसर्वअंगनके स्पर्शकी न्याई विष्णुआदिकनके अधिष्ठान निर्विशेषब्रह्मके कथनतैं विष्णुआदिकसर्वदेवनका मंगलाचरण बी अर्थतैं सिद्ध भया ।

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः ११४४	ब्रह्मविदाप्नोति परं तरति शोकमात्मवित्। रसो ब्रह्म रसं लब्ध्वानंदी भवति नान्यथा ॥२॥	टीकांकः ४०५४ टिप्पणांकः ॐ

विषयश्चापि सूचितः। ऐहिक इत्युत्तरार्धेन अनिष्टनिवृत्तीष्टप्राप्तिरूपं प्रयोजनद्वयं मुखत एवोक्तं। ब्रह्मानंदं ब्रह्म चासावानंदश्चेति ब्रह्मानंदः वाच्यवाचकयोरभेदोपचारात्तत्प्रतिपादको ग्रंथोऽपि ब्रह्मानंदस्तं **प्रवक्ष्यामि** इति। **तस्मिन्** प्रतिपाद्यप्रतिपादकरूपे ब्रह्मानंदे **ज्ञाते** अवगते सति। **ऐहिकामुष्मिकानर्थव्रातं** ऐहिकानां इह लोके भवानां देहपुत्रादिष्वहंममाभिमानप्रयुक्तानां आध्यात्मिकादितापानां आमुष्मिकाणां अमुष्मिन् परलोके भवानां च तेषामनर्थानां व्रातः समूहः तं अशेषतः निःशेषं यथा भवति तथा हित्वा परित्यज्य सुखायते सुखरूपं ब्रह्मैव भवति ॥ १ ॥

५४ ब्रह्मज्ञानस्य अनिष्टनिवृत्तीष्टप्राप्तिहेतुत्वे बहूनि श्रुतिस्मृतिवाक्यानि प्रमाणानि संतीति प्रदर्शयितुकामः तावत् "ब्रह्मवित् आप्नोति परं। श्रुतं ह्येवमेव भगवद्दृशेभ्यः तरति शोकमात्मवित्" इति "सोऽहं भगवः शोचामि। तं मा भगवान् शोकस्य पारं तारयतु" इति वाक्यद्वयमर्थतः पठति—

है। ऐसैं ब्रह्मशब्दके उच्चारणकरि ग्रंथका विषय वी सूचन किया औ "ऐहिक" इत्यादि इस श्लोकके उत्तरार्द्धकरि अनिष्ट जो अनर्थ ताकी निवृत्ति औ इष्ट जो परमानंद ताकी प्राप्तिरूप दोनूंप्रकारका प्रयोजन ग्रंथकारनैं मुखतैंहीं कथन किया औ ब्रह्मरूप जो यह आनंद सो कहिये ब्रह्मानंद। यह ब्रह्मानंदपदका वाच्य अर्थ है अरु वाच्य जो प्रतिपाद्य ब्रह्म औ वाचक जो प्रतिपादक ग्रंथ इन दोनूंके अभेदके उपचारतें कहिये आरोपकरि कथनतें तिस वाच्यअर्थरूप ब्रह्मानंदका प्रतिपादक ग्रंथ वी ब्रह्मानंद है। तिस वाच्यवाचक उभयरूप ब्रह्मानंदकूं कहताहूं ॥ तिस प्रतिपाद्य औ प्रतिपादकरूप ब्रह्मानंदके जानेहुये यह पुरुष इसलोकविषै होनैहारे देहपुत्रादिकविषै अहंममअभिमानके किये अध्यात्मआदिकतापरूप औ परलोकविषै होनैहारे मत्सरादिरूप तिन अनर्थनका जो समूह है। तिसकूं संपूर्ण जैसैं त्याज्य होवै तैसैं परित्याग करीके सुखी कहिये सुखरूप ब्रह्महीं होवैहै ॥ १ ॥

॥ २ ॥ अन्वयद्वारा ब्रह्मज्ञानकरि इष्टप्राप्ति औ अनिष्टनिवृत्तिपर श्रुतिवाक्य ॥

५४ ब्रह्मज्ञानकूं अनिष्टनिवृत्ति औ इष्टप्राप्तिकी कारणता है। तिसविषै बहुतश्रुति औ स्मृतिके वाक्य प्रमाण हैं। ऐसैं दिखावनैंकूं इच्छतेहुये आचार्य। प्रथम "ब्रह्मवित् परब्रह्मकूं पावताहै" यह तैत्तिरीयका वाक्य है औ "आत्मवित् शोक जो अकृतार्थबुद्धिवान्तारूप मनका ताप। ताकूं तरताहै कहिये उल्लंघन करताहै' ऐसैं जातैं मैंनैं तुमसारिखे पुरुषनतें सुन्याहै कहिये शास्त्रकरि जान्याहै। यातैं हे भगवन्! सो शास्त्रज्ञानवान् मैं अनात्मवेत्ता होनैतैं अकृतार्थबुद्धिकरि सर्वदा संतापरूप शोककूं पावताहूं। तिस मुजकूं भगवान् आप शोकरूप सागरके पारके ताईं आत्मज्ञानरूप नौकाकरि तारहु कहिये कृतार्थबुद्धिकूं संपादन करहु" यह छांदोग्यके सप्तमअध्यायगत सनत्कुमारके प्रति नारदका वाक्य है। इन दोनूं श्रुतिवाक्यनकूं अर्थतें पठन करैहैं:—

५५] ब्रह्मवित् परं आप्नोति । च आत्मवित् शोकं तरति ॥

५६) ब्रह्म वेत्तीति ब्रह्मवित् । परं उत्कृष्टमानंदरूपं ब्रह्म प्राप्नोति । आत्मवित् भूमशब्दवाच्यं देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्यं आत्मानं वेत्तीत्यात्मवित् । शोकं स्वसंसृष्टं पुरुषं शोचयतीति शोकः तमोमूलः संसारस्तं तरति अतिक्रामति ॥

५७ ननूदाहृततैत्तिरीयकश्रुतिवाक्ये ब्रह्मज्ञानस्य परप्राप्तिहेतुतैवावभासते नानंदप्राप्तिहेतुतेत्याशंक्य आनंदप्राप्तिहेतुत्वप्रतिपादनपरं "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति" इति तदीयमेव वाक्यमर्थतः पठति—

५८] रसः रसं ब्रह्म लब्ध्वा आनंदीभवति ॥

५९) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इति प्रकरणादौ ब्रह्मात्मशब्दाभ्यामभिहितो य आत्माऽसौ रसः सार आनंदरूप इत्यर्थः । रसं आनंदरूपं ब्रह्म लब्ध्वा "ब्रह्माहमस्मि" इति ज्ञानेन प्राप्य आनंदी भवति इति अपरिच्छिन्ननिरतिशयसुखवान् भवति ॥

६० उक्तमर्थं व्यतिरेकप्रदर्शनेन द्रढयति (नान्यथेति)—

६१] अन्यथा न ॥

६२) अन्यथा ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानं विहाय साधनांतरानुष्ठानेन नानंदी भवतीत्यर्थः ॥२॥

५५] ब्रह्मवित् परब्रह्मकूं पावताहै औ आत्मवित् शोककूं तरताहै ॥

५६) ब्रह्मकूं जो जानताहै । सो ब्रह्मवित् कहियेहै । सो पर नाम उत्कृष्ट आनंदरूप ब्रह्म ताकूं पावताहै औ भूमाशब्दके वाच्य देशकालवस्तुके किये परिच्छेदतैं रहित आत्माकूं जो जानताहै । सो आत्मवित् कहियेहै । सो अपनै संबंधके प्रति प्राप्त भये पुरुषकूं शोक करनैहारा जो शोक कहिये अज्ञानरूप मूलवाला संसार है । तिसकूं तरताहै ॥

५७ ननु उदाहरण किये तैत्तिरीयश्रुतिके वाक्यविषै ब्रह्मज्ञानकूं परके प्राप्तिकी हेतुताहीं भासतीहै । आनंदके प्राप्तिकी हेतुता नहीं। यह आशंकाकरि ब्रह्मज्ञानकूं आनंदप्राप्तिकी हेतुताके प्रतिपादनपरायण जो "रस कहिये साररूपहीं रस कहिये ब्रह्मात्मा है। रस जो आनंदरूप ब्रह्म ताकूंहीं यह पुरुष पायके आनंदी होवैहै" यह तिस तैत्तिरीयश्रुतिकाहीं वाक्य है । तिसकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

५८] रस ब्रह्मात्मा है । रसरूप ब्रह्मकूं पायके पुरुष आनंदी होवैहै ॥

५९) "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है ।' तिस मंत्रभागउक्त वा इस ब्राह्मणभागउक्त आत्मा जो परमात्मा तातैं आकाश उत्पन्न भया" इस प्रसंगकी आदिविषै ब्रह्म औ आत्माशब्दकरि उक्त जो आत्मा है । सो रस कहिये आनंदरूप सार है। यह अर्थ है ॥ रस जो आनंदरूप ब्रह्म ताकूं पायके कहिये "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानकरि प्राप्त होयके यह पुरुष आनंदी कहिये अपरिच्छिन्ननिरतिशयसुखवान् होवैहै ॥

६० उक्तअर्थकूं व्यतिरेकके दिखावनैंकरि दृढ करैहैं:—

६१] अन्यथा नहीं ॥

६२) अन्यथा कहिये ब्रह्मआत्माकी एकताके ज्ञानकूं छोडिके अन्यसाधनके अनुष्ठानकरि आनंदवान् नहीं होवैहै। यह अर्थ है॥२॥

---

५४ द्रव्य जो कर्ममैं उपयोगी वस्तु औ देवता जो इंद्रादिक अरु ब्रह्म ताका बोधक जो वेदका भाग। सो मंत्रभाग कहियेहै । ताहीकूं संहिता बी कहैहैं ।

५५ विधेय जो विधान करनैयोग्य अर्थ ताका बोधक जो वेदका भाग। सो ब्राह्मणभाग कहियेहै । ताहीके अंतर्गत उपनिषद्भाग औ आरण्यकभाग हैं ।

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः ११४५	६४ प्रतिष्ठां विंदते स्वस्मिन्यदा स्यादथ सोऽभयः । कुरुतेऽस्मिन्नंतरं चेदथ तस्य भयं भवेत् ॥ ३ ॥	टीकांकः ४०६२ टिप्पणांकः ॐ

६३ एवमन्वयमुखेनेष्टप्राप्त्यनिष्टनिवृत्तिप्रतिपादनपराणि वाक्यानि प्रदर्श्य अन्वयव्यतिरेकाभ्यामनर्थनिवृत्तिप्रदर्शनपरं "यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विंदतेऽथ सोऽभयं गतो भवति"। "यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमंतरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति" इति वाक्यद्वयमर्थतोऽनुक्रामति (प्रतिष्ठामिति)—

६४] यदा स्वस्मिन् प्रतिष्ठां विंदते। अथ सः अभयः स्यात् । अस्मिन् अंतरं कुरुते चेत् । अथ तस्य भयं भवेत् ॥

६५) अस्यायमर्थः । यदा यस्मिन् काले। हीति विद्वत्प्रसिद्धिप्रदर्शनपरो निपातः । एवेत्ययमेवानर्थनिवृत्त्युपायो नान्य इति नियमनार्थः । एष मुमुक्षुः । एतस्मिन्विद्वदनुभवगम्ये । अदृश्ये इंद्रियागोचरे । अनात्म्ये अनात्मीये स्वरूपतया स्वकीयत्वरहिते । अनिरुक्ते निरुक्तं निर्वचनं शब्देनाभिधानं यत्र नास्ति तदनिरुक्तं तस्मिन् । अनिलयने निलीयतेऽस्मिन्निति निलयनमाधारः स न विद्यते यस्य तस्मिन्स्वमहिम्नि स्थित इत्यर्थः ॥ अभयमद्वितीयं "द्वितीयाद्वै भयं भवति" इति श्रुतेः भयशब्देनात्र

॥ ३ ॥ अन्वयव्यतिरेकसैं अनर्थनिवृत्तिपर श्रुतिवाक्य ॥

६३ ऐसैं अन्वयरूप द्वारसैं ब्रह्मज्ञानकरि इष्टकी प्राप्ति औ अनिष्टकी निवृत्तिके प्रतिपादनपरायणश्रुतिवाक्यकूं दिखायके । अब क्रमतैं अन्वय औ व्यतिरेककरि अनर्थनिवृत्तिके दिखावनैके परायण "जबहीं यह मुमुक्षु प्रसिद्ध इस अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयनब्रह्मविषै अभय कहिये अभिन्न ऐसी प्रतिष्ठा जो स्थिति ताकूं पावताहै । तब सो विद्वान् अभयकूं प्राप्त होवैहै" औ "जबहीं यह पुरुष प्रसिद्ध इस ब्रह्मविषै अल्प बी अंतरकूं कहिये भेदकूं करताहै। तब तिसकूं भय होवैहै।।" इन दोनूंवाक्यनकूं अर्थतैं क्रमकरि कहैहैं:—

६४] जब यह मुमुक्षु स्वस्वरूपविषै स्थितिकूं पावताहै । तब सो अभय होवैहै औ जब पुरुष इस स्वस्वरूपविषै अंतर जो भेद ताकूं करताहै । तब तिसकूं भय होवैहै ॥

६५) इस मूलश्लोकका यह अर्थ है:— इहां प्रसिद्धअर्थवाला जो हिशब्द है । सो विद्वज्जनोंकी प्रसिद्धिके दिखावनैके परायण है औ निश्चयरूप अर्थका वाची अन्यका निषेधक हीशब्दका पर्याय एवशब्द है। सो यह अद्वितीय आत्माका ज्ञानहीं अनर्थनिवृत्तिका उपाय है अन्य नहीं । इस नियम करनैके अर्थ है । यातैं जब कहिये जिसकालविषैहीं यह मुमुक्षु इस विद्वानोंके अनुभवसैं गम्य अदृश्य कहिये इंद्रियके अगोचर । अनात्म्य कहिये स्वस्वरूप होनैकरि ममताका अविषय औ अनिरुक्त कहिये निर्वचन जो शब्दकरि कथन सो जहां नहीं है । ऐसैं । औ अनिलयन कहिये जिसविषै लय होवै ऐसा जो निलय कहिये आधार सो जिसका नहीं है। ऐसैं स्वमहिमामैं स्थित प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मविषै अभय नाम

टीकांकः ४०६६ टिप्पणांकः ७५६

वायुः सूर्यो वह्निरिंद्रो मृत्युर्जन्मांतरेंऽतरम् ।
कृत्वा धर्मं विजानंतोऽप्यस्माद्भीत्या चरंति हि ४

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्रोकांकः ११४६

भयहेतुर्भेदो लक्ष्यते । न विद्यते भयं भेदो यथा भवति तथा । प्रतिष्ठां प्रकर्षेण संशयविपर्ययराहित्येन स्थितिः "ब्रह्माहमस्मि" इति अवस्थानं प्रतिष्ठा । तां विंदते गुरूपसत्त्यादिना श्रवणादिकं कृत्वा लभते । अथ तदानीमेव स एवं विद्वानभयं भयरहितं मोक्षरूपमद्वितीयं ब्रह्म गतः प्राप्तो भवति । "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" इति श्रुतेः यदा यस्मिन्नेव काले एष पूर्वोक्तः एतस्मिन्नदृश्यत्वादिगुणके प्रत्यगभिन्ने ब्रह्मणि । उदिति निपातः अपिशब्दार्थः अरमुदल्पमपि अंतरं भेदं उपास्योपासकादिलक्षणं कुरुते पश्यति । धातूनामनेकार्थत्वादथ तदानीमेव तस्य भेददर्शिनो भयं संसारप्रयुक्तं दुःखं भवति ॥३॥

६६ भेददर्शिनां भयं भवतीत्येतद्दृढीकर्तुं ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानरहितानां वाय्वादीनां भयप्रदर्शनपरं "भीषाऽस्माद्वातः पवते" इत्यादिमंत्रमर्थतः पठति—

६७] वायुः सूर्यः वह्निः इंद्रः मृत्युः जन्मांतरे धर्मं विजानंतः अपि अंतरं कृत्वा अस्मात् भीत्या चरंति हि ॥

६८) वाय्वादयो जगन्नियामकत्वेन प्रसिद्धाः पंचापि देवताः । अतीते जन्मनि धर्मं इष्टा-

---

अद्वितीय कहिये "द्वितीयतैं निश्चयकरि भय होवैहै" इस श्रुतितैं भयशब्दकरि इहां भयका हेतु भेद लखियेहै। यातैं भय जो भेद सो जैसैं होवै नहीं तैसैं प्रतिष्ठा जो संशयविपर्ययसैं रहितपनैंकरि "अहं ब्रह्मास्मि" इस अवस्थानरूप स्थिति । ताकूं गुरुकी उपसत्तिआदिकसैं श्रवणादिककूं करीके पावताहै । तबहीं सो ऐसैं जाननैहारा विद्वान् अभय जो भयरहित मोक्षरूप अद्वितीयब्रह्म ताकूं प्राप्त होवैहै। "जो ब्रह्मकूं जानताहै सो ब्रह्महीं होवैहै" इस श्रुतितैं औ जब कहिये जिसीहीं कालविषै यह पूर्वउक्तमुमुक्षु इस अदृश्यपनैआदिकगुणकरि युक्त प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मविषै अल्प बी अंतर जो उपास्यउपासकआदिरूप भेद ताकूं करताहै कहिये देखताहै । तबहीं तिस भेददर्शीपुरुषकूं भय जो संसारका किया दुःख। सो होवैहै ३ ॥ ४ ॥ भेददर्शनकरि भयसद्भावकी दृढताअर्थ वायुआदिकनकूं भय दिखावनैंपर श्रुतिमंत्र ॥

६६ "भेददर्शिनकूं भय होवैहै" इसअर्थके दृढ करनैकूं ब्रह्मआत्माकी एकताके ज्ञानसैं रहित वायु आदिकनकूं भयके दिखावनै परायण "इस परमात्मातैं भयकरि वायु चलताहै" इत्यादि इस वेदके मंत्रकूं अर्थतैं पठन करैहैं ॥

६७] वायु सूर्य अग्नि इंद्र औ मृत्यु जो यम । ये जन्मांतरविषै धर्मकूं जानतेहुये बी भेदकूं करीके इस ब्रह्मतैं भयकरि विचरतेहैं । यह प्रसिद्ध है ॥

६८) वायुआदिक जे जगत्‌के नियामक होनैंकरि प्रसिद्ध पांच बी देवता हैं । वे पूर्वके जन्मविषै इष्टापूर्तआदिरूप धर्मकूं ज्ञानपूर्वक

---

५६ उपसत्तिशब्दका अर्थ देखो ६३५ टिप्पणविषै ।

५७ यज्ञयागादि । अश्वत्थ वट उद्यापनादिक । प्रायश्चित्त वेदमंत्रादिपठन । कूपबंधन औ वृक्षादिरोपण इत्यादिक जो धर्मसंबंधी कर्म । सो इष्टापूर्त्त कहियेहै ।

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः 1147	ॐआनंदं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन । ॐएतमेव तपेन्नैषा चिंता कर्माग्निसंभृता ॥ ५ ॥	टीकांकः ४०६९ टिप्पणांकः ॐ

पूर्तादिलक्षणं। विजानंतोऽपि ज्ञानपूर्वकमनुष्ठितवंतोऽपि अंतरं प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कृत्वा अस्मात् ब्रह्मणो भीत्या अस्मिन्वाय्वादिजन्मनि चरंति स्वस्वव्यापारेषु सदा प्रवर्तंते। हिशब्देन "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिंद्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः" इति कठश्रुतौ यमेनोक्तां प्रसिद्धिं दर्शयति ॥४॥

६९ ननु "तरति शोकमात्मवित्" इत्यादिपूदाहृतवाक्येषु ब्रह्मानंदज्ञानस्यानर्थनिवृत्तिहेतुत्वं स्पष्टं नावभासत इत्याशंक्य तथा प्रतिपादनपरं वाक्यमुदाहरति (आनंदमिति)—

७०] ब्रह्मणः आनंदं विद्वान् कुतश्चन न बिभेति ॥

७१) "राहोः शिरः" इत्यादिवत् भेदव्यपदेश औपचारिकः। ब्रह्मणः स्वरूपभूतं आनंदं विद्वान् अपरोक्षतया जानन् पुरुषः। कुतश्चन कस्मादपि ऐहिकभयहेतोर्व्याघ्रादेः। पारलौकिकभयहेतोः पापादेर्वा। न बिभेति भयं न प्राप्नोति ॥

७२ ननु तत्त्वविदः पापादेर्भयं नास्तीत्येतत्कुतोऽवगम्यते इत्याशंक्य तत्प्रतिपादकं "एतꣳह वाव न तपति किमहꣳसाधु नाकरवं किमहं पापमकरवम्" इति वाक्यमर्थतः पठति (एतमिति)—

अनुष्ठान करतेहुये बी प्रत्यगात्मा औ ब्रह्मके भेदकूं करीके इस ब्रह्मतैं भयकरि इस वायुआदिकके जन्मविषै अपनै अपनै व्यापारविषै सदा वर्ततेहैं॥ मूलविषै जो हिशब्द है। तिसकरि "इस ब्रह्मके भयतैं अग्नि तपताहै औ इसके भयत सूर्य तपताहै अरु इसके भयतैं इंद्र औ वायु औ पांचवां मृत्यु धावताहैं" इस कठश्रुतिविषै नचिकेताशिष्यके ताईं यमराजानैं कथन करी प्रसिद्धिकूं ग्रंथकार दिखावैहैं ॥४॥

॥ ९ ॥ ब्रह्मज्ञानकूं अनर्थनिवृत्तिकी हेतुता है। ताकी स्पष्टतापर श्रुति ॥

६९ ननु "आत्मवित् शोककूं तरताहै।" इत्यादिकउदाहरण किये वाक्यनविषै ब्रह्मानंदके ज्ञानकूं अनर्थनिवृत्तिकी हेतुता स्पष्ट नहीं भासतीहै। यह आशंकाकरि तिसप्रकार प्रतिपादनके परायण श्रुतिवाक्यकूं उदाहरण करैहैं:-

७०] ब्रह्मके आनंदकूं जानताहुया पुरुष किसीतैं बी भयकूं नहीं पावताहै ॥

७१) "राहुका शिर है" इत्यादिककी न्याईं "ब्रह्मके आनंदकूं" यह भेदका कथन उपचारकरि कियाहै। यातैं ब्रह्मके स्वरूपभूत आनंदकूं विद्वान् जो अपरोक्षपनैकरि जाननैहारा पुरुष। सो किसीतैं बी कहिये इस लोकसंबंधी भयके हेतु व्याघ्रादिकतैं वा परलोकसंबंधी भयके हेतु पापादिकतैं भयकूं नहीं पावताहै

७२ ननु तत्त्ववेत्ताकूं पापादिकतैं भय नहीं है। यह काहेतैं जानियेहै? यह आशंकाकरि तिस ज्ञानीकूं पापादिकतैं भयके अभावके प्रतिपादक "मैं साधु जो पुण्यकर्म ताकूं काहेतैं न करताभया औ मैं पापकूं काहेतैं करताभया।' यह चिंता इस ज्ञानीकूं तपावती नहीं।" इस श्रुतिवाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

टीकांकः ४०७३ टिप्पणांकः ॐ

एवं विद्वान्कर्मणी द्वे हित्वात्मानं स्मरेत्सदा ।
कृते च कर्मणी स्वात्मरूपेणैवैष पश्यति ॥ ६ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११४८

७३] कर्माग्निसंभूता एषा चिंता एतं एव न तपेत् ॥

७४) **कर्माग्निसंभूता** पुण्यपापरूपकं कर्मैवाग्निः अकरणकरणाभ्यामग्निवत्संतापहेतुत्वात्तेन संभृता संपादिता । **एषा** "पुण्यं नाकरवं कस्मात् पापं तु कृतवान् कुतः" इत्येवंरूपा **चिंता एतमेव** तत्त्वविदमेव । **न तपेत्** न संतापयेत् । नान्यमविद्वांसं स तु तया चिंतया सदा संतप्यत इत्यर्थः ॥ ५ ॥

७५ पुण्यपापयोरतापकत्वे हेतुप्रदर्शनपरं "स य एवं विद्वानेते आत्मान५ स्पृणुते" "उभे ह्येवैष एते आत्मान५ स्पृणुते" इति वाक्यद्वयमर्थतः पठति—

७६] एवं विद्वान् द्वे कर्मणी हित्वा आत्मानं सदा स्मरेत् । च एषः कृते कर्मणी स्वात्मरूपेण एव पश्यति ॥

७७) स यः कश्चित्पुमान् एवं उक्तेन प्रकारेण "स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एक" इत्यनेन प्रकारेण । **विद्वान्** जानन् प्रवर्तते स एते पुण्यपापे **हित्वा** इत्यध्याहारः। **आत्मानं** ब्रह्माभिन्नं प्रत्यंचं स्पृणुते प्रीणयति **सदा स्मरेत्** । इत्यर्थः ॥ यतः पुण्यपापयोर्मिथ्यात्वानुसंधानेन हानं कृतं अतस्तद्विषया चिंतैव नास्ति कुतस्तन्निमित्तकस्ताप इत्यभिप्रायः । किं च एषः विद्वानेते पूर्वोक्ते

७३] कर्मरूप अग्निकरि संपादन करी यह चिंता इस ज्ञानीहींकूं नहीं तपावतीहै ॥

७४) पुण्यपापरूप कर्महीं अग्नि है । काहेतैं क्रमतैं न करनै औ करनैकरि अग्निकी न्यांई संतापका हेतु होनैतैं तिस कर्मरूप अग्निकरि संपादन करी जो यह "मैं पुण्यकूं काहेतैं न करताभया औ पापकूं तौ काहेतैं करताभया" इस रूपवाली चिंता इस तत्त्ववेत्ताकूंहीं नहीं संताप करतीहै औ अन्यअविद्वानकूं नहीं संताप करतीहै ऐसैं नहीं । किंतु सो अज्ञानी तिस चिंताकरि सदा तपताहै । यह अर्थ है ५ ॥ ६ ॥ ब्रह्मज्ञानीकूं पुण्यपापकी अतापकतामैं हेतु दिखावनैंपर श्रुति ॥

७५ ज्ञानीकूं पुण्यपापकी अतापकताविषै हेतुके दिखावनै परायण "सो जो कोइक पुरुष ऐसैं जानताहुया इन पुण्यपापकूं छोडिके आत्माकूं प्रिय करताहै" कहिये सदा स्मरण करताहै औ "यह ज्ञानी इन पुण्यपाप दोनूंकूं आत्मारूप देखताहै" इन दोनूंवाक्यनकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

७६] ऐसैं विद्वान् दोनूंकर्मकूं छोडिके आत्माकूं सदा स्मरण करताहै औ यह ज्ञानी । किये पापपुण्यरूप कर्मकूं स्वात्मरूपकरिहीं देखताहै ॥

७७) सो जो कोइक पुरुष इस उक्तप्रकारकरि कहिये "सो जो यह परमात्मा पुरुष जो व्यष्टिसंघात तिसविषै है औ जो यह आदित्य जो सूर्यमंडल तिसविषै है । सो एक है" इस श्रुतिउक्तप्रकारकरि विद्वान् कहिये जानताहुया वर्तताहै । सो इन पुण्यपाप दोनूंकूं छोडिके ब्रह्मसैं अभिन्न प्रत्यगात्माकूं सदा स्मरण करैहै । यह अर्थ है ॥ जातैं पुण्यपापका मिथ्यापनैके अनुसंधानकरि नाम ज्ञानकरि त्याग कियाहै । यातैं तिस पुण्यपापकूं विषय करनैहारी चिंताहीं ज्ञानीकूं नहीं है । तब

७९
भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ।
क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ७ ॥

उभे पुण्यपापरूपे कर्मणी देहेंद्रियादिप्रवृत्त्या जनिते । स्वात्मानुरूपेणैव "इदं सर्वं यदयमात्मा" इत्यादिवाक्योक्तप्रकारेण पश्यति जानातीत्यर्थः ॥ अतः स्वात्माभिन्नत्वादप्यतापकत्वमिति भावः ॥ ६ ॥

७८ ननु "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि" इत्यादिशास्त्रसद्भावादनादौ संसारे बहुजन्मोपार्जितेषु पुण्यापुण्यलक्षणेषु कर्मस्वसंख्यातेष्वप्रसिद्धत्वेनात्मतयानुसंधानायोग्येषु सत्सु कथं तद्विषया चिंता न भवेदित्याशंक्य सनिदानानां तेषां तत्त्वज्ञानेन विनाशित्वात्र चिंताजनकत्वमित्यभिप्रायेण हृदयग्रंथ्यादिनिवृत्तिपरं मुंडकादिश्रुतिषु स्थितं वाक्यं पठति (भिद्यत इति)–

७९] परावरे तस्मिन् दृष्टे अस्य हृदयग्रंथिः भिद्यते । सर्वसंशयाः छिद्यंते । च कर्माणि क्षीयंते ॥

८०) परावरे परमपि हिरण्यगर्भादिकं पदमवरं निकृष्टं यस्मात् तस्मिन् परात्मनि दृष्टे साक्षात्कृते । अस्य साक्षात्कारवतः । हृदयस्य बुद्धेश्चिदात्मनश्च ग्रंथिवत् दृढसंश्लेषरूपत्वात् ग्रंथिः अन्योऽन्याध्यासः ।

तिस चिंताका किया ताप कहांसें होवैगा? यह अभिप्राय है ॥ किंवा यह विद्वान् इन पूर्वोक्त दोनूं देहइंद्रियआदिककी प्रवृत्तिसें जनित पुण्यपापरूप कर्मकूं अपनें आत्मारूपकरिहीं "जो यह जगत् है । सो सर्व यह आत्मा है" इत्यादिवाक्यउक्तप्रकारसें देखाहै कहिये जानताहै । यह अर्थ है॥ यातें अपने आत्मासें अभिन्न होनैतें वी पुण्यपापकूं तापकारकता नहीं है । यह भाव हैं ॥ ६ ॥

॥ ७ ॥ तत्त्वज्ञानकरि हृदयग्रंथिआदिककी निवृत्तिपर श्रुति ॥

७८ ननु "नहीं भोग्या जो कर्म है । सो कल्पनकी कोटिशत कहिये सौक्रोडकल्पनकरि वी क्षीण होता नहीं" इत्यादिकशास्त्रवाक्यके सद्भावतैं अनादिसंसारविषै बहुतजन्मकरि संपादन किये औ अप्रसिद्ध होनैकरि आत्मरूपसैं अनुसंधान करनैकूं अयोग्य जे पुण्यपापरूप असंख्यात कर्म हैं । तिनके होते ज्ञानीकूं तिन पुण्यपापरूप कर्मकूं विषय करनैहारी चिंता कैसें नहीं होवैगी? यह आशंकाकरि अज्ञानरूप उपादानसहित तिन कर्मनकूं तत्त्वज्ञानकरि विनाशि होनैतें चिंताकी जनकता नहीं है । इस अभिप्रायकरि हृदयग्रंथिआदिककी निवृत्तिके परायण मुंडकआदिकश्रुतिनविषै स्थित वाक्यकूं पठन करैहैं:–

७९] तिस परावर परमात्माके देखेहुये इस पुरुषका हृदयग्रंथि भेदनकूं पावताहै औ सर्वसंशय छेदन होवैहैं औ कर्म क्षीण होवैहैं ॥

८०) परावर नाम पर कहिये जो उत्कृष्ट वी हिरण्यगर्भआदिकपद । सो है अवर कहिये निकृष्ट जिसतैं। ऐसै तिस परमात्माके साक्षात् किये हुये। इस साक्षात्कारवान्पुरुषका हृदयग्रंथि कहिये हृदय जो बुद्धि औ चिदात्माका ग्रंथिकी न्यांई दृढसंबंधरूप होनैतैं ग्रंथिरूप जो अन्योन्याध्यास है । सो भेदकूं पावताहै

भिद्यते विदीर्यंते विनश्यतीत्यर्थः ॥ सर्वसंशयाः आत्मा देहादिव्यतिरिक्तो न वा। व्यतिरिक्तोऽपि कर्तृत्वादिधर्मयोगी न वा। अकर्तृत्वेऽपि तस्य ब्रह्मणो भेदोऽस्ति न वा। अभेदेऽपि तज्ज्ञानं कर्मादिसहितं मुक्तिसाधनं केवलं वेत्यादयः। छिद्यंते द्वैधीक्रियंते तत्त्वतः साक्षात्कृतस्य वस्तुनः संशयविपर्ययविषयत्वादर्शनादिति भावः ॥ कर्माणि संचितानि पुण्यापुण्यलक्षणानि क्षीयंते स्वनिदानाज्ञानविनाशेन विनश्यंतीति ॥ ७ ॥

कहिये नाश होताहै। यह अर्थ है ॥ औ सर्वसंशय कहिये आत्मा देहादिकतैं भिन्न है वा नहीं। भिन्न हुया बी कर्त्तापनैआदिकधर्मवाला है वा नहीं। अकर्ता हुया बी तिस आत्माका ब्रह्मतैं भेद है वा नहीं। अभेदके हुये बी तिस ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माका ज्ञान कर्मादिकसहित मुक्तिका साधन है वा केवल है? इत्यादिकसंशय हैं वे छेदनकूं पावतेहैं। काहेतैं यथार्थस्वरूपकरि साक्षात् किये वस्तूकूं संशय औ विपर्ययकी विषयताके अदर्शनतैं। यह भाव है ॥ औ कर्म जो संचित पुण्यअपुण्यरूप हैं। वे क्षयकूं पावतेहैं कहिये अपनै उपादान अज्ञानके विनाशकरि विनाशकूं पावतेहैं ॥ ७ ॥

५८ नानाकोटिनके विषय करनैवाले ज्ञानकूं **संशय** कहैहैं। सो संशय (१) प्रमाणगतसंशय औ (२) प्रमेयगतसंशय भेदतैं दोप्रकारका है।

(१) वेदांत जो उपनिषद् ताके वाक्यरूप प्रमाण हैं। सो जीवब्रह्मके भेदके प्रतिपादक हैं वा अभेदके प्रतिपादक हैं? ऐसा जो संशय सो **प्रमाणगतसंशय** है। सो श्रवणसैं दूरि होवैहै। औ

(२) प्रमेयगतसंशय [१] अनात्मगत अरु [२] आत्मगत भेदतैं दोप्रकारका है ॥

[१] अनात्मगतसंशय तौ अनंतप्रकारका है। ताके कहनैका उपयोग नहीं है। औ

[२] आत्मगतसंशय (क) "त्वं"पदार्थगोचर (ख) "तत्" पदार्थगोचर औ (ग) "तत्"पदार्थसैं अभिन्न "त्वं" पदार्थगोचर भेदतैं तीनप्रकारका है। तिनमैं

(क) "त्वं"पदार्थगोचरसंशय तौ संस्कृतटीकाकारनैं दिखायाहै औ आदिशब्दकरि अवशेष रहे दोनूंसंशयनका ग्रहण है ॥

(ख) ईश्वर। वैकुंठादिलोकवासी परिच्छिन्नहस्तपादादिअंगसहित शरीरवान् है वा शरीररहित विभु है?

जो शरीररहित विभु कहै। तौ बी परमाणुआदिकसापेक्षजगत्का कर्त्ता है वा निरपेक्षकर्त्ता है?

निरपेक्षकर्त्ता कहै तौ बी केवलकर्त्ता है वा अभिन्ननिमित्तोपादानरूप कर्त्ता है?

अभिन्ननिमित्तोपादान कहै तौ बी प्राणिनके कर्मकी अपेक्षारहित कर्त्ता होनैतैं विषमकारकताआदिकदोषवाला है वा प्राणिनके कर्मकी अपेक्षासहित कर्त्ता होनैतैं विषमकारकताआदिकदोषरहित है?

इनसैं आदिलेके **"तत्"पदार्थगोचरसंशय** अनेक प्रकारका है औ

(ग) आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्न है वा भिन्न है?

अभिन्न है तौ बी सर्वदाअभिन्न है वा मोक्षकालमैंहीं अभिन्न होवैहै?

सर्वदाअभिन्न है तौ बी आनंदादिकऐश्वर्यवान् है वा आनंदादिकरहित है?

आनंदादिकवान् है तौ बी आनंदादिकगुण हैं वा ब्रह्मात्माके स्वरूप हैं?

इनसैं आदिलेके "तत्"पदार्थसैं अभिन्न **"त्वं"पदार्थगोचरसंशय** अनेकप्रकारका है।

तैसैं मोक्षके स्वरूप औ साधनका संशय औ ज्ञानके स्वरूप औ साधनका संशय बी **प्रमेयगतसंशय** है। यह मननसैं दूरि होवैहै ॥

स्वरूपसाक्षात्कारके भये सर्वसंशयनका मूलसैं नाश होवैहै॥

५९ संचित प्रारब्ध औ क्रियमाण (आगामी) भेदतैं **कर्म तीनप्रकारका** है। तिनमैं

(१) संचितकर्मनका ज्ञानअग्निसैं दाह होवैहै औ

(२) ज्ञानीके प्रारब्धकर्मका भोगसैं नाश होवैहै औ

(३) "मैं असंग अकर्त्ता अभोक्ता हूं" इस निश्चयके बलसैं क्रियमाणका संस्पर्श बी होवै नहीं। किंतु तिनके फलका प्रिय औ द्वेषीपुरुषनकूं भोग होवैहै।

यह व्यवस्था है

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११५०	तमेव विद्वानत्येति मृत्युं पंथा न चेतरः । ज्ञात्वा देवं पाशहानिः क्षीणैः क्लेशैर्न जन्मभाक् ८	टीकांक: ४०८१ टिप्पणांक: ॐ

८१ ननु "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।" "विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते" इत्यादिश्रुतेः । "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।" "यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन संयुतं । एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत्" इत्यादिस्मृतेश्च केवलस्य वा ज्ञानसमुचितस्य वा कर्मणो मुक्तिहेतुत्वं स्यादित्याशंक्योदाहृतवाक्यस्थलेऽपि तपःशब्दस्य पापनिवृत्तिपरत्वात् आस्थिता इति आङ्शब्दस्य पापनिवृत्तिपरत्वात्संसिद्धिशब्देन च ज्ञानसाधनचित्तशुद्ध्यभिधानाद्विद्याशब्देन चोपासनाया विवक्षितत्वाच्च कर्मणो मुक्तिसाधनत्वमित्यभिप्रायेण साधनांतरनिषेधपरं "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" इति श्वेताश्वतरवाक्यमर्थतः पठति–

८२] तं विद्वान् एव मृत्युं अत्येति । इतरः च पंथा न ॥

॥ ८ ॥ ज्ञानसैं विना मोक्षके अन्यसाधनके निषेधपर श्वेताश्वतर श्रुति ॥

८१ ननु "इहां नरदेहविषै अग्निहोत्रादिककर्मनकूं करताहुयाहीं शतसंवत्सरपर्यंत जीवनेंकूं इच्छे। इसप्रकार तुज जीवनेंकूं इच्छनैहारे नरविषै इसप्रकारतें अन्य प्रकार नहीं है । जिस प्रकारकरि अशुभकर्मका लेप होवै नहीं" औ "विद्या जो देवताका ज्ञानरूप उपासना औ अविद्या जो कर्म । इन दोनूंकूं जो पुरुष यह दोनूं साथिहीं एकपुरुषकरि अनुष्ठान करनेंकूं योग्य हैं' ऐसें जानताहै । तिस समुच्चयकारीकूं एकपुरुषार्थका संबंध क्रमकरि होवैहै । ऐसें कहियेहै ॥ अग्निहोत्रादिकर्मरूप अविद्याकरि स्वाभाविककर्म औ ज्ञानरूप मृत्युकूं तरिके कहिये उल्लंघनकरिके देवताके ज्ञानरूप विद्याकरि देवके आत्मभावरूप अमृतकूं पावताहै" इत्यादिकश्रुतितें औ "जनकादिक कर्मकरिहीं संसिद्धिकूं आस्थित कहिये प्राप्तभये" औ "जैसें मधुसंयुक्त अन्न वा अन्नसंयुक्त मधु औषध है । ऐसें तप औ विद्या मिलित हुये महत् औषध है" इत्यादिस्मृतितें केवल कर्मकूं वा ज्ञानकरि मिलितकर्मकूं मुक्तिकी हेतुता होवैगी । यह आशंकाकरि उदाहरण किये वाक्यनके स्थलविषै बी "तपः"शब्दकूं पापनिवृत्तिके परायण होनैतें औ "आस्थित" इस पदविषै जो आङ्शब्द है । ताकूं पापनिवृत्तिके परायण होनैतें संसिद्धिशब्दकरि ज्ञानके साधन चित्तशुद्धिके कथनतें औ विद्याशब्दकरि उपासनाकूं कहनेकूं इच्छित होनैतें कर्मनकूं मुक्तिकी साधनता नहीं है । इसअभिप्रायकरि अन्यसाधनके निषेधपरायण जो "तिसीहींकूं जानिके मृत्युकूं उल्लंघन करताहै । मुक्तिकेअर्थ अन्यपंथ नहीं है" यह श्वेताश्वतरउपनिषद्का वाक्य है । तिसकूं अर्थतें पठन करैहैं:—

८२] तिसकूं जाननैहाराहीं मृत्युकूं लंघताहै । अन्य पंथ नहीं है ॥

८३) तं पूर्वोक्तं परमात्मानं । विद्वानेव मृत्युं संसारं अत्येति अतिक्रामति । इतरः समुच्चयरूपः केवलकर्मरूपो वा पंथा मार्गो मोक्षोपायो न च नैव विद्यते ॥

८४ ननूदाहृतासु श्रुतिष्वन्वयव्यतिरेकाभ्यामैहिकानिष्टनिवृत्तिरेव प्राधान्येनावभासते नामुष्मिकीत्याशंक्यामुष्मिकस्यानिष्टस्य भाविजन्मपूर्वकत्वात्तस्य सनिदानस्याभावप्रतिपादकं "ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः" इति श्वेताश्वतरवाक्यमर्थतः पठति (ज्ञात्वेति)–

८५] देवं ज्ञात्वा पाशहानिः । क्षीणैः क्लेशैः जन्मभाक् न ॥

८६) देवं स्वप्रकाशं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म। ज्ञात्वा अपरोक्षतयानुभूय स्थितस्य कामक्रोधादीनां सर्वेषां पाशानां हानिः भवति तैः पाशशब्दाभिधेयैः रागादिभिः क्लेशैः क्षीणैः नष्टैः भाविजन्महेतुकर्मारंभायोगाच्च तन्न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

८३) तिस पूर्वउक्तपरमात्माकूं जाननैहाराहीं मृत्यु जो संसार ताकूं उल्लंघन करताहै । अन्य समुच्चयरूप वा केवलकर्मरूप मार्ग मोक्षका उपाय नहीं है ॥

८४ ननु उदाहरणकरि कही श्रुतिनविषै अन्वय औ व्यतिरेककरि इसलोकसंबंधी अनर्थकी निवृत्तिहीं मुख्यताकरि भासतीहै। परलोकसंबंधी अनिष्टकी निवृत्ति नहीं भासतीहै। यह आशंकाकरि परलोकसंबंधी अनिष्टकूं भावि कहिये होनैहारे जन्मके पूर्वक होनैतैं कारणसहित तिस भाविजन्मके अभावका प्रतिपादक जो "देवकूं जानिके सर्वपाशनकी हानि होवैहै औ क्षीण भये क्लेशनकरि जन्ममृत्युकी अतिशय हानि होवैहै" यह श्वेताश्वतरउपनिषद्का वाक्य है । ताकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

८५] देवकूं जानिके पाश जो क्लेश तिनकी हानि होवैहै औ क्षीण भये रागादिकक्लेशनकरि पुरुष जन्मकूं भजनैहारा नहीं होवैहै ॥ ८ ॥

८६) स्वप्रकाशप्रत्यक्अभिन्नब्रह्मरूप देवकूं जानिके कहिये अपरोक्षपनैंकरि अनुभवकरिके स्थित भये पुरुषकूं कामक्रोधादिरूप सर्वपाशनकी हानि होवैहै औ क्षीण भये तिन पाशशब्दके वाच्य रागादिकक्लेशनकरि भाविजन्मके हेतु कर्मके आरंभके अयोगतैं इस भाविजन्मकूं पुरुष नहीं पावताहै। यह अर्थ है ॥ ८ ॥

९० इहां यह रहस्य है:—

(१) सुखदुःखका कारण शरीर है औ

(२) शरीरका कारण धर्मअधर्मरूप अदृष्ट है औ

(३) अदृष्टका कारण शुभअशुभक्रियारूप कर्म है औ

(४) कर्मका कारण राग अरु द्वेष है औ

(५) रागद्वेषका कारण अनुकूलताका ज्ञान औ प्रतिकूलताका ज्ञान है औ

(६) तिन ज्ञाननका कारण भेदज्ञान है औ

(७) भेदज्ञानका कारण प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मका अज्ञान है । यह नैष्कर्म्यसिद्धिविषै वार्त्तिककारस्वामीनें लिख्याहै ॥ औ अध्यात्मरामायणगत रामगीताविषै बी यह भवचक्र लिख्याहै ॥

प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मके ज्ञानसैं भेदज्ञान औ अनुकूलताप्रतिकूलताके ज्ञानकी निवृत्तिद्वारा रागद्वेषकी निवृत्तिके भये उदासीनक्रियाके होते बी भाविजन्मके हेतु रागद्वेषपूर्वक कर्मके असंभवतैं विद्वानकूं भाविजन्म होवै नहीं ॥

८८
देवं मत्वा हर्षशोकौ जहात्यत्रैव धैर्यवान् ।
९१
नैनं कृताकृते पुण्यपापे तापयतः क्वचित् ॥ ९ ॥

८७ ननु शोकतरणादिफलं श्रूयते एव नानुभूयते। ज्ञानिनामपीष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारार्थं प्रवृत्तिदर्शनादित्याशंक्य दृढापरोक्षज्ञानिनां तदभावप्रतिपादनपरं "अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति" इति कठश्रुतिवाक्यमर्थतः पठति (देवमिति)—

८८] धैर्यवान् देवं मत्वा अत्र एव हर्षशोकौ जहाति ॥

८९) धैर्यवान् ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नः देवं चिदानंदादिलक्षणं । मत्वा अवगम्य अत्रैव अस्मिन्नेव जन्मनि । हर्षशोकौ जहाति ॥

९० "एतमेव तपेन्नैषा चिंता कर्माग्निसंभृता" इत्युक्तार्थे विशेषप्रदर्शनपरं "नैनं कृताकृते तपत" इति याज्ञवल्क्यब्राह्मणवाक्यमर्थतः पठति (नैनमिति)—

९१] एनं कृताकृते पुण्यपापे क्वचित् तापयतः न ॥

९२) "पूर्वमकृतं पुण्यं कृतं च पापं तत्त्वविदस्तापहेतुर्न भवति" इत्युक्तं । इह तु कृतमकृतं वा पुण्यं पापं वा तथाविधं तापकं न भवतीत्युच्यत इति विशेषः । तथा हि तापो नाम चित्तविकारविशेषः । पुण्यं कृतं सद्धर्म-

॥ ९ ॥ दृढअपरोक्षज्ञानीनकूं इष्टअनिष्टके प्राप्तिपरिहारके अभावपर कठश्रुति ॥

८७ ननु शोकतरणादिरूप तत्त्वज्ञानका फल सुनियेहीं है । अनुभव नहीं करियेहै । काहेतैं ज्ञानीनकूं बी इष्टकी प्राप्ति औ अनिष्टकी निवृत्तिअर्थ प्रवृत्तिके देखनैतैं । यह आशंकाकरि दृढअपरोक्षज्ञानीनकूं तिस उक्तप्रवृत्तिके अभावके प्रतिपादनपरायण "धीर जो धैर्यवान् सो अध्यात्मयोग जो तत्त्वज्ञान ताकी प्राप्तिकरि स्वप्रकाशप्रत्यक्अभिन्नब्रह्मरूप देवकूं मानिके नाम निश्चयकरिके हर्षशोककूं त्यागताहै" इस कठवल्लीश्रुतिके वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

८८] धैर्यवान्पुरुष देवकूं जानिके इहांहीं हर्षशोककूं त्यागताहै ॥

८९) ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नअधिकारीपुरुषरूप धीर जो है । सो चिदानंदादिलक्षणवाले ब्रह्मरूप देवकूं जानिके इहां कहिये इसीजन्मविषैहीं हर्षशोककूं त्यागताहै ॥

९० "इस ज्ञानीकूंहीं कर्मरूप अग्निकरि संपादन करी यह चिंता तपावती नहीं है" इस ५ वें श्लोकउक्तअर्थविषै विशेष जो विलक्षणता ताके दिखावनै परायण "इस ज्ञानीकूं कृतअकृत जे पुण्यपाप वे तपावते नहीं हैं" इस याज्ञवल्क्यब्राह्मणरूप बृहदारण्यकके प्रकरणके वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

९१] इस ज्ञानीकूं किया औ नहीं किया पुण्य अरु पाप कदाचित् तपावता नहीं ॥

९२) पूर्व ५ वें श्लोकविषै "नहीं किया पुण्य औ किया पाप तत्त्ववेत्ताकूं तापका हेतु नहीं होवैहै" ऐसैं कह्या औ इहां तौ "किया वा नहीं किया पुण्य वा पाप तिसप्रकारका अज्ञानदशाकी न्याई ताप करनैहारा नहीं होवैहै ।" ऐसैं कहियेहै । यह भेद है तैसैं दिखावैहैं:— ताप नाम चित्तका विकारविशेष है । अज्ञानि-

टीकांक: ४०९३ टिप्पणांक: ॐ

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११५२

इत्यादिश्रुतयो बह्व्यः पुराणैः स्मृतिभिः सह ।
ब्रह्मज्ञानेऽनर्थहानिमानंदं चाप्यघोषयन् ॥ १० ॥

लक्षणं विकारमुत्पादयति अकृतं विषादं । पापं पुनस्तद्वैपरीत्येनाकृतं हर्षमुत्पादयति । कृतं विषादं । तत्त्वविदस्तु उभे अप्युभयविधविकारहेतू न कदाचिद्भवतः अविक्रियब्रह्मरूपत्वज्ञानादित्यभिप्रायः ॥ ९ ॥

९३ नन्वियंत्येव वाक्यानि प्रमाणानि नेत्याह–

९४] **इत्यादिश्रुतयः बह्व्यः पुराणैः स्मृतिभिः सह ॥**

९५) आदिशब्देन "इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः । य एतद्विदुरमृतास्ते भवंत्यथेतरे दुःखमेवापि यंति । तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत् । निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते" इत्याद्याः श्रुतयो गृह्यंते । "सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपश्यन्नात्मयाजी वै स्वाराज्यमधिगच्छति । क्षेत्रज्ञस्यात्मविज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता" इत्यादि **पुराणस्मृतिवचनैः सह** प्रमाणानीत्यर्थः ॥

९६ उदाहृतानां श्रुतिस्मृतिपुराणवाक्यानां सर्वेषां तात्पर्यमाह—

कूं पुण्यकर्म कियाहुया धर्मरूप विकारकूं उत्पन्न करताहै औ नहीं कियाहुया खेदकूं उत्पन्न करताहै औ पाप तिस पुण्यतैं विपरीत होनैकरि नहीं कियाहुया हर्षकूं उत्पन्न करताहै औ कियाहुया खेदकूं उत्पन्न करताहै औ तत्त्ववेत्ताकूं दोनूं पुण्यपाप वी दोनूं प्रकारके विकारके हेतु कदाचित् नहीं होवैहैं । काहेतैं अपनी अविक्रिय कहिये निर्विकारब्रह्मरूपताके ज्ञानतैं । यह अभिप्राय हैं ॥ ९ ॥

॥ १० ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणवाक्यकरि ब्रह्मज्ञानतैं अनर्थनिवृत्ति औ आनंदप्राप्तिका कथन ॥

९३ ननु तत्त्वज्ञानकूं अनिष्टनिवृत्ति औ इष्टप्राप्तिकी हेतुता है । तिसविषै क्या इतनैंहीं वाक्य प्रमाण हैं? तहां नहीं । ऐसें कहैहैं:—

९४] **इत्यादिकबहुतश्रुतियां पुराण औ स्मृतिनकरि सहित प्रमाण हैं ।**

९५) आदिशब्दकरि "इस मनुष्यदेहविषै जब जानताहै । तब सत्य है औ इसदेहविषै जब नहीं जानताहै । तब वडी हानि है" औ "जे पुरुष इस ब्रह्मकूं जानतेहैं । वे अमृत कहिये मरणरहित होवैहैं औ अन्यअज्ञानी दुःखकूंहीं पावतेहैं" औ "देवताके मध्यविषै जो जो तिस ब्रह्मकूं जानताभया । सोइ सो सर्वात्मा होवैहै" औ "तिस प्रत्यक्अभिन्नपरमात्माकूं निश्चयकरिके मृत्यु जो संसार ताके मुखतैं छूटताहै" इत्यादिकश्रुतियां ग्रहण करियेहैं औ "सर्वभूतनविषै स्थित आत्माकूं औ आत्माविषै सर्वभूतनकूं देखताहुया । आत्माकूं यजन करनैवाला पुरुष स्वाराज्य जो स्वरूपसैं अवस्थितिरूप मुक्ति ताकूं पावताहै" औ "क्षेत्रज्ञ जो सर्वसाक्षीरूप ब्रह्म ताकी आत्मरूपताके विज्ञानतैं परमविशुद्धि जो सर्वअनर्थकी निवृत्ति सो मानीहै" इत्यादिक पुराण औ स्मृतिके वचनकरि सहित बहुतश्रुतियां ब्रह्मज्ञानकूं अनिष्टनिवृत्ति औ इष्टप्राप्तिकी हेतुताविषै प्रमाण हैं । यह अर्थ है ॥

९६ उदाहरण किये जे श्रुतिस्मृति औ पुराणके वाक्य। तिन सर्वके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
११५३	ॐआनंदस्त्रिविधो ब्रह्मानंदो विद्यासुखं तथा । विषयानंद इत्यादौ ब्रह्मानंदो विविच्यते ॥११॥	४०९७
११५४	भृगुः पुत्रः पितुः श्रुत्वा वरुणाद्ब्रह्मलक्षणम् । अन्नप्राणमनोबुद्धीस्त्यक्त्वानंदं विजज्ञिवान् १२	टिप्पणांकः ॐ

९७] ब्रह्मज्ञाने अनर्थहानिं च आनंदं अपि अघोषयन् ॥ १० ॥

९८ ननु ब्रह्मानंद इत्यानंदपदस्य ब्रह्मपदेन विशेषणादानंदांतरमस्तीत्यवगम्यते । स कतिविधः कीदृशश्चानंद इत्याकांक्षायां तद्भेददर्शनपूर्वकं ब्रह्मानंदविवेचनं प्रतिजानीते (आनंद इति)—

९९] ब्रह्मानंदः विद्यासुखं तथा विषयानंदः इति आनंदः त्रिविधः । आदौ ब्रह्मानंदः विविच्यते ॥

४१००) ब्रह्मानंदो विद्यानंदो विषयानंद इति अनेन प्रकारेणानंदस्य त्रैविध्यमवगंतव्यं । तत्रेतरयोरानंदयोः ब्रह्मानंदमूलत्वात् आदौ अध्यायत्रयेण ब्रह्मानंदः विभज्य प्रदर्श्यत इत्यर्थः ॥ ११ ॥

१ तत्रादौ तावत्तैत्तिरीयश्रुतिपर्यालोचनायामानंदरूपं ब्रह्म अवगम्यते इत्यभिप्रायेण भृगुवल्ल्या अर्थं संक्षेपेण दर्शयति ।

२] भृगुः पुत्रः पितुः वरुणात् ब्रह्म-

९७] वे श्रुतियां ब्रह्मज्ञानके हुये अनर्थकी हानि औ आनंदकी प्राप्तिकूं कहतीहैं ॥ १० ॥

॥ २ ॥ श्रुतिकरि ब्रह्मकी आनंदरूपताके कथनपूर्वक ब्रह्मकी अद्वितीयता औ स्वप्रकाशताकी सिद्धि

॥ ४१९८—४२०८ ॥

॥ १ ॥ आनंदभेदके कथनपूर्वक ब्रह्मानंदके विवेचनकी प्रतिज्ञा ॥

९८ ननु ब्रह्मानंद । इस आनंदपदकूं ब्रह्मपदकरि विशेषणयुक्त करनैतैं ब्रह्मानंदसैं भिन्न और बी आनंद है? ऐसैं जानियेहै ॥सो आनंद कितनै प्रकारका है औ कैसा है? इस आकांक्षाके हुये तिस आनंदके भेदके दिखावनैपूर्वक ब्रह्मानंदके विवेचनकी प्रतिज्ञा करैहैं:—

९९] ब्रह्मानंद । विद्यानंद औ विषयानंद इसभेदतैं आनंद तीनप्रकारका है॥ तिनमैंसैं आदिविषै कहिये तीनअध्यायविषै ब्रह्मानंद विवेचन करियेहै ॥

४१००) ब्रह्मानंद विद्यानंद औ विषयानंद । इसप्रकारकरि आनंद तीनप्रकारका जाननैकूं योग्य है ॥ तिनमैंसैं और दोनूं आनंदनकूं ब्रह्मानंदरूप मूलवाले होनैतैं । आदिविषै तीनप्रकरणकरि ब्रह्मानंद विभागकरिके दिखाइयेहैं । यह अर्थ है ॥ ११ ॥

॥ २ ॥ तैत्तिरीयश्रुतिसैं भृगु औ वरुणके संवादकरि ब्रह्मकी आनंदरूपता ॥

१ तहां आदिविषै प्रथम तैत्तिरीयश्रुतिके विचारकरि देखेहुये आनंदरूप ब्रह्म जानियेहै । इस अभिप्रायकरि भृगुवल्लीके अर्थकूं संक्षेपकरि दिखावैहैं:—

२] भृगुनामकपुत्र वरुणपितातैं

टीकांक: ४१०३ टिप्पणांक: ॐ	आनंदादेव भूतानि जायंते तेन जीवनम् । तेषां लयश्च तत्रातो ब्रह्मानंदो न संशयः ॥१३॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११५५

लक्षणं श्रुत्वा अन्नप्राणमनोबुद्धीः त्यक्त्वा आनंदं विजज्ञिवान् ॥

३) भृगुनामकः पुत्रः पितुर्वरुणाख्यात् ब्रह्मलक्षणं "यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म" इत्येवंरूपं श्रुत्वा अन्नमयादिकोशेषु तल्लक्षणासंभवेन तेषामब्रह्मत्वं निश्चित्यानंदं आनंदमयकोशे पंचमावयवत्वेन "ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा" इति श्रुतं बिंबभूतमानंदं ब्रह्मलक्षणयोजनया ब्रह्मत्वेन ज्ञातवानित्यर्थः ॥ १२ ॥

४ कथमानंदे तल्लक्षणं योजितवानित्याशंक्य तद्योजनाप्रकारदर्शनपरं "आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते। आनंदेन जातानि जीवंति । आनंदं प्रयंत्यभिसंविशंति" इति वाक्यमर्थतः पठति—

५] आनंदात् एव भूतानि जायंते। तेन जीवनं । च तेषां लयः तत्र। अतः आनंदः ब्रह्म न संशयः ॥

६) ग्राम्यधर्मनिमित्तकात् आनंदात् एव भूतानि प्राणिनो जायंते उत्पद्यंते। तेन विषयभोगादिनिमित्तकेनानंदेन जीवनं प्राप्नुवंति । तेषां प्राणिनां लयश्च तत्र तस्मिन् सुषुप्तिकालीने स्वस्वरूपभूते आनंदे

ब्रह्मके लक्षणकूं सुनिके अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय। इन कोशनकूं त्यागिके आनंदकूं जानताभया ॥

३) भृगुनामक पुत्र । वरुणनामक पितातें "जिस ब्रह्मतें ये भूतप्राणिमात्र उत्पन्न होवैहैं औ जिसकरि उत्पन्न हुये जीवतेहैं औ जिसविषै मरणकूं पायेहुये प्रवेश करतेहैं। तिसकूं सो ब्रह्म है । ऐसें जान" इसरूपवाले ब्रह्मके लक्षणकूं सुनिके । अन्नमयादिककोशनविषै तिस ब्रह्मके लक्षणके असंभवकरि तिन कोशनके अब्रह्मपनैकूं निश्चय करीके। आनंदकूं कहिये आनंदमयकोशरूप पांचअवयववाले पक्षीविषै पंचमअवयवरूप होनैकरि "ब्रह्मरूप पुच्छ आधार है" ऐसें श्रवण किये बिंबरूप आनंदकूं ब्रह्मके लक्षणकी योजनासें ब्रह्मभावकरि जानताभया । यह अर्थ है ॥ १२ ॥

४ भृगुऋषि कैसें आनंदविषै ब्रह्मके लक्षणकूं जोडताभया ? यह आशंकाकरि तिसकी योजनाके प्रकारके दिखावनै परायण "आनंदतैंहीं निश्चयकरि ये भूत उत्पन्न होवैहैं औ आनंदकरि उत्पन्न हुये जीवतेहैं औ आनंदके ताईं मरणकूं पायेहुये प्रवेश करतेहैं" इस वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

५] आनंदतैंहीं भूत उत्पन्न होवैहैं औ तिस आनंदकरि जीवनकूं पावतेहैं औ तिनका लय तिसविषै होवैहै। यातैं "आनंद ब्रह्म है" यामैं संशय नहीं है ॥

६) ग्राम्यधर्म जो पशुधर्म तिसरूप निमित्तवाले आनंदतैंहीं भूत जे प्राणी वे उत्पन्न होवैहैं औ तिस विषयभोगआदिकनिमित्तवाले आनंदकरि जीवनकूं पावतेहैं औ तिन प्राणिनका लय तिस सुषुप्तिकालके स्वरूप-

महानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११५६	भूतोत्पत्तेः पुरा भूमा त्रिपुटीद्वैतवर्जनात् । ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपा त्रिपुटी प्रलये हि नो ॥ १४ ॥	टीकांकः ४१०७ टिप्पणांकः ॐ

एव भवति । सुषुप्तावानंदातिरेकेण कस्याप्यनुभवाभावात् । अत आनंदो ब्रह्म एव सर्वानुभवसिद्धत्वात् न अत्र संशयः कर्तव्य इति भावः ॥ १३ ॥

७ एवं तैत्तिरीयश्रुतिपर्यालोचनया ब्रह्मण आनंदरूपतां प्रदर्श्य छांदोग्यश्रुतिपर्यालोचनयापि तां दिदर्शयिषुः सनत्कुमारनारदसंवादरूपे सप्तमाध्याये स्थितस्य भूमरूपब्रह्मप्रतिपादकस्य "यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा" इत्यादिवाक्यस्यार्थं संक्षेपेणाह—

८] भूतोत्पत्तेः पुरा त्रिपुटीद्वैतवर्जनात् भूमा ॥

९) भूतानामाकाशादीनां तत्कार्याणां जरायुजांडजादीनां च उत्पत्तेः पूर्वं । त्रिपुटीद्वैतवर्जनात् त्रयाणां ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपाणां पुटानामाकाराणां समाहारस्त्रिपुटी सैव द्वैतं तस्य वर्जनमभावस्तस्मात् । भूमा देशतः कालतो वस्तुतो वा परिच्छेदशून्यः परमात्मा "भावानयने द्रव्यानयनं" इति न्यायाद्भूमैवासीदित्यध्याहारः ॥

१० तदेव द्वैतवर्जनमुपपादयति—

भूत आनंदविषैहीं होवैहै । काहेतें सुषुप्तिविषै आनंदतें भिन्न किसी बी वस्तुके अनुभवके अभावतें ॥ यातें आनंद ब्रह्महीं है औ यह सर्वजनके अनुभवकरि सिद्ध है । यातें इसविषै संशय करनेकूं योग्य नहीं है । यह भाव है ॥ १३ ॥

॥ ३ ॥ छांदोग्यश्रुतिसैं सनत्कुमार औ नारदके संवादद्वारा भूमारूप ब्रह्मकी आनंदरूपता ॥

७ ऐसैं तैत्तिरीयश्रुतिके विचारकरि देखनैसैं ब्रह्मकी आनंदरूपताकूं दिखायके । अब छांदोग्यश्रुतिके विचारकरि देखनैसैं बी तिस ब्रह्मकी आनंदरूपताकूं दिखावनैकूं इच्छतेहुये आचार्य । सनत्कुमार औ नारदके संवादरूप छांदोग्यके सप्तमअध्यायविषै स्थित जो भूमा नाम अपरिच्छिन्नआनंदरूप ब्रह्म ताका प्रतिपादक "जिसविषै अन्यकूं देखता नहीं । अन्यकूं सुनता नहीं । अन्यकूं जानता नहीं। सो भूमा है" इत्यादि यह वाक्य है । तिसके अर्थकूं संक्षेपकरि कहैहैं:—

८] भूतनकी उत्पत्तितैं पूर्व त्रिपुटीरूप द्वैतके अभावतैं भूमाहीं था ॥

९) भूत जे आकाशादिक औ तिनके कार्य जरायुजअंडजआदिक हैं । तिनकी उत्पत्तितैं पूर्व त्रिपुटीरूप द्वैतके वर्जनतैं कहिये तिन ज्ञाता ज्ञान औ ज्ञेयरूप पुट जे आकार तिनका मिलापरूप जो त्रिपुटी । सोइ द्वैत है । तिसका वर्जन कहिये अभाव है । तिस हेतुतैं देशतैं वा कालतैं वा वस्तुतैं परिच्छेदशून्यपरमात्मा था । "भाव जो सत्ता ताके ल्यायेहुये वस्तुका ल्यावना होवैहै" इस न्यायतैं ॥ "भूमाहीं होताभया" यह अध्याहार है कहिये बाहिरसैं कह्याहै ॥

१० तिसीहीं द्वैतके अभावकूं उपपादन करैहैं:—

टीकांकः ४१११ टिप्पणांकः ॐ

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११५७ ११५८

[१४]विज्ञानमय उत्पन्नो ज्ञाता ज्ञानं मनोमयः ।
ज्ञेयाः शब्दादयो नैतत्त्रयमुत्पत्तितः पुरा ॥१५॥
[१७]त्रयाभावे तु निर्द्वैतः पूर्ण एवानुभूयते ।
[२०]समाधिसुप्तिमूर्च्छासु [२१]पूर्णः सृष्टेः पुरा तथा ॥१६॥

११] ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपा त्रिपुटी प्रलये हि नो ॥

१२) वक्ष्यमाणज्ञात्रादिरूपा त्रिपुटी प्रलयकाले नास्तीत्येतत्सर्ववेदांतसंमतमिति हिशब्दं प्रयुंजानस्यायमभिप्रायः ॥ १४ ॥

१३ इदानीं ज्ञात्रादिस्वरूपं दर्शयति (विज्ञानमय इति)—

१४] उत्पन्नः विज्ञानमयः ज्ञाता । मनोमयः ज्ञानं । शब्दादयः ज्ञेयाः । एतत् त्रयं उत्पत्तितः पुरा न ॥

१५) परमात्मन उत्पन्नो बुद्ध्युपाधिको जीवो विज्ञानमयो ज्ञाता । मनोमयः मनसि प्रतिबिंबितं मनोमयशब्दवाच्यं चैतन्यं ज्ञानं । शब्दस्पर्शादयो ज्ञेयाः प्रसिद्धाः । इदं त्रयं कार्यत्वात् उत्पत्तेः पुरा कारणव्यतिरेकेण न अस्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥

१६ फलितमाह—

१७] त्रयाभावे तु निर्द्वैतः पूर्णः एव अनुभूयते ॥

१८) ज्ञात्रादित्रयाभावे निर्द्वैतः द्वैतरहितः पूर्ण एव आत्मा अनुभूयते ॥

१९ कुत्रानुभूयत इत्यत आह—

२०] समाधिसुप्तिमूर्च्छासु ॥

११] ज्ञाता जो अंतःकरण । ज्ञान जो वृत्ति औ ज्ञेय जो घटादिकविषय । तिसरूप त्रिपुटी प्रलयविषै नहीं है ॥

१२) आगे १५ वें श्लोकविषै कहनैकी ज्ञाताआदिरूप त्रिपुटी प्रलयकालविषै नहीं है । यह अर्थ सर्वउपनिषदनविषै मान्या है । यह मूलश्लोकविषै हिशब्दकूं जोडनैहारे ग्रंथकारका अभिप्राय है ॥ १४ ॥

१३ अब ज्ञाताआदिकके स्वरूपकूं दिखावैहैं:—

१४] उत्पन्न भया जो विज्ञानमयकोश सो ज्ञाता है औ मनोमयकोश ज्ञान है औ शब्दादिकविषय ज्ञेय हैं । ये तीन जो त्रिपुटी सो उत्पत्तितैं पूर्व नहीं हैं ॥

१५) परमात्मातैं उत्पन्न भया बुद्धिउपाधिवाला जीवरूप जो विज्ञानमयकोश । सो ज्ञाता है औ मनोमयकोश जो मनविषै प्रतिबिंबकूं पाया मनोमयशब्दका वाच्य चैतन्य सो ज्ञान है औ शब्दस्पर्शादिकज्ञेय प्रसिद्ध हैं ॥ ये तीन कार्य होनैतैं उत्पत्तितैं पूर्व कारण जो परमात्मा तातैं भिन्न नहीं हैं । यह अर्थ है ॥ १५ ॥

१६ फलित जो सिद्धअर्थ ताकूं कहैहैं:—

१७] तीनके अभाव हुये तौ निर्द्वैत पूर्णहीं अनुभव करियेहै ॥

१८) ज्ञाताआदिकतीनके अभाव हुये द्वैतरहित पूर्णहीं आत्मा अनुभव करियेहै ॥

१९ कहां अनुभव करियेहै ? तहां कहैहैं:—

२०] समाधि सुषुप्ति औ मूर्छाविषै अद्वैतरूप आत्मा अनुभव करियेहै ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११५९

यो भूमा स सुखं नाल्पे सुखं त्रेधा विभेदिनि ।
सनत्कुमारः प्राहैवं नारदायातिशोकिने ॥१७॥

टीकांकः ४१२१ टिप्पणांकः ॐ

२१) विद्वदनुभवप्रदर्शनाय समाधिग्रहणं । सर्वानुभवद्योतनाय सुषुप्तिमूर्च्छयोरुदाहरणं । सुषुप्त्याद्युत्थितस्य द्वैतादर्शनस्मरणान्यथानुपपत्त्या निर्द्वैतस्य तदनुभवितुः सिद्धिरिति भावः ॥

२२ भवतु सुषुप्त्यादावद्वैतसिद्धिः प्रकृते किमायातमित्यत आह (पूर्ण इति)—

२३] तथा सृष्टेः पुरा पूर्णः ॥

२४) यथा सुषुप्त्यादौ परिच्छेदकाभावात् पूर्णः । तथा सृष्टेः पुरा अपि तदभावात् पूर्णः इत्यर्थः ॥ १६ ॥

२५ अस्तु ब्रह्मणः पूर्णत्वमानंदरूपत्वे किमायातमित्याशंक्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां भूम्नः सुखरूपत्वदर्शनपरं "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति" इति वाक्यमर्थतोऽनुक्रामति—

२६] यः भूमा सः सुखं । त्रेधा विभेदिनि अल्पे सुखं न ॥

२७) यः पूर्वोक्तभूमा सः सुखरूपः एव अद्वितीये दुःखहेतोरभावात् । अल्पे परिच्छिन्ने । तस्यैव विवरणं त्रेधा विभेदिनि इति हेतुगर्भं विशेषणं । सुखं तत्र न विद्यत इत्यर्थः ॥

२१) विद्वानोंके अनुभवके दिखावनेअर्थ समाधिका ग्रहण है औ सर्वजनके अनुभवके जनावनेअर्थ सुषुप्ति औ मूर्छाका उदाहरण है ॥ सुषुप्तिआदिकतैं ऊठे पुरुषकूं द्वैतके अदर्शनका स्मरण होवैहै । तिस स्मरणके अन्यथा कहिये अद्वैतरूप अनुभव करनैहारेसैं विना असंभव है ॥ तिस हेतुकरि द्वैतरहित तिस द्वैतके अदर्शनके अनुभव करनैहारेकी सिद्धि है । यह भाव है ॥

२२ सुषुप्तिआदिकविषै अद्वैतकी सिद्धि होहु । तिसकरि प्रकृत जो प्रलयमैं विद्यमान परमात्मा तिसविषै क्या आया? तहां कहैहैं:—

२३] तैसैं सृष्टितैं पूर्व वी पूर्ण है ॥

२४) जैसैं सुषुप्तिआदिकविषै परिच्छेद करनैहारेके अभावतैं पूर्ण है । तैसैं सृष्टितैं पूर्व वी तिस परिच्छेद करनैहारेके अभावतैं पूर्ण है । यह अर्थ है ॥ १६ ॥

२५ ब्रह्मकी पूर्णता होहु । तिसकरि आनंदरूपताविषै क्या आया? यह आशंकाकरि अन्वय औ व्यतिरेककरि परिपूर्णब्रह्मकी सुखरूपताके दिखावनैके परायण "जो भूमा कहिये परिपूर्णवस्तु है सो सुखरूप है औ अल्प जो परिच्छिन्नवस्तु तिसविषै सुख नहीं है" इस श्रुतिवाक्यकूं अर्थतैं क्रमकरि कहैहैं:—

२६] जो भूमा है सो सुखरूप है औ तीनप्रकारसैं भेदवाले अल्पविषै सुख नहीं है ॥

२७) जो पूर्व श्लोक १४ विषै उक्त भूमा है सो सुखरूपहीं है । काहेतैं अद्वितीयविषै दुःखहेतु जो भेदआदिक । ताके अभावतैं औ तीनप्रकारके ज्ञाताआदिकरूप भेदकरि युक्त परिच्छिन्नवस्तुरूप अल्पविषै सुख नहीं है ॥ "तीनप्रकारके भेदकरि युक्त" यह जो हेतुगर्भितविशेषण है।सो परिच्छिन्नका विवरण है॥ यातैं परिच्छिन्नवस्तुकूं ज्ञाताआदिकभेदवाला होनैतैं तिसविषै सुख नहीं है । यह अर्थ है ॥

टीकांकः ४१२८ टिप्पणांकः ॐ	³⁴सपुराणान्पंच वेदाञ्छास्त्राणि विविधानि च । ज्ञात्वाप्यनात्मवित्त्वेन नारदोऽतिशुशोच ह॥१८॥ ³⁷वेदाभ्यासात्पुरा तापत्रयमात्रेण शोकिता । पश्चात्त्वभ्यासविस्मारभंगगर्वैश्च शोकिता ॥ १९ ॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११६० ११६१

२८ एवं कस्मै केनाभिहितमित्यत आह (सनत्कुमार इति)—

२९] एवं सनत्कुमारः नारदाय प्राह ॥

३० नारदस्य शिष्यत्वे कारणमाह—

३१] अतिशोकिने ॥

३२) अतिशयितः अधिकः शोकोऽस्यास्तीत्यतिशोकी तस्मै ॥ १७ ॥

३३ तस्यातिशोकित्वे हेतुमाह (सपुराणानिति)—

३४] नारदः सपुराणान् पंच वेदान् च विविधानि शास्त्राणि ज्ञात्वा अपि अनात्मवित्त्वेन अतिशुशोच ह ॥

३५) नारदः पुराणैः सह वर्तंत इति सपुराणाः पंच वेदाः तान् । विविधानि च शास्त्राणि विदित्वा अपि आत्मज्ञानरहितत्वेनातिशयेन शोकं प्राप्तः ॥ १८ ॥

३६ ननु वेदशास्त्रविषयकज्ञानस्य शोकनिवर्तकत्वेन प्रसिद्धस्य कथमतिशोकहेतुत्वमित्यत आह—

३७] वेदाभ्यासात् पुरा तापत्रयमात्रेण शोकिता च पश्चात्तु अभ्यासविस्मारभंगगर्वैः शोकिता ॥

---

२८ ऐसैं किस शिष्यके ताईं किस गुरुनै कहाहै ? तहां कहैहैंः—

२९] ऐसैं सनत्कुमार नारदके ताईं कहतेभये ॥

३० नारदकूं शिष्य होनैविषै कारण कहैहैंः—

३१] अतिशोकवान् नारदके ताईं कहतेभये ॥

३२) अधिकशोक जिसकूं भयाहै । सो कहिये अतिशोकी । ऐसा जो नारदमुनि तिसके ताईं कहतेभये ॥ १७ ॥

॥ ४ ॥ नारदके शोकीपनैमैं कारण (अनात्मवित्ता) ॥

३३ तिस नारदकी अतिशोकयुक्तताविषै कारण कहैहैंः—

३४] नारद । पुराणसहित पंचवेदनकूं औ विविधशास्त्रनकूं जानिके बी अनात्मवित् होनैकरि अतिशोकवान् भया ॥

३५) नारदमुनि १८ पुराणसहित ४ वेदकूं औ नानाप्रकारके शास्त्रनकूं जानिके बी आत्मज्ञानसैं रहित होनैकरि अतिशयशोककूं प्राप्तभया । यह छांदोग्यके सप्तमअध्यायविषै प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥

॥ ५ ॥ अज्ञानीपंडितकूं सत्ताप ॥

३६ ननु शोकके निवर्त्तक होनैकरि प्रसिद्ध वेदशास्त्रके विषय करनैहारे ज्ञानकूं अतिशोककी हेतुता कैसैं है ? तहां कहैहैंः—

३७] वेदके अभ्यासतैं पूर्व तीनतापमात्रकरि शोकवान्ता होतीभई औ पीछे तौ अभ्यास । विस्मार । भंग औ गर्वकरि शोकवान्ता भई ॥

४०
सोऽहं विद्वन्प्रशोचामि शोकपारं नयात्र माम् ।
इत्युक्तः सुखमेवास्य पारमित्यभ्यधादृषिः ॥२०॥

३८) तापत्रयेण आध्यात्मिकादिलक्षणेनैव शोकिता शोकोऽस्यास्तीति शोकी तस्य भावस्तत्ता आसीदित्यध्याहारः । पश्चात्तु इति तुशब्दो विपयद्योतनार्थः । अभ्यासः पाठाद्यावर्तनं । विस्मारः पठितस्य विस्मरणं । भंगः स्वतोऽधिकेन तिरस्कारः । गर्वः न्यूनदर्शनेन स्वाधिक्यबुद्धिः। एतैः कारणैः शोकित्वम् ॥ १९ ॥

३९ नन्वेवं सर्वज्ञस्यापि नारदस्यातिशोकित्वं जातमिति कुतोऽवगम्यत इत्याशंक्य "सोऽहं भगवः शोचामि" इति तदीयादेव वाक्यादवगतमित्यभिमेत्य "तं मा भगवान् शोकस्य पारं तारयतु" इति तन्निवृत्त्युपाये तेन पृष्टे सति सनत्कुमारो भूमशब्दवाच्यं सुखरूपं ब्रह्मैव ज्ञायमानं शोकनिवृत्त्युपाय इति "सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यं" इत्यारभ्योत्तरग्रंथसंदर्भेणोक्तवानित्याह (सोऽहमिति)–

४०] "विद्वन् सः अहं प्रशोचामि। मां अत्र शोकपारं नय" इति उक्तः ऋषिः "सुखं एव अस्य पारम्" अभ्यधात् ॥ २० ॥

३८) वेदके अभ्यासतैं पूर्व अध्यात्मिकआदिरूप तीनतापकरिहीं शोकवान्‌ता होतीभई औ पीछे तौ अभ्यास जो पठनआदिकका आवर्तन औ विस्मार जो पठन कियेका विस्मरण औ भंग जो अपनैंसैं अधिक विद्वान्‌करि तिरस्कार औ गर्व जो अपनैंसैं न्यूनविद्वान्‌के देखनैकरि अपनैविषै अधिकताकी बुद्धि । इन कारणनकरि शोकवान्‌ता भई ॥ १९ ॥

॥ ६ ॥ सर्वज्ञनारदके शोकीपनैमैं नारदवाक्य औ सनत्कुमारका उपदेश ॥

३९ ननु ऐसैं सर्वज्ञनारदकूं बी अतिशयशोकयुक्तपना भया । यह काहेतैं जानियेहै? यह आशंकाकरि "हे भगवन्! सो मैं शोकवान् भयाहूं" इस नारदकेहीं वाक्यतैं जान्याहै॥ इस अभिप्रायकरिके "तिस शोकवान् मेरेकूं भगवान् आप शोकके पारके तांई प्राप्त करहू" ऐसैं नारदमुनिनैं तिस शोककी निवृत्तिके उपायके पूछेहुये । सनत्कुमारऋषि भूमशब्दका वाच्य सुखरूप ब्रह्महीं जान्याहुया शोकनिवृत्तिका उपाय है । ऐसैं "सुखहीं जाननैंकूं योग्य है" इहांसैं आरंभकरिके उत्तरग्रंथके समूहकरि कहतेभये । ऐसैं कहैहैं:—

४०] "हे विद्वन् सनत्कुमार! सो मैं शोककूं प्राप्त भयाहूं।मेरेकूं इहां शोकके पारके तांई प्राप्त करहु॥" ऐसैं नारदकरि पूछेहुये सनत्कुमारऋषि "सुखहीं इस शोकका पार है।" ऐसैं कहतेभये॥२०॥

टीकांक: ४१४१ टिप्पणांक: ॐ	सुखं वैषयिकं शोकसहस्रेणावृतत्वतः । दुःखमेवेति मत्वाह नाल्पेऽस्ति सुखमित्यसौ २१ नंनु द्वैते सुखं माभूदद्वैतेऽप्यस्ति नो सुखम् । अंस्ति चेदुपलभ्येत तथा च त्रिपुटी भवेत् ॥२२॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११६३ ११६४

४१ ननु स्रगादिजन्येषु सुखेषु बहुषु सत्सु "नाल्पे सुखमस्ति" इत्युक्तिरनुपपन्नेति चेत् न तेषां स्रगादीनां दुःखानुषंगेण विषसंपृक्तान्नवद्बहुदुःखरूपत्वस्य मुनिनाभिमेतत्वादित्याह (सुखमिति)—

४२] **वैषयिकं सुखं शोकसहस्रेण आवृतत्वतः दुःखं एव इति मत्वा अल्पे सुखं न अस्ति इति असौ आह ॥ २१ ॥**

४३ द्वैते सुखाभावमंगीकृत्याद्वैतेऽपि तमाशंकते—

४४] **ननु द्वैते सुखं माऽभूत् । अद्वैते अपि सुखं नो अस्ति ॥**

४५ तत्रानुपलब्धिं प्रमाणयति—

४६] **अस्ति चेत् उपलभ्येत ॥**

४७) अद्वैते यदि सुखं विद्यते तर्हि विषयसुखादिवत् उपलभ्येत । यतो नोपलभ्यतेऽतो नास्तीत्यर्थः ॥

४८ ननूपलभ्यत इत्याशंकमानं मत्याह—

४९] **तथा च त्रिपुटी भवेत् ॥**

५०) अनुभवस्य अनुभवित्रनुभाव्यसापेक्षत्वात् अद्वैतहानिरिति भावः ॥ २२ ॥

॥ ७ ॥ अल्प (परिच्छिन्न) विषयसुखकी दुःखरूपता ॥

४१ ननु मालाआदिकविषयनसैं जन्य बहुतसुखनके होते अल्पविषै सुख नहीं है। यह कथन अयुक्त है । ऐसैं जो कहै तौ बनै नहीं । काहेतैं तिन मालाआदिकविषयनके दुःखके संबंधकरि विषयुक्तअन्नकी न्याई बहुदुःखरूपपनैकूं सनत्कुमारमुनिकरि अभिप्रायका विषय कियाहोनैतैं। ऐसैं कहैहैं:—

४२] **विषयजन्य जो सुख है । सो सहस्रदुःखकरि आवृत होनैतैं दुःखरूपहीं है । ऐसैं मानिके यह सनत्कुमारमुनि "अल्पविषै सुख नहीं है" ऐसैं कहतेभये ॥ २१ ॥**

॥ ८ ॥ द्वैतमैं सुखके अभावकूं मानिके अद्वैतमैं सुखके अभावकी शंका ॥

४३ द्वैतविषै सुखके अभावकूं अंगीकार करीके अद्वैतविषै बी तिस सुखके अभावकूं वादी शंका करैहै:—

४४] **ननु द्वैतविषै सुख मति होहु। अद्वैतविषै बी सुख नहीं है ॥**

४५ तिसविषै अप्रतीतिकूं वादी प्रमाण करैहै:—

४६] **अद्वैतविषै जो सुख होवै। तौ प्रतीत होवै ॥**

४७) अद्वैतविषै जब सुख है । तब विषयसुखआदिककी न्याई प्रतीत हुयाचाहिये। जातैं नहीं प्रतीत होवैहै यातैं नहीं है। यह अर्थ है॥

४८ ननु अद्वैतविषै सुख प्रतीत होवैहै। ऐसैं आशंका करनैहारे सिद्धांतीके प्रति वादी कहैहै:—

४९] **तैसैं सुखकी प्रतीतिके हुये त्रिपुटी होवैगी ॥**

५०) अनुभव जो प्रतीति। ताकूं अनुभव करनैहारे औ अनुभवके विषय । इन दोनूंकी अपेक्षावाला होनैतैं अद्वैतकी हानि होवैगी । यह भाव है ॥ २२ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११६५ ११६६	५२मास्त्वद्वैते सुखं ५४किंतु सुखमद्वैतमेव हि । ५७किं मानमिति चेन्नास्ति मानाकांक्षा स्वयंप्रभे २३ ५९स्वंप्रभत्वे भवद्वाक्यं मानं ६१यस्माद्भवानिदम् । अद्वैतमभ्युपेत्यास्मिन्सुखं नास्तीति भाषते ॥२४॥	टीकांकः ४१५१ टिप्पणांकः ॐ

५१ अद्वैतस्य सुखाधिकरणत्वनिषेधमंगीकरोति सिद्धांती (मास्त्विति)—

५२] अद्वैते सुखं मा अस्तु ॥

५३ तत्र हेतुमाह—

५४] किंतु हि अद्वैतं एव सुखम् ॥

५५) हि यस्मात्कारणात् । अद्वैतमेव सुखं । अतः सुखाधिकरणं न भवतीत्यर्थः ॥

५६ अद्वैतं सुखमित्यत्र किं प्रमाणमित्याशंकानुवादपूर्वकं तस्य स्वप्रकाशत्वात्प्रमाणप्रश्न एवानुपपन्न इत्याह—

५७] किं मानं इति चेत् । स्वयंप्रभे मानाकांक्षा न अस्ति ॥ २३ ॥

५८ ननु स्वप्रकाशत्वेऽपि किं प्रमाणमित्याशंक्य त्वदीयमेव वचनं प्रमाणमित्याह—

५९] स्वप्रभत्वे भवद्वाक्यं मानम्॥

६० तदुपपादयति—

६१] यस्मात् भवान् इदं अद्वैतं अभ्युपेत्य अस्मिन् सुखं न अस्ति इति भाषते ॥

६२) यतः कारणाद्भवता प्रमाणनैरपेक्ष्येण अद्वैतमभ्युपेत्य सुखं एवाक्षिप्यते अतः स्वप्रभत्वमित्यर्थः ॥ २४ ॥

॥ ९ ॥ हेतुसहित अद्वैतकूं सुखकी अनाश्रयता औ प्रमाणअपेक्षारहिततारूप स्वप्रकाशता॥

५१ अद्वैतकूं सुखके आश्रयपनैके निषेधकूं सिद्धांती अंगीकार करैहैं:—

५२] अद्वैतविषै सुख मति होहु ॥

५३ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं:—

५४] किंतु जातैं अद्वैतहीं सुख है ॥

५५) जिस कारणतें अद्वैतहीं सुख है। यातैं अद्वैत सुखका आश्रय नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥

५६ अद्वैत सुखरूप है । इसविषै कौन प्रमाण है? इस आशंकाके अनुवादपूर्वक तिस अद्वैतकूं स्वप्रकाशरूप होनैतैं तिसविषै प्रमाणका प्रश्नहीं अयुक्त है । ऐसैं कहैहैं:—

५७] अद्वैत सुखरूप है । इसविषै कौन प्रमाण है? ऐसैं जब कहै । तब स्वयंप्रकाशअद्वैतविषै प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है ॥ २३ ॥

॥१०॥ अद्वैतकी स्वप्रकाशताभैं वादीके वचनकूंहीं प्रमाणता ॥

५८ ननु अद्वैतकी स्वप्रकाशताविषै बी कौन प्रमाण है? यह आशंकाकरि तेरा वचनहीं प्रमाण है । ऐसैं कहैहैं:—

५९] अद्वैतकी स्वयंप्रकाशताविषै तेरा वाक्यहीं प्रमाण है ॥

६० तिसकूं उपपादन करैहैं:—

६१] जातैं तूं इस अद्वैतकूं अंगीकार करीके इसविषै सुख नहीं है । ऐसैं कहताहै ॥

६२) जिस कारणतैं तेरेकरि प्रमाणकी अपेक्षासैं विना अद्वैतकूं अंगीकारकरिके सुखकाहीं आक्षेप जो निषेध सो करियेहै । यातैं अद्वैतकी स्वप्रकाशता कहिये प्रमाणकी निरपेक्षता है । यह अर्थ है ॥ २४ ॥

टीकांकः ४१६३ टिप्पणांकः ॐ	नाभ्युपैम्यहमद्वैतं त्वद्वचोऽनूद्य दूषणम् । वच्मीति चेत्तदा ब्रूहि किमासीद्द्वैततः पुरः ॥२५॥ किमद्वैतमुत द्वैतमन्यो वा कोटिरंतिमः । अप्रसिद्धो न द्वितीयोऽनुत्पत्तेः शिष्यतेऽग्रिमः २६	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११६७ ११६८

६३ न मयाऽद्वैतमभ्युपगम्यते किंतु त्वदुक्तमद्वैतमनूद्य दूष्यतेऽतो नोक्तसिद्धिरिति शंकते (नाभ्युपैमीति)—

६४] "अहं अद्वैतं न अभ्युपैमि । त्वद्वचः अनूद्य दूषणं वच्मि" इति चेत् ।

६५ विकल्पासहत्वादद्वैतानभ्युपगमोऽनुपपन्न इति मन्वानः पृच्छति—

६६] तदा द्वैततः पुरः किं आसीत् ब्रूहि ॥ २५ ॥

६७ किंशब्दसूचितं विकल्पं दर्शयति—

६८] किं अद्वैतं । उत द्वैतं । वा अन्यः कोटिः ॥

६९ तृतीयं पक्षं निराकरोति—

७०] अंतिमः अप्रसिद्धः ॥

७१) द्वैताद्वैतविलक्षणस्य रूपस्य लोकेऽदर्शनादितिभावः ॥

७२ द्वितीयं पक्षं निराकरोति (न द्वितीय इति)—

७३] द्वितीयः न ॥

७४ तत्र हेतुमाह—

७५] अनुत्पत्तेः ॥

॥ ११ ॥ वादीकरि अद्वैतके अनंगीकारकी शंका औ सिद्धांतीका वादीकेप्रति प्रश्न ॥

६३ मेरेकरि अद्वैत अंगीकार नहीं करियेहै। किंतु हे सिद्धांती ! तेरे कहे अद्वैतकूं अनुवादकरिके मैं दूषण देताहूं । यातैं मेरे कथन किये अद्वैतकी सिद्धि नहीं है । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

६४] मैं अद्वैतकूं अंगीकार नहीं करूंहूं । किंतु तेरे वचनकूं अनुवाद करिके कहिये फेरी कथनकरिके दूषण कहताहूं । ऐसैं जब कहै ।

६५ विकल्पके असहन करनैतैं अद्वैतका अनंगीकार बनै नहीं । इसरीतिसैं मानतेहुये सिद्धांती वादीके प्रति पूछतेहैंः—

६६] तब हे वादी ! द्वैतजगत्तैं पूर्व क्या था ? सो कथन कर ॥ २५ ॥

॥ १२ ॥ तीनविकल्पकरि दोका निषेध औ प्रथमका अंगीकार ॥

६७ श्लोक २५ उक्त किंशब्दकरि सूचन किये विकल्पकूं दिखावैहैंः—

६८] द्वैततैं पूर्व क्या अद्वैत था अथवा द्वैत था । वा अन्य कोटि कहिये द्वैत-अद्वैततैं विलक्षणरूप पक्ष था ? ये तीनपक्ष हैं॥

६९ तीसरेपक्षकूं निराकरण करैहैंः—

७०] अंतका पक्ष अप्रसिद्ध है ॥

७१) लोकविषै द्वैतअद्वैततैं विलक्षणरूपके अदर्शनतैं तीसरापक्ष अप्रसिद्ध है । यह भाव है ॥

७२ द्वैत था इस द्वितीयपक्षकूं निराकरण करैहैंः—

७३] दूसरा पक्ष बनै नहीं ॥

७४ तिसविषै कारण कहैहैंः—

७५] अनुत्पत्तितैं ॥

अद्वैतसिद्धिर्युक्त्यैव नानुभूत्येति चेद्वद ।
निर्दृष्टांता सदृष्टांता वा कोट्यंतरमत्र नो॥२७॥
नानुभूतिर्न दृष्टांत इति युक्तिस्तु शोभते ।
सदृष्टांतस्वपक्षे तु दृष्टांतं वद मे मतम् ॥ २८ ॥

७६) द्वैतस्य तदानीमनुत्पन्नत्वादिति भावः॥

७७ अतः प्रथमः पक्षः परिशिष्यत इत्याह (शिष्यत इति)—

७८] अग्रिमः शिष्यते ॥ २६ ॥

७९ ननूक्तेन प्रकारेणाद्वैतं युक्त्यैव सिध्यति नानुभवेनेति चोदयति—

८०] अद्वैतसिद्धिः युक्त्या एव अनुभूत्या न इति चेत् ॥

८१ अद्वैतसिद्धिर्युक्त्यैवेत्युक्तं विकल्पासहत्वादनुपपन्नं इति मन्वानो युक्तिं विकल्पयति सिद्धांती (वदेति)—

८२] निर्दृष्टांता वा सदृष्टांता वद॥

८३ विकल्पस्य न्यूनतां निराकरोति (कोट्यंतरमिति)—

८४] अत्र कोट्यंतरं नो ॥ २७ ॥

८५ प्रथमं पक्षं सोपहासं निराकरोति (नानुभूतिरिति)—

८६] अनुभूतिः न । दृष्टांतः न । इति युक्तिः तु शोभते ॥

८७) अद्वैतसिद्धिर्युक्त्यैवेति वदता अनुभूतिः तावत् न अभ्युपेयते । युक्तिस्तु

---

७६) द्वैतकूं तब अपनेतें पूर्व अनुत्पन्न होनेतें द्वैततें पूर्व द्वैत था। यह दूसरापक्ष बनै नहीं। यह भाव है॥

७७ यातें द्वैततें पूर्व अद्वैत था। यह प्रथमपक्ष परिशेष रहताहै। ऐसें कहैहैं:—

७८] प्रथमपक्ष शेष रहताहै ॥ २६ ॥

॥ १३ ॥ अनुभवविना युक्तिसें अद्वैतके सिद्धिकी शंका औ युक्तिमें दोविकल्प ॥

७९ ननु श्लोक २६ उक्त प्रकारकरि अद्वैत। युक्ति जो अनुमान तासैंहीं सिद्ध होवैहै। अनुभवसें नहीं। इसरीतिसें वादी पूर्वपक्ष करताहै:—

८०] अद्वैतकी सिद्धि युक्तिसैंहीं है अनुभवसैं नहीं। ऐसैं जब कहै।

८१ अद्वैतकी सिद्धि युक्तिसैंहीं है यह जो वादीनैं कहा। सो विकल्पके असहन करनैतें बनै नहीं। ऐसैं मानतेहुये सिद्धांती युक्तिके प्रति विकल्प करैहैं:—

८२] तव हे वादी! यह युक्ति दृष्टांतरहित है वा दृष्टांतसहित है? सो कथन कर॥

८३ विकल्पकी न्यूनताकूं निराकरण करैहैं:—

८४] इहां और दृष्टांतरहित औ सहित उभयरूप युक्ति है। यह तीसराविकल्प अप्रसिद्ध होनैतें नहीं है॥ २७॥

॥ १४ ॥ प्रथमविकल्पका उपहासकरि निराकरण औ द्वितीयमैं दृष्टांतका प्रश्न ॥

८५ दृष्टांतरहित युक्ति है। इस प्रथमपक्षकूं उपहाससहित निराकरण करैहैं:—

८६] अनुभव बी नहीं है औ दृष्टांत बी नहीं है। यह युक्ति तौ शोभाकूं पावतीहै॥

८७) अद्वैतकी सिद्धि युक्तिसैंहीं है। ऐसैं कहनैवाले वादीकरि अनुभव प्रथम अंगीकार

टीकांक: ४१८८ टिप्पणांक: ७६१	अद्वैतः प्रलयो द्वैतानुपलंभेन सुप्तिवत् । इति चेत्सुप्तिरद्वैते तत्र दृष्टांतमीरय ॥ २९ ॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांक: ११७१

दृष्टांतप्रदर्शनमंतरेण न किंचित्साधयति। अतो न दृष्टांत इत्युक्तिरयुक्तेति भावः ॥

८८ द्वितीये विकल्पे उभयवादिसंमतिपन्नो दृष्टांतः वक्तव्य इत्याह—

८९] सदृष्टांतत्वपक्षे तु मे मतं दृष्टांतं वद ॥ २८ ॥

९० तर्हि दृष्टांतेनैवाद्वैतं साधयामीति शंकते पूर्ववादी (अद्वैत इति)—

९१] प्रलयः अद्वैतः द्वैतानुपलंभेन सुप्तिवत् इति चेत् ॥

९२) प्रलयः द्वैतरहितो भवितुमर्हति द्वैतानुपलब्धिमत्त्वात् यो यो द्वैतानुपलब्धिमान्स स द्वैतरहितः यथा स्वाप इति ॥

९३ नन्वेवं साधयतस्तव स्वसुषुप्तिर्दृष्टांतः परसुषुप्तिर्वा । आद्ये तस्याः परं प्रत्यसिद्धत्वेन तत्सिद्धये दृष्टांतांतरं वक्तव्यमित्याह (सुप्तिरिति)—

९४] अद्वैते सुप्तिः तत्र दृष्टांतं ईरय ॥ २९ ॥

नहीं करियेहै औ युक्ति तौ दृष्टांतके दिखावनै विना कछु बी नहीं सिद्ध करतीहै। यातैं दृष्टांत नहीं है । यह कथन अयुक्त है । यह भाव है॥

८८ दृष्टांतसहित युक्ति है । इस द्वितीयविकल्पविषै तुज औ मुज दोनूं वादीकूं संमत दृष्टांत कह्याचाहिये । ऐसैं कहैहैं:—

८९] **दृष्टांतसहित युक्ति है । इस पक्षविषै तौ मेरेकूं संमत दृष्टांत कथन कर ॥ २८ ॥**

॥ १९ ॥ वादीकरि दृष्टांतसैं अद्वैतके साधनैंकी शंका औ उक्तसुषुप्तिके दृष्टांतमैं सिद्धांतीके दोविकल्प अरु प्रथमका निषेध ॥

९० तब दृष्टांतकरिहीं अद्वैतकूं साधताहूं । इसरीतिसैं पूर्ववादी शंका करैहै:—

९१] **प्रलय द्वैतरहित है । द्वैतके अप्रतीतिरूप हेतुकरि सुषुप्तिकी न्यांई । ऐसैं जब कहै ।**

९२) प्रलय द्वैतरहित होनैकूं योग्य है । द्वैतकी अप्रतीतिवाला होनैतैं । जो जो द्वैतकी अप्रतीतिवाला है । सो सो द्वैतरहित है । जैसैं सुषुप्ति है ॥ तैसैं यह अनुमान दृष्टांतसहित युक्ति है ॥

९३ ननु ऐसैं साधनैहारे तुज वादीकूं अपनी सुषुप्ति दृष्टांत है । वा अन्यपुरुषकी सुषुप्ति दृष्टांत है? ये दोविकल्प हैं॥ तिनमैं अपनी सुषुप्ति दृष्टांत है । इस प्रथमपक्षविषै तिस अपनी सुषुप्तिकूं अन्यपुरुषकेप्रति असिद्ध होनैकरि तिस अपनी सुषुप्तिकी सिद्धिअर्थ अन्यदृष्टांत कह्याचाहिये । इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैं:—

९४] **अद्वैतविषै अपनी कहिये तेरी सुषुप्ति दृष्टांत है । तिस अपनी सुषुप्तिविषै दृष्टांत कथन कर ॥ २९ ॥**

---

६१ इहां प्रलयशब्दकरि प्रलयशब्दका वाच्य जो सर्वद्वैतका अभाव । तिसकरि उपलक्षित ब्रह्मकाहीं ग्रहण है ॥ ऐसैं इसप्रसंगविषै प्राप्त सुषुप्तिशब्दके अर्थविषै बी जानि लेना॥

९६
दृष्टांतः परसुप्तिश्चेदहो ते कौशलं महत् ।
यः स्वसुप्तिं न वेत्त्यस्य परसुप्तौ तु का कथा ॥३०॥
निश्चेष्टत्वात्परः सुप्तो यथाहमिति चेत्सदा ।
उदाहर्तुः सुषुप्तेस्ते स्वप्रभत्वं बलाद्भवेत् ॥ ३१ ॥

९५ ननु तस्याः परसुप्तिरेव दृष्टांत इति द्वितीयं विकल्पमाशंकते (दृष्टांत इति)—

९६] परसुप्तिः दृष्टांतः चेत् ।

९७ परसुप्तेस्तवाप्रसिद्धत्वेन त्वया दृष्टांतीकरणमनुपपन्नमिति सोपहासमाह सिद्धांती (अहो इति)—

९८] ते कौशलं महत् अहो । यः स्वसुप्तिं न वेत्ति अस्य परसुप्तौ तु का कथा ॥

९९) यः भवान् सुप्तेरनुभवगम्यत्वानंगीकारेण स्वसुप्तिं अपि न वेत्ति अस्य तव परसुप्तौ का कथा परसुप्तिज्ञानं न भवतीति किमु वक्तव्यमिति भावः ॥ ३० ॥

४२०० नन्वनुमानात्परसुप्तिसिद्धिरिति शंकते (निश्चेष्टेति)—

१] परः सुप्तः । निश्चेष्टत्वात् । यथा अहं । इति चेत् ।

२) विमतः परः सुप्तः भवितुमर्हति प्राणादिमत्त्वे सति निश्चेष्टत्वात् मद्वदित्यनुमानादित्यर्थः ॥

३ एवं तर्हि तव सुप्तेः स्वप्रकाशत्वं परिशिष्यत इत्याह सिद्धांती—

॥ १६ ॥ दूसरेविकल्पकी शंका औ ताका निराकरण ॥

९५ ननु । तिस अपनी सुषुप्तिका परकी सुषुप्तिहीं दृष्टांत है । इस द्वितीयविकल्पकूं वादी आशंका करैहैः—

९६] अपनी सुषुप्तिविषै परकी सुषुप्ति दृष्टांत है । ऐसैं जब कहै ।

९७ परसुषुप्ति तेरेकूं अप्रसिद्ध होनैतें तेरेकरि दृष्टांत करना बनै नहीं । इसरीतिसैं उपहाससहित सिद्धांती कहैहैः—

९८] तब तेरा कुशलपना बडा अहो कहिये उत्कृष्ट है ! जो तूं अपनी सुषुप्तिकूं नहीं जानताहैं । इस तेरेकूं परकी सुषुप्तिविषै तौ नहीं जाननैकी क्या कथा है ॥

९९) जो तूं सुषुप्तिकूं अनुभवगम्य होनैके अनंगीकारकरि अपनी सुषुप्तिकूं बी नहीं जानताहै । इस तेरेकूं परकी सुषुप्तिविषै क्या कथा है ! कहिये परकी सुषुप्तिका ज्ञान नहीं होवैहै । इसविषै क्या कहना है । यह भाव है ॥ ३० ॥

॥ १७ ॥ अनुमानसैं परसुषुप्तिके सिद्धिकी शंका औ स्वसुषुप्तिकी बलसैं स्वप्रकाशता ॥

४२०० ननु अनुमानतैं परकी सुषुप्तिकी सिद्धि कहिये निश्चय होवैहै । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

१] पर सुषुप्तिवान् है । चेष्टारहित होनैतैं । जैसैं मैं हूं तैसैं । ऐसैं जब कहै ।

२) विवादका विषय जो परपुरुष । सो सुषुप्तिवान् होनैकूं योग्य है । प्राणआदिककरि युक्त हुया बी चेष्टारहित होनैतैं । मुजकी न्याई । इस अनुमानतैं परसुषुप्तिकी सिद्धि होवैहै । यह अर्थ है । ऐसैं जब है ।

३ तब तेरी सुषुप्तिकूं स्वप्रकाशपना शेष रहताहै । इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैः—

टीकांक: ४२०४ टिप्पणांक: ७६२

नेंद्रियाणि न दृष्टांतस्तथाप्यंगीकरोषि ताम् ।
इदमेव स्वप्रभत्वं यद्भानं साधनैर्विना ॥ ३२ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंद: ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११७४

४] तदा उदाहर्तुः ते सुषुप्तेः सप्रभत्वं बलात् भवेत् ॥

५) तदा तर्हि मां प्रति सुषुप्तिं उदाहर्तुः दृष्टांतीकर्तुः । ते तव । सुषुप्तेः स्वप्रभत्वं स्वप्रकाशत्वं । बलात् सुप्त्युदाहरणसामर्थ्यात् । एव भवेत् ॥ ३१ ॥

६ कथं बलाद्भवतीत्याशंक्याह (नेंद्रियाणीति)—

७] इंद्रियाणि न । दृष्टांतः न । तथा अपि तां अंगीकरोषि । साधनैः विना भानं यत् इदं एव स्वप्रभत्वम् ॥

८) सुप्तिग्राहकाणि इंद्रियाणि न संति तेषां स्वकारणे विलीनत्वात् दृष्टांतः च संप्रतिपन्नो न अस्ति परसुप्तेरप्रसिद्धत्वस्योक्तत्वात् तथापि तां सुप्तिं अंगीकरोषि । एवं च सति साधनैर्विना ज्ञानसाधनमंतरेण। अपि भानं प्रकाशनम् । इति यदिदमेव स्वप्रभत्वं सुषुप्त्या इत्यर्थः । अत्रायं प्रयोगः । विमता सुप्तिः स्वप्रकाशा । असत्स्वपि ज्ञानसाधनेषु प्रकाशमानत्वात् सांख्याभिमतात्मवत् । प्राभाकराभिमतसंवेदनवत् । शाक्याभिमतस्वात्मवदित्यर्थः ॥ ३२ ॥

४] तब उदाहरण करनैहारा जो तूं । तिस तेरी सुषुप्तिका स्वप्रकाशपना बलतैं होवैहै ॥

५) तब मेरेप्रति सुषुप्तिकूं दृष्टांत करनैहारा जो तूं है । तिस तेरी सुषुप्तिका स्वप्रकाशपना बलतैं कहिये सुषुप्तिके उदाहरणके सामर्थ्यतैंहीं होवैहै ॥ ३१ ॥

॥ १८ ॥ बलसैं साधित स्वप्रकाशताका विवरण॥

६ मेरी सुषुप्तिका स्वप्रकाशपना कैसैं बलतैं होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७] इंद्रिय नहीं है औ दृष्टांत नहीं है । तौ बी तिस सुषुप्तिकूं अंगीकार करताहै । ऐसैं साधनसैं विना जो भान है । यहहीं सुषुप्तिका स्वप्रकाशपना है ॥

८) सुषुप्तिके ग्राहक इंद्रिय नहीं हैं । काहेतैं तिन इंद्रियनकूं अपनै कारणअज्ञानविषै विलीन होनैतैं औ परसुषुप्तिरूप दृष्टांत दोनूंकरि संमत नहीं हैं । काहेतैं अन्यपुरुषकी सुषुप्तिके अप्रसिद्धपनैकूं ३० वें श्लोकविषै कथन कियाहोनैतैं ॥ तौ बी तिस सुषुप्तिकूं तूं अंगीकार करताहै । ऐसैं हुये ज्ञानके साधनसैं विना बी भान जो प्रकाश होवैहै । यहहीं सुषुप्तिका स्वप्रकाशपना है । यह अर्थ है ॥ इहां यह अनुमान है:— विवादका विषय जो सुषुप्ति सो स्वप्रकाश है । ज्ञानसाधनके न होते बी प्रकाशमान होनैतैं । सांख्यनकरि संमत आत्माकी न्यांई औ प्राभाकरके अनुसारिनकरि संमत संवेदन जो वृत्तिज्ञान ताकी न्यांई औ शाक्य जो बौद्ध तिसकरि संमत स्वात्माकी न्यांई । यैहै[६२] अर्थ है ॥ ३२ ॥

६२ जैसैं सांख्य प्राभाकर औ बौद्धमतविषै आत्मा । वृत्तिज्ञान औ आत्मा क्रमतैं अन्यसाधनसैं विना बी प्रकाशमान होनैतैं स्वयंप्रकाशरूप मानैहैं । तैसैं हमारे मतविषै बी सुषुप्तिकरि उपलक्षित आत्मा अन्यसाधनसैं विना प्रकाशमान होनैतैं स्वयंप्रकाश है । परंतु सांख्यादिकनके मतमैं आत्मआदिकनकूं अपनैं प्रकाशविषै आपकी अपेक्षा है औ हमारे मतविषै सो नहीं है । किंतु आत्मा सर्वदा प्रकाशमानहीं है॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः		टीकांकः
११७५	स्तांमद्वैतस्वप्रभत्वे वद सुप्तौ सुखं कथम् । [१२] शृणु दुःखं तदा नास्ति ततस्ते शिष्यते सुखम् ३३	४२०९
११७६	[१५] अंधः सन्नप्यनंधः स्याद्विद्धोऽविद्धोऽथ रोग्यपि । अरोगीति श्रुतिः प्राह तच्च सर्वे जना विदुः ३४	टिप्पणांकः ॐ

९ इत्थं प्रलयस्य दृष्टांतत्वेनोदाहृतायाः सुषुप्तेरद्वैतत्वं स्वप्रभत्वं च प्रसाध्य तत्र सुखप्रसाधनाय पूर्वपक्षिणः आकांक्षामुत्थापयति (स्तामिति)–

१०] सुप्तौ अद्वैतस्वप्रभत्वे स्तां सुखं कथं वद ॥

११ सुखप्रतियोगिनो दुःखस्य तदानीमसत्त्वात्सुखमेव परिशिष्यत इत्याह—

१२] शृणु । दुःखं तदा न अस्ति। ततः ते सुखं शिष्यते ॥

१३) सुखदुःखयोः प्रकाशतमसोरिव परस्परविरोधित्वात् दुःखाभावे सुखमेवाभ्युपेयमिति भावः ॥ ३३ ॥

१४ सुप्तौ दुःखाभावे किं मानमित्याकांक्षायां श्रुत्यनुभवावित्याह–

१५] अंधः सन् अपि अनंधः स्यात्। विद्धः अविद्धः । अथ रोगी अपि अरोगी। इति श्रुतिः प्राह च तत् सर्वे जनाः विदुः ॥

॥ २ ॥ आनंदके स्वरूपसहित ताका विवेचन ॥ ४२०९–४४१८ ॥

॥ १ ॥ सुषुप्तिमैं ब्रह्मानंदकी सिद्धि ॥ ॥ ४२०९–४३७५ ॥

॥ १ ॥ सुषुप्तिमैं सुखके सद्भावविषै शंका औ समाधान ॥

९ इसरीतिसैं प्रलयके दृष्टांत होनैकरि उदाहरण करी जो सुषुप्ति। ताके अद्वैतपनैकूं औ स्वप्रकाशपनैकूं साधिके तिस सुषुप्तिविषै सुखके साधनैअर्थ पूर्वपक्षीकी आशंकाकूं उठावतेहैं:—

१०] सुषुप्तिविषै अद्वैतपना औ स्वप्रकाशपना होहु । परंतु हे सिद्धांती! सुषुप्तिविषै सुख किसप्रकार है ? सो कथन कर ॥

११ सुखके विरोधी दुःखकूं तब सुषुप्तिविषै नहीं होनैतें सुखहीं परिशेष होवैहै। इसरीतिसैं सिद्धांती कहैहैं:—

१२] हे वादी! श्रवण कर:– जातैं तब सुषुप्तिविषै दुःख नहीं है । तातैं तेरेकूं सुखहीं शेष रहताहै ॥

१३) सुख अरु दुःखकूं प्रकाश अरु तमकी न्यांई परस्परविरोधि होनैतें । दुःखके अभाव हुये सुखहीं अंगीकार करनैकूं योग्य है । यह भाव है ॥ ३३ ॥

॥ २ ॥ सुषुप्तिमैं दुःखके अभावविषै प्रमाण ॥

१४ सुषुप्तिविषै दुःखके अभावमैं कौन प्रमाण हैं? इस आकांक्षाविषै श्रुति औ अनुभव प्रमाण हैं । ऐसैं कहैहैं:—

१५] "सुषुप्तिविषै अंध हुया बी अंधतारहित होवैहै औ विद्ध हुया बी अविद्ध होवैहै औ रोगी बी अरोगी होवैहै" ऐसैं श्रुति कहतीहै औ सो सर्वजन जानतेहैं ॥

टीकांकः ४२१६ टिप्पणांकः ॐ

न दुःखाभावमात्रेण सुखं लोष्टशिलादिषु ।
द्वयाभावस्य दृष्टत्वादिति चेद्विषमं वचः ॥३५॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः ११७७

१६) "तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वाऽधः सन्ननंधो भवति। विद्धः सन्नविद्धो भवति। उपतापी सन्ननुपतापी भवति। तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमंधं भवत्यनंधः स भवति" इत्यादिश्रुतिर्देहाभिमानप्रयुक्तानंधत्वादीन् दोषान् सुप्तौ निवारयति। व्याध्यादिना पीड्यमानस्यापि सुप्तौ तद्दुःखानुभवो नास्तीत्येतत्सर्वजनप्रसिद्धं चेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

१७ ननु "यत्र दुःखाभावस्तत्र सुखं" इत्यस्याः व्याप्तेर्लोष्टादौ व्यभिचार इति शंकते (न दुःखेति)–

१८] **दुःखाभावमात्रेण सुखं न लोष्टशिलादिषु द्वयाभावस्य दृष्टत्वात् इति चेत्** ॥

१९) दुःखाभावमात्रेण सुखं कल्पयितुं न शक्यते लोष्टशिलादिषु द्वयाभावस्य सुखदुःखयोरभावस्य दर्शनादित्यर्थः

२० दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोर्वैषम्यान्मैवमिति परिहरति (विषममिति)—

२१] **वचः विषमम्** ॥

२२) वचः दृष्टांतवचनं । विषमं दार्ष्टांतिकाननुसारीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

---

१६) "तातैं निश्चयकरि इस जाग्रत्स्वप्नविषै विद्यमान देहाभिमानरूप सेतुकूं तरिके पुरुष अंध हुया बी अनंध होवैहै औ शस्त्रकरि वेध्याहुया बी अविद्ध होवैहै औ उपतापी कहिये रोगी हुया बी अनुपतापी होवैहै" औ "हे भगवन्! यद्यपि सो यह शरीर अंध होवैहै। तथापि सो पुरुष अंधभावसैं रहित होवैहै" इत्यादिकश्रुतियां देहाभिमानके किये अंधताआदिकदोषनकूं निवारण करैहैं औ व्याधिकरि पीडाकूं प्राप्त भये पुरुषकूं बी सुषुप्तिविषै तिस पीडासैं जन्य दुःखका अनुभव नहीं है। यह सर्वजनकूं प्रसिद्ध है। यह अर्थ है ॥ ३४ ॥

॥ ३ ॥ दुःखाभावमैं सुखके व्यभिचारकी शंका औ समाधान ॥

१७ ननु "जहां दुःखका अभाव है तहां सुख है" इस व्याप्तिका लोष्ट जो मट्टीका खडा तिस आदिकविषै व्यभिचार है। इसरीतिसैं वादी शंका करैहैं:—

१८] **दुःखके अभावमात्रकरि सुखका कल्पन होवै नहीं। काहेतें लोष्टशिलाआदिकनविषै दोनूंके अभावके देखनैतें। ऐसैं जब कहै।**

१९) दुःखके अभावमात्रकरि सुखकी कल्पना करनेकूं शक्य नहीं होवैहै। काहेतें लोष्ट औ शिलाआदिकनविषै सुखदुःख दोनूंके अभावके देखनैतें। यह अर्थ है ॥

२० दृष्टांत जो लोष्टशिलाआदिक औ दार्ष्टांतिक जो पुरुषकी सुषुप्ति। ताके विषम होनैतें यह कथन बनै नहीं। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

२१] **तब तेरा वचन विषम है ॥**

२२) तब तेरा दृष्टांतका कथन विषम कहिये दार्ष्टांतिकके अनुसारी नहीं है। यह अर्थ है ३५

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११७८ ११७९

मुखदैन्यविकासाभ्यां परदुःखसुखोहनम् ।
दैन्याद्यभावतो लोष्टे दुःखाद्यूहो न संभवेत् ३६
स्वकीये सुखदुःखे तु नोहनीये ततस्तयोः ।
भावो वेद्योऽनुभूत्यैव तदभावोऽपि नान्यतः ३७

टीकांक: ४२२३ टिप्पणांक: ॐ

२३ दृष्टांतस्यानुकूलत्वमेवोपपादयति—

२४] मुखदैन्यविकासाभ्यां परदुःखसुखोहनम् ॥

२५) अन्यनिष्ठयोः सुखदुःखयोः ऊहनं यथाक्रमं मुखदैन्यविकासाभ्यां लिंगाभ्यां कर्त्तव्यं । अयं दुःखी विषण्णवदनत्वात्संमतिपन्नवत् । अयं सुखी प्रसन्नवदनत्वात्संमतिपन्नवदित्यर्थः ॥

२६ भवत्वेवं लोके प्रकृते किमायातमित्यत आह (दैन्येति)—

२७] लोष्टे दैन्याद्यभावतः दुःखाद्यूहः न संभवेत् ॥

२८) लोष्टादौ मुखदैन्यादिलिंगाभावात्सुखदुःखयोरूहनमेव न संभवति । अतस्तत्र दुःखाभावोऽपि न निश्चेतुं शक्यत इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

२९ इदानीं परकीयसुखदुःखाभ्यां स्वकीयसुखदुःखयोर्वैषम्यं दर्शयति—

३०] स्वकीये सुखदुःखे तु ऊहनीये न । ततः तयोः भावः अनुभूत्या एव वेद्यः । तदभावः अपि अन्यतः न ॥

॥ ४ ॥ श्लोक ३९ उक्त दृष्टांतकी सिद्धांतीसैं विषमताका उपपादन ॥

२३ दृष्टांतके दार्ष्टांतिकसैं विषमपनैंकूंहीं उपपादन करैहैं:—

२४] मुखके दीनता औ विकाश नाम प्रसन्नता । इन दोनूं लिंगनकरि क्रमतैं परके सुख औ दुःखकी कल्पना होवैहै ॥

२५) अन्यपुरुषविषै स्थित सुख औ दुःखकी कल्पना जो अनुमान सो क्रमतैं सुखकी दीनता औ प्रसन्नतारूप लिंगनकरि करनैकूं योग्य है:—यह पुरुष दुःखी है। खेदयुक्त नाम व्याकुलमुखवाला होनैतैं । प्रसिद्धदुःखवान्‌की न्याई औ यह पुरुष सुखी है । प्रसन्नमुखवाला होनैतैं । प्रसिद्धसुखीपुरुषकी न्याई ॥

२६ ननु ऐसैं लोकविषै होहू । इसकरि प्रकृतलोष्टआदिकदृष्टांतकी विषमताविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

२७] लोष्टविषै दीनताआदिकके अभावतैं दुःखआदिककी कल्पना नहीं संभवैहै ॥

२८) लोष्टआदिकविषै मुखकी दीनता औ प्रसन्नतारूप लिंग जे हेतु तिनके अभावतैं सुख औ दुःखकी कल्पनाहीं नहीं संभवैहै । यातैं तिस लोष्टआदिकविषै दुःखका अभाव बी निश्चय करनैकूं शक्य नहीं है । यह अर्थ है ॥ ३६ ॥

॥५॥ परके सुखदुःखसैं स्वसुखदुःखकी विषमता ॥

२९ अब अन्यपुरुषके सुखदुःखतैं अपनै सुखदुःखकी विषमता दिखावैहैं:—

३०] अपनै सुखदुःख तौ जातैं अनुमानसैं जाननैकूं योग्य नहीं हैं । तातैं तिनका भाव जैसैं अनुभवसैंहीं वेद्य कहिये जाननै योग्य है। तैसैं तिनका अभाव बी अनुभवसैंहीं वेद्य है । अन्यतैं नहीं ॥

टीकांक: ४२३१ टिप्पणांक: ॐ	³³तथा सति सुषुप्तौ च दुःखाभावोऽनुभूतितः । ³⁶विरोधिदुःखराहित्यात्सुखं निर्विघ्नमिष्यताम् ३८ ³⁹महत्तरप्रयासेन मृदुशय्यादिसाधनम् । कुतः संपाद्यते सुप्तौ सुखं चेत्तत्र नो भवेत् ॥३९॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११८० ११८१

३१) स्वनिष्ठयोस्तु सुखदुःखयोरनुभवसिद्धत्वात् नानुमेयत्वं यतः ततस्तयोः सुखदुःखयोः भावः सद्भावः । यथा अनुभूत्या एव वेद्यः प्रत्यक्षेणावगम्यते । तथा तद्भावोऽपि तयोः सुखदुःखयोरभावोऽपि । अन्यतः अन्यस्मादनुमानादेः न अवगम्यते किंतु प्रत्यक्षेणैवेत्यर्थः ॥ ३७ ॥

३२ फलितमाह—

३३] **तथा सति सुषुप्तौ च दुःखाभावः अनुभूतितः ॥**

३४) **तथा सति** स्वकीयस्य सुखादेरनुभवगम्यत्वे सति स्वसुप्तौ स्वकीयसुषुप्तावपि विद्यमानो दुःखाभावोऽनुभवेनैव सिद्धः ॥

३५ ततोऽपि किं तत्राह—

३६] **विरोधिदुःखराहित्यात् निर्विघ्नं सुखं इष्यताम् ॥**

३७) सुप्तौ सुखविरोधिनो दुःखस्याभावात् । **निर्विघ्नं** बाधरहितं । **सुखमिष्यताम्** अभ्युपेयताम् ॥ ३८ ॥

३८ शय्यादिसुखसाधनसंपादनान्यथानुपपत्त्यापि सुप्तौ सुखमस्तीत्यवगम्यत इत्याह (**महत्तरेति**)—

---

३१) अपनैविषै स्थित सुख औ दुःखकूं तौ अनुभकरि सिद्ध होनैतैं जातैं अनुमेयता नाम अनुमानसैं जाननैकी योग्यता नहीं है । तातैं तिन अपनै सुखदुःखका सद्भाव जैसैं अनुभव जो प्रत्यक्षप्रमा तासैंहीं जानियेहै । तैसैं तिन अपनै सुखदुःखका अभाव वी अन्य अनुमानआदिकतैं नहीं जानियेहै । किंतु प्रत्यक्षअनुभवसैंहीं जानियेहै । यह अर्थ है ॥ ३७ ॥

॥ ६ ॥ फलित (सुषुप्तिमैं दुःखाभाव औ सुखकी सिद्धि) ॥

३२ फलितकूं कहैहैं:—

३३] **तैसैं हुये अपनी सुषुप्तिविषै दुःखका अभाव अनुभवकरि सिद्ध है ॥**

३४) तैसैं हुये कहिये अपनै सुखदुःखकूं अनुभवसैं जाननैकी योग्यताके हुये । अपनी सुषुप्तिविषै वी विद्यमान दुःखका अभाव अनुभवकरिहीं सिद्ध होवैहै ॥

३५ तातैं दुःखके अभावतैं वी क्या सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं:—

३६] **विरोधि दुःखकरि रहित होनैतैं निर्विघ्नसुख अंगीकार करना ॥**

३७) सुषुप्तिविषै सुखके विरोधी दुःखके अभावतैं बाधरहितसुख अंगीकार करनैकूं योग्य है ॥ ३८ ॥

॥ ७ ॥ शय्यादिसुखके साधनके संपादनतैं सुषुप्तिमैं सुखकी सिद्धि ॥

३८ शय्याआदिक जो सुखके साधन हैं । तिनके संपादनका सुखसैंविना असंभव है । यातैं वी सुषुप्तिविषै सुख है यह जानियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११८२

४२ ४४
दुःखनाशार्थमेवैतदिति चेद्रोगिणस्तथा ।
भवत्वरोगिणस्त्वेतत्सुखायैवेति निश्चिनु ॥४०॥

टीकांकः ४२३९ टिप्पणांकः ॐ

३९] तत्र सुप्तौ सुखं नो भवेत् चेत् महत्तरप्रयासेन मृदुशय्यादिसाधनं कुतः संपाद्यते ॥

४०) तत्र तस्यां सुप्तौ । सुखं न भवेचेत् महत्तरप्रयासेन बहुविधवित्तव्ययशरीरपीडनादिना मृदुलं शय्यादिकशिपुमंचादिसाधनं सुखसाधनं कुतः कस्मात् कारणात् संपाद्यते न कुतोऽपीत्यर्थः ॥३९॥

४१ अर्थापत्तेरन्यथोपपत्तिं शंकते (दुःखेति)—

४२] एतत् दुःखनाशार्थं एव इति चेत् ॥

४३ एतच्छय्यादिसाधनसंपादनं दुःखनिवृत्तिफलकं न नियतमिति परिहरति (रोगिण इति)—

४४] तथा रोगिणः भवतु । अरोगिणः तु एतत् सुखाय एव । इति निश्चिनु ॥

४५) रोगादिदुःखे सति तन्निवृत्तये तत् भवतु तदभावे तु निवर्त्यदुःखाभावात् तत्संपादनं सुखाय एवेति अवगम्यत इत्यर्थः ॥ ४० ॥

३९] जब तिस सुषुप्तिविषै सुख नहीं होवै । तब अतिशयबडेश्रमकरि कोमलशय्याआदिकसाधन काहेतैं संपादन करियेहै ? ॥

४०) तिस सुषुप्तिविषै जब सुख नहीं होवै । तब बहुतप्रकारके द्रव्यके खर्चनै औ शरीरके पीडनआदिकपरिश्रमकरि कोमलगदेलेमंचेसैं आदिलेके सुखका साधन किस कारणतैं संपादन करियेहै? सुखसैं विना अन्य किसी कारणतैं बीनहीं । यह अर्थ है ३९

॥ ८ ॥ श्लोक ३९ उक्त अर्थमैं शंकासमाधान ॥

४१ श्लोक ३९ उक्त शय्यादिकसाधनके संपादनके ज्ञानरूप अर्थापत्तिप्रमाणसैं अन्यथासंभवकूं कहिये सुखसैं विना संभवकूं वादी शंका करैहैः—

४२] यह शय्याआदिकका संपादन दुःखके नाश अर्थहीं है । ऐसैं जब कहै ।

४३ यह शय्याआदिकसाधनका संपादन दुःखनिवृत्तिरूप फलवाला है । यह नियम नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

४४] तब तैसैं दुःखके नाशअर्थ रोगीकूं होहु औ अरोगीकूं तौ यह शय्याआदिकका संपादन सुखअर्थहीं है । ऐसैं निश्चय कर ॥

४५) रोगआदिकदुःखके होते तिस दुःखकी निवृत्तिअर्थ सो शय्याआदिकका संपादन होहु औ तिस रोगआदिकदुःखके अभाव हुये तौ निवारण करनैयोग्य दुःखके अभावतैं तिस शय्याआदिकका संपादन सुखअर्थहीं है । ऐसैं जानियेहै । यह अर्थ है ४०

टीकांक: ४२४६

टिप्पणांक: ॐ

४७तर्हि साधनजन्यत्वात्सुखं वैषयिकं भवेत् ।
४९भवत्येवात्र निद्रायाः पूर्वं शय्यासनादिजम् ४१

५१निद्रायां तु सुखं यत्तज्जन्यते केन हेतुना ।
५४सुखाभिमुखधीरादौ पश्चान्मज्जेत्परे सुखे ॥४२॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११८३ ११८४

४६ ननु सौषुप्तसुखस्य शय्यादिसाधनजन्यत्वे आत्मस्वरूपत्वं व्याहन्येतेति शंकते—

४७] **तर्हि साधनजन्यत्वात् वैषयिकं सुखं भवेत् ॥**

४८ किं निद्रागमनात्पूर्वकालीनस्य विषयजन्यत्वं उच्यते । उत निद्राकालीनस्येति विकल्प्याद्यमंगीकरोति (भवत्विति)—

४९] **अत्र निद्रायाः पूर्वं शय्यासनादिजं भवतु एव ॥ ४१ ॥**

५० द्वितीयं निराकरोति—

५१] **निद्रायां तु यत् सुखं तत् केन हेतुना जन्यते ॥**

५२) सुषुप्तौ शय्याद्यनुसंधानाभावात् तज्जन्यत्वं तस्य न संभवतीति भावः ॥

५३ ननु निद्रायामजन्यं सुखं यद्यस्ति तर्हि तद्विषयसुखवत्कुतो नानुभूयत इत्याशंक्य अनुभवितुस्तदा तस्मिन् निमग्नत्वान्न विषयसुखवत्तदनुभव इत्यभिप्रायेणाह(सुखेति)—

॥ ९ ॥ सुषुप्तिके सुखकूं शय्यादिकरि जन्यतामैं शंका औ तामैं दोविकल्पकरि आद्यका अंगीकार ॥

४६ ननु सुषुप्तिके सुखकूं शय्याआदिक साधनकरि जन्यताके हुये तिसकी आत्मस्वरूपता भंग होवैगी। इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

४७] **तब साधनकरि जन्य होनैतैं सो सुषुप्तिका सुख विषयजन्य सुख होवैगा । नित्यआत्मस्वरूप सुख नहीं । ऐसैं जो कहो ।**

४८ क्या निद्राके आवनैतैं पूर्वकालके सुखकूं विषयसैं जन्यपना तेरेकरि कहियेहै अथवा निद्राकालके सुखकूं विषयसैं जन्यपना कहियेहै? ऐसैं दोविकल्पकरिके प्रथमपक्षकूं सिद्धांती अंगीकार करैहैं:—

४९] **तौ इहां सुषुप्तिके सन्मुख होनैकी अवस्थाविषै निद्रातैं पूर्व जो सुख है । सो शय्याआसनआदिकविषयसैं जन्य होहु ॥ ४१ ॥**

॥ १० ॥ द्वितीयपक्षका निराकरण औ निद्राके सुखकी जन्यतामैं शंकासमाधान ॥

५० दूसरेपक्षकूं निराकरण करैहैं:—

५१] **निद्राविषै जो सुख है । सो किस हेतुकरि जन्य होवैहै ? किसीकरि बी नहीं ॥**

५२) सुषुप्तिविषै शय्याआदिकसाधनके अनुसंधानके अभावतैं तिन शय्याआदिकसाधनकरि जन्यपना तिस सुषुप्तिकालके सुखकूं नहीं संभवै है । यह भाव है ॥

५३ ननु निद्राविषै जब अजन्यसुख नाम नित्यसुख है । तब सो निद्राकालका सुख विषयसुखकी न्यांई काहेतैं अनुभव नहीं करियेहै? यह आशंकाकरि अनुभव करनैहारे जीवकूं । तब निद्राकालविषै तिस सुखविषै निमग्न कहिये विलीन होनैतैं । विषयसुखकी न्यांई तिस निद्राकालके सुखका अनुभव नहीं होवैहै। इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
११८५	ॐजाग्रद्व्यापृत्तिभिः श्रांतो विश्रम्याथ विरोधिनि । अपनीते स्वस्थचित्तोऽनुभवेद्विषये सुखम् ॥४३॥	४२५४
११८६	ॐआत्माभिमुखधीवृत्तौ स्वानंदः प्रतिबिंबति । अनुभूयैनमत्रापि त्रिपुट्या श्रांतिमाप्नुयात् ॥४४॥	टिप्पणांकः ॐ

५४] आदौ सुखाभिमुखधीः पश्चात् परे सुखे मज्जेत् ॥

५५) आदौ निद्रायाः पूर्वस्मिन्काले । जीवः सुखाभिमुखधीः शय्यादिजन्यसुखाभिमुखाधीः बुद्धिर्यस्य स तथोक्तस्तथाविधो भवति । पश्चात् निद्राकाले । परे उत्कृष्टे । सुखे स्वरूपसुखे । मज्जेत् विलीनो भवेत् ॥ ४२ ॥

५६ संक्षेपेणोक्तमर्थं श्लोकत्रयेण प्रपंचयति-

५७] जाग्रद्व्यापृत्तिभिः श्रांतः विश्रम्य अथ विरोधिनि अपनीते स्वस्थचित्तः विषये सुखं अनुभवेत् ॥

५८) जीवो जाग्रद्व्यापृत्तिभिः जागरणावस्थायां क्रियमाणैर्व्यापारविशेषैः । श्रांतो विश्रम्य मृदुशय्यादौ शयनं कृत्वा । अथ अनंतरं। विरोधिनि व्यापारजनिते दुःखे अपनीते निवारिते सति । स्वस्थचित्तः अव्याकुलमनाः भूत्वा । शय्यादौ विषये जायमानं सुखमनुभवेत् साक्षात्कुर्यात्॥४३

५९ विषयसुखं च कीदृशमित्याकांक्षायां तत्स्वरूपं दर्शयन् परे सुखे निमज्जननिमित्तत्वेन तदनुभवेऽपि श्रमं दर्शयति—

५४] आदिविषै जीव सुखके अभिमुख बुद्धिवाला होवैहै औ पीछे परसुखविषै मग्न होवैहै ॥

५५) निद्रातैं पूर्वकालविषै जीव। शय्याआदिकसैं जन्य सुखके सन्मुख भईहै बुद्धि जिसकी ऐसा होवैहै। औ पीछे निद्राकालविषै परसुख जो उत्कृष्टस्वरूपआनंद तिसविषै मग्न होवैहै ॥ ४२ ॥

॥ ११ ॥ श्लोक ४२ उक्त अर्थका संक्षेपसैं विवरण ॥

५६ संक्षेपसैं ४२ श्लोकउक्तअर्थकूं तीनश्लोककरि वर्णन करैहैं:—

५७] जीव। जाग्रत्के व्यापारनकरि श्रांत हुया विश्रामकूं पायके। पीछे विरोधिदुःखके निवृत्त हुये स्वस्थचित्तवाला होयके विषयविषै सुखकूं अनुभव करताहै ॥

५८) जीव जो है। सो जाग्रत्अवस्थाविषै क्रियमाणव्यापारनके भेदकरि श्रमकूं प्राप्त हुया। विश्राम जो कोमलशय्याआदिकविषै शयन ताकूं करीके। पीछे व्यापारसैं जनित दुःखरूप विरोधिके निवारण कियेहुये स्वस्थचित्तवाला कहिये अव्याकुलमनवाला होयके। शय्याआदिकविषयविषै उत्पन्न भये सुखकूं अनुभव करताहै कहिये साक्षात् करताहै ॥४३॥

५९ विषयसुख किस प्रकारका है? इस आकांक्षाविषै तिस विषयसुखके स्वरूपकूं दिखावतेहुये। परसुखविषै निमग्न होनैके निमित्त होनैंकरि तिस विषयसुखके अनुभवविषै बी श्रमकूं दिखावैहैं:—

टीकांक: ४२६० टिप्पणांक: ॐ

तच्छ्रमस्यापनुत्त्यर्थं जीवो धावेत्परात्मनि ।
तेनैक्यं प्राप्य तत्रत्यो ब्रह्मानंदः स्वयं भवेत् ४५

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: ११८७

६०] आत्माभिमुखधीवृत्तौ स्वानंदः प्रतिबिंबति । अत्र अपि एनं अनुभूय त्रिपुट्या श्रांतं आप्नुयात् ॥

६१) अनागतविषयसंपादनादिना दुःखं अनुभूय तन्निवृत्तये मृदुशय्यादौ शयानस्य बुद्धिरंतर्मुखा भवति । तस्यां च बुद्धिवृत्तौ स्वरूपभूत आनंदः स्वाभिमुखे दर्पणे मुखमिव प्रतिबिंबति । एष हि विषयानंदः । अत्रापि अस्यामपि वेलायां । एनं विषयानंदं । अनुभूय अनुभवित्रनुभवानुभाव्यलक्षणया । त्रिपुट्या श्रमं प्राप्नुयात् ॥ ४४ ॥

६२ ततः किं तत्राह—

६३] तच्छ्रमस्य अपनुत्त्यर्थं जीवः परात्मनि धावेत् । तेन ऐक्यं प्राप्य स्वयं तत्रत्यः ब्रह्मानंदः भवेत् ॥

६४) तस्य त्रिपुटीदर्शनजनितस्य श्रमस्य अपनोदाय स एव जीवः परमात्मनि आनंदरूपे ब्रह्मणि । धावेत् शीघ्रं गच्छेत् । गत्वा च तेन ब्रह्मणा । ऐक्यं तादात्म्यं । गत्वा "सता सोम्य तदा संपन्नो भवति" इति श्रुतेः स्वयम् अपि तत्रत्यः तस्यां सुषुप्तौ स्थितः । ब्रह्मानंदो भवेत् ॥ ४५ ॥

६०] आत्माके सन्मुख भई बुद्धिवृत्तिविषै स्वरूपआनंद प्रतिबिंबकूं पावताहै । इहां बी इस प्रतिबिंबकूं अनुभवकरिके त्रिपुटीकरि श्रमकूं पावताहै ॥

६१) अप्राप्तविषयके संपादनआदिककरि दुःखकूं अनुभवकरिके तिस दुःखकी निवृत्तिअर्थ कोमलशय्याआदिकविषै शयन करनैहारे पुरुषकी बुद्धि अंतर्मुख होवैहै औ तिस अंतर्मुखबुद्धिवृत्तिविषै अपनै सन्मुख दर्पणविषैमुखकी न्यांई स्वरूपभूतआनंद प्रतिबिंबकूं पावताहै । यह आनंदका प्रतिबिंबहीं विषयानंद है ॥ इहां इसवेलाविषै बी इस विषयानंदकूं अनुभवकरिके । अनुभवकर्ता औ अनुभव औ अनुभवका विषय । इसरूपवाली त्रिपुटीकरि जीव श्रम जो खेद ताकूं पावताहै ॥ ४४ ॥

६२ तिस त्रिपुटीजन्यश्रमकी प्राप्तितैं क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

६३] तिस श्रमकी निवृत्तिअर्थ जीव । परमात्माविषै दौडताहै औ तिसके साथि एकताकूं पायके आप तहांका ब्रह्मानंद होवैहै ॥

६४) तिस त्रिपुटीके दर्शनसैं जनित श्रमके निवारणअर्थ सोइ जीव परमात्मा जो आनंदरूप ब्रह्म तिसविषै दौडताहै नाम तत्काल जाताहै औ जायके तिस ब्रह्मके साथि एकताकूं पायके "हे सोम्य ! तब सुषुप्तिविषै सत्‌ब्रह्मके साथि संपन्न कहिये एकताकूं प्राप्त होवैहै" इस श्रुतितैं आप बी तिस सुषुप्तिविषै स्थित ब्रह्मानंद होवैहै ॥ ४५ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११८८ ११८९

६६ दृष्टांताः शकुनिः श्येनः कुमारश्च महानृपः ।
महाब्राह्मण इत्येते सुप्त्यानंदे श्रुतीरिताः ॥४६॥
६९ शकुनिः सूत्रबद्धः सन् दिक्षु व्याप्त्य विश्रमम् ।
अलब्ध्वा बंधनस्थानं हस्तस्तंभाद्युपाश्रयेत् ॥४७॥

टीकांकः ४२६५ टिप्पणांकः ॐ

६५ अस्मिन्नुपपादिते सौषुप्त आनंदे शकुन्यादयो बहवो दृष्टांताः श्रुत्युक्ता विद्यंत इत्याह (दृष्टांता इति)—

६६] शकुनिः श्येनः कुमारः महानृपः च महाब्राह्मणः इति एते दृष्टांताः सुप्त्यानंदे श्रुतीरिताः ॥

६७) शकुन्यादिभिः पंचभिर्दृष्टांतैः सुप्तावानंदोपपादनेन तत्र सुखं नास्तीति मतं निराकृतम् ॥ ४६ ॥

६८ तत्र तावत् "स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धः दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बंधनमेवोपाश्रयते ॥ एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा अन्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपाश्रयते । प्राणबंधनं हि सोम्य मनः" इत्यस्य दृष्टांतदार्ष्टांतिकप्रतिपादनपरस्य छांदोग्यश्रुतिवाक्यस्यार्थं संक्षेपेण दर्शयति श्लोकद्वयेन—

६९] शकुनिः सूत्रबद्धः सन् दिक्षु व्याप्त्य विश्रमं अलब्ध्वा बंधनस्थानं हस्तस्तंभादि उपाश्रयेत् ॥

७०) हस्तादौ क्वचिदाधारसूत्रेण बद्धः

॥१२॥ सुषुप्तिके आनंदमें श्रुतिउक्तपांचदृष्टांत ॥

६५ इस उपपादन किये सुषुप्तिगतआनंदविषै शकुनिआदिकबहुतदृष्टांत श्रुतिविषै कहेहैं । ऐसैं कहैहैं:—

६६] शकुनि जो सींचाणापक्षी । श्येन जो पक्षीविशेष । कुमार । महानृप जो चक्रवर्तीराजा औ महाब्राह्मण । ये पांचदृष्टांत सुषुप्तिके आनंदविषै श्रुतिमैं कहेहैं ॥

६७)शकुनिआदिकपांचदृष्टांतनकरि सुषुप्तिविषै आनंदके उपपादनसैं तहां सुख नहीं है । यह मत निराकरण किया ॥ ४६ ॥

॥ १३ ॥ श्लोक ४६ उक्त दृष्टांतनका विवरण॥

६८ तहां प्रथम "सो जैसैं शकुनि नाम पक्षी । सूत्रकरि बद्ध हुया दिशादिशाके तांई पतनकरिके अन्यठिकानैं आश्रयकूं न पायके बंधनके स्थानकूंहीं आश्रय करताहै । ऐसैंहीं 'हे सोम्य ! सो मन कहिये मनउपाधिवाला जीव सुखदुःखरूप दिशादिशाके प्रति पतनकरिके अन्यठिकानैं आश्रयकूं न पायके । प्राण जो प्राणउपलक्षितपरब्रह्म ताकूंहीं आश्रय करताहै । जातैं हे सोम्य! मन प्राणरूप बंधनवाला है । तातैं प्राणकूंहीं आश्रय करताहै" इस दृष्टांत औ दार्ष्टांतके प्रतिपादनपरायण छांदोग्यश्रुतिके षष्ठअध्यायगतवाक्यके अर्थकूं संक्षेपसैं दोश्लोककरि दिखावैहैं:—

६९] सूत्रकरि बांध्याहुया शकुनि सर्वदिशाकेविषै व्यापारकरिके तहां विश्राम जो आधार ताकूं न पायके । बंधनके स्थान हस्तस्तंभआदिककूं जैसैं आश्रय करैहै ।

७०) हस्तआदिकविषै कहूं आधारसूत्र-

टीकांकः ४२७१ टिप्पणांकः ॐ	७१ जीवोपाधिमनस्तद्वद्धर्माधर्मफलाप्तये । स्वप्ने जाग्रति च भ्रांत्वा क्षीणे कर्मणि लीयते ४८ ७४ श्येनो वेगेन नीडैकलंपटः शयितुं व्रजेत् । जीवः सुप्त्यै तथा धावेद्ब्रह्मानंदैकलंपटः ॥ ४९ ॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११९० ११९१

शकुनिः पक्षी । आहारादिग्रहणाय दिक्षु प्राच्यादिषु । व्यापारं कृत्वा तत्र **विश्रमं** विश्रम्यतेऽस्मिन्निति विश्रमः आधारः तं **अलब्ध्वा बंधनस्थानं हस्तादिकमेव यथा-श्रयेत्** ॥ ४७ ॥

७१] (**जीवोपाधीति**)–तद्वत् जीवोपाधि मनः धर्माधर्मफलाप्तये स्वप्ने च जाग्रति भ्रांत्वा कर्मणि क्षीणे लीयते॥

७२) तथा **जीवोपाधिभूतं मनः** अपि पुण्यापुण्यफलयोः सुखदुःखयोरनुभवाय स्वप्नजाग्रदवस्थयोस्तत्र तत्र **भ्रांत्वा** भोगप्रदे **कर्मणि क्षीणे** सति स्वोपादानेऽज्ञाने **विलीयते** तल्लये च तदुपहितो जीवः परमात्मैव भवतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

७३ इदानीं श्येनदृष्टांतप्रपंचनपरस्य "तद्यथाऽस्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रांतः संहृत्य पक्षौ स्वालयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा आनंदाय धावति । यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति" इत्यस्य बृहदारण्यकवाक्यस्यार्थं संक्षिप्याह—

७४] **श्येनः शयितुं नीडैकलंपटः**

करि बांध्याहुया जो शकुनि नाम पक्षी । सो आहारआदिकके ग्रहणअर्थ पूर्वआदिकदिशाविषै व्यापारकरिके तहां विश्रामकूं कहिये जिसविषै विश्राम करिये ऐसैं आधारकूं न पायके बंधनके स्थान हस्तआदिककूंहीं जैसैं आश्रय करैहै ॥ ४७ ॥

७१] **तैसैं जीवका उपाधि मन बी । धर्मअधर्मके फलकी प्राप्तिअर्थ स्वप्न औ जाग्रत्‌विषै भ्रमणकरिके कर्मके क्षीण भये लीन होवैहै** ॥

७२) तैसैं जीवका उपाधिरूप मन बी । पुण्यपापके फल सुखदुःखके अनुभवअर्थ । स्वप्न औ जाग्रत्‌अवस्थाविषै तहां तहां भ्रमण जो व्यापार ताकूं करीके भोगप्रदकर्मके क्षीण भये अपनै उपादान अज्ञानविषै विलीन होवैहै औ तिस मनके लय हुये तिस मनरूप उपाधिवाला जीव परमात्माहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥ ४८ ॥

७३ अब श्येनदृष्टांतके वर्णनपरायण "सो जैसैं आकाशविषै श्येन वा सुपर्ण नाम चरणायुधनामक गरुडतुल्य पराक्रमी पक्षीविशेष। व्यापारकरिके श्रमकूं पायाहुया पक्षनकूं समेटिके अपनैं स्थानके तांई धावन करैहै। ऐसैंहीं यह पुरुष नाम जीव । इस सुषुप्तिगतआनंदअर्थ धावन करैहै ॥ जहां सोया पुरुष किसी बी कामकूं नाम भोगकूं कामना करता नहीं औ किसी बी स्वप्नकूं देखता नहीं" इस बृहदारण्यकउपनिषदके वाक्यके अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं:—

७४] **जैसैं श्येन शयनकरनैकूं एकहीं**

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः ११९२

अतिबालः स्तनं पीत्वा मृदुशय्यागतो हसन् ।
रागद्वेषाद्यनुत्पत्तेरानंदैकस्वभावभाक् ॥ ५० ॥

टीकांकः ४२७५ टिप्पणांकः ॐ

वेगेन व्रजेत् । तथा जीवः ब्रह्मानंदैकलंपटः सुप्त्यै धावेत् ॥

७५) यथा आकाशे सर्वतः प्रचरन् श्येनः एतन्नामा पक्षी । गगने संचारनिमित्तश्रमपरिहाराय शयितुं शयनं कर्तुं । नीडैकलंपटः कुलायैकाभिलाषवान् । व्रजेत् शीघ्रं गच्छेत् । तद्वदेव जीवः मनउपाधिकश्चिदाभासः । अपि ब्रह्मानंदैकाभिलाषवान् स्वापाय शीघ्रं गच्छेत् हृदयाकाशमिति शेषः ॥ ४९ ॥

७६ "स यथा कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वा अतिघ्नीमानंदस्य गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेत" इति कुमारादिदृष्टांतत्रयप्रदर्शनपरं बालाकिब्राह्मणगतवाक्यं श्लोकत्रयेण व्याचष्टे—

७७] अतिबालः स्तनं पीत्वा मृदुशय्यागतः हसन् रागद्वेषाद्यनुत्पत्तेः आनंदैकस्वभावभाक् ॥

७८) यथा स्तनंधयः शिशुः आगलं स्तनं पाययित्वा मृदुत्वादिगुणयोगिनि तल्पे शायितः स्वकीयादिज्ञानशून्यत्वेन रागादिरहितः सन् सुखमूर्तिरेवावतिष्ठते ॥ ५० ॥

अपनैं स्थानविषै लंपट हुया वेगकरि जाताहै । तैसैं जीव एकहीं ब्रह्मानंदविषै लंपट हुया सुषुप्तिअर्थ धावन करताहै ॥

७५) जैसैं आकाशविषै सर्वओरतैं विचरताहुया श्येन इस नामवाला पक्षी । आकाशविषै संचाररूप निमित्तकरि भये श्रमकी निवृत्तिअर्थ शयन करनैकूं एकहीं अपनैं स्थानकी अभिलाषावान् हुया तत्काल जाताहै । तैसैंहीं जीव जो मनोपाधिवाला चिदाभास सो बी एकहीं ब्रह्मानंदकी अभिलाषावान् हुया सुषुप्तिअर्थ तत्काल हृदयाकाशरूप स्थानके तांई जाताहै ॥ ४९ ॥

७६ "सो जैसैं कुमार वा महाराज वा महाब्राह्मण आनंदकी अवधिकूं पायके शयन करताहै । ऐसैंहीं यह जीव बी सोवताहै ॥" इस कुमारआदिकतीनदृष्टांत दिखावनैं परायण बृहदारण्यकके बालाकिब्राह्मणनामक प्रकरणगतवाक्यकूं तीनश्लोककरि व्याख्यान करैहैं:—

७७] जैसैं अतिबालक । स्तनकूं पान करीके मृदुशय्याविषै स्थित भया हसताहुया रागद्वेषआदिककी अनुत्पत्तितैं आनंदरूप मुख्यस्वभाववान् होवैहै ॥

७८) जैसैं स्तनकूं पान करनैहारा बालक । गलपर्यंत स्तनपान करीके कोमलताआदिकगुणयुक्तशय्याविषै शयनकूं पाया "मैं औ मेरे" इत्यादिकविशेषज्ञानसैं रहित होनैकरि रागादिकरहितहुया सुखमूर्तिहीं स्थित होवैहै ॥ ५० ॥

ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	गृहक्षेत्रादिविषये यदा कामो भवेत्तदा ।	
	राजसस्यास्य कामस्य घोरत्वात्तत्र नो सुखम् १४	५६०७
१५५०	सिद्ध्येन्न वेत्यस्ति दुःखमसिद्धौ तद्विवर्धते ।	
१५५१	प्रतिबंधे भवेत्क्रोधो द्वेषो वा प्रतिकूलतः ॥ १५ ॥	टिप्पणांकः
	अशक्यश्चेत्प्रतीकारो विषादः स्यात्स तामसः ।	८३२
१५५२	क्रोधादिषु महद्दुःखं सुखशंकापि दूरतः ॥ १६ ॥	

७] शांतासु अपि क्वचित् कश्चित् सुखातिशयः ईक्ष्यताम् ॥ १३ ॥

८ पूर्वोक्तघोरमूढवृत्तिषु सुखाभावमेवाभिनीय दर्शयति—

९] गृहक्षेत्रादिविषये यदा कामः भवेत् तदा राजसस्य अस्य कामस्य घोरत्वात् तत्र सुखं नो ॥ १४ ॥

१०] सिद्ध्येत् वा न इति दुःखं अस्ति । असिद्धौ तत् विवर्धते । प्रतिबंधे क्रोधः भवेत् ॥

ॐ १०) सुखासिद्धौ दुःखं वर्धते सुखस्य प्रतिबंधे तु क्रोधः भवति ॥

११ सुखाभावे कारणांतरमाह (द्वेष इति)–

१२] वा प्रतिकूलतः द्वेषः ॥

१३) तत्र प्रतिकूलदुःखस्य सत्त्वादित्यर्थः ॥ १५ ॥

१४ परिहारस्याशक्यत्वे विषादो भवति तस्यापि तामसत्वान्न तत्र सुखमित्याह (अशक्य इति)—

७] शांतवृत्तिनविषै बी क्वचित् कोइवृत्तिनमैं सुखका अधिकपना है औ कहींक न्यूनपना है । ऐसैं देखलेना १३ ॥ २ ॥ घोर औ मूढवृत्तिनमैं सुखका अभाव औ दुःखादिकका संभव ॥

८ पूर्व चतुर्थश्लोकविषै उक्त घोर औ मूढवृत्तिनविषै सुखके अभावकूं आकारकरिके दिखावैहैं:—

९] गृह औ क्षेत्रआदिकविषयविषै जब इच्छा होवैहै । तब रजोगुणके कार्य इस कामकूं घोरवृत्तिरूप होनैतैं तिसविषै सुख नहीं है ॥ १४ ॥

१०] यह विषयजन्यसुख सिद्ध होवैगा वा नहीं । इस संशयके हुये दुःख होवैहै औ असिद्धिके हुये सो दुःख वृद्धिकूं पावताहै औ प्रतिबंधके हुये क्रोध होवैहै ॥

ॐ १०) सुखकी असिद्धिके हुये दुःख बढताहै औ सुखके किसीकारि निषेध कियेहुये तौ क्रोध होवैहै ॥

११ सुखके अभावविषै अन्यकारणकूं कहैहैं:-

१२] वा प्रतिकूलतैं द्वेष होवैहै ॥

१३) तहां सुखके प्रतिबंधविषै प्रतिकूल जो दुःख तिसके सद्भावतैं द्वेष होवैहै। यह अर्थ है १५

१४ सुखप्रतिबंधके निवारणके उपायकी अशक्यताके हुये विषाद नाम खेद होवैहै । तिस खेदकूं बी तामसवृत्तिरूप होनैतैं तिसविषै सुख नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

३२ शांतवृत्तिनविषै बी कहींक इष्टस्मरणादिरूप वा अल्प औ महत्‌विषयकी प्राप्तिआदिकरूप भिन्नभिन्नस्थलमैं सुखका अधिकन्यून भान होवैहै । यह अर्थ है ॥

टीकांक: ५६१५ टिप्पणांक: ८३३		ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥१५॥ श्लोकांक:
	[16] काम्यलाभे हर्षवृत्तिः शांता तत्र महत्सुखम् । भोगे महत्तरं लाभप्रसक्तावीषदेव हि ॥ १७ ॥	१५५३
	[17] महत्तमं विरक्तौ तु विद्यानंदे तदीरितम् । एवं क्षांतौ तथौदार्ये क्रोधलोभनिवारणात् ॥१८	१५५४
	[18] यद्यत्सुखं भवेत्तत्तद्ब्रह्मैव प्रतिबिंबनात् । [19] वृत्तिष्वंतर्मुखास्वस्य निर्विघ्नं प्रतिबिंबनम् ॥१९॥	१५५५

१५] प्रतीकारः चेत् अशक्यः विषादः स्यात् । सः तामसः । क्रोधादिषु महत् दुःखं सुखशंका अपि दूरतः ॥

ॐ १५) क्रोधादिषु इत्यादयः स्पष्टार्थाः ॥ १६ ॥

१६] काम्यलाभे शांता हर्षवृत्तिः तत्र महत् सुखं । भोगे महत्तरं । लाभप्रसक्तौ ईषत् एव हि ॥ १७ ॥

१७] (महत्तममिति)— विरक्तौ तु महत्तमं तत् विद्यानंदे ईरितं । एवं क्षांतौ तथा औदार्ये क्रोधलोभनिवारणात् ॥ १८ ॥

१८] यत् यत् सुखं तत् तत् ब्रह्म एव प्रतिबिंबनात् भवेत् ॥

१९ एवं क्ष्यांत्यादीनां प्रसिद्धमित्याह (वृत्तिष्विति)—

२०] अंतर्मुखासु वृत्तिषु अस्य निर्विघ्नं प्रतिबिंबनम् ॥ १९ ॥

१५] प्रतिबंधका प्रतिकार कहिये निवृत्तिका उपाय जब अशक्य होवै तब विषाद होवैहै । सो तमोगुणका कार्य है औ क्रोधआदिकविषै बडादुःख है । तहां सुखकी शंका बी दूर है ॥

ॐ १५) "क्रोधादिकनविषै" इत्यादिश्लोक स्पष्टअर्थवाले हैं ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ शांतवृत्तिनमैं सुखकी तारतम्यता ॥

१६] वांछितवस्तुके लाभ हुये हर्षरूप शांतवृत्ति होवैहै । तिसविषै महत्सुख होवैहै । तिसके भोगविषै महत्तरसुख होवैहै औ लाभके संयोगविषै अल्पहीं सुख होवैहै ॥ १७ ॥

॥ ४ ॥ सुखमात्रकूं ब्रह्मका प्रतिबिंबपना औ अंतर्मुखशांतवृत्तिनमैं प्रतिबिंबकी प्रसिद्धि ॥

१७] विषयके वैराग्यविषै तौ महत्तम[33]सुख होवैहै सो विद्यानंदनामकचतुर्दशप्रकरणविषै कह्याहै । ऐसैं क्षमाविषै औ उदारताविषै क्रोध औ लोभरूप प्रतिबंधके निवारणतैं ॥ १८ ॥

१८] जो जो सुख होवैहै सो सो ब्रह्महीं प्रतिबिंबतैं होवैहै कहिये सो सो ब्रह्मानंदका अंश है ॥

१९ ऐसैं क्षमाआदिकअंतर्मुखवृत्तिनमैं ब्रह्मानंदका प्रतिबिंब प्रसिद्ध है । ऐसैं कहैहैं:—

२०] अंतर्मुखवृत्तिनविषै इस ब्रह्मके आनंदका निर्विघ्न नाम स्पष्टप्रतिबिंब होवैहै ॥ १९ ॥

३३ ज्ञानीकूं इच्छाके अभावरूप वैराग्यतैं जो महत्तम नाम निरतिशयसुख होवैहै । सो देखो अंक५४८२—५५१८ विषै॥

ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांक: | टीकांक: ५६२१ | टिप्पणांक: ॐ

१५५६ [22]सत्ता चितिः सुखं चेति स्वभावा ब्रह्मणस्त्रयः ।
मृच्छिलादिषु सत्तैव व्यज्यते नेतरद्वयम् ॥ २० ॥
१५५७ [24]सत्ता चितिर्द्वयं व्यक्तं धीवृत्त्योर्घोरमूढयोः ।
शांतवृत्तौ त्रयं व्यक्तं [27]मिश्रं ब्रह्मेत्थमीरितम् ॥२१
[29]अमिश्रं ज्ञानयोगाभ्यां तौ च पूर्वमुदीरितौ ।
१५५८ [31]आद्येऽध्याये योगचिंता [33]ज्ञानमध्याययोर्द्वयोः ॥२२

२१ इदानीं सर्वत्र ब्रह्मस्वरूपानुभूतिप्रदर्शनाय तत्स्वरूपं स्मारयति—

२२] **सत्ता चितिः च सुखं इति त्रयः स्वभावाः ब्रह्मणः। मृच्छिलादिषु सत्ता एव व्यज्यते इतरत् द्वयं न ॥**

२३) मृच्छिलादिषु सन्मात्रमित्यर्थः २०

२४](सत्तेति)-**घोरमूढयोः धीवृत्त्योः सत्ता चितिः द्वयं व्यक्तं शांतवृत्तौ त्रयं व्यक्तम् ॥**

२५) घोरमूढयोः द्वयोः सत्ताचिती द्वे । शांतवृत्तौ सच्चिदानंदाः त्रयोऽपि व्यक्ताः ॥

२६ एवं सप्रपंचं ब्रह्माभिहितमित्याह (मिश्रमिति)—

२७] इत्थं **मिश्रं ब्रह्म ईरितम्** ॥२१॥

२८ अमिश्रं कुतो ज्ञायते इत्याशंक्याह—

॥ ९ ॥ ब्रह्मके स्वरूप सच्चिदानंदका स्मरण औ तिनमैंसैं शिलादिकविषै सत्मात्रकी सिद्धि ॥

२१ अब सर्वठिकानै ब्रह्मके स्वरूपके अनुभवके दिखावनैअर्थ तिस ब्रह्मके स्वरूपकूं स्मरण करावैहैं:—

२२] **अस्तिपना चित् औ आनंद ये तीनस्वभाव ब्रह्मके हैं। तिनमैंसैं मृत्तिका औ पाषाणआदिकजडवस्तुनविषै सत्ताहीं प्रगट होवैहै। अन्य चित् औ आनंद दोनूं नहीं ॥**

२३) मृत्तिका औ शिलाआदिनविषै सत्मात्रहीं प्रगट होवैहै। यह अर्थ है ॥ २० ॥

॥ ६ ॥ घोर औ मूढमैं सत्‌चित् दोकी औ शांतमैं तीनकी प्रसिद्धि औ कथन किये सप्रपंचब्रह्मका सूचन॥

२४] **घोर औ मूढरूप बुद्धिकी वृत्तिनविषै सत्ता औ चेतन दोनूं प्रगट होवैहैं औ शांतवृत्तिविषै सत्ता चेतन औ आनंद ये तीन प्रगट होवैहैं ॥**

२५) घोर औ मूढ दोनूंवृत्तिनविषै सत्ता औ चेतन दोनूं प्रगट होवैहैं औ शांतवृत्तिविषै सत् चित् औ आनंद तीन बी आविर्भावकूं प्राप्त होवैहैं ॥

२६ ऐसैं सप्रपंचब्रह्म कहा। ऐसैं कहैहैं:—

२७] ऐसैं कहिये उक्तप्रकारसैं **मिश्र** कहिये वृत्तिआदिकप्रपंचसहित **ब्रह्म कथन किया** ॥ २१ ॥

॥ २ ॥ निष्प्रपंचब्रह्मके ज्ञानका हेतु औ मायाके विभागपूर्वक ब्रह्मविद्यारूप ब्रह्मका ध्यान ॥

॥ ५६२८–५६७८ ॥

॥ १ ॥ निष्प्रपंचब्रह्मके कथनपूर्वक मायाके स्वरूपका विभाग

॥ ५६२८–५६४२ ॥

॥ १ ॥ अमिश्रब्रह्मके ज्ञानके हेतु ज्ञान औ योगका कथन ॥

२८ अमिश्रब्रह्म काहेतैं जानियेहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

टीकांक: ५६२९ टिप्पणांक: ॐ	³⁵असत्ता जाड्यदुःखे द्वे मायारूपं त्रयं त्विदम् । असत्ता नरशृंगादौ जाड्यं काष्ठशिलादिषु ॥२३॥ ³⁸घोरमूढधियोर्दुः⁴⁰खमेवं माया विजृंभिता । ⁴¹शांतादिबुद्धिवृत्त्यैक्यान्मिश्रं ब्रह्मेति कीर्तितम् २४	ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांक: १५५९ १५६०

२९] अमिश्रं ज्ञानयोगाभ्यां तौ च पूर्वं उदीरितौ ॥

ॐ २९) तौ च ज्ञानयोगौ पूर्वं एवोक्तौ इत्यर्थः ॥

३० कुत्रोक्ताविस्याशंक्य योगः प्रथमाध्याये उक्त इत्याह—

३१] आद्ये अध्याये योगचिंता ॥

३२ समनंतराध्याययोर्ज्ञानमुक्तमित्याह— (ज्ञानमिति)—

३३] द्वयोः अध्याययोः ज्ञानम् २२

३४ ननु सच्चिदानंदानां ब्रह्मरूपत्वे मायायाः किं रूपमित्याशंक्याह—

३५] असत्ता जाड्यदुःखे द्वे इदं त्रयं तु मायारूपं । नरशृंगादौ असत्ता । काष्ठशिलादिषु जाड्यम् ॥

३६) नृशृंगादौ असत्त्वं । मृच्छिलादिषु जाड्यं इति विवेकः ॥ २३ ॥

३७ दुःखं कुत्रेत्याशंक्याह—

३८] घोरमूढधियोः दुःखम् ॥

३९ एवं सर्वत्र माया प्रतिभासत इत्याह—

२९] अमिश्रब्रह्म ज्ञान औ योगकरि जानियेहै औ सो पूर्व कहेहैं ॥

ॐ २९) सो ज्ञान औ योग तौ दोनूं पूर्वहीं कहेहैं । यह अर्थ है ॥

३० सो ज्ञान औ योग पूर्व कहां कहेहैं ? यह आशंकाकरि योग जो है सो प्रथम योगानंदनामक प्रथमअध्यायविषै कहाहै । ऐसैं कहैहैं:—

३१] प्रथमअध्यायविषै योगका विचार है ॥

३२ तिस योगानंदतैं पीछले दोअध्यायनविषै ज्ञान कहाहै । ऐसैं कहैहैं:—

३३] आत्मानंद औ अद्वैतानंदरूप दोनूं अध्यायविषै ज्ञान कह्याहै ॥ २२ ॥

॥ २ ॥ मायाका स्वरूप औ तामैं असत्ता औ जडताका स्थान ॥

३४ ननु । सत् चित् औ आनंदकूं ब्रह्मरूपताके हुये मायाका कौन रूप है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३५] असत्ता जडता औ दुःख । ये तीन मायाका रूप है । तिनमैंसैं नरशृंगआदिकनिःस्वरूपविषै असत्ता है औ काष्ठ अरु शिलाआदिकअनिर्वचनीयवस्तुनविषै जडता है ॥

३६) नरशृंगआदिकविषै असत्पना है औ मृत्तिका अरु शिलाआदिकनविषै जडपना है । यह विवेक है ॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ दुःखका स्थान औ श्लोक २३ उक्त मायाकी प्रतीतिपूर्वक शांतादिकविषै मिश्रब्रह्मकी प्रतीतिमैं कारण ॥

३७ दुःख कहां रहताहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३८] घोर औ मूढबुद्धिवृत्तिनविषै दुःख है ॥

३९ इसरीतिसैं सर्वठिकानै माया भासतीहै । ऐसैं कहैहैं:—

ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १६ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	ऐवं स्थितेऽत्र यो ब्रह्म ध्यातुमिच्छेत्पुमानसौ ।	
	नृशृंगादिमुपेक्षेत शिष्टं ध्यायेद्यथायथम् ॥ २५ ॥	५६४०
१५६१	शिलादौ नामरूपे द्वे त्यक्त्वा सन्मात्रचिंतनम् ।	टिप्पणांकः
१५६२	त्यक्त्वा दुःखं घोरमूढधियोः सच्चिद्विचिंतनम् २६	ॐ

४०] एवं माया विजृंभिता ॥

४१ शांतादिषु वृत्तिषु ब्रह्मणो मिश्रत्वे किं कारणमित्यत आह—

४२] शांतादिबुद्धिवृत्त्यैक्यात् "मिश्रं ब्रह्म" इति कीर्तितम् ॥२४॥

४३ एतदभिधानं किमर्थमित्याशंक्य ब्रह्मध्यानार्थमित्याह—

४४] एवं स्थिते अत्र यः ब्रह्म ध्यातुं इच्छेत् असौ पुमान् ॥

४५ नृशृंगादिमुपेक्ष्यान्यत्र ब्रह्मध्यानं कर्तव्यमित्याह—

४६] नृशृंगादिं उपेक्षेत । शिष्टं यथायथं ध्यायेत् ॥ २५ ॥

४७ "अन्यत्र" इत्युक्तं कुत्र कथं ध्येयमित्यत आह—

४८] शिलादौ नामरूपे द्वे त्यक्त्वा सन्मात्रचिंतनम् ॥

४०] ऐसैं माया विलसतीहै नाम प्रकाशकूं पावतीहै ॥

४१ शांतआदिकवृत्तिनविषै ब्रह्मकी मिश्रता नाम सप्रपंचता जो पूर्व २१ वें श्लोकविषै कहीहै । तिसविषै कौन कारण है? तहां कहैहैं:—

४२] शांतआदिक बुद्धिकी वृत्तिनके साथि अभेदतैं "मिश्रब्रह्म" ऐसैं कहाहै ॥ २४ ॥

॥ २ ॥ सवृत्तिक तीनभांतिका औ अवृत्तिक एकभांतिका ब्रह्मका ध्यान ॥ ५६४३—५६६० ॥

॥ १ ॥ श्लोक २३ सैं उक्त अर्थका प्रयोजन (ब्रह्मध्यान) औ ताका प्रकार ॥

४३ यह पूर्व कहे अर्थका कथन किसअर्थ है? यह आशंकाकरि ब्रह्मके ध्यानअर्थ है। ऐसैं कहैहैं:—

४४] ऐसैं ब्रह्म औ मायाके स्वरूपके स्थित हुये इहां जो मंदबुद्धिवाला अधिकारीपुरुष ब्रह्मकूं ध्यान करनैकूं इच्छता है । यह पुरुष कहनैकी रीतिसैं ध्यावै ॥

४५ नरशृंगआदिककूं उपेक्षाकरिके नाम विसरणकरिके अन्यठिकानै ब्रह्मका निरंतर चिंतनरूप ध्यान कर्त्तव्य है । ऐसैं कहैहैं:—

४६] नरशृंगआदिककूं उपेक्षा करै औ अवशेष रहे ब्रह्मकूं यथायोग्य ध्यावै नाम निरंतर चितवै ॥ २५ ॥

॥ २ ॥ श्लोक २५ उक्त ध्यानकी त्रिविधता ॥

४७ "अन्यठिकानै ब्रह्मका ध्यान कर्त्तव्य है" ऐसैं जो २५ वें श्लोकविषै कह्या । सो किस ठिकानै कैसैं ब्रह्मका ध्यान करनैकूं योग्य है? तहां कहैहैं:—

४८] शिलाआदिकविषै नाम रूप दोनूंकूं त्यागकरिके सत्मात्रका चिंतन करै ॥

टीकांक: ५६४९ टिप्पणांक: ८३४	५२शांतासु सच्चिदानंदांस्त्रीनप्येवं विचिंतयेत् । ५४कनिष्ठमध्यमोत्कृष्टास्तिस्रश्चिंताः क्रमादिमाः २७ ५६मंदस्य व्यवहारेऽपि मिश्रब्रह्मणि चिंतनम् । उत्कृष्टं वक्तुमेवात्र विषयानंद ईरितः ॥ २८ ॥	ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥१५॥ श्लोकांक: १५६३ १५६४

४९ घोरमूढबुद्धिषु दुःखं परित्यज्य सच्चिद्रूपयोश्चिंतनं कर्तव्यमित्याह (त्यक्त्वेति)-

५०] **घोरमूढधियोः दुःखं त्यक्त्वा सच्चिद्विचिंतनम् ॥ २६ ॥**

५१ सात्विकवृत्तिषु सच्चिदानंदास्त्रयोऽपि ध्येया इत्याह (शांतास्विति)—

५२] **एवं शांतासु सच्चिदानंदान् त्रीन् अपि विचिंतयेत् ॥**

५३ एषां ध्यानानां किं साम्यं नेत्याह (कनिष्ठेति)—

५४] **इमाः तिस्रः चिंताः क्रमात् कनिष्ठमध्यमोत्कृष्टाः ॥ २७ ॥**

५५इदानीं निर्गुणब्रह्मध्यानेऽनधिकारिणोऽनुग्रहाय मिश्रब्रह्मध्यानेऽधिकार इत्यभिप्रायेणाह—

५६] **मंदस्य व्यवहारे अपि मिश्रब्रह्मणि चिंतनं उत्कृष्टं वक्तुं एव अत्र विषयानंदः ईरितः ॥ २८ ॥**

---

४९ घोर औ मूढबुद्धिनविषै दुःखकूं परित्यागकरिके सत् औ चित्रूपका चिंतन कर्त्तव्य है। ऐसैं कहैहैं:—

५०] **घोर औ मूढबुद्धिनविषै दुःखकूं त्यागकरिके सत् औ चित्का चिंतन करै ॥ २६ ॥**

५१ सात्विकवृत्तिनविषै सत् चित् औ आनंद तीन बी ध्यान करनेकूं योग्य हैं। ऐसैं कहैहैं:—

५२] **ऐसैं शांतवृत्तिनविषै सत् चित् औ आनंद। इन तीनकूं चिंतन करै ॥**

५३ इन तीनप्रकारके ध्यानकी क्या समता है? तहां नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

५४] **यह २६ श्लोकसैं उक्त तीनध्यान जे हैं। वे क्रमतैं कनिष्ठ मध्यम औ उत्तम हैं ॥ २७ ॥**

॥ ३ ॥ निर्गुणब्रह्मके ध्यानमैं अनधिकारीकूं श्लोक २१ उक्त ध्यानमैं अधिकार ॥

५५ अब निर्गुणब्रह्मके ध्यानविषै अनधिकारी जो पुरुष है। तिसके अनुग्रहअर्थ तिसका मिश्रब्रह्मके ध्यानविषै अधिकार है। इस अभिप्रायकरिके कहैहैं:—

५६] **स्थूलमतिमान्पुरुषकूं व्यवहारविषै बी मिश्रब्रह्मविषै चिंतन श्रेष्ठ है। ऐसैं कहनैकूंहीं इस वेदांतके प्रकरणविषै विषयानंद कह्याहै ॥ २८ ॥**

---

३४ जिस मंदमतिमान्‌अधिकारीकूं विचारके बलसैं वृत्तिआदिकप्रपंचकूं निषेधकरिके शुद्धसच्चिदानंदब्रह्मके जाननैंकी शक्ति नहीं है । सो वृत्तिआदिकप्रपंचरूप व्यवहारविषै सच्चिदानंदकूं क्रमतैं चिंतनकरिके पीछे अभ्यासके बलकरि सर्वत्र सच्चिदानंदब्रह्मकूं जानि सके । इस हेतुतैं इहां विषयानंद कह्याहै । यह भाव है ॥

महानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांक: १५६५ १५६६	५८ औदासीन्ये तु धीवृत्तेः शैथिल्यादुत्तमोत्तमम् । ६० चिंतनं वासनानंदे ध्यानमुक्तं चतुर्विधम् ॥२९॥ ६२ न ध्यानं ज्ञानयोगाभ्यां ६४ ब्रह्मविद्यैव सा खलु । ६६ ध्यानेनैकाग्र्यमापन्ने चित्ते विद्या स्थिरीभवेत् ३०	टीकांक: ५६५७ टिप्पणांक: ॐ

५७ एवं सवृत्तिकं ध्यानत्रयमुक्त्वावृत्तिकं ध्यानमाह—

५८] औदासीन्ये तु धीवृत्तेः शैथिल्यात् वासनानंदे चिंतनं उत्तमोत्तमम् ॥

५९ एभ्यो ध्यानेभ्योऽधिकमित्यर्थः । उक्तं निगमयति (ध्यानमिति)—

६०] चतुर्विधं ध्यानं उक्तम् ॥ २९ ॥

६१ अयं ध्यानावांतरभेदः किं नेत्याह (न ध्यानमिति)—

६२] ज्ञानयोगाभ्यां ध्यानं न ॥

६३ तर्हि किमेतदित्याशंक्याह (ब्रह्मविद्येति)—

६४] सा खलु ब्रह्मविद्या एव ॥

६५ इयं ब्रह्मविद्या कथमुत्पन्नेत्याशंक्याह—

६६] ध्यानेन ऐकाग्र्यं आपन्ने चित्ते विद्या स्थिरीभवेत् ॥ ३० ॥

॥ ४ ॥ अवृत्तिकध्यान औ श्लोक २६ सैं उक्त अर्थका सूचन ॥

५७ ऐसैं वृत्तिसहित तीनभांतिके ध्यानकूं कहिके अवृत्तिकध्यानकूं कहैहैं:—

५८] उदासीनपनैविषै तौ बुद्धिवृत्तिकी शिथिलतातैं वासनानंदविषै जो ध्यान है। सो उत्तमोत्तम है कहिये इन उक्ततीनध्यानोंतैं अधिक है ॥

५९ श्लोक २६ सैं उक्त अर्थकूं सूचन करैहैं:—

६०] ऐसैं च्यारीप्रकारका ध्यान कह्या ॥ २९ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक २६ उक्त ध्यानका ब्रह्मविद्यापना ॥ ५६६१—५६७८ ॥

॥ १ ॥ श्लोक २६ उक्त ध्यानकी ध्यानताके निषेधपूर्वक ब्रह्मविद्यापना औ ताकी उत्पत्तिका प्रकार ॥

६१ यह क्या ध्यानका अवांतरभेद है? तहां नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

६२] ज्ञान औ योग दोनूंके सद्भावतैं यह ध्यान नहीं है ॥

६३ तब यह क्या है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६४] सो निश्चयकरि ब्रह्मविद्याहीं है॥

६५ यह ब्रह्मविद्या कैसैं उत्पन्न भई? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६६] ध्यानकरि एकाग्रताकूं प्राप्त भये चित्तविषै विद्या जो ज्ञान सो स्थिर होवैहै ॥ ३० ॥

टीकांक: ५६६७	६८ विद्यायां सच्चिदानंदा अखंडैकरसात्मताम् । प्राप्य भांति न भेदेन भेदकोपाधिवर्जनात् ३१	ब्रह्मानंदे विषयानंद: ॥ १५ ॥ श्लोकांक:
	७० शांता घोराः शिलाद्याश्च भेदकोपाधयो मताः ।	१५६७
	७२ योगाद्विवेकतो वैषामुपाधीनामपाकृतिः ॥ ३२ ॥	१५६८
टिप्पणांक: ८३५	७४ निरुपाधिब्रह्मतत्त्वे भासमाने स्वयंप्रभे । अद्वैते त्रिपुटी नास्ति भूमानंदोऽत उच्यते॥३३॥	१५६९

६७ अस्या विद्यात्वे हेतुमाह—

६८] विद्यायां सच्चिदानंदाःअखंडैकरसात्मतां प्राप्य भांति । भेदेन न । भेदकोपाधिवर्जनात् ॥ ३१ ॥

६९ भेदकोपाधिवर्जनादित्युक्तं तानेव भेदकोपाधीनाह—

७०] शांताः घोराः च शिलाद्याः भेदकोपाधयः मताः ॥

७१ एतेषां परिहारः केनोपायेनेत्याशंक्याह—

७२] योगात् वा विवेकतः एषां उपाधीनां अपाकृतिः ॥ ३२ ॥

७३] फलितमाह (निरुपाधीति)—

७४] स्वयंप्रभे अद्वैते निरुपाधिब्रह्मतत्त्वे भासमाने त्रिपुटी न अस्ति । अतः भूमानंदः उच्यते ॥

७५) त्रिपुटीभानाभावात् भूमानंद इत्युच्यते इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

॥ २ ॥ इस ध्यानके ब्रह्मविद्यापनैविषै हेतु ॥

६७ इसके विद्यापनैविषै हेतु कहैहैं:—

६८] ज्ञानविषै सत् चित् औ आनंदरूप जो ब्रह्मके स्वभाव हैं। सो अखंडएकरसरूपताकूं पायके भान होवैहैं। भेदकरि नहीं। काहेतैं भेदकारकउपाधिनके वर्जनतैं नाम निषेधतैं ॥ ३१ ॥

॥ ३ ॥ ब्रह्मांशके भेदक उपाधि (वृत्ति) औ ताके परिहारका उपाय ॥

६९ "भेदकउपाधिनके वर्जनतैं" ऐसैं जो ३१ वें श्लोकविषै कह्या । तिनहीं भेदकउपाधिनकूं कहैहैं:—

७०] शांत घोर अरु मूढ औ शिलाआदिक जे हैं वे भेदकउपाधि मानेहैं ॥

७१ इन उपाधिनका निवारण किस उपायकरि होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७२] चित्तकी एकाग्रतारूप योगतैं वा विवेकतैं नाम विचारतैं इन उपाधिनका निवारण होवैहै ॥ ३२ ॥

॥ ४ ॥ फलितअर्थका कथन ॥

७३ फलितअर्थकूं कहैहैं:—

७४] स्वयंप्रकाश औ अद्वैतरूप निरुपाधिकब्रह्मतत्त्वके भासमान हुये त्रिपुटी नहीं भासतीहै। यातैं यह भूमा आनंद कहियेहै ॥

७५) ज्ञाता ज्ञान औ ज्ञेयरूप त्रिपुटीके भानके अभावतैं यह भूमा नाम देश काल औ वस्तुकृत परिच्छेदतैं रहित आनंद कहियेहै। यह अर्थ है ३३

३५ प्रथम ध्यानकालमैं सत् चित् आनंद ये ब्रह्मके स्वभाव उपाधिनके भेदकरि भिन्न भिन्न प्रतीत होवैहैं । पीछे ध्यानके अभ्यासतैं एकाग्र भये चित्तविषै विचारकरि उपाधिनके निवारणतैं सत् चित् औ आनंद अखंडएकरस होयके भान होवैहैं । यातैं यह ब्रह्मविद्याहीं है। ध्यान (उपासना) नहीं यह अर्थ है ॥

ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१५७०	७७ ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे पंचमोऽध्याय ईरितः । विषयानंद एतेन द्वारेणांतः प्रवेश्यताम् ॥ ३४ ॥	५६७६
१५७१	७८ प्रीयाद्धरिहरोऽनेन ब्रह्मानंदेन सर्वदा । पायाच्च प्राणिनः सर्वान्स्वाश्रितांश्छुद्धमानसान्॥३५	टिप्पणांक: ॐ

॥ इति ब्रह्मानंदगतविषयानंदः ॥ १५ ॥

७६ ग्रंथमुपसंहरति—

७७] ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे पंचमः अध्यायः ईरितः विषयानंदः एतेन द्वारेण अंतः प्रवेश्यताम् ॥

ॐ ७७) स्पष्टत्वान्न व्याख्यायते ॥ ३४ ॥

७८] (प्रीयादिति)— अनेन ब्रह्मानंदेन हरिहरः सर्वदा प्रीयात् च स्वाश्रितान् शुद्धमानसान् सर्वान् प्राणिनः पायात् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण श्रीरामकृष्णाख्यविदुषा विरचिते ब्रह्मानंदे विषयानंदो नाम पंचमोऽध्यायः

॥ ५ ॥ १५ ॥

॥ ५ ॥ ग्रंथकी समाप्ति ॥

७६ ग्रंथकूं समाप्ति करैहैं:—

७७] ब्रह्मानंदनामक पंचअध्यायरूप ग्रंथविषै पंचमअध्याय जो कह्या । सो विषयानंद है। इस विषयानंदरूप द्वारकरि ब्रह्मानंदके भीतर प्रवेश करना ॥

ॐ ७७) यह श्लोक स्पष्ट होनैतैं व्याख्यान नहीं करियेहै ॥ ३४ ॥

॥ ६ ॥ ग्रंथके अंतमैं आशीर्वादरूप मंगल ॥

७८] इस ब्रह्मानंदके निरूपणकरि हरिसैं नाम विष्णुसैं अभिन्न जो हर नाम शिव है । सो सर्वदा प्रसन्न होहू औ अपनै आश्रित जे शुद्धमनवाले सर्वप्राणी हैं तिनकूं जन्ममरणादिरूप संसारसैं रक्षण करहू ॥ ३५ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत श्लोक । द्रुतविलंबितछंदः ॥

गुरुवराब्धिकृपाऽमृतनिर्झरै-
र्विधुतमोहमलेन चलैनसा ।
विरचिता पदपंक्तिरियं मया
भवतु सत्सुखदा भवहेलया ॥ १ ॥

गुरुवर कहिये सद्गुरुरूप जो अब्धि नाम सागर है । तिसकी कृपारूप जो अमृत कहिये सुधा है । तिसके जरनैकरि धोया गयाहै मोह नाम अविवेकरूप मल जिसका औ याहीतैं चलायमान कहिये नष्ट भयाहै एन नाम पुण्यपापरूप मल जिसका । ऐसा जो मैं हूं । तिसकरि विरचित जो यह पदपंक्ति नाम तत्त्वप्रकाशिकानामक व्याख्या है । सो जिज्ञासुजननकूं जन्मादिअनर्थरूप भवका हेला नाम तिरस्कारकरिके सत्सुख जो ब्रह्मानंद ताकी देनैहारी होहू ॥ १ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यबापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्यपीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या ब्रह्मानंदगतविषयानंदस्य तत्त्वप्रकाशिकाख्या व्याख्या समाप्ता

॥ ५ ॥ १५ ॥

ॐ

श्रीमद्भागवताष्टमस्कंधगत

॥ श्रीगजेंद्रमोक्ष ॥

ब्रह्मनिष्ठपंडित श्रीपीतांबरजीकृत
अन्वयांकयुक्त भाषा ।
तथा
षट्दर्शनसारदर्शकपत्रकसहित
सर्वमुमुक्षुनके हितार्थ

शरीफ सालेमहम्मदनै
छपाइके प्रसिद्ध किया ॥

मुंबईमध्ये निर्णयसागर छापखानैमैं छापा ॥
संवत् १९५३ । सन् १८९७

॥ अथ षट्दर्शनसारदर्शकपत्रकं ॥

विषय	पूर्वमीमांसा	उत्तरमीमांसा (वेदांत)	न्याय	वैशेषिक	सांख्य	योग
जगत्	स्वरूपसैं अनादि अनंत प्रवाहरूप संयोगवियोगवान्	नामरूप क्रियात्मक मायाका परिणाम चेतनका विवर्त्त	परमाणुआरंभित संयोगवियोगजन्य आकृतिविशेष	परमाणुआरंभित संयोगवियोगजन्य आकृतिविशेष	प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशतितत्त्वात्मक	प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशतितत्त्वात्मक
जगत्कारण	जीव अदृष्ट औं परमाणु	अभिन्ननिमित्तोपादानईश्वर	परमाणु ईश्वरादिनव	परमाणु ईश्वरादिनव	त्रिगुणात्मक प्रकृति	कर्मानुसार प्रकृति औ तन्नियामक ईश्वर
ईश्वर	०	मायाविशिष्टचेतन	नित्य इच्छाज्ञानादिगुणवान् विभु कर्त्ताविशेष	नित्य इच्छाज्ञानादिगुणवान् विभु कर्त्ताविशेष	०	क्लेशकर्मविपाकआशय असंबद्धपुरुषविशेष
जीव	जडचेतनात्मक विभु नाना कर्त्ता भोक्ता	अविद्याविशिष्टचेतन	ज्ञानादिचतुर्दशगुणवान् कर्त्ता भोक्ता जड विभु नाना	ज्ञानादिचतुर्दशगुणवान् कर्त्ता भोक्ता जड विभु नाना	असंग चेतन विभु नाना भोक्ता	असंग चेतन विभु नाना कर्त्ता भोक्ता
बंधहेतु	निषिद्धकर्म	अविद्या	अज्ञान	अज्ञान	अविवेक	अविवेक
बंध	नरकादिदुःखसंबंध	अविद्यातत्कार्य	एकविंशतिदुःख	एकविंशतिदुःख	अध्यात्मादित्रिविधदुःख	प्रकृतिपुरुषसंयोगजन्य अविद्यादिपंचक्लेश
मोक्ष	स्वर्गप्राप्ति	अविद्यातत्कार्य निवृत्तिपूर्वक परमानंदब्रह्मप्राप्ति	एकविंशतिदुःखध्वंस	एकविंशतिदुःखध्वंस	त्रिविधदुःखध्वंस	प्रकृतिपुरुषसंयोगाभावपूर्वक अविद्यादिपंचक्लेशनिवृत्ति
मोक्षसाधन	वेदविहितकर्म	ब्रह्मात्मैक्यज्ञान	इतरभिन्नात्मज्ञान	इतरभिन्नात्मज्ञान	प्रकृतिपुरुषविवेक	निर्विकल्पसमाधिपूर्वक विवेक

अधिकारी	कर्मफलासक्त	मलविक्षेपदोषरहित चतुष्टयसाधनसंपन्न	दुःखजिहासु कुतर्की	दुःखजिहासु कुतर्की	संदिग्ध विरक्त	विक्षिप्तचित्तवान्
प्रकटकर्त्ताआचार्य	जैमिनी	वेदव्यास	गौतम	कणाद	कपिल	पतंजलि
प्रधानकांड	कर्मकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	उपासनाकांड
वाद	आरंभवाद	विवर्त्तवाद	आरंभवाद	आरंभवाद	परिणामवाद	परिणामवाद
आत्मपरिमाण-संख्या	विभु नाना	विभु एक	विभु नाना	विभु नाना	विभु नाना	विभु नाना
प्रमाण	षट् (६)	षट् (६)	प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द (४)	प्रत्यक्ष अनुमान (२)	प्रत्यक्ष अनुमान शब्द (३)	प्रत्यक्ष अनुमान शब्द (३)
ख्याति	अख्याति	अनिर्वचनीय	अन्यथा	अन्यथा	अख्याति	अख्याति
सत्ता	जीवजगत् परमार्थ-सत्ता	परमार्थरूपात्मसत्ता व्यावहारिक औ प्रातिभासिकजगत्सत्ता	जीवजगत् परमार्थ-सत्ता	जीवजगत् परमार्थ-सत्ता	जीवजगत् परमार्थ-सत्ता	जीवजगत् परमार्थ-सत्ता
उपयोग	चित्तशुद्धि	तत्त्वज्ञानपूर्वक मोक्ष	मनन	मनन	"त्वं" पदार्थशोधन	चित्तैकाग्र्य

॥ इति पीतांबरशर्मविदुषा संकीर्णं षट्दर्शनसारदर्शकं पत्रकम् ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ अथ गजेंद्रमोक्षः प्रारभ्यते ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-प्रमथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

तत्रापि जज्ञे भगवान् हरिण्यां हरिमेधसः ।
हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ३०

॥ राजोवाच ॥

बादरायण एतत् ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥

तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ।
यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान् गीयते हरिः ३२

॥ सूत उवाच ॥

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः ।
प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ॥
उवाच विप्राः प्रतिनंद्य पार्थिवं ।
मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-प्रथमाध्यायः ॥ १ ॥

॥ १ ॥ उपोद्घातरूप कथाप्रसंगः ॥

॥ परिक्षित्राजा कहतेभयेः—

१ तिस उत्तमके भ्राता चतुर्थ तामसं नाम मन्वंतरविषै २ बी ३ हरिमेधकी ४ हरिणी-नामक भार्याविषै ५ भगवान् ६ हरि ७ ऐसै ८ नामवाला ९ उत्पन्नभया । १० जिसनै ११ ग्राहतैं १२ गजेंद्र १३ मुक्त किया॥३०॥

१ हे शुकदेवजी ! २ हम ३ यह ४ तुमतैं ५ सुननैकूं ६ इच्छतेहैं । ७ जैसैं ८ हरि-अवतारभगवान् ९ ग्राहकरि ग्रस्त १० गज-पतिकूं ११ छुडावताभया ॥ ३१ ॥

१ सो २ कथा ३ अतिशयपुण्यरूप ४ धन्य ५ कल्याणकी स्थानक औ ६ शुभ है॥ ७ जहां ८ जहां ९ उत्तमकीर्त्तिवाला १० भग-वान् ११ हरि १२ गायन करियेहै ॥ ३२ ॥

॥ सूतजी ऋषिन्के प्रति कहतेभयेः—

१ हे विप्रो ! २ सो ३ शुकदेवजी ४ तौ ५ ऐसैं ६ अनशनकरि गंगाके तीरपर बैठेहुये ७ परिक्षित्राजाकरि ८ कथाओंविषै ९ प्रेरित हुये १० राजाकूं ११ अनुमोदनकरिके १२ सभाविषै १३ मुनियोंके १४ सुनतेहुये १५ आनंदसैं १६ कहते १७ भये ॥ ३३ ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान् योजनायुतमुच्छ्रितः १
तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृंगैः पयोनिधिम्
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः २
अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥
स चावनिज्यमानांघ्रिः समंतात् पयऊर्मिभिः ।
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः॥४॥
सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकंधरः ॥ ५ ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

॥ २ ॥ त्रिकूटाचलवर्णन ॥

॥ श्रीशुकदेवजी कहतेभयेः—

१ हे राजन्! २ क्षीरसागरकरि ३ आवृत ४ शोभावान् ५ दशसहस्रयोजन ६ उच्च ७ त्रिकूट ८ ऐसा ९ विख्यात १० श्रेष्ठपर्वत ११ है ॥ १ ॥

१ तितनै दशसहस्रयोजनोंकरि २ च्यारि-औरतें ३ विस्तृत औ ४ रौप्य लोह अरु सुवर्णमय ५ तीन ६ मुख्यशिखरोंकरि ७ क्षीर-सागरकूं ८ दशदिशाओंकूं औ ९ आकाशकूं १० शोभायुक्त करताहुया ११ है ॥ २ ॥

१ रत्न अरु धातुनकरि विचित्र औ २ नानाप्रकारके वृक्ष वेली अरु गुल्म जिनोंविषै हैं। ऐसैं ३ अन्यशिखरोंकरि औ ४ निर्झररूप जलोंके ५ निर्घोषनकरि ६ सर्व ७ दिशाओंकूं शोभायुक्त करताहुया है ॥ ३ ॥ औ

१ पयकी लहरियोंकरि २ च्यारि-औरतें ३ धोयेजातेहैं मूलप्रांतरूप चरण जिसके। ऐसा ४ सो पर्वत ५ नीलम अरु श्याममणिरूप पाषाणोंकरि ६ भूमिकूं ७ श्यामल ८ करता-है ॥ ४ ॥

फेर कैसा है कि:—१ सिद्ध चारण गंधर्व विद्याधर औ महोरगनकरि २ औ ३ अप्सराओं-के साथि ४ क्रीडाकरनैवाले ५ किन्नरोंकरि ६ सेवन करीहै कंदरा जिसकी। ऐसा है ॥ ५ ॥

यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ।
अभिगर्जंति हरयः श्लाघिनः परशंकया ॥६॥
नानारण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः ।
चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकंठविहंगमः ॥ ७ ॥
सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ।
देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभांब्वनिलैर्युतः ॥ ८ ॥

फेर कैसा है किः—१ जहां २ संगीतके सम्यक्नादोंकरि ३ नादयुक्त है गुहा जिस प्रदेशविषै । ता प्रदेशके तांई ४ परशंकाकरि ५ श्लाघावाले ६ सिंह ७ असहनतैं ८ व्यारिऔरतैं गर्जतेहैं ॥ ६ ॥ औ

जो १ नानावनके पशुनके समूहोंकरि संकीर्णगुहाओंकरि अलंकृत है औ २ विचित्रवृक्ष हैं जिनोंविषै । ऐसे देवनके वगीचोंविषै मधुरस्वरवाले हैं पक्षी जिसविषै । ऐसा है ॥७॥

फेर कैसा सो पर्वत है किः—१ स्वच्छजलवाले २ नदीयां अरु तलावोंकरि युक्त है औ ३ मणि जैसी वालुका जिसविषै है। ऐसे ४ पुलिनोंकरि युक्त है। ५ देवस्त्रीयोंके स्नानसैं जो सुगंध है। तिसकरि सुगंधयुक्तजल अरु पवनोंकरि ६ युक्त है ॥ ८ ॥

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ।
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ॥९॥
मंदारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचंपकैः ।
चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ॥१०॥

१ ता पर्वतकी २ खड्डारूप द्रोणीविषै ३ महात्मा ४ भगवान् ५ वरुणका ६ ऋतुमान् नाम ७ वगीचा है। सो ८ देवनकी स्त्रीयोंका ९ रमणस्थान है। औ १० दिव्य ११ पुष्प फल अरु वृक्षोंकरि १२ व्यारिऔरतैं १३ नित्य १४ अलंकृत है ॥ ९ ॥

फेर सो कैसा पर्वत है किः—१ मंदारोंकरि २ औ ३ पारिजातोंकरि औ ४ पाटला आशुपल्लव अरु चंपकोंकरि औ ५ आम्रवृक्षोंकरि ६ प्रियालवृक्षोंकरि ७ पनसोंकरि ८ आम्रोंकरि औ ९ आम्रातकोंकरि १० वी ॥ १० ॥

क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ।
मधुकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ॥ ११॥
अरिष्टोदुंबरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचंदनैः ।
पिचुमंदैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः १२
द्राक्षेक्षुरंभाजंबूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ।
बिल्वैः कपित्थैर्जंबीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः १३

तस्मिन् सरः सुविपुलं लसत्कांचनपंकजम् ।
कुमुदोत्पलकल्हारशतपत्रश्रियोर्जितम् ।
मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुंतैश्च कलस्वनैः ॥ १४ ॥
हंसकारंडवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १५ ॥

१ सुपारिके वृक्षोंकरि २ नलीयरके वृक्षोंकरि ३ औ ४ खर्जूरोंकरि ५ बिजोराके वृक्षोंकरि ६ महुडाके वृक्षोंकरि ७ साल अरु तालोंकरि ८ औ ९ तमालोंकरि १० असन अरु अर्जुनवृक्षोंकरि ॥ ११ ॥

१ अरिठे उदुंबर अरु पिंपलीके वृक्षोंकरि २ वटवृक्षोंकरि ३ पलाश अरु चंदनवृक्षोंकरि ४ निंबवृक्षोंकरि ५ कोविदारोंकरि ६ सरलवृक्षोंकरि ७ देवदारुके वृक्षोंकरि ॥ १२ ॥

१ द्राक्षा इक्षु कदली अरु जंबुवृक्षोंकरि २ बोरी बरडा हरडा अरु आमलाके वृक्षोंकरि ३ बिल्वोंकरि ४ कोंठवृक्षोंकरि ५ नींबुके वृक्षोंकरि ६ भिल्लामाआदिकवृक्षोंकरि ७ आवृत सो पर्वत है ॥ १३ ॥

॥ ३ ॥ उक्तपर्वतगत सरोवरवर्णन ॥

१ तिस पर्वतविषै २ तलाव है । सो कैसा है किः—३ बहुतविशाल ४ शोभायुक्त सुवर्णके कमल हैं जिसविषै औ ५ कुमुद उत्पल कल्हार शतपत्र । इन पुष्पनकी शोभाकरि ६ बढ्याहै । औ ७ उन्मत्तभ्रमरोंकरि नादित ८ औ ९ सुंदर है स्वर जिनोंका ऐसे १० पक्षीनकरि नादित है ॥ १४ ॥

फेर कैसा वह तलाव है किः—१ हंस अरु कारंडवोंकरि संकीर्ण औ २ चक्रवाक अरु ३ सारसोंकरि ४ बी संकीर्ण औ ५ जलकुकुट कोयष्टि अरु दात्यूह । इन पक्षीनके कुलोंकरि ध्वनियुक्त है ॥ १५ ॥

मत्स्यकच्छपसंचारचलत्पद्मरजःपयः ।
कदंबवेतसनलनीपवंजुलकैर्वृतम् ॥ १६ ॥
कुंदैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेंगुदैः ।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः १७
मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः॥१८॥

फेर कैसा सो तलाव है कि:—१मत्स्योंके अरु कच्छपोंके संचारकरि चलते कमलोंके रजकरि युक्त है जल जिसविषे । ऐसा है औ २ कदंब वेतस नल नीप वंजुलकवृक्षोंकरि आवृत है ॥ १६ ॥

१ मोगरा २ कुरवक अरु अशोकोंकरि अरु ३ शिरीषोंकरि औ ४ कुटज अरु इंगुदोंकरि औ ५ कुब्जवृक्षोंकरि अरु ६ सुवर्णयूथिनकरि औ ७ नाग पुन्नाग अरु जातिके वृक्षोंकरि॥१७॥

१ मल्लिका अरु शतपत्रनकरि २ औ ३ माधवीजालकआदिकनकरि ४ औ ५ तीरविषे उपजे ६ अन्य ७ नित्य फलपुष्पादिकी संपत्तिके हेतु ऋतुनवाले ८ वृक्षोंकरि ९ परिपूर्ण १० शोभित सो तलाव है ॥ १८ ॥

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः ।
करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकंटकान् कीचकवेणुवेत्रवद्-
विशालगुल्मं प्ररुजन् वनस्पतीन् ॥ १९ ॥

॥ ४ ॥ गजेन्द्रवृत्तवर्णन ॥

१ तहां ऐसे हुये २ एकदिनमें ३ तिस पर्वतके वनरूप आश्रयवाला ४ हस्तिनके यूथका पति जो है । सो ५ हस्तिनीयोंके साथि ६ विचरताहुया । ७ शब्दयुक्तवेणु अरु वेतवाले विशाल ऐसे लतादिकोंके समूहरूप गुल्मकूं औ ८ कंटकसहित ९ वृक्षनकूं १० प्रकर्षकरि भंजन करताहुया जाताभया ॥ १९ ॥

ॐश्रीपंचदशी
सटीका सभाषा द्वितीयावृत्तिविषे
विद्वज्जनोंके अभिप्राय ॥

यह द्वितीयावृत्तिकी मुद्रणशैलीकी नवीनताविषे विद्वज्जनोंका क्या अभिप्राय होताहै । सो जाननैनिमित्त श्रीनाटकदीपनाम दशमप्रकरण तिनोंकूं भेजाथा । सो देखिके अनेकविद्वानोंनै अपनै अभिप्राय लिखभेजेहैं । तिसमैंसैं मात्र थोडेहीं संक्षिप्तमैं औ जिस अनुक्रमसैं प्राप्त भये तिसहीं अनुक्रमसैं नीचे दियेहैं ॥

श्रीमन्मथुरासशर्मा । पोरबंदर.
(तिनोंके संस्कृतपत्रऊपरसैं)

छापनैकी सुंदरशैली देखिके मैं प्रसन्न हुवाहूं ॥ संपूर्णग्रंथ इसीहीं शैलीसैं छापा जावैगा । तौ यह ग्रंथ संस्कृतभाषाविषै अज्ञजनोंकूं तथा केवलभाषा जाननैवाले जिज्ञासुनकूं अत्यंतउपकारक होवैगा । इतनाहीं नहीं । परंतु यह ग्रंथकी मनोहरमुद्रणरचना गीर्वाणभाषाके रहस्यकूं जाननैहारे निर्मत्सरसाधुपंडितोंकूं बी आनंद उत्पन्न करैगी । ऐसी आशा रखताहूं ॥ विषयकी अनुकूलताके रक्षणनिमित्त स्थूल औ सूक्ष्म अक्षरनकूं रखेहैं ॥ प्रकरणोंके अवांतरविषयनकूं युक्तिपुरःसर दिखायेहैं ॥ श्लोकांक टीकांक औ टिप्पणांक उपरांत अक्षरके अनुक्रमसैं सूचीपत्र । ऐसी उत्तमरीति औ सुंदरअक्षरयुक्त आजपर्यंत कोइ बी ग्रंथ छपा नहीं है । इसलिये स्तुतिपात्र है ॥

ए. वेनिस. एम्. ए. । बनारस.
संस्कृतकॉलेजके प्रिन्सिपॉलसाहेब.
(तिनोंके इंग्रेजीपत्रऊपरसैं)

दोविभागमैं छापीहुई पंडितपीतांबरजीकी टीकावाली पंचदशीका दीर्घकालसैं मेरेकूं अनुभव है ॥ यह वर्त्तमाननमूना । रचना औ मुद्रणशैलीविषै निर्विवाद सुधारणाकूं दर्शावताहै ॥

यद्गंधमात्राद्धरयो गजेंद्रा
व्याघ्रादयो व्यालमृगाश्च खङ्गाः ।
महोरगाश्चापि भयाद् द्रवंति ।
सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः २०
वृका वराहा महिषर्क्षशल्या-
गोपुच्छशालावृकमर्कटाश्च ।
अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादय-
श्चरंत्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २१ ॥

फेर कैसा सो है किः—१ जिस गजराजके गंधमात्रतैं २ सिंह ३ गजेंद्र ४ वाघआदिक ५ सर्प अरु मृग ६ औ ७ गेंडे ८ औ ९ बडेसर्प १० बी औ ११ गौरसहितकाले १२ शरभनामक पशु औ १३ चमरीगौआं १४ भयतैं १५ भाग जातेहैं ॥ २० ॥ औ

१ वृक २ वराह ३ भैंसा ऋच्छ शल्य ४ औ ५ गोपुच्छशालावृक अरु मर्कट ६ हरिण ७ शशेसैंआदिलेके ८ तुच्छप्राणी। ताकी दृष्टिके मार्गकूं छोडिके ९ अन्यत्र १० जिसके अनुग्रहकरि ११ भयरहित हुये १२ विचरते-हैं ॥ २१ ॥

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभि-
र्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ।
गिरिं गरिम्णा परितः प्रकंपय-
न्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २२ ॥
सरोऽनिलं पंकजरेणुरूषितं ।
जिघ्रन् विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ।
वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत् ।
सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ॥ २३ ॥

फेर कैसा है किः—१ घर्मकरि तप्त औ २ हस्तिनकरि अरु ३ हस्तिनीयोंकरि ४ वेष्टित औ ५ मदस्रावीहस्तिबालकोंकरि पीछे-दोडयुक्त औ ६ मदके भक्षक ७ भ्रमरोंके समूहोंकरि ८ सेव्यमान। ९ सो गजेन्द्र १० बोजकरिके ११ पर्वतकूं १२ च्यारिऔरतैं १३ कंपायमान करताहुया है ॥ २२ ॥

१ कमलोंके रजकरि वासित २ तलावके पवनकूं ३ दूरतैं ४ सूंघताहुया ५ मदकरि व्याकुल हैं नेत्र जिसके। औ ६ तृषासैं पीडित ७ स्वयूथकरि ८ वेष्टित हुया। ९ अनं-तर १० तिस सरोवरके समीप ११ शीघ्र १२ गमन करताभया ॥ २३ ॥

शास्त्री श्रीरघुपति। ग्वालियर.

लश्करकॉलेजके शास्त्रीजी.

चित्रायितचकितानां सचेतनानां प्रमोदसादधतम्।
प्राप्य किलामुं ग्रंथं रसेन कर्ताऽचिराय विनियोगम् ॥ १ ॥

अर्थः—संसारविषै चकित भये मनुष्योंकूं अत्यंतआनंद-कारी इस ग्रंथकूं प्राप्त करीके मैं शीघ्र विनियोग करूंगा ॥

रावसाहेब पुरुषराम नारायण पटनकर।
एम्. ए. इन्दोर.

होलकरकॉलेजके संस्कृतप्रोफेसरसाहेब.

(तिनोंके इंग्रेजीपत्रऊपरसैं)

तुह्मारी पंचदशीकी यह आवृत्ति अत्यंतचित्ताकर्षक औ उपयोगी होवैगी ॥ अक्षरोंके भेद औ टीकाभागविषै किये विभागनसैं अवलोकनमैं बहुतसुगमता होवैहै ॥ भाषा-व्याख्या अर्थकूं सम्यक् स्पष्ट करैहै औ मूलकी न्याई संक्षिप्त है ॥

पंडित श्री कृष्णयार्य। चिदंबर.

पचयप्पविद्याशालाके संस्कृतभाषाध्यापक.

चिरपरिचितविद्यासाध्यविज्ञानजातं
वितरति सकृदेवालोकनात्सर्वजन्तोः।
तदिति समवलोक्यानन्दसान्द्रान्तरात्मा
सकलरसिकवर्गैर्मोदिते कृष्णयार्यः ॥ १ ॥

अर्थः—जो विज्ञान चिरकाल विद्याके परिचयसैं साध्य हैं। सो विज्ञान सर्वमनुष्यजनोंकूं यह प्रकरणके मात्र एक-वार अवलोकन किये होवैहै। ऐसैं देखिके अतिशयप्रसन्न भये कृष्णयार्य सकलरसिकवर्गके साथि हर्षकूं पावतेहैं ॥

विगाह्य तस्मिन्नमृतांबु निर्मलं ।
हेमारविंदोत्पलरेणुवासितम् ।
पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृत-
मात्मानमद्भिः स्नपयन् गतक्लमः ॥ २४ ॥
स पुष्करेणोद्धृतशीकरांबुभि-
र्निपाययन् संस्नपयन् यथा गृही ।
घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो ।
नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २५ ॥
तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ।
ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् ।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो ।
यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २६ ॥
तथातुरं यूथपतिं करेणवो ।
विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः ।
पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥२७॥
नियुद्ध्यतोरेवमिभेंद्रनक्रयो-
र्विकर्षतोरंतरतो बहिर्मिथः ।
समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते ।
सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २८ ॥

सो १ तिस तलावविषै २ प्रवेशकरिके । ३ निर्मल औ ४ सुवर्णके कमल अरु रक्तकमलोंकी रजसैं बासित औ ५ निजसुंडादंडकरि गृहीत ६ अमृततुल्यजलकूं ७ यथाइच्छा ८ पान करताभया औ ९ जलोंकरि १० आपकूं ११ स्नान करावताहुया १२ खेदरहित होताभया ॥ २४ ॥

१ जैसैं २ गृहस्थ होवैहै । तैसैं ३ दयालु ४ दुर्मदवाला ५ कृपण हुया । ६ सो गजेंद्र ७ स्वसुंडादंडकरि ८ उठाये शीतलजलोंकरि ९ हस्तिनीयोंकूं १० औ ११ गजबालकोंकूं १२ पान करावताहुया औ १३ स्नान करावताहुया । १४ परमेश्वरकी मायाकरि प्राप्त होनैवाले १५ कष्टकूं १६ नहीं १७ देखताहै ॥२५॥

॥ ५ ॥ गजेंद्रका ग्राहकरि ग्रहण ॥

१ हे नृप! २ तहां ३ कोईक ४ दैवप्रेरित ५ अतिबलवान् ६ ग्राह ७ तिस गजेंद्रकूं ८ चरणविषै ९ रोषसैं १० ग्रहण करताभया ॥ ११ ऐसैं १२ दैवइच्छाकरि १३ दुःखकूं १४ प्राप्त भया । १५ अतिबलवान् १६ सो १७ गज १८ जैसा आपका बल है तैसैं १९ खींचताभया ॥ २६ ॥

१ तैसैं २ आतुर औ ३ अतिबलवान् ग्राहकरि ४ वेगसैं ५ खींचेहुये । ६ यूथपतिके तांईं ७ दीनबुद्धिवाली ८ हस्तिनीयां ९ केवल विक्रोशरूप शब्द करतीभई । औ १० अन्य ११ गज खींचनैमैं १२ सहकारी हुये ताकूं १३ तारनैकूं १४ बी १५ न १६ समर्थ भये॥२७॥

१ हे राजन्! २ ऐसैं ३ प्राणसहित ४ गजेंद्र अरु ग्राहकूं ५ युद्ध करतेहुये । औ ६ भीतरतैं अरु ७ बाह्य ८ परस्पर ९ खींचतेहुये १० सहस्र ११ वर्ष १२ व्यतीत भये । सो देखिके १३ देव १४ आश्चर्य १५ मानतेभये ॥ २८ ॥

शतावधानी श्रीनिवासाचार्य । मधरास.
पच्चयप्पपाठशालाके संस्कृतपंडित.
रेखासीमन्वितार्धं पृथुभिरपृथुभिश्चाक्षरन्यासभेदै-
र्मूलव्याख्यावतारान्युपरचितमिदं पंक्तिभेदैस्तथांकैः ।
स्पर्धाग्राह्यैरिवास्तव्यतिकरसुभगैरक्षरैरक्षतांगै-
र्मन्दानामप्यखेदं विलसति विदुषामप्यसीमप्रसादम् ॥

अर्थः—स्थूल औ सूक्ष्मअक्षरोंकी रचनासहित मध्यकी रेषासैं अर्धविभागमैं सीमा करीहै ॥ पंक्तिभेद औ अंकभेदसैं मूल । व्याख्या औ अवतरणकूं दिखायेहैं ॥ सुंदरस्पष्टाक्षरसैं छाप्याहै ॥ ऐसी उत्तमरचनासैं विद्वानोंकूं अतिआनंद औ मंदबुद्धिकूं सुगमता होवैहै ॥

ततो गजेंद्रस्य मनोबलौजसां ।
कालेन दीर्घेण महानभूद् व्ययः ।
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो ।
विपर्ययोऽभूत् सकलं जलौकसः ॥ २९ ॥

इत्थं गजेंद्रः स यदाप संकटं ।
प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ।
अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं ।
दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३० ॥

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः ।
कुतः करिण्यः प्रभवंति मोचितुम् ।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतो-
ऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३१ ॥

यः कश्चनेशो बलिनोऽतकोरगात् ।
प्रचंडवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयात् ।
मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३२ ॥

१ तदनंतर २ जलविषै ३ खींचेजाते औ ४ खेदकूं पावते ५ गजेंद्रके ६ मनकी उत्साह-शक्ति । शरीरके बल अरु इंद्रियनके तेजरूप ओजका ७ दीर्घ ८ कालकरि ९ महान् १० व्यय ११ होताभया । अरु १२ ग्राहका १३ सकल-बलादि १४ विपरीत नाम अधिक १५ होता-भया ॥ २९ ॥

॥६॥ पूर्वसंस्कारजगजेंद्रबुद्धिउद्भव॥

१ इसप्रकारसैं २ देहधारी ३ दैवइच्छासैं ४ परवश भया । ५ सो ६ गजेंद्र ७ आपके छुडावनैविषै ८ पारकूं न पावताहुया । ९ जब १० प्राणके ११ संकटकूं १२ पाया । तब १३ चिरकाल १४ ध्यान करताभया॥ १५ अनंतर १६ इस आगे कहनैकी १७ बुद्धिकूं १८ पावता-भया ॥ ३० ॥

॥ गजेंद्र कहताभयाः—

१ आतुर भये २ मुजकूं ३ छुडावनैकूं ४ ये ५ ज्ञाति ६ गज ७ नहीं ८ समर्थ होतेहैं । तब ९ हस्तिनीयां १० कहांतैं समर्थ होवैंगी? औ जातैं ११ ग्राहरूप १२ केवल विधाता-के १३ पाशकरि १४ आवृत हौं । यातैं १५ मैं १६ बी समर्थ नहीं हौं । तथापि १७ परम १८ आश्रयभूत १९ तिस परमेश्वरके प्रति शरण २० जाताहूं ॥ ३१ ॥

सो ईश्वर कैसा है किः—१ जो २ कोईक ३ ईश्वर ४ बलवान् औ ५ तीक्ष्णवेगतैं ६ अत्यंत ७ च्यारिऔरतैं दौडनैवाले ८ मृत्युरूप सर्पतैं ९ भयकूं प्राप्त १० शरणागतकूं ११ च्यारिऔरतैं रक्षा करताहै औ १२ जाके भयतैं १३ मृत्यु १४ दौडताहै। १५ ताकूं हम १६ शरण १७ जातेहैं ॥ ३२ ॥

महामहोपाध्याय महेशचंद्र न्यायरत्न।
सी. आइ. इ । कलकत्ता.
संस्कृतकॉलेजके पूर्व प्रिन्सिपॉलसाहेब.
(तिनोंके इंग्रेजीपत्रऊपरसैं)
ग्रंथ बहुतउपयोगी है औ संस्कृतटीका अतिसुगम है ॥ तुह्मारी रचना बी श्रेष्ठ है ॥

पंडितश्री पी. रंगाचार्य । तानजोर.
कुंभघोणकी गवर्नमेन्टकालेजके संस्कृतपंडित.
(तिनोंके संस्कृतपत्रऊपरसैं)
तद्गत अंकनकी रचनाका प्रकार रमणीय है । कारण कि व्याख्यानके अवलोकनसमय मात्र अंकके देखनेसैं मूलपद अनायास प्राप्त होवैहै ॥

रा. रा. मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी । बी. ए.
नडियाद.
(तिनोंके इंग्रेजीपत्रऊपरसैं)
पंडितजीकी टीकाकी तीव्रता । निर्मलता औ स्फुटता-विषै खातरी देनैमैं मेरेकूं बडाआनंद होवैहै ॥ वेदांतविषै कोइ बी प्रीतिवानकूं यह टीकावाले ग्रंथरूप मणिसैं रहित रहना उचित नहीं है ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

॥ गजेंद्र उवाच ॥

नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥ ३ ॥

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं ।
क्वचिद्विभातं क्व च तत् तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते ।
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-तृतीयाध्यायः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ हरिस्तुति–गजेंद्रग्राहमुक्ति ॥

॥ श्रीशुकदेवजी कहतेभयेः—

१ ऐसै २ निश्चययुक्त गज ३ बुद्धिकरि ४ हृदयविषै ५ मनकूं ६ एकाग्रकरिके । ७ इंद्रद्युम्न-राजारूप पूर्वजन्मविषै ८ शीखेहुये स्तोत्ररूप ९ परम १० जाप्यकूं ११ जपताभया ॥ १ ॥

॥ गजेंद्र कहताभयाः—

१ जिसतैं २ यह देहादि । ३ चेतनरूप होवैहैं । ऐसै ४ तिस ५ पुरुष ६ आदिबीजरूप ७ परेशस्वरूप ८ भगवत्के अर्थ ९ हम नमनकूं १० ध्यावतेहैं ॥ २ ॥

१ जिस अधिष्ठानविषै २ यह जगत् है । ३ औ ४ जिस उपादानतैं ५ यह भयाहै । औ ६ जिस कर्त्ताकरि ७ यह कियाहै । औ ८ जो ९ आपहीं १० यह विश्व होवैहै । औ ११ इस कार्यतैं १२ अरु १३ परकारणतैं १४ जो १५ पर है । १६ तिस १७ स्वतःसिद्धके प्रति १८ मैं शरणप्राप्त भयाहूं ॥ ३ ॥

१ जो २ स्वात्माविषै ३ निजमायाकरि ४ अर्पित औ ५ कहुं ६ भासमान है । ७ कहुं ८ सो ९ तिरोहित है । १० तिस कार्यकारण ११ उभयरूप १२ इस विश्वकूं १३ अलुप्तदृष्टिवाला १४ साक्षीरूप हुया १५ देखताहै । १६ सो १७ स्वप्रकाश १८ परतैं पर १९ मुजकूं २० रक्षण करहु ॥ ४ ॥

पंडितश्री विद्यानाथ शास्त्रीयार । त्रावणकोर.

महाराजाकॉलेजके संस्कृतप्रोफेसरसाहेब.

भवदंगीकृतारीतिस्सर्वसन्तोपकारिणी ।
अनेकभाषावैदुष्यदायिनी सुधियां सुखम् ॥ १ ॥
तदुपक्रान्तरीत्यैव समाप्तिम्प्रार्थयामहे ।
भाषाद्वयं पृथक्कृत्य मुद्रितं चेत्सुशोभनम् ॥ २ ॥

अर्थः—तुह्मनै अंगीकार करी रीति सर्वकूं संतोषकारक है औ अनेकभाषाका ज्ञान तथा विद्वानोंकूं सुख देवैहै ॥ आरंभितरीतिसैं ग्रंथकी समाप्तिकूं इच्छतेहैं ॥ उभयभाषाओंकूं पृथक् रखके छापी सो बहुत इष्ट कियाहै ॥

पंडित श्री नारायणशास्त्री । कांजीवरम्.

पच्चयप्पविद्याशालाके संस्कृतशिक्षक.

नाटकदीपेधीपे तट्टीकायां भवाब्धिनौकायाम् ।
एक्षिपि यावत् हृद्यं निरवद्यं तावदाभाति ॥ १ ॥
स्थालीपुलाकनीतिं संस्मृत्यान्यत्समस्तमेवं स्यात् ।
इति मन्यतेऽधिकांचिस्थायुक नारायणाभिधः शास्त्री ॥ २ ॥

अर्थः—नाटकदीपरूप अधीप औ संसारसागर तरनैकी नौकारूप टीका । यह उभयकूं देखिके हृदयकूं आनंदकारी निर्मलज्ञान स्फुरताहै औ कांचीनिवासी नारायणशास्त्री स्थालीपुलाकन्यायका स्मरणकरिके समस्तग्रंथ ऐसाहीं आनंदकारी होगा ऐसे मानतैहैं ॥

कालेन पंचत्वमितेषु कृत्स्नशो ।
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदासीद्गहनं गभीरं ।
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥
न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जंतुः पुनः कोऽर्हति गंतुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो ।
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥
दिदृक्षवो यस्य पदं सुमंगलं ।
विमुक्तसंगा मुनयः सुसाधवः ।
चरंत्यलोकव्रतमव्रणं वने ।
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥
न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा ।
न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथाऽपि लोकाप्ययसंभवाय यः ।
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

१ संपूर्ण २ लोकनके ३ लोकपालोंके ४ औ ५ सर्वकारणोंके ६ कालकरि ७ नाशकूं ८ प्राप्त हुये । ९ तब १० गहन ११ गंभीर १२ तम १३ होताभया । १४ जो १५ विभु १६ तिस तमके १७ पारविषे १८ विराजताहै ॥ ५ ॥

१ नटकी २ न्याई ३ आकारोंकरि ४ चेष्टा करनैहारे ५ जिसके ६ स्वरूपकूं ७ देव औ ८ ऋषि ९ नहिं १० जानतेभये । ११ फेर १२ जंतु १३ कोई १४ जाननैकूं औ १५ कहनैकूं १६ योग्य है? कोई बी नहीं ॥ १७ सो १८ दुर्गमचरित्र वा कथनवाला १९ मुजकूं २० रक्षा करहू ॥ ६ ॥

१ सुंदरमंगलरूप २ जिसके ३ पदकूं ४ देखनैकी इच्छावाले ५ मुक्तसंग ६ श्रेष्ठसाधु ७ सुहृत् ऐसे ८ मुनि ९ भूतोंके आत्मभूत हुये १० छिद्ररहित ११ ब्रह्मचर्यादिव्रतकूं १२ वनविषे १३ आचरतैहैं । १४ सो १५ मेरी १६ गति होहु ॥ ७ ॥

१ जिसके २ जन्म ३ अरु ४ कर्म ५ नहीं ६ हैं । ७ वा ८ नाम अरु रूप ९ नहीं हैं । १० वा ११ गुण अरु दोष १२ हीं नहीं हैं । १३ तथापि १४ लोकनके प्रलय अरु जन्म-अर्थ १५ जो १६ स्वमायाकरि १७ तिन जन्मादिककूं १८ प्रतिसमय १९ स्वीकारताहै । तिसके अर्थ नमस्कार है ॥ ८ ॥ औ

१ ब्रह्मरूप २ अनंतशक्तिवाले ३ तिस ४ परमेश्वरके अर्थ ५ नमस्कार है । औ ६ अरूपबहुरूपवाले ७ आश्चर्यकर्मवाले परमेश्वरके अर्थ ८ नमस्कार है ॥ ९ ॥

श्रीमद्गोस्वामि देवकीनंदनाचार्यजी । मुंबई.

(तिनोंके संस्कृतपत्रऊपरसैं)

छापनैमैं जो यह प्रकार लियाहै सो अतिरमणीय औ सर्वकूं पठन करनै-करावनैमैं सुगमहै । ऐसा मेरा अभिप्राय है ॥

रा.रा. श्रीप्रकवि श्रीशंकरलाल माहेश्वर । मोरबी.

(तिनोंके संस्कृतपत्रऊपरसैं)

कल्पवल्लीव याऽसंदमानंदमिह सेविता ।
फलत्यलभ्यं तस्यै श्रीपंचदश्यै नमो नमः ॥ १ ॥

(अर्थः-कल्पवल्लीकी न्याईं इस संसारविषे जिसके सेवनसैं अलभ्य अतिशय आनंद प्राप्त होवैहै । ऐसी श्रीपंचदशीकूं नमस्कार है ॥)

पंचदशी छापनैमैं तुसनै जो अपूर्वशैलीका ग्रहण किया है तिसतैं वे ग्रंथार्थके जिज्ञासु सर्वमुमुक्षुनके ऊपरि महान् उपकार कियाहै । यह निर्विवाद है । इतनाहीं नहीं परंतु व्याकरणशास्त्रकूं संपूर्ण नहीं जाननैहारे ऐसै संस्कृतभाषाके विलासीजनोंकूं वेदांतशास्त्रके ज्ञानअर्थ यह नवीनशैली उपकारक होवैगी ॥ गीर्वाणरूप अमृतके पान करनैवास्तै उतरनैकी अद्भुत नवीन निःश्रेणी (सीडी) बनाईहै । ऐसा मेरा अभिप्राय है ॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥
सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥
नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥
क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥
सर्वेंद्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असता छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः १४

१ आत्मप्रदीप २ साक्षी ३ परमात्माके अर्थ ४ नमस्कार है औ ५ वाणीयोंके ६ मनके ७ चित्तवृत्तियोंके ८ वी ९ दूरके अर्थ १० नमस्कार है ॥ १० ॥

१ निपुणनरकरि २ संन्याससैं औ ३ शुद्धसत्वगुणद्वारा प्रत्यक्भावसैं ४ प्राप्य । ५ कैवल्यके नाथ ६ मोक्षानंदकी अनुभूतिके अर्थ ७ नमस्कार है ॥ ११ ॥

१ शांत २ घोर ३ मूढ ४ सत्वादिगुणधर्मके अनुसारीके अर्थ ५ नमस्कार है । ६ औ ७ निर्विशेष ८ समतारूप ९ ज्ञानघनके अर्थ १० नमस्कार है ॥ १२ ॥

१ तुज २ क्षेत्रज्ञरूप ३ सर्वके अध्यक्ष ४ साक्षीके अर्थ ५ नमस्कार है । औ ६ आत्माओंके मूल ७ मूलप्रकृतिरूप ८ पुरुषके अर्थ ९ नमस्कार है ॥ १३ ॥

१ सर्वइंद्रियनके विषयनके द्रष्टा औ २ सर्ववृत्तियां हैं ज्ञापक जिसकी । औ ३ असत्-अहंकारादिप्रपंचकरि अरु ४ चिदाभासकरि ५ सूचित औ ६ सद्रूप है विषयनविषे आभास जिसका । तिस ७ तेरे अर्थ ८ नमस्कार है ॥ १४ ॥

॥ उपजातिवृत्तम् ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय ।
निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय ।
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय ।
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥

॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय ।
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुणसंगविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ।
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥

॥ उपजातिवृत्तम् ॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा ।
भजंत इष्टां गतिमाप्नुवंति ।
किंत्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं ।
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥

१ सर्वके कारण। २ आप निष्कारण औ ३ अद्भुतकारणरूप ४ तेरे अर्थ ५ नमस्कार है ६ नमस्कार है। औ ७ सर्वआगम अरु वेदोंके महासमुद्र ८ मोक्षरूप अरु ९ उत्तमोंके आश्रयभूतके अर्थ १० नमस्कार है ॥ १५ ॥

१ गुणरूप काष्ठकरि ढांपे ज्ञानाग्निरूप औ २ तिन गुणोंके क्षोभविषै बहिर्वृत्तिवाला है मन जिसका औ ३ नैष्कर्म्य जो आत्मतत्त्व। ताकी भावनाकरि ४ वर्जे कियेहैं विधिनिषेधरूप आगम जिनोंनै। तिनोंविषै ५ आपही है ज्ञानरूप प्रकाश जिसका। तिसके अर्थ ६ मैं नमस्कार करताहूं ॥ १६ ॥

१ मेरे जैसै शरणागतपशुके अविद्यारूप पाशके मुक्तकरनैवाले २ मुक्तरूप ३ बहुकरुणावाले ४ आलस्यरहितके अर्थ ५ नमस्कार है। औ अंतर्यामीरूप ६ स्वअंशसैं ७ सर्वदेहधारीयोंके मनविषै ८ प्रतीत ९ प्रत्यक्दृष्टिरूप १० भगवत् ११ ब्रह्मरूप १२ तेरेअर्थ १३ नमस्कार है ॥ १७ ॥

१ देहपुत्रसगेगृहधन अरु जनोंविषै २आसक्तोंकरि ३ प्राप्त होनैकूं अशक्य। ४ गुणोंके संबंधसैं रहित। ५ मुक्तआत्मावालोंकरि ६ स्वहृदयविषै ७ चिंतित। ८ ज्ञानस्वरूप ९ भगवान् १० ईश्वरके अर्थ ११ नमस्कार है ॥ १८ ॥

१ जिसकूं २ धर्मकामअर्थ अरु मोक्षके कामी ३ भजतेहैं। वे ४ वांछित ५ फलकूं ६ पावतेहैं। इतनाहीं नहीं ७ किंतु ८ अवांछित अन्यकामनाओंकूं ९ बी १० देताहै। औ ११ अविनाशी १२ देहकूं बी देताहै। १३ सो बडीदयावाला १४ मेरे १५ मोक्षकूं १६ करहू ॥ १९ ॥

ऐकांतिनो यस्य न कंचनार्थं ।
वांछंति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं ।
गायंत आनंदसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥
तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतींद्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनंतमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः २२

॥ वंशस्थवृत्त ॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो ।
निर्यांति संयांत्यसकृत्स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो ।
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गः ॥ २३ ॥

१ जिसके २ अव्यभिचारीभक्त ३ किंचित्-अर्थकूं ४ नहिं ५ वांछा करतेहैं। औ ६ जो ७ निश्चयकरि ८ भगवाले मुक्तोंकूं सेवतेभयेहैं। अरु ९ अतिअद्भुत १० सुंदरमंगलरूप ११ तिसके चरित्रकूं १२ गायन करतेहुये १३ आनंदके समुद्रविषै मग्न हैं ॥ २० ॥

१ तिस २ अक्षर ३ पर ४ ब्रह्म ५ अव्यक्ततत्त्वज्ञानरूप ६ आध्यात्मिकयोगके विषय ७ इंद्रियअगोचर ८ सूक्ष्म ९ अतिदूरकी १० न्यांई ११ अनंत १२ आद्य १३ परिपूर्ण १४ परमेश्वरकूं १५ मैं स्तुति करताहूं ॥ २१ ॥

१ ब्रह्मादिक २ देव ३ वेद अरु ४ चराचर ५ लोक ६ जिसके ७ अल्प ८ अंशकरि ९ हीं १० नामरूपके भेदसैं ११ कियेहैं ॥२२॥

१ जैसैं २ अग्नितैं ३ ज्वाला औ ४ सूर्यतैं ५ किरण ६ वारंवार ७ उपजतैहैं औ ८ लय होवैहैं। ९ तैसैं १० स्वप्रकाशरूप ११ जिसतैं १२ यह १३ गुणोंके प्रवाहरूप १४ बुद्धि-मनइंद्रिय औ १५ देहोंके जन्म होवैहैं ॥ २३ ॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् ।
न स्त्री न षंढो न पुमान् न जंतुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन् ।
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥
जिजीविषे नाहमिहामुया कि-
मंतर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

सोऽहं विश्वसृजां विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् २६

१ सो २ निश्चयकरि ३ देवअसुरमनुष्य-तिर्यक् ४ नहीं है। औ ५ स्त्री ६ नहीं। ७ नपुंसक ८ नहीं। ९ पुरुष १० नहीं। ११ जीव १२ नहीं। १३ यह १४ गुण १५ नहीं। १६ कर्म १७ नहीं। १८ सत् जो कार्य १९ औ २० असत् जो कारण। सो २१ नहीं। किंतु २२ निषेधका शेष २३ अशेषरूप २४ जयकूं पावहु ॥ २४ ॥

१ मैं २ इहां ३ नहीं ४ जीवनेकूं इच्छताहूं। क्योंकि ५ इस ६ अंतर ७ अरु ८ बाहिर अविवेकसैं ९ व्याप्त १० गजजातिसैं ११ क्या प्रयोजन है? १२ जिसका १३ कालकरि १४ नाश १५ नहीं है। १६ तिस १७ आत्म-प्रकाशके आवरणरूप अज्ञानके १८ मोक्षकूं १९ इच्छताहूं ॥ २५ ॥

१ सो २ मैं मुमुक्षु ३ विश्वके सृजनैहारे ४ विश्वरूप ५ विश्वतैं भिन्न ६ विश्वमयसामग्री-वाले ७ विश्वके आत्मा ८ अजन्मा ९ परम १० पदरूप ११ ब्रह्मकूं १२ नम्या १३ हूं ॥२६॥

योगरंधितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यंति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम्॥

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरंतशक्तये ।
कदिंद्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवंतमितोऽस्म्यहम् २९

॥ श्रीशुक उवाच ॥

॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥

एवं गजेंद्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ।
ब्रह्मादयो विविधलिंगभिदाऽभिमानाः ।
नैते यदोपसमृपुर्निखिलात्मकत्वात् ।
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥३०॥
तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः ।
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छंदोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेंद्रः ॥३१॥

---

१ योगकरि दग्ध भयेहैं कर्म जिनोंके । ऐसै २ योगी ३ योगसैं एकाग्र किये ४ हृदयविषै ५ जाकूं ६ देखतेहैं । ७ तिस ८ योगेश्वरकूं ९ मैं १० नम्या ११ हूं ॥ २७ ॥

१ असह्य है रागादिवेग जिसका । ऐसै २ तीनशक्तिवाले औ ३ सर्वइंद्रियनके विषय ४ प्रपन्नोंके पालक ५ अविनाशीशक्तिवाले औ ६ निंदितइंद्रियवालोंको ७ न पावनैयोग्य है ज्ञानरूप मार्ग जिसका । तिस ८ तेरेअर्थ ९ नमो १० नमः है ॥ २८ ॥

१ जिसकी मायारूप शक्तिकरि जो २ अहंबुद्धि है । तिससैं ३ आवृत ४ सर्वात्माकूं ५ यह जन ६ नहीं ७ जानताहै । ८ तिस ९ अविनाशीमाहात्म्यवाले १० भगवत्कूं ११ मैं १२ आश्रित १३ हूं ॥ २९ ॥

॥ श्रीशुकदेवजी कहतेभये:—

१ ऐसैं २ उपवर्णन कियाहैं मूर्तिभेदविना परतत्त्वरूप निर्विशेष जिसनै । तिस ३ गजेंद्रकूं ४ विविधमूर्तिभेदविषै अभिमानवाले ५ ये ब्रह्मादिक ६ वे ७ जब ८ नहीं ९ समीप आवतेभये । तब १० सर्वात्मा होनैतैं ११ सर्वदेवमय १२ हरि १३ तहां १४ प्रगट होतेभये ॥ ३० ॥

१ जगत्के निवास हरि । २ ताकूं ३ तैसा ४ आर्त ५ जानिके औ ६ स्तोत्रकूं ७ सुनिके ८ स्तुति करनैवाले ९ देवनकरि १० सहित । ११ वेदमय १२ गरुडसैं १३ वहमान औ १४ चक्ररूप आयुधवाले हुये १५ जहां १६ गजेंद्र था । तहां १७ शीघ्र १८ आवतेभये ॥ ३१ ॥

सोंऽतःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो ।
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं खे उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य सांबुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान् ।
नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥
तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य ।
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेंद्रं ।
संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम् ॥३३॥

१ सो गजेंद्र २ तलावके भीतर ३ बहुबलवालेग्राहकरि ४ गृहीत ५ आर्त हुया ६ गरुडविषै ७ चक्रधारी ८ हरिकूं ९ आकाशविषै १० देखिके ११ कमलपुष्पसहितसुंडादंडकूं १२ उंचे फेंकिके १३ कष्टतैं १४ हे नारायण! १५ सर्वके गुरु! १६ भगवन्! १७ तेरेअर्थ १८ नमस्कार है। ऐसी १९ वाणीकूं २० कहता-भया ॥ ३२ ॥

१ अजन्मा २ हरि ३ ताकूं ४ पीडित ५ देखिके। ६ तत्काल ७ गरुडसैं उतरिके। ८ शीघ्र ९ ग्राहसहित १० गजेंद्रकूं ११ कृपाकरि १२ तलावतैं १३ ऊपरि खींचतेभये। फेर १४ देवनके १५ देखतेहुये १६ चक्रसैं १७ छेद्याहै मुख जिसका। ऐसै १८ ग्राहतैं १९ गजेंद्रकूं छुडावतेभये ॥ ३३ ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

तदा देवर्षिगंधर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ।
मुमुचुः कुसुमासारं शंसंतः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥
नेदुर्दुंदुभयो दिव्या गंधर्वा ननृतुर्जगुः ।
ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥२॥

॥ अथ श्रीमद्भागवताष्टमस्कंध-चतुर्थाध्यायः ॥ ४ ॥

॥ श्रीशुकदेवजी कहतेभयेः—

॥ गजेंद्रमोक्षकारि उत्साह ॥

१ तब २ ब्रह्मा अरु शिव हैं अग्रेसर जिनके ऐसे ३ देव ऋषि औ गंधर्व ४ तिस ५ हरिके ६ कर्मकूं ७ प्रशंसा करतेहुये ८ पुष्पोंकी धाराकूं ९ छोडतेभये ॥ १ ॥

१ देवनके २ दुंदुभि ३ वाजतेभये। ४ गंधर्व ५ नृत्य करतेभये। औ ६ गायन करतेभये ७ ऋषि ८ चारण ९ सिद्ध १० पुरुषोत्तमकूं ११ स्तुति करतेभये ॥ २ ॥

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक्।
मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥ ३ ॥
प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ।
अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥४॥
सोऽनुकंपित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ।
लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः५
गजेंद्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबंधनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६॥
स वै पूर्वमभूद् राजा पांड्यो द्रविडसत्तमः ।
इंद्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥७॥

॥ ९ ॥ ग्राहका पूर्वोत्तरवृत्तांत ॥

१ जो २ यह ३ ग्राह था। ४ सो ५ निश्चयकरि ६ तत्काल ७ परमआश्चर्यरूप औ ८ देवल*मुनिके शापतैं ९ मुक्तहुया १० "हुहु" नामा गंधर्वोत्तम होताभया ॥ ३ ॥

* इहां यह कथा है:—किसी तलावविषै स्नान करते देवलमुनिकूं हुहु नामा गंधर्व पादविषै पकडताभया । तिसकरिके कोपाविष्ट हुये मुनिनै "तूं ग्राह हो !" ऐसा शाप दिया। फेर प्रार्थनासैं प्रसन्नकिये मुनिनै कहा कि:—जब तूं गजेंद्रकूं पकडैगा। तब हरि गजेंद्रसहित तेरा उद्धार करैंगे ॥

१ अधीश २ अव्यय ३ यशके धाम औ ४ कीर्तन करनै योग्य हैं गुण औ सत्कथा जिनकी। ऐसै ५ उत्तमकीर्तिवाले हरिकूं सो गंधर्व ६ शिरसैं ७ प्रणामकरिके ८ गायन करताभया ॥ ४ ॥

१ ईश्वरनै २ कृपाका विषय किया ३ सो गंधर्व ४ ताकूं ५ प्रदक्षिणा करिके औ ६ प्रणाम करिके। ७ मुक्तपापवाला हुया। ८ लोकके ९ देखतेहुये १० स्व ११ लोककूं १२ गया ॥ ५ ॥

॥ १० ॥ गजेंद्रपूर्ववृत्तांत औ तिससहित हरिगमनकथन ॥

१ गजेंद्र। २ भगवत्के स्पर्शतैं ३ अज्ञानरूप बंधनतैं ४ विमुक्त ५ पीतांबरधारी ६ चतुर्भुज हुया ७ भगवत्के ८ रूपकूं ९ प्राप्त भया ॥ ६ ॥

१ सो गजेंद्र २ पूर्व ३ पांड्य ४ द्रविडदेशविषै श्रेष्ठ ५ विष्णुपरायण ६ इंद्रद्युम्न ७ ऐसा ८ प्रख्यात ९ राजा १० निश्चयकरि ११ होताभया ॥ ७ ॥

दीवानेवतन । उर्दुभाषा औ बालबोध लिपिमैं छपताहै ॥ इस लघुग्रंथमैं बडेसूफि (आत्मज्ञानी) वतनसाहेब विरचित भिन्नभिन्नरागके ५० गजल हैं। वे सर्व आत्मअनुभव औ स्वरूपनिष्ठाके उद्गारवान् होनैतैं। कंठ औ गायन करनैमैं अतिआनंदकारक हैं ॥ यद्यपि मुसलमानी औ हिंदुधर्मका अत्यंत भेद है। तथापि तत्त्वज्ञान (जिसकूं उर्दुमैं तसव्वुफ कहैहैं। तिस) विषै तिनोंका कैसा अभेद है। सो इस ग्रंथके देखनैसैं स्पष्ट ज्ञात होवैहै ॥ श्रीवेदांतविनोदके षष्ठअंकविषै दोगजल छापैहैं औ नमूनेके लिये एक गजल नीचे बी दियाहै ॥

॥ गजल ॥

हुं सब कुछमैं फिर कुछ नहींसा हुवाहूं ।
मैं हैरत् जदे सूरते आइना हूं ॥ १ ॥
भकाँ है मेरा दीदये दो जहाँमैं।
मगर सूरते मरदमक् फिर रहाहूं ॥ २ ॥
हुवा आसना जबसैं मैं अपनै दम्का ।
उसी दम्सैं मैं दम् बखुद् हो रहाहूं ॥ ३ ॥
ये सूरत् बनी वस्ले आईने रूमैं ।
के मैं आपही आइना बन् गयाहूं ॥ ४ ॥
तसव्वरमैं अपने हुं मैं आप हैराँ ।
समझता नहीं के मैं क्या देखताहूं ॥ ५ ॥
नहीं दूसरा दूसरा मैंहीं मुझसा ।
जो देखो तो मैं आपही दूसरा हूं ॥ ६ ॥
दुई जिस्के दिल्सैं मिटे वोही समझे ।
के मैं किस् तरह् एकका दो हुवाहूं ॥ ७ ॥
न समझे कोई काल अशआर मेरा।
सरासर मेरा हाल मैं केह् रहाहूं ॥ ८ ॥
नजर जिस्पे आलम्की पडती नहीं है ।
वतन् उस्कूं मैं आंखमैं देखताहूं ॥ ९ ॥

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥

स एकदाराधनकाल आत्मवान् ।
गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ॥
जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं ।
समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः ।
समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ।
तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं ।
रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥

॥ उपजातिवृत्तम् ॥

तस्मा इमं शापमदादसाधु-
रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य ।
विप्रावमंता विशतां तमोऽधं ।
यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥ १० ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान् नृप सानुगः ।
इंद्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥

---

१ सो २ एकसमयमैं ३ मलयगिरिविषै था आश्रम जिसका औ ४ आराधनकालविषै ५ धैर्यवान् औ ६ ग्रहण कियाहै मौनव्रत जिसनै औ ७ जटाधर ८ तापस ९ स्नातहुया । १० ईश्वर ११ हरि १२ अच्युतकूं १३ पूजताभया ॥ ८ ॥

१ तहां २ दैवइच्छासैं ३ महायशवाला ४ अगस्त्यमुनि ५ शिष्यगणोंकरि ६ वेष्टित हुया ७ आवताभया ॥ ८ तिस राजाकूं ९ तूष्णी औ १० नहिं कियाहै पूजनादिक जिसनै ऐसा औ ११ एकांतमैं १२ उपासनायुक्त १३ देखिके १४ ऋषि १५ कोप करताभया ॥ ९ ॥

१ ताकेअर्थ २ यह ३ शाप ४ देताभयाः— ५ यह ६ असाधु ७ दुष्टचित्त ८ अशिक्षितबुद्धिवाला । ९ विप्रनके अपमानका कर्त्ता । १० आज ११ अंध १२ तमके प्रति १३ प्रवेश करहु । १४ जैसैं १५ गज १६ स्तब्धमतिवाला होवैहै । तैसा यह है । यातैं १७ गज १८ हीं होहु ॥ १० ॥

॥ श्रीशुकदेवजी कहतेभयेः—

१ हे नृप ! २ ऐसैं ३ शाप देके ४ भगवान् ५ अगस्त्य ६ शिष्यसहित ७ गया ॥ ८ इंद्रद्युम्न ९ राजर्षि १० बी ११ सो १२ दैवप्रापित १३ धारताहुया ॥ ११ ॥

आपन्नः कौंजरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम्
हर्यर्चनानुभावेन यद् गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः १२

॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभ-
स्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ।
गंधर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमान-
कर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् १३

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥

एतन्महाराज तवेरितो मया ।
कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मपापहं ।
दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥ १४ ॥

॥ अनुष्टुप् छंदः ॥

यथानुकीर्तयंत्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः ।
शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशांतये ॥१५॥
इदमाह हरिः प्रीतो गजेंद्रं कुरुसत्तम ।
शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः॥१६॥

१ आत्माकी स्मृतिकी नाशक २ हस्तीकी ३ योनिकूं ४ प्राप्त भया । ५ यातैं ६ हरिपूजनके प्रभावतैं ७ गजभावविषै ८ वी ९ पीछे स्मृति भई ॥ १२ ॥

१ कमलनाभहरि २ ऐसैं ३ गजयूथके पतिकूं ४ विमुक्त करिके ५ पार्षदगतिकूं ६ प्राप्त भये ॥ ७ तिसगजकरि ८ वी ९ युक्त १० गंधर्वसिद्ध औ देवनकरि ११ गायन करीता है कर्म जिसका औ १२ गरुडारूढ हुये १३ अद्भुत १४ स्वभुवनके प्रति १५ पधारतेहुये॥१३॥

॥ ११ ॥ गजेंद्रमोक्षमाहात्म्य ॥

१ हे कुरुवंशविषै श्रेष्ठ २ महाराज! ३ मैंनै ४ यह ५ गजराजका मोक्ष नामक ६ कृष्णका प्रभाव ७ तेरेकूं ८ कहा। सो ९ सुननैवालोंकूं १० स्वर्गप्रद ११ यशप्रद १२ कलिमलनाशक औ १३ दुःस्वप्ननाशक है॥ १४ ॥

यातैं १ श्रेयकी कामनावाले २ त्रिवर्ण ३ दुःस्वप्नआदिककी शांतिअर्थ ४ प्रातःकालकूं ५ ऊठिके ६ पवित्र हुये ७ याकूं ८ यथावत् ९ अनुकीर्तन करतेहैं ॥ १५ ॥

१ हे कुरुवंशविषै श्रेष्ठ परिक्षित्! २ सर्वभूतमय ३ समर्थ ४ हरि ५ प्रसन्न हुये ६ सर्वभूतनके ७ सुनतेहुये ८ गजेंद्रकूं ९ यह १० कहतेभये ॥ १६ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकंदरकाननम् ।
वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥
शृंगाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ।
क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् १८
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ।
सुदर्शनं पांचजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९ ॥
शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं ममाश्रयाम्
ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥२०॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ।
कर्माण्यनंतपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् २१
प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान् धर्ममव्ययम् ।
दाक्षायणी धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि २२
गंगां सरस्वतीं नंदां कालिंदीं सितवारणम् ।
ध्रुवं ब्रह्मऋषीन् सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् २३

॥ श्रीभगवान् कहतेभये:—

१ जे नर २ मुजकूं ३ औ ४ तुजगजेंद्रकूं ५ औ ६ इस ७ तलावकूं औ ८ गिरि गुफा औ वनकूं ९ वेत शब्दयुक्तवांस अरु वांसनके १० गुच्छोंकूं औ ११ देववृक्षोंकूं ॥ १७ ॥

१ ब्रह्माके २ मेरे ३ औ ४ शिवके ५ स्थानरूप ६ इन ७ शृंगोंकूं ८ औ ९ श्वेतद्वीपविषै विद्यमान १० प्रभाववाले ११ क्षीरसागररूप १२ मेरे १३ परम १४ धामकूं ॥ १८ ॥

१ मेरे २ श्रीवत्सकूं ३ कौस्तुभकूं ४ वैजयंतीमालाकूं ५ कौमोदकी ६ गदाकूं ७ सुदर्शनचक्रकूं ८ पांचजन्यशंखकूं औ ९ पक्षिराज १० गरुडकूं ॥ १९ ॥

१ सूक्ष्म २ मेरी कलारूप ३ शेषकूं । ४ औ ५ मेरी आश्रित ६ लक्ष्मी ७ देवीकूं । ८ ब्रह्माकूं ९ नारद १० ऋषिकूं । ११ शिवकूं १२ औ १३ प्रल्हादकूं १४ हीं ॥ २० ॥

१ मत्स्यकूर्म औ वराहआदिक २ अवतारोंकरि ३ किये ४ अनंतपुण्यरूप ५ मेरे ६ कर्मोंकूं औ ७ सूर्यकूं ८ चंद्रकूं औ ९ अग्निकूं ॥ २१ ॥

१ ॐकारकूं २ सत्यकूं ३ मायाकूं ४ गौवनकूं अरु विप्रनकूं भक्तिरूप ५ अविनाशी ६ धर्मकूं औ ७ सोमकश्यपकी ८ धर्मपत्नीरूप ९ दक्षकी पुत्रीनकूं १० बी ॥ २२ ॥

१ गंगाकूं २ सरस्वतीकूं ३ नंदाकूं ४ यमुनाकूं ५ ऐरावतहस्तीकूं ६ ध्रुवकूं ७ सप्त ८ ब्रह्मऋषिनकूं ९ औ १० पवित्रकीर्तिवाले ११ मनुष्यनकूं ॥ २३ ॥

उत्थायापररात्रांते प्रयताः सुसमाहिताः ।
स्मरंति मम रूपाणि मुच्यंते ह्येनसोऽखिलात् २४
ये मां स्तुवंत्यनेनांग प्रतिबुध्य निशात्यये ।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥

जे १ पीछलीरात्रिके अंतविषे २ ऊठीके ३ नियमित ४ एकाग्रचित्तवाले हुये ५ इन मेरे ६ रूपोंकूं ७ स्मरणकरतेहैं। वे ८ निश्चित ९ संपूर्ण १० पापोंतैं ११ मुक्तहोतेहैं ॥ २४ ॥ औ

१ हे प्रिय! २ जे ३ रात्रिके अंतविषे ४ जाग्रत् होयके ५ मुजकूं ६ इस स्तोत्रकरि ७ स्तुति करतेहैं। ८ तिनकूं ९ प्राणके नाश होते १० मैं ११ निर्मल १२ मति १३ बी १४ देताहूं ॥ २५ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ।
हर्षयन् विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम्॥२६॥

॥ इति श्रीगजेंद्रमोक्षः समाप्तः ॥

॥ श्रीशुकदेवजी कहतेभयेः—

१ हृषीकेश २ ऐसें ३ उपदेशकरिके ४ उत्तमशंखकूं ५ बजायके ६ देवसेनाकूं ७ हर्ष करतेहुये ८ पक्षिराजके प्रति ९ आरूढ होतेभये ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीपीतांबरशर्मपंडितविरचिता गजेंद्रमोक्षस्य भाषाटीका समाप्ता ॥

श्रीपंचदशीमूलमात्र द्वितीयावृत्तिका नमूना.

६६ ॥ श्रीपंचदशी ॥[श्लो.३९६.अ.१५३८

॥ ४ ॥ आत्मतत्त्वविवेचने ईश्वरस्वरूपे विवादः ॥ ३९६—४१५ ॥

॥ १ अंतर्यामितो विराट्पर्यंत ईश्वरे विवादः ॥३९६-४०८॥

९६-चित्संनिधौ प्रवृत्तायाः प्रकृतेर्हि नियामकम्।
ईश्वरं ब्रुवते योगाः स जीवेभ्यः परः श्रुतः१०२
९७-प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश इति हि श्रुतिः ।
आरण्यके संभ्रमेण ह्यंतर्याम्युपपादितः ॥१०३॥
९८-अत्रापि कलहायंते वादिनः स्वस्वयुक्तिभिः।
वाक्यान्यपि यथाप्रज्ञं दार्ढ्यायोदाहरंति हि१०४
९९-क्लेशकर्मविपाकैस्तदाशयैरप्यसंयुतः ।
पुंविशेषो भवेदीशो जीववत्सोऽप्यसंगचित्१०५
४००-तथापि पुंविशेषत्वाद्घटतेऽस्य नियंतृता ।
अव्यवस्थौ बंधमोक्षावापतेतामिहान्यथा॥१०६॥
१—भीषाऽस्मादित्येवमादावसंगस्य परात्मनः ।
श्रुतं तद्युक्तमप्यस्य क्लेशकर्माद्यसंगमात् ॥१०७॥

श्रीविचारचंद्रोदय चतुर्थावृत्तिका नमूना.

१२ ॥ विचारचंद्रोदय ॥

प्रश्नः—इन तीनवस्तुनका साधारणरूप क्या है?

उत्तरः—"मैं औ ब्रह्म" सो चैतन्य हैं । अरु प्रपंच सो जड है ॥

प्रश्नः—चैतन्य सो क्या है?

उत्तरः—जो ज्ञानरूप है औ सर्वघटादिक-प्रपंचकूं जानताहै औ जिसकूं अन्य मनइंद्रिय-आदिक कोई जानि सकते नहीं। सो चैतन्य है॥

प्रश्नः—जड सो क्या है?

उत्तरः—जो आपकूं न जानैं औ दूसरेकूं बी न जानैं। ऐसे जो अज्ञान औ तिनके कार्य भूत

॥२३॥ समष्टिव्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणदेह औ तिनकी अवस्था अरु धर्म। प्रपंच कहियेहै ॥

॥२४॥ "नहीं जानताहूं" ऐसे व्यवहारका हेतु आवरणविक्षेपशक्तिवाला अनादिभावरूपअज्ञान पदार्थ है ॥

॥२५॥ आकाशादिक पांचभूत ॥

श्रीसुंदरविलास चतुर्थावृत्तिका नमूना.

१९८ विपर्ययको अंग ॥ २० ॥ [सुंदर

अपनेमें उक्तअध्यासका लयकरिके परमानंदकूं पाया ॥

२ मछरी अग्निमांहि सुख पायो ।
जलमें वहुत हुती वेहाल ॥

जिज्ञासावाली साभासबुद्धिरूप जो **मछरी ।** यानें संचितकर्मरूप तृणके दाहक ब्रह्मज्ञानरूप **अग्निमांहि सुख पायो ।** कहिये निरतिशयानंदकूं पाया । सो प्रथम अज्ञानकालमें संसाररूपी **जलमें वहुत वेहाल हुती ।** कहिये दुःखी थी ॥

३ पंगु चढ्यो पर्वतके ऊपर ।
मृतकहि देखि डरानो काल ॥

स्वर्गादिकलोकमें औ इसलोकमें गमन औ आगमनकी इच्छारूप चरणनतें । रहित तीव्रवैराग्यवान् मुमुक्षुरूप जो **पंगु ।** सो प्रपंचतें पर चिदाकाशरूप **पर्वतके ऊपर चढ्यो ।** कहिये स्थित भयो ॥

श्रीबालबोध सटीक । द्वितीयावृत्तिका नमूना.

८८ आत्मा-ईश-सृष्टि-प्रश्नोत्तर॥२१-२७॥ [बाल

सहित तम (अज्ञान) रूप **कूप नाशै** कहिये नष्ट होवै । ऐसैं ये दोप्रश्न शिष्यनै किये ॥३॥

॥२४॥ ॥ **श्रीगुरुरुवाच** ॥

॥ **दोहा** ॥

मायाशक्तिसमेत जो । ब्रह्मसच्चिदानंद ॥
सो जगकर्त्ता ईश है पूरण ताकूं वंद ॥४॥

टीका—अब उक्त दो प्रश्नोंका उत्तर गुरु कहैहैं:—

हे शिष्य! समष्टि अज्ञानरूप जो **माँया-शक्ति है ।** जाकूं समष्टिरूप ईश्वरका कारण-देह कहै हैं औ जाके अंशभूत व्यष्टिअज्ञानरूप जीवनके कारणदेह हैं । ता मायाशक्ति **सहित**

॥ २७ ॥ इहां यह अवच्छेदवादकी रीतिसैं ईश्वरका लक्षण कहा औ आभासवादकी रीतिसैं चिदाभास-सहित मायाशक्तिका ग्रहण करना यह विशेष है ॥

"વિશ્વભેદ" અથવા ૧૨૦૦૦ વર્ષ પૂર્વે હિંદુસ્થાનનો નમુનો.

બંધીખાનું. પ્ર. ૧ લું. ૧૩

"ગુણવતી, તારૂં કથન યથાસ્થિત છે. **હરિદાસ**નાં એ શ્રેષ્ઠ લક્ષણોનો હું હજી પણ જ્યારે વિચાર કરૂંછું ત્યારે એવા પુત્રના પિતા તરીકે હું પોતાને ધન્ય માનુંછું. વિશ્વભેદની ત્રણ ભૂમિકાઓ પૂર્ણ કરી ત્યાંસુધી તે સર્વ વાતે પ્રસન્ન આચરણોવાળો હતો, પણ ૭ મહિના થયા ઈશ્વર જાણે તેની બુદ્ધિને શું થયું છે! **હરિદાસ** તેની વર્તણુકમાં કેવળ બદલાઈ ગયોછે અને તેથી એ છૂપી મંડળીવિષે દિન પ્રતિદિન બીજાઓની પેઠે મારો વિચાર પણ ઘણો હલકો થતો જાયછે."

"સ્વામિરાજ, એ મંડળીવિષે તો મેં પણ ઘણી વાતો સાંભળી છે. કેટલાકો તો તેમાં દાખલ થયા પછી ગાંડા થઈ ગયેલા આપણે જાણ્યા છે. વળી એ મંડળીના સભ્યજનો મંડળીમાં શું થાયછે તેની કોઈ પ્રત્યે વાત પણ કરતા નથી. ભલા એવું તે શું હશે કે છાનું રાખવાની તેમને જરૂર પડેછે!?"

"ભલા જાણે, ભેળા થઈને શું કરેછે. હું તો હવે વકીલને ત્યાં જાઉંછું. કાલે **હરિદાસ**ની અપીલ

"સૉક્રેટિસનું જીવન ચરિત્ર અને પ્લેટોનાં પ્રશ્નોત્તર" નો નમૂનો.

સૉક્રેટિસની તપાસ. ૨૩

ન્યાયાધીશોએ તેને બોલવા દીધો નહીં. અંતે તપાસ પૂરી થતાં મત લેવામાં આવ્યા, તેમાં **સૉક્રેટિસ વિરૂદ્ધ ૨૮૧ મત પડ્યા. આપ્રમાણે પ્રતિપક્ષમાં માત્ર ત્રણ મત અધિક થયાથી તેને અપરાધી ઠેરવી દેહાંતશિક્ષા કરવામાં આવી. શિક્ષા સાંભળી સૉક્રેટિસ બોલ્યો:—**

"ઓ એથેનિયનો, માત્ર ટૂંક સમયને-માટેજ તમે સૉક્રેટિસ જેવા વિદ્વાન્ પુરૂષને મારી નાખવાનો દોષ ઓઢી લીધો છે. જો કે હું કોઇ પ્રકારે વિદ્વાન્ નથી, છતાં જેઓને તમારી નિંદાજ કરવી છે, તેઓ મને વિદ્વાન્ કહી તમને ઠપકો આપશે. માત્ર થોડો કાળ તમે ધૈર્યરાખત તો તમારાં શ્રમવગરજ તમારૂં ધાર્યું થઇ આવત. મારી વયતરફ દૃષ્ટિ કરો; હું અત્યંત વૃદ્ધ થયો છું, અને મરણના

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्व्वं

अर्थः—हे सोम्य! जैसैं एक लोहमणि

कार्य नहीं है॥ ॥ ननु[13] तब लोकविषै यह कारण है यह इसका विकारहै ऐसा यह (भेद-दर्शन) कैसैंहै? तहां श्रवण कर? वाचारंभण कहिये वाणीका आरंभण। अर्थ यह जोः—वाणीका आलंबन (विषय)॥ कौंन यहकिः—विकार है। सो नामधेय है कहिये। नामहीं[14] नामधेय है। [इहां स्वार्थविषै धेय प्रत्ययहै]। वाणीका आलंबन मात्र जो वस्तु है सो केवल नामहीं है। विकार नाम वस्तु परमार्थतैं नहींहै। परंतु मृत्तिकाहीं[15] सत्य वस्तु है॥ ४॥

टीकाः—हे सोम्य! जैसैं एक लोहमणि

१३ कार्य अरु कारणकी भिन्नताके अभावविषै लोकप्रसिद्धिके विरोधकूं पूर्ववादी शंका करैहै॥ इधर "वाणीसैं आरंभण" इस वाक्यविषै "वाणीसैं" यह तृतीया विभक्ति "वाणीका" ऐसैं षष्ठीके अर्थविषै देखनेकूं योग्य है॥

१४ नामधेय। इस पदके अर्थकूं कथन करैहैं॥

१५ विकारकी मिथ्यारूपताके हुये परमार्थतैं क्या है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

ईशाद्यष्टोपनिषद्। छांदोग्योपनिषद् औ बृहदारण्यकोपनिषद्। ये सर्वउपनिषदोंके पृष्ठ ऊपरिदिये नमूनेसमान परिमाणके हैं॥ औ बृहदारण्यकोपनिषद्के अक्षर बी ऊपरि दिये नमूनेसमान हैं॥

टीकांकः २१४९ टिप्पणांकः ६११	यमादिर्धीनिरोधश्च व्यवहारस्य संक्षयः। स्युर्हेत्वाद्या उपरतेरित्यसंकर ईरितः २८० ॥	चित्रदीपः ॥ ६ ॥ श्लोकांकः ५७४

४९ उपरतेस्तानि दर्शयति—

५०] यमादिः च धीनिरोधः व्यवहारस्य संक्षयः उपरतेः हेत्वाद्याः स्युः इति असंकरः ईरितः ॥

५१) आदिपदेन नियमादयो गृह्यंते। धीनिरोधः चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणो योगः २८०

॥ ६ ॥ उपरतिके हेतु स्वरूप औ फल ॥

४९ उपरति जो उपशम। ताके तीन हेतु स्वरूप औ फलकूं दिखावैहैं:—

५०] यमआदिक अरु बुद्धिका नि[१२]रोध अरु व्यवहारका सम्यक्क्षय। ये तीन उपरतिके हेतुआदिक हैं। ऐसैं वैराग्यादिकतीनका भेद कथन कियाहै॥

५१) यमआदिक। इहां आदिपदकरि नियमआदिक ग्रहण करियेहैं॥ यह अष्टअंग उपरतिके हेतु हैं। औ बुद्धिका निरोध कहिये चित्तवृत्तिका निरोधरूप योग उपरतिका स्वरूप है। औ लौकिकवैदिकव्यवहारका विस्मरण उपरतिका फल है॥ ऐसैं साथिहीं वर्त्तमान वैराग्यादिकतीनका हेतुआदिककरि भेद कहाहै॥ २८०॥

११ (१) यम। (२) नियम। (३) आसन। (४) प्राणायाम। (५) प्रत्याहार। (६) धारणा। (७) ध्यान। औ (८) सविकल्पसमाधि। ये अष्टअंग उपरतिके हेतु (साधन) हैं॥

(१) अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह भेदतैं **पांचप्रकारका यम** है॥

(२) शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानभेदतैं **पांचप्रकारका नियम** है॥

(३) पद्म वीर भद्र स्वस्तिक दंड सोपाश्रय पर्यंक क्रौंच हस्ती उष्ट्र समसंस्थान स्थिरसुख यथासुख। इनसैं आदिलेके **चौर्‍यासीप्रकारका आसन** है॥

(४) बाहिरके वायुका भीतरग्रहणरूप श्वास अरु भीतरके वायुका बाहिर निकासनैरूप प्रश्वास। तिन दोनूंकी गतिका जो विच्छेद (श्वासप्रश्वास दोनूंका अभाव) सो **प्राणायाम** कहियेहै॥ [१] बाह्य [२] आभ्यंतर [३] स्तंभवृत्ति भेदतैं सो **प्राणायाम तीनभांतिका** है॥

[१] जहां प्रश्वासपूर्वक गतिका अभाव होवै सो **बाह्यप्राणायाम** है॥

[२] जहां श्वासपूर्वक गतिका अभाव होवै सो **आभ्यंतर प्राणायाम** है॥

[३] जहां श्वासप्रश्वास दोनूंकी गतिका पाषाणविषै गेरे तप्तजलके सर्वऔरतैं संकोचकी न्यांई एककालमैं अभाव होवै सो तृतीय **स्तंभवृत्तिरूप प्राणायाम** है॥ इसरीतिसैं अनेकप्रकारका प्राणायाम है॥

(५) शब्दादिकविषयनतैं श्रोत्रादिकइंद्रियनके निरोधकूं **प्रत्याहार** कहैहैं॥

(६) नाभिचक्रविषै वा हृदयकमलविषै वा मूर्ध्निविषै वा ज्योतिविषै वा नासिकाके अग्रविषै इत्यादिदेशनविषै वा बाह्य (मूर्तिआदिक) विषयविषै चित्तका वृत्तिमात्रकरि जो बंध (बंधन)। सो **धारणा** कहियेहै॥ औ

(७) तिन देशनविषै देहकूं आश्रय करनैवाला जो प्रत्यय (चित्तवृत्ति) तिसकी एकतानता (अन्यप्रत्ययरूप अंतरायसैं रहित सदृशप्रवाह)। **ध्यान** कहियेहै। अथवा अन्यवृत्तिरूप अंतरायसहित प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मविषै चित्तका प्रवाह **ध्यान** कहियेहै॥

(८) व्युत्थानसंस्कारका तिरस्कार अरु निरोधसंस्कारकी प्रकटतापूर्वक अंतःकरणका एकाग्रतारूप परिणाम। **समाधि** कहियेहै॥ सो समाधि [१] सविकल्प [२] निर्विकल्प भेदतैं दोभांतिकी है॥

[१] त्रिपुटीके भानसहित **सविकल्प** है। औ

[२] त्रिपुटीके भानरहित **निर्विकल्प** है॥

तिनमैं सविकल्पसमाधि साधन होनैतैं अंग है।

इसरीतिसैं कहे जे यमआदिकअष्टअंग वे उपरतिके साधन हैं॥

१२ सविकल्पनिर्विकल्पसमाधिके अभ्यासकरि जो प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा औ स्मृतिरूप पंचवृत्तिनका निरोध होवै है। सो **उपरतिका स्वरूप** है।

॥ २५९ ॥ ॥ स्थूलब्रह्मांडादिककी उत्पत्ति ॥

तिन पंचीकृतभूतनतैं

१ इंद्रियनका विषय **स्थूलब्रह्मांड** होताभया ॥

२ ता ब्रह्मांडके अंतर। भूर्लोक। भुवर्लोक। स्वर्लोक। महर्लोक। जनलोक। तपलोक। सत्यलोक। ये **सातभुवन उपरके** होतेभये ॥ औ

३ अतल। सुतल। पाताल। वितल। रसातल। तलातल। महातल। ये **सातलोक नीचेके** होतेभये।

४ तिन चतुर्दशलोकनमैं जीवनके भोगयोग्य अन्नादिक औ भोगका स्थान **देवमनुष्यपशुआदिस्थूशरीर** होतेभये ॥

यह संक्षेपतैं सृष्टिका निरूपण किया ॥ औ मायाके कार्यका विस्तारसैं निरूपणकियेतैं कोटीब्रह्माकी उमरतैं बी मायाकृतपदार्थनिरूपणका अंत होवै नहीं। यह वाल्मीकिनै अनेकइतिहासनतैं वासिष्ठमैं निरूपण कियाहै ॥

यह सवैयाके दोपादनका अर्थ है ॥

(आत्मविवेक अथवा पंचकोशविवेक ॥ २६०—२७१ ॥)

॥ २६० ॥ पंचकोश औ तिनकरि आत्माका आच्छादन करणा ॥

तृतीयपादका अर्थ यह है:—इनहीमैं कहिये माया औ ताके कार्यमैं तीनिशरीर औ पंचकोश हैं ॥

१(१) शुद्धसत्वगुणसहित माया **ईश्वरका कारणशरीर** है ॥ औ ॥

(२) मलिनसत्वगुणसहित अविद्याअंश **जीवका कारणशरीर** है ॥

२(१) उत्तरशरीरके आरंभक पंचसूक्ष्मभूत। मन बुद्धि चित्त अहंकार। पंचप्राण। पंचकर्मइंद्रिय। पंचज्ञानइंद्रिय। **जीवका सूक्ष्मशरीर** है ॥ औ

(२) सर्वजीवनके सूक्ष्मशरीरहीं मिलिके **ईश्वरका सूक्ष्मशरीर** है ॥

३(१) संपूर्णस्थूलब्रह्मांड **ईश्वरका स्थूलशरीर** है ॥ औ

(२) जीवनके **व्यष्टिस्थूशरीर** प्रसिद्ध हैं ॥

इन तीनिशरीरनमैंहीं पंचकोश हैं।

१ कारणशरीरकूं **आनंदमयकोश** कहेहैं॥

२-४ विज्ञानमय। मनोमय। प्राणमय। तीनिकोश सूक्ष्मशरीरमैं हैं ॥

(१) पंचज्ञानेंद्रिय औ निश्चयरूप अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धि। **विज्ञानमयकोश** कहियेहै ॥

(२) पंचज्ञानेंद्रिय औ संकल्पविकल्प अंतःकरणकी वृत्ति मन। **मनोमयकोश** कहियेहै ॥

(३) पंचप्राण औ पंचकर्मेंद्रिय। **प्राणमयकोश** है ॥

५ स्थूलशरीरकूं **अन्नमयकोश** कहेहैं ॥

इसरीतिसैं तीनिशरीरनमैंहीं पंचकोश हैं ॥

१ ईश्वरके[३०२] शरीरमैं **ईश्वरके कोश** हैं। औ

॥ ३०२ ॥

१ समष्टिअज्ञानरूप माया **ईश्वरका कारणशरीर** है। सो ईश्वरका आनंदमयकोश है। औ

२-४ जीवनके सूक्ष्मशरीरकी समष्टिरूप हिरण्यगर्भ **ईश्वरका सूक्ष्मशरीर** है। तामैं (१) विज्ञानमय (२) मनोमय (३) प्राणमयरूप ईश्वरके तीनिकोश हैं। तिनमैं

(१) दिक्पाल वायु सूर्य वरुण अरु अश्विनी-

टीकांक: ४२७९ टिप्पणांक: ॐ		ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांक:
	महाराजः सार्वभौमः संतृप्तः सर्वभोगतः ।	
	मानुषानंदसीमानं प्राप्यानंदैकमूर्तिभाक् ॥५१॥	११९३
	महाविप्रो ब्रह्मवेदी कृतकृत्यत्वलक्षणाम् ।	
	विद्यानंदस्य परमां काष्ठां प्राप्यावतिष्ठते ॥५२॥	११९४
	मुग्धबुद्धातिबुद्धानां लोके सिद्धा सुखात्मता ।	
	उदाहृतानामन्ये तु दुःखिनो न सुखात्मकाः ५३	११९५

७९] (महाराज इति)—**सार्वभौमः महाराजः सर्वभोगतः संतृप्तः मानुषानंदसीमानं प्राप्य आनंदैकमूर्तिभाक्॥**

८०) यथा वा **सार्वभौमः** राजाऽविशदबुद्धित्वेऽपि सर्वैर्मानुषानंदैर्युक्तत्वात् प्रार्थनीयाभावेन रागादिरहित आनंदमूर्तिरेवावतिष्ठते ॥ ५१ ॥

८१] **महाविप्रः ब्रह्मवेदी कृतकृत्यत्वलक्षणां विद्यानंदस्य परमां काष्ठां प्राप्य अवतिष्ठते ॥**

८२) यथा वा **महाविप्रः** महाब्राह्मणः। प्रत्यगभिन्नब्रह्मसाक्षात्कारवान् "अहं कृतकृत्य" इत्येवंरूपां **विद्यानंदस्य परमां** सीमां जीवन्मुक्ततां प्राप्तः परमानंदस्वरूप एव **अवतिष्ठते** । तथा सुप्तोप्यानंदरूपस्तिष्ठतीति शेषः ॥ ५२ ॥

८३ नन्वेते कुमारादयस्त्रय एव किमिति दृष्टांतीकृता नान्य इत्याशंक्य । दृष्टांतत्रयोदाहरणतात्पर्यमाह (मुग्धेति)—

८४] **उदाहृतानां मुग्धबुद्धातिबुद्धानां सुखात्मता लोके सिद्धा। अन्ये तु दुःखिनः सुखात्मकाः न ॥**

८५) विवेकशून्यानां मध्ये अतिबालः सुखी । विवेकिषु सार्वभौमः । अतिविवेकि-

---

७९] जैसें **सर्वभूमिका अधिपति महाराज । सर्वभोगसें सम्यक्तृप्त हुया मानुषआनंदकी अवधिकूं पायके एकआनंदकी मूर्तिकूं भजता है ॥**

८०) वा जैसें चक्रवर्तीराजा । शुद्धज्ञानयुक्तबुद्धिकरि रहित हुया बी सर्वमनुष्यनके आनंदनकरि युक्त होनैतें प्रार्थना करनैके योग्य विषयके अभावकरि रागादिकरहित हुया आनंदकी मूर्तिहीं स्थित होवैहै ॥५१॥

८१] **जैसें महाविप्रब्रह्मवेदी कृतकृत्यतारूप विद्यानंदकी परमअवधिकूं पायके स्थित होवैहै ॥**

८२) वा जैसें महाब्राह्मण जो प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मके साक्षात्कारवान् है । सो "मैं कृतकृत्य हूं" इस रूपवाली विद्यानंदकी परमसीमाकूं नाम उत्कृष्टजीवन्मुक्तताकूं प्राप्त हुया परमानंदस्वरूपहीं स्थित होवैहै । तैसें सुषुप्तिवान् पुरुष बी आनंदरूप स्थित होवैहै॥५२॥

८३ ननु यह कुमारआदिक तीनहीं पुरुष दृष्टांतरूप किये । अन्य क्यूं नहीं किये? यह आशंकाकरि तीनदृष्टांतनके उदाहरणका तात्पर्य कहैहैं:—

८४] **उदाहरण किये मुग्ध जो अतिबाल औ बुद्ध जो महाराजा औ अतिबुद्ध जो ब्रह्मनिष्ठ। इन तीनकी सुखरूपता लोकविषै सिद्ध है औ अन्यपुरुष तौ दुःखी हैं। सुखरूप नहीं ॥**

८५) विवेकरहित पुरुषनके मध्यमैं अतिबालसुखी है औ विवेकी जे व्यवहारादिकुशलपुरुष तिनके मध्यमैं सार्वभौम जो सारीपृथ्वीका राजा सो सुखी है औ अतिविवेकी-

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११९६

कुमारादिवदेवायं ब्रह्मानंदैकतत्परः ।
९०
स्त्रीपरिष्वक्तवद्वेद न बाह्यं नापि चांतरम् ॥५४॥

टीकांकः ४२८६ टिप्पणांकः ॐ

ष्वानंदात्मसाक्षात्कारवानेव । इतरे तु सर्वदा रागादिमत्त्वादसुखिनः इति न दृष्टांतीकृता इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

८६ भवंत्वेते सुखिनः प्रकृते किमायातमित्याशंक्य । दार्ष्टांतिकश्रुतिवाक्यस्य तात्पर्यमाह—

८७] **कुमारादिवत् एव अयं ब्रह्मानंदैकतत्परः ॥**

८८) **कुमारादिवत्** कुमारादयो यथानंदभाजः एवं **अयं अपि** सुषुप्तः **ब्रह्मानंदैकतत्परः** ब्रह्मानंदैकभागी इत्यर्थः ॥

८९ ब्रह्मानंदैकपरत्वे युक्तिप्रदर्शनपरं "तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नांतरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नांतरम्" इति ज्योतिर्ब्राह्मणगतं वाक्यमर्थतोऽनुक्रामति—

९०] **स्त्रीपरिष्वक्तवत् बाह्यं न । च आंतरं अपि न वेद ॥**

९१) यथा लोके प्रियया स्त्रिया आलिंगितः कामी बाह्याभ्यंतरविषयज्ञानशून्यत्वात्सुखमूर्तिवद्भवति । तथा सुषुप्तो प्राज्ञेन परमात्मनैक्यं गतो जीवो बाह्यादिविषयज्ञानाभावादानंदरूप एव भवति ॥ ५४ ॥

पुरुषनके मध्यमैं आनंदरूप आत्माके साक्षात्कारवान् पुरुषहीं सुखी है औ अन्यपुरुष तौ सर्वदा रागादिकवाले होनैतैं सुखरहित हैं। यातैं सो सुषुप्तिवान्‌विषै दृष्टांतरूप नहीं किये। यह अर्थ है ॥ ५३ ॥

॥ १९ ॥ सुषुप्तिमैं जीवकूं ब्रह्मानंदकी तत्परताविषै दृष्टांतसहित ज्योतिर्ब्राह्मणवाक्यका अर्थ ॥

८६ यह कुमारआदिकतीन सुखवान् होहु । इसकरि प्रकृतसुषुप्तिवान्‌पुरुषविषै क्या आया ? यह आशंकाकरि दार्ष्टांतिकरूप श्रुतिवाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

८७] **कुमारआदिककी न्याईंहीं यह सुषुप्तिवान् । एकब्रह्मानंदविषै तत्पर होवैहै ॥**

८८) जैसैं कुमारआदिक आनंदकूं पावतेहैं । ऐसैं यह सुषुप्तिवान्‌पुरुष बी एकब्रह्मानंदविषै तत्पर नाम एकहीं ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होवैहै । यह अर्थ है ॥

८९ सुषुप्तिवानकूं एकहीं ब्रह्मानंदविषै तत्पर होनैमैं युक्तिके दिखावनै परायण "सो जैसैं प्रियस्त्रीके साथि आलिंगित पुरुष । किंचित्‌बाह्यकूं नहीं जानताहै औ आंतरकूं नहीं जानताहै । ऐसैंहीं यह पुरुष प्राज्ञरूप परमात्माके साथि आलिंगित हुया किंचित्‌बाह्यकूं नहीं जानताहै औ आंतरकूं नहीं जानताहै" इस बृहदारण्यकके ज्योतिर्ब्राह्मणनाम प्रकरणगत वाक्यकूं अर्थतैं क्रमकरि कहैहैं:—

९०] **स्त्रीकरि आलिंगित पुरुषकी न्याईं बाह्यकूं नहीं जानताहै औ आंतरकूं बी नहीं जानताहै ॥**

९१) जैसैं लोकविषै प्रियस्त्रीके साथि आलिंगनकूं प्राप्त भया जो कामीपुरुष । सो बाह्यभीतरकूं विषय करनैहारे ज्ञानसैं रहित होनैतैं सुखमूर्तिकी न्याईं होवैहै । तैसैं सुषुप्तिविषै प्राज्ञरूप परमात्माके साथि एकताकूं प्राप्त भया । बाह्यभीतरकूं विषय करनैहारे ज्ञानके अभावतैं आनंदरूपहीं होवैहै ॥ ५४ ॥

टीकांकः ४२९२ टिप्पणांकः ॐ

९३ बाह्यं रथ्यादिकं वृत्तं गृहकृत्यं यथांतरम् ।
तथा जागरणं बाह्यं नाडीस्थः स्वप्न आंतरः ५५
९६ पितापि सुप्तावपितेत्यादौ जीवत्ववारणात् ।
सुप्तौ ब्रह्मैव नो जीवः संसारित्वासमीक्षणात् ५६

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः ११९७ ११९८

९२ अत्र दृष्टांतदार्ष्टांतिकवाक्यस्थयोः बाह्याभ्यंतरशब्दयोः विवक्षितमर्थं क्रमेण दर्शयति (बाह्यमिति)—

९३] यथा रथ्यादिकं बाह्यं वृत्तं । गृहकृत्यं आंतरं । तथा जागरणं बाह्यं । नाडीस्थः स्वप्नः आंतरः ॥

९४) वृत्तं वृत्तांतः । नाडीस्थः जाग्रद्वासनया नाडीमध्ये प्रतीयमानः प्रपंचः स्वप्न इत्युच्यते ॥ ५५ ॥

९५ जीवः सुप्तौ ब्रह्मानंदरूपेणैवावतिष्ठत इत्यत्र युक्तिप्रदर्शनपरायाः । "अत्र पिताऽपिता भवति" इत्यादिकायाः श्रुतेस्तात्पर्यमाह (पितेति)—

९६] सुप्तौ पिता अपि अपिता इत्यादौ जीवत्ववारणात् संसारित्वासमीक्षणात् सुप्तौ ब्रह्म एव । जीवः नो ॥

९७) अत्र सुप्तौ आध्यासिकानां पितृत्वादिजीवधर्माणां श्रुत्यैव निवारितत्वात् जीवत्वाप्रतीतौ ब्रह्मता एव अवशिष्यत इत्यर्थः ॥ ५६ ॥

॥ १६ ॥ दृष्टांतदार्ष्टांतगत बाह्य औ अभ्यंतर-शब्दका अर्थ ॥

९२ इन दृष्टांत औ दार्ष्टांतिकरूप वाक्यविषै स्थित बाह्य औ आंतरशब्दके विवक्षित-अर्थकूं क्रमकरि दिखावैहैं:—

९३] जैसैं दृष्टांतविषै रथ्या जो बहुत मार्ग जहां इकट्ठे होवैं ऐसा स्थान वा लघुमार्ग । इससैं आदिलेके जो है सो बाह्यवृत्तांत है औ गृहका कार्य आंतरवृत्तांत है । तैसैं दार्ष्टांतिकविषै जागरण बाह्यवृत्तांत है औ नाडीनविषै स्थित स्वप्न आंतरवृत्तांत है ॥

९४) जाग्रत्‌की वासनाकरि नाडीनके मध्य प्रतीयमान जो प्रपंच सो स्वप्न ऐसैं कहियेहै ५५

॥ १७ ॥ सुषुप्तिमैं जीवकी ब्रह्मानंदरूपसैं स्थितिविषै युक्तिप्रदर्शकश्रुतिका तात्पर्य ॥

९५ जीव । सुषुप्तिविषै ब्रह्मानंदरूपकरिहीं स्थित होवैहै । इस अर्थविषै युक्तिके दिखावनै परायण जो "इस सुषुप्तिविषै पिता अपिता होवैहै" इत्यादिकश्रुति है । ताके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

९६] "सुषुप्तिविषै पिता बी अपिता होवैहै" इत्यादिकश्रुतिके स्थलमैं जीवभावके निवारणतैं औ संसारीभावकी अप्रतीतितैं सुषुप्तिविषै ब्रह्महीं है । जीव नहीं ॥

९७) इस सुषुप्तिविषै आध्यात्मिक नाम अध्यासकरि किये पितापनैआदिक जीवके धर्मनका श्रुतिकरिहीं निवारण कियाहोनैतैं औ जीवपनैकी अप्रतीतिके हुये ब्रह्मभावहीं शेष रहताहै । यह अर्थ है ॥ ५६ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः ११९९ १२००	९९ पितृत्वाद्यभिमानो यः सुखदुःखाकरः स हि । तस्मिन्नपगते तीर्णः सर्वाञ्छोकान्भवत्ययम्॥५७॥ सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमसावृतः । सुखरूपमुपैतीति ब्रूते ह्याथर्वणी श्रुतिः ॥ ५८ ॥	टीकांकः ४२९८ टिप्पणांकः ॐ

९८ ननु पितृत्वाद्यभिमानाभावेऽपि सुखित्वादिसंसारः किं न स्यादित्याशंक्य । संसारस्य देहाभिमानमूलत्वात्तदभावे भाव इति मन्वानस्तत्प्रतिपादकं "तीर्णो हि तदा सर्वान् शोकान् हृदयस्य भवति" इति समनंतरवाक्यं तात्पर्यतो व्याचष्टे (पितृत्वादीति)—

९९] **यः पितृत्वाभिमानः सः हि सुखदुःखाकरः । तस्मिन् अपगते अयं सर्वान् शोकान् तीर्णः भवति ॥५७॥**

४३०० ननूदाहृताभिः श्रुतिभिर्न सुखप्राप्तिर्मुखतः अभिधीयमानोपलभ्यते इत्याशंक्य तत्राभिधानपरं कैवल्यश्रुतिवाक्यमर्थतः पठति—

१] **"सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमसा आवृतः सुखरूपं उपैति" इति आथर्वणी श्रुतिः ब्रूते हि ॥**

२) **सकले** जाग्रदादिलक्षणे प्रपंचे । **विलीने** स्वोपादानभूतायां तमःप्रधानायां प्रकृतौ विलयं गते सति । **तमसा** तया प्रकृत्या । **आवृतः** आच्छादितः । जीवः **सुखरूपं** ब्रह्म । **उपैति इति** तस्याः श्रुतेरर्थः ॥ ९८ ॥

॥ १८ ॥ सुषुप्तिमैं पितादिकके अभिमानके अभावतैं शोकादिसंसारका अभाव ॥

९८ ननु सुषुप्तिविषै पितापनैआदिकअभिमानके अभाव हुये बी सुखीपनाआदिकसंसार क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंकाकरि संसारकूं देहाभिमानरूप कारणवाला होनैतैं तिस देहाभिमानके अभाव हुये संसारका अभाव है । ऐसैं मानतेहुये आचार्य तिस संसारके अभावका प्रतिपादक जो "तब सुषुप्तिविषै हृदय जो अंतःकरण ताके सर्वशोकनकूं उल्लंघन करनैहारा होवैहै" यह ५६ श्लोकउक्तश्रुतिके समीपवर्ती पीछेका वाक्य है । तिसकूं तात्पर्यतैं व्याख्यान करैहैं:—

९९] **पितापनैआदिकका जो अभिमान है । सोई सुखदुःखका खानि है । तिसके निवृत्त भये यह पुरुष सर्वशोकनकूं उल्लंघन करता होवैहै ॥५७॥**

॥ १९ ॥ सुषुप्तिमैं स्वमुखतैं सुखके कहनैहारी श्रुतिका अर्थ ॥

४३०० ननु उदाहरण करी जे श्रुतियां तिनोंनै सुषुप्तिविषै सुखकी प्राप्ति मुखतैं कथन करीहै ऐसैं नहीं देखियेहै । यह आशंकाकरि तैसैं कथनके परायण कैवल्यश्रुतिके वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

१] **"सुषुप्तिकालविषै सकलप्रपंचके विलीन हुये । तमकरि आवृत भया जीव सुखरूपकूं पावताहै" ऐसैं अथर्वणवेदकी कैवल्यश्रुति कहतीहै ॥**

२) सुषुप्तिकालविषै सकल जाग्रत्आदिरूप प्रपंचके विलीन हुये कहिये अपनै उपादानरूप तमःप्रधानप्रकृतिविषै विलयकूं प्राप्त हुये । तिस प्रकृतिरूप तमकरि आच्छादित भया जीव सुखरूप ब्रह्मकूं पावताहै । यह तिस श्रुतिका अर्थ है ॥ ९८ ॥

टीकांक: ४३०३ टिप्पणांक: ॐ	सुखमस्वाप्समत्राहं न वै किंचिदवेदिषम् । इति सुप्ते सुखाज्ञाने परामृशति चोत्थितः॥५९॥ परामर्शोऽनुभूतेऽस्तीत्यासीदनुभवस्तदा । चिदात्मत्वात्स्वतो भाति सुखमज्ञानधीस्ततः ६०	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२०१ १२०२

३ न केवलमयं श्रुतिप्रसिद्धोऽर्थः किंतु सर्वानुभवसिद्धोऽपीत्याह (सुखमिति)—

४] उत्थितः "अत्र सुखं अहं अस्वाप्सं । किंचित् न अवेदिषम्" इति सुप्ते सुखाज्ञाने च परामृशति ॥

५) सुषुप्तात् उत्थितः पुरुषः "एतावंतं कालं सुखमहमस्वाप्सं न किंचिद्वेदिषम्" इति एवं निद्राकालीने सुखाज्ञाने परामृशति स्मरति । अतोऽपि सुप्तौ सुखमस्तीत्यवगम्यते ॥ ५९ ॥

६ ननु परामर्शस्याप्रमाणत्वात्कथं तद्बलात् सुखसिद्धिरित्याशंक्य तस्याप्रामाण्येऽपि तन्मूलभूतानुभवबलात्तत्सिद्धिरित्यभिप्रायेणाह—

७] परामर्शः अनुभूते अस्ति । इति तदा अनुभवः आसीत् ॥

८) परामर्शः स्मरणज्ञानं । अनुभूते एव विषये भवति नाननुभूतविषये इति अस्माद्धेतोः । तदा सुप्तौ अनुभव आसीत् इत्यवगम्यते ॥

९ ननु सुप्तौ मनःसहितानां ज्ञानकारणानां

॥ २० ॥ श्लोक ५८ उक्त अर्थकी सर्वानुभवसैं सिद्धि ॥

३ यह ५८ श्लोकउक्तअर्थ केवलश्रुतिप्रसिद्ध नहीं है । किंतु सर्वजनके अनुभवकरि सिद्ध बी है । ऐसैं कहैहैं:—

४] सुषुप्तितैं ऊठ्या पुरुष "इतनैकालविषै मैं सुख जैसैं होवै तैसैं सोयाथा औ कछु बी नहीं जानताभया" ऐसैं सुषुप्तिकाल सुख औ अज्ञानकूं स्मरण करताहै ॥

५) सुषप्तितैं ऊठ्या जो पुरुष । सो "इतनैकालपर्यंत मैं सुख जैसैं होवै तैसैं सोयाथा औ कछु बी नहीं जानताभया" इसरीतिसैं निद्राकालके सुख औ अज्ञानकूं स्मरण करता है । यातैं बी सुषुप्तिविषै सुख है । ऐसैं जानियेहै ॥ ५९ ॥

६ ननु स्मरणज्ञानकूं अप्रमाणरूप होनैतैं तिसके बलतैं सुषुप्तिविषै सुखकी सिद्धि कैसैं होवैहै? यह आशंकाकरि तिस स्मृतिज्ञानकूं अप्रमाणरूपता हुये बी तिसके मूलभूत अनुभवके बलतैं सुखकी सिद्धि होवैहै । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

७] स्मृतिज्ञान अनुभूतविषै होवैहै । यातैं तब अनुभव था ॥

८) स्मरणरूप ज्ञान अनुभव किये विषयविषैहीं होवैहै । नहीं अनुभव किये विषयविषै नहीं । इस हेतुतैं तब सुषुप्तिविषै सुख औ अज्ञानका अनुभव था । ऐसैं कहियेहै ॥

९ ननु सुषुप्तिविषै मनसहित ज्ञानके साधन-

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२०३ १२०४

[12] ब्रह्म विज्ञानमानंदमिति वाजसनेयिनः ।
पठंत्यतः स्वप्रकाशं सुखं ब्रह्मैव नेतरत् ॥ ६१ ॥
[14] यँदज्ञानं तत्र लीनौ तौ विज्ञानमनोमयौ ।
तँयोर्हि विलयावस्था निद्राऽज्ञानं च सैव हि ६२ [15]

टीकांक: ४२१० टिप्पणांक: ॐ

विलीनत्वात्कथमनुभवसिद्धिरित्याशंक्य । किं सुखानुभवसाधनं नास्तीत्युच्यते अज्ञानानुभवसाधनं वा । नाद्यः । स्वप्रकाशचिद्रूपत्वेन सुखस्य करणानपेक्षत्वात् । न द्वितीयः । स्वप्रकाशसुखबलादेव तदावरकाज्ञानप्रतीतिसिद्धेरित्यभिप्रायेणाह—

१०] चिदात्मत्वात् सुखं स्वतः भाति । ततः अज्ञानधीः ॥

ॐ १०) ततः स्वप्रकाशसुखात् अज्ञानधीः अज्ञानस्य प्रतीतिः भवतीति ॥ ६० ॥

११ ननु सौषुप्तसुखस्य स्वप्रकाशसुखत्वेऽपि "ब्रह्मानंदः स्वयं भवेत्" इत्यत्रोक्तं ब्रह्मरूपत्वं न संभवति मानाभावादित्याशंक्य "विज्ञानमानंदम्" इत्यादि बृहदारण्यकवाक्यसद्भावान्मैवमित्याह (ब्रह्मेति)—

१२] "विज्ञानं आनंदं ब्रह्म" इति वाजसनेयिनः पठंति । अतः स्वप्रकाशं सुखं ब्रह्म एव इतरत् न ६१

१३ नन्वनुभवस्मरणयोरेकाधिकरणत्वनियमात् "सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदि-

कूं विलीन होनैतैं कैसैं अनुभवकी सिद्धि होवैहै ? यह आशंकाकरि । क्या सुखके अनुभवका साधन नहीं है । ऐसैं तेरेकरि कहिये है वा अज्ञानके अनुभवका साधन नहीं है ऐसैं कहियेहै ? ये दोविकल्प हैं ॥ तिनमैं प्रथमपक्ष बनै नहीं । काहेतैं सुखकूं स्वप्रकाशचेतनरूप होनैकरि साधनकी अपेक्षारहित होनैतैं औ द्वितीयपक्ष वी बनै नहीं। काहेतैं स्वप्रकाशरूप सुखके बलतैंहीं तिसके आवरण करनैहारे अज्ञानकी प्रतीतिकी सिद्धितैं । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

१०] चिदात्मारूप नाम स्वप्रकाशरूप होनैतैं सुख स्वरूपतैं भासताहै औ तातैं अज्ञानकी बुद्धि होवैहै ॥

ॐ १०) तातैं कहिये स्वप्रकाशरूप सुखतैं अज्ञानकी बुद्धि कहिये अज्ञानकी प्रतीति होवैहै ॥ ६० ॥

॥ ११ ॥ सुषुप्तिके स्वप्रकाशसुखकी ब्रह्मरूपतामैं बृहदारण्यकश्रुतिका वाक्य ॥

११ ननु सुषुप्तिकालके सुखकूं स्वप्रकाशसुखरूपताके हुये वी "ब्रह्मानंद आप होवैहै" इस ४९ वें श्लोकविषै कथन करी जो ब्रह्मरूपता सो नहीं संभवैहै। प्रमाणके अभावतैं ॥ यह आशंकाकरि "विज्ञान आनंद ब्रह्म है" इत्यादि बृहदारण्यकके वाक्यके सद्भावतैं सुखकूं ब्रह्मरूपता नहीं है । यह कथन बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

१२] "विज्ञान जो जीवचेतन सो आनंदरूप ब्रह्म है" ऐसैं वाजसनेयीशाखावाले पठन करैहैं । यातैं स्वप्रकाशरूप सुख ब्रह्महीं है और नहीं ६१

॥ १२ ॥ स्मरण औ अनुभवके एकआश्रयके नियमके विरोधकी शंका औ समाधान ॥

१३ ननु । अनुभव औ स्मरण इन दोनूं ज्ञानकूं एकआश्रयवान् होनैके नियमतैं "मैं

षम्'' इति च सौषुप्तसुखाज्ञानयोर्विज्ञानमयशब्दवाच्येन जीवेन स्मर्यमाणत्वात् तस्यैव सुखाद्यनुभवितृत्वं वक्तव्यमित्याशंक्य तदुपाधेर्विज्ञानस्याज्ञानकार्यस्याज्ञाने विलीनत्वान्मैव मित्यभिप्रायेणाह–

१४] **यत् अज्ञानं तत्र तौ विज्ञानमनोमयौ लीनौ ॥**

१५) "न किंचिदवेदिषम्" इति स्मरणान्यथानुपपत्त्या गम्यमानं यदज्ञानं अस्ति तत्र तस्मिन्नज्ञाने तौ प्रमातृप्रमाणत्वेन प्रसिद्धौ । **विज्ञानमनोमयौ विलीनौ** विज्ञानत्वाद्याकारं परित्यज्य कारणरूपेणावस्थितौ । अतस्तदुपाधिकस्य नानुभवितृत्वम् इति भावः ॥

१६ तत्रोपपत्तिमाह (तयोरिति)—

१७] **हि तयोः विलयावस्था निद्रा ॥**

ॐ १७) हि यस्मात् । "तयोः विज्ञानमनोमययोः । **विलयावस्था निद्रा**" इत्युच्यते । "विज्ञानविरतिः सुप्तिः" इत्यभिधानात् ॥

१८ तर्हि निद्रायामेव विलीनाविति वक्तव्यं इत्याशंक्याह (अज्ञानमिति)—

१९] **च सा एव अज्ञानं हि ॥**

२०) सैव निद्रा विद्वद्भिः "अज्ञानम्" इति व्यवह्रियत इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

सुखसैं सोयाथा औ कछु वी नहीं जानताथा" ऐसैं सुषुप्तिकालके सुख औ अज्ञानकूं विज्ञानमयशब्दके वाच्य जीवकरि स्मरण कियाहोनैतैं । तिसी विज्ञानमयशब्दके वाच्य जीवकूंहीं सुख औ अज्ञानका अनुभवकर्तापना कहनैकूं योग्य है । यह आशंकाकरि तिस जीवके उपाधिरूप अज्ञानके कार्य अंतःकरणकूं अज्ञानविषै विलीन होनैतैं अंतःकरणउपाधिवाले जीवकूं सुख औ अज्ञानका अनुभवकर्तापना बनै नहीं । इस अभिप्रायकरि कहैहैंः—

१४] **जो अज्ञान है । तिसविषै सो विज्ञानमय औ मनोमय दोनूं विलीन है ॥**

१५) "मैं कछु वी नहीं जानताथा" इस स्मरणके अन्यथा कहिये सुषुप्तिविषै अनुभव किये अज्ञानरूप विषयसैं विना असंभवरूप अर्थापत्तिप्रमाणकरि जो अज्ञान जानियेहै । तिस अज्ञानविषै सो प्रमाता औ प्रमाणरूप होनैकरि प्रसिद्ध विज्ञानमय औ मनोमयकोश विलीन होवैहैं कहिये विज्ञानमय औ मनोमयरूप आकारकूं परित्यागकरिके कारणअज्ञानरूपकरि स्थित होवैहैं । यातैं तिस अंतःकरणरूप उपाधिवाले चेतनकूं अनुभवकर्तापना नहीं है । यह भाव है ॥

१६ तिसविषै कारण कहैहैंः—

१७] **जातैं तिनकी विलयअवस्था निद्रा है ॥**

ॐ १७) जिस कारणतैं तिन विज्ञानमय औ मनोमयकी विलयअवस्था निद्रा ऐसैं कहियेहै । "विज्ञान जो अंतःकरण ताकी विरति जो विलय सो सुषुप्ति है" ऐसैं शास्त्रविषै कथन कियाहोनैतैं ॥

१८ तब निद्राविषैहीं विलीन होवैहै । ऐसैं कह्याचाहिये । यह आशंकाकरि कहैहैंः—

१९] **सोइ निद्रा अज्ञान है ॥**

२०) सोइ निद्रा विद्वानोंकरि "अज्ञान" ऐसैं व्यवहार करियेहै ॥ यह अर्थ है ॥६२॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांक: १२०५ १२०६	२२ विलीनघृतवत्पश्चात्स्याद्विज्ञानमयो घनः । विलीनावस्थ आनंदमयशब्देन कथ्यते ॥ ६३ ॥ २५ सुप्तिपूर्वक्षणे बुद्धिवृत्तिर्या सुखबिंबिता । सैव तद्बिंबसहिता लीनानंदमयस्ततः ॥ ६४ ॥	टीकांक: ४३२१ टिप्पणांक: ॐ

२१ ननु तर्हि सौषुप्तसुखाद्यनुभवकालेऽसतो विज्ञानमयस्य प्रबोधे कथं तत्स्मर्तृत्वमित्याशंक्य । विलयावस्थायामपि तत्स्वरूपनाशाभावात् विलयावस्थोपाधिमदानंदमयरूपेणानुभवितृत्वं विज्ञानशब्दवाच्यघनीभावोपाधिमत्त्वेन स्मर्तृत्वं चैकस्य घटत इत्यभिप्रायेणाह—

२२] विलीनघृतवत् पश्चात् विज्ञानमयः घनः स्यात् । विलीनावस्थः आनंदमयशब्देन कथ्यते ॥

२३) यथाग्निसंयोगादिना विलीनं घृतं पश्चात् वाय्वादिसंबंधवशात् घनीभवति । एवं जाग्रदादिषु भोगप्रदस्य कर्मणः क्षयवशान्निद्रारूपेण विलीनमंतःकरणं पुनर्भोगप्रदकर्मवशात्प्रबोधे विज्ञानाकारेण घनीभवति । अतस्तदुपाधिक आत्मापि विज्ञानमयो घनः स्यात् । स एव पूर्वं विलयावस्थोपाधिकः सन् आनंदमयः इत्युच्यते ॥ ६३ ॥

२४ विलीनावस्थ आनंदमय इत्युक्तमेवार्थं स्पष्टीकरोति—

२५] सुप्तिपूर्वक्षणे या बुद्धिवृत्तिः

॥ २३ ॥ स्मरणकर्ता विज्ञानमय औ अनुभवकर्ता आनंदमयकी एकता ॥

२१ ननु तब सुषुप्तिगत सुख औ अज्ञानके अनुभवकालविषै अविद्यमान विज्ञानमयकूं जाग्रत्कालविषै कैसैं तिन सुख औ अज्ञानका स्मरणकर्तापना है? यह आशंकाकरि विलयअवस्थाविषै बी तिस आत्माके स्वरूपनाशके अभावतैं विलयअवस्थारूप उपाधिवाले आनंदमयरूपकरि अनुभवकर्तापना औ विज्ञानशब्दके वाच्य घनीभावरूप उपाधिवाला होनैकरि स्मरणकर्तापना एकआत्माकूं घटताहै । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

२२] विलीनघृतकी न्यांई जो पीछे जाग्रत्आदिकविषै विज्ञानमय घन होवैहै । सोई पूर्व विलीनअवस्थावाला हुया आनंदमयशब्दकरि कहियेहै ॥

२३) जैसैं अग्निके संयोगआदिककरि प्रगलित भया जो घृत । सो पीछे वायुआदिकके संबंधतैं घनी होवैहै । ऐसैं जाग्रत्आदिकनविषै जो भोगप्रदकर्म है । तिसके क्षयके वशतैं निद्रारूपकरि विलीन भया जो अंतःकरण । सो फेर भोगप्रदकर्मके वशतैं जाग्रत्विषै विज्ञान जो अंतःकरण तिस आकारकरि घनी कहिये स्थूलभावकरि स्पष्ट होवैहै । यातैं तिस अंतःकरणरूप उपाधिवाला आत्मा बी विज्ञानमयघन होवैहै । सोइ आत्मा पूर्व सुषुप्तिविषै विलयअवस्थारूप उपाधिवाला हुया आनंदमय । ऐसैं कहियेहै ॥ ६३ ॥

॥ २४ ॥ आनंदमयका स्वरूप ॥

२४ "विलीनअवस्थावाला हुया आनंदमय कहियेहै" इस ६३ वें श्लोकउक्तअर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

२५] सुषुप्तितैं पूर्वक्षणविषै जो

टीकांक: ४३२६ टिप्पणांक: ॐ

२८ अंतर्मुखो य आनंदमयो ब्रह्मसुखं तदा ।
भुंक्ते चिद्बिंबयुक्ताभिरज्ञानोत्पन्नवृत्तिभिः ॥ ६५॥
३१ अज्ञानवृत्तयः सूक्ष्मा विस्पष्टा बुद्धिवृत्तयः ।
३२ इति वेदांतसिद्धांतपारगाः प्रवदंति हि ॥ ६६ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२०७ १२०८

सुखबिंबिता । ततः तद्बिंबसहिता लीना आनंदमयः ॥

२६) सुप्तेः पूर्वस्मिन्नव्यवहिते क्षणे या अंतर्मुखा बुद्धिवृत्तिः स्वरूपभूतसुखप्रतिबिंबयुक्ता भवति । ततः अनंतरं । तत्प्रतिबिंबसहिता सैव वृत्तिर्निद्रारूपेण विलीना आनंदमयः इत्यभिधीयते ॥ ६४ ॥

२७ एवमानंदमयस्वरूपं प्रदर्श्य तस्यैव प्रबोधकाले विज्ञानमयरूपेण स्मर्तृत्वसिद्ध्ये तदानीं सुखानुभवमुपपादयति—

२८] अंतर्मुखः यः आनंदमयः तदा ब्रह्मसुखं चिद्बिंबयुक्ताभिः अज्ञानोत्पन्नवृत्तिभिः भुंक्ते ॥

२९) सुखप्रतिबिंबसहितांतर्मुखधीवृत्तिजनितसंस्कारसहिताज्ञानोपाधिको य आनंदमयः तदा सुषुप्तौ ब्रह्मसुखं स्वरूपभूतं सुखं । चिदाभाससहिताभिः अज्ञानादुत्पन्नाभिः सुखादिगोचराभिः वृत्तिभिः सत्वपरिणामविशेषैः । भुंक्ते अनुभवति ॥ ६५ ॥

३० ननु तर्हि "जागरण इव तदानीं सुखमनुभवामि" इत्यभिमानः कुतो न स्यादित्याशंक्याविद्यावृत्तीनां बुद्धिवृत्तिवत् स्पष्टत्वाभावादित्यभिप्रायेणाह—

बुद्धिवृत्ति सुखके प्रतिबिंबकरि युक्त होवैहै । तिसके पीछे तिस सुखके प्रतिबिंबकरि सहित सोई वृत्ति लीन हुई आनंदमय कहियेहै ॥

२६) सुषुप्तितैं पूर्वके अंतरायरहित क्षणविषै जो अंतर्मुखबुद्धिवृत्ति स्वरूपभूत सुखके प्रतिबिंबकरि युक्त होवैहै । पीछे सुखके प्रतिबिंबसहित सोई वृत्ति निद्रारूपकरि विलीन हुई आनंदमय । ऐसैं कहियेहै ॥ ६४ ॥

॥ २९ ॥ आनंदमयकूं ब्रह्मसुखका अनुभव ॥

२७ ऐसैं आनंदमयके स्वरूपकूं दिखायके तिसी आनंदमयकेहीं प्रबोधकालविषै विज्ञानमयरूपकरि स्मरणकर्त्तापनैकी सिद्धिअर्थ । तब सुषुप्तिविषै सुखके अनुभवकूं कहैहैं:—

२८] अंतर्मुख जो आनंदमय हैं । सो तब चेतनके प्रतिबिंबकरि युक्त अज्ञानतैं उत्पन्न भई वृत्तिनकरि ब्रह्मसुखकूं भोगताहै ॥

२९) सुखके प्रतिबिंबसहित अंतर्मुखबुद्धिवृत्तितैं जनित संस्कारसहित अज्ञानरूप उपाधिवाला जो आनंदमय है । सो तब सुषुप्तिविषै ब्रह्मसुखकूं नाम स्वरूपभूत सुखकूं चिदाभाससहित औ अज्ञानतैं उत्पन्न सुखादिककूं विषय करनैहारी सत्वगुणके परिणामविशेषरूप वृत्तिनकरि भोगताहै कहिये अनुभव करताहै ॥ ६५ ॥

॥ २६ ॥ अज्ञानवृत्तिनकी अस्पष्टता औ बुद्धिवृत्तिनकी स्पष्टता ॥

३० ननु तब जागरणकी न्यांई सुषुप्तिविषै "मैं सुखकूं अनुभव करूंहूं" ऐसा अभिमान काहेतैं नहीं होवैहै? यह आशंकाकरि अविद्याकी वृत्तिनकूं बुद्धिवृत्तिनकी न्यांई स्पष्ट होनैके अभावतैं ऐसा अभिमान नहीं होवैहै । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

मांडूक्यतापनीयादिश्रुतिष्वेतदतिस्फुटम् ।
आनंदमयभोक्तृत्वं ब्रह्मानंदे च भोग्यता ॥ ६७ ॥
एकीभूतः सुषुप्तस्थः प्रज्ञानघनतां गतः ।
आनंदमय आनंदभुक्चेतोमयवृत्तिभिः ॥ ६८ ॥

३१] अज्ञानवृत्तयः सूक्ष्माः बुद्धिवृत्तयः विस्पष्टाः ॥

३२ इदं कुतोऽवगतमित्यत आह—

३३] इति वेदांतसिद्धांतपारगाः प्रवदंति हि ॥ ६६ ॥

३४ ननु "आनंदमयो ब्रह्मानंदं सूक्ष्माभिरविद्यावृत्तिभिर्भुंक्ते" इत्यत्र किं प्रमाणमित्यत आह—

३५] मांडूक्यतापनीयादिश्रुतिषु एतत् अतिस्फुटम् ॥

३६ एतच्छब्दार्थमेवाह—

३७] आनंदमयभोक्तृत्वं च ब्रह्मानंदे भोग्यता ॥ ६७ ॥

३८ इदानीं "सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानंदमयो ह्यानंदभुक्चेतोमुखः" इति मांडूक्यादिश्रुतिगतं वाक्यमर्थतः पठति—

३९] एकीभूतः सुषुप्तस्थः प्रज्ञानघनतां गतः आनंदमयः चेतोमयवृत्तिभिः आनंदभुक् ॥

४०) सुषुप्तं सुषुप्तिस्तत्र तिष्ठतीति सुषुप्तस्थः सुषुप्त्यभिमानीत्यर्थः । आनंदमयः आनंदप्रचुरः । आनंदभुक् स्वरूपभूतमानंदं भुंक्त इत्यानंदभुक् । चेतोमयवृत्तिभिः

३१] अज्ञानकी वृत्तियां सूक्ष्म नाम अस्पष्ट हैं औ बुद्धिकी वृत्तियां स्पष्ट हैं ॥

३२ यह काहेतैं जान्याहै ? तहां कहैहैं:—

३३] ऐसैं वेदांतसिद्धांतके पारकूं प्राप्त भये पुरुष कहतेहैं ॥ ६६ ॥

॥ २७ ॥ आनंदमयकूं सूक्ष्मअविद्यावृत्तिनसैं ब्रह्मानंदके भोगमैं मांडूक्यादिश्रुतिप्रमाण ॥

३४ ननु " आनंदमय जो है । सो ब्रह्मानंदकूं सूक्ष्मअविद्याकी वृत्तिनकरि भोगताहै" इस ६५ वें श्लोकउक्तअर्थविषै कौन प्रमाण है? तहां कहैहैं:—

३५] मांडूक्य औ तापनीयआदिकउपनिषदनविषै यह अतिशय स्पष्ट है ॥

३६ "यह" शब्दके अर्थकूंहीं कहैहैं:—

३७] आनंदमयकूं भोक्तापना है औ ब्रह्मानंदविषै भोग्यता कहिये भोगनैकी योग्यता है ॥ ६७ ॥

॥ २८ ॥ मांडूक्यादिश्रुतिगत वाक्यका अर्थ ॥

३८ अब "सुषुप्तिरूप स्थानविषै एकीभूत हुया प्रज्ञानघनहीं आनंदमय औ आनंदभुक् औ चेतोमुख है" इस मांडूक्यआदिकश्रुतिगतवाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

३९] एकरूपताकूं प्राप्त औ सुषुप्तिविषै स्थित औ प्रज्ञानघनरूपताकूं प्राप्त भया जो आत्मा है । सो आनंदमय औ चेतोमय वृत्तिनकरि आनंदभुक् है ॥

४०) सुप्त जो सुषुप्ति । तिसविषै जो स्थित होवैहै । सो सुषुप्तस्थ कहिये सुषुप्तिका अभिमानी है। यह अर्थ है॥ औ आनंदमय कहिये आनंदरूप है औ स्वरूपभूत आनंदकूं जो भोगताहै। सो आनंदभुक् कहियेहै औ चेतोमयवृत्तिन-

टीकांक: ४३४१ टिप्पणांक: ७६३

४२
विज्ञानमयमुख्यैर्यो रूपैर्युक्तः पुराधुना ।
स लयेनैकतां प्राप्तो बहुतंडुलपिष्टवत् ॥ ६९ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२११

इति चेतश्चैतन्यं तन्मयस्तत्प्रचुराश्रितप्रतिबिंबसहिता इत्यर्थः ॥ ताश्च ताः वृत्तयश्च चेतोमयवृत्तयः ताभिरानंदभुगिति योजना ॥ ६८ ॥

४१ तद्वाक्यगतस्य "एकीभूत" इति पदस्यार्थमाह (विज्ञानेति)—

४२] यः पुरा विज्ञानमयमुख्यैः रूपैः युक्तः।सः अधुना लयेन एकतां प्राप्तः॥

४३) यः आत्मा पुरा जागरणावस्थायां विज्ञानमयमुख्यैः "स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमयः आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयः" इत्यादिश्रुत्युक्तैः रूपैः आकारविशेषैः। युक्तः अभूत् । सः एव अधुना लयेन विज्ञानमन आद्युपाधिविलयेन । एकतां एकाकारतां । प्राप्तः अवगतः भवति ॥

४४ तत्र दृष्टांतमाह—

४५] बहुतंडुलपिष्टवत् ॥

ॐ ४५) बहुतंडुलजनितपिष्टवत् इत्यर्थः ॥ ६९ ॥

करि । कहिये चेत जो चैतन्य तिसकरि युक्त कहिये चेतनके प्रतिबिंबसहित ऐसी जे वृत्तियां । वे चेतोमयवृत्तियां कहियेहैं । तिन वृत्तिनकरि आनंदभुक् है । यह योजना है ॥ ६८ ॥

॥ २९ ॥ श्लोक ६८ उक्त श्रुतिगत एकीभूतपदका अर्थ ॥

४१ तिस ६८ वें श्लोकउक्तश्रुतिवाक्यगत "एकीभूत" इस पदके अर्थकूं कहैहैं:—

४२] जो आत्मा पूर्व विज्ञानमयआदिकरूप जे आकार तिनकरि युक्त था । सोई अब लयकरि एकताकूं प्राप्त होवैहै ॥

४३) जो आत्मा पूर्व जागरणअवस्थाविषै "सो यह आत्मा ब्रह्म है । विज्ञानमय है । मनोमय है । प्राणमय है । चक्षुमय है । श्रोत्रमय है । पृथिवीमय है । जलमय है । वायुमय है । आकाशमय है । तेजोमय है । अतेजोमय है । काममय है । अकाममय है । क्रोधमय है । अक्रोधमय है" इत्यादिश्रुतिविषै उक्त विज्ञानमयआदिकरूप[६३] जे आकार । तिनकरि युक्त था । सोई आत्मा अब सुषुप्तिविषै लय जो बुद्धि अरु मनआदिकउपाधिनका विलय । तिसकरि एकताकूं प्राप्त होवैहै ॥

४४ तहां दृष्टांत कहैहैं:—

४५] बहुततंडुलपिष्टकी न्याई ॥

ॐ ४५) बहुतंडुलतैं जनित पिष्ट जो आटा ताकी न्याई । यह अर्थ है ॥ ६९ ॥

६३ जैसैं एकहीं पुरुष पाचन जो रसोई औ पाठनआदिकक्रियाके भेदकरि पाचक नाम रसोईका कर्त्ता औ पाठकआदिक कहियेहै । तैसैं एकहीं ब्रह्मात्मा विज्ञानमयआदिकभिन्नभिन्नउपाधिनके साथि तादात्म्यअध्यासकरि तिसतिसरूपवाला कहियेहै । यह अर्थ है ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२१२ १२१३	४७प्रज्ञानानि पुरा बुद्धिवृत्तयोऽथ घनोऽभवत् । ५०घनत्वं हिमबिंदूनामुदग्देशे यथा तथा ॥ ७० ॥ ५२तद्घनत्वं साक्षिभावं दुःखाभावं प्रचक्षते ॥ लौकिकास्तार्किका ५५यावद्दुःखवृत्तिविलोपनात् ७१	टीकांकः ४३४६ टिप्पणांकः ॐ

४६ अथ प्रज्ञानघनशब्दार्थमाह (प्रज्ञानानीति)—

४७] पुरा प्रज्ञानानि बुद्धिवृत्तयः । अथ घनः अभवत् ॥

४८) पुरा पूर्वं । जाग्रदादौ प्रज्ञानशब्दवाच्या घटादिगोचरा या बुद्धिवृत्तयः अभवन् । अथ सुषुप्तिकाले घटादिविषयाभावे सति घनोऽभवत् चिद्रूपेणैकरूपोऽभूत् ॥

४९ तत्र दृष्टांतमाह (घनत्वमिति)—

५०] यथा उदग्देशे हिमबिंदूनां घनत्वं । तथा ॥ ७० ॥

५१ इदानीं प्रज्ञानघनशब्दार्थनिरूपणप्रसंगादागतं किंचिदाह—

५२] तत् साक्षिभावं घनत्वं लौकिकाः तार्किकाः दुःखाभावं प्रचक्षते ॥

५३) यदिदं वेदांतेषु साक्षित्वेनाभिधीयमानं प्रज्ञानघनत्वं अस्ति । तत् एव लौकिकाः शास्त्रसंस्काररहिताः। तार्किकाः वैशेषिकादयः शास्त्रिणश्च । दुःखाभावं प्रचक्षते दुःखाभाव इत्याहुः ॥

५४ कुत इत्यत आह—

५५] यावद्दुःखवृत्तिविलोपनात् ॥

ॐ ५५) यावत्यो दुःखवृत्तयः तासां सर्वासां विलयादित्यर्थः ॥ ७१ ॥

॥ ३० ॥ श्लोक ६८ उक्त श्रुतिगत प्रज्ञानघनशब्दका अर्थ औ सुषुप्तितैं जागरणका कारण ॥

४६ अब प्रज्ञानघनशब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

४७] पूर्व प्रज्ञानरूप जे बुद्धिवृत्तियां हैं । वे पीछे घनरूप होवैहैं ॥

४८) पूर्व जाग्रत्आदिकविषै प्रज्ञानशब्दके वाच्य औ घटादिगोचर जे बुद्धिवृत्तियां होती भई । वे पीछे सुषुप्तिकालविषै घटादिकविषयके अभाव हुये घन होवैहैं कहिये चेतनरूपकरि एकरूप होवैहैं ॥

४९ तहां दृष्टांत कहैहैं:—

५०] जैसैं जलयुक्त देशविषै हिमबिंदुनकी घनरूपता कहिये एकरूपता होवैहै । तैसैं ॥ ७० ॥

५१ अब प्रज्ञानघनशब्दके अर्थके निरूपणके प्रसंगतैं प्राप्त कछुक अर्थकूं कहैहैं:—

५२] तिस साक्षिभावरूप घनरूपताकूं लौकिकजन औ तार्किक दुःखका अभाव कहतेहैं ॥

५३) जो यह वेदांतनविषै साक्षीभावकरि कथन किया प्रज्ञानघनपना है । तिसीकूंहीं लौकिक जे शास्त्रसंस्काररहित जन औ तार्किक जे वैशेपिकआदिकशास्त्री । वे दुःखका अभाव कहतेहैं ॥

५४ ऐसैं काहेतैं कहतेहैं ? तहां कहैहैं:—

५५] सुषुप्तिविषै जितनी दुःखवृत्तियां हैं तिनके विलयतैं ॥

ॐ ५५) जितनी दुःखवृत्तियां हैं तिन सर्वके विलयतैं । यह अर्थ है ॥ ७१ ॥

टीकांकः ४३५६ टिप्पणांकः ७६४

ॐ अज्ञानबिंबिता चित्स्यान्मुखमानंदभोजने ।
भुक्तं ब्रह्मसुखं त्यक्त्वा बहिर्यात्यथ कर्मणा ॥७२॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२१४

५६ पूर्वोदाहृतश्रुतिवाक्यगतचेतोमुखशब्दार्थमाह (अज्ञानेति)—

५७] **आनंदभोजने मुखं अज्ञानबिंबिता चित् स्यात् ॥**

५८) आनंदभोजने सौपुप्तब्रह्मानंदास्वादने । मुखं साधनं । अज्ञानबिंबिता चित्स्यात् अज्ञानवृत्तौ प्रतिबिंबितं चैतन्यमेव भवेत् ॥

५९ ननु सुषुप्तावानंदमयरूपेण जीवेन ब्रह्मसुखं चेद्भुज्यते । तर्हि तत्परित्यज्याथ बहिः कुतो जागरणं दुःखालयमागच्छेत् इत्यत आह (भुक्तमिति)—

६०] **अथ कर्मणा भुक्तं ब्रह्मसुखं त्यक्त्वा बहिः याति ॥**

६१) पुण्यापुण्यकर्मपाशबद्धत्वात्तेन प्रेरितो जीवः साक्षात्कृतमपि ब्रह्मानंदं परित्यज्य अथ बहिर्याति जागरणादिकं गच्छतीत्यर्थः ॥ ७२ ॥

॥ ३१ ॥ श्लोक ७१ उक्त श्रुतिगत चेतोमुखशब्दका अर्थ औ सुषुप्तितैं जागरणका कारण ॥

५६ पूर्व श्लोक ७१ विषै उदाहरण किये श्रुतिवाक्यगत चेतोमुखशब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

५७] **आनंदके भोजनविषै अज्ञानमैं प्रतिबिंबित चेतन मुख होवैहै ॥**

५८) आनंदके भोजनविषै नाम सुषुप्तिगत ब्रह्मानंदके आस्वादनविषै अज्ञानकी वृत्तिमैं प्रतिबिंबित चैतन्यहीं मुख कहिये साधन होवैहै ॥

५९ ननु सुषुप्तिविषै आनंदमयरूप जीवकरि जब ब्रह्मसुख भोगियेहै । तब तिस ब्रह्मसुखकूं परित्याग करीके पीछे बाहिरदुःखके गृह जागरणके प्रति काहेतैं गमन करताहै ? तहां कहैहैं:—

६०] **पीछे कर्मकरि भोगेहुये ब्रह्मसुखकूं त्याग करीके बाहिर जाताहै॥**

६१) पुण्यपापरूप पाशकरि बद्ध होनैतैं तिस कर्मपाशकरि प्रेऱ्याहुया जीव साक्षात् किये ब्रह्मानंदकूं बी परित्यागकरिके पीछे बाहिर जाताहै कहिये जागरणादिककूं पावताहै ॥ यह अर्थ है ॥ ७२ ॥

६४ जैसैं गृहविषै स्थित माताके गोदमैंसैं उठा बालक । बाहिर जायके अन्यबालकनके साथि खेल करताहै । जब अन्यबालक खेलसैं निवृत्त होवैं । तब आप श्रमकूं जानताहुया लौटिके माताके गोदमैं बैठिके गृहके सुखकूं अनुभवकरिके श्रमकूं गमावताहै । फेर जब अन्यबालक बुलावैं तब बाहीर जाताहै । तैसैं सुषुप्तिरूप गृहविषै स्थित अज्ञान जो कारणशरीर । तिसरूप माताके विक्षेपशक्तिअंशरूप गोदमैंसैं उठा जो चिदाभासयुक्त अंतःकरणरूप बालक । सो जाग्रत् वा स्वप्नरूप बाहिरके प्रदेशविषै जायके क्रियाके निमित्त प्रारब्धकर्मरूप अन्यबालकनके साथि व्यवहाररूप रमणकूं करताहै । जब जाग्रत्स्वप्नके भोगप्रदकर्मकी उपरति होवै । तब जाग्रत्स्वप्नके व्यापारसैं जन्य विक्षेपरूप श्रमकूं जानताहुया अज्ञानरूप माताके गोदमैं स्थित (विलीन) होयके सुषुप्तिरूप गृहके संबंधी स्वरूपभूत ब्रह्मानंदकूं अनुभवकरिके जाग्रत्स्वप्नके व्यापारसैं जन्य श्रमकूं गमावताहै । फेर जब भोगप्रदकर्मरूप अन्यबालक बुलावैं (प्रेरणा करैं) तब जाग्रत्स्वप्नरूप बाहीरके प्रदेशकूं जाताहै ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२१५ १२१६ | टीकांकः ४३६२ | टिप्पणांकः ॐ

[६३] कर्म जन्मांतरेऽभूद्यत्तद्योगाद्बुद्ध्यते पुनः ।
इति कैवल्यशाखायां कर्मजो बोध ईरितः ७३
[६५] कंचित्कालं प्रबुद्धस्य ब्रह्मानंदस्य वासना ।
अनुगच्छेद्यतस्तूष्णीमास्ते निर्विषयः सुखी ७४

६२ एतत्कुतोऽवगम्यत इत्याशंक्य "पुनश्च जन्मांतरकर्मयोगात्स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्ध" इति कैवल्यश्रुतिवाक्यात् इति मन्वानस्तद्वाक्यमर्थतः पठन् तदभिप्रायमाह (कर्मेति)—

६३] "यत् जन्मांतरे कर्म अभूत्-तद्योगात् पुनः बुद्ध्यते" इति कैवल्य-शाखायां कर्मजः बोधः ईरितः॥७३॥

६४ सुप्तौ ब्रह्मानंदोऽनुभूत इत्यत्र लिंगं चाह (कंचिदिति)—

६५] प्रबुद्धस्य कंचित् कालं ब्रह्मानंदस्य वासना अनुगच्छेत् ॥

६६) प्रबुद्धस्य जागरणं प्राप्तस्यापि । कंचित्कालं स्वल्पकालपर्यंतं । सुप्तावनुभूतस्य ब्रह्मानंदस्य वासना संस्कारः । अनुगच्छेत् अनुगच्छति ॥

६७ कुत एतदवगम्यत इत्यत आह—

६८] यतः निर्विषयः सुखी तूष्णीं आस्ते ॥

६९) यतः कारणात् । प्रबोधादौ निर्विषयः विषयानुभवरहितोऽपि । सुखी सन् तूष्णीमास्ते अतोऽवगम्यत इत्यर्थः ॥७४॥

॥ ३२ ॥ सुषुप्तितैं जागरण होनेमैं अभिप्रायसहित कैवल्यश्रुतिवाक्यके अर्थका पठन ॥

६२ कर्मसैं जागरणआदिक होवैहै । यह काहेतैं जानियेहै ? यह आशंकाकरि "औ फेर जन्मांतरके कर्मके योगतैं सोई सुषुप्तिकूं प्राप्त जीव स्वप्न वा जागरणकूं पावताहै" इस कैवल्यश्रुतिके वाक्यतैं जानियेहै। ऐसैं मानतेहुये आचार्य तिस कैवल्यश्रुतिके वाक्यकूं अर्थतैं पठन करतेहुये तिसके अभिप्रायकूं कहैहैं:—

६३]"जोजन्मांतरविषै कर्म होता-भया तिसके योगतैं फेर बोधकूं कहिये जागरणकूं पावताहै ।" ऐसैं कैवल्य-शाखाविषै कर्मसैं जन्य जागरण कह्याहै ॥ ७३ ॥

॥ ३३ ॥ सुषुप्तिमैं अनुभूत ब्रह्मानंदविषै लिंग ॥

६४ सुषुप्तिविषै ब्रह्मानंदका अनुभव होवैहै । इसविषै लिंग जो कारण ताकूं कहैहैं:—

६५] जाग्रत् भये पुरुषकूं कछुककाल-पर्यंत ब्रह्मानंदकी वासना अनुगत होवैहै ॥

६६) जागरणकूं प्राप्त भये पुरुषकूं बी स्वल्पकालपर्यंत सुषुप्तिविषै अनुभूत ब्रह्मानंदकी वासना पीछे वर्तमान होवैहै ॥

६७ वासना पीछे वर्तमान है । यह काहेतैं जानियेहै ? तहां कहैहैं:—

६८] जातैं निर्विषयपुरुष बी सुखी हुया तूष्णी होवैहै ॥

६९) जिस कारणतैं जाग्रत्की आदिविषै निर्विषयपुरुष बी सुखी हुया तूष्णी नाम उदासीन होवैहै । यातैं जानियेहै ॥ यह अर्थ है ॥ ७४ ॥

टीकांक: ४३७० टिप्पणांक: ॐ	७१ कर्मभिः प्रेरितः पश्चान्नानादुःखानि भावयन् । शनैर्विस्मरति ब्रह्मानंदमेषोऽखिलो जनः ॥७५॥ ७४ प्रागूर्ध्वमपि निद्रायाः पक्षपातो दिने दिने । ब्रह्मानंदे नृणां तेन प्राज्ञोऽस्मिन्विवदेत कः ७६	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२१७ १२१८

७० तर्हि तूष्णीं कुतो नावतिष्ठत इत्यत आह—

७१] कर्मभिः प्रेरितः एषः अखिलः जनः पश्चात् नानादुःखानि भावयन् शनैः ब्रह्मानंदं विस्मरति ॥

७२) कर्मभिः पूर्वोक्तैः। नोदितः सर्वोपि प्राणी पश्चात् नानाविधानि दुःखानि अनुसंदधानः शनैः ब्रह्मानंदं विस्मरति ७५

७३ इतोऽपि ब्रह्मानंदे न विमतिपत्तिः कार्येत्याह (प्रागिति)—

७४] दिने दिने नृणां निद्रायाः प्राक् ऊर्ध्वं अपि ब्रह्मानंदे पक्षपातः । तेन अस्मिन् कः प्राज्ञः विवदेत ॥

७५) प्रत्यहं मनुष्याणां निद्रायाः प्रागूर्ध्वमपि निद्रारंभे निद्रावसाने च ब्रह्मानंदे स्नेहोऽस्ति । यतो निद्रादौ मृदुशय्यादि संपादयति । तदवसाने च तं परित्यक्तुमशक्तास्तूष्णीमासते । तेन कारणेन अस्मिन् आनंदे को बुद्धिमान् विवदेत न कोऽपीत्यर्थः ॥७६

॥ ३४ ॥ अनुभूत ब्रह्मानंदके विस्मरणमैं कारण॥

७० तब पीछे सर्वदा तूष्णीं काहेतैं नहीं होवैहै ? तहां कहैहैं:—

७१] कर्मनकरि प्रेरित भया यह सर्वजन पीछे नानाप्रकारके दुःखनकूं भावना करताहुया कछुककालसैं ब्रह्मानंदकूं विस्मरण करताहै ॥

७२) पूर्व ७३ वें श्लोकविषै उक्त कर्मनकरि प्रेरणाकूं पायाहुया सर्वप्राणी बी पीछे बहुतप्रकारके दुःखनकूं स्मरण करताहुया कछुककालसैं अनुभव किये ब्रह्मानंदकूं विस्मरण करताहै ॥ ७५ ॥

॥ ३५ ॥ ब्रह्मानंदमैं विवादकी अयोग्यताविषै हेतु ॥

७३ इस कहनैके कारणतैं बी सुषुप्तिमैं ब्रह्मानंद है । इसविषै विवाद करनैकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

७४] दिनदिनविषै मनुष्यनकूं निद्रातैं पूर्व औ पीछे बी ब्रह्मानंदविषै पक्षपात नाम स्नेह है । तिस हेतुकरि इसविषै कौन पंडित विवाद करैगा ?

७५) प्रतिदिन मनुष्यनकूं निद्रातैं पूर्व नाम निद्राके आरंभविषै औ पीछे नाम निद्राके अंतविषै ब्रह्मानंदमैं स्नेह है ॥ जातैं निद्राकी आदिविषै कोमलशय्याआदिककूं संपादन करतेहैं औ निद्राके अंतविषै तिस निद्राके सुखकूं परित्याग करनैकूं असक्त हुये तूष्णी स्थित होवैहैं । तिस कारणकरि इस आनंदविषै कौन बुद्धिमान् विवाद करैगा ? कोई बी नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ ७६ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२१९ १२२०

नंनु तूष्णींस्थितौ ब्रह्मानंदश्चेद्भाति लौकिकाः ।
अलसाश्चरितार्थाः स्युः शास्त्रेण गुरुणात्र किं ७७
बाढं ब्रह्मेति विद्युश्चेत्कृतार्थास्तावतैव ते ।
गुरुशास्त्रे विनात्यंतगंभीरं ब्रह्म वेत्ति कः ॥७८॥

टीकांक: ४३७६ टिप्पणांक: ७६५

७६ चोदयति–

७७] ननु । तूष्णींस्थितौ ब्रह्मानंदः भाति चेत् । लौकिकाः अलसाः चरितार्थाः स्युः । अत्र शास्त्रेण गुरुणा किम् ॥

७८) गुरुशुश्रूषादिलभ्यस्य ब्रह्मानंदानुभवस्य तूष्णींस्थितिमात्रलभ्यत्वे गुरुशुश्रूषादिपूर्वकं श्रवणादिकं वृथा स्यादित्यर्थः ७७

७९ "अयं ब्रह्मानंद" इति ज्ञाते सति कृतार्थता भवत्येव। तदेव गुरुशुश्रूषादिकमंतरेण न संभवतीत्याह (बाढमिति)–

८०] "ब्रह्म" इति विद्युः चेत् । तावता एव ते कृतार्थाः । बाढं । अत्यंतगंभीरं ब्रह्म गुरुशास्त्रे विना कः वेत्ति ॥

८१) अत्यंतगंभीरं दुरवगाहमवाङ्मनस-

॥ २ ॥ तूष्णीस्थितिमैं ब्रह्मानंदके भानसैं गुरुसेवादिसाधनकी अव्यर्थता औ वासनानंद विषयानंद कहिके आनंदकी त्रिविधता ॥

॥ ४३७६–४४१८ ॥

॥ १ ॥ तूष्णीस्थितिमैं ब्रह्मानंदके भानसैं गुरुसेवादिकके व्यर्थताकी शंका ॥

७६ वादी मूलविषै पूर्वपक्ष करैहैः–

७७] ननु जब तूष्णीस्थितिविषै ब्रह्मानंद भासताहै । तब लौकिक औ आलसी जन कृतार्थ होवैंगे । यातैं इहां शास्त्रसैं औ गुरुसैं क्या प्रयोजन है ?

७८) गुरुकी शुश्रूषा कहिये सेवाआदिककरि प्राप्त होनैयोग्य जो ब्रह्मानंदका अनुभव है । तिसकी तूष्णीस्थितिमात्रकरि प्राप्त होनैकी योग्यताके हुये गुरुसेवाआदिपूर्वक श्रवणादिकसाधन वृथा होवैगा । यह अर्थ है ॥ ७७ ॥

॥ २ ॥ श्लोक ७७ उक्त शंकाका समाधान ॥

७९ "यह ब्रह्मानंद है ।" ऐसैं जानेहुये कृतकृत्यता होवैहीं है। परंतु "सोई यह ब्रह्मानंद है।" ऐसैं जानना गुरुसेवाआदिकसैं विना संभवै नहीं । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं:—

८०] "ब्रह्म है" कहिये यह ब्रह्मानंद है । ऐसैं जब जानै तब तितनैकरिहीं सो लौकिकजन कृतार्थ होवैं । यह तेरा कथन सत्य है । परंतु अत्यंतगंभीरब्रह्मकूं गुरुशास्त्रविना कौन जानैगा ? ॥

८१) अत्यंतगंभीर कहिये मनवाणीका

६५ जैसैं सामान्यतैं अन्यपाषाणकी न्यांई अनुभूत चिंतामणितैं वा गाडे हिरण्यनिधितैं वांछितअर्थकी प्राप्ति होवै नहीं। किंतु जब "यह चिंतामणि है" ऐसैं विशेषकरि जानै तब वांछितअर्थकी प्राप्ति होवैहै ।तैसैं सुषुप्तिविषै सामान्यतैं विषयसुखकी न्यांई अनुभूत ब्रह्मानंदतैं सर्वकर्तव्यरूप अनर्थकी निवृत्तिरूप पुरुषार्थकी प्राप्ति होवै नहीं । काहेतैं अनर्थके कारण अज्ञानके विद्यमान होनैतैं ॥ किंतु जब "यह सुषुप्तिनिष्ठ आनंद नित्य निरतिशय मेरा निजरूप ब्रह्म है ।" ऐसैं विशेषकरि जब जानै । तब अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा कर्तव्यरूप अनर्थकी निवृत्तिरूप पुरुषार्थकी प्राप्ति होवैहै। यह भाव है ॥

टीकांक: ४३८२ टिप्पणांक: ॐ	जानाम्यहं त्वदुक्त्याद्य कुतो मे न कृतार्थता । शृण्वत्र त्वादृशो वृत्तं प्राज्ञंमन्यस्य कस्यचित् ७९ चतुर्वेदविदे देयमिति शृण्वन्नवोचत । वेदाश्चत्वार इत्येवं वेद्मि मे दीयतां धनम् ॥८०॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२२१ १२२२

गम्यं सर्वज्ञं सर्वांतरं सर्वात्मरूपं ब्रह्म गुरुशास्त्रे विहायान्येन केनाप्युपायेन कः जानीयान्न कोऽपीत्यर्थः ॥ ७८ ॥

८२ ननु त्वद्वाक्यादेव ब्रह्मानंदं जानतो मम न कृतार्थतोपलभ्यते इत्याशंक्यानुवादपूर्वकं सोपहासमुत्तरमाह (जानामीति)–

८३]"अहं त्वदुक्त्या अद्य जानामि। मे कृतार्थता कुतः न।" अत्र त्वादृशः प्राज्ञंमन्यस्य कस्यचित् वृत्तं शृणु ॥७९

८४ तमेव वृत्तांतं दर्शयति—

८५] "चतुर्वेदविदे देयं।" इति शृण्वन् अवोचत "वेदाः चत्वारः" इति एवं वेद्मि। मे धनं दीयताम् ॥"

८६) "कश्चित् चतुर्वेदविदे कस्मैचिदिदं बहु धनं दातव्यम्"। इति एवंविधं वाक्यं श्रुत्वा "वेदाश्चत्वार" इति अस्मादेव वाच्यात्। 'अहं वेद्मि।' अतो मे दीयताम्" इति वक्ति। तद्वद्भवानपीत्यर्थः ८०

अविषय औ सर्वज्ञ सर्वांतर सर्वात्मरूप ब्रह्मकूं गुरुशास्त्रके तांईं छोडिके अन्य किसी बी उपायकरि कौन पुरुष जानैगा? कोई बी नहीं। यह अर्थ है ॥ ७८ ॥

॥ ३ ॥ सिद्धांतीके वचनसैं ब्रह्मानंदके जाननैवाले वादीके अकृतार्थताकी शंका औ तैसैके वृत्तांतकरि समाधान ॥

८२ ननु। हे सिद्धांती! तुमारे वाक्यतैंहीं ब्रह्मानंदकूं जाननैहारे मुजकूं कृतार्थता नहीं देखियेहै। यह आशंकाकरि सिद्धांती इस आशंकाके अनुवादपूर्वक उपहाससहित उत्तर कहैहैं:—

८३] हे सिद्धांती! "मैं तुमारे कथनतैं यह ब्रह्मानंद है। ऐसैं अब जानताहूं तौ बी मेरेकूं कृतार्थता काहेतैं नहीं होवैहै?" ऐसैं जब कहै। तब हे वादी! इहां तेरे जैसैं पंडितमन्य कहिये अपंडित आपकूं पंडित माननेहारे किसीएक पुरुषके वृत्तांतकूं श्रवण कर ॥ ७९ ॥

८४ तिसीहीं वृत्तांतकूं दिखावैहैं:—

८५] "च्यारीवेदके जाननैहारेके तांईं यह धन देनैयोग्य है।" यह वचन सुनिके कोईनैं कह्या:—"वेद च्यारी हैं"। ऐसैं मैं जानताहूं। मेरेकूं धन देहु" ॥

८६) किसी धनीपुरुषनैं "च्यारीवेदके जाननैहारे कोई बी पुरुषकूं यह बहुतधन देनैयोग्य है।" इसप्रकारका वाक्य कह्या। ताकूं कोइक पुरुष सुनिके "वेद च्यारी हैं" यह तुमारे वाक्यतैंहीं मैं जानताहूं। यातैं मेरेकूं धन देहु" ऐसैं कहताहै। ताकी न्यांईं तूं वादी बी है। यह अर्थ है ॥ ८० ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
	संख्यामेवैष जानाति न तु वेदानशेषतः ।	४३८७
	यदि तर्हि त्वमप्येवं नाशेषं ब्रह्म वेत्सि हि ८१	
१२२३	अखंडैकरसानंदे मायातत्कार्यवर्जिते ।	टिप्पणांक: ॐ
१२२४	अशेषत्वसशेषत्ववार्तावसर एव कः ॥ ८२ ॥	
	शब्दानेव पठस्याहो तेषामर्थं च पश्यसि ।	
१२२५	शब्दपाठेऽर्थबोधस्ते संपाद्यत्वेन शिष्यते ॥८३॥	

८७ ननु "वेदाश्चत्वार" इति यो वेद स वेदगतां संख्यामेव वेत्ति न तु वेदानां स्वरूपमिति चोदयति (संख्यामिति)—

८८] एषः संख्यां एव जानाति । अशेषतः वेदान् तु न । यदि ।

८९ साम्येन समाधत्ते—

९०] तर्हि एवं त्वं अपि अशेषं ब्रह्म न वेत्सि हि ॥

९१) एवं चतुर्वेदाभिज्ञंमन्य इव त्वमप्यशेषं संपूर्णं यथा भवति तथा । ब्रह्म न वेत्सि नैव जानासि ॥ ८१ ॥

९२ ननु संख्यातिरिक्तवेदस्वरूपभेद इव स्वगतादिभेदशून्ये आनंदरूपे ब्रह्मणि अज्ञायमानस्यांशस्याभावादसंपूर्णज्ञानित्वोपालंभो न घटते इति चोदयति (अखंडैकेति)—

९३] मायातत्कार्यवर्जिते अखंडैकरसानंदे अशेषत्वसशेषत्ववार्ताऽवसरः एव कः ॥ ८२ ॥

९४ ब्रह्मज्ञानेऽप्यशेषत्वादिकं दर्शयितुं

॥ ४ ॥ श्लोक ८० उक्त वृत्तांतमैं असंपूर्णताकी शंका औ तुल्यताकरि समाधान ॥

८७ ननु "वेद च्यारी हैं।" ऐसैं जो पुरुष जानताहै सो वेदगत संख्याकूं जानताहै । वेदनके स्वरूपकूं जानता नहीं । इसरीतिसैं वादी पूर्वपक्ष करैहै:—

८८] यह ८० वें श्लोकउक्तपुरुष वेदकी संख्याकूंहीं जानताहै । संपूर्णकरि वेदनकूं नहीं जानताहै । ऐसैं जब कहै ।

८९ सिद्धांती समता करि समाधान करैहैं:—

९०] तब ऐसैं तूं बी संपूर्णब्रह्मकूं नहीं जानताहैं ॥

९१) ऐसैं अपनैकूं च्यारीवेदका अभिज्ञ माननैहारे पुरुषकी न्यांई हे वादी! तूं बी अशेष कहिये संपूर्ण जैसैं होवै तैसैं ब्रह्मकूं नहीं जानताहै ॥ ८१ ॥

॥ ५ ॥ अपनी असंपूर्णज्ञानितामैं वादीकी शंका॥

९२ ननु जैसैं संख्यातैं भिन्न वेदके स्वरूपका भेद है । तैसैं स्वगतआदिकभेदरहित आनंदरूप ब्रह्मविषै अज्ञातअंशके अभावतैं असंपूर्णज्ञानीपनैका उपालंभ नाम दूषण जो तुमनै मेरेप्रति दिया । सो नहीं घटताहै । इसरीतिसैं वादी पूर्वपक्ष करैहै:—

९३] माया औ ताके कार्यसैं वर्जित अखंडएकरसआनंदविषै असंपूर्णपनै औ संपूर्णपनैकी वार्ताका अवसरहीं कौन है? कोई बी नहीं ॥८२॥

॥ ६ ॥ विकल्पकरि समाधान ॥

९४ ब्रह्मके ज्ञानविषै बी असंपूर्णपनै-

टीकांक: ४३९५ टिप्पणांक: ॐ	४४०० अर्थे व्याकरणाद्बुद्धे साक्षात्कारोऽवशिष्यते । स्यात्कृतार्थत्वधीर्यावत्तावद्गुरुमुपास्व भोः ॥८४॥	ब्रह्मानंदे योगानंद: ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२२६

"ब्रह्म जानामि" इति वदंतं विकल्प्य पृच्छति—

९५] **शब्दान् एव पठसि । आहो तेषां च अर्थं पश्यसि ॥**

९६) किमखंडैकरसमद्वितीयसच्चिदानंदरूपमित्यादिशब्दानेव पठसि । आहो अथवा तेषां शब्दानां । अर्थं स्वगतादिभेदशून्यत्वादिकं च पश्यसि जानासि । इति विकल्पार्थः ॥

९७ आद्यपक्षे सावशेषत्वं दर्शयति—

९८] **शब्दपाठे ते अर्थबोधः संपाद्यत्वेन शिष्यते ॥ ८३ ॥**

९९ द्वितीयेऽपि तद्दर्शयति (अर्थे इति)—

४४००] **व्याकरणात् अर्थे बुद्धे साक्षात्कारः अवशिष्यते ॥**

१) व्याकरणात् इत्युपलक्षणं निगमादेः । व्याकरणादिना परोक्षज्ञाने संपादितेऽपि संशयादिनिरासेनापरोक्षीकरणं अवशिष्यते ॥

२ तर्हि कदा संपूर्णत्वं ज्ञानस्येत्याशंक्य तदवधिं दर्शयति (स्यादिति)—

३] **यावत् कृतार्थत्वधीः स्यात् । तावत् भोः गुरुं उपास्व ॥**

४) यदा कृतार्थत्वबुद्धिः उत्पद्यते तदा ज्ञानस्य संपूर्णतावगंतव्येत्यर्थः ॥ ८४ ॥

आदिकके दिखावनैकूं "मैं ब्रह्मकूं जानताहूं" ऐसैं कहनैवाले वादीके प्रति सिद्धांती विकल्पकरिके पूछतेहैं:—

९५] हे वादी! **तूं शब्दनकूंहीं पठन करताहै अथवा तिन शब्दनके अर्थकूं वी देखताहै ?**

९६) हे वादी! तूं अखंडएकरसअद्वितीयसच्चिदानंदरूपइत्यादिकशब्दनकूंहीं पठन करताहै अथवा तिन शब्दनके स्वगतादिभेदरहितपनैआदिरूप अर्थकूं वी देखताहै? यह विकल्पका अर्थ है ॥

९७ प्रथमपक्षविषै ब्रह्मज्ञानकी असंपूर्णताकूं दिखावैहैं:—

९८] **शब्दपाठके हुये तेरेकूं अर्थका बोध संपादन करनैकूं योग्य होनैकरि शेष रहताहै ॥ ८३ ॥**

९९ द्वितीयपक्षविषै वी तिस असंपूर्णताकूं दिखावैहैं:—

४४००] **व्याकरणतैं अर्थके जानेहुये साक्षात्कार अवशेष रहताहै ॥**

१) मूलविषै जो "व्याकरणतैं" यह पद है सो वेदआदिकका वी उपलक्षण है । यातैं व्याकरणआदिकशास्त्रकरि परोक्षज्ञानके संपादन कियेहुये वी संशयआदिकके निराසकरि अपरोक्ष करना अवशेष रहताहै ॥

२ तब ज्ञानकी संपूर्णता कब होवैहै? यह आशंकाकरि तिस ज्ञानकी अवधिकूं दिखावैहैं:—

३] **जहांलगि कृतार्थपनैकी बुद्धि होवै । तहांलगि हे वादी! गुरुकूं उपासन कर ॥**

४) जब "मैं कृतार्थ कहिये कर्त्तव्य औ प्राप्तव्यके अभाववाला हूं ।" ऐसी कृतार्थपनैकी बुद्धि उत्पन्न होवै । तब ज्ञानकी संपूर्णता जाननैकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥ ८४ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२२७ १२२८

आस्तामेतद्यत्र यत्र सुखं स्याद्विषयैर्विना ।
तत्र सर्वत्र विद्धयेतां ब्रह्मानंदस्य वासनाम् ॥८५॥
विषयेष्वपि लब्धेषु तदिच्छोपरमे सति ।
अंतर्मुखमनोवृत्तावानंदः प्रतिबिंबति ॥ ८६ ॥

टीकांक: ४४०५ टिप्पणांक: ७६६

५ एवं प्रासंगिकं परिसमाप्य प्रकृतमेवानुसरति (आस्तामिति)—

६] एतत् आस्तां। यत्र यत्र विषयैः विना सुखं स्यात् तत्र सर्वत्र ब्रह्मानंदस्य वासनां विद्धयेताम् ॥

७) यत्र यत्र यस्मिन्यस्मिन्काले तूष्णींभावादौ । विषयानुभवमंतरेण सुखं भवति। तत्र तत्र सुखस्य विषयजन्यत्वाभावात् सामान्याहंकारावृतत्वाच्च वासनानंदत्वमवगंतव्यमित्यर्थः ॥ ८५ ॥

८ एवं ब्रह्मानंदवासनानंदौ दर्शयित्वा इदानीमानंदत्रैविध्यनियमनाय "आत्माभिमुखधीवृत्तौ" इत्यत्रोक्तमेव विषयानंदं पुनरनुवदति—

९] विषयेषु लब्धेषु अपि तदिच्छोपरमे सति अंतर्मुखमनोवृत्तौ आनंदः प्रतिबिंबति ॥

१०) यदा यदा स्रगादिविषयलाभात् तत्तदिच्छोपरमः भवति । तदा तदा मनस्यंतर्मुखे सति तस्मिन् यः स्वात्मानंदः प्रतिबिंबितो भवति । अयं विषयानंद इत्यर्थः ॥ ८६ ॥

॥ ७ ॥ वासनानंदका स्वरूप ॥

५ ऐसैं ७७–८४ श्लोकपर्यंत प्रसंगसैं प्राप्तअर्थकूं समाप्तकरिके । प्रकृत ७६ वें श्लोकउक्तवासनानंदकूंहीं अनुसरैहैं:—

६] यह प्रसंगप्राप्तअर्थ रहो औ जहां जहां विषयनसैं विना सुख होवैहै । तहां सर्वत्र इस ब्रह्मानंदकी वासनाकूं जान ॥

७)जहां जहां नाम जिस तूष्णीभावआदिककालविषै विषयके अनुभवसैं विना सुख होवैहै । तहां तहां सुखकूं विषयजन्य होनैके अभावतैं औ सूक्ष्मअहंकारकरि आवृत होनैतैं वासनानंदपना जाननैकूं योग्य है।यह अर्थ है८५

॥ ८ ॥ विषयानंदका स्वरूप ॥

८ ऐसैं ब्रह्मानंद औ वासनानंदकूं दिखायके । अब आनंदकी त्रिविधताके नियम करनैअर्थ "आत्माके सन्मुख भई बुद्धिवृत्तिविषै स्वरूपभूत आनंद प्रतिबिंबकूं पावताहै" इस ४४ वें श्लोकविषै उक्त विषयानंदकूंहीं फेर अनुवाद करैहैं:—

९] विषयनके प्राप्त हुये बी तिनकी इच्छाकी निवृत्तिके हुये अंतर्मुख भई जो मनकी वृत्ति । तिसविषै आनंद प्रतिबिंबकूं पावताहै ॥

१०) जब मालाआदिकविषयनके लाभतैं तिस तिस विषयकी इच्छाकी निवृत्ति होवैहै। तब तब मनके अंतर्मुख हुये तिस मनविषै जो आत्मस्वरूपका आनंद प्रतिबिंबकूं प्राप्त होवैहै। यह विषयानंद है । यह अर्थ है ॥ ८६ ॥

६६ जब वांछितविषयकी प्राप्ति होवै । तब इच्छारूप चंचलराजसीवृत्तिकी निवृत्ति होवैहै औ प्राप्तविषयके ज्ञानरूप सात्विकवृत्तिसैं विषयउपहितचेतनके स्वरूपभूत आनंदका भान होवैहै ॥ यह वृत्ति विषयरूप निमित्तसैं भईहै ।

टीकांक: ४४११ टिप्पणांक: ॐ

ब्रह्मानंदो वासना च प्रतिबिंब इति त्रयम् ।
अंतरेण जगत्यस्मिन्नानंदो नास्ति कश्चन ॥८७॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२२९

११ फलितमाह—

१२] **ब्रह्मानंदः वासना च प्रतिबिंबः इति त्रयं अंतरेण अस्मिन् जगति कश्चन आनंदः न अस्ति ॥**

१३) उक्तप्रकारेण स्वप्रकाशतया सुषुप्तौ प्रतिभासमानो यो ब्रह्मानंदः । यश्च तूष्णींस्थितौ विषयानुभवमंतरेण प्रतीयमानो **वासनानंदः** । योऽप्यभीष्टविषयलाभादंतर्मुखे मनसि **प्रतिबिंबितो** विषयानंदः । एतत्त्रितयातिरेकेण **अस्मिन् जगति न कश्चिदानंदोऽस्ति ॥**

* १४) ननु

(१) "आनंदस्त्रिविधो ब्रह्मानंदो विद्यासुखं तथा विषयानंदः" इत्यनेन प्रकारेणानंदत्रैविध्यमुक्तं । इदानीं तु "ब्रह्मानंदो वासना च प्रतिबिंब । इति त्रयं" इति तद्विलक्षणमानंदस्य त्रैविध्यमुच्यते । अतः पूर्वोत्तरविरोधः ॥

(२।३) किंच "यावद्यावदहंकारो विस्मृतोऽभ्यासयोगतः । तावत्तावत्सूक्ष्मदृष्टेर्निजानंदोऽनुमीयते" इति "तादृक् पुमानुदासीन-

॥ ९ ॥ आनंदके त्रिविधताकी प्रतिज्ञा ॥

११ फलितकूं कहैहैं:—

१२] **ब्रह्मानंद वासनानंद औ प्रतिबिंब** नाम विषयानंद । **इन तीनआनंदनसैं विना इस जगत्विषै कोइ बी आनंद नहीं है ॥**

१३) ३३–७६ श्लोकउक्तप्रकारसैं स्वप्रकाशपनैंकरि सुषुप्तिविषै भासमान जो ब्रह्मानंद है औ जो ८५ वें श्लोकउक्ततूष्णीस्थितिविषै विषयके अनुभवसैं विना प्रतीयमान वासनानंद है औ जो ८६ वें श्लोकउक्त वांछितविषयके लाभतैं अंतर्मुख भये मनविषै प्रतिबिंबकूं पाया जो विषयानंद है । इन तीनआनंदनसैं भिन्न इस जगत्विषै कोइ बी आनंद नहीं है ॥

* १४) ननु ।

(१) "ब्रह्मानंद । विद्यानंद औ विषयानंद । इस भेदकरि आनंद तीनप्रकारका है" इस ११ वें श्लोकउक्तप्रकारकरि आनंदकी त्रिविधता पूर्व कहीहै औ अब तौ "ब्रह्मानंद । वासनानंद औ विषयानंद । इन तीनतैं भिन्न इस जगत्विषै कोइ बी आनंद नहीं है" ऐसैं इस ८७ वें श्लोकविषै तिसतैं विलक्षण आनंदकी त्रिविधता कहियेहै । यातैं पूर्वउत्तरका विरोध है ॥

(२।३) किंवा "अभ्यासके योगतैं जितना जितना अहंकार विस्मरण होवैहै । तितना तितना सूक्ष्मदृष्टिवाले पुरुषकूं निजानंद अनु-

यातैं सो वृत्ति विषयानंद कहियेहै ॥

अथवा वांछितविषयके ज्ञानकरि इच्छारूप वृत्तिकी निवृत्ति होवैहै । तिस इच्छाकी निवृत्तिरूप निमित्तसैंहीं अन्य-अंतर्मुखवृत्ति उत्पन्न होवैहै । तिसकरि अंतःकरणउपहित-आनंदका भान होवैहै ॥ यह अंतर्मुखवृत्ति वा तिस वृत्तिविषै जो स्वरूपआनंदका प्रतिबिंब होवैहै सो विषयानंद कहियेहै । ताहीकूं प्रतिबिंबानंद औ लेशानंद बी कहैहैं । इसकरि ब्रह्मासैं लेके चीटीपर्यंत सर्वजीव निर्वाह करैहैं ॥

कालेऽप्यानंदवासनां । उपेक्ष्य मुख्यमानंदं भावयत्येव तत्परः'' इति चोक्तमकारद्वयातिरिक्तौ निजानंदमुख्यानंदावभिधीयेते ॥

(४) तथा द्वितीयाध्याये "मंदप्रज्ञं तु जिज्ञासुमात्मानंदेन बोधयेत्'' इति आत्मानंद स्ततोऽन्योऽभिधीयते ।

(५) "योगानंदः पुरोक्तो यः'' इत्यत्र योगानंदोऽपि कश्चिदवभासते ।

(६) "ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे तृतीयाध्याय ईरितः । अद्वैतानंद एव स्यात्'' इत्यत्राद्वैतानंदं चान्यमवगच्छामः ।

अतः "अंतरेण जगत्यस्मिन्नानंदो नास्ति कश्चन'' इत्युक्तिर्विरुद्ध्येतेति चेन्मैवम् ॥

(१) विद्यानंदस्य विषयानंदवदंतःकरणवृत्तिविशेषत्वेन विषयानंदेंतर्भावस्य "विषयानंदवद्विद्यानंदो धीवृत्तिरूपकः'' इत्युत्तरत्र धीवृत्तिरूपत्वाभिधानेन विवक्षितत्वात् ॥

निजानंदमुख्यानंदात्मानंदयोगानंदाद्वैतानंदानां तु ब्रह्मानंदादनतिरिक्तत्वाच्च । तथा हि

(२) "यावद्यावदहंकारः'' इत्युदाहृतश्लोके योगलक्षणोपायगम्यतया योगानंदत्वेन विवक्षितस्य निजानंदस्यैव "न द्वैतं भासते नापि निद्रा तत्रास्ति यत्सुखम् । स ब्रह्मानंद इत्याह

मित होवैहै'' इस ९८ वें श्लोकविषै औ "तैसा पुरुष उदासीनकालविषै बी आनंदकी वासनाकूं उपेक्षाकरिके तत्पर हुया मुख्यआनंदकूंहीं भावना करताहै'' इस १२१ वें श्लोकविषै पूर्व ११ वें औ ८७ वें श्लोकविषै उक्त त्रिविधतारूप दोनूंप्रकारनसैं भिन्न निजानंद औ मुख्यानंद कहियेहै ।

(४) तैसैं ब्रह्मानंदग्रंथके आत्मानंदनामक द्वितीयअध्यायविषै "मंदबुद्धिवाले जिज्ञासूकूं तौ आत्मानंदकरि बोध करना'' इस द्वादशप्रकरणगत चतुर्थश्लोकमैं आत्मानंद तिनतैं अन्य कहियेहै ॥ औ

(५) "जो पूर्वउक्त योगानंद है'' इस त्रयोदशप्रकरणगत प्रथमश्लोकविषै योगानंद बी कोइक प्रतीत होवैहै ॥ औ

(६) "ब्रह्मानंदनामकग्रंथविषै तृतीयअध्याय जो कह्या । सो अद्वैतानंदहीं है'' इस त्रयोदशप्रकरणगत १०५ वें श्लोकविषै अद्वैतानंदकूं अन्य जानियेहै ॥

यातैं "इन तीनतैं भिन्न इस जगत्‌विषै कोइ बी आनंद नहीं है'' यह ८७ श्लोकविषै किया कथन विरोधकूं पावताहै ॥ इसरीतिसैं जो कहै कहिये शंका करै तौ बनै नहीं । काहेतैं

(१) विद्यानंदकूं विषयानंदकी न्यांई अंतःकरणके वृत्तिका भेद होनैंकरि औ "विषयानंदकी न्याई विद्यानंद बुद्धिकी वृत्तिरूप है'' ऐसैं आगे चतुर्दशप्रकरणगत द्वितीयश्लोकविषै विद्यानंदकी बुद्धिवृत्तिरूपताके कथनकरि तिसका विषयानंदविषै अंतर्भाव कहनैंकूं इच्छित होनैंतैं । विषयानंदतैं भिन्न विद्यानंद नहीं है ॥ औ

निजानंद । मुख्यानंद । आत्मानंद । योगानंद औ अद्वैतानंदकूं तौ ब्रह्मानंदतैं अभिन्न होनैंतैं ८७ श्लोकविषै किया हमारा कथन विरोधकूं पावता नहीं । तैसैंहीं दिखावैहैं:—

(२) "जितना जितना अहंकार विस्मरण होवै'' इस उदाहरण किये ९८ वें श्लोकविषै योगरूप उपायसैं गम्य होनैंतैं योगानंदपनैंकरि कहनैंकूं इच्छित जो निजानंद है । तिसीकेहीं "जहां द्वैत नहीं भासताहै औ निद्रा बी नहीं है । तहां जो सुख है सो ब्रह्मानंद

भगवानर्जुनं प्रति'' इत्यस्मिन्नुत्तरश्लोक एव ब्रह्मानंदत्वाभिधानान्निजानंदो ब्रह्मानंदान्न भिद्यते ।

(३) तथा मुख्यानंदोऽपि ब्रह्मानंद एव । तथा च "विषयानंदो वासनानंद इत्यमू आनंदौ जनयन्नास्ते ब्रह्मानंदः स्वयंप्रभः" इत्यत्र जन्यत्वेनामुख्यभूतयोर्विषयानंदवासनानंदयोर्जनकत्वेनाभिहितस्य ब्रह्मानंदस्यैव "तादृक् पुमानुदासीनकालेऽपि" इत्युदाहृत एव श्लोके "आनंदवासनां । उपेक्ष्य मुख्यमानंदं भावयत्येव तत्परः" इति मुख्यानंदत्वाभिधानात् ॥

(४।५।६) आत्मानंदाद्वैतानंदयोस्तु ब्रह्मानंदत्वं "योगानंदः पुरोक्तो यः स आत्मानंद इष्यताम्" इति तृतीयाध्यायादौ प्रथमाध्याये योगानंदतया विवक्षितस्य ब्रह्मानंदस्यैव योगानंदशब्देनानुवादपूर्वकमात्मानंदतामभिधाय "कथं ब्रह्मत्वमेतस्य सद्वयस्येति चेत्" इति प्रश्नपूर्वकमाकाशादिशरीरांतमित्यादिना अद्वितीयस्य ब्रह्मत्वप्रतिपादनादवगंतव्यम् ॥

तस्मात् "ब्रह्मानंदो वासना च प्रतिबिंबः" इत्युक्तं त्रैविध्यं सुस्थम् ॥

* १९) ननु तर्हि "नन्वेवं वासनानंदात् ब्रह्मानंदादपीतरं । वेत्तु योगी निजानंदम्" इत्यत्र निजानंदस्य ब्रह्मानंदवासनानंदाभ्यां

है । ऐसैं भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकेप्रति कहतेभये'' इस १०० वें श्लोकविषैहीं ब्रह्मानंदपनैके कथनतैं निजानंद ब्रह्मानंदतैं भिन्न नहीं है ॥

(३) तैसैं मुख्यानंद बी ब्रह्मानंदहीं है । काहेतैं "तैसैं हुये विषयानंद औ वासनानंद इन दोनूं आनंदनकूं उत्पन्न करताहुया ब्रह्मानंद । स्वयंप्रकाशरूप स्थित है'' इस ८८ श्लोकविषै जन्य होनैकरि अमुख्यरूप जो विषयानंद औ वासनानंद हैं । तिनका जनक होनैंकरि कथन किये ब्रह्मानंदकेहीं "तैसा पुरुष उदासीनकालविषै बी'' इस उदाहरण किये १२१ वें श्लोकविषै आनंदकी वासनाकूं उपेक्षाकरिके तत्पर हुया मुख्यआनंदकूंहीं भावना करताहै । ऐसैं मुख्यआनंदपनैके कथनतैं ॥ औ

(४।५।६) आत्मानंद अरु अद्वैतानंदका जो ब्रह्मानंदपना है । सो तौ "जो पूर्वउक्त योगानंद है । सोई आत्मानंद अंगीकार करना'' इस ब्रह्मानंदग्रंथके तृतीयअध्यायकी आदि जो प्रथमश्लोक तिसविषै प्रथम योगानंदनामकअध्यायविषै योगानंदपनैकरि कहनैकूं इच्छित ब्रह्मानंदकेहीं योगानंदशब्दकरि अनुवादपूर्वक आत्मानंदपनैकूं कहिके । "द्वैतसहित इस आत्मानंदकूं ब्रह्मपना कैसैं होवैगा ? ऐसैं जो कहै'' इसरीतिसैं त्रयोदशप्रकरणगत द्वितीयश्लोकविषैहीं प्रश्नपूर्वक "आकाशसैं आदिलेके शरीरपर्यंत'' इस त्रयोदशप्रकरणगत द्वितीयआदिकश्लोकनकरि अद्वितीयआत्मानंदके ब्रह्मपनैके प्रतिपादनतैं आत्मानंद अरु अद्वैतानंदका ब्रह्मानंदपना जानना ॥

तातैं "ब्रह्मानंद । वासनानंद औ विषयानंद । इन तीनतैं भिन्न इस जगत्विषै कोइ बी आनंद नहीं है'' यह ८७ वें श्लोकविषै कथन किया आनंदका त्रिविधपना स्थित है नाम निर्णीत है ॥

* १९) ननु तब "ननु ऐसैं वासनानंदतैं औ ब्रह्मानंदतैं बी इतर निजानंदकूं योगी जानहु । इहां मूढकी कौन गति है?'' इस द्वादशप्रकरणगत प्रथमश्लोकविषै निजानंदका ब्रह्मानंद औ वासनानंदसैं भेदकरि

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२३०

तथा च विषयानंदो वासनानंद इत्यमू ।
आनंदौ जनयन्नास्ते ब्रह्मानंदः स्वयंप्रभः ॥८८॥

टीकांक: ४४१६ टिप्पणांक: ७६७

भेदेन निर्देशो न युज्यत इति न शंकनीयम् । एकस्यैव ब्रह्मानंदस्य जगत्कारणत्वोपाधिसाहित्यराहित्यभेदेन भेदव्यपदेशोपपत्तेः । तथाहि

(१) ब्रह्मानंदनिरूपणावसरे "आनंदाद्ध्येवेमानि भूतानि जायंते" इत्यादिना जगत्कारणत्वाभिधानेन ब्रह्मानंदस्य समायत्वमवगम्यते निर्मायस्य जगत्कारणत्वानुपपत्तेः

(२) निजानंदनिरूपणकालेऽपि "यावद्यावदहंकार" इत्यादिना सकारणस्याहंकारस्य विलयप्रतिपादनान्निजानंदस्य निर्मायत्वम् ॥

इति सर्वमनवद्यम् ॥ ८७ ॥

१६ नन्वस्मिन्नध्याये ब्रह्मानंदविवेचनस्यैव प्रस्तुतत्वादितरानंदद्वयप्रतिपादनं प्रकृतासंगतमित्याशंक्य तयोर्ब्रह्मानंदजन्यत्वेन तद्बोधोपयोगित्वात् न प्रकृतासंगतमित्यभिप्रायेणाह—

१७] तथा च **स्वयंप्रभः विषयानंदः वासनानंदः इति अमू आनंदौ जनयन् आस्ते ब्रह्मानंदः ॥**

१८) तथा च एवमानंदत्रैविध्ये सति । यः स्वयंप्रकाश आनंदो विषयानंदवासनानंदौ जनयति स ब्रह्मानंदः वेदितव्य इत्यर्थः ॥ ८८ ॥

कथन किया है । सो नहीं घटताहै । ऐसैं शंका करनैकूं योग्य नहीं है । काहेतैं एकहीं ब्रह्मानंदके जगत्के कारणपनैरूप उपाधिसहितपनै औ रहितपनैकरि भेदकथनके संभवतैं। तैसैंहीं दिखावैहैं:—

(१) ब्रह्मानंदके निरूपणके अवसरमैं "आनंदतैंहीं यह भूत उत्पन्न होवैहैं" इत्यादिवाक्यकरि जगत्की कारणताके कथनतैं ब्रह्मानंदका मायासहितपना जानियेहै। काहेतैं मायारहितकूं जगत्की कारणताके असंभवतैं॥औ

(२) निजानंदके निरूपणकालविषै बी "जितना जितना अहंकार विस्मरण होवैहै" इस ९८ वें श्लोकआदिकवाक्यकरि कारणसहित अहंकारके विलयके प्रतिपादनतैं निजानंदकूं मायारहितपना है ॥

ऐसैं सर्वकथन निर्दोष हैं ॥ ८७ ॥

॥ १० ॥ वासनानंद औ विषयानंदके जनक स्वप्रकाश ब्रह्मानंदका कथन ॥

१६ ननु इस अध्यायविषै ब्रह्मानंदके विवेचनकूंहीं कहनैकूं इच्छित होनैतैं अन्य वासनानंद औ विषयानंद इन दोनूंआनंदनका प्रतिपादन प्रकृतसैं असंगत है । यह आशंकाकरि तिन दोनूं आनंदनकूं ब्रह्मानंदसैं जन्य होनैंकरि तिस ब्रह्मानंदके बोधमैं उपयोगी होनैतैं तिनका प्रतिपादन प्रकृतसैं असंगत नहीं है । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

१७] तैसैं हुये जो **स्वयंप्रकाशआनंद । विषयानंद औ वासनानंद इन दोनूं आनंदनकूं जनतहुया विद्यमान है । सो ब्रह्मानंद है ॥**

१८) तैसैं इसप्रकार आनंदकी त्रिविधताके हुये जो स्वयंप्रकाशरूप आनंद । विषयानंद औ वासनानंदकूं उत्पन्न करताहै । सो ब्रह्मानंद जाननैकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥ ८८ ॥

---

६७ जैसैं अग्निसैं जन्य धूमका ज्ञान अग्निके ज्ञानविषै उपयोगी है औ जलसैं जन्य शीतलताका ज्ञान जलके ज्ञानविषै उपयोगी है । तैसैं ब्रह्मानंदसैं वृत्तिरूप उपाधिद्वारा जन्य विषयानंद औ वासनानंदका ज्ञान ब्रह्मानंदके ज्ञानविषै उपयोगी है । यातैं इनका निरूपण प्रसंगसैं अमिलित नहीं है।

टीकांकः ४४१९ टिप्पणांकः ॐ	२० श्रुतियुक्त्यनुभूतिभ्यः स्वप्रकाशचिदात्मके । ब्रह्मानंदे सुप्तिकाले सिद्धे सत्यन्यदा शृणु ॥८९॥ २३ यै आनंदमयः सुप्तौ स विज्ञानमयात्मताम् । गत्वा स्वप्नं प्रबोधं वा प्राप्नोति स्थानभेदतः ९०	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२३१ १२३२

१९ वृत्तानुसंकीर्तनपूर्वकमुत्तरग्रंथमवतारयति—

२०] श्रुतियुक्त्यनुभूतिभ्यः सुप्तिकाले स्वप्रकाशचिदात्मके ब्रह्मानंदे सिद्धे सति अन्यदा शृणु ॥

२१) श्रुतिभिः "सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति" इत्यादिभिरुदाहृताभिर्युक्तिभिः "सुखमहमस्वाप्सम्" इत्यादिपरामर्शान्यथानुपपत्त्यादिभिः अनुभूत्या च अर्थापत्तिकल्पितेन सुषुप्त्यनुभवेन च । सुषुप्तिकाले स्वप्रकाशो ब्रह्मानंदः साधितः इतः परं अन्यदा जागरणावस्थायामपि यो ब्रह्मानंदावगमोपायो वक्ष्यते तं शृणु इत्यर्थः ॥ ८९ ॥

२२ प्रतिज्ञातमेव ब्रह्मानंदावगमोपायं दर्शयितुं तदुपोद्घातत्वेन सनिमित्तां जीवस्यावस्थाद्वयप्राप्तिं दर्शयति (य इति)—

॥ ३ ॥ वासनानंद औ निजानंदके कथनपूर्वक क्षणिकसमाधिके संभवतैं ब्रह्मानंदके निश्चयका संभव ॥ ४४१९–४५९१ ॥

॥ १ ॥ जाग्रत्‌विषै वासनानंदकी सिद्धिपूर्वक अभ्यासतैं प्रतीत निजानंदका कथन ॥ ४४१९–४५३८ ॥

॥ १ ॥वृत्तके अनुवादपूर्वक उत्तरग्रंथका अवतार ॥

१९ कथनकिये अर्थके फेरी कथनपूर्वक उत्तरग्रंथकूं प्रगट करैहैं:—

२०] श्रुति । युक्ति औ अनुभूतितैं सुषुप्तिकालविषै स्वप्रकाशचिदात्मरूप ब्रह्मानंदके सिद्ध हुये अन्यकालविषै श्रवण कर ॥

२१) "सुषुप्तिकालविषै सकलप्रपंचके विलीन हुये । तमकरि आवृत हुया सुखरूपकूं पावताहै" (यह ५८ श्लोकउक्त श्रुति है) इत्यादिकउदाहरणकरि श्रुतिनकरि औ "मैं सुखसैं सोया था" इत्यादिकस्मरणके अन्यथाअसंभवआदिकयुक्तिनकरि औ अर्थापत्तिप्रमाणसैं कल्पित सुषुप्तिके अनुभवकरि । सुषुप्तिकालविषै स्वप्रकाशब्रह्मानंद साधित भया ॥ अब इस ८९ वें श्लोकसैं पीछे अन्यकाल जो जागरणअवस्था तिसविषै बी जो ब्रह्मानंदके जाननैका उपाय कहियेगा तिसकूं श्रवण कर । यह अर्थ है ॥ ८९ ॥

॥ २ ॥ निमित्तसहित जीवकूं दोअवस्थाकी प्राप्ति॥

२२ प्रतिज्ञा किये ब्रह्मानंदके जाननैके उपायकूंहीं दिखावनैकूं तिसके उपोद्घातपनैंकरि निमित्तसहित जीवकूं दोनूंअवस्था जाग्रत्‌स्वप्नकी प्राप्तिकूं दिखावैहैं:—

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२३३ १२३४	नेत्रे जागरणं कंठे स्वप्नः सुप्तिर्हृदंबुजे । आपादमस्तकं देहं व्याप्य जागर्ति चेतनः॥९१॥ देहतादात्म्यमापन्नस्तप्तायःपिंडवत्ततः । अहं मनुष्य इत्येवं निश्चित्यैवावतिष्ठते॥ ९२ ॥	टीकांक: ४४२३ टिप्पणांक: ॐ

२३] सुप्तौ यः आनंदमयः सः विज्ञानमयात्मतां गत्वा स्थानभेदतः स्वप्नं वा प्रबोधं प्राप्नोति ॥

२४) सुप्तौ सुषुप्तिकाले । "विलीनावस्थ आनंदमयशब्देन कथ्यते" इत्युक्तो यः आनंदमयः । सः विज्ञानशब्दाभिधेय-बुद्ध्युपाधिमत्त्वेन विज्ञानमयतां प्राप्य । स्थानभेदतो वक्ष्यमाणस्थानविशेषयोगेन । स्वप्नं जागरणं वा । कर्मानुसारेण गच्छति॥९०

२५ इदानीं जाग्रदाद्यवस्थोपयोगीनि स्थानानि दर्शयति—

२६] नेत्रे जागरणं । कंठे स्वप्नः । हृदंबुजे सुप्तिः ॥

२७ नेत्रशब्दस्य कृत्स्नदेहोपलक्षणपरता-मभिप्रेत्य नेत्रे जागरणमित्यंशस्यार्थमाह—

२८] आपादमस्तकं देहं व्याप्य चेतनः जागर्ति ॥

ॐ २८) चेतनः जीवः ॥ ९१ ॥

२९ "देहं व्याप्य" इत्यनेन विवक्षितमर्थं दृष्टांतप्रदर्शनेन स्पष्टयति (देहतादात्म्य-मिति)—

३०] तप्तायःपिंडवत् देहतादात्म्य आपन्नः ॥

२३] सुषुप्तिविषै जो आनंदमय है । सो विज्ञानमयरूपताकूं पायके स्थानके भेदतैं स्वप्नकूं वा जाग्रत्‌कूं पावता है॥

२४) सुषुप्तिकालविषै "विलीनअवस्था-वाला आनंदमयशब्दकरि कहियेहैं" इस ६३ वें श्लोकविषै उक्त जो आनंदमय है । सो विज्ञानमयशब्दकी वाच्य बुद्धिउपाधि-वाला होनैंकरि विज्ञानमयपनैंकूं पायके स्थान-के भेदतैं वक्ष्यमाणस्थानविशेषके योगकरि स्वप्न वा जागरणकूं कर्म अनुसारकरि पावता-है ॥ ९० ॥

॥ ३ ॥ जाग्रदादिअवस्थामैं उपयोगी स्थान औ "नेत्रमैं जागरण" शब्दका अर्थ ॥

२५ अब जाग्रत्‌आदिकअवस्थाके उपयोगी स्थानकूं दिखावैहैं:—

२६] नेत्रस्थानविषै जागरण होवैहै औ कंठस्थानविषै स्वप्न होवैहै औ हृदय-कमलस्थानविषै सुषुप्ति होवैहै ॥

२७ नेत्रशब्दकी संपूर्णदेहके उपलक्षणताकूं अभिप्रायकरिके नेत्रविषै जागरण होवैहै। इस अंशके नाम पदसमूहके अर्थकूं कहैहैं:—

२८] पादसैं लेके मस्तकपर्यंत देहकूं व्यापिके चेतन जागताहै ॥

ॐ २८) चेतन कहिये जीव ॥ ९१ ॥

॥ ४ ॥ दृष्टांत औ प्रमाणसैं जीवकरि देहमैं व्यापनैंका अर्थ ॥

२९ "देहकूं व्यापिके चेतन जागताहै" इस पदकरि कहनैंकूं इच्छितअर्थकूं दृष्टांतके दिखावनैकरि स्पष्ट करैहैं:—

३०] तप्तलोहके पिंडकी न्याईं देहसैं तादात्म्यकूं प्राप्त भयाहै ॥

टीकांक: ४४३१ टिप्पणांक: ॐ	३५उदासीनः सुखी दुःखीत्यवस्थात्रयमेत्यसौ । ३६सुखदुःखे कर्मकार्ये त्वौदासीन्यं स्वभावतः॥९३॥ ३९बाह्यभोगान्मनोराज्यात्सुखदुःखे द्विधा मते । ४१सुखदुःखांतरालेषु भवेत्तूष्णीमवस्थितिः ॥ ९४ ॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२३५ १२३६

३१ तत्र प्रमाणमाह—

३२] ततः "अहं मनुष्यः" इति एवं निश्चित्य एव अवतिष्ठते ॥

३३) यतो मनुष्यत्वादिजातिमता देहेन तादात्म्यं प्राप्तः । ततः "अहं मनुष्यः" इत्येवं निश्चित्य संशयादिरहितज्ञानेन गृहीत्वा एव अवतिष्ठते ॥ ९२ ॥

३४ देहतादात्म्याभिमानहेतुकान्येवावस्थांतराणि दर्शयति—

३५] "उदासीनः सुखी दुःखी" इति अवस्थात्रयं असौ एति ॥

३६ तत्र सुखित्वदुःखित्वयोः कर्मजन्यत्वज्ञानाय विशेषणभूतयोः सुखदुःखयोस्तद्धेतुकत्वं दर्शयति—

३७] सुखदुःखे कर्मकार्ये औदासीन्यं तु स्वभावतः ॥ ९३ ॥

३८ तयोश्च सुखदुःखयोर्निमित्तभेदाद्वैविध्यमाह—

३९] बाह्यभोगात् मनोराज्यात् सुखदुःखे द्विधा मते ॥

४० तत्रौदासीन्यं कदा स्यादित्यत आह—

---

३१ देहसैं तादात्म्यकूं पायाहै । तिसविषै प्रमाण कहैहैं:—

३२] तातैं "मैं मनुष्य हूं" ऐसैं निश्चयकरिकेहीं स्थित होवैहै ॥

३३) जातैं मनुष्यपनैआदिकजातिवाले देहके साथि तादात्म्य जो अभेदअध्यास ताकूं प्राप्त भयाहै तातैं "मैं मनुष्य हूं ।" इस प्रकार निश्चयकरिके कहिये संशयादिरहित ज्ञानकरि ग्रहणकरिकेहीं जीव स्थित होवैहै ॥ ९२ ॥

॥ ५ ॥ देहमैं तादात्म्यअभिमानकी हेतु और अवस्था ॥

३४ देहसैं तादात्म्यअभिमानरूप हेतुवाली अन्यअवस्थाकूं दिखावैहैं:—

३५] "मैं उदासीन हूं । सुखी हूं । दुःखी हूं" इन तीनअवस्थाकूं यह जीव पावताहै ॥

३६ तिन तीनअवस्थाविषै सुखीपनै औ दुःखीपनैरूप दोनूंअवस्थाके कर्मजन्यपनैके ज्ञानअर्थ विशेषरूप सुखदुःखके तिस कर्मरूप हेतुवान्‌पनैकूं दिखावैहैं:—

३७] सुख औ दुःख ये दोनूं पुण्यपापरूप कर्मके कार्य हैं औ उदासीनपना तौ स्वभावतैं होवैहै ॥ ९३ ॥

॥ ६ ॥ सुखदुःखकी द्विविधता औ उदासीनताका समय ॥

३८ तिन सुख औ दुःखके निमित्तके भेदतैं दोभांतिपनैकूं कहैहैं:—

३९] बाह्यभोगतैं औ मनोराज्यतैं सुख औ दुःख दोदोप्रकारके मानेहैं ॥

४० तब उदासीनपना कब होवैहै? तहां कहैहैं:—

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः १२३७ १२३८	⁴⁴न कापि चिंता मेऽस्त्यद्य सुखमास इति ब्रुवन् । औदासीन्ये निजानंदभावं वक्त्यखिलो जनः ९५ ⁴⁶अहमस्मीत्यहंकारसामान्याच्छादितत्वतः । निजानंदो न मुख्योऽयं किंत्वसौ तस्य वासना९६	टीकांकः ४४४१ टिप्पणांकः ७६८

४१] सुखदुःखांतरालेषु तूष्णीं अवस्थितिः भवेत् ॥

४२) व्यक्तिभेदविवक्षया बहुवचनम्॥९४॥

४३ यदर्थं जाग्रदाद्युपन्यस्तं तदिदानीं दर्शयति (न कापीति)—

४४] अखिलः जनः "अद्य मे का अपि चिंता न अस्ति। सुखं आस" इति ब्रुवन् औदासीन्ये निजानंदभावं वक्ति ॥

४५) सर्वोऽपि जन "इदानीं मम कापि चिंता गृहादिविषया नास्ति। अतः सुखं यथा भवति तथा तिष्ठामि" इति वदन् औदासीन्यकाले स्वरूपानंदस्फूर्तिं ब्रूते। अतो जागरणावस्थायामपि निजानंदभानं अस्तीत्यवगंतव्यमित्यभिप्रायः ॥ ९५ ॥

४६ नन्वौदासीन्येऽवभासमानस्य निजानंदत्वे तस्य ब्रह्मानंदत्वात्पूर्वोक्ता वासनानंदता न स्यात् इत्याशंक्याहंकारसामान्यावृतत्वान्न ब्रह्मानंदतेति परिहरति—

४१] सुख औ दुःखके अंतराल कहिये संधिनविषै तूष्णीस्थिति नाम उदासीनता होवैहै ॥

४२) सुखदुःखके अंतरालशब्दका जो बहुवचन है। सो व्यक्ति जो आकार ताके भेदके कहनेकी इच्छाकरि है ॥ ९४ ॥

॥ ७ ॥ जागरणमैं निजानंदका भान ॥

४३ जिस प्रयोजनअर्थ जाग्रत्‌आदिकके कहनैका आरंभ किया। तिस प्रयोजनकूं अब दिखावैहैं:—

४४] सर्वजन । "अब मेरेकूं कोइ बी चिंता नहीं है । यातैं मैं सुखसैं स्थित हूं" ऐसैं कहताहुया उदासीनपनैविषै निजानंदके भावकूं कहता है॥

४५) सर्वजन बी "अब मेरेकूं कोइ बी गृहादिककूं विषय करनैहारी चिंता नहीं है। यातैं मैं सुख जैसैं होवै तैसैं स्थित हूं" ऐसैं कहताहुया उदासीनपनैके कालविषै स्वरूपआनंदकी स्फूर्तिकूं कहताहै। यातैं जागरणअवस्थाविषै बी निजानंदका भान है । ऐसैं जाननैकूं योग्य है। यह अभिप्राय है॥ ९५॥

॥ ८ ॥ जागरणगत उदासीनकालमैं अनुभूत आनंदकी वासनानंदता ॥

४६ ननु उदासीनदशाविषै भासमान सुखकूं निजानंदरूप हुये। तिस निजानंदकूं ब्रह्मानंदरूप होनैतैं। पूर्व ८९ वें श्लोकउक्तवासनानंदरूपता नहीं होवैगी। यह आशंकाकरि उदासीनदशाविषै भासमान सुखकूं अहंकारके सूक्ष्मभावकरि आवृत होनैतैं ब्रह्मानंदरूपता नहीं है। ऐसैं परिहार करैहैं:—

६८ सुषुप्तितैं उत्थानकालविषै सुख अरु दुःखका अभाव है। यातैं सो उदासीनदशा है ॥ ऐसैं जाग्रत्‌विषै जहां-जहां सुख अरु दुःख दोनूंका अभाव है । सो सो काल उदासीनदशा कहियेहै ॥ जहां सुख है तहां राग होवैहै औ जहां दुःख है तहां द्वेष होवैहै। यातैं सुखदुःखरूप निमित्तसैं जन्य रागद्वेषके अभावकालकूं उदासीनता औ तूष्णीस्थिति बी कहैहैं ॥

टीकांकः ४४४७ टिप्पणांकः ॐ

५२ नीरपूरितभांडस्य बाह्ये शैत्यं न तज्जलम् ।
५५ ५७ किंतु नीरगुणस्तेन नीरसत्तानुमीयते ॥ ९७ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः १२३९

४७] "अहं अस्मि" इति अहंकार-सामान्याच्छादितत्वतः अयं निजानंदः मुख्यः न ॥

४८) "देवदत्त अहं" इत्यादिविशेषशून्येन "अहं अस्मि" इत्येवंरूपेणाहंकारसामान्येनावृतत्वात् नायं मुख्यः इत्यर्थः ॥

४९ तर्हि तस्य किंरूपतेत्यत आह—

५०] किंतु असौ तस्य वासना ॥९६

५१ मुख्यानंदातिरिक्तवासनानंदसद्भावे दृष्टांतः—

५२] नीरपूरितभांडस्य बाह्ये शैत्यं तत् जलं न ॥

५३) जलपूर्णकुंभस्य बहिर्भागस्पर्शनेनोपलभ्यमानं यत् शैत्यं अस्ति तत् तावत् जलं न भवति द्रवत्वानुपलंभात् ॥

५४ किं तर्हि तदित्यत आह—

५५] किंतु नीरगुणः ॥

५६ नीरगुणत्वं कथमवगम्यते इत्यत आह—

५७] तेन नीरसत्ता अनुमीयते ॥

५८) विमतं घटे उपलभ्यमानं शैत्यं जलजन्यं भवितुमर्हति। शैत्यत्वात्। जले उपलभ्यमानशैत्यवदिति ॥ ९७ ॥

४७] "मैं हूं" इस अहंकारके समानपनैकरि कहिये सूक्ष्मपनैकरि आच्छादित होनैतैं यह मुख्यनिजानंद नहीं है ॥

४८) "मैं देवदत्त हूं" इत्यादिकविशेषसैं रहित औ "मैं हूं" इस रूपवाले अहंकारके सामान्यकरि आवृत होनैतैं। यह उदासीनकालमैं प्रतीयमान मुख्यनिजानंद नहीं है। यह अर्थ है ॥

४९ तब तिस उदासीनदशामैं प्रतीयमान सुखकूं कौनरूपकरि युक्तता है? तहां कहैहैं:—

५०] किंतु यह तिस निजानंदकी वासना है ॥ ९६ ॥

॥ ९ ॥ मुख्यानंदतैं भिन्न वासनानंदके सद्भावमैं दृष्टांत ॥

५१ मुख्यआनंदतैं भिन्न वासनानंदके सद्भावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

५२] जलपूरितघटके बाहिर जो शीतलता है। सो जल नहीं है।

५३) जलकरि पूर्ण कुंभके बाहिरभागके स्पर्शकरि प्रतीयमान जो शीतलता है। सो प्रथम जल नहीं होवैहै। चूर्णके पिंड बांधनैकी हेतुतारूप द्रवताकी अप्रतीतितैं ॥

५४ तब सो शीतलपना क्या है? तहां कहैहैं:—

५५] किंतु सो जलका गुण है ॥

५६ शीतलता जलका गुण है। यह कैसैं जानियेहै? तहां कहैहैं:—

५७] तिस शीतलतारूप हेतुकरि जलकी सत्ता नाम घटविषै सद्भाव अनुमानसैं जानियेहै ॥

५८) विवादका विषय जो घटविषै प्रतीयमान शीतलपना। सो जलसैं जन्य होनैकूं योग्य है। शीतलपनैके होनैतैं। जलविषै प्रतीयमान शीतलपनैकी न्यांई ॥ यह अनुमान है ॥ ९७ ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२४०

यावद्यावदहंकारो विस्मृतोऽभ्यासयोगतः ।
तावत्तावत्सूक्ष्मदृष्टेर्निजानंदोऽनुमीयते ॥ ९८ ॥

टीकांकः ४४५९ टिप्पणांकः ७६९

५९ भवत्वेवं नीरानुमापकत्वं शैत्यस्य । प्रकृते किमायातमित्याशंक्य तद्वद्वासनानंदस्यापि मुख्यानंदानुमापकत्वमायातमित्याह (यावदिति)—

६०] अभ्यासयोगतः यावत् यावत् अहंकारः विस्मृतः । तावत् तावत् सूक्ष्मदृष्टेः निजानंदः अनुमीयते ॥

६१) अभ्यासयोगतः "ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छांत आत्मनि" इतिश्रुत्यभिहितनिरोधसमाध्यभ्यासयोगेन । यावद्यावत् अहमादिवृत्तिविलयवशात् चित्तस्य सूक्ष्मता जायते । तावत्तावत् निजानंदाभिव्यक्तिः भवति । इति अनुमीयते ॥ अयमत्र प्रयोगः । अहंकारसंकोचविशेषविशिष्टक्षणेषु द्वितीयादिक्षणः पक्षः स पूर्वस्मात् क्षणादधिकनिजानंदाविर्भाववान् अहंकारसंकोचविशेषयुक्तकालत्वादहंकारसंकोचयुक्ताद्यक्षणवदिति ॥ ९८ ॥

॥ १०॥ वासनानंदकूं मुख्यानंदकी अनुमापकता ॥

५९ ऐसैं शीतलताकूं जलके अनुमानकी हेतुता होहु । तिसकरि प्रकृतवासनानंदविषै क्या आया? यह आशंकाकरि तिस शीतलताकी न्याई वासनानंदकूं बी मुख्यआनंदके अनुमानकी हेतुता प्राप्त भई । ऐसैं कहैहैं:—

६०] अभ्यासके योगतैं जितना जितना अहंकारका विस्मरण होवै। तितना तितना सूक्ष्मदृष्टिवाले पुरुषकूं निजानंदका अनुमान होवैहै ॥

६१) अभ्यासके योगतैं कहिये "ज्ञानकूं महत्‌आत्माविषै लय करै औ तिस महत्‌आत्माकूं शांतआत्माविषै लय करै"। इस श्रुतिकरि कथनकिये निरोधसमाधिके अभ्यासके योगकरि जितनी जितनी अहंआदिकवृत्तिनके विलयके वशतैं चित्तकी सूक्ष्मता होवैहै। तितनी तितनी निजानंदकी अभिव्यक्ति नाम आविर्भाव होवैहै। ऐसैं अनुमान करियेहै ॥ इहां यह अनुमान है:— अहंकारके संकोचकी विलक्षणताकरि युक्त क्षणनविषै द्वितीयआदिकक्षणरूप जो पक्ष है । सो पूर्वके क्षणतैं अधिक निजानंदके आविर्भाववाला है । अहंकारके संकोचकी विलक्षणताकरि युक्त कालरूप होनैतैं । अहंकारके संकोचकरि युक्त प्रथमक्षणकी न्याई ॥ ९८ ॥

६९ इस श्रुतिका यह अर्थ है:—
(१) प्राज्ञ जो पंडितपुरुष सो वाक्‌इंद्रियकरी उपलक्षित सर्वइंद्रियनकूं तिस तिस विषयसहित मनविषै विलय करै। औ
(२) प्रपंचके कारण तिस मनकूं बी "अहं" इस रूपवाली बुद्धिरूप ज्ञानात्माविषै लय करै । औ
(३) तिस अहंरूप बुद्धिरूप ज्ञानकूं महत्‌आत्मा जो महत्तत्त्व तिसविषै लय करै । औ
(४) तिस महत्तत्त्वकूं अव्याकृतविषै लय करै। औ
(५) तिस अव्याकृतकूं शांतआत्मा जो सर्वप्रपंचके उपशमवाला निर्विशेषपरब्रह्म तिसविषै लय करै ॥

टीकांक: ४४६२ टिप्पणांक: ॐ

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२४१ १२४२

सर्वात्मना विस्मृतः सन्सूक्ष्मतां परमां व्रजेत् ।
अलीनत्वान्न निद्रैषा ततो देहोऽपि नो पतेत् ॥९९॥
न द्वैतं भासते नापि निद्रा तत्रास्ति यत्सुखम् ।
स ब्रह्मानंद इत्याह भगवानर्जुनं प्रति ॥ १०० ॥

६२ बुद्धिसौक्ष्म्यस्य कोऽवधिरित्याकांक्षायां साक्षात्कारोऽवधिरित्याह—

६३] **सर्वात्मना विस्मृतः सन् परमां सूक्ष्मतां व्रजेत् ॥**

६४ तर्हि सा निद्रैव स्यादित्यत आह—

६५] **अलीनत्वात् एषा निद्रा न ॥**

६६) सर्ववृत्तिविलयेऽप्यंतःकरणस्वरूपविलयाभावात् न इयं निद्रा "बुद्धेः कारणात्मनावस्थानं सुषुप्तिः" इत्याचार्यैरुक्तत्वादित्यर्थः ॥

६७ अंतःकरणस्वरूपविलयाभावे लिंगमाह—

६८] **ततः देहः अपि नो पतेत् ॥**

६९) यत्र सुषुप्त्यादावहंकारविलयस्तत्र देहपातो दृष्टः । इह तु तदभावादविलीन इति गम्यते ॥ ९९ ॥

७० फलितमाह (नेति)—

७१] **द्वैतं न भासते । निद्रा अपि न । तत्र यत् सुखं अस्ति । सः ब्रह्मानंदः ॥**

॥ ११ ॥ बुद्धिके सूक्ष्मताकी अवधि (साक्षात्कार) ॥

६२ बुद्धिके सूक्ष्मताका कौन अवधि है? इस आकांक्षाविषै सर्वअनात्माकारवृत्तिनके निरोध हुये ब्रह्माकार भये अंतःकरणविषै अहंप्रत्ययरूप साक्षात्कार अवधि है। ऐसैं कहैहैं:—

६३] **सर्वओरतैं विस्मरण भया अहंकार परमसूक्ष्मताकूं पावताहै ॥**

६४ तब सो अहंकारकी सूक्ष्मता निद्राहीं होवैगी। तहां कहैहैं:—

६५] **अलीन होनैतैं यह निद्रा नहीं है ॥**

६६) सर्ववृत्तिनके विलय हुये बी अंतःकरणके स्वरूपके विलयके अभावतैं। यह अहंकारकी सूक्ष्मता निद्रा नहीं है । काहेतैं "बुद्धिका अज्ञानमय कारणरूपसैं अवस्थान सुषुप्ति कहियेहै" ऐसैं आचार्योंनै कथन कियाहोनैतैं। यह अर्थ है ॥

६७ उक्तअवस्थाविषै अंतःकरणके स्वरूपके विलयका अभाव है । तिसविषै लिंग जो हेतु ताकूं कहैहैं:—

६८] **तातैं देह बी पडता नहीं ॥**

६९) जहां सुषुप्तिआदिकविषै अहंकारका विलय होवैहै। तहां देहका पात कहिये भूमिविषै पतन देख्याहै औ इहां तौ तिस पतनके अभावतैं अहंकार विलीन भया नहीं। किंतु मूलअंतःकरणरूपकरि स्थित है । ऐसैं जानियेहै ॥ ९९ ॥

॥ १२ ॥ फलितअर्थ (ब्रह्मानंद)का कथन ॥

७० फलितकूं कहैहैं:—

७१] **जहां द्वैत नहीं भासताहै औ निद्रा बी नहीं है तहां जो सुख है। सो ब्रह्मानंद है ॥**

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२४३	शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्‌१०१	टीकांकः ४४७२ टिप्पणांकः ॐ

७२) यस्मिन्काले द्वैतभानं नास्ति । निद्रापि न आगच्छति । तस्मिन्काले उपलभ्यमानं यत्सुखमस्ति स ब्रह्मानंद इत्यर्थः ॥

७३ "अयं ब्रह्मानंदः" इति कुतोऽवगतमित्याशंक्य कृष्णवाक्यादित्याह—

७४] इति भगवान् अर्जुनं प्रति आह ॥

ॐ ७४) गीतायां षष्ठाध्याय इति शेषः१००

७५ तत्र कैः श्लोकैरुक्तवानित्याशंक्य तान् श्लोकान् पठत्यर्थक्रमानुसारेण (शनैरिति)—

७६] धृतिगृहीतया बुद्ध्या शनैः शनैः उपरमेत् ॥

ॐ ७६) अयमर्थः। धृतिगृहीतया धैर्ययुक्तया । बुद्ध्या साधनभूतया । शनैः शनैः न सहसा । उपरमेत् मनउपरतिं कुर्यात् ॥

७७ कियत्पर्यंतमित्यत आह (आत्मेति)–

७८] मनः आत्मसंस्थं कृत्वा किंचित् अपि न चिंतयेत् ॥

७९) मन आत्मसंस्थं आत्मनि संस्था सम्यक्स्थितिः "आत्मैवेदं सर्वं न ततोऽन्यत् किंचिदस्ति" इत्येवंरूपा यस्य तदात्मसंस्थं । तथाविधं कृत्वा किंचिदपि न चिंतयेत् एष योगस्य परमोऽवधिः ॥ १०१ ॥

---

७२) जिस कालविषै द्वैत जो त्रिपुटी ताका भान नहीं है औ निद्रा बी नहीं आवतीहै । तिस कालविषै प्रतीयमान जो सुख है सो ब्रह्मानंद है । यह अर्थ है ॥

७३ ननु "यह ब्रह्मानंद है" ऐसैं तुमनैं काहेतें जान्याहै? यह आशंकाकरि श्रीकृष्णके वाक्यतें जान्याहै । ऐसैं कहैहैं:—

७४] ऐसैं भगवान् । अर्जुनके प्रति कहतेभये ॥

ॐ ७४) गीताके षष्ठअध्यायविषै । यह शेष है ॥ १०० ॥

॥ १३ ॥ श्लोक १०० उक्त आनंदकी ब्रह्मानंदरूपतामैं गीतावाक्य ॥

७५ तहां किन श्लोकनकरि भगवान् कहतेभये? यह आशंकाकरि तिन गीताके षष्ठअध्यायगत श्लोकनकूं अर्थके क्रमअनुसारकरि पठन करैहैं:—

७६] धैर्यसैं ग्रहण करी बुद्धिकरि शनैः शनैः उपरामकूं पावै ॥

ॐ ७६) इहां यह अर्थ है:—धैर्ययुक्त साधनरूप बुद्धिकरि धीरेसैं धीरेसैं उपरामकूं पावै कहिये मनकी उपरतिकूं करै ॥

७७ कितनै कालपर्यंत मनकी उपरतिकूं करै? तहां कहैहैं:—

७८] मनकूं आत्माविषै स्थितकरिके कछु बी चिंतन करै नहीं ॥

७९) आत्माविषै भईहै संस्था कहिये "आत्माहीं यह सर्व है । तिसतैं अन्य कछु नहीं है" इस आकारवाली भईहै सम्यक्स्थिति जिसकी ऐसा जो मन । सो आत्मसंस्थ नाम आत्माविषै स्थित कहियेहै । तिस प्रकारका मनकूं करीके किंचित् बी अनात्मवस्तुकूं चिंतन करै नहीं । यह योगका परमअवधि है ॥ १०१ ॥

टीकांक: ४४८० टिप्पणांक: ॐ	यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥१०२॥ प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् । उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ १०३ ॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२४४ १२४५

८० एतत्संपादने प्रवृत्तो योगी प्रथमं किं कुर्यादित्यत आह (यत इति)—

८१] **चंचलं अस्थिरं मनः यतःयतः निश्चरति । ततः ततः नियम्य एतत् आत्मनि एव वशं नयेत् ॥**

८२) **चंचलं** स्वभावदोषात् अत एव **अस्थिरं** एकत्र विषयेऽनियतं । एवंविधं **मनः** यदा यदा **यतो यतो** यस्माद्यस्माच्छब्दादेर्निमित्तात् । **निश्चरति** निर्गच्छति। **ततस्ततः** तस्मात्तस्माच्छब्दादेः सकाशात् । **नियम्य** तेषां शब्दादीनां मिथ्यात्वादिदोषदर्शनेनाभासीकृत्य वैराग्यभावनापूर्वकं निरुध्य । **एतत् मन आत्मन्येव वशं नयेत्** आत्मवश्यतामापादयेत् । एवं योगमभ्यसतोऽभ्यासबलादात्मन्येव मनः प्रशाम्यति ॥ १०२ ॥

८३ मनःप्रशांतौ किं भवतीत्यत आह (प्रशांतेति)—

८४] **शांतरजसं प्रशांतमनसं ब्रह्मभूतं अकल्मषं एनं योगिनं उत्तमं सुखं उपैति हि ॥**

८५) **शांतरजसं** प्रक्षीणमोहादिक्लेशरजसं । अत एव **प्रशांतमनसं** प्रकर्षेण अत्यंतं शांतं विक्षेपशून्यं मनो यस्य तं । **ब्रह्मभूतं** "ब्रह्मैवेदं सर्वं" इति निश्चयवत्तया

---

८० इस योगकी परमअवधिके संपादनविषै प्रवर्त्त भया जो योगी । सो प्रथम क्या साधन करै ? तहां कहैहैंः—

८१] **चंचल औ अस्थिर जो मन है । सो जिस जिस निमित्ततैं गमन करता है । तिस तिस निमित्ततैं रोधिके इस मनकूं आत्माविषैहीं वश करै ॥**

८२) स्वभावके दोषतैं चंचल औ याहीतैं अस्थिर कहिये एकविषयविषै नियमसैं रहित इसप्रकारका जो मन है। सो जब जब जिसी जिसी शब्दादिरूप निमित्ततैं बाहिर जाताहै। तब तब तिस तिस शब्दादिकतैं नियमनकरिके कहिये तिन शब्दादिकनके मिथ्यापनैआदिकदोषके देखनैकरि आभासरूपकरिके वैराग्यकी भावनापूर्वक निरोधकरिके । इस मनकूं आत्माविषैहीं वश करै कहिये आत्माविषै वश होनैकी योग्यताकूं संपादन करै । ऐसैं योगकूं अभ्यास करनैहारे पुरुषका मन अभ्यासके बलतैं आत्माविषैहीं अतिशयशांतिकूं पावताहै ॥ १०२ ॥

८३ मनकी शांतिके हुये क्या फल होवैहै? तहां कहैहैंः—

८४] **शांत भयाहै रज जिसका औ शांत भयाहै मन जिसका औ ब्रह्मभूत औ अकल्मष नाम निर्मल इस योगीकूं उत्तमसुख प्राप्त होवैहै ॥**

८५) शांत नाम क्षीण भयाहै मोहआदिकक्लेशरूप मल जिसका औ याहीतैं अतिशयकरि शांत नाम विक्षेपरहित भयाहै मन जिसका औ ब्रह्मभूत कहिये "ब्रह्महीं यह सर्व है"

महानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२४६ १२४७	यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया । यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति १०४ सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् । वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः १०५	टीकांकः ४४८६ टिप्पणांकः ॐ

जीवन्मुक्तम् । अकल्मषं अधर्मादिवर्जितं । एनं योगिनं उत्तमं क्षयित्वसातिशयित्वादिदोषरहितं। सुखमुपैति उपगच्छति ॥ १०३॥

८६ संगृहीतार्थप्रपंचनपरान् तदीयानेव श्लोकानेव पठति (यत्रेति)—

८७] चित्तं यत्र योगसेवया निरुद्धं उपरमते च यत्र आत्मना आत्मानं पश्यन् आत्मनि एव तुष्यति ॥

८८) चित्तं यत्र यस्मिन्काले । योगसेवया योगानुष्ठानेन । सर्वस्माद्विषयात् निवारितं सत् उपरमते उपरतिं गच्छति । किंच यत्र यस्मिन्काले । आत्मना समाधिपरिशुद्धेनांतःकरणेन । आत्मानं परं चैतन्यं ज्योतिःस्वरूपं । पश्यन् उपलभ्यमानः । स्वस्मिन् एव तुष्यति तुष्टिं भजते । न विषयेष्वित्यर्थः ॥ १०४ ॥

८९] (सुखमिति)– यत्र स्थितः अयं आत्यंतिकं बुद्धिग्राह्यं अतींद्रियम् यत् तत् सुखं वेत्ति च तत्त्वतः न एव चलति॥

९०) किंच यत्र यस्मिन्काले । आत्मनि स्थितोऽयं योगी आत्यंतिकं अत्यंतमेव भवतीत्यात्यंतिकमनंतं । बुद्धिग्राह्यं. इंद्रियनिरपेक्षया बुद्ध्या गृह्यमाणं।इंद्रियगोचरातीतमविषयजनितं यत्तत् ईदृशं सुखं वेत्ति

इस निश्चयवाला होनेकरि जीवन्मुक्त औ अकल्मष नाम अधर्मआदिकसैं वर्जित ऐसा जो यह योगी है । तिसकूं उत्तम जो क्षय औ अतिशयसहितताआदिकदोषसैं रहित सो सुख प्राप्त होवैहै ॥ १०३ ॥

८६ संक्षेपसैं कथन किये अर्थके विस्तारपरायण तिसी षष्ठअध्यायके श्लोकनकूंहीं पठन करैहैः—

८७] चित्त जहां योगकी सेवाकरि निरोधकूं पायाहुया उपरतिकूं पावै औ जहां आत्माकरि आत्माकूं देखताहुया आत्माविषैहीं तुष्टिकूं पावताहै ।

८८) चित्त जो है । सो जिसकालविषै योगकी सेवा जो अनुष्ठान तिसकरि सर्वविषयनतैं निवारण कियाहुया उपरामकूं पावताहै । किंवा जिस कालविषै आत्मा जो समाधिसैं शुद्धभया अंतःकरण तिसकरि आत्मा जो परमचैतन्यज्योतिःस्वरूप ताकूं देखता कहिये अनुभव करताहुया । आत्माविषैहीं संतोषकूं भजताहै कहीये पावताहै। विषयनविषै नहीं । यह अर्थ है ॥ १०४ ॥

८९] औ जहां आत्माविषै स्थित भया यह योगी । आत्यंतिक औ बुद्धिग्राह्य औ अतींद्रिय जो सुख है। तिसकूं जानताहै औ जहां आत्माविषै स्थित भया योगी तत्त्वतैं चलता नहीं॥

९०) किंवा जिसकालमैं आत्माविषै स्थित भया यह योगी । आत्यंतिक कहिये अत्यंतहीं होवै ऐसे अनंत औ बुद्धिग्राह्य कहिये इंद्रियकी अपेक्षासैं रहित बुद्धिकरि ग्रहण किया औ अतींद्रिय नाम इंद्रियके विषयतैं

टीकांक: ४४९१ टिप्पणांक: ७७०	९१ यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः । यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते १०६ ९४ तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् । स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा १०७	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२४८ १२४९

अनुभवति । किं च आत्मनि स्थितोऽयं तत्त्वतः तस्मादात्मस्वरूपात् । न चलति न प्रच्यवते ॥ १०५ ॥

९१] (यमिति)– च यं लब्ध्वा अपरं लाभं ततः अधिकं न मन्यते । यस्मिन् स्थितः गुरुणा अपि दुःखेन न विचाल्यते ॥

९२) किं च यं आत्मानं । लब्ध्वा प्राप्य । परं लाभं लाभांतरं । ततोऽधिकं न मन्यते "आत्मलाभान्न परं विद्यते" इति स्मृतेः । किं च यस्मिन् आत्मतत्त्वे । स्थितो गुरुणा महता । अपि दुःखेन शस्त्राभिघातादिलक्षणेन । प्रह्लाद इव न विचाल्यते ॥ १०६ ॥

९३ इदानीमुपपादितं योगं निगमयति—

९४] तं दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितं विद्यात् ॥

९५) "शनैः शनैः" इत्यादिना यावद्भिर्विशेषणैः विशिष्ट आत्मावस्थाविशेषो यो योग उक्तः तं दुःखसंयोगवियोगं दुःखैः संयोगो दुःखसंयोगस्तेन वियोगस्तं । विपरीतलक्षणया योगसंज्ञितं योग इत्येवं संज्ञा यस्य इति तं योगसंज्ञितं विद्यात् जानीयात् ॥

भिन्न कहिये विषयसैं अजनित ऐसा जो सुख है । तिसकूं जानताहै नाम अनुभव करताहै ॥ किंवा आत्माविषै स्थित भया यह योगी । तत्त्वतैं नाम तिस आत्मस्वरूपतैं चलता नाम पतन होता नहीं ॥ १०५ ॥

९१] औ जिस आत्माकूं पायके अन्यलाभकूं तिसतैं अधिक नहीं मानताहै औ जिसविषै स्थित भया पुरुष । महत्दुःखसैं बी चलायमान होता नहीं ॥

९२) किंवा जिस आत्माकूं पायके अन्यलाभकूं तिस आत्मलाभतैं अधिक नहीं मानताहै । काहेतैं "आत्माके लाभतैं अन्य उत्कृष्टलाभ नहीं है" इस स्मृतितैं ॥ किंवा जिस आत्मतत्त्वविषै स्थित भया पुरुष । शस्त्रके प्रहारआदिकरूप महान्दुःखसैं बी प्रॅंल्हादकी न्याई चलायमान होता नहीं १०६

९३ अब १०१ वें श्लोकसैं उपपादन किये योगकूं सूचन करैहैं:—

९४] तिस उक्तयोगकूं दुःखके संयोगके वियोगरूप योगसंज्ञित कहिये योग नामवाला जानना ॥

९५) "धीरेसैं धीरेसैं" इन १०१ वें श्लोकसैं आदिलेके जितनै विशेषणनकरि युक्त आत्माकी अवस्थाविशेषरूप जो योग कह्या । तिसकूं दुःखसंयोगवियोग कहिये दुःखनसैं जो संयोगवाला तिससैं वियोगरूप विपरीतलक्षणासैं योगसंज्ञित कहिये योगनाम जानना ॥

---

७० जैसैं हिरण्यकशिपु नामक दैत्यपतिका पुत्र प्रल्हाद । पितासैं अनेकदुःखनकूं प्राप्त हुया बी अपनी निष्ठातैं चलायमान भया नहीं । ऐसैं आत्मतत्त्वविषै स्थिति जो निष्ठा । ताकूं पाया पुरुष अनेकमरणांतदुःखनकरि अपनी निष्ठा जो स्थिति तातैं चलायमान होता नहीं । यह अर्थ है ॥

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२५० १२५१	४५०० युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः । सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ १०८ ॥ ३ उत्सेक उदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैकबिंदुना । मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ॥ १०९ ॥	टीकांक: ४४९६ टिप्पणांक: ॐ

९६ एवंविधयोगानुष्ठाने किंचित्कर्तव्यताविशेषमाह—

९७] सः योगः निश्चयेन अनिर्विण्णचेतसा योक्तव्यः ॥

९८) स पूर्वोक्तो । योगो निश्चयेन अध्यवसायेन । अनिर्विण्णचेतसा निर्वेदरहितेन चित्तेन । योक्तव्यः अनुष्ठेयः १०७

९९ इदानीमुक्तमर्थमुपसंहरति (युंजन्निति)—

४५००] विगतकल्मषः योगी सदा आत्मानं एवं युंजन् सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यंतं सुखं अश्नुते ॥

१) विगतकल्मषः विगतपापो योगांतरायवर्जितः । योगी सदात्मानमेवं यथोक्तप्रकारेण । युंजन् अनुसंदधानः सुखेन अनायासेन । ब्रह्मसंस्पर्शं ब्रह्मणा संस्पर्शो यस्य सुखस्य तद्ब्रह्मसंस्पर्शं ब्रह्मस्वरूपभूतमिति यावत् । अत्यंतं अविनश्वरं निरतिशयं । सुखमश्नुते प्राप्नोति इत्यर्थः ॥ १०८ ॥

२ अनिर्वेदेन क्रियमाणो योगाभ्यासः फलपर्यंतो भवतीत्येतत् सदृष्टांतमाह (उत्सेक इति)—

३] कुशाग्रेण एकबिंदुना उदधेः उत्सेकः यद्वत् । तद्वत् मनसः निग्रहः अपरिखेदतः भवेत् ॥

---

९६ इसप्रकारके योगके अनुष्ठानविषै किंचित् कर्तव्यपनेके भेदकूं कहैहैं:—

९७] सो योग निश्चयकरि निर्वेदरहित चित्तसैं कर्त्तव्य है ॥

९८) सो पूर्वउक्तयोग निश्चयकरि योगाभ्यासविषै खेदसैं रहित चित्तकरि अनुष्ठान करनैकूं योग्य है ॥ १०७ ॥

९९ अब १०१ वें श्लोकउक्तअर्थकूं समाप्त करैहैं:—

४५००] विगतपाप जो योगी है । सो सदा आत्माकूं ऐसैं अनुसंधान करताहुया सुखसैं ब्रह्मके साथि संस्पर्शयुक्त अत्यंतसुखकूं पावताहै ॥

१) विगतपाप कहिये योगके विघ्नरूप अंतरायसैं रहित भया जो योगी । सो सदा आत्माकूं ऐसैं कहिये उक्तप्रकारकरि स्मरण करताहुया विनाश्रम ब्रह्मके साथि संस्पर्शवाले कहिये ब्रह्मस्वरूपभूत अत्यंत कहिये अनश्वर औ निरतिशयसुखकूं पावताहै । यह अर्थ है ॥ १०८ ॥

॥ १४ ॥ अखेदकरि किये योगाभ्यासके फलपर्यंत होनैमैं दृष्टांत ॥

२ अनिर्वेदकरि फलसहित प्रयत्नविषै खेदके अभावकरि किया जो योगाभ्यास । सो सफल होवैहै । यह अर्थ दृष्टांतसहित कहैहैं:—

३] जैसैं कुशाग्रसैं एकबिंदुकरि समुद्रका उत्सेक होवैहै । तैसैं मनका निग्रह खेदके अभावतैं होवैहै ॥

बृहद्रथस्य राजर्षेः शाकायन्यो मुनिः सुखम् ।
प्राह मैत्र्याख्यशाखायां समाध्युक्तिपुरःसरम् ११०

४) कुशाग्रेण उद्धृतेन एकेन बिंदुना क्रियमाण उदधेरुत्सेकः उद्धृत्य बहिः सेचनं । परिखेदाभावे सति यद्वत् कालांतरे भवेदेव । तद्वत् **मनसो निग्रहः** अपि श्रमराहित्येन क्रियमाणः कालांतरे सिद्ध्येत् । इदं च टिट्टिभोपाख्यानं मनसि निधायोक्तम् ॥ १०९ ॥

५ न केवलमयमर्थो गीतायामभिहितः किंतु मैत्रायणीयशाखायामपीत्याह (बृहद्रथस्येति)

६] मैत्राख्यशाखायां शाकायन्यः मुनिः बृहद्रथस्य राजर्षेः समाध्युक्तिपुरःसरं सुखं प्राह ॥

७) मैत्रायणीयनामके यजुःशाखाभेदे शाकायन्यनामा कश्चिदपिः स्वशिष्यत्वेनोपपन्नस्य बृहद्रथाख्यस्य राजर्षेः ब्रह्मसुखं समाध्यभिधानपूर्वकं यथा भवति तथोक्तवान् ॥ ११० ॥

४) दर्भके अग्रसैं निकासे एकबिंदुकरि किया जो समुद्रका उत्सेक कहिये निकासिके बाहिर फेंकना । सो खेदके अभाव हुये जैसैं कालांतरविषै होवैहीं है । तैसैं मनका निग्रह बी खेदकी रहितताकरि कियाहुया कालांतरविषै सिद्ध होवैहै । यह अर्थ टिट्टिभंके उपाख्यानकूं मनविषै धारिके कह्याहै ॥१०९॥

॥ १९ ॥ श्लोक १०० उक्त सुखमैं मैत्रायणीयशाखाप्रमाण ॥

५ यह अर्थ केवल गीताविषैहीं कह्याहै ऐसैं नहीं । किंतु मैत्रायणीयशाखाविषै बी कह्याहै । ऐसैं कहैहैं:—

६] मैत्रायणीयनामकशाखाविषै शाकायन्यनाममुनि बृहद्रथनामराजऋषिकूं समाधिके कथनपूर्वक ब्रह्मसुखकूं कहताभया ॥

७) मैत्रायणीयनामक किसी यजुर्वेदकी शाखाविषै शाकायन्यनामा कोईक ऋषि अपना शिष्य होनैंकरि प्राप्त भया जो बृहद्रथ नामा राजर्षि कहिये राजनविषै श्रेष्ठ । ताकूं समाधिके कथनपूर्वक जैसैं होवै तैसैं ब्रह्मसुख कहताभया ॥ ११० ॥

७१ जैसैं किसी टिट्टिभ नाम पक्षीके । तीरविषै स्थित अंडनकूं समुद्र लहरीकरि हरण करताभया । तब सो पक्षी "मैं समुद्रकूं शोषण करूंगा" यह निश्चयकरिके प्रवर्त्त हुया अपनी चंचुकरि एकएक जलके बिंदुकूं बाहीर फेंकताभया । तब बहुतबंधुवर्गरूप पक्षीयोनैं निवारण किया तौ बी हट्या नहीं । उलटा तिन सर्वपक्षिनकूं सहकारी करताभया ॥ ऊडनैं बैठनैंरूपकरि बहुतक्लेशकूं प्राप्त भये तिन सर्वपक्षीनकूं देखिके कृपालु जो नारदमुनि । सो तिनके समीप गरुडकूं भेजताभया । पीछे गरुडके पक्षनके वायुकरि शोषणकूं पावताहुया समुद्र भयकूं पायाहुया तिन अंडनकूं पक्षीके तांई देताभया ॥ ऐसैं अखेदकरि मनके निरोधरूप परमधर्मविषै प्रवर्त्तमान पुरुषकूं ईश्वर अनुग्रह करताहै । यह वार्त्ता जीवन्मुक्तिविवेकविषै श्रीविद्यारण्यस्वामीनैं लिखीहै ॥

यथा निरिंधनो वह्निः स्वयोनावुपशाम्यति ।
तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति ॥१११॥
स्वयोनावुपशांतस्य मनसः सत्यकामिनः ।
इंद्रियार्थविमूढस्यानृताः कर्मवशानुगाः ॥११२॥

८ केन प्रकारेणोक्तवानित्याशंक्य तत्प्रतिपादकांस्तदीयान् मंत्रान्पठति (यथेति)—

९] निरिंधनः वह्निः स्वयोनौ उपशाम्यति यथा । तथा चित्तं वृत्तिक्षयात् स्वयोनौ उपशाम्यति ॥

१०) निरिंधनो दग्धकाष्ठो वह्निः स्वयोनौ स्वकारणे तेजोमात्रे । उपशाम्यति ज्वालादिरूपं विशेषाकारं परित्यज्य तेजोमात्ररूपे यथा अवतिष्ठते । तथा तेनैव प्रकारेण। चित्तं अंतःकरणमपि वृत्तिक्षयात् निरोधसमाध्यभ्यासेन राजसादिसकलवृत्तिनाशात् । स्वकारणे सत्त्वमात्रे उपशाम्यति सत्त्वमात्रावशेषं भवति । इत्यर्थः ॥ १११ ॥

११ ततः किमत आह (स्वयोनाविति)

१२] सत्यकामिनः स्वयोनौ उपशांतस्य इंद्रियार्थविमूढस्य मनसः कर्मवशानुगाः अनृताः ॥

१३) सत्ये आत्मनि विषये कामोऽस्यास्तीति सत्यकामी तस्यात एव स्वयोनावुपशांतस्य उपशांतत्वादेव इंद्रियार्थविमूढस्य इंद्रियार्थेषु विषयेषु शब्दादिषु । विमूढस्य विमुखस्य ज्ञानशून्यस्य । मनसः कर्मवशमनुगच्छंतीति

॥ १६ ॥ मैत्रायणीयशाखामैं कथनका प्रकार ॥

८ शाकायन्यऋषि किसप्रकारसैं कहताभया? यह आशंकाकरि तिस ब्रह्मसुखके प्रतिपादक तिस मैत्रायणीयशाखाके मंत्रनकूं पठन करैहैं:—

९] जैसैं इंधनरहित अग्नि अपनै कारणविषै उपशमकूं पावताहै । तैसैं वृत्तिनके क्षयतैं चित्त अपनै कारणविषै उपशमकूं पावताहै ॥

१०) इंधनरहित जो अग्नि है । सो अपनै तेजोमात्रकारणविषै उपशमकूं पावताहै । कहिये ज्वालाआदिकरूप विशेषआकारकूं परित्यागकरिके तेजोमात्ररूपविषै जैसैं स्थित होवैहै । तैसैं कहिये तिसीहीं प्रकारकरि अंतःकरण बी वृत्तिनके क्षयतैं कहिये निरोधरूप समाधिके अभ्यासकरि राजसआदिकसकलवृत्तिनके नाशतैं अपनैं कारण सत्वगुणमात्रविषै उपशमकूं पावताहै कहिये सत्वगुणमात्र अवशेष होवैहै । यह अर्थ है १११

॥१७॥ सत्वगुणमात्रमैं मनकी उपशांतिका फल ॥

११ तिस मनके कारणविषै लयतैं क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

१२] सत्यविषै कामवाला औ अपनै कारणविषै उपशांत औ इंद्रियनके अर्थनविषै विमूढ जो मन है । तिसकूं कर्मके वशतैं प्राप्त फल अनृत होवैहैं ॥

१३) सत्यआत्माविषै है इच्छा जिसकूं औ याहीतैं अपनै कारणविषै उपशांत औ ताहीतैं इंद्रियनके शब्दादिविषयरूप अर्थविषै विमूढ कहिये विमुख होनैकरि ज्ञान-

टीकांक: ४५१४ टिप्पणांक: ७७२	१५ चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत् । यच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यो गुह्यमेतत्सनातनम् ११२	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२५५

कर्मवशानुगाः ससाधनाः सुखादयः । अनृताः मायिकत्वज्ञानेन मिथ्याभूताः । स्युरित्यर्थः ॥ ११२ ॥

१४ ननु "चित्तोपशांतौ जगन्मिथ्या भवति" इत्येतदनुपपन्नं तदुपादानकत्वाभावात्तस्येत्याशंक्याह—

१५] चित्तं एव हि संसारः । तत् प्रयत्नेन शोधयेत् ॥

१६) यद्यपि स्वरूपेण चित्तोपादानकं जगन्न भवति तथापि तस्य भोग्यत्वं चित्तकारणम् एव । हि शब्देनात्र सर्वानुभवं प्रमाणयति । सुषुप्त्यादौ चित्तविलये भोगादर्शनादिति भावः ॥ यतश्चित्तात्मकः संसारः अतस्तत् चित्तमेव प्रयत्नेन अभ्यासवैराग्यादिलक्षणेन । शोधयेत् रजस्तमोराहित्येनैकाग्र्यं कुर्यात् ॥

१७ नन्वात्मनो विमुक्तये आत्मैव शोधनीयो न चित्तमित्याशंक्याह (यच्चित्त इति)—

१८] मर्त्यः यच्चित्तः तन्मयः । एतत् सनातनं गुह्यम् ॥

१९) मर्त्यः इत्युपलक्षणं देहिमात्रस्य ।

रहित ऐसा जो मन है । ताकूं कर्मके वशतैं प्राप्त भये जे शब्दादिनिमित्तरूप साधनसहित सुखादिक । ते अनृत कहिये मायिकपनैके ज्ञानकरि मिथ्यारूप होवैहैं । यह अर्थ है ॥ ११२ ॥

॥ १८ ॥ संसारकूं चित्तरूपता ॥

१४ ननु "चित्तकी उपशांतिके हुये जगत् मिथ्या होवैहै" यह कथन अयुक्त है । काहेतैं तिस जगत्कूं चित्तरूप उपादानवाला होनैके अभावतैं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१५] जातैं चित्तहीं संसार है । यातैं ताकूं प्रयत्नसैं शुद्ध करना ॥

१६) यद्यपि स्वरूपकरि चित्तरूप उपादानवाला जगत् नहीं होवैहै । तथापि तिस जगत्का भोग्यपना चित्तरूप कारणवालाहीं है ॥ इहां "जातैं" इस पर्यायवाले "हि" शब्दकरि सर्वजनके अनुभवकूं प्रमाण करैहैं । काहेतैं सुषुप्तिआदिकविषै चित्तके विलय हुये भोगके अदर्शनतैं । यह भाव है ॥ जातैं चित्तरूप संसार है । यातैं तिस चित्तकूंहीं अभ्यासवैराग्यआदिकरूप प्रयत्नसैं शोधन करना कहिये रजतमगुणसैं रहितताकरि एकाग्र करना ॥

१७ ननु आत्माकी मुक्तिअर्थ आत्माहीं शोधन करनैयोग्य है चित्त नहीं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१८] जो मनुष्य जिसविषै चित्तवाला होवैहै । सो तन्मय है । यह सनातनगुह्य है ॥

१९) मूलविषै जो मनुष्यका वाचि मर्त्य-

---

७२ इहां यह रहस्य है:— जैसैं शुद्धजल जिस जिस नीलपीतादिरंगके साथि संगकूं पावताहै । तिस तिस रूपवाला होवैहै । तैसैं पंचभूतनके सत्वअंशका कार्य होनैतैं शुद्ध जो मन है । सो जैसी जैसी भावनाकूं पावताहै अभ्यासके बलतैं तैसैं तैसैं आकारवाला होवैहै । यातैं

(१) "मैं जीव हूं" इस भावनाके बलतैं मन जीवभावकूं प्राप्त होवैहै । औ

महानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२५६

[21] चित्तस्य हि प्रसादेन हंति कर्म शुभाशुभम् ।
[24] प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमक्षय्यमश्नुते ११४

टीकांक: ४५२० टिप्पणांक: ॐ

यो देही यच्चित्तः यस्मिन्पुत्रादौ विषये चित्तवान् भवति । सः तन्मयः तदात्मक एव तत्साकल्यवैकल्ययोरात्मन्येव समारोपणात् । एतत्सनातनं इदमनादिसिद्धं । गुह्यं रहस्यं । एतदुक्तं भवति । स्वभावतः शुद्धस्यात्मनो यतश्चित्तसंपर्कादेव संसारित्वं "ध्यायतीव लेलायतीव" इति श्रुतेः । अतश्चित्तस्य शोधनेन आत्मनः संसारनिवृत्तिरिति ॥ ११३ ॥

२० नन्वनादिभवपरंपरोपार्जितसुखदुःखप्रदपुण्यपापकर्मणोः सतोश्चित्तशोधनेनापि कथमात्मनः संसारनिवृत्तिर्भविष्यतीत्याशंक्य

पद है । सो देहधारीमात्रका उपलक्षण है । यातें जो देही जिस पुत्रादिकविषयविषै चित्तवाला होवैहै सो तिसरूपहीं है । काहेतें तिन पुत्रादिकनकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके आपविषैहीं सम्यक्‌आरोपण करनैतें ॥ यह सनातन नाम अनादिसिद्ध गुह्य नाम रहस्य है ॥ इहां यह कथन कियाहोवैहै:– स्वभावतें शुद्धरूप आत्माकूं जातें चित्तके संबंधतैंहीं संसारीपना है । "ध्यान करतेकी न्यांई औ लीला करतेकी न्यांई चित्तके संगकरि आत्मा होवैहै" इस श्रुतितें ॥ यातें चित्तके शोधनकरि आत्माकूं संसारकी निवृत्ति होवैहै ॥ ११३ ॥

॥ १९ ॥ चित्तके ब्रह्मानुसंधानरूप प्रसादतैं संसारकी निवृत्तिका संभव ॥

२० ननु अनादिकालकी जन्मपरंपराकरि संपादन किये सुखदुःखके देनैहारे पुण्यपापकर्मके होते । चित्तके शोधनकरिहीं कैसैं आत्माकूं संसारकी निवृत्ति होवैगी ? यह

(२) "मैं ईश्वर हूं" इस भावनाके बलतैं मन ईश्वरभावकूं प्राप्त होवैहै । औ

(३) "मैं ब्रह्माआदिक हूं" इस भावनाके बलतैं मन ब्रह्माआदिकभावकूं प्राप्त होवैहै । औ

(४) "मैं देहादिक हूं" इस भावनाके बलतैं मन देहादिकभावकूं प्राप्त होवैहै । औ

(५) "मैं दास हूं" इस भावनाके बलतैं मन दासभावकूं प्राप्त होवैहै । औ

(६) "मैं स्वर्गआदिकलोककूं प्राप्त होउं" इस भावनाके बलतैं स्वर्गादिककी प्राप्तिके हेतु साधनविषै तत्पर हुया मन । स्वर्गादिकलोककूं प्राप्त होवैहै । औ

(७) "सर्व शून्य है" इस भावनाके बलतैं मन वृक्षपाषाणादिक शून्यभावकूं प्राप्त होवैहै । औ

(८) "मैं प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्म हूं" इस भावनाके बलतैं मन ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै ॥

इसरीतिसैं जिस जिस मतके अनुसार दृढभावनाकरि जिस जिस पदार्थविषै मन तत्पर होवैहै । तिस तिस भावकूं प्राप्त होवैहै । परंतु तिनमैं इतना भेद है:—

(१) ब्रह्मसैं भिन्न अनात्मवस्तुकी भावनाकरि जिस जिस भावकी प्राप्ति होवैहै । सो सो भाव दीपककी प्रभाविषै मणिबुद्धि औ शुक्तिविषै रजतबुद्धि औ रज्जुविषै सर्पबुद्धि औ साक्षीविषै स्वप्नबुद्धि औ तिनके विषयनकी न्यांई विसंवादीभ्रमरूप है ॥ औ

(२) ब्रह्मसाक्षात्कारके अभाव हुये गुरुशास्त्रद्वारा परोक्षपनेकरि जानेहुये ब्रह्मविषै "मैं ब्रह्म हूं" इस आकारवाली निर्गुणउपासनारूप दृढभावनाके बलतैं जो ध्यानीपुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति होवैहै । सो मणिकी प्रभाविषै मणिबुद्धि औ तिसके विषयकी न्यांई संवादीभ्रमरूप है ॥ औ

(३) गुरुमुखद्वारा श्रवण किये महावाक्यसैं जनित "मैं ब्रह्म हूं" इस मनके निश्चयरूप तत्वसाक्षात्कारतैं जो ब्रह्मभावकी प्राप्ति होवैहै । सो शुक्तिआदिकके ज्ञानतैं प्राप्त शुक्तिआदिककी न्यांई पारमार्थिकरूप है ॥

इस अभिप्रायकरिहीं श्रुतिनैं कह्याहै:–"जैसैं निश्चयवाला पुरुष इसलोकविषै होवैहै । तैसा इहांतैं मरणकूं पायके होवैहै" । इत्यादिकअनेकश्रुतिआदिकनके वचन इस अर्थविषै प्रमाण हैं । यातैं यह सनातनगुह्य है ॥

टीकांकः ४५२१ टिप्पणांकः ॐ	समासक्तं यथा चित्तं जंतोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्येत बंधनात् ११५	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२५७

चित्तप्रसादोपलक्षितब्रह्मानुसंधानेन सकलकर्मक्षयोपपत्तेः मैवमिति परिहरति—

२१] **चित्तस्य हि प्रसादेन शुभाशुभं कर्म हंति ॥**

२२) हिशब्देन "यद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयंते॥" "उपपातकेषु सर्वेषु पातकेषु महत्सु च। प्रविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत्" इत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रसिद्धिं द्योतयति ॥

२३ ततः किमित्यत आह—

२४] **प्रसन्नात्मा आत्मनि स्थित्वा अक्षय्यं सुखं अश्नुते ॥**

२५) **प्रसन्नात्मा** चेतो यस्य स तथोक्तः। आत्मनि स्वस्वरूपभूते अद्वितीयानंदलक्षणे ब्रह्मणि। स्थित्वा "तदेवाहं" इति निश्चयेन। दृश्यजातं परिहृत्य चिन्मात्ररूपेणावस्थायाः अक्षय्यम् अविनाशि। यत् सुखं स्वरूपभूतं। तत् अश्नुते ॥ ११४ ॥

२६ "प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा" इत्युक्तमेवार्थं दृष्टांतोक्तिपुरःसरं द्रढयति (समासक्तमिति)—

२७] **जंतोः चित्तं विषयगोचरे**

आशंकाकरि चित्तके प्रसादरूप शोधनकरि उपलक्षित ब्रह्मके अनुसंधानकरि सकलकर्मनके क्षयके संभवतैं चित्तके शोधनकरि बी कैसैं आत्माकूं संसारकी निवृत्ति होवैगी। यह शंका बनै नहीं। ऐसैं परिहार करैहैं:—

२१] **चित्तकेहीं प्रसादकरि नाम एकाग्रताकरि शुभअशुभरूप कर्मकूं नाश करताहै ॥**

२२) मूलविषै जो हिशब्द है। तिसकरि "जैसैं अग्निविषै गेऱ्या इषीका इस नामवाले किसी तृणका तूल नाम कापशि नाश होवैहै।ऐसैं निश्चयकरि इस ज्ञानीके सर्वपाप नाश होवैहैं" औ "सर्व छोटेवडेउपपातक जे सामान्यपाप औ महान्पातक जे वडेदुष्टाचरण तिनविषै प्रवेश करीके कहिये तिनके होते बी रात्रिके पीछलेप्रहरविषै बैठिके ब्रह्मके ध्यानकूं सम्यक् आचरै" इत्यादिश्रुति औ स्मृतिकी प्रसिद्धिकूं जनावतेहैं ॥

२३ तिस चित्तके प्रसादतैं क्या फल होवैहै? तहां कहैहैं:—

२४] **प्रसन्नआत्मावाला पुरुष आत्माविषै स्थित होयके अक्षयसुखकूं पावताहै ॥**

२५) प्रसन्न है आत्मा कहिये चित्त जिसका। ऐसा जो पुरुष सो आत्माविषै कहिये स्वस्वरूपभूत अद्वितीयआनंदरूप ब्रह्मविषै स्थित होयके कहिये "सोई मैं हूं" इस निश्चयकरि दृश्यमात्रकूं परित्यागकरिके चेतनमात्ररूपसैं स्थितिकरिके अक्षय कहिये अविनाशि ऐसा जो स्वरूपभूत सुख है। तिसकूं पावताहै ॥ ११४ ॥

॥ २० ॥ श्लोक ११४ उक्त अर्थकी दृष्टांतसैं दृढता ॥

२६ "प्रसन्नआत्मावाला पुरुष आत्माविषै स्थित होयके" इस ११४ वें श्लोकउक्त अर्थकूंहीं दृष्टांतके कथनपूर्वक दृढ करैहैं:—

२७] **जीवका चित्त जैसैं विषयरूप**

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांकः १२५८ १२५९	³⁰मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च । ³²अशुद्धं कामसंपर्काच्छुद्धं कामविवर्जितम्॥११६॥ ³⁵मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः । बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्११७	टीकांकः ४५२८ टिप्पणांकः ॐ

यथा समासक्तं । तत् ब्रह्मणि यदि एवं स्यात् कः बंधनात् न मुच्येत ॥

२८) प्राणिनः चित्तं विपय एव गोचरः विषयगोचरः इंद्रियप्रचारभूमिस्तस्मिन् यथा स्वभावतः सम्यगासक्तं भवति। तत् एवं चित्तं ब्रह्मणि प्रत्यगभिन्ने परमात्मनि। यद्येवं आसक्तं स्यात् तर्हि कः संसारात् न मुच्येत सर्वोऽपि मुच्येतैवेत्यर्थः ॥ ११५ ॥

२९ उक्तार्थदार्ढ्याय मनसोऽवांतरभेद-माह (मन इति)—

३०] शुद्धं च अशुद्धं एव च मनः हि द्विविधं प्रोक्तम् ॥

३१ तत्र कारणमाह (अशुद्धमिति)—

३२] कामसंपर्कात् अशुद्धं । काम-विवर्जितं शुद्धम् ॥

३३) कामः इत्युपलक्षणं क्रोधादेरपि ११६

३४ द्विविधस्य तस्यैव क्रमेण संसार-मोक्षयोः हेतुतां दर्शयति (मन एवेति)—

३५] मनुष्याणां बंधमोक्षयोः कारणं मनः एव । विषयासक्तं बंधाय निर्विषयं मुक्त्यै स्मृतम् ॥११७॥

गोचरविषै सम्यक्आसक्त है । सो चित्त ब्रह्मविषै जब ऐसैं होवै तब कौन पुरुष बंधनतैं नहीं छूटैगा ?

२८) प्राणीका चित्त जैसैं विषयरूप इंद्रियके प्रवृत्तिकी भूमिविषै स्वभावतैं सम्यक्-आसक्त होवैहै । सोई चित्त ब्रह्म जो प्रत्यक्-अभिन्नपरमात्मा तिसविषै जब ऐसैं आसक्त होवै । तब कौन पुरुष संसारतैं नहीं छूटैगा ? सर्व बी छूटेगाहीं । यह अर्थ है ॥ ११५ ॥

॥ २१ ॥ अशुद्धशुद्धभेदकरि मनकी द्विविधता ॥

२९ श्लोक ११५ उक्त अर्थकी दृढता करनैकेलिये मनके बीचके भेदकूं कहैहैं:—

३०] शुद्ध औ अशुद्धभेदकरि मन दोप्रकारका कहाहै ॥

३१ तिस दोप्रकार होनैविषै कारण कहैहैं:—

३२] कामनाके संबंधतैं मन अशुद्ध है औ कामवर्जित मन शुद्ध है ॥

३३) इहां कह्या जो काम । सो क्रोध-आदिकका बी उपलक्षण है ॥ ११६ ॥

॥ २२ ॥ तिसी दोप्रकारके मनकूं क्रमतैं संसार औ मोक्षकी कारणता ॥

३४ दोनूंप्रकारके तिस मनकूंहीं क्रमकरि संसार औ मोक्षकी हेतुता श्रुतिकरि दिखावैहैं:—

३५] मनुष्यनकूं बंध औ मोक्षका कारण मनहीं है ॥ विषयनविषै आसक्त भया जो मन । सो बंधअर्थ है औ निर्विषय भया जो मन सो मुक्तिअर्थ कहाहै ॥ ११७ ॥

टीकांक: ४५३६ टिप्पणांक: ॐ	³⁷समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदंतःकरणेन गृह्यते ॥ ११८ ॥ ³⁹यद्यप्यसौ चिरं कालं समाधिर्दुर्लभो नृणाम्। तथापि क्षणिको ब्रह्मानंदं निश्चाययत्यसौ ॥११९॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥११॥ श्लोकांक: १२६० १२६१

३६ "प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमक्षय्यमश्नुते" इत्युक्तमेवार्थं श्रुतिः स्वयमेव प्रपंचयति (समाधीति)—

३७] आत्मनि निवेशितस्य समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसः यत् सुखं भवेत्। तदा गिरा वर्णयितुं न शक्यते। स्वयं तत् अंतःकरणेन गृह्यते ॥

३८) आत्मनि प्रत्यक्स्वरूपे। निवेशितस्य समाधिनिर्धूतमलस्य समाधिना प्रत्यक्ब्रह्मणोरैक्यगोचरप्रत्ययावृत्त्या। निर्धूतमलस्य निःशेषेण निवारितरजस्तमोमलस्य। चेतसः तस्मिन् समाधौ यत्सुखं उत्पद्यते। तदा समाधावुत्पन्नं तत् सुखं गिरा वाचा। वर्णयितुं न शक्यते अलौकिकसुखत्वादित्यर्थः। किंतु स्वयं तत् स्वरूपभूतं सुखं अंतःकरणेन एव गृह्यते ॥ ११८ ॥

३९ नन्वस्यैव समाधेर्दुर्लभत्वात् कथमनेन ब्रह्मानंदनिश्चयसंभव इत्याशंक्याह—

॥ २३ ॥ प्रसन्नचित्तवालेकूं आत्मामैं स्थितिसैं अक्षयसुखकी प्राप्तिका श्रुतिकरि कथन ॥

३६ "प्रसन्नचित्तवाला पुरुष आत्माविषै स्थित होयके अक्षयसुखकूं पावताहै" इस ११४ श्लोकउक्तअर्थकूंहीं श्रुति आपहीं वर्णन करैहैः—

३७] आत्माविषै प्रवेशकूं पाये औ समाधिकरि निवृत्तमलवाले चित्तकूं जो सुख होवैहै। तब सो वाणीकरि वर्णन करनैकूं शक्य नहीं है। किंतु आप सो सुख अंतःकरणकरि ग्रहण होवैहै ॥

३८) प्रत्यक्स्वरूप आत्माविषै स्थित भया औ प्रत्यगात्मा औ ब्रह्मकी एकताकूं विषय करनैहारी वृत्तिनकी आवृत्तिरूप समाधिकरि संपूर्ण निवारण कियाहै रजतम-गुणरूप मल जिसका। ऐसा जो चित्त है। ताकूं तिस समाधिविषै जो सुख उत्पन्न होवैहै। तब समाधिविषै उत्पन्न भया सो सुख वाणीकरि वर्णन करनैकूं अशक्य है। अलौकिकसुख होनैतैं। यह अर्थ है ॥ किंतु आप सो स्वरूपभूत सुख अंतःकरणकरिहीं ग्रहण करियेहै ॥ ११८ ॥

॥ २ ॥ मनुष्यनकूं क्षणिकसमाधिके संभवतैं ब्रह्मानंदके निश्चयका संभव ॥ ४५३९—४५९१ ॥

॥ १ ॥ क्षणिकसमाधितैं ब्रह्मानंदके निश्चयकी प्रतिज्ञा ॥

३९ ननु इस समाधिकूंहीं दुर्लभ होनैतैं इसकरि ब्रह्मानंदके निश्चयका संभव कैसैं होवैहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४३ श्रद्धालुर्व्यसनी योऽत्र निश्चिनोत्येव सर्वथा ।
४६ निश्चिते तु सकृत्तस्मिन्विश्वसित्यन्यदाप्ययम् ॥ १२० ॥

४०] यद्यपि असौ समाधिः चिरं कालं नृणां दुर्लभः । तथापि क्षणिकः असौ ब्रह्मानंदं निश्चाययति ॥

४१) अस्य समाधेः संततस्यासंभवेऽपि क्षणिकस्य तस्य संभवात्तेनैवायमानंदो निश्चेतुं शक्यत इत्यर्थः ॥ ११९ ॥

४२ नन्वात्मदर्शनाय श्रवणादौ प्रवृत्तापि केचिदानंदनिश्चयशून्या बहिर्मुखा एव वर्तंत इत्याशंक्य श्रद्धादिरहितानां तथात्वेऽपि श्रद्धादिमतां तन्निश्चयो भवति एवेत्याह—

४३] श्रद्धालुः व्यसनी यः अत्र सर्वथा निश्चिनोति एव ॥

४४) व्यसनं सर्वथा संपादयिष्यामीत्याग्रहः तद्वान् व्यसनी अत्र समाधौ । सर्वथा अवश्यम् ॥

४५ ततः किमित्यत आह (निश्चिते इति)—

४६] तस्मिन् सकृत् निश्चिते तु अयं अन्यदा अपि विश्वसिति ॥

४७) अस्मिन् ब्रह्मानंदे सकृत् एकदा । क्षणिकसमाधौ निश्चिते सति अयं सकृन्निश्चयवान् अन्यदापि इतरस्मिन्नपि काले । विश्वसिति आनंदोऽस्तीति विश्वासं करोति ॥ १२० ॥

४०] यद्यपि यह समाधि चिरकालपर्यंत मनुष्यनकूं दुर्लभ है । तथापि यह क्षणिकसमाधि ब्रह्मानंदकूं निश्चय करावैहै ॥

४१) निरंतरस्थायी इस समाधिके असंभव हुये बी । क्षणिक कहिये क्षणकालपर्यंत स्थायी तिस समाधिके संभवतैं तिस क्षणिकसमाधिकरिहीं यह आनंद निश्चय करनेकूं शक्य होवैहै । यह अर्थ है ॥ ११९ ॥

॥ २ ॥ बहिर्मुखश्रद्धावान्व्यसनीकूं ब्रह्मानंदके निश्चयका संभव ॥

४२ ननु आत्माका दर्शन जो साक्षात्कार। तिस अर्थ श्रवणादिकविषै प्रवर्त्त हुये बी कितनेक पुरुष आनंदके निश्चयसैं रहित हुये बहिर्मुखहीं वर्ततेहैं । यह आशंकाकारि श्रद्धारहित पुरुषनकूं तिसप्रकार निश्चयके अभावके हुये बी श्रद्धाआदिककारि युक्त पुरुषनकूं तिस आनंदका निश्चय होवैहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

४३] श्रद्धालु औ व्यसनी जो पुरुष है । सो इस क्षणिकसमाधिविषै सर्वथा नाम अवश्य निश्चयकूं करताहै ॥

४४) "सर्वथा संपादन करूंगा ।" ऐसा जो आग्रह । सो इहां व्यसन कहियेहै । तिसवाला पुरुष व्यसनी कहियेहै ॥

४५ तिस निश्चय कियेतैं क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

४६] तिसके एकवार निश्चय कियेहुये तौ यह पुरुष अन्यकालविषै बी विश्वासकूं पावताहै ॥

४७) इस ब्रह्मानंदके एकवार क्षणिकसमाधिविषै निश्चय कियेहुये । यह एकवार निश्चयकूं पाया पुरुष "अन्यकालविषै बी आनंद है" । ऐसैं विश्वासकूं करताहै ॥ १२० ॥

टीकांक: ४५४८ टिप्पणांक: ॐ		ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक:
	४९तादृक् पुमानुदासीनकालेऽप्यानंदवासनाम् । उपेक्ष्य मुख्यमानंदं भावयत्येव तत्परः ॥ १२१ ॥	१२६३
	५२परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मणि । तदेवास्वादयत्यंतः परसंगरसायनम् ॥ १२२ ॥	१२६४
	५४एवं तत्त्वे परे शुद्धे धीरो विश्रांतिमागतः । तदेवास्वादयत्यंतर्बहिर्व्यवहरन्नपि ॥ १२३ ॥	१२६५

४८ ततोऽपि किं तत्राह—

४९] **तादृक् पुमान् उदासीनकाले अपि आनंदवासनां उपेक्ष्य तत्परः मुख्यं आनंदं एव भावयति ॥**

५०) तादृक् पुमान् श्रद्धादिपुरःसरं सकृन्निश्चयवान् पुरुषः । औदासीन्यदशायामपि उपलभ्यमानः पूर्वोक्तां आनंदवासनामुपेक्ष्य तत्परः मुख्यानंदे तात्पर्यवान् । भूत्वा तम् एव भावयति ॥१२१॥

५१ एवं व्यवहारकालेऽपि निजानंदं भावयतीत्यत्र दृष्टांतमाह—

५२] **परव्यसनिनी नारी गृहकर्मणि व्यग्रा अपि अंतः तत् एव परसंगरसायनं आस्वादयति ॥ १२२ ॥**

५३ दार्ष्टांतिके योजयति—

५४] **एवं शुद्धे परे तत्त्वे विश्रांतिं आगतः धीरः बहिः व्यवहरन् अपि अंतः तत् एव आस्वादयति ॥ १२३ ॥**

॥ ३ ॥ श्लोक १२० उक्त अर्थका प्रयोजन ॥

४८ तिस अन्यकालविषै विश्वासवान् होनैतैं बी क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

४९] **तैसा पुरुष उदासीनकालविषै बी आनंदकी वासनाकूं उपेक्षाकरिके तत्पर हुया मुख्यआनंदकूंहीं भावना करताहै ॥**

५०) तैसा कहिये श्रद्धाआदिपूर्वक एकवार आनंदके निश्चयवान् पुरुष उदासीनपनैकी अवस्थाविषै बी प्रतीयमान जो पूर्व ८५ वें श्लोकउक्त आनंदकी वासना है । ताकूं तिरस्कारकरिके तत्पर हुया मुख्यआनंदविषै तात्पर्यवान् होयके तिस मुख्यआनंदकूंहीं चिंतन करताहै ॥ १२१ ॥

॥ ४ ॥ व्यवहारकालमैं निजानंदकी भावनामैं दृष्टांत ॥

५१ ऐसैं व्यवहारकालविषै बी निजानंदकूं भावना करताहै । इस अर्थविषै दृष्टांत कहैहैं:—

५२] **जैसैं परपुरुषके व्यसनवाली नारी गृहके कर्मविषै प्रवृत्त हुइ बी अंतरविषै तिसीहीं परपुरुषके संगरूप रसायनकूं नाम रसके स्थानकूं आस्वादन करैहै ॥ १२२ ॥**

॥ ५ ॥ दृष्टांतसिद्धअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

५३ दृष्टांतकरि उक्तअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

५४] **ऐसैं शुद्धपरमतत्त्वविषै विश्रामकूं प्राप्त भया जो धीरपुरुष । सो बाहिरतैं व्यवहार करताहुया बी अंतरविषै तिसी परमतत्त्वकूंहीं आस्वादन करताहै ॥ १२३ ॥**

ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१२६६	५६ धीरत्वमक्षप्रावल्येऽप्यानंदास्वादवांछया । तिरस्कृत्याखिलाक्षाणि तच्चिंतायां प्रवर्तनम्१२४	४५५५
१२६७	भारवाही शिरोभारं मुक्त्वास्ते विश्रमं गतः । संसारव्यापृतित्यागे तादृग्बुद्धिस्तु विश्रमः १२५	टिप्पणांकः ॐ
१२६८	६२ विश्रांतिं परमां प्राप्तस्त्वौदासीन्ये यथा तथा । सुखदुःखदशायां च तदानंदैकतत्परः ॥ १२६ ॥	

५५ धीरशब्दार्थमाह (धीरत्वमिति)—

५६] अक्षप्रावल्ये अपि आनंदास्वादवांछया अखिलाक्षाणि तिरस्कृत्य तच्चितायां प्रवर्तनं धीरत्वम् ॥

५७) इंद्रियाणां विषयाभिमुख्येन पुरुषाकर्षणसामर्थ्ये अपि स्वरूपसुखानुसंधानेच्छया सर्वाणींद्रियाणि तिरस्कृत्यानंदानुसंधान एव प्रवर्तमानत्वं धीरत्वं इत्यर्थः ॥ १२४ ॥

५८ विश्रांतिशब्दस्य विवक्षितमर्थं सदृष्टांतमाह—

५९] भारवाही शिरोभारं मुक्त्वा विश्रमं गतः आस्ते । संसारव्यापृतित्यागे तादृक् बुद्धिः तु विश्रमः ॥

६०) यथा लोके भारं वहन् पुरुषः श्रमहेतुं शिरसि स्थितं भारं परित्यज्य श्रमरहितो वर्तते। तथा संसारव्यापारत्यागे सति "श्रमरहित आसम्" इति जायमाना या बुद्धिः सा विश्रमशब्देनोच्यत इत्यर्थः१२५

६१ इदानीं फलितमर्थमाह (विश्रांतिमिति)—

॥ ६ ॥ धीरशब्दका अर्थ ॥

५५ श्लोक १२३ गत धीरशब्दके अर्थकूं कहैहैं:—

५६] इंद्रियनकी प्रबलताके हुये बी आनंदके आस्वादनकी वांछासैं सर्वइंद्रियनकूं तिरस्कारकरिके तिस आनंदकी चिंताविषै जो प्रवर्तन । सो धीरपना है ॥

५७) इंद्रियनकूं विषयनके सन्मुख होनैंकरि पुरुषके आकर्षणके सामर्थ्यके हुये बी । स्वरूपसुखके अनुसंधानकी इच्छासैं सर्वइंद्रियनकूं तिरस्कारकरिके आनंदके अनुसंधानविषैहीं जो प्रवर्तमानपना है । सो धीरपना है । यह अर्थ है ॥ १२४ ॥

॥७॥ दृष्टांतसहित विश्रांतिशब्दका विवक्षितअर्थ ॥

५८ श्लोक १२३ गत विश्रांतिशब्दके कहनैंकूं इच्छित अर्थकूं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

५९] जैसैं बोजका उठावनैहारा पुरुष शिरके भारकूं त्यागिके विश्रांतिकूं प्राप्त हुया वर्तताहै । तैसैं संसारके व्यापारके त्याग हुये जो तैसी बुद्धि । सो विश्रांति कहियेहै ॥

६०) जैसैं लोकविषै भारकूं उठावताहुया पुरुष श्रमके हेतु मस्तकविषै स्थित भारकूं परित्यागकरिके श्रमरहित वर्तताहै । तैसैं संसारके व्यापारके त्याग हुये "मैं श्रमरहित भयाहूं" ऐसी उत्पन्न भयी जो बुद्धि । सो विश्रामशब्दकरि कहियेहै । यह अर्थ है १२५

॥ ८ ॥ फलितअर्थ (विश्रांतकूं सुखादिकालमैं बी स्वानंदतत्परता) ॥

६१ अब फलितअर्थकूं कहैहैं:—

टीकांकः ४५६२ टिप्पणांकः ॐ	अग्निप्रवेशहेतौ धीः शृंगारे यादृशी तथा । धीरस्योदेति विषयेऽनुसंधानविरोधिनी ॥ १२७ ॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२६९

६२] परमां विश्रांतिं प्राप्तः औदासीन्ये यथा । तथा सुखदुःखदशायां तु च तदानंदैकतत्परः ॥

६३) परमां निरतिशयां । विश्रांतिं उक्तलक्षणां प्राप्तः पुरुषः स्वस्य औदासीन्यदशायां यथा परमानंदास्वादने तात्पर्यवान् भवति । एवं सुखदुःखहेतुप्राप्तिकालेऽपि तदनुसंधानं परित्यज्य निजानंदास्वादन एव तात्पर्यवान् भवतीत्यर्थः १२६

६४ ननु दुःखस्य प्रतिकूलत्वेन तदनुसंधानेच्छाऽभावेऽपि वैषयिकसुखस्यानुकूलत्वेन पुरुषैरर्थ्यमानत्वात्तदनुसंधानेच्छा कुतो न भवेदित्याशंक्य । तस्य विषयसंपादनादिद्वारा अतीव बहिर्मुखत्वापादनेन निजानंदानुसंधानविरोधित्वात् तदिच्छापि विवेकिनो न जायते इति दृष्टांतप्रदर्शनपूर्वकमाह—

६५] अग्निप्रवेशहेतौ शृंगारे यादृशी धीः । तथा अस्य धीः अनुसंधानविरोधिनि विषये उदेति ॥

६६) शीघ्रं देहविमोचनेच्छायां दृढतरायां सत्यां तद्विलंबकारणे अलंकारादौ यथा अग्निप्रवेष्टुर्वैरस्यबुद्धिरुत्पद्यते । एवं वैराग्यादिसाधनसंपन्नस्य विवेकिनो ब्रह्मानुसंधानविरोधिनि विषयसुखेऽपीत्यर्थः ॥ १२७॥

६२] जैसैं परमविश्रामकूं प्राप्त भया पुरुष । उदासीनदशाविषै तिसी एकआनंदविषै तत्पर होवैहै । तैसैं सुखदुःखदशाविषैहीं तिसी एकआनंदविषै तत्पर होवैहै ॥

६३) जैसैं परमविश्रांतिकूं नाम १२५ वें श्लोकउक्तलक्षणवाले विश्रामकूं प्राप्त भया पुरुष अपनी उदासीनदशाविषै परमानंदके स्वाद लेनैविषै तात्पर्यवान् होवैहै । ऐसैं सुखदुःखके हेतु प्रारब्धके कालविषै वी तिस सुखदुःखके अनुसंधानकूं परित्यागकरिके निजानंदके स्वाद लेनैविषैहीं तात्पर्यवान् होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ १२६ ॥

॥ ९ ॥ दृष्टांतपूर्वक विवेकीकूं विषयके अनुसंधानकी इच्छाका अभाव ॥

६४ ननु दुःखकूं प्रतिकूल होनैंकरि तिसके अनुसंधानकी इच्छाके अभाव हुये वी विषयजन्यसुखकूं अनुकूल होनैंकरि पुरुषनसैं प्रार्थ्यमान होनैतैं तिस सुखके अनुसंधानकी इच्छा कैसैं नहीं होवैगी ? यह आशंकाकरि तिस विषयजन्यसुखकूं विषयके संपादनआदिकद्वारा अतिशयबहिर्मुखताके संपादनकरि निजानंदके स्मरणका विरोधी होनैतैं । तिस विषयसुखकी इच्छा वी विवेकीपुरुषकूं नहीं होवैहै । ऐसैं दृष्टांतके दिखावनैंपूर्वक कहैहैं:—

६५] अग्निविषै प्रवेशके हेतु शृंगारविषै जैसी बुद्धि उदय होवैहै । तैसी बुद्धि यह धीर जो विवेकी पुरुष ताकूं अनुसंधानके विरोधी विषयविषै उदय होवैहै ॥

६६) जैसैं तत्काल देहके छोडनैंकी इच्छाके अतिशय दृढ हुये । तिसके विलंबके कारण अलंकार आदिकविषै अग्निमैं प्रवेशकरनैंहारे पुरुषकूं वैरस्यकी कहिये विरसताकी बुद्धि उत्पन्न होवैहै । ऐसैं वैराग्यआदिकसाधनकरि संपन्न विवेकीपुरुषकूं ब्रह्मके अनुसंधानके विरोधि विषयसुखविषै वी तैसी दोषदृष्टिरूप बुद्धि उत्पन्न होवैहै । यह अर्थ है ॥ १२७ ॥

महानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
	६८अविरोधिसुखे बुद्धिः स्वानंदे च गमागमौ ।	
१२७०	कुर्वंत्यास्ते क्रमादेषा काकाक्षिवदितस्ततः॥१२८	४५६७
	७०एकैव दृष्टिः काकस्य वामदक्षिणनेत्रयोः ।	
१२७१	यात्यायात्येवमानंदद्वये तत्त्वविदो मतिः ॥ १२९॥	टिप्पणांक: ॐ
	७३भुंजानो विषयानंदं ब्रह्मानंदं च तत्त्ववित् ।	
१२७२	द्विभाषाभिज्ञवद्विद्यादुभौ लौकिकवैदिकौ ॥१३०॥	

६७ मा भूद्विरोधिविषयसुखेच्छा अप्रयत्नसौलभ्येनावहिर्मुखत्वहेतौ विषये किं न भवतीत्यत आह—

६८] अविरोधिसुखे च स्वानंदे काकाक्षिवत् क्रमात् इतः ततः गमागमौ कुर्वती । एषा बुद्धिः आस्ते १२८

६९ दृष्टांतं विवृणोति (एकेति)—

७०] काकस्य दृष्टिः एका एव वामदक्षिणनेत्रयोः याति आयाति । एवं तत्त्वविदः मतिः आनंदद्वये ॥

७१) यथा काकस्य दृष्टिः दृश्यतेऽनयेति दर्शनसाधनं चक्षुरिंद्रियम् एकमेव वामदक्षिणनेत्रयोः गोलकयोः पर्यायेण गमनागमने करोति । एवं विवेकिनो बुद्धिरपि आनंदद्वये इत्यर्थः ॥ १२९ ॥

७२ दार्ष्टांतिकं प्रपंचयति (भुंजान इति)—

७३] तत्त्ववित् भुंजानः विषयानंदं च ब्रह्मानंदं लौकिकवैदिकौ उभौ द्विभाषाभिज्ञवत् विद्यात् ॥

७४) तत्त्ववित् । विषयान् भुंजानः

॥ १० ॥ स्वरूपानंदमें औ अविरोधिविषयमें बुद्धिके गमनआगमनका दृष्टांतसैं कथन ॥

६७ विवेकीकूं विरोधिविषयसुखकी इच्छा मति होहु । परंतु प्रयत्नसैं विना सुलभ होनैंकरि अवहिर्मुखताके हेतु विषयविषै क्या इच्छा नहीं होवैहै ? तहां कहैहैं:—

६८] अविरोधिविषयसुखविषै औ स्वरूपआनंदविषै काकाक्षिकी न्यांई क्रमतैं इहां तहां गमन औ आगमनकूं करतीहुई यह विवेकीकी बुद्धि वर्त्ततीहै ॥ १२८ ॥

॥ ११ ॥ उक्तदृष्टांतका विवरण ॥

६९ श्लोक १२८ उक्त दृष्टांतकूं वर्णन करैहैं:—

७०] जैसैं एकहीं काककी दृष्टि । वाम औ दक्षिण दोनूंनेत्रनविषै जातीआतीहै । ऐसैं तत्त्ववेत्ताकी बुद्धि वी दोनूंआनंदनविषै जातीआतीहै॥

७१) जैसैं एकहीं काककी दृष्टि वाम औ दक्षिण इन दोनूंनेत्रनविषै क्रमकरि गमन औ आगमनकूं करैहै । ऐसैं विवेकीपुरुषकी बुद्धि वी दोनूं आनंदनविषै गमनआगमनकूं करैहै । यह अर्थ है ॥ १२९ ॥

॥ १२ ॥ दार्ष्टांतिकका विवरण ॥

७२ दार्ष्टांतिककूं वर्णन करैहैं:—

७३] तत्त्ववित् जो है । सो अविरोधीविषयनकूं भोगताहुया लौकिक औ वैदिकरूप इन दोनूं विषयानंद औ ब्रह्मानंदकूं दोभाषाके जाननैंहारे पुरुषकी न्यांई जानताहै ॥

७४) तत्त्ववेत्ता जो है । सो अविरोधि-

टीकांक: ४५७५ टिप्पणांक: ७७३	७६ दुःखप्राप्तौ न चोद्वेगो यथापूर्वं यतो द्विदृक् । ७९ गंगामग्नार्धकायस्य पुंसः शीतोष्णधीर्यथा १३१ इत्थं जागरणे तत्त्वविदो ब्रह्मसुखं सदा । भाति तद्वासनाजन्ये स्वप्ने तद्भासते तथा १३२	ब्रह्मानंदे योगानंद: ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२७३ १२७४

तज्जन्यं विषयानंदं उपनिषद्वाक्यादवगतं ब्रह्मानंदं च लौकिकवैदिकावुभौ विषयानंदब्रह्मानंदौ भाषाद्वयवेदिवत् जानीयादित्यर्थः ॥ १३० ॥

७५ ननु दुःखानुभवदशायामुद्वेगे सति कथं निजानंदानुभव इत्याशंक्याह (दुःखप्राप्ताविति)—

७६] यतः द्विदृक् । दुःखप्राप्तौ यथापूर्वं च उद्वेगः न ॥

७७) यतः यस्मात्कारणात् । विवेकी द्विदृक् लौकिकवैदिकव्यवहारयोरुभयोरपि वेत्ता । अतो दुःखप्राप्तौ अपि पूर्ववदज्ञानदशायामिव न तस्य उद्वेगः । विवेकेन तदा तदा बोध्यमानत्वादतो दुःखानुभवकालेऽपि निजानंदानुसंधानं न विरुध्यत इत्यर्थः ॥

७८ युगपदुभयानुसंधाने दृष्टांतमाह (गंगेति)—

७९] यथा गंगामग्नार्धकायस्य पुंसः शीतोष्णधीः ॥ १३१ ॥

८० फलितमाह—

विषयनकूं भोगताहुया तिन विषयनतैं जन्य विषयानंद औ उपनिषद्के वाक्यतैं जान्या जो ब्रह्मानंद । इन लौकिकवैदिकरूप दोनूं विषयानंद औ ब्रह्मानंदकूं दोनूंभाषाके जाननैंहारे पुरुषकी न्यांई अनुभव करताहै । यह अर्थ है ॥ १३० ॥

॥ १३ ॥ दुःखानुभवदशामैं अनुद्वेगकरि निजानंदके अनुभवका संभव ॥

७५ ननु दुःखके अनुभवकी दशाविषै उद्वेग जो विक्षेप ताके हुये कैसैं निजानंदका अनुभव होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७६] जातैं विवेकी दोदृष्टिवाला है । यातैं दुःखकी प्राप्तिके हुये वी पूर्वकी न्यांई तिसकूं उद्वेग नहीं है ॥

७७) जिस कारणतैं विवेकीपुरुष दोदृष्टिवाला कहिये लौकिकवैदिकरूप दोनूंव्यवहारनका वी जाननैंहारा है । यातैं दुःखकी प्राप्तिके हुये वी पूर्व अज्ञानदशाकी न्यांई तिसकूं उद्वेग नहीं होवैहै । काहेतैं विवेककरि तिसतिस कालविषै उद्वेगकूं बाधित होनैंतैं । यातैं दुःखके अनुभवकालविषै निजानंदका अनुसंधान विरोधकूं पावता नहीं । यह अर्थ है ॥

७८ एककालविषै दुःख औ निजानंद दोनूंके अनुसंधानविषै दृष्टांत कहैहैं:—

७९] जैसैं गंगाविषै डूब्याहै आधाशरीर जिसका । ऐसै पुरुषकूं एककालविषै शीत औ उष्णकी बुद्धि होवैहै । तैसैं विवेकीकूं दुःख औ निजानंदकी बुद्धि होवैहै ॥ १३१ ॥

॥ १४ ॥ फलितअर्थ (ज्ञानीकूं जाग्रत्स्वप्नमैं ब्रह्मसुखका भान)

८० फलितकूं कहैहैं:—

७७३ दुःखकी प्राप्तिके हुये तिसके निवारणविषै असमर्थ पुरुषनैं तिस दुःखके अनुभवकरि परिभावित किया (विचाऱ्या) जो दुःख सो उद्वेग कहियेहै ॥

अविद्यावासनाप्यस्तीत्यतस्तद्वासनोत्थिते ।
स्वप्ने मूर्खवदेवैष सुखं दुःखं च वीक्षते ॥ १३३ ॥

८१] इत्थं तत्त्वविदः जागरणे सदा ब्रह्मसुखं भाति ॥

८२) सदा सुखदुःखानुभवदशायां तूष्णींस्थितौ चेत्यर्थः ॥

८३ न केवलं जागरण एव तद्भानं किंतु स्वप्नावस्थायामपीत्याह—

८४] तद्वासनाजन्ये स्वप्ने तत् तथा भासते ॥

८५) हेतुगर्भं विशेषणं जाग्रद्वासनाजन्यत्वात् स्वप्नस्य तत्रापि तत् ब्रह्मसुखं । तथा जाग्रदवस्थायामिव । भासत इत्यर्थः ॥ १३२ ॥

८६ ननु स्वप्नस्यानंदानुभववासनाजन्यत्वे सति आनंद एव भासत इत्याशंक्याह—

८७] अविद्यावासना अपि अस्ति । अतः तद्वासनोत्थिते स्वप्ने मूर्खवत् एव एषः सुखं च दुःखं वीक्षते ॥

८८) न केवलमानंदवासनाबलादेव स्वप्नो जायते किंतु अविद्यावासनाबलात् अपि । अतः तद्वासनाजन्यत्वात् तत्राज्ञस्येव सुखाद्यनुभवो भवतीत्यर्थः ॥ १३३ ॥

८१] ऐसैं तत्त्ववेत्ताकूं जागरणविषै सदा ब्रह्मसुख भासताहै ॥

८२) सदा कहिये सुखदुःखके अनुभवकी दशाविषै औ तूष्णीस्थितिविषै नाम उदासीनदशाविषै । यह अर्थ है ॥

८३ केवलजागरणविषैहीं तिस ब्रह्मानंदका भान होवैहै ऐसैं नहीं । किंतु स्वप्नअवस्थाविषै वी ब्रह्मानंदका भान होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

८४] तिस जाग्रत्की वासनासैं जन्य स्वप्नविषै वी सो ब्रह्मसुख तैसैं भासताहै ॥

८५) तिसकी वासनातैं जन्य यह जो स्वप्नका विशेषण है सो हेतुरूप गर्भवाला है । यातैं स्वप्नकूं जाग्रत्की वासनाकरि जन्य होनैतैं तिसविषै वी सो ब्रह्मसुख तैसैं जाग्रत्अवस्थाकी न्यांई भासताहै । यह अर्थ है ॥ १३२ ॥

॥ १९ ॥ स्वप्नमैं अज्ञकी न्यांई तज्ञकूं सुखके अनुभवका सद्भाव ॥

८६ ननु स्वप्नकूं आनंदके अनुभवकी वासनाकरि जन्यताके हुये तिसविषै क्या आनंदहीं भासताहै। दुःख नहीं ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८७] अविद्याकी वासना वी स्वप्नकी हेतु है । यातैं तिस अविद्याकी वासनातैं उत्पन्न स्वप्नविषै मूर्खकी न्यांई यह ज्ञानी सुख औ दुःखकूं देखताहै ॥

८८) केवलआनंदकी वासनाके बलतैंहीं स्वप्न नहीं होवैहै । किंतु अविद्याकी वासनाके बलतैं वी स्वप्न होवैहै । यातैं अविद्याकी वासनातैं जन्य होनैतैं तिस स्वप्नविषै अज्ञानीकी न्यांई ज्ञानीकूं वी अनियमित सुखका अनुभव होवैहै । यह अर्थ है ॥ १३३ ॥

टीकांकः ४५८९ टिप्पणांकः ॐ	ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे ब्रह्मानंदप्रकाशकम्। योगिप्रत्यक्षमध्याये प्रथमेऽस्मिन्नुदीरितम् १३४ इति श्रीपंचदश्यां ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ १ ॥ ११ ॥	ब्रह्मानंदे योगानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १२७६

८९ एतावता ग्रंथसंदर्भेणोक्तमर्थं निगमयति–

९०] ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे अस्मिन् प्रथमे अध्याये ब्रह्मानंदप्रकाशकं योगिप्रत्यक्षं उदीरितम् ॥

९१) ब्रह्मानंदनामके अध्यायपंचात्मके ग्रंथेऽस्मिन् प्रथमेऽध्याये सुषुप्त्यवस्थायामौदासीन्यकालेऽपि समाध्यवस्थायां सुखदुःखदशायां च। स्वप्रकाशचिद्रूपब्रह्मानंदस्य प्रकाशकं योग्यनुभवरूपं प्रत्यक्षं उक्तमित्यर्थः। इदं च उपलक्षणमागमादीनां तेषामप्यत्र प्रदर्शितत्वात् ॥ १३४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण श्रीरामकृष्णाख्यविदुषा विरचिते ब्रह्मानंदे योगानंदो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ११ ॥

॥ १६ ॥ सारेग्रंथमैं उक्तअर्थका सूचन ॥

८९ इतनैं सारेग्रंथकी रचनाकरि उक्तअर्थकूं सूचन करैहैंः—

९०] ब्रह्मानंदनामग्रंथविषै स्थित इस प्रथमअध्यायमैं ब्रह्मानंदका प्रकाशक योगीका अपरोक्षअनुभव कह्या ॥

९१) ब्रह्मानंदनामक पांचअध्यायरूप ग्रंथविषै स्थित इस प्रथमअध्यायमैं सुषुप्तिअवस्थाविषै औ उदासीनपनैके कालविषै बी औ समाधिअवस्थाविषै औ सुखदुःखदशाविषै स्वप्रकाशचेतनरूप ब्रह्मानंदका प्रकाशक योगीका अनुभवरूप अपरोक्षज्ञान कह्या। यह अर्थ है ॥ यह योगिका प्रत्यक्ष आगम जो श्रुति तिसआदिकनका बी उपलक्षण है। काहेतैं तिन आगमनआदिकप्रमाणनकूं बी इस अध्यायविषै दिखायेहोनैतैं ॥ १३४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या ब्रह्मानंदगत योगानंदस्य तत्त्वप्रकाशिकाऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥१॥११॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥ श्लोकांक: १२७७	९२ नन्वेवं वासनानंदाद्ब्रह्मानंदादपीतरम् । वेत्तु योगी निजानंदं मूढस्यात्रास्ति का गतिः १	टीकांक: ४५९२ टिप्पणांक: ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
आत्मानंदाभिधग्रंथव्याख्यानं क्रियते मया॥१॥

९२ अथ ब्रह्मानंदांतर्गतमात्मानंदनामकद्वितीयाध्यायमारभते । तदेवं प्रथमाध्याये विवेकिनो योगेन निजानंदानुभवप्रकारं प्रदर्श्य मूढस्य जिज्ञासोरात्मानंदशब्दवाच्यत्वं पदार्थ-

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदगत आत्मानंदकी

तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ १२ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमस्कारकरिके पंचदशीके आत्मानंदनामग्रंथका व्याख्यान नरभाषासैं मेरेकरि करियेहै ॥१॥

॥ १ ॥ आत्मानंदके अधिकारी औ आत्माके अर्थ सर्ववस्तुकी प्रियतापूर्वक आत्माकी त्रिविधता

॥ ४५९२–४८१८ ॥

॥ १ ॥ मंदबुद्धिवाले अधिकारीकूं आत्मानंदसैं बोधनकी योग्यता

॥ ४५९२–४६१० ॥

॥ १ ॥ मूढकी गतिअर्थ शिष्यका प्रश्न ॥

९२ ऐसैं प्रथम योगानंदनामकअध्यायविषै

* प्रत्यगात्माका स्वरूपभूत जो आनंद। सो आत्मानंद है। ताका प्रतिपादक जो प्रकरण सो बी आत्मानंद कहियेहै॥

टीकांकः ४५९३ टिप्पणांकः ॐ	धर्माधर्मवशादेष जायतां म्रियतामपि । पुनः पुनर्देहलक्षैः किन्नो दाक्षिण्यतो वद ॥ २ ॥ अस्ति वोऽनुजिघृक्षुत्वाद्दाक्षिण्येन प्रयोजनम् । तर्हि ब्रूहि स मूढः किं जिज्ञासुर्वा पराङ्मुखः ३	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १२७८ १२७९

विवेचनमुखेन ब्रह्मानंदानुभवप्रकारप्रदर्शनाय शिष्यप्रश्नमवतारयति—

९३] ननु एवं योगी वासनानंदात् ब्रह्मानंदात् अपि इतरं निजानंदं वेत्तु। अत्र मूढस्य का गतिः अस्ति ॥ १ ॥

९४ शिष्येणैवं पृष्टो गुरुरतिमूढस्य विद्याधिकार एव नास्ति इत्याह (धर्मेति)—

९५] एषः धर्माधर्मवशात् देहलक्षैः पुनः पुनः जायतां अपि म्रियतां नः दाक्षिण्यतः किं वद ॥

९६) एषः अतिमूढोऽनादौ संसारेऽतीतेषु जन्मसु अनुष्ठितसुकृतदुष्कृतवशान्नानाविधदेहस्वीकारेण पुनः पुनः जायतां म्रियतां चेत्यर्थः ॥ २ ॥

९७ सर्वानुग्राहकत्वादाचार्येण तस्यापि काचन गतिः वक्तव्येति शिष्य आह (अस्तीति)—

९८] वः अनुजिघृक्षुत्वात् दाक्षिण्येन प्रयोजनं अस्ति ॥

९९) वः युष्माकं । अनुजिघृक्षुत्वात्

विवेकीपुरुषकूं योगाभ्यासकरि निजानंदके अनुभवका प्रकार दिखायके । अब इस अध्यायविषै मंदबुद्धिवान् जो जिज्ञासु नाम स्वरूपानंदके जाननैंकी इच्छावाला है । ताकूं आत्मानंदशब्दके वाच्य "त्वं"पदार्थके विवेचनरूप द्वारकरि ब्रह्मानंदके अनुभवका प्रकार दिखावनैंकूं ग्रंथकार शिष्यके प्रश्नकूं प्रगट करतेहैं:—

९३] ननु । ऐसैं योगानंदप्रकरणउक्तप्रकारकरि योगीपुरुष वासनानंदतैं औ ब्रह्मानंदतैं बी अन्य जो निजानंद है । ताकूं अनुभव करहु । इहां मूढकी कौन गति कहिये दशा है? सो कथन करहु ॥ १ ॥

॥ २ ॥ अतिमूढकूं विद्या (ज्ञान)के अधिकारका अभाव ॥

९४ ऐसैं शिष्यनैं पूछ्या तब गुरु । अतिमूढकूं ज्ञानका अधिकार नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

९५] यह । धर्मअधर्मके वशतैं फेरि फेरि देहनके लक्षनकरि जन्महू औ मरहू । इहां हमारे समुजावनैंकरि क्या प्रयोजन है? सो कथन कर ॥

९६) यह अतिमूढ । अनादिसंसारमैं पूर्वलेजन्मनविषै अनुष्ठान किये पुण्य औ पापके वशतैं नानाप्रकारके देहनके अंगीकारकरि फेरि फेरि जन्महू औ मरहू । यह अर्थ है ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ शिष्यकरि मूढअर्थ दयालुगुरुके प्रयोजनका कथन औ गुरुकरि मूढमैं दोविकल्प ॥

९७ सर्वका अनुग्रह करनैंहारा होनैंतैं आचार्य जो गुरु तिसकरि तिस मूढकी बी कोईक गति कहीचाहिये । ऐसैं शिष्य कहताहै:—

९८] तुमकूं सर्वके अनुग्रह करनैंकी इच्छावाले होनैतैं समुजावनैंकरि प्रयोजन है ॥

९९) तुम आचार्यकूं शिष्यके उद्धाररूप

³उपास्तिं कर्म वा ब्रूयाद्विमुखाय यथोचितम्।
⁶मंदप्रज्ञं तु जिज्ञासुमात्मानंदेन बोधयेत् ॥ ४ ॥

अनुगृहीतुमिच्छवोऽनुजिघृक्षवस्तेषां भावस्तत्त्वं तस्माच्छिष्योद्धरणेच्छायुक्तत्वात्। दाक्षिण्यतः तदुद्धरणलक्षणं प्रयोजनमस्ति इत्यर्थः ॥

४६०० एवं शिष्यवचनमाकर्ण्य गुरुस्तं विकल्प्य पृच्छति—

१] तर्हि सः मूढः किं जिज्ञासुः वा पराङ्मुखः ब्रूहि ॥ ३ ॥

२ यदि मूढस्य काचन गतिर्व्यक्तव्या तर्हि मूढः किं रागी विरक्तो वा वदेति ॥ रागी चेत्तद्रागानुसारेण कर्म वा उपासनं वा वक्तव्यमिति प्रथमे परिहारमाह (उपास्तिमिति)—

३] विमुखाय यथोचितं उपास्तिं वा कर्म ब्रूयात् ॥

४) विमुखाय तत्त्वज्ञानविमुखाय बहिर्मुखायेत्यर्थः। यथोचितं यथायोग्यं। ब्रह्मलोकादिकामश्चेत् उपास्तिं ब्रूयात्। स्वर्गादिकामश्चेत् कर्म ब्रूयात् इत्यर्थः ॥

५ जिज्ञासुत्वेऽपि सोऽतिविवेकी मंदप्रज्ञो वेति विकल्प्यातिविवेकिनः पूर्वाध्यायोक्तप्रकारेण योगेन ब्रह्मसाक्षात्कारमभिप्रेत्य मंदप्रज्ञस्य तद्दर्शनोपायमाह—

६] मंदप्रज्ञं जिज्ञासुं तु आत्मानंदेन बोधयेत् ॥

अनुग्रह करनैंकी इच्छाकरि युक्त होनैतैं समुजावनैंकरि तिस शिष्यके उद्धार करनैंरूप प्रयोजन है। यह अर्थ है ॥

४६०० ऐसैं शिष्यके वचनकूं सुनिके गुरु तिस शिष्यकूं विकल्पकरिके पूछतेहैं:—

१] तब सो मूढ क्या जिज्ञासु कहिये स्वरूपके जाननैंकी इच्छावाला विरक्त है वा बहिर्मुख रागी है? सो कथन कर ॥ ३ ॥

॥ ४ ॥ एकएकविकल्पमैं दोदोविकल्पके अभिप्रायसैं समाधान ॥

२ जब मूढकी कोइक गति कहीचाहिये। तब सो मूढ क्या रागी कहिये विषयासक्त है वा विरक्त है? सो कथन कर ॥ ये दोविकल्प हैं। तिनमैं जो रागी है तौ तिसके रागके नाम प्रीतिके अनुसारकरि कर्म वा उपासन कह्याचाहिये। ऐसैं प्रथमपक्षविषै गुरु समाधान कहैहैं:—

३] तत्त्वज्ञानसैं विमुखके ताईं यथाउचित उपासनाकूं वा कर्मकूं कहना ॥

४) तत्त्वज्ञानसैं बहिर्मुखके ताईं यथायोग्य कह्याचाहिये औ जो ब्रह्मलोकआदिककी कामनावाला होवै तौ ताकूं उपासना कहीचाहिये औ जो स्वर्गआदिककी कामनावाला होवै तौ ताकूं कर्म कह्याचाहिये। यह अर्थ है ॥

५ जिज्ञासु है। इस द्वितीयपक्षविषै बी सो जिज्ञासु क्या अतिविवेकी है वा मंदबुद्धिवाला है? ऐसैं विकल्पकरिके अतिविवेकीकूं तौ पूर्वअध्यायरूप योगानंदमैं कथन किये प्रकारकरि ब्रह्मसाक्षात्कार होवैगा। ऐसैं जानिके मंदप्रज्ञकूं तिस ब्रह्मके दर्शनका उपाय कहैहैं:—

६] मंदप्रज्ञजिज्ञासुकूं तौ आत्मानंदकरि बोधन करना ॥

टीकांक: ४६०७ टिप्पणांक: ७७४	बोधयामास मैत्रेयीं याज्ञवल्क्यो निजप्रियाम् । न वा अरे पत्युरर्थे पतिः प्रिय इतीरयन् ॥ ५ ॥ [१२]पतिर्जाया पुत्रवित्ते पशुब्राह्मणबाहुजाः । लोका देवा वेदभूते सर्वं चात्मार्थतः प्रियम् ॥ ६ ॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १२८१ १२८२

७) यो मंदप्रज्ञः मंदा जडा प्रज्ञा बुद्धिर्यस्य स मंदप्रज्ञः तं मंदप्रज्ञं । ज्ञातुमिच्छुः **जिज्ञासुः** । तं **आत्मानंदेन** आत्मानंदविवेचनमुखेन । **बोधयेत्** ॥ ४ ॥

८ एवं केन को बोधित इत्यत आह (**बोधयामासेति**)–

९] **याज्ञवल्क्यः मैत्रेयीं निजप्रियां "अरे पत्युः अर्थे पतिः प्रियः न वा" इति ईरयन् बोधयामास** ॥

१०) **याज्ञवल्क्यः** एतन्नामको यजुःशाखाविशेषप्रवर्त्तकः कश्चिदृषिः । **मैत्रेयीं** एतन्नामिकां **निजप्रियां** स्वभार्यां । **"न वा अरे पत्युरर्थे पतिः प्रियः** इति न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति" इत्यादिप्रकारेण **ईरयन्** ब्रुवन् । **बोधयामास** बोधितवान् । इत्यर्थः ॥ ५ ॥

११ उत्तरत्र "परप्रेमास्पदत्वेन परमानंद

७) मंद है प्रज्ञा कहिये बुद्धि जिसकी ऐसा जो पुरुष । सो मंदप्रज्ञ कहियेहै औ जाननैकूं जो इच्छताहै सो जिज्ञासु कहियेहै ॥ तिस मंदबुद्धिवाले जिज्ञासुकूं आत्मानंदके विवेचनरूप द्वारकरि बोधन करना ॥ ४ ॥

॥ ९ ॥ चतुर्थश्लोकउक्तअर्थमैं याज्ञवल्क्य औ मैत्रेयीका उदाहरण ॥

८ ऐसैं आत्मानंदकरि किस गुरुनैं कौन शिष्यके ताईं बोधन कियाहै? तहां कहैहैं:—

९] **याज्ञवल्क्यमुनि । मैत्रेयीनामक अपनी प्रियाकूं "अरे स्त्री! पतिकेअर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै" ऐसैं कहतेहुये बोधन करतेभये** ॥

१०) याज्ञवल्क्य इस नामवाला यजुर्वेदकी शाखाविशेषका कहिये वाँजसनेयिशाखाका प्रवर्त्तक कोइक ऋषि । मैत्रेयी इस नामवाली अपनी प्रिया जो भार्या ताकूं "अरे मैत्रेयी! पतिके कामअर्थ कहिये भोगअर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै" इत्यादिकप्रकारकरि कहताहुया बोधं करताभया ॥ यह अर्थ है ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ आत्माअर्थ सर्ववस्तुकी प्रियताकी बोधक श्रुतिके तात्पर्यका विभाग

॥ ४६११–४६५८ ॥

॥ १ ॥ श्लोक ९ उक्त प्रमाणमैं स्थित सकलपर्यायवाक्यका तात्पर्य ॥

११ आगे ७२ वें श्लोकविषै "परमप्रेमका

७४ वाज जो केसर कहिये अश्वरूपके कंठगत केश । तिनकरि जिसनै यजुर्वेदके समूहका सनि (दान) कियाहै । ऐसा जो अश्वरूपधर सूर्य । सो **वाजसनि** कहियेहै ॥ सो (सूर्य) जिसकूं सेवनैं योग्य है ऐसा जो याज्ञवल्क्यमुनि । सो **वाजसनेय** कहियेहै ॥ तैत्तिरीयनामक कृष्णयजुर्वेदतैं विलक्षण जो शुक्लवर्णयजुर्वेदरूप काण्वआदिकपंचदशशाखा हैं । वे जातैं याज्ञवल्क्यकरि प्रवर्त्त भईयां हैं । यातैं **वाजसनेयि** नामसैं कहियेहैं ॥

७५ । यह वार्त्ता बृहदारण्यकउपनिषद्के तृतीयअध्याय औ षष्ठअध्यायविषै पठित मैत्रेयीब्राह्मणनामक प्रकरणविषै प्रसिद्ध है ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १२८३	पत्याविच्छा यदा पत्न्यास्तदा प्रीतिं करोति सा। क्षुदनुष्ठानरोगाद्यैस्तदा नेच्छति तत्पतिः ॥ ७ ॥	टीकांकः ४६१२ टिप्पणांकः ॐ

इष्यतां" इतिवाक्येन परप्रेमास्पदत्वेन हेतुनात्मनः परमानंदरूपतां सिसाधयिषुः आदौ परप्रेमास्पदत्वहेतुसमर्थनाय तावदुदाहृतवाक्यस्योपलक्षणपरतामभिप्रेत्य तत्प्रकरणस्थसकलपर्यायवाक्यतात्पर्यमाह—

१२] **पतिः जाया पुत्रवित्ते पशुब्राह्मणबाहुजाः लोकाः देवाः वेदभूते च सर्वं आत्मार्थतः प्रियम् ॥**

१३) पतिजायादिकं भोग्यजातं भोक्तुः शेषत्वात् भोक्तुः संबंधेनैव प्रियं न स्वरूपेणेत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

१४ इदानीं पूर्वोदाहृतस्य "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति । आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति" इत्यस्य वाक्यस्य तात्पर्यार्थं विभज्य दर्शयति (पत्याविति)—

१५] **यदा पत्न्याः पत्यौ इच्छा । तदा सा प्रीतिं करोति । तत्पतिः क्षुदनुष्ठानरोगाद्यैः तदा न इच्छति ॥**

१६) यदा यस्मिन्काले । पत्न्याः जायायाः । पत्यौ भर्त्तरि विषये । इच्छा कामः । भवति तदा सा पत्नी । पत्यौ

नाम सर्वसैं अधिकप्रेमका विषय होनैंकरि आत्मा परमानंदरूप अंगीकार करनैंकूं योग्य है" इस वाक्यकरि "परमप्रेमका विषय होनैंकरि" इस हेतुसैं आत्माकी परमानंदताके साधनैंकूं इच्छतेहुये आचार्य । आदिमैं ६–७२ वें श्लोकविषै परमप्रेमकी विषयतारूप हेतुके कहनैंअर्थ । प्रथम ५ वें श्लोकविषै उदाहरण किये श्रुतिवाक्यके उपलक्षण परायण होनैंके अभिप्रायकरि । तिस श्रुतिरूप प्रमाणविषै स्थित सकल पर्यायरूप वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

१२] पति । स्त्री । पुत्र । धन । गौअश्वादिकपशु । ब्राह्मणपनैंरूप जाति । क्षत्रियत्वजाति । स्वर्गादिकलोक । ईश्वरादिकदेव । ऋक्‌आदिकवेद औ पृथिवीआदिकभूत । यह सर्व भोग्यका समूह । आत्मा जो भोक्ता ताके अर्थ प्रिय है ॥

१३) भर्त्ता औ भार्याआदिक जो भोगसामग्रीका समूह है । सो भोक्ताके शेष कहिये उपकारी होनैंतैं भोक्ताके संबंधकरिहीं प्रिय है । स्वरूपकरि प्रिय नहीं है ॥ यह अभिप्राय है ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ स्त्रीकी पतिमैं औ पतिकी स्त्रीमैं औ अन्योअन्यइच्छासैं प्रवृत्तिमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

१४ अब पूर्व ५ वें श्लोकविषै उदाहरण कियेहीं "अरे मैत्रेयी! पतिके कामअर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै । किंतु आत्माके कामअर्थ पति प्रिय होवैहै" इस श्रुतिवाक्यके तात्पर्यरूप अर्थकूं विभागकरिके दिखावैहैं:—

१५] **जब पत्नीकूं पतिविषै इच्छा होवै । तब सो प्रीति करतीहै औ जब तिसका पति क्षुधा अनुष्ठान औ रोग आदिकनकरि युक्त होवै तब तिसकूं नहीं इच्छताहै ॥**

१६) जिसकालविषै पत्नी जो जाया ताकूं पति जो भर्त्ता तिसविषै इच्छा होवै । तब सो पत्नी पतिविषै प्रीति जो स्नेह ताकूं करतीहै औ

टीकांक: ४६१७

टिप्पणांक: ॐ

[१९] न पत्युरर्थे सा प्रीतिः स्वार्थ एव करोति ताम् ।
[२१] पतिश्चात्मन एवार्थे न जायार्थे कदाचन ॥ ८ ॥
[२४] अन्योऽन्यप्रेरणेऽप्येवं स्वेच्छयैव प्रवर्तनम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांक: १२८४ १२८५

प्रीतिं स्नेहं । करोति । यदा तत्पतिः क्षुधादिना इच्छाभावहेतुना युक्तो भवति चेत् तदा तं नेच्छति न कामयते ॥ ७ ॥

१७ एवं च सति किं फलितमित्यत आह (न पत्युरिति)–

१८] सा प्रीतिः पत्युः अर्थे न । तां स्वार्थे एव करोति ॥

१९) जायया क्रियमाणा या प्रीतिः सा पत्युरर्थे पत्युः प्रयोजनाय न । किंतु जाया तां पत्यौ प्रीतिं । स्वार्थे एव स्वप्रयोजनायैव करोति ॥

२० "न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति" इत्यादि "न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" इत्येतानां वाक्यानां तात्पर्यं क्रमेण विभज्य दर्शयति—

२१] पतिः च आत्मनः अर्थे एव जायार्थे कदा च न ॥

२२) पतिश्च भर्तापि । स्वप्रयोजनायैव जायायां प्रीतिं करोति । न जायाप्रीतय इत्यर्थः ॥ ८ ॥

२३ नन्वेकैककामनया प्रवृत्तौ प्रीतिः स्वार्था भवतु युगपदुभयेच्छया प्रवृत्तौ तु प्रीतेरुभयार्थता स्यादित्याशंक्याह (अन्योऽन्येति)–

२४] एवं अन्योऽन्यप्रेरणे अपि स्वेच्छया एव प्रवर्तनम् ॥

जब पति क्षुधाआदिकइच्छाके अभावरूपहेतुकरि युक्त होवै । तब तिस पत्नीकूं इच्छता नहीं ॥ ७ ॥

१७ ऐसैं हुये क्या सिद्ध भया? तहां कहैहैं:—

१८] सो जायाकृतप्रीति पतिके अर्थ नहीं है । किंतु जाया तिस प्रीतिकूं अपनैं अर्थहीं करतीहै ॥

१९) भार्याकरि करियेहै जो प्रीति । सो पतिके प्रयोजनवास्ते नहीं है । किंतु जाया पतिविषै तिस प्रीतिकूं अपनैं प्रयोजनवास्तेहीं करतीहै ॥

२० "अरे मैत्रेयी! जायाके कामअर्थ जाया प्रिय नहीं होवैहै" इस आदिवाले औ "अरे मैत्रेयी! सर्वके कामअर्थ सर्व प्रिय नहीं होवैहै । किंतु आत्माके कामअर्थ सर्व प्रिय होवैहै" इस अंतवाले श्रुतिवाक्यनके तात्पर्यकूं क्रमसैं विभागकरिके दिखावैहैं:—

२१] औ पति बी आपके अर्थहीं प्रीतिकूं करताहै । जायाके अर्थ कदाचित् नहीं करताहै ॥

२२) औ पति बी अपनैं प्रयोजनवास्तेहीं जायाविषै प्रीतिकूं करताहै । जायाकी प्रीतिवास्ते नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ ८ ॥

२३ ननु । पति औ जायामैंसैं एकएककी कामनाकरि प्रवृत्तिविषै जो प्रीति है । सो अपनैंअर्थ होहु । परंतु एककालविषै दोनूंकी इच्छाकरि प्रवृत्तिविषै जो प्रीति है । ताकूं पति औ जाया दोनूंकी अर्थता होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२४] ऐसैं दोनूंकी परस्परप्रेरणाके हुये बी अपनी इच्छाकरिहीं प्रवृत्ति होवैहै ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१२८६	श्मश्रुकंटकवेधेन बालो रुदति तत्पिता । चुंबत्येव न सा प्रीतिर्बालार्थे स्वार्थ एव सा ॥१०॥	४६२५
१२८७	निरिच्छमपि रत्नादि वित्तं यत्नेन पालयन् । प्रीतिं करोति सा स्वार्थे वित्तार्थत्वं न शंकितं ११	टिप्पणांक: ॐ

२५) एवं उक्तेन प्रकारेण । स्वेच्छयैव स्वकामनापूरणेच्छयैव । प्रवर्तनम् उभयोः र्प्रीतिशेषः ॥ ९ ॥

२६ स्वेच्छया प्रवर्तनमेव दर्शयति—

२७] **श्मश्रुकंटकवेधेन बालः रुदति। तत्पिता चुंबति एव । सा प्रीतिः बालार्थे न । सा स्वार्थे एव ॥**

२८) पित्रा क्रियमाणं पुत्रमुखादिचुंबनं न पुत्रप्रीत्यर्थं तस्य श्मश्रुकंटकवेधेन रोदनकर्तृत्वादतस्तत्पितुः स्वतुष्ट्यर्थमेवेत्यवगंतव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥

२९ चेतनेषु पतिजायापुत्रेषु क्रियमाणायाः प्रीतेः स्वार्थत्वपरार्थत्वसंदेहसंभवादचेतनत्वेनेच्छामात्ररहितस्य वित्तविषयस्य तच्छंकैव नास्तीत्यभिप्रेत्य "न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति" इत्यस्य वाक्यस्य तात्पर्यमाह—

३०] **निरिच्छं अपि रत्नादि वित्तं यत्नेन पालयन् प्रीतिं करोति । सा स्वार्थे । वित्तार्थत्वं शंकितं न ॥ ११ ॥**

२५) ऐसैं कथन किये प्रकारकरि अपनी कामनाके पूरण करनैंकी इच्छाकरिहीं पति औ जाया दोनूंकी बी प्रवृत्ति होवैहै ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥ बालकमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

२६ अपनी इच्छाकरि प्रवृत्तिपनैंकूं दिखावैहैं:—

२७] **डाढीके कंटकतुल्य केशनके वेधकरि बालक रुदन करताहै औ तिस बालकका पिता चुंबन करताहीं है। सो प्रीति बालकके अर्थ नहीं है । किंतु सो प्रीति अपनैं पिताके अर्थहीं है ॥**

२८) पिताकरि करियेहै जो पुत्रके मुखआदिकका चुंबन । सो पुत्रकी प्रीतिअर्थ नहीं है । काहेतैं तिस पुत्रकूं श्मश्रुके केशनके वेधकरि रुदन करनैहारा होनैतैं ॥ यातैं सो पुत्रके मुखआदिकका चुंबन पिताकूं अपनी तृप्तिअर्थहीं है । ऐसैं जानना ॥ यह अर्थ है ॥१०॥

॥ ४ ॥ धनमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

२९ चेतन जो जंगम । तिसरूप पति जाया औ पुत्रविषै करियेहै जो प्रीति । ताकी स्वार्थता औ परार्थताविषै संदेहके संभवतैं जड होनैंकरि इच्छामात्रसैं रहित जो धनरूप विषय है । ताकूं तिस स्वार्थताकी शंकाहीं नहीं है । इस अभिप्रायकरि "अरे मैत्रेयी! वित्तके कामअर्थ वित्त प्रिय नहीं होवैहै । किंतु आत्माके कामअर्थ वित्त प्रिय होवैहै" इस वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

३०] **इच्छारहित मणिआदिकरूप धनकूं यत्नकरि पालन करताहुया पुरुष प्रीतिकूं करताहै । सो प्रीति अपनैंअर्थहीं है । तिस प्रीतिकी वित्तअर्थता शंकित कहिये शंकाकी विषय नहीं है ॥ ११ ॥**

टीकांकः ४६३१ टिप्पणांकः ७७६	³²अनिच्छति बलीवर्दे विवाहयिषते बलात् । प्रीतिः सा वणिगर्थैव बलीवर्दार्थता कुतः ॥ १२॥ ³⁵ब्राह्मण्यं मेऽस्ति पूज्योऽहमिति तुष्यति पूजया । अचेतनाया जातेर्नो संतुष्टिः पुंस एव सा ॥१३॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १२८८ १२८९

३१ चेतनत्वेऽपि वहनादीच्छारहितपशुविषयस्य "न वा अरे पशूनाम्" इत्यस्य वाक्यस्य तात्पर्यमाह (अनिच्छतीति)—

३२] बलीवर्दे अनिच्छति बलात् विवाहयिषते । सा प्रीतिः वणिगर्था एव बलीवर्दार्थता कुतः ॥

३३) **बलीवर्दे** अनडुहि । **अनिच्छति** भारं वोढुमिच्छामकुर्वति । अपि **बलाद्विवाहयिषते** वाहयितुं कामयते । तत्र वहनादिविषयायाः प्रीतेः वणिगर्थतैव न बलीवर्दार्थता इत्यर्थः ॥ १२ ॥

३४ "न वा अरे ब्रह्मणः कामाय" इतिवाक्यस्य तात्पर्यमाह—

३५] "ब्राह्मण्यं मे अस्ति अहं पूज्यः" इति पूजया तुष्यति । सा संतुष्टिः अचेतनायाः जातेः नो पुंसः एव ॥

३६) ब्राह्मण्यनिमित्तया पूजया ब्राह्मणोऽहमस्मीत्यभिमानवानेव तुष्यति । न जडा जातिरित्यर्थः ॥ १३ ॥

॥ ५ ॥ वणिक्की बलीवर्दमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

३१ चेतनपनैके हुये बी भार उठावनैआदिककी इच्छातैं रहित पशुनकूं विषयकरनैहारा जो "अरे मैत्रेयी! पशुनके कामअर्थ पशु प्रिय नहीं होवैहै । किंतु आत्माके कामअर्थ पशु प्रिय होवैहै" यह वाक्य है । ताके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

३२] बलीवर्दके नहीं इच्छतेहुये बी बलतैं तिसकूं भार उठावनैंकूं पुरुष इच्छताहै । सो प्रीति वणिक्के अर्थहीं है । तिस प्रीतिकूं बलीवर्दकी अर्थता कहांसैं होवैगी ?

३३) बैल भार उठावनैंकी इच्छा नहीं करताहै । तौ बी वणिक् जो व्यापारी है । सो तिस बैलतैं भार उठावनैंकूं इच्छताहै । तहां भार उठावनैंआदिककूं विषय करनैहारी जो प्रीति है । सो वणिक्के अर्थ है बलीवर्दके अर्थ नहीं है । यह अर्थ है ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ ब्राह्मणत्वादिजातिमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

३४ "अरे मैत्रेयी! ब्राह्मणजातिके कामअर्थ ब्राह्मणजाति प्रिय नहीं है । किंतु आत्माके कामअर्थ ब्राह्मणजाति प्रिय है" इस वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

३५] "ब्राह्मणत्वजाति मेरी है । मैं पूजाके योग्य हूं" ऐसैं पूजाकरि संतोषकूं नाम प्रसन्नताकूं पावताहै । सो संतोष जडजातिकूं नहीं है । किंतु पुरुषकूंहीं है ॥

३६) ब्राह्मणत्वजातिरूप निमित्तवाली पूजाकरि "मैं ब्राह्मण हूं" । इस अभिमानवान पुरुषहीं संतोषकूं पावताहै । जडजाति जो ब्राह्मणपना है । सो संतोषकूं पावती नहीं । यह अर्थ है ॥ १३ ॥

७६ आदिशब्दकरि स्वारी करनैंकी वा शृंगार करनैंकी वा रथआदिकनसैं जोडनैंकी इच्छाका ग्रहण है ॥ उक्तकार्यरूप निमित्तसैं जन्य जो बैलविषै प्रीति । सो वणिकके अर्थ है । बैलके अर्थ नहीं है । काहेतैं बैलकूं तौ तिन कार्यनविषै इच्छा बी नहीं है औ वणिक्कूं तिन कार्यनविषै इच्छा है । यातैं यह कथन बनैहै ॥

मह्मानंदे. आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	³⁸क्षत्रियोऽहं तेन राज्यं करोमीत्यत्र राजता ।	
१२९०	न जातेर्वैश्यजात्यादौ योजनायेदमीरितम् ॥१४॥	४६३७
१२९१	⁴³स्वर्गलोकब्रह्मलोकौ स्तां ममेत्यभिवांछनम् । लोकयोर्नोपकाराय स्वभोगायैव केवलम् ॥१५॥	टिप्पणांकः ॐ
१२९२	⁴⁶ईशविष्ण्वादयो देवाः पूज्यंते पापनष्टये । न तन्निष्पापदेवार्थं तत्तु स्वार्थं प्रयुज्यते ॥ १६ ॥	

३७ "न वा अरे क्षत्रस्य" इत्यादिवाक्यस्य तात्पर्यमाह (क्षत्रिय इति)—

३८] "अहं क्षत्रियः तेन राज्यं करोमि" इति अत्र राजता । जातेः न ॥

३९) राज्योपभोगनिमित्तं सुखं क्षत्रियत्वजातिमत एव न क्षत्रियत्वजातेरित्यर्थः ॥

४० इदं क्षत्रियोदाहरणं वैश्याद्युपलक्षणार्थमित्याह (वैश्यजात्यादाविति)—

४१] इदं वैश्यजात्यादौ योजनाय ईरितम् ॥ १४ ॥

४२ "न वा अरे लोकानां कामाय" इत्यादिवाक्यस्य तात्पर्यमाह—

४३] "स्वर्गलोकब्रह्मलोकौ मम स्तां" इति अभिवांछनं लोकयोः उपकाराय न । केवलं स्वभोगाय एव ॥

४४) लोकद्वयोपादानं कर्मोपासनालक्षणसाधनद्वयसंपाद्यसकललोकोपलक्षणार्थम् ॥१५

४५ किं च—

४६] ईशविष्ण्वादयः देवाः पाप-

---

३७ "अरे मैत्रेयी ! क्षत्रजातिके कामअर्थ क्षत्र प्रिय नहीं है" इस वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

३८] मैं क्षत्रियत्वजातिवान हूं । तिस हेतुकरि राज्यकूं करताहूं ।" इहां जो राजापना है । सो जातिकूं नहीं है ॥

३९) राज्यके उपभोगरूप निमित्तसैं जन्य जो सुख है । सो क्षत्रियत्वजातिवान् पुरुषकूंहीं है । क्षत्रियपनैंरूप जातिकूं नहीं है । यह अर्थ है ॥

४० यह क्षत्रियका जो उदाहरण है । सो वैश्यआदिकके ग्रहणअर्थ है । ऐसैं कहैहैं:—

४१] यह क्षत्रियका उदाहरण वैश्यजातिआदिकविषै जोडनैंअर्थ कह्याहै१४

॥ ७ ॥ स्वर्गादिलोकमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

४२ "अरे मैत्रेयी ! स्वर्गादिलोकनके कामअर्थ लोक प्रिय नहीं होवैहैं" इत्यादि इस वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

४३] "स्वर्गलोक औ ब्रह्मलोक मेरेकूं प्राप्त होवै" ऐसी जो अभिवांछा है । सो लोकनके उपकारअर्थ नहीं है । किंतु केवल अपनैं सुखानुभवरूप भोगके अर्थहीं है ॥

४४) स्वर्गलोक औ ब्रह्मलोक इन दोनूंलोकनका जो ग्रहण है । सो कर्म औ उपासनारूप दोनूंसाधनकरि संपादन करनैं योग्य सकललोकनके ग्रहणअर्थ है ॥ १५ ॥

॥ ८ ॥ विष्णुआदिकदेवनमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

४५ और बी कहतेहैं:—

४६] ईश कहिये अंतर्यामी वा शिव

टीकांक: ४६४६ टिप्पणांक: ७७७

ऋगादयो ह्यधीयंते दुर्ब्राह्मण्यानवाप्तये ।
न तत्प्रसक्तं वेदेषु मनुष्येषु प्रसज्यते ॥ १७ ॥
भूम्यादिपंचभूतानि स्थानतृट्पाकशोषणैः ।
हेतुभिश्चावकाशेन वांछंत्येषां न हेतवे ॥ १८ ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १२९३ १२९४

नष्टये पूज्यंते । तत् निष्पापदेवार्थं न । तत् तु स्वार्थं प्रयुज्यते ॥

ॐ ४६) पापनष्टये पापनिवृत्तये इत्यर्थः ॥ तत्पूजनं न निष्पापदेवार्थं स्वतः पापरहितानां देवानां प्रयोजनाय । किंतु स्वार्थं पूजाकर्तुः प्रयोजनाय ॥ १६ ॥

४७ किं च (ऋगादय इति)—

४८] दुर्ब्राह्मण्यानवाप्तये ऋगादयः हि अधीयंते । तत् वेदेषु न प्रसक्तं । मनुष्येषु प्रसज्यते ॥

४९) दुर्ब्राह्मण्यं व्रात्यत्वं । तच्च दुर्ब्राह्मण्यं मनुष्येषु मनुष्यत्वावांतरजातिरूपं तद्रहितेषु वेदेषु न प्रसज्यते इत्यर्थः ॥ १७ ॥

५० किं च (भूम्यादीति)—

५१] स्थानतृट्पाकशोषणैः च अव-

औ विष्णुआदिक जे देवता हैं । वे पापनष्टिके अर्थ पूजन करियेहैं । सो पूजन निष्पापदेवनके प्रयोजनअर्थ उपयोगी होता नहीं । किंतु अपनैं प्रयोजनअर्थ उपयोगी होताहै ॥

ॐ ४६) इहां पापनष्टिके अर्थ । याका पापनिवृत्तिवास्ते । यह अर्थ है ॥ औ सो पूजन निष्पापदेवनके अर्थ नहीं कहिये स्वतः पापरहितदेवनके प्रयोजनअर्थ नहीं है । किंतु स्वार्थ है कहिये पूजाकर्त्ताके प्रयोजनअर्थ है ॥ १६ ॥

॥ ९ ॥ ऋगादिवेदनमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

४७ और बी कहैहैं:—

४८] दुर्ब्राह्मणताकी अप्राप्तिअर्थ ऋक्आदिकच्यारीवेद अध्ययन करियेहैं । सो अब्राह्मणता वेदनविषै प्राप्त नहीं होवैहै । किंतु मनुष्यनविषै प्राप्त होवैहै ॥

४९) दुर्ब्राह्मणता नाम व्रात्यपनैंका है । सो दुर्ब्राह्मणपना मनुष्यनविषै जो मनुष्यत्वरूप व्यापकजाति है । ताके अंतर्गत व्याप्यजातिरूप है । तिस मनुष्यपनैंरूप जातिकरि रहित वेदनविषै सो व्रात्यपना प्राप्त होवै नहीं । यह अर्थ है ॥ १७ ॥

॥ १० ॥ पृथिवीआदिपांचभूतनमैं प्रीतिकी आत्मार्थता ॥

५० और बी कहैहैं:—

५१] सर्वप्राणी । स्थान । तृषानिवारण ।

७७ प्राप्त वस्तु (दोषआदिक)का निषेध बनैहै । अप्राप्तका नहीं ॥ जैसैं मनुष्यपनैंरूप जाति है तौ ताके अंतर्गत ब्राह्मण होनैंयोग्य मनुष्यविषै वेदाध्ययनआदिकके अभावकरि व्रात्यपनैं (दुर्ब्राह्मणपनैं)रूप जातिकी प्राप्तिका संभव है । ताका वेदअध्ययनआदिककरि निषेध (निवारण) होवैहै ॥ वेदनविषै जाति (मनुष्यत्वरूप व्यापकजाति)का अभाव है । यातैं व्रात्यत्वरूप व्याप्यजातिका अभाव है ॥

(१) जिस जातिके अंतर्गत और अनेकजाति होवै । सो व्यापकजाति कहियेहै । जैसैं मनुष्यत्वजाति है ॥ औ

(२) जिस जातिके अंतर्गत औरजाति होवै नहीं किंतु आप औरजातिके अंतर्गत होवै सो व्याप्यजाति कहियेहै । जैसैं ब्राह्मणत्व वा क्षत्रियत्वआदिकजाति हैं । इति ॥

५४ स्वामिभृत्यादिकं सर्वं स्वोपकाराय वाञ्छति ।
तत्तत्कृतोपकारस्तु तस्य तस्य न विद्यते ॥१९॥
५७ सर्वव्यवहृतिष्वेवमनुसंधातुमीदृशम् ।
उदाहरणबाहुल्यं तेन स्वां वासयेन्मतिम् ॥२०॥

काशेन हेतुभिः भूम्यादिपंचभूतानि वांछंति । एषां हेतवे न ॥

५२) सर्वे प्राणिनः स्थानप्रदानतृड्निवारणपाककरणार्द्रशोषणावकाशप्रदानाख्यैः हेतुभिः निमित्तैः । पृथिव्यादीनि पंचभूतानि वांछंति अपेक्षंते। एषां पृथिव्यादीनां । तु हेतवे अवस्थानवांछनादीनि निमित्तानि न संति । अतो न स्वयं आकांक्षते इत्यर्थः ॥ १८ ॥

५३ इदानीं "न वा अरे सर्वस्य कामाय" इत्यस्य वाक्यस्य तात्पर्यमाह—

५४] स्वामिभृत्यादिकं सर्वं स्वोपकाराय वांछति । तत्तत्कृतोपकारः तु तस्य तस्य न विद्यते ॥

५५) भृत्यादिसर्वो जनः स्वाम्यादिकं सर्वं स्वोपकाराय स्वप्रयोजनाय। वांछति एवं स्वाम्यादिरपि ॥ १९ ॥

५६ ननु श्रुतावेवं बहूदाहरणदर्शनं किमर्थं कृतमित्याशंक्याह—

५७] सर्वव्यवहृतिषु एवं अनुसंधातुं ईदृशं उदाहरणबाहुल्यं । तेन स्वां मतिं वासयेत् ॥

पाक । शोषण औ अवकाश । इन हेतुनकरि भूमिआदिकपंचभूतनकूं इच्छतेहैं । इन भूतनके हेतुअर्थ नहीं ॥

५२) सर्वप्राणी । अवस्थानका देना औ तृषाका निवारण औ अन्नके कचेपनेका निवारण करना औ गीलेवस्त्रादिवस्तुका शोषण औ रहनैं फिरनैंकूं जागाका देना । इन नामवाले निमित्तनकरि पृथिवीआदिकपांचभूतनकी अपेक्षा करतेहैं औ इन पृथिवीआदिकनके प्रयोजनअर्थ अवस्थानकी इच्छाआदिक निमित्त नहीं हैं । यातें आप पृथिवीआदिक आकांक्षा करते नहीं ॥ यह अर्थ है ॥ १८ ॥

॥ ११ ॥ भृत्यादिककी स्वामिआदिकमैं औ स्वामिआदिककी भृत्यादिकमैं प्रीतिकी आत्मार्थता॥

५३ "अरे मैत्रेयी ! सर्वके भोगअर्थ सर्व प्रिय नहीं होवैहै" इस वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

५४] अधिपति औ अनुचरआदिक सर्वकूं अपनैं उपकारअर्थ इच्छा करतै हैं औ तिस तिस स्वामिआदिकका किया उपकार सो तौ तिस तिस स्वामिआदिकके अर्थ नहीं है । किंतु आपके अर्थ है ॥

५५) किंकरआदिकसर्वजन जो हैं । सो स्वामिआदिकसर्वकूं अपनैं प्रयोजनअर्थ इच्छताहै । ऐसैं स्वमिआदिक बी अपनैं उपकारअर्थ अनुचरआदिककूं इच्छताहै ॥ १९ ॥

॥ १२ ॥ बहुउदाहरणके दिखावनैंका प्रयोजन ॥

५६ ननु । श्रुतिविषै ऐसैं बहुत उदाहरणका दिखावना किस प्रयोजनअर्थ कियाहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५७] सर्वव्यवहारनविषै ऐसैं अनुसंधान करनैंकूं ऐसा उदाहरणका बहुलपना कह्याहै। तिस हेतुकरि अपनी मतिकूं वासनायुक्त करना ॥

टीकांकः ४६५८ टिप्पणांकः ॐ

^{६१}अथ केयं भवेत्प्रीतिः श्रूयते या निजात्मनि ।
^{६२}रागो वध्वादिविषये श्रद्धा यागादिकर्मणि॥२१॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १२९७

५८) इच्छापूर्वकेषु सर्वेषु अपि भोजनादिव्यवहारेषु एवं "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" इत्युक्तेन प्रकारेण अनुसंधातुं अनुसंधानाय ईदृशं पतिजायादिषु प्रीतिदर्शनरूपं उदाहरणबाहुल्यं उक्तमिति शेषः । तेन कारणेन । स्वां स्वसंबंधिनीं । मतिं बुद्धिं । वासयेत् सर्वस्यापि स्वशेषत्वावगमेन स्वात्मनः प्रियतमत्वानुसंधानवतीं कुर्यादित्यर्थः ॥ २० ॥

५९ नन्वात्मशेषत्वेन सर्वस्य प्रियत्वोक्तेरात्मनः प्रियतमत्वं उक्तमनुपपन्नं प्रीतिविकल्पे क्रियमाणे प्रीतेरेव दुर्निरूपत्वात् इत्यभिप्रायेण प्रीतिस्वरूपं पृच्छति—

६०] अथ या निजात्मनि प्रीतिः श्रूयते । इयं का भवेत् ॥

ॐ ६०) अथशब्दः प्रश्नार्थः । या निजात्मनि प्रीतिः श्रूयते । इयं का किं रागरूपा किं वा श्रद्धारूपा उत भक्तिरूपा यद्वेच्छारूपा । इति किंशब्दार्थः ॥

६१ चतुर्ष्वपि पक्षेषु प्रीतेः सर्वविषयत्वं न संभवतीत्याह—

६२] रागः वध्वादिविषये । श्रद्धा यागादिकर्मणि ॥

---

५८) इच्छापूर्वक जो सर्वभोजनादिकव्यवहार हैं। तिनविषै वी ऐसैं आत्माके कामअर्थ सर्व प्रिय होवैहै। इस १९ वें श्लोकविषै कथन किये प्रकारकरि चिंतन करनैअर्थ ऐसा षष्ठश्लोकसैं कथन किया पतिजायाआदिकविषै प्रीतिके दिखावनैरूप उदाहरणका बहुलपना कह्याहै ॥ तिस कारणकरि अपनी बुद्धिकूं वासित करै कहिये सर्ववस्तुके वी अपनैं आत्माके उपकारीपनैंके ज्ञानकरि अपनैं स्वरूपकी अत्यंत प्रियरूपतारूप परमानंदताके अनुसंधानवाली करै । यह अर्थ हैं ॥ २० ॥

॥ ३ ॥ आत्मामैं विद्यमान प्रीतिके स्वरूपपूर्वक आत्माकी प्रियतमता

॥ ४६५९—४७२६ ॥

॥ १ ॥ आत्मविषयक प्रीतिके स्वरूपमैं च्यारीविकल्प औ तिनके निराकरणपूर्वक समाधान ॥

५९ ननु । आत्माका उपकारी होनैंकरि सर्ववस्तुकी प्रियरूपताके कथनतैं आत्माकी प्रियतमता कही । सो बनै नहीं । काहेतैं विकल्पके कियेहुये प्रीतिकूंहीं निरूपण करनैंकूं अशक्य होनैंतैं । इस अभिप्रायकरि प्रीतिके स्वरूपकूं वादी पूछताहै:—

६०] अब पूर्वपक्षी पूछताहै:—जो निजात्माविषै प्रीति सुनियेहै । सो प्रीति कौन कहिये किसरूप है ?

ॐ ६०) मूलविषै जो अथका पर्याय अवशब्द है सो प्रश्नअर्थ है ॥ सो प्रश्न यह है:— जो निजात्माविषै प्रीति श्रुतिमैं सुनियेहै। यह प्रीति क्या रागरूप है किंवा श्रद्धारूप है वा भक्तिरूप है यद्वा इच्छारूप है ? ये च्यारीविकल्प जो हैं । सो मूलमैं स्थित किये पर्याय कौनशब्दका अर्थ है ॥

६१ इन च्यारीपक्षनविषै प्रीतिकूं सर्वविषयवान्‌ता संभवै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

६२] राग स्त्रीआदिकविषयविषै होवैगा औ श्रद्धा यागआदिककर्मविषै होवैगी ॥

महानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
१२९८	^६४^भक्तिः स्याद्गुरुदेवादाविच्छा त्वप्राप्तवस्तुनि । ^६७^तर्ह्यस्तु सात्विकी वृत्तिः सुखमात्रानुवर्तिनी २२	४६३६
१२९९	^७०^प्राप्ते नष्टेऽपि सद्भावादिच्छातो व्यतिरिच्यते । ^७१^सुखसाधनतोपाधेरन्नपानादयः प्रियाः ॥ २३ ॥	टिप्पणांकः ॐ

६३) रागः चेत् वध्वादिष्वेव स्यान्न यागादिषु । श्रद्धा चेत् यागादिष्वेव स्यान्न वध्वादिषु ॥ २१ ॥

६४] भक्तिः गुरुदेवादौ स्यात् । इच्छा तु अप्राप्तवस्तुनि ॥

६५) भक्तिः चेत् गुर्वादिष्वेव स्यात् नेतरेषु।इच्छा चेत् अप्राप्तवस्तुविषयैव स्यान्नेतरविषया । अतो न सर्वविषयत्वं प्रीतेरित्यर्थः ॥

६६ उक्तप्रकारचतुष्टयातिरिक्तं पक्षमादायोत्तरमाह—

६७] तर्हि सुखमात्रानुवर्तिनी सात्विकी वृत्तिः अस्तु ॥

६८) तर्हि प्रीतेः रागादिरूपत्वासंभवे सति । सुखमात्रानुवर्तिनी सुखमेव सुखमात्रमनुसृत्य वर्तत इति सुखमात्रानुवर्तिनी सुखैकगोचरा इत्यर्थः ॥ सात्विकी सत्वगुणपरिणामरूपा । वृत्तिः अंतःकरणवृत्तिः । प्रीतिः अस्तु ॥ २२ ॥

६९ ननु तर्हि सा प्रीतिरिच्छैवेत्याशंक्य परिहरति—

७०] प्राप्ते नष्टे अपि सद्भावात् इच्छातः व्यतिरिच्यते ॥

---

६३) रागरूप जो प्रीति होवै । तौ वधूआदिकविषैहीं होवैगी । यागादिककर्मविषै नहीं औ श्रद्धारूप जो प्रीति होवै । तौ यागादिकविषैहीं होवैगी । वधूआदिकविषै नहीं २१

६४] भक्ति । गुरुदेवआदिकविषै होवैगी औ इच्छा तौ अप्राप्तवस्तुविषै होवैगी ॥

६५) औ भक्तिरूप जो प्रीति होवै । तौ गुरु अरु देवआदिकविषै होवैगी । अन्योंविषै नहीं औ इच्छारूप जो प्रीति होवै । तौ अप्राप्तवस्तुविषै कहिये अप्राप्तवस्तुकूं विषय करनैहारी होवैगी । अन्योंकूं विषय करनैहारी नहीं । यातैं प्रीतिकूं सर्वअनुकूलवस्तुकूं विषय करनैपना नहीं संभवैहै । यह अर्थ है ॥

६६ अब सिद्धांती । कथन किये च्यारीप्रकारनसैं भिन्न पक्षकूं ग्रहणकरिके उत्तर जो प्रीतिका स्वरूप ताकूं कहैहैं:—

६७] तब सुखमात्रकूं अनुसरिके वर्त्तनैहारी जो सात्विकीवृत्ति है सो प्रीति होहु ॥

६८) तब प्रीतिकी रागआदिकरूपताके असंभव हुये । सुखमात्रानुवर्त्तिनी कहिये सुखहीं सुखमात्र है । ताकूं अनुसरिके वर्त्तनैहारी ऐसी जो सात्विकी कहिये सत्वगुणके परिणामरूप अंतःकरणकी वृत्ति है । सो प्रीति होहु ॥ २२ ॥

॥ २ ॥ श्लोक २२ उक्त प्रीतिकी इच्छासैं विलक्षणता औ आत्मामैं सुखसाधनरूपताकी शंका ॥

६९ ननु तब सो एकहीं सुखके गोचर प्रीति इच्छाहीं होवैगी । यह आशंकाकरि परिहार करैहैं:—

७०] प्राप्तसुखादिकविषै औ नष्टविषयविषै बी सद्भावतैं प्रीति इच्छातैं भिन्न है ॥

टीकांक: ४६७१ टिप्पणांक: ॐ

आत्मानुकूल्यादन्नादिसमश्चेदमुनात्र कः ।
अनुकूलयितव्यः स्यान्नैकस्मिन्कर्मकर्तृता ॥२४॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३००

७१) इच्छा तावदप्राप्तसुखादिमात्रविषया इयं तु सर्वविषया प्राप्ते लब्धे । सुखादौ नष्टेऽपि तस्मिन्विषये विद्यमानत्वादतः इच्छातः इच्छायाः व्यतिरिच्यते भिद्यते ॥

७२ इदानीं सुखसाधनभूतेष्वन्नादिष्विवात्मन्यपि प्रीतिदर्शनादात्मनोऽप्यन्नादिवत् सुखसाधनत्वं स्यादिति शंकते (सुखेति)—

७३] अन्नपानादयः सुखसाधनतः उपाधेः प्रियाः ॥

७४) अन्नपानादयः सुखसाधनत्वोपाधिना यथा प्रियाः दृष्टा आत्माप्यानुकूल्यात्प्रियत्वादन्नादिसमः अन्नपानादिवत् सुखसाधनं स्यादित्यर्थः ॥ २३ ॥

७५] आत्मा आनुकूल्यात् अन्नादिसमः चेत् ।

७६) अत्रेदमनुमानं सूचितं । विमत आत्मा सुखसाधनं भवितुमर्हति प्रियत्वादन्नादिवदिति ॥

७७ अन्नपानादिषु भोग्यत्वमुपाधिरित्यभिप्रायेण परिहरति (अमुनेति)—

७८] अत्र अमुना अनुकूलयितव्यः कः स्यात् ॥

७९) अत्र लोके अमुना सुखसाधन-

---

७१) इच्छा । प्रथम अप्राप्तसुखादिकमात्रकूं विषय करनैहारी है औ यह प्रीति तौ सर्व प्राप्त अरु अप्राप्तसुखादिककूं विषय करनैहारी है । काहेतैं प्राप्त भये सुखआदिकविषै औ नष्ट भये बी तिस सुखादिविषयविषै प्रीतिकूं विद्यमान होनैतैं सो प्रीति इच्छारूप वृत्तितैं भेदकूं पावतीहै ॥

७२ अब सुखके साधनरूप अन्नआदिकनविषै जैसैं प्रीति देखियेहै । तैसैं आत्माविषै बी प्रीतिके देखनैतैं आत्मा बी अन्नआदिककी न्यांई सुखका साधन होवैगा । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैं:—

७३] **अन्नपानआदिक सुखके साधनपनैरूप उपाधितैं प्रिय हैं ॥**

७४)जैसैं अन्नपानआदिक। सुखकी साधनतारूप उपाधिकरि प्रिय देखेहैं। ऐसैं आत्मा बी अनुकूल होनैतैं कहिये प्रिय होनैतैं अन्नआदिककी न्यांई सुखका साधन होवैगा। यह अर्थ आगेके श्लोकसैं मिलित है ॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक २४ उक्त शंकाकी पूर्णता औ समाधान ॥

७५] **आत्मा अनुकूल होनैतैं अन्नआदिकके समान है। ऐसैं जो कहै।**

७६) इहां यह अनुमान सूचन कियाहैः— विवादका विषय जो आत्मा । सो सुखका साधन होनैकूं योग्य है । प्रिय होनैतैं । अन्नआदिककी न्यांई । ऐसैं जो कहै ।

७७ अन्नपानआदिकनविषै भोगकी साधनता उपाधि है । यातैं सुखकी साधनता है औ आत्माविषै भोग्यतारूप उपाधि नहीं । यातैं सुखकी साधनता नहीं है । इस अभिप्रायकरि सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७८] **इहां इसकरि अनुकूलताका विषय होनैयोग्य कौन होवैगा ?**

७९) इहां लोकविषै इस सुखका साधन

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३०१

सुखे वैषयिके प्रीतिमात्रमात्मा त्वतिप्रियः ।
सुखे व्यभिचरत्येषा नात्मनि व्यभिचारिणी २५

टीकांकः ४६८० टिप्पणांकः ॐ

तयानुकूलेन । अनुकूलयितव्यः कः स्यात् । न कोऽपि स्यादात्मातिरिक्तस्य भोक्तुः अभावादित्यर्थः ॥

८० ननु स्वयमेवानुकूलयितव्यः स्यादित्यत आह (नेति)—

८१] एकस्मिन् कर्मकर्तृता न ॥

८२) एकस्यैवात्मनो युगपदुपकार्यत्वमुपकारकत्वं च इति धर्मद्वयं विरुद्ध्यत इत्यर्थः२४

८३ नन्वन्नादिवत्सुखसाधनत्वाभावेऽपि सुखवत् भोक्तृशेषता स्यादित्याशंक्य आत्मनो निरतिशयप्रेमास्पदत्वात् मैवमिति परिहरति (सुख इति)—

८४] वैषयिके सुखे प्रीतिमात्रं आत्मा तु अतिप्रियः ॥

८५) वैषयिके विषयजन्ये। सुखे प्रीतिमात्रं प्रीतिरेव । न निरतिशया । आत्मा त्वतिप्रियः निरतिशयप्रेमविषयः । अतो न विषयजन्यसुखतुल्य इत्यर्थः ॥

८६ तत्र उभयत्रोपपत्तिमाह—

८७] सुखे एषा व्यभिचरति आत्मनि न व्यभिचारिणी ॥

८८) सुखे वैषयिके सुखे । जायमाना एषा । प्रीतिः। व्यभिचरति कदाचित् सुखांतरं गच्छति । न तस्मिन्नेव नियताव-

---

होनैतैं अनुकूलआत्माकरि अनुकूलताका विषय होनैयोग्य भोक्ता कौन होवैगा? कोई बी नहीं । काहेतैं आत्मातैं भिन्न भोक्ताके अभावतैं । यह अर्थ है ॥

८० ननु । आप आत्माहीं आप अनुकूलकरि अनुकूलताका विषय होनैयोग्य होवैगा । तहां कहैहैंः—

८१] एकविषै कर्म कहिये विषयभाव औ कर्त्ता कहिये विषयीभाव संभवै नहीं ॥

८२) एकहीं आत्माकूं एककालविषै उपकारकी विषयता औ उपकारका कर्तापना ये दोनूं धर्म विरोधयुक्त होवैहैं ॥ यह अर्थ है ॥ २४ ॥

॥ ४ ॥ आत्माकूं विषयजन्यसुखकी अतुल्यता ॥

८३ ननु आत्माकूं अन्नआदिककी न्याईं सुखकी साधनताके अभाव हुये बी सुखकी न्याईं भोक्ताकी उपकारकता होवैगी । यह आशंकाकरि आत्माकूं सर्वसैं अधिक प्रीतिका विषय होनैतैं आत्मा भोक्ताका शेष है । यह कथन बनै नहीं । ऐसैं परिहार करैहैंः—

८४] विषयजन्यसुखविषै प्रीतिमात्र है औ आत्मा तौ अतिप्रिय है ॥

८५) विषयजन्यसुखविषै प्रीतिहीं होवैहै । निरतिशयप्रीति नहीं औ आत्मा तौ निरतिशयप्रेमका विषय है । यातैं विषयजन्यसुखतुल्य नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥

८६ तिन दोनूं विषयगतप्रीतिमात्र औ आत्मागतअतिशयप्रीतिविषै कारण कहैहैंः—

८७] विषयानंदरूप सुखविषै यह प्रीति व्यभिचारकूं पावती है औ आत्माविषै व्यभिचारकूं पावती नहीं ॥

८८) विषयजन्यसुखविषै उत्पन्न भई यह प्रीति व्यभिचारकूं पावतीहै कहिये कदाचित् अन्यसुखके प्रति जातीहै । तिसीहीं विषयविषै नियमसैं रहती नहीं औ आत्माविषै तौ विद्यमान प्रीति व्यभिचारकूं पावती नहीं ।

टीकांक: ४६८९ टिप्पणांक: ॐ	९० एकं त्यक्त्वान्यदादत्ते सुखं वैषयिकं सदा । ९२ नात्मा त्याज्यो न चादेयस्तस्मिन्व्यभिचरेत्कथं२६ ९६ हानादानविहीनेऽस्मिन्नुपेक्षा चेत्तृणादिवत् । ९९ उपेक्षितुः स्वरूपत्वान्नोपेक्ष्यत्वं निजात्मनः॥२७॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३०२ १३०३

तिष्ठते । आत्मनि तु विद्यमाना प्रीतिः न व्यभिचारिणी विषयांतरगामिनी न भवति । अतो निरतिशया सेत्यर्थः ॥ २५ ॥

८९ सुखगोचरायाः प्रीतेर्व्यभिचारं दर्शयति—

९०] एकं वैषयिकं सुखं त्यक्त्वा अन्यत् सदा आदत्ते ॥

९१ आत्मनि तु तदभावं दर्शयति (नेति)-

९२] आत्मा त्याज्यः न । च आदेयः न ॥

ॐ ९२) अयोग्यत्वादित्यर्थः ॥

९३ फलितमाह—

९४] तस्मिन् कथं व्यभिचरेत्॥२६॥

९५ हानादिविषयत्वाभावेऽप्यात्मनस्तृणादिवदुपेक्षाविषयत्वं किं न स्यादिति शंकते—

९६] हानादानविहीने अस्मिन् तृणादिवत् उपेक्षा चेत् ।

९७) हानं परित्यागः । आदानं स्वीकारः । उपेक्षा औदासीन्यम् ॥

९८ आत्मनो हानाद्यविषयत्ववदुपेक्षाविषयत्वमपि न संभवत्ययोग्यत्वादित्यभिप्रायेण परिहरति—

कहिये अन्यविषयविषै गमन करनैंहारी होवै नहीं । यातैं सो आत्मगतप्रीति सर्वोत्कृष्ट है ॥ यह अर्थ है ॥ २५ ॥

८९ सुखगोचरप्रीतिके व्यभिचारकूं दिखावैहैं:—

९०] पुरुष । एकविषयजन्यसुखकूं त्यागिके अन्यविषयजन्यसुखकूं सदा ग्रहण करताहै ॥

९१ आत्माविषै तौ तिस प्रीतिके व्यभिचारके अभावकूं दिखावैहैं:—

९२] आत्मा त्यागनैं योग्य नहीं है औ ग्रहण करनै योग्य नहीं है ॥

ॐ ९२) ग्रहणत्यागके अयोग्य होनैतैं । यह अर्थ है ॥

९३ फलितकूं कहैहैं:—

९४] यातैं तिस आत्माविषै प्रीति कैसैं व्यभिचारकूं पावै ? किसी प्रकार बी नहीं ॥ २६ ॥

॥ ९ ॥ आत्माकूं उपेक्षाके विषय होनैंकी शंका औ समाधान ॥

९५ ग्रहण औ त्यागकी विषयताके अभाव हुये बी आत्माकूं तृणआदिककी न्यांई उपेक्षाकी विषयता क्यूं नहीं होवैगी ? इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

९६] हान औ आदानतैं रहित इस आत्माविषै तृणआदिककी न्यांई उपेक्षा होवैगी । ऐसैं जो कहै ।

९७) हान कहिये परित्याग औ आदान कहिये स्वीकार औ उपेक्षा कहिये उदासीनता॥

९८ आत्माकूं ग्रहण औ त्यागता।अविषय होनैकी न्यांई उपेक्षाका विषय होना बी नहीं संभवैहै । काहेतैं अयोग्य होनैतैं । इस अभिप्रायकरि परिहार करैहैं:—

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १२०४ १२०५	रोगक्रोधाभिभूतानां मुमूर्षा वीक्ष्यते क्वचित् । ततो द्वेषाद्भवेत्त्याज्य आत्मेति यदि तन्न हि॥२८॥ त्यक्तुं योग्यस्य देहस्य नात्मता त्यक्तुरेव सा । न त्यक्तर्यस्ति स द्वेषस्त्याज्ये द्वेषे तु का क्षतिः२९	टीकांक: ४६९९ टिप्पणांक: ॐ

९९] उपेक्षितुः निजात्मनः स्वरूपत्वात् उपेक्ष्यत्वं न ॥

४७००) उपेक्षितुः उपेक्षाकर्तुः । यो निजात्मा अविनाशिस्वरूपं अस्ति तस्य स्वस्वरूपत्वात् एव स्वव्यतिरिक्ततृणादिवत् । उपेक्ष्यत्वं उपेक्षाविषयत्वं । न विद्यत इति शेषः ॥ २७ ॥

१ ननु हानविषयत्वमात्मनो नास्तीत्युक्तमनुपपन्नं द्वेषात्त्याज्यत्वदर्शनादिति शंकते—

२] रोगक्रोधाभिभूतानां क्वचित् मुमूर्षा वीक्ष्यते । ततः द्वेषात् आत्मा त्याज्यः भवेत् । इति यदि ।

३) यतो मुमूर्षा दृश्यते। ततः आत्मनि द्वेषसंभवात् वृश्चिकादिवत् आत्मा अपि त्याज्य इति यदि उच्यते इति शेषः ॥

४ तत्त्यागस्यात्मव्यतिरिक्तदेहविषयत्वान्नैवमिति परिहरति—

५] तत् न हि ॥ २८ ॥

६] त्यक्तुं योग्यस्य देहस्य आत्मता न ॥

ॐ ६) त्यक्तुं उत्स्रष्टुं । योग्यस्य उचितस्य । देहस्य आत्मता न अस्ति ॥

७ कस्य तर्हि सेत्यत आह—

९९] तौ उपेक्षा करनैहारेके निजरूपका स्वरूप होनैतैं उपेक्ष्यपना बनै नहीं ॥

४७००) तौ उपेक्षा करनैहारे चिदाभासका जो निजात्मा कहिये अविनाशीस्वरूप है । तिसका स्वस्वरूप होनैतैंहीं आत्माकूं आपतैं भिन्न तृणादिककी न्यांई उपेक्षाका विषयपना नहीं है ॥ २७ ॥

॥ ६ ॥ आत्माकी द्वेषतैं त्याज्यताकी शंका औ समाधान ॥

१ ननु । त्यागकी विषयता आत्माकूं नहीं है । ऐसैं जो २७ वें श्लोकविषै कह्या सो बनै नहीं । काहेतैं द्वेषतैं आत्माकी त्याज्यताके देखनैतैं । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहैं:—

२] रोग वा क्रोधकरि पराभवकूं प्राप्त पुरुषनकूं काहूकालमैं मरनैकी इच्छा देखियेहै । तातैं द्वेषतैं आत्मा त्याज्य होवैहै । ऐसैं जब कहै ।

३) जातैं मरणकी इच्छा देखियेहै । तातैं द्वेषके संभवतैं वृश्चिकआदिककी न्यांई आत्मा वी त्याज्य होवैगा । ऐसैं जब कहै ।

४ तिस त्यागकूं आत्मातैं भिन्न देहकूं विषय करनैहारा होनैतैं आत्मा त्यागका विषय होवैगा यह कथन बनै नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

५] सो बनै नहीं ॥ २८ ॥

६] त्यक्त करनैयोग्य देहकूं आत्मता नहीं है ॥

ॐ ६) त्यागकरनैकूं उचित जो देह ताकूं आत्मता नहीं है ॥

७ तब कौनकूं सो आत्मता है? तहां कहैहैं:—

टीकांकः ४७०८ टिप्पणांकः ॐ

आत्मार्थत्वेन सर्वस्य प्रीतेश्चात्मा ह्यतिप्रियः ।
सिद्धो यथा पुत्रमित्रात्पुत्रः प्रियतरस्तथा ॥ ३० ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥ श्लोकांकः १३०६

८] **त्यक्तुः एव सा ॥**

९) त्यक्तुः देहत्यागकारिणो देहातिरिक्तस्य जीवस्य सा आत्मतेत्यर्थः ॥

१० भवतु त्यक्तुरात्मत्वं प्रकृते किमायातमित्यत आह (नेति)—

११] **स द्वेषः त्यक्तरि न अस्ति ॥**

ॐ ११) अतो नात्मनस्त्याज्यत्वमित्यभिप्रायः ॥

१२ माभूदात्मनि विद्वेषः देहे तूपलभ्यत एवेत्याशंक्याह—

१३] **त्याज्ये द्वेषे तु का क्षतिः ॥**

१४) त्याज्ये देहगोचरे द्वेषे सत्यपि का क्षतिः आत्मनः त्यागाभाववादिनो ममेति शेषः ॥ २९ ॥

१५ तदेवं "न वा अरे पत्युः कामाय" इत्यारभ्य "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" इत्यंतायाः श्रुतेस्तात्पर्यपर्यालोचनया आत्मनः प्रियतमत्वं प्रदर्श्य युक्तितोऽपि तद्दर्शयति (आत्मेति)—

१६] **सर्वस्य आत्मार्थत्वेन प्रीतेः च आत्मा हि अतिप्रियः सिद्धः ॥**

१७) सर्वस्य सुखसहितस्य तत्साधनजातस्य पतिजायादेः आत्मार्थत्वेन स्वस्योपकारकत्वेन । प्रीतेश्च । प्रियत्वादपि आत्मा उपकार्यः स्वयं अतिशयेन प्रियः सिद्धो हि ॥

८] **त्याग करनैंहारेकूं सो** आत्मता है॥

९) देहकूं त्याग करनैंहारा जो देहतैं भिन्न जीव है। ताकूं सो आत्मता है ॥ यह अर्थ है ॥

१० त्याग करनैंहारेकी आत्मता होहु । तिसकरि प्रकृत द्वेषकरि आत्माकी अत्याज्यताविषै क्या आया ? तहां कहैहैंः—

११] **सो २८ वें श्लोकउक्तद्वेष त्याग करनैहारेविषै नहीं है ॥**

ॐ ११) यातैं आत्माकी त्याज्यता नहीं है । यह अभिप्राय है ॥

१२ ननु आत्माविषै द्वेष मति होहु । परंतु देहविषै तौ द्वेष देखियेहीं है । यह आशंकाकरि कहैहैंः—

१३] **त्याज्यदेहविषै द्वेषके होते क्या हानि है ॥**

१४) देहगोचर द्वेषके होते बी आत्माके त्यागके अभावके वादी मैं वेदांतीकी क्या हानि है ? कछु बी नहीं ॥ २९ ॥

॥ ७ ॥ युक्तिसैं आत्माकी प्रियतमता ॥

१५ सो ऐसैं "अरे मैत्रेयी ! पतिके कामअर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै" इहांसैं आरंभकरिके "आत्माके कामअर्थ सर्व प्रिय होवैहै" इहांपर्यंत जो श्रुति है। ताके तात्पर्यके विचारकरि आत्माकी प्रियतमता कहिये परमप्रेमकी विषयता दिखायके । अब युक्तितैं बी सो आत्माकी प्रियतमता दिखावैहैंः—

१६] **सर्वकी आत्माके अर्थ होनैंकरि प्रीतितैं आत्मा अतिप्रिय सिद्ध भया ॥**

१७) सुखसहित तिसके साधनके समूह पतिजायाआदिकसर्वकी आत्माके अर्थ कहिये उपकारक होनैंकरि प्रीतितैं बी आत्मा कहिये उपकारका विषय आप अतिशयकरि प्रिय सिद्ध भया ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३०७	३२ मा न भूवमहं किं तु भूयासं सर्वदेत्यसौ । आशीः सर्वस्य दृष्टेति प्रत्यक्षा प्रीतिरात्मनि ३१	टीकांकः ४७१८ टिप्पणांकः ७७८

१८ एतदेव दृष्टांतप्रदर्शनेन स्पष्टयति—

१९] यथा पुत्रमित्रात् पुत्रः प्रियतरः । तथा ॥

२०) लोके यथा पुत्रमित्रात् पुत्रस्य मित्रभूतात् पुत्रद्वारा प्रीतिविषयात् यज्ञदत्तादेः सकाशात् पुत्रो देवदत्तादिरव्यवधानेन प्रीतिविषयत्वात् तस्मादतिशयेन प्रियः भवति पितुर्विष्णुदत्तादेः तथा तद्वत्स्वसंबंधित्वेन प्रीतिविषयात् सर्वस्मात् स्वयमतिशयेन प्रियो भवतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

२१ एवमात्मनि श्रुतियुक्तिभ्यामुपपादितां निरतिशयां प्रीतिं स्वानुभवप्रदर्शनेन द्रढयति (मा न भूवमिति)—

१८ इसीहीं अर्थकूं दृष्टांतके दिखावनैंकरि स्पष्ट करैहैंः—

१९] जैसैं पुत्रके मित्रतैं पुत्र प्रियतर कहिये अतिशयप्रिय है । तैसैं ॥

२०) लोकविषै जैसैं पुत्रद्वारा प्रीतिके विषय पुत्रके मित्ररूप यज्ञदत्तआदिकतैं देवदत्त-आदिकपुत्र अंतरायरहित कहिये साक्षात्-प्रीतिका विषय होनैतैं । तिस मित्रतैं विष्णुदत्तआदिकपिताकूं अतिशयकरि प्रिय होवैहै ॥ तैसैं अपनैं नाम आत्माके संबंधी होनैंकरि प्रीतिके विषय आप जो आत्मा । सो सर्वतैं अतिशयकरि प्रिय होवैहै ॥ यह अर्थ है॥३०॥

॥ ८ ॥ श्रुतियुक्तिसैं दिखाई प्रीतिकी स्वानुभवके दिखावनैंकरि दृढता ॥

२१ ऐसैं आत्माविषै श्रुति औ युक्तिकरि उपपादन करी जो निरतिशयप्रीति । ताकूं अपनैं अनुभवके दिखावनैंकरि दृढ करैहैंः—

७८ इहां यह रहस्य हैः— आत्मा नित्यसुखरूप होनैतैं अतिअनुकूल है यातैं अतिशयप्रिय है । यह विद्वानोंकूं अनुभवसिद्ध है परंतु भ्रांतपुरुष जे हैं । सो तिस स्वरूपभूत नित्यसुखकूं न जानिके विषयलाभआदिकनिमित्तसैं अंतर्मुख भये अंतःकरणविषै तिस आत्मानंदका प्रतिबिंबरूप विषयानंद होवैहै । ताहीकूं परमसुखरूप जानिके प्रियतम मानतेहैं । यातैं आनंदरूप आत्माके प्रतिबिंब ग्रहणके योग्य होनैंकरि अंतःकरण औ ताके समीपवर्त्ती इंद्रिय अरु प्राणरूप लिंगदेहका आत्मासैं साक्षात् संबंध है । यातैं सो प्रिय है औ स्थूलदेहआदिक आत्माके प्रतिबिंब ग्रहणके योग्य नहीं हैं । यातैं तिनका आत्मासैं साक्षात्संबंध नहीं है । किंतु लिंगदेहद्वारा स्थूलदेहका औ स्थूलदेहद्वारा पुत्रभार्याआदिकका औ पुत्रभार्याआदिकद्वारा पुत्रके मित्र औ अन्यसंबंधिनका आत्मासैं संबंध है । यातैं सो पूर्वपूर्वकी अपेक्षातैं न्यून औ उत्तरउत्तरकी अपेक्षातैं अधिकप्रिय हैं । यह प्रीतिके अधिकन्यूनभावका अनुभव आगे ६० वें श्लोकविषै स्पष्ट दिखायाहै ॥

यद्यपि आनंदरूप आत्मा सर्वत्रव्यापक है । यातैं सर्वपदार्थनके आत्माके साथि तादात्म्यसंबंधके सद्भावतैं सर्वपदार्थ समानप्रिय हुयेचाहिये औ आगे ५१ वें श्लोकसैं कहनैके प्रकारकरि प्रिय द्वेष्य अरु उपेक्ष्य होनैंकरि विषम नहीं हुयेचाहिये तथापि सर्वघटादिकअस्वच्छपदार्थ आत्माके आभासके ग्राहक नहीं हैं । यातैं आत्माके साक्षात्संबंधी नहीं कहियेहैं । किंतु स्वच्छ जो अंतःकरण है सो आत्माके आभासका ग्राहक है । यातैं आत्माका साक्षात्संबंधी कहियेहै ॥

तिस साभासअंतःकरणविशिष्टचेतनरूप भोक्ताका उपकारक (अनुकूल) होनैंकरि जो संबंधी है । सो पदार्थ प्रिय होवैहै । तिस उपकारकता नाम अनुकूलताके अधिकता औ न्यूनतारूप उपाधिके भेदकरि प्रियताका भेद नाम असमानता होवैहै औ उपकारकताके अभावरूप प्रतिकूलताकरि वा अनुकूलता अरु प्रतिकूलता दोनूंके अभावकरि जो आत्माका उपयोगी नाम संबंधी होवै नहीं । सो पदार्थ क्रमतैं द्वेष्य वा उपेक्ष्य प्रतीत होवैहै ।

इसरीतिसैं अज्ञानीकी दृष्टिकरि विषमता बनैहै औ ज्ञानीकी दृष्टिसैं तौ भोक्ताआदिकत्रिपुटीरूप द्वैतके अभावपूर्वक परिपूर्णआनंदरूप आत्माकी प्रतीतितैं विषमता नहीं है । किंतु एकहीं आनंदरूप आत्मा सर्वत्र समान प्रतीत होवैहै ॥ इति ॥

टीकांकः ४७२२ टिप्पणांकः ॐ

ईत्यादिभिस्त्रिभिः प्रीतौ सिद्धायामेवमात्मनि । पुत्रभार्यादिशेषत्वमात्मनः कैश्चिदीरितम् ॥३२॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्रोकांकः १३०८

२२] "अहं मा भूवं न किंतु सर्वदा भूयासम्" । इति असौ आशीः सर्वस्य दृष्टा इति ॥

२३) अहं मा भूवं इति न न कापि ममासत्वमस्तु किंतु सर्वदा भूयासं सदा मम सत्तास्तु इत्येवंरूपा आशीः प्रार्थना । सर्वस्य प्राणिजातस्य संबंधिनी दृष्टा । सर्वोऽप्येवमेव प्रार्थयत इत्यर्थः ॥

२४ फलितमाह (प्रत्यक्षेति)—

२५] आत्मनि प्रीतिः प्रत्यक्षा ॥

२६) यत एवं सर्वैः प्रार्थ्यते अतः आत्मनि निरतिशया प्रीतिः प्रत्यक्ष-सिद्धेत्यर्थः ॥ ३१ ॥

२७ वृत्तानुकीर्तनपुरःसरं मतांतरं दूषयितु-मनुभाषते—

२८] इत्यादिभिः त्रिभिः एवं आत्मनि प्रीतौ सिद्धायां कैश्चित् आत्मनः पुत्रभार्यादिशेषत्वं ईरितम् ॥

२९) इतिशब्देन अनुभवः परामृश्यते । आदिशब्देन युक्तिश्रुती इत्यादिभिः अनुभवयुक्तिश्रुतिलक्षणैः । त्रिभिः प्रमाणैः

२२] "मैं मत होहुं" ऐसैं नहीं किंतु "मैं सर्वदा होहुं" ऐसी यह प्रार्थना सर्वकूं देखीहै ॥

२३) "मैं मत होहुं" ऐसैं नहीं कहिये कहूं बी मेरा असद्भाव नहीं होहु । किंतु "मैं सर्वदा होहुं" कहिये सदा मेरा सद्भाव होहु । इसरूपवाली प्रार्थना सर्वप्राणिमात्रकूं देखीहै ॥ सर्वजन बी ऐसैं प्रार्थना करैहैं ॥ यह अर्थ है ॥

२४ फलितकूं कहैहैंः—

२५] यातैं आत्माविषै प्रत्यक्षप्रीति है

२६) जातैं ऐसैं सर्वजनकरि प्रार्थना करिये-है । यातैं आत्माविषै निरतिशयप्रीति प्रत्यक्ष-अनुभवकरि सिद्ध है ॥ यह अर्थ है॥ ३१ ॥

॥ ४ ॥ आत्माकूं पुत्रादिककी शेषता-पूर्वक नाम उपकारितापूर्वक आत्माकी त्रिविधता ॥ ४७२७—४८१८ ॥

॥ १ ॥ षष्ठश्लोकसैं उक्त अर्थके फेर कथनपूर्वक और पुत्रआत्मा मतका दूषणअर्थ अनुवाद ॥

२७ श्लोक ६—३१ पर्यंत कथन किये अर्थके फेरी कथनपूर्वक । आत्मा पुत्रभार्या-आदिकका शेष है । इस मतकूं दूषण देनैंकूं अनुवाद करैहैंः—

२८] इसआदिकतीनप्रमाणनकरि ऐसैं आत्माविषै प्रीतिके सिद्ध हुये बी । कितनैकपुरुषोंनैं तौ आत्माकूं पुत्र-भार्याआदिककी शेषता कहिये गौणता कहीहै ॥

२९) इहां इसशब्दकरि ३१ वें श्लोक-उक्तअनुभव ग्रहण करियेहै औ आदिशब्द-करि ३० वें श्लोकउक्तयुक्ति औ ६—१९ वें

महानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्रोकांकः १३०९ १३१०

[३१] ऐतद्विवक्षया पुत्रे मुख्यात्मत्वं श्रुतीरितम् ।
आत्मा वै पुत्रनामेति तच्चोपनिषदि स्फुटम् ३३
[३४] सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते ।
अथास्येतर आत्मायं कृतकृत्यः प्रमीयते ॥ ३४ ॥

टीकांकः ४७३० टिप्पणांकः ॐ

एवं उक्तेन प्रकारेण । आत्मनि प्रीतौ सिद्धायां अपि कैश्चित् श्रुत्यादितात्पर्यानभिज्ञैः । आत्मनः पुत्रभार्यादिशेषत्वं पुत्रादीन्प्रति स्वस्योपसर्जनत्वं । ईरितं अभिहितम् ॥ ३२ ॥

३० इदं कुतोऽवगतमित्यत आह—

३१] एतद्विवक्षया "आत्मा वै पुत्रनामा" इति पुत्रे मुख्यात्मत्वं श्रुतीरितं । च तत् उपनिषदि स्फुटम् ॥

३२) एतद्विवक्षया एवं कैश्चिदीर्यत इत्येतदभिव्यक्तीकरणाभिप्रायेण "आत्मा वै पुत्रनामासि" इत्यादिकया श्रुत्या पुत्रस्य मुख्यात्मत्वमीरितं इत्यर्थः ॥ किं च तत्पुत्रस्य मुख्यात्मत्वं उपनिषदि ऐतरेयोपनिषदादौ । स्फुटं व्यक्तमभिहितमिति शेषः ॥ ३३ ॥

३३ केन वाक्येनेत्याकांक्षायां तद्वाक्यमर्थतः पठति (सोऽस्येति)—

३४] अस्य सः अयं आत्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते । अथ अस्य अयं इतरः आत्मा कृतकृत्यः प्रमीयते ॥

श्लोकउक्तश्रुति ग्रहण करियेहैं । यातैं इसआदिक अनुभव युक्ति औ श्रुतिरूप तीनप्रमाणनकरि । ऐसैं कहिये उक्तप्रकारसैं आत्माविषै प्रीतिके सिद्ध हुये बी । कोइक श्रुतिआदिकके तात्पर्यकूं न जाननैंहारे पुरुषोंनैं आत्माकूं भार्याआदिककी शेषता नाम पुत्रादिकनके प्रति आपकी उपसर्जनता कहिये अप्रधानता कहीहै ॥ ३२ ॥

॥ २ ॥ श्लोक ३२ उक्त अनुवादमैं प्रमाणका सूचन ॥

३० आत्माकी पुत्रआदिकके प्रति शेषता कहिये अमुख्यता है । ऐसैं केइकनैं कह्याहै । यह तुमनैं काहेतैं जान्या ? तहां कहैहैं:—

३१] इस कहनैंकी इच्छाकरिहीं पुत्रविषै मुख्यआत्मापना "आत्मा पुत्रनामवाला होताभया" इस श्रुतिनैं कह्याहै ॥ ऐसैं उपनिषद्विषै स्पष्ट है ॥

३२) इस कहनैंकी इच्छाकरिहीं कहिये ऐसैं केइक पुरुषनकरि कहियेहै ॥ इस वार्त्ताके प्रगट करनैंके अभिप्रायकरि "आत्मा पुत्रनामवाला होताभया" इसश्रुतिनैं पुत्रका मुख्यआत्मापना कह्याहै । यह अर्थ है ॥ किंवा सो पुत्रका मुख्यआत्मापना ऐतरेयउपनिषद्आदिकविषै स्पष्ट कियाहै ॥ ३३ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक ३३ विषै सूचित प्रमाणका कथन ॥

३३ ऐतरेयउपनिषद्विषै पुत्रका मुख्यआत्मापना किस वाक्यकरि कह्याहै ? इस पूछनैंकी इच्छाके भये तिस वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

३४] इस पिताका सो यह पुत्ररूप आत्मा । पुण्यकर्मनके अर्थ प्रतिनिधि कहिये बदला करियेहै औ पीछे इस पिताका यह पितारूप इतरआत्मा कृतकृत्य हुया मरताहै ॥

टीकांकः ४७३५ टिप्पणांकः ॐ

सत्यप्यात्मनि लोकोऽस्ति नापुत्रस्यात एव हि ।
अनुशिष्टं पुत्रमेव लोक्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ३५ ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३११

३५) अस्य पितुः सः अयं "पुरुषे हवायमादितो गर्भो भवति" इति प्रकरणादौ पुरुषे देहे गर्भत्वेनोक्तः । "अयं सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति" इत्यत्राति-शयेन पालनीयतयोक्तः । पुत्ररूप आत्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः पुण्यकर्मानुष्ठानाय । प्रतिधीयते प्रतिनिधित्वेनावस्थाप्यते पित्रेति शेषः । अथ अनंतरं । अस्य पितुः अयं प्रत्यक्षेण परिदृश्यमानः । इतरः पुत्रा-दन्यो जरसा ग्रस्तः पितृरूप आत्मा । स्वयं कृतकृत्यः अनुष्ठितकृत्यजातः सन् प्रमीयते म्रियत इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

३६ उक्तार्थस्य दृढीकरणाय पुत्ररहितस्य परलोकाभावप्रदर्शनपरस्य "नापुत्रस्य लोको-ऽस्ति" इति वाक्यस्यार्थमाह (सत्यपीति)

३७] अतः एव आत्मनि सति अपि अपुत्रस्य लोकः न अस्ति हि ॥

३८) यतः पुत्रस्य मुख्यमात्मत्वमस्ति । अतः एवात्मनि स्वस्मिन् । सत्यपि स्थितेऽपि अपुत्रस्य पुत्ररहितस्य । पितुः लोकः परलोको नास्ति हि । इदं पुराणा-दिषु प्रसिद्धमित्यर्थः ॥

३९ व्यतिरेकमुखेनोक्तस्यार्थस्यान्वयमुखेन प्रतिपादकस्य "अनुशिष्टं पुत्रं लोक्यमाहुः" इतिवाक्यस्य अर्थमाह (अनुशिष्टमिति)—

---

३५) इस पिताका सो यह "पुरुषपिता-विषै यह जीव प्रथमतैं वीर्यरूप गर्भ होवैहै" इस श्रुतिकरि प्रकरणकी आदिमैं पुरुष जो पिता ताके देहविषै जो गर्भपनैंकरि कथन कियाहै औ "सो यह पिता । पुत्रके जन्मसैं आगे औ जन्मसैं अनंतर कुमार जो पुत्र ताकूं अधिकपालना करताहै" इस श्रुतिवाक्यविषै अतिशयकरि पालन करनैंके योग्य होनैंकरि जो कथन कियाहै । ऐसा जो पुत्ररूप आत्मा सो पिताकरि पुण्यकर्मके अनुष्ठानवास्ते प्रति-निधि होनैंकरि स्थापन करियेहै ॥ एकपदार्थ-के अभाव हुये तिसके ठिकानैं जो दूसरा-पदार्थ स्थापन करिये । सो प्रतिनिधि कहिये-है ॥ पुत्रके प्रतिनिधिपनैंकरि स्थापन किये पीछे । इस पिताका यह प्रत्यक्षकरि दृश्यमान इतर जो पुत्रतैं अन्य जराअवस्थाकरि ग्रस्या-हुया जो पितारूप आत्मा है । सो आप कृत-कृत्य कहिये अनुष्ठान कियाहै कार्यनका समूह जिसनैं ऐसा हुया मरताहै ॥ यह अर्थ है ३४ ॥ ४ ॥ पुत्ररहितकूं परलोकका अभाव दिखावनैं-वाले वाक्यका अर्थ ॥

३६ श्लोक ३२–३४ उक्त अर्थके दृढ करनैंअर्थ पुत्ररहितकूं परलोकके अभावके दिखावनैंपरायण "पुत्ररहितकूं लोक नहीं है" इस वाक्यके अर्थकूं कहैहैं:—

३७] याहीतैं आत्माके होते बी अपुत्रकूं लोक नहीं है ॥

३८) जातैं पुत्रकी मुख्यआत्मता है । याहीतैं आत्मा जो आप ताके स्थित हुये बी पुत्ररहित पिताकूं परलोक नहीं है । यह पुराणआदिकविषै प्रसिद्ध है ॥ यह अर्थ है ॥

३९ व्यतिरेकरूप द्वारकरि कथन किये अर्थके अन्वयरूपमुखकरि प्रतिपादक "शिक्षित-पुत्रकूं लोक्य कहतेहैं" इस श्रुतिवाक्यके अर्थकूं कहैहैं:—

४३ मनुष्यलोको जय्यः स्यात्पुत्रेणैवेतरेण नो।
४६ मुमूर्षुर्मंत्रयेत्पुत्रं त्वं ब्रह्मेत्यादिमंत्रकैः ॥ ३६ ॥

४०] मनीषिणः अनुशिष्टं एव पुत्रं लोक्यं आहुः ॥

४१) मनीषिणः शास्त्रार्थाभिज्ञाः। अनुशिष्टं वक्ष्यमाणैः "त्वं ब्रह्म" इत्यादिभिर्मंत्रैः शिक्षितं। एव पुत्रं लोक्यं लोकाय हितं परलोकसाधनं आहुः इत्यर्थः ३५

४२ इदानीमैहिकसुखस्यापि पुत्रहेतुकत्वप्रतिपादनपरं "सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा" इति श्रुतिवाक्यमर्थतः पठति—

४३] मनुष्यलोकः पुत्रेण एव जय्यः स्यात् इतरेण नो ॥

४४) मनुष्यलोके सुखं पुत्रेणैव जय्यं स्यात् संपाद्यं स्यात्। इतरेण कर्मादिना साधनांतरेण नो नैव भवति। पुत्रशून्यस्य सुखसाधनमपि धनादिकं निर्वेदजनकं भवति इति भावः ॥

४५ "अनुशिष्टं पुत्रं लोक्यं" इत्यत्र पुत्रानुशासनमुक्तमिदानीं तस्यावसरं तन्मंत्रांश्च दर्शयति (मुमूर्षुरिति)—

४६] त्वं ब्रह्मेत्यादिमंत्रकैः मुमूर्षुः पुत्रं मंत्रयेत् ॥

४७) आदिशब्देन "त्वं यज्ञः त्वं लोकः" इतिमंत्रौ गृह्येते एभिः "त्वं ब्रह्म" इत्यादिभिः त्रिभिर्मंत्रैः मुमूर्षुः पिता मरणावसरे पुत्रं मंत्रयेत् पुत्रस्यानुशासनं कुर्यादित्यर्थः ॥ ३६ ॥

४०] पंडितजन अनुशिष्टपुत्रकूंहीं लोक्य कहतेहैं ॥

४१) शास्त्रअर्थके अभिज्ञजन जे हैं। वे अनुशिष्ट कहिये ३६ वें श्लोकविषै आगे कहनैंके "तूं ब्रह्मा है" इत्यादिक वेदके मंत्रनकरि शिक्षाकूं प्राप्त भये पुत्रकूं लोक्य कहिये परलोकअर्थ हितरूप नाम परलोकका साधन कहतेहैं। यह अर्थ है ॥ ३५ ॥

॥ ९ ॥ पुत्रकूं इसलोकके सुखकी हेतुतापरायण वाक्यका अर्थ ॥

४२ अब इसलोकके सुखकूं बी पुत्ररूप कारणवान्ताके प्रतिपादनपरायण जो "सो यह मनुष्यलोक पुत्रकरिहीं जय्य कहिये संपाद्य है। अन्य कर्मकरि नहीं" यह श्रुतिवाक्य है। तिसके अर्थकूं पठन करैहैं:—

४३] मनुष्यलोक पुत्रकरिहीं संपाद्य है। अन्य जो कर्म तिसकरि नहीं ॥

४४) मनुष्यलोकका सुख। पुत्रकरिहीं संपादन करनैंकूं योग्य होवैहै। कर्मआदिकअन्यसाधनकरि नहीं॥पुत्ररहितकूं धनआदिकरूप सुखका साधन वी निर्वेद जो वैराग्य ताका जनक होवैहै ॥ यह भाव है ॥

४५ "शिक्षितपुत्रकूं परलोकका साधन कहतेहैं" इस वाक्यविषै पुत्रका शिक्षा करना औ तिस शिक्षाके मंत्रनकूं दिखावैहैं:—

४६] "तूं ब्रह्मा है" इत्यादिकमंत्रनकरि मरनैंहारा पिता पुत्रकूं शिक्षा करै ॥

४७) "तूं ब्रह्मा है" यह एकमंत्र है ॥ औ आदिशब्दकरि "तूं यज्ञहै"। "तू लोक है"। ये दोमंत्र ग्रहण करियेहैं ॥ यातैं "तूं ब्रह्मा है" इससैं आदिलेके जो तीनमंत्र हैं। तिनकरि मरनैंहारा पिता मरणअवसरविषै पुत्रकूं अनुशासन करै॥ यह अर्थ है ॥ ३६ ॥

टीकांक: ४७४८ टिप्पणांक: ॐ		महानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक:
	४९ इत्यादिश्रुतयः प्राहुः पुत्रभार्यादिशेषताम् ।	
	५१ लौकिका अपि पुत्रस्य प्राधान्यमनुमन्वते॥३७॥	१३१३
	५३ स्वस्मिन्मृतेऽपि पुत्रादिर्जीवेद्वित्तादिना यथा ।	
	तथैव यत्नं कुरुते ५६ मुख्याः पुत्रादयस्ततः ॥ ३८ ॥	१३१४
	५९ बाढमेतावता ६१ नात्मा शेषो भवति कस्यचित् ।	
	६४ गौणमिथ्यामुख्यभेदैरात्मायं भवति त्रिधा॥३९॥	१३१५

४८ उक्तमर्थं निगमयति—

४९] इत्यादिश्रुतयः पुत्रभार्यादिशेषतां प्राहुः ॥

५० न केवलमयं श्रुतिसिद्धोऽर्थः किंतु लोकप्रसिद्धोऽपीत्याह—

५१] लौकिकाः अपि पुत्रस्य प्राधान्यं अनुमन्वते ॥ ३७ ॥

५२ तदेवोपपादयति—

५३] स्वस्मिन् मृते अपि पुत्रादिः यथा वित्तादिना जीवेत् । तथा एव यत्नं कुरुते ॥

५४) स्वस्मिन् पित्रादौ एकेनादिशब्देन भार्यादयो गृह्यंते द्वितीयेन क्षेत्रादयः ॥

५५ फलितमाह (मुख्या इति)—

५६] ततः पुत्रादयः मुख्याः ॥

५७) यस्मात्स्वप्रयासं सोढ्वापि पुत्रादिजीवनोपायं संपादयति । ततः तस्मात् । पुत्रादयः मुख्याः प्रधानभूता इत्यर्थः ॥३८॥

५८ एवं लोकप्रसिद्धिभ्यां प्रदर्शितं पुत्रादिप्राधान्यं अंगीकरोति—

॥ ६ ॥ श्रुतिउक्तअर्थका सूचन औ ताकी लोकमैं प्रसिद्धि ॥

४८ श्लोक ३२ सैं उक्तअर्थकूं सूचन करैहैं:—

४९] इत्यादिकश्रुतियां आत्माकी पुत्रभार्याआदिकके प्रति शेषता कहिये उपकारक होनैकरि अप्रधानता कहैहैं ॥

५० यह अर्थ केवल श्रुतिकरि सिद्ध नहीं है किंतु लोकप्रसिद्ध बी है । ऐसैं कहैहैं:—

५१] लौकिकजन बी पुत्रकी प्रधानता मानतेहैं ॥ ३७ ॥

॥७॥ श्लोक३७उक्त प्रसिद्धिका उपपादन औ फलित॥

५२ तिसी पुत्रादिककी प्रधानताकूंहीं उपपादन करैहैं:—

५३] आप पिताआदिकके मरणकूं प्राप्त हुये बी पुत्रआदिक जैसैं धनआदिककरि जीवै तैसैंहीं यत्नकूं करताहै ॥

५४) मूलविषै पुत्रआदिक औ वित्तआदिक । ये दोआदिशब्द हैं । तिनमैं प्रथमआदिशब्दकरि भार्याआदिक ग्रहण करियेहैं औ दूसरे आदिशब्दकरि क्षेत्रआदिक ग्रहण करियेहैं ॥

५५ फलितकूं कहैहैं:—

५६] तातैं पुत्रादिक मुख्य हैं ॥

५७) जातैं पुरुष। अपनैं श्रमकूं सहनकरिके बी पुत्रादिकके जीवनके उपाय धनादिककूं संपादन करताहै । तातैं पुत्रआदिक मुख्य कहिये प्रधानरूप हैं ॥ यह अर्थ है ३८

॥ ८ ॥ पुत्रादिककी प्रधानताका अंगीकार औ तातैं आत्माके शेषीपनैंकी अहानिपूर्वक आत्माकी त्रिविधता ॥

५८ श्लोक ३२ सैं उक्तप्रकारसैं । ऐसैं वेद औ लोक दोनूंकी प्रसिद्धिकरि दिखाई जो पुत्रआदिककी प्रधानता । ताकूं सिद्धांती अंगीकार करैहैं:—

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३१६	देवदत्तस्तु सिंहोऽयमित्यैक्यं गौणमेतयोः । भेदस्य भासमानत्वात्पुत्रादेरात्मता तथा ॥ ४० ॥	टीकांक: ४७५९ टिप्पणांक: ॐ

५९] बाढम् ॥

६० तर्ह्यात्मनः शेषित्वोपपादनं व्याकुप्येदित्याशंक्याह—

६१] एतावता आत्मा कस्यचित् शेषः न भवति ॥

६२) एतावता पुत्रादेः क्वचित्प्राधान्यमस्तीत्येतावता ॥

६३ न हि प्रतिज्ञामात्रेणार्थसिद्धिरित्याशंक्य यत्र यत्र व्यवहारे यस्य यस्य आत्मत्वं विवक्ष्यते । तस्य तस्यात्मनः तत्र तत्र प्राधान्यदर्शनायोपोद्धातत्वेनात्मत्रैविध्यमाह—

६४] गौणमिथ्यामुख्यभेदैः अयं आत्मा त्रिधा भवति ॥

६५) गौणात्मा मिथ्यात्मा मुख्यात्मा चेति अयमात्मा त्रिधा भवति ॥ ३९ ॥

६६ तत्र पुत्रादेर्गौणात्मत्वप्रदर्शनाय लोके गौणप्रयोगमुदाहरति (देवदत्त इति)—

६७] "अयं देवदत्तः तु सिंहः" इति ऐक्यं गौणम् ॥

६८) "अयं देवदत्तः सिंहः" इति यद्देवदत्तसिंहयोः ऐक्यं तत् गौणं औपचारिकम् ॥

५९] हे वादी ! तैनैं जो पुत्रादिककी प्रधानता कही । सो सत्य है ॥

६० ननु तुमनैं जब पुत्रादिककी प्रधानता मानी । तब आत्मा जो साक्षी ताके शेषीपनैका नाम मुख्यपनैंका जो प्रतिपादन है । सो विरोधकूं पावेगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६१] इतनैंकरि आत्मा किसीका वी शेष नाम उपकारक होवै नहीं ॥

६२) पुत्रआदिककी काहुस्थलमैं प्रधानता है । इतनैं कहनैंकरि आत्माकी शेषता नाम गौणता नहीं होवैहै ॥

६३ ननु प्रतिज्ञामात्रकरि अर्थकी सिद्धि होवै नहीं ॥ यह आशंकाकरि जिसजिस व्यवहारविषै जिसजिसका आत्मापना कहनैंकूं इच्छित होवैहै । तिस तिस आत्माकी तहां तहां प्रधानता है । यह दिखावनैंकूं उपोद्घातरूप होनैंकरि आत्माकी त्रिविधताकूं कहैहैं:—

६४] गौण मिथ्या औ मुख्यभेदकरि यह आत्मा तीनप्रकारका होवैहै ॥

६५) गौणआत्मा मिथ्याआत्मा औ मुख्यआत्मा । इस भेदकरि यह आत्मा तीनप्रकारका होवैहै ॥ ३९ ॥

॥ ९ ॥ दृष्टांतपूर्वक पुत्रादिककी गौणआत्मता ॥

६६ तिन तीनभांतिके आत्माविषै पुत्रादिककी गौणआत्मताके दिखावनैंअर्थ । लोकविषै गुणवृत्तिकरि किये गौण प्रयोगकूं नाम उच्चारणकूं उदाहरण करैहैं:—

६७] "यह देवदत्त सिंह है" यह एकता जैसैं गौण है ॥

६८)"यह देवदत्त कहिये अमुक पुरुष सिंह है" इस वाक्यविषै देवदत्तरूप पुरुष औ सिंहरूप पशूकी एकता जैसैं गौण नाम औपचारिक है कहिये गुणवृत्तिकरि किया होनैतैं आरोपित है । वास्तविक नहीं ॥

टीकांकः ४७६९ टिप्पणांकः ७७९

७४ भेदोऽस्ति पंचकोशेषु साक्षिणो न तु भात्यसौ ।
मिथ्यात्मतातः कोशानां स्थाणोश्चोरात्मता यथा ४१

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३१७

६९ तत्र हेतुमाह—

७०] एतयोः भेदस्य भासमानत्वात्

७१ दार्ष्टांतिके योजयति (पुत्रादेरिति)—

७२] तथा पुत्रादेः आत्मता ॥ ४० ॥

७३ अनंतरं मिथ्यात्मानं दर्शयति (भेद इति)—

७४] पंचकोशेषु साक्षिणः भेदः अस्ति। असौ न तु भाति । अतः कोशानां मिथ्यात्मता ॥

७५) पंचकोशेषु आनंदमयाद्यन्नमयांतेषु पंचसु कोशेषु । साक्षिणः सकाशाद्विद्यमानोऽपि भेदो नाऽवभासते अतः तेषां मिथ्यात्मत्वं इत्यर्थः ॥

७६ मिथ्यात्मत्वे दृष्टांतमाह—

७७] स्थाणोः चोरात्मता यथा ॥

७८) वस्तुतश्चोराद्भिन्नस्य स्थाणोः चोररूपत्वं यथा मिथ्या तद्वदित्यर्थः ॥ ४१ ॥

---

६९ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं:—

७०] इन देवदत्त औ सिंह दोनूंके भेदकूं समान होनैतैं ॥

७१ दृष्टांतकरि उक्तअर्थकूं दार्ष्टांतविषै जोडतेहैं:—

७२] तैसैं पुत्रआदिककी आत्मता [७५]गौण है ॥ ४० ॥

॥ १० ॥ दृष्टांतसहित पंचकोशकूं मिथ्याआत्मता ॥

७३ अब मिथ्याआत्माकूं दिखावैहैं:—

७४] पंचकोशनविषै साक्षीतैं भेद है । तौ वी यह भेद भासता नहीं यातैं पंचकोशनकी मिथ्याआत्मता है॥

७५) आनंदमयसैं आदिलेके अन्नमयपर्यंत जो पंचकोश हैं । तिनविषै साक्षीतैं भेद विद्यमान है। तौ वी भासता नहीं । यातैं तिन पंचकोशनकी मिथ्याआत्मरूपता है। यह अर्थ है॥

७६ कोशनकी मिथ्याआत्मताविषै दृष्टांत कहैहैं:—

७७] जैसैं स्थाणुकी चोरता है। तैसैं॥

७८) वास्तवपनैंकरि चोरतैं भिन्न स्थाणुकी चोररूपता जैसैं मिथ्या है। तैसैं पंचकोशनकी आत्मरूपता मिथ्या है। यह अर्थ है ॥ ४१ ॥

---

७५ जैसैं शब्दकी मुख्यावृत्तिरूप शक्तिवृत्ति औ लक्षणावृत्ति हैं । तैसैं तीसरी गुणवृत्ति नाम गौणीवृत्ति बी है॥ औ

(१) जैसैं शक्तिवृत्तिसैं बोधन किये अर्थकूं **शक्यार्थ मुख्यार्थ** औ **वाच्यार्थ** कहैहैं ॥ अरु

(२) लक्षणावृत्तिसैं बोधन किये अर्थकूं **लक्ष्यार्थ** कहैहैं॥

(३) तैसैं गुणवृत्तिसैं बोधन किये अर्थकूं **गौणअर्थ** कहैहैं ॥

पदके वाच्यअर्थमैं जो गुण होवै तिस गुणवाले अवाच्यअर्थविषै जो पदकी वृत्ति कहिये संबंध । सो **गौणीवृत्ति** कहियेहै ॥ जैसैं "सिंहो देवदत्तः (अमुक पुरुष सिंह है)" इस वाक्यविषै सिंहशब्दका वाच्यअर्थ जो सिंहपशु । तामैं जो शूरता औ क्रूरताआदिकगुण हैं । तिसवाले सिंहपदके अवाच्यअर्थविषै सिंहपदकी गौणीवृत्ति है ॥

ऐसैं आत्मपदका वास्तववाच्यअर्थ तौ साक्षी है । यातैं साक्षी **मुख्यआत्मा** कहियेहै । परंतु साक्षीविषै आरोपित होनैंकरि आत्मपदका मिथ्यावाच्यअर्थ संघात बी है । तिस संघातमैं जो इसलोकसंबंधी औ परलोकसंबंधी कर्मविषै प्रवृत्तिरूप गुण है । तिस गुणवाले आत्मापदके अवाच्य पुत्रादिकविषै आत्मापदकी गौणीवृत्ति है । तिस गौणीवृत्तिकरि बोधन किया जो पुत्रादिरूप अर्थ । सो **गौणआत्मा** कहियेहै ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥ श्लोकांक: १३१८	न भाति भेदो नाप्यस्ति साक्षिणोऽप्रतियोगिनः । सर्वांतरत्वात्तस्यैव मुख्यमात्मत्वमिष्यते ॥ ४२ ॥	टीकांक: ४७७९ टिप्पणांक: ॐ

७९ एवं गौणमिथ्यात्मानावुपपाद्येदानीं साक्षिणो मुख्यात्मत्वमुपपादयति (न इति)—

८०] **साक्षिणः भेदः न भाति । न अस्ति अपि ॥**

८१) **साक्षिणः** साक्षिरूपस्यात्मनो गौणात्मनः पुत्रादेरिव कस्मादपि भेदो न भाति । मिथ्यात्मनो देहादेरिव भेदो नास्त्यपि ॥

८२ तत्रोभयत्र हेतुः—

८३] **अप्रतियोगिनः ॥**

८४) हेतुगर्भितं विशेषणं अप्रतियोगित्वाद्यथा पुत्रादेर्देहादेरपि स्वयं प्रतियोगी विद्यते । नैवं स्वस्य वस्तुभूतः कश्चित् प्रतियोग्यस्ति देहादेः सर्वस्यारोपितत्वादिति भावः॥

८५ ननु भेदाभावेन साक्षिणो गौणमिथ्यात्वे मा भूतां मुख्यात्मत्वं तु कुत इत्यत आह—

८६] **सर्वांतरत्वात् तस्य एव आत्मत्वं मुख्यं इष्यते ॥**

८७) सर्वस्माद्देहपुत्रादेः आंतरत्वात् सर्वसाक्षिणः प्रतीचः **सर्वांतरत्वेन** प्रतीयमानत्वात् । **तस्यैव** साक्षिण एव । **आत्मत्वं मुख्यं** अनौपचारिकं । **इष्यते** अभ्युपगम्यते इत्यर्थः ॥ अत्रेदं अनुमानं सूचितं । विमतः

॥ ११ ॥ साक्षीकी मुख्यआत्मताका उपपादन ॥

७९ ऐसैं गौणआत्मा औ मिथ्याआत्माकूं कहिके अब साक्षी जो प्रत्यगात्मा ताकी मुख्यआत्मताकूं उपपादन करैहैं:—

८०] **साक्षीका किसीतैं बी भेद नहीं भासताहै औ नहीं है ॥**

८१) साक्षीरूप आत्माका पुत्रादिकगौणआत्माकी न्यांई किसीतैं बी भेद नहीं भासताहै औ देहादिकमिथ्याआत्माकी न्यांई भेद नहीं बी है ॥

८२ तिन दोनूंठिकानैं हेतु कहैहैं:—

८३] **सो साक्षी कैसा है? अप्रतियोगी** कहिये आपतैं भिन्न वास्तववस्तुसैं रहित है॥

८४) इहां "अप्रतियोगी" यह हेतु है भीतर जिसके ऐसा हेतुगर्भित विशेषण है । यातैं प्रतियोगीसैं रहित होनैतैं साक्षीका भेद नहीं भासताहै औ नहीं है ॥ जैसैं पुत्रादिकका औ देहादिकका बी आप साक्षी प्रतियोगी विद्यमान है । ऐसैं आपका वास्तवरूप कोई बी प्रतियोगी नहीं है । काहेतैं देहादिकसर्वकूं बी आरोपित होनैतैं । यह भाव है ॥

८५ ननु भेदके अभावरूप हेतुकरि साक्षीका गौणपना औ मिथ्यापना मति होहु परंतु मुख्यआत्मापना काहेतैं है ? तहां कहैहैं:—

८६] **सर्वांतर होनैतैं तिसी साक्षीकीहीं आत्मता मुख्य अंगीकार करियेहै ॥**

८७) पुत्रादिकसर्वदेहतैं आंतर नाम अधिष्ठान होनैकरि भीतर होनैतैं । सर्वके साक्षी प्रत्यक्कूं सर्वांतर होनैकरि प्रतीयमान होनैतैं । तिसी साक्षीकाहीं आत्मापना मुख्य कहिये अनारोपित अंगीकार करियेहै । यह अर्थ है ॥ इहां यह अनुमान सूचन कियाहै:— विवादका विषय जो साक्षी सो मुख्यआत्मा होनैकूं योग्य है । सर्वके आंतर होनैतैं । जो

टीकांकः ४७८८ टिप्पणांकः ॐ

सत्येवं व्यवहारेषु येषु यस्यात्मतोचिता ।
तेषु तस्यैव शेषित्वं सर्वस्यान्यस्य शेषता ॥ ४३ ॥
मुमूर्षोर्गृहरक्षादौ गौणात्मैवोपयुज्यते ।
न मुख्यात्मा न मिथ्यात्मा पुत्रः शेषी भवत्यतः ४४

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३१९ १३२०

साक्षी मुख्यात्मा भवितुमर्हति। सर्वांतरत्वात्। यो मुख्यात्मा न भवति स सर्वांतरोऽपि न भवति। यथाहंकारादिरिति केवलव्यतिरेकी ॥ ४२ ॥

८८ भवत्वात्मत्रैविध्यं । पुत्रादेः शेषित्वाभिधाने किमायातमित्यत आह (सत्येवमिति)—

८९] एवं सति येषु व्यवहारेषु यस्य आत्मता उचिता । तेषु तस्य एव शेषित्वं । अन्यस्य सर्वस्य शेषता ॥

९०) एवं आत्मत्रैविध्ये सति अपि येषु लौकिकवैदिकलक्षणेषु पालनपोषणब्रह्मात्मत्वानुसंधानादिषु व्यवहारविशेषेषु यस्य पुत्रादेर्देहादेः साक्षिणो वा । आत्मत्वं उचितं भवति तेषु तस्य पुत्रादेर्देहादेः साक्षिणो वा । शेषित्वं प्रधानत्वं । अन्यस्य तद्व्यतिरिक्तस्य सर्वस्य शेषता उपसर्जनत्वं । भवतीति शेषः ॥ ४३ ॥

९१ एतदेव प्रपंचयति मुमूर्षोरित्यादिना श्लोकपंचकेन—

९२] मुमूर्षोः गृहरक्षादौ गौणात्मा एव उपयुज्यते । मुख्यात्मा न । मिथ्यात्मा न ॥

९३) गृहरक्षादौ कर्मविशेषे । गौणात्मैव पुत्रभार्यादिरूपः एवोपयुज्यते

मुख्यआत्मा होवै नहीं सो सर्वांतर वी नहीं होवैहै । जैसैं अहंकारादिक हैं । यह केवल व्यतिरेकि अनुमान है ॥ ४२ ॥

॥ १२ ॥ श्लोक ३९ उक्त तीनआत्मामैं योग्यकी प्रधानता । औरकी अप्रधानता ॥

८८ आत्माकी त्रिविधता होहु । इसकरि पुत्रादिककी शेषिताके नाम मुख्यताके कथनविषै क्या प्राप्त भया? तहां कहैहैं:—

८९] ऐसैं हुये जिन व्यवहारनविषै जिसकी आत्मता उचित होवै । तिन व्यवहारनविषै तिसीहींकी शेषिता नाम मुख्यता है । औ अन्यसर्वकी शेषता कहिये अमुख्यता है ॥

९०) ऐसैं आत्माकी त्रिविधताके हुये वी जिन लौकिकवैदिकरूप पालन पोषण औ ब्रह्मकी आत्मरूपताके अनुसंधानआदिकव्यवहारनके भेदनविषै जिस पुत्रादिककी वा देहादिककी वा साक्षीकी आत्मता योग्य होवैहै । तिन व्यवहारके भेदनविषै तिस पुत्रादिककी वा देहादिककी वा साक्षीकी शेषिता कहिये प्रधानता होवैहै औ तिसतैं भिन्न सर्वकी शेषता कहिये अप्रधानता होवैहै ॥४३॥

॥ १३ ॥ उक्तअर्थका विस्तारसैं कथन ॥

९१ इस ४३ वें श्लोक उक्तअर्थकूंहीं पांचश्लोककरि वर्णन करैहैं:—

९२] मरणइच्छुपुरुषकूं गृहरक्षाआदिकविषै पुत्र गौणआत्माहीं उपयोगकूं पावताहै । मुख्यआत्मा जो साक्षी सो नहीं औ देहादिकमिथ्याआत्मा वी नहीं ॥

९३) गृहकी रक्षाआदिककर्मविशेषविषै पुत्रभार्यादिरूप गौणआत्माहीं उपयोगी होवै-

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३२१ १३२२	अध्येता वह्निरित्यत्र सन्नप्यग्निर्न गृह्यते । अयोग्यत्वेन योग्यत्वाद्बटुरेवात्र गृह्यते ॥ ४५ ॥ ४८०० कृशोऽहं पुष्टिमाप्स्यामीत्यादौ देहात्मतोचिता । न पुत्रं विनियुंक्तेऽत्र पुष्टिहेत्वन्नभक्षणे ॥ ४६ ॥	टीकांकः ४७९४ टिप्पणांकः ॐ

उपयुक्तो भवति। उत्तरत्र जिजीविषुत्वादित्यर्थः॥ मुख्यात्मा साक्षी नोपयुज्यते अविकारित्वात् । नापि मिथ्यात्मा तस्य मरणोन्मुखत्वादिति भावः ॥

९४ फलितमाह (पुत्र इति)—

९५] अतः पुत्रः शेषी भवति ॥४४॥

ॐ ९५) स्पष्टम् ॥

९६ उक्ते गृहरक्षादिव्यवहारे सत्यपि स्वस्मिन् पुत्रादिस्वीकारे दृष्टांतमाह—

९७] "अध्येता वह्निः" इति अत्र सन् अपि अग्निः अयोग्यत्वेन न गृह्यते । अत्र योग्यत्वात् बटुः एव गृह्यते ॥

९८) "अयं अध्येता वह्निः" इति अस्मिन्प्रयोगे स्वरूपेण विद्यमानः अपि अग्निः न अग्निशब्दार्थत्वेन गृह्यते । तस्य अध्येतृत्वायोगात् किंतु अध्येतृत्वे योग्यो बटुः माणवकः एव अस्मिन्प्रयोगे अग्निशब्दार्थत्वेन गृह्यते योग्यत्वात् इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

९९ एवं गौणात्मप्राधान्यस्थलमुदाहृत्य मिथ्यात्मप्राधान्यस्थलमुदाहरति(कृश इति)-

४८००] "अहं कृशः पुष्टिं

है । काहेतें पुत्रादिककूं पीछलेकालविषै जीवनैंकी इच्छावाला होनैतें । यह अर्थ है ॥ औ मुख्यआत्मा जो साक्षी सो उपयोगी नहीं है। काहेतें ताकूं अविकारी होनैतें । औ मिथ्याआत्मा जो देहादिक सो बी उपयोगी नहीं है। काहेतें ताकूं मरणके सन्मुख होनैतें । यह भाव है ॥

९४ फलितकूं कहैहैं:—

९५] यातें तहां पुत्र शेषी नाम प्रधान है ॥

ॐ ९५) अर्थ स्पष्ट है ॥ ४४ ॥

९६ उक्तगृहरक्षाआदिकव्यवहारविषै आप पिताआदिकके होते बी पुत्रके स्वीकारविषै दृष्टांत कहैहैं:—

९७] "यह अध्येता अग्नि है" इस वाक्यविषै विद्यमान हुया बी अग्नि अयोग्य होनैंकरि नहीं ग्रहण करियेहै । किंतु इहां योग्य होनैतें बटुहीं ग्रहण करियेहै ॥

९८) "यह अध्ययनकर्त्ता अग्नि है" इस वाक्यके उच्चारणविषै स्वरूपकरि विद्यमान हुया बी अग्नि । अग्निशब्दका अर्थ होनैंकरि नहीं ग्रहण करियेहै । काहेतें तिस अग्निकूं अध्येताकी नाम अध्ययनकर्त्तापनैंकी अयोग्यतातैं । किंतु अध्येता होनैंविषै योग्य जो बटु नाम माणवक कहिये विद्यार्थीबालकहीं इस प्रयोगविषै अग्निशब्दका अर्थ होनैंकरि ग्रहण करियेहै । काहेतें ताकूं अध्ययनकर्त्ता होनैंविषै योग्य होनैतें । यह अर्थ है ॥ ४५ ॥

९९ ऐसैं पुत्रादिकगौणआत्माकी प्रधानताके स्थलकूं उदाहरणकरिके अब मिथ्याआत्माकी प्रधानताके स्थलकूं उदाहरण करैहैं:—

४८००] "मैं कृश भयाहूं । पुष्टिकूं

टीकांकः ४८०१ टिप्पणांकः ७८०

तपसा स्वर्गमेष्यामीत्यादौ कर्त्रात्मतोचिता ।
अनपेक्ष्य वपुर्भोगं चरेत्कृच्छ्रादिकं ततः ॥ ४७ ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३२३

आप्स्यामि" इत्यादौ देहात्मता उचिता ॥

१) "अहं कृशो जात अतोऽन्नभक्षणादिना पुष्टिं संपादयिष्यामि" इत्यादौ लोकव्यवहारे अन्नभक्षणयोग्यस्य देहस्यैव आत्मत्वं गृहीतुं उचितम् ॥

२ उक्तमर्थं लोकव्यवहारप्रदर्शनेन द्रढयति (न पुत्रमिति)—

३] अत्र पुष्टिहेत्वन्नभक्षणे पुत्रं न विनियुंक्ते ॥ ४६ ॥

४ किं च—

५] "तपसा स्वर्गं एष्यामि" । इत्यादौ कर्त्रात्मता उचिता ॥

६) यदा तु "तपः कृत्वा स्वर्गं संपादयिष्यामि" इत्यादिव्यवहारं करोति । तदा कर्तृशब्दवाच्यविज्ञानमयस्यैवात्मत्वमुचितं न देहादेरित्यर्थः ॥

७ तदेवोपपादयति (अनपेक्ष्येति)—

८] ततः वपुर्भोगं अनपेक्ष्य कृच्छ्रादिकं चरेत् ॥

९) यतो न देहस्यात्मत्वं उचितं ततः देहभोगपरित्यागपूर्वकं कर्तुरुपकारकं कृच्छ्रचांद्रायणादिकं चरतीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

पावोंगा" इत्यादिकस्थलविषै देहकी आत्मता उचित है ॥

१) "मैं कृश भयाहूं । यातैं पुष्टिकूं संपादन करूंगा" इसआदिकलोकव्यवहारविषै अन्नभक्षणके योग्य देहकीहीं आत्मरूपता ग्रहण करनैकूं योग्य है ॥

२ उक्तअर्थकूं लोकव्यवहारके दिखावनैंकरि दृढ करैहैं:—

३] इहां पुष्टिके हेतु अन्नके भक्षणविषै पुत्रकूं जोडता नहीं । यातैं देह मुख्य है ॥ ४६ ॥

४ और बी कहैहैं:—

५] "मैं तपकरि स्वर्गकूं पावोंगा" इत्यादिकस्थलविषै कर्त्ताकी आत्मता उचित है ॥

६) जब पुरुष "मैं तपकूं करीके स्वर्गकूं संपादन करूंगा" इसआदिकव्यवहारकूं करता है । तब कर्त्ताशब्दके वाच्य विज्ञानमयकोशकीहीं आत्मरूपता उचित है । देहादिककी नहीं । यह अर्थ है ॥

७ तिसीहींकूं हेतुपूर्वक कथन करैहैं:—

८] तातैं देहके भोगकी इच्छा न करीके कृच्छ्रआदिकतपकूं आचरताहै ।

९) जातैं देहकी आत्मता उचित नहीं है । तातैं पुरुष देहके भोगके परित्यागपूर्वक कर्त्ता जो विज्ञानमय ताके स्वर्गप्रापक होनैकरि उपकारक कृच्छ्रचांद्रायणआदिकरूप तपकूं आचरताहै । यह अर्थ है ॥ ४७ ॥

---

८० द्वादशदिवसनकरि साध्य जो व्रत । सो कृच्छ्र कहियेहै ॥ सो (१) पादकृच्छ्र । (२) प्राजापत्यकृच्छ्र । (३) अर्धकृच्छ्र । (४) पादोनकृच्छ्र । (५) अतिकृच्छ्र । (६) कृच्छ्रातिकृच्छ्र । (७) सांतपनकृच्छ्र । (८) महासांतपनकृच्छ्र । (९) यतिसांतपनकृच्छ्र । (१०) तप्तकृच्छ्र । (११) शीतकृच्छ्र औ (१२) पराककृच्छ्र भेदतैं द्वादशप्रकारका है । तिनके ये स्वरूप हैं ॥

(१) प्रथमदिनविषै मध्यान्हकालमैं एकवार हविष्य

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३२४	११ मोक्ष्येऽहमित्यत्र युक्तं चिदात्मत्वं तदा पुमान् । तद्वेत्ति गुरुशास्त्राभ्यां न तु किंचिच्चिकीर्षति ४८	टीकांकः ४८१० टिप्पणांकः ॐ

१० किं च (मोक्ष्य इति)—

११] पुमान् "अहं मोक्ष्ये" इति तदा गुरुशास्त्राभ्यां तत् वेत्ति। किंचित् न तु चिकीर्षति" अत्र चिदात्मत्वं युक्तम् ॥

१० किंवा मुख्यआत्माके स्थलकूं उदाहरण करैहैं:—

११] जब पुरुष "मैं मोक्षकूं पावौंगा ऐसी मतिकूं करताहै । तब गुरु औ शास्त्रकरि तिस ब्रह्मचेतनकूं जानताहै। अन्य किंचित् कर्मादिककूं करनैकूं इच्छता नहीं" इहां इस व्यवहारविषै शुद्धचेतनकी आत्मता युक्त है ॥

अन्नके षड्विंशतिग्रास लेनैं । द्वितीयदिनविषै रात्रिमैं षड्विंशतिग्रास लेनैं । तृतीयदिनविषै अयाचित अन्नके चतुर्विंशतिग्रास लेनैं औ चतुर्थदिनविषै भोजन न करना । यह **पादकृच्छ्र** है ॥

(२) किसी प्रकारसैं भी त्रिगुण कियाहुया यहहीं **प्राजापत्यकृच्छ्र** है ॥

(३) दोदिन एकवार भोजन । दोदिन रात्रिभोजन । दोदिन अयाचित भोजन । दोदिन उपवास करना । यह **अर्धकृच्छ्र** है ॥ यद्वा तीनदिन अयाचितभोजन औ तीनदिन उपवास । यह **अर्धकृच्छ्र** है ॥

(४) एकवार भोजन । रात्रिभोजन । अयाचितभोजन औ उपवास । ऐसैं कोई भी प्रकारसैं त्रिगुण किये । इनकरि **पादोनकृच्छ्र** होवैहै ॥

(५) इन नवदिनविषै भोजनकी प्राप्ति होवैहै । तिस ग्रासके नियमकूं छोडिके हस्तविषै पूर्ण भये अन्नके भोजन किये **अतिकृच्छ्र** होवैहै ॥

(६) एकग्रासपरिमित वा प्राणधारणपरिमित दुग्धका एकविंशतिदिनविषै भक्षण किये **कृच्छ्रातिकृच्छ्र** होवैहै ॥

(७) एकदिनविषै कुश नाम दर्भ औ जलकरि मिलित गौका दुग्ध । दधि । घृत । मूत्र औ गोबरका भोजन औ एकदिनविषै उपवास । यह दोरात्रिका **सांतपनकृच्छ्र** है ॥

(८) पंचगव्य औ कुशजल इनका न्यारे न्यारे एकदिनविषै भोजन औ एकउपवास । यह सप्तदिनकरि साध्य **महासांतपनकृच्छ्र** है ॥

(९) तीनदिन मिलित पंचगव्यके भोजन किये **यतिसांतपनकृच्छ्र** होवैहै ॥

(१०) तप्तघृत दुग्ध औ जल । इन एकएकका तीनदिन पान औ तीनउपवास । यह **तप्तकृच्छ्र** है ॥ यद्वा—तप्तघृतआदिकनका एकएकदिन भोजन औ एक उपवास । यह च्यारीदिनकरि साध्य **तप्तकृच्छ्र** है ॥

(११) शीतघृतकआदिकनके पान किये **शीतकृच्छ्र** होवैहै ॥

(१२) द्वादशदिन उपवासकरि **पराककृच्छ्र** होवैहै ॥

ऐसैं कृच्छ्र कह्या ॥ औ

आदिपदकरि चांद्रायणआदिकनका ग्रहण है:— (१) यवमध्य औ (२) पिपीलिकामध्य भेदसैं चांद्रायण दोभांतिका है ॥

(१) शुक्लपक्षमैं प्रतिपदाआदिकतिथिनविषै मयूरपक्षीके अंडसमान एकएकग्रासकूं बढावना । ऐसैं पूर्णमासीके दिन पंचदशग्रास औ तिथिके क्षय भये चतुर्दश औ तिथिकी वृद्धि भये षोडशग्रास होवैहैं औ कृष्णपक्षमैं एक एक ग्रासके घटावनैंकरि अमावासीके दिन उपवास होवैहै ॥ यह मासकरि साध्य **यवमध्यसंज्ञक चांद्रायण** है ॥ औ

(२) कृष्णपक्षमैं प्रतिपदाके दिन चतुर्दशग्रासनकूं भोजन करिके एकएकग्रासके घटावनैंकरि *अमावासीके दिन* उपवास औ शुक्लपक्षमैं एकएकग्रासकी वृद्धि । ऐसैं कृष्णपक्षसैं आदिलेके शुक्लपक्षपर्यंत **पिपीलिकामध्यसंज्ञक चांद्रायण** है ॥

इत्यादिक जो पापकी निवृत्तिअर्थ वेदनैं विधान किये प्रायश्चित्त कर्म हैं सो **तप** कहियेहै ॥ धर्मशास्त्रके अनेकग्रंथनविषै प्रायश्चित्तप्रकरणमैं इनका सविस्तर वर्णन कियाहै ॥

यद्यपि सो सकामकूं स्वर्गादिकफलके हेतु हैं। **तथापि** निष्कामपुरुषकूं चित्तशुद्धिके हेतु हैं । यातैं वेदांतके ग्रंथनविषै भी अनेकस्थलमैं इनका तपशब्दकरि कथन कियाहै । तातैं उपयोगी जानीके इहां प्रसंगसैं जनायाहै ॥ इति ॥

टीकांकः ४८१२ टिप्पणांकः ॐ

१४ विप्रक्षत्रादयो यद्वद्बृहस्पतिसवादिषु ।
व्यवस्थितास्तथा गौणमिथ्यामुख्या यथोचितं ४९

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३२५

१२) यदा पुमान् "शमादीन् संपाद्य मुक्तिं प्राप्स्यामि" इति मतिं करोति । तदा गुरुशास्त्राभ्यां आचार्योपदेशवाक्यार्थविचारजन्यापरोक्षज्ञानेन "नाहं कर्त्राद्यात्मा सच्चिदानंदब्रह्माहमस्मि" इति चिदात्मानमवगच्छति तस्य चिदात्मत्वं एवोचितं न तु तत्र कर्त्राद्यात्मत्वमित्यर्थः ॥ "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म विज्ञानमानंदं ब्रह्म अनंतरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव" इत्यादि श्रुतेः ॥४८॥

१३ उदाहृतानां त्रिविधानामात्मनां व्यवहारविशेषेषु व्यवस्थया प्राधान्ये दृष्टांतमाह (विप्रेति)—

१४] यद्वत् विप्रक्षत्रादयः बृहस्पतिसवादिषु व्यवस्थिताः । तथा गौणमिथ्यामुख्याः यथोचितम् ॥

१५) यथा "ब्राह्मणो बृहस्पतिसवेन यजेत" इत्यत्र ब्राह्मणस्यैवाधिकारो न क्षत्रियवैश्ययोः । "राजा राजसूयेन यजेत" इत्यत्र राज्ञ एवाधिकारो न ब्राह्मणवैश्ययोः । "वैश्यो वैश्यस्तोमेन यजेत" इत्यत्र वैश्यस्यैवाधिकारो नेतरयोः । एवं गौणमिथ्यामुख्यभेदानामात्मनां यथायोग्यं स्वोचितव्यवहारेषु प्राधान्यमिति भावः ॥ ४९ ॥

---

१२) जब पुरुष "शमआदिकसाधनकूं संपादनकरिके मैं मुक्तिकूं पावोंगा" ऐसी बुद्धिकूं करताहै । तब गुरु औ शास्त्रकरि कहिये आचार्यकरि उपदेश किये महावाक्यके अर्थ ब्रह्मआत्माकी एकताके विचारसैं जन्य अपरोक्षज्ञानकरि "मैं कर्त्ताआदिरूप नहीं हूं । किंतु सच्चिदानंदरूप ब्रह्म मैं हूं।" ऐसैं चिदात्माकूं जानताहै । इस व्यवहारविषै तिस साक्षीकी शुद्धचेतनरूपताहीं उचित है परंतु तहां कर्त्ता विज्ञानमयआदिकरूपता उचित नहीं है । यह अर्थ है ॥ "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है" औ "विज्ञान आनंद ब्रह्म है" औ "अंतररहित बाह्यरहित संपूर्ण प्रज्ञानघन नाम अतिशयज्ञानरूप आत्मा है" इत्यादिकश्रुतिनतैं आत्माकी ब्रह्मरूपता है ॥ ४८ ॥

॥ १४ ॥ श्लोक ३९-४२ उक्त तीनआत्माकी व्यवहारविशेषविषै व्यवस्थासैं प्रधानतामैं दृष्टांत ॥

१३ उदाहरण किये तीनप्रकारके आत्माकी व्यवहारके भेदनविषै जो व्यवस्थाकरि प्रधानता है । तिसविषै दृष्टांत कहैहैं:—

१४] जैसैं विप्रक्षत्रियआदिक बृहस्पतियागआदिकविषै व्यवस्थाकूं प्राप्त हैं । तैसैं गौण मिथ्या औ मुख्यरूप आत्माकी बी यथायोग्य प्रधानता है ॥

१५) जैसैं "ब्राह्मण । बृहस्पतिनामक सव जो याग तिसकरि यजन करै" इस वाक्यकरि इहां बृहस्पतिसवविषै ब्राह्मणकूंहीं अधिकार है । क्षत्रिय औ वैश्यकूं नहीं औ "राजा । राजसूयनामकयागकरि यजन करै" इहां राजाकूंहीं अधिकार है । ब्राह्मण औ वैश्यकूं नहीं औ "वैश्य । वैश्यस्तोमनामकयागकरि यजन करै" इहां वैश्यकूंहीं अधिकार है। इतर ब्राह्मण औ क्षत्रियकूं नहीं ॥ ऐसैं गौण मिथ्या औ मुख्य । इस भेदवाले आत्माकी यथायोग्य कहिये अपनेकूं उचित व्यवहारविषै प्रधानता है । यह भाव है ॥ ४९ ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥ श्लोकांक: १३२६ १३२७	१७तत्र तत्रोचिते प्रीतिरात्मन्येवातिशायिनी । अनात्मनि तु तच्छेषे प्रीतिरन्यत्र नोभयम् ५० २०उपेक्ष्यं द्वेष्यमित्यन्यद्द्वेधा २१मार्गतृणादिकम् । २६उपेक्ष्यं व्याघ्रसर्पादि द्वेष्यमेवं चतुर्विधम् ॥५१॥	टीकांक: ४८१६ टिप्पणांक: ७८१

१६ फलितमाह—

१७] तत्र तत्र उचिते आत्मनि एव प्रीतिः अतिशायिनी । तच्छेषे अनात्मनि तु प्रीतिः। अन्यत्र उभयं न॥

१८) यस्मिन्व्यवहारे यो य आत्मा उचितो भवति तत्र तत्र तस्मिंस्तस्मिन् व्यवहारे । उचिते उपयोगितया प्रधानभूते । आत्मन्येव प्रीतिरतिशायिनी अतिशयवती । तच्छेषे तस्यात्मनः शेषे शेषभूते। अनात्मनि आत्मव्यतिरिक्ते वस्तुनि प्रीतिमात्रं न निरतिशयं प्रेमेत्यर्थः ॥ अन्यत्र आत्मतच्छेषाभ्यामन्यस्मिन्वस्तुनि नोभयं उभयविधमपि प्रेम नास्तीत्यर्थः ॥ ५० ॥

१९ "अन्यत्र नोभयं" इत्यत्राभिहित-

॥ १९ ॥ फलित आत्मामैं (अतिशयप्रीति औ आत्माके शेषमैं प्रीति अरु अन्यमैं दोई नहीं).

१६ फलितकूं कहैहैंः—

१७] तिस तिस व्यवहारविषै उचित आत्माविषैहीं अतिशय प्रीति है औ तिस आत्माके शेष नाम उपकारक अनात्माविषै तौ प्रीति है औ अन्यवस्तुविषै दोनूं नहीं हैं ॥

१८) जिस व्यवहारविषै जो जो आत्मा योग्य होवैहै । तिस तिस व्यवहारमैं उचित नाम उपयोगी होनैंकरि प्रधानभूतआत्माविषैहीं अतिशयतावाली प्रीति है औ तिस आत्माके शेषभूत भोग्यरूप अनात्माविषै प्रीतिमात्र है । निरतिशयप्रेम नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥ औ आत्मा अरु तिसके शेष । इन दोनूंतैं अन्य कहिये न्यारे वस्तुनविषै दोनूंप्रकारका बी प्रेम नहीं है । यह अर्थ है॥५०॥

॥२॥ आत्माके प्रियतमताकी सिद्धि औ परमानंदताकी सर्ववृत्तिनमैं अप्रतीतिपूर्वक योग औ विवेककी समता ॥ ४८१९–४९८३ ॥

॥ १ ॥ प्रियतम प्रिय उपेक्ष्य औ द्वेष्यवस्तुका विवेक औ ज्ञानीके एकहीं वचनकी शिष्य औ प्रतिवादीके प्रति वरशापरूपताकरि आत्माकी प्रियतमता ॥ ४८१९–४९१० ॥

॥ १ ॥ श्लोक ४९ उक्त "अन्य (अनात्मा)-मैं दोई नहीं" ता अन्यशब्दका अर्थ औ फलित (प्रियतमादिचतुर्विध) ॥

१९ अन्यवस्तुविषै दोनूं नहीं हैं" इस

८१ इहां यह अभिप्राय हैः— जो वस्तु इच्छाका विषय होवै सो अनुकूल कहियेहै ॥ सुख औ दुःखके अभाव अरु तिनके साधनकीहीं इच्छा होवैहै । अन्यकी नहीं ॥ तातैं सुख औ दुःखाभाव औ इन दोनूंके साधन ये च्यारी

टीकांकः ४८२० टिप्पणांकः ॐ

ॐआत्मा शेष उपेक्ष्यं च द्वेष्यं चेति चँतुर्ष्वपि ।
न व्यक्तिनियमः किं तु तत्तत्कार्यात्तथा तथा ५२

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३२८

स्यान्यशब्दार्थस्य अवांतरभेदमाह (उपेक्ष्यमिति)—

२०] **अन्यत् उपेक्ष्यं द्वेष्यं इति द्वेधा॥**

२१) अन्यत् अन्यदित्युच्यमानं वस्तु उपेक्ष्यं उपेक्षाविषयः । द्वेष्यं द्वेषविषयः । च इति द्विधा द्विप्रकारं भवति ॥

२२ तदुभयमुदाहरति—

२३] **मार्गतृणादिकं उपेक्ष्यं । व्याघ्रसर्पादि द्वेष्यम् ॥**

२४) मार्गगतं तृणलोष्टादिकं उपेक्ष्यं स्वस्योपद्रवहेतुः व्याघ्रादिकं द्वेष्यं इत्यर्थः ॥

२५ फलितमाह—

२६] **एवं चतुर्विधम् ॥ ५१ ॥**

२७ चातुर्विध्यमेव दर्शयति—

२८] **आत्मा शेषः । च उपेक्ष्यं । च द्वेष्यं इति ॥**

२९ नन्वात्मादीनां चतुर्णामपि प्रियतमत्वादिकं किं नियतं नेत्याह—

३०] **चतुर्षु अपि व्यक्तिनियमः न ॥**

---

५० वें श्लोकविषै कथन किये अन्यशब्दके अर्थके वीचके भेदकूं कहैहैं:—

२०] **उपेक्ष्य औ द्वेष्यभेदकरि अन्यवस्तु दोप्रकारका होवैहै ॥**

२१) अन्य अन्य ऐसैं कथन करियेहै जो वस्तु । सो उपेक्षाका विषय औ द्वेषका विषय । इस भेदकरि दोप्रकारका होवैहै ॥

२२ तिन दोनूंकूं उदाहरणकरि कहैहैं:—

२३] **मार्गका तृणादिक उपेक्ष्य है औ व्याघ्रसर्पादिक द्वेष्य है ॥**

२४) मार्गगत जो तृण अरु मट्टीके खडेआदिक सो उपेक्ष्य है औ अपनैंकूं उपद्रवके हेतु जो व्याघ्रआदिक । सो द्वेष्य है ॥ यह अर्थ है ॥

२५ फलितकूं कहैहैं:—

२६] **ऐसैं च्यारीप्रकारका वस्तु है॥५१**

॥ २ ॥ श्लोक ११ उक्त चतुर्विधका दिखावना औ तिनका अनियमितपना ॥

२७ च्यारीप्रकारकूंहीं दिखावैहैं:—

२८] **आत्मा प्रियतम । शेष नाम प्रिय । उपेक्ष्य । औ द्वेष्य । यह च्यारीप्रकारका वस्तु है ॥**

२९ ननु आत्माआदिकच्यारीवस्तुनके वी प्रियतमताआदिक क्या नियमित है? तहां नियमित नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

३०] **इन च्यारीवस्तुनविषै वी व्यक्ति जो प्रियतमआदिकस्वरूप ताका नियम नहीं है ॥**

अनुकूल है । परंतु तिनमैं इतना भेद है:—

(१) आत्मा । जातैं नित्य निरतिशयसुख औ दुःखाभावरूप है । यातैं अतिशयतैं वी अतिशयअनुकूल है । याहीतैं परमप्रेमका विषय होनैतैं **प्रियतम** है ॥ औ

(२) इसलोकपरलोकके विषयसैं जन्य सुख जातैं अनित्य औ सातिशयआदिकअनंतदुःखकरि ग्रस्त है । यातैं अतिशयअनुकूल है । याहीतैं साधनकी अपेक्षातैं अधिक प्रीतिका विषय होनैतैं **प्रियतर** है ॥ औ

(३) सुख अरु दुःखके अभावके साधन जातैं स्वरूपतैं सुख वा दुःखके अभावरूप नहीं हैं । किंतु तिनकी उत्पत्ति वा आविर्भावमैं उपयोगी हैं । यातैं अनुकूल हैं । याहीतैं प्रीतिमात्रके विषय होनैतैं **प्रिय** हैं ॥ औ

(४) इन च्यारीतैं भिन्न वस्तु इच्छाके विषय नहीं यातैं अनुकूल नहीं । किंतु अनुकूलप्रतिकूलतैं भिन्न औ प्रतिकूल हैं । याहीतैं प्रीतिके अविषय होनैकरि प्रिय नहीं हैं । किंतु उपेक्षा औ द्वेषके विषय होनैंकरि **उपेक्ष्य** औ **द्वेष्य** हैं ॥ इति ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३२९ १३३०	³⁶स्याद्व्याघ्रः संमुखो द्वेष्यो ह्युपेक्ष्यस्तु पराङ्मुखः । लालनादनुकूलश्चेद्विनोदायेति शेषताम् ॥ ५३ ॥ ³⁷व्यक्तीनां नियमो माभूल्लक्षणात्तु व्यवस्थितिः । ³⁸आनुकूल्यं प्रातिकूल्यं द्वयाभावश्च लक्षणम् ॥५४॥	टीकांक: ४८३१ टिप्पणांक: ॐ

३१) अयमेव प्रियतमोऽयमेव प्रियः इदमेवोपेक्ष्यमिदं द्वेष्यं नान्यदिति नियमो नास्तीत्यर्थः ॥

३२ किं तर्हीत्यत आह—

३३] किंतु तत्तत्कार्यात् तथा तथा ॥

३४) तस्मात्तस्मात्कार्यविशेषादुपकारादिरूपात् तथा तथा प्रियादिरूपतेत्यर्थः ॥५२॥

३५ सर्वत्राप्यनियमयोजनाय प्रसिद्धे द्वेष्यव्याघ्रे तदभावं दर्शयति (स्यादिति)—

३६] व्याघ्रः संमुखः द्वेष्यः स्यात् । पराङ्मुखः चेत् तु उपेक्ष्यः । हि लालनात् अनुकूलः विनोदाय । इति शेषताम् ॥

३७) यदा व्याघ्रः स्वभक्षणाय संमुखः आगच्छति तदा द्वेष्यः भवति । स एव पराङ्मुखः गच्छति चेत् उपेक्ष्यः भवति । स एव यदि लालनात् स्वानुकूलः भवति तदा विनोदायेति विनोदसाधनं भवतीति शेषतां स्वस्योपकारकत्वेन प्रियत्वं भजत इत्यभिप्रायः ॥ ५३ ॥

३८ नन्वेकस्यैव वस्तुनः प्रियत्वादिधर्मत्रयांगीकारे व्यवहारव्यवस्था न स्यादित्याशंक्याह—

---

३१) आत्मादिकच्यारीवस्तुनविषै यहहीं प्रियतम है । यहहीं प्रिय है । यहहीं उपेक्ष्य है औ यहहीं द्वेष्य है । अन्य नहीं । ऐसा नियम नहीं है ॥ यह अर्थ है ॥

३२ तब क्या है? तहां कहैहैं:—

३३] किंतु तिस तिस कार्यतैं तैसैं तैसैं होवैहै ॥

३४) तिस तिस उपकारादिरूप कार्यके भेदतैं तैसैं तैसैं प्रियादिरूपता होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥ ५२ ॥

॥ ३ ॥ प्रसिद्धद्वेष्यव्याघ्रमैं अनियम ॥

३५ सर्वठिकानैं अनियमके जोडनैंअर्थ प्रसिद्ध द्वेष्यरूप व्याघ्रविषै तिस द्वेष्यबुद्धिके नियमके अभावकूं दिखावैहैं:—

३६] व्याघ्र जब सन्मुख होवै तब द्वेष्य होवैहै औ जब उलटा जाताहोवै तब उपेक्ष्य होवैहै औ लालनतैं अनुकूल होवै । तब विनोदके अर्थ हुया शेषताकूं पावताहै ॥

३७) व्याघ्र जो बाघ सो जब अपनैं भक्षण करनैंअर्थ सन्मुख आवताहै । तब द्वेषका विषय होवैहै औ सोई व्याघ्र जब उलटा होयके जावै तब उपेक्षाका विषय होवैहै औ सोई व्याघ्र जब लालनतैं अपनैंकूं अनुकूल नाम सुखका साधन होवै तब विनोदअर्थ नाम विनोदका साधन होवैहै । ऐसैं शेषताकूं नाम अपना उपकारक होनैंकरि प्रियताकूं भजताहै । यह अभिप्राय है ॥५३॥

॥ ४ ॥ प्रियादिकके व्यवहारकी व्यवस्था औ लक्षण ॥

३८ ननु एकहीं वस्तुके प्रियताआदिकतीनधर्मनके अंगीकार किये व्यवहारकी व्यवस्था नहीं होवैगी । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

टीकांकः ४८३९ टिप्पणांकः ॐ	आत्मा प्रेयान् प्रियः शेषो द्वेष्योपेक्ष्ये तदन्ययोः। इति व्यवस्थितो लोको याज्ञवल्क्यमतं च तत् ५५	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥ श्लोकांकः १३३१

३९] व्यक्तीनां नियमः मा भूत्। तु लक्षणात् व्यवस्थितिः॥

४०) व्यक्तिनियमाऽभावेऽपि लक्षणवशात् व्यवस्था भविष्यतीत्यर्थः॥

४१ किं लक्षणमित्याकांक्षायां तल्लक्षणमाह—

४२] आनुकूल्यं प्रातिकूल्यं च द्वयाभावः लक्षणम्॥

४३) अनुकूलत्वं प्रियस्य लक्षणं व्यावर्तको धर्मः। प्रतिकूलत्वं द्वेष्यस्य लक्षणं। उपेक्ष्यस्य आनुकूल्यप्रातिकूल्यरूपद्वयाभावः च लक्षणं इत्यर्थः॥ ५४॥

४४ एतावता ग्रंथसंदर्भेणोपपादितमर्थं बुद्धिसौकर्याय संक्षिप्य कथयति—

४५] आत्मा प्रेयान्। शेषः प्रियः। तदन्ययोः द्वेष्योपेक्ष्ये। इति लोकः व्यवस्थितः॥

४६) आत्मा प्रत्यगानंदः। प्रेयान् अतिशयेन प्रियः। शेषः स्वोपसर्जनभूतः पदार्थः प्रियः। तदन्ययोः ताभ्यामात्मनः तच्छेषाच्चान्ययोः व्याघ्रपथिगततृणादिरूपयोः॥ द्वेष्योपेक्ष्ये यथाक्रमं भवत इति एवं चातुर्विध्येन लोको व्यवस्थितः व्यवस्थां प्राप्तः॥

३९] व्यक्तिनका नियम मति होहु। परंतु लक्षणतैं व्यवस्था होवैगी॥

४०) व्यक्ति जो प्रियताआदिकस्वरूप ताके नियमके अभाव हुये वी लक्षणके वशतैं व्यवस्था होवैगी॥ यह अर्थ है॥

४१ प्रियआदिकका क्या लक्षण है? इस आकांक्षाविषै तिन प्रिय द्वेष्य औ उपेक्ष्यके लक्षणकूं कहैहैं:—

४२] अनुकूलपना प्रतिकूलपना औ दोनूंका अभाव यह प्रियआदिकका लक्षण है॥

४३) अनुकूलता नाम सुखका साधनपना प्रियका लक्षण कहिये व्यावर्त्तक धर्म है औ प्रतिकूलता नाम दुःखका साधनपना द्वेष्यका लक्षण है औ अनुकूलपना अरु प्रतिकूलपना इन दोनूंरूपका अभाव जो अनुकूल अरु प्रतिकूलपनैकरि रहितपना सो उपेक्ष्यवस्तुका लक्षण है॥ यह अर्थ है॥ ५४॥

॥ ९ ॥ प्रतिपादितअर्थ (चतुर्विध)का संक्षेपसैं कथन औ तामैं मैत्रेयीब्राह्मणकी संमति॥

४४ इतनैं कहिये ५१ वें श्लोकसैं आरंभ किये ग्रंथकी रचनाकरि उपपादन किये अर्थकूं मुमुक्षुकी बुद्धिविषै सुगम करनैंअर्थ संक्षेपकरिके कथन करैहैं:—

४५] आत्मा प्रियतम है औ शेष प्रिय है। औ तिनतैं अन्य दोनूंवस्तुनविषै द्वेष्य औ उपेक्ष्य होवैहैं। ऐसैं लोक व्यवस्थाकूं पावताहै॥

४६) आत्मा जो आंतरआनंद सो प्रियतम कहिये अतिशयकरि प्रिय है॥ औ शेष जो अपना आत्माका संबंधी हुया पदार्थ सो प्रिय है॥ औ तिन आत्मा औ आत्माके शेषतैं अन्य जो व्याघ्र अरु मार्गगत तृणआदिकरूप अनुकूल औ अनुकूलता अरु प्रतिकूलतासैं रहित दोनूंप्रकारके वस्तुनविषै क्रमके अनुसार द्वेष्य औ उपेक्ष्य होवैहैं। ऐसैं

५१ अन्यत्रापि श्रुतिः प्राह पुत्राद्वित्तात्तथान्यतः ।
सर्वस्मादांतरं तत्त्वं तदेतत्प्रेय ईक्षताम् ॥ ५६ ॥
५४ श्रौत्या विचारदृष्ट्यायं साक्ष्येवात्मा न चेतरः ।
५७ कोशान्पंच विविच्यांतर्वस्तुदृष्टिर्विचारणा ॥५७॥

उक्तप्रकारचतुष्टयातिरिक्तं न किंचित् विद्यत इत्यभिप्रायः ॥

४७ अयमर्थः श्रुत्यभिमतोऽपीत्याह (याज्ञवल्क्येति)—

४८] च तत् याज्ञवल्क्यमतम् ॥

४९) आत्मादीनां प्रियतमत्वादिकं यत् तत् याज्ञवल्क्यमतं च याज्ञवल्क्यस्यापि संमतमित्यर्थः ॥ ५५ ॥

५० न केवलं मैत्रेयीब्राह्मण एवात्मनः प्रियतमत्वमुक्तं किंतु पुरुषविधब्राह्मणेऽपीत्यभिप्रायेण तद्वाक्यार्थं संगृह्णाति (अन्यत्रापीति)—

५१] "पुत्रात् वित्तात् तथा अन्यतः सर्वस्मात् आंतरं तत्त्वं । तत् एतत् प्रेयः ईक्षताम् ।" अन्यत्र अपि श्रुतिः प्राह ॥

५२) "तदेतत्प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयः अन्यस्मात् सर्वस्मादंतरतरं यदयमात्मा ।" इत्यनेन वाक्येन पुत्रवित्तादेः सर्वस्मादांतरस्यात्मतत्त्वस्य प्रियतमत्वमीरितमित्यर्थः ॥ ५६ ॥

५३ भवत्वेवं श्रुतावभिधानं प्रकृते किमायातमित्यत आह—

च्यारीप्रकारकरि लोक व्यवहारके भेदरूप व्यवस्थाकूं प्राप्त होवैहैं ॥ उक्तच्यारीप्रकारसैं भिन्न कछु वी नहीं है । यह अभिप्राय है ॥

४७ यह अर्थ श्रुतिकरि वी मान्याहै । ऐसैं कहैहैं:—

४८] सो याज्ञवल्क्यका वी मत है ॥

४९) आत्माआदिकके जे प्रियतमताआदिक हैं । वे याज्ञवल्क्यऋषिकूं वी संमत हैं । यह अर्थ है ॥ ५५ ॥

॥ ६ ॥ आत्माकी प्रियतमतामैं पुरुषविधब्राह्मणके वाक्यका अर्थ ॥

५० केवल मैत्रेयीब्राह्मणनाम बृहदारण्यकके किसी प्रकरणविषैंहीं आत्माकी प्रियतमता कहीहै ऐसैं नहीं । किंतु पुरुषविधब्राह्मणविषै वी कहीहै । इस अभिप्रायकरि तिस पुरुषविधब्राह्मणके वाक्यके अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं:—

५१] "जो पुत्रतैं । वित्ततैं । तैसैं अन्यसर्वपदार्थतैं आंतरतत्त्व है । ताकूं अतिप्रिय देखना" ऐसैं अन्यस्थलविषै वी श्रुति कहतीहै ॥

५२) "जो पुत्रतैं प्रिय है औ वित्ततैं प्रिय है अरु अतिआंतर है औ अन्यइंद्रियादिकतैं प्रिय है औ सर्वपुत्रादिकतैं अतिआंतर है औ जो यह आत्मा सर्वांतर है । सो यह अतिशयकरि प्रिय है।" इस बृहदारण्यकके वाक्यकरि पुत्र औ गृहक्षेत्रपशुआदिरूप धनआदिकसर्वतैं आंतर आत्मतत्त्वकी प्रियतमता कहीहै । यह अर्थ है ॥ ५६ ॥

॥ ७ ॥ श्रुतिविचारसैं प्रकृत (साक्षीकी मुख्यआत्मता)की सिद्धि औ उक्तविचारका स्वरूप ॥

५३ ऐसैं श्रुतिविषै कथन होहु । तिसकरि प्रकृत साक्षीकी मुख्यआत्मताविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

टीकांक: ४८५४ टिप्पणांक: ॐ

६० जागरस्वप्नसुप्तीनामागमापायभासनम् ।
यतो भवत्यसावात्मा स्वप्रकाशचिदात्मकः ॥५८॥
६३ शेषाः प्राणादिवित्तांता आसन्नास्तारतम्यतः ।
६६ प्रीतिस्तथा तारतम्यात्तेषु सर्वेषु वीक्ष्यते ॥५९॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३२४ १३२५

५४] श्रौत्या विचारदृष्ट्या अयं साक्षी एव आत्मा । च इतरः न ॥

५५) श्रुत्यर्थपर्यालोचनरूपया विचारदृष्ट्या साक्षिण एव मुख्यमात्मत्वं नेतरस्य पुत्रादेरित्यर्थः ॥

५६ "विचारदृष्ट्या" इत्यभिहितस्य स्वरूपमाह (कोशानिति)—

५७] पंच कोशान् विविच्य अंतर्वस्तुदृष्टिः विचारणा ॥

५८) अन्नमयादीन् पंचकोशान् तैत्तिरीयश्रुत्युक्तप्रकारेणात्मनः पृथक्कृत्यांतःस्थितस्यात्मनोऽनुभवो विचारणा इत्यर्थः ५७

५९ अंतःस्थितस्य वस्तुनो दर्शनप्रकारमेवाह—

६०] जागरस्वप्नसुप्तीनां आगमापायभासनं यतः भवति । असौ स्वप्रकाशचिदात्मकः आत्मा ॥

६१) जाग्रदाद्यवस्थानां मध्ये उत्तरोत्तरावस्थागमस्य पूर्वपूर्वावस्थानिवृत्तेः चावभासनं यतो नित्यचैतन्यरूपात् साक्षिणो भवति स स्वप्रकाशचिद्रूप आत्मा इत्यर्थः ॥ ५८ ॥

६२ संग्रहेणोक्तं श्रुत्यर्थं प्रपंचयति—

५४] श्रुतिसंबंधी विचारदृष्टिकरि यह साक्षीहीं आत्मा है । इतर नहीं ॥

५५) श्रुतिअर्थके च्यारीऔरतैं देखनैंरूप विचारदृष्टिकरि साक्षीकूं मुख्यआत्मता है । अन्यपुत्रादिककूं नहीं । यह अर्थ है ॥

५६ इहां "विचारदृष्टिकरि" कथन किये विचारके स्वरूपकूं कहैहैं:—

५७] पंचकोशनकूं विवेचनकरिके तिनके अंतर्गत वस्तुकी जो दृष्टि । सो विचार है ॥

५८) अन्नमयआदिकपंचकोशनकूं तैत्तिरीयश्रुति औ ताके अनुसार पंचकोशविवेकविषै कथन किये प्रकारसैं आत्मातैं भिन्नकरिके तिन कोशनके अंतरमैं स्थित आत्माका जो अनुभव । सो विचार कहियेहै । यह अर्थ है ॥ ५७ ॥

॥ ८ ॥ अंतरमैं स्थित वस्तुके दर्शनका प्रकार ॥

५९ अंतरमैं स्थित वस्तुके दर्शनके प्रकारकूंहीं कहैहैं:—

६०] जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्तिके आगम औ नाशका भासना जिसतैं होवैहै । सो स्वप्रकाशचिद्रूप आत्मा है ॥

६१) जाग्रत्आदिकअवस्थाके मध्यमैं पीछली पीछली अवस्थाके उत्पत्तिका औ पूर्वपूर्वअवस्थाकी निवृत्तिका प्रकाश जिस नित्यचैतन्यरूप साक्षीतैं होवैहै । सो स्वप्रकाशचेतनरूप आत्मा है । यह अर्थ है ॥ ५८ ॥

॥९॥ आत्माके शेष प्राणादिधनपर्यंतके आंतरताकी औ तिनमैं प्रीतिकी तारतम्यता ॥

६२ संक्षेपकरि ५६ वें श्लोकविषै उक्त श्रुतिके अर्थकूं वर्णन करैहैं:—

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३२६	६९ वित्तात्पुत्रः प्रियः पुत्रात्पिंडः पिंडात्तथेंद्रियम् । इंद्रियाच्च प्रियः प्राणः प्राणादात्मा प्रियः परः ६०	टीकांकः ४८६३ टिप्पणांकः ७८२

६३] शेषाः प्राणादिवित्तांताः तारतम्यतः आसन्नाः ॥

६४) साक्षिव्यतिरिक्ताः प्राणादिवित्तांताः वक्ष्यमाणाः पदार्थाः तारतम्येन आत्मन आसन्नाः समीपवर्त्तिनो भवंति ॥

६५ तत्रोपपत्तिमाह (प्रीतिरिति)—

६६] तथा तेषु सर्वेषु तारतम्यात् प्रीतिः वीक्ष्यते ॥

६७) यथा तारतम्येनांतरत्वं तद्वदेव तेषु प्राणादिषु तारतम्यात् प्रीतिर्वीक्ष्यते सर्वैरपीतिशेषः ॥ ५९ ॥

६८ प्रीतेस्तारतम्येनानुभवमेव विशदयति—

६९] वित्तात् पुत्रः प्रियः । पुत्रात् पिंडः । तथा पिंडात् इंद्रियं । च इंद्रियात् प्राणः प्रियः । प्राणात् आत्मा परः प्रियः ॥

७०) पिंडः अन्नमयो देहः ॥ अयं भावः । सर्वैः प्राणिभिः पुत्रादिविपत्परिहाराय वित्तव्ययः क्रियते । स्वदेहरक्षणाय कदाचित् पुत्रादिरपि दीयते । इंद्रियनाशपरिहाराय ताडनादिना देहपीडाप्यंगीक्रियते। मरणप्रसक्तौ तत्परिहारायेंद्रियवैकल्यमप्यंगीक्रियते । अत

६३] भोगकी सामग्रीरूप शेष जे प्राणसैं आदिलेके वित्तपर्यंत पदार्थ हैं । वे तारतम्यकरि आत्माके समीपवर्त्ती हैं ॥

६४) साक्षीतें भिन्न जे प्राणसैं आदिलेके धनपर्यंत आगे ६० वें श्लोकविषे कहनैके पदार्थ हैं । वे तारतम्य नाम अधिकन्यून आत्माके समीपवर्त्तनेंहारे होवैहैं ॥

६५ तिस अधिकन्यून वर्त्तनेंविषै अनुभवरूप कारणकूं कहैहैं:—

६६] तैसैं तिन सर्वविषै तारतम्यतैं सर्वपुरुषनकरि बी प्रीति देखियेहै ॥

६७) जैसैं तारतम्यकरि तिनकी आंतरता नाम आत्माके समीपता है । तैसैं तिन प्राणादिकनविषै तारतम्यतैं सर्वजननकरि प्रीति देखियेहै । यह अर्थ है ॥ ५९ ॥

॥ १० ॥ प्रीतिकी तारतम्यताकी स्पष्टता ॥

६८ प्रीतिके तारतम्यकरि अनुभवकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

६९] धनतैं पुत्र प्रिय है औ पुत्रतैं अन्नमयदेह प्रिय है। तैसैं देहतैं इंद्रिय प्रिय हैं औ इंद्रियतैं प्राण नाम तिसकरि उपलक्षित मन प्रिय है औ प्राणउपलक्षितमनतैं आत्मा परमप्रिय है ॥

७०) या श्लोकका यह भाव है:— सर्वप्राणिनकरि पुत्रभार्यादिककी आपत्के निवारणअर्थ धनका खर्च करियेहै औ अपनैं देहके रक्षणअर्थ कदाचित् पुत्रादिकका बी दान करियेहै औ इंद्रियनाशके निवारणअर्थ ताडनआदिककरि देहकी पीडा बी अंगीकार करियेहै औ प्राणगमनकी प्राप्तिके भये तिसके

---

८२ इहां प्राणशब्दकरि प्राणउपलक्षितमनका ग्रहण है । काहेतैं

(१) मन जो है सो स्वरूपानंदके प्रतिबिंबका ग्राहक है औ इंद्रियनका प्रेरक होनैंकरि स्वामी है ॥ औ

(२) नेत्रआदिकइंद्रियविषै पीडाकरि जब मनकूं विक्षेप होवै तब "यह इंद्रिय आवै तौ मैं सुखी होऊं" ऐसैं पुरुष (मनविशिष्ट) कहताहै ।

यातैं प्राणशब्दकरि मनका ग्रहण है औ

मनका संचार वा देहतैं निर्गमन प्राणकूं छोडीके होवै नहीं यातैं प्राणका कथन है । यह भाव है ॥

टीकांक: ४८७१
टिप्पणांक: ॐ

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३३७ १३३८

[७२]एवं स्थिते विवादोऽत्र प्रतिबुद्धविमूढयोः ।
श्रुत्योदाहारि [७४]तत्रात्मा प्रेयानित्येव निर्णयः ॥ ६१ ॥
[७७]साक्ष्येव दृश्यादन्यस्मात्प्रेयानित्याह तत्त्ववित् ।
प्रेयान् पुत्रादिरेवेमं भोक्तुं साक्षीति मूढधीः ६२

एवोत्तरोत्तरमतिशयेन प्रियत्वं सर्वानुभवसिद्धं । आत्मनस्तु निरतिशयप्रेमास्पदत्वं विद्वदनुभवसिद्धमिति ॥ ६० ॥

७१ एवमात्मनः प्रियतमत्वे प्रमाणसिद्धेऽपि ज्ञान्यज्ञानिनोर्विप्रतिपत्तिनिरसनाय श्रुत्या तद्विप्रतिपत्तिर्दर्शितेत्याह—

७२] **एवं स्थिते अत्र प्रतिबुद्धविमूढयोः विवादः श्रुत्या उदाहारि ॥**

७३ तत्र निर्णयमाह—

७४] **तत्र "आत्मा प्रेयान् ।" इति एव निर्णयः ॥**

७५) आत्मनः प्रियतमत्वस्योपपादितत्वादित्यर्थः ॥ ६१ ॥

७६ तामेव विप्रतिपत्तिमाह—

७७] **"साक्षी एव अन्यस्मात् दृश्यात् प्रेयान्" इति तत्त्ववित् आह । "प्रेयान् पुत्रादिः एव साक्षी इमं भोक्तुम्" इति मूढधीः ॥ ६२ ॥**

निवारणअर्थ इंद्रियनका छेदनआदिकविकलता बी अंगीकार करियेहै । यातैं धनसैं आदिलेके प्राणपर्यंत पदार्थनविषै उत्तरउत्तर अधिकप्रियता सर्वके अनुभवकरि सिद्ध है औ आत्माकी तौ निरतिशयप्रेमकी विषयतारूप प्रियतमता है । सो विद्वानोंके अनुभवकरि सिद्ध है ॥ ६० ॥

॥ ११ ॥ आत्माकी प्रियतमतामैं श्रुतिकरि ज्ञानीअज्ञानीका विवाद औ ताका निर्णय ॥

७१ ऐसैं आत्माकी प्रियतमताकूं श्रुतिआदिकप्रमाणकरि सिद्ध हुये बी तिसविषै ज्ञानीअज्ञानीके विवादके निषेधअर्थ । श्रुतिनैं तिन ज्ञानीअज्ञानी दोनूंका विवाद दिखायाहै । ऐसैं कहैहैं:—

७२] **ऐसैं आत्माकी प्रियतमताके स्थित हुये बी इस प्रियतमताविषै जो ज्ञानी औ अज्ञानीका विवाद है । सो श्रुतिनैं उदाहरण कियाहै ॥**

७३ तिस विवादविषै क्या निर्णय भया? सो कहैहैं:—

७४] **तिस विवादविषै "आत्मा प्रियतम कहिये अतिशयप्रिय है ।" यहहीं निर्णय है ॥**

७५) इस विवादविषै आत्माकी प्रियतमताकूं उपपादन करी होनैतैं आत्माकी प्रियतमताका निर्णय है । यह अर्थ है ॥ ६१ ॥

॥ १२ ॥ तिस ज्ञानीअज्ञानीके विवादका कथन ॥

७६ तिसीहीं ज्ञानीअज्ञानीके विवादकूं दिखावैहैं:—

७७] **"साक्षीहीं अन्य दृश्यतैं प्रियतम नाम अधिकप्रिय है" ऐसैं तत्त्ववित्ज्ञानी कहताहै औ "अधिकप्रिय पुत्रादिकहीं है अरु साक्षी इस पुत्रादिककूं भोगनैके वास्ते प्रिय है" ऐसैं मूढबुद्धिवाला अज्ञानी कहताहै ॥ ६२ ॥**

महानंदे आत्मानंदः ॥१३॥ श्लोकांक: १३३९ १३४०	ॐआत्मनोऽन्यं प्रियं ब्रूते शिष्यश्च प्रतिवाद्यपि । ८३तस्योत्तरं वचो बोधशापौ कुर्यात्तयोः क्रमात् ६३ ८४प्रियं त्वां रोत्स्यतीत्येवमुत्तरं वक्ति तत्त्ववित् । ८५स्वोक्तप्रियस्य दुष्टत्वं शिष्यो वेत्ति विवेकतः ६४	टीकांक: ४८७८ टिप्पणांक: ॐ

७८ आत्मातिरिक्तस्य प्रियत्ववादिनो विभज्योत्तराभिधानाय तमेव वादिनं विभज्य कथयति (आत्मन इति)—

७९] शिष्यः च प्रतिवादी अपि आत्मनः अन्यं प्रियं ब्रूते॥

८० उत्तराभिधानप्रकारमाह (तस्येति)-

८१] तयोः तस्य उत्तरं वचः क्रमात् बोधशापौ कुर्यात् ॥

८२) तयोः शिष्यप्रतिवादिनोः। संबंधिनः तस्य वचनस्य । उत्तरं वचः प्रत्युत्तररूपं वाक्यं । क्रमेण बोधशापौ बोधरूपं शापरूपं च । कुर्यात् इत्यर्थः ॥ ६३ ॥

८३ प्रतिवचनप्रदानरूपं "स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं रोत्स्यति" इति समनंतरश्रुतिवाक्यं अर्थतः पठति (प्रियं त्वामिति)—

८४]तत्त्ववित् "प्रियं त्वां रोत्स्यति" इति एवं उत्तरं वक्ति ॥

८५) तत्त्ववित् शिष्यप्रतिवादिनावुभावपि प्रति हे शिष्य । हे प्रतिवादिन् । प्रियं त्वदभिप्रेतं पुत्रादिरूपं स्वनाशेन त्वां शिष्यं प्रतिवादिनं वा रोत्स्यति रोदयिष्यति इत्येवं उक्तप्रकारेण । उत्तरं प्रतिवचनं। वक्ति ब्रवीति ॥

॥ १३ ॥ शिष्य औ प्रतिवादीका आत्मातैं अन्यकी प्रियताका प्रश्न औ दोनूंकूं वरशापरूप ज्ञानीका उत्तरवचन ॥

७८ आत्मातैं भिन्नवस्तुकी प्रियताके वादिनकूं विभागकरिके उत्तरके कहनैं अर्थ तिसीहीं वादीकूं विभागकरिके कथन करैहैं:—

७९] शिष्य औ प्रतिवादी । ये दोनूं बी आत्मातैं अन्यवस्तुकूं प्रिय कहतेहैं॥

८० उत्तरकथनके प्रकारकूं कहैहैं:—

८१] तिनके तिस वचनके उत्तररूप वचनकूं क्रमतैं बोध औ शापरूप करैहै ॥

८२) तिन शिष्य औ प्रतिवादीके संबंधी तिस वचनके प्रतिउत्तररूप वाक्यकूं ज्ञानीपुरुष क्रमतैं बोधरूप औ शापरूप करैहै । यह अर्थ है ॥ ६३ ॥

॥ १४ ॥ ज्ञानीके उत्तरका आकार औ शिष्यकी स्वोक्तपुत्रादिप्रियमैं दोषदृष्टि ॥

८३ उत्तरके देनैंरूप जो "सो जो ज्ञानी आत्मातैं अन्यवस्तुकूं प्रिय कहनैंहारे शिष्य औ प्रतिवादीके प्रति कहताहै कि 'प्रिय तेरेकूं रुदन करावैगा" यह समनंतर नाम ३६ वें श्लोकउक्तश्रुतिवाक्यके समीपवर्त्ती पीछला श्रुतिवाक्य है । ताकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

८४] "प्रिय तुजकूं रुदन करावैगा" ऐसैं तत्त्ववेत्ता उत्तरकूं कहताहै ॥

८५) तत्त्ववेत्ता जो है । सो शिष्य औ प्रतिवादी दोनूंके प्रतिहीं "हे शिष्य ! हे प्रतिवादी ! तैंनैं अभिप्रायका विषय कियाहै जो पुत्रादिरूप प्रिय । सो अपनैं विनाशकरि तुज शिष्य वा प्रतिवादीकूं रुदन करावैगा । इस उक्तप्रकारकरि उत्तरकूं कहताहै ॥

टीकांक: ४८८६ टिप्पणांक: ॐ	अलभ्यमानस्तनयः पितरौ क्लेशयेच्चिरम् । लब्धोऽपि गर्भपातेन प्रसवेन च बाधते ॥ ६५ ॥ जातस्य ग्रहरोगादिः कुमारस्य च मूर्खता । उपनीतेऽप्यविद्यत्वमनुद्वाहश्च पंडिते ॥ ६६ ॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३४१ १३४२

८६ इदमेकमेव वचनं शिष्यप्रतिवादिनोरुभयोः कथं उत्तरं जातमित्याशंक्य शिष्यं प्रत्युत्तरं तावद् द्योतयति "स्वोक्तप्रियस्य" इत्यादिना "वीक्षते तमहर्निशं" इत्यंतेन सार्द्धश्लोकचतुष्टयेन (स्वोक्तप्रियस्येति)—

८७] **शिष्यः स्वोक्तप्रियस्य विवेकतः दुष्टत्वं वेत्ति ॥**

८८) **शिष्यः स्वोक्तप्रियस्य स्वेनाभिहितस्य** पुत्रादिरूपस्य प्रीतिविषयस्य । **विवेकतः** वक्ष्यमाणदोषविचारेण । **दुष्टत्वं वेत्ति** अवगच्छति ॥ ६४ ॥

८९ दोषविचारप्रकारमेव दर्शयति श्लोकत्रयेण (अलभ्यमान इति)—

९०] **तनयः अलभ्यमानः पितरौ चिरं क्लेशयेत् । लब्धः अपि गर्भपातेन च प्रसवेन बाधते ॥ ६५ ॥**

९१] **जातस्य ग्रहरोगादिः । च कुमारस्य मूर्खता । उपनीते अपि अविद्यत्वं । च पंडिते अनुद्वाहः ॥६६॥**

---

८६ एकहीं वचन शिष्य औ प्रतिवादी दोनूंकूं कैसैं उत्तररूप भया ? यह आशंकाकरिके शिष्यके प्रति सो वाक्य जैसैं उत्तररूप भया । तैसैं "आपकरि उक्त प्रियकी" इस श्लोकसैं आदिलेके "तिस आत्माकूं दिनरात्र कहिये निरंतर देखताहै" इहां ६८ वें श्लोकपर्यंत अर्धसहित च्यारीश्लोकनकरि प्रथम जनावैहैं:—

८७] **शिष्य । आपकरि उक्त प्रियकी विवेकतैं दुष्टताकूं जानताहै ॥**

८८) शिष्य जो है । सो आपकरि कथन किये पुत्रादिरूप प्रीतिके विषयकी । विवेक जो ६५ वें श्लोकसैं आगे कहनैके दोषका विचार । तिसकरि दोषयुक्तताकूं जानताहै ६४ ॥ १९ ॥ श्लोक ६४ उक्त दोषदृष्टिका विवरण ॥

८९ दोषविचारके प्रकारकूं तीनश्लोककरि दिखावैहैं:—

९०] **पुत्र जो है । सो अप्राप्त हुया माता अरु पिताकूं बहुतकालपर्यंत क्लेशकारी होताहै औ प्राप्त हुया पुत्र बी गर्भपातकरि वा जन्मकरि पीडाकूं करताहै ॥ ६५ ॥**

९१] अविघ्नकरि जन्मकूं प्राप्त भये पुत्रके कोइ अनिष्टसूर्यादिग्रह अरु रोग जो शीतलाआदिक । वे चिंताके हेतु हैं औ कुमारकी कहिये पांचवर्षकी अवधिवाली बाल्य अरु पीछली पौगंडअवस्थाकूं प्राप्त भये पुत्रकी मूर्खता चिंतारूप दुःखकी हेतु है औ पुत्रके जनोइकूं प्राप्त भये बी विद्याहीनता दुःखप्रद है औ पुत्रकूं पंडित हुये विवाह भया नहीं । सो दुःखकर है ॥ ६६ ॥

महानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१३४३	९२ पुनश्च परदारादि दारिद्र्यं च कुटुंबिनः । पित्रोर्दुःखस्य नास्त्यंतो धनी चेन्म्रियते तदा ६७	४८९२
१३४४	९४ एवं विविच्य पुत्रादौ प्रीतिं त्यक्त्वा निजात्मनि । निश्चित्य परमां प्रीतिं वीक्षते तमहर्निशम् ॥६८॥	टिप्पणांक:
१३४५	९६ आग्रहाद्ब्रह्मविद्वेषादपि पक्षममुंचतः । वादिनो नरकः प्रोक्तो दोषश्च बहुयोनिषु ॥६९॥	७८३

९२] पुनः च परदारादि। च कुटुंबिनः दारिद्र्यं । धनी चेत् तदा म्रियते । पित्रोः दुःखस्य अंतः न अस्ति ॥६७॥

९३ एवं पुत्रगतदोषकीर्तनं दारादिसर्वविषयदोषोपलक्षणार्थम्—

९४] एवं पुत्रादौ विविच्य प्रीतिं त्यक्त्वा निजात्मनि परमां प्रीतिं निश्चित्य तं अहर्निशं वीक्षते ॥

९५) एवं उक्तेन प्रकारेण । पुत्रादौ विषयजाते । विविच्य विद्यमानान् दोषान् विभज्य ज्ञात्वा । तस्मिन् प्रीतिं परित्यज्य । निजात्मनि प्रत्यग्रूपे साक्षिणि । परमां निरतिशयां । प्रीतिं निश्चित्य । तं प्रत्यगात्मानं । अहर्निशं सर्वदा । वीक्षते अनुसंधत्ते । इत्यर्थः ॥ ६८ ॥

९६ "प्रियं त्वां रोत्स्यति" इत्यस्यैव वाक्यस्य प्रतिवादिनं प्रति शापरूपत्वं प्रकटयति—

९२] फेर विवाहके भये वी परस्त्रीआदिककुचेष्टा दुःखकर है औ कुटुंबवान् पुत्रकी दरिद्रता दुःखकर है औ पुत्र जब धनवान् होवै तब मरणकूं पावै सो पुत्रका मरण महादुःखकर है। ऐसैं मातापिताकूं पुत्रजन्यदुःखका अंत कहिये अवधि नहीं है ॥ ६७ ॥

९३ ऐसैं श्लोक ६४ सैं पुत्रगतदोषनका जो कथन है । सो स्त्रीआदिकसर्वविषयगतदोषनके ग्रहणअर्थ है । इस अभिप्रायकरि समाप्ति करैहैंः—

९४] ऐसैं विवेचनकरिके पुत्रआदिकविषै प्रीतिकूं त्यागकरिके निजात्माविषै परमप्रीतिकूं निश्चयकरिके तिस निजात्माकूं दिनरात्र कहिये निरंतर देखताहै ॥

९५) इस ६४ वें श्लोकसैं उक्त प्रकारकरि पुत्रआदिकविषयके समुदायविषै विद्यमान दोषनकूं विभागकरि जानिके। तिस विषयसमूहविषै प्रीतिकूं परित्यागकरिके । निजात्मा कहिये प्रत्यक्‌रूप साक्षीविषै निरतिशयप्रीतिकूं निश्चयकरिके । प्रत्यगात्माकूं सर्वदा देखताहै नाम अनुसंधान करताहै । यह अर्थ है ॥ ६८ ॥

॥ १६ ॥ श्लोक ६३ उक्त ज्ञानीके वचनकी प्रतिवादीकेप्रति शापरूपता ॥

९६ "पुत्रादिरूप प्रिय तेरेकूं रुदन करावैगा" इसीहीं वाक्यकी प्रतिवादीके प्रति शापरूपता है । ताकूं प्रगट करैहैंः—

८३ धन औ स्त्रीरूप विषयगतदोषका कथन देखो तृप्तिदीपगत १३९–१४० वें श्लोक औ ६५७–६५८ वें टिप्पणविषै ॥

टीकांकः ४८९७ टिप्पणांकः ७८४

४९०० ब्रह्मविद्ब्रह्मरूपत्वादीश्वरस्तेन वर्णितम् ।
यद्यत्तत्तथैव स्यात्तच्छिष्यप्रतिवादिनोः ॥ ७० ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३४६

९७] आग्रहात् ब्रह्मविद्वेषात् अपि पक्षं अमुंचतः वादिनः नरकः च बहुयोनिषु दोषः प्रोक्तः ॥

९८) आग्रहात् उक्तं "पुत्रादिप्रियत्वं सर्वथा न त्यजामि" इत्येवंरूपात् । ब्रह्मविद्वेषात् "अनेनोक्तं विघटयिष्यामि" इत्येवं रूपाच्च । पक्षं पुत्रादीनामेव प्रियत्वाभिधानरूपमपरित्यजतः प्रतिवादिनः नरकप्राप्तिः तथा बहुयोनिषु तिर्यगादिषु अनेकेषु जन्मसु । दोषः पुत्रभार्यादीष्टवियोगानिष्टप्राप्तिरूपः प्रोक्तः "प्रियं त्वां रोत्स्यति" इतिवदता ज्ञानिनेति शेषः ॥ ६९ ॥

९९ ननु ज्ञानिनोक्तस्यैकवाक्यस्य शिष्यं प्रत्युपदेशरूपत्वं वादिनं प्रति शापरूपत्वं चेति विरुद्धं रूपद्वयं कथं घटत इत्याशंक्योत्तरप्रदातुरीश्वररूपत्वात्तस्याभिप्रायानुसारेण उभयं भविष्यतीति मत्वा तदुपपादकस्य "ईश्वरोऽहं तथैव स्यात्" इति समनंतरवाक्यस्य तात्पर्यमाह—

४९००) ब्रह्मवित् ब्रह्मरूपत्वात् ईश्वरः । तेन यत् यत् वर्णितं तत् तत् तच्छिष्यप्रतिवादिनोः तथा एव स्यात् ॥

९७] आग्रहतैं औ ब्रह्मवित्के द्वेषतैं पक्षकूं नहीं छोडताहुया जो वादी । ताकूं नरक कह्याहै औ बहुयोनिनविषै दोष कह्याहै ॥

९८) "मुजकरि कथन किये पुत्रादिकके प्रियपनैंकूं सर्वप्रकारसैं नहीं त्याग करुंगा" इसरूपवाले आग्रहतैं औ "इस ज्ञानीकरि कथन किये अर्थकूं विपरीत घटावूंगा कहिये न मानूंगा" इसरूपवाले ब्रह्मवेत्ताके द्वेषतैं पुत्रादिकनकेहीं प्रियपनैंके कथनरूप पक्षकूं नहीं परित्याग करनैंहारे प्रतिवादीकूं नरककी प्राप्ति तथा तिर्यक्आदिरूप अनेकजन्मनविषै पुत्रभार्यादिरूप प्रियके वियोग औ अप्रियकी प्राप्तिरूप दोष । "प्रिय तेरेकूं रुदन करावैगा" ऐसैं कथन करनैंहारे ज्ञानीनैं कह्याहै ॥ ६९ ॥

॥ १७ ॥ ज्ञानीकी ईश्वरता औ ताके फलके पर समनंतरश्रुतिका तात्पर्य ॥

९९ ननु ज्ञानीकरि कथन किये एकवाक्यकी शिष्यकेप्रति उपदेशरूपता औ वादीके प्रति शापरूपता है । यह विरुद्ध दोरूप कैसैं घटताहै ? यह आशंकाकरि उत्तर देनैंहारे ज्ञानीकूं ईश्वररूप होनैंतैं तिस ईश्वररूप ज्ञानीके अभिप्रायके अनुसारकरि दोनूं उपदेशरूपपना औ शापरूपपना होवैगा । ऐसैं मानिके तिस उक्तअर्थका प्रतिपादक जो "मैं ईश्वर हूं।जैसैं कहूंहूं तैसैंहीं होवैगा"। "यह प्रिय तेरेकूं रुदन करावैगा" इसवाक्यके पीछेहीं स्थित श्रुतिवाक्य है।ताके तात्पर्यकूं कहैहैं:—

४९००] ब्रह्मवित् ब्रह्मरूप होनैंतैं ईश्वर है । तिसकरि जो जो वर्णन करियेहै । सो सो तिसके शिष्य औ प्रतिवादीकूं तैसैंहीं होवैहै ॥

८४ (१) "ब्रह्मवित् ब्रह्महीं होवैहै" इस श्रुतितैं अरु अपनैं अनुभवतैं विद्वान् ब्रह्मरूप है औ ब्रह्मतैं भिन्न ईश्वरका अभाव है । यातैं विद्वान् ईश्वर है ॥

(२) किंवा मायाविशिष्टचेतनकूं जैसैं सर्वके आत्माके

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३४७	यस्तु साक्षिणमात्मानं सेवते प्रियमुत्तमम् । तस्य प्रेयानसावात्मा न नश्यति कदाचन ॥७१॥	टीकांक: ४९०१ टिप्पणांक: ॐ

१) यतो ब्रह्मविदः स्वस्य ब्रह्मत्वानुभवादीश्वरत्वमस्ति । अतस्तेन यं शिष्यादिकं प्रति यत् यत् इष्टमनिष्टं वा अभिधीयते तत् तत् तच्छिष्यप्रतिवादिनोः तस्य ज्ञानिनोः यः शिष्यः यश्च प्रतिवादी तयोः । तथैव स्यात् इष्टमनिष्टं वावश्यं भवेदित्यर्थः ॥ ७० ॥

२ व्यतिरेकमुखेनोक्तस्यार्थस्यान्वयमुखेन प्रतिपादकम् । "आत्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते नेहास्य प्रियं प्रमायुकं भवति" इति समनंतरवाक्यं अर्थतः पठति (यस्त्विति)—

३] तु यः साक्षिणं आत्मानं उत्तमं

१) जातैं ब्रह्मवेत्ताकूं आपके ब्रह्मभावके अनुभवतैं ईश्वरपना है । यातैं तिस ब्रह्मवेत्ताकरि जिस शिष्यआदिककेप्रति जो जो इष्ट औ अनिष्ट कहियेहै । सो सो तिस ज्ञानीका जो शिष्य है औ प्रतिवादी है तिनकूं तैसैंहीं इष्ट वा अनिष्ट अवश्य होवैहै । यह अर्थ है ७० ॥ १८ ॥ व्यतिरेकमुखसैं उक्तअर्थकी अन्वयमुखतैं प्रतिपादक श्रुतिका अर्थ ॥

२ व्यतिरेकरूप द्वारकरि ७० वें श्लोकविषै कथन किये अर्थकूं अन्वयरूप द्वारकरि प्रतिपादक जो "आत्माकूंहीं प्रिय जानिके उपासन करना । जो पुरुष आत्माकूंहीं प्रिय जानिके उपासन करताहै। इस पुरुषका प्रियरूप आत्मा कदाचित् वियोगकूं प्राप्त नहीं होवैहै" यह ७० वें श्लोकउक्तवाक्यके पीछेका वाक्य है । ताकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

३] जो पुरुष तौ साक्षीआत्माकूं

साथि अपनें अभेदके ज्ञानतैं समष्टिपना औ नित्यमुक्तपनाआदिक है। तैसैं विद्वान्कूं बी सर्वके स्वात्माके साथि अपनें तादात्म्यके ज्ञानतैं समष्टिपना औ नित्यमुक्तपनाआदिक है ॥ औ

(३) मायाविशिष्टचेतनकूं जैसैं निजस्वरूप ब्रह्म निरावरण भान होवैहै । तैसैं विद्वान्कूं बी होवैहै । यातैं गुणके सादृश्यकरि बी ब्रह्मवित् ईश्वर है ॥

इहां बुद्धिके विनोदअर्थ शास्त्रांतरके वचनअनुसारी प्रसंग हैं:— जैसैं कोई राजा औ राणीके दोनूंपुत्र होवैं तिनमैं बडापुत्र । पिता औ माताके सर्वधनका अधिपति होयके राज्यपदकूं पावै औ छोटापुत्र मूर्खताकरि किंकरदशाकूं पावै । तब तिन दोनूंभ्राताका बडाभेद भया ॥ पीछे बुद्धिकरि यह छोटापुत्र न्यायकरिके पिताके धनका विभागकरि अधिपति होयके राज्यपदकूं पावै । तैसैं ब्रह्मरूप पिता औ मायारूप माताके जीव ईश्वर दोनूं पुत्र हैं । तिनमैं ईश्वररूप बडापुत्र सच्चिदानंदादिरूप पिताके धनका औ सर्वज्ञता सर्वशक्तिमान्‌ता जगत्कर्तताआदिरूप माताके धनका अधिपति होनैंकरि ईश्वरभावकूं प्राप्त भया औ जीवरूप छोटापुत्र । अविवेकरूप मूर्खताकरि पिता माता दोनूंके धनसैं वर्जित हुया शुभ औ अशुभकर्मरूप सेवा औ अपराधके अनुसार सुखभोगरूप मौज औ दुःखभोगरूप दंडकूं प्राप्त होनैंकरि जीवभावकूं प्राप्त भया ॥ तब तिन दोनूंका बडा अनादिकालका भेद भया । पीछे विवेकादिसाधनसंयुक्त बुद्धिकूं पायके यह जीव । ईश्वरकूं कहताहै:—

(१) "भो ईश्वर ! तूं गुप्त जो पिताका साधारणसुखका निधि है ताकूं भोगता है" औ

(२) "मायारूप माताके धनसैं मेरेकूं विभागकरिके बी "यह सर्व मेरेकूं अर्पण कर" ऐसैं भिक्षावृत्तिरूप उपदेशकूं ब्राहीर प्रगट करताहुया वर्तताहै" औ

(३) "यह विहितकर्म करहु अरु यह निषिद्धकर्म मति करहु । ऐसैं वेदवचनसैं मुजकूं किंकरकी न्याईं शिक्षा करताहुया कहताहै"

"यातैं मैं अब गुरुरूप न्यायाधीशद्वारा कूटस्थविषै तेरेकूं निवेदनकरिके नाम तेरी परोक्षता औ मेरी परिच्छिन्नता छोडिके एकताकरिके। तेरे स्थिरऐश्वर्यकूं बी छीन ल्यौंगा ॥"

इसरीतिसैं ज्ञानीकूं ईश्वरभाव है ॥

टीकांक: ४९०४ टिप्पणांक: ७८५	परप्रेमास्पदत्वेन परमानंद इष्यताम् । सुखवृद्धिः प्रीतिवृद्धौ सार्वभौमादिषु श्रुता ॥७२॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३४८

प्रियं सेवते तस्य प्रेयान् असौ आत्मा न कदाचन नश्यति ॥

४) तु शब्द उक्तवैलक्षण्यद्योतनार्थः। अनात्मप्रियत्ववादिनोऽन्यो यः शिष्यः आत्मानं एव उत्तमं प्रियं निरतिशयं प्रेमगोचरं । सेवते सदात्मानं स्मरति । तस्य शिष्यादेः प्रेयान् प्रियतमत्वेनाभिमतः। असौ आत्मा प्रतिवाद्यभिमतं प्रियमिव न कदाचित् विनश्यति किंतु सदानंदरूपः सन् अवभासते इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

५ इत्थमात्मनः परप्रेमास्पदत्वहेतुं प्रसाध्येदानीं फलितमाह—

६] परप्रेमास्पदत्वेन परमानंदः इष्यताम् ॥

७) अत्रायं प्रयोगः। आत्मा परमानंदरूपः निरतिशयप्रेमविषयत्वात् । यः परमानंदरूपो न भवति स निरतिशयप्रेमविषयः न भवति । यथा घटादिः । इति केवलव्यतिरेकी ॥

८ परप्रेमास्पदत्वहेतोरात्मनः परमानंदरूपतासाधने सामर्थ्यद्योतनाय प्रीतिवृद्धौ सुखवृद्धिमुदाहरति (सुखवृद्धिरिति)—

उत्तमप्रिय जानिके सेवताहै । तिसका परमप्रियरूप यह आत्मा कदाचित् नाशकूं नाम अप्रियभावकूं पावता नहीं ॥

४) मूलविषै जो तौअर्थवाला तुशब्द है। सो ७० वें श्लोकउक्तअर्थतैं इस कहनेके अर्थकी विलक्षणताके जनावनैं अर्थ है। यातैं पुत्रादिकअनात्माकी प्रियताके वादीतैं अन्य जो शिष्य । आत्माकूंहीं उत्तमप्रिय नाम निरतिशय प्रेमका गोचर सेवताहै नाम सदा स्मरण करताहै । तिस शिष्यादिकका परमप्रियताकरि नाम प्रियतम होनैंकरि मान्या जो यह आत्मा । सो प्रतिवादीकरि मानेहुये पुत्रादिरूप प्रियकी न्यांई कदाचित् विनाशकूं पावता नहीं । किंतु सदा आनंदरूप हुया भासताहै। यह अर्थ है ॥ ७१ ॥

॥ १९ ॥ आत्माकी परमानंदता ॥

५ ऐसैं ७१ वें श्लोकसैं आत्माकी परमप्रेमकी विषयतारूप जो हेतु है ताकूं श्रुतिआदिकसैं सिद्धकरिके । अब आत्माकी परमानंदतारूप फलितकूं कहैहैं:—

६] परप्रेमका विषय होनैंकरि आत्मा परमानंदरूप अंगीकार करना योग्य है॥

७) इहां यह अनुमान है:— आत्मा परमानंदरूप है। निरतिशयप्रेमका विषय होनैतैं॥ जो परमानंदरूप नहीं होवैहै। सो निरतिशयप्रेमका विषय बी नहीं होवैहै। जैसैं घटादिक परमानंदरूप नहीं है । यातैं निरतिशयप्रेमका विषय बी नहीं है। यह केवलव्यतिरेकीदृष्टांत है॥

८ परमप्रेमकी विषयतारूप हेतुकूं आत्माकी परमानंदरूपताके साधनैंविषै सामर्थ्यके जनावनै अर्थ प्रीतिकी वृद्धिके होते सुखकी वृद्धिकूं उदाहरण करैहैं:—

८५ वादीनैं प्रियतम होनैंकरि मान्याहै जो पुत्रादिरूप आत्मा । सो व्यभिच्चारीप्रीतिका विषय है । यातैं ताकी प्रियतमता भ्रांतिसिद्ध है । तातैं सो कदाचित् प्रतिकूलताआदिकनिमित्तसैं नष्ट होवैहै औ शिष्यनैं प्रियतम होनैंकरि जान्या जो साक्षीरूप आत्मा । सो अव्यंभिचारीप्रीतिका विषय है । यातैं ताकी प्रियतमता वास्तविक है । तातैं सो कदाचित् कोई बी निमित्तकरि नष्ट होवै नहीं किंतु सर्वदा भान होवैहै। गुरुके उपदेशतैं जनित तत्त्वज्ञानकरि भ्रांतिज्ञानके बाधतैं । यह भाव है ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्रोकांकः १३४९ १३५०	१२ चैतन्यवत्सुखं चास्य स्वभावश्चेच्चिदात्मनः । धीवृत्तिष्वनुवर्तेत सर्वास्वपि चितिर्यथा ॥ ७३ ॥ १४ नैवमुष्णप्रकाशात्मा दीपस्तस्य प्रभा गृहे । व्याप्नोति नोष्णता तद्वच्चितेरेवानुवर्तनम् ॥७४॥	टीकांकः ४९०९ टिप्पणांकः ७८६

९] सार्वभौमादिषु प्रीतिवृद्धौ सुखवृद्धिः श्रुता ॥

१०) यतः "सार्वभौमादिहैरण्यगर्भांतेषु पदविशेषेषु । यत्र यत्र प्रीतिर्वर्धते तत्र तत्र सुखाभिवृद्धिरस्ति" इति तैत्तिरीयबृहदारण्यकश्रुत्योरभिहितं । अतः प्रीतेर्निरतिशयित्वे सत्यानंदस्यापि निरतिशयत्वमवगंतुं शक्यत इति भावः ॥ ७२ ॥

११ नन्वात्मनः परमानंदरूपत्वमनुपपन्नं तथात्वे चैतन्यस्येव तत्स्वरूपभूतस्यानंदस्यापि सर्वासु धीवृत्तिषु अनुवृत्तिः प्रसज्येतेति शंकते—

१२] चैतन्यवत् सुखं च अस्य चिदात्मनः स्वभावः चेत् । सर्वासु अपि धीवृत्तिषु यथा चितिः अनुवर्तेत ॥७३॥

१३ चिदानंदयोरुभयोरपि आत्मस्वरूपत्वेऽपि वृत्तिषु चित एवानुवृत्तिर्नानंदस्येति दृष्टांतावष्टंभेन परिहरति—

९]सार्वभौमआदिकनविषै प्रीतिकी वृद्धिके होते सुखकी वृद्धि सुनीहै ॥

१०) "जातैं सारीपृथ्वीके राजासैं आदिलेके हिरण्यगर्भपर्यंत जो ऐश्वर्ययुक्तस्थाननके भेद हैं । तिनविषै जहां जहां प्रीतिं वढती है तहां तहां सुखकी वृद्धि होवैहै ।" ऐसैं तैत्तिरीय औ बृहदारण्यकश्रुतिविषै कह्याहै । यातैं प्रीतिकी निरतिशयताके नाम सर्वाधिकताके होते आनंदकी वी निरतिशयता जाननैंकूं शक्य है । यह भाव है ॥ ७२ ॥

॥ २ ॥ आत्माके परमानंदताकी चेतनताकी न्यांई सर्ववृत्तिनमैं अप्रतीति ॥ ४९११—४९३९ ॥

॥ १ ॥ सुखकूं चेतनकी न्यांई आत्माका स्वभाव होनैमैं शंका ॥

११ ननु आत्माकी परमानंदरूपता बनै नहीं । काहेतें तैसें आत्माकी परमानंदरूपताके हुये चैतन्यकी न्यांई तिस आत्माके स्वरूपभूत आनंदकी वी सर्वबुद्धिवृत्तिनविषै अनुवृत्ति प्राप्त होवैगी । इसरीतिसैं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

१२] जब चैतन्य जो ज्ञान । ताकी न्यांई आनंद वी इस चिदात्माका स्वभाव नाम स्वरूप होवै । तब सर्वबुद्धिवृत्तिनविषै जैसैं चैतन्य अनुवर्त्तमान है । तैसैं यह आनंद वी अनुवर्त्तमान होवैगा । ऐसैं जो कहै ॥ ७३ ॥

॥ २ ॥ दृष्टांतसैं चेतनकी न्यांई सर्ववृत्तिनमैं आनंदकी अनुवृत्तिके अभावकरि समाधान ॥

१३ चित् औ आनंद दोनूंकूं वी आत्माकी स्वरूपताके होते वी सर्ववृत्तिनविषै चेतनकीहीं अनुवृत्ति होवैहै । आनंदकी नहीं । ऐसैं दृष्टांतके आश्रयकरि सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७८६ चक्रवर्तीसैं लेके ब्रह्मादेवपदपर्यंत जो प्रीतिकी तारतम्यताकरि सुखकी तारतम्यता तैत्तिरीय औ बृहदारण्यकविषै कहीहै । ताका वर्णन आगे देखो चतुर्दशप्रकरणगत २१–२३ श्लोकनविषै ॥

टीकांकः ४९१४ टिप्पणांकः ॐ	[17] गंधरूपरसस्पर्शेष्वपि सत्सु यथा पृथक् । एकाक्षेणैक एवार्थो गृह्यते नेतरस्तथा ॥ ७५ ॥ [20] चिदानंदौ नैव भिन्नौ गंधाद्यास्तु विलक्षणाः । इति चेत्तदभेदोऽपि साक्षिण्यन्यत्र वा वद ॥७६॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३५१ १३५२

१४] मा एवं । उष्णप्रकाशात्मा दीपः तस्य प्रभा गृहे व्याप्नोति । उष्णता न । तद्वत् चितेः एव अनुवर्तनम् ॥

१५) यथा उष्णप्रकाशात्मकस्य दीपस्य प्रकाश एव गृहादावनुगच्छति नोष्णता । एवं चैतन्यस्यैवानुवृत्तिः न आनंदस्येत्यर्थः ॥ ७४ ॥

१६ ननु चिदानंदयोरभेदे चिदभिव्यंजकधीवृत्तावेवानंदाभिव्यक्तिरपि स्यादित्याशंक्य तथा नियमाभावे दृष्टांतमाह (गंधेति)—

१७] यथा गंधरूपरसस्पर्शेषु सत्सु अपि एकाक्षेण पृथक् एकः एव अर्थः गृह्यते । इतरः न । तथा ॥

१८) यथा एकद्रव्यवर्तिनां गंधादीनां चतुर्णां मध्ये घ्राणादिना एकेनेंद्रियेण गंधादिः एक एव गुणो गृह्यते नेतरः । तथा चिदानंदयोर्मध्ये चित एवावभासनमित्यर्थः ७५

१९ दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोर्वैषम्यं शंकते—

२०] चिदानंदौ न एव भिन्नौ

१४] तौ बनै नहीं । काहेतैं जैसैं उष्ण औ प्रकाशरूप दीपक है । ताका प्रकाश गृहविषै व्याप्त होवैहै ।उष्णता नहीं । तैसैं चेतनकाहीं अनुवर्त्तन नाम भान होवैहै ॥

१५) जैसैं उष्ण औ प्रकाश उभयस्वभाववाले दीपकका प्रकाशहीं गृहआदिकविषै अनुस्यूत होवैहै । उष्णता नहीं । ऐसैं चैतन्यकीहीं सर्ववृत्तिनविषै अनुवृत्ति कहिये अनुगति होवैहै। आनंदकी नहीं॥ यह अर्थ है ७४

॥ ३ ॥ चेतन औ आनंदके अभेदके होते वी चेतनकी अभिव्यंजकवृत्तिनमैं आनंदकी अभिवृत्तिके नियमके अभावमैं दृष्टांत ॥

१६ ननु चित् औ आनंद दोनूंके अभेद हुये चेतनकी अभिव्यंजक कहिये आवरणनिवृत्तिकरि आविर्भावकी करनैहारी बुद्धिकी वृत्तिविषैहीं आनंदकी अभिव्यक्ति नाम आविर्भावता वी होवैगी । यह आशंकाकरि तैसैं जहां चेतनका आविर्भाव होवै तहां आनंदका वी आविर्भाव होवैहै । ऐसैं नियमके अभावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

१७] जैसैं एकवस्तुविषै विद्यमान गंध रूप रस स्पर्शके होते वी एकइंद्रियकरि भिन्नभिन्न एकहीं अर्थ नाम गुण ग्रहण करियेहै । अन्य नहीं । तैसैं ॥

१८) जैसैं एकपुष्पादिकद्रव्यविषै वर्त्तमान गंधआदिकच्यारीगुणनके मध्यमैंसैं घ्राणआदिकएकएकइंद्रियकरि गंधआदिरूप एकएकगुण ग्रहण करियेहै । अन्य नहीं। तैसैं चित् औ आनंदके मध्यमैंसैं चेतनकाहीं भान होवैहै। यह अर्थ है ॥ ७५ ॥

॥ ४ ॥ दृष्टांतदार्ष्टांतकी विषमतामैं शंका औ तामैं विकल्प ॥

१९ गंधादिकदृष्टांत औ चित्आनंदरूप दार्ष्टांतकी विषमताकूं वादी मूलविषै शंका करैहै:—

२०] चित् औ आनंद भिन्न नहीं

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥ श्रोकांकः १३५३	आद्ये गंधादयोऽप्येवमभिन्नाः पुष्पवर्तिनः । अक्षभेदेन तद्भेदे वृत्तिभेदात्तयोर्भिदा ॥ ७७ ॥	टीकांकः ४९२० टिप्पणांकः ॐ

गंधाद्याः तु विलक्षणाः । इति चेत् ।

ॐ २०) विलक्षणाः भिन्ना इत्यर्थः ॥

२१ उक्तवैषम्यं परिहर्तुं दार्ष्टांतिके चिदानंदयोरभेदः किं स्वाभाविक उत औपाधिक इति विकल्पयति—

२२] तदभेदः अपि साक्षिणि वा अन्यत्र वद ॥

२३) तदभेदः तयोश्चिदानंदयोरभेद ऐक्यं । साक्षिणि आत्मस्वरूपे । वा अन्यत्र तदुपाधिभूतासु वृत्तिषु वा इत्यर्थः ७६

२४ प्रथमे पक्षे दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोः साम्यमाह—

२५] आद्ये पुष्पवर्तिनः गंधादयः अपि एवं अभिन्नाः ॥

२६) आद्ये चिदानंदयोः साक्षिणि भेदाभावपक्षे पुष्पवर्तिनः गंधादयोऽपि एवं चिदानंदवत् अभिन्नाः परस्परं भेदरहिताः । इतरपरिहारेणैकस्यानेतुमशक्यत्वादिति भावः ॥

२७ द्वितीये पक्षेऽपि साम्यमाह—

२८] अक्षभेदेन तद्भेदे वृत्तिभेदात् तयोः भिदा ॥

२९) अक्षाणां गंधादिग्राहकाणां घ्राणादींद्रियाणां भेदेन । तद्भेदे तेषां

हैं औ गंधआदिक तौ विलक्षण हैं । ऐसैं जो कहै ।

ॐ २०) विलक्षण कहिये परस्पर भिन्न है ॥

२१ उक्तविषमताके परिहार करनैंकूं दार्ष्टांतिकविषै चित्आनंदका जो अभेद है । सो क्या स्वाभाविक कहिये स्वरूपतैं है अथवा उपाधिका किया है ? इसरीतिसैं सिद्धांती विकल्प करैहैं:—

२२] तिनका अभेद बी क्या साक्षी विषै है । किंवा अन्य ठिकानैं है ? सो कथन कर ॥

२३) तिन चित् औ आनंदका अभेद जो है सो साक्षी जो आत्मस्वरूप तिसविषै है । किंवा अन्यठिकानैं तिनकी उपाधिरूप वृत्तिनविषै है ? सो हे वादी ! कथन कर ॥ यह अर्थ है ॥ ७६ ॥

॥ ९ ॥ विकल्पके निषेधकरि दृष्टांतदार्ष्टांतकी समता ॥

२४ प्रथमपक्षविषै दृष्टांत औ दार्ष्टांत दोनूंकी समताकूं कहैहैं:—

२५] प्रथमपक्षविषै पुष्पवर्त्ती गंधआदिक बी ऐसैं अभिन्न हैं ॥

२६) चित् औ आनंद दोनूंका साक्षीविषै भेदका अभाव है । इस प्रथमपक्षविषै पुष्पमैं वर्त्तनैंहारे गंधआदिकगुण बी ऐसैं चित्आनंदकी न्यांईहीं परस्परभेदरहित हैं । काहेतैं अन्यरसआदिककूं छोडिके एकगंध लेजानैंकूं अशक्य है यातैं । यह भाव है ॥

२७ वृत्तिनमैं अभेद है । इस दूसरेपक्षविषै दृष्टांतदार्ष्टांतकी तुल्यताकूं कहैहैं:—

२८] इंद्रियनके भेदकरि तिन गंधादिकनके भेदके मानेहुये वृत्तिनके भेदतैं तिन चित् औ आनंदका भेद होवैगा ॥

२९) गंधआदिकके ग्राहक घ्राणआदिकइंद्रियनके भेदकरि तिन गंधआदिकनके भेदके अंगीकार कियेहुये । तैसैंहीं चित् औ

टीकांक: ४९३० टिप्पणांक: ॐ	सत्त्ववृत्तौ चित्सुखैक्यं तद्वृत्तेर्निर्मलत्वतः । रजोवृत्तेस्तु मालिन्यात्सुखांशोऽत्र तिरस्कृतः ७८ तिंतिणीफलमत्यम्लं लवणेन युतं यदा । तदाम्लस्य तिरस्कारादीषदम्लं यथा तथा॥७९॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥१२॥ श्लोकांक: १३५४ १३५५

गंधादीनां भेदाभ्युपगमे। तद्वदेव वृत्तिभेदात् चिदानंदाभिव्यक्तिहेतूनां राजससात्विकवृत्तीनां भेदात्। तयोः चिदानंदयोः। भिदा भेदः। भविष्यतीत्यर्थः ॥ ७७ ॥

३० ननु तर्हि चिदानंदयोरैक्यं कुत्रोपलभ्यत इत्याशंक्याह—

३१] **सत्त्ववृत्तौ चित्सुखैक्यम्** ॥

३२) सत्त्ववृत्तौ शुभकर्मोपस्थापितायां सत्वगुणपरिणामरूपायां बुद्धिवृत्तौ। चित्सुखैक्यं चिदानंदयोरैक्यं भासते इति शेषः ॥

३३ तत्रोपपत्तिमाह—

३४] **तद्वृत्तेः निर्मलत्वतः** ॥

३५ कुतस्तर्हि भेदोऽवभासत इत्यत आह—

३६] **रजोवृत्तेः तु मालिन्यात् अत्र सुखांशः तिरस्कृतः** ॥ ७८ ॥

३७ विद्यमानस्यापि सुखांशस्य तिरस्कारे दृष्टांतमाह (तिंतिणीति)—

३८] **यथा अत्यम्लं तिंतिणीफलं यदा लवणेन युतं तदा अम्लस्य तिरस्कारात् ईषत् अम्लं । तथा** ॥

३९) यथा तिंतिणीफले लवणयोगाद-

आनंदकी क्रमतैं आविर्भावकी कारण जो राजस औ सात्विकवृत्तियां हैं। तिनके भेदतैं तिन चित् औ आनंदका भेद होवैगा। यह अर्थ है ॥ ७७ ॥

॥ ६ ॥ चित्आनंदकी एकताप्रतीतिका स्थल औ अन्यवृत्तिनमैं भेदका कारण ॥

३० ननु तब चित् औ आनंदकी एकता कहां प्रतीत होवैहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३१] **सत्वगुणकी वृत्तिविषै चित् औ सुखकी एकता भासतीहै** ॥

३२) शुभकर्मकरि उदय भई जो सत्वगुणकी परिणामरूप बुद्धिकी वृत्ति है। तिसविषै चित् औ आनंदकी एकता भासतीहै ॥

३३ तहां कारण कहैहैं:—

३४] **तिस सत्वगुणकी वृत्तिकूं स्वच्छ होनैतैं** ॥

३५ तब चित् औ आनंदका काहेतैं भेद भासताहै? तहां कहैहैं:—

३६] **रजोगुणकी वृत्तिकूं तौ मलिन होनैतैं। इसविषै आनंदका अंश तिरोधानकूं पावताहै** ॥ ७८ ॥

॥ ७ ॥ विद्यमान सुखांशके तिरस्कारमैं दृष्टांत ॥

३७ विद्यमान बी सुखअंशके तिरस्कारविषै दृष्टांत कहैहैं:—

३८] **जैसैं अतिशयकरि खट्टा जो अंबलीका फल। सो जब लवणकरि युक्त होवै। तब खटाईके तिरस्कारतैं किंचित्खट्टा होवैहै। तैसैं रजोवृत्तिविषै सुख है** ॥

३९) जैसैं अंवलीवृक्षके फलविषै लवण

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१३५६	नंनु प्रियतमत्वेन परमानंदतात्मनि । विवेकुं शक्यतामेवं विना योगेन किं भवेत् ॥ ८० ॥	४९४०
१३५७	यंद्योगेन तदेवेति वदामो ज्ञानसिद्धये । योगः प्रोक्तो विवेकेन ज्ञानं किं नोपजायते ॥ ८१ ॥	टिप्पणांक: ७८७

त्पम्लत्वं तिरोहितं तद्वद्रजोवृत्तावानंदस्य तिरोभाव इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

४० गूढाभिसंधिं शंकते—

४१] ननु एवं आत्मनि परमानंदता प्रियतमत्वेन विवेक्तुं शक्यतां । योगेन विना किं भवेत् ॥

४२) ननु उक्तेन प्रकारेण आत्मनः परमानंदरूपत्वं परप्रेमास्पदत्वहेतुना गौण-मिथ्यात्मरूपेभ्यः प्रियोपेक्ष्यद्वेष्येभ्यः विवेक्तुं विविच्य ज्ञातुं । शक्यतां नाम तथापि "नायं विवेको मुक्तिसाधनमपरोक्षज्ञानद्वारा मुक्तिहेतोर्योगस्याभिधानात्" इति गूढोऽभि-संधिः ॥ ८० ॥

४३ गूढाभिसंधिरेवोत्तरमाह—

जो सैंधवआदिक ताके संयोगतैं अतिशय खटाई तिरोधानकूं पावतीहै । तैसैं रजो-गुणकी चंचलवृत्तिविषै आनंदका तिरोभाव होवैहै । यह अर्थ है ॥ ७९ ॥

॥ ३ ॥ योग औ विवेककी तुल्यता ॥ ४९४०—४९८३ ॥

॥ १ ॥ गूढअभिप्रायकी शंका ॥

४० गूढअभिप्रायकूं वादी मूलविषै शंका करैहैं:—

४१] ननु ऐसैं आत्माविषै जो पर-मानंदता है। सो प्रियतमतारूप हेतुकरि विवेचन करनैकूं शक्य होहु । तौ बी चित्तके निरोधरूप योगसैं विना क्या फल है ? कछु बी नहीं ॥

४२) ननु कथन किये प्रकारसैं आत्माकी जो परमानंदरूपता है। सो परमप्रेमकी विषय-तारूप हेतुकरि पुत्रादिकगौणआत्मा औ पंचकोशरूप मिथ्याआत्मा जे प्रिय उपेक्ष्य अरु द्वेष्यवस्तु हैं । तिनतैं विवेचनकरिके जाननैकूं शक्य होहु । तथापि "यह विवेक मुक्तिका साधन नहीं। काहेतैं अपरोक्षज्ञानद्वारा मुक्तिके हेतु योगके पूर्व ११ वें अध्यायविषै कथनतैं ॥" यह गूढअभिसंधि कहिये वादीके प्रश्नका गूढअभिप्राय है ॥ ८० ॥

॥ २ ॥ गूढअभिसंधिहीं उत्तर औ शंकासमाधान-के गूढअभिसंधिकी प्रकटता ॥

४३ अब सिद्धांती गूढअभिसंधिवान् हुयेहीं उत्तरकूं कहैहैं:—

८७ जैसैं मनकी व्याकुलताके हुये समीपविद्यमान नेत्रा-दिकके विषयका भान नहीं होवैहै । तैसैं चंचलरजोवृत्तिकरि विद्यमान आनंदअंशका भान नहीं होवैहै ॥

किंवा सामान्यतैं परमप्रेमका विषय होनैंकरि आत्माके आनंदका भान सर्वदा होवैहै। परंतु वृत्तिविषै प्रतिबिंब होनैं-करि विशेषतैं भान होवैहै ॥

जातैं व्यक्तिमात्रअंशके प्रतिबिंबके ग्राहक औ शोभा-अंशके प्रतिबिंबके अग्राहक चंचलदर्पणकी न्यांई रजोतमो-गुणकी वृत्तियां चेतनअंशके प्रतिबिंबकी ग्राहक हैं औ आनंद-अंशके प्रतिबिंबकी अग्राहक हैं । यातैं रजोतमोवृत्तिकरि आनंदअंशका विशेषतैं भान नहीं होवैहै। किंतु लवणरूप प्रति-बंधकरि अंबलीकी खटाईके तिरोधानकी न्यांई विद्यमान हुये बी आनंदअंशका तिरोधान होवैहै । यह भाव है ॥

टीकांकः ४९४४ टिप्पणांकः ॐ	यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते । इति स्मृतं फलैकत्वं योगिनां च विवेकिनाम् ॥८२॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३५८

४४] यत् योगेन तत् एव इति वदामः ॥

४५) यथा योगस्यापरोक्षज्ञानहेतुत्वमस्ति एवं विवेकस्यापीत्यत्रापि गूढोभिसंधिः ॥

४६ इदानीं चोद्यपरिहारयोरुभयोरभिसंधिं प्रकटयति—

४७] ज्ञानसिद्ध्यै योगः प्रोक्तः । विवेकेन किं ज्ञानं न उपजायते ॥

४८) यथाऽपरोक्षज्ञानसाधनत्वेन योगः अभिहितः पूर्वस्मिन्नध्याये एवमस्मिन्नध्यायेऽभिहितेन गौणाद्यात्मत्वविवेकद्वारा कोशपंचकविवेकेनापि ज्ञानं उत्पद्यत एवेत्यर्थः ॥ ८१ ॥

४९ तत्र किं प्रमाणमित्याशंक्याह (यत्सांख्यैरिति)—

५०] "सांख्यैः यत् स्थानं प्राप्यते । तत् योगैः अपि गम्यते" इति योगिनां च विवेकिनां फलैकत्वं स्मृतम् ॥

५१) "सांख्यैः आत्मानात्मविवेकिभिः । यत्स्थानं मोक्षरूपं प्राप्यते गम्यते । तद्योगैः योगिभिः । अपि गम्यते प्राप्यते" । इति अनेन योगिनां विवेकिनां च फलैकत्वं ज्ञानद्वारा मोक्षलक्षणफलस्यैकत्वं उक्तमित्यर्थः ॥ ८२ ॥

४४] जो फल योगकरि होवैहै । सोई विवेककरि होवैहै । ऐसैं हम कहतेहैं ॥

४५) जैसैं योगकूं अपरोक्षज्ञानकी हेतुता है । ऐसैं विवेककूं वी अपरोक्षज्ञानकी हेतुता है ॥ इहां वी गूढअभिसंधि कहिये सिद्धांतीका गूढअभिप्रायवाला उत्तर है ॥

४६ अब प्रश्न औ उत्तर दोनूंविषै जो अभिसंधि है । ताकूं प्रगट करैहैं:—

४७] जैसैं ज्ञानकी सिद्धिअर्थ कहिये उत्पत्तिअर्थ योग कह्याहै । ऐसैं विवेककरि क्या ज्ञान नहीं उपजताहै ?

४८) जैसैं अपरोक्षज्ञानका साधन होनैंकरि योग पूर्व ११ वें अध्यायविषै कह्याहै । ऐसैं इस १२ वें अध्यायविषै कथन किया जो गौणआदिकतीनभांतिके आत्माके विवेचनद्वारा पंचकोशनका विवेक । तिसकरि वी ज्ञान उत्पन्न होवैहीं है । यह अर्थ है ॥ ८१ ॥

॥ ३ ॥ योग औ विवेकके फलकी एकतामैं गीताप्रमाण ॥

४९ योग औ विवेक दोनूंकूं वी ज्ञानकी हेतुता है । तामैं कौन प्रमाण है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

५०] "सांख्यनकरि जो स्थान प्राप्त होवैहै । सो स्थान योगकरि वी प्राप्त होवैहै" ऐसैं योगिनकूं औ विवेकिनकूं फलकी एकता स्मरण करीहै कहिये गीतास्मृतिविषै कहीहै ॥

५१) "आत्मा अरु अनात्माके विवेकिनकूं जो मोक्षरूप स्थान प्राप्त होवैहै । सो स्थान योगिनकूं वी प्राप्त होवैहै" इस गीताके वचनकरि योगिनकूं औ विवेकिनकूं ज्ञानद्वारा मोक्षरूप फलकी एकता कहीहै । यह अर्थ है ॥ ८२ ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १३५९ १३६०

[५३]असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः ।
इत्थं विचार्य मार्गौ द्वौ जगाद परमेश्वरः ॥८३॥
[५५]योगे कोऽतिशयस्तत्र ज्ञानमुक्तं समं द्वयोः ।
[५६]रागद्वेषाद्यभावश्च तुल्यो योगिविवेकिनोः ॥८४॥

टीकांकः ४९५२ टिप्पणांकः ७८८

५२ ननु विवेकयोगयोरेकमेव चेत्फलं तर्ह्यनयोरन्यतरस्यैव युक्तं शास्त्रेषु प्रतिपादनं नोभयोरित्याशंक्याधिकारिवैचित्र्यात् युक्तमुभयोःप्रतिपादनमित्यभिप्रायेणाह (असाध्य इति)—

५३] कस्यचित् योगः असाध्यः । कस्यचित् ज्ञाननिश्चयः । इत्थं विचार्य परमेश्वरः द्वौ मार्गौ जगाद ॥ ८३ ॥

५४ नन्वत्यंतायाससाध्यस्य योगस्य निरायाससुलभाद्विवेकादतिशयो वक्तव्य इत्याशंक्य सोऽतिशयः किमपरोक्षज्ञानजनकत्वादुच्यते उत रागद्वेषादिनिवृत्तिहेतुत्वात् अथवा द्वैतानुपलब्धिकारणत्वादिति विकल्प्य प्रथमपक्षे फलसाम्यमित्याह (योग इति)—

५५] तत्र द्वयोः ज्ञानं समं उक्तं । योगे कः अतिशयः ॥

५६) द्वयोः विवेकयोगयोः उभयोरपि ज्ञानलक्षणं फलं सममुक्तं "यत् सांख्यैः" इत्यादिना अतस्तव योगे कः अतिशयः। न कोऽपीत्यर्थः ॥

॥ ४ ॥ अधिकारीभेदतैं शास्त्रमैं योग औ विवेक दोनूंके प्रतिपादनकी योग्यता ॥

५२ ननु विवेक औ योग इन दोनूंका एकहीं जब फल है। तब शास्त्रनविषै इन दोनूंमैंसैं एकहींका प्रतिपादन युक्त है। दोनूंका प्रतिपादन युक्त नहीं । यह आशंकाकरि अधिकारीकी विचित्रतातैं दोनूंका प्रतिपादन युक्त है। इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

५३] किसी अधिकारीकूं योग असाध्य कहिये दुष्कर है औ किसीकूं ज्ञानका निश्चय असाध्य है। ऐसैं विचारकरिके परमेश्वरश्रीकृष्ण योग औ विवेकरूप दोनूं मार्गनकूं कहतेभये ॥ ८३ ॥

॥ ५ ॥ अपरोक्षज्ञानकी जनकता औ रागादिकके अभावकरि योगविवेककी समता ॥

५४ ननु अत्यंतश्रमकरि साध्य योगका श्रमसैंविना सुलभविवेकतैं अतिशय कहनैकूं योग्य है। यह आशंकाकरि सो योगका अतिशय क्या योगकूं अपरोक्षज्ञानका जनक होनैतैं कहियेहै अथवा रागद्वेषकी निवृत्तिका हेतु होनैतैं कहियेहै अथवा द्वैतकी अप्रतीतिका कारण होनैतैं कहियेहै ? ऐसैं तीनविकल्पकरिके प्रथमपक्षविषै योग औ विवेकके फलकी समताकूं कहैहैं:—

५५] तहां दोनूंका ज्ञानरूप फल सम कह्याहै। यातैं हे वादी! तेरे योगविषै कौन अतिशय है?

५६) विवेक अरु योग दोनूंका वी ज्ञानरूप फल । "सांख्यनकरि जो स्थान प्राप्त होवैहै इत्यादि" इस गीताके वाक्यकरि समान कह्याहै। यातैं हे वादी! तेरे योगविषै कौन अतिशय है? कोइ वी नहीं। यह अर्थ है॥

८८ सांख्य विवेक औ योगके अधिकारीका भेद देखो ध्यानदीपगत श्लोक १३२—१३३ विषै ॥

टीकांक: ४९५७ टिप्पणांक: ७८९	६० न प्रीतिर्विषयेष्वस्ति प्रेयानात्मेति जानतः । कुतो रागः कुतो द्वेषः प्रातिकूल्यमपश्यतः ॥८५॥ ६३ देहादेः प्रतिकूलेषु द्वेषस्तुल्यो द्वयोरपि । ६५ द्वेषं कुर्वन्न योगी चेदविवेक्यपि तादृशः ॥ ८६ ॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३६१ १३६२

५७ द्वितीयं प्रत्याह (रागद्वेषेति)—

५८] च रागद्वेषाद्यभावः योगिविवेकिनोः तुल्यः ॥ ८४ ॥

५९ विवेकिनो रागाद्यभावमुपपादयति (न प्रीतिरिति)—

६०] "आत्मा प्रेयान्" इति जानतः न विषयेषु प्रीतिः अस्ति । रागः कुतः । प्रातिकूल्यं अपश्यतः द्वेषः कुतः ॥

६१) "आत्मा प्रेयान्" इति आत्मा प्रियतम इति जानतः पुरुषस्य न तावत् विषयेषु प्रीतिरस्ति अतो न तेषु रागः जायते रागहेतोः आनुकूल्यज्ञानस्याभावात् नापि द्वेषः तद्धेतोः प्रातिकूल्यज्ञानस्याभावादित्यर्थः ॥ ८९ ॥

६२ ननु विवेकिनो व्यवहारदशायां देहाद्युपद्रवकारिषु द्वेषो दृश्यत इत्याशंक्य तदा योगिविवेकिनोः स तुल्य इति परिहरति—

---

५७ द्वितीयपक्षके प्रति कहैहैं:—

५८] औ रागद्वेषआदिकका अभाव बी योगी औ विवेकी दोनूंकूं तुल्य है ॥ ८४ ॥

॥६॥ विवेकीकूं रागादिकके अभावका उपपादन॥

५९ विवेकीकूं कहिये विचारवान्कूं राग-आदिकका जो अभाव है । ताकूं उपपादन करैहैं:—

६०] "आत्मा प्रियतम है" ऐसैं जाननैहारे पुरुषकूं विषयनविषै प्रीति जो आसक्ति सो नहीं है। यातैं दृढआसक्तिरूप राग कहांसैं होवैगा औ प्रतिकूलताकूं नहीं देखनैहारे पुरुषकूं द्वेष कहांसैं होवैगा?

६१) "आत्मा अतिशयप्रिय है" ऐसैं जाननैहारे विवेकी नाम ज्ञानीपुरुषकूं प्रथम विषयनविषै प्रीति नहीं है। यातैं तिन अप्रियविषयनविषै राग नहीं होवैहै । काहेतैं सुखके साधन अनुकूलपनैंके ज्ञानके अभावतैं ॥ औ द्वेष बी नहीं है । काहेतैं द्वेषके हेतु प्रतिकूलपनैंके ज्ञानके अभावतैं। यह अर्थ है ॥ ८९ ॥

॥ ७ ॥ प्रतिकूलमैं योगी औ विवेकीकूं द्वेषकी समता औ प्रतिकूलमैं द्वेषीकी अयोगीता औ अविवेकिता ॥

६२ ननु विवेकीकूं व्यवहारदशाविषै देहादिकके उपद्रव करनैहारे जंतुनविषै द्वेष देखिये है । यह आशंकाकरि तब सो द्वेष योगी औ विवेकी दोनूंकूं तुल्य है। ऐसैं परिहार करैहैं:—

---

८९ (१) अज्ञान । भेदज्ञानका कारण है औ
(२) भेदज्ञानका अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान कारण है औ
(३) अनुकूलज्ञान अरु प्रतिकूलज्ञान क्रमतैं रागद्वेषका कारण है ॥

विचारजनित अपरोक्षज्ञानवान्कूं जातैं ज्ञानकरि अज्ञान निवृत्त भयाहै । यातैं भेदज्ञान औ तिसके कार्य अनुकूलज्ञान अरु प्रतिकूलज्ञानका अभाव है । ताहीतैं राग अरु द्वेषका बी अभाव है । यह आशय है ॥

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १९ ॥ श्लोकांकः १३६३

टीकांकः ४९६३ टिप्पणांकः ७९०

द्वैतस्य प्रतिभानं तु व्यवहारे द्वयोः समम् ।
समाधौ नेति चेत्तद्वन्नाद्वैतत्वं विवेकिनः ॥ ८७॥

६३] **देहादेः प्रतिकूलेषु द्वेषः द्वयोः अपि तुल्यः ॥**

६४ प्रतिकूलेषु वृश्चिकादिषु द्वेषकर्तुस्तदा योगित्वमेव नाभ्युपगम्यते चेत् । भवता तर्हि तादृशस्य विवेकित्वमपि नाभ्युपगच्छाम इत्याह

६५] **द्वेषं कुर्वन् योगी न चेत् । तादृशः अविवेकी अपि ॥**

६६) तादृशः द्वेषकर्ता चेत् अविवेक्यपि विवेकवानपि न भवतीत्यर्थः ॥८६॥

६७ ननु "विवेकिनो द्वैतदर्शनमस्ति योगिनस्तु तन्नास्ति" इति तृतीये विकल्पे योगिनोऽतिशयो भविष्यतीत्याशंक्य विवेकिनस्तद्द्वैतदर्शनं किं व्यवहारदशायामुच्यते उतान्यदेति विकल्प्याद्ये तद्योगिनोऽपि समानमित्याह (द्वैतस्येति)—

६८] **व्यवहारे द्वैतस्य प्रतिभानं तु द्वयोः समम् ॥**

६९ द्वितीयमाशंकते—

७०] **समाधौ न इति चेत् ।**

६३] **देहादिकके प्रतिकूल जे दुःखदायक । तिनविषै द्वेष योगी औ विवेकी दोनूंकूं बी तुल्य है ॥**

६४ हे वादी ! प्रतिकूल जो विच्छुसैं आदिलेके सर्पसिंहादिक हैं । तिनविषै द्वेषकर्त्तापुरुषका तिसकालविषै योगीपना जब तेरेकरि नहीं अंगीकार करियेहै । तब तैसैं प्रतिकूलनविषै द्वेषकर्त्ता पुरुषके विवेकीपनैंकूं बी तिसकालविषै हम नहीं अंगीकार करैहैं । ऐसैं कहैहैं:—

६५] **द्वेषकर्त्ता जब योगी नहीं है । तब तैसा द्वेषकर्त्ता अविवेकी बी है ॥**

६६) द्वेषकर्त्ता पुरुष जब योगी नाम चित्तके निरोधवान् नहीं है । तब तैसा द्वेषकर्त्ता पुरुष जिसकालविषै होवै । तिसकालविषै अविवेकी नाम विचाररहित बी होवैहै । यह अर्थ है ॥ ८६ ॥

॥ ८ ॥ व्यवहारदशामैं द्वैतके दर्शनकी औ समाधि अरु विवेकदशामैं द्वैतके अदर्शनकी योगी औ विवेकीकूं तुल्यता ॥

६७ ननु "विवेकीकूं द्वैत जो प्रपंच ताका दर्शन है औ योगीकूं तौ सो द्वैतका दर्शन नहीं है" इस ८३ वें श्लोकउक्ततृतीयविकल्पविषै योगीका विवेकीतैं उत्कर्ष होवैगा । यह आशंकाकरि विवेकीकूं सो द्वैतका दर्शन क्या व्यवहारदशाविषै कहियेहै अथवा अन्यसमाधिदशाविषै कहियेहै ? ऐसैं दोविकल्पकरिके प्रथमपक्षविषै सो व्यवहारदशाविषै द्वैतका दर्शन योगीकूं बी समान है । ऐसैं कहैहैं:—

६८] **व्यवहारविषै द्वैतका भान तौ योगी औ विवेकी दोनूंकूं सम है ॥**

६९ द्वितीयपक्षके प्रति वादी शंका करैहैः—

७०] **समाधिविषै द्वैतका दर्शन नहीं है । ऐसैं जब कहियेहै ।**

---

९० इहां यह तात्पर्य हैः— विद्वान्कूं ज्ञानसैं अज्ञानके नाश भये बी प्रारब्धरूप प्रतिबंधकरि प्रारब्धभोगपर्यंत अज्ञानका लेश अवशेष रहैहै । सो देखो ६७७ वें टिप्पणविषै ॥ तिसके बलकारि अविचारकालमैं रागद्वेषादिरूप प्रपंचकी बाधितानुवृत्तिसैं प्रतीति होवैहै औ विचारकालमैं तिरोधान होवैहै । यातैं ज्ञानी बी जब रागद्वेषकूं करताहोवै तब विवेकी नहीं है । किंतु अविवेकी नाम विचाररहित है ॥ इति ॥

टीकांक: ४९७० टिप्पणांक: ॐ	७५ विवक्ष्यते तदस्माभिरद्वैतानंदनामके । अध्याये हि तृतीये ७७ऽतः सर्वमप्यतिमंगलम् ॥८८॥ ७९ सदा पश्यन्निजानंदमपश्यन्निखिलं जगत् । अर्थाद्योगीति चेत्तर्हि संतुष्टो वर्द्धतां भवान् ॥८९॥	ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांक: १३६४ १३६५

ॐ ७०)योगिनः समाधिकाले द्वैतदर्शनं नास्तीत्युच्यते चेदित्यध्याहारः ॥

७१ तर्हि विवेकिनोऽपि विवेकदशायां द्वैतादर्शनं तुल्यमिति परिहरति—

७२] **तद्वत् अद्वैतत्त्वं विवेकिनः न ॥**

७३) योगिनः समाधिदशायामिव अद्वैतत्त्वविवेकिनः अद्वैतं तत्त्वमिति श्रुतियुक्तिभ्यां विवेचनं कुर्वतोऽपि । तस्मिन्काले द्वैतदर्शनं नास्तीत्यर्थः ॥ ८७ ॥

७४ कथं तदभाव इत्याशंक्योपरितनेऽध्याये तदुपपादयिष्यत इत्याह (विवक्ष्यत इति)—

७५] **तत् हि अद्वैतानंदनामके तृतीये अध्याये अस्माभिः विवक्ष्यते ॥**

७६ उक्तमर्थं निगमयति—

७७] **अतः सर्वं अपि अतिमंगलम् ॥**

७८ ननु द्वैतादर्शनसहितात्मदर्शनवतो योगित्वमेव भविष्यतीति शंकते (सदेति)—

७९] **निजानंदं सदा पश्यन् । निखिलं जगत् अपश्यन् । अर्थात् योगी । इति चेत् ।**

ॐ ७०) योगीकूं समाधिकालविषै द्वैतका दर्शन नहीं है । ऐसैं जब तेरेकरि कहियेहै । इतना अध्याहार है ॥

७१ तब विवेकीकूं वी विचारकालविषै द्वैतका अदर्शन तुल्य है। ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

७२] **तब तैसैं अद्वैतपनैंके विवेकीकूं वी द्वैतका दर्शन नहीं है ॥**

७३) तैसैं योगीकूं समाधिदशाकी न्यांई "अद्वैतहीं तत्त्व कहिये वास्तववस्तु है" ऐसैं श्रुति औ अनुमानादिकयुक्तिकरि विवेचन करनैंहारेकूं वी तिसकालविषै द्वैतका दर्शन नहीं है । यह अर्थ है ॥ ८७ ॥

॥ ९ ॥ अद्वैतानंदमैं विवेकीकूं द्वैतदर्शनके अभावके प्रतिपादनकी प्रतिज्ञा औ ८० वें श्लोकसैं उक्त अर्थका सूचन ॥

७४ तिस द्वैतके दर्शनका अभाव किस प्रकार होवैहै? यह आशंकाकरि ऊपरके त्रयोदशमअध्यायविषै सो उपपादन करैंगे कहिये हेतु औ युक्तिसहित कहैंगे। ऐसैं कहैहैं:—

७५] **सो द्वैतके दर्शनका अभाव जातैं अद्वैतानंदनाम ब्रह्मानंदग्रंथके तृतीयअध्यायविषै हमोंकरि कहियेगा ।**

७६ उक्तअर्थकूं सूचन करैहैं:—

७७] **यातैं सर्व हमोंकरि कह्या अर्थ वी अतिमंगलरूप नाम निर्दोष है ॥ ८८ ॥**

॥ १० ॥ द्वैतकी अप्रतीतिसहित आत्मदर्शनयुक्तके योगीपनैंकी शंका औ इष्टापत्तिसैं परिहार ॥

७८ ननु द्वैतके अदर्शनसहित आत्माके दर्शनवाले पुरुषका योगीपनाहीं होवैगा । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

७९] **निजानंदकूं सदा देखताहुया** कहिये अनुभव करताहुया औ **सर्वजगत्कूं नहीं देखताहुया** जो ज्ञानी वर्त्तताहै । **सो अर्थतैं योगी है । ऐसैं जब कहै ।**

ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ १२ ॥ श्लोकांकः १२६६	ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे मंदानुग्रहसिद्धये । द्वितीयाध्याय एतस्मिन्नात्मानंदो विवेचितः ॥९०॥ ॥ इति श्रीपंचदश्यां ब्रह्मानंदे आत्मानंदः ॥ २ ॥ १२ ॥	टीकांकः ४९८० टिप्पणांकः ॐ

८० इष्टापत्त्या परिहरति—

८१] तर्हि भवान् संतुष्टः वर्द्धताम् ॥

८२ अध्यायतात्पर्यं संक्षिप्य दर्शयति—

८३] ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे एतस्मिन् द्वितीयाध्याये मंदानुग्रहसिद्धये आत्मानंदः विवेचितः ॥ ९० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिते ब्रह्मानंदे आत्मानंदो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ १२ ॥

---

८० सिद्धांती स्ववांछितकी सिद्धिकरि परिहार करैहैं:—

८१] तब हे वादी! तूं संतोषकूं पावताहुया वृद्धिकूं पाव ॥ ८९ ॥

॥ ११ ॥ आत्मानंदनामअध्यायका संक्षेपसैं तात्पर्य ॥

८२ आत्मानंदप्रकरणरूप अध्यायके तात्पर्यकूं संक्षेपकरिके दिखावैहैं:—

८३] ब्रह्मानंद इस नामवाले पांचअध्यायरूप ग्रंथविषै स्थित इस द्वितीयअध्यायमैं अल्पमतिवान्‌अधिकारीके उद्धारकी सिद्धिअर्थ आत्मानंद कहिये सर्वांतर प्रत्यगात्माका स्वरूपभूत आनंद विवेचन किया ॥ ९० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या ब्रह्मानंदगतात्मानंदस्य तत्त्वप्रकाशिकाख्या व्याख्या समाप्ता ॥ २ ॥ १२ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १३६७	*योगानंदः पुरोक्तो यः स आत्मानंद इष्यताम्। कथं ब्रह्मत्वमेतस्य सद्वयस्येति चेच्छृणु ॥ १ ॥	टीकांक: ४९८४ टिप्पणांक: ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ भाषाकर्त्तोकृत मंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
अद्वैतानंदसंज्ञस्य व्याख्यानं क्रियते मया ॥१॥

८४ ननु "आनंदस्त्रिविधो ब्रह्मानंदो विद्यासुखं तथा विषयानंदः" इति प्रथमाध्याये आनंदत्रयमेव प्रतिज्ञाय द्वितीयाध्याये तदतिरि-

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ श्री ब्रह्मानंदगत अद्वैतानंदकी

तत्त्वप्रकाशिका व्याख्या ॥ १३ ॥

॥ भाषाकर्त्तोकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्त सर्वगुरुनकूं नमस्कारकरिके । पंचदशीके अद्वैतानंदनामकप्रकरणका व्याख्यान नरभाषासैं मेरेकरि करियेहै ॥१॥

॥१॥ ब्रह्मके विवर्त्त जगत्की ब्रह्मसैं अभिन्नतापूर्वक शक्ति औ ताके कार्यकी अनिर्वचनीयता

॥ ४९८४—५२४० ॥

॥ १ ॥ आनंदरूप ब्रह्मके विवर्त्त जगत्की ब्रह्मसैं अभिन्नता

॥ ४९८४—५०४७ ॥

॥ १ ॥ त्रिविधआनंदकी प्रतिज्ञाके विरोधका निषेध औ आत्मानंदकी सद्वैतताकी शंका औ उत्तर ॥

८४ ननु "ब्रह्मानंद । विद्यानंद औ

* अद्वैतरूप आनंदका प्रतिपादक प्रकरण ॥

क्तात्मानंदनिरूपणात् तद्विरोधो जायत इत्याशंक्याह (योगानंद इति)—

८५] यः पुरा उक्तः योगानंदः सः आत्मानंदः इष्यताम् ॥

८६) यथा प्रतिज्ञातस्यैव ब्रह्मानंदस्य योगजन्यसाक्षात्कारविषयत्वेन योगानंदत्वं निरुपाधिकत्वेन निजानंदत्वं च व्यवहृतं। तथा तस्यैव गौणमिथ्यामुख्यात्मविवेचनेनावगम्यत्वविवक्षयात्मानंदत्वमभिहितमिति भावः ॥

८७ ननु सजातीयाद्गौणात्मनः पुत्रभार्यादेः मिथ्यात्मनो देहादेर्विजातीयाकाशादेश्च विभिन्नस्य सद्वयस्यात्मानंदस्य प्रथमाध्यायोक्ता द्वितीययोगानंदरूपता न संभवतीति शंकते (कथमिति)—

८८] सद्वयस्य एतस्य ब्रह्मत्वं कथं इति चेत्।

८९ सजातीयत्वेनाभिमतस्य गौणात्मनः पुत्रादेर्मिथ्यात्मनो देहादेश्च तैत्तिरीयश्रुत्यभिहितजगदंतःपातित्वादाकाशादेश्च जगत आत्मानंदातिरेकेणासत्वाच्च अद्वितीयब्रह्मरूपता तस्य घटत इति सबहुमानमुत्तरमाह—

९०] शृणु ॥ १ ॥

विषयानंद। इसभेदतैं आनंद तीनप्रकारका है" ऐसैं प्रथमअध्याय जो योगानंदनाम एकादशप्रकरणविषै तीनआनंदनकूंहीं प्रतिज्ञाकरिके। द्वितीयअध्यायरूप इसप्रकरणविषै तिन प्रतिज्ञा किये तीनआनंदनतैं भिन्न आत्मानंदके निरूपणतैं तिस तीनआनंदनके कथनसैं विरोध होवैहै। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८५] जो पूर्व एकादशप्रकरणविषै कथन किया योगानंद सोई आत्मानंद है। ऐसैं अंगीकार करना ॥

८६) जैसैं योगानंदनामकएकादशप्रकरणगत प्रथमश्लोकविषै प्रतिज्ञा किये ब्रह्मानंदकाहीं योगसैं जन्य साक्षात्कारका विषय होनैंकरि योगानंदपना व्यवहार कियाहै औ निरुपाधिक होनैंकरि निजानंदपना व्यवहार कियाहै। तैसैं तिसी ब्रह्मानंदकाहीं गौण मिथ्या औ मुख्यआत्माके विवेचनसैं जाननैंकी योग्यताके कहनैंकी इच्छाकरि आत्मानंदपना कहाहै। यह भाव है ॥

८७ ननु। आत्मा होनैंकरि सजातीय कहिये साक्षीरूप मुख्यआत्माके समानजातिवाला जो पुत्रभार्याआदिकरूप गौणआत्मा औ अनात्मा होनैंकरि विजातीय कहिये विलक्षण जातिवाले आकाशआदिक। तिनतैं भिन्न द्वैतसहित आत्मानंदकूं योगानंदनाम प्रथमअध्याविषै उक्तअद्वितीययोगानंदरूपता नहीं संभवैहै। इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

८८] द्वैतसहित इस आत्मानंदकी ब्रह्मरूपता कैसैं बनैहै? ऐसैं जो कहै।

८९ सजातीय होनैंकरि माने जे पुत्रादिकगौणआत्मा औ देहादिकमिथ्याआत्मा। तिनकूं तैत्तिरीयश्रुतिविषै उक्त आकाशादिकजगत्के अंतर्गत होनैतैं औ आकाशादिरूप जगत्कूं आनंदतैं भिन्न असत् होनैतैं। तिस आत्मानंदकूं अद्वितीयब्रह्मरूपता घटैहै। इसरीतिसैं सिद्धांती बहुमानसहित उत्तरकूं कहैहैं:—

९०] तौ श्रवण कर ॥ १ ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १३६८ १३६९

आकाशादिस्वदेहांतं तैत्तिरीयश्रुतीरितम् ।
जगन्नास्त्यन्यदानंदादद्वैतब्रह्मता ततः ॥ २ ॥
आनंदादेव तज्जातं तिष्ठत्यानंद एव तत् ।
आनंद एव लीनं चेदुक्तानंदात्कथं पृथक् ॥३॥

टीकांकः ४९९१ टिप्पणांकः ॐ

९१] (आकाशादीति)—तैत्तिरीयश्रुतीरितं आकाशादिस्वदेहांतं जगत् आनंदात् अन्यत् न अस्ति । ततः अद्वैतब्रह्मता ॥

९२) "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इत्यादिकया तैत्तिरीयश्रुत्याभिहितं जगत् स्वकारणभूतादात्मानंदाद्यतः अन्यत् पृथक् नास्ति । अतः कारणात् तस्यात्मानंदस्याद्वितीयत्वमित्यभिप्रायः ॥ २ ॥

९३ ननूदाहृतश्रुतिवाक्ये आत्मनः कारणत्वं श्रूयते न आनंदस्येत्याशंक्य तत्प्रतिपादकं तदीयमेव "आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते" इत्यादिवाक्यमर्थतः पठति (आनंदादेवेति)—

९४] तत् आनंदात् एव जातं । तत् आनंदे एव तिष्ठति । च आनंदे एव लीनम् ॥

९५ फलितमाह—

९६] इति उक्तानंदात् कथं पृथक् ॥

९७) अत्रेदमनुमानं सूचितं । विमतं जगदानंदान्न भिद्यते । तत्कार्यत्वात् । यद्यत्कार्यं तत्ततो न भिद्यते । यथा मृत्कार्यं घटादि मृदो न भिद्यत इति ॥ ३ ॥

९१] तैत्तिरीयश्रुतिविषै उक्त आकाशसैं आदिलेके अपनैं देहपर्यंत जो जगत् है सो आनंदतैं अन्य नहीं है । तातैं आत्मानंदकूं अद्वैतब्रह्मरूपता है ॥

९२) "तिस मंत्रप्रतिपादित वा इस ब्राह्मणप्रतिपादित आत्मातैं आकाश होता-भया" इत्यादिकतैत्तिरीयश्रुतिकरि कथन किया जो जगत् । सो जातैं अपनैं कारणरूप आत्मानंदतैं भिन्न नहीं है । इसकारणतैं तिस आत्मानंदका अद्वितीयपना है । यह अभिप्राय है ॥ २ ॥

॥ २ ॥ आनंदतैं सृष्टिके प्रतिपादक तैत्तिरीय-श्रुतिवाक्यका कथन औ फलित ॥

(जगत्का आनंदतैं भेद)

९३ ननु द्वितीयश्लोकविषै उदाहरण किये तैत्तिरीयश्रुतिके वाक्यविषै आत्माकी कारणता सुनियेहै । आनंदकी नहीं । यह आशंकाकरि तिस आनंदकी कारणताका प्रतिपादक तिसी तैत्तिरीयश्रुतिकाहीं जो "आनंदतैंहीं प्रसिद्ध यह भूत उत्पन्न होवैहैं" इत्यादिपद-युक्त यह वाक्य है। ताकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

९४] सो जगत् आनंदतैंहीं भयाहै औ सो आनंदविषैहीं स्थित होवैहै औ आनंदविषैहीं लीन होवैहै ॥

९५ फलितकूं कहैहैं:—

९६] इस कथन किये आनंदतैं जगत् कैसैं पृथक् है? किसी प्रकार बी नहीं॥

९७) इहां यह अनुमान सूचन कियाहै:— विवादका विषय जो जगत् । सो आनंदतैं भिन्न नहीं है । तिस आनंदका कार्य होनैतैं॥ जो जिसका कार्य है सो तिसतैं भिन्न नहीं होवैहै । जैसैं मृत्तिकाका कार्य घटादिक मृत्तिकातैं भिन्न नहीं होवैहै । तैसैं॥इति॥३॥

टीकांकः ४९९८ टिप्पणांकः ॐ	९९ कुलालाद्धट उत्पन्नो भिन्नश्चेति न शंक्यताम् । मृद्वदेष उपादानं निमित्तं न कुलालवत् ॥ ४ ॥ २ स्थितिर्लयश्च कुंभस्य कुलाले स्तो न हि क्वचित् । दृष्टौ तौ मृदि तद्वत्स्यादुपादानं तयोः श्रुतेः ॥ ५ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥१३॥ श्लोकांकः १३७० १३७१

९८ कुलालादुत्पन्नस्य घटस्य ततो भेददर्शनादनैकांतिकता हेतोरित्याशंक्य कुलालस्य निमित्तकारणत्वादिह चानंदस्योपादानत्वासमर्थनान्नैवमित्याह—

९९] "कुलालात् घटः उत्पन्नः च भिन्नः" इति न शंक्यतां । एषः मृद्वत् उपादानं कुलालवत् निमित्तं न ॥

५०००) एषः आत्मानंदः मृद्वत् मृद्घटस्येव। उपादानं कारणं कुलालवत् कुलाल इव । निमित्तकारणं न भवति ॥ ४ ॥

१ ननु कुतो नोपादानत्वं कुलालस्यापीत्याशंक्य स्थितिलयाधारत्वरूपोपादानत्वलक्षणाभावादित्याह (स्थितिरिति)—

२] हि कुंभस्य स्थितिः च लयः कुलाले क्वचित् न स्तः ॥

३) हि यस्मात्कारणात् । घटस्य स्थितिलयौ कुलालाधारौ न भवतोऽतो नोपादानत्वमितिशेषः ॥

४ कुत्र तर्हि तावित्यत आह (दृष्टाविति)-

५] तौ मृदि दृष्टौ ॥

॥ ३ ॥ कुलालतैं भिन्न घटकी न्याई आनंदतैं भिन्न जगत्का अभाव ॥

९८ ननु कुलालतैं उत्पन्न भये घटके तिस कुलालरूप कारणतैं भेदके देखनैंतैं । "कार्य होनैंतैं" इस तृतीयश्लोकउक्तहेतुका व्यभिचारीपना है। यह आशंकाकरि कुलालकूं घटका निमित्तकारण होनैंतैं औ इहां श्रुतिविषै आनंदकी उपादानकारणताके कथनतैं हेतुका व्यभिचारीपना बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

९९] कुलालतैं घट उत्पन्न भयाहै औ कुलालसैं भिन्न है। ऐसैं शंका करनैंकूं योग्य नहीं है। काहेतैं यह आत्मानंद । मृत्तिकाकी न्यांई उपादान है। कुलालकी न्यांई निमित्त नहीं है ॥

५०००) यह आत्मानंद । घटके उपादान मृत्तिकाकी न्यांई जगत्का उपादानकारण होवैहै। घटके निमित्त कुलालकी न्यांई जगत्का निमित्तकारण नहीं होवैहै ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ कुलालकूं घटकी उपादानताका निषेध औ मृत्तिकाकूं घटकी उपादानता अरु हेतुसहित प्रकृत ॥

१ ननु कुलालकूं वी घटकी उपादानता काहेतैं नहीं है? यह आशंकाकरि स्थिति औ लयकी अधारतारूप उपादानके लक्षणके अभावतैं कुलालकूं घटकी उपादानता नहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

२] जातैं घटके स्थिति औ लय कुलालविषै कहूं वी नहीं होवैहैं ॥

३) जिसकारणतैं घटके स्थिति औ लय कुलालरूप आधारवाले नहीं होवैहैं। यातैं कुलालकूं घटकी उपादानता नहीं है ॥

४ तब सो घटके स्थिति औ लय कहां होवैहैं? तहां कहैहैं:—

५] सो मृत्तिकाविषै देखेहैं ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १३७२	[14]उपादानं त्रिधा भिन्नं विवर्ति परिणामि च । आरंभकं च [16]तत्रांत्यौ न निरंशेऽवकाशिनौ ॥ ६ ॥	टीकांकः ५००६ टिप्पणांकः ७९१

६) तौ घटस्य स्थितिलयौ । तदुपादानभूतायां मृदि एव दृष्टौ प्रत्यक्षेणोपलब्धौ ॥

७ भवत्वेवं तत्र प्रकृते किमायातमित्यत आह—

८] तद्वत् उपादानं स्यात् ॥

९) यद्वत् घटस्य मृदुपादानं तद्वत् जगतोऽप्यानंद उपादानं स्यात् ॥

१० तत्र हेतुः—

११] तयोः श्रुतेः ॥

१२) तयोः जगत्स्थितिलययोः । श्रुतेः "आनंदाध्येव" इत्यादिवाक्ये आनंदहेतुकत्वश्रवणादित्यर्थः ॥ ५ ॥

१३ आनंदस्य स्वाभिमतं जगदुपादानत्वं वक्तुं तदवांतरभेदमाह (उपादानमिति)—

१४] विवर्ति च परिणामि च आरंभकं उपादानं त्रिधा भिन्नम् ॥

१५ तत्र विवर्तं परिशेषयितुमितरौ पक्षौ दूषयति—

१६] तत्र अंत्यौ निरंशे न अवकाशिनौ ॥

१७) अंत्यौ आरंभपरिणामपक्षौ । निरंशे निरवयवे वस्तुनि । नावकाशिनौ अवकाशवंतौ न भवतः ॥ ६ ॥

---

६) सो घटके स्थिति औ लय तिस घटकी उपादानरूप मृत्तिकाविषैहीं देखेहैं कहिये प्रत्यक्षकरि जानेहैं ॥

७ तहां घटविषै ऐसें मृत्तिकाकी उपादानता होहु । इसकरि प्रकृत जो जगत्का कारण आनंद । तिसविषै क्या आया ? तहां कहैहैं:—

८] ताकी न्यांई उपादान है ॥

९) जैसें घटकी मृत्तिका उपादान है । तैसें जगत्का बी आनंद उपादान होवैहै ॥

१० जगत्का आनंद उपादान है । तिसविषै हेतु कहियेहैः—

११] तिनके श्रवणतैं ॥

१२) तिन जगत्के स्थिति औ लयके "आनंदतैंहीं यह भूत होवैहैं" इस वाक्यविषै आनंदरूप हेतुवान्ताके श्रवणतैं जगत्का आनंद उपादान है । यह अर्थ है ॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ उपादानके तीनभेदपूर्वक दोनूंका अनवकाश ॥

१३ आनंदका जो आप सिद्धांतीकरि मान्या जगत्का उपादानपना है । ताके कहनैंकूं तिस उपादानके बीचके भेदकूं कहैहैं:—

१४] विवर्त्ति । परिणामि औ आरंभक । ऐसें उपादान मतभेदकरि तीनप्रकारसें भिन्न है ॥

१५ तिन तीनपक्षनविषै विवर्त्तपक्षकूं शेष रखनैंकूं अन्यदोनूंपक्षनकूं दूषण देवैहैं:—

१६] तिनविषै अंतके दोनूंपक्ष निरवयवविषै अवकाशवाले नहीं होवैहैं ॥

१७) तिन तीनपक्षनविषै अंतके जो आरंभ औ परिणामपक्ष हैं । वे निरवयववस्तु जो आनंद तिसविषै अवकाशवाले नहीं होवैहैं ६

---

७९१ (१) उपादानके अवयवनके संबंधआदिककरि तिसतैं भिन्न कार्यकी उत्पत्ति आरंभ कहियेहै । जैसें परमाणु औ कपालनके संयोगादिककरि घटकी उत्पत्ति है ॥ औ (२) उपादानके अवयवनका अन्यथाभाव नाम और-

टीकांक: ५०१८ टिप्पणांक: ॐ	[१९]आरंभवादिनोऽन्यस्मादन्यस्योत्पत्तिमूचिरे । [२२]ततोः पटस्य निष्पत्तेर्भिन्नौ[२४] तंतुपटौ खलु ॥ ७ ॥ [२७]अवस्थांतरतापत्तिरेकस्य परिणामिता । [३०]स्यात्क्षीरं दधि मृत्कुंभः सुवर्णं कुंडलं यथा ॥ ८ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १३७३ १३७४

१८ तयोरनवकाशत्वमेव दर्शयितुं तावदारंभकवादिनो मतमनुवदति—

१९] **आरंभवादिनः अन्यस्मात् अन्यस्य उत्पत्तिं ऊचिरे ॥**

२०) **आरंभवादिनः** वैशेषिकादयः । **अन्यस्मात्** कार्यापेक्षयान्यस्मात्कारणात् । **अन्यस्य** कारणापेक्षयान्यस्य कार्यस्य । **उत्पत्तिमूचिरे** उक्तवंतः ॥

२१ कुत एवं वदंतीत्यत आह—

२२] **ततोः पटस्य निष्पत्तेः ॥**

ॐ २२) निष्पत्तेः उत्पत्तेः । दर्शनादिति शेषः ॥

२३ एतावता कथं कार्यकारणभेदसिद्धिरित्यत आह (भिन्नाविति)—

२४] **खलु तंतुपटौ भिन्नौ ॥**

२५) विरुद्धपरिणामत्वाद्विरुद्धार्थक्रियावत्त्वाच्च इति भावः ॥ ७ ॥

२६ इदानीं परिणामस्वरूपमाह (अवस्थेति)—

॥ ६ ॥ आरंभवादीके मतका अनुवाद ॥

१८ तिन आरंभ औ परिणाम दोनूं पक्षनके अनवकाशकूंहीं दिखावनैंकूं प्रथम आरंभवादीके मतकूं अनुवाद करैहैं:—

१९] **आरंभवादी जे हैं वे अन्यतैं अन्यकी उत्पत्तिकूं कहतेभये ॥**

२०) **आरंभवादी जे वैशेषिकआदिक हैं वे अन्यतैं** कहिये कार्यकी अपेक्षासैं भिन्न कारणतैं **अन्य** कहिये कारणकी अपेक्षासैं भिन्न कार्यकी **उत्पत्तिकूं कहतेभये** ॥

२१ वैशेषिकादिक ऐसें काहेतैं कहतेहैं? तहां कहैहैं:—

२२] **तंतुतैं पटकी निष्पत्तिके देखनैंतैं ॥**

ॐ २२) निष्पत्तिके कहिये उत्पत्तिके ॥ इहां देखनैंतैं । यह शेष है ॥

२३ इतनैंकरि कहिये तंतुतैं पटकी उत्पत्तिके देखनैंकरि कार्यकारणके भेदकी सिद्धि कैसैं होवैहै? तहां कहैहैं:—

२४] **निश्चयकरि तंतु औ वस्त्र भिन्न हैं ॥**

२५) भिन्नपरिणामवाले होनैंतैं औ भिन्नअर्थक्रियावाले कहिये प्रयोजननिमित्तप्रवृत्तिवाले होनैंतैं तंतु औ पट भिन्न हैं । यह भाव है ॥ ७ ॥

॥ ७ ॥ परिणामका स्वरूप ॥

२६ **अब परिणामके स्वरूपकूं कहैहैं:—**

प्रकारसैं होना परिणाम कहियेहै । जैसैं तडागआदिकके जलका औ दुग्धआदिकका अन्यथाभाव प्रवाह औ दधिरूपता है ॥

उक्तलक्षणवाले आरंभ औ परिणाम सावयवरूप उपादानके संभवैहैं । निरवयवके नाम जगत्‌उपादानआनंदके नहीं । काहेतैं संबंधादिकविषै औ अन्यथाभावविषै अपेक्षित अवयवनके अभावतैं । किंतु आकाशकी न्यांई निरवयवआनंदका विवर्त्तरूप जगत् संभवैहै ॥

(३) अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाला जो अधिष्ठानका अन्यथाभाव सो विवर्त्त कहियेहै । जैसैं रज्जुका विवर्त्त सर्प है औ आकाशका विवर्त्त नीलपनाआदिक है ॥

आरंभ परिणाम औ विवर्त्तका वर्णन देखो श्लोक ७–९ औ ४९–५३ औ ५९ विषै ॥

अवस्थांतरभानं तु विवर्तो रज्जुसर्पवत् ।
निरंशेऽप्यस्त्यसौ व्योम्नि तलमालिन्यकल्पनात् ९

२७] एकस्य अवस्थांतरतापत्तिः परिणामिता ॥

२८) एकस्य एव वस्तुनः पूर्वावस्थात्यागपुरःसरमवस्थांतरप्राप्तिः परिणाम इत्यर्थः ॥

२९ तमुदाहरति (स्यादिति)—

३०] यथा क्षीरं दधि मृत् कुंभः सुवर्णं कुंडलं स्यात् ॥

३१) यथा क्षीरमृत्सुवर्णादीनां क्षीरादिव्यवहारयोग्यतां परित्यज्य दध्यादिव्यवहारयोग्यतापत्तिः ॥ ८ ॥

३२ इदानीं विवर्तलक्षणमाह—

३३] अवस्थांतरभानं तु विवर्तः ॥

३४) तुशब्दस्य पूर्वस्मात्पक्षद्वयाद्वैलक्षण्यद्योतनार्थः । पूर्वावस्थामपरित्यज्यैव अवस्थांतरभानं विवर्तः ॥

३५ तमुदाहरति—

३६] रज्जुसर्पवत् ॥

३७) यथा रज्ज्वात्मनावस्थितस्यैव द्रव्यस्य सर्पात्मनावभासनं विवर्तः ॥

३८ ननु विवर्तमान रज्ज्वादेः सांशत्वदर्शनान्निरंशे सोऽपि न घटत इत्याशंक्य निरवयवे गगनादावपि तद्दर्शनान्मैवमित्याह (निरंशोऽपीति)—

३९] असौ निरंशे अपि अस्ति व्योम्नि तलमालिन्यकल्पनात् ॥

२७] एककूं अन्यअवस्थापनैंकी प्राप्ति परिणामिता है ॥

२८) एकहीं वस्तुकूं पूर्वअवस्थाके त्यागपूर्वक अन्यअवस्थाकी प्राप्ति परिणाम कहियेहै । यह अर्थ है ॥

२९ तिस परिणामकूं उदाहरण करैहैं:—

३०] जैसैं दुग्ध दधिरूप होवैहै औ मृत्तिका घटरूप होवैहै औ सुवर्ण कुंडल होवैहै ॥

३१) जैसैं क्षीर मृत्तिका औ सुवर्णआदिककूं क्षीरआदिकव्यवहारकी योग्यताकूं परित्यागकरिके दधिआदिकव्यवहारके योग्यताकी प्राप्ति परिणाम है ॥ ८ ॥

॥८॥ विवर्त्तका लक्षण औ ताका निरंशमैं संभव ॥

३२ अब विवर्त्तके लक्षणकूं कहैहैं:—

३३] अन्यअवस्थाका भान तौ विवर्त्त है ॥

३४) मूलविषै जो तुशब्दका पर्याय तौशब्द है । सो इस विवर्त्तकी पूर्वके दोनूंपक्षनतैं विलक्षणताके जनावनैंअर्थ है ॥ पूर्वअवस्थाकूं परित्याग नहीं करिकेहीं अन्यअवस्थाका भान विवर्त्त कहियेहै ॥

३५ तिस विवर्त्तकूं उदाहरण करैहैं:—

३६] रज्जुसर्पकी न्यांई ॥

३७) जैसैं रज्जुरूप अवस्थितवस्तुकाहीं सर्परूपकरि भान विवर्त्त है ॥

३८ ननु विवर्त्तरूप हुये रज्जुआदिकनके सावयवपनैंके देखनैतैं निरवयवविषै सो विवर्त्त वी नहीं घटताहै। यह आशंकाकरि निरवयवआकाशआदिकविषै वी तिस विवर्त्तके देखनैतैं निरंशविषै सो नहीं घटताहै । यह कथन बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

३९] यह विवर्त्त निरंशविषै बी है । काहेतैं व्योमविषै तलपनैं औ मलिनपनैंके कल्पनतैं ॥

टीकांक: ५०४० टिप्पणांक: ॐ	ततो निरंश आनंदे विवर्तो जगदिष्यताम् । मायाशक्तिः कल्पिका स्यादैंद्रजालिकशक्तिवत् ॥१०॥ शक्तिः शक्तात्पृथङ् नास्ति तद्वद्दृष्टेर्न चाभिदा । प्रतिबंधस्य दृष्टत्वाच्छक्त्यभावे तु कस्य सः ॥११॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १२७६ १२७७

४०) असौ विवर्तः व्योम्नि तलत्वमधोमुखेंद्रनीलकटाहतुल्यत्वं । मालिन्यं नीलवर्णता । तयोः कल्पनात् आकाशस्वरूपानभिज्ञैरारोप्यमाणत्वादित्यर्थः ॥ ९ ॥

४१ फलितमाह—

४२] ततः जगत् निरंशे आनंदे विवर्तः इष्यताम् ॥

ॐ ४२) ततः निरंशेऽपि विवर्तसंभवात् जगन्निरंशे आनंदे विवर्तः कल्पित इत्यंगीकार्यमित्यर्थः ॥

४३ नन्वद्वितीये आनंदे जगत्कल्पनमनुपपन्नं कल्पनाहेतोरभावादित्याशंक्याह—

४४] मायाशक्तिः कल्पिका स्यात् ॥

४५ शक्तेः कल्पकत्वं क दृष्टमित्यत आह—

४६] ऐंद्रजालिकशक्तिवत् ॥

४७) यथा ऐंद्रजालिकनिष्ठायाः मणिमंत्रादिरूपायाः मायायाः शक्तेर्गंधर्वनगरादिकल्पकत्वं तथेत्यर्थः ॥ १० ॥

४८ नन्वानंदात्मातिरिक्तायाः मायायाः अभ्युपगमे द्वैतापत्तिरित्याशंक्य तस्या अनिर्व-

---

४०) आकाशविषै तलपना कहिये अधोमुख नीलवर्णयुक्तकटाहके तुल्यपना औ मलिनपना कहिये श्यामता । तिन दोनूंके कल्पनतैं कहिये आकाशके स्वरूपके अजानपुरुषनकरि आरोपित होनैंतैं । यह विवर्त्त निरंशविषै बी बनैहै । यह अर्थ है ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ निरंशआनंदमैं जगत्की कल्पितता-रूप फलित औ उदाहरणसहित कल्पनाकी हेतु शक्तिका कथन ॥

४१ फलितकूं कहैहैं:—

४२] तातैं निरंशआनंदविषै जगत् विवर्त्त अंगीकार करना ॥

ॐ ४२) तातैं निरंशविषै बी विवर्त्तके संभवतैं जगत् निरंशआनंदविषै विवर्त कहिये कल्पित है । ऐसैं अंगीकार करनैंकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥

४३ ननु अद्वितीयआनंदविषै जगत्की कल्पना बनै नहीं । काहेतैं कल्पनाके हेतुके अभावतैं । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४४] मायाशक्ति कल्पनाकी हेतु होवैहै ॥

४५ शक्तिका कल्पकपना कहां देख्याहै ? तहां कहैहैं:—

४६] ऐंद्रजालिकके शक्तिकी न्यांई॥

४७) जैसैं इंद्रजालके जाननैंहारे पुरुषविषै स्थित मणिमंत्रादिरूप मायाशक्तिकूं गंधर्वनगरआदिकका कल्पकपना है । तैसैं ॥ यह अर्थ है ॥ १० ॥

॥ २ ॥ धात्रीकी कथासहित शक्तिकी अनिर्वचनीयता

॥ ५०४८—५१४४ ॥

॥ १ ॥ लौकिकशक्तिका शक्ततैं भेदअभेदका अभाव ॥

४८ ननु आनंदरूप आत्मातैं नाम ब्रह्मतैं भिन्न मायाशक्तिके अंगीकार कियेहुये द्वैतकी

चनीयत्वेनानृतत्वं वक्तुमुत्तरत्र वक्ष्यमाणायाः लौकिक्या अग्न्यादिशक्तेः तावद्भेदेनाभेदेन वा निर्वक्तुमशक्यत्वं दर्शयति—

४९] शक्तिः शक्तात् पृथक् न ॥

५०) शक्तिः अग्न्यादिनिष्ठा स्फोटादिजनिका । शक्तात् अग्न्यादिस्वरूपात् । पृथक् भेदेन । न अस्ति ॥

५१ कुत इत्यत आह—

५२] तद्वत् दृष्टेः ॥

५३) तद्वत् तथात्वस्य भेदेनासत्त्वस्य दृष्टेः दर्शनादग्न्यादिस्वरूपातिरेकेणानुपलभ्यमानत्वादित्यर्थः ॥

५४ नाप्यग्न्यादिस्वरूपमेव शक्तिरित्याह (न चेति)—

५५] अभिदा न च ॥

ॐ ५५) अभिदा अभेदोऽपि न च नैव॥

५६ तत्रापि हेतुमाह—

५७] प्रतिबंधस्य दृष्टत्वात् ॥

५८) मणिमंत्रादिभिः शक्तिकार्यस्य स्फोटादेः प्रतिबंधदर्शनात् स्वरूपातिरिक्ता शक्तिर्द्रष्टव्येत्यभिप्रायः ॥

५९ भवतु प्रतिबंधदर्शनं शक्तेर्भेदोऽपि मा भूत् को दोषस्तत्राह—

६०] शक्त्यभावे तु सः कस्य ॥

६१) प्रत्यक्षसिद्धस्याग्न्यादिस्वरूपस्य प्रतिबंधासंभवात्तद्व्यतिरिक्तशक्त्यनभ्युपगमे सति प्रतिबंधोऽपि निर्विषयः स्यादित्यभिप्रायः॥११

प्राप्ति होवैगी । यह आशंकाकरि तिस मायाकूं अनिर्वचनीय होनैंकरि मिथ्या कहनैंकूं आगे २९ वें श्लोकसें कहियेगी जो लौकिकअग्निआदिककी शक्ति । तिसकी प्रथम ११–१२ वे श्लोकपर्यंत भेदकरि वा अभेदकरि कहनैंकी अशक्यताकूं नाम अनिर्वचनीयताकूं दिखावैहैं:—

४९] शक्ति जो है सो शक्तिमानतैं भिन्न नहीं है ॥

५०) शक्ति जो अग्निआदिकविषै स्थित हुई स्फोटआदिककी जनक है । सो शक्त जो अग्निआदिक ताके स्वरूपतैं भेदकरिके नहीं है॥

५१ काहेतैं शक्ति शक्ततैं भिन्न नहीं है ? तहां कहैहैं:—

५२] तैसें देखनैंतैं ॥

५३) तैसें कहिये भेदकरि असत्पनैंके देखनैंतैं कहिये अग्निआदिकके स्वरूपतैं भिन्न शक्तिकूं अप्रतीयमान होनैंतैं । यह अर्थ है ॥

५४ अग्निआदिशक्तिमानका स्वरूपहीं शक्ति है ऐसें बी नहीं । यह कहैहैं:—

५५] शक्तिका शक्तसैं अभेद बी नहीं है॥

ॐ ५५) शक्तिका शक्तसैं अभेद बी नहीं है॥

५६ तिस अभेदके अभावविषै हेतु कहैहैं:—

५७] प्रतिबंधके देखनेतैं ॥

५८) मणिमंत्रआदिककरि शक्तिके कार्य स्फोटआदिकके प्रतिबंधके देखनैंतैं अग्निआदिकशक्तिमान्‌के स्वरूपतैं भिन्न शक्ति देखनैंकूं योग्य है ॥ यह अभिप्राय है ॥

५९ प्रतिबंधका देखना होहु औ शक्तिका शक्तिमान्‌के स्वरूपसैं भेद मति होहु । यामैं कौन दोष हैं ? तहां कहैहैं:—

६०] शक्तिके अभाव हुये तौ सो प्रतिबंध कौनका होवैगा ?

६१) प्रत्यक्षप्रमाणकरि सिद्ध जो अग्निआदिकका स्वरूप है । तिसके नाश वा तिरोधानरूप प्रतिबंधका असंभव है ॥ यातैं तिस अग्निआदिकके स्वरूपतैं भिन्न शक्तिके अनंगीकार कियेहुये प्रतिबंध बी निर्विषय होवैगा । सो अनिष्ट है । यातैं शक्तिमान्‌तैं भिन्न प्रतिबंधकी विषयशक्ति मानीचाहिये । यह अभिप्राय है ॥ ११ ॥

टीकांकः ५०६२ टिप्पणांकः ॐ	६३ शक्तेः कार्यानुमेयत्वादकार्ये प्रतिबंधनम् । ६६ ज्वलतोऽग्नेरदाहे स्यान्मंत्रादिप्रतिबंधता ॥ १२ ॥ ६९ देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढां मुनयोऽविदन् । ७२ परास्य शक्तिर्विविधा ७५ क्रियाज्ञानबलात्मिका १३	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १३७८ १३७९

६२ नन्वतींद्रियायाः शक्तेः कथं प्रतिबंधोऽवगंतुं शक्यत इत्याशंक्याह—

६३] शक्तेः कार्यानुमेयत्वात् अकार्ये प्रतिबंधनम् ॥

६४) अतींद्रियापि शक्तिः यतः कार्यलिंगगम्या अतः अकार्ये सत्यपि कारणे कार्यानुत्पत्तौ सत्यां प्रतिबंधनम् प्रतिबंधः। अवगम्यत इति शेषः ॥

६५ उक्तमर्थं दृष्टांतप्रदर्शनेन स्पष्टयति—

६६] ज्वलतः अग्नेः अदाहे मंत्रादिप्रतिबंधता स्यात् ॥

६७) लोके स्वरूपेण ज्वलतोऽग्नेः सकाशाद्दाहादिलक्षणे कार्ये अनुत्पद्यमाने सति मंत्रादिप्रतिबंधता मंत्रादीनां शक्तिप्रतिबंधकत्वं स्यात् इत्यर्थः ॥ १२ ॥

६८ इत्थं लौकिकशक्तिं स्वरूपतः प्रमाणतश्चोपन्यस्येदानीं मायाशक्तिसद्भावे "ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्" इति श्वेताश्वतरोपनिषद्वाक्यमर्थतः पठति (देवात्मेति)—

॥ २ ॥ दृष्टांतसहित शक्तिके प्रतिबंधके ज्ञानका उपाय ॥

६२ ननु इंद्रियअगोचरशक्तिका प्रतिबंध कैसैं जाननैंकूं शक्य है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६३] शक्तिकूं कार्यकरि अनुमानकी विषय होनेतैं कार्यके न होते वी प्रतिबंध जानियेहै ॥

६४) इंद्रियनकी अविषय हुयी वी शक्ति जातैं कार्यरूप हेतुकरि जाननैंकूं योग्य है। यातैं कारणविषै कार्यकी अनुत्पत्तिके होते प्रतिबंध जानियेहै ॥

६५ उक्तअर्थकूं दृष्टांतके दिखावनैंकरि स्पष्ट करैहैं:—

६६] प्रज्वलितअग्नितैं अदाहके हुये मंत्रादिकनकूं प्रतिबंधकता होवैहै ॥

६७) लोकविषै स्वरूपतैं प्रज्वलितअग्नितैं दाहादिरूप कार्यके उत्पन्न नहीं हुये। मंत्रादिककूं शक्तिका प्रतिबंधका कर्त्तापना होवैहै। यह अर्थहै ॥ १२ ॥

॥ ३ ॥ मायाशक्तिके सद्भावमैं श्वेताश्वतरश्रुतिवाक्य ॥

६८ ऐसैं लौकिकशक्तिकूं स्वरूपतैं औ प्रमाणतैं कहिके। अब मायाके सद्भावविषै "सो मुनि ध्यानयोगकूं प्राप्त हुये अपनैं कार्यरूप गुणनकरि आवृत्त जो देवआत्माकी शक्ति है। ताकूं देखतेभये" इस श्वेताश्वतरउपनिषद्के वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

६९] मुनयः देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निगूढां अविदन् ॥

६९] मुनि। अपनैं गुणनकरि निगूढ देवआत्माकी शक्तिकूं जानतेभये ॥

९२ (१) असत्कारणवादी। जगत्कूं अकारण कहतेहैं।

(२) या केइक। जगत्के अभावकूं कारण कहतेहैं।

(३) या केइक। शून्यकूं कारण कहतेहैं। औ

(४) नैयायिकादिक। परमाणुआदिककूं कारण कहतेहैं। औ

(५) ज्योतिर्विद। कालकूं कारण कहतेहैं। औ

(६) चार्वाक। स्वभावकूं कारण मानतेहैं। औ

(७) मीमांसक। नियति जो अदृष्ट ताकूं कारण कहतेहैं। औ

(८) प्रत्यक्षवादी। यदृच्छाकूं कारण कहतेहैं। औ

(९) प्रत्यक्षप्रमाणवादी। पृथिवीआदिकपंचभूतनकूं कारण कहतेहैं। औ

(१०) सांख्यमतवाले। तीनगुणनकी साम्यावस्थारूप प्रकृतिकूं कारण कहतेहैं। औ

(११) योगी। हिरण्यगर्भआदिकरूप असंगपुरुषकूं कारण कहतेहैं औ

(१२) केइक। कालादिकके संयोगकूं कारण कहतेहैं। औ

(१३) केइक। प्रतिबिंबरूप परिणामीपुरुषकूं कारण कहतेहैं। औ

(१४) ब्रह्मवादीवेदांती। उपनिषदनके अनुसारकरि ब्रह्मकूं जगत्का कारण कहतेहैं ॥

इत्यादि अनेकप्रकारके कारणवाद हैं ॥

९३ कारणवादनविषै ये दोष हैं:—

(१) "जगत्का कोइ बी कारण नहीं है। किंतु कारणसैंविनाहीं जगत् होवैहै" इस पक्षविषै सर्वघटादिकार्यनके कारण प्रत्यक्ष देखियेहैं। यातैं दृष्टविरोधनाम प्रत्यक्षविरोधरूप दोष है। औ

(२) "जगत्का कारण अभाव है" इसपक्षविषै वंध्यासुतकी न्यांई असत्रूप अभावतैं भावरूप जगत्की उत्पत्ति माननैमैं बी दृष्टविरोधरूप दोषहीं होवैहै। औ

(३) "शून्यहीं जगत्का कारण है" इसपक्षविषै आकाशविषै पुष्पवन औ विना बोये बीजतैं धान्यके उत्पत्तिकी न्यांई असंभवरूप दोष है। औ

(४) "परमाणु कारण हैं" इस पक्षविषै निरवयव अरु जडपरमाणुके संयोगआदिकका असंभवरूप दोष है। औ

(५) "कालहीं कारण है" इसपक्षविषै कालके वर्त्तमान हुये बी सर्वकार्यनकी सर्वदा उत्पत्ति नहीं होवैहै। यातैं अकारणताकी प्राप्तिरूप दोष है। औ

(६) "स्वभाव कारण है" इसपक्षविषै वंध्याआदिकमैं गर्भादिकार्यके जनक वीर्यादिकके स्वभावके भंगतैं व्यभिचाररूप दोष है। औ

(७) "पुण्यपापरूप अदृष्ट कारण है" इसपक्षविषै इसकारणतैं यह कार्य होवै औ इसतैं नहीं। इस अन्वयव्यतिरेकका व्यभिचाररूप दोष है। औ

(८) "काकतालीयन्यायवत् यदृच्छा कारण है" इसपक्षविषै पृथ्वीआदिकभूतरूप धर्मिनसैं विना केवल यदृच्छारूप धर्मकी कारणताका असंभवरूप दोष है। औ

(९) "पृथिवीआदिकभूत कारण है" इसपक्षविषै घटादिककी न्यांई जड औ सावयवभूतनकूं अन्यकारणकी अपेक्षाके होनैतैं कारणताका असंभवरूप दोष है। औ

(१०) "प्रकृति कारण है" इसपक्षविषै शकटकी न्यांई जडप्रकृतिकी कार्यविषै स्वतःप्रवृत्तिका असंभवरूप दोष है। औ

(११) "पुरुष कारण है" इसपक्षविषै असंग औ निर्गुण होनैतैं व्यापाररहित तिस पुरुषकूं कारणताकी अयोग्यतारूप दोष है। औ

(१२) "तिनका संयोग कारण है" इसपक्षविषै तिसकूं जड होनैंकरि अन्यकी अपेक्षारूप दोष है। औ

(१३) "परिणामीपुरुष कारण है" इसपक्षविषै तिस जीवकूं सुखप्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिकी असमर्थताकरि कारण होनैंकी अयोग्यतारूप दोष है। औ

(१४) "शुद्ध कहिये मायाशक्तिरहित ब्रह्म कारण है" इसपक्षविषै ब्रह्मके निर्विकारिता असंगता निरवयवताआदिकविशेषणनका भंगरूप दोष है ॥

इसरीतिसैं अन्यकारणवादनविषै दोष है। यातैं मायाविशिष्टब्रह्महीं जगत्का कारण है। यह पक्ष निर्दोष है ॥

७०) मुनयः कालस्वभावादिकारणवादेषु दोषदर्शनवंतः जगत्कारणजिज्ञासया ध्यान-

७०) मुनि जे कालस्वभावआदिककारणवादनविषै दोषदर्शनवाले जगत्के कारणके

योगमास्थिता अधिकारिणः **देवात्मशक्तिं** देवस्य द्योतमानस्य स्वप्रकाशचिदात्मनः प्रत्यगभिन्नस्य ब्रह्मणः । शक्तिं मायारूपां । **स्वगुणैः** स्वकार्यभूतैः स्थूलसूक्ष्मशरीरैः । **निगूढां** नितरां गूढामावृतां । **अविदन्** साक्षात्कृतवंतः । इत्यर्थः ॥

७१ तस्यामेवोपनिषदि स्थितं "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इतिवाक्यांतरं अर्थतः पठति (**परास्येति**)—

७२] **अस्य परा शक्तिः विविधा** ॥

७३) अस्य ब्रह्मणः । परा उत्कृष्टा जगत्‌कारणभूता । **शक्तिर्विविधा** श्रूयते इति वाक्यशेषः ॥

७४ विविधत्वमेवाह—

७५] **क्रियाज्ञानबलात्मिका** ॥

७६) क्रियाज्ञाने प्रसिद्धे बलमिच्छाशक्तिर्ज्ञानक्रियाशक्तिसाहचर्यात् क्रियादिशक्तयः आत्मा स्वरूपं यस्याः सा **क्रियाज्ञानबलात्मिका** ॥ १३ ॥

जाननैंकी इच्छाकरि ध्यानयोगके प्रति आस्थित हुये अधिकारी । वे देव कहिये स्वप्रकाश चिदात्मा प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्म ताकी जो अपनैं आवरणविक्षेपरूप वा कार्यरूप स्थूलसूक्ष्मशरीररूप गुणकरि निरंतर आवृत मायारूप शक्ति है । ताकूं साक्षात् करतेभये । यह अर्थ है ॥

७१ तिसीहीं श्वेताश्वतरउपनिषद्‌विषै स्थित जो "इस ब्रह्मकी परशक्ति विविधप्रकारकीहीं सुनियेहै । सो कैसी है ? स्वाभाविक औ ज्ञानबलक्रियारूप है" यह अन्यवाक्य है । ताकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

७२] **इस ब्रह्मकी परशक्ति विविधप्रकारकी सुनियेहै** ॥

७३) इस ब्रह्मकी परशक्ति जो जगत्‌की कारणरूप उत्कृष्टशक्ति सो विविधप्रकारकी सुनियेहै ॥

७४ विविधपनैंकूंहीं कहैहैं:—

७५] **सो शक्ति कैसी है ? क्रिया ज्ञान औ बलरूप है** ॥

७६) क्रिया औ ज्ञान प्रसिद्ध हैं। औ बल नाम इच्छाशक्तिका है । काहेतैं इच्छाशक्तिकूं ज्ञानशक्ति औ क्रियाशक्तिकी सहचारी कहिये सहायक होयके साथि वर्तनैवाली होनैतैं ॥ क्रियाआदिकशक्तियां है स्वरूप जिसका । ऐसी जो परमेश्वरकी शक्ति । सो क्रियाज्ञानबलरूप कहियेहै ॥ १३ ॥

---

९४ श्रुतिवाक्यतैं ब्रह्मकी कारणताकूं जानिके बी तिसविषै संभवकूं जाननैंकूं इच्छतेहुये उक्त पूर्वलेपक्षनविषै दोषनकूं देखिके । श्रुतिके अनुकूल होनैतैं सिद्धांतरूप औ गुरु औ वेदकरि उपदेश किये केवलब्रह्मरूप अर्थविषै समानाकारचित्तवृत्तिके प्रवाहरूप ध्यानकूं योगशास्त्रके अनुसारकरि करतेभये ॥

९५ क्रियाशक्ति तमोगुणप्रधान है । ज्ञानशक्ति सत्वगुणप्रधान है औ इच्छाशक्ति रजोगुणप्रधान है । जैसैं पुत्रवाले दोभ्रातानके पुत्रनकूं पुत्ररहित तृतीयभ्राता खेल करावताहै । तैसैं कार्यसहित सत्व औ तमोगुणका रजोगुण सहकारी है । यातैं इच्छाशक्तिकूं बलरूप कही ॥ इन तीनशक्तिकरि युक्त **मायाशक्ति** है ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १३८० १३८१

इति वेदवचः प्राह वसिष्ठश्च तथाब्रवीत् ।
सर्वशक्ति परं ब्रह्म नित्यमापूर्णमद्वयम् ॥ १४ ॥
ययोल्लसति शक्त्यासौ प्रकाशमधिगच्छति ।
चिच्छक्तिर्ब्रह्मणो राम शरीरेषूपलभ्यते ॥ १५ ॥

टीकांकः ५०७७ टिप्पणांकः ॐ

७७ इदं वाक्यद्वयं कुत्रत्यमित्यत आह—

७८] **इति वेदवचः प्राह ॥**

७९ न केवलं मायाशक्तिः श्रुतिप्रसिद्धा किंतु स्मृतिप्रसिद्धापीत्याह (वसिष्ठ इति)—

८०] **तथा वसिष्ठः च अब्रवीत् ॥**

८१) यथा श्रुतिः विचित्रां मायाशक्तिमुक्तवती वसिष्ठः अपि तां तथा उक्तवान्। वासिष्ठाभिधे ग्रंथे इति शेषः ॥

८२ मायाप्रतिपादकान् वासिष्ठश्लोकानेव पठति (सर्वेति)—

८३] **परं ब्रह्म नित्यं आपूर्णं अद्वयं सर्वशक्ति ॥**

८४) "नित्यमापूर्णमद्वयम्" इति ब्रह्मणः पारमार्थिकं रूपमुक्तं "सर्वशक्तिः" इति तस्यैव सोपाधिकं रूपम् ॥ १४ ॥

८५] **यया शक्त्या उल्लसति असौ प्रकाशं अधिगच्छति ॥**

८६) तत्परं ब्रह्म यदा यया मायाशक्त्या उल्लसति विकसति विवर्तत इत्यर्थः ॥ तदा तदासौ असौ शक्तिः प्रकाशमधिगच्छति अभिव्यक्तिं प्राप्नोति ॥

॥ ४ ॥ श्लोक १३ उक्त वाक्यकी वेदरूपता औ मायाशक्तिमैं वासिष्ठग्रंथकी संमति ॥

७७ ये १३ वें श्लोकउक्तदोवाक्य कहांके हैं? तहां कहैहैंः—

७८] **ऐसैं कहिये १३ वें श्लोकउक्तप्रकारसैं ऋग्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषद्रूप वेदका वाक्य कहताहै ॥**

७९ मायाशक्ति केवलश्रुतिविषै प्रसिद्ध है ऐसैं नहीं। किंतु वासिष्ठरूप स्मृतिविषै वी प्रसिद्ध है। ऐसैं कहैहैंः—

८०] **तैसैं वसिष्ठ वी कहतेभये ॥**

८१) जैसैं श्रुति विचित्रमायाशक्तिकूं कहतीभई। तैसैं वसिष्ठमुनि वी वासिष्ठनामग्रंथविषै कहतेभये ॥

८२ मायाके प्रतिपादक वासिष्ठग्रंथके श्लोकनकूंहीं पठन करैहैंः—

८३] **परब्रह्म जो है। सो नित्य च्यारीओरतैं पूर्ण अद्वय है औ सर्वशक्तिमान् है ॥**

८४) "नित्य परिपूर्ण औ अद्वय है"। यह ब्रह्मका पारमार्थिकरूप कह्या औ "सर्वशक्तिमान् है" यह तिसीहीं ब्रह्मका सोपाधिकरूप है ॥ १४ ॥

८५] **सो जिस शक्तिकरि विकासकूं पावताहै। सो शक्ति प्रकाशकूं पावतीहै ॥**

८६) सो १४ वें श्लोकउक्तपरब्रह्म जब जब जिस मायाशक्तिकरि विकासकूं पावताहै कहिये विवर्त्तरूप होताहै। तब तब सो सो शक्ति प्रकाश कहिये अभिव्यक्तिकूं नाम कार्यरूपकरि प्रगटताकूं पावतीहै ॥

टीकांक: ५०८७ टिप्पणांक: ७९६	स्पंदशक्तिश्च वातेषु दार्ढ्यशक्तिस्तथोपले । द्रवशक्तिस्तथांभःसु दाहशक्तिस्तथानले ॥ १६ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १३८२

८७ इदानीं तामेवाभिव्यक्तिं प्रपंचयति द्वाभ्याम् (चिच्छक्तिरिति)—

८८] **राम! शरीरेषु ब्रह्मणः चिच्छक्तिः उपलभ्यते ॥**

ॐ ८८) **शरीरेषु** देवतिर्यङ्मनुष्यादिलक्षणेषु **चिच्छक्तिः** चेतनत्वव्यवहारहेतुभूता **उपलभ्यते** दृश्यते ॥ १५ ॥

८९] (स्पंदेति)— **च वातेषु स्पंदशक्तिः। तथा उपले दार्ढ्यशक्तिः। तथा अंभःसु द्रवशक्तिः। तथा अनले दाहशक्तिः ॥**

९०) स्पंदशक्तिः चलनहेतुभूता प्रकाशमधिगच्छति इत्युक्त्याऽनभिव्यक्तदशायामपि ब्रह्मणि जगत्सत्ता दर्शिता ॥ १६ ॥

---

८७ अब तिसीहीं अभिव्यक्तिकूं वसिष्ठजी दोश्लोकनसैं विस्तारकरि कहैहैं:—

८८] **हे राम! शरीरनविषै ब्रह्मकी चेतनशक्ति देखियेहै ॥**

ॐ ८८) हे राम! शरीरनविषै कहिये देवतिर्यक्मनुष्यआदिरूप देहोंविषै ब्रह्मकी चेतनपनैके व्यवहारकी हेतुरूप शक्ति देखियेहै॥१५॥

८९] **औ वायुनविषै स्फुरणहेतुशक्ति प्रकाशकूं पावतीहै औ पाषाणविषै दृढताकी हेतुशक्ति प्रकाशकूं पावतीहै औ जलविषै पिंड बांधनेकी हेतु ऐसी द्रवशक्ति है औ अग्निविषै दाहकी हेतुशक्ति है ॥**

९०) पवनविषै चलनकी हेतुरूप शक्ति प्रकाशकूं पावतीहै। इस कथनकरि अप्रगटदशामैं बी ब्रह्मविषै जगत्की सँत्ता दिखाई ॥ १६ ॥

---

९६ इहां यह रहस्य हैः— (१) नित्य (२) नैमित्तिक (३) प्राकृतिक औ (४) आत्यंतिक भेदतैं प्रलय च्यारीप्रकारका है ॥

(१) दीपशिखाकी न्यांई क्षणक्षणविषै सर्वपदार्थनका जो उत्पत्तिके अनंतर नाश होवैहै। सो **नित्यप्रलय** है। वा सुषुप्तिविषै सर्वपदार्थनका अविद्याविषै लय होवैहै। सो **नित्यप्रलय** है॥ औ

(२) सहस्र महायुग (चतुर्युग)परिमित ब्रह्मदेवके दिनके क्षय हुये प्राप्त सहस्रयुगनकी रात्रिरूप निमित्तकरि सर्वप्राणीनके शरीरसहित तीनलोकनका नाश होवैहै। सो **नैमित्तिकप्रलय** है॥ औ

(३) ब्रह्माके शतवर्षसैं पंचमहाभूत औ अहंकार औ महत्तत्त्वका अपनी उपादान प्रकृतिविषै लय होवैहै। सो **प्राकृतिकप्रलय** है॥ औ

(४) तत्त्वज्ञानकरि कारणसहित सर्वप्रपंचका जो बाध होवैहै सो **आत्यंतिकप्रलय** है। ताहीकूं **आत्यंतिक निवृत्ति** बी कहैहैं॥

(१–३) प्रथमके तीनप्रलयनविषै उपादानसहित कार्यका अभाव नहीं होवैहै। किंतु उपादानविषै कार्यकी संस्काररूपसैं स्थिति होवैहै। पुनः कालांतरमैं ताकी उत्पत्ति होवैहै। यातैं अज्ञानदृष्टिसैं अप्रगटदशा वा प्रगटदशामैं जगत्का सद्भाव है॥ औ

(४) चतुर्थप्रलयविषै उपादानसहित कार्यका नाश होवैहै। पुनः ताकी उत्पत्ति नहीं होवैहै। यातैं ज्ञानदृष्टिसैं अप्रगटदशा वा प्रगटदशामैं जगत्की सत्ता नहीं है। किंतु कारणसहित जगत्का तीनकालमैं अत्यंताभाव है॥

महानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: टीकांक: ५०९१ टिप्पणांक: ॐ

१३८३ शून्यशक्तिस्तथाकाशे नाशशक्तिर्विनाशिनि ।
यथाण्डेऽतर्महासर्पो जगदस्ति तथात्मनि ॥१७॥

फलपत्रलतापुष्पशाखाविटपमूलवान् ।
नतु बीजे यथा वृक्षस्तथेदं ब्रह्मणि स्थितम् १८

१३८४ क्वचित्काश्चित्कदाचिच्च तस्मादुद्यंति शक्तयः ।
१३८५ देशकालविचित्रत्वात्क्ष्मातलादिव शालयः ॥१९॥

९१] (शून्यशक्तिरिति)— तथा आकाशे शून्यशक्तिः विनाशिनि नाशशक्तिः ॥

९२ अनभिव्यक्तस्यापि सत्त्वे दृष्टांतमाह—

९३] यथा अंडे अंतः महासर्पः । तथा आत्मनि जगत् अस्ति ॥ १७ ॥

९४ विचित्रस्यापि तस्य सत्त्वे दृष्टांतमाह (फलेति)—

९५] यथा फलपत्रलतापुष्पशाखाविटपमूलवान् वृक्षः ननु बीजे । तथा इदं ब्रह्मणि स्थितम् ॥ १८ ॥

९६ ननु सर्वासामपि शक्तीनां युगपदेवाभिव्यक्तिः कुतो न स्यादित्याशंक्याह (क्वचिदिति)—

९७] देशकालविचित्रत्वात् क्वचित् च कदाचित् काश्चित् शक्तयः तस्मात् उद्यंति ॥

ॐ ९७) क्वचित् देशविशेषे। कदाचित् कालविशेषे । काश्चित् शक्त्यादयः ॥

९८ तासामयुगपदभिव्यक्तौ दृष्टांतमाह—

९९] क्ष्मातलात् शालयः इव ॥

९१] आकाशविषै पृथ्वीआदिजगत्के अभावकी प्रतीतिकी हेतु ऐसी शून्यशक्ति है औ विनाशीवस्तुविषै नाशशक्ति है ॥

९२ उत्पत्तितैं पूर्व अप्रगट जो जगत् । तिसके सद्भावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

९३] जैसैं अंडविषै महासर्प अप्रगट होवैहै । तैसैं परमात्माविषै जगत् संस्काररूप होनैंकरि अप्रगट है ॥ १७ ॥

९४ विचित्ररूप तिस जगत्के सद्भावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

९५] जैसैं फल पत्र वेली पुष्प शाखा विटप कहिये विस्तृतशाखा औ मूलवाला वृक्ष निश्चयकरि बीजविषै है । तैसैं यह विचित्ररूपवाला जगत् ब्रह्मविषै विद्यमान है ॥ १८ ॥

९६ ननु सर्वशक्तिनकी वी एकदेश वा कालविषैहीं प्रगटता काहेतैं नहीं होवैहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९७] देशकालकी विचित्रतातैं कहींक औ कदाचित् कोइक शक्तियां तिस ब्रह्मतैं उदय होवैहैं ॥

ॐ ९७) कहींक कहिये देशविशेषविषै औ कदाचित् कहिये कालविशेषविषै केइक शक्तिआदिक तिस ब्रह्मतैं प्रगट होवैहैं ॥

९८ तिन शक्तिनके एकहीं देश वा कालविषै आविर्भावके अभावविषै दृष्टांत कहैहैं:—

९९] पृथ्वीके तलतैं तंडुलनकी न्यांई ॥

टीकांकः ५१०० टिप्पणांकः ७९७	स आत्मा सर्वगो राम नित्योदितमहावपुः । यन्मनाङ् मननीं शक्तिं धत्ते तन्मन उच्यते २० आदौ मनस्तदनु बंधविमोक्षदृष्टी पश्चात्प्रपंचरचना भुवनाभिधाना । इत्यादिका स्थितिरियं हि गता प्रतिष्ठा- माख्यायिका सुभगबालजनोदितेव ॥ २१ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥१३॥ श्लोकांकः १३८६ १३८७

५१००) यथा भूमिगतानां सर्वेषां बीजानां मध्ये देशविशेषे कालविशेषे च केषांचिदेव बीजानां अंकुरोत्पत्तिः न सर्वेषां तद्वदित्यर्थः ॥ १९ ॥

१ इदानीं जगतः कल्पनामात्ररूपतां दर्शयितुं तत्कल्पकस्य मनसो रूपं तावद्दर्शयति (स इत्ति)—

२] **राम ! सर्वगः नित्योदितमहावपुः सः आत्मा यत् मनाक् मननीं शक्तिं धत्ते तत् मनः उच्यते ॥**

३) नित्योदितमहावपुः नित्यं सदा । उदितं प्रकाशमानं महद्देशकालादिपरिच्छेदरहितं । वपुः स्वरूपं यस्य स तथा । यत् यस्मिन्काले । मनाक् ईषत् । मननीं स्वपरावबोधनरूपां । शक्तिं मायापरिणामरूपां धत्ते धारयति । तत् तदा मनः इति उच्यते ॥ २० ॥

४ इदानीं कल्पनाप्रकारमाह—

५] **आदौ मनः । तदनु बंधविमोक्षदृष्टी । पश्चात् भुवनाभिधाना प्रपंच-**

५१००) जैसैं भूमिविषै स्थित सर्वबीजनके मध्यमैंसैं देशविशेषविषै औ कालविशेषविषै केइक बीजनके अंकुरनकी उत्पत्ति होवैहै। सर्व बीजनकी नहीं । तैसैं ब्रह्मविषै स्थित शक्तिनके मध्यमैंसैं देशकालके भेदकरि केइक शक्तिनका आविर्भाव होवैहै । सर्वका नहीं ॥ यैह अर्थ है ॥ १९ ॥

१ अब जगत्की कल्पनामात्ररूपताकूं दिखावनैकूं तिस जगत्के कल्पना करनैहारे मनके रूपकूं प्रथम दिखावैहैं:—

२] **हे राम ! सर्वगत औ नित्य उदित महत्स्वरूपवाला सो वर्णन किया शुद्ध-आत्मा जब किंचित् मननीशक्तिकूं धारताहै । तब मन कहियेहै ॥**

३) नित्य उदित नाम प्रकाशमान औ महत नाम देशकालादिपरिच्छेदसैं रहित है स्वरूप जिसका । ऐसा जो आत्मा सो जिस कालविषै किंचित् अपनैं औ अन्यके बोधनरूप मायाके परिणामरूप मननीशक्तिकूं धारताहै । तब मन ऐसैं कहियेहै ॥ २० ॥

॥ ९ ॥ जगत्की कल्पितताामैं वासिष्ठउक्त-धात्रीकी कथा ॥

४ अब कल्पनाके प्रकारकूं दिखावैहैं:—

५] **आदिविषै मन होवैहै । तिसके पीछे बंध औ मोक्षकी दृष्टियां होवैहैं औ पीछे भुवन इस नामवाली प्रपंच-**

---

९७ जैसैं पृथ्वीतलमैं विद्यमान अनेकविधबीजनका देशकालके भेदकरि उदय होवैहै । तैसैं ब्रह्मके आश्रित मायाशक्तिकें अंतर्गत अंशभूत अनंतशक्तियां हैं । वे देशकालके भेदकरि उदय होवैहैं औ कार्यद्वारा अनुमानसैं जानियेहै ।

मुमुक्षानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १३८८

बालस्य हि विनोदाय धात्री वक्ति शुभां कथाम्।
क्वचित्संति महाबाहो राजपुत्रास्त्रयः शुभाः॥२२॥

टीकांक: ५१०६ टिप्पणांक: ७९८

रचना । इत्यादिका इयं स्थितिः प्रतिष्ठां हि गता ॥

६) आदौ प्रथमं । मननशक्त्युल्लासेन मनः भवति। तदनु तदनंतरं। बंधविमोक्षदृष्टी बंधविमोक्षकल्पने भवतः । पश्चात् अनंतरं । बंधदृष्टावेव भुवनाभिधाना भुवनमित्यभिधानं यस्याः सा भुवनाभिधाना। प्रपंचरचना प्रपंचस्य गिरिनगरीसरित्समुद्रादे रचना। कल्पनं भवति इत्यादिका एवंप्रकारा इयं जगतः स्थितिः प्रतिष्ठां स्थैर्यं। गता प्राप्ता ॥

७ कल्पितस्यापि वास्तवत्वप्रतीतौ दृष्टांतमाह (आख्यायिकेति)—

८] सुभगबालजनोदिता आख्यायिका इव ॥

९) बालजनाय उदिता उक्ता । आख्यायिका कथा। यथा वास्तवत्वबुद्धिं गता तथेदं जगदित्यर्थः ॥ २१ ॥

१० तामेव वासिष्ठस्थां कथां कथयति—

११] बालस्य हि विनोदाय धात्री शुभां कथां वक्ति। महाबाहो! क्वचित् त्रयः शुभाः राजपुत्राः संति ॥ २२ ॥

की रचना होवैहै। इत्यादिक यह जगत्की स्थिति प्रतिष्ठाकूं प्राप्त भई है ॥

६) आदिविषै मननशक्तिके उल्लासकरि मन होवैहै । तिस मनके अनंतर बंध औ मोक्षकी दृष्टि नाम कल्पना होवैहै औ पीछे बंधकी दृष्टिविषैहीं भुवन जो चतुर्दशलोक सो है नाम जिसका । ऐसी गिरिनगरी नदी समुद्र आदिकप्रपंचकी रचना नाम कल्पना होवैहै । इत्यादिक नाम ईसप्रकारवाली यह जगत्की स्थिति प्रतिष्ठाकूं नाम वास्तवताकी प्रतीतिकूं प्राप्त भईहै ॥

७ कल्पितप्रपंचके वास्तवताकी प्रतीतिविषै दृष्टांत कहैहैं:—

८] सुंदरबालकजनकेअर्थ कही आख्यायिकाकी न्याईं ॥

९) जैसैं बालकजनके समुजावनैंअर्थ कथनकरी आख्यायिका जो कथा सो वास्तवताकी बुद्धिकूं प्राप्त भई । तैसैं यह जगत् अज्ञजनोंकूं वास्तवताकी बुद्धिकूं प्राप्त भयाहै। यैह अर्थ है ॥ २१ ॥

१० तिसीहीं वासिष्ठग्रंथके तृतीय उत्पत्तिप्रकरणविषै स्थित कथाकूं कथन करैहैं:—

११] बालकके विनोदअर्थ धात्री जो है सो शुभ नाम मनोरंजक कथाकूं कहतीहै:– हे महाबाहो! कोईक देशविषै तीन सुंदरराजपुत्र हैं ॥ २२ ॥

---

९८ इहां मनशब्दकरि समष्टिमनरूप हिरण्यगर्भका ग्रहण है । सो प्रथम होवैहै । पीछे बंध औ मोक्षकी प्रतीति होवैहै । पीछे बंधप्रतीतिके विषय प्रपंचरूप बंधकी रचना होवैहै ॥ तिस बंधकी अपेक्षाकरि मोक्षप्रतीतिके विषय मोक्षकी कल्पना अर्थसैं सिद्ध होवैहै औ आदिशब्दकरि जगत्के अंतर्गत अनेककल्पना होवैहैं ॥

९९ जैसैं धात्रीनैं असत्पनैंके अभिप्रायसैं आरोपकरि कही जो कथा । सो बालककी बुद्धिमैं सत्यकी न्याईं प्रतीत भईहै । तैसैं विद्वान्‌करि संमत श्रुतिनैं असत्पनैंके अभिप्रायसैं आरोपकरिके कह्याहै जो जगत् । सो अज्ञानीकी बुद्धिमैं सत्यकी न्याईं प्रतीत भयाहै । परंतु कछू बी नहीं है ॥ यह भाव है ॥

टीकांक: ५११२ टिप्पणांक: ॐ		ब्रह्मानंदे अद्वैतानंद: ॥ १३ ॥ श्लोकांक:
	[12] द्वौ न जातौ तथैकस्तु गर्भ एव न च स्थितः । वसंति ते धर्मयुक्ता अत्यंतासति पत्तने ॥ २३ ॥	1389
	[13] स्वकीयाच्छून्यनगरान्निर्गत्य विमलाशयाः । गच्छंतो गगने वृक्षान्ददृशुः फलशालिनः ॥२४॥	1390
	[14] भविष्यन्नगरे तत्र राजपुत्रास्त्रयोऽपि ते । सुखमद्य स्थिताः पुत्र मृगयाव्यवहारिणः ॥ २५ ॥	1391
	[15] धात्र्येति कथिता राम बालकाख्यायिका शुभा । निश्चयं स ययौ बालो निर्विचारणया धिया॥२६॥	1392

१२] द्वौ जातौ न। तथा एकः तु गर्भे एव च स्थितः न। ते धर्मयुक्ताः अत्यंतासति पत्तने वसंति ॥ २३ ॥

१३] (स्वकीयादिति)— विमलाशयाः स्वकीयात् शून्यनगरात् निर्गत्य गच्छंतः गगने फलशालिनः वृक्षान् ददृशुः ॥ २४ ॥

१४] (भविष्यदिति)— पुत्र! ते त्रयः अपि राजपुत्राः अद्य मृगयाविहारिणः तत्र भविष्यन्नगरे सुखं स्थिताः ॥ २५ ॥

१५](धात्र्येति)—राम! इति धात्र्या शुभा बालकाख्यायिका कथिता। सः बालः निर्विचारणया धिया निश्चयं ययौ ॥ २६ ॥

१२] तिनविषै दोनूंराजपुत्र जन्मकूं पाये नहीं औ एक तौ गर्भविषै बी स्थित भया नहीं। सो धर्मयुक्त तीनराजपुत्र अत्यंतअसतनगरविषै वसतेहैं ॥ २३ ॥

१३] विमल कहिये अभ्रांत हैं आशय नाम अंतःकरण जिनके ऐसैं जो राजपुत्र। सो अपनैं शून्यनगरतैं निकसिके जातेहुये आकाशविषै फलयुक्त वृक्षनकूं देखतेभये ॥ २४ ॥

१४] हे पुत्र! सो तीनौं वी राजपुत्र अब मृगया कहिये शशशृंगके धनुषसैं शिकारकरि व्यवहार करतेहुये तहां भविष्यत् नाम आगे होनैंहारे नगरविषै सुखसैं स्थित हैं ॥ २५ ॥

१५] हे राम! ऐसैं धात्रीनैं जब सुंदरबालकनकी आख्यायिका कथन करी। तब सो बालक विचाररहित मूढबुद्धिकरि निश्चयकूं प्राप्तभया॥२६॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक:

टीकांक: ५११६

टिप्पणांक: ॐ

१७ इयं संसाररचना विचारोज्झितचेतसाम् ।
बालकाख्यायिकेवेत्थमवस्थितिमुपागता ॥ २७ ॥ १२९३

१९ इत्यादिभिरुपाख्यानैर्मायाशक्तेश्च विस्तरम् ।
वसिष्ठः कथयामास २१ सैव शक्तिर्निरूप्यते ॥ २८ ॥ १२९४

२२ कार्यादाश्रयतश्चैषा भवेच्छक्तिर्विलक्षणा ।
२४ स्फोटांगारौ दृश्यमानौ शक्तिस्तत्रानुमीयते ॥ २९ ॥ १२९५

१६ दृष्टांतसिद्धमर्थं दार्ष्टांतिके योजयति (इयमिति)—

१७] इत्थं इयं संसाररचना विचारोज्झितचेतसां बालकाख्यायिका इव अवस्थितिं उपागता ॥ २७ ॥

१८ वसिष्ठोक्तमुपसंहरति—

१९] इत्यादिभिः उपाख्यानैः मायाशक्तेः च विस्तरं वसिष्ठः कथयामास ॥

२० एवं मायासद्भावे प्रमाणमुपन्यस्य तस्या अनिर्वचनीयत्वं वक्तुं प्रतिजानीते—

२१] सा एव शक्तिः निरूप्यते ॥ २८

२२] (कार्यादिति)— एषा शक्तिः कार्यात् च आश्रयतः विलक्षणा भवेत् ॥

२३) एषा मायाशक्तिः कार्यात् स्वकार्यभूताज्जगतः । आश्रयतः स्वाश्रयात् ब्रह्मणश्च । विलक्षणा विपरीतस्वभावा भवेत् ॥

२४ मायाशक्तेः कार्यादाश्रयतो वैलक्षण्यं दृष्टांतेन स्पष्टयति—

॥ ६ ॥ दृष्टांतसिद्धअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

१६ दृष्टांतविषै सिद्धअर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडतेहैं:—

१७] ऐसें यह परिदृश्यमानसंसारकी रचना विचारसैं रहित चित्तवाले पुरुषनकूं बालकनके आख्यायिकाकी न्यांई चित्तविषै आरूढताकूं प्राप्त भई-है ॥ २७ ॥

॥ ७ ॥ वासिष्ठउक्तकी समाप्ति औ मायाके अनिर्वचनीयपनैंके कथनकी प्रतिज्ञा ॥

१८ वसिष्ठउक्तअर्थकूं समाप्त करैहैं:—

१९] इनसैं आदिलेके उपाख्याननकरि मायाशक्तिके विस्तारकूं वसिष्ठजी कहतेभये ॥

२० ऐसैं मायाके सद्भावविषै श्रुतिस्मृतिरूप प्रमाणकूं कहिके । अब तिस शक्तिके अनिर्वचनीयपनैंके कहनैंकूं प्रतिज्ञा करैहैं:—

२१] सोई शक्ति निरूपण करियेहै ॥ २८ ॥

॥ ८ ॥ दृष्टांतसहित मायाकी जगत्‌रूप कार्य औ ब्रह्मरूप आश्रयतैं विलक्षणता ॥

२२] यह शक्ति कार्यतैं औ आश्रयतैं विलक्षण है ॥

२३) यह मायाशक्ति अपनैं कार्यरूप जगत्‌तैं औ अपनैं आश्रय ब्रह्मतैं विपरीतस्वभाववाली होवैहै ॥

२४ मायाशक्तिकी कार्यतैं औ आश्रयतैं जो विलक्षणता है। ताकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं:—

टीकांक: ५१२५ टिप्पणांक: ८००	पृथुबुध्नोदराकारो घटः कार्योऽत्र मृत्तिका । शब्दादिभिः पंचगुणैर्युक्ता शक्तिस्त्वतद्विधा ॥ ३० ॥ न पृथ्वादिर्न शब्दादिः शक्तावस्तु यथा तथा । अत एव ह्यचिंत्यैषा न निर्वचनमर्हति ॥ ३१ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १३९६ १३९७

२५] स्फोटांगारौ दृश्यमानौ तत्र शक्तिः अनुमीयते ॥

२६) वह्निगतशक्तेः कार्यरूपः स्फोटः आश्रयरूपोऽगारः च प्रत्यक्षगम्यौ शक्तिः तु कार्यानुमेया अतस्ताभ्यां सा विलक्षणेत्यर्थः ॥ २९ ॥

२७ उक्तन्यायं मृच्छक्तावपि योजयति—

२८] पृथुबुध्नोदराकारः घटः कार्यः। शब्दादिभिः पंचगुणैः युक्ता मृत्तिका। अत्र शक्तिः तु अतद्विधा ॥

२९) यः पृथुबुध्नोदराकारः पृथु स्थूलं बुध्नं वर्तुलमुदरं यस्य सः पृथुबुध्नोदरः। तथाविध आकारो यस्य सः पृथुबुध्नोदराकारः। तादृक् घटः कार्यः। शब्दस्पर्शरूपरसगंधाख्यपंचगुणोपेता मृत्तिका आश्रयः। शक्तिः तु अतद्विधा उभयविलक्षणा। इत्यर्थः ॥ ३०

३० वैलक्षण्यमेवाह (न पृथ्वादिरिति)-

३१] शक्तौ पृथ्वादिः न। शब्दादिः न

ॐ ३१) शक्तौ पृथुत्वादिकार्यधर्मो नास्ति।

२५] फूला अरु अंगार दोनूं दृश्यमान हैं औ तिनविषै शक्ति अनुमानसैं जानियेहै ॥

२६) अग्निगतशक्तिका कार्यरूप स्फोट औ आश्रयरूप अंगार। ये दोनूं प्रत्यक्षप्रमाकरि जाननैंकूं योग्य हैं औ शक्ति तौ कार्यरूप लिंगकरि अनुमानका विषय है। यातैं तिन कार्य औ आश्रय दोनूंतैं विलक्षण है। यह अर्थ है ॥ २९ ॥

॥ ९ ॥ श्लोक २९ उक्त रीतिकी मृत्तिकाकी शक्तिमैं योजना ॥

२७ अग्निकी शक्तिविषै कथन करी रीतिकूं मृत्तिकाकी शक्तिविषै बी जोडतेहैं:—

२८] पृथुबुध्नोदरआकारवाला घट कार्य है अरु शब्दादिकपंचगुणनकरि युक्त मृत्तिका आश्रय है। इनविषै शक्ति तौ तिस प्रकारकी नहीं है ॥

२९) स्थूल औ बुध्न कहिये गोल है उदर जिसका। सो कहिये पृथुबुध्नोदर ॥ तिसप्रकारका स्थूल अरु गोलउदरवान् है आकार जिसका। ऐसा जो घट सो कार्य है अरु शब्दस्पर्शरूपरस इन नामवाले पंचगुणनकरि युक्त जो मृत्तिका। सो आधार है औ [८००]शक्ति तो तिस प्रकारकी नहीं कहिये दोनूंसैं विलक्षण है। यह अर्थ है ॥ ३० ॥

॥ १० ॥ मृत्तिकाकी शक्तिमैं कार्य औ आश्रयतैं विलक्षणतापूर्वक ताकी अनिर्वचनीयता ॥

३० घटरूप कार्य औ मृत्तिकारूप आश्रयतैं शक्तिकी विलक्षणताकूंहीं कहैहैं:—

३१] शक्तिविषै पृथुआदि नहीं है औ शब्दादि नहीं है ॥

ॐ ३१) शक्तिविषै स्थूलआदिकरूप

---

८०० शक्ति जातैं स्थूलगोलआकारयुक्त उदरवाली नहीं है। यातैं घटरूप कार्यतैं विलक्षण है औ शब्दादिगुणनकरि युक्त नहीं है। यातैं मृत्तिकारूप आधारतैं बी विलक्षण है। याहीतैं अनिर्वचनीय है ॥

महानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १३९८

कार्योत्पत्तेः पुरा शक्तिर्निगूढा मृद्यवस्थिता ।
कुलालादिसहायेन विकाराकारतां व्रजेत् ॥३२॥

टीकांकः ५१३२ टिप्पणांकः ॐ

शब्दादिकः आश्रयधर्मोऽपि न विद्यते । अतो विलक्षणेत्यर्थः ॥

३२ तर्हि सा कीदृशीत्यत आह (अस्त्विति)—

३३] **यथा तथा अस्तु ॥**

३४ "यथा तथा" इत्युक्तमेवार्थं स्पष्टयति (अत इति)—

३५] **हि अतः एव एषा अचिंत्या ॥**

३६) यतः कार्यादाश्रयतश्च विलक्षणा अत एवैषा अचिंत्या चिंतितुमशक्या ॥

३७ ननु तर्हि अचिंत्यत्वमेव तस्याः स्वरूपं स्यादित्याशंक्याह (नेति)—

३८] **निर्वचनं न अर्हति ॥**

३९) भेदेनाभेदेनाचिंत्यत्वादिना वा येन केनापि रूपेण निर्वचनं नार्हति इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

४० ननु कारणस्वरूपातिरिक्ता शक्तिः यद्यस्ति तर्हि कारणस्वरूपमिव सा कुतो नावभासत इत्याशंक्याह (कार्योत्पत्तेरिति)—

४१] **शक्तिः कार्योत्पत्तेः पुरा मृदि निगूढा अवस्थिता ॥**

ॐ४१) **मृच्छक्तिः घटादिकार्योत्पत्तेः पूर्वं मृदि निगूढा** अवतिष्ठते । अतो नावभासते इत्यर्थः ॥

४२ निगूढत्वे उपरिष्टादपि न तस्या अभिव्यक्तिः स्यादित्याशंक्यानभिव्यक्तस्यापि

कार्यका धर्म वी नहीं है औ शब्दादिरूप आश्रयका धर्म वी नहीं है । यातैं शक्ति दोनूंसैं विलक्षण है । यह अर्थ है ॥

३२ तब सो शक्ति कैसी है ? तहां कहैहैं:—

३३] **सो शक्ति जैसी तैसी होहु ॥**

३४ "जैसी तैसी होहु" ऐसैं कथन किये अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

३५] **याहीतैं यह अचिंत्य है ॥**

३६) जातैं कार्यतैं औ आश्रयतैं विलक्षण है । याहीतैं यह शक्ति चिंतन करनैकूं अशक्य है ॥

३७ ननु तब अचिंत्यपनाहीं तिस शक्तिका स्वरूप होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३८] **निर्वचनकूं योग्य नहीं होवैहै ॥**

३९) शक्ति भेदकरि वा अभेदकरि वा अचिंत्यआदिकवाक्यकरि किसी वी रूपसैं कहनैकूं योग्य नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥ ३१ ॥

॥ ११ ॥ कार्यतैं पूर्व शक्तिकी गूढता औ कार्यरूपसैं प्रकटता ॥

४० ननु घटके हेतु मृत्तिकाके स्वरूपतैं भिन्न जब शक्ति है । तब मृत्तिकारूप कारणके स्वरूपकी न्यांई काहेतैं नहीं भासतीहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४१] **शक्ति । कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्व मृत्तिकाविषै गूढ हुई स्थित है ॥**

ॐ ४१) मृत्तिकाकी शक्ति घटादिकार्यकी उत्पत्तितैं पूर्व मृत्तिकाविषै गूढ हुई स्थित है। यातैं नहीं भासतीहै । यह अर्थ है ॥

४२ ननु शक्तिकूं गूढपनैंके हुये कार्यकी उत्पत्तितैं अनंतर वी तिस शक्तिकी प्रगटता नहीं होवैगी । यह आशंकाकरि अप्रगट जो माखनआदिक । तिनकी मथनआदिक-

टीकांकः ५१४३ टिप्पणांकः ॐ

पृथुत्वादिविकारांतं स्पर्शादिं चापि मृत्तिकाम्।
एकीकृत्य घटं प्राहुर्विचारविकला जनाः ॥ ३३ ॥
कुलालव्यापृतेः पूर्वो यावानंशः स नो घटः।
पश्चात्तु पृथुबुध्नादिमत्त्वे युक्ता हि कुंभता ॥ ३४ ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥१३॥ श्लोकांकः १३९९ १४००

नवनीतादेर्मथनादिनेव कुलालादिव्यापारेण तस्या अभिव्यक्तिः स्यादित्याह—

४३] कुलालादिसहायेन विकाराकारतां व्रजेत् ॥

४४) आदिशब्देन दंडचक्रादयो गृह्यंते ३२

४५ ननु कारणातिरिक्तस्य शक्तिकार्यस्य सत्त्वे कार्यकारणयोर्भेदो न कुतोऽवभासते इत्याशंक्य भेदप्रतीतिहेतोः विचारस्याभावादित्याह (पृथुत्वादीति)—

४६] विचारविकलाः जनाः पृथुत्वादिविकारांतं च स्पर्शादिं मृत्तिकां अपि एकीकृत्य "घटं" प्राहुः ॥

४७) अविवेकिनो जनाः पृथुबुध्नत्वादिरूपं कार्यं शब्दस्पर्शादिगुणरूपां कारणभूतां मृत्तिकां चाविचारत एकीकृत्य "घट" इत्याचक्षते ॥ ३३ ॥

४८ उक्तस्य घटव्यवहारस्याविचारमूलत्वं कुत इत्याशंक्याह—

४९] कुलालव्यापृतेः पूर्वः यावान् अंशः सः घटः नो ॥

उपायकरि प्रगटताकी न्यांई कुलालआदिकके व्यापारकरि तिस शक्तिकी प्रगटता होवैगी। ऐसैं कहैहैं:—

४३] कुलालआदिकके सहायकरि शक्ति। विकार जो घटादिक ताके आकारताकूं पावतीहै ॥

४४) इहां आदिशब्दकरि दंडचक्रआदिक ग्रहण करियेहैं ॥ ३२ ॥

॥ ३ ॥ शक्तिके कार्यकी अनिर्वचनीयताका निरूपण ॥

॥ ५१४५—५२४० ॥

॥ १ ॥ अविचारतैं घटरूप कार्य औ मृत्तिकारूप कारणके अभेदकी प्रतीति ॥

४५ ननु उपादानतैं भिन्न शक्तिके कार्यके सद्भाव हुये कार्यकारणका भेद काहेतैं नहीं भासताहै? यह आशंकाकरि भेदप्रतीतिके हेतु विचारके अभावतैं कार्यकारणका भेद नहीं भासताहै। ऐसैं कहैहैं:—

४६] विचारसैं रहित जो जन हैं। सो पृथुपनैआदिकरूप विकारपर्यंत कार्यकूं औ स्पर्शादिकरूप मृत्तिकाकूं बी एककी न्यांई करीके "घट" कहतेहैं ॥

४७) अविवेकी जन जो हैं। सो स्थूलगोलपनैआदिरूप कार्यकूं औ शब्दस्पर्शादिगुणरूप कारणभूत मृत्तिकाकूं अविचारतैं एककी न्यांई करीके "घट" ऐसैं कहतेहैं ॥ ३३ ॥

॥ २ ॥ श्लोक ३३ उक्त अर्थका संभव ॥

४८ श्लोक ३३ उक्त घटके व्यवहारकी अविचाररूप कारणवान्‌ता काहेतैंहै? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

४९] कुलालके व्यापारतैं पूर्व जितना अंश है। सो घट नहीं है ॥

महानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४०१ १४०२	⁵⁵सैं घटो न मृदो भिन्नो वियोगे सत्यनीक्षणात् । नाप्यभिन्नः पुरा पिंडदशायामनवेक्षणात् ॥३५॥ ⁵⁷अंतोऽनिर्वचनीयोऽयं शक्तिवत्तेन शक्तिजः । ⁵⁸अंव्यक्तत्वे शक्तिरुक्ता व्यक्तत्वे घटनामभृत्॥३६॥	टीकांक: ५१५० टिप्पणांक: ॐ

५०) कुलालव्यापारात्पूर्वभाविनो मृदंशस्याघटस्य घटत्वेन व्यवहारादविचारमूलत्वं तस्येति भावः ॥

५१ कस्य तर्हि घटत्वमित्यत आह—

५२] पश्चात् पृथुबुध्नादिमत्त्वे तु कुंभता युक्ता हि ॥

५३) कुलालव्यापारानंतरं भाविनः पृथुबुध्नोदराकारस्यैव घटशब्दवाच्यत्वमुचितं तदुत्पत्त्यनंतरमेव घटशब्दप्रयोगदर्शनादिति भावः ३४

५४ ननु पारमार्थिकस्य घटस्यानिर्वचनीयशक्तिकार्यत्वमयुक्तमित्याशंक्य घटस्यापि पारमार्थिकत्वमसिद्धं इत्याह—

५५] सः घटः मृदः भिन्नः न । वियोगे सति अनीक्षणात् । अभिन्नः अपि न । पुरा पिंडदशायां अनवेक्षणात् ॥

५६) घटो मृदः पृथक्कृत्य द्रष्टुमशक्यत्वान्न मृदो भिद्यते । नापि मृदेव पिंडावस्थायामनुपलभ्यमानत्वात् ॥ ३५ ॥

५७] अतः शक्तिवत् अयं अनिर्वचनीयः ॥

ॐ ५७) अतः शक्तिवदनिर्वचनीय एव घटः ॥

---

५०) कुलालके व्यापारतैं पूर्व होनेंहारे अघटरूप मृत्तिकाके अंशका घटपनेंकरि व्यवहारतैं । तिस घटपनेंके व्यवहारकूं अविचाररूप मूलवानता है । यह भाव है ॥

५१ तब किस अंशकूं घटपना है? तहां कहैहैं:—

५२] पीछेसैं पृथुबुध्नआदिधर्मवान्‌ताके हुये तौ घटपना युक्त है ॥

५३) कुलालके व्यापारसैं अनंतर स्थूलगोलउदररूप आकारकूंहीं घटशब्दकी वाच्यता उचित है। काहेतैं तिस उक्तआकारकी उत्पत्तिके अनंतरहीं घटशब्दके उच्चारणरूप व्यवहारके देखनैतैं ॥ यह भाव है ॥ ३४ ॥

॥ ३ ॥ घटकी वास्तवताकी असिद्धि ॥

५४ ननु वास्तव जो घट ताकूं अनिर्वचनीय शक्तिका कार्यपना अयुक्त है । यह आशंकाकरि घटका बी पारमार्थिकपना असिद्ध है । ऐसैं कहैहैं:—

५५] सो घट मृत्तिकातैं भिन्न नहीं है । काहेतैं वियोग कियेहुये कहिये मृत्तिकासैं भिन्न कियेहुये घटके न देखनैतैं औ सो घट मृत्तिकातैं अभिन्न मृत्तिकारूप बी नहीं है । काहेतैं पूर्व पिंडदशाविषै घटके न देखनैतैं ॥

५६) घट जो है । सो मृत्तिकातैं भिन्नकरि देखनैंकूं अशक्य होनैतैं मृत्तिकातैं भेदकूं पावता नहीं औ मृत्तिकारूप बी घट नहीं है। काहेतैं पिंडअवस्थाविषै अप्रतीयमान होनैतैं ३५

॥ ४ ॥ शक्तिकी न्यांई घटकी अनिर्वचनीयता औ हेतुसहित फलित ॥

५७] यातैं शक्तिकी न्यांई यह घट अनिर्वचनीयहीं है ॥

ॐ ५७) यातैं शक्तिकी न्यांई अनिर्वचनीयहीं घट है ॥

टीकांक: ५१५८ टिप्पणांक: ॐ	ऐंद्रजालिकनिष्ठापि माया न व्यज्यते पुरा । पश्चाद्गंधर्वसेनादिरूपेण व्यक्तिमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ एवं मायामयत्वेन विकारस्यानृतात्मताम् । विकाराधारमृद्वस्तुसत्यत्वं चाब्रवीच्छ्रुतिः ॥ ३८ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४०३ १४०४

५८ फलितमाह—

५९] **तेन शक्तिजः ॥**

६० ननु शक्तिकार्ययोरुभयोरपि अनिर्वचनीयत्वे शक्तिः कार्यं चेति भेदव्यवहारः कुत इत्यत आह—

६१] **अव्यक्तत्वे शक्तिः उक्ता व्यक्तत्वे घटनामभृत् ॥ ३६ ॥**

६२ पूर्वमनभिव्यक्ता मायाशक्तिः पश्चादभिव्यज्यत इत्येतन्न प्रसिद्धं मायास्वरूपं लभ्यत इत्याशंक्याह—

६३] **ऐंद्रजालिकनिष्ठा माया अपि पुरा न व्यज्यते । पश्चात् गंधर्वसेनादिरूपेण व्यक्तिं आप्नुयात् ॥**

ॐ ६३) पुरा मणिमंत्रादिप्रयोगात्पूर्वं ३७

६४ शक्तिकार्यस्य घटादेरनृतत्वं शक्त्याधारस्य मृदादेः सत्यत्वमित्येतच्छांदोग्यश्रुतावप्यभिहितमित्याह—

६५] **एवं मायामयत्वेन विकारस्य अनृतात्मतां च विकाराधारमृद्वस्तुसत्यत्वं श्रुतिः अब्रवीत् ॥**

६६) **मायामयत्वेन** मायाकार्यत्वेन । **विकारस्य** कार्यरूपस्य घटादेः । **अनृता-**

---

५८ फलितकूं कहैहैं:—

५९] **तिस हेतुकरि शक्तिसैं जन्य घट शक्तिका कार्य है ॥**

६० ननु शक्ति औ कार्य दोनूंकूं वी अनिर्वचनीयताके हुये "शक्ति औ कार्य" यह भेदव्यवहार काहेतैं है? तहां कहैहैं:—

६१] **अप्रगटपनैंके हुये शक्ति कहीहै औ प्रगटपनैंके हुये घट नामका धारनैंहारा कहियेहै ॥ ३६ ॥**

॥ ९ ॥ पूर्व शक्तिकी अप्रगटता औ पीछे प्रगटतामैं दृष्टांत (इंद्रजालकी माया) ॥

६२ ननु पूर्व अप्रगट जो मायाशक्ति सो पीछे प्रगट होवैहै । ऐसा यह प्रसिद्ध मायाका स्वरूप नहीं देखियेहै । तहां कहैहैं:—

६३] **इंद्रजालसंबंधी माया वी पूर्व प्रगट नहीं होवैहै । पीछे गंधर्वसेना-आदिकरूपसैं प्रगटताकूं पावतीहै ॥**

ॐ ६३) पूर्व कहिये मणि अरु मंत्रआदिकके प्रयोगतैं प्रथम ॥ ३७ ॥

॥ ६ ॥ शक्तिके कार्यका मिथ्यापना औ आधारकी सत्यतामैं छांदोग्यश्रुति ॥

६४ शक्तिके कार्य घटका मिथ्यापना है औ शक्तिके आधार मृत्तिकाआदिकका सत्यपना है । यह छांदोग्यश्रुतिविषै वी कह्याहै । ऐसैं कहैहैं:—

६५] **ऐसैं मायामय होनैंकरि विकारकी अनृतरूपताकूं औ विकारके आधार मृत्तिकारूप वस्तुकी सत्यताकूं श्रुति कहतीभई ॥**

६६) मायाका कार्य होनैंकरि कार्यरूप घटादिविकारके मिथ्यापनैंकूं औ घटादिकन-

महानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४०५ १४०६	६८वाङ्निष्पाद्यं नाममात्रं विकारो नास्य सत्यता । स्पर्शादिगुणयुक्ता तु सत्या केवलमृत्तिका ॥३९॥ ७१व्यक्ताव्यक्ते तदाधार इति त्रिष्वाद्ययोर्द्वयोः । पर्यायः कालभेदेन तृतीयस्त्वनुगच्छति ॥ ४० ॥	टीकांकः ५१६७ टिप्पणांकः ॐ

त्मतां मिथ्यात्वं । विकाराणां घटादीनामाधारभूतायाः मृदः सत्यत्वं "वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इत्यादिश्रुतिः उक्तवतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

६७ इदानीं "वाचारंभणम्" इत्याद्युदाहृतं वाक्यमर्थतः पठति—

६८] वाङ्निष्पाद्यं विकारः नाममात्रं । अस्य सत्यता न । स्पर्शादिगुणयुक्ता तु केवलमृत्तिका सत्या ॥

६९) वागिंद्रियेणोच्चार्यं नाममात्रं नामैव अस्य घटादेर्न सत्यता न नामातिरेकेण पारमार्थिकं रूपमस्ति । किंतु तदाधारभूता मृदेव सत्या इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

७० शक्तितत्कार्ययोरनृतत्वे तदाधारस्य सत्यत्वे च कारणमाह—

७१] व्यक्ताव्यक्ते तदाधारः इति त्रिषु आद्ययोः द्वयोः कालभेदेन पर्यायः तृतीयः तु अनुगच्छति ॥

७२) व्यक्तः घटादिलक्षणः कार्यः । अव्यक्ता तत्कारणभूता शक्तिः ते व्यक्ता-

---

विकारकी आधाररूप मृत्तिकाकी सत्यताकूं "वाणीसैं कथन किया घटादिकविकार नाममात्र है औ मृत्तिकामात्रहीं सत्य है" यह छांदोग्यउपनिषद्की श्रुति कहतीभई । यह अर्थ है ॥ ३८ ॥

॥ ७ ॥ "वाणीसैं उच्चार किया विकार नाममात्र है औ मृत्तिका सत्य है" इस श्रुतिका अर्थतैं पठन ॥

६७ अब "वाणीसैं आरंभ किया" इस ३८ वें श्लोकविषै उदाहरण किये श्रुतिवाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैंः—

६८] वाणीसैं उच्चारण किया विकार नाममात्र है ॥ इस विकारकी सत्यता नहीं है औ स्पर्शादिगुणनकरि युक्त केवलमृत्तिकाहीं सत्य है ॥

६९) वाक्इंद्रियकरि उच्चारण किया विकार नाममात्र कहिये नामहीं है ॥ इस घटादिककी सत्यता कहिये नामसैं भिन्न पारमार्थिकस्वरूपता नहीं है । किंतु तिस घटादिककी आधारभूत मृत्तिकाहीं सत्य है ॥ यह अर्थ है ॥ ३९ ॥

॥ ८ ॥ शक्ति औ ताके कार्यकी अनृततामैं औ आधारकी सत्यतामैं कारण ॥

७० शक्ति औ तिसके कार्यके अनृतपनैंविषै औ तिन शक्ति औ कार्यके आधारके सत्यपनैंविषै कारण कहैहैंः—

७१] व्यक्त अव्यक्त औ तिन व्यक्तअव्यक्तका आधार । इन तीनविषै आदि दोनूंका कालके भेदकरि पर्याय होवैहै औ तृतीयआधार तौ अनुगत होवैहै ॥

७२) व्यक्त जो घटादिरूप कार्य औ अव्यक्त जो तिन घटादिकनकी कारणरूप शक्ति औ तिन व्यक्त अरु अव्यक्तरूप कार्य

टीकांक: ५१७३ टिप्पणांक: ॐ	७४ निस्तत्त्वं भासमानं च व्यक्तमुत्पत्तिनाशभाक् । तदुत्पत्तौ तस्य नाम वाचा निष्पाद्यते नृभिः॥४१॥ ७७ व्यक्ते नष्टेऽपि नामैतन्नृवक्त्रेष्वनुवर्तते । ८० तेन नाम्ना निरूप्यत्वाद्व्यक्तं तद्रूपमुच्यते ॥ ४२ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥१३॥ श्लोकांक: १४०७ १४०८

व्यक्ते। तदाधारः तयोराधारभूता मृत्तिका इति एतेषु त्रिषु मध्ये आद्ययोः प्रथमोद्दिष्टयोः। द्वयोः कार्यशक्त्योः संबंधिनौ यौ कालौ तयोः भेदेन भेदस्य विद्यमानत्वात्। पर्यायः क्रमेण भवनं। तृतीयः तदुभयाधारः तु मृदादिः अनुगच्छति उभयत्रानुवर्तते॥ अयं भावः। शक्तिकार्ययोः कादाचित्कत्वादनृतत्वमाधारस्य तु कालत्रयानुगामित्वात् सत्यत्वमिति ॥ ४० ॥

७३ इदानीं विकारस्यैवासत्यत्वे हेतुत्रयमाह (निस्तत्त्वमिति)–

७४] व्यक्तं निस्तत्त्वं भासमानं च उत्पत्तिनाशभाक् तदुत्पत्तौ नृभिः तस्य नाम वाचा निष्पाद्यते ॥

७५) व्यक्तं व्यक्तशब्दवाच्यं घटादिकार्यं स्वरूपेण असदेवावभासते तथोत्पत्तिविनाशवदुपलभ्यते । उत्पत्त्यनंतरं वागिंद्रियजन्यनामात्मकत्वेन व्यवह्रियते च ॥ ४१ ॥

७६ किं च—

७७] व्यक्ते नष्टे अपि एतत् नाम नृवक्त्रेषु अनुवर्तते ॥

७८) व्यक्ते कार्यस्वरूपे । नष्टेऽपि एतत् कार्यादभिन्नं नाम नृवक्त्रेषु नृणां शब्दप्रयोक्तॄणां मनुष्याणां वदनेषु । अनुवर्तते ॥

औ शक्तिकी आधारभूत मृत्तिका। इन तीनूंविषै प्रथम कथन किये दोनूं कार्य औ शक्तिके संबंधी जे काल हैं। तिनके भेदके विद्यमान होनैंकरि पर्याय कहिये क्रमकरि होना है औ तृतीय जो तिन दोनूंकी आधार मृत्तिका है। सो तौ अनुगत कहिये दोनूंविषै अनुवर्तमान होवैहै ॥ याका यह भाव है:–शक्ति औ कार्यकूं किसी एककालविषै होनैंहारे होनैंतैं अनृतपना है औ आधारकूं तौ तीनकालविषै वर्त्तमान होनैंतैं सत्यपना है ॥ ४० ॥

॥ ९ ॥ कार्यरूप विकारकी असत्यतामैं तीनहेतु ॥

७३ अब कार्यकी असत्यताविषै तीनहेतुनकूं कहैहैं:—

७४] व्यक्त जो है सो निस्तत्व कहिये असत् हुया भासमान है औ उत्पत्तिनाशभाक् है औ तिसकी उत्पत्तिके हुये पीछे मनुष्यनकरि तिसका नाम वाणीसैं उत्पन्न करियेहै ॥

७५) व्यक्तशब्दका वाच्य जो घटादिककार्य है । सो स्वरूपकरि असत्‌हीं हुया भासताहै। यह एकहेतु है औ उत्पत्तिविनाशवान् देखियेहै। यह दूसराहेतु है औ उत्पत्तिके अनंतर वाक्‌इंद्रियसैं जन्य नामस्वरूपकरि व्यवहार करियेहै। यह तीसराहेतु है ४१

७६ और वी कहतेहैं:—

७७] व्यक्तके नाश भये वी यह नाम मनुष्यनके मुखनविषै पीछे वर्त्तताहै ॥

७८) कार्यस्वरूपके नष्ट भये वी यह कार्यसैं अभिन्न नाम। शब्दके उच्चारण करनैंहारे मनुष्यनके मुखनविषै पीछे वर्त्तताहै ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४०९

८३
निस्तत्त्वत्वाद्विनाशित्वाद्वाचारंभणनामतः ।
व्यक्तस्य न तु तद्रूपं सत्यं किंचिन्मृदादिवत् ॥ ४३ ॥

टीकांकः ५१७९ टिप्पणांकः ॐ

७९ ततः किं तत्राह (तेनेति)—

८०] व्यक्तं तेन नाम्ना निरूप्यत्वात् तद्रूपं उच्यते ॥

८१) व्यक्तं कार्यं । तेन वाचा व्यवह्रियमाणेन। नाम्ना शब्देन । निरूप्यत्वात् व्यवह्रियमाणत्वात् । तद्रूपं तस्य नाम्नो रूपमेव रूपं यस्य तत्तथा नामात्मकं । उच्यते इत्यर्थः ॥ अयं भावः । विमतो घटः घटशब्दात्मको भवितुमर्हति। घटशब्देन व्यवह्रियमाणत्वात् । घटशब्दवदिति ॥ ४२ ॥

८२ एवं हेतुत्रयं प्रसाध्येदानीमनुमानरचनाप्रकारं सूचयति—

८३] निस्तत्त्वत्वात् विनाशित्वात् वाचारंभणनामतः मृदादिवत् व्यक्तस्य रूपं तत् किंचित् सत्यं न तु॥

८४) व्यक्तस्य घटादिरूपस्य कार्यस्य । यत्पृथुबुध्नोदराकारं रूपं अस्ति तत् किंचित् सत्यं न भवति । निस्तत्त्वत्वात् निर्गतं तत्त्वं वास्तवरूपं यस्मात्तन्निस्तत्त्वं तस्य भावो निस्तत्त्वत्वं तस्मात् । तथा विनाशित्वात् मृदि सत्यामेव विनाशप्रतियोगित्वात्। वाचारंभणनामतः वागिंद्रियजन्यशब्दमात्रात्मकत्वात्त्रिष्वपि हेतुषु मृद्वदिति वैधर्म्यदृष्टांतः ॥ अत्रैवं प्रयोगः । घटादिरूपः कार्यः असत्यो

---

७९ तिस सुखविषै नामके वर्त्तनैतें क्या होवैहै ? तहां कहैहैं:—

८०] व्यक्त । तिस नामसैं निरूपण होनैतें तिस नामस्वरूप कहियेहै ॥

८१) व्यक्त नाम कार्य जो है । सो तिस वाणीसैं व्यवहार किये नामशब्दसैं व्यवहार कियाहोनैतें तिसरूप है कहिये तिस नामका रूप है रूप जिसका । ऐसा नामस्वरूप कहियेहै । यह अर्थ है ॥ याका यह भाव है:– विवादका विषय जो घट सो शब्दरूप होनैकूं योग्य है। घटशब्दकरि व्यवहार कियाहोनैतें । घटशब्दकी न्यांई ॥ ४२ ॥

॥ १० ॥ कार्यकी असत्यतामैं अनुमानकी रचनाका प्रकार ॥

८२ ऐसैं ४१-४२ श्लोकनविषै तीनविकारकी असत्यताके साधकहेतुनकूं साधिके । अब अनुमानकी रचनाके प्रकारकूं सूचन करैहैं:—

८३] व्यक्तका सो रूप किंचित् सत्य नहीं है । काहेतें निस्तत्त्व होनैतें औ विनाशि होनैतें अरु वाणीसैं आरंभ किये नामका स्वरूप होनैतें । मृत्तिकाआदिककी न्यांई ॥

८४) व्यक्त नाम घटादिरूप कार्य ताका जो स्थूलगोलउदरवान् आकार रूप है । सो कछु वी सत्य नहीं होवैहै । निस्तत्त्व होनैतें कहिये गया है तत्त्व नाम वास्तवस्वरूप जिसतें। ऐसा होनैतें औ विनाशी होनैतें कहिये मृत्तिकाके होतेहीं विनाशका प्रतियोगी विनाशवान् होनैतें औ वाक्इंद्रियसैं जन्य शब्दमात्रस्वरूपवाला होनैतें ॥ इन तीनहेतुनविषै मृत्तिकाकी न्यांई यह व्यतिरेकीदृष्टांत है ॥ इहां ऐसा अनुमान है:– घटादिरूप कार्य असत्य होनैकूं योग्य है । निस्तत्त्व होनैतें । जो असत्य नहीं होवैहै सो निस्तत्त्व वी नहीं है । जैसैं घटादिककी उपादान मृत्तिका

टीकांक: ५१८५ टिप्पणांक: ८०१	८६ व्यक्तकाले ततः पूर्वमूर्ध्वमप्येकरूपभाक् । सतत्त्वमविनाशं च सत्यं मृद्वस्तु कथ्यते ॥ ४४ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४१०

भवितुमर्हति निस्तत्त्वत्वाद्यदसत्यं न भवति । न तन्निस्तत्त्वं । यथा घटाद्युपादानं मृदिति केवलव्यतिरेकी । एवमितरहेतुद्वयेऽपि योजनीयम् ॥ ४३ ॥

८५ एवं विकारस्यासत्यत्वमुपपाद्येदानीं तदधिष्ठानरूपायाः मृदः सत्यत्वमुपपादयति—

८६] व्यक्तकाले ततः पूर्वं ऊर्ध्वं अपि एकरूपभाक् सतत्त्वं च अविनाशं मृद्वस्तु सत्यं कथ्यते ॥

८७) व्यक्तकाले स्थितिकाले । ततः पूर्वं व्यक्तोत्पत्तेः पूर्वस्मिन्काले । ऊर्ध्वमपि व्यक्तविनाशोत्तरकालेऽपि । एकरूपभाक् एकाकारं । सतत्त्वं तत्त्वेन वास्तवरूपेण सह वर्तत इति सतत्त्वं अविनाशं विकारेण सह नाशरहितं । यत् मृद्वस्तु तत् "सत्यम्" इति कथ्यते ॥ अत्रेदमनुमानं । विमतं मृद्वस्तु सत्यं भवितुमर्हति सतत्त्वत्वादात्मवदित्यादि योज्यम् ॥ ४४ ॥

है। यह केवलव्यतिरेकीअनुमान है ॥ ऐसैं अन्य दोनूंहेतुनविषै वी योजना करनैंकूं योग्य है ॥ ४३ ॥

॥ ११ ॥ घटके असत्य हुये अधिष्ठान (मृत्तिका) की सत्यताका उपपादन ॥

८५ ऐसैं कार्यकी असत्यताकूं उपपादनकरिके कहिये हेतु औ युक्तिकरि कहिके अब तिस विकारके अधिष्ठानरूप मृत्तिकाकी सत्यताकूं उपपादन करैहैं:—

८६] व्यक्तकालविषै औ तिसतैं पूर्व अरु पीछे वी एकआकारकूं भजनैंहारा वास्तवस्वरूपवान् औ अविनाशी जो मृत्तिकारूप वस्तु है। सो सत्य कहियेहै ॥

८७) व्यक्तकालविषै कहिये कार्यकी स्थितिकालविषै औ तिसतैं पूर्व कहिये व्यक्तकी उत्पत्तितैं पूर्वकालविषै औ पीछे कहिये व्यक्तके विनाशके उत्तरकालविषै वी एकआकारवाला औ वास्तवस्वरूपके सहवर्त्तमान औ विकारके साथि नाशरहित जो मृत्तिकारूप वस्तु है। सो "सत्य है" ऐसैं कहियेहै ॥ इहां यह अनुमान है:— विवादका विषय जो मृत्तिकारूप वस्तु । सो सत्य होनैंकूं योग्य है । वास्तवस्वरूपयुक्त होनैंतैं । आत्माकी न्यांई ॥ ईत्यादिअनुमान योजना करनैंकूं योग्य है ॥ ४४ ॥

१ (१) घटादिरूप कार्य असत्य कहिये मिथ्या होनैंकूं योग्य है । विनाशी होनैंतैं । जो असत्य नहीं होवैहै सो विनाशी बी होवै नहीं । जैसैं मृत्तिका है ॥ औ

(२) घटादिकार्य असत्य है । वाक्इंद्रियसैं जन्य शब्दमात्रस्वरूपवाला होनैंतैं । जो असत्य होवै नहीं सो वाक्इंद्रियसैं जन्य शब्दमात्रस्वरूपवाला बी होवै नहीं । जैसैं आत्मा है ॥ ये दोनूंअनुमान इहां सूचन कियेहैं ॥

२ इहां आदिपदकरि दोअनुमान सूचन कियेहैं:—

(१) मृत्तिकारूप वस्तु सत्य होनैंकूं योग्य है । तीनकालविषै एकआकारवाली होनैंतैं । आत्माकी न्यांई ॥ औ

(२) मृत्तिकारूप वस्तु सत्य है । वास्तवस्वरूपसहित होनैंतैं । आत्माकी न्यांई ॥ इति ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ ११ ॥ श्लोकांकः १४११ १४१२ | टीकांकः ५१८८ | टिप्पणांकः ॐ

व्यक्तं घटो विकारश्चेत्येतैर्नामभिरीरितः ।
अर्थश्चेदनृतः कस्मान्न मृद्बोधे निवर्तते ॥ ४५ ॥
निवृत्त एव यस्मात्ते तत्सत्यत्वमतिर्गता ।
ईदृङ्निवृत्तिरेवात्र बोधजा न त्वभासनम् ॥४६॥

८८ ननु घटादेः कार्यजातस्यासत्यत्वे तस्यारोपितरजतादेरिवाधिष्ठानज्ञानेन निवर्त्यता स्यादिति शंकते—

८९] **व्यक्तं घटः च विकारः इति एतैः नामभिः ईरितः अर्थः अनृतः चेत् मृद्बोधे कस्मात् न निवर्तते ॥**

९०) व्यक्तं इत्यादिभिस्त्रिभिः शब्दैरभिधीयमानो यः अर्थः कार्यरूपस्तस्य कारणातिरेकेणासत्त्वेऽङ्गीक्रियमाणे मृल्लक्षणकारणस्य ज्ञाने किं न तन्निवृत्तिः स्यादित्यर्थः ॥ ४५ ॥

९१ इष्टापत्तिरिति परिहरति—

९२] **निवृत्तः एव ॥**

९३ तत्रोपपत्तिमाह—

९४] **यस्मात् ते तत्सत्यत्वमतिः गता ॥**

९५) यस्मात् कारणात् । तव घटादिविषयसत्यत्वबुद्धिर्नष्टा । अतः स निवृत्त एवेत्यर्थः ॥

९६ नन्वारोपितरजतादिरूपस्यैवाप्रतीतिरुपलभ्यते न सत्यत्वबुद्ध्यपगम इत्याशंक्य तस्य निरुपाधिकभ्रमत्वादस्तु तथात्वमिह

॥ १२ ॥ घटके असत्य हुये ताकी मृत्तिकाके ज्ञानसैं निवृत्तिकी शंका ॥

८८ ननु घटादिककार्यके समूहकी असत्यताके हुये तिसकी आरोपित रजतआदिककी न्यांई अधिष्ठानमृत्तिकाआदिकके ज्ञानकरि निवर्त्त होनैंकी योग्यता होवैगी । इसरीतिसैं वादी शंका करैहैं:—

८९] **व्यक्त । घट । औ विकार । इन तीननामोंकरि कथन किया जो अर्थ सो जब अनृत होवै । तब मृत्तिकाके बोध हुये काहेतैं नहीं निवर्त्त होवैहै? ऐसैं जो कहै ।**

९०) व्यक्तआदिकतीनशब्दनकरि कथन करियेहै जो कार्यरूप अर्थ । तिसके कारणसैं भिन्न असत्‌पनैंके अंगीकार किये मृत्तिकारूप कारणके ज्ञानके भये काहेतैं तिसकी निवृत्ति नहीं होवैहै? यह वादीकी शंका है ॥ ४५ ॥

॥ १३ ॥ "इष्टापत्ति है" ऐसैं परिहार ॥

९१ इष्टापत्ति है कहिये हमारे वांछितकी प्राप्ति है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं:—

९२] **सो निवृत्त भयाहीं है ॥**

९३ तिसविषै कारण कहैहैं:—

९४] **जातैं तुजकूं तिस घटादिकके सत्यताकी बुद्धि गईहै ॥**

९५) जिस कारणतैं हे वादी! तेरेकूं घटादिककूं विषय करनैंहारी बुद्धि नष्ट भईहै । यातैं सो घटादिक निवृत्त भयाहै। यह अर्थ है ॥

९६ ननु आरोपित जे रजतआदिक हैं । तिनके स्वरूपकीहीं अप्रतीति देखियेहै।सत्यताकी बुद्धिका नाश नहीं । यह आशंकाकरि तिस रजतआदिकनके स्वरूपकूं निरुपाधिकभ्रमरूप होनैंतैं अप्रतीतपना होहु औ इहां

तु सोपाधिकभ्रमे सत्यत्वबुद्ध्यपगमः एव निवृत्तिः स्यादित्यभिप्रायेणाह (ईदृगिति)—

९७]अत्र ईदृक् एव बोधजा निवृत्तिः न तु अभासनम् ॥

९८) अत्र सोपाधिकभ्रमस्थले । ईदृगेव सत्यत्वबुद्ध्यपगमरूपैव । बोधजा अधिष्ठानयाथात्म्यज्ञानजन्या । निवृत्तिः अभ्युपेया न त्वभासनं न स्वरूपाप्रतीतिरूपेत्यर्थः ४६

सोपाधिकभ्रमविषै तौ सत्यताकी बुद्धिका नाशहीं निवृत्ति होवैगी । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

९७] इहां इसप्रकारकीहीं बोधतैं जन्य निवृत्ति मानीचाहिये । अभासनरूप नहीं ॥

९८) इहां सोपाधिकभ्रमके स्थलविषै इसप्रकारकी नाम सत्यताकी बुद्धिके नाशरूपहीं अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैं जन्य निवृत्ति अंगीकार करीचाहिये । स्वरूपकी अप्रतीतिरूप नहीं । यैह अर्थ है ॥ ४६ ॥

३ इहां यह प्रक्रिया है:— (१) निरुपाधिकभ्रम औ (२) सोपाधिकभ्रमके भेदतैं भ्रम दोभांतिका है ॥

(१) केवलअज्ञानतैं जन्य जो भ्रम । सो **निरुपाधिकभ्रम** है ॥ जैसैं रज्जुविषै सर्पका औ शुक्तिविषै रूपेका भ्रम है । सो केवलअज्ञानसैं जन्य है । यातैं निरुपाधिकभ्रम कहियैहै ॥

यद्यपि सजातीयज्ञानका संस्कार औ प्रमातागतदोष प्रमाणगतदोष औ प्रमेयगतदोष औ अधिष्ठानके सामान्यअंश इदंताका ज्ञान । रज्जुसर्पादिकभ्रमविषै निमित्तकारण हैं । सो रज्जुअज्ञानके सहकारी होनैंतैं उपाधिरूप होवैंगे । **तथापि** [१] कार्यकालवृत्ति औ [२] कार्यकालसैं पूर्ववृत्तिके भेदतैं **निमित्तकारण दोप्रकारका** है ॥

[१] जिसकी सन्निधिके होते कार्य होवै औ न होते न होवै । सो **कार्यकालवृत्तिनिमित्त** है ॥ जैसैं भित्तिगत सूर्यकी प्रभाके प्रतिबिंबका सन्निधि स्थितजलपात्र है । औ

[२] तिसतैं भिन्न जे निमित्त हैं वे **कार्यकालसैं पूर्ववृत्ति** हैं । जैसैं घटके दंडचक्रआदिक हैं ॥

कार्यकालवृत्तिरूप निमित्तहीं उपाधिशब्दका अर्थ है ॥ तैसा निमित्त रज्जुसर्पादिभ्रमके ठिकानैं नहीं है । यातैं सो **निरुपाधिकभ्रमहीं** है ॥ औ

(२) *उक्त विलक्षणनिमित्तरूप उपाधिसहित अज्ञानतैं* जन्य जो भ्रम सो **सोपाधिकभ्रम** है ॥ जैसैं [१] दर्पणविषै वा मुखविषै प्रतिबिंबका औ जलविषै अधोमुखपुरुषका वा तीरगत वृक्षनका औ [२] आकाशविषै नीलता अरु कटाहाकारताका औ [३] मृगतृष्णाके जलइत्यादिकका भ्रम होवैहै । सो उपाधिसहित अधिष्ठानके अज्ञानतैं जन्य है । यातैं **सोपाधिक** कहियेहै ॥

[१] प्रतिबिंबके स्थलमैं बिंब औ दर्पण वा जलकी सन्निधि उपाधि है । औ

[२] आकाशगत नीलताके स्थलमैं सूर्यादिप्रकाश औ अंधकारका संबंध उपाधि है औ कटाहआकारताके स्थलमैं ब्रह्मांडकी सन्निधि उपाधि है । औ

[३] मृगजलके स्थलमैं मरुभूमि औ सूर्यके किरणका संबंध उपाधि है ॥

ऐसैं यथायोग्यउपाधिकी कल्पना करनी ॥

इसरीतिसैं कथन किया जो दोप्रकारका भ्रम तिनमैंसैं

(१) **निरुपाधिकभ्रम**के स्थलविषै अधिष्ठानज्ञानसैं कार्यसहित आवरणविक्षेपहेतुशक्तियुक्त अज्ञानका नाश औ बाध होवैहै । यातैं तहां अधिष्ठान शेष वा कल्पितके स्वरूपका अभावहीं **बाधका लक्षण** है । औ

(२) **सोपाधिकभ्रम**के स्थलविषै तौ आवरणसहित अज्ञानकी आवरणहेतुशक्तिका तौ नाश औ बाध दोनूं होवैहैं। परंतु अज्ञानकी उपाधिरूप प्रतिबंधके वशतैं विक्षेपरूप कार्यसहित विक्षेपहेतुशक्तिका नाश नाम स्वरूपका अभाव होवै नहीं । किंतु केवल बाधहीं होवैहै औ ताका स्वरूप तौ दग्धपट वा दग्धधान्यकणकी न्याईं कछुककालपर्यंत प्रतीत होवैहै (यह देखो६७७ वें टिप्पणविषै)। यातैं तहां अधिष्ठानका शेष वा आरोपितके स्वरूपका अभाव बाधका लक्षण नहीं है । किंतु *मिथ्यात्वनिश्चय वा त्रिकालअभावनिश्चय* बाध जो निवृत्ति ताका **लक्षण** है ॥ ऐसैं मृत्तिकाविषै घटकी औ सुवर्णविषै कुंडलकी भ्रांतिके स्थलविषै औ अहंकारआदिकबंधकी भ्रांतिविषै बी सोपाधिकपना है। काहेतैं मुद्गरआदिकसाधनके अभिघात औ प्रारब्धरूप उपाधिके सद्भावतैं । यातैं तहां बी उक्तमिथ्यात्वनिश्चयरूप लक्षणवाली निवृत्तिहीं अभिमत है । स्वरूपका अभाव नहीं औ अधिष्ठानके सत्यताका निश्चयरूपहीं अधिष्ठानका अवशेष मान्याचाहिये ॥ इति ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४१३ १४१४

५२०० पुमानधोमुखो नीरे भातोऽप्यस्ति न वस्तुतः।
तटस्थमर्त्यवत्तस्मिन्नैवास्था कस्यचित्क्वचित् ४७
ईदृग्बोधे पुमर्थत्वं मतमद्वैतवादिनाम्।
मृद्रूपस्यापरित्यागाद्विवर्तत्वं घटे स्थितम् ॥ ४८ ॥

टीकांकः ५१९९ टिप्पणांकः ॐ

९९ एवं क दृष्टमित्यत आह (पुमानिति)—

५२००] **नीरे अधोमुखः भातः अपि पुमान् वस्तुतः न अस्ति ॥**

१) जले अधोमुखत्वेन प्रतिभासमानः अपि पुमान् परमार्थतः नास्ति ॥

२ तत्रोपपत्तिमाह (तटस्थेति)—

३] **कस्यचित् तस्मिन् तटस्थमर्त्यवत् आस्था क्वचित् न एव ॥**

४) कस्यचित् विवेकिनोऽविवेकिनो वा तस्मिन् अधोमुखे पुरुषे। तीरस्थपुरुष इव सत्यत्वाभिमानः क्वचित् देशे काले वा। नैव अस्तीति ॥ ४७ ॥

५ नन्वारोपितस्यासत्यत्वज्ञानमात्रान्न पुरुषार्थसिद्धिरित्याशंक्याह—

६] **ईदृक् बोधे अद्वैतवादिनां पुमर्थत्वं मतम् ॥**

७) अद्वैतवादे आत्मानंदातिरिक्तस्य सर्वस्य मिथ्यात्वनिश्चये सत्यद्वितीयानंदाभिव्यक्तिलक्षणः पुरुषार्थः सिध्यति इत्यभिप्रायः॥

८ ननु घटस्य मृद्विवर्तत्वे सिद्धे तज्ज्ञानाद्घटसत्यत्वबुद्धिर्निवर्तते न चैतदिदानीं सिद्धमित्याशंक्याह—

९] **मृद्रूपस्य अपरित्यागात् घटे विवर्तत्वं स्थितम् ॥ ४८ ॥**

॥ १४ ॥ प्रतीत होतेकी निवृत्तिमैं दृष्टांत ॥

९९ ऐसैं सत्यताकी बुद्धिका नाश कहां देख्याहै? तहां कहैहैं:—

५२००] **जलविषै अधोमुख भासमान हुया बी पुरुष वस्तुतैं नहीं है ॥**

१) जलविषै नीचेमुखवाला होनैंकरि भासमान हुया बी पुरुष परमार्थतैं नहीं है ॥

२ तिसविषै अनुभवरूप प्रमाण कहैहैं:—

३] **किसी बी पुरुषकूं तिसविषै तटस्थमनुष्यकी न्यांई आस्था कहूं बी नहीं होवैहै ॥**

४) किसी बी विवेकी वा अविवेकी पुरुषकूं तिस अधोमुखवाले पुरुषविषै तीरमैं स्थितपुरुषकी न्यांई सत्यताका अभिमान काहू देशविषै वा कालविषै नहीं है ॥ ४७ ॥

॥ १५ ॥ आरोपितके सत्यताके ज्ञानमात्रसैं पुरुषार्थकी सिद्धि औ ताका घटमैं संभव ॥

५ ननु आरोपितकी असत्यताके ज्ञानमात्रतैं पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होवैहै। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

६] **इसप्रकारके आरोपितकी असत्यताके विषय करनैंहारे बोधके हुये अद्वैतवादिनके मतविषै पुरुषार्थपना मान्याहै॥**

७) अद्वैतवादविषै आत्मानंदतैं भिन्न सर्वके मिथ्यापनैंके निश्चय कियेहुये। अद्वितीयआनंदका आविर्भावरूप पुरुषार्थ सिद्ध होवैहै। यह अभिप्राय है ॥

८ ननु घटकूं मृत्तिकाके विवर्त्तपनैंके सिद्ध हुये तिस मृत्तिकाके ज्ञानतैं घटके सत्यताकी बुद्धि निवर्त्त होवैहै। परंतु यह घटका विवर्त्तपना अबतलकी सिद्ध भया नहीं। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

९] **मृत्तिकाके रूपके अपरित्यागतैं घटविषै विवर्त्तपना स्थित है॥४८॥**

टीकांकः ५२१० टिप्पणांकः ॐ	परिणामे पूर्वरूपं त्यजेत्तत्क्षीररूपवत् । मृत्सुवर्णे निवर्तेते घटकुंडलयोर्न हि ॥ ४९ ॥ घटे भग्ने न मृद्भावः कपालानामवेक्षणात् । मैवं चूर्णेऽस्ति मृद्रूपं स्वर्णरूपं त्वतिस्फुटम् ॥५०॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४१५ १४१६

१० घटे मृद्रूपत्यागाभावेऽपि मृत्परिणामता घटस्य किं न स्यादित्याशंक्याह—

११] **परिणामे क्षीररूपवत् तत् पूर्वरूपं त्यजेत् ॥**

१२) यत्र क्षीरादौ परिणामोऽभ्युपगम्यते तत्र क्षीरादिभावस्य पूर्वरूपस्य त्याग उपलभ्यत इत्यर्थः—

१३ ननु विवर्ते पूर्वरूपापरित्यागः क्व दृष्ट इत्याशंक्य मृत्सुवर्णयोर्दृश्यत इत्याह—

१४] **मृत्सुवर्णे घटकुंडलयोः न निवर्तेते हि ॥**

१५) मृत्सुवर्णविवर्तयोः घटकुंडलयोर्निष्पन्नयोरपि तत्कारणभूतमृत्सुवर्णरूपे न निवर्त्तेते इति हि प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ४९ ॥

१६ ननु घटस्य मृद्विवर्तत्वमनुपपन्नं घटनाशे पुनर्मृद्भावादर्शनादिति शंकते—

१७] **घटे भग्ने मृद्भावः न ॥**

१८ मृद्भावाऽभावे कारणमाह—

१९] **कपालानां अवेक्षणात् ॥**

२० कपालानामपि नाशे मृद्भावोपलब्धिः स्यादिति परिहरति—

॥ १६ ॥ घटकुंडलादिककी विवर्त्तरूपता ॥

१० घटविषै मृत्तिकाके स्वरूपके परित्यागके अभाव हुये बी घटकूं मृत्तिकाका परिणामपना होवैगा। यह आशंकाकरि कहैहैं:—

११] **परिणामविषै क्षीरकी न्यांई सो उपादान पूर्वके रूपकूं त्यागताहै ॥**

१२) जहां क्षीरआदिकविषै परिणाम अंगीकार करियेहै । तहां क्षीरआदिकभाववाले पूर्वरूपका त्याग देखियेहै। यह अर्थ है॥

१३ ननु विवर्तविषै रूपका अपरित्याग कहां देख्याहै? यह आशंकाकरि मृत्तिका औ सुवर्णविषै देखियेहै । ऐसैं कहैहैं:—

१४] **मृत्तिका औ सुवर्ण जे हैं वे घट औ कुंडलविषै निवर्त्त नहीं होवैहैं ॥**

१५) मृत्तिका औ सुवर्णके विवर्तरूप उत्पन्न भये घट औ कुंडलविषै बी तिन घट औ कुंडलके कारणभूत मृत्तिका औ सुवर्णका रूप निवर्त्त होवै नहीं । यह प्रसिद्ध है । यह अर्थ है ॥ ४९ ॥

॥ १७ ॥ श्लोक ४९ उक्त अर्थमैं शंका औ समाधान ॥

१६ ननु घटकूं मृत्तिकाका विवर्त्तपना अयुक्त है। काहेतैं घटके नाश भये पीछे मृत्तिकाभावके अदर्शनतैं । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

१७] **घटके नाश भये मृत्तिकाभाव नहीं है ॥**

१८ मृत्तिकाभावके अभावविषै वादी कारण कहैहै:—

१९] **कपालनके देखनैंतैं। ऐसैं जो कहै।**

२० कपालनके बी नाश भये मृत्तिकाभावकी प्रतीति होवैहै । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

मूलानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४१७

[२५]क्षीरादौ परिणामोऽस्तु पुंसस्तद्भाववर्जनात् ।
[२७]एतावता मृदादीनां दृष्टांतत्वं न हीयते ॥ ५१ ॥

टीकांकः ५२२१ टिप्पणांकः ८०४

२१] मा एवं । चूर्णे मृद्रूपं अस्ति ॥

२२ सुवर्णे त्वेतच्चोद्यमेवानवकाशमित्याह—

२३] स्वर्णरूपं तु अतिस्फुटम् ॥ ५० ॥

२४ ननु परिणामे दृष्टांतत्वेनाभिहितानां क्षीरमृत्सुवर्णादीनां मध्ये यदि मृत्सुवर्णयोर्विवर्तदृष्टांतत्वमंगीक्रियते तर्हि तद्वदेव क्षीरस्यापि तथात्वं स्यादित्याशंक्याह—

२५] क्षीरादौ परिणामः अस्तु । पुंसः तद्भाववर्जनात् ॥

२६ तर्हि क्षीरवदेवावस्थांतरमापद्यमानयोस्तयोर्विवर्तदृष्टांतता न भवेदित्याशंक्याह—

२७] एतावता मृदादीनां दृष्टांतत्वं न हीयते ॥

२८) एतावता क्षीरादेः परिणामित्वेन मृदादीनां सुवर्णादीनां । दृष्टांतत्वं विवर्तदृष्टांतभावो न हीयते न नश्यति । अयमभिप्रायः । क्षीरस्य पूर्वरूपपरित्यागपुरःसरमवस्थांतरप्राप्तिसद्भावात्परिणामित्वमेव मृत्सुवर्णयोस्तु अवस्थांतरापत्तिसद्भावेऽपि पूर्वरूपपरित्यागाभावाद्विवर्ततापीति ॥ ५१ ॥

२१] तौ ऐसैं बनैं नहीं । काहेतें चूर्ण जो कपालनाश ताके भये मृत्तिकाका रूप है ॥

२२ सुवर्णभावविषै सो मृत्तिकाभावमैं उक्त प्रश्नहीं अवकाशकूं पावता नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

२३] स्वर्णका रूप तौ अतिशय स्पष्ट है ॥ ५० ॥

॥ १८ ॥ क्षीरादिकमैं परिणामिता औ तिसतैं मृत्तिकादिविवर्त्तके दृष्टांतकी अहानि ॥

२४ ननु परिणामविषै दृष्टांत होनैंकरि कथन किये जे क्षीर मृत्तिका औ सुवर्णआदिक हैं । तिनके मध्यमैं जब मृत्तिका औ सुवर्णकूं विवर्त्तका दृष्टांतपना तुमकरि अंगीकार करियेहै । तब तिनकी न्यांईहीं क्षीरकूं बी विवर्त्तका दृष्टांतपना होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२५] दुग्धआदिकविषै परिणाम होहु । काहेतें पुरुषकूं तिस क्षीरआदिककी भावनाके अभावतैं ॥

२६ तब क्षीरकी न्यांईहीं अन्यघटकुंडलादिअवस्थाकूं प्राप्त होनैहारे तिन मृत्तिका औ सुवर्णकूं विवर्त्तका दृष्टांतपना नहीं होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२७] इतनैं क्षीरआदिकके परिणामीपनैंकरि मृत्तिकादिकनका विवर्त्तके दृष्टांतका भाव नाश नहीं होवैहै ॥

२८) इहां यह अभिप्राय है:— क्षीरकूं दुग्धभावमय पूर्वरूपके परित्यागपूर्वक अन्यअवस्थारूप दधिभावकी प्राप्तिके सद्भावतैं परिणामीपनाहीं है औ मृत्तिका अरु सुवर्णकूं तौ घटकुंडलादिभावरूप अन्यअवस्थाकी प्राप्तिके सद्भाव हुये बी । पूर्वरूप जो मृत्तिका औ सुवर्णभाव । ताके परित्यागके अभावतैं विवर्त्तपना बी है ॥ ५१ ॥

४ दधि घट औ कुंडलभावकूं प्राप्त भये क्षीरआदिकविषै पुरुषकूं फेर क्षीरआदिककी भावना नहीं होवैहै । किंतु दधिआदिककी भावना होवैहै । यातैं तिनविषै परिणाम है । यह अर्थ है ॥

टीकांकः ५२२९ टिप्पणांकः ८०५	ॐ आरंभवादिनः कार्ये मृदो द्वैगुण्यमापतेत् । रूपस्पर्शादयः प्रोक्ताः कार्यकारणयोः पृथक् ॥५२॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४१८

२९ ननु मृत्सुवर्णयोः परिणामविवर्ताविवारंभकत्वमपि किं नांगीक्रियत इत्याशंक्याह—

३०] आरंभवादिनः कार्ये मृदः द्वैगुण्यं आपतेत् ॥

३१) आरंभवादिनः मते च कार्ये घटादिरूपे मृत्तिकादेर्द्रव्यस्य द्वैगुण्यं कार्याकारेण कारणाकारेण च द्विगुणत्वमापद्येत मृदः । तथा च सति गुरुत्वादिद्वैगुण्यमप्यापद्येतेति भावः ॥

३२ कुत एतदित्याशंक्याह—

३३] रूपस्पर्शादयः कार्यकारणयोः पृथक् प्रोक्ताः ॥

३४) रूपादीनां गुणानां कार्यकारणयोः भेदस्य तैरेवांगीकृतत्वादिति भावः॥५२॥

॥ १९ ॥ मृत्तिका औ सुवर्णमैं आरंभकपनैके अंगीकारविषै दोष ॥

२९ ननु मृत्तिका औ सुवर्णका परिणाम औ विवर्त्तकी न्याई आरंभकपना बी क्यूं नहीं अंगीकार करियेहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३०] आरंभवादीके मतमैं घटादिकार्यविषै मृत्तिकाकूं द्विगुणता प्राप्त होवैगी ॥

३१) नैयायिकादिकआरंभवादीके मतमैं घटादिरूप कार्यविषै मृत्तिकाआदिकउपादानद्रव्यकूं कार्यके आकारकरि औ कारणके आकारकरि दुगणा होना प्राप्त होवैगा । तैसें कार्यकारणरूपकरि मृत्तिकादिककी द्विगुणताके हुये गुणपनैंआदिककी द्विगुणता बी प्राप्त होवैगी । यह भाव है ॥

३२ यह गुणपनैंआदिककी द्विगुणता काहेतें है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३३] रूपस्पर्शआदिक जे गुण हैं । वे कार्यकारणविषै भिन्न कहेहैं ॥

३४) कार्य औ कारणविषै रूपादिकगुणनके भेदकूं तिन आरंभवादीनकरिहीं अंगीकार कियाहोनैंतें गुणनकी द्विगुणता है । यह भाव है ॥ ५२ ॥

५ इहां यह रहस्य है:—रज्जुकी न्याई मृत्तिका औ सुवर्णकूं अधिष्ठान नाम विवर्त्तउपादान मानिके जो घटकुंडलआदिककूं विवर्त्तपना कह्याहै सो स्थूलदृष्टिसैं है । परंतु सूक्ष्मदृष्टिसैं विचार करैं तौ मृत्तिकाआदिककूं घटादिककी अधिष्ठानता बनै नहीं । काहेतें सिद्धांतमैं कोइ बी कल्पितवस्तु अन्यकल्पितका अधिष्ठान संभवै नहीं । किंतु सर्वका अधिष्ठान चेतनहीं है । जातें मृत्तिकाआदिक आपहीं कल्पित हैं । यातें घटादिकके अधिष्ठान संभवै नहीं । किंतु रज्जुउपहितचेतन जैसें कल्पितसर्पका अधिष्ठान है । तैसें मृत्तिका औ सुवर्णआदिक अपनें अपनें उपादानकार्य उपहित चेतन । घट औ कुंडलआदिककार्यका अधिष्ठान है । यातें घटादिकविषै विवर्त्तपना निर्विवादसैं सिद्ध है । यह आकरग्रंथनविषै लिख्याहै ॥

६ आरंभवादीके मतमैं कारणत्व जो तंतुत्व औ कार्यत्व जो पटत्व तिसरूप व्यवहारके भेदतैं कार्यकारणका भेद प्रतीत होवैहै । यातें कारणरूपकरि औ कार्यरूपकरि एकहीं कारणके होनैतें कार्यके स्वरूपविषै कारणकी द्विगुणता होवैगी ॥ जब कारणकी द्विगुणता भई।तब कारणगत शब्दस्पर्शरूपरसादिगुणआदिकधर्मनकी औ कार्यगत शब्दादिगुणआदिकधर्मनकी बी द्विगुणता हुयीचाहिये । परंतु ये तंतुके रूपादिक हैं औ ये पटके रूपादिक हैं । ऐसा कथन औ प्रतीतिरूप व्यवहार नहीं देखियेहै औ कार्यत्वकारणत्वरूप व्यवहारके भेदतैं जैसें कार्यकारणका अभेद सिद्ध होवै नहीं । तैसें तंतु वा मृत्तिकाआदिककारणतैं भिन्नकरिके पटघटआदिककार्यनकी अप्रतीतितैं कार्यकारणका भेद बी सिद्ध होवै नहीं । किंतु कार्यकारणका कल्पितभेद औ वास्तवअभेदरूप अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंधहीं बनैहै । यातें आरंभवाद असंगत है ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४१९

[३६]मृत्सुवर्णमयश्चेति दृष्टांतत्रयमारुणिः ।
प्राह[३९]तो वासयेत्कार्यानृतत्वं सर्ववस्तुषु ॥ ५३ ॥

टीकांक: ५२३५ टिप्पणांक: ॐ

३५ ननु मृत्सुवर्णयोः किं द्वयोरेव विवर्ते दृष्टांतत्वं । नेत्याह (मृदिति)–

३६] आरुणिः मृत् सुवर्णं च अयः इति दृष्टांतत्रयं प्राह ॥

३७) अरुणस्य पुत्र उद्दालकाख्यः कश्चिदृषिः "यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन" इत्यारभ्य "कार्ष्णायसमित्येव सत्यम्" इत्यंतेन वाक्यसंदर्भेण कार्यस्यानृतत्वे मृत्सुवर्णयोः रूपं दृष्टांतत्रयं उक्तवानित्यर्थः ॥

३८ किमर्थमेवं दृष्टांतत्रयमुक्तवानित्याशंक्याह—

३९] अतः सर्ववस्तुषु कार्यानृतत्वं वासयेत् ॥

४०) यत एवं बहुषु मृदादिषु कार्यानृतत्वं उपलब्धं अतः भूतभौतिकरूपेषु वस्तुषु कार्यानृतत्वं वासितं कुर्यादित्यर्थः ॥ ५३ ॥

॥ २० ॥ श्रुतिउक्तविवर्त्तके तीनदृष्टांतनका कथन औ प्रयोजन ॥

३५ ननु मृत्तिका औ सुवर्ण इन दोनूंकूंहीं क्या विवर्त्तविषै दृष्टांतपना है? तहां नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

३६] उद्दालकऋषि मृत्तिका सुवर्ण औ लोह । इन तीनदृष्टांतनकूं कहताभया ॥

३७) अरुणऋषिका पुत्र उद्दालक नामा कोईक ऋषि जो था । सो "हे सोम्य (श्वेतकेतो)! एकहीं मृत्तिकाके पिंडके जाननैंकरि" इहांसैं आरंभकरिके "लोह । यहहीं सत्य है ।" इहांपर्यंत जो छांदोग्यके षष्ठअध्यायगत वचनका समूह है । तिसकरि कार्यके मिथ्यापनैंविषै मृत्तिका सुवर्ण औ लोहरूप तीनदृष्टांतनकूं कहताभया । यह अर्थ है ॥

३८ ननु उद्दालकऋषि किसअर्थ ऐसैं तीनदृष्टांतनकूं कहताभया? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३९] यातैं सर्ववस्तुनविषै कार्यके अनृतपनैंकूं वासित करना ॥

४०) जातैं ऐसैं उक्तप्रकारसैं मृत्तिकाआदिकबहुतनविषै कार्यका अनृतपना अनुभव कियाहै । यातैं भूतभौतिकरूप सर्ववस्तुनविषै कार्यके अनृतपनैंकूं वासित करना कहिये वारंवार अनुभवकरिके तिस अनुभवजन्यसंस्काररूप वासनाका विषय करना । यह अर्थ है ॥ ५३ ॥

टीकांक: ५२४१ टिप्पणांक: ॐ	४२ कारणज्ञानतः कार्यविज्ञानं चापि सोऽवदत् । ४५ सत्यज्ञानेऽनृतज्ञानं कथमत्रोपपद्यते ॥ ५४ ॥ ४७ सम्मृत्कस्य विकारस्य कार्यता लोकदृष्टितः । ४९ वास्तवोऽत्र मृदंशोऽस्य बोधः कारणबोधतः॥५५॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४२० १४२१

४१ ननु कार्यानृतत्वानुसंधानमपि किमर्थमुक्तमित्याशंक्य कारणज्ञानात्कार्यज्ञानसिद्ध्य इत्यभिप्रायेणाह (कारणज्ञानत इति)—

४२] च कारणज्ञानतः कार्यविज्ञानं अपि सः अवदत् ॥

४३) कारणस्य मृदादेः ज्ञानात् कार्यजातस्य घटादेः ज्ञानमपि "यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्" इत्यादि वाक्यजातेनोक्तवानित्यर्थः ॥

४४ ननु मृत्सुवर्णादिरूपस्य पारमार्थिकस्य कारणस्य विज्ञानात्तद्विलक्षणस्य घटरूपकार्यादेर्विज्ञानमनुपपन्नमिति शंकते—

४५] सत्यज्ञाने अनृतज्ञानं अत्र कथं उपपद्यते ॥ ५४ ॥

४६ कार्यस्य सत्यानृतांशद्वयरूपत्वात्कारणज्ञानात्कार्यगतसत्यांशज्ञानं भवतीत्यभिप्रायेणाह—

४७] सम्मृत्कस्य विकारस्य लोकदृष्टितः कार्यता ॥

४८) सम्मृत्कस्य अधिष्ठानभूतमृत्सहित-

॥ २ ॥ एककारणके ज्ञानसैं कार्यसमूहके ज्ञानपूर्वक ब्रह्म औ जगत्का स्वरूप औ जगत्की उपेक्षा ॥ ५२४१—५३५८ ॥

॥ १ ॥ एककारणके ज्ञानसैं कार्यसमूहके ज्ञानका कथन ॥ ५२४१—५२६९ ॥

॥ १ ॥ कारणके ज्ञानतैं कार्यके ज्ञानमैं प्रमाण औ तामैं शंका ॥

४१ ननु कार्यके मिथ्यापनैंका ज्ञान बी किसअर्थ कह्याहै ? यह आशंकाकरि कारणके ज्ञानतैं कार्यके ज्ञानकी सिद्धिअर्थ कह्याहै । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

४२] औ कारणके ज्ञानतैं कार्यके ज्ञानकूं बी सो कहताभया ॥

४३) मृत्तिकाआदिककारणके ज्ञानतैं कार्यके समुदायरूप घटादिकके ज्ञानकूं बी "हे सोम्य ! जैसैं एकहीं मृत्तिकाके पिंडके जाननैंकरि सर्व घटादिरूप कार्यका समूह मृत्तिकामय जान्याहोवैहै" इत्यादिकवाक्यके समूहकरि सो उद्दालकऋषि कहताभया । यह अर्थ है ॥

४४ ननु मृत्तिका औ सुवर्णआदिकरूप पारमार्थिककारणके विज्ञानतैं तिससैं विलक्षण घट औ भूषणआदिककार्यका विज्ञान बनै नहीं । इसरीतिसैं वादी शंका करैहै:—

४५] सत्यकारणके ज्ञान भये अनृतरूप कार्यका ज्ञान इहां कैसैं संभवै? ५४

॥ २ ॥ श्लोक ५४ उक्त शंकाका समाधान ॥

४६ कार्यकूं सत्य औ अनृत दोनूंअंशरूप होनैंतैं कारणके ज्ञानतैं कार्यगतसत्यअंशका ज्ञान होवैहै । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

४७] मृत्तिकासहित विकारकूं लोकदृष्टितैं कार्यता है ॥

४८)अधिष्ठानरूप मृत्तिकासहित आरोपित-

अनृतांशो न बोद्धव्यस्तद्बोधानुपयोगतः ।
तत्त्वज्ञानं पुमर्थं स्यान्नानृतांशावबोधनम् ॥ ५६ ॥

स्य । विकारस्य आरोपितस्य घटादिरूपस्य । कार्यता कार्यशब्दार्थत्वं । लोकप्रसिद्धमित्यर्थः ॥

४९ भवत्वेवमेतावता कारणज्ञानात्कार्यज्ञानं न संभवतीति चोद्यस्य कः परिहारो जात इत्याशंक्य कार्यगतानृतांशज्ञानाभावेऽपि तद्गतसत्यांशज्ञानं भवत्येवेति परिहरति (वास्तव इति)—

५०] **अत्र वास्तवः मृदंशः अस्य बोधः कारणबोधतः ॥**

ॐ५०) अत्र कार्ये यः वास्तवः मृदंशः अस्ति अस्य वास्तवांशस्य । बोधः ज्ञानं । कारणज्ञानात् भवतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

५१ ननु कार्यगतसत्यांशवदनृतांशोऽपि बोद्धव्य इत्याशंक्य प्रयोजनाभावान्नैवमित्याह-

५२] **अनृतांशः बोद्धव्यः न । तद्बोधानुपयोगतः ।**

५३ प्रयोजनाभावमेव दर्शयति—

५४] **तत्त्वज्ञानं पुमर्थं अनृतांशावबोधनं न स्यात् ॥**

५५) तत्त्वस्य अबाध्यस्य वस्तुनः ज्ञानं पुमर्थं पुंसो ज्ञातुः पुरुषस्यार्थः प्रयोजनं यस्मिन् तत्पुमर्थमिति बहुव्रीहिः । अनृतांशस्य विकारस्य अवबोधनं प्रयोजनवत् न भवतीत्यर्थः ॥ ५६ ॥

घटादिरूप विकारकी कार्यता कहिये कार्यशब्दका अर्थपना लोकविषै प्रसिद्ध है । यह अर्थ है ॥

४९ ऐसैं उपादानसहित विकारकी कार्यता होहु । इतनैंकरि "कारणके ज्ञानतें कार्यका ज्ञान नहीं संभवैहै" इस प्रश्नका कौन उत्तर भया? यह आशंकाकरि कार्यगत स्थूलगोलउदरवान्ताआदिकअनृतके ज्ञानके अभाव हुये बी कार्यगत सत्यमृत्तिकाअंशका ज्ञान होवैहीं है । ऐसैं परिहार करैहैं:—

५०] **इसविषै वास्तवमृत्तिकाअंश है । इसका बोध कारणके बोधतैं होवैहै ॥**

ॐ ५०) इस कार्यविषै जो वास्तवमृत्तिकाअंश है । इस वास्तवअंशका बोध जो ज्ञान सो कारणके ज्ञानतैं होवैहै । यह अर्थ है ॥ ५५ ॥

॥ २ ॥ कार्यगतसत्यअंशके ज्ञानकी न्यांई अनृतअंशके ज्ञानका अप्रयोजन ॥

५१ ननु कार्यगतसत्यअंशकी न्यांई अनृतअंश बी जाननैंकूं योग्य है । यह आशंकाकरि प्रयोजनके अभावतैं जाननैंकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैं:—

५२] **अनृतअंश जो है सो जाननैंकूं योग्य नहीं है । काहेतैं तिस अनृतअंशके बोधके प्रयोजनके अभावतैं ॥**

५३ प्रयोजनके अभावकूंहीं दिखावैहैं:—

५४] **तत्त्वका कहिये वास्तवअंशका ज्ञानहीं पुरुषार्थ होवैहै । अनृतअंशका ज्ञान पुरुषार्थ नहीं होवैहै ॥**

५५) तत्त्व जो अबाध्यवस्तु ताका ज्ञानहीं पुरुषार्थ है ॥ पुरुषका अर्थ नाम प्रयोजन है जिसविषै सो पुरुषार्थ कहियेहै औ अनृतअंशरूप विकारका ज्ञान प्रयोजनवाला नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥ ५६ ॥

टीकांक: ५२५६ टिप्पणांक: ॐ

तर्हि कारणविज्ञानात्कार्यज्ञानमितीरिते ।
मृद्बोधे मृत्तिकाबुद्धेत्युक्तं स्यात्कोऽत्र विस्मयः ५७
सत्यं कार्येषु वस्त्वंशः कारणात्मेति जानतः ।
विस्मयो मास्त्विहाज्ञस्य विस्मयः केन वार्यते ५८

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४२३ १४२४

५६ ननु कारणज्ञानात्कार्यज्ञानं भवतीत्येतच्छ्रोतृबुद्धौ चमत्कारहेतुर्भविष्यतीत्यभिप्रायेणोक्तं तदेतन्न संभवतीति शंकते—

५७] तर्हि "कारणविज्ञानात् कार्यज्ञानम्" इति ईरिते । "मृद्बोधे मृत्तिका बुद्धा" इति उक्तं स्यात् । अत्र कः विस्मयः ॥

५८) कारणस्य मृदादेः ज्ञानात् कार्यगतं मृदादिसत्यांशज्ञानं भवतीति उक्ते मृज्ज्ञानात् मृदो ज्ञानमित्युक्तं भवति ॥ एवं च सति शब्दत एव चमत्कारो नार्थत इत्यर्थः ५७

५९ ईदृग्विवेकवतां विस्मयाऽभावेऽपि तद्रहितानां विस्मयः स्यादेवेति परिहरति—

६०] सत्यं । कार्येषु वस्त्वंशः कारणात्मा इति जानतः विस्मयः मा अस्तु। इह अज्ञस्य विस्मयः केन वार्यते॥

६१) कार्येषु घटादिषु । विद्यमानो वास्तवः अंशः कारणस्वरूपमेव इति ये जानंति तेषामाश्चर्यं मा भूदितरेषां तत्त्वज्ञानशून्यानां जायमानो विस्मयः न निवारयितुं शक्यत इत्यर्थः ॥ ५८ ॥

॥ ४ ॥ श्लोक ५६ उक्तअर्थमैं अचमत्कारहेतुताकी शंका ॥

५६ ननु कारणके ज्ञानतैं कार्यका ज्ञान होवैहै। यह अर्थ श्रोताकी बुद्धिविषै चमत्कारका हेतु होवैगा । इस अभिप्रायकरि तुमनैं कह्या सो यह नहीं संभवैहै। इसरीतिसैं वादी शंका करैहैः—

५७] तब "कारणके ज्ञानतैं कार्यका ज्ञान होवैहै" । ऐसैं कहेहुये "मृत्तिकाके ज्ञानतैं मृत्तिका जानी" । यह कथन कियाहोवैहै । इहां कौन आश्चर्य है?॥

५८) मृत्तिकाआदिककारणके ज्ञानतैं कार्यगतमृत्तिकादिरूप सत्यअंशका ज्ञान होवैहै । ऐसैं कहेहुये मृत्तिकाके ज्ञानतैं मृत्तिकाका ज्ञान भया । यह कथन कियाहोवैहै । ऐसैं हुये शब्दतैंहीं चमत्कार है। अर्थतैं नहीं। यह अर्थ है ५७

॥ ५ ॥ श्लोक ५७ उक्त शंकाका समाधान ॥
(अज्ञकूं विस्मय)

५९ कार्यगतसत्यअंश कारणका स्वरूप है । ऐसे विवेकवाले पुरुषकूं तौ विस्मयके अभाव हुये बी तिस उक्तप्रकारके विवेकसैं रहित पुरुषनकूं तौ विस्मय होवैहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैः—

६०] सो सत्य है । यातैं कार्यनविषै जो वस्तुअंश है । सो कारणका स्वरूपहीं है । ऐसैं जाननैंहारे पुरुषकूं विस्मय मति होहु। परंतु इहां अज्ञानीकूं जो विस्मय होवैहै सो किसकरि निवारण करियेहै ?

६१) घटादिककार्यनविषै विद्यमान जो वास्तवअंश है । सो मृत्तिकाआदिककारणका स्वरूपहीं है । ऐसैं जो जानतेहैं तिनकूं आश्चर्य मति होहु । परंतु अन्य जे तत्त्वज्ञानकरि रहित हैं तिनकूं उत्पन्न होवैहै जो विस्मय सो निवारण करनैंकूं शक्य नहीं है । यह अर्थ है ॥ ५८ ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४२५ १४२६

टीकांक: ५२६१ टिप्पणांक: ॐ

आरंभी परिणामी च लौकिकश्चैककारणे ।
ज्ञाते सर्वमतिं श्रुत्वा प्राप्नुवंत्येव विस्मयम् ॥५९॥
अद्वैतेऽभिमुखीकर्तुमेवात्रैकस्य बोधतः ।
सर्वबोधः श्रुतौ नैव नानात्वस्य विवक्षया ॥६०॥

ॐ ६१ अज्ञस्य विस्मयो भवेदित्युक्तमेवार्थं प्रपंचयति—

६२] **आरंभी च परिणामी च लौकिकः एककारणे ज्ञाते सर्वमतिं श्रुत्वा विस्मयं प्राप्नुवंति एव ॥**

६३) आरंभो नाम समवाय्यसमवायिनिमित्ताख्यकारणेभ्यो भिन्नस्य कार्यस्योत्पत्तिस्तां यो वक्ति सोऽयं **आरंभी** इत्युच्यते ॥ पूर्वरूपपरित्यागेन रूपांतरप्राप्तिलक्षणं परिणामं यो वक्ति सः **परिणामी** इत्युच्यते ॥ प्रक्रियाद्वयमजानानो लोकव्यवहारमात्रपरो **लौकिकः** इत्युच्यते ॥ एषां त्रयाणामपि कारणस्यैकस्य ज्ञानादनेकेषां कार्याणां विज्ञानं भवति इतिवाक्यश्रवणाद्विस्मयो भवेदेवेत्यर्थः ॥ ५९ ॥

६४ ननु यथाश्रुतमर्थं परित्यज्येत्थं व्याख्याने किं कारणमित्याशंक्य श्रुतेस्तत्र तात्पर्याभावादित्याह—

६५] **अद्वैते अभिमुखीकर्तुं एव अत्र श्रुतौ एकस्य बोधतः सर्वबोधः । नानात्वस्य विवक्षया न एव ॥**

॥ ६ ॥ श्लोक ५८ उक्त विस्मयका वर्णन ॥

ॐ ६१ "अज्ञानीकूं विस्मय होवैहै" इस ५७ वें श्लोकउक्तअर्थकूंहीं वर्णन करैहैं:—

६२] **आरंभवादी । परिणामवादी औ लौकिक नाम प्राकृतजन जे हैं । वे एककारणके जानेहुये सर्वकार्यमात्रके ज्ञानकूं सुनिके विस्मयकूं पावतेहीं हैं ॥**

६३) आरंभ नाम समवायि असमवायि औ निमित्त । इन नामवाले तीनकारणनतैं भिन्न कार्यकी उत्पत्ति । तिसकूं जो नैयायिकादिकवादी कहताहै । सो यह वादी "आरंभी" ऐसैं कहियेहै ॥ औ पूर्वरूपके परित्यागकरि अन्यविपरीतरूपकी प्राप्तिरूप परिणामकूं जो सांख्यआदिकवादी कहताहै । सो वादी "परिणामी" ऐसैं कहियेहै औ इन दोनूंप्रकारकूं नहीं जाननैंहारा जो लोकव्यवहारमात्रविषै तत्पर है । सो "लौकिक" ऐसैं कहियेहै ॥ इन तीनकूं बी "एकहीं कारणके ज्ञानतैं अनेककार्यनका ज्ञान होवैहै" इस वाक्यके श्रवणतैं विस्मय होवैहीं है । यह अर्थ है ॥ ५९ ॥

॥ ७ ॥ एककारणके ज्ञानतैं अनेककार्यनके ज्ञानकी प्रतिपादक श्रुतिका अभिप्राय ॥

६४ ननु जैसैं श्रुतिविषै सुन्या अर्थ है तिसकूं छोडिके इसरीतिसैं व्याख्यान करनैंविषै कौन कारण है? यह आशंकाकरि तिस यथाश्रुतअर्थविषै छांदोग्यके वाक्यरूप श्रुतिके तात्पर्यका अभाव है । यातैं इस उक्तरीतिसैं हमनैं व्याख्यान कियाहै । ऐसैं कहैहैं:—

६५] **अद्वैतविषै अभिमुख करनैंकूं इस श्रुतिविषै एकके बोधतैं सर्वका बोध कह्याहै । नानापनैंकी विवक्षाकरि कहनेकी इच्छाकरि नहीं ॥**

टीकांक: ५२६६ टिप्पणांक: ८०७

एकमृत्पिंडविज्ञानात्सर्वमृन्मयधीर्यथा ।
तथैकब्रह्मबोधेन जगद्बुद्धिर्विभाव्यताम् ॥ ६१ ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४२७

६६) अद्वैतविज्ञाने शिष्यं अभिमुखीकर्तुं एव छांदोग्यश्रुतावेकस्य कारणस्य विज्ञानात्सर्वेषां कार्याणां विज्ञानमुक्तं न तु कार्याणामनेकेषां विज्ञानसिध्यर्थमित्यभिप्रायः ॥ ६० ॥

६७ इदानीमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानदृष्टतांप्रदर्शनपरस्य "यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्" इति वाक्यस्यार्थनिरूपणपुरःसरं दार्ष्टांतिकप्रदर्शनपरस्य "उत तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्" इति वाक्यस्यार्थं प्रदर्शयन् प्रकृते फलितमाह (एकमृत्पिंडेति)—

६८] **यथा एकमृत्पिंडविज्ञानात् सर्वमृन्मयधीः । तथा एकब्रह्मबोधेन जगद्बुद्धिः विभाव्यताम् ॥**

६९) यथा घटशरावाद्युपादानस्यैकस्य मृत्पिंडस्यावबोधात्तद्विकाराणां सर्वेषां घटादीनां बोधो भवति । एवं सर्वोपादानस्यैकस्य ब्रह्मणो बोधात्तत्कार्यस्य कृत्स्नस्य जगतः बोधो भवतीत्यवगंतव्यमित्यर्थः ॥ ६१ ॥

६६) अद्वैतके ज्ञानविषै शिष्यकूं सन्मुख करनैंकूंहीं छांदोग्यश्रुतिके षष्ठअध्यायविषै एककारणके विज्ञानतैं सर्वकार्यनका विज्ञान कह्याहै । परंतु अनेककार्यनके विज्ञानकी सिद्धिअर्थ नहीं कह्याहै । यह अभिप्राय है ६० ॥ ८ ॥ श्लोक ६० उक्त अर्थमैं दृष्टांतदार्ष्टांतसहित फलित ॥

६७ अब एककारणके विज्ञानतैं सर्वकार्यनके विज्ञानके दृष्टांतके दिखावनैं परायण जो "हे सोम्य! जैसैं एक मृत्तिकाके पिंडकरि सर्व मृत्तिकामय जान्याहोवैहै" इसवाक्यके अर्थके निरूपणपूर्वक दार्ष्टांतिकके दिखावनैं परायण "जिसकरि नहीं सुन्या अन्यवस्तु सुन्याहोवैहै औ नहीं मनन किया अन्य मनन कियाहोवैहै औ नहीं जान्या अन्य जान्याहोवैहै । तिस आदेशकूं कहिये उपदेशकूं बी तैंनैं गुरुके ताईं पूछ्याहै?" इस वाक्यके अर्थकूं दिखावतेहुये । एकके ज्ञानतैं सर्वके ज्ञानरूप प्रकृतविषै सिद्धअर्थकूं कहैहैं:—

६८] **जैसैं एक मृत्तिकाके पिंडके विज्ञानतैं सर्व मृत्तिकामयकी बुद्धि होवैहै । तैसैं एकब्रह्मके ज्ञानकरि जगत्की बुद्धि होवैहै । यह जानना ॥**

६९) जैसैं घटशरावआदिकनका उपादान जो मृत्तिकाका पिंड है । तिसके बोधतैं तिस मृत्तिकापिंडके कार्य सर्वघटादिकनका बोध होवैहै । ऐसैं सर्वका उपादान जो एकब्रह्म है । तिसके बोधतैं तिस ब्रह्मके विवर्तरूप कार्य संपूर्णजगत्का बोध होवैहै । ऐसैं जाननैंकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥ ६१ ॥

७ (१) असत्जडदुःखरूप अनेकअनात्मपदार्थके ज्ञानतैं परमपुरुषार्थकी सिद्धिके अभावतैं अनेककार्यनके ज्ञानअर्थ श्रुतिनैं एकके ज्ञानतैं अनेकनका ज्ञान नहीं कह्याहै । किंतु ब्रह्मरूप कारणके ज्ञानविषै प्रवृत्तिअर्थ ब्रह्मके ज्ञानकी स्तुति करीहै । याहीतैं यह वाक्य अर्थवादरूप मान्याहै ॥

(२) किंवा ज्ञानीकूं ब्रह्मसैं अभिन्न साक्षीरूपकरि ज्ञातताविशिष्ट वा अज्ञातताविशिष्ट सर्वपदार्थनका सर्वदा ज्ञान है ॥

(३) वा ब्रह्मरूप अधिष्ठानविषै कल्पित सर्वपदार्थनका ब्रह्मतैं वास्तवभेद नहीं है । किंतु बाधसामानाधिकरण्यकरि सर्वपदार्थनका ब्रह्मसैं अभेद है । यातैं एकब्रह्मके ज्ञानकरि अनेकपदार्थनका ज्ञान बनैहै । यह अर्थ है ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४२८ १४२९	सच्चित्सुखात्मकं ब्रह्म नामरूपात्मकं जगत् । तापनीये श्रुतं ब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणम् ॥ ६२ ॥ सद्रूपमारुणिः प्राह प्रज्ञानं ब्रह्म बह्वृचः । सनत्कुमार आनंदमेवमन्यत्र गम्यताम् ॥ ६३ ॥	टीकांक: ५२७० टिप्पणांक: ॐ

७० ननु ब्रह्मजगतोः स्वरूपापरिज्ञाने ब्रह्मज्ञानाज्जगतो ज्ञानं भवतीत्येवं नावगंतुं शक्यत इत्याशंक्य तदवगमाय तदुभयस्वरूपं दर्शयति—

७१] सच्चित्सुखात्मकं ब्रह्म । नामरूपात्मकं जगत् ॥

७२ ब्रह्मणः सच्चिदानंदरूपत्वे किं प्रमाणमित्याशंक्य तापनीयादिश्रुतयः प्रमाणमित्यभिप्रायेणाह—

७३] तापनीये सच्चिदानंदलक्षणं ब्रह्म श्रुतम् ॥

७४) उत्तरस्मिन् तापनीये आथर्वणिकैस्तावत् "ब्रह्मैवेदं सर्वं सच्चिदानंदमात्रं" इत्यादिप्रदेशेषु ब्रह्मणः सच्चिदानंदरूपत्वमुक्तमित्यर्थः ॥ ६२ ॥

७५ आदिशब्देन विवक्षितानि श्रुत्यंतराणि दर्शयति (सद्रूपमिति)—

७६] आरुणिः सद्रूपं । बह्वृचः प्रज्ञानं ब्रह्म । सनत्कुमारः आनंदं प्राह ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मरूप कारण । औ जगत्रूप कार्यका स्वरूप ॥

॥ ५२७०—५३४४ ॥

॥ १ ॥ ब्रह्म औ जगत्का संक्षेपतैं स्वरूप औ उक्तसच्चिदानंदब्रह्मके स्वरूपमैं तापनीयश्रुतिप्रमाण ॥

७० ननु ब्रह्म औ जगत्के स्वरूपके न जानेहुये । ब्रह्मके ज्ञानतैं जगत्का ज्ञान होवैहै । ऐसैं जाननैंकूं शक्य नहीं है । यह आशंकाकरि तिस ब्रह्म औ जगत्के ज्ञानअर्थ तिन ब्रह्म औ जगत् दोनूंके स्वरूपकूं दिखावैहैं:—

७१] सत्चित्आनंदस्वरूप ब्रह्म है औ नामरूपस्वरूप जगत् है ॥

७२ ब्रह्मकी सच्चिदानंदरूपताविषै कौन प्रमाण है? यह आशंकाकरि तापनीयआदिकश्रुतियां प्रमाण हैं । इस अभिप्रायकरि कहैहैं:—

७३] तापनीयविषै सच्चिदानंदलक्षणवाला ब्रह्म सुन्याहै ॥

७४) उत्तरतापनीयउपनिषद्विषै अथर्वणवेदके वेत्ते ब्राह्मणोनैं प्रथम "यह सर्वजगत् सच्चिदानंदमात्र ब्रह्महीं है" इत्यादिकस्थलनविषै ब्रह्मकी सच्चिदानंदरूपता कहीहै । यह अर्थ है ॥ ६२ ॥

॥ २ ॥ श्लोक ६२ उक्त ब्रह्मके स्वरूपमैं अन्यश्रुतिप्रमाण ॥

७५ श्लोक ६२ उक्त आदिशब्दकरि कहनैंकूं इच्छित अन्यश्रुतिनकूं दिखावैहैं:—

७६] उद्दालक सत्रूपकूं कहताभया औ ऋग्वेदीब्राह्मण प्रज्ञानरूप ब्रह्मकूं दिखावैहैं औ सनत्कुमार आनंदकूं कहताभया ॥

टीकांकः ५२७७ टिप्पणांकः ॐ

विचिंत्य सर्वरूपाणि कृत्वा नामानि तिष्ठति ।
अहं व्याकरवाणीमे नामरूपे इति श्रुतेः ॥६४॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४३०

७७) अरुणपुत्रेणोद्दालकेन छांदोग्यश्रुतौ "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" इत्यादिना सद्रूपं ब्रह्म निरूपितं ॥ तथा बह्वृचः ऋक्शाखाध्यायिनः ऐतरेयोपनिषदि "प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म" इति प्रज्ञानरूपत्वं ब्रह्मणः दर्शयंति ॥ एवं पूर्वोदाहृतायां छांदोग्यश्रुतावेव सनत्कुमाराख्यो गुरुः नारदाख्यशिष्याय "भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः" इत्युपक्रम्य "यो वै भूमा तत्सुखम्" इतिभूमशब्दाभिधेयस्य ब्रह्मण आनंदरूपत्वमुक्तवानित्यर्थः

७८ उक्तन्यायमन्यत्राप्यतिदिशति—

७९] एवं अन्यत्र गम्यताम् ॥

ॐ ७९) अन्यत्र तैत्तिरीयकादिश्रुतिषु "आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्" इत्यादिवाक्यैरानंदरूपत्वादिकमुक्तमिति द्रष्टव्यमिति भावः ॥ ६३ ॥

८० सच्चिदानंदेष्विव नामरूपयोरपि श्रुतिं दर्शयति (विचिंत्येति)—

८१] "सर्वरूपाणि विचिंत्य नामानि कृत्वा तिष्ठति ।" "अहं इमे नामरूपे व्याकरवाणि" इति श्रुतेः ॥

८२) "सर्वाणि रूपाणि विचिंत्य धीरो नामानि कृत्वा अभिवदन् यदास्ते" इति "अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" इति च स्रष्टव्ये जगन्निष्ठे नामरूपे श्रुत्या दर्शिते इत्यर्थः॥६४॥

---

७७) अरुणके पुत्र उद्दालकऋषिनैं छांदोग्यश्रुतिविषै "हे प्रियदर्शन! यह जगत् आगे सत्‌हीं था।" इहांसैं आदिलेके सत्‌रूप ब्रह्म निरूपण कियाहै। तैसैं ऋग्वेदकी शाखाके अध्ययन करनैंहारे ब्राह्मण ऐतरेयउपनिषद्विषै "प्रज्ञा जो ब्रह्मचेतन सो प्रतिष्ठा कहिये सर्वका आधार है । प्रज्ञान जो प्रकर्षज्ञान सो ब्रह्म है" ऐसैं ब्रह्मकी प्रज्ञानरूपताकूं दिखावैहैं ॥ ऐसैं पूर्व एकादशप्रकरणविषै उदाहरण करी छांदोग्यश्रुतिविषैहीं सनत्कुमारनाम गुरु नारदनाम शिष्यके तांई "भूमा जो परिपूर्णब्रह्म सो तौ जाननैंकूं योग्यहीं है" इहांसैं आरंभकरिके "जो भूमा नाम परिपूर्ण है। सोई सुखरूप है" ऐसैं भूमशब्दके वाच्य ब्रह्मकी आनंदरूपताकूं कहताभया। यह अर्थ है॥

७८ उक्तन्यायकूं अन्यउपनिषदनके ठिकानैं बी अतिदेश करैहैं:—

७९] ऐसैं अन्यठिकानैं बी जानना ॥

ॐ ७९) अन्य तैत्तिरीयआदिकवाक्यनकरि आनंदरूपताआदिक कहेहैं। ऐसैं देख लेना । यह भाव है ॥ ६३ ॥

॥ ३ ॥ जगत्के स्वरूप नामरूपमैं श्रुति ॥

८० सत्‌चित्‌आनंद इन ब्रह्मके स्वरूपविषै जैसैं श्रुतियां दिखाई। तैसैं नामरूपजगत्के स्वरूपविषै बी श्रुतिकूं दिखावैहैं:—

८१] "सर्वरूप जे आकार तिनकूं चिंतनकरीके तिनके नामकूं करीके परमात्मा स्थित होवैहै।" औ "मैं इन नामरूपकूं प्रगट करूं।" इस श्रुतितैं ॥

८२) "धीर जो परमात्मा है। सो सर्वरूपनकूं चिंतनकरिके तिनके नामनकूं करीके कहताहुया स्थित है।" औ "इस जीवरूपसैं पीछे प्रवेशकरिकेमैं नामरूपकूं प्रगट करूं" ऐसैं उत्पन्न करनैंके योग्य जगत्विषै स्थित नाम औ रूप श्रुतिनैं दिखायेहैं। यह अर्थ है ६४

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४३१ १४३२

टीकांक: ५२८३ टिप्पणांक: ॐ

८३अव्याकृतं पुरा सृष्टेरूर्ध्वं व्याक्रियते द्विधा ।
८७अचिंत्यशक्तिर्मायैषा ब्रह्मण्यव्याकृताभिधा॥६५॥
९०अविक्रियब्रह्मनिष्ठा विकारं यात्यनेकधा ।
९१मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्॥६६॥

८३ तत्रैव श्रुत्यंतरमुदाहरति (अव्याकृतमिति)—

८४] **सृष्टेः पुरा अव्याकृतं । ऊर्ध्वं द्विधा व्याक्रियते ॥**

८५) बृहदारण्यकश्रुतौ "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियतासौ नामायमिदं रूपः" इति सृष्टस्य जगतो नामरूपात्मकत्वं दर्शितमित्यर्थः । सृष्टेः पूर्वमिदं जगत् । अव्याकृतम् । अव्यक्तनामरूपात्मकमभूत् । ऊर्ध्वं सृष्ट्यवसरे । द्विधा वाच्यवाचकभावेन । व्याक्रियते व्यक्तीकृतमित्यर्थः ॥

८६ इदानीं "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्" इत्यत्राव्याकृतशब्दस्यार्थमाह (अचिंत्येति)—

८७] **ब्रह्मणि अचिंत्यशक्तिः माया एषा अव्याकृताभिधा ॥**

८८) येयं ब्रह्मणि अचिंत्यशक्तिः माया अस्ति एषा अव्याकृताभिधा अस्मिन्वाक्येऽव्याकृतशब्देन अभिधीयत इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

८९ "तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियते" इत्यस्यार्थमाह—

९०] **अविक्रियब्रह्मनिष्ठा अनेकधा विकारं याति ॥**

॥ ४ ॥ श्लोक ६४ उक्त अर्थमैं अन्यश्रुति औ तद्गत अव्याकृतशब्दका अर्थ ॥

८३ तहां नामरूपविषैहीं अन्यश्रुतिकूं उदाहरण करैहैं:—

८४] **सृष्टितैं पूर्व यह जगत् अप्रगट था । पीछे दोप्रकारसैं प्रगट होवैहै ॥**

८५) बृहदारण्यकश्रुतिविषै "सो प्रसिद्ध यह जगत् तब सृष्टितैं पूर्व अव्याकृतरूप था । सो जगत् नाम औ रूपकरिहीं 'यह आकाशादिक' इस नामवाला है औ 'यह इसका रूप है' ऐसैं प्रगट होताभया" ऐसैं उत्पन्न भये जगत्‌की नामरूपस्वरूपता दिखाईहै । यह तात्पर्यरूप अर्थ है ॥ उत्पत्तितैं पूर्व यह जगत् अव्याकृत कहिये अप्रगटनामरूपवाला था । पीछे सृष्टिके अवसरविषै दोप्रकारसैं कहिये वाच्यरूप औ वाचकभावकरि प्रगट कियाहै । यह श्लोकके पूर्वार्धका अर्थ है ॥

८६ अब "सो प्रसिद्ध यह जगत् तब अव्याकृतरूप था" इसवाक्यविषै जो "अव्याकृत" शब्द है । तिसके अर्थकूं कहैहैं:—

८७] **ब्रह्मविषै जो अचिंत्यशक्ति माया है । यह अव्याकृतनामवाली है ॥**

८८) जो यह ब्रह्मविषै अचिंत्यशक्ति माया है । यह अव्याकृतनामवाली है कहिये इस वाक्यविषै "अव्याकृत"शब्दकरि कहियेहै । यह अर्थ है ॥ ६५ ॥

॥५॥ "सो नामरूपकरि प्रगट होताहै" याका अर्थ॥

८९ "सो जगत् नामरूपकरि प्रगट होताभया" इस वाक्यके अर्थकूं कहैहैं:—

९०] **अविक्रियब्रह्मविषै स्थित भई सो माया अनेकप्रकारसैं विकारकूं पावतीहै ॥**

टीकांक: ५२९१ टिप्पणांक: ॐ

९६ आद्यो विकार आकाशः ९८सोऽस्ति भात्यपि च प्रियः ५३०० अवकाशस्तस्य रूपं २तन्मिथ्या न तु तत्त्रयम् ॥६७॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४३३

९१) अविकारिणि ब्रह्मणि वर्तमाना सा अनेकधा भूतभौतिकप्रपंचरूपेण बहुधा । विकारं परिणामं प्राप्नोति ॥

९२ माया ब्रह्मणि वर्तत इत्यत्र प्रमाणमाह—

९३] **मायां तु प्रकृतिं विद्यात् । मायिनं तु महेश्वरम् ॥**

९४) **मायां** पूर्वोक्तां **प्रकृतिं** प्रक्रियते अनयेति प्रकृतिरुपादानकारणं । **विद्यात्** जानीयात् । **मायिनं** तस्या आश्रयत्वेन तद्वंतं । **महेश्वरं** मायानियामकं । विद्यादित्यनुवर्तते । उभयत्र तुशब्दः परस्परवैलक्षण्यद्योतनार्थः ॥ ६६ ॥

९५ इदानीं मायोपहितस्य ब्रह्मणः प्रथमं कार्यमाह—

९६] **आद्यः विकारः आकाशः ॥**

९७ तस्य कारणादागतं रूपत्रयमाह—

९८] **सः अस्ति भाति अपि च प्रियः ॥**

ॐ ९८) सच्चिदानंदरूप इत्यर्थः ॥

९९ तस्य प्रातिस्विकं रूपमाह (अवकाश इति)—

५३००] **तस्य रूपं अवकाशः ॥**

१ तस्य पूर्वस्माद्रूपत्रयाद्वैलक्षण्यमाह—

२] **तत् मिथ्या । तत् त्रयं तु न ॥**

ॐ २) सदादिरूपत्रयं वास्तवमित्यर्थः ६७

---

९१) अविकारीब्रह्मविषै वर्तमान हुई सो माया । आकाशादिकभूत औ ब्रह्मांडआदिकभौतिकरूपकरि बहुतप्रकारसैं परिणामकूं पावतीहै ॥

९२ माया ब्रह्मविषै वर्ततीहै । इसअर्थविषै प्रमाण कहैहैं:—

९३] **मायाकूं तौ प्रकृति जानना औ मायावालेकूं तौ महेश्वर जानना ॥**

९४) पूर्व ६५ वें श्लोकउक्तमायाकूं प्रकृति कहिये जिसकरि सर्वजगत् करियेहै ऐसी उपादानकारण जानना औ मायी कहिये तिस मायाका आश्रय होनैंकरि तिस मायावालेकूं महेश्वर नाम मायाका नियामक जानना । माया औ मायी दोनूंके ठिकानैं जो तौअर्थवाला तुशब्द है । सो माया औ मायावाले दोनूंकी परस्परविलक्षणताके जनावनैं अर्थ है ॥ ६६ ॥

॥ ६ ॥ मायाउपहितब्रह्मका प्रथमकार्य (आकाश) औ ताके कारणतैं प्राप्त तीनरूप औ स्वकीयरूप॥

९५ अब मायाउपहितब्रह्मके प्रथमकार्यकूं कहैहैं:—

९६] **प्रथमविकार कहिये कार्य आकाश है ॥**

९७ तिस आकाशके कारण ब्रह्मतैं प्राप्त तीनरूपकूं कहैहैं:—

९८] **सो आकाश अस्ति भाति प्रिय है॥**

ॐ ९८) सच्चिदानंदरूप है । यह अर्थ है ॥

९९ तिस आकाशके अपनैं रूपकूं कहैहैं:—

५३००] **तिस आकाशका अपना स्वरूप अवकाश है ॥**

१ तिस आकाशकी पूर्वके ब्रह्मतैं प्राप्त तीनरूपतैं विलक्षणताकूं कहैहैं:—

२] **सो अवकाश मिथ्या है । सो सत्आदिकतीन तौ मिथ्या नहीं किंतु वास्तव हैं॥**

ॐ २) सत्आदिकतीन वास्तव हैं । यह अर्थ है ॥ ६७ ॥

महानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः | टीकांकः ५३०३ | टिप्पणांकः ८०८

१४३४ ³न व्यक्तेः पूर्वमस्त्येव न पश्चाच्चापि नाशतः ।
⁶आदावंते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ॥६८॥
१४३५ ⁸अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येवेत्याह कृष्णोऽर्जुनं प्रति ॥६९॥
१४३६ ¹⁰मृद्वत्ते सच्चिदानंदा अनुगच्छंति सर्वदा ।
¹³निराकाशे सदादीनामनुभूतिर्निजात्मनि ॥ ७० ॥

३ तस्य चतुर्थरूपस्य मिथ्यात्वे हेतुमाह (न इति)—

४] व्यक्तेः पूर्वं न अस्ति । एव च पश्चात् अपि नाशतः न ॥

५ ननूत्पत्तिविनाशयोर्मध्ये प्रतीयमानस्यावकाशस्य कथमसत्वमित्याशंक्याह—

६] आदौ च अंते यत् न अस्ति । तत् वर्तमाने अपि तथा ॥ ६८ ॥

७ उक्तार्थे श्रीकृष्णवाक्यं प्रमाणयति (अव्यक्तादीनीति)—

८] "भारत ! अव्यक्तादीनि व्यक्तमध्यानि अव्यक्तनिधनानि भूतानि एव" इति कृष्णः अर्जुनं प्रति आह ६९

९ सदादिरूपत्रयस्यावकाशे सत्वे किं प्रमाणमित्याशंक्यानुभूतिरेव प्रमाणमित्याह—

॥ ७ ॥ आकाशके चतुर्थरूप अवकाशके मिथ्यात्वमैं हेतु ॥

३ तिस आकाशके चतुर्थरूप अवकाशके मिथ्यापनैंविषै हेतु कहैहैंः—

४] व्यक्तितैं कहिये प्रगटतातैं पूर्व नहीं है औ पीछे बी नाश होवैहै । यातैं नहीं है । अर्थात् अवकाश मिथ्या है ॥

५ ननु उत्पत्ति औ विनाश इन दोनूंके बीचके कालमैं प्रतीयमान अवकाशका मिथ्यापना कैसैं है ? यह आशंकाकरि कहैहैंः—

६] आदिविषै औ अंतविषै जो वस्तु नहीं है । सो वस्तु वर्त्तमानविषै प्रतीत हुई बी तैसैं नहीं है ॥ ६८ ॥

॥ ८ ॥ उक्तअर्थमैं श्रीकृष्णवाक्यप्रमाण ॥

७ श्लोक ६८ उक्त अर्थविषै श्रीकृष्णके वाक्यकूं प्रमाण करैहैंः—

८] "हे अर्जुन ! अव्यक्त नाम अप्रगट है आदि जिनकी औ व्यक्त कहिये प्रगट है मध्य जिनका औ अप्रगट है अंत जिनका । ऐसैं आकाशादिक औ अंडजआदिकभूत हैं" ऐसैं श्रीकृष्णजी अर्जुनके प्रति कहतेभये ॥ ६९ ॥

॥ ९ ॥ अवकाशमैं सदादितीनरूपके सद्भावमैं अनुभवप्रमाण औ अवकाशविना बी तिनका अनुभव ॥

९ सत्‌आदिकतीनरूपके अवकाशविषै सद्भावमैं कौन प्रमाण है ? यह आशंकाकरि अनुभवहीं प्रमाण है । ऐसैं कहैहैंः—

८ जैसैं रज्जुविषै सर्प औ ताका ज्ञान । आदि औ अंतविषै अविद्यमान है । यातैं मध्यविषै प्रतीत हुया बी अविद्यमान है । तैसैं सृष्टितैं पूर्व औ नाशतैं पीछे अविद्यमान जो अवकाश सो मध्यविषै प्रतीत हुया बी अविद्यमानहीं है ॥

टीकांक: ५३१० टिप्पणांक: ॐ

अवकाशे विस्मृतेऽथ तत्र किं भाति ते वद।
शून्यमेवेति चेदस्तु नाम तादृग्विभाति हि॥७१॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४३७

१०] मृद्वत् ते सच्चिदानंदाः सर्वदा अनुगच्छंति ॥

११) "मृद्वत्" इति दृष्टांतः प्रदर्शनार्थः। घटादिषु यथा कालत्रयेऽपि मृदनुवर्तते तथा सदादिरूपत्रयं सर्वदा अनुगतं इत्यर्थः ॥

१२ नन्वावकाशं विहाय सदादिरूपत्रयं कथमनुभूतमित्याशंक्याह—

१३] निराकाशे निजात्मनि सदादीनां अनुभूतिः ॥ ७० ॥

१४ तदेवोपपादयति—

१५] अवकाशे विस्मृते अथ तत्र ते किं भाति वद ॥

१६ पूर्ववादिनश्चोद्यमनुवदति—

१७] शून्यं एव इति चेत् ॥

१८ अंगीकृत्य परिहारमाह—

१९] अस्तु नाम ॥

२० शब्दतः शून्यमस्त्वर्थतस्त्ववकाशाभावविशेषणस्य विशेष्यत्वेन प्रतीयमानं किंचिदस्तीति अभ्युपगंतव्यमित्याह—

२१] तादृक् विभाति हि ॥

ॐ २१) हिशब्दो लोकप्रसिद्धिद्योतनार्थः ॥ ७१ ॥

१०] मृत्तिकाआदिककी न्यांई सो सच्चिदानंद सर्वदा अनुगत होवैहै ॥

११) इहां "मृत्तिकाकी न्यांई" यह जो पद है। सो दृष्टांतके दिखावनैं अर्थ है। यातैं घटादिकनविषै जैसैं तीनकालविषै बी मृत्तिका अनुगत नाम अनुस्यूत है। तैसैं अवकाशविषै सत्‌आदिकतीनरूप अनुगत हैं। यह अर्थ है ॥

१२ ननु अवकाशकूं छोडिके सत्‌आदिकतीनरूप कैसैं अनुभवके विषय होवैहैं? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१३] आकाशरहित निजात्माविषै सत्‌आदिकनका अनुभव होवैहै ॥७०॥

॥ १० ॥ अवकाशविना सदादिकके अनुभवका उपपादन औ शंकासमाधान ॥

१४ तिसी श्लोक ७० उक्त अनुभवकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

१५] सिद्धांती पूछैहैं:— हे वादी! अवकाशके विस्मरण भये तहां तेरेकूं क्या भासताहै? सो कथन कर॥

१६ पूर्ववादीके प्रश्नकूं सिद्धांती अनुवाद करैहैं:—

१७] शून्यहीं है। ऐसैं जो कहै।

१८ सिद्धांती अंगीकारकरिके परिहार करैहैं:—

१९] तौ भलैं होहु ॥

२० शब्दतैं शून्य है। अर्थतैं तौ अवकाशके अभावरूप विशेषणका विशेष्य कहिये आधार होनैंकरि प्रतीयमान कछुकवस्तु है। ऐसैं अंगीकार करनैंकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं:—

२१] तैसैं कछुकवस्तुहीं भासताहै ॥

ॐ २१) इहां "हि" शब्द है। सो लोकप्रसिद्धिके जनावनैं अर्थ है ॥ ७१ ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥१३॥ श्लोकांकः १४३८ १४३९

तादृक्त्वादेव तत्सत्त्वमौदासीन्येन तत्सुखम् ।
आनुकूल्यप्रातिकूल्यहीनं यत्तन्निजं सुखम् ॥७२॥
आनुकूल्ये हर्षधीः स्यात्प्रातिकूल्ये तु दुःखधीः ।
द्वयाभावे निजानंदो निजदुःखं न तु क्वचित् ॥७३॥

टीकांकः ५३२२ टिप्पणांकः ८०९

२२ भवत्वेवं प्रकृते किमायातमित्याशंक्य विशेष्यत्वेन प्रतीयमानस्य स्वरूपमभ्युपेयमित्याह—

२३] तादृक्त्वात् एव तत्सत्त्वम् ॥

२४ तस्य सुखस्वरूपत्वमाह—

२५] औदासीन्येन तत् सुखम् ॥

२६) औदासीन्यविषयत्वात्तस्य सुखस्वरूपत्वमित्यर्थः ॥

२७ नन्वनुकूलत्वरहितस्य कथं सुखस्वरूपत्वमित्याशंक्याह—

२८] आनुकूल्यप्रातिकूल्यहीनं यत् तत् निजं सुखम् ॥ ७२ ॥

२९ तदेवोपपादयति—

३०] आनुकूल्ये हर्षधीः । प्रातिकूल्ये तु दुःखधीः । द्वयाभावे निजानंदः स्यात् ॥

३१ ननु निजानंदवन्निजदुःखमपि किं न स्यादित्याशंक्य दुःखे निजरूपसिद्ध्यभावान्नैवमित्याह—

३२] निजदुःखं तु क्वचित् न ॥७३॥

॥ ११ ॥ प्रकृतब्रह्मस्वरूपका कथन औ ताकी सत्‌रूपता औ निजसुखरूपता ॥

२२ ऐसैं अवकाशके विस्मरणकरि कछुक वस्तु अवशेष होहु । तिसकरि प्रकृत जो अवकाशरहित सत्‌आदिकका अनुभव तिसविषै क्या प्राप्त भया ? यह आशंकाकरि विशेष्य जो अवकाशके अभावरूप विशेषणका आश्रय । सो होनैंकरि प्रतीयमानवस्तुका स्वरूप अंगीकार करनैंकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं:—

२३] तैसा कहिये विशेष्य होनैंकरि प्रतीयमान होनैंतैंहीं तिसकी सत्ता नाम सद्रूपता है ॥

२४ तिस उक्तवस्तुकी सुखस्वरूपताकूं कहैहैं:—

२५] उदासीनपनैंकरि सो सुखरूप है ॥

२६) उदासीनपनैका विषय होनैंकरि तिस उक्तवस्तुकी सुखरूपता है । यह अर्थ है ॥

२७ ननु अनुकूलपनैंकरि रहित तिस वस्तुकी सुखस्वरूपता कैसैं है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

२८] अनुकूलपनैं औ प्रतिकूलपनैंकरि रहित जो है । सो निजसुख है ७२

॥ १२ ॥ श्लोक ७२ उक्त निजसुखका उपपादन औ निजदुःखका अभाव ॥

२९ तिसी निजसुखकूं उपपादन करैहैं:—

३०] अनुकूलपनैंविषै हर्षबुद्धि होवैहै औ प्रतिकूलपनैंविषै तौ दुःखबुद्धि होवैहै औ अनुकूलपनैं औ प्रतिकूलपनैं दोनूंके अभावविषै निजानंद होवैहै ॥

३१ ननु निजानंदकी न्यांई निजदुःख बी क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंकाकरि दुःखविषै निजरूपकी सिद्धिके अभावतैं निजदुःख बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

३२] निजदुःख तौ कहूं बी नहीं है ७३

९ "यह सुख है" इस ज्ञानाविना सुखकी सत्ता कहूं बी नहीं होवैहै । यातैं ज्ञानरूप आत्मासैं भिन्न सुखके स्वरूपके

टीकांक: ५२३२ टिप्पणांक: ॐ

३४ निजानंदे स्थिरे हर्षशोकयोर्व्यत्ययः क्षणात् ।
मनसः क्षणिकत्वेन तयोर्मानसतेष्यताम् ॥ ७४॥
३६ आकाशेऽप्येवमानंदः सत्ताभाने तु संमते ।
वाय्वादिदेहपर्यंतं वस्तुष्वेवं विभाव्यताम् ॥७५॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४४० १४४१

३३ ननु निजानंदस्य सदानंदत्वात्सर्वदा हर्ष एव स्यात् न तु शोक इत्याशंक्य तस्य नित्यत्वेऽपि तद्ग्राहिणो मनसः क्षणिकत्वेन मानसयोस्तयोरपि क्षणिकत्वमित्याह—

३४] निजानंदे स्थिरे हर्षशोकयोः क्षणात् व्यत्ययः । मनसः क्षणिकत्वेन तयोः मानसता इष्यताम् ॥ ७४ ॥

३५ दृष्टांते सिद्धमर्थं दार्ष्टांतिके योजयति (आकाशेऽपीति)—

३६] एवं आकाशे अपि आनंदः । सत्ताभाने तु संमते ॥

३७) एवं निजात्मन्युक्तप्रकारेणेत्यर्थः ॥ सत्ताभाने तु भवताभ्युपगम्येते अतो नोपपादनीये इत्यर्थः ॥

॥ १३ ॥ क्षणिकहर्षशोककी मानसता ॥

३३ ननु निजानंदकूं सदा आनंदरूप होनैतैं सर्वदा हर्षहीं होवैगा । शोक नहीं। यह आशंकाकरि तिस निजानंदकूं नित्य होते वी तिसके ग्राहक मनकूं क्षणिक होनैंकरि मनकृत तिन हर्ष औ शोकका वी क्षणिकपना है । ऐसैं कहैहैं:—

३४] निजानंदके स्थिर कहिये नित्य **होते वी हर्ष औ शोकका क्षणतैं उलटा-परिणाम** होवैहै । काहेतैं **मनकूं क्षणिक होनैंकरि तिन हर्ष औ शोककी मनकरि जन्यता अंगीकार करनैंकूं योग्य है ७४**

॥ १४ ॥ दृष्टांतसिद्धअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना औ आकाशमैं उपपादितअर्थकी वायुसैं आदिलेके देहपर्यंत अंगीकार्यता ॥

३५ श्लोक ७३ उक्त निजात्मारूप दृष्टांत-विषै सिद्धअर्थकूं दार्ष्टांतिक जो आकाश तिसविषै जोडतेहैं:—

३६] ऐसैं निजात्माविषै कथन किये प्रकारकरि **आकाशविषै वी आनंद है औ सत्ता अरु भान तौ संमत हैं ॥**

३७) सत्ता औ भान तौ ७१ औ ७२ वें श्लोकविषै तुमकरि अंगीकार कियेहैं । यातैं उपपादन करनैंकूं योग्य नहीं हैं । यह अर्थ है॥

न देखनैतैं लौकिकसुख वी आत्मस्वरूपहीं है ॥ विषय होनैंकरि जो भान होवैहै सो वृत्तिरूप उपाधिका कियाहै ॥ ऐसैं दुःख आत्मस्वरूप नहीं है । काहेतैं दुःखकी आत्मस्वरूपताविषै कोइ प्रत्यक्षादिरूप प्रमाण नहीं देखियेहै औ

कोइ वी पुरुष "मैं दुःखरूप हूं" ऐसैं अनुभव नहीं करताहै औ सुखकी आत्मस्वरूपता (ज्ञानरूपता)विषै "विज्ञान आनंद ब्रह्म है" इत्यादिअनेकश्रुतिरूप प्रमाणराज है औ आत्मा (आप)विषै परमप्रेमकी विषयता सर्वके अनुभवकरि सिद्ध है । सो आत्माकी सुखरूपताविना संभवै नहीं । यातैं आत्मा सुखरूपहीं है औ मेरेकूं सुख होवै यह जो सुखकी विषयता प्रतीत होवैहै सो भ्रांतिसिद्ध है । काहेतैं अज्ञ-जन जे हैं वे श्रुतिआदिककरि सिद्ध सुखकी आत्मरूपताकूं न जानतेहुये सुख औ आत्मा (चिदंश)के प्रतिबिंबकूं ग्रहण करनैंहारी वृत्तिद्वारा इन सुख औ आत्माके संबंधकूं पायके सुखकूं आत्माका (ममताका विषय) मानतेहुये संतोषकूं पावतेहैं ॥

ऐसैं सुखकी न्यांई दुःखविषै आत्मस्वरूपताकी सिद्धिके अभावतैं निजदुःख कहूं लोकविषै वा शास्त्रविषै वी नहीं देखियेहै ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥१३॥ श्लोकांकः

गँतिस्पर्शौ वायुरूपं वह्नेर्दाहप्रकाशने ।
१४४२ जलस्य द्रवता भूमेः काठिन्यं चेति निर्णयः ७६
ॐसाधारण आकार औषध्यन्नवपुष्यपि ।
१४४३ एवं विभाव्यं मनसा तत्तद्रूपं यथोचितम् ॥७७॥
ॐनेकधा विभिन्नेषु नामरूपेषु चैकधा ।
१४४४ तिष्ठंति सच्चिदानंदा विसंवादो न कस्यचित् ७८

टीकांकः ५३३८ टिप्पणांकः ८१०

३८ आकाशे प्रतिपादितोऽर्थो वाय्वादिशरीरांतेष्वभ्युपगंतव्य इत्याह (वाय्वादीति)

३९] एवं वाय्वादिदेहपर्यंतं वस्तुषु विभाव्यताम् ॥ ७५ ॥

४० तत्र वाय्वादीनामसाधारणधर्मान्दर्शयति द्वाभ्याम्—

४१] गतिस्पर्शौ वायुरूपं । वह्नेः दाहप्रकाशने । जलस्य द्रवता । च भूमेः काठिन्यं । इति निर्णयः ॥ ७६ ॥

४२] (असाधारण इति)— औषध्यन्नवपुषि अपि असाधारणः आकारः । एवं तत्तद्रूपं यथोचितं मनसा विभाव्यम् ॥ ७७ ॥

४३ फलितमाह—

४४] अनेकधा विभिन्नेषु नामरूपेषु च एकधा सच्चिदानंदाः तिष्ठंति । कस्यचित् विसंवादः न ॥ ७८ ॥

३८ आकाशविषै प्रतिपादन किया ६७ वें श्लोकसैं कह्या जो अर्थ। सो वायुसैं आदिलेके शरीरपर्य्यंत वस्तुनविषै अंगीकार करनैंकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैंः—

३९] ऐसैं वायुसैं आदिलेके देहपर्य्यंत वस्तुनविषै विचारना ॥ ७५ ॥

॥ १५ ॥ वायुआदिकके असाधारणधर्म ॥

४० तहां वायुआदिकनके असाधारण नाम स्वकीय ऐसैं धर्मनकूं दोश्लोककरि दिखावैहैंः—

४१] गति औ स्पर्श दोई वायुका रूप कहिये आकार है औ अग्निका दाह अरु प्रकाश रूप है औ जलका गीला करना रूप है औ भूमिका कठिनता रूप है । यह निर्णय है ॥ ७६ ॥

४२] औषधि अन्न औ शरीरविषै बी असाधारणआकार नाम अपना अपना धर्म है । ऐसैं तिस तिस वस्तुके रूपकूं नाम असाधारणआकारकूं यथायोग्य मनकरि चिंतन करना ॥ ७७ ॥

॥१६॥ सच्चिदानंदकी व्याप्तिरूप फलितका कथन ॥

४३ फलितअर्थकूं कहैहैंः—

४४] अनेकप्रकारसैं भिन्न जे नामरूप हैं । तिनविषै समान सत् चित् औ आनंद स्थित हैं । इसविषै किसीकूं बी विवाद नहीं है ॥ ७८ ॥

१० भिन्नभिन्न नाम औ रूपविषै व्यवहारकालमैं अस्ति-भातिप्रियरूपकरि समानभासमान जो सच्चिदानंदरूप ब्रह्मका सामान्यस्वरूप है । तिसविषै किसी आस्तिक वा नास्तिकवादीका वा लौकिकजनका विवाद नहीं है । काहेतैं तिनके अंगीकारविना "घट है । घट भासताहै । घट प्रिय है" इत्यादि नामरूपके व्यवहारकी असिद्धिका प्रसंग होवैगा । यह भाव है ॥

टीकांक: ५३४५ | टिप्पणांक: ८११ | ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥१३॥ श्लोकांक:

४६ निस्तत्त्वे नामरूपे द्वे जन्मनाशयुते च ते ।
बुद्ध्या ब्रह्मणि वीक्षस्व समुद्रे बुद्बुदादिवत्॥७९॥ १४४५

५० सच्चिदानंदरूपेऽस्मिन्पूर्णे ब्रह्मणि वीक्षिते ।
स्वयमेवावजानंति नामरूपे शनैः शनैः ॥ ८० ॥ १४४६

५२ यावद्यावदवज्ञा स्यात्तावत्तावत्तदीक्षणम् ।
यावद्यावद्वीक्ष्यते तत्तावत्तावदुभे त्यजेत् ॥ ८१ ॥ १४४७

४५ तर्हि प्रतीयमानयोर्नामरूपयोः का गतिरित्याशंक्य कल्पितत्वमेव गतिरित्याह (निस्तत्त्व इति)—

४६] **नामरूपे द्वे निस्तत्त्वे ॥**

४७ कल्पितत्वे हेतुः (जन्मेति)—

४८] **च ते जन्मनाशयुते समुद्रे बुद्बुदादिवत् बुद्ध्या ब्रह्मणि वीक्षस्व ७९**

४९ ततः किमित्यत आह—

५०] **सच्चिदानंदरूपे अस्मिन् पूर्णे ब्रह्मणि वीक्षिते नामरूपे शनैः शनैः स्वयं एव अवजानंति ॥ ८० ॥**

५१ ब्रह्मज्ञानदार्ढ्यस्य द्वैतावज्ञापूर्वकत्वाच्छ्रवणादिवत् द्वैतावज्ञापि कर्तव्येत्याह—

॥ ३ ॥ फलसहित नामरूपजगत्की उपेक्षा ॥ ५३४५—५३५८ ॥

॥ १ ॥ हेतु औ दृष्टांतसहित नामरूपकी गति (कल्पितपना) ॥

४५ तब प्रतीयमान नामरूपकी कौन गति कहिये दशा है? यह आशंकाकरि कल्पितपनाहीं नामरूपकी गति है। ऐसैं कहैहैं:—

४६] **नाम रूप दोनूं निस्तत्त्व कहिये कल्पित हैं ॥**

४७ नामरूपके कल्पितपनैंविषै हेतु कहैहैं:—

४८] **सो नामरूप जन्म औ नाशकरि युक्त हैं। यातैं तिनकूं समुद्रविषै बुद्बुद[११]-आदिककी न्यांई बुद्धिकरि ब्रह्मविषै मिथ्या देख ॥ ७९ ॥**

॥ २ ॥ ब्रह्मज्ञानसैं आपहीं नामरूपके अवज्ञाकी सिद्धि ॥

४९ तिस नामरूपके कल्पितपनैंतैं क्या होवैहै? तहां कहैहैं:—

५०] **सच्चिदानंदरूप इस पूर्णब्रह्मके साक्षात् कियेहुये। नामरूपकूं कछुक कालसैं आपहीं मुमुक्षु अवज्ञा नाम त्याग करैहैं ॥ ८० ॥**

॥ ३ ॥ ब्रह्मज्ञानकी दृढताअर्थ श्रवणादिककी न्यांई नामरूपद्वैतकी अवज्ञाकी कर्त्तव्यता ॥

५१ ब्रह्मज्ञानकी दृढताकूं द्वैतकी अवज्ञाके पूर्वक होनैंतैं श्रवणादिककी न्यांई द्वैतका मिथ्यापनैंकरि निरादर बी जिज्ञासुकूं कर्त्तव्य है। ऐसैं कहैहैं:—

११ आदिशब्दकरि फेन औ तरंगआदिकनका ग्रहण है। जैसैं बुद्बुदआदिक समुद्रसैं भिन्न बी नहीं औ अभिन्न बी नहीं औ भिन्नअभिन्न उभयरूप बी नहीं। यातैं अनिर्वचनीय होनैंतैं औ उत्पत्तिनाशवाले होनैंकरि समुद्रविषै कल्पित हैं। तैसैं नामरूप बी अनिर्वचनीय होनैंतैं औ उत्पत्तिनाशवाले होनैंतैं ब्रह्मविषै कल्पित हैं ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः

टीकांकः ५३५२

टिप्पणांकः ॐ

[५४]तदभ्यासेन विद्यायां सुस्थितायामयं पुमान्।
जीवन्नेव भवेन्मुक्तो वपुरस्तु यथा तथा ॥ ८२ ॥ (१४४८)
[५६]तच्चिंतनं तत्कथनमन्योऽन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ ८३ ॥ (१४४९)
[५८]वासनाऽनेककालीना दीर्घकालं निरंतरम्।
सादरं चाभ्यस्यमाने सर्वथैव निवर्तते ॥ ८४ ॥ (१४५०)

५२] यावत् यावत् अवज्ञा स्यात्। तावत् तावत् तदीक्षणं। यावत् यावत् तत् वीक्ष्यते। तावत् तावत् उभे त्यजेत् ॥ ८१ ॥

५३ उभयाभ्यासस्य फलमाह—

५४] तदभ्यासेन विद्यायां सुस्थितायां अयं पुमान् जीवन् एव मुक्तः भवेत्। वपुः यथा तथा अस्तु ॥ ८२ ॥

५५ इदानीं ब्रह्माभ्यासस्वरूपमाह—

५६] तच्चिंतनं। तत्कथनं। अन्योन्यं तत्प्रबोधनं। च एतदेकपरत्वं बुधाः ब्रह्माभ्यासं विदुः ॥ ८३ ॥

५७ नन्वनादिकालमारभ्य प्रतिभासमानस्य द्वैतस्य कादाचित्केन ज्ञानाभ्यासेन कथं निवृत्तिरित्याशंक्य दीर्घकालनैरंतर्येण सत्कारसेवितेनाभ्यासेन निवर्तते एवेत्याह (वासनेति)—

५८] अनेककालीना वासना दीर्घ-

५२] जितनी जितनी नामरूपद्वैतकी अवज्ञा होवैहै। तितना तितना तिस ब्रह्मका दर्शन होवैहै औ जितना जितना सो ब्रह्म देखियेहै। तितना तितना नामरूप दोनूंकूं त्यागताहै ॥ ८१ ॥

॥ ४ ॥ द्वैतकी अवज्ञा औ ब्रह्मके अवलोकनके अभ्यासका जीवन्मुक्तिरूप फल ॥

५३ नामरूपकी अवज्ञा औ ब्रह्मदर्शन इन दोनूंके अभ्यासके फलकूं कहैहैं:—

५४] तिन दोनूंके अभ्यासकरि विद्या जो ब्रह्मज्ञान ताके सुष्ठुप्रकारसैं स्थित हुये यह पुरुष जीवताहुयाहीं मुक्त होवैहै औ शरीर जैसैं तैसैं होहु ॥ ८२ ॥

॥ ५ ॥ ब्रह्माभ्यासका स्वरूप ॥

५५ अब ब्रह्माभ्यासके स्वरूपकूं कहैहैं:—

५६] तिस ब्रह्मका चिंतन औ तिस ब्रह्मका कथन औ परस्पर तिस ब्रह्मका प्रबोधन। ऐसैं इसी एकब्रह्मकी तत्परताकूं पंडितजन ब्रह्माभ्यास जानतेहैं ॥ ८३ ॥

॥ ६ ॥ निरंतर दीर्घकाल सादरअभ्यासतैं अनादिद्वैतवासनाकी निवृत्तिका संभव ॥

५७ ननु अनादिकालसैं आरंभकरिके भासमान जो द्वैत नाम जगत् है। तिसकी किसी एककालविषै किये ज्ञानके अभ्यासकरि कैसैं निवृत्ति होवैहै? यह आशंकाकरि दीर्घकालपर्यंत निरंतरपनैंकरि आदरसैं सेवन किये अभ्यासकरि अनादिकालका बी द्वैत निवर्त्त होवैहीं है। ऐसैं कहैहैं:—

५८] अनादिकालकी जो वासना

टीकांक: ५३५९ टिप्पणांक: ८१२

मृच्छक्तिवद्ब्रह्मशक्तिरनेकाननृतान्सृजेत् ।
यद्वा जीवगता निद्रा स्वप्नश्चात्र निदर्शनम् ॥८५॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४५१

कालं निरंतरं च सादरं अभ्यस्यमाने सर्वथा एव निवर्तते ॥ ८४ ॥

५९ ननु ब्रह्मण एकस्यानेकाकारजगद्धेतुत्वमनुपपन्नमित्याशंक्य मायासहितस्योपपद्यत इत्याह—

६०] मृच्छक्तिवत् ब्रह्मशक्तिः अनेकान् अनृतान् सृजेत् ॥

ॐ ६०) अनृतान् कार्याणीत्यर्थः ॥

६१ ननु मृच्छक्तेः सत्यत्वादनेकहेतुत्वाद्विषमो दृष्टांत इत्याशंक्य पक्षांतरमाह—

६२] यद्वा अत्र जीवगता निद्रा च स्वप्नः निदर्शनम् ॥ ८५ ॥

कहिये प्रपंचका संस्कार है। सो दीर्घकाल निरंतर औ आदरसहित जैसैं होवै तैसैं ८३ वें श्लोकउक्तब्रह्माभ्यास कियेहुये सर्वथाहीं निवृत्त होवैहै ॥ ८४ ॥

॥ ३ ॥ एकब्रह्मकूं मायासैं अनेकआकारताके संभवपूर्वक जगत्मैं अनुस्यूत ब्रह्मका निर्जगत्पना ॥ ५३५९—५४१९ ॥

॥ १ ॥ एकब्रह्मकूं मायासैं अनेककार्यआकारताका संभव ॥ ५३५९—५३७९ ॥

॥ १ ॥ एकब्रह्मकी अनेकताका दृष्टांतसैं संभव ॥

५९ ननु एकब्रह्मकूं अनेकआकारयुक्त जगत्का हेतुपना बनै नहीं। यह आशंकाकरि मायासहित एकब्रह्मकूं अनेकआकारयुक्त जगत्का हेतुपना बनैहै। ऐसैं कहैहैं:—

६०] मृत्तिकाकी शक्तिकी न्यांई ब्रह्मकी शक्ति माया जो है। सो अनेक नाम विलक्षणअनृतनकूं सृजतीहै ॥

ॐ ६०) इहां अनृतनकूं याका कार्यनकूं। यह अर्थ है ॥

६१ ननु मृत्तिकाकी शक्तिकूं मृत्तिकाके समानसत्तावाली होनैंकरि अनेककार्यनकी हेतु होनैंतैं औ ब्रह्मकी शक्तिकूं तौ मिथ्या होनैंकरि अनेकनकी हेतुताके अंगीकार करनैंतैं। यह मृत्तिकाकी शक्तिका दृष्टांत विषम नाम दार्ष्टांतके अननुसारी है। यह [१३] आशंकाकरि अन्यदृष्टांतरूप पक्षकूं कहैहैं:—

६२] यद्वा इहां जीवगतनिद्रा औ स्वप्नरूप दृष्टांत है ॥ ८५ ॥

१२ जैसैं अनादिकालका पर्वतविषै स्थित अंधकार कदाचित् किये दीपकसैं निवर्त्त होवैहै। तैसैं अनादिकालका जो द्वैतभ्रम सो दीर्घकालपर्यंत (वर्ष दोवर्ष) औ निरंतर (कोई दिवस वा व्यवहाररूप छिद्ररहित) औ आदरपूर्वक कदाचित् किये ८३ वें श्लोकउक्तज्ञानाभ्यासकरि निवृत्त होवैहै ॥

१३ टिप्पण ८०५ उक्त रीतिसैं मृत्तिकाउपहितचेतनहीं घटका विवर्त्तउपादान है। सो पारमार्थिकसत्तावाला है औ घटरूपसैं परिणामकूं प्राप्त भई मृत्तिकाकी शक्ति व्यावहारिकसत्तावाली है। यातैं उपादानके समानसत्तावाली नहीं है। तातैं यह दृष्टांत विषम नहीं है। तथापि तिस सिद्धांतकूं नहीं जाननैंहारे स्थूलदृष्टिवालेकी यह शंका है ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः

टीकांकः ५३६३ टिप्पणांकः ॐ

६४ निद्राशक्तिर्यथा जीवे दुर्घटस्वप्नकारिणी ।
६६ ब्रह्मण्येषा स्थिता माया सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ८६

१४५२ ६८ स्वप्ने वियद्गतिं पश्येत्स्वमूर्द्धच्छेदनं यथा ।
१४५३ मुहूर्ते वत्सरौघं च मृतपुत्रादिकं पुनः ॥ ८७ ॥

७० इदं युक्तमिदं नेति व्यवस्था तत्र दुर्लभा ।
१४५४ यथा यथेक्ष्यते यद्यत्तत्तद्युक्तं तथा तथा ॥ ८८ ॥

७२ ईदृशो महिमा दृष्टो निद्राशक्तेर्यदा तदा ।
१४५५ मायाशक्तेरचिंत्योऽयं महिमेति किमद्भुतम् ॥ ८९ ॥

६३ दृष्टांतं विशदयति (निद्रेति)—

६४] यथा जीवे निद्राशक्तिः दुर्घटस्वप्नकारिणी ॥

६५ दार्ष्टांतिकमाह—

६६] ब्रह्मणि स्थिता एषा माया सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ ८६ ॥

६७ दुर्घटकारित्वमेव दर्शयति (स्वप्ने इति)-

६८] यथा स्वप्ने वियद्गतिं । स्वमूर्द्धच्छेदनं । च मुहूर्ते वत्सरौघं । मृतपुत्रादिकं पुनः पश्येत् ॥ ८७ ॥

६९ स्वप्नस्य दुर्घटत्वे हेतुमाह—

७०] "इदं युक्तं । इदं न" इति व्यवस्था तत्र दुर्लभा । यत् यत् यथा यथा ईक्ष्यते । तत् तत् तथा तथा युक्तम् ॥ ८८ ॥

७१ उक्तमर्थं कैमुतिकन्यायेन स्पष्टयति (ईदृश इति)—

७२] यदा निद्राशक्तेः ईदृशः

॥ २ ॥ दृष्टांतकी स्पष्टतापूर्वक दार्ष्टांत ॥

६३ श्लोक ८५उक्त दृष्टांतकूं स्पष्ट करैहैं:—

६४] जैसैं जीवविषै स्थित निद्राशक्ति दुर्घटस्वप्नकी करनैंहारी है ।

६५ दार्ष्टांतिककूं कहैहैं:—

६६] तैसैं ब्रह्मविषै स्थित जो यह माया । सो जगत्के उत्पत्ति स्थिति औ नाशकी करनैंहारी है ॥ ८६ ॥

॥ ३ ॥ निद्राशक्तिकी दुर्घटकारिता ॥

६७ निद्राशक्तिकी दुर्घटकारिताकूंहीं दिखावैहैं:—

६८] जैसैं स्वप्नविषै पुरुष आकाशमैं अपनैं गमनकूं देखताहै औ अपनैं मस्तकके छेदनकूं देखताहै औ दोघटिका-परिमित स्वप्नकालविषै वर्षनके समूहकूं देखताहै औ मरणकूं प्राप्त भये पुत्रआदिककूं फेर देखताहै ॥ ८७ ॥

॥ ४ ॥ स्वप्नकी दुर्घटतामैं हेतु ॥

६९ स्वप्नकी दुर्घटताविषै हेतु कहैहैं:—

७०] "यह युक्त नाम घटित है । यह युक्त नहीं है"। ऐसा नियम तहां दुर्लभ है ॥ जो जो वस्तु जैसैं जैसैं देखियेहै । सो सो वस्तु तैसैं तैसैं घटित है ॥८८॥

॥ ५ ॥ श्लोक ८८ उक्त अर्थकी कैमुतिकन्यायसैं स्पष्टता ॥

७१ श्लोक ८७ सैं उक्त अर्थकूं कैमुतिकन्यायकरि स्पष्ट करैहैं:—

७२] जब निद्राशक्तिका श्लोक ८७

टीकांक: ५३७३ टिप्पणांक: ८१४	७४शयाने पुरुषे निद्रा स्वप्नं बहुविधं सृजेत् । ब्रह्मण्येवं निर्विकारे विकारान्कल्पयत्यसौ ॥९०॥ ७६खानिलाग्निजलोर्व्यंडलोकप्राणिशिलादिकाः । विकाराः ७८प्राणिधीष्वंतश्चिच्छाया प्रतिबिंबिता९१	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४५६ १४५७

महिमा दृष्टः । तदा मायाशक्तेः अयं अचिंत्यः महिमा । इति किं अद्भुतम् ८९

७३ अप्रयतमानब्रह्मनिष्ठायाः मायायाः जगद्धेतुत्वे दृष्टांतमाह—

७४] शयाने पुरुषे निद्रा बहुविधं स्वप्नं सृजेत् । एवं निर्विकारे ब्रह्मणि असौ विकारान् कल्पयति ॥ ९० ॥

७५ मायया सृष्टान्पदार्थान्दर्शयति—

७६] खानिलाग्निजलोर्व्यंडलोकप्राणिशिलादिकाः विकाराः ॥

७७ ननु पांचभौतिकत्वेन साम्येऽपि केषांचिच्चेतनत्वं केषांचिज्जडत्वं कुत इत्याशंक्याह—

७८] प्राणिधीषु अंतः चिच्छाया प्रतिबिंबिता ॥

सैं उक्त प्रकारका ऐसा महिमा नाम माहात्म्य देख्याहै । तब मायाशक्तिका यह अचिंत्यमहिमा है । यामैं क्या आश्चर्य है? कछु बी नहीं ॥ ८९ ॥

॥३॥ ब्रह्ममैं स्थित मायाकूं जगत्‌की हेतुतामैं दृष्टांत॥

७३ प्रयत्नरहित नाम अक्रिय ऐसे ब्रह्मविषै स्थित जो माया । ताकूं जगत्‌की कारणताविषै दृष्टांत कहैहैं:—

७४] जैसैं शयनकूं प्राप्त भये जीवविषै निद्रा बहुतप्रकारके स्वप्नकूं सृजती कहिये कल्पतीहै । ऐसैं निर्विकार नाम क्रियारहित ब्रह्मविषै यह माया बहुतप्रकारके विकाररूप कार्यनकूं कल्पतीहै ९०

॥ ७ ॥ जडचेतनके भेदसहित मायारचितपदार्थ ॥

७५ मायाकरि रचित पदार्थनकूं दिखावैहैं:-

७६] आकाश । वायु । अग्नि । जल । पृथ्वी । ब्रह्मांड । चतुर्दशलोक । जंगमजीवरूप प्राणी औ शिलाआदिकस्थावरजीव ये मायाके कार्यरूपविकार हैं ॥

७७ ननु सर्वचरअचरशरीरनविषै पंचभूतकी कार्यताके समान हुये कितनैक शरीरनकूं चेतनपना औ कितनैक शरीरनकूं जडपना काहेतैं है? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

७८] प्राणिनकी बुद्धिनविषै भीतर चेतनकी छाया प्रतिबिंबरूपकूं पावतीहै ॥

१४ मायाविशिष्टचेतनरूप महेश्वरतैं प्रथम अपंचीकृत कहिये सूक्ष्मपंचभूतनकी उत्पत्ति होवैहै । तिनतैं षोडशकलास्वरूप लिंग जो दशैंद्रिय पंचप्राण औ मनरूप सूक्ष्मशरीर ताकी उत्पत्ति होवैहै ॥ समष्टिरूप सूक्ष्मशरीरका अभिमानी हुया यह महेश्वरहीं हिरण्यगर्भ औ सूत्रात्माआदिक कहियेहै ॥ सो हिरण्यगर्भ । जलप्रधानपंचस्थूलभूतनकूं रचिके तिनविषै उपासकनकरि अनुष्ठान किये कर्मउपासनाके सूक्ष्मपरिणाममय अपनें वीर्यकूं गेरताभया । सो वीर्य जलप्रधानपंचभूतनके ऊपर स्थित हुया दधिके गट्ठेकी न्यांई भया । पीछे कालकरि घन औ कठिनरूप भया । सो कठिनपृथिवी भयी औ तिसतैं निकस्या जो सार सो महान्ब्रह्मांडगोलक भया । सो कुकुटके अंडके तुल्य आकारवाला है औ इसविषै सप्तलोककी स्थिति है ॥ शुष्कतुंबीफलकी न्यांई वायुसैं ताडित भया सो ब्रह्मांड ब्रह्मदेवके संवत्सररूप कालकरि कुकुटके अंडकी न्यांई भेदनकूं पाया । तिसके भीतर यह सप्तलोकरूप शरीरका धारनैंहारा विराट्पुरुष प्रगट भया ॥ इति ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक: १४५८ १४५९	८१ चेतनाचेतनेष्वेषु सच्चिदानंदलक्षणम् । समानं ब्रह्म भिद्येते नामरूपे पृथक् पृथक्॥९२॥ ८३ ब्रह्मण्येते नामरूपे पटे चित्रमिव स्थिते । ८६ उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानंदधीर्भवेत् ॥ ९३ ॥	टीकांक: ५३७९ टिप्पणांक: ८१५

७९) प्राणिशरीरेषु अंतःकरणेषु चैतन्यप्रतिबिंबनात् चेतनत्वमितरत्र तदभावाज्जडत्वमित्यर्थः ॥ ९१ ॥

८० ननु चेतनाचेतनविभागश्चिद्रूपब्रह्मकृत एव किं न स्यादित्याशंक्य ब्रह्मणः सर्वोपादानत्वेन सर्वत्र समत्वान्नैवमित्याह (चेतनेति)—

८१] एषु चेतनाचेतनेषु सच्चिदानंदलक्षणं ब्रह्म समानं । नामरूपे पृथक् पृथक् भिद्येते ॥ ९२ ॥

८२ ब्रह्मणश्चिज्जडसाधारणत्वे हेतुमाह (ब्रह्मणीति)—

८३] पटे चित्रं इव ब्रह्मणि एते नामरूपे स्थिते ॥

८४) ब्रह्मणः सर्वकल्पनाधारत्वात्सर्वगतत्वमित्यर्थः ॥

८५ तत्कथमवगम्यत इत्याशंकायां कल्पितनामरूपत्यागेऽधिष्ठानं ब्रह्मावगम्यत इत्याह (उपेक्ष्येति)—

---

७९) प्राणीशरीरनविषे स्ववर्ती अंतःकरणनमैं चेतनके प्रतिबिंबके नाम चिदाभासके होनैंतें चेतनपना है औ अन्यप्राणरहितशरीरनविषै तिस चिदाभासके अभावतें जडपना है । यह अर्थ है ॥ ९१ ॥

॥ २ ॥ जडचेतनरूप जगत्मैं अनुस्यूत ब्रह्मका फलसहित निर्जगत्पना ॥ ५३८०—५४१९ ॥

॥१॥ जडचेतनके विभागके ब्रह्मरचितपनैंका अभाव ॥

८० ननु चेतन औ जडका भेद जो है । सो चेतनरूप ब्रह्मका कियाहीं क्यूं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरि ब्रह्मकूं सर्वजडचेतनमात्रका उपादान होनैंकरि सर्वत्र समान होनैंतें इस प्रकार बनैं नहीं । ऐसैं कहैहैं:—

८१] इन चेतनअचेतनविषै सच्चिदानंदलक्षणवाला ब्रह्म समान है औ नामरूप भिन्नभिन्न भेदकूं कहिये विलक्षणताकूं पावतेहैं ॥ ९२ ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मकूं जडचेतनविषै साधारण होनैमैं हेतु ॥

८२ ब्रह्मके जडचेतनमैं समानपनैंविषै हेतुकूं कहैहैं:—

८३] पटविषै चित्र जैसैं कल्पित है । तैसैं ब्रह्मविषै यह नामरूप कल्पित हैं॥

८४) ब्रह्मकूं सर्वकल्पनाका आधार होनैतें सर्वगतपना है । यह अर्थ है ॥

८५ सो सर्वगतब्रह्म किस प्रकारसैं जानिये है ? इस आशंकाके हुये कल्पितनामरूपके त्याग हुये अधिष्ठान ब्रह्म जानियेहै । ऐसैं कहैहैं:-

---

१५ जहां रज्जुविषै दशपुरुषनकूं किसीकूं सर्पकी । किसीकूं वृक्षकी जड । किसीकूं माला । किसीकूं जलधारा । इत्यादिदशप्रकारकी भ्रांति होवैहै । तहां सर्पआदिककल्पितविशेषअंश परस्परव्यभिचारी होनैतें भिन्नभिन्न हैं औ इदंतारूप रज्जुका सामान्यअंश अव्यभिचारी होनैतें सर्वविषै समान है । तैसैं कल्पितविशेषअंश जो नामरूप सो परस्परव्यभिचारी होनैतें भिन्न भिन्न हैं औ ब्रह्मके सामान्यरूप जे सच्चिदानंद (अस्तिभातिप्रिय) हैं । वे अव्यभिचारी होनैतें सर्वत्र समान हैं॥

टीकांक: ५३८६ टिप्पणांक: ॐ		ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक:
	८८जलस्थेऽधोमुखे स्वस्य देहे दृष्टेऽप्युपेक्ष्य तम् । तीरस्थ एव देहे स्वे तात्पर्यं स्याद्यथा तथा ॥९४	१४६०
	९१सहस्रशो मनोराज्ये वर्तमाने सदैव तत् । सर्वैरुपेक्ष्यते यद्वदुपेक्षा नामरूपयोः ॥ ९५ ॥	१४६१
	९३क्षणे क्षणे मनोराज्यं भवत्येवान्यथान्यथा । गतं गतं पुनर्नास्ति ९५व्यवहारो बहिस्तथा ॥९६॥	१४६२

८६] नामरूपे द्वे उपेक्ष्य सच्चिदानंद-धीः भवेत् ॥ ९३ ॥

८७ उक्तार्थे दृष्टांतमाह—

८८] जलस्थे अधोमुखे स्वस्य देहे दृष्टे अपि तं उपेक्ष्य । तीरस्थे स्वे देहे एव तात्पर्यं यथा स्यात् । तथा ॥

८९) नीरे अधोमुखे देहे परिदृश्यमानेऽपि तत्रादरं परित्यज्य तीरस्थे स्वदेहे तद्विपरीते ममत्वबुद्धिः यथा । तथा इत्यर्थः ॥ ९४ ॥

९० इदानीं सर्वजनप्रसिद्धं दृष्टांतांतरमाह (सहस्रश इति)—

९१] यद्वत् सहस्रशः मनोराज्ये वर्तमाने तत् सर्वैः सदा एव उपेक्ष्यते । नामरूपयोः उपेक्षा ॥

ॐ ९१) उपेक्षा कर्तव्येति शेषः ॥ ९५ ॥

९२ प्रपंचवैचित्र्ये दृष्टांतमाह—

९३] क्षणे क्षणे अन्यथा अन्यथा मनोराज्यं भवति एव । गतं गतं पुनः न अस्ति ॥

९४ दार्ष्टांतिकमाह (व्यवहार इति)—

९५] तथा बहिः व्यवहारः ॥ ९६ ॥

८६] नाम औ रूप इन दोनूंकूं उपेक्षाकरिके कहिये मिथ्यापनैंसैं त्यागकरिके । सच्चिदानंदब्रह्मकी बुद्धि कहिये प्रतीति होवैहै ॥ ९३ ॥

॥ ३ ॥ श्लोक ९३ उक्त अर्थमैं दृष्टांत ॥

८७ श्लोक ९३ उक्त अर्थविषै दृष्टांत कहैहैं:-

८८] जैसैं जलविषै स्थित उलटेमुखवाले अपनैं देहके देखेहुये बी तिस जलगतदेहकूं उपेक्षाकरिके तीरविषै स्थित अपनैं देहविषैहीं पुरुषका तात्पर्य होवैहै । तैसैं ॥ ९४ ॥

८९) जैसैं जलविषै अधोमुखदेहके परिदृश्यमान हुये बी तिस जलगतदेहविषै आदरकूं परित्यागकरिके तीरविषै स्थित तिसतैं विपरीत ऊर्ध्वमुखवाले अपनैं देहविषै पुरुषकूं जैसैं ममत्वबुद्धि होवैहै । तैसैं नामरूपके परिदृश्यमान हुये बी तिनविषै सत्यताबुद्धिरूप आदरकूं छोडिके । सच्चिदानंदब्रह्मविषै अहंबुद्धि होवैहै । यह अर्थ है ॥ ९४ ॥

॥ ४ ॥ सर्वजनप्रसिद्ध अन्यदृष्टांत ॥

९० अब सर्वजनप्रसिद्धअन्यदृष्टांतकूं कहैहैं:-

९१] जैसैं हजारोहजार मनोराज्यके कहिये मनरचित वस्तुके वर्त्तमान हुये बी सो सर्वजननकरि सर्वदाहीं उपेक्षा करियेहै । तैसैं नामरूपकी उपेक्षा है ॥

ॐ ९१) इहां उपेक्षा कर्त्तव्य है । यह शेष है ॥ ९५ ॥

॥ ५ ॥ प्रपंचकी विचित्रतामैं दृष्टांत औ सिद्धांत ॥

९२ प्रपंचकी विचित्रताविषै दृष्टांत कहैहैं:-

९३] क्षणक्षणविषै औरऔरप्रकारका मनोराज्य होवैहीं है औ गया गया मनोराज्य फेर नहीं है ॥

९४ दार्ष्टांतिककूं कहैहैं:—

९५] तैसैं बाह्यव्यवहार है ॥ ९६ ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	९७ न बाल्यं यौवने लब्धं यौवनं स्थाविरे तथा ।	
१४६३	मृतः पिता पुनर्नास्ति नायात्येव गतं दिनम् ९७	५३९६
	९९ मनोराज्याद्विशेषः कः क्षणध्वंसिनि लौकिके ।	
१४६४	अतोऽस्मिन्भासमानेऽपि तत्सत्यत्वधियं त्यजेत् ९८	टिप्पणांकः
	३ उपेक्षिते लौकिके धीर्निर्विघ्ना ब्रह्मचिंतने ।	ॐ
१४६५	नटवत्कृत्रिमास्थाय निर्वहत्येव लौकिकम् ॥९९॥	

९६ तदेव विवृणोति (नेति)—

९७] बाल्यं यौवने न लब्धं । तथा यौवनं स्थाविरे । मृतः पिता पुनः न अस्ति । गतं दिनं न आयाति एव ॥९७

९८ द्वैतक्षणिकत्वमुपसंहरति (मनोराज्यादिति)—

९९] क्षणध्वंसिनि लौकिके मनोराज्यात् कः विशेषः ॥

५४०० क्षणिकत्वसाधने प्रयोजनमाह—

१] अतः अस्मिन् भासमाने अपि तत्सत्यत्वधियं त्यजेत् ॥ ९८ ॥

२ ननु लौकिकोपेक्षायां को लाभ इत्याशंक्य ब्रह्मणि धीः स्थिरा भवतीत्याह (उपेक्षित इति)—

३] लौकिके उपेक्षिते धीः ब्रह्मचिंतने निर्विघ्ना ॥

४ तर्हि ज्ञानिनो व्यवहारः कथमित्याशंक्याह—

॥ ६ ॥ सिद्धांतका विवरण ॥

९६ तिसी ९६ वें श्लोकउक्तदार्ष्टांतकूंहीं वर्णन करैहैं:—

९७] बालकअवस्था यौवनविषै प्राप्त होवै नहीं । तैसैं यौवन वृद्धअवस्थाविषै प्राप्त होवै नहीं औ मरणकूं प्राप्त भया पिता फेर नहीं है औ गया जो दिन सो फेर नहीं आवताहै ॥९७॥

॥ ७ ॥ जगत्‌की क्षणिकताकी समाप्ति औ ताकी क्षणिकताके साधनैमैं प्रयोजन ॥

९८ द्वैतजगत्‌के क्षणिकपनैंकूं समाप्त करैहैं:—

९९] क्षणमात्रसैं नाश होनैंहारे लौकिकबाह्यव्यवहारविषै मनोराज्यतैं कौन विलक्षणता है? कोई बी नहीं ॥

५४०० जगत्‌के क्षणिकपनैंके साधनैविषै प्रयोजन कहैहैं:—

१] यातैं इस प्रपंचके भासमान होते बी तिसविषै सत्यताकी बुद्धिकूं त्याग करना ॥ ९८ ॥

॥ ८ ॥ लौकिककी उपेक्षामैं ब्रह्मबुद्धिकी स्थिरतारूप लाभ औ ऐसैं हुये ज्ञानीके व्यवहारका संभव ॥

२ ननु लौकिकबाह्यव्यवहारकी उपेक्षाके हुये क्या लाभ होवैहै? यह आशंकाकरि लौकिककी उपेक्षाके हुये ब्रह्मविषै बुद्धि स्थिर होवैहै यह लाभ है । ऐसैं कहैहैं:—

३] लौकिकबाह्यप्रपंचके उपेक्षाके विषय भये । बुद्धि ब्रह्मचिंतनविषै निर्विघ्न कहिये स्थिर होवैहै ॥

४ जब जगत्‌की उपेक्षा भई । तब ज्ञानीका व्यवहार कैसैं होवैगा? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

टीकांकः ५४०५ टिप्पणांकः ८१६	प्रवहत्यपि नीरेऽधः स्थिरा प्रौढशिला यथा । नामरूपान्यथात्वेऽपि कूटस्थं ब्रह्म नान्यथा १०० ॥ [१०] निश्छिद्रे दर्पणे भाति वस्तुगर्भं बृहद्वियत् । सच्छिद्रे तथा नानाजगद्गर्भमिदं वियत् ॥१०१॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांकः १४६६ १४६७

५] नटवत् कृत्रि आस्थाय लौकिकं निर्वहति एव ॥ ९९ ॥

६ ननु ज्ञानिनो व्यवहाराभ्युपगमे विकारित्वं प्रसज्येतेत्याशंक्य बुद्धौ व्यवहारवत्यामपि तत्साक्ष्यात्मा निर्विकारः । इति सदृष्टांतमाह (प्रवहतीति)—

७] नीरे प्रवहति अपि अधः प्रौढशिला यथा स्थिरा। नामरूपान्यथात्वे अपि कूटस्थं ब्रह्म अन्यथा न ॥

८) उदके उपरि प्रवहत्यपि अधः स्थिता प्रौढा शिला यथा न चलति। तथा एवं बुद्धौ संसरत्यामपि न ज्ञानी संसरतीत्यर्थः ॥ १०० ॥

९ नन्वखंडे ब्रह्मणि तद्विलक्षणस्य जगतः कथमवभासनमित्याशंक्य निश्छिद्रे दर्पणे सावकाशवस्तुनो यथा भानं तद्वदित्याह—

५] नटकी नाम वेषधारीकी न्याई ज्ञानी कृत्रिमआस्थातैं कहिये कल्पितसत्यबुद्धितैं लौकिकव्यवहारकूं निर्वाह[१६] करताहै ॥ ९९ ॥

॥ ९ ॥ ज्ञानीकूं व्यवहार होते साक्षीआत्माकी निर्विकारतामैं दृष्टांत ॥

६ ननु ज्ञानीकूं व्यवहारके अंगीकार हुये विकारीपना प्राप्त होवैगा। यह आशंकाकरि बुद्धिकूं व्यवहारवाली होते बी तिस बुद्धिका साक्षी आत्मा निर्विकार है। ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

७] जैसैं जलके वहतेहुये बी नीचे स्थित जो बडीशिला सो स्थिर है । तैसैं नामरूपके अन्यथाभावके हुये बी कूटस्थ नाम निर्विकार जो ब्रह्म । सो अन्यथा होवै नहीं ॥

८) जलके ऊपर वहतेहुये बी तिसके नीचे स्थित जो प्रौढशिला है सो जैसैं हिलती नहीं। ऐसैं बुद्धिकूं व्यवहार करतेहुये बी ज्ञानी ब्रह्मात्मारूप होनैतैं व्यवहार करता नहीं। यह अर्थ है ॥ १०० ॥

॥ १० ॥ अखंडब्रह्ममैं तिसतैं विलक्षण जगत्के भानमैं दृष्टांत ॥

९ ननु अखंडब्रह्मविषै तिस ब्रह्मतैं विपरीत जगत्का भासना कैसैं होवैहै? यह आशंका करि निश्छिद्र दर्पणविषै जैसैं अवकाशसहित वस्तुका भान होवैहै । तैसैं अखंडब्रह्मविषै तिसतैं विलक्षण जगत्का भान होवैहै । ऐसैं कहैहैं:—

१६ जैसैं नट अपनैं उदरके भरणअर्थ व्याघ्रके वेषकूं धारिके बालकनकूं भय करताहै परंतु तिसकूं किसीके भक्षणकी इच्छा नहीं है औ स्त्रीके वेषकूं धारिके "मैं स्त्री हूं" ऐसैं कथन करताहुया बी अपनैंकूं स्त्री मानिके भर्त्ताकी इच्छा करता नहीं है। किंतु यह ऊपरसैं दिखावताहै। तैसैं ज्ञानी देहइंद्रियमनकरि "मैं मनुष्य हूं। ब्राह्मण हूं। देखताहूं। सुनताहूं। कर्ताहूं। भोक्ता हूं। सुखी हूं। दुःखीहूं। जानताहूं। न जानताहूं" इत्यादिआध्यासिकव्यवहार ऊपरतैं करता हुया बी अंतरविषै असंग निर्विकार कर्तृत्वादिधर्मरहित प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मरूप आपकूं मानताहै। यातैं व्यवहार करताहुया बी ज्ञानी निर्विकार है ॥

ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१४६८	अदृष्ट्वा दर्पणं नैव तदंतस्थेक्षणं तथा । अमत्वा सच्चिदानंदं नामरूपमतिः कुतः ॥१०२॥	५४१०
१४६९	प्रथमं सच्चिदानंदे भासमानेऽथ तावता । बुद्धिं नियम्य नैवोर्ध्वं धारयेन्नामरूपयोः ॥१०३॥	टिप्पणांक: ८१७

१०] निश्छिद्रे दर्पणे वस्तुगर्भं बृहत् वियत् भाति । तथा सच्छिद्रे नानाजगद्गर्भं इदं वियत् ॥ १०१ ॥

११ नन्वदृश्ये ब्रह्मणि कथं जगत्प्रतीतिरित्याशंक्य सच्चिदानंदप्रतीतिपुरःसरमेव जगत्प्रतीतिरिति सदृष्टांतमाह (अदृष्ट्वेति)—

१२] दर्पणं अदृष्ट्वा तदंतस्थेक्षणं न एव । तथा सच्चिदानंदं अमत्वा नामरूपमतिः कुतः ॥ १०२ ॥

१३ ननु नामरूपयोरपि भासमानत्वात्कथं निर्विषयब्रह्मप्रतीतिरित्याशंक्य तद्बुद्ध्युपायमाह (प्रथममिति)—

१४] प्रथमं सच्चिदानंदे भासमाने अथ तावता बुद्धिं नियम्य ऊर्ध्वं नामरूपयोः न एव धारयेत् ॥

१५) सच्चिदानंदे ब्रह्मणि कल्पितनामरूपात्मके प्रपंचे सच्चिदानंदमात्रं बुद्ध्या गृहीत्वा नामरूपयोः बुद्धिं न धारयेत् ॥ १०३ ॥

१०] अवकाशसैं रहित दर्पणविषै जैसैं घटादिवस्तु हैं गर्भविषै जाके ऐसा बडाआकाश भासताहै । तैसैं सत्चिद्घनब्रह्मविषै पृथ्वीआदिअनेकजगत् हैं गर्भविषै जाके ऐसा यह आकाश भासताहै ॥ १०१ ॥

॥ ११ ॥ अदृश्यब्रह्मविषै जगत्प्रतीतिमैं दृष्टांत ॥

११ ननु अदृश्यब्रह्मविषै कैसैं जगत्की प्रतीति होवैहै ? यह आशंकाकरि सत्चित्आनंद जो अस्तिभातिप्रिय ताकी प्रतीतिपूर्वकहीं जगत्की प्रतीति होवैहै । ऐसैं दृष्टांतसहित कहैहैं:—

१२] जैसैं दर्पणकूं न देखिके तिस दर्पणके भीतर स्थितवस्तुरूप प्रतिबिंबका देखना नहीं होवैहै । तैसैं सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मकूं न मानिके नाम न निश्चयकरिके नामरूपकी बुद्धि कहांसैं होवैगी ? किसी कारणसैं बी होवै नहीं॥१०२

॥ १२ ॥ नामरूपके भासमान हुये निर्विषयब्रह्मकी प्रतीतिका उपाय ॥

१३ ननु . नामरूपकूं बी भासमान होनैतैं निर्विषय नाम निष्प्रपंचब्रह्मकी प्रतीति कैसैं होवैहै? यह आशंकाकरि तिस ब्रह्मकी प्रतीतिके उपायकूं कहैहैं:—

१४] प्रथम सच्चिदानंदब्रह्मके भासमान हुये अनंतर तितनैंकरि बुद्धिकूं नियमनकरिके कहिये ग्रहणकरिके पीछे नामरूपविषै बुद्धिकूं धारना नहीं ॥

१५) सच्चिदानंदरूप ब्रह्मविषै कल्पित जो नामरूपमय प्रपंच है । तिसविषै सच्चिदानंदमात्रकूं बुद्धिसैं ग्रहणकरिके नामरूपविषै बुद्धिकूं धारण करना नहीं ॥ १०३ ॥

१७ जैसैं भित्तिमैं स्थित दर्पणविषै महद्द्वारसंयुक्तसन्मुख विद्यमान सभामंडलके प्रतिबिंबकूं देखिके तिसविषै पुरुष सत्यताकी बुद्धि करताहै औ "यह दर्पण है" इस अधिष्ठानके ज्ञान भये पीछे दर्पणनिष्ठअविद्याके आवरणहेतुशक्तिके

टीकांक: ५४१६ टिप्पणांक: ॐ	१७ एवं च निर्जगद्ब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणम् । अद्वैतानंद एतस्मिन्विश्राम्यंतु जनाश्चिरम्॥१०४॥ १९ ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे तृतीयोऽध्याय ईरितः । अद्वैतानंद एव स्याज्जगन्मिथ्यात्वचिंतया॥१०५॥ ॥ इति श्रीपंचदश्यां ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ ३ ॥ १३ ॥	ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदः ॥ १३ ॥ श्रोकांक: १४७० १४७१

१६ फलितमाह—

१७] एवं च निर्जगत् ब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणं।एतस्मिन् अद्वैतानंदे जनाः चिरं विश्राम्यंतु ॥

ॐ १७) एवं च सति निर्जगद्ब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणं भवतीत्यर्थः ॥ १०४ ॥

१८ इदानीमध्यायार्थमुपसंहरति—

१९] ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे तृतीयः अध्यायः ईरितः । जगन्मिथ्यात्वचिंतया अद्वैतानंदः एव स्यात् ॥१०५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण श्रीरामकृष्णाख्यविदुपा विरचिते ब्रह्मानंदे अद्वैतानंदो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ १३ ॥

॥ १३ ॥ फलितका कथन ॥

१६ फलितअर्थकूं कहैहैं:—

१७] ऐसैं कियेहुये निर्जगत्ब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणवाला सिद्ध होवैहै ॥ इस अद्वैतानंदविषै जिज्ञासुजन चिर कहिये बहुतकालपर्यंत विश्रामकूं पावहु ॥ १०४ ॥

ॐ १७) ऐसैं हुये निष्प्रपंचब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणवाला सिद्ध होवैहै । यह अर्थ है ॥

॥ १४ ॥ अध्यायके अर्थकी समाप्ति ॥

१८ अब अध्याय जो अद्वैतानंदनामक त्रयोदशप्रकरण ताके अर्थकूं समाप्त करैहैं:—

१९] ब्रह्मानंदनामग्रंथविषै जो तृतीयअध्याय कह्या । सो जगत्के मिथ्यापनैका विचारकरि अद्वैतानंदहीं होवैहै ॥ १०५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या ब्रह्मानंदगताद्वैतानंदस्य तत्त्वप्रकाशिकाख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ३ ॥ १३ ॥

नाशतैं प्रतिबिंबविषै सत्यताकी बुद्धि निवर्त्त होवैहै।परंतु दर्पण औ बिंबकी सन्निधिरूप-प्रतिबंधतैं बाधित भये विक्षेपहेतु-शक्तिके सद्भावतैं प्रतिबिंबकी प्रतीति होवैहै । तहां जैसैं पुरुष । प्रतीयमानप्रतिबिंबका अनादरकरिके दर्पणविषै बुद्धिकूं धारताहै । तैसैं प्रतीयमाननामरूपका अनादरकरिके सच्चिदानंदमात्रविषै बुद्धिकूं स्थिर करना ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥

॥ चतुर्थोऽध्ययः ॥ ४ ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः १४७२	२१ योगेनात्मविवेकेन द्वैतमिथ्यात्वचिंतया । ब्रह्मानंदं पश्यतोऽथ विद्यानंदो निरूप्यते ॥ १ ॥	टीकांकः ५४२० टिप्पणांकः ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥

चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

॥ भाषाकर्त्तोक्तमंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
विद्यानंदस्य संकुर्वे व्याख्यां तत्त्वप्रकाशिकाम् १

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ श्रीब्रह्मानंदगत विद्यानंदकी* तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या ॥ १४ ॥

॥ भाषाकर्त्तोक्त मंगलाचरण ॥

टीका—श्रीयुक्त सर्वगुरुनकूं नमनकरिके श्रीपंचदशीके विद्यानंदनामप्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिकानामव्याख्याकूं नरभाषासैं मैं करूं- हूं ॥ १ ॥

२० इदानीं वृत्तवर्तिष्यमाणयोर्ग्रंथयोः संबंधमाह—

॥ १ ॥ विद्यानंदके स्वरूपपूर्वक तिसकरि निवर्त्त करनैयोग्य दुःखका विभाग ॥ ५४२०—५४५२ ॥

॥ १ ॥ विद्यानंदका स्वरूप औ ताका अवांतरभेद ॥ ५४२०—५४२७ ॥

॥ १ ॥ पूर्व औ पीछेके ग्रंथका संबंध ॥

२० अब ११ वैं प्रकरणसैं गत औ १४ वैं प्रकरण[illegible] नके ग्रंथनके संबंधकूं कहैहैं:—

* विद्या जो तत्त्वज्ञान तासैं आविर्भावकूं पावनैहारे चतु[illegible] [illegible]दका प्रतिपादक प्रकरण ॥

टीकांक: ५४२१ टिप्पणांक: ८१८	२३ विषयानंदवद्विद्यानंदो धीवृत्तिरूपकः । २५ दुःखाभावादिरूपेण प्रोक्त एष चतुर्विधः ॥ २ ॥ २७ दुःखाभावश्च कामाप्तिः कृतकृत्योहमित्यसौ । प्राप्तप्राप्योहमित्येव चातुर्विध्यमुदाहृतम् ॥ ३ ॥	ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक: १४७३ १४७४

२१] योगेन आत्मविवेकेन द्वैत-मिथ्यात्वचिंतया ब्रह्मानंदं पश्यतः अथ विद्यानंदः निरूप्यते ॥ १ ॥

२२ विद्यानंदस्वरूपमाह—

२३] विषयानंदवत् विद्यानंदः धीवृत्तिरूपकः ॥

२४ तस्यावांतरभेदमाह—

२५] दुःखाभावादिरूपेण एषः चतुर्विधः प्रोक्तः ॥ २ ॥

२६ चातुर्विध्यमेव दर्शयति—

२७] दुःखाभावः च कामाप्तिः "अहं कृतकृत्यः" इति असौ "अहं प्राप्तप्राप्यः" इति एव चातुर्विध्यं उदाहृतम् ॥ ३ ॥

२१] योगकरि औ आत्माके विवेक-करि औ द्वैतके कहिये प्रपंचके मिथ्या-पनैके चिंतनकरि ब्रह्मानंदकूं साक्षात् करनैहारे विद्वानकूं उदय होवैहै जो विद्यानंद । सो अब इस १४ वैं प्रकरणविषै निरूपण नाम प्रतिपादन करियेहै ॥ १ ॥

॥ २ ॥ विद्यानंदका स्वरूप औ ताके वीचके भेदकी प्रतिज्ञा ॥

२२ विद्यानंदके स्वरूपकूं कहैहैं:—

२३] विषयानंदकी न्यांई विद्या-नंद बी बुद्धिवृत्तिरूप है ॥

२४ तिस विद्यानंदके अवांतरभेदकूं कहैहैं:—

२५] दुःखके अभावआदिकरूप-करि कहिये स्वरूपके भेदकरि यह विद्यानंद च्यारीप्रकारका कह्याहै ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ विद्यानंदके वीचके च्यारीभेदका स्वरूप ॥

२६ विद्यानंदके चतुर्विधपनैकूंहीं दिखावैहैं:-

२७] (१) दुःखका अभाव औ (२) कामाप्ति नाम सर्वभोगनकी प्राप्तिरूप पूर्ण-कामता औ (३) "मैं कृतकृत्य हूं" इस आकारवाला यह कृतकृत्यपना औ (४) "मैं प्राप्तप्राप्य हूं" इस आकारवाला यह प्राप्तप्राप्यपना । इस भेदकरि यह विद्या-नंदका चतुर्विधपना कह्याहै ॥ ३ ॥

१८ यद्यपि पूर्व ब्रह्मानंदगतयोगानंदप्रकरणके ८७ वें श्लोकउक्तप्रकारसैं ब्रह्मानंद वासनानंद औ विषयानंद-भेदतैं आनंद तीनप्रकारकाहीं है । इनतैं अन्यआनंद नहीं है । यह प्रतिज्ञा करीहै औ तहां विद्यानंदकूं बुद्धिवृत्ति-रूप होनैंकरि विषयानंदके अंतर्गत गिन्याहै । तथापि विचारकरि देखिये तौ विद्यानंद जो है सो तिन आनंदनतैं भिन्न चतुर्थ विलक्षणानंद है । काहेतैं विषयानंदका अनुभव तौ पूर्व ब्रह्मासैं आदिलेके कीटपर्यंत जंतुनके अनेकजन्म-विषै कियाहै औ तैसैं सुषुप्तिगतब्रह्मानंदका औ तूष्णीस्थिति-गतवासनानंदका अनुभव बी अनेकजन्मगतसुषुप्ति औ तूष्णीस्थितिविषै कियाहै । परंतु विद्यानंदका अनुभव पूर्व कदाचित् किया नहीं । किंतु इस ज्ञानीशरीरविषैहीं करियेहै । यातैं सो विद्यानंद विलक्षणआनंद है ॥ निरावरण । परिपूर्ण । सवृत्तिक जो आनंद । सो विलक्षणानंद कहियेहै । सोई विद्यानंद है ॥ इस विलक्षणानंदके लक्षणकी परीक्षा श्रीसुंदरविलासकी विपर्ययअंगकी रहसदीपिकाविषै हमनैं लिखीहै । यातैं इहां नहीं लिखी ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	[२९] ऐहिकं चामुष्मिकं चेत्येवं दुःखं द्विधेरितम् ।	
	[३१] निर्वृत्तिमैहिकस्याह बृहदारण्यकं वचः ॥ ४ ॥	५४२८
१४७५	[३३] आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ।	
१४७६	किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ ५ ॥	टिप्पणांकः ॐ
	[३५] जीवात्मा परमात्मा चेत्यात्मा द्विविध ईरितः ।	
१४७७	[३७] चित्तादात्म्यात्त्रिभिर्देहैर्जीवः सन्भोक्तृतां व्रजेत् ६	

२८ निवर्तनीयं दुःखं विभजते—

२९] ऐहिकं च आमुष्मिकं च इति एवं दुःखं द्विधा ईरितम् ॥

३० ऐहिकस्य निवृत्तिर्बृहदारण्यकवाक्येनोच्यत इत्याह (निवृत्तिमिति)—

३१] ऐहिकस्य निवृत्तिं बृहदारण्यकं वचः आह ॥ ४ ॥

३२ तच्छ्रुतिवाक्यं पठति (आत्मानमिति)—

३३] पूरुषः आत्मानं "अयं अस्मि" इति चेत् विजानीयात् । किं इच्छन् कस्य कामाय शरीरं अनुसंज्वरेत् ॥५॥

३४ आत्मनि शोकसंबंधं दर्शयितुं तद्भेदमाह—

३५] जीवात्मा च परमात्मा इति आत्मा द्विविधः ईरितः ॥

३६ आत्मनो जीवत्वे निमित्तमाह (चित्तादात्म्यादिति)—

॥ २ ॥ विद्याकरि निवर्त्त करनैयोग्य आत्मभेदसहित दुःखका स्वरूप ॥ ५४२८—५४५२ ॥

॥ १ ॥ निवर्त्तनीय दुःखका विभाग औ विद्यासैं इसलोकके दुःखकी निवृत्तिमैं बृहदारण्यकके वाक्यकी संमति ॥

२८ निवर्त्त करनैयोग्य दुःखकूं विभाग करैहैं:—

२९] **इसलोकसंबंधी औ परलोकसंबंधी भेदतैं दुःख दोप्रकारका कह्याहै॥**

३० ऐहिककी निवृत्ति बृहदारण्यकउपनिषद्के वाक्यकरि कहियेहै। ऐसैं कहैहैं:—

३१] **इसलोकके दुःखकी निवृत्तिकूं बृहदारण्यकका वाक्य कहताहै ॥ ४ ॥**

॥ २ ॥ तिस चतुर्थश्लोकउक्तश्रुतिवाक्यका पठन ॥

३२ तिस सारेतृप्तिदीपविषै व्याख्यान किये बृहदारण्यकश्रुतिके वाक्यकूं पठन करैहैं:—

३३] **पुरुष आत्माकूं "यह मैं हूं" ऐसैं जब जानै तब किस भोग्यकूं इच्छताहुया किस भोक्ताके कामअर्थ कहिये भोगअर्थ शरीरके पीछे ज्वर जो संताप ताकूं पावै? नहीं पावै । यह अर्थ है ॥ ५ ॥**

॥ ३ ॥ आत्मामैं शोकसंबंधके दिखावनैकूं आत्माका भेद औ आत्माके जीवपनैमैं निमित्त ॥

३४ आत्माविषै शोकके संबंधके दिखावनैंकूं तिस आत्माके भेदकूं कहैहैं:—

३५] **जीवात्मा औ परमात्मा इस भेदतैं आत्मा दोप्रकारका कह्याहै ॥**

३६ आत्माके जीवपनैविषै निमित्त कहैहैं:—

टीकांक: ५४३७ टिप्पणांक: ॐ	४०परात्मा सच्चिदानंदस्तादात्म्यं नामरूपयोः । गत्वा भोग्यत्वमापन्नस्तद्विवेके तु नोभयम् ॥ ७ ॥	ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक: १४७८
	४८भोग्यमिच्छन्भोक्तुरर्थे शरीरमनुसंज्वरेत् । ज्वरास्त्रिषु शरीरेषु स्थिता न त्वात्मनो ज्वराः ८	१४७९

३७] त्रिभिः देहैः चित्तादात्म्यात् जीवः सन् भोक्तृतां व्रजेत् ॥

३८) चैतन्यस्य स्थूलसूक्ष्मकारणरूपैः त्रिभिः शरीरैः तादात्म्यभ्रमे सति चितो भोक्तृत्वं भवति स भोक्ता "जीवः" इत्युच्यते ॥ ६ ॥

३९ इदानीं परमात्मनः स्वरूपमाह—

४०] परात्मा सच्चिदानंदः ॥

४१ तस्य भोग्यरूपत्वापत्तिप्रकारमाह (तादात्म्यमिति)—

४२] नामरूपयोः तादात्म्यं गत्वा भोग्यत्वम् आपन्नः ॥

४३) नामरूपकल्पनाधिष्ठानत्वेन तत् तादात्म्यं प्राप्य भोग्यत्वं अश्नुत इत्यर्थः ॥

४४ भोक्तृत्वाद्यभावे कारणमाह—

४५] तद्विवेके तु उभयं न ॥

४६) ताभ्यां शरीरत्रयजगद्भ्यां विवेके भेदज्ञाने जाते सति नोभयं भोक्तृभोग्यरूपं नास्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

४७ उक्तमर्थं विवृणोति (भोग्यमिति)—

४८] भोक्तुः अर्थे भोग्यं इच्छन् शरीरं अनुसंज्वरेत् । ज्वराः त्रिषु शरीरेषु स्थिताः । आत्मनः तु ज्वराः न ॥ ८ ॥

३७] तीनदेहनके साथि चेतनके तादात्म्यतैं चेतनरूप आत्मा जीव हुया भोक्तापनैकूं पावताहै ॥

३८) चैतन्यके स्थूल सूक्ष्म औ कारणरूप तीनशरीरनके साथि एकताके भ्रमके हुये चेतनकूं भोक्तापना होवैहै । सो भोक्ता "जीव" ऐसैं कहियेहै ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ परमात्माका स्वरूप औ ताकूं भोग्यरूपताकी प्राप्तिका प्रकार औ भोक्तृत्वआदिकके अभावमैं कारण ॥

३९ अब परमात्माके स्वरूपकूं कहैहैं:—

४०] परमात्मा सच्चिदानंदस्वरूप है ॥

४१ तिस परमात्माकूं भोग्यरूपताकी प्राप्तिके प्रकारकूं कहैहैं:—

४२] सो परमात्मा नाम औ रूपविषै तादात्म्यकूं पायके भोग्यरूपताकूं प्राप्त भयाहै ॥

४३) नामरूपकी कल्पनाका अधिष्ठान होनैंकरि तिन नामरूपसैं एकताके भ्रमकूं पायके भोग्यपनैकूं पावताहै । यह अर्थ है ॥

४४ भोक्तापनैआदिकके कहिये भोक्ता-भोग्यपनैरूप धर्मके अभावविषै कारण कहैहैं:—

४५] तिनतैं विवेक कियेहुये दोनूं नहीं हैं ॥

४६) तिन तीनशरीर औ जगत्‌तैं भेदज्ञानरूप विवेकके किये हुये भोक्ता औ भोग्यरूप दोनूं नहीं है । यह अर्थ है ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ श्लोक ७ उक्त अर्थका विवरण ॥

४७ पांचवेश्लोकसैं उक्त अर्थकूं वर्णन करैहैं:—

४८] भोक्ताके अर्थ भोग्यकूं कहिये भोगसामग्रीरूप विषयकूं इच्छताहुया शरीरके पीछे ज्वरकूं पावताहै । वे ज्वर तीनशरीरनविषै स्थित हैं । आत्माकूं विषय करनैहारे ज्वर नहीं हैं ॥ ८ ॥

ब्रह्मानंदे विज्ञानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१४८०	[५०]व्याधयो धातुवैषम्ये स्थूलदेहे स्थिता ज्वराः । [५२]कामक्रोधादयः सूक्ष्मे द्वयोर्बीजं तु कारणे ॥ ९ ॥	५४४९
१४८१	[५४]अद्वैतानंदमार्गेण परात्मनि विवेचिते । अपश्यन्वास्तवं भोग्यं किं नामेच्छेत्परात्मवित् १०	टिप्पणांक: ८१९

४९ कस्मिन् शरीरे को ज्वर इत्याशंक्य स्थूलदेहे विद्यमानान्ज्वरान् दर्शयति (व्याधय इति)—

५०] धातुवैषम्ये व्याधयः स्थूलदेहे स्थिताः ज्वराः ॥

५१ लिंगदेहकारणदेहगतान् ज्वरानाह—

५२] कामक्रोधादयः सूक्ष्मे । द्वयोः बीजं तु कारणे ॥ ९ ॥

५३ इदानीमुदाहृतश्रुतितात्पर्यकथनव्याजेन पूर्वोक्तमेवार्थं विशदयति—

५४] अद्वैतानंदमार्गेण परात्मनि विवेचिते भोग्यं वास्तवं अपश्यन् परात्मवित् किं नाम इच्छेत् ॥

५५) तृतीयाध्यायोक्तप्रकारेण मायाकार्य-

॥ ६ ॥ तीनशरीरगतज्वरका विभाग ॥

४९ कौन शरीरविषै कौनसा ज्वर है ? यह आशंकाकरिके स्थूलदेहविषै विद्यमान ज्वरनकूं दिखावैहैं:—

५०] धातु जो कफ वात पित्त तिनकी विषमताके हुये जो रोग होवैहैं वे स्थूलदेहविषै स्थित ज्वर हैं ॥

५१ लिंगदेह औ कारणदेहगत ज्वरनकूं कहैहैं:—

५२] कामक्रोधआदिक जे हैं। वे सूक्ष्मदेहविषै स्थित ज्वर हैं औ स्थूल औ सूक्ष्मदेहगत दोनूं ज्वरनका जो बीज कहिये संस्कार है। सो तौ कारणदेहविषै स्थित ज्वर है ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ विद्यानंदका (१) दुःखनिवृत्ति औ (२) सर्वकामकी प्राप्तिरूप अवांतरभेद ॥५४५३—५५३१॥

॥१॥ दुःखका अभाव ॥५४५३—५४७०॥

॥ १ ॥ पूर्वउक्तकी स्पष्टता ॥

५३ अब पंचमश्लोकविषै उदाहरणकरी श्रुतिके तात्पर्यके कथनके मिषकरि पूर्वउक्तअर्थकूंहीं कहिये आत्मानंद औ अद्वैतानंदकूंहीं स्पष्ट करैहैं:—

५४] उक्तअद्वैतानंदमार्गकरि परमात्माके विवेचन कियेहुये भोग्यजगत्कूं वास्तव न देखताहुया परात्मवित् नाम तत्त्ववित् किस भोग्यकूं इच्छता है ?

५५) अद्वैतानंदनामक तृतीयअध्याय-

१९ ज्ञानीकूं भोग्यविषयके अभावतें जो भोग्यनमैं इच्छाका अभाव है। तिसका विशेषकरि निरूपण देखो तृप्तिदीपगत १३७—१९१ श्लोकनविषै ॥

टीकांक: ५४५६ टिप्पणांक: ८२०	५७ आत्मानंदोक्तरीत्यास्मिन् जीवात्मन्यवधारिते । भोक्ता नैवास्ति कोऽप्यत्र शरीरे तु ज्वरः कुतः ११ ५९ पुण्यपापद्वये चिंता दुःखमामुष्मिकं भवेत् । ६१ प्रथमाध्याय एवोक्तं चिंता नैनं तपेदिति ॥ १२ ॥	ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक: १४८२ १४८३

नामरूपाभ्यां सच्चिदानंदे परमात्मनि विवेचिते भेदेन ज्ञाते सति । "सर्वं प्रपंचं मिथ्या" इति जानन् किं नाम भोग्यमिच्छति ॥ १० ॥

५६ ततः पूर्वाध्यायोक्तरीत्या जीवात्मस्वरूपे असंगकूटस्थचैतन्यरूपे निश्चिते सति कामयितुरभावात् ज्वरादिसंबंधो नास्तीत्याह-

५७] आत्मानंदोक्तरीत्या अस्मिन् जीवात्मनि अवधारिते अत्र शरीरे कः अपि भोक्ता न एव अस्ति । तु ज्वरः कुतः ॥ ११ ॥

५८ इदानीमामुष्मिकं ज्वरं दर्शयति—

५९] पुण्यपापद्वये चिंता आमुष्मिकं दुःखं भवेत् ॥

६० तस्याभावः प्रथमाध्याये निरूपित इत्याह—

६१] प्रथमाध्याये एव "एनं चिंता न तपेत्" इति उक्तम् ॥ १२ ॥

विषै उक्तप्रकारकरि मायाके कार्य नाम औ रूपतैं सच्चिदानंदरूप परमात्माके भेदकरि जानैहुये "सर्वप्रपंच मिथ्याहै" ऐसैं जानताहुया तत्त्ववित् किस प्रसिद्धभोग्यकूं इच्छताहै? किसीकूं वी नहीं ॥ १० ॥

॥ २ ॥ ज्ञानीकूं ज्वरादिकके संबंधका अभाव ॥

५६ तिस अद्वैतानंदतैं पूर्व आत्मानंदअध्यायविषै उक्त रीतिकरि जीवात्माके स्वरूपके असंग निर्विकार चैतन्यरूप निश्चय किये हुये कामना करनैहारेके अभावतैं ज्वरआदिकका संबंध नहीं है । ऐसैं कहैहैंः—

५७] आत्मानंदनामद्वादशप्रकरणविषै उक्त रीतिकरि इस जीवात्माके निश्चय कियेहुये इस शरीरविषै कोई वी भोक्ता नहीं है । तौ ज्वर कहांसैं होवैगा! ॥ ११ ॥

॥ ३ ॥ इसलोकका ज्वर औ अद्वैतानंदनामक तृतीयअध्यायमैं किये दुःखअभावके निरूपणका कथन ॥

५८ अब परलोकसंबंधी ज्वर जो ताप ताकूं दिखावैहैंः—

५९] पुण्य औ पाप इन दोनूंविषै जो चिंता है। सो परलोकसंबंधी दुःख नाम ज्वर होवैहै ॥

६० तिस पुण्यपापकी चिंतारूप परलोकसंबंधी दुःखका अभाव प्रथमअध्याय योगानंद नाम ११ वें प्रकरणविषै निरूपण कियाहै । ऐसैं कहैहैंः—

६१] प्रथमअध्यायविषैहीं "इस ज्ञानीकूं चिंता तपावती नहीं" ऐसैं ब्रह्मानंदगत योगानंदके ५–९ वें श्लोकविषै कह्याहै ॥ १२ ॥

२० भोक्ताके अभावका विशेषकरि निरूपण देखो तृप्तिदीपगत १९२–२२२ श्लोकनविषै ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
१४८४	६३ यथा पुष्करपर्णेऽस्मिन्नपामश्लेषणं तथा । वेदनादूर्ध्वमागामिकर्मणोऽश्लेषणं बुधे ॥ १३ ॥	५४६२
१४८५	६५ ईषीकातूणतूलस्य वह्निदाहः क्षणाद्यथा । तथा संचितकर्मास्य दग्धं भवति वेदनात् ॥१४॥	टिप्पणांक: ॐ
१४८६	६७ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥१५॥	

६२ ननु ज्ञानिन आरब्धकर्मविषया चिंता मा भूदागामिकर्मविषया चिंता भवसेवेत्याशंक्य "तद्यथा पुष्करपर्णः" इत्यादिश्रुत्या ज्ञानिने आगामिकर्मसंबंधनिराकरणात् तद्विषयापि चिंता नास्तीत्याह—

६३] **यथा अस्मिन् पुष्करपर्णे अपां अश्लेषणं । तथा वेदनात् ऊर्ध्वं बुधे आगामिकर्मणः अश्लेषणम् ॥ १३ ॥**

६४ "तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयंते" इतिश्रुत्यवष्टंभेन संचितकर्मविषयापि चिंता ज्ञानिनो नास्तीत्याह (इषीकेति)—

६५] **यथा इषीकातूणतूलस्य क्षणात् वन्हिदाहः । तथा अस्य संचितकर्म वेदनात् दग्धं भवति॥१४॥**

६६ उक्तार्थे भगवद्वाक्यमपि प्रमाणयति (यथैधांसीति)—

॥४॥ ज्ञानीकूं आगामीकर्मविषयकचिंताका अभाव॥

६२ ननु ज्ञानीकूं आरब्धकर्मकूं विषय करनैहारी चिंता मति होहु।परंतु आगामि जो क्रियमाणकर्म ताकूं विषय करनैहारी चिंता होवैगीहीं। यह आशंकाकरि "सो जैसें कमलके पत्रविषै जलका अस्पर्श है" इत्यादिकश्रुतिकरि ज्ञानीकूं आगामिकर्मके संबंधके निराकरणतैं तिस आगामिकर्मकूं विषय करनैहारी बी चिंता नहीं है। ऐसें कहैहैं:—

६३] **जैसें इस परिदृश्यमानकमलके पत्रविषै जलका अस्पर्श है । तैसें ज्ञानतैं पीछे बुधविषै नाम ज्ञानीविषै आगामिकर्मका अस्पर्श है ॥ १३ ॥**

॥५॥ ज्ञानीकूं संचितकर्मविषयकचिंताका अभाव ॥

६४ "सो जैसें इषीकानामकतृणविशेषका तूल जो रूही सो अग्निविषै गेऱ्याहुया दहन होवैहै। ऐसें निश्चयकरि इस ज्ञानीके सर्वपाप दहन होवैहैं" इस श्रुतिके आश्रयकरि संचितकर्मकूं विषय करनैहारी बी चिंता ज्ञानीकूं नहीं है । ऐसें कहैहैं:—

६५] **जैसें इषीकाके कपासका क्षणकरि अग्नितैं दाह होवैहै । तैसें इस ज्ञानीका संचितकर्म ज्ञानतैं दग्ध होवैहै ॥ १४ ॥**

॥ ६ ॥ श्लोक १३–१४ उक्त अर्थमैं श्रीकृष्णका वाक्य ॥

६६ श्लोक १२ सैं उक्त अर्थ जो कर्मअभाव । तिसविषै भगवत्श्रीकृष्णके गीताके चतुर्थअध्यायगत ३७ वैं औ अष्टादशाध्यायगत१७वें श्लोकरूप वाक्यकूं प्रमाण करैहैं:—

टीकांकः ५४६७ टिप्पणांकः ८२१	यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते । हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥१६॥ मातापित्रोर्वधः स्तेयं भ्रूणहत्यान्यदीदृशम् । न मुक्तिं नाशयेत्पापं मुखकांतिर्न नश्यति ॥१७॥	ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः १४८७ १४८८

६७] अर्जुन ! यथा समिद्धः अग्निः एधांसि भस्मसात् कुरुते । तथा ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते ॥ १५ ॥

६८] यस्य अहंकृतः भावः न यस्य बुद्धिः न लिप्यते । सः इमान् लोकान् हत्वा अपि न हंति न निबध्यते॥१६॥

६९ अस्मिन्नेवार्थे "न मातृवधेन न पितृवधेन न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया नास्य पापं च न चक्षुषो मुखं नीलं वेत्ति" इतिकौषीतकीश्रुतिवाक्यमर्थतः पठति—

७०] मातापित्रोः वधः स्तेयं भ्रूणहत्या अन्यत् ईदृशं पापं मुक्तिं न नाशयेत् । मुखकांतिः न नश्यति ॥

ॐ ७०) च नेत्येकं पदं । नीलमिति कांतिरित्यर्थः ॥ १७ ॥

६७] श्रीकृष्णजी कहैहैं:– हे अर्जुन ! जैसैं प्रदीप्त हुया अग्नि काष्ठनकूं भस्म करताहै । तैसैं ज्ञानरूप अग्नि सर्वकर्मनकूं भस्म करताहै ॥ १५ ॥

६८] जिस पुरुषकूं अहंकृत्‌का कहिये "मैं कर्त्ता हूं" ऐसा भाव जो प्रत्यय सो नहीं होवैहै औ जिसकी बुद्धि लिप्त कहिये शुभाशुभकर्मके फलविषै आसक्त वा संशययुक्त होती नहीं । सो पुरुष इन चराचरसर्वलोकनकूं हननकरिके बी हनन करता नहीं औ तिसके फल नरकदुःखकरि बंधनकूं पावता नहीं ॥ १६ ॥

॥ ७ ॥ श्लोक १२ सैं उक्त अर्थमैं छांदोग्यश्रुतिके वाक्यका अर्थतैं पठन ॥

६९ इसीहीं १२ वें श्लोकसैं उक्त अर्थविषै "न माताके वधकरि । न पिताके वधकरि । न चोरीकरि । न भ्रूणहत्याकरि नाम गर्भपात वा बालहत्याआदिककरि इस ज्ञानीकूं पाप होवैहै औ न चक्षुकी निस्तेजता होवैहै औ न मुख नील कहिये श्यामकांतिवाला होवैहै" इस छांदोग्यश्रुतिके वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

७०] माता पिताका वध औ चोरी औ भ्रूणहत्या औ अन्य बी ऐसा पाप मुक्तिकूं नाश करै नहीं औ मुखकी कांति नाश नहीं होवैहै ॥

ॐ ७०) इहां इसश्रुतिविषै "चन" ऐसा एकपद है औ "नील"पदका कांति अर्थ है १७

२१ इहां "सर्वकर्म"पद है । तिसकरि बहुतआचार्य्य तौ सर्वसंचितकर्मनका ग्रहण करैहैं औ किसी आचार्य्यनैं संचित प्रारब्ध औ क्रियमाण । इन तीनभांतिके कर्मनका ग्रहण कियाहै ॥ औ ज्ञानउत्पत्तिसैं अनंतर जो ज्ञानीकूं देहादिजगत्‌की प्रतीति होवैहै । सो ईश्वरके अवतारशरीरकी न्यांई अपनैं प्रारब्धकर्मसैं विनाहीं अन्य सज्जन औ दुर्जनपुरुषनके शुभअशुभकर्मतैं है ॥ औ तिनके कर्मकी निवृत्तिकालमैंहीं ज्ञानीकूं देहादिककी प्रतीतिका अभाव होवैगा । तब अन्योंकी दृष्टिसैं ज्ञानी विदेहमुक्त भया कहियेहै औ स्वदृष्टिसैं तौ ज्ञानसमकालविषैहीं ज्ञानीकूं जीवन्मुक्ति औ विदेहमुक्ति होवैहै ॥ इसपक्षविषै जीवन्मुक्ति औ विदेहमुक्तिका भेद नहीं है ॥ इति ॥

२२ यद्यपि लौकिकदृष्टिसैं हनन करता देखियेहै तथापि पारमार्थिकदृष्टिसैं सो अकर्त्ताआत्मदर्शी हनन करता नहीं औ तिस हननक्रियाकरि बंधनकूं पावता नहीं । यह भाव है ॥ ऐसी परहिंसाकी प्राप्ति अर्जुनादिराजकर्ताओकूं प्राप्त है । तिनकी अपेक्षाकरि यह हिंसाके निषेधका उपदेश है । अन्योंकी अपेक्षाकरि नहीं ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥१४॥ श्लोकांकः १४८९ १४९०	७२ दुःखाभाववदेवास्य सर्वकामाप्तिरीरिता । ७४ सर्वान्कामानसावाप्त्वा ह्यमृतोऽभवदित्यतः ॥१८॥ ७६ जक्षन्क्रीडन् रतिं प्राप्तः स्त्रीभिर्यानैस्तथेतरैः । शरीरं न स्मरेत्प्राणः कर्मणा जीवयेदमुम् ॥१९॥	टीकांकः ५४७१ टिप्पणांकः ॐ

७१ उक्तचातुर्विध्यमध्ये द्वितीयप्रकारमाह (दुःखेति)—

७२] अस्य दुःखाभाववत् एव सर्वकामाप्तिः ईरिता ॥

ॐ ७२) ईरिता श्रुत्येतिशेषः ॥

७३ अस्मिन्नर्थे ऐतरेयश्रुतिवाक्यमर्थतः पठति (सर्वानिति)—

७४] "असौ सर्वान् कामान् आप्त्वा हि अमृतः अभवत्" इति अतः ॥ १८ ॥

७५ "जक्षन् क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वाज्ञातिभिर्वा वयस्यैर्वा नोपजनं स्मरन्निदं शरीरं" इति छांदोग्यश्रुतिवाक्यमर्थतः पठति—

७६] जक्षन् क्रीडन् स्त्रीभिः यानैः तथा इतरैः रतिं प्राप्तः शरीरं न स्मरेत् । प्राणः कर्मणा अमुं जीवयेत् ॥ १९ ॥

॥ २ ॥ सर्वकामकी प्राप्ति ॥ ५४७१–५५३१ ॥

॥ १ ॥ सर्वकामाप्तिका कथन ॥

७१ तृतीयश्लोकउक्तविद्यानंदके च्यारीप्रकारनके मध्यमैंसैं प्रथमप्रकार कह्या औ द्वितीयप्रकारकूं कहैहैं:—

७२] इस दशमश्लोकसैं उक्त दुःखके अभावकी न्यांईहीं सर्वकामकी प्राप्ति बी कहीहै ॥

ॐ७२) इहां श्रुतिनैं कहीहै। यह अर्थ है॥

७३ इसी सर्वकामाप्तिरूपहीं अर्थविषै ऐतरेयश्रुतिके वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

७४] "यह ज्ञानी सर्वकामनकूं पायके मरणरहित होताभया" यातैं इस श्रुतिवाक्यतैं याकूं सर्वकामकी प्राप्ति कहीहै ॥१८॥

॥ २ ॥ श्लोक १८ उक्त सर्वकामाप्तिरूप अर्थमैं छांदोग्यश्रुतिवाक्यका अर्थतैं पठन ॥

७५ इसीहीं अर्थविषै "खाताहुया औ क्रीडा करताहुया। स्त्रीयनकरि वा रथादिवाहनोंकरि वा ज्ञातिनकरि वा अज्ञातिनकरि वा समानवयवाले पुरुषनकरि रमण करताहुया ज्ञानी। जननके समीप वर्त्तमान इस शरीरकूं नहीं स्मरण करताहै" इस छांदोग्यश्रुतिके वाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

७६] खाताहुया औ क्रीडा करताहुया। स्त्रीयनकरि वा वाहनोंकरि वा अन्य ज्ञातीआदिकनकरि रमण करताहुया ज्ञानी। शरीरकूं स्मरण करता नहीं औ प्राण जो है सो प्रारब्धकर्मकरि इसकूं जीवावताहै ॥ १९ ॥

टीकांक: ५४७७ टिप्पणांक: ८२३	सर्वान्कामान्सहाप्नोति नान्यवज्जन्मकर्मभिः । वर्तते श्रोत्रिये भोगा युगपत्क्रमवर्जिताः ॥ २० ॥ युवा रूपी च विद्यावान्नीरोगो दृढचित्तवान् । सैन्योपेतः सर्वपृथ्वीं वित्तपूर्णां प्रपालयन् ॥२१॥ सर्वैर्मानुष्यकैर्भोगैः संपन्नस्तृप्तभूमिपः । यमानंदमवाप्नोति ब्रह्मविच्च तमश्नुते ॥ २२ ॥	ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥१४॥ श्लोकांक: १४९१ १४९२ १४९३

७७ तत्रैव तैत्तिरीयश्रुतिवाक्यमर्थतः पठति—

७८] "सर्वान् कामान् सह आप्नोति"॥

७९ ननु कर्मफलभोगांगीकारे जन्मापि प्रसज्येतेत्याशंक्याह (नान्यवदिति)—

८०] श्रोत्रिये अन्यवत् जन्मकर्मभिः भोगाः न वर्तंते । युगपत् क्रमवर्जिताः ॥

८१) ज्ञानेन संचितकर्मणां दग्धत्वादज्ञवज्जन्म नास्तीत्यर्थः ॥ २० ॥

८२ इदानीं तैत्तिरीयकबृहदारण्यकवाक्यं संक्षिप्यार्थतः पठति—

८३] युवा रूपी च विद्यावान् नीरोगः दृढचित्तवान् सैन्योपेतः वित्तपूर्णां सर्वपृथ्वीं प्रपालयन् ॥२१॥

८४ ननु सार्वभौमादि हिरण्यगर्भांतानां

॥३॥ श्लोक १८ उक्त अर्थमैं तैत्तिरीयश्रुतिवाक्यका अर्थतैं पठन ॥

७७ तिसहीं सर्वकामाप्तिरूप अर्थविषै तैत्तिरीयश्रुतिके वाक्यकूं पठन करैहैं:—

७८] सर्वकामनकूं ज्ञानी इकट्ठाहीं पावताहै" ॥

७९ ननु ज्ञानीकूं कर्मफलभोगरूप सर्वकामके अंगीकार किये जन्म बी प्राप्त होवैगा । यह आशंकाकरि कहैहैं:—

८०] श्रोत्रियविषै नाम ज्ञानीविषै अन्यअज्ञानीकी न्याई जन्म औ कर्मकरि भोग नहीं वर्त्ततेहै । किंतु एकहीं कालविषै क्रमसैं वर्जित भोग । ज्ञानीविषै वर्त्ततेहैं ॥

८१) ज्ञानकरि संचितकर्मनकूं दग्ध होनैतैं औ प्रारब्धके भोगकरि क्षयतैं औ आगामिकर्मके असंस्पर्शतैं ज्ञानीकूं अज्ञजनकी न्याई जन्म नहीं है । यह अर्थ है ॥ २० ॥

॥ ४ ॥ श्लोक १८ उक्त अर्थमैं तैत्तिरीय औ बृहदारण्यकवाक्यके अर्थका संक्षेपतैं पठन ॥

८२ अब तैत्तिरीयक औ बृहदारण्यक । इन दोनूंउपनिषद्के वाक्यकूं संक्षेपकरिके अर्थतैं पठन करैहैं:—

८३] यौवनवान् औ रूपवान् औ विद्यावान् औ नीरोग औ दृढचित्तवान् औ सेनाकरियुक्त औ धनकरिपूर्ण औ सर्वपृथ्वीकूं पालन करताहुया[२३] ॥२१॥

॥ ५ ॥ सार्वभौमादिआनंदका ब्रह्मवित्मैं संभव ॥

८४ ननु सार्वभौम जो चक्रवर्तीराजा तिससैं आदिलेके हिरण्यगर्भ जो समष्टिसूक्ष्म-

२३ "सारीपृथ्वीका राजा जिस आनंदकूं पावताहै । तिस आनंदकूं ब्रह्मवित् बी पावताहै" ऐसैं इस श्लोकका आगिलेश्लोकसैं संबंध है । इस अभिप्रायसैं टीकाकारनै अंक ५४८४ की उत्थानिका कहीहै ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
	[८७]मर्त्यभोगे द्वयोर्नास्ति कामस्तृप्तिरतः समा ।	५४८५
	[८८]भोगान्निष्कामतैकस्य परस्यापि विवेकतः॥२३॥	टिप्पणांक:
१४९४	[९१]श्रोत्रियत्वाद्वेदशास्त्रैर्भोगदोषानवेक्षते ।	
१४९५	[९३]राजा बृहद्रथो दोषांस्तान्गाथाभिरुदाहरत्॥२४॥	८२४

जीवनिष्ठानामानंदानां कथं ज्ञानिनि संभव इत्याशंक्य सर्वेषां आनंदानां ज्ञानिनावगतब्रह्मांशत्वात्संभव इत्याह—

८५] सर्वैः मानुष्यकैः भोगैः संपन्नः तृप्तभूमिपः यं आनंदं अवाप्नोति । तं च ब्रह्मवित् अश्नुते ॥ २२ ॥

८६ ननु सार्वभौमश्रोत्रिययोर्विषयप्राप्तिसाम्याभावात् कथमानंदसाम्यमित्याशंक्य नैरपेक्ष्यसाम्यात्तृप्तिसाम्यमित्याह (मर्त्येति)—

८७] द्वयोः मर्त्यभोगे कामः न अस्ति अतः तृप्तिः समा ॥

८८ तृप्तिसाम्ये हेतुमाह (भोगादिति)—

८९] एकस्य भोगात् निष्कामता परस्य अपि विवेकतः ॥ २३ ॥

९० "विवेकतः" इत्युक्तमर्थं विवृणोति—

देहका अभिमानी ब्रह्मा। तिस पर्यंत जे जीव हैं। तिनविषै स्थित जे आनंद हैं। तिन सर्वका ज्ञानीविषै कैसैं संभव है? यह आशंकाकरि सर्वआनंदनकूं ज्ञानीकरि प्राप्त ब्रह्मानंदके अंश नाम आभासरूप होनैतैं सर्वआनंदनका ज्ञानीविषै संभवहै। ऐसैं कहैहैं:—

८५] जो सर्वमनुष्यनके भोगनकरि संयुक्त। तृप्त सार्वभौमराजा है सो जिस आनंदकूं पावताहै। तिस आनंदकूं[२४] बी ब्रह्मवित् पावताहै ॥ २२ ॥

॥ ६ ॥ सार्वभौम कहिये चक्रवर्त्ती औ ज्ञानीके तृप्तिकी हेतुसहित तुल्यता ॥

८६ ननु सार्वभौम जो सर्वपृथ्वीपाल औ श्रोत्रिय जो ज्ञानी। तिनकूं विषयसमताके अभावतैं आनंदकी प्राप्तिकी समता कैसैं हैं? यह आशंकाकरि इच्छाके अभावकी समतातैं तिस आनंदके प्राप्तिकी समता है। ऐसैं कहैहैं:—

८७] सार्वभौम औ ज्ञानी दोनूंकूं मनुष्यनके भोगविषै इच्छा नहीं है। यातैं तृप्ति जो आनंदकी प्राप्ति सो समान है ॥

८८ तृप्तिकी समताविषै हेतुकूं कहैहैं:—

८९] एक जो राजा है ताकूं भोगतैं निष्कामता नाम कामनाका अभाव है औ अन्य जो ज्ञानी है ताकूं बी विवेकतैं नाम विचारतैं निष्कामता है। यातैं इच्छाकी निवृत्तिसैं जन्य तृप्ति तुल्य है ॥ २३ ॥

॥ ७ ॥ "विवेकतैं" इस २३ वें श्लोकउक्तअर्थका विवरण औ तामैं प्रमाण ॥

९० "विवेकतैं" इस २३ वें श्लोकविषै कथन किये अर्थकूं वर्णन करैहैं:—

२४ इहां बी शब्दकरि गंधर्वनके आनंदसैं लेके ब्रह्माके आनंदपर्य्यंत अन्यआनंदनका बी ग्रहण है। यातैं राजाके आनंदकी न्यांई अन्यआनंदनकूं बी ज्ञानी पावताहै। यह संक्षेपतैं सूचन किया औ विस्तारसैं आगे अंक ५४८६–५५३१ पर्यंत कहियेगा ॥

टीकांकः ५४९१

टिप्पणांकः ॐ

९४ देहदोषांश्चित्तदोषान्भोग्यदोषाननेकशः ।
९६ शुनां वांते पायसे नो कामस्तद्वद्विवेकिनः ॥२५॥ १४९६

९८ निष्कामत्वे समेऽप्यत्र राज्ञः साधनसंचये ।
दुःखमासीद्भाविनाशादिति भीरनुवर्तते ॥ २६ ॥ १४९७

९९ नोभयं श्रोत्रियस्यातस्तदानंदोऽधिकोऽन्यतः ।
गंधर्वानंद आशास्ति राज्ञो नास्ति विवेकिनः २७ १४९८

९१] श्रोत्रियत्वात् वेदशास्त्रैः भोगदोषान् अवेक्षते ॥

९२ विषयदोषाः कस्यां शाखायां केन निरूपिता इत्याशंक्य बृहद्रथेन मैत्रायणीयाख्यशाखायां गाथाभिरुक्ता इत्याह (राजेति)-

९३] बृहद्रथः राजा तान् दोषान् गाथाभिः उदाहरत् ॥ २४ ॥

९४] देहदोषान् चित्तदोषान् अनेकशः भोग्यदोषान् ॥

९५ विवेकिनः कामानुदये दृष्टांतमाह—

९६] शुनां वांते पायसे कामः नो। तद्वत् विवेकिनः ॥ २५ ॥

९७ सार्वभौमाच्छ्रोत्रियस्याधिक्यमाह—

९८] निष्कामत्वे समे अपि अत्र राज्ञः साधनसंचये दुःखं आसीत् इति भाविनाशात् भीः अनुवर्तते २६

९९] (नोभयमिति)— श्रोत्रियस्य उभयं न। अतः तदानंदः अन्यतः अधिकः ॥

९१] ज्ञानी। श्रोत्रिय होनैतैं कहिये श्रुतिनके अर्थका जाननैहारा होनैतैं वेद औ शास्त्रनकरि भोगनके दोषनकूं विचारताहै ॥

९२ विषयनके दोष जे हैं वे किस शाखाविषै किस वक्तानै निरूपण कियेहैं? यह आशंकाकरि बृहद्रथनामराजानै मैत्रायणीयनामशाखाविषै अनेककथाकरि विषयगतदोष कहेहैं। ऐसैं कहैहैंः—

९३] बृहद्रथनामराजा था सो तिन विषयगतदोषनकूं अनेकगाथाकरि कहताभया ॥ २४ ॥

॥ ८ ॥ विवेकीकूं कामके अनुदयमैं दृष्टांत ॥

९४] देहके दोषनकूं औ चित्तके दोषनकूं औ अनेकप्रकारके भोग्यके नाम विषयनके दोषनकूं बृहद्रथ राजा कहताभया ॥

९५ विवेकीकूं इच्छाकी अनुत्पत्तिविषै दृष्टांत कहैहैंः—

९६] श्वानके वमन किये दुग्धपाक विषै जैसैं पुरुषकूं इच्छा नहीं होवैहै। तैसैं विवेकीकूं विषयनविषै काम नहीं होवैहै॥२५॥

॥ ९ ॥ सार्वभौमतैं श्रोत्रियकी अधिकता ॥

९७ सार्वभौमतैं श्रोत्रिय जो ज्ञानी ताकी अधिकता कहैहैंः—

९८] दोनूंकी निष्कामताके समान होते बी इहां निष्कामताविषै राजाकूं पूर्व साधनोंके संपादनविषै दुःख होताभया औ आगे होनैहारे नाशतैं भय वर्त्तताहै। ये दोदोष हैं ॥ २६ ॥

९९] श्रोत्रियकूं नाम ज्ञानीकूं २६ वें श्लोकउक्त दोनूंदोष नहीं है। यातैं तिसका आनंद अन्य जो राजा तिसतैं अधिक है ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक:		टीकांक:
अस्मिन्कल्पे मनुष्यः सन्पुण्यपाकविशेषतः ।
गंधर्वत्वं समापन्नो मर्त्यगंधर्व उच्यते ॥ २८ ॥	५५००
१४९९	पूर्वकल्पे कृतात्पुण्यात्कल्पादावेव चेद्भवेत् ।
१५००	गंधर्वत्वं तादृशोऽत्र देवगंधर्व उच्यते ॥ २९ ॥	टिप्पणांक: ॐ
अग्निष्वात्तादयो लोके पितरश्चिरवासिनः ।
१५०१	कल्पादावेव देवत्वं गता आजानदेवताः ॥ ३० ॥

५५००) सार्वभौमत्वं साधनसाध्यं पश्चाच्च तन्नाशभीतिश्चेति दोषद्वयसत्त्वाच्छ्रोत्रिये तु तदुभयाभावादाधिक्यमित्यर्थः ॥

१ श्रोत्रियस्याधिक्यांतरमाह (गंधर्वेति)—

२] राज्ञः गंधर्वानंदे आशा अस्ति। विवेकिनः न अस्ति ॥ २७ ॥

३ इदानीं गंधर्वानंदे द्वैविध्यं दर्शयितुं श्लोकद्वयेन गंधर्वभेदमाह—

४] अस्मिन् कल्पे मनुष्यः सन् पुण्यपाकविशेषतः गंधर्वत्वं समापन्नः मर्त्यगंधर्वः उच्यते ॥ २८ ॥

५] पूर्वकल्पे कृतात् पुण्यात् कल्पादौ एव गंधर्वत्वं भवेत् चेत् । तादृशः अत्र देवगंधर्वः उच्यते ॥ २९ ॥

६ चिरलोकपित्रानंदप्रदर्शनाय चिरलोकपितॄनाह (अग्निष्वात्तादय इति)—

७]लोके चिरवासिनः अग्निष्वात्तादयः पितरः ॥

८ देवानंदत्रैविध्यज्ञानाय देवभेदमाह—

९] कल्पादौ एव देवत्वं गताः आजानदेवताः ॥ ३० ॥

५५००) राजाविषै सारीपृथ्वीका राजापना प्रथम युद्धादिकसाधनकरि साध्य है औ पीछे तिस सार्वभौमपनैके नाशका भय है । इन दोदोषनके होनैतें न्यूनता है औ श्रोत्रियविषै तिन दोनूंदोषनके अभावतें अधिकता है। यह अर्थ है ॥

॥ १० ॥ सार्वभौम औ श्रोत्रिय जो ज्ञानी ताकी औरअधिकता ॥

१ श्रोत्रियकी अन्यअधिकताकूं कहैहैं:—

२] राजाकूं गंधर्वनके आनंदविषै इच्छाविशेषरूप आशा है औ विवेकीकूं नहीं है । यह वी विवेकीकी अधिकता है २७

॥ ११ ॥ गंधर्वका भेद ॥

३ अब गंधर्वनके आनंदविषै दोप्रकारनके दिखावनैकूं दोश्लोकनकरि गंधर्वके भेदकूं कहैहैं:-

४]इस वर्त्तमानकल्पविषै मनुष्य हुया पुण्यके फलके भेदतैं गंधर्वपनैकूं जो प्राप्त भयाहै। सो मनुष्यगंधर्व कहियेहै ॥२८॥

५] पूर्वकल्पविषै किये पुण्यतैं इस वर्त्तमानकल्पकी आदिविषैहीं जब गंधर्वभाव होवै । तब तैसा इहां शास्त्रविषै देवगंधर्व कहियेहैं ॥ २९ ॥

॥ १२ ॥ चिरलोकवासी पितृ औ देवनका भेद ॥

६ चिरलोकवासी पितरनके आनंदके दिखावनैअर्थ चिरलोकके पितरनकूं कहैहैं:—

७]अपनैं लोकविषै चिरकालपर्यंत वास करनैंहारे अग्निष्वात्तआदिक पितर हैं॥

८ देवनके आनंदकी त्रिविधताके ज्ञानअर्थ देवनके भेदकूं कहैहैं:—

९] कल्पकी आदिविषैहीं जे देवभावकूं प्राप्त भयेहैं । वे आजानदेवता कहियेहैं ॥ ३० ॥

टीकांकः ५५१० टिप्पणांकः ८२५	१०अस्मिन्कल्पेऽश्वमेधादि कर्म कृत्वा महत्पदम् । अवाप्याजानदेवैर्याः पूज्यास्ताः कर्मदेवताः॥३१॥ ११यमाग्निमुख्या देवाः स्युर्ज्ञाताविंद्रबृहस्पती । प्रजापतिर्विराट् प्रोक्तो ब्रह्मा सूत्रात्मनामकः ३२ १३सार्वभौमादिसूत्रांता उत्तरोत्तरकामिनः । १५अवाङ्मनसगम्योऽयमात्मानंदस्ततः परम् ॥३३॥	ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः १५०२ १५०३ १५०४

१०] अस्मिन् कल्पे अश्वमेधादि कर्म कृत्वा महत् पदं अवाप्य याः आजानदेवैः पूज्याः ताः कर्मदेवताः ३१

११] यमाग्निमुख्याः देवाः स्युः । इंद्रबृहस्पती ज्ञातौ । प्रजापतिः विराट् प्रोक्तः । ब्रह्मा सूत्रात्मनामकः ॥

ॐ ११) इंद्रबृहस्पती प्रसिद्धावित्यर्थः ३२

१२ सार्वभौमादिसूत्रांतानां श्रोत्रियात् न्यूनत्वद्योतनायाह—

१३] सार्वभौमादिसूत्रांताः उत्तरोत्तरकामिनः ॥

१४ एभ्यः सर्वेभ्योऽधिकमानंदमाह (अवाङ्मनसेति)—

१५] अवाङ्मनसगम्यः अयं आत्मानंदः ततः परम् ॥

१६) यतः अयमात्मानंदः अवाङ्मनसगम्यः अतः एभ्यः सर्वेभ्योऽधिक इत्यर्थः ३३

१०] इस वर्त्तमानकल्पविषै अश्वमेधआदिककर्मकूं करीके बडेपदकूं कहिये ऐश्वर्ययुक्तस्थानकूं पायके जे आजानदेवनसैं पूज्य नाम सेव्य हैं । वे कर्मदेवता कहियेहैं ॥ ३१ ॥

११] यम औ अग्निआदिक मुख्यदेव हैं औ इंद्र जो देवराज अरु बृहस्पति जो देवगुरु । ये दो ज्ञात हैं औ प्रजापति विराट् कह्याहै औ ब्रह्मा सूत्रात्मा कहिये हिरण्यगर्भ इस नामवाला है ॥

ॐ ११) इंद्र औ बृहस्पति ज्ञात हैं । अर्थ यह जो प्रसिद्ध हैं ॥ ३२ ॥

॥ १२ ॥ सार्वभौमराजातैं सूत्रात्मापर्यंतनकी श्रोत्रियतैं न्यूनताका कथन ॥

१२ सार्वभौमसैं आदिलेके सूत्रात्मापर्यंतनकी ज्ञानीतैं न्यूनताके जनावनैंअर्थ कहैहैं:—

१३] सार्वभौमसैं नाम सर्वपृथ्वीके पतिसैं आदिलेके सूत्रात्मापर्य्यंत जे हैं। वे उत्तर उत्तर अपनैंसैं अधिक और-आनंदके इच्छावाले हैं ॥

१४ इन सर्वतैं उत्कृष्ट आनंदकूं कहैहैं:—

१५] वाणी औ मनका अविषय जो यह आत्मानंद है। सो तिनतैं उत्कृष्ट है ॥

१६) जातैं यह आत्मानंद वाणी औ मनकरि अगम्य है यातैं इन सर्वतैं अधिक है। यह अर्थ है ३३

---

२५ (१) यम । अग्नि । वायु । सूर्य । चंद्र औ रुद्र-आदिक जे प्रधानदेव वे मुख्यदेव हैं ॥ मूलश्लोकविषै जो यम औ अग्निपद हैं । सो अन्यवायुआदिकनके उपलक्षण हैं॥

(२) यद्वा यम औ अग्निसैं आदिलेके ब्रह्मापर्यंत जे देव हैं । वे मुख्यदेव हैं ।

(३) यद्वा अष्टवसु । द्वादशआदित्य औ ग्यारारुद्र ये इकतीश मुख्यदेव कहियेहैं । तिनमैं द्वादशआदित्य औ ग्यारारुद्र प्रसिद्ध हैं औ धर । ध्रुव । सोम । आप किंवा विष्णु । वायु । अग्नि । प्रत्यूष औ विभावसु ८। यद्वा द्रोण । प्राण । ध्रुव । अर्क । अग्नि । दोष । वसु औ विभावसु । ये अष्टवसुनामक देव हैं ॥ इति ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक:

टीकांक: ५५१७

१८ तैस्तैः काम्येषु सर्वेषु सुखेषु श्रोत्रियो यतः ।
निस्पृहस्तेन सर्वेषामानंदाः संति तस्य ते ॥३४॥ (१५०५)
२० सर्वकामाप्तिरेषोक्ता २२ यद्वा साक्षिचिदात्मना ।
स्वदेहवत्सर्वदेहेष्वपि भोगानवेक्षते ॥ ३५ ॥ (१५०६)
२५ अज्ञस्याप्येतदस्त्येव न तु तृप्तिरबोधतः ।
२७ यो वेद सोऽश्नुते सर्वान्कामानित्यब्रवीच्छ्रुतिः ३६ (१५०७)

टिप्पणांक: ॐ

१७ इदानीं सर्वेषामानंदाः श्रोत्रिये विद्यंते तस्य तेषु निस्पृहत्वादित्याह—

१८] तैः तैः काम्येषु सर्वेषु सुखेषु श्रोत्रियः यतः निस्पृहः तेन सर्वेषां ते आनंदाः तस्य संति ॥ ३४ ॥

१९ उपपादितमर्थमुपसंहरति (सर्वेति)-

२०] एषा सर्वकामाप्तिः उक्ता ॥

२१ इदानीं पक्षांतरमाह—

२२] यद्वा साक्षिचिदात्मना स्वदेहवत् सर्वदेहेषु अपि भोगान् अवेक्षते॥

२३) यथा स्वदेहे आनंदाकारबुद्धिसाक्षित्वेनानंदित्वमितरेषु देहेषु अपि तद्वदित्यर्थः३५

२४ ननूक्तप्रकारेणाज्ञस्यापि सर्वानंदप्राप्तिरस्तीत्याशंक्य सर्वेषु "सर्वबुद्धिसाक्ष्यहम्" इति ज्ञानाभावान्नैवमित्याह—

॥ १४ ॥ हेतुसहित २१ वें श्लोकउक्तसर्वआनंदनका ज्ञानीमैं सद्भाव ॥

१७ अब राजाआदिकसर्वके आनंद श्रोत्रियविषै विद्यमान हैं। काहेतें तिस श्रोत्रियकूं तिन आनंदनविषै निस्पृह होनैतें। ऐसैं कहैहैं:—

१८] तिन तिन राजा आदिकनकरि कामनाके विषय करनैयोग्य सर्वसुखनविषै श्रोत्रिय नाम ज्ञानी जातैं निरिच्छावान् है । तिस हेतुकरि राजाआदिकसर्वके वे आनंद तिस ज्ञानीकूं अनुभवगोचर हैं ॥ ३४ ॥

॥ १९ ॥ उपपादितअर्थकी समाप्ति औ सर्वकामाप्तिमैं पक्षांतर ॥

१९ श्लोक १८ सैं उपपादन किये सर्वकामाप्तिरूप अर्थकूं समास करैहैं:—

२०] यह सर्वकामाप्ति कही ॥

२१ अब सर्वकामाप्तिविषै अन्यपक्षकूं कहैहैं:-

२२] अथवा साक्षीचेतनरूपकरि ज्ञानी अपनै इस लिंगशरीरसंबंधी देहकी न्याई सर्वदेहनविषै बी भोगनकूं देखताहै नाम भोगताहै ॥

२३) ज्ञानीकूं जैसैं अपनैं देहविषै आनंदाकारबुद्धिका साक्षी होनैंकरि आनंदवान्पना है । तैसैं इतर राजाआदिकनके देहनविषै बी आनंदाकारबुद्धिका साक्षी होनैंकरि आनंदीपना है । यह अर्थ है ॥ ३५ ॥

॥ १६ ॥ अज्ञानीकूं ३५ वें श्लोकउक्तप्रकारसैं सर्वआनंदनकी प्राप्तिका अभाव औ तिसीहीं श्लोकउक्तअर्थमैं तैत्तिरीयश्रुति ॥

२४ ननु ३५ वें श्लोकउक्तप्रकारसैं अज्ञानीकूं बी सर्वआनंदनकी प्राप्ति है । ताहीकूं बी वास्तवसाक्षीचेतनरूप होनैतें। यह आशंकाकरि "सर्वदेहनविषै सर्वबुद्धिनका साक्षी मैं हूं" इस ज्ञानके अभावतें अज्ञानीकूं बी सर्वआनंदनकी प्राप्ति है। यह कथन बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं:—

टीकांकः ५५२५ टिप्पणांकः ॐ

³⁰यद्वा सर्वात्मतां स्वस्य साम्ना गायति सर्वदा ।
अहमन्नं तथान्नादश्चेति साम ह्यधीयते ॥ ३७ ॥
³³दुःखाभावश्च कामाप्तिरुभे ह्येवं निरूपिते ।
कृतकृत्यत्वमन्यच्च प्राप्तप्राप्यत्वमीक्षताम् ॥३८॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः १५०८ १५०९

२५] अज्ञस्य अपि एतत् अस्ति एव अबोधतः तृप्तिः तु न ॥

२६ उक्तार्थे तैत्तिरीयश्रुतिं प्रमाणयति—

२७] "यो वेद सः सर्वान् कामान् अश्नुते" इति श्रुतिः अब्रवीत् ॥

२८) गुहायां निहितं ब्रह्म यो वेद सोऽश्नुते इति योजना ॥ ३६ ॥

२९ इदानीं तृतीयप्रकारमाह—

३०] यद्वा स्वस्य सर्वात्मतां साम्ना सर्वदा गायति "अहं अन्नं तथा च अन्नादः" इति साम हि अधीयते ॥

३१) "इमाँल्लोकान्कामान्निष्कामरूप्यनुचरन्" इत्यादिनेत्यर्थः ॥ ३७ ॥

३२ अतीतग्रंथेन सिद्धमर्थं संक्षिप्याह (दुःखाभाव इति)—

३३] एवं दुःखाभावः च कामाप्तिः उभे हि निरूपिते । च अन्यत् कृतकृत्यत्वं प्राप्तप्राप्यत्वं ईक्षताम् ॥ ३८॥

२५] अज्ञानीकूं बी यह साक्षीरूप होनैंकरि सर्वआनंदनकी प्राप्ति हैहीं । ऐसैं जो कहै तौ तिसकूं अपनी साक्षीरूपताके अज्ञानतैं तृप्ति नहीं है ॥

२६ श्लोक ३५ सैं उक्त अर्थविषै तैत्तिरीयश्रुतिकूं प्रमाण करैहैं:—

२७]"जो जानताहै सो सर्वभोगनकूं भोगताहै" ऐसैं श्रुति कहतीभई ॥

२८) पंचकोशरूप गुहाविषै स्थित प्रत्यक्अभिन्नपरमात्माब्रह्मकूं जो पुरुष जानताहै। सो सर्वकामोंकूं भोगताहै। ऐसैं श्लोकका अन्वय है ३६

॥ १७ ॥ सर्वकामाप्तिमैं तृतीयप्रकार ॥

२९ अब सर्वकामाप्तिविषै तृतीयप्रकारकूं कहैहैं:—

३०]अथवा ज्ञानी अपनी सर्वात्मताकूं सामवेदके मंत्ररूप वचनकरि सर्वदा गायन करताहै ॥ "मैं अन्न कहिये सर्वभोग्यरूप हूं तथा अनाद कहिये सर्वभोक्तारूप हूं" ऐसैं साम पठन करियेहै॥

३१) "इन स्वर्गादिलोकनकूं औ तिस तिस लोकगत भोगरूप कामोकूं निष्कामरूपी कहिये साक्षीरूपी ज्ञानी सर्वविषै अनुगत हुया भोगताहै" इत्यादिवाक्यकरि यह मूलश्लोकगतश्रुतिवाक्यका अर्थ जानियेहै। यह अर्थ है ३७

॥ ३ ॥ विद्यानंदका अवांतरभेद (कृतकृत्यता ३ औ प्राप्तप्राप्यता ४) ॥ ५५३२–५५६३ ॥

॥ १ ॥ कृतकृत्यता ॥ ५५३२–५५५४ ॥

॥ १ ॥ गतग्रंथसैं सिद्धअर्थका संक्षेपसैं कथन औ उत्तरग्रंथके अर्थका कथन ॥

३२ तृतीयश्लोकसैं गत ग्रंथकरि निर्णीत अर्थकूं संक्षेपकरिके कहैहैं:—

३३] ऐसैं ३–३७ वें श्लोकपर्यंत दुःखका अभाव औ सर्वकामकी प्राप्ति । ये दोनूं निरूपण किये औ तिन दोनूंतैं भिन्न जे कृतकृत्यपना औ प्राप्तप्राप्यपना ये दोनूं हैं । वे तृप्तिदीपविषै देखनै योग्य हैं ॥ ३८ ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः

[34] उभयं तृप्तिदीपे हि सम्यगस्माभिरीरितम् ।
[36] त एवात्रानुसंधेयाः श्लोका बुद्धिविशुद्धये ॥३९॥

1510 [37] ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्ध्यै मुक्तेश्च सिद्धये ।
1511 बहु कृत्यं पुरास्याभूत्तत्सर्वमधुना कृतम् ॥ ४० ॥

[38] तदेतत्कृतकृत्यत्वं प्रतियोगिपुरःसरम् ।
1512 अनुसंदधदेवायमेवं तृप्यति नित्यशः ॥ ४१ ॥

[39] दुःखिनोऽज्ञाः संसरंतु कामं पुत्राद्यपेक्षया ।
1513 परमानंदपूर्णोऽहं संसरामि किमिच्छया ॥ ४२ ॥

टीकांकः: ५५३४

टिप्पणांकः: ८२६

३४] (उभयमिति)— हि उभयं तृप्तिदीपे अस्माभिः सम्यक् ईरितम्॥

३५ अवशिष्टं कृतकृत्यत्वं प्राप्तप्राप्यत्वमित्युभयं तृप्तिदीपे द्रष्टव्यमित्याह—

३६] ते एव श्लोकाः अत्र बुद्धिविशुद्धये अनुसंधेयाः ॥ ३९ ॥

३७] (ऐहिकेति)— अस्य पुरा ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्ध्यै च मुक्तेः सिद्धये बहु कृत्यं अभूत् । तत् सर्वं अधुना कृतम् ॥ ४० ॥

३८] (तदिति)—अयं तत् एतत् कृतकृत्यत्वं प्रतियोगिपुरःसरं अनुसंदधत् एव । एवं नित्यशः तृप्यति ॥४१॥

३९] दुःखिनः अज्ञाः कामं पुत्राद्य-

॥ २ ॥ वक्ष्यमाणअर्थ तृप्तिदीपमैं है ताका अनुवाद औ तहांके श्लोकनके इहां अनुसंधान करनैकी योग्यता ॥

३४] जातैं ये दोनूं तृप्तिदीपविषै हमनैं सम्यक् कहेहैं। यातैं तहां देखलेना॥

३५ विद्यानंदके द्वितीयश्लोकउक्तच्यारिभेदनमैंसैं अवशेष रहा जो कृतकृत्यपना औ प्राप्तप्राप्यपना । वे दोनूं तृप्तिदीपविषै देखनैकूं योग्य हैं । ऐसैं कहैहैं:—

३६] सोई तृप्तिदीपगतश्लोक इहां बुद्धिकी विशुद्धिअर्थ अनुसंधान करनैकूं योग्य है ॥ ३९ ॥

॥ ३ ॥ कर्तव्यके कथनपूर्वक ज्ञानीकी कृतकृत्यता ॥

३७] इस ज्ञानीकूं पूर्व अज्ञानदशामैं इसलोक औ परलोकसंबंधी भोगके समूहकी सिद्धिअर्थ औ मुक्तिकी सिद्धिअर्थ बहुत कर्त्तव्य था । सो सर्व अब ज्ञानदशामैं किया ॥ ४० ॥

॥ ४ ॥ कर्तव्यसहित कृतकृत्यताके अनुसंधानतैं ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

३८] यह ज्ञानी । तिस संक्षेपसैं उक्त इस विशेषकरि कहनै योग्य कृतकृत्यपनैकूं कहिये कर्त्तव्यके अभावकूं प्रतियोगी जो कर्त्तव्यताके पूर्वक अनुसंधान करताहीं है । ऐसैं सर्वदा तृप्तिकूं पावताहै ४१

॥ ५ ॥ ज्ञानीकूं इसलोकसंबंधी कर्तव्यका अभाव ॥

३९] दुःखी जे अज्ञानी हैं । वे जैसैं इच्छा होवै तैसैं पुत्रआदिककी

२६ ज्ञानीकी कृतकृत्यता औ प्राप्तप्राप्यताका क्रमतैं वर्णन देखो तृप्तिदीपगत २५३–२७० औ २९२–२९७ श्लोकनविषै ॥

	अनुतिष्ठंतु कर्माणि परलोकयियासवः ।	ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः
	सर्वलोकात्मकः कस्मादनुतिष्ठामि किं कथम् ४३	
टीकांकः	४१ व्याचक्षतां ते शास्त्राणि वेदानध्यापयंतु वा ।	१५१४
५५४०	येऽत्राधिकारिणो मे तु नाधिकारोऽक्रियत्वतः ४४	१५१५
टिप्पणांकः	४२ निद्राभिक्षे स्नानशौचे नेच्छामि न करोमि च ।	
ॐ	द्रष्टारश्चेत्कल्पयंति किं मे स्यादन्यकल्पनात्॥४५॥	१५१६
	४३ गुंजापुंजादि दह्येत नान्यारोपितवह्निना ।	
	नान्यारोपितसंसारधर्मानेवमहं भजे ॥ ४६ ॥	१५१७

पेक्षया संसरंतु । परमानंदपूर्णः अहं किमिच्छया संसरामि ॥ ४२ ॥

४०] (अनुतिष्ठंत्विति)— परलोकयियासवः कर्माणि अनुतिष्ठंतु । सर्वलोकात्मकः कस्मात् किं कथं अनुतिष्ठामि ॥ ४३ ॥

४१] (व्याचक्षतामिति)— ये अत्र अधिकारिणः ते शास्त्राणि व्याचक्षतां वा वेदान् अध्यापयंतु। मे तु अक्रियत्वतः अधिकारः न ॥ ४४ ॥

४२] निद्राभिक्षे स्नानशौचे न इच्छामि च न करोमि द्रष्टारः चेत् कल्पयंति अन्यकल्पनात् मे किं स्यात्॥४५॥

४३] गुंजापुंजादि अन्यारोपितवह्निना न दह्येत। एवं अन्यारोपितसंसारधर्मान् अहं न भजे ॥ ४६ ॥

अपेक्षासैं कहिये इच्छासैं इसलोकसंबंधी व्यवहारकूं करहू औ परमानंदकरि पूर्ण जो मैं हूं । सो किसकी इच्छाकरि व्यवहारकूं करूं? ॥ ४२ ॥

॥ ६ ॥ ज्ञानीकूं परलोकसंबंधी कर्तव्यका अभाव ॥

४०] परलोकके तांई जानैंकी इच्छावाले पुरुष कर्मनकूं अनुष्ठान करहू औ सर्वलोकस्वरूप जो मैं । सो किस कारणतैं किस कर्मकूं कैसैं अनुष्ठान करूं? ॥ ४३ ॥

॥७॥ ज्ञानीकूं लोकके अनुग्रहअर्थ कर्तव्यका अभाव॥

४१] जे आचार्यपुरुष इस परअर्थप्रवृत्तिविषै अधिकारी होवैं। वे शास्त्रनकूं व्याख्यान करो वा वेदनकूं अध्ययन करावहू औ मेरेकूं तौ अक्रिय होनैतैं परअर्थप्रवृत्तिविषै अधिकार नहीं है ॥४४॥

॥ ८ ॥ द्रष्टा जो पुरुष ताकी कल्पनाकी व्यर्थतासहित ज्ञानीकूं भिक्षादिकदेहनिर्वाहकक्रियाका वास्तवअभाव ॥

४२] निद्रा भिक्षा स्नान औ शौचइत्यादिक्रियाकूं मैं चिदात्मा इच्छता नहीं हूं अरु करता बी नहीं हूं औ देखनैवाले पुरुष जे कल्पतेहैं। तौ अन्यपुरुषनकी कल्पनातैं मेरेकूं क्या बाध होवैगा? ॥ ४५ ॥

॥ ९ ॥ अन्यके कल्पनाकी व्यर्थतामैं दृष्टांत ॥

४३] जैसैं गुंजाका पुंज कहिये चिनोठीका ढेर आदिकअग्निसदृशरक्तवस्तु अन्य वानरआदिकनकरि आरोपित अग्निसैं दाह करै नहीं । ऐसैं अन्यअज्ञपुरुषनकरि आरोपित संसारके धर्मनकूं मैं नहीं प्राप्त होताहूं ॥ ४६ ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः

४४ शृण्वंत्वज्ञाततत्त्वास्ते जानन्कस्माच्छृणोम्यहम् ।
मन्यंतां संशयापन्ना न मन्येऽहमसंशयः ॥ ४७॥ १५१८

४५ विपर्यस्तो निदिध्यासेत्किं ध्यानमविपर्ययात् ।
देहात्मत्वविपर्यासं न कदाचिद्भजाम्यहम् ॥४८॥ १५१९

४६ अहं मनुष्य इत्यादिव्यवहारो विनाप्यमुम् ।
विपर्यासं चिराभ्यस्तवासनातोऽवकल्पते ॥ ४९॥ १५२०

४७ प्रारब्धकर्मणि क्षीणे व्यवहारो निवर्तते ।
कर्माक्षये त्वसौ नैव शाम्येद्ध्यानसहस्रतः ॥५०॥ १५२१

टीकांकः ५५४४

टिप्पणांकः ॐ

४४] (शृण्वंत्विति)—अज्ञाततत्त्वाः ते शृण्वंतु । अहं जानन् कस्मात् शृणोमि॥ संशयापन्नाः मन्यंतां । अहं असंशयः न मन्ये ॥ ४७ ॥

४५] विपर्यस्तः निदिध्यासेत् । अहं देहात्मत्वविपर्यासं कदाचित् न भजामि । अविपर्ययात् किं ध्यानम् ॥ ४८ ॥

४६] अहं मनुष्यः इत्यादिव्यवहारः अमुं विपर्यासं विना अपि चिराभ्यस्तवासनातः अवकल्पते ॥ ४९ ॥

४७] प्रारब्धकर्मणि क्षीणे व्यवहारः निवर्तते । कर्माक्षये तु असौ ध्यानसहस्रतः न एव शाम्येत् ॥ ५० ॥

॥ १० ॥ ज्ञानीकूं श्रवण औ मननके कर्तव्यका अभाव ॥

४४] जे अज्ञाततत्त्व हैं वे श्रवणकूं करो । मैं तत्त्वकूं जानताहुया किस प्रयोजनके लिये श्रवणकूं करूं? औ जे संशयकूं प्राप्त भयेहैं वे मननकूं करो । मैं असंशय हुया मननकूं करता नहीं॥४७

॥ ११ ॥ निदिध्यासनके कर्तव्यका औ विपर्ययका अभाव ॥

४५] विपर्ययवान्पुरुष निदिध्यासनकूं करो औ मैं देहविषै आत्मताके ज्ञानरूप विपर्ययकूं कदाचित् भजता नहीं । यातैं मेरेकूं विपर्ययके अभावतैं कौन ध्यान कर्त्तव्य है? कोइ वी नहीं ४८

॥ १२ ॥ "मैं मनुष्य हूं" इत्यादिव्यवहारका विपर्ययसैं विना चिरअभ्यस्तवासनातैं संभव ॥

४६] "मैं मनुष्य हूं" इत्यादिकव्यवहार इस विपर्याससैं विना वी अनादिकालतैं अभ्यास करी संस्काररूप वासनातैं होवैहै ॥ ४९ ॥

॥ १३ ॥ प्रारब्धजन्यव्यवहारकी निवृत्तिअर्थ ध्यानकी अकर्तव्यता ॥

४७] प्रारब्धकर्मके क्षय हुये व्यवहार निवर्त्त होवैहै औ कर्मके नहीं नाश हुये तौ यह व्यवहार हजारों हजार ध्यानतैं वी निवर्त्त नहीं होवैहै ॥ ५० ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः

टीकांकः ५५४८ टिप्पणांकः ८२७

४८ विरलत्वं व्यवहृतेरिष्टं चेद्ध्यानमस्तु ते ।
अबाधिकां व्यवहृतिं पश्यन्ध्यायाम्यहं कुतः ५१

४९ विक्षेपो नास्ति यस्मान्मे न समाधिस्ततो मम। १५२२
विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसः स्याद्विकारिणः ५२ १५२३

५० नित्यानुभवरूपस्य को मे वानुभवः पृथक् ।
कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्येव निश्चयः॥ ५३ ॥ १५२४

५१ व्यवहारो लौकिको वा शास्त्रीयो वान्यथापि वा ।
ममाकर्तुरलेपस्य यथारब्धं प्रवर्तताम् ॥ ५४ ॥ १५२५

४८] (विरलत्वमिति)— व्यवहृतेः विरलत्वं इष्टं चेत् ते ध्यानं अस्तु । अहं व्यवहृतिं अबाधिकां पश्यन् कुतः ध्यायामि ॥ ५१ ॥

४९] (विक्षेप इति)— यस्मात् मे विक्षेपः न अस्ति ततः मम समाधिः न । विक्षेपः वा समाधिः वा विकारिणः मनसः स्यात् ॥ ५२ ॥

५०] नित्यानुभवरूपस्य मे कः वा अनुभवः पृथक् । "कृत्यं कृतं । प्रापणीयं प्राप्तम्" इति एव निश्चयः ५३

५१] (व्यहार इति)—लौकिकः वा शास्त्रीयः वा अन्यथा अपि वा व्यवहारः अकर्तुः अलेपस्य मम यथारब्धं प्रवर्तताम् ॥ ५४ ॥

॥ १४ ॥ व्यवहारकी न्यूनताकी इच्छावालेकूं ध्यानका अंगीकार औ ज्ञानीकूं व्यवहारकी अबाधकतातैं ध्यानका अभाव ॥

४८] हे प्रतिवादी! "व्यवहारकी स्वल्पता इष्ट कहिये जीवन्मुक्तके विलक्षणसुखअर्थ वांछित है" जो ऐसैं रुचि होवै तौ तेरेकूं ध्यान होहु औ मैं व्यवहारकूं अबाधक कहिये आत्मा ज्ञान औ मोक्षका बाध न करनैंहारा देखताहुया काहेतैं ध्यानकूं करूं? ॥ ५१ ॥

॥ १५ ॥ समाधिकी अकर्तव्यता औ विक्षेप अरु समाधिकूं मनोधर्मता ॥

४९] जातैं मेरेकूं विक्षेप नहीं है तातैं मेरेकूं समाधि वी नहीं है औ विशेष जो चंचलता। वा समाधि जो एकाग्रता। ये दोनूं विकारीमनके धर्म होवैहैं ५२

॥ १६ ॥ अनुभवअर्थ समाधिकी अकर्तव्यता औ श्लोक ८ सैं उक्त कृतकृत्यता औ श्लोक ९८ सैं वक्ष्यमाण प्राप्तप्राप्यताके सरणतैं ज्ञानीका निश्चय ॥

५०] नित्यअनुभवरूप मेरेकूं अपेक्षित कौन अनुभव भिन्न है? कोई वी नहीं। यातैं "जो करनै योग्य था सो किया औ प्राप्त होनै योग्य था सो पाया।" यहहीं मेरा निश्चय है ॥ ५३ ॥

॥ १७ ॥ प्रारब्धसैं प्राप्त उत्तमादिव्यवहारका अंगीकार ॥

५१] लौकिक वा शास्त्रीय वा अन्यथा नाम दोनूंतैं विपरीत वी व्यवहार मेरा अकर्त्ताका औ अभोक्ताका जैसैं प्रारब्ध होवै तैसैं प्रवर्त्त होहू ९४

२७ ज्ञानीकी कृतकृत्यता औ प्राप्तप्राप्यताका निर्णय देखो ६८१ वें टिप्पणविषै ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः

टीकांकः ५५५२

टिप्पणांकः ॐ

[५२] अथवा कृतकृत्योऽपि लोकानुग्रहकाम्यया ।
शास्त्रीयेणैव मार्गेण वर्तेऽहं का मम क्षतिः ॥५५॥

१५२६ [५३] देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौ वर्ततां वपुः ।
१५२७ तारं जपतु वाक् तद्वत्पठत्वाम्नायमस्तकम् ५६

[५४] विष्णुं ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानंदे विलीयताम् ।
१५२८ साक्ष्यहं किंचिदप्यत्र न कुर्वे नापि कारये ५७

[५५] कृतकृत्यतया तृप्तः प्राप्तप्राप्यतया पुनः ।
१५२९ तृप्यन्नेवं स्वमनसा मन्यतेऽसौ निरंतरम् ॥५८॥

५२] अथवा अहं कृतकृत्यः अपि लोकानुग्रहकाम्यया शास्त्रीयेण मार्गेण एव वर्ते मम का क्षतिः ॥ ५५ ॥

५३] देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौ वपुः वर्ततां । वाक् तारं जपतु । तद्वत् आम्नायमस्तकं पठतु ॥ ५६ ॥

५४] (विष्णुमिति)— धीः विष्णुं ध्यायतु । यद्वा ब्रह्मानंदे विलीयतां । साक्षी अहं अत्र किंचित् अपि न कुर्वे न अपि कारये ॥ ५७ ॥

५५] (कृतकृत्येति)—असौ कृतकृत्यतया तृप्तः पुनः प्राप्तप्राप्यतया तृप्यन् स्वमनसा निरंतरं एवं मन्यते ॥ ५८ ॥

॥ १८ ॥ लोकअनुग्रहकी इच्छासैं शास्त्रीयमार्गकरि वर्तनैवाले ज्ञानीकी अहानि ॥

५२] अथवा मैं कृतकृत्य हुया बी लोकके कहिये प्राणिनके अनुग्रहकी इच्छासैं शास्त्रउक्तमार्गकरिहीं वर्त्तूंगा । तिसतैं मेरी कौन हानि है? कोई बी नहीं ॥ ५५ ॥

॥ १९ ॥ शास्त्रसंबंधी उत्तमव्यवहारसैं ज्ञानीकूं निरभिमानिता ॥

५३] देवताका पूजन स्नान शौच औ भिक्षाआदिकविषै शरीर वर्त्तो औ वाक्इंद्रिय प्रणवकूं जपो यद्वा वेदांतशास्त्रकूं पठन करो ॥५६॥

५४] बुद्धि विष्णुकूं ध्यावै । यद्वा ब्रह्मानंदविषै विलीन होवै औ साक्षीरूप जो मैं सो कछु करता बी नहीं औ करावता बी नहीं हूं ॥ ५७ ॥

॥२॥ प्राप्तप्राप्यता ॥५५५५——५५६३ ॥

॥ १ ॥ पूर्वउत्तरके स्मरणपूर्वक ज्ञानीकूं तृप्तिके कथनपूर्वकउत्तरग्रंथका प्रारंभ ॥

५५] यह ज्ञानी कृतकृत्यपनैकरि तृप्त हुया फेर प्राप्तप्राप्यपनैकरि तृप्त हुया अपनै मनसैं निरंतर ऐसैं कहिये आगे कहनैके प्रकारसैं मानता है ॥ ५८ ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांकः

टीकांकः ५५५६ टिप्पणांकः ॐ

५६ धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमंजसा वेद्मि ।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानंदो विभाति मे स्पष्टम् ५९ ॥ १५३०

५७ धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽद्य ।
धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि ६० ॥ १५३१

५८ धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किंचित् ।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य संपन्नम् ६१ ॥ १५३२

५९ धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके ।
धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो धन्यः पुनः पुनर्धन्यः ६२ ॥ १५३३

५६] (धन्य इति)—नित्यं स्वात्मानं अंजसा वेद्मि । अहं धन्यः । अहं धन्यः । मे ब्रह्मानंदः स्पष्टं विभाति । अहं धन्यः । अहं धन्यः ॥ ५९ ॥

५७] (धन्य इति)—अद्य सांसारिकं दुःखं न वीक्षे । अहं धन्यः । अहं धन्यः । स्वस्य अज्ञानं क्व अपि पलायितं । अहं धन्यः । अहं धन्यः ॥६०॥

५८] (धन्य इति)—मे किंचित् कर्तव्यं न विद्यते । अहं धन्यः । अहं धन्यः । अद्य प्राप्तव्यं सर्वं संपन्नं । अहं धन्यः । अहं धन्यः ॥ ६१ ॥

५९] (धन्य इति)—अहं धन्यः । अहं धन्यः । मे तृप्तेः लोके का उपमा भवेत् । अहं धन्यः । अहं धन्यः । धन्यः । धन्यः । पुनः पुनः धन्यः ॥६२॥

॥ २ ॥ ज्ञान औ ताके आनंदप्राप्तिरूप फलकरि ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

५६] जातैं नित्य अपनै आत्माकूं साक्षात् जानताहूं । यातैं मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं औ जातैं मेरेकूं ब्रह्मानंद स्पष्ट भासताहै । यातैं मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं ॥ ५९ ॥

॥ ३ ॥ अनर्थनिवृत्तिकरि ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

५७] जातैं अब संसारसंबंधी दुःखकूं मैं नहीं देखताहूं । यातैं मैं धन्य हूं । मैं धन्य नाम कृतार्थ हूं औ जातैं अपना कहिये स्वस्वरूपका अज्ञान कहूं बी भाग गया । यातैं मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं ६०

॥ ४ ॥ कृतकृत्यता औ प्राप्तप्राप्यताकरि ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

५८] जातैं मेरेकूं किंचित् कर्त्तव्य नहीं है तातैं मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं । औ जातैं प्राप्त होनैं योग्य सर्व पाया । तातैं मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं ॥ ६१ ॥

॥ ५ ॥ निरूपण करी तृप्तिके स्मरणतैं ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

५९] मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं । मेरी तृप्तिकी लोकविषै कौन उपमा होवैगी? कोइ बी नहीं ॥ औ मैं धन्य हूं । मैं धन्य हूं । धन्य हूं । धन्य हूं । वारंवार धन्य हूं ॥ ६२ ॥

ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ १४ ॥ श्लोकांक: — टीकांक: ५५६० — टिप्पणांक: ॐ

६० अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढम् ।
अस्य पुण्यस्य संपत्तेरहो वयमहो वयम् ॥ ६३ ॥ १५३४

६१ अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः ।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम् ॥६४॥ १५३५

६३ ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे चतुर्थोऽध्याय ईरितः ।
विद्यानंदस्तदुत्पत्तिपर्यंतोऽभ्यास इष्यताम् ॥६५॥ १५३६

इति श्रीपंचदश्यां ब्रह्मानंदे विद्यानंदः ॥ ४ ॥ १४ ॥

६०] (अहो पुण्यमिति)— पुण्यं अहो । पुण्यं अहो । दृढं फलितं फलितं । अस्य पुण्यस्य संपत्तेः वयं अहो । वयं अहो ॥ ६३ ॥

६१] (अहो शास्त्रमिति)— शास्त्रं अहो । शास्त्रं अहो । गुरुः अहो । गुरुः अहो । ज्ञानं अहो । ज्ञानं अहो । सुखं अहो । सुखं अहो ॥ ६४ ॥

६२ इममध्यायार्थमुपसंहरति—

६३] ब्रह्मानंदाभिधे ग्रंथे विद्यानंदः चतुर्थः अध्यायः ईरितः । तदुत्पत्ति-पर्यंतः अभ्यासः इष्यताम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमत्परहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीभारती-तीर्थविद्यारण्यमुनिवर्यकिंकरेण रामकृ-ष्णाख्यविदुषा विरचिते ब्रह्मानंदे विद्यानंदो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ १४ ॥

॥ ६ ॥ श्लोक ५९ सैं उक्त फलप्रद पुण्य औ ताके संपादक आपके स्मरणतैं ज्ञानीकूं तृप्ति ॥

६०] मेरा पुण्य अहो है । पुण्य अहो है । जो पुण्य दृढ फल्याहै । फल्याहै औ इस पुण्यके संपादनतैं हम अहो हैं । हम अहो हैं ॥ ६३ ॥

॥ ७ ॥ शास्त्र । गुरु । ज्ञान औ सुख । इनके स्मरणतैं ज्ञानीकूं हर्ष ॥

६१] वेदांतशास्त्र अहो है । शास्त्र अहो है ॥ ब्रह्मनिष्ठगुरु अहो है । गुरु अहो है ॥ ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान अहो है । ज्ञान अहो है ॥ विद्यानंद सुख अहो है । सुख अहो है ॥ ६४ ॥

॥ ८ ॥ विद्यानंद नाम १४ वैं प्रकरणरूप अध्याय-के अर्थकी समाप्ति ॥

६२ इस विद्यानंदनामकप्रकरणके अर्थकूं समाप्त करैहैं:—

६३] ब्रह्मानंदनाम पांचअध्यायरूप ग्रंथविषै विद्यानंदनाम चतुर्थअध्याय कह्या । तिस उक्त प्रकारके विद्यानंदकी उत्पत्तिपर्यंत श्रवणादिरूप अभ्यास अंगीकार करना ॥ ६५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यबापुसर-स्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा विरचिता पंचदश्या ब्रह्मानंदगत-विद्यानंदस्य तत्त्वप्रकाशिकाख्या व्याख्या समाप्ता ॥ ४ ॥ १४ ॥

॥ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥

॥ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांकः १५३७	[65] अथात्र विषयानंदो ब्रह्मानंदांशरूपभाक् । निरूप्यते [67] द्वारभूतस्त[68]दंशत्वं श्रुतिर्जगौ ॥ १ ॥	टीकांकः ५५६४ टिप्पणांकः ॐ

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ भाषाकर्त्तृकृत मंगलाचरणम् ॥

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पंचदश्या नृभाषया ।
विषयानंदसंज्ञस्य व्याख्यानं क्रियते मया ॥१॥

६४ पंचमाध्यायस्य प्रतिपाद्यमर्थमाह—

॥ ॐ श्रीपंचदशी ॥

॥ अथ श्रीब्रह्मानंदगत विषयानंदकी* तत्त्वप्रकाशिका व्याख्या ॥ १५ ॥

॥ भाषाकर्त्तृकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्त सर्वगुरुनकूं नमस्कार-करिके श्रीपंचदशीके विषयानंदनामप्रकरणका व्याख्यान नरभाषासैं मेरेकरि करियेहै ॥१॥

॥ १ ॥ सप्रपंचब्रह्मके स्वरूपका कथन ॥ ५५६४—५६२७ ॥

॥१॥ विषयानंदके निरूपणकी योग्यता-पूर्वक ताकी उपाधिभूत वृत्तिनका विभाग ॥ ५५६४—५५७७ ॥

॥ १ ॥ ब्रह्मानंदका अंश औ ताके ज्ञानके द्वार विषयानंदके निरूपणकी प्रतिज्ञा औ ताकूं ब्रह्मानंदके अंश होनैमैं श्रुतिप्रमाण ॥

६४ पंचमअध्याय जो विषयानंदनामप्रकरण ताके प्रतिपादन करनै योग्य अर्थकूं कहैहैंः—

* विषयलाभादिनिमित्तसैं अंतर्मुख भई वृत्तिनविषै जो बिंबरूप ब्रह्मानंदका प्रतिबिंब होवैहै । सो विषयानंद कहियेहै । ताहीकूं लेशानंद औ ब्रह्मानंदका अंश बी कहैहै । तिसका प्रधानताकरि प्रतिपादक जो प्रकरण सो विषयानंद कहियेहै ॥

टीकांक: ५५६५ टिप्पणांक: ८२८	एषोऽस्य परमानंदो योऽखंडैकरसात्मकः । अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोपभुंजते ॥ २ ॥ शांता घोरास्तथा मूढा मनसो वृत्तयस्त्रिधा । वैराग्यं क्षांतिरौदार्यमित्याद्याः शांतवृत्तयः ॥ ३ ॥	ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांक: १५३८ १५३९

६५] अथ अत्र ब्रह्मानंदांशरूपभाक् विषयानंदः निरूप्यते ॥

६६ ननु विषयानंदस्य लौकिकत्वात् मोक्षशास्त्रे निरूपणमनुपपन्नमित्याशंक्य तस्य लौकिकप्रसिद्धत्वेऽपि ब्रह्मानंदैकदेशत्वेन ब्रह्मज्ञानोपयोगित्वात् युक्तमित्याह—

६७] द्वारभूतः ॥

६८ ब्रह्मानंदैकदेशत्वे किं प्रमाणमित्याशंक्याह—

६९] तदंशत्वं श्रुतिः जगौ ॥ १ ॥

७० तामेव श्रुतिं अर्थतः पठति (एष इति)—

७१] यः अखंडैकरसात्मकः एषः अस्य परमानंदः अन्यानि भूतानि एतस्य मात्रां एव उपभुंजते ॥ २ ॥

७२ इदानीं विषयानंदस्य ब्रह्मानंदलेशत्वप्रदर्शनाय तदुपाधिभूतांतःकरणवृत्तीर्विभजते—

७३] शांताः घोराः तथा मूढाः मनसः वृत्तयः त्रिधा ॥

६५] अब इस १५ वें प्रकरणविषै ब्रह्मानंदका अंशरूप विषयानंद निरूपण करियेहै ॥

६६ ननु विषयानंदकूं लोकप्रसिद्ध होनैतें शास्त्रविषै तिसका निरूपण अयुक्त है । यह आशंकाकरि तिस विषयानंदकूं लौकिकप्रसिद्धताके होते बी ब्रह्मानंदका एकदेशरूप होनैंकरि ब्रह्मके ज्ञानविषै उपयोगी होनैतें शास्त्रविषै तिसका निरूपण है। ऐसैं कहैहैंः—

६७] सो विषयानंद कैसा है ? द्वारभूत है कहिये ब्रह्मानंदके ज्ञानका साधन है ॥

६८ विषयानंदकूं ब्रह्मानंदका एकदेशपना है । यामैं कौन प्रमाण है ? यह आशंकाकरि कहैहैंः—

६९] तिस ब्रह्मानंदका अंशपना श्रुति कहतीभई ॥ १ ॥

॥ २ ॥ द्वितीयश्लोकउक्तश्रुतिका अर्थतैं पठन ॥

७० तिसीहीं श्रुतिकूं अर्थतैं पठन करैहैंः—

७१] जो अखंड एकरसरूप है । यह इस ब्रह्मका स्वरूपभूत परमानंद है औ अन्यभूतप्राणी इस ब्रह्मानंदकी मात्रा जो लेश ताकूं भोगतेहैं नाम अनुभव करतेहैं॥२॥

॥ ३ ॥ अंतःकरणकी वृत्तिनकी त्रिविधता औ तामैं शांत नाम सात्विकवृत्तिनका कथन ॥

७२ अब विषयानंदकूं जो ब्रह्मानंदकी लेशरूपता है ताके दिखावनैं अर्थ तिस विषयानंदकी उपाधिरूप अंतःकरणकी वृत्तिनकूं विभाग करैहैंः—

७३] शांत घोर औ मूढ भेदकरि मनकी वृत्तियां तीनप्रकारकी हैं ॥

---

२८ जैसैं दर्पणविषै प्रतीयमान मुखका प्रतिबिंब । विद्यमान मुखरूप बिंबके यथायोग्य जाननैंका द्वाररूप साधन है । तैसैं वृत्तिनविषै प्रतीयमान ब्रह्मानंदका प्रतिबिंब जो विषयानंद । सो विद्यमानब्रह्मानंदके यथायोग्य सच्चिदानंदरूपकरि जाननैंका द्वाररूप साधन है । याहीतैं याका इहां निरूपण करियेहै ॥

ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १९ ॥ श्लोकांकः १५४० १५४१	तृष्णा स्नेहो रागलोभावित्याद्या घोरवृत्तयः । संमोहो भयमित्याद्याः कथिता मूढवृत्तयः ॥ ४ ॥ वृत्तिष्वेतासु सर्वासु ब्रह्मणश्चित्स्वभावता । प्रतिबिंबति शांतासु सुखं च प्रतिबिंबति ॥ ५ ॥	टीकांकः ५५७४ टिप्पणांकः ८२९

७४) शांताः सात्विक्यो वृत्तयः । घोराः राजस्यः । मूढाः तामस्यः ॥

७५ ता एव शांतादिवृत्तीर्दर्शयति—

७६] वैराग्यं क्षांतिः औदार्यं इत्याद्याः शांतवृत्तयः ॥ ३ ॥

७७] तृष्णा स्नेहः रागलोभौ इत्याद्याः घोरवृत्तयः । संमोहः भयं इत्याद्याः मूढवृत्तयः कथिताः ॥ ४ ॥

७८ उदाहृतासु विविधास्वपि वृत्तिषु ब्रह्मणः चिद्रूपत्वं भातीत्याह (वृत्तिष्विति)—

७९] एतासु सर्वासु वृत्तिषु ब्रह्मणः चित्स्वभावता प्रतिबिंबति ॥

८० शांतासु विशेषमाह—

८१] शांतासु सुखं च प्रतिबिंबति ॥

---

७४) शांत कहिये सात्विकीवृत्तियां औ घोर कहिये राजसीवृत्तियां औ मूढ कहिये तामसीवृत्तियां ॥

७५ तिसीहीं शांतआदिकवृत्तिनकूं दिखावैहैं:—

७६] वैराग्य क्षमा औ उदारता। इनसैं आदिलेके शांतवृत्तियां हैं ॥ ३ ॥

॥ ४ ॥ घोरवृत्ति जो राजसी औ मूढ जो तामसी ताका कथन ॥

७७] तृष्णा स्नेह राग औ लोभ इनसैं आदिलेके घोरवृत्तियां हैं औ संमोह औ भय इनसैं आदिलेके मूढवृत्तियां हैं ॥ ४ ॥

॥ २ ॥ चतुर्थश्लोकउक्तसर्ववृत्तिनमैं चिदंशका प्रतिबिंबद्वारा भान औ काहु वृत्तिनमैं आनंदका प्रतिबिंबद्वारा भान ॥ ५५७८—५६०३ ॥

॥ १ ॥ सर्ववृत्तिनमैं चिदंशका औ शांतवृत्तिनमैं आनंदका भान ॥

७८ तृतीयश्लोकसैं उदाहरणकरि कही जो विविधप्रकारकी वृत्तियां । तिनविषै ब्रह्मकी चेतनरूपता भासतीहै । ऐसैं कहैहैं:—

७९] इन सर्ववृत्तिनविषै ब्रह्मकी चिद्रूपता प्रतिबिंबकूं पावतीहै ॥

८० शांत जे सात्विकवृत्तियां तिनविषै विलक्षणता कहैहैं:—

८१] औ शांतवृत्तिनविषै सुख नाम आनंद बी प्रतिबिंबकूं पावताहै ॥

---

२९ शांतवृत्तिनका भेदपूर्वक स्वरूप देखो ८१—८४ वें टिप्पणविषै ॥

३० घोरवृत्तिनका भेदपूर्वक स्वरूप । देखो ८५—८७ वें औ ८९ वें टिप्पणविषै ॥

३१ मूढवृत्तिनका भेदपूर्वक स्वरूप । देखो ९०—९३ वें टिप्पणविषै ॥

टीकांक: ५५८२ टिप्पणांक: ॐ	रूपं रूपं बभूवासौ प्रतिरूप इति श्रुतिः । उपमा सूर्यकेत्यादि सूत्रयामास सूत्रकृत् ॥ ६ ॥ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ ७ ॥	ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १९ ॥ श्लोकांक: १५४२ १५४३

८२) चशब्दोऽनुक्तद्वयसमुच्चयार्थः ॥ ५ ॥

८३ उक्तार्थे श्रुतिवाक्यमर्थतः पठति (रूपमिति)—

८४] "असौ रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव" इति श्रुतिः ॥

८५ तत्रैव व्याससूत्रैकदेशं पठति—

८६] "उपमा सूर्यक" इत्यादि सूत्रकृत् सूत्रयामास ॥

८७) "अत एव च" इति सूत्रस्य पूर्वभागः ॥ ६ ॥

८८ स्वरूपेणैकस्योपाधिसंपर्कान्नानात्वे श्रुतिं पठति—

८९] एकः एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । जलचंद्रवत् एकधा च बहुधा एव दृश्यते ॥ ७ ॥

८२) मूलविषै जो "च" शब्दका पर्याय वी-शब्द है । सो नहीं कथन किये अंशके मिलावनै अर्थ है । यातैं शांतवृत्तिनविषै सुख औ चेतन दोईका प्रतिबिंब होवैहै ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ पंचमश्लोकउक्तअर्थमैं श्रुतिका अर्थतैं पठन औ व्याससूत्रके एकदेशका कथन ॥

८३ पंचमश्लोकउक्तअर्थविषै श्रुतिवाक्यकूं अर्थतैं पठन करैहैं:—

८४] "यह परमात्मा रूपरूपके तांई कहिये देहदेहके तांई प्रतिरूप कहिये प्रतिबिंबरूप होताभया" ऐसी श्रुति है ॥

८५ तिसीहीं उक्त प्रतिबिंबरूप अर्थविषै व्याससूत्रके एकदेशकूं पठन करैहैं:—

८६] "औ याहीतैं उपमा जो दृष्टांत सो सूर्यकआदिक हैं" इत्यादि इस सूत्रकूं सूत्रकार व्यासजी इसअर्थविषै कहतेभये ॥

८७) "औ याहीतैं" यह सूत्रके पूर्वभागका अर्थ है । जातैं निरंशब्रह्मका अंश जीव बनै नहीं । इस कारणतैंही इस जीवकी जल प्रतिबिंबित सूर्यआदिककी न्यांई यह उपमा है । यह सारे सूत्रका अर्थ है ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ स्वरूपसैं एकके उपाधिसैं नानापनैमैं श्रुतिका पठन ॥

८८ स्वरूपकरि एकब्रह्मके उपाधिके संबंधकरि नानापनैंविषै श्रुतिकूं पठन करैहैं:—

८९] एकहीं भूतात्मा जो सर्वभूतनका निजरूप ब्रह्म भूतभूतविषै नाम सर्वप्राणिनके शरीरनविषै स्थित है । सो तलाव औ घटगत जलविषै प्रतिबिंबित चंद्रमाकी न्यांई ईश्वररूपकरि एकप्रकारका औ जीवरूपकरि बहुतप्रकारका देखियेहै ॥ ७ ॥

ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १९ ॥ श्लोकांकः		टीकांकः
	जले प्रविष्टश्चंद्रोऽयमस्पष्टः कलुषे जले ।	
१५४४	विस्पष्टो निर्मले तद्वद्द्वेधा ब्रह्मापि वृत्तिषु ॥ ८ ॥	५५९०
	घोरमूढासु मालिन्यात्सुखांशश्च तिरोहितः ।	
१५४५	ईषन्नैर्मल्यतस्तत्र चिदंशप्रतिबिंबनम् ॥ ९ ॥	टिप्पणांकः ॐ
	यद्वापि निर्मले नीरे वह्नेरौष्ण्यस्य संक्रमः ।	
१५४६	न प्रकाशस्य तद्वत्स्याच्चिन्मात्रोद्भूतिरेव च ॥१०॥	

९० ननु निरवयवस्य ब्रह्मणः क्वचिच्चिन्मात्रभानमितरत्र चिदानंदभानमित्येवं विभागकरणमनुपपन्नमित्याशंक्य चंद्रदृष्टांतेन परिहरति—

९१] जले प्रविष्टः अयं चंद्रः कलुषे जले अस्पष्टः । निर्मले विस्पष्टः ॥

९२ उक्तमर्थं दार्ष्टांतिके योजयति—

९३] तद्वत् ब्रह्म अपि वृत्तिषु द्वेधा ८

९४ तदेवोपपादयति—

९५] घोरमूढासु मालिन्यात् सुखांशः च तिरोहितः ईषन्नैर्मल्यतः तत्र चिदंशप्रतिबिंबनम् ॥ ९ ॥

९६ ननु चंद्रोपाधेरुदकस्य द्वैविध्यादंशभानमुपपन्नं प्रकृते तूपाधिभूतस्यांतःकरणस्यैकत्वादेकांशभानमनुपपन्नमित्याशंक्य दृष्टांतांतरमाह—

९७] यद्वा निर्मले नीरे अपि वह्नेः औष्ण्यस्य संक्रमः प्रकाशस्य न । तद्वत् चिन्मात्रोद्भूतिः एव च स्यात् १०

॥४॥ वृत्तिनके भेदकरि ब्रह्मकूं द्विधा होनैमैं दृष्टांत ॥

९० ननु निरवयव कहिये विभागआदिकदूषणसैं रहित ब्रह्मका काहु राजसतामसवृत्तिनके स्थलमैं चेतनमात्रका भान होवैहै औ अन्यसात्विकवृत्तिके स्थलमैं चित् औ आनंद दोनूंका भान होवैहै । ऐसैं विभाग करना अयुक्त है । यह आशंकाकरिके चंद्रके दृष्टांतकरि परिहार करैहैं:—

९१] जैसैं जलविषै प्रवेशकूं कहिये प्रतिबिंबकूं पाया यह चंद्र मलिनजलविषै अस्पष्ट भासताहै औ निर्मलजलविषै स्पष्ट भासताहै ॥

९२ दृष्टांतविषै उक्त अर्थकूं दार्ष्टांतविषै जोडतेहैं:—

९३] तैसैं ब्रह्म बी वृत्तिनविषै दोभांतिका भान होवैहै ॥ ८ ॥

॥ ५ ॥ श्लोक ८ उक्त अर्थका उपपादन ॥

९४ तिसी श्लोक ८ उक्त अर्थकूंहीं उपपादन करैहैं:—

९५] घोर औ मूढवृत्तिनविषै मलिनपनैतैं ब्रह्मका सुखअंश तिरोधानकूं पावताहै औ अल्पनिर्मलपनैतैं तिन घोर औ मूढवृत्तिनविषै चिदंशका प्रतिबिंब होवैहै ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ श्लोक ८ उक्त अर्थमैं अन्यदृष्टांत ॥

९६ ननु चंद्रकी उपाधिरूप जलकूं दोप्रकारका होनैतैं एकअंशका भान युक्त है औ प्रकृतविषै तौ उपाधिभूत अंतःकरणकूं एक होनैतैं एकअंशका भान अयुक्त है । यह आशंकाकरि अन्यदृष्टांतकूं कहैहैं:—

९७] यद्वा जैसैं निर्मलजलविषै बी अग्निकी उष्णताका आगमन होवैहै प्रकाशका नहीं । तैसैं घोर औ मूढवृत्तिनविषै चेतनमात्रका आविर्भाव होवैहै ॥ १० ॥

टीकांकः ५५९८ टिप्पणांकः ॐ		ब्रह्मानंदे विषयानंदः ॥ १५ ॥ श्लोकांकः
	काष्ठे त्वौष्ण्यप्रकाशौ द्वावुद्भवं गच्छतो यथा । शांतासु सुखचैतन्ये तथैवोद्भूतिमाप्नुतः ॥ ११ ॥	१५४७
	वस्तुस्वभावमाश्रित्य व्यवस्था भूतयोः समा । अनुभूत्यनुसारेण कल्प्यते हि नियामकम् ॥१२॥	१५४८
	न घोरासु न मूढासु सुखानुभव ईक्ष्यते । शांतास्वपि क्वचित्कश्चित्सुखातिशय ईक्ष्यताम् १३	१५४९

९८ इदानीं शांतासु वृत्तिषु चिदानंदयोः प्रतीतौ दृष्टांतांतरमाह (काष्ठे इति)—

९९] **यथा काष्ठे तु औष्ण्यप्रकाशौ द्वौ उद्भवं गच्छतः । तथा एव शांतासु सुखचैतन्ये उद्भूतिं आप्नुतः ॥ ११ ॥**

५६०० नन्वेवं व्यवस्था कुतः कृतेत्याशंक्याह—

१] **वस्तुस्वभावं आश्रित्य भूतयोः व्यवस्था समा ॥**

२ तत्र किं नियामकमित्याशंक्याह—

३] **अनुभूत्यनुसारेण नियामकं कल्प्यते हि ॥ १२ ॥**

४ अनुभूतिमेव दर्शयति—

५] **न घोरासु न मूढासु सुखानुभवः ईक्ष्यते ॥**

६ शांतास्वप्यानंदप्रकाशोऽस्ति सोऽपि क्वचित्कश्चित् सुखातिशयो भवतीत्याह—

॥ ७ ॥ शांतवृत्तिनमैं चित् औ आनंदकी प्रतीतिमैं अन्यदृष्टांत ॥

९८ अब शांतवृत्तिनमैं चित् औ आनंदकी प्रतीतिविषै अन्यदृष्टांतकूं कहैहैं:—

९९] **जैसैं काष्ठविषै अग्निके धर्म उष्णता औ प्रकाश दोनूं उद्भवकूं पावतेहैं । तैसैंहीं शांतवृत्तिनविषै सुख औ ज्ञान दोनूं उद्भवकूं पावतेहैं ॥११॥**

॥ ८ ॥ श्लोक ११ उक्त व्यवस्थाका हेतु औ अनुभवके अनुसारसैं नियामक ॥

५६०० ननु ऐसैं कहिये उक्तप्रकारसैं व्यवस्था काहेतैं करीहै ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

१] **वस्तुके स्वभावकूं आश्रयकरिके भूत नाम तुल्य कहिये दृष्टांत औ दार्ष्टांत इन दोनूंकी व्यवस्था समान है ॥**

२ तिस समानव्यवस्थाविषै नियामक-प्रमाण कौन है ? यह आशंकाकरि कहैहैं:—

३] **अनुभवके अनुसारकरि नियामककी कल्पना करियेहै ॥ १२ ॥**

॥ ३ ॥ शांत घोर औ मूढवृत्तिनमैं क्रमतैं सुख औ दुःखके अनुभवपूर्वक ब्रह्मके सदादितीनअंशनका व्यवस्थासैं कथन ॥ ५६०४—५६२७ ॥

॥१॥ श्लोक १२ उक्त अनुभूतिका शांतवृत्तिनमैं कहूं कोईकसुखका अतिशय ॥

४ अनुभवकूंहीं दिखावैहैं:—

५] **घोरवृत्तिनविषै औ मूढवृत्तिनविषै सुखका अनुभव नहीं देखियेहै ॥**

६ शांतवृत्तिनविषै जो आनंदका अनुभव है। सो बी कोईकसुखके अतिशयवाला होवैहै। ऐसैं कहैहैं:—